तीन-चार

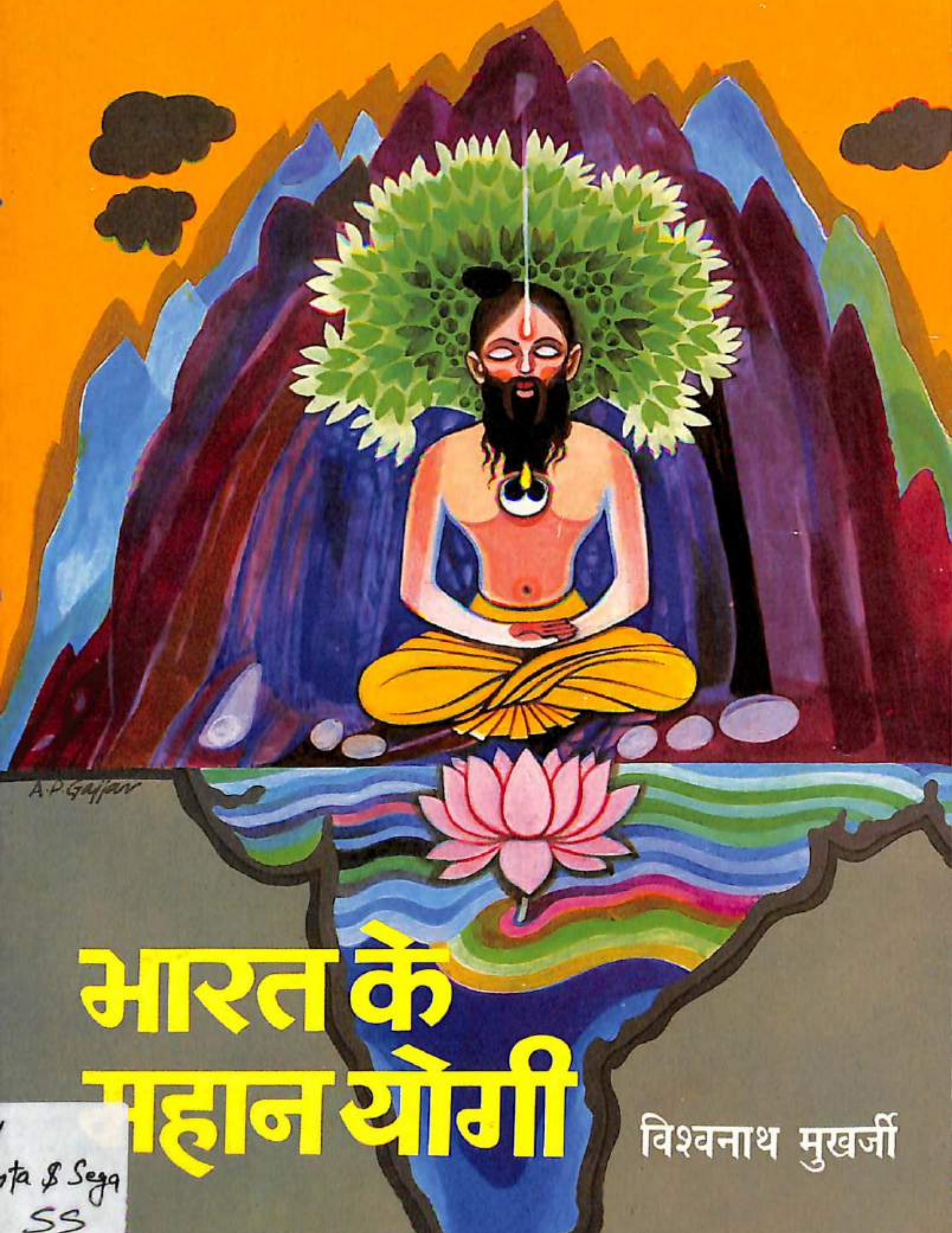

भारत के महान योगी

विश्वनाथ मुखर्जी

ta $ Sega
SS

55-13

भारत के महान् योगी

(खण्ड तीन-चार)

लेखक

विश्वनाथ मुखर्जी

अनुराग प्रकाशन, वाराणसी

BHARAT KE MAHAN YOGI
(Part 3-4)
by
Vishwanath Mukherjee

ISBN : 81-89498-09-6

चतुर्थ संस्करण : 2006 ई०

प्रकाशक
अनुराग प्रकाशन
चौक, वाराणसी–221 001
फोन व फैक्स : (0542) 2421472
E-mail : vvp@vsnl.com ● sales@vvpbooks.com
Shop at : www.vvpbooks.com

मुद्रक
वाराणसी एलेक्ट्रॉनिक कलर प्रिण्टर्स प्रा० लि०
चौक, वाराणसी–221 001

पुरोवाक्

श्री विशुद्धानन्द परमहंस ने योग को विज्ञान कहा है। वे स्वयं सूर्य-विज्ञान के अपूर्व ज्ञाता थे। उन्होंने यह भी कहा है कि योग-विज्ञान के कई भेद हैं। सूर्य-विज्ञान, चन्द्र-विज्ञान, नक्षत्र-विज्ञान, स्वर-विज्ञान, वायु-विज्ञान, देव-विज्ञान आदि विज्ञान हैं। साधक जब सूर्य-विज्ञान में सिद्ध हो जाता है तब शेष विज्ञानों को सीखने में आसानी होती है।

डा० सम्पूर्णानन्द जी भी साधक थे और उन्होंने इस विज्ञान का गहरा अध्ययन किया था। उन्होंने लिखा है—''आध्यात्मिक अनुभूति द्वारा शुद्ध, अपरोक्ष, अतीन्द्रिय ज्ञान होता है और वह वर्णनातीत है। उसकी चर्चा करना अनुचित और बेकार है। अपने को सत्य की, उस सत्य पदार्थ की जो देश और काल के परे है जिसमें यह जगत् ओत-प्रोत है जो जगत् के, द्रष्टा, भीतर और बाहर है जो अपनी आत्मा से अभिन्न है, उस सत्य की क्या अनुभूति हुई, कैसी झलक मिली, इसकी क्या चर्चा की जाय, अनुभूति ही इसका एकमात्र मार्ग है। योग का प्रत्येक अभ्यासी तत्त्व द्रष्टा नहीं हो जाता। योग की पहली सीढ़ी पर पाँव रखने वाले का स्थान भी दूसरी सब उपासना, यज्ञ, याग करने वालों के लोक से ऊँचा है। सच्चे कलाकार को कभी-कभी इसकी झलक मिल जाती है।

आगे एक जगह आप लिखते हैं—''ज्ञान का सर्वोपरि साधन, एकमात्र अचूक और असन्दिग्ध साधन योग है। साधारण अवस्था में हमारी बुद्धि राग-द्वेष से कलुषित रहती है। शुद्ध, सम्पूर्ण ज्ञान की हमको अपेक्षा भी नहीं है। उससे कष्ट भी हो सकता है। यदि हमारी चक्षुरिन्द्रिय इतनी तेज हो जाय कि हम दूसरों के शरीर के भीतर की क्रियाओं को देख सकें तो किसी से प्रेम करना तो दूर रहा, बात करना कठिन हो जाय। मनुष्य में ऐसी शक्ति है पर वह अपनी इन्द्रियों से पूरा काम नहीं लेता, लेना चाहता भी नहीं।

''योगाभ्यास के समय राग द्वेषादि के आवरण हट जाते हैं और निर्बाध ज्ञान होता है, सत्य का आवरणहीन रूप सामने आता है। अपने अनुभव को कहाँ तक व्यक्त किया जा सकता है, यह अनेक बातों पर निर्भर करता है। मुझसे लोग कभी कभी पूछते हैं कि मैं विभूतियों, सिद्धियों में विश्वास करता हूँ या नहीं। अंग्रेजी पढ़े-लिखे व्यक्ति के सामने यह प्रश्न बहुत आता है। मैं इतना ही कह सकता हूँ कि मुझे इस पर विश्वास है। मनुष्य अपार-शक्ति का भण्डार है, परन्तु वासनाओं ने चित्त में परदे बना रखे हैं, दहकते अंगारे पर राख की तह बैठ गयी है। ज्यों-ज्यों राख उड़ती है, अभ्यास के बल से परदे उड़ते हैं,

त्यों-त्यों अंगारे की छिपी आँच प्रकट होती है। सिद्धि कहीं बाहर से नहीं आती, अपनी ही छिपी शक्ति प्रकट होती है। प्रत्येक अभ्यासी को इसका अनुभव होगा।''

इस उद्धरण को यहाँ देने का आशय यह है कि अनेक पाठकों ने ऐसे योगियों के बारे में जानकारी चाही है जो वर्तमान समय में जीवित हों। इसमें कोई सन्देह नहीं कि ऐसे अनेक योगी आज भी भारत में हैं, पर वे घरों में नहीं रहते। हिमालय, विन्ध्य के अमरकंटक, तिब्बत, गिरनार और असम के घने जंगलों में निवास करते हैं। उन्हें पहचानना कठिन है। सच्चे साधक या योगी कभी आत्म प्रदर्शन नहीं करते। जिस सिद्धि को पाने के लिए योगी अपने जीवन के अमूल्य समय को नष्ट करते हैं, उसे सहज ही सर्वसाधारण के लिए सुलभ नहीं होने देते।

उपनिषद् का वाक्य है—''क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया, दुर्ग पथः तत्कवयो वदन्ति। नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो ना समाहितः''।

अर्थात् योगियों का कथन है कि वह मार्ग बहुत ही कठिन है। छूरे की तीखी धार के समान दुर्गम है। इस मार्ग पर चलने वाला वह नहीं हो सकता जो दुश्चरितों को छोड़ न चुका हो, जिसने इन्द्रियों को दबाया न हो।

कुछ पाठकों ने योग-सम्बन्धी समस्याओं के बारे में प्रश्न किये हैं। मैं अपनी ओर से कुछ न कहकर पण्डित गंगाशंकर मिश्र के लेखों से कुछ उद्धरण देना पसन्द करूँगा ताकि पाठकों को इस दिशा में सही जानकारी प्राप्त हो जाय।

''अंग्रेजी में प्रकाशित एक पुस्तक का नाम है-'थर्ड आई' यानी 'तीसरा नेत्र'। इसके लेखक हैं—श्री लोबसग रम्पा। वे तिब्बत के अवतारी लामा थे। तिब्बतियों का विश्वास है कि अवतारी लामाओं का जब तीसरा नेत्र खोल दिया जाता है तब उन्हें अन्तर्दृष्टि प्राप्त हो जाती है। रम्पा का तीसरा नेत्र खोल दिया गया था। परन्तु अन्तर्दृष्टि सबको सहज ही प्राप्त नहीं होती। इसके लिए अपनी योग्यता से इने-गिने व्यक्ति ही अधिकारी माने जाते हैं। 'तीसरा-नेत्र' खोलने की विधि इस प्रकार है—अंग्रेजी अक्षर 'यू' जैसा एक यन्त्र होता है, उसमें काँटे रहते हैं। पहले मस्तक को कुछ औषधियों से शून्य बना दिया जाता है, फिर वह यन्त्र मस्तक के मध्य में नाक के ऊपर ठोंका जाता है। उसके काँटे हड्डियों तक पहुँच जाते हैं। वह स्थान शून्य होने से पीड़ा अधिक नहीं होती, पर तब भी बहुत कष्ट होता है। हड्डी तक यन्त्र के काँटे पहुँच जाने के बाद यह खींच लिया जाता है। पर उसका एक टुकड़ा उस रन्ध्र में रह जाता है जो शिर में कपाल की ओर जाता है। तीन दिन तक उसे उसी स्थान पर रहने दिया जाता है। इसी बीच बिलकुल अँधेरे कमरे में उस व्यक्ति को रखा जाता है और उसे बहुत कम खाना-पीना दिया जाता है। तीसरे दिन वह टुकड़ा निकाल लिया जाता है तब उसका 'तीसरा नेत्र' खुल जाता है और तब उसे प्रत्येक व्यक्ति अपने असली रूप में दिखाई पड़ने लगता है, न उस रूप में जिसमें कि वह ऊपर से है। इच्छानुसार यह नेत्र खोलने और मूँदने का अभ्यास भी करा दिया जाता है। यदि ऐसा न हो तो प्रत्येक व्यक्ति हर समय उसे दोहरे रूप में दिखलायी देता रहे, और वह बड़े असमंजस में पड़ा रहे। जब

किसी व्यक्ति का भीतरी रूप देखने की इच्छा होती है तभी उस नेत्र का प्रयोग किया जाता है।''

रम्पा ने अपनी पुस्तक में लामाओं की योग सिद्धियों की चर्चा करते हुए लिखा है—''वे अदृश्य हो सकते हैं, उड़ सकते हैं, हवा की तरह तेज भाग सकते हैं, बिना खाये-पीये रह सकते हैं।' अपने बारे में उसने यह भी लिखा है कि इनमें से कुछ सिद्धियाँ मुझे भी प्राप्त हैं। यह विद्या भारत से तिब्बत गयी। अब तो भारत में यह एक प्रकार से लुप्त है।

लामाओं को इस दिशा में कितनी कठोर-साधना करनी पड़ती है इसकी चर्चा करते हुए उन्होंने लिखा है—''शीतकाल की रात में जब तेज हवा चल रही हो, साधक को एक नदी या झील के किनारे ले जाया जाता है। यदि वे जम गयी हों तो बर्फ में एक गड्ढ़ा खोदकर उसके भीतर साधक को बैठा दिया जाता है। साधक नग्न होकर पद्मासन में बैठ जाता है। फिर कपड़े की चादर को बर्फ के पानी में भिगोकर उसे ओढ़ायी जाती है, जो साधक इस प्रकार अधिक सुखा देता है, वह परीक्षा में सर्वप्रथम माना जाता है। कहा जाता है कि प्रत्येक साधक के लिए कम-से-कम तीन चादर सुखाना आवश्यक है। ऐसा व्यक्ति 'रेस्पा' कहलाता है जो बाद में एक सूखी चादर ओढ़ सकता है। कुछ लोग इस क्रिया में चालीस-चालीस चादर सुखा डालते हैं। दूसरी परीक्षा यह होती है जो साधक गड्ढे में बैठकर अधिक से अधिक बर्फ पिघला सके, वह प्रथम माना जाता है। अभ्यास पूरा हो जाने पर उच्च श्रेणी के साधकों को कोई ऊनी या सूती वस्त्र धारण न करने की प्रतिज्ञा करनी पड़ती है। तिब्बती लामाओं को अपनी इस सिद्धि पर गर्व है।''

दरअसल भारत से यह विद्या तिब्बत पहुँची है। तिब्बत में पद्मसम्भव ने ही भारतीय तन्त्र पर आधृत 'वज्रयान' सम्प्रदाय का प्रचार किया था। उसमें तीन 'मकार' (मन्त्र, मण्डल और मुद्रा) पर अधिक जोर है। उसके इस सम्प्रदाय की कई शाखाएँ तिब्बत में प्रचलित हैं। वहाँ का महातान्त्रिक मर्प तीन बार भारत आया और भारतीय गुरुओं से दीक्षा ली। उसका एक शिष्य 'मिरलेप' महान् योगी हुआ।

योग की शिक्षा अत्यन्त कष्ट साध्य है। यह न तो सर्वसाधारण के लिए सहज ही सुलभ होता है और न प्रत्येक साधक को अनायास प्राप्त होता है। इसके लिए कठिन तपस्या करनी पड़ती है।

—विश्वनाथ मुखर्जी

अनुक्रमणिका

१.	योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी	१
२.	महर्षि रमण	३५
३.	भूपेन्द्रनाथ सान्याल	५८
४.	योगी वरदाचरण	७२
५.	नारायण स्वामी	८४
६.	बाबा कीनाराम	९७
७.	तैलंग स्वामी	१०६
८.	परमहंस रामकृष्ण ठाकुर	१५३
९.	जगद्गुरु शंकराचार्य	१७६
१०.	सन्त एकनाथ	२००

योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी

पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेण्ट, मिलेटरी इंजीनियरिंग वर्क्स का ऑफिस। स्थान—दानापुर।

ऑफिस का केरानी बाबू कुछ फाइलें लेकर बड़े साहब के कमरे के पास आकर कहा—"क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ, सर?"

भीतर से कोई जवाब नहीं आया तो केरानी बाबू ने धीरे से भीतर जाकर उनकी मेज पर फाइलें रख दीं और फिर बाहर चला आया। साहब दार्शनिकों की तरह खिड़की के बाहर का दृश्य देख रहे थे।

आधे घंटे बाद पुन: कुछ फाइलें लेकर केरानी बाबू आये तो देखा—साहब पहले की तरह खोये-खोये से हैं।

"सर!"

साहब ने गौर से केरानी बाबू की ओर देखते हुए कहा—"आज मन नहीं लग रहा है। फाइलें रखकर आप जा सकते हैं।"

केरानी बाबू ने नम्रतापूर्वक पूछा—"क्षमा करें, सर! आखिर बात क्या है? मेरे योग्य कोई सेवा हो तो हुक्म करें।"

साहब ने एक गहरी साँस लेते हुए कहा—"इंग्लैण्ड से पत्र आया है। मेरी पत्नी सख्त बीमार है। समझ में नहीं आ रहा है कि क्या करूँ? वहाँ रहता तो देखरेख करता।"

केरानी बाबू ने कहा—"तभी मैं सोच रहा था कि क्या बात है जो साहब फाइल में हाथ नहीं लगा रहे हैं। मैं थोड़ी देर बाद आ रहा हूँ।"

केरानी बाबू की बातें सुनकर साहब का उदास चेहरा मुस्कान में बदल गया। ऑफिस के सभी बाबू इस केरानी बाबू को 'पगला बाबू' कहते थे। हमेशा न जाने क्यों अपने आप में खोये से रहते थे। बातें करते समय हमेशा मुस्कराते रहते थे। आँखें ढपी रहती थीं। कुछ लोग इन्हें 'आनन्दमग्न बाबू' भी कहते थे, क्योंकि हमेशा आनन्द में डूबे रहते थे। किसी बात की चिन्ता नहीं करते थे।

थोड़ी देर बाद साहब के कमरे का दरवाजा खुला। साहब ने केरानी बाबू की ओर देखते हुए कहा—''आज मैं कुछ भी नहीं करूँगा। आप मुझे कृपया तंग न करें। अब फाइलों का काम कल होगा।''

साहब की बातें समाप्त होने पर केरानी बाबू ने कहा—''सर, आप बिलकुल बेफिक्र रहिये। मेम साहब स्वस्थ हो गयी हैं। वे आपको आज की तारीख में पत्र लिख रही हैं। अगली मेल से आपको उनका पत्र मिल जायगा। सिर्फ यहीं नहीं, टिकट मिलते ही वे अगले जहाज से भारत के लिए रवाना हो जायेंगी।''

इधर केरानी बाबू अपनी बातें कह रहे थे और उधर साहब मुस्कराते हुए इनकी ओर देख रहे थे। साहब ने कहा—''आप तो इस तरह बयान दे रहे हैं जैसे मेरी पत्नी से मिलकर चले आ रहे हैं। पगला बाबू, आपकी बातों से निस्सन्देह मुझे सांत्वना मिली। इसके लिए धन्यवाद, ईश्वर करे कि आपकी बातें सही हों। अब आप अपने टेबुल पर चले जाइये।''

पगला बाबू यानी श्यामाचरण लाहिड़ी महाशय समझ गये कि साहब ने उनकी बातों पर विश्वास नहीं किया। उन्हें क्या मालूम कि इस बीच मैंने क्या किया। समय आने पर स्वयं ही चकित रह जायेंगे।

एक माह के बाद एक दिन साहब के चपरासी ने श्यामाचरण लाहिड़ी के टेबुल के पास आकर कहा—''बाबू, आपको साहब ने याद किया है।''

साहब ने इन्हें देखते ही कहा—''पगला बाबू, आप कमाल के आदमी हैं। लगता है, आप कुछ ज्योतिष वगैरह जानते हैं। आपकी बात बिलकुल ठीक निकली।''

श्यामाचरण जी यह तो समझ गये कि साहब के कहने का क्या उद्देश्य है, फिर भी अनजान बनकर उन्होंने पूछा—''कौन-सी बात, सर?''

साहब ने प्रसन्न भाव से कहा—''आपने मेरी पत्नी के बारे में जो कुछ कहा था, सब सही निकला। मेरी पत्नी बिलकुल ठीक हो गयी है और भारत के लिए अब रवाना हो चुकी है। सच पूछिये तो इधर मैं बहुत चिन्तित था। आज पत्नी का पत्र पाकर प्रसन्नता हुई। मैडम को आने दो। मैं उनकी मुलाकात आप से कराऊँगा।''

इस घटना के २०-२५ दिन बाद एक दिन पुनः श्यामाचरण जी की बुलाहट हुई। साहब के कमरे में जाते ही उन्होंने कहा—''आओ पगला बाबू, यही हैं मेरी मैडम और ये हैं....''

'माई गाड!' कहने के साथ ही मेम साहब कुर्सी से उछल पड़ीं।

साहब ने चौंककर पूछा—"क्या बात है?"

मेम साहब ने पूछा—"आप कब आये?"

साहब ने कहा—"पगला बाबू कब आये? यह क्या पूछ रही हो।"

लाहिड़ी महाशय सब कुछ समझ गये। बिना कुछ बोले वे बाहर चले गये। उनके जाने के बाद मेम साहब ने कहना प्रारम्भ किया—"बड़े आश्चर्य की बात है। लगता है जैसे यहाँ आकर जादू देख रही हूँ। घर में जब बीमार थी तब एक दिन यही आदमी मेरे सिरहाने खड़ा होकर सिर पर हाथ फेरता रहा। मुझे आश्चर्य हुआ कि आखिर यह अपरिचित व्यक्ति मेरे घर में कैसे आ गया। लेकिन दूसरे ही क्षण इसने मुझे सहारा देकर बिस्तर पर जब बैठाया तब मेरी सारी बीमारी दूर हो गयी। मुझे अजीब सा लगा। इसने कहा—'बेटी, तुम बिलकुल ठीक हो गयी हो। अब तुम्हें कोई कष्ट नहीं होगा। भारत में तुम्हारे पति बड़े बेचैन हैं। उन्हें अभी पत्र लिखकर डाक में डाल दो। कल ही जहाज कम्पनी में सीट बुक कराने का ऑर्डर भेज दो। जल्दी भारत चली जाओ वर्ना साहब नौकरी छोड़कर वापस आ जायेंगे।' इतना कहकर यह आदमी गायब हो गया। मैं यह भी नहीं पूछ सकी कि आखिर तुम कौन हो, कहाँ रहते हो, मेरे पति के बारे में क्या जानते हो। उस वक्त ऐसा लगा जैसे मैं कोई सपना देख रही थी और आज इस शख्स को यहाँ देखकर डर गयी।"

सारी बातें सुनकर साहब कम विस्मित नहीं हुए।

* * *

बंगाल में तीन संतों की चर्चा पिछले सौ वर्षों से होती आ रही है। सर्वश्री लोकनाथ ब्रह्मचारी, श्यामाचरण लाहिड़ी और स्वामी विशुद्धानन्द। दरअसल इन संतों से अनेक भक्त उपकृत हुए हैं, इसलिए इनकी कहानियाँ बराबर सुनाई जाती हैं।

लाहिड़ी महाशय का जन्म नदिया जिले के घुरणी गाँव में, ३० सितम्बर, सन् १८२८ ई० को हुआ था। आपके पिता की प्रथम पत्नी से दो पुत्र तथा एक पुत्री हुई। प्रथम पत्नी के निधन के पश्चात् आपके पिता श्री गौरमोहन लाहिड़ी ने पुनर्विवाह किया। द्वितीय पत्नी के गर्भ से आप प्रथम पुत्र हुए।

आपके पैतृक निवास स्थान में जलंगी नदी बहती थी जिसने सहसा अपना मार्ग बदल दिया। इस दैवी दुर्घटना के कारण आपका घर नदी के उदर में चला गया। कुछ दिनों बाद आपके पिता काशी चले आये।

लाहिड़ी महाशय नदिया जिला से अचानक काशी क्यों चले आये, इस विषय में मतभेद है। यहाँ आकर बंगाली टोला स्थित एक भवन में सपरिवार रहने लगे।

'होनहार विरवान के होत चीकने पात' कहावत के अनुसार बचपन से ही श्यामाचरण अपनी प्रतिभा का परिचय देने लगे। महाराजा जयनारायण घोषाल द्वारा स्थापित हाईस्कूल में बंगला, अंग्रेजी, हिन्दी के अलावा फारसी भाषा की शिक्षा आप

लेने लगे। यहाँ की शिक्षा सम्पूर्ण करने के बाद आप संस्कृत कॉलेज में संस्कृत भाषा का अध्ययन करने लगे। तत्कालीन भारत-विख्यात् संस्कृत-साहित्य के प्रकांड विद्वान् नागोजी भट्ट की आप पर विशेष कृपा थी। उनसे आप उपनिषद् और शास्त्र पढ़ते रहे।

गौरमोहन लाहिड़ी के पड़ोसी श्री देवनारायण सान्याल थे। दोनों व्यक्तियों में गहरी मैत्री थी। इसे और सुदृढ़ करने के लिए दोनों समधी बन गये! श्यामाचरण का विवाह सान्याल की पुत्री काशीमणि देवी से सन् १८४६ में हुआ। आप दो पुत्र और दो पुत्रियों के पिता बने। सन् १८५१ ई० में ब्रिटिश सरकार के सैनिक इंजीनियरिंग विभाग में एकाउण्टेण्ट पद पर आपकी नियुक्ति हुई। कई जगह बदली होने के बाद आपकी बदली दानापुर में हुई।

अचानक परिवार में सम्पत्ति को लेकर विवाद उत्पन्न हुआ। आप शांतिप्रिय व्यक्ति थे। सभी सम्पत्ति अपने सौतेले भाई के जिम्मे छोड़कर गरुड़ेश्वर में अपने लिए नया मकान खरीद लिया।

एक दिन ऑफिस जाते ही ज्ञात हुआ कि दानापुर से उनकी बदली रानीखेत हो गयी है। काशी में पूरा परिवार छोड़कर आप रानीखेत रवाना हो गये। उन दिनों यानी सन् १८६८ ई० तक इधर रेलवे लाइन नहीं आयी थी। विभिन्न प्रकार की सवारियों के जरिये आप रानीखेत के ऑफिस में पहुँचे। वहाँ कुछ दिनों के बाद जब कार्य कब्जे में आ गया तब आप नित्य हिमालय का सौन्दर्य देखने के लिए कई मील पैदल घूमने चले जाया करते थे।

एक दिन आप टहलते हुए द्रोणगिरि तक चले गये। सहसा आपको लगा जैसे कोई आपका नाम लेकर पुकार रहा हो। पुकारने वाले ने एक या दो बार पुकारा होगा, पर पहाड़ों से टकराकर उसकी आवाज बार-बार गूँजने लगी। आपको बड़ा आश्चर्य हुआ कि इस सुनसान स्थान पर मेरा परिचित कौन हो सकता है? आप पुकारने वाले व्यक्ति को चारों ओर दृष्टि दौड़ाकर खोजने लगे। थोड़ी देर बाद एक ऊँचे शिखर पर एक युवक दिखाई दिया जो हाथ के इशारे से पास आने का संकेत कर रहा था।

उसके पास जाने पर भी युवक को लाहिड़ी महाशय पहचान नहीं सके। उक्त अपरिचित युवक ने कहा—''मैंने ही तुम्हें पुकारा था। तुम मुझे पहचान नहीं पा रहे हो?''

लाहिड़ी महाशय ने नकारात्मक भाव से सिर हिलाकर बताया कि, नहीं। उन्हें साथ लेकर वह युवक एक गुफा के पास गया और भीतर रखे कम्बल तथा कमंडल को दिखाते हुए कहा—''क्या इन सामग्रियों को पहचान रहे हो?''

''नहीं महाराज। मैं तो आपको भी नहीं पहचान पा रहा हूँ। इधर देख रहा हूँ कि आप मेरा नाम तक जानते हैं।''

''मैं तुम्हें बहुत दिनों से जानता हूँ। एक विशेष कार्य के लिए तुम्हें दानापुर से यहाँ बुलवाया है। कुछ दिनों बाद तुम्हें यहाँ से वापस चले जाना पड़ेगा।''

लाहिड़ी महाशय का विस्मय अभी तक दूर नहीं हुआ था। वे जड़भरत की तरह

खड़े उस युवक को देख रहे थे। तभी उस युवक ने श्यामाचरण के ललाट को स्पर्श किया। उनके स्पर्श से ही लाहिड़ी महाशय का समस्त शरीर झनझना उठा। धीरे-धीरे उनकी पूर्व स्मृतियाँ जाग्रत् हो गयीं। उन्हें स्मरण हो आया कि पिछले जन्म में वे इसी गुफा में तपस्या करते थे। यह कमंडल उन्हीं का है, इसी आसन पर वे बैठते थे। अब उनका चेहरा आनन्द से खिल उठा। उन्होंने उक्त अपरिचित युवक को साष्टांग प्रणाम करते हुए कहा—"हाँ, अब पहचान गया। आप मेरे गुरुदेव हैं। यह गुफा मेरी साधना-भूमि है। अज्ञान के लिए मुझे क्षमा करें।"

"पिछले चालीस वर्षों से मैं यहाँ तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था। यहाँ से वापस जाने के बाद से मैं साये की तरह तुम्हारे पीछे लगा रहा। जन्म लेने के बाद से तुम पर मेरी दृष्टि रही। अब जाकर तुम मेरे पास आये हो। अब तुम्हारी शुद्धि होगी। इस पात्र से थोड़ा तेल पीकर नदी किनारे जाकर लेट जाओ।"

गुरुदेव के आज्ञानुसार लाहिड़ी महाशय तेल पीकर नदी किनारे जाकर वहीं लेट गये। पहाड़ की ठंडी हवा बदन से टकराने लगी। वेगवती नदी की प्रखर ध्वनि को परास्त करती हुई कभी-कभी वन्य पशुओं की दहाड़ सुनाई देती रही। धीरे-धीरे लाहिड़ी महाशय ने अनुभव किया कि उनके शरीर में उष्मा बढ़ रही है।

कुछ देर तक इस स्थिति में वे पड़े रहे। सहसा किसी की पगध्वनि सुनाई दी। एक ब्रह्मचारी ने पास आकर कुछ सूती वस्त्र देते हुए कहा—"आप इन्हें पहन लीजिए और मेरे साथ चलिए। गुरुदेव आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

उस ब्रह्मचारी के साथ काफी दूर आगे जाने पर लाहिड़ी महाशय ने एक अद्भुत दृश्य देखा। विस्मय से उन्होंने पूछा—"क्या सूर्योदय हो रहा है?"

साथी शिष्य ने मुस्कराकर कहा—"नहीं, अभी तो अर्द्ध रात्रि है। आप जिस प्रकाश को देख रहे हैं, वह स्वर्ण महल है। इसकी सृष्टि आज एक विशेष कारण से गुरुदेव ने की है। आज इसी महल में आपकी दीक्षा होगी ताकि आपके पिछले सभी कर्म-बंधन समाप्त हो जायँ।"

धड़कते हुए हृदय से लाहिड़ी महाशय उस अपूर्व महल के पास आकर खड़े हुए। उन्होंने चकित दृष्टि से देखा—चारों ओर पृथ्वी से प्राप्त विभिन्न रत्नों से महल का शृंगार किया गया था। जड़े हुए रत्नों की आभा से जो प्रकाश निकल रहा था उसी से उन्हें सूर्योदय का भ्रम हुआ था। दरवाजे के पास कई गुरु भाई खड़े थे। हवा में तैरती हुई अपूर्व सुगंध मन को उत्फुल्ल कर रही थी।

महल के भीतर आने पर लाहिड़ी महाशय ने देखा—भीतर अनेक संत विराजमान हैं। इन संतों के आसपास स्थित दीपकों से रंग-बिरंगे प्रकाश निकल रहे हैं। वहीं कुछ विद्यार्थी मंत्र-पाठ कर रहे हैं। समस्त दृश्य जादू जैसा लगने लगा। अपने जीवन में कभी इस प्रकार का दृश्य देख सकेंगे, इसकी कल्पना उन्हें नहीं थी।

कुछ दूर आगे बढ़ने पर गुरुदेव के दर्शन हुए। तुरन्त उनके चरणों पर सिर रखकर

लाहिड़ी महाशय भूमि पर लेट गये।

गुरुदेव ने कहा—''जागो वत्स, आज तुम्हारी सारी भौतिक इच्छाएँ सर्वदा के लिए शांत हो जायेंगी। ईश्वरीय-राज्य की प्राप्ति के लिए क्रिया-योग की दीक्षा ग्रहण करो।''

सामने स्थित होमकुंड के आगे गुरुदेव ने ज्योंही हाथ फैलाया त्योंही उसके चारों ओर फूलों के ढेर लग गये। प्रज्वलित कुंड के सामने गुरुदेव ने लाहिड़ी महाशय को क्रिया-योग की दीक्षा दी। दीक्षा लेने के बाद लाहिड़ी महाशय ने एक बार महल को जी भरकर देखा। इसके बाद गुरुदेव के समीप आकर बैठ गये।

गुरुदेव ने कहा—''श्यामाचरण, अब अपनी आँखें बन्द कर चुपचाप बैठ जाओ।''

लाहिड़ी महाशय ने अपनी आँखें बन्द कर लीं। कुछ देर बाद गुरुदेव के आदेश देने पर उन्होंने आँखें खोलीं। उस वक्त वहाँ न सोने का महल था और न वे संत थे जिन्हें आते समय लाहिड़ी महाशय ने देखा था। इस समय वे चिर परिचित गुफा के सामने शिष्यों से घिरे हुए अपने गुरुदेव के सामने बैठे थे।

यह दृश्य लाहिड़ी महाशय के लिए अद्भुत था। अभी इसी विषय पर कुछ सोच रहे थे कि तभी गुरुदेव ने उन्हें भोजन करने की आज्ञा दी। इसके बाद उन्होंने कहा—''श्यामाचरण; अब तुम अपनी गुफा में जाकर ध्यानस्थ हो जाओ।''

गुरुदेव के आदेशानुसार लाहिड़ी महाशय गुफा के भीतर जाकर कम्बल पर बैठ गये। गुरुदेव ने उनके मस्तक पर हाथ फेरा और वे समाधिस्थ हो गये। इस प्रकार यह क्रिया लगातार कई दिनों तक चलती रही।

आठवें दिन गुरुदेव ने कहा—''वत्स, अब मेरा कार्य पूरा हो गया। शीघ्र ही तुम्हें यहाँ से वापस जाना पड़ेगा। मैंने तुम्हारे हेड ऑफिस को प्रेरणा देकर इसी कार्य के लिए बुलाया था। अब उन्हें अपनी भूल मालूम हो गयी है, अतएव वे लोग शीघ्र तुम्हें अपने यहाँ वापस बुला लेंगे।''

इस बात को सुनकर लाहिड़ी महाशय व्याकुल हो उठे। उन्होंने कहा—''गुरुदेव, अब मुझे वापस मत भेजिये। अपने चरणों की सेवा करने का अवसर दीजिए। मैं आपके सान्निध्य ने रहना चाहता हूँ।''

गुरुदेव ने कहा—''नहीं वत्स, तुम्हें वापस जाना ही होगा। संन्यासी के रूप में नहीं, बल्कि गृहस्थाश्रम में रहते हुए जन-कल्याण-कार्य करना होगा। आगे चल कर अनेक लोग तुमसे दीक्षा ग्रहण करेंगे। तुम्हें देखकर लोग यह जान सकेंगे कि उच्चस्तर की साधना से गृहस्थ भी लाभ उठा सकते हैं। तुम्हें गृहस्थी से अलग होने की आवश्यकता नहीं है। तुम उस बंधन से मुक्त हो गये हो। यह याद रखना कि योग्य व्यक्ति को ही दीक्षा देना। ईश्वर-प्राप्ति के लिए जो सर्वस्व त्याग कर सकता है, वही इस मार्ग के लिए योग्य है।''

इस घटना के बाद लाहिड़ी महाशय में अभूतपूर्व परिवर्तन हो गया। वे पुनः इस स्वर्ग को छोड़कर कर्मक्षेत्र में जाना नहीं चाहते थे। मन ही मन प्रार्थना करने लगे कि

गुरुदेव हमेशा के लिए अपने पास रख लें। लाहिड़ी महाशय के मनोभाव को समझने के बाद गुरुदेव ने कहा—"इस जन्म में तुम अनेक जन्मों की साधना से धन्य हो चुके हो। मैंने तुम्हें यहाँ तब तक नहीं बुलाया जब तक तुम विवाहित नहीं हो गये। अब तुम्हें एक आदर्श गृहस्थ के रूप में आगे का जीवन व्यतीत करना है। अगणित लोग तुमसे क्रिया-योग की शिक्षा लेकर आध्यात्मिक शान्ति प्राप्त करेंगे। उन सभी लोगों को यह बताना होगा कि यौगिक-साधना गृहस्थ भी कर सकते हैं। यह याद रखना कि जिसे क्रिया-योग की दीक्षा देना, उसे गीता के इस वचन को अवश्य सुना देना—

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥

(निष्काम कर्म-योग में आरम्भ का अर्थात् बीज का नाश नहीं है और उल्टा फलरूप दोष भी नहीं है, इसलिए इस निष्काम कर्मयोग रूपी धर्म का थोड़ा-सा साधन, जन्ममृत्युरूप महान् भय से उद्धार कर देता है।)

आगे गुरुदेव ने कहा—"केवल योग्य शिष्यों को क्रिया-योग की दीक्षा देना जो ईश्वर-प्राप्ति के लिए अपना सर्वस्व त्याग करने का संकल्प कर सकते हैं। ऐसे ही लोग इसके पात्र होते हैं।"

* * *

दूसरे दिन गुरुदेव से बिछुड़ते समय लाहिड़ी महाशय रोने लगे। यह देखकर गुरुदेव ने उन्हें कंठ से लगाकर सांत्वना देते हुए कहा—"तुम मुझसे बिछुड़ नहीं रहे हो। मैं हमेशा तुम्हारे साथ रहूँगा। जब जहाँ स्मरण करोगे तब वहीं उपस्थित हो जाऊँगा। मेरे लिए व्याकुल होने की आवश्यकता नहीं है।"

वहाँ से जब वे अपने कार्यालय में वापस आये तब उनके सहयोगियों को अपार प्रसन्नता हुई। पिछले दस दिनों से लाहिड़ी महाशय गायब रहे। लोग यह समझ चुके थे कि वे किसी वन्य पशु का शिकार हो गये हैं अथवा अन्य किसी दुर्घटना के कारण उनका निधन हो गया है। सहकर्मियों के बार-बार प्रश्न करने पर भी लाहिड़ी महाशय ने अपने अज्ञातवास के बारे में कुछ भी नहीं बताया।

उन लोगों की उत्सुकता को समाप्त करने के लिए लाहिड़ी महाशय ने कहा—"मैं जंगल में भटक कर दूर चला गया था। नयी जगह होने के कारण मुझे वापस आने में इतना समय लग गया।"

कई दिनों बाद प्रधान कार्यालय से आदेश आया कि ऑफिस की गलती से लाहिड़ी महाशय का तबादला रानीखेत कर दिया गया था। उन्हें अविलम्ब यहाँ भेज दिया जाय। वहाँ का कार्य देखने के लिए जिनकी नियुक्ति की गयी थी, उन्हें शीघ्र भेजा जायगा।

रानीखेत से वापस आते समय लाहिड़ी महाशय कुछ मित्रों के अनुरोध पर

मुरादाबाद में रुक गये। एक दिन न जाने किस बात पर एक सज्जन ने कहा—''आजकल वास्तविक संत हैं कहाँ? सभी 'क्षेत्रे भोजन मठे निद्रा' वाले हैं। इन लोगों का राजशाही ठाठ देखकर ईर्ष्या होती है। बड़े-बड़े मठ बनवाकर, आम जनता को उपदेश देकर मूर्ख बनाते हैं। असली संत कभी इन ऐश्वर्यों को स्पर्श नहीं करते।''

इस बैठक में लाहिड़ी महाशय मौजूद थे। उन्होंने कहा—''आपका ख्याल गलत है। भारत में आज भी उच्चकोटि के संत हैं। हम उन्हें पहचान नहीं पाते। वे घरों से दूर अपनी साधना में निमग्न रहते हैं। मेरे गुरुदेव ऐसे ही महान् संत हैं जिनकी कृपा से मुझे नया जीवन मिला है।''

इतना कहने के बाद लाहिड़ी महाशय अपने परमपूज्य गुरुदेव की कहानी सुनाने लगे। उनकी बातों पर किसी ने विश्वास नहीं किया। कहा जाता है—'नया मुसलमान प्याज अधिक खाता है।' गुरुदेव की कृपा तथा पूर्व जन्म के संस्कार के कारण लाहिड़ी महाशय योगी पुरुष बन गये थे, परन्तु साधारण नागरिकों की तरह अपने गर्व का शमन नहीं कर पाये थे।

अपना मजाक उड़ते देख लाहिड़ी महाशय ने उत्तेजनावश कहा—''आप लोगों को मेरी बात पर विश्वास नहीं हो रहा है? अगर मैं चाहूँ तो अभी इसी क्षण, यहीं, अपने गुरुदेव को बुला सकता हूँ।''

फिर भी लोगों को विश्वास नहीं हुआ। अचानक श्यामाचरण लाहिड़ी इस अपमान से अत्यधिक उत्तेजित हो उठे। वे यह भूल गये कि ऐसे लोगों के बीच चमत्कार नहीं करना चाहिए जो इसके योग्य नहीं हैं। जिनके पास दिव्य दृष्टि नहीं है।

लाहिड़ी महाशय एक कमरे में चले गये और कहा कि आप सभी लोग बाहर बैठे रहें। जब तक मैं न बुलाऊँ तब तक कोई भीतर आना तो दूर रहा, झाँकने की भी कोशिश न करें। इतना कहने के बाद उन्होंने कमरे का दरवाजा बन्द कर लिया और फिर ध्यानस्थ हो गये।

कुछ देर बाद उस अँधेरे कमरे में एक दिव्य प्रकाश हुआ। उस प्रकाश के भीतर से गुरुदेव प्रकट हुए। उनकी दृष्टि कठोर थी। उन्होंने गम्भीर स्वर में कहा—''श्यामाचरण, तुमने इन पापिष्ठ-अकर्मण्य मित्रों के कारण मुझे बुलाया? अब मैं जा रहा हूँ, अब ऐसे तुच्छ कारणों पर मैं कभी नहीं आऊँगा।''

गुरुदेव के इस कथन से लाहिड़ी महाशय की अन्तर-आत्मा काँप उठी। तुरन्त जमीन से माथा टेकते हुए उन्होंने कहा—''अपराध के लिए क्षमा कर दीजिए गुरुदेव। उत्तेजनावश बाल-हठ कर बैठा। अविश्वासी मन वाले इन अंधों को यह बताना चाहता था कि भारत में अभी उच्चस्तर के योगी हैं। अब आप आ ही गये हैं तो इन अविश्वासियों को दर्शन देकर इनके भ्रम को दूर करने की कृपा करें।''

गुरुदेव ने अभय वाणी देते हुए कहा—''ठीक है। भविष्य में कभी विनोद के निमित्त मुझे स्मरण मत करना। जब वास्तव में तुम्हें मेरी आवश्यकता होगी तभी मैं आऊँगा।''

इस आश्वासन को पाते ही लाहिड़ी महाशय ने कमरे का दरवाजा खोल दिया। लोग चकित दृष्टि से उनके गुरुदेव को देखने लगे।

फिर भी एक अविश्वासी बोल उठा—''यह तो सामूहिक सम्मोहन है। वास्तविक नहीं है।''

गुरुदेव मुस्कराये। आगे बढ़कर उन्होंने सभी को स्पर्श किया और प्रसाद के रूप में हलुआ दिया। ज्यों ही लोगों ने हलुआ मुँह में डाला त्यों ही वह प्रकाश लुप्त हो गया। इन दर्शनार्थियों में से एक सज्जन ने आगे चलकर लाहिड़ी महाशय से दीक्षा ली थी।

* * *

रानीखेत से वापस आकर वे अपने कार्यालय में पूर्व की भाँति कार्य करते रहे। गुरु द्वारा बतायी गयी क्रियाओं की साधना भी चलती रही। इस प्रकार लाहिड़ी महाशय ने सन् १८८० तक सरकार की सेवा में रहने के बाद अवकाश ग्रहण किया था।

अवकाश लेने के बाद लाहिड़ी महाशय की कठिनाई बढ़ गयी। पेंशन के रुपयों से गृहस्थी न चलती देख वे काशी नरेश महाराजा ईश्वरीनारायण सिंह के सुपुत्र प्रभुनारायण सिंह को शास्त्रादि पढ़ाने के लिए कुछ दिनों तक तीस रुपये मासिक वेतन पर गृह-शिक्षक का कार्य करते रहे। राजा की ओर से नित्य नाव उन्हें ले जाने के लिए आती और फिर रामनगर किले से घर तक पहुँचा जाती थी।

लाहिड़ी महाशय की प्रतिभा से काशी नरेश के उच्च पदाधिकारी श्री गिरीश चन्द्र परिचित थे। बचपन में दोनों जयनारायण कॉलेज में सहपाठी थे। एक दिन उन्होंने महाराजा से कहा—''महाराजा जी, कृपया अपने गृह-शिक्षक का विशेष रूप से ध्यान रखियेगा। उनका असम्मान किसी ओर से न होने पाये। लाहिड़ी महाशय सामान्य अध्यापक नहीं हैं। आप एक महान् योगी हैं। इस बात को हर कोई जान न ले, इसलिए अपने को छिपाये रखते हैं। मैं इनकी योग विभूतियों को देख और सुन चुका हूँ।''

महाराजा ने कहा—''मेरा भी ऐसा ही विचार है। इनके ज्ञान और अध्ययन को देखकर मैं यह समझ गया था । आप स्वयं ही इनका विशेष रूप से ख्याल रखें ताकि इन्हें किसी प्रकार की असुविधा न हो।''

आगे चलकर ईश्वरीनारायण सिंह लाहिड़ी महाशय से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने और उनके पुत्र ने भी श्यामाचरण लाहिड़ी को गुरु रूप में ग्रहण कर लिया।

योगिराज के बारे में उनके शिष्यों का दृढ़ विश्वास है कि वे अगले किसी जन्म में महात्मा कबीर के रूप में अवतरित हुए थे। यद्यपि इसका कोई प्रत्यक्ष या लिखित प्रमाण नहीं है। योगिराज ने कभी अपने श्रीमुख से ऐसा विचार प्रकट भी नहीं किया। यह ठीक है कि वे भक्तों और शिष्यों को उपदेश देते समय शास्त्र, उपनिषद्, गीता, भागवत के बाद कबीर के दोहों का उद्धरण देते थे। लगता था जैसे कबीर-साहित्य वे कंठस्थ कर चुके हैं। उनकी और कबीर की साधना में कोई अन्तर नहीं था।

योगिराज के पौत्र ने अपनी पुस्तक में लिखा है—''जो कबीरा सोई सूर्य, सोई ब्रह्म, सोई हम।'' दूसरी जगह योगिराज ने लिखा है—''काया के वीर कबीर यानी श्वासा।'' तीसरी जगह लिखते हैं—''सत्य युग में कबीर साहब का नाम सत्य सुकृत, त्रेता में मुनीन्द्र, द्वापर में करुणामय, कलियुग में कबीर।''

इन प्रमाणों से यह निष्कर्ष निकलता है कि कबीर साहब के बारे में इतना तथ्य देना कुछ मतलब रखता है। अगर जनश्रुति को सही मान लिया जाय तो कोई भूल न होगी। इनकार करने पर प्रश्न उठता है कि कबीर के इतने जन्मों की चर्चा करने का क्या तात्पर्य है? ज्ञातव्य है कि योगिराज अपनी डायरी मातृभाषा बँगला में न लिखकर हिन्दी में लिखते थे।

यहाँ एक बात की चर्चा करना आवश्यक है। योगिराज जात-पात नहीं मानते थे। वे दीक्षा न केवल हिन्दुओं को बल्कि सभी वर्गों के लोगों को देते थे। उनका एक शिष्य अब्दुल गफूर खाँ था।

कट्टर ब्राह्मण होते हुए भी लाहिड़ी महाशय जाति-प्रथा के अहम् को स्वीकार नहीं करते थे। उनका कहना था कि सभी एक ही ईश्वर के बेटे हैं। लोगों को उपदेश देते हुए कहा करते थे—''तुम किसी के नहीं हो और न कोई तुम्हारा है। एक दिन यह सब छोड़कर इस संसार से विदा लेनी है, इसलिए उस परमात्मा को याद करो जिसके पास जाना है। हिन्दुओं को चाहिए कि वे दिन में कई बार ध्यान करें। मुसलमानों को चाहिए कि वे पाँच बार नमाज पढ़ें और ईसाइयों को चाहिए कि वे कई बार ईश-प्रार्थना तथा बाइबिल पाठ करें।''

जो लोग योगिराज के स्वभाव से परिचित थे, उन्हें यह बात अच्छी तरह से मालूम थी कि लाहिड़ी महाशय जाति-पाँति, छोटा-बड़ा आदि कुछ नहीं मानते थे। इलाहाबाद में अचानक एक घटना होने के कारण वे उसी दिन से समदर्शी हो गये थे।

कहा जाता है कि लाहिड़ी महाशय इलाहाबाद में होने वाले कुंभ मेले में गये हुए थे। वहाँ वे साधु-संन्यासियों के बीच घूम रहे थे। अचानक उनकी दृष्टि एक ऐसे जटाजूटधारी बाबाजी पर पड़ी जिनके सामने उनके गुरुदेव वीर आसन लगा कर बैठे थे और श्रद्धापूर्वक उनके पैर धो रहे थे।

यह दृश्य देखकर लाहिड़ी महाशय ने पूछा—''गुरुदेव, आप और इनकी सेवा में?''

लाहिड़ी महाशय की ओर बिना देखे गुरुदेव ने कहा—''इस समय मैं इन महात्मा के चरण धो रहा हूँ। इसके बाद इनके बरतनों को साफ करूँगा।''

लाहिड़ी महाशय को समझते देर नहीं लगी कि इस उदाहरण को प्रस्तुत करते हुए गुरुदेव मुझे शिक्षा दे रहे हैं। भविष्य में ऊँच-नीच में भेद न करूँ। प्रत्येक मानव के तन में ईश्वर का निवास होता है, इसे मानकर चलूँ।

गुरुदेव ने उस दिन कहा था—''मैं ज्ञानी-अज्ञानी साधुओं की सेवा कर नम्रता सीख रहा हूँ।''

इस घटना के बाद से लाहिड़ी महाशय के स्वभाव में परिवर्तन हो गया। उन्हें योग

वासिष्ठ में लिखित वह कथन स्मरण हो आया जिसमें कहा गया है—"यह आनन्द-रूपिणी आत्मा शरीर, मन, इन्द्रियादि से भिन्न है, इसलिए शरीर को प्रभावित करने वाले सुख-दु:ख आत्मा का स्पर्श नहीं कर सकते। किन्तु जब यह आनन्दरूपिणी आत्मा अपने वास्तविक रूप को भूल कर शरीर के विकारों के साथ तादात्म्य का सम्बन्ध जोड़ने लगती है तब वह अपने सर्वात्म भाव को विस्मृत कर देती है। यही अज्ञान का गर्त है। यही जगत् की मरीचिका है। इसी मरीचिका के कारण मनुष्य सुख के वास्तविक रूप को भुला बैठता है और दु:ख एवं संताप के शूलपथ पर चलने लगता है। जिन गन्तव्यों को वह सुख के छोर समझता है, वे वास्तव में दु:ख और बन्धन के मायाजाल होते हैं, किन्तु जिस मनुष्य को ऐसा ज्ञान हो जाता है कि सब जीवों के हृदय में स्थित, सब सुखों का समुद्र एवं स्वयं ज्योति परमात्मा मेरे स्वरूप से भिन्न नहीं है, किन्तु मैं स्वयं परमात्मा स्वरूप हूँ तो वह मनुष्य भ्रांत-सुख की इच्छाओं से मुक्त हो जाता है और इस प्रकार वह शरीर के स्वाभाविक धर्म सुख-दु:खादि विकारों से संतप्त नहीं होता। यह अनुभूति आत्म-साक्षात्कार की अनुभूति है।

कभी-कभी इसी अनुभूति का उदाहरण योगिराज शिष्यों के सामने दिखा देते थे।

* * *

योगिराज का भवन श्रद्धालुओं के लिए तीर्थस्थल था । हर वर्ग के लोग वहाँ उनके श्रीमुख से गीता की व्याख्या सुनने के लिए आते थे। इन भक्तों में राम प्रसाद जायसवाल भी थे। कलवार होने के कारण लोग उन्हें अछूत समझते थे। योगिराज के यहाँ आने वाले ब्राह्मणों को यह पसंद नहीं था कि एक कलवार उनके निकट बैठे। एक दिन एक पंडित ने घृणा के साथ कहा—"तुम्हें शर्म नहीं आती? कलवार होकर तुम किनारे बैठना दूर रहा, हमारे सिर पर चढ़ जाते हो। चलो, हटो, किनारे बैठो।"

योगिराज ने इस कटु वचन को सुना। कुछ देर बाद वे आसन से उठ कर खड़े हो गये और राम प्रसाद की ओर हाथ से इशारा करते हुए बोले—"राम प्रसाद, तुम मेरे इस आसन पर आकर बैठो।"

इतना कहकर लाहिड़ी महाशय दूसरी ओर बैठ गये। राम प्रसाद मन ही मन कुंठाग्रस्त हो गया। एक तो पंडित ने फटकारा और अब योगिराज यह मजाक कर रहे हैं। शायद मुझसे गलती हो गयी। राम प्रसाद को ऊहापोह करते देख योगिराज ने कहा—"मैं मजाक नहीं कर रहा हूँ। आओ बैठो यहाँ।"

राम प्रसाद भय से सिहर उठा। योगिराज के सामने हाथ जोड़ते हुए उसने कहा—"महाराज, ऐसी आज्ञा मत दीजिए। मुझसे यह अपराध नहीं होगा।"

राम प्रसाद को फटकारने वाले सज्जन काशिमपुर के जमींदार राय बहादुर गिरीश प्रसन्न थे। उन्हें तुरन्त अपनी गलती मालूम हो गयी। उन्होंने अपनी जगह से उठकर पहले योगिराज और बाद में राम प्रसाद से क्षमा माँगी। इसके बाद उन्हें अपनी बगल में बैठाया।

* * *

स्वामी युक्तेश्वर और राम घनिष्ठ मित्र ही नहीं, बल्कि गुरुभाई भी थे। योगिराज के दोनों प्रिय शिष्य थे। एक बार राम हैजे से पीड़ित हुआ। दवा आदि देने पर भी लाभ नहीं हो रहा था। युक्तेश्वर बराबर अपने मित्र की सेवा में लगे रहे। हालत जब काफी खराब हो गयी तब ये व्याकुल होकर अपने गुरुदेव के निकट आये।

सारी बातें सुनने के बाद गुरुदेव ने कहा—''डॉक्टर जब उसकी चिकित्सा कर रहा है तब वह अच्छा हो जायगा। चिन्ता करने की जरूरत नहीं। जाओ, उसकी देखरेख करो।''

इस आश्वासन को पाकर युक्तेश्वर वापस आकर राम की सेवा करने लगे। डॉक्टरों ने अंत में कहा—''अब राम को मैं बचा नहीं सकता। अधिक से अधिक दो घंटे तक यह जीवित रहेगा।''

डॉक्टर के इस निर्णय को सुनकर युक्तेश्वर व्याकुल हो उठे। पुनः गुरुदेव के पास दौड़े हुए आये। इस बार भी गुरुदेव ने पहले की तरह आश्वासन देते हुए कहा—''नहीं युक्तेश्वर, राम अच्छा हो जायगा।''

वापस आकर युक्तेश्वर ने देखा—''राम की स्थिति पहले से अधिक खराब है। दोनों डॉक्टरों का पता नहीं था। एकाएक राम झटके से उठा और कहा—''युक्तेश्वर मैं जा रहा हूँ। तुम गुरुदेव से कह दो कि वे मेरे शरीर को अपना आशीर्वाद अवश्य दें।''

इतना कहने के बाद राम बिस्तर पर धड़ाम से गिर पड़ा और उसके प्राण पखेरू उड़ गये। युक्तेश्वर फफककर रोने लगा। काफी देर बाद एक अन्य गुरु भाई जब आया तब शव के पास उसे बैठाकर यह समाचार देने के लिए युक्तेश्वर लाहिड़ी महाशय के पास गया।

सारी बातें सुनने के बाद गुरुदेव समाधि में लीन हो गये। तीसरे पहर का समय था। शाम गुजरी, रात बीती, पर गुरुदेव की समाधि भंग नहीं हुई। भोर के समय उनकी आँखें खुलीं।

उन्होंने कहा—''सामने के दीपक से थोड़ा सा तेल शीशी में भर लो। इसे ले जाकर राम के मुँह में एक-एक करके सात बूँद डाल देना।''

''गुरु जी, वह तो कल दोपहर को ही मर गया। अब इस तेल से क्या होगा?''

''मैं जो कह रहा हूँ, वही करो। चिन्ता की कोई बात नहीं है।''

लाचारी में गुरुदेव की आज्ञानुसार युक्तेश्वर तेल लेकर आये। यहाँ आने पर उन्होंने देखा—राम का शरीर सख्त हो गया है। मित्र की सहायता से राम का मुँह खोलकर वे एक-एक बूँद करके तेल डालने लगे। सातवीं बूँद राम के मुँह में ज्यों ही गयी त्यों ही उसके शरीर में कंपन शुरू हुआ और धीरे-धीरे वह उठकर बैठ गया।

राम ने कहा—''मैंने एक प्रकाश के भीतर गुरुदेव को देखा। उन्होंने कहा कि राम, निद्रा त्याग कर अब उठ बैठो। युक्तेश्वर के साथ अविलम्ब मेरे पास आओ।''

तुरन्त तीनों शिष्य गुरुदेव के पास आये। इन्हें आया देख गुरुदेव प्रसन्न हो उठे। उन्होंने कहा—''युक्तेश्वर, मैंने तुमसे दो बार कहा था कि चिंता की बात नहीं है, राम अच्छा हो जायगा। लेकिन तुम्हें मेरी बात पर विश्वास नहीं हुआ। मैं डॉक्टरी कार्य में

हस्तक्षेप नहीं करना चाहता था। आशा है, अब आगे से अपने पास रेड़ी का तेल रखोगे। किसी भी मृत व्यक्ति के मुँह में डालोगे तो वह यम की शक्ति को बेकार कर देगा।''

युक्तेश्वर और उसके साथ आये दोनों शिष्यों ने गुरु के चरणों में मस्तक नवाये। युक्तेश्वर ने कहा—''गुरुजी, अपराध के लिए क्षमा करें। मैं अबोध रहा, आपकी बातों का मर्म नहीं समझ सका।''

* * *

योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी अपने पूज्य गुरु को 'बाबाजी' कहा करते थे। वे इस युग के सिद्ध पुरुष हैं। स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस के गुरु महातपाजी आज भी तिब्बत स्थित किसी अलक्ष्य मठ में (ज्ञानगंज) रहते हैं, उसी प्रकार लाहिड़ी महाशय के गुरुदेव बदरीनारायण मन्दिर के आगे कहीं विराजमान हैं। उनके प्रशिष्य परमहंस योगानन्द ने उनके बारे में लिखा है—''बाबाजी के बारे में ऐसी कोई जानकारी प्राप्त नहीं है जो इतिहासकारों को बहुत प्रिय होती है। सामान्यत: वे हिन्दी में भाषण करते हैं, परन्तु वे सब भाषाओं का सरलता से प्रयोग कर लेते हैं। उन्होंने अपने लिए 'बाबाजी' का सीधा-सादा नाम ग्रहण किया है। लाहिड़ी महाशय के शिष्य उन्हें श्रद्धा के साथ महामुनि बाबाजी, महाराज, महायोगी, त्र्यंबक बाबा और शिव बाबा जैसे सम्मानजनक विशेषणों से सम्बोधित करते हैं।''

इस अमर महागुरु के शरीर पर आयु का कोई प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता। वे अधिक से अधिक पच्चीस वर्ष के युवक दिखाई पड़ते हैं। गेहुआँ रंग, मध्यमा-कृतिवाले बाबाजी की सुन्दर और बलिष्ठ देह से मानो सतत् ज्योति फूटती रहती है। नेत्र काले, शान्त और दयार्द्र हैं। उनके लम्बे चमकीले केश ताम्रवर्ण के हैं। कभी-कभी उनकी आकृति लाहिड़ी महाशयजी से मिलती-जुलती सी दिखाई पड़ती है।

बाबाजी के बारे में लाहिड़ी महाशय ने अपने एक शिष्य को बताया था कि जगद्गुरु शंकराचार्य तथा कबीर को मैंने योग-दीक्षा दी है। १९वीं शताब्दी में उन्हें दीक्षा मिली है। लाहिड़ी महाशय के शिष्य केवलानन्द ने एक घटना का जिक्र स्वामी योगानन्दजी से किया था जिसके वे प्रत्यक्षदर्शी थे।

एक रात कुछ शिष्य एक अग्निकुण्ड के पास बैठे थे। कुण्ड से जलती हुई एक लकड़ी उठाकर बाबाजी ने पास बैठे एक शिष्य पर प्रहार किया।

शिष्य चीख उठा। यह देखकर केवलानन्द ने कहा—''गुरुजी यह तो निष्ठुरता है।''

बाबाजी ने कहा—''पिछले कर्मफल की आग में यह तुम्हारे सामने भस्म हो जाय, क्या यह उचित होगा?''

इतना कहने के बाद उन्होंने शिष्य के जले हुए स्थान पर हाथ रखा। जब उन्होंने वहाँ से हाथ हटाया तब देखा गया कि वहाँ घाव के निशान नहीं थे।

इसी प्रकार एक दिन एक व्यक्ति आया और बाबाजी से कहा—''गुरुदेव, आपकी

तलाश में इन पहाड़ियों पर मैं महीनों से परेशान था। आज आपके पास एक प्रार्थना लेकर आया हूँ। आप मुझे शिष्य के रूप में ग्रहण करें।''

बाबाजी ने इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया। यह देखकर वह व्यक्ति उतावला हो उठा। उसने कहा—''अगर आप मुझे स्वीकार नहीं करेंगे तो इस पहाड़ पर से कूदकर अपनी जान दे दूँगा।''

बाबाजी ने कहा—''कूद पड़ो। मैं तुम्हें विकास की इस अवस्था में ग्रहण नहीं कर सकता।

बाबाजी की बात सुनते ही वह व्यक्ति छलाँग लगाकर नीचे कूद पड़ा। वस्तुत: यह आज्ञा-पालन की कठिन परीक्षा थी। वह अपनी परीक्षा में सफल रहा। बाद में बाबाजी ने अपने शिष्यों से कहा कि उसके शव को उठा लाओ।

कई शिष्य नीचे जाकर उसके शव उठा लाये। बाबाजी ने उसके सिर पर हाथ रखा। सभी लोगों ने चकित दृष्टि से देखा कि वह व्यक्ति जीवित हो गया और उसने गुरुदेव को प्रणाम किया। उस वक्त उनके शिष्यों में केवलानन्द ही नहीं, बल्कि लाहिड़ी महाशय भी प्रत्यक्षदर्शी के रूप में उपस्थित थे।

बाबाजी ने प्रसन्न होकर कहा—''तुम कठिन परीक्षा में उत्तीर्ण हो गये हो। अब तुम शिष्य बनने के अधिकारी हो। मृत्यु अब तुम्हें स्पर्श नहीं करेगी।''

* * *

लाहिड़ी महाशय अपने महान् गुरु के बारे में कहा करते थे कि वे अवतारी पुरुष हैं। बाबाजी ईसा मसीह के साथ सम्पर्क बनाये रखते हैं। जब कोई व्यक्ति श्रद्धा के साथ बाबाजी के नाम का उच्चारण करता है तब उस पर तत्क्षण आध्यात्मिक आशीर्वाद की वर्षा होती है।

यहाँ तक कि लाहिड़ी महाशय के शिष्यों ने बाबाजी को स्थूल शरीर में देखा है। लाहिड़ी महाशय के प्रिय शिष्य युक्तेश्वर ने एक बार नहीं, कई बार देखा है।

ईश्वर की प्रेरणा से युक्तेश्वरजी प्रयाग के कुंभ मेले में स्नान करने के लिए गये थे। चारों ओर साधु-संतों की अपार भीड़ थी। अधिकांश साधुओं को मेले में खप्पर लिए भीख माँगते देख युक्तेश्वर के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि यहाँ तो भीख माँगने वाले संत अधिक हैं। परमार्थ की तलाश करने वाला कोई नहीं। क्या कुंभ मेला भिखारियों का है?

तभी उनके पास एक अपरिचित व्यक्ति ने आकर कहा—''महाराज, आपको एक संत बुला रहे हैं। कृपया मेरे साथ आइये।''

युक्तेश्वरजी को आश्चर्य हुआ कि इस अनजाने शहर में उनका कौन परिचित निकला? उन्होंने आगन्तुक से पूछा—''कौन हैं वे?''

आगन्तुक ने कहा—''सामने वृक्ष के नीचे वे विराजमान हैं।''

कुतूहलवश युक्तेश्वरजी वहाँ आये तो देखा कि एक संत कुछ लोगों से घिरे बैठे हैं। युक्तेश्वरजी को देखते ही वे उठकर खड़े हो गये और उन्हें अपने आलिंगन में बाँध लिया। युक्तेश्वर को लगा जैसे कोई अपूर्व-शक्ति उनके शरीर को स्पर्श कर रही है। स्वर्गीय आनन्द से उनका मन तृप्त हो उठा।

संत ने कहा—''यहाँ बैठिये स्वामीजी।''

युक्तेश्वरजी ने कहा—''मैं स्वामी नहीं हूँ।''

उस समय तक युक्तेश्वरजी ने संन्यास ग्रहण नहीं किया था। केवल लाहिड़ी महाशय से क्रिया-योग की शिक्षा प्राप्त कर चुके थे।

संत ने कहा—''मैं जिस व्यक्ति को स्वामी की उपाधि देता हूँ, उसे वह ग्रहण कर लेता है। आप यहाँ विराजमान होइये।''

युक्तेश्वरजी के बैठने के बाद संत समागत लोगों के सामने गीता की व्याख्या करते हुए अचानक पूछ बैठे—''आप तो गीता पर टीका लिख रहे हैं?''

युक्तेश्वरजी इस बात को सुनकर चौंक उठे। वे एक अर्से से गीता पर भाष्य लिख रहे थे, पर इसकी चर्चा अब तक किसी से नहीं की थी। आखिर इस संत ने कैसे जान लिया? तभी संत ने कहा—''आप काशी के श्यामाचरण लाहिड़ी महाशय को जानते होंगे। उन्हें मेरा एक संदेश जाकर दीजिएगा। कहियेगा—''अब समय कम रह गया है। शक्ति समाप्त हो रही है।''

युक्तेश्वरजी चकित दृष्टि से संत की ओर देखते रहे। चलते समय संत ने कहा—''मैं आपसे पुनः मिलूँगा। आप यथाशीघ्र पुस्तक लिख डालिये।''

प्रयाग से काशी आकर युक्तेश्वरजी ने अपनी यात्रा का विवरण लाहिड़ी महाशय को दिया। संत से मुलाकात की चर्चा करते ही लाहिड़ी महाशय प्रसन्नता से गद्‌गद हो उठे।

उन्होंने कहा—''युक्तेश्वर, तुम बड़े भाग्यवान् पुरुष हो। तुमने मेरे गुरुदेव का दर्शन कर लिया।''

अपने गुरु की बातें सुनकर युक्तेश्वरजी हक्का-बक्का रह गये। उन्हें स्वप्न में भी विश्वास नहीं था कि इस प्रकार वे उस महान् गुरु से मिलेंगे जिनके दर्शन के लिए न जाने कितने साधक तरसते हैं। इस वक्त युक्तेश्वरजी अपने को धिक्कारने लगे कि क्यों नहीं उन चरणों पर मैंने अपना माथा टेका।

युक्तेश्वरजी की व्याकुलता देखकर लाहिड़ी महाशय ने कहा—''व्याकुल होने की आवश्यकता नहीं है। जब गुरुदेव ने पुनः दर्शन देने का वचन दिया है तब वे अवश्य तुम्हें दर्शन देंगे। तुम अपना लेखन-कार्य संपूर्ण कर डालो।''

युक्तेश्वरजी ने अपना आश्रम बंगाल के श्रीरामपुर कस्बे में बनाया था। लेखन-कार्य समाप्त हो गया था। एक दिन वे गंगा-स्नान करके वापस आ रहे थे तो मार्ग में एक वृक्ष के नीचे कई लोगों के साथ परम गुरु को बैठे देखा। इस बार उनसे भूल नहीं हुई। तुरन्त साष्टांग प्रणाम करते हुए निवेदन किया—''जब आप यहाँ तक आ गये

हैं तब एक बार मेरी कुटिया में चरण-रज देकर उसे पवित्र बनाने की कृपा करें।''

बाबाजी ने इस अनुरोध को स्वीकार नहीं किया। यह देखकर युक्तेश्वरजी ने कहा—''तब आप यहाँ कुछ देर कृपा करके ठहर जाइये। मैं अपने दादा-गुरु को भोग देने का पुण्य प्राप्त कर लूँ।''

यह कहकर युक्तेश्वरजी तेजी से मिष्ठान्न खरीदने चले गये। वापस आकर उन्होंने देखा कि गुरुदेव गायब थे। क्षोभ से उनका मन भर गया। उनका यह क्षोभ काशी में प्रकट हुआ।

अपने गुरुदेव से मिलने के लिए युक्तेश्वरजी जब उनके स्थान पर गये तब ज्योंही लाहिड़ी महाशय को उन्होंने प्रणाम किया त्योंही उन्होंने कहा—''दरवाजे पर पूज्य बाबाजी से मुलाकात हो गयी न?''

युक्तेश्वर ने अनजाने भाव से कहा—''नहीं तो।''

लाहिड़ी महाशय ने कहा—''वह देखो, वे खड़े तो हैं।''

युक्तेश्वरजी ने चौंककर दरवाजे की ओर देखा—वहाँ परम पूज्य बाबाजी खड़े मुस्करा रहे थे। उनके अंग-प्रत्यंग से दिव्य आभा प्रकट हो रही थी। युक्तेश्वर को प्रणाम न करते देख लाहिड़ी महाशय विचलित हो उठे। उन्होंने कहा—''युक्तेश्वर, यह क्या गुरुदेव को तुमने अभी तक प्रणाम नहीं किया?''

तभी बाबाजी ने कहा—''युक्तेश्वर अभी तक मुझसे नाराज है। बेटा, उस समय तुम बहुत चंचल हो उठे थे। तुम्हारी चंचलता की आँधी में मैं उड़ गया। उस वक्त मैं सूर्य के पीछे था, तुम देख नहीं पाये। अभी तुममें अभाव है। आगे से ध्यान में अधिक समय लगाया करना।''

इतना कहने के साथ ही बाबाजी अदृश्य हो गये। इसी प्रकार एक बार लाहिड़ी महाशय के एक अन्य शिष्य राम गोपाल मजुमदार को गुरु के दिव्य दर्शन हुए थे। लाहिड़ी महाशय से उन्होंने कई बार निवेदन किया, पर हर बार यही उत्तर मिलता था—''मौका आने पर हो जाएगा।''

एक बार वे लाहिड़ी महाशय से मिलने के लिए काशी आये। घर पर शिष्यों और भक्तों से घिरे लाहिड़ी बैठे थे। शाम ढल चुकी थी। रात्रि का दूसरा पहर प्रारम्भ हो गया था। ठीक इसी समय लाहिड़ी महाशय ने राम गोपाल से कहा—''राम गोपाल, तुम तुरन्त दशाश्वमेध घाट पर चले जाओ और वहीं बैठे रहो।''

गुरु की आज्ञा पाते ही राम गोपाल में यह पूछने का साहस नहीं हुआ कि आखिर इस समय वहाँ क्यों भेज रहे हैं। जरूर कोई विशेष कारण होगा। वे घाट पर आकर बैठ गये। कुछ देर बाद सीढ़ियों में से पत्थर का एक ढोंका हवा में उठा और शून्य में टिक गया। पत्थर का वह टुकड़ा जहाँ से निकला था, वहाँ एक गुफा दिखाई देने लगी। उस गुफा से एक परम सुन्दरी महिला निकली।

बाहर आकर महिला बोली—''मैं माता जी हूँ। लोग मुझे इसी नाम से पुकारते

हैं। मैं लाहिड़ी महाशय के गुरु बाबाजी की बहन हूँ। आज एक विशेष कारण से वे यहाँ आने वाले हैं।''

थोड़ी ही देर में आकाश में एक प्रकाश दिखाई पड़ा। जब वह प्रकाश पास आया तब उसमें से लाहिड़ी महाशय प्रकट हुए। ठीक इसी प्रकार की एक ज्योति सुदूर आकाश से आयी जिसमें से बाबा जी प्रकट हुए। इस अद्‌भुत घटना को देखकर राम गोपाल दंग रह गये। बाबाजी और लाहिड़ी महाशय की आकृति में साम्य था। केवल बाबाजी के सिर के बाल लम्बे और चमकीले थे। उनके आते ही लाहिड़ी महाशय, माता जी तथा मजुमदार ने जमीन से माथा टेककर प्रणाम किया।

बाबाजी ने कहा—''कल्याणमयी बहन, अब मैं अपने भौतिक शरीर का त्याग करना चाहता हूँ।''

माता जी ने कहा—''मैं आपकी इच्छा का आभास पा चुकी हूँ, इसीलिए आज विचार-विमर्श के लिए आपका आह्वान किया है। मेरा अनुरोध है कि आप देह त्याग न करें।''

इस विषय पर काफी देर तक बातचीत होती रही। अन्त में बाबाजी ने कहा—''तथास्तु। मैं कभी भी अपने भौतिक शरीर का परित्याग नहीं करूँगा।''

इसके बाद दोनों व्यक्तियों का शरीर शून्य में उठकर विलीन हो गया। लाहिड़ी महाशय के घर आने पर मजुमदार जी को ज्ञात हुआ कि उनके दशाश्वमेध घाट पर चले जाने के बाद लाहिड़ी महाशय अमरत्व पर भाषण देते रहे। अपने स्थान से हिले तक नहीं थे।

जब राम गोपाल ने उन्हें प्रणाम किया तब लाहिड़ी महाशय ने कहा—''तुमने कई बार कहा था कि बाबाजी का दर्शन करना चाहते थे। बड़े आश्चर्यजनक ढंग से तुम्हारी आकांक्षा की पूर्ति हो गयी।''

* * *

श्री अविनाश बाबू उन दिनों बंगाल-नागपुर रेलवे ऑफिस में क्लर्क थे। पता नहीं क्यों उनका मन एकाएक अपने गुरुदेव को देखने के लिए चंचल हो उठा। उन्होंने अपने वरिष्ठ अधिकारी भगवतीचरण घोष[१] को एक सप्ताह की छुट्टी के लिए आवेदनपत्र भेजा।

भगवती बाबू ने आपको बुलाकर पूछा—''क्या काम है? किसलिए यह आवेदन-पत्र भेजा है?''

---

१. श्री भगवतीचरण घोष के छोटे पुत्र श्री मुकुन्दलाल घोष थे जिन्हें भगवत् प्रेरणा से बचपन से ही अलौकिक प्रतिभा प्राप्त थी। आगे चलकर आपने संन्यास लेकर परमहंस योगानन्द नाम ग्रहण किया था। आपके गुरु लाहिड़ी महाशय के शिष्य श्री युक्तेश्वर थे। बाबा जी का दर्शन आपको हुआ था और उन्हीं के आशीर्वाद से आप अमेरिका गये। वहाँ अनेक विदेशियों को क्रिया-योग की शिक्षा देते रहे। 'योगी कथामृत' आपकी प्रमुख कृति है।

"अपने गुरु श्यामाचरण लाहिड़ी का दर्शन करना चाहता हूँ। न जाने क्यों मेरा मन चंचल हो उठा है।"

"अविनाश बाबू, यह सब पागलपन बन्द कीजिए। धर्म-गुरु से बड़ा कर्म है जिससे दाल-रोटी प्राप्त कर रहे हैं। अगर आप जीवन में उन्नति करना चाहते हैं तो यह सब पचड़ा छोड़ कर काम में मन लगाइये।"

बड़े साहब के इस उत्तर से अविनाश बाबू उदास हो गये। वे समझ गये कि अब पुनः अनुरोध करना बेकार है। शाम को ऑफिस से छुट्टी मिलने पर वे मन ही मन गुरु का स्मरण करते हुए घर की ओर बढ़ने लगे। इस गुलामी के प्रति उन्हें सख्त नफरत-सी होने लगी। मन में जो आकांक्षा उत्पन्न हुई थी, वह पूरी न हो सकी।

सहसा मार्ग में भगवती बाबू से मुलाकात हो गयी। इनके उदास चेहरे को देखकर वे सांसारिक बातें समझाने लगे ताकि उनके मन का क्षोभ दूर हो जाय। लेकिन उनकी बातों का प्रभाव अविनाश बाबू पर न पड़ा। इस वक्त उन्हें अपने गुरुदेव की याद तेजी से सताने लगी।

दोनों ही व्यक्ति चलते-चलते खुले मैदान में आये। एकाएक कुछ दूरी पर न जाने कैसे तीव्र प्रकाश हुआ और उसमें से लाहिड़ी महाशय प्रकट हुए।

लाहिड़ी महाशय ने कहा—"भगवती, तुम अपने कर्मचारी के प्रति कठोर हो।"

इधर लाहिड़ी महाशय को देखते ही अविनाश बाबू नतजानु होकर 'गुरुदेव-गुरुदेव' कहते हुए प्रणाम करने लगे। इस दृश्य को देखकर भगवती बाबू की हालत 'काटो तो खून नहीं' जैसी हो गयी।

कुछ देर बाद वह प्रकाश शून्य में उड़कर गायब हो गया। यह दृश्य देखकर भगवती बाबू ने कहा—"अविनाश, मैं केवल तुम्हें ही नहीं, बल्कि मैं स्वयं भी छुट्टी ले रहा हूँ। मुझे यह विश्वास नहीं था कि तुम्हारे गुरु इस तरह प्रकट हो सकते हैं। कल ही मैं अपनी पत्नी के साथ वाराणसी जाऊँगा। क्या तुम अपने गुरु से दीक्षा दिलाने की कृपा करोगे?"

अविनाश बाबू के साथ भगवती बाबू सपत्नीक काशी आये। गुरुदेव के पास पहुँचकर ज्यों ही भगवती बाबू ने प्रणाम किया त्यों ही योगिराज बोल उठे—"भगवती, तुम अपने कर्मचारी के प्रति अत्यन्त कठोर हो।"

ठीक यही बात भगवती बाबू उस सुनसान मैदान में प्रकाश के भीतर से प्रकट होनेवाले योगिराज से सुन चुके थे। योगिराज की कृपा से प्रभावित होकर भगवती बाबू सपत्नीक उनके शिष्य बन गये।

पुरुषों की अपेक्षा महिलाएँ अधिक भक्तिमती होती हैं। भगवती बाबू की पत्नी श्रीमती ज्ञानप्रभा तो लाहिड़ी महाशय को साक्षात् ईश्वर मानती थीं। अपने घर में नित्य पूजा करती थीं। जब कभी मन में कोई इच्छा उत्पन्न होती, गुरुदेव की कृपा से उसकी पूर्ति हो जाती थी।

दुर्भाग्य से उनका कनिष्ठ पुत्र श्री मुकुन्दलाल घोष हैजे से पीड़ित हो गया। हालत शोचनीय हो गयी। डॉक्टर भी परेशान हो उठे। लड़का बिछौने से उठ नहीं पाता था। स्वयं भगवती बाबू भी निराश हो गये। यह सब देखकर ज्ञानप्रभा देवी लड़के के पास आयीं और लड़के को सामने का चित्र दिखाती हुई बोलीं—''बेटा, तुम चित्र को प्रणाम करो।''

मुकुन्द ने हाथ उठाना चाहा, पर वह इतना कमजोर हो गया था कि हाथ उठा नहीं सका। यह देखकर माँ ने पुनः कहा—''कोई हर्ज नहीं बेटा। तुम मन ही मन भक्ति भाव से गुरुदेव को प्रणाम करो। मेरा मन कहता है कि तुम जरूर अच्छे हो जाओगे। तुम्हें भगवान् भी मुझसे नहीं छीन सकते।''

माँ की आज्ञानुसार मुकुन्द ने मन ही मन लाहिड़ी महाशय के चित्र को प्रणाम किया। ज्ञानप्रभा देवी स्वयं चित्र के सामने बैठकर गुरुदेव को स्मरण करने लगीं। दूसरे दिन से लड़का स्वस्थ होने लगा। आगे चलकर यही बालक 'परमहंस योगानंद' के नाम से प्रसिद्ध हुआ जिन्होंने माउंट वाशिंगटन, लास एंजिलिस, कैलिफोर्निया तथा भारत में राँची-पुरी में आश्रमों की स्थापना की।

* * *

योगिराज दीक्षा देने पर पाँच रुपये दक्षिणा लेते थे। विधवाओं से प्रायश्चित्त के लिए दस रुपये लेते थे। उनके शिष्यों में उनकी पत्नी काशीमणि देवी, पुत्रद्वय तीन कौड़ी एवं दुकौड़ी लाहिड़ी थे। बाहरी लोगों में पंचानन भट्टाचार्य, केशवानन्द, केवलानन्द, विशुद्धानन्द सरस्वती, काशीनाथ शास्त्री, नगेन्द्र भादुड़ी, प्रसाद गोस्वामी, राम गोपाल मजुमदार, हरिनारायण पालधी, कैलासचन्द्र वंद्योपाध्याय, रामदयाल मजुमदार, महेन्द्र सान्याल, नेपाल नरेश, काशी नरेश, वर्धमान के महाराजा, काश्मीर नरेश, काली कृष्ण ठाकुर, गुरुदास बनर्जी आदि प्रमुख थे।

इनके अलावा कुछ उच्चकोटि के संत भी लाहिड़ी महाशय से क्रिया-योग की शिक्षा ले चुके थे जिनमें सर्वश्री भास्करानन्द सरस्वती, बालानन्द ब्रह्मचारी और साईं बाबा के नाम उल्लेखनीय हैं।

साईं बाबा के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि वे काशी कभी आये थे और लाहिड़ी महाशय से दीक्षा ली थी। शिरडी के साईं बाबा का समय १८५० से १९१९ ई० तक माना गया है। योगिराज की डायरी से उद्धरण देते हुए उनके पौत्र श्री सत्यचरण ने लिखा है कि नानकपंथी साईं बाबा को योगिराज ने क्रिया-योग की दीक्षा दी थी।

काशी नरेश अक्सर भास्करानन्द स्वामी तथा तैलंग स्वामी का दर्शन करने जाते थे। इनकी जबानी योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी की प्रशंसा सुनकर भास्करानन्दजी में उत्सुकता उत्पन्न हुई। उन्होंने काशी नरेश ईश्वरीनारायण सिंह से अनुरोध किया कि योगिराजजी को किसी दिन अपने साथ ले आयें। लाहिड़ी महाशय गृहस्थ थे, इसलिए उनके यहाँ भास्करानन्दजी जा नहीं सकते थे। महाराजा अपनी गाड़ी से योगिराजजी को

भास्करानन्दजी के पास ले गये थे। वहाँ उन्होंने लाहिड़ी महाशय से साधना-क्रिया के बारे में विस्तार से बातें कीं।

लाहिड़ी महाशय अपने शिष्यों को क्रिया-योग की शिक्षा देते समय इस बात का पूरा ध्यान रखते थे कि कौन कितनी पात्रता रखता है। इसकी शिक्षा वे कई चरणों में देते थे। प्रथम चरण की प्रक्रिया बताने के बाद वे इस बात पर गौर करते थे कि उनके बताये मार्ग पर प्रशिक्षु ने कितनी प्रगति की है। इसके बाद आगे का चरण बताते थे। सामान्य लोग प्रथम चरण के आगे नहीं बढ़ पाते थे।

क्रिया-योग के बारे में स्वामी योगानन्द लिखते हैं—''क्रिया-योग एक सरल मनःकायिक प्रणाली है जिसके द्वारा मानव-रक्त कार्बन से रहित तथा ऑक्सीजन से प्रपूरित हो जाता है। इस अतिरिक्त ऑक्सीजन के अणु जीवन-प्रवाह में रूपान्तरित होकर मस्तिष्क और मेरुदण्ड के चक्रों को नवशक्ति से पुनः पूरित कर देते हैं। अशुद्ध और नीले रक्त-संचय को रोक कर योगी तंतुओं के अपक्षय को कम कर देने या रोक देने में समर्थ होता है। प्रगत योगी अपने कोशाणुओं को जीवन-शक्ति में रूपान्तरित कर सकता है। क्रिया-योग एक सुप्राचीन विज्ञान है। लाहिड़ी महाशय ने इसे अपने महान् गुरु बाबाजी से प्राप्त किया था। बाबाजी ने ही युगों-युगों की विस्मृति के अतल गह्वर से 'क्रियायोग' का पुनरुद्धार किया और इसकी प्रविधि को परिष्कृत किया। बाबाजी ने इसको 'क्रियायोग' का सरल नाम दिया।''

बाबाजी ने लाहिड़ी महाशय से कहा था—''इस १९वीं शताब्दी में जिस क्रियायोग को मैं तुम्हारे द्वारा विश्व को दे रहा हूँ, वह उसी विज्ञान का पुनरुज्जीवन है जिसे सहस्राब्दियों पूर्व भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को प्रदान किया था। बाद में जिसका ज्ञान पतंजलि, ईसा मसीह, सेण्ट जान, सेण्ट पाल आदि उनके अनेक शिष्यों को प्राप्त हुआ था।''

योग के श्रेष्ठतम शास्त्रकार प्राचीन ऋषि पतंजलि ने दो बार क्रियायोग का उल्लेख किया है। उन्होंने लिखा है—''शरीर-साधना, मनोनिग्रह और 'ॐ' का ध्यान क्रियायोग है। ध्यान में सुनाई पड़ने वाली 'विश्वध्वनि—ॐ' ईश्वर की वाचक है। ॐ सृष्टिकर्ता शब्दब्रह्म है। वह स्पन्दनशील सृष्टियंत्र का गुंजन है और ईश्वर की सत्ता का साक्षी है। यहाँ तक कि नया साधक भी अपने अंतर में ॐ की अद्भुत ध्वनि सुनता है। इस आनन्ददायक आध्यात्मिक प्रोत्साहन से साधक को विश्वास हो जाता है कि ऊर्ध्व लोकों से उसका सम्पर्क स्थापित हो रहा है।''[1]

''क्रियायोगी अपनी प्राणशक्ति को मेरुदण्ड के छः चक्रों (आज्ञा, विशुद्ध, अनाहत, मणिपुर, स्वाधिष्ठान और मूलाधार) जो विश्व पुरुष के प्रतीक राशि चक्र की बारह राशियों

---

[1] वेदों का ॐ तिब्बतियों का मंत्र 'हुँ' हो गया है। मुसलमानों का 'आमीन'; मिस्त्रियों, यूनानियों, रोमनों, यहूदियों तथा ईसाइयों का 'आमेन' हो गया है। हिब्रू में इसका अर्थ है—ध्रुव, निश्चित, विश्वस्त।

के समान हैं, में मानसिक-शक्ति द्वारा ऊपर या नीचे की ओर प्रवाहित करता है। मनुष्य के संवेदन मेरुदण्ड के चारों ओर प्राणशक्ति की आधा मिनट की परिक्रमा से मनुष्य के विकास में सूक्ष्म प्रगति होती है। साधारण गति से जो आध्यात्मिकता एक वर्ष में प्रकट होती है, वह आधे मिनट के क्रिया-अभ्यास के समान होती है।

साढ़े आठ घंटे में एक हजार बार क्रिया का अभ्यास, एक दिन में एक हजार वर्ष के स्वाभाविक विकास के समतुल्य है यानी ३ लाख ६५ हजार वर्षों का विकास एक वर्ष में। इस प्रकार क्रिया-योगी प्रज्ञापूर्वक आत्म-प्रचेष्टा द्वारा तीन वर्ष में वही परिणाम प्राप्त कर लेता है जिसे प्राकृतिक रूप से प्राप्त करने में दस लाख वर्ष लगते हैं। निश्चय ही क्रिया का संक्षिप्त मार्ग केवल अत्यन्त विकसित योगियों द्वारा ही अपनाया जा सकता है। गुरु के मार्गदर्शन में ऐसे योगियों ने सावधानीपूर्वक अपने शरीर और मस्तिष्क को इस प्रकार तैयार किया है कि वे उग्र अभ्यास से उत्पन्न शक्ति को सहन कर सकें।

आत्मा को शरीर से बाँधकर रखनेवाली श्वासग्रंथि को भेदकर 'क्रिया' सुदीर्घ जीवन प्रदान करती है तथा चैतन्य को अनन्त की ओर प्रसारित करती है। योग-प्रणाली मन तथा भौतिकता के जाल में फँसी इन्द्रियों के बीच की कशमकश पर विजय प्राप्त कर लेती है और साधक को शाश्वत-राज्य की पुनः प्राप्ति के लिए मुक्त कर देती है। तब वह जान जाता है कि सत्-स्वरूप न तो शारीरिक बंधन में बँधा है, न श्वास-प्रश्वास से—जो पवन की प्राकृतिक शक्तियों के सम्मुख नश्वर मनुष्य की विवशता का प्रतीक है। अपने शरीर और मन का स्वामी बनकर क्रियायोगी अन्त में अन्तिम शत्रु मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेता है।''

* * *

योगिराज अपने शिष्यों तथा भक्तों का बराबर ध्यान रखते थे। उनका एक भक्त श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी रावलपिंडी में नौकरी करता था। आपका घर बंगाल में श्रीरामपुर कस्बे में था। कर्मस्थल से जब कभी घर जाते थे तब मार्ग में बनारस उतरकर अपने गुरु लाहिड़ी महाशय के चरणों में प्रणाम करने के बाद आगे जाते थे।

एक बार सवारी न मिलने के कारण स्टेशन से पैदल ही योगिराज के पास आये। ज्योंही बनर्जी बाबू ने उन्हें प्रणाम किया त्योंही योगिराज ने गंभीर स्वर में कहा—''यहाँ क्या करने चले आये? जाओ, घर जल्द चले जाओ।''

कुशल-मंगल पूछना दूर रहा, गुरुदेव ने प्रणाम के उत्तर में आशीर्वाद तक नहीं दिया, ऊपर में डाँटकर भगा रहे हैं। दुःख के कारण उनकी आँखें छलछला आयीं। गला अवरुद्ध हो गया।

शिष्य की पीड़ा को समझते ही योगिराज ने स्नेह मिश्रित स्वर में कहा—''ठीक है जाओ, स्नान करके भोजन कर लो। इसके बाद तुरन्त स्टेशन चले जाना। जो गाड़ी

पहले मिले, उसी से घर चले जाना। देर मत करना।''

आखिर ऐसा आदेश क्यों दिया जा रहा है, सुरेन बाबू समझ नहीं सके। आदेश के अनुसार भोजनादि से निवृत्त होकर स्टेशन की ओर रवाना हो गये। चलते समय कारण पूछने का भी साहस नहीं हुआ। एक तो आते ही बिगड़ गये, फिर कुछ पूछने पर न जाने क्या कह बैठें।

श्रीरामपुर स्टेशन से बाहर निकलते ही उन्होंने देखा कि सामने छोटा भाई खड़ा है।

इन्हें देखते ही भाई ने कहा—''भैया, बड़ी देर कर दी आने में। आपको तार भेजने के बाद से मैं प्रत्येक गाड़ी देख रहा हूँ।''

''तेरा कोई तार मुझे नहीं मिला। आखिर बात क्या है?''

''माँ की हालत काफी चिन्ताजनक है।''

धड़कते दिल से सुरेन बाबू घर पर माँ के पास आये। इन्हें देखते ही माँ प्रसन्न भाव से आगे की ओर दोनों हाथ बढ़ाते हुए बोलीं—''आ गया मेरा बेटा! मैं तेरी राह देख रही थी।''

सुरेन बाबू ने माँ को गले से लगाया और इसके साथ ही माँ के प्राणपखेरू उड़ गये। अब सुरेन बाबू की समझ में आया कि बनारस में गुरुदेव ने क्यों डाँटकर पहली गाड़ी से ही घर जाने का आदेश दिया था।

* * *

अवकाश ग्रहण करने के बाद एक ब्राह्मण काशीवास कर रहा था, दीक्षा लेने के लिए योगिराज के पास आया। ब्राह्मण महाशय नित्य गंगा-स्नान, मंदिर-दर्शन, पूजा-पाठ में समय गुजारते थे।

योगिराज ने उन्हें दीक्षा देने के बदले सलाह दी—''आप नियमित रूप से जो कर रहे हैं, वही करिये। समय आने पर दीक्षा प्राप्त होगी।''

ब्राह्मण महाशय निराश होकर वापस चले गये। इस घटना के दो दिन बाद एक बुढ़िया आयी और कहा—''मैं क्रियायोग की दीक्षा लेना चाहती हूँ।''

योगिराज ने कहा—''कल सबेरे स्नान करके आना।''

जब वह वृद्धा चली गयी तब उपस्थित भक्तों में से एक ने पूछा—''महाराज, परसों एक ब्राह्मण आया था तब आपने उसे दीक्षा नहीं दी और इस वृद्धा को क्रियायोग बताने को तैयार हो गये, क्या बात है?''

योगिराज ने कहा—''उस ब्राह्मण में धर्मभाव इसी जन्म में प्रारंभ हुआ है। अभी वह पूजा-पाठ करता रहे। यह वृद्धा पिछले जन्म में योगक्रिया की दीक्षा पाकर भी कुछ कर नहीं पाई। अब अपने कर्मफलों को भोगकर मेरे पास आयी है, इसलिए इसे योग-दीक्षा दूँगा।''

योगिराज के पास कुछ ऐसे लोग भी आते थे जो शीघ्र ही सब कुछ सीख लेना

चाहते थे और वह भी बिना साधना किये। एक शिष्य ने महसूस किया कि वह क्रियायोग के प्रथम चरण की साधना में पूर्ण रूप से सफल हो गया है। गुरुदेव आगे का चरण बताना नहीं चाहते। एक दिन वह इसी समस्या पर लाहिड़ी महाशय से विचार-विमर्श कर रहा था। ठीक उसी समय मुहल्ले में डाक वितरण करनेवाला पोस्टमैन आया।

उसे देखते ही योगिराज ने कहा—"कहो वृन्दा भगत, तुम्हारी साधना चल रही है न? आओ, मेरे पास बैठो। अब तुम्हें क्रियायोग की द्वितीय चरण की दीक्षा दूँ?"

पोस्टमैन ने दीनभाव से कहा—"नहीं गुरुजी। अब मुझे आगे की दीक्षा नहीं चाहिए। इससे ऊँची दीक्षा लेकर मैं क्या करूँगा? पहली क्रिया से ही मैं आनन्द के सागर में डुबकी लगा रहा हूँ। आजकल मेरा मन इस कार्य में नहीं लग रहा है। आज तो केवल आपका आशीर्वाद लेने आया हूँ ताकि सर्वदा इसी आनन्द में मस्त रहूँ।"

लाहिड़ी महाशय ने मुस्कराते हुए कहा—"वृन्दा प्रथम चरण में ही आनन्द-सागर में तैर रहा है।"

गुरुदेव के कहने का तात्पर्य क्या है, इसे शिष्य ने समझ लिया। तुरत उनके चरणों पर माथा नवाते हुए कहा—"आपने मेरा भ्रम दूर कर दिया गुरुदेव। वास्तव में मैं अज्ञान के अँधेरे में भटक रहा था। मुझे क्षमा कर दें।"

लाहिड़ी महाशय एक ओर अयोग्य पात्रों के साथ इस तरह पेश आते थे, वहीं दूसरी ओर योग्य पात्रों को अपने यहाँ क्रियायोग के माध्यम से आकर्षित कर बुला लेते थे।

* * *

बंगाल के एक साधारण गाँव में ईंटों का एक भट्ठा था। वहाँ हितलाल नामक एक सामान्य कर्मचारी रहता था। आमदनी कम, पर दरियादिल था। हमेशा दूसरों की सेवा करना, उसकी विशेषता थी। अगर उसमें कोई कमजोरी थी तो यह कि काम करते-करते न जाने कहाँ खो जाता था। उस वक्त उसे कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। गंगा नदी किनारे जाकर चुपचाप बैठा रहता। ऐसा क्यों होता है, वह क्या सोचता है, इस बारे में कुछ बता नहीं पाता था।

एक दिन दोपहर के वक्त न जाने क्यों उसका मन भट्ठे के कार्य से उचट गया। उसके मन में यह भावना उत्पन्न हुई कि यहाँ से दूर कहीं चला जाय जहाँ अपना कोई न हो। परिचित व्यक्ति दिखाई न दे।

यह विचार आते ही वह स्टेशन चला आया। सम्मोहित व्यक्ति की तरह टिकटघर के सामने आकर कहा—"एक टिकट दीजिए।"

टिकट बाबू ने सोचा—कोई पागल व्यक्ति है। भला कोई इस तरह टिकट माँगता है? उसने पूछा—"कहाँ का टिकट चाहिए?"

हितलाल ने कहा—"कहीं का दे दीजिए। ये रहे पैसे। इन पैसों से जितनी दूर का टिकट मिल जाय, वहाँ तक का दे दीजिए।"

टिकट बाबू को समझते देर नहीं लगी कि यह व्यक्ति निस्सन्देह पागल है अथवा पत्नी से झगड़ा हो गया है।

उसने पैसों का हिसाब करने के बाद पूछा—''आप बनारस कभी गये हैं?''

''नहीं?''

''तब वहाँ चले जाइये। बड़ा पवित्र नगर है। वहाँ अनेक साधु-संत हैं, बाबा भोलेनाथ हैं। उनका दर्शन कीजिएगा मन को शांति मिलेगी।''

हितलाल को बनारस के बारे में केवल इतनी जानकारी थी कि वहाँ बंगाली टोला नामक एक मुहल्ला है जहाँ अधिकतर बंगाली रहते हैं। स्टेशन से बाहर निकलकर इस मुहल्ले का पता पूछते हुए आये। भूख-प्यास के कारण मुँह सूख गया था।

गलियों से गुजरते समय सहसा एक मकान का दरवाजा खुला और एक सौम्य आकृतिवाले पुरुष ने उनसे पूछा—''कहिये, हितलालजी, कहाँ जा रहे हैं? यहाँ आइये।''

हितलाल विस्मय से पुकारने वाले सज्जन को देखने लगे। दिमाग में काफी जोर लगाने पर भी वे यह नहीं समझ पाये कि इन्हें कब कहाँ देखा है। उसने कहा—''माफ कीजिएगा, मैं आपको नहीं पहचान पा रहा हूँ जबकि आप मेरा नाम भी जानते हैं।''

''पहले आप भीतर आइये। स्नान-भोजन करिये। बाद में परिचय की बातें होंगी।''

स्नान-भोजन के बाद जब हितलाल गृहस्वामी के पास आया तब उसे ज्ञात हुआ कि वह कहाँ आया है। गृहस्वामी पंडित श्यामाचरण लाहिड़ी हैं। यहाँ अन्य जितने लोग बैठे हैं, सभी इनके भक्त और शिष्य हैं।

लाहिड़ी महाशय ने कहा—''आज आपको दीक्षा देनी है, इसीलिए उतनी दूर से आपको मैंने बुलाया है। मेरा नाम श्यामाचरण लाहिड़ी है।''

बंगाल के अख्यात गाँव में रहने पर भी वह इस नाम से परिचित था। यह नाम सुनते ही तुरन्त उनके चरणों पर गिर पड़ा। आज प्रत्यक्ष रूप से दर्शन पाकर अपने को धन्य समझने लगा।

* * *

लाहिड़ी महाशय केवल पुस्तकीय ज्ञानी नहीं थे, बल्कि चिंतन और तत्त्वज्ञान के झरने थे। उनका कहना था कि ईश्वर की उपस्थिति का विश्वास ध्यान में रखते हुए अपने आनन्ददायक सम्पर्क से उन्हें जीतो। अगर तुम्हारी कोई समस्या हो तो क्रियायोग से हल करो। क्रियायोग के द्वारा तुम मुक्ति-पथ पर अनवरत रूप से आगे बढ़ते जाओ, क्योंकि इसकी शक्ति इसके अभ्यास पर निर्भर है। मैं स्वयं यह मानता हूँ कि मनुष्य के स्वतः प्रयास से मुक्ति पाने की सबसे अधिक प्रभावोत्पादक विधि यही है जिसकी उत्पत्ति मनुष्य द्वारा ईश्वर-प्राप्ति के लिए अब तक पायी जाती है।

जिस प्रकार राजस्थानी महिलाएँ सिर पर पानी की कई गगरियाँ लेकर हँसती-गाती चलती हैं, पर उनका ध्यान गगरियों पर रहता है, उसी प्रकार कुटस्थ में ध्यान

रखते हुए अपना काम करते रहो। अग्नि के द्वारा जिस प्रकार धातु शुद्ध होती है, ठीक उसी प्रकार प्राणायाम के द्वारा इन्द्रियों की शुद्धि होती है। चंचल मन पाप-कार्यों में लिप्त रहता है। प्राणायाम के द्वारा स्थिर करने पर मन स्थिर हो जाता है। मन स्थिर हो जाने पर इन्द्रियाँ भी स्थिर हो जाती हैं। प्रत्येक मनुष्य चौबीस घंटे में २१६०० बार श्वास लेता है। यही मनुष्य की आयु होती है। जब श्वास की पूँजी समाप्त होती है तब मनुष्य का देहांत होता है। एक प्राणायाम में केवल २४ सेकेंड लगते हैं। चौबीस घंटे में मनुष्य १९६४ बार प्राणायाम करते हुए इतनी बार श्वास लेता है। यही वजह है कि योगीजन प्राणायाम को अधिक महत्व देते हैं ताकि श्वासों की पूँजी जल्द समाप्त न हो जाय।

गीता में कहा गया है कि योगीजन अपानवायु में प्राणवायु को हवन करते हैं, वैसे ही अन्य योगीजन प्राणवायु में अपानवायु को हवन करते हैं। अन्य योगीजन अपान गति को रोककर प्राणायाम के परायण होते हैं। (गीता, ४.२९)[1]

बाहरी विषय भोग का चिंतन न करते हुए बाहर ही त्यागकर और नेत्रों की दृष्टि भृकुटी के बीच में स्थित करके तथा नासिका में विचरनेवाले प्राण और अपानवायु को एक में मिलाना चाहिए। जीती हुई इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि जिसकी हो, ऐसा मुनि इच्छा, भय और क्रोध से रहित है, वह सदा मुक्त ही है।[2]

भक्तों से घिरे लाहिड़ी महाशय बात करते-करते अचानक न जाने किसे नमस्कार करते रहते थे। कुछ भक्तों को संदेह हुआ कि संभवतः सूक्ष्म शरीर में कोई महापुरुष यहाँ आता है जिसे गुरुदेव नमस्कार करते हैं। अपनी शंका को दूर करने के लिए एक भक्त बाहर आकर खड़ा हो गया।

लाहिड़ी महाशय का भवन स्थानीय लोगों की दृष्टि में तीर्थस्थल था। राह चलते जो भीतर नहीं आते थे, वे लाहिड़ी महाशय को बाहर से ही प्रणाम करते हुए आगे बढ़ जाते थे। लाहिड़ी महाशय कमरे के भीतर बैठे इस प्रणाम का उत्तर हाथ उठाकर देते थे। तब भक्तों को ज्ञान हुआ कि गुरुदेव सूक्ष्म शरीरवालों को नहीं, राह चलते लोगों के नमस्कार का उत्तर देते हैं।

योगिराज की अतीन्द्रिय-शक्ति देखकर उनके भक्तों को आश्चर्य होता था, इसलिए वे अत्यन्त श्रद्धा के साथ अपने कल्याण की कामना उनसे करते रहते थे।

---

[1] अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे ।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥ (४-२९)

[2] स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भ्रुवोः ।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ ॥
यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्ष परायणः ।
विगतेच्छा भयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥ (५-२७-२८)

योग तथा प्राणायाम के बारे में गीता के ४-५-६ठवें अध्याय में विस्तार के साथ वर्णन है। गीता के भाष्यकारों में सर्वश्रेष्ठ भाष्य संत ज्ञानेश्वर ने किया है।

आपका एक भक्त कृष्णराम नित्य आपके साथ गंगा-स्नान के लिए जाता था। एक दिन बीच रास्ते में रुककर योगिराज ने कहा—''कृष्णराम, कपड़ा फाड़।''

'कपड़ा फाड़' यह क्या बला है? किसका कपड़ा? अपना या उनका ? गुरुजी को अचानक क्या हो गया, बेचारा कृष्णराम कुछ समझ नहीं सका। अभी वह ऊहापोह की स्थिति में ही था कि ऊपर से एक ईंट लाहिड़ी महाशय के पैर पर गिरी और पैर घायल हो गया।

तुरन्त अपनी धोती फाड़कर कृष्णराम ने क्षत पर पट्टी बाँधते हुए कहा—''गुरुदेव, जब आपको यह मालूम हो गया था कि ऊपर से ईंट गिरने वाली है तब जरा हट-बढ़ जाते। जान-बूझकर घायल होने से क्या मिला?''

योगिराज ने कहा—''ऐसा नहीं होता, बेटा। अगर हट जाता तो यह भोग आगे भयंकर रूप में आता। इसलिए प्रारब्ध का भोगदण्ड तुरन्त स्वीकार कर लेना चाहिए।''

नित्य शाम को योगिराज अपने घर भागवत-कथा भक्तों को सुनाया करते थे। एक दिन कथा कहते-कहते बोल उठे—''न जाने क्यों आज दम घुट रहा है। अब कुछ कहते नहीं बन रहा है। लग रहा है जैसे अथाह सागर में डूब रहा हूँ।''

लाहिड़ी महाशय की बातें कोई नहीं समझ सका। लोग एक-दूसरे का मुँह देखते रहे। दूसरे दिन समाचारपत्रों में प्रकाशित हुआ—जापान के समीप एक जहाज डूब गया जिसमें हजारों व्यक्तियों को जल समाधि मिली।

* * *

जिन लोगों को ब्रह्म सारूप्य के सुख का अनुभव हो जाता है, वे लोग शरीरधारी होते हुए भी ब्रह्मरूप हो जाते हैं। ऐसे लोग यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदि योग-साधनों के पर्वतों को लाँघकर पार कर जाते हैं और तब इस अवस्था तक पहुँचते हैं। आत्मसाक्षात्कार के बल से स्वयं निर्लिप्त रहकर यह सब करते हैं और स्वयं शांत रस बने रहते हैं। ऐसे लोगों के लिए योग की विभूतियाँ प्रकट करना साधारण-सी बात है।

योगिराज अपने शिष्यों का काफी ध्यान रखते थे। जिनकी निष्ठा ईश्वर तथा उनके प्रति है, वे कहीं भी रहें, गुरुदेव का अभय-दान उन्हें प्राप्त होता रहता है।

लाहिड़ी महाशय की अभया नामक एक शिष्या कलकत्ता रहती थी। वह आठ बार गर्भवती हुई और सभी बच्चों की अकाल मृत्यु हो गयी। नौवीं बार गर्भवती होते ही उसने निश्चय किया कि इस बार गुरुदेव के यहाँ जाकर प्रार्थना करूँगी। यह विचार मन में आते ही वह बनारस जाने के लिए व्याकुल हो उठी।

पति के साथ हबड़ा स्टेशन आयी तो पता चला कि गाड़ी सीटी दे रही है। अभी टिकट खरीदना था, फिर लम्बे प्लेटफॉर्म को पारकर गाड़ी पर सवार होना था। अभया टिकट-घर के पास खड़ी योगिराज का ध्यान करती हुई मन ही मन बोल उठी—''गुरुदेव, कृपा करके गाड़ी रोक दो। जाने न पाये। अब मैं अधिक इन्तजार नहीं कर सकती।''

इधर गाड़ी स्टार्ट हुई, चक्के घूमने लगे, पर गाड़ी एक इंच आगे नहीं बढ़ी। गार्ड, ड्राइवर, यात्री बाहर निकलकर इस अद्‌भुत तमाशे को देखने लगे। उधर एक अपरिचित अभया के पास आकर बोला—"बहनजी, आप लोग चलकर गाड़ी पर बैठिये। मैं आपका टिकट लेकर आता हूँ। मुझे भी बनारस जाना है।"

उस अपरिचित व्यक्ति को रुपये देकर अभया गाड़ी में बैठ गयी। खिड़की से बाहर झाँकते ही उक्त व्यक्ति ने ज्योंही टिकट दिया त्योंही गाड़ी चल पड़ी। इस रहस्य को कोई नहीं जान सका।

गुरुदेव के यहाँ आकर जब अभया ने उन्हें प्रणाम किया तब उन्होंने तेज आवाज में कहा—"तुम लोगों के कारण नाक में दम हो गया। व्यर्थ में परेशान होना पड़ा। दूसरी गाड़ी से आती या घर से जल्दी चलती तो क्या बिगड़ जाता?"

गुरुदेव की फटकार सुनते ही अभया रोने लगी। बाद में लाहिड़ी महाशय ने कहा—"समझ गया, क्यों आयी हो। प्रसव रात्रि के प्रथम पहर में होगा। इस बार कन्या आयेगी। एक काम करना। शाम को ही प्रसूति घर में एक दीपक जला देना। दीपक में इतना तेल डालती रहना ताकि दूसरे दिन सूर्योदय तक जलता रहे। इस बात का ध्यान रखना कि तेल के अभाव में दीपक बुझने न पाये।"

यथा समय अभया को लड़की हुई। कमरे में अभया की एक परिचारिका थी। आधी रात के बाद दीपक की रोशनी क्षीण से क्षीणतर होती गयी। दोनों सो गयी थीं। अचानक कमरे का दरवाजा खुला। दोनों जाग गयीं। सामने गुरुदेव खड़े थे।

लाहिड़ी महाशय ने कहा—"चेतावनी देने पर भी ध्यान नहीं दे रही हो। दीपक बुझ रहा है। जल्दी तेल डालो।"

दीपक में तेल डालने के बाद अभया ने देखा—गुरुदेव गायब हो चुके हैं।

* * *

डॉ० गोवर्द्धन पानी के जहाज से बराबर संसार के विभिन्न देशों में घूमते थे। जब उनका जहाज भारत आता है तब वे तुरत योगिराज का दर्शन करने बनारस आ जाते।

एक बार लाहिड़ी महाशय ने कहा—"क्यों इतनी दूर से आते हो?"

"क्या करूँ? मेरी नौकरी ही ऐसी है वर्ना मैं नित्य दर्शन करता। आप आशीर्वाद दीजिए ताकि मुझे नित्य आपका दर्शन मिलता रहे।"

योगिराज ने भक्त के इस अनुरोध का कोई उत्तर नहीं दिया। इस बातचीत के बाद जब डॉक्टर साहब सफर के लिए निकले तब नित्य जहाज पर योगिराज का दर्शन होने लगा।

इसी प्रकार की अनुभूति लाहिड़ी महाशय के अन्यतम शिष्य स्वामी प्रणवानन्दजी को हुई थी। आप रेलवे कर्मचारी थे। गुरु की कृपा से साधना करते हुए उच्चस्तर तक पहुँच गये थे। नियमित रूप से अर्द्धरात्रि तक साधना करते थे। फलस्वरूप आपका

हृदय आध्यात्मिक आनन्द से भर गया था।

एक दिन योगिराज पास आकर बोले—"गुरुदेव, मेरे मन में ईश को देखने की तीव्र आकांक्षा उत्पन्न हुई है। जब तक मैं प्रत्यक्ष रूप से देख न लूँगा तब तक मेरी व्याकुलता समाप्त नहीं होगी।"

गुरु ने आशीर्वाद देते हुए कहा—"जाओ, ध्यान करो। तुम्हारी बात ब्रह्म से कह दूँगा।"

इस घटना के कई माह बाद पुनः वे योगिराज के पास आये और कहा—"अब नौकरी करने की इच्छा नहीं है। मैं पूर्ण रूप से योग-मार्ग पर चलना चाहता हूँ।"

गुरुदेव ने कहा—"पेन्शन माँग लो।"

"अभी तो नौकरी करते कुछ ही वर्ष हुए हैं। कौन-सा कारण बताऊँगा?"

"जो मन में आये बता देना।"

दूसरे दिन प्रणवानन्द ने पेन्शन के लिए आवेदन-पत्र भेजा । डॉक्टर ने इतनी जल्द पेन्शन लेने का कारण पूछा तो आपने बताया—"मेरी रीढ़ की हड्डी में दर्द पैदा हो गया है जो कार्यालय में काम करते समय बाधा उत्पन्न करता है।"

बिना जाँच या अन्य प्रश्न किये डॉक्टर ने पेन्शन की सिफारिश कर दी। पेन्शन पाने के बाद आप अपना पूरा समय योग-साधना में लगाते थे। आगे चलकर आप एक सिद्ध योगी हुए। 'प्रणव-गीता' नामक गीता की पाण्डित्यपूर्ण टीका आपने लिखी है।

लाहिड़ी महाशय के एक अन्य शिष्य थे केवलानन्दजी। आपने भी अपने गुरुदेव की अद्‌भुत कृपा देखी है। लाहिड़ी महाशय के यहाँ रामू नामक एक सेवक था जो अंधा था। केवलानन्दजी अक्सर सोचते थे कि गुरुदेव सभी भक्तों पर कृपा करते हैं, पर अपने सेवक रामू पर इनकी कृपादृष्टि क्यों नहीं है? वह लाहिड़ी महाशय के पीछे खड़ा रहकर बराबर पंखा झला करता था।

एक दिन केवलानन्द ने अकेले में उससे पूछा—"रामू, तुम कब से अंधे हो?"

"मैं पैदाइशी अंधा हूँ महाराज।"

केवलानन्द ने धीरे से कहा—"एक बार गुरुदेव से निवेदन करो। अगर उनकी कृपा हो जायगी तो तुम इस संसार को, हम लोगों को, देवी-देवता सभी को देख सकोगे।"

दूसरे दिन अत्यन्त संकोच के साथ रामू ने लाहिड़ी महाशय के सामने अपनी समस्या रखी। उसकी बातें सुनकर उन्होंने कहा—"रामू, किसी ने मुझे कठिनाई में डालने के लिए तुम्हें बहकाया है। मुझमें ऐसी शक्ति नहीं है।"

"मेरे लिए तो आप ही भगवान् हैं। अगर आपकी कृपा होगी तो मैं इस दुनिया को देख लूँगा।"

लाहिड़ी महाशय ने उसे पास में बैठाकर उसके भौहों के बीच का बिन्दु स्पर्श किया और कहा—"अपने मन को यहीं केन्द्रित करके लगातार सात दिनों तक राम नाम जप करो। ईश्वर तुम्हारी आँखों में सूर्य का प्रकाश देंगे।"

एक सप्ताह बाद रामू ने सचमुच अपनी आँखों से इस संसार को, परिवार को और गुरुदेव को देखा। पुनः गुरुदेव ने कहा—"अब तुम जीवन भर राम नाम जपते रहना।"

इसी प्रकार एक बार एक शिष्य स्टेशन से निकलकर अपने गाँव जा रहा था। शाम का समय था। पैदल चला जा रहा था। अचानक सामने से एक बाघ आता दिखाई दिया। उसे देखते ही उसके प्राण सूख गये। मन ही मन उसने गुरुदेव को स्मरण किया।

अचानक उसे लगा जैसे बाघ के पीछे खड़ा होकर कोई 'धत-धत, भाग' कह रहा है। थोड़ी देर बाद बाघ भाग गया।

इसी प्रकार एक भक्त की जान लाहिड़ी महाशय की कृपा से बच गयी थी। यह भक्त सपरिवार गुरुदेव का दर्शन करने के लिए बैलगाड़ी से आ रहा था। मार्ग में अचानक गाड़ी का चक्का टूट गया। अंधेरी रात, चोर-डाकुओं से लुटने का भय। घबराकर आर्तस्वर में योगिराज का स्मरण करते ही गाड़ी अपने आप चलने लगी। यह दृश्य देखकर गाड़ीवान से लेकर सभी सवारी चकित रह गये। काफी रात गये लोग गुरुदेव के घर आये।

प्रणाम करने के बाद भक्त अपनी मुसीबतों की कहानी सुनाने लगा।

गुरुदेव ने केवल कहा—"हूँ।"

भक्त ने सोचा—गुरुदेव मेरी बातों पर ध्यान नहीं दे रहे हैं। तब वह अपनी बात पर जोर देकर नये सिरे से सारी घटना सुनाने लगा।

गुरुदेव ने कहा—"देख नहीं रहे हो, पसीने से तर हो गया हूँ। चलो, हवा करो। पता है, तुम्हारी गाड़ी यहाँ तक कौन खींच लाया है?"

एक बार एक महिला योगिराज के पास आयी। अपनी कई सहेलियों से लाहिड़ी महाशय की चमत्कारपूर्ण घटनाएँ सुनकर वह मन ही मन इनके प्रति श्रद्धा करने लगी थी। बातचीत के सिलसिले में उसने कहा—"गुरुदेव, अगर आप अपना एक फोटो दें तो बड़ी कृपा होगी। मैं बराबर आपके चरणों का दर्शन करने नहीं आ पाऊँगी। चित्र की पूजा से सन्तोष हो जायगा।"

योगिराज ने अपना एक चित्र उस महिला को देते हुए कहा—"अगर इसे रक्षा-कवच समझोगी तो रक्षा-कवच का काम देगा और नहीं तो चित्र बना रहेगा।"

काफी दिनों बाद एक विचित्र घटना हुई। बाहर पानी बरस रहा था और तेज हवा चल रही थी। वह महिला 'भागवत' पाठ कर रही थी। पास ही योगिराज की पुत्रवधू बैठी थी। इनकी बगल में योगिराज का चित्र टँगा था। अचानक भयंकर वज्रपात हुआ।

उस आवाज को सुनते ही महिला भय से चीत्कार करती हुई बोल उठी—"लाहिड़ी महाशय हमारी रक्षा करें।"

बिजली इनके पास गिरी, पर दोनों महिलाएँ बच गयीं। बाद में इन लोगों ने बताया—"उस समय हमें ऐसा लगा जैसे हमारे चारों ओर बरफ की दीवारें खड़ी हैं।"

योगिराज कभी-कभी अपने भक्तों से विनोद भी करते थे। चन्द्रमोहन दे नामक एक युवक डॉक्टर की डिग्री प्राप्त करने के बाद योगिराज से आशीर्वाद लेने आया।

इधर-उधर की बातचीत करने के बाद योगिराज ने कहा कि तुम लोगों के विज्ञान में मृत किसे कहा जाता है?

चन्द्रमोहन ने कहा—''जिसकी नाड़ी बन्द हो जाती है।''

योगिराज ने अपना हाथ बढ़ाते हुए कहा—''लो, मेरी नाड़ी परीक्षा करके देखो और यह बताओ कि मैं मृत हूँ या जीवित ?''

चन्द्रमोहन ने नाड़ी देखने के बाद दिल की धड़कन की भी जाँच की । उसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। वह यह क्या देख रहा है। उसने लाहिड़ी महाशय की ओर देखते हुए कहा—''यह तो गजब का चमत्कार है।''

''तब मुझे एक डेथ-सार्टिफिकेट लिख दो।''

''मुझे लिखने में कोई एतराज नहीं है, पर आप बातचीत जो कर रहे हैं।'' कहकर वह हँस पड़ा।

इसी प्रकार की एक घटना गंगाधर फोटोग्राफर के साथ हुई थी। उनके एक शिष्य काली कुमार राय की इच्छा हुई कि गुरुदेव से साथ एक सामूहिक फोटो खींचा जाय। योगिराज को बीच में बैठाकर फोटो खींचा गया। निगेटिव धुलने पर देखा गया कि फोटो में सभी लोग हैं, केवल योगिराज नहीं हैं।

इसी प्रकार एक अन्य फोटोग्राफर आया। उसने एक के बाद एक करके बारह प्लेट लिये। इन्हें भी असफलता मिली। योगिराज के चमत्कारों से घबराकर उसने उनके पैर पकड़ लिये।

रोते हुए कहा—''प्रभु, इस अकिंचन को अपना एक चित्र लेने दीजिए।''

योगिराज ने कहा—''ठीक है। कल सबेरे आना।''

दूसरे दिन लाहिड़ी महाशय ने जो चित्र खिंचवाया, वही एकमात्र चित्र है जो सर्वजन को सुलभ हो सका। यही चित्र उनकी पुस्तकों में प्रकाशित है।

इसी प्रकार एक बार आपने अपनी पत्नी श्रीमती काशीमणि देवी को भी परेशान किया था। पत्नी को दीक्षा देने के बाद योगिराज ऊपर कम जाते थे। गृहस्थी की सारी जिम्मेदारी काशीमणि देवी पर थी। योगिराज शिष्यों और भक्तों से घिरे नीचे बैठक में बैठे रहते थे।

एक दिन किसी काम से ऊपर आये तब पत्नी उनके ऊपर बरस पड़ीं। बोलीं—''दिन-रात शिष्यों को लेकर अड्डेबाजी करते हो, कभी पत्नी-बच्चे कैसे हैं, इस बारे में सोचा है? गृहस्थी कैसे चल रही है, कैसे सारा काम-काज हो रहा है?''

पत्नी को नाराज होते देख योगिराज अदृश्य हो गये। एकाएक चारों ओर से आवाजें आने लगी—''देख रही हो, सब शून्य है। मेरे जैसा शून्य तुम्हारे लिए कर ही क्या सकता है?''

पति को इस प्रकार गायब होते देख काशीमणि देवी की हालत खराब हो गयी। वे अपने पति से दीक्षा ले चुकी थीं, पर एक सामान्य बात पर अदृश्य हो जायेंगे, इसकी

कल्पना उन्हें नहीं थी। घबराकर बोलीं—''मैं आपसे क्षमा माँगती हूँ। आप कहाँ हैं? प्रकट हो जाइये।''

इधर योगिराज कमरे के कभी इस कोने तो कभी उस कोने से आवाज देते थे। काशीमणि देवी बोलीं—''अब तो माफ कर दीजिए। सही रूप में प्रकट होइये।''

काशीमणि देवी को रोती देख योगिराज प्रकट होकर बोले—''हे देवी, सांसारिक धन की उपेक्षा कर तू उस परमधाम की कामना कर। उस खजाने को पाने के बाद बाहरी सम्पत्ति का मोह नहीं होगा। घबराने की जरूरत नहीं। घर चलाने लायक धन लेकर एक शिष्य शीघ्र तुम्हारे पास आयेगा।''

कई दिनों बाद एक शिष्य गुरुदेव के चरणों में आकर पर्याप्त धन दे गया।

* * *

योगिराज के अनेक शिष्य थे। इन शिष्यों ने भी अपने शिष्य बनाये थे जो अपनी साधना से अनेक उच्चस्तर के योगी बन गये थे। पंचानन बनर्जी योगिराज के अन्यतम शिष्य थे। बनर्जी बाबू के शिष्य प्रख्यात अध्यापक योगी वरदाचरण थे। वरदाचरण के शिष्य काजी नजरुल इस्लाम और सुभाषचन्द्र बोस हुए। योगिराज के शिष्य रामदयाल मजुमदार के शिष्य संत सीताराम ओंकारनाथ थे। इन सभी लोगों के बारे में पण्डित गोपीनाथ कविराज ने पुस्तकें लिखी हैं।

पुरी में लाहिड़ी महाशय के नाम पर मन्दिर बनवाने वाले श्री भूपेन्द्र सान्याल को योगिराज के यहाँ बिना गये दीक्षा प्राप्त हुई थी। वे काशी जाकर दीक्षा लेने में असमर्थ थे, इसलिए मन ही मन आध्यात्मिक दीक्षा के लिए उन्होंने प्रार्थना की।

एक दिन रात को जब वे गहरी नींद में थे, तब उनके स्वप्न में लाहिड़ी महाशय आये और दीक्षा देकर चले गये। सान्याल महाशय की दृष्टि में यह मात्र स्वप्न था। प्रत्यक्ष रूप से उन्हें दीक्षा नहीं मिली थी।

फलतः काफी दिनों बाद जब वे काशी आये तब उन्होंने योगिराज से प्रत्यक्ष रूप में दीक्षा देने के लिए प्रार्थना की।

योगिराज ने कहा कि मैं तुम्हें दीक्षा काफी दिन पहले दे चुका हूँ। अब दीक्षा कैसी!

योगिराज के साले के पुत्र तारकनाथ सान्याल थे। एक बार वे अस्वस्थ हो गये। रोग दूर नहीं हो रहा था। योगिराज की कृपा से वे स्वस्थ हो गये। अपने फूफाजी के इस गुण से वे काफी प्रभावित हुए।

एक दिन उन्होंने योगिराज से कहा कि मैं आपके गुरु के दर्शन करना चाहता हूँ। दरअसल सान्याल जी यह सोचते थे कि जब शिष्य में इतनी प्रतिभा है तब गुरु में न जाने कितनी होगी। उनके दर्शन से लाभ हो सकता है।

योगिराज ने कहा—''मैंने उनसे निवेदन किया था, पर वे आने को राजी नहीं हैं।''

वास्तव में योग्य व्यक्तियों को ही योगियों के दर्शन मिलते हैं। तारकनाथ सान्याल

को दर्शन नहीं मिला, पर मुरादाबाद के अविश्वासियों को मिला। युक्तेश्वर जी तथा उनके शिष्य मुकुन्दलाल घोष को बाबा जी ने दर्शन दिया था।

योगिवर के एक शिष्य श्री काली कुमार राय थे। वे अपने गुरु के पास नियमित रुप से आते थे। इनकी यह आदत इनके मालिक को पसन्द नहीं थी। वे तमाम संतों को ढोंगी समझते थे। कई बार राय साहब को उन्होंने समझाने की कोशिश की, पर राय साहब की अटल-भक्ति में कोई अंतर नहीं आया। वे गुरु की सेवा में बराबर जाते रहे।

एक दिन इनका पीछा करते हुए इनके मालिक भी योगिराज के यहाँ आये। भक्तों के पीछे बैठकर यह सोचने लगे कि आज इस बाबा की पोल खोलकर रहूँगा। देखूँ, क्या-क्या ढोंग रचता है।

एकाएक लाहिड़ी महाशय ने अपने शिष्यों से कहा—''क्या तुम लोग एक चित्र देखना पसन्द करोगे?''

सभी लोगों ने इस प्रस्ताव को स्वीकार किया। लाहिड़ी महाशय के आदेशानुसार कमरे की बत्तियाँ बुझा दी गयीं। बाद में लोग एक के पीछे एक करके गोलाकार रूप में बैठ गये।

योगिराज ने कहा—''अब प्रत्येक व्यक्ति अपने आगे वाले की आँखें अपने हाथ से बन्द कर दे।''

चूँकि सभी लोग ऐसा कर रहे थे, इसलिए काली बाबू के मालिक को भी वैसा करना पड़ा।

तभी योगिराज ने पूछा—''क्या दिखाई दे रहा है तुम लोगों को?''

लोग कहने लगे—''एक अत्यन्त सुन्दर रमणी जो कि लाल किनारे की साड़ी पहने है, वह गजकर्ण पौधे के पास खड़ी है।''

योगिराज ने काली बाबू के मालिक से पूछा—''क्या आप इस औरत को पहचान रहे हैं?''

मालिक ने कहा—''जी हाँ। मैं भारी मूर्ख हूँ जो घर में सती पत्नी के रहते, इस औरत के पीछे पागल हूँ। मैं अपनी कुटिल-भावनाओं के लिए लज्जित हूँ। कृपया मुझे क्षमा करके दीक्षा देने का अनुग्रह करें।''

योगिराज ने कहा—''अगर तुम छः माह तक संयम से रह सकोगे तभी दीक्षा दूँगा।''

तीन माह तक वह व्यक्ति संयम से रहा। बाद में पुनः उस रखैल से उसका सम्पर्क हो गया। सम्पर्क होने के एक माह बाद उसकी मृत्यु हो गयी।

* * *

उन दिनों काशी में तैलंग स्वामी को जीवन्त विश्वनाथ माना जाता था। नगर में उनकी चमत्कारिक कहानियाँ लोगों की जबान पर चलती रहती थीं।

एक दिन दो-चार भक्तों के साथ तैलंग स्वामी का दर्शन करने के लिए योगिराज पंचगंगा घाट स्थित उनके स्थान तक आये। दूर से उन्हें आते देख तैलंग स्वामी ने आगे बढ़कर गले से लगाया और फिर अपने स्थान तक ले आये।

कुछ देर दोनों संतों में बातें होती रहीं। इसके बाद योगिराज विदा लेकर वापस चले गये।

लाहिड़ी महाशय के जाने के बाद वहाँ बैठे भक्तों में से एक व्यक्ति ने पूछा—''महाराज, आप जैसे महान् योगी ने कैसे एक गृहस्थ व्यक्ति का स्वागत किया, मैं समझ नहीं सका। आदर-स्वागत तो बराबरी वालों का किया जाता है।''

तैलंग स्वामी ने कहा—''यह साधारण व्यक्ति नहीं है बल्कि असाधारण योगी है और उच्चकोटि का है। गृहस्थ होते हुए भी काफी उन्नत हो गया है। तुम लोगों की दृष्टि वहाँ तक नहीं पहुँच पाती।''

तैलंग स्वामी द्वारा प्रशंसा किये जाने के कारण लाहिड़ी महाशय की ख्याति चतुर्दिक फैल गयी। जो लोग इन्हें साधारण समझते रहे, अब वे भी इनका दर्शन करने के लिए आने लगे। मृग की नाभि में कस्तूरी रहती है और वह उसके गंध से छटपटाता है। उसकी गंध चारों ओर फैल जाती है। इस प्रसंग में एक बोध कथा का स्मरण हो रहा है।

महर्षि अंगिरस से एक बार एक शिष्य ने प्रश्न किया—''गुरुदेव, यह बताइये कि मनुष्य अपने अन्तःकरण को कैसे निर्मल कर सकता है?''

महर्षि ने कहा—''करने वालों के लिए बहुत सहज है, अन्यथा कठिन। उपनिषद् का बताया हुआ ज्ञान-धनुष हाथ में पकड़ो, उस पर उपासना के बाण रखो और ब्रह्म के प्रेम में निमग्न होकर परमात्मा के सर्वप्रिय नाम 'ॐ' को लक्ष्य करके छोड़ो। कहने का मतलब यह कि हृदय से ब्रह्म की उपासना में लीन हो जाओ। ऐसा करनें से मुक्ति पाओगे। केवल परमात्मा को आनन्दस्वरूप मानो और सुयोग्य गुरु से शिक्षा ग्रहण करो। यह समझना भी भूल है कि गुरु परमात्मा दिखा देगा या उन्हें प्राप्त करा देगा। गुरु मार्ग दिखा सकता है, साक्षात् नहीं करा सकता। मुक्ति प्राप्त करने का अधिकारी मात्र सत्याचारी होता है। सत्य की अन्तिम सीमा मुक्ति है। जब कोई अपने ज्ञान-चक्षु से परमात्मा को देख लेता है, उसका सम्बन्ध शरीर से एकदम दूसरा हो जाता है। जब शरीर की चिन्ता नहीं तब मन में चंचलता कहाँ से आयेगी? मन की चंचलता समाप्त होते ही सारा भ्रम नष्ट हो जाता है, सभी कर्मों के संस्कार लुप्त हो जाते हैं। यह ठीक है कि जीव ब्रह्म नहीं बन सकता, किन्तु उसमें ब्रह्मरूपता आ जाती है और इस तरह वह पूर्णानन्द को प्राप्त हो जाता है।''

योगिराज की यही स्थिति हो गयी थी। वे पूर्ण रूप से पूर्णानन्द प्राप्त कर चुके थे।

* * *

सन् १८६५ की गर्मी में लाहिड़ी महाशय को कार्बंकल हो गया। कई महीने तक वे उसकी पीड़ा सहते रहे। शिष्यों ने आग्रह किया कि ऑपरेशन करा लें। लेकिन उन्होंने इसे स्वीकार नहीं किया। उन्हें यह मालूम हो गया था कि अपनी उदारता के कारण वे अनेक शिष्यों के पापों को इस रूप में स्वीकार कर चुके हैं। ठीक इन्हीं दिनों उन्हें बाबा जी की चेतावनी याद आयीं। कुंभ मेले से वापस आकर युक्तेश्वर जी ने उनका एक संदेश दिया था—''समय कम है, शक्ति समाप्त हो रही है।''

गुरुदेव के शिष्य पंचानन भट्टाचार्य ने अचानक एक दिन अपने कमरे में देखा कि गुरुदेव उनके सामने खड़े होकर कह रहे हैं—''जल्द काशी चले आओ।''

ठीक उसी दिन उदयपुर में स्वामी प्रणवानन्द ने देखा कि उनके कमरे में गुरुदेव का आविर्भाव हुआ और उन्हें आदेश दे रहे हैं—''तुरन्त काशी चले आओ।''

इस प्रकार उसी दिन कई शिष्यों ने अपने-अपने स्थान में योगिराज को यही बात कहते सुना।

काशी आने पर लोगों ने देखा—गुरुदेव अपने कमरे में बैठे भागवत-पाठ कर रहे हैं। यह पाठ कई दिनों तक चलता रहा।

एक दिन उन्होंने कहा—''मेरा कार्य समाप्त हो गया, अब मैं अपने घर जा रहा हूँ।''

यह बात सुनकर उपस्थित भक्त-शिष्य रोने लगे। योगिराज ने कहा—''शोक करने की जरूरत नहीं। नश्वर शरीर त्याग करने पर भी मैं तुम लोगों के बीच मौजूद रहूँगा।''

इतना कहकर वे पद्मासन लगाकर बैठ गये और थोड़ी देर में महासमाधि में लीन हो गये। उस दिन गुरुवार, २६ सितम्बर, १८६५ ई० था।

■

महर्षि रमण

भारत से अंग्रेज चले गये, पर अपने पीछे उन लोगों को छोड़ गये जो धर्म के नाम पर गरीब, पिछड़ी और निम्न जातियों को बहकाकर क्रिश्चियन बनाने में सहयोग कर रहे हैं। अंग्रेजों के शासनकाल में चर्च के पादरी शासन पर भी सहयोग के लिए दबाव डालते रहे। गरीबी, अपमान से पीड़ित भोली-भाली जनता इनके बहकावे में आकर धर्म परिवर्तन कर लेती थी। यद्यपि इसके लिए मुख्य अपराधी हमारे सामाजिक नेता तथा धर्मगुरु रहे हैं।

अर्काट जिले के पादरियों ने अनुभव किया कि अब पहले की तरह लोग धर्म-परिवर्तन के लिए नहीं आ रहे हैं। यहाँ तक कि चर्च की प्रार्थना-सभा में उपस्थिति कम होने लगी है। पता लगाने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि अरुणाचल पर आज-कल कोई संत आया है जिसे लोग ईश्वर का दूत समझते हैं। वह व्यक्ति नित्य भगवान् के पास जाता है और उनके निकट तीन घंटे रहता है। भगवान् को देखने या उसके सेवक के पास जाने की लालसा प्रत्येक व्यक्ति के मन में उत्पन्न होती है। ऐसी हालत में इस प्रचार के कारण उस संत के यहाँ लोग जाते हैं तो इसमें आश्चर्य क्या?

पादरियों ने अनुमान लगाया कि यह जरूर कोई धूर्त होगा जिसके चेलों ने व्यापक रूप से यह प्रचार कर रखा है कि वह व्यक्ति नित्य भगवान् से मुलाकात करता है। अगर तुरन्त इसका भंडाफोड़ न किया गया तो परिणाम उल्टा होगा।

एक दिन पादरी अपने साथ कई धर्म प्रचारकों को लेकर महर्षि रमण के निकट आये और क्रोध से बोले—"सुना है कि आपको ईश्वर का साक्षात्कार हो गया है और

आप रोज सबेरे तीन घंटा एकांत में उनके साथ घूमते हैं। हम इस झूठ का प्रचार नहीं करने देना चाहते। भोली-भाली जनता को अपने पाखंड में फँसाना सबसे बड़ा पाप है। इस पाप को दूर करने के लिए हम आपके पास आये हैं। आप अपने ईश्वर से हमारी मुलाकात करायें जिसे आप देखते हैं, अगर सारी बातें झूठ हैं तो हमें साफ-साफ बताइये ताकि आपका भंडाफोड़ कर दें।''

महर्षि अपनी आदत के अनुसार मुस्कराये। बिना किसी प्रकार की द्विधा के उन्होंने संयत स्वर में कहा-''आपने जो कुछ सुना है, सब सही है। भगवान् आपको क्षमा करें। आप कल सबेरे आइये, मैं आप लोगों को अपने भगवान् के पास ले चलूँगा।''

पादरियों को विश्वास हो गया कि महर्षि रमण झूठ बोलकर उन्हें बहका रहे हैं। सभी लोगों ने यह निश्चय किया कि कल सबेरे आकर इस नकली संत के कपट का भंडाभोड़ किया जायगा। रातभर उन्हें नींद न आयी।

दूसरे दिन पादरी और उनके साथ कुछ अन्य लोग आये। महर्षि उस समय अपने नित्य कर्म में व्यस्त थे। बाद में उन सभी को लेकर वे घने जंगल की ओर चल पड़े। दो मील पैदल चलने के बाद महर्षि एक झोपड़ी के पास आकर रुके।

महर्षि ने कहा—''मेरे ईश्वर इसी झोपड़ी में हैं। आप लोग बाहर शांतिपूर्वक बैठकर सब कुछ देखने का कष्ट करें।''

इसके बाद महर्षि रमण उस झोपड़ी के भीतर गये। लोगों ने साश्चर्य देखा कि उस झोपड़ी के भीतर एक चटाई पर एक कोढ़ी दम्पति पड़े थे। महर्षि ने उनके घावों की सफाई की, उन्हें तेल लगाया और फिर पानी लाकर उन्हें नहलाया। इसके बाद चूल्हा जलाकर, खिचड़ी बनाकर उन्हें खिलायी।

बाहर खड़े लोग यह सारा दृश्य देख रहे थे। महर्षि ने कहा—''यही मेरे ईश्वर हैं।''

पादरियों के मुँह में जैसे ताले जड़ गये थे। कुछ देर के लिए वे पाषाण बन गये थे। वे आनन्दाश्रु बहाते हुए बोले—''महर्षि आप हमें क्षमा करें। आज आपने हम अपराधियों को वह दिखा दिया है जो पुण्यात्माओं के लिए भी दुर्लभ है। सचमुच आप ईश्वर का प्रत्यक्ष दर्शन करने वाले संत हैं।''

पादरी अपने दल के साथ जब शहर वापस गया तब उसने यह प्रचार किया कि जिसे प्रत्यक्ष रूप से ईसामसीह देखना हो, वह अरुणाचलम् जाकर महर्षि का दर्शन करे।

इसी प्रकार एक बार चोरों के साथ एक विचित्र घटना हुई थी। उन दिनों महर्षि की महिमा बहुत बढ़ गयी थी। किशोर-साधक रमण का दर्शन करने के लिए अगणित लोग आते थे। वे खाली हाथ नहीं आते थे। ख्याति के साथ भक्त तथा शिष्यों की संख्या में विस्तार हो गया था। चोरों ने सोचा, जब इतने भक्त आते हैं, उन सभी को भोजन आदि मिलता है तब आश्रम के भीतर काफी धन होगा। वे सब अस्त्र-शस्त्र से लैस होकर आये।

कमरे के दरवाजे, खिड़कियाँ तोड़ने लगे। देखते-देखते सभी शिष्य लाठी-सोटे लेकर मुकाबला करने के लिए तैयार हुए।

महर्षि ने कहा—"चोरों के साथ झगड़ा करने की जरूरत नहीं। उन्हें अपना कार्य निर्विघ्न रूप से करने दो। हमारा कार्य है उनके अत्याचारों को चुपचाप सहना।"

इसके बाद वे चोरों से कहने लगे—"अरे भाई, नाहक क्यों तोड़फोड़ कर रहे हो। आराम से भीतर आ जाओ। तुम्हें जिन-जिन चीजों की जरूरत हो, लेते जाओ। हम तुम्हें कुछ नहीं कहेंगे।"

कई बार महर्षि द्वारा उक्त कथन दुहराने पर चोरों ने कहा—"हम इतने बेवकूफ नहीं जितना आप समझ रहे हैं। आप लोगों को अपनी जान भले ही प्यारी न हो, हमें अपनी प्यारी है।"

महर्षि ने उत्तर दिया—"शायद तुम्हें मेरी बातों पर विश्वास नहीं हुआ। ठीक है। हम लोग आश्रम को खाली करके चले जा रहे हैं। इसके बाद तुम सब भीतर आ जाना।"

इतना कहकर महर्षि अपने शिष्यों तथा भक्तों के साथ आश्रम से बाहर निकले। कुछ पग आगे बढ़ते ही चोरों में से किसी ने लाठी से महर्षि के पैर पर चोट की। वेदना से सहम कर संत ने कहा—"मेरा एक पैर जख्मी हुआ है। अगर चाहो तो दूसरा भी जख्मी कर सकते हो।"

महर्षि की यह बात एक शिष्य को पसन्द नहीं आयी। वह उनकी सुरक्षा के लिए आगे आ गया। बाद में आगे बढ़कर अपने भक्तों के साथ एक जगह महर्षि बैठ गये।

थोड़ी देर बाद चोरों की ओर से आवाज आयी—"जब इतनी कृपा कर चुके हैं तब एक लालटेन का इन्तजाम कर दीजिए। अंधेरे में कुछ दिखाई नहीं दे रहा है।"

महर्षि रमण की आज्ञा पाकर एक शिष्य उन्हें लालटेन दे आया। आश्रम में अन्न और कुछ कपड़े थे। कुछ बरतन भी थे। वे सब क्या चोरी करते। चोरों के वापस जाने के बाद पुनः सभी लोग आश्रम में वापस आये। उन्होंने देखा—चारों ओर अनाज और वस्त्र बिखरे हुए हैं। बरतन तथा कुछ अन्य सामग्री गायब है। कुछ देर बाद एक शिष्य दो सिपाहियों को बुला लाया।

महर्षि से पूछताछ की । उत्तर मिला—"चोरों के हाथ कुछ नहीं लगा। बेचारे हाथ मलते हुए चले गये।"

दिन चढ़ने पर दरोगा तथा डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट आये। महर्षि से उन्होंने कोई सवाल नहीं किया। चुपचाप जाँच करने के बाद चले गये। कुछ दिनों बाद चोर पकड़े गये और सारा सामान वापस मिल गया।

जिस समय चोरों ने महर्षि के पैर पर लाठी का प्रहार किया था, उसी समय एक शिष्य लाठी लेकर चोरों को मारने के लिए आगे बढ़ा था। महर्षि रमण ने कहा—"उन्हें अपना काम करने दो।"

"स्वामी, आप तो घायल हो गये हैं।"

महर्षि ने कहा—''मेरी पूजा हुई है। हम लोग साधु हैं। शास्त्रों में लिखा है—'पाप से घृणा करो, पापियों से नहीं।' वे सब पथभ्रष्ट थे।''

* * *

मदुरा जिले में शहर से ३० मील दूर एक गाँव है जिसका नाम है—तिरुचुजही। पंडित सुन्दरम् अय्यर इस गाँव के ख्यातिप्राप्त वकील थे। आपकी उदारता की ख्याति सूर्य की रश्मियों की तरह चारों ओर फैल गयी थी। आप हमेशा गरीब लोगों की सहायता करते थे। असहाय और निराश्रित लोगों को भोजन-वस्त्र भी देते थे। आपके यहाँ ३० दिसम्बर, सन् १८७६ को एक पुत्र ने जन्म लिया जिसका नाम वेंकट रमण रखा गया।

शुक्ल पक्ष के चन्द्र की तरह बालक बड़ा होता गया और एक दिन गाँव की पाठशाला में पढ़ने गया। यहाँ की शिक्षा सम्पूर्ण करने के बाद वेंकट रमण दिन्दीकुल पढ़ने गये। जब वेंकट रमण १२ साल के थे तभी इनके पिता का देहान्त हो गया। माँ अलगम्माल पर जैसे मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा। वेंकट रमण से दो साल बड़ा नागस्वामी, छह वर्ष छोटा नागस्वामी और आठ साल छोटी बहन अलामेलु थे। इन बच्चों को लेकर माँ कुछ समय तक चिंतित थी, पर इसी बीच वेंकट रमण के चाचा ने मदद की। नागस्वामी और वेंकट रमण उच्च शिक्षा के लिए अपने चाचा सुब्बियार के यहाँ जाकर रहने लगे। चाचा का एक मकान मदुरा में था।

इसमें कोई संदेह नहीं कि वेंकट रमण की स्मरण-शक्ति तीव्र थी। एक बार जिस पुस्तक को वे पढ़ लेते थे, वह उन्हें कंठस्थ हो जाती थी। इसके बावजूद वे अध्ययन की अपेक्षा खेलकूद में अधिक दिलचस्पी लेते थे। कुश्ती लड़ना, कसरत करना उन्हें अच्छा लगता था। शरीर से इतने बलवान थे कि किसी भी सहपाठी की हिम्मत उनसे लड़ने की नहीं होती थी। अगर गलती से कोई उलझ जाता था तो उसकी ऐसी मरम्मत कर देते थे कि फिर कभी वह सिर उठाने का साहस नहीं करता था।

रमण कुशल तैराक भी थे। बरसात के मौसम में जब नदियों में भयंकर बाढ़ आ जाती थी, मल्लाह नदी में नाव ले जाने का साहस नहीं करते थे तब आप उफनती नदी में छलाँग लगाकर उस पार पहुँच जाते थे। इनके साहस और शौर्य को देखकर सभी साथी आपसे भयभीत रहते थे।

ले-देकर इनमें एक अवगुण था। वे बड़ी गहरी नींद सोते थे, जैसे मुर्दे से बाजी लगाकर सोने की आदत पड़ गयी थी। इस बारे में आपने स्वयं लिखा है-''एक बार चाचा तथा परिवार के सभी लोग मंदिर दर्शन करने गये। मैं घर के दरवाजों को बन्द करके सो गया। मंदिर से वापस आने के बाद लोग चीखते-पुकारते रहे। मुझे कुछ पता नहीं चला। अन्त में खिड़की तोड़कर लोग भीतर आये। मुझे घर के लोगों ने खूब मारा। फिर भी मेरी नींद नहीं खुली। दूसरे दिन जब इस घटना के बारे में आपसे चर्चा की गयी तब आपने कहा—''मुझे कुछ पता नहीं।''

रमण की इस कमजोरी का लाभ वे लोग भी उठाते थे जो इनसे बदला लेना चाहते थे। रात गये इन्हें पलंग से उठा लाते और खूब पिटाई करते। इसके बाद यथास्थान इन्हें रख आते थे। सोकर उठने के बाद रमण को रात की घटना का आभास भी नहीं होता था। रमण की इस विशेषता में प्रकृति ने क्या कर रखा था, यह समझना कठिन है। कुछ लोगों का अनुमान है कि बचपन से ही यह लक्षण भाव-समाधि की ओर प्रेरित करने वाला था। इसी आदत के कारण आपमें आध्यात्मिक शक्ति का विकास तेजी से हुआ।

स्कूली पुस्तकों के अलावा रमण का रुझान धार्मिक पुस्तकों की ओर भी था। अचानक एक दिन 'पेरिया पुराणम्' नामक पुस्तक हाथ लगी। इस पुस्तक का प्रभाव रमण के किशोर मन पर व्यापक रूप से पड़ा। सच तो यह है कि इस पुस्तक ने इन्हें एक नयी दिशा दी। इन दिनों के बारे में आपने लिखा है—

''मदुरा छोड़ने के छह सप्ताह पूर्व मेरे जीवन में महान् परिवर्तन आया। यह सब अचानक हो गया। एक दिन मैं अपने चाचा के मकान की पहली मंजिल पर अकेला बैठा था। मेरा स्वास्थ्य बिलकुल ठीक था, लेकिन न जाने क्यों अकस्मात् मृत्यु-भय ने मुझे आक्रांत कर दिया। मुझे लगा जैसे मैं शीघ्र मर जाऊँगा और तब सोचने लगा कि मुझे क्या करना चाहिए। मैंने अपनी इस समस्या के बारे में किसी की भी राय लेने की जरूरत नहीं समझी। मैंने ऐसा अनुभव किया कि इसका समाधान स्वयं मुझे ही ढूँढ़ना चाहिए। मृत्यु-भय ने मुझे तुरन्त ही आत्म-निरीक्षण के लिए प्रेरित किया।

मैं मन ही मन सोचने लगा—'इसका क्या अर्थ है? यह किसकी मृत्यु हो रही है? क्या यह शरीर मरता है?' इसके बाद तुरन्त ही मैंने इस स्थिति में नाटकीयता ला दी। मैंने अपने शरीर के विभिन्न अंगों को पसार दिया और उन्हें इस तरह कड़ा कर दिया जैसे मृत्यु आ गयी हो। साथ ही मैंने अपने साँस रोक ली और अपने होठों को कसकर बंद कर दिया।

फिर अपने आप कहा—'बस, अब शरीर की मृत्यु हो चुकी है। अब इसे श्मशान में ले जाकर जलाया जायगा और इस प्रकार राख में परिणत हो जायगा। लेकिन शरीर मरने से क्या मैं मर गया? क्या यह शरीर ही मैं हूँ? नहीं, यह शरीर तो शांत निश्चेष्ट पड़ा है। लेकिन मैं अपने आपमें हूँ। इसका अर्थ यह हुआ कि मैं इस शरीर में समाया हुआ हूँ। यह शरीर मर जाता है, पर मैं शरीर से भिन्न होने के कारण नहीं मरता। अतः मैं मृत्यु से परे 'आत्मा' हूँ।' इस प्रकार मुझे शरीर और आत्मा के पृथक् अस्तित्व का भान हुआ। मैं मृत्यु-भय से मुक्त हो गया।''

इस घटना के कुछ दिनों बाद वेंकट रमण के यहाँ एक वृद्ध रिश्तेदार आया जो अरुणाचल दर्शन करके लौटा था। बातचीत के सिलसिले में वह अपनी यात्रा के बारे में बतलाने लगा।

'अरुणाचल' का नाम सुनते ही अचानक वेंकट रमण के हृदय में हलचल मच गयी। उन्हें लगा जैसे यह कोई ऐसा स्थान है जो जन्म-जन्मान्तर से परिचित है।

रिश्तेदार अपनी लच्छेदार भाषा में अरुणाचल की भव्यता का वर्णन करते रहे और इधर वेंकट रमण एक अनोखी दुनिया में विचरण करता रहा।

''यह अरुणाचल है कहाँ?''

वृद्ध सज्जन ने चकित होकर कहा—''तुम्हें इतना भी नहीं मालूम ? पता नहीं, क्या पढ़ते-लिखते हो? इतने महान् तीर्थस्थल की जानकारी तुम्हें नहीं है? आश्चर्य है! दक्षिण भारत का यही सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। एक बार देख लोगे तो मन पवित्र हो जायगा।

वेंकट रमण के प्रश्न करने पर वृद्ध सज्जन ने वहाँ का भूगोल बताया। धीरे-धीरे रमण पर अरुणाचल का नशा छाता गया। इस स्थान के बारे में कल्पना करते ही मन में एक अजीब अनुभूति होती। लगता था जैसे यह ज्योतिर्गिरि उसे अपने यहाँ आने के लिए आमंत्रित कर रहा है। जब कभी ऐसे व्यक्ति से मुलाकात होती जो अरुणाचल हो आया हो तो उससे तरह-तरह के प्रश्न पूछते।

अरुणाचल का आकर्षण इतनी तेजी से बढ़ता गया कि अब रमण का मन पढ़ने-लिखने से उचट गया। खेलकूद, मारपीट आदि से अरुचि हो गयी। पहले जब कोई सहपाठी मजाक करता या उलझता तो उसकी तुरन्त मरम्मत करते थे और अब नीलकंठ की तरह सब कुछ पीने लग गये। अपने से बड़ों का सम्मान करने लगे। अपनी सारी वाचालता को छोड़कर एकांतसेवी हो गये।

स्कूली काम पूरा न करने पर एक बार रमण को कोई पाठ तीन बार लिखने का आदेश दिया गया। दो बार लिखने के बाद उन्हें अरुचि हो गयी और वे आँखें बन्द कर न जाने क्या सोचने लगे। रमण की इस मुद्रा को देखकर बड़े भाई नागस्वामी ने कहा—''यहाँ हम पढ़ने आये हैं। साधुओं की तरह ध्यान लगाने का नाटक करने नहीं। अगर पढ़ने-लिखने में मन नहीं लगता तो लोटा-चिमटा लेकर संन्यासी बन जाओ।''

बड़े भाई की फटकार चुभ गयी। मन बहुत उद्विग्न हो उठा। अब उन्होंने निश्चय किया कि कुछ-न-कुछ करना आवश्यक है। घर से भागने का निश्चय करके वे नागस्वामी के पास आकर बोले—''भाई साहब, एक जरूरी काम से स्कूल जा रहा हूँ।''

नागस्वामी ने कहा—''ठीक है, जाओ। जब जा रहे हो तो मेरा एक काम करते आना। बक्से से पाँच रुपये ले लो। मेरी फीस जमा कर देना।''

नागस्वामी को स्वप्न में भी कल्पना नहीं थी कि उनका छोटा भाई घर से भाग रहा है और वे उसके लिए राह खर्च निमित्त रकम दे रहे हैं। इसके पूर्व रमण को यह जानकारी हो गयी थी कि अरुणाचल जाने के लिए तीन रुपये रेल किराया है।

वह दिन था—२६ अगस्त सन् १८९६ ई०। बड़े भाई के नाम उन्होंने एक पत्र लिखा—''मैं परम पिता की खोज में, उसकी आज्ञा से, यहाँ से जा रहा हूँ अतएव मेरे लिए किसी को दुःखी होने की जरूरत नहीं है और न मेरी खोज में कोई रकम खर्च की जाय।''

हस्ताक्षर के स्थान पर केवल डैश लगायी थी यद्यपि पत्र की बातों तथा लिपि से यह स्पष्ट था कि रमण ने लिखा है। पत्र तमिल भाषा में था जो आज भी रमण आश्रम में सुरक्षित है।

पाँच रुपयों में से तीन रुपये जेब के हवाले कर शेष दो रुपये और पत्र टेबुल पर रखने के पश्चात् रमण सीधे स्टेशन आये। दो रुपये तेरह आने टिकट में खर्च हुए। जीवन में कभी सफल करने का अवसर नहीं मिला था। तिरुवन्नामलाई की बजाय तिण्डीवनम् का ही टिकट खरीदा। मार्ग में एक सहयात्री से बातचीत करने पर उन्हें अपनी गलती मालूम हो गयी, पर अब कोई उपाय नहीं था।

वस्तुतः घर से रवाना होने के साथ ही एक अदृश्य शक्ति रमण की सहायता करने लगी थी। त्रिचनापल्ली पहुँचने पर उन्हें जोरों से भूख लगी तो दो पैसे की नाशपातियाँ खरीदीं। उन्हें यह अनुभव हुआ कि एक नाशपाती खाते ही पेट भर गया जबकि घर पर काफी भोजन किया करते थे।

गन्तव्य स्टेशन पर वह रात को उतरा। दूसरे दिन सबेरे पैदल चल पड़ा। काफी दूर आने पर उसे भूख सताने लगी। सामने के एक होटल में जाकर उसने भोजन लाने का आदेश दिया। थोड़ी देर बाद भोजन आया। खाना खाने के बाद उसने मूल्य के रूप में दो आने दिये। होटल का मालिक कान में बाली पहने संन्यासी रूप धारण करने वाले बालक के प्रति न जाने क्यों दयार्द्र हो उठा।

उसने पूछा—"तुम्हारी जेब में कितने पैसे हैं?"

"ढाई आने।"

"तब मुझे भोजन का मूल्य नहीं चाहिए। तुम कहाँ जा रहे हो?"

रमण ने कहा—"तिरुवन्नामलाई मुझे जाना है। मगर रास्ते में कहीं भी इस नाम का नामस्तंभ देखने में नहीं आया। मालबालापट्टू नाम देखा है।"

होटल वाले ने कहा—"मामबालापट्टू तो तिरुवन्नामलाई के रास्ते में है। वहाँ से आगे तिरुवन्नामलाई है।"

पथ-निर्देश पाकर रमण पुनः स्टेशन आया। मामबालापट्टू का टिकट दस पैसे में मिला। दोपहर के वक्त गाड़ी मामबालापट्टू पहुँची। स्टेशन से बाहर निकलने के बाद रमण ने निश्चय किया कि आगे पैदल यात्रा करूँगा। शाम तक १० मील चलने के बाद एक मंदिर में आकर समाधिस्थ हो गया, पर यहाँ रात को ठहरने की जगह नहीं मिली तो किलूर के मंदिर में चला आया। यहाँ एक पुजारी ने अपना भोजन उसे दे दिया। रमण पानी की तलाश में एक घर के सामने आकर खड़ा हुआ। अचानक उसके पैर डगमगाये और वह बेहोश होकर गिर पड़ा।

होश आने पर उसने देखा कि कुछ लोग उसे घेर कर खड़े हैं। वह उठा, गिरे हुए चावलों को खाकर पानी पिया। कुछ दूर आगे जाकर सड़क पर सो गया। दूसरे दिन सबेरे उठने के बाद लोगों से पूछने पर पता चला कि तिरुवन्नामलाई यहाँ से अभी २० मील है।

उन दिनों तमिल ब्राह्मण सोने की रत्नजड़ित बालियाँ कान में पहनते थे। इतनी दूर की यात्रा में वह बुरी तरह थक गया था। उसने सोचा कि कान की बालियाँ बेचने पर जो पैसे मिलेंगे, उनसे आगे की यात्रा करूँगा। उस दिन कृष्ण जन्माष्टमी थी। घर-घर में उत्सव मनाया जा रहा था। चलते-चलते एक घर के सामने खड़े होकर उसने भोजन की माँग की।

अयाचित रूप से एक किशोर को पाकर गृहस्वामिनी ने बड़े प्यार से भोजन कराया। भोजन करने के बाद रमण ने गृहस्वामी से कहा—"मुझे केवल चार रुपयों की जरूरत है। कृपया ये दोनों बालियाँ गिरवी रखकर मुझे दे दीजिए। बाद में आपको रुपये चुकाकर ले जाऊँगा।"

गृहस्वामी ने बालियों को जाँच कर देखा—बीस रुपये का माल था। उसने चार रुपये देते हुए अपना पता लिख कर दे दिया। रुपये लेकर रमण बाहर निकला और कुछ दूर आगे जाकर गृहस्वामी के दिये पते वाले कागज को उसने फेंक दिया, क्योंकि अब यहाँ लौट कर आने की इच्छा नहीं थी।

१ सितम्बर, सन् १८६६ ई० के दिन रमण अरुणाचल पहुँचा। अरुणाचलेश मंदिर में दर्शन करने के बाद वह अय्यानकुलम सरोवर के पास आया तो किसी ने कहा—"मुण्डनम्?" अर्थात् सिर मुड़वाओगे?

वह तुरन्त राजी हो गया। सिर मुड़वाने के बाद सरोवर में स्नान किया। स्नान के पश्चात् उसने देखा कि उसके पास तीन रुपये बचे हैं। उन्हें फेंक दिया। साथ की पोटली में लड्डू थे, उसे भी फेंक दिया। यहाँ तक कि धोती से कोपीन भर का कपड़ा फाड़कर बाकी कपड़ा भी फेंक दिया। कुछ देर के बाद यज्ञोपवीत भी उतारकर फेंक दिया। इस प्रकार पूर्ण रूप से वैराग्य धारण कर लिया। फिर मंदिर में जाकर ध्यानमग्न हो गया।

अरुणाचलेश मंदिर में रमण लगभग छह माह तक था। रमण की साधना और एकाग्रता देखकर पुजारियों में से एक पुजारी कृपा करके उन्हें नित्य भोजन देने लगा था। प्रात: क्रिया, भोजन के अलावा शेष समय वे आत्मसाक्षात्कार में लगाते थे। अपने ध्यान में वे इतने मग्न रहते थे कि मंदिर में कौन आया और कौन गया अथवा क्या हो रहा है, इन सब घटनाओं की ओर ध्यान नहीं देते थे।

इनकी साधना से प्रभावित होकर स्थानीय लोग रमण को 'ब्राह्मण स्वामी' कहने लगे थे। सर्वदा मौन रहने वाले ब्राह्मण स्वामी की देखरेख के लिए भगवान् प्रेरित एक साधु आया जिनका नाम शेषाद्रि स्वामी था। शेषाद्रि स्वामी को स्थानीय बच्चे अक्सर ढेला मारते और तंग करते थे। यह देखकर रमण सहस्र स्तंभ के नीचे स्थित तहखाने के भीतर जाकर ध्यान करने लगे। अंधेरा, सीलन, मच्छरों के अलावा अन्य अनेक जीव थे। कीड़े-मकोड़े रमण स्वामी पर हमला करने लगे। कई जगह जख्म हो गये, पर वे निश्चल रूप में अपनी साधना में लगे रहे। गुफा के भीतर लड़कों का आना-जाना नहीं

होता था। वे बाहर से ढेले फेंककर भाग जाते थे। एक दिन यह दृश्य देखकर एक व्यक्ति भीतर गया और रमण जी को उठाकर बाहर ले आया। उस वक्त वे बेहोश थे। अनेक प्रयत्न करने के बाद वे होश में आये। उन दिनों उनकी विचित्र स्थिति थी। न खाने की चिन्ता और न वस्त्र पहनने की।

इस स्थिति में कोई उन्हें किसी वृक्ष के नीचे बैठा देता, कोई मंदिर के पास और कभी किसी दीवार के समीप। वस्तुत: उन दिनों रमण जी भाव समाधि की स्थिति में रहते थे। उन्हें अपने शरीर की कोई सुध नहीं रहती थी। धीरे-धीरे उनकी हालत चिंताजनक हो गयी। बिना सहारे उनका पैदल चलना कठिन हो गया। लोग उनसे बातचीत करके नाम-गाँव पूछना चाहते थे। हमेशा ध्यानस्थ रहने के कारण उनकी ओर से कोई उत्तर नहीं मिलता था। इसी प्रकार दिन व्यतीत होते गये।

* * *

अरुणाचल पर्वत के समीप वृहद शिव का मंदिर है। शायद इसीलिए यहाँ के शिव का नाम अरुणाचलेश रखा गया। यहाँ साधना करते रहने पर कभी किसी परिचित व्यक्ति से रमण जी की मुलाकात नहीं हुई थी। स्वयं मौनी बाबा बने रहे, इसलिए लोग यह नहीं जान सके कि ब्राह्मण स्वामी कहाँ के निवासी हैं।

घटनाचक्र से किसी परिचित से इनकी माँ को यह जानकारी प्राप्त हो गयी कि उनका बेटा वेंकट रमण अय्यर आजकल अरुणाचलम् में है। वे अपने बड़े पुत्र के साथ यहाँ आयीं और घर वापस चलने के लिए कातर स्वर में निवेदन करने लगीं। लेकिन रमण किसी भी शर्त पर घर जाने को राजी नहीं हुए। माँ के अधिक शोक मनाने पर रमण ने एक कागज पर लिखा—'एक महान्-शक्ति मानव कर्मों का नियमन करती है, अतएव तुम व्यर्थ में दु:खी न हो। मैं यहाँ उस परब्रह्म की कृपा पाने के लिए साधना कर रहा हूँ। मुझे आशीर्वाद दो जिससे मैं अपने पथ पर अग्रसर होता चलूँ।'

बेटे की जिद्द के आगे माँ को झुकना पड़ा, पर रमण के लिए नयी मुसीबत आ गयी। लोग इस बात पर आश्चर्य करने लगे कि जन्मदात्री के स्नेह को ठुकराने वाला संत निस्सन्देह असाधारण है। बातों ही बातों में इसका प्रचार होने लगा। नतीजा यह हुआ कि उनके दर्शन तथा आशीर्वाद पाने वालों की भीड़ बढ़ने लगी। इस नयी मुसीबत के कारण उनकी साधना में विघ्न पड़ने लगा।

आखिर एक दिन वे पुरानी जगह छोड़कर अरुणाचल स्थित एक गुफा में आकर रहने लगे। यह संयोग की बात थी कि इस गुफा में रमण के आने से पूर्व एक संत साधना करते थे। उनकी इच्छा के अनुसार उनके शिष्यों ने संत के परलोकवासी होने के बाद यहाँ उन्हें समाधि दे दी थी।

हमारे यहाँ यह माना जाता है कि समाधि-स्थल का प्रभाव उस स्थान से गुजरने वालों पर भी पड़ता है। प्राचीनकाल से ही ऋषि, मुनि और महात्मा गण पहाड़ की गुफाओं

में साधना करते आये हैं। एक तो एकान्त की दृष्टि से, दूसरे मैदान या जंगल से यहाँ सुरक्षा अधिक होती है।

आमतौर पर यह माना जाता है कि गुरु द्वारा बीज मंत्र पाये बिना साधना अधूरी होती है। इसके विपरीत भारत में ऐसे अनेक संत हो गये हैं जो केवल ब्रह्मचर्य और आत्म संयम के माध्यम से मन पर विजय प्राप्त कर चुके हैं। इस प्रक्रिया में आँख, कान से कम से कम काम लेकर ध्यानस्थ होना पड़ता है। भ्रूयुगल के मध्य नेत्र एकाग्र करने का अभ्यास होने पर मन तथा नेत्र की शक्ति आपस में मिलकर साधक को ज्योति का दर्शन कराती है। कान के भीतर की अन्तर्ध्वनि की जो सूक्ष्म से सूक्ष्म होती है, सुनने लगती है। इस प्रकार मन एकाग्र होकर अन्तर जगत् के दृश्यों को देखने लगता है। साधना के इस स्तर तक पहुँचने के लिए लम्बे समय की आवश्यकता होती है। जब इसकी उपलब्धि हो जाती है तब शरीर में उत्पन्न होने वाली ऊर्जा कुण्डलिनी शक्ति के रूप में जागृत हो जाती है। यही योगी का लक्ष्य होता है। महर्षि रमण इसी कोटि के संत थे।

महर्षि रमण ने अपने एक भक्त से एक बार कहा था—''यदि साधक जप, ध्यान, भक्ति आदि में लगा हो तो थोड़ी मात्रा में क्रिया प्राणायाम भी मन पर विजय प्राप्त करने के लिए पर्याप्त होगा। श्वास रूपी अश्व पर मन रूपी सवार है। प्राणायाम उस घोड़े को नियंत्रित करता है। इस नियंत्रण से सवार पर भी नियंत्रण हो जाता है। श्वास के प्रति सतर्क रहना भी इसका एक प्रकार है। अन्य कार्यों में बेसुध हुआ मन श्वास के प्रति सजग रह सकता है। इससे श्वास संयम होगा। इस प्रकार मन संयत होगा। यदि यह न कर सको तो रेचक, पूरक न किये जायँ। जप, ध्यान आदि में कुछ देर तक श्वास रोक रखा जाय। इसके भी उत्तम परिणाम निकलेंगे।''

* * *

सन् १६०५ में तिरुवन्नामलाई में जोरों से प्लेग फैला। लोग अपना-अपना घर छोड़कर अन्यत्र भाग गये। कस्बे की सड़कों पर जंगली पशु घूमने लगे। महर्षि की गुफा के आसपास बराबर जंगली पशु चक्कर काटने लगे। इसी बीच न जाने कहाँ से एक साधु आया और महर्षि रमण का शिष्य बन गया। वह नित्य देखता कि एक शेर गुफा के पास आता है। महर्षि उसे प्यार से सहलाते और वह उनके हाथों को चाटा करता था। भोर होते ही वह जंगल में चला जाता था।

एक बार एक शेर दहाड़ता हुआ जंगल से निकलकर इनके सामने आया। दोनों की नजरें आपस में टकरायीं। बिना भयभीत हुए महर्षि रमण ने इशारे से उसे एक ओर हट जाने की आज्ञा दी। एक क्षण तक वह महर्षि की ओर देखते हुए पूँछ हिलाता रहा, फिर चुपचाप बगल की झाड़ी में चला गया।

इसी प्रकार एक बार वे अपनी गुफा के पास बैठे थे। ठीक इसी समय आसपास

से एक बड़ा नाग सामने आकर खड़ा हो गया। साक्षात् यमराज की तरह जीभ निकालकर फूत्कारने लगा। इस बार भी महर्षि रमण उसे गौर से देखते रहे। थोड़ी देर बाद नाग धीरे से जमीन पर गिर पड़ा और एक ओर चला गया।

महर्षि रमण की इन दिनों की स्थिति के बारे में श्री सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने लिखा है—''श्री रमण ने संन्यास ले लिया और अवधूत बन गये। 'अवधूत' शब्द के अ, व, धू, त इन चारों अक्षरों का विशेष प्रयोजन है। पहला 'अ' अक्षरत्व या विनाशहीनता का द्योतक है और दूसरा 'व' वरेण्यत्व अथवा परमशुद्धि का। तीसरा अक्षर 'धू' धूत संसार-बंधन अर्थात् सांसारिक बंधनों को तोड़ने का प्रतिनिधित्व करता है और चौथा 'त' तत्वमसि या 'तुम्हीं हो' का मंत्रदाता है। ऐसी अवस्था की प्राप्ति सदा से धार्मिक लोगों का लक्ष्य रहा है। यदि हम अपने को आशा, आकांक्षा, उत्कंठा, भय और क्षणिक प्रलोभन में ही फँसाये रखेंगे तो अपनी आत्मा को खो देंगे।''

महर्षि रमण कभी ईश्वर की चर्चा नहीं करते थे। उनका एकमात्र कथन था कि अपने को पहचानो। 'मैं' क्या हूँ, इस पर चिन्तन करो तब तुम उस विराट् को पहचान सकोगे अन्यथा सब कुछ मछुए की तरह खो दोगे।

भक्तों के प्रश्न करने पर महर्षि ने कहा—''एक मछुआ था। सबेरे से शाम तक नदी में जाल डालकर मछलियाँ पकड़ने का प्रयास करता रहा। किन्तु एक भी मछली जाल में न फँसी। सूर्यास्त के साथ उसके तन-मन पर भी नैराश्य की छाया गहरी होने लगी। भगवान् का नाम लेकर उसने एक बार और जाल डाला। किन्तु मछलियाँ इस बार भी नहीं आयीं। हाँ, एक वजनी पोटली जरूर उसके पाँव में अटकी। डुबकी लगाकर मछुए ने उस पोटली को उठा लिया। टटोला तो बोला— 'हाय' ये भी पत्थर हैं।''

मन मारकर वह नाव पर चढ़ा। ठंढी हवा चल रही थी। प्रकृति के उल्लास ने कुछ ही क्षणों में मछुए के मनस्ताप पर काबू पा लिया। नयी-नयी मोहक आशाएँ मानस पर उतरने लगीं—''कल दूसरे तट पर जाऊँगा। वहाँ इस साल कोई मछुआ नहीं गया है। पूरे सौ रुपये की मछलियाँ पकड़ूँगा। चार-पाँच हजार की मछलियाँ होंगी। इस कल्पना में खोया रहा, पर उसके हाथ सजग थे। पोटली से पत्थर निकालते हुए वह एक-एक कर नदी में फेंकता जा रहा था। थोड़े समय में पोटली खाली हो गयी। एक आखिरी पत्थर शेष रह गया। उसे भी फेंकने जा रहा था कि सहसा उस पर नजर पड़ी—वह नीलम था। उसने अपनी मुट्ठी बन्द कर ली और अपना सिर पीटने लगा।

संसार की आशा-निराशा में विक्षिप्त की तरह उलझे मनुष्य को भी एक दिन यह मनुष्य शरीर खोकर इस तरह पछताना पड़ेगा।''

महर्षि अपनी योग-साधना के अलावा प्राय: अध्ययन करते, प्रात: भ्रमण करते हुए पहाड़ी की छानबीन करते थे। आश्रम बनने के पूर्व जब उन्हें भूख लगती तब वे बस्ती में जाकर भीख माँगने में संकोच नहीं करते थे। किसी भी अपरिचित मकान के

सामने खड़े होकर ताली बजाते। गृहस्वामी के बाहर आने पर इशारे से खाने को माँगते। अगर कोई देता तो उसे खा लेते थे। किसी के घर कभी दोबारा नहीं गये।

एक दिन एक बुढ़िया इनकी उम्र और पहनावा देखकर करुणा से द्रवित हो उठी। उसने बड़े स्नेह से रमण को भोजन कराया और कहा कि अब आज से तुम मेरे यहाँ आकर नित्य भोजन करना। महर्षि रमण भीख में केवल अन्न लेते थे। धन कभी स्पर्श नहीं करते थे। वर्तमान समय में आश्रम में जो कुछ है, वह शिष्यों तथा भक्तों की देन है।

अचम्माल नामक एक युवती महर्षि की एक सेविका थी। जब उसकी उम्र पच्चीस वर्ष की हुई तभी उसके पति और दो वर्ष के भीतर पुत्र-पुत्री की मृत्यु हो गयी। इस आघात से उसका हृदय अशान्त हो उठा। जिसने जहाँ जाने को कहा, सर्वत्र गयी, पर कहीं शान्ति नहीं मिली। उसके परिचितों में से किसी ने सुझाव दिया कि तिरवन्नामलाई में एक तरुण स्वामी हैं। वे पहुँचे हुए संत हैं। उनके पास जाने पर तुम्हें शांति मिलेगी।

वह महर्षि के आश्रम में आयी और बिना कुछ बोले चुपचाप एक ओर खड़ी हो गयी। महर्षि रमण की स्निग्ध दृष्टि उस पर जम गयी। अचम्माल काफी देर तक एक स्थान पर खड़ी रही। जब वहाँ से वह रवाना हुई तब उसके दु:ख का भार काफी हल्का हो चुका था।

इस घटना के बाद वह आश्रम में आने लगी। यहाँ तक कि अपना गाँव छोड़कर तिरुवन्नामलाई में आकर रहने लगी। इसके बाद नित्य अपने हाथ से भोजन बनाकर महर्षि के पास ले जाने लगी।

एक बार उसे प्रत्यक्ष रूप से विशेष अनुभूति हुई। नित्य की तरह भोजन बनाकर जब आश्रम के निकट आयी तो देखा—महर्षि पहाड़ी के नीचे किसी से बातें कर रहे हैं। उसने सोचा कि महर्षि जब ऊपर चलेंगे तो वह भी उनके साथ चलेगी। लेकिन महर्षि बातचीत में व्यस्त रहे।

यह देखकर वह भोजन लेकर ऊपर की ओर रवाना हो गयी। ज्योंही उसने आगे कदम बढ़ाया त्योंही उसने सुना कि महर्षि कह रहे हैं—''दूर क्यों जाती हो, जबकि मैं यहाँ हूँ।''

फिर भी वह भोजन लेकर पहाड़ पर स्थित आश्रम में पहुँच गयी। वहाँ का दृश्य देखकर उसके पैर थरथर कर काँपने लगे। महर्षि अपने आसन पर बैठे एक शास्त्री से वार्तालाप कर रहे हैं। उससे जब इसका कारण पूछा गया तब उसने कहा—''स्वामिन्, अभी मैंने आपको नीचे सद्गुरु स्वामी की कन्दरा के पास किसी से बातें करते देखा। आपने यह भी कहा कि दूर क्यों जाती हो जब मैं यहाँ हूँ। जब पीछे मुड़कर मैंने देखा तो वहाँ कोई नहीं था।''

शास्त्री जी ने कहा—''स्वामिन्, आपकी कृपा इस महिला पर हो गयी, पर मैं अभी तक यह प्रसाद नहीं पा सका।''

महर्षि ने कहा—''अचम्माल को भ्रम हो गया है, क्योंकि यह दिन-रात मेरा ध्यान करती है।''

महर्षि रमण योग-विभूतियों का प्रदर्शन करना पसन्द नहीं करते थे। स्वतः अपने आप जो हो जाय, उसके प्रति खेद प्रकट नहीं करते थे।

परमहंस रामकृष्ण चमत्कारों को 'विष्ठा' कहा करते थे। परमहंस विशुद्धानन्द का कहना था कि इससे योगी की शक्ति नष्ट हो जाती है। महर्षि भी इसी विचारधारा के थे। उन्होंने अपनी साधना के माध्यम से अलौकिक शक्ति प्राप्त कर ली थी। एक दिन के संस्मरण के बारे में आपने कहा था—''कुछ वर्ष पहले की घटना है। एक दिन मैं नीचे लेटा हुआ था। मैंने स्पष्ट रूप से यह अनुभव किया कि मेरा शरीर ऊपर उठ रहा है। मैं प्रत्यक्ष रूप से देख रहा था कि नीचे के सारे दृश्य छोटे होते जा रहे हैं और धीरे-धीरे लुप्त हो रहे हैं। मेरे चारों ओर अपूर्व प्रकाश फैलता जा रहा है। कुछ देर बाद मुझे ऐसा लगा जैसे मेरा शरीर धीरे-धीरे नीचे उतर रहा है और नीचे का लुप्त दृश्य नये सिरे से प्रकट हो रहा है। इस घटना के कारण मुझे यह समझते देर नहीं लगी कि योगीगण इन्हीं साधनों से आकाश में उड़ते हैं, दूर-दूर की यात्राएँ करते हैं और रहस्यमय ढंग से प्रकट और लुप्त हो जाते हैं। जब मेरा शरीर इस प्रकार भूमि पर उतरा तो मुझे लगा मैं अब तक तिरुवोथियुर में था। जबकि मैंने इस स्थान को पहले कभी नहीं देखा था। बाद में मैंने अपने को सड़क पर पाया और उस पर चलने लगा। कुछ दूर आगे गणपति मंदिर दिखाई दिया और तब मैं उसके भीतर चला गया।''

वहाँ आया हुआ अंग्रेज एक बार जंगल में भटक गया। उसने मन ही मन महर्षि का स्मरण किया और वे प्रकट हुए। उन्होंने उक्त वृद्ध अंग्रेज को आश्रम का रास्ता बताया। आश्रम लौटने पर जब लोगों ने उससे देर होने का कारण पूछा तो उसने सारी घटना कह सुनायी। उसकी कहानी सुनकर लोग चकित रह गये, क्योंकि महर्षि क्षण भर के लिए कक्ष से कहीं बाहर नहीं गये थे।

इसी प्रकार एक घटना श्री रुद्रराज पाण्डे के साथ हुई थी। वे तिरुवन्नामलाई में अरुणाचलेश मंदिर दर्शन करने गये। शिवलिंग पर नजर उठते ही उन्होंने देखा कि वहाँ महर्षि रमण बैठे हैं। उन्हें आश्चर्य हुआ। आँखें मींजने के बाद अब जो दृश्य देखा, उसे देखकर वे और भी विस्मित हुए। अब जिधर उनकी दृष्टि जाती, उधर ही महर्षि रमण दिखाई देने लगे। एक-दो नहीं, बल्कि सहस्रों महर्षि उनकी नजरों के सामने थे।

गणपति शास्त्री तत्कालीन भारत के प्रकाण्ड पंडित थे। एक बार वे अरुणाचलेश मंदिर दर्शन के लिए आये तो पता चला कि यहाँ एक बाल-योगी साधना कर रहा है जो अद्‌भुत प्रतिभावान है। उत्सुकतावश वे महर्षि रमण के पास आये।

शास्त्रीजी असाधारण विद्वान् थे। उनके बारे में कहा जाता है कि बारह वर्षों तक वे बराबर धर्म-शास्त्रों का अध्ययन करते रहे। सिद्धि प्राप्त करने के लिए कुछ दिनों

तक तपस्या कर चुके थे। इतना होने पर भी वे अतृप्त थे। उन्हें अपनी शंकाओं के उत्तर किसी से प्राप्त नहीं हुए थे।

महर्षि के पास आकर उन्होंने अपनी शंका प्रकट की। उनकी प्रत्येक शंका का समाधान महर्षि ने कुशलतापूर्वक किया। महर्षि की इस दैवी प्रतिभा से प्रभावित होकर गणपति शास्त्री ने उनके चरण-स्पर्श कर प्रणाम करते हुए कहा—''स्वामिन्, मुझे अपना शिष्य बना लीजिए।''

महर्षि मुस्कराये। गणपति जितने बड़े विद्वान् थे, उतनी बड़ी उनकी शिष्य मण्डली भी थी। शास्त्री जी के शिष्यों के कारण महर्षि की ख्याति चारों ओर फैल गयी। स्थानीय नागरिक रमण को 'भगवान्' कहते थे, पर अब वे गणपति जी के कारण विद्वत्जनों में 'महर्षि' कहलाने लगे।

इसी बीच अपने पुत्र से मिलने के लिए अलगम्माल अरुणाचल आयी। यहाँ अपने पुत्र की मान-प्रतिष्ठा देखकर वह आनन्द से विभोर हो उठी। पति की मृत्यु काफी पहले हो गयी थी। इसी बीच बड़े पुत्र तथा परिवार के कई सदस्यों का निधन हो गया था। एक प्रकार से अलगम्माल असहाय हो गयी थी। माँ ने पुत्र से कहा—''अब मैं तेरे पास रहते हुए शेष जीवन व्यतीत करना चाहती हूँ।''

महर्षि ने माँ के अनुरोध को स्वीकार कर लिया। आश्रम में रहते हुए अलगम्माल ने रसोईघर की सारी जिम्मेदारी सम्हाल ली। इस प्रकार वे आश्रमवासियों की सेवा करती रहीं। पुत्र की साधना तथा ज्ञान से प्रभावित होकर उन्होंने महर्षि से दीक्षा ले ली। आश्रम में वे छह वर्ष तक रहने के बाद परलोक सिधार गयीं। महर्षि के भक्तों ने वहीं उनकी समाधि बना दी। वहाँ अब दिन-रात दीपक जलते हैं।

महर्षि को घूमने की आदत थी। एक दिन वे पहाड़ की ढलान पर टहल रहे थे। अचानक एक पीपल का पत्ता उड़कर उनके सामने गिरा। उस पत्ते को देखकर महर्षि चकित रह गये। वह पत्ता इतना बड़ा था कि उस पर एक आदमी को भोजन परोसा जा सकता था। आम तौर पर पीपल का पत्ता इतना बड़ा नहीं होता। वे झरने के किनारे-किनारे आगे बढ़ने लगे। उन्होंने अनुमान लगाया कि आसपास कहीं पीपल का वृक्ष होगा जहाँ से यह उड़कर आया है।

कुछ दूर आगे बढ़ने पर पीपल का वह वृक्ष दिखाई दिया। कुतूहलवश वे और आगे बढ़े। शायद अनजाने में ततैया के छत्ते पर पैर पड़ गया। क्रोध में सभी ततैयों ने हमला बोल दिया। महर्षि ने सोचा—मैं आगे न बढ़ूँ, इसलिए यह सजा मिल रही है। वे शान्त भाव से ततैयों के दंशनों की पीड़ा सहन करते रहे। बाद में आश्रम वापस आ गये। महर्षि की फूली हुई टाँगों को देखकर सभी भयभीत हो उठे।

महर्षि ने उन्हें बताया कि कैसे यह दुर्घटना घटी। कुछ लोग उत्सुकतावश वहाँ जाने को प्रस्तुत हुए। महर्षि ने उन्हें मना कर दिया।

एक दिन एक ऐसी घटना हुई जिसके कारण महर्षि का टहलना बन्द हो गया।

नित्य की भाँति वे टहलते हुए एक वृद्ध महिला के पास से गुजरे। वह शायद लकड़हारिन थी। अपनी भाषा में कहने लगी—''अरे नासपीटे, तेरा सत्यानाश हो। क्या तू एक जगह चुपचाप बैठा नहीं रह सकता। बेकार घूमता क्यों है?''

महर्षि चुपचाप आश्रम लौट आये। बाद में उन्होंने सोचा—लकड़हारिन के रूप में यह कोई असाधारण महिला थी। कोई भी अछूत औरत इस तरह बेहूदा बातें मुझे नहीं कह सकती। इस घटना के बाद से उनका टहलना बन्द हो गया।

महर्षि रमण के जीवन में भी कभी-कभी चमत्कारपूर्ण घटनाएँ हुई हैं। एक बार आप अपने भक्तों के साथ पहाड़ के नीचे सैर कर रहे थे। अचानक आपको भूख और प्यास सताने लगी। यहाँ खाने लायक कोई सामग्री नहीं थी। एकाएक बन्दरों का झुँड आया और पास के अंजीर के पेड़ पर चढ़कर उसे खूब हिलाने लगा। आसपास का क्षेत्र अंजीरों से भर गया। आश्चर्य की बात यह हुई कि किसी बन्दर ने एक भी अंजीर को छुआ तक नहीं।

बन्दरों के बारे में आपका एक और संस्मरण भी काफी रोचक है—''साधारणतः बन्दर पालतू बन्दर का बहिष्कार कर देते हैं, परन्तु इस सम्बन्ध में मैं अपवाद था। जब कभी बन्दरों में कोई गलतफहमी पैदा हो जाती या लड़ाई होती तब वे मेरे पास आते और मैं उन्हें शान्त कर देता था। इस तरह उनकी लड़ाई बन्द हो जाती। एक बार एक बन्दर को उसकी टोली के किसी बन्दर ने काट लिया। वह घायल होकर आश्रम के पास पड़ा रहा। उसे आश्रम में लाकर उसकी सेवा की गयी। वह लँगड़ाकर चलता था, इसलिए उसका नाम 'लंगड़दीन' रखा गया। चार-पाँच दिन बाद उसके साथी उसे देखने आये और अपने साथ ले गये। आश्रम का बचा हुआ भोजन बाहर रख दिया जाता था जिसे बन्दर खाते थे, पर लंगड़दीन सीधे मेरी गोद में आ जाता और पत्तल उठाकर खाता था। आश्चर्य की बात यह है कि खाते समय एक भी चावल गिरता नहीं था। असावधानी के कारण अगर गिर जाता तो उसे उठाकर खा लेता था।''

आम तौर पर महर्षि रमण शांत रहते थे। वे यह नहीं चाहते थे कि उन्हें औरों से विशिष्ट समझा जाय। खाद्य पदार्थों में अगर कभी कोई सामग्री स्वादिष्ट बनती और उन्हें अधिक परोस दी जाती तो वे नाराज हो जाते थे। शिष्टाचार का उन्हें बराबर ध्यान रहता था। जिस प्रकार ज्योतिर्गिरि अरुणाचल चारों ओर घिरी रहने वाली पर्वतावली से दूर अकेले खड़ा है, उसी प्रकार महर्षि भी अपने चारों ओर श्रद्धालु शिष्यों तथा भक्तों से घिरे रहने पर भी दूर किसी रहस्यमय जगत् में रहते थे।

* * *

पाल ब्रण्टन की तरह एफ० एच० हम्फ्रीज नामक एक अंग्रेज भारत आने के पूर्व यहाँ के संतों की योग विभूतियों से परिचित था। भारत में जब वह आया तब उसकी उम्र २१ वर्ष थी। उसे वैल्लोर में पुलिस अफसर के पद पर कार्य करने के लिए नियुक्त

किया गया था। अंगरेजों में एक विशेषता यह होती थी कि वे जिस क्षेत्र में नियुक्त होते थे, वहाँ की भाषा समझने का प्रयत्न करते थे। तेलुगू भाषा सीखने के लिए उसने नरसिंहैय्या नामक एक अध्यापक को नियुक्त किया।

बातचीत के सिलसिले में एक दिन उसने अपने अध्यापक से पूछा—"क्या आप किसी महात्मा को जानते हैं?"

नरसिंहैय्या ने नकारात्मक उत्तर दिया। दूसरे दिन जब वे पढ़ाने आये तब हम्फ्रीज ने पूछा—"कल आपने बताया कि आप किसी महात्मा को नहीं जानते। आज सबेरे मैंने इसी जगह आपके गुरु को देखा। उन्होंने मुझे कुछ कहा जिसे मैं समझ नहीं सका।"

नरसिंहैय्या को लगा कि हम्फ्रीज धूर्तता से काम ले रहा है। वे चुपचाप उसकी ओर देखते रहे।

हम्फ्रीज ने आगे कहा—"बम्बई से जब मैं वैल्लोर के लिए रवाना हो रहा था तब तुम्हीं वह पहले व्यक्ति थे जिनसे मैं मिला था।"

नरसिंहैय्या ने कहा—"यह झूठ है। मैंने आज तक बम्बई में पैर नहीं रखा।"

हम्फ्रीज ने नरसिंहैय्या की आपत्ति की परवाह किये बिना कहा—"जब मैं जहाज से बम्बई उतरा तब तेज बुखार था। मुझे अस्पताल ले जाया गया। उस पीड़ा के वक्त मेरे दिमाग में वैल्लोर का ध्यान था। अगर मैं बीमार न पड़ता तो सीधे वैल्लोर भेज दिया जाता। दरअसल मैं सूक्ष्म शरीर से वैल्लोर पहुँचा था।"

नरसिंहैय्या ने सोचा—शायद इसने स्वप्न देखा होगा। उसने कुछ फोटो मेज पर रखे। उन फोटो में से गणपति शास्त्री का फोटो निकालकर हम्फ्रीज ने कहा—"ये हैं आपके गुरु।"

अब नरसिंहैय्या को विश्वास हो गया कि हम्फ्रीज ने अब तक जो कुछ कहा है, वह सब सही है। उन्होंने स्वीकार किया कि गणपति शास्त्री मेरे गुरु हैं।

इस घटना के कुछ दिनों बाद हम्फ्रीज ने उटकमण्ड से लौटने पर पुनः नरसिंहैय्या को आश्चर्य में डाल दिया। उन्होंने अरुणाचल पर्वत, नदी और रमणाश्रम का चित्र खींचा। आश्रम के बाहर एक महर्षि खड़े हैं। इसका चित्र बनाया।

इस बार नरसिंहैय्या को स्वीकार करना पड़ा कि यह भगवान् रमण के आश्रम का चित्र है। यही नहीं, उन्होंने गुरु के बारे में भी बताया।

इस घटना के बाद हम्फ्रीज महर्षि रमण के आश्रम में गये और लम्बी बातचीत की। वहाँ उन्होंने भोजन भी किया।

महर्षि रमण न केवल भोजन का ही बल्कि हर प्रकार के शिष्टाचार का ध्यान रखते थे। एक बार उनका दर्शन करने के लिए योरोप से कुछ लोग आये। इस दल में एक महिला भी थी। उसे पालथी मारकर बैठने की आदत नहीं थी। वह कक्ष में पैर फैलाकर बैठी हुई थी। यह दृश्य देखकर एक सेवक ने पालथी मार कर बैठने का आदेश दिया। बेचारी महिला ने तुरन्त पैर सिकोड़ लिए।

यह दृश्य महर्षि की निगाहों से छिपा नहीं रहा। गठिया-रोग से पीड़ित होने के कारण महर्षि अपने पैर फैलाये हुए थे। महिला को पैर सिकोड़ते देख वे भी पालथी मारकर बैठ गये। उन्हें कष्ट होने लगा।

भक्तों ने अनुरोध किया कि भगवान् पैर फैलाकर बैठें। महर्षि ने कहा— "आश्रम का जब यह नियम है तो अन्य व्यक्तियों की तरह मुझे भी पालथी मारकर बैठना चाहिए। अगर पैर फैलाकर बैठना अनादर करना है तो मेरे पैर फैलाने से सभा-भवन के सभी लोगों का अनादार करना है।"

आखिर उस सेवक को महिला के निकट जाकर क्षमा माँगते हुए कहना पड़ा कि आप पैर फैलाकर बैठ सकती हैं।

इसी प्रकार भोजन के मामले में भी महर्षि सतर्क दृष्टि रखते थे। भोजन के बाद सभी लोगों को काफी नहीं दे जाती थी। कुछ लोगों को पानी दिया जाता था। महर्षि ने भी पानी की माँग की। जब वे पानी पी चुके तब उनके लिए नियमानुसार काफी आयी। उन्होंने उसे पीने से इनकार कर दिया। आश्रम में भोजन सम्बन्धी नियम बनाये गये थे, जिनका पालन कड़ाई से होता था। महर्षि कभी इसमें व्यतिक्रम देखते तब प्रश्न करते। सबसे पहले आश्रम में कुत्तों, मोरों और गायों को भोजन दिया जाता था। इसके बाद भिखारियों को, सबके अन्त में भक्त और आश्रम के लोग प्रसाद पाते थे।

* * *

श्री सुन्दरेश अय्यर नामक एक सज्जन महर्षि के भक्त थे। अचानक उनकी बदली किसी अन्य शहर में हो गयी। वे चिंतित हो उठे। तुरन्त महर्षि के पास आकर रोने लगे।

बोले—"पिछले चालीस वर्षों से मैं भगवान् (महर्षि रमण) के साथ हूँ और अब दूर जाना पड़ेगा। मैं भगवान् के बिना कैसे रहूँगा?"

महर्षि ने उपस्थित भक्तों की ओर देखते हुए कहा—"यहाँ एक ऐसे भक्त हैं जो चालीस वर्षों से भगवान् का उपदेश सुन रहे हैं और अब कह रहे हैं कि भगवान् से दूर जा रहे हैं।"

महर्षि की कृपा से उनका तबादला रुक गया।

महर्षि के पास एक दिन एक ऐसा व्यक्ति आया जो पीड़ा से कराह रहा था। वह यही कामना लेकर आया था कि भगवान् उसके दर्द को दूर कर दें। सभा-कक्ष में वह एक ओर बैठा चिल्लाने लगा। महर्षि एक टक उसकी ओर देखने लगे। थोड़ी देर बाद उसका कराहना बन्द हो गया। दर्द गायब होने के बाद वह उठा और महर्षि को साष्टांग प्रणाम कर चला गया।

महर्षि के भक्तों में राजगोपाल अय्यर एक सज्जन थे। इनके पुत्र का नाम रमण था। नित्य राजगोपाल जी उसे अपने साथ लेकर शाम को महर्षि का दर्शन करने आते

थे। तीन वर्ष का वह बालक बहुत चंचल और हँसमुख था। महर्षि के समीप आते ही उन्हें दण्डवत् करता था।

एक दिन दर्शन करके जब लोग घर लौट रहे थे तब इस बालक को साँप ने काट लिया। देखते ही देखते लड़के का सारा शरीर नीला हो गया। डॉक्टर के पास जाने के बदले अय्यर जी उसे उठाकर महर्षि के पास ले आये। साथ के लोगों ने विवरण सुनाया।

महर्षि ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—"रमण, तुम बिलकुल ठीक हो। उठो।"

महर्षि के स्पर्श से बालक पूर्ण स्वस्थ हो गया।

* * *

श्री के० आर नम्बियार महर्षि के भक्त थे। बात यह हुई कि सन् १९३३ ई० के दिनों अपने एक मित्र की जबानी महर्षि की अलौकिक शक्ति का परिचय पाकर वे प्रभावित हुए। समय निकालकर एक दिन वे तिरुवन्नमलाई पहुँचे और सीधे आश्रम में महर्षि के निकट पहुँच गये। साष्टांग प्रणाम करने के बाद वे एक ओर चुपचाप बैठ गये। आगे की कहानी उनकी जबानी सुनिये—

"लगभग एक घंटा वहाँ बैठा रहा। यद्यपि इस बीच हम दोनों में एक भी शब्द का आदान-प्रदान नहीं हुआ तथापि एक अवर्णनीय शांति मेरे रोम-रोम में भर गयी। जब मैं महर्षि से विदा लेकर वापस आने लगा तब ऐसा लगा जैसे मेरा हृदय उस दिव्य पुरुष की ओर अनायास खिंचा जा रहा है और चलने का प्रयास करने पर भी मेरे पाँव आगे नहीं बढ़ रहे हैं। मेरे हृदय की उस समय की दशा कालिदास के इन शब्दों में सही रूप में व्यक्त होती है—

या स्यति पुरश्शरीरम् धावति हश्चादसंस्तुतः चेतः ।
चीनांशुकमिव केतोः प्रतिवातं नोयमानस्य ॥

इसके बाद जब कभी अवसर मिला, आश्रम चला जाता था। मेरे लिए एक कठिनाई यह थी कि अपनी नौकरी के कारण मैं तिरुवन्नामलाई में अधिक समय तक रुक नहीं पाता था। मन ही मन भगवान् से प्रार्थना करता कि वे कुछ ऐसी व्यवस्था कर दें ताकि महर्षि का सान्निध्य मुझे प्राप्त हो।

आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि मेरी प्रार्थना सुनी गयी और मैं उत्तरी अर्काट जिले का इंजीनियर बना दिया गया। अब मेरा सदर मुकाम तिरुवन्नामलाई हो गया। मैं प्रतिदिन आश्रम जाने लगा। महर्षि में मेरा विश्वास तेजी से दृढ़ होता गया।

हर सप्ताह एकाध घटना ऐसी हो जाती थी जिससे मुझे यह ज्ञात हो जाता था कि भगवान् (महर्षि) का वरदहस्त प्रत्येक भक्त पर रहता है।

एक दिन मैं अपनी शंका-समाधान के लिए कुछ सोचकर महर्षि के पास गया, पर संध्या-पूजन आदि के समय मैं अपना प्रश्न प्रस्तुत नहीं कर सका। इसी ऊहापोह

में घर चला आया। दूसरे दिन भोर के समय अर्द्ध निद्रा में देखा कि मेरे सामने महर्षि खड़े हैं और मेरे प्रश्न का उत्तर दे रहे हैं। यह वही प्रश्न थे जिसे पूछने के लिए मैं कल शाम को गया था। उन्होंने मुझसे एक नोट बुक की माँग की और फिर अंतर्धान हो गये।

इस स्वप्न का मेरे मानस पर व्यापक प्रभाव पड़ा। प्रातः क्रिया से निवृत्त होकर बाजार से एक नोट बुक खरीदने के पश्चात् आश्रम में आया। आश्रम में आते ही मैंने नोट बुक महर्षि की ओर बढ़ाया।

उन्होंने मुस्कराते हुए कहा—''यह नोट बुक क्यों दे रहे हो?''

मैंने भोर के स्वप्न की सारी कहानी सुना दीं। मेरी बातें सुनने के बाद महर्षि ने आश्रम के माधव स्वामी को बुलाकर कहा—''श्री रमण गीता का संस्कृत से मलयालम में अनुवाद करने के लिए मैंने कल तुमसे एक नोट बुक माँगा था। तुम तो लाये नहीं। किन्तु देखो, नम्बियार ले आया।''

इस घटना का प्रभाव उपस्थित महर्षि के भक्तों पर पड़ा जो कुतूहल से मेरी ओर देख रहे थे।

एक और घटना की याद आ रही है। आश्रम में श्रीधर नामक गोवा का एक साधक था। एक दिन स्वप्न में मैंने उसे पद्मासन की स्थिति में प्राणायाम करते देखा। उसके शरीर में प्रकाश की लहर नीचे से ऊपर की ओर उठ रही थी। भगवान् ने जो उस समय पास ही खड़े थे, यह देखकर कहा—''साँस रोकने की इस कलाबाजी से कोई लाभ नहीं। मैंने जो आत्म-चिंतन का मार्ग बतलाया था, वह कहीं सरल और उपयुक्त है।''

दूसरे दिन जब मैं आश्रम में गया तो जान-पहचान न होते हुए भी मैंने श्रीधर को सारा स्वप्न सुनाया। उसने मुझे गले लगा लिया और अत्यन्त आनन्दित होकर बोला—''भाई, मैं सचमुच भगवान् से यही पूछने को सोच रहा था। जिस प्राणायाम को मैं कई वर्षों से करता आ रहा हूँ, उसे जारी रखूँ या छोड़ दूँ? मुझे तो प्रश्न पूछने का अवसर ही नहीं मिला। किन्तु भगवान् ने स्वयं तुम्हारे द्वारा उत्तर पहुँचा दिया।''

महर्षि रमण के, अपने भक्तों को ज्ञान देने के इसी तरह के रहस्यमय तरीके थे। भक्त उन्हें हमेशा अपने पास देखते थे। चाहे वे आश्रम में हों या कहीं और। संसार में ऐसे अनेक भक्त हैं जिन्होंने विचारों में ही उनसे साक्षात्कार किया, उनकी निकटता अनुभव की तथा उनसे वरदान प्राप्त किया।

सन् १९४५ ई० के दिनों मैं इंग्लैण्ड में था। वहाँ ८० वर्षीया एक वृद्धा श्रीमती विक्टोरिया डो से मिलने गया। वह १७ मार्टिस एवेन्यू में अपनी बेटी के साथ रहती थी। उसने कभी महर्षि के दर्शन नहीं किये थे, फिर भी उसके हृदय में महर्षि के लिए जो अगाध भक्ति थी, उसे देखकर मैं चकित रह गया।

उसने मुझे बताया कि उसके हृदय में भारत जाकर महर्षि के दर्शन करने की कितनी तीव्र इच्छा थी, किन्तु परिस्थितिवश वहाँ नहीं जा सकती। उसकी यह भी इच्छा

थी कि कम-से-कम एक ऐसे आदमी से उसकी मुलाकात हो जाय जिसने महर्षि को अपनी आँखों से देखा हो और जो उनके निकट रहा हो। उसने आश्रम से आये अनेक पत्रों का संकलन सावधानी से कर रखा था। रमणाश्रम से प्रकाशित सभी साहित्य उसके पास था। उन पुस्तकों के पृष्ठ उलटती हुई वह बोली—''मिस्टर नम्बियार, तुम कितने सौभाग्यशाली हो कि तुम्हें भगवान् के पास रहने और उनके मुँह से उपदेश सुनने का अवसर मिला है। यहाँ मैं उनके पत्रों और पुस्तकों का संकलन-मात्र कर पाती हूँ। ये मुझे उन्हीं की प्रतीक लगती हैं। इन्हें पढ़ते समय मुझे ऐसा लगता है जैसे वे मेरे पास हैं।''

महर्षि की एक और उपासिका श्रीमती एलिनर पालिन नोये से मेरी मुलाकात अमेरिका में हुई। श्रीमती नोये एक बार भारत आयी थीं और कुछ महीने आश्रम में रह चुकी हैं। मैं उनसे मिलने के लिए वाननुई गया।

मुझे देखते ही उनकी आँखों से आँसू निकलने लगे। बेचारी अभिवादन के शब्द नहीं बोल सकीं। उनसे घंटों भगवान् के बारे में बातें करते रहे। विदा लेने के पहले हमने आँखें बन्द कर भगवान् रमण का ध्यान भी किया, जिनका भौतिक शरीर हमसे हजारों मील दूर था। पर उन कुछ क्षणों में हमें अपार शांति मिली।

भगवान् रमण ने देश-काल-निरपेक्ष पूर्ण ब्रह्म से साक्षात्कार कर लिया था, इसलिए सम्भवतः वे ऐसी चमत्कारिक घटनाओं को महत्व नहीं देते थे। जीवन रूपी स्वप्न और जीवन के सपने दोनों उनके लिए समान मूल्य रखते थे।

एक दिन मैंने महर्षि से प्रश्न किया—''ऋषिगण तो मानवता की रक्षा के लिए जीवन-धारण करते ही हैं, पर आजकल लोग भौतिकता में इतने डूबे हैं कि वे उन बातों पर विश्वास नहीं करते जिन्हें हम भौतिक इन्द्रियों से अनुभव न कर सकें। इन नास्तिकों को सिद्धियों के चमत्कार दिखाकर ही आध्यात्मिकता की ओर क्यों न मोड़ा जाय? आखिर ईसामसीह के चमत्कारों पर ही तो ईसाई धर्म की भी बुनियाद खड़ी है।''

महर्षि गम्भीर हो गये। मेरे प्रश्नों का उत्तर न देकर उन्होंने मुझसे पूछा—''क्या तुम ऐसा समझते हो कि प्राचीन सिद्ध ऋषि-मुनि अपने जानते में चमत्कार दिखाते थे?''

इस जवाब से मेरी आँखों के सामने सत्य प्रकाशित हो उठा।

* * *

श्री गणपति शास्त्री महर्षि का शिष्य बनने के बाद निरंतर उनकी कृपा प्राप्त करते रहे। एक बार जब वे गणपति के मंदिर में ध्यान कर रहे थे तब उनके मन में भगवान् का सान्निध्य प्राप्त करने की इच्छा प्रबल हो उठी।

ठीक उसी समय महर्षि ने मंदिर में प्रवेश किया। गणपति शास्त्री ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। ज्यों ही वे जमीन से उठे त्यों ही अपने मस्तक पर महर्षि के हाथ का

स्पर्श अनुभव किया। इस स्पर्श से उनके समस्त शरीर में अजस्र शक्ति की धारा प्रवाहित होने लगी। इस प्रकार उन्होंने गुरु से स्पर्श के माध्यम से अनुकम्पा का प्रसाद प्राप्त किया।[1]

इसी प्रकार श्री पाल ब्रण्टन ने महर्षि से कृपा प्रसाद प्राप्त किया था। वह भारत से वापस जा रहा था, पर एक पत्र के पाते ही, जैसे चुम्बक लोहे को खींचता है, ठीक उसी प्रकार महर्षि रमण का आकर्षण उसे पुनः अरुणाचल खींच लाया। यहाँ वह एक अर्से तक निवास करता रहा।

बीच-बीच में अपनी शंकाओं का समाधान करता रहा। उसने कई संतों और योगियों से मुलाकात की और उनकी भविष्यवाणियों का सही विवरण भी दिया। एक दिन उसने पूछा—"योगी लोगों का कहना है कि सत्य की खोज के लिए संसार त्याग करके निर्जन वन और पर्वतों का आश्रय लेना पड़ता है। क्या आप योगियों के इस मत से सहमत हैं।"

महर्षि रमण—"कर्म-संन्यास की आवश्यकता नहीं है। यदि तुम नित्य एक-दो घण्टे तक ध्यान करोगे तो सांसारिक कर्त्तव्यों का त्याग करने की जरूरत नहीं होगी। यदि तुम ठीक मार्ग पर ध्यान करोगे तो उससे एक प्रकार की विचारधारा उत्पन्न होगी। फिर तुम कोई भी काम करते रहो, वह धारा तुम्हारे तन-मन में बहती रहेगी। ध्यान में तुम जिस मार्ग का अनुसरण करोगे, वह तुम्हारे कार्य-कलाप में भी प्रकट करेगा ही।"

पाल ब्रण्टन—"उस मार्ग का अनुसरण करने से क्या फल मिलेगा?"

महर्षि रमण—"मार्ग पर आरूढ़ होकर जैसे-जैसे तुम उन्नति करने लगोगे, वैसे-वैसे लोगों के प्रति और अन्य घटनाओं तथा वस्तुओं के प्रति जो तुम्हारा दृष्टिकोण है, उसमें क्रमशः भारी परिवर्तन नजर आने लगेगा। तुम्हारे कार्यकलाप आप ही आप तुम्हारे ध्यान मार्ग का अनुसरण करने को उन्मुख हो जायेंगे। इस संसार में साधक को अपने निजी स्वार्थ का समर्पण कर डालना होगा। अपने झूठे अहं को छोड़ देना ही संन्यास है।"

पाल ब्रण्टन—"गोया आप योग-मार्ग का उपदेश नहीं देते?"

महर्षि रमण—"जैसे ग्वाला हाथ में लकड़ी लेकर बैल को गन्तव्य स्थल की ओर ले जाता है, योगी भी उसी तरह अपने गन्तव्य स्थल की ओर ले चलता है। लेकिन इस मार्ग में जिज्ञासु हाथ में घास-फूस लिए बैल को ललचाते हुए गन्तव्य स्थल तक पहुँचा देता है।"

पाल ब्रण्टन—"ऐसा कैसे किया जा सकता है?"

महर्षि रमण—"तुम्हें अपने से प्रश्न करना होगा कि मैं कौन हूँ? इसी खोज का अनुसरण करने से तुम्हें अपने अन्दर ही एक ऐसी चीज दिखाई देगी जो मन के भी परे है। जब महान् समस्याओं को सुलझा लोगे तो उसी से अन्य सभी समस्याएँ सुलझ जायेंगी। आज का मानव शाश्वत आनन्द पाना चाहता है जिसमें दुःख की छाया

---

[1] महर्षि रमण, श्री आर्थर आसबोर्न।

न हो। उनकी यह वासना एकदम सच्ची और सही है। अब सोचो, क्या यह सही नहीं है कि ये सभी लोग अपने आपको सबसे अधिक प्यार करते हैं? क्या यह सही नहीं है कि ये लोग किसी न किसी जरिये आनन्द पाना चाहते हैं? चाहे शराब पीकर, खेलकूद या मनोरंजन के जरिये या धार्मिक बनकर? अगर इन दोनों बातों का एक साथ ध्यान करके देखोगे तो मानव के असली स्वरूप का तुम्हें मूलमंत्र मिल जायगा।''

पाल ब्रण्टन ने संकोच के साथ पूछा—''आपकी बात समझ में नहीं आयी।''

महर्षि रमण—''मानव की सहज स्थिति, सहज प्रकृति आनन्द भोगी है। आत्मा का यह सहज रूप है। आनन्द के लिए मानव की जो खोज है, वह वास्तव में एक अव्यक्त, एक अज्ञात आत्म अन्वेषण ही है। सद् आत्मा अविनाशी है, अव्यय है, अमर है। जब मानव उसे पहचान पाता है तब वह एक अव्यय, नित्य भागी बन जाता है, अमर हो जाता है।''

पाल ब्रण्टन—''क्या सभी मानव? इनमें अधिकांश बदमाश, लुच्चे लफंगे भी तो हैं।''

महर्षि रमण—''हाँ। वे भी अपने हर पाप में अपनी आत्मा का ही सच्चा आनन्द पाने की चेष्टा करते हैं। आनन्द पाने की वह चेष्टा मानव के लिए स्वाभाविक है। लेकिन वे यह नहीं जानते कि वे अपनी सद् आत्मा की ही वास्तव में खोज कर रहे हैं, इसलिए पहले पहल उसे आनन्द का साधन मानकर कुमार्ग पर चल पड़ते हैं। निःसन्देह वे बुरे मार्ग ही हैं, क्योंकि मानव कर्मों की छाया उसी पर ही तो पड़ती है।''

कुछ देर चुप रहने के बाद महर्षि ने एक बोधकथा के माध्यम से अपनी बातों को स्पष्ट कर दिया। उन्होंने कहा—''एक भेड़ को एक दिन रास्ते में सिंह का एक बच्चा मिला। शायद वह अपनी माँ से बिछड़ गया था यह वह मर गयी थी। भेड़ में मातृ वात्सल्य जाग उठा। सिंह शावक को अपने साथ ले आयी। जैसे अपने बच्चों को वह स्तन-पान कराती थी, उसी प्रकार इसे भी अपना दूध पिलाने लगी। धीरे-धीरे सिंह शावक बड़ा हुआ, पर सिंह के रूप में नहीं, भेड़ के व्यक्तित्व में। भेड़ों की तरह घास चरता, जंगली जानवरों को देखकर डर जाता।

अचानक एक दिन एक शेर इधर आ गया। शेर को देखते ही सभी भेड़ें भाग खड़ी हुईं। जान सभी को प्यारी होती है। स्वभाव के अनुसार सिंह शावक भी भागा। पूरा दल भागते-भागते एक जलाशय के निकट पहुँचा। प्यास लगी थी। सभी पानी में अपना-अपना मुँह डालकर पानी पीने लगे। सहसा अपनी आकृति देखकर सिंह शावक चौंक उठा। अरे, मैं भी तो सिंह हूँ।

दूसरे ही क्षण उसके सिंहनाद से वन का कोना-कोना काँप उठा।

आत्मज्ञान होने पर व्यक्ति भी अपने भीतर के विराट् को इसी प्रकार पहचान लेता है।''

महर्षि रमण के यहाँ कुछ दिनों तक निवास करने तथा उनकी कृपा पाने से

ही पाल ब्रण्टन ध्यान लगाने लगे। इस दिशा में उन्हें काफी सफलता प्राप्त हुई। वे भारत जिस उद्देश्य से आये थे, उसकी पूर्ति हो गयी थी। यहाँ तक कि दो घंटे तक समाधि लगाकर आत्म चिन्तन करने लग गये थे। इस साधना में उन्हें न केवल इष्ट के दर्शन हुए बल्कि अनेक प्रकार के अलौकिक दर्शन हुए हैं। इस बारे में वे लिखते हैं—

"मैं कैसे बताऊँ कि इसके आगे मुझे कौन-कौन सी अनुभूतियाँ प्राप्त हुईं। वे इतनी सूक्ष्म और कोमल थीं कि लेखनी भी उनका बयान करने में लज्जित होकर गड़ जायगी। फिर भी ज्योति मंडल में विहार करने वाले उन सत्य प्रकाशों की मर्त्य भाषा में एक झलक दिखाने की चेष्टा कदापि व्यर्थ नहीं हो सकती। दिलेरी के साथ मनोजगत् के परे अनंतता के छोर तक फैलने वाले अज्ञात किन्तु विचित्र विश्व की संस्मृतियों का एक अस्पष्ट चित्र खींचने की चेष्टा करूँ तो वह क्षम्य होगी।"

* * *

सन् १९४९ ई० में महर्षि रमण की बायीं बाँह में एक गाँठ उभरी जो वास्तव में कैंसर थी। भक्त चिन्तित हो उठे। पूरे वर्ष भर में चार बार डॉक्टरों ने आपरेशन किया और हर बार गाँठ उभर आती। अन्त में डॉक्टरों ने जवाब दे दिया।

भक्तों की चिन्ता देखकर उन्होंने कहा—"तुम लोग लकड़ी के अरार पर लकड़ी खरीदने जाते हो। मजदूर उसे उठाकर ले चलता है। उसे अपने गन्तव्य स्थल पहुँचने की जल्दी रहती है ताकि उस बोझे को पटककर राहत की साँस ले सके। ठीक इसी प्रकार ज्ञानी भी अपने भौतिक शरीर को फेंकने के लिए चिन्तित रहता है।"

१४ अप्रैल, सन् १९५० ई० को आश्रम में काफी भीड़ थी। बाहर एक अमेरिकी पत्रकार ने देखा कि आसमान से एक तारा टूट कर नीचे आते-आते गायब हो गया। इस तारे को टूटते हुए मद्रास शहर के अनेक लोगों ने देखा था। तारे का टूटना अशुभ माना जाता है। यह अशुभ रमण आश्रम में हुआ।

उस रात को सभी भक्त जागते रहे। अगले दिन पुराने सभा भवन में महर्षि को समाधि दे दी गयी।

■

भूपेन्द्रनाथ सान्याल

काशी में गरुड़ेश्वर एक मुहल्ला है। इसी मुहल्ले में योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी अपने कमरे में बैठे समागत शिष्यों तथा भक्तों को गीता के बारे में प्रवचन दे रहे थे। उन्नीसवीं शताब्दी का अन्तिम चरण था। बाहर गली में कुछ लोग आ-जा रहे थे।

सहसा योगिराज अपनी कथा रोककर एक युवक से बोले—''गोपी बेटा, सदर दरवाजे पर जाकर जरा खड़े हो जाओ। अभी कुछ देर बाद गोरे रंग का एक किशोर मुझे खोजता हुआ आयेगा। उसे अपने साथ भीतर ले आना।''

''जो आज्ञा महाराज।'' कहने के पश्चात् वह युवक बाहर चला गया।

योगिराज ने अपनी कथा को आगे बढ़ाते हुए कहा—''योगियों के अपने शरीर में ही पृथ्वी, जल और तेज इन तीनों महाभूतों का ज्ञान रहता है। पृथ्वी का अंश जल में घुल जाता है, जल का अंश तेज में समा जाता है और तेज का अंश हृदय के पवन में चला जाता है। फिर अन्त में एकमात्र पवन ही रह जाता है और वह भी केवल शरीर के रूप में रहता है। कुछ समय बीतने पर वह भी आकाश में समरस होकर लुप्त हो जाता है। उस समय उस शक्ति का कुंडलिनी नाम भी मिट जाता है और उसे 'मारुति' वाला नया नाम प्राप्त होता है।''

तभी गोपी के साथ एक सुदर्शन युवक भीतर आया। चेहरे की बनावट और पोशाक से बंगाली लग रहा था। क्षण भर लाहिड़ी महाशय चुप रहे। इसके बाद पुनः अपनी कथा कहने लगे।

थोड़ी देर बाद उन्होंने कहा कि ''गीता के रहस्य को समझना और समझाना

कठिन है। यह विश्व की सर्वश्रेष्ठ कृति है। योग, धर्म, दर्शन, अध्यात्म सब कुछ इसमें है। अब आगे की कथा कल होगी।''

प्रवचन की समाप्ति पर एक-एक करके लोग जाने लगे। जगह खाली होते ही आगन्तुक युवक ने साष्टांग प्रणाम किया।

आशीर्वाद देते हुए योगीराज ने कहा—''भूपेन्द्र, तुमने व्यर्थ ही कष्ट किया। तुम जिस कामना से यहाँ आये हो, वह तो कई वर्ष पूर्व तुम्हें प्राप्त हो चुकी है।''

लाहिड़ी महाशय की बातें सुनकर भूपेन्द्र चौंक उठा। समझते देर नहीं लगी कि योगिराज अपनी अलौकिक-शक्ति के माध्यम से मेरे बारे में समझ गये हैं। मैं कौन हूँ, कहाँ से आ रहा हूँ, क्यों आया हूँ, यहाँ तक कि मेरा नाम तक जान चुके हैं।

भूपेन्द्र ने कहा—''तो क्या वही सत्य है। अब प्रत्यक्ष रूप से मुझे प्राप्त नहीं होगी?''

अपने स्वभाव के अनुसार गंभीर होते हुए लाहिड़ी महाशय ने कहा—''हाँ, वही। मैं जानता हूँ कि तुम अपनी आर्थिक कठिनाई तथा कच्ची उम्र के कारण विष्णुपुर से यहाँ तक आने में असमर्थ रहे और मैं वार्द्धक्य के कारण अब कहीं नहीं जाता। तुम्हारे पूर्व जन्म के संस्कारों ने मुझे बाध्य किया तभी मैंने वहाँ सूक्ष्म रूप में जाकर क्रिया सम्पन्न की। ऐसी घटना मेरे जीवन में कम ही हुई है। अब पुनः दीक्षा मैं नहीं दूँगा और न तुम्हें इसकी जरूरत है।''

भूपेन्द्रनाथ चुप रहा। उसने फिर कोई अनुरोध नहीं किया। लाहिड़ी महाशय ने कहा—''जाओ, खाना खाकर विश्राम करो। थके माँदे हो। कल सुबह मिलना। आगे की बातें बताऊँगा।''

अपने डेरे पर वापस आकर भूपेन्द्रनाथ दीक्षा के बारे में सोचने लगा। उसे याद है, आज से दो वर्ष पूर्व की बात है। उन दिनों बड़ी बहन के यहाँ रहता था। दीदी उसे बहुत चाहती थीं। बड़ी बहन का ससुराल विष्णुपुर में था। वहाँ के एक स्कूल में पढ़ता था। लाहिड़ी महाशय अपने किसी रिश्तेदार के यहाँ अक्सर आते थे। जब आते थे तब पूरे विष्णुपुर में हलचल मच जाती थी। बड़े-बूढ़े उन्हें साष्टांग करते। लोग कहते—लाहिड़ी महाशय सामान्य व्यक्ति नहीं हैं। उच्चस्तर के योगी हैं। अगर वे चाहें तो इस पृथ्वी को ध्वंस करके नयी सृष्टि नये सिरे से बना सकते हैं।

विष्णुपुर में कुछ लोग लाहिड़ी महाशय के मंत्र शिष्य बन चुके थे। उनके शिष्य ही योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी की अलौकिक कहानियाँ सुनाते रहते थे। भूपेन्द्रनाथ का किशोर मन इन कहानियों को सुनकर लाहिड़ी महाशय के प्रति आकर्षित होता गया। उसने मन ही मन निश्चय किया कि वह भी इस महापुरुष का शिष्य बनेगा।

दूसरे ही क्षण सोचता—क्या वे मुझे अपना शिष्य बनायेंगे? क्यों नहीं बनायेंगे। मैं तीनों वक्त संध्या गायत्री करता हूँ। झूठ नहीं बोलता। गलत कार्य नहीं करता। मुझ में कौन-सा दोष है। इस बार आयेंगे तो मैं उनसे अनुरोध करूँगा। उनके पाँव पकड़

लूँगा और तब तक नहीं छोड़ूँगा जब तक वे यह नहीं कहेंगे कि 'अच्छा बाबा, तुझे शिष्य बना लूँगा। अब तो पैर छोड़ दे।' तब बड़ा मजा आयेगा।

धीरे-धीरे समय गुजरता गया, पर लाहिड़ी महाशय फिर नहीं आये। इसी बीच उनके रिश्तेदार का निधन हो गया जिसके यहाँ वे प्रति वर्ष आते थे। इस प्रकार रही-सही आशा समाप्त हो गयी। एक बार भूपेन्द्र के मन में आया कि वह काशी जाकर लाहिड़ी महाशय से मिले, पर यह शहर कहाँ है? विष्णुपुर से कितनी दूर है? इतना किराया कौन देगा? फिर अगर गया भी तो कहीं अबोध समझकर दुत्कार न दें। इसी ऊहापोह में वह काशी नहीं जा सका।

ठीक इन्हीं दिनों तक अद्‌भुत घटना हो गयी। स्कूल से लौटते समय वह घर की ओर लौट रहा था। एक बड़े मकान के सामने काफी लोग बैठे थे। मकान के सामने एक चौकी पर कोई पंडित जी कथा सुना रहे थे। राम-कथा की चर्चा कर रहे थे। कुतूहलवश वह खड़ा हो गया।

कथावाचक नाटकीय ढंग से कथा कहते हुए कहने लगे—नाम की महिमा अपरम्पार है। एक बार देवर्षिनारद को भ्रम हो गया कि उनसे बड़ा भक्त त्रैलोक्य में कोई नहीं है। अन्तर्यामी भगवान् से यह रहस्य छिपा नहीं रहा। एक दिन उन्होंने कहा—''मर्त्यलोक में एक किसान अमुक देश के, अमुक शहर के, अमुक गाँव में रहता है जो मेरा प्रिय भक्त है। सोचता हूँ कि एक बार उसके पास जाकर उसके सुख-दुःख का पता लगाऊँ।''

देवर्षि नारद ने कहा—''भगवान्, आपको कष्ट करने की क्या जरूरत। मैं चला जाता हूँ।

देवर्षि वहीं गए। उन्होंने देखा कि उसने सबेरे उठकर एक बार भगवान् के चित्र के सामने नमस्कार किया और प्रातः क्रिया आदि करने चला गया। जलपान के पश्चात् खेत में काम करने लगा। वहीं उसका लड़का भोजन ले आया। शाम को खा-पीकर सोते समय उसने एक बार पुनः कहा—''राम जी, सबका भला करना और उसके साथ मेरा भी।'' इसके बाद वह गहरी नींद में सो गया। देवर्षि नारद को आश्चर्य हुआ कि दिन-रात में केवल एक बार उसने राम का नाम लिया और वह व्यक्ति भगवान् का प्रिय भक्त बना हुआ है। यहाँ मैं दिन-रात उनका नाम लेता हूँ, मेरा कोई मूल्य नहीं?

भगवान् के निकट देवर्षि ने सारा विवरण दिया। तभी भगवान् ने कहा—''देवर्षि, एक काम करो। सामने एक कटोरा तेल है। इसे लेकर तुम दिनभर धूप-हवा दिखाते रहो। चाहो तो त्रैलोक्य का सफर कर सकते हो, पर यह याद रखना कि इसमें से एक बूँद तेल गिरने न पाये।''

शाम को जब नारद जी वापस आये तब भगवान् ने पूछा—''कहिये देवर्षि, तेल सही सलामत है या कहीं गिराया भी?

देवर्षि ने कहा—''नहीं प्रभु। आपके निर्देश का ठीक से पालन किया है।''

भगवान् ने मुस्कराकर पूछा—"इस बीच तुमने मुझे कितनी बार स्मरण किया?"

नारद ने कहा—"आपने एक ऐसा लफड़ा दे दिया कि मेरी निगाहें कटोरी पर जमी रहीं। ऐसी हालत में आपका स्मरण तो दूर, अपनी वीणा भी नहीं बजा सका और न किसी से संभाषण ही कर सका।"

भगवान् ने कहा—"अब सोचो देवर्षि। एक जरा से कार्य के पीछे तुम मुझे स्मरण नहीं कर सके। मर्त्यलोक का वह किसान सुबह से शाम तक मेहनत करने के बाद एक बार मुझे स्मरण कर लेता है। क्या वह मेरा श्रेष्ठ भक्त नहीं है?"

इस कथा को समाप्त करते हुए कथावाचक ने कहा—"आप जो कुछ करते हैं, करते रहिये, पर निरन्तर राम का नाम लेते रहिये। आपको पूजा-पाठ या तीर्थदर्शन करने का अवसर न मिले तो कोई हर्ज नहीं। महर्षि वाल्मीकि जवानी में डाकू थे। उल्टा नाम जपने के कारण वे महर्षि हो गये। संसार के विभिन्न देशों में राम-कथा का प्रचार हो गया। हमारे संत-महात्मा इसीलिए इस नाम पर जोर देते हैं। भक्तगण राम-नाम की गोली बनाकर मछली को खिलाते हैं। बेलपत्र पर लिखकर शिव का अर्चन करते हैं। आप खाली समय में यही करिये। इससे पापों का क्षय होगा।"

इस प्रवचन का भूपेन्द्रनाथ के मन पर व्यापक प्रभाव पड़ा। उसने निश्चय किया कि अब वह बराबर राम नाम लिखेगा। कहा जाता है कि जिस दिन राम नाम की संख्या एक लाख पूर्ण हुई, उसी दिन उसे दिव्य दर्शन हुआ। उसने एक अद्भुत स्वप्न देखा। राम नाम लिखते रहने पर भी उसके अवचेतन मन में श्यामाचरण लाहिड़ी से दीक्षा लेने की आकांक्षा बनी रही।

एकाएक श्यामाचरण लाहिड़ी उसके कमरे में प्रकट हुए और उन्होंने कहा—"भूपेन्द्र, उठो। आज वह शुभघड़ी आ रही है जब तुम्हें दीक्षा ग्रहण करनी है। तुम्हारे पूर्व जन्म के संस्कारों ने मुझे यहाँ आने को बाध्य किया है। चलो, आसन बिछाकर पद्मासन लगाकर बैठो।"

योगिराज के कथनानुसार भूपेन्द्र आसन बिछाकर बैठ गया। पलक झपकते ही दीक्षा की थाली आ गयी। उसमें माल, फूल, अक्षत्, चन्दन, लोहबान आदि थे। योगिराज के निर्देशानुसार सारी क्रियाएँ वह करता रहा। इसके बाद कान में बीज मंत्र सुनाने के बाद योगिराज ने कहा—"इस मंत्र का जप नित्य सात्त्विक भाव से करते रहना। इसमें गलती न हो अन्यथा मुझे कष्ट होगा। धीरे-धीरे तुम आध्यात्मिक-शक्ति ग्रहण करोगे।"

इतना कहने के बाद योगिराज ने उसके दोनों भौंहों के बीच स्पर्श किया। तड़ित् वेग से उसका सारा शरीर सिहर उठा।

इस झटके कारण उसकी नींद खुल गयी। उसने विस्मय के साथ देखा—कमरे में खाट पर बैठा है। न दीक्षा सामग्री है और न गुरुदेव। लेकिन कमरे में धूप जलने की गंध है।

* * *

आज दो वर्ष बाद दीक्षा लेने आया तो गुरुदेव ने अस्वीकार कर दिया। इसका अर्थ यह है कि वह स्वप्न नहीं, सत्य था।

दूसरे दिन जब भूपेन्द्र गुरुदेव के निकट गया तब उन्होंने कहा—"कुछ दिन तुम्हें काशी में रुकना पड़ेगा। तुम्हें कुछ क्रियाएँ बता दूँगा ताकि तुम्हारा आध्यात्मिक जीवन सुदृढ़ हो सके। अब तक तुमने साधना के माध्यम से जो उन्नति की है, उससे मैं सन्तुष्ट हूँ।"

गुरुदेव से अपनी प्रशंसा सुनते ही भूपेन्द्र ने तुरन्त उनके चरणों पर मस्तक रख दिया और चरण-रज लेकर सर्वांग में लगाने लगा।

* * *

महाप्रभु चैतन्य के कारण बंगाल का नगण्य जिला नदिया संसार-प्रसिद्ध हुआ है। श्रीकृष्ण की महिमा का प्रसार चैतन्य के माध्यम से भारत के कोने-कोने में हुआ था। इसी जिले के साधनपाड़ा गाँव में पंडित कैलाशचन्द्र सान्याल तथा उनकी पत्नी श्रीमती भुवनेश्वरी देवी रहते थे।

माघ शुक्ल पक्ष अर्थात् जनवरी, सन् १८७७ ई०, बुधवार को इस दम्पति के यहाँ अष्टम संतान ने जन्म लिया। बंगाल में मान्यता है कि अष्टम संतान पुत्र और नवम संतान पुत्री होने पर भाग्यशाली होते हैं। माता-पिता ही नहीं, परिवार सभी लोग ऐसे बच्चों को अधिक स्नेह देते हैं।

अन्नप्राशन के दिन बालक का नाम भूपेन्द्रनाथ रखा गया। बालक ने अभी घुटने के बल चलना प्रारम्भ किया था कि सहसा सिर पर से पिता का साया उठ गया। भूपेन्द्रनाथ की आयु उस समय २० माह की थी। गाँव में पेट भरने लायक कोई सहारा न रहने के कारण भुवनेश्वरी देवी बच्चों को लेकर अपने भाई शिवचन्द्र राय के यहाँ चली गयी।

सहसा शिवचन्द्र राय की बदली साहबगंज में हुई। राय साहब सभी लोगों को लेकर यहाँ आकर बस गये। भूपेन्द्रनाथ की प्राथमिक शिक्षा स्थानीय स्कूल में प्रारम्भ हुई। भूपेन्द्रनाथ की माता धर्मपरायण महिला थी। विधवा हो जाने पर वे अत्यन्त कठोरता के साथ देवार्चन में रहने लगीं। शाम को बच्चों को बैठाकर पौराणिक और धार्मिक कहानियाँ सुनाया करती थीं।

कुछ दिनों बाद भूपेन्द्रनाथ की बड़ी बहन ने उसे अपने यहाँ बुला लिया। विष्णुपुर में भूपेन्द्रनाथ अपने जीजा के मामा शिवदास भट्टाचार्य के यहाँ रहने लगा। बड़ी बहन ने आगे की शिक्षा के लिए स्थानीय स्कूल में भर्ती कराया। बचपन से ही शान्त और सौम्य होने के कारण भूपेन्द्रनाथ अपने सहपाठियों में ही नहीं, अध्यापकों की दृष्टि में लोकप्रिय हो गया।

विष्णुपुर अपने विशिष्ट मंदिरों के लिए सम्पूर्ण भारत में प्रसिद्ध है। यहाँ अनेक

देवी-देवताओं के मंदिर हैं। अवकाश के समय में वह इन मंदिरों में जाकर ध्यान लगाकर बैठ जाता। भट्टाचार्य परिवार में आश्रय लेने के कारण पूजा-पाठ तथा धार्मिक क्रियाओं से प्रभावित हो गया।

परम्परा के अनुसार १३वें वर्ष में उसका यज्ञोपवीत हुआ। कुलगुरु के निर्देशानुसार वह अत्यन्त शुद्धाचार से दैनिक कार्य करने लगा। गायत्री-पाठ, संध्या-पूजा आदि का पालन करता रहा। ठीक इसी समय एक घटना हुई जिसके कारण उसके जीवन में परिवर्तन हुआ।

यहाँ आने के बाद से वह अक्सर योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी के बारे में विचित्र कहानियाँ सुना करता था। कभी-कभी स्वयं उसके मन में भी यह भावना उत्पन्न होती कि वह भी लाहिड़ी महाशय की तरह चमत्कार कर पाता। लाहिड़ी महाशय कैसे, किस विद्या से ऐसा कर लेते हैं? क्या करने पर चमत्कार किया जा सकता है? अक्सर उसका किशोर मन उड़कर काशी पहुँचने की कल्पना करने लगता था। उसने आगे चलकर यह निश्चय किया कि अगर इस बार लाहिड़ी महाशय आयेंगे तो वह उनका शिष्य बनकर उनकी सेवा करेगा। तब शायद वे चमत्कार दिखायेंगे।

भूपेन्द्र का यह सपना शीघ्र ही पूरा हुआ। एक अर्से बाद लाहिड़ी महाशय विष्णुपुर आये। यही उनका अन्तिम आगमन था। इस यात्रा के बाद फिर कभी नहीं आये। लाहिड़ी महाशय के आगमन का समाचार पाते ही भूपेन्द्र उनके ठहरने के स्थान पर पहुँचा। लाहिड़ी महाशय भक्तों और शिष्यों से घिरे बैठे थे। एक बार इच्छा हुई कि पास जाकर चरण-रज ले लूँ, पर भीड़ के कारण उनके निकट जाने का साहस नहीं हुआ। मन ही मन प्रणाम कर एक किनारे बैठ गया। उसे लगा जैसे लाहिड़ी महाशय असाधारण पुरुष हैं।

कुछ दिनों बाद उसे विष्णुपुर से वर्धवान आना पड़ा। इस बीच लाहिड़ी महाशय पुन: यहाँ नहीं आये। यहाँ आकर वह १०वीं क्लास में भर्ती हो गया, पर उसका मन लाहिड़ी महाशय के चरणों में लगा रहा। ठीक इन्हीं दिनों उसे स्वप्न में दीक्षा प्राप्त हुई जिसकी चर्चा की जा चुकी है।

विष्णुपुर की अपेक्षा वर्धवान की जलवायु उसे रास नहीं आई। एकाएक बंगाल की प्राचीन बीमारी मलेरिया ने उस पर आक्रमण किया। दिन-प्रतिदिन उसकी हालत खराब होती गयी। यहाँ तक कि इलाज करने वाले डॉक्टर ने कहा—"रोगी का बचना कठिन है। अब वह जो कुछ खाने को माँगे, देकर उसकी अन्तिम इच्छा की पूर्ति करें।"

डॉक्टर की राय सुनकर घर के लोग रोने-पीटने लगे। इधर भूपेन्द्र की हालत ऐसी हो गयी कि तीन दिनों तक वह लगातार बेहोश रहा। चौथे दिन भूपेन्द्र को लगा जैसे कोई छोटी बालिका उसके सिरहाने बैठकर पूछ रही है—"पिता जी, क्या आप डर रहे हैं?"

भूपेन्द्रनाथ ने कहा—"हाँ।"

लड़की ने कहा-"आप डरिये नहीं। आपका मृत्यु-संकट टल गया है। अब आप स्वस्थ हो जायेंगे।"

इतना कहने के बाद वह लड़की इनके सिर पर हाथ फेरने लगी। आश्चर्य की बात यह हुई कि दूसरे दिन आप पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गये। आपको देखकर ऐसा लग रहा था जैसे आप बीमार ही नहीं हुए थे।

बाद में जब भूपेन्द्र ने अपने दर्शन के बारे में बताया तब लोगों ने अनुमान लगाया कि लड़की के रूप में माँ जगदम्बा आयी थीं वर्ना मृत्यु-पथ का यात्री रात भर में कैसे स्वस्थ हो सकता है।

लम्बे अर्से तक बीमार रहने के कारण भूपेन्द्रनाथ इंटर की परीक्षा नहीं दे सका। वहाँ से भागलपुर आकर तेजनारायण जुबली कॉलेज में भर्ती हो गया। ठीक इन्हीं दिनों पास में कुछ रकम आ जाने पर भूपेन्द्रनाथ काशी गया। उद्देश्य था कि योगिराज लाहिड़ी महाशय से दीक्षा लूँगा। वहाँ से क्रियायोग की शिक्षा लेकर वह वापस आ गया।

चलते समय योगिराज ने भूपेन्द्रनाथ से कहा—''मैंने जितनी क्रियाएँ बतायी हैं, अगर निरन्तर करते रहोगे तो स्वतः इच्छा-शक्ति में वृद्धि होगी। कभी कोई कठिनाई अनुभव हो तो मुझे स्मरण करना। मैं सही मार्ग का निर्देश दे दूँगा।''

* * *

काशी से वापस आने के बाद आप तीव्र गति से क्रियाओं की साधना करने लगे। होस्टल में रहने के कारण साधना करने में किंचित् कठिनाई होती थी। इससे बचने के लिए आपने मध्य रात्रि का समय चुना। जब सभी सहपाठी सो जाते थे तब आप चुपके से छत पर जाकर गुरु द्वारा बतायी गयी क्रियाएँ करते थे।

भागलपुर में रहते हुए आप बराबर साधु-संतों की सेवा करने लगे। आप इस बात पर विश्वास करते थे कि इनकी सेवा से भले ही लाभ न हो, पर पुण्य मिलता है। क्रियायोग के प्रति बढ़ती साधना के कारण आप में आध्यात्मिक स्फुरण होने लगा। इसका अनुभव होते ही आप सावधानी से रहने लगे। लेकिन इससे शिक्षा में हानि हुई। आप इंटर की परीक्षा यहाँ भी नहीं दे सके।

सन् १८६८ ई० में आपने गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया। विवाह के पश्चात् कॉलेज-जीवन से अलग होकर अध्यापक बन गये। इन दिनों बंग भंग आन्दोलन चल रहा था। देश-प्रेम के कारण आप लोगों से देसी वस्त्र पहनने का अनुरोध करने लगे। गाँव-गाँव जाकर कपड़े की फेरी लगाने लगे।

इस कार्य से शीघ्र ही मन उचट गया। तब आपने साहबगंज में ब्रह्मचर्य आश्रम की स्थापना कर छात्रों को योग-व्यायाम की शिक्षा देने लगे। इस दिशा में सहयोग न मिलने पर आप निराश हो गये।

ठीक इन्हीं दिनों विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने शांति निकेतन में विश्व भारती की स्थापना की। वहाँ के परिवेश तथा शिक्षा देने के ढंग से आप प्रभावित हुए। भूपेन्द्रनाथ

ने सोचा कि ऐसे विद्यालय के छात्र ही देश-समाज के कर्णधार बन कर देश को नयी दिशा देंगे। अपने दोनों भतीजों को विश्व भारती में भर्ती कराने के लिए ले गये।

बातचीत के सिलसिले में आपने रवि बाबू से कहा कि इस विद्यालय के जरिये ब्रह्मचर्य की शिक्षा दें। साहबगंज में स्थापित अपने आश्रम के बारे में आपने विस्तार से बताया।

सारी बातें सुनने के बाद रवि बाबू ने कहा—''निस्सन्देह आपका सुझाव और योजना अच्छी है। मैं चाहता हूँ कि आप विश्व भारती में ब्रह्मचर्य विभाग खोलें और इसकी सारी जिम्मेदारी लें।''

भूपेन्द्रनाथ इसके लिए तैयार नहीं हुए। यह जानकर रवि बाबू ने अपने अस्त्र का प्रयोग किया। उन्होंने कहा—''तब तो मैं आपके भतीजों को अपने विद्यालय में स्थान नहीं दे सकता। मैं आपके भतीजों को केवल इसी शर्त पर भर्ती करूँगा कि आप यहाँ के ब्रह्मचर्य विभाग का संचालन करें। योग्य शिष्य ही नहीं, योग्य शिक्षक भी तैयार करें ताकि आपकी अनुपस्थिति में यह विभाग चलता रहे।''

इस शर्त के आगे भूपेन्द्रनाथ को झुकना पड़ा। शान्ति निकेतन में ब्रह्मचर्य आश्रम की स्थापना करने के पश्चात् एक अर्से तक वे छात्रों को शिक्षा देते रहे। रवि बाबू आपके ज्ञान और व्यक्तित्व से कितने प्रभावित हुए, इसका प्रमाण सान्याल जी के नाम लिखे पत्रों से स्पष्ट हो जाता है।

आपने अपनी अतीन्द्रिय-शक्ति से रवि बाबू को यह भी बताया कि यहाँ कितने अध्यापक आपके लिए समर्पित सेवाएँ कर सकते हैं। आचार्य क्षितिमोहन सेन, विधुशेखर शास्त्री, नेपालधर आदि विद्वानों को आपने खोजा और परखा था। यहाँ पाँच वर्ष सेवा करने के बाद आपने संन्यास जीवन अपनाया।

बीच-बीच में आप अपने गुरुदेव का दर्शन करने के लिए काशी आते थे। यहाँ बड़ादेव मुहल्ले में स्थापित 'योगाश्रम' में ठहरते थे। इस आश्रम की स्थापना हिन्दू धर्म के प्रचारक स्वामी कृष्णानन्द ने की थी। इस आश्रम में अपने विद्यार्थी जीवन में (सन् १९१२) श्री गोपीनाथ कविराज भी आते थे। यहीं उनकी मुलाकात सान्याल जी से हुई थी। भूपेन्द्रनाथ सान्याल उन दिनों बंगला के विभिन्न पत्रों में धर्म तथा अध्यात्म सम्बन्धी लेख लिखते थे। सान्याल जी के लेखों से प्रभावित होकर कविराजजी उनसे मिलने आये थे।

अपने एक संस्मरण में महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज ने लिखा है—''वे जब काशी आते थे तब मेरे यहाँ खबरें भेजते थे। यहाँ तक कि अनेक बार मेरे घर आकर मुलाकात भी की। मैं स्वयं भी उनके यहाँ जाता था, क्योंकि लाहिड़ी महाशय के साधना-जीवन के बारे में विभिन्न प्रकार के तथ्यों का संकलन करने की मेरी इच्छा थी। हम इस सम्बन्ध में नित्य तरह-तरह की बातें करते थे। वे लाहिड़ी महाशय के बारे में अपने अनुभव, साधना तत्त्व तथा अन्य अलौकिक बातें बताया करते थे। इन सब कारणों से थोड़े दिन के भीतर हम दोनों में गहरी मैत्री हो गयी थी।

वे मेरे प्रति जितने आस्थावान थे, मैं भी उनके प्रति उतना ही श्रद्धावान था। अगर कोई व्यक्ति अध्यात्म के मार्ग पर अग्रसर होने की इच्छा प्रकट करता था तो मैं उन्हें सान्याल महाशय के पास जाने की सलाह देता था। विदेशी तथा भारतीय जिज्ञासुओं को वे मेरे अनुरोध पर दीक्षा देते थे और उन्हें योग-मार्ग में प्रवेश कराते थे।

सान्याल महाशय गुरु-परम्परा में योगी थे ही, ऊपर से शास्त्र विहित आचार-मार्ग का अनुसरण करते हुए अपनी निष्ठा और पराकाष्ठा का प्रदर्शन करते रहे।

उनके काशी आने पर मैं उनका दर्शन किये बिना रह नहीं पाता था। जब कभी मैं पुरी जाता था तब वहाँ अगर वे मौजूद रहते थे तब बराबर दर्शन करने अवश्य जाता था। वे अपने गुरु द्वारा लिखित श्रीमद् भागवत गीता की व्याख्या कर रहे थे। बाद में उसकी भूमिका लिखने का भार मुझे दिया। उनकी इच्छानुसार उक्त ग्रंथ की भूमिका मैंने लिख दी थी। मेरी भूमिका पाकर वे प्रसन्न हो गये थे।''

* * *

गुरु द्वारा निर्देशित क्रिया निरन्तर करते रहने के कारण सान्याल महाशय पर्याप्त आत्मोन्नति कर चुके थे। सान्याल महाशय ने अपने पूज्य गुरुदेव की स्मृति में सर्वप्रथम पुरी में एक आश्रम की स्थापना की। इस आश्रम में योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी की संगमरमर की मूर्ति की प्रतिष्ठाकर मन्दिर का रूप दिया था। बाद में आगे चलकर भागलपुर जिले के मन्दार कस्बे में एक आश्रम बनवाया। यहाँ भी लाहिड़ी महाशय की एक मूर्ति स्थापित की।[1] दोनों स्थानों पर सन् १६२५ ई० के पूर्व मूर्तियाँ स्थापित हो गयी थीं।

मन्दार में मूर्ति स्थापित करने के पश्चात् सान्याल महाशय ने 'श्यामाचरण विद्यापीठ' के नाम से सांगवेद विद्यालय खोला जहाँ अनेक छात्र संस्कृत की शिक्षा ग्रहण करने लगे।

---

[1] 'सन् १६२८ ई० में योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी का जन्मोत्सव मनाने का जब निश्चय किया गया तब लाहिड़ी महाशय के पौत्र श्री आनन्दमोहन लाहिड़ी ने इस पवित्र समारोह को उच्चस्तर पर मनाने का निश्चय किया। साथ ही यह भी सोचा गया कि लाहिड़ी महाशय की एक प्रस्तर प्रतिमा स्थापित की जाय। उस समय तक योगिराज की कोई प्रतिमा स्थापित नहीं की गयी थी। इस योजना के निर्धारण के शीघ्र बाद ही श्री आनन्दमोहन कृष्ण नगर के प्रसिद्ध शिल्पी श्री यदुनाथ पाल से लाहिड़ी महाशय की एक सुन्दर प्रस्तर-मूर्ति पाकर आश्चर्यचकित रह गये। श्री यदुपाल ने बताया कि एक स्वप्नदर्शन में उन्हें प्रतिमा बनाकर श्री आनन्दमोहन को भेंट करने का निर्देश मिला था।'

—एक योगी की आत्मकथा, पृष्ठ ४६४।

उपरोक्त घटना सही है, परन्तु यह कहना कि उस समय तक लाहिड़ी महाशय की कोई प्रतिमा स्थापित नहीं की गयी थी, यह धारणा गलत है। मुमकिन है कि पुरी तथा मन्दार में सन् १६२५ ई० के पूर्व स्थापित प्रतिमाओं के बारे में श्री परमहंस योगानन्द को कोई जानकारी न हो । श्री यदुनाथ पाल की प्रतिमा १६२८ में स्थापित हुई थी।

आम लोगों का विश्वास है कि भागलपुर जिले का मंदार क्षेत्र सिद्ध स्थान है। सान्याल महाशय आगे चलकर यहीं बस गये। अक्सर तीर्थयात्रा करने चले जाते थे। शेष समय भगवत्-चिंतन, गीता पाठ, लेखन तथा शिष्यों को उपदेश देते थे।

यहाँ आपके अनेक शिष्य थे। आपके विदेशी शिष्य आपका दर्शन करने यहाँ आते थे। कभी-कभी आप योग विभूतियाँ दिखाते थे जिसके कारण स्थानीय लोगों में आपके प्रति गहरी आस्था थी।

आपके एक शिष्य थे—रुद्रनारायण बाबू। एक बार वे जमीन-जायदाद आदि के चक्कर में बुरी तरह उलझ गये। अगर सान्याल महाशय की शरण में आते तो निश्चित था कि उन्हें जेल की सजा हो जाती या बुरी तरह बरबाद हो जाते।

सान्याल महाशय की इस कृपा के कारण वे इनके शिष्य और कट्टर भक्त बन गये। भावुकतावश एक बार आपने अपने गुरु सान्याल महाशय से निवेदन किया—''गुरुदेव, आपकी कृपा से मुझे सब कुछ मिल गया। अब मैं कुछ नहीं चाहता। केवल एक इच्छा शेष है?''

सान्यालजी ने पूछा—''वह क्या?''

''अपने मृत्युकाल में आपको देखते हुए मेरा प्राण निकले—यही मेरी आकांक्षा है।''

सान्यालजी की बातें सुनकर उपस्थित लोग चकित रह गये। वह इसलिए कि सान्यालजी वयोवृद्ध हैं और उनके आगे रुद्रनारायण बाबू अभी काफी कम उम्र के हैं। रुद्रनारायण की मौत क्या गुरुदेव के पहले हो जायगी? क्या तबतक सान्याल महाशय जीवित रहेंगे? लेकिन इस प्रश्न को कोई वहाँ व्यक्त नहीं कर सका। यह अशोभनीय प्रश्न था।

इस घटना के २० वर्ष बाद रुद्रनारायण अस्वस्थ हुए। उन दिनों सान्यालजी अपने प्रिय शिष्य और सेवक पंडित ज्वालाप्रसाद तिवारी के साथ बनारस में थे। अचानक एक दिन सान्यालजी ने कहा—''तिवारीजी, चलो साहबगंज चलें। यहाँ रहते काफी दिन हो गया।''

साहबगंज में सान्याल महाशय के एक शिष्य अस्वस्थ हो गये हैं। मुमकिन है कि गुरुदेव उन्हें देखने के लिए जा रहे हैं। ज्वालाप्रसाद ने यह सोचकर साहबगंज का टिकट लिया।

मार्ग में जब जमालपुर स्टेशन आया तब सान्यालजी ने कहा—''तिवारीजी, साहबगंज अभी नहीं जाऊँगा। पहले मन्दार हो लूँ, फिर देखा जायगा।''

ज्वालाप्रसाद अपने गुरुदेव की इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं कहते थे। जब जैसी आज्ञा वे देते थे, उसी के अनुसार काम करते थे।

मन्दार आते ही सान्यालजी रुद्रनारायण के यहाँ गये। गुरुदेव को देखते ही रुद्रनारायण ने कहा—''बाबा, बड़ा कष्ट है। मुझे अच्छा कर दीजिए या इस कष्ट से हमेशा के लिए मुक्ति दिला दीजिए।''

दूसरे दिन सान्यालजी ने ज्वालाप्रसाद तिवारी से कहा—''रुद्रनारायण, सभी लड़के-पोते आदि को बुला लो।''

रात तक परिवार के सभी लोग आ गये। रुद्रनारायण ने परिवार के सभी लोगों को देखकर पूछा—''अरे, सभी लोग कैसे आ गये?''

भोर के समय ज्वालाप्रसाद के पास सूचना आयी—''रुद्रनारायण का देहांत हो गया। शव आँगन में रख दिया गया है। बाबा (सान्यालजी) को खबर भेज दी गयी है। आप भी आ जायँ।''

ज्वालाप्रसाद के पहुँचने के बाद सान्यालजी वहाँ पहुँचे और कहा—''मुझे पहले सूचित करना चाहिए था। जब सब समाप्त हो गया तब समाचार भेजा गया। खैर, कोई बात नहीं। तुम सभी लोग हरि नाम करो। ज्वाला, तुम गीता-पाठ शुरू करो।''

इतना कहकर सान्याल महाशय ध्यानस्थ हो गये। काफी देर बाद वे अपने आसन से उठे और शव के चारों ओर चक्कर काटने लगे। बाद में शव के सिरहाने बैठकर रुद्रनारायण के सिर को उठाने लगे।

जब उनसे नहीं उठाया गया तब सामने खड़े लोगों से उन्होंने कहा—''तुम लोग इनके सिर को जरा ऊपर उठा दो।''

लोगों ने शव के सिर को सहारा देकर ऊपर उठाया। उपस्थित सभी लोग यह देखकर दंग रह गये कि मृत रुद्रनारायण की आँखें खुलीं और बाबा को एक टक देखने के बाद वे सदा के लिए सो गये।

* * *

सन् १९५६ में भारत सरकार ने एक प्रतिनिधिमण्डल विदेशों में भेजा। उद्देश्य था—ग्राम विकास का अध्ययन करना। इस दल के सदस्य पटना के हरिनारायण ठाकुर भी थे। जब यह प्रतिनिधिमण्डल अमेरिका पहुँचा तब ठाकुर के पास इस आशय का एक प्रस्ताव आया कि यदि आप ग्राम विकास के अध्ययन के लिए अमेरिका के अन्य क्षेत्र सहित, ग्रीस, इजराइल आदि देशों में जाना चाहें तो फोर्ड फाउण्डेशन आपकी यात्रा का सारा व्यय-भार ले सकती है।

हरिनारायण सरकारी अफसर थे। इस मौके को छोड़ना उचित नहीं समझा। उन्होंने प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। प्रतिनिधिमण्डल के शेष सदस्य लन्दन से पेरिस होते हुए स्वदेश रवाना हो गये। प्रतिनिधिमण्डल के सदस्यों को इस बात की गहरी शिकायत रही कि लन्दन या पेरिस में उन्हें घूमने की सुभीता नहीं दी गयी और न खाना ठीक से दिया गया। यह समाचार हरिनारायण के पास पहुँच गया।

इस मुसीबत से बचने के लिए हरिनारायण भारतीय दूतावास में मदद माँगने गये। आम तौर पर संसार में जितने भारतीय दूतावास हैं, वहाँ के कर्मचारी सामान्य नागरिकों के साथ सहयोग नहीं करते। भारतीय दूतावास में आने पर हरिनारायण ने देखा—सभी

अफसर गायब हैं। केवल एक महिला कर्मचारी है। उसे अपनी समस्या समझायी। वह तुरन्त सक्रिय हो गयी।

बगैर कोई पूछताछ किये महिला कर्मचारी ने रोम, पेरिस, इजराइल तथा लन्दन आदि भारतीय दूतावासों के नाम पत्र भेजा और उसकी प्रतिलिपि ठाकुर को दे दी।

इस महिला की तत्परता से ठाकुर प्रसन्न हो गये। दूतावास में मानसिक परेशानी थी, इसलिए इस चमत्कार की ओर ध्यान नहीं गया। होटल में आने पर उन्हें इस बात पर आश्चर्य हुआ कि यह चमत्कार कैसे हो गया। कहीं अपरोक्ष रूप में गुरुदेव श्री भूपेन्द्रनाथ सान्याल कृपा तो नहीं कर रहे हैं। मन में यह भावना आते ही सूटकेस से गुरुदेव का चित्र निकालकर उन्होंने सिर से लगाया।

८ अगस्त को जब लन्दन के हवाई अड्डे पर ठाकुर उतरे तब माइक पर इनके नाम की घोषणा हुई। उन्हें इस बात पर आश्चर्य हुआ कि इतने यात्रियों के बीच केवल उन्हें क्यों बुलाया जा रहा है। काउण्टर पर गये तो पता चला कि अमेरिकी एक्सप्रेस कम्पनी उन्हें लन्दन घुमायेगी। इसके लिए कम्पनी प्रथम श्रेणी की कार और विदेशी मुद्रा भी देगी। उनके लिए उत्तम होटल की व्यवस्था भी की गयी।

लन्दन से पेरिस आने पर यहाँ भी वैसी सुविधाएँ मिलीं। पेरिस के बाद रोम में भी सारी सुविधाएँ प्राप्त हुईं तो उन्हें समझते देर नहीं लगी कि इस चमत्कार के पीछे गुरुदेव की कृपा अवश्य है। वे बेकार कष्ट कर रहे हैं। ठाकुर मन ही मन असंतुष्ट हो गये। रात को ध्यान लगाकर बैठे। गुरुदेव की छाया सामने आयी तो आपने कहा—''आप मेरे लिए इतना कष्ट क्यों कर रहे हैं? यह तो फोर्ड फाउण्डेशन की व्यवस्था है।''

गुरुदेव ने कहा—''कोई बात नहीं बेटा। बच्चों के लिए बड़ों को सब करना पड़ता है।''

ठाकुर ने अपनी ठकुराई दिखाई। उन्होंने जिद्द पकड़ ली कि गुरुदेव को कृपा करने की जरूरत नहीं। यह सुनकर सान्याल महाशय ''तथास्तु'' कहकर अन्तर्धान हो गये।

गुरुदेव का वरदहस्त हटने का पहला धक्का रोम के हवाई अड्डे पर उतरते ही मिला। जिस अमेरिकी कम्पनी की मदद से ठाकुर यात्रा का आनन्द ले रहे थे, उसी कम्पनी ने इस आशय की नोटिस दी कि लन्दन, पेरिस, रोम आदि स्थानों में आपने जो यात्राएँ की हैं, उसका सारा व्यय आप कम्पनी को तुरन्त भुगतान करें।

ठाकुर की जेब में उस समय कुछ डालर बचे थे। यात्रा-खर्च देने की कौन कहे, इस रकम से वे स्वदेश भी नहीं लौट सकते थे। अब ठाकुर की हालत 'काटो तो खून नहीं' जैसी हो गयी।

ठाकुर ने विनयपूर्वक कहा—''इतनी रकम मैं कैसे दे सकता हूँ। फिर यह परदेश ठहरा। मेरी परेशानी समझने की कोशिश कीजिए।''

कम्पनी के एजेण्ट ने कहा—''आपकी परेशानी से मेरा कोई मतलब नहीं है। मुझे रुपये चाहिए।''

ठाकुर ने कहा—"इस वक्त मैं आपसे बहस नहीं करना चाहता। कल सबेरे आपके अधिकारी से मिलकर सारी बातें तय करूँगा। कृपया यह बताइये कि मेरे लिए होटल में ठहरने और कल शाम को वापस जाने की व्यवस्था है न?"

एजेण्ट ने कहा—"नहीं। रुपये देने पर व्यवस्था होगी।"

काफी मिन्नत करने के बाद होटल में रहने का स्थान मिला। यहाँ आते ही ठाकुर व्याकुल भाव से छटपटाने लगे। अब उन्हें याद आया कि अगर मैं गुरुदेव के आगे जिद्द न करता तो यह नौबत न आती। मुसीबत के वक्त लोगों को भगवान्, गुरु, माता-पिता याद आते हैं।

इस समय ठाकुर को गुरुदेव की एक कविता याद आ गयी जिसका भावार्थ है—"पर्वत अपने ध्यान में मग्न रहता है, नदी मन्द गति से बहती है और योगी योगाभ्यास में मग्न रहता है। यह सब ईश्वर की कृपा से होता है। गृहस्थ नाना प्रकार की आसक्तियों को लेकर तथा नाना प्रकार की घटनाओं के बीच, नाना प्रकार की चिन्ताओं के साथ, नाना प्रकार के भावों में ईश्वर की पूजा करता है, यह भी ईश्वर की कृपा से संभव है। मन भले ही कुछ क्यों न चाहे, वह ईश्वर के पीछे दौड़ता रहता है। हे ईश्वर, तुम्हारे हृदय में ही सबके हृदय गुँथे हुए हैं और तुमसे प्रेरित होकर ही मनुष्य अपने मुख से स्वर निकालते हैं। इस प्रकार सभी वस्तुओं में ईश्वर का प्रकाश व्याप्त है, ऐसा हम सबको समझना चाहिए।"

इस कविता को दो बार पढ़ने के बाद मन कुछ शान्त हुआ। उसी रात को नींद में गुरुदेव आये और बोले—"मेरे बच्चे, घबरा मत। सबेरे सब ठीक हो जायगा। आखिर मैं किसलिए हूँ।"

ठाकुर को बड़ा आश्चर्य हुआ कि कई हजार मील दूर गुरुदेव हैं और वहाँ से अपने एक अदना शिष्य पर कृपा कर रहे हैं। मन ही मन गुरुदेव को प्रणाम कर वे गहरी नींद में सो गये।

दूसरे दिन कम्पनी के बड़े अफसर से मिलते ही जादू-सा असर हुआ। यहाँ तक समय सीमित रहते हुए भी उन्हें कार द्वारा नगर के विभिन्न क्षेत्रों में घुमाया गया। लौटने की सारी व्यवस्था हो गयी। एक प्रकार से मुसीबतों का तिलस्म टूट गया।

* * *

इस प्रकार की कई घटनाएँ शिष्यों के साथ हुई हैं। सान्याल जी की कृपा पाकर अनेक लोग धन्य हुए हैं। यही वजह है कि उनके अधिकांश शिष्य उन्हें 'पूज्य गुरु महाराज' या 'योगिवर' कहते आ रहे हैं।

सान्याल जी श्रीमद्भगवद्गीता का नित्य पाठ करते थे। वे यह मानते थे कि यह ग्रंथ इस युग का वेद है।

विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखने के अलावा सान्यालजी ने सबसे महत्व-

पूर्ण कार्य लाहिड़ी महाशय की गीता-टीका की व्याख्या की है। यह पुस्तक तीन खंडों में है। इसके अलावा विल्वदल (दो खण्ड), अभ्यास योग, दिनचर्या, दीक्षा और गुरुतत्त्व, आत्मानुसंधान और आत्मानुभूति, आत्मबोध, मोक्ष-साधन और योगाभ्यास नित्य कृत्य, स्तोत्रावली आदि पुस्तकें लिखी हैं।

आपकी योग सम्बन्धी पुस्तक से सहायता लेकर पं० गोपीनाथ कविराज ने 'आरोप-साधन' आदि लेख लिखे हैं।

इन पुस्तकों में चिन्तन की विशद गहराई है। यहाँ तक कि शिष्यों और भक्तों के नाम जो पत्र सान्यालजी लिखते थे, उसमें भी योग और अध्यात्म की चर्चा करते थे। एक शिष्य के प्रश्न करने पर आपने उत्तर दिया—

''स्थूल-शरीर की एक अवस्था समाप्त होने पर दूसरी अवस्था आरम्भ होती है। यह अवस्था-परिवर्तन तभी तक होगा जब तक स्थूल-शरीर की सत्ता है। आत्मा के साथ इस परिवर्तन का कोई सम्बन्ध नहीं है। आत्मा नित्य एक रूप एवं अविनाशी है। शरीर का नाश होने पर जो शरीरान्तर प्राप्त होता है, वह भी लिंग शरीर के कारण। इसी कारण से शिशु हँसता है, रोता है, भूख से कातर होकर स्तनपान करता है। यह सभी जन्म जन्मान्तर के संस्कार हैं। किन्तु आत्मा सभी कर्मों और संस्कारों के अतीत होकर नित्यकाल के साक्षी रूप में वर्तमान है। अवस्थाओं में परिवर्तन हो रहा है, पर उस अवस्था का द्रष्टा आत्मा सदा एक रूप है। शैशव में 'मैं' था। यौवनावस्था में शैशव चला गया, पर शैशव काल का द्रष्टा 'मैं' वर्तमान में वही 'मैं' हूँ। आगे यह यौवनकाल चला जायगा तब वार्धक्य आयेगा। उस समय भी 'मैं' का अभाव नहीं होगा। यही आत्मा का सार है।''

इस प्रकार की गूढ़ बातें सान्यालजी शिष्यों को लिखा करते और अपने गुरु लाहिड़ी महाशय की भाँति प्रत्येक शिष्य का ख्याल रखते थे। अंपने पत्रों में योग प्रणाली के बारे में भी लिखा करते थे।

१८ जनवरी, सन् १९६२ के दिन सबेरे उन्होंने अपने प्रिय शिष्य ज्वालाप्रसाद तिवारी से कहा—''ज्वाला, अब मैं जा रहा हूँ।''[1]

इसके बाद वे गीता सुनते-सुनते परमधाम को चले गये। सान्यालजी के बारे में पं० गोपीनाथ कविराज ने लिखा है—''वर्तमान समय में उनकी तरह आदर्श-पूत चरित्र देखने में नहीं आता।''

■

---

[1] लाहिड़ी महाशय द्वारा निर्देशित द्वितीय क्रियायोग से सिद्ध साधक चैतन्य रूप से शरीर त्याग सकता है। उन्नत योगी ही द्वितीय क्रियायोग का प्रयोग महाप्रयाण के समय करते हैं, क्योंकि उन्हें इसका ज्ञान रहता है।

योगी वरदाचरण

चंचल, उद्दाम गति से प्रवाहित होने वाली पहाड़ी नदी के मार्ग में जब सहसा कोई वृहद् शिलाखंड आ गिरता है तब उसकी गति अवरुद्ध हो जाती है। नदी अपना मार्ग खोजने के लिए चारों ओर छटपटाने लगती है। ठीक इसी प्रकार की स्थिति काजी नजरूल इस्लाम के जीवन में आयी थी।

उनकी आँखों का तारा, एकमात्र पुत्र 'बुलबुल' का निधन चन्द रोज की बीमारी से हो गया। पति-पत्नी दोनों ही उसे प्राणों से अधिक प्यारा समझते थे। इलाज में कोई त्रुटि नहीं हुई। दिन-रात दोनों उस मासूम की देखरेख करते रहे, पर चेचक जैसे भयानक रोग ने उसे अपना ग्रास बना लिया। नजरूल से अधिक आघात उनकी पत्नी को लगा। वे शय्यागत हो गयीं। इस दोहरी मुसीबत ने नजरूल को उद्भ्रांत बना दिया। उसकी सारी ओजस्विता जैसे पलक झपते ही गायब हो गयी।

नजरूल की यह दशा देखकर लोग चिंतित हो उठे। लोग आते, संवेदना प्रकट करते, सांत्वना देते और चले जाते। लेकिन मन को शांति नहीं मिल रही थी। बातचीत के सिलसिले में एक मित्र ने सलाह दी—''प्रथम पुत्र का शोक मर्मान्तक होता है। कुछ दिनों के लिए बाहर चले जाओ। स्थान परिवर्तन से शांति मिल जायगी।''

नजरूल ने कहा—''मुझसे बुरी दशा पत्नी की है। इसे लेकर कहाँ जाऊँ?''

मित्र ने कहा—''तब एक काम करो। किसी संत या फकीर के पास चले जाओ उनके आप्त वचन से मन को शांति मिल जायेगी।''

मित्र की राय सुनते ही नजरूल को अपने गुरु योगी वरदाचरण की याद आ गयी। तुरन्त उन्होंने निश्चय किया कि ऐसी स्थिति में उनके निकट जाने पर शांति अवश्य प्राप्त होगी।

वरदाचरणजी उन दिनों लालगोला हाईस्कूल में हेडमास्टर थे। गुरु के पास जाते ही नजरूल अपने दु:ख के आवेग को रोक न सके। उनके सिर पर आशीर्वाद का हाथ फेरते हुए वरदाचरण ने कहा—''शांत हो जाओ, नजरूल। भवितव्य होकर ही रहता है। जो गया, उसके लिए शोक करना वृथा है। ईश्वर की यह इच्छा थी।''

नजरूल ने कहा—''अपने मन को कैसे समझाऊँ? मुझे शांति नहीं मिल रही है। कम से कम ऐसा आशीर्वाद दीजिए ताकि उस दर्द को भूल जाऊँ, मेरा मन शांत हो जाय।''

वरदाचरण ने थोड़ी देर तक ध्यान लगाया। इसके बाद नजरूल के हृदय पर हाथ फेरने लगे। वह भावाविष्ट हो गया। थोड़ी देर बाद नजरूल ने आँखें खोलीं।

वरदाचरणजी ने कहा—''अब आज से तुम शांति अनुभव करोगे। तुम्हारी शक्ति अध्यात्म की ओर उन्मुख होगी। चिंता की बात नहीं। ईश्वर तुम्हारा कल्याण करेंगे।''

नजरूल ने स्वत: अनुभव किया कि अब दु:ख का वह आवेग नहीं है, व्याकुलता में कमी आ रही है। बुलबुल के खोने का जो दर्द हृदय को मथ रहा था, उसमें कमी आ रही है।

तभी नजरूल ने पुन: निवेदन किया—''गुरुदेव, एक कामना है। एक बार, सिर्फ एक बार अपने 'बुलबुल' को देखना चाहता हूँ। उसे कलेजे से लगाकर चुम्बन लेना चाहता हूँ।''

वरदाचरण ने कहा—''नहीं। ऐसा नहीं हो सकता। इससे मृतात्माओं को कष्ट होता है। इससे अच्छा है कि उसकी अकाल-मृत्यु की शांति के लिए प्रार्थना करो। जो बिछुड़ गया, उसकी स्मृति करना व्यर्थ है। इससे मनोकष्ट बढ़ता है।''

नजरूल का अतृप्त हृदय पुन: विकल हो उठा। वरदाचरणजी स्थिति को भाँप गये। उन्होंने कहा—''एक शर्त है। तुम स्पर्श नहीं करोगे। केवल कुछ क्षणों तक देख सकते हो। लेकिन यही प्रथम और अंतिम दर्शन होगा।''

''बड़ी कृपा होगी, गुरुदेव! मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा। कब मैं अपने लाल को देख सकूँगा?''

वरदाचरण ने एक मंत्र बताते हुए कहा—''रात को आठ बजे के बाद उस कमरे में आसन बिछाकर बैठना जिसमें बालक की सामग्री अभी तक मौजूदा हो? कमरे का दरवाजा बन्द रखना। साँकल लगाने की जरूरत नहीं। अभी जो मंत्र बताया है, उसे एकाग्र चित्र से जपते रहना। लेकिन यह याद रखना कि लड़के को छूना मत और न उससे बातें करना। अगर ऐसा किया तो आगे जो अनिष्ट होगा, उसकी जिम्मेदारी तुम पर होगी। फिर मेरे पास मत आना।''

''आप निश्चिन्त रहें गुरुदेव। मैं आपके आदेशों का पालन पूर्ण रूप से करूँगा।''

लालगोला से वापस आने के बाद नजरूल में भयानक परिवर्तन हो गया। चेहरा जरूर उदास है, पर उस पर गम्भीरता की छाप है।

* * *

सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी, गायक, कवि, पत्रकार श्री नलिनीकांत सरकार के यहाँ यतीशचन्द्र राय एक दिन आये और कहा—''मेरे लड़के का विवाह तुम्हारे गाँव में हो रहा है। मेरी इच्छा है कि बारातियों में नजरूल को साथ ले चलो। वहाँ सारा इन्तजाम है। कोई कष्ट नहीं होगा।''

''बात ठीक कह रहे हो, पर एक ही दिक्कत है। गाँव का वातावरण है, नजरूल मुसलमान है। डर है कि कहीं कट्टरपंथी विद्रोह न करे बैठें। ऐसी हालत में सारा आयोजन पंड हो जायगा।''

यतीशचन्द्र ने कहा—''इसकी चिन्ता मत करो। नजरूल के लिए स्पेशल इन्तजाम कर दूँगा।''

इसी बारात में सर्वप्रथम वरदाचरणजी ने नजरूल को देखा और नजरूल ने वरदाचरणजी को। योगी पुरुष अपनी दिव्य-दृष्टि से व्यक्ति की प्रतिभा को भाँप लेते हैं। नजरूल अपने मित्र नलिनीकांत की जबानी वरदाचरण की अलौकिक-शक्ति से परिचित था। इसी सूत्र से दोनों एक दूसरे के निकट आते गये।

योगी वरदाचरण किसी को अपना शिष्य नहीं बनाते थे। गुरु बनकर शिष्यों की भीड़ एकत्रित करना उन्हें पसंद नहीं था। व्यक्ति का आधार देखकर कुछ लोगों को योग की प्रक्रिया बता देते थे। कहते थे कि इसका अभ्यास बराबर करते रहना। किसी को कोई मंत्र बताकर जप करने का निर्देश देते थे। जो लोग इनसे मंत्र या योग की प्रक्रिया ग्रहण करते, ऐसे लोग वरदाचरण को, उनके न चाहने पर भी गुरु रूप में स्वीकार कर लेते थे। ऐसे लोगों में नजरूल भी थे।

नजरूल अपने प्राथमिक जीवन में अधिकतर प्रेम गीत या विद्रोही गीत लिखा करते थे। वरदाचरण से आशीर्वाद पाने के बाद उनकी धारा बदल गयी। योगी वरदाचरण ने अपनी यौगिक-शक्ति के माध्यम से उनकी छिपी प्रतिभा का उन्मोचन-मात्र कर दिया था।

गुरुदेव के निर्देशानुसार एक दिन रात को नजरूल आसन पर बैठे मंत्र का जाप कर रहे थे। ठीक इसी समय कमरे का दरवाजा खुला और बुलबुल ने प्रवेश किया। वही चेहरा, वही कद, वही पगध्वनि देखकर नजरूल प्रसन्नता से उछल पड़े । एक बार उसे गले से लगाने की इच्छा हुई, पर उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वे आसन से चिपक गये हैं। जीभ तालू से सट गयी है।

इधर 'बुलबुल' ठुमुक-ठुमुक कर सामने वाली आलमारी के पास गया। उसमें रखे अपने सामानों को टटोलता रहा। थोड़ी देर बाद वापस जाते समय एक बार अपने पिता की ओर देखकर मुस्कराया। फिर एकाएक गायब हो गया।

* * *

बंगाल के सुप्रसिद्ध नाट्यकार श्री द्विजेन्द्रलाल राय के सुपुत्र श्री दिलीप राय की गणना विश्व के श्रेष्ठ गायकों में होती थी। दिलीप बाबू के गायन की प्रशंसा नेहरू जी भी कर चुके हैं। महर्षि अरविन्द के सम्पर्क में आने के कारण दिलीप बाबू में आध्यात्मिक प्रवृत्तियों का विकास तेजी से हुआ। एक बार दिलीप बाबू ने कहा था—''मुझे शिष्य बनाकर योग की शिक्षा देने की कृपा करें।''

श्री अरविन्द ने कहा—''अभी वह समय नहीं आया है। समय आने पर सब हो जायगा।''

अरविन्द की इस उपेक्षा से दिलीप बाबू निराश हो गये। एक अर्से बाद इन्हें सनक सवार हुई कि किसी योग्य व्यक्ति से दीक्षा ले लूँ। तलाश करने पर इन्हें उपयुक्त

गुरु भी मिल गये। एकाएक मन में संदेह उत्पन्न हुआ कि इस गुरु से दीक्षा लेना क्या उचित होगा? यह संदेह उत्पन्न होते ही वे नलिनीकांत सरकार के पास आये और दोनों व्यक्ति योगी वरदाचरण के पास गये।

दिलीप बाबू के प्रश्न को सुनकर योगी वरदाचरण ध्यानस्थ हो गये। कुछ देर बाद आँखें खोलने पर उन्होंने कमर के पास एक स्थान को दिखाते हुए पूछा—''क्या यहाँ दर्द होता है?''

दिलीप बाबू ने कहा—''नहीं तो।''

वरदाचरणजी के कपोलों पर सिकुड़न पड़ गयी बोले—''तो क्या मैंने सब गलत देखा?''

दिलीप बाबू ने कहा—''आपने क्या देखा?''

''मेरे सामने अरविन्द घोष खड़े थे। ठीक आपके पीछे। उन्होंने मुझे यह भी बताया कि इसे कह दो, मैंने तो इसे ग्रहण कर लिया है। एक अर्सा पहले मैंने यह भी कहा था कि कमर के इस स्थान का दर्द दूर होते ही योगाभ्यास प्रारंभ कर सकता है। एक ओर अरविन्द यह सब बातें कह गये और इधर आप कह रहे हैं कि मुझे यहाँ दर्द नहीं है?''

दिलीप कुमार अवाक् होकर देखते रहे। वे हार्निया के दर्द से पीड़ित हैं, इस बात को कोई नहीं जानता। उसी के कारण यह दर्द अक्सर उभड़ता है। महर्षि आये और योगिराज को यह सब बताकर चले भी गये।

अन्त में दिलीप बाबू को कहना पड़ा—''आपका कहना ठीक है। हार्निया का कष्ट दूर हो जाने के बाद उन्होंने योगाभ्यास करने का निर्देश दिया था। लेकिन उन्होंने मुझे शिष्य के रूप में स्वीकार कर लिया है, इस बारे में कभी कुछ नहीं कहा।''

''क्या इस बारे में कभी कोई बातचीत उनसे आपकी नहीं हुई थी?''

दिलीप बाबू ने जिस ढंग से बातें हुई थीं, उसका उल्लेख किया। सारी बातें सुनने के बाद योगी वरदाचरण ने कहा—''उन्होंने यह कब कहा कि मैंने तुम्हें ग्रहण नहीं किया है। हार्निया का दर्द ठीक होते ही योग शुरू करने की आज्ञा देने का अर्थ ही है कि उन्होंने आपको शिष्य के रूप में अपना लिया है।''

इसके बाद दिलीप बाबू ने अपने अतीत तथा भविष्य के बारे में कई प्रश्न पूछे जिसका उत्तर उन्हें दिया गया।

इस घटना के कुछ दिनों बाद दिलीप बाबू की इच्छा हुई कि काशीधाम का दर्शन कर आये। साथ में कई मित्रों के अलावा नलिनी बाबू भी चलने को तैयार हो गये। एकाएक दिलीप बाबू ने सोचा कि काशी में अनेक योगी, महात्मा रहते हैं। अगर किसी उच्चस्तर के योगी से आशीर्वाद लिया जाय तो अच्छा होगा पर उनमें कौन उच्चस्तर का है, इसकी जानकारी कैसे होगी? इस बारे में सलाह देने के लिए वे योगी वरदाचरण के पास आये।

वरदाचरणजी ने कहा—''तुम्हारा कहना ठीक है। आजकल संतों की इतनी भीड़ हो गयी है कि वास्तविक योगी-संतों को लोग पहचान नहीं पाते। ज्ञानी, अच्छे वक्ता

ही योगी-संत बनकर लोगों को ठगते हैं। काशी ही नहीं, संपूर्ण भारत में उच्चकोटि के अनेक संत हैं, पर वे अपने को कभी प्रकट नहीं करते। अज्ञानी बनकर रहने से अध्यात्म की ओर उन्मुख होने में आता है, क्योंकि संसार में इतने पापाचार हो रहे हैं जिन्हें दूर करना सहज नहीं है। अगर योगी-महात्मा इन कष्टों को दूर करने में तत्पर हों तो उनकी सारी शक्ति समाप्त हो जायगी। उन्हें परमार्थ की प्राप्ति नहीं होगी जिसके लिए वे साधना करते हैं। तुम्हारा उद्देश्य सुन्दर है । मैं केवल एक महात्मा को जानता हूँ। वे तीन सौ वर्ष से अधिय वय के हैं। उनका नाम है—लाल बाबा। अगर वे कृपा करके दर्शन दें तो उनसे आशीर्वाद ले लेना।''

इतना कहने के बाद लाल बाबा का पूरा पता आदि लिखकर वरदाचरणजी ने दिया।

सभी लोग काशी आये। दूसरे दिन नलिनी बाबू को साथ लेकर वरदाचरणजी द्वारा दिये पते पर दिलीप बाबू आये। सँकरी गली में दो मंजिला मकान। चारों ओर सन्नाटा था। दरवाजे की साँकल बजाते ही दूसरी मंजिल की खिड़की से जटाधारी एक शक्ल झाँकती नजर आयी।

उक्त साधु ने कहा—''क्यों शोर मचाता है? भाग जा।'' कहने के साथ ही वह शक्ल गायब हो गयी।

इस घटना से दोनों व्यक्ति हतबुद्धि हो गये। अब क्या करें, समझ नहीं पा रहे थे। इसी ऊहापोह में थे। तभी पुनः वही शक्ल दिखाई दी। इस बार तीखे स्वर में आदेश आया—''अभी तक खड़ा है? भाग जा। गली के सभी लोग जानते हैं कि मैं आवारा, बदमाश और लम्पट हूँ। मेरे यहाँ तेरा क्या काम है?''

इस बार भी पहले की तरह चेहरा गायब हो गया। दिलीप बाबू ने कहा—''जब यहाँ तक आये हैं तब इन महात्मा से बिना मिले नहीं जाऊँगा। कम से कम यह तो मालूम हो जाय कि लाल बाबा यही हैं।''

तीसरी बार वही चेहरा पुनः बाहर निकला और उसने कहा—''हाँ, लाल बाबा मैं ही हूँ। जा, कल सबेरे आना।''

दिलीप बाबू ने विस्मय के साथ नलिनीकांत सरकार की ओर देखा। इसके बाद दोनों प्रसन्न चित्त से वापस चले आये। उन्हें इस बात पर संतोष हुआ कि वे ठीक जगह पर पहुँच थे।

दूसरे दिन सबेरे साँकल बजाने पर महात्माजी के शिष्य ने दरवाजा खोला और पूछा—''क्या बात है?''

दिलीप बाबू ने अपने आने का उद्देश्य बताया तो उसने कहा—''बाबा किसी से नहीं मिलते। आपको टरकाने के लिए सबेरे आने को कहा होगा।''

''कृपया बाबा को हमारे आने की सूचना दे दें। अगर वे दर्शन नहीं देना चाहेंगे तो हम वापस चले जायेंगे।'' नलिनीकांतजी ने कहा।

शिष्य महाशय ऊपर गये और वापस आकर इन दोनों व्यक्तियों को ऊपर भेज

दिया। दोनों व्यक्ति प्रणाम करने के बाद दर्शन, अध्यात्म, धर्म के बारे में प्रश्न करते रहे और बाबा बराबर उत्तर देते रहे।

चलते समय दिलीप बाबू ने कहा—''बाबा, कुछ परमार्थ दीजिए।''

बाबा ने कहा—''मुझसे किसी चीज की आशा मत रखो। मुझसे किसी को कुछ नहीं मिलता। मेरे एक शिष्य को नीचे देखा होगा। आज वह बारह वर्ष से मेरी सेवा कर रहा है। उससे पूछो, मुझसे उसे क्या मिला? मुझसे जो लोग कुछ पाना चाहते हैं, वे दूर रहकर प्राप्त करते हैं। अधिक दूर क्यों, जिस व्यक्ति ने तुम्हें यहाँ भेजा है, आज तक उससे मेरी मुलाकात नहीं हुई है। उसे क्या मिला?''

दिलीप बाबू के लिए सारी बातें रहस्यजनक थीं। जिस महात्मा से आज तक वरदाचरणजी मिले नहीं, उसके बारे में उन्हें जानकारी कैसे हो गयी? महात्माजी ने कैसे जान लिया कि हम वरदाचरणजी के निर्देश पर यहाँ आये हैं? इन्हीं सभी प्रश्नों से उलझते हुए दिलीप बाबू कलकत्ता वापस आ गये।

सारी कहानी सुनाने के बाद दिलीप बाबू ने वरदाचरणजी से कहा—''मेरे लिए तो यह अद्‌भुत घटना थी।''

वरदाचरणजी ने कहा—''रहस्य को रहस्य बना दो। केवल एक बात बता दूँ। यह महात्मा असाधारण संत हैं। दाराकिशोह के गुरु।''[1]

* * *

मुर्शिदाबाद जिले की ख्याति नवाबी शासन तथा कलापूर्ण साड़ियों के कारण रही है। इस जिले में अनेक दिग्गजों ने जन्म लिया है। इसी जिले के काँचनतला गाँव के मजुमदार वंश में वरदाचरणजी का जन्म हुआ था। आपकी प्राथमिक शिक्षा गाँव की चटशालाओं में हुई थी। बाद में उच्चशिक्षा के लिए आप बरहमपुर आये। लम्बा कद, गौरवर्ण, उन्नत ललाट, सौम्य आकृति थी। बड़े संयम से रहते थे। बचपन से ही अध्यात्म की ओर रुचि रहने के कारण सर्वदा गम्भीर बने रहते थे। इनके सहपाठियों या परिवार के लोगों को यह ज्ञात नहीं हो पाया कि आप एकान्त में क्या करते हैं। यज्ञोपवीत के बाद से ही आप प्राणायाम तथा ध्यान करते रहे। इस क्षेत्र में कुछ उन्नति कर लेने के बाद योग-शिक्षा के लिए योग्य गुरु की तलाश करने लगे।

---

[1] १. कुम्भ कोणाम् के पूजनीय शंकराचार्य ने ब्रिटेन के पत्रकार डॉ० पाल ब्रण्टन को सम्भवतः इन्हीं महात्मा के बारे में बताया था। ब्रण्टन ने उनसे इच्छा प्रकट की कि किसी उच्चकोटि के संत का नाम सुझाइये, जिनसे दीक्षा लूँ। प्रत्युत्तर में जगत्‌गुरु शंकराचार्य ने कहा था—''तुम्हारी इच्छा की पूर्ति कर सकने की योग्यता रखनेवाले केवल दो योगी इस देश में हैं। उनमें से एक काशी में एक बड़े मकान में छिपे रहते हैं। वह मकान साधारण लोगों की दृष्टि में छिपा रहता है। बहुत कम लोग उनका दर्शन कर पाते हैं। निश्चय ही अब तक कोई अंग्रेज उनकी शांति और एकांत में बाधा पहुँचा नहीं पाया है। मैं तुम्हें वहाँ भेज सकता हूँ। पर मुझे यही आशंका है कि वे शायद किसी अंग्रेज को अपना चेला बनाने को राजी नं होंगे।''

(गुप्त भारत की खोज, पृ० १६५-६६)

योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी के शिष्य पंडित पंचानन भट्टाचार्य थे। इन्हीं भट्टाचार्य महाशय से वरदाचरणजी ने योग की दीक्षा ली थी।[1]

कॉलेज की शिक्षा पूर्ण करने के बाद आप नीमतीता हाईस्कूल में अध्यापक नियुक्त हुए। स्कूल में अध्यापन करने के बाद शेष समय आप योगाभ्यास करते थे। पत्नी के अलावा आपके पड़ोसियों या मित्रों को कभी इस बात की भनक नहीं लगी कि आप निरन्तर योगाभ्यास करते हैं। हमेशा अपने को छिपाकर रखते थे। इस बारे में कभी भूलकर कहीं चर्चा नहीं करते थे। आपमें अद्‌भुत वाक्-शक्ति थी। जिस वक्त आप भाषण देने के लिए खड़े होते थे, उस वक्त ऐसा लगता था जैसे वीणापाणि आपके कंठ में आकर बस गयी हैं। मधुर स्वर में धारा प्रवाह भाषण देने में आप सिद्धहस्त थे। घर पर पत्नी और पुत्र से स्नेह और कॉलेज में कठोर अनुशासन रखना आपका ध्येय था।

नीमतीता से आप लालगोला स्थित महेश नारायण हाईस्कूल में प्रधानाध्यापक के पद पर कार्य करने आये। इस स्कूल को आदर्श स्कूल बनाने के लिए आप अथक परिश्रम करने लगे। योग्य अध्यापकों की नियुक्ति, समय की पाबन्दी और सुचारु रूप से कार्य के संचालन में सक्रिय रहे। राजा साहब के पुस्तकालय के लिए प्रसिद्ध क्रांतिकारी, कवि नलिनीकांत सरकार को पुस्तकाध्यक्ष बनाया। यहाँ महाराजा योगीन्द्रनारायण का एक वृहद् पुस्तकालय है।

श्री नलिनीकांत ने अपने क्रांतिकारी जीवन का उल्लेख करते हुए लिखा है—''प्रथम विश्व युद्ध के समय मैं लालगोला स्थित महाराजा के पुस्तकालय का पुस्तकाध्यक्ष था। उन दिनों सम्पूर्ण भारत क्रांतिकारियों के आन्दोलन से प्रभावित था। काशी-षड्यन्त्र के प्रमुख क्रांतिकारी नेता गोपेशचन्द्र राय को जिन्दा या मुर्दा पकड़ने के लिए दो हजार रुपयों की घोषणा की गयी थी। गोपेशचन्द्र मेरे घनिष्ठ मित्र थे।''

एक दिन मेरे यहाँ एक लड़के को लेकर आये और कहा—''यह लड़का अब तेरे जिम्मे रहेगा। स्कूल में भर्ती कर देना। तू इसका सब कुछ है।''

इतना कहकर वे गायब हो गये। मैं कोई प्रश्न उनसे नहीं पूछ सका। गोपेश के जाने के बाद मैंने लड़के से पूछा—''क्या नाम है तुम्हारा?''

लड़के ने कहा—''धीरेन।''

दूसरे दिन लड़के को लेकर गाँव के स्कूल में गया। हेडमास्टर वरदाचरण मजुमदार मेरे मित्र थे। उन्हीं के बुलाने पर यहाँ काम करने आया हूँ। मैंने लड़के के बारे में झूठा परिचय देते हुए कहा कि यह मेरे दूर के रिश्ते से भतीजा है। यहाँ पढ़ने आया है। कृपया इसे अपने यहाँ भर्ती कर लीजिए।

---

[1] कुछ लेखकों का कहना है कि योगी वरदाचरणजी ने किसी को अपना गुरु नहीं बनाया था। बचपन में इन्हें स्वयं शंकर भगवान् ने दीक्षा दी थी। शायद यह बात सत्य हो। आमतौर पर यह माना जाता है कि बिना गुरु से दीक्षा लिए योग प्रक्रियाओं का सम्यक् ज्ञान नहीं होता।

वरदाचरणजी ने लड़के से कई प्रश्न पूछे। उन सभी प्रश्नों का उत्तर वह देता गया। इस तरह झूठ कहता गया कि मेरी जगह दूसरा कोई होता तो शायद ही भाँप पाता। सारी बातें सुनने के बाद वरदाचरण ने कहा—''अच्छा, कोशिश करूँगा, नलिनी, तुम दोपहर को एक बार मुझसे अकेले में मिलना।''

दोपहर को उनके कमरे में गया तो उन्होंने बिना किसी भूमिका के कहा—''तुम्हारे रिश्तेदार का लड़का काफी तेज मालूम पड़ता है। इसे अगर यहाँ भर्ती कर पाता तो स्कूल का गौरव बढ़ता, पर खेद है कि मैं इसे अपने यहाँ भर्ती नहीं कर सकता।''

''आखिर क्यों?''

''नया स्कूल है। कहीं पुलिस की नजर में आ गया तो व्यर्थ की परेशानी होगी।''

मैंने विस्मय से पूछा—''आखिर आपने लड़के में क्या देखा जिसके कारण पुलिस का भय हो गया?''

वरदाचरणजी ने कहा—''मैंने जो देखा, वह ठीक देखा है। मेरे देखने में गलती नहीं हो सकती।''

वरदाचरणजी ने अपनी आध्यात्मिक-शक्ति के माध्यम से यह समझ लिया कि यह क्रांतिकारियों का लड़का है और उनसे इसका सम्पर्क है। अगर इसे भर्ती किया गया तो कभी भी पुलिस यहाँ आ सकती है।

आगे सरकार ने लिखा है—''लालगोला में रहते हुए मैं चुपचाप दो कार्य और करता था। फरार विप्लवियों को सुरक्षित स्थान में पहुँचाना और हर सम्भव उनकी मदद करना। दूसरा कार्य था विप्लवी दल में साहसी कार्यकर्ताओं को भर्ती करना। वरदाचरणजी अपने स्कूल में कुछ छात्रों को योग की शिक्षा देते थे। उनमें से कुछ छात्रों पर मेरी नजर थी। उनमें से कतिपय लोगों को अपनी पार्टी में लेने के लिए ट्रेनिंग देता रहा। सारा काम चुपचाप होता रहा।''

अचानक एक दिन गाँव में हलचल मच गयी। बोर्डिंग हाउस को पुलिस ने घेर लिया। तलाशी में आपत्तिजनक कोई सामग्री नहीं मिली, फिर भी कई संदेहजनक छात्रों को पकड़कर पुलिस ले गयी। पकड़े गये छात्रों के चाल-चलन, व्यवहार से किसी को सन्देह नहीं होता था कि वे विप्लवी हैं।

उसी दिन दोपहर को वरदाचरण ने मुझे अपने यहाँ बुलाया। जब मैं उनके कमरे में गया तो तुरत कमरे का दरवाजा बन्द करके साँकल चढ़ा दी। फिर धीरे से बोले—''देखो भाई, मेरे द्वारा तुम्हारा कोई अनिष्ट नहीं होगा। यह पहले से ही कह देता हूँ। अब तुम कृपा करके यह बताओ कि तुम्हारी पार्टी में मेरे कितने छात्र सहयोग कर रहे हैं? विश्वास रखो, उन सभी छात्रों को 'गुड करेक्टर' का सार्टिफिकेट देकर विदा कर दूँगा। इससे उनकी कोई हानि नहीं होगी।''

मैंने विस्मय प्रकट करते हुए कहा—''आप यह सब क्या कह रहे हैं? मेरी

कैसी पार्टी? मैं किसी भी पार्टी से सम्पर्क नहीं रखता। आप भ्रमवश मुझ पर सन्देह कर रहे हैं।''

देर तक वरदा बाबू मुझे समझाते रहे, पर मैं बराबर अस्वीकार करता रहा। कुछ दिनों बाद मैंने साश्चर्य देखा कि जितने छात्रों को मैंने विप्लवी बनाया था, उन सभी को एक-एक करके उन्होंने विदा कर दिया। ऐसी योग-शक्ति वरदाचरण में थी।

* * *

इसी प्रकार की एक और घटना का उल्लेख उन्होंने किया है।

एक दिन एक सहपाठी से लबे लड़क मुलाकात हो गयी। कुशल-मंगल के पश्चात् बातचीत के सिलसिले में काजी नजरूल इस्लाम की चर्चा हुई।

अनजाने सहपाठी के मुँह से निकल गया—''नजरूल तो मेरा गुरु भाई है।''

''तुम्हारा गुरु भाई?'' सरकार को विस्मय हुआ।

''हाँ, हम दोनों वरदा भैया के शिष्य हैं।''

वरदाचरण को लोग बातचीत के सिलसिले में 'दादा' कहते थे। नलिनी बाबू ने पूछा—''वरदाचरण के शिष्य कैसे बन गये?''

थोड़ी देर ऊहापोह करने के बाद मित्र ने कहा—''तुम मेरे घनिष्ठ मित्र हो। यह राज किसी के आगे मत खोलना। बात यह है कि मेरे जीवन में एक ऐसी घटना हो गयी है जिसे किसी के सामने कहने में लज्जा का अनुभव होता है। तुम्हें बताने में कोई हर्ज नहीं है। बहुत दिन पहले की बात है। एक दिन सबेरे सोकर उठा तो देखा—पत्नी का बिस्तर खाली है। सोचा, हाजत करने गयी होगी। मुझे क्या मालूम कि किसी से इश्क करने लगी है और आज मौका पाते ही उसके साथ भाग गयी। काफी देर तक इन्तजार करने पर जब वह नहीं आयी तब मुझे शंका हुई।''

मैंने उसके सामान की तलाशी लेनी शुरू की। कपड़े-जेवर आदि सामान गायब थे। तब स्थिति मेरे सामने स्पष्ट हो गयी। पड़ोसियों से पूछताछ करना बेकार है, समझकर मैं तनाव में रहने लगा। लेकिन दो-चार दिन के भीतर ही लोगों को मेरी स्थिति की जानकारी हो गयी।

यकीन करो, मैं अपनी पत्नी को बहुत चाहता था। कभी कोई कष्ट नहीं दिया। फिर भी उससे ऐसी गलती हो गयी। आखिर जब मेरा दिमाग काफी खराब हो गया तब वहाँ से चल पड़ा। तीन-चार माह तक उसकी खोज में जगह-जगह भटकता रहा।

ठीक इन्हीं दिनों अपने एक मित्र के आगे अपना दुखड़ा रोया तो उसने बताया कि योगी वरदाचरण के निकट चले जाओ। वे तुम्हें सही सुझाव देंगे। उनकी सलाह के अनुसार कार्य करना। 'अंधे को क्या चाहिए, दो आँखें'। तुरत लालगोला जाकर उनके चरणों पर गिर पड़ा।

सारी घटना सुनने के बाद उन्होंने कहा—''जो औरत अपने पति की उपेक्षा

कर दूसरों के साथ भाग गयी, उसके लिए इतने उतावले क्यों हो? अगर तुमसे प्रेम होता तो क्या वह भागती? कुलटा पत्नी की अपेक्षा विधुर रहना ठीक है।''

यह राय सुनकर मैं रो पड़ा। मेरे मुँह से देर तक कोई शब्द नहीं निकला। बाद में मैंने कहा—''इतने दिनों के सम्पर्क को सहसा छिन्न-भिन्न करने को जी नहीं चाहता। कम से कम इतना बता दें कि वह कहाँ है?''

दादा वरदाचरण ने हँसकर कहा—''क्या करोगे जानकर? जो चला गया, उसे जाने दो। बदले की भावना दूर कर दो।''

मैंने कहा—''बदले की भावना मुझमें नहीं है। केवल यही पूछूँगा कि इतना कष्ट तुमने मुझे क्यों दिया? मैंने कौन-सा बुरा सलूक तुम्हारे साथ किया। दादा, मैं अपमान की पीड़ा को सह्य नहीं कर पा रहा हूँ।''

दादा को मेरी पीड़ा पर दया आयी। उन्होंने कहा—''एक शर्त पर तुम्हें उसका पता बता सकता हूँ। तुम उसके इस पाप के लिए कुछ नहीं कहोगे और न उससे घृणा करोगे। अगर उसे पहले की तरह पत्नी की मर्यादा देते हुए अपना सको तो मैं उसका पता बता सकता हूँ, अन्यथा उसकी खोज मत करो। उसे अपने पापों की सजा भोगने दो।''

इस बात को सुनकर मुझे शांति मिली। मैंने हाथ जोड़ते हुए कहा—''मैं वायदा करता हूँ कि उसे पूर्ण पत्नी की मर्यादा दूँगा। इस घटना के बारे में कोई बात नहीं करूँगा। हम जैसे पहले थे, उसी तरह जीवन व्यतीत करेंगे।''

मेरी प्रार्थना सुनकर दादा कुछ देर चुप रहे। फिर आँखें बन्द कर ध्यानस्थ हो गये। काफी देर बाद उनकी आँखें खुलीं। उन्होंने कहा—''तुम्हारी पत्नी को बहकाने वाला तुम्हारा ही मित्र था। उसे तुम्हारी पत्नी से नहीं, उसके जेवरों से प्यार था। जब तमाम जेवर समाप्त हो गये तब वह उसे असहाय अवस्था में छोड़कर भाग गया। आजकल वह दूसरों का बरतन-चौका करके दिन काट रही है। पेट भर अन्न जुटाना उसके लिए कठिन हो रहा है। तन पर अच्छे वस्त्र नहीं हैं। अगर तुम उसे देखोगे तो पहचान नहीं सकोगे। एक प्रकार से बड़ी दुर्दशा में है। अपने पापों के लिए निस्सन्देह अनुतप्त है। अब भी अगर ऐसी औरत को पाना चाहते हो तो मैं पता बता सकता हूँ।''

मैंने कहा—''आपसे वायदा करता हूँ कि उसे धर्मपत्नी की पूर्ण मर्यादा देते हुए घर ले आऊँगा।''

मेरी ओर गौर से एक बार उन्होंने देखा। शायद मेरे मनोभाव को पढ़ रहे थे। फिर उन्होंने नवद्वीप के उस इलाके का पता दिया। मकान का दरवाजा किधर है; मकान के आसपास का सारा भूगोल इस तरह बताते रहे जैसे सब कुछ देख रहे हों।

गुरुदेव के बताये पते पर गया। मुझे देखते ही पत्नी मेरे पैरों पर गिर पड़ी। वहाँ से गाँव न जाकर सीधे कलकत्ता चला आया। गुरुदेव की कृपा से हमें नया जीवन प्राप्त हुआ है। उनके बताये मंत्र का बराबर जप कर रहे हैं। अब हमारे यहाँ कोई समस्या नहीं है।''

* * *

श्री वारीन्द्र कुमार घोष कृष्णनगर में कुछ लड़कों से योगाभ्यास कराते थे। इन छात्रों में एक छात्र योगाभ्यास करते-करते पागल हो गया। वारीन्द्रजी मुसीबत में फँस गये। डॉक्टरों से इलाज कराने पर भी कोई लाभ नहीं हुआ। सहसा घोष महाशय को योगी वरदाचरण की याद आयी।

तुरत पागल लड़के का एक चित्र उनके यहाँ भेजा गया।

फोटो लेकर आनेवाले से योगी वरदाचरणजी ने कहा—''घोष बाबू से कहना कि हर किसी को योग की शिक्षा नहीं देनी चाहिए। आधार समझकर ही योगाभ्यास कराना चाहिए। इस लड़के का हृदय बहुत कमजोर है। लड़ने की शक्ति इसमें नहीं है। इसके पागल होने के पीछे एक महत्वपूर्ण कारण है। इसका एक घनिष्ठ मित्र था। दोनों एक साथ फुटबाल खेलते थे। खेल के मैदान में ही इसके मित्र की दुर्घटना के कारण मृत्यु हो गयी। मरने के बाद भी वह अपने इस मित्र को नहीं भुला सका। कहीं योग-साधना के माध्यम से मित्र उससे अलग हो जाय, इस भय से उसने इसे कसकर पकड़ रखा है। दुष्टात्मा है। घबराने की बात नहीं है। आगे क्या-क्या करना होगा, यह सब मैं लिख देता हूँ। घोष बाबू से कह देना कि निर्देशानुसार कार्य कर दें तो लड़का ठीक हो जायगा।''

कुछ दिनों बाद वह लड़का ठीक हो गया।

वरदाचरणजी जिन दिनों लालगोला रहते थे, उन दिनों अक्सर इनके यहाँ एक-दो अपरिचित संत-महात्मा आया करते थे। जो लोग वरदाचरण के योगैश्वर्य से परिचित थे, उन्हें संतों के आगमन से आश्चर्य नहीं होता था। कभी-कभी प्रश्न करने पर अंतरंग मित्रों को किसी संत के बारे में बता दिया करते थे।

कहा जाता है कि बार लालगोला स्थित स्कूल में स्कूल इंस्पेक्टर जाँच करने आया। उसकी शक्त देखते ही स्कूल में खलबली मच गयी। सभी अध्यापक क्लास में अपने-अपने छात्रों को लेकर पढ़ाने लगे। इंस्पेक्टर सीधे हेडमास्टर के कमरे में आया। भीतर कुर्सी पर बैठते हुए उसने हेडमास्टर से हाजिरी रजिस्टर माँगा। सभी अध्यापकों के हस्ताक्षर देखने के बाद नीचे उसने अपना हस्ताक्षर कर दिया।

इसके बाद इंस्पेक्टर साहब हेडमास्टर के साथ प्रत्येक क्लास में मुआइना करने गये। एकाएक हेडमास्टर साहब ने कहा—''साहब, आप मेरे कमरे में जाकर बैठिये। मैं जरा जलपान के लिए आदेश दे आऊँ।''

इंस्पेक्टर साहब हेडमास्टर साहब के कमरे की ओर बढ़े और हेडमास्टर वरदाचरणजी दूसरी ओर मुड़ गये।

हेडमास्टर के कमरे में आकर इंस्पेक्टर साहब जलपान के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। एकाएक वरदाचरणजी ने भीतर प्रवेश करते हुए कहा—''आप आ गये हैं सर। माफ कीजिएगा, वृन्दावन से एक संत आ गये थे, इसलिए आने में देर हो गयी।''

कहने के साथ ही वरदाचरणजी हाजिरी रजिस्टर खींचते हुए उसमें हस्ताक्षर करने गये तो देखा—उनके स्थान पर उनका ही हस्ताक्षर है। उन्हें आश्चर्य हुआ। एकाएक

मुँह से निकल गया—''मेरा हस्ताक्षर किसने किया?''

अब इंस्पेक्टर ने चकित होकर पूछा—''क्या कह रहे हैं? अभी थोड़ी देर पहले मैंने आपके सामने ही सभी अध्यापकों की उपस्थिति हस्ताक्षर देखने के बाद अपना हस्ताक्षर किया। अब आप पूछ रहे हैं कि मेरा हस्ताक्षर किसने किया?''

वरदाचरणजी को चुप रहते देख पुनः इंस्पेक्टर ने कहा—''अब शायद आप यह कहेंगे कि मेरे साथ क्लासों का मुआइना करने नहीं गये थे।''

वरदाचरणजी ने कहा—''साहब, विश्वास कीजिए मैं सीधे घर से…………।''

कहते-कहते वे रुक गये। कुर्सी पर बैठने के साथ ही आँखें बन्द हो गयीं। क्षण भर बाद वे एक कागज लेकर न जाने क्या लिखने लगे।

लिखना समाप्त करने के बाद उन्होंने उस कागज को इन्स्पेक्टर की ओर बढ़ाते हुए कहा-''यह रहा मेरा त्यागपत्र। अब तक मेरी जगह जो सज्जन कार्य कर रहे थे, वह मैं नहीं था। मेरे जैसे नगण्य व्यक्ति को बचाने के लिए मेरे इष्ट देवता आये थे। यह हस्ताक्षर उन्हीं का है। मैं तो सीधे घर से चला आ रहा हूँ।''

तब तक स्कूल के कुछ अध्यापक भी आ गये। सारी बातें सुनने के बाद सभी लोग आश्चर्य के सागर में गोते लगाने लगे।

यह अत्यन्त खेद की बात है कि योगी वरदाचरण के परलोकवासी होने के बाद केवल दो व्यक्तियों ने उन्हें स्मरण किया। यद्यपि वरदाचरणजी अपने को छिपाकर रखते थे, पर जो लोग उनसे लाभ उठा चुके हैं, उन्होंने भी स्मरण नहीं किया।

■

नारायण स्वामी

श्रद्धेय पंडित सीताराम चतुर्वेदीजी का मुझ पर असीम स्नेह है। आपके कनिष्ठ सहोदर का नाम नारायण स्वामी था। काशी तथा कलकत्ता में नारायण स्वामी के बारे में अनेक अलौकिक कहानियाँ सुनता रहा। यहाँ तक कि कुछ ऐसे लोग भी मिले जो अपनी आप बीती सुनाते रहे। चूँकि मेरे जीवन में कभी अलौकिक घटना नहीं हुई, इसलिए मैं इन सभी बातों को बराबर गप समझता रहा।

एक बार कलकत्ता में चतुर्वेदीजी ने कहा—''जरा चलो, हन्नू से मुलाकात कर आयें।''

उनके साथ एक विशाल भवन की तीसरी या चौथी मंजिल में स्थित एक कमरे में आया। वहाँ दर्जनों लोग मौजूद थे। कमरे के मध्य में भीमकाय पलंग था जिस पर नारायण स्वामी विराजमान थे। कई मारवाड़ी उनकी सेवा कर रहे थे। कोई चम्पी कर रहा था तो कोई पैर दबा रहा था। कोई रसोई घर में व्यस्त था तो कोई कमरे की सफाई कर रहा था। गोया शाही दरबार था।

पलंग के दोनों किनारे दर्जनों कुर्सियाँ थीं। हम बैठ गये। नारायण स्वामी बीड़ी पी रहे थे। उन्होंने पूछा—''कहो पंडत, सब ठीक। बिटिया मजे में है?''

यह सम्बोधन मुझे जरा अटपटा लगा। प्रणाम-नमस्कार दूर रहा, हाथ की बीड़ी भी सम्मान दिखाने के लिए उन्होंने नहीं फेंकी। पूर्ववत् कश लगाते रहे। श्मश्रुहीन आनन, कमर में लुँगी पहने थे। पलंग पर ढेरों पुस्तकें बिखरी हुई थीं।

नारायण स्वामी के बारे में इतना सुन रखा था कि आप कोई नम्बर बताते हैं

जिसका लाभ जुआ खेलने वाले उठाते हैं। यह पता नहीं कि घोड़े का रेस, फाटका या कौन सा, कैसा नम्बर होता है।

जाहिर है कि जब सटोरिये लाभ उठाते हैं तब वे प्रसन्न होकर अपनी रकम का उपयोग देवार्चन से लेकर संतों की सेवा में खर्च करते हैं। नारायण स्वामी का सारा खर्च शायद यही लोग उठाते थे।

कलकत्ता और काशी की कई गोष्ठियों में स्वामीजी को अध्यक्षता करते देख चुका हूँ। तंत्र, वेदान्त और धर्म पर साधिकार भाषण देते थे। इतनी विस्तृत जानकारी बहुत कम लोगों में देखने में आयी है।

सहसा मैं कैंसर से पीड़ित हो गया। निरामय के बाद स्वास्थ्य काफी खराब हो गया। मेरी हालत देखकर चतुर्वेदीजी ने कहा—"मुजफ्फरनगर की जलवायु बहुत अच्छी है। मेरे साथ चलकर वहाँ कुछ दिन रहो।"

मुजफ्फरनगर आने पर अनुभव किया कि यहाँ की जलवायु वास्तव में अच्छी है। वृहद् भवन, नीचे ७-८ कमरे थे। और प्रत्येक कमरे में ८-१० स्टील की आलमारियाँ थीं जिसमें पुस्तकें भरी थीं। मेरी समझ में तंत्र-साहित्य का इतना बड़ा संग्रह किसी भी पुस्तकालय में नहीं होगा। बंगला, अंग्रेजी, हिन्दी, मराठी, उर्दू, संस्कृत भाषाओं की पुस्तकें थीं। पुस्तकों को देखने से स्पष्ट हो जाता था कि सभी पुस्तकों का अवलोकन हुआ है, क्योंकि पुस्तकों में लाल स्याही से निशान लगाये गये थे। इतने ग्रंथों का अध्ययन करना मंदराचल पर्वत उठाने के बराबर था। निस्सन्देह नारायण स्वामी अद्भुत व्यक्ति थे।

मुजफ्फरनगर में रहते समय रात को कभी-कभी ऐसा लगता था जैसे आँगन में कोई टहल रहा है। हल्की पदचाप की ध्वनि सुनाई देती थी। कमजोरी के कारण मैं अपनी जगह लेटा रहता था। अंधेरे में कुछ दिखाई नहीं देता था।

सहसा एक दिन चतुर्वेदीजी ने कहा—"चलो, हरिद्वार-ऋषिकेश का चक्कर लगा आयें।"

ऋषिकेश में गंगा किनारे लँगड़े बाबा का एक आश्रम है। लँगड़े बाबा का नाम स्वामी राममनोहर गिरि है। मैं आश्रम के सामने स्थित फूलों के बाग को देख रहा था। सहसा कमरे के भीतर से आवाज आयी—"मुखर्जी, इधर आओ।"

कमरे में जाते ही चतुर्वेदीजी ने कहा—"स्वामीजी नारायण स्वामी के बारे में कुछ सुना रहे हैं। सुनो।"

समझते देर नहीं लगी कि यहाँ नारायण स्वामी की चर्चा चल रही है। सम्भवत: चतुर्वेदीजी को यह आभास हो गया है कि मैं उनके योगैश्वर्य के बारे में विश्वास नहीं करता और अब एक अनुभवी संत की जबानी उनकी कहानी सुनाना चाहते हैं।

स्वामी राम मनोहर ने कहा—"मैं उनके वेदान्त ज्ञान से प्रभावित होकर एक अर्से तक उनके मुजफ्फरनगर वाले भवन में रहा। अपने सामने एक-दो नहीं, अनेक

अलौकिक शक्तियों का प्रदर्शन करते देख चुका हूँ। मध्य रात्रि में वे नीचे के आँगन में विभिन्न प्रकार के जीवों के साथ नृत्य करते और उन्हें भोजन खिलाया करते थे। वह एक ऐसा भयानक दृश्य था जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती। मुझे यह मालूम था कि बाबा शराब पीते हैं, वेश्याओं के यहाँ गाना सुनते हैं। उनके यहाँ कई वारांगनाओं को आते-जाते भी देखा था।''

एक दिन देखा कि दो सुन्दर युवतियाँ उनकी खाट पर बैठकर न जाने क्या बातें कर रही थीं। यह दृश्य मुझे नागवार लगा। मैंने जानबूझ कर खाँसा और तुरन्त दोनों युवतियाँ हवा में गायब हो गयीं। अपने कमरे में टहलते हुए न जाने किस अदृश्य व्यक्ति से बातें करते थे। अपर पक्ष की आवाज नहीं सुनाई देती थी, पर स्वामीजी की बातें अस्पष्ट रूप से सुनाई दे रही थीं। कभी-कभी मुझे यह सब घटनाएँ अजीबो-गरीब लगतीं। पूछने पर अक्सर टाल जाते या कहते, आँखों का भ्रम है।

एक दूसरी घटना की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा—''मैं नारायण स्वामी की वाक्-शक्ति का परिचय कई बार प्राप्त कर चुका हूँ।'' पंडित सीताराम चतुर्वेदीजी की ओर देखते हुए गिरिजी ने कहा—''सुजानगढ़ वाली घटना तो आप जानते होंगे।''

मैंने सोचा कि यह कहानी सुनने से वंचित न रह जाऊँ, इसलिए पूछा—''वह कौन सी घटना थी?''

स्वामी राम मनोहर ने कहा—''नारायण स्वामी एक अर्से तक सुजानगढ़ में थे। यह घटना वहीं हुई थी। नारायण स्वामी अपने तन पर बहुत कम कपड़े रखते थे। अवधूत आदमी को बोझा लादना पसन्द नहीं था। राजस्थान गर्म प्रदेश, अक्सर शाम होने के बाद वे दिगम्बर होकर टहला करते थे। उन दिनों स्वामीजी जहाँ रहते थे, वहीं एक जज रहता था। मुमकिन है कि इन्हें दिगम्बर रूप में टहलते कई बार देख चुका हो। एक दिन प्रत्यक्ष रूप में देखते ही वह बिगड़ उठा। नारायण स्वामी चूकने वाले नहीं थे। बात बढ़ गयी। अन्त में जज साहब अपने पद की शान में आ गये और कहा—''ठीक है। कल सबेरे तुम्हें मजा चखाऊँगा।''

स्वामीजी अपने गणों के साथ वहाँ रहते थे। जज और स्वामीजी में होने वाली गाली-गलौज को वे लोग सुनते रहे । पता नहीं, सबेरे क्या होगा। सभी चिन्तित हो उठे। जज साहब के 'मजा चखाऊँगा' शब्द सुनते ही नारायण स्वामी ने कहा—''देखा जायगा।''

भोर के वक्त अपने एक भक्त को बुलाकर उन्होंने कहा—''देख, मैं डूँगरी (पहाड़) पर जा रहा हूँ। यह जज मुझे बुरी तरह खोजेगा। पहले कुछ मत बताना जब यह पागलों की तरह परेशान हो उठे और तुझसे पूछे तब तू इन्हें मेरे पास ले आना।''

इतना कह कर स्वामीजी एक ओर रवाना हो गये। सबेरा होने के बाद बीकानेर से तार आया कि जज साहब को गिरफ्तार कर लिया जाय और उन्हें जिला खारिज कर दिया जाय। इस तार को पाते ही जज साहब की हालत 'काटो तो खून नहीं' जैसी

हो गयी। ऐसी कौन-सी गलती हो गयी जिसके कारण अन्नदाता ने यह आदेश भेजा? मुसीबत आने पर व्यक्ति की बुद्धि खराब हो जाती है। जज साहब की बेचैनी देखकर घर के लोग भी घबरा उठे।

अचानक पत्नी ने कहा—''मेरी समझ से कल रात को आप नंगे बाबा से झगड़ रहे थे, उनके कारण ऐसा हुआ होगा।''

जज साहब को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ। एक सामान्य साधु राज दरबार में रातो-रात कैसे अपना प्रभाव डाल सकता है? लेकिन पत्नी के अधिक दबाव डालने पर वे नारायण स्वामी की खोज में आये। यहाँ आने पर पता चला कि वे नहीं हैं। रमता योगी हैं, कहीं चले गये हैं। अब जज साहब बौखला उठे। उन्हें धीरे-धीरे यह विश्वास होने लगा कि शायद उस नंगे सन्त से हुए झगड़े के कारण यह सजा मिली है।

अब वे तेजी से पागलों की तरह सन्त की खोज करने लगे। उनकी चिन्ता-जनक स्थिति को देखकर नारायण स्वामी के भक्त ने कहा—''मालिक, आप एक बार डूँगरी तक देख आइये। अक्सर बाबाजी को उधर जाते देखा है। शायद वहाँ मिल जायँ।''

आशा की किरण पाकर जज साहब ने कहा—''अरे भाई, जरा मेरे साथ तू भी चल। पता नहीं, डूँगरी में वे कहाँ होंगे।''

गण स्वामीजी के निर्देशानुसार उन्हें लेकर डूँगरी तक आया। नारायण स्वामी वही दिखाई दिये। उन्हें देखते ही जज साहब दौड़ते हुए उनके चरणों पर गिर पड़े। बोले—''महाराज, मुझे बचाओ वर्ना मैं यही मर जाऊँगा।''

नारायण स्वामी ने कहा—''घबराने की जरूरत नहीं है बेटा। नौकरी भले ही चली जाय, पर जिला खारिज नहीं होगा।''

स्वामीजी की जबानी यह बात सुनते ही जज साहब चौंक उठे। उन्होंने अपने मुँह से कुछ नहीं कहा और यह साधु कैसे मेरे साथ हुई दुर्घटना को जान गया? शायद कल रात की घटना के कारण ही ऐसा हुआ है। जज साहब अब अपनी गलती समझ गये।

इसी बीच गिरिजी लघु शंका करने गये। हम लोग जज साहब की घटना पर सोचते रहे। वापस आने पर गिरिजी ने कहा—लगे हाथ एक और कहानी सुन लो। वे कितने अद्‌भुत पुरुष थे, इस घटना से मालूम हो जायेगा। नारायण स्वामी के चमत्कार से बीकानेर नरेश भी प्रभावित हुए थे। बात यह हुई थी कि जिन दिनों स्वामीजी साधनारत थे, उन्हीं दिनों बीकानेर नरेश गंगा सिंह वहाँ आ गये। यहाँ वे अपनी कोठी में ठहरे थे। उन दिनों नारायण स्वामी कुछ चमत्कार कर चुके थे किसकी चर्चा नगर में होती थी। सुजानगढ़ में उन्हें एक सिद्ध सन्त माना जाता था।

बात महाराजा के कानों तक पहुँची कि यहाँ आजकल एक सिद्ध संत रहते हैं। नगर के लोग उनका सम्मान करते हैं। कई लोगों की जान बचा चुके हैं। संत की इतनी प्रशंसा सुनने पर महाराजा को उत्सुकता हुई कि उनसे मुलाकात की जाय।

उन्होंने अपने कर्मचारी को आदेश दिया कि मैं उनका दर्शन करना चाहता हूँ। उन्हें आदर सहित ले आओ।

आदेश पाते ही लोग संत की खोज में चल पड़े। छोटा कस्बा था। तुरन्त पता लगा कि संतजी थोड़ी देर पहले जसवन्त नगर गये हैं। घुड़सवार शीघ्र गति से उधर दौड़े । रास्ते में वे कहीं नहीं दिखाई दिये। वापस लौटकर सेवक ने सारा समाचार सुनाया। महाराजा ने कहा—''कोई हर्ज नहीं, फिर कभी मिल लेंगे।''

महाराजा राजधानी जाने के लिए कोठी से चल पड़े। महाराजा बीकानेर की अपनी रेलगाड़ी और कर्मचारी थे। महाराज रेल पर बैठे। ड्राइवर ने सीटी दी और गाड़ी स्टार्ट की, पर गाड़ी चली नहीं। एक, दो नहीं, तीन ड्राइवर इंजन की जाँच में व्यस्त हो गये। कारण क्या है, खोजने पर पता नहीं चला। महाराजा ने यात्रा स्थगित कर दी।

दूसरे दिन किसी दरबारी ने आकर सूचना दी कि जिस संत की कल तलाश हो रही थी, वे आ रहे हैं। महाराजा ने कहा—''उन्हें बाइज्जत यहाँ ले आओ।''

नारायण स्वामी का आदर के साथ स्वागत किया गया। थोड़ी देर बातचीत करने के बाद महाराजा ने कहा—''अगली बार आने पर आपसे पुन: बातें होंगी।''

महाराजा स्टेशन आये। गाड़ी पर बैठे और वह तुरन्त रवाना हुई। तुरन्त उनके आदेश पर गाड़ी रुक गयी। महाराज ने पूछा—''गाड़ी में क्या खराबी थी जिसकी वजह से कल नहीं चली?''

ड्राइवरों ने कहा—''कोई खराबी नहीं थी। हम लोग दिन भर ही नहीं, रात तक जाँच करते रहे। सबेरे तक गाड़ी स्टार्ट नहीं हुई। लेकिन आपके आते ही आज स्टार्ट हो गयी।''

महाराजा ने पुन: यात्रा स्थगित कर दी और सुजानगढ़ की कोठी में चले आये। कोठी में आते ही आदेश दिया कि संतजी को बुला लाओ।

नारायण स्वामी के आने पर महाराजा ने कहा—''आपसे बातचीत करने के लिए मैंने आज की यात्रा स्थगित कर दी।''

नारायण स्वामी ने कहा—''नहीं राजन्, मेरे कारण गाड़ी नहीं गयी और आज आपको मैं यहाँ ले आया।''

इसके बाद योगादि के बारे में सवाल-जवाब होते रहे। सहसा बीकानेर नरेश ने पूछा—''कृपया यह बताइये कि मैं पिछले जन्म में किस योनि में था?''

नारायण स्वामी ने कहा—''मैं बताऊँगा ही नहीं, वह स्थान आदि दिखा दूँगा। चल उठ।''

दोनों गन्तव्य स्थल की ओर चल पड़े । बीकानेर के कुछ दूर आगे लालगढ़ का जंगल है। यहाँ आने पर महाराजा ने देखा कि एक वृद्ध संत बैठे हैं।

नारायण स्वामी ने कहा—''पिछले जन्म में तू इसी संन्यासी का सेवक था।''

महाराजा को आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा—''इस संन्यासी की उम्र कितनी है।''

नारायण स्वामी ने कहा—''डेढ़ सौ वर्ष के ऊपर है। तू पिछले जन्म में जाट था और इनके लिए लकड़ियाँ लाता था। यह जान ले कि कुछ दिनों बाद पुनः इनकी सेवा में आ जायगा।''

राम मनोहर गिरि ने कहा—''इस तरह की अनेक कहानियाँ हैं। कहाँ तक सुनाऊँ? कलकत्ते के मारवाड़ी तो अर्थ-लोभ के कारण इनकी सेवा करते थे वर्ना ऐसे अवधूत को वे टके को न पूछते।''

* * *

पंडित भीमसेन चतुर्वेदी काशी स्थित छोटी पियरी मुहल्ले में रहते थे। आपने प्रसिद्ध कर्मकाण्डी पंडित प्रभुदत्त अग्निहोत्री से कर्मकाण्ड की शिक्षा प्राप्त की थी। मुजफ्फरनगर के प्रसिद्ध सेठ चैनसुख राम ने जब अग्निहोत्र लेना चाहा तब पंडित प्रभुदत्त ने पंडित भीमसेन को वहाँ भेजा। बाद में पंडित भीमसेन चतुर्वेदी सपरिवार वहीं रहने लगे। इनके आवास के लिए सेठ ने भवन भी दिया। लेकिन वहाँ चतुर्वेदीजी अस्थायी रूप से रहते थे।

इसी नगर में १३ फरवरी, सन् १६०६ ई० को नारायण स्वामी का जन्म हुआ। आपकी राशि का नाम नारायण था, इसलिए आपका नाम नारायण स्वामी हुआ। पुकारने के लिए हनुमद्दत्त रखा गया था, क्योंकि पिताजी हनुमान देवता की आराधना करते थे और उन्हीं की कृपा से आपका जन्म हुआ था। घर के लोग पूरा नाम न लेकर 'हन्नू' कहकर पुकारते थे।

आपकी प्राथमिक शिक्षा मुजफ्फरनगर में हुई। बचपन से ही आप मेधावी छात्र थे। जिस पुस्तक को एक बार पढ़ लेते थे, वह कंठस्थ हो जाती थी। डी०ए०वी० कॉलेज के हिन्दी अध्यापक ने किसी बात पर आपको फटकारा। इस अपमान को आप पचा नहीं सके। कर्मकाण्डी ब्राह्मण का पुत्र, घर में सबसे छोटा होने के कारण दुलारू था, स्वाभिमान कूट-कूट कर आपकी रगों में भरा था। बात लग गयी।

टिफिन टाइम में बाहर आये और पैदल चल पड़े। कभी-कभी जीवन की सामान्य घटना व्यक्ति के जीवन की दिशा बदल देती है। अधिकांश महापुरुषों के जीवन में ऐसी घटनाएँ हुई हैं।

मुजफ्फरनगर से एक स्टेशन आगे आप पैदल चलकर मंसूरपुर आये। यहाँ जो पहली गाड़ी मिली, उससे दिल्ली चले गये। दिल्ली में इधर-उधर चक्कर काटने के बाद एक दिन राजस्थान की ओर जाने वाली गाड़ी पर बैठ गए। न जाने क्या मूड में आया कि सुजानगढ़ स्टेशन पर उतर गये।

सुजानगढ़ में सरस्वती बाई नामक एक महिला को आप पर दया आयी। वह अपने यहाँ ले जाकर बच्चे की तरह खिलाती-पिलाती रही। लेकिन आपका मन यहाँ नहीं लग रहा था। एक दैवी-शक्ति आपको अपनी ओर आकर्षित करती रही। आखिर एक दिन आप वहाँ से पलायित होकर पुष्कर चले आये।

महर्षि रमण की तरह नारायण स्वामी का कोई गुरु नहीं था। वे भारत में प्रचलित किसी साधु सम्प्रदाय में कभी सम्मिलित नहीं हुए। उन्हें किसी सन्त, महात्मा या योगी ने बीज मंत्र नहीं दिया। अब यह बताना कठिन है कि साधना की प्रक्रिया में वे कैसे इतने उच्चस्तर तक पहुँच गये थे।

पुष्कर में तीन वर्ष रहने के बाद वे दिल्ली आये तो परिचितों ने इन्हें पकड़ लिया। मुजफ्फरनगर आने पर माँ इन्हें कड़े पहरे में रखने लगी।

१५ मार्च, सन् १६२८ ई० को आप माँ के स्नेह-बंधन से हमेशा के लिए मुक्त हो गये। माँ के निधन के बाद पुनः यायावरी को अपनाया। लेकिन एक विशेष परिवर्तन आपमें हो गया था। अब जहाँ कहीं जाते, उसकी सूचना घर पर दे देते थे।

अपने अवधूत-जीवन में आपने वेद, ज्योतिष, दर्शन और तंत्र का गहरा अध्ययन किया। अपनी अपूर्व मेधाशक्ति तथा विलक्षण प्रतिभा के कारण कई भाषाओं के ज्ञाता बन गये। मातृभाषा हिन्दी के अलावा बंगला, उर्दू, अंग्रेजी, मराठी भाषा पर आपने समान अधिकार प्राप्त किया।

जिन दिनों आपकी उम्र १८ वर्ष थी, उन दिनों आप पुष्कर में थे। वहीं आपने 'शिवोऽहम्' नामक महाकाव्य लिखा। कहा जाता है कि महाकवि जयशंकर प्रसाद जिन दिनों 'आँसू' लिख रहे थे, उन्हीं दिनों, उसी शैली में आपने यह महाकाव्य लिखा था।

आप अंक-शास्त्र के अच्छे विद्वान् थे। चौकोर और गोल यंत्र बनाकर लोग पूजा करते हैं। इस तरह अनेक यंत्र आपकी डायरी में दर्ज हैं। इसे आप 'नौकर' कहते थे। एक बार ६ फुट लम्बे और ४ फुट चौड़े कागज में अंक-शास्त्र का नायाब यंत्र आपने बनाया जिसे देखकर आपके यहाँ आने वाला एक विदेशी यात्री चकित रह गया।

* * *

नारायण स्वामी अपने ढंग के तांत्रिक थे। आम तौर पर वामाचारी पंच मकार के प्रेमी होते हैं।[1] नारायण स्वामी पंचमकारों की व्याख्या इस ढंग से करते हैं जिसके बारे में मुझे जानकारी नहीं थी।

कुलार्णव तंत्र में लिखा है—

मद्यं मांसं च मीनं च मुद्रा मैथुनमेव च ।
मकार पंचकं प्राहुर्योगिनां मुक्तिदायकम् ॥

नारायण स्वामी इस श्लोक की व्याख्या इस तरह करते हैं—"मद्य, मांस, मीन,

---

[1] साधक की जब कुंडलिनी-शक्ति जागृत हो जाती है तब वह मस्तक स्थित सहस्त्रार तक जाते समय, मूलाधार से प्रारंभ कर प्रति चक्र को अपने वाम भाग में परिवेष्ठित करती हुई, साथ ही तत्चक्रों में स्थित वर्णों को अपने अंग में मिला लेती है। समाधि भंग होने के बाद मस्तिष्क से मेरुचक्र आते समय वह प्रति चक्र को अब विपरीत दिशा में यानी दक्षिण भाग में परिवेष्ठित करती हुई नीचे आ जाती है। कुंडलिनी-शक्ति की इस प्रक्रिया को वामाचारी अपनाते हैं।

मुद्रा (मुद्रा का अर्थ है—भुना हुआ चिउड़ा, चावल, गेहूँ और चना) और मैथुन योगियों के लिए अनिवार्य है। वामाचारी इस श्लोक का अर्थ जिस रूप में करते हैं, वह वस्तुतः वास्तविक नहीं है।

गंधर्व तंत्र के अनुसार ब्रह्मरंध्र में समवस्थित सहस्रदल कमल है, उससे बह कर निकलने वाली अमृत धारा को मद्य बताया गया है—

जिह्वया गलसंयोगात् पिबेत्तदमृतं तथा ।
योगिभिः पीयते तत्तु न मद्यं गौडपैष्टिकम् ॥

अर्थात् जीभ उलट कर गले के संयोग से वह अमृत योगी लोग पीते हैं। (यह वह शराब नहीं जो बाजार में 'अद्धा-पौवा' के नाम पर बिकता है।)

कुलार्णाव तंत्र में ही मांस के बारे में स्पष्ट है—योग जानने वाले जो पुरुष अपने ज्ञान के खड्ग से पुण्य तथा पापरूपी पशुओं को मारकर अपने चित्त को परमतत्व में विलीन कर देता है, वही मांस खाने वाला कहलाता है।

मीन के बारे में आगम शास्त्र कहता है—गंगा (इड़ा) और यमुना (पिंगला) के नीचे (श्वास और प्रश्वास नामक) दो मत्स्य हैं। जो इन्हें खा जाय, वही मत्स्यसाधक हो जाता है।

मुद्रा के बारे में विजय तंत्र में लिखा है—"दुष्टों की संगति से बचे रहने को ही मुद्रा कहते हैं, क्योंकि सत्संग से मुक्ति मिलती है और दुष्टों का साथ होने पर बंधन होता है।"

रहा मैथुन का प्रश्न। इस बारे में कहा गया है—

इडापिंगलयोः प्राणान् सुषम्नायां प्रवर्त्तयेत् ।
सुषम्ना शक्तिरुद्दिष्टा जीवोऽयं तु परः शिवः ॥
तयोस्तु संगमे देवैः सुरतं नाम कीर्त्तितम् ॥

अर्थात् इड़ा और पिंगला में स्थित प्राणों (श्वास-प्रश्वासों) को सुषम्ना में प्रवर्त्तित कर दें, क्योंकि सुषम्ना ही शक्ति है और जीव ही परात्मा शिव है।[1] उनके (जीव और सुषम्ना) पारस्परिक संगम को ही देवताओं ने मैथुन बताया है।

नारायण स्वामी की इस व्याख्या से उन लोगों का भ्रम दूर हो जाना चाहिए जो पंचमकार का गलत अर्थ लगाते हैं। नारी संभोग, मत्स्य भोजन और मद्यपान से कैसे कोई साधक परमतत्व प्राप्त कर सकता है?

* * *

परिवार में साले का बड़ा महत्व होता है। श्रद्धेय पं० सीताराम चतुर्वेदी के साले पं० शिवनारायण उपाध्याय के साथ नारायण स्वामी विश्वविद्यालय से वापस लौट रहे थे।

अस्सी की चौमुहानी आने पर उपाध्यायजी ने कहा—"स्वामीजी, सुनता हूँ कि

---

[1] तंत्र मत से कुंडलिनी शक्ति मूलाधार से सहस्त्रार में जाकर शिव के साथ विलास करता है। कुंडलिनी का एक नाम वामा भी है—सा वामा शक्तिरूपा च सा शिखा चित्कला परा।

आप बड़े सिद्ध संत हैं। अनेक चमत्कार दिखा चुके हैं। आज आपकी परीक्षा लेना चाहता हूँ।''

नारायण स्वामी ने कहा—''बोल साले, कौन सी परीक्षा लेना चाहता है।''

उपाध्यायजी ने कहा—''आप ऐसा मंत्र पढ़िये कि तुरन्त पानी बरसने लगे।''

चलते-चलते स्वामीजी ने हाथ ऊपर उठाकर हिलाया और पानी बरसने लगा। बिना बादल, बेमौसम की बरसात से सड़क पर भगदड़ मच गयी। भदैनी के समीप उपाध्यायजी का प्रेस था। वहाँ तक आते-आते लोग भींग गये।

उपाध्यायजी ने कहा—''अब ऐसा कीजिए कि पानी बन्द हो जाय।''

पहले की तरह स्वामीजी ने हाथ ऊपर उठाकर घुमाया और पानी रुक गया।

स्वामीजी अपने मित्रों के साथ बैठ ताश खेल रहे थे। जिस मकान में वे ताश खेल रहे थे, उस परिवार के लड़के की जन्मकुंडली खो गयी थी। घर के सभी लोग सरगर्मी से खोजने में लगे थे। फलस्वरूप शोरगुल हो रहा था। कुंडली मिलाने के लिए कन्यापक्ष की ओर से पंडित आया था।

नारायण स्वामी ने एक आदमी से कहा—''देखो तो क्यों सब उधम मचा रहे हैं?''

घटना का पता लगते ही उन्होंने एक कुंडली बना दी और कहा—''इससे मिलान करके तिथि वगैरह तय कर लें।''

महीनों बाद लड़के के नाना के यहाँ असली कुण्डली मिली। मिलान करने पर देखा गया कि दोनों एक जैसी हैं। ग्रह-राशि यथास्थान है।

श्रीमती शान्ति देवी स्वामीजी की शिष्या हैं। उनका एक घरेलू नौकर था। पता नहीं, किस कारण से भूतग्रस्त हो गया। नौकर होने के कारण लोगों ने इस पर ध्यान नहीं दिया। एक दिन सीढ़ी से उतरते समय वह गिरकर बेहोश हो गया।

लोग उसे डॉक्टर के पास ले गये। डॉक्टर ने कहा—''इसके बदन में खून बन नहीं रहा है। बचना मुश्किल है।''

अन्य कई डॉक्टरों ने यही सम्मति दी। अचानक शान्ति देवी को अपने गुरु की याद आयी। उसे वे गाड़ी पर लादकर नारायण स्वामी के पास लायीं। सारी बातें सुनने के बाद स्वामीजी ने उसे एक माला पहना दी और कहा—''एक सप्ताह तक माला न उतराने पाये। घबराने की बात नहीं है।''

एक सप्ताह बाद वह ठीक हो गया। इसी प्रकार की एक घटना मुजफ्फरनगर के रामकृष्ण शास्त्री के साथ हुई थी। उनके बड़े भाई की मृत्यु हो जाने पर उन्हें मुक्ति नहीं मिल रही थी। अक्सर वे परिवार के किसी न किसी सदस्य पर सवार होकर अपनी बात कहा करते थे।

यह बात स्वामीजी के निकट पहुँची। उन्होंने कहा—''शास्त्री, तुम ३१ हजार गायत्री पाठ करो और ३१ सौ हवन करा दो। सब ठीक हो जायगा।''

इस क्रिया के बाद रामकृष्ण शास्त्री के बड़े भाई की आत्मा को मोक्ष प्राप्त हो

गया। पानाजी नामक एक महिला स्वामीजी की शिष्या थी। एक बार वह स्वामीजी से मिलने के लिए मुजफ्फरनगर गयी। गाड़ी अपने निर्धारित समय से काफी देर में पहुँची। स्वामीजी का भवन स्टेशन से लगभग तीन मील दूर एक गली में था। सवारी न मिलने पर वह पैदल रवाना हुई और रास्ता भूल गयी। ठीक इसी समय एक महिला आयी और पूछा—''कहाँ जाओगी?''

पानी देवी ने कहा—''खटीकान मुहल्ले में नारायण स्वामी के यहाँ।''

''आओ।'' कहकर महिला आगे-आगे चली। गली के पास आते ही वह न जाने कहाँ अन्तर्धान हो गयी। गली के भीतर मकान था। पाना देवी से अब गलती नहीं हुई।

घर पर आते ही स्वामीजी ने तुरन्त पूछा—''उस औरत ने तुम्हें सकुशल यहाँ पहुँचा दिया था न?''

पाना देवी हत्‌बुद्धि-सी स्वामीजी की ओर देखने लगी।

तभी स्वामीजी ने कहा—''चल, आज मुझे गाना सुनाते हैं।''

इतना कहना था कि न जाने कहाँ से दो बाईजी और साजिन्दे अपना सामान लेकर आ गये। काफी देर तक मुजरा होता रहा। रात को जैसे सब आये थे, उसी प्रकार भोर होते ही गायब हो गये।

जो लोग स्वामीजी से आर्थिक लाभ चाहते थे, उनकी इच्छा भी पूरी हो जाती थी। खासकर जो सटोरिये थे। एक बार गर्मी के दिनों में पंखा खोलकर बैठे और कहने लगे—''मामचन्द, मैंने ५६ इंच का पंखा लिया और लोग ४८ का बता रहे हैं। मैं लगवाऊँ ५६ इंच का और लोग कहते फिरें कि ४८ है ४८।''

मामचन्दजी धड़ा लगाते थे। इशारा समझ नहीं पाये। बोले—''कहने दीजिए स्वामीजी। उनके कहने से होता क्या है?''

दूसरे दिन बेचारे आये और रोने लगे—''बहुत दिनों बाद आपने कृपा की और मैं समझ नहीं सका। अगर ४८ पर धड़ा लगा देता तो मुझे कई हजार मिल जाते।''

इसी प्रकार एक बार कलकत्ते से अपने भवन के लिए ६ ताले लेकर आये। पं० विश्वम्भरदत्त तिवारी से बोले—''देख ६ ताले लाया हूँ। पूरे ६ हैं।''

तिवारीजी को धड़ा लगाने का शौक था, पर वे समझ नहीं पाये। दूसरे दिन स्वामीजी के पास आकर रोने लगे। इस प्रकार जो लोग भाँप जाते थे, वे रकम लगाकर लाभ उठाते थे।

एक बार स्वामीजी मुजफ्फरनगर वाले अपने मकान में कुछ लोगों के साथ ताश खेल रहे थे। इतने में एक लड़की आकर बोली—''पिताजी, भैया न जाने कहाँ हैं। माँ आपको बुला रही है, चलिये।''

लड़की के पिता ने कहा—''जा, जा! इधर-उधर कहीं गया होगा, आता ही होगा।'' कहने के बाद वे ताश खेलने लगे।

थोड़ी देर बाद पुनः वह लड़की आयी और बोली—''पिताजी, घर चलिये। माँ रो रही है। प्रकाश भैया का कहीं पता नहीं चल रहा है।''

आखिर झल्लाकर पिता को घर जाना पड़ा। उसके जाते ही नारायण स्वामी ने वहाँ बैठे एक व्यक्ति को दस रुपये देकर कहा—''तू यहाँ से सीधे स्टेशन चला जा। गाड़ी आ रही है। दिल्ली स्टेशन पर उतरकर मुसाफिर खाने में चले जाना। वहीं ४-५ लड़कों के साथ प्रकाश बैठा मिलेगा। अपने साथ वापस लेते आना। वह घर से भाग गया है।''

शाम को प्रकाश और उसके पिताजी स्वामीजी के पास आकर प्रणाम कर गये।

मुजफ्फरनगर में चुनाया कसाई रहता था। उसे यह मालूम था कि स्वामीजी लोगों पर कृपा करते हैं। उनकी कृपा से लोग मालामाल हो गये हैं। अपुत्रकों को पुत्र मिला है, रोगियों का रोग-कष्ट दूर हुआ है। एक दिन वह स्वामीजी के निकट आया। उन दिनों वह आर्थिक संकट में था।

उसकी कहानी सुनने के बाद स्वामीजी ने खिला-पिलाकर सो जाने की आज्ञा दी। थोड़ी देर बाद नारायण स्वामी ने कहा—''सामने के बक्से में दियासलाई के बण्डल हैं, निकाल ला।''

चुनिया ने बक्सा खोला तो देखा—उसमें नोटों के बण्डल हैं। दो-चार सौ नहीं, लाखों है। उसने सोचा कि अगर इसमें से एक बण्डल अपने लिए रख लूँ तो मेरी मुसीबत दूर हो जायगी। स्वामीजी के लिए कोई फर्क नहीं पड़ेगा। लेकिन उसमें साहस नहीं हुआ।

दूसरे दिन पुनः स्वामीजी ने चुनिया से उसी बक्स में से दियासलाई निकालने के लिए कहा तो उसने कहा—''महाराज, उसमें दियासलाई नहीं है। नोटों के बंडल रखे हैं।''

स्वामीजी ने कहा—''तू पागल है। जरा अच्छी तरह देख भी।''

इस बार बक्स खोलने पर उसने देखा कि नोटों के बंडल की जगह पुस्तकें रखी हुई हैं। एक ओर दियासलाई है। उसकी समझ में नहीं आया कि यह कौन-सा जादू हो गया।

इस तरह का परिहास एक बार उन्होंने कलकत्ते में किया था। इस घटना से उनकी यौगिक-शक्ति का परिचय मिल जाता है।

श्री लक्ष्मीनारायण नवलगढ़िया स्वामीजी के शिष्य थे। अचानक वे अस्वस्थ हो गये। दवा से कोई लाभ नहीं हो रहा था। घर के लोग चिन्तित हो उठे। डॉक्टर बदलने पर भी कोई लाभ नहीं हुआ।

एक दिन अपने नौकर को बुलाकर लक्ष्मीनारायण ने कहा—''मेरे गुरु नारायण स्वामी का घर तू जानता है। बड़तल्ला में रहते हैं।''

नौकर ने स्वीकार किया कि स्वामीजी का घर जानता है। तब उन्होंने कहा—

''स्वामीजी से जाकर कहना कि मैं उनका आशीर्वाद चाहता हूँ। बीमार हूँ, वर्ना स्वयं आता।''

नौकर जब नारायण स्वामी के पास पहुँचा तब वे सो रहे थे। उसने अपने मालिक का संदेशा सुनाया।

नारायण स्वामी ने कहा—''ठीक है। अब तू जा। मैं आ रहा हूँ।''

नौकर ने वापस आकर कहा—''स्वामीजी ने कहा है कि थोड़ी देर बाद आयेंगे।''

उसकी बात सुनकर घर के लोग हँस पड़े। लक्ष्मीनारायण ने पूछा—''मैं पूछता हूँ कि स्वामीजी से समाचार कहने के बाद तू कहाँ अटक गया था? यहाँ स्वामीजी आये और आशीर्वाद देकर चले भी गये। इधर तू कह रहा है कि वे थोड़ी देर बाद आयेंगे।''

नौकर ने विस्मय प्रकट करते हुए कहा—''मालिक, मैं सीधे स्वामीजी के यहाँ से आ रहा हूँ। रास्ते में कहीं नहीं रुका। यकीन न हो तो ड्राइवर साहब से पूछ लीजिए।''

लोग परस्पर विरोधी कांड देखकर एक दूसरे का मुँह देखने लगे।

इसी प्रकार की एक विचित्र घटना और हुई थी। कलकत्ते के प्रसिद्ध करोड़पति सेठ रामकुमार बांगड़ ने विवेकानन्द रोड पर वैकुण्ठनाथ का एक भव्य मन्दिर बनवाया। मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा के लिए पुष्कर से श्री वीर राघवाचार्य को बुलाया गया।

राघवाचार्यजी स्वामीजी की अलौकिक शक्ति से परिचित थे और दोनों एक दूसरे को जानते थे। कलकत्ता आने पर जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि नारायण स्वामी आजकल यहीं है तब वे स्वयं इनके पास आकर बोले कि ''कृपया चलकर मंदिर देख लीजिए।''

नारायण स्वामी कभी जनेऊ नहीं पहनते थे। उस दिन न जाने क्यों नया जनेऊ पहनकर मन्दिर देखने चल पड़े। मन्दिर के सभी भागों को उन्होंने अच्छी तरह देखा। जगमोहन, उरुश्रृंग, स्तम्भ आदि देखते उन्होंने कहा—''मंदिर ठीक बना है। प्राण-प्रतिष्ठा भी ठीक हुई, पर अब वह बलि चाहता है।''

स्वामीजी के इस कथन का वास्तविक अर्थ कोई नहीं समझ सका। लोग मुँह सिकोड़कर रह गये। मुमकिन है कि स्वामीजी को उन लोगों ने सनकी समझा हो।

स्वामीजी के यहाँ नित्य शाम को दरबार लगता था। शिष्य और भक्त-मंडली बैठकर हर तरह की बातें करते थे। उस दिन शाम को जब लोग आये तब किसी ने पूछा—''स्वामीजी, आज आप बांगड़ मन्दिर कैसे चले गये?''

नारायण स्वामी ने कहा—''अपनी इच्छा से नहीं गया था। लोग मन्दिर देखने के लिए बुलाने आये थे।''

अधिक रात गये जब भक्त-मण्डली अपने-अपने घर वापस जाने लगी तब स्वामीजी ने कहा—''घर जाते समय तुम लोग जरा सेठ रामकुमार से मिलते जाना।''

किसी ने कहा—''रात अधिक हो गयी है, इस वक्त जाना ठीक नहीं है। कल सबेरे मिल लेंगे।''

स्वामीजी ने जोर देकर कहा—''हर्ज क्या है। इसी वक्त उनसे मिल लेना।''

''कोई खास बात है?''

स्वामीजी ने इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। स्वामीजी के घर से निकलकर लोग सीधे अपने-अपने घर चले गये। कोई सेठ रामकुमार के यहाँ नहीं गया।

दूसरे दिन स्वामीजी के भक्तों में से कुछ लोग गंगा-स्नान करके वापस आते समय सुना कि सेठ रामकुमार का देहावसान कल रात को हो गया है।

शाम को नित्य की तरह जब भक्त-मण्डली स्वामीजी के यहाँ जुटी तब लोगों ने उलाहना देना प्रारंभ किया। स्वामीजी ने कहा—''इसीलिए तो मैंने कहा था। पर तुम लोगों ने ध्यान नहीं दिया।''

इस प्रकार की अनेक घटनाएँ नारायण स्वामी के जीवन में हो चुकी हैं। कितने आश्चर्य की बात है कि उनके जीवितकाल में उनसे लाभ उठाने वाला अब उनका स्मरण तक नहीं करते।

* * *

२० मार्च, १९७३ की रात को पंडित सीताराम चतुर्वेदीजी को सूचना मिली कि नारायण स्वामी पक्षघात के शिकार हो गये हैं। रक्तचाप ५४० हो गया था। इस वक्त अस्पताल में भर्ती हैं। चतुर्वेदीजी तुरत गये। वहाँ जाने पर उन्होंने देखा—नारायण स्वामी का बायाँ अंग बेकार हो गया है।

अधिकतर संत जो योग विभूति का प्रदर्शन करते रहते हैं, वे अंतिमकाल में कष्ट उठाते हैं । उन्हें शिष्यों और भक्तों का पाप ग्रहण करना पड़ता है। प्रकृति की कार्यवाही में हस्तक्षेप करने के कारण शंकराचार्य को भगन्दर, रामकृष्ण परमहंस तथा महर्षि रमण को कैंसर हुआ था और कुछ लोगों को विषपान करना पड़ा।

२८ मार्च के दिन नारायण स्वामी परलोकवासी हो गये।

■

बाबा कीनाराम

वाराणसी के दक्षिणी भाग में स्थित काशी नरेश के महल में हलचल मची हुई थी। सबेरे से ही वेदपाठी वेद के चारों अंगों का पाठ कर रहे थे। नगर के गणमान्य नागरिकों के अलावा अनेक साधु-संत उपस्थित थे। राजा चेतसिंह यहाँ शिव मंदिर बनवाकर आज यहाँ शिवलिंग की प्रतिष्ठा करा रहे थे।

चेतसिंह ने आदेश दे रखा था कि ऐसे शुभ अवसर पर कोई अवांछनीय व्यक्ति समारोह में न आने पाये। वंश परम्परा से काशी नरेश शिव के भक्त थे। काशी के नागरिक भी गीता के अनुसार 'नराणां च नराधिपम्' यानी काशी नरेश का स्वागत 'हर-हर महादेव' के नारे से करते हैं। उन्हें शिव का प्रतीक समझते आये हैं।

सहसा महल में चेतसिंह का वज्र कंठ कंपित हो उठा—''यह नरपिशाच यहाँ कैसे आ गया? बाहर निकालो इस चाण्डाल को।''

कभी कर्मचारी भयभीत हो उठे। सामने बाबा कीनाराम खड़े थे। कई कर्मचारी बाबा की ओर लपके। तभी बाबा कीनाराम ने कहा—''तू ने मेरा अपमान किया? इसका फल तुझे शीघ्र मिलेगा। यह मत भूल कि तूने विदेशियों को शिकस्त दी है। वे तुझे ऐसा सबक सिखायेंगे कि मेरी तरह तुझे भी इस महल से विदा लेना पड़ेगा।''

कीनाराम की इतनी बातें सुनते ही चेतसिंह आपे से बाहर हो गये। राजा को क्रुद्ध देख पहरेदारों ने जबरन कीनाराम को घसीटना प्रारम्भ किया।

बाबा कीनाराम ने कहा—''देख लेना, यह बाबा का शाप है—''तेरा राज्य नष्ट हो जायगा। इस महल में उल्लू-चमगादड़ रहेंगे। तेरा वंश भी समाप्त हो जायगा।''

ठीक इसी समय महल के भीतर सदानन्द बख्शी ने प्रवेश किया। बाबा कीनाराम के प्रति इनकी गहरी आस्था थी। राजा साहब के यहाँ जाने के बदले वे बाबा को आदर-पूर्वक उनके आश्रम तक पहुँचा आये। महल में वापस आने के बाद मुँशी सदानन्द को सारी बातें मालूम हुईं।

उन्हें यह समझते देर नहीं लगी कि जो कुछ हुआ, अनुचित हुआ। बाबा कीनाराम सिद्ध पुरुष हैं। नगर के लोग श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। जरूर किसी मतलब से आये होंगे। कहीं उनका शाप फलीभूत हुआ तब क्या होगा?

दूसरे दिन सदानन्दजी क्रीं कुंड स्थित बाबा के आश्रम में आये और राजा को दिये शाप के लिए क्षमा करने की प्रार्थना करने लगे।

बाबा कीनाराम ने कहा— ''अब जो बात जबान से निकल गयी है, वह होकर ही रहेगी। उसे अपनी बहादुरी का गर्व हो गया है। लेकिन मैं साफ देख रहा हूँ कि उसका पतन होने वाला है।''

सदानन्द ने भीत स्वर में कहा—''तब हम लोगों का क्या होगा? मेरा अनुरोध है, आप राजा साहब पर कृपा कीजिए।''

बाबा ने कहा—''साधु का वचन कभी टलता नहीं। मैं तुम्हारे मनोभाव को समझ रहा हूँ। तुम्हारे वंश को कोई हानि न होगी। समझे सदानन्द। एक काम करना, भविष्य में तुम्हारे सभी वंशधर अपने नाम के पीछे 'आनन्द' शब्द अगर जोड़ लेंगे तो तुम्हारा वंश अनादि काल तक चलता रहेगा। अब तुम जा सकते हो।''

कीनाराम के शाप ने अपना प्रभाव दिखाया। राजा चेतसिंह को शिवाला के किले से भागना पड़ा। राज्य ईस्ट इंडिया कम्पनी के हाथ आया।

* * *

भारत में एक-दो नहीं, अनेक मतावलम्बी रहते हैं। प्रत्येक का अपना मत है, दर्शन है और धार्मिक प्रक्रियाएँ हैं। इन्हीं संप्रदायों में अघोर भी हैं। अघोर पंथ के अनुयायी 'अघोरी' कहलाते हैं। इस पंथ के बारे में पं० गंगाशंकर मिश्र का कहना है—''अघोर पंथ शैवतंत्र की शाखा है। वैदिक साहित्य में शिव के सम्बन्ध में 'अघोर' शब्द का कई स्थलों में प्रयोग मिलता है—'अघोरैभ्यऽथ घोरैभ्यो घोर-घोरतरैभ्य:। सर्वेभ्य: सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अत्तु रुद्ररूपेभ्य:।' यह अघोर मंत्र कहा जाता है। महिम्नस्तोत्र में बतलाया गया है कि इससे बढ़कर दूसरा कोई मंत्र नहीं है—अघोरान्नपरो मंत्र। शिव के अघोर रूप के उपासक 'अघोरी' कहलाते हैं। सदा हाथ में नरकपाल धारण किये रहने के कारण पहले वे कापालिक या कपाली के नाम से प्रसिद्ध थे। पुराणों में उनकी चर्चा आयी है।''

अघोर सम्प्रदाय वालों के मठ आबू पर्वत, गिरनार, बोधगया, बनारस तथा हिंगलाज में थे। लेकिन अब बाबू पर्वत पर इनका मठ नहीं है। इस मत के अनुयायी

बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, अजमेर, मारवाड़, मध्यप्रदेश, पंजाब में पाये जाते हैं। अब असम में भी फैल गये हैं। बंगाल तथा असम के अघोरी शक्ति के और बिहार तथा उत्तर प्रदेश के अघोरी शिव के उपासक हैं।

औघड़ सम्प्रदाय के प्रतिष्ठाता बाबा कीनाराम भले ही न हों, पर इनकी ख्याति सर्वाधिक है। इनकी चमत्कारिक कहानियाँ आज भी लोगों की जबान पर मचलती रहती हैं। काशी-निवास काल में आपने इतने शिष्य बनाये जो अब अपने को 'कीनारामी' कहलाते हैं। इनके आश्रम में अनेक औघड़ों की समाधियाँ हैं।

* * *

कीनाराम का जन्म संवत् १६५८ वि० भाद्र मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तिथि को, वाराणसी की चन्दौली तहसील स्थित रामगढ़ गाँव में हुआ था। आपके पिता श्री अकबर सिंह रघुवंशी क्षत्री थे। कीनाराम अपने तीन भाइयों में सबसे बड़े थे। बचपन से ही आप राम के प्रति अनुरक्त थे। अवकाश के समय गाँव के अन्य साथियों को लेकर आप राम-धुन गाया करते थे।

उन दिनों बाल विवाह की प्रथा थी। इस प्रथा के अनुसार १२ वर्ष की उम्र में आपका विवाह कर दिया गया था। विवाह के तीन वर्ष बाद गौना लाने की तिथि निश्चित की गयी। यात्रा के एक दिन पूर्व आपने अपनी माँ से दूध-भात खिलाने का आग्रह किया।

माँ बिगड़ गयी। बोली—''कल तुम्हें गौना लाने जाना है और आज दूध-भात माँग रहे हो? दही-भात खा लो।''

कीनाराम ने हठ पकड़ा। लाचारी में माँ को दूध-भात खिलाना पड़ा। दूसरे दिन जब यहाँ से लोग यात्रा की तैयारी कर रहे थे तभी ससुराल से सूचना आयी कि आपकी पत्नी का निधन हो गया है।

माँ ने रोते हुए कहा—''कोई न कोई अशुभ होगा, यह मैं समझ गयी थी। भला कोई यात्रा के समय दूध-भात खाता है? ऐसा जिद्दी लड़का है कि क्या कहूँ।''

कीनाराम ने कहा—''माँ, उसके मरने के बाद ही मैंने दूध-भात खाया था। इसके पहले नहीं। विश्वास न हो तो पिताजी से पूछ लो। वह कल शाम को ही मर गयी थी और दूध-भात मैंने रात को खाया था।''

माँ से यह समाचार सारे गाँव में फैल गया। लोग इस बात पर आश्चर्य करने लगे कि आखिर कीनाराम को इस बात की जानकारी कैसे हो गयी?

इस घटना के कुछ दिनों बाद पुनः आपके विवाह की बात चलने लगी। आपने विवाह करने से इनकार कर दिया, पर परिवार के लोगों का दबाव बढ़ता ही गया। एक दिन चुपचाप घर से निकल पड़े। घूमते-घामते गाजीपुर आ गये। उन दिनों गाजीपुर में रामानुजी-सम्प्रदाय के अनुयायी संत शिवराम रहते थे। नागरिकों में उनकी प्रसिद्धि

थी । कीनाराम भी यही चाहते थे कि किसी संत के निकट रहते हुए राम की आराधना करता रहूँ।

कीनाराम का उद्देश्य सुनकर शिवरामजी ने उन्हें अपने यहाँ रख लिया। वे गुरु की सेवा करने के बाद जितना समय मिलता था, उतनी देर भजन करते रहे। कुछ दिनों बाद एक दिन न जाने किस प्रेरणा के कारण, आंपने शिवरामजी से कहा—''महाराज, मुझे दीक्षा देकर अपना शिष्य बना लें।''

शिवरामजी ने सोचा—कहीं दीक्षा देने पर यहाँ से चम्पत न हो जाय। फिर ऐसा सेवक कहाँ मिलेगा। कीनाराम को टालने के लिए उन्होंने कहा—''अभी समय नहीं आया है। उपयुक्त समय आने पर दीक्षा दे दूँगा।''

कुछ दिनों तक प्रतीक्षा करने के बाद कीनाराम ने पुन: स्मरण दिलाया। इसी प्रकार कीनाराम बराबर स्मरण दिलाते रहे और शिवरामजी टालते रहे। अन्त में कई महीने बाद शिवरामजी ने कहा—''कीना, चलो, आज तुम्हें गंगा-तट पर दीक्षा दूं।''

गुरु का आदेश पाते ही कीनाराम प्रसन्न हो उठे। आज बहुत दिनों के बाद उनकी इच्छा की पूर्ति हो रही थी। रास्ते में अपना आसन-कमंडल आदि कीनाराम को देते हुए शिवरामजी ने कहा—''तुम यह सब सामग्री लेकर घाट पर जाओ। मैं शौचादि से निवृत्त होकर आता हूँ।''

गुरु से सामग्री लेकर कीनाराम घाट पर आकर बैठ गये। थोड़ी देर बाद उन्होंने महसूस किया कि गंगा की लहरें उनके पैरों से आकर टकरा रही हैं। तुरन्त आचमन कर वे कुछ ऊपर आकर बैठे। थोड़ी देर बाद यहाँ भी वही घटना हुई। अब वे काफी ऊपर आकर बैठे। पुन: गंगा वहाँ तक आकर उनके पैरों से टकराने लगी। इस अद्‌भुत घटना को देखकर वे हक्का-बक्का रह गये। उन्हें यह भी ध्यान नहीं रहा कि उनके भावी गुरु आ रहे होंगे।

शिवरामजी कीनाराम के पीछे मौन खड़े इस दृश्य को देख रहे थे। उन्हें लगा कि कीनाराम अवश्य ही असाधारण व्यक्ति है। यह एक अद्‌भुत ही नहीं, अस्वाभाविक घटना थी। शिवरामजी स्वयं ही चकित थे कि आखिर कीनाराम के रूप में यह बालक कौन है?

स्नान करने के बाद शिवरामजी अपने साथ कीनाराम को लेकर स्थानीय मंदिर में आये और वहीं दीक्षा दी।

दीक्षा-ग्रहण करने के बाद कीनारामजी प्रचण्ड रूप से जप-साधना में निमग्न हो गये। गुरु की सेवा करने के बाद जितना समय मिलता, उसका उपयोग साधना में लगाते रहे। कई महीने बाद अचानक एक दुर्घटना हो गयी। शिवरामजी की पत्नी का देहान्त हो गया।

शिवरामजी गृही-संत थे। पत्नी का अभाव उन्हें खलने लगा। दैनिक जीवन के कार्यों में उलझने बढ़ने लगीं। उन्होंने निश्चय किया कि पुनर्विवाह करके इस मुसीबत से छुटकारा पाया जाय। इस बारे में उन्होंने कीनाराम से सलाह माँगी।

कीनाराम ने कहा—"महाराज, अब इस उम्र में पुनर्विवाह आपको शोभा नहीं देगा। अच्छा हो कि शेष समय भजन-पूजन में लगायें।"

शिवराम को ऐसे उत्तर की आशा नहीं थी। अपनी इच्छा के विपरीत राय सुनकर वे नाराज हो उठे—"पत्नी के बिना मेरा काम नहीं चलेगा। मुझसे सारा बखेड़ा सम्हालते नहीं बनेगा।"

गुरु-शिष्य में वाद-विवाद बढ़ता ही गया। अन्त में कीनाराम ने कहा—"अगर आप पुनर्विवाह करेंगे तो मैं अन्य किसी गुरु की सेवा में चला जाऊँगा।"

शिवरामजी खिजलाकर बोले—"जाना है तो अभी चला जा। मैं तेरे ऐसे कृतघ्न का मुँह नहीं देखना चाहता।"

* * *

जब गुरु के प्रति अश्रद्धा हो जाय तो वहाँ न रहना ही उचित है। कीनाराम तुरत वहाँ से चल पड़े। मार्ग में नईडीह नामक गाँव के पास आने पर उन्होंने देखा—एक वृक्ष के नीचे एक बुढ़िया बेतहाशा रो रही है। कारण पूछने पर उसने बताया कि जमींदार का लगान बकाया हो गया है। उसके प्यादे मेरे लड़के को पकड़कर ले गये हैं और मार रहे हैं।

कीनाराम ने कहा—"इस तरह रोने से कहीं जमींदार को लगान मिल जायगा? चल, मैं तेरे लड़के को बचा दूँगा।"

बुढ़िया ने कहा—"महाराज, वह बड़ा जालिम आदमी है। बगैर रकम लिए वह मानेगा नहीं। आप बेकार जाकर परेशान होंगे।"

अब कीनाराम नाराज हो उठे। उन्होंने कहा—"इस तरह रोने से तेरा लड़का बच जायगा? चल, मेरे साथ। देखूँ, कैसा जमींदार है।"

बुढ़िया बाबा कीनाराम को लेकर जमींदार के यहाँ आयी। कीनाराम ने देखा—लड़के का हाथ बाँधकर धूप में बैठा रखा गया है। कीनाराम ने कहा—"जमींदार साहब, आप इस बेवा के लड़के को छोड़ दीजिए।"

जमींदार ने कहा—"मेरा लगान बाकी है। रकम चुका दीजिए और लड़के को ले जाइये।"

कीनाराम ने कहा—"लड़का जहाँ बैठा है, वहीं तेरी सारी रकम रखी है। किसी मजदूरे से खोदवाकर निकाल ले।"

इसके बाद उन्होंने लड़के से कहा—"तू इधर आ जा, बेटा।"

जमींदार को बाबा की बातों पर विश्वास नहीं हुआ, पर यह सोचकर कि शायद यहाँ धन गड़ा हो, बाबा ने दिव्य दृष्टि से जान लिया हो, इस कुतूहलवश उसने वहाँ खुदवाया। वहाँ काफी रकम मिली। यह दृश्य देखकर जमींदार भय से विह्वल हो उठा। बाबा कीनाराम के पास आकर उनके पैरों पर गिर पड़ा।

कीनाराम ने कहा—''माताजी, अब अपने बेटे को सम्हाल, कई सालों के लगान चुकता हो गये।''

इस चमत्कार को देखकर बुढ़िया भी स्तम्भित हो गयी थी। वापस आते समय उसने भाव-विह्वल होकर कहा—''बाबा, अब आज से यह बेटा आपका हुआ। लगान न दे पाती तो जमींदार न जाने कब तक इससे बेगार लेता। आपकी सेवा करेगा तो इसका जनम सफल हो जायगा।''

बाबा कीनाराम राजी नहीं हुए। उन्होंने बुढ़िया को काफी समझाया, पर वह अपनी जिद्द पर अड़ी रही। भगवान् की शायद यही इच्छा है। समझकर कीनारामजी ने उसे अपने साथ रख लिया। यही बालक कीनारामजी का प्रथम शिष्य बना जिसका नया नाम हुआ—बीजाराम।

यायावरों की तरह घूमते हुए दोनों व्यक्ति गिरनार पर्वत के पास आये। आबू पर्वत, गिरनार, हिंगलाज, पुष्कर, वीरभूमि, कामाख्या और हिमालय के अनेक क्षेत्र संतों की साधना भूमि हैं। आज भी यहाँ अनेक संत अलक्ष्य रूप में तपस्या करते हैं।

कीनाराम ने कहा—''बीजाराम, मैं पहाड़ पर जा रहा हूँ। जब तक न लौटूँ तब तक तुम यहीं इन्तजार करना और एक बात याद रखना कि यहाँ केवल तीन घर से भिक्षा माँगना। इससे अधिक नहीं। भिक्षा में जितना मिले, उसी से काम चलाना। चौथे घर मत जाना।''

कहा जाता है कि दत्तात्रेय ऋषि अमर हैं। यहीं बाबा कीनाराम की मुलाकात उनसे हुई थी और उन्होंने योग-साधना की दीक्षा दी थी। इस सम्बन्ध में स्वयं कीनाराम ने कहा है—

पुरी द्वारिका गोमती गंगा सागर तीर ।
दत्तात्रय मोहि कहँ मिले हरन महाभव पीर ॥
मोहि प्रबोधे विविध विधि त्रिकालज्ञ भगवान ।
अंतरहित होते भये बानी सत्य प्रमान ॥

कहा जाता है कि नाथ सम्प्रदाय के संत गोरखनाथ तथा वारकरी सम्प्रदाय के संत एकनाथ ने भी यहीं दत्तात्रेय ऋषि का दर्शन किया था। कुछ दिनों बाद गुरु-शिष्य गिरनार पर्वत से जूनागढ़ आये। यहाँ नवाब का शासन था। नगर में भीख माँगने की मनाही थी। जो व्यक्ति भीख माँगता था, उसे पकड़कर जेल में बन्द कर दिया जाता था, जहाँ अपराधी को चक्की चलानी पड़ती थी।

बीजाराम भीख माँगते पकड़े गये और नियमानुसार जेल की सजा हो गयी। इधर काफी देर हो जाने पर कीनारामजी चिन्तित हो उठे। ध्यान लगाने पर उन्हें सारा रहस्य ज्ञात हो गया। अब वे बीजाराम की तरह भीख माँगने निकले। इन्हें भी पकड़कर जेल में बन्द कर दिया गया।

जेल में आकर बाबा ने देखा—यहाँ अनेक संत-महात्मा चक्की चला रहे हैं।

इन्हें भी एक चक्की चलाने की आज्ञा दी गयी। आपने अपनी चक्की पर एक डंडा मारते हुए कहा—"चल बेटा, चक्की।"

चक्की चलने लगी। इसके बाद अन्य संतों की चक्कियों को डंडा मारकर उन्हें भी चालू कर दिया। इस अनहोने जादू को देखकर जेल के कर्मचारी भाग खड़े हुए। समाचार नवाब के पास पहुँचा। तुरन्त बाबा को दरबार में ले आने का आदेश दिया गया।

इस समाचार से नवाब डर गया था। ऊँचे दर्जे का फकीर है, कहीं बद्दुआ न दे दे। बाबा को प्रसन्न करने के लिए एक थाली में जवाहिरात पेश किये गये। बाबा ने उसे उठाकर मुँह में डाला और फिर थूकते हुए बोले—"यह न तो मीठे हैं और न खट्टे। मेरे किस काम के?"

नवाब ने कहा—"हजरत जो हुक्म दें, वही पेश किया जाय।"

बाबा को नवाब की मन:स्थिति का आभास हो गया था। हँसकर बोले—"संत और फकीर भीख माँगकर गुजारा करते हैं। तेरे यहाँ यह गुनाह है। ठीक है। अब आइन्दा भीख माँगने वाले संतों-फकीरों को शासन की ओर से अढ़ाई पाव आटा मुफ्त देने का हुक्म दे दे।"

इतने सस्ते में छूटते देख नवाब ने तुरत इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया।

* * *

यहाँ से बाबा हिमालय की ओर चले गये। वहाँ काफी दिनों तक साधना करते रहे। वहाँ से वापस आने के बाद आप अचानक काशी में प्रकट हुए।

उन दिनों शिवाला मुहल्ले के क्रीं कुंड में बाबा कालूराम रहते थे। बाबा कालूराम पास ही स्थित श्मशान में मुर्दों की खोपड़ियों को चने खिलाया करते थे। एक दिन बाबा कीनाराम घूमते इधर आये तो यह दृश्य देखा। उन्होंने अपनी शक्ति का प्रयोग किया।

खोपड़ियों का आना बन्द हो गया। बाबा कालूराम औघड़ संत थे। ध्यान लगाते ही समझ गये कि यहाँ कीनाराम आ गये हैं, जिनके आने की प्रतीक्षा वे बहुत दिनों से कर रहे थे। इधर बाबा कीनाराम भी समझ गये कि बाबा कालूराम उच्चस्तर के संत हैं।

हँसते हुए कीनाराम ने कहा—"बाबाजी, आप यह क्या खिलवाड़ कर रहे हैं। चलिये अपने अस्थान (गद्दी) पर।"

कीनाराम की साधना-शक्ति को आजमाने के लिए बाबा कालूराम ने कहा—"इस वक्त तो मुझे भूख लगी है। क्या तुम ताजी मछली खिला सकते हो?"

कीनाराम ने कहा—"जरूर महाराज।" फिर गंगा नदी की ओर देखते हुए उन्होंने कहा—"गंगिया, एक मछली दे जा।"

तुरन्त एक मछली नदी से उछलकर इनके पैरों के पास गिरी। बीजाराम ने उसे पकाया और उन संतों ने मछली खायी।

थोड़ी देर बाद कालूराम की नजर गंगा में बहती एक लाश पर पड़ी। उन्होंने कहा—"देख मुर्दा आ रहा है।"

कीनाराम ने कहा—"यह तो जिन्दा है।"

"जिन्दा है तो उसे बुला।"

कीनाराम ने कहा—"कहाँ जाता है? चल इधर।"

वह लाश धीरे-धीरे किनारे आकर खड़ी हो गयी। कीनाराम ने कहा—"खड़ा होकर क्या देख रहा है? जा अपने घर चला जा।"

कीनाराम की सिद्धि देखकर बाबा कालूराम संतुष्ट हो गये। दोनों उठकर चल पड़े। कीनाराम को क्रीं कुंड में ले आये और कहा—"कीनाराम, मेरा काम समाप्त हो गया। मैं अब तक तुम्हारे आने की प्रतीक्षा कर रहा था ताकि यह जाग्रत् स्थान शून्य न रहे। यह जाग्रत् पीठ है। अब तुझे कहीं जाने की जरूरत नहीं है। यहीं रहकर साधना करो। सब कुछ यहीं प्राप्त हो जायगा।"

कहा जाता है कि बाबा कालूराम ने उन्हें दीक्षा दी थी। वास्तव में बाबा कालूराम दत्तात्रेय मुनि के अवतार थे। बाबा कीनाराम को यहाँ की गद्दी देकर वे अन्तर्धान हो गये।

संतों के निधन के पश्चात् उनके शिष्य और भक्त अनेक कल्पित कहानियों को जन्म देते हैं। प्रत्यक्षदर्शियों तथा अनुभवी लोगों की बातें जीवित रहती हैं। कीनाराम बाबा के बारे में ऐसी अनेक कहानियाँ प्रचलित हो गयीं। फलस्वरूप कालूराम बाबा को लोग भूल गये। शायद इसीलिए बाबा कीनाराम को कहना पड़ा—

कीना कीना सब कहै, कालू कहै न कोय ।
कालू कीना एक भये, राम करै सो होय ॥

* * *

बाबा कीनाराम की साधना की एक विशेषता यह थी कि प्राचीन औघड़ परम्परा से अलग हटकर वे राम-कृष्ण की ओर लग गये थे। यही कारण है कि बाबा कालूराम की अपेक्षा उनकी प्रसिद्धि अधिक हुई। भारत हमेशा से सात्त्विक और राजसिक साधनाओं को श्रद्धा की दृष्टि से देखता आया है। तामसिक-साधकों के पास लोग चारों ओर से निराश होकर ही जाते हैं। तामसिक साधक मारण, उच्चाटन, मोहन, वशीकरण आदि में विश्वास रखते हैं। सामान्य जनता सरभंग या औघड़ों को प्रायः सिद्ध रूप में देखती है। उनकी धारणा है कि इन सिद्धों ने श्मशान-साधना के द्वारा 'मसान' की सिद्धि की है। अर्थात् भूत, प्रेत, पिशाच आदि को वश में कर लिया है।

कुलार्णवतंत्र में लिखित प्रक्रिया को अघोरी अपनाते आये हैं—

मद्यं मांसं च मीनं च मुद्रा मैथुनमेव च ।
मकारपंचकं देवी! देवता प्रीति कारणाम् ॥

इन्हें पंच मकार प्रिय है। सरभंगी[1] और कीनारामी दोनों ही मानव-मांस अथवा मल का भक्षण करते हैं, पर केवल विशेष अवसरों पर।

बाबा कीनाराम औघड़ होते हुए भी जन-सामान्य के निकट प्रिय थे। अन्तर से साधक और दयालु थे। उनके कारण ही क्रीं कुंड तथा औघड़ सम्प्रदाय की ख्याति फैली । आज भी क्री कुंड में प्रत्येक रवि-मंगल को महिलाएँ अपने बच्चों को सुखंडी रोग दूर कराने के लिए आती हैं। भाद्रपद शुक्ल षष्ठि को यहाँ मेला लगता है। काशी की गायिकाएँ इसी दिन यहाँ आकर अपना गायन प्रस्तुत करती थीं। उनमें विश्वास था कि इससे कभी उनका गला खराब नहीं होगा। सन् १६५८ से यह क्रम बन्द कर दिया गया।

कीनाराम एक दार्शनिक औघड़ थे। अपनी पुस्तक 'विवेकसार' में एक जगह अपने बारे में कहते हैं—"मैं ही जीव हूँ, मैं ही ब्रह्म हूँ, मैं ही अकारण निर्मित जगत् हूँ, मैं ही निरंजन हूँ और मैं ही विकराल काल हूँ। मैं ही जन्मता हूँ और मरता हूँ। पर्वत-आकाश मैं हूँ। ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी मैं हूँ। सुमन और उसका वास, तिल और उसका तेल मैं हूँ। बंधन, मुक्ति, अमृत, हलाहल, ज्ञान-अज्ञान, ध्यान ज्योति मैं हूँ।"

इस प्रकार बाबा कीनाराम प्रत्येक अच्छे-बुरे में मौजूद हैं। उनका यही पक्ष बौद्धिक लोगों को आकर्षित करता आया है। संभवतः इसी कारण प्राचीन अघोर सम्प्रदाय से दूर हटकर कीनारामियों ने अपनी अलग पहचान बना ली है।

क्रीं कुंड के महन्तों में सर्वश्री कालूराम, कीनाराम (क्षत्रिय), बीजाराम (कलवार), धौताराम, गइबी राम, भवानी राम, जयनारायण राम, मथुरा राम (कुम्हार), जबरदस्त राम (ब्राह्मण), गौरीराम, भवानी राम (क्षत्रिय), दिनराय राम (कलवार), सरयू राम (ब्राह्मण), दलसिंगार राम (क्षत्रिय), राजेश्वर राम की समाधियाँ क्रीं कुंड में हैं। आपका निधन १८२६ ई० में हुआ था।

■

---

[1] संतमत का सरभंग सम्प्रदाय।

सिद्धयोगी तैलंग स्वामी

आंध्र प्रदेश के विशाखापत्तनम् जिले में एक गाँव का नाम है—होलिया। इस गाँव के जमींदार का नाम था—श्री नृसिंह धर। स्वभाव के उदार और प्रजा-वत्सल। कट्टर ब्राह्मण होने के कारण तीनों वक्त नियमित रूप से संध्या करते थे। इनकी पत्नी श्रीमती विद्यावती इनसे बढ़कर धार्मिक प्रवृत्ति की थीं। गृह-देवता शंकर के पूजन में अधिक समय लगाती थीं। पूजा-पाठ के अलावा वे व्रत-उपवास अधिक करती थीं।

नृसिंह से यह छिपा नहीं रहा कि उनकी पत्नी क्यों इतना व्रत-उपवास रखती हैं। घर में किसी चीज की कमी नहीं थी। स्वभाव से मधुर होने के कारण सभी प्रजा इन्हें देवता की तरह मानते थे। ले-देकर इस दम्पति को एक ही कष्ट था। वे विवाह के दस वर्ष बाद भी निःसंतान थे।

पति को उदास देखकर विद्यावती के मन में टीस उत्पन्न हो जाती थी और कठोर व्रत करने लगती थी। मन्दिर में जाकर वह विग्रह के सामने व्याकुल होकर प्रार्थना करती—"भगवान, मेरी गोद भर दो। मेरे बाँझपन के कलंक को दूर कर दो। मेरे पति को उनका वंशधर दो।"

व्रत, उपवास और पूजन से जब उसकी मनोकामना पूरी नहीं हुई तब एक दिन उसने अपने पति से कहा—"शायद मेरे भाग्य में संतान-सुख नहीं है। मेरा अनुरोध है कि धर-वंश की रक्षा के लिए आप एक विवाह और कर लें।"

पत्नी का अनुरोध सुनते ही नृसिंह धर चौंक उठे। विस्मय से उन्होंने पूछा—"क्या कह रही हो? दूसरा विवाह का अर्थ है—सौत बुलाना। भले ही हम निःसंतान

हैं, पर हमारे घर में कितनी शांति है। दूसरी पत्नी के आते ही अशांति बढ़ जायेगी। मैं अब दूसरा विवाह नहीं करना चाहता।''

विद्यावती ने विनयपूर्वक कहा—''मेरा मन कहता है कि दूसरी बहन आकर धर-वंश को जीवन-दान देगी।''

नृसिंह ने कहा—''यह तुम्हारा सपना है। तुम केवल मुझे प्रसन्न करने के लिए ऐसा कह रही हो। मगर मैं अपनी प्रसन्नता के लिए तुम्हारा सुख नहीं छीनना चाहता। आगे ऐसा अनुरोध मत करना। अगर तुम्हें संतान की चाह है तो किसी बच्चे को गोद ले लेंगे।''

पति के इस निर्णय से विद्यावती को आघात लगा। वह उस समय चुप हो गयी। पर जब भी मौका पाती तब अनुरोध करती रही। इस विवाह को लेकर कई बार आपस में विवाद भी हुआ। अन्त में एक दिन नृसिंह ने खिजलाकर कहा—''तुम्हारे कारण मैं राजी हो रहा हूँ, पर यह याद रखना कि दूसरी पत्नी के कारण परिवार में अशांति हुई तो उसकी सारी जिम्मेदारी तुम पर होगी।''

नृसिंह ने द्वितीय विवाह किया। दूसरी पत्नी को गृहस्थी का सारा भार देती हुई विद्यावती बोली—''आज से तुम्हें सब कुछ देखना है। मैं तुम्हारी सहायता करूँगी। शेष समय भगवान् के दरबार में।''

कुछ दिनों बाद नृसिंह के परिवार में एक चमत्कार हुआ। सन् १६०७ ई० के प्रारंभ में (पौष मास, शुक्ला एकादशी, रोहिणी नक्षत्र) विद्यावती ने माँ बनने का गौरव प्राप्त किया। सर्वप्रथम उसकी कोख से नृसिंह धर के वंशधर ने जन्म लिया। यह एक ऐसा चमत्कार था जिसे देखकर दोनों चकित रह गये।

पुरुष के जीवन में दो ऐसे अवसर आते हैं जब उसे अपार प्रसन्नता होती है। प्रथम अपने विवाह में और द्वितीय प्रथम संतान के पिता बनने पर। लम्बे अर्से के बाद पिता बनने की खुशी में दीपावली जैसा उत्सव होलिया गाँव में मनाया गया। किसानों की लगान माफ कर दी गयी।

शिव की आराधना करने पर पुत्र की प्राप्ति होने के कारण विद्यावती ने अपने बेटे का नाम रखा—शिवराम और पिता ने परम्परा के अनुसार रखा—तैलंग धर। कुछ दिनों बाद नृसिंह की दूसरी पत्नी ने एक पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम हुआ—श्रीधर। पिता का स्नेह और माता की ममता पाते हुए दोनों बच्चे बड़े होते गये। दोनों बालक विपरीत स्वभाव के बनते गये।

तैलंग धर अपने सहपाठियों से अलग-थलग रहकर न जाने किस दुनिया में खोया-खोया सा रहता था। उसे भीड़भाड़ और कोलाहल पसन्द नहीं था। विद्यावती जब भगवान् शंकर की पूजा करती तब वह पास ही आँखें बन्दकर बैठा रहता था। दूसरी ओर श्रीधर घर में चारों ओर दौड़धूप और उपद्रव किया करता था।

ज्येष्ठ पुत्र की स्थिति देखकर नृसिंह चिंतित हो उठे। इस उम्र में बालक को

चंचल और उपद्रवी होना चाहिए। आगे चलकर उसे धर-वंश द्वारा अर्जित सम्पत्ति की देखभाल करनी है। जमींदारी का काम सम्हालना है। किसानों से लगान वसूलना और उनके सुख-दुख में भाग लेना होगा, पर यह अजीब बौड़म बनता जा रहा है। बड़े होने पर अक्सर जब उसे जमींदारी का काम समझाने लगते तब वह गुमसुम बैठा रहता और मौका पाते ही खिसक जाता। हारकर पिताजी ने उसे डाँटना बन्द कर दिया।

कई वर्ष जब बुढ़ापे का दौर प्रारंभ हुआ तब नृसिंह ने सोचा कि तैलंग का विवाह कर दिया ताकि पत्नी के आने पर अपनी जिम्मेदारी अनुभव करेगा। विद्यावती से सलाह करने के बाद नृसिंह योग्य लड़की की तलाश करने लगे। यह समाचार तैलंग से छिपा नहीं रहा।

उसने अपने पिता से कहा—''पिताजी, मेरे विवाह के लिए आप परेशान मत होइये। मैं विवाह नहीं करूँगा।''

''क्यों?''

तैलंग धर ने कहा—''मैंने विवाह न करने का निश्चय कर रखा है। मुझे यह सब झंझट पसन्द नहीं।''

पुत्र की बातें सुनकर नृसिंह अवाक् रह गये। अपने ज्येष्ठ पुत्र की आदतों से वे परिचित तो थे ही। उससे बहस करने की अपेक्षा उन्होने अपनी पत्नी से सलाह ली। विद्यावती ने कहा—''अच्छा, मैं कोशिश करूँगी।''

कई दिनों बाद विद्यावती ने कहा—''शिवराम सचमुच अविवाहित रहना चाहता है। काफी समझाया, पर वह मान नहीं रहा है। मेरा विचार है कि हम उस पर दबाव न डालें तो अच्छा होगा। आगे भगवान् शंकर की जो इच्छा होगी, वही होगा।''

नृसिंह ने कहा—''तुम्हारी बात समझ रहा हूँ, पर मेरे बाद उसे ही जमीन-जायदाद देखनी है। धर वंश की रक्षा करनी है, यह सब कैसे होगा?''

विद्यावती ने कहा—''आप शिवराम के बदले श्रीधर का विवाह कर दें। शिवराम का हठ जब दूर हो जायगा तब देखा जायेगा।''

नृसिंह ने कहा—''माँ होकर आखिर क्यों तुम ऐसा कह रही हो, समझ में नहीं आ रहा है।''

विद्यावती ने कहा—''तैलंग जब छोटा था तभी से मैं यह देख रही हूँ कि यह विचित्र स्वभाव का है। जब मैं पूजा करने बैठती थी तब मेरे साथ यह भी आँखें बन्द कर ध्यान लगाता था। मैं सोचती थी कि मेरी नकल कर रहा है जैसा कि बच्चों का स्वभाव होता है। लेकिन मेरी धारणा गलत निकली। मैंने एक दिन स्वयं अपनी आँखों से देखा कि विग्रह से एक प्रकाश तेजी से निकला और मेरे शिवराम के शरीर में प्रवेश कर गया। इस घटना के बाद से मैं बराबर शंकित रहने लगी। कई बार खिड़की से झाँककर मैंने देखा है कि शिवराम बाग में पीपल के नीचे आँखें बन्द कर ध्यान लगाता है। कल एक अजीब नजारा देखकर मैं बेहद डर गयी हूँ।''

नृसिंह ने विस्मय से पूछा—''क्या हुआ था?''

विद्यावती ने कहा—''शिवराम अक्सर जैसे ध्यान लगाकर पेड़ के नीचे बैठता है, कल भी बैठा था। लेकिन गौर से देखने पर देखा—उसके सिर पर पीछे से एक साँप फन काढ़े खड़ा है। यह दृश्य देखकर भय से मैं चीख उठी। तुरत गोपाल को भेजा। गोपाल ने आकर कहा कि वहाँ साँप नहीं है। बड़े भैया आँखें बन्द कर बैठे हैं। तैलंग से पूछा तो वह चुप रहा। मुझे तो ऐसा लगता है कि शिवराम के रूप में हमारे घर कोई संत आया है।''

पत्नी की बातें सुनकर नृसिंह मन ही मन मुस्करा उठे। उन्हें पत्नी की बात पर विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने निश्चय किया कि अब वे स्वयं तैलंग पर नजर रखेंगे। कई दिनों बाद स्वयं नृसिंह ने जब वही दृश्य देखा तब वे बेहद डर गए। इस घटना के बाद से उन्होंने फिर तैलंग को नहीं छेड़ा। उन्हें भी विश्वास हो गया कि तैलंग के रूप में उनके घर किसी देवदूत ने जन्म लिया है।

समय गुजरता गया। श्रीधर जमींदारी के काम में पिता का हाथ बटाने लगा और तैलंग माँ के साथ पूजा-पाठ, ध्यान आदि में लगा रहा। इसी बीच एक दिन नृसिंह दो विधवाओं और पुत्रों को छोड़कर परलोक चले गये। धर वंश पर बिना मेघ के वज्रपात हो गया।

पिता के निधन के पश्चात् तैलंग धर के स्वभाव में किंचित् परिवर्तन हुआ। अब वे विधवा माँ की पूजा में अधिक समय देने लगे और दोनों माताओं की सेवा में रहने लगे। नृसिंह धर के निधन के दस वर्ष बाद विद्यावती का भी निधन हो गया।

माँ के निधन के पश्चात् तैलंग धर ने घर से अपना सम्बन्ध तोड़ लिया। पिता के निधन के पश्चात् माँ को कोई कष्ट न हो, इस दृष्टि से वह माँ की सेवा में लगा रहा। अब जब माँ नहीं रही तब परिवार में अपना कौन है। सौतेली माँ और भाई पड़ोसी जैसे होते हैं। जायदाद से न पहले मोह था और न अब है।

श्मशान के जिस स्थान पर माँ की क्रिया हुई थी, वहीं तैलंग रहने लगा। श्मशान की भस्म सर्वांग में पोतकर हमेशा समाधि लगाये बैठा रहता। बड़े भाई की मति देखकर श्रीधर को बड़ा कष्ट हुआ। सौतेली माँ और भाई ने उसे काफी समझाया, पर वह घर वापस आने को राजी नहीं हुआ।

श्रीधर को जार-जार रोते देख तैलंग धर ने कहा—''मेरे भाई, मुझे विषय-सम्पत्ति से तनिक भी मोह नहीं है। अब आगे से सब तुम्हारा। तुम उसका भोग करो। मैं यह जान चुका हूँ कि यह शरीर नश्वर है। जिसे प्राप्त करने पर सब कुछ प्राप्त किया जा सकता है, अब मैं उस ओर ध्यान लगाऊँगा। अच्छा होगा कि तुम सब मुझे भूल जाओ।''

श्रीधर भारी मन लिए वापस चला आया। बड़ा आग्रह करने पर तैलंग धर ने यह आज्ञा दे दी कि श्मशान भूमि पर एक कुटिया वह बनवा दे और दैनिक भोजन का प्रबंध कर दे।

इस घटना के बाद से तैलंग धर का स्थायी निवास श्मशान भूमि हो गया। साक्षात् शंकर की तरह वे श्मशानवासी हो गये। निरन्तर भगवत्-आराधना करने पर भी उन्हें इष्ट की सिद्धि प्राप्त नहीं हुई। वस्तुतः उन्हें योग्य गुरु के दर्शन अभी तक नहीं हुए थे। अब तक जो भी साधना करते रहे, वह अपनी अन्तर्प्रेरणा से करते आ रहे थे।

एक अर्से बाद यानी सन् १६७५ ई० में एक दिन एक योगिराज होलिया गाँव की श्मशान भूमि में आया और सीधे तैलंग धर की कुटिया के पास जाकर कहा—''शिवराम।''

माँ द्वारा प्रदत्त नाम का उपयोग सौतेली माता भी नहीं करती थी। केवल माँ इसी नाम से पुकारती थी। घर के सभी तथा गाँव के लोग तैलंगधर कहते थे। आखिर किसने इस नाम से पुकारा?

कुटिया के बाहर आने पर तैलंगधर ने देखा एक सन्त खड़े हैं। उनके आनन से अपूर्व तेज निकल रहा है। उनके आगे तैलंग का मस्तक अपने आप झुक गया। सहसा तैलंगधर को कुछ दिन पूर्व देखे स्वप्न की घटनाएँ याद आ गयीं। उन्हें लगा—हो न हो, यह सन्त मेरे भावी गुरु हों। मन में यह विचार आते ही उन्होंने आगन्तुक सन्त को पुनः साष्टांग प्रणाम किया।

देर तक दोनों व्यक्ति आपस में बातचीत करते रहे। इतने में श्रीधर के यहाँ से भोजन आया। दोनों व्यक्तियों ने भोजन किया। आगन्तुक स्वामी का नाम भगीरथ स्वामी है। आप पटियाला में रहते थे। कुछ दिन हुए भगवत् प्रेरणा से यहाँ चले आये हैं। दक्षिण के विभिन्न तीर्थों का दर्शन करने के उद्देश्य से इधर आये हैं।

बातचीत के सिलसिले में भगीरथ स्वामी ने कहा—''कुछ दिन यहाँ विश्राम करने के बाद गिरनार होते हुए पुष्कर तीर्थ जाने का विचार है।''

तैलंगधर ने कहा—''महाराज, आपको आपत्ति न हो तो मुझे भी साथ ले लें। आपसे उपदेश सुनूँगा और आपकी सेवा करूँगा।''

भगीरथ स्वामी अपने साथ तैलगंधर को लेकर विभिन्न स्थानों का भ्रमण करते हुए पुष्कर तीर्थ आये। इस बीच उन्होंने तैलंग की शक्ति को पहचान लिया था। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि केवल प्रक्रिया समझाना है। अब नित्य भगीरथ स्वामी योग की विभिन्न क्रियाएँ तैलंगधर को बताने लगे। होलिया गाँव से पुष्कर तक आने में छह वर्ष लगे थे। इन दिनों तैलंग, स्वामी ७७ वर्ष की उम्र पार कर चुके थे।

आखिर वह शुभ दिन आया जिसकी प्रतीक्षा एक अर्से से तैलंग स्वामी कर रहे थे। भगीरथ स्वामी ने कहा—''तैलंग, कल सबेरे तुम्हें दीक्षा दूँगा।''

पुष्कर सरोवर में स्नान करने के पश्चात् तैलंगधर गुरु द्वारा निर्देशित आसन पर बैठे। सारी क्रियाओं के बाद उन्हें भगीरथ स्वामी ने बीज मन्त्र दिया। इसके बाद बोले—''अब तक तुम्हें योग की प्रक्रियाएँ बताता रहा। उसका अभ्यास करते रहना। अपने गुरु द्वारा प्राप्त उपाधि अब तुम्हें दे रहा हूँ, क्योंकि परम्परा के अनुसार शिष्य को गुरु

की शाखा की उपाधि ग्रहण करनी पड़ती है। आज से तुम तैलगंधर या शिवराम के नाम से नहीं, गजानन्द सरस्वती[1] के नाम से जाने जाओगे।''

संन्यास लेने के बाद तैलंगधर गजानन्द सरस्वती के रूप में स्वीकृत हुए। भगीरथ स्वामी ने धीरे-धीरे उन्हें अष्ट सिद्धि दे दी। जब तक किसी योगी को अष्ट सिद्धियाँ प्राप्त नहीं होतीं तब तक वह योगैश्वर्य नहीं दिखा पाता। अष्ट सिद्धियों का वर्णन करते हुए गुरुदेव ने बताया—

(१) अणिमा—अगर योगी चाहे तो वह अणु से भी सूक्ष्म रूप धारण कर सकता है और किसी जीव के रोम कूप के द्वारा उसके शरीर में प्रवेश कर सकता है। इसी को परकाया प्रवेश कहते हैं।

(२) लघिमा—योगी अपनी इच्छानुसार लघु या शरीर को हल्का बनाकर हवा में उड़ सकता है।

(३) महिमा—सिद्ध योगी अपनी इच्छानुसार पर्वत की तरह विशाल शरीर धारण कर सकता है।

(४) प्राप्ति—योगी जब जी चाहे कोई भी वस्तु कहीं से स्मरण करते ही पा सकता है।

(५) प्रकाम्य—उनका दृढ़ संकल्प स्थायी रहता है और इसी के द्वारा देर-सबेर सफलता प्राप्त करते हैं।

(६) वशित्व—पंचभूत और भौतिक पदार्थों पर उनका अधिकार होता है।

(७) इशितृत्व—सभी प्रकार के भौतिक पदार्थ उनके आज्ञाकारी होते हैं।

(८) यत्रकामावसायित्व— अपनी इच्छानुसार वे सभी भौतिक पदार्थों के स्वभाव तथा क्रिया को नियन्त्रित करने में समर्थ होते हैं।[2]

गजानन्द सरस्वती पुष्कर में दीक्षा लेने के बाद लगातार दस वर्ष तक गुरु की सेवा करते रहे। ठीक इन्ही दिनों गुरुदेव का शरीरांत हो गया। गुरुदेव के ब्रह्मलीन होने के बाद गजानन्द सरस्वती तीर्थयात्रा के लिए निकल पड़े। उन दिनों आपकी उम्र ८८ वर्ष थी।

सन् १६९५ ई० में आप पुष्कर से चलकर विभिन्न स्थानों की यात्रा करते हुए रामेश्वर आये। यहाँ देश के विभिन्न भागों से सन्त-महात्मा एकत्रित हुए थे। मेला लगने के कारण अनेक तीर्थयात्री भी आये थे। इसी मेले में होलिया गाँव के लोगों से अचानक मुलाकात हो गयी।

तैलंग को संन्यासी के रूप में देखकर सभी चकित रह गये। उन लोगों ने आग्रह किया कि जैसे आप पहले श्मशान वाली कुटिया में रहते थे, उसी प्रकार चलकर वहाँ रहिये। अब आपकी सौतेली माँ नहीं रहीं। श्रीधर भी काफी वृद्ध हो गये हैं।

---

[1] कुछ विद्वानों का मत है कि संन्यास लेने के बाद उनका नाम गणपति सरस्वती रखा गया था।

[2] अष्ट सिद्धि योग के प्रमाण के लिए भारत के महान् योगी, खण्ड १-२-३ में प्रकाशित योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी, प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी आदि की जीवनी देखें।

गजानन्द सरस्वती ने कहा—"मैं गुरुदेव की इच्छानुसार तीर्थयात्रा करने निकला हूँ। अब जन्मभूमि जाना मेरे लिए सम्भव नहीं है।"

इतना कहकर गजानन्द सरस्वती आगे बढ़ गये। मेले में अपार भीड़ थी। हर प्रांत से लोग आये हुए थे। अचानक एक जगह भीड़ देखकर गजानन्दजी वहाँ चले गये। उन्होंने देखा—कुछ लोग एक शव को तख्ती में बाँध रहे हैं। पास ही एक महिला तथा अन्य लोग जोर-जोर से रो रहे हैं।

यह दृश्य देखकर गजानन्दजी ने कहा—"आप लोग यह क्या कर रहे हैं? जीवित व्यक्ति को क्यों बाँध रहे हैं?"

स्वामीजी की बातें सुनकर सभी लोग चकित रह गये। जो लोग रो रहे थे, उनका रोना बन्द हो गया। तख्ती बाँधने वालों का हाथ रुक गया। स्वामीजी ने अपने कमण्डल से पानी लेकर शव पर छिड़का और मृत व्यक्ति कफन के भीतर छटपटाने लगा।

तुरत कफन फाड़कर रस्सियाँ काट दी गयीं। स्वामीजी ने कहा—"चिन्ता करने की जरूरत नहीं। इसे तुरत दूध पिला दो।"

देखते ही देखते यह समाचार हवा की तरह चारों ओर फैल गया। नागरिकों तथा तीर्थयात्रियों की भीड़ स्वामीजी के दर्शन के लिए टूट पड़ी। उसी रात को आप चुपचाप चल पड़े।

कई नगरों से होते हुए स्वामीजी शिवकांची आकर ठहर गये। यहाँ से आगे बढ़ने पर अचानक एक परिचित व्यक्ति ने इन्हें प्रणाम किया।

स्वामीजी ने कहा—"सदा प्रसन्न रहो। क्या बात है?"

उस व्यक्ति ने हाथ जोड़ते हुए कहा—"स्वामीजी महाराज, मैंने आपको देखते ही पहचान लिया कि आप सेतुबन्ध रामेश्वर वाले स्वामीजी हैं। आपने ही उस मृत व्यक्ति को जीवित किया था। मैंने अपनी आँखों से वह सारा दृश्य देखा है। अब आप कहीं नहीं जा सकते। मुझे आप सेवा करने का अवसर देने की कृपा करें।"

स्वामीजी ने सोचा—अजीब मुसीबत में फँस गये। उक्त अपरिचित ब्राह्मण की कातर-प्रार्थना को वे ठुकरा नहीं सके। स्थान मनोरम था। कुछ दिनों के लिए इस निर्जन स्थान में उन्होंने विश्राम करने का निश्चय किया।

ब्राह्मण तथा उसकी पत्नी दासभाव से स्वामीजी की सेवा में लगे रहे। उनका दृढ़ विश्वास था कि अगर स्वामीजी प्रसन्न हो गये तो उनके आशीर्वाद से सारा कष्ट दूर हो जायगा। आखिर एक दिन वह भी आया जब स्वामीजी ने कहा—"पण्डित जी, आपकी सेवा स्वार्थ रहित नहीं है, इसे मैंने जान लिया है। बोलो, मुझसे क्या चाहते हो?"

बड़े विनय के साथ ब्राह्मण ने कहा—"स्वामीजी, हम अपुत्रक हैं और घर की क्या स्थिति है, यह आपसे छिपा नहीं है। याचक ब्राह्मण ठहरा। कृपा करके आप मुझे पुत्र-धन की प्राप्ति का आशीर्वाद दें।"

स्वामीजी के आशीर्वाद से ब्राह्मण के घर एक पुत्र ने जन्म लिया। राज्य की

ओर से उसे निष्कर भूमि दान में प्राप्त हो गयी। स्वामीजी के आशीर्वाद से ब्राह्मण को सुखी होते देख गाँव के अन्य लोग आकर स्वामीजी को तंग करने लगे। साधना में व्याघात होने पर एक दिन गजानन्दजी वहाँ से अन्तर्धान हो गये।

यहाँ से रवाना होते समय गजानन्दजी स्वामी ने निश्चय किया कि अब ऐसी जगह चलकर साधना करूँ जहाँ जल्द कोई परिचित न मिले। विभिन्न स्थानों का भ्रमण करते हुए स्वामीजी नेपाल चले आये। यहाँ आकर वे बस्ती से दूर घने जंगल में एक स्थान पर साधना करने लगे।

कहा जाता है कि नेपाल नरेश को शेर का शिकार करने का शौक था। इस सिलसिले में वे एक शेर का पीछा करते हुए इधर चले आये। गोली चलाने पर निशाना चूक गया। नेपाल नरेश शेर का पीछा करते हुए वहाँ तक आ पहुँचे जहाँ स्वामीजी बैठे हुए थे। उन्होंने आश्चर्य से देखा—जिस खूँखार शेर को मारने के लिए वे यहाँ तक आये हैं, वह स्वामीजी के पैरों के पास शान्तिपूर्वक बैठा हुआ है। स्वामीजी उसके शरीर पर हाथ फेर रहे हैं।

नेपाल नरेश और उनके साथ आये सैनिकों को देखकर शेर गुर्राने लगा।

स्वामीजी ने शान्तभाव से कहा—''इससे भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। यह शेर यहाँ से तब तक नहीं उठेगा जब तक मैं इसे आज्ञा न दूँ। आप इसी शेर का शिकार करना चाहते थे और अब इसे देखकर भयभीत हो रहे हैं। जब आप किसी को प्राण नहीं दे सकते तो किसी का प्राण लेने का क्या अधिकार है तुम्हें? हिंसा करना उचित नहीं है। अब वापस चले जाओ, राजन्।''

कुछ देर बाद शेर जंगल में अपनी जगह चला गया। इधर महल में वापस आने के बाद आज की इस अद्भुत घटना को नेपाल नरेश भुला नहीं पा रहे थे। उन्हें इस बात पर आश्चर्य हो रहा था कि उनके राज्य में एक ऐसा संत भी है जिसके पास जंगली शेर पालतू बिल्ली की तरह बैठा रहता है।

दूसरे दिन अनेक उपहार लेकर वे स्वामीजी की सेवा में हाजिर हुए। नेपाल नरेश को इतने उपहारों के साथ आया देखकर स्वामीजी मुस्करा उठे। उन्होंने कहा—''राजन्, मैं आपकी भक्ति से प्रसन्न हो गया। मैं फकीर आदमी हूँ। मुझे इन चीजों की आवश्यकता नहीं है। मेरा अनुरोध है कि यह सब सामग्री आप उन अभावग्रस्त लोगों में बाँट दें जिन्हें इसकी जरूरत हो। इससे आपका तथा राज्य का कल्याण होगा।''

नेपाल नरेश एक संत के यहाँ गये थे जिन्होंने महाराजाधिराज की सामग्रियों को लेने से इनकार कर दिया है। यह समाचार साथ आये सैनिकों की जबानी फैल गयी। यहाँ भी पीड़ित, आर्त और स्वार्थी लोगों की भीड़ आने लगी। फलतः एक रात आप यहाँ से तिब्बत की ओर चल पड़े।

कुछ दिनों तक तिब्बत में निवास करने के बाद मानसरोबर में योगाभ्यास करते रहे।

सन् १७२६ ई० में अचानक आप नर्मदा नदी के किनारे स्थित मार्कण्डेय ऋषि

के आश्रम में आकर साधनारत हो गये। यहाँ भारत के अनेक संत-महात्मा रहते थे। उनसे योग, दर्शन, अध्यात्म की चर्चा करते रहे। यहाँ का वातावरण स्वामीजी को इतना पसन्द आया कि यहाँ की कुटिया में रहने लगे।

नित्य नर्मदा में स्नान करने के पश्चात् योगाभ्यास करते थे। कहा जाता है कि इसी आश्रम में 'खाकी बाबा' नामक एक संत रहते थे। खाकी बाबा भी नित्य योगाभ्यास करते थे। एक दिन जब वे नदी किनारे बैठे अभ्यास कर रहे थे तब सहसा उनकी नजर नर्मदा के जल पर पड़ी। उन्होंने चकित दृष्टि से देखा—नदी का जल श्याम वर्ण नहीं, बल्कि दूध की तरह है।

सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह हुई कि स्वामी गजानन्द उस दूध को अंजलि में भरकर पान कर रहे हैं। देर तक वे इस दृश्य को देखते रहे। एकाएक उनके मन में आया कि कहीं दृष्टिभ्रम तो नहीं है। यह सोचकर वे नदी किनारे आये और अपनी अंजलि में नर्मदा में प्रवाहित दूध को उठाया तो वह पानी नजर आया। दूर गजानन्द स्वामी की ओर देखा तो वे दूर जा चुके थे। और इधर नदी का स्वरूप वास्तविक रूप में परिणत हो गया था।

उन्हें यह समझते देर नहीं लगी कि स्वामी गजानन्द ने अपनी यौगिक शक्ति के माध्यम से यह चमत्कार किया है। खाकी बाबा अभी इस स्तर तक नहीं पहुँच सके हैं, इसलिए उन्हें आश्चर्य हुआ। इस घटना के कारण स्थानीय सभी संत उन्हें उच्चस्तर का संत समझकर श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगे।

* * *

सात वर्ष मार्कण्डेय ऋषि के आश्रम में रहने के बाद पुनः एक बार यात्रा के लिए स्वामीजी चल पड़े। विभिन्न तीर्थों का दर्शन करते हुए सन् १७३३ ई० के अंतिम दिनों प्रयाग में आकार रहने लगे। यहाँ नदी किनारे एक निर्जन स्थान में आकर साधनारत हो गये।

एक दिन नदी किनारे चुपचाप बैठे थे। हवा के झोंके खा नदी में लहरें नृत्य कर रही थीं। देखते ही देखते आसमान की रंगत बदल गयी। आसमान में गर्द के बादल आपस में उलझने लगे। नदी में ऊँची-ऊँची लहरें आपस में टकराने लगीं। किनारे की बालू उड़कर एक जगह से दूसरी जगह जाने लगी। बिजली की चमक के साथ बादल गरजने लगे और पानी बरसने लगा।

नदी किनारे खुले स्थान पर जो लोग बैठे हवा का आनन्द ले रहे थे, चारों ओर आश्रय की खोज में भागने लगे। गजानन्द स्वामी अपनी जगह स्थिर होकर बैठे रहे। रामतरण भट्टाचार्य नामक एक व्यक्ति जो स्वामीजी को पहचानता था, उसने पास आकर कहा—"महाराज, क्यों आप पानी में भींग रहे हैं। चलिये किनारे किसी दूकान में बैठें।"

स्वामीजी ने कहा—"मेरे लिए तुम्हें चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। मुझे यहाँ कोई कष्ट नहीं है। वास्तव में यहाँ मैं एक विशेष कार्य से बैठा हूँ।"

''इस बरसात में कौन-सा काम है, भगवान्?''

स्वामीजी ने कहा—''उधर देखो, उस पार से यात्रियों को लेकर जो नाव आ रही है, वह थोड़ी ही देर में डूब जायेगी। मुझे उन लोगों को बचाना है।''

रामतरण ने देखा—सचमुच यात्रियों से लदी एक नाव इस पार आ रही है। लेकिन यह नाव क्यों डूब जायेगी? स्वामीजी को कैसे यह रहस्य ज्ञात हो गया? कौतूहलवश वह वर्षा से बचने की अपेक्षा यह देखने के लिए रुक गया कि स्वामीजी कैसे इतने यात्रियों को बचा पाते हैं। अभी वह इन बातों को सोच ही रहा था, कि स्वामीजी अपनी जगह से गायब हो गये। वह भयभीत होकर दूर जाकर खड़ा हो गया।

रामतरण ने देखा—सचमुच नाव डूब गयी। लोगों को चीखने का मौका भी नहीं मिला। थोड़ी देर बाद वह यह देखकर और भी चकित रह गया कि वही नाव किनारे लग रही है। सभी यात्री सुरक्षित अवस्था में हैं। केवल उनके कपड़े और सामग्रियाँ पानी से तर हैं। उसी नाव पर एक किनारे स्वामीजी उलंग स्थिति में बैठे हैं।

यात्रियों के चले जाने के बाद रामतरण ने स्वामीजी के चरण पकड़ लिए। इसके बाद उसने पूछा—''महाराज, आपने इन लोगों को कैसे बचाया, यह मेरी समझ में नहीं आया। क्या आप मनुष्य के रूप में देवदूत हैं या और कुछ ?''

स्वामीजी ने कहा—''वत्स, इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। यह कार्य तुम भी कर सकते हो। इसके लिए शक्ति चाहिए। प्रत्येक मनुष्य के भीतर ईश्वरीय-शक्ति है। आत्मबोध का अर्थ है—अपने को पहचानना। अगर हम अपने को पहचान लें तो ईश्वर को भी जान लेंगे। जब तक अपने को नहीं जान सकोगे तब तक भगवान् को नहीं जान सकोगे। मैं क्या हूँ, इसे जानने के लिए आत्मा, मन तथा बुद्धि इन तीन पदार्थों को जानना चाहिए। आत्मा ही शरीर का प्रधान है। जिस प्रकार सूर्य पृथ्वी का कर्ता है, वह सम्पूर्ण जगत् को आलोकित करता है, मगर सूर्य स्वयं कुछ नहीं करता, ठीक उसी प्रकार मनुष्य के शरीर में आत्मा ही सूर्य की भाँति कर्ता होकर प्रकाश प्रदान करती है। इस प्रकाश के आश्रय में इन्द्रियाँ कार्य करती हैं, आत्मा स्वयं कुछ नहीं करती।''

* * *

प्रयाग में चार वर्ष तक निवास करने के बाद स्वामीजी का आगमन काशी नगरी में हुआ। बचपन में उन्होंने जहाँगीर को किशोरावस्था में, शाहजहाँ को भारतीय संस्कृति और धर्म पर कुठाराघात करते देखा और वृद्धावस्था में औरंगजेब के धार्मिक-उन्माद को देखने लगे। काशी नगरी में बिन्दुमाधव और विश्वनाथ मंदिर ध्वस्त कर दिया गया था। नगर की जनता आतंकित और संकटापन्न थी। ठीक ऐसे माहौल में पूज्यपाद गजानन्द सरस्वती का अवतरण काशी में हुआ।

प्राचीनकाल से काशी में अनेक संत-महात्मा रहते आये हैं, पर वे यवनों के प्रकोप को दूर करने में असमर्थ रहे। काशी आकर स्वामीजी ने नगर के बाहरी इलाके

में स्थित लोलार्क कुण्ड के समीप डेरा डाला। नदी किनारे प्रायः चुपचाप ध्यानस्थ रहते थे। गंगा-स्नान करने वाले इन्हें देखते, दूर से प्रणाम करते और कुछ उपेक्षा के साथ आगे बढ़ जाते।

कभी-कभी आसपास के लोग आकर बैठ जाते और बाबा के बारे में जानकारी हासिल करते। बातचीत के जरिये लोगों को जब यह मालूम हुआ कि बाबा दक्षिण के तेलंगाना प्रदेश से आये हैं तब इन्हें अधिकतर लोग "तैलंग स्वामी" के नाम से जानने लगे। स्वामीजी के वास्तविक नाम को जानने का किसी ने प्रयत्न नहीं किया।

आज भी नगर की अधिकांश अर्द्ध शिक्षित जनता कर्नाटक, आंध्र, केरल तथा तमिल प्रदेश के निवासियों को मद्रासी समझती है, ठीक उसी प्रकार प्राचीन काल में तेलंगाना की प्रसिद्धि थी। दक्षिण भारत के नागरिकों को तेलंगाना निवासी समझा जाता था।

साँवला रंग, नग्न देह, कमर में कोपीन, मुंडित मस्तक, उन्नत ललाट और भरपूर शरीर था। एक बार आप लोलार्क कुण्ड में स्नान करने के बाद जब ऊपर आये तो देखा तो कुष्ठ रोग से पीड़ित एक व्यक्ति गली में नाली के पास बेहोश पड़ा है। करुणा से विगलित होकर आप उसके निकट बैठ गये।

उसके शरीर पर धीरे-धीरे हाथ फेरने लगे। स्वामीजी के स्पर्श से उसकी चेतना जाग्रत् हुई। स्वामीजी ने पूछा—"बड़ा कष्ट है?"

"हाँ, बाबा। मैं मरने के लिए ही काशी आया हूँ। भोलेनाथ मुझे मुक्ति दे दें तो इस पाप से छुटकारा मिल जाय। पता नहीं किस पाप की सजा भोग रहा हूँ।"

स्वामीजी ने पूछा—"क्या नाम है तुम्हारा?"

कुष्ठ रोगी ने कहा—"ब्रह्मा सिंह। अजमेर से यहाँ इसीलिए आया हूँ ताकि मुझे सदा के लिए मुक्ति मिल जाय। पता नहीं, भगवान् कब मेरी प्रार्थना स्वीकार करेंगे?"

स्वामीजी ने कहा—"चिन्ता की बात नहीं है। जाओ, कुण्ड में स्नान कर लो। स्नान करने के बाद यह पत्र चबाकर खा जाना। तुम्हारा रोग दूर हो जायेगा। और देखो, रोग अच्छा होने पर भगवान् की आराधना करते रहना। मैं पास ही घाट पर रहता हूँ। कुण्ड में स्नान करने के बाद मेरे पास रोज आना और बेलपत्र ले जाना।"

स्वामीजी की आज्ञानुसार ब्रह्मा सिंह नित्य लोलार्क कुण्ड में स्नान करने के बाद उनके पास जाकर बेलपत्र लेता और उसे खा जाता था। कुछ ही दिनों बाद वह रोग-मुक्त हो गया। बाबा की इस कृपा के कारण वह उनका सेवक बनकर सेवा करने लगा।

इसी प्रकार सीतानाथ बनर्जी नामक एक बंगाली युवक एक अर्से से तपेदिक से पीड़ित था। उसे यह विश्वास हो गया था कि अब वह चन्द दिनों का मेहमान है। सुखपूर्वक रहने के लिए वह गंगा किनारे आकर रहने लगा। अचानक एक दिन उसकी स्थिति चिन्ताजनक हो गयी। देखते ही देखते दर्शकों की भीड़ एकत्रित हो गयी।

ठीक इसी समय न जाने किधर से तैलंग स्वामी वहाँ आ गये। यहाँ इतनी भीड़

क्यों है, प्रश्न पूछने पर जब उन्हें कारण मालूम हुआ तब उन्होंने कहा—''जरा आप लोग हट जाइये।''

अधिकांश दर्शक तैलंग स्वामी से परिचित थे। उन लोगों ने तुरन्त रास्ता दिया।

स्वामीजी रोगी के पास बैठकर उसकी छाती सहलाने लगे। इसके बाद उसे सहारा देकर बैठाते हुए बोले—''चिन्ता की बात नहीं है, सब ठीक हो जायगा।''

घाट के किनारे से थोड़ी मिट्टी लाकर उसे देते हुए स्वामीजी ने कहा—''इसमें से थोड़ी खा लो। शेष मिट्टी प्रलेप की तरह अपनी छाती पर लगा लो। कल से नित्य गंगा-स्नान के बाद यही क्रिया करना। कुछ दिनों बाद तुम्हारा रोग दूर हो जायेगा।''

* * *

कुछ दिनों बाद स्वामीजी भदैनी घाट से हटकर हनुमानघाट के पास आकर रहने लगे। घाट किनारे बैठे रहने पर प्रायः कुछ श्रद्धालु आपके पास आकर बैठते थे। समय-समय पर आप उन्हें उपदेश देते थे।

इसी मुहल्ले में एक महिला रहती थी जो नित्य गंगा-स्नान करने के बाद घाट-मार्ग से विश्वनाथ मन्दिर दर्शन करने जाती थी। एक दिन स्वामीजी पूर्ण रूप से नंग-धड़ंग बैठे थे। इन्हें वस्त्र-रहित देखकर वह महिला आगबबूला हो गयी।

कुछ दूर जाकर राह चलते लोगों से कहने लगी—''शर्म नहीं आती इस बूढ़े को। बीच बाजार में नंगा बैठा है। औरतों का चलना, फिरना मुहाल हो गया है।''

स्वामीजी अपनी आलोचना मौन भाव से सुनते रहे। प्रतिवाद में उन्होंने कुछ नहीं कहा। वह महिला भुनभुन करती हुई आगे बढ़ गयी।

इसी रात को उक्त महिला ने एक भयंकर स्वप्न देखा—स्वयं शंकर भगवान् उसे फटकारते हुए बोले—''आज तू ने मेरे ही एक गण का अपमान किया है, अब तेरी मनोकामना पूरी नहीं होगी। मेरे गण का अपमान मेरा अपमान है। अब वही गण तुझे अपने कष्टों से छुटकारा दिलायेगा। मैं कुछ नहीं करूँगा।''

स्वप्न में यह निर्देश पाते ही महिला चौंककर जाग गयी। एकाएक उसे ध्यान आया कि आज सुबह मैंने एक नंगे साधु को फटकारा था। जरूर वही स्वामी भगवान् के गण होंगे। यह विचार मन में आते ही वह महिला सबेरे जल्दी से स्नान करके तैलंग स्वामी के पास आकर साष्टांग प्रणाम करती हुई बोली—''भगवन्, कल मुझसे अपराध हो गया। मुझे क्षमा कर दीजिए। मैं बड़ी अभागिन हूँ जो आपको पहचान नहीं सकी। आप दयालु संत हैं, जब तक आप क्षमा नहीं करेंगे तब तक मैं यहाँ से नहीं जाऊँगी।''

अन्तर्यामी बाबा से कोई बात छिपी नहीं रही। शान्त स्वर में उन्होंने कहा—''माँ, तू चिन्ता मत कर। तू मेरी माँ है। माँ का कार्य ही है—बेटे को डाँटना । मैं तो उस घटना को भूल चुका हूँ। तू भी भूल जा। बाबा के दरबार में तू अपने पति को निरोग बनाने के लिए जाती रही न? चिन्ता मत कर वह ठीक हो जायगा। पूर्व

जन्म का कुछ भोग बाकी है। ले, इस भस्म में से उसे थोड़ा खिला देना और शेष उसके पेट में प्रलेप की तरह लगा देना। वह निरोग जायेगा।''

कुछ ही दिनों में उसका पति चंगा हो गया। यह चमत्कार देखकर वह महिला नित्य स्वामीजी की पूजा विग्रह की तरह करने लगी। उसकी जबानी इस घटना का प्रचार चारों ओर हो गया। फलस्वरूप कष्ट से पीड़ित अनेक लोग अपने रोग-निवारण के लिए बाबा के पास आने लगे। भोलानाथ की तरह सभी लोगों को बाबा आशीर्वाद के साथ-साथ भभूत देते रहे। इस प्रकार स्वामीजी की यौगिक शक्ति का प्रसार बढ़ता गया।

बढ़ती भीड़ से परेशान होकर स्वामीजी वहाँ से हटकर दशाश्वमेध घाट पर आकर रहने लगे। आपकी अलौकिक शक्ति का प्रचार हो गया था। नगर का मुख्य घाट होने के कारण यहाँ भी श्रद्धालुओं का ताँता लगने लगा। लोग अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए फल-मिष्ठान्न, वस्त्रादि सामान भेंट चढ़ाने लगे। तंग आकर आपने मौन व्रत धारण कर लिया। अब किसी के प्रश्न का उत्तर देने के बदले ध्यानस्थ हो जाते थे। भेंट में जो कोई कुछ भी लाता, उसे स्वीकार कर लेते और फिर लोगों में बाँट देते थे।

एक बार एक शरारती व्यक्ति अपनी कामना की पूर्ति के लिए बराबर आने लगा। वह क्या चाहता है, यह बात स्वामीजी से छिपी नहीं रही। इसके अलावा उन दिनों स्वामीजी मौन व्रत धारण किये हुए थे। बार-बार प्रश्न करने पर जब उसे कोई उत्तर नहीं मिला तब वह बदले की भावना से पीड़ित हो गया।

एक दिन एक हड़िया में चूना घोलकर ले आया और कहा—''बाबा, आपके लिए घर से गाढ़ा दूध ले आया हूँ। लीजिए, सेवन कीजिए।''

तैलंग स्वामी उसके मनोभाव को समझ गये। मन ही मन मुस्कराये। उस व्यक्ति की जिद्द थी कि बाबा मेरे सामने सारा दूध पी जायें। देखें, कितना सिद्ध हैं। पेट में जूना जाते ही बाबा को अपनी जिद्द का फल मिलेगा तब इनका मौन व्रत भंग होगा।

बिना किसी प्रकार का प्रतिवाद किये स्वामीजी सारा घोल पी गये। थोड़ी देर बाद उठे और लघुशंका के जरिये सारा पानी तथा चूने को निकाल दिया। वह व्यक्ति तब तक बैठा बाबा के चेहरे को देख रहा था। बाबा को अपनी ओर तीव्र दृष्टि से देखते उसने देखा कि लघुशंका में सारा चूना निकल गया है । भय से वह भाग खड़ा हुआ।

रात को उस व्यक्ति की स्थिति चिन्तनीय हो उठी। पेट के दर्द के कारण वह छटपटाने लगा। दूसरे दिन भोर होते ही किसी सूरत से स्वामीजी के पास आकर उनके पैरों पर गिर पड़ा।

उसकी दयनीय स्थिति देखकर आशुतोष स्वामीजी उसके मस्तक पर हाथ फेरने लगे। थोड़ी ही देर बाद उसकी पीड़ा कम हो गयी। उसने कहा—''मुझे अपने अपराध की सजा मिल गयी, महाराज। आप मुझ पर हमेशा इसी तरह कृपा करते रहें।''

दशाश्वमेध घाट पर अधिक परेशानी अनुभव करने के कारण पंचगंगा घाट पर

चले आये। यहाँ बिन्दुमाधव मन्दिर के समीप रहने लगे। पंचगंगा घाट छोड़कर फिर आप आजीवन कहीं नहीं गये। आपकी अधिकतर लीला इसी घाट पर हुई है।

गंगा के उस पार काशी नरेश का क्षेत्र था और इस पार ब्रिटिश शासन की हुकूमत थी। यहाँ स्वामीजी दिगम्बर रूप में पड़े रहते थे।

एक बार यात्रियों की शिकायत पर पुलिस आपको पकड़कर ले गयी। उन दिनों काशी का जिलाधीश अंग्रेज था। जब उसकी अदालत में स्वामीजी बन्दी रूप में उपस्थित हुए तब उसने कहा—''इस तरह नंगा रहना अपराध है। मैं जानता हूँ कि अधिकांश संत नंगे बदन रहते हैं, पर इस तरह खुलेआम दिगम्बर रहना कानूनन अपराध है। भविष्य में आप धोती या अन्य कोई वस्त्र पहना करें।''

अचानक जज की निगाह स्वामीजी पर पड़ी। उसने देखा कि मेरी आज्ञा पर ध्यान देने के बजाय बन्दी दूसरी ओर देख रहा है। अपनी उपेक्षा उसे सहन नहीं हुई। तुरन्त उसने आदेश दिया—''इस साधु को पकड़कर जेल में बन्द कर दो।''

आदेश का पालन करने के लिए पुलिस आगे बढ़ी। अचानक अपने स्थान से स्वामीजी गायब हो गये। सारी अदालत हक्का-बक्का रह गयी। स्वामीजी पकड़े गये हैं, यह समाचार सुनकर अनेक भक्त और दर्शक भी मुकदमे का फैसला सुनने आये थे। जिलाधीश के आदेश को सुनकर वे लोग अप्रसन्न हो गये थे। अब स्वामीजी के गायब हो जाने पर सभी खुशी से उछलते हुए कह उठे—''हर हर महादेव।''

जिलाधीश और अन्य कर्मचारियों की स्थिति विचित्र हो गयी। चारों ओर खोजने पर भी वे कहीं दिखाई नहीं दिये।

ठीक इसी समय अदालत में एक बंगाली सज्जन आये जो इसी कचहरी में मैजिस्ट्रेट थे। सारी बातें सुनने के बाद उन्होंने जिलाधीश से कहा—''भारत में अधिकांश संत निर्वस्त्र रहते हैं। उनकी इस आदत को कोई बुरा नहीं मानता। फिर तैलंग स्वामी साधारण साधु नहीं हैं। मैं उनकी अनेक योग विभूतियों को देख चुका हूँ। आपको उन्होंने अपनी योग-शक्ति दिखाई है।''

बात समाप्त होते ही स्वामीजी पुनः उसी कठघरे में खड़े दिखाई दिये जिसमें इसके पूर्व खड़े थे। जिलाधीश पर इस चमत्कार का प्रभाव पड़ चुका था।

बंगाली मैजिस्ट्रेट ने आगे जिलाधीश को बताया—''इनके लिए वास-भवन और कारागार समान है। क्रोध, घृणा, हिंसा, भय से स्वामीजी काफी ऊपर उठ चुके हैं। चन्दन और विष्ठा में कोई अन्तर नहीं समझते। इनकी दृष्टि में दोनों बराबर हैं।''

जिलाधीश को स्वामीजी की इतनी प्रशंसा अच्छी नहीं लगी। उसे यह ज्ञात था कि भारतीय नागरिक अपने यहाँ के सन्तों के प्रति काफी श्रद्धा रखते हैं। उसने जानबूझ कर स्वामीजी की ओर देखते हुए पूछा—''क्या यह फकीर मेरा भोजन खा सकता है?''

जिलाधीश अंग्रेज था। अंग्रेज सुअर-गाय का मांस खाते हैं। उसे इस बात की जानकारी थी कि हिन्दू गोमांस नहीं खाते। फिर सन्त तो कोई भी मांस नहीं खाता।

जिलाधीश के उद्देश्य को समझते ही स्वामीजी ने कहा—''जरूर खा सकता हूँ, पर उसके पहले आपको मेरा भोजन खाना पड़ेगा।''

जिलाधीश को यह ज्ञात था कि हिन्दू-साधु अधिकतर फल-मिष्ठान्न सेवन करते हैं। उसने कहा—''लाइये, देखूँ। आप तो............।''

अभी अपनी बात पूरी भी नहीं कर पाये थे कि तैलंग स्वामी ने अपने हाथ पर टट्टी करके जिलाधीश की ओर बढ़ाते हुए कहा—''मेरा आज का यही भोजन है। लीजिए, सेवन कीजिए।''

साहब की उस समय हालत ऐसी हो गयी जैसे 'काटो तो खून नहीं।' घृणा से उसने नाक-मुँह सिकोड़ लिया। उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि भरी अदालत में स्वामीजी ने बिना संकोच किये टट्टी को उदरस्थ कर लिया।

स्वामीजी के अन्तर्धान का प्रभाव उस पर पड़ चुका था और इस कांड को देखने के बाद उसने स्वविवेक से फैसला दिया कि भविष्य में स्वामीजी अपनी इच्छानुसार रहने को स्वतन्त्र हैं। इन पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध न लगाया जाय।

कहा जाता है कि इस घटना के कुछ दिनों बाद एक दूसरा जिलाधीश बनारस में आया। पंचगंगा घाट पर कुछ अंग्रेज टहलने गये थे। साथ में महिलाएँ भी थीं। इनकी नजर निर्वस्त्र तैलंग स्वामी पर पड़ी। उन्हें बड़ा नागवार लगा। जिलाधीश से शिकायत की गयी। उसने तुरन्त स्वामीजी को गिरफ्तार करने का आदेश दिया।

स्वामीजी गिरफ्तार होकर थाने में बन्द हो गये। शहर में सनसनी फैल गयी। कहीं जनता के विरोध पर पुलिस उस साधु को छोड़ न दे, इसलिए जिलाधीश स्वयं थाने पर जाँच के लिए गया तो देखा—तैलंग स्वामी जेल कोठरी के बाहर बरामदे पर टहल रहे हैं।

सिपाहियों की लापरवाही से नाराज होकर वह सभी को बिगड़ने लगा; पहरेदारों ने कहा—''हुजूर, हमारी लापरवाही नहीं है। स्वयं आप अपनी आँखों से देख लें। डबल ताला बन्द है। पता नहीं, कैसे बाबा बाहर निकल आये? हम पकड़ने जाते हैं तो गायब हो जाते हैं। कभी इधर तो कभी उधर दिखाई देते हैं।''

जिलाधीश को सिपाहियों की सफाई पर विश्वास नहीं हुआ। उसने आगे बढ़कर दरवाजे के तालों को टटोला। भीतर झाँकने पर अजीब दृश्य दिखाई दिया। कमरे में चारों ओर पानी फैला हुआ था। अजीब बू आ रही थी।

जिलाधीश ने पूछा—''हवालात में इतना पानी कैसे आ गया?''

पहरेदार के बदले स्वामीजी ने कहा—''रात को लघुशंका करने की इच्छा हुई तो थोड़ा-सा कर दिया। उस समय बाहर आने की इच्छा नहीं हो रही थी और भोर के वक्त मन में आया कि बाहर निकलकर टहल लिया जाय तो निकल आया। पहरेदारों ने मुझे नहीं निकाला।''

जिलाधीश को स्वामीजी की बातों पर विश्वास नहीं हुआ। सभी सिपाही हिन्दू हैं

जिनकी साधुओं पर आस्था रहती है। जरूर ये लोग झूठ बोल रहे हैं। उसने तुरन्त आदेश दिया कि मेरे सामने बाबा को हवालात में बन्द करो। देखू, कैसे बाहर आता है।

स्वामीजी पुनः हवालात में बन्द कर दिये गये। उसी दिन जिलाधीश अपनी इजलास में एक मुकदमे की बहस को सुन रहा था। अचानक उसने देखा कि कमरे के एक कोने से स्वामीजी निकलकर सामने आकर खड़े हो गये। पूर्ण रूप से दिगम्बर थे।

उसे हक्का-बक्का देखकर स्वामीजी ने कहा—''पश्चिम के नास्तिक भारतीय योगियों के बारे में जानते ही कितना हैं? तुम लोगों में इतनी शक्ति नहीं है कि मुझे बन्द करके रख सको। भविष्य में किसी सन्त के साथ ऐसा व्यवहार मत करना वर्ना उसके कोप से बच नहीं सकोगे।''

स्वामीजी ने आगे कितनी चेतावनी दी, यह सारी बातें सुनने के पहले ही वह इजलास पर बेहोश हो गया। चारों तरफ तहलका मच गया। स्वामीजी अन्तर्धान हो गये थे।

होश में आने के बाद उसने फैसला दिया कि काशी के सर्वजन आदृत स्वामी तैलंगजी नगर में, कहीं भी, किसी भी रूप में रहने को स्वतन्त्र हैं। उनके साथ शासन की ओर से कभी छेड़छाड़ न की जाय।

* * *

सन् १८१० ई० की घटना है । उज्जैन के राजा काशी-दर्शन के लिए आये तो काशी नरेश के अतिथि हुए। एक दिन वे काशी नरेश के साथ घाटों की शोभा देखने के लिए नाव से निकल पड़े। रामनगर से दशाश्वमेध घाट पार कर पंचगंगा घाट पर जब नाव आयी तब उज्जैन नरेश ने देखा—एक संन्यासी नदी पर बैठा है। यह दृश्य देखकर वे चकित रह गये।

काशी नरेश से उन्होंने पूछा—''यह महात्माजी कौन हैं?''

काशी नरेश ने कहा—''आप हैं तैलंग स्वामी। आम जनता इन्हें योगी समझती है। लगभग सभी लोग इन्हें साक्षात् विश्वनाथ समझते हैं। अपनी अलौकिक शक्ति का इन्होंने काफी परिचय दिया है।''

इसके बाद काशी नरेश ने तैलंग स्वामीजी की कई घटनाओं का विस्तार के साथ वर्णन किया। सारी बातें सुनने के बाद उज्जैन नरेश ने कहा—''अगर स्वामीजी इस नौका पर आने को तैयार हों तो मैं उनके दर्शन के अलावा कुछ बातें कर लूँगा।''

उज्जैन नरेश की इच्छा को जानकर काशी नरेश ने स्वामीजी के पास नाव ले चलने की आज्ञा दी। अचानक स्वामीजी हवा में उड़ते हुए नाव पर आकर बैठ गये और कहा—''कहिये राजन्, आप मुझसे क्या पूछना चाहते हैं?''

अपने जीवन में किसी व्यक्ति को इस प्रकार हवा में उड़ते कभी नहीं देखा था और प्रत्यक्ष रूप से इस चमत्कार को देखने पर नौका में बैठे सभी व्यक्ति विस्मय से भयभीत हो उठे। दोनों नरेशों ने नमस्कार किया और देर तक गूँगे बने रहे।

तैलंग स्वामी के पुनः प्रश्न करने पर उज्जैन नरेश ने पूछा—''स्वामीजी, मेरी जिज्ञासा यह है कि परमात्मा ने हमें इस संसार में भेजा है। यहाँ हम नाना प्रकार के सुख-दुःख भोग कर परमगति प्राप्त करते हैं। इसके बाद कोई गति होती है या नहीं? अगर होती है तो वह कैसी होती है?''

स्वामीजी ने कहा—''प्रज्ज्वलित अग्नि से जैसे सहस्त्रों चिनगारियाँ निकलती हैं, वैसे अक्षय परमात्मा से नाना प्रकार की जीवात्माओं की सृष्टि होती है और अन्त में उसी ब्रह्म में सब लीन हो जाती हैं। परमात्मा से उत्पन्न होकर परमात्मा में लीन हो जाते हैं। इसलिए यह निश्चित है कि आत्मा व जीवात्मा एक ही परमात्मा से उत्पन्न होते हैं। ज्ञानी मात्र इस बात को जानते हैं कि आत्मा, जीवात्मा तथा परमात्मा परस्पर संयुक्त हैं।''

दरअसल काशी नरेश की समझ में स्वामीजी की बातें नहीं आयीं। फलस्वरूप उन्होंने आगे कोई प्रश्न नहीं किया। स्वामीजी के मन में कौतुक उत्पन्न हुआ। उन्होंने काशी नरेश के हाथ से तलवार लेकर उलट-पुलट कर देखने के बाद उसे गंगा नदी में फेंक दिया। स्वामीजी के इस कार्य से वे आगबबूला हो उठे। नौका पर बैठे उनके एक भक्त से काशी नरेश ने कहा—''यह कैसा साधु है जो दूसरे की वस्तु उठाकर फेंक देता है? बातें ऊँचे दर्जे की और काम इतना ओछा।''

उज्जैन नरेश भी कुपित हो उठे। उन्होंने कहा—''वास्तव में यह कपटी साधु है।''

स्वामीजी के भक्त ने कहा—''महाराज, आप लोग अप्रसन्न न हों। नाव किनारे लग जाने दीजिए, यहाँ काफी गोताखोर मिल जायेंगे। उनसे कहकर आपकी तलवार दिलवा देता हूँ।''

नाव किनारे पर लगते ही स्वामीजी उतरने लगे। यह देखकर काशी नरेश ने कहा—''स्वामीजी, आप यहाँ चुपचाप बैठे रहिये। जब तक मुझे मेरी तलवार नहीं मिल जाती तब तक आप कहीं नहीं जा सकते।''

काशी नरेश ने इरादा किया कि अगर मेरी तलवार न मिली तो इस धूर्त संन्यासी को गिरफ्तार कर ले चलेंगे। बड़ा आया है तत्त्व उपदेश देने वाला ढोंगी साधु। अन्तर्यामी तैलंग स्वामी को नरेश के मन की बात ज्ञात हो गयी। वे मन ही मन मुस्कराये।

नाव किनारे लगने ही वाली थी कि स्वामीजी ने नदी में हाथ डाला और दो तलवारें राजाओं की ओर बढ़ाते हुए कहा—''इनमें से जो तलवार अपनी हो, उसे पहचानकर ले लो।''

कहाँ तलवार के शोक में राजा उद्वेलित हो उठे थे और अब दो-दो तलवार सामने जादू की तरह पेश होने पर वे हतबुद्धि हो गये। इनमें से कौन-सी तलवार अपनी है, पहचानने में काशी नरेश असमर्थ थे।

उनकी मूढ़ता देखकर तैलंग स्वामी ने कहा—''जब तुम अपनी वस्तु स्वयं नहीं पहचान रहे हो तब यह तुम्हारी कैसे हुई? अगर यह तलवार तुम्हारी होती तो तुम निश्चित

रूप से पहचान लेते। जो वस्तु अपनी नहीं है, उसके लिए इतना क्रोध क्यों? अभी तुम परमात्मा, जीवात्मा और ईश्वर के बारे में जिज्ञासा प्रकट कर रहे थे और क्षण भर में तुम्हारी यह मनोदशा हो गयी? धिक्कार है ऐसे ज़ीवन पर।''

इतना कहने के बाद स्वामीजी ने एक तलवार उनके हाथ में देकर दूसरी को गंगा नदी में फेंक दिया। इसके बाद नाव से नीचे उतर गये। सब कुछ पल भर में हो गया।

स्वामीजी को जाते देख दोनों नरेश तुरन्त नाव से उतर कर उनके पास आकर उनके चरणों पर गिर पड़े।

काशी नरेश ने कहा—''मुझसे गलती हो गयी महाराज!'' मुझे क्षमा कर दें। हम पापिष्ठ हैं, इसीलिए आपको पहचान नहीं सके। आप दयालु हैं। अगर आप मेरे जैसे अज्ञानी पर दया नहीं करेंगे तो हमें शान्ति नहीं मिलेगी।''

इस कातर-प्रार्थना को सुनकर सदाशय संत कृपावान हो गये। बोले—''सभी महात्मा एक से नहीं होते। भविष्य में किसी संत का अपमान करने का साहस मत करना। पता नहीं, कब किस संत के क्रोध के कारण तुम्हारा अनिष्ट हो जाय।''

इतना कहकर स्वामीजी नदी में कूद पड़े और देखते ही देखते न जाने कहाँ अदृश्य हो गये। दोनों नरेश उनके आने की प्रतीक्षा में देर तक नाव पर बैठे रहे, पर वे वापस नहीं लौटे।

* * *

अम्बालिका नामक एक महिला नित्य गंगा-स्नान करने के पश्चात् तैलंग स्वामी का दर्शन करने जाती थी। साथ में फूल, फल ले जाती थी। स्वामीजी को वह साक्षात् बाबा विश्वनाथ समझती थी। अम्बालिका की एक ही लड़की थी—शंकरी। कभी-कभी वह भी माँ के साथ बाबा के पास चली आती थी। अपनी माँ की भक्ति देखकर वह भी बाबा के प्रति असीम श्रद्धा रखती थी।

इन्हीं दिनों काशी में चेचक रोग फैल गया। शंकरी चेचक से पीड़ित हो गयी। हालत सुधरने की अपेक्षा खराब होती गयी। बेटी की हालत देखकर माँ बेहाल हो उठी। नहाना-खाना सब कुछ अनियमित हो उठा।

एक दिन शंकरी की आवाज बन्द हो गयी। उस दिन की स्थिति देखकर अम्बालिका ने समझ लिया कि अब शंकरी नहीं बच सकती। वह अपनी बेटी के सिरहाने बैठकर रोने लगी।

ठीक इसी माहौल में शंकरी ने कहा—''माँ, तुम रो क्यों रही हो?''

बेटी की आवाज सुनते ही माँ चौंक उठी। अपने आँसुओं को पोंछती हुई बोली—''तेरा कष्ट मुझसे देखा नहीं जा रहा है। क्या करेंगे भगवान् पता नहीं। स्वामीजी की भी कृपा नहीं हो रही है। न जाने कितने लोगों पर उनकी कृपा होती है। मैं बड़ी अभागिन हूँ।''

लड़की ने चकित भाव से कहा—''नहीं माँ। स्वामीजी तो तुम्हारे पास खड़े हैं देखो।''

अम्बालिका चौंककर चारों ओर देखने लगी। उसे स्वामीजी नहीं दिखाई दिये। शायद लड़की प्रलाप कर रही है । बोली—''कहाँ हैं स्वामीजी?''

माँ की बातें सुनते ही शंकरी ने माँ के हाथ को पकड़कर स्वामीजी के चरणों में लगा दिया । तब उन्हें साक्षात् तैलंग स्वामी दिखाई पड़े।

स्वामीजी ने सांत्वना भरे शब्दों में कहा—''घबराओ नहीं बेटी। तुम्हारी बेटी शीघ्र स्वस्थ हो जायगी। अभी इसका मृत्यु-योग नहीं आया है।''

कुछ दिनों बाद शंकरी पूर्ण रूप से ठीक हो गयी।

अम्बालिका के घर में रामचन्द्र भगवान् की एक लकड़ी की बनी मूर्ति थी। शंकरी खेल-खेल में उस मूर्ति की पूजा किया करती थी जैसा कि आम बच्चे करते रहते हैं।

एक दिन उसके मन में आया कि इस लकड़ी की पूजा क्यों करूँ। माँ की तरह मैं तैलंग स्वामीजी की पूजा करूँगी। उनकी कृपा से मैं स्वस्थ हो गयी हूँ।

माँ उस समय घर पर नहीं थी। गंगा-स्नान तथा मन्दिर-दर्शन करने गयी थीं। शंकरी गंगाजल लेकर तैलंग स्वामी के यहाँ जाने के लिए उद्यत हुई। अचानक उसकी निगाह रामजी की मूर्ति पर पड़ी तो देखा—रामजी की मूर्ति गायब है। वहाँ स्वामीजी विराजमान हैं।

उसे चकित देखकर स्वामीजी ने कहा—''मैं आ गया हूँ। मेरी पूजा करो बेटी।''

पूजा करते-करते शंकरी को समाधि लग गयी। समाधि टूटने पर उसने देखा—वही काठ की मूर्ति सामने है। स्वामीजी गायब हैं। शंकरी ने सोचा—शायद वह नींद में सपना देख रही थी। तुरन्त तैलंग स्वामी के आश्रम में आयी।

यहाँ आने पर देखा कि स्वामीजी समाधि लगाये बैठे हैं। उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि घर पर जो माला स्वामीजी को पहनायी थी, वही माला इस वक्त उनके गले में है।

जब समाधि भंग हुई तब शंकरी ने पूछा—''बाबा, यह माला आपको किसने पहनायी?''

बाबा ने मुस्कराकर कहा—''तुमने तो पहनायी थी।''

छोटी बच्ची इस जवाब को सुनकर दंग रह गयी। माला तो घर पर पहनायी थी, फिर यहाँ कैसे आ गयी? बाल-मन को इस प्रश्न का जवाब नहीं मिला।

शंकरी उन दिनों आठ साल की थी तब की एक घटना है। एक दिन स्वामीजी गंगा-स्नान के लिए चल पड़े। शंकरी को देखकर बोले—''चल मेरे साथ।''

उसे लेकर घाट पर आये। उसे किनारे पर बैठाकर स्वयं गंगा में स्वामीजी ने डुबकी लगायी। कुछ देर बाद ऊपर आकर बोले—''चल, तू भी नहा ले।''

शंकरी ने कहा—"मैं आपकी तरह तैरना नहीं जानती।"

बाबा ने कहा—"कोई हर्ज नहीं। तू मेरी पीठ पर सवार हो जा। मैं तुझे ले चलूँगा।"

बाबा की आज्ञानुसार शंकरी उनकी पीठ पर लटक गयी। कुछ दूर जाने के बाद बाबा ने डुबकी लगायी। तुरन्त शंकरी ने देखा-गंगा के गर्भ में स्थित एक भवन में बैठी है।

तैलंग स्वामी ने पूछा—"बेटी, बताओ तो इस वक्त कहाँ बैठी हो?"

शंकरी ने कहा—"यह तो नये ढंग का मकान है।"

सामने शंकरी की उम्र के बराबर एक लड़की खड़ी थी। उसकी ओर इशारा करते हुए शंकरी ने पूछा—"बाबा, यह कौन है?"

तैलंग स्वामी ने कहा—"ये भगवती देवी हैं। इन्हें प्रणाम करो बेटी।"

देवी को प्रणाम करने के बाद शंकरी ने पूछा—"बाबा, यहाँ हम सब हैं, पर गंगा माता कहाँ हैं?"

बाबा ने कहा—"हाथ लगाकर देखो बेटी।"

शंकरी ने चारों ओर हाथ लगाया तो पानी ही पानी था। थोड़ी देर बाद शंकरी ने अनुभव किया कि वह जमीन पर बैठी है। वही गंगा का किनारा, वही सीढ़ियाँ हैं। बाबा गंगा में स्नान कर रहे हैं।

उसने बाबा से पूछा—"बाबा, अब तक हम लोग कहाँ थे?"

तैलंग स्वामी ने कहा—"निष्काम धाम में। तुम निष्पाप शिशु हो, इसलिए वहाँ पहुँच सकी थी।"

* * *

विजयकृष्ण गोस्वामी दीक्षा ग्रहण करने के पूर्व उन्नीसवीं शताब्दी के चौथे चरण में कट्टर ब्राह्म समाजी थे। उनकी प्रखर विद्वत्ता देखकर तत्कालीन अनेक ब्राह्म समाजी नेता उन्हें भावी नेता के रूप में वरण कर रहे थे। पर उनका तन-मन ईश्वर की खोज में व्याकुल था। वे ऐसे संत या योगी से मुलाकात करना चाहते थे जिसने प्रत्यक्ष रूप से ईश्वर को देखा हो। अपनी इस खोज के सिलसिले में वे भारत के विभिन्न प्रान्तों का चक्कर काटते हुए काशी आये।

यहाँ आने पर उन्हें पता चला कि इस समय काशी में एकमात्र सिद्ध महापुरुष तैलंग स्वामी हैं जिन्हें सारा नगर बाबा विश्वनाथ की तरह पूजता है। वे मौन रहते हैं। कभी-कभी भक्तों के प्रश्न करने पर उत्तर देते हैं।

तैलंग स्वामी की अधिक प्रशंसा सुनने के बाद एक दिन वे उनका दर्शन करने के लिए गये। गोस्वामीजी यह देखकर दंग रह गये कि जिस बालू पर पैदल चल कर यहाँ तक आने में उन्हें कई जगह आराम के लिए रुकना पड़ा, उसी बालू पर स्वामीजी नंगे बदन लेटे हुए हैं।

मार्ग में साथ चलने वालों की जबानी उन्होंने यह भी सुना कि स्वामीजी गंगा नदी पर भासमान रहते हैं और कभी-कभी डुबकी लगाकर अदृश्य हो जाते हैं। इन सभी घटनाओं का प्रभाव गोस्वामीजी पर पड़ा।

लगातार दो-तीन बार दर्शन करने के बाद एक दिन गोस्वामीजी ने चिरपरिचित प्रश्न किया—''महाराज, क्या आपने प्रत्यक्ष रूप से ईश्वर को देखा है?''

स्वामीजी ने कहा—''मैं अगर कहूँ कि मैंने देखा है, फिर सवाल उठाओगे कि वह कैसा है? तुम स्वयं ईश्वर को देख सकते हो। यह कार्य गुरु की सहायता से ही हो सकता है।''

गोस्वामीजी ने पूछा—''आखिर कौन से गुरु सहायक होंगे? शिक्षा गुरु या बीज मन्त्र देने वाले या और कोई ?''

स्वामीजी ने कहा—''पहले यह समझ लो कि गुरु क्या हैं? इस संसार में साधक के लिए गुरु की महत्ता सर्वोपरि है। गुरु ही माता-पिता है। अगर कभी शिव नाराज हो जायँ तो गुरु उसकी रक्षा कर सकते हैं। यहीं वजह है कि हमारे यहाँ गुरु वन्दना में कहा गया है—

अखंडमंडलाकारं व्याप्तयेन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरुवै नमः ॥
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुदैव परमब्रह्म तस्मै श्रीगुरुवै नमः ॥
अज्ञान तिमिरान्धस्य ज्ञानांजनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरुवै नमः ॥

गुरु ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर हैं। जो गुरु परमब्रह्म तक पहुँचने का मार्ग प्रशस्त करते हैं, उस गुरु को प्रणाम करना चाहिए।

गुरु दो तरह के होते हैं। एक शिक्षा गुरु और दूसरे दीक्षा गुरु । जब तक गुरु से ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती तब तक इस चराचर जगत् का ज्ञान नहीं होता। जिस शक्ति के द्वारा हमारी आत्मा की उन्नति होती है और हम मुक्ति की ओर अग्रसर होते हैं, वही शक्ति हमारे गुरु हैं।

इसी प्रकार के प्रवचन अक्सर तैलंग स्वामी गोस्वामीजी को देते रहे। योग्य पात्र को ज्ञान देना उचित होता है। लेकिन इसके पीछे एक और रहस्य था जिसका ज्ञान गोस्वामीजी को नहीं था। आम तौर पर स्वामीजी इस तरह की बातें सामान्य लोगों से नहीं करते थे।

उस दिन गोस्वामीजी के आते ही स्वामीजी ने कहा—''गोस्वामी, चलो आज कुछ दूर टहल आयें।''

आज तैलंग स्वामी क्यों एक ब्रह्म समाजी के साथ टहलने जा रहे हैं, इस रहस्य को कोई समझ नहीं सका। स्वयं गोस्वामीजी भी भाँप नहीं सके। गंगा किनारे-किनारे

टहलते हुए वरुणा-संगम तक चले आये। पास ही आदि केशव का मन्दिर है।

यहाँ आने पर तैलंग स्वामी ने कहा—''जाओ, नदी में स्नान कर आओ। आज मैं तुम्हें दीक्षा दूँगा।''

तैलंग स्वामी का आदेश सुनकर गोस्वामीजी भड़क उठे—''आप मुझे दीक्षा देंगे? आखिर क्यों?''

''मेरी इच्छा हुई है।''

''अगर आपकी इच्छा है तो मेरी इच्छा नहीं है। आप जैसे व्यक्ति से मैं भूलकर भी दीक्षा नहीं ले सकता जो खड़े-खड़े शिवलिंग पर लघुशंका करते हैं।''

तैलंग स्वामी ने कहा—''मैं तुम्हें दीक्षा देकर ही रहूँगा, इसीलिए यहाँ ले आया हूँ। यही वह समय है जब मुझे यह क्रिया करनी है। यद्यपि मैं तुम्हारा असली गुरु नही हूँ, बाद में असली गुरु तुम्हें दीक्षा देंगे। मुझे जितना आदेश मिला है, उतना करना है। जाओ, स्नान कर आओ।''

गोस्वामी जी ने कहा—''मैं यह सब ढकोसला नहीं मानता। मुझे आपसे दीक्षा नहीं लेनी है।''

इतना सुनते ही तैलंग स्वामी ने गोस्वामी को धर दबोचा और नदी में ले जाकर जबरन नहलाया। सुनसान स्थान, वे इस जबरदस्ती के विरुद्ध चीखते रहे, पर वहाँ कौन सुनता। इसके बाद स्वामीजी ने दीक्षा-कार्य प्रारम्भ किया।

क्रिया समाप्त होते ही गोस्वामीजी की मन:स्थिति में अद्‌भुत परिवर्तन हुआ। स्वप्नद्रष्टा की भाँति उन्होंने स्वामीजी को साष्टांग प्रणाम किया।

आशीर्वाद देते हुए स्वामीजी ने कहा—''यह तुम्हारी अन्तिम दीक्षा नहीं है। उपयुक्त समय आने पर तुम्हारे वास्तविक गुरु दीक्षा देंगे। वहीं तुम्हें बीज मंत्र देंगे तभी तुम अपने इष्ट का दर्शन कर सकोगे जिसके बारे में तुमने मुझसे प्रश्न किया था।''

''मेरे वास्तविक गुरु कहाँ हैं?''

''यह जानने से तुम्हें कोई लाभ नहीं है, क्योंकि तुम लाख कोशिश करो तो भी उनके पास नहीं पहुँच सकते, वे स्वयं कभी अवश्य बुला सकते हैं। वे स्वयं भी समय की प्रतीक्षा कर रहे हैं। उनसे दीक्षा ग्रहण करने के बाद तुम्हारा साधक-जीवन प्रारंभ होगा।''

* * *

कहा जाता है कि एक बार काशी में परमहंस रामकृष्ण देव आये। यहाँ आने पर उनकी आध्यात्मिक शक्ति अनजाने दिशा की ओर जाने के लिए आकर्षित होने लगी। परमहंसजी समझ गये कि कोई दिव्य आत्मा उन्हें अपनी ओर आकर्षित कर रही है। मंत्रमुग्ध भाव से वे कई लोगों को अपने साथ लेकर चल पड़े।

गर्मी का मौसम, दोपहर का वक्त, प्रचण्ड लू चल रही थी। दशाश्वमेध घाट से

उत्तर की ओर परमहंसजी अपने भक्तों के साथ रवाना हो गये। बीच-बीच में जहाँ घाट नहीं थे, वहाँ तप्त बालू पर चलना पड़ रहा था। साथ के लोग पादत्राण पहने हुए थे। केवल परमहंसजी नंगे पाँव थे। साथ चलनेवाले लोगों में रानी रासमणि के दामाद मथुरानाथ विश्वास भी थे।

सहसा परमहंसजी के साथ चलनेवाले लोगों ने देखा कि सामने से एक नंग-धड़ंग बाबा दोनों हाथ फैलाये तेजी से इनकी ओर चला आ रहा है। पास आते ही उन्होंने परमहंसजी को अपने अंक में भर लिया जैसे युगों बाद दो घनिष्ठ मित्र आपस में मिलते हैं। इस मिलन को देखकर परमहंसजी के भक्तों को समझते देर नहीं लगी कि यह अपरिचित महात्मा निस्सन्देह उच्चस्तर के हैं वर्ना इस प्रचण्ड गर्मी में इतनी दूर परमहंसजी न आते।

परमहंसजी ने तुरन्त साथ आये लोगों से कहा—''अरे भाई, तुम लोग खड़े-खड़े मुँह क्या देख रहे हो। बाबा के शरीर में साक्षात् विश्वनाथ हैं। अपना अहोभाग्य समझो जो ऐसे दिव्यात्मा के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हो रहा है। इन्हें प्रणाम कर अपना जीवन सफल बनाओ। आज मेरी काशी यात्रा सफल हो गयी।''

देर तक दोनों संत आपस में मौन वार्ता करते रहे। यहाँ से वापस लौटते समय मथुरा बाबू से परमहंसजी ने कहा—''आज बहुत दिनों बाद पूर्ण कलायुक्त संत का मैंने दर्शन किया। आहा, कितने सुन्दर लक्षण हैं। माँ काली के साक्षात् सेवक हैं न। माँ जगदम्बा की जिस पर कृपा होगी, उसे किसी बात की चिन्ता नहीं सतायेगी।''

मथुरा बाबू ने चकित दृष्टि से पूछा—''तैलंग स्वामी काली के भक्त हैं, यह आपको कैसे मालूम हुआ? आप तो उनके आश्रम में भी नहीं गये।''

परमहंसजी ने कहा—''माँ काली के भक्त में जितने लक्षण होते हैं, वह सब स्वामीजी के शरीर पर मैंने देखा। उन लक्षणों को देखकर ही तो विश्वास हुआ। इन आँखों से कुछ भी छिपा नहीं रहता। बाबा असाधारण योगी हैं। इस बात का ज्ञान गले मिलते हो गया। पिछले तीन सौ वर्षों में इस तरह का योगी पैदा ही नहीं हुआ। इन्हें अपने शरीर का कोई ज्ञान नहीं। जिस बालू पर तुम लोग जूते पहनकर चलने में कष्ट अनुभव कर रहे थे, उस पर वे लेटे हुए थे। केवल इसी से उनके असाधारणत्व पर प्रकाश पड़ता है।''

इस घटना के बाद अक्सर परमहंसजी तैलंग स्वामी के पास आते रहे। दोनों व्यक्तियों में साधना के बारे में विचार-विमर्श होता था जिसे उपस्थित भक्त-मंडली नहीं समझ पाती थी।

एक दिन विचित्र घटना हो गयी। लोगों ने देखा कि परमहंसजी कुछ लोगों को लेकर आ रहे हैं। सभी के हाथ में बरतन हैं। परमहंसजी पास आकर बोले—''आज अपने विश्वनाथ को अपने हाथ से खीर खिलाऊँगा। देखूँ, मेरे बाबा कितना खाते हैं।''

परमहंसजी की बातें सुनकर तैलंग स्वामी मुस्करा उठे। वे पालथी मारकर बैठ

गये। इधर दनादन कटोरी में खीर उड़ेल-उड़ेलकर परमहंसजी तैलंग स्वामी को खिलाने लगे। देखते ही देखते बीस सेर खीर तैलंग स्वामी ने उदरस्थ कर ली।

उपस्थित लोग यह दृश्य देखकर चकित रह गये। जो लोग तैलंग स्वामी के निकट रहते थे, उन्हें यह ज्ञात था कि स्वामीजी श्रद्धा और प्रेम से दिये गये भोजन को कभी अस्वीकार नहीं करते। कभी-कभी एक-दो सप्ताह भोजन नहीं करते और कभी केवल जल और बेलपत्र ग्रहण करके रह जाते हैं। बीस सेर खीर एक आसन में बैठकर खाना सभी के लिए असाधारण घटना थी।

* * *

तैलंग स्वामी के समकालीन भास्करानन्द और योगीराज श्यामाचरण लाहिड़ी थे। स्वामी भास्करानन्दजी के यहाँ कभी-कभी स्वामीजी चले जाते थे। उन दिनों स्वामी भास्करानन्द दुर्गाकुण्ड स्थित एक कोठी में रहते थे। लाहिड़ी महाशय गृहस्थ थे, इसलिए तैलंग स्वामी उनके निवासस्थान पर नहीं जाते थे।

योगियों में एक विशेषता यह होती है कि वे अपने योग-बल से दूरस्थ योगियों को पहचान लेते हैं। तैलंग स्वामी के बारे में लाहिड़ी महाशय को जानकारी प्राप्त हो गयी थी। अपने इष्ट की प्रेरणा से वे एक दिन तैलंग स्वामी का दर्शन करने के लिए पंचगंगा घाट पर आये।

उस समय तैलंग स्वामी अपने भक्तों से घिरे घाट पर बैठे थे। इन्हें दूर से आते देख आकुल भाव से उनकी ओर दोनों हाथ फैलाते हुए चल पड़े। पास जाकर उन्होंने श्यामाचरण लाहिड़ी महाशय को अपने अंक में भर लिया। लगा जैसे राम-भरत का मिलन हो रहा हो। दोनों ही व्यक्ति एक दूसरे को मूकभाव से देखते रहे।

आसपास खड़े व्यक्ति चकित दृष्टि से दो योगियों का आलिंगन देख रहे थे। एक गृहस्थ योगी और दूसरा सर्वत्यागी। तैलंग स्वामी के भक्तों का विश्वास था कि उनके बाबा से बड़ा अन्य कोई योगी पुरुष इस संसार में नहीं है। यहाँ जो आता है, उसकी कामना बाबा पूर्ण कर देते हैं। कपटी और घमंडी लोगों की बाबा परवाह नहीं करते। उन्हें इस बात पर आश्चर्य हो रहा था कि एक गृहस्थ बंगाली को बाबा इतना सम्मान क्यों दे रहे हैं?

दोनों योगी घाट किनारे चुपचाप बैठे रहे। शायद वे एक दूसरे के प्रेम से गद्गद हो उठे थे या मूकभाव से एक दूसरे से प्रश्न कर रहे थे। कुछ देर रुकने के बाद श्यामाचरण लाहिड़ी ने बाबा को प्रणाम किया और फिर वापस चले गये।

उनके चले जाने के बाद एक शिष्य ने प्रश्न किया—''महाराज, अपराध क्षमा करें। मन में एक शंका उत्पन्न हुई है, इसलिए पूछ रहा हूँ। आप सर्वत्यागी तथा महान् योगी पुरुष हैं और यह बंगाली बाबू जो धोती-कुर्ता पहनकर आया था, वे सामान्य गृहस्थ हैं। बाल-बच्चे वाले हैं। आपने उन्हें इतना सम्मान क्यों दिया?''

तैलंग स्वामी ने मुस्कराकर कहा—''तुम्हारी शंका ठीक है। बंगाली बाबू गृहस्थ योगी हैं। तुम लोगों के पास वह दृष्टि नहीं है जिसके माध्यम से योगी और भोगी का अन्तर समझ सको। यह व्यक्ति साधारण नहीं, असाधारण योगी पुरुष है। पूर्व जन्म की साधना के कारण इस जन्म में इन्हें गृहस्थ घर में जन्म लेना पड़ा है। यही इनका अन्तिम जीवन है। इसके बाद पुनः जन्म नहीं लेना पड़ेगा। तुम लोग देख नहीं सके, इनके अंग-अंग से योग के लक्षण प्रकट हो रहे थे। इनके आगमन की पूर्व सूचना मुझे मिल गयी थी। तुम लोगों को चाहिए कि ऐसे योगी के यहाँ जाकर उनका दर्शन करो।''

श्यामाचरण लाहिड़ी को काशी के निवासी बहुत कम जानते थे, लेकिन तैलंग स्वामी की प्रशंसा के कारण उनकी ख्याति फैल गयी। जिस साधक की प्रशंसा जीवन्त विश्वनाथ तैलंग स्वामी करते हैं, वह व्यक्ति निस्सन्देह असाधारण है।

* * *

एक देशी नरेश सपरिवार काशी-दर्शन करने आये। उन दिनों राजघराने में पर्दे की कठोर प्रथा थी। गंगा किनारे स्थित एक भवन में यह राजपरिवार आकर ठहरा। काशी आने का अर्थ है—गंगा-स्नान का पुण्य प्राप्त करना। रानी साहिबा सामान्य महिलाओं की तरह घाट पर स्नान नहीं कर सकती थी। ब्रिटिश शासन काल में देशी नरेशों का काफी दबदबा था। राजभवन से घाट किनारे तक पर्दा लगाया गया ताकि रानी साहिबा को कोई देख न सके। पर्दे के दोनों ओर पहरेदारों की कड़ी व्यवस्था की गयी। सामान्य नागरिकों में कोई शरारत न कर सके।

एक दिन राजा-रानी स्नान करने के बाद जब अपने भवन की ओर वापस लौट रहे थे तब एक अद्भुत दृश्य देखकर चौंक उठे। उनके सामने पर्दे के भीतर एक नंग-धड़ंग व्यक्ति खड़ा है।

राजा की भौंहें तन गयीं। इतनी कड़ी व्यवस्था के रहते यह व्यक्ति भीतर कैसे आ गया? क्रोध से उनका शरीर काँपने लगा। रानी तथा उनके साथ आयीं दासियों की हालत और भी खराब हो गयी।

राजा ने कड़ककर पूछा—''कौन हो तुम? भीतर कैसे आ गये?''

उस व्यक्ति ने कोई जवाब नहीं दिया। यह देखकर राजा उबल पड़ा। उसने 'संतरी' कहकर चीखा।

राजा की चीख सुनते ही कई पहरेदार भीतर की ओर आये। रानी तथा उनकी दासियाँ चुपचाप भवन के भीतर चली गयीं।

राजा ने नंगे व्यक्ति की ओर इशारा करते हुए पूछा—''यह आदमी भीतर कैसे आ गया? जवाब दो वर्ना अभी तुम लोगों को गोली मार दूँगा।''

पहरेदार क्या जवाब देते? वे पर्दे के बाहर पहरा दे रहे थे। इनमें से किसी ने इस बाबा को पर्दे के भीतर जाते नहीं देखा था। सभी एक-दूसरे का मुँह देखने लगे।

राजा को समझते देर नहीं लगी कि पहरेदारों की नजर बचाकर यह आदमी भीतर आ गया है। इसकी नीयत ठीक नहीं है।

तभी राजा ने कहा—''गिरफ्तार कर लो इसे और कोठी में ले चलो। वहीं इससे पूछा जायगा।''

कोठी के भीतर आकर राजा ने पुनः वही सवाल किया। वह व्यक्ति चुपचाप मौन खड़ा रहा। राजा भीतर ही भीतर क्रोध से फूलने लगा।

एकाएक एक व्यक्ति ने आगे बढ़कर हाथ जोड़ते हुए कहा—''अन्नदाता, गुस्ताखी माफ करें। इस महात्मा को जल्द छोड़ दिया जाय। यह बड़े अलौकिक महात्मा हैं। सारा नगर इनका सम्मान करता है। आप तैलंग स्वामीजी महाराज हैं।''

तैलंग स्वामी का नाम सुनते ही राजा नरम पड़ गये। उन्हें लगा जैसे इस नाम को वे कहीं सुन चुके हैं। पर कहाँ, यह स्मरण नहीं कर पा रहे थे। लेकिन उन्हें इस बात पर विश्वास नहीं हो रहा था कि इतने बड़े संत चुपके से कैसे औरतों के बीच और वह भी इस रूप में आ गये? क्या यह संत है या कोई पागल।

चूँकि यह स्थल राजा का अपना राज्य नहीं था। फिर यहाँ ब्रिटिश हुकूमत है। बेकार झंझट लेने से क्या लाभ? राजा ने कहा—''ठीक है। इसे कोठी के बाहर निकाल दो, पहरा और कड़ा कर दो। अगर आगे ऐसी घटना हुई तो तुम सभी को निकाल दूँगा।''

उस दिन कोठी के भीतर इस घटना की चर्चा हर कोई करता रहा। कोठी में जो लोग काम कर रहे थे, उनमें कुछ स्थानीय व्यक्ति भी थे। वे तैलंग स्वामी को पहचान चुके थे। उन्हें इस बात का भय सताने लगा कि कहीं कोई अनिष्ट न हो जाय।

उसी दिन आधी रात के समय अचानक राजा साहब की चीख पूरी कोठी में गूँज उठी। सभी लोग जाग गये। लोग राजा साहब के कमरे में आये तो देखा—वे बेहोश पड़े हैं। लोग उनकी सेवा में लग गये। पूरी कोठी में कोहराम मच गया।

राजा साहब के परिवार के लोगों ने इस हादसे के बारे में प्रश्न किये, पर कोई माकूल जवाब नहीं दे सका। लोगों को समझते देर नहीं लगी कि निस्सन्देह कोई भयंकर दुर्घटना हो गयी है जिसके कारण राजा साहब बेहोश हो गये हैं।

दूसरे दिन होश में आते ही राजा ने पहरेदारों को बुलाकर कहा—''तुम लोग जल्द से जल्द यह पता लगाओ कि तैलंग स्वामी का स्थान कहाँ है और इस वक्त वे कहाँ दर्शन दे सकते हैं?''

आज्ञा पाते ही प्यादे नगर में तैलंग स्वामी की खोज में चल पड़े। उन्हें अधिक दूर जाना नहीं पड़ा। नगरवासियों से पता चला कि स्वामीजी पंचगंगा घाट पर उपस्थित हैं।

यह समाचार पाते ही राजा साहब दलबल सहित स्वामीजी के निकट आये।

उनके चरणों पर मस्तक रखते हुए कहा—''अपराध क्षमा करे भगवान्, अनजाने अपराध हो गया।''

स्वामीजी ने हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया।

* * *

बंगाल के श्रीरामपुर निवासी जयगोपाल काशी में रहते थे। स्वामीजी के प्रति उनकी असीम भक्ति थी। नित्य शाम को सत्संग के उद्देश्य से आते थे। जब भी आते थे तब कभी दूध कभी फल या मिष्ठान्न लेकर आते थे। स्वामीजी को यह समझते देर नहीं लगी कि जयगोपाल किसी कामना के उद्देश्य से नहीं आता है बल्कि साधु-संतों के प्रति भक्ति होने के कारण आता है।

एक दिन जब वह आया तब उसके दिल की धड़कन बढ़ गयी। उसने स्वामीजी से कहा—''पता नहीं क्यों आज सुबह से मेरा दिल धड़क रहा है। इस कष्ट से मुक्ति पाने के लिए आज सबेरे आपके पास आ गया।''

तैलंग स्वामी ने ध्यान लगाया। कुछ देर बाद आँखें खोलते हुए बोले—''ठीक है। शाम को आना तब सारी बातें बता दूँगा।''

शाम को जयगोपाल जब बाबा की सेवा में उपस्थित हुए तब उन्होंने कहा—''तुम्हारे पिता अस्वस्थ हो गये हैं। आज सुबह तुम्हारी याद कर रहे थे। अब उनका निधन हो गया है।''

दूसरे दिन जयगोपाल जब अपनी जन्मभूमि श्रीरामपुर जाने की तैयारी कर रहे थे, ठीक उसी समय उनके पास पिता के निधन का तार आया।

* * *

सन् १८७४ ई० की घटना है।

पूज्य पृथ्वी गिरि महाराज के शिष्य स्वामी विद्यानन्द गिरिजी काशी आये और राजघाट स्थित एक मठ में ठहरे। मठ के लोगों ने कहा—''महाराज, इधर काफी दिनों के बाद आपका काशी में आगमन हुआ है। अब यहाँ अनेक मन्दिर बन गये हैं। अनेक संत-योगी पुरुष आजकल यहाँ निवास कर रहे हैं। इन सभी का दर्शन कर लीजिए। पता नहीं, फिर कब आपका आगमन होगा।''

स्वामीजी ने कहा—''काशी के सभी मन्दिरों के दर्शन मैं कर चुका हूँ। इस बार आने का एकमात्र उद्देश्य है—महात्मा तैलंग स्वामी के दर्शन। उनके अलावा मेरे लिए काशी में कुछ भी दर्शनीय नहीं है।''

एक दिन स्वामी विद्यानन्द अकेले तैलंग स्वामीजी के आश्रम में आये। इन्हें देखते ही तैलंग स्वामी ने अपने अंक में भर लिया। उपस्थित लोग यह दृश्य देखते ही रहे कि अचानक दोनों स्वामी शून्य या हवा में, न जाने कहाँ गायब हो गये।

चकित होकर लोग एक दूसरे का मुँह देखने लगे। इस प्रकार के दृश्य इसके पूर्व किसी ने नहीं देखा था। लगभग आधे घण्टे बाद स्वामीजी ठीक उसी स्थान पर प्रकट हुए जहाँ से अदृश्य हो गये थे। लेकिन इस बार वे अकेले थे। स्वामी विद्यानन्द का कहीं पता नहीं था।

कुछ लोग कौतूहलवश राजघाट स्थित उक्त मठ में गये जहाँ स्वामी विद्यानन्दजी ठहरे हुए थे। लोगों ने देखा—वहाँ स्वामीजी बैठे लोगों से वार्तालाप कर रहे हैं।

तैलंग स्वामी के बारे में कहा जाता है कि वे जल्द किसी को अपना शिष्य नहीं बनाते थे। भारत के अधिकांश संत अपने को अमर बनाये रखने के लिए मठ, आश्रम, भवन और मन्दिर की स्थापना करते हैं। अपने नाम का सम्प्रदाय स्थापित करते हैं। स्वामीजी ने इस दिशा में कोई कार्य नहीं किया। शिष्यों की बड़ी फौज वे इसलिए नहीं बनाना चाहते थे कि अधिकांश शिष्य गुरु के बताये मार्ग पर नहीं चलना चाहते थे। अधिकतर लोग अपने स्वार्थ के लिए शिष्य बनने चले आते हैं। ऐसे शिष्यों के समस्त पापों का भार गुरु को वहन करना पड़ता है। अगर शिष्य गुरु के बताये जप-साधना को अधूरा रखता है तो उसे गुरु को ही पूर्ण करना पड़ता है।

प्राचीनकाल से अब तक सिद्ध संत शिष्य बनाने के पहले कठोर परीक्षा लेते आये हैं। जो लोग गुरु के बताये मार्ग का अवलम्बन करते हुए धैर्य के साथ साधना के मार्ग पर बढ़ते हैं, केवल वही परमार्थ प्राप्त करते हैं।

महान्-साधक का शिष्य बनने के लिए कितने धैर्य, लगन, निष्ठा और भक्ति की जरूरत होती है, गुरु-कृपा पाने के लिए कितनी मुसीबतें सहनी पड़ती हैं, इसका उदाहरण मुखर्जी बाबू के जीवन से प्राप्त होता है।

तैलंग स्वामी की यौगिक चर्चाओं को सुनकर उमाचरणजी काशी चले आये। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पूर्व जन्म के फल का प्रभाव उन्हें यहाँ तक ले आया था। दरअसल वे शिष्य बनने की कामना लेकर नहीं आये थे, वे यह जानने आये थे कि पुनर्जन्म क्या होता है। कुलीन ब्राह्मण होने के कारण उनमें ईश्वर और देव-द्विजों के प्रति भक्ति थी। धार्मिक बातों पर विश्वास करते थे। उनका ख्याल था कि सिद्ध पुरुष अपने ज्ञान के माध्यम से इस सत्य को प्रकट कर सकते हैं।

काशी आकर वे गंगा-स्नान करने गये। इसके पश्चात् तैलंग स्वामी के आश्रम का पता लगाकर वहाँ चले आये। स्वामीजी के पास न जाकर उमाचरणजी एक ओर खड़े हो गये। कुछ देर बाद तैलंग स्वामी की नजर इन पर पड़ी। स्वामीजी ने उँगली के इशारे से इन्हें सूचित किया कि आश्रम के बाहर चले जाओ।

उमाचरणजी की इच्छा थी कि कुछ देर और रुक जायें, पर इन्हें न जाते देख स्वामीजी के सेवक मंगलदास ठाकुर ने कहा—"स्वामीजी का आदेश हुआ है कि आप तुरन्त आश्रम के बाहर चले जायें।"

उसी दिन तीसरे पहर पुनः उमाचरणजी गये और सबेरे की तरह एक ओर खड़े

हो गये। उस समय भी मंगलदास ने इन्हें बाहर चले जाने का आदेश दिया। लाचारी में उमाचरणजी खिन्न मन से चले आये। पुनः दूसरे दिन इसी घटना की पुनरावृत्ति हुई। तीसरे दिन उमाचरणजी ने सोचा कि आज मैं नहीं जाऊँगा। इस निश्चय के बाद आदेश देने पर भी जब वे नहीं गये तब वहाँ दूध दूहनेवाले अहीर सेवक को आदेश दिया गया कि इस बंगाली बाबू को धक्के देकर बाहर निकाल दो।

आदेश का तुरत पालन हुआ। इस अपमान से उमाचरण इतने क्षुब्ध हो उठे कि घर आकर देर तक रोते रहे। एक संत इस तरह अपने एक भक्त के प्रति पेश आ सकता है, इसकी कल्पना उन्हें नहीं थी। वे वहाँ किसी का कोई नुकसान नहीं कर रहे थे। चुपचाप खड़े होकर संत का दर्शन कर रहे थे। आखिर स्वामीजी ने मेरा इस प्रकार अपमान क्यों किया?

इतनी पीड़ा होने पर भी उन्होंने पराजय स्वीकार नहीं की। एक अज्ञात प्रेरणा से वशीभूत होकर वे नाना प्रकार की बातें सोचते रहे। उन्होंने यह भी सोचा कि अगर स्वामीजी के उन सेवकों को घूस में कुछ रकम दे दूँ तो शायद वे लोग मेरे साथ अभद्र व्यवहार नहीं करेंगे। मुमकिन है कि मेरी सिफारिश कर दें। राजा के पास पहुँचने के लिए द्वारपाल की पूजा अनिवार्य है।

इस प्रकार की बातें सोचते हुए वे चौथे दिन स्वामीजी के आश्रम में आये। स्वामीजी के प्रमुख शिष्य मंगलदास को चार और अहीर सेवक को दो रुपये घूस में देकर अपना उद्देश्य बताया।

दोनों व्यक्ति अयाचित धन पाकर प्रसन्न हो उठे, पर मंगलदास ने स्पष्ट किया—"अगर बाबा की इच्छा न हुई तो तुम यहाँ नहीं रह सकते। हमें बाबा की आज्ञा का पालन करना ही पड़ेगा। यह ठीक है कि तब सख्ती से पेश नहीं आयेंगे।"

अहीर सेवक ने कहा—"आपके आते ही मैं तुरत रफूचक्कर हो जाऊँगा। इस प्रकार बाबा का आदेश मुझ पर लागू नहीं होगा।"

दोनों व्यक्तियों से अभय-दान पाने के कारण उमाचरण का साहस बढ़ गया। उन्हें इस बात पर भरोसा हो गया कि अब ये दोनों मेरा अपमान नहीं करेंगे। आज चाहे जो कुछ हो जाय, पर अपने मन की बात बाबा को सुनाकर ही दम लूँगा। इस प्रकार की कल्पना करते हुए वे मठ के भीतर आकर खड़े हुए।

ठीक इसी समय एक विचित्र घटना हुई। कलकत्ता से दो बंगाली बाबू बाबा का दर्शन करने आये। बाबा को प्रणाम करने के बाद दोनों चुपचाप खड़े हो गये।

अपनी आदत के अनुसार बाबा ने इन लोगों को इशारे से बाहर चले जाने को कहा। इनमें एक व्यक्ति समझदार था। वह बाबा का उद्देश्य समझकर बाहर की ओर चल पड़ा। दूसरा व्यक्ति जरा क्रोधी प्रकृति का था। वह सेवकों से उलझ गया। उसने कहा—"यह कौन-सा कायदा है जो हमें भगाया जा रहा है? हम तो इतनी दूर बाबा का दर्शन करने, इनसे उपदेश लेने आये हैं और यहाँ हमें जबरन भगाया जा रहा है।

यहाँ हम मेहमानी करने नहीं आये हैं। कुछ देर रुकने के बाद स्वतः चले जायेंगे।''

इस बाबू की बातें सुनकर बाबा अप्रसन्न हो उठे। उन्होंने अहीर सेवक को इशारे से सूचित किया कि इसे तुरत हटाओ। आजकल बाबा मौन धारण किये रहते हैं। दूसरों से बातें करने के लिए दीवारों पर लिखे श्लोकों के द्वारा अपने विचार प्रकट करते हैं।

बाबा की आज्ञा पाते ही अहीर सेवक ने उक्त बंगाली बाबू के कंधे पर हाथ रखते हुए कहा—''बाबा का दर्शन आप कर चुके। अब तुरत चलते-फिरते नजर आइये। बखेड़ा करेंगे तो उठाकर बाहर फेंक दूँगा।''

सेवक की बातें सुनकर बंगाली बाबू नाराज हो उठे। बोले—''इस प्रकार अपमान करने पर मैं नहीं जाऊँगा। यह कोई सभ्यता है?''

तभी बाबा ने इशारे से बंगाली बाबू को ठहरने को कहा और मंगलदास ठाकुर को बुलाया। दीवारों पर लिखे संस्कृत श्लोकों की ओर इशारा करते हुए उन्होंने मंगलदास को लिखने को कहा। जब लेख पूरा हो गया तब उसे सुनाने की आज्ञा दी गयी।

मंगलदास ने उस कागज को पढ़ते हुए कहा—''अट्ठारह रुपये का जूता बाहर छोड़कर मुझे देखने आये हो? अगर कोई उसे चोरी कर ले जाय तो नंगे पैर वापस जाने में कष्ट होगा—यही बात तुम अपने मन में सोच रहे हो। अर्थात् मुझे नहीं देख रहे हो, बल्कि तुम्हारा मन अपने जूते की ओर है। क्या यह बात सच नहीं है? झूठ कहने की जरूरत नहीं। अब तुम जल्द से जल्द बाहर चले जाओ और अपना जूता पहनकर घर वापस जाओ। अभी तक तुम्हारा वह जूता वहाँ मौजूद है।''

मंगलदास के वक्तव्य को सुनकर वहाँ उस वक्त जितने लोग मौजूद थे, सभी स्तब्ध रह गये। बाबा कैसे इस बाबू के मन की बात समझ गये?

उमाचरण मुखर्जी ने धीरे से उक्त बंगाली बाबू से पूछा—''क्या यह बात सही है कि यहाँ आने के बाद आप अपने जूते के बारे में सोच रहे थे?''

बंगाली बाबू बाबा के कथन से अप्रतिभ हो गये थे। लज्जित भाव से उन्होंने कहा—''जी हाँ, महाशय। बात सही है। मैं दर्शन करते समय अपने जूते के बारे में ही सोच रहा था। कल ही खरीदा है। पूरे अट्ठारह रुपये का है। अब तक स्वामीजी के प्रति मेरी श्रद्धा जागृत नहीं हुई थी, अब मैं इन्हें नहीं छोड़ूँगा, भले ही कष्ट उठाना पड़े। जो व्यक्ति त्रिकालदर्शी है, उसके चरणों की धूल पाना सौभाग्य की बात हैं।''

बंगाली बाबू मन ही मन अपनी मूर्खता के लिए पश्चात्ताप कर रहे थे। लेकिन तीर हाथ से निकल चुका था। इस भूल के लिए क्या करूँ, यही सोच रहे थे कि सहसा पुनः बाबा ने आदेश दिया—''तुम दोनों यहाँ से चले जाओ।''

दोनों चुपचाप चले गये।

इन दोनों के जाने के बाद बाबा ने उमाचरण को भी जाने का आदेश दिया। उदास होकर वे भी चले गये। लेकिन इससे वे पूरी तरह मायूस नहीं हुए । नित्य नियम

से बाबा का दर्शन करने आते रहे और बराबर चले जाने का आदेश पाकर वापस चले जाते थे।

तेरहवें दिन जब वे बाबा के सामने उपस्थित हुए तब अचानक वे फूट-फूटकर रोने लगे। अपने को सम्हालना उनके लिए कठिन हो गया।

इन्हें रोते देखकर बाबा ने दयार्द्र होकर बैठ जाने का इशारा किया। यह आदेश पाते ही उमाचरण का सम्पूर्ण आवेग आँसुओं में बदल गया। वे तैलंग स्वामी के चरणों पर मस्तक रखकर देर तक रोते रहे।

कुछ देर बाद स्वामीजी ने मंगलदास को इशारे से कहा कि आज इन्हें जाने को कह दो। कल सबेरे आने को कह दो।

स्वामीजी का यह आदेश पाते ही उमाचरणजी प्रसन्नता से विभोर हो उठे। आज बहुत दिनों बाद इन चरणों के दर्शन की आज्ञा प्राप्त हुई है। घर आकर वे बड़ी बेसब्री के साथ दिन गुजरने की प्रतीक्षा करने लगे। काशी आने के बाद यह पहली रात थी जब उन्हें गहरी नींद आयी।

दूसरे दिन गंगा-स्नान के बाद स्वामीजी के पास पहुँचे। बाबा के चरणरज को सिर से लगाया।

बाबा ने मंगलदास को इशारे से बुलाकर एक पत्थर, एक टुकड़ा गेरू और एक लोटा पानी लाने का आदेश दिया। सारी सामग्री उमाचरण के निकट रखने के बाद मंगलदास ने कहा—''बाबा का आदेश है कि आप यहाँ बैठकर गेरू घिसें।''

दोपहर के वक्त बाबा ने उमाचरण को इशारे से कहा कि अब घिसना बन्द कर दो। घर चले जाओ। घर पर भोजन-विश्राम के बाद शाम को आना।

शाम को आने पर उमाचरण ने देखा कि सबेरे जितना गेरू घिसकर रख गये थे, उस गेरू से इस वक्त एक ब्रह्मचारी दीवारों पर श्लोक लिख रहा है। शाम के वक्त भी इन्हें गेरू घिसने का आदेश दिया गया।

दूसरे दिन भी यही कार्य दिया गया।

आदेश का पालन करना ही था। जो हाथ ऑफिस में कलम चलाते थे, उन्हें यहाँ गेरू घिसना पड़ रहा था। थोड़ी देर बाद घिसने की गति मन्द पड़ गयी। दोनों हाथों की कलाइयाँ दर्द करने लगीं।

यह दृश्य देखकर बाबा ने इशारे से कहा कि जरा जल्दी-जल्दी हाथ चलाओ।

यह क्रम पन्द्रह दिनों तक चलता रहा। उमाचरण मन ही मन रोते रहे कि किस मुसीबत में फँस गया। हाथों की दशा शोचनीय हो गयी थी। भोजन के वक्त कौर मुँह तक ले जाने में कठिनाई का अनुभव करते थे। आकृति पर मायूसी छा गयी। इधर वे जितना घिसते, वह सब ब्रह्मचारीजी मठ की दीवारों पर लिखकर समाप्त कर देते थे।

इनकी यह हालत देखकर बाबा ने एक दिन मंगलदास से पुछवाया कि बंगाली बाबू हिन्दी पढ़ना जानते हैं या नहीं।

उमाचरण ने कहा—''हाँ, बिहार में रहने के कारण उन्हें हिन्दी का अच्छा ज्ञान है।''

स्वामीजी ने अपने कम्बल के नीचे से एक बड़ा-सा चोंगा निकाला। चोंगे के भीतर से कुछ कागज निकालकर मंगलदास को देते हुए कहा कि इन कागजों में हिन्दी लिपि में काफी श्लोक लिखे हैं। इन श्लोकों का बंगला में अनुवाद करने को कह दो।

अपने लिए यह कार्य पाकर उमाचरणजी को बड़ा संतोष मिला। जान बची लाखों पाये। कम से कम गेरू घिसने से मुक्ति तो मिली । अनुवाद करने के कार्य में उन्हें पर्याप्त आनन्द मिला।

लगातार कई दिनों तक श्रम करने के बाद अनुवाद-कार्य पूर्ण हो गया। बाबा ने उनकी जबानी सुना। इस प्रकार धीरे-धीरे वे बाबा के समीप आते गये।

एक दिन एक अद्भुत घटना हो गयी। उमाचरण को स्वप्न में विश्वास नहीं था कि सहसा बाबा की ऐसी कृपा हो जायगी। यह ठीक है कि वे इसी आशा को लेकर बाबा के पास आये थे।

उस दिन शाम के समय जब वे बाबा के निकट गये तब बाबा ने बड़े स्नेह के साथ स्वागत किया। थोड़ी देर बाद उन्हें अपने साथ लेकर बगल वाले कमरे की ओर जाते हुए मंगलदास से इशारे से कहा कि इस कमरे में कोई आने न पाये। यहाँ बैठकर तुम देखते रहना।

मंगलदास को अवाक् होते देख मुखर्जी महाशय दंग रह गये। इस कमरे में आकर मुखर्जी महाशय ने देखा—यहाँ महादेव और काली देवी की मूर्ति है। फर्श पर एक आसन बिछा है और पास ही एक दीप चल रहा है।

उमाचरण को यह देखकर और भी आश्चर्य हुआ कि इस कमरे में आते ही स्वामीजी ने अपना मौनव्रत भंग कर दिया। जब से वे स्वामीजी के पास आने लगे तब से एक दिन के लिए भी उनके श्रीमुख से एक शब्द नहीं निकला। सारा कार्य इशारे से या दीवार पर लिखे श्लोकों के जरिये करते थे।

कमरे में आकर आसन पर स्वामीजी बैठ गये और मुखर्जी को सामने बैठने का इशारा करते हुए उन्होंने कहा—''तुम जिस प्रश्न को लेकर मेरे पास आये हो, उसके प्रति इतनी शंका क्यों है? त्रिकालदर्शी, आत्मतत्त्वज्ञ महर्षि, देवर्षि, पुण्यात्मा, सिद्ध, महात्मा आदि अपने तपोबल से इसका निर्णय कर गये हैं। इस सम्बन्ध में किसी प्रकार की शंका नहीं करना चाहिए। उन लोगों ने जो कुछ कहा है, सारी बातें सत्य हैं। जीव की अपनी समस्त दुष्कृति, सुकृति के अनुसार सुख-दुःख भोगने के लिए जन्म लेना पड़ता है। अगर मनुष्य थोड़ा प्रयत्न करे तो वह अपने पूर्व, वर्तमान और भविष्य के जन्म के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकता है। अफसोस तो इस बात का है कि इस दिशा में कोई प्रयत्न नहीं करता।''

थोड़ी देर चुप रहने के बाद स्वामीजी ने पुनः कहना प्रारंभ किया—जब इस प्रश्न की जानकारी के लिए तुम इतनी दूर और मेरे पास आये हो तब तुम्हें सारी बातें

बता देना उचित होगा। तुम्हारी दिव्य चक्षु से दिखा दूँगा। जब मनुष्य का जन्म होता है तब उसका गठन पूर्व जीवन की कृतियों को लेकर होता है। अगर इस जीवन में वह विद्वान् है तो अपने पूर्व जीवन में जरूर विद्वान् रहा होगा। इस जीवन में अच्छा वादक या धार्मिक है तो अपने पूर्व जीवन में भी वह वादक या धार्मिक रहा होगा। अगर इस जीवन में कोई चोर है तो वह अपने पूर्व जीवन में साधु कदापि नहीं था। अगर पुनर्जन्म न होता तो हम भगवान् को सर्वशक्तिमान कैसे मानते? अब तुम यह विचार करके देखो कि इस जन्म में तुम्हारी आकृति, विद्या, बुद्धि, स्वभाव आदि किस प्रकार के हैं तब तुम्हें यह समझने में कठिनाई नहीं होगी कि तुम अपने पूर्व जन्म में किस स्वभाव के थे। वर्तमान जीवन की भलाई-बुराई से तुम स्वतः अच्छी तरह परिचित हो। यह मानी हुई बात है कि भला करने पर भला और बुरा करने पर बुरा होता है। सच पूछो तो पूर्व जन्म में सुकर्म करने के कारण इस जन्म में तुम्हारा जन्म ब्राह्मण वंश में हुआ है। अगर इस जन्म में ब्राह्मणोचित कार्य करते रहोगे तो आगे उन्नति करोगे। यदि पाप-कार्य करोगे तो चाण्डाल के यहाँ जन्म लोगे। अब मैं इस बारे में अधिक बातें न कहकर तुम्हारे पूर्व जन्म के बारे में बता रहा हूँ।''

इतना कहने के पश्चात् स्वामीजी उमाचरण मुखर्जी के पूर्व जीवन के बारे में बताने लगे। उन्होंने कहा—''पहले इस जन्म के बारे में बता रहा हूँ। तुम्हारा नाम अमुक मुखर्जी है। तुम्हारे पिता का नाम अमुक मुखर्जी है। तुम अमुक गाँव के निवासी हो; तुम्हारे मकान में इतनी कोठरियाँ हैं। मकान के उत्तर एक तालाब है जिसके किनारे अमुक-अमुक वृक्ष हैं। तुम्हारे गाँववाले भवन में अमुक-अमुक व्यक्ति रहते हैं।''

स्वामीजी एक के बाद एक करके मुखर्जी बाबू का वर्तमान इतिहास कहते गये। सारी बातें सुनने पर वे चकित रह गये। स्वामीजी के वर्णन से यह साफ झलक रहा था जैसे वे यहाँ बैठे-बैठे सारा दृश्य देख रहे हैं। आश्चर्य की बात यह है कि काशी आने के बाद से उमाचरणजी ने अपने बारे में किसी को आज तक कुछ नहीं बताया है।

स्वामीजी ने आगे कहा—''अब पिछले जन्म के बारे में सुनो। पिछले जन्म में तुम ब्राह्मण थे। अमुक गाँव के अमुक नाम के जमींदार थे। अपने उस जीवन में धार्मिक और शिष्टाचारी थे। तुम जिस कमरे में रहते थे, उसका दरवाजा दक्षिण दिशा की ओर है। उस कमरे के दरवाजे के ऊपर तुमने अपने हाथ से संस्कृत के तीन श्लोक लिखे थे जो आज भी मौजूद हैं। मन में आये तो उस गाँव में जाकर देख आना।''

उमाचरणजी को लगा जैसे आज उनका जीवन सफल हो गया है। बाबा के पास अगर न आते तो जीवन का यह रहस्य ज्ञात न होता। यह एक प्रकार से अच्छा हुआ जो बाबा की फटकार और उनकी परीक्षा से न घबराकर बराबर सेवा में लगे रहे। सच्चे मन से श्रद्धा करने के कारण आज उन्हें यह सारी बातें मालूम हो रही हैं।

स्वामीजी कुछ देर चुप रहने के बाद बोले—''अब तुम्हें कुछ अद्भुत बातें बता रहा हूँ। अमुक गाँव में अमुक नाम का एक व्यक्ति रहता है जो तुम्हें बहुत प्यार करता

है और स्वयं तुम भी उन्हें आदर देते हो। जानते हो ऐसा क्यों हो रहा है? वह व्यक्ति पूर्व जन्म में तुम्हारे पिता थे। पिता-पुत्र का सम्बन्ध होने के कारण यह सौहार्द है। चूँकि इस जन्म में तुम दोनों अपना शरीर बदल चुके हो, इसलिए एक दूसरे को पहचान नहीं पा रहे हो। तुम्हारे एक चाचा मुंगेर में हैं, उनका नाम अमुक है। वह भी तुम्हें स्नेह की दृष्टि से देखते हैं। इसी आकर्षण के कारण नित्य तुम्हारे यहाँ रात के ९-१० बजे तक अड्डेबाजी करते हैं। तुम दोनों को एक दूसरे को बिना देखे शांति नहीं मिलती। इसका कारण पूर्व जन्म का घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस जन्म में शरीर-परिवर्तन के कारण तुम लोग एक दूसरे को नहीं पहचान पा रहे हो।''

स्वामीजी ने उमाचरणजी के बारे में जितनी बातें बतायीं, वह सब जाँच करने पर सही प्रमाणित हुईं। तैलंग स्वामी द्वारा बताये उस भवन की तलाश में मुखर्जी बाबू गये जहाँ उन्होंने अपने पूर्व जन्म में संस्कृत के श्लोक लिखे थे। आश्चर्य की बात यह है कि सभी श्लोक सही अवस्था में प्राप्त हुए। दरवाजे के ऊपर लिखे श्लोक थे—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥

अर्थात्—मनुष्य जैसे जीर्ण वस्त्र को त्यागकर नूतन वस्त्र धारण करता है, वैसे ही देह धारण करने वाले जीव जीर्ण शरीर को त्यागकर नूतन शरीर का आश्रय लेता है।

रूचीनां वैचित्र्यादृजु कुटिल नाना पथजुषाम् ।
नृणमेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥

अर्थात्—नदियाँ जैसे नाना पथगामी होने पर भी अन्त में एक ही समुद्र में लीन होती हैं, वैसे ही मनुष्यों की प्रवृत्ति व उपासना के पथ पृथक् होने पर भी अन्त में ब्रह्म प्राप्ति ही सबका लक्ष्य है।

निर्ममस्या प्रेमयस्य निष्कलस्या शरीरिणः ।
साधकानां हितार्थाय ब्रह्मणो रूप कल्पना ।।

अर्थात्—ब्रह्म अहंकार व परिणाम शून्य, नित्य शुद्ध, शरीर-हीन होने पर भी साधकों के हित के लिए नाना रूपों में कल्पित होते हैं।

इन श्लोकों को पाकर उमाचरणजी फूले नहीं समाये। बात भी सही है। अगर कोई व्यक्ति अपने पूर्व जन्म के ऐश्वर्य और ज्ञान को पा जाता है तो उसे अतिरिक्त प्रसन्नता होती है। पता लगाने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि उक्त जमींदार वास्तव में धार्मिक प्रकृति के थे। सभी किसान और परिवार के लोग उन्हें आदर देते थे।

मुखर्जी बाबू को स्वामीजी का एक और उपदेश याद आ गया जिसमें उन्होंने कहा था—''जीव के लिए मुक्ति से बढ़कर सार-वस्तु कुछ भी नहीं है और आत्मज्ञान से बढ़कर कोई ज्ञान नहीं है। मुक्ति और आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए अधिक शास्त्र-अध्ययन करने की आवश्यकता नहीं है। केवल मुख्य बातें जानने से ही कार्य-सिद्धि हो जाती है। मुक्ति को छोड़कर मनुष्य की दूसरी गति नहीं है। सब समय मुक्ति की

कामना होती है। जबतक ज्ञान का उदय नहीं होता तबतक आना-जाना और कष्ट भोगना पड़ता है। जगत् में जो कुछ देख रहे हो, सब भूल है। संसार में राजा, प्रजा या किसी को भी निर्मल सुख भोगने का अधिकार नहीं है।''

एक दिन स्वामीजी के मन में न जाने कैसे यह विचार उत्पन्न हुआ कि उमाचरणजी के माध्यम से कुछ उपदेश लिखवा दें। उन्होंने कहा—''तुम कहीं से कुछ कॉपी, कागज खरीद लाओ। मैं कुछ उपदेश लिखवाना चाहता हूँ। मैं कहता चलूँगा और तुम उसे लिखते रहना। कुल बारह विषय लिखाऊँगा ईश्वर, गुरु-शिष्य, संसार, चित्तशुद्धि, धर्म, उपासना, पुनर्जन्म, आत्मबोध, तन्मयता, तत्त्वज्ञान, सृष्टि और कुछ मुख्य बातें। आगे चलकर कोई इसे मनन करेगा तो ज्ञान प्राप्त करेगा।''

दूसरे दिन उमाचरणजी बाजार से कागज खरीद कर ले आये। बाबा व्यासजी की तरह प्रवचन देते रहे और गणेशजी की तरह उमाचरणजी उसे लिखते रहे। कॉपी पर कॉपी पूर्ण होती गयी। इस लेखन-कार्य से उमाचरणजी स्वामीजी के अन्तरंग बनते गये।

मंगलदास ने एक दिन अपनी शंका प्रकट करते हुए कहा—''मुझे ऐसा लग रहा है कि बाबा आपको शीघ्र ही अपना शिष्य बना लेंगे।''

यह एक ऐसा संदेश था जिसे सुनकर उमाचरणजी खुशी से उछल पड़े। चकित दृष्टि से देखते हुए उन्होंने प्रश्न किया—''क्या बाबा ऐसा कह रहे थे?''

मंगलदास ने कहा—''बाबा ऐसा कह तो नहीं रहे थे, पर आपकी प्रशंसा इधर बराबर करते रहते हैं। कहते हैं कि बंगाली बाबू बड़े सज्जन हैं।''

अपने बारे में बाबा की यह राय सुनकर उमाचरणजी भाव-विभोर हो उठे।

एक दिन बाबा जब आराम कर रहे थे, उस समय उमाचरणजी उनके पैर दबा रहे थे। एकाएक बाबा ने कहा—''क्यों बंगाली बाबू, अब मुझसे दीक्षा लेने की फिक्र में हो?''

उमाचरणजी आँखें बन्द कर मन ही मन प्रार्थना करने लगे कि बाबा, आपकी कृपा हो जाय। प्रकट रूप में उन्होंने कहा—''बाबा, आपकी कृपा-दृष्टि जब मुझ पर है तब इससे बढ़कर मुझे क्या चाहिए?''

स्वामीजी ने कहा—''इस विषय पर रात को विचार करेंगे। एक प्रकार से यह एक कठिन समस्या है। अभी तक तुम आजाद हो, मुक्त हो। जब दीक्षा लोगे तब बंधन में फँस जाओगे। बहरहाल इस वक्त घर जाओ। शाम को जब आओगे तब अन्य बातें होंगी।''

शाम को जब उमाचरणजी आश्रम में आये तब उन्हें अपने साथ लेकर स्वामीजी जी बगल के छोटे कमरे में आये। वहाँ अपना आसन ग्रहण करने के बाद स्वामीजी ने कहा—''मैं समझ गया हूँ कि तुम योग की शिक्षा लेना चाहते हो, पर वास्तव में तुम उसके योग्य नहीं हो। योग कठिन साधना है। कठोपनिषद् में कहा गया है—

यदा पंचावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ।
बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम् ॥

तां योगमिति मन्वन्ते स्थिरामिन्द्रिय धारणम् ।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगोहि प्रभवाप्यतौ ॥

अर्थात्—जब पाँचों इंद्रियाँ और तर्क-वितर्क, ज्ञान-विज्ञान, मन-बुद्धि सभी निचेष्ट हो जाते हैं तब उसी को परमगति कहते हैं। यही योग है। इसके लिए असीम धैर्य की आवश्यकता होती है। वह तुममें नहीं है। तुम योग-शिक्षा के अधिकारी नहीं हो। वास्तव में तुम उपासना-मार्ग के उपयुक्त हो, इसलिए उसी की शिक्षा लो।''

उमाचरण ने विनम्र होकर कहा—''आप मुझे जिस पद्धति के उपयुक्त समझते हैं, उसी मार्ग पर चलने की आज्ञा दीजिए। मैं आपके निदेशों का पालन निष्ठापूर्वक करूँगा। इसमें कोई त्रुटि नहीं होगी।''

बाबा कुछ देर मौन रहने के बाद बोले—''इसी माघ मास में तीन तारीख को पुष्य नक्षत्र में चन्द्रग्रहण लगेगा तबतक तुम्हें प्रतीक्षा करनी पड़ेगी, क्योंकि बिना शरीर शुद्ध हुए दीक्षा नहीं ली जा सकती। चन्द्रग्रहण के दिन तुम्हारा शरीर शुद्ध करूँगा। मैं कुछ वस्तुओं के नाम बता रहा हूँ, उसे एक कागज पर लिख लो। इनको ग्रहण के समय किसी सद् ब्राह्मण को दान कर देना। इसके बाद गंगा-स्नान करके एक आसन पर बैठ जाना।''

बाबा ने आवश्यक चीजों की सूची लिखने के बाद एक मंत्र बताया। इसके बाद उन्होंने कहा—''आसन पर बैठकर इस मंत्र को जपते रहना। इससे शरीर शुद्ध हो जायगा।''

उमाचरणजी ने अपनी शंका प्रकट की—''ग्रहण के समय कोई सद्ब्राह्मण दान क्यों लेगा? ग्रहण का दान तो चाण्डाल लेते हैं। यह तो कठिन समस्या है।''

मुखर्जी बाबू की कठिनाई समझते ही बाबा हँस पड़े। उन्होंने कहा—''ग्रहण के समय एक व्यक्ति तुम्हारे पास स्वयं आकर मेरे द्वारा लिखायी गयी सामग्रियों की माँग करेगा, उसी को दे देना। इससे तुम्हारे काम की सिद्धि हो जायगी।''

आसानी से समस्या हल होते देख उमाचरणजी को संतोष हो गया। अब सद्ब्राह्मण की तलाश में परेशान नहीं होगा पड़ेगा। बाबा उसके लिए प्रबंध कर देंगे। अब वे बेसब्री से चन्द्रग्रहण की प्रतीक्षा में दिन काटने लगे।

निश्चित दिन गंगा किनारे सारी चीजें लेकर उमाचरणजी आये। चारों ओर अपार भीड़ थी। पता नहीं, इस अपार जनसमूह में कौन व्यक्ति उनके पास आयेगा। वे इधर-उधर चक्कर काट रहे थे कि सहसा एक व्यक्ति ने पास आकर कहा—''आप अमुक-अमुक चीजें किसी सद्ब्राह्मण को देना चाहते हैं?'

उमाचरणजी ने कहा—''जी हाँ।''

उस व्यक्ति ने कहा—''तब मुझे दे दीजिए। मैं ही वह व्यक्ति हूँ।''

सारी चीजें लेकर वह व्यक्ति भीड़ में न जाने कहाँ गायब हो गया। उमाचरणजी गंगा-स्नान के पश्चात् आसन पर बैठकर स्वामीजी द्वारा बनाये मंत्र का जाप करने लगे।

दूसरे दिन बाबा के यहाँ जाकर प्रणाम करने के पश्चात् उन्होंने कहा—''बाबा, आपके निर्देशों का पालन कर चुका।''

बाबा ने कहा—''तुम्हारा शरीर भी शुद्ध हो गया।''

इसके बाद देर तक बाबा उमाचरणजी को गुरु-शिष्य के सम्बन्धों के बारे में उपदेश देते रहे। बाद में उन्होंने कहा—''अब कल तुम्हें विधिवत् दीक्षा दूँगा।''

इसी दिन तीसरे पहर अपनी आदत के अनुसार उमाचरणजी आश्रम में बाबा का दर्शन करने आये तो देखा—तीन अपरिचित संन्यासी बाबा के साथ किसी महत्वपूर्ण प्रश्न पर बातचीत कर रहे हैं। बाबा उन्हें देर तक अपनी बातें समझाते रहे। उमाचरणजी के पल्ले कुछ नहीं पड़ा।

कुछ देर बाद तीनों संन्यासी चले गये। उनके जाने के बाद मूसलाधार वर्षा प्रारंभ हो गयी।

उमाचरणजी ने बाबा से घर जाने की अनुमति माँगी तो उन्होंने कहा—''अभी नहीं। चुपचाप बैठे रहो।''

बाहर तूफानी हवा के साथ-साथ वर्षा का वेग बढ़ गया। गलियों में पानी भर जाने की आवाजें आने लगीं। प्रतीक्षा करते दो घंटे गुजर गये, पर पानी रुकने का नाम नहीं ले रहा था। इस बीच बाबा से आज्ञा प्राप्त न होने पर उमाचरणजी ने सोचा—शायद आज बाबा अपने आश्रम में आश्रय देंगे।

इतना सोचना था कि बाबाजी ने कहा—''अब तुम घर जा सकते हो।''

इस आदेश को सुनकर मुखर्जी बाबू चौंक उठे। बाहर अभी तक तीव्र गति से पानी बरस रहा था। बिजली चमक रही थी और बादल गरज रहे थे। मकानों की नालियों से तेजी से पानी गलियों में गिरने की आवाजें आ रही थीं। ऐसे भयंकर मौसम में कैसे घर तक जायेंगे?

उमाचरणजी ने दयनीय भाव से स्वामीजी की ओर देखते हुए कहा—''बाबा, पानी का वेग जरा कम हो जाय तब चला जाऊँगा।''

बाबा ने कहा—''नहीं, बस तुरत रवाना हो जाओ।''

इस आदेश की अवहेलना करने का साहस नहीं हुआ। डरते-डरते चल पड़े। सहन पार करने के बाद मंगलदास से मुलाकात हुई। उनसे उमाचरणजी ने कहा—''बडी मुसीबत हो गयी। बाहर कितना घना अंधेरा है, पानी बरस रहा है। ऐसे भयंकर मौसम में बाबा का आदेश हुआ कि घर चला जाऊँ। सोचा था कि पानी कम होने पर चला जाऊँगा। अब आप ही बताइये कि कैसे जाऊँ?''

मंगलदास ने कहा—''डरने की कोई बात नहीं है, बंगाली बाबू। आप गुरुदेव का नाम लेकर आगे बढ़ जाइये। इस आज्ञा के पीछे बाबा का कोई उद्देश्य अवश्य होगा, वर्ना वे ऐसा न कहते।''

मंगलदास की सलाह सुनने के बाद उमाचरणजी वापस लौटकर बाबा का चरण-

स्पर्श करने के बाद घने अंधियारे में निकल पड़े।

बाहर घुटने भर पानी भर गया था और तेजी से नदी की ओर नाले के रूप में बह रहा था। अंधेरा होने के कारण सामने कुछ भी स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं दे रहा था। मूसलाधार वृष्टि के कारण कान के पर्दे जैसे सुन्न पड़ गये थे।

लेकिन ऐसे दुर्योग में उमाचरण को विचित्र अनुभव होने लगा। उनके पैर घुटने भर पानी में डूब गये थे, पर उनके शरीर के किसी भी हिस्से में एक बूँद पानी नहीं गिर रहा था जबकि वर्षा तेजी से हो रही थी। कुछ दूर आगे बढ़ने पर एक गली से एक आदमी लालटेन लेकर आगे बढ़ गया। घने अंधकार में रोशनी पाकर मुखर्जी बाबू आश्वस्त हो गये।

उन्होंने सोचा—एक से दो भले। उन्होंने आगे चलने वाले व्यक्ति को रुकने के लिए आग्रह किया। शायद वर्षा के शोर के कारण उसे सुनाई नहीं दिया। यह देखकर उमाचरणजी तेजी से आगे बढ़े ताकि उस व्यक्ति का साथ हो जाय। लेकिन उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि तेजी से आगे बढ़ने पर भी दोनों व्यक्तियों में समान दूरी कायम रही। उस व्यक्ति के पास पहुँचने को कौन कहे, बीच के फासले में कमी नहीं कर सके।

फिर यह सोचकर उन्होंने तेज चलना बन्द कर दिया कि उसकी लालटेन की रोशनी में रास्ता साफ दिखाई दे रहा है, केवल पैरों में पानी का स्पर्श हो रहा है। इसी प्रकार चलते हुए वे घर के पास पहुँचे तो लालटेन वाला व्यक्ति न जाने कहाँ गायब हो गया। क्षण भर के लिए वे स्तंभित रह गये। उन्होंने यह समझते देर नहीं लगी कि यह चमत्कार बाबा के कारण ही हुआ है। शायद इसलिए बाबा ने इस दुर्योग में मुझे घर आने की आज्ञा दी। मन ही मन स्वामीजी को प्रणाम करने के बाद वे घर के भीतर गये।

दूसरे दिन मठ में जाते ही नियमानुसार बाबा के साथ उमाचरणजी को गंगा-स्नान के लिए जाना पड़ा। बाबा का गंगा-स्नान अपने ढंग का होता है। कम से कम दो घंटे वे पानी में रहते हैं। कभी-कभी डुबकी लगाकर नीचे न जाने कहाँ गायब हो जाते हैं। कहीं दिखाई नहीं देते। कभी-कभी पानी के ऊपर बहाव के विपरीत दिशा में भासमान रहते हैं। जब तक बाबा पानी से बाहर नहीं निकलते तबतक उमाचरणजी को नदी किनारे बैठे इन्तजार करना पड़ता है।

उस दिन बाबा जब स्नान करने के बाद ऊपर आये तब उनका शरीर उमाचरणजी ने अच्छी तरह पोंछ दिया। बाद में दोनों व्यक्ति आश्रम में आये। मठ में आकर बाबा वेदी पर बैठ गये और उमाचरणजी को अपने सामने बैठने की आज्ञा दी। वे नीचे फर्श पर बैठ गये।

आश्रम में दर्शनार्थियों का आना-जाना जब कम हो गया तब दीक्षा का कार्यक्रम प्रारंभ हुआ। पहले बाबा ने कुछ क्रियाएँ बतायीं, फिर उनके कान में बीजमंत्र दान किया।

इसके बाद बाबा ने कहा—''उमाचरण, अब मैं कुछ गूढ़ बातें बता रहा हूँ। इन निर्देशों का सर्वदा सावधानी से पालन करना। विषय कार्य के लिए जितना बोलना सावधानी से पालन करना। विषय कार्य के लिए जितना बोलना आवश्यक है, उतनी बातें करना। बेकार की बातें कहकर समय नष्ट मत करना। इससे तेज का क्षय होता है। किसी भी धर्म से द्वेष मत करना। जिसको जिस धर्म में विश्वास है, उसे उसी से मुक्ति मिलती है। आहार-विहार से धर्म की हानि नहीं होती, केवल मुक्ति में विलम्ब होता है। मुसलमान-ईसाई भी मुक्ति पा सकते हैं। व्याकुल भाव से जो ईश्वर को पुकारेगा, उसे दर्शन अवश्य होगा। तुम जिन घटनाओं को देखकर चकित हो रहे हो, इनमें एक भी आश्चर्यजनक नहीं है। मनुष्य अगर सच्चे माने में मनुष्य हो तो वह भी अलौकिक कार्य कर सकता है। केवल आहार-विहार के लिए मनुष्य की सृष्टि नहीं हुई है। भगवान् में जो-जो शक्तियाँ हैं, मनुष्य में भी ठीक वही शक्तियाँ हैं। भगवान् ने मनुष्य में यह सब शक्तियाँ देकर जीवों में उसे श्रेष्ठ बनाया है। वास्तव में कोई उस शक्ति का उपयोग करना नहीं जानता। अगर किसी की इच्छा होती है तो कार्य-प्रणाली न जानने के कारण वह हताश हो जाता है। यदि दस दिनों के भीतर भगवान् का दर्शन न मिला तो वह अपना धैर्य खोकर नास्तिक बन जाता है। इस जगत् की सृष्टि किसी सर्वशक्तिमान ने की है, वही ईश्वर है। वह समस्त जगत् में व्याप्त है। उसे अपने ज्ञान-विचार के जरिये खोजना होगा। लगन के साथ खोजने पर वे अवश्य मिलेंगे।''

यह है योग्य शिष्य बनाने की परम्परा। योग्य गुरु प्रत्येक शिक्षार्थी को अपना शिष्य नहीं बनाते। सिद्ध योगी दीक्षा लेनेवाले शिष्य की योग्यता को अपनी अन्तरदृष्टि से पहचान लेते हैं, फिर 'जाकी जैसी चाकरी ताको तैसी दे' के अनुसार मंत्र देते हैं। योग्य शिष्यों को अपने अलौकिक शक्ति के माध्यम से गुरु अपने पास बुला लेते हैं, क्योंकि योग्य शिष्य गुरु के ज्ञान तथा शक्ति का लाभ उठाते हुए उनके परमार्थ में सहायक होते हैं। जैसे परमहंस रामकृष्ण देव ने विवेकानन्द, राखाल महाराज को, विजयकृष्ण गोस्वामी ने सतीश मुखर्जी को, गहिनीनाथ ने निवृत्तिनाथ को, महातपाजी ने विशुद्धानन्द को, महर्षि रमण ने पाल ब्रण्टन को अपने निकट आकर्षित किया था। अगर गुरु शिष्य को परखने में चूक जाते हैं तो शिष्य के समस्त कार्यों की जिम्मेदारी गुरु को वहन करनी पड़ती है।

* * *

कुछ दिनों के बाद बातचीत के सिलसिले में उमाचरणजी ने अपने गुरुदेव से पूछा—''क्या मैं अपने जीवन में कभी ईश्वर का दर्शन कर सकता हूँ?''

स्वामीजी ने कहा—''साधना करते रहने पर गुरु-कृपा से दर्शन मिल जाता है। क्या तुम प्रत्यक्ष रूप से दर्शन करना चाहते हो?''

यह एक ऐसा प्रश्न था जिसकी आकांक्षा ऋषि-मुनि से लेकर देवता तक करते

हैं। मानव की क्या गिनती? गुरुदेव के प्रश्न को सुनते ही उमाचरण के दिल में रक्त का जैसे एक उबाल आ गया। भावातिरेक होकर उन्होंने गुरुदेव के चरण पकड़कर कहा—''यह तो मेरे लिए अहोभाग्य की बात होगी, गुरुदेव। क्या मेरे भाग्य में यह संभव है?''

स्वामीजी ने कहा—''आज रात को तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी। इस वक्त अपने घर जाओ।''

अत्यधिक उत्तेजना के कारण उमाचरणजी आज शाम होने के काफी पहले आ गये। ठीक समय पर स्वामीजी उन्हें साथ लेकर अपने पूजा-गृह में आये। अपनी वेदी पर बैठने के बाद उन्होंने कहा—''बगलवाली कोठरी में माता काली की मूर्ति है। जाओ, दर्शन कर आओ।''

गुरुदेव की आज्ञानुसार उमाचरणजी वेदी के बगल में स्थित कोठरी में गये। भीतर माँ काली की एक पाषाण मूर्ति स्थापित थी। मूर्ति को प्रणाम करने के बाद वे चुपचाप गुरुदेव केपास आकर बैठ गये।

स्वामीजी ने कहा—''काली माता का दर्शन कर आये?''

''जी हाँ, गुरुदेव।''

''क्या काली माता को तुम यहाँ देखना चाहते हो?''

उमाचरणजी ने विस्मय के साथ गुरुदेव की ओर देखा—पाषाण मूर्ति यहाँ कैसे आ सकती है? क्या जीवन्त मूर्ति गुरुदेव दिखायेंगे?

प्रकट रूप में उमाचरणजी ने कहा—''यह तो मेरे लिए सौभाग्य की बात होगी। साक्षात् जगज्जननी का दर्शन मेरे कोटि-कोटि जन्मों के पुण्य का फल होगा।''

स्वामीजी ने कहा—''अब तुम स्थिर होकर बैठो। जरा भी उत्तेजित मत होना और न वाचालता प्रकट करना।''

इतना कहने के बाद गुरुदेव ध्यानस्थ हो गये। यह स्थिति लगभग एक घंटे तक बनी रही। ध्यान भंग होने पर स्वामीजी ने कहा—''काली माता, इस कमरे में आ जाओ।''

थोड़ी देर बाद उमाचरण ने आश्चर्य के साथ देखा—अचला पाषाण मूर्ति, कुँआरी पुत्री के रूप में धीरे-धीरे चलती हुई स्वामीजी के पास आ गयीं। दीपक के स्पष्ट प्रकाश में चैतन्यमयी, सर्वमंगला, विश्वरूपिणी, जगन्माता प्रत्यक्ष रूप में दण्डायमान हैं।

उमाचरणजी भय से वाक्-शक्तिहीन हो गये। विस्मय से उनकी आँखें बड़ी-बड़ी हो गयीं। अचेतन पाषाण मूर्ति सचेतन हो गयी और सचेतन जीव अचेतन हो गया।

कुछ देर बाद बाबा ने आदेश दिया—''उमाचरण, भीतर जाकर उस स्थान को अच्छी तरह देख आओ जहाँ देवी-मूर्ति थी। अब वहाँ है या नहीं, यह देखकर आओ और मुझे बताओ।''

आदेशानुसार उमाचरण ने भीतर जाकर देखा—देवी की मूर्ति वहाँ नहीं है।

उत्तेजनावश तेजी से बाहर आकर उन्होंने स्वामीजी से कहा—''नहीं। वहाँ काली माता की मूर्ति नहीं है।''

बाबा ने मुस्कराते हुए कहा—''चुपचाप बैठ जाओ। उत्तेजित होने की आवश्यकता नहीं है।''

बाबा के समीप खड़ी काली माता की मूर्ति को उमाचरण विस्मय से देखते रहे—वह पूर्व की भाँति पाषाण मूर्ति की तरह खड़ी हैं। अन्तर केवल इतना है कि इस वक्त माँ की जीभ बाहर निकली हुई नहीं है। पैरों के नीचे शिव की मूर्ति भी नहीं है।

बाबा से अनुमति लेकर उमाचरण ने माँ काली के चरणों की धूल सिर तथा सर्वांग में लगायी। देवी के चरणों को स्पर्श करने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि वह पाषाण चरण नहीं, बल्कि मानव की तरह कोमल और सजीव हैं।

बाबा ने कहा—''देवी को अच्छी तरह देख लो ताकि तुम्हारा मन-हृदय तृप्त हो जाय।''

कुछ देर बाद बाबा ने काली माता से कहा कि अब अपने स्थान पर जाकर विराजमान हो जाओ।

काली माता छोटी लड़की की तरह धीरे-धीरे चलती हुई बगल की कोठरी में चली गयीं और पुनः पाषाण मूर्ति बन गयीं।

उमाचरणजी के मन में अनेक प्रश्न उभर रहे थे। उन्होंने पूछा—''महाराज, पाषाण मूर्ति जीवित जीव की तरह कैसे चल सकती है? अब तक मैंने जो कुछ देखा, क्या यह सत्य है?''

स्वामीजी ने पूछा—''तुम्हारा जड़-शरीर कैसे चलता है?''

''मनुष्य के शरीर में आत्मा और चैतन्य दोनों है, इसलिए यह चलता है।''

स्वामीजी ने कहा—''सिद्ध साधक के गुण से मिट्टी, धातु तथा पाषाण में आत्मा एवं चैतन्य का संचार होता है, इसलिए ऐसी मूर्तियाँ चलती हैं, बोलती हैं, सुनती हैं, ऐसे अनेक कार्य करती हैं।''

दूसरे दिन गंगा-स्नान के पश्चात् स्वामीजी ने कहा—''उमाचरण, आज रात को एक बार और आना। आज सभी कार्य समाप्त कर दूँगा। इसके बाद तुम्हें यहाँ आने की आवश्यकता नहीं है।''

उसी दिन रात को जब उमाचरणजी स्वामीजी के आश्रम में आये तब उन्होंने प्रसाद खिलाया। इसके बाद तैलंग स्वामी कुछ प्रक्रिया प्रणाली करके समझाने लगे। बोले—''इससे आत्म-दर्शन सुलभ होगा। यह क्रिया निरन्तर करते रहना।''

बाद में अपना आसन ग्रहण करते हुए उन्होंने कहा—''उमाचरण, आज से तुम उपासना के बंधन में बँध गये। यह याद रखो कि अब आज से प्रतिदिन सारी क्रियाएँ करनी होंगी। अगर जरा भी लापरवाही हुई तो बदले में मुझे खटना पड़ेगा। दिन को अवसर न मिले तो रात को करना। रात को न मिले तो भोर में करना, पर करना अवश्य।

समय नहीं मिलता, इस प्रकार के बहानों से काम नहीं चलेगा। अगर तुम लापरवाही करोगे तो मुझे पता चल जायगा।''

कुछ देर के लिए तैलंग स्वामी चुप हो गये। लगा जैसे अतीत में खो गये हैं। बाद में स्थिर दृष्टि से देखते हुए बोले—''भगवान् ने अपनी सारी शक्ति संचारित कर के मनुष्य को श्रेष्ठ जीव बनाया है, इसलिए वह भगवान् की तरह कार्य कर सकता है। आज इसे प्रत्यक्ष करके दिखाऊँगा। इसे देखकर तुम्हारी समझ में यह बात आ जायगी कि मनुष्य ही ईश्वर है। वह आत्मा के रूप में, हृदय में और परमब्रह्म के रूप में, मस्तक में विराजमान है। 'मैं' नाम का जो शरीर है, वह कुछ भी नहीं है। वह तो ईश्वर है। मैं कुछ नहीं, मेरा कुछ नहीं। इस बात को हमेशा ध्यान में रखना।''

इतना कहने के बाद स्वामीजी चुप हो गये। थोड़ी देर बाद उन्होंने कहा—''अब तुम अपनी आँखें बन्द कर लो। जब तुम्हें पुकारूँ तभी खोलना।''

कहने के साथ ही स्वामीजी भी ध्यानस्थ हो गये। पता नहीं, कितनी देर तक यह स्थिति रही। एकाएक गुरुदेव की आवाज सुनाई दी—''उमाचरण, अब आँखें खोलो और यह बताओ कि हम कहाँ हैं?''

उमाचरण ने देखा कि वे उस कमरे में नहीं हैं जिसमें अभी कुछ देर पहले बैठे थे। इस वक्त वे गंगा के गर्भ में हैं। एक पलंग पर गुरुदेव बैठे हैं और वे पलंग पर एक किनारे हैं। पलंग पर सफेद गद्दा, तोशक और सफेद चादर बिछी है। तीन ओर तीन मसनद हैं। एक मसहरी टँगी है। गुरुदेव सोये हुए हैं।

उमाचरण को चकित होते देख स्वामीजी ने कहा—''इस वक्त गंगा के गर्भ में हैं। क्या सचमुच गंगा के भीतर हैं? जरा नीचे हाथ लगाकर जल स्पर्श करो।''

आज्ञानुसार उमाचरणजी ने पलंग पर से झुककर जल-स्पर्श किया। सचमुच पानी था। वे आगे हटकर बैठ गये। उन्हें भय लगा कि कहीं पानी में न गिर जायँ।

तभी स्वामीजी ने कहा—''अब पुनः अपनी आँखें बन्द कर लो।''

उमाचरण ने आँखें बन्द कीं। कुछ देर बाद गुरुदेव ने पूछा—''अब अपनी आँखें खोलकर बताओ कि हम कहाँ हैं?''

इस बार आँखें खोलने पर उन्होंने देखा कि वे आश्रम के उसी कमरे में हैं जहाँ इसके पूर्व थे। बाबा सामने वेदी पर लेटे हुए हैं। वे अवाक् होकर सोचने लगे कि यह सब कैसे हुआ?

उमाचरण की मनःस्थिति समझते हुए स्वामीजी ने कहा—''यह आश्चर्य का विषय नहीं है। मनुष्य अगर वास्तविक मनुष्यत्व को प्राप्त कर ले तो उसकी जैसी इच्छा होगी वह वैसा कर सकता है। यह सब तुम्हें इसलिए दिखाया ताकि तुममें दृढ़ विश्वास और आस्था उत्पन्न हो।''

* * *

काशी में एक मुहल्ले का नाम सोनारपुरा है। इसी मुहल्ले में श्री रामकमल चटर्जी रहते थे। सीढ़ी पर से पैर फिसल जाने के कारण उनके एकमात्र पंचवर्षीय बालक के सीने की हड्डी टूट गयी। उन दिनों नगर में हड्डी-विशेषज्ञ कम थे। कई डॉक्टरों से इलाज कराने पर भी बालक ठीक नहीं हुआ। अस्पताल के डाक्टरों ने सलाह दी कि इसे जल्द से जल्द कलकत्ता ले जाइये।

कलकत्ता आने पर डॉक्टरों ने कहा कि बालक का ऑपरेशन करना पड़ेगा। स्थिति खराब है। मुमकिन है कि आपरेशन करते समय इसका निधन हो जाय।

डॉक्टरों की इस राय को सुनकर चटर्जी बाबू के होश उड़ गये। उन्होंने सोचा—जब ऑपरेशन करने पर भी नहीं बचेगा तब कराने से फायदा? निराश होकर पति-पत्नी रोते हुए वापस आ गये।

ठीक इन्हीं दिनों पड़ोस में रहने वाले एक सज्जन ने कहा—"मेरा कहना मानिये। आप बच्चे को लेकर एक बार तैलंग स्वामी के पास चले जाइये। वे बहुत ऊँचे दर्जे के संत हैं। उनसे प्रार्थना कीजिए। संतों की कृपा से न जाने कितने मुर्दे जीवित हो गये हैं।"

डूबते को तिनके का सहारा मिलने पर साहस बढ़ता है। चटर्जी बाबू के मन में यह बात पैठ गयी कि अगर स्वामीजी का आशीर्वाद प्राप्त कर सका तो बच्चे को बचा लूँगा। दूसरे दिन स्नान करके दोनों पति-पत्नी बाबा के पास गये। लेकिन वहाँ की स्थिति देखकर निराश हो गये।

बाबा बराबर मौन रहते हैं। दर्शनार्थियों को इशारे से बाहर चले जाने का निर्देश दे देते हैं। ऐसी स्थिति में अपना कष्ट बेचारे कैसे कह पाते। फिर भी वे निराश नहीं हुए। बाबा के दर्शनों से उनका आत्मबल बढ़ता गया। इस प्रकार वे एक माह तक बाबा के दरबार में जाते और आदेश प्राप्त होते ही चल देते थे।

अचानक एक दिन बाबा के एक भक्त ने चटर्जी बाबू से पूछा कि आप लोग नित्य यहाँ क्यों आते हैं? बाबा यह जानना चाहते हैं।

इतना पूछना था कि दोनों पति-पत्नी वहीं चरणों से दूर गिर पड़े। अपने कष्टों का उल्लेख करते हुए रोने लगे।

सारी बातें सुनने के बाद बाबा ने बच्चे को गौर से देखा। इसके बाद जमीन से थोड़ी मिट्टी उठाकर देते हुए बोले—"इसमें थोड़ा पानी मिलाकर दर्द वाले स्थान पर प्रलेप लगा देना। लड़के को तेज बुखार आयेगा, पर उससे घबराना नहीं। बुखार उतर जाने पर तेज भूख लगेगी। उस समय घर में जो कुछ रहे, वही इसे खिला देना। दो दिन बाद ठीक हो जायगा।"

दो दिन बाद वह बालक ठीक हो गया।

* * *

इसी प्रकार की एक घटना श्री भवानीचरण वाचस्पति के साथ हुई थी। वे कालाज्वर से पीड़ित थे। यकृत और प्लीहा दोनों बढ़ गये थे। इस वजह से शारीरिक तथा मानसिक कष्ट से पीड़ित थे। अपने मित्र के सुझाव पर आप भी तैलंग स्वामी के पास जाने लगे।

चटर्जी बाबू की तरह इन्हें भी नित्य आते देख बाबा ने इनसे कारण पूछा। वाचस्पतिजी ने अपने कष्टों का उल्लेख किया। सारी बातें सुनने के बाद बाबा ने भाँग पीसने का आदेश दिया।

वाचस्पतिजी सिल-लोढ़ा लेकर भाँग पीसने लगे। पिस जाने पर बाबा ने मटर बराबर गोली खाने का आदेश दिया।

बाद में स्वामीजी ने कहा—"अब आज घर चले जाओ। कल से नित्य इसी समय आना। बराबर तुम्हें यहाँ भाँग पीसना और खाना पड़ेगा।

वाचस्पतिजी बाबा की आज्ञानुसार नित्य आते और भंग पीसने के बाद मटर बराबर गोली खाकर घर चले जाते थे। यह क्रम लगातार एक माह तक जारी रहा।

एक दिन जब वाचस्पतिजी आये तब बाबा ने कै की। इसके बाद उनसे बाबा ने कहा कि सारी जगह साफ कर दो। वाचस्पतिजी ने बिना हिचके सर्वत्र धोकर साफ कर दिया। बाद में दैनिक नियम के अनुसार उन्होंने भाँग पीसी और खायी।

एक दिन स्वामीजी ने काफी मात्रा में टट्टी कर दी। सबेरे जब वाचस्पतिजी आये तब उन्हें उक्त स्थान की सफाई करने को कहा गया। हर दिन की तरह बिना हिचके उन्होंने सारी जगह साफ कर स्नान किया। इसके बाद पुन भाँग पीसी और खायी।

इस घटना के दूसरे दिन जब वाचस्पतिजी आये तब बाबा ने कहा—"अब कल से मत आना। चार दिन बाद तुम पूर्ण स्वस्थ हो जाओगे।"

चार दिन के बाद वाचस्पतिजी पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गये।

* * *

काशी से वापस जाकर उमाचरणजी अपने कर्मस्थल मुंगेर में अपने गुरुदेव की महिमा का प्रचार करने लगे। तैलंग स्वामी के शिष्य की जबानी उनकी अलौकिक शक्ति की कहानियाँ सुनकर अनेक लोग बाबा का दर्शन करने के लिए उत्सुक हो उठे। उनके प्रवचनों (जिसे बाबा ने उमाचरण से लिखवाया था।) को सुनकर प्रभावित हुए।

फलस्वरूप बाबा की हिदायत आयी कि मेरे बारे में प्रचार करना बन्द करो।

कुछ दिनों तक उमाचरणजी शान्त रहे। बाद में इस बात को भूल गये। दो घनिष्ठ मित्रों के अत्यधिक दबाव के कारण उनके साथ काशी आये। इनमें एक का नाम यदुनाथ बागची और दूसरे का नाम श्रीकृष्ण प्रसन्न सेन था।

बाबा के आश्रम में आते ही वे कृष्णप्रसन्न सेन पर बिगड़ उठे—"कृष्णप्रसन्न, तुम बड़े अंहकारी हो। तुम्हारा ख्याल है कि तुम भगवान् श्रीकृष्ण के अवतार हो। तुम

चाहते हो कि लोग तुम्हारी पूजा करें, चरण-स्पर्श करें। यहाँ तक कि ब्राह्मणों के आगे पैर बढ़ाने में तुम्हें संकोच नहीं होता? सुन लो, तुम्हारा भविष्य अंधकारमय है। तुममें केवल एक ही गुण है। भाषण अच्छा दे लेते हो। पूरी बेलकर गर्म घी में छोड़ा जाता है, वह तबतक कच्ची रहती है जबतक कलकल आवाज करती है। पक जाने पर शांत हो जाती है। वही स्थिति तुम्हारी है।''

इस फटकार को सुनकर श्रीकृष्ण प्रसन्न सेन चुप रहे। उन्होंने न कोई प्रश्न किया और न प्रतिवाद किया।[1]

यदुनाथ बागची की ओर देखते हुए बाबा ने कहा—''यदुनाथ, तुम अनेक ग्रंथों का अध्ययन कर चौपट हो गये हो। तुम्हारा मन स्थिर नहीं रहता। मन स्थिर होने पर ही मुक्ति मिलती है। तुम मुझसे दीक्षा लेने आये हो। अब तक मैंने जितने शिष्य बनाये हैं, उससे अधिक नहीं बनाऊँगा। दीक्षा देना महापाप है। शिष्यों को जो आदेश दिया जाता है, उसका वे पालन नहीं करते तब उसके कार्यों को गुरु करता है, क्योंकि गुरु का कर्त्तव्य है कि शिष्य के हित का ध्यान रखे। अब मैं इस पाप में लिप्त नहीं होना चाहता। तुम मेरे शिष्य कालीचरण स्वामी के निकट चले जाओ और उनसे दीक्षा लो।''

उमाचरणजी अवाक् होकर अपने मित्रों का कच्चा चिट्ठा सुनते रहे। अगर बाबा की बातें असत्य होतीं तो जरूर दोनों प्रतिवाद करते।

कुछ देर चुप रहने के बाद बाबा ने एक ऐसी घटना का जिक्र किया जिसकी आशा बागची महाशय को नहीं थी।

बाबा ने कहा—''यदुनाथ, कट्टर हिन्दू होना अनुचित है। जमालपुर में तुम्हारे अण्डर में काम करने वाले कर्मचारी ने भूल से लघुशंका करते वक्त कान पर जनेऊ नहीं चढ़ाया। उसकी इस भूल के लिए तुम उस पर बरस पड़े। यहाँ तक कि उसकी पदोन्नति का रास्ता रोक दिया। लघुशंका करते वक्त कान पर जनेऊ क्यों चढ़ाया जाता है, इसका रहस्य तुम्हें मालूम है? शायद तुम भी नहीं जानते। जनेऊ शुद्ध है और पेशाब अशुद्ध। पेशाब करते समय उस पर छींटे न पड़ें, इसलिए कान पर चढ़ाया जाता है।''

यह घटना जमालपुर में हुई थी और बाबा काशी में रहते हैं। आखिर इन्हें यह बातें कैसे मालूम हो गयीं? निस्सन्देह बाबा त्रिकालदर्शी सिद्ध हैं।

* * *

सन् १८७० ई० में दयानन्द सरस्वतीजी काशी आये थे। उद्देश्य था—आर्य-धर्म

---

१. श्रीकृष्ण सेन आगे चलकर परिव्राजकाचार्य कृष्णानन्द आगम वागीश के नाम से प्रसिद्ध हुए थे। दशाश्वमेध थाने के सामने गली में उनका आश्रम है। उस आश्रम में अन्नपूर्णा देवी की मूर्ति स्थापित कर भवन का नाम योगाश्रम रखा था। वे यहाँ से आर्य-धर्म का प्रचार करते थे। इस आश्रम में कभी भोलानाथ सान्याल, गोपीनाथ कविराज आदि लोग आते थे। आजकल इस आश्रम की स्थिति दयनीय है और किरायेदार निवास करते हैं।

के बारे में भाषण देना। हिन्दुओं के आडम्बरों, पोंगापन्थियों का निराकरण करना। वे यहाँ हिन्दू-देवी देवताओं के विरुद्ध भाषण देने लगे। अनेक पण्डितों की बोलती बन्द हो गयी। दुर्गाकुण्ड के समीप हुए शास्त्रार्थ में काशी के अनेक पंडित पराजित हो गये।

स्वामी दयानन्दजी का कहना था कि इस जगत् में एक ही ईश्वर है जिसका कोई आकार नहीं है। स्वामी दयानन्द सरस्वती का "आर्य-समाज" धर्म एक प्रकार से बंगाल में प्रचलित 'ब्राह्म-समाज' से मिलता-जुलता था। दयानन्दजी के प्रभाव में आकर काफी लोग उनके अनुयायी बन गये। वाराणसी में आर्य-समाज की स्थापना भी हो गयी।

तैलंग स्वामी के निकट कुछ भक्त लोग आये और उन्होंने सनातन-धर्म के विरुद्ध होने वाले भाषणों का उल्लेख करते हुए अपनी मनोव्यथा का जिक्र किया।

सारी बातें सुनने के बाद तैलंग स्वामी ने एक कागज पर कुछ लिखा और उसे श्री दयानन्द सरस्वती के पास भिजवा दिया। कहा जाता है कि उस पत्र को पाते ही दयानन्दजी काशी छोड़कर अन्यत्र चले गये।

इसी प्रकार की एक मनोरंजक घटना उमाचरणजी के साथ हुई थी। वे मुंगेर के एक औषधालय में नौकरी करते थे। इनके सहयोगी का नाम था—श्री महेन्द्रलाल घोष। घोष महाशय खजांची थे।

अचानक एक दिन हिसाब करने पर ज्ञात हुआ कि रोकड़ में छह सौ रुपये की कमी हो गयी है। दोनों ही व्यक्ति परेशान हो उठे। कार्यालय का सारा हिसाब-किताब यही दोनों व्यक्ति करते थे। घोष महाशय से अधिक जिम्मेदारी उमाचरणजी की थी। जाँच पड़ताल करने में तीन महीने बीत गये, पर कुछ पता नहीं चला।

सवाल नौकरी का था। आमतौर पर नौकरी छोड़ देना उचित है, पर गबन के दोष का भागी बनना जीवन का भयंकर कलंक होगा। छह सौ रुपये उन दिनों एकबड़ी रकम थी।

अन्त में इस मुसीबत से मुक्ति पाने के लिए उमाचरणजी तुरन्त काशी रवाना हो गये। उन्हें इस बात का विश्वास था कि बाबा इस बारे में सही बात बता देंगे।

आश्रम में आकर ज्योंही उन्होंने बाबा को प्रणाम किया त्योंही बाबा ने कहा—"क्यों बेटा, रुपयों की गड़बड़ी कर यहाँ पता लगाने आये हो?"

बाबा की योग-विभूति से वे अच्छी तरह परिचित थे, इसलिए उमाचरणजी को कोई आश्चर्य नहीं हुआ। उन्होंने दबी जबान से कहा—"जी हाँ।"

स्वामीजी ने कहा—"जैसे तुम हो, वैसा ही तुम्हारा सहयोगी घोष है। अमुक महीने की अमुक तारीख को कलकत्ता के नरसिंह दत्त को ३०० रु० और स्ट्रैनिस्ट्रीट कम्पनी को २०० रु० भेजे गये थे। तुमने स्वयं ड्राफ्ट बनवाया था। रजिस्ट्री भी की थी। रसीद अमुक फाइल में है। उन लोगों ने रसीद भी भेजी है। वह भी फाइल में है। लेकिन इन दोनों रकमों को रोकड़ में दर्ज नहीं किया गया है। अब रहा १०० रु० का सवाल। इस रकम को घोष महाशय स्वयं खोज निकालेंगे।"

सारी बातें सुनने के पश्चात् उमाचरणजी मुंगेर रवाना हो गये। वहाँ फाइलों की जाँच करने के बाद गुरुदेव की सारी बातें मिल गयीं। अब रहा एक सौ रुपये का सवाल। उसका पता नहीं चल रहा था।

इस घटना के एक सप्ताह बाद अचानक घोष बाबू प्रसन्नता से चीख उठे—"मुखर्जी बाबू, मिल गया। एक सौ रुपये मिल गये।"

"कहाँ मिले?"

घोष महाशय ने कहा—"कुछ दिन पहले ऑफिस के सभी सामानों की रंगाई हुई थी। सन्दूक में ताजा रंग लगा था। सो उसी में सौ रुपये का नोट चिपक गया। देखो, अभी तक नोट में रंग के दाग हैं। आपके गुरुदेव ने ठीक कहा था। यह आपका सौभाग्य है कि ऐसे महान् गुरु के आप शिष्य हैं। काशी तो जाना नहीं होगा। आज यहीं से मैं उनको चरणों में शत-सहस्त्र बार प्रणाम करता हूँ।"

तैलंग स्वामी के कई शिष्यों ने उनकी अनेक योग विभूतियों का जिक्र किया है। उमाचरणजी के अलावा अन्य लोगों की पुस्तकों में ऐसी घटनाओं का उल्लेख है।

* * *

अचानक एक दिन काशी के नागरिक एक मार्मिक समाचार सुनकर स्तब्ध रह गये। तैलंग स्वामीजी समाधि लेने वाले हैं, यह समाचार नगर के इस छोर से उस छोर तक फैल गया। जो जहाँ था, वहीं से पंचगंगा घाट की ओर आने लगा। वाराणसी में एक-से-एक संन्यासी, साधु, महात्मा आये और गये। लेकिन किसी ने जीवित अवस्था में समाधि नहीं ली।

पौष शुक्ल पक्ष, एकादशी थी उस दिन, सन् १८८७ ई०। तैलंग स्वामी ने इसी दिन अपना नश्वर शरीर त्याग दिया। राजघाट से अस्सी तक श्रद्धालु नागरिकों की भीड़ एकत्रित हो गयी थी। बाबा के शरीर को एक सन्दूक में रख दिया गया। इसके बाद नाव के द्वारा अस्सी से वरुणा तक घुमाकर निर्दिष्ट स्थान पर गंगा-गर्भ में विसर्जित कर दिया गया। घाट किनारे खड़ी जनता उन्हें अश्रु अर्घ देती रही।

आज भी पंचगंगा घाट पर स्वामीजी की भव्य मूर्ति और आश्रम श्रद्धालु जनता को आकर्षित करता है।

■

परमहंस रामकृष्ण ठाकुर

बंगाल का एक नगण्य गाँव—देरे। इस गाँव में चट्टोपाध्याय वंश के लोग एक अर्से से भगवान् रामचन्द्र के उपासक थे। कई पीढ़ियों के बाद इस वंश में खुदीराम ने सन् १७७५ ई० में जन्म लिया। बड़े होने पर पैतृक भूमि प्राप्त हुई। गाँव के बड़े किसानों में आपकी गणना थी।

इस गाँव के जमींदार रामानन्द राय चंगेज खाँ के प्रतिरूप थे। एक बार किसी मुकदमें में गवाही देने के लिए उसने खुदीराम से कहा। खुदीराम भगवान् राम के उपासक, सरल हृदय के थे। कचहरी के नाम से डरते थे, फिर झूठी गवाही कैसे देते? खुदीराम के इन्कार करने पर रामानन्द राय का पारा चढ़ गया। कुछ ही दिनों बाद एक के बाद एक करके कई मुकदमों में खुदीराम को फँसाया गया। इन मुकदमों के कारण खुदीराम को अपने मकान तथा जमीन से हाथ धोना पड़ा।

बंगाल के तीन जिलों की सीमा जहाँ आपस में मिलती है, उक्त संधिस्थल में श्रीपुर, कामारपुकुर और मुकुन्दपुर नामक तीन गाँव हैं। इनमें कामारपुकुर काफी प्रसिद्ध है। कामारपुकुर गाँव के निवासी श्री सुखलाल गोस्वामी खुदीराम के घनिष्ठ मित्र थे। अपने मित्र की दयनीय स्थिति को देखकर उन्होंने खुदीराम को अपने यहाँ शरण दी। अपने मकान का आधा भाग रहने तथा जोतने के लिए डेढ़ बीघा जमीन दान में दी। उन दिनों किसी को यह विश्वास नहीं था कि एक दिन कामारपुकुर धार्मिक स्थल बन जाएगा और गोस्वामीजी इतिहास में अमर हो जायेंगे।

जब किसी परिवार में कोई महापुरुष अवतार लेता है तब वहाँ का माहौल अगल किस्म का अपने आप बन जाता है। विभिन्न प्रकार के अलौकिक दर्शन होने लगते हैं जो सामान्य परिवारों में दुर्लभ होते हैं। खुदीराम किसी कार्यवश दूसरे गाँव गये थे। लौटते समय इतने थक गये कि एक वृक्ष के नीचे विश्राम करने लगे। थके हुए थे, नींद आ गयी। उन्होंने स्वप्न में देखा कि भगवान् श्रीरामचन्द्र उनसे आग्रह कर रहे हैं–'सामने के खेत में एक अर्से से मैं उपेक्षित और अनाहार पड़ा हूँ। तुम मुझे अपने घर ले चलो। मैं तुम्हारी सेवा ग्रहण करने का इच्छुक हूँ।' खुदीराम ने गद्गद भाव से कहा–'प्रभो, मैं ठहरा भक्तिहीन दरिद्र। मेरे घर में आपकी सेवा नहीं हो सकेगी। बहुत त्रुटि होने पर अपराधी होऊँगा।' भगवान् ने कहा–'डरने की बात नहीं। मैं तुम्हारी किसी भी त्रुटि पर ध्यान नहीं दूँगा। बस, मुझे यहाँ से ले चलो।' भगवान् की इस बात पर खुदीराम इतने मगन हो गये कि रोने लगे और तभी आँखें खुल गयीं।

स्वप्न में बताये स्थान पर उन्होंने कुतूहलवश देखा कि एक शालग्राम पर एक भुजंग बैठा है। अभी वे देख ही रहे थे कि शालग्राम से भुजंग हट गया। ज्योहीं उन्होंने उस शालग्राम को उठाया त्योंही भुजंग पास के किसी बिल में प्रवेश कर गया। खुदीराम समझ गये कि यही 'रघुवीर' हैं। अत्यन्त श्रद्धा के साथ घर लाकर वे पूजा करने लगे।

खुदीराम के परिवार में उनकी पत्नी श्रीमती चन्द्रा देवी तथा पुत्र रामकुमार और रामेश्वर और पुत्री कात्यायनी थे। सबसे बड़ा रामकुमार स्वस्तिवाचन और पूजा-पाठ करता था। कहा जाता है कि आद्याशक्ति ने अपने इस उपासक की जीभ पर अपनी अँगुली से सिद्ध होने का मंत्र लिख दिया था। इस गुण के कारण रामकुमार किसी भी रोगी को देखकर यह बता देता था कि वह स्वस्थ होगा या नहीं। इस गुण के कारण रामकुमार की ख्याति चारों ओर फैल गयी।

एक बार गंगा-स्नान करने कलकत्ता आये। घाट पर स्नान करते वक्त उन्होंने देखा कि एक महिला को पालकी सहित गंगा में डुबोकर नहलाया जा रहा है। शायद कड़े पर्दे के कारण ऐसा किया जा रहा था। फिर भी उसकी शक्ल दिखाई दे गयी। उस महिला की आकृति देखते ही अपने गुण के प्रभाव से रामकुमार बोल उठे—"आज तुम्हारा आखिरी गंगा-स्नान है। कल योग तुम्हें गंगा में विसर्जन कर देंगे।"

इनके पीछे उक्त महिला का पति खड़ा था। उसे यह बात सुनकर आश्चर्य हुआ। वह इन्हें आदर के साथ घर लाया। दूसरे दिन जब पत्नी चल बसी तब इन्हें प्रणाम करते हुए कहा—"आपके कथन की जाँच के लिए मैं आपको यहाँ ले आया था। अपराध क्षमा करें। अगर बात गलत होती तो आज आपका अपमान करके भगा देता।"

अपने विवाह के पश्चात् जब रामकुमार ने अपनी पत्नी की शक्ल देखी तब कहा—"अगर यह कभी माँ बनी तो निश्चित रूप में मर जायगी।" यही वजह है कि वे पिता बनने से बराबर बचते रहे। रामकुमार जब पैंतीस वर्ष के थे तब पत्नी गर्भवती हुई और प्रसव के उपरांत उसकी मृत्यु हो गयी।"

दशहरे के बाद क्वार के महीने में लक्ष्मी पूजा होती है। रामकुमार भुरसुबो गाँव में अपने एक यजमान के यहाँ पूजा करने गये थे। आधी रात हो गयी, लड़का घर नहीं आया। माँ उद्विग्न हो उठी। घर से बाहर आकर लड़के के आने की बाट जोहने लगी। थोड़ी देर बाद चन्द्रा देवी को लगा जैसे भुरसुबो गाँव की ओर से कोई आ रहा है। लड़का आ रहा है, समझकर वे आगे बढ़ गयीं। पास जाने पर देखा कि एक अपूर्व सुन्दरी अनेक अलंकारों से सजी हुई थी। सरल भाव से उन्होंने पूछा—''बेटी, तुम किधर से आ रही हो?''

उत्तर मिला—''भुरसुबो गाँव से आ रही हूँ।''

चन्द्रादेवी ने पूछा—''मेरे पुत्र रामकुमार को देखा था? वह उसी गाँव में पूजा करने गया है, अभी तक लौटा नहीं।''

रमणी ने कहा—''आपका पुत्र जिस घर में पूजा कर रहा था, मैं उसी घर से आ रही हूँ। डरने की बात नहीं है, वह आता ही होगा।''

चन्द्रादेवी ने कहा—''अब इतनी रात को अकेली कहाँ जाओगी? मेरे यहाँ ठहर जाओ, कल सबेरे चली जाना।''

रमणी ने कहा—''नहीं, मुझे बहुत दूर जाना है। आपके यहाँ फिर कभी आऊँगी।''

चन्द्रादेवी अपने पुत्र की प्रतीक्षा में परेशान थी। उन्हें इस बात पर तनिक भी संदेह नहीं हुआ कि आधी रात को जेवरों से लदी अकेली युवती भुरसुबो से कैसे चली आ रही है? यह महिला उनके लड़के को कैसे पहचान गयी। तभी उन्होंने देखा कि पड़ोसी के पुआल की ओर जाते-जाते वह महिला गायब हो गयी। यह दृश्य देखकर वे वहाँ आयीं तो देखा—कहीं कोई चिह्न नहीं। एकाएक वह सोचने लगी—क्या महिला के भेष में वह कोई देवी थी? घर में आकर चन्द्रादेवी ने अपने पति से सारी बातें बतायीं।

खुदीराम ने कहा—''श्री श्री लक्ष्मी देवी ने आज कृपा करके तुम्हें दर्शन दिया। तुम धन्य हो।''

थोड़ी देर बाद रामकुमार जब वापस आया तब वह भी घटना का विवरण सुनकर चकित रह गया। इस घटना के कुछ ही दिनों बाद खुदीराम गया-यात्रा के लिए रवाना हुए। वहाँ से वापस आने के बाद चन्द्रादेवी ने एक अद्‌भुत कहानी सुनायी। उन्होंने कहा—''एक रात को मैंने स्वप्न में देखा कि एक ज्योतिर्मय देवता मेरी बगल में सोया है। मैंने सोचा कि कोई बदमाश है। यह सोचते ही मैं डर गयी। तुरत रोशनी की तो देखा कि कहीं कोई नहीं। दरवाजा भीतर से बन्द है। इसी प्रकार एक घटना और हुई। एक दिन शिव-मंदिर के समीप खड़ी धनिया से बातें कर रही थी। ठीक उसी समय महादेव के अंग से एक दिव्य ज्योति निकलकर तरंग की तरह आकर मुझे आच्छादित कर लिया। मैं तुरन्त बेहोश होकर गिर पड़ी।''

इन दोनों घटनाओं को सुनने के बाद खुदीराम ने कहा—''मेरे साथ भी गया में अद्‌भुत घटना हुई थी। श्राद्धादि कार्यों से खाली होकर मैं डेरे पर आकर सोया था।

रात को स्वप्न में देखा कि मैं मंदिर में खड़ा हूँ। मेरे सभी पूर्व पुरुष हाथ जोड़े खड़े हैं। मंदिर के भीतर एक सिंहासन पर एक ज्योतिर्मय पुरुष बैठे हैं। उक्त पुरुष ने मुझसे कहा—'खुदीराम, मैं तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न हूँ। तुम्हारे यहाँ पुत्र-रूप में जन्म लेकर तुम्हारी सेवा ग्रहण करूँगा।' यह बात सुनकर मैं तो आत्मविभोर हो उठा। मैंने कहा—'भगवान्, मुझे यह सौभाग्य प्रदान न करें तो अच्छा होगा। मेरे जैसे दरिद्र ब्राह्मण के घर आने पर आपको काफी कष्ट होगा। इससे अच्छा है कि आप मुझे अपना दर्शन बराबर देते रहें।' लेकिन प्रभु ने इस बात को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा—'डरो मत खुदीराम। तुम जो कुछ खिलाओगे, उसे मैं तृप्ति के साथ स्वीकार करूँगा।' अब इस बात पर मैं क्या कहता?''

थोड़ी देर चुप रहने के बाद खुदीराम ने पुनः कहा—''सुनो, इन बातों की चर्चा अब किसी से मत करना। श्री रघुवीर की कृपा से जो कुछ होना है, वह होगा ही। सारी घटनाएँ कल्याणकारी हैं। लगता है, हमारे यहाँ कोई बालक जन्म लेगा।''

इन घटनाओं का उल्लेख करने का कारण यह है कि खुदीराम, चन्द्रादेवी और रामकुमार सभी निरन्तर अलौकिक घटनाओं से जुड़े थे। इस परिवार पर भगवान् की असीम कृपा थी वर्ना ऐसी वारदातें क्यों होतीं?

कुछ दिनों बाद चन्द्रादेवी गर्भवती हुईं। इस बीच उन्हें अक्सर अलौकिक दर्शन होने लगे। कभी किसी को हंस पर सवार आते देखती तो कभी शिव-मंदिर से ज्योति आते देखती। बातचीत के सिलसिले में पति से उल्लेख करने पर खुदीराम ने कहा—''तुम घबराओ नहीं। श्री रघुवीर की कृपा से जो आ रहा है, वह सब ठीक कर लेगा।''

१७ फरवरी, सन् १८३६ ई० शुक्ल पक्ष, बुधवार के दिन भोर के समय एक बालक ने चन्द्रादेवी के गर्भ से जन्म लिया। सौरी में धनिया थीं, जबानी उसने बाहर आकर इस बात की सूचना दी। जन्मकुंडली बनाने वाले पंडितों ने कहा—''जातक का लग्न देखते हुए कहा जा सकता है कि बालक असाधारण है।'' खुदीराम ने गया में स्वप्न देखा था, इसलिए बालक का नाम उन्होंने गदाधर रखा।

मातृगर्भ में आने के पूर्व से ही बालक अद्भुत घटनाओं से जुड़ा था। बाद में भी चमत्कार होने लगे। गदाधर का अन्नप्राशन खुदीराम सामान्य ढंग से करना चाहते थे। उन्होंने निश्चय किया कि केवल पड़ोसियों को बुलायेंगे। निश्चित दिन के एक दिन पूर्व गाँव के सभी ब्राह्मण खुदीराम के घर आकर कह गये—''हम आपके नवजातक पुत्र के अन्नप्राशन में भोजन करने आयेंगे।''

ब्राह्मणों की बातें सुनकर खुदीराम परेशान हो उठे। इतने लोगों को भोजन देना, उनके लिए कठिन था। जब लोग घर आकर जबरन की माँग कर बैठें तब कुछ करना पड़ेगा। वे इस मुसीबत से मुक्ति पाने के लिए गाँव के जमींदार धर्मदास लाहा के पास गये। सारी बातें सुनने के बाद लाहाजी ने कहा—''आप नाहक घबरा रहे हैं। मेरे रहते आपको कोई कष्ट नहीं होगा। मैं सारा प्रबंध कर दूँगा।''

लाहाजी से आश्वासन पाकर खुदीराम आश्वस्त हो गये। लाहाजी ने मुस्कराते हुए कहा—''अब आप जाइये।'' खुदीराम को यह ज्ञात नहीं हो सका कि यह षड्यंत्र लाहाजी ने किया था। गाँव के पंडितों को उन्होंने ही भेजा था।

गदाधर को स्तनपान कराने के पश्चात् चन्द्रादेवी उसे बिछौने पर सुलाकर गृहकार्य करने चली गयी। थोड़ी देर बाद उस कमरे में आयी तो देखा—खाट पर गदाधर के स्थान पर एक दीर्घकाय पुरुष सो रहा है। भय से चीखती हुई वे बाहर आकर पति को बुलाने लगीं। बाद में पति-पत्नी ने आकर देखा कि खाट पर गदाधर ही सो रहा है। चन्द्रादेवी ने कहा—''यह अजीब तमाशा है। अभी कुछ देर पहले मैं अपनी आँखों से एक दीर्घकाय पुरुष को सोता देख गयी थी।''

खुदीराम ने कहा—''यह लड़का रघुवीर की देन है। अपने जन्म के पूर्व से ही चमत्कार दिखा रहा है। चिन्ता मत करो। जो कुछ हो रहा है, सब भगवान् की लीला है।''

* * *

धीरे-धीरे बालक बड़ा हो गया। पाठशाला में भर्ती हुआ। पढ़ने-लिखने की अपेक्षा वह खेलकूद में अधिक भाग लेता था। कुम्हारों की बस्ती में जाकर उनके बनाये खिलौनों में रंग लगाना, कभी स्नान-घाट पर जाकर उपद्रव करना, नाटकों में स्त्री-पार्ट करना आदि करता रहा। जिन स्थानों पर जाने से रात के समय हमउम्र के बालक डरते थे, वहाँ वह बेखटक चला जाता था। बालक की इस शक्ति को देखकर लोग चकित रहते थे।

सन् १८४२ ई० में दुर्गापूजा के समय खुदीराम अपने भांजे के अनुरोध पर उसके यहाँ गये। वहाँ अतिसार से पीड़ित हुए। दशहरा के दिन 'श्री रघुवीर' नाम जपते हुए सुरधाम चले गये। उन दिनों गदाधर की उम्र सात वर्ष थी।

उपनयन के बाद गदाधर में तेजी से परिवर्तन होने लगे। स्वप्न में कभी वह अपने पिताजी को देखता तो कभी साधु-संतों को। एक बार पड़ोसी सीतानाथ पाइन के यहाँ शिवरात्रि के दिन 'शिव-महिमा' नाटक का अभिनय होने वाला था। ऐन मौके पर शिवजी का पार्ट करने वाला बालक अस्वस्थ हो गया। नाटक के प्रबंधक गदाधर को ले आये और कहा कि शिवजी के पार्ट में संवाद अधिक नहीं कहना है। शिव बनकर ध्यानस्थ रहना है। गदाधर शिव के रूप में ध्यानस्थ हुआ और उसकी समाधि लग गयी। अक्सर जब देवी-महिमा का पाठ होता या वह ध्यान लगाता था तब उसे समाधि लग जाती थी। अचानक उसकी इस स्थिति को देखकर लोग घबरा उठे। सिर पर पानी छिड़का गया, राम नाम सुनाया गया तब उसकी समाधि भंग हुई।

इस घटना के कुछ वर्षों बाद रामकुमार की पत्नी ने पुत्र प्रसव किया और उसका निधन हो गया । जब तक वह जीवित रही तब तक घर में कोई कमी नहीं हुई। सभी

लोग उसे लक्ष्मी समझते थे। उसके निधन के बाद से स्थिति दिन प्रतिदिन खराब होने लगी। पिता के निधन के पश्चात् घर की सारी जिम्मेदारी रामकुमार पर आ गयी। गदाधर से वे ३१ वर्ष बड़े थे। अंत में रोजगार की तलाश में कलकत्ता चले आये। यहाँ झामापुकुर नामक स्थान में टोल (चटशाला) खोलकर छात्रों को पढ़ाने लगे। अक्सर जब घर आते तो देखते कि गदाधर पढ़ने-लिखने की जगह दिनभर उपद्रव करता रहता है। माँ की कोई बात सुनता ही नहीं। इस तरह वह मूर्ख बन जायगा। यह सब सोचकर उसे अपने साथ कलकत्ता ले आये। यहाँ अपनी चटशाला में पढ़ाने लगे।

ठीक इन्हीं दिनों कलकत्ता के एक राजघराने में विचित्र घटना हुई। रानी रासमणि की बहुत दिनों से इच्छा थी कि काशी जाकर बाबा विश्वनाथ और अन्नपूर्णा का दर्शन करूँ। इस कार्य के लिए यात्रा की सारी तैयारी पूरी हो गयी। इसी बीच उनके पति का निधन हो गया। फलत: यह यात्रा स्थगित हो गयी। विशाल संपत्ति की सारी जिम्मेदारी रानी पर आ गयी। कुछ दिनों बाद सन् १८४६ ई० में पुन: रानी ने काशी जाने का निश्चय किया। यात्रा करने के एक दिन पूर्व रात्रि में रानी को स्वप्न में देवी ने आदेश दिया—''काशी जाने की आवश्यकता नहीं है। भागीरथी के किनारे किसी मनोरम स्थान पर मेरी मूर्ति प्रतिष्ठित कर दो और भोग-पूजा का प्रबंध कर दो। मैं उस मूर्ति में आविर्भूत होकर तेरी पूजा-भोग ग्रहण करूँगी।''

देवी के आदेश से रानी अभिभूत हो उठीं। काशी-यात्रा स्थगित कर वे मंदिर के निर्माण में लग गयीं। निर्माण कराते समय रानी के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं शूद्र (कैवर्त) हूँ। मेरे द्वारा निर्मित मंदिर में अगर ब्राह्मण पुजारी पूजा न करने आये या लोग भोग स्वीकार न करें तो क्या होगा? इस शंका के निवारण के लिए उन्होंने मूर्धन्य पंडितों को अपने यहाँ आमंत्रित करके मंदिर के बारे में जानकारी माँगी। सभी पंडितों ने एक मत से कहा—''जाति से आप शूद्र हैं अतएव शास्त्रकारों के मत से कोई भी ब्राह्मण इस मंदिर में न तो मूर्ति की प्रतिष्ठा करेगा और न भोग ग्रहण करेगा।''

पंडित-मंडली की इस राय को सुनकर रानी रासमणि सन्न रह गयी। अब क्या हो? इतने उत्साह और भक्ति के साथ मंदिर का निर्माण हुआ, मूर्ति भी बन गयी, अब प्रतिष्ठा के प्रश्न पर सामाजिक बाधा आ गयी।

तभी झामापुकुर से रामकुमार चट्टोपाध्याय ने अप्रत्याशित रूप से व्यवस्था दी—''प्रतिष्ठा के पूर्व अगर रानी उक्त संपत्ति किसी ब्राह्मण को दान कर दे तो वही ब्राह्मण मूर्ति की प्रतिष्ठा कर सकता है। ऐसे ब्राह्मण द्वारा अन्न-भोग ग्रहण करने में शास्त्र-नियमों का पालन होगा। उच्च वर्ण के लोग भी अगर वहाँ प्रसाद ग्रहण करेंगे तो दोष के भागी नहीं होंगे।''

इस व्यवस्था को पाकर रानी का हृदय खिल उठा। उन्होंने पंडित-मंडली से पुन: अनुरोध किया, पर कोई आगे नहीं आया। यहाँ तक कि पुजारी-पद के लिए लम्बी तनख्वाह देने का प्रलोभन भी दिया गया। सभी लोगों की राय थी कि यह कार्य सामाजिक

प्रथा के विरुद्ध है। ऐसा होने पर भी कोई ब्राह्मण वहाँ प्रसाद ग्रहण नहीं करेगा। परन्तु किसी भी पंडित को यह कहने का साहस नहीं हुआ कि रामकुमारजी की उक्त व्यवस्था शास्त्रविरुद्ध है।

रानी के यहाँ कामापुकुर निवासी महेश चटर्जी नामक एक कर्मचारी था। वह अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए उपाय सोचने लगा। उसे यह मालूम था कि रामकुमार की स्थिति अच्छी नहीं है। जब उन्होंने व्यवस्था दी है तो जरा झुककर आवेदन करने पर वे पुजारी बन सकते हैं। लेकिन स्वतः आवेदन करने में हिचकने लगा। उसने रानी को अपना सुझाव देकर कहा—"आप अगर रामकुमारजी को इस आशय का पत्र लिखकर अनुरोध करें तो वे राजी हो सकते हैं। मेरे गाँव के तांत्रिक पंडित हैं। बाकी बातें मैं समझा दूँगा।"

महेश के कथनानुसार रानी ने पत्र लिखा। रामकुमार ने सोचा—मेरे अस्वीकार करने पर जगदम्बा माता की पूजा नहीं होगी। रानी ने जब यह लिखा है कि कुछ दिन कार्यभार सम्हाल दें। आगे योग्य पुजारी मिलते ही आप चले जा सकते हैं, तब कोई हर्ज नहीं। रामकुमार की स्वीकृति मिलते ही तैयारी होने लगी। उस दिन काशी, नवद्वीप, श्रीहट्ट, कान्यकुब्ज आदि जगहों से पंडित आये। सभी को रेशमी वस्त्र, उत्तरीय और दक्षिणा में एक-एक गिन्नी दी गयी। इस कार्य में रानी ने ९ लाख रुपये व्यय किया था।

समारोह के दिन गदाधर भी आया था, पर वह प्रसाद ग्रहण करने नहीं गया। शाम को बाजार से एक पैसे की लाई खरीदकर डेरे पर आकर सो गया। दूसरे दिन पुनः बड़े भैया को वापस न आते देख गदाधर आया। रामकुमार के अनुरोध करने पर भी वह नहीं रुका। झामापुकुर में बड़े भैया की वापसी की राह वह एक सप्ताह तक देखता रहा। बाद में आठवें दिन वह पुनः दक्षिणेश्वर आया तो देखा कि बड़े भैया को मंदिर का स्थायी रूप से पुजारी बना दिया गया है।

रामकुमार ने मूर्ति प्रतिष्ठा करने के बाद सोचा था कि दो-चार दिन के भीतर रानी कोई पुजारी ठीक कर लेंगी तब मैं पुनः अपनी चटशाला में चला जाऊँगा। स्थायी रूप से पुजारी बनने की इच्छा से वे यहाँ नहीं आये थे। लेकिन उनसे अनुरोध करने के अलावा काफी दबाव भी डाला गया। लाचारी में उन्हें पुजारी-पद ग्रहण करने के लिए मजबूर होना पड़ा। गदाधर ने भी समझ लिया कि अब भैया चटशाला वापस नहीं जायेंगे। फलस्वरूप वह भी यहीं रहने लगा।

मूर्ति स्थापना के बाद से रानी के सबसे छोटे दामाद मथुरानाथ अक्सर मंदिर की व्यवस्था देखने आते थे। रानी को पुत्र-लाभ नहीं हुआ था। मथुरानाथ रानी की सारी जायदाद की देखरेख करते थे। जब कभी वे मंदिर आते तब उनकी नजर गदाधर पर पड़ती । उसे गौर से देखते रहने के कारण उसके प्रति उनका आकर्षण बढ़ता गया।

एक दिन उन्होंने रामकुमार से कहा कि आप मंदिर के पूजा-कार्य में छोटे पुजारी को क्यों नहीं लगा देते। रामकुमारजी अपने छोटे भाई के स्वभाव से परिचित थे। अभी

तक वह भोग नहीं खाता था। अपने लिए अलग से भोजन बनाया करता था। रामकुमार ने उसके स्वभाव की चर्चा करते हुए कहा कि उसे इस कार्य में लगाना कठिन है। रामकुमार की राय सुनकर मथुरानाथ ने निश्चय किया कि चाहे जो भी हो, गदाधर को देवी की सेवा में लगाऊँगा।

ठीक इन्हीं दिनों रामकुमार का भांजा हृदयराम नौकरी की तलाश में अपने मामा के पास आया। गदाधर से उम्र में चार वर्ष छोटा था। हमउम्र होने के कारण दोनों एक साथ खेलते, घूमते और काम करते थे। गदाधर गंगा-किनारे से मिट्टी लाकर शिव की मूर्ति इस ढंग से बनाता था जिसे देखकर आश्चर्य होता था। एक दिन मथुरानाथ ने देखा और एक मूर्ति ले जाकर रानी को दिखायी। दोनों चकित रह गये। इस तरह की कलापूर्ण मूर्ति बाजार में जल्दी दिखाई नहीं देती।

दूसरे दिन मंदिर आने पर गदाधर उन्हें देखते ही आड़ में छिप गया। हृदयराम के पूछने पर गदाधर ने कहा—"आज वे मुझे पूजा करने के लिए कहेंगे। देवी के अंग पर लाखों रुपये के जेवर हैं। कहीं चोरी हो गयी तो मुफ्त में झंझट में फँस जाऊँगा। तू अगर उन जेवरों की जिम्मेदारी ले तो मैं उनके प्रस्ताव को स्वीकार कर सकता हूँ।"

हृदयराम को नौकरी की तलाश थी, उसने झट स्वीकार कर लिया। गदाधर ने जैसा सोचा था, वही हुआ। मथुरानाथ ने अनुरोध करके पूजा-कार्य में गदाधर को लगा दिया। रामकुमार स्वयं अपने छोटे भाई को पूजा-कार्य की शिक्षा देने लगे।

गदाधर ने एक दिन हृदयराम से कहा—"ध्यान करने के लिए पंचवटी की स्थापना करनी चाहिए।" इसके पूर्व वे आमलकी वृक्ष के नीचे जाकर ध्यान लगाया करते थे। अब वह गिर गया था। सुझाव के अनुसार बरगद, पीपल आदि पाँच पेड़ लगाये गये और पंचवटी की स्थापना हो गयी। यहाँ नियमित रूप से गदाधर आते और ध्यानस्थ हो जाते थे।

सहसा बड़े भाई का निधन हो गया। अब पूजा की सारी जिम्मेदारी गदाधर को दे दी गयी। काली माता का पुजारी बन जाने के बाद उनकी भाव समाधि अधिक होने लगी। एक दिन काली माँ के सामने नाराज होकर बोले—"तुमने रामप्रसाद को दर्शन दिया, मुझे क्यों नहीं देती?" कहते-कहते उनके दिल में दर्द उभड़ा। उसी हालत में वे बगल के कमरे में गये और वहाँ से खड्ग उठा लाये। उद्देश्य था—माँ के सामने अपनी गर्दन काटना। ठीक उसी समय उन्हें काली माँ का दर्शन हुआ। साथ ही वे बेहोश होकर गिर पड़े।

इस घटना के बाद से उनकी स्थिति अद्‌भुत ढंग की हो गयी। पूजा करते समय नैवेद्य लेकर कहते—'ले, माँ खा ले। पहले मैं खाऊँ?' फिर स्वयं कुछ खाकर शेष भाग मूर्ति के मुँह के पास ले जाते। कभी कहते—'क्या कहा माँ? तेरी खाट पर सो जाऊँ? ठीक है। सो जाता हूँ।' कहने के बाद पास ही रखी खाट पर सो जाते। कभी देवी पर समस्त फूल चढ़ाकर निस्पन्द हो जाते तो कभी नैवेद्य भोग देकर घंटों अपनी आँखें बन्द

कर बैठे रहते ताकि काली माता खा लें। अक्सर 'माँ-माँ' कहते हुए जमीन में लोटने लगते। अगर कभी कोई उनसे माँ का नाम या गीत गाने को कहता तब गाते-गाते भावावेश में आ जाते थे। एक प्रकार से वे काली माता के प्रेम में पागल हो गये थे।

मामा की दशा देखकर हृदयराम चिन्तित हो उठा। उसने सोचा कि अगर शीघ्र इसका उपचार न किया गया तो कठिनाई होगी। बात ठाकुरबाड़ी के कर्मचारियों के पास पहुँची। इन लोगों ने मथुरानाथ को सुझाव दिया कि छोटे पुजारी पूजा नहीं, अनाचार करते हैं। एक दिन मथुरानाथ स्वयं आये और आड़ में खड़े होकर गदाधर की पूजा देखने लगे। गदाधर अनुरोध करते हुए काली माता के सामने भाव-विह्वल होकर अश्रुपात कर रहे थे। दृश्य देखने के बाद मथुरानाथ ने समझ लिया कि अब देवी जागृत हो जायेंगी या हो गयी हैं। मंदिर का निर्माण सफल हो गया है। वहाँ से वापस आकर उन्होंने सभी कर्मचारियों से कहा—''छोटे पुजारी जिस तरह पूजा कर रहे हैं, करने दो। उन्हें कोई कुछ न कहे। आगे जो करना है, मैं करूँगा।''

गदाधर के कारण पूजा में व्याघात होने लगा। इसी बीच रामतारक चटर्जी नामक एक नये पुजारी की नियुक्ति की गयी। रामतारक सिद्ध तांत्रिक होने के अलावा गदाधर के चचेरे भाई थे। नौकरी की तलाश में कलकत्ता आये थे। रामतारक तांत्रिक हैं, जानकर ठाकुरबाड़ी के सभी कर्मचारी उनसे दूर-दूर रहने लगे। उनके स्वभाव की आलोचना पीठ पीछे की जाती थी। जब यह बात गदाधर को ज्ञात हुई तब उन्होंने इसकी चर्चा रामतारक से की। रामतारक बड़े भाई तथा पुजारी होने के कारण बुरा मान गये। बोले—''छोटा भाई होकर तू मेरी निन्दा कर रहा है? अब तू मुँह से खून उगलेगा।'' गदाधर ने उन्हें काफी समझाया, पर वे कुछ भी सुनने को तैयार नहीं हुए।

इस घटना के कुछ दिनों बाद रात ८-९ बजे गदाधरजी के मुँह से खून निकलने लगा। यह समाचार सुनते ही जो जहाँ था, वहीं से दौड़ा आया। रामतारक भी आये। उन्हें देखते ही गदाधर ने कहा—''भैया, आपने शाप देकर मेरी क्या हालत कर दी, देखो।'' इतना कहकर वे रोने लगे।

तभी वहाँ न जाने कहाँ से एक संन्यासी आये। उन्होंने रक्त का परीक्षण करने के बाद कहा—''चिन्ता की बात नहीं। यह एक प्रकार से अच्छा ही हुआ है। लगता है तुम योग-साधना करते थे। हठयोग में चरम समाधि होती है। तुम्हें भी हुआ है। सुषम्ना-द्वार खुलकर शरीर का रक्त मस्तक पर चढ़ गया था। अब वह मस्तक पर न चढ़कर मुँह के द्वारा निकल गया। यह अच्छा ही हुआ। अगर मस्तक पर चढ़ जाता तो यह समाधि जल्द टूटती नहीं। लगता है, जगन्माता तुम्हारे माध्यम से कोई कार्य करना चाहती हैं।''

संन्यासी की राय सुनकर लोगों को संतोष हो गया। इस घटना के बाद से रामतारक बराबर गदाधर के हाव, भाव, समाधि, पूजा आदि पर ध्यान देने लगा। जब गदाधर भाव-समाधि में डूब जाते तब रामतारक पैनी दृष्टि से निरीक्षण करता था। हृदयराम

की जबानी उसे यह भी ज्ञात हुआ कि मामा अक्सर रात को पंचवटी में दिगम्बर होकर साधना करते हैं। ''माँ-माँ'' स्वर हवा में गूँजता है। सारी बातें देखने के बाद एक दिन रामतारक ने गदाधर से कहा—''रामकृष्ण, अब तुम्हें पहचान गया हूँ। तुम पर ईश्वर का आवेश होता है।''

साधना के प्रथम चार वर्ष तक रामकृष्ण ठाकुर (गदाधर का वास्तविक नाम) की भाव-समाधि, आवेश, दर्शन आदि देखते रहने पर मथुरानाथ ने सोचा कि शायद कठोर ब्रह्मचर्य पालन करने के कारण इनको यह दशा हो रही है। उनकी परीक्षा लेने के लिए अपूर्व सुन्दरी वारांगनाओं को दक्षिणेश्वर लाया गया ताकि वे अपने हावभाव से रामकृष्ण को आकर्षित कर सकें। बाद में इन्हें मछुआ बाजार वेश्याओं के मुहल्ले में ले जाया गया। सभी वारांगनाएँ इन्हें आकर्षित करने लगीं। लेकिन इन सभी महिलाओं में इन्हें जगन्माता का रूप दिखाई देने लगा। जिसके सामने जाते, ''माँ-माँ'' कहते हुए उसके सामने चेतनाशून्य हो जाते। दूसरी ओर वारांगनाओं की दशा विचित्र हो जाती। उनका हृदय भगवत्-कृपा से वात्सल्य रस से परिपूर्ण हो उठता। सारा दृश्य मथुरानाथ की दृष्टि से गुजरता रहा। उन्हें इससे बड़ा दुःख हुआ। अपने इस कुकर्म के लिए वे मन ही मन पश्चात्ताप करने लगे। अब शनै-शनैः रामकृष्ण के प्रति उनकी भक्ति-श्रद्धा बढ़ती गयी। यहाँ तक कि बिना एक पल देखे उन्हें चैन नहीं मिलता था।

सबसे छोटा पुत्र होने के कारण चन्द्रादेवी की ममता रामकृष्ण पर अधिक थी। इधर रामकुमार के निधन के बाद से वे उसके बारे में अधिक चिन्तित रहती थीं। कलकत्ते से उसके बारे में समाचार आया कि रामकृष्ण उन्मादमस्त हो गया है। तब मँझले भैया रामेश्वर उसे जाकर ले आये। लेकिन स्वयं पुजारी बनने की प्रतिश्रुति दे आये।

गाँव में बुलाकर माँ ने ओझा को दिखाया। वैद्य से इलाज कराया। लेकिन इन सबसे कोई लाभ नहीं हुआ। बुजुर्गों ने राय दी कि लड़के का विवाह शीघ्र कर दो। माँ को यह राय पसन्द आयी। जयरामबाटी गाँव के श्री रामचन्द्र मुखर्जी की बेटी शारदा (सारदा) देवी के साथ रामकृष्ण का विवाह हो गया। उन दिनों शारदा देवी की उम्र पाँच और रामकृष्ण की इक्कीस साल थी।

विवाह के एक वर्ष बाद रामकृष्ण ठाकुर दक्षिणेश्वर चले आये। यहाँ आने के बाद एक दिन एक भैरवी ब्राह्मणी आयी। रामकृष्ण ठाकुर से वार्तालाप करने तथा इनकी भाव-समाधि देखकर वह अत्यन्त प्रभावित हुई। एक दिन बातचीत के सिलसिले में भैरवी ने कहा—''तुम तंत्र-साधना करो। मैं तुम्हें इस साधना का ज्ञान दूँगी।''

कुछ दिनों बाद भैरवी ने मथुरानाथ से कहा—''ठाकुर साधारण मानव नहीं हैं। ईश्वर के अवतार हैं। आप इनका ख्याल विशेष रूप से रखियेगा। आपके लिए ठाकुर कल्याणकारी होंगे।''

मथुरानाथ को इसका प्रत्यक्ष अनुभव था। एक बार रानी साहिबा के साथ मंदिर-दर्शन करने आये। पूजा समाप्त होने पर रानी ने ठाकुर से आग्रह किया कि वे कोई

भजन सुनायें। रामकृष्ण माँ काली-महिमा भजन गाने लगे। एकाएक भजन रोककर उन्होंने रानी की पीठ पर एक धौल जमा दिया और तब कहा-''यहाँ बैठकर भी वही सब चिन्ता कर रही हो?''

रानी को मारना था कि सभी कर्मचारी क्रोध से भड़क उठे। मथुरानाथ की आँखें लाल हो उठीं। सभी जानते थे कि ठाकुर पागल प्रकृति के हैं। तभी रानी ने हाथ के इशारे से सभी को रोक दिया और ठाकुर को प्रणाम करती हुई बोली—''ठाकुर, गलती को क्षमा कर दें। आप भजन सुनाइये। अब मन लगाकर श्रवण करूँगी।''

बाद में रानी आश्चर्य प्रकट करती हुई बोली—''ठाकुर अन्तर्यामी हैं। भजन सुनते समय मेरा ध्यान एक मुकदमे की ओर चला गया था।''

रानी की बातें सुनकर मथुरानाथ की भक्ति ठाकुर के प्रति बढ़ गयी। यक्ष की तरह वे हमेशा उनका ध्यान रखने लगे। हृदय की जबानी उन्हें यह भी ज्ञात हुआ था कि काली माता सदेह मामा के सामने प्रकट होती हैं। इनके हाथ से भोजन खाती हैं, बातें करती हैं।

भैरवी से तंत्र-साधना सीखने पर ठाकुर के स्वभाव में किंचित् परिवर्तन हुआ। मथुरानाथ चिन्तित हो उठे। डॉ० गंगा सेन से इलाज करवाने लगे। गाँव में यह समाचार पहुँचते ही माँ दक्षिणेश्वर आ गयी। अब हृदयराम तथा एक और भांजा रामलाल तीनों मिलकर ठाकुर की देखरेख करने लगे।

* * *

ठाकुर की साधना बराबर उन्नत होती गयी। कुछ दिनों बाद वे अद्वैत-साधना की ओर उन्मुख हुए। इस साधना से उनकी स्थिति चिन्तनीय हो उठी। भोजन करना है, सोना है, शौच के लिए जाना है आदि ये बातें मन में उत्पन्न नहीं होती थीं। अन्य व्यक्तियों से बातें करना दूर रहा, तुम तुम नहीं हो, मैं मैं नहीं हूँ, ऐसी स्थिति हो गयी। इस साधना में वे कितने उन्नत हो गये थे, इसका उदाहरण एक घटना से मिल जाता है।

परिव्राजकाचार्य तोतापुरी भ्रमण करते हुए दक्षिणेश्वर आये और मंदिर के घाट पर बैठ गये। घूमते हुए ठाकुर भी उनके पास आकर बैठ गये । ज्योंही तोतापुरी की नजर ठाकुर पर पड़ी, त्योंही वे चौंक उठे। अपनी अतीन्द्रिय शक्ति से उन्होंने ठाकुर की शक्ति को पहचान लिया। यह युवक सामान्य व्यक्ति नहीं है, असामान्य योगी है। इस तरह के साधक सहज ही दिखाई नहीं देते। ठाकुर को अच्छी तरह देखने के बाद तोतापुरी ने स्वतः कहा—''तुम उत्तम अधिकारी मालूम होते हो। मैं तुम्हें वेदान्त-साधना सिखाना चाहता हूँ। क्या तुम सीखोगे?''

ठाकुर ने कहा—''मैं क्या करूँगा या नहीं करूँगा, यह मैं नहीं जानता। मेरी माँ सब जानती हैं। अगर वे आदेश देंगी तो करूँगा।''

तोतापुरी ने कहा—''ठीक है। जाओ, अपनी माँ से इस बारे में पूछ आओ। मैं यहाँ अधिक दिन नहीं ठहरूँगा।''

ठाकुर वहाँ से सीधे जगदम्बा के मंदिर में आये। यहाँ भावाविष्ट होते ही उन्हें जगन्माता की वाणी सुनाई दी—''जाओ, उनसे शिक्षा ग्रहण करो। इसी कार्य के लिए उनका यहाँ आगमन हुआ है।''

मंदिर से वापस आकर उन्होंने माँ का आदेश सुनाया। रामकृष्ण ठाकुर के बालकोचित स्वभाव से स्वामी तोतापुरी प्रसन्न हो गये। उन्होंने कहा—''वेदान्त-साधना शिक्षा ग्रहण करने के लिए तुम्हें शिखा-सूत्र का परित्याग करना पड़ेगा। गेरुआ वस्त्र पहनना पड़ेगा।''

ठाकुर ने कहा—''जो कुछ करना है, चुपचाप करिये, वर्ना मेरी माँ (सगी माँ) को कष्ट होगा।''

इसके बाद शुभ दिन देखकर तोतापुरी ने ठाकुर को संन्यास ग्रहण कराया। एक अर्से तक वेदान्त-साधना कराने पर भी जब ठाकुर को निर्विकल्प समाधि प्राप्त नहीं हुई तब तोतापुरीजी बिगड़ उठे—''होगा कैसे नहीं?'' उन्होंने काँच के एक टुकड़े से ठाकुर की दोनों भौहों के मध्य जोर से कोंच दिया और तब कहा—''इस बिन्दु पर अपना ध्यान केन्द्रित करो।''

इसके पूर्व जितनी बार ठाकुर ध्यानस्थ होते थे तब उनका ध्यान जगन्माता की ओर चला जाता था। इस बार दृढ़ संकल्प के साथ बिन्दु पर ध्यान लगाने लगे। शिष्य को ध्यानस्थ होते देख तोतापुरी ने कमरे का दरवाजा बन्द करके बाहर से ताला बन्द कर दिया ताकि कोई रामकृष्ण का ध्यान भंग न कर सके। जब उसकी समाधि भंग होगी तब वह स्वयं दरवाजा खोलने के लिए कहेगा।

दिन गुजरा, रात गुजरी। दिन के बाद दूसरा दिन गुजर गया। इस प्रकार तीन दिन बीत गये। रामकृष्ण ने दरवाजा खटखटाया नहीं । तोतापुरी बेचैन होकर आये। ताला खोलकर उन्होंने देखा—जिस प्रकार वे रामकृष्ण को बैठा गये थे, ठीक उसी प्रकार बैठा है। शरीर में प्राण का प्रकाश नहीं है। मुख-मंडल प्रशान्त, गंभीर और ज्योतिपूर्ण है। तोतापुरी जैसे समाधि-रहस्य के इस दृश्य को देखकर चकित रह गये। जिस समाधि को कठोर साधना के माध्यम से प्राप्त करने में उन्हें चालीस वर्ष लगे, उसे इस महापुरुष ने एक ही दिन में प्राप्त कर लिया! देर तक वे अपने शिष्य के सभी लक्षणों, श्वास-प्रश्वासों का निरीक्षण करते रहे। अन्त में उन्हें कहना पड़ा—''यह देवी की माया है।''

इस घटना के कुछ दिनों बाद पत्नी शारदा देवी भी दक्षिणेश्वर आ गयीं। पत्नी को उन्होंने अपनी वृद्धा जननी की सेवा करने भेज दिया और स्वयं माँ जगदम्बा की आराधना में लगे रहे। अब मंदिर की पूजा हृदयराम करने लगा।

रामकृष्ण ठाकुर की ख्याति धीरे-धीरे फैलने लगी। एक के बाद एक करके कई शिष्य आये। सर्वश्री विवेकानन्द, ब्रह्मानन्द, निरंजानन्द, अद्‌भुतानन्द, शारदानन्द आदि अनेक भक्तों का दल आया। इनके अलावा साधारण गृहस्थ और नगर के प्रतिष्ठित नागरिक भी आये। कुछ ऐसे भी आये जो अपनी पीड़ा से पीड़ित थे।

कुछ दिनों बाद ठाकुर की इच्छा हुई कि काशी जाकर बाबा विश्वनाथ का दर्शन कर आऊँ। उनकी इस इच्छा की पूर्ति के लिए मथुरानाथ ने सारी तैयारी की और एक दिन रवाना हो गये। वैद्यनाथ धाम होते हुए काशी आये। यहाँ तैलंग स्वामी को देखते ही उन्होंने मथुरानाथ से कहा—''स्वामीजी में परमहंस के सभी लक्षण हैं। आप साक्षात् विश्वेश्वर हैं।'' यहाँ से वृन्दावन आदि स्थानों का दर्शन करते हुए दक्षिणेश्वर लौट गए।

मथुरानाथ ज्यों-ज्यों ठाकुर को देखते त्यों-त्यों उनकी शक्ति बढ़ती जाती थी। वे रामकृष्णजी के लिए सर्वस्व न्यौछावर करने को प्रस्तुत रहते थे। ठाकुर के बढ़ते प्रभाव को देखकर कुछ लोग जलते थे। एक बार जब रामकृष्ण ठाकुर अर्द्ध-समाधि में थे तब कालीघाट के पुरोहित हालदार ने उन्हें अकेला देखकर पूछा—''क्यों रे पंडित, बाबू को किस मंत्र से पटाया? अभी कोई नहीं है, मुझे बता दे न। अब नखरे मत दिखा, बोल।''

जब उसे अपने प्रश्न का उत्तर बार-बार पूछने पर नहीं मिला तब उसने एक लात मारते हुए कहा—''साला बताता नहीं।'' यह कहकर वह चला गया। ठाकुर उस समय बोलने की स्थिति में नहीं थे। उन्होंने सोचा कि अगर यह बात मथुरानाथ को मालूम हो गयी तो अनर्थ हो जायगा। कुछ दिनों बाद किसी अन्य अपराध के कारण उसे नौकरी से हटा दिया गया। एक दिन बातचीत के सिलसिले में ठाकुर ने उक्त घटना की चर्चा कर दी।

इतना सुनना था कि मथुरानाथ क्रोध से भड़क उठे—''आपने अब तक बताया क्यों नहीं। अगर मुझे पता चलता तो उसे जिन्दा गड़वा देता।''

* * *

ठाकुर के एक भक्त थे—रामचन्द्र दत्त। दत्त महाशय के एक मित्र थे—श्री सुरेशचन्द्र मित्र। सुरेश के पास किसी चीज की कमी नहीं थी। सुरा, नारी आदि सभी सुलभ थे, पर मन में शान्ति नहीं थी। कभी-कभी इतने अशान्त हो जाते थे कि आत्महत्या करने की इच्छा होती थी। उनकी इस दशा को देखकर एक दिन दत्त महाशय ने कहा—''मेरे साथ दक्षिणेश्वर चलो। सारी अशान्ति दूर हो जायेगी।''

मित्र महाशय दत्त बाबू के साथ दक्षिणेश्वर आये । बिना नमस्कार किये एक ओर बैठ गये। असल में उनके मन में साधु-संन्यासियों के प्रति आस्था नहीं थी।

एकाएक ठाकुर कहने लगे—''भक्त दो प्रकार के होते हैं। एक तो बिल्ली के बच्चों जैसे जो म्याऊँ-म्याऊँ करते रहते हैं, माँ जहाँ छोड़ जाती है, वहीं पड़े रहते हैं। प्रकार से वे माँ के सहारे जीते हैं। दूसरे वे हैं जो बन्दर के बच्चों की तरह होते हैं। माँ के पेट से निकलते ही पेड़ों पर कूदने लगते हैं। प्रारंभ से ही आत्मनिर्भर बन जाते हैं, किसी की परवाह नहीं करते। भक्तों को चाहिए कि वे बिल्ली के बच्चों की तरह हों। माँ पर निर्भर रहना उचित है। जैसे नाबालिग बच्चों की देखरेख अभिभावक

करते हैं, उसी प्रकार माँ पर निर्भर रहने पर माँ अपनी इच्छा से बच्चे का अनिष्ट नहीं होने देती।''

ठाकुर की बातों या शक्ति का ऐसा प्रभाव पड़ा कि चलते समय सुरेश बाबू ने भक्तिपूर्वक प्रणाम किया।

प्रतापचन्द्र हाजरा नामक एक शूद्र जाति का व्यक्ति ठाकुर की शरण में आया। ठाकुर ने उसे मन्दिर में ठहरा लिया। वह खाली समय में माला लेकर जप करता था, लेकिन रानी रासमणि की तरह ध्यान कहीं और रहता था। ठाकुर से यह रहस्य छिपा नहीं रहा। एक दिन बिगड़ उठे—''साला इधर माला फेर रहा है और उधर दलाली कर रहा है।''

माला फेरते समय वह इस बात का हिसाब लगाया करता था कि किसे किस दर पर कितनी रकम कर्ज दिया है। ठाकुर की बातों से नाराज होकर एक दिन उसने कहा—''आप मुझे तो डाँटते हैं, पर खुद बड़े आदमियों को प्यार करते हैं।''

ठाकुर ने कहा—''नरेन्द्र (विवेकानन्द) को भी तो प्यार करता हूँ। उसके पास नमक खरीदने के पैसे नहीं हैं।''

इस उत्तर को सुनकर वह चुप हो गया। एकाएक ठाकुर उससे माला छीनकर बोले—''माँ, हाजरा कितना बड़ा बेवकूफ है। यहाँ आकर माला जपता है। यहाँ जो आयेगा, उसका एक ही बार में सब हो जायगा।''

हाजरा को ठाकुर बहुत चाहते थे। कभी उससे पैर दबवाते और कभी-कभी कई दिनों तक पैर छूने नहीं देते थे। ठाकुर के मना करने पर वह सोचता कि शायद मुझमें कुछ पाप प्रवेश कर गया है इसलिए ठाकुर ने पैर छूने नहीं दिया। ऐसी स्थिति आने पर वह रात को घाट पर जाकर गंगा मिट्टी पानी में घोलकर पी जाता और मसहरी के भीतर बैठकर जप करने लगता। इससे ठाकुर में आकर्षण बढ़ने लगता। जब ठाकुर से नहीं रहा जाता तब उसे पुकारते।

हाजरा आकर उनका पैर दबाने लगता। थोड़ी देर बाद ठाकुर कहते—''अब बस कर।''

हाजरा कहता—''नहीं। जब तक मेरा मन नहीं भरेगा तब तक पैर दबाता रहूँगा।''

इस प्रकार की लीलाएँ ठाकुर अक्सर अपने भक्तों के साथ किया करते थे।

* * *

प्रभुदयाल मिश्र कन्नौजिया ब्राह्मण थे। उनके परिवार में एक दुर्घटना हो गयी जिसके कारण इनके मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया। कुछ दिनों तक आप एक पहाड़ की निर्जन गुफा में चिन्तन करते रहे। एक दिन ध्यान में आपने नदी किनारे स्थित एक बाग में एक ज्योतिर्मय पुरुष का दर्शन किया। आपने अनुमान लगाया कि यह महापुरुष प्रभु येशू हैं। फलतः आपने ईसाई-धर्म स्वीकार कर लिया। इसके बाद वे प्रभु येशू की खोज करने लगे।

अनेक साधु-संतों को देखने के बाद आपको पता लगा कि गंगा-किनारे स्थित एक बाग में एक परमहंसजी रहते हैं। यह सूचना मिलते ही आप यहाँ दर्शन करने आये। परमहंस रामकृष्ण ठाकुर को देखते ही इन्हें स्वप्न में दिखाई देनेवाली मूर्ति का स्मरण हो आया।

आपने ठाकुर के सामने बैठे भक्तों की ओर इशारा करते हुए कहा-''ये लोग आपको पहचान नहीं पा रहे हैं। मैंने पहचान लिया है। आप प्रभु येशू हैं।''

ठाकुर ने पूछा—''क्या आपको ज्योति-दर्शन होते हैं?''

मिश्र ने कहा—''जी हाँ। जब मैं अपने घर रहता था। तब अक्सर ऐसा होता था।''

यह बात सुनते ही ठाकुर में येशू भाव प्रकट हुआ। खाट पर वे खड़े हो गये। मिश्रजी से हाथ मिलाते हुए उन्होंने कहा—''तुम जो चाहते हो, वह हो जायगा।''

* * *

इसी प्रकार विश्वनाथ उपाध्याय नेपाल सरकार की ओर से कलकत्ते में प्रतिनिधि थे। धार्मिक प्रवृत्ति होने के कारण धर्म-ग्रंथों का अध्ययन बराबर करते थे।

एक दिन उन्होंने स्वप्न में देखा कि एक ज्योतिर्मय पुरुष उन्हें अपने निकट बुला रहा है। यह कौन हैं, कहाँ रहते हैं, समझ न पाने के कारण उपाध्याय ने विशेष दिलचस्पी नहीं ली। कुछ दिनों बाद गंगा में भीषण बाढ़ आयी। अनेक सरकारी लकड़ियाँ बह गयीं। काफी नुकसान हुआ। इस दुर्घटना के कारण वे नेपाल सरकार के पास आय-व्यय का विवरण नहीं भेज सके। कुछ दिनों प्रतीक्षा करने के बाद सरकार ने उपाध्याय से जवाब तलब किया। उपाध्याय बुरी तरह डर गये। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि इस घटना के कारण उन्हें सख्त सजा मिलेगी।

मुसीबत के वक्त लोग भगवान् को याद करते हैं और साधु-संतों के पास जाते हैं। इन्हीं दिनों उपाध्यायजी को यह सूचना मिली कि दक्षिणेश्वर में एक सिद्ध महात्मा हैं। यहाँ आते ही उनकी उद्विग्नता में कमी हो गयी। अपने संकट की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा—''महाराज, मुझ पर कृपा कीजिए वर्ना मैं बेमौत मर जाऊँगा।''

ठाकुर ने कहा—''तुम जगज्जनी को अपनी मुसीबत सुनाकर उनसे प्रार्थना करो। डरने की जरूरत नहीं। सरकार को सही घटना का विवरण दे दो। तुम्हारा कुछ नहीं होगा।''

ठाकुर की सलाह फलीभूत हुई। राजदरबार ने मान लिया कि यह एक दुर्घटना थी। अब तक विश्वनाथ उपाध्याय कप्तान पद पर कार्य कर रहे थे। सत्य बात कहने के कारण उन्हें रेसीडेण्ट पद पर बहाल किया गया। उपाध्यायजी को दृढ़ विश्वास हो गया कि यह सब ठाकुर की कृपा से हुआ है।

* * *

रामेश्वर चटर्जी ठाकुर के मँझले भाई थे। उनकी लड़की लक्ष्मीमणि थी। लक्ष्मीमणि के विवाह की बातचीत पक्की हो गयी। हृदयराम ने यह समाचार ठाकुर को सुनाया। उस समय ठाकुर भावावस्था में थे। अनायास उनके मुँह से निकल गया—''लक्ष्मी का विवाह? इस विवाह का परिणाम अच्छा नहीं होगा। लक्ष्मी विधवा हो जायगी।''

यह बात सुनते ही हृदयराम ने ठाकुर का मुँह कसकर दबाते हुए कहा–''मामा, तुमने यह कहा? आज के इस शुभ अवसर पर अपनी भतीजी के बारे में ऐसा आशीर्वाद देना चाहिए?''

तब तक ठाकुर प्रकृतिस्थ हो गये थे। उन्होंने चिन्तित भाव से पूछा—''हृदु, मैंने कुछ कहा था, क्या? मैंने कोई अपशकुनवाली बातें कहीं थीं?''

ठाकुर ने जो कुछ कहा था, उसे हृदयराम ने जब सुनाया तब ठाकुर ने कहा—''हृदु, मैंने कुछ कहा था, क्या? मैंने कोई अपशकुनवाली बातें कहीं थी?''

कहने की आवश्यकता नहीं कि विवाह के बाद लक्ष्मी देवी विधवा हो गयीं। ठाकुर उन्हें शीतला का अवतार मानते थे।

* * *

वनहुगली निवासी महेन्द्रपाल वैद्यगी का काम करते थे। ठाकुर स्वयं या अपने भाँजे की बीमारी में उनसे सहायता लेते थे। एक बार महेन्द्रपाल ने ठाकुर के दूसरे भाँजे रामलाल को ठाकुर के नाम पर पाँच रुपये दिये।

आश्चर्य की बात यह हुई कि उस दिन रात को ठाकुर काफी बेचैनी अनुकरते रहे। उन्हें ऐसा लग रहा था जैसे कोई बिल्ली पंजे से उनका हृदय नोच रही है। ठाकुर को समझते देर नहीं लगी कि इस कष्ट का कारण महेन्द्र द्वारा दिये पाँच रुपये हैं। दूसरे दिन सबेरे रामलाल जब रुपये वापस दे आया तब ठाकुर की बेचैनी दूर हुई। महेन्द्रपाल ने ये रुपये सरल भाव से नहीं, बल्कि किसी कामना के लिए दिये थे।

ठाकुर अपने भक्तों को बराबर यही कहा करते थे कि डॉक्टर, कविराज, वकील, मुख्तार, दलाल तथा भ्रष्ट तरीके से रकम वसूल करनेवालों की रकम नहीं लेनी चाहिए। इनका अहसान भी नहीं।

ठाकुर दान लेना कभी पसन्द नहीं करते थे। उनके पास नगर के अनेक मारवाड़ी फल-मीठा आदि लेकर आते थे। इन चीजों को कभी वे छूते तक नहीं थे। भक्तों में वितरण कर देने के लिए बलराम बसु या नरेन्द्र के घर भिजवा देते थे। ठाकुर का कहना था—''शुद्ध मन से कोई दान देता है तो उससे आनन्द मिलता है, पर स्वार्थी लोगों के दान मैं स्वीकार नहीं करता। नरेन्द्र तो अग्निकुण्ड है, उसके पास जाकर सब भस्म हो जाता है।''

* * *

नगर में शंभुचन्द्र प्रसिद्ध व्यवसायी थे। साधु-संतों पर उनकी आस्था नहीं थी। उनका कहना था कि एक ओर साधु-संत ईश्वराराधना करते हैं और दूसरी ओर अर्थ के पीछे परेशान रहते हैं। लेकिन रामकृष्ण ठाकुर केवल ईश्वर चिन्ता करते हैं, किसी से कुछ माँगते नहीं। विवाहित हैं, पर पत्नी के साथ दैहिक सम्बन्ध नहीं है। पत्नी जो कुछ देती है, उसीसे संतुष्ट रहते हैं । न गेरुआ कपड़ा पहनते हैं और न तिलक-त्रिपुण्ड लगाते हैं। भस्म का प्रयोग नहीं करते। चिमटा-कमण्डल भी साथ नहीं रखते।

एक बार उन्होंने ठाकुर को अपने यहाँ आमन्त्रित किया। अस्वस्थ रहने के कारण ठाकुर नहीं आये तब वे स्वयं ही दक्षिणेश्वर गये। दोनों व्यक्ति आपस में बातचीत करते हुए बाग में टहलते रहे। अपने साथ लाये अनार के दाने निकाल-निकाल ठाकुर को खिलाते रहे। जब थोड़ा-सा बच गया तब मल्लिक ने कहा—''यह सब आपके लिए ले आया था। इसे अपने साथ ले जाइये।''

ठाकुर ने कहा—''मैं बीमार हूँ, मुझे इसकी जरूरत नहीं है।''

विशेष आग्रह करने पर ठाकुर ने शेष दोनों अनार जेब में रख लिए। इसके बाद ही आश्चर्यजनक घटना हुई। बगीचे से बाहर निकलने का रास्ता उन्हें ढूँढ़े नहीं मिल रहा था। शंभु एक ओर खड़ा होकर इस दृश्य को देख रहा था। ज्योंही ठाकुर ने अपनी जेब से दोनों अनार को निकालकर एक ओर रख दिए त्योंही उन्हें सब कुछ दिखाई देने लगा।

शंभु ने जब इसका कारण पूछा तब ठाकुर ने कहा—''माँ ने संचय करने को मना किया है। आपके अनार के कारण ऐसी घटना हुई। अनार परित्याग करते ही सब कुछ दिखाई देने लगा।''

शंभु को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ। उसने सोचा कि भविष्य में इस बात की परीक्षा लूँगा।

एक बार ठाकुर पेट के दर्द से छटपटा रहे थे। दवा से कोई लाभ नहीं हुआ। यह समाचार पाते ही शंभु अपने बगीचे में ठाकुर को ले आये और थोड़ी अफीम खाने को दी। इससे लाभ हुआ। अब जब कभी ऐसी शिकायत होती तब शंभु उन्हें अफीम खिला देते थे।

एक दिन शंभु ने कहा—''आप नित्य कष्ट करके क्यों आते हैं। कुछ अफीम ले जाइये। जब कष्ट हो, खा लीजिएगा। यहाँ आने की जरूरत नहीं।''

ठाकुर का सिद्धांत था—संचय नहीं करना चाहिए। शंभु तो परीक्षा लेने के लिए तैयार था। इनके त्याग की जाँच के लिए उसने एक पुड़िया अफीम इनकी जेब में डाल दी। इसके बाद वे ठाकुर के हावभाव को गौर से देखने लगे। ठाकुर शंभु के घर से बाहर आकर चारों ओर पहले की तरह चक्कर काटने लगे। बाहर निकलने का रास्ता ढूँढ़े नहीं मिल रहा था। आखिर वे थककर बैठ गये। ठीक इसी मौके पर चुपके से शंभु ने उनकी जेब से अफीम की पुड़िया निकाल ली और ठाकुर की दृष्टि ठीक हो गयी।

शंभु मल्लिक के लिए यह अजीब नजारा था। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि ठाकुर युगावतार पुरुष हैं। उसी दिन से उन्होंने अपने को ठाकुर के चरणों में समर्पित कर दिया।

* * *

बातचीत के सिलसिले में एक बार मथुरानाथ ने कहा—''ईश्वर को भी अपने बनाये कानून के अनुसार काम करना पड़ता है। एक बार जो नियम बना देते हैं, उसे रद्द नहीं कर पाते।''

ठाकुर ने कहा—''यह क्या कह रहे हो? जिसने कानून बनाया है, वह चाहे तो उसे रद्द कर सकता है या उसकी जगह नया कानून बना सकता है?''

मथुरानाथ ने इस बात को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा—''लाल फूल के पेड़ में लाल फूल खिलते हैं। उसमें सफेद फूल नहीं पैदा होते, क्योंकि यही नियम भगवान् ने बनाया है। लाल फूल में सफेद फूल पैदा करके दिखायें तो समझूँ।''

रामकृष्ण ने कहा—''अगर उनकी इच्छा होगी तो वे ऐसा कर सकते हैं।''

मथुरानाथ को विश्वास नहीं हुआ। दूसरे दिन ठाकुर जब शौच करने गये तब लौटते समय बाग में देखा कि लाल जवाकुसुम के एक पेड़ की डाली में लाल और सफेद दोनों तरह के फूल खिले हुए हैं। उस डाली को वे ले आये और मथुरानाथ को दिखाते हुए बोले—''लो देखो।''

मथुरानाथ ने कहा—''हाँ, बाबा। हार मानता हूँ।''

मथुरानाथ रानी साहिबा के मैनेजर भी थे। जमीन-जायदाद के मामले में अक्सर झगड़ा होने पर तानाशाही रूप धारण करते थे। एक बार लाठीबाजी में किसी का खून हो गया। घबराये हुए ठाकुर के पास आकर बोले—''बाबा, मेरी रक्षा करो।''

रामकृष्णजी बिगड़कर बोले—''साले, रोज एक न एक बखेड़ा करने के बाद आकर कहेगा कि मेरी रक्षा करो। आखिर मैं क्या कर सकता हूँ? जाओ, अपना समझो। मैं क्या जानूँ।''

मथुरानाथ बाबा का पैर पकड़कर रोते रहे। थोड़ी देर बाद ठाकुर ने कहा— ''जाओ, माँ की जो इच्छा होगी, वही होगा। कहने की आवश्यकता नहीं कि रामकृष्ण ठाकुर की कृपा से वे बच गये।''

* * *

ठाकुर को योग विभूति दिखाना पसन्द नहीं था। यहाँ तक कि जो लोग साधना करते-करते उच्चस्तर तक पहुँच जाते थे और अपने द्वारा प्रकट होने वाली योग विभूति के प्रति आकृष्ट हो जाते थे, उनकी शक्ति को नष्ट कर देते थे।

एक बार शंभु मल्लिक के बाग में घूमने लगे। बातचीत में शाम हो गयी। गिरिजा

का सहारा लेकर दक्षिणेश्वर रवाना हुए। चारों ओर घना अंधकार था। सोचा कि चलते समय शंभु से लालटेन माँग लेते तो अच्छा होता। ठाकुर गिरिजा का हाथ पकड़कर चल रहे थे, पर जगह-जगह ठोकर खा रहे थे।

सहसा गिरिजा ने कहा—''ठाकुर, जरा ठहर जाइये।'' इतना कहकर वे दक्षिणेश्वर की ओर पीठ करके खड़े हो गये। उसकी पीठ से ज्योति निकलकर मंदिर तक पहुँच गयी । उसी प्रकाश के जरिये ठाकुर घर पहुँच गये।

ठाकुर ने कहा—''यह सिद्धाई अधिक दिनों तक नहीं रही। मेरे (अपने को दिखाते हुए) कारण उसकी सारी सिद्धाई समाप्त हो गयी।''

इसी प्रकार स्वामी विवेकानन्द जब ध्यान में अधिक समय देने लगे तब उनकी योग विभूति प्रकट होने लगी। उनकी जबानी यह बात सुनकर ठाकुर ने कहा—''यह अच्छी चीज नहीं है। इससे भगवान् के दर्शन नहीं होते, बल्कि यह बाधा उत्पन्न करती है। भगवान् ही सत्य है, बाकी सब व्यर्थ है। अच्छा होगा कि तू कुछ दिनों के लिए ध्यान मत कर।''

इस बारे में ठाकुर का कहना था—''यह बात अच्छी तरह मन में रख लो कि जो लोग उन्हें (भगवान् को) पकड़े रहते हैं, वे कभी विषम शोक में डूबते नहीं। जरा-सा धक्का खाकर सम्हल जाते हैं और जिनके आधार छोटी मछलियाँ हैं, वे अस्थिर हो जाते हैं। गंगा में जब बड़े स्टीमर चलते हैं तब सभी नौकाएँ हिलने लगती हैं। लगता है, अब डूब जायेंगी। लेकिन बड़ी नौकाएँ थोड़ी देर तक हिलने के बाद सम्हल जाती हैं। बाद में स्थिर हो जाती हैं। संसार में कुछ धक्के भी खाने पड़ते हैं। अब सोचो कि इस संसार में लोगों (परिवार) से कितना सम्बन्ध है। सुख के लिए लोग गृहस्थी बसाते हैं। विवाह किया, बच्चे हुए, वे बड़े हुए, उनके विवाह हुए। इसके बाद आज यह बीमार, कल उसकी मौत। इन्हीं बातों की चिन्ता में परेशान। रस जितना सूखता है, उतनी आवाजें होती हैं। भट्ठी में लकड़ियाँ पहले तेजी से जलती हैं, बाद में जड़ के पास सारी नमी चूँ-चाँ आवाजें करती हैं। इसी प्रकार मानव-जीवन है, अतएव भगवान् का शरणापन्न होना ही एकमात्र उपाय है। वही सबसे बड़ा सुख है।''

* * *

एक बार हृदयराम ने ठाकुर से कहा—''मामा, यहाँ न जाने कितने साधु-संत आते हैं। उनमें कितनी शक्ति है और एक तुम हो कि कुछ कर नहीं पाते। माँ (काली) से कहकर कुछ योग-शक्ति क्यों नहीं माँग लेते।''

ठाकुर ने कहा—''मेरी माँ यह नहीं चाहती कि मेरा ध्यान उधर जाय। लेकिन जब तू कह रहा है तब एक बार उनसे कहूँगा ।''

इतना कहकर वे मंदिर के भीतर चले गये और हाथ जोड़ते हुए देवी से कहने

लगे—''माँ, हृदु चाहता है कि मुझे कुछ शक्ति दो। तुम्हारी जो इच्छा है, करो। इस बारे में मैं कुछ नहीं जानता।''

बाद में उन्होंने हृदयराम से कहा—''धत्त साला; माँ ने मुझे बताया कि सिद्धाई-फिद्धाई सब विष्ठा है।''

हृदय को उदास देखकर उन्होंने कहा—''सिद्धाई से सच्चिदानन्द से दूर हो जाने में आता है। उससे कोई लाभ नहीं? सुन, एक कहानी सुनाता हूँ। एक व्यक्ति के दो लड़के थे। बड़ा लड़का जब जवान हुआ तब घर से चला गया और साधु बन गया। छोटा लड़का पढ़-लिखकर धार्मिक विद्वान् बन गया। साधुओं में नियम है कि इच्छा होने पर वे बारह वर्ष के भीतर एक बार अपनी जन्मभूमि आ सकते हैं। बड़ा लड़का गाँव आया तो देखा—छोटा भाई गृहस्थ बन गया है। घर के दरवाजे के पास आकर उसने अपने भाई को पुकारा। काफी दिनों बाद मुलाकात होने पर दोनों आपस में दुःख-सुख कहने लगे।''

छोटे भाई ने पूछा—''घर-द्वार छोड़कर संन्यासी बनने से क्या लाभ हुआ?''

बड़े भाई ने कहा—''देखना चाहता है तो मेरे साथ चल।'' इतना कहने के बाद दोनों भाई गाँव में स्थित नदी किनारे आये। बड़ा भाई पानी पर पैदल उस पार चला गया।

इसके बाद छोटा भाई नाव से उस पार गया तो बड़े भाई ने कहा—''देखा?''

छोटे भाई ने कहा—''क्या, यही न आप नदी पर से पैदल इस पार चले आये। आपने भी तो देखा कि मैं अधेला (प्राचीन काल का सबसे छोटा सिक्का) देकर इस पार आ गया। आपके बारह वर्ष तपस्या की कीमत महज एक अधेला है।''

छोटे भाई की बातें सुनकर बड़े की आँखें खुल गयीं। धर्म-जगत् में यह सब तुच्छ है। इसके बाद बड़ा भाई ईश्वर की ओर ध्यान लगाने लगा।

अब तक हृदय ठाकुर की सेवा निस्वार्थ रूप से करता रहा। एक प्रकार से वह दक्षिणेश्वर मंदिर का महन्त बन गया था। रानी और मथुरानाथ का निधन हो जाने के कारण कोई अंकुश लगाने वाला नहीं था। ठाकुर जब समाधिस्थ हो जाते तब वही उन्हें स्पर्श करता और नाम गाकर प्रकृतिस्थ बनाता था।

इधर जब से ठाकुर की महिमा का प्रचार बढ़ गया तब से दर्शनार्थियों की भीड़ बढ़ने लगी। ठाकुर का दर्शन करने तथा उनसे आशीर्वाद प्राप्त करने वालों की भीड़ बढ़ने लगी। दर्शनार्थी भेंट में ठाकुर को मूल्यवान वस्त्रादि देते तो उसका उपयोग हृदय करता था। बढ़ती भीड़ को देखकर उसने एक तिकड़म किया। जो लोग मुफ्त में दर्शन करने आते, उनसे कहता—''ठाकुर यहाँ नहीं हैं, वे बीमार हैं, दर्शन नहीं होगा।'' जो लोग दर्शन के लिए रकम देते थे, उनके दरवाजा खोल देता था।

लक्ष्मीनारायण नामक एक मारवाड़ी ने एक बार हृदय के माध्यम से ठाकुर को दस हजार रुपये देना चाहा, पर ठाकुर ने लेना अस्वीकार कर दिया। मामा के इन्कार करने पर हृदय बुरी तरह बौखला गया। मामा ने न तो काली माता से शक्ति माँगी और

न योग विभूति दिखाना चाहते हैं? पास आने वाली लक्ष्मी को ठुकरा देते हैं। इन सभी बातों से चिढ़कर उसने ठाकुर की उपेक्षा करना प्रारंभ किया और स्वयं महन्त बनकर कीर्त्तनादि का नाटक करने लगा।

हृदय के इस व्यवहार से ठाकुर को बड़ा धक्का लगा । वे मंदिर में जाकर जगन्माता के सामने कहने लगे--''माँ, मेरे सभी बन्धन समाप्त हो गये हैं। क्या हृदय के अपमान से मुक्ति नहीं दिलाओगी?''

एक बार बातचीत के सिलसिले में ठाकुर ने कहा था—''हृदय की बातों से तंग आकर मैं गंगा में कूदने गया था। अचानक याद आया कि मेरी आत्महत्या से शिष्यों को कष्ट होगा। यही वजह है कि एक दिन पुनः माँ के पास जाकर कहना पड़ा कि माँ, कुछ ख्याल मत कर। शायद हृदय मुझे बहुत चाहता है, इसलिए ऐसा कहता है। उसे माफ कर दे।''

इसमें कोई संदेह नहीं कि हृदय उनकी काफी सेवा करता था। जब ठाकुर कैंसर से पीड़ित होकर कष्ट भोगने लगे तब उन्होंने कहा था—''अगर हृदय पास रहता तो यह शरीर कुछ दिन और रहता । वही इस शरीर की ठीक से सेवा करना जानता था। उसके रहते कोई पैर छू नहीं सकता था। आजकल जिसके मन में आता है, वही हाथ लगाता है, इसीलिए मेरे शरीर में नाना लोगों की अपवित्रता प्रवेश करती जा रही है।''

उच्चकोटि के साधक भक्तों से चरण-स्पर्श नहीं कराते। मान्यता है कि इससे पापिष्ठ लोगों के पापों को ग्रहण करना पड़ता है। भावावेश में रहने के कारण ठाकुर को इसका ज्ञान नहीं रहता था ।

एक बार इसी दोष के कारण ठाकुर को काफी कष्ट हुआ था। कहा जाता है कि एक बार एक कुष्ठ-रोगी ने आकर प्रार्थना की कि ठाकुर उसके शरीर पर हाथ फेर दें तो उसका रोग दूर हो जाय। प्रत्युत्तर में ठाकुर ने कहा—''बाबू, मैं तो कुछ नहीं जानता, पर जब तुम कह रहे हो तब हाथ फेर देता हूँ। अगर माँ की इच्छा हुई तो ठीक हो जाओगे।''

इतना कहकर ठाकुर ने कुष्ठरोगी के शरीर पर हाथ फेर दिया। उस दिन वे दिन भर अपने हाथ के दर्द से परेशान रहे। पीड़ा जब असह्य हो गयी तब वे बोल उठे—''माँ, अब ऐसी गलती नहीं करूँगा।''

बाद में ठाकुर को कहना पड़ा—''उसका रोग तो दूर हो गया, पर भोग मुझ पर से गुजरा।''

* * *

दक्षिणेश्वर में एक भक्त महिला थी जिसे लोग 'गोपाल की माँ' कहते थे। उनकी इच्छा हुई कि वे ठाकुर को स्वयं अपने हाथ से भोजन बनाकर खिलायेंगी। ठाकुर खाने बैठे तो देखा—चावल कच्चे हैं। नाराज होकर बोले--''यह भात मैं कैसे खा सकता हूँ? इसके हाथ का भोजन नहीं करूँगा।''

रामकृष्णजी की बातें सुनकर लोगों ने सोचा कि गोपाल की माँ को डराने के लिए ठाकुर ने यह बात कही। ठाकुर तो गोपाल की माँ से काफी स्नेह करते हैं, ऐसा कैसे हो सकता है। लेकिन उस महापुरुष का कथन सत्य हुआ। ठाकुर गले के कैंसर से पीड़ित हुए।

इस घटना के कुछ दिनों बाद जब रामकृष्णजी अपनी भावावस्था में थे तब अचानक उनके मुँह से निकला—''अब इसके बाद कुछ नहीं खाऊँगा। केवल खीर खाऊँगा।''

ठीक इसी समय शारदा माता आ रही थीं, ठाकुर की बातें सुनकर वे चौंक उठीं। ठाकुर जो कुछ कहते हैं, निरर्थक नहीं होता। धीरे से बोलीं—''मैं मछली का रसा और चावल पका दूँगी। क्यों खाओगे?''

ठाकुर उसी भावावस्था में बोले—''नहीं, खीर।''

इस घटना के बाद उनके गले का कष्ट बढ़ता गया। बार्ली, दूध, खीर के अलावा के अन्य चीज नहीं खा पाते थे। ठाकुर के इस कष्ट को दूर करने के लिए सभी भक्त जुट गये, पर रोग दूर नहीं कर सके। लोग निराश हो गये।

एक बार शशधर तर्कचूड़ामणि ने ठाकुर से निवेदन किया—''आप जैसे अवतारी पुरुष अगर मन में धारणा बना लें कि रोग अच्छा हो जाय तो यह अच्छा हो सकता है।''

ठाकुर ने कहा—''पंडित होकर तुमने यह कैसे कहा? जिस मन को मैंने सच्चिदानन्द को सौंप दिया है, पुनः वहाँ से वापस लाकर इस हाड़-मांस वाले शरीर को बचाने की इच्छा कैसे होगी?''

इस उत्तर को सुनकर पंडितजी निरुत्तर हो गये, पर स्वामी विवेकानन्द निश्चेष्ट नहीं रहे। एक दिन वे ठाकुर के सामने जिद्द कर बैठे—''आप अपने लिए न सही, पर हम सबके लिए अपने को स्वस्थ बनायें।''

ठाकुर ने कहा—''क्या मेरी इच्छा नहीं होती? क्या मैं रोग-यंत्रणा भोगना चाहता हूँ? मैं तो सोचा करता हूँ कि रोग ठीक हो जाय, पर ठीक नहीं हो रहा है। इसमें माँ का हाथ है।''

विवेकानन्द ने कहा—''तब माँ से कहिये कि वे आपको ठीक कर दें। वे तो आपकी बात मानती हैं।''

ठाकुर ने कहा—''ठीक कह रहा है, पर यह बात मेरे मुँह से निकल जो नहीं रही है।''

विवेकानन्द ने कहा—''ऐसा नहीं हो सकता। हम लोगों के लिए आपको कहना ही पड़ेगा।''

ठाकुर—''ठीक है, कहूँगा।''

कई घंटे बाद विवेकानन्द ने आकर पूछा—''कहिये, माँ ने क्या कहा?''

ठाकुर ने कहा—''माँ से मैंने इसे (गले का घाव) दिखाते हुए कहा कि इसके कारण खा नहीं पाता। कम-से-कम कुछ खा सकूँ, ऐसा कर दो। माँ ने तुम लोगों

की ओर इशारा करते हुए कहा-'क्यों, इतने मुँहों से खा रहा है, वह क्या है?' फिर आगे कुछ कह नहीं सका।''

ठाकुर की बीमारी में एक दिन विषय कृष्ण गोस्वामी[1] कुछ ब्रह्म समाजियों को लेकर ठाकुर को देखने आये। अधिकांश लोगों को यह मालूम था कि गोस्वामीजी अनेक साधु-संतों से मिले हैं। इसके लिए भारत भ्रमण कर चुके हैं। बातचीत के सिलसिले में उनसे महिम चक्रवर्ती ने पूछा—''कहिये गोस्वामीजी, क्या-क्या देखा आपने?''

गोस्वामीजी ने कहा—''क्या-क्या बताऊँ? इस वक्त जहाँ बैठा हूँ, यहीं सब कुछ है। कहीं एक आना तो कहीं दो या चार आने हैं। यहाँ तो सोलह आने हैं।''

* * *

जिन दिनों ठाकुर अस्वस्थ थे और भक्तों का दल दक्षिणेश्वर से उन्हें श्यामपुकुर स्थित एक भवन में ले आकर इलाज करा रहे थे, उन्हीं दिनों एक बार ठाकुर ने देखा कि उनका सूक्ष्म शरीर कलेवर छोड़कर बाहर विचरण कर रहा है। उनके बदन, पीठ और गले में अनेक घाव हैं। जमाने भर के पापियों के पाप लेने के कारण ये घाव हुए हैं। जीवन में हर प्रकार के लोग उन्हें स्पर्श करते रहे और आज भी कर रहे हैं, उन सभी के पाप उनमें संक्रमित हुए हैं। ठाकुर ने इसे देखा और सारा रहस्य समझ गये।

७ या ८ अगस्त, सन् १८८६ के दिन ठाकुर ने अपने एक शिष्य योगीन को बुलाकर कहा—''जरा पंचांग लाकर श्रावण मास की तिथियाँ पढ़कर सुना तो।''

योगीन श्रावण मास की तिथियाँ पढ़कर सुनाने लगे। एक के बाद एक तिथि, दिन पढ़ते गये। ३१ श्रावण, सन् १८८६ पढ़ने के बाद ज्योंही १ भाद्रपद का नाम योगीन ने लिया त्योंही ठाकुर ने कहा—''बस, रहने दे।''

योगीन महाराज चुप रह गये। १५ अगस्त, सन् १८८६ ई० (१भाद्रपद, फसली संवत् १२९३ ई०) रविवार, पूर्णिमा के दिन सबेरे से ठाकुर की नाड़ी गड़बड़ चल रही थी।

थोड़ी देर बाद ठाकुर के कमरे से बाहर निकल कर अतुल ने सभी भक्तों को अशुभ समाचार सुनाया।

■

---

१. देखिये प्रथम भाग।

जगद्गुरु शंकराचार्य

प्राचीन मलावार जिले की पेरियार नदी[1] के किनारे कालडि नामक एक छोटा-सा गाँव। पंडित विद्याधर सपरिवार इस गाँव में रहते थे। पति-पत्नी और एकमात्र पुत्र शिवगुरु। कुल तीन प्राणियों की गृहस्थी थी। जिन दिनों शिवगुरु पाठशाला में पढ़ते थे, उन्हीं दिनों उनके मन में वैराग्य की भावना उत्पन्न हुई। लड़के की यह प्रवृत्ति देखकर विद्याधर चिन्तित हो उठे। पत्नी से सलाहकर उन्होंने उसका विवाह मघ पंडित की कन्या विशिष्टा से कर दिया।

समय गुजरता गया। इस बीच विद्याधरजी का निधन हो गया। लम्बे अर्से तक शिवगुरु पिता बनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं कर सके। गाँव के समीप ही नदी थी। नदी के किनारे चन्द्र मौलीश्वर का मंदिर था। नित्य दोनों पति-पत्नी एक साथ नदी में स्नान करने जाते और भगवान् से पुत्र प्राप्ति के लिए कामना करते। कहा जाता है कि एक दिन मंदिर में स्वयं शंकर भगवान् की वाणी गूँज उठी—

''वत्स शिवगुरु, मैं तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न हूँ। तुम्हारी कामना पूर्ण होगी। तुम कैसा पुत्र चाहते हो? दीर्घायु पुत्र मूर्ख होगा और अल्पजीवी सर्वज्ञ तथा सर्वमान्य। अब बताओ कि कैसा पुत्र चाहते हो?''

कुछ देर ऊहापोह करने के बाद शिवगुरु ने कहा—''भगवन्, मुझे सर्वज्ञ पुत्र चाहिए जो मेरे वंश का मुख उज्ज्वल करे।''

---

[1] कुछ विद्वान् आलवाई नदी कहते हैं। आलवाई कस्बे का नाम है। कालडि गाँव के स्टेशन का नाम अंगमालि है।

पुनः आवाज आयी–''तुम्हारी कामना पूर्ण होगी। मुझे तुम्हारे पुत्र के रूप में जन्म लेना पड़ेगा।''

शिवगुरु प्रसन्नता से उछल पड़े कि भगवान् शंकर उनके यहाँ अवतरित होंगे। भगवान् को प्रणाम करते ही उनकी नींद खुल गयी । न कहीं मंदिर था और न भगवान् शंकर।

इस घटना से पति-पत्नी दोनों बड़ी लगन के साथ शंकर भगवान् की आराधना करने लगे। उन्हें यह विश्वास हो गया कि उनकी कामना अवश्य पूरी होगी। उनका यह विश्वास फलीभूत हुआ। वैशाख शुक्ल तृतीया, सन् ६८६ ई० के दिन एक बालक ने जन्म लिया।[1] उसके हाव-भाव, रंग-रूप देखकर शिवगुरु को विश्वास हो गया कि भगवान् शंकर उनके घर आ गये हैं। शिव का प्रसाद समझकर बालक का नाम रखा गया– शंकर।

शुक्ल पक्ष के चाँद की तरह बच्चे का विकास होता गया। तीन साल की उम्र से बालक अध्ययन में रुचि लेने लगा। ब्राह्मणों के यहाँ आठ वर्ष के बालक का यज्ञोपवीत होता है। शिवगुरु ने सोचा कि पंचम वर्ष में ही इसका उपनयन कर पाठशाला भेज दूँगा। मानव सोचता कुछ है और ईश्वर करता कुछ और है। शिवगुरु अपनी कल्पना को साकार रूप देने के पहले ही धराधाम से चले गये।

शंकर की माँ विशिष्टा देवी को अपने पति की इच्छा की जानकारी थी। उन्होंने पंचम वर्ष में बालक का उपनयन कराया और पाठशाला में अध्ययन के लिए भेज दिया। शंकर की मेधा-शक्ति देखकर पाठशाला के गुरु चकित रह गये। पाँच वर्ष के बालक की प्रतिभा तथा ज्ञान चौंका देने वाला था। शंकर अपने पाठ के अलावा अन्य छात्रों को दिये जानेवाले ज्ञान को कंठस्थ कर लेता था। गुरुजी को जब यह बात मालूम हुई तब उन्होंने इस बात की परीक्षा ली। उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि ऊँचे दर्जे के छात्रों को दिये जाने वाले ज्ञान को शंकर ने आत्मसात कर लिया है।

इसी बीच एक घटना और हो गयी। गुरु-गृह में अध्ययन करते समय बटुकों को भिक्षा के लिए जाना पड़ता था। एक दिन शंकर एक ऐसे घर भिक्षा माँगने गया जहाँ केवल एक बुढ़िया रहती थी। भिक्षा के नाम पर एक आँवला देती हुई बुढ़िया बोली–''बेटा, तुम्हें इस आँवले के सिवा कुछ नहीं दे सकती। आज मेरे घर अन्न का एक दाना नहीं है। भगवान् जाने आज मेरा पेट कैसे भरेगा?''

बुढ़िया की परिस्थिति सुनकर शंकर को क्लेश हुआ। वह सोचने लगा कि इस असहाय वृद्धा का क्लेश कैसे दूर करूँ? अन्त में वहीं बैठकर उन्होंने लक्ष्मी स्तोत्र पाठ करते हुए देवी का आवाहन किया। थोड़ी देर बाद वहाँ से रवाना होते समय शंकर ने कहा–''आपको शीघ्र धन की प्राप्ति होगी।''

---

१. शंकराचार्यजी के जन्म-समय के बारे में कई मत हैं।

दूसरे दिन सुबह उठकर वृद्धा ने देखा कि उसके कमरे के चारों ओर सुवर्ण आँवले बिखरे हुए हैं। उसे यह समझते देर नहीं लगी कि यह चमत्कार कल जो ब्रह्मचारी आया था, उसके कारण हुआ है।

अपने विद्यार्थी-जीवन में शंकर ने एक और चमत्कार करके अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। षोड़श वर्ष की आयु तक जितनी शिक्षा छात्र प्राप्त कर पाते हैं, वह सारी शिक्षा समाप्त करके वह गुरु-गृह से अपने घर आ गये।

विशिष्टा देवी नित्य नदी में स्नान करने के पश्चात् कुल देवता केशव भगवान् का दर्शन करती थीं। एक दिन उनके लौटने में देर होते देख शंकर अपनी माँ की खोज में घर से निकला। कुछ दूर आने पर उसने देखा—माँ मार्ग में बेहोश पड़ी हुई हैं। तुरन्त उन्हें उठाकर घर ले आया और सेवा करने लगा। काफी देर बाद माँ स्वस्थ हो गयीं। माँ की आदत और परेशानी पर गौर करते हुए शंकर ने सोचा कि अगर नदी पास होती तो माँ को इतना कष्ट सहना नहीं पड़ता।

निस्सन्देह यह एक ऐसी कल्पना थी जिसे असंभव कहा जा सकता है। लेकिन शंकर का बाल-मन भगवान् से प्रार्थना करने लगा। कुछ दिनों बाद विशिष्टा देवी ही नहीं, गाँव के सभी लोगों ने देखा कि नदी की धारा उनके घर के समीप से बहने लगी है। यह चमत्कार कैसे हो गया, इसे शंकर के अलावा अन्य कोई नहीं जान सका।

पड़ोस में रहनेवाली एक लड़की विशिष्टा देवी को पसन्द आ गयी। उन्होंने सोचा कि इसे अपनी पुत्रवधू बनाऊँगी। शंकर के आगे प्रस्ताव रखने पर उसने कहा कि मैं विवाह नहीं करूँगा। आजन्म ब्रह्मचारी रहूँगा। माँ ने फिर जिद्द नहीं की, पर लड़के के हठ के आगे चुप रह गयी।

ठीक इन्हीं दिनों शंकर के घर चार ब्राह्मण न जाने कहाँ से आ गये। बातचीत के सिलसिले में उन्होंने विशिष्टा देवी से कहा—''आप अपने पुत्र की जन्मकुंडली दिखाने की कृपा करें।''

विशिष्टा देवी अपने पुत्र की मति से किंचित् शंकित रहती थीं। कुंडली देखते ही सभी पंडित चौंक उठे। यह देखकर विशिष्टा देवी को शंका हुई। उन्होंने पूछा—''मेरे शंकर की आयु कितनी है?''

पंडितों ने इस प्रश्न का जवाब नहीं दिया तो विशिष्टा देवी की धारणा दृढ़ हो गयी। उन्हें अपने पति के स्वप्न की घटना याद आ गयी। उन्होंने पूछा—''मेरे प्रश्न का जवाब आप लोग क्यों नहीं देते? अब यह बताइये कि शंकर के पूर्व मेरी मृत्यु हो जायगी न ?''

पंडितों ने कहा—''हाँ। शंकर के निधन के पूर्व ही आपका निधन हो जायगा। इस दिशा में आप निश्चिन्त रहें।''

बार-बार जोर देने पर पंडितों ने कहा—''शंकर की २८ तथा ३२ वर्ष की उम्र में मारकेश योग है।''

यह सुनकर विशिष्टा देवी चुप हो गयीं। सारी बातें शंकर के सामने हो रही थीं। अपनी आयु के बारे में जानकारी प्राप्त करने के बाद उसने सोचा—क्या इस बीच मुझे सिद्धि प्राप्त हो जायगी। अब माँ विवाह के बारे में कुछ नहीं कहती। ऐसी स्थिति में अगर मैं संन्यास ले लूँ तो क्या माँ अपनी स्वीकृति देगी?

उधर माँ सोचने लगी—जब बच्चे की उम्र इतनी कम है, दो-दो मारकेश हैं तब इसे अधिक तंग करने की जरूरत नहीं।

इस घटना के कुछ दिनों बाद शंकर ने अनुभव किया कि आज माँ काफी प्रसन्न हैं। उसने धीरे से कहा—''माँ, मेरी इच्छा संन्यास लेने की हो रही है। इसके लिए मुझे अनुमति दो।''

देखते ही देखते माँ का आनन सख्त हो गया। उन्होंने कहा—''कान खोलकर सुन लें। अपने जीवनकाल में तुझे मैं संन्यासी बनने की आज्ञा नहीं दे सकती। भविष्य में ऐसी बात जबान पर मत लाना।''

माँ की दृढ़ता देखकर शंकर शान्त हो गये। उन्होंने यह समझ लिया कि साधारण रूप से अनुमति मिलना कठिन है। एक दिन माँ नदी में स्नान करने के बाद किनारे आकर कपड़े बदल रही थी। ठीक उसी समय बीच नदी की ओर जाते हुए शंकर चिल्लाया। उसने कहा—''मुझे मगर ने पकड़ रखा है। मुझे खींच रहा है।''

यह बात सुनते ही किनारे के लोग पानी में कूद पड़े और उसे किनारे की ओर खींचने लगे। उधर मगर भी जोर आजमाने लगा। शंकर ने तेज स्वर में कहा—''माँ, तुम मुझे संन्यासी बनने का आशीर्वाद दो तभी प्राण बचेंगे।''

माँ इस आकस्मिक घटना से व्याकुल होकर रो रही थी। वह घबराकर बोल उठी—''अच्छा बाबा, मैं आशीर्वाद देती हूँ, पर मगर से तो जान बचा।''

नदी किनारे कुछ मल्लाह मछली पकड़ रहे थे। तुरत जाल फेंका गया। जाल में फँस जाने के कारण मगर ने शंकर को छोड़ दिया, पर वह स्वयं भाग नहीं सका। पुत्र को सही सलामत देखकर माँ के प्राण लौट आये।

कुछ दिनों बाद शंकर को संन्यासी बनने की तैयारी करते देख माँ को अपार कष्ट होने लगा। जब नहीं रहा गया तब उन्होंने कहा—''कच्ची उम्र में संन्यासी नहीं बनते बेटा। फिर मेरी कैसे गति होगी?''

शंकर ने कहा—''माँ, आप अपने लिए तनिक भी चिन्ता न करें। मैं सारी व्यवस्था करके ही जाऊँगा। रहा आपके सत्कार का प्रश्न। मैं कहीं भी रहूँगा, वहाँ से तत्काल आ जाऊँगा। शास्त्रों में लिखा है कि जब विदेश स्थित बेटे को माँ स्मरण करती हैं तब उसकी जीभ पर माँ के दूध का स्वाद आने लगता है। मैं आपको वचन देता हूँ कि सिद्धि प्राप्त हो जाने के बाद आपको आपके इष्ट का दर्शन करा दूँगा। आप तो जानती हैं कि योगी गण आकाश में विचरण करते हैं। जब कभी आप मुझे स्मरण करेंगी तब मैं आकाश-मार्ग से आपके निकट आ जाऊँगा।''

अब बेचारी माँ क्या कहती । एक लम्बी साँस लेती हुई बोली—''मेरी शुभकामनाएँ हमेशा तुम्हारे साथ रहेंगी।''

दूसरे दिन विरजा होम आदि कार्य हुए। संन्यास लेने का अर्थ है—पहले किसी संन्यासी से संन्यास लेकर घर छोड़ा जाता है। यहाँ इसकी व्यवस्था नहीं थी। गाँव के लोग चकित दृष्टि से शंकर के गृहत्याग करने का दृश्य देखते रहे।

शंकर को केवल इतना याद था कि नर्मदा नदी के किनारे कहीं महायोगी गोविन्द पाद रहते हैं। मुझे उनसे ही संन्यास लेना है। गुरु-गृह में अध्ययन करते समय गुरुजी ने कहा था कि गोविन्द योगी वास्तव में पतंजलि के अवतार हैं। अपने योग-बल से वे नर्मदा नदी के किनारे कहीं समाधिस्थ हैं। शंकर उन्हीं योगी महाराज की खोज में निकल पड़ा।

महीनों पैदल चलने के बाद एक दिन वह तुंगा नदी के किनारे स्थित जंगल के समीप आया। संध्या, पूजा से निवृत्त होकर एक पेड़ के नीचे विश्राम करने लगा। ठीक इसी समय एक अद्भुत दृश्य देखकर वह चकित रह गया। नदी से काफी तादाद में मेढक निकलकर किनारे स्थित चट्टानों पर आ बैठते, पर पत्थरों की गर्मी बर्दाश्त न होने के कारण तुरन्त पानी में चले जाते। यह क्रम देर तक जारी रहा। इसी बीच न जाने कहाँ से एक साँप आया और वह फन फैलाकर खड़ा हो गया। इस बार जितने मेढक नदी से बाहर निकले, वे सब उस साँप की छाया में विश्राम करने लगे। साँप के भय से मेढकों का दल न भागा और न साँप ने उनमें से किसी को अपना आहार बनाया।

यह एक आश्चर्यजनक दृश्य था। शंकर ने अनुभव किया कि निस्सन्देह इस स्थान पर विशेष महत्त्व है। इस स्थान की क्या विशेषता है, इसे जानने के लिए शंकर उतावला हो उठा। कुछ दूर आगे बढ़ने पर उसे पहाड़ की एक चोटी पर चढ़ने के लिए सीढ़ियाँ दिखाई दीं। वह चोटी पर चढ़ गया। वहाँ पर एक तपस्वी दिखाई पड़े। उनसे इस स्थान के महत्व के सम्बन्ध में पूछने पर पता चला कि पहले यहाँ ऋष्य शृंग मुनि का आश्रम था। इस स्थान को प्रणाम करने के पश्चात् शंकर अपनी मंजिल की ओर बढ़ गया।

चलते-चलते ढाई महीने गुजर गये तब वह ओंकारनाथ आया। नर्मदा और उसकी सहायक नदी ने मिलकर एक शैल शिखर को घेर रखा है, बिलकुल 'ॐ' की तरह। यहाँ आकर लोगों से योगिराज गोविन्दपाद के बारे में पूछने लगा। लेकिन किसी से कुछ पता नहीं चला। सौभाग्य से एक सज्जन ने सुझाव दिया कि इस पहाड़ की तलहटी में कुछ संन्यासी रहते हैं। उनसे पूछिये तो शायद आपको कोई जानकारी मिल जाए।

उक्त सज्जन के सुझाव के अनुसार शंकर पहाड़ की तलहटी में स्थित संन्यासियों के पास जा पहुँचा। उसके प्रश्न पर एक वृद्ध संन्यासी ने प्रश्न किया—''तुम कहाँ से आ रहे हो? गोविन्दपाद योगी का नाम तुमने कहाँ सुना है?''

शंकर ने कहा—''मैं केरल देश से आ रहा हूँ। अपने शिक्षा गुरु के श्रीमुख से मैंने योगिराज गोविन्दपाद का नाम सुना और उन्हीं के आदेश से यहाँ आया हूँ।''

वृद्ध ने कहा—"आप यहाँ विश्राम कीजिए। गोविन्द योगी यहीं हैं। सामने जो शिला-खंड है, उसे हटाने पर एक गुफा दिखाई देगी। उसी गुफा के भीतर योगिराज समाधिस्थ हैं। जब उनकी समाधि भंग होगी तब हम सब उनसे उपदेश ग्रहण करेंगे। यहाँ हम काफी दिनों से समाधि भंग होने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। अभी तक उनकी समाधि भंग नहीं हुई है।"

शंकर ने प्रश्न किया—"क्या मैं उनका दर्शन कर सकता हूँ?"

वृद्ध ने कहा—"अवश्य कर सकते हो, पर गुफा के भीतर घोर अंधकार है। बाहर रखे दीपक को लेकर भीतर जा सकते हो।"

शिलाखंड को हटाकर शंकर भीतर गया। उसने भीतर जाकर देखा—एक दीर्घ जटाधारी संन्यासी समाधिस्थपर हैं—जैसे प्रस्तर की प्रतिमा। कुछ देर तक उन्हें एकटक देखने के बाद शंकर वहीं बैठ गया और स्तव-पाठ करने लगा। बाहर जितने संन्यासी बैठे थे, वे लोग शंकर के पीछे आकर खड़े हो गये। स्तव-पाठ के कारण प्रस्तर-प्रतिमा में स्पन्दन हुआ और उनकी आँखें खुलीं। शंकर का आगमन प्रतीक्षारत संन्यासियों के लिए वरदान ले आया।

शंकर ने योगिराज को साष्टांग प्रणाम किया। इसके बाद एक-एक कर संन्यासियों ने प्रणाम किया। यथाविधि सभी आगत संन्यासियों को गोविन्दपादजी उपदेश देने लगे। सबसे कनिष्ठ होने के कारण शंकर पर उनकी विशेष कृपा हुई। उन्होंने सभी संन्यासियों को शिष्य के रूप में ग्रहण कर लिया।

इसके बाद वे प्रथम वर्ष में हठयोग, द्वितीय वर्ष में राजयोग और तृतीय वर्ष में ज्ञानयोग की शिक्षा देते रहे। गुरु की कृपा से शंकर ने अल्प समय में ब्रह्मसूत्र आदि का ज्ञान प्राप्त कर लिया। शंकर की प्रतिभा से गुरुदेव प्रसन्न हो उठे।

फिर वर्षाकाल आ गया। नदियाँ उफनने लगीं। चारों ओर बाढ़ का पानी फैल गया। धीरे-धीरे नदी का पानी गुफा के पास आ गया। यह देखकर संन्यासियों का दल चिन्तित हो उठा। तभी शंकर न जाने कहाँ से खोजकर एक कलश ले आया और उसे गुफा के मुहाने पर रखने के बाद उसने कहा—"अब आप लोग निश्चिन्त होकर साधना करते रहिये। बाढ़ का पानी भीतर नहीं आयेगा।"

शंकर का कथन सत्य हुआ। बाढ़ का जो जल गुफा के भीतर आ सकता था, वह उसी कलश में समाहित हो गया। शंकर की इस योग-शक्ति से संन्यासी गण चकित रह गये और जब योगिराज को इसकी जानकारी हुई तब उन्होंने कहा—"शंकर पूर्ण योगी बन गया है। अब इसे कुछ सिखाना नहीं है। भगवान् शंकर का अवतार है। उन्हीं का एक अंश है। अब मेरा कार्य समाप्त हो गया। मैं इस शरीर को त्यागकर परमधाम चला जाऊँगा।"

योगिराज के कथन को सुनकर सभी संन्यासी अश्रुपात करने लगे। यह देखकर गोविन्दपाद ने कहा—"तुम लोगों को चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। अपनी जगह मैं

शंकर को छोड़े जा रहा हूँ। उसमें सारी शक्तियाँ निहित हैं। शंकर का अनुसरण करने पर तुम सभी को वास्तविक मार्ग सुलभ हो जायगा। वह साक्षात् शंकर का अवतार है।''

अपने बारे में गुरुदेव के वचनों को सुनकर शंकर ने उन्हें गद्‌गद भाव से साष्टांग प्रणाम किया। गुरुदेव ने उससे कहा—''शंकर, अब तुम यहाँ से काशी चले जाओ। तुम्हारे आगमन की मैं प्रतीक्षा कर रहा था। तुम्हारे माध्यम से अद्वैत ब्रह्म विज्ञान का प्रचार होगा।''

* * *

गुरुदेव की आज्ञानुसार शंकर काशी आये और अद्वैत मत का प्रचार करने लगे। इनकी वाणी और ज्ञान से प्रभावित होकर काफी लोग इनके अनुयायी बन गये। तत्कालीन पंडित शास्त्रार्थ में पराजित होने लगे। काशी नगरी में शंकर का आगमन विस्मयजनक प्रमाणित हुआ।

एक दिन अपनी शिष्य-मंडली के साथ शंकर मणिकर्णिका घाट पर स्नान के लिए आ रहे थे। सहसा उनके सामने से चार भैसों को लेकर एक चांडाल आ गया। शंकर विद्वत्ता में आचार्य हो गये थे, पर अभी तक सर्वभूतों के प्रति समदर्शी नहीं हुए थे। जन्मजात संस्कार शेष था। नीच जाति को स्पर्श नहीं करते थे।

शंकर ने चांडाल से कहा—''कृपया इन पशुओं को लेकर एक किनारे हो जाओ।''

चांडाल ने उपेक्षा के साथ पूछा—''आप किसे हटाने को कह रहे हैं? आत्मा को या इस शरीर को? आत्मा तो सर्वव्यापी निष्क्रिय एवं उसका स्वभाव शुद्ध है। वह कैसे हट सकता है? गंगा नदी तथा मद्य के प्याले में चन्द्र का बिम्ब एक-सा दृष्टिगोचर होता है, क्या दोनों पृथक् हैं। रहा शरीर का प्रश्न। वह तो जड़ है, वह कैसे हट सकता है?''

चांडाल के वचन सुनकर शंकर स्तंभित रह गये। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि चांडाल के भेष में यह कोई दिव्य पुरुष है। उन्होंने तुरन्त उनकी स्तुति करते हुए कहा—''आप चाहे चांडाल हों या विप्र। आप मेरे गुरु हैं। कृपया मेरा प्रणाम स्वीकार करें।''

इतना कहते ही वहाँ चांडाल के बदले भगवान् शंकर प्रकट हो गये। उन्होंने कहा—''वत्स, तुम्हारे माध्यम से मैं पुनः वैदिक धर्म का प्रचार करूँगा। तुम महर्षि व्यास के ब्रह्मसूत्र की व्याख्या करो और अद्वैत ब्रह्मज्ञान का प्रचार करो।''

इतना कहने के बाद भगवान् शंकर अन्तर्धान हो गये। स्नानादि के पश्चात् शंकर जब अपने आश्रम आये तब किसी दैवी शक्ति ने उन्हें तीर्थयात्रा करने की प्रेरणा दी। काशी से आप हिमालय की ओर चल पड़े। हरिद्वार, ऋषिकेश होते हुए वे बदरीनाथ आये। यहाँ आने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि प्राचीनकाल में यहाँ ऋषियों ने जिस विष्णु विग्रह को स्थापित किया था, वह गायब है। चीनी डाकुओं के भय से नदी गर्भ में छिपा दिया गया था। उस मूर्ति की अब तक काफी खोज हो चुकी है, पर प्राप्त नहीं हुई है।

आचार्य शंकर ने कहा—"मैं उस मूर्ति को खोज सकता हूँ। क्या आप लोग उसकी पूजा करेंगे?"

स्थानीय लोगों के द्वारा पूजा करना स्वीकार करने पर शंकर अपने शिष्यों के साथ अलकनन्दा नदी के एक स्थान पर आये। एक जगह दिखाते हुए कहा कि मूर्ति यहीं है। नदी से विग्रह लाकर बड़े समारोह के साथ स्थापना की गयी। इसके बाद आचार्य उत्तरकाशी चले आये।

कहा जाता है कि यहाँ व्यास देव छद्म वेष में रहते थे। उन्होंने शंकराचार्य से शास्त्रार्थ किया। बाद में व्यास देव ने शंकराचार्य से कहा कि यथाशीघ्र आप भारत-प्रसिद्ध विद्वान् कुमारिल भट्ट से मिल लें। वे उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम, सर्वत्र दिग्विजय कर चुके हैं। वैदिक-धर्म के वे एकमात्र विद्वान् हैं। इन दिनों प्रयाग में हैं।

इस समाचार को सुनते ही शंकराचार्य अपने शिष्यों के साथ प्रयाग की ओर रवाना हो गये। मार्ग में कई तीर्थों का दर्शन करते हुए प्रयाग आये। संगम में स्नान करने के बाद शंकराचार्य एक वृक्ष के नीचे विश्राम करने लगे। कुछ देर बाद उन्होंने देखा कि नगर से काफी लोग कोलाहल करते हुए नदी तट की ओर जा रहे हैं। कुतूहलवश उन्होंने अपने निकट से जाते हुए एक पथिक से पूछा कि यह भीड़ कहाँ जा रही है?

उसने कहा—"भट्टपाद कुमारिल भट्ट गुरुवध अपराध के कारण आज तूषानल में प्रवेश करने जा रहे हैं। सभी लोग उस दृश्य को देखने के लिए जा रहे हैं।"

यह बात सुनते ही शंकराचार्य अपने को संयत नहीं रख सके। शिष्यों कें साथ तुरन्त घटना-स्थल की ओर रवाना हो गये। लोगों की जबानी ज्ञात हुआ कि कुमारिल भट्ट बौद्ध-दर्शन का अध्ययन करने के लिए नालन्दा गये थे। वहाँ पीठ स्थविर धर्मपाल के निकट अध्ययन करते थे जो बौद्ध धर्म और दर्शन के प्रकांड विद्वान् थे। धर्मपालजी अपने अध्यापन-काल में एक दिन वैदिक-धर्म तथा वेदों की निन्दा करने लगे। श्री कुमारिल भट्ट बौद्ध-दर्शन का अध्ययन जरूर करते थे, पर वे अन्तर से वैदिक थे। गुरु का प्रतिवाद करना अपराध है जानते हुए वे अश्रुपात करने लगे। धर्मपाल को जब कुमारिल के रोने का वास्तविक कारण ज्ञात हुआ तब वे बिगड़ उठे। बात बढ़ गयी। धर्मपाल ने अपने शिष्यों से कहा कि इस पातकी को पकड़कर ले जाओ और पहाड़ पर से नीचे गिरा दो। ऐसे बौद्ध-विद्रोही को जीवित रहने का अधिकार नहीं है।

आज्ञा का पालन हुआ। पर्वत पर से गिरा देने पर भी कुमारिल की कोई हानि नहीं हुई। बाद में दोनों ओर से शास्त्रार्थ हुआ। उस समारोह में कुमारिल भट्ट विजयी हुए। धर्मपाल को इससे बड़ी ग्लानि हुई। उन्होंने घोषणा की—"यद्यपि मैं शास्त्रार्थ में पराजित हो गया हूँ तो भी मेरी आस्था बौद्ध धर्म के प्रति आज भी है। शर्त के अनुसार मैं आज तूषानल में प्रवेश करूँगा।"

गुरु के निधन से कुमारिल को बड़ा आघात पहुँचा। अगर कुमारिल पराजित हो जाते तो उन्हें तूषानल में प्रवेश करना पड़ता। नालन्दा से चलकर वे भारत के सभी क्षेत्रों में शास्त्रार्थ करते हुए दिग्विजयी हुए, पर गुरु-वध की पीड़ा इन्हें कष्ट पहुँचाती रही। आज उस पाप का प्रायश्चित्त करने के लिए तूषानल में प्रवेश करने जा रहे हैं।

घटना-स्थल पर आकर शंकराचार्य ने भक्तिपूर्वक कुमारिल भट्ट को नमस्कार किया। एक किशोर संन्यासी को देखकर कुमारिल को आश्चर्य हुआ। शंकर का परिचय प्राप्त करने के बाद कुमारिल ने कहा—''आज हम पहली बार मिल रहे हैं। आप भी वैदिक हैं। मैंने आपकी प्रशंसा सुनी है। इस वक्त मेरे पास आने का क्या कारण है?''

आचार्य ने कहा—''मैंने ब्रह्मसूत्र का भाष्य लिखा है। मेरी इच्छा है कि आप इस पर एक वार्त्तिक रचना कर दें तो मेरी कृति निर्दोष प्रमाणित हो जायगी।''

कुमारिल भट्ट की भौहों पर बल पड़ गये। उन्होंने कहा—''कहाँ है वह ग्रंथ? लाओ, देखूँ।''

आचार्य के एक शिष्य ने श्रद्धापूर्वक उनके हाथों पर ग्रंथ रखा। कुमारिल भट्ट देर तक उसे उलट-पुलटकर देखते रहे। बाद में उन्होंने कहा—''इस ग्रंथ के विचारों से मैं पूर्ण रूप से सहमत हूँ, परन्तु अब मेरे पास समय नहीं है। मेरा अंतिम काल आ गया है। मेरे एक शिष्य का नाम है—मंडन मिश्र। विद्वत्ता की दृष्टि से वह मेरे समकक्ष है। अगर उसे विचारों से पराजित कर सकें तो समझ लीजिएगा कि मैं पराजित हो गया। अगर वह आपकी रचना पर वार्त्तिक रचना करते हैं तो आपकी यह कृति अमर हो जायगी।''

शंकर ने प्रश्न किया—''मंडन मिश्र कौन हैं?''

भट्ट ने कहा—''वे एक धनी परिवार के गृहस्थ विद्वान् हैं। माहिष्मती नगर में रहते हैं। आप उनके निकट जाइये। मध्यस्थता के लिए उनकी पत्नी सरस्वती देवी से आग्रह कीजिएगा, क्योंकि मंडन मिश्र के शास्त्रार्थ में उनकी तरह मध्यस्थता करने वाला इस भारत में दूसरा कोई नहीं है। मंडन मिश्र का अपर नाम विश्वरूपाचार्य है, उसी प्रकार सरस्वती देवी का अपर नाम उभय भारती है। वे अपने पिता से ज्ञान प्राप्त कर चुकी हैं। एक प्रकार से उन्हें सरस्वती देवी कहा जाता है।''

* * *

कुमारिल भट्ट की सलाह के अनुसार शंकराचार्य माहिष्मती आये तो ज्ञात हुआ कि मंडन मिश्र पितृ-श्राद्ध में व्यस्त हैं। बाहर खड़े पहरेदार ने कहा—''आज उनसे मुलाकात संभव नहीं है।''

शंकराचार्य के आग्रह करने पर उनका समाचार भीतर भिजवाया गया। वहाँ से भी वही जवाब आया। अब शंकराचार्य ने सोचा कि न चाहते हुए भी मुझे अन्य उपाय का सहारा लेना पड़ेगा। वे आकाश-मार्ग से मंडन मिश्र के पास वहीं पहुँचे जहाँ वे

श्राद्ध के लिए तर्पण कर रहे थे। इन्हें इस तरह आते देख मंडन मिश्र नाराज हो उठे। बाद में अचानक उन्हें ख्याल आया कि इस तरह तो केवल योगी व्यक्ति ही आ सकता है। उन्होंने यहाँ आने का कारण पूछा।

शंकराचार्य ने कहा—''मैं आपके पास प्रयाग से आ रहा हूँ। आपके गुरु आचार्य कुमारिल भट्ट गुरु-वध पाप का प्रायश्चित्त करने के लिए तूषानल में प्रवेश कर गये हैं। मैं उनसे अपने ग्रंथ के लिए वार्त्तिक रचना लिखने का अनुरोध लेकर गया था। उन्होंने कहा कि मैं तो प्रायश्चित्त करने जा रहा हूँ। तुम मेरे शिष्य मंडन मिश्र के पास जाओ और उनसे शास्त्रार्थ करो। वे जब पराजित हो जायेंगे तब तुम्हारे शिष्य बन जायेंगे और वार्त्तिक रचना भी लिख देंगे। उन्हीं के निर्देशानुसार आपके निकट आया हूँ।''

मंडन मिश्र ने कहा—''आपका साहस देखकर मैं विस्मित हो गया। इस वक्त मैं श्राद्ध-कार्य में व्यस्त हूँ। आप मेरी अतिथिशाला में विश्राम करें। कल इस सम्बन्ध में विचार किया जायगा।''

शंकराचार्य ने कहा—''उचित निर्णय है आपका, श्रीमन् । कल हम बातचीत करेंगे।''

इतना कहकर शंकराचार्य वहाँ से चले आये। उन्होंने शिष्यों से कहा—''हम गृहस्थ की अतिथिशाला में नहीं रहेंगे। किसी वृक्ष के नीचे आश्रय लेंगे।''

दूसरे दिन मंडन मिश्र शास्त्रार्थ के लिए जब प्रस्तुत हुए तब मध्यस्थता का प्रश्न उठा। शंकराचार्य ने कहा—''पूज्यपाद ने मुझे सुझाया था कि आपकी पत्नी सरस्वती देवी इसके लिए उपयुक्त हैं। उनके समान दूसरा कोई मध्यस्थता करने लायक भारत में नहीं है।''

मंडन मिश्र ने कहा—''मुझे कोई आपत्ति नहीं है।''

भीतर बैठी सरस्वती देवी इस वार्तालाप को सुन रही थीं। मंडन मिश्र के आह्वान पर वे बाहर आयीं। शंकराचार्य ने उन्हें प्रणाम करते हुए कहा—''माँ, हम दोनों के शास्त्रार्थ में आप मध्यस्थता करें, यहीं पूज्यपाद भट्टजी की इच्छा थी।''

सरस्वती देवी की मध्यस्थता में दोनों दिग्गजों ने शास्त्रार्थ प्रारंभ किया। यह क्रम अट्ठारह दिनों तक जारी रहा। अंत में मंडन मिश्र ने अपनी पराजय स्वीकार कर ली। यह देखकर सरस्वती देवी शंकित हो उठीं। अब पति को आचार्य का शिष्य बनना पड़ेगा यानी संन्यास ग्रहण करना पड़ेगा।

तुरन्त तड़ित् बुद्धि से सरस्वती देवी ने निर्णय दिया—''आचार्यजी, जब तक आप मुझे शास्त्रार्थ में पराजित नहीं कर लेते तबतक आप अर्द्ध-विजित रहेंगे। मैं इनकी अर्द्धांगिनी हूँ, अतएव मुझे भी पराजित करना पड़ेगा।''

इस प्रस्ताव को सुनकर आचार्य पहले चौंके, फिर उन्होंने कहा—''ठीक है माँ। अब आप पूर्वपक्ष कीजिए।''

सरस्वती देवी ने पूछा—"यतिवर, काम के कितने लक्षण हैं? उसकी कितनी कलाएँ हैं?"

यह एक ऐसा प्रश्न था जिसका ज्ञान शंकराचार्य को नहीं था और ऐसे प्रश्न किये जा सकते हैं, इसकी आशा नहीं थी। उन्होंने कहा—"आप मुझसे शास्त्रीय प्रश्न पूछें। मैं ठहरा संन्यासी, इस प्रश्न का जवाब कैसे दे सकता हूँ?"

सरस्वती देवी ने कहा—"कामशास्त्र भी शास्त्र है। क्या आप सर्वज्ञ नहीं हैं? काम की बातों से आपके मन में कोई विकार नहीं आना चाहिए।"

आचार्य का मस्तक झुक गया। उनकी शिष्यमंडली चिन्तित हो उठी। सभा में उपस्थित पंडितों का दल मुस्करा उठा। आचार्य ने कहा—"माँ, नियमानुसार मैं आपसे एक माह का समय चाहता हूँ। मैं इस प्रश्न का उत्तर दे सकता हूँ, पर संन्यासी होने के कारण मौखिक रूप से कुछ नहीं कह सकूँगा। काम की चिन्ता संन्यासियों के लिए घातक है। भविष्य में मेरा उदाहरण देकर संन्यासी गलत कार्य करेंगे। इससे संन्यास-धर्म कलंकित हो जायगा।"

सरस्वती देवी ने कहा—"अगर आप ठीक उत्तर न दे सके तो मेरे पति आपके शिष्य नहीं बनेंगे।"

आचार्य ने 'तथास्तु' कहा और सभा भंग हो गयी। आचार्य के शिष्य चिन्तामग्न होकर अपने गुरु के पीछे-पीछे चल पड़े। नगर से बाहर जंगल के भीतर आकर सभी लोग विश्राम के लिए बैठ भी नहीं पाये थे कि मानव कोलाहल और साथ ही क्रन्दन-ध्वनि सुनाई देने लगी। आचार्य को समझते देर नहीं लगी कि किसी व्यक्ति का निधन हो गया है। शव को लेकर लोग श्मशान भूमि जा रहे हैं।

उन्होंने अपने एक शिष्य से कहा—"पद्मपाद, तुम सब शीघ्र आसपास किसी गुफा की खोज करो। जहाँ हम सब कुछ दिन सुरक्षित रह सकें।"

यह आज्ञा पाते ही सभी शिष्य चारों तरफ फैल गये। थोड़ी देर बाद आचार्य के उपयुक्त एक गुफा मिल गयी। गुफा के भीतर आकर आचार्य ने कहा—"मैं योगबल से चोला बदल रहा हूँ। तुम लोग सावधानी से मेरे शरीर की रक्षा करना। एक माह के बाद मैं पुनः इस शरीर में आ जाऊँगा। रक्षा-कार्य में त्रुटि न हो और न मेरे लिए चिन्तित होना।"

उधर शव वाहक धीरे-धीरे नदी किनारे पहुँच गये। उक्त शव स्थानीय किसी राजा का था। लोग चिता सजाने में व्यस्त थे। अचानक शव हिलने लगा और उसकी साँस चलने लगी। चकित दृष्टि से देखते हुए राजा उठ बैठा। अपने राजा को जीवित देखकर सभी लोग प्रसन्नता से उछल पड़े। नाचते-गाते राजा अमरुक को लेकर सभी लोग महल वापस आ गये।

इस घटना के एक माह बाद राजमहल में पुनः राजा का निधन हो गया और इधर शंकराचार्य अपने पूर्व शरीर में प्रकट हो गये। मंडन मिश्र के यहाँ आकर आचार्य

ने कहा—''माँ, मैं अपने मुँह से कुछ नहीं कह सकता। इस ग्रंथ में समस्त बातों का उल्लेख है। आप इसका अध्ययन कर लें।''

आचार्य के शिष्यों से सारी कहानी सुनने के बाद सरस्वती देवी ने निर्णय दिया—''अब आप संपूर्ण रूप से विजयी हुए हैं। पति के संन्यास लेने पर पत्नी विधवा मानी जाती है। मेरा कार्य समाप्त हो गया।''

इतना कहने के पश्चात् सरस्वती देवी ने योग-बल से अपना शरीर त्याग दिया।

* * *

आचार्य माहिष्मती से पंचवटी, पंढरपुर, श्रीशैल, पैठण आदि तीर्थों का दर्शन करते हुए श्रीबेली आये। इस गाँव में अधिकतर ब्राह्मण निवास करते थे। गाँव में शिव मंदिर था। इस गाँव में आते ही आचार्य और उनके शिष्य मंदिर में दर्शन करने गये और स्तव पाठ करने लगे। आचार्य के आगमन का समाचार गाँव में फैल गया। स्थानीय पंडित वर्ग को आचार्य के शिष्य पद्मपाद और सुरेश्वर से दिलचस्पी थी जिनकी विद्वत्ता का डंका भारत में गूँज रहा था। ब्राह्मणों की बस्ती होने के कारण यहाँ वेद-पाठ और शास्त्रार्थ करने की परम्परा थी। दरअसल लोग आचार्य के शिष्यों से शास्त्रार्थ करना चाहते थे, परन्तु शिष्य-मंडली में धुरंधर विद्वान् मंडन मिश्र तथा सनन्दन को देखकर सभी सहम गये।

आचार्य यहाँ के लोगों को उपदेश देने लगे। उपदेश के समय प्रभाकर शास्त्री नामक एक ब्राह्मण नियमित रूप से आता और कुछ कहने को जैसे उत्सुक रहता था। आखिर एक दिन मौका मिला। उसने कहा—''प्रभो, मुझ पर कृपा करें। मुझे सिर्फ एक कष्ट है। ले-देकर भगवान् ने मुझे एक पुत्र दिया है। वह भी गूँगा। तेरह वर्ष का हो गया है, आज तक उसके मुँह से एक शब्द नहीं निकला। खिलाने पर खाता है और लिटाने पर लेटता है। बैठाने पर बैठ जाता है। पूर्ण जड़ भरत है। जिस प्रकार आपने मौनाम्बिका के एक परिवार पर कृपा की है, उसी प्रकार मुझ पर कृपा कीजिए।''

मौनाम्बिका की घटना यों हुई थी कि आचार्य श्रीबेली आने के लिए पैठण से रवाना होकर मौनाम्बिका गाँव के पास आये। जब वे मौनाम्बिका गाँव में प्रवेश कर आगे बढ़ने लगे तभी एक शोकाकुल दम्पति से अपने मृत पुत्र के शव को उनके पैरों के पास रखा और पछाड़ खाकर रोने लगे। आचार्य का हृदय करुणा से द्रवित हो उठा। वे वहीं बैठकर बालक के शव पर हाथ फेरने लगे।

थोड़ी देर बाद बालक के शरीर में स्पन्दन होने लगा और उसकी आँखें खुल गयीं। यह दृश्य देखकर बच्चे के माता-पिता प्रसन्नता से नृत्य करने लगे। उपस्थित लोगों में आचार्य के चरण-स्पर्श करने की होड़ लग गयी। शायद इससे उनके जीवन में कल्याण हो।

इस घटना का प्रचार तेजी से हुआ। आचार्य के श्रीबेली पहुँचने के पूर्व ही वह समाचार स्थानीय लोगों में चर्चा का विषय बन गया। इसी घटना से प्रभावित होकर प्रभाकर आचार्यजी की सेवा में आया। उसे दृढ़ विश्वास था कि जो व्यक्ति मृत बालक को जीवन-दान दे सकता है, वह मेरे गूँगे बालक को भी वाणी दे सकता है।

दूसरे दिन प्रभाकर बालक को अपने साथ लेकर आचार्यजी के पास आकर बोला—''प्रभो, यही है वह बालक । इसे अपना आशीर्वाद दीजिए। कम से कम कुछ पढ़-लिख ले। ब्राह्मणोचित कर्म करे। अपने साथियों के साथ खेलें।''

आशुतोष शंकर दयार्द्र हो उठे। उन्होंने बालक को अपने पास बैठाते हुए कहा—''वत्स, तुम कौन हो? क्या नाम है तुम्हारा? कहाँ से आये हो? कहाँ जाओगे? बोलो।''

एकाएक बालक शुद्ध आत्मस्वरूप परिचायक त्र्योदश श्लोक हस्तामलक स्तोत्र पाठ करने लगा। पिता के साथ-साथ उपस्थित दर्शक चकित रह गये। स्तोत्र समाप्त करने के बाद बालक पुनः चुप हो गया।

आचार्य ने अपने शिष्य से कहा—''पद्मपाद, यह हस्तामलक स्तोत्र था। इसका सम्यक्-ज्ञान होने पर ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है। निर्गुण ब्रह्मोपासकों के लिए यह महत्त्वपूर्ण स्तोत्र है। तुम लोग भी इसका अभ्यास करो।''

कुछ देर बाद आचार्य ने प्रभाकर से कहा—''आप इस बालक को लेकर क्या करियेगा? यह गृहस्थी के योग्य नहीं है। इसे ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो गया है। इसके द्वारा आपका कोई काम पूरा नहीं होगा! आप यह बालक मुझे दान में दे दें।''

इस प्रस्ताव को सुनते ही प्रभाकर व्याकुल हो उठे। पुत्र भले ही विकलांग हो, पर वह माता-पिता के लिए प्रिय होता है। प्रभाकर ने कहा—''मैं भले ही पुत्र का अभाव अनुभव न करूँ, पर इसकी माँ पुत्र वियोग सहन नहीं कर पायेगी।''

आचार्य ने हँसकर कहा—''आप दोनों को आज एक बात बता दूँ। शरीर से यह आपका पुत्र अवश्य है, पर आत्मा से नहीं। वास्तव में इसकी आत्मा एक सिद्ध पुरुष की है।''

प्रभाकर की पत्नी ने कहा—''यह कैसे संभव है? मैं इसके जन्म से लेकर आज तक इस बात के लिए तरसती रही कि एक बार यह मुझे माँ कहकर पुकारे।''

आचार्य ने कहा—''आप दोनों उस समय की घटना स्मरण करें जब आपका पुत्र दो वर्ष का था और इसे लेकर आप लोग तीर्थ-भ्रमण करने गये थे तब यमुना किनारे कुटिया में एक संन्यासी ध्यानमग्न था। बच्चे को किनारे अकेला छोड़कर स्नान करने नहीं जाना चाहते थे। भय था कि कहीं डूब न जाय। बच्चे को संन्यासी के पास बैठाकर आप लोगों ने कहा कि इसका ख्याल रखें। हम स्नान करके आते हैं। संन्यासी ध्यानमग्न था। उसने आपकी बातें नहीं सुनीं। स्नान करने के बाद जब आप आये तो बच्चा गायब था। अचानक आपकी नजर पानी पर पड़ी, वहाँ बालक तैर रहा था। वह मर चुका था। उस बच्चे को संन्यासी के पास लाकर आप रोने लगीं। संन्यासी को

समझते देर नहीं लगी कि उसकी गलती के कारण ऐसा हुआ है। आपको आश्वस्त करने के बाद वे पुनः ध्यानस्थ हो गये। अपने योग-बल से आपके मृत पुत्र के शरीर में आ गये। आपका पुत्र जीवित हो गया। आपने सोचा कि यह चमत्कार संन्यासी की कृपा से हुआ है जब कि संन्यासी का निधन हो चुका था। बाद में आपको यह मालूम हुआ कि संन्यासीजी अब नहीं रहे। सारी बातें ठीक हैं या नहीं।''

प्रभाकर और उनकी पत्नी को सारी बातें याद आ गयीं। पत्नी ने कहा—''हाँ, महाराज, आपके कहने पर सारी घटनाएँ याद आ गयीं। मेरी इच्छा है कि आप कुछ ऐसा करें कि मेरा पुत्र मुझे वापस मिल जाय। मेरे पुत्र को ठीक कर दीजिए।''

आचार्य ने कहा—''माँ, मैं तुम्हारी ममता को समझ रहा हूँ। सच तो यह है कि इस शरीर पर ब्रह्मज्ञानी की कोई ममता नहीं है, क्योंकि यह उसका नहीं है अतएव यह बालक आप लोगों के किसी काम में नहीं आयेगा। हमारे साथ रहने से शायद बातें करे। ब्रह्मज्ञानी सर्वदा गृहस्थी से दूर रहते हैं। विश्वास न हो तो आप इनसे पूछ लें कि ये मेरे साथ रहना पसन्द करेंगे या आप लोगों के साथ?''

माँ बेटे को अपनी बाँहों में लेकर बोली—''बोलो बेटा, तुम हमारे साथ रहोगे या हमें छोड़कर चले जाना चाहते हो?''

ब्रह्मज्ञानी ने सोचा—यही वह मौका है जब इस मायाजाल से मुक्ति मिल सकती है। उन्होंने कहा—''माँ, मेरी आशा छोड़ दो। आचार्य का कथन पूर्णतः सत्य है। मैं इनके साथ रहना चाहता हूँ। मेरे बारे में सारी बातें सुनने के बाद क्यों ममता प्रकट कर रही हो? मेरे जाने के बाद आपको पुनः संतान-लाभ होगा। पिताजी, अब आप माताजी को समझाने की कृपा करें।''

पुत्र की बातें सुनकर प्रभाकर ने अपनी पत्नी को समझाते हुए कहा—''देवी, अब ममता के पाश से मुक्त हो जाओ। आचार्यजी ने मेरी आँखें खोल दी हैं। चलो, अब घर चलें।''

दोनों पति-पत्नी पहले आचार्यजी फिर अपने पुत्र को प्रणाम कर चले गये। कुछ देर में ही यह समाचार पूरे गाँव में फैल गया। लोगों की भीड़ प्रभाकर के इस पुत्र को देखने के लिए आने लगी। आगे चलकर आचार्य ने इस बालक को संन्यास देकर इसका नाम रखा—हस्तामलकाचार्य। अपने अन्य शिष्यों को शिक्षा देने के लिए आचार्य ने हस्तामलक स्तोत्र पर एक अपूर्व भाष्य लिखा।

श्रीबेली में कुछ दिन रहने के बाद वे शृंगगिरि आये जहाँ संन्यास लेने के पूर्व एक बार नाग और मेढकों की मैत्री का दृश्य देख चुके थे। प्राचीनकाल में यहाँ विभाँडक ऋषि का आश्रम था। इस ऋषि के पुत्र का नाम ऋष्यशृंग था जिसके नाम पर इस गिरि का नामकरण हुआ था। इस पर्वत का वर्णन सुनने के बाद पद्मपाद ने सुझाव रखा—''यहाँ मठ बनाकर हम लोग साधना करेंगे। माँ सरस्वती देवी ने कहा था कि दैव-शरीर में वे यहाँ उपस्थित रहेंगी।''

आचार्य ने इस सुझाव को स्वीकार कर लिया। देखते ही देखते सभी शिष्य पर्णकुटि बनाने लगे। प्रत्येक शिष्य के लिए अलग-अलग कुटि बन गयी। तत्पश्चात् लोग साधना में जुट गये। स्थानीय राजा के कर्मचारियों ने आकर निवेदन किया कि अगर आचार्य अनुमति दें तो आप लोगों के लिए भवन बनवा दिया जाय।

आचार्य ने कहा—''संन्यासियों के लिए भवन की जरूरत नहीं होती। उन्हें वृक्षों के नीचे या गुफाओं में रहना चाहिए। आश्रम के लिए पर्णकुटि ठीक है।''

यहाँ आचार्यजी ने एक अर्से तक निवास करते हुए कई ग्रंथों की रचना की। शेष समय में वे शिष्यों को उपदेश देते थे। विशेष रूप से उपासना पर जोर देते हुए कहते थे—''मेरे शिष्यों, यह स्मरण रखना कि उपासना तुम्हारे लिए महत्वपूर्ण कार्य हैं। जब तक शरीर में प्राण है तब तक उपासना करते रहना। शरीर के प्रत्येक अंग में एक-एक देवता निवास करते हैं। देवताओं की उपेक्षा करके कोई जीवित नहीं रह सकता। उपासना के द्वारा चित्त शुद्ध होता है। संशय, विपर्यय और विस्मृति नष्ट होते हैं। इससे एकाग्रता आती है। एकाग्रता योग-राज्य का द्वार है। इसी के द्वारा शुभ-दृष्टि जन्म लेती है। शारदा देवी विद्या की देवी हैं। उनकी उपासना से विद्या में स्फूर्ति प्राप्त होती है। अज्ञान के विनाश होने पर ज्ञान का उदय होता है, इसलिए संन्यासी को शारदा देवी की उपासना अवश्य करनी चाहिए।''

ठीक इन्हीं दिनों गिरि नामक एक ब्राह्मण बालक आचार्य की सेवा में आया। वह निरक्षर था, पर उसकी संन्यासी बनने की प्रबल इच्छा थी। आचार्य के यहाँ रहते हुए वह आचार्य और उनके शिष्यों में होनेवाली बातों को सुनकर हताश हो गया। वह समझ गया कि यहाँ तक पहुँचना संभव नहीं है। अन्त में उसने निश्चय किया कि वह यहाँ रहते हुए केवल आचार्य की सेवा करेगा। स्वभाव से गिरि मृदुभाषी, विनीत और कर्मठ था। यही वजह है कि गिरि की उपस्थिति में एक भी शिष्य आचार्य की कोई सेवा नहीं कर पाता था। जिस समय आचार्य शिष्यों को उपदेश देते या अध्यापन करते, उस वक्त वह उनकी बगल में हाथ जोड़ कर खड़ा रहता । आचार्य के उपदेशों को समझ न पाने पर भी बराबर ध्यान लगाकर सुना करता था।

एक दिन की बात है । आचार्य उपदेश देते-देते सहसा इधर-उधर देखने लगे और फिर चुप हो गये। यह देखकर एक शिष्य ने कुतूहलवश प्रश्न किया—''भगवन्, आपने अध्यापन क्यों रोक दिया?''

आचार्य बोले—''तुम सब उपस्थित कहाँ हो? गिरि दिखाई नहीं दे रहा है?''

पद्मपाद ने कहा—''भगवन्, वह तो नदी किनारे आपके वस्त्रों को धो रहा है, फिर गिरि तो निरक्षर है। वह आपका उपदेश कैसे ग्रहण कर पायेगा?''

आचार्य ने कहा—''उसे आने दो । भले ही वह कुछ न समझे, पर बड़ी लगन के साथ वह उपदेश सुनता है।''

गिरि पर भगवान् की असीम कृपा हो गयी थी। अपनी गुरु-भक्ति के कारण

वह सर्वविद्या में पारदर्शी हो गया था। जिस व्यक्ति में गुरु के प्रति श्रद्धा न हो, उनके उपदेशों पर ध्यान न दे, उसे कैसे ज्ञान प्राप्त हो सकता है?

गिरि अपने गुरु के वस्त्रों को साफ करने के बाद त्रोटक छन्द में गुरु-महात्म्य सूचक एक स्तोत्र की रचना करते हुए चल पड़ा। आचार्य के समीप आकर उसने उसका पाठ किया । गिरि की इस प्रतिभा को देखकर सभी शिष्य दंग रह गये। जो व्यक्ति संस्कृत का एक शब्द बोल नहीं पाता था, आज वह स्तोत्र-पाठ कर रहा है। स्तोत्र समाप्त करने के बाद उसने गुरु की स्तुति की। प्रणाम करने के पश्चात् गिरि ने कहा—''भगवन्, आप मेरे ऊपर अपनी कृपा की वर्षा करते रहें।''

यह देखकर एक अन्य शिष्य ने कहा—''गिरि की तरह मुझ पर भी कृपा कीजिए।'' दूसरा कह उठा—''आज आपकी कृपा से गिरि धन्य हो गया।'' तीसरे ने कहा—''हम पर इसी प्रकार कृपा करें, गुरुदेव।''

आचार्य ने हाथ उठाकर आशीर्वाद देते हुए कहा—''मेरे शिष्यों, तुम सब गिरि की भाँति श्रद्धा-सम्पन्न बनो। श्रद्धा से एकाग्रता आती है, मन की चंचलता नष्ट होती है और चित्त शुद्ध होता है। श्रद्धा ही सर्वविद्या का मूल है।''

इसके बाद गिरि की ओर देखते हुए आचार्य ने कहा—''अपनी असीम गुरु-भक्ति के कारण तुम इस स्तर तक पहुँच सके हो। तुम्हारी भक्ति का आदर्श पृथिवी पर उदाहरण के स्वरूप बना रहेगा।''

आचार्य की बातें सुनते ही गिरि ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। उन्होंने मस्तक पर हाथ फेरते हुए आशीर्वाद दिया। आज गिरि की आकृति अपूर्व ज्योति से चमक रही थी। आगे चलकर आचार्य ने उसका नाम रखा—तोटकाचार्य।

तोटकाचार्य को उदाहरण बनाकर आचार्य शेष शिष्यों को उपदेश देते रहे । कुछ दिनों बाद एक दिन अध्यापन-काल में आचार्य ने अपनी जीभ पर मातृदुग्ध का आस्वाद अनुभव किया। वे समझ गये कि माँ मुझे स्मरण कर रही है।

पाठ बन्द करते हुए आचार्य ने कहा—''वत्स, मेरी माँ का अंतिमकाल आ गया है। इस वक्त वे मुझे स्मरण कर रही हैं। मैंने उनसे कहा था कि जहाँ कहीं भी रहूँगा, तुम्हारा अंतिम-संस्कार करने के लिए आ जाऊँगा। इसी शर्त पर माँ ने मुझे संन्यासी बनने की आज्ञा दी थी। मैं तत्काल माँ के पास आकाश-मार्ग से जा रहा हूँ। तुम लोग गन्तव्य मार्ग से वहाँ आ जाना।''[१]

आकाश-मार्ग से जब वे अपने गाँव के समीप पहुँचे तब गाँव में न उतरकर सुनसान स्थान पर उतरे और वहाँ से पैदल घर आये।

घर आने पर उन्होंने देखा—माँ की सेवा एक वृद्ध परिचारिका कर रही है जबकि वे पड़ोस में स्थित एक पट्टीदार को यह सेवा-भार सौंप गये थे। जाते समय उनसे

---

१. कुछ विद्वानों का मत है कि शृंगेरी से कालडी वे भूतों की मदद से गये थे।

यह कह गये थे कि निधन के बाद सारी जायदाद आपको सौंप दी जायगी। मैं संन्यासी हूँ, मुझे यह सब नहीं भोगना है।

माँ का चरण-स्पर्श किया। वे आनन्द से खिल उठीं। बोलीं—''जिस उद्देश्य से तू संन्यासी बना, लगता है वह पूरा हो गया। यही समाचार सुनने के लिए मैं अब तक जीवित हूँ क्यों, ठीक कह रही हूँ न?''

शंकर घर आया है, यह समाचार आसपास फैल गया। उस पट्टीदार को भी मालूम हुआ तो वे दिखावे के लिए चले आये। शंकराचार्य के कुछ कहने के पहले ही वे कहने लगे—''तुम्हारी माँ बड़ी लापरवाह है। हम लोगों की कोई बात ही नहीं सुनती। कोई जिद्द पकड़ लेगी तो पकड़े रहेगी। अच्छा हुआ जो तुम आ गये। अब जरा माँ की सेवा करो।''

पट्टीदार के जाने के बाद माँ ने कहा—''यह बहुत झूठा और स्वार्थी है। इसने कभी मेरी खोज-खबर नहीं ली। अगर यह वृद्धा मेरी सेवा न करती तो मैं कभी की मर गयी होती। तू उस पट्टीदार को सब कुछ देना चाहता है? उसे मत दे, बल्कि सारी सम्पत्ति इसे दे दे।''

आचार्य ने कहा—''आप चिन्ता न करें माँ। आपकी जो राय होगी, वही मैं करूँगा। इस वक्त तुम केवल भगवान् की चिन्ता करो।''

माँ ने कहा—''अच्छा-अच्छा। जा पहले स्नान-भोजन कर ले।''

आज का मानव चिरकाल से स्वार्थी रहा है। सम्पदा के मोह से मुक्त नहीं हो पाता। शंकर के आगमन के कारण पड़ोस के दो परिवार उसे प्रसन्न करने के उद्देश्य से भोजन की व्यवस्था करने लगे। सेवा करनेवाली महिला तथा जायदाद प्राप्त करने वाले पट्टीदार अपने यहाँ भोजन बनवाकर उनके आने की प्रतीक्षा करने लगे। परिचारिका आयी और शंकर को अपने यहाँ पकड़कर ले गयी।

इधर शंकर के आने में देर होते देख पट्टीदार पता लगाने आया तो पता लगा कि परिचारिका उसे अपने यहाँ भोजन कराने ले गयी है। साथ ही यह भी सुना कि माँ की इच्छानुसार सारी सम्पत्ति उसे देने का निर्णय किया गया है। इस समाचार से पट्टीदार जलकर खाक हो गया।

भोजन के पश्चात् आचार्य जब घर आये तब माँ ने आग्रह किया—''बेटा, अब मुझे इष्ट के दर्शन करा दे।''

शंकराचार्य ने उपस्थित लोगों से निवेदन किया कि वे लोग अपने-अपने घर चले जायें। सभी लोगों के जाने के बाद शंकराचार्य समाधि लगाकर ध्यानस्थ हुए। कुछ ही देर बाद माँ ने देखा कि उनके सामने भगवान् शिव प्रत्यक्ष रूप से खड़े हैं।

उन्हें अभय-दान देते हुए भगवान् आशुतोष ने कहा—''तुम्हारी मनोकामना पूरी होगी।'' देखते ही देखते वह मूर्ति गायब हो गयी। पुनः थोड़ी देर बाद उसी स्थान पर माँ ने देखा—शंक, चक्र, गदा, पद्म लिए चतुर्भुज नारायण उपस्थित हैं। देवी लक्ष्मी

उनका चरण दबा रही हैं। यह दृश्य देखते-देखते वे आत्मविभोर हो उठीं। ठीक इसी समय उनका चोला छू गया।

* * *

पलक झपकते ही यह समाचार पूरे कालडी में फैल गया। समवेदना प्रकट करनेवालों की भीड़ आने लगी। पट्टीदार ने शंकर से कहा—''आप ठहरे संन्यासी। शव के पास से हट जाइये। आप तो अंत्येष्टि-क्रिया कर नहीं सकते। जो कुछ करना है, मुझे करना होगा।''

शंकर ने कहा—''आपका कहना ठीक है, पर मुखाग्नि मैं करूँगा। क्योंकि मैंने माँ को वचन दिया था।''

पट्टीदार ने कहा—''मैं आपकी इच्छा को समझ रहा हूँ। संन्यास-जीवन कितना कष्टकर है, इसका अनुभव करने के बाद अब गृहस्थ बनने की इच्छा हो रही है। माँ को दाग देकर सम्पत्ति पर अधिकार करने की इच्छा है। हम लोगों के रहते यह अनाचार नहीं हो सकता। नम्बूदिरी ब्राह्मण केरल प्रदेश के बाहर नहीं जाते। तुमने इस नियम का भंग किया है। एक प्रकार से तुम म्लेच्छ हो गये हो। चिर पुरातन प्रथा तोड़ने के कारण तुम जातिभ्रष्ट हो गये हो। अतएव अब तुम अपने पूर्व पुरुषों की जायदाद पर अधिकार नहीं कर सकते। तुम्हारे जैसा भ्रष्ट अगर सम्पत्ति पर अधिकार जमायेगा तो सारा समाज कलंकित हो जायगा। हम तुम्हें दाग—(मुखाग्नि) देने नहीं देंगे।''

आचार्य ने हँसकर कहा—''महाराज, मैं इस सम्पत्ति पर अधिकार करने की गरज से दाग नहीं दे रहा हूँ। माँ को वचन दिया था, उसका पालन करूँगा। आप इस ओर से निश्चिन्त रहें । मैं सम्पत्ति पर दावा नहीं करूँगा। हाँ, माँ अपने अंतिम समय में यह जरूर कह गयी हैं कि सब कुछ इस गरीब परिचारिका को दिया जाय, आपको नहीं। वह इसलिए कि माँ की सेवा यह करती रही, आप या आपके परिवार के लोग नहीं। आपको कोई कष्ट नहीं करना है। जो कुछ करना है, मैं इस वृद्धा की सहायता से कर लूँगा।''

यह बात सुनकर पट्टीदार क्रोध के कारण आपे से बाहर होकर बोले—''मेरे रहते देखता हूँ कि कौन तुम्हारी मदद करता है? दाग देकर तुम यह सम्पत्ति कैसे दूसरे को देते हो, यही देखना है। तुम खुद भ्रष्टा की संतान हो। अपने पिता की वृद्धावस्था में तुमने जन्म लिया है। शायद यह बात जानते होगे। दाग भले ही दो, पर सम्पत्ति नहीं मिलेगी। वह तो हम लोगों के कब्जे में है। अगर किसी ने मदद की तो उसे बिरादरी से निकाल देंगे।''

इस फतवे को सुनकर समवेदना प्रकट करने वाले खिसकने लगे। कुछ लोग इस झगड़े को सुलझाने लगे। बाद में परिचारिका भी डर के कारण भाग गयी। आचार्य अपने को संयत किये चुपचाप बैठे रहे। बाद में परिचारिका को आश्वासन देकर बुला लाये।

आचार्य ने उससे कहा—"तुम लकड़ी लाकर बाग में इकट्ठा करो। मैं अपने बाग में माँ का अंतिम संस्कार करूँगा।"

इसके बाद वे अपने रिश्तेदारों से आग माँगने गये, पर जातिच्युत होने के भय से किसी ने आग नहीं दी। यह व्यवहार देखकर वे क्षुब्ध हो उठे और अरणि काष्ठ लेकर स्वयं अग्नि मंथन किया।

क्रोध और अपमान से काँपते हुए आचार्य बोल उठे—"मैं इस नीच को अपनी सारी सम्पत्ति का भार इसलिए दे गया था कि यह मेरी माँ की देखभाल करेगा, पर इसने कुछ नहीं किया। जब तक इसे सम्पत्ति पाने की आशा थी तबतक मुँह नहीं खुला। आज जब इसे यह मालूम हुआ कि मैं अपनी सम्पत्ति दूसरे को दे रहा हूँ तब मेरी माँ कलंकिनी हो गयी? यह और इसका साथ देने वाले सभी लोग आज से वेद-हीन हो जायेंगे। कोई भी संन्यासी इनके दरवाजे पर भिक्षा ग्रहण नहीं करेगा। जिस प्रकार आज मैं अपनी माता का दाह-संस्कार घर के आँगन में कर रहा हूँ, उसी प्रकार इन लोगों को करना पड़ेगा।"

* * *

शंकराचार्य के साथ हुई इस दुर्घटना का समाचार राज-दरबार तक पहुँचा। राजा राजशेखर ने तुरन्त अपना विशेष दूत कालडी रवाना किया। उन्होंने कहलाया कि आचार्य से जाकर कहना—"मैं कल कालडी पहुँच रहा हूँ। मेरे आने तक वे वहाँ अवश्य रहें।"

दूसरे दिन प्रातःकाल आचार्य नित्यकर्म से खाली होकर बाहर वाले कमरे में आकर बैठे। तभी राजा राजशेखर के आगमन का समाचार मिला। राजा का राजोचित और संन्यासी का तद्रूप एक दूसरे ने सम्मान किया। बाद में राजा के प्रश्न करने पर आचार्य ने कल की घटना का विवरण सुनाया।

राजा ने मंत्री की ओर देखते हुए कहा—"इस घटना की न्यायोचित जाँच की जाएगी। आप उस पक्ष के लोगों को साक्षी सहित उपस्थित होने का आदेश दें और आचार्यजी, आप भी अपने साक्षियों को लेकर विचार मंच पर उपस्थित हों।"

राजा आये हैं और वे कल की घटना का फैसला करेंगे, यह सुनकर पट्टीदार ने रुपये की लालच देकर कई साक्षी तैयार कर लिए। आचार्य की ओर से एक गरीब रिश्तेदार तथा परिचारिका थे।

दिन भर सवाल-जवाब करने के बाद यह प्रमाणित हो गया कि पट्टीदार का आक्षेप असत्य है। राजा ने आचार्य की ओर देखते हुए पूछा—"इन्हें कौन-सा दण्ड देना उचित होगा। इस बारे में आप सुझाव दीजिए।"

आचार्य ने कहा—"राजन्, मैं दण्ड देने का अधिकारी नहीं हूँ। यह आपका काम है। आप जो उचित समझें करें।"

आचार्य की राय सुनने के बाद सभी लोग दया की प्रार्थना करने लगे। राजा

ने कहा—''मैं दया करनेवाला कौन होता हूँ। मैं न्याय कर सकता हूँ। दया तो आचार्यजी कर सकते हैं।''

राजा का मन्तव्य सुनने के बाद सभी लोग आचार्य के चरणों पर गिर पड़े। दया के अवतार शंकराचार्य ने कहा—''मुझे जो सजा देनी थी, वह तो अकस्मात् कल मेरे मुँह से निकल गयी थी। अब महाराज जो चाहें, करें।''

राजा ने पूछा—''आपने कल क्या कहा था?''

आचार्य ने अपने अभिशाप की चर्चा की।

राजा ने कहा—''अगर आप इस दण्ड को पर्याप्त समझते हैं तो आगे मुझे कुछ नहीं कहना है।''

आचार्य मौन हो गये। ब्राह्मणों को संतोष हुआ कि सस्ते में छूटे। लेकिन दूसरे ही क्षण ज्ञान होते ही वे पुनः आचार्यजी के चरणों पर गिर पड़े और कहा—''महात्मन्, कृपया हमें वेद-हीन न बनायें। इससे अच्छा है कि हम मृत्यु को स्वीकार कर लें। वेद बिना हम जीवित नहीं रह सकेंगे। शेष दोनों अभिशाप हमें स्वीकार है।''

आचार्य ने सोचा—बात ठीक है। बोले—''तथास्तु।''

उपस्थित सभी लोग आचार्य और राजा की जय-जयकार करते हुए चले गये। लोगों के जाने के बाद कुछ देर तक राज्य और शासन की बातें हुईं। सहसा आचार्य ने पूछा—''कहिये राजन्, इधर किसी नवीन ग्रंथ की रचना आपने की?''

राजा ने खेद प्रकट करते हुए कहा—''कई वर्ष पूर्व महल में आग लग जाने के कारण मेरे तीनों ग्रंथ भस्म हो गये। आज तक मैं उनका पुनरुद्धार नहीं कर सका।''

आचार्य ने हँसते हुए कहा—''इसके लिए आपको दुखित होने की आवश्यकता नहीं है। अगर आपको उन ग्रंथों से प्रेम है तो मैं बोलता चलूँगा और आप उसे लिपिबद्ध करते चलें। मुझे कंठस्थ हैं।''

राजा आनन्द से उछल पड़े। उन्होंने कहा—''भगवन्, यह तो विस्मयजनक और शुभ समाचार है। जब आपको कंठस्थ है तब आप आवृत्ति करें, मैं प्रतिलिपि तैयार कर रहा हूँ।''

आचार्य आवृत्ति करने लगे। कुछ देर तक सुनने के बाद राजा ने कहा—''आपकी आवृत्ति पूर्णतः शुद्ध है। मैं कल कुछ लेखकों को लेकर आऊँगा और प्रतिलिपि तैयार करूँगा।''

* * *

कालडी में कुछ दिन निवास करने के बाद आचार्य ने निश्चय किया कि अद्वैतवाद के प्रचार के लिए यात्रा करना उचित है। जो लोग भ्रमपूर्ण-जगत् में विचरण कर रहे हैं, उन सभी को सही मार्ग दिखाना होगा। आचार्य ने अनुभव किया कि यह कार्य सरल नहीं है जब तक शास्त्रार्थ में पराजित नहीं किया जायगा तब तक अद्वैतवाद का

प्रसार नहीं होगा। शंकाओं के समाधान करने पड़ेंगे। कहीं-कहीं लांछन और हठ का सामना करना पड़ेगा।

अपने शिष्यों के साथ उन्होंने सर्वप्रथम केरल-राज्य में विजय प्राप्त की। बाद में पल्लवों के राज्य में आये। यहाँ से रामेश्वर आदि तीर्थ स्थानों में अद्वैतवाद का प्रचार करते हुए उत्तर की ओर रवाना हुए। भवानी, महालक्ष्मी, सरस्वती, वामाचारी, भागवत आदि संप्रदाय के उपासकों में तर्क, शास्त्रार्थ करते हुए उन्होंने अद्वैत मत की स्थापना की।

कर्नाटक, आंध्रप्रदेश के बाद वे कलिंग देश में आये। यहाँ आने पर उन्होंने अनुभव किया कि इस प्रदेश में बौद्धों का व्यापक प्रभाव है। पुरी के जगन्नाथ मंदिर में पूजा तो होती है, पर कोई विग्रह नहीं है। विधर्मियों के भय से कभी स्थानीय लोगों ने चिल्का झील के पास विग्रह को गाड़ दिया था। बाद में उस स्थान को भूल गये कि कहाँ रखा गया था। काफी खोज करने पर भी विग्रह नहीं मिला। फलतः बिना विग्रह के स्थान की पूजा होती है।

आचार्य के आगमन का समाचार सुनकर स्थानीय विद्वान् आये। उन्होंने निवेदन किया कि हम आपकी कीर्ति सुन चुके हैं। आप कृपया अपने योगबल से हमें यह बतायें कि हमारे देवता को कहाँ छिपाकर रखा गया है ताकि हम उन्हें पुनः प्रतिष्ठा करके विधिपूर्वक पूजा चालू करें।

नागरिकों के आग्रह से प्रसन्न होकर आचार्य ने कहा—''आपका आग्रह उचित है। मैं प्रयत्न करूँगा।''

इतना कहने के पश्चात् वे ध्यानमग्न होकर स्तोत्र-पाठ करने लगे। थोड़ी देर बाद आँखें खोलते हुए उन्होंने कहा—''चिल्का झील के किनारे एक विशाल वटवृक्ष है। उसकी जड़ के नीचे एक पेटी में विग्रह है।''

इस समाचार को पाते ही नगर से कुछ लोग चिल्का की ओर गये और मूर्ति लेकर वापस आये। बड़े समारोह के साथ उसकी प्रतिष्ठा आचार्य के कर-कमलों से करायी गयी। विग्रह को पाकर पुरवासी आनन्द से विभोर हो उठे।

पुरी से चलकर आचार्य मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, बिहार, बंगाल होते हुए प्रागज्योतिष्पुर (असम) आये। उन दिनों असम में शाक्त तांत्रिकों का प्रभाव था। आचार्य अपने मत के प्रचार के लिए शास्त्रार्थ करने लगे। पंडितों के तर्कों तथा शंकाओं का समाधान करने लगे। इस प्रकार उनका प्रभाव बढ़ता गया। स्थानीय तांत्रिक अपनी पराजय से क्षुब्ध हो उठे। नागरिकों में शंकर का अच्छा प्रभाव पड़ा।

इन तांत्रिकों में अभिनव गुप्त पराजित होने के बाद से इतना क्षुब्ध हुआ कि उसने आचार्य से बदला लेने के लिए अभिचार-क्रिया की। कुछ ही दिनों में आचार्य भगन्दर रोग से पीड़ित हो गये। धीरे-धीरे रोग बढ़ता गया। शिष्य-मंडली चिंतित हो उठी। शिष्यों ने चिकित्सा के लिए आचार्य से प्रार्थना की। उन्होंने अस्वीकार कर दिया। बाद में असह्य पीड़ा होने पर चिकित्सा के लिए स्वीकृति दी।

चिकित्सा होने पर भी पीड़ा का उपशम नहीं हो रहा था। यह सब देखकर पद्मपाद उद्विग्न हो उठा। उसे नृसिंहदेव की सिद्धि थी। उसने नृसिंहदेव का आवाहन किया। नृसिंहदेव ने आकर कहा—"इसकी जानकारी अश्विनी कुमार दे सकते हैं।"

पद्मपाद के स्वप्न में आकर अश्विनी कुमार ने कहा—"यह रोग स्वतः नहीं हुआ है। किसी की अभिचार क्रिया के कारण हुआ है। बदले में अभिचार करना होगा, वर्ना यह ठीक नहीं होगा।"

इस सूचना से पद्मपाद क्रोध से अधीर हो उठे। गुरुदेव से कहने पर कोई लाभ नहीं हुआ। शिष्यों को इस बात का भय था कि आचार्यजी के बत्तीसवें वर्ष में मारकेश-योग है। फलतः उनके मना करने पर भी पद्मपाद ने प्रत्याभिचार किया। सभी शिष्यों ने इसका समर्थन किया।

दोनों ओर से मंत्र-शक्ति का संग्राम होने लगा। अन्त में पद्मपाद विजयी हुआ। तीन दिन के भीतर अभिनव गुप्त भगन्दर से पीड़ित हुआ और क्रमशः उसका रोग बढ़ता गया। इधर आचार्यजी स्वस्थ होने लगे। इस घटना के कारण कामाख्यावासी भयभीत हो उठे। अधिकांश लोगों ने उनका लोहा मान लिया।

* * *

असम से विजय प्राप्त कर आचार्यजी गौड़ देश में आये। एक दिन यहाँ अकेले चुपचाप बैठे थे। सहसा उनकी दृष्टि एक स्थान पर पड़ी जहाँ तेज प्रकाश हुआ था। उन्होंने देखा कि उस प्रकाश के भीतर से एक योगी का आविर्भाव हुआ। वह योगी इनकी ओर आ रहा है। मुंडित मस्तक, गले में रुद्राक्ष की माता, गैरिक वस्त्र और आकृति से अपूर्व ज्योति प्रस्फुटित हो रही है। आखिर यह विभूति कौन है?

क्षण भर के लिए आचार्य ध्यानस्थ हुए। तुरन्त उनकी अतीन्द्रिय-शक्ति ने सूचित किया कि आगन्तुक महापुरुष दीक्षा गुरु गोविन्दपाद के गुरु यानी मेरे दादा गुरु हैं—भगवान् गौड़पादाचार्यजी।

इस ज्ञान को प्राप्त करते ही आचार्य तीव्र गति से उठे और उनके चरणों के निकट साष्टांग प्रणाम करने के बाद उन्हें यथोचित आसन पर बैठाया और स्वयं उनके चरणों के समीप बैठ गये।

कुछ दूरी पर शिष्य-मंडली बैठी थी। सभी अपने गुरुदेव के क्रिया-कलाप देख रहे थे। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि गुरुदेव के कोई आराध्यदेव आये हैं। सभी पास आये । दोनों गुरुओं को साष्टांग प्रणाम कर सभी दूर खड़े हो गये।

दादा गुरु के चरणों को स्पर्श करते हुए शंकरजी ने कहा—"आपके आशीर्वाद से मुझे सब कुछ प्राप्त हो गया है। जिसके ऊपर आपकी कृपा रहेगी, उसे कोई अभाव रह सकता है?"

कुछ देर मौन रहने के बाद गौड़पादाचार्य ने कहा—"तुम्हारा कार्य संतोषजनक

है। अब तुम्हारा कार्य समाप्त हो गया है। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ रहेगा।''

इतना कहने के बाद वे अन्तर्धान हो गये। एक ज्योति शून्य में विलीन हो गयी!

कुछ दिनों बाद शिष्यों के अनुरोध पर आचार्य एक बार हिमालय की ओर आये। नेपाल से बदरीनाथ और तब केदारनाथ दर्शन करने गये। केदारनाथ की स्तुति में एक सुललित स्तव की रचना की।

इसके बाद ही उनमें परिवर्तन होने लगा। उन्होंने स्वत: अनुभव किया कि अब उनका कार्यकाल समाप्त हो रहा है। भारत में व्यापक रूप से अद्वैतवाद का प्रचार हो गया है। वेद-विरोधी नागरिक अब वेद के प्रति आस्थावान हो गये हैं।

एक दिन शिष्यों को उपदेश देते हुए आचार्य ने कहा—''वत्स गण, इस शरीर का कार्य समाप्त हो गया है। शेष कार्य अब तुम लोगों को सम्पन्न करना है। अगर कोई शंका हो तो प्रकट कर सकते हो।''

आचार्य के कथन से सभी शिष्य हतप्रभ रह गये। गुरुदेव अब तक हम शिष्यों को माता-पिता, भाई और सखा की तरह स्नेह देते रहे। हमने कभी कोई कष्ट अनुभव नहीं किया। आज ये हमसे बिछुड़ना चाहते हैं।

आँखों में आँसू भरकर पद्मपाद ने कहा—''प्रभो, आपके आशीर्वाद से हमारे लिए कुछ भी अज्ञात नहीं है। अब हमें भविष्य में क्या करना होगा, इसकी आज्ञा दीजिए।''

आचार्य ने कहा—''वत्स, तुम लोग अर्थात् मेरा मतलब—पद्मपाद, हस्तामलक, सुरेश्वर और तोटक तुम चारों भारत के चार प्रान्तों में, जहाँ विष्णु के धाम हैं, चार मठों की स्थापना करो। द्वारिका में विश्वरूप सुरेश्वर, पुरी में पद्मपाद, ज्योतिर्धाम में तोटक और शृंगेरी में हस्तामलक आचार्य पद पर विराजमान होकर भारत के निवासियों को उपदेश देते रहेंगे। द्वारिका स्थित मठ का शारदा मठ, पुरीधाम का गोवर्द्धन, ज्योतिर्धाम का ज्योतिर्मठ और रामेश्वर मठ का नाम शृंगेरी मठ होगा।[1] द्वारिका मठ के अधीन तीर्थ और आश्रम सम्प्रदाय वाले होंगे। इसी प्रकार गोवर्द्धन मठ के अधीन वन और अरण्य सम्प्रदाय, ज्योतिर्मठ के अधीन गिरि, पर्वत और सागर सम्प्रदाय और शृंगेरी मठ के अधीन सरस्वती, भारती और पुरी सम्प्रदाय वाले होंगे। शारदा मठ में सामवेद, गोवर्द्धन में ऋग्वेद, ज्योतिर्मठ में अथर्ववेद, शृंगेरी मठ में यजुर्वेद की प्रधानता रहेगी। इन चारों के लिए तत्त्वमसि, प्रज्ञानं ब्रह्म, अयमात्मा और अहं ब्रह्मास्मि यही चार वाक्य चारों मठों के लिए उपयोगी होगा। जो लोग ब्रह्मचारी-जीवन व्यतीत करना चाहेंगे, उनके लिए शारदामठ स्वरूप, गोवर्द्धन मठ प्रकाश, ज्योतिर्मठ, आनन्द और शृंगेरी मठ चैतन्य की उपाधि प्रदान करेगा।''

इतना कहने के पश्चात् आचार्य ने कहा—''आशा है, तुम सब भविष्य के कार्यक्रमों को समझ गये होगे?''

---

[1] यह मठ मैसूर जिले में तुंगभद्रा नदी के किनारे है।

शिष्यों ने कहा—''जी हाँ, गुरुदेव।''

यह बात सुनते ही आचार्यजी मौन हो गये। अपने दीक्षा-गुरु गोविन्दपाद के महाप्रयाण के समय वे जिन श्लोकों का पाठ करते रहे, इस समय उसी की आवृत्ति करने लगे। थोड़ी देर बाद उनकी प्राण-वायु लीन हो गयी।

आचार्यजी के निधन-स्थान के बारे में कई मत हैं। इनमें आचार्य माधव की राय को प्रामाणिक माना गया है। कुछ लोग शृंगेरी मठ में शारदा देवी के सामने मानते हैं और कहते हैं कि वहीं समाधि दी गयी है। वहाँ पत्थरों से बना एक भवन है। दूसरी राय यह है कि मलावार स्थित त्रिचूर के परशुराम मंदिर के विग्रह में वे प्रवेश कर गये थे। तीसरा मत यह है कि कामाख्या देवी के सामने उन्होंने अपना शरीर छोड़ा था। वहीं उन्हें समाधि दी गयी थी। अन्तिम राय यह है कि बम्बई के समीप उनका शरीरान्त हुआ था।

◆

संत एकनाथ

अपने घर में संत एकनाथ कुछ मित्रों को लेकर कीर्तन कर रहे थे। अचानक उन्हें लगा जैसे कमरे में बाहर धम् से आवाज हुई। वे कोठरी के बाहर आये। कीर्तन रुक गया। एक आदमी रोशनी लेकर बाहर आया तो देखा गया कि घर की दीवार के पास कोई आदमी जमीन पर से उठने का प्रयत्न कर रहा है। लोगों को संदेह हुआ कि शायद चोरी करने आया था और गिर पड़ा है।

एकनाथ ने पास जाकर सहारा देते हुए उठाया और तब कहा—''अरे, यह तो बेहोश हो गया है।''

बरामदे में लाकर उसके मुँह पर पानी छिड़कने और हवा करने पर उसे होश आया। एकनाथ ने पूछा—''तुम कौन हो? कहाँ रहते हो?''

उस व्यक्ति ने कहा—''मुझे बहुत भूख लगी है। पहले कुछ खिलाइये तब मैं सारी बातें बताऊँगा।''

एकनाथ ने अपनी पत्नी से कहा—''प्रसाद के लिए जो खीर बनायी हो, जरा लेती आओ।''

एकनाथ ने अपने हाथ से उस व्यक्ति को खीर खिलायी। थोड़ा स्वस्थ होने पर उस व्यक्ति ने कहा—''मैं वास्तव में चोर हूँ। मुझे सजा हो गयी थी। इधर कुछ दिनों से मुझे ठीक से भोजन नहीं दिया जा रहा था। यह शीघ्र मर जायेगा, समझकर आज मुझे जेल से निकाल दिया गया। आपके यहाँ गाने-बजाने की आवाज सुनकर भोजन माँगने आया तो कमजोरी के कारण गिर पड़ा।''

एकनाथ ने कहा—''कोई बात नहीं। अब तुम आराम करो। मैं तुम्हारे लिए वैद्यजी के यहाँ से दवा लाता हूँ।''

दूसरे दिन एकनाथ जेलखाने के अधिकारी से मिले। सारी बातें सुनने के बाद जेलर ने कहा—''आप संत हैं। आपकी बात निराली है। लेकिन एक चोर के प्रति हमदर्दी अच्छी बात नहीं। जेल अधिकारियों की बदनामी न हो, इसलिए सजा पूरी करने के पहले मैंने छोड़ दिया। अब वह आजाद है।''

वहाँ से वापस आने के बाद एकनाथ ने चोर से कहा—''उद्धव, अगर तुम सामान्य ढंग से जीवन व्यतीत कर सको तो तुम्हें मेरे यहाँ स्थान मिल जायगा। दिन में घर का काम करना और शाम को भजन।''

अंधे को क्या चाहिए, दो आँखें। चोर को भला कौन आश्रय देता? संत एकनाथ

का यह व्यवहार मित्रों को पसन्द नहीं आया। वे उद्धव के रखने का विरोध करने लगे। एकनाथ ने कहा—''कुसंगति में पड़कर इसने अपराध किया। अब मेरे साथ रहकर न सुधरा तो उसका भाग्य।''

कुछ दिन बाद लोगों ने देखा कि उद्धव पूर्ण रूप से साधु-प्रकृति हो गया है। चन्दन-वृक्ष के आसपास स्थित वृक्ष भी सुगंधित हो जाते हैं।

एक अर्से से नित्य शाम को एकनाथ के घर कीर्तन होता था। पड़ोसियों के अलावा अन्य लोग भी इस आयोजन में भाग लेते थे। इनमें रण्या नामक एक व्यक्ति था। कभी किसी सामाजिक अपराध के कारण पति-पत्नी दोनों जातिच्युत कर दिये गये थे।

इन्हें अपने को जातिच्युत होने का बड़ा कष्ट था। एक दिन एकनाथ ने कहा—''प्रभु के दरबार में सब एक हैं। न कोई छोटा और न कोई बड़ा है। न कोई नीच है और न ऊँच। यह सब प्रपंच हमारे द्वारा निर्मित हैं।''

रण्या पर इस प्रवचन का बड़ा प्रभाव पड़ा। उसने सोचा—जब संतजी के ये विचार हैं तब वे हमारा आमंत्रण अवश्य स्वीकार करेंगे। इस विश्वास के साथ एक दिन एकनाथ के यहाँ कीर्तन के समय उसने अपनी इच्छा प्रकट की। संत एकनाथ ने तुरन्त उसके आमंत्रण को स्वीकार कर लिया। कीर्तन में आये लोगों की जबानी यह बात चारों ओर फैल गयी।

संत एकनाथ की प्रसिद्धि से स्थानीय कट्टरपंथी लोग चिढ़ते थे। इस समाचार से उन्हें प्रसन्नता हुई। वे रण्या और एकनाथ के मकान पर नजर रखने लगे ताकि रँगे हाथ पकड़ा जाय और उन्हें भी जातिच्युत कर दिया जाय।

लेकिन वही बात हुई—'मेरे मन कुछ है और कर्त्ता के मन कुछ और।' कट्टरपन्थियों ने देखा कि उस दिन एकनाथ अपने घर से नहीं निकले, बल्कि अपने घर पर ही भोजन करते रहे। उधर रण्या के घर पहरा देनेवालों ने देखा कि पता नहीं किधर से एकनाथ आ गये और उसके यहाँ भोजन कर रहे हैं। दोनों स्थानों पर एकनाथ एक ही समय पर भोजन कर रहे थे।

बाद में जब एकनाथ से किसी ने पूछा—''यह चमत्कार कैसे हुआ?''

एकनाथ ने कहा—''यह भगवान् पांडुरंग की कृपा से हुआ। यदि हम ईश्वर के ऊपर अपना भार छोड़ दें तो वह कठिनाइयों में अवश्य सहारा देगा। वह अपने भक्तों की सेवा उसी प्रकार करता है जिस प्रकार कृष्ण ने सारथी बनकर अर्जुन की सेवा की थी।''

* * *

दक्षिण भारत में पंढरपुर की गणना महान् तीर्थस्थलों में की जाती है। विठोवा विग्रह को लोग साक्षात् भगवान् मानते हैं। संत ज्ञानेश्वर, नामदेव, तुकाराम आदि संत विठोवा के उपासक थे। दक्षिण के विजयनगर के राजा वीर नरसिंह का सौतेला भाई

कृष्णराय जब अपने भाई के निधन के पश्चात् राजा बना तब वह दक्षिण के छोटे-छोटे राज्यों से ही नहीं, बल्कि महमूद द्वितीय की सेना से भी लड़ता रहा। स्वभाव से कट्टर धार्मिक होने के कारण उसने अपनी राजधानी में अनेक मंदिर और गोपुरम् बनवाये। लेकिन दो कार्य उसने अपनी राजधानी में अनेक मंदिर और गोपुरम बनवाये। लेकिन दो कार्य उसने गलत किये। उदयगिरि से बालकृष्ण तथा पंढरपुर से विठोवा की मूर्ति उठाकर विजय नगर ले गया।

पंढरपुर से विठोवा की मूर्ति चले जाने के कारण वहाँ के नागरिक क्षुब्ध हो उठे। परम भागवत भानुदास को कृष्णराय का यह अनाचार सहन नहीं हुआ। उन्होंने प्रतिज्ञा की कि वे अपने आराध्य विठोवा को पंढरपुर लायेंगे। प्राणों की बाजी लगाकर एक दिन वे विठोवा को ले आये। इस प्रकार वे इतिहास में अमर हो गये।

भानुदास के पुत्र चक्रपाणि अपने युग के प्रकाण्ड विद्वान् एवं संत थे। चक्रपाणि के पौत्र संत एकनाथ का जन्म सन् १५३३ ई० के मूल नक्षत्र में हुआ था। मूल नक्षत्र में जन्म लेनेवाली संतान माता-पिता के लिए घातक होती है। एकनाथ के जन्म लेने के कुछ ही दिनों के भीतर उसके माँ-बाप की मृत्यु हो गयी। फलस्वरूप चक्रपाणि को अपने पौत्र का पालन-पोषण करने के लिए विवश होना पड़ा।

वंश में सभी विद्वान् थे जिसका प्रभाव एकनाथ पर पड़ा। धार्मिक कथाओं में रुचि, पूजन, मंदिर-दर्शन, हरि-कीर्तन में एकनाथ बराबर भाग लेते थे। स्मरण-शक्ति तीव्र होने के कारण शिक्षा में प्रगति करते गये।

कहा जाता है कि एकनाथ जब बारह वर्ष के हुए तब एक दिन उन्हें शिव-मंदिर में देववाणी सुनाई दी—''तुम देवगढ़ चले जाओ। तुम्हारे भावी गुरु जनार्दन स्वामी वहीं रहते हैं। वे तुम्हें दीक्षा देंगे।''

इस देववाणी को सुनते ही वे एक दिन चुपचाप देवगढ़ के लिए रवाना हो गये। पंढरपुर से देवगढ़ (दौलताबाद) लगभग ६३ मील दूर था। उन्होंने पैदल तय किया।

जनार्दन स्वामी के पास जाकर एकनाथ ने साष्टांग प्रणाम करने के बाद अपने आने का उद्देश्य बताया। एकनाथ की इच्छा सुनकर जनार्दन स्वामी बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने शिष्य के रूप में उसे अपना लिया। जनार्दन स्वामी मुसलमान शासकों की ओर से वहाँ के किले के अधिकारी थे। प्रत्येक गुरुवार को उन्हें शासन की ओर से अवकाश दिया जाता था। उस दिन जनार्दन स्वामी दत्तात्रेय भगवान् की आराधना करते थे।

एकनाथ अपने गुरु की सेवा में लगभग छह वर्ष तक रहे। पानी लाना, गुरु को स्नान कराना, भोजन के पश्चात् पैर दबाना आदि सेवा-कार्य अत्यन्त लगन से करते रहे। उसके कार्यों से प्रसन्न होकर जनार्दन स्वामी ने उसे किले का हिसाब-किताब रखने की जिम्मेदारी दे दी।

एक बार हिसाब करते समय एकनाथ काफी परेशान हुए। रोकड़ लिखने में कहाँ

भूल हुई है, पता नहीं चल रहा था। आधी रात के बाद जब उन्हें अपनी गलती मालूम हुई तब प्रसन्न होकर वे तालियाँ बजाने लगे।

जनार्दन स्वामी की नींद खुल गयी। ताली बजाने का कारण जान लेने के बाद उन्होंने कहा—''जिस तन्मयता के साथ तुमने सामान्य रकम के लिए श्रम किया, अगर तुम इसी तन्मयता के साथ ईश्वर की आराधना करो तो उनका दर्शन सहज ही प्राप्त कर लोगे।''

गुरु के इस आशीर्वाद को पाकर एकनाथ आत्मविभोर हो गये। जनार्दन स्वामी एकनाथ की भक्ति और सेवा से प्रसन्न होकर एक दिन उसे अपने साथ लेकर देवगिरि के जंगल में स्थित पहाड़ की चोटी पर ले गये जहाँ एक सुन्दर झील थी। यहाँ आकर स्वामी जनार्दन ने कहा—''अब तुम यहीं बैठकर तपस्या करो। यह याद रखना कि यहाँ भगवान् दत्तात्रेय बराबर भिन्न-भिन्न रूप में आते हैं। यदि वे भयानक रूप में भी प्रकट हों तो भयभीत मत होना। उनकी स्तुति करना।''

ठीक उसी समय एक साधु एक कुतिया को लेकर आया। साधु कोई खाल लपेटे हुए था। उन्होंने जनार्दन स्वामी को एक बरतन देकर कुतिया का दूध दूहने की आज्ञा दी। दूध दुह जाने पर उसमें कुछ रोटी के टुकड़े डालकर, उसे तीनों व्यक्ति खाने लगे। भोजन के पश्चात् एकनाथ को बरतन साफ करने का आदेश मिला। जब वह झील से वापस आया तो देखा—भगवान् दत्तात्रेय अपने असली स्वरूप में खड़े हैं।

एकनाथ ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। उसे आशीर्वाद देकर वे अन्तर्धान हो गये। देवगिरि के पास ही सुलभा पर्वत है जिसे शूल भंजन कहा जाता है। कभी मार्कण्डेय ऋषि यहाँ तपस्या करते थे। इस पर्वत पर सूर्यकुण्ड है। नित्य सूर्यकुण्ड में स्नान करने के पश्चात् दीक्षा गुरु जनार्दन स्वामी द्वारा बताये मंत्र का जाप एकनाथ करते थे। कहा जाता है कि अक्सर कोई साँप आकर उनके शरीर से लिपट जाता था। यहीं उन्हें श्रीकृष्ण भगवान् के दर्शन हुए।

अपनी तपस्या समाप्त कर एकनाथ पुनः गुरु के पास वापस आ गये और इस बीच जितनी घटनाएँ हुई थीं, उनका विस्तार से वर्णन किया। सारी बातें सुनने के पश्चात् गुरु ने कहा-''अब तुम भारत के तीर्थों का दर्शन करो और भगवान् दत्तात्रेय के धर्म का प्रचार करो।''

गुरु से आज्ञा पाकर वे तीर्थयात्रा के उद्देश्य से रवाना हो गये। नासिक, काशी, मथुरा होते हुए उत्तर की ओर चले गये। वहाँ अनेक संतों के सत्संग का लाभ उन्होंने उठाया। संतों की एक टोली के साथ वे पुनः वापस प्रयाग आये। उन्होंने देखा कि सभी संत काँवरों में जल लेकर रामेश्वर-यात्रा के लिए जानेवाले हैं। एकनाथ ने सोचा कि इन संतों के साथ रामेश्वर-यात्रा का लाभ उठाना चाहिए। काँवर में जल लेकर वे संतों के साथ रामेश्वर की ओर रवाना हो गये।

मार्ग में रेगिस्तान आया। दोपहर का वक्त था। गर्मी का मौसम । ऊपर सूर्य और नीचे धरती तप रही थी। इसी मरुभूमि में एक गधा प्यास से छटपटा रहा था। तीर्थयात्रियों

का दल वहाँ पहुँचा। सभी लोगों की आँखों में करुणा के भाव आये, पर किसी ने दया नहीं की। आसपास कोई जलाशय भी नहीं था। काँवरी का जल तो रामेश्वर के अर्घ्य के लिए है। एक-एक कर यात्री आगे बढ़ते गये।

एकाएक संतों ने पीछे मुड़कर एक अद्‌भुत दृश्य देखा—एकनाथ प्यासे गधे के पास बैठकर कलश का जल उसके मुँह पर उड़ेल रहे थे।

एक संत ने कहा—''एकनाथ, यह क्या ? यह पवित्र जल इतनी दूर से देवाधिदेव रामेश्वरजी के लिए ले आ रहे हो और उसका यह उपयोग?''

एकनाथ ने कहा—''यह पशु भी तो उन्हीं का अंश है। यह गधा कहाँ है? साक्षात् रामेश्वर मुझसे पानी माँग रहे हैं। मैं उनका अभिषेक कर रहा हूँ।''

संतों ने कहा—''अत्यधिक गर्मी के कारण एकनाथ का मस्तिष्क विकृत हो गया है।''

सभी लोग एकनाथ को वहीं छोड़कर आगे बढ़ गये। थोड़ी ही देर बाद एकनाथ ने देखा—साक्षात् भगवान् उनके सामने प्रकट होकर आशीर्वाद दे रहे हैं।

यहाँ से द्वारिका आदि स्थानों की यात्रा करने के बाद वे पैठण चले आये। पैठण आकर वे सीधे अपने घर न जाकर एक मंदिर में ठहर गये। अब तक सिर पर जटा, लम्बी दाढ़ी और पहनावा साधुओं की तरह हो गया था। उनके इस रंगरूप को देखकर लोग उन्हें पहचान नहीं सके।

नित्य शाम को एकनाथ भागवत-कथा पाठ करते थे। ज्ञातव्य है कि संत एकनाथ ने मराठी में चतुश्लोकी भागवत पर टीका लिखी है। भागवत पुराण के ग्यारहवें स्कन्द का भी उन्होंने मराठी में अनुवाद किया था। इसके अलावा 'भावार्थ रामायण' एवं 'रुक्मिणी स्वयंवर' लिखा था। संत ज्ञानेश्वर की अमर कृति 'ज्ञानेश्वरी' की प्रामाणिक प्रतिलिपि प्रकाशित कराई थी।

एक दिन एकनाथ के कुल पुरोहित मंदिर-दर्शन करने आये तो उन्हें इस साधु पर शंका हुई। वे बिना कुछ प्रश्न किये तुरन्त एकनाथ के घर गये। उन्होंने एकनाथ के दादा चक्रपाणि से कहा—''काकाजी, आपका एकनाथ आ गया है। शिव-मंदिर में जो बाबा नित्य भागवत-कथा कहता है, वही है। मेरी इच्छा है कि आप मेरे साथ चलें। हम दोनों को एक साथ देखकर वह चौंक उठेगा।''

चक्रपाणिजी हर्ष से उछल पड़े। उन्होंने पूछा—''बाबा ही चक्रपाणि हैं, यह कैसे मालूम हुआ?''

कुल पुरोहित ने कहा—''तीर्थयात्रा के सिलसिले में एक बार मैं दौलताबाद गया था। स्वामी जनार्दन के यहाँ भी उनका दर्शन करने गया। तब पता चला कि एकनाथ को स्वामीजी ने दीक्षा दी है। उन दिनों वहाँ एकनाथ नहीं था। गुरुदेव की आज्ञानुसार तीर्थयात्रा करने निकल गया था। आप मेरे साथ चलिये। अगर वह एकनाथ न हुआ तो हम वापस आ जायेंगे।''

दोनों व्यक्ति शिव-मंदिर आये। इन्हें देखते ही परम्परा के अनुसार एकनाथ ने दोनों आराध्यों के चरण स्पर्श कर प्रणाम किया। इतने दिनों के बाद अपने पौत्र को पाकर चक्रपाणि आनन्द से विह्वल हो उठे। दादा के अनुरोध पर एकनाथ घर आकर रहने लगे। एक दिन दादा ने कहा—"अब विवाह करके घर बसा ले। जीते जी तुझे गृहस्थ के रूप में देख लूँ।"

एकनाथ विवाह के लिए राजी नहीं हुए। जब यह समस्या कुल पुरोहित के सामने आयी तब उन्होंने चक्रपाणि से कहा—"काका, आप बेफिक्र रहिये। मैं इसका प्रबंध करता हूँ।"

दूसरे दिन कुल पुरोहित दौलताबाद की ओर रवाना हो गये। वहाँ जाकर उन्होंने जनार्दन स्वामी से एकनाथ के बारे में सारी बातें सुनायीं। दादा-दादी के दुःख की बातें विस्तार से बतायीं। उन्होंने कहा—"अगर एकनाथ का विवाह नहीं हुआ तो इतने महान् पंडित का घराना चौपट हो जायगा। भानुदास का वंश समाप्त हो जायगा।"

जनार्दन स्वामी ने कहा—"ऐसा नहीं होगा। मैं एकनाथ के नाम पत्र दे रहा हूँ। उसे जाकर दे दीजिएगा। गुरु की आज्ञा मानना शिष्य का धर्म है।"

जनार्दन स्वामी से आज्ञा-पत्र लेकर कुल पुरोहित पैठण वापस आये। जब उस पत्र को एकनाथ के सामने रखा गया तब वे इस आज्ञा का पालन करने के लिए विवश हो गये। इस प्रकार उनका विवाह गिरिजा बाई से हो गया। इस विवाह से दादा-दादी के अलावा स्वयं एकनाथ भी प्रसन्न थे। गिरिजा बाई परिवार के सभी लोगों की सेवा में तत्पर रहती थीं। एक प्रकार से एकनाथ का पूरा परिवार सात्त्विक-जीवन व्यतीत कर रहा था।

वास्तव में एकनाथजी दक्षिण भारत के महान् संत थे। नित्य गोदावरी में स्नान करने के बाद भगवान् का पूजन करते । शाम को घर पर कीर्तन का आयोजन करते और आगत अतिथियों की सेवा करते हुए जीवन व्यतीत करते थे।

कहा जाता है कि एक बार इनके घर कुछ चोर आये थे। उनका विश्वास था कि जब इतना उत्सव करते हैं, अतिथियों को खिलाते हैं तब इनके पास गहरी रकम होगी। रात को घर के बरतनों की चोरी करने के बाद चोरों का समूह पूजा-घर में आया तो देखा कि एकनाथ ध्यानमग्न होकर पूजा कर रहे हैं।

उन्हें इस हालत में देखकर चोर डर गये। तुरन्त पूजा-गृह से बाहर आये तो सभी दृष्टि-हीन हो गये। फलतः इधर-उधर बहककर गिर पड़े। एकनाथ का ध्यान भंग हुआ। वे इन चोरों के पास आये। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि ये लोग चोरी करने आये हैं। उन्होंने कहा—"आप लोग क्यों कष्ट कर रहे हैं? मुझसे कहते तो मैं आपको सारा सामान दे देता। बगल के कमरे में और भी सामग्री है, उसे भी ले जाइये।"

चोरों ने हाथ जोड़ते हुए कहा—"महाराज, हमसे गलती हो गयी, क्षमा करें। हमें कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा है। हमें कुछ नहीं चाहिए। आप कृपा करके हमें दृष्टि-दान दीजिए।"

एकनाथजी समझ गये कि भगवान् ने अपने भक्त की रक्षा के लिए इन्हें यह सजा दी है। उनका हृदय करुणा से भर गया। चोरों की आँखों पर हाथ फेरते ही उन्हें खोयी हुई दृष्टि पुनः प्राप्त हो गयी।

एकनाथ ने कहा—"अब जो इच्छा हो, सब ले जा सकते हो।"

चोरों ने उनके पैर पकड़ते हुए कहा—"अब ऐसी गलती हम नहीं करेंगे। कृपया आप हमें क्षमा कर दें।"

एकनाथ की बढ़ती प्रतिष्ठा से एक मुसलमान काफी चिढ़ गया था। वह इनकी मर्यादा को भंग करने का उपाय सोचता रहा। गोदावरी से स्नान करके ज्योंहीं वे उसके दरवाजे के सामने से गुजरते त्योंही वह कुल्ला करके मुँह का पानी इन पर फेंक देता था। अपवित्र हो जाने के कारण वे पुनः स्नान करने चले जाते। वापस आते ही वह पुनः वही हरकत करता था। एक दिन उसने १०८ बार बदमाशी की। अन्त में हारकर उसने क्षमा माँग ली।

इस प्रकार की अनेक घटनाएँ उनके जीवन में हुईं जब उन्होंने अपनी सदाशयता के कारण उन अपराधियों को क्षमा कर दिया। एक बार वे संत ज्ञानेश्वर की समाधि (जो कि पूना नगर से १२ मील दूर है।) का दर्शन करने गये। मार्ग में संत ज्ञानेश्वर ने उन्हें स्वप्न में आदेश दिया कि उनकी समाधि पर जो लताएँ लिपट गयी हैं, उन्हें हटा दें।

* * *

एकनाथजी के दादा-दादी का देहान्त हो गया था। पितृ पुरुषों के उद्देश्य से उन्होंने श्राद्ध का आयोजन किया। निश्चित दिन ब्राह्मण-भोजन था। पैठण के ब्राह्मण बड़े कट्टर थे।

भोजन बन जाने के बाद सहसा उसी समय एकनाथ के दरवाजे के समीप से कुछ हरिजन गुजरते हुए आपस में कहने लगे—"आज संतजी के यहाँ बड़ा सुस्वादु भोजन बन रहा है। लोग बड़े चाव से खायेंगे। कितनी बढ़िया सुगंध है।"

दूसरे ने कहा—"सुगंध से पेट भर ले। ऐसा भोजन हम लोगों के भाग्य में कहाँ है?"

बाहर एकनाथजी ने इस बातचीत को सुनकर कहा—"तुम लोग ठहरो। मैं यह भोजन तुम लोगों को खिलाऊँगा। एक काम करो। मैं जबतक प्रबंध कर रहा हूँ तब तक तुम लोग अपने-अपने घर से बाल-गोपाल और पत्नियों को ले आओ।"

कुछ ही देर बाद एकनाथजी के दरवाजे पर हरिजनों की भीड़ लग गयी। भोजन से तृप्त होने के बाद सभी एकनाथ की जय-जयकार करते हुए चले गये। उद्धव के सहयोग से घर की सारी सफाई करने के बाद पुनः ब्राह्मण-भोजन के लिए पकवान बनाये गये।

निश्चित समय पर जब ब्राह्मण लोग आये तब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि ब्राह्मण-

भोजन के पहले ही एकनाथ ने हरिजन-भोजन कराया है। इस समाचार को सुनते ही सभी भयंकर रूप से क्षुब्ध हो उठे। एक प्रकार से यह उनका घोर अपमान था।

ब्राह्मणों को क्षुब्ध होते देख एकनाथ ने हाथ जोड़ते हुए कहा—"यह ठीक है कि मैंने हरिजनों को खिलाया है। पकवान की गंध से वे लालायित हो उठे थे, पर मैंने पुनः नये सिरे से सारी सफाई करके आप लोगों के लिए भोजन बनवाया है। अपवित्रता कहीं नहीं है।"

पंडितों ने कहा—"यह कहते तुम्हें लज्जा नहीं आ रही है। पितृ पुरुषों के श्राद्ध में ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता है या अस्पृश्य शूद्रों को? जिस घर में हरिजन खा चुके हैं, उस घर के उच्छिष्ट स्थान पर हम भोजन करेंगे? शूद्रों के भोजन से तुम्हारा निवास ही नहीं, बल्कि तुम्हारा सारा परिवार अपवित्र हो गया। जब से तुम यहाँ आये हो, केवल अनाचार फैला रहे हो। अब भविष्य में कोई भी ब्राह्मण तुम्हें स्पर्श तक नहीं करेगा।"

काफी अनुनय-विनय करने पर भी ब्राह्मणों का हृदय नहीं पसीजा। एकनाथ को संत ज्ञानदेव के जीवन की घटना याद आ गयी। इसी प्रकार की घटना उनके जीवन में हुई थी। कट्टरपंथी ब्राह्मणों ने उनके यज्ञोपवीत में बाधा डाली थी।

ब्राह्मणों के इस व्यवहार से दुःखी होकर वे अपने कमरे में आये। पत्नी ने पूछा—"अब क्या होगा?"

एकनाथ ने कहा—"प्रभु की यही इच्छा थी। चिन्ता मत करो। सारी सामग्री ले आओ। श्राद्ध की समस्त क्रियाएँ करूँगा। आगे ग्रहण करना या न करना सब कुछ भगवान् विठोवा पर निर्भर करता है।"

तीन पीढ़ियों के लिए तीन आसन, तीन थालियाँ आदि रख गये। एकनाथ ने भगवान् को स्मरण करते हुए अपने पितृ पूर्वजों का आह्वान किया। इस आयोजन में ब्राह्मण नहीं आये थे, परन्तु परिवार के लोगों के अलावा पड़ोसी उपस्थित थे। श्राद्ध-क्रिया समाप्त होने के बाद शेष लोगों को भोजन परोसा गया।

ठीक उसी समय उपस्थित सभी लोगों ने देखा कि प्रथम थाली पर प्रपितामह भानुदास, द्वितीय थाली पर पितामह चक्रपाणि और तृतीय थाली पर पिता सूर्यनारायण श्राद्ध-अन्न ग्रहण कर रहे हैं। यह एक ऐसी घटना थी जिसकी कोई कल्पना नहीं कर सका था। बातों-बातों में इस घटना का प्रचार तेजी से हुआ। कट्टर ब्राह्मण-मंडली पर जैसे वज्रपात हुआ। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि एकनाथ वास्तव में उच्चकोटि के संत हैं। अन्यथा ऐसा चमत्कार कैसे होता। वे अपने व्यवहार पर लज्जित हो उठे। सभी लोग एकनाथ के निकट आकर क्षमा माँगने लगे और यह प्रतिज्ञा की कि भविष्य में कभी वे एकनाथ के साथ दुर्व्यवहार नहीं करेंगे।

एकनाथ ने सबसे बड़ा कार्य किया—भागवत धर्म का प्रचार और तत्कालीन समाज-सुधार। भजन-कीर्तन करना उनके कर्त्तव्य के अंग थे। कुछ दिनों के बाद एकनाथ ने स्वतः अनुभव किया कि अब उनके महाप्रयाण करने का समय आ गया है।

एक दिन उन्होंने संत ज्ञानेश्वर की तरह भविष्यवाणी की कि फाल्गुन कृष्ण षष्ठि को वे महाप्रयाण करेंगे। अपने भक्तों तथा शिष्यों के साथ वे गोदावरी तट पर आये। मार्ग में गुरु-प्रदत्त मंत्र का जाप करते रहे। नदी किनारे आकर उन्होंने लोगों को उपदेश देना प्रारंभ किया। उनका अंतिम संदेश था—''कलियुग में भगवान् नाम के अलावा मोक्ष प्राप्त करने का अन्य कोई साधन नहीं है। अगर तुम्हें अन्तकाल में मोक्ष चाहिए तो नित्य जपते रहना।''

इसके बाद उनका शरीर गोदावरी तट स्थित लक्ष्मीतीर्थ में विलीन हो गया।

◆

भारत के महान योगी

विश्वनाथ मुखर्जी

बारह भाग, ६ जिल्द में, प्रत्येक सौ रुपये

भारत योगियों, संतों, साधकों और महात्माओं का देश है। देश के सभी भागों में अनेक योगी तथा संत हुए हैं जिन्होंने देश की चिन्तनधारा और जीवन को प्रभावित किया है। अपने चमत्कारी जीवन से जनमानस को चमत्कृत भी किया है। ऐसे योगियों का जीवन-चरित बारह भागों (६ जिल्द) में प्रस्तुत किया गया है।

भाग : १-२

तंत्राचार्य सर्वानन्द, लोकनाथ ब्रह्मचारी, प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी, वामा खेपा, परमहंस परमानन्द, संत ज्ञानेश्वर, संत नामदेव, संत रविदास, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी ब्रह्मानन्द, स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस।

भाग : ३-४

योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी, महर्षि रमण, भूपेन्द्रनाथ सान्याल, योगी वरदाचरण, नारायण स्वामी, बाबा कीनाराम, तैलंग स्वामी, परमहंस रामकृष्ण ठाकुर, जगद्गुरु शंकराचार्य, सन्त एकनाथ।

भाग : ५-६

स्वामी रामानुजाचार्य, रामदास काठिया बाबा, राम ठाकुर, साधक रामप्रसाद, भूपतिनाथ मुखोपाध्याय, स्वामी भास्करानन्द, स्वामी सदानन्द सरस्वती, पवहारी बाबा, हरिहर बाबा, साईं बाबा, रणछोड़दास महाराज, अवधूत माधव पागला।

भाग : ७-८

किरणचन्द्र दरवेश, स्वामी अद्भुतानन्द (लाटू महाराज), भोलानन्द गिरि, तंत्राचार्य शिवचन्द्र विद्यार्णव, महायोगी गोरखनाथ, बालानन्द ब्रह्मचारी, प्रभु जगद्बन्धु, योगिराज गंभीरनाथ, ठाकुर अनुकूलचन्द्र, बाबा सीतारामदास ओंकारनाथ, मोहनानन्द ब्रह्मचारी, कुलदानन्द ब्रह्मचारी, अभयचरणारविन्द भक्तिवेदान्त स्वामी, स्वामी प्रणवानन्द, बाबा लोटादास।

भाग : ९-१०

भक्त नरसी मेहता, सन्त कबीरदास, नरोत्तम ठाकुर, श्रीम, स्वामी प्रेमानन्द तीर्थ, सन्तदास बाबाजी, बिहारी बाबा, स्वामी उमानन्द, पाण्डिचेरी की श्रीमाँ, महानन्द गिरि, अन्नदा ठाकुर, परमहंस योगानन्द गिरि, साधु दुर्गाचरण नाग, निगमानन्द सरस्वती, नीब करौरी के बाबा, परमहंस पं० गणेशनारायण, अवधूत अमृतनाथ, देवराहा बाबा।

भाग : ११-१२

बालानंद ब्रह्मचारी, श्री भगवानदास बाबाजी, हंस बाबा अवधूत, महात्मा सुन्दरनाथजी, मौनी दिगम्बरजी, गोस्वामी श्यामानन्द, फरसी बाबा, भक्त लाला बाबू, श्रीपाद माधवेन्द्रपुरी, नंगा बाबा, तिब्बती बाबा, गोस्वामी लोकनाथ, काष्ठ-जिह्वा स्वामी, रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी, अवधूत नित्यानन्द।

अनुराग प्रकाशन, वाराणसी

मूल्य : एक सौ रुपये

SV
S.N
Sub
Sub.

पाँच-छः

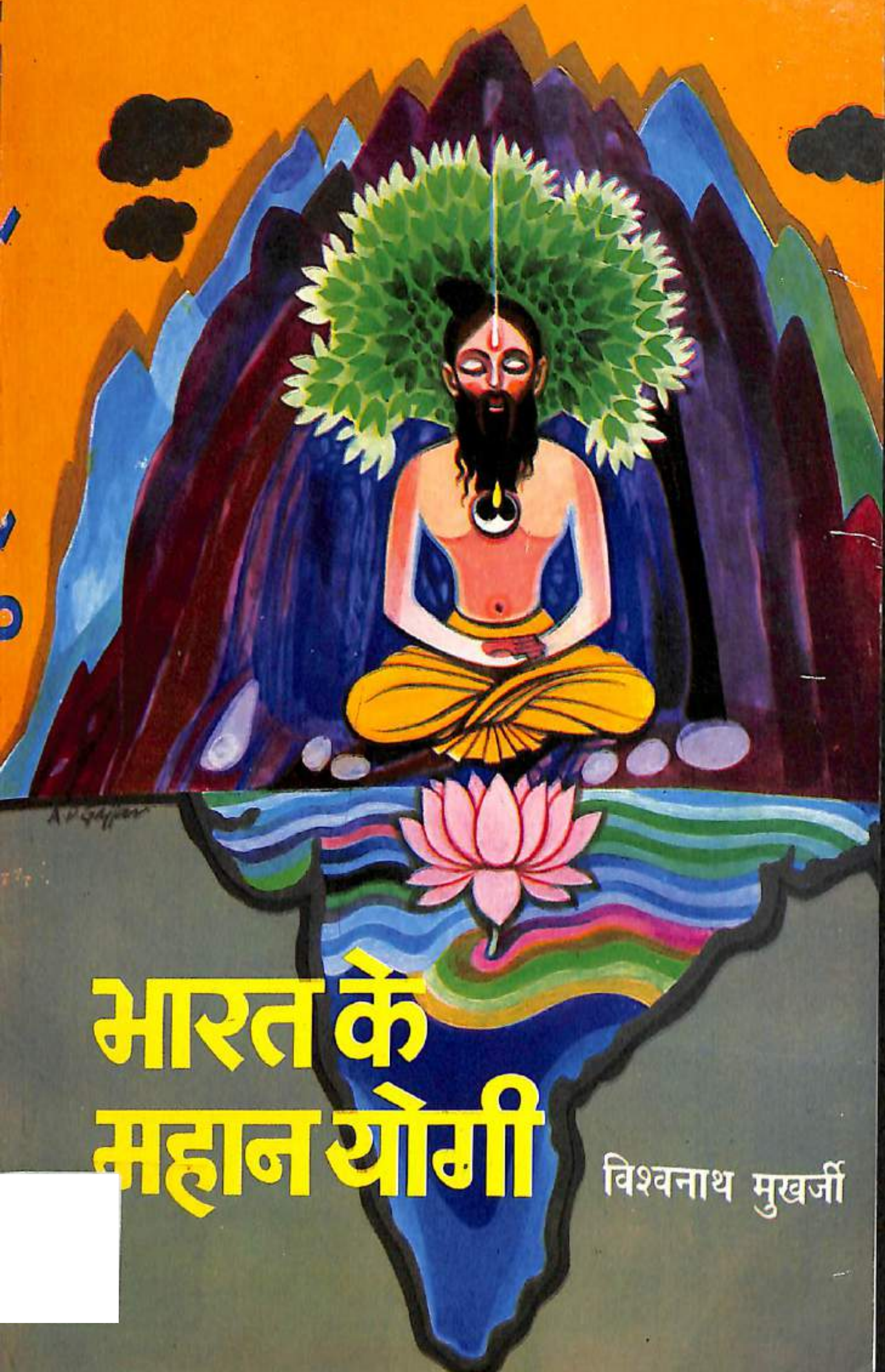

भारत के महान योगी

विश्वनाथ मुखर्जी

भारत के महान् योगी

55-14

पंचम तथा षष्ठ खण्ड

विश्वनाथ मुखर्जी

अनुराग प्रकाशन, वाराणसी

BHARAT KE MAHAN YOGI
(Part 5-6)
by
Vishwanath Mukherjee

ISBN : 81-89498-03-7

चंतुर्थ संस्करण : 2005 ई०

प्रकाशक
अनुराग प्रकाशन
चौक, वाराणसी-221 001
फोन व फैक्स : (0542) 2421472
E-mail : vvp@vsnl.com • sales@vvpbooks.com
Shop at : www.vvpbooks.com

मुद्रक
वाराणसी एलेक्ट्रॉनिक कलर प्रिण्टर्स प्रा० लि०
चौक, वाराणसी-221 001

पुरोवाक्

पिछले खण्ड के पुरोवाक् में तान्त्रिक मर्प और उनके शिष्य योगी मिलरेप का उल्लेख किया गया है। साधना-काल में कितनी कठिन प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है, इसकी जानकारी अपने लेखों में पण्डित गंगाशंकर मिश्र ने दी है।

धर्मशास्त्रों के अध्ययन के लिए मर्प तिब्बत से नेपाल आया तब यहाँ उसे भारतीय पण्डित नरोप के बारे में जानकारी प्राप्त हुई। फुल्लहरि नामक स्थान में आकर मर्प नरोप से मिला। उसे देखते ही नरोप ने कहा—''तुम मेरे ज्ञान-पुत्र हो। तुम्हारे आने की सूचना मुझे मिल चुकी है। तुम्हारा नाम मर्पपति है और तुम तिब्बत से आ रहे हो। मेरी राय यह है कि तुम सबसे पहले विष सरोवर चले जाओ। वहाँ आचार्य कुक्कुरिपा से शिक्षा ग्रहण करो। उनका मुँह बन्दर के मुख के समान है। देखने में भयंकर लगते हैं। नाना प्रकार के रूप धारण कर सकते हैं। उनके निकट जाकर कहना कि मुझे यहाँ नरोप ने भेजा है।''

मर्प नरोप से पत्र लेकर कुक्कुरिपा के पास आया। यहाँ बहुत दिनों तक शिक्षा प्राप्त करता रहा। सिद्धियाँ प्राप्त करने के बाद वह पुनः नरोप के पास आया। मर्प से सारा विवरण सुनने के बाद नरोप ने उसे महामाया-रहस्य की शिक्षा दी। मर्प ने पूछा—''गुरुदेव, जब आपको महामाया-सम्बन्धी रहस्य का ज्ञान है तब आपने आचार्य कुक्कुरिपा के पास मुझे क्यों भेजा?'' नरोप ने कहा—''कुक्कुरिपा आदि परम्परा के गुरु हैं। वे अनादिकाल से मन्त्र जानते हैं।''

12 वर्ष तक शिक्षा ग्रहण करने के पश्चात् मर्प ने नरोप से वापस जाने की आज्ञा माँगी। नरोप ने कहा—''इस वक्त जाओ, पर एक बार तुम्हें पुनः आना पड़ेगा।

दूसरी बार आकर वह नरोप से छह वर्ष तक शिक्षा ग्रहण करने के बाद वापस चला गया। इस घटना के कई वर्ष बाद पुनः वह भारत आया। उस समय नरोप का देहान्त हो गया था। इस समाचार से वह व्याकुल हो उठा। बात यह थी कि दूसरी बार आकर उसने नरोप से दूसरे शरीर में प्रवेश करने की विधि सीखी और इस विशेष योग-क्रिया का ही उसने अपने ग्रन्थों में अधिक उल्लेख किया है। इससे मनुष्य को पूर्वजन्म का अनुभव होता है। लेकिन अपने शरीर में लौट आने की शक्ति रहती है। इससे अनेक जन्मों का फल एक ही जन्म में पाया जा सकता है। यह विद्या 'काया-प्रवेश' के नाम से प्रसिद्ध है। शंकराचार्य ने इस विद्या का प्रयोग किया था।

लगातार आठ महीने तक खोज करने के बाद मर्प की मुलाकात नरोप से हुई। वे अन्य शरीर में प्रवेश कर गये थे। इस विद्या का शेष ज्ञान उन्होंने मर्प को दिया था। इसी मर्प का शिष्य योगी मिलरेप था। सिद्धि प्राप्त करने के लिए कितना कष्ट सहना पड़ता है, इसका विवरण निम्नलिखित उद्धरण से स्पष्ट हो जायगा—

इस विद्या को सीखने के लिए कठोर अभ्यास करना पड़ता है। इसके लिए एकान्तवास आवश्यक है। जिन स्थानों में योगी रहते हैं, उसे 'सम्स' कहा जाता है। इनके कई प्रकार होते हैं। अभ्यास साधारण से उत्तरोत्तर कठोर होते जाते हैं। इसके लिए पहले कोई लामा अपने को एक कोठरी में बन्द रखना है। निश्चित समय पर कुछ देर के लिए बाहर निकलता है। धीरे-धीरे इसमें कमी करता है और इने-गिने लोगों से मिलता है। अगर कोई मिलने आता है तो आड़ में रहकर बातें होती हैं। थोड़े दिन बाद एक व्यक्ति से बातें करता है। बाद में बिलकुल मौन हो जाना पड़ता है। फिर कोठरी की खिड़कियाँ बन्द कर दी जाती हैं। केवल एक छेद से आकाश-दर्शन किया जाता है। कुछ लोग यह भी नहीं करते। उनके लिए दिन-रात समान होता है। केवल उन्हें भोजन पहुँचा दिया जाता है। इस प्रकार के तपोमय एकान्त जीवन व्यतीत करने की अवधि निश्चित रहती है। कुछ लोग केवल कुछ दिनों, कुछ लोग कुछ महीनों, कुछ लोग कुछ सालों और कुछ लोग आजीवन के लिए ऐसा व्रत ले लेते हैं। ऐसे लोगों की कोठरियाँ एकान्त में बनाई जाती हैं वहाँ वे घोर तपस्या करते हैं। इनका पूरा समय आसन, प्राणायाम, ध्यान, जप आदि में व्यतीत होता है। इसके अलावा गुरुओं द्वारा कठोर परीक्षा ली जाती है।

यह सारी प्रक्रिया इनके लिए है जो योग सीखना चाहते हैं। इसके विपरीत भारत में ऐसे अनेक योगी हो गये हैं जिन्हें बचपन में ही ईश्वर की ओर से अलौकिक ज्ञान प्राप्त हो गया था। उन्हें साधना की इन कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ा था। केवल जप-साधना से ही वे उच्चस्तर तक पहुँच गये थे।

योगियों का योग भी एक विज्ञान है, जैसा कि स्वामी विशुद्धानन्द ने कहा है। संसार में जितनी चीजें आविष्कृत हुई हैं, उनके पीछे वैज्ञानिकों ने साधनाएँ की हैं तब कहीं जाकर वह सब चीजें मानव के उपयोग में आ रही हैं। खेद की बात है कि सुभीता पाने पर भी तत्कालीन संस्कृति-मन्त्री श्री हुमायूँ कबीर ने इसकी उपेक्षा कर दी, अन्यथा इस दिशा में भारत लाभान्वित अवश्य होता। घटना इस प्रकार की है—

पण्डित शिवऔतार शर्मा जिनका जन्म बिजनौर जिले में हुआ था, वे अपनी साधना के माध्यम से दूसरों के चिन्तन की बात तुरन्त बता देते थे। यहाँ तक कि आगे क्या होनेवाला है, यह भी बता सकते थे। इस बारे में श्रद्धेय पण्डित कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर ने लिखा है—''नवभारत टाइम्स के सहायक सम्पादक, दिल्ली निगम के सदस्य श्री हरिदत्त शर्मा (स्व०) से मिल बैठने का अवसर मिला तो उन्होंने तरुण साधक शिवऔतार शर्मा की चर्चा करते हुए कहा—''मैंने उनके बारे में बहुत कुछ सुना था, पर मैं ऐसी बातों पर विश्वास नहीं करता। एक दिन मैं अपनी उलझन में उलझा था और निर्णय नहीं कर पा रहा था कि क्या करूँ; अचानक वे आ गये और बिना मेरे पूछे ही उन्होंने कुछ देर बाद कहा—''इस समय आप इस उलझन में हैं कि डिप्टी मेयर का पर्चा भरें या नहीं।''

''मैं भौचक, क्योंकि सचमुच मैं इसी उलझन में था। शर्माजी ने कहा—'आप यह पर्चा अवश्य भरेंगे, पर परिस्थितियाँ ऐसी करवट लेंगी कि आप उसे वापस ले लेंगे।' और सचमुच मैंने पर्चा भरा और दूसरे दिन वापस ले लिया।''

आगे प्रभाकरजी ने लिखा है—''इस संस्मरण ने मेरी दिलचस्पी बढ़ा दी। वे

भारत के महामहिम राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद से मिले तो राष्ट्रपति ने पूछा—'बताओ, मैं क्या सोच रहा हूँ'।''

''उन्होंने कहा—'आप जो कुछ सोच रहे हैं, उसे कागज पर लिखने की कृपा करें। मैं आपसे दूर बैठता हूँ।'

''राष्ट्रपति ने बहुत सावधानी बरती और वे ऊपर के कक्ष में चले गये। शिवऔतार नीचे बैठे रह गये। उनके पास दो सैनिक अधिकारी मौजूद थे। ऊपर जाकर राष्ट्रपति ने अपना चिन्तन कागज पर लिखा और फिर नीचे आ गये। शिवऔतार ने उन्हें बता दिया कि अगले तीन महीनों में क्या होनेवाला है। प्रश्न के साथ-साथ उत्तर भी बताये। इनमें एक तो राष्ट्रपति से सम्बन्धित था, दूसरा मन्त्रिमण्डल और तीसरा अन्तर्राष्ट्रीय घटना के बारे में था। सभी उत्तर सही प्रमाणित हुए।

''इस घटना के कुछ दिनों बाद शिवऔतार भारत के प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरू से मिले। नेहरूजी ऐसे चमत्कारों पर विश्वास नहीं करते थे। लेकिन हर नयी बात पर दिलचस्पी लेते थे। उन्होंने पूछा—'बताओ, इस वक्त मैं क्या सोच रहा हूँ?'

''शिवऔतार ने कहा—''आप इतनी जल्दी-जल्दी और इतनी दूर की बातें सोचते हैं कि उनमें से किसी एक को पकड़ना कठिन है। अगर आप किसी विशेष बात का उत्तर चाहते हैं तो उसे कागज पर लिखें।'

''शिवऔतार द्वारा दिये उत्तर से प्रसन्न होकर उन्हें अपने मन्त्रिमण्डल के सदस्य श्री हुमायूँ कबीर के पास भेजा। सारी बातें सुनने के बाद कबीर साहब ने जवाब दिया —'हम प्रमाणित विज्ञान की खोज के लिए सहायता देते हैं और यह कोई प्रमाणित विज्ञान नहीं है'।''

प्रभाकरजी ने अपने लेख में एक प्रश्न को स्थापित किया है—''योग को अभी तक साधुओं का काम समझा जाता रहा है, पर उन दिनों दिल्ली में अमेरिकी वैज्ञानिकों की सहायता से योग के जो वैज्ञानिक परीक्षण हुए, क्या वे महत्त्वपूर्ण नहीं थे? हमारे यहाँ ऐसे अनेक लोग हैं जो डॉक्टरों की उपस्थिति में अपनी नाड़ी और हृदय-गति को एक विशेष समय तक बन्द कर देते हैं और फिर चला देते हैं। डॉक्टरी का प्रमाणित विज्ञान इसे असम्भव बताता रहा है। विज्ञान के अनुसार एक आदमी कितनी देर तक बिना साँस लिये रह सकता है। इसका किताबों में लिखा उत्तर बेकार है, क्योंकि भारत में ऐसे अनेक लोग हैं जो कई-कई सप्ताह सन्दूक में बन्द होकर जमीन में गड़ जाते हैं और कई सप्ताह बाद जीवित निकलते हैं। कौन कहता है कि हम इन सबको प्रमाणित मान लें, पर हमारे देश का विज्ञान एक बार इन्हें अप्रमाणित तो कहे, जिससे नयी पीढ़ी अन्धश्रद्धा से बचे।''

इस खण्ड में इस उद्धरण को देने का अर्थ यह है कि पिछले खण्डों को पढ़कर अनेक पाठकों ने योगियों के चमत्कार पर अविश्वास प्रकट किया तो कुछ राहत पाने के उद्देश्य से मेरे यहाँ आये। मैं न तो योगी हूँ और न कभी योगियों से लाभ उठाया है, पर सभी घटनाओं पर विश्वास करता हूँ, क्योंकि जिन्हें लाभ हुआ है, उनकी जबानी घटनाओं को सुन चुका हूँ। बिना शान्ति, सन्तोष प्राप्त किये कोई अन्धभक्त नहीं होता।

—**लेखक**

अनुक्रमणिका

स्वामी रामानुजाचार्य १-२२
रामदास काठिया बाबा २३-४७
राम ठाकुर ४८-६०
साधक रामप्रसाद ६१-७०
भूपतिनाथ मुखोपाध्याय ७१-८४
स्वामी भास्करानन्द ८५-१००
स्वामी सदानन्द सरस्वती १०१-११७
पवहारी बाबा ११८-१२८
हरिहर बाबा १२९-१४६
साईं बाबा १४७-१६२
रणछोड़दास महाराज १६३-१७४
अवधूत माधव पागला १७५-२००

■■■

स्वामी रामानुजाचार्य

पूजा-गृह से बाहर आने पर भक्तप्रवर श्रीशैलपूर्ण को एक व्यक्ति ने श्रद्धापूर्वक नमस्कार किया। श्रीशैलपूर्ण ने मुस्कराते हुए पूछा—''कहो, क्या समाचार है? बड़े प्रसन्न दिखाई दे रहे हो?''

आगन्तुक ने कहा—''हाँ, स्वामी। आपके लिए शुभ समाचार लेकर आया हूँ। आपकी दोनों भग्नियों को एक-एक पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई है।''

प्रसन्न मुद्रा में श्रीशैलपूर्ण ने पूछा—''कब? क्या दोनों को एक साथ पुत्र हुए हैं?''

आगन्तुक ने कहा—''नहीं स्वामी। देवी कान्तिमती[1] को पाँच दिन पहले और महादेवी[2] को कल सायंकाल। दोनों ही पुत्र हैं।''

श्रीशैलपूर्ण ने कहा—''साधु-साधु। यह तो शुभ समाचार है। केशव[3] से कहना मैं शीघ्र ही आकर नामकरण करूँगा। अशौच पूरा हो जाय।''

निश्चित दिन श्रीशैलपूर्ण अपनी बहनों के यहाँ आये। आशीर्वाद देने के पश्चात् उन्होंने बड़ी बहन के पुत्र का नाम लक्ष्मण[4] और छोटी बहन के पुत्र का नाम गोविन्द रखा। लक्ष्मण अपने मौसेरे भाई से पाँच दिन बड़ा था।

दिन गुजरते गये। दोनों बालक शुक्ल पक्ष के चाँद की तरह बड़े होते गये। लक्ष्मण

---

[1] कान्तिमती को भूमि पेराट्टी, भूदेवी या कान्तिमती कहा गया है।

[2] महादेवी को पेरिया पेराट्टी, द्युतिमती और महादेवी कहा गया है।

[3] केशव का पूरा नाम था—श्रीमदासुरि सर्वकेतु केशव दीक्षित।

[4] लक्ष्मण अप्रैल, १०१७ ई०, शुक्ल पंचमी, गुरुवार को उत्पन्न हुए थे।

के लक्षणों को देखकर श्रीशैलपूर्ण चकित रह गये। बचपन से ही उसने अपनी प्रतिभा का परिचय देना प्रारम्भ किया था। लक्ष्मण के बाद कान्तिमती को लगातार दो कन्याएँ हुईं।

पूणाली गाँव में कांचीपूर्ण नामक एक भक्त रहता था जो जाति से शूद्र था, परन्तु उसकी इस बात की ख्याति थी कि विष्णुकांची स्थित श्रीवरदराज भगवान् उसके सामने प्रकट होते हैं, बातें करते हैं और निवेदन को स्वीकार करते हैं। इसी विश्वास के कारण आर्त-पीड़ित लोग उससे अपनी मनोकामनाएँ कहते ताकि वह श्रीवरदराज से निवेदन करे और उनका भला हो।

कांचीपूर्ण का यह नित्य का नियम था, वह अपने गाँव से पैदल ही श्रीवरदराज के मन्दिर तक पूजा के लिए आता था। मार्ग में पेरेम्बुदुर[1] गाँव आता था। इसी गाँव की मुख्य सड़क पर लक्ष्मण का घर था।

लोहा और चुम्बक एक-दूसरे को आकर्षित करते हैं। एक दिन कांचीपूर्ण मन्दिर से दर्शन करके लौट रहा था। तभी उसने देखा—एक अपूर्व बालक सड़क पर टहल रहा है। कांचीपूर्ण ने अपनी दिव्यदृष्टि से यह भी देखा कि बालक के शरीर से एक प्रकार की ज्योति निकल रही है। कौन है यह देव-शिशु? अपनी ओर एक व्यक्ति को आते देख लक्ष्मण भी ठिठककर खड़ा हो गया। लक्ष्मण के हृदय में भी हलचल मच गई।

कांचीपूर्ण ने पास आकर लक्ष्मण से उसका परिचय पूछा। अपना परिचय देने के बाद लक्ष्मण ने नम्रतापूर्वक आग्रह किया कि आज आप मेरे घर चलकर भोजन कीजिए। कांचीपूर्ण बालक के आग्रह की उपेक्षा नहीं कर सके। एक अनजाने आकर्षण ने उन्हें लक्ष्मण के घर जाने के लिए बाध्य किया।

कांचीपूर्ण को आदर के साथ बैठक में बैठाने के बाद लक्ष्मण ने अपने पिता केशव से कहा—"पिताजी, इस महापुरुष को आज अपने यहाँ भोजन करने के लिए निमन्त्रित किया है।"

केशव कमरे से बाहर आये। कांचीपूर्ण को देखते ही उन्होंने प्रसन्नता के साथ उनका स्वागत किया। वे कांचीपूर्ण की ख्याति से अपरिचित नहीं थे। केशव ने अपने पुत्र से कहा—"बेटा, तुमने यह अच्छा कार्य किया है। आप परम भागवत हैं। इनकी सेवा करो। इन्हें कोई कष्ट न हो।"

कांचीपूर्ण ने कहा—"आपके पुत्र ने मुझे निमन्त्रित किया है। मैं इसके आग्रह को अस्वीकार नहीं कर सका।"

केशव ने कहा—"महात्मन्, यह तो मेरे लिए सौभाग्य की बात है जो आप जैसे भागवत मेरे यहाँ अतिथि हुए हैं। आप इस बालक को आशीर्वाद दें ताकि इसका मन ईश्वर के प्रति लगा रहे।"

भोजन के पश्चात् कांचीपूर्ण आराम कर रहे थे तभी लक्ष्मण उनका पैर दबाने के

---

[1] प्रचलित नाम श्रीपेरुमबन्दर था, पर संस्कृत में इस गाँव का नाम श्रीमहाभूतपुरी कहा गया है।

लिए आया। उसके उद्देश्य को समझते ही कांचीपूर्ण ने कहा—''नहीं, बेटा। मैं शूद्र हूँ, तुम ब्राह्मण-पुत्र हो। ऐसा नहीं करना चाहिए। पैर दबाना मेरा काम है।''

लक्ष्मण ने कहा—''शास्त्रों में तो यह लिखा है कि प्रत्येक हरिभक्त ब्राह्मण होता है। तिरुपात्र आलवार चाण्डाल होते हुए भी ब्राह्मणों के लिए पूज्य बन गये थे। आप भी हरिभक्त हैं, फिर आपत्ति क्यों?''

लक्ष्मण की बातें सुनकर कांचीपूर्ण चमत्कृत हो उठे। इतनी कम उम्र का बालक इतनी ऊँचाई की बात कैसे कर रहा है? अभी से शास्त्र की बातें कर रहा है तो आगे चलकर तो प्रभूत शक्तिशाली विद्वान् बनेगा। बालक के प्रश्न का उत्तर कांचीपूर्ण नहीं दे सके।

* * *

धीरे-धीरे लक्ष्मण बचपन की ड्योढ़ी पारकर किशोर बन गया। जब वह सोलह वर्ष का हुआ तब उसके पिता ने उसका विवाह कर दिया। इस विवाह के कई वर्ष बाद केशव का निधन हो गया। लक्ष्मण बचपन से अब तक सारी शिक्षा पिता से प्राप्त करता रहा। गाँव में अब ऐसा कोई पण्डित नहीं था जिसके निकट जाकर लक्ष्मण आगे की शिक्षा ले सके। पता लगाने पर बुजुर्गों ने बताया कि कांचीपुरम् में अद्वैतवादी यादव प्रकाश नामक एक पण्डित हैं जो अपनी चटशाला में विद्यार्थियों को पढ़ाते हैं, वे ही एक ऐसे विद्वान् हैं जो तुम्हें शिक्षा दे सकते हैं।

लक्ष्मण के ज्ञान की प्यास ने निश्चय किया कि वह यादव प्रकाश के निकट जाकर अध्ययन करेगा। माँ से अनुमति लेकर वह यादव प्रकाश के यहाँ चला आया। यादव प्रकाश न केवल पण्डित थे, बल्कि संन्यासी और तान्त्रिक थे। अद्वैतवादी भी थे।

लक्ष्मण के ज्ञान की परीक्षा लेने के बाद यादव ने उसे विद्यार्थी के रूप में स्वीकार कर लिया। इधर पुत्र का अभाव माँ को पीड़ा देने लगा। पुत्र-वियोग जब सहन नहीं हो सका तब वे अपनी पुत्रवधू को लेकर कांचीपुर चली आयीं। आश्रम से कुछ दूर एक मकान में आकर रहने लगीं।

दीदी कांचीपुर चली गई है और लक्ष्मण भी वहीं पढ़ रहा है, यह समाचार पाते ही महादेवी ने अपने पुत्र को वहीं पढ़ने के लिए भेज दिया ताकि दोनों भाई एक साथ रहें। गोविन्द अकेलापन महसूस न करे। दोनों भाई यादव प्रकाश के आश्रम में पढ़ते रहे।

कुछ ही दिनों के अध्ययन के पश्चात् लक्ष्मण ने अनुभव किया कि गुरुदेव भले ही विद्वान् हों, पर उनके विचार असंगत हैं। उनका ज्ञान द्वेषपूर्ण है। वे जो कुछ कहते हैं, सारा का सारा रुचि-हीन है। वास्तव में यहाँ दो संस्कृतियों की टक्कर थी। लक्ष्मण का परिवार वैष्णव था। उसी संस्कृति में उसका लालन-पालन हुआ था। इधर यादव प्रकाश शंकराचार्य के अद्वैतवाद के समर्थक होने पर भी कर्मकाण्ड-शून्य थे। उनके विचारों में ज्ञान की अपेक्षा पंकिलता अधिक थी। इसी कारण लक्ष्मण के मन में निरन्तर असन्तोष बढ़ता गया।

एक बार छान्दोग्य उपनिषद् में आये शब्द 'कप्यासं' की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा—''सूर्यमण्डलस्थ पुरुष की आँखें किस प्रकार लाल हैं? जैसे बन्दर का नितम्ब।''

इस व्याख्या को सुनकर लक्ष्मण को बड़ा धक्का पहुँचा। भगवान् की आँखों की तुलना बन्दर के चूतड़ से की जा रही है? ऐसी उपमा वेदों में कदापि नहीं हो सकती। उस समय लक्ष्मण यादव प्रकाश की पीठ पर तेल मालिश कर रहा था। दुःख के कारण उसकी आँखों में आँसू ढुलक पड़े।

पीठ पर पानी गिरने के कारण यादव ने पीछे मुड़कर देखा तो लक्ष्मण रो रहा था। कारण पूछने पर लक्ष्मण ने अपनी शंका प्रकट की। यादव ने कहा—"इसमें मैं क्या कर सकता हूँ। आचार्य शंकर ने यही लिखा है।"

लक्ष्मण को यह बात मालूम थी कि गुरुजी अपनी बात को सत्य प्रमाणित करने के लिए असत्य का सहारा लेते हैं। उसने कहा—"गुरुदेव, इस हीन उपमा को हम बदल भी सकते हैं। 'कप्यासं' शब्द 'कं' पद का अर्थ जल को और 'पिबति' का अर्थ पान करना, अर्थात् कपि का अर्थ सूर्य होगा। 'आस' अशं आस् धातुरूप है, इसका अर्थ हुआ विकसित। फलतः सम्पूर्ण शब्द का अर्थ हुआ—सूर्य के द्वारा जो विकसित होता है अर्थात् पद्म। इस प्रकार आँखों की लालिमा की उपमा पद्म सरीखे लाल से की जा सकती है।"

इस विद्वत्तापूर्ण व्याख्या को सुनकर यादव चौंक उठे। उनका ही शिष्य इतनी ऊँची कल्पना कर सकता है, इसका उन्हें स्वप्न में भी विश्वास नहीं था। ऐसे तीक्ष्णाधि बालक को कब्जे में लाना कठिन है। ऊपरी मन से उन्होंने लक्ष्मण की प्रशंसा की, पर भीतर से कुढ़ते रहे। इसी बीच एक और घटना हो गई।

तान्त्रिक के रूप में यादव प्रकाश की ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी। मन्त्र के माध्यम से वे भूत-प्रेत-बाधा दूर करते थे। उन दिनों कांचीपुर की राजकुमारी को ब्रह्मदैत्य ने पकड़ रखा था। काफी प्रयत्न करने पर राजकुमारी उसके पंजे से मुक्त न हुईं। राजा ने यादव प्रकाश को अपने महल में बुलवाया। वे वहाँ जाकर अपने मन्त्रों का प्रयोग करने लगे।

उनके मन्त्रों से चिढ़कर राजकुमारी के भीतर के ब्रह्मदैत्य ने कहा—"हे पण्डित, तेरा मन्त्र-तन्त्र बेकार है। तू मुझसे कमजोर है। मेरा कुछ नहीं कर सकता। तुझे यही नहीं मालूम कि पूर्व जन्म में तू क्या था?"

इस अपमान से चिढ़कर यादव ने पूछा—"पूर्व जन्म में हम दोनों क्या थे? जरा बताओ तो सुनें।"

ब्रह्मदैत्य ने कहा—"पूर्व जन्म में तुम अजगर थे। एक ब्राह्मण का उच्छिष्ट खाने के कारण इस जन्म में पण्डित हुए हो। मैं ब्राह्मण था, पर यज्ञ करते समय प्रमादवश भूल हो गई, इसलिए ब्रह्मदैत्य बना।"

यादव ने चिढ़कर पूछा—"अब यह बताओ कि राजकुमारी को कैसे छोड़ोगे?"

ब्रह्मदैत्य ने कहा—"तुम्हारे तन्त्र-मन्त्र का मुझ पर कोई असर नहीं होगा। अगर तुम्हारा शिष्य लक्ष्मण राजकुमारी के मस्तक पर कृपापूर्वक अपना चरण रख दे तो मैं चला जाऊँगा। अन्यथा मैं कदापि नहीं जाऊँगा।"

यादव के आदेश पर लक्ष्मण ने राजकुमारी के मस्तक पर पैर रखा। ब्रह्मदैत्य चला गया। राजा ने प्रसन्न होकर लक्ष्मण को स्वर्ण-मुद्राएँ दीं। उक्त मुद्राएँ लक्ष्मण ने गुरुदेव को समर्पित कर दीं। इस अपमानजनक घटना से यादव मन ही मन लक्ष्मण पर कुपित हो उठे। भरी सभा में ब्रह्मदैत्य से अपमानित होने की इस घटना को वे भूल नहीं सके।

इसी बीच अध्ययन-काल में एक और घटना हो गई। एक के बाद एक निरन्तर होनेवाली घटनाओं के कारण यादव प्रकाश लक्ष्मण से इतने नाराज हुए कि उन्होंने उसकी हत्या करने का संकल्प कर लिया। कुछ दिनों तक वे नाना प्रकार के उपाय सोचते रहे। इसके बाद एक दिन उन्होंने घोषणा की—"हम सबको वाराणसी जाकर गंगा-स्नान करना चाहिए। वहाँ विश्वविश्रुत विद्वान् रहते हैं, उनसे ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।"

इस यात्रा के पीछे क्या रहस्य है, इसका अनुमान कोई नहीं लगा सका। एक दिन वे अपनी शिष्य-मण्डली के साथ रवाना हुए। महीनों चलने के बाद सभी विन्ध्याचल के गोण्डारण्य में आये। यादव प्रकाश ने देखा—यहाँ कहीं भी मानव-बस्ती नहीं है। चारों ओर घनघोर जंगल और हिंस्रक पशु हैं। यही उपयुक्त स्थान है। यहाँ हत्या कर देने के बाद यह प्रचारित किया जा सकता है कि लक्ष्मण को हिंस्रक पशुओं ने मार डाला था। अपनी इच्छा को उन्होंने कतिपय शिष्यों के सामने प्रकट किया। इसके बाद वे अवसर की प्रतीक्षा करने लगे।

इस यात्रा में लक्ष्मण का मौसेरा भाई गोविन्द भी था। उसे इस षड्यन्त्र का पता चल गया। एक दिन सबेरे जब लक्ष्मण जंगल की ओर प्रात:क्रिया करने जा रहा था तब उसने यादव के षड्यन्त्र की सूचना दी और कहा कि तुम अब वापस मत आना। जितनी जल्दी हो सके, इस स्थान से दूर भाग जाओ।

लक्ष्मण को यह जानकर भय और कष्ट हुआ कि गुरुदेव उसकी हत्या करने वाले हैं। जी-जान से वह भाग गया। दौड़ते-दौड़ते जब वह थक गया तब एक वृक्ष के नीचे बैठकर सोचने लगा कि अब कांचीपुर वापस जाना उचित है। उसे इतना ज्ञान था कि वह दक्षिण की ओर से आया है। इतना सोचते-सोचते सहसा वह बेहोश हो गया।

काफी देर के बाद आदमी की आवाज सुनने पर उसकी आँखें खुलीं। उसने देखा सामने एक बहेलिया दम्पती खड़े थे। इस सुनसान स्थान में आदमी को देखकर उसके हृदय में आशा का संचार हुआ। तभी उस पुरुष ने पूछा—"क्यों भाई, कौन हो तुम? इस जंगल में अकेले क्यों हो?"

लक्ष्मण ने कहा—"मैं विद्यार्थी हूँ। अपने गुरु के साथ गंगा-स्नान के लिए जा रहा था। मार्ग में ज्ञात हुआ कि वे मेरी हत्या करना चाहते हैं। इस बात को सुनते ही मैं भाग खड़ा हुआ। मेरा घर कांचीपुर है। वहीं जाना चाहता हूँ।"

बहेलिये ने कहा—"घबराने की बात नहीं है। हम भी उधर ही जा रहे हैं। मेरे साथ आओ।"

बहेलिया दम्पती के साथ चलते-चलते अँधेरा हो गया। सभी नदी किनारे सो गये। सबेरे जागने पर बहेलिये ने कहा—"मुझे प्यास लगी है। कहीं से पानी ला दोगे?"

बहेलिया से लोटा लेकर लक्ष्मण पानी की तलाश में चल पड़ा। पता नहीं, वह नदी कहाँ गायब हो गई जिसे कल देखा था। थोड़ी दूर आने पर उसने देखा—एक कुएँ से लोग पानी भर रहे हैं। कुएँ के पास खड़े लोग तथा वह जगह कुछ परिचित-सी लगी। लेकिन ठीक से समझ नहीं सका। पानी लेकर जब वह लौटा तो देखा—बहेलिया दम्पती वहाँ मौजूद नहीं है। काफी देर तक इधर-उधर देखने पर वे दिखाई नहीं दिये।

पुनः कुएँ के पास आकर उसने पानी भरनेवालों से पूछा—''कांचीपुर यहाँ से कितनी दूर है?''

उसकी बातें सुनकर सभी लोग हँस पड़े। एक व्यक्ति ने कहा—''क्या तुम इस स्थान को नहीं पहचान रहे हो? वरदराज मन्दिर का शिखर तुम्हें दिखाई नहीं दे रहा है?''

यह सुनकर वह अवाक् रह गया। आखिर रातभर में वह कांचीपुर कैसे पहुँच गया? क्या बहेलिये के रूप में भगवान् उसे यहाँ तक लाकर छोड़ गये हैं? तभी वे गायब हो गये। मैं उन्हें पानी तक नहीं पिला सका। यह सब सोचते-सोचते वह बेहोश होकर गिर पड़ा।

फिर तीन-चार परिचित लोग उसे उठाकर घर पहुँचा आये। पुत्र की यह हालत देखकर माँ व्याकुल हो उठी। देर तक हवा करने के बाद वह उठ बैठा और कहा—''अब ठीक हूँ, माँ। घबराने की बात नहीं है। मैं अकेला वापस आया हूँ। मेरे साथ कोई नहीं आया।''

रात को माँ के बारम्बार आग्रह करने पर उसने विस्तार से सारी घटना सुनाई। पुत्र के इस संकट को सुनकर माँ भय से सिहर उठी और यादव को कोसने लगी।

दूसरे दिन कान्तिमती अपने साथ भोग की सामग्री लेकर वरदराज मन्दिर गई। साथ में लक्ष्मण, उसकी पत्नी और मौसी थी। मन्दिर से वापस आने पर लक्ष्मण ने देखा कि दरवाजे के समीप कांचीपूर्ण उसकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

कांचीपूर्ण को भीतर ले जाकर उन्हें भी अपनी सारी कहानी लक्ष्मण ने सुनाई।

कांचीपूर्ण ने कहा—''यह भगवान् वरदराज की कृपा थी जो जीवित वापस आ गये। सच तो यह है कि बहेलिये के रूप में भगवान् तुझे यहाँ तक पहुँचा गये थे। अब आगे से कुएँ के जल से उन्हें नहलाया करना। इससे तुम्हारी मनोकामना पूरी हो जायगी।''

* * *

एक अर्से के बाद यादव प्रकाश यात्रा से वापस लौटे तो उन्होंने लक्ष्मण के घर जाकर यह समाचार देना उचित समझा कि उसे जंगली जानवर खा गये हैं। छोटा भाई गोविन्द वापस आते समय कालहस्ती में रुक गया। वह अब कांचीपुर वापस नहीं आयेगा।

लक्ष्मण को जब उन्होंने जीवित देखा तब उनके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। उन्हें इस बात की आशंका हुई कि कहीं इसे मेरे षड्यन्त्र का पता न चल गया हो, पर दूसरे ही क्षण सोचा—भला इसे कैसे पता चला होगा? प्रकट रूप से उन्होंने कहा—''अरे वाह! तुम घर वापस आ गये हो? तुम्हें देखकर मुझे बेहद खुशी हो रही है।

एकाएक तुम्हारे गायब हो जाने पर हम लोग काफी परेशान हुए थे। बाद में सोचा कि शायद जंगली जानवरों ने तुम्हें अपना शिकार बनाया हो। भगवान् करे तुम लाख वर्ष जीवित रहो।''

लक्ष्मण भी झूठ बोल गया—''उस दिन सबेरे प्रात:क्रिया से वापस आते समय रास्ता भूल गया। बाद में मुझे एक बहेलिया दम्पती यहाँ पहुँचा गया।''

लक्ष्मण की बातों से यादव को सन्तोष हो गया कि इसे मेरे षड्यन्त्र का कुछ पता नहीं है। वे आशीर्वाद देकर चले गये।

* * *

उन दिनों श्रीरंगम में यामुनाचार्य[1] नामक एक परम वैष्णव रहते थे। वे समग्र वैष्णव-सम्प्रदाय के गुरु और एकमात्र नेता थे। लक्ष्मण के मामा श्रीशैलपूर्ण इनके शिष्यों में थे। स्वयं लक्ष्मण यामुनाचार्य की पौत्री के पुत्र थे। गरीब परिवार में जन्म लेने पर भी अपनी प्रतिभा तथा ज्ञान के कारण राजदरबार से सम्मानित हो चुके थे। इधर वार्द्धक्य तथा निरन्तर अस्वस्थ रहने के कारण उन्हें इस बात की चिन्ता सताने लगी थी कि मेरे बाद इस मठ का कार्यभार कौन सम्हालेगा? अपने शिष्यों में कोई भी योग्य नहीं था। ठीक इन्हीं दिनों लक्ष्मण की विद्वत्ता और अलौकिक प्रतिभा का परिचय उन्हें प्राप्त हुआ। उसे परखने की तीव्र लालसा मन में उत्पन्न हुई। अपनी योजना किसी को न बताकर वे वरदराज का दर्शन करने जा रहा हूँ, कहकर यात्रा पर निकल पड़े।

एक दिन कांचीपूर्ण के साथ वे वरदराज का दर्शन कर वापस आ रहे थे तभी कांचीपूर्ण ने इशारे से बताया कि यही वह युवक है। यामुनाचार्य ने देखा कि लक्ष्मण के कन्धे पर हाथ रखे यादव प्रकाश आ रहा है। यादव प्रकाश के चरित्र से यामुनाचार्य भलीभाँति परिचित थे। इस समय लक्ष्मण से बात करना उन्होंने उचित नहीं समझा। लेकिन प्रथम दर्शन से ही वे लक्ष्मण के प्रति आकृष्ट हो गये। उन्होंने मन ही मन निश्चय किया कि इस युवक को यादव प्रकाश के चंगुल से छुड़ाकर वैष्णव-प्रभाव में लाऊँगा। यही सब सोचते हुए वे श्रीरंगम वापस लौट गये।

इस घटना के बाद लक्ष्मण के जीवन में दो घटनाएँ हुईं। एक ओर मातृवियोग हुआ, दूसरी ओर यादव प्रकाश से विवाद होने के कारण उनसे अलग हो गया। यह समाचार श्रीरंगम तक पहुँच गया।

यामुनाचार्य ने तुरन्त अपने शिष्य महापूर्ण को बुलाकर कहा—''जितनी जल्दी हो सके, तुम कांचीपुर जाकर लक्ष्मण को यहाँ ले आओ। लेकिन एक बात याद रखना कि दबाव डालकर या जबरन मत लाना।''

गुरु की आज्ञा शिरोधार्य कर उसी दिन महापूर्ण कांचीपुर के लिए रवाना हो गये। यहाँ आकर वे कांचीपूर्ण के घर ठहरे। लक्ष्मण के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करने

---

[1] वैष्णव-सिद्धान्तों को निश्चित रूप देनेवाले नाथमुनि के पुत्र। इनका असली नाम आलवंदार था।

के बाद उन्होंने निश्चय किया कि मन्दिर से वापस आते समय मार्ग में लक्ष्मण से साक्षात्कार करूँगा।

इस योजना के अनुसार महापूर्ण मन्दिर से निकलकर लक्ष्मण के पीछे-पीछे कुछ दूरी रखकर चलने लगे। जब बिलकुल पास आ गये तब वे यामुनाचार्य-रचित भगवद्भक्तिपूर्ण श्लोकों का पाठ करने लगे। इन श्लोकों को सुनते ही लक्ष्मण के कदम रुक गये। पलटकर उसने पूछा—''महाशय, आप जिन श्लोकों का पाठ कर रहे हैं, उसके रचयिता कौन हैं?''

महापूर्ण की अभिलाषा पूर्ण हुई। वे बातचीत करने का मौका ढूँढ़ रहे थे। विनयपूर्वक उन्होंने उत्तर दिया—''ये श्लोक महामुनि यामुनाचार्य की रचनाएँ हैं। वे मेरे गुरु हैं।''

लक्ष्मण ने कहा—''काश, ऐसे महामानव का दर्शन कर पाता।''

महापूर्ण ने उत्साह के साथ कहा—''क्या आप उनका दर्शन करना चाहते हैं? वे स्वयं आपसे मिलने को उत्सुक हैं। अगर आप प्रस्तुत हों तो मैं उनके निकट आपको ले चल सकता हूँ।''

लक्ष्मण ने तुरन्त कहा—''आप कुछ देर प्रतीक्षा कीजिए। मैं अभी आता हूँ।''

चार दिन पैदल चलने के बाद जब दोनों श्रीरंगम आये तो देखा—चारों ओर से अपार जनसमूह कावेरी-तट की ओर जा रहा है। पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि यामुनाचार्य परमपद प्राप्त कर चुके हैं। यह समाचार सुनते ही लक्ष्मण कटे वृक्ष की तरह गिर पड़ा। महापूर्ण फफककर रोने लगे। फिर भी अपने को संयत करते हुए वे लक्ष्मण की सेवा करने लगे।

कुछ देर बाद नदी किनारे आकर दोनों व्यक्तियों ने यामुनाचार्य के पार्थिव-शरीर के दर्शन किये। आसपास सहस्रों लोग अश्रुपात कर रहे थे। लक्ष्मण को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि यामुनाचार्य के दाहिने हाथ की तीन उँगलियाँ मुड़ी हुई हैं। निर्जीव शरीर में यह स्थिति नहीं रहती।

पास खड़े एक व्यक्ति से उसने पूछा—''क्या मुनिवर की उँगलियाँ इस तरह मुड़ी रहीं?''

एक शिष्य ने कहा—''जी नहीं। यह स्वाभाविक स्थिति नहीं है। शरीर छोड़ने के पहले गुरुवर अश्रुपात कर रहे थे। जब हम लोगों ने उनके रोने का कारण पूछा तब उन्होंने एक-एक कर तीन बातें बताईं। उसी समय से ये उँगलियाँ मुड़ी हुई हैं। अन्त में यह जरूर कहा था कि वैष्णव-सम्प्रदाय के होनेवाले नेता लक्ष्मण को बिना देखे मुझे शरीर छोड़ना पड़ रहा है। इतना कहने के साथ ही उन्होंने शरीर त्याग दिया। उसी समय से ये उँगलियाँ मुड़ी हुई हैं।''

यामुनाचार्य ने अन्तिम समय उसे स्मरण किया था, इस बात को सुनकर लक्ष्मण का हृदय हाहाकार कर उठा। हे मुनिवर, आप एक दिन और जीवित रहते तो मैं आपका

दर्शन तो कर लेता। अपने आँसुओं को पोंछते हुए लक्ष्मण ने पूछा—''मुनिवर की इच्छाएँ क्या थीं?''

शिष्य ने उन इच्छाओं का जिक्र किया। सारी बातें सुनने के बाद लक्ष्मण ने कहा —''मैं कांचीपुर-निवासी लक्ष्मण हूँ। मुनिवर ने जीवन के अन्तिमकाल में जो इच्छाएँ प्रकट की थीं, उनको पूर्ण करूँगा। मुनिवर परमपद प्राप्त करने के पूर्व मुझे और मैं उन्हें देखना चाहता था, पर यह नहीं हो सका।''

सभी लोगों का ध्यान लक्ष्मण की ओर गया। उसने ऊँचे स्वर में कहा—''मैं आप सभी के सामने प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं वैष्णव-मत का पालन करते हुए सर्वसाधारण के पंच-संस्कारयुक्त द्राविड़ वेद विशारद तथा नारायण का अनुग्रह प्राप्त करते हुए रक्षा करूँगा।''

इतना कहना था कि यामुनाचार्य के पार्थिव शरीर के हाथ की मुड़ी हुई उँगलियों में से एक खुल गई। आगे लक्ष्मण ने कहा—''मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि जनसुरक्षा के लिए मानव-कल्याण, तत्त्वज्ञानसम्पन्न ब्रह्मसूत्र का भाष्य लिखूँगा।''

दूसरी उँगली खुल गई। पुनः लक्ष्मण ने कहा—''मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मुनिश्रेष्ठ पराशर और शठकोप के नाम दो महापुरुषों का नामकरण करूँगा जिन्होंने पुराण तथा द्राविड़ वेद लिखा था।''

इस घोषणा के साथ ही तीसरी और अन्तिम उँगली खुल गई। शिष्य और भक्तों को अपार विस्मय हुआ। तभी एक वरिष्ठ शिष्य ने कहा—''प्रभु, आपके प्रति गुरुदेव की बड़ी आस्था थी। इधर कई दिनों से बराबर आपको स्मरण कर रहे थे। उन्होंने हमें यह आदेश दिया है कि आपके शरण में हम लोग रहें। आप हमारे कर्णधार बनकर हमें मार्ग दिखायें।''

सभी लोगों को प्रणाम करते हुए लक्ष्मण ने कहा—''मैं आप लोगों की भरपूर सेवा कर सकूँगा, ऐसा विश्वास नहीं है, पर प्रतिज्ञा करता हूँ कि पूरी शक्ति और निष्ठा के साथ मैं अपना कर्त्तव्य अवश्य करूँगा। शायद मैं बड़ा अभागा हूँ, इसीलिए महामुनि का दर्शन नहीं कर सका।''

कहते-कहते वह हृदयविदारक ढंग से रो पड़ा। थोड़ी देर बाद उसके चेहरे पर परिवर्तन हुआ और बिना कुछ कहे वह वापस चल पड़ा। उसके इस व्यवहार पर सभी चकित रह गये। कोई कुछ समझ नहीं सका। सहसा बीच रास्ते पर रुककर उसने कहा—''मैं दर्शन नहीं करूँगा। जिस निष्ठुर देवता ने महामुनि के दर्शन से मुझे वंचित कर दिया, उनके दरवाजे पर नहीं जाऊँगा।''

लक्ष्मण का यह क्रोध श्रीरंगनाथ के प्रति था। घर के पास आकर वे सीधे कांचीपूर्ण के यहाँ गये। उनसे सारा समाचार कहते-कहते वह रोने लगे और कांचीपूर्ण भी रोने लगे। बाद में कांचीपूर्ण ने यामुनाचार्य के बारे में अनेक महत्त्वपूर्ण चर्चाएँ कीं।

कुछ दिनों बाद लक्ष्मण ने सोचा कि यहाँ कांचीपूर्ण के समान कोई श्रेष्ठ भक्त नहीं है। भगवान् वरदराज से वे बातें करते हैं। ऐसे योग्य व्यक्ति से दीक्षा लेनी चाहिए। लेकिन जब कभी उनसे इस बारे में वह चर्चा करता तब वे मृदु ढंग से टाल देते थे।

आखिर एक दिन वह बहुत उतावला होकर बोल उठा—''अब मैं कोई बहाना सुनना नहीं चाहता। आप ही मुझे भक्ति-मार्ग दिखा सकते हैं। आपसे उत्तम मेरा कोई गुरु नहीं हो सकता।''

कांचीपूर्ण ने कहा—''बेटा लक्ष्मण, मेरी बात मानो। मैं शूद्र हूँ। मैं अगर तुम्हें दीक्षा दूँगा तो यह धर्मविरुद्ध होगा। यह कार्य मुझसे नहीं हो सकता। मैं आज भगवान् वरदराज से इस बारे में बातचीत करूँगा। वे जैसी आज्ञा देंगे, वैसा किया जायगा।''

लक्ष्मण ने कहा—''ठीक है। आपके साथ मैं भी चलूँगा। वरदराज जो भी आदेश देंगे, उसका पालन करूँगा।''

इसके बाद दोनों मन्दिर में आये। सन्ध्या-आरती के बाद पुजारी अपने घर चला गया। धीरे-धीरे चारों ओर सन्नाटा छा गया। निर्जन मन्दिर में दोनों चुपचाप बैठे रहे। काफी देर बाद सहसा कहीं से आवाज आयी—''बेटा कांचीपूर्ण, लगता है, आज तुम कुछ जानने आये हो। बोलो, क्या चाहते हो?''

कांचीपूर्ण ने कहा—''भगवन्, आप तो अन्तर्यामी हैं। सब कुछ जानते हैं। आपसे क्या छिपाऊँ? मैं इस बालक लक्ष्मण के लिए कृपा माँगने आया हूँ।''

वरदराज ने कहा—''मैं सब कुछ जानता हूँ। लक्ष्मण मेरा भक्त है। यह तो वास्तव में रामानुज है। इससे कह दो कि मैं ही जगत् का परमब्रह्म हूँ। जीव और ईश्वर का भेद सत्य है। मुमुक्षुओं के लिए संन्यास ही एकमात्र मार्ग है। भक्ति के लिए मेरी स्मृति की कोई आवश्यकता नहीं है। मेरे जो भक्त हैं, उनके शरीर त्यागने पर मैं उन्हें परमगति देता हूँ। यह महात्मा महापूर्ण से दीक्षा लेकर अपनी कामना पूर्ण कर ले।''

वरदराज की वाणी बन्द हो गई। भगवान् के इस आशीर्वाद को सुनकर लक्ष्मण पुलकित हो उठा। उन्होंने उसके गुरु का नाम भी बता दिया।

कांचीपूर्ण ने उल्लसित होकर कहा—''बेटा, आज तुझे जो मिला, वह अब तक किसी को नहीं मिला है। भगवान् ने तेरा नाम 'रामानुज' रखा है। तुम धन्य हो। भगवान् ने तुम्हारे गुरु का नाम भी बता दिया। अब शीघ्र उनसे दीक्षा ले लो।''

आज बहुत दिनों बाद लक्ष्मण की मनोकामना पूर्ण हुई।

* * *

इधर यामुनाचार्य के निधन के बाद से श्रीरंगम-मठ की स्थिति खराब होने लगी थी। आलवारों का विश्वास था कि यामुनाचार्य द्वारा मनोनीत लक्ष्मणजी आचार्य-पद सम्हालेंगे, पर वे समाधिवाले दिन जो गायब हुए, आज तक कोई समाचार नहीं भेजा।

एक दिन वरिष्ठ शिष्यों ने निश्चय किया कि चाहे जैसे भी हो, लक्ष्मणजी को यहाँ बुलाकर उन्हें आचार्य-पद पर अभिषिक्त किया जाय वरना वैष्णव-धर्म की बड़ी क्षति होगी। इस कार्य के लिए उन लोगों ने महापूर्ण से आग्रह किया। सभी इस बात को जानते थे कि यामुनाचार्य ने ही लक्ष्मणजी को लिवाने के लिए महापूर्ण को भेजा था।

गुरु-भाइयों के आग्रह पर महापूर्ण कांचीपुर के लिए रवाना हुए। मदुराकान्तम

आकर वे विष्णु मन्दिर के सामने स्थित तालाब के किनारे विश्राम कर रहे थे। ठीक इसी समय उन्होंने लक्ष्मण को अपनी ओर आते देखा। वह तेजी से आकर महापूर्ण के पैरों को पकड़कर बैठ गया।

हाँफते हुए लक्ष्मण ने कहा—''महात्मन्, आप मेरे गुरु हैं। मैं आपके पास आ रहा था। अब आप मुझे अपना लीजिए।''

महापूर्ण ने कहा—''इधर मैं तुम्हें अपने साथ श्रीरंगम ले जाने के लिए आ रहा था। तुम मेरे साथ श्रीरंगम चलो। जो कुछ करना है, वहीं किया जायगा।''

लक्ष्मण ने कहा—''प्रभो, मैं उतने दिनों तक प्रतीक्षा नहीं कर सकता। बिना विलम्ब किये मुझे तत्काल दीक्षा दीजिए।''

लक्ष्मण को गले से लगाते हुए महापूर्ण ने कहा—''जाओ वत्स, स्नान कर आओ। भगवान् रंगनाथ की कृपा से तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो।''

लक्ष्मण जब स्नान करके आया तब वहीं महापूर्ण ने दीक्षा दी। इसके बाद दोनों कांचीपुर चले आये। यहाँ आकर महापूर्ण लक्ष्मण के घर रहने लगे। यामुनाचार्य के शिष्यों के परामर्श के अनुसार महापूर्ण लक्ष्मण को 'तमिल प्रबन्ध' पढ़ाने लगे। ज्ञान का रस मिलने के कारण लक्ष्मण अध्ययन में तल्लीन हो गये। फलतः घर की आर्थिक स्थिति खराब होती गई।

कई बार पत्नी जमाम्बा[1] ने दबी जबान से शिकायत भी की, पर लक्ष्मण ने इधर ध्यान नहीं दिया। अपनी उपेक्षा होते देख जमाम्बा ने उग्र रूप धारण कर लिया। परिवार में बढ़ते कलह को देखकर एक दिन महापूर्ण चुपचाप श्रीरंगम चले गये।

घर वापस आने पर जब गुरुदेव दिखाई नहीं दिये तब लक्ष्मण ने सोचा—जमाम्बा के किसी अपराध के कारण गुरुदेव चले गये हैं। गुरु का अपमान लक्ष्मण को पीड़ा देने लगा। अन्त में एक दिन ससुराल-यात्रा करने का बहाना कर लक्ष्मण पत्नी को उसके पीहर में छोड़ आया। साधना-मार्ग में वह एक काँटा थी। इसके बाद वरदराज मन्दिर में जाकर साष्टांग प्रणाम करने के बाद उसने कहा—''भगवन्, अब मैं समस्त बन्धनों से मुक्त हो गया। आज से आपका सेवक बन गया।''

इस घटना के कुछ दिनों बाद अपने मित्रों से परामर्श कर उसने संन्यास ग्रहण कर लिया। यह समाचार सम्पूर्ण कांचीपुर में फैल गया। कांचीपूर्ण इस समारोह में उपस्थित थे।

उन्होंने कहा—''अब आज से तुम भगवान् वरदराज द्वारा दिये गये नाम से जाने जाओगे। मैं तुम्हें अपनी ओर से 'यतिराज' की उपाधि देता हूँ। 'यतिराज रामानुज', तुम धन्य हो।''

* * *

संन्यास-ग्रहण करते ही रामानुज श्रीरंगम आ गये। यहाँ आकर मन्दिर की पूजा, मठ की व्यवस्था और शिष्यों को भागवत-धर्म का उपदेश देने लगे। इसी

---

[1] कुछ लोग रक्षाम्बा भी कहते हैं।

बीच उन्हें अपने भाई गोविन्द की याद आई। उसे बुलाकर अपने मामा शैलपूर्ण से दीक्षा दिला दी।

मामा शैलपूर्ण ने एक दिन रामानुज से कहा—"वत्स, यहाँ तुमने द्वैतवाद का अध्ययन काफी कर लिया। गुरुदेव के सभी मूर्धन्य शिष्यों से भी ज्ञान प्राप्त कर लिया। मेरा अनुरोध है कि एक बार गुरुदेव (यामुनाचार्य) के प्रमुख शिष्य गोष्ठीपूर्ण से 'स-रहस्य' मन्त्र की दीक्षा ले लो। उनके जैसा ज्ञानी पुरुष इस अंचल में कोई नहीं है।"

मामाजी की सलाह पर रामानुज तिरुकोट्टी गये। गोष्ठीपूर्ण इनके आने का आशय समझकर इन्हें वापस कर दिया। इससे वे निरुत्साहित नहीं हुए। वे थोड़े-थोड़े दिनों के अन्तर पर जाते रहे और गोष्ठीपूर्ण हर बार रामानुज को वापस कर देते रहे। इस प्रकार सत्रह बार वापस आने के बाद जब वे अठारहवीं बार गये तब गोष्ठीपूर्ण ने इन्हें 'स-रहस्य' मन्त्र में दीक्षित कराया। इस मन्त्र को ग्रहण करते ही रामानुज में आश्चर्यजनक परिवर्तन हुआ। सारा कष्ट, संशय, अज्ञान पलभर में दूर हो गया और उनमें अतीन्द्रिय-शक्ति जागृत हो गई। इसके बाद वे गोष्ठीपूर्ण से बिदा लेकर वापस चल पड़े।

मार्ग में नारायण मन्दिर के पास आते ही उनमें सहसा नवचेतना जागृत हो गई। मन्दिर के पास खड़े होकर वे आने-जानेवालों से कहने लगे—"आप लोगों को आज मैं अमूल्य रत्न दूँगा। मेरा आग्रह है कि इस क्षेत्र में जितने लोग हैं, उन सभी को सूचना दें कि वे मन्दिर के पास आ जायँ।"

अमूल्य रत्न पाने की आशा से अपार भीड़ इकट्ठी हो गई। मन्दिर के एक ऊँचे बुर्ज पर खड़े होकर रामानुज कहने लगे—"उपस्थित भाइयों तथा बहनों, अगर आप जीवन के सारे कष्टों से परित्राण पाना चाहते हैं, अपने भीतर आनन्द पाना चाहते हैं तो मेरे साथ इस मन्त्र को दुहराएँ।"

भीड़ ने एक साथ कहा—"उस मन्त्र को जल्द बताइये।"

रामानुज उच्चस्वर में कहने लगे—"ॐ नमो नारायणाय नमः। ॐ नमो नारायणाय नमः। ॐ नमो नारायणाय नमः।"

उपस्थित सभी लोगों ने तीन बार इसे दुहराया और तुरन्त उन्होंने अनुभव किया कि उनके भाव में परिवर्तन हो गया।

यह समाचार तुरंत गोष्ठीपूर्ण के पास पहुँचा और वे आगबबूला हो उठे। रामानुज को बुलवाकर उन्होंने कहा—"अरे नराधम, तेरे जैसे व्यक्ति को महामन्त्र देकर मैंने महापाप किया है। तुझे नरकवास होगा।"

रामानुज जरा भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने नम्र होकर कहा—"महात्मन्, आपने कहा था कि जो इस मन्त्र को प्राप्त करेगा, उसे परमगति प्राप्त होगी। अगर मेरे नरकवास से इतने लोगों को मुक्ति मिल जाय तो मैं वैकुण्ठवास की अपेक्षा नरकवास अधिक पसन्द करूँगा।"

गोष्ठीपूर्ण इस उत्तर को सुनकर चौंक उठे। निस्सन्देह यह युवक मोह-मायाजाल

से ऊपर उठ चुका है। तुरंत रामानुज को गले लगाते हुए उन्होंने कहा—"सचमुच तुम महान् हो, धन्य हो। आज से तुम मेरे गुरु हुए। इतना बड़ा हृदयवाला व्यक्ति ईश्वर का अंश होता है।"

श्रद्धा के साथ गोष्ठीपूर्ण को प्रणाम करते हुए रामानुज ने कहा—"प्रभो, आप मेरे गुरु हैं। आपकी कृपा से ही सहस्त्र लोग धन्य हुए हैं।"

* * *

श्रीरंगम में वापस आकर रामानुज पठन-पाठन में लग गये। इसी बीच उनका भाँजा आल्वान[1] और कुरेश भट्ट[2] ही नहीं, इनके गुरु यादव प्रकाश ने इनसे संन्यास ग्रहण किया। उन दिनों रामानुज जैसा विद्वान् और प्रतिभाशाली ज्ञानी भारत में अन्य कोई नहीं था।

एक दिन आल्वान ने गीता के चरम श्लोकों के बारे में अपनी जिज्ञासा प्रकट की। रामानुज ने कहा—"अभी नहीं, एक वर्ष बाद आना तब बताऊँगा। यदि इसके पूर्व जानना चाहते हो तो एक मास भिक्षान्न ग्रहण कर भोजन करो। इसके बाद आना।"

गुरु के आज्ञानुसार आल्वान ने एक मास तक भिक्षान्न संग्रह करके भोजन किया। यह देखकर रामानुज ने उसे मन्त्र दिया। आल्वान पर गुरुदेव की कृपा हुई है, सुनकर कुरेश भट्ट भी गुरुदेव के निकट आया।

रामानुज यह जानते थे कि कुरेश को अपने ज्ञान तथा विद्वत्ता पर घमण्ड है। जब तक इसका घमण्ड दूर नहीं होगा तब तक मन्त्र देना उचित नहीं है। कुरेश को टालने के लिए रामानुज ने कहा—"तुम्हें मेरे गुरु गोष्ठीपूर्ण के निकट जाना पड़ेगा। वे ही तुम्हें मन्त्र देंगे।"

रामानुज की आज्ञा पाकर कुरेश लगातार छह मास तक गोष्ठीपूर्ण के यहाँ जाता रहा। जिस प्रकार वे रामानुज को टालते रहे, उसी प्रकार कुरेश को भी टालते रहे। उसकी लगन देखकर आखिर एक दिन गोष्ठीपूर्ण ने कहा—"वत्स कुरेश, तुम अपना सारा अभिमान त्याग दो और अपने गुरु की सेवा करो। वे ही तुम्हें मन्त्र देंगे।"

इस राय को सुनकर कुरेश अपने गुरु के पास आकर उनकी सेवा करने लगा। कुछ दिनों के बाद वह मन्त्र देने के लिए नये सिरे से प्रार्थना करने लगा, पर रामानुज बराबर टालते ही रहे। ठीक इन्हीं दिनों एक ऐसी घटना हो गई जिसकी वजह से कुरेश से रामानुज को मुक्ति मिल गई।

महापूर्ण की बेटी अत्तुला एक दिन रामानुज के पास आकर बोली—"भैया, मेरी ससुराल में काफी दूर से पानी लाना पड़ता है। मुझे रसोई बनाने में बड़ा कष्ट होता है। अपनी सास से जब अपनी परेशानी बतायी तो बोलीं कि पीहर से अपने साथ एक रसोइया लाती। यहाँ आकर मैंने पिताजी को अपनी मुसीबत सुनाई। उन्होंने मुझे आपके पास भेज दिया। अब बताइये, मैं क्या करूँ?"

---

[1] अपर नाम दाशरथी था।

[2] कुरेश भट्ट को कुरनाथ और मुड़ाली आण्डाल भी कहा गया है। इसे एक भिखारी श्रीरंगम ले आया था।

कुछ देर सोचने के बाद रामानुज ने कुरेश को दिखाते हुए कहा—''इसे अपने यहाँ लेती जा। कुरेश तुम्हारे यहाँ भोजन बनाया करेगा।''

कुरेश बिना किसी आपत्ति के गुरुदेव के आदेश पर अत्तुला के साथ रवाना हो गया। अत्तुला उसे साथ लेकर अपनी ससुराल आ गई।

छह-सात माह बाद की घटना है। अत्तुला की ससुराल में कई पण्डित बैठे किसी श्लोक में उलझे हुए थे। कुरेश ने विनीत भाव से उस श्लोक का अर्थ बताया। अचानक एक पण्डित नाराज होकर बोल उठा—''तू है रसोइया पण्डित। तू शास्त्र की बात क्या जाने?''

कुरेश ने बिना क्रोध प्रकट किये कई श्लोकों की व्याख्या इस ढंग से की कि उपस्थित पण्डित-मण्डली चौंक उठी।

दूसरे पण्डित ने विस्मय के साथ कहा—''जब आप इतने अच्छे जानकार हैं तब यहाँ रसोई क्यों बनाते हैं? आपको तो पठन-पाठन में लगे रहना चाहिए।''

कुरेश ने कहा—''मैं यह कार्य अपनी इच्छा से नहीं, बल्कि गुरुदेव की आज्ञा से कर रहा हूँ।''

बातचीत के सिलसिले में पण्डितों को कुरेश के बारे में सारी जानकारी प्राप्त हो गई। वे लोग रामानुज के पास आकर बोले—''प्रभो, आप कुरेश को ऐसी सजा क्यों दे रहे हैं? वह तो रत्न है।''

पण्डितों की सारी बातें सुनने के बाद रामानुज प्रसन्न हो गये। कुरेश को वहाँ से बुलाकर उन्होंने मन्त्र दिया। इस प्रकार चिरप्रतीक्षित आशीर्वाद कुरेश को प्राप्त हो गया।

पण्डित यामुनाचार्य के शिष्यों में गोष्ठीपूर्ण, महापूर्ण, मालाधर, कांचीपूर्ण और वररंग कुल पाँच प्रमुख शिष्य थे। इनमें से प्रत्येक अपने विषय के अलावा अन्य विषय से सम्पर्क नहीं रखता था। रामानुज ने इस सभी से उनके विषयों का अध्ययन किया। इस प्रकार वे सम्पूर्ण विषयों के एकमात्र आचार्य हुए।

जिस माया को शंकराचार्य ने सत्य-असत्य से परे अनिर्वचनीय बताया था, उसे रामानुज ने सत्य कहा और चित्-अचित् से विशिष्ट ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन किया। यही कारण है कि इनके वाद को 'विशिष्टाद्वैत' कहा गया है। इसी विषय पर एक बार रामानुज को शास्त्रार्थ करना पड़ा था।

श्री यज्ञमूर्ति से इसी विषय पर जब शास्त्रार्थ होने लगा तब रामानुज अपने को कमजोर महसूस करने लगे। यज्ञमूर्ति के तर्कों का समुचित उत्तर दे पाने में अपने को असमर्थ पाने लगे। उसी दिन वरदराज-विग्रह के सामने जाकर रामानुज रोते हुए बोले—''भगवन्, मेरे सभी मतों का खण्डन होता जा रहा है। मैं निरुपाय होता जा रहा हूँ। मेरी रक्षा करते हुए वैष्णव-मत को बचाने की कृपा करें।''

कहा जाता है कि उसी रात को स्वप्न में वरदराज भगवान् ने आकर कहा—''कल तुम्हारी विजय होगी।''

दूसरे दिन जब रामानुज सभा में आये तब इनके दमकते हुए चेहरे को देखकर

यज्ञमूर्ति हतप्रभ रह गये। कल की पराजय की छाप का कहीं पता नहीं था। उसके स्थान पर अपूर्व ज्योति प्रस्फुटित हो रही थी। उन्हें यह समझते देर नहीं लगी कि आज इन्हें दैव-बल प्राप्त हो गया है। अब इन्हें पराजित करना कठिन है। थोड़ी ही देर के शास्त्रार्थ में यह स्पष्ट हो गया कि यज्ञमूर्ति के तर्क कमजोर पड़ रहे हैं। मन में यह भावना उत्पन्न होते ही वे रामानुज के चरणों पर गिर पड़े। बोले—"महाराज, मैं अपनी पराजय स्वीकार करता हूँ।"

* * *

शिष्यों, भक्तों तथा गुरु-भाइयों से हुई बातचीत से रामानुज ने अनुभव किया कि केवल शिष्य बनाने और लोगों को उपदेश देने से वैष्णव-धर्म में स्थायित्व नहीं आ सकता। इसके लिए आवश्यक है कि पूर्ववर्ती विद्वानों के ग्रन्थों का पुनर्लेखन हो ताकि सारा दर्शन सुलभ हो सके। इस विचार को कार्यरूप देने के लिए रामानुज ने आल्वान को गणेश बनाया और 'ब्रह्मसूत्र' का भाष्य लिखवाने लगे।

एक दिन रामानुज ने कहा—"जीव नित्य और ज्ञाता है।"

सहसा आल्वान की लेखनी रुक गई। यह देखकर रामानुज चिन्तित हो उठे। निश्चित रूप से कहीं गलती हो गई है। लाख प्रयत्न करने पर भी वे अपनी भूल को समझ नहीं पाये। क्रोध के वशीभूत होकर उन्होंने आल्वान को पदाघात किया और आश्रम से बाहर निकल गये।

कावेरी-तट पर आकर वे चिन्तन करने लगे। धीरे-धीरे उनका क्रोध शान्त हो गया तभी उन्हें अपनी भूल ज्ञात हुई। तुरंत आश्रम आकर उन्होंने आल्वान से क्षमा माँगी। गुरुदेव को इस कदर व्याकुल देख उसने उनके चरण पकड़कर रोते हुए कहा—"प्रभो, मैंने जान-बूझकर ऐसा नहीं किया, बल्कि स्वतः मेरी लेखनी रुक गई।"

"नहीं वत्स। वह मेरी भूल थी। उसके स्थान पर मुझे कहना चाहिए था—"विष्णुकर्तृक अधिष्ठितत्व'।"

आल्वान की सहायता से आचार्य रामानुज ने क्रमशः वेदान्तदीप, वेदान्तसार-संग्रह, गीताभाष्य, नित्याराधन-विधि एवं गद्यत्रय नामक ग्रन्थों की रचना की। इन ग्रन्थों का लेखन-कार्य समाप्त होने के बाद वे भारत-भ्रमण के लिए चल पड़े।

विभिन्न प्रान्तों का भ्रमण करते हुए वे काश्मीर आये। यहाँ का 'शारदा-क्षेत्र' विद्या के लिए प्रसिद्ध था। कहा जाता है कि व्यक्तिविशेष के सामने सरस्वती देवी प्रकट होती हैं। स्वामी रामानुज राज्य में आये हैं, सुनकर वहाँ के तत्कालीन राजा ने दरबार में उनका स्वागत किया।

रामानुज ने कहा—"राजन्, मेरा यहाँ आने का एक उद्देश्य है। सुना है कि आपके शारदा-सदन में 'बोधायन-वृत्ति' की मूल प्रति है। मैंने ब्रह्मसूत्र का भाष्य लिखा है, पर मैं उस प्रति को एक बार देखना चाहता हूँ ताकि मेरा संशय दूर हो जाय।"

राजा की आज्ञा से उन्हें मूल प्रति प्राप्त हो गई। रामानुज और कुरेश दोनों व्यक्ति

उसका विधिवत् अध्ययन करते रहे। उन्हें इस बात पर सन्तोष हो गया कि उनका भाष्य ठीक है। कहा जाता है कि जब रामानुज सरस्वती देवी के मन्दिर में गये तब देवी इनके सामने प्रत्यक्ष रूप से प्रकट हुई थीं। रामानुज ने देवी के हाथों पर ब्रह्मसूत्र भाष्य की पाण्डुलिपि रख दी।

सरस्वती देवी ने उसका अवलोकन करने के बाद कहा—''वास्तव में तुम योग्य भाष्यकार हो। इसी नाम से ख्याति प्राप्त करोगे।''

रामानुज की अपूर्व शक्ति, ज्ञान और विद्वत्ता को देखकर काश्मीर-नरेश इनका शिष्य बन गया। एक बाहरी संन्यासी के बढ़ते प्रभाव को देखकर काश्मीरी पण्डित चिढ़ गये। एक परदेशी विद्वान् आकर अपने यहाँ अपना प्रभाव जमाये यह उनके लिए असह्य हो उठा। उन लोगों ने अभिचार-क्रिया की। इससे आचार्य को कष्ट होने लगा। कारण ज्ञात होते ही उन्होंने अपनी कार्यवाही की।

काश्मीर के नागरिकों ने एक दिन आश्चर्य के साथ देखा कि उनके यहाँ के अधिकांश पण्डित दिगम्बर रूप में सड़कों पर दौड़ रहे हैं। सभी के लिए यह अद्भुत दृश्य था। घटना का विवरण राजा के पास पहुँचा। वे रामानुज के पास आकर इस आचरण के कारण पूछने लगे।

रामानुज ने कहा—''राजन्, मुझे मार डालने के लिए इन पण्डितों ने अभिचार-क्रिया की। मैंने कुछ नहीं किया। मैंने इनकी क्रिया को हल्की करके इन्हें वापस कर दिया, इसलिए ये लोग नृत्य कर रहे हैं।''

राजा को रहस्य समझते देर नहीं लगी। उन्होंने कहा—''जो हो गया, सो हो गया। अब आप शीघ्र इसे रोकिये। यह राज्य की प्रतिष्ठा का प्रश्न है। मुझे इन्हीं लोगों को लेकर काम चलाना है। आप तो यहाँ से चले जायेंगे।''

अपना चरणोदक देते हुए रामानुज ने कहा—''इन पण्डितों पर यह जल छिड़कवा दीजिए। सब ठीक हो जायगा।''

काश्मीर से रामानुज विभिन्न नगरों में वैष्णव-धर्म का प्रचार करते हुए, कई महीने बाद श्रीरंगम वापस आ गये।

* * *

यहाँ कुछ दिनों विश्राम करने के बाद उन्होंने एक दिन निश्चय किया कि इस बार गरुड़ोत्सव धूमधाम से मनाया जाय। नगर के सभी लोग इस उत्सव में भाग लेंगे। यह समाचार पूरे नगर में फैल गया। निश्चित दिन लोगों की अपार भीड़ हुई। गलियों के सभी भवनों की छत, बरामदे और खिड़कियों पर दर्शकों की अपार भीड़ जमा हो गई। आचार्य रामानुज इस शोभायात्रा का नेतृत्व स्वयं कर रहे थे, इसलिए भक्तजनों में अपार उत्साह था। दर्शक रथ के पास आकर साथ लाये नैवेद्य भगवान् को अर्पित करते रहे। वापस जाते समय आचार्य का चरण-रज लेते रहे। श्रीरंगम के लिए यह अपूर्व घटना थी।

चलते-चलते रथ एक चौराहे पर रुका। नागरिकों में नैवेद्य चढ़ाने के लिए होड़

लगी हुई थी। ठीक इसी समय आचार्य की दृष्टि एक बलिष्ठ युवक पर पड़ी। वह युवक एक विशाल छत्र लिये एक महिला के पीछे-पीछे चल रहा था। उसकी दृष्टि रथ की ओर न होकर महिला के चरणों पर थी। लोग उसकी इस हरकत को देखकर हँस रहे थे, पर वह अपने भाव में मग्न था। युवक के इस मनोयोग को देखकर आचार्य ने एक शिष्य से कहा कि जाकर उसे बुला लाओ।

शिष्य ने वापस आकर कहा—''भगवन्, उसने कहा कि इस वक्त मैं बहुत व्यस्त हूँ। कल सेवा में उपस्थित हो जाऊँगा।''

अगले दिन रामानुज अपने छात्रों को भाष्य पढ़ा रहे थे। ठीक इसी समय कलवाला युवक आया और हाथ जोड़कर एक ओर खड़ा हो गया।

आचार्य ने पूछा—''वत्स, क्या नाम है तुम्हारा?''

''सेवक का नाम धनुर्दास है, प्रभो।''

''तुम कौन हो, क्या करते हो?''

''मैं जाति से शूद्र और पेशे से पहलवान हूँ।''

''कल रथोत्सव के समय किसके साथ जा रहे थे?''

''कल रथोत्सव था? इसकी जानकारी मुझे नहीं थी। मैं……… मैं तो………'' लज्जा से सिर झुकाते हुए उसने कहा—''अपनी प्रेयसी हेमाम्बा के साथ जा रहा था।''

''आखिर हेमाम्बा में ऐसी कौन-सी खूबी है जिसके कारण तुम्हें रथोत्सव का भी ध्यान नहीं रहा?''

धनुर्दास ने कहा—''भगवन्, उसकी आँखों की कोई तुलना नहीं है।''

रामानुज ने कहा—''यदि मैं उससे भी सुन्दर आँखें दिखा दूँ तो………।''

''यह असम्भव है।''

आचार्य ने कहा—''अच्छी बात है। आज शाम को आरती के समय मेरे साथ मन्दिर चलना।''

''जो आज्ञा।'' कहने के पश्चात् वह चला गया।

सायंकाल आरती के समय आचार्य के साथ वह रंगनाथजी के मन्दिर में हाथ जोड़े खड़ा था। आरती के समय भगवान् की आँखें रत्न की तरह चमकने लगीं। इस दृश्य को देखकर धनुर्दास हक्का-बक्का रह गया। तुरन्त आचार्य के चरणों को पकड़कर बोल उठा—''भगवन्, आज आपने मेरी आँखें खोल दीं।''

इसके पूर्व वह कई बार मन्दिर आया था, पर विग्रह की ऐसी आँखें नहीं देख सका था। इस घटना का प्रभाव उस पर ऐसा पड़ा कि घर-द्वार सब कुछ छोड़कर आचार्य की सेवा में आ गया। धनुर्दास के इस परिवर्तन का प्रभाव हेमाम्बा पर भी पड़ा। प्रेयसी होते हुए भी वह धनुर्दास को अपना पति मानती थी। वह भी अपने पति के साथ आचार्य की शिष्या बन गई।

* * *

अब आचार्य पहले की अपेक्षा वृद्ध हो गये थे। नित्य कावेरी में स्नान करने जाते समय ब्राह्मण शिष्य का सहारा लेकर जाते थे, पर लौटते समय धनुर्दास के अलावा अन्य किसी का सहारा नहीं लेते थे। आचार्यजी का यह व्यवहार ब्राह्मण शिष्यों को खलने लगा।

आखिर एक दिन असन्तोष को उन लोगों ने आचार्य के निकट प्रकट कर दिया। सारी बातें सुनने के बाद आचार्य ने कहा—''यह ठीक है कि वह शूद्र है, पर वह कितना महान् है, इसे कभी तुम लोगों ने देखा है? शायद अभी तक उसे समझ नहीं सके हो।''

रामानुज ने देखा कि उनके उत्तर से शिष्य सन्तुष्ट नहीं हुए। उन्होंने इसके लिए उपाय सोच लिया था। एक दिन एक छात्र को बुलाकर उन्होंने कहा—''आज रात तुम्हें एक कार्य करना है। जब सभी शिष्य सो जायें तब सभी के कौपीनों से थोड़ा-थोड़ा कपड़ा काट लेना। इसके बाद क्या होता है, यह आकर मुझे बताना। लेकिन याद रखना कि सारा काम चुपचाप हो। यह बात हम दोनों के अलावा कोई जानने न पाये।''

दो दिन बाद यह घटना हुई। इस प्रकार कौपीन कट जाने पर सभी शिष्य आपस में लड़ने लगे और एक-दूसरे को अपशब्द कहने लगे। उसी दिन लड़नेवाले छात्रों में से कुछ लोगों को बुलाकर आचार्य ने कहा—''आज जब मैं रात के समय धनुर्दास से बातें करता रहूँगा, उस समय तुम लोग उसके घर चले जाना और उसकी पत्नी के सारे जेवर चुरा लाना।''

आचार्य ऐसा आदेश देंगे, इस बात पर किसी को विश्वास नहीं था। लेकिन गुरु के आदेश के विरुद्ध कोई कुछ बोल नहीं सका।

उधर ठीक समय पर ब्राह्मण शिष्य चोरी करने पहुँचे और इधर धनुर्दास आचार्य से उपदेश ग्रहण कर रहा था। चोरी करनेवालों ने उसके घर जाकर देखा—हेमाम्बा गहरी नींद में सोयी हुई है। वे सब शीघ्रतापूर्वक जेवर उतारने लगे। एक ओर के जेवर जब उतर चुके तब एकाएक हेमाम्बा ने करवट बदली। चोरों ने समझा कि हेमाम्बा जग गई है। वे तुरन्त भाग खड़े हुए।

उनके मठ में प्रवेश करते ही आचार्य ने समझ लिया कि वे लोग आ गये हैं। तब उन्होंने धनुर्दास से कहा—''अब तुम अपने घर जा सकते हो।''

धनुर्दास के जाने के बाद आचार्य ने चोरी करनेवाले शिष्यों से कहा—''अब तुम लोग पुनः उसके घर जाओ। धनुर्दास तथा हेमाम्बा में क्या बातें होती हैं, छिपकर सुनना और तब आकर बताना।''

गुरु के आदेश पर सभी पुनः धनुर्दास के भवन में आये और छिपकर पति-पत्नी की बातें सुनने लगे। कमरे में प्रवेश करते ही धनुर्दास ने पूछा—''अरे, यह कैसी शक्ल बना रखी है तुमने? यह कोई श्रृंगार है?''

हेमाम्बा ने कहा—''अब क्या बताऊँ? तुम जिस वक्त आचार्यजी के आश्रम में थे उस वक्त कुछ चोर आये। मैंने सोचा कि बेचारे अभावग्रस्त हैं, इसलिए यह कुकर्म करने आये हैं। जब वे एक ओर के आभूषण उतार चुके तब मैंने करवट बदली ताकि दूसरी ओर का भी उतार लें। लेकिन मेरा दुर्भाग्य, मैं जाग गई हूँ, समझकर सब भाग गये।''

धनुर्दास ने कहा—''हाँ, वास्तव में यह तुम्हारा दुर्भाग्य ही रहा। तुम अभी तक यही सोचती हो कि सारी सम्पदा तुम्हारी है। तुम पर आचार्यजी के उपदेशों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। अरी पगली, यह सारी सम्पदा भगवान् की है। अगर तुम चुपचाप सोयी रहती तो वे अन्य सामान भी ले जाते।''

शिष्यों की जबानी सारी बातें सुनने के बाद उन्होंने कहा—''अरे मूर्खों, सोचो एक शूद्र का हृदय कितना विशाल है और एक तुम सब हो कि कौपीन से कुछ अंश गायब हो गया तो आपस में लड़ने लगे।''

आचार्य की फटकार सुनकर सभी लज्जित हो उठे। अब उनकी समझ में आया कि धनुर्दास के प्रति आचार्य की इतनी ममता क्यों है?

एक दिन आचार्यजी के शिष्यों ने एक अद्भुत दृश्य देखा। उस दिन आचार्य ध्यानमग्न होकर बैठे थे। सहसा दादागुरु महापूर्णजी आये। उन्होंने आचार्यजी को साष्टांग प्रणाम किया, फिर चुपचाप चले गये। शिष्यों को इस बात पर आश्चर्य हुआ कि दादागुरु ने हमारे गुरु को प्रणाम क्यों किया?

कुछ देर बाद जब आचार्यजी का ध्यान भंग हुआ तब एक शिष्य के प्रश्न करने पर उन्होंने कहा—''गुरु के प्रति शिष्य का जो कर्त्तव्य है, वही उन्होंने किया।''

इस उत्तर से वे और उलझ गये। दादागुरु महापूर्णजी तो आचार्यजी के गुरु हैं। फिर यह कैसी बात? वे इस समस्या को सुलझाने के लिए महापूर्ण के पास आये। शिष्यों की शंका को सुनकर उन्होंने कहा—''मैंने अपने गुरुदेव यामुनाचार्यजी को रामानुज के शरीर में देखकर प्रणाम किया था।''

दादागुरु की बातें सुनकर सभी शिष्य अवाक् रह गये। अब उन्हें समझते देर नहीं लगी कि उनके गुरु असाधारण हैं।

इसी प्रकार की एक और घटना कुरेश ने देखी थी। गुरुदेव एक व्यक्ति को इशारे से अपने पास बुला रहे थे। कुरेश को यह ज्ञात था कि यह व्यक्ति पूर्ण रूप से गूँगा और बहरा है। इसे गुरुदेव अपने कमरे में क्यों बुला रहे हैं। कुतूहलवश वह खिड़की के पास जाकर छिप गया और भीतर का दृश्य देखने लगा।

गुरुदेव ने इशारे से कहा—''मेरे पैरों को स्पर्श कर।''

गूँगे ने ज्यों ही उनके चरण स्पर्श किये त्यों ही वह बोल उठा—''गुरुदेव, भगवन्।''

* * *

श्रीरंगम चोल राज्य का अंग था। चोल का राजा शैव-धर्म का अनुयायी था। अपने राज्य में बढ़ते वैष्णव-धर्म के प्रभाव को देखकर वह चिढ़ गया। राज्य के सभी ब्राह्मणों को दरबार में बुलवाकर प्रत्येक से लिखवाने लगे—''मैं शैव-मत का हूँ।''

यहाँ तक कि एक बार कुरेश के एक शिष्य को लोग पकड़कर दरबार में ले गये। उससे जब हस्ताक्षर करने को कहा गया तब उसने इनकार कर दिया। राज-रोष बढ़ गया। सभा में उपस्थित पण्डितों ने कहा—''महाराज, ये लोग रामानुज के शिष्य हैं।

समग्र भारत में वैष्णव-धर्म का डंका बजा रहे हैं। आप जब तक इनके गुरु रामानुज को वशीभूत नहीं करेंगे तब तक कुछ नहीं होगा।''

राजा ने कहा—''ठीक है। रामानुज को पकड़कर लाया जाय।''

यह समाचार सैनिकों के पहुँचने के पहले ही श्रीरंगम पहुँच गया। उस समय आचार्य कावेरी में स्नान करने गये थे। कुरेश ने तड़ित्-बुद्धि से काम लिया। उसने आचार्य के वस्त्रों को पहन लिया। सैनिक आचार्य को पहचानते नहीं थे। कुरेश को रामानुज समझकर पकड़कर ले गये। जब यह समाचार महापूर्ण को ज्ञात हुआ तब वे भी कुरेश के साथ चल दिये।

इधर नदी किनारे स्नान करते समय आचार्य को सारा समाचार तुरत मालूम हुआ। उन्होंने घोषणा की कि वे स्वयं चोलराज के दरबार में जायेंगे। आचार्य के निर्णय का शिष्यों ने घोर विरोध किया। शिष्यों ने सुझाव दिया कि इससे अच्छा होगा कि आप चोलराज के राज्य के बाहर जाकर कहीं आश्रय ग्रहण करें। आपके मृत्यु-दण्ड से वैष्णव-धर्म का विनाश हो जायगा। चोलराज को जब यह ज्ञात होगा कि उसके सैनिक आचार्य के बदले किसी और को पकड़ लाये हैं तब वह पुनः आपको पकड़ने के लिए सैनिक भेजेगा। अतएव आप यथाशीघ्र यहाँ से प्रस्थान करें। आगे जो होगा, उसे देखा जायगा।

शिष्यों के विरोध करने पर आचार्य ने अपना निश्चय बदल डाला। उन लोगों के अनुरोध पर वे चोल राज्य के बाहर रवाना हो गये।

उधर अपनी असफलता से क्रुध होकर चोलराज ने कुरेश और महापूर्ण की आँखें निकाल देने की सजा दी।[1] महापूर्ण १०५ वर्ष के वृद्ध थे। वे इस आघात को सहन नहीं कर सके। उनका निधन हो गया। कुरेश कुछ लोगों की सहायता लेकर श्रीरंगम लौट आया।

* * *

आचार्य श्रीरंगम से रवाना होकर यथाशीघ्र चोल राज्य के बार निकल आये। कुछ दिनों बाद वे नृसिंहपुर पहुँचे। वैष्णव-धर्म का प्रचार करते हुए यहाँ इसके पूर्व दो बार आये थे। इस बार आने पर नृसिंहदेव के पुजारियों ने इनका हार्दिक स्वागत किया। उन्हें इस बात की कल्पना नहीं थी कि आचार्यजी पुनः दर्शन देंगे।

नृसिंहपुर के निवासियों को जब आचार्यजी के इस बार सहसा आने का कारण मालूम हुआ तो वे क्रोध से पागल हो उठे। उन लोगों ने चोलराज के विरुद्ध अभिचार-क्रिया करने का संकल्प किया। आचार्य के मना करने पर भी उन लोगों ने उनके अनुरोध को स्वीकार नहीं किया। इस क्रिया के कारण चोलराज के गले में घाव हो गया। कुछ दिनों तक तड़पने के बाद उसकी मृत्यु हो गई।

कुछ दिनों बाद आचार्य को कुरेश, महापूर्ण के साथ हुई घटनाओं की सूचना प्राप्त हुई। चोलराज के निधन का समाचार मिला। यह सब सुनकर आचार्य बेहोश हो गये।

---

[1] डॉ० के० ए० नीलकण्ठ शास्त्री अपनी पुस्तक 'दक्षिण भारत का इतिहास' में इस घटना को स्वीकार नहीं करते। पृ० ३७३।

गुरुदेव की यह स्थिति देखकर सभी लोग चिन्तित हो उठे। दिनभर सेवा करने पर ही वे स्वस्थ हुए। दूसरे दिन रामानुज ने अपने गुरु का श्राद्ध सम्पन्न किया। अभी यह घाव भरा नहीं था कि पूज्यपाद गोष्ठीपूर्ण के निधन का समाचार आया। इन सभी घटनाओं के कारण वे अत्यन्त मर्माहत हुए और देर रात तक रोते रहे।

कई रोज बाद जब उनका हृदय शान्त हुआ तब उन्होंने घोषणा की कि अब श्रीरंगम की यात्रा करूँगा। यहाँ एक अर्से तक निवास करने के कारण नृसिंहपुर के निवासियों के निकट आचार्य देवतुल्य हो गये थे। अब आचार्य यहाँ से चले जायेंगे, सुनकर सभी विद्रोही हो गये।

आचार्य ने उन्हें समझाते हुए कहा—"मैं हमेशा आप लोगों के बीच मौजूद रहूँगा। व्याकुल होने की आवश्यकता नहीं है।"

आचार्य ने अपनी एक प्रस्तर-मूर्ति बनाकर उन्हें समर्पित की और कहा—"यही मेरा प्रतिनिधि है।"

"हमें प्रतिनिधि नहीं चाहिए। हम आपको चाहते हैं। आप यहाँ रहेंगे तो हम आपसे जो चाहेंगे, वह मिलेगा। प्रस्तर की मूर्ति क्या देगी?"

यह सुनकर आचार्य क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने कहा—"आप लोग बड़े अविश्वासी हैं। इस प्रस्तर-मूर्ति से आपने कुछ माँगा जो आपको नहीं मिला?"

इस फटकार को सुनते ही भय के कारण लोग वहाँ से हट गये। दूर एक जगह प्रस्तर-मूर्ति को रखने के बाद उन लोगों ने मूर्ति से कहा—"आचार्यजी, हमारा प्रणाम स्वीकार करें।"

मूर्ति ने जवाब दिया—"आयुष्मान् भव। वैष्णव-मत के अनुयायी बनकर लक्ष्मीनारायण के प्रति भक्ति करो।"

* * *

श्रीरंगम वापस आकर वे सबसे पहले कुरेश से मिले। भगवान् रंगनाथ की पूजा करने के पश्चात् वे वरदराज से लगातार एक-एक कर तीन बार प्रार्थना करते रहे। इसके बाद एक दिन कुरेश को सामने बैठाकर उसकी आँखों पर हाथ फेरने लगे। देखते ही देखते कुरेश को पुनः दृष्टि मिल गई।

* * *

मठ में एक दही बेचनेवाली नित्य आकर दही दे जाती थी। दही लेने के बाद उससे कहा जाता था कि जरा बैठो, अभी पैसे मिलते हैं।

एक दिन हराचार्य नामक एक शिष्य ने उसे प्रसाद खाने को दिया। प्रसाद खाते ही बालिका की सुप्त प्रवृत्ति जाग उठी। उसने दही के पैसों के बदले मोक्ष की माँग की।

उसकी बातें सुनकर उपस्थित लोग हँसने लगे। एक वृद्ध ने कहा—"मोक्ष कोई सरल वस्तु नहीं है बेटी। जाओ, घर चली जाओ।"

बालिका को उपदेश नहीं, मोक्ष चाहिए था। लगी वह जिद्द करने। लोग उसे जितना समझाते, उतनी ही वह जिद्द करती। शोरगुल सुनकर आचार्य रामानुज आये। उन्होंने कहा—"एक काम करो, बेटी। तुम यहाँ से वेंकटाचल चली जाओ। वे तुम्हें मोक्ष दे देंगे।"

बालिका ने कहा—"ठीक है, पर वे मुझे पहचानेंगे कैसे? आप उनके नाम एक पत्र लिखकर दीजिए।"

बालिका की सरल बातों का प्रभाव पड़ा। आचार्यजी सब समझ गये। उन्हें पत्र लिखते देख शिष्यों को आश्चर्य हुआ, पर किसी ने कोई प्रश्न नहीं किया।

बालिका वह पत्र लेकर वेंकटाचल गई। विग्रह के सामने पत्र रखती हुई बोली—"मुझे यह पत्र आचार्य रामानुज ने दिया है। कृपया मुझे मोक्ष दीजिए।"

इतना कहकर वह साष्टांग करने लगी तो फिर नहीं उठी। उसकी आत्मा वेंकटाचल-विग्रह में लीन हो गई।

* * *

इन सभी घटनाओं के साठ वर्ष बाद की बात है। रामानुज अब काफी जर्जर हो गये थे। इस बीच धनुर्दास, हेमाम्बा, शैलपूर्ण, कुरेश आदि का निधन हो गया था। आल्वान को मन्दिर की पूजा का भार सौंप दिया गया था। एक दिन शिष्यों ने आचार्य से कहा—"भगवन्, अगर आप अनुमति दें तो आपकी दो प्रस्तर-मूर्तियाँ बनवायी जायें ताकि सम्प्रदाय के भक्त आपकी पूजा करते रहें।"

आचार्य ने अनुमति प्रदान की। मूर्तियाँ तैयार हो गईं। एक दिन कावेरी में स्नान करने के बाद आचार्य अपनी प्रस्तर-मूर्तियों के सामने आकर खड़े हो गये। उन्होने दोनों विग्रहों में अपनी शक्ति का संचार किया।

इसके बाद उन्होंने कहा—"आज मेरा काम पूरा हो गया। अब मैं विश्राम करना चाहता हूँ।"

शिष्य गोविन्द की गोद में सिर और शिष्य आन्ध्रपूर्ण की गोद में पैर रखकर वे समाधिस्थ हो गये। थोड़ी ही देर बाद गोविन्द ने देखा कि ब्रह्मरन्ध्र भेदकर आचार्यजी महाप्रयाण कर गये हैं।

■ ■ ■

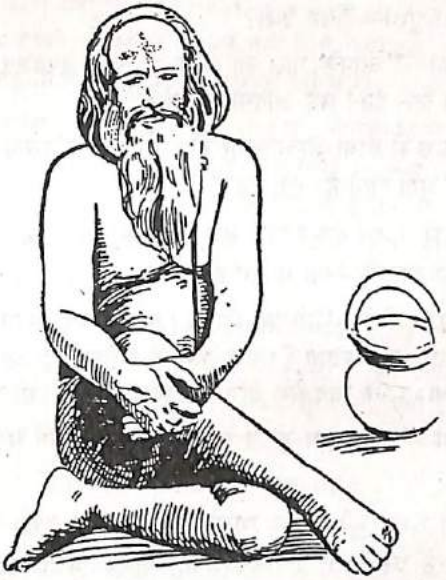

रामदास काठिया बाबा

जिला अमृतसर के एक गाँव का नाम है—लोना चमारी। इस गाँव में एक परमहंस बाबा एक अर्से से रहते थे। सिद्ध पुरुष थे। उनके आशीर्वाद से कुछ लोगों का कल्याण हुआ था, इसलिए सभी किसान बाबा के प्रति श्रद्धा रखते थे। घर में किसी प्रकार का शुभ कार्य प्रारम्भ करने के पहले लोग उनके पास जाकर अनुमति लेते थे। स्नान करने के बाद या बाबा की कुटिया के पास से गुजरनेवाले लोग बाबा को दण्डवत् करते थे।

इसी गाँव का एक बालक जब कभी इधर आता तब गाँव के लोगों को किसान बाबा को प्रणाम करते देखता तब उसे अपार आश्चर्य होता। आखिर सभी लोग इस बाबा को प्रणाम क्यों करते हैं? गाँव में और भी लोग हैं, किसी को हर कोई प्रणाम नहीं करता। लगता है, बाबा बहुत बड़े आदमी हैं। इस प्रश्न के निराकरण के लिए किसी से कुछ पूछने का साहस नहीं होता था। उसने सोचा कि सबसे सरल उपाय है—बाबाजी से इस सवाल का जवाब पूछूँगा।

कुछ दिनों बाद बाबाजी की कुटिया की ओर से जाते समय बालक ने देखा—बाबा अकेले बैठे हैं। अपनी आदत के अनुसार वह निर्द्वन्द्व होकर बाबा के पास पहुँच गया। उसके आने पर बाबा अक्सर उसे मिठाई या फल खाने को देते थे। इसी लालच से वह कभी-कभी घण्टों बेकार बैठा फालतू बातें किया करता था।

उस दिन बिना किसी भूमिका के उसने पूछा—"बाबाजी, इस दुनिया में आप सबसे बड़ी आदमी हैं।"

बाबा ने हँसकर पूछा—"वह कैसे?"

बालक ने कहा—"आपके पास जो आता है, वही दण्डवत् करता है। अच्छा, यह बताइये कि आप कैसे इतने बड़े आदमी हो गये?"

शिशु-सुलभ प्रश्न से बाबा आत्मविभोर हो उठे। स्नेह से उसके सिर पर हाथ फेरते हुए उन्होंने कहा—"भूख लगी है। लो, खाओ।"

बाबा के हाथ से मिठाई लेकर खाते हुए उसने पुनः प्रश्न किया—"बताइये न? मैं भी आपकी तरह बड़ा आदमी बनना चाहता हूँ।"

बाबाजी हँस पड़े। बोले—"तो यह बात है। तू भी बड़ा आदमी बनना चाहता है? देख बेटा, मैं हमेशा राम-राम कहता हूँ। राम-नाम के कारण बड़ा आदमी बना हूँ। तू भी हमेशा राम-राम कहना। इसके बाद मेरी तरह एक दिन बड़ा आदमी बन जायगा।"

बालक ने कहा—"राम-नाम कहने से अगर बड़ा आदमी बना जा सकता है तो मैं जरूर कहूँगा।"

यह घटना उस समय की है जब बालक की उम्र चार साल की थी। बचपन में जब कोई बात दिल में पैठ जाती है तब उसका व्यापक असर पड़ता है। बालक पर राम-नाम जपने का नशा सवार हो गया। बाबाजी के पास जाने पर वे उसे और उत्साहित करते थे।

कुछ दिनों बाद बालक रामदास के जीवन में एक अद्भुत घटना हुई। नित्य सबेरे जलपान करने के बाद वह घर की भैंसों को लेकर दूर चराने ले जाता था। कुल चार भैंसें थीं। एक दिन वह उन भैंसों को मैदान में छोड़कर पीपल की छाँह में बैठा राम-नाम जप रहा था। ठीक इसी समय एक बाबाजी न जाने किधर से आये और उससे कहा—"बच्चा, कुछ खिलाओगे, बड़ी भूख लगी है।"

रामदास ने कहा—"जरूर खिलाऊँगा बाबा। आप एक काम कीजिए। यहाँ बैठकर मेरी भैंसों पर नजर रखिये तब तक मैं आपके लिए घर से खाने का सामान ले आता हूँ।"

साधु ने कहा—"ठीक है, बेटा। मैं तुम्हारी भैंसों की रखवाली करता हूँ। तुम मेरे लिए भोजन ले आओ।"

रामदास दौड़ता हुआ घर पहुँचा तो देखा कि सभी लोग खा-पीकर सो गये हैं। वह भण्डारघर से आटा-दाल लेकर आया। सारी सामग्री देते हुए कहा—"इसे बनाकर आप खा लीजिए। मैं पानी ला देता हूँ।"

भोजन करने के बाद साधु ने कहा—''बेटा, तुम योगिराज बनोगे।''

रामदास ने कुतूहलवश पूछा—''यह कैसे होगा, बाबा? मेरे माता-पिता हैं, भाई हैं, भैंस हैं। मैं नित्य पाँच सेर दूध पीता हूँ। मैं योगिराज कैसे बन सकता हूँ?''

साधु ने कहा—''बच्चा, जब मेरे मुँह से यह आशीर्वाद निकल गया तब होकर ही रहेगा। तुम योगिराज अवश्य बनोगे।''

इतना कहकर साधु महाराज चल पड़े और कुछ दूर आगे जाते ही हवा में गायब हो गये। दूर-दूर तक देखने पर भी वे दिखाई नहीं दिये। रामदास को लगा जैसे उसके मन में कुछ परिवर्तन हुआ है। क्या हुआ है, समझ नहीं पाया।

समयानुसार उसका उपनयन हुआ और फिर उसे पाठशाला में पढ़ने के लिए भेज दिया गया। उसकी धी-शक्ति देखकर गुरुजी दंग रह गये। एक बार जिस पुस्तक को वह पढ़ लेता मानो वह कण्ठस्थ हो जाता था। इसी गुण के कारण गुरुजी अन्य छात्रों की अपेक्षा उसे अधिक स्नेह देते थे। यह देखकर पाठशाला के अन्य छात्र जलने लगे। सभी छात्रों ने मिलकर षड्यन्त्र किया।

एक दिन छात्रों ने गुरुजी से शिकायत की कि रामदास पाठ्य-पुस्तक पढ़ता नहीं। जब देखो तब माला फेरता रहता है। आप चाहें तो किसी से पूछ लीजिए। सभी छात्रों के स्वीकार करने पर गुरुजी ने रामदास को बुलाकर पूछा—''क्यों रे, यहाँ माला फेरने आता है कि पढ़ने आता है?''

रामदास ने कहा—''गुरुजी, मैं अपना पाठ बराबर पढ़ता हूँ। आज्ञा हो तो सुनाऊँ।''

पाठ्य-पुस्तक मँगवाकर गुरुजी ने प्रश्न पूछा। रामदास ने ठीक उत्तर दिया। शिकायत करनेवाले छात्रों को डाँटते हुए उन्होंने कहा—''रामदास अगर अपना पाठ याद करके माला फेरता है तो तुम लोग चिढ़ते क्यों हो? दूर हो जाओ मेरे सामने से।''

कहाँ तो लड़के शिकायत करने गये थे और कहाँ उन्हें डाँट खानी पड़ी। इस घटना के बाद से फिर किसी को कुछ कहने का साहस नहीं हुआ। गुरुजी के यहाँ लगातार दस वर्षों तक वह व्याकरण, ज्योतिष, विष्णुसहस्रनाम, श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थों का अध्ययन करता रहा।

शिक्षा समाप्त होने पर पिता ने उसके विवाह के लिए तैयारी आरम्भ की। इस समाचार को सुनते ही रामदास ने कहा कि मैं विवाह नहीं करूँगा। पिता ने कहा—''घर के बड़े लड़के हो, जब तुम विवाह नहीं करोगे तो तुम्हारे छोटे भाइयों का कैसा होगा?''

रामदास ने कहा—''मुझे छोड़ दीजिए। उन लोगों का विवाह कर दीजिए।''

प्रत्युत्तर में पिता ने पुनः कुछ नहीं कहा। रामदास के गुरु ने एक बार बातचीत के सिलसिले में कहा था कि सवा लाख गायत्री मन्त्र पाठ करने पर सिद्धि प्राप्त होती है। रामदास के घर के पास एक बरगद का पेड़ था। उसने सोचा कि वहीं सुनसान स्थान में वह सवा लाख गायत्री मन्त्र जप करेगा। दिन गुजरते गये। धीरे-धीरे एक लाख गायत्री मन्त्र एक दिन सम्पूर्ण हुआ। अभी पचीस हजार बाकी है। उसी दिन घर जाते समय वृक्ष

पर से किसी अदृश्य वाणी ने कहा—''वत्स, शेष पचीस हजार जप तुम ज्वालामुखी में जाकर करो तभी मैं सिद्ध हो जाऊँगी।''

इस वाणी को सुनकर रामदास चौंका। यह बात किसी दूसरे को कैसे मालूम हो गई कि मैं गायत्री मन्त्र सिद्ध कर रहा हूँ, पर अन्तिम बात सुनने के बाद उसने समझ लिया कि यह गायत्री देवी स्वयं कह रही थीं। इस आदेश को सुनकर उसका हृदय प्रसन्नता से भर उठा।

दूसरे दिन अपने भतीजे को लेकर वह ज्वालामुखी की ओर रवाना हो गया। रामदास के गाँव से ८० मील दूर ज्वालामुखी का मन्दिर है। मार्ग में एक जगह सहसा एक साधु को देखते ही उसके पैर अपने-आप रुक गये। साधु के पास जाकर उसने साष्टांग दण्डवत् किया। उन्होंने हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया।

साधु महाराज के स्पर्श से ही उसके समस्त शरीर में एक प्रकार की झनझनाहट-सी हुई। वह काँप उठा। वह यह भूल गया कि पचीस हजार गायत्री मन्त्र पाठ करने के लिए उसे ज्वालामुखी जाना है। स्वयं देवी ने उसे आज्ञा दी है।

साधु महाराज की ओर एकटक देखते हुए उसने कहा—''मैं ब्राह्मण हूँ, महाराज। मुझे अपनी सेवा में रख लीजिए। मैं आपका शिष्य बनना चाहता हूँ।''

रामदास के विनयपूर्ण सम्भाषण से प्रसन्न होकर साधु ने कहा—''वत्स, यह कठिन मार्ग है। शिष्य बन जाना सरल है, पर साधना और त्याग दुरूह होता है। कुछ दिन ठहरकर देख लो।''

रामदास के श्रम, लगन और निष्ठा देखकर साधु ने उसे अपना शिष्य बना लिया। सिर मुड़वाकर उसे 'वैराग्य आश्रम' की उपाधि दी गई। बचपन से वह जिस चीज को पाना चाहता था, आज उसका श्रीगणेश हो गया। रामदास के लिए मुश्किल उस समय हुई जब उसके इस कार्य का विरोध साथ आये भतीजे ने किया। समझाने पर भी जब रामदास ने नहीं माना तब सीधे घर आकर उसने रामदास के पिता को सारा विवरण सुनाया।

रामदास साधु बन गया है, यह समाचार सुनते ही पिता क्रोध से बौखला उठे। तुरंत साधु के आश्रम में आकर बिगड़ उठे—''अगर तुम सीधे से नहीं चलोगे तो लाचारी में मुझे पुलिस की सहायता लेनी पड़ेगी।''

प्रत्युत्तर में रामदास ने कहा—''पिताजी, अब मैं बालिग हो गया हूँ। पुलिस के सामने यह स्पष्ट कर दूँगा कि मैंने किसी दबाव, भय या नाराजगी के कारण नहीं, बल्कि स्वेच्छा से संन्यास ग्रहण किया है।''

ज्येष्ठ पुत्र की बातों से पिता की ममता को बड़ा धक्का लगा। उन्होंने रोते हुए उसके गुरुदेव से कहा—''जो होना था, वह हो गया। कृपया इस बालक को एक बार छोड़ दीजिए वरना इसकी माँ रोते-रोते मर जायगी। माँ इसे एक बार देख ले, फिर यह वापस आपके पास आ जायगा।''

गुरु ने कहा—''ठीक है। साधु को संन्यास लेने के पश्चात् एक बार जन्मभूमि

जाना पड़ता है। सब ठौर एक ही है। इसमें कोई दोष नहीं। तुम इनके साथ जाकर अपनी जन्मभूमि को चेताओ।''

चलते-चलते रामदास ने कहा—''पिताजी, मेरे साथ कोई छल मत करियेगा। अब मैं तन-मन से संन्यासी हूँ।''

गाँव में प्रवेश करते ही रामदास ने कहा—''मैं संन्यासी हो गया हूँ अतएव घर पर नहीं रह सकता। इसी पेड़ के नीचे रहूँगा।''

जिस वृक्ष के नीचे कभी वह गायत्री मन्त्र जपता रहा, उसी के नीचे बैठ गया। बेटा वापस आया है, सुनकर माँ दौड़ी हुई आई और घर चलने के लिए जिद् करने लगी। माँ को सान्त्वना देते हुए रामदास ने कहा—''माँ, मेरा निश्चय अटल है। अगर इस तरह रोओगी तो मैं यहाँ से चला जाऊँगा।''

बेटा वापस चला जायगा, सुनकर माँ चुप हो गई। कम-से-कम यहाँ रहने पर आँखों के सामने तो रहेगा। गाँव के लोगों ने प्रस्ताव किया कि रामदास नित्य एक घर जाकर अन्न ग्रहण करेगा। खाली समय में वह गायत्री मन्त्र का जप करता था। एक दिन रात्रि के समय देवी ने आकर कहा—''वत्स, अब जप करने की जरूरत नहीं। मैं प्रसन्न हूँ। बोलो, कौन-सा वर दूँ?''

रामदास ने कहा—''मुझे कुछ नहीं चाहिए माँ। आप केवल मुझ पर प्रसन्न रहा करें।''

'तथास्तु' कहने के बाद देवी अन्तर्धान हो गईं। कई दिनों के बाद रामदास अपने घर में अन्न ग्रहण करने गया तो लड़के की स्थिति देखकर माँ का दर्द उमड़ पड़ा। रामदास ने कहा—''अगर इस तरह तुम रोओगी तो क्या मुझसे खाना खाया जायगा? इसीलिए मैं यहाँ नहीं रहना चाहता था।''

माँ ने कलेजे पर पत्थर रखकर अपने आवेग को रोक लिया। लेकिन उसकी आँखें बरसती रहीं। रामदास ने कहा—''रोने से कोई लाभ नहीं होगा, माँ। मैंने जो मार्ग अपनाया है, उससे हम दोनों का कल्याण होगा।''

माँ ने एक लम्बी साँस लेने के बाद कहा—''ठीक है बेटा। जिससे सभी का कल्याण हो, वही करो। अपने नियमानुसार यहाँ आकर भोजन कर लेना। अब कभी नहीं रोऊँगी।''

* * *

इसी प्रकार दिन गुजरते गये। रामदास ने कुछ दिनों बाद अनुभव किया कि गाँव के रिश्ते से भाभी लगनेवाली एक युवती शाम ढले नित्य आती है। परिहास करती है। उसकी आदत से तंग आकर रामदास ने कहा—''भाभी, अब मैं संन्यासी हो गया हूँ। शाम ढले मेरे यहाँ न आया करें।''

भाभी ने पूछा—''इससे क्या हुआ?''

रामदास ने कहा—''हुआ तो कुछ नहीं, किन्तु परस्त्री को संन्यासी के पास नहीं आना चाहिए।''

उस दिन भाभी चुपचाप चली गईं। दूसरे दिन पुनः उसी समय आई। यह देखकर रामदास ने फटकारा। वह बेहया की तरह बोली—''इससे क्या नुकसान होता है।''

रामदास को समझते देर नहीं लगी कि इस पापिष्ठा की नीयत ठीक नहीं है। उन्होंने एक ढेला उठाकर उसे मारा। वह नाराज होकर चली गई। रामदास को शंका हुई कि आज भाभी आई, कल कोई और आ सकती है। इससे अच्छा है कि यह स्थान छोड़ दूँ।

इसी प्रकार की एक घटना रामदास के साथ और हुई थी। पंजाब स्थित एक छोटी रियासत की विधवा रानी इन पर आसक्त हो गई थीं। बहुत ही सुन्दर और नवयौवना थीं। उसने प्रस्ताव रखा—''आप मेरी काम-वासना की पूर्ति करते हुए मेरे राज्य में ऐश करिये।''

कहा जाता है कि गदराया हुआ यौवन देखकर रामदास इस रानी पर आसक्त हो गये थे, पर दूसरे ही क्षण इन्हें अपने वैराग्य-जीवन की याद आ गई। अपने को संयत करते हुए वे राज्य से भाग गये। उन्हें लगा कि गुरु-कृपा से वे बच गये।

गाँव से सीधे गुरुजी की सेवा में आ गये। गुरु ने निश्चय किया कि शिष्य कितना योग्य है, इसकी जाँच करनी चाहिए। इसमें कोई सन्देह नहीं कि रामदास को बड़ी कड़ी परीक्षा देनी पड़ी थी।

रामदास के गुरुदेव का जन्म अयोध्या जिले के किसी गाँव में हुआ था। संन्यास लेने के बाद उनका नाम हुआ—स्वामी देवदास। अपनी कठोर साधना के माध्यम से वे सिद्ध हो गये थे। कहा जाता है कि वे छह माह तक समाधि में लीन रहते थे। जब समाधि में नहीं रहते थे तब गाँजा-चरस पीना, उपदेश देना आदि कार्य करते थे। उन्हें नींद नहीं आती थी। भोजन के नाम पर धूनी की विभूति कपड़छान कर पानी में घोलते और उसे पी जाते थे। कुछ देर बाद कै के द्वारा उसे उगल देते थे। फिर रामदास से कहते—''इसे तौलकर देख, जितना मुझे पिलाया था, उतना है या नहीं?''

* * *

एक बार रामदास गुरुजी के विनोद के कारण काफी परेशान हुआ था। उस दिन उन्होंने रामदास से कहा—''बेटा, मेरा कोठा बड़ा गरम हो गया है। कहीं से दूध लाकर पिलाओ तो यह गरमी दूर हो जाय।''

रामदास गुरुजी के लिए चारों ओर से माँगकर करीब २० सेर दूध लाये। डेगची में गरम करने के पश्चात् उसे गुरुजी के सामने रख दिया। गुरुजी डेगची उठाकर सारा दूध एक बार में पी गये। बाद में उन्होंने कहा—''बेटा, अभी कोठा कुछ गरम है। मुझे थोड़ा दूध और चाहिए तब जरा ठण्ढा होगा।''

यह दृश्य देखकर रामदास का पसीना छूटने लगा। वे बचपन में पाँच सेर दूध अवश्य पीते थे, पर कई बार में। लेकिन गुरुजी एक साँस में २० सेर पीने के बाद कह रहे हैं कि थोड़ा और चाहिए। भयभीत होकर उसने गुरुजी की प्रदक्षिणा करने के बाद उनके चरणों पर माथा रखते हुए कहा—''महाराज, आप भगवान् हैं। आपके कोठे की गर्मी मैं कैसे दूर कर सकता हूँ? आप २० सेर दूध डकार गये और अभी तक आपकी गर्मी दूर नहीं हुई। अब कहाँ से दूध ले आऊँ? अब मुझे क्षमा कर दें।''

गुरुदेव उसकी मजबूरी को समझते हुए बोले—''बेटा, कहीं से भी थोड़ा दूध ला दो। इस बार जो लाओगे, उससे तृप्त हो जाऊँगा।''

लाचारी में रामदास को जाना पड़ा। इस बार वह ५-७ सेर दूध लाया। उसे पीने के बाद गुरुजी ने कहा—''अब मेरी गर्मी दूर हो गई।''

इसी प्रकार एक बार अपने कुछ शिष्यों के साथ एक जंगल के किनारे गुरुजी आसन लगाये बैठे थे। अचानक बोल उठे—''बेटा, तलब लगी है। तुममें से कोई शहर जाकर दो रुपये का गाँजा ले आओ।''

अँधेरी रात, घना जंगल, चारों ओर हिंस्रक जानवर चहलकदमी कर रहे थे। इस जंगल को पार करने का साहस किसी को नहीं हो रहा था। कुछ देर के बाद रामदास ने कहा—''गुरुदेव, अगर आप मुझे आदेश दें तो मैं ले आऊँ?''

गुरुदेव ने कहा—''ठीक है। तुम्हीं चले जाओ। शहर पहुँचने पर तुम्हें रुपये अपने-आप मिल जायेंगे। उन रुपयों से गाँजा लेकर चले आना।''

रामदास को यह ज्ञात था कि गुरुदेव असाधारण योगी हैं। इनके लिए कुछ भी अकरणीय नहीं है। अगर मैं इस भयानक जंगल और हिंस्र पशुओं के बीच से जाऊँगा तो वे मेरी बराबर रक्षा करते रहेंगे। जंगल पारकर रामदास शहर के भीतर आया। चारों ओर सुनसान था। सड़क पर एक-दो व्यक्ति आ-जा रहे थे। घरों की रोशनियाँ बुझी हुई थीं।

कुछ दूर आगे बढ़ने पर एक घर से रोशनी बाहर आती दिखाई देने लगी। वहाँ पहुँचते ही उस घर से एक आदमी बाहर निकला और कहा—''बाबाजी, आज मैंने संकल्प किया था कि किसी साधु को दो रुपये दूँगा। काफी देर से प्रतीक्षा क़र रहा था। सौभाग्य से आप मिल गये। लीजिए।''

इतना कहकर उसने दो रुपये दिये और अपने घर का दरवाजा बन्द कर लिया। रामदास ने अनुभव किया कि यह गुरुदेव की महिमा है। अब गाँजे की दुकान कहाँ है? कुछ दूर आगे बढ़ने पर देखा—गाँजा-भाँग का दुकानदार सो रहा है। उससे गाँजा खरीदने के बाद रामदास की इच्छा हुई कि जरा दम लगा लें। साधुओं की संगत में रहने के कारण उन्हें गाँजा पीने का शौक हो गया था।

इसके बाद वहाँ से चलकर सीधे गुरुजी के पास आया। ज्योंही उसने प्रणाम किया त्यों ही गुरुजी बोल उठे—''क्यों बेटा, गुरु का कार्य इसी तरह किया जाता है? पहले स्वयं भोग लगाकर अवशिष्ट पदार्थ गुरुजी को दोगे? क्या मुझसे यही शिक्षा मिली है?''

गुरुदेव की अन्तर्दृष्टि यहाँ तक पहुँच जायगी, इसकी कल्पना रामदास को नहीं थी। सारा नशा हिरन हो गया। भय से पैर थरथराने लगे। जीभ तालु से सट गई। तुरन्त घुटने टेकते हुए उसने कहा—''भगवन्, मुझसे भयंकर अपराध हो गया। मैं आपका अबोध पुत्र हूँ। भविष्य में ऐसी भूल नहीं होगी—प्रभो।''

गुरुदेव ने कहा—''निस्सन्देह तुम बालक हो और यह तुम्हारी भूल है। अतएव तुम्हें क्षमा करता हूँ। भविष्य में सावधान रहना।''

* * *

रामदास के गुरुदेव असाधारण योगी थे। उनकी अनेक योग-विभूतियों को उसने प्रत्यक्ष रूप से देखा और अनुभव किया है। लाहौर की घटना उसे याद है। उन दिनों वे अपने कतिपय शिष्यों के साथ लाहौर में डेरा डालकर विश्राम कर रहे थे। नगर के लोग सुबह-शाम प्रवचन सुनने आते थे। इनमें से एक दुशाले का व्यापारी भी था।

इस व्यापारी से एक दिन स्वामीजी ने कहा—"सेठ, तुम अपनी ओर से इन आगत साधुओं को एक दिन भण्डारा दो।"

स्वामीजी के प्रस्ताव को सुनकर व्यापारी घबरा गया। उन दिनों कुल मिलाकर एक हजार के लगभग साधु थे। उसने साफ इनकार कर दिया। पुनः अनुरोध करने पर अपमानजनक शब्द कहता हुआ चला गया।

उसके इस व्यवहार से शिष्य तथा साधु-मण्डली क्षुब्ध हो उठी। देवदास स्वामी ने कहा—"सेठ को अपने धन का बहुत घमण्ड हो गया है। आज इसे तोड़ना है वरना यह निरन्तर साधुओं का अपमान करता रहेगा।"

इतना कहकर देवदास स्वामी ने कमण्डल से जल निकालकर अपने सामने की धूनी पर छिड़का और कह उठे—"सेठ, तेरी दुकान में आग लग गई।"

थोड़ी देर बाद रामदास ने देखा—सामने से वही सेठ दौड़ता हुआ आ रहा है। बाबा के पास आकर धड़ाम से गिर पड़ा। बदहवास होकर बोला—"महाराज, मुझे बचा लीजिए। मैं बड़ा पापी हूँ। मैं एक दिन नहीं, सात दिनों तक भण्डारा दूँगा। मुझे बरबाद होने से बचा लें।"

सदाशय बाबा प्रसन्न हो उठे। उन्होंने अभय मुद्रा में हाथ उठाकर कहा—"अच्छी बात है। जाओ, सब ठीक हो गया। दण्ड के रूप में एक दुशाला नष्ट हुआ है। लेकिन एक बात याद रखना कि आगे कभी किसी साधु का अपमान मत करना।"

सेठ को विश्वास नहीं हो रहा था, फिर भी वह चरण-स्पर्श कर ज्यों ही उठा त्यों ही दुकान के नौकर ने आकर सूचित किया—"आग बुझा दी गई है। एक दुशाले के अलावा और कुछ नुकसान नहीं हुआ है।"

नौकर के जबानी यह समाचार सुनकर सेठ ने पुनः चरण-स्पर्श किया और चला गया। उसके जाने के बाद चकित भाव से रामदास ने पूछा—"भगवन्, यह सब कैसे हो गया? कृपया बताने का कष्ट करें।"

देवदास स्वामी ने कहा—"इस सेठ को अपने धन का घमण्ड बहुत अधिक हो गया था। देव-द्विज, साधु-महात्माओं के प्रति अवज्ञा की भावना इसके मन में घर कर गई थी। फलतः दण्ड देना पड़ा जिससे विनम्र बना रहे और ईश्वर के प्रति आस्थावान् रहे। जिस विद्या के जरिये मैंने यह कार्य किया है, उसे तुम्हें बता दूँगा। परन्तु इस बात पर ध्यान रखना कि उसे किसी कुपात्र को मत देना वरना तुम्हारी हानि होगी।"

लाहौर से चलकर स्वामीजी भोपाल आये। भोपाल का ताल विश्व-प्रसिद्ध है। इस ताल के किनारे आसन बिछाकर स्वामीजी बैठ गये और शंख बजाने लगे। भोपाल के

नवाब का सख्त हुक्म था कि कोई भी व्यक्ति ताल के समीप शंख, घण्टा, घड़ियाल आदि नहीं बजायेगा वरना उसका सिर कलम कर दिया जायगा।

इधर शंख बजना था कि उधर नवाब का पारा गरम हो गया। प्यादों का दल दौड़ा। किनारे पर आकर उन लोगों ने देखा—स्वामीजी का सिर कहीं, पैर कहीं, हाथ कहीं और धड़ कहीं पड़ा है। बेचारे किसे पकड़कर ले जाते। लौटकर यही समाचार सुनाया।

अभी प्यादे पूर्ण विवरण सुना नहीं पाये थे कि पुनः शंख-ध्वनि हुई। पुनः पहरेदार आये। इस बार उन्हें सब कुछ गायब मिला। पहरेदार यह विवरण सुनाते ही रहे कि पुनः शंख-ध्वनि हुई। अब नवाब साहब भीतर ही भीतर डर गये। यह भूतों की लीला है या कोई उच्चकोटि का सन्त आया है? अपने पार्षदों को लेकर वे ताल के किनारे आये।

बाबा सामने बैठे थे। नवाब ने आगे बढ़कर उनकी अभ्यर्थना की। बाबा ने कहा—''घण्टा-घड़ियाल बजाने पर रोक लगाकर तुमने गलत आदेश दिया है। जिस प्रकार तुम्हें अपने खुदा की इबादत करने का हक है, उसी प्रकार हिन्दुओं को भी है। आइन्दा किसी की इबादत में दखल मत देना।''

''जो हुक्म महात्माजी। आगे ऐसा ही होगा।''

* * *

ज्यों-ज्यों अपने गुरु की अलौकिक शक्ति को रामदास देखता त्यों-त्यों उसके आश्चर्य की सीमा बढ़ती जाती थी। लेकिन उसे इस बात की कल्पना नहीं थी कि आगे उसकी कड़ी परीक्षा ली जायगी।

साधु का ढोंग रचना सरल है, पर साधना के माध्यम से यौगिक शक्ति प्राप्त करने में कड़े संघर्ष से गुजरना पड़ता है। पूर्वकाल के योगी शिष्य की कड़ी परीक्षा लेकर ही उन्हें अपने योग्य बनाते थे। मन्त्र प्राप्त करके साधना करनेवाले सामान्य सन्त होते हैं। गुरु की कसौटी पर खरे उतरनेवाले योगी बनते हैं।

रामदास के लिए बाबा का सख्त आदेश था कि शाम के बाद धूनी को जगाये रखना। धूनी के पास आसन बिछाकर भजन करते रहना। शाम के बाद बाहर कहीं मत जाना। जाड़े के दिन थे। कपड़े के नाम पर उनके पास एक उत्तरीय था। उसकी हालत यह थी कि मुँह ढाँकने पर पैर और पैर ढाँकने पर मुँह खुल जाता था। फलतः शीत-निवारण के लिए धूनी के पास बैठा रहना पड़ता था। सबसे अधिक परेशानी लकड़ी की लँगोटी की थी। इस लँगोटी के कारण रात को सोते समय काफी परेशानी होती थी। दिन को बालू पर आराम मिलता था, पर रात को धूनी के पास बड़ा कष्ट होता था। भोजन भी एक वक्त मिलता था।

धूनी से कुछ दूर फूस की झोपड़ी में गुरुदेव रहते थे। गुरुदेव के कठोर अनुशासन के कारण अन्य शिष्य भाग गये। ले-देकर रामदास रह गये। उस दिन रात को कड़ाके की सर्दी थी। धूनी की गर्मी के कारण आराम मिला और नींद आ गई। थोड़ी ही देर बाद बर्फ गिरने लगी और धूनी ठण्ढी हो गई। सहसा शीत का प्रकोप अनुभव होते ही रामदास की नींद उचट गई। धूनी को ठण्ढी देखकर वह डर गया। अगर धूनी न जगाई तो ठण्ड के

कारण मौत आ जायेगी। इसके अलावा गुरु महाराज फटकारेंगे। रात को आसन छोड़कर कैसे जाये और गुरु महाराज के पास जाने की आज्ञा नहीं है। अगर उनके पास आग माँगने गया तो वे समझ जायेंगे कि मैं भजन छोड़कर सो गया था। मुमकिन है तब कठोर दण्ड दें। इस ऊहापोह में काफी समय गुजर गया। अन्त में उसने सोचा—असावधानी के कारण यह घटना हुई है। जाकर गुरुजी से आग माँग लूँ। जो दण्ड देंगे, उसे भोग लूँगा। यह सोचकर वह हल्के कदमों से गुरुदेव की कुटिया के पास आकर खड़ा हो गया।

गुरुदेव ने पूछा—"बाहर कौन खड़ा है?"

"भगवन्, मैं रामदास हूँ।"

"रात को आसन छोड़कर क्यों आये हो?"

"महाराज, मेरी धूनी बुझ गई है, इसलिए आपकी सेवा में आग माँगने आया हूँ।"

गुरुदेव ने कहा—"लगता है, सो गये थे वरना धूनी न बुझती। अपने माता-पिता को दु:ख देकर यहाँ सोने आये हो? इस तरह सोना ही था तो यहाँ आने की क्या जरूरत थी? घर पर आराम करते।"

इस प्रकार देर तक वे फटकारते रहे। जब वे चुप हो गये तब रामदास ने काँपते हुए कहा—"महाराज, भूल हो गई। क्षमा कर दें। अचानक नींद आ जाने के कारण ऐसी घटना हो गई। भविष्य में सावधान रहूँगा।"

"जहाँ खड़े हो, वहीं एक घण्टा खड़े रहो। अभी आग नहीं दूँगा।"

गुरुदेव के क्रोध से रामदास अच्छी तरह परिचित थे, फलतः वह आज्ञानुसार भयंकर सर्दी में बाहर खड़ा काँपते रहे। कुछ देर बाद एक टुकड़ा कोयला बाहर फेंकते हुए गुरुदेव ने कहा—"ले जाओ। आइन्दा गफलत न होने पाये।"

इसी प्रकार रामदास के धैर्य की परीक्षा लेने के लिए एक बार उन्होंने कहा—"मैं कुछ दिनों के लिए एक विशेष कार्य से बाहर जा रहा हूँ। जब तक वापस न आऊँ तब तक यहीं बैठे रहना। किसी काम से कहीं मत जाना।"

"जो आज्ञा गुरुदेव।"

एक स्थान दिखाते हुए गुरुदेव ने कहा—"बस इसी जगह यहीं चुपचाप बैठे रहो।" इतना कहकर गुरुदेव चले गये।

दिन गुजरते गये। रामदास प्रस्तर की भाँति गुरुदेव द्वारा बताये स्थान पर बैठे रहे। आठवें दिन गुरुदेव आये। रामदास ने खड़े होकर प्रणाम किया।

गुरुदेव ने पूछा—"क्यों वत्स, इसी जगह मौजूद थे?"

रामदास ने कहा—"जी महाराज। आपके जाने से लेकर अभी तक यहीं आज्ञानुसार उपस्थित था।"

"मल-मूत्र त्याग के लिए भी नहीं उठे?"

"आपकी कृपा से मल-मूत्र का वेग नहीं हुआ।"

"भोजन की क्या व्यवस्था थी?"

रामदास ने कहा—"कुछ भी नहीं।"

"ठीक है। गुरु के आदेशों का पालन इसी प्रकार करना चाहिए। माँ-बाप को कष्ट देकर जब इस मार्ग पर आये हो तब तन, मन, वचन से गुरु की आज्ञा का पालन करना चाहिए। तभी भगवान् की कृपा होगी।"

इसी प्रकार की परीक्षाएँ बराबर रामदास को देनी पड़ती थीं। प्रत्येक परीक्षा में संयम के साथ सफलतापूर्वक वे उत्तीर्ण होते रहे। रामदास कभी-कभी सोचता था कि आखिर कब इसका अन्त होगा। आखिर एक दिन वह भी आ गया।

कई वर्ष बाद अकारण न जाने क्यों गुरुदेव का पारा गर्म हो गया। लाठी लेकर रामदास की पिटाई करने लगे। बोले—"भाग यहाँ से। सभी तो भाग गये। तू यहाँ क्यों मर रहा है? भाग जा। अब मैं किसी की सेवा लेना नहीं चाहता।"

अत्यधिक मार खाने की वजह से रामदास लहूलुहान हो गया। बदन भी कई जगह से फूल गया। दर्द से कराहते हुए रामदास ने दर्दीले स्वर में कहा—"महाराज, यह बात आप अच्छी तरह जानते हैं कि मैं अपने माँ-बाप का कितना दुलारा था। घर में खाने-पीने की कोई कमी नहीं थी। अपनी इच्छा से सब कुछ छोड़कर आपकी शरण में आया। अब तो इस दुनिया में आपको छोड़ दूसरे किसी को नहीं जानता। अगर आप मुझसे विमुख हो जायेंगे तो मैं किसके पास जाऊँगा? इससे अच्छा है कि मेरी गर्दन काट दीजिए, सारा झंझट समाप्त। जीवित रहते मैं कहीं नहीं जा सकता।"

गुरुदेव ने अट्टहास करते हुए कहा—"वत्स, तुम धन्य हो। तुम्हारी गुरु-भक्ति से प्रसन्न हो गया। यही तुम्हारी अन्तिम परीक्षा थी। अब आगे कोई परीक्षा नहीं होगी। मैं तुम्हें वरदान देता हूँ कि तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध होगा। तुम अपने उपास्य देवता का दर्शन कर सकोगे। तुम जो कहोगे, वह सफलतापूर्वक सम्पन्न हो जायगा। तुम्हारा वाक्य कभी निष्फल नहीं होगा।"

गुरु का आशीर्वाद पाते ही रामदास ने उनकी प्रदक्षिणा की और उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। बदन की सारी पीड़ा क्षणभर में दूर हो गई।

* * *

इस घटना के बाद दोनों व्यक्ति एक समृद्ध नगर में आये। नगर के एक किनारे दोनों आसन लगाकर बैठे। गुरु और चेले के आसनों में कुछ दूरी थी। श्रद्धालुओं का आगमन होने लगा। लोग पहले स्वामी देवदास को प्रणाम करने के बाद रामदास के पास आते थे। इसी बीच एक आदमी आया। रामदास को प्रणाम करने के बाद उनके पास चार रुपये रखे।

रामदास ने कहा—"हरे-हरे। मेरे गुरुदेव वहाँ बैठे हैं। कृपया यह भेंट उन्हें देने का कष्ट करें। उनके रहते मैं नहीं ले सकता।"

उस व्यक्ति ने कहा—"महाराज, आपके प्रति आकृष्ट होकर मैंने आपकी पूजा की है।"

रामदास ने कहा—"आपका कथन सत्य है, भगत। लेकिन अपने पूजनीय गुरु की उपस्थिति में यह भेंट मैं स्वीकार नहीं कर सकता। कृपया उन्हें जाकर दे दें।"

उस व्यक्ति को यह सुझाव स्वीकार नहीं हुआ। वह उन रुपयों को छोड़कर चला गया। रामदास अपने गुरु के पास जाकर बोले—"प्रभो, एक भगत चार रुपये भेंट में दे गया, कृपया इसे ग्रहण करें।"

देवदासजी ने कहा—"क्यों रे, तू कैसा चेला है जो गुरु के रहते स्वयं पूजा ग्रहण करने लगा है?"

रामदास ने सारी बातें कहने के बाद कहा—"जब वह रुपये छोड़कर चला गया तब आपको देने आ गया।"

गुरु ने कहा—"अब तू वास्तव में सिद्ध हो गया है। गोया तू भी शेर हो गया। दो शेर एक जगह नहीं रहते।"

इस घटना के तीन दिन बाद गुरुदेव ने कहा—"वत्स, द्वारिका में हम लोगों के सम्प्रदाय का मुख्य धाम है। इस धाम का दर्शन करना तुम्हारे लिए आवश्यक है।"

रामदास ने कहा—"मैं तो आपको ही भगवान् समझता हूँ। शास्त्रों में भी लिखा है कि गुरु-चरणों में सभी तीर्थ रहते हैं। जब आपके चरणों का दर्शन करता हूँ तब मुझे तीर्थस्थान जाने की क्या जरूरत?"

"बड़ा ज्ञान बखान रहा है। लगता है जैसे तुझसे बढ़कर कोई ज्ञानी नहीं है। तेरे गुरु, दादा गुरु, परदादा गुरु, लकड़दादा गुरु, सभी द्वारिका गये थे और एक तू इतना बड़ा ज्ञानी हो गया है कि तीर्थ-दर्शन करना नहीं चाहता? जब मैं कह रहा हूँ तब तुझे जाना पड़ेगा?"

रामदास ने कहा—"पता नहीं, यह द्वारिका है कहाँ? कहीं इधर-उधर चला गया तो परेशानी होगी। आप अपने पास ही रखिये गुरुदेव।"

इस बात का उत्तर गुरुदेव ने नहीं दिया और न रामदास समझ सके कि आखिर गुरुदेव क्यों उसे दूर हटा रहे हैं। अगर वह समझ पाता तो शायद विद्रोह करता।

इस घटना के दूसरे ही दिन दो साधु आये। बातचीत के सिलसिले में गुरुदेव ने उनसे पूछा—"महात्मन्, यहाँ से आप लोग कहाँ के लिए प्रस्थान करेंगे?"

उन लोगों ने कहा—"द्वारिका।"

तभी गुरुदेव ने रामदास की ओर देखते हुए कहा—"तू कह रहा था कि द्वारिका कहाँ है। दोनों महात्मा जा रहे हैं, इनके साथ चला जा।"

अब रामदास लाचार हो गया। उसके उदास चेहरे को देखकर देवदास स्वामी ने कहा—"अपने सम्प्रदाय के लोगों को द्वारिका-दर्शन करना चहिए। मेरा आशीर्वाद है, तुझे मार्ग में कोई कष्ट नहीं होगा। सब अपने-आप प्राप्त हो जायेंगे।"

आखिर उसे द्वारिका जाना पड़ा। गुरुदेव के आशीर्वाद से मार्ग में उसे गाँजा,

भोजन, बैलगाड़ी और आश्रय का कोई कष्ट नहीं हुआ। वहाँ से सकुशल आश्रम में आने पर देखा कि यहाँ अनेक ज्येष्ठ गुरुभाई एकत्रित हैं। सभी उदास हैं। गुरुदेव कहीं दिखाई नहीं दे रहे हैं। शंकित भाव से उसने एक गुरुभाई से पूछा तो पता लगा कि गुरुदेव परलोकवासी हो गये हैं।

यह एक ऐसा समाचार था जिसे सुनते ही रामदास का सिर चकराने लगा और तुरंत बेहोश होकर गिर पड़ा। होश आने पर उसने अनुभव किया कि शायद इसीलिए गुरुदेव ने मुझे जबरन द्वारिका भेजा था। कुछ देर बाद रामदास इतना बौखला गया कि वह अपनी जटाओं को नोचने लगा, पागलों की तरह जमीन पर लोटने लगा। उसके रोदन तथा क्रियाकलाप को देखकर कई गुरुभाइयों ने मिलकर उसे शान्त करने की कोशिश की। बाद में उनका मुण्डन कराया गया।

इस घटना के एक सप्ताह बाद एक निर्जन स्थान पर गुरुदेव के दर्शन हुए। उन्होंने रामदास से कहा—''बेटा, अब शोक मत करो। मेरी मृत्यु नहीं हुई है। आवश्यक समझकर अन्तर्धान हो गया हूँ। आवश्यकता होने पर तुम मेरा बराबर दर्शन कर सकते हो। अलक्ष्य रूप में आजकल मैं नर्मदा किनारे रह रहा हूँ। मैं आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारी सारी इच्छाएँ पूरी होंगी।''

गुरु-दर्शन तथा उनके आश्वासन से उसकी उद्विग्नता शान्त हो गई। गुरुभाइयों ने भण्डारा किया। इसके बाद सभी यथास्थान चलने लगे।

* * *

अब रामदास स्वामी स्वतन्त्र रूप से तीर्थ-भ्रमण के लिए चल दिये। उनके मन में यह दृढ़ विश्वास था कि आगे आनेवाली कठिनाइयों को गुरुदेव दूर कर देंगे। हिमालय स्थित गंगोत्री में आये। यहाँ अचानक एक दुर्घटना हो गई। वे एक ऊँचे पर्वत पर चढ़कर चारों ओर का दृश्य देख रहे थे। अचानक पैर के समीप का एक पत्थर खिसका। उन्हें भीतर गुफा-सी दिखाई दी।

कुतूहलवश बड़ा-सा पत्थर हटाने पर उनका अनुमान सही निकला। भीतर सुरंग-सी गुफा थी। भीतर प्रवेश करने पर सामने एक जटाधारी संन्यासी दिखाई पड़े। आहट पाकर उनकी आँखें खुल गईं। रामदास ने विनीत भाव से प्रणाम किया। तुरंत संन्यासी ने पूछा—''कौन हो तुम?''

उनकी आँखों से ज्वाला निकल रही थी। लगता था जैसे भस्म कर देंगे। हाथ जोड़ते हुए उन्होंने कहा—''प्रभो, आपका अनुचर-सेवक।''

''सेवक को जो आज्ञा दी जाती है, वह उसका पालन करता है। क्या तुम करोगे?''

रामदास ने भय से सिहरकर कहा—''आज्ञा कीजिए।''

''इस गुफा के मुहाने में छलाँग लगाकर नीचे कूद जाओ। जाओ।''

रामदास ने बाहर आकर देखा—लगभग पचास फुट गहरी खाई है। कूदने पर मौत निश्चित है और न कूदने पर स्वामीजी के क्रोध का शिकार होना पड़ेगा। 'जय गुरुदेव'

कहते हुए वे नीचे कूद गये। गुरु-कृपा से उन्हें चोट नहीं आई। तभी उन्हें लगा जैसे स्वामीजी ऊपर से उनकी जटा पकड़कर खींच रहे हैं। ऊपर आते ही वे बाबा के चरणों पर गिर पड़े।

बाबा ने कहा—"निस्सन्देह तुम योग्य अनुचर हो। अब यहाँ से चले जाओ। यह स्थान ऋषियों की तपोभूमि है। यहाँ तुम्हें नहीं आना चाहिए था।"

बाबा को प्रणाम कर रामदासजी नीचे उतर आये। उपयुक्त स्थान देखकर वे तपस्या में लीन हो गये। एक अर्से बाद गुरुदेव ने दर्शन देकर कहा—"वत्स, अब तुम परमार्थ के लिए सभी तीर्थों का दर्शन करो।"

हिमालय से रामदास स्वामी चल पड़े। मार्ग में कुछ अन्य सन्त मिल गये। सभी पैदल चल रहे थे। काफी दूर जंगल में प्रवेश करने के बाद शेर की आवाज सुनाई दी। जो साधु सबसे आगे चल रहा था, वह ठिठककर खड़ा हो गया। उसने कहा—"मैं अब आगे नहीं चलूँगा।"

प्रत्युत्तर में किसी ने यह नहीं कहा कि तब मैं आगे चलूँगा। रामदास स्वामी ने आगे बढ़कर कहा—"मैं सबसे आगे चलता हूँ। आप सभी मेरे पीछे आइये।"

इतना कहने के बाद वे आगे बढ़ गये। उनके पीछे सभी रवाना हुए। कुछ दूर आगे बढ़ने के बाद वह शेर न जाने किधर से आया और उसी बाबा को पकड़कर जंगल में गायब हो गया जो आगे चलने में भयवश पीछे हो गया था। इसके बाद फिर कोई घटना नहीं हुई।

* * *

स्वामी रामदासजी ने सर्वप्रथम शिष्य बनाया गरीबदास को। उन दिनों रामदासजी भरतपुर में ठहरे हुए थे। एक कुलीन ब्राह्मण ने अपने पुत्र को स्वामीजी के पास लाकर निवेदन किया—"महाराज, आप इसे अपनी सेवा में रख लीजिए।"

बाबा ने उसे तीक्ष्ण दृष्टि से देखा और कहा कि ठीक है। बचपन से स्वामीजी के जीवन के अन्तिमकाल तक वह बड़ी निष्ठा के साथ उनकी सेवा करता रहा। कई बार स्वामीजी का कोपभाजन हुआ, पर कभी अपना धैर्य नहीं खोया। बाद में स्वामीजी को कहना पड़ा—"गरीबदास, सचमुच तू मेरा असली चेला है। मेरी तरह तू भी सिद्ध हो गया है।"

स्वामीजी के दूसरे शिष्य का नाम भगवानदास था। वे स्वामीजी के निकट कुछ दिनों तक रहने के बाद बम्बई चले गये। तीसरे शिष्य का नाम ठाकुरदास था। आप विद्वान् व्यक्ति थे। तीव्र वैराग्य उत्पन्न होने के कारण हिमालय में आकर तप करने लगे। स्वामीजी का चौथा शिष्य भरतपुर का था। इसके बाद जितने शिष्य बने, वे बंगाल के निवासी थे।

स्वामीजी भरतपुर से हाथरस आये। यहाँ एक धनी बनिया रहता था जो अपुत्रक था। वह सन्तान-प्राप्ति की आशा से सभी साधु-सन्तों की सेवा करता था। स्वामी रामदासजी की सेवा इसी उद्देश्य से करने लगा और एक दिन उसने अपनी कामना प्रकट की।

रामदास स्वामी ने कहा—"तुम्हें सन्तान की प्राप्ति होगी, पर मेरे लिए वृन्दावन में तुम्हें अपने व्यय से एक मन्दिर बनवाना पड़ेगा।"

सेठ ने कहा—"अगर मुझे लड़का हुआ तो मैं वचन देता हूँ कि वृन्दावन में मन्दिर बनवा दूँगा।"

स्वामीजी ने कहा—"अब तुम निश्चिन्त हो जाओ। ठीक एक वर्ष बाद तुम्हें पुत्र-रत्न की प्राप्ति होगी। लेकिन यह बात याद रखना कि अगर तुम अपने वायदे से मुकर गये तो लड़का नहीं बचेगा। अब मैं यहाँ एक वर्ष बाद आऊँगा।"

एक वर्ष के भीतर बनिये को पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई और ठीक समय पर स्वामीजी आये। इन्हें देखकर उसने कहा—"मैं वृन्दावन में मन्दिर नहीं बनवा सकता। उसके बदले यहाँ अपने बाग में बनवा दूँगा।"

स्वामीजी ने कहा—"तुमने वृन्दावन में मन्दिर बनवा देने का वायदा किया था। अब पुत्र की प्राप्ति के बाद इनकार कर रहे हो। आज से तीसरे दिन यह लड़का नहीं बचेगा।"

इतना कहने के बाद स्वामीजी बनिये के घर से अपने डेरे में चले आये। तीसरे दिन बनिये का लड़का चल बसा। बनिये की पत्नी व्याकुल होकर स्वामीजी के पास आकर अपना सिर पटकने लगी—"आपके आशीर्वाद से मेरा बाँझपन दूर हुआ। मेरे पति की नीचता की सजा मुझे मत दीजिए। मैं निरपराधी हूँ। मुझ पर कृपा कीजिए। आप जो आज्ञा देंगे, वह सब मैं करने को तैयार हूँ।"

इस महिला की करुण पुकार से योगिराज द्रवित हो उठे। उन्होंने कहा—"बेटी, तुम्हारा एक पुत्र पति की निर्लज्जता के कारण गया। अब मैं आशीर्वाद देता हूँ कि भविष्य में तुम दो सन्तानों की जननी होगी। दोनों ही जीवित रहेंगे। मुझे अब तुम लोगों से कुछ नहीं चाहिए। केवल इस बात को हमेशा याद रखना कि साधुओं के सामने जो वचन देना, उसे अवश्य पूरा करना।"

वृन्दावन में मन्दिर न बनने पर स्वामीजी खिन्न मन से कुछ दिनों के लिए वहाँ चले गये। यमुना-तट पर कुंजगली के सामने स्थित एक पेड़ के नीचे उन्होंने अपना आसन लगाया। साथ में कई शिष्य और गरीबदास भी था। इस घाट पर पुरुषों के अलावा अनेक महिलाएँ स्नान करने आती थीं। स्थानीय लोगों को बाबा के चरित्र पर सन्देह हुआ। प्रत्यक्ष रूप से कहने पर विवाद हो सकता है अतएव उन्होंने जाँच करना उचित समझा।

षड्यन्त्रकारियों ने एक बदचलन औरत को अर्थ का प्रलोभन देकर उसे राजी किया। एक रात वह बाबा के पास आई और उनसे लिपटकर सो गई। बाबा तुरंत चीख उठे। —"गरीबदास, देख तो मेरे आसन पर कौन आ गया है?"

गरीबदास ने रोशनी जलाकर देखा और पूछा—"तुम कौन हो और बाबा के पास क्यों आई हो?"

औरत ने कहा—"मैं कामातुर हूँ। मेरा कोई नहीं है, मैं विधवा हूँ, इसलिए आपके पास आई हूँ। आपके ऊपर मेरा मन चल गया है।"

बाबा का रौद्र रूप प्रकट हुआ। बोले—"गरीबदास, जरा सामने से हट जा। इस

राँड़ की सारी कामातुरता अभी निकाले देता हूँ। साधु के पास उसका सत्त्व लेने आई है? आज मैं इसकी जान खींच लेता हूँ।''

बाबा का यह रूप देखकर वह पीपल के पत्ते की तरह काँपने लगी। उनके पैरों को पकड़ती हुई बोली—''मेरी कोई गलती नहीं है, बाबा। मुझे क्षमा कर दें। अमुक-अमुक व्यक्तियों ने मिलकर आपके चरित्र की जाँच करने के लिए मुझे यहाँ भेजा है, वरना मैं यहाँ क्यों मरने आती? आप तो मेरे पितातुल्य हैं।''

बाबा स्थिति समझ गये। बिगड़कर बोले—''अच्छा, अब भाग जा। आइन्दा कभी किसी साधु के पास मत जाना। सभी साधु एक जैसे नहीं होते।''

इसी वृन्दावन में एक और विचित्र घटना स्वामीजी के साथ हुई थी। गोसइयाँ नामक एक शातिर डाकू वृन्दावन में रहता था। डकैती, लूटपाट, खून करना, उसके लिए सामान्य बात थी। कभी-कभी वह स्वामी रामदास के पास गाँजा पीने के लिए आता था। गोसइयाँ कितना खतरनाक था, इसका अन्दाजा एक घटना से लगाया जा सकता है। इसे पकड़ने के लिए एक बार ब्रिटिश सरकार को फौज की सहायता लेनी पड़ गई थी। चारों ओर से घिर जाने पर वह पकड़ा गया और उसे चौदह साल की सजा हुई। विश्वास था कि इतनी लम्बी सजा काटने के बाद उसमें कुछ सुधार हो जायगा, पर कुत्ते की दुम की तरह उसकी आदत टेढ़ी बनी रही।

बाबा के पास गोसइयाँ को निरन्तर आते देख छन्नूसिंह नामक एक भक्त ने कहा—''बाबा, आप इस डाकू को ठीक कर दीजिए तो बड़ा कल्याण हो। यह ब्राह्मण-वंश का कलंक है। इसके अत्याचारों से सभी त्रस्त हैं। आप सिद्ध महात्मा हैं, कम-से-कम इससे हमें मुक्ति दिलायें।''

इस निवेदन को सुनने के पश्चात् एक दिन जब गोसइयाँ बाबा के पास आया तब उन्होंने पूछा—''क्यों रे गोसइयाँ, तू भगत बनेगा? अब डकैती वगैरह छोड़कर मेरा चेला बन जा।''

बाबा की बातों से उसके अन्तर के तार झनझना उठे। उसने कहा—''बाबा, मैंने जीवनभर कुकर्म किये हैं, क्या इस पर भी आप मुझ पर कृपा करेंगे?''

रामदास स्वामी ने कहा—''दिनभर का भूला अगर शाम को घर आ जाय तो खुशी होती है। जा, अभी बाजार चला जा और वहाँ से तुलसी की एक कण्ठी लेता आ। मैं तुझे कण्ठी पहनाकर आज ही अपना चेला बनाऊँगा।''

बाबा के आज्ञानुसार वह सारी सामग्री बाजार से खरीदकर ले आया। बाबा ने उसे दीक्षा दी। उसी दिन से उसके स्वभाव में परिवर्तन होता गया। सन्तों को अपनी अतीन्द्रिय-शक्ति से यह ज्ञान हो जाता है कि किस व्यक्ति का सुधार हो सकता है और किसका नहीं। किसे दीक्षा देनी चाहिए और किसे नहीं।

नदी किनारे सुनसान स्थान में बाबा का डेरा था। इधर अधिकतर जरायम पेशावाले यदाकदा आया करते थे। तीर्थस्थानों में चोर-उचक्के अधिक रहते हैं। यहाँ के उचक्कों ने देखा कि इस बाबा के पास अनेक लोग आते हैं। फल-मिष्टान्न के अलावा

रकम चढ़ाते हैं। बाबा के खजाने में गहरी रकम होगी। एक दिन चोरों का एक गिरोह आया। बातचीत के सिलसिले में एक चोर ने कहा—"बाबा, आप बड़े बेफिक्र होकर दहाड़ते हैं। सावधान रहियेगा वरना किसी दिन धोखा खा जाइयेगा।"

बाबा ने कहा—"तुम लोग कौन हो, क्या करते हो, क्यों आये हो, यह सब मुझसे छिपा नहीं है। अब तुम लोगों का साहस इतना बढ़ गया है कि साधुओं को धमकी देने लगे। मुझे धोखा जब मिलेगा तब मिलेगा, पर तुम लोग तो आज ही थाने के भीतर नजर आओगे।"

एक चोर ने कहा—"आप जैसे बाबा हमने बहुत देखे हैं। अपनी सिद्धई अपने पास रखिये। हम इतने बेवकूफ नहीं हैं। हमें गिरफ्तार करनेवाला आज तक कोई पैदा नहीं हुआ है, समझे बाबाजी।"

इतनी बातें कहकर तीनों चोर बड़ी शान से चले गये। उसी रात को तीनों पकड़े गये। दो जमानत पर छूटते ही बाबा के पास आकर रोने लगे।

बाबा ने कहा—"अब रोने से क्या होगा? जैसी करनी वैसी भरनी। पाप करने पर सजा मिलती है।"

"बाबा, हमें बचा लीजिए। अब ऐसी गलती हम नहीं करेंगे। क्षमा करें महाराज। हम आपको पहचान नहीं सके।"

रामदास स्वामी ने कहा—"अगर यह वायदा करो कि आगे से चोरी नहीं करोगे और साधु-महात्माओं को तंग नहीं करोगे तो बच सकते हो।"

चोरों ने हाथ जोड़कर प्रतिज्ञा की। बाबा ने कहा—"अच्छी बात है। तुम दोनों बेदाग छूट जाओगे।"

तीसरा चोर छूट नहीं सका। उसे सजा हो गई। जेल की ओर से वह मथुरा-वृन्दावन-मार्ग पर मिट्टी ढोने लगा। एक दिन बाबा उधर से पैदल आ रहे थे। इन्हें देखते ही वह दौड़ा हुआ आया और बाबा के पैरों से लिपटता हुआ बोला—"प्रभो, मैं तो बिलकुल निर्दोष था। आपके अभिशाप के कारण फँस गया। बदमाश तो छूट गये। मुझे बचा लीजिए, बाबा।"

बाबा ने कहा—"ठीक कह रहे हो?"

"हाँ बाबा।"

"तब तुम तीसरे दिन जरूर छूट जाओगे।"

चोर ने चकित होकर पूछा—"ऐसा कैसे हो सकता है, बाबा? मैंने अपील की तो वह भी नामंजूर हो गई है।"

रामदास स्वामी ने कहा—"जब मेरी जबान से बात निकल गई तो वह होकर ही रहेगी। तीन दिन बाद चौथे दिन तुम छूट जाओगे।"

उसी दिन न जाने किस खुशियाली में ब्रिटिश शासन के आदेश से प्रत्येक जेल से तीन-तीन कैदी छोड़े गये जिनमें यह चोर भी था।

* * *

बाबा के एक गुरुभाई अपने साथ एक दिन एक बालक को लेकर आये और स्वामी रामदास से कहा—"इसे अपनी सेवा में रख लो। चेले की तरह रखना। यहीं दाऊजी मन्दिर के पासवाले गाँव का रहनेवाला है।"

प्रेमदास स्वभाव से नम्र और व्यवहारकुशल प्रमाणित हुआ। उन दिनों वृन्दावन में कुछ आर्य-समाजी विद्वान् रहते थे। प्रेमदास उनके यहाँ भी जाता था। उनके उपदेशों का इस पर असर पड़ा। उसने अपनी कण्ठी-माला फेंक दी। प्रत्येक जाति के यहाँ भोजन करने लगा। एक प्रकार से अपने को परमहंस समझने लगा। बाबा के पास आनेवाले लोग उसकी बातें सुनते तो चकित रह जाते। बाबा का प्रिय शिष्य और ऐसी बातें।

प्रेमदास की शिकायत बाबा के पास पहुँची तो उन्होंने कहा—"अरे, वह तो पागल है। उसकी बात पर ध्यान मत दो।"

इधर बाबा के श्रीमुख से यह बातें निकलीं और उधर वह पागलों की तरह उछल-कूद करने लगा। यहाँ तक कि एक चिमटा लेकर बाहर चला गया। अब उसकी यह हालत हो गई कि जिधर उसकी दृष्टि जाती, उधर ही उसे बाबा दिखाई देने लगे। भूख, प्यास, नींद, सब गायब। चारों ओर उछल-कूद करने के कारण लहूलुहान हो गया था। एक दिन अपने-आप आश्रम में आ गया। उसकी हालत देखकर सभी सहानुभूति प्रकट करने लगे।

कई लोग उसे पकड़कर बाबा के पास ले आये। उन लोगों ने निवेदन किया—"बाबा, यह आपका बालक है। अब इस पर दया कीजिए।"

बाबा चुप रहे। यह देखकर पुनः लोगों ने निवेदन किया—"गरीबदास मर जायगा, बाबा। अब इसे अधिक दण्ड मत दीजिए।"

बाबा ने कहा—"इसे ठाकुरजी का प्रसाद खिला दो।"

प्रसाद खाने के कुछ देर बाद वह शान्त हो गया। धीरे-धीरे वह अपनी स्वाभाविक अवस्था में आ गया। जब स्वामीजी को उसने प्रणाम किया तब बाबा ने कहा—"क्यों रे, तू तो कहता था कि सभी वस्तु बराबर है। प्रसाद का महत्त्व देखा। यही वजह है कि वैष्णवजन शुद्ध भाव से ठाकुरजी को भोग चढ़ाते हैं। इसकी महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता।"

* * *

बाबा निरन्तर लोगों को एक बात कहा करते थे। उनका कहना था कि साधक को चौथे पहर नहीं सोना चाहिए—

१. पहले पहर में सब कोई जागे,
दूसरे पहर में भोगी।
तीसरे पहर में तस्कर जागे,
चौथे पहर में योगी॥

२. अन्तर से काम करते रहना चाहिए। निन्दा या स्तुति पर ध्यान मत दो।

इसका अर्थ यह है कि अच्छे-बुरे कार्यों पर विचार करते हुए काम करना चाहिए। बाहरी लोगों की निन्दा-स्तुति पर ध्यान नहीं देना चाहिए।

३. सदा शुक्ल रहना।

अर्थात् हमेशा शुद्ध सात्त्विक रहना। साधक को इन तीन बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

बाबा का कहना था कि आलस्य त्यागकर निष्ठापूर्वक भगवत्-विग्रह और महात्माओं की सेवा करने का व्रत लेना चाहिए। शाम को और रात के अन्तिम प्रहर में दो-दो घण्टे का नाम जपना चाहिए। सेवा करते-करते मन एकाग्र होता है तब भजन पर अधिकार होता है। सेवा में चित्त निर्मल होता है, आलस्य दूर होता है और निष्ठा बढ़ती है।

बाबा केवल उपदेश देकर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री नहीं समझते थे, बल्कि शिष्यों को भजन करने का आदेश देकर वे यह अनुभव कर लेते थे कि कौन, कितना और कैसे कर रहा है। अन्यमनस्क रहनेवालों से कहते—''अब तुझसे भजन नहीं होगा। जा, काम कर।''

बाबा के एक शिष्य ताराशंकर चौधुरी[1] थे। उनका मन भजन में नहीं लग रहा था। श्री चौधुरी ने अपनी समस्या बाबा के सामने प्रकट की। बाबा ने प्रत्युत्तर में कहा—''तेरा मन भजन में नहीं लग रहा है, इसका अनुभव मुझे हो रहा है, इसीलिए तेरा भजन मुझे करना पड़ रहा है।''

इसी प्रकार एक दिन चौधुरी की कुण्डली जागृत होने की स्थिति आई। उन्होंने बाबा से कहा—''बाबा महाराज, मेरे भीतर की शक्ति न जाने क्यों रुक जा रही है?''

''हाँ, वह कमल है। वही रोक रहा है।''

चौधुरी ने कहा—''तब इसे खोल दीजिए। बड़ा कष्ट हो रहा है।''

बाबा बिगड़ उठे—''चुप। मैं नहीं खोलूँगा।'' पुनः कुछ देर बाद बोल उठे—''अगर इस वक्त उस गाँठ को खोल दूँ तो भविष्य में तू कुछ नहीं कर सकेगा। तुझे इस संसार में बहुत कुछ करना है। समय आने पर उन गाँठों को खोल दूँगा। क्रिया करता चल। एक बात याद रखना कि गृहस्थाश्रम और संन्यासाश्रम में कोई भेद नहीं है। संन्यासाश्रम में ठीक से साधना करने पर अलौकिक शक्ति प्राप्त होती है। इससे संसार के आप्तजनों का उपकार किया जा सकता है। गृहस्थाश्रम में यह शक्ति नहीं आती। बस, इतना ही अन्तर है। गुरु की कृपा से ही भगवत्-साक्षात्कार होता है। इस दृष्टि से दोनों आश्रम बराबर हैं। विधिविहित कार्यों को करते हुए हमेशा भगवान् से डरते रहना चाहिए। इसे कभी मत भूलना कि सर्वशक्तिमान् ईश्वर सर्वदा तेरे साथ हैं। इसे ध्यान में रखने पर सभी कार्य सिद्ध होते हैं और जीव का कल्याण होता है।''

आगे आपने कहा—''चित्त निर्मल होने पर सात सिद्ध भूमियों को एक के बाद एक करके पार किया जाता है। इनमें से पाँच भूमियों के बारे में ग्रन्थों में उल्लेख है, पर

---

[1] बाबा का शिष्य बनने के बाद सन्तदास बाबा कहलाये।

बहुत कम साधक इन पाँचों को पार कर सके हैं।''

सहसा चौधुरी ने पूछा—''मैं इन भूमियों के बारे में कुछ नहीं जानता। क्या आप बताने की कृपा करेंगे?''

बाबा ने कहा—''जब तू कुछ नहीं जानता तब बताने से क्या समझेगा? फिर भी संक्षेप में बता रहा हूँ—

गुरु तीरथ अनुराग, विषय विष कर मान ।
इसी को जान प्रथम भूमि का प्रमाण ॥
हममें कौन जगत में कौन इसका ध्यान ।
दूसरा भूमि का प्रमाण ॥
एक ब्रह्म जगत में जीव में बसता है ।
और सब कारण,
यह है तीसरा भूमि का प्रमाण ॥
सर्वत्र समदर्शन और अखण्ड सन्तोष,
चौथा भूमि का प्रमाण ।
नारद-भक्ति प्रेम पंचम भूमि का प्रमाण ॥

इन पाँचों भूमियों को पार कर लेने पर शेष दो भूमियाँ अपने-आप प्राप्त हो जाती हैं।''

एक दिन पुन: चौधुरीजी के प्रश्न करने पर बाबा ने कहा—''सद्‌गुरु की कृपा से मुक्ति मिलती है। जो लोग पुस्तकों के अध्ययन से साधना करते हैं, उन्हें कोई लाभ नहीं होता। यह बात ठीक है कि निष्ठापूर्वक अध्ययन करने पर अनेक सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं, पर मुक्ति के साधन प्राप्त नहीं होते। इसके लिए तो सद्‌गुरु के पास जाना ही पड़ेगा। इधर सद्‌गुरु को सर्वदा अपने शिष्यों का ख्याल रखना पड़ता है।''

श्री ताराशंकर चौधुरी ने अपनी पुस्तक में एक घटना का उल्लेख करते हुए यह बताया है कि सद्‌गुरु कैसे अपने शिष्यों का ध्यान रखते हैं। उन्होंने लिखा है—''एक बार जब मैं कलकत्ता में था तब तेज बुखार से पीड़ित हो गया। काफी दवा की गई, पर रोग दूर नहीं हो रहा था। अचानक मुझे गुरुजी की याद आई। वे हमेशा गाँजा पीते हैं। अगर एक चिलम गाँजा उनके नाम पर भोग लगा दूँ और शेष भाग को प्रसादरूप में ग्रहण कर लूँ तो मेरा रोग दूर हो जायगा। यह सोचकर चिलम-गाँजा मँगवाया। गुरुदेव को स्मरण कर गाँजा रख दिया। चिलम की आग भभक उठी। मैं समझ गया कि बाबा ने इसे ग्रहण कर लिया है। इसके बाद उसे पीने लगा। मैंने कभी गाँजा पिया नहीं था। आश्चर्य की बात यह रही कि न मैं खाँसा और न मेरा सिर चकराया। मेरा रोग छू-मन्तर हो गया।

''इस घटना के कुछ दिनों बाद बाबा का दर्शन करने वृन्दावन गया। एक दिन बाबा ने अचानक मुझे अपने कमरे में बुलाया। जाने पर देखा कि बाबा के आसपास कई लोग बैठे हैं। बाबा ने मुझसे कहा—''तुम भी जरा प्रसाद ले लो।''

वहाँ मौजूद भक्तों में किसी ने कहा—''क्या बंगाली बाबू गाँजा पीते हैं?''

बाबा ने कहा—"नहीं, बाबू गाँजा नहीं पीते। मगर बुखार आने पर मुझे स्मरण करते हुए गाँजे का भोग लगाते हैं और फिर प्रसाद ग्रहण करते हैं।"

यह बात सुनकर मैं आनन्द से विभोर हो उठा। अर्थात् कलकत्ते में जो भोग लगाया था, उसे बाबा ने ग्रहण किया था।

दूसरी ओर इसी गाँजे के कारण एक शिष्य को बारह वर्ष की सजा मिली थी। प्रेमदास जिसका उल्लेख पीछे किया जा चुका है, बाबा के यहाँ भोजन बनाता था। आश्रम में व्यवहारकुशल होने के कारण सभी उसका आदर करते थे। जो आता, वही उसे गाँजा पिलाने लगता और वह पी लेता था। अत्यधिक गाँजा पीने के कारण उसका माथा गरम रहने लगा। जब देखो तब किसी न किसी पर बरस पड़ता था।

एक दिन स्वामीजी ने कहा—"आजकल तू बड़ा क्रोधी हो गया है। अकारण लोगों से झगड़ता है। आज से बारह साल तक तुझे मौन रहना पड़ेगा।"

बाबा का इतना कहना था कि प्रेमदास की जबान बन्द हो गई। लाख कोशिश करने पर भी वह बोल नहीं पाया।

इसी बीच एक दूसरे शिष्य पुष्करदास को भोजन बनाने की जिम्मेदारी दी गई। वस्तुतः यह शिष्य साधन-भजन करने नहीं बल्कि बाबा से रकम ऐंठने के चक्कर में था। उसे मौका नहीं मिल पा रहा था। वह देखता, बाबा के पास बड़े-बड़े राजा, धनी सेठ, सरकारी कर्मचारी आते हैं, काफी भेंट चढ़ाते हैं। आखिर वह सब रकम बाबा कहाँ रखते हैं? काफ़ी खोज करने पर भी उसे नहीं मिला। एकाएक उसके ख्याल में आया —हो न हो बाबा अपनी लकड़ीवाली लँगोटी के भीतर छिपाकर रखते हैं।

यहाँ एक बात का उल्लेख करना आवश्यक है कि आखिर स्वामीजी का नाम रामदास काठिया बाबा क्यों पड़ा। आप निम्बार्क-सम्प्रदाय की गुरु-परम्परा में ५४वें आचार्य थे।

इस सम्प्रदाय के बारे में महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज ने लिखा है—"सनकादि महर्षियों को निगूढ़ ब्रह्मज्ञान की शिक्षा देने के लिए भगवान् हंस के रूप में अवतीर्ण हुए थे। नारद हंसरूपी भगवान् के अनुचर हैं। निम्बार्क नारद के शिष्य और भगवान् के सुदर्शन-चक्र के अवतार थे। वे जयन्ती देवी के गर्भ से उत्पन्न अरुणि मुनि के औरस पुत्र थे। उनके शिष्य श्रीनिवास भगवान् के शंख के अवतार थे, ऐसी प्रसिद्धि है। उन्होंने निम्बार्क के 'वेदान्त-पारिजात सौरभ' नामक ब्रह्मसूत्र-भाष्य पर वेदान्तकौस्तुभ नाम से उत्कृष्ट टीका की रचना की थी। गुरु-परम्परा क्रम में देवाचार्य श्रीनिवास के नीचे हैं। वे भगवान् के पद्म के अवतार एवं सिद्धान्तजाह्नवी नामक ब्रह्मसूत्र-व्याख्या के रचयिता थे, जिस पर सुन्दर भट्ट ने 'सेतु' नामक टीका लिखी। इस सम्प्रदाय का मूल प्रामाणिक ग्रन्थ वेदान्त-पारिजात सौरभ है।"

इस सम्प्रदाय के ५०वें आचार्य थे—श्री इन्द्रदासजी महाराज, जिन्होंने सर्वप्रथम लकड़ी का लँगोट पहनना शुरू किया। उन्हीं दिनों से इस सम्प्रदाय के आचार्य काठिया बाबा के नाम से प्रसिद्ध हुए। निम्बार्क-सम्प्रदाय की विशेष ख्याति नहीं है, क्योंकि अपने आदर्शों के अनुसार इस सम्प्रदाय के साधुओं को कठोर तपस्या करनी पड़ती थी।

पुष्करदास की धन-पिपासा बढ़ती गई। उसने सोचा—बाबा तो कभी सोते नहीं। आखिर कैसे लँगोट की तलाशी ली जाय। एक दिन आश्रम में भाँग पीने का कार्यक्रम बना। पुष्करदास ने भाँग में संखिया मिलाकर बाबा तथा अन्य तीन साधुओं को पिला दिया। बाबा पर संखिया का असर नहीं हुआ। शेष तीनों व्यक्ति बेहोश हो गये। रामदास स्वामी ने सोचा—आश्रम में दुर्घटना होने पर पुलिस परेशान करेगी। तुरंत उन्होंने कमण्डल से जल निकालकर बेहोश व्यक्तियों पर छिड़का। तीनों होश में आ गये। कारण ज्ञात होते ही उन लोगों ने कहा—''यह आदमी हत्यारा है। इसे पुलिस के हवाले कर देना चाहिए।''

बाबा ने कहा—''यह व्यक्ति अपने कर्म का फल स्वयं ही भोगेगा। आप लोग होश में आ गये हैं, काफी है। बेकार बखेड़ा करने से क्या लाभ? साधु होकर पुलिस के निकट नहीं जाना चाहिए। फिर भी अगर आप जायेंगे तो मैं कहूँगा कि आप लोगों से अधिक भाँग मैंने पी है, मुझे तो कुछ नहीं हुआ। अब आप लोग जो उचित समझें—करें।''

इस घटना से भी पुष्करदास को अक्ल नहीं आई। आगे चलकर उसने स्थानीय चोरों से समझौता किया। एक बार रात को बाबा सो रहे थे। चोरों ने उनके ऊपर पत्थर फेंका ताकि उसके आघात से बाबा मर जायँ। इससे उनका केवल बायाँ हाथ घायल हो गया। इस हालत में भी वे दाहिने हाथ में लाठी लेकर मारने दौड़े। अपनी असफलता देखकर चोर भाग खड़े हुए। बाबा सारा रहस्य समझ गये, पर उन्होंने कुछ नहीं कहा। इधर बाबा को कुछ न कहते देख, वह भी अनजान बनकर अपना कार्य करता रहा।

तीसरी बार उसने रोटी में काफी मात्रा में संखिया मिलाया। हालत खराब देखकर भक्तों ने डॉक्टर को बुलाया। बाबा का पेट काफी फूल गया था, इसलिए डॉक्टर की राय के अनुसार उनका लँगोट काट दिया गया। बाबा के इस संकट का समाचार तार से कई जगह भेजा गया।

श्री ताराशंकर चौधुरी तार पाते ही वृन्दावन आये। यही चौधुरी आगे चलकर इस आश्रम के महन्त बने, जिनकी रचनाओं का विद्वत्‌जन उद्धरण देते हैं। आप उच्चकोटि के सन्त और विद्वान् थे। बाद में आपने अपना पूर्वनाम बदलकर सन्तदास बाबाजी के नाम से प्रसिद्ध हुए थे।

आश्रम में आते ही आप सीधे बाबा के पास गये और कहा—''यहाँ के लिए रवाना होने के पूर्व मैं प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी के पास गया था। बातचीत के सिलसिले में आपके बारे में बातें हुईं। उन्होंने कहा कि आपका शरीर सिद्ध है। आपको कोई रोग नहीं हो सकता। लगता है किसी साधु ने जहर दिया है। हो सकता है कि और कोई कारण हो।''

बाबा ने कहा—''महात्माजी कितने अलौकिक शक्तिवाले हैं, सोचो। कलकत्ता में रहते हुए उन्होंने मेरे बारे में जान लिया। बाबा पुष्करदास ने दो तोला संखिया खिला दिया। अब बूढ़ा हो गया हूँ, इसलिए कष्ट हुआ।''

चौधुरी ने कहा—''बाबाजी, निस्सन्देह आप महान् हैं। इतना बड़ा काण्ड होने पर भी आपने अभी तक रसोइए को निकाला नहीं। उसे आज ही भगा दीजिए।''

बाबा ने कहा—''उसका भ्रम मिट गया है। उसका ख्याल था कि बाबा लँगोट के भीतर अशर्फियाँ रखते हैं। लँगोट कट गया और खाली निकला तब उसका भ्रम दूर हुआ। उसे तुम निकाल दो।''

चौधुरीजी पशोपेश में पड़ गये। उनकी कठिनाई समझते ही बाबा ने कहा—''जाने दो। मैं ही उसे जाने को कह देता हूँ।''

तुरत पुष्करदास को बुलाया गया। उसके आने पर बाबा ने कहा—''पुष्करदास, तुम ठीक से रसोई नहीं बनाते। कभी रामरस अधिक दे देते हो और कभी मुझे जहर खिला देते हो। अब तुम यहाँ मत रहो। अपना काला मुँह लेकर कहीं चले जाओ।''

इस समय तक प्रेमदास का मौनव्रत समाप्त हो चला था। मौन रहने के कारण आश्रम में वे 'मौनी बाबा' के नाम से प्रसिद्ध हो गये थे। समय पूरा होते ही घोषणा हुई कि कल मौनी बाबा का मौन-भंग होगा। इस खुशी में कल भण्डारा होगा।

दूसरे दिन भण्डारे के समय बाबा ने कहा—''मौनी, अब तुम बोल सकते हो। बोलो।''

प्रेमदास ने प्रयत्न करके कहा—''श्रीजी।'' इसके बाद वह स्वाभाविक रूप से बोलने लगा। पुष्करदास के जाने के बाद पुनः मौनी बाबा को रसोई की जिम्मेदारी दी गई।

इसका यह अर्थ नहीं कि स्वामी रामदास बहुत उदार या क्षमाशील थे, पर जिसके चरित्र में परिवर्तन नहीं हो सकता, उसके लिए प्रयत्न क्यों किया जाय? ऐसे लोगों पर कृपा करना भी कृपा का अपमान होता है।

* * *

स्वामीजी एक ओर कितने क्षमाशील थे, इसका उदाहरण पुष्करदास की घटनाओं से मिलता है, वहीं कितने कठोर थे इसका प्रमाण प्रेमदास के जीवन से मिलता है जो बारह वर्ष तक गूँगा बना रहा। इसी प्रकार की कसौटी पर गरीबदास को भी रगड़ा गया था। गरीबदास का उल्लेख इसके पूर्व किया जा चुका है।

स्वयं स्वामी रामदास ने कहा है—''गरीबदास को जानने के लिए मैं उसके साथ कठोर व्यवहार करता था। मेरे अत्याचारों को सहन करते हुए वह निरन्तर मेरी सेवा करता था। मैं चोरी-छिपे रसोईघर में जाकर उसकी बनाई चीजों को उलट-पुलट देता था और जब वह आता तब अन्य लोगों के सामने फटकारा करता था। लेकिन गरीबदास कभी संयमच्युत नहीं हुआ। बिना कोई जवाब दिये पुनः सुधार-कार्य में लग जाता था। एक बार तो उसने अपने धैर्य का अपूर्व परिचय दिया। ब्रज-परिक्रमा करते समय वह काफी सामान लादकर चलता था। गन्तव्य स्थान पर पहुँचकर उसे ४०-५० आदमियों का भोजन बनाना पड़ता था। सभी को खिलाने के बाद सबसे आखिर में भोजन करता था। एक दिन मैंने सोचा कि आज इसके धैर्य की आखिरी परीक्षा लूँगा। मुझे यह मालूम था कि कड़ी धूप में इतनी दूर पैदल बोझा लेकर आया है। तुरत वह ४०-५० व्यक्तियों के भोजन बनाने में जुट गया है। आज उसका वायु-पित्त जरूर खराब हुआ होगा। मेरे बिगड़ने पर निस्सन्देह क्रुद्ध होगा। यही सब सोचता रहा। भोजन तैयार हो जाने पर मुझे

बुलाया गया। सभी साधुओं के लिए वह मोटी-मोटी रोटियाँ बनाता था। केवल मेरे लिए पतली-पतली बनाता था। बाहर प्रचण्ड गर्मी और भीतर चूल्हे की गर्मी से उसका मिजाज जरूर गर्म होगा।

''आसन पर बैठने के बाद मैंने रोटी हाथ में ली और उसे दूर फेंक दिया। कहा— ''मेरे लिए कच्ची रोटियाँ बनाता है?'' केवल इतना कहकर मैं चुप नहीं रहा। लाठी से उसके सिर पर मारा। तुरत रक्त बहने लगा और दर्द से वह कराहने लगा। कुछ ही पल बाद वह उठा और मेरे चरणों पर सिर रखते हुए बोला—''भगवन्, मुझसे अपराध हो गया है। क्षमा करें।''

उसके इस विनय से मुझे अपार पीड़ा हुई। रोटी ठीक बनी थी। गरीबदास को अकारण मारने की वजह से बड़ी ग्लानि हुई। लगातार कई दिनों तक मैं ठीक से भोजन नहीं कर सका। गरीबदास के धैर्य को देखकर मेरा मन प्रसन्न हो गया। इस घटना के बाद से सर्वाधिक प्रेम मेरा गरीबदास पर बना रहा।

* * *

वस्तुतः रामदास काठिया बाबा एक ऐसे योगी पुरुष थे जिनकी तुलना शिशुओं से की जा सकती है। बच्चों की तरह नटखटपन करना और दूसरे ही क्षण चिरशत्रु को क्षमा कर देना उनकी विशेषता थी। उनकी दृष्टि में राजा-रंक समान थे। यहाँ तक कि चोर-डाकू भी बाबा के पास आते थे जिन्हें दूसरे ढंग से उपदेश देते थे ताकि अपराधों के प्रति उनके मन में घृणा उत्पन्न हो।

स्वामीजी दूर-दूर तक निवास करनेवाले भक्तों का भी ख्याल रखते थे। उनका कहना था कि सत्य और निष्ठा के साथ कार्य करो। असत्य से लाभ उठाने का प्रयत्न मत करो।

बाबा के एक बंगाली शिष्य थे—श्री अभयचरण। एक बार अभयचरणजी अपने एक मित्र के अनुरोध पर उनके यहाँ गये। गर्मी का मौसम। सूखी पहाड़ियाँ दिनभर में तप गई थीं। मित्र महोदय रेलवे स्टेशन के सहायक स्टेशन मास्टर थे। रेलवे क्वार्टर में असह्य गर्मी थी। अभयचरण एक पेड़ के नीचे खटिया बिछाकर सो गये। दूर-दूर तक कहीं भी आदमी नजर नहीं आ रहे थे। अचानक अभयचरण ने महसूस किया कि सिरहाने कोई पंख झल रहा है। चौंककर उधर देखा तो गुरुदेव को देखा। झट उठकर प्रणाम करने गये तो वे गायब हो गये। रातभर में तीन बार ऐसी घटनाएँ हुईं।

यही अभयबाबू कलकत्ता में कागज का व्यवसाय करते थे। इनके कई साझेदार थे। एक बार व्यवसाय में काफी घाटा हो गया। कर्ज के बोझ से तंग आकर कलकत्ता से चल दिये। कई जगह घूमते हुए वे अयोध्या आये। कर्ज के बोझ के कारण मन अशान्त था। दिन-रात भगवान् से मनाते थे कि कर्ज से मुक्ति मिल जाय। लेकिन कहीं से कुछ नहीं हो रहा था। अचानक उनके मन में आया—पूजा-पाठ, दर्शन-भक्ति सब बेकार है। कल सरयू नदी में डूबकर आत्महत्या कर लूँगा। सारा झंझट समाप्त हो जायगा।

इसी चिन्ता में खोये हुए थे कि सहसा आपके सामने गुरुदेव प्रकट हुए और बोले—''इस तरह सोते रहने पर भगवान् मिलेंगे? तुम्हें नाम-मन्त्र दिया है, उसका जप क्यों नहीं करते? क्या भगवान् यों ही चले आयेंगे?''

इस फटकार को सुनते ही अभयबाबू को होश आया। वे बिछौने पर बैठकर मन्त्र जपने लगे। कुछ देर बाद उन्हें दर्शन हुआ। देर तक उस ज्योति का दर्शन करते रहे। फिर धीरे-धीरे वह ज्योति गायब हो गई तब वे स्वाभाविक रूप में आये।

अयोध्या से अभयचरण वृन्दावन आये। यहाँ गुरुदेव के दर्शन हुए। उन्होंने कहा—"भगवान् हैं अब विश्वास हुआ? अब तुम्हें चिन्ता करने की जरूरत नहीं। चाहे घर पर रहो या अन्यत्र, आज से कर्ज के लिए तुम्हें कोई तंग नहीं करेगा। अब तुम निश्चिन्त होकर अपने घर जा सकते हो। तुम्हारे साझेदार अब सहयोग देंगे।"

अक्सर काठिया बाबा कहा करते थे कि परोपकार करने के लिए ही सन्त शरीर धारण करते हैं। लेकिन यह परोपकार जागतिक न होकर पारमार्थिक होना आवश्यक है, तभी जीवन सार्थक होता है। इसके लिए साधन-भजन और गुरु-कृपा अनिवार्य है। मोह-बन्धन से मुक्त होने पर ही मुक्ति मिलती है।

* * *

जनवरी, सन् १९०९ ई०। एक दिन अर्द्धरात्रि के समय बाबा सोते हुए उठ गये और रामफल नामक सेवक को बुलाकर कहा—"प्यास लगी है, जरा पानी दे।"

पानी पीने के बाद काठिया बाबा ने कहा—"तेरे हाथ का पानी पी लिया रामलाल। अब तू सो जा। मैं भी जाऊँगा।"

रामलाल उनींदी स्थिति में था। बाबा के कहने का आशय वह समझ नहीं सका। वह अपनी जगह पर जाकर सो गया।

भोर के समय काशीदास नामक एक साधु की नींद खुली तो उसने देखा—एक अपूर्व ज्योति से सारा आश्रम जगमगा रहा था। यह क्या था, जानने के लिए बाबा की कुटिया के पास गया तो देखा—बाबा चिरनिद्रा में लीन थे।

■ ■ ■

राम ठाकुर

अविभक्त बंगाल ने अनेक सन्तों को जन्म दिया है। तन्त्राचार्य सर्वानन्द, लोकनाथ ब्रह्मचारी, प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी और राम ठाकुर इसी मिट्टी की देन हैं। बांगला देश के एक जिले का नाम है—फरीदपुर। इसी जिले में डिंगामानिक गाँव में श्री राधामाधव चक्रवर्ती सपत्नीक रहते थे। चक्रवर्ती महाशय अपने युग के श्रेष्ठ तान्त्रिक थे। आपके गुरु थे—तन्त्राचार्य मृत्युंजय।

प्रात:क्रिया से निवृत्त होकर चक्रवर्ती महाशय अपने नित्य के नियमानुसार साधना के लिए जब पंचवटी की ओर रवाना होने लगे तब पत्नी कमलादेवी ने कहा—"आज अभी न जाओ तो अच्छा होगा। लगता है कि कुछ देर बाद प्रसव होगा।"

चक्रवर्ती महाशय ने एक बार प्रसव-पीड़ा से कातर पत्नी की ओर देखते हुए न जाने क्या सोचा और फिर कहा—"चिन्ता की बात नहीं है। भगवत्-कृपा से मंगल ही होगा। मुझे रोको मत। मैं पोखर-स्थित चमारिन को खबर कर देता हूँ।"

इतना कहकर राधामाधव घर से बाहर निकल पड़े। गाँव के तालाब के किनारे चमारों की बस्ती में आकर उन्होंने एक परिचित चमारिन से सारी बातें कहने के बाद कहा—"तुम मेरे यहाँ जल्द चली जाओ। जो उचित व्यवस्था हो करो। मैं पंचवटी पूजा करने जा रहा हूँ।"

इसके बाद राधामाधव बिना एक क्षण देर किये पंचवटी चले गये। समयानुसार कमलादेवी को प्रसव हुआ। चमारिन को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि सन्तान के स्थान पर

जच्चा ने एक थैली को प्रसव किया। नाल काटने की जरूरत नहीं पड़ी। थैली को इधर-उधर देखने के बाद उसने घर के पिछवाड़े बकुल वृक्ष के नीचे कूड़े में फेंक दिया।

थोड़ी ही देर में कई शृगाल आकर वहाँ शोर मचाने लगे। अचानक न जाने क्या हुआ कि एक शृगाल उस थैली को मुँह में दबाकर तेजी से पंचवटी की ओर चल पड़ा। उसके सभी साथी भी साथ-साथ दौड़ने लगे। वह शृगाल उस स्थान पर आकर रुक गया जहाँ राधामाधव ध्यानस्थ थे। शृगालों का कोलाहल सुनते ही उनका ध्यान भंग हुआ। आगे बढ़कर उन्होंने उस थैली को स्पर्श किया। अचानक शिशु के रोदन-स्वर को सुनकर वे चौंक उठे।

राम ठाकुर ने अपने भक्तों से अपनी जन्म-कहानी सुनाते हुए कहा था—''मेरे जन्म के समय किसी पुरुष या नारी द्वारा नाल नहीं काटा गया था। मातृरूपिणी शिवा (शृगाल) द्वारा पंचवटी जैसे सिद्धस्थान में मैं भूमिष्ठ हुआ था। सन्तान जब रोने लगती है तब वही लगन का समय माना जाता है।''

राम ठाकुर के कथनानुसार उनका जन्म १ फरवरी, सन् १८६० ई० में हुआ था। उस थैली में जुड़वाँ बच्चे थे। एक का नाम राम और दूसरे का लक्ष्मण रखा गया।

राम और लक्ष्मण अपनी माँ की ममता और पिता की छत्रछाया में पलते रहे। लेकिन यह सौभाग्य अधिक दिनों तक उन्हें प्राप्त नहीं हो सका। अभी जीवन के आठ वसन्त वे देख पाये थे कि सहसा पिताजी का निधन हो गया। दोनों अनाथ बच्चों को लेकर माँ किसी तरह चार वर्ष तक गृहस्थी की नौका खेती रही। ठीक इन्हीं दिनों दो घटनाएँ हुईं।

पति के निधन के बाद घर में अभाव बढ़ता गया। दिन-प्रतिदिन स्थिति खराब होती जा रही थी। माँ ने सोचा—अगर अब ये कुछ नहीं करेंगे तो सभी को अनाहार रहना पड़ेगा। दूसरे ओर इन दुधमुँहे बच्चों को नौकरी करने को कहने में कलेजा मुँह को आने लगा था। काफी ऊहापोह करने के बाद माँ ने अपने बेटों से सारी समस्या कहने के बाद कहा—''शीघ्र कोई प्रबन्ध करो।''

दोनों बच्चे अभी पाठशाला में अपनी पोथी समाप्त नहीं कर पाये थे कि उन्हें माँ के आदेश पर जीविका की खोज में घर से बाहर निकलने के लिए मजबूर होना पड़ा। आसपास काफी दौड़-धूप करने पर भी राम अपने लिए कोई नौकरी जुटा नहीं सका।

एक दिन थका-माँदा घर पर आकर सो गया। स्वप्न में उसने देखा कि एक महात्मा उसके पास आये। उनके कानों में एक नाम बताते हुए कहा—''इस नाम का जप करते रहो। तुम्हारा सारा संकट दूर हो जायगा। जीवन सुखी होगा।'' और भी न जाने क्या-क्या कहते रहे। अपनी बातें कहने के पश्चात् महात्माजी जब वापस जाने लगे तब राम उनके पीछे-पीछे दौड़ा और गिर पड़ा। तभी उसकी नींद उचट गई।

राम ठाकुर ने उठकर देखा—कहीं कोई नहीं, पर मन्त्र-नाम याद है। पिता पंचवटी में पूजा और ध्यान किया करते थे, इतना वह माँ से जान-सुन चुका था। न जाने क्यों उसे इस स्वप्न पर विश्वास हो गया। उसने निश्चय किया कि आज से इस मन्त्र का

जप करूँगा। सम्भव है, परिवार का संकट दूर हो जाय। अगर दूर नहीं होता तो अपना क्या जाता है। ब्राह्मण का पुत्र हूँ, भगवान् का नाम लेने से कल्याण ही होगा। बालक राम की इसी आस्था ने उसे बचपन में ऐसी शक्ति दी।

चारों ओर से निराश होने के बाद एक दिन राम ठाकुर नौकरी की तलाश में भटकता हुआ नोआखली शहर आया। दो दिन से कुछ खाने को नहीं मिला था। शरीर लस्त हो गया था। अपरिचित स्थान होने के कारण और भी भयभीत-सा था। ठीक इसी समय एक राह-चलते भद्र पुरुष को देखकर उसने पूछा—"क्या यहाँ कोई छोटा-मोटा कार्य मिल सकता है, जहाँ रहने और भोजन की सुविधा प्राप्त हो।"

उक्त सज्जन ने गौर से राम ठाकुर की ओर देखा और तब पूछा—"तुम्हारी जाति क्या है?"

"मैं ब्राह्मण हूँ।"

उक्त सज्जन ने कहा—"मैं तुम्हें कोई नौकरी वगैरह नहीं दिला सकता। रहने और भोजन की सुविधा जरूर दे सकता हूँ। इसके बदले तुम्हें मेरे यहाँ भोजन बनाना पड़ेगा। अगर यह शर्त मंजूर हो तो मेरे साथ चलो।"

डॉ० गोपीनाथ कविराजजी ने लिखा है—"राम ठाकुर उस समय स्थानविशेष में पाचक ब्राह्मण का कार्य करते थे। बंगला में पाचक ब्राह्मण को 'ठाकुर' कहा जाता है। यह पदवी इनके वास्तविक नाम रामचन्द्र चक्रवर्ती के साथ जुड़ गई थी।"

'मरता क्या न करता' कहावत के अनुसार इस समय राम ठाकुर को आश्रय की आवश्यकता थी। यहाँ कार्य करते हुए वे शेष समय स्वप्न में प्राप्त मन्त्र-जप करते रहे। अचानक यहाँ एक ऐसी दुर्घटना हो गई जिसके कारण ठाकुर को यहाँ से भी भागना पड़ा। एक प्रकार से उसके लिए यह अच्छा ही हुआ। उसके सौभाग्य का द्वार खुल गया।

* * *

घूमते हुए वे कामाख्या मन्दिर में आये। यहीं उन्होंने सर्वप्रथम प्रत्यक्ष रूप में अपने गुरुदेव का दर्शन किया। कविराजजी ने लिखा है—"ठाकुर महाशय को सिद्धमन्त्र का लाभ बाल्यावस्था में ही हो गया था। जब ये बारह वर्ष के थे तब कामाख्या में गुरु अनंगदेव से भेंट हुई। गुरुदेव विदेही थे। रक्त-मांस का शरीर नहीं था। उनके साथ अन्तर्धान हो गये।

ठाकुर महाशय के गुरुदेव एक दिव्य अलौकिक पुरुष थे। उनकी अवस्था के बारे में कोई कुछ बता नहीं सकता था। अन्तरंग शिष्यों के अनुसार उनका नाम अनंगदेव था। अपनी भक्त-मण्डली के साथ वे आकाश-मण्डल में संचरण करते थे। यदाकदा वे इनके पास भी किसी विशेष प्रयोजनवश मण्डली-सहित आते थे। यह विशेष प्रयोजन जहाँ तक मैंने सुना है, किसी साधक को दीक्षा देना होता था। इनकी गुरु-परम्परा में 'दीक्षा' शब्द का कुछ विलक्षण तात्पर्य था। सामान्यतया साधन-मार्ग में चलने के लिए इनके यहाँ 'नाम' का उपदेश होता था। दीक्षा बिरलों को मिलती थी। सहस्र-सहस्र शिष्यों में से दो-चार ही दीक्षा प्राप्त कर पाते थे। मैंने सुना था कि इनके यहाँ दीक्षा-प्राप्ति

के साथ ही देह का परिवर्तन हो जाता था। केवल इतना ही नहीं, शिष्य इस अभिनव देह को लेकर गुरु की मुक्त-मण्डली में सम्मिलित हो जाता था। अनंगदेव स्वयं दीक्षा नहीं देते थे, उनके आदेश से ठाकुर महाशय को अपने भक्त-मण्डल से तिरोहित होना पड़ता था। किन्तु इनका जाना और लौट आना किसी के देखने में नहीं आता था।''

राम ठाकुर कामाख्या से अपने गुरु के साथ अज्ञात स्थान को रवाना हुए। यह सन् १८७२ ई० की घटना है। हिमालयस्थित अनेक आश्रमों में उन्होंने सन्तों के दर्शन किये। कौशिक आश्रम में आने पर उन्होंने गुफा के भीतर अनेक सन्तों को देखा। उनके बारे में प्रोफेसर दिनेशचन्द्र भट्टाचार्य ने लिखा है—''इन सन्तों के हाथ-पैर तथा शरीर के अन्य अंगों के मांस जगह-जगह फट गये थे। कुछ लोगों की जटाएँ सिर से खिसककर नीचे गिर गई थीं। वे लोग इतने लम्बे थे कि सभी आसन पर बैठे थे और राम ठाकुर खड़े थे, पर वे उनकी लम्बाई के बराबर नहीं थे। उन सन्तों का चेहरा काफी बड़ा था। आँखें मांस से ढँकी हुई थीं। पुतलियाँ शेर की आँखों की तरह चमक रही थीं। ये लोग कितने युगों से यहाँ विराजमान हैं, इसका अन्दाजा लगाना कठिन है। राम ठाकुर के कथनानुसार इन लोगों ने कायाकल्प नहीं कराया था। अगर वे लोग ऐसा करते तो उनके शरीर का रंग-रूप अन्य प्रकार का होता। वस्तुतः तपोबल से उनका शरीर चैतन्यमय हो गया था। उनका कभी देहपात नहीं होगा।''

इस सम्बन्ध में एक बार एक शिष्य ने अपनी शंका प्रकट करते हुए पूछा था—''हिमालय की चप्पे-चप्पे भूमि पर जब मानव के चरण पड़ चुके हैं तब ऐसा अद्भुत आश्रम और ऐसे लोग कहाँ छिपे बैठे हैं?''

राम ठाकुर ने कहा—''मैंने अपनी आँखों से ऐसे सन्तों को देखा है, ऐसी हालत में कैसे मैं अविश्वास करूँ? सम्पूर्ण हिमालय रहस्यमय भूमि है। केवल उच्च साधक ही ऐसे स्थानों पर पहुँच सकते हैं और वे ही ऐसे महान् सन्तों के दर्शन पा सकते हैं। हिमालय में मानसरोवर से काफी आगे उत्तर दिशा में योगाश्रम है। यहाँ कोई मन्दिर नहीं है। पत्थर के चार खम्भों से घिरे स्थान पर स्फटिक का एक शिवलिंग है जिसमें से अनवरत प्रकाश निकलता है। आश्चर्य की बात यह है कि इस शिवलिंग की पूजा एक महिला करती है।''

इस स्थान के बारे में कविराजजी ने भी उल्लेख किया है—''शिवलिंग के समीप थोड़ा ऊपर एक आसन था जिस पर ध्यानस्थ मुनि बैठे थे। उज्ज्वल शान्त मूर्ति। उनकी ओर अनिमेष रूप में एक देवी मूर्ति देख रही है। मुनि का मुख-मण्डल जटा से आच्छादित था। अपूर्व सौन्दर्य था। कुमारी साक्षात् गौरी थी। ठाकुर महाशय वहाँ पाँच दिन थे। आश्रम से थोड़ी दूर नीचे एक पहाड़ी सोता था वहीं से जल लाते थे। आश्रम में प्रतिदिन पुष्पाभूषणयुक्त एक द्वादश वर्षीया बालिका आकर नृत्यगान करती हुई शिवगौरी को एक पुष्पमाला पहनाती थी। उस दिव्य कुमारी का ये नित्य दर्शन करते थे। शाम हो जाने के बाद वह गायन करती हुई लौट जाती थी। उसके गीत की भाषा पहाड़ी थी, इसलिए इनकी समझ में नहीं आती थी। ठाकुर महाशय का कहना था कि इस आश्रम जैसा रमणीक वातावरण इस संसार में कहीं देखने में नहीं आया। यहाँ से आगे बढ़ने पर

चार व्यक्तियों के साथ एक सुदीर्घ एवं अन्धकारपूर्ण पहाड़ी सुरंग पार करके कई दिनों तक यात्रा करते हुए वे एक ऐसे स्थान पर पहुँचे जहाँ न दिन मालूम पड़ता था, न रात। गोधूलि के समान एक मृदु आलोक निरन्तर छाया रहता था। कुछ समय तक वहाँ ठहरने के पश्चात् इन्हें अनुभव हुआ कि वह प्रकाश कहीं बाहर से नहीं आ रहा है। कुछ आगे बढ़ने पर इन्होंने एक घोर अन्धकारपूर्ण स्थान में एक दीर्घकाय महापुरुष को बैठे देखा। वह मन्द प्रकाश उन्हीं के शरीर से विकीर्ण हो रहा था।

उक्त प्रकाश के अतिरिक्त वह स्थान पूर्णतया तिमिराच्छन्न था। उस खोह से बाहर निकलने पर इन्हें सूर्य का प्रकाश प्राप्त हुआ। इनका अनुमान था कि उक्त सुरंग दक्षिण से पर्वत भेदकर उत्तर की ओर गई है। सुरंग पार करके इन्होंने एक ऊँचे शृंग पर आरोहण किया, जिसके नीचे कौशिकी पर्वतमाला थी।

अन्तर की आवाज से वे वहाँ से उतरकर कौशिकी आश्रम आये। यह अत्यन्त रमणीक स्थान था। कमल के आकार जैसा काफी विस्तृत था। इसके चारों ओर बर्फ ही बर्फ दिखाई दे रही थी। आश्चर्य की बात यह थी कि आश्रम के भीतर बर्फ नहीं थी। वहाँ की भूमि शिलामय थी। उसके नीचे एक नदी बड़े वेग से बह रही थी जिसका नाम मन्दाकिनी था। इसे पार करना कठिन था। शिलाखण्डों पर सम्हलकर पैर रखते हुए पार होना पड़ता था। आश्रम में नाना प्रकार के फूलों और फलों के वृक्ष थे। उस प्रकार के फल भारत में कहीं नहीं मिलते। इस आश्रम में तेरह आसन लगे हुए थे। इस तेरह आसनों में से दस आसन इस प्रकार विन्यस्त थे कि व्यवधान के कारण उन पर बैठे व्यक्ति परस्पर एक-दूसरे को देख नहीं सकते थे। शेष तीन आसन उनके सम्मुख थे और ऐसे लगे थे कि दसों आसनों पर बैठे व्यक्तियों को देख सकते थे। ठाकुर महाशय ने पहले दस आसनों पर बैठे व्यक्तियों को देखा था। वे सभी निस्पन्द पत्थर की मूर्ति की भाँति निश्चेष्ट एवं प्रसन्न मुद्रा में थे। उनके दोनों हाथ नीचे थे। उनकी त्वचा पत्थर की भाँति कर्कश और कहीं-कहीं फटी थी। किसी-किसी की जटा खुलकर कन्धे पर लटक रही थी। वे लोग इतने दीघकाय थे कि उनके बैठे होने की स्थिति में भी ठाकुर महाशय को माला पहनाने के लिए पत्थर रखकर खड़ा होना पड़ा था। उनकी आँखें पलकों के लटकते हुए चमड़े से ढँकी थीं। नेत्रगोलक के भीतर छह इंच से अधिक की गहराई में पुतलियाँ चमकती हुई दिखाई देती थीं। उनके मुख-मण्डल पर लाली थी। वे कितने युगों से यहाँ बैठे थे, इसका अनुमान नहीं किया जा सकता।

मैंने ठाकुर महाशय से पूछा—"क्या इन्होंने अपना कायाकल्प कराया था?"

उन्होंने कहा—"नहीं, कायाकल्प करने से शरीर नवीन हो सकता है, स्थायी नहीं। तपस्या के प्रभाव से इनका शरीर चिन्मय हो गया था।"

शेष तीन आसन खाली थे। वे महापुरुष प्रयोजन के अनुरोध से जगत्-कल्याण के लिए निम्न भूमि में चले गये थे। इस आश्रम में राम ठाकुर पन्द्रह दिन रहे। नियमित रूप से उन महात्माओं की सेवा फल-मूल-नैवेद्य से करते थे। सन्ध्या को फलाहार रख जाते थे। दूसरे दिन प्रातःकाल सेवा में उपस्थित होने पर इन्हें छिलके पड़े मिलते थे। सोलहवें दिन प्रत्येक महापुरुष को साष्टांग दण्डवत् करते हुए इन्होंने बिदा ली। प्रणाम करने पर

उन प्रस्तरवत् तपस्वियों ने हाथ उठाकर अभय मुद्रा प्रदर्शित कर आशीर्वाद दिया। ठाकुर महाशय को अपने इस पन्द्रह दिवस के सम्पर्क-काल में इन महापुरुषों के शरीर में यही एकमात्र स्पन्दन दिखाई दिया। इस आश्रम की स्थिति के बारे में उन्होंने कहा था कि यहाँ से मानसरोवर बहुत दूर है। मैंने जिज्ञासा की—''संसार के अनेक प्रसिद्ध यात्रियों ने मानसरोवर के आसपास का सारा प्रदेश छान डाला, किन्तु उनमें से किसी ने भी अपने यात्रा-विवरण में आपके द्वारा निर्दिष्ट इन दोनों आश्रमों तथा उनमें रहनेवाले तपस्वियों का उल्लेख नहीं किया है। इसका कारण क्या हो सकता है?''

ठाकुर महाशय ने कहा—''ये दिव्य आश्रम सहज ही गोचर नहीं हैं। योगसिद्ध देहधारी ही इनका सन्धान पा सकते हैं।''

* * *

ठाकुर महाशय की प्रकृति अत्यन्त नम्र और विनयशील थी। गले में तुलसी की माला, हरिनामी ऊर्ध्व वस्त्र तथा प्रसन्नता से मण्डित आकृति, दर्शकों के हृदय में आध्यात्मिक ज्योति विकीर्ण करती थी। ये विशेष पढ़े-लिखे नहीं थे। अक्षर-ज्ञान अत्यन्त साधारण था। किसी तरह बंगला की सामान्य पुस्तकें पढ़ लेते थे और पत्र-व्यवहार कर लेते थे। विनीत तो इतने थे कि आगन्तुक का हाथ उठने के पहले ही उसे प्रणाम करते थे। इतने विनम्र और कम पढ़े-लिखे होने पर भी इनका ज्ञान अपरिसीम था और साधन-मार्ग में प्राप्त वैशिष्ट्य अनन्यसाधारण। भोजन तो करते ही नहीं थे। सामान्य दो-एक फल से इनकी क्षुधा तृप्त हो जाती थी।''

राम ठाकुर को १२ वर्ष की अवस्था में गुरुदेव मिले और वे अपने साथ पूरे ३५ वर्ष तक रखे रहे अर्थात् सन् १८७२ ई० से सन् १९०७ तक। इसके बाद गुरुदेव ने उन्हें वापस भेज दिया। मार्ग में उन्होंने देखा कि एक कोढ़ी एक वृक्ष के नीचे लेटा जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा है। उसके सड़े अंग से दुर्गन्ध निकल रही है। दयामय राम ठाकुर उसके पास बैठकर उसके बदन से कीड़े निकालने लगे।

कुछ देर तक वे इस तरह कीड़े निकालते रहे। सहसा गुरुदेव की आवाज आई—''इस तरह कब तक कीड़े निकालते रहोगे?''

''फिर?''

गुरुदेव ने किसी वृक्ष की पत्तियों का रस शरीर पर पोतने का आदेश देते हुए कहा—''इससे ठीक हो जायगा।''

थोड़ी देर में रोगी के शरीर के सभी घाव ठीक होने लगे। इसके बाद पुनः गुरुदेव ने किसी अन्य वृक्ष की पत्तियाँ देते हुए कहा—''इन पत्तियों को इसके बदन पर फेरते रहो।''

देखते ही देखते गुरु-कृपा से रोगी पूर्ण स्वस्थ हो गया। कोढ़ के सभी दाग मिट गये। गुरुदेव ने राम ठाकुर से कहा कि अब सीधे घर चले जाओ। इतना कहकर वे अन्तर्धान हो गये।

एक अर्से के बाद बेटे को वापस आते देख माँ हर्ष से विभोर हो उठी। पूरे पैंतीस वर्ष बाद लौटा है। जब नौकरी के सिलसिले में गया था तब नन्हा-सा था और अब तो प्रौढ़ हो गया है।

राम ठाकुर ने देखा कि घर की स्थिति वही है जो यहाँ से नौकरी की तलाश में जाने के समय थी। कुछ देर के लिए उन्हें कष्ट हुआ। एकाएक उन्होंने निर्णय किया कि माँ को बुढ़ापे में कष्ट न हो, इसके लिए उन्हें पुनः नौकरी की तलाश करनी होगी।

इस निश्चय के बाद वे पुनः नोआखाली शहर में आये और एक इंजीनियर के यहाँ पाचक का कार्य करने लगे। खाली समय में गुरुदेव के आज्ञानुसार साधना करते रहे। सहसा इनके मालिक इंजीनियर को जब मालूम हुआ कि राम ठाकुर साधारण पाचक नहीं, बल्कि उच्च स्तर के साधक पुरुष हैं तब उन्होंने पाचक-कार्य से उन्हें हटाकर अपने विभाग में नौकरी दिला दी।

कुठ दिनों बाद राम ठाकुर की बदली (तबादला) फेनी में हो गया। उन दिनों बंकिमचन्द्र चटर्जी के घनिष्ठ मित्र बंगाल के सुप्रसिद्ध कवि नवीनचन्द्र सेन वहाँ डिप्टी मजिस्ट्रेट थे। आपने राम ठाकुर के बारे में 'आमार जीवन' में अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाओं का जिक्र किया है। लोगों की जबानी उन्होंने सुना कि राम ठाकुर कमरे में पूजा करते-करते अचानक गायब हो जाते हैं। किसी ने बताया कि उन्हें लाल चन्दन लगाये पेड़ से उतरते देखा है।

* * *

राम ठाकुर चन्द्रनाथ दर्शन करने के लिए चतुर्दशी को जाना चाहते थे। उन्होंने ओवरसियर के पास छुट्टी के लिए आवेदन-पत्र भेजा। उसने यह लिखकर कि इंजीनियर साहब निरीक्षण के लिए आनेवाले हैं। इसलिए छुट्टी नहीं दी जायगी—आवेदन-पत्र वापस कर दिया। चतुर्दशी के दिन बड़े दुःखी मन से काम पर जाने की तैयारी करने लगे। राम ठाकुर ने गुरुदेव से कहा था कि चतुर्दशी के दिन चन्द्रनाथ में आपके श्रीचरणों का दर्शन करूँगा, पर इस बाधा से मुक्ति कैसे मिलेगी। इन्हीं बातों का चिन्तन कर रहे थे कि अचानक तार आया जिसमें इंजीनियर के न आने की सूचना थी। राम ठाकुर की छुट्टी मंजूर हो गई।

तुरत वे चन्द्रनाथ की ओर रवाना हो गये। यह चमत्कार गुरु-कृपा से हुआ है, यह समझते उन्हें देर नहीं लगी। इस प्रसन्नता में वे उल्टी दिशा की ओर रवाना हुए। काफी दूर आने के बाद उन्हें होश आया कि वे उल्टी दिशा में चले आये हैं। अब आज चन्द्रनाथ पहुँचना सम्भव नहीं।

बड़े सन्तप्त हृदय से एक वृक्ष के नीचे बैठ गये। ठीक इसी समय एक संन्यासी ने आकर पूछा—"क्या आप चन्द्रनाथ दर्शन करने जा रहे हैं?"

राम ठाकुर ने कहा—जी हाँ, पर आज अब कैसे पहुँच सकता हूँ। भ्रमवश उल्टी दिशा की ओर आ गया।"

संन्यासी ने कहा—"चिन्ता की बात नहीं है। सामने की पहाड़ी के भीतर से चलने पर हम शाम के पहले ही चन्द्रनाथ पहुँच जायेंगे।"

इतना कहकर उन्हें साथ ले संन्यासी महाराज चल पड़े। फेनी से ३० मील और यहाँ से ४० मील दूर चन्द्रनाथ था। रात को वहाँ दर्शन आदि करने के बाद सबेरे संन्यासीजी पुन: फेनी के पास एक जंगल में इन्हें छोड़ गये। यहीं पर उनकी मुलाकात कार्यालय के एक चपरासी से हुई। इस चपरासी के माध्यम से इस घटना का प्रचार हुआ।

कवि नवीनचन्द्र ने स्वयं एक बार एक अद्भुत दृश्य देखा। वे अपने कमरे में बैठे थे। सहसा उन्होंने देखा कि उनके सामने राम ठाकुर मुँह लटकाये बैठे हैं। किधर से कब आये, यह बात उनकी समझ में नहीं आई। अगर दरवाजे से आते तो सामने वे जरूर दिखाई देते। पर ऐसी घटना नहीं हुई। उन्होंने उस समय राम ठाकुर से कुछ नहीं कहा। बाद में नवीनचन्द्र के सामने एक सज्जन ने इसी तरह का प्रश्न किया था—"क्या कोई मनुष्य शून्य मार्ग से यात्रा कर सकता है?"

ठाकुर महाशय ने कहा—"हाँ, जिस मार्ग से विद्युत् चल सकती है, मनुष्य उसी मार्ग से सभी वस्तुएँ साथ लेकर उसी प्रकार चल सकता है। इतना ही नहीं, एक ही समय में वह विभिन्न स्थानों में उपस्थित हो सकता है।"

गुरु के आदेश पर इस प्रकार की योग-विभूतियों का प्रदर्शन उन्हें कभी-कभी करना पड़ता था। राम ठाकुर के एक प्रिय भक्त थे—श्री इन्दुभूषण बनर्जी। आपने अपने गुरु की कई योग-विभूतियों का उल्लेख किया है।

एक बार आपका एक छोटा बच्चा शाम को कहीं खो गया। घर के लोग परेशान होकर चारों ओर दौड़-धूप करने लगे। उन दिनों पास ही अन्य भक्त के यहाँ राम ठाकुर ठहरे हुए थे। उन्हें समाचार दिया गया। उन्होंने कहा—"चिन्ता करने की जरूरत नहीं। लड़का मिल जायगा।"

माँ-बाप को इस आश्वासन पर सन्तोष नहीं हुआ। अखबारों में विज्ञापन दिया गया। थाने में रिपोर्ट की गई। दूसरे दिन एक सज्जन ने आकर कहा—"अखबार में विज्ञापन पढ़कर आया हूँ। आपका बालक अमुक थाने में है। दरअसल कल शाम को वह बालक मुझे खोया-खोया सा दीखा। पूछने पर पता चला कि घर भूल गया है। पता बता नहीं सका। आखिर कहाँ ले जाता?"

लोग तुरत उस बालक को थाने जाकर ले आये। जब उससे पूछा गया कि तू इतनी चौड़ी सड़कें कैसे पार करता था तब उसने कहा—"रास्ते में ठाकुर तो बराबर मेरे साथ थे। वही इधर से उधर सड़क पार कराते थे। उनके साथ रहने पर मुझे जरा भी डर नहीं लगा।"

इसी प्रकार एक बार अपने कई भक्तों के साथ राम ठाकुर ढाका से ग्वालन्दो आये। यहाँ से उन्हें रेल द्वारा आगे कलकत्ता जाना था। स्टीमर से उतरकर भक्तों ने गुरुदेव के लिए डिब्बे में बिस्तर लगा दिया। इसके बाद उन्हें वहीं बैठाकर सभी भक्त स्टेशन के होटल में भोजन करने चले गये। लौटकर वे लोग जब आये तब देखा कि गुरुदेव गायब हैं। गाड़ी छूटने का वक्त हो गया, पर गुरुदेव आते नहीं दिखाई दिये। फलस्वरूप झटपट सारा सामान उतारकर लोग प्लेटफॉर्म पर ठहर गये। सारी रात लोग गुरुदेव की प्रतीक्षा करते रहे।

भोर के वक्त गुरुजी आते दिखाई दिये। उनके साथ एक दस-बारह वर्ष का बालक था। पास आते ही राम ठाकुर ने कहा—"राह-खर्च रखकर बाकी फालतू रकम आप लोगों के पास जितनी हो, कृपया इस बालक को दे दें।"

रुपये पाकर लड़का चला गया। राम ठाकुर ने कहा—"इस बालक का पिता मेरा पुराना भक्त है। कल शाम को अचानक उसकी तबीयत बहुत खराब हो गई। अन्तिम दर्शन करने के लिए मुझे याद करने लगा। घर के लोगों से कहा कि तुम लोग जल्दी से भोजन कर लो। वे लोग भोजन करने गये और तभी मैं वहाँ पहुँच गया। मुझे देखते ही मेरे पैर पकड़कर रोते-रोते सुरधाम चला गया। दो अनाथ बच्चे, विधवा औरत घर पर हैं। खाने का ठिकाना नहीं। कैसे मृतक का कार्य करेंगे? आगे क्या होगा, भगवान् जाने।"

राम ठाकुर कितने बड़े साधक थे, इसका उदाहरण निम्न घटनाओं से पता चल जाता है। कैवल्यधाम के महन्त श्री श्यामाचरण चटर्जी एक बार राम ठाकुर से मिलने के लिए उनके यहाँ गये। दरवाजे के पास जाते ही उन्होंने देखा कि राम ठाकुर सामने बैठे हैं और बड़ा साँप उनके शरीर से लिपटा हुआ है।

जब तक चटर्जी महाशय चकित होकर कुछ पूछें, उसके पहले ही राम ठाकुर ने कहा—"आप यहाँ क्यों आये हैं? जल्दी चले जाइये।"

चटर्जी महाशय से रहा नहीं गया। पूछ बैठे—"आखिर यह क्या है?"

राम ठाकुर ने कहा—"मुझे बुखार आ गया है। पास में कोई नहीं है, इसलिए यह साँप सेवा करने आया है।"

यह बात सुनकर चटर्जी महाशय तुरत प्रणाम करने के बाद चले गये।

इसी प्रकार की एक घटना कलकत्ता के बीडन स्ट्रीट स्थित एक भवन में हुई थी। उस दिन वहाँ डॉ॰ इन्दुभूषण बनर्जी, जानकीदास गुप्त कविराज आदि लोग राम ठाकुर के सामने बैठे थे। एक दृश्य देखकर सभी लोग चौंक उठे। धीरे-धीरे राम ठाकुर के बदन में चेचक के दाने उभर आये। कविराजजी ने जाँचने के बाद कहा—"यह तो चेचक के दाने हैं। सभी लोग सावधानी से काम लें। मैं घर जाकर अभी दवा भेजता हूँ।"

कविराजजी के जाने के बाद राम ठाकुर ने कहा—"उनका कहना ठीक था। ये दाने चेचक के हैं। वे बेकार डर गये। मुझे दवा की जरूरत नहीं है।"

इतना कहने के बाद राम ठाकुर उँगलियों से उन दानों को दबाने लगे। एक घण्टे बाद सभी दाने गायब हो गये। बाद में उन्होंने कहा—"एक मरणासन्न चेचक रोगी को ठीक करने के कारण वही रोग अक्सर मुझ पर आक्रमण करता है।"

* * *

सिद्ध महापुरुष सूक्ष्म रूप में आकाश-मार्ग से यात्रा करते हैं। एक स्थान पर उपस्थित रहते हुए वे भक्तों की पुकार पर उन्हें संकट से बचाने के लिए बहुत दूर दूसरे स्थान पर तुरत पहुँच जाते हैं। स्वामी विशुद्धानन्द, श्यामाचरण लाहिड़ी, रामकृष्ण देव आदि इस प्रकार अपने भक्तों की सहायता के लिए उपस्थित हुए थे। स्वयं राम ठाकुर भी अपने एक भक्त डॉ॰ प्रभात चक्रवर्ती के घर गये थे।

कहा जाता है कि उन दिनों डॉ० चक्रवर्ती के यहाँ तीन व्यक्ति चेचक रोग से पीड़ित थे। बैठक में अपने मित्रों से इसी समस्या पर डॉ० चक्रवर्ती बातें कर रहे थे। तभी उन्हें महसूस हुआ कि राम ठाकुर सदर दरवाजे से भीतर आकर सीधे आँगन की ओर चले गये।

भीतर जमानखाने में चक्रवर्ती की पत्नी तीनों रोगियों की सेवा में व्यस्त थीं। अचानक सामने दीवार में टँगे आईने में राम ठाकुर को आते देख, वे एक आसन लाने गईं ताकि उस पर गुरुदेव को बैठा सकें। आसन लेकर जब वे आईं तब देखा कि राम ठाकुर अन्तर्धान हो चुके हैं। तभी तेजी से डॉ० चक्रवर्ती भीतर आये। गुरुदेव के स्वागत में कोई त्रुटि न हो, इस बात के लिए उन्हें चिन्ता थी। लेकिन गुरुदेव कहाँ गायब हो गये? पत्नी से पूछने के बाद वे घर में चारों ओर उन्हें खोजने लगे। लोगों को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि कहीं भी गुरुदेव नहीं मिले। चक्रवर्ती महोदय सोचने लगे कि मुमकिन है कि मुझे भ्रम हुआ हो, पर पत्नी और मित्रों ने भी उन्हें आते देखा था। क्या सभी भ्रम के शिकार हुए थे।

राम ठाकुर उन दिनों हरिद्वार में थे। चक्रवर्ती ने गुरुदेव को पत्र लिखते हुए इस घटना का वर्णन किया। बाद में पता चला कि चक्रवर्ती की पत्नी छूत-रोगियों की सेवा करने में घबरा रही थी। उनके भय को दूर करने के लिए वे आये थे।

सन्तों की दृष्टि में न कोई हिन्दू होता है और न ईसाई या मुसलमान ही। जिस प्रकार किसी धर्म के सन्त को देखकर मस्तक अपने-आप झुक जाता है, ठीक उसी प्रकार सन्त भी भक्तजनों को अपना लेते हैं। राम ठाकुर की जन्मभूमि डिंगामानिक में उनका जन्म-दिवस मनाया जा रहा था। उनके बारे में गाँव में यह प्रसिद्ध हो गया था कि राम ठाकुर असाधारण सन्त हैं। हजारों भक्त दूर-दूर से आये थे।

अचानक इन्दु बनर्जी नामक एक भक्त ने देखा कि कुछ दूरी पर एक वृक्ष के नीचे एक मुसलमान बैठा है। अपनी गोद में एक गठरी रखे हुए है। डॉ० बनर्जी कुतूहलवश उसके पास जाकर बोले—''बड़े मियाँ, यहाँ बैठे क्यों हैं? क्या किसी की प्रतीक्षा कर रहे हैं?''

मुसलमान किसान ने कहा—''नहीं, मालिक। मैं तो अपने राम दादा के भोग के लिए थोड़ा फल ले आया हूँ।''

''तब यहाँ क्यों बैठे हैं? भीतर जाकर दे आइये।''

''इतनी भीड़ में जाने की हिम्मत नहीं हुई, साहब। ठाकुर की कृपा होगी तो स्वयं ही बुला लेंगे।''

मुसलमान किसान की श्रद्धा देखकर डॉ० बनर्जी स्वतः उसकी पोटली से केला, अमरूद, चावल आदि लेकर भीतर दे आये। बाहर आकर उन्होंने किसान से पूछा—''आपने तो हिन्दुओं की तरह नैवेद्य चढ़ाया। कहीं आपके मौलवी साहब ने सुन लिया तो इसे गुनाह करार देंगे।''

किसान ने कहा—''गुनाह क्यों करार देंगे? खुदा के फरिश्ते सब बराबर होते हैं। वे एक ऊँचे टीले पर बैठे हर किसी को देखते हैं। हमारे राम ठाकुर भी ऐसे टीले पर बैठे हैं।''

डॉ० बनर्जी समझ गये कि इस किसान की अन्तरात्मा को ठाकुर ने स्पर्श किया है तभी इतनी ऊँची बात कह गया। मन ही मन उन्होंने राम ठाकुर को स्मरण करते हुए प्रणाम किया।

* * *

राम ठाकुर की अलौकिक लीला देखकर भक्तों को महान् आश्चर्य होता था। पटना के एक गाँव में राम ठाकुर की एक भक्त महिला रहती थीं। उनके यहाँ पहली बार आम फला तो उन्होंने अमावट बनाई। महिला ने सोचा कि इस बार जब गुरुदेव आयेंगे तब उन्हें भोग में दूँगी। अमावट को सूखने के लिए धूप में रखती रही। एक दिन एक कौआ उसे चोंच में दबाकर उड़ गया। बेचारी मन ही मन कौए को गाली देने लगी। इतने श्रम से गुरुदेव के नाम पर बनाई अमावट भी गायब हो गई।

उन दिनों राम ठाकुर मुजफ्फरपुर में एक भक्त के यहाँ थे। इस भक्त का नाम रोहिणी मजुमदार था। नीचे बैठक में राम ठाकुर को घेरकर उनका प्रवचन सुन रहे थे। ठीक इसी समय श्रीमती मजुमदार बैठक में अमावट का टुकड़ा लेकर आईं।

उन्होंने कहा—''अभी-अभी एक कौआ अमावट के इस टुकड़े को लेकर छत पर आया और मेरे पास रखकर उड़ गया। आश्चर्य की बात यह है कि इस टुकड़े पर उसके चोंच के निशान कहीं नहीं हैं। मैं यह पता लगाने आई हूँ कि इस अमावट का क्या करूँ?''

राम ठाकुर ने कहा—''चिन्ता की कोई बात नहीं है। यह महाप्रसाद है। उपस्थित सभी लोगों को थोड़ा-थोड़ा बाँट दो।''

उपस्थित लोगों ने प्रसाद के रूप में अमावट को ग्रहण किया। कौए का उच्छिष्ट है, इस बारे में किसी को घृणा नहीं हुई। इस घटना के कुछ दिनों बाद राम ठाकुर पटना जिला स्थित उक्त गाँव में आये। सभी प्रसन्न थे। केवल वह महिला जरा खिन्न थी। राम ठाकुर को समझते देर नहीं लगी।

उन्होंने कहा—''आपने मेरे लिए जो अमावट बनाई थी, उसे एक कौआ ले गया था। मुजफ्फरपुर के सभी भक्तों ने प्रसाद के रूप में ग्रहण किया था। कौए के प्रति अब नाराज होने की जरूरत नहीं। मेरी सामग्री मुझ तक पहुँच गई थी।''

गुरुदेव के इस चमत्कार से वह महिला आनन्द से पुलकित हो उठी। बाद में उपस्थित लोगों को राम ठाकुर ने अमावटवाली सारी घटना सुनाई।

महामहोपाध्याय डॉ० गोपीनाथ कविराज ने राम ठाकुर की एक अलौकिक कहानी का वर्णन किया है—''उस समय राँची में एक साधु महाराज आये थे जिनकी ख्याति फैल रही थी। उनका कहना था कि मैं स्पर्शमात्र से किसी की कुण्डलिनी जाग्रत् कर

सकता हूँ। जो लोग इनके सम्पर्क में आये, वे इनसे काफी प्रभावित हुए। एक व्यक्ति को महात्माजी की कृपा से ग्रह, नक्षत्र-मण्डल के दर्शन हुए थे। उसे विराट् ज्योति का समुद्र जैसा दिखाई पड़ा था। फलत: उसे अपने गुरु की शक्ति पर अभिमान हो गया।

बातचीत के सिलसिले में उसने एक दिन राम ठाकुर के एक शिष्य से अपने गुरु की काफी प्रशंसा की। सारी बातें सुनने के पश्चात् राम ठाकुर के शिष्य ने सोचा—मेरे गुरु ने मुझे यह सब क्यों नहीं बताया?

मन में यह विचार उत्पन्न होते ही वे इस बात की जानकारी प्राप्त करने के लिए तुरत गुरु के निकट चल पड़े। ठाकुर उन दिनों नोआखाली में निवास कर रहे थे। ठाकुर अपनी अतीन्द्रिय-शक्ति के जरिये शिष्य के आने का कारण समझ गये। उन्होंने कुशल-मंगल पूछने के बाद शिष्य से कहा—"जाओ, स्नान कर लो।"

शिष्य तो आक्रोश में था। उसने नाराजगी प्रकट करते हुए कहा—"स्नान नहीं करूँगा। मैं आपके निकट एक प्रश्न लेकर आया हूँ। आपने मन्त्रोपदेश दिया, मार्ग बताया, किन्तु उससे मुझे मिला कुछ भी नहीं। राँची में एक महात्मा स्पर्शमात्र से कुण्डलिनी जगा देते हैं। आपके श्रीचरणों का स्पर्श प्राप्त करते हुए भी मैं इस प्रकार के अनुभव से शून्य ही रह गया। आपने मुझे कुछ भी नहीं दिया।"

ठाकुर महाशय ने कहा—"वह सब भूतों का खेल है। उस ओर ध्यान देने की जरूरत नहीं है।"

शिष्य को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ। उसने सोचा कि गुरुदेव मुझे बहला रहे हैं। ठाकुर के काफी समझाने-बुझाने पर भी वह स्नान-भोजन के लिए तैयार नहीं हुआ। यह देखकर ठाकुर ने कहा—"ठीक है। मेरे सामने आसन लगाकर बैठ जा।"

आज्ञानुसार भक्त ने आसन लगाया। उसके सामने बैठते हुए राम ठाकुर ने कहा—"अब सामने देखो।" शिष्य जब सामने देखने लगा तब उन्होंने उसे धीरे से स्पर्श किया।

अचानक उसे लगा जैसे उसके सारे शरीर में बिजली दौड़ गई है और वह बेहोश हो गया। लगभग डेढ़ घण्टे तक वह बेहोश रहा। गुरु ने अनुभव किया कि अभी काफी कच्चा शरीर है, ज्योति सहन नहीं कर सकता। उन्होंने अपनी शक्ति वापस ले ली।

शिष्य ने आँखें खोलकर कहा—"नये प्रकार की ज्योति देखी।"

ठाकुर ने कहा—"मुझमें देने की शक्ति है, पर तुम उसे ग्रहण नहीं कर सकते। यह भीतर की वस्तु है। इसका अनुभव अपनी सत्ता से होगा। जब होगा तब अनन्तकाल के लिए होगा, अपने समय से होगा। उसके पूर्व अनुभव की आकांक्षा करके भूतों की कला में मत पड़ो।"

बाद में उन्होंने उसे समझाते हुए कहा—"कुण्डलिनी क्या है? यह कुण्ड स्थित अथवा कुण्डाश्रित शक्ति का नाम है। कुण्ड का अर्थ है—आधार। शक्ति जब आधार में रहती है अथवा आधार का अवलम्बन करके रहती है, उस समय उसका नाम कुण्डलिनी है। यहाँ शक्ति की सुप्तावस्था है। जब शक्ति शिव का या शून्य का अवलम्बन

करेगी अर्थात् निराश्रय अथवा निरालम्ब होगी तब समझना चाहिए कि कुण्डलिनी जाग गई। द्विदल के ऊपर शून्य अथवा निरालम्ब है। वहाँ किसी प्रकार का आश्रय है नहीं—'निराश्रयं मां जगदीश रक्ष।' द्विदल का अभिप्राय है—दो पक्ष। वही केन्द्र है, वहाँ से दोनों ओर जाना सम्भव है अर्थात् ऊपर अव्यक्त की ओर, नीचे दृश्य की ओर।''

आगे आपने कहा है—''याचना नहीं करनी चाहिए। गुरु का दान अयाचित होता है। जो दिखाई पड़ता है, वह मिथ्या है, जो देखता है वह भी भ्रममूल देखता है।

गुरु जिस बीज को देते हैं, उसी बीज के साथ वास करना चाहिए। उसके साथ घरेलू सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए, उसे प्यार करना चाहिए। बीज के साथ वस्तुतः गुरु ही जन्म ग्रहण करते हैं, इसलिए छोड़कर जाने का उपाय नहीं है।''

''गुरु नाव को ठेल देते हैं। बाद में शिष्य को डाँड़ खींचना (चलाना) चाहिए। अन्यथा केवल गुरु के ठेलने से चलने पर शिष्य को अत्यन्त कष्ट होता है, क्योंकि वह सम्हाल नहीं सकता। अतएव डाँड़ स्वयं चलाना चाहिए, केवल सम्हालने के लिए गुरु की सहायता की जरूरत होती है। गुरु ने तो सब कुछ दे रखा है, आवश्यकतानुसार शिष्य को सब कुछ प्राप्त हो जाता है।''

राम ठाकुर में एक विशेषता यह थी कि वे भोजन नहीं करते थे। केवल दो-एक फल खाकर अपनी क्षुधा मिटाते रहे। अपने भक्तों को नाम जपने की सलाह देते थे। उनका कहना था—''हरे कृष्ण आदि सोलह नाम, बत्तीस अक्षर और प्रणव एक ही वस्तु है। हरे, कृष्ण और राम, ये तीन अंश ही प्रणव के तीन अवयव 'अ', 'उ' और 'म' हैं। राम के माने रति अथवा प्रेम। कृष्ण के माने है एकाग्रता। अतएव इसका अर्थ है, सर्वदा स्थिर होकर प्रेम के साथ हरि-नाम लो।''

राम ठाकुर के अनेक शिष्य भक्त थे जिनमें माधव पागला उच्चस्तर के साधक हुए थे। माधव पागला की लीलाभूमि काशी थी। वे अपने सभी भक्तों को केवल नाम जपने की सलाह देते थे।

आपका निधन चौमुहनी नामक स्थान में अप्रैल १६४६ ई० को हुआ था।

■ ■ ■

साधक रामप्रसाद

''सरकार, नये गुमाश्ते के कारण सारी कचहरी (ऑफिस) चौपट हो रही है। अगर यही हाल रहा तो सब चौपट हो जायगा।'' प्रधान गुमाश्ते ने शिकायत की।

यह पहली शिकायत नहीं है। इसके पूर्व कई बार नये गुमाश्ते की शिकायत अन्य गुमाश्तों ने की है। आज जब प्रधान गुमाश्ते ने शिकायत की तब दुर्गाचरण झुँझला उठे। आखिर नया गुमाश्ता क्या कर रहा है, जिसकी वजह से सारी कचहरी नाराज है।

जमींदार दुर्गाचरण मित्र ने कहा—''कहाँ है नया गुमाश्ता? बुलाओ।''

नये गुमाश्ते के आने पर जमींदार ने पूछा—''क्यों जी, रामप्रसाद, क्या बात है? कचहरी के सभी लोग तुम्हारी शिकायत कर रहे हैं। तुम काम-धाम नहीं करते, सिर्फ बहियों में न जाने क्या अल्लम-गल्लम लिखा करते हो। काम ठीक से नहीं करना है तो अपना हिसाब लो और घर चले जाओ।''

सरकार को नाराज होते देख प्रधान गुमाश्ता प्रसन्न हो उठा। इधर जमींदार को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि नाराजगी का रामप्रसाद पर कोई असर नहीं हुआ। अभी नौकरी से निकाला जा सकता है, इसका भय भी नहीं हुआ। छोटे बच्चे की तरह वह टुकुर-टुकुर देख रहा है।

दुर्गाचरण ने कहा—''कहाँ हैं बहियाँ? लाओ, देखूँ, क्या लिख मारा है?''

प्रधान गुमाश्ते ने बही पेश करते हुए कहा—''अब आप ही देखिये सरकार। हिसाब लिखने की जगह यह सब क्या लिख मारा है। अब आप ही बताइये इसे तहसील में कैसे दिखाया जायगा? कहीं पकड़े गये तो लेने के देने पड़ जायेंगे।''

गुमाश्ता अपनी शिकायत बराबर करता गया, पर दुर्गाचरण इन बहियों में लिखे गीतों में खो गये थे। रोकड़ बही के चारों ओर दुर्गा, काली आदि देवियों के नाम, गीत लिखे हुए थे। वे पढ़ने लगे—

मुझे दो माँ ताबेदारी,
मैं नहीं नमकहराम शंकरी।
तेरा पदरत्न सभी लूट रहे
होता नहीं यह सहन मुझसे,
भण्डार की जिम्मेदारी जिस पर है
वह है भोला त्रिपुरारि।

बिना वेतन का चाकर मैं,
केवल चरण-रज अधिकारी।

इस गीत को एक-दो नहीं, कई बार पढ़ने के बाद जमींदार साहब सहसा गम्भीर हो गये। उनके माथे पर सिकुड़न पड़ गई—"बिना वेतन का चाकर मैं, केवल चरण-रज अधिकारी।" इस पंक्ति को बार-बार पढ़ने के कारण उनकी आँखें सजल हो उठीं। कुछ देर तक वे अपलक दृष्टि से रामप्रसाद की ओर देखते रहे।

एकाएक बोल उठे—"रामप्रसाद, तुम गुमाश्ते के लायक नहीं हो। यह काम तुमसे हो नहीं सकता। तुम्हारे बारे में अगर मुझे पहले से जानकारी होती तो अपने यहाँ तुम्हें न रखता। दरअसल तुमने ताबेदारी की माँग की है जो समय आने पर प्राप्त हो जायगी। तुम्हारा जन्म साधारण कार्यों के लिए नहीं हुआ है। अब तुम आज ही घर चले जाओ और वहीं भजन करो। यहाँ तुम्हारी कोई जरूरत नहीं है।"

जमींदार साहब की नाराजगी देखकर गुमाश्ते को प्रसन्नता हुई। कम-से-कम एक निकम्मे कर्मचारी से छुट्टी मिली। दूसरी ओर रामप्रसाद को लगा जैसे पैरों तले की धरती खिसक रही है। माँ, पत्नी, बच्चे आखिर क्या करेंगे? उनके लिए ही तो वह गाँव छोड़कर यहाँ नौकरी करने आया है। माँ काली, दया करो। अब बहियों में मैं कुछ भी नहीं लिखूँगा।

इसी तरह की कल्पना करते हुए रामप्रसाद ने सोचा कि जमींदार साहब से अपनी गलती के लिए क्षमा माँग ले, तभी उन्होंने उसे चौंकाते हुए कहा—"तुम्हारे द्वारा बहियाँ नष्ट नहीं हुई हैं, बल्कि पवित्र हुई हैं। मैं इन्हें अपने यहाँ सुरक्षित रखवा दूँगा। मेरे वंशधर निरन्तर इनका उपयोग करेंगे और सुरक्षित रखेंगे ताकि तुम चिरस्मरणीय बने रहो। अब तुम अपने घर वापस चले जाओ। तुम्हें जो वेतन दिया जाता है, वह आजीवन प्राप्त होता रहेगा।"

गुमाश्ता अवाक् रह गया। यह कैसा न्याय हुआ? एक तो सारी बहियाँ चौपट कर दीं, तिस पर घर बैठे मुफ्त में तीस रुपये वेतन भी प्राप्त करेगा! आखिर इन अल्लम-गल्लम गीतों में कौन-सा जादू है?

इधर अपने मालिक की राय सुनकर रामप्रसाद ने इसे काली माता की कृपा समझा। वहीं आनन्द से विभोर होकर गाने लगे—

अरे मन, तू है कहाँ कंगाल
तू कुछ नहीं जानता रे पागल
अनित्य धन की आशा में चक्कर काटता ठाँव-ठाँव
तेरे घर हैं चिन्तामणि, देख रे तू बैठा-बैठा।
गुरु द्वारा प्रदत्त रत्न को पकड़ कसके
दीन रामप्रसाद का विनय है उन चरणों में॥

इस गीत को सुनते-सुनते जमींदार साहब आत्मविभोर हो उठे। रामप्रसाद को वेतन के अलावा राह-खर्च देकर उन्होंने बिदा कर दिया। उधर गुमाश्ता सोचने लगा—सरकार जरूर पागल हो गये हैं।

* * *

बंगाल के २४ परगना जिले में हालीशहर नामक एक कस्बा है जिसके एक ओर पुण्यसलिला गंगा प्रवाहित है। प्राचीनकाल में इस कस्बे का नाम कुमारहाटी था यानी कुम्हारों का बाजार। यहाँ अधिकतर कुम्हार रहते थे। इनके अलावा कुछ ब्राह्मण भी रहते थे।

एक बार नवद्वीप के कुछ पण्डित कुमारहाटी आये। नवद्वीप के पण्डितों की विद्वत्ता सम्पूर्ण भारत में प्रसिद्ध थी। देश के विभिन्न स्थानों से लोग यहाँ पढ़ने आते थे। यहाँ के पण्डितों को यह समझते देर नहीं लगी कि नवद्वीप के पण्डितों का दल हमसे शास्त्रार्थ करने आया है। सभी भयभीत हो उठे। कारण इन पण्डितों से शास्त्रार्थ करने का अर्थ था—पराजित होना। इससे अपने सम्मान को धक्का लगेगा। अपनी इज्जत बचाने के लिए स्थानीय पण्डितों ने एक तिकड़म किया। एक चतुर कुम्हार को सिखा-पढ़ाकर नवद्वीप के पण्डितों के पास भेजा। यह कुम्हार महिला वेष में अपने साथ एक लड़का लेकर आया।

नवद्वीप के पण्डितों के पास आकर कुम्हार ने कहा—"पण्डितजी, मैं आप लोगों की सेवा करने आई हूँ। जूठा माँज दूँगी, चौका लगा दूँगी और कपड़े साफ कर दूँगी।"

पण्डितों को ऐसी नौकरानी की जरूरत थी। उन्होंने रख लिया। इधर स्थानीय पण्डितों से बातचीत करने पर यह निश्चित हुआ कि कल शास्त्रार्थ होगा।

दूसरे दिन सबेरे कुम्हार चौका-बरतन कर रहा था। सहसा बाहर के पेड़ पर कौवे काँव-काँव करने लगे। यह सुनकर लड़के ने पूछा—"माँ, कौवे आपस में क्या कह रहे हैं?"

नौकरानी ने कहा—"मुझे क्या मालूम बेटा। यहाँ बड़े-बड़े पण्डित आये हैं, उनसे पूछ ले।"

माँ के कथनानुसार बालक पण्डितों के पास आया और अपना सवाल दोहराया। अब इस सवाल का कोई क्या जवाब देता। पण्डितों ने कहा—"सबेरा हुआ है, इसलिए वे चिल्ला रहे हैं। क्या कह रहे हैं, क्या बताऊँ?"

लड़का असन्तुष्ट होकर माँ के पास आकर जिद करने लगा। पण्डितों में कोई यह भाँप नहीं सका कि दरअसल दोनों नाटक कर रहे हैं।

माँ ने कहा—"बेटा, तुझे कैसे समझाऊँ? संस्कृत जानती नहीं। इसीलिए कहती हूँ कि पाठशाला जाया कर। संस्कृत में एक श्लोक है—

तिमिरारिस्तमो हन्ति शंकाकुलितमानसाः ।
वयं काका वयं काका इति जल्पन्ति वायसाः ॥

अर्थात् अन्धकार नाश करने के लिए सूर्य देवता प्रकाश दे रहे हैं। कौवों के मन में इस बात का भय हो रहा है कि उनके काले पंखों का अँधेरा समझकर कहीं उन्हें भी नष्ट न कर दें। इसी डर के कारण वे वयं काका, वयं काका यानी हम काक हैं, कह रहे हैं।"

एक बरतन माँजनेवाली नौकरानी को संस्कृत श्लोक की इस तरह व्याख्या करते सुनकर पण्डित-मण्डली चौंक उठी। उन्होंने उसे बुलाकर पूछा—''तुम्हें संस्कृत भाषा की जानकारी कैसे हुई, किसने सिखाया?''

नौकरानी ने कहा—''गाँव में मेरे घर के आसपास पण्डितों के मकान हैं। उनके यहाँ हमेशा संस्कृत भाषा के बारे में चर्चा होती है। उनकी जबानी मैंने सुनी है।''

इतना सुनना था कि पण्डितों के चेहरे का रंग उड़ गया। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि जहाँ की नौकरानी इतना ज्ञान रखती है, वहाँ के पण्डितों से शास्त्रार्थ करना मूर्खता है। उसी दिन सभी पण्डित पलायित हो गये।

हालीशहर के पण्डितों को इस समाचार से बड़ा आनन्द मिला। इस कुम्हार के बुद्धि-चातुर्य से प्रसन्न होकर उन लोगों ने इस गाँव का नाम कुमारटोली रखा। इसी गाँव में चैतन्य महाप्रभु के गुरु श्री ईश्वरपुरी रहते थे।

इसी गाँव में कीर्त्तिवास सेन वंश-परम्परा से निवास करते थे। तन्त्र-सम्बन्धी किसी भी कार्य के लिए कीर्त्तिवास दिल खोलकर खर्च करते थे। इन्हीं कीर्त्तिवास के प्रपौत्र थे—रामप्रसाद सेन।[१]

माता-पिता की एकमात्र सन्तान होने के कारण वे उनकी आँखों के तारे थे। बचपन से ही नटखट थे। समयानुसार पाठशाला पढ़ने गये। जिन प्रतिभाओं पर दैवी कृपा होती है, उनमें ईश्वर धी-शक्ति पहले से प्रदान कर देते हैं।

पिता गाँव में कुशल कविराज माने जाते थे। किसी को कोई बीमारी हुई, सीधे कविराजजी के पास चला आता था। पिता ने सोचा—मेरे बाद रामप्रसाद गाँव में वैद्यगी करेगा, अतएव संस्कृत भाषा का अध्ययन कर ले। संस्कृत भाषा का अध्ययन रामप्रसाद ने अच्छी तरह किया। रामप्रसाद की प्रगति देखकर पिताजी को गर्व अनुभव हुआ। अब वे स्वयं वैद्यगी पढ़ाने लगे।

लेकिन उन्हें यह देखकर अफसोस होने लगा कि लड़का पैतृक-कार्य की ओर मन नहीं लगा रहा है। जब कभी कुछ बताने लगते तब लड़के का ध्यान न जाने कहाँ चला जाता था। बंगला, संस्कृत, हिन्दी, फारसी आदि भाषाओं में इसकी पैठ है, पर वैद्यगी के प्रति अरुचि है।

कुछ दिनों तक लड़के के भविष्य के बारे में चिन्तन करने के बाद उन्होंने सोचा—अभी माँ-बाप के मत्थे पल रहा है। आर्थिक चिन्ता या कोई जिम्मेदारी नहीं है। अगर विवाह कर दिया जाय तो शायद इसके स्वभाव में सुधार हो। पत्नी के भरण-पोषण की चिन्ता उसे जब सतायेगी तब वह गृहस्थी की चिन्ता करेगा। उन दिनों रामप्रसाद २१ वर्ष पार कर २२वें में प्रवेश कर चुके थे।

अपने निश्चय के अनुसार पिता रामराम सेन एक दिन भाजनघाट निवासी लोकनाथ

---

[१] श्री रामप्रसाद के जन्म सन् तथा तिथि के बारे में विद्वानों की भिन्न-भिन्न राय है।

दासगुप्त की सुपुत्री सर्वाणी को पुत्रवधू के रूप में घर ले आये। विवाह के समय ही परम्परा के अनुसार कुलगुरु ने नवदम्पती को दीक्षा दी।

दीक्षा प्राप्त करने के बाद रामप्रसाद के स्वभाव में तेजी से परिवर्तन होने लगा। पिता ने सोचा था कि पत्नी-प्रेम के कारण वह गृहस्थी की ओर ध्यान देगा। लेकिन उनका यह सपना व्यर्थ हो गया। अब पहले से अधिक उदासीन रहने लगा। कभी-कभी अनमने भाव से बैठा न जाने क्या सोचता रहता है। उसे सही मार्ग पर लाने के लिए पिता समझाते—''मेरे बाद इस घर की सारी जिम्मेदारी तुझ पर आ जायेगी। मैं बूढ़ा हो गया हूँ। पका आम हूँ; पता नहीं कब टपक पड़ूँ। कुछ कर। मेरे जीवितकाल में कुछ सीख लेगा तो भोजन-वस्त्र का अभाव नहीं होगा।''

रामप्रसाद एक कान से सुनता और दूसरे कान से इन बातों को निकाल देता। आखिर हारकर पिताजी सब कुछ भगवान् के ऊपर छोड़कर अपने काम में लग गये। इधर रामप्रसाद भी यह समझ नहीं पा रहा था कि आखिर ऐसा क्यों हो रहा है। जब वह अपनी आँखें बन्द कर लेता तब उसे अजीब-अजीब दृश्य दिखाई देने लगते थे। उस वक्त तन-मन की सुधि नहीं रहती थी।

ठीक इन्हीं दिनों उसके कुलगुरु का निधन हो गया। मन को सान्त्वना देनेवाला महारथी चला गया। अक्सर जब उसका मन बहुत उद्विग्न हो उठता था तब कुलगुरु के पास जाने पर वे एक न एक मन्त्र-जाप करने का निर्देश देते थे। इससे मन को शान्ति मिल जाती थी।

कुलगुरु के निधन के पश्चात् रामप्रसाद अधिक बेचैन रहने लगा। उसकी दशा देखकर घर के लोग चिन्तित रहने लगे। कुछ दिनों बाद बंगाल के सर्वश्रेष्ठ तान्त्रिक पण्डित माधवाचार्य आगमवागीश भ्रमण करते हुए कुमारहाटी आये। उन दिनों उनकी ख्याति चारों ओर फैली हुई थी। स्थानीय पण्डितों का दल उनके आगमन से प्रसन्न होकर हर्ष मनाने लगा। रामप्रसाद भी अक्सर उनके यहाँ जाता था, पर उनसे खुलकर बातें करने का मौका नहीं मिलता था। लगातार कई दिनों के बाद उसे यह मौका मिला। उसने बातचीत के सिलसिले में तन्त्र-साधना-सम्बन्धी जिज्ञासा प्रकट की। आगमवाग़ीश ने सोचा—फालतू जिज्ञासु है। इस तरह अधकचरे जिज्ञासु बराबर आते रहते हैं। लेकिन दूसरे प्रश्न ने उन्हें चौंका दिया। वे गौर से रामप्रसाद के चेहरे को देखने लगे। आगमवागीश की आघ्राण-शक्ति ने उन्हें सूचित किया कि यह साधारण जिज्ञासु नहीं है। आज जिस स्थान पर मैं खड़ा हूँ, वहाँ तक पहुँचने में मुझे अनेक कठिनाइयों को पार करना पड़ा है और यह युवक बिना साधना, बिना क्रिया के उसे प्राप्त कर चुका है। यदि इसकी कुण्डलिनी-शक्ति जागृत हो जाय तो यह महान् साधक बन सकता है।

यह विचार मन में आते ही आगमवागीशजी ने न केवल उसके प्रश्नों का समाधान किया, बल्कि उसे तन्त्र-साधना की प्रतिक्रियाएँ समझाने लगे।

रामप्रसाद के प्रपितामह, पितामह दोनों ही तन्त्र-साधक थे। वे स्वयं इस क्षेत्र में

गुरुओं द्वारा बताई गई पद्धति से अर्थात् पंच म-कार[1] का उपयोग करते हुए लगभग दस वर्ष तक साधना करते रहे। इन दिनों वे वाक्य-संयम का कठोरता से पालन करते थे। उनकी यह साधना वीर भाव में चलती रही। दिन-रात काली-माता का जप करते थे। रामराम सेन स्वयं धार्मिक प्रकृति के थे, इसलिए पुत्र से कुछ कहने में संकोच करते थे। अचानक एक दिन बीमार हुए और किसी को कोई कष्ट दिये बिना परलोकवासी हो गये।

पिता के निधन के पश्चात् रामप्रसाद की आँखें खुलीं। माँ, पत्नी और बच्चों के भरण-पोषण की जिम्मेदारी उन्होंने पहले-पहल अनुभव की। जप, क्रिया, ध्यान सब कुछ भूल गये। जिस व्यक्ति को व्यवसाय करना नहीं आता और न नौकरी की दुर्गति ज्ञात थी, अब वह केवल बेचैनी से काली माता का स्मरण करने लगा।

कहा जाता है कि काली माँ ने उन्हें दर्शन देकर कलकत्ता जाने का निर्देश दिया था। कलकत्ता आने पर माँ अपने भक्त की सहायता करने लगीं। उनकी प्रेरणा से ही उन दिनों गरनहाटा के जमींदार के यहाँ वे तीस रुपये मासिक वेतन पर गुमाश्ता बने। भक्त को हिसाब-किताब से क्या लेना-देना। हिसाब लिखने के स्थान पर वे लिखने लगे—'मुझे दो माँ ताबेदारी, मैं नहीं नमकहराम शंकरी।'

रामप्रसाद की इन हरकतों को देखकर अन्य गुमाश्ते परेशान हो गये। समझाने-बुझाने पर जब वे नहीं माने तब दुर्गाचरण मित्र के पास शिकायत पहुँची। इसके आगे की घटना का उल्लेख किया जा चुका है।

* * *

एकाएक बिना कोई सूचना दिये लड़के के आगमन पर माँ आश्चर्यचकित रह गई। धीरे से पूछा—"कैसे आ गया? तबीयत ठीक है न?"

रामप्रसाद ने कहा—"ऐसी कोई बात नहीं है माँ। काली माँ ने घर वापस भेज दिया।"

माँ ने कहा—"सो तो ठीक है, पर गृहस्थी कैसे चलेगी, बेटा। छह-छह आदमियों का पेट चलाना है।"

रामप्रसाद ने कहा—"तुम्हें घबराने की जरूरत नहीं है। काली माँ ने उसका प्रबन्ध करके मुझे यहाँ भेजा है। अब हर माह घर बैठे तीस रुपये आ जायेंगे।"

---

[1] पंच म-कार का सीधा अर्थ है—मद्य, मांस, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन। गुरु द्वारा बताई गई पद्धति से साधक पंच म-कारों का आस्वादन प्राप्त करता है। बाद में षट्चक्र को भेदकर बीज और शक्ति को प्राप्त करता है। तब जाकर कहीं वह सहस्रार तक पहुँच पाता है। सहस्रार यानी ब्रह्मरन्ध्र से जो अमृत क्षरित होता है, उसे मद्य कहा जाता है। ब्रह्मज्ञान होने पर इसी मद्य को साधक पीता है। साधक जब ब्रह्मानन्द में रहता है तब बातें नहीं करता। वाक्य-संयम मांस-भक्षण है। इड़ा, पिंगला रजः-तमरूपी श्वास-प्रश्वास को प्राणायाम के माध्यम से निरोध करना पड़ता है। इसी को मत्स्य-भक्षण कहते हैं। सहस्रदल पद्म में ज्योतिपूर्ण आत्मा को जानना ही मुद्रा है। नाभिचक्र में स्थित अजपारूपी श्वास-प्रश्वास तथा आज्ञाचक्रस्थित महायोनि का मिलन ही मैथुन है।

लड़के की बात पर माँ को विश्वास नहीं हुआ। भला लड़के ने ऐसा कौन-सा कार्य किया है जो कोई मुफ्त में रुपये देता रहेगा? उन्होंने सोचा—देखा जाय क्या होता है।

अगले माह जब रुपये आ गये तब रामप्रसाद ने कहा—''माँ, अब मुझे छुट्टी दो। काली माँ की कृपा से घर-खर्च का प्रबन्ध हो गया। अब मैं उनकी शरण में जाकर कृतज्ञता प्रकट करना चाहता हूँ।''

गृहस्थी तथा नौकरी के कारण रामप्रसाद की साधना में व्याघात पहुँचता था। अब उन्होंने अपने-आपको पूर्ण रूप से देवी के चरणों में आत्मसमर्पित कर दिया। दिन-रात काली माँ के उद्देश्य से गीत बनाकर डगर-डगर गाने लगे। जिस वक्त नदी में खड़े होकर वे समधुर कण्ठ से गीत गाते, उस वक्त स्नानार्थी स्नान करना भूल जाते थे। घाट पर लोगों की भीड़ जुट जाती थी। नाव से गुजरनेवाले यात्री भी इन गीतों के आकर्षण से किनारे चले आते थे। एक प्रकार से इनके गीतों में चुम्बक-सा असर था।

* * *

एक बार नवद्वीप के राजा कृष्णचन्द्र नाव पर गंगा-विहार करने निकले थे। हवा में तैरती हुई स्वर-लहरियों से प्रभावित होकर वे गायक के पास चले आये। रामप्रसाद आँखें बन्द कर अपनी भक्ति में मग्न थे। महाराजा के आगमन का पता उन्हें नहीं चला। उपासना-गीत समाप्त होने पर सामने बैठे महाराजा को देखते ही उन्होंने नमस्कार किया।

बंगाल के देशी नरेशों में कृष्णचन्द्र की ख्याति थी। वे सम्राट् विक्रमादित्य और अकबर की तरह अपने दरबार में सभारत्न रखे थे। उनके सभारत्नों में हरिराम सिद्धान्त, कृष्णानन्द वाचस्पति, रामगोपाल सार्वभौम, प्राणनाथ न्यायपंचानन, गोपाल न्यायालंकार, रामानन्द वाचस्पति, रामवल्लभ विद्यावागीश, वीरेश्वर न्यायपंचानन, वाणेश्वर विद्यालंकार, रामरुद्र विद्यानिधि जैसे विद्वान् थे। वहीं मनोरंजन के लिए गोपाल भाँड़ भी था।

पारखी राजा ने रामप्रसाद की प्रतिभा को पहचान लिया। उन्होंने रामप्रसाद से आग्रह किया कि आप मेरी सभा की शोभा बढ़ायें। रामप्रसाद ने कहा—''काली माँ से आज्ञा लेकर आपको उत्तर दूँगा, महाराज।''

महाराजा के जाने के बाद रामप्रसाद ऊहापोह में फँस गये। जिस मुँह से काली माँ का गुणगान करता हूँ, उसी से दिन-रात महाराजा की चाटुकारिता करनी पड़ेगी। अगर इनकार करता हूँ तो और भी बुरा होगा। पानी में रहकर क्या मगर से वैर करना उचित होगा? रात को वे साधना पर बैठकर काली माँ से प्रार्थना करने लगे—''माँ, इस संकट से मुक्ति दिलाओ।''

काली माँ की कृपा हुई। महाराजा स्वतः समझ गये कि रामप्रसाद सभारत्न नहीं बनना चाहते। साधक अपनी साधना में मग्न रहना चाहता है। रामप्रसाद के इस त्याग पर वे मुग्ध हो उठे। उन्होंने घोषणा की कि राज्य की ओर से तुम्हें एक सौ बीघा भूमि बिना लगान दान में दी जा रही है ताकि तुम और तुम्हारे वंशज महामाया के गुण-गान बराबर करते रहें। दरबार में 'कविरंजन' की उपाधि से सम्मानित करते हुए महाराजा ने यह घोषणा की।

राज-रोष का भय रामप्रसाद के मन से हट जाने पर वे पूर्ण रूप से काली माँ की शरण में चले गये। अपने घर के समीप पंचमुण्डी आसन के पास पंचवटी का रोपन कर वे साधना में डूब गये। वे जिस आसन पर बैठकर साधना करते थे, वहाँ आमतौर पर लोग दिन के वक्त भी जाने में कतराते थे। लोगों का विश्वास था कि वहाँ अशरीरी लोग आते हैं। यह बात एक हद तक सही है। अक्सर वहाँ भूत-प्रेत उनकी साधना में जब विघ्न पहुँचाते तब वे तेजी से जप प्रारम्भ करने लगते।

तभी ''वत्स, मा भैः—मैं आ गई हूँ। अब तुम मुझे अपने हृदय में, भावनेत्र से देख सकते हो' की आवाज सुनाई देने लगती। उस समय अशरीरियों का उपद्रव शान्त हो जाता था।

रामप्रसाद के घर के समीप एक गड़ही है जहाँ उन्हें माँ जगदम्बा ने प्रत्यक्ष रूप से दर्शन दिया था। इस दर्शन के पश्चात् रामप्रसाद में अद्भुत परिवर्तन हुआ। बंगाल का साँवलापन दूर हो गया। उसके स्थान पर उनका सारा शरीर अपूर्व क्रान्ति से चमकने लगा। गाँव के लोग रामप्रसाद में होनेवाले इस परिवर्तन को देखकर चकित रह गये।

घर पर नित्य रामप्रसाद काली माता को भोग लगाया करते थे जिसे साधक के आग्रह पर चिन्मयी महामाया प्रकट होकर ग्रहण करती थीं। एक दिन पत्नी को सन्देह हुआ कि काली माँ का यह चित्र क्या वास्तविक है? जिज्ञासु हृदय ने उस चित्र को स्पर्श करके देखा। तुरत देवी प्रकट हो गईं। काली के उस रूप को देखकर पत्नी बेहोश हो गईं। होश आने पर उन्होंने देखा—फिर वही सामान्य चित्र है। रामप्रसाद की पत्नी यह समझ नहीं पाईं कि यह आँखों का भ्रम था अथवा वास्तव में देवी प्रकट हुई थीं।

एक बार एक अपूर्व सुन्दरी रामप्रसाद के घर आई। रामप्रसाद उस समय स्नान के लिए नदी की ओर जानेवाले थे। सुन्दरी ने कहा—''मैं आपका गायन सुनने आई हूँ।''

रामप्रसाद ने कहा—''अभी मैं स्नान करने जा रहा हूँ। आप थोड़ी देर बैठिये। वापस आकर मैं गीत सुनाऊँगा।''

स्नान समाप्त कर जब रामप्रसाद वापस आये तो देखा—वह सुन्दरी जा चुकी थी। चारों ओर उसकी तलाश करते समय उन्होंने देखा कि सामने दीवार पर लिखा है—''मैं अन्नपूर्णा हूँ। तुम्हारा गायन सुनने आई थी। इन्तजार करने का मौका नहीं था। काशी आकर गीत सुनाना।''

इस लिखावट को पढ़कर रामप्रसाद हाय-हाय कर उठे। माता अन्नपूर्णा मेरे घर मेरा गायन सुनने आई थीं और मैं चूक गया। तुरत रामप्रसाद ने निर्णय किया कि काशी जाकर माँ को अपना गायन सुनाऊँगा।

कब मैं काशीवासी होऊँगा,
उस आनन्द कानन में जाकर निरानन्द होऊँगा ।
गंगा जल बिल्वदल से विश्वेश्वर पूजूँगा,
वाराणसी के जल-थल में ही मोक्ष पाऊँगा ॥
अन्नपूर्णा अधिष्ठात्री की शरण पाऊँगा,
नाच-नाच बमभोला कहते गाल बजाऊँगा ॥

मार्ग में इसी गीत को गाते हुए वे सबसे पहले त्रिवेणी-तट पर आये। यहाँ स्नान करने के बाद गाने लगे—

अन्नपूर्णा की धन्य काशी
शिव धन्य, काशी धन्य, धन्य माँ आनन्दमयी ।
भागीरथी विराजित, प्रवाह में अर्द्ध शशि,
उत्तरवाहिनी गंगा प्रवाहित है दिवा निशि ॥
शिव के त्रिशूल पर काशी, वेष्टित वरुणा असि,
यहाँ मरने पर जीव शिव शरीर में प्रवेसि ।
कैसी महिमा अन्नपूर्णा की, कोई नहीं उपवासी,
माँ रामप्रसाद तेरे चरण-रज का अभिलाषी ॥

यह गीत गाते हुए वे त्रिवेणी-तट पर सो गये। उसी दिन रात्रि को उन्होंने स्वप्न में देखा एक छाया-मूर्ति जो ठीक अन्नपूर्णा जैसी थीं, कह रही हैं—"वत्स, मैं तुम्हारे गीत को सुन चुकी। अब तुम्हें काशी आने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारी भक्ति और गायन से मैं सन्तुष्ट हो गई हूँ। भविष्य में जब तुम मुझे स्मरण करोगे, अनायास दर्शन प्राप्त कर सकोगे।"

इस स्वप्न को देखते ही उनकी नींद खुल गई और वे अपनी जन्मभूमि की ओर लौट गये। इन दिनों उनकी मनःस्थिति पागलों जैसी हो गई थी। न खाने की चिन्ता और न सोने की। घर पर बहुत कम आते थे। माँ और पत्नी उनकी इस हालत को देखकर समझ गईं कि अब रामप्रसाद उनका अपना नहीं रह गया। पत्नी को जब कुछ कहना होता था तब बड़े संकोच के साथ अपनी बात कहती थी। आजकल घर की सारी जिम्मेदारी उसी पर थी। रामप्रसाद केवल माँ के आकर्षण के कारण घर आते थे और शेष समय पंचवटी में व्यतीत करते थे।

जिस प्रकार मीराबाई कृष्ण-प्रेम के पीछे दीवानी थीं, ठीक उसी प्रकार रामप्रसाद काली माता की भक्ति के पीछे दीवाने थे। मीरा के भजनों की तरह रामप्रसाद के श्यामा-गीत बंगाल के गाँव-गाँव में प्रचारित हैं। कहा जाता है कि रामप्रसाद ने एक लाख पदों का निर्माण किया था, पर मिलते हैं ढाई सौ।

पंचवटी में जिस वक्त वे भावविभोर होकर श्यामा-गीत गाते थे, उस वक्त गाँव के निवासियों के अलावा राजा कृष्णचन्द्र भी यदा-कदा चले आते थे। ठीक इन्हीं दिनों रामप्रसाद की माँ स्वर्गवासी हो गईं। घर से रहा-सहा नाता भी टूट गया। अब रामप्रसाद पंचवटी से हटकर श्मशान-भूमि में आकर साधना करने लगे। जब कभी उनका मन व्याकुल हो उठता तब देवी प्रत्यक्ष रूप में दर्शन देकर उन्हें सान्त्वना देती थीं।

एक बार घर के सामने का बेड़ा (बाँस के टट्टरों का घेरा) सड़ जाने के कारण वे अपनी लड़की की सहायता से मरम्मत करने लगे। लड़की टट्टर के उस पार से फन्दा लगाकर इधर रस्सी का छोर पकड़ने को देती और रामप्रसाद बाहर से भीतर की ओर देते थे। इसी बीच उनकी लड़की जगदीश्वरी निजी काम से भीतर चली गई। लेकिन

रस्सियों का आना-जाना बराबर जारी रहा। उधर से अब कौन रस्सी दे रहा है, इसका पता नहीं चला।

कुछ देर बाद जगदीश्वरी आई तो देखा कि बेड़े की बुनाई काफी दूर तक हो गई है। उसने पूछा—''पिताजी, इधर से रस्सी कौन देता रहा? क्या आप अकेले दोनों ओर का काम करते थे?''

रामप्रसाद ने कहा—''क्यों? उस पार तो तुम थी।''

जगदीश्वरी ने कहा—''मैं तो एक घण्टा पहले चली गई थी। अब आई हूँ।''

लड़की की बातें सुनकर रामप्रसाद चकित रह गये। जगदीश्वरी जब उधर नहीं थी तब अब तक उधर से रस्सी कौन पकड़ाता था। लहमेभर में वे समझ गये कि यह कार्य जगज्जननी करती रहीं। लड़की की ओर देखते हुए रामप्रसाद गुनगुनाने लगे—''मन क्यों माँ के चरणों से दूर है?''

इस घटना के कुछ दिनों बाद रामप्रसाद को ज्ञात हुआ कि राजा कृष्णचन्द्र का स्वर्गवास हो गया है। यह एक ऐसा समाचार था जिसे सुनकर रामप्रसाद मर्माहत हो उठे। अपने जीवनकाल में राजा साहब बराबर रामप्रसाद के गीत सुनने आते थे और हर प्रकार की सहायता करते थे। आज एक बड़ा सहायक चल बसा।

महाराजा कृष्णचन्द्र का निधन रामप्रसाद के जीवन की मर्मान्तक घटना थी। सम्भवतः रामप्रसाद उन्हें हृदय से प्यार करते थे। उनकी स्थिति पागलों जैसी हो गई। न खाने की चिन्ता और न सोने की। उनकी यह हालत देखकर पत्नी और लड़कों ने सोचा कि अब रामप्रसाद को घर से बाहर कहीं जाने नहीं देंगे। पता नहीं, कब, कहाँ, कोई दुर्घटना हो जाय।

घर पर आबद्ध हो जाने पर वे सिद्धासन पर बैठे-बैठे गीतों की रचना करने लगे। एक अर्से के बाद 'विद्या सुन्दर' नामक ग्रन्थ तैयार हुआ। उस ग्रन्थ को उन्होंने महाराजा कृष्णचन्द्र के नाम समर्पित किया। इस कार्य के बाद उनका हृदय शान्त हो गया। घर के लोगों ने देखा कि अब पहले की तरह विक्षिप्त भाव उनमें नहीं है। यह देखकर सभी प्रसन्न हुए।

दीपावली के दिन अपने घर रामप्रसाद ने प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी काली-पूजा का आयोजन किया। रातभर भजन-कीर्तन होता रहा। दूसरे दिन गाँव के लोगों के साथ मंगल घट लेकर भागीरथी के तट पर आये।

नदी में कमरभर पानी में खड़े होकर वे अपनी आराध्य देवी काली माता की स्तुति करने लगे। गीत गाते-गाते सहसा गंगा में गिर पड़े। जब तक लोग उन्हें बचाने का प्रयत्न करें, उसके पहले ही गंगा अपनी गोद में अपने बालक को लेकर सागर की ओर चली गई।

आज रामप्रसाद नहीं हैं, पर उनका श्यामा संगीत बंगाल के गाँव-गाँव गूँजता रहता है।

■ ■ ■

भूपतिनाथ मुखोपाध्याय

झूलन-पूर्णिमा के दिन घर में प्रथम पुत्र का आगमन हुआ। मुखर्जी-परिवार में शंख-ध्वनि हुई। पड़ोस के लोगों को ज्ञात हो गया कि बिहारीलाल मुखोपाध्याय के यहाँ वंशधर ने जन्म लिया है।

अन्नप्राशन के दिन कुल-पुरोहित आये। माँ बच्चे को गोद में लेकर बैठ गई। सामने खिलौने, वस्त्र, पुस्तक, मिष्टान्न आदि सामग्रियाँ रखी हुई थीं। कुलाचार के समय पुरोहित ने पूछा—"क्यों बेटी, लड़के का क्या नाम रखा है?"

बच्चे की माँ ने कहा—"इसके पिता ने इसका नाम झूलनचन्द्र रखा है।"

कुल-पुरोहित ने नाक-भौं सिकोड़ते हुए पूछा—"क्या?"

माँ ने कहा—"झूलन पूर्णिमा को पैदा हुआ था, इसलिए यह नाम रखा है, उन्होंने।"

कुल-पुरोहित ने कहा—"अगर जन्माष्टमी, महालया, दोल (होली) को होता तो क्या यही सब नाम रखा जाता? बिहारी भी विचित्र है।"

माँ ने कहा—"आज शुभ दिन है। आप ही कोई अच्छा नाम रख दीजिए।"

कुल-पुरोहित ने कहा—"इस बालक के ग्रह साफ बता रहे हैं कि आगे चलकर चक्रवर्ती सम्राट् जैसा सम्मान प्राप्त करेगा। अपने वंश का श्रेष्ठ नायक बनेगा। इसके आगे बड़े-बड़े लोग अपना मस्तक झुकायेंगे।"

थोड़ी देर जन्म-कुण्डली देखने के बाद उन्होंने कहा—"बालक की धनु राशि है। इसका नाम आज से भूपतिनाथ हुआ।"

अन्नप्राशन के दिन पिता द्वारा प्रदत्त नाम झूलनचन्द्र के बदले भूपतिनाथ हो गया।

उस दिन किसी को इस बात की कल्पना नहीं थी कि बालक का वास्तविक नामकरण हुआ है। भले ही चक्रवर्ती सम्राट् की तरह भूपति न बने, परन्तु शिशुकाल से ही बिना गुरु के वह यौगिक चमत्कारों से पूर्ण होकर आया है।

गर्मी का मौसम था। शुक्लपक्ष का चाँद आकाश में उदय हो गया था। पिता बिहारीलाल कहीं से दूरबीन ले आये थे। बिस्तर पर लेटकर वे दूरबीन से चाँद का निरीक्षण करने लगे। भूपतिनाथ उत्सुक दृष्टि से सारा दृश्य देखता रहा।

सहसा उसने पूछा—"यह क्या है पिताजी?"

"दूरबीन।"

दूरबीन का अर्थ बालक नहीं समझ सका। उसने जिद पकड़ी कि वह भी दूरबीन के जरिये चाँद को देखेगा। फलतः बिहारीलाल ने उसे दूरबीन देते हुए कहा—"ले। एक आँख बन्द कर ले और दूसरी आँख दूरबीन की छेद में लगाकर चाँद को देख।"

बालक ने पिता के निदेशानुसार चाँद की ओर देखा। चाँद को देखते ही उसे अद्भुत दर्शन हुआ। बालक होने के कारण उस ज्योति के अनुभव को वह व्यक्त नहीं कर सका, परन्तु उसकी स्मृति बराबर बनी रही। दीक्षा लेने के बाद जब अनुभूति हुई तब भूपति को बचपन की वह घटना याद आ गई। उसे समझते देर नहीं लगी कि बचपन से ही उस पर दैव-कृपा प्राप्त होती रही।

तेरह वर्ष की उम्र में यज्ञोपवीत हुआ। कुल-पुरोहित के निदेशानुसार वे नियमपूर्वक प्रातः, मध्याह्न और सायं गायत्री-पाठ करने लगे।

बचपन की ड्योढ़ी को पार कर भूपति ने किशोरावस्था में प्रवेश किया। उन दिनों उनकी उम्र २२-२४ वर्ष के लगभग थी। शाम का वक्त था। अपने पैतृक भवन के आगे स्थित बाग में वह टहल रहा था। टहलते हुए वह एक स्थान पर चिन्तन की मुद्रा में बैठा। अचानक दैव-कृपा से उसे समाधि लगी। इस समाधि में प्रथम बार उसे अनेक प्रकार के दर्शन हुए तब उसे याद आया कि बचपन में मुझे चाँद में इसी प्रकार की ज्योति दिखाई दी थी। इस घटना का उल्लेख उसने किसी से नहीं किया।

यह घटना उस समय की है जब वह पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के कॉलेज में अध्ययन करता था। अध्ययन-काल से ही वह तत्त्वज्ञान की तलाश में योग्य व्यक्तियों के पास जाने लगा। लेकिन कहीं से उसे वास्तविक ज्ञान नहीं मिला।

लेकिन यह अवसर उसे अनायास प्राप्त हो गया। उन दिनों परमहंस रामकृष्ण देव की चर्चा न केवल कलकत्ता में बल्कि पूरे बंगाल में होने लगी थी। एक दिन अपने कई मित्रों के साथ वह रामकृष्ण देव का दर्शन करने गया।

भूपतिनाथ के साथ आये मित्रों को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उन लोगों के आते ही रामकृष्ण देव समाधिस्थ हो गये। मित्रों को भूपतिनाथ की यौगिक-शक्ति की जानकारी नहीं थी। रामकृष्ण देव को समाधि भूपतिनाथ के कारण लगी थी।

थोड़ी देर बाद जब रामकृष्ण देव वास्तविक रूप में आये तब हिन्दी में एक गीत गाने लगे—

राम को जो नहीं चीन्हा है
दिल चीन्हा है, सो क्या रे।
और जाना है, सो क्या रे
सन्त वही जो रामरस चाखे
और विषयरस चाखे, सो क्या रे।
पुत्र वही जो कुल को तारे
और जो सब पुत्र हैं, सो क्या रे॥

परमहंस रामकृष्ण देव के यहाँ जाना भूपति के लिए वरदान साबित हुआ। न जाने कौन-सी आकर्षण-शक्ति बार-बार उनके निकट जाने के लिए प्रेरित करती रही। परमहंसजी इन्हें देखकर आनन्दित होते रहे। इस प्रकार भूपतिनाथ परमहंसजी के निकट आते गये।

एक दिन बातचीत के सिलसिले में भूपतिनाथ ने प्रश्न किया—''प्रकृति और पुरुष में क्या भेद है?''

रामकृष्ण देव ने कहा—''साँप स्थिर होकर रहता है या चलता-फिरता है। अगर वह स्थिर है तो पुरुष और चलते रहने पर प्रकृति। पुरुष निर्गुण और प्रकृति सगुण है।''

केवल शब्दों के जरिये भूपतिनाथ को तत्त्वज्ञान प्राप्त हो गया जिसकी तलाश में वे अब तक व्याकुल थे। उन्हें यह समझते देर नहीं लगी कि जिस गुरु की तलाश में वे चक्कर काट रहे थे, वे सदेह यही हैं। पहले यहाँ कभी-कभी आते थे। इस घटना के बाद से वे बराबर आने लगे।

एक दिन जाने पर भूपतिनाथ ने देखा कि परमहंसजी नंगे बदन बैठे हैं और उनका शिष्य लाटू महाराज उनकी मालिश कर रहे हैं।

परमहंसजी के सामने बैठकर हाथ जोड़ते हुए भूपतिनाथ प्रार्थना-गीत गाने लगे। इस गीत को सुनते-सुनते परमहंसजी भावाविष्ट हो गये।

एकाएक भूपतिनाथ ने अनुभव किया कि भावाविष्ट स्थिति में परमहंसजी ने अपना एक पैर उनकी जाँघ पर रख दिया है। भूपतिनाथ ने उस पैर को श्रद्धा के साथ उठाकर सिर से लगाया। परमहंसजी के चरण-स्पर्श से ही भूपतिनाथ को ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो गया। एक अजीब आनन्द-लोक में उनका अन्तर विचरण करने लगा।

भूपतिनाथ में यह स्थिति लगातार तीन दिनों तक बनी रही। इन दिनों उनकी नजर जिधर जाती, उधर ही सब कुछ सच्चिदानन्दमय दिखाई देता था। यहाँ तक कि एक बार जब वे ब्राह्म समाज में विद्वानों का भाषण सुनने गये तो वहाँ चारों ओर रामकृष्ण देव दिखाई देते रहे।

तीसरे दिन गंगा-स्नान करने के पश्चात् भपतिनाथ घर की ओर आ रहे थे, ठीक उसी समय रामकृष्ण देव के यहाँ से एक अदृश्य शक्ति उनके सामने आकर खड़ी हो गई। उस शक्ति ने कहा—"मैं तुम्हें अपने में समाहित करना चाहता हूँ।"

भूपतिनाथ ने कहा—"अभी नहीं। निधन के बाद।"

इतना सुनते ही उस शक्ति ने अपना त्रिशूल भूपतिनाथ के मस्तक पर रखा।

उनका षट्चक्र भेद हो गया।

भूपतिनाथ को अनुभव हुआ जैसे वे शिवमय हो गये। यह स्थिति थोड़ी देर तक रही।

पुनः शक्ति ने कहा—"अब तुम अपने गुरु के पास चले जाओ। तुम्हारे गुरु हैं—श्री परमहंस रामकृष्ण।"

इतना कहने के पश्चात् वह शक्ति शून्य में गायब हो गई। इस घटना को भूपतिनाथ के सिवा राह चलते किसी ने देखा नहीं।

भोजन के पश्चात् भूपतिनाथ अपने गुरु रामकृष्ण देव के पास आये। अदृश्य शक्ति के आज्ञानुसार सबेरेवाली घटना का वर्णन उन्होंने किया।

रामकृष्ण देव ने चौंककर कहा—"जल्दी से महादेव का स्तव-पाठ करो। चलो, शुरू करो।"

भूपतिनाथ स्तव-पाठ करने लगे। एकाएक रामकृष्ण देव के शरीर से बिजली की तरह एक प्रकाश निकला और भूपति के शरीर में प्रवेश कर गया।

भूपतिनाथ ने स्वतः अनुभव किया कि वे हरिहर बन गये हैं। थोड़ी देर बाद परमहंस रामकृष्ण देव ने 'हंसेश्वर मुक्ति'[1] प्रदान की।

इस घटना के पश्चात् एक बार जब भूपतिनाथ अपने गुरुदेव के पास गये तब उन्होंने हँसते हुए पूछा—"क्यों रे, विवाह करने की इच्छा है न?"

गुरुदेव ऐसा परिहास करेंगे, इसकी कल्पना भूपतिनाथ को नहीं थी। लज्जा से उनका चेहरा लाल हो उठा। भूपतिनाथ यह अनुमान नहीं लगा सके कि गुरुदेव भवितव्य की चर्चा कर रहे हैं।

आखिर में प्रारब्ध के भोग के कारण उन्हें विवाह करना पड़ा। श्री कृष्णधन की सुपुत्री सरोजनी देवी उनकी पत्नी बनी।

विवाह के कुछ दिनों बाद भूपतिनाथ के जीवन में एक भयंकर दुर्घटना हो गई। परमहंस रामकृष्ण देव ने अपना शरीर त्याग दिया। भूपतिनाथ शोक से विह्वल हो उठे।

---

[1] दिव्य अविनाशी चैतन्य अधीश्वर।

गनीमत यह थी कि अपने निधन के पूर्व रामकृष्ण देव ने भूपतिनाथ को नित्यगोपाल के जिम्मे सुपुर्द कर दिया था। परमहंसजी ने पहले ही अनुमान लगा लिया था कि भूपतिनाथ की ज्ञानपिपासा को नित्यगोपाल पूर्ण कर सकेगा।

अब भूपतिनाथ प्रतिदिन नित्यगोपाल के यहाँ जाने लगे। इन्हीं नित्यगोपाल के बताये मार्ग का अनुसरण करते हुए भूपतिनाथ ने योग-राज्य में प्रवेश किया। भूपतिनाथ की साधना में केवल परमहंस देव और नित्यगोपाल ही सहायक नहीं थे, बल्कि इस दिशा में महात्मा तैलंग स्वामी, योगिराज भास्करानन्दजी भी थे जिनसे वे योग की शिक्षा प्राप्त करते रहे।

* * *

अर्द्धरात्रि का समय था। भूपतिनाथ कमरे में सो रहे थे। पूरा परिवार ही नहीं, पड़ोस में भी सन्नाटा था। सोते ही सोते भूपतिनाथ को समाधि लग गई। उन्होंने अनुभव किया कि अब वे भगवत्मुक्त हो गये। उनका नरत्व लोप हो गया है।

कई दिनों तक उनकी स्थिति चिन्ताजनक रही। माँ, पत्नी और छोटे भाई आदि भूपतिनाथ की हालत देखकर घबरा उठे। स्वयं भूपतिनाथ को अनुभव हुआ जैसे वे मृत्यु के द्वार पर आ गये हैं।

बेटे की इस पीड़ा को देखकर माँ व्याकुल हो उठी। वह ओझा, पण्डित, संन्यासियों के निकट जाकर जन्त्र-मन्त्र माँगने लगी। देखते ही देखते बाँहों तथा गले में अनेक 'जन्तर' बाँध दिये गये। लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ। अक्सर वे गंगा-किनारे दौड़ते रहे। माँ समझ नहीं पा रही थी कि आखिर बेटे को क्या हो गया है।

वास्तव में यह उग्र साधना का क्रम रहा, पर आगे की राह उन्हें नहीं मिल रही थी।

ठीक इन्हीं दिनों उन्हें सही मार्ग का आभास हुआ। उन्होंने अपने ज्ञान-नेत्र से देखा कि महायोगी तैलंग स्वामी उन्हें काशी आने के लिए आकर्षित कर रहे हैं।

अब भूपतिनाथ काशी जाने के लिए व्याकुल हो उठे। परमहंसजी तथा नित्यगोपालजी की जबानी वे तैलंग स्वामी के बारे में सुन चुके थे। जब महायोगी स्वयं ही आकर्षित कर रहे हैं तब उनके श्रीचरणों का दर्शन करना अनिवार्य है।

माँ से अनुमति लेकर वे काशी चले आये। यहाँ आकर वे तैलंग स्वामी के आश्रम में गये। तैलंग स्वामी ने उन्हें क्रियाएँ बताते हुए कहा—"तुम्हारी स्थिति ठीक नहीं है। गलत ढंग से क्रिया करने के कारण यह हालत हो गई है। जैसा तुम्हें बताया है, उसे करो। कुछ ही दिनों में सब ठीक हो जायगा। चिन्ता करने की जरूरत नहीं। यही कारण है कि तुम्हें कलकत्ते से बुलाना पड़ा।

महायोगी तैलंग स्वामी द्वारा निर्देशित क्रियाओं को करने पर उनकी मनःस्थिति पूर्ववत् हो गई अर्थात् उन्होंने पुनः नरत्व प्राप्त कर लिया।

काशी से वापस आकर तैलंग स्वामी द्वारा बताई गई क्रियाओं को वे निरन्तर करते रहे। कुछ दिनों बाद भूपतिनाथ को पता चला कि महायोगी तैलंग स्वामी ने

समाधि ले ली है। इस समाचार को सुनकर उन्हें असह्य पीड़ा हुई। धीरे-धीरे वे विक्षिप्त-से हो गये।

उनकी यह स्थिति देखकर एक दिन श्री नित्यगोपाल ने कहा कि तैलंग स्वामी के समकक्ष एक और योगी काशी में हैं। वे हैं—स्वामी भास्करानन्द। एक बार उनसे जाकर मिलो। उनसे अपनी स्थिति बताओ। मेरी जानकारी में उनसे बढ़कर कोई योगी इस समय भारत में नहीं है।

इस बार काशी रवाना होते समय भूपतिनाथ ने निश्चय किया कि अगर स्वामीजी की कृपा प्राप्त कर सका तो एक अर्से तक वहाँ रहूँगा ताकि साधना-प्रक्रिया अधूरी न रहे।

इस निश्चय के बाद वे काशी आये और दुर्गाकुण्ड स्थित कोठी में स्वामी भास्करानन्दजी से मिलने गये। इन्हें आते देख स्वामीजी ने स्वागत किया। सारी राम-कहानी सुनने के पश्चात् स्वामीजी इन्हें योग-शिक्षा की प्रक्रिया बताने लगे।

काशी में रहते समय भूपतिनाथ उग्र तपस्या करने लगे थे। आखिर स्वामी भास्करानन्द ने इन्हें 'सरस्वती'[1] बना दिया।

कहा जाता है कि भूपतिनाथ की तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् ने इन्हें साक्षात् दर्शन दिया था। स्वामी भास्करानन्द इनके अन्तिम गुरु थे।

काशी से वापस अपनी जन्मभूमि में आते ही भूपतिनाथ ने अपनी पत्नी से कहा—''अब तुम अपने नैहर चली जाओ। मैं शीघ्र ही भारत-भ्रमण के लिए जाऊँगा। अपने वहाँ रहोगी तो तुम्हारी देखरेख और अन्न-वस्त्र का प्रबन्ध हो जायगा।''

बाद में अपने गुरुभाइयों से गेरुआ वस्त्र, मृगछाला आदि लेकर तीर्थयात्रा के लिए रवाना हो गये। पास में रकम नहीं थी, इसलिए अधिकतर पैदल यात्रा करते रहे। प्रयाग, अयोध्या, हरिद्वार आदि तीर्थों के भ्रमण में कितना समय लगा, यह बताना कठिन है।

* * *

तीर्थाटन करने के बाद पुनः भूपतिनाथ घर वापस आये। इस दौरान उन्होंने अद्भुत ऐशी-शक्ति प्राप्त कर ली थी। स्वयं इस शक्ति से वे अपरिचित थे। फलतः आप जिसे आशीर्वाद देते, तुरत उस व्यक्ति को समाधि लग जाती थी।

शशधर कथकराज नामक एक व्यक्ति परमहंस देव का भक्त था। एक बार वह भूपतिनाथ को अपने घर आदर के साथ ले गया।

यहाँ लोग बड़ी श्रद्धा के साथ उनका स्वागत करने लगे। इसके बाद दुर्घटना होने लगी। जो कोई इन्हें प्रणाम करता, उसे भूपतिनाथ आशीर्वाद देते और तुरत उसे समाधि लग जाती थी। समाधि-अवस्था में लोगों को प्रभु-मूर्ति के दर्शन होने लगे। कथक की पत्नी, समधिन, दामाद सभी की यह स्थिति हो गई।

इसी प्रकार एक बार एक कायस्थ परिवार में भोजन के लिए आमन्त्रित होकर गये। यहाँ भी काफी लोग आपको प्रणाम करने आये। जितने लोगों को आपने

---

[1] सर्व-विद्या-विशारद, वेद-वेदांग पारदर्शी।

आशीर्वाद दिया, सभी को समाधि लग गई। लेकिन एक युवती को लेकर आप परेशान हो गये।

समाधि लगने के कुछ देर बाद अपने-आप भंग हो जाती थी, पर इस युवती की समाधि भंग नहीं हो रही थी। अधिक देर तक यह स्थिति बनी रहें, यह ठीक नहीं है।

चिन्तित भाव से आप स्वयं समाधिस्थ हुए और कारण पता लगाने लगे। इधर ज्योंही आप समाधिस्थ हुए, उसके कुछ देर बाद युवती की समाधि भंग हो गई। युवती की समाधि भंग हो गई है, पता लगते ही आपने अपनी समाधि भंग कर दी।

गौर से उस युवती को देखने के पश्चात् भूपतिनाथ ने उसे थोड़ा-सा प्रसाद देते हुए कहा—''लो, इसे ग्रहण करो। आज तुम्हें घर जाने की जरूरत नहीं है। कल सुबह चली जाना।''

फिर एक महिला की ओर देखते हुए उन्होंने कहा—''देवीजी, आज आप इसे अपने पास सुलाना।''

* * *

भूपतिनाथ की यौगिक-शक्ति की प्रतिष्ठा बढ़ती गई। एक बार इनके एक परिचित नरेन्द्रनाथ कुण्डू भूपतिनाथ से दीक्षा लेने के लिए आये।

कुण्डू की इच्छा जानकर भूपतिनाथ ने कहा—''मुझसे क्यों? अपने कुलगुरु से दीक्षा ले लो।''

कुण्डू ने कहा—''उनके प्रति मेरी धारणा अच्छी नहीं है।''

भूपतिनाथ ने कहा—''तब अपना सारा असबाब ठीक करके रखो। जहाज आने पर सवार हो जाना।''

कुण्डू बाबू को समझते देर नहीं लगी कि भूपतिनाथ उन्हें दीक्षा देना नहीं चाहते। निराश होकर वे वापस लौट गये।

इस घटना के कुछ दिनों बाद एक दिन कुण्डू बाबू की मुलाकात भूपतिनाथ के प्रिय शिष्य श्री अजित बन्धु राय से हुई। बातचीत के सिलसिले में उलाहना देते हुए उन्होंने दुःख का रोना रोया।

अजित बाबू ने कहा—''इसके पूर्व जब आपने गुरुदेव से दीक्षा लेने की चर्चा मुझसे की थी तभी मैं समझ गया था कि उनसे आप दीक्षा प्राप्त नहीं कर सकेंगे। अच्छा, अगर आपको घर बैठे दीक्षा मिल जाय तो कैसा रहे?''

''यह तो मेरे लिए अहोभाग्य की बात होगी।''

अजित बाबू ने कहा—''सद्गुरु पाने का मन्त्र मैं जानता हूँ। वह मन्त्र आपको लिखकर दे रहा हूँ। इसका निरन्तर जाप करने पर घर बैठे गुरु प्राप्त कर लेंगे।''

अन्धे को क्या चाहिए, दो आँखें। अजित बाबू के बताये हुए नियमों के अनुसार उनसे प्राप्त मन्त्र-जाप कुण्डू बाबू करने लगे।

मन्त्र ने एक दिन अपना प्रभाव दिखाया। एक दिन उन्होंने स्वप्न में देखा कि वे महासागर में डूब रहे हैं। उनके चारों ओर पत्नी, बच्चे, परिवार के अनेक सदस्य, घर-द्वार का मायाजाल है। दूर-दूर तक कहीं किनारे का पता नहीं है। इस आकस्मिक संकट से बचने के लिए वे तेजी से भगवान् को पुकारने लगे।

ठीक इसी समय शून्य में एक मन्त्र उभरा। उसे पढ़ते ही सारा मायाजाल बिखर गया। वे चौंक उठे। उनकी आँखें खुल गईं तब उन्हें मालूम हुआ कि यह सब स्वप्न था।

लेकिन शून्य में उभरे मन्त्र को वे भूल नहीं पाये। उन्हें यह जानकर आश्चर्य हुआ कि अजित बाबू द्वारा प्रदत्त मन्त्र तथा इस मन्त्र में पर्याप्त साम्य है। केवल कुछ प्रभेद है। कुण्डू बाबू पहलेवाले मन्त्र का जाप करते रहे।

इस घटना के सात-आठ दिन बाद एक बार अजित बाबू से मुलाकात हुई। उन्होंने पूछा—''इस बीच आपने कोई स्वप्न देखा था?''

कुण्डू बाबू ने स्वप्न के बारे में सारी घटना बताई, पर मन्त्र भी पढ़ा था, इसका उल्लेख नहीं किया।

अजित बाबू ने कहा—''भले ही आप प्रकट न करें, पर मैं सब समझ गया। गुरु महाराज ने उस मन्त्र में किंचित् परिवर्तन कर आपको दिया है। बहरहाल आप उसी मन्त्र को जपते रहिये। शीघ्र ही सिद्ध हो जायगा।''

इस घटना के कुछ दिनों बाद भूपतिनाथ ने इन्हें स्वप्न में दीक्षा दी। दीक्षा प्राप्त करने के दूसरे दिन कुण्डू बाबू यह समाचार देने के लिए अजित बाबू के घर गये। सारी बातें सुनने के बाद अजीत बाबू प्रसन्न हो उठे। उन्होंने कुण्डू बाबू को बताया कि अब आगे क्या-क्या करना होगा।

* * *

सबेरे का समय था। लगभग आठ बज चुके थे। ठीक इसी समय बाहर सदर दरवाजे पर कोई साँड की तरह हँकारने लगा—''गुरु महाराज, गुरु महाराज।''

भूपतिनाथ ने सोचा—शायद किसी शिष्य को कोई कष्ट है। वे झटपट बाहर निकले। सामने उनका शिष्य ज्ञानदेव चौधुरी खड़ा था। इन्हें देखते ही आगन्तुक ज्ञानदेव चौधुरी ने कहा—''गुरुदेव, अब आप जैसे व्यक्ति की मुझे कोई जरूरत नहीं है। आपमें कोई दम नहीं है। मुझे आपसे बढ़कर सिद्ध योगी मिल गये हैं। अब आपका दिया मन्त्र भेड़-बकरियों के कान में डाल दूँगा।''

इतना कहने के पश्चात् बड़ी उपेक्षा के साथ ज्ञान चौधुरी पलटकर चल पड़े।

भूपतिनाथ ने बड़े स्नेह से पुकारा—''अरे ज्ञान, मेरी बात तो सुन ले।''

पास आकर ज्ञान चौधुरी ने कहा—''कहिये, क्या कहना चाहते हैं, पर यह सुन लीजिए कि अब आपके दिये मन्त्र का उपयोग नहीं करूँगा। उसे जानवरों को सुना दूँगा।''

भूपतिनाथ ने कहा—''तेरे मन में जो आये, वही करना। मैं तुझे मना नहीं कर

रहा हूँ। लेकिन जब कभी तुझ पर संकट आये तब तू इस मन्त्र का जाप करना। इससे तुझे राहत मिलेगी।''

इतना कहने के पश्चात् उन्होंने एक मन्त्र सुनाया। ज्ञान बाबू अपने घमण्ड में चूर रहे। बड़ी उपेक्षा के साथ उन्होंने गुरुदेव की ओर देखा और फिर तेज कदमों से आगे बढ़ गये।

बात यह थी कि इधर कुछ दिनों से ज्ञान बाबू एक कापालिक के चक्कर में आ गये थे। कापालिक के चमत्कारों से प्रभावित हो गये थे। उसने ज्ञान बाबू को यह विश्वास दिलाया था कि चन्द दिनों में वह इन्हें सिद्ध बना देगा। जब सहज ही किसी से सिद्धि प्राप्त हो जायेगी तब ऐसे पण्डित के दिये मन्त्र की साधना क्यों करूँ?

अमावस्या के दिन कापालिक रात दस बजे क्रिया करने लगा। क्रिया समाप्त होने के एक घण्टा बाद ज्ञान बाबू के शरीर में असह्य पीड़ा प्रारम्भ हो गई। धीरे-धीरे यह पीड़ा इतनी बढ़ गई कि वे मिर्गी के रोगी की तरह जमीन पर छटपटाने लगे।

इनके घर के सामने कुछ वेश्याएँ रहती थीं। इनके कराहने की आवाज सुनकर एक वेश्या ने अपनी नौकरानी से कहा—''मालती, देख तो ज्ञान बाबू को क्या हो गया है? क्यों इतना कराह रहे हैं?''

यह बात कान में जाते ही सहसा ज्ञान बाबू को अपने गुरुदेव द्वारा दिये गये मन्त्र की याद आ गई। याद आया कि गुरुदेव ने कहा था कि जब संकट आये तब इसका जाप करना। इधर पीड़ा इस कदर बढ़ती जा रही थी कि लगा, जैसे मौत आ जायगी।

लाचारी में भूपतिनाथ के दिये मन्त्र का मन ही मन जप करने लगे। लहमे-भर में राहत मिलने लगी। तुरत कुण्डू बाबू ने समझ लिया कि गुरुदेव का मन्त्र लाभ पहुँचा रहा है।

इसके बाद चौकी पर बैठकर तेजी से जाप जपने लगे। इसी बीच उन्होंने देखा कि सामने तेजी से 'रक्षा करो—रक्षा करो' आवाज लगाता हुआ कापालिक चला आ रहा है। ज्ञान बाबू समझ गये कि इसी कापालिक के कारण उनकी यह दशा हुई है। क्रोध से आगबबूला होकर वे बाहर आये और कापालिक की गर्दन पर हाथ लगाकर सड़क की ओर ढकेल दिया।

कुण्डू बाबू की उग्र मूर्ति और यह व्यवहार देखकर कापालिक भाग खड़ा हुआ। उसकी सारी सामग्री कुण्डू बाबू ने बाहर फेंक दी।

* * *

पावना जिले में राधानगर नामक एक गाँव है। वहाँ के एक जमींदार अपनी गलती के कारण एक मुकदमे में फँस गये। यहाँ तक कि उन्हें अपमानित करने के लिए अपर पक्ष ने उनके नाम वारण्ट निकलवाया।

इस समाचार को सुनते ही जमींदार साहब रात को ही फरार होकर कलकत्ता चले आये। उन दिनों भूपतिनाथ कलकत्ते के श्यामपुकुर स्ट्रीट में रहते थे। जमींदार प्रफुल्लकुमार श्री भूपतिनाथ के शिष्य थे। गुरुदेव के पास आकर उनके चरणों पर गिर पड़े।

प्रफुल्लकुमार की सारी कहानी सुनने के बाद उन्होंने ध्यान लगाया। कुछ देर के बाद गुरुदेव ने कहा—"डरो मत बेटा। कुछ नहीं होगा। तुम्हारे सभी वकील-मुख्तार कमजोर हैं। वे ठीक से बहस नहीं कर पाते। अब अपने लिए कोई बैरिस्टर रख लो। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। तुम्हारी विजय निश्चित है।"

भूपतिनाथजी उन दिनों अपने एक अन्य शिष्य सुरेन्द्रनाथ मजुमदार के घर ठहरे हुए थे। नित्य सुबह-शाम भक्तों की भीड़ आती जिन्हें भूपतिनाथ उपदेश देते थे। उस समय कोई इन्हें पंख झलता तो कोई पैर दबाता था। इस प्रकार लोग इनकी सेवा करते रहते थे।

सुरेन्द्रनाथ की एक बहन का नाम था—श्रीमती सरलादेवी। उसे भूपतिनाथजी की ऐशी-शक्ति के बारे में कोई जानकारी नहीं थी। हाल ही में यहाँ आई थी। भूपतिनाथ की सेवा और सत्कार देखकर वह सोचने लगी कि मेरी भाभी को यह कौन-सी सनक सवार हो गई है जो इस पागल की सेवा कर रही हैं।

सरलादेवी अन्तःपुर के दरवाजे के पास खड़ी थी। तभी भूपतिनाथ ने उसकी ओर देखते हुए पूछा—"क्यों बेटी, तुम मुझे पागल समझ रही हो?"

इतना सुनना था कि सरलादेवी अनजाने भय से पीली पड़ गई। आखिर इस व्यक्ति को कैसे यह मालूम हो गया कि मैं इसे पागल समझ रही हूँ। क्या यह वृद्ध लोगों के मन की बात समझ लेता है? अत्यधिक भय के कारण उसके पैर काँपने लगे। बिना कोई जवाब दिये वह भीतर चली गई।

इस घटना के बाद सरलादेवी कभी भी भूपतिनाथ के सामने नहीं गई। भूपतिनाथ सूजी का पायस खाना अधिक पसन्द करते थे। यह बात उनके सभी भक्तों को मालूम थी। जब वे किसी भक्त के यहाँ जाते तब भोजन के समय उन्हें एक कटोरा पायस जरूर परोसी जाती थी।

उस दिन सरलादेवी ने बड़े अच्छे ढंग से पायस बनाई। कटोरे में उड़ेलते समय खाँसी आ गई। अचानक सुपारी का एक कण पायस में गिर गया। सरलादेवी का कलेजा काँप उठा। अब क्या होगा? सारी पायस तो जूठी हो गई।

उधर भूपतिनाथ भोजन करने के लिए बैठ चुके थे। वहाँ से आवाज आई—"पायस तैयार हो गया हो तो भेजो।"

सरलादेवी समझ नहीं पा रही थी कि अब क्या करूँ? जूठी पायस खिलाने से महापाप होगा। नये सिरे से बनाने में समय की जरूरत है और अगर अपनी गलती स्वीकार करती है तो भाई, भाभी तथा अन्य लोगों के सामने अपमानित होना पड़े। इसी कशमकश में सरलादेवी ने मन ही मन कहा—"महाराज, आप अन्तर्यामी हैं। लोगों के मन की बात जान लेते हैं। यह पायस जूठी हो गई है। कृपया इसे ग्रहण न करें।"

इन्हीं बातों को मन ही मन कहती हुई वह पायस की कटोरी लेकर आई और भोजन की थाली की बगल में रखकर वापस चली गई।

वहाँ उपस्थित सभी लोग जानते थे कि पायस भूपतिनाथ के लिए अमृततुल्य है। लेकिन अभी तक उन्होंने स्पर्श नहीं किया। भोजन समाप्त हो गया। लोगों ने पायस ग्रहण करने का अनुरोध भी किया, पर वे केवल मुस्कराकर रह गये। सारी बातें सुनकर सरलादेवी समझ गईं कि गुरु महाराज पागल नहीं, सर्वज्ञ हैं। मन ही मन उन्हें प्रणाम करने लगी।

* * *

कलकत्ते के डायमण्ड हार्बर मुहल्ले में डॉ० सुरेन्द्रनाथ घोष नामक एक धार्मिक प्रवृत्ति के व्यक्ति रहते थे। दिन-रात जब देखो तब शिव-राम कहा करते थे। यहाँ तक कि शौच के वक्त भी उनका जप चलता था। घर के लोगों का कहना था कि नींद में भी उनके ओठ जप करते थे।

उनकी इस आदत को देखकर एक दिन छोटे भाई ने परिहास में पूछा—''दादा, दिन-रात जप करते हो, कभी कोई लाभ हुआ?''

घोष बाबू ने कहा—''दिन-रात उन्हें पुकारता हूँ। शायद कभी कृपा हो जाय।''

छोटे भाई ने कहा—''दादा, अगर सचमुच साधना का लाभ उठाना चाहते हो तो भूपतिनाथजी की शरण में जाओ। वे योगी पुरुष हैं। वे तुम्हें सही मार्ग बता देंगे।''

घोष बाबू अपने छोटे भाई की राय सुनकर प्रसन्न हो गये। अपने मित्रों से भूपति बाबू के बारे में सुन चुके थे। अकेला जाने के बदले वे अपने एक परिचित संन्यासी मित्र को लेकर भूपतिनाथजी के यहाँ गये।

बातचीत के सिलसिले में संन्यासी ने कहा—''घोष बाबू आपसे दीक्षा लेने आये हैं। कृपया इन्हें शिष्य के रूप में स्वीकार कर लीजिए।''

भूपतिनाथ ने कहा—''आजकल मेरा समय ठीक नहीं है। अभी दीक्षा नहीं दे सकता।''

भूपतिनाथ की राय सुनकर घोष महाशय निराश नहीं हुए। उनके मन में यह भावना उत्पन्न हुई कि अगर गुरुदेव 'शिवराम' होंगे तो आज ही मुझे दीक्षा देंगे, वरना मुझे दीक्षा की कोई आवश्यकता नहीं है। आदत के अनुसार वे 'शिवराम-शिवराम' जपने लगे।

एकाएक भूपतिनाथ ने कहा—''आपको अभी दीक्षा दूँगा।''

घर वापस आकर अपने छोटे भाई को गले लगाते हुए घोष बाबू ने कहा—''प्यारे भाई, आज तेरे कारण मुझे 'शिवराम' मिल गये।''

* * *

कभी-कभी गुरु भी चूक जाते हैं। सुरेन्द्रनाथ मजुमदार की बड़ी भाभी भूपतिनाथजी की ऐशी-भक्ति से परिचित थी। काफी दिनों से वह भूपतिनाथजी से दीक्षा लेने को सोचती रही।

एक दिन दृढ़ निश्चय कर वह भूपतिनाथजी के निकट गई। महिलाओं के लिए यह

नियम है कि जब तक पति से अनुमति प्राप्त न हो जाय तब तक दीक्षा नहीं लेनी चाहिए। लेकिन भूपतिनाथ ने बड़ी भाभी के प्रति रियायत् कर दी।

दीक्षा लेने के बाद भाभी घर चली आई। दूसरे दिन शाम के समय भाभी के कमरे से भयंकर चीख की आवाज आई। घर के अधिकांश लोग उस कमरे में दौड़े हुए गये तो देखा—बड़ी भाभी आसन पर बैठी हैं, परन्तु रीढ़ की हड्डी धनुष की तरह मुड़ गई है। जीभ बाहर निकल आई है। आँखें बन्द हैं, पर आँसू अविरल गति से बह रहे हैं। सारा शरीर लोहे की तरह सख्त हो गया है।

भाभी की यह दशा देखकर सभी घबरा गये। उन लोगों ने सोचा—शायद हिस्टीरिया हो गया है। तुरत सिर पर पानी डालने लगे, कोई हवा करने लगा। कोई उन्हें हिलाने-डुलाने लगा। दो घण्टे लगातार श्रम करने के बाद स्थिति में किंचित् परिवर्तन हुआ। लेकिन इसके बाद दूसरी घटना प्रारम्भ हो गई।

अब वे तेजी से रोने लगीं। बार-बार यह कहने लगीं—"मैं गुरुदेव के पास जाऊँगी।"

समय काफी गुजर चुका था। इतनी रात गये कौन गुरुदेव के पास ले जायगा। कहीं वे नाराज न हो जायँ। व्यर्थ में उन्हें कष्ट देना उचित नहीं है। मँझले देवर ने कहा—"भाभी, इस वक्त काफी रात हो गई है। कल सबेरे मैं आपको गुरुदेव के पास ले चलूँगा। अभी आराम कीजिए।"

सारी रात बेचैनी में गुजरी। भाभी के कारण कोई सो नहीं सका। दूसरे दिन देवर के लड़के ने कहा—"काकी के ऊपर किसी भौतिक देवता का प्रकोप है। इन्हें गुरुदेव के पास ले चलने की अपेक्षा उन्हें यहाँ ले आया जाय।"

मँझले देवर तुरत रवाना हो गये। गुरुदेव ने गौर से बड़ी भाभी को देखा और कहा—"घबराने की बात नहीं है। बेटी को समाधि लग गई है। आप लोग इस बात को ध्यान में रखें कि आइन्दा कभी ऐसी दुर्घटना हो जाय तो कुछ मत करियेगा। केवल इनके कान के पास 'गुरुपद भरोसा' शब्द दुहराते रहियेगा। अपने-आप थोड़ी देर में सब ठीक हो जायगा। देर तक इस स्थिति में रहना शरीर के लिए घातक है।"

इतना कहने के बाद भूपतिनाथ बड़ी भाभी के सामने बैठकर जाप करने लगे। जप पूर्ण करने के बाद बोले—"माँ, शान्त हो जाओ।" कई बार इसी वाक्य को दोहराते रहे।

इसी प्रकार लगातार कई दिनों तक सुबह आकर भाभी को सामने बैठाकर जप करते रहे। पन्द्रह दिनों के बाद भाभी सही स्थिति में आईं।

तब गुरुदेव ने कहा—"बेटी, जरा भावों को संयत करने की कोशिश किया करो। अभी आगे न जाने कितने भाव-महाभाव आयेंगे। उन्हें बराबर आदर देने का प्रयत्न करना। सत्य की पत्नी की तरह तुम्हें भी समाधि लगने लगी है। मैं आशीर्वाद देता हूँ, तुम्हारा कल्याण होगा। मेरी समझ से तुम्हारा मन्त्र आवश्यकता से अधिक तेजस्वी हो गया है। अब आगे केवल १२ बार जप करना।"

बड़ी भाभी ने कहा—''आपसे जब दीक्षा ले रही थी तब ऐसा लगा जैसे काँसे के अंनेक बरतन एक साथ गिर पड़े हैं। मैं अपने को संयत नहीं कर पा रही हूँ। जीभ और मन दोनों ही बेकाबू हो जाते हैं। भोजन करते वक्त, लड़के के रोने में, यहाँ तक कि देवर जब तबला बजाता है, उस आवाज में भी मन्त्र सुनती हूँ। उस वक्त अपने को स्थिर नहीं रख पाती। ऐसी हालत में मैं क्या करूँ, गुरुदेव?''

गुरुदेव ने गम्भीर होकर कहा—''मुझे डर लग रहा है। फिलहाल चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। जितना कह चुका हूँ, आगे से उतना ही करना। शेष उपचार मैं करूँगा।''

इस घटना के बाद बड़ी भाभी में तेजी से सुधार होने लगे। आगे पुनः कोई दुर्घटना नहीं हुई। कमजोर व्यक्ति को उच्चशक्ति का मन्त्र देने पर कभी-कभी अनर्थ हो जाता है।

* * *

शाम का समय था। अपने कई भक्तों से घिरे भूपतिनाथ वार्तालाप कर रहे थे। इतने में एक युवक बौखलाया-सा आया और उनके चरणों पर सिर रखकर रोने लगा।

देखते ही देखते आशुतोष भूपतिनाथ महारुद्र बन गये। अपना पैर खींचते हुए उन्होंने कहा—''दूर हो जा मेरी नजरों से। मैं तेरा मुँह नहीं देखना चाहता। तेरे लिए कुछ भी नहीं कर सकता। तू गुरु-त्यागी है। तेरा मुँह देखना पाप है। तू कुत्ता है।''

उपस्थित सभी भक्त सकते में आ गये। इन लोगों ने अपने जीवन में भूपतिनाथ को कभी क्रोधित नहीं देखा था। स्वभाव से बहुत शान्त और उदार हैं। आखिर आज क्या हो गया।

भूपतिनाथ की फटकार सुनकर वह युवक चुपचाप चला गया, पर उसका आना बन्द नहीं हुआ। नित्य आता और इसी प्रकार अपशब्द सुनकर वापस चला जाता था। बाद में लोगों को मालूम हुआ कि यह युवक नित्यगोपालजी का शिष्य है। साधना करते-करते उन्नीत हो गया तो स्वयं गुरु बनकर शिष्य बनाने लगा। गलती यह हुई कि नये इष्ट मन्त्र के स्थान पर वह अपने गुरु से प्राप्त इष्ट मन्त्र सभी को देने लगा। फलस्वरूप उन्नत स्थिति से स्खलित हो गया।

नित्यगोपालजी का निधन हो गया था। भूपतिनाथ के गुरुओं में वे भी एक थे। अब यह युवक इनकी शरण में आया है। कुछ दिनों बाद भूपतिनाथ का क्रोध ठण्ढा हुआ तब उन्होंने कहा कि अब आज से तुम लगातार एक वर्ष तक मौन व्रत धारण करो। उसके बाद मेरे पास आना तब नया मार्ग बताऊँगा।

एक साल मौन रहने के बाद जब वह युवक भूपतिनाथ के पास आया तब उसे उन्होंने प्रार्थित वस्तु दे दी।

गुरु का महत्त्व और उनके मन्त्र की क्या मर्यादा होती है, इसके दो उदाहरण उपर्युक्त घटनाओं से प्राप्त हो जाते हैं।

भूपतिनाथ बचपन से ही दैवकृपा के कारण ऐशी-शक्ति प्राप्त कर चुके थे। जब इनमें ज्ञान का उदय हुआ तब परमहंस रामकृष्ण देव, नित्यगोपालजी, महायोगी तैलंग

स्वामी और भास्करानन्दजी ने योग की शिक्षाएँ दीं। आम तौर पर भूपतिनाथ कभी भी यौगिक शक्ति का प्रदर्शन नहीं करते थे। मन्त्र-दान के पश्चात् जप करने पर जोर देते थे।

कभी-कभी अनजाने इनसे चमत्कार अपने-आप हो जाता था। एक बार श्री ज्ञानेन्द्र चौधुरी नामक एक व्यक्ति भूपतिनाथजी से मिलने आया। शिष्यों ने इन्हें ऊपर नहीं जाने दिया तो वे बाहर से ही चिल्लाने लगे—''गुरुदेव, गुरु महाराज।''

तेज आवाज में चिल्लाने के कारण भूपतिनाथ नीचे आये। इन्हें देखते ही चौधुरीजी ने कहा—''जरा अपने शिष्यों को समझाइये। मुझे ऊपर आपके निकट जाने से रोक रहे हैं। इन्हें क्या मालूम कि मैं आपका प्रथम शिष्य हूँ। इस दृष्टि से आप पर मेरा कितना अधिकार है।''

इसके बाद भूपतिनाथ को प्रणाम करते हुए उपस्थित शिष्यों को अपनी राम-कहानी सुनाने लगे—''आज आप लोगों को अपनी कहानी सुना दूँ तब पता चलेगा कि मैं कौन हूँ और कैसे पहली बार गुरुदेव को मैंने पहचाना। आज से काफी दिनों पहले मैं सिद्ध योगी की तलाश में आगरा के जंगलों में चक्कर काट रहा था। गुरुदेव भी मेरे साथ थे। आप तीर्थयात्रा करने निकले थे। अपने भाव में मग्न थे। जब हम दोनों किसी मन्दिर में पहुँचते तब भूपतिनाथजी होम करते। होम के लिए मुझे सूखी लकड़ियाँ लानी पड़ती थीं। उस समय तक मैं भूपतिनाथजी के बारे में कुछ भी नहीं जानता था। मुझे इसका आभास नहीं था कि आप ऊँचे दर्जे के योगी पुरुष हैं। अपनी तरह इन्हें साधारण आदमी समझता था। उन्हीं दिनों मेरे साथ एक दुर्घटना हो गई। नागफनी का एक काँटा मेरी आँख में धँस गया। आँख जैसे कोमल अंग में काँटा धँसने से कितनी पीड़ा होती है, इसका वर्णन नहीं किया जा सकता। इलाज कराने पर भी कोई लाभ नहीं हुआ। पीड़ा धीरे-धीरे असह्य हो गई। सात-आठ दिन बाद डॉक्टरों ने कहा—''कल आपकी आँखों का ऑपरेशन होगा।''

''मैंने इस बात की सूचना भूपतिनाथजी को दी तब इन्हें मेरे रोग का पता चला। दरअसल ये हमेशा खोये-खोये-से रहते थे। किसी बात की चिन्ता नहीं थी। इन्होंने सहज स्वर में पूछा—''मुन्ना, क्या हुआ है?'' इतना सुनना था कि मुझे क्रोध आ गया। अपने स्वभाव के अनुसार चिढ़कर मैंने कहा—''मैं मर रहा हूँ और तुम्हें पता भी नहीं? क्या दिखाई नहीं देता? मेरी एक आँख खराब हो गई है। कल ऑपरेशन होगा।''

''गुरुदेव ने मेरी पीड़ावाली आँख पर दो बार अपना हाथ फेरा। आप लोगों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि सारा दर्द छू मन्तर हो गया। लगा जैसे कभी दर्द था ही नहीं। उस समय भी मैं कल्पना नहीं कर सका कि भूपतिनाथ सिद्ध योगी हैं। मैं केवल इस चमत्कार से चकित रह गया। दूसरे दिन अस्पताल ऑपरेशन के लिए गया। सारी तैयारी हो गई। स्ट्रेचर पर लेटने के बाद जब डॉक्टरों ने मेरी आँख देखी तो बोले—''कहीं कोई शिकायत नहीं है। ऑपरेशन की जरूरत नहीं है।''

''डॉक्टरों की बातें सुनकर मुझे पक्का विश्वास हो गया कि यह जादू भूपतिनाथजी के कारण हुआ है। आप सामान्य व्यक्ति नहीं हैं। उच्चकोटि के योगी हैं। यह तो मेरा अहोभाग्य है जो इन्होंने मुझे अपना लिया है वरना मैं इस लायक नहीं हूँ।''

■ ■ ■

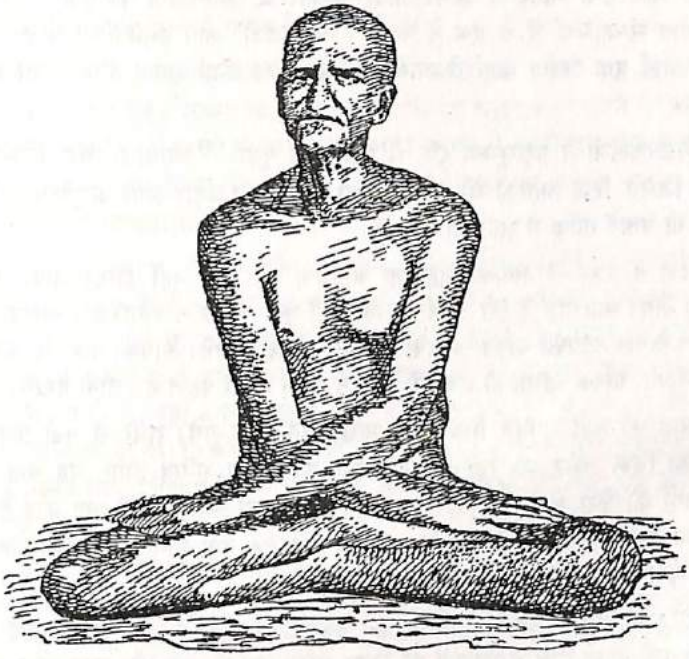

स्वामी भास्करानन्द

कानपुर जिले का मैथालालपुर गाँव। संवत् १८६०, आश्विन मास की सप्तमी के दिन शाम होने के पूर्व तीन अपरिचित संन्यासी गाँव में मिश्रीलाल मिश्र का पता पूछते हुए उनके घर आये।

इन संन्यासियों को देखकर गाँव के लोगों को आश्चर्य नहीं हुआ। पण्डित मिश्रीलाल मिश्र के यहाँ अनाहूत की तरह बराबर साधु-संन्यासी आते रहते हैं। सन्तों की सेवा करने की उनकी आदत है। उन्हें भोजन देते हैं, आश्रय देते हैं और राह-खर्च देकर गाँव के बाहर तक पहुँचा आते हैं। केवल साधु-सन्तों के प्रति वे दयालु नहीं हैं बल्कि किसी भी अभावग्रस्त व्यक्ति की सहायता करने को सदा उन्मुख रहते हैं। मिश्रीलाल जाड़े के दिनों में गली-कूँचे में टहलते हुए यह देखते हैं कि कोई कपड़े के

अभाव में सर्दी से ठिठुर तो नहीं रहा है? कोई भूख के कारण परेशान तो नहीं है? ऐसे लोगों को अपने यहाँ लाकर भोजन देते हैं और रात गुजारने के लिए आश्रय देते हैं।

आजकल तो नवरात्र चल रहा है। इन दिनों वे किसी को भी अपने यहाँ भोजन-आश्रय देने में प्रसन्नता अनुभव करेंगे। भगवान् की कृपा से खुशहाल हैं, इसलिए यह सब कर पाते हैं।

अपने दरवाजे पर एकसाथ तीन संन्यासियों को खड़े देखकर मिश्रीलालजी बड़े आदर के साथ उन्हें भीतर ले आये। आदर-सत्कार के लिए लोगों को पुकारने लगे। तभी आगत संन्यासियों में से एक ने कहा—''पण्डितजी, आप हमारे लिए परेशान न हों। हम यहाँ एक विशेष कार्य से आये हैं। ज्योंही वह कार्य समाप्त होगा त्योंही हम चल देंगे।''

मिश्रीलालजी ने प्रश्नसूचक दृष्टि से देखते हुए पूछा—''स्वामीजी, वह कौन-सा कार्य है जिसके लिए आपको मेरे घर आने का कष्ट करना पड़ा। अगर असुविधा न हो तो मुझे भी बतायें ताकि मैं सहायता करूँ।''

सन्त ने कहा—''आपकी सहायता के बिना यह कार्य नहीं होगा। आपसे हम सहायता लेंगे। बात यह है कि आज आपके यहाँ एक पुत्र जन्म लेगा। इस बालक के कारण न केवल आपकी बल्कि आपके वंश की प्रतिष्ठा बढ़ेगी। आपको कष्ट यह करना है कि ज्योंही बालक भूमिष्ठ हो तब उसे कोई न देखे। सबसे पहले हम तीनों देखेंगे।''

सन्त की बातें सुनकर मिश्रीलाल आश्चर्यचकित रह गये। सबेरे से पत्नी प्रसव-वेदना का जिक्र जरूर कर रही थी, पर आज ही सन्तान भूमिष्ठ होगा, यह बात इन संन्यासियों को कैसे मालूम हो गई? आखिर ये लोग उसे क्यों देखेंगे? क्या कोई देव-पुरुष आ रहा है? सम्भव है कि लड़की जन्म ले तब क्या होगा? इसी ऊहापोह में उन्होंने संन्यासियों से पुनः कोई प्रश्न नहीं पूछा।

रात्रि के दो प्रहर व्यतीत होने के बाद नवजात शिशु की क्रन्दन-ध्वनि सुनाई दी। मिश्रीलालजी अपने साथ संन्यासियों को लेकर सूतिकागृह में आये और स्वयं बाहर खड़े होकर भीतर का सारा दृश्य शंकित हृदय से देखने लगे। संन्यासियों ने बच्चे को देखा और कहा—''पण्डितजी, जल्दी से होम की सामग्री लाइये।''

मिश्रीलाल ने कहा—''आधी रात को होम की सामग्री कहाँ से लाऊँगा। होम करना था तो आप शाम को.....''

बीच ही में उन्हें रोककर एक संन्यासी ने कहा—''आपको कहीं से लानी नहीं है। बगल के कमरे में सामग्री है, उसे ले आइये। समय गुजरता जा रहा है।''

मिश्रीलालजी चकित भाव से बगल के कमरे में गये तो देखा—सारी सामग्री तैयार है। पता नहीं, कैसे यह सब सामग्री आ गई। लगता है, बाबा लोग अपने साथ ले आये हैं। सामान लाकर उन्होंने संन्यासियों को दे दिया। थोड़ी ही देर में सूतिकागृह होमाग्नि से गमक उठा। होम करने के बाद तीनों संन्यासी बाहर निकल आये।

इसके बाद घर के लोग आकर हर्ष मनाने लगे। अचानक मिश्रीलाल को सन्तों की सेवा की याद आई। वे बैठक में आये। तीनों संन्यासी अन्तर्धान हो चुके थे। बाहर चाँदनी फैली हुई थी। दूर-दूर तक देखने पर वे कहीं नहीं दिखाई दिये। ये लोग कौन थे, क्यों आये थे और होम क्यों किया, इन प्रश्नों का उत्तर देनेवाला कोई नहीं था।

दूसरे दिन पूरे गाँव में यह समाचार फैल गया कि मिश्रीलाल मिश्र के यहाँ जो लड़का पैदा हुआ है, उसे देखने के लिए देवलोक से ब्रह्मा, विष्णु और महेश आये थे। किसी ने कहा—''ऐसा भला हो सकता है?'' दूसरे ने पूछा—''उन्हें होम करने की क्या गरज पड़ी थी? फिर तुरत हवा में गायब कैसे हो गये?''

अन्नप्राशन के दिन बालक का नामकरण हुआ—मोतीराम। इसके बाद क्रमशः मुण्डन, उपनयन आदि हुए। परम्परा के अनुसार पिता संस्कृत पढ़ाने लगे। पढ़ने के बाद बालक अक्सर न जाने कहाँ गायब हो जाता था। उसकी तलाश में मिश्रीलाल परेशान हो जाते थे। उन्होंने अनुभव किया कि शायद मैं अधिक कड़ाई करता हूँ। अब इसे पाठशाला भेजना उचित होगा।

पिता के आदेशानुसार मोतीराम गाँव से दूर न जाकर अपने हमजोलियों के साथ खेलते-कूदते रहे। कुछ दिनों बाद सहसा बालक में अपने-आप परिवर्तन होने लगा। जिस बालक के लिए तीन महात्मा जन्म के समय आये थे, उसके प्रति मिश्रीलाल की ममता अधिक थी; इसीलिए वे हमेशा उसका ख्याल रखते थे। इस उम्र के बालक जहाँ वाचालता प्रकट करते हैं, वहाँ उनका बालक शिव की प्रतिमा बनाता या चुपचाप बैठा न जाने क्या सोचा करता था। मिश्रीलाल की पत्नी ने कहा—''यह सब लक्षण ठीक नहीं हैं। जन्म के समय बाबा लोगों ने न जाने क्या कर दिया है। इसकी शादी कर दो। कहीं साधु बन गया तो क्या होगा?''

पत्नी की सलाह मानकर वे योग्य लड़की की तलाश करने लगे। अन्त में एक रूपवती योग्य बालिका को पुत्रवधू के रूप में घर ले आये। उन दिनों मोतीराम की उम्र बारह साल थी। मिश्रीलाल का ख्याल था कि रूपवती पत्नी के कारण अब इसका अनमनापन दूर हो जायगा। देखते ही देखते छह वर्ष का समय गुजर गया। इसी समय दो विचित्र घटनाएँ हुईं। मोतीराम प्रथम पुत्र के पिता बने। दादा बनने की प्रसन्नता में मिश्रीलाल ने उस दिन गरीबों को अन्न-वस्त्र दान किया। पड़ोसियों का मुँह मीठा किया। इस घटना के एक सप्ताह बाद मोतीराम घर से गायब हो गये।

आसपास के गाँवों से लेकर प्रत्येक रिश्तेदारों के यहाँ पता लगाने पर भी मोतीराम का कहीं पता नहीं लगा। पौत्र के जन्म का सारा आनन्द निरानन्द में परिवर्तित हो गया।

* * *

घर से रवाना होकर मोतीराम कई तीर्थों का चक्कर काटते हुए उज्जैन आये। इस बीच कई सन्तों के दर्शन हुए। उनका प्रभाव मोतीराम पर पड़ चुका था। नित्य शिप्रा नदी में स्नान करने के पश्चात् वे महाकालेश्वर का दर्शन करने जाते थे। इसके बाद सुनसान स्थान में आकर ध्यान लगाते थे।

कुछ दिनों बाद जब राहगीर उनसे तरह-तरह के प्रश्न करने लगे तब वे श्मशान-भूमि के निकट चले आये जहाँ कुछ साधु रहते थे। इनकी जमात से दूर अपने लिए उन्होंने एक गुफा खोज ली। इस निर्जन गुफा में उन्हें आनन्द मिलने लगा। काफी दिनों तक एकान्तं-सेवन करने के पश्चात् मोतीराम ने अनुभव किया कि जब तक किसी योग्य गुरु से योग की शिक्षा नहीं लूँगा तब तक साधना का सही मार्ग नहीं मिलेगा।

मोतीराम के लिए यह सौभाग्य की बात थी कि जिस दिन उनके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ, ठीक उसी दिन दक्षिण भारत के प्रसिद्ध स्वामी पूर्णानन्द तीर्थयात्रा करते हुए उज्जैन आये। इस समाचार को सुनते ही मोतीराम उनके निकट गये और अपनी इच्छा प्रकट की।

स्वामी पूर्णानन्द योगी पुरुष थे। उन्होंने मोतीराम को तीक्ष्ण दृष्टि से देखा। उसकी शक्ति पहचानकर उन्होंने कहा—"ठीक है। पहले प्राणायाम से प्रारम्भ करूँगा।"

मोतीराम ने कहा कि प्राणायाम की समस्त विधियाँ मुझे ज्ञात हैं। पूर्णानन्दजी की आज्ञा पर उन्होंने कई कठिन प्राणायाम करके दिखाया। पूर्णानन्दजी ने कहा—"तब योग तुम्हारे लिए सरल है।"

स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती से योग की शिक्षा प्राप्त कर उन्हीं की आज्ञा से एक बार तीर्थ-भ्रमण के लिए निकले। वहाँ से गुजरात आकर यहाँ के पण्डितों से वेदान्त का अध्ययन करने लगे। चार वर्ष तक अध्ययन करने के बाद वे पुनः उज्जैन वापस आये। उस समय तक स्वामी पूर्णानन्द वहीं थे।

स्वामीजी के निकट आकर उन्होंने कहा—"स्वामीजी, आपके आज्ञानुसार तीर्थ-भ्रमण और वेदान्तों का अध्ययन कर चुका। अब कृपया मुझे दीक्षा देकर शिष्य बना लीजिए।"

स्वामीजी ने कहा—"परसों स्नान के पश्चात् यहाँ चले आना। उसी दिन तुम्हें पूर्ण रूप से संन्यास दूँगा।"

निश्चित समय पर मोतीराम मिश्र स्वामीजी के पास आये। उन दिनों मोतीराम की उम्र सत्ताईस वर्ष थी। स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती ने गुरु-मन्त्र देने के बाद कहा—"आज से तुम अपना पूर्वनाम त्यागकर भास्करानन्द सरस्वती नाम ग्रहण करोगे।" इसके बाद एक दण्ड देते हुए कहा—"आज से तुम दण्डी स्वामी-सम्प्रदाय में सम्मिलित हो गये।"

गुरुदेव को साष्टांग प्रणाम करने के बाद वे कुछ दिनों तक उनके सान्निध्य में उपदेश ग्रहण करते रहे। इसी बीच उन्हें पता चला कि उनके एकमात्र पुत्र का देहान्त हो गया है। इस समाचार से उन्हें किसी प्रकार की पीड़ा नहीं हुई।

कुछ दिनों बाद वे उत्तर प्रदेश के फतेहपुर जिले के असनी गाँव में आये। यहाँ वे एक ब्राह्मण के घर रहने लगे। एक दिन उन्होंने सोचा कि अब मैं सर्वत्यागी बन गया हूँ तब इस दण्ड को बेकार लिए फिरता हूँ। यह विचार आते ही एक दिन स्नान करते समय उसे गंगा में प्रवाहित कर दिया।

असनी गाँव से वे कानपुर चले आये। संन्यास लेने के पश्चात् व्यक्ति को एक बार अपनी जन्मभूमि में आना पड़ता है। यह विचार आते ही वे मैथालालपुर आये। संन्यासी के रूप में उन्हें पाकर गाँववालों ने इनका बड़ा आदर किया। इस आदर-स्नेह से मुक्ति पाने के लिए एक दिन वे रात को चुपचाप चल दिये। साथ में जितने वस्त्र तथा वस्तुएँ थीं, वह सब फेंक दीं। केवल कौपीन पहनकर पूर्ण रूप से वैरागी बन गये।

कानपुर से हरिद्वार होते हुए बदरीनाथ आये। यहाँ से केदारनाथ, गंगोत्री, यमुनोत्तरी दर्शन करते हुए मानसरोवर चले आये। यहाँ से पुनः दक्षिण भारत के तमाम तीर्थों का दर्शन करने के बाद आप हरिद्वार आकर विभिन्न ग्रन्थों के अध्ययन में जुट गये।

अध्ययन समाप्त करने के पश्चात् उन्होंने निश्चय किया कि अब यायावर-जीवन समाप्त कर निश्चित रूप से कहीं रहना आवश्यक है। उन्हें सभी तीर्थों से उत्तम काशी नगरी अधिक उपयुक्त प्रतीत हुई। तत्काल वे काशी आकर गंगा किनारे रहने लगे। प्रचण्ड गर्मी में तप्त बालू पर चुपचाप बैठे रहते। भयंकर शीत और वर्षाकाल में भी वे अपने स्थान पर ध्यान लगाये रहते। किसी भी प्रकार के प्राकृतिक दुर्योग का आप पर प्रभाव नहीं पड़ता था।

कहते हैं कि लोग सोते हैं, पर उनकी जबान चलती रहती है। आपके त्याग-तपस्या के प्रति काशी के नागरिक आकृष्ट हुए। आपकी चर्चा होने लगी। फलस्वरूप आर्त-पीड़ित लोग आशीर्वाद पाने के लिए आपके निकट आने लगे। इससे आपकी साधना में व्याघात पहुँचने लगा। कभी-कभी लोगों से बचने के लिए वे गंगा के उस पार चले जाते थे।

ठीक इन्हीं दिनों अमेठी के नरेश ने आपसे आग्रह किया कि उनके बाग में चलकर रहें। स्थान मनोरम है और वहाँ सर्वसाधारण आकर तंग नहीं कर सकेंगे। अमेठी-नरेश की कोठी नगर के दक्षिणी छोर पर दुर्गाकुण्ड की बगल में थी। पहले यह बाग राजा अमृत पेशवा का था। सन् १८५७ ई० के विद्रोह के समय इस कोठी को अपने कब्जे में लेकर सरकार ने नीलाम कर दिया था। उस समय अमेठी-नरेश श्री लालमाधव सिंह ने खरीद लिया। उन्होंने ही इस कोठी का नाम 'आनन्दबाग' रखा था।

राजा साहब के आग्रह पर स्वामी भास्करानन्दजी आनन्द बाग में चले आये। यहाँ स्वामीजी को राजा की ओर से पर्याप्त सम्मान दिया गया। आपकी सेवा के लिए आठ नौकर नियुक्त किये गये थे। इन आठों नौकरों की देखरेख से घबराकर स्वामीजी ने एक दिन उन्हें बुलाकर कहा—"देखो बेटा, मुझे तुम लोगों की सेवा की कोई जरूरत नहीं है। मैं ठहरा बैरागी बाबा, मुझे किसी चीज की जरूरत नहीं है। अगर तुम लोग मेरी सेवा करना चाहते हो तो इतना करना कि मेरे पास कोई अचानक न आने पाये।"

यहाँ आने के बाद सर्वसाधारण की भीड़ में कमी जरूर हो गई, पर सम्पन्न घराने की भीड़ बढ़ने लगी। बालिका, युवती, सधवा, विधवा, बहुएँ, रजवाड़े की रानियाँ आने लगीं। इस संकट से बचने के लिए वे आनन्दबाग स्थित एक भूमिगत कमरे में रहने

लगे। यहाँ उन्होंने नियम बना लिया कि मेरे कमरे में कोई नहीं आ सकता। मैं दिन में एक बार कुछ देर के लिए ऊपर आऊँगा और तभी दर्शनार्थियों से मिलूँगा।

* * *

अमेठी-नरेश के यहाँ एक बार किसी राज्य के एक देशी नरेश आकर ठहरे। स्वामीजी का व्यवहार उन्हें ढोंग प्रतीत हुआ। दरअसल वे स्वामीजी के बारे में अन्य ढोंगी संन्यासियों जैसा विचार रखते थे। उन्होंने स्वामीजी की शक्ति की परीक्षा लेने के लिए जाल फेंका। नगर से तीन वारवधुओं को बुलाकर उन्होंने कहा—''इस मकान में एक संन्यासी रहते हैं। अगर तुम अपने हाव-भाव और कर्त्तव्य से उन्हें अपने जाल में फाँस सको तो तुम्हें १००-१०० रुपये इनाम दूँगा।''

उन दिनों १०० रु० की काफी कीमत थी। इतनी बड़ी रकम पाने के लालच में वे तुरत राजी हो गईं। शाम ढले तीनों वारवधुएँ मनमोहिनी शृंगार किये आईं। उन्हें यह बता दिया गया कि स्वामीजी कहाँ हैं। तीनों वेश्याएँ हाथ में दीपक लेकर भूगर्भ स्थित बाबा के कमरे में आईं तो देखा—वे समाधि लगाये बैठे हैं। आँखें बन्द हैं। कुछ पल उन्हें देखने पर इनके मन का कलुष दूर हो गया। वे झटपट ऊपर चली आईं।

राजा केतकी फूलों के कुंज में छिपे सारा दृश्य देख रहे थे। इन्हें वापस आते देख वे चौंककर पास आये। नगरवधुओं ने कहा—''महाराज साहब, हमसे यह काम नहीं होगा। हमें घर पहुँचा दीजिए।''

राजा मायूस होने के बदले पुरस्कार की रकम दस गुना बढ़ाते हुए बोले—''मैं तुम लोगों में प्रत्येक को एक-एक हजार रुपये दूँगा। जाओ, हुक्म का पालन करो।''

हजार रुपये के लालच में पुन: तीनों भूगर्भ में आईं। उन्होंने देखा—स्वामीजी की समाधि भंग हो गई है। वे विस्मय से देख रहे हैं। तुरत सिंह की तरह गरजते हुए बोले—''अगर तुम लोगों को अपनी जान प्यारी है तो तुरत यहाँ से भाग जाओ।''

यह बात सुनते ही दो भाग गईं, पर हजार रुपये पाने के लालच में एक रुक गई। तभी न जाने कहाँ से एक काला नाग आकर उसके पैरों से लिपटकर फुफकारने लगा। वह प्राणपण से चिल्लाने लगी—''महाराज, मुझे बचाइये। क्षमा करें महाराज। मैं मर जाऊँगी। स्वामीजी, मुझे बचाइये।''

वह इस प्रकार चिल्लाती रही। उसे उसी हालत में छोड़कर स्वामीजी ऊपर आकर अन्य कमरे में चले गये। इधर राजा ने सोचा—तीसरी आखिर क्या कर रही है? यह देखने के लिए उसने भूगर्भ स्थित कमरे के प्रवेश-द्वार से नीचे की ओर देखा। उस दृश्य को देखते ही वह भी भाग खड़ा हुआ।

इस घटना के बाद से फिर किसी को स्वामीजी की परीक्षा लेने का साहस नहीं हुआ। भोर के समय नाग नगरवधू के पैरों से अलग होकर एक ओर चला गया। कहा जाता है कि आगे चलकर उक्त नगरवधू शरीर बेचने का रोजगार छोड़कर भगवत्पूजन में लग गई।

* * *

आनन्दबाग में रहते हुए स्वामीजी कठोर साधना करते रहे। संवत् १६२५ में उन्होंने कौपीन को भी तन से अलग कर दिया। अब वे पूर्ण रूप से दिगम्बर रहने लगे। इन दिनों की स्थिति के बारे में श्री भूधर बाबू ने लिखा है—"कड़ाके की सर्दी में स्वामीजी किसी प्रकार वस्त्र नहीं ओढ़ते थे। यहाँ तक कि धूनी भी नहीं जलाते थे। बायें हाथ पर सिर रखकर सोते रहते थे। शरीर पर ओस के कण साफ-साफ दिखाई देते थे। प्यास लगने पर किसी पात्र में पानी नहीं पीते थे बल्कि अंजलि में पानी पीते थे।"[1]

वेंकटेश्वर समाचार के अनुसार स्वामीजी का दर्शन करने के लिए नित्य हजारों लोग आते थे। कभी-कभी भीड़ के कारण सदर गेट बन्द करवा दिया जाता था। फिर भी दर्शनार्थियों की श्रद्धा और विनय से त्रस्त होकर स्वामीजी को दर्शन देना पड़ता था। स्वामीजी के शिष्यों की संख्या एक लाख से अधिक थी। इनमें राजा-महाराजा अगणित थे। उनकी योग-विभूति से प्रभावित होकर तत्कालीन अनेक देशी नरेशों ने अपनी कोठियाँ दुर्गाकुण्ड के समीप बनवाईं थीं। अयोध्या, काश्मीर, रींवा, नाटोर, भिनगा, डुमराँव, बेतिया, शियारसोल, दरभंगा-नरेश के भवन काशी में बने। बाबा के भक्त अनेक सरकारी कर्मचारी थे।[2]

भारत ही नहीं, भारत के बाहर विदेशों में भी स्वामीजी की ख्याति फैली हुई थी। भारत के अनेक राजा, महाराजा स्वामीजी की सेवा में विभिन्न प्रकार के व्यंजन, फल भेजा करते थे। सिंगापुर से केसूर, ईरान से बैर, चीन से केले, काबुल से सरदे, हैदराबाद से तरबूज आदि पोस्ट पार्सल से आते थे। स्वामीजी यह सब चीजें जिलाधीश, सिविल सर्जन, कोतवाल, जज आदि को दान कर देते थे। काशी, दरभंगा, बड़हल, नेपाल, नागौद, बेतिया, अयोध्या आदि नगरों के राजा भी ऐसे पदार्थ भेजते थे जिन्हें स्वामीजी कुत्तों, बन्दरों, बिल्लियों, गायों आदि को खिला देते थे।[3]

प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी काशी-प्रवासकाल में अक्सर स्वामीजी का दर्शन करने आते थे। एक दिन आने पर उन्होंने देखा कि एक देशी नरेश एक थाली में मोहरें भरकर उसे स्वीकार करने का अनुरोध कर रहे हैं। स्वामीजी चुपचाप बैठे हैं। यह देखकर गोस्वामीजी कहने लगे—

न योगी न भोगी न वा मोक्षाकांक्षी
न वीरो न धीरो न वा साधकेन्द्रः।
न शैवो न शाक्तो न वा वैष्णवो वा
वधूतश्चिदानन्दरूपो महेशः॥
श्मशाने गृहे वा हिरण्ये तृणे वा
तनूजे रिपौ वा हुताशे जले वा।
स्वकीये परे वा समत्वेन बुद्धे
विरजेहवधूते द्वितीयो महेशः॥

---

[1] दि इण्डियन डेली न्यूज, १६०० ई०, पृष्ठ ८।

[2] वेंकटेश्वर समाचार, २१ जुलाई, सन् १८६६ ई०।

[3] अमृत बाजार पत्रिका, १८ मई, १६०० ई०।

रूस के युवराज अपने छोटे भाई के साथ भास्करानन्दजी स्वामी का दर्शन करने आये थे। योगियों के पास आते ही उनके तेज का प्रभाव पड़ता है। युवराज स्वामीजी से अत्यन्त प्रभावित हुए। चार वर्ष बाद अपने एक दूत के द्वारा अनेक रूसी फल भिजवाए थे।

अंग्रेजी साहित्य के प्रसिद्ध कथाकार मार्क ट्वेन को भारत में सबसे अधिक भास्करानन्दजी के व्यक्तित्व ने प्रभावित किया था। स्वामीजी के बारे में उनके कई लेख प्रकाशित हुए हैं।

भारत के तत्कालीन जनरल लंकहर्ट, उनकी पत्नी, लेफ्टिनेण्ट जनरल और मेजर जनरल के साथ अमेठी-कोठी में स्वामीजी का दर्शन करने गये। सन् १८६८ ई० में उत्तर प्रदेश के गवर्नर श्री जे० डिगेश आये थे।[1]

जब मार्क ट्वेन के लेख प्रकाशित हुए तब जर्मनी के सम्राट् कैसर विलियम द्वितीय ने श्री ग्रफ कर्णिगसमार्क को अपना दूत बनाकर काशी भेजा ताकि स्वामीजी कुछ दिनों के लिए जर्मनी में आकर उस देश को पवित्र करें। स्वामी ने दूत से कहा—''मेरी यह प्रतिज्ञा है कि काशी छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं जाऊँगा।''

अमेरिका, फ्रांस तथा इंग्लैण्ड के पत्रों में उन दिनों स्वामीजी के बारे में अनेक लेख प्रकाशित हुए थे। भारत में हिन्दी, अंग्रेजी, बंगला, मराठी पत्र-पत्रिकाओं में जीवन-चरित्र प्रकाशित हुए हैं।

संवत् १६३० में पण्डित मिश्रीलाल मिश्र का मन उचट गया। लड़का संन्यासी बन गया। एकमात्र पौत्र की अकालमृत्यु हो गई। एक दिन किसी को बिना कोई सूचना दिये वे काशी चले आये और यहाँ संन्यास लेकर रहने लगे। बाद में यहीं उनका निधन हो गया। उधर घर पर मिश्रीलालजी की पत्नी अपने पति, पुत्र, पौत्र को खोने के बाद बदरीनाथ दर्शन करने गईं। वहाँ ऐसी बीमार हुईं कि भगवान् ने उन्हें भी अपने यहाँ बुला लिया।

* * *

कलकत्ते से एक लखपति सेठ काशी आये। नगर में रहने की अपेक्षा वे छावनी-क्षेत्र में किराये का मकान लेकर रहने लगे। यहाँ रहते हुए उन्होंने देखा कि इस क्षेत्र के अधिकांश अंग्रेज नर-नारी किसी भारतीय योगी की चर्चा करते हैं। उनका दर्शन करने जाते हैं। कौतूहलवश एक दिन वह भी स्वामीजी के पास आये।

कुछ देर बाद स्वामीजी ने आदेश दिया कि अब तुम वापस चले जाओ। लखपति सेठ गया नहीं, बल्कि चुपचाप वहीं बैठा रहा। सुबह से दोपहर, फिर शाम हो गई। स्वामीजी ने कहा—''भूख-प्यास को रोककर यहाँ बैठने से क्या लाभ होगा। जाओ, घर जाकर आराम करो।''

सेठ ने कहा—''घर जाकर क्या करूँगा? मन में बड़ी अशान्ति है। यहीं भूखा-प्यासा प्राण दे दूँगा। अगर आपकी कृपा प्राप्त......।''

---

[1] भारत जीवन, २६ दिसम्बर, १८६८ ई०।

स्वामीजी ने बात काटते हुए कहा—''मैं जानता हूँ कि तुम्हारी पत्नी गुजर गई है और अभी तक अशौच दूर नहीं हुआ है, पर यहाँ तुम नित्य क्लब जाते हो, विदेशी रमणियों के साथ रंगरेलियाँ मनाते हो।''

देखते ही देखते सेठ के चेहरे का रंग उड़ गया। उन्होंने अनुभव किया कि यह सब बातें मेरे सिवा कोई जानता भी नहीं। स्वामीजी कैसे जान गये। जरूर त्रिकालदर्शी हैं। आत्मग्लानि और पश्चात्ताप ने उन्हें प्रायश्चित्त के लिए प्रेरित किया। स्वामीजी के चरण आँसुओं से धोते रहे। दयालु स्वामीजी ने उनके अपराधों को क्षमा करते हुए बाद में उन्हें दीक्षा दी।

* * *

इसी प्रकार की एक घटना का उल्लेख श्री क्षेत्रचन्द्र बसु ने किया है। उन्होंने लिखा है—''पत्नी के निधन के बाद मेरा मन उचाट हो गया। शान्ति प्राप्त करने के उद्देश्य से स्वामीजी के निकट गया। मुझे देखते ही उन्होंने कहा—'क्यों बेकार परेशान हो रहे हो? अभी तुम्हें पुनः नये सिरे से गृहस्थी बसानी है'।''

''स्वामीजी की बातें सुनकर मैं चौंक उठा। मैंने अपनी पत्नी के निधन की चर्चा तक नहीं की थी, पर अन्तर्यामी ने सब कुछ जान लिया। मैं गुरुदेव के समीप काफी देर तक बैठा था। सहसा मैंने देखा कि एक महिला की छाया-मूर्ति जो गोद में बालक लिए हुए थी, मेरे आसपास टहल रही है।

तभी उस छाया-मूर्ति की ओर देखते हुए स्वामीजी ने कहा—'मेरी राय है कि अब तुम घर चले जाओ। मेरा यह भी आदेश है कि तुम पुनः एक विवाह कर लो। अगर ऐसा नहीं कर सके तो भविष्य में मेरे यहाँ मत आना।' इस आदेश को शिरोधार्य कर मैं घर वापस आया। पुनर्विवाह हुआ। सोहागरात को देखा—यह वही मूर्ति थी जिसे काशी में गुरुदेव के पास देखा था।

''विवाह के तीसरे दिन मैं हैजे से पीड़ित हो गया। डॉक्टरों ने जवाब दे दिया। माँ ने व्याकुल होकर गुरुदेव के पास तार भेजा—''आपके आदेश पर मैंने लड़के का विवाह किया। अब वह मरणासन्न है, इसे बचाइये।'' तुरत तार से जवाब आया—''घबराओ मत। तुम्हारा लड़का ठीक हो जायगा।'' स्वामीजी का तार आने के बाद मेरी हालत में सुधार होने लगा।

''मुझे इस तरह मौत के मुँह से निकलते देख मेरे बहनोई राय रमानाथ घोष स्वामीजी के प्रति श्रद्धा से विगलित हो उठे। वे स्वयं अपनी एक समस्या लेकर बाबा के पास गये। बात यह थी कि उनका एकमात्र पुत्र था। वे उसका विवाह करने में हिचक रहे थे। जन्म-पत्रिका के अनुसार १६वें वर्ष में मारकेश योग था। स्वामीजी से राय माँगने पर उन्होंने कहा—'आप लड़के का विवाह कर दीजिए।'

''स्वामीजी से आश्वासन पाकर रमानाथ सपत्नीक वापस चले आये। उनके जाने के बाद एक ज्योतिषी जो कि स्वामीजी के पास बैठा था, बोले—'महाराज, इस बालक पर संकट आनेवाला है और आपने उसके विवाह की आज्ञा कैसे दे दी?'

''स्वामीजी ने कहा—'जिस लड़की के साथ इस लड़के का विवाह होनेवाला है, उसके भाग्य में वैधव्य लिखा है, उसे कौन मिटा सकता है? उसके कर्म इस लड़के के कर्म से संयुक्त हैं। उसे विधवा होना ही है। लेकिन जब तक मैं जीवित हूँ तब तक उसकी अकालमृत्यु नहीं होगी।'

''आगे चलकर स्वामीजी हैजे से पीड़ित हुए। उधर लड़का घोड़े से गिर पड़ा। कुछ दिनों तक स्वामीजी अचेतावस्था में थे और बाद में अपना कलेवर छोड़ दिया। ठीक उसी समय वह बालक भी चल बसा।''

* * *

महाराजा के शिष्यों में अयोध्या के नरेश श्री प्रतापनारायण सिंह थे। एक बार काशी आकर वे स्वामीजी की सेवा में काफी दिनों तक रह गये। अचानक एक दिन राज्य से तार आया। तार पाते ही राजा साहब यात्रा की तैयारी करने लगे। बाद में स्वामीजी के पास आकर अनुमति माँगी।

स्वामीजी ने कहा—''यात्रा स्थगित कर दो। अभी तुम काशी के बाहर नहीं जा सकते।''

यह आज्ञा सुनकर राजा साहब सहम गये। राजा साहब के राज्य में एक घटना हो गई जिसके लिए उन्हें जाना आवश्यक है और इधर स्वामीजी जाने की आज्ञा नहीं दे रहे हैं। अजीब कशमकश थी। उन्होंने निवेदन किया कि मेरा जाना बहुत जरूरी है।

स्वामीजी ने कहा—''अगर इतना आवश्यक है तो जिस गाड़ी से जाने का निश्चय किया है, उससे मत जाओ। बाद में जो गाड़ी जानेवाली हो, उससे जाओ।''

इस आज्ञा को शिरोधार्य कर राजा साहब यथासमय स्टेशन आये तो पता चला कि इसके पहलेवाली गाड़ी जौनपुर के समीप मालगाड़ी से टकरा गई है। रास्ता साफ होने में समय लगेगा। गुरुदेव की भविष्यवाणी पर उनका तन-मन पुलकित हो उठा।

एक बार स्वामीजी ने संवत् १९५२ में कानपुर के भक्त गयाप्रसाद के विशेष आग्रह पर उनके यहाँ जाने का निश्चय किया। वे चाहते थे कि यह यात्रा चुपचाप हो, मन में एक शंका थी कि अयोध्या-नरेश को अगर पता चल गया तो वह जरूर रोक लेगा। स्वामीजी की शंका सही साबित हुई। अयोध्या स्टेशन पर गाड़ी के रुकते ही कई हजार लोग स्वामीजी की जयजयकार करने लगे। महाराजा ने नतजानु होकर चरणधूलि ली। भक्त के आग्रह पर स्वामीजी को उनके महल तक जाना पड़ा।

अयोध्या के इतिहास में वह महान् दिवस था। ऐसा दृश्य बीसवीं शताब्दी में किसी को कभी देखने के लिए नहीं मिला था। स्टेशन के बाहर खड़े रथ में तेरह घोड़े लगे हुए थे और उस पर स्वामीजी को बैठाकर स्वयं राजा प्रतापनारायण सिंह बहादुर कोचवान के रूप में रथ को आगे बढ़ाने लगे। सड़क के दोनों ओर अपूर्व सजावट थी। लाखों लोग पलक-पाँवड़े बिछाये फूलों की बरसात कर रहे थे।

महल में लाकर राजा साहब ने उनके चरणों को सरयू के जल से धोया। इसके

बाद छत्रपति शिवाजी ने जिस प्रकार समर्थ गुरु रामदास के चरणों में सब कुछ समर्पित किया था, ठीक उसी प्रकार प्रतापनारायण सिंह ने कोषागार, अस्त्र, सेना, पूरे परिवार को गुरुदेव को समर्पित कर दिया।

अयोध्या से स्वामीजी कई जगह होते हुए मैथालालपुर अपने गाँव आये। यहाँ कई लाख लोगों की भीड़ एकत्रित थी। स्वामीजी के लिए पहले से मंच तैयार था। स्वामीजी जिस रास्ते से पैदल आ रहे थे, उस पर हजारों लोग लोटने लगे, क्योंकि उन्हें चरण-रज लेना था, पर इस माहौल में सभी के लिए सुलभ नहीं था। कम-से-कम इस पवित्र भूमि पर पड़े पावन चरण-रज की गन्ध शरीर स्पर्श कर ले।

मंच पर बैठते ही स्वामीजी ने इधर-उधर देखने के बाद पूछा—''यहाँ लछमन मल्लाह कहीं हो तो बुलाओ।''

यह आदेश पाते ही पुलिस और कार्यकर्ता तत्पर हो गये। दो घण्टे बाद वह मिला। स्वामीजी के पास जाते ही उन्होंने उसका हाथ पकड़कर अपनी बगल में बैठाया। आज उसके भाग्य पर लोग धन्य-धन्य कह उठे। कुछ ने कहा—''स्वामीजी गरीबों के देवता हैं।''

स्वामीजी के यहाँ काफी बड़े-बड़े लोग आते थे, इसलिए उनके बारे में यह प्रचारित हो गया था कि वे बड़े आदमियों से सम्पर्क रखते हैं जब कि उपर्युक्त उदाहरण से यह धारणा गलत प्रमाणित हो गई। उनकी दृष्टि में राजा-रंक समान थे।

काशी में सहाय नामक एक तेली रहता था। उसका नित्य का नियम था कि सबेरे स्नान करने के बाद वह सबसे पहले स्वामीजी का दर्शन करता था। इसके बाद अपने काम पर जाता था। उसे देखते ही स्वामीजी कह उठते थे—''आओ, मेरे बाप।''

केवल यही नहीं, काशी के कुछ खोमचेवाले, दुकानदार, नौकरी पेशेवाले साधारण लोग स्वामीजी का दर्शन करने के बाद अपने-अपने गन्तव्य स्थल जाते थे। नगर के संगीतज्ञ सबसे पहले स्वामीजी को अपना संगीत सुनाने के बाद समारोह में जाते थे। एक प्रकार से स्वामीजी सभी के लिए गृह-देवता थे।

* * *

ख्यातिप्राप्त डॉक्टर भादुड़ी महाशय डकारों से परेशान थे। अक्सर यह पीड़ा इतनी बढ़ जाती थी कि वे परेशान हो जाते थे। स्वामीजी के निकट आकर उन्होंने अपने कष्ट का वर्णन करते हुए कहा कि प्रभु, आशीर्वाद दीजिए।

स्वामीजी ने उन्हें सो जाने को कहकर उनके पेट पर हाथ फेरते हुए कहा—''ठीक हो गया।'' उसी दिन से उनका कष्ट दूर हो गया।

एक शिष्य अपने गुरुदेव का दर्शन करने आया। प्रणाम करने के बाद उसने कहा—''भगवन्, आज मैं घर वापस जा रहा हूँ।''

स्वामीजी ने उसे एक फल देते हुए कहा—''इस फल को साथ लेते जाओ। घर जाकर सबसे पहले अपने तीसरे पुत्र को खिला देना।''

शिष्य महोदय समझ नहीं पाये कि आखिर तीसरे पुत्र को क्यों खाने को दे रहे हैं। प्रसाद तो सभी खा सकते हैं। कलकत्ता आने पर उन्होंने देखा कि उनका तीसरा पुत्र मरणासन्न है। झट सारी बातें समझ गये। डॉक्टरी इलाज रोककर उन्होंने अपने तीसरे पुत्र को वह फल खिलाया। उसी दिन से वह स्वस्थ होने लगा।

* * *

वाराणसी का ब्रह्मनाल-निवासी शीतलाप्रसाद स्वामीजी का परम भक्त था। एक दिन शीतलाप्रसाद का पुत्र तीसरी मंजिल से नीचे गिर पड़ा। हालत चिन्ताजनक हो गई। डॉक्टरों ने जवाब दे दिया। यह देखकर वे उसी हालत में बच्चे को लेकर स्वामीजी के पास आये।

दयामय स्वामीजी ने उसे अपना पादोदक दिया। बच्चे के मुँह में पादोदक पड़ते ही वह होश में आ गया और स्वस्थ हो गया।

इस घटना के कुछ ही रोज बाद सुखीरपुर-निवासी एक ब्राह्मण आया। उसकी बीमारी अजीब थी। वह जो कुछ खाता, तुरत कै हो जाती थी। इस रोग के कारण उसका स्वास्थ्य काफी खराब हो गया था। आगन्तुक अपनी व्यथा को व्यक्त करे, उसके पहले ही स्वामीजी ने कहा—''पाण्डेजी, आप जरा जल्दी से खिचड़ी बनाइये।''

खिचड़ी बन जाने पर स्वामीजी के सामने परोसी गई। भास्करानन्दजी ने उस थाली से एक दाना चावल लेकर खाया। शेष खिचड़ी ब्राह्मण महाशय से खाने को कहा। पाण्डेजी ने डरते-डरते खाया। काफी देर बाद स्वामीजी ने कहा—''जाओ, अब डर नहीं है।''

कानपुर जिले के बाबू नारायण सिंह स्वामीजी के शिष्य थे। नारायण सिंह जब स्वामीजी के दर्शन के लिए काशी आते थे तब सपत्नीक आते थे। इस बार वे चुपचाप अकेले रवाना हो गये, क्योंकि पत्नी गर्भवती थी। इस हालत में उन्हें ले जाना उचित नहीं था। गाड़ी मुगलसराय पहुँची तो देखा—जनाने डिब्बे से उनकी पत्नी बाहर निकल रही हैं। अब क्या करते। लाचारी में सपत्नीक बाबा के दरवाजे में आये।

दूसरे ही दिन पत्नी को प्रसव-वेदना होने लगी। उसकी हालत देखकर नारायण सिंह उद्विग्न हो उठे। शहर में कहीं रहते तो कुछ करते। बाबा के आश्रम में कौन मददगार बैठा है।

ठीक इसी समय मानकी नामक एक महिला बाबा को प्रणाम करने आई। उसे देखते ही स्वामीजी ने कहा—''मेरे साथ आ।''

नारायण सिंह जिस कमरे में ठहरे हुए थे, वहाँ जाकर नारायण सिंह से बिना कोई प्रश्न किये उन्होंने मानकी से कहा—''भीतर कमरे में ठकुराइन हैं। तू भीतर चली जा और उनके सिर पर हाथ फेरती हुई कहना—''दस दिन देर से बच्चा हो।'' यह वाक्य केवल तीन बार कहना।''

स्वामीजी की आज्ञानुसार मानकी भीतर गई और तीन बार स्वामीजी की बातों को दोहराया। तुरत प्रसव-वेदना दूर हो गई। स्वामीजी मुस्कराते हुए वापस चले गये।

* * *

ढाका जिले में स्थित बहरमपुर गाँव के निवासी श्री चण्डीचरण बसु मधुमेह रोग से पीड़ित थे। धीरे-धीरे रोग बढ़ता गया। चारों ओर से निराश होकर वे स्वामीजी के पास आये। उद्देश्य था कि मरने के पहले दीक्षा ले लूँगा वरना पशु-योनि में जन्म लेना पड़ेगा।

बसु महोदय का संकल्प सुनकर स्वामीजी ने कहा—''तुम्हें दीक्षा देने में कोई आपत्ति नहीं है, पर पहले अपने कुलगुरु से मन्त्र ले लो। इसके बाद दीक्षा लेने आना।''

स्वामीजी की राय सुनकर बसु महोदय निराश हो गये। कुलगुरु ढाका में हैं, ऐसी हालत में ढाका जाना, फिर वापस आना सम्भव नहीं था। मुमकिन था कि इस तरह की यात्रा में प्राण-नाश हो जाय। इसी चिन्ता में वे परेशान रहने लगे। एक दिन गंगा-स्नान कर लौट रहे थे तो सहसा कुलगुरु से उनकी मुलाकात हो गई। वे खुशी से उछल पड़े। कुलगुरु को सारी बातें बताकर उनसे मन्त्र लिया और इसके बाद स्वामीजी से दीक्षा।

इस घटना के बाद वे स्वामीजी के पास बराबर जाते रहे। एक दिन स्वामीजी ने कहा—''अब घर वापस चले जाओ। तुम्हारी बीमारी ठीक हो गई है।''

बसु महोदय ने सोचा—गुरुदेव केवल आश्वासन दे रहे हैं। तकलीफ तो पहले की तरह मौजूद है।

स्वामीजी ने कहा—''तुम्हारा रोग उनतालीसवें दिन बिलकुल ठीक हो जायगा, अब बेकार समय बरबाद मत करो।''

बसु महोदय मन में द्विधा लेकर कलकत्ता चले आये। कुछ दिनों बाद यहाँ रहते समय उनके नाम इस आशय का एक तार आया कि तुरत ढाका चले आइये।

बसु महोदय अपने डॉक्टरों से राय लेने के लिए गये कि सफर करने लायक मेरी स्थिति है या नहीं? डॉक्टरों ने उन्हें सफर करने से मना किया। लेकिन कार्य इतना जरूरी था कि उन्हें जाना ही पड़ा। ढाका आने के ठीक चौथे दिन उन्होंने अनुभव किया कि उनका सारा कष्ट दूर हो गया है।

तुरत डायरी खोलकर उन्होंने देखा तो ज्ञात हुआ कि आज से उनतालीस दिन पूर्व स्वामीजी ने जो भविष्यवाणी की थी, आज वह सत्य प्रमाणित हो गई।

इस घटना के कुछ दिनों बाद बसु महाशय ढाका शहर में डिप्टी कलक्टर बन गये। इस पद पर कार्य करते हुए एक बार गुरुदेव का दर्शन करने के लिए काशी आये।

अचानक एक दिन बसु महोदय की इच्छा हुई कि स्वामीजी को अपने हाथ का बनाया भोजन खिलाऊँ, पर दूसरे ही क्षण ख्याल आया कि मैं तो शूद्र जाति का हूँ। भला मेरे हाथ का बनाया भोजन गुरुदेव कैसे करेंगे?

बसु महोदय इसी प्रकार का ख्याली पुलाव पका रहे थे कि उन्होंने देखा—दरवाजे के पास स्वामीजी खड़े हैं। उन्हें प्रणाम करते ही स्वामीजी ने कहा—''देखो चण्डी, तुम्हें लोग शूद्र समझते हैं जब कि तुम ब्राह्मण हो। मेरी आज इच्छा हुई कि तुम्हारे हाथ का बनाया भोजन करूँ। कल ऐसा आयोजन करना।''

बसु महाशय का हृदय श्रद्धा से परिपूर्ण हो उठा। लगा, जैसे शबरी के घर राम भोजन करने आये हैं। उनकी आँखों से आँसू ढुलक पड़े। दूसरे दिन गुरुदेव ने बसु महोदय को बुलाकर जनेऊ पहनाया और उनके हाथ का भोजन प्रेम से किया।

भोजन के पश्चात् स्वामीजी ने कहा—"देखो चण्डी, अब आगे से तुम ब्राह्मण के अलावा अन्य किसी के हाथ का बनाया भोजन मत करना।"

इसी प्रकार की कृपा उन्होंने प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी के एक शिष्य पर की थी। उक्त शिष्य ने एक बार स्वामीजी से प्रश्न किया—"प्रभो, भक्ति कैसे होती है?"

इस प्रश्न का उत्तर देने के बदले उन्होंने कहा—"तुम इसी वक्त आनन्दबाग से निकल जाओ।"

वह व्यक्ति नाराज होकर चला गया। एक सामान्य प्रश्न पूछने पर इतना क्रोध क्यों? रात को उसके स्वप्न में आकर स्वामीजी ने उसके प्रश्न का उत्तर विस्तार से दिया था।

* * *

बड़हल की रानी एक बार मुकदमे के चक्कर में बुरी तरह उलझ गईं। समय गुजरता गया। यहाँ तक कि इस मुकदमे में सारा धन स्वाहा होता गया। किसी ने रानी साहिबा को सलाह दी कि स्वामी भास्करानन्दजी के पास चले जाइये। वे आपको राहत दिला देंगे।

स्वामीजी के पास आने पर उन्होंने कहा—"घबराओ मत। तुम्हारी जीत होगी।"

मुकदमे में विजय प्राप्त करने के बाद बड़हल की रानी ने स्वामीजी के पास डेढ़ लाख रुपये भिजवाये जिसे उन्होंने लेने से इनकार कर दिया। जब स्वामीजी ने यह धन नहीं लिया तब उन्होंने आनन्दबाग के समीप एक शिव-मन्दिर बनवा दिया। स्वामीजी के मना करने पर भी उनकी एक संगमरमर की मूर्ति बनवाकर स्थापित की।

स्वामीजी से काशी-नरेश ईश्वरीप्रसाद सिंह भी प्रभावित थे। उन्होंने स्वामीजी की एक मूर्ति बनवाकर अपने किले में स्थापित की थी।

* * *

जिन दिनों स्वामीजी आनन्दबाग में थे, उन दिनों काशी में दो अन्य योगिराज रहते थे। साक्षात् विश्वनाथ के अवतार तैलंग स्वामी जो अक्सर भास्करानन्दजी के यहाँ चले आते थे। दूसरे स्वामी विशुद्धानन्दजी थे जिन्हें स्वामीजी बड़े भैया कहा करते थे।

एक बार तैलंग स्वामी आनन्दबाग में आये। स्वामी भास्करानन्दजी ने पहरेदार को बुलाकर कहा—"देखो, अब कोई भी मुझसे मिलने आये तो उसे मत आने देना। चाहे कोई भी हो। फाटक बन्द करके वहीं पहरा दो।"

इस घटना के आधे घण्टे बाद बिहार के किसी स्टेट के एक राजा साहब अपने तामझाम सहित आये। पहरेदार ने कहा—"आज स्वामीजी से मुलाकात नहीं हो सकती। आप कल आइयेगा।"

राजा गरजे—''जानते हो मैं कौन हूँ? खोलो दरवाजा।''

पहरेदार ने कहा—''सख्त हुक्म है कि इस वक्त स्वामीजी किसी से नहीं मिलेंगे और न फाटक खोला जायगा।''

एक सामान्य पहरेदार इस प्रकार राजाज्ञा की उपेक्षा करे, इसे वे कैसे सहन कर सकते थे? राज-रोष उमड़ा। तुरत उन्होंने अपने साथ आये प्यादों से कहा—''फाटक तोड़ डालो। हम स्वामीजी से मिलकर ही रहेंगे। देखें, कैसे कोई रोकता है?''

फाटक टूट गया। डर से पहरेदार भीतर खबर देने दौड़ा। उसके पीछे-पीछे राजा साहब बाग के भीतर आये तो एक अद्भुत दृश्य देखा—बाग में तैलंग स्वामी और भास्करानन्दजी मृतावस्था में पड़े हैं। कहीं दोनों संन्यासी नाटक तो नहीं कर रहे हैं, इसे जाँचने के लिए उन्होंने तैलंग स्वामी के शरीर को स्पर्श किया।

स्पर्श करते ही दोनों व्यक्ति प्रकृतिस्थ होकर बैठे और तीव्र दृष्टि से राजा की ओर देखने लगे। राजा को लगा, जैसे आग की एक लहर उनके पूरे बदन को जला रही है। वे भयवश भाग खड़े हुए। थोड़ी दूर जाते-जाते गिर पड़े और बेहोश हो गये। बाद में उनके प्यादे उन्हें गाड़ी पर लादकर ले गये।

कुछ दिनों बाद पचास कर्मचारियों के साथ उपहार लेकर राजा साहब स्वामीजी की सेवा में उपस्थित हुए थे। काफी अनुनय करने पर उन्हें क्षमा मिल गई। लेकिन इस घटना के बाद से बिना आज्ञा कोई भी व्यक्ति स्वामीजी का दर्शन नहीं कर पाता था।

* * *

नेपाल के एक राणा मीना बहादुर नेपाल की ओर से कलकत्ता में कौंसिलर थे। आप बाबा के शिष्य थे। बाबा के उपदेशों का आप पर इतना प्रभाव पड़ा कि आप पत्नी, पुत्र, परिवार, सम्पत्ति आदि छोड़कर हिमालय में जाकर साधना करने लगे। आप अपनी साधना में इतने उन्नत हो गये थे कि जब इच्छा होती थी तभी अपने गुरुदेव का दर्शन कर लेते थे। स्वामीजी सूक्ष्म रूप में वहाँ पहुँच जाते थे।

एक बार यही मीना बहादुर बाबा के पास बैठे थे। ठीक इसी समय कलकत्ता हाईकोर्ट के जज सर रमेशचन्द्र मित्र बाबा के पास आये और बातचीत के सिलसिले में उन्होंने बाबा से पूछा—''महाराज, कल आपने बताया था कि जगत् कुछ नहीं है। यह तो बन्ध्या-पुत्र की तरह अलीक है। ऐसी स्थिति में जब हम कुछ स्पर्श करते हैं तब उसकी अनुभूति क्यों होती है?''

इस प्रश्न को पूछने के बाद उन्होंने स्वामीजी के चरण को स्पर्श किया और उसे अपने माथे से लगाने को थे कि सहसा स्वामीजी अपने आसन से अदृश्य हो गये।

दोनों व्यक्ति आश्चर्यचकित हो रहे थे कि बाबा शून्य से नीचे आकर पुनः अपने आसन पर बैठ गये। इसके बाद उन्होंने कहा—''देखो रमेश, मेरा यह शरीर शून्य में वृक्ष की तरह अगर अलीक नहीं होगा तो अभी मैं था और अभी नहीं, ऐसा क्यों होता है?''

इतना कहकर स्वामीजी पुनः अदृश्य हो गये। इस बार भी दोनों व्यक्ति दंग रह गये। इस प्रकार कई तरह के अलौकिक चमत्कार उन दोनों व्यक्तियों को दिखाते हुए उनकी शंकाओं का समाधान स्वामीजी ने किया।

* * *

इस बार जब स्वामीजी मैथालालपुर गये तब अपने साथ लछमन मल्लाह को सपत्नीक ले आये थे। दोनों स्वामीजी की सेवा करते रहे। ठीक इन्हीं दिनों बम्बई में प्लेग फैला। इसके साथ ही अकाल पड़ा। अन्नाभाव के कारण काफी लोग मरने लगे।

एक दिन स्वामीजी के मुँह से निकल गया—''कलि के पापों का घड़ा पूरा हो रहा है। अब इस दुनिया में न रहना ही उत्तम है। उस समय बनारस के डिप्टी कलक्टर सामने बैठे थे। उनकी ओर देखते हुए स्वामीजी ने कहा—''मेरे बाद मेरे शव को चार टुकड़ों में काटकर चार दिशाओं में फेंक देना ताकि पक्षियों को आहार मिल जाय।''

डिप्टी कलक्टर पण्डित महाराज ने कहा—''भगवन्, आप अपना यह आदेश वापस ले लें। मुझसे यह कार्य नहीं होगा।''

११ जुलाई, बुधवार, १८६६ ई० के दिन स्वामीजी हैजे से पीड़ित हुए। धीरे-धीरे हालत खराब होती गई। शनिवार तक वे अपने आसन पर बैठे थे। १५ जुलाई रविवार के दिन वे परमधाम चले गये।

दुर्गाकुण्ड पर उनका स्मृति-मन्दिर तथा नगर के बाहर भास्करा तालाब उनकी स्मृति सँजोये हुए है।

■ ■ ■

स्वामी सदानन्द सरस्वती

प्रातःकाल का समय था। पण्डित राममाणिक्य अपनी चटशाला में छात्रों को कठोपनिषद् की व्याख्या करते हुए अर्थ बता रहे थे। ठीक इसी समय एक स्वरूपवान् किशोर आया। साष्टांग प्रणाम करने के पश्चात् वह विनीत भाव से खड़ा हो गया।

आगन्तुक की ओर प्रश्नसूचक दृष्टि से देखते हुए राममाणिक्य ने कहा—"आयुष्मान् हो। कहो वत्स, क्या चाहते हो?"

किशोर ने हाथ जोड़ते हुए कहा—"आपके चरणों का आशीर्वाद प्राप्त करने आया हूँ। मुझे अपना शिष्य बनने का गौरव प्रदान करें। आपसे ज्ञान प्राप्त करने आया हूँ।"

राममाणिक्यजी को समझते देर नहीं लगी कि बालक ज्ञान-पिपासु है। अध्ययन के लिए आया है। उन्होंने नाम-धाम और अब तक के अध्ययनों के बारे में कई प्रश्न पूछने के बाद कहा—"मुझे तुम्हारे जैसे शिष्य को विद्यादान देने में हर्ष होगा। किन्तु अपने निवास आदि का प्रबन्ध स्वयं करना होगा।"

किशोर ने कहा—"निवास के लिए 'तांतीपाड़ा' (जुलाहों का मुहल्ला) में मुझे एक घर मिल गया है। शेष प्रबन्ध श्रीचरणों की कृपा से कर लूँगा।"

पण्डितजी ने हर्षित होकर कहा—"साधु, साधु। तब अगली प्रतिपदा से अध्ययन प्रारम्भ करना।"

काशी, मिथिला, काश्मीर, नवद्वीप की भाँति किसी जमाने में वर्तमान कलकत्ता नगरी का एक कोना जो वराहनगर नाम से जाना जाता है, संस्कृत-विद्या का केन्द्र था। यह अठारहवीं शताब्दी के मध्य की बात है। इसी वराहनगर में वंश-परम्परा से बंगाल के प्रसिद्ध पण्डित राममाणिक्य रहते थे, जिनकी चटशाला में विभिन्न स्थानों से विद्यार्थी संस्कृत के अध्ययन के लिए आते थे। राममाणिक्य के छात्र राजा, महाराजा और जमींदारों के यहाँ आकर पूजा-पाठ तथा धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेते थे।

कुछ ही दिनों में राममाणिक्य ने अनुभव किया कि आगन्तुक किशोर अत्यन्त मेधावी छात्र है। आगे चलकर यह बालक अपने गुरु का मुख उज्ज्वल करेगा। जब किसी गुरु को प्रतिभाशाली छात्र प्राप्त होता है तब वे अपना सारा ज्ञान उसे दे देने में संकोच नहीं करते। आगन्तुक किशोर शिरोमणि भट्टाचार्य कुछ ही दिनों में अपने श्रम तथा लगन से अनेक विषयों में पारंगत हो गया।

इसी बीच गुरुदेव राममाणिक्य का निधन हो गया। शिरोमणि भट्टाचार्य गुरुपुत्र श्री

गौरीप्रसाद तर्कालंकार को चटशाला में गुरु-पद पर आसीन करके उनकी सहायता करने लगे। कुछ वर्षों बाद गुरु-पुत्र गौरीप्रसाद का निधन हो गया।

गौरीप्रसाद के निधन के बाद शिरोमणिजी का दिल टूट गया। उन्होंने अपने गुरु की चटशाला को गुरुजी के पौत्र रामप्रसाद विद्यालंकार को सौंपकर अपने निवास-स्थान पर अलग से एक चटशाला की स्थापना की। इस प्रकार वराहनगर में दो चटशालाएँ कार्य करने लगीं। रामप्रसादजी भी असाधारण पण्डित थे, परन्तु शिरोमणि भट्टाचार्य की ख्याति उनसे अधिक थी। बंगाल के कई जमींदार और राजा आपके मन्त्र शिष्य बन गये।

शिरोमणि भट्टाचार्य की ख्याति दिन-प्रतिदिन बढ़ती गई। इसके पीछे भट्टाचार्यजी की पत्नी का विशेष हाथ था। वह असाधारण सुन्दरी थी। दूसरी ओर अत्यन्त कोमल हृदयवाली थी। दूर-दूर से आये छात्रों को भोजन देती, स्नेह देती और अस्वस्थ होने पर तीमारदारी करती थी।

शिरोमणिजी की इन सेवाओं से प्रभावित होकर गाँव के लोग अनाज-तरकारी की सहायता देते थे। जब किसी सामग्री की आवश्यकता होती तब वे सहायता करते थे। छात्र पानी भरते, लकड़ी चीरते, चारों ओर सफाई करते। जीवन सरल गति से चल रहा था।

शिरोमणिजी के प्रिय छात्रों में चिन्तामणि, संन्यासीचरण, ठाकुरदास और कालीचरण मैत्र थे, पर वे सबसे अधिक स्नेह ठाकुरदास से करते थे। वह इसलिए कि ठाकुरदास उनके गुरु पण्डित राममाणिक्य का प्रपौत्र था। इसके अलावा एक और प्रमुख कारण था।

बढ़ती उम्र के कारण शिरोमणिजी अशक्त हो गये। शरीर में जगह-जगह मांस झूलने लगा था। अपने गुरु से प्राप्त मन्त्र की साधना करते हुए भगवान् से प्रार्थना करते—''प्रभो, अब मुझे मुक्ति दो।''

सहसा एक दिन जब वे ध्यानस्थ हुए तब उन्हें लगा जैसे वे किसी अदृश्य स्थान में उपस्थित हैं और एक शक्ति उन्हें आदेश दे रही है—''शिरोमणि, अभी समय नहीं आया है। जब तक ठाकुरदास के ज्ञान का विकास नहीं होगा तब तक तुम्हें प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। वह शापभ्रष्ट ऋषि है। यही उसका अन्तिम जन्म है। उसके ज्ञान का विकास होने पर तुम्हारी लीला समाप्त होगी।''

शिरोमणिजी यह भविष्यवाणी सुनकर चौंक उठे। उन्हें ठाकुरदास की जन्म-कहानी अच्छी तरह याद है। गुरुदेव के पुत्र गौरीप्रसाद असाधारण विद्वान् थे। उनके जीवनकाल में ही ठाकुरदास ने वृद्धावस्था में जन्म लिया था। गौरीप्रसाद के दो पौत्रों का विवाह हुए काफी दिन व्यतीत हो गये थे, पर दोनों ही सन्तान-हीन रहे। गौरीप्रसाद की पत्नी चिन्तित हो उठी। कहीं यह वंश लुप्त न हो जाय। अपने पति से आज्ञा लेकर गौरीप्रसाद की पत्नी तारकेश्वर धाम चली गई।

बंगाल स्थित तारकेश्वर धाम को आज भी जाग्रत् स्थान माना जाता है जहाँ नित्य लाखों यात्री आते हैं और मन्नत मानते हैं। बाबा तारकेश्वर से गौरीप्रसाद की पत्नी ने कामना की कि मेरे रामप्रसाद को एक ऐसा पुत्र दो जो मेरे वंश का मुख उज्ज्वल कर सके। मैं उसका लालन-पालन तुम्हारा प्रसाद समझकर करूँगी।

दादी की मनोकामना पूरी हो गई। यथासमय बच्चे ने जन्म लिया। दादी ने पोते का नाम रखा—ठाकुरदास। शुक्ल पक्ष के चाँद की तरह लड़का बड़ा होता गया। मुण्डन-अन्नप्राशन के बाद दादा चले गये। उपनयन होने के बाद पिता रामप्रसाद परलोकवासी हुए। इस घटना के बाद माँ भी पति के मार्ग पर चली गई। बालक अभी बचपन की ड्योढ़ी पार भी नहीं कर सका और स्नेह-दान करनेवाले तीन-तीन प्राणी चले गये।

ठाकुरदास उपेक्षित न रहे, इसलिए दादी पिता-माता के अभाव को दूर करने के लिए सबसे अधिक स्नेह देने लगी। बड़ी भाभियों ने उसे देवर के रूप में नहीं, बेटे के रूप में स्वीकार किया।

अक्सर जब बड़े भाई प्रेमचन्द उसे डाँटते तब दादी नाराज होकर कहती—''शर्म नहीं आती छोटे भाई को डाँटते? मेरा फूल-सा पोता तेरे कारण पीला पड़ता जा रहा है।''

प्रेमचन्द वेगान्तवागीश कहते—''दादी, तुम्हारे दुलार ने इसे ढीठ बना दिया है। ब्राह्मण-वंश का लड़का है, अगर वेद-उपनिषद् नहीं पढ़ेगा तो खायेगा क्या?''

दादी कहती—''बड़ा होने पर जब बुद्धि आयेगी तब स्वयं ही सब करेगा। जिस बच्चे ने माँ-बाप के स्नेह को नहीं जाना, उस पर कठोर शासन करेगा तो मैं किसके सहारे जिऊँगी? मेरे जीवित रहते मेरा योग्य पुत्र, गृहलक्ष्मी बहू चली गई। कम-से-कम उसे मेरे सहारे छोड़ दे।''

इस घटना के बाद प्रेमचन्द ने डाँटना-फटकारना बन्द कर दिया। ठाकुरदास दिनभर अपने साथियों के साथ खेलता था। अक्सर न जाने कहाँ गायब हो जाता था। लेकिन उसके सभी साथी यह जानते थे कि वह श्मशान-भूमि में रहनेवाले भैरवी तथा सिद्ध बाबा के पास नित्य जाता है। अक्सर कालीघाट जाकर मन्दिर-दर्शन करता है।

प्रेमचन्द को पूर्ण रूप से निःस्पृह देखकर दादी समझ गई कि वह मुझसे नाराज है। एक दिन स्वयं ठाकुरदास को लेकर शिरोमणि की चटशाला में पहुँचा आई। ठाकुरदास को पाकर शिरोमणिजी फूले नहीं समाये। आखिर गुरु-घराने का लड़का अपनी चटशाला छोड़कर मेरे यहाँ आया है।

शिरोमणिजी की चटशाला में ठाकुरदास का आगमन शुभ हुआ। वृद्ध पण्डित ने अनुभव किया कि जैसे उनके नेत्र की ज्योति बढ़ गई हो। उनमें नवजीवन और स्फूर्ति आ गई हो। अब मिजाज का चिड़चिड़ापन भी दूर होने लगा है। कुछ ही दिनों में शिरोमणिजी ने अनुभव कर लिया कि यह सब ठाकुरदास के कारण हो रहा है।

* * *

बड़े भाई प्रेमचन्द और छोटे भाई ईशानचन्द दोनों ही सबेरे स्नान करने के बाद घर पर कुलदेवता की पूजा करते थे। पूजा के लिए बागों से फूल ले आने का काम ठाकुरदास को करना पड़ता था। नित्य भोर के समय वह गाँव के भिन्न-भिन्न बागों में जाकर फूल चयन करता था।

एक दिन जब वह बेल की पत्तियाँ तोड़ रहा था तब पता नहीं किधर से आवाज आई—''क्यों रे छोकरे, जिस टहनी से मैं पत्तियाँ तोड़ रहा हूँ, उसे तू क्यों तोड़ दे रहा है?''

ठाकुरदास ने कहा—''अरे वाह! मैं जिस डाली को पकड़ रहा हूँ, उसमें आप तोड़ रहे हैं। ऊपर से मुझ पर बिगड़ रहे हैं।''

वृद्ध ने कहा—''आखिर तू इन बेलपत्तियों को लेकर क्या करेगा? पूजा-पाठ कुछ जानता भी है?''

ठाकुरदास ने सोचा कि अगर पूजा करता हूँ, कहूँगा तो मन्त्र पढ़ने को कहेंगे, इसलिए उसने कहा—''मैं गायत्री-पाठ करता हूँ। पूजा तो दादा करते हैं।''

वृद्ध ने पूछा—''तू गायत्री मन्त्र जानता है? जरा सुना तो मुझे।''

ठाकुरदास से गायत्री मन्त्र सुनने के बाद वृद्ध ने कहा—''गायत्री मन्त्र जानता तो है, पर उच्चारण ठीक नहीं है। मन्त्र ठीक से उच्चारण करना सीख।''

ठाकुरदास ने कहा—''अब सीखूँगा।''

वृद्ध ने कहा—''मुझसे सिखेगा? मैं सिखा दूँगा। कल से और जल्दी यहाँ आ जाना। तुझे बहुत कुछ सिखा दूँगा। लेकिन देख, यह बात किसी से मत कहना, वरना कुछ भी नहीं सीख सकेगा।''

इतना कहने के पश्चात् वृद्ध ने सिर से लेकर हृदय और पीठ पर हाथ फेर दिया। ठाकुरदास एक झटके में सिहर उठा। उसे लगा जैसे तीव्र गति से कुछ उसके मस्तिष्क से उतरकर पैरों तक आ गया। जब तक वह प्रकृतिस्थ हो, उसके पहले ही वृद्ध महाशय न जाने कहाँ गायब हो गये। पता नहीं कहाँ रहते हैं, कौन हैं? इन्हें गाँव में तो कभी नहीं देखा।

लगातार तीन वर्ष तक उक्त अपरिचित वृद्ध से ठाकुरदास मन्त्र आदि की शिक्षा लेता रहा। घर या गाँव के किसी मित्र को यह बात मालूम नहीं हो सकी। नित्य पूजा-घर में फूल-बेलपत्तियाँ रखकर वह न जाने कहाँ गायब हो जाता था।

समय गुजरता गया। ठाकुरदास अब पन्द्रह वर्ष का हो गया था। एक दिन दादी ने प्रेमचन्द से कहा—''बेटा, मेरी बड़ी इच्छा है कि मेरे रहते ठाकुरदास का विवाह हो जाय। छोटी बहू को आशीर्वाद देकर भगवान् के दरबार में जाऊँ।''

प्रेमचन्द ने कहा—''दादी, तुम बिलकुल सठिया गई हो। इस कच्ची उम्र में दासू (घर का नाम) का विवाह करने से क्या फायदा? जो लड़का दिन-रात आवारों के साथ घूमता है, 'क' में आ की मात्रा 'का' नहीं जानता, उसका विवाह करने से क्या लाभ? ईशान के विवाह से क्या लाभ हुआ? पढ़-लिखकर भी किसी काम का नहीं हुआ। दिनभर अड्डेबाजी करता रहता है।''

कड़वी बातें सहनी पड़ती हैं। दादी जानती है कि घर का सारा बोझ प्रेमचन्द पर है। उन्होंने कहा—''नहीं रे, विवाह के बाद दासू की मति-गति ठीक हो जायगी।

यही अन्तिम काम है। तू मेरे सामने इसका विवाह कर दे। कौन जाने इसके कारण हमारा वंश चले।''

प्रेमचन्द को समझते देर नहीं लगी कि अगर इस कार्य को टालता गया तो दादी नित्य किचकिच करेगी। पका आम जल्द पेड़ से गिर पड़ता है। कौन जाने दादी कब चल दें। ठाकुरदास का विवाह हो गया।

बहू को गोद में बैठाकर दादी विलाप करने लगी—''अरे रामप्रसाद, तू कहाँ चला गया बेटा? आज तेरी दुलारी बहू आयी है रे।''

इस विवाह के कई माह बाद रामप्रसाद के एक शिष्य हरगोविन्द वराहनगर आये। अगले माह वे तीर्थयात्रा पर जानेवाले थे। यहाँ आने का उद्देश्य था—गुरुमाता से आशीर्वाद प्राप्त करना। बातचीत के सिलसिले में गुरुमाता ने कहा कि अगर असुविधा न हो तो मैं भी तीर्थयात्रा पर साथ चलूँ?

गुरुमाता के प्रस्ताव को हरगोविन्द ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। मझले पौत्र ईशानचन्द को साथ लेकर दादी तीर्थयात्रा के लिए चली गई। कुछ दिनों बाद ईशानचन्द को मुण्डित मस्तक और सफेद वस्त्र में आते देख प्रेमचन्द का हृदय धक्-सा रह गया। देखते ही देखते घर में कोहराम मच गया। सबसे अधिक विलाप ठाकुरदास करता रहा। आज उसने जीवन में पहली बार अनुभव किया कि दादी का स्नेह कितना महान् था।

* * *

श्रावण का महीना था। बाहर मूसलाधार पानी बरस रहा था। ऐसे मौसम में धुले कपड़े पहनते देख पत्नी राधारानी ने अपने पति ठाकुरदास से कहा—''इस मौसम में बाहर जाने की क्या जरूरत? पानी रुक जाय तब चले जाइयेगा।''

ठाकुरदास ने जवाब दिया—''अब मैं दूध पीता बच्चा नहीं हूँ। बीस वर्ष उम्र हो गई। आँधी आये या वर्षा, पर मुझे जाना ही पड़ेगा। डरो मत, साँप, भूत-प्रेत मुझे स्पर्श नहीं करेंगे और न पानी से कोई नुकसान होगा। जब लौटकर आऊँगा तब देखना मेरे कपड़े सूखे रहेंगे।''

राधारानी जानती है कि नित्य रात के समय पतिदेव कहीं चले जाते हैं। कहाँ जाते हैं, क्यों जाते हैं, यह नहीं बताते और न राधारानी इसके लिए उत्सुकता प्रकट करती है। प्रत्येक रात को जब वे सकुशल लौट आते हैं तब उसे सन्तोष हो जाता है।

स्वयं ठाकुरदास भी जानता है कि अगर पत्नी को सही बात बता दूँगा तो वह भयभीत हो उठेगी, तब साधना में विघ्न होगा। गुरुदेव ने इस दिशा में चुप रहने को कहा है।

धीरे-धीरे कई माह गुजर गये। नवरात्रि का पर्व आ गया। इन दिनों प्रेमचन्द के पास विभिन्न स्थानों से दुर्गा सप्तशती के पाठ के लिए बटुकों की माँग आती है। योग्य छात्रों को भेजने पर भी पाठ करनेवालों की कमी पड़ जाती है।

उस दिन धूप में बैठे तेल मालिश करते हुए प्रेमचन्द अपने-आप कहने लगे—''इतने बड़े पण्डित घराने में अयोग्य वंशधर पैदा हुए हैं। दो-दो भाइयों के रहते, पराये

घर के लड़कों को चण्डीपाठ के लिए भेजना पड़ रहा है। एक को अड्डेबाजी से फुरसत नहीं और दूसरा दादी के दुलार में मूर्ख निकल गया। मेरा क्या, मेरे बाद सभी को पता चलेगा जब हल जोतना पड़ेगा।''

ठीक इसी समय पूजा के लिए फूल लेकर ठाकुरदास आया। बड़े भैया की बातें सुनकर उसने कहा—''बड़े भैया, मुझे कहीं जाने की आज्ञा दें। मैं चण्डीपाठ करूँगा।''

बड़े भैया ने कहा—''ईशान लायक होकर भी नालायक है और तू तो पूरा गधा है। चला है चण्डीपाठ करने।''

दादा की बात लग गई। उन्हें क्या मालूम कि अब उनका छोटा भाई कितना योग्य हो गया है। अगर वे इसे जान पाते तो ऐसी बात न कहते। ठाकुरदास पूजा-घर से पोथी उठा लाया और दादा के सामने सस्वर पाठ करने लगा—

ॐ कालीं रत्ननिबद्धनूपुरलसत्पादाम्बुजामिष्टदां
काञ्ची-रत्न-दुकूल-हार-ललितां नीलां त्रिनेत्रोज्ज्वलाम्।
शूलाद्यस्त्रसहस्त्रमण्डितभुजामुद्वक्त्रपीनस्तनी-
माबद्धामृतरश्मिरत्नमुकुटां वन्दे महेशप्रियाम्॥
ॐ नमश्चण्डिकायै।

अभी पोथी का बेठन पूरी तरह खुला नहीं है। इधर पाठ प्रारम्भ हो गया। यह साहस प्रेमचन्द वेदान्तवागीश में भी नहीं है। वे तेल लगाना भूल गये। बड़ी बहू रसोईघर से बाहर आ गई। मझली बहू सफाई छोड़कर आँगन में आ गई। छोटी बहू, ईशान सभी आसपास आकर खड़े हो गये। राह चलते लोग इस मधुर कण्ठ से आकर्षित होकर भीतर आने लगे। वृक्षों पर पक्षियों का काकली स्वर शान्त हो गया। सभी लोग मन्त्रमुग्ध भाव से खड़े 'देवीसूक्तम्' का पाठ सुनते रहे। किसी को समय का कौन कहे, अपने तन-बदन की सुध नहीं रही।

एकाएक प्रेमचन्द उठ खड़े हुए और झट ठाकुरदास को गोद में उठाकर चूमने लगे। उनकी आँखों से आनन्द के आँसू बह निकले। उन्होंने पूछा—''क्यों रे पगले, किसने तुझे ऐसी शिक्षा दी? किसके यहाँ पढ़ता था? मुझे चौंकाने के लिए छिपाता आया है?''

ठाकुरदास ने सोचा कि गुरुदेव ने सही बात कहने को मना किया है। उसने कहा—''तांतीपाड़ा के शिरोमणि पण्डित के यहाँ पढ़ता हूँ।''

प्रेमचन्द उसके झूठ को पकड़ नहीं सके। जब कि वह उस अपरिचित वृद्ध से यौगिक-शक्ति के जरिये सारा ज्ञान प्राप्त करता रहा।

धीरे-धीरे समय गुजरता गया और इस बीच अनेक घटनाएँ हुईं। शिरोमणि भट्टाचार्य स्वर्गवासी हो गये। संन्यासीचरण ने विवाह कर लिया। गाँव की माता न जाने कहाँ चली गईं। अब केवल सिद्धबाबा गाँव में हैं। अक्सर अपने मित्रों के साथ उनके निकट ठाकुरदास जाता है। सिद्धबाबा हठयोग की शिक्षा देते हैं।

एक दिन बातचीत के सिलसिले में सिद्धबाबा ने जब यह देखा कि ठाकुरदास दूर चला गया है तब उन्होंने संन्यासीचरण से कहा—''तुम लोग ठाकुरदास का विशेष ध्यान रखना। वह साधारण प्राणी नहीं है। शापभ्रष्ट दिव्य पुरुष है। बहुत जल्द इस गाँव को छोड़कर दूर कहीं चला जायगा।''

संन्यासीचरण के अलावा अन्य किसी ने इस चेतावनी पर ध्यान नहीं दिया। लेकिन संन्यासीचरण ने सिद्धबाबा की चेतावनी पर विश्वास किया। इस घटना के बाद से उसने ठाकुरदास के साथ और अधिक घनिष्ठता बढ़ाई।

एक दिन गाँव के लोग चौंक उठे। सिद्धबाबा जो कई वर्षों से वराहनगर में रहते थे, न जाने कहाँ गायब हो गये। ठाकुरदास या उसके मित्रों को भी इसकी जानकारी नहीं थी। अब वे जहाँ बैठते थे, वहाँ अक्सर ठाकुरदास अकेला बैठकर ध्यान लगाने लगा।

एक दिन आँखें खोलने पर उसने देखा—सामने कई मित्र खड़े हैं। पूछा—''तुम लोग कब आये?''

संन्यासीचरण ने कहा—''काफी देर हुई। तुम ध्यानस्थ थे, इसलिए हम चुपचाप बैठे रहे। क्या सोच रहे हो?''

ठाकुरदास ने कहा—''इधर कुछ दिनों से तीर्थ-भ्रमण करने की इच्छा हो रही है। सोचता हूँ कि कहीं चल दूँ।''

संन्यासीचरण ने कहा—''यह तो शुभ समाचार है। मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा। कब चलोगे?''

बातचीत में दिन तथा समय निश्चित हो गया। चिन्तामणि और कालीचरण भी चलने को तैयार हो गये। अधिक रात गये ठाकुरदास अपने अपरिचित वृद्ध गुरुदेव के पास आशीर्वाद माँगने चला गया।

राधारानी गर्भवती थी। प्रसंव के सिलसिले में नैहर चली गई थी। ठाकुरदास ने सोचा कि सही बात कहने पर बड़े दादा अनुमति नहीं देंगे। ससुराल जाने का बहाना बनाकर वह कलकत्ते की ओर रवाना हो गया। उसके जाने के कई रोज बाद प्रेमचन्द को सही बात मालूम हुई। वे छोटे भाई के इस आचरण से बड़े दुःखित हुए। यह समाचार राधारानी तक पहुँच गया।

* * *

गाँव से चलकर चारों युवक कलकत्ता आये। यहाँ काली देवी का दर्शन करने के बाद पश्चिम की ओर बढ़ गये। गया, काशी, नैमिषारण्य, मथुरा, वृन्दावन आदि स्थानों का दर्शन करते हुए हरिद्वार पहुँच गये। मार्ग में एक साथी और साथ हो लिया।

जाड़ा समाप्त हो गया था। अप्रैल के अन्त में अनेक साधु-महात्मा तथा गृहस्थ बदरीनाथ दर्शन करने के लिए जा रहे थे। इन यात्रियों के साथ पाँचों युवक रवाना हो गये।

तीसरे दिन जब ये पाँचों युवक आगे बढ़ रहे थे तब मन्दगति से चलने के कारण ठाकुरदास थोड़ी देर के लिए पिछड़ गया। ठीक उसी समय उसे लगा जैसे

कोई उसका नाम लेकर पुकार रहा है। चकित दृष्टि से चारों ओर देखने पर कोई दिखाई नहीं दिया।

पुन: आवाज आने पर पीछे सुदूर दृष्टि जाने पर ठाकुरदास ने देखा—एक पहाड़ी पर एक संन्यासी खड़े हैं जो हाथ के इशारे से अपने पास बुला रहे हैं। मन्त्रमुग्ध की तरह ठाकुरदास उनकी ओर चल पड़ा। उस वक्त उसे यह होश नहीं रहा कि आगे मित्र-मण्डली गई है, जब वे उसकी तलाश करेंगे तो कैसे मुलाकात होगी। आगे चलनेवाले मित्रों को भी इसके बारे में ध्यान नहीं रहा। वस्तुत: यह दैवयोग पहले से ही निश्चित था।

पहाड़ी के समीप पहुँचने पर उक्त अपरिचित संन्यासी ने हाथ के इशारे से ऊपर आने का रास्ता बताया। इधर ठाकुरदास इस ऊहापोह में पड़ गया कि इन्हें मैं पहचानता नहीं, पर इन्हें मेरा नाम कैसे मालूम हो गया? मुझे क्यों बुला रहे हैं? आखिर यह हैं कौन?

ऊपर आने पर ठाकुरदास ने देखा कि उक्त संन्यासी जहाँ खड़े हैं, उनके ठीक पीछे एक गुफा है। तभी अपरिचित संन्यासी ने कहा—''जरा ठहरो। गुफा में अँधेरा है। प्रकाश की व्यवस्था कर लूँ तब बातें होंगी।''

गुफा में रोशनी जलाने के बाद संन्यासी अपने साथ ठाकुरदास को भीतर ले गये। वृद्ध संन्यासी ने कहा—''एक अपरिचित व्यक्ति ने कैसे तुम्हारा नाम लेकर पुकारा और यहाँ बुला लाया, इस पर शायद तुम्हें आश्चर्य हो रहा होगा। सम्भव है, कुछ डर भी लग रहा हो। तुम मेरे गुरुभाई हो। जिन गुरुदेव से तुम शिक्षा प्राप्त करते रहे, मैं भी उन्हीं पूज्यपाद का शिष्य हूँ। मैं गुरुदेव के आदेश से यहाँ हूँ। सारी बातें तुम्हें धीरे-धीरे मालूम हो जायेंगी। सामने कण्डाल में पानी है। मुँह-हाथ धो लो।''

मुँह-हाथ धोकर ठाकुरदास गुफा के भीतर आया तो देखा कि बाघ के चमड़े के आसन पर संन्यासीजी बैठे हैं और उनके ठीक सामने एक आसन बिछा है। उन्होंने खाली आसन की ओर बैठने का इशारा किया। प्रदीप के प्रकाश में ठाकुरदास ने देखा—गुफा की प्राचीरों को खोदकर आलमारियाँ बनाई गई हैं जिनमें पुस्तकें रखी हैं। गुफा की ऊँचाई अधिक नहीं है। तभी संन्यासीजी उठकर दूसरी ओर चले गये।

थोड़ी देर बाद एक पात्र में खाद्य-सामग्री और कमण्डल में पानी लेकर आये। उन्होंने कहा—''लो, भोजन करके आराम करो।''

ठाकुरदास ने कहा—''मुझे एक बात की चिन्ता सता रही है। मैंने अपने साथियों को कोई सूचना नहीं दी और न वे जान सके कि मैं यहाँ कैसे चला आया। वे लोग मेरे लिए चिन्तित हो रहे होंगे। शायद मेरी तलाश में परेशान होंगे।''

वृद्ध ने कहा—''उनके लिए परेशान होने की जरूरत नहीं है। आज नहीं तो कल वे अन्य यात्रियों के साथ आगे बढ़ जायेंगे। उनसे तुम्हें अलग होना ही था। मैं यहाँ काफी दिनों से गुरुदेव के आदेश की प्रतीक्षा कर रहा था। मुझे आदेश प्राप्त हो गया है। अब आराम करो। शेष बातें कल होंगी।''

दूसरे दिन भोर के वक्त जब ठाकुरदास सोकर उठा तो संन्यासीजी ने कहा—''चलो, गंगा-स्नान कर आयें।''

कल शाम के धुँधलके में इस स्थान को ठाकुरदास ठीक से देख नहीं सका था। इस वक्त गुफा से बाहर आने पर उसने देखा कि कल वह टेढ़ी-मेढ़ी पगडण्डियों के सहारे यहाँ आया था। गुफा की दूसरी ओर गंगा नदी तक जाने का सरल मार्ग है। स्नान के पश्चात् गुफा की दूसरी ओर के बाग से फूल-बेलपत्ती लाकर वह पूजा करने लगा।

पूजा समाप्त करने के बाद पुनः गुफा के बाहर आया। बाहर एक पहाड़ी व्यक्ति खड़ा था। इसे देखते ही उसने प्रणाम किया। जब तक वह उस पहाड़ी से कोई प्रश्न करे, उसने पहले ही गुफा से संन्यासीजी खप्पर लेकर बाहर आये। पहाड़ी ने खप्पर में भोजन की सामग्री तथा कमण्डल में दूध उड़ेल दिया। चलते समय पुनः दोनों व्यक्तियों को प्रणाम किया।

संन्यासीजी के पीछे-पीछे पुनः गुफा के भीतर आकर वह चारों ओर अच्छी तरह से देखने लगा। गुफा के भीतर दूसरी ओर से काफी रोशनी आ रही है। बगल में एक कमरा है। इस कमरे के बाहर फूलों का बाग है। सामने कई देवी-देवताओं की मूर्तियाँ हैं। बगल में रसोई बनाने का सरंजाम है।

अभी वह चारों ओर देख ही रहा था कि तभी भीतर से संन्यासीजी आये और कहा—''सामनेवाली मूर्ति गुह्यकाली की है। उनकी बगल में शिवजी और उधर बदरीनाथजी की हैं। गुरुदेव ने मुझे बताया था कि एक दिन तुम यहाँ आओगे। तुम्हारे आने तक मुझे यहाँ रहना पड़ेगा। अब तुम आ गये हो। आगे से यह सब तुम्हारे जिम्मे रहेगा।''

भोजन के बाद संन्यासी ने कहा—''खाने-पीने की चिन्ता करने की जरूरत नहीं। यहाँ नित्य सुबह राजा की ओर से सीधा आता है। शाम के समय मिष्टान्न और फल एक व्यक्ति दे जाता है। यहाँ के राजा धार्मिक प्रवृत्ति के हैं। साधुओं को राज्य की ओर से सीधा और दूध भेजा जाता है। यहाँ जो लोग साधना करते हैं, उनका ख्याल रखा जाता है। इस पहाड़ी पर इधर-उधर अनेक साधु-सन्त तपस्या कर रहे हैं। राजा के अलावा स्थानीय पहाड़ी भी आवश्यक सामग्री दे जाते हैं। गुरुदेव की आज्ञा है कि अब तुम यहाँ कुछ दिनों तक साधना करो। जब तक उनकी आज्ञा न हो तब तक कहीं मत जाना। अध्ययन के लिए अनेक पुस्तकें हैं। गुरुदेव और भगवान् की कृपा से यहाँ तुम्हें कोई कष्ट नहीं होगा।''

शाम को वही पहाड़ी युवक फल-मिष्टान्न आदि दे गया। सारी सामग्री लेकर वृद्ध स्वामी ने भगवान् को भोग लगाया। भोजन के पश्चात् दोनों सो गये। दूसरे दिन सोकर उठने पर ठाकुरदास ने देखा कि वह गुफा में अकेला है। कुछ देर प्रतीक्षा करने के बाद वह प्रातःक्रियादि करने चला गया।

लौटकर आने पर पहाड़ी युवक को सारी सामग्री लेकर खड़े रहते देखा। अब ठाकुरदास समझ गया कि वृद्ध संन्यासी यहाँ की सारी जिम्मेदारी मुझे सौंपकर चले गये।

* * *

कुछ दिनों बाद एक दिन विचित्र घटना हुई। नियम के अनुसार पहाड़ी युवक से भोज्य पदार्थ लेने के लिए ठाकुरदास जब गुफा के बाहर आया तो देखा कि उसके सामने बाल्यसखा संन्यासीचरण खड़ा है। दोनों एक-दूसरे को हर्षमिश्रित आश्चर्य से देखने लगे। फिर दोनों आपस में गले मिलकर आँसू बहाने लगे।

ठाकुरदास ने पहाड़ी युवक से सीधा लेने के बाद संन्यासीचरण से कहा—''आओ, भीतर आओ। वहीं बैठकर बातें करेंगे।''

गुफा के भीतर दोनों आराम से बैठ गये। इसके बाद ठाकुरदास ने इन लोगों से बिछड़ने से लेकर अब तक की सारी घटनाओं का उल्लेख किया।

संन्यासीचरण ने कहा—''तुम्हें किसी ने आवाज दी, इसे मैंने सुना। उस समय चढ़ाई की थकान के कारण ख्याल नहीं किया। सोचा, हम लोगों में से किसी ने पुकारा होगा। कुछ दूर आगे आने पर हम लोग विश्राम के लिए एक जगह बैठे तब देखा कि तुम गायब हो। कुछ देर इन्तजार करने के बाद तुम्हारी तलाश में पीछे की ओर लौटे। चारों ओर नाम ले-लेकर पुकारा गया, फिर भी कुछ पता नहीं चला। हम भयभीत हो उठे। आखिर ठाकुरभाई कहाँ गायब हो गये। हम लोगों के साथ चलनेवाले यात्री आगे बढ़ गये। इधर शाम का अँधेरा बढ़ता जा रहा था। आश्रय के लायक आसपास कोई स्थान नहीं था। एक पेड़ के नीचे आग जलाकर हम चारों बैठ गये। मैं रातभर रोता रहा। पुनः दूसरे दिन हम वहीं बैठे रहे ताकि कहीं रुक गये हो तो आने पर मुलाकात हो जाये। उसी दिन शाम को एक संन्यासी आये। हमारी मुसीबत सुनकर उन्होंने कहा—''आप लोगों ने अपने मित्र के बारे में जो कुछ कहा, उससे लगता है, वे महापुरुष हैं। जब वे तलाश करने पर नहीं मिले तब व्यर्थ में समय गँवाने से अच्छा है कि आप लोग आगे बढ़ जायें।'' संन्यासी की बातों का प्रभाव हम सब पर पड़ा और हम लोग तीसरे दिन आगे चल पड़े। पहाड़ी जलवायु हम लोगों को सह्य नहीं हुई। पहले कालीचरण, फिर चिन्तामणि बीमार हुआ। इसके बाद हमारा अपरिचित साथी भी अस्वस्थ हो गया। इन तीनों की तीमारदारी करने में काफी दिन लग गये। बाद में मैंने दोनों मित्रों को घर वापस भेज दिया। लेकिन तुम्हारी याद बराबर बनी रही। आगे बढ़ने की अपेक्षा मैं भी वापस लौट आया। जहाँ से तुम गायब हुए थे, वहीं आकर एक कुटिया में रहने लगा। मुझे विश्वास हो गया था कि तुम यहीं कहीं पर होगे। जब कभी मुझे मौका मिलता तब तुम्हारी तलाश में इधर-उधर चक्कर काटा करता था। बरसात का मौसम होने के कारण यात्रियों का आवागमन कम हो गया। मैं अपनी कुटिया में बैठा जंगल का दृश्य देखा करता था। एकाएक एक दिन देखा कि एक पहाड़ी युवक नित्य एक पहाड़ी पर कुछ सामान लेकर जाता है और खाली हाथ वापस लौटता है। उत्सुकतावश आज मैंने उस युवक का पीछा किया और तुम मिल गये।''

ठाकुरदास ने कहा—''बरसात के कारण ही हम आपस में मिल सके, वर्ना मैं कुटिया से बाहर नहीं निकलता। भोजन करने के बाद अध्ययन या साधना करता हूँ। स्नान के लिए पीछे के रास्ते से जाता हूँ। अच्छा हुआ, जो तुम आ गये। अब यहीं रह जाओ। एक से दो भले।''

इस घटना के कुछ दिनों बाद एक दिन संन्यासीचरण ने देखा कि वह गुफा में अकेला है। उसने सोचा—शायद शौच के लिए गया होगा। इसके बाद वह स्वयं शौचादि के लिए चला गया। वापस लौटने पर देखा—एक अपरिचित बालक उसकी प्रतीक्षा में खड़ा है।

संन्यासीचरण ने पूछा—''कहो वत्स, क्या बात है?''

बालक ने एक पत्र उसे दिया। उसमें लिखा था—''भाई संन्यासी, पूज्यपाद गुरुदेव के आदेश से मुझे तुरत रवाना होना पड़ा। तुम्हें बताकर नहीं आ सका। तुम्हारी इच्छा हो तो इस गुफा में अनिश्चित काल के लिए रह सकते हो। यदि न रहना चाहो तो इस बालक को पूजादि की जिम्मेदारी सौंपकर जा सकते हो। अब गुरुदेव का आदेश मिलने पर ही मुलाकात सम्भव होगी। तुम्हारा, ठाकुरदास।

संन्यासीचरण ने आगन्तुक बालक से कई प्रश्न किये, पर वह सन्तोषजनक उत्तर नहीं दे सका। उसने कहा—''मैं पंजाब में रहता था। कल ही यहाँ आया हूँ और मुझे यह पत्र देकर भेजा गया है।''

लड़के की बातों से स्पष्ट पंजाबी लहजा प्रकट हो रहा था। संन्यासीचरण ने पूछा—''क्या तुम अकेले इस गुफा में रह सकते हो?''

''क्यों नहीं रह सकूँगा? गुरुदेव का आदेश तो मुझे मानना ही पड़ेगा। गुरुदेव जब दूसरा आदेश देंगे तब उसका पालन करूँगा।''

लड़के का साहस देखकर संन्यासीचरण चकित रह गया। ठाकुरदास के अभाव के कारण उसकी यहाँ रहने की इच्छा नहीं हुई। बालक को सारी जिम्मेदारी देकर वह तीर्थ-भ्रमण करने निकल गया।

* * *

विभिन्न स्थानों की यात्रा करने के बाद संन्यासीचरण अपनी जन्मभूमि वापस आया। यहाँ बहन तथा बहनोई उसकी सारी जायदाद हड़प चुके थे। अपनी पत्नी को लेकर वह पुनः देशाटन करने निकल गया।

सहसा गंगासागर के मेले में एक अपरिचित संन्यासी सामने आकर खड़ा हो गया और कहा—''आपका नाम शायद संन्यासीचरण है। ठाकुरदास की तलाश यहाँ कर रहे हो? आजकल वह अमरकंटक में हैं। अभी नहीं, अभी दो वर्ष बाद वह तुमसे काशी में मिलेगा। चिन्ता करने की जरूरत नहीं।''

इस संन्यासी की भविष्यवाणी से संन्यासीचरण ने श्रद्धा से गद्गद होकर उन्हें प्रणाम किया। सिर उठाते ही देखा—वे न जाने कहाँ गायब हो गये। चारों ओर देखने पर भी दिखाई नहीं पड़े।

लगातार दो वर्ष भ्रमण करते हुए संन्यासीचरण सपरिवार काशी आया। नित्य गंगा-स्नान और मन्दिर-दर्शन करता था। एक दिन चौसट्टी देवी के मन्दिर से कुछ दूर आगे उसे लगा जैसे उसका नाम लेकर कोई बुला रहा हो। पीछे मुड़कर देखा। एक गेरुआ वस्त्रधारी संन्यासी पास आ रहा था।

पास आने पर संन्यासीचरण को पहचानने में देर नहीं लगी। वह बालसखा ठाकुरदास था। हाथ में कमण्डल, भाल पर भस्म, श्मश्रु-आनन। आज गले से लगने के बदले उसने ठाकुरदास के चरण-स्पर्श किये।

बातचीत के सिलसिले में ठाकुरदास ने कहा—''गंगासागर के मेले में तुम्हारी मुलाकात जिस संन्यासी से हुई थी, वे मेरे गुरुभाई स्वामी अघोरानन्द थे जिन्होंने तुमसे यह कहा था कि दो वर्ष बाद मैं काशी में तुमसे मिलूँगा। आज मुलाकात हो गई।''

ठाकुरदास के साथ अन्य कई संन्यासी थे। गली में भीड़ थी। साथी संन्यासियों में से किसी ने कहा—''स्वामीजी, हम आगे बढ़ें?''

ठाकुरदास ने कहा—''हाँ, आप लोग मठ में चलिये। मैं थोड़ी देर बाद आऊँगा।''

स्वामियों के जाने के बाद ठाकुरदास ने कहा—''चलो, तुम्हारे डेरे पर बातें होंगी। बीच बाजार में बातें करना उचित नहीं है।''

संन्यासीचरण के डेरे पर आने के बाद दोनों में बातें होने लगीं। संन्यासीचरण की सारी रामकहानी सुनने के बाद ठाकुरदास ने कहा—''अच्छा ही हुआ जो तुमने गाँव छोड़ दिया। मैं तो यहाँ गुरुदेव की आज्ञा से आया हूँ। शीघ्र ही यहाँ से चल दूँगा। स्वामी अघोरानन्द को तुमने पहचाना नहीं होगा। हरिद्वार में पहाड़ के ऊपर से मुझे बुलानेवाले वही थे। तुम लोग जब हरिद्वार के आगे किसी वृक्ष के नीचे आग जलाकर बैठे रहे तब दूसरे दिन जिस संन्यासी ने तुम लोगों को आगे बढ़ने का निर्देश दिया था, वे भी स्वामी अघोरानन्द ही थे। जिस बालक को गुफा की जिम्मेदारी सौंपकर तुम चले गये, उसका नाम सच्चिदानन्द है। आजकल वह गिरनार पर साधना कर रहा है।''

थोड़ी देर चुप रहने के बाद ठाकुरदास ने कहा—''गुरुदेव के आज्ञानुसार मैंने संन्यास-ग्रहण कर लिया है। अब मैं पूर्ववर्ती नाम त्यागकर सदानन्द सरस्वती बन गया हूँ। यों मेरे भक्त और शिष्य मुझे ठाकुर सदानन्द के नाम सम्बोधन करते हैं। तुमसे कुछ गुप्त बातें कहनी हैं। उसे यहाँ नहीं कह सकता। नगर के पश्चिमी क्षेत्र में बटुकभैरव तथा बैजनाथ मन्दिर के मध्य में कामाख्या देवी का मन्दिर है। कल रात को वहीं मिलना।''

इतना कहकर सदानन्दजी चले गये। दूसरे दिन रात के वक्त संन्यासीचरण कामाख्या देवी के मन्दिर में जाकर उनकी प्रतीक्षा करने लगा। थोड़ी देर बाद वे आये और उसे साथ लेकर बैजनत्था मन्दिर के पीछे चले गये।

वहाँ से वापस आते समय सदानन्द सरस्वती ने राह चलते कहा—''मैंने जितनी क्रियाएँ बताईं, उनका अभ्यास करते रहना। इससे साधना के मार्ग पर बढ़ते जाओगे। साधक के लिए यही चरम लक्ष्य होता है।''

संन्यासीचरण को अन्य और उपदेश देकर सदानन्दजी ने काशी छोड़ दी। इसके बाद वे कहाँ गये, इसका पता संन्यासीचरण को नहीं लगा।

* * *

सदानन्दजी अपने गुरुदेव के आज्ञानुसार भारत के तमाम महत्त्वपूर्ण स्थानों में भ्रमण करते हुए पुन: अमरकंटक गये। जिस वक्त वे घने जंगलों से गुजर रहे थे, उसी समय उन्होंने देखा कि मार्ग में एक व्यक्ति असहाय अवस्था में पड़ा कराह रहा है। आसपास कोई नहीं था।

सन्त-स्वभाववश वे उसकी सेवा करने लगे। उनके स्पर्श से उसे आराम मिला और वह गहरी नींद में सो गया। यह देखकर स्वामीजी प्रात:क्रिया से निवृत्त होकर भोजन बनाने लगे। भोजन के बाद थोड़ा-सा प्रसाद उस व्यक्ति के लिए उन्होंने छोड़ दिया।

अब तक वह व्यक्ति होश में आ गया था। स्वामीजी का प्रसाद ग्रहण करते ही उसकी सारी कमजोरी दूर हो गई। यह देखकर स्वामीजी ने पूछा—''इस जंगल में तुम कैसे आ गये?''

उस व्यक्ति ने कहा—''मैं अपने लोगों के साथ तीर्थयात्रा करने निकला था। अचानक अस्वस्थ हो गया। मुझे इस हालत में छोड़कर लोग चले गये।''

स्वामीजी ने कहा—''तुम्हारे सभी साथी आगे बढ़ गये हैं। अब तुम जीवन में कभी बीमार नहीं होगे। तेज चाल से चलकर अपने साथियों को पकड़ लो।''

उस व्यक्ति ने कहा—''स्वामीजी, आपके कारण मुझे जीवन-दान मिला है, अब मुझे दूर न भगाइये। मैं इन चरणों की सेवा करता रहूँगा।''

स्वामीजी ने कहा—''मुझे किसी की सेवा की जरूरत नहीं है। अपनी सेवा तुम स्वयं करो। मैं ठहरा रमता योगी। आज यहाँ, कल वहाँ।''

इतना सुनने के बाद उस व्यक्ति ने स्वामीजी के चरण पकड़ लिए और रोने लगा। उसका आग्रह देखकर लाचारी में स्वामीजी ने कहा—''ठीक है। कुछ दिन मेरे साथ रह सकते हो। क्या नाम है तुम्हारा?''

''हरिचरण।''

स्वामीजी अपने साथ हरिचरण को लेकर विभिन्न स्थानों का दर्शन करते हुए रोयलेश्वर[1] तीर्थ आये। यहाँ पहाड़ के ऊपर एक शिव-मन्दिर है। यहाँ कुछ दिन विश्राम करने के बाद जंगल में प्रवेश कर गये। हरिचरण ने देखा—चारों ओर हिंसक जानवर घूम रहे थे। स्वामीजी लगातार दो दिन तक बिना अन्न-जल ग्रहण किये बराबर चलते जा रहे हैं। इधर हरिचरण भूख से व्याकुल हो उठा था। संकोचवश वह स्वामीजी से कुछ कह नहीं पा रहा था, क्योंकि वे भी भूखे थे। इस जंगल में एक भी फल का वृक्ष दिखाई नहीं दे रहा था।

दोपहर के वक्त स्वामीजी ने कहा—''तुम्हारे कष्ट का अनुभव मुझे हो रहा है। मैं यहाँ विश्राम कर रहा हूँ। तुम यहाँ से आगे जाकर बायीं ओर चले जाओ और देखो कि वहाँ कोई जलाशय है या नहीं।''

---

[1] पंजाब स्थित प्रसिद्ध तीर्थस्थान।

हरिचरण आज्ञा पाकर रवाना हुआ और थोड़ी देर बाद तेजी से दौड़ता हुआ वापस आ गया। सारी घटना सुनने के बाद उन्होंने कहा—''जब मैंने कहा कि बायीं ओर जाना तब दायीं ओर क्यों गये?''

स्वामीजी इतना कह पाये थे कि लंगूरों का एक झुण्ड सामने आकर बैठ गया। हरिचरण ने कहा—''यही सब मुझे········।''

वह अपनी बात पूरी नहीं कर सका। भय से हकलाने लगा। स्वामीजी ने कहा—''डरो मत।''

इसके बाद उन्होंने लंगूरों की ओर देखते हुए कहा—''लड़का गलती से उधर चला गया था। इसे पानी लाने के लिए भेजा था।'' फिर हरिचरण की ओर देखते हुए स्वामीजी ने कहा—''अब बायीं ओर जाओ। तुम गलत रास्ते पर चले गये थे। बायीं ओर तालाब है, वहीं से पानी ले आओ। इनसे डरने की जरूरत नहीं। ये सब रामजी के भक्त हैं।''

हरिचरण डरते-डरते आगे बढ़ा। रह-रहकर पीछे देख लेता था। लेकिन उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि अब लंगूर उसका पीछा नहीं कर रहे हैं। पानी लाने के बाद उसने स्वामीजी को यह कहने सुना—''मेरे साथ आया बालक दो दिन से कुछ खाया नहीं। इसके खाने लायक फल ले आओ।''

आश्चर्य पर आश्चर्य हो रहा था। स्वामीजी लंगूरों से अपनी भाषा में बात कर रहे थे और इधर लंगूर उनकी आज्ञा का पालन कर रहे थे। थोड़ी देर बाद दो लंगूर कोहँड़े जैसा एक फल लाये। स्वामीजी ने उस कोहँड़े को पैंतीस टुकड़ों में काटकर उसे आग पर सेंकने लगे। इसके बाद एक-एक टुकड़ा प्रत्येक लंगूर को खिलाने लगे। लंगूर बिना किसी प्रकार की हुज्जत किये अपना-अपना हिस्सा खाते रहे। अन्त में दो टुकड़े शेष रहे। उनमें से एक टुकड़ा और दूसरे से कुछ और भाग स्वामीजी ने खाया।

इधर हरिचरण मन ही मन कुढ़ रहा था। इस वक्त तो उसे इतनी भूख सता रही थी कि वह पूरे फल को खा जाता। एक टुकड़े से कम में क्या होगा। लेकिन दो कौर खाते ही उसका पेट भर गया। भूख की सारी ज्वाला समाप्त हो गई। फल नहीं, मानो अमृत था।

अपने अपराध को स्वीकार करते हुए हरिचरण ने स्वामीजी के चरण पकड़ लिये। स्वामीजी ने कहा—''तुम्हारा क्रोध अकारण नहीं था। भूख की ज्वाला ऐसी ही होती है। इस फल के गुण तुम्हें नहीं मालूम हैं। यह एक अजीब प्रकार का फल है जो इस जंगल में होता है और इसे थोड़ा सेंककर खाना चाहिए। इस फल के बारे में यहाँ के लंगूरों को ही जानकारी है। जब कोई संन्यासी इस मार्ग से गुजरता है तब यहाँ के लंगूर उनकी भूख इसी फल के जरिये मिटा देते हैं। भले ही ये जानवर हैं, पर इनमें बुद्धि है।''

कुछ देर विश्राम करने के बाद पुनः दोनों व्यक्ति रवाना हुए। आगे-आगे लंगूरों का दल मार्ग दिखाता हुआ चल रहा था। जंगल के बाहर आने पर स्वामीजी ने लंगूरों से कहा—''अब तुम लोग वापस चले जाओ। फिर कभी आऊँगा तब मुलाकात होगी।''

इतना सुनते ही लंगूरों का दल वापस चला गया। हरिचरण के लिए यह आश्चर्यजनक घटना थी। स्वामीजी की बातें लंगूरों ने कैसे समझ लीं?

इस बार स्वामीजी हरिचरण को साथ लेकर जूनागढ़ स्थित गिरनार पर्वत पर आये। चोटी पर चढ़ने के बाद उन्होंने कहा—''सच्चिदानन्द, कहाँ हो?''

इस आवाज को सुनते ही सच्चिदानन्द के बदले एक बाघ आया। उसे देखते ही हरिचरण की हालत खराब हो गई। स्वामीजी निर्भय होकर उसके सिर पर हाथ फेरने लगे। तभी सामने की गुफा से एक युवक साधु बाहर आया और स्वामीजी के चरण-स्पर्श किये।

कुशल-मंगल के पश्चात् सभी गुफा के भीतर आये। ज्ञातव्य है कि हिमालय की तरह यहाँ भी अनेक सन्त साधना करते हैं, पर सामान्य लोग उन सन्तों को देख नहीं पाते। सदानन्द स्वामी के आगमन को सुनकर अनेक सन्त उनका दर्शन करने आये। उन लोगों के आग्रह पर सदानन्दजी वहाँ ठहर गये। इनमें से कोई वेदान्त पढ़ने लगा और कोई योग के बारे में ज्ञान प्राप्त करने लगा।

कुछ दिनों के बाद स्वामी सदानन्द ने हरिचरण से कहा—''अब तुम अपने घर वापस चले जाओ। मुझे यहाँ न जाने कब तक ठहरना पड़ेगा। तुम्हारे लिए यह सौभाग्य की बात है कि इस पर्वत पर रहनेवाले सन्तों का दर्शन कर सके। घर जाकर भजन करो, इससे तुम्हारा कल्याण होगा।''

हरिचरण साथ रहने के लिए आग्रह करने लगा। स्वामीजी ने कहा—''नहीं। अब तुम्हें वापस जाना ही होगा। मैं यहाँ कुछ लोगों को क्रिया योग की शिक्षा दूँगा और स्वयं कुछ क्रियाएँ करूँगा जो तुम्हारे रहते सम्भव नहीं होगा। एक बात और, मैंने तुमसे कहा था कि वापस जाकर मेरी लड़कियों से मुलाकात कर मेरा समाचार देना। उनसे यह भी कहना कि वे मेरा श्राद्ध न करें, मैं कृत श्राद्ध पिण्ड हूँ। यह मेरा आदेश है।''

हरिचरण इस आज्ञा के विपरीत कुछ कहने का साहस नहीं कर सका। स्वामीजी वहाँ दो वर्ष रहने के बाद काशी चले आये।

काशी में उन दिनों कामाख्या मन्दिर के पास राधाश्रम नामक एक बृहद् बाग था। उसी बाग में एक वृक्ष के नीचे वे ध्यानमग्न होकर बैठे रहते थे। प्राय: कुछ संन्यासी वहाँ शास्त्रार्थ करने आ जाते थे। नगर में एक सिद्ध महात्मा आये जानकर अक्सर दर्शनार्थी भी आ जाते थे। स्वामीजी के निकट स्वामी घरघरानन्द, काष्ठजिह्वा स्वामी, तैलंग स्वामी, झोला बाबा आदि महात्मा भी आते थे। सदानन्द स्वामी भी उनके आश्रम में यदाकदा जाते थे।

एक दिन एक सेठ स्वामी सदानन्द का दर्शन करने आया। व्यापार में काफी घाटा होने के कारण उसका हृदय अशान्त था। स्वामीजी उसकी मन:स्थिति भाँप गये। बोले—''जाओ, घर जाकर शुद्ध चित्त से भगवत्-भजन करो। तुम्हारा कल्याण होगा।''

स्वामीजी के आज्ञानुसार वह भजन करने लगा और उसे सफलता मिली। उसने अनुभव किया कि यह सब स्वामीजी के आशीर्वाद के कारण हुआ है। उनकी कृपा से

उऋण होने तथा कृतज्ञता-ज्ञापन के लिए एक दिन वह अपने साथ चाँदी का एक कमण्डल, नये वस्त्र और फल लेकर स्वामीजी की सेवा में आया।

स्वामी सदानन्द ने यह सब सामग्री लेने से इनकार कर दिया। जब वह अत्यधिक आग्रह करने लगा तब उन्होंने कहा—"आज इन चीजों को लेकर वापस जाओ। रातभर विचार करना और कल जैसी इच्छा हो करना।"

दूसरे दिन वह जब आया तो देखा—स्वामीजी वहाँ नहीं थे। उसने उनकी तलाश में आसपास चक्कर काटे, पर वे नहीं मिले।

इधर स्वामीजी दर्शनार्थियों की भीड़ से तंग आ चुके थे। संकटमोचन के पश्चिमी भाग में एक स्थान पर आकर रहने लगे। सुबह-शाम मलत्याग के लिए कुछ संन्यासी यहाँ आते थे। सामान्य नागरिक सुनसान स्थान होने के कारण नहीं जाते थे। यहाँ आनेवाले संन्यासियों में से कुछ लोगों ने इन्हें पहचान लिया और वे आग्रह करने लगे कि इस स्थान को त्यागकर उनके साथ रहें, पर स्वामी सदानन्द को यह स्वीकार नहीं हुआ। उन्होंने इशारे से आग्रह किया कि मेरे बारे में किसी को कुछ न बताया जाय।

इधर स्वामीजी से उपकृत होनेवाला सेठ सरगर्मी से सदानन्दजी की तलाश करता रहा। आखिर उसे पता चल गया। उसने आकर क्षमा माँगी। इधर स्वामीजी ने मौनव्रत धारण कर रखा था। सेठ ने स्वामीजी के लिए वहीं एक गुफा बनवा दी। सदानन्दजी उसी गुफा के भीतर जाकर समाधि लगाने लगे। केवल सुबह-शाम बाहर आते थे तब लोगों को उनका दर्शन प्राप्त होता था।

धीरे-धीरे यहाँ भी अनेक भक्त जुटने लगे। इससे साधना में व्यतिक्रम होने लगा। आखिर एक दिन लोगों को मालूम हुआ कि स्वामीजी इस स्थान को त्याग चुके हैं। कहाँ गये, कब गये, इसका पता किसी को नहीं चला।

स्वामी अघोरानन्द के शिष्य स्वामी रामानन्द के बयान से पता चलता है कि उन्होंने सदानन्दजी को कैलास पर्वत पर देखा था। उस समय वे काफी वृद्ध हो गये थे, पर उनमें शक्ति की कमी नहीं थी। कहा जाता है कि एक बार गंगोत्री में रामानन्द ने देखा कि एक वृद्ध संन्यासी गंगा-स्तव पाठ करते हुए जा रहे हैं। गंगा में स्नान करने के बाद वे पहाड़ पर चढ़ने लगे। कौतूहलवश रामानन्दजी उनके पीछे-पीछे चलने लगे। लेकिन उनकी तरह चलना रामानन्दजी के लिए सम्भव नहीं हो रहा था।

कुछ दूर आगे बढ़ने पर वृद्ध संन्यासी ने पीछे की ओर देखा। रामानन्दजी को अपने पीछे आते देख उन्होंने हाथ के इशारे से वापस चले जाने की आज्ञा दी।

रामानन्दजी ने हाथ जोड़ते हुए कहा—"भगवान्, मैं कुछ दिनों तक आपकी सेवा करना चाहता हूँ।"

वृद्ध संन्यासी न जाने क्या सोचते रहे तब तक रामानन्दजी उनके समीप पहुँच गये। अपने भीगे वस्त्र से उनकी आँखों पर पट्टी बाँध दी। इसके बाद रामानन्दजी के हाथ को पकड़कर आगे चलने लगे। रामानन्दजी को लगा जैसे वे चल नहीं रहे हैं, बल्कि उड़ रहे हैं।

आँखों पर से पट्टी हटाने पर रामानन्दजी ने देखा—सामने एक बड़ी गुफा है। चारों ओर बरफ ही बरफ है। पेड़, पौधे, पशु-पक्षी के नामोनिशान नहीं हैं। बाहर तूफानी हवा चल रही है। एकाएक वृद्ध संन्सायी न जाने कहाँ गायब हो गये।

वहीं खड़े-खड़े रामानन्दजी ने अनुभव किया कि पास कहीं शंख, घण्टा, घड़ियाल, नगाड़ा बज रहा है। वह स्थान यहाँ से कितनी दूर है, इसका अन्दाजा नहीं लगा। एकाएक हवा में सुगन्ध आने लगी। कुछ देर बाद पूर्वपरिचित वृद्ध संन्यासी आये। उन्होंने पास आकर कहा—''पूर्वजन्म की तपस्या के कारण तुम यहाँ तक आ सके हो। इस जन्म में अभी तुम्हारी साधना इतनी नहीं हुई है कि यहाँ के सभी दृश्य देख सको। लो, प्रसाद खाओ। अब महात्माओं के पास दर्शन करने चलेंगे।''

प्रसाद खाते हुए रामानन्द ने पूछा—''महाराज, इस स्थान का नाम क्या है?''

वृद्ध संन्यासी ने कोई उत्तर नहीं दिया। दोनों कुछ दूर तक एक मन्दिर के समीप आये। वहाँ अनेक महात्मा अपने-अपने आसन पर बैठे हुए थे। रामानन्द को देखते ही एक महात्मा ने कहा—''यह बटुक तो अघोरानन्द का शिष्य है।''

अपने गुरु का नाम सुनते ही रामानन्दजी चकित दृष्टि से देखने लगे। उन्होंने बैठे हुए सभी महात्माओं के चरण-स्पर्श किये।

एक अन्य महात्मा ने कहा—''रामानन्द, अपने गुरुदेव से हमारा नमो नारायण कहना। उनसे कहना कि यहाँ सदानन्द कुशलपूर्वक है। अब वे यहाँ से कहीं नहीं जायेंगे। तुमने सिद्धबाबा से पूछा था कि इस स्थान का क्या नाम है, उन्होंने जवाब नहीं दिया। इस स्थान का नाम है—कैलासपुरी। अपने सौभाग्य के कारण तुम सिद्धबाबा के साथ चले आये, अन्यथा हमें देख नहीं पाते।''

एकाएक वहाँ भैरवी माता आईं और बोलीं—''आरती का समय हो गया है, महात्मागण। कृपया आप लोग पधारें।''

स्वामी सदानन्द ने रामानन्द से कहा—''हम लोग अब जा रहे हैं। तुम हमारे साथ नहीं जा सकते। अब अपने गुरु के बताये उपदेशों के अनुसार साधना करते रहो। इससे तुम्हारा जीवन उन्नत होगा।''

भैरवी माता ने उन्हें एक फल देते हुए कहा—''इस फल को हमेशा अपने साथ रखना। इससे साधना में सिद्धि प्राप्त होगी। अब इन महात्माओं को प्रणाम कर आशीर्वाद लो।''

भैरवी माता के आज्ञानुसार रामानन्द ने सभी के चरण-स्पर्श किये। एकाएक न जाने क्या हुआ कि झटका-सा लगा। आँखें खोलने पर रामानन्दजी ने देखा कि वे गंगोत्री की धर्मशाला में सोये हुए हैं। उन्होंने सोचा—क्या मैं अब तक स्वप्न देखता रहा? उन्हें याद आया कि वे स्वयं गंगा स्नान करने गये थे। एकाएक पीछे की ओर देखा तो भैरवी माता द्वारा प्रदत्त फल और उनके भीगे वस्त्र सिरहाने रखे हुए हैं। आखिर मैं यहाँ कैसे आ गया? इस प्रश्न का उत्तर देनेवाला वहाँ कोई नहीं था।

■ ■ ■

पवहारी बाबा

परमहंस रामकृष्ण के तिरोधान के पश्चात् विवेकानन्द का मन बहुत अशान्त हो गया था। अपने जीवन-काल में रामकृष्ण देव बराबर उनका मार्ग-दर्शन करते थे। अब वह सहारा नहीं रहा। फलतः जब स्वामीजी का मन उखड़ता तब वे आश्रम से कहीं चले जाते थे। चलते समय गुरुभाइयों से कहते—"अब आश्रम में वापस नहीं आऊँगा। यही आखिरी है।" लेकिन उनका यह निश्चय खण्डित हो जाता था। कुछ दिन इधर-उधर बिताकर पुनः वापस आ जाते थे।

सन् १८८८ ई० के दिनों उन्होंने निश्चय किया कि बेकार इधर-उधर समय नष्ट करने की अपेक्षा तीर्थाटन करूँ। तीर्थाटन के बारे में उन्होंने लिखा है—"भारत में जो लोग ब्रह्मचर्य अवलम्बन कर धार्मिक जीवन व्यतीत करते हैं, वे लोग आमतौर पर भारत के विभिन्न प्रदेशों में घूमते हुए विभिन्न तीर्थों का दर्शन करते हैं। देव-मन्दिरों का दर्शन करते हुए अपना समय व्यतीत करते हैं। जिस प्रकार किसी वस्तु को बराबर हिलाते-डुलाते रहने पर उसमें जंग नहीं लगता, उनका कहना है कि इस प्रकार भ्रमण करने पर उनमें मलिनता प्रवेश नहीं करती। इससे एक और उपकार होता है, वे लोग द्वार-द्वार पर धर्म वहन कर ले जाते हैं। जो लोग गृहस्थी त्याग चुके हैं, उनके लिए यह आवश्यक है कि भारत के चारों तीर्थों का दर्शन करें।"

स्वामी विवेकानन्द ने अपने इस कथन को चरितार्थ किया था। विभिन्न तीर्थों का दर्शन करते हुए वे सन् १८९० ई० में गाजीपुर आये। यहाँ अफीम-विभाग के अफसर गगन तथा बचपन के मित्र सतीश बाबू के यहाँ ठहरे। गाजीपुर के लोग रामकृष्ण देव के मानस-पुत्र स्वामी विवेकानन्द को पाकर खुशी से फूले नहीं समाये।

बातचीत के सिलसिले में स्वामी विवेकानन्द ने कहा—"यहाँ पवहारी बाबा नामक एक योगी पुरुष रहते हैं। मैं उनका दर्शन करने के लिए आया हूँ। अगर आप लोग प्रबन्ध कर दें तो कृपा होगी। मैं इसी उद्देश्य से यहाँ आया हूँ।"

गगन बाबू ने कहा—"पवहारी बाबा नगर में नहीं रहते। वे यहाँ से कुछ दूर कुर्त्ता गाँव में रहते हैं। वहाँ जमीन के भीतर एक गुफा बनाकर उसी में निवास करते हैं। पहले जब आश्रम में रहते थे तब उनका दर्शन हो जाता था। अब गुफा में रहने के कारण उनका दर्शन कठिन हो गया है।"

गगन बाबू के साथ स्वामीजी कुर्त्ता गाँव स्थित पवहारी बाबा के आश्रम में आये तो देखा कि वास्तव में गगन बाबू का कथन ठीक है। स्थानीय भक्तों से ज्ञात हुआ कि

बाबा हमेशा गुफा के भीतर रहते हैं। कब बाहर निकलेंगे, कहा नहीं जा सकता। स्वामीजी ने सोचा कि नगर में रहते हुए बाबा से सत्संग नहीं किया जा सकता। यहीं कहीं रहना होगा। उपयुक्त स्थान की तलाश में चारों ओर घूम-फिरकर देखने लगे। पास ही नीबू का एक बड़ा बाग था। स्वामीजी ने मन ही मन निश्चय किया कि वे यहीं आकर रहेंगे। यहाँ रहने पर बाबा से मुलाकात कभी न कभी अवश्य होगी।

इस निश्चय के बाद स्वामीजी नीबू के बाग में आकर रहने लगे। कई दिनों के प्रयत्न के बाद स्वामीजी की मुलाकात पवहारी बाबा से हुई। वह भी साक्षात्-दर्शन नहीं हुआ। स्वामीजी को गुफा के भीतर जाने का आदेश नहीं मिला। मुहाने के पास खड़े होकर बातचीत करते रहे। लगातार कई दिनों तक उपदेश ग्रहण करने के बाद स्वामीजी को अपार ज्ञान मिला। इस सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है—

''ज्ञान ही विस्मय-राज्य के द्वार को खोल देता है। जो ज्ञान मुझे उस वस्तु के निकट ले जाता है, जिसे जान लेने पर सभी को जाना जा सकता है (मुण्डकोपनिषद् १।१।३), जो सभी प्रकार के ज्ञान का केन्द्र है, जिसके स्पन्दन से सभी प्रकार के विज्ञान जीवन्त हो उठते हैं, वही धर्म-विज्ञान निश्चय ही श्रेष्ठ है, क्योंकि वही केवल मनुष्य के सम्पूर्ण ध्यानमय जीवन को समर्थ बनाता है। धन्य है वह देश, जो देश इसे पराविद्या कहता है।''

लगातार कई दिनों के उपदेशों के बाद एक दिन पवहारी बाबा ने कहा—''जन साधन, तन सिद्धि। गुरु के घर में हमेशा गौ की तरह पड़े रहो।''

ज्यों-ज्यों सत्संग का क्रम बढ़ने लगा त्यों-त्यों स्वामी विवेकानन्द का आकर्षण उनके प्रति बढ़ने लगा। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि पवहारी बाबा उच्चकोटि के योगी पुरुष हैं। हठयोग और राजयोग दोनों को सिद्ध कर चुके हैं। स्थानीय लोग इन्हें ठीक से समझ नहीं सके हैं। सम्भव है, बाबा ने अपनी शक्ति को कभी प्रकट नहीं किया है। अन्त में एक दिन उन्होंने निश्चय किया कि योग-मार्ग-सिद्धि प्राप्त करने के लिए वे पवहारी बाबा से दीक्षा लेंगे।

एक दिन उन्होंने पवहारी बाबा से निवेदन किया। बाबा त्रिकालदर्शी थे। उन्हें यह ज्ञात था कि किसी भी व्यक्ति को निर्दिष्ट व्यक्ति ही दीक्षा देता है, दूसरे किसी का अधिकार नहीं होता। उन्होंने कहा—''पहले तुम अपने पूर्व गुरु से अनुमति प्राप्त कर लो।''

स्वामीजी ने सोचा कि पवहारी बाबा मुझे योग की शिक्षा देना नहीं चाहते। शायद इसीलिए टालना चाहते हैं। प्रत्युत्तर में उन्होंने कहा—''मेरा विश्वास है कि मुझे अनुमति मिल जायेगीं। आप अपनी स्वीकृति देने की कृपा करें।''

पवहारी बाबा सम्भवतः मुस्कराये। उन्होंने 'एवमस्तु' कहकर विवेकानन्द स्वामी को बिदा दी। स्वामीजी प्रसन्न चित्त से नीबू-बाग में वापस आये। रात को सोने के पूर्व स्वामीजी ने देखा—सहसा घनघोर अन्धकार में प्रकाश उद्भासित हुआ और उस प्रकाश में स्वयं भगवान् रामकृष्ण प्रकट हुए। उनकी दोनों आँखें बन्द थीं। आँखों में आँसू थे।

स्नेहसिक्त इस मूर्ति को देखते ही स्वामीजी व्याकुल स्वर में कह उठे—''नहीं, नहीं, ऐसा कभी नहीं होगा। रामकृष्ण के अलावा इस हृदय पर और किसी का अधिकार कदापि नहीं होगा। जय रामकृष्ण, जय रामकृष्ण।''

लेकिन मन की शंका दूर नहीं हुई। दीक्षा लेने के एक दिन पूर्व उन्होंने निश्चय किया—यह मेरे मन का भ्रम था। इस प्रकार के योगी इस पृथ्वी पर कभी-कभी आते हैं। मुझे पवहारी बाबा से ज्ञान ले लेना चाहिए।

इस निश्चय के बाद वे अपने हृदय पर रामकृष्ण के स्थान पर पवहारी बाबा को स्थापित करने लगे। लेकिन इस कार्य में उन्हें सफलता नहीं मिली। उस ज्योतिर्मय पुरुष ने स्वामीजी के प्रयासों को विफल कर दिया। स्वामीजी समझ गये कि मेरा तन-मन उन पावन चरणों में सदा के लिए अर्पित हो चुका है जहाँ अन्य किसी के लिए कोई स्थान नहीं है।

स्वामीजी को मुकरते देख पवहारी बाबा सम्भवतः मन ही मन मुस्कराये। इसके बाद ज्ञान की बातें चलने लगीं। अब तक स्वामीजी का मन शान्त हो चुका था। शायद इसीलिए उन्होंने लिखा—''हम लोगों में अधिकतर भावमय जीवन के साथ कर्म का सामंजस्य नहीं रख पाते। कुछ महात्मागण ऐसा कर पाते हैं। हम लोगों में शायद अधिकतर गम्भीर रूप में चिन्तन करने पर कार्यशक्ति को खो देते हैं। इसी वजह से अनेक महामनस्वी जितने उच्च आदर्शों को अपने जीवन में प्राप्त करते हैं, उसे जगत् में, कार्यरूप में परिणत करने की जिम्मेदारी काल के हाथ सौंप जाते हैं। जब तक अपेक्षाकृत क्रियाशील मस्तिष्क आकर उन आदर्शों को कार्यरूप में परिणत नहीं कर लेता तब तक उनकी चिन्ताराशि को इसके लिए प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। लेकिन इन बातों को लिखते समय हम अपने दिव्यचक्षु से उक्त पार्थसारथी को देख रहे हैं—मानो वे दोनों विरोधी सैन्यदल के बीच रथ पर खड़े होकर बायें हाथ से दृप्त अश्व को संयत कर रहे हैं। वर्मधारण योद्धा वेष में, प्रखर दृष्टिरत से समवेत सेनाओं का निरीक्षण कर रहे हैं और स्वाभाविक ज्ञान के द्वारा दोनों पक्षों की सैन्य-सज्जा की राई-रत्ती को देख रहे हैं। दूसरी ओर हम यह भी देख रहे हैं कि भयभीत अर्जुन को चौंकाकर वे अपने श्रीमुख से कर्म के अद्भुत रहस्यों को प्रकट कर रहे हैं। जो कर्म के भीतर अकर्म अर्थात् विश्राम या शान्ति तथा अकर्म अर्थात् विश्राम के भीतर कर्म को देखते हैं, मानवों में वे ही बुद्धिमान् हैं, वे ही योगी हैं, वे ही सभी प्रकार के कर्म करते हैं—

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः ।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥ (गीता ४।१८)

यही पूर्ण आदर्श है। लेकिन इस आदर्श तक बहुत कम लोग पहुँच पाते हैं। अतएव जैसा है, हमें वैसा ही लेना होगा तथा विभिन्न व्यक्तियों में प्रकाशित विभिन्न चरित्र के वैशिष्ट्यों को एक में पिरोकर सन्तोष करना पड़ेगा। धार्मिक लोगों के भीतर हम तीव्र चिन्ताशील (ज्ञानयोगी), लोकहित के लिए प्रबल कर्मानुष्ठानकारी (कर्मयोगी), साहस के साथ आत्मसाक्षात्कार के लिए अग्रसर होनेवाले (राजयोगी) तथा शान्त एवं विनयी (भक्तियोगी), इन चार प्रकारों के साधकों को देखते हैं।''

उपर्युक्त विचार स्वामीजी ने अपने परमगुरु रामकृष्ण और पवहारी बाबा का तुलनात्मक अध्ययन करने के बाद विचार व्यक्त किया है। लगातार पाँच-छ: दिनों तक वे पवहारी बाबा से योग-शिक्षा ग्रहण के लिए गये, पर अन्त में विचार छोड़ दिया। लेकिन पवहारी बाबा के उपदेशों का उन पर व्यापक प्रभाव पड़ा था। फलस्वरूप उन्हें पवहारी बाबा के बारे में अपना संस्मरण लिखना पड़ा।

यहाँ तक कि यहाँ से मित्रों के नाम पत्र भेजते हुए उन्होंने एक पत्र में लिखा—"बड़े भाग्य से पवहारी बाबा से साक्षात्कार हुआ। वास्तव में वे एक महापुरुष हैं। इस नास्तिकता के युग में भक्ति एवं योग की आश्चर्यजनक क्षमता के वे अद्भुत प्रतीक हैं। मैं उनकी शरण में गया और उन्होंने मुझे आश्वासन दिया है, जो हर एक के भाग्य में नहीं है।....... ऐसे महापुरुषों का साक्षात्कार बिना शास्त्रों पर पूर्ण विश्वास के नहीं होता।"

यह पत्र ४ फरवरी १८९० को लिखा गया था और इसे लिखने के ठीक तीन दिन बाद ७ फरवरी को अपने एक मित्र के पत्र में वे लिखते हैं—"पवहारी बाबा देखने में वैष्णव प्रतीत होते हैं। उन्हें योग, भक्ति एवं विनय की प्रतिमा कहना चाहिए। उनकी कुटी के चारों ओर दीवारें हैं। दरवाजे बहुत थोड़े हैं। परकोटे के भीतर एक सुरंग है जहाँ वे समाधिस्थ पड़े रहते हैं। सुरंग से बाहर आने पर ही वे दूसरों से बातें करते हैं। किसी को यह नहीं मालूम कि वे क्या खाते-पीते हैं। इसीलिए लोग उन्हें 'पवहारी बाबा' कहते हैं। एक बार वे पाँच साल तक सुरंग से बाहर नहीं निकले तब लोगों ने सोचा कि उन्होंने शरीर त्याग दिया है। किन्तु वे जीवित बाहर निकले।......."

* * *

जिला जौनपुर का प्रेमापुर गाँव जहाँ कुछ सरयूपारी ब्राह्मणों का निवास है। इसी गाँव में तिवारीजी रहते थे। आपके दो पुत्र हुए—सर्वश्री लक्ष्मीनारायण और अयोध्याप्रसाद। जवानी के समय बड़े भाई लक्ष्मीनारायण एकाएक घर से गायब हो गये। चारों ओर इष्ट-मित्रों के यहाँ खोज की गई; कहीं पता नहीं चला। जब उनके बारे में पता चला तब तक उनके माता-पिता का देहान्त हो चुका था और अयोध्याप्रसाद दो बच्चों के पिता बन चुके थे।

लक्ष्मीनारायणजी घर से पलायित होकर कई स्थानों का चक्कर काटने के बाद गाजीपुर जिले के कुर्त्ता गाँव स्थित एक संन्यासी के आश्रम में ठहर गये। यहाँ उनका मन रम गया। इस आश्रम के किनारे गंगा नदी, शान्त वातावरण, गाँव के सरल प्रकृति के लोगों ने उनका मन मोह लिया। संन्यासीजी उच्चकोटि के योगी पुरुष थे। उपयुक्त आधार समझकर उन्होंने लक्ष्मीनारायण को शिष्य बना लिया। इस प्रकार लक्ष्मीनारायणजी रामानुज-सम्प्रदाय के अनुयायी बन गये।

घर से लक्ष्मीनारायण का नाता टूट चुका था, परन्तु बड़े भाई को आदर-सम्मान देने के लिए अयोध्याप्रसाद अक्सर यहाँ आते रहे। कभी-कभी साथ में उनके दोनों लड़के आते थे।

भारत में संन्यासियों के चार सम्प्रदाय हैं—संन्यासी, योगी, बैरागी और पन्थी।

जिन्हें संन्यासी कहा जाता है, वे शंकराचार्य द्वारा प्रतिष्ठित अद्वैतवादी हैं। गिरि, पुरी, भारती, आश्रम आदि दस उपाधियाँ हैं। योगी भी अद्वैतवादी हैं, पर इनकी साधना योग के माध्यम से होने के कारण इन्हें स्वतन्त्र माना गया है। इस सम्प्रदाय के लोग योग को ही श्रेष्ठ समझते हैं और इसी के माध्यम से सिद्धि प्राप्त करते हैं।

बैरागी रामानुज या श्री सम्प्रदाय के अनुयायी होते हैं। अधिकतर द्वैतवादी होते हैं। इसके प्रवर्त्तक श्री रामानुजाचार्य थे। मुसलमानों के शासनकाल में जिन धर्मों का उदय हुआ, वे पन्थी कहलाये। इनमें द्वैतवादी और अद्वैतवादी दोनों हैं। पवहारी बाबा इसी सम्प्रदाय के थे।

दीक्षागुरु के निधन के पश्चात् लक्ष्मीनारायण कुर्त्ता आश्रम के मठाधीश हुए। लगभग चालीस वर्ष तक वे फलाहार पर रहते हुए साधना करते रहे। उनके तप और निष्ठा को देखकर स्थानीय लोग उन्हें तपस्वी बाबा कहने लगे। आगे चलकर वे इसी नाम से प्रसिद्ध हुए। इस बीच उन्होंने अनेक शिष्य-भक्त बनाये।

सहसा वे अस्वस्थ हो गये। धीरे-धीरे उनकी हालत खराब हो गई। स्थानीय भक्तों ने सोचा कि इस घटना की सूचना छोटे भाई को देनी चाहिए। तुरत आदमी भेजा गया। अयोध्याप्रसाद आकर सेवा करने लगे। बातचीत के सिलसिले में एक दिन अयोध्याप्रसाद ने कहा—''आप घर चले चलिये। यहाँ ठीक से देखरेख नहीं हो रही है। गाँव में वैद्यजी हैं। इलाज भी हो जायगा।''

लक्ष्मीनारायण ने कहा—''गृहत्यागी संन्यासी को पुनः गृहस्थी में नहीं जाना चाहिए। रामजी की कृपा से ठीक हो जाऊँगा।''

बात अयोध्याप्रसाद की समझ में आ गई, अतएव उन्होंने विशेष जोर नहीं दिया। धीरे-धीरे वे स्वस्थ हो गये, पर आँखों की ज्योति कम हो गई। बिना सहारे मल-मूत्र करने में कठिनाई होने लगी। इधर एक अर्से तक भाई की सेवा में लगे रहने के कारण घर देखरेख के अभाव में नष्ट हो रहा था।

आखिर एक दिन चलते समय अयोध्याप्रसाद ने कहा—''आपकी जो हालत है, इसे देखते हुए मेरी राय में आपकी सेवा के लिए एक ऐसे आदमी की जरूरत है जो अपना हो और बराबर देखरेख करे। शिष्य या भक्तों के सहारे आपका काम नहीं चल सकता। मैं सोचता हूँ कि गंगा को भेज दूँ। वह इस लायक है कि आपकी सेवा ठीक से करेगा और आपको आराम भी मिलेगा।''

लक्ष्मीनारायणजी ने हँसकर कहा—''गंगा घर का बड़ा लड़का है। तुम्हारा सहायक। अगर तुम किसी को भेजना चाहते हो तो हरभजन को भेज देना। उसे यहाँ पढ़ा-लिखाकर लायक बना दूँगा।''

अयोध्याप्रसाद बड़े भैया की बातें सुनकर चौंक उठे। हरभजन तो अभी बच्चा है, माँ का दुलारा, सभी के आँखों का तारा। रात को अभी तक माँ से लिपटकर सोता है। कहानी सुनाने के लिए जिद करता है। दस वर्ष का बालक इनकी सेवा क्या करेगा? यहाँ आकर वह इतना उपद्रव करेगा कि भैया त्रस्त हो जायेंगे।

अयोध्या को मौन रहते देख लक्ष्मीनारायणजी ने कहा—"अयोध्या, तेरा मन न बैठ रहा हो तो जाने दे। नाहक परेशान मत हो। रामजी की जो इच्छा होगी, वही होगा।"

अयोध्याप्रसाद चुप रहे। कुछ देर बाद लक्ष्मीनारायणजी ने पुनः कहा—"मगर एक बात है। रामजी की कृपा से जब मेरी इच्छा हो गई है तब हरभजन को यहाँ आना ही पड़ेगा। आज न सही, पर एक न एक दिन वह आयेगा। कब तक तुम लोग उसे अपने स्नेह-पाश में बाँधे रखोगे? उसे यहाँ आना है, भले ही मेरी मौत के बाद आये।"

बड़े भैया की बातें सुनकर अयोध्याप्रसाद मन ही मन सिहर उठे। भैया सिद्ध पुरुष हैं। इनका वचन कभी खाली नहीं जाता। स्थानीय भक्तों की जबानी अनेक घटनाओं के बारे में वे सुन चुके हैं। लेकिन उन्हें दुःख इस बात का था कि उनका लड़का साधु बनेगा। जब यही होना है तब बाधा देकर भैया के मन को क्लेश पहुँचाने से क्या लाभ? भवितव्य को स्वीकार कर लेना उचित है। बड़े भैया से बिदा लेकर अयोध्याप्रसाद गाँव वापस आ गये।

सारी बातें सुनने के बाद पत्नी नाराज हो गई। कई दिनों तक पति-पत्नी में इस विषय को लेकर मनोमालिन्य रहा। अयोध्याप्रसाद को भय था कि कहीं इससे गृहस्थी का अकल्याण न हो। आखिर पत्नी को झुकना पड़ा।

हरभजन को पाकर तपस्वीजी आनन्द से विभोर हो उठे। माँगी हुई मुराद मिलने पर लगा जैसे उन्हें अपना इष्ट मिल गया है। पास बैठाकर उसके शरीर पर हाथ फेरते हुए बुदबुदाये—"उपयुक्त आधार है। जैसा सोचा था, सब कुछ वही है। अति सुन्दर। रामजी, तुम्हारी महिमा अपरम्पार है।" देर तक वे हरभजन के मस्तक पर हाथ फेरते रहे।

अयोध्याप्रसाद इन बातों का अर्थ नहीं समझ सके। उन्होंने केवल यही अनुमान लगाया कि हरभजन को पाकर भैया प्रसन्न हो गये हैं। कई दिन ठहरने के पश्चात् वे वापस चले गये।

हरभजन को पाकर तपस्वीजी के जीवन में अद्भुत परिवर्तन हुआ। उन्होंने हरभजन की शिक्षा के लिए योग्य विद्वानों से अनुरोध किया और स्वयं सुबह-शाम पढ़ाने लगे। वे यह जान चुके थे कि समय कम है और इस बीच अपने इस भतीजे को इतना योग्य बना दें ताकि वह इस स्थान का भार सँभाल सके।

शुभ दिन देखकर उन्होंने हरभजन के शिखा-सूत्र देकर गैरिक वसन पहनाया। अब हरभजन ब्रह्मचारी केरूप में मन्दिर में पूजा करने लगा। आश्रम में जितना साहित्य था, उसका ज्ञान दिया जाने लगा।

इन दिनों के बारे में स्वामी विवेकानन्द ने लिखा है—"इस प्रकार प्राचीनकाल के भारतीय छात्र-जीवन का दैनिक कार्यों के भीतर भावी महात्मा का बाल्य जीवन व्यतीत होता गया। उनका अध्ययन के प्रति अनुराग और भाषा सीखने की दक्षता के अलावा क्रीड़ाशील जीवन रहा। उनकी गम्भीरता का पूर्वाभास पहले से ही ज्ञात हो गया था।

बचपन में हरभजन बहुत ही विनोदी थे। अपने छात्र-जीवन में कभी-कभी ऐसी

खुराफात करते थे जिसे देखकर सहपाठी चकित रह जाते थे। लेकिन उसी तरह वे ग्रन्थों का पाठ तेजी से करते रहे। न्याय, व्याकरण, दर्शन और अध्यात्म का ज्ञान उन्हें विद्वानों और ताऊजी से प्राप्त होता रहा।

ठीक इसी समय हरभजन के जीवन में एक ऐसी घटना हुई जिससे अध्ययनशील युवक ने सम्भवतः अपने जीवन के गम्भीर मर्म को पहली बार अनुभव किया। अब तक इनका ध्यान पुस्तक तथा दैनिक ब्रह्मचर्य-जीवन की ओर लगा था, अब वहाँ से हटाकर उसे अपने मनोजगत् की ओर लगाकर पर्यवेक्षण करने लगे। पुस्तकीय ज्ञान के अलावा संसार में और कुछ है या नहीं, इस सत्य को जानने के लिए उनका हृदय व्याकुल हो उठा। ठीक इन्हीं दिनों उनके ताऊजी अर्थात् तपस्वी बाबा का निधन हो गया। अब तक वे जिनकी छत्रछाया में जीवन-धारण करते आये हैं, जिनके ऊपर युवक-हृदय का सम्पूर्ण प्यार निबद्ध था, आज वे चले गये। फलस्वरूप युवक-हृदय का अन्तःस्तल शोकाहत होकर रिक्त हो गया। उस शून्यता को पूर्ण करने के लिए वे ऐसी वस्तु का अन्वेषण करने लगे जो अपरिवर्तनीय हो।

''तपस्वी बाबा की अलौकिक घटनाओं की ख्याति चारों ओर फैली थी। शिष्यों के अलावा असंख्य भक्त थे। उनके तिरोधान का समाचार पाकर दल के दल लोग आने लगे। सभी लोगों ने उनके सत्कार-कार्य में भाग लिया। भण्डारा हुआ और उसके बाद एक दिन हरभजन का कुर्त्ता आश्रम की गद्दी पर अभिषेक किया गया।

''सभी भक्तों को ज्ञात था कि आज से छह वर्ष पूर्व तपस्वी बाबा इस ब्रह्मचारी को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर चुके थे। इन्हें महन्त बनाने की सारी प्रक्रिया बताते रहे। अब अपने गुरु ताऊजी के निर्देशानुसार वे आश्रम का सारा कार्य करने लगे।

''कुछ दिनों बाद उनका मन कुर्त्ता आश्रम से उचाट हो गया। जिस प्रकार भगवान् बुद्ध, शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, तैलंग स्वामी आदि सन्त योग्य गुरु की तलाश में तीर्थाटन करने निकले थे, ठीक उसी प्रकार हरभजन अपनी पिपासा शान्त करने के लिए एक दिन वहाँ से चल पड़े।''

स्वामी विवेकानन्द ने लिखा है—''उनकी यात्रा के विवरण प्राप्त नहीं हैं, पर उनके सम्प्रदाय के अधिकांश ग्रन्थों में जिस भाषा का प्रयोग हुआ है, उसे देखते हुए यह कहा जा सकता है कि प्राचीन बंगला भाषा तथा द्रविड ग्रन्थों का व्यापक परिचय उन्हें था और वे दक्षिण भारत तथा बंगाल में काफी दिनों तक थे।''

''उनके समकालीन मित्र यह जरूर बताते हैं कि जवानी के दिनों बाबा काठियावाड़ स्थित गिरनार पर्वत पर गये थे और वहीं पर्वत के शिखर पर योग-साधना के रहस्यों से प्रथम बार दीक्षित हुए थे।

''यह पर्वत बौद्धों के निकट अत्यन्त पवित्र स्थान था। इसी पहाड़ के नीचे सम्राट् अशोक का शिलालेख था। वर्तमान समय में बौद्ध धर्म का जो संशोधित संस्करण है, वे भी इस स्थान को अत्यन्त पवित्र समझते हैं।''

गिरनार पर्वत को अत्यन्त पवित्र इसलिए माना जाता है कि यहाँ अवधूत गुरु दत्तात्रेय रहते हैं जो भारत के अनेक सन्तों को दर्शन दे चुके हैं। कहा जाता है कि भाग्यवान् व्यक्ति ही इसके शिखर पर चढ़ पाते हैं।[1] यहाँ आज भी अनेक सिद्ध योगी अलक्ष्य रूप में रहते हैं जिन्हें महान् पुरुष ही देख पाते हैं। कहा जाता है कि हरभजन गिरनार-शिखर पर चढ़ने में सफल हो गये थे। वहाँ उन्होंने दत्तात्रेय की पादुका के दर्शन किये। वहाँ कुछ देर तक ध्यानस्थ रहने पर उनकी अतीन्द्रिय शक्ति ने सूचित किया कि पास ही कोई योगी पुरुष रहते हैं। उनकी खोज में चक्कर काटते हुए, प्रभु की प्रेरणा से एक गुफा के मुहाने के समीप आये। भीतर प्रवेश करते ही देखा कि एक योगी पद्मासन लगाये समाधिस्थ हैं। उनके शरीर से अपूर्व ज्योति प्रस्फुटित हो रही है।

हरभजन ने सोचा—ऐसे ही योगी पुरुष की उन्हें तलाश थी। मन ही मन इन्हें गुरुरूप में स्वीकार करके वहीं बैठ गये। काफी देर बाद योगिराज की समाधि भंग हुई। हरभजन ने साष्टांग प्रणाम किया। योगी को जब यह ज्ञात हुआ कि बालक शिष्य बनना चाहता है तब उन्होंने कहा—''मैं किसी को शिष्य नहीं बनाता। कोई भी गुरु किसी को शिष्य नहीं बनाता। प्रत्येक शिष्य के लिए उसका निश्चित गुरु होता है। वही दीक्षा देने का अधिकारी होता है। हर कोई ऐसा नहीं कर सकता।''

हरभजन ने बड़े विनम्र भाव से आग्रह किया, पर वे राजी नहीं हुए। उन्होंने योग की कुछ क्रियाएँ बताकर हरभजन को बिदा दे दी।

हरभजनजी अब साधना, भजन-पूजन करते रहे, पर इन महात्मा से योग की शिक्षा पाकर उन्होंने नयी शक्ति प्राप्त की। इस शक्ति को प्राप्त करते ही उन्होंने अपना अधिकांश समय योगाभ्यास की ओर लगाया।

उन्होंने अन्न का त्याग कर दिया। केवल कुछ बेल की पत्तियाँ या नीम की पत्तियाँ खाकर दिन गुजारने लगे। आश्रम में सर्वदा शिष्य या भक्त रहते थे। यहाँ असुविधा देखकर रात के समय वे तैरकर गंगा उस पार जाकर एकान्त में योग की साधना करने लगे। इस प्रकार क्रमश: उन्नत होते गये।

हरभजन के सहपाठियों ने अनुभव किया कि इनके आचरण तथा स्वभाव में व्यापक परिवर्तन हो रहा है। यह देखकर उन्हें भय और विस्मय भी हुआ। लेकिन इन लोगों के मन में यह भावना उत्पन्न नहीं हुई कि हम लोग भी इनकी तरह बन जायें। स्वाभाविक है कि जीवन में अपने-आप उन्न होनेवाले के प्रति लोगों की श्रद्धा बढ़ जाती है। अपने सभी सहपाठियों को पीछे छोड़कर हरभजनजी साधना के पथ पर द्रुतगति से आगे बढ़ते गये।

कुछ दिनों बाद वे काशी आये। यहाँ गंगा-तट पर अचानक एक योगी से मुलाकात हो गई। इस योगी को देखते ही हरभजनजी के हृदय में आकुलता उत्पन्न हुई और उनसे दीक्षा देने की प्रार्थना की। योगी महाराज ने उन्हें अपने पीछे-पीछे आने का

---

१. गिरनार पर्वत के शिखर पर चढ़ने के लिए ९९९९९ सीढ़ियाँ पार करना पड़ता है।

इशारा किया। गंगा किनारे एक गुफा में आकर योगिराज ने कहा—''आज ही वह मुहूर्त है जब मुझे तुम्हें दीक्षा देनी है। जाओ, गंगा-स्नान कर आओ।''

हरभजनजी स्नान करके आये। उन्हें एक आसन पर बैठाकर योगिराज ने सविधि दीक्षा दी। उनकी भौहों के मध्य ज्योंही उन्होंने अँगुलियाँ रखीं त्योहीं तड़ित् गति से सारे शरीर में बिजली की तरह न जाने क्या दौड़ गया। इसके बाद मन्त्र देकर उन्होंने आशीर्वाद दिया।

वाराणसी से वापस कुर्त्ता आश्रम आने पर हरभजनजी ने निश्चय किया कि वे भी अपने गुरुदेव की तरह गुफा में साधना करेंगे। इच्छा प्रकट करते ही आश्रम के एक ओर गुफा का निर्माण भक्तों ने कर दिया। गुरुदेव ने कहा था—''योगाभ्यास के लिए गुफा से बढ़कर कोई उत्तम स्थान नहीं होता। हमारे यहाँ के अधिकांश योगी पहाड़ की कन्दराओं और गुफाओं में ही साधना करते आये हैं। यहाँ किसी प्रकार का शब्द मन को विचलित नहीं करता।''

गुरुदेव ने उन्हें योग की प्रक्रिया बताने के बाद अद्वैतवाद की शिक्षा दी थी। दिनभर वे अपने आराध्यदेव श्रीराम की पूजा-अर्चना करते, भण्डारे के लिए भोजन स्वयं बनाते और प्रसाद के रूप में भक्तों और शिष्यों में बाँट देते थे। इन सब बातों के कारण सामान्य लोगों में उनकी ख्याति बढ़ती गई। दूर-दूर से लोग हरभजन बाबा का दर्शन करने आने लगे। रोगी अपना रोग दूर करने, मुसीबतजादा अपनी मुसीबत दूर करने के लिए आशीर्वाद माँगने लगे।

इस उपद्रव से परेशान होकर अब बाबा हरभजनजी गुफा में अधिक समय तक रहने लगे। यहाँ तक कि महीनों गुफा से बाहर नहीं निकलते थे। यह देखकर लोगों को आश्चर्य होता कि आखिर बाबा खाते क्या हैं?

किसी शिष्य ने कहा—''योगी पुरुष हैं, केवल हवा यानी पवन-सेवन करते हैं।''

इसी दिन से भक्तों में 'पवनहारी बाबा' के नाम से हरभजनजी प्रसिद्ध हो गये। न तो वे कुछ खाते हैं, न प्रातःक्रिया करने जाते हैं और न किसी से कुछ बोलते हैं।

एक अर्से तक गुफा में रहने के बाद एक बार बाहर निकले और गुफा के पास बने एक घर में रहने लगे। उनका उद्देश्य था कि एक बड़ा भण्डारा किया जाय। जब वे बाहर आकर कुटिया में रहते तब मिलनेवालों से मिलते, आशीर्वाद देते, प्रसाद देते और राम-राम जपने का आदेश देते थे।

इन दिनों के बारे में स्वामी विवेकानन्दजी ने लिखा है—''भारत के अन्य अनेक महात्माओं की तरह उनमें कर्ममुखरता नहीं थी। वाक्य के द्वारा नहीं, जीवन के द्वारा लोगों को शिक्षा देनी चाहिए। जो लोग सत्य को धारण करने के उपयुक्त हैं, उन्हीं के जीवन में सत्य प्रतिफलित होता है। इस महापुरुष का जीवन भारतीय आदर्श का अन्यतम उदाहरण है। इस तरह के व्यक्ति जो कुछ जानते हैं, उसका प्रचार करना उन्हें पसन्द नहीं। साधना के द्वारा सत्य को पाया जा सकता है। धर्म सामाजिक कर्त्तव्य है, शक्ति नहीं है।''

स्वामी विवेकानन्द जब इनसे मिलने आये थे तब पवहारी बाबा से पूछा था—"जगत् के कल्याण के लिए आप गुफा से बाहर क्यों नहीं आ जाते?"

उन्होंने विनोदी भाव से कहा—"एक बदमाश आदमी एक बार गलत कार्य करते हुए पकड़ा गया। ठीक इसी समय उसे एक व्यक्ति ने पकड़ा और दण्डस्वरूप उसके नाक को काट दिया। अब वह आदमी सोचने लगा कि कटे हुए नाक को लेकर मैं लोकालय में कैसे जाऊँ? शर्म से परेशान होकर वह जंगल की ओर भाग गया। वहाँ एक बाघ की खाल का आसन बिछाकर बैठ गया। जब लोगों को इधर-उधर से आने की आहट पाता तब आँखें बन्द कर ध्यानस्थ हो जाता। उसे इस तरह ध्यान लगाकर बैठा देखने पर लोग रुक जाते। धीरे-धीरे लोग उसकी सेवा-पूजा करने लगे। उसने सोचा—यह नाटक उत्तम है। कम-से-कम भोजन की चिन्ता से मुक्त हो गया। इसी तरह कई साल गुजर गये। अब लोग इस मौनी बाबा से उपदेश सुनने के लिए व्याकुल होने लगे। यहाँ तक कि एक युवक उनसे दीक्षा लेने के लिए उत्सुक हो उठा। आखिर एक दिन उसने अपना मौन भंग करके कहा—"कल एक तेज चाकू लेकर आना।" युवक ने सोचा कि कल मेरी आशा पूर्ण होगी। इसी आशा से वह चाकू लेकर सबेरे जल्दी चला आया। नकटा साधु उस युवक को जंगल के सुनसान इलाके में ले गया। इसके बाद एक ही झटके में उसकी नाक को काटने के बाद कहा—"हे युवक, इस तरह मैं अपने आश्रम में दीक्षित हुआ हूँ। अब तुम भी मौका देखकर इसी प्रकार अन्य लोगों को दीक्षा देते रहना।" उस युवक ने मारे शर्म के इस दुर्घटना के बारे में किसी को कुछ नहीं बताया। साध्यानुसार वह नकटा साधु सम्प्रदाय की संख्या बढ़ाने लगा। इस प्रकार नकटा-साधु सम्प्रदाय सारे भारत में फैल गया। क्या तुम भी मुझसे ऐसा काम कराना चाहते हो?"

इसके बाद गम्भीर होकर उन्होंने कहा—"तुम क्या सोचते हो कि स्थूल शरीर से ही दूसरों का उपकार हो सकेगा? क्या देह के क्रियाशील हुए बिना केवल मन ही मन दूसरे के मन की सहायता की जा सकती है, क्या यह सम्भव नहीं है?"

स्वामीजी ने पूछा—"आप इतने बड़े योगी हैं, फिर शिष्यों को पहले-पहल श्री रघुनाथजी की मूर्ति-पूजा, होमादि करने का उपदेश क्यों देते हैं?"

पवहारी बाबा ने कहा—"तुम यही क्यों समझ लेते हो कि प्रत्येक व्यक्ति अपने कल्याण के लिए कर्म करता है। क्या मनुष्य दूसरों के लिए कर्म नहीं कर सकता?"

पवहारी बाबा के जीवन में अलौकिक घटनाएँ बहुत कम हुई हैं। कारण वे मौन रहते हुए अपने जीवन का अधिकांश भाग गुफा में व्यतीत करते रहे। उनका दर्शन करने के लिए बड़े-बड़े धनी, सन्त, महात्मा आदि आते रहे।

एक बार एक चोर ने सोचा कि जब बाबा के पास इतने बड़े-बड़े लोग आते हैं और चढ़ावा देते हैं तब इनके पास काफी रकम होगी। उस मूर्ख को यह नहीं मालूम कि बाबा सारी रकम भण्डारा में खर्च कर देते हैं। जो व्यक्ति बेलपत्तियों पर जीवित है, उन्हें संचय की क्या जरूरत?

चोरी करते हुए वह उस ओर आया जिधर बाबा ध्यानस्थ बैठे थे। उन्हें देखते ही वह हड़बड़ाकर भागने लगा। आहट पाते ही बाबा का ध्यान भंग हुआ। वे चोर की

गठरी लेकर उसके पीछे-पीछे दौड़े। चोर ने समझा कि बाबा पकड़ने आ रहे हैं। इधर उससे भी तेज गति से दौड़कर बाबा ने उसे पकड़ लिया। इसके बाद बोले—''बेटा, यह तुम्हारा सामान है। कृपया इसे ग्रहण करो। इसके लिए मैं तुम्हें कुछ नहीं कहूँगा। मैं अपनी खुशी से तुम्हें दे रहा हूँ।''

चोर पर बाबा की इन बातों का व्यापक प्रभाव पड़ा। तुरत उनके पैरों पर गिरकर बोला—''महाराज, मुझे क्षमा कीजिए। अब आज से यह काम नहीं करूँगा।''

कहा जाता है कि उक्त चोर आगे चलकर बाबा का भक्त बन गया और चोरी करना छोड़ दिया। इसी प्रकार एक बार एक पागल आकर आश्रम में उपद्रव करने लगा। बात बाबा के पास पहुँची। वे गुफा के बाहर निकलकर उसकी ओर एकटक देखने लगे। धीरे-धीरे उसका उपद्रव शान्त होने लगा। कुछ देर बाद उसका सारा पागलपन दूर हो गया।

एक बार बाबा को एक विषधर सर्प ने काट लिया, इससे भक्त और शिष्य शोकाकुल होकर रोने लगे। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि अब बाबा समाधि से कभी नहीं उठेंगे। ठीक पाँच घण्टे बाद बाबा ने आँखें खोलीं। व्याकुल भक्तों से कहा—''घबराने की बात नहीं है। सर्प देवता तो मेरे भगवान् के पाहन थे।''

जीवन के अन्तिम दिनों में वे किसी से मिलते-जुलते नहीं थे। जब गुफा से बाहर आते तब लोगों से बातें जरूर करते थे। शेष समय गुफा में रहते थे। गुफा के भीतर से जब धुआँ बाहर आता तब लोग समझ लेते थे कि बाबा होम कर रहे हैं। स्वामी विवेकानन्द से उन्होंने कहा था—''हे राजा, भगवान् अकिंचनों के धन हैं। जो व्यक्ति किसी भी वस्तु को, यहाँ तक कि अपनी आत्मा को भी 'मेरा है' समझना छोड़ चुका है, वे उसी के हैं।'' बाबा में यही भाव था।

वे एक चक्षु के थे। वास्तविक उम्र से कम लगते थे। उनका स्वर बहुत ही मीठा था। प्रत्यक्ष रूप से वे उपदेश नहीं देते थे। उनका विचार था कि ऐसा करने पर स्वयं को आचार्य-पद पर प्रतिष्ठित करना पड़ेगा और ऊँचे आसन पर बैठना पड़ेगा। अगर हृदय का प्रस्रवण खुल जाय तो ज्ञानवारि स्वतः प्रकट होने लगता है।

जब वे गुफा के भीतर रहते तब लोग अक्सर गुफा के मुहाने पर आलू और मक्खन रख देते थे। अगर वे समाधि में नहीं रहते तो उसे ग्रहण कर लेते थे, वरना उसी प्रकार पड़ा रह जाता था।

एक दिन गुफा के द्वार से काफी धुआँ बाहर निकलने लगा। आमतौर पर सुगन्धित धुआँ निकलता था, पर इस धुएँ में मांस जलने का दुर्गन्ध पाकर लोग घबरा उठे। अन्त में गुफा का दरवाजा तोड़ा गया। भीतर जाकर लोगों ने देखा बाबा होमाग्नि में अपने को आहुति दे रहे हैं। देखते-ही-देखते सब कुछ राख हो गया।

इस प्रकार पूर्वी उत्तर प्रदेश का ही नहीं, बल्कि भारत का एक सन्त सदा के लिए चला गया जिन्होंने परमहंस रामकृष्ण के पट्टशिष्य स्वामी विवेकानन्दजी को ज्ञान देकर प्रभावित किया था।

■ ■ ■

हरिहर बाबा

वाराणसी के गंगा-तट पर स्थित असीघाट पर आज अनेक नागरिकों की भीड़ एकत्रित हुई थी। यहाँ मृत्युंजय-होम हो रहा था। पास ही बाबा विश्वनाथ के प्रतीक परम श्रद्धेय हरिहर बाबा विराजमान थे। नगर के प्रसिद्ध याज्ञिक होमकुण्ड में आहुति दे रहे थे। उनके स्वाहा-स्वाहा स्वर से वातावरण मुखरित हो रहा था।

अचानक ठीक बारह बजे आसमान पर बादल मँडराने लगे। बिजली चमकने लगी, बादल गरजने लगे। लोगों को समझते देर नहीं लगी कि यज्ञ का सारा आयोजन विफल होगा। लोग रह-रहकर आकाश की ओर देखने लगे। भीड़ में हलचल होते देख एक ब्राह्मण ने कहा—''आप लोग शान्ति से बैठे रहिये। पानी नहीं बरसेगा। जब यहाँ साक्षात् भोलेनाथ बैठे हैं तब कोई संकट नहीं आयेगा।''

ठीक उसी समय हरिहर बाबा ने होमकुण्ड के चारों ओर परिक्रमा करते हुए पण्डितों से कहा—''जब आप लोगों को ही याज्ञिक-क्रिया पर विश्वास नहीं है तब क्यों ऐसे कार्यों में भाग लेते हैं?''

पण्डितों ने अपना मस्तक झुका लिया। कुछ देर बाद जोरों से बारिश शुरू हो गई। लोगों ने आश्चर्य के साथ देखा—नदी, घाट चारों ओर बारिश हो रही है, पर यज्ञस्थल में

एक बूँद पानी नहीं गिर रहा है। चार बजे होम-कार्य समाप्त हुआ। इसके बाद होताओं और कार्यकर्ताओं को बजरे में भोजन करने के लिए बैठाया गया। इसके बाद चार घण्टे तक लगातार वर्षा होती रही। पण्डित तथा होतागण बजरे से बाहर नहीं निकल सके।

दशहरे के दिन हरिहर बाबा अपने भक्तों से घिरे बैठे थे। उनके सामने कुछ लोग भजन गा रहे थे। धीरे-धीरे शाम हो गई।

बाबा से कुछ कहने की हिम्मत किसी को नहीं हो रही थी। वहीं बाबा के पट्टशिष्य विश्वनाथजी भी मौजूद थे। भक्तों ने उनसे कहा—''महाराज, आज दशहरा का त्योहार है। दशाश्वमेध घाट पर मूर्ति-विसर्जन हो रहा है। इधर बाबा का सत्संग। यहाँ से उठने की भी इच्छा नहीं हो रही है। दूसरी ओर सालभर का पर्वोत्सव देखने की लालसा हो रही है। अगर आप बाबा से अनुरोध करें तो हमें छुट्टी मिल जायेगी।''

विश्वनाथजी भक्तों की इच्छा भलीभाँति समझ गये। उन्होंने हरिहर बाबा से निवेदन किया—''प्रभो, आपके इस कीर्तन के कारण लोग दशहरा-उत्सव देखने से वंचित रह गये। आपके रहते कोई सत्संग भला कैसे छोड़ सकता है?''

हरिहर बाबा ने हँसकर कहा—''तो यह बात है। उतनी दूर जाने की क्या जरूरत? वहाँ का सारा दृश्य यहाँ बैठे-बैठे भी देखा जा सकता है। सभी लोगों को कह दो।''

कुछ ही पलों में बजरे पर बैठे सभी लोगों ने देखा कि उनका बजरा दशाश्वमेध घाट पर है। वहाँ का सारा दृश्य दिखाई दे रहा है। घाट पर मौजूद सभी लोगों ने बाबा को देखा, किन्तु आसपास अन्य जितनी नौकाएँ थीं, उन पर सवार दर्शकों ने बाबा को नहीं देखा। यह दृश्य देखकर सभी भक्त आनन्द से विभोर हो उठे।

विश्वनाथजी ने कहा—''भगवन्, आपकी महिमा अपरम्पार है। आज मैं तथा आपके सभी भक्त धन्य हो गये।''

ठीक इसी समय बाबा के एक भक्त राधे असीघाट पर आया तो देखा—बाबा बैठे हैं। नाव पर अन्य लोग हैं। घर वापस आने पर राधे के भाइयों ने कहा—''असी जाना तेरा बेकार हुआ। बाबा तो दशाश्वमेध घाट पर दशहरा-उत्सव देख रहे थे।''

राधे को इस पर विश्वास नहीं हुआ। भाइयों ने कहा—''घाट पर चलो। वहाँ जिन लोगों ने बाबा को देखा था, उनसे गवाही दिला दूँगा।''

फिर भी राधे को विश्वास नहीं हुआ। दशाश्वमेध घाट पर आकर उसने लोगों से इस घटना के बारे में पूछा। जिन लोगों ने बाबा को देखा था, उन लोगों ने इस बात को स्वीकार किया। सारी बातें सुनकर राधे चकित रह गये।

* * *

बिहार का छपरा जिला बहुत ही महत्वपूर्ण जिला है जिसने माधव पागला, लाटू महाराज और हरिहर बाबा जैसे सन्तों को अपने यहाँ जन्म दिया।

इसी जिले के जफरापुर गाँव में सरयूपारी ब्राह्मण, तिवारी उपाधिधारी एक पण्डितजी रहते थे। सन् १८२१ ई०, माघी पूर्णिमा के दिन तिवारीजी के यहाँ एक

बालक ने जन्म लिया। तिवारीजी ने बालक का नाम रखा—सेनापति। आगे चलकर मेरा लड़का फौज में सेनापति बनेगा।

सेनापति जब सात वर्ष का हुआ तब तिवारीजी के यहाँ दूसरे पुत्र ने जन्म लिया। उन दिनों हरिहर-क्षेत्र का मेला लगा था। उसकी स्मृति में बालक का नाम रखा गया—हरिहर।

हरिहर के जन्म लेने के बाद से तिवारीजी की पत्नी अस्वस्थ रहने लगीं। गृहिणी की बीमारी, दोनों बच्चों की देखभाल और गृहस्थी का झमेला—तिवारीजी परेशान हो गये। कुछ दिनों बाद पत्नी चल बसी। बच्चे मातृहीन हो गये।

अब तिवारीजी पर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा। उनके कष्टों को देखकर पड़ोसी मित्रों ने उन्हें पुनर्विवाह करने की सलाह दी, पर वे राजी नहीं हुए। उन्होंने कहा—"आप मेरी मुसीबतें देखकर ऐसी सलाह दे रहे हैं, पर यह भी सोचिये कि सौतेली माँ आकर इन्हें अपना स्नेह न दे सकी तो दिवंगत पत्नी के साथ मेरा कितना पाप बढ़ेगा। नयी पत्नी की उपेक्षा से कलह के सिवा और कुछ हाथ नहीं लगेगा।"

यह सन् १८३० ई० की घटना है। इस घटना के ठीक पाँच वर्ष बाद सन् १८३५ ई० को तिवारीजी भी दोनों बच्चों को अनाथ बनाकर चल दिये। उन दिनों सेनापति की उम्र १४ वर्ष और हरिहर की ७ वर्ष थी।

पिता का श्राद्ध करने के बाद सेनापति ने देखा कि यहाँ सहारा देनेवाला कोई नहीं है। खेत था नहीं, सगा भी कोई नहीं था। पिताजी सोनपुर के एक जमींदार की चर्चा बराबर करते थे जो कि उनके मित्र और सहपाठी थे। छोटे भाई को लेकर सेनापति उनकी शरण में आया।

सारी कहानी सुनने के पश्चात् जमींदार ने कहा—"कोई बात नहीं, बेटा। यहाँ आराम से रहो। खाओ, पिओ और स्कूल में पढ़ने जाओ।"

सेनापति को ज्ञात था कि पिताजी उसे कितना प्यार करते थे। ठीक उसी तरह वह अपने छोटे भाई हरिहर की देखभाल करता था। स्कूल से वापस आने के बाद दोनों बाहर नहीं जाते थे। एक साथ खाते और एक ही बिस्तर पर सो जाते थे।

यहाँ आये तीन वर्ष व्यतीत हो गये थे। अचानक एक दिन स्कूल से वापस आते ही हरिहर को तेज बुखार आ गया। इलाज होने लगा, पर उसे बचाया नहीं जा सका। तीसरे दिन वह भी अपने माता-पिता के पास चला गया।

यह एक ऐसा मार्मिक आघात था जिसे सेनापति सहन नहीं कर पा रहा था। उसके कपड़े, पुस्तकें, खेल के सामान आदि रह-रहकर उसकी स्मृतियों को कचोटने लगे। एक दिन वह चुपचाप भागलपुर चला आया। यहाँ भी मन को शान्ति नहीं मिली, बल्कि अनाहार और उपेक्षा का शिकार होना पड़ा। लाचारी में पुनः सोनपुर वापस आकर पढ़ने-लिखने में मन लगाया।

लेकिन हरिहर की याद बराबर मन को अशान्त बनाती रही। हृदय से जब किसी को प्यार किया जाता है तब उसका अभाव बुरी तरह खलने लगता है। सेनापति को लगा

जैसे कोई अपना नहीं है। सभी अपने-अपने स्वार्थ के लिए मोह उत्पन्न करते हैं। इन्हीं सब चिन्ताओं से उसका मन उचाट हो गया और एक दिन अपने आश्रयदाता को बिना कोई सूचना दिये चल पड़ा।

कई शहरों का चक्कर काटते हुए जब वह अयोध्या पहुँचा तब वहाँ के वातावरण ने उसका मन मोह लिया। उसने निश्चय किया कि फक्कड़ साधुओं की तरह यहीं अपना जीवन व्यतीत करेगा। शायद कभी प्रभु राम की कृपा हो जाय। नगर से कुछ दूर सरयू के किनारे उसने डेरा जमाया। पास ही जंगल से लकड़ी और पत्ते लाकर एक छोटी-सी कुटिया बनाकर राम-भजन में मगन हो गया।

शाम के पहले नदी में स्नान करने के पश्चात् जो कुछ मिलता, उसे खा लेते। इधर से गुजरनेवाले यात्री और दर्शनार्थी साधु समझकर उसे खाद्य पदार्थ और पैसे दे जाते। खाद्य पदार्थों को वे खा जाते थे। जिस दिन खाद्य पदार्थ न मिलता, उस दिन सतुआ का घोल बनाकर पी जाया करते थे। अधिकतर समय ध्यान में लगाते थे।

कहा जाता है कि यहीं उन्हें एक संन्यासी से बीज मन्त्र प्राप्त हुआ था। इस मन्त्र के जाप से उन्हें तितिक्षा प्राप्त हो गई और वे कठोर साधना में निमग्न हो गये। दाढ़ी और जटा बढ़ने लगी, मन की व्याकुलता समाप्त हो गई। अब अपना अधिकांश समय कुटिया के बाहर एक शिला पर बैठे गुजारने लगे।

ठीक इन्हीं दिनों एक घटना हो गई। गाँव के कुछ लोग अयोध्या-दर्शन करने आये थे। इन लोगों में से कुछ लोगों ने सेनापति को पहचान लिया। आश्चर्य के साथ किसी ने कहा—"तिवारीजी का बेटा साधु बन गया है।"

दूसरे ने कहा—"कहिये हरिहर के भइया, यह चोला कैसे अपना लिया?"

लोग सेनापति का नाम भूल चुके थे। अधिकांश लोगों को हरिहर का नाम याद था। फलतः हर कोई सम्बोधन करते समय 'हरिहर के भइया' कहते रहे। गाँव के लोगों ने समझाया कि यह उम्र साधु बनने की नहीं है। लोग जवानी के बाद साधु बनते हैं। चलो, घर लौट चलो।

सेनापति ने इन लोगों के अनुरोध को स्वीकार नहीं किया। अब उसे मन्त्र-जाप में जो आनन्द मिल रहा था, उसे छोड़कर जाने की इच्छा नहीं हुई।

स्थानीय लोग इस महात्मा को कठोर-साधना करते देखते रहे। कुछ पूछने पर कोई जवाब नहीं मिलता था। दिनभर कड़ी धूप में, मूसलाधार वर्षा में और कड़कड़ाती सर्दी में इसी तरह दिनभर नंगे बदन ध्यान लगाये बैठे रहते थे। न किसी से कुछ माँगते थे और न किसी से कोई बात करते थे। गाँव के लोगों के सम्बोधन को सुनकर स्थानीय लोग भी 'हरिहर के भइया' स्थान पर हरिहर भाई—हरिहर बाबा कहने लगे। सेनापति ने सोचा—चलो, यह भी ठीक ही हुआ। जिस भाई की स्मृतियों ने संन्यास दिलाया और उसी के नाम को ग्रहण कर लिया जाय। इस घटना के बाद से वे हरिहर बाबा के नाम से प्रसिद्ध हुए।

दो वर्ष कठोर साधना करने के बाद उन्हें वाक्-सिद्धि मिल गई। अब वे अधिकतर पानी में रहने लगे। उनके चेहरे से अपूर्व तेज प्रस्फुटित होने लगा। कहा जाता है कि १२ वर्ष तक यहाँ तप करने के बाद एक दिन उन्हें प्रभु राम, सीता और हनुमान्‌जी के दर्शन हुए।

हनुमान्‌जी ने इनसे कहा—''अगर तुम इष्ट प्राप्त करना चाहते हो तो काशी जाकर बाबा विश्वनाथ की कृपा ग्रहण करो। वहीं तुम्हें इष्ट की प्राप्ति होगी। बाबा की कृपा प्राप्त होते ही तुम्हें तुम्हारा इष्ट प्राप्त हो जायगा।''

यह आदेश पाते ही उसी दिन हरिहर बाबा काशी की ओर पैदल रवाना हो गये। मार्ग में आपकी मुलाकात परम सिद्ध योगी तैलंग स्वामी से हुई। दोनों ही मौन भाषा में बातें करते हुए विश्वनाथ मन्दिर में आये। दो घण्टे बाद मन्दिर से निकलकर हरिहर बाबा तैरते हुए नगर के दक्षिणी भाग नगवा क्षेत्र में आ गये। यहाँ एक सुनसान स्थान पर रखे पत्थर पर चुपचाप बैठकर ध्यानस्थ हो गये।

उच्चस्तर के साधक जिन्हें दिव्य दृष्टि, वाक्-सिद्धि प्राप्त हो जाती है, वे अपनी अतीन्द्रिय-शक्ति से अन्य साधकों को पहचान लेते हैं। हरिहर बाबा को देखते ही तैलंग स्वामी ने समझ लिया कि यह साधक योग-सिद्ध है। इसके पूर्व योगिराज तैलंग स्वामीजी, स्वामी भास्करानन्द, रामकृष्ण परमहंस और पण्डित श्यामाचरण लाहिड़ी जैसे योगियों से मिल चुके थे। उन्हें यह समझते देर नहीं लगी कि इस साधक की शक्ति अद्भुत है। उन्होंने इस बात की सूचना अपने भक्तों को देते हुए कहा—''तुम लोगों को चाहिए कि उनका दर्शन करो और सर्वदा ध्यान रखो। इन दिनों वे नगवा में विराजमान हैं।''

उपस्थित भक्तों में से किसी ने कहा—''बाबा, सुना है कि वे किसी के हाथ की कोई सामग्री ग्रहण नहीं करते, फिर हम उन्हें कैसे दें?''

तैलंग स्वामी ने कहा—''तुम्हारा कहना ठीक है, पर जब तुम लोग जो कुछ फल-मिष्टान्न दोगे तब उसे वे ग्रहण करेंगे। मैंने उनसे कह दिया है। मेरे बाद मेरा स्थान वही ग्रहण करेंगे।''

सन् १८८७ ई० में योगिराज तैलंग स्वामी का शरीरान्त हो गया। स्वामीजी की भक्त-मण्डली शोक से पागल हो गई। सभी सन्तप्त भक्तों को हरिहर बाबा के निकट शान्ति प्राप्त हुई।

हरिहर बाबा के समकालीन महात्माओं में तैलंग स्वामी, भास्करानन्द, श्यामाचरण लाहिड़ी थे। लाहिड़ी महाशय गृहस्थ योगी थे, इसलिए अन्य योगी उनके यहाँ नहीं जाते थे। लेकिन हरिहर बाबा, तैलंग स्वामी और स्वामी भास्करानन्द परस्पर एक-दूसरे के यहाँ बराबर जाते थे।

तैलंग स्वामी की तरह भास्करानन्दजी भी हरिहर बाबा की चर्चा चलने पर कहा करते थे—''बाबा असाधारण योगी पुरुष हैं। उनके तप की तुलना नहीं की जा सकती।''

* * *

नगवा घाट के समीप ही स्वामी योगत्रयानन्दजी रहते थे। वे असाधारण विद्वान् थे जिनकी चर्चा महामहोपाध्याय पण्डित गोपीनाथ कविराज अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'साधु-प्रसंग' में कर चुके हैं। योगत्रयानन्दजी के पूर्वाश्रम का नाम था—शिवशंकर सान्याल। आप वास्तव में स्वामी नहीं थे। गृहस्थ संन्यासी थे।

आपके शिष्य श्री कालीपद मुखर्जी जो कि सबजज थे, ने नगवा में एक भवन बनवाया था, जहाँ आप रहते थे। एक दिन आपने देखा कि एक साधु को कुछ वाचाल लड़के गालियाँ देते हुए उन पर ढेले फेंक रहे हैं। यह दृश्य देखकर तुरत उन्होंने एक अन्य शिष्य रामशरण से कहा—"बाहर जाकर तुरत इन बदमाश लड़कों को डाँटकर भगा दो और महात्माजी को सादर भीतर ले आओ।"

रामशरण जरा असमंजस में पड़ गया। महात्माजी पागल की तरह दिखाई दे रहे थे। कहीं कोई हरकत कर बैठे तो क्या होगा। उसने कहा—"स्वामीजी, क्या मेरे कहने पर वे भीतर आना स्वीकार करेंगे?"

स्वामीजी ने कहा—"अवश्य करेंगे। मैं जो कह रहा हूँ। विलम्ब मत करो, जाओ।"

डरते हुए रामशरण ने जाकर लड़कों को भगाया और महात्माजी से निवेदन किया। वे तुरत उसके साथ चले आये। शिवशंकरजी ने उन्हें उचित आसन देकर प्रणाम किया। इसके बाद आपस में उच्चस्तरीय वार्ता होने लगी।

हरिहर बाबा के चले जाने के बाद स्वामी योगत्रयानन्दजी ने कहा—"यह तो महान् योगी हैं। तैलंग बाबा के बाद ऐसा महात्मा दूसरा नहीं देखा। मेरा अनुरोध है कि तुम लोग इनकी बराबर सेवा करते रहना। ऐसे महात्माओं का आविर्भाव कभी-कभी होता है।"

इस मुलाकात के बाद अक्सर स्वामी योगत्रयानन्द हरिहर बाबा के पास आते रहे। जब उन्हें आने में कोई अड़चन होती तब अपने शिष्यों से समाचार प्राप्त करते थे। जब तक स्वामीजी का शरीरान्त नहीं हो गया तब तक वे अपनी ओर से फल-फूल, मिष्टान्न आदि बाबा के पास बराबर भिजवाते रहे।

निधन के पहले उन्होंने रामशरण से कहा—"यह बात याद रखना कि मेरे बाद भी बाबा का ख्याल रखना। इससे तेरा भला होगा। वे क्या हैं, इसे तू अपनी सामान्य दृष्टि से नहीं देख सकता। उनकी सेवा से तेरा परलोक सुधर जायगा।"

इसी प्रकार विजयकृष्ण गोस्वामी जब कभी काशी आते तब हरिहर बाबा से जरूर मिलते थे। कभी-कभी दोनों व्यक्ति सूक्ष्म शरीर में मिलते थे।

द्वितीय महायुद्ध के पूर्व दशाश्वमेध घाट के पहले डेढ़सी पुल के समीप एक चौतरे पर खिचड़ी बाबा रहते थे। सिर पर बड़े-बड़े बाल, घनी दाढ़ी, हृष्ट-पुष्ट शरीर, पास ही धूनी और त्रिशूल। आप नित्य दरिद्रनारायण यानी कंगलों को खिचड़ी खिलाया करते थे। कहा जाता है कि खिचड़ी तैयार हो जाने के बाद आप उस कड़ाही को स्पर्श करते थे। इसके बाद अगणित लोगों को खिचड़ी दी जाती थी, पर कभी कमी नहीं हुई। इसी विशेषता के कारण पूरे बनारस में आपकी प्रसिद्धि थी। हरिहर बाबा अक्सर खिचड़ी-वितरण के समय पहुँच जाते और बाबा से बातें करते थे।

नगवा के समीप एक और बाबा रहते थे जिनका नाम था—वीतरागानन्द सरस्वती। जब हरिहर बाबा और सरस्वतीजी आपस में मिलते थे तब एक-दूसरे को 'गुरुदेव' कहकर सम्बोधित करते थे। इसका अर्थ था—दोनों सन्त एक-दूसरे को अपनी अपेक्षा ज्ञानी और तपस्वी समझते थे, परन्तु इन दोनों साधुओं के भक्त यह समझ बैठे कि हरिहर बाबा के गुरु वीतरागानन्दजी हैं और वीतरागानन्दजी के गुरु हरिहर बाबा हैं। जबकि यह धारणा गलत थी। वास्तव में दोनों गुरुभाई थे। इनके गुरुदेव मानसरोवर पर तपस्या कर रहे थे। हरिहर बाबा के असली गुरु का नाम केवल दो-चार शिष्य ही जानते थे। बाबा ने गुरुदेव का नाम प्रकट करने के लिए उन सभी को मना कर रखा था।

एक दिन स्वामी वीतरागानन्दजी के साथ हरिहर बाबा घूमने निकले तो भड़भाड़ के झंखाड़ में गिर पड़े। तमाम बदन में छोटे-छोटे काँटे चुभ गये। तुरत कई लोग बाबा को उठाने के लिए दौड़े।

तभी एक भक्त ने कहा—"एक दिन स्वामीजी भी इन्हीं झंखाड़ों में गिर पड़े थे। इन झंखाड़ों को नष्ट कर देना ठीक होगा।"

यह बात सुनते ही हरिहर बाबा ने कहा—"इन काँटों से जैसा मुझे कष्ट हुआ, वैसा ही सरस्वती स्वामी को भी हुआ होगा?"

भक्तों ने कहा—"हाँ, महाराज। तमाम बदन से काँटे निकालने में काफी परेशानी हुई थी।"

कुछ देर बाद हरिहर बाबा ने कहा—"कल से इन्हें कष्ट देने का अवसर नहीं मिलेगा।"

दूसरे दिन स्थानीय लोगों ने देखा—दूर-दूर तक जितने भड़भाड़ के पौधे थे, सब मुरझा गये हैं। लगता था, जैसे रात को दैत्यों ने आकर इन्हें जड़ से उखाड़कर रख दिया है। आसपास के अन्य पेड़ मौजूद थे, पर भड़भाड़ का एक पेड़ भी जीवित नहीं था।

इसी प्रकार की एक और घटना हुई थी चर्चा बनारस ही नहीं, बल्कि भारत के विभिन्न प्रान्तों में फैल गई थी।

महाराजकुमार विजयानगरम् काशी के सर्वजन आहत पुरुष थे। ब्रिटिश शासन-काल में जितने गवर्नर काशी आते, वे इनके यहाँ ठहरते थे। सामान्य लोगों में विजयानगरम् का महल 'ईजा नगर की कोठी' के नाम से प्रसिद्ध है। शिक्षित जनता क्रिकेट के कुशल खिलाड़ी होने के कारण इन्हें 'वीजी' कहती थी।

महाराजकुमार सन्तान-हीन थे। कभी-कभी हरिहर बाबा का दर्शन करने आते थे। एक बार शायद उन्होंने अपना दर्द प्रकट किया। बाबा ने कहा—"भण्डारा करो। रामजी की कृपा अवश्य होगी।"

यह आदेश पाकर महाराजकुमार ने दो दिन मालपुए का और दो दिन रसगुल्ले का भण्डारा किया। इसके बाद रानी साहिबा ने महल में भण्डारे का प्रबन्ध किया जिसमें बाबा से आने का अनुरोध किया गया। बाबा पालकी पर सवार होकर रवाना हुए।

आपके साथ भक्तों का काफिला था। असी नाले के पास नागफनी का जंगल था। फलस्वरूप पालकी ढोनेवालों से लेकर अनेक भक्तों के पैरों में नागफनी के काँटे धँस गये। सभी त्रस्त हो उठे।

यह घटना देखकर तुरत बाबा के मुँह से निकल पड़ा—"कल से नागफनी का नाश हो जायगा। इसके बाद किसी को इस पौधे से कष्ट नहीं होगा।"

भड़भाड़ का नाश होते जो लोग देख चुके थे, उन लोगों को विश्वास हो गया कि अब नागफनी का सत्यानाश हो जायगा। दूसरे दिन कौतूहलवश काफी लोग यह दृश्य देखने गये। पता नहीं, रातभर में सारी नागफनी कहाँ गायब हो गई थी। बिजली की तरह यह समाचार पूरे नगर में फैल गया।

अब एक अर्से बाद लोग घरों में कैक्टस के नाम पर गमलों में लगा रहे हैं।

महाराजकुमार विजयानगरम् के यहाँ नगर के अधिकांश संन्यासी, ब्राह्मण और अब्राह्मणों ने उस दिन भोजन किया। हरिहर बाबा ने रानी साहिबा को आशीर्वाद दिया। दस माह बाद वे सन्तान की जननी बनीं।

* * *

मुक्तागाछा के जमींदार काशी-यात्रा करने आये। इनके साथ श्रीश नामक मित्र थे। जमींदार साहब काशी में दो माह रहने के बाद चले गये, पर श्रीश को यहाँ का वातावरण इतना अच्छा लगा कि वह यहीं रह गये। अक्सर हरिहर बाबा का दर्शन करने चले आते थे। अचानक एक दिन बाबा उस पर बिगड़ उठे—"अरे बेवकूफ, तू अभी चला जा यहाँ से।"

वह हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। बाबा ने कहा—"शादीशुदा होकर अपनी जिम्मेदारी नहीं निभाता। अपनी पत्नी और बच्चों को गाँव में छोड़कर यहाँ तीरथ करने आया है? अब अगर आना तो बाल-बच्चों को लेकर आना, वरना मत आना।"

उसने गिड़गिड़ाकर कहा—"कैसे ले आऊँ बाबा। यहाँ कौन-सा रोजगार करूँगा? उनका पेट कैसे भरूँगा?"

बाबा ने कहा—"यहाँ मिठाई की दुकान खोल ले। रुपये यहाँ से ले जाना।"

बाबा की आज्ञा मानकर वह गाँव चला गया और वापस आकर सोनारपुरा मुहल्ले में मिठाई की दुकान खोली। वह रसगुल्ला इतना बढ़िया बनाता था कि लोग उसे 'रसगुल्ला बाबू' कहने लगे। यह सन् १६४२ ई० की घटना है।

श्रीश बाबू का एक ही लड़का था। अचानक वह हैजे का शिकार हो गया। डॉक्टर ने उसे मृत घोषित कर दिया। यह सुनते ही वह पागलों की तरह बाबा के पास आकर रोने लगा। बाबा ने कहा—"तेरा लड़का मरा नहीं है। यहाँ से चरणामृत ले जा और राम-राम जपते हुए उसके मुँह में डाल देना।"

बाबा के आज्ञानुसार उसने तुरत घर आकर बच्चे के मुँह में चरणामृत डाला। उसे विश्वास था कि चरणामृत डालते ही चमत्कार होगा। बाबा के आज्ञानुसार एक नहीं, दो-

दो डॉक्टरों को बुलाया गया था। दोनों ने ही कहा कि लड़का मर गया है। इसके बाद बाबा के एक भक्त डॉक्टर श्रीराम बाबू आये। उन्होंने गौर से देखा, वे भी चिन्तित हो उठे। सारी बातें सुनने के बाद दवा दी।

तीन दिन लड़का उसी हालत में पड़ा रहा। चौथे दिन उसकी नाड़ी क्षीण गति से चलने लगी। श्रीराम बाबू ने कहा—"अब डरने की जरूरत नहीं है। जाओ, बाबा को प्रणाम कर आओ।"

* * *

काशी में राधे नवलगढ़िया नामक एक व्यवसायी रहते थे। उनकी पत्नी को तपेदिक हो गया था। डॉक्टरों ने कहा—"अब यह ठीक होनेवाला नहीं है। रोगी को मनचाही चीजें खाने-पीने दें और आराम से रखें।"

डॉक्टरों की इस राय को सुनकर नवलगढ़िया निराश हो गये। अकेले में अक्सर रोते-कलपते थे। बात पत्नी के पास पहुँची। उसने कहा—"एक बार मुझे हरिहर बाबा का दर्शन करा दो। उनके दर्शन से मुझे मुक्ति मिल जायगी।"

पत्नी के अनुरोध पर नवलगढ़िया उसे नाव से बाबा के पास ले आये। नवलगढ़िया को देखते ही बाबा उखड़ गये—"तुम लोगों ने आखिर मुझे समझ क्या रखा है? क्या मैं वैद्य-डॉक्टर हूँ? भगवान हूँ? हटाओ, यह सब बखेड़ा।"

हरिहर बाबा के शिष्य विश्वनाथ बाबा ने कहा—"प्रभो, यह आपकी ही सन्तान हैं। अपना सुख-दुःख पिता से न कहेंगे तो किससे कहेंगे? अगर आप हम सब पर कृपा नहीं करेंगे तो फिर कौन करेगा?"

कुछ देर बाद मन शान्त होने पर हरिहर बाबा ने कहा—"ले आ, उसे। सामने लेटा दे।"

आज्ञा पाते ही रोगिणी को लोग बाबा की नाव पर ले आये और बाबा के सामने लेटा दिया गया। सहसा हरिहर बाबा की शान्त आँखें बड़ी-बड़ी हो गईं। रोगिणी के सिर से पैर तक निरीक्षण करने के बाद उन्होंने कहा—"जा बेटी, तेरा सारा रोग दूर हो गया। चिन्ता की बात नहीं। आगे सुविधानुसार भण्डारा दे देना। इससे तेरा मंगल होगा।"

* * *

काशी-निवासी शंकरप्रसाद पटना के किसी कॉलेज में अध्यापक थे। उनका मस्तिष्क विकृत हो गया। माता-पिता ने काफी इलाज कराया, ओझाई कराई, पर कोई लाभ नहीं हुआ।

माता सरलादेवी ने हरिहर बाबा के एक शिष्य रामशरणजी से अपनी मुसीबतों की चर्चा की। रामशरणजी ने कहा—"आप अपने लड़के को लेकर हरिहर बाबा के पास चले जाइये। वे साक्षात् बाबा भोलेनाथ हैं। उनकी कृपा होने पर आपका संकट दूर हो जायगा।"

सरलादेवी सीधे हरिहर बाबा के पास आई। अपने संकट का वर्णन विस्तार से करने के बाद आकुल स्वर में कृपा माँगने लगी। बाबा मौन रहे। उन्होंने इस प्रार्थना पर आँख उठाकर देखा तक नहीं। सरला दु:खी होकर वापस लौट आई।

सारी बातें सुनने के बाद रामशरणजी ने कहा—''आप एक बार और बाबा के पास जाइये। उनसे कहियेगा कि मुझे रामशरण ने भेजा है, जो आपको उस पार से इस पार ले आये हैं।''

सरलादेवी दूसरे दिन पुन: हरिहर बाबा के पास आई और रामशरणजी का उल्लेख करते हुए अपनी सारी व्यथा सुनाई।

हरिहर बाबा कुछ देर मौन रहने के बाद बोले—''नित्य शाम को महावीर का भजन और राम का नाम जपना। इससे तुम्हारा कल्याण होगा।''

सरलादेवी घर आकर बाबा के निर्देशानुसार कार्य करने लगी। पति को उत्सुकता हुई कि आखिर इस बालक के भाग्य में क्या है। एक ज्योतिषी ने बताया कि आपके बालक पर महावीरजी कुपित हैं। कहीं राम-राम होता था जिसे आपके पुत्र ने बन्द करवा दिया। फलत: महावीरजी नाराज हो गये और उसका मस्तिष्क विकृत हो गया।

सारी बातें सुनने के बाद पति ने नित्य अपने घर रामायण का पाठ प्रारम्भ कराया। धीरे-धीरे बालक स्वस्थ होकर पुन: काम करने लगा।

* * *

सरजू नामक एक व्यक्ति किसी मुकदमे के सिलसिले में काशी आया। कचहरी का काम समाप्त करने के बाद वह हरिहर बाबा का दर्शन करने चल पड़ा। बहुत दिनों से उनकी ख्याति सुनता आया था। बाबा के पास आते ही उसके मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया। फिर घर वापस नहीं गया। एक कौपीन, कमण्डल और लाठी उसके जीवन का सहारा बन गया।

बाबा ने उसे शिष्य के रूप में अपना लिया। केवल इन्हीं सामग्रियों को लेकर वह तीर्थयात्रा पर चला गया। सरजू के बाद कितने लोग आये और चले गये। कुछ दिनों बाद एक दिन बाबा बेचैन होकर बोल उठे—''आज मेरा विश्वनाथ आ रहा है।''

बाबा के पास बैठे लोग इस बात का मतलब नहीं समझ सके। कई घण्टे बाद एक युवक बाबा के पास आया। उसे देखते ही बाबा बोले—''तू आ गया? कब से मैं तेरा इन्तजार कर रहा था।''

कहने के साथ ही उन्होंने उसे अपनी गोद में बैठाया। धीरे-धीरे उसके मस्तक पर हाथ फेरने लगे। थोड़ी देर में उसका ब्राह्य ज्ञान लुप्त हो गया। तीन घण्टे बाद वह स्वाभाविक स्थिति में आया।

यह दृश्य देखकर पास बैठे भक्तों ने पूछा—''महाराज, यह बालक कौन है?''

बाबा ने प्रसन्न भाव से कहा—''काशी का विश्वनाथ। विश्वनाथ के आने पर ही बाबा सचल होते हैं वरना पत्थर की तरह अचल बने रहते हैं।''

विश्वनाथ के आने से अनेक भक्तों का उपकार हुआ। लोगों को समझते देर नहीं लगी कि बाबा का यही प्रमुख शिष्य बनेगा। बाबा कभी विश्वनाथ की बात टालते नहीं थे। कुछ ही दिनों में मल्लाहों से नाव खेना सीखकर वह नाव खेने लगा। हरिहर बाबा काशी की भूमि को अत्यन्त पवित्र समझते थे, इसलिए इधर मल-मूत्र-त्याग नहीं करते थे। नित्य विश्वनाथ भोर के समय उस पार बाबा को ले जाते और ले आते थे। धीरे-धीरे बाबा की सारी जिम्मेदारी उसने ले ली।

कुछ दिनों बाद विश्वनाथ के माता-पिता उसे खोजते हुए आये और बाबा से अनुरोध करने लगे कि उनके पुत्र को मुक्ति दे दी जाय।

बाबा ने कहा कि अगर तेरा बेटा है तो मेरे पास क्यों आया? अगर यह मेरा बेटा है तो कहीं नहीं जायेगा। चाहे तो कोशिश करके देख ले। विश्वनाथ के माता-पिता अपने लड़के को कई दिनों तक समझाते रहे, पर वह वापस जाने को राजी नहीं हुआ।

बाबा उसे धर्मग्रन्थ पढ़ाने लगे। वह पढ़ता और बाबा सुनते। इसी तरह बाबा विश्वनाथ का निर्माण करते रहे।

* * *

बाबा पहले बजरे पर नहीं रहते थे। भोर के समय प्रातःक्रिया करने नदी तैरकर आते-जाते थे। एक बार मझौली की रानी बजरे पर सवार होकर गंगा पार कर रही थीं। उन्होंने देखा—उफनते हुए नदी की धार में एक आदमी तैरता हुआ दूसरी ओर जा रहा है। यह देखकर उन्होंने मल्लाहों से कहा—''यह आदमी पागल है क्या? इतनी तेज धार में तैर रहा है। नाव से जाना चाहिए।''

मल्लाहों ने कहा—''महारानीजी, यह काशी के महान् सन्त हैं। नित्य मल-मूत्र त्यागने के लिए उस पार इसी तरह जाते हैं और वापस लौटते हैं। नगवा में जाड़ा, गर्मी, बरसात में नंगे बदन बैठे रहते हैं। ऐसा महात्मा शहर में दूसरा कोई नहीं है। बड़े सिद्ध हैं।''

रानी ने कहा—''तुम बजरा नगवा घाट पर लगाओ। मैं इन महात्मा का दर्शन करूँगी।''

नगवा घाट आकर रानीजी पैदल ही बाबा के समीप आईं। इन्हें देखते ही बाबा ने पूछा—''माताजी, आपने यहाँ आने का कष्ट क्यों किया?''

रानी माता ने प्रणाम करते हुए कहा—''आपसे मैं एक नम्र निवेदन करना चाहती हूँ; क्या आप स्वीकार करने की कृपा करेंगे? अगर आप अनुमति दें तो मैं इन श्रीचरणों में निवेदन करूँ?''

बाबा ने कहा—''माताजी, आप निर्भय होकर अपनी इच्छा प्रकट करें। मैं आपकी इच्छा की पूर्ति अवश्य करूँगा।''

रानीजी ने हँसकर कहा—''मैं जानती हूँ कि आप गंगा के पवित्र जल को छोड़कर कहीं नहीं रह सकते। आपके निवास के लिए एक नाव अर्पित करना चाहती हूँ ताकि आप आराम से निवास कर सकें।''

बाबा की इच्छा नहीं थी, पर इस अनुरोध को उन्होंने अस्वीकार नहीं किया। आशीर्वाद देते हुए कहा—''तथास्तु, जैसी माताजी की इच्छा।''

इस आज्ञा को पाकर रानीजी ने एक बजरा बनवाकर उस पर बाबा को बैठाया। उस दिन इस उपलक्ष्य में विशाल भण्डारा हुआ। इस घटना के बाद से नित्य भोग के लिए रानीजी सामग्री भेज देती थीं। नियमित रूप से आकर बाबा के निकट श्रद्धा ज्ञापन करती थीं।

एक दिन एक दुशाला लाकर बाबा के शरीर पर डाल दिया। एकाएक बाबा थर-थर काँपने लगे। यह दृश्य देखकर रानी अवाक् रह गईं—यह क्या? यहाँ तो सब उल्टा हो रहा है। आखिर बात क्या है?

तभी वहाँ एक संन्यासी आकर बैठा। वह सर्दी से बुरी तरह काँप रहा था। तुरत बाबा ने उस शाल को उसे ओढ़ा दिया। संन्यासी का काँपना बन्द हुआ। इधर बाबा का काँपना भी अपने-आप गायब हो गया। अक्सर बाबा इस तरह का चमत्कार दिखाया करते थे।

* * *

सन् १६२५ ई० की घटना है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कुछ उद्दण्ड छात्रों ने उपद्रव मचाया। वे जूता पहनकर बाबा के बजरे पर चढ़ आये। मल्लाहों ने उन्हें डाँटा। फलस्वरूप बात बढ़ती गई और मारपीट होने लगी। इसके बाद लड़के ईंट-पत्थर फेंकने लगे। बजरे पर बैठे कई लोगों को चोट लगी।

बाबा ने क्षुब्ध होकर कहा—''बजरा खोल दो। अब मैं यहाँ नहीं रहूँगा।''

आदेशानुसार बजरा खोल दिया गया। कुछ दूर असीघाट पर आते ही बाबा ने कहा—''यहीं रोक दो।''

बाबा के साथ हुई दुर्घटना का समाचार चारों ओर फैल गया। लड़कों की उद्दण्डता पर सारा शहर उफनने लगा। मालवीयजी के पास समाचार पहुँचा। वे तुरत आये और लड़कों की ओर से क्षमा माँगने लगे।

बाबा ने अप्रसन्न होकर कहा—''आप इन लड़कों को अच्छी शिक्षा दे रहे हैं। क्या यही देश का कल्याण करेंगे?''

मालवीयजी इस शिकायत पर क्या जवाब देते? उन्होंने कहा—''मैं लड़कों के इस अपराध के लिए आपसे क्षमा माँगने आया हूँ। वे आपही की सन्तान हैं। बच्चों की उद्दण्डता को माता-पिता क्षमा करते हैं वरना वे पाप-मुक्त कैसे होंगे? अगर यही ज्ञान उन्हें रहता तो वे ऐसा गलत कार्य क्यों करते?''

बाबा ने कहा—''रामजी ने उन्हें क्षमा कर दिया है, इसलिए मैं कुछ नहीं कहना चाहता। मेरा कहना यही है कि अगर लड़कों को योग्य, सभ्य और सुसंस्कृत न बना सको तो क्यों व्यर्थ में अर्थ और समय बरबाद कर रहे हो?''

इस बातचीत के बाद मालवीयजी क्षुब्ध भाव से वापस चले आये। इस घटना के तीन दिन बाद ब्रिटिश सरकार की ओर से मालवीयजी को इस आशय की एक नोटिस प्राप्त हुई—जिस जमीन पर आप विश्वविद्यालय बनाने जा रहे हैं, उसे दो महीने के भीतर खाली कर दीजिए। भारत सरकार वहाँ सैनिकों के लिए छावनी बनाने का निश्चय कर चुकी है।

इस नोटिस को पाते ही मालवीयजी के होश उड़ गये। तत्कालीन सभी नेताओं को उन्होंने बुलाकर आवश्यक मीटिंग की। काफी देर तक विचार-विमर्श करने के बाद भी समस्या का हल नहीं निकला।

सदस्यों में एक प्रोफेसर थे जो बाबा के भक्त थे। उन्हें सारी घटना मालूम हो गई थी। उनके मन में शंका उत्पन्न हुई कि कहीं बाबा के कोप के कारण यह बात तो नहीं हुई है? उन्होंने सुझाव दिया कि हम सब चलकर हरिहर बाबा से प्रार्थना करें। वे महान् योगी और सिद्ध महात्मा हैं, शायद उनके कारण यह संकट दूर हो जाय। सन्तों के आशीर्वाद से चमत्कार होते हैं। उस दिन छात्रों ने गलत काम किया था, शायद उसी का यह परिणाम है।

सारी बातें सुनने के बाद बाबा ने कहा—''आप लोग इस नोटिस का कोई जवाब न दें। रामजी चाहेंगे तो कल्याण होगा।''

पुनः एक सप्ताह बाद सरकार की ओर से यह सूचना आई कि पहले भेजी गई नोटिस रद की जा रही है।

जब यह पत्र मिला तब लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। पुनः लोग बाबा के पास कृतज्ञता प्रकट करने आये और कहा कि हम यहीं घाट पर आपके लिए एक कुटिया बना देना चाहते हैं।

बाबा ने कहा—''मुझे कुटिया की जरूरत नहीं है। अगर आप लोग कुछ देना चाहते हैं तो हमारे रामजी के परमभक्त तुलसीदास के नाम पर बने घाट का जीर्णोद्धार करा दें।''

मालवीयजी के प्रयत्न से श्री घनश्यामदास बिरला ने उक्त घाट का जीर्णोद्धार कराया था।

बाबा के अनन्य शिष्य विश्वनाथ ब्रह्मचारीजी अचानक बुखार से पीड़ित हो गये, साथ ही पेट में असह्य पीड़ा शुरू हो गई। यह देखकर बाबा ने कहा—''शिवाले जाकर रामनगरिया (डॉ० गोपालदास गुप्त, जो कि रामनगर स्थित काशीराज अस्पताल के डॉक्टर थे।) को दिखाओ। अगर वह कोई दवा दें तो उसे लेकर यहाँ चले आना।''

विश्वनाथ ब्रह्मचारी रिक्शे से सोनारपुरा स्थित डॉक्टर दासगुप्ता के दवाखाने में आये। उन्होंने दवा दी जिसे लेकर वे बाबा के निकट आये।

बाबा ने कहा—''रामनगरिया ने जो दवा दी है, उसे गंगा में फेंक दे। डुबकी लगाकर गंगा से थोड़ी मिट्टी निकालकर खा ले और रामजी का नाम लेकर थोड़ा-सा गंगा-जल पी ले।''

विश्वनाथ ब्रह्मचारी ने निर्देशानुसार वही किया। थोड़ी देर बाद जाड़ा देकर तेज बुखार आया। बाबा ने कहा—"उसे कम्बल ओढ़ा दो और दो आदमी कसकर पकड़े रहो। जब उसका काँपना बन्द हो जाय तब उसे मेरे पास लाना। वह उठकर बैठने न पाये, इसका ख्याल रखना।"

एक घण्टे बाद कम्पन बन्द हुआ तब विश्वनाथ ब्रह्मचारी बाबा के पास आये और कहा—"बुखार और जाड़ा दोनों गायब हो गया।"

दूसरे दिन डॉक्टर दासगुप्ता अपने मरीज को देखने आये तो पता चला कि विश्वनाथ ब्रह्मचारी नहाने गये हैं। डॉक्टर ने कहा—"यह क्यों? यह बुखार तो एक दिन में अच्छा होनेवाला नहीं है। कैसे अच्छा हो गया?" फिर क्षणभर बाद बोले—"शायद बाबा की कृपा से यह सम्भव हुआ है।"

बाद में उन्हें सारी कहानी बताई गई तब उन्होंने कहा—"मेरा अनुमान सही निकला।"

* * *

रामशरण के भाई अपनी नौकरी के लिए परेशान थे। इण्टरव्यू दे चुके थे, पर अभी तक कोई सूचना नहीं आई। व्याकुल होकर बाबा के पास आकर बोले—"प्रभो, मेरी नौकरी कब तक लगेगी? बड़ा चिन्तित हूँ।"

हरिहर बाबा ने कहा—"चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। आज और शीघ्र इसकी सूचना तुम्हें मिलेगी।"

बाबा के दरबार से घर आते ही देखा कि पोस्टमैन मिलिटरी ऑफिस से पत्र को लेकर खड़ा है। पत्र में लिखा था—एक सप्ताह के भीतर अपनी छावनी पर आ जायें।

पत्र पाते ही परेशचन्द्र मजुमदार तुरत बाबा के पास आये और चरण-रज मस्तक से लगाते हुए कहा—"आपकी असीम कृपा मुझ पर है। अब मुझे लड़ाई पर जाने की अनुमति दें।"

बाबा ने कहा—"ठीक है बेटा। जाओ, हमारी मुलाकात फिर होगी।"

इसी प्रकार की एक घटना श्री राम बाबू की पत्नी के साथ हुई। एक दिन वे आकर बोलीं—"बाबा, मेरा लड़का दफ्तर की परीक्षा में फेल हो गया। फलस्वरूप उसे तरक्की नहीं दी गई।"

बाबा ने पूछा—"क्या अब पुनः परीक्षा नहीं होगी?"

"अब तो छः महीने बाद होगी।"

बाबा ने कहा—"घबड़ाने की बात नहीं है। परीक्षा के कुछ दिन पहले मुझे आकर बता देना। सब रामजी की कृपा से ठीक हो जायगा।"

परीक्षा के पूर्व श्री राम की पत्नी ने बाबा को पत्र लिखा। परीक्षा के बाद लड़के को प्रमोशन मिल गया।

* * *

सन् १६४८ ई० में भयंकर बाढ़ आई थी। नगर में नाव द्वारा आवागमन हो रहा था। सरकारी आदेश जारी हुआ कि कोई भी नाव उस पार नहीं जायगी। यात्रियों से भरी कई नौकाएँ डूब गई थीं। चारों ओर जल-पुलिस का पहरा लग गया। तुलसीघाट पर कैम्प लग गया। पुलिस के बड़े-बड़े अफसर चारों ओर देखरेख कर रहे थे।

रात के तीन बजे बाबा की नाव उस भयंकर बाढ़ में उस पार रवाना हुई। बाबा निबटने जा रहे थे। विश्वनाथ ब्रह्मचारीजी नाव चला रहे थे।

''कौन जा रहा है?'' सिपाही गरजा।

नाव से कोई जवाब नहीं आया। अफसर ने गोली चलाने का आदेश दिया। तभी एक पुलिस अफसर सलाम करते हुए बोला—''हरिहर बाबा की नाव है। वे नित्य उस पार निबटने जाते हैं। ऐसे महात्मा पर गोली न चलायें।''

उस पार निबटने के बाद बाबा वापस आने लगे। बीच गंगा में आकर विश्वनाथ ब्रह्मचारी ने कहा—''अब डाँड़ चल नहीं रहा है। कैसे खेऊँ? नाव उस पार लगाना कठिन हो रहा है।''

हरिहर बाबा ने कहा—''अब तुझे खेने की जरूरत नहीं। मेरी बगल में आकर बैठ जा। यहाँ बैठकर राम-राम जप।''

विश्वनाथ ब्रह्मचारी बाबा के आज्ञानुसार डाँड़ छोड़कर राम-राम जपने लगे। नाव धीरे-धीरे बहती हुई असीघाट की ओर बढ़ गई।

बीच गंगा के भँवर में जब नाव चक्कर काट रही थी और विश्वनाथ ब्रह्मचारी नाव खेने में लाचार हो गये तब इस पार खड़ी पुलिस ने कहा—''आज बाबा की जलसमाधि होगी।'' थोड़ी देर बाद उन लोगों ने देखा कि डाँड़ खेनेवाला कोई नहीं है।

थोड़ी देर बाद जब नाव किनारे पर लगी तब जिलाधीश सीन क्लेयर तथा डे साहब नाव पर आये और बाबा के चरणों पर अपनी टोपी रख दी।

* * *

पौष मास। रात के दो बजे एक माताजी आईं। लाल किनारे की साड़ी पहने थीं। आप प्रत्येक चतुर्दशी के दिन आती हैं और हरिहर बाबा के सिर पर पानी डालती हैं।

उस दिन विश्वनाथ ब्रह्मचारी नाराज हो गये। फटकारते हुए बोले—''इस कड़ाके की सर्दी में आप बाबा के सिर पर पानी डाल रही हैं?''

तुरत हरिहर बाबा बिगड़ते हुए बोल उठे—''तुझसे क्या मतलब है कि कौन क्या करता है? जब तेरे सिर पर कोई पानी डाले तब बिगड़ना।'' कुछ देर बाद पुनः बोले—''जानता है, कौन आया था?''

विश्वनाथ ब्रह्मचारी ने चौंककर उस ओर देखा—माताजी अन्तर्धान हो चुकी थीं।

श्री गोविन्दप्रसाद मुखोपाध्याय बाबा के एक पुराने भक्त थे। बाबा के अनेक चमत्कार वे देख चुके हैं। अपने शरीरान्त के दो माह पूर्व बाबा गंगाजल के अलावा कुछ

नहीं खाते-पीते थे। इधर बाबा के तिरोधान के ठीक चार दिन पूर्व गोविन्दप्रसाद की इच्छा हुई कि बाबा को भोग दें। वे पूरी, तरकारी, मिठाई आदि लेकर आये।

विश्वनाथ ब्रह्मचारी ने कहा—''यह सब आप क्यों लाये हैं? आप तो जानते हैं कि आजकल बाबा कुछ नहीं खाते।''

अपनी गलती समझकर गोविन्दप्रसाद चुप रह गये। बाबा के पास आकर बैठे। इसके बाद जब गोविन्द गीत गाने लगे तब बाबा उठकर बैठ गये और विश्वनाथ ब्रह्मचारी से कहा—''गोविन्द मेरे लिए भोग लाया है, लाओ यहाँ।''

आपना भोग बाबा को खाते गोविन्द के आँखों से अविरल अश्रुपात होने लगा।

* * *

बाबा किसी को मन्त्र नहीं देते थे। आगे चलकर उन्होंने यह भार विश्वनाथ ब्रह्मचारी को सौंप दिया। दिन पर दिन विश्वनाथ ब्रह्मचारी का महत्त्व बढ़ते देख कुछ शिष्य मन ही मन जलने लगे। बाबा को यह रहस्य समझते देर नहीं लगी। एक दिन उन्होंने अपना चमत्कार दिखाया।

नित्य नाव पर बाहर से भोजन की सामग्री आती थी जिसे सभी संन्यासी खाते थे। एक दिन ऐसा हुआ कि कोई भक्त भोग-सामग्री लेकर नहीं आया। शाम के समय बाबा ने स्नान करने के पश्चात् राम का नाम लेकर गंगाजल-पान किया। विश्वनाथ ब्रह्मचारी ने भी वैसा ही किया। इस तरह दो दिन उपवास में बीत गये।

संन्यासी शिष्यों ने कहा—''गुरुदेव उपवास कर रहे हैं, यह ठीक नहीं है। हम सब मधुकरी के लिए चलें।''

बाबा ने कहा—''मेरे लिए किसी को चिन्ता करने की जरूरत नहीं। तुम लोगों को जहाँ आराम मिले, वहाँ जा सकते हो।''

विश्वनाथ और सरजू को छोड़कर सभी चले गये। पाँचवें दिन सरजू ने कहा—''प्रभो, मैं कभी विश्वनाथ महाराज पर नाराज नहीं हुआ।''

बाबा ने कहा—''यह बात मैं जानता हूँ। तू एक काम कर। नाव से उतरकर घाट पर बैठ जा। तुझे भीख माँगने के लिए कहीं जाना नहीं पड़ेगा। पास ही बैठ जायेगा तो खाने लायक रकम-भोजन मिल ही जायगा।''

बाबा के आज्ञानुसार सरजू स्वामीघाट पर बैठ गये। थोड़ी देर बाद एक महिला आई और उन्हें पूरी और तरकारी दे गई। बाद में बाबा ने सभी को बुलाकर कहा कि अब तुम लोग विश्वनाथ को पहचान गये होगे।

बाबा ने हमें शिक्षा देने के लिए यह खेल किया था, इस बात को समझते ही सभी लोगों ने बाबा के श्रीचरणों में सिर रखते हुए क्षमा-प्रार्थना की।

* * *

पण्डित गोपीनाथ कविराजजी ने हरिहर बाबा के बारे में लिखा है—''इस

दिगम्बर महापुरुष का दर्शन करने के लिए मेरे गुरुदेव श्री श्री विशुद्धानन्द परमहंस जाया करते थे। उन दिनों मैं उनके साथ जाया करता था। योगत्रयानन्द (शिवराम किंकर) भी बाबा से श्रद्धा करते थे। हरिहर बाबा सर्वदा 'शिव-शिव', 'राम-राम' कहा करते थे। काशी और गंगा के प्रति उनकी निष्ठा अटल थी। नित्य शौचादि के लिए वे प्रातःकाल तथा सायंकाल नियमित रूप से गंगा पार कर रामनगर जाया करते थे। जीवन के अन्तिम काल तक इस नियम का पालन करते रहे।

हरिहर बाबा का योगेश्वर प्रभाव मनुष्येतर प्राणियों पर भी था, उसका एक मनोज्ञ उदाहरण दे रहा हूँ—

एक दिन नगवा में शोरगुल मच गया कि काशी-नरेश का एक वृद्ध हाथी पागल होकर रामनगर-क्षेत्र में बड़ा उपद्रव कर रहा है। लोग चिन्तित हो उठे। इसके बाद वह हाथी चिंघाड़ता हुआ नदी में कूद पड़ा। वहाँ से तैरता हुआ वह सीधे तुलसीघाट पर आया जहाँ हरिहर बाबा इष्ट-ध्यान में निमग्न थे। बाबाजी निश्चल और बाह्यज्ञानरहित थे। लोग भय से दूर भाग गये और भयभीत नेत्रों से देखने लगे। सभी लोगों ने भयभीत दृष्टि से देखा कि वह पागल हाथी हरिहर बाबा के पास जाते ही इन्द्रजाल की तरह क्षणभर में शान्त हो गया और आज्ञाकारी नौकर की तरह खड़ा हो गया। लगा, जैसे हरिहर बाबा की प्रेम-महिमा में बन्दी हो गया है, हाथी का पशुत्व दूर हो गया है, वह अपनी सत्ता खो चुका है। इस घटना की कहानी काशी की जनता बहुत दिनों तक कहती रही।

जिस प्रकार पहले तैलंग स्वामी काशीवास करते हुए जनता की दृष्टि में महापुरुष के रूप में गण्य हुए थे, ठीक उसी प्रकार हरिहर बाबा भी लोगों का चित्ताकर्षण करते रहे। यहाँ तक कि तैलंग स्वामी के स्थान की पूर्ति इस शताब्दी में वे ही करते रहे।

कीर्त्तन-पाठ (योगवासिष्ठ और नारायण) उनके सामने नियमित होता रहा। कठोर तपश्चर्या और कृच्छ्र-साधना के कारण हरिहर बाबा का शरीर खराब होता गया। कभी-कभी भक्तों को शरीर छोड़ देने की बात कहा करते थे।

उस समय आपके भक्त कहते थे—"बाबा, आप इच्छामय हैं, स्वतन्त्र ईश्वर-स्वरूप। अगर हम सभी के लिए शुभ और कल्याण चाहेंगे तो अभी काफी दिनों तक रहेंगे।"

इसके उत्तर में वे कहते—"मैंने अपनी सारी इच्छाओं को रामजी के चरणों में समर्पित कर दिया है।" फिर कोमल शब्दों में कहते—"जो निवेदन किया है, क्या उसे वापस लिया जा सकता है?"

भक्तों ने कहा—"आपके आश्रय में हम अत्यन्त निर्भरता के साथ शान्तिपूर्वक विश्राम कर रहे हैं। आप हमें छोड़कर कभी न जायँ।"

उन्होंने उत्तर दिया—"तुम सब जीवभाव छोड़कर रामजी के परम स्वरूप उस परमात्मा की याद को स्मरण करते रहो जो रामजी सभी सृष्टि में ओतप्रोत रूप में विराजमान हैं। सभी के भीतर, सब कुछ के भीतर रामजी का सान्निध्य प्रत्यक्ष करने का प्रयत्न करो। परमधाम का चिन्तन करो। वहाँ तुम्हारे साथ, मेरे साथ तुम लोगों का कभी किसी समय विच्छेद नहीं रहेगा।"

अन्तरंग सेवकों को एकान्त में बुलाकर उन्होंने कहा—''वृक्ष काफी जीर्ण-शीर्ण हो गया है अर्थात् पुराना हो गया है। इसे अधिक दिनों तक रखा नहीं जा सकता।''

इस बातचीत के साथ उनका उस पार जाकर शौच करना बन्द हो गया। फलतः उनके सामने कसोरा रख दिया जाता था जिसमें वे मल-मूत्र त्याग करते थे। सारी सामग्री विश्वनाथ ब्रह्मचारी बाबा के आज्ञानुसार उस पार ले जाकर फेंक आते थे।

एक दिन रात को बाबा ने विश्वनाथ को जगाकर कहा—''तुझे जो कुछ पूछना या जानना है, मुझसे पूछ ले। मेरा समय हो गया है।''

यह बात सुनते ही विश्वनाथ ब्रह्मचारी फफक-फफककर रोने लगे। बाबा ने कहा—''बेटा, यह शरीर त्याग देने पर भी मैं तेरे शरीर में रहूँगा। इसके लिए अफसोस मत कर।''

दूसरे दिन ब्रह्मचारीजी ने सभी लोगों को समाचार दिया। अधिकांश शिष्य और भक्त आ गये। इस प्रकार एक सप्ताह बीत जाने पर बाबा ने रानी शोबेल तथा महाराज सरगुजा और विशिष्ट लोगों के सामने विश्वनाथ ब्रह्मचारी को अपनी गद्दी पर बैठाया।

माला-चन्दन से विश्वनाथ ब्रह्मचारी का अभिषेक किया गया। बाबा ने कहा—''संसार की भलाई के लिए मैं आज अपनी सम्पूर्ण शक्ति विश्वनाथ को दे रहा हूँ। इसके अलावा और किसे देता? विश्वनाथ के अलावा यह बोझ अन्य कोई सँभाल नहीं सकता।''

इतना कहने के बाद काँपते हाथ को उठाकर बाबा विश्वनाथजी के मस्तक पर हाथ रखते हुए बोले—''मेरा विश्वनाथ, तू राजा विश्वनाथ, तू स्वयं काशी विश्वनाथ है। तू नाना प्रकार के कष्टों को सहते हुए एक साल तक धैर्य धरे रहना। इसके बाद विश्वशान्ति के लिए काम करना।''

बाद में उसी दिन बाबा ने कहा—''आज रात को यह शरीर छोड़ दूँगा। किसी को कुछ पूछना हो तो पूछ ले।''

१ जुलाई, १९४९ ई० के दिन बाबा ने शरीर त्याग दिया। हरिहर बाबा की तरह अन्य कोई सर्वमान्य महात्मा काशी में नहीं हुआ।

■ ■ ■

साईं बाबा

नानासाहब चान्दोरकर जामनेर में तहसीलदार पद पर कार्य कर रहे थे। एक दिन उनके यहाँ उनकी लाड़ली बेटी मैनाताई आई। उसके आने की सूचना पहले से ही मिल गई थी। असल में वह अपने पिता के यहाँ प्रसव के लिए आई थी। खानदेश में जामनेर एक छोटा-सा गाँव है जहाँ नगरीय सुविधाओं का बड़ा अभाव था। एक अर्से के बाद बेटी के आगमन से जहाँ लोगों में प्रसन्नता थी, वहीं इस बात की चिन्ता थी कि लड़की पराये घर की बहू है, उसकी देखरेख में कोई असुविधा न हो।

धीरे-धीरे प्रसव के दिन करीब आ गये। दर्द बढ़ता गया। प्रसव होने के लक्षण दिखाई नहीं दे रहे थे। अवस्था गम्भीर होने लगी। नानासाहब की चिन्ता बढ़ा, घर के लोग परेशान हो उठे। उन्हें भय हुआ कि कहीं लड़की से हाथ धोना न पड़े।

नानासाहब शिरडी के साईं बाबा के भक्त थे। दोनों इस संकट से मुक्ति पाने के लिए एकाग्र चित्त से उनका स्मरण करने लगे।

शिरडी में बैठे साईं बाबा को तुरत ज्ञात हो गया कि उनका कोई भक्त संकट में है और व्याकुल स्वर में उन्हें स्मरण कर रहा है। अपनी अतीन्द्रिय-शक्ति से उन्होंने सब कुछ जान लिया।

ठीक उसी समय एक साधु खानदेश जाने के लिए तैयारी कर रहा था। उसे बुलाकर साईं बाबा ने कहा—"रामगिरि बुवा, आप खानदेश की ओर जा रहे हैं। एक काम करें। मार्ग में जामनेर में कुछ देर के लिए ठहर जाइयेगा। वहाँ नानासाहब चान्दोरकर नामक एक सज्जन हैं। आपको खोजने में परेशानी नहीं होगी। वे वहाँ के तहसीलदार हैं। उन्हें यह भभूत और आरती दे दीजिएगा।"

रामगिरि बुवा ने विनय के साथ निवेदन किया—"बाबा, मेरे पास इस वक्त केवल दो ही रुपये बचे हैं जो रेल-किराये में समाप्त हो जायँगे।"

बाबा उनकी कठिनाई को समझते हुए हँसकर बोले—"आगे की चिन्ता तुम्हें करने की जरूरत नहीं है। अपने-आप सारी समस्या हल हो जायगी, पर यह भभूत नानासाहब तक पहुँचना जरूरी है।"

रामगिरि बुवा बाबा की अलौकिक शक्ति से अच्छी तरह परिचित थे, इसलिए बिना कोई तर्क किये, दोनों वस्तुओं को लेकर वे स्टेशन की ओर रवाना हो गये। अपने गन्तव्य स्टेशन जलगाँव पर जब उतरे, उस समय रात के दो बज चुके थे। अब इस वक्त आगे पैदल जाना या सवारी की तलाश करना व्यर्थ समझकर वे प्लेटफॉर्म पर आराम करने लगे।

एकाएक उन्हें लगा जैसे कोई उन्हें पुकार रहा है। गौर से सुनने पर उन्होंने सुना—"शिरडी का रामगिरि बुवा कौन है—शिरडी का रामगिरि बुवा कौन है?"

रामगिरि को आश्चर्य हुआ कि इस अपरिचित स्थान में और आधी रात को पुकारनेवाला कौन है? उन्होंने आवाज लगानेवाले व्यक्ति से अपना परिचय देते हुए कहा—"मगर आप कौन हैं? मेरा नाम कैसे जानते हैं?"

इस प्रश्न को सुनकर आगन्तुक व्यक्ति ने कहा—"मुझे नानासाहब ने भेजा है। उन्होंने कहा है कि शिरडी से रामगिरि बुवा आ रहे हैं। रात के वक्त उन्हें यहाँ तक आने में परेशानी होगी। सो तुम ताँगा लेकर चले जाओ। उनका यहाँ जल्द आना आवश्यक है। गाड़ी आने पर आवाज लगाओगे तो तुम्हें मिल जायेंगे।"

चूँकि नानासाहब ने उनके लिए ताँगा भेजा है अतएव रामगिरि तुरत रवाना हो गये। सबेरे के समय ताँगा रोककर ताँगेवाले ने कहा—"बाबाजी, थोड़ा जलपान कर लीजिए।"

ताँगेवाले की शक्ल, दाढ़ी, मूँछें देखकर रामगिरि को सन्देह हुआ कि यह मुसलमान है। भला इसके हाथ का जलपान कैसे कर सकता हूँ। शायद वह व्यक्ति रामगिरि के मन के ऊपापोह को समझ गया—"महाराज, मैं गढ़वाली क्षत्री हूँ, मुसलमान नहीं। यह देखिये, यज्ञोपवीत।"

रामगिरि उसकी बात पर लज्जित हो उठे और फिर बिना संकोच जलपान करने बैठ गये। जलपान करने के बाद पुनः ताँगा जामनेर की ओर चल पड़ा। गाँव की सीमा के

समीप आकर रामगिरि को लघुशंका महसूस हुई। वे नीचे उतरकर कुछ दूर आड़ में चले गये। लौटकर जब आये तो देखा—ताँगे के साथ-साथ ताँगेवाला भी गायब है। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। गनीमत यह रही कि साथ में कोई सामान नहीं था वरना मुसीबत आ जाती।

राह चलते लोगों से पता पूछकर तहसील में आये और वहाँ से नानासाहब के घर आये। उन्होंने बताया कि मैं शिरडी से आ रहा हूँ। साईं बाबा ने आपके लिए भभूत और यह आरती भेजी है।

उस समय घर में मैनाताई की हालत काफी नाजुक थी। नानासाहब के मन में आया कि शायद मेरी बेटी के लिए यह सामग्री बाबा ने भेजी है। तुरंत उन्होंने भभूत को पानी में घोलकर मैनाताई को पिलाया। इसके बाद आरतीवाला कागज लेकर पाठ करने लगे। थोड़ी देर में सूचना आई कि प्रसव हो गया। जच्चा-बच्चा सकुशल हैं।

घबड़ाहट और मानसिक परेशानी के कारण अब तक नानासाहब का ध्यान शिरडी से आये रामगिरि की ओर नहीं गया था। एक बहुत बड़ी मुसीबत के हल हो जाने के बाद जब उनका तनाव कम हुआ तब उन्होंने रामगिरि से पूछताछ की।

रामगिरि ने शिकायत के लहजे में कहा—''आपने बड़ी कृपा की जो आधी रात को स्टेशन पर ताँगा भेजा। वरना मैं यहाँ शायद दोपहर के पहले न आ पाता, मगर आपका ताँगेवाला विचित्र निकला। गाँव के पास आकर न जाने कहाँ गायब हो गया।

नानासाहब ने कहा—''ठहरिये, ठहरिये। यह आप क्या कह रहे हैं? मुझे क्या मालूम कि बाबा ने आपको भेजा है। मैंने किसी ताँगेवाले को नहीं भेजा था। मैं तो अपनी बेटी को लेकर परेशान था। लगता है, यह भी बाबा का चमत्कार था।''

बाद में उस ताँगेवाले की काफी खोज की गई, पर वह जामनेर के इलाके में कहीं दिखाई नहीं दिया।

इसी प्रकार बम्बई में रामलाल नामक एक व्यक्ति रहता था। उसने न कभी साईं बाबा को देखा था और न उनका नाम सुना था। सम्भवतः साईं बाबा को उसकी जरूरत थी। एक दिन उसने स्वप्न में देखा कि एक फकीर उसे अपने निकट बुला रहा है। उसकी समझ में नहीं आया कि यह कौन है, क्यों बुला रहा है? कहाँ रहता है? इसे कभी देखा भी नहीं। बाद में सपना समझकर वह अपने काम में लग गया।

एक दिन एक दुकान में सामान खरीदने गया तो देखा—वहाँ वही चित्र टँगा है जिसे वह स्वप्न में देख चुका है। कुछ देर एकटक चित्र देखने के बाद उसने दुकानदार से पूछा—''यह किसका चित्र है?''

दुकानदार ने कहा—''साईं बाबा का।''

रामलाल ने पूछा—''यह बाबा कहाँ रहते हैं? क्या अभी जीवित हैं?''

दुकानदार ने विस्मय से कहा—''तुमने अभी तक साईं बाबा का नाम नहीं सुना है? अरे, यह बड़े सिद्ध महात्मा हैं। शिरडी में रहते हैं। नासिक के आगे मनमाड़ स्टेशन है न? उसी लाइन में कोपरगाँव स्टेशन है। वहाँ उतरकर किसी से पूछ लोगे तो शिरडी

गाँव का पता बता देगा। बस, चले जाओ। मैं तो कई बार गया हूँ।''

रामलाल ने सोचा—शायद साईं बाबा सिन्धी सन्त हैं। उसी तरह की वेशभूषा है और नाम भी है—साईं बाबा। सिन्धियों में लोग एक-दूसरे को साईं कहते हैं। कई दिनों बाद रामलाल शिरडी आया और बाबा का भक्त बन गया।

* * *

उच्चकोटि के साधक अपनी अतीन्द्रिय-शक्ति के माध्यम से योग्य शिष्यों को इस तरह बुला लेते हैं। सर्वश्री श्यामाचरण लाहिड़ी, विजयकृष्ण गोस्वामी तथा लोकनाथ ब्रह्मचारी जैसे योगियों ने अपने शिष्यों के साथ ऐसा ही चमत्कार किया था। हठयोग-क्रिया से किसी भी व्यक्ति के मन को चंचल करके बुलाया जा सकता है। जो कार्य यान्त्रिक शक्ति नहीं कर पाती, उसे अतीन्द्रिय-शक्ति कर दिखाती है। परमहंस रामकृष्ण इच्छित व्यक्ति को चुम्बक की तरह आकर्षित कर लेते थे। यहाँ तक कि सही आधार के पीछे वे स्वयं व्याकुल हो उठते थे।

शिरडी के साईं बाबा के बारे में पूर्ण जानकारी कोई प्राप्त नहीं कर सका, जिस प्रकार बाबा रणछोड़दास के बारे में यह पता लगाना कठिन था कि कब, कहाँ उन्होंने जन्म ग्रहण किया था? आखिर चार-पाँच सौ वर्ष तक कैसे जीवित रहे? ठीक उसी प्रकार शिरडी के साईं बाबा के बारे में यह जानकारी प्राप्त नहीं हुई कि वे हिन्दू थे या मुसलमान। वे अक्सर कहा करते थे—अल्लाह रक्षा करेगा। भगवान् तेरा भला करेगा। श्री प्र० सुं० आगासकर ने इस बारे में लिखा है—''साईं महाराज हिन्दू थे या मुसलमान, यह एक पहेली बनी रही। जिन लोगों का ख्याल था कि बाबा मुसलमान हैं, उन लोगों ने बाबा को हिन्दू-ब्राह्मण जैसा आचरण करते देखा है और जो लोग हिन्दू समझते रहे, उन्होंने यवनों जैसा आचरण करते देखा है। किसी को भी उनके जन्मकाल या धर्म का पता नहीं लग सका है। उन्होंने अपने हिन्दू भक्तों को रामनवमी मनाने की आज्ञा दी तो मुसलमानों को उर्स। जन्माष्टमी के अवसर पर स्वयं खड़े होकर मल्ल-युद्ध, नृत्य आदि का आयोजन करते थे। ईद पर मुसलमान आकर उनके निवास-स्थान पर नमाज पढ़ते थे। हिन्दुओं की प्रथा के अनुसार उनका कर्ण-छेदन हुआ था। जिस मस्जिद में वे रहते थे, उसका नाम द्वारकामाई रखा था। वहाँ घण्टा टँगवाया, धूनी सुलगायी और अग्नि-पूजा प्रारम्भ की। चक्की पर आटा पीसना, शंख, घण्टा-घड़ियाल बजाना, भजन, पूजन, जप करना, शास्त्रीय विधि से देवी-देवताओं की पूजा करवाना आदि तो हिन्दू-धर्म के चिह्न हैं। दूसरी ओर उनकी मुसलमानों जैसी वेश-भूषा और भाषा भक्तों में सन्देह उत्पन्न करती थी।

इस बारे में साईं बाबा के जीवितकाल में कई लोगों ने प्रश्न पूछे थे, परन्तु साईं बाबा ने इस रहस्य को कभी प्रकट नहीं किया। यहाँ तक कि उनके निधन के पश्चात् गूढ़ रहस्य को प्रामाणिक ढंग से खोजने का प्रयास किया गया, पर किसी को सफलता नहीं मिली। सन्त कबीर और नामदेव महाराज की भाँति वे भी हिन्दू तथा मुसलमानों को समान रूप से प्यार करते थे।

साईं बाबा को कुछ लोग साईंनाथ कहते थे, इस दृष्टि से उन्हें महाराष्ट्र के नाथ-

सम्प्रदाय का समझा जाता था। शिरडी के समीप नासिक में नाथ-सम्प्रदाय के महान् सन्त गहिनीनाथ रहते थे जिन्होंने सन्त ज्ञानेश्वर के बड़े भाई निवृत्तिनाथ को बीज-मन्त्र दिया था। निवृत्तिनाथ के शिष्य सन्त ज्ञानेश्वर महाराज थे जिनकी समाधि पूना स्थित आलन्दी में है।

* * *

सुश्री काशीबाई कानिटकर का विश्वास था कि बाबा तान्त्रिक हैं और जब काशीबाई बाबा के पास गईं तो उन्होंने कहा—"आँखें खोलकर देखो, मैं असली ब्राह्मण हूँ। सच्चा ब्राह्मण कभी जादू-टोना नहीं करता। इस ब्राह्मण की पवित्र द्वारकामाई में बुरे कर्म करनेवाले प्रवेश नहीं कर सकते।"

बाबा के एक प्रिय भक्त थे—म्हालसापति। इन्होंने भी यही प्रश्न किया था, तब बाबा ने कहा—"मैं ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुआ हूँ। मैं आरम्भ में 'पाथरी' में रहता था। उसके पश्चात् मेरी माँ ने मुझे एक फकीर को सौंप दिया।"

साईं बाबा के एक भक्त नानासाहब थे जिनका जिक्र प्रारम्भ में किया गया है। उन्होंने लिखा है कि बाबा जन्म से हिन्दू थे, परन्तु उनके गुरु फकीर थे।

एक बार पाथरी-निवासी एक सज्जन बाबा का दर्शन करने आये थे। उस समय बाबा पाथरी के बारे में उत्सुकता के साथ तरह-तरह के सवाल कर रहे थे। इससे स्पष्ट था कि बचपन में या अन्य समय वे पाथरी में अवश्य रहते थे।

उनके गुरु फकीर थे, इसे बाबा ने कभी स्वीकार नहीं किया, बल्कि यह कहा है कि मेरी माँ ने फकीर को सौंप दिया था जैसे कबीर साहब को नीरू जुलाहे ने पाला-पोसा था। ठीक इसी प्रकार साईं बाबा का पालन-पोषण किसी फकीर के यहाँ हुआ होगा।

अपने गुरु के बारे में बाबा ने एक अद्भुत घटना का जिक्र किया है—"हम चारों सहपाठी जब धर्मग्रन्थों का अध्ययन कर रहे थे तब एक दिन ब्रह्मज्ञान की खोज में एक घने भयंकर जंगल की ओर चल पड़े। मार्ग में एक वनवासी मिला। उसने हम लोगों से कहा—"इस जंगल में आप लोग अपने साथ एक पथ-प्रदर्शक रख लें तभी अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त कर सकेंगे।"

उसने विनम्रतापूर्वक निवेदन करते हुए हमारा यथोचित सत्कार किया। लेकिन हम उसकी उपेक्षा कर जंगल के भीतर चले गये। काफी देर इधर-उधर भटकने के बाद हम पुनः वहीं आये जहाँ हमने उस वनवासी को खड़ा पाया।

उसने पुनः अपनी बातों को कहा—"आप लोग हठ न करें। पथ-प्रदर्शक के बिना इस बियाबान जंगल में आपको सही मार्ग नहीं मिलेगा। भूखा रहने पर कोई भी कार्य पूर्ण नहीं होता। परमात्मा की प्रेरणा से ही हम मिलते हैं। सामने परोसी थाली को ठुकराना नहीं चाहिए। परोसी हुई थाली अगर सामने आती है तो उसे अपना सौभाग्य समझना चाहिए। अब आप लोग मेरे साथ मेरी कुटिया में चलें और भोजन करके मुझे कृतार्थ करें। इसके बाद अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए गन्तव्य मार्ग पर चले जायें।"

मेरे तीनों मित्रों ने उसके इस आमन्त्रण की परवाह नहीं की और आगे बढ़ गये। मैं

भूख और प्यास से व्याकुल हो गया था। मैंने इस बात पर तनिक भी विचार नहीं किया कि मेजबान जंगली छोटी जाति का आदमी है। उसके द्वारा परोसी गई रोटी, दाल, तरकारी भरपेट भोजन किया। उसी क्षण मुझे ऐसा आभास हुआ, मानो मेरा अन्तर्मन दिव्य ज्ञान से दैदीप्यमान हो उठा है। मेरे गुरुदेव भी अकस्मात् मेरे सामने आकर खड़े हो गये हैं। सारी बातें सुनने के बाद उन्होंने कहा—''मेरे साथ चलो। मैं तुम्हें मार्ग दिखाता हूँ। लेकिन मुझ पर पूर्ण विश्वास करते हुए मेरी सभी आज्ञाओं का पालन करना पड़ेगा।''

इस शर्त को सहर्ष स्वीकार करते हुए मैं उनके पीछे-पीछे चल पड़ा। आगे घनघोर भयंकर जंगल मिला। एक गहरे कुएँ के पास आकर गुरुदेव ने मेरे पैर कसकर बाँध दिये और मुझे उस कुएँ में उल्टा टाँग दिया। चार-पाँच घण्टे के बाद गुरुजी कहीं से वापस आये और मुझे बन्धन-मुक्त करने के पश्चात् पूछा—''क्यों, अब कैसे हो?''

मैंने नम्रतापूर्वक कहा—''बहुत अच्छा हूँ। मैं तो आनन्द-सागर में विहार कर रहा था।''

मेरे इस उत्तर से गुरुदेव को प्रसन्नता हुई। उसी समय से मैं ब्रह्मानन्द की समाधि में बैठने लग गया। इस ज्ञान को प्राप्त करने के अन्य मार्ग भी हैं, पर वे सभी नितान्त झूठे एवं मूर्खतापूर्ण हैं। इन मार्गों को बतलानेवाले शिक्षक भी स्वार्थी और छली होते हैं। मेरे गुरु ने मुझे अल्पकाल में ही सरल, सुगम भाषा में आध्यात्मिक ज्ञान का प्रथम पाठ दिया—अन्नमयं ब्रह्मः। परमेश्वर से एकरूप होने के लिए समाधि-स्थिति का मार्ग भी मुझे दिखा दिया। एक सद्गुरु ही हमें मोक्ष का मार्ग दिखा सकता है।

अगर साईं बाबा का यह कथन सही है तो यह स्पष्ट है कि उनके गुरु फकीर नहीं, कोई उच्चकोटि के साधक थे। ब्रह्मानन्द-समाधि केवल भारतीय साधक ही प्राप्त कर पाता है।

श्री आगासकर का कहना है—''श्री साईं बाबा न केवल योगाभ्यास के आदी थे, बल्कि इस विद्या में निष्णात सिद्ध पुरुष थे। शिरडी गाँव से थोड़ी दूर एक वट-वृक्ष के नीचे जो कुआँ है, वहाँ वे हर तीसरे दिन स्नानार्थ जाया करते थे। ऐसे ही एक अवसर पर योग-विद्या का एक चमत्कार प्रत्यक्ष देखने में आया। स्नान के समय अपना उदर साफ करते हुए उन्होंने अपने पेट की अँतड़ियाँ बाहर निकालीं और उन्हें अन्दर-बाहर साफ करने के पश्चात् पास के जामुन-वृक्ष की शाखा पर सुखाने के लिए लटका दिया। योग-विद्या का यह चमत्कार शिरडी गाँव के अनेक लोगों ने प्रत्यक्ष रूप से देखा है और उसकी सत्यता के प्रमाण दिये हैं। इस योग-विद्या में 'खण्डयोग' नामक एक अन्य प्रकार है। बाबा इसका प्रयोग भी यदाकदा करते थे। एक बार एक सज्जन बाबा से मिलने आये तो वहाँ का दृश्य देखकर वे घबड़ा गये। बाबा के शरीर के कई अंग खण्डित अवस्था में चारों ओर बिखरे हुए थे। इस दृश्य को देखकर वे बौखलाये हुए पड़ोस में स्थित मुखिया के घर की ओर दौड़े, पर कुछ दूर जाकर वे रुक गये। उन्होंने सोचा कि अगर इस घटना का वर्णन करूँगा तो लोग मुझे पागल समझेंगे। दूसरे दिन जब वे बाबा के निकट आये तो उन्हें स्वाभाविक रूप में पाया। कहा जाता है कि योग-विद्या का ज्ञान तथा आसनों के प्रयोग की दीक्षा बाबा को श्री व्यंकुशा (गोपालस्वामी)

नामक गुरु से प्राप्त हुई थी।''

एक भक्त महिला से बातचीत करते हुए बाबा ने अपने गुरु के बारे में कहा था—''मेरे गुरु अत्यन्त दयालु प्रकृति के महापुरुष थे। मैंने उनकी सेवा अनेक वर्षों तक की है। लेकिन उन्होंने मेरे कान में कोई मन्त्र नहीं दिया। मेरी यह इच्छा सदा बनी रही कि जीवन के अन्तिमकाल तक उनकी सेवा करता रहूँ, किन्तु उनका मार्ग निराला था। वे मुझे अपने पुत्र की तरह प्यार करते थे। किसी को ऐसा गुरु मिलना सौभाग्य की बात है। जब वे समाधिस्थ होकर बैठते थे तब मैं उनके सामने बैठ जाता था। उनके नेत्रों से निकलनेवाली ज्योति से मेरा अन्तःकरण भर जाता। इस प्रकार मुझे ज्ञात हुआ कि गुरु के प्रति निष्ठा कैसे रखी जा सकती है।''

* * *

गाजा, बाजा, बरातियों को लेकर एक बरात कई बैलगाड़ियों में लदकर शिरडी गाँव में आई। बरातियों के ठहरने का इन्तजाम गाँव की सीमा के पास स्थित मन्दिर में किया गया था। गर्मी का मौसम था। गाड़ियों में जुते बैलों को खोलकर पेड़ के नीचे बाँध दिया गया। लोग आराम करने की गरज से मन्दिर के प्रांगण में जाने लगे।

सहसा पुजारी की नजर एक नौजवान की वेश-भूषा पर पड़ी। उसने कड़कती आवाज में कहा—''ए छोकरे, यह हिन्दुओं का मन्दिर है। मुसलमानों का यहाँ प्रवेश वर्जित है।''

सिर पर कफनी बाँधे, चोंगा जैसा ढीला-ढाला बिना बाँहवाला कुर्ता, कन्धे पर रंगीन चादर, कमर में लुंगी तथा हाथ में एक छड़ी लिये एक नवयुवक के पैर मन्दिर की ओर जाते-जाते रुक गये। पुजारी की झिड़की सुनकर उसके चेहरे पर शिकन तक नहीं आई। उल्टे पाँव लौटकर वह एक पेड़ के नीचे बैठ गया। अपने झोले से चिलम निकालकर सुलफा पीने लगा।

मुख्य सड़क के किनारे शिरडी गाँव बसा हुआ है, इसलिए मन्दिर के आसपास चहल-पहल रहती है। कुछ देर बाद गाँव की ओर से म्हालसापति नामक एक सज्जन मन्दिर की ओर आ रहे थे। एक किशोर युवक को फकीर जैसी वेशभूषा में देखकर वे आकर्षित हुए। कुछ लोगों की आदत बन जाती है जो समदर्शी होते हैं। म्हालसापति ऐसे लोगों में अन्यतम थे जो गाँव में आनेवाले सन्त, फकीरों का स्वागत करते थे। सन्तों की सेवा निरन्तर करने के कारण उन्हें पर्याप्त अनुभव हो गया था। इस युवक के नेत्र और आकृति से निकलनेवाले तेज को देखकर वे चकित रह गये। अपने अन्तःकरण की प्रेरणा से वे उक्त युवक के पास आये और कहा—''आओ, साईं।''

म्हालसापति द्वारा सम्बोधित यही नाम आगे चलकर विख्यात हो गया। साईंनाथ, साईं महाराज, शिरडी के साईं बाबा आदि नामों से उन्हें स्मरण किया जाता है।

इस आह्वान की उपेक्षा साईं बाबा नहीं कर सके। उनके साथ चले आये और एक नीम-वृक्ष[1] के नीचे अपना आसन जमाया। नीम के वृक्ष के नीचे ही उन्होंने क्यों आसन लगाया, इसकी जानकारी बहुत बाद में लोगों को ज्ञात हुई।

एक बार किसी भक्त ने अपनी उत्सुकता को मिटाने के लिए यही प्रश्न किया था। प्रत्युत्तर में बाबा ने कहा—"यहाँ मेरे गुरु की समाधि है।"

बहुत दिनों बाद उस स्थान की खुदाई होने पर देखा गया कि नीचे एक सुरंग बनी हुई है। भीतर एक समाधि है जिस पर ताजे फूल चढ़े हुए हैं और चारों ओर दीपक की रोशनी है। आगे चलकर यहाँ 'गुफा-पादुका' की प्रतिष्ठा की गई।

गाँव में जर्जर स्थितिवाली एक मस्जिद थी। कुछ दिनों बाद साईं बाबा उसमें जाकर रहने लगे। केवल मिट्टी की दीवारें और खपरैल का छाजन था। नीम के पेड़ के नीचे बहुत कम लोग आते थे, पर जब से बाबा यहाँ रहने लगे तब से भक्तों की संख्या में वृद्धि होने लगी। इस स्थान का नाम उन्होंने रखा—'द्वारकामाई'। यहाँ एक घण्टा लगाया गया। राम-नाम का जयघोष किया गया। इसके बाद एक धूनी जलाकर अग्निदेव का विधिवत् पूजन किया गया।

जवानी के दिनों साईं बाबा पहलवान जैसे मालूम पड़ते थे। शिरडी में एक मुसलमान पहलवान रहता था। उसे अपनी ताकत पर घमण्ड था। अकारण लोगों से भिड़ जाता था। एक बार साईं बाबा से उसकी कुश्ती हो गई। बाबा को उसने उठाकर पटक दिया। इस पराजय का साईं बाबा पर व्यापक प्रभाव पड़ा। अब वे सिर पर कपड़ा बाँधने लगे ताकि उनके घुँघराले बाल छिप जायें। तहमद की तरह लुंगी पहनने लगे। सोने के लिए टाट का प्रयोग करने लगे। यहाँ तक कि अब लोगों से कम मिलने-जुलने लगे। बाबा दिन में गाँव में जाकर मधुकरी माँग लेते और उसे पकाकर खाते रहे। सामानों में कफनी, लुंगी, चिलम और तम्बाकू के अलावा टीन का एक लोटा रखते थे। सब कुछ मिलाकर वे एक प्रकार से अवधूत-प्रकृति के थे और उसी तरह जीवन व्यतीत करते रहे।

भक्तों को उपदेश देने के अलावा कभी-कभी कहते थे—"मेरे प्रिय भक्तों, आप कहीं भी हों, कुछ भी करते रहें, पर एक बात का ध्यान अवश्य रखें कि मैं आपकी सभी भली-बुरी घटनाओं पर नजर रखता हूँ। मुझसे कुछ छिपता नहीं। विश्व की रंगभूमि पर परदा खींचनेवाला मैं एक निमित्तमात्र सामान्य मनुष्य हूँ। मेरे हाथों में यह मायापटल दूर करने की ईश्वरदत्त शक्ति है।"

साईं बाबा के इस कथन का प्रमाण उनके भक्तों को यदाकदा मिल जाता था। शिरडी के बाबा की चमत्कारी कहानियाँ सुनकर एक डॉक्टर तमाशा देखने के लिए अपने एक मित्र के साथ आये। डॉक्टर साहब राम के कट्टर भक्त थे, साथ ही छुआ-छूत का विचार उनमें था। यहाँ आते समय वे यह निश्चय करके आये थे कि उनकी मस्जिद के भीतर नहीं जायँगे और न उनके दिये प्रसाद को ग्रहण करेंगे। सैर करके वापस चले आयेंगे। उनके इस विचार को सुनकर मित्र महोदय ने कहा—"जैसी आपकी इच्छा।"

मित्र महोदय डॉक्टर को लेकर द्वारकामाई आये। मित्र तो बाबा के भक्त थे। उन्होंने बाबा को साष्टांग प्रणाम किया। प्रणाम करने के बाद जब वे उठे तो देखा कि डॉक्टर साहब भी साष्टांग प्रणाम कर रहे हैं। यह दृश्य देखकर वे दंग रह गये।

---

१. आजकल इस स्थान को 'गुरु-पादुका स्थान' कहा जाता है।

बाद में उन्होंने डॉक्टर से पूछा कि ''कहिये, आप तो मस्जिद में जानेवाले नहीं थे और प्रणाम का नाटक क्यों किया?'' डॉक्टर ने कहा—''मस्जिद के दरवाजे के पास खड़े होकर जब मैंने बाबा को देखा तब उनके स्थान पर मैंने अपने प्रभु राम को देखा। ऐसी हालत में बिना प्रणाम किये कैसे रहता? धन्य हो, साईंनाथ बाबा। मुझे क्षमा कर दो। आज मेरे मन का अहंकार दूर हो गया।''

* * *

कई साल बाद प्रयाग में कुम्भ लगने का अवसर आया। शिरडी के लोगों ने सोचा कि इस वर्ष प्रयाग चलकर त्रिवेणी में स्नान किया जाय। इसी उद्देश्य से दासगणू महाराज ने द्वारकामाई में आकर बाबा से अनुमति माँगी।

साईं बाबा ने कहा—''बेकार उतनी दूर जाने से क्या फायदा? 'मन चंगा तो कठौती में गंगा' कहावत तुम लोगों ने सुनी होगी। अपना प्रयाग तो यहीं है। बस, मन में विश्वास कर लो तो त्रिवेणी-स्नान का पुण्य यहीं प्राप्त हो जायगा।''

साईं बाबा के कथन का प्रभाव पड़ा। दासगणू महाराज ने सिर झुकाकर बाबा के चरणों पर माथा नवाया और तभी चमत्कार हुआ। बाबा के दोनों पैरों के अँगूठों से गंगा-यमुना की धारा प्रवाहित होने लगी। यह दृश्य देखकर उपस्थित सभी लोग चमत्कृत रह गये। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि आज भक्तों पर बाबा की असीम कृपा हुई है।

साईं बाबा के कारण शिरडी जैसा नगण्य गाँव तीर्थ का रूप ग्रहण कर चुका था। नित्य कई सौ यात्री शिरडी में बाबा का दर्शन करने तथा आशीर्वाद प्राप्त करने आते थे। वास्तव में आज का मानव तनाव में रहता है। मानसिक शान्ति, पीड़ा से मुक्ति पाने के लिए वह मन्दिरों-मस्जिदों में जाता है, सन्त-फकीरों के यहाँ जाता है। इन सबका उद्देश्य यही रहता है कि उसे कष्टों से मुक्ति मिले। अगर किसी सन्त-फकीर या देवता के दर्शन-पूजन से व्यक्ति लाभान्वित होता है तो उनके प्रति आस्था उत्पन्न होती है, विश्वास होता है और लोग उसके भक्त बन जाते हैं। भारत में ऐसे सन्तों की कमी नहीं रही। अनादिकाल से आज तक ऐसे सन्तों का आविर्भाव समय-समय पर हुआ है।

साईं बाबा एक प्रकार से सन्त कबीरदास की भूमिका निबाहते रहे। वास्तविक सन्त वही है जो मानव में भेदभाव न रखे। सन्त कबीर ने कहा है—

पूरब दिशा हरि को वासा,
पश्चिम अलह मुकामा।
कबीर पोगंड़ा अलह राम का,
सो गुरु पीर हमारा ॥

साईं बाबा का भी सिद्धान्त यही रहा। कोपरगाँव में गोपालराव नामक एक इंस्पेक्टर थे। बाबा की कृपा से उन्हें सन्तान की प्राप्ति हुई। इस खुशी में उन्होंने 'उर्स' मनाने का निश्चय किया। बाबा से अनुमति माँगने पर उन्होंने अपनी स्वीकृति दे दी। इसके लिए जिला कलेक्टर के पास पत्र भेजा गया। कलक्टरी में कुलकर्णी नामक एक कर्मचारी ने इसका घोर

विरोध किया, पर बाबा की अलौकिक शक्ति से यह बाधा दूर हो गई। लेकिन बाबा ने एक अनोखा निर्णय दिया—"रामनवमी के दिन यह उत्सव मनाया जाय।"

एक प्रकार से यह एक विचित्र निर्णय था। राम के जन्म-दिन पर 'उर्स' का मनाना दूध में गोबर डालने जैसा था। लेकिन सभी बाबा के कट्टर भक्त थे। बाबा के निर्णय का विरोध करने को कौन कहे, किसी ने अपनी शंका तक प्रकट नहीं की। शिरडी गाँव के सभी लोगों ने सन् १८९७ ई० को यह अद्भुत उत्सव मनाया।

बाबा की आज्ञा से हिन्दू उर्स मना रहे हैं, यह बात सुनकर काफी तादाद में मुसलमान भी इस उत्सव में सम्मिलित हुए। भजन और जयघोष के साथ, बाबा को पालकी पर बैठाकर जुलूस निकाला गया। बाबा के परम भक्त शक्कर दलाल ने दूसरे दिन हाथों में चन्दन की थालियाँ लेकर 'सन्दल' का भव्य जुलूस निकाला। इस प्रकार प्रतिवर्ष 'उर्स' का उत्सव होने लगा।

आगे चलकर सन् १९१२ ई० में इस उत्सव ने एक नया रूप धारण किया। एक बार कृष्णराव भीष्म शिरडी आये। उनके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि बाबा ने रामनवमी के दिन उर्स मनाने की परम्परा क्यों चालू की? रामजन्म के दिन राम का उत्सव मनाना चाहिए, ताकि लोग इस दिन का महत्त्व समझ सकें। उन्होंने अपना यह विचार बाबा के भक्तों के सामने रखा जिसे सभी लोगों ने पसन्द किया।

अब लोग बाबा से आज्ञा लेने के लिए आये। सारी बातें सुनते ही बाबा ने अनुमति दे दी। स्थान-स्थान पर बन्दनवार लगाये गये। कृष्णराव भीष्म ने स्वरचित 'श्री रामजन्मोपाख्यान' पाठ करने का निश्चय किया। धूमधाम से राम-जन्म हुआ। चारों ओर गुलाल उड़ाया गया।

साईं बाबा की इन अद्भुत परम्पराओं को देखकर यह मानना पड़ता है कि सन्तों का कोई खास धर्म नहीं होता। वे सभी धर्मों को समान रूप से देखते हैं। साईं बाबा के आविर्भाव के बहुत पहले सन्त दादू से कहा गया था कि अगर तुम मानव की सेवा करना चाहते हो तो किसी सम्प्रदाय को अपना लो। उस सम्प्रदाय के लोग तुम्हें मदद देंगे तभी तुम्हें सफलता मिलेगी। इस पर दादू ने कहा था—

दादू ये सब किसके पन्थ में, धरती अरु असमान,
पानी-पवन दिन-रात का, चन्द-सूर रहिमान ।
ब्रह्मा-विश्न-महेस को, कौन पन्थ गुरुदेव,
साईं सिरजनहार तूँ, कहिये अलख अभेव ।
महमद किसके दीन में, जबराइल किस राह,
इनके मुर्सद पीर को कहिये एक अलाह ।
दादू ये सब किसके ह्वै रहे यहु मेरे मन माँही,
अलख इलाही जगद्गुरु दूजा कोई नाहिं ।

केवल सन्त दादू ने ही नहीं, बल्कि अधिकांश समदर्शी सन्तों ने इसी प्रकार के

विचारों को व्यक्त किया है। अधिक दूर क्यों, साईं बाबा के समकालीन बंगाल के बाउल सन्तों ने कहा है—

तोमार पथ ढाकाइयाछे मन्दिरे-मस्जेदे ।
तोमार डाक शुनि साईं, चलते ना पाइ;
रुकाइया दांडाय गुरुते मुर्शेदे ।
डूबाइया याते अंग जुड़ाय, तातेइ यदि जगत पुडाय
बलतो गुरु कोथाय दांड़ाय
तोमार अभेद साधन मरलो भेदे
तोर दुबारेइ नानान ताला, पुरान कोरान तसबी माला
भेख पखइ त प्रधान ज्वाला
कांदेइ मदन मरे खेदे ।
तोमार पथ ढाकाइयाछे मन्दिरे-मस्जेदे

अर्थात् मन्दिरों और मस्जिदों ने तुम्हारा रास्ता ढँक लिया है। हे स्वामी, तुम्हारी पुकार पर मैं चल नहीं पाता, गुरु और मुर्शिद रोककर खड़े हो जाते हैं। जिसमें डूबने से शरीर जुड़ा जाना चाहिए, तर हो जाना चाहिए, उसी से अगर संसार जलने लगे, तो हे गुरु, हम खड़े कहाँ हों? हाय, तुम्हारी 'अभेद-साधना' भेद से मारी गई! तुम्हारे ही द्वार पर ये नाना ताले—पुराण, कुरान, तसवीह, माला इत्यादि लगे हैं। भेख और पक्ष ही तो प्रधान ज्वाला हैं। मदन तो खेद के कारण रो-रोकर मर रहा है।

साईं बाबा के समन्वयवाद का शिरडी पर व्यापक प्रभाव रहा। भारत में सर्वत्र दंगे हुए। महाराष्ट्र भी अछूता नहीं रहा। पड़ोसी जिला नासिक भी कर्फ्यू के आतंक से त्रस्त रहा। दंगों के कारण भारत का बँटवारा हुआ, पर उस दौरान में शिरडी शान्त रहा। दोनों ही सम्प्रदाय के लोगों की श्रद्धा साईं बाबा के प्रति थी।

* * *

सन्त या योगी की प्रसिद्धि तभी होती है जब वह अपनी अतीन्द्रिय-शक्ति से कुछ चमत्कार दिखाता है। भक्तों के कष्टों को दूर करता है और अपने उपदेशों से उत्तप्त मानव को सान्त्वना देता है। साईं बाबा ने समय-समय पर अपनी अतीन्द्रिय-शक्ति का प्रदर्शन किया है जैसे अन्य अनेक योगियों ने किया था।

एक दिन उनके भक्तों ने रात को उनकी आरती की। दूसरे दिन जब वही लोग बाबा का दर्शन करने गये तब उन्होंने आगत भक्तों से कहा—''दल मैं दक्षिण दिशा में घूमने गया था।''

बाबा की बातें कोई नहीं समझ सका। सभी लोग देखते रहे कि बाबा दिनभर तो उनके साथ रहे। फिर घूमने कब गये? शायद विनोद कर रहे हैं। यह सोचकर किसी ने कोई प्रश्न नहीं किया।

बाबा सामने बैठे लोगों से बातें कर रहे थे। थोड़ी देर बार दक्षिण दिशा में

रहनेवाला एक व्यक्ति आया और उसने प्रसंगवश कहा—''बाबा कल हमारे गाँव गये थे। आज मैं यहाँ दर्शन करने आया हूँ।''

यह बात सुनकर उपस्थित लोग चकित रह गये। योगीगण कभी-कभी द्विशरीरी रूप धारण कर लेते हैं।

* * *

एक बार बाबा भक्तों से घिरे बैठे थे। द्वारकामाई-भवन में एक दीवार पर एक छिपकली आवाज करने लगी। सहसा एक भक्त के मन में यह शंका उत्पन्न हुई। जिस प्रकार कुत्ते, बिल्ली, सियार के रोने से मुसीबतें आती हैं उसी प्रकार छिपकली का चिल्लाना अपशकुन है। उसने अपने मन की शंका प्रकट कर बाबा से प्रश्न किया—''बाबा, यह छिपकली क्या कह रही है?''

बाबा ने कहा—''अरे भाई, इसकी बहन औरंगाबाद से यहाँ इससे मिलने के लिए आ रही है, इसीलिए यह आनन्द से विभोर होकर खुशी मना रही है।''

इस उत्तर को सुनकर बेचारा भक्त चुप हो गया। भला छिपकली को कैसे मालूम हो गया कि उसकी बहन औरंगाबाद से यहाँ आ रही है। औरंगाबाद क्या पास में है? इस तरह के प्रश्न उसके मन में उठते रहे। बाद में सोचा—शायद बाबा ने परिहास किया है।

थोड़ी देर बाद ताँगे पर सवार एक भक्त बाबा का दर्शन करने औरंगाबाद से आया। अपने थके हुए घोड़े को चारा खिलाने के लिए ताँगेवाले ने चने का बोरा जमीन पर उड़ेलकर झटका। उसमें से एक छिपकली निकली और तेजी से सामने की दीवार पर चढ़ गई। इसके बाद दोनों छिपकलियाँ खुशी से दौड़-धूप करने लगीं। यह दृश्य देखकर प्रश्नकर्त्ता भक्त ही नहीं, सभी लोग आश्चर्यमिश्रित प्रसन्नता प्रकट करने लगे। हमारे साईं बाबा कितने दूरदर्शी हैं, यह समझते उन्हें देर नहीं लगी।

मानव-स्वभाव बड़ा विचित्र है। कोई अर्थ के पीछे परेशान रहता है तो कोई रोग-शोक के पीछे। ऐसी ही परेशानी में कभी-कभी लोगों के मन में वैराग्य की भावना उत्पन्न हो जाती है और निरुद्देश्य घर से निकल पड़ता है। ऐसी घटनाएँ अनेक लोगों के जीवन में होती हैं। ऐसे लोगों में योग्य व्यक्ति को सन्त अपनी ओर आकर्षित करते हैं।

बालाराम मानकर की मानसिक स्थिति खराब हो गई थी। उन्हें अपनी पत्नी से बेहद प्यार था। सहसा उसके निधन से वे इतने उद्विग्न हो उठे कि सब कुछ छोड़कर शिरडी में बाबा के पास आ गये। बाबा अन्तर्यामी थे। उन्हें रहस्य समझते देर नहीं लगी।

एक दिन बाबा ने बालाराम को बारह रुपये देते हुए कहा—''मच्छिन्दरगढ़ चले जाओ।''

बालाराम बाबा का सान्निध्य छोड़कर जाना नहीं चाहते थे। बाबा ने देर तक उसे काफी समझाया। उनके प्रबोध-वचन का प्रभाव पड़ा। साथ ही उसे यह बताया कि वहाँ जाकर योग की साधना करो। योग की साधना कैसे करनी चाहिए, इसकी जानकारी दी, ताकि वे इस दिशा में सफलता प्राप्त कर सकें।

अन्त में बाबा के आज्ञानुसार वे मच्छिन्दरगढ़ आकर बाबा की बतायी प्रक्रिया के अनुसार साधना करने लगे। ऐसे भक्तों को गुरु सूक्ष्म रूप में प्रकट होकर अन्य क्रियाएँ बताते हैं। बाबा प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित होकर कभी-कभी निर्देश देते रहे।

अन्त में एक दिन बालाराम ने पूछा—"जब आप नित्य दर्शन देते हैं तब मुझे यहाँ क्यों भेजा? मैं आपके चरणों के पास रहकर सारी जानकारी प्राप्त कर लेता। आपको इस तरह कष्ट नहीं करना पड़ता।"

बाबा ने कहा—"शिरडी में भक्तों के कोलाहल में तुम अपने मन को एकाग्र न कर पाते। साधना के लिए शान्त परिवेश की आवश्यकता होती है। यही वजह है कि मैंने यहाँ तुम्हें भेजा, ताकि तुम्हारी उद्विग्नता दूर हो जाय। केवल यह सोचना कि मैं शिरडी में ही सशरीर रहता हूँ, यह मन का भ्रम है। अब तुम स्वयं देख रहे हो कि मैं यहाँ उपस्थित हूँ। जब भी तुम्हें कोई कठिनाई होगी तब मैं स्वयं उपस्थित होकर तुम्हारी परेशानी दूर कर दूँगा। मेरी बतायी प्रक्रिया का निरन्तर अभ्यास करो।"

इतना कहकर साईं बाबा अदृश्य हो गये। यहाँ भी वे द्विशरीरी रूप में प्रकट हुए थे। मच्छिन्दरगढ़ में एक अर्से तक साधना करने के बाद बाबा के आज्ञानुसार बालाराम घर की ओर रवाना हुआ। पूना स्टेशन पर अपार भीड़ थी। फलस्वरूप उन्हें लाइन में खड़े होकर प्रतीक्षा करनी पड़ी। इतने में एक आदमी उनके पास आया और बोला—"शायद आप दादर जा रहे हैं। मेरे पास दादर तक का टिकट है। मैं इसी गाड़ी से जानेवाला था, पर एक आवश्यक कार्य आ जाने के कारण मैं जा नहीं पाऊँगा। आपको जरूरत हो तो टिकट ले लीजिए।"

बालाराम ने टिकट लेकर देखा, फिर जेब से मनीबैग निकालकर किराया देने के लिए हाथ बढ़ाया तो वह व्यक्ति न जाने कहाँ गायब हो गया था। चारों ओर नजर दौड़ाने पर भी वह नहीं मिला। इस घटना को बाबा की कृपा मानकर उन्होंने बाबा का स्मरण करते हुए प्रणाम किया।

* * *

बाबा के एक भक्त मेघा थे। एक दिन उन्हें झक सवार हुई कि मकर-संक्रान्ति के दिन बाबा को गोदावरी नदी में स्नान कराया जाय। इस प्रस्ताव को सुनकर बाबा ने उपेक्षा दिखाई। लेकिन मेघाजी कम जिद्दी नहीं थे। जब सनक सवार हुई है तब कार्य होना चाहिए। चारों ओर से दबाव पड़ने पर बाबा को स्वीकृति देनी पड़ी। मेघाजी स्नान-सन्ध्या करने के बाद घड़ा लेकर गोदावरी से पानी लेने चल पड़े। आना-जाना मिलाकर बत्तीस मील का सफर था। मेघाजी कर्मठ थे। पानी लेकर लौटे। बाबा को एक छोटी चौकी पर बैठाया गया।

एकाएक बाबा ने मेघा का हाथ पकड़ते हुए कहा—"मेघा, मेरे शरीर में सिर ही मुख्य है। केवल मेरा सिर भीगे, बाकी बदन सूखा रहे।"

मेघाजी ने सोचा—ऐसा कैसे हो सकता है? लेकिन वे अपने मूड में थे। बोले—"ठीक है, बाबा। ऐसा ही होगा।"

इतना कहने के पश्चात् मेघाजी ने घड़े का सारा पानी बाबा के सिर पर उड़ेलते हुए कहा—"हर हर महादेव शम्भो।"

घड़े को जमीन पर रखने के बाद मेघाजी ने जब बाबा की ओर देखा तो चौंककर देखता ही रह गया। बाबा का केवल सिर भीगा था। शेष अंगों पर पानी की एक बूँद भी नहीं थी। उसे विस्मित देखकर बाबा मुस्कराने लगे। भक्त की इच्छा पूरी हुई और बाबा ने कौतुक भी दिखाया।

* * *

विनायकराव बाबा के पुराने भक्त थे। नौकरी के सिससिले में बीकानेर गये तो वहीं व्यस्त हो गये। सहसा एक दिन स्वप्न में बाबा ने दर्शन दिया। उलाहना देते हुए बोले—"क्या मुझे भूल गया?"

विनायकराव ने बाबा के चरणों पर सिर नवाते हुए कहा—"भला कोई बालक अपनी माँ को भूल सकता है?" इतना कहकर वे अपने बगीचे में गये और वहाँ से 'बालपापड़ी' की सेम तोड़कर लाये। ज्योंही बाबा के चरणों में उसे अर्पित किया त्योंही उनकी नींद खुल गई।

विनायकराव समझ गये कि बाबा मुझे भूले नहीं। जरूर याद की होगी। व्यक्तिगत कार्यवश वे ग्वालियर गये हुए थे। वहीं एक ऐसे सज्जन मिले जो बाबा का दर्शन करने के लिए शिरडी जा रहे थे। उन्हें बारह रुपये देते हुए कहा कि दो रुपये में बालपापड़ी की सेम तथा सीधा-सामग्री खरीद लीजिएगा। शेष दस रुपये बाबा को दक्षिणा के रूप में दे दीजिएगा।

वह व्यक्ति शिरडी पहुँचा और सारा सामान खरीदने के बाद बालपापड़ी सेम की तलाश करने लगा, पर कहीं दिखाई नहीं दी। कोपरगाँव आने पर देखा—एक महिला की सब्जी की टोकरी में बालपापड़ी की सेम है। उसने तुरत खरीद ली। शिरडी पहुँचकर निमोणकरजी को सारी सामग्री दे दी। निमोणकरजी ने भोजन तैयार कर विनायकराव का नैवेद्य बाबा को अर्पित किया। विनायकराव के मित्र तथा अन्य लोगों को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उस दिन बाबा ने केवल सेम की तरकारी ग्रहण की, अन्य सामग्रियों को स्पर्श तक नहीं किया।

* * *

बाबा के एक भक्त थे—दामूअण्णा। यह वही व्यक्ति हैं जिन्होंने रामनवमी का उत्सव प्रारम्भ किया था। इन्होंने एक बार बाबा को पत्र लिखा कि मैं रूई का सट्टा खेलना चाहता हूँ। आप कृपया आज्ञा दें। बाबा ने लिखवाया—"जुए का मार्ग पतन का मार्ग है। परमेश्वर की दी हुई आधी रोटी में सन्तोष करो।"

दामूअण्णा ने सोचा कि बाबा से पत्र-व्यवहार करने की अपेक्षा प्रत्यक्ष रूप से बातचीत करना उचित होगा। दामूअण्णा की इच्छा थी कि वह लखपति बन जाय। यहाँ आने पर सहसा बात छेड़ने का साहन नहीं हुआ। बातचीत के सिलसिले में दामूअण्णा ने कहा—"रूई के बदले मैं अनाज का व्यापार करना चाहता हूँ।"

बाबा ने इस प्रश्न का विचित्र उत्तर दिया—"एक रुपये का पाँच सेर खरीदकर

सात सेर के भाव से बेचोगे क्या?''

दामूअण्णा को समझते देर नहीं लगी कि अनाज के रोजगार में घाटा होनेवाला है, इसीलिए बाबा ऐसा कह रहे हैं।

कुछ ही दिनों बाद दामूअण्णा ने देखा कि उसके सभी व्यापारी मित्र रोना रो रहे हैं। वर्षा अच्छी होने की वजह से अनाज का भाव गिर गया था। सभी को घाटा लगा। यहाँ तक कि रूई के सट्टे में सटोरियों का दिवाला निकल गया।

कभी-कभी सामान्य व्यक्ति अपने अहं का प्रदर्शन करने सन्तों के पास आ जाते हैं। बेचेंगे धनिया, जीरा और बातें करेंगे—ब्रह्मज्ञान की। सन्तों के समीप आकर भी सौदेबाजी करते हैं। इस प्रकार एक व्यापारी सज्जन बाबा के पास आये और उन्होंने कहा कि मैं प्रत्यक्ष ब्रह्म देखना चाहता हूँ।

बाबा मन ही मन मुस्कराये। बोले—''ठीक है, बैठो।'' कुछ देर तक इधर-उधर की बातें करने के बाद उन्होंने एक बालक से कहा कि जाओ, अमुक मारवाड़ी से पाँच रुपये उधार माँग लाओ।

बालक ने वहाँ से वापस आकर कहा—''मारवाड़ी घर पर नहीं हैं।''

बाबा ने एक दूसरे व्यापारी के पास भेजा। वहाँ से खाली हाथ आया। इस प्रकार तीन-चार जगहों से वह वापस आया। रुपये कहीं नहीं मिले। दरअसल बाबा को रुपयों की जरूरत नहीं थी। वे ब्रह्म दिखाने की भूमिका बना रहे थे। सामने बैठे व्यापारी की जेब में काफी रकम थी। वह चाहता तो दे सकता था, पर उसे अपनी रकम से मोह था।

वह बाबा के नाटक और बातचीत से बोर हो गया था। उसने कहा—''अब आज्ञा दीजिए बाबा। काफी देर हो गई। मुझे जाना है। आप ब्रह्म दिखा रहे थे, पर मैं देख नहीं पाया।''

बाबा ने कहा—''मैंने तुम्हारे सामने इस बालक को इतना दौड़ाया, फिर भी तुम्हें ब्रह्म दिखाई नहीं दिया? ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने के लिए पाँच वस्तुओं का त्याग करना पड़ता है। पंचप्राण, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और देहाभिमान। तभी ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है। तुम्हारे जैसा व्यक्ति जब पाँच रुपये का मोह त्याग नहीं सकता तब ब्रह्मज्ञान क्या प्राप्त करेगा? ब्रह्मज्ञान क्या कोई साधारण वस्तु है जो पैसे से खरीद लेगा। मुमुक्षु भक्त जब सब कुछ त्यागकर साधना-तपस्या करता है तब उसे ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है। इतने बड़े व्यापारी होकर जब तुम पाँच रुपये का मोह त्याग नहीं सके तब ब्रह्मज्ञान क्या प्राप्त करोगे?''

* * *

'ॐ गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वती' के अनुसार गोदावरी नदी कोपरगाँव के निकट बहती है। इस नदी से नौ मील दूर शिरडी गाँव है। साईं बाबा के कारण यह नगण्य गाँव सम्पूर्ण भारत में प्रसिद्ध हो गया। नित्य कई सौ यात्री, भक्त बाबा की समाधि दर्शन करने आते हैं। यहाँ के स्थानीय वृद्धों का कहना है कि जवानी के आलम में बाबा अत्यन्त सुन्दर तथा तेजस्वी थे। उनका स्वभाव बड़ा उग्र था। बड़े व्यक्तियों की तनिक भी परवाह नहीं करते थे। गरीबों के लिए वे बड़े कृपालु थे। कथा-कीर्तन के बड़े प्रेमी

थे। द्वारकामाई में जब वे धूनी के सामने ध्यान लगाकर बैठते थे तब पूर्ण-ब्रह्म-अवस्था में रहते थे। उनकी आँखों से निरन्तर ज्योति निकलती थी। किसी के मन की बात वे तुरत समझ जाते थे। पीड़ितों की सेवा करने में हमेशा तत्पर रहते थे। उन्हें दीप जलाकर प्रकाश करने का विचित्र शौक था।

एक बार मजेदार घटना हुई थी। बाबा नित्य दुकानदारों से तेल मँगवाते और द्वारकामाई में मिट्टी के अनेक दीपक जलाते थे। कुछ दिनों बाद दुकानदारों ने निश्चय किया कि अब बाबा को तेल नहीं देंगे। उस दिन बाबा तेल माँगने निकले तो किसी ने नहीं दिया। किसी को बिना कुछ कहे वे वापस चले आये। कुछ देर तक चुपचाप बैठे रहने के बाद एकाएक उठे और सभी दीपकों में रूई की वर्तिकाएँ बनाकर रख दीं। कनस्तर में जितना तेल था, उसमें पानी मिलाकर पी गये। फिर उसी कनस्तर में पानी डाल दिया। उस पानी को लेकर तमाम दीपकों में डालने लगे। सभी दीपक पानी से जलने लगे।

तेल के स्थान पर पानी से बत्ती जलते देख दुकानदारों के होश उड़ गये। लोगों को अपने व्यवहार पर बड़ा पश्चाताप हुआ। इस घटना के बाद से सभी दुकानदार पुनः बाबा को तेल देने लगे।

बाबा की आज्ञा लेकर नागपुर के एक धनाढ्य ने शिरडी में एक मन्दिर बनवाया। उसकी इच्छा थी कि इस मन्दिर में श्रीकृष्ण की मूर्ति स्थापित की जाय। लेकिन उसकी यह इच्छा पूर्ण नहीं हो सकी। बाबा ने कहा कि इस भवन में मैं रहूँगा। चूँकि इस मन्दिर का निर्माण बूटी साहब ने किया था, इसलिए इसे बूटी का मन्दिर कहा जाता है।

काल की घटना विचित्र होती है। राम, कृष्ण, बुद्ध आदि भी काल के हाथों मुक्ति नहीं पा सके, फिर सन्त-महात्मा कैसे पाते? सन् १६१७ की विजयदशमी से लगभग पन्द्रह दिन पूर्व एक दुर्घटना हो गई। द्वारकामाई में झाड़ू लगानेवाले एक बालक से वह ईंट गिरकर टूट गई जिस पर सिर रखकर बाबा सोते थे। उस समय जितने लोग मौजूद थे, उन लोगों ने इसे महत्त्व नहीं दिया। बाबा जब बाहर से घूमकर आये तब वे बड़े दुःखी हो गये। उन्होंने कहा—"केवल ईंट नहीं टूटी है। वह मेरी जीवनसंगिनी थी। उसी को लेकर वर्षों तक मैं आत्मज्ञान के प्रयोग तथा ध्यान करता रहा। वह ईंट मुझे प्राणों से अधिक प्यारी थी।"

साईं महाराज समझ गये कि अब उनका अन्तिम समय आ गया है। उन्होंने बझे नामक भक्त को 'राम-विजय' नामक ग्रन्थ पाठ करने का आदेश दिया। एक बार समाप्त होने पर पुनः पाठ करने को कहा। इस प्रकार चार बार पाठ हुआ। अपने निधन के तीन-चार दिन पूर्व उन्होंने अपना घूमना-फिरना बन्द रखा था। एक दिन उन्होंने कहा—"आज मेरा जी घबरा रहा है। मुझे जल्द बूटी की हवेली ले चलो।"

तुरत आज्ञा का पालन किया गया। बयाजी की गोद में सिर रखकर वे लेट गये। नानासाहब ने उनके मुख में गंगा-जल छोड़ा।

साईं बाबा के निधन का समाचार आग की तरह चारों ओर फैल गया। अगणित भक्त आने लगे। चारों ओर आँसुओं की बाढ़ आ गई। जिस व्यक्ति के कारण शिरडी को गर्व था, आज वह अनाथ हो गया था।

■ ■ ■

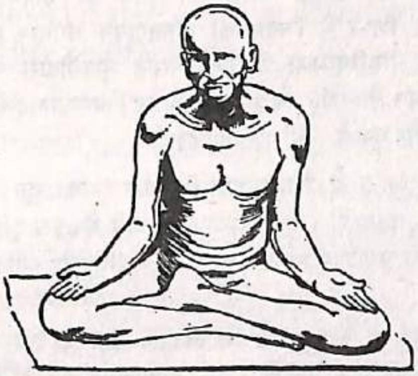

रणछोड़दास महाराज

भारत सन्तों का देश है। यहाँ न जाने कितने दीर्घायुवाले सन्त हो गये हैं, उनके बारे में सामान्य लोगों को बहुत कम जानकारी है। स्वामी विशुद्धानन्द के गुरुदेव की उम्र १२०० वर्ष से अधिक है। वे आज भी हिमालय के ज्ञानगंज में हैं। योगी वरदाचरण ने काशी में रहनेवाले सन्त का उल्लेख किया है जो दाराशिकोह के गुरु रहे। अब उनका यश:शरीर है या नहीं, पता नहीं। सिद्धयोगी तैलंग स्वामी का जन्म सन् १६०७ ई० में हुआ और वे परलोकवासी हुए १८८७ ई० में। लगभग २८० वर्ष तक वे जीवित रहे।

इसी प्रकार बाबा रणछोड़दास दीर्घायुप्राप्त सन्त रहे हैं। यद्यपि वे अपनी उम्र तथा साधना के बारे में पूछने पर भी विशेष नहीं बताते थे, तथापि उनके कथन से स्पष्ट हो जाता है कि उनका जन्म शाहंशाह अकबर के शासन के पूर्व हुआ था।

अपने सम्प्रदाय के बारे में आपका कहना है—"हमारा श्री-सम्प्रदाय है। हमारे इष्ट श्री रामचन्द्र महाराज हैं। श्रीनाथ मुनिजी महाराज के शिष्य पुण्डरीकाक्षजी थे। इनके शिष्य राम मिश्रजी हुए। इनके शिष्य यामुनाचार्यजी थे (रामानुजाचार्य के गुरु)। ये श्रीनाथ मुनि महाराज के पौत्र थे। इनके शिष्य पूर्णाचार्य परांकुशजी हुए। इनके शिष्य रामानुजाचार्य थे। रामानुजाचार्य की १२वीं पीढ़ी में राघवानन्दाचार्यजी हुए। इनके शिष्य रामानन्दाचार्य हुए। इसी बीच एक घटना के कारण श्री-सम्प्रदाय में दो सम्प्रदाय हुए—श्री रामानन्द-सम्प्रदाय और श्री रामानुज-सम्प्रदाय। रामानन्दी सम्प्रदाय को वैरागी-सम्प्रदाय भी कहा जाता है। इनका सिद्धान्त है—

जाति-पाँति पूछे नहिं कोई ।
हरि को भजै सो हरि का होई ॥

उन दिनों हिन्दुओं में ऊँच-नीच का भाव उग्र रूप में था। इस प्रथा को समाप्त करने के लिए रामानन्दी सम्प्रदाय ने कमर कस ली थी। उन्हें यह देखकर दुःख हुआ कि उच्चवर्ग की उपेक्षा के कारण निम्नवर्ग के लोग तेजी से मुसलमान बनते जा रहे हैं। अपने सम्प्रदाय में बिना भेदभाव के सभी लोगों को रामानन्दी सम्प्रदाय ने स्थान दिया।

रामानन्दजी के १३ प्रमुख शिष्य थे। इनमें श्री अनन्तानन्दजी प्रधान थे। अनन्तानन्दजी के १२ शिष्य थे जिनमें श्री पतितपावन भगवान् तथा नरहरिदास की ख्याति अधिक हुई। नरहरिदासजी के शिष्य सन्त तुलसीदास थे। ज्ञातव्य रहे कि अनन्तानन्दजी का निधन वि० सं० १५३० में हुआ था। अनन्तानन्दजी महाराज रणछोड़दास के दादागुरु थे और गुरु थे—श्री पतितपावनजी।

अपने गुरु की आज्ञा से रणछोड़दासजी अपने काका गुरु नरहरिदास के साथ गलता (जयपुर) से जगन्नाथजी (पुरी) यात्रा करने गये थे। इस दृष्टि से रणछोड़दासजी १५वीं शताब्दी के सन्त प्रमाणित होते हैं जो भारत के विभिन्न स्थानों में जनता-जनार्दन की सेवा करते रहे।

वि० सं० १५२० में जब गुजरात में अकाल पड़ा था तब पतितपावन महाराज अपने काका गुरुओं कबीरदास, धनाजी, रैदास, पीपाजी के साथ काम करते रहे।

रणछोड़दासजी के अग्रज गुरुभाई श्री कीलकरणजी का काल १५६० ई० के पूर्व का है। आमेर-नरेश मानसिंह कीलकरणजी के यहाँ सत्संग में भाग लेते रहे।

एक बार रणछोड़दासजी से एक भक्त ने प्रश्न किया कि आपकी कितनी उम्र है? प्रत्युत्तर में उन्होंने कहा—"उम्र के बारे में क्या बतलाऊँ? इससे क्या लाभ होगा? और न बताने पर कौन-सी हानि होगी? तुम्हारे मन में जो आये, उतनी समझ लो।"

भक्त ने अपना अन्दाजा सौ वर्ष बताया तो उन्होंने कहा—"मेरा अनुभव सुनो। १०० वर्ष तो क्या मैंने २५०, ३००, ५००, ७०० वर्ष आयुवाले महात्माओं के दर्शन किये हैं। जिन दिनों मैं काश्मीर में रहता था, उन दिनों पतितपावनजी भगवान् के परम स्नेही सिद्ध सन्त श्री बनवारीदासजी महाराज इस कोटि के सन्त थे। शतकुम्भा पर्वत की दो मील की ऊँचाई पर उनकी तपोभूमि थी। महाराजजी के पास हमेशा दो सिंह पालतू बिल्ली की तरह बैठे रहते थे।"

एक भक्त ने पूछा—"आपकी साधना-भूमि कहाँ है?"

रणछोड़दासजी ने कहा—"सर्वप्रथम गलताजी है। यह स्थान जयपुर नगर से ८-९ मील दूर है। बाद में काश्मीर। पुष्करराज तीर्थ में मैं बहुत दिनों तक था। ध्येयसिद्धि वहीं हुई है।"

दूसरे भक्त ने पूछा—"आप राजकोट (गुजरात) में कब आये?"

रणछोड़दासजी—"मेरा ऐसा ख्याल है कि सन् १८५७ के गदर के दिनों पहले-

पहल आया था। उन दिनों यह स्थान देहात जैसा था। सिहोर के पास नानासाहब पेशवा गुप्त वेश में रहते थे। मैं उनसे मिला था। सन्-संवत् ठीक से याद नहीं, पर मैं ४०-४५ साल अनसूया में भी था तब विक्टोरिया की ओर से ढिंढोरा पिटवाया गया था कि अब हिन्दुस्तान का कारोबार ब्रिटिश राजसत्ता ने सँभाल लिया है। इन्हीं दिनों स्वामीनारायण-सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री सहजानन्द स्वामीजी के गुरुदेव श्री रामानन्द स्वामीजी विप्लव के ४०-४५ साल पहले तथा उससे २५ साल पहले सहजानन्द स्वामीजी साकेत पधार गये थे। रामसनेही-सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्री रामचरणजी महाराज रामानन्द स्वामी से पहले जा चुके थे। रामसनेहीजी राम-राम कहते थे, सीताराम नहीं कहते थे। वे केवल राम के सनेही थे, इसीलिए रामसनेही कहलाये।''

एक भक्त ने पूछा—''काश्मीर में आप किस जगह थे?''

महाराजजी—''रसायणी गुफा में, जो श्रीनगर से ७०-८० मील दूर है।''

'श्री गुरुदेव की सन्निधि में' नामक ग्रन्थ की लेखिका कुमारी कुमुदिनी परमानन्द पजवाणी ने महाराजजी से एक बार उनके जीवन के बारे में प्रश्न किया था। प्रत्युत्तर में उन्होंने कहा—''तुम मेरे बारे में जानना चाहती हो और बार-बार पूछती हो, पर क्या बताऊँ? पूर्वाश्रम की बातें बताना पूर्वजन्म की बातें जैसी लगती है। यह शरीर महाराष्ट्रीय देशस्थ ब्राह्मणकुलोत्पन्न है। वऱ्हाड़ के अमरावती जिले में वायफल नामक गाँव मेरी जन्मभूमि है। पिता पुलिस के महकमे में थे। मेरे तीन बड़े भाई और एक बहन थी। बचपन में दो पुस्तकें वायफल के स्कूल में पढ़ी थीं। इसके बाद पास के नाचन नामक गाँव के एक स्कूल में एक पुस्तक पढ़ी थी। नाचन गाँव में दो बड़े भाई बुक बाइण्डिग का काम करते थे। पिताजी अपराधियों को कड़ी सजा देते थे। इससे माँ को बहुत कष्ट होता था। एक बार ऐसी घटना के समय माँ सामने आ गई तब पिताजी के द्वारा माँ का भयानक अपमान हुआ।

''इससे मेरे मन को चोट पहुँची। मैंने घर छोड़ दिया। उन दिनों मेरी उम्र नौ साल, चार महीने थी। माँ धार्मिक थी। परिवार ऋग्वेदी था। जब मैं साढ़े-सात वर्ष का था तब यज्ञोपवीत हुआ था। माँ तथा पिताजी नित्य सन्ध्या-पूजन आदि नियमपूर्वक कराते थे। बराबर पूछते कि सन्ध्या-पूजन किया? जब तक सन्ध्या-पूजन नहीं कर लेता था तब तक भोजन नहीं मिलता था।

''घर से चलकर मैं जयपुर आ गया। मार्ग में नाना-संन्यासियों ने मुझे आश्रय दिया। महन्तजी ने ऊँट, बैल, गाय आदि चराने का काम मुझे सौंपा। इधर मैं महन्तजी से बार-बार दीक्षा देने का आग्रह करता। मेरा मन बचपन से ही योगी बनने का था। आगे चलकर मुझे मालूम हो गया कि महन्तजी को योग का ज्ञान नहीं है, अतएव यहाँ कुछ मिलनेवाला नहीं है। फलतः एक दिन इस जमात से भाग निकला। पर दो-तीन नागा मुझे पकड़ लाये। अब मेरे ऊपर पहरेदारी होने लगी, ताकि पुनः भाग न पाऊँ।

''ठीक इन्हीं दिनों श्री पतितपावन भगवान्‌जी का दर्शन धौंसा ग्राम में हुआ। आपने मुझे देखते ही कहा—'तुम गलत जगह फँस गये हो। यहाँ रहने पर जीवन का

कल्याण नहीं होगा। अच्छा होगा कि घर वापस चले जाओ। अगर यहाँ से छुटकारा पाना चाहते हो तो मेरे पीछे-पीछे चले आओ। बिलकुल निर्भय होकर। नागा लोग तुम्हारा कुछ नहीं कर सकेंगे। एक बार यहाँ से छुटकारा पा जाओ तो ठीक होगा। इसके बाद तुम्हारी जो इच्छा हो करना। मेरे साथ चलना या घर वापस चले जाना।'

''श्री पतितपावनजी की अभय-वाणी सुनकर मैं उनके चरणों पर गिर पड़ा और रोने लगा। मैंने कहा कि मैं आपके साथ चलना चाहता हूँ। आपकी शरण में रहना चाहता हूँ। तब उन्होंने कहा—'यह तो खुशी की बात है। मैं तुम्हारी प्रतीक्षा में था। अब तुम मेरे साथ चले आओ।'

''इतना कहने के बाद वे मेरा हाथ पकड़कर चल पड़े। महन्तजी तथा उनके नागा शिष्य देखते रह गये। कोई कुछ नहीं कर सका। आपके साथ गलता आश्रम में आ गया। आपके प्रथम दर्शन से ही मेरे मन में अपूर्व शीतलता उत्पन्न हो गई। माँ के समान प्रेम तथा वात्सल्य प्राप्त हुआ। गलता में आपने मेरा पंच-संस्कार किया। तिलक-कण्ठी धारण कराई। साधन-नियम बताये और बड़ी कृपा करके अपनी सेवा तथा सन्निधि में रख लिया। साधु-संस्कार से मैं यजुर्वेदी हूँ।''

कुमारी कुमुद ने उनके जीवन के बारे में लिखा है—''श्री गुरुदेव पौने-तीन गज की सफेद पापलीन लुंगी पहनते हैं। काफी पहले टाट पहनते थे। बाद में किसी भक्त ने अपने हाथ से बनाकर खद्दर की लुंगी पहनायी थी। वे सिलाई किया हुआ कोई वस्त्र धारण नहीं करते। स्वेटर तक नहीं। बाहर जाते समय शाल ओढ़ लेते हैं। खड़ाऊँ या रबड़ की स्लीपर भी नहीं पहनते। यज्ञोपवीत, तुलसी की कण्ठी और चश्मा जरूर पहनते हैं। ऊनी कम्बल का आसन अधिक पसन्द करते हैं। टाट में नारियल की जटा भरकर गद्दी-तकिये का प्रयोग करते हैं। खान-पान में काँच के नये या तपे बरतन अथवा पत्तलों का प्रयोग करते हैं। भोजन दिन में दो बार करते हैं। सबेरे ८॥ से ९ के भीतर तथा शाम को ५ से ५॥ के भीतर कर लेते हैं। आहार में सूखी रोटी, उबली सब्जी या मूँग की दाल, गेहूँ की दलिया नमक डालकर स्वयं बनाते हैं। मसाले में सेंधा नमक, जीरा, काली मिर्च और अदरक लेते हैं। दूध, चाय, कॉफी, फल, मेवा, घी, तेल आदि नहीं लेते। फलों में पपीता जरूर पसन्द करते हैं।

भोजन के पूर्व दोनों वक्त स्नान करने की आदत है। प्रातःकाल तीन, सवा तीन बजे गरम पानी से स्नान करने के बाद आसन पर बैठते हैं। तीन घण्टे पश्चात् साढ़े-छः बजे नियम से उठते हैं तब लोगों को दर्शन देते हैं। शाम को पौने-पाँच बजे भोजन बनाकर खाते हैं और बाद में नियम पर बैठते हैं। रात को नौ या साढ़े-नौ बजे नियम से उठते हैं तब लोगों को दर्शन देते हैं। दोनों वक्त सन्ध्या-पूजन अवश्य करते हैं। गुरुदेव की ऊँचाई ५ फुट २॥ इंच और वजन १२१ पौण्ड है।

''श्री गुरुदेव हिन्दी बोलते हैं। वैसे उर्दू, बंगला, मराठी, संस्कृत, पाली, फारसी, पश्तो, अंग्रेजी, मराठी, ब्रजभाषा तथा गुजराती जानते तथा बोलते हैं।''

श्री रणछोड़दासजी के बारे में जानकारी इतनी ही है। अब उनकी योगविभूति

घटनाओं को बताना आवश्यक है। यों महाराजजी का कहना है कि मैं चमत्कार पर विश्वास नहीं करता। मुझे इससे घोर नफरत है। फिर भी सन्तों के अनजाने में कुछ-न-कुछ घटनाएँ हो जाती हैं। स्वयं रामकृष्ण परमहंस भी योग-विभूतियों को विष्ठा कहा करते थे। केवल कुछ लोग कभी-कभी योग-विभूतियों का प्रदर्शन अवश्य करते रहे।

कुमारी कुमुदिनी ने अपने दो अनुभवों का उल्लेख किया है। इस तरह की घटनाएँ योगियों द्वारा सम्भव हैं।

ज्ञातव्य है कि चित्रकूट स्थित जानकी कुण्ड के सामने महाराज का नेत्र-शिविर कैम्प है। इन पंक्तियों के लेखक ने उस शिविर को देखा है। जब वहाँ ऑपरेशन का कार्यक्रम होता है तब सड़क पर अनेक दुकानें सजती हैं, सद्गुरु ट्रस्ट की जीपें दौड़ती हैं और कई हजार लोग आपरेशन के लिए आते हैं।

घटना उन दिनों की है जब महाराजजी अपने शिष्यों तथा भक्तों के साथ चित्रकूट के समीप जानकी कुण्ड स्थित अपने पड़ाव पर थे। लोगों की राय हुई कि अनसूया आश्रम का दर्शन किया जाय। महाराज के नेतृत्व में काफिला चल पड़ा। महाराजजी की प्रिय शिष्या कुमुदिनी भी साथ ली। उससे उन्होंने कहा कि तेरे लिए पालकी मँगवाई है। तू उसमें बैठ जा। हम लोग तेरे पीछे-पीछे चलेंगे।

कुमुदिनी राजी नहीं हुई। बोली—''मैं भी आप लोगों के साथ पैदल चलूँगी।''

महाराज ने कहा—''तेरे पैर में गठिया का दर्द है और पाँच दिन का सफर है। तू डोली में बैठ जा।''

''नहीं गुरुदेव। ये लोग जल्दी-जल्दी ले चलेंगे। मैं अकेली दूर चली जाऊँगी। मुझे बहुत डर लग रहा है। मैं पालकी में नहीं जाऊँगी बल्कि पैदल चलूँगी।''

''तुम्हें चाहे क़ितना भी डर क्यों न लगता हो और कुछ भी हो, पर जाना तुम्हें पालकी पर ही है। तुम घबराओ नहीं। मैं प्रत्येक आधे घण्टे बाद तुमसे मिलता रहूँगा। सभी पालकीवाले मेरे परिचित हैं।''

इस आश्वासन के बाद कुमुदिनी पालकी पर सवार हो गई। दरअसल वह पालकी ढोनेवालों की शक्ल देखकर डर गई थी। स्थानीय लोग कोल, भील और निषाद थे जो देखने में भयानक लगते थे।

काफिला चल पड़ा। महाराजजी दिये गये अपने आश्वासन के अनुसार प्रत्येक आधे घण्टे बाद कुमुदिनी की पालकी के पास जाकर उसे ढाढ़स देते रहे। वह प्रसन्न चित्त से यात्रा करती रही। यात्रा-समाप्ति के बाद वह पैदल चलनेवालों से जब यह कहने लगी कि गुरुदेव मेरी पालकी के पास हर आधे घण्टे बाद बराबर दर्शन देने आते रहे और बराबर दस मिनट तक साथ-साथ चलते हुए बातें करते रहे तब किसी को विश्वास नहीं हुआ।

साथ के लोगों ने कहा—''गुरुदेव तो हमारे साथ बराबर चलते रहे। एक मिनट के लिए भी हमसे अलग नहीं हुए। यह तुम्हारे मन का भ्रम है।''

इस बात पर कुमुदिनी को आश्चर्य हुआ। उसने गुरुदेव से इसका कारण पूछा तो उन्होंने कहा—''तुम्हारी और इनकी दोनों की बातें ठीक हैं। यह सत्य है कि मैंने इन लोगों का साथ नहीं छोड़ा और यह भी सत्य है कि हर आधे घण्टे बाद दस मिनट तक तुमसे मुलाकात करते हुए मैं बातें करता रहा। यह कोई विशेष बात नहीं है। दो शरीर तो मैं यों ही कर लेता हूँ।''

द्विशरीरी की घटनाएँ अनेक योगी करते रहे हैं। इनका जिक्र पिछले खण्डों में किया जा चुका है। यहाँ तक कि परलोकवासी होने के बाद भी उच्चकोटि के सन्त अपने शिष्यों की सहायता करने चले आते हैं। महाराजजी की दूसरी घटना यों है—

* * *

१० सितम्बर, सन् १९५१ ई० के दिन महाराजजी डहाणु में भक्तों के मध्य प्रवचन दे रहे थे। सहसा प्रवचन रोककर उन्होंने एक युवक से कहा—''रमेश, मेरी बातचीत तो बराबर जारी रहेगी। तुम्हें जाना है। गाड़ी का समय हो गया है। स्टेशन पहुँचने में भी १५-२० मिनट लग जायेंगे। अब तुम कुमुद-ज्योति को लेकर तुरत स्टेशन पहुँच जाओ। मैं तो बातों में ही लगा रहा। अब समय बिलकुल नहीं है। घबराओ नहीं, गाड़ी तुम लोगों को बिना लिए जायगी नहीं।''

हुआ भी वही। जब ये लोग बोरबली स्टेशन पहुँचे तब गाड़ी खड़ी थी। इनके सवार होते ही रवाना हो हुई। यात्रियों से इन्हें पता चला कि पता नहीं क्यों आज गाड़ी यहाँ आधा घण्टा खड़ी रही। काफी लेट हो गई।

इसी प्रकार की एक घटना शामभाई के साथ हुई थी। यह २० मई, सन् १९४३ ई० की घटना है। राजकोट में प्रवचन देते हुए महाराजजी अचानक बोल उठे—''शामजी, घर जाओ।''

शामजी ने कहा—''बापू, घर पर कोई काम नहीं है। आपके सत्संग से जाने का मन नहीं कर रहा है।''

महाराजजी ने कहा—''शामजी, तुम घर चले जाओ। तुम्हारी माँ तुम्हारे आने की प्रतीक्षा कर रही है। जल्दी घर जाओ।''

आखिर शामजी भाई को जाना पड़ा। महाराजजी को दण्डवत् करने के बाद वे घर की ओर रवाना हुए। चलते समय महाराज ने कहा—''लो, यह प्रसाद माँ को दे देना और जय सियाराम कहना।''

घर आकर शामजी ने माँ को प्रसाद दिया। उन्होंने ग्रहण किया। शेष प्रसाद शामजी को देती हुई माँ बोली—''इसे आसपास के बच्चों में बाँट दो। हाँ, बापू ने मुझे याद किया था या नहीं?''

शामजी ने कहा—''माँ, बापू ने याद करके मुझे यहाँ आपके पास भेजा है। उन्होंने चलते समय कहा कि यह प्रसाद माँ को दे देना और मेरा जय सियाराम कहना।''

यह बात सुनकर माँ ने कहा—''जय सियाराम।''

इतना कहते ही तुरत माँ की आत्मा शरीर से बाहर निकल गई। शामजी भाई के लिए यह अद्‌भुत घटना थी। वे माँ के शव के पास बैठकर रोने लगे।

* * *

सन् १६२६ ई० की एक और घटना है। उन दिनों महाराजजी माणेकवाड़ा गाँव के बाहर भक्तों के बीच बैठे प्रवचन दे रहे थे। उस सभा में गाँव के कई मूर्धन्य व्यक्तियों के अलावा महिलाएँ तथा बच्चे भी थे।

एकाएक भक्त लोग जिनमें सभी किसान थे, घबरा उठे। पश्चिम दिशा से टिड्डियों का बहुत बड़ा दल आ रहा था। उनके पंखों की आवाज से हवा गूँजने लगी। टिड्डी को सौराष्ट्र की भाषा में खपेड़ी कहा जाता है।

किसानों की घबराहट देखकर महाराजजी सारी स्थिति समझ गये। तुरत एक किसान पटेल से कहा—"तुम मैदान में जाकर कहो कि खपेड़ियो, गाँव के खेतों में मत बैठना।"

उस किसान पटेल ने सभा के बाहर आकर तेज स्वर में कहा—"हमारे गुरु महाराज श्री रणछोड़दासजी बापू कहते हैं कि आप लोग हमारे खेतों में नहीं बैठना। इतनी कृपा करना।"

इस आवाज को सुनते ही टिड्डियों का दल जैसे आया था, वैसे ही उड़कर दूसरी ओर चला गया। गुरुदेव ने उस किसान पटेल का नाम रखा—'खपेड़ी पटेल'। फलतः गाँव के सभी लोग उसे इसी नाम से पुकारने लगे।

एक बार की घटना है। भीखू महाराज नामक एक ज्योतिषी 'ब्रह्मानन्द परम-सुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिम्' श्लोक पढ़ते हुए महाराज के निकट आये। सामने भक्त-मण्डली बैठी थी।

ज्योंही भीखू महाराज ने रणछोड़दासजी को प्रणाम किया त्योंही वे बोल उठे—"आइये ज्योतिषी महाराज। कुमुद, देखो भीखू महाराज आये हैं, अब ज्योतिष की बातें होंगी।"

भीखू महाराज ने विस्मय के साथ कहा—"हे सिद्ध गुरुदेव, आपको मेरा परिचय किसी ने नहीं दिया और मैं आपके सामने पहली बार आ रहा हूँ। फिर भी आपने मुझे पहचान लिया, नाम आदि जान लिया। आपके दर्शन से मुझे अपार प्रसन्नता हो रही है। साथ ही आश्चर्य भी।" इसके बाद भक्तों की ओर देखते हुए उन्होंने कहा—"आप लोगों का यह अहोभाग्य है, जो ऐसे सद्‌गुरु की शरण में आये हैं।"

गुरुदेव ने कहा—"आप सहसा पहुँचे हैं, इस पर हमें भी आश्चर्य हो रहा है। कुमुद ने ज्योतिष की बातें कहीं तो आपका परिचय ज्ञात हो गया।"

इसके बाद गुरुदेव ने कुमुद की ओर देखते हुए कहा—"कल तुम्हारे ताऊजी यहाँ आये थे तब भी ऐसा हुआ था। तुम्हारे ताऊजी जब छोटे से थे तब ट्रेन में अपने पिताजी के साथ जा रहे थे। जहाँ मैं बैठा था, वहीं आकर दोनों बैठ गये। मुझे देखकर तुम्हारे दादाजी ने सोचा कि सामने कोई महात्मा बैठा है। पितामह ने प्रणाम करते हुए

मुझसे पूछा—''महात्माजी, आप ज्योतिष जानते हैं? कृपया मेरे इस पुत्र का भाग्य बताइये। मैं इसे वकील बनाना चाहता हूँ। मेरे कुल चार लड़के हैं। यह सबसे बड़ा है। इन दिनों इसकी उम्र १२ साल है।''

''मैंने कहा—'अब आप इसे स्कूल न भेजें। अपने कारोबार में तुरत लगा दें और व्यापारिक ज्ञान इसे दें।'

''वे मायूस हो गये। बोले—'यह पढ़ने में तेज है और मैं इसे वकील बनाना चाहता था।'

''मैंने कहा—'ऐसी गलती न करें तो अच्छा होगा। व्यापारिक अनुभव इसके लिए जरूरी है। अभी समय है। यह भगवान् की कृपा है कि आपने यह प्रश्न मुझसे पूछा। प्रश्न का उत्तर देना साधु का कर्तव्य है।'

''उन्हें मेरी सलाह पसन्द आ गई। उन्होंने कहा कि आपकी सलाह के अनुसार काम करूँगा। आपने मुझे सावधान करके मार्ग दिखाया, इसके लिए आभारी रहूँगा।''

तभी कुमुदिनीजी के पिताजी वहाँ आये। उनसे उनकी बेटी ने गुरुदेववाली घटना सुनाने के बाद पूछा कि क्या यह बात सही है।

पिताजी को सारी बातें मालूम नहीं थीं। गुरुदेव के कहने पर उन्होंने कहा—''इस घटना के बारे में मुझे कोई जानकारी नहीं है, पर बड़े भाई साहब की शिक्षा बीच में बन्द कर उन्हें व्यापार में लगाया गया था। इस घटना के तीन साल के भीतर पिताजी की मृत्यु प्लेग की बीमारी में हो गई थी। बस, इतना जानता हूँ।''

* * *

६ फरवरी, १६५३ की घटना है। गुरुदेव का दर्शन करने के लिए बेरावल से गोरधन भाई, सोमजी भाई आदि आये थे। इनका आग्रह था कि इनके पुत्र प्रवीण भाई के विवाह के अवसर पर गुरुदेव पधारें।

गुरुदेव ने कहा—''क्या मेरे स्थूल देह को ही हाजिरी मानोगे? मैं तो बराबर तुम्हारे साथ हूँ। जाओ, आनन्द के साथ लड़के का विवाह करो।''

११ फरवरी को गुरुदेव से बिदा लेते समय गोरधन भाई ने उनके एक चित्र पर हस्ताक्षर करने का उनसे अनुरोध किया। गुरुदेव ने चित्र पर हस्ताक्षर करते हुए कहा—''लो, इसे अपने साथ बारात में ले जाना।''

१६ फरवरी की शाम को गुरुदेव भक्तों के बीच बैठे बातें कर रहे थे। अचानक वे खड़े हो गये और जल्दी से सीढ़ी उतरने लगे।

मोटी माँ ने पूछा—''क्या आज्ञा है?''

गुरुदेव ने कहा—''मोटी माँ, मैं बाहर जाना चाहता हूँ। कल तक वापस आ जाऊँगा। बहुत जल्दी है। इन्दु भाई, जरा अपनी मोटर से तुरत ले चलो।''

जिस तरह व्यस्तता के साथ गुरुदेव रवाना हुए, उस माहौल को देखते हुए लोग

समझ गये कि किसी भक्त पर मुसीबत आई है। दूसरे दिन दोपहर को १२ बजे गुरुदेव वापस आये।

मोटी माँ ने पूछा—"क्या बात रही?"

गुरुदेव ने कहा—"भगवान् ने अपना विरुद कर दिखाया। प्रपन्नों की रक्षा करते हुए लाज रखते हैं। गोरधन भाई के पुत्र की जान बच गई।"

यह बात सुनकर सभी सन्न रह गये।

इन्दु भाई ने घटना का विवरण देते हुए कहा—"चलाला होकर इंगरोला जाने के मार्ग में, प्रवीण भाई जिस मोटर पर सवार होकर जा रहे थे, वह मोटर रास्ते में उलट गई। जब हम वहाँ पहुँचे तब देखा कि मोटर औंधी होकर एक ओर पड़ी है। सारा सामाने बिखरा हुआ है। वहाँ से इंगरोला केवल दो मील की दूरी पर था। यह समाचार इंगरोला पहुँच गया था। समधी साहब उधर से पहुँचे और इधर से हम लोग हाजिर हो गये। दोनों ही एक साथ वहाँ पहुँचे थे। आश्चर्य की बात यह रही कि मोटर में बैठे प्रवीण भाई तथा अन्य यात्रियों को खरोंच तक नहीं आई थी। श्री गुरुदेव का वह फोटो जिसे गुरुदेव ने यह कहकर दिया था कि इसे अपने साथ ले जाना, दहेज के बक्स पर रखा था। मोटर उलट गई, सन्दूक उछलकर दूर गिरकर टूट भी गई। अन्दर की सारी चीजें बिखर गईं, पर बीच में टीन के एक पीपे पर गुरुदेव का फोटो सही सलामत था, जैसे गुरुदेव साक्षात् विराजमान हों, मानो सामानों की देखरेख कर रहे हों। बाद में सभी लोगों को इंगरोला पहुँचाया गया। निश्चित समय पर विवाह सम्पन्न हुआ। इसके बाद तुरत गुरुदेव ने आज्ञा दी कि अब हम लोग भावनगर चलें। वहाँ मोटी माँ चिन्ता कर रही है।

* * *

कभी-कभी योगी पुरुष जान-बूझकर सामान्य व्यक्तियों की तरह अपने चरित्र का परिचय देते हैं। एक बार आप भ्रमण करते हुए अपने राजकोटवाले आश्रम में पहुँचे। रात अधिक हो गई थी। आश्रम के सभी व्यक्ति गहरी नींद में सो रहे थे। अचानक गुरुदेव यहाँ पधारेंगे, इसकी सूचना किसी को नहीं थी।

गुरुदेव ने सोचा—क्यों किसी को जगाकर कष्ट दिया जाय। चुपचाप आश्रम में जाकर कहीं सो जाऊँगा। बाहर का पहरेदार भी कर्त्तव्यच्युत होकर सो रहा था, पर उसके कान सजग थे।

अचानक उसे लगा कि कोई व्यक्ति धीरे-धीरे आश्रम की ओर जा रहा है। तुरत जाग पड़ा। यह पहरेदार नया था। गुरुदेव को पहचानता नहीं था। तुरत कड़ककर बोला—"बाबाजी, जल्दी से बाहर निकल जाइये।"

अब गुरुदेव ने सोचा कि भीतर के लोगों को सूचना देकर जगाना उचित नहीं है। चुपचाप आश्रम के बाहर दूर एक वृक्ष के नीचे जाकर सो गये।

इधर कुछ ही क्षण बाद भगवत्-प्रेरणा से पहरेदार की बुद्धि जाग्रत् हुई। उसे सन्देह हुआ कि कहीं यह बाबा आश्रम के रणछोड़दास महाराज तो नहीं हैं? वह तुरत

आश्रम के भीतर जाकर गुरुदेव का चित्र देखने लगा। चित्र देखते ही उसे साँप सूँघ गया। हे भगवन्, यह मैंने क्या किया? इस आश्रम के महाराज को ही धता बता दिया। तुरत उन्हें खोजता हुआ पेड़ के पास आया और उनके चरणों पर गिर पड़ा। अपनी भूल के लिए क्षमा माँगते हुए आश्रम आने की प्रार्थना करने लगा।

सदाशय गुरुदेव प्रसन्न होकर उसके साथ आश्रम में चले आये। इस अपराध के लिए उन्होंने कुछ नहीं कहा।

दूसरे दिन जब यह घटना आश्रम के भक्तों को मालूम हुई तब वे बड़े दु:खी हुए। गुरुदेव के आश्रम में गुरुदेव का अपमान! सभी उनसे इस अपराध के लिए क्षमा माँगने लगे।

गुरुदेव ने कहा—''कैसी क्षमा, कैसा अपराध, कैसा अपमान? पहरेदार ने अपना कर्त्तव्य निभाया। अगर वह मुझे नहीं पहचानता तो अपराध कैसे हुआ? इसमें मेरा अपमान कहाँ हुआ? साधु को मान-अपमान से दूर रहना चाहिए।''

* * *

इसी प्रकार एक बार आपने अपने प्रवचन में कहा—''मेरा सिद्धान्त है कि प्राण रहते दूसरों का हित करना।

व्यापक ब्रह्म अखण्ड अनन्ता ।
अखिल अमोघ एक भगवन्ता ॥

'य: सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्' वे ही राम सर्वभूतमात्र में स्थित हैं। 'सर्वेभ्यो भूतेभ्योन्तरो' वे सबके भीतर हैं। 'यं सर्वाणि भूतानि न विदुर:' जिसको सर्वभूत जानते ही नहीं हैं। 'यस्य सर्वाणि भूतानि शरीरम्' परन्तु सर्वभूतमात्र इन्हीं के शरीर हैं। सर्व के अन्दर वे ही शरीरी हैं। 'सर्वेस्य प्रभुं ईशानं सर्वस्य शरणं बृहत्' वे ईश्वर सबके स्वामी हैं और सर्व-समर्थ-शरण हैं।

भगवान् ने कहा है कि मैं सर्वप्राणीमात्र में समान रूप में हूँ—

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं य: पश्यति स पश्यति ॥

जो प्राणीमात्र में समान रूप से स्थित तथा देहादि के नाश होने पर भी, अविनश्वर रूप से रहनेवाले मुझे जानता है, वही ज्ञानी है।

सर्वभूतमात्र को अपने में और अपने को सर्वभूतों में एक आत्मरूप से समान भाव से देखता है, वही योगी है। ऐसी स्थिति में वह किससे द्वेष कर सकता है? किसका मोह और किसका शोक कर सकता है? अपने ही उपास्य से वैर, क्रोध, अनीति, अन्याय आदि कौन कर सकता है? वही, जो अपने को आस्तिक कहलाता है, पर भीतर से नास्तिक है।''

रणछोड़दासजी ने अपने इस वचन का पालन एक घटना में किया था। घटना गुजरात के जूनागढ़ की है। नगर से बाहर आते ही सभी गाड़ियाँ रुक गईं। यहाँ से सभी लोग अपने-अपने गन्तव्य स्थान की ओर चले जायेंगे।

गुरुदेव की गाड़ी रुकते ही सभी भक्त पास आ गये। गुरुदेव एक वृक्ष के नीचे आसन लगाकर बैठ गये। थोड़ी देर बाद बोले—"सभी लोग आ गये न? अब सभी प्रसाद, फल, मिष्टान्न यहाँ लाकर रख दो। आप लोग यह आशा मत करना कि इसमें से कुछ आपको दिया जायगा। मैं सबसे पहले ड्राइवरों को दूँगा। इसके बाद शेष महाप्रसाद सभी को मिलेगा। अब आप लोग मेरी सहायता करें। सभी ड्राइवरों को यहाँ बुला लाइये।"

ड्राइवरों के आने पर सभी को हाथ में काफी प्रसाद दिया गया। इसके बाद शेष लोगों को दोनों हाथ भरकर दिये गये। उसी समय न जाने कहाँ से ८-९ मोटरें आकर रुक गईं। स्थानीय गाँव से ४०-५० देहाती भाई आ गये। गुरुदेव लोगों के नाम लेकर बुलाते रहे और भर-भर अंजलि प्रसाद देते रहे। अभी सभी को प्रसाद दे रहे थे कि गाँव से ५०-६० व्यक्ति और आये तथा पंक्तिवार खड़े हो गये। प्रणाम करने की होड़ लग गई।

गुरुदेव ने कहा—"प्रणाम बाद में करना। पहले प्रसादी की लाइन में खड़े हो जाओ। पहले प्रसाद, बाद में प्रणाम।"

धीरे-धीरे कतार इतनी लम्बी हो गई कि कुछ मत पूछिये। थोड़ी देर बाद कुमुदिनी ने हँड़िया की ओर देखा तो चकित रह गई। अभी तो आधी हँड़िया खाली नहीं हुई है। इतने लोगों को प्रसाद बाँटने पर भी इतना शेष है?

कुमुदिनी को चकित देखकर गुरुदेव ने कहा—"यह तो मामूली बात है। इसमें आश्चर्य की क्या बात है? इस तरह के चमत्कार अनेक साधु करते हैं। तुम इसे नोट करो—

प्रभुता को सबही भजैं, प्रभु को भजै न कोय ।
जो कोई प्रभु को भजै, (तो) प्रभुता दासी होय ॥

सन् १९१९ की घटना है। उन दिनों महाराजजी कोटड़ा में एक शिव-मन्दिर में विराज रहे थे। यहाँ यज्ञोपवीत-समारोह हो रहा था। भण्डारा हो चुका था।

आगत भक्तों में जयराम भाई ने महाराज से प्रार्थना की कि न्यारा में पधारने की कृपा करें।

गुरुदेव ने कहा—"ठीक है, पर मैं पैदल ही आऊँगा। घोड़े पर चढ़ने की इच्छा नहीं है।"

जयराम भाई ने कहा—"मैं समझ गया, गुरुदेव। आप प्राणी को कष्ट देना नहीं चाहते। एक बात की अनुमति चाहता हूँ। आपके साथ कोई एक व्यक्ति कर दूँ जो आपको मार्ग बताता हुआ चले।"

गुरुदेव ने कहा—"इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। मैं अकेला भ्रमण करता हूँ। आप चिन्ता न करें। मैं अकेला चला जाऊँगा। अब आप लोग अपने-अपने घोड़े से चले जायँ।"

गुरुदेव पैदल चल दिये। गुरुदेव के जाने के दस मिनट बाद जयराम भाई और उनके चाचा माधवभाई घोड़े पर सवार होकर रवाना हुए। काफी दूर आने पर भी मार्ग में कहीं गुरुदेव दिखाई नहीं दिये। यह देखकर ये लोग चिन्तित हो उठे। मार्ग में जो मिलता, उसी से पूछते—"क्यों भाई, एक साधुजी को इधर से जाते देखा है?"

कोटड़ा से न्यारा १४ मील दूर है। तेज घोड़े पर इतनी दूरी पार करने में दो घण्टे लगते हैं। जब न्यारा दो मील दूर रह गया तब एक किसान से मुलाकात हुई। उससे भी यही प्रश्न पूछा गया।

उसने कहा—''लगभग डेढ़ घण्टा पहले मैंने दूर से एक सफेद गोला आँधी की तरह आते देखा था। मुझे यह देखकर भय हुआ कि यह क्या आ रहा है। अभी मैं यह सब सोच रहा था कि मेरी आँखों के सामने से वह चीज निकल गई। गौर से देखने पर ज्ञात हुआ कि श्वेत वस्त्र पहने एक साधु आँधी की तरह जमीन से कुछ ऊपर उठकर जा रहे हैं। वे न्यारा की ओर गये हैं।''

यह बात सुनते ही दोनों व्यक्तियों ने घोड़े की गति तेज कर दी। न्यारा पहुँचने पर इन लोगों ने देखा—गुरुदेव एक पेड़ के नीचे विश्राम कर रहे हैं।

नौकर ने बताया—''बाबू, महाराज तो यहाँ डेढ़-दो घण्टे से आराम कर रहे हैं।''

* * *

महाराजजी अपने प्रवचनों में गीता, कबीर तथा तुलसीदास के पदों का उद्धरण देते थे। श्री सद्गुरु सेवा ट्रस्ट के नाम से बम्बई, राजकोट, पुष्कर, गोंडल, चित्रकूट आदि जगहों पर आश्रम स्थापित किया गया है। महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, बिहार, उड़ीसा, गुजरात और राजस्थान आदि प्रदेशों में नेत्र-ऑपरेशन होते हैं। पाठशाला, गोशाला, अस्पताल, अकाल के समय अन्न-वितरण एवं राहत-कार्य करते हुए वे जनता-जनार्दन की सेवा करते रहे। अब तक जितने सेवा-कार्य किये गये हैं, उनका संक्षिप्त विवरण कुमारी कुमुदिनी परमानन्द पजवाणी की पुस्तक में उल्लेख है। अभी हाल ही में वे परलोकवासी हुए हैं। लगभग चार सौ वर्ष तक वे भारत में साधना करते रहे।

■ ■ ■

अवधूत माधव पागला

शंकर की नगरी काशी में आज भी एक परम्परा का पालन होता है, आषाढ़ मास में जब पानी नहीं बरसता और गर्मी से लोग व्याकुल हो उठते हैं तब भक्त लोग, खासकर अहीर जाति के लोग गंगा-जल कलश में भरकर, 'हर हर महादेव शम्भो काशी विश्वनाथ गंगे' का नारा लगाते हुए क्रमबद्ध रूप में अधिकांश मन्दिरों में पानी चढ़ाते हैं। ऐसी मान्यता है कि इससे प्रसन्न होकर देवाधिदेव शंकर पानी बरसाते हैं।

काशी के सकरकन्द गली मुहल्ले में श्री गोविन्द का मन्दिर है जहाँ माधव नामक पुजारी कार्य करते थे। कुछ झक्की स्वभाव के थे, इसलिए लोग उन्हें माधव पागला कहते थे। उस वर्ष आषाढ़ मास लगने पर जब पानी नहीं बरसा तब माधव ने निश्चय किया कि वे अपने इष्टदेवता श्री गोविन्द को १०८ कलश-जल से स्नान करायेंगे।

इस समाचार को सुनते ही मन्दिर के भक्तों में उत्सुकता उत्पन्न हुई। एक-एक कर नर-नारी आने लगे। देखते ही देखते काफी भीड़ एकत्रित हो गई। माधव विग्रह पर पानी उड़ेलने लगे।

आगत लोगों में से किसी ने कहा—''माधव भाई, आज आप १०८ कलश-जल से गोविन्दजी को स्नान करा रहे हैं, इसलिए आज पानी जरूर बरसना चाहिए। अगर ऐसा नहीं हुआ तो हम समझेंगे कि आपके मन्त्र का कोई प्रभाव नहीं है।''

इस शिगूफा को सुनते ही उपस्थित जनसमूह ने भी कहा—''आपका कहना ठीक है। देखना है आज माधव भाई अपने मन्त्र की शक्ति दिखाते हैं या नहीं।''

भक्तों का मन्तव्य सुनते ही माधव का मुँह सूख गया। मन ही मन घबराने लगे। यह कैसे सम्भव है कि श्री गोविन्द से प्रार्थना करने पर पानी बरसेगा? अगर न बरसा तो लोग समझेंगे कि मेरे मन्त्र में, पूजा में, भक्ति में, कोई दम नहीं है। मैं पुजारी के योग्य नहीं हूँ।

इसी प्रकार के चिन्तन में माधव विग्रह को स्नान कराने के बाद उसे कमरे में ले आये और उनका श्रृंगार करने लगे। बाद में हाथ जोड़ते हुए विग्रह से निवेदन किया—''माधव, आज जरूर पानी बरसाना।''

माधव पागला अपने गोविन्द को भी अपने ही नाम से सम्बोधित करते थे। विग्रह को सजाने में वे इतने दत्तचित्त रहे कि बाहर क्या हो रहा है, इसका उन्हें आभास नहीं हुआ।

एक घण्टा बाद बाहर निकलते ही मन्दिर की स्वामिनी साधु माँ ने कहा—''माधव, देखी तुमने हमारे गोविन्द की लीला?''

माधव का ध्यान आँगन की ओर न जाकर साधु माँ की ओर केन्द्रित था। उसने चकित भाव से प्रश्न किया—''क्या हुआ?''

साधु माँ ने कहा—''देख नहीं रहे हो? चारों ओर पानी ही पानी है।''

अब माधव ने गौर किया तो देखा कि चारों ओर वर्षा का जल वेग से बाहर निकल रहा है। यह दृश्य देखते ही वे समझ गये कि गोविन्द ने कृपा करके उनकी लाज रख ली। मन ही मन माधव अपने गोविन्द के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने लगे।

इस वर्षा के कारण उपस्थित सभी भक्त साधु माँ से कहने लगे—''निस्सन्देह आपका यह पुजारी असाधारण है। इनके मन्त्र में शक्ति है। गोविन्दजी ने इनका मान रख दिया है।''

माधव अपने गोविन्दजी के एकनिष्ठ भक्त थे। जिस प्रकार कदम-कदम पर माधव अपने गोविन्दजी से प्रार्थना करते, ठीक उसी प्रकार गोविन्दजी भी उसे सावधान करते रहते थे। दोनों आपस में बातें भी करते थे। अगर निष्ठा के साथ सर्वस्व इष्ट को समर्पित किया जाय तो प्रभु अपने भक्त पर अवश्य कृपा करते हैं। लेकिन आज भी इस बात को कुछ लोग समझ नहीं पाते।

आमतौर पर लोग बाजार से पूजन-सामग्री खरीदते समय दुकानदार से कहेंगे—पूजा के लिए लेना है। अर्थात् रद्दी या सस्ती सामग्री दो। पूजा के बाद सारी सामग्री फेंक दी जायगी या पुजारी उसका उपयोग करेगा। अगर यही सामग्री श्रद्धापूर्वक समर्पित की जाय तो देवता उसे ग्रहण करते हैं। अश्रद्धा करनेवालों को उसका फल मिल जाता है।

* * *

दीपावली का अवसर था। प्रतिवर्ष इस पर्व को मनाया जाता है। अन्नकूट-महोत्सव राधा-गोविन्द मन्दिर में धूमधाम से मनाया जाता है। इस उत्सव में भाग लेने के लिए देश के विभिन्न स्थानों से भक्तों का आगमन होता है। दिनभर उपवास रहने के पश्चात् लोग सायंकाल भोग ग्रहण करते हैं।

प्रातःकालीन पूजा समाप्त करने के बाद माधव पुनः एक बार स्नान करने के लिए स्नानघर में आये। तभी उसे लगा जैसे गोविन्दजी मन्दिर के भीतर से कह रहे हैं—"आज तुम यहाँ भोजन मत करना।"

इस दैववाणी को सुनकर माधव विस्मित रह गये। नाराज होकर बोल उठे—"इस घर में नहीं खाऊँगा तो क्या भूखा मरूँगा?"

स्नान करने के पश्चात् अपने कमरे में आकर सोचने लगे—मैं यहाँ का पुजारी हूँ, भोग चढ़ाऊँगा। न जाने कितने तरह के पकवान बने हैं। सभी लोग खायँगे और एक मैं वंचित रह जाऊँगा। मैंने यहाँ का प्रसाद ग्रहण नहीं किया है, अगर इस बात का पता साधु माँ को लग गया तो वे क्या सोचेंगी? आखिर मैं खाऊँगा क्या? आज तो मुझे यहाँ से बाहर कहीं जाने भी नहीं दिया जायगा। अगर बाजार से कुछ मँगाकर खाऊँ तो साधु माँ बेहद नाराज होंगी। अजीब तमाशा है। इसी प्रकार के ऊहापोह में माधव खिजला उठा।

एकाएक बगल के मकान से एक लड़की आई और बोली—"बाबा, उमा मौसी तुम्हें बुला रही हैं।"

माधव ने कहा—"चल, आता हूँ।"

कपड़े बदलकर माधव पड़ोस के मकान में आये तो देखा कि उमाशशि देवी ने उसके लिए फलाहार का प्रबन्ध किया है। माधव को देखते ही उमाशशि देवी ने गले में आँचल डालकर उन्हें प्रणाम किया। फिर बोली—"दादा, आज आपको मेरे यहाँ अन्नकूट का प्रसाद ग्रहण करना होगा। घर में पूजा हुई है।"

भोजन करते समय माधव की आँखें अपने-आप भर आईं। अभी कुछ देर पहले वह अपने इष्ट गोविन्द पर नाराज होकर न जाने कितनी बातें कहते रहे और इधर उन्होंने उसके भोजन के लिए पहले से ही प्रबन्ध कर रखा है। प्रभु, आपकी माया अपरम्पार है।

मन्दिर में आकर माधव ने अपने कमरे का दरवाजा बन्द कर लिया। इसके बाद ग्लानि के कारण जमीन पर लोटते हुए कहने लगे—"माधव, मुझे क्षमा कर दो। मैं आपकी कृपा को समझ नहीं सका। मुझसे बड़ा अपराध हो गया दीनबन्धु।"

इधर कुछ देर के बाद साधु माँ को जब यह बात मालूम हुई कि पुजारीजी ने पड़ोस के घर में जलपान किया है तब वे बिगड़ उठीं। उन्हें अपने आत्म-सम्मान में आघात लगा। उन्होंने माधव को बुलाकर डाँटना प्रारम्भ किया। माधव सिर झुकाकर समस्त तिरस्कार चुपचाप सुनते रहे। अगर सही बात कहते तो कोई विश्वास न करता। अपने गोविन्द का आदेश उन्हें मानना ही था। आखिर गोविन्द ने ऐसा आदेश क्यों दिया, वे समझ नहीं पा रहे थे।

भोग-निवेदन करते समय एक अनहोनी घटना घट गई। आचमन करते वक्त मन्त्र भूल गये। भोग-निवेदन का मन्त्र जबान पर नहीं आ रहा था। मस्तिष्क पर काफी जोर डालने पर भी कुछ स्मरण नहीं कर सके। आखिर ऐसा क्यों हो रहा है? अपनी कमजोरी पर वे रोने लगे। तभी दैववाणी सुनाई दी—''मैं जूठा भोग खाऊँगा?''

'जूठा खाऊँगा' शब्द सुनकर अब माधव चौंक उठे। आखिर भोग जूठा कैसे हो गया? किसने यह अपराध किया? जूठा भोग तो गोविन्द को दिया नहीं जा सकता। शायद इसीलिए गोविन्द ने मुझे इस घर में भोजन करने के लिए मना किया। मेरे लिए दूसरे के घर प्रबन्ध कर दिया ताकि भूखा रहूँ। हे माधव, यह सब क्या हो रहा है? इतने सारे भक्त तुम्हारा प्रसाद न खाकर किसी पातकी का जूठा खायँगे?

अत्यन्त खिन्न होकर माधव मन्दिर से बाहर आये। आगे बढ़ते ही दीनबन्धु नामक पाचक ने कहा—''पुजारीजी, आप मालपूआ और पायस डटकर खाना। बहुत बढ़िया बना है।''

यह बात सुनते ही माधव चौंक उठे। अब उसे यह समझते देर नहीं लगी कि भोग को जूठा किसने किया है। भोग बनाते समय इसने रसोईघर में चखा होगा। देवता को चढ़ाने के पहले चखने के कारण सारा भोग जूठा हो गया।

इधर बाहर भक्तों में भोग-वितरण किया जा रहा था, पर माधव ने उसे ग्रहण नहीं किया। यह बात सुनकर साधु माँ ने पूछा—''तुमने आज भोग क्यों नहीं ग्रहण किया?''

माधव ने उत्तर दिया—''अपने गोविन्द से पूछ लेना।''

मन्दिर में स्थायी रूप से भोग बनानेवाला पाचक कुछ दिनों से अस्वस्थ था, इसलिए दीनबन्धु नामक पाचक को अस्थायी रूप में रखा गया था। भोग बनाते समय अक्सर वह चख लेता था। एक दिन उसके भाग्य ने साथ नहीं दिया और मुसीबत आ गई।

उसने भण्डारघर की नौकरानी से कहा—''आज की दाल बहुत कड़वी है। कोई खा नहीं सकेगा। साधु माँ से अच्छी दाल माँग लाओ। दूसरी दाल बना दूँ।''

दाल कड़वी है, अब अच्छी दाल चाहिए, यह बात सुनकर साधु माँ का माथा ठनका। पाचक को बुलाकर उन्होंने कहा—''दाल कड़वी है, यह बात तुम्हें कैसे मालूम हुई? अभी तो भोग भी नहीं चढ़ाया गया है। क्या भोग चढ़ाने के पहले सारी सामग्री चख लेते हो?''

रँगे हाथ पकड़े जाने के कारण दीनबन्धु सिर झुकाये खड़ा रहा। इससे अपराध स्पष्ट हो गया।

साधु माँ ने कहा—''माधव को आने दो। आज ही तुम्हारा हिसाब करके बिदा कर दूँगी।''

माधव के आते ही साधु माँ ने कहा—''भोग की दाल को दीनबन्धु ने जूठा कर दिया है, अब क्या होगा?''

इस शिकायत को सुनते ही माधव ने कहा—"अगर मैं उसकी यही शिकायत उस दिन करता तो आप तथा अन्य लोग मुझ पर विश्वास न करते, उल्टे दो-चार बातें सभी सुनाते। झूठे अपवाद के कारण मैं दोषी बन जाता। आज आपको प्रत्यक्ष प्रमाण मिल गया। अन्नकूटवाले दिन मेरे माधव ने भोग खाने को मना किया था। मैं अपने माधव से इधर बराबर कहता आ रहा हूँ कि एक बार उसे पकड़वा दो। आज वह पकड़ा गया और सही जानकारी आप लोगों को मिली।"

इतना कहते-कहते माधव रो पड़ा। साधु माँ भी पश्चात्ताप के आँसू बहाने लगीं।

* * *

श्री माधव पागला की जन्म-तिथि के बारे में मतभेद है। महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराजजी को उन्होंने बताया था कि उनका जन्म ढाका जिले में विक्रमपुर परगने के अन्तर्गत काचिआइल गाँव में माघ १३०७ बंगाब्द (१९०० ई०) में एक कुलीन ब्राह्मण के घर हुआ था। नाम रखा गया गोपालचन्द्र मुखोपाध्याय। चार वर्ष की आयु में आप पितृहीन हो गये। दादी ने स्कूल में पढ़ने के लिए भेजा, वहाँ आपका नाम शैलजाकान्त मुखोपाध्याय लिखाया गया। प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करके तेलारबाग स्थित के० एस० डी० एम० हाईस्कूल में प्रविष्ट हुए। यहाँ प्रथम श्रेणी में पास होने के बाद आप कलकत्ता चले आये। यहाँ देशबन्धु चित्तरंजन दास ने उनका नाम साउथ सबबर्न कॉलेज में लिखा दिया और प्रतिमाह ४० रुपये सहायता देते रहे। यहाँ से बी० ए० पास कर आप कानून की शिक्षा लेने लगे। बाद में रेलवे में ठीकेदारी करने लगे। सन् १९३१ में एक जमींदार के यहाँ प्राइवेट ट्यूटर हुए। इसके बाद १९३४ ई० में काशी चले आये।

काशी में आपके मामा पण्डित आनन्दचन्द्र विद्यालंकार काशीराज के सभापण्डित तथा बंगाल सारस्वत-समाज के अध्यक्ष थे। यहाँ के पण्डित-समाज में उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। इनके कारण माधव बराबर काशी आते थे। सन् १९३४ में जब माधव यहाँ आये तब संयोगवश श्री राम ठाकुर[1] यहीं निवास कर रहे थे। माधवजी उनका दर्शन करने गये। बातचीत के सिलसिले में श्रद्धापूर्वक दीक्षा देने की प्रार्थना की। ठाकुर महाशय तैयार हो गये।

इसके पूर्व जब आपकी उम्र १२ वर्ष थी तब आप दीक्षा लेने के उद्देश्य से महात्मा भोलानन्द गिरि[2] के पास गये जो उन दिनों हरिद्वार में थे। उन्होंने कहा—"मैं तुम्हें दीक्षा नहीं दे सकता। आगे कोई महापुरुष देगा।"

बाईस वर्ष बाद इन्हें उपयुक्त गुरु से दीक्षा प्राप्त हुई। बाद में महात्मा भोलानन्द गिरि के प्रधान शिष्य महामण्डलेश्वर महादेवानन्द गिरि जब काशी पधारे तब आपने उनसे इस घटना का जिक्र किया। महामण्डलेश्वर ने कहा—"गुरु किना (क्रीत) होता है। तुम्हारा जो गुरु होगा वही दीक्षा देगा।"

---

[1] १. देखिये, भारत के महान् योगी, चौथा भाग।

[2] २. वही, भाग सात-आठ।

इस घटना के बाद आप कुछ दिनों के लिए कलकत्ता चले गये। वहाँ एक साल रहने के बाद १९३९ में काशी आकर यहीं हमेशा के लिए रह गये। आपके साथ आपकी माताजी रहती थीं। उनका देहान्त १९४५ ई० में हुआ था। पहले बंगाली टोला में रहते थे। बाद में पातालेश्वर स्थित एक किराये के मकान में रहने लगे। सन् १९५१ में आप एक मस्जिद के बाहरी कमरे में रहने लगे। आपके शिष्यों में हिन्दू-मुसलमान दोनों ही थे।

आपके बारे में एक राय यह है कि आपका जन्म १९ अगहन, शुक्ल त्रयोदशी, मंगलवार को ढाका जिले के विक्रमपुर परगना के अन्तर्गत विदगाँव में हुआ था। आपके पिता का नाम चन्द्रकान्त मुखर्जी था। नामकरण के दिन आपका नाम गोपालचन्द्र रखा गया था। आपकी माता श्रीमती मनोरमादेवी स्वयं श्री राम ठाकुर की शिष्या थीं।

आपके गुरुओं की लम्बी कहानी है। कई जन्मों के गुरुओं का उल्लेख किया गया है। आपके आदिगुरु श्री माधवेन्द्र पुरी थे। इष्टगुरु रामचन्द्र देव दयानिधि थे। महाप्रभु चैतन्यदेव के आविर्भाव-काल से अब तक आपने दस बार जन्म लिया है। इस जन्म के बाद आपका पुनर्जन्म नहीं होगा। इस बार आपका जन्म ननिहाल में हुआ था। सन् १९३४ ई० में आपने श्री राम ठाकुर से काशी में दीक्षा ली। आपके शिक्षागुरु श्री नरेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय थे। शिक्षागुरु से ही इन्हें ज्ञात हुआ कि पिछले जन्म में आप माधव पागला के नाम से प्रसिद्ध थे। शायद इसीलिए इस जन्म में आपने उस नाम को पुनः ग्रहण कर लिया। पूर्वजन्म में आप छपरा जिले में रहते थे। पागलों की तरह मार्ग में घूमते हुए कहा करते थे—"आमार माधव खूब भालो।" (मेरा माधव बहुत अच्छा है।)

काशी-निवासकाल में आपने अनेक महात्माओं का सत्संग किया। माधवानन्द गिरि, बालानन्द ब्रह्मचारी के शिष्य मोहनानन्द, सीतारामदास ओंकारनाथ,[1] स्वामी सर्वानन्द, मौनी बाबा, फकीरसाहब, स्वामी ब्रह्मानन्द, स्वामी कृष्णानन्द आश्रम, स्वामी प्रणवानन्द, ज्ञानानन्द स्वामी, शोभा माँ, रांगा माँ, केवलानन्द ब्रह्मचारी आदि।

* * *

माधव को दीक्षा देने के दो वर्ष बाद श्री राम ठाकुर पुनः काशी आये। माधव पागला गुरु-दर्शन के लिए उनके निकट गये। गुरु ने पूछा—"नाम जप रहे हो न?"

माधव ने कहा—"मेरा मन बहुत चंचल रहता है। मुझसे यह सब नहीं होगा।"

ठाकुर ने कहा—"एक बार में नहीं होगा। नाम की जड़ पकड़े रहो। जड़ पकड़े रहने पर सब अपने-आप ठीक हो जायगा।"

श्री ठाकुर हमेशा अपने भक्तों तथा शिष्यों को नाम जपने की सलाह देते थे। उनका कहना था कि यही सबसे सरल मार्ग है—चिन्दानन्द को पाने के लिए।

श्री राम ठाकुर ने एक बार माधव पागला से कहा कि किसी का नाम लेते समय 'श्री' शब्द आगे जरूर लगाना चाहिए। यह सलाह सुनते ही उन्हें ख्याल आया कि वे

---

[1] देखिये, भारत के महान् योगी, भाग सात-आठ।

बातचीत के सिलसिले में अपने गुरुदेव का नाम 'राम ठाकुर' कहते हैं। अन्तर्यामी गुरुदेव ने शिष्य के अपराध को कितने सहज ढंग से समझा दिया।

एक बार श्री राम ठाकुर काशी आकर पाण्डे धर्मशाला में ठहरे। अस्वस्थ रहने के कारण वे किसी से मिलते नहीं थे। भक्त आते, दरवाजा बन्द देखकर लौट जाते थे। ऐसे माहौल में माधव पागला गुरुदेव का दर्शन करने के लिए चल पड़े। मार्ग में दर्शन से वंचित भक्तों की भीड़ मिली तो उन लोगों ने कहा—"गुरुदेव का दर्शन नहीं कर सकेंगे। दरवाजा बन्द है।"

यह बात सुनकर माधव पागला निराश नहीं हुए। उन्होंने सोचा कि गुरु द्वारा दिये गये नाम से अगर मैं भवसागर पार हो सकता हूँ तो क्या उस नाम के जरिये गुरु का दर्शन नहीं कर सकता? अगर आज ऐसा न हुआ तो मैं इस नाम को ही नहीं, बल्कि अपने गुरु को भी त्याग दूँगा। झक्की आदमी थे। मन ही मन इस प्रकार निश्चय करके वे धर्मशाला में आये तो देखा—गुरुदेव के कमरे का दरवाजा खुला है।

भक्त की विजय हुई। गुरुदेव को प्रणाम करने के बाद प्रसन्नचित्त घर वापस आ गये। माँ से उन्होंने कहा—"माँ, मैं गुरुदेव का दर्शन कर आया।"

लड़के की बात सुनकर माँ चकित रह गई। आज वह स्वयं दर्शन करने गई थीं तब दरवाजा बन्द रहने के कारण निराश लौट आई थीं। बोलीं—"बेटा, मुझे तो दर्शन नहीं मिला। मैं ही क्यों, जितने लोग दर्शन की आशा से गये थे, वे सभी निराश होकर वापस चले आये।"

माँ की बात सुनकर माधव पागला अत्यन्त दु:खित हुए। उन्होंने कहा—"माँ, कल दर्शन करने चली जाना। इस बार जरूर दर्शन होगा। अगर दरवाजा न खुला तो मैं इसका प्रबन्ध कर दूँगा।"

बेटे की बात पर विश्वास कर माँ उसके मित्र यदुलाल बनर्जी के साथ गुरुदेव का दर्शन करने आईं तो देखा—दरवाजा कल की तरह बन्द है। वह निराश होकर वापस चली गईं।

माँ की जबानी सारी बातें सुनने के बाद माधव पागला अपने साथ माँ और यदुलाल बनर्जी को लेकर चल पड़े। दरवाजे के समीप आते ही भीतर से आवाज आई—"कोई मुझे बुला रहा है। जल्द दरवाजा खोल दे।"

दरवाजा खुला। सभी लोगों ने श्री राम ठाकुर का दर्शन किया। इस घटना के बाद से इन्हें बिना किसी बाधा के दर्शन प्राप्त होता रहा।

एक दिन धर्मशाला में श्री राम ठाकुर के सामने कुछ लोग बैठे हुए थे। सभी को वे उपदेश दे रहे थे। माधव पागला आये और चुपचाप एक किनारे बैठ गये। गुरुदेव किसी शिष्य को सत्यनारायण-कथा कराने की तो किसी को बेलपत्ती-फूल से विग्रह की पूजा करने की बातें कह रहे थे।

इन्हीं सब उपदेशों को सुनते-सुनते माधव पागला के मन में विचार उत्पन्न हुआ।

दीक्षा प्राप्त किये काफी दिन हो गये हैं। गुरु से ही शिष्य को ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है। आज मैं गुरुदेव से निवेदन करूँगा कि वे मुझे ब्रह्मज्ञान दें।

यही सब सोचते हुए उन्होंने गुरुदेव के चरणों पर अपना मस्तक रखा। गुरुदेव ने उनकी पीठ पर हाथ रखते हुए एक मुद्रा बनाई। इसके बाद कुछ देर तक किसी मन्त्र का जाप करते रहे। एकाएक माधव पागला को एक नई अनुभूति प्राप्त हुई। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि आज के पहले उन्हें इस प्रकार का आशीर्वाद प्राप्त नहीं हुआ था।

बातचीत के सिलसिले में ठाकुर ने कहा—''साधना के पथ पर अग्रसर होने के लिए हमेशा जप पर ध्यान देना आवश्यक है। सबसे पहले गुरु-मूर्ति का ध्यान करना चाहिए। अगर ध्यान में उनकी मूर्ति न आये तो उनका एक चित्र उत्तम स्थान पर रखकर भक्तिपूर्वक गन्ध-पुष्प से पूजा तथा स्तव-पाठ करना चाहिए। पहले-पहल मानसिक कष्ट, क्लेश, सांसारिक चिन्ताओं के कारण मन उद्वेलित रहेगा। लेकिन इन बाधाओं से जूझते हुए निरन्तर जप करते रहना चाहिए। घर-गृहस्थी के कार्यों में लगे रहते हुए भी सर्वदा जप करते रहना चाहिए। जब इस दिशा में प्रगति करोगे तब कान के समीप साँय-सायँ या शंख या घण्टा बजने जैसी आवाजें आयेंगी। आँखों से आँसू निकलेंगे और शरीर में सिहरन उत्पन्न होगी। इससे घबराना नहीं और न इसे रोग समझकर इलाज करना। यह उत्तम लक्षण है। ध्यान करते वक्त जब गुरु-मूर्ति स्पष्ट रूप से दिखाई दे तब समझ लेना कि मन स्थिर हो गया है। इस प्रकार अपने को गुरु के चरणों में समर्पित कर देना चाहिए। इससे रिपुओं का नाश होता है और मन शान्त हो जाता है। गुरु पर विश्वास होता है और आस्था जमती है। उस समय गुरु की चिन्मय सत्ता तुम्हारे अन्तर में प्रकट होगी। गुरु-शिष्य की अभेदात्मा स्थापित होगी। अपनी समस्त जिम्मेदारी से मुक्त हो जाओगे तब धर्म-अधर्म, पाप-पुण्य, सुख-दुःख आदि संस्कार तुम्हें विचलित नहीं कर सकेंगे। इसके बाद तुम अपनी सारी जिम्मेदारी गुरु को देकर निरपेक्ष भाव से विचरण करोगे।

''इस स्थिति में गुरु तुम्हारे शरीर में आवेशित होकर तुमसे नाना प्रकार के कार्य करा लेंगे। उन कार्यों को अपनी क्षमता मत समझना। इससे अनिष्ट हो सकता है और साधना का मार्ग अवरुद्ध हो सकता है। साधक अपनी योग्यता के अनुसार ही फल प्राप्त करता है। गुरु-शक्ति से ही सब कुछ सुलभ होता है। क्रमशः उन्नीत होने पर इष्ट से साक्षात्कार होता है। उस वक्त जप-ध्यान से केवल इष्ट की अनुभूति होती है। अपनी सत्ता नहीं रहती। समस्त इन्द्रियाँ स्वतः इष्ट की ओर उन्मुख हो जाती हैं।

''कहने का आशय यह है कि इस संसार में जब तक यह शरीर रहे तब तक भजन-जप करते रहना चाहिए। भजन के प्रारम्भ में गहरी भक्ति उत्पन्न होती है। इसे साधक-भक्ति कहा जाता है। जब यह भक्ति और गहरी हो जाती है तब प्रेम-भक्ति का रूप ले लेती है। यह तो केवल हृदय में प्रकट होती है। अब तो समझ गये न?''

गुरु-वचन को सुनकर माधव पागला आत्मविभोर हो उठे। उन्होंने निश्चय किया कि भविष्य में वे इस उपदेश का निष्ठापूर्वक पालन करते रहेंगे।

* * *

दीक्षा लेने के चार वर्ष बाद की बात है।

माधव पागला घर-घर जाकर छात्रों को पढ़ाया करते थे। इस कार्य के लिए कुल जमा पन्द्रह रुपये मिलते थे। इतनी छोटी रकम से गृहस्थी की गाड़ी चल नहीं रही थी। परिवार में माँ और वे स्वयं थे। मां को भी भरपेट भोजन न दे पाने का उन्हें कष्ट था। रात को अधिकतर वे लाई-चना खाकर सो जाते थे। अपने इस कष्ट के कारण कभी-कभी इतने दु:खी हो जाते थे कि रात को चुपचाप घण्टों रोते रहते थे।

सोचा करते थे—मैं गरीब आदमी हूँ, इसलिए गुरुदेव की मुझ पर कृपा नहीं हो रही है। वे बड़े आदमियों के यहाँ ठहरते हैं, ऐसी स्थिति में मेरे जैसे नगण्य शिष्य पर उनका ध्यान नहीं जाता। मेरी याद उन्हें कैसे आयेगी, भला।

एक दिन इसी प्रकार की चिन्ता करते-करते उन्होंने दशाश्वमेध घाट की सीढ़ियों पर बैठकर मुँह ढाँप लिया और रोने लगे।

इस घटना के कई दिनों बाद उनकी बाल्य-सहचरी से अचानक मुलाकात हो गई। दोनों एक-दूसरे को देखकर चकित रह गये। दोनों एक ही गाँव में पैदा हुए थे, साथ खेलते रहे। आज बाईस वर्ष बाद यह मुलाकात हुई है।

माधव पागला ने विस्मय के साथ पूछा—"तू तो साधुनी बन गई है।"

उसने भी कहा—"और तू? तू भी साधु बन गया है। तू श्री राम ठाकुर का शिष्य है और मैं भी। गुरुदेव ने मुझे तेरे पास भेजा है।"

गुरुदेव की चर्चा चलने पर माधव पागला के दिल का दर्द उमड़ आया। उन्होंने कहा—"गुरुदेव बड़े लोगों के हैं। उन्हीं का ध्यान रखते हैं। हमारे जैसे दरिद्रों की ओर ध्यान देने के लिए उनके पास अवकाश कहाँ है?"

यह बात सुनते ही शिव दुर्गा ने कहा—"चुप-चुप। गुरुदेव के बारे में ऐसी बातें नहीं कहते। शोभा नहीं देतीं। जानता है, तेरे रोने के कारण आजकल वे बहुत अस्थिर हो उठे हैं। बराबर कहते हैं कि मेरा माधव रो-रोकर मुझे परेशान कर रहा है। तुझे शान्त करने के लिए उन्होंने मुझे यहाँ भेजा है। इधर तू रोता है और उधर उन्हें कष्ट होता है। गुरुदेव ने कहा है कि क्या अभाव होने पर रोना चाहिए?"

सारी बातें सुनने के बाद माधव पागला को आश्चर्य हुआ, आखिर इन तमाम बातों से गुरुदेव कैसे परिचित हो गये? इसका अर्थ यह है कि वे मेरी वर्तमान स्थिति से परिचित हैं। इस शरीर पर तो श्री ठाकुर का अधिकार है।

एक दिन रात को माधव ने स्वप्न में देखा कि बाढ़ के कारण चारों ओर पानी ही पानी है। वह गुरुदेव के साथ एक नाव पर यात्रा कर रहा है। श्री राम ठाकुर नाव पर खिचड़ी और आलू का चोखा बना रहे हैं। भोजन तैयार हो जाने पर गुरुदेव ने कहा—"आओ भोजन करें।"

गुरु की आज्ञा सुनकर वे चौंक उठे। बोले—"यह क्या गुरुदेव? आप ठहरे गुरु और मैं शिष्य हूँ। एक ही थाली में कैसे खा सकता हूँ?"

तभी उनकी नींद खुल गई। उस दिन अपने शिक्षागुरु श्री नरेन्द्रनाथ बनर्जी से उन्होंने इस स्वप्न का अर्थ पूछा। बनर्जी बाबू ने कहा कि इसमें कोई दोष नहीं है।

श्री राम ठाकुर काशी बराबर आते थे। यहाँ वे कभी पाण्डे धर्मशाला या हरसुन्दरी धर्मशाला में ठहरते थे। इसी प्रकार जब एक बार ठाकुर आये तब उनका दर्शन करने वे धर्मशाला में गये तो देखा कि एक सज्न को गुरु-पूजा के बारे में अनेक झंझटवाली प्रक्रिया समझा रहे थे। सारी बातें सुनने के बाद माधव पागला ने सोचा—अगर मुझे यह सब करने को कहा जायगा तो मुझसे हो नहीं पायेगा।

उक्त सज्जन से बातचीत समाप्त करने के बाद ठाकुर ने माधव पागला से कहा—"आप मेरा नाम लेते हुए जो कुछ हाथ में लेंगे, वह मुझ तक पहुँच जायगा। याद रखिये, मैं उसे ग्रहण भी कर लूँगा।"

श्री राम ठाकुर में एक विशेषता यह थी कि वे प्रत्येक व्यक्ति से बातचीत करते समय सर्वदा 'आप' शब्द का प्रयोग करते थे। गुरुदेव के इस उपदेश को सुनते ही माधव प्रसन्न हो गये। प्रणाम करने के पश्चात् चल पड़े।

* * *

सन् १६३६ की घटना है। द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ हो गया था। चारों ओर सनसनी फैली हुई थी।

माधव अपने मित्र यदुलाल बनर्जी की दुकान पर गये। सुबह के दस बजे थे। अपने मित्र के मुरझाये चेहरे को देखकर माधव ने पूछा—"क्या बात है? चूसे हुए आम की तरह शक्ल क्यों बनाये हुए हो?"

यदुलाल ने कहा—"क्या बताऊँ, सबेरे से अब तक केवल चार आने की बिक्री हुई है। अगर यही हालत रही तो कैसे काम चलेगा? समझ में नहीं आता।"

माधव ने कहा—"मेरे ठाकुर को अमरूद खिलाइये, बिक्री बढ़ जायगी।"

यदु बाबू को इन सब बातों पर विश्वास नहीं था। काफी देर तक किचकिच करने के बाद यदु बाबू ने एक आने का अमरूद मँगवाया और कहा—"ठीक है। लो, इसे ले जाकर अपने ठाकुर को भोग लगा देना।"

माधव ने कहा—"घर जाने की जरूरत नहीं है। यहीं भोग लगा देता हूँ।"

इतना कहने के बाद माधव ने अमरूदों को चाकू से चीरकर उसे दो भागों में बाँटा। इसके बाद एक हिस्सा यदू बाबू को देकर दूसरा हिस्सा स्वयं खाने लगे।

यह दृश्य देखकर यदुलाल बिगड़ उठे—"बड़े भारी धोखेबाज हो। अमरूद खाने की इच्छा थी तो साफ कहते। इस तरह मूर्ख क्यों बनाया?"

माधव ने हँसते हुए कहा—"मैं खा रहा हूँ यानी स्वयं ठाकुर खा रहे हैं। आप भी प्रसाद ग्रहण कीजिए।"

यदुलाल को मजाक पसन्द नहीं आया। वे देर तक झनकते रहे। यह देखकर

माधव ने कहा—"अगर आज आपकी बिक्री अच्छी हुई तो समझ लीजिएगा कि इस फल को ठाकुर ने खाया है।"

यदुलाल का मिजाज इस परिहास से और भी बिगड़ गया। बोले—"ठीक है। पता चल जायगा। अब आप यहाँ से चलते-फिरते नजर आइये। मेरा पारा गरम हो रहा है।"

शाम को माधव टहलते हुए पुनः दुकान पर आये। तब तक कुछ भी बिक्री नहीं हुई थी। थोड़ी ही देर बाद धीरे-धीरे ग्राहक आने लगे। इसके बाद यह हालत हो गई कि ग्राहकों को सँभालना कठिन हो गया। कहाँ नित्य ४०-५० रुपये की बिक्री होती थी और उस दिन १२३ रुपये की बिक्री हुई।

रात ९ बजे आकर माधव ने पूछा—"कहो, क्या हाल है?"

यदुलाल बनर्जी ने प्रसन्नचित्त से कहा—"आज तो चमत्कार हो गया। सिर्फ चार घण्टे में १२३ रुपये की बिक्री हुई। पिछले छः माह में इतनी बिक्री कभी नहीं हुई थी।"

माधव ने हँसकर कहा—"अब भविष्य में कभी मेरे ठाकुर के बारे में दोषारोपण न कीजिएगा।"

* * *

खाली समय में माधव अक्सर दशाश्वमेध घाट पर टहलने चले जाते थे। काशी के घाटों पर कथावाचक कथा कहते हैं, जिसे अधिकतर बंगाली महिलाएँ, कुछ वृद्ध पुरुष कथा सुनते हैं।

स्वामी निखिलानन्द से माधव की घनिष्ठता थी। बातचीत के सिलसिले में एक दिन दोनों में विवाद हो गया। स्वामीजी ने उसे फटकारते हुए कहा—"एक ओर तुम साधु बनते हो और दूसरी ओर स्वामियों का मखौल उड़ाते हो। यह गलत बात है। प्रत्येक संन्यासी को नारायण समझकर उनके प्रति श्रद्धा-ज्ञापन करना चाहिए। श्रीकृष्ण ने यही उपदेश उद्धव को दिया था।"

माधव ने पूछा—"उद्धव? यह कौन था?"

माधव के इस प्रश्न पर स्वामीजी चौंक उठे। उन्होंने पूछा—"ब्राह्मण-सन्तान होकर तुम उद्धव को नहीं जानते? धार्मिक ग्रन्थों का पाठ किया है या नहीं?"

स्वामीजी के प्रश्न को सुनकर माधव लज्जित हो उठे। उन्हें बड़ी ग्लानि हुई। अपनी अज्ञानता के प्रति उन्हें क्षोभ हुआ। बड़े संकोच के साथ विनम्र भाव से उन्होंने कहा—"स्वामीजी, क्या आप मुझे गीता पढ़ाने का कष्ट करेंगे?"

स्वामीजी ने कहा—"नहीं। मैं नहीं पढ़ा सकता। मैं काफी वृद्ध हो गया हूँ। तुम किसी अन्य विद्वान् से पढ़ लेना।"

उस दिन माधव रातभर बेचैन रहे। ब्राह्मण-पुत्र होकर उन्होंने गीता का अध्ययन नहीं किया। बार-बार अपने गुरुदेव का स्मरण करते हुए उन्होंने कहा—"गुरुदेव, मुझे गीता पढ़वाकर ज्ञानी बना दो। अपना दुःख आपके सिवा किससे कहूँ?"

इस घटना के कई दिनों बाद दशाश्वमेध घाट पर टहलते हुए एक व्यक्ति पर माधव की नजर पड़ी। देखने में वे लगभग ४० वर्ष के थे यानी माधव से ४-५ वर्ष बड़े थे। माधव इन्हें १०-१२ दिनों से चुपचाप टहलते देखा करते थे। एक दिन आगे बढ़कर उन्होंने अपना परिचय दिया।

उक्त अपरिचित सज्जन ने कहा—"मेरा नाम नरेन्द्रनाथ बनर्जी है। तुम मुझे दादा कह सकते हो। तुम्हारे गुरु महापुरुष हैं। मैं उन्हें जानता हूँ। उनका मुझ पर स्नेह है। लगता है, आप योगाभ्यास करते हैं?"

माधव ने कहा—"जी नहीं। मैं केवल नाम जपता हूँ। कुछ दिन हुए शव-शिवा मन्दिर में स्थित पंचमुण्डी आसन पर मन्त्र सिद्ध किया है।"

नरेन्द्रनाथ ने कहा—"यह बात गुरु के अलावा अन्य किसी को नहीं बतानी चाहिए। अब यह बताओ कि तुम मुझसे क्या चाहते हो?"

"मैं गीता पढ़ना चाहता हूँ। क्या आप मुझे गीता पढ़ा सकते हैं?"

नरेन्द्रनाथ ने कहा—"जरूर पढ़ाऊँगा। कल तुम गंगा-स्नान करने के बाद नये वस्त्र पहनकर मेरे यहाँ चले आना। साथ में थोड़ा घिसा हुआ चन्दन लेते आना।"

दूसरे दिन निर्देशानुसार माधव स्नानादि करने के बाद नरेन्द्रनाथ के यहाँ पहुँचे। उन्हें प्रणाम करने के बाद चन्दन लगाया। नरेन्द्रनाथ माधव के मस्तक, बाँह, मुँह और वक्ष:स्थल पर चन्दन लगाने के बाद बोले—"उस स्टूल पर बैठ जाओ।"

आज्ञानुसार माधव स्टूल पर बैठ गये। उन्होंने सोचा कि अब शायद दादा गीता-पाठ करेंगे। देखते ही देखते माधव का शरीर अवसन्न हो गया। दोनों आँखें बन्द हो गईं। धीरे-धीरे वे सो गये। पर भीतर ही भीतर जप चलता रहा। कुछ देर बाद घड़ी की आवाज से उनकी नींद खुली तो देखा—दादा एकटक उसकी ओर देख रहे हैं।

माधव को जागते देख नरेन्द्रनाथ ने पूछा—"नींद खुल गई? काफी देर तक सोते रहे।"

माधव की समझ में कुछ नहीं आया। लज्जित भाव से उन्होंने कहा—"पता नहीं कैसे नींद आ गई।"

नरेन्द्रनाथ ने कहा—"ठीक है, गीता के श्लोक कहो।"

"मैं गीता नहीं जानता।"

"मैं कह रहा हूँ, उसे दोहराते चलो।"

इसके बाद नरेन्द्रनाथ ने गीता का एक श्लोक सुनाया। तुरत उसे दोहराते हुए माधव ने अर्थ भी बताया।

नरेन्द्रनाथ ने प्रसन्न होकर कहा—"तुम तो श्लोक का उच्चारण अच्छी तरह कर लेते हो और अर्थ भी बता देते हो।"

"मैं आपकी जबानी सुनता गया और उसकी पुनरावृत्ति करता गया। इसमें कौन-सा कमाल किया?"

इसी प्रकार एक के बाद एक करके श्लोकों की आवृत्ति होती रही। यहाँ से उस दिन रवाना होने के बाद माधव के मन में एक सवाल बराबर टकराने लगा—दादा जरूर कोई जादू जानते हैं। शायद इसीलिए नींद आ गई थी और मैं गीता का अर्थ कहता गया।

लगातार कई दिनों तक गीता-पाठ का कार्यक्रम चलता रहा। एक दिन नरेन्द्रनाथ ने कहा—"अब यहाँ आने की जरूरत नहीं है। जब तुम्हें इसकी जरूरत होगी तब आपने-आप आवृत्ति हो जायगी।"

गीता की शिक्षा के बाद माधव नरेन्द्रनाथ से उपनिषदों का पाठ पढ़ने लगे।

एक दिन एक श्लोक की प्रथम पंक्ति सुनने के बाद नरेन्द्रनाथ दूसरी पंक्ति का स्मरण करने लगे, पर कुछ देर तक उन्हें याद नहीं आया। तभी माधव ने उस श्लोक की आवृत्ति कर दी।

नरेन्द्रनाथ ने चौंककर पूछा—"क्यों भाई, उपनिषद् मेरे अलावा और किसी से पढ़ते हो क्या?"

माधव ने हँसते हुए कहा—"जी नहीं। मैंने केवल उपनिषद् का नाम मात्र सुना है। अभी तक देखा नहीं है।"

"तब आपने श्लोक की पूर्ति कैसे की?"

"जब आप इस श्लोक की अर्द्धाली सुना रहे थे तब मुझे ऐसा लगा जैसे इस श्लोक को कहीं सुन चुका हूँ या जानता हूँ?"

नरेन्द्रनाथ ने पूछा—"इस श्लोक का अर्थ बता सकते हो?"

माधव ने कहा—"जी हाँ।"

कहने के बाद उन्होंने श्लोक का अर्थ बताया।

नरेन्द्रनाथ को समझते देर नहीं लगी कि माधव पागला सामान्य व्यक्ति नहीं है। यह असाधारण व्यक्ति है। गुरु-कृपा से इसे अलौकिक शक्ति प्राप्त हो गई है। इधर नरेन्द्रनाथ के व्यवहार और ज्ञान से माधव भी काफी प्रभावित हो गये थे।

माधव अपने दादा नरेन्द्रनाथ का निरन्तर चिन्तन करते थे। एक प्रकार से वह नरेन्द्रमय हो गये थे। उनका ख्याल था कि दादा का निरन्तर ध्यान करते रहने पर उनका ज्ञान मुझमें आ जायगा और मैं योग्य बन जाऊँगा।

धीरे-धीरे कई माह गुजर गये। चैत्र का महीना आ गया। सहसा एक दिन उपलवृष्टि हुई। दोपहर का वक्त था। माधव अपने कमरे में सो रहे थे। अचानक उन्होंने देखा—दादा अपने कमरे में खाट पर बैठे काँप रहे हैं। दरवाजा तथा खिड़कियों से पानी की बौछार उनके कमरे में आ रही है। घर में सहायता करनेवाला कोई नहीं है।

यह दृश्य देखकर माधव परेशान हो उठे। उन दिनों माधव पातालेश्वर और नरेन्द्रनाथ बाँसफाटक मुहल्ले में रहते थे जिनकी दूरी एक-डेढ़ मील थी। तुरत अपनी माँ से गरम कपड़े लेकर वे दादा के घर आये। सूक्ष्म दृष्टि से दादा के यहाँ का जो दृश्य

माधव ने देखा था, यहाँ आने पर वही दृश्य देखा।

कमरे के भीतर प्रवेश करने के बाद माधव ने कहा—''घर बैठे आपकी हालत देखकर रहा नहीं गया। अपने साथ कुछ गरम कपड़े लाया हूँ।''

नरेन्द्रनाथ ने कहा—''तुम्हारे इस व्यवहार के कारण लोग तुम्हें पागल समझते हैं।''

माधव ने जवाब दिया—''घर पर बैठा था। अचानक आपकी यह हालत देखी। यह सच है या नहीं, यही देखने के लिए चला आया।''

नरेन्द्रनाथ ने कहा—''यह सब छोड़ दो। इससे कोई लाभ नहीं। अपनी शक्ति इस दिशा में मत लगाओ।''

क्षुण्ण मन से माधव ने कहा—''मैं इधर कहाँ मन लगाता हूँ? अपने आप मुझे दिखाई देने लगता है।''

समझौताभरे शब्दों में नरेन्द्रनाथ ने कहा—''अगर गुड़ खाकर तृप्त हो जाओगे तो मोहनभोग कैसे खाओगे? अगर इस दिशा में मन लगा रहा तो साधना में प्रगति नहीं होगी।''

इस घटना के कुछ दिनों बाद नरेन्द्रनाथ वृन्दावन चले गये। उनके जाने के कई दिनों बाद पुन: माधव ने देखा कि नरेन्द्रनाथ एक खाट पर कम्बल ओढ़े सो रहे हैं। सारा शरीर फूला हुआ है। शायद बुखार से पीड़ित हैं। यह दृश्य देखकर उन्हें अपार कष्ट हुआ। पता मालूम नहीं था। उस दिन २८ दिसम्बर था। इस तारीख को माधव ने नोट कर लिया।

कई माह बाद नरेन्द्रनाथ वापस आये। मुलाकात होने पर माधव ने पूछा—''२८ दिसम्बर के दिन आप कहाँ थे?''

नरेन्द्रनाथ ने कहा—''माधव भाई, मैंने इसके पहले तुम्हें मना किया था और अब पुनः कर रहा हूँ। क्यों अपनी शक्ति इधर लगाते हो? जानते हो, इसकी कीमत कितनी है? केवल तीन पैसे मात्र यानी एक पोस्टकार्ड लिखकर मेरी हालत की जानकारी प्राप्त कर सकते थे।''[1]

माधव ने मायूस होकर रहा—''मैंने इसके लिए कुछ नहीं किया। यह तो मुझे अपने-आप दिखाई देने लगा था। इसमें मेरी गलती कहाँ है? अगर कोई दृश्य अपने-आप दिखाई दे तो उसे मैं कैसे रोक सकता हूँ?''

माधव की सरलता से नरेन्द्रनाथ प्रसन्न होकर बोले—''तब कोई बात नहीं। लेकिन इस दिशा में प्रगति करोगे तो भगवान् की चिन्ता नहीं कर सकोगे। हर वक्त भगवद्-चिन्तन में मन लगाओ।''

आखिर एक दिन वह भी आया जब शिक्षा-गुरु नरेन्द्रनाथ ने अपने शिष्य माधव पागला से कहा कि अब मैं हमेशा के लिए अरविन्द आश्रम जा रहा हूँ। इस समाचार से माधव अत्यन्त व्याकुल हो उठे। उन्होंने नरेन्द्रनाथ के पैर पकड़ते हुए कहा—''मैं आज

---

[1] परमहंस रामकृष्ण तथा अन्य सन्त भी इस तरह की योग-विभूति के बारे में कह चुके हैं।

तक आपसे ज्ञान प्राप्त करता रहा। आपके चले जाने पर कौन मुझे ज्ञान देगा? कहीं प्राप्त-ज्ञान लोप न हो जाय?''

नरेन्द्रनाथ ने हँसकर कहा—''तुम्हारा यह भय व्यर्थ है। अपने पूर्वजन्म में तुम प्रकाण्ड पण्डित थे। गुरु ने उस आवरण को हटा दिया है, इसीलिए तुममें स्वतः ज्ञान का स्फुरण हो रहा है। भविष्य में तुम जिस पुस्तक का अध्ययन करोगे, आसानी से समझ जाओगे। यह मेरी नहीं, श्री राम ठाकुर की कृपा है। तुम क्या हो, इसे अभी तुम समझ नहीं पा रहे हो। भविष्य में ज्ञान के विकास होने पर स्वतः समझ जाओगे।''

* * *

नरेन्द्रनाथ चले गये। कई महीने बाद की घटना है।

समाधि के समय माधव पागला को अक्सर बड़ी परेशानी होती रही। आखिर अपने इष्ट को किस नाम से पुकारें। इसी ऊहापोह में वे व्याकुल हो उठते थे। भगवान् के तो अगणित नाम हैं, पर इनमें से उन्हें कोई नाम पसन्द नहीं आ रहा था।

एक दिन वे खोये हुए भाव से कोदई चौकी मुहल्ले में स्थित बरगद के पेड़ के नीचे से गुजर रहे थे। ठीक इसी समय ऊपर से आवाज आई—''तू मुझे माधव के नाम से पुकार सकता है। इससे मैं सन्तुष्ट हो जाऊँगा।''

इस दैववाणी को सुनते ही उनका तन-मन एक अव्यक्त आनन्द से सिहर उठा। राह चलते-चलते उनकी स्थिति पागलों जैसी हो गई। आखिर ऐसा क्यों हो रहा है, इसे वे समझ नहीं पा रहे थे। इसी चिन्तन में उनकी आँखें ढपने लगीं और उन्हें नरेन्द्र भाई की वह बात याद आ गई जिसे उन्होंने एक अर्सा पहले सुनाई थी।

एक दिन बातचीत के सिलसिले में उन्होंने कहा था—''अपने पूर्वजन्म में तुम छपरा जिले के एक गाँव में रहते थे। कन्धे पर एक फटी कथरी डाले, पागलों की तरह सड़कों पर घूमा करते थे। राह चलते बालक तुम्हें पागल समझकर ढेला मारते, चिढ़ाते और तंग करते थे। तुम्हारे ऊपर कीचड़ फेंककर 'माधव पागला' कहा करते थे। कुछ लोग ऐसे भी थे जो तुम्हें आदर के साथ अपने घर ले जाकर भोजन कराते थे। छपरा जिले में श्री माधव का एक मन्दिर है। तुम उसी मन्दिर के पुजारी थे। कठोर साधना के कारण तुम पागल हो गये। आश्चर्य की बात यह रही कि लोगों की फटकार, ताड़ना, किसी का आदर, पीड़ा तुम्हें कभी प्रभावित नहीं करती थी। हर वक्त तुम 'मेरा माधव बहुत अच्छा है' कहा करते थे।''

कोदई चौकी में उक्त दैववाणी को सुनने के बाद एक दिन माधव पातालेश्वर स्थित अपने भवन में समाधि लगाकर गुरुप्रदत्त मन्त्र का जप कर रहे थे। उनका हृदय इष्ट की तलाश में व्याकुल था। धीरे-धीरे वे भावावेश में आ गये और उनकी आँखें बन्द हो गईं। उन्होंने देखा कि गुरुदेव उनका हाथ पकड़े उनके इष्टदेव के पास ले आये। कितनी सुन्दर मूर्ति है। माधव के शरीर पर विभिन्न प्रकार के अलंकार हैं। श्याम वर्ण, पैरों में नूपुर, पीत वस्त्र, कानों में कुण्डल, सिर पर मयूर-पुच्छ, सुकुमार बालकों की तरह

हँसी। गुरुदेव के अनुरोध पर वे दर्शन देने आये थे। माधव पागला अपने इष्ट को देखकर अचैतन्य हो गये। थोड़ी देर बाद सारा दृश्य गायब हो गया।

कुछ देर बाद जब उन्हें होश आया तब उनका तन-बदन परिपूर्ण आनन्द से सराबोर हो चुका था। गुरुदेव की असीम कृपा से आज उन्हें अपने प्रभु के दर्शन हुए। इस घटना के बाद वे नवद्वीप के राजा कृष्णचन्द्र द्वारा स्थापित शव-शिवा मन्दिर में स्थित पंचमुण्डी आसन पर बैठकर दो रात साधना करते रहे। इस साधना से वे मन्त्र सिद्ध हो गये। बाद में उन्हें सर्वत्र श्री नाम का आभास होने लगा। लगता था, जैसे सहस्रों कण्ठों से नाम ध्वनित हो रहा है।

* * *

पातालेश्वर स्थित जिस मकान में माधव रहते थे, उस मकान में श्री श्यामसुन्दर तथा गोपालजी की मूर्ति स्थापित थी। इस मन्दिर के प्रतिष्ठाता थे—श्री रामहरि ठाकुर। एक दिन विचित्र घटना हुई।

नित्य रात की शयन-आरती करनेवाला व्यक्ति उस दिन किसी कारण से नहीं आया। यह देखकर घर की मालकिन ने माधव से आरती करने का अनुरोध किया। माधव ने अपनी माँ से कहा—''मैं आरती कैसे करूँगा? मैं मन्त्र वगैरह कुछ नहीं जानता।''

माँ ने कहा—''कोई हर्ज नहीं। तू अपना इष्ट मन्त्र जपते हुए आरती कर दे। इसी से सब कुछ हो जायगा।''

माँ के आज्ञानुसार मन्दिर में जाकर उन्होंने आरती की। बाद में विग्रह को गोद में उठाकर लिटाने गये तो वे चौंक उठे। उन्हें प्रस्तर-प्रतिमा के स्थान पर जीवन्त मूर्ति-बोध हुआ। बाद में गृहस्वामी से पूछने पर ज्ञात हुआ कि इस मूर्ति की प्रतिष्ठा एक सिद्ध महात्मा के द्वारा हुई है।

इस घटना के कुछ दिनों बाद एक दिन माधव गंगा-स्नान करने के पश्चात् घाट की सीढ़ियाँ चढ़ रहे थे। इनके पीछे-पीछे एक बालक आ रहा था। उसने चलते-चलते कहा—''देखो, ये लोग मुझे पायस नहीं देते।''

माधव अपनी धुन में थे। अनमने भाव से उन्होंने जवाब दिया—''नहीं देते तो मैं क्या करूँ?''

वह बालक अपनी रट लगाता हुआ घर के समीप तक आया और फिर न जाने कहाँ गायब हो गया। यह देखकर माधव को चैतन्य हुआ। भीतर आकर उन्होंने गृहस्वामी से इस घटना का जिक्र करते हुए कहा—''आप आज ही श्यामसुन्दर को भोग में पायस दीजिए।''

गृहस्वामी ने कहा—''ओह! बड़ी भूल हो गई। पायस-भोग देने के लिए कलकत्ते से खजूर का गुड़ मँगवाया था। बक्से में बन्द रखने के कारण हम लोग भूल गये। आज ही श्यामसुन्दर को पायस-भोग दूँगा।''

इसी प्रकार माधव के जीवन में अनेक चमत्कारिक घटनाएँ हुई हैं। पण्डित

गोपीनाथ कविराज ने लिखा है—"एक विचित्र बात है कि इतने वैराग्यसम्पन्न अवधूत महापुरुष होते हुए भी अब तक एक गृहस्थ-परिवार से इनका पारिवारिक सम्बन्ध स्थापित है। इस सम्बन्ध में पूछने पर इन्होंने एक दिन इसका भेद खोलते हुए मुझसे कहा—"यदुलाल बनर्जी की चौक में दवा की दुकान थी। नरेन्द्रनाथ बनर्जी ने मुझे एक दिन बताया था कि तुम इस परिवार के अभिन्न अंग थे। बाद में गम्भीरतापूर्वक विचार करने पर मुझे ज्ञात हुआ कि वे हमारे पूर्वजन्म के पिता थे। सन् १९५६ ई० में उनका देहान्त हो गया। इनका एक पुत्र था। परिवार में पुत्र, पुत्रवधू और माँ थी। माँ को मैं चाची कहा करता था। पुत्र की चार सन्तानें हैं जिनके पालन-पोषण का भार मेरे ऊपर है। ये लोग मेरी भरपूर सेवा करते हैं। मैं स्वयं भी इनकी सहायता करता हूँ। इस प्रकार संस्कारजन्य बन्धन से बँधा हूँ।"

इसी बीच एक दिन माँ का निधन हो गया। अब माधव पूर्ण रूप से बन्धनहीन हो गये। माँ के निधन के पश्चात् आप सकरकन्द गली में स्थित राधा गोविन्दजी मन्दिर में पुजारी बने जिसका उल्लेख प्रारम्भ में किया गया है। इस मन्दिर की स्वामिनी को लोग 'साधु माँ' कहते थे। वे अत्यन्त निष्ठापूर्वक भजन-पूजन करती हैं। धर्म-ग्रन्थों का अध्ययन करती हैं और राधा-गोविन्द का पूजन श्रद्धा-भक्ति से कराती हैं।

माधव को जब पुजारी के पद पर रखा गया तब पुराने पुजारी ने कहा—"आप पुजारी तो बन गये, क्या आपसे सारा काम सँभलेगा? आपका दुबला-पतला शरीर है और इधर राधारानी और गोविन्द की मूर्ति काफी भारी है। नित्य उन्हें स्नान कराने के बाद सिंहासन पर रखना पड़ता है। दोपहर को उन्हें लिटाना पड़ता है। शाम को पुनः बैठाना पड़ता है और रात को शयन-आरती के बाद लिटाना पड़ता है। क्या आपसे इतना श्रम हो सकेगा? अगर आप इतना कर सकेंगे तो अपने कार्य में सफल होंगे।"

पुजारी का वक्तव्य सुनकर माधव चकित हो उठे। वे कितने कमजोर हैं, इसका ज्ञान उन्हें था। पहली बार जब वे मूर्ति उठाने लगे तब उनका सारा शरीर काँपने लगा। पसीने-पसीने हो गये। किसी सूरत से दोनों-मूर्तियों को लिटाने के बाद धीरे से माधव ने कहा—"गोविन्द, तुम हल्के हो जाओ। तुम इतने भारी हो कि मुझसे उठाते नहीं बन रहा है। तुम्हें हलका होना है।"

रात को सोते समय इन्हीं बातों को दोहराते हुए माधव ने कहा—"अगर तुम हलके न हुए तो मैं यहाँ काम नहीं कर पाऊँगा।"

दूसरे दिन स्नान कराने के बाद माधव ने जब मूर्ति को उठाया तब कुल वजन पाँच सेर था। बड़ी आसानी से दोनों मूर्तियों को स्नान कराने के बाद उन्हें सिंहासन पर स्थापित किया।

कई दिनों बाद साधु माँ प्रश्न कर बैठीं—"कहिये पुजारीजी, आपको विग्रह उठाने में कोई परेशानी तो नहीं होती?"

माधव ने हँसकर कहा—"साधु माँ, भले ही गोविन्दजी औरों के निकट वजनी हों, पर मेरे निकट बालक जैसे हैं। कहिये तो उन्हें गोद में उठाकर दौड़ सकता हूँ।"

यह जवाब सुनकर साधु माँ चकित रह गईं। प्रारम्भ से ही वे माधव में अद्भुत भाव देखती आ रही हैं। उन्हें लगा, जैसे इतने दिनों बाद एक वास्तविक पुजारी मिला है।

इस घटना के कुछ दिनों बाद की बात है। देवता को भोग देने के बाद माधव ने महाराज से कहा—''आपने आज दाल ठीक नहीं बनाई है। मिर्च कुछ अधिक है।''

यह शिकायत सुनकर पाचक महाराज आगबबूला हो गये। साधु माँ से शिकायत करने पर वे बोलीं—''नाराज क्यों हो रहे हो? बात सही है या नहीं, जाँच कर लेने पर पता चल जायगा।''

उस दिन भोजन करते समय सभी लोगों ने स्वीकार किया कि आज महाराज ने दाल में मिर्च अधिक डाल दी है।

इसी प्रकार माधव अक्सर भोग की कमी का उल्लेख करते रहे। पाचक को आश्चर्य होता है कि इस पागल को इन बातों की जानकारी पहले से कैसे हो जाती है।

एक बार पूछने पर माधव ने जवाब दिया—''मुझे गोविन्द बता देते हैं।''

लेकिन इस बात पर कोई विश्वास नहीं करता था।

* * *

माधव में दो कमजोरियाँ थीं। एक तो ताश खेलने में मशगूल हो जाते थे, दूसरे सिगरेट बहुत पीते थे। एक बार मित्रों के साथ ताश खेलने बैठे तो उन्हें समय का ध्यान नहीं रहा। तभी एक मित्र ने आकर कहा—''माधव, तुम यहाँ बैठे ताश खेल रहे हो, उधर मन्दिर का दरवाजा बन्द हो गया है। रात के नौ बज चुके हैं।''

इतना सुनते ही माधव ताश के पत्ते फेंककर तुरत मन्दिर की ओर दौड़े। राह चलते भगवान् से प्रार्थना करने लगे—''हे माधव, मेरी रक्षा करो। अब मैं कभी ताश नहीं खेलूँगा।''

घर के पास आकर देखा—दरवाजा खुला है और भीतर मन्दिर में विग्रह स्थापित है। सन्तोष की साँस लेते हुए माधव ने मन ही मन कहा—''माधव, आज तुमने बचा लिया। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि अब भविष्य में कभी ताश नहीं खेलूँगा।''

धीरे-धीरे साढ़े-नौ बज गये। अब माधव ने चकित भाव से पाचक के पास जाकर पूछा—''महाराजजी, साढ़े-नौ बज गये और अभी तक भोग क्यों नहीं तैयार हुआ? फाटक भी बन्द नहीं किया गया?''

पाचक ने कहा—''भोग बनाते समय आज पता नहीं, क्यों तीन-तीन बार चूल्हा बुझ गया। चौथी बार बना रहा हूँ, इसलिए देर हो गई।''

पाचक का जवाब सुनकर माधव अपने-आपमें कहने लगे—हे माधव, आज आपने मेरी रक्षा की। अब साधु माँ की डाँट से बचा लो।

इस मन्दिर का एक विशेष नियम है। यहाँ रहनेवाले सभी लोग रात को आठ बजे तक भीतर आ जाते हैं वरना उन्हें साधु माँ डाँटती हैं। भोजन करते समय माधव ने जान-बूझकर साधु माँ से पूछा—''आज आपने मुझे फटकारा क्यों नहीं?''

साधु माँ ने पूछा—''आखिर क्यों डाँटूँगी? मैं बरामदे पर बैठी सब देखती रहती हूँ। तुम ठीक आठ बजे भीतर आये। गमछा लेकर कल-घर में मुँह धोने गये। इसके बाद यहाँ बैठे सिगरेट पीते रहे और अब पूछते हो कि डाँटा-फटकारा क्यों नहीं?''

माधव ने सोचा—यह भी मेरे गोविन्द की लीला है। अगर वे सहायक रहें तो कोई कुछ नहीं कर सकता।

दूसरी घटना सिगरेट के बारे में है।

माधव को सिगरेट पीने की बहुत बुरी लत है। एक दिन शाम के समय माधव सायं-आरती करने के बाद साधु माँ के पास आकर बोले—''साधु माँ, मुझे चार आने दीजिए।''

''क्या करोगे?''

''मेरे पास सिगरेट नहीं है। सिगरेट खरीदूँगा।''

साधु माँ एक अर्से से माधव को समझा रही थीं कि वह सिगरेट पीना छोड़ दे, पर वह अपनी आदत से बाज नहीं आ रहा था। आज मौका मिला तो साधु माँ जिद कर बैठीं। बोलीं—''सिगरेट के लिए पैसे मेरे पास नहीं हैं।''

साधु माँ का जवाब और जिद देखकर माधव ने कहा—''देखो साधु माँ, मैं सिगरेट पीना बन्द नहीं करूँगा। भले ही तुम पैसे न दो, गोविन्द का बाप देगा।''

साधु माँ भी चिढ़कर बोलीं—''देखूँ, कौन तुम्हें सिगरेट पीने के लिए पैसे देता है?''

मन्दिर से बाहर आकर माधव गंगा किनारे टहलने लगे ताकि कोई परिचित मिल जाय तो उससे पैसे माँगकर सिगरेट का जुगाड़ करे। लेकिन उस दिन कोई नहीं मिला। इधर सिगरेट की तलब तंग कर रही थी। धीरे-धीरे वक्त गुजरता गया। सायं-आरती का समय हो रहा है, समझकर माधव मन्दिर की ओर रवाना हुए। लेकिन सिगरेट के लिए छटपटा रहे थे। सोचने लगे—कहीं रात को नींद न आई तो मुश्किल होगी। क्या करें, समझ नहीं पा रहे थे।

विश्वनाथ गली में प्रवेश करते ही अचानक उनकी निगाह फर्श पर पड़ी एक चवन्नी पर गई। उसे उठाकर वे राह चलते लोगों से पूछने लगे—''यह चवन्नी किसकी गिर गई है?'' आसपास के दुकानदारों से भी यही प्रश्न पूछा।

लेकिन किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया। उस चवन्नी का कोई भी दावेदार सामने नहीं आया। माधव को समझते देर नहीं लगी कि माधव ने उनके लिए यह इन्तजाम किया है। तुरत पास की दुकान पर जाकर उन्होंने एक पैकेट सिगरेट खरीदी और ठाठ से कश खींचते हुए मन्दिर में आये।

भोग-आरती के बाद साधु माँ को चिढ़ाने के लिए दनादन सिगरेट पर सिगरेट पीने लगे।

यह देखकर साधु माँ ने विस्मय से पूछा—''बहुत सिगरेट पी रहा है? सिगरेट के पैसे किसने दिये?''

माधव ने कहा—"साधु माँ, मेरी बात झूठी नहीं है। गोविन्द के बाप ने ही मुझे पैसे दिये। दस पैसे की सिगरेट खरीदी, बाकी छ: पैसे मेरी जेब में हैं।"

बाद में साधु माँ को उन्होंने चवन्नी कैसे मिली, इसकी पूरी कहानी सुनाई।

साधु माँ ने कहा—"भक्त की हर इच्छा भगवान् पूरी करते हैं। अब आगे से सिगरेट के पैसे माँग लेना।"

इस घटना के कुछ दिनों बाद माधव अस्वस्थ हुए। कई दिनों बाद उन्होंने अरविन्द आश्रम में श्री माताजी तथा नरेन्द्रनाथ को पत्र लिखा कि मैं रोग-मुक्त होना चाहता हूँ।

एक दिन जब वे अकेले में चुपचाप सिगरेट पी रहे थे तब उनकी आँखों के सामने श्री माताजी की मूर्ति तैर गई। माधव ने स्पष्ट रूप से सुना—"धूम्रपान बन्द कर दो। बदले में दूध पिओ।"

शायद यह आँखों का भ्रम है, समझकर माधव ने इस आदेश को टाल दिया। चौथे दिन पाण्डीचेरी से इसी आशय का एक पत्र आया। इस पत्र को पढ़ने के बाद माधव ने सिगरेट पीना बन्द कर दिया।

* * *

गोविन्दजी के लिए एक दिन माधव रोटी बना रहे थे। ठीक इसी समय सदर दरवाजे पर एक पागल आया और चिल्लाकर बोला—"भूख लगी है, रोटी लाओ।"

इस आवाज को सुनकर साधु माँ दरवाजे के पास आईं और बोलीं—"अभी गोविन्दजी के लिए रोटी बन रही है। थोड़ी देर बाद मिलेगी।"

पागल ने कहा—"क्या मैं गोविन्द नहीं हूँ?"

साधु माँ को ऐसे जवाब की आशा नहीं थी। वे मन ही मन डर गईं। बोलीं—"अच्छी बात है, बैठो। तुम्हारे लिए रोटी बनवा देती हूँ।"

माधव भीतर बैठे सारी बातें सुन रहा था। पागल का उत्तर सुनकर उसने सोचा—सामान्य पागल इस तरह का जवाब नहीं दे सकता। इसमें कोई विशेषता जरूर होगी।

उसने साधु माँ से कहा—"मैं पागल को एक बार देखना चाहता हूँ। उसे रुकने के लिए कहिये। मैं उसके लिए रोटी बना देता हूँ।

इतना कहकर उसने कई रोटियाँ बनाईं और उन्हें लेकर पागल के समीप आकर कहा—"लीजिए।"

पागल एक चबूतरे पर रोटियाँ लेकर बोला—"ओ ढाका के रहनेवाले, जरा चटनी भी लेते आओ।"

पागल के इस सम्बोधन से माधव बुरी तरह चौंक उठे। मैं ढाका-निवासी हूँ, इसे कैसे मालूम हुआ? बनारस के इने-गिने लोग इस बात को जानते हैं। पछाँह में एक अर्से तक रहने के कारण पूर्वी बंगाल की भाषा भी भूल गया हूँ। आखिर इस पागल को इस बात की जानकारी कैसे हो गई?

तभी पागल ने पुनः कहा—''जाओ, चटनी ले आओ।''

इस चेतावनी को सुनकर माधव घबराकर भीतर आया और साधु माँ से चटनी की माँग की। साधु माँ ने कहा—''इस बार बीमारी की वजह से चटनी नहीं बना सकी।''

माधव को एकाएक ख्याल आया कि आज से १०-१२ दिन पहले आम की चटनी खाने के लिए साधु माँ ने दी थी जिसे उसने मन्दिर के बाहर ताखे पर रख दिया था। अभी तक खाई नहीं। उस चटनी को ले जाकर उसने दे दी।

इस घटना के बाद वह पागल अक्सर आता और अद्भुत बातें कहा करता था। एक दिन साधु माँ की बातों से माधव क्षुण्ण हो गया। उस दिन जब पागल आया तब माधव ने पूछा—''एक बात बताओ। अब मुझे यहाँ और कितने दिन नौकरी करनी पड़ेगी?''

पागल ने कहा—''जब तक तुम्हारी इच्छा हो, कर सकते हो। जब जाने की इच्छा होगी तब तुम्हें कोई रोक नहीं सकेगा।''

इस बातचीत के तीसरे दिन एक घटना हो गई। साधु माँ ने एक ब्राह्मण का अपमान किया। यह देखकर माधव अपनी क्षुब्धता को रोक नहीं सका। हमेशा के लिए राधा-गोविन्द के मन्दिर से चला गया। आश्चर्य की बात यह हुई कि माधव के जाने के बाद से पागल का आना भी बन्द हो गया।

मन्दिर की नौकरी छोड़ देने के बाद भी माधव कभी-कभी यहाँ आते रहे। माधव के एक ठीकेदार मित्र थे। जिन दिनों उनकी हालत बहुत खराब थी, उन दिनों माधव के माध्यम से गोविन्दजी की मिन्नत करने पर एक बड़ा काम मिल गया था जिसमें काफी आमदनी हुई थी। इससे सन्तुष्ट होकर उन्होंने माधव के पास गोविन्दजी को भोग चढ़ाने के लिए पाँच रुपये भेजे।

रुपये पाकर माधव मन्दिर में आये और साधु माँ को देकर कहा—''मेरे एक मित्र ने पाँच रुपये अपनी मनौती के भेजे हैं। गोविन्दजी को पायस का भोग दीजिएगा।''

माधव वहाँ से अपने डेरे की ओर रवाना हुए तो मार्ग में सुना जैसे गोविन्दजी कह रहे हैं—पायस के साथ आम खाने की इच्छा है। दो बार इस कथन को सुनकर माधव परेशानी महसूस करने लगा। उसने मन में सोचा—सारी रकम तो मन्दिर में दे आया, अब आम कहाँ से खरीदूँ? जेब टटोलने पर साढ़े पाँच आने पैसे मिले। उस रकम से एक आम खरीदकर पुनः मन्दिर में आये।

साधु माँ, पाचक, पुजारी तथा अन्य कर्मचारी जितने लोग वहाँ मौजूद थे, उनके सामने आम देते हुए माधव ने कहा—''पायस-भोग के समय इस आम को भी चढ़ा दिया जाय। भूलें नहीं।''

दूसरे दिन सबेरे जब माधव स्नान कर रहा था तभी गोविन्दजी की आवाज सुनाई दी—कल मुझे पायस के साथ आम नहीं दिया गया।

इतना सुनना था कि माधव का पारा गरम हो गया। स्नान अधूरा छोड़कर तेजी से मन्दिर की ओर रवाना हो गया। मन्दिर में आते ही वृद्ध पुजारी से पूछा—''कहिये

पुजारीजी, कल मैं सभी लोगों से बार-बार अनुरोध कर गया था कि पायस-भोग के साथ आम को जरूर चढ़ा दीजिएगा। आखिर आम क्यों नहीं चढ़ाया गया?''

गोविन्द का भोग हो गया था। इस वक्त लोगों को परोसा जा रहा था। माधव के इस प्रश्न से पुजारी चौंक उठे। अपनी गलती के लिए क्षमा माँगने लगे।

एक ओर बैठी साधु माँ प्रसाद ग्रहण कर रही थीं। गलती हो गई है सुनकर उन्हें दु:ख तो हुआ, पर आश्चर्य भी। उन्होंने विस्मय के साथ पूछा—''तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि गोविन्दजी को भोग में आम नहीं दिया गया है?''

माधव ने हँसकर कहा—''जिसे नहीं दिया गया, वही तुम्हारी शिकायत मुझसे कर गया है।''

यह सुनकर न केवल साधु माँ बल्कि उपस्थित सभी लोग दंग रह गये। लोगों को समझते देर नहीं लगी कि निस्सन्देह माधव अलौकिक शक्तिवाला व्यक्ति है।

अभी तक गोविन्द सिंहासन पर बैठे थे। उन्हें आम का भोग दिया गया। उस आम को काटकर प्रसाद के रूप में लोगों को दिया गया। आम चखते हुए लोगों ने स्वीकार किया कि आम बहुत मीठा है।

इस घटना के बाद से लोग माधव से भयभीत रहने लगे। इस व्यक्ति से गोविन्द अपनी बातें कहते हैं।

* * *

माधव के एक घनिष्ठ मित्र विनय बाबू थे। इनके यहाँ माधव का बराबर आना-जाना, भोजन करना तथा वक्त-जरूरत पर सहायता प्राप्त करना आदि होता था। विनय बाबू एक बैंक में क्लर्क थे।

एक बार उन्हें खुजली की बीमारी हुई। छुतहा-रोग जानकर बैंक ने इन्हें कुछ दिनों के लिए छुट्टी दे दी। जिस रोग को लोग खुजली समझ रहे थे, आगे चलकर वह कुष्ठ प्रमाणित हुआ। शर्म के कारण विनय बाबू का घर से बाहर निकलना बन्द हो गया। सम्पूर्ण शरीर में जगह-जगह पीप भर गया। घाव में कीड़े बिलबिलाने लगे।

एकाएक एक दिन उन्हें माधव की याद आई। उसे बुलाने के लिए आदमी भेजा। माधव के आने पर उन्होंने कहा—''भाई, तुममें भगवद्-शक्ति है। अगर तुम चाहो तो मुझे बचा सकते हो। मुझे बचा लो वरना मेरी नौकरी छूट जायगी।''

माधव ने कहा—''ठीक है, मैं अपने माधव से कहूँगा।''

विनय बाबू की रोग-मुक्ति के लिए माधव पूजा पर बैठ गया। शालिग्राम काँपने लगे। एकाएक आवाज आई—''तुम प्रसाद ग्रहण मत करना।''

पूजा समाप्त होने के बाद उसने मन में कहा—''अगर कोई अनुरोध करेगा तो खायेगा, वरना नहीं। आश्चर्य की बात यह रही कि तीन दिन लगातार पूजा करते रहने पर भी किसी ने प्रसाद खाने को नहीं कहा। तीसरे दिन चलते समय पुन: गोविन्द की आवाज आई—''मुझे पायस खिलाना पड़ेगा।''

इस पूजा के बाद विनय बाबू धीरे-धीरे स्वस्थ होने लगे और आगे चलकर बैंक में काम करने लगे। एक दिन माधव ने उनसे पायस-भोग की चर्चा की। उन्होंने भोग के लिए कुछ रुपये दिये।

साधु माँ को जब पायस-भोग के लिए उसने रुपये दिये तब उन्होंने कहा कि कल आकर प्रसाद ले लेना।

माधव ने कहा—''ठीक है, आ जाऊँगा।''

राह चलते माधव को पुनः आवाज सुनाई दी—''तुम्हें कह चुका हूँ कि प्रसाद मत ग्रहण करना।''

इस आवाज को सुनते ही माधव चौंक उठा। उसे सारी बातें याद आ गईं। मन में कहने लगा—''मैंने साधु माँ को वचन दिया है। मैं अवश्य जाऊँगा।''

इसी जिद के कारण उस दिन अधिक रात तक बाजार में टहलते रहे। जब घर आये तब मकान में रहनेवाली एक अन्य किरायेदार बुढ़िया ने कहा—''दादा, कल डिप्टी साहब के यहाँ तुम्हारा निमन्त्रण है। तुम्हें भोजन के लिए बुलाया है। वहाँ तुम्हें गीता-पाठ भी करना होगा। तुम्हारी ओर से मैंने वचन दे दिया है। इनकार मत करना।''

यह बात सुनकर माधव मन ही मन हँस पड़े। मन्दिर में प्रसाद ग्रहण करने न जाऊँ, इसलिए गोविन्द ने मेरे लिए अन्यत्र प्रबन्ध कर दिया।

* * *

उन दिनों माधव पागला गंगामहल मुहल्ले में रहते थे। यह घटना उसी स्थान की है—

नित्य कथा कहने के लिए वे लक्ष्मणपुरा जाते थे। वहाँ से वापस आने के बाद स्वयं अपने हाथ से भोजन बनाकर खाते थे।

एक दिन रात एक बजे चूल्हे पर खिचड़ी चढ़ाकर वे चुपचाप बैठे सिगरेट पी रहे थे। अचानक पीछे की ओर नजर गई तो देखा—सफेद धोती पहने एक विधवा महिला दरवाजे के पास खड़ी है। गले में रुद्राक्ष की माला, हाथ में कमण्डल है।

माधव से दृष्टि-विनिमय होते ही महिला ने कहा—''बेटा, मैं राह भूल गई हूँ।''

माधव ने सोचा—''बुढिया कहीं कीर्तन सुनने गई थी। अब अँधेरे में रास्ता भूल गई है। उसने पूछा—''कहाँ रहती हैं आप?''

बुढ़िया ने कहा—''रांगामाटी कालीबाड़ी में।''

माधव ने खिजलाकर कहा—''आप तो घर के पास ही आ गई हैं। इस सड़क के अगले मोड़ से मुड़ने के बाद कालीबाड़ी का फाटक दिखाई देगा। चलिये, आपको पहुँचा आऊँ।''

बुढ़िया को गन्तव्य स्थान तक पहुँचाकर आने के बाद अकस्मात् माधव के मन में यह विचार उत्पन्न हुआ—इतनी रात गये यह बुढ़िया इस गली में क्यों आई? वह भी मेरे घर में क्यों आई? क्या बुढ़िया के रूप में कोई देवी थीं?

सहसा आज सबेरे की घटना याद आ गई। डिप्टी साहब के घर पर माधव नित्य गीता-पाठ करने जाता था। बातचीत के सिलसिले में लोग अपने-अपने इष्ट देवता के महत्त्व पर विचार प्रकट करने लगे। कोई काली तो कोई तारा, कोई दुर्गा तो कोई छिन्नमस्ता को महत्त्व देने लगा।

माधव ने कहा—"आप लोगों के इष्ट भयंकर हैं। सबसे अच्छे माधव हैं जिन्हें सामने पाकर गोद में उठा लेने की इच्छा होती है। अगर ऐसे देवता को इष्ट बनाया जाय तो भय उत्पन्न नहीं होगा।"

तो क्या मेरी इस धारणा को दूर करने के लिए काली माता बुढ़िया के रूप में आई थीं। यह विचार मन में उत्पन्न होते ही दूसरे दिन माधव पड़ोस में स्थित कालीबाड़ी में गये। वहाँ जाकर माधव ने देखा कि दो विधवाएँ, एक सधवा महिला आपस में बातें कर रही हैं।

माधव ने पूछा—"यहाँ की एक बुढ़िया कल रात को एक बजे मेरे घर गई थीं। वे वहाँ हैं?"

माधव के प्रश्न को सुनकर तीनों महिलाएँ हँस पड़ीं। मन्दिर में स्थित कालीदेवी की ओर इशारा करती हुई एक महिला बोली—"शायद वही बुढ़िया गई थी। उसे पहचान नहीं सके?"

माधव ने कहा—"मजाक मत करिये। आप लोगों के अलावा यहाँ और कौन बुढ़िया रहती है?"

महिला ने कहा—"हम तीनों के अलावा यहाँ अन्य कोई महिला नहीं रहती। इसके अलावा यहाँ रात दस बजे फाटक बन्द हो जाता है। फिर कोई आ-जा नहीं पाता।"

माधव को समझते देर नहीं लगी कि काली माता बुढ़िया के रूप में आकर उसकी इष्टवाली धारणा को भ्रमपूर्ण प्रमाणित कर गईं। चुपचाप देवी को प्रणाम कर वे मन्दिर से बाहर चले आये।

डॉ० गोपीनाथ कविराजजी ने एक बार माधव पागला से प्रश्न किया था कि आप और आपके गुरु श्री राम ठाकुर सामान्य से असामान्य की कोटि में, अपनी साधना के जरिये बन गये। गुरुप्रदत्त साधना-क्रम को अगर आप लोक-कल्याण के लिए बता दें तो उसका उल्लेख करूँ।

प्रत्युत्तर में माधव पागला ने विस्तार के साथ उक्त साधना-क्रम को लिखकर कविराजजी के पास भेजा था, जो निम्नलिखित है। इसके अध्ययन से इस मार्ग के जिज्ञासु अपनी पिपासा शान्त कर सकते हैं।

प्रथम क्रम

साधना-पथ में दृढ़ विश्वास के लिए स्थिरचित्त होकर साधक आगे बढ़े। प्रथमतः श्री श्री गुरु-मूर्ति को उत्तम स्थान पर स्थापित कर यथानियम भक्तिपूर्वक गन्धपुष्पादि द्वारा नाना उपचार से अभीष्ट-कामना या साध्यानुसार पूजा तथा स्तोत्र-पाठ करें।

आरम्भ में दैहिक क्लेश, मानसिक चांचल्य, वैषयिक चिन्ता इत्यादि उत्पात होंगे। इनसे विचलित न होकर साधक नियम की रक्षा करे।

श्री श्री गुरु-पूजा-समापन के अनन्तर उस मूर्ति की ओर एक दृष्टि होकर कुछ क्षण देखे और मन-ही-मन मन्त्र-जप करे।

सांसारिक कार्यों में रत को चाहिए कि मन-ही-मन इष्ट-मन्त्र-जप करते हुए श्री श्री गुरुचरण को ही सर्वथा अपनी शरण माने। जप निरन्तर चलता रहे। क्रमशः चरण से लेकर शरीर के ऊपर ध्यान की चेष्टा करे। फिर विपरीत क्रम से मुखमण्डल से चरणयुगल तक का ध्यान करे। इस ध्यान-क्रम का अभ्यास कभी बन्द न हो। साधक जिस भाव में दृष्टि रख सके, उसी भाव में ध्यान का अभ्यास करे। कुछ काल अभ्यास के फलस्वरूप इसमें परिपक्वता का लाभ कर वह द्वितीय क्रम में प्रवेश का अधिकारी हो जायगा।

द्वितीय क्रम

इस क्रम में आकर श्री श्री गुरु की पूर्णांग-रूप-चिन्ता तथा सर्वावस्था में जप-ध्यान करे। अभ्यास के दृढ़ होने पर कान में अविरल साँय-साँय शब्द, शंख, घण्टा किंवा दूरागत वंशीरव सुनाई पड़ेगा। उससे अश्रु, कम्पन, पुलक इत्यादि लक्षण देह में प्रकाश करेंगे। उन्हें कोई रोग समझकर घबड़ायें नहीं, प्रत्युत उत्तम लक्षण समझकर आनन्दानुभव करे। अबाधित जप ही इसकी सिद्धि का प्रमाण है। इसी रूप में श्री गुरु-मूर्ति का पूर्णांग रूप मानसपट पर स्थायी भाव से रखे। इसके सफल होने पर मन स्थिर हो गया, ऐसा समझना चाहिए। यह द्वितीय क्रम की परिणति है।

तृतीय क्रम

साधना के तृतीय क्रम में जब आ जाय तब श्री गुरु की पूर्णांग-मूर्ति का चिन्तन-पूर्वक जप करते-करते देह श्री गुरुदेव को समर्पित करे।

अब देह को श्री गुरुदेव की इच्छामात्र से चलाये और अन्तर में सर्वदा गुरु-मूर्ति का दर्शन करे। इससे विषय-शक्ति क्रमशः लुप्त हो जायगी। काम-क्रोधादि रिपुओं की भीषणता घट जायेगी। मन शान्त होकर शनैः-शनैः प्रसन्नता लाभ करेगा। क्रमशः देह में आत्मबुद्धि तथा अभिमान-राशि घटती जायगी। सांसारिक भावों का उदय कम होगा। श्री श्री गुरु-शक्ति पर श्रद्धा एवं विश्वास दृढ़ होगा। गुरु-कृपा के फलस्वरूप उनकी चिन्मयसत्ता साधक के अन्तर में प्रकट होगी। फिर उसकी इन्द्रियाँ, देह, मन, बुद्धि आदि गुरु-शक्ति से ही चलने लगेंगी। चित्त का उससे तादात्म्यलाभ होगा। गुरु-शिष्य में अभेदत्व की स्थापना हो जायगी। गुरु-शक्ति से अभेदत्व अथवा एकत्वभाव स्थापित होने पर अपना समस्त दायित्व-बोध होगा। साधक मुक्त हो जायेगा। धर्माधर्म पाप-पुण्य, सुख-दुःखादि संस्कार फिर उसे विचलित नहीं कर सकेंगे। साधक अपने समस्त दायित्व को गुरु में न्यस्त करके निरपेक्ष भाव से विचरण करने लगेगा। यह भक्ति संसार की अतीव दुर्लभ एवं गुह्य वस्तु है। इस प्रकार की अवस्था प्राप्त किये बिना रागानुगभजन सम्भव नहीं है। इसलिए श्री श्री चैतन्यचरितामृत में कहा गया है—

'शास्त्रयुक्ति नाहीं माने रागानुगा प्रकृति'

इस अवस्था में उन्नत होकर शाम्भवी-मुद्रा के प्रयोग से अखण्ड नामजप व ध्यान के परिपाक होने पर देहाभिमान सम्पूर्ण भाव से चला जायगा और श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित निर्द्वन्द्व अथवा गुणातीत अवस्था प्राप्त होगी।

इस अवस्था के परिपाकान्त में श्री गुरु साधक की देह में आवेशित होंगे और शिष्य के द्वारा अनेक अलौकिक कार्य सम्पन्न करायेंगे। इसको अपनी क्षमता या बल समझने से अनिष्ट हो सकता है। अग्रगति अवरुद्ध हो जाने की आशंका भी रहेगी। अत: इस विषय में बहुत सावधान रहना चाहिए।

चतुर्थ क्रम

पूर्ववर्णित गुणातीत अवस्था पार करके साधक चतुर्थक्रम में उपनीत होगा। इसमें भजन केवल मात्र गुरु-शक्ति द्वारा होता है। तब जीव का जीव साधन संस्कार नहीं रह जाता है। साधक के चित्त में योग्यतानुसार भाव-प्रकाश होता है। रस इस भाव के अनुगत है। भावानुयायी रस चित्त को आनन्द देता है और इष्ट में अर्पित होता है। यही इस क्रम की परिपक्वावस्था है। इष्ट तदात्मक प्राप्त है। उस क्षण अखण्ड जप एवं ध्यान के बाद साधक के चित्त में केवल मात्र इष्ट-स्वरूप की अनुभूति होती है। इस दशा में साधक जो आचरण करता है, वही सर्वेन्द्रियों में कृष्णानुशीलन है। कारण कि तत्क्षण उसकी निज-सत्ता नहीं रहती, इष्ट-सत्ता ही स्फुरित होती है और इष्ट के प्रति प्रीतिजन्य इन्द्रियादि कर्मरत होती है। मन, बुद्धि, अहंकारादि ज्ञान एवं कर्मसंस्कार छोड़कर सर्वतोभावेन इष्टानुसन्धान में लीन होते हैं।

इस भाव में स्नेहसहित यत्नपूर्वक निरन्तर (अर्थात् जब तक शरीर रहे) मनन करता रहे। इस प्रकार का भजन अत्यन्त दुर्लभ है। यहीं रागानुगा भक्ति की शेष परिणति है। इस अवस्था से ही प्रगाढ़ भक्ति के लक्षण इन्द्रियों द्वारा प्रकाशित होते हैं। इसी को साधन-भक्ति कहते हैं। विशेष प्रगाढ़ होकर यही प्रेम-भक्ति की संज्ञा पाती है। उसी क्षण हृदय में इष्टदेव का प्राकट्य हो जाता है। बाहर सब कुछ धुँधला दिखाई देने लगता है--भीतर अखण्ड दिव्यज्योति प्रकाशित होती है। 'भक्तिरसामृत सिन्धु' में इसी दिशा को लक्ष्य करके कहा गया है—

'नित्यसिद्धस्त भावस्य प्राकट्यं सिद्धिसाध्यता।'

भाव यह कि तत्क्षण चित्त में प्रेम प्रकट होने पर आस्वादित स्वादित हो जाता है।

इस दशा में साधक इष्टरूप में स्थिर होकर चिन्मय-रस-विग्रह अथवा सच्चिदानन्द-स्वरूप हो जाता है।

■ ■ ■

भारत के महान योगी

विश्वनाथ मुखर्जी

बारह भाग, ६ जिल्द में, प्रत्येक सौ रुपये

भारत योगियों, संतों, साधकों और महात्माओं का देश है। देश के सभी भागों में अनेक योगी तथा संत हुए हैं जिन्होंने देश की चिन्तनधारा और जीवन को प्रभावित किया है। अपने चमत्कारी जीवन से जनमानस को चमत्कृत भी किया है। ऐसे योगियों का जीवन-चरित बारह भागों (६ जिल्द) में प्रस्तुत किया गया है।

भाग : १-२

तंत्राचार्य सर्वानन्द, लोकनाथ ब्रह्मचारी, प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी, वामा खेपा, परमहंस परमानन्द, संत ज्ञानेश्वर, संत नामदेव, संत रविदास, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी ब्रह्मानन्द, स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस।

भाग : ३-४

योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी, महर्षि रमण, भूपेन्द्रनाथ सान्याल, योगी वरदाचरण, नारायण स्वामी, बाबा कीनाराम, तैलंग स्वामी, परमहंस रामकृष्ण ठाकुर, जगद्गुरु शंकराचार्य, सन्त एकनाथ।

भाग : ५-६

स्वामी रामानुजाचार्य, रामदास काठिया बाबा, राम ठाकुर, साधक रामप्रसाद, भूपतिनाथ मुखोपाध्याय, स्वामी भास्करानन्द, स्वामी सदानन्द सरस्वती, पवहारी बाबा, हरिहर बाबा, साईं बाबा, रणछोड़दास महाराज, अवधूत माधव पागला।

भाग : ७-८

किरणचन्द्र दरवेश, स्वामी अद्भुतानन्द (लाटू महाराज), भोलानन्द गिरि, तंत्राचार्य शिवचन्द्र विद्यार्णव, महायोगी गोरखनाथ, बालानन्द ब्रह्मचारी, प्रभु जगद्बन्धु, योगिराज गंभीरनाथ, ठाकुर अनुकूलचन्द्र, बाबा सीतारामदास ओंकारनाथ, मोहनानन्द ब्रह्मचारी, कुलदानन्द ब्रह्मचारी, अभयचरणारविन्द भक्तिवेदान्त स्वामी, स्वामी प्रणवानन्द, बाबा लोटादास।

भाग : ९-१०

भक्त नरसी मेहता, सन्त कबीरदास, नरोत्तम ठाकुर, श्रीम, स्वामी प्रेमानन्द तीर्थ, सन्तदास बाबाजी, बिहारी बाबा, स्वामी उमानन्द, पाण्डिचेरी की श्रीमाँ, महानन्द गिरि, अन्नदा ठाकुर, परमहंस योगानन्द गिरि, साधु दुर्गाचरण नाग, निगमानन्द सरस्वती, नीब करौरी के बाबा, परमहंस पं० गणेशनारायण, अवधूत अमृतनाथ, देवराहा बाबा।

भाग : ११-१२

बालानंद ब्रह्मचारी, श्री भगवानदास बाबाजी, हंस बाबा अवधूत, महात्मा सुन्दरनाथजी, मौनी दिगम्बरजी, गोस्वामी श्यामानन्द, फरसी बाबा, भक्त लाला बाबू, श्रीपाद माधवेन्द्रपुरी, नंगा बाबा, तिब्बती बाबा, गोस्वामी लोकनाथ, काष्ठ-जिह्वा स्वामी, रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी, अवधूत नित्यानन्द।

अनुराग प्रकाशन, वाराणसी

मूल्य : एक सौ रुपये

SV
S.N
Sub

Sub

सात-आठ

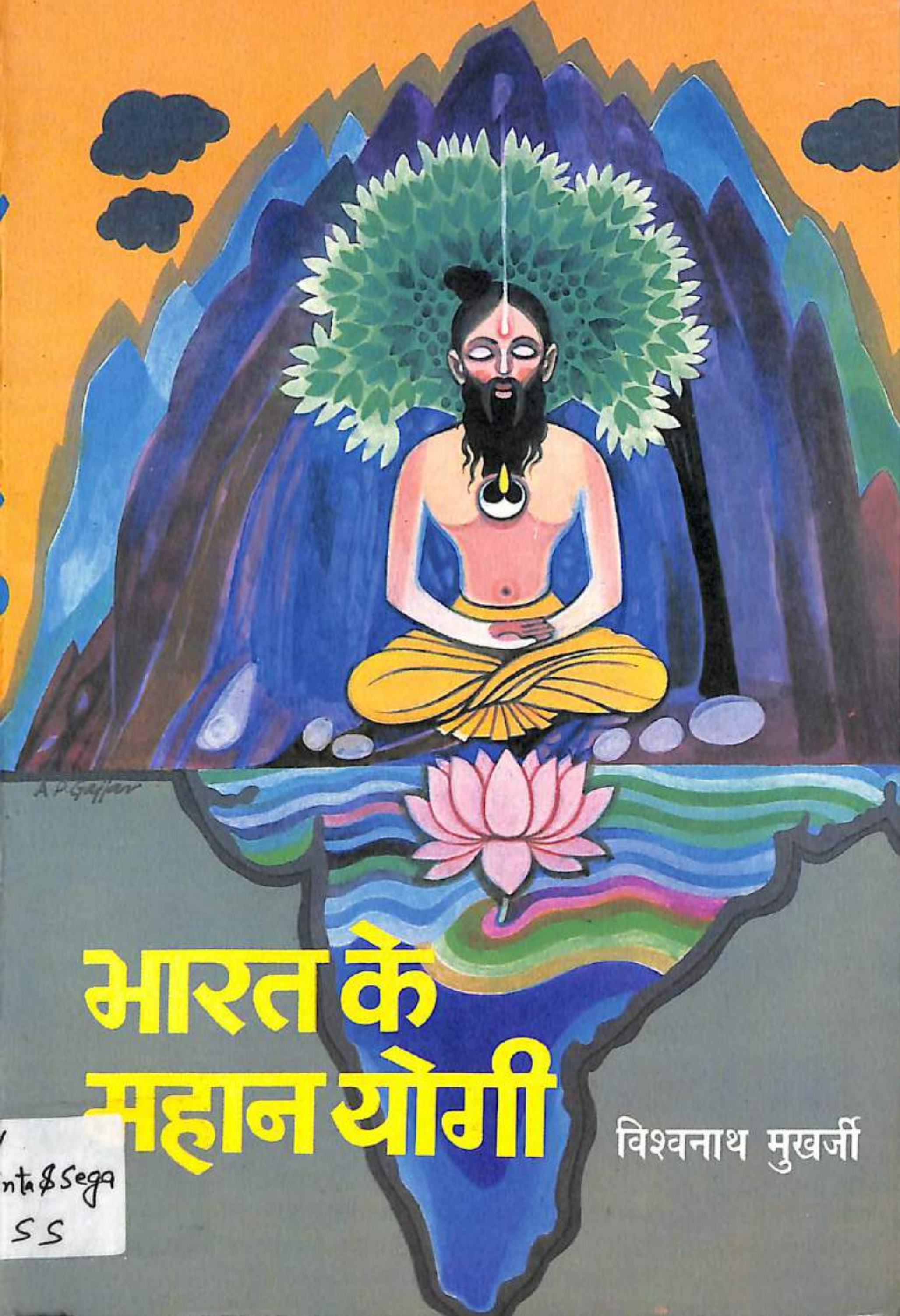

भारत के महान योगी

विश्वनाथ मुखर्जी

nta & Sega
SS

भारत के महान् योगी 55-15

खण्ड : सात-आठ

विश्वनाथ मुखर्जी

अनुराग प्रकाशन, वाराणसी

BHĀRATA KE MAHĀNA YOGĪ
(Part 7-8)
by
Vishwanath Mukherjee

ISBN : 978-81-89498-16-0

तृतीय संस्करण : 2008 ई०

मूल्य : एक सौ रुपये (Rs. 100.00)

प्रकाशक
अनुराग प्रकाशन
चौक, वाराणसी-221 001
फोन व फैक्स : (0542) 2421472
E-mail : vvp@vsnl.com ● sales@vvpbooks.com
Shop at : www.vvpbooks.com

मुद्रक
वाराणसी एलेक्ट्रॉनिक कलर प्रिण्टर्स प्रा० लि०
चौक, वाराणसी-221 001

श्रद्धेय श्री परिपूर्णानन्द वर्मा

तथा

आदरणीय चिरंजीलाल सराफ

को

सादर

पुरोवाक

●

भारत के महान् योगी का यह खण्ड पिछले खण्डों से अलग ढंग का है। इस खण्ड में जिन संतों का विवरण है, वे सभी अलग-अलग ढंग के साधक थे।

प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी के मानसपुत्र श्री कुलदानन्द ब्रह्मचारी थे। आपने अपने गुरुदेव की जीवनी पाँच खण्डों में लिखी है। गुरुदेव की जीवनी के साथ-साथ अपनी कठोर तपस्या के बारे में उल्लेख किया है। केवल यही नहीं, अपनी तमाम कमजोरियों का भी उल्लेख किया है जिसे प्रायः लोग छिपा जाते हैं। विजयकृष्ण गोस्वामी के अनेक शिष्य हैं, पर कुलदानन्दजी की साधना विस्मयजनक है।

गोस्वामीजी के अप्रतिम शिष्य किरणचन्द्र दरवेश थे। सीढ़ी दर सीढ़ी साधक कैसे साधना-पथ पर बढ़ते गये और अन्त में योगिराज के पद पर प्रतिष्ठित हो गये, ध्यान देने योग्य बात है।

लाटू महाराज सामान्य घरेलू नौकर थे, पर प्रथम दर्शन में ही वे परमहंस के अनुगत हो गये। रामकृष्ण जी की निगाहों ने अपने भक्त को पहचान लिया। लाटू महाराज के विचार, कार्य सभी अद्‌भुत होते थे; इसलिए संन्यास लेने के बाद वे स्वामी अद्‌भुतानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए।

कापालिकों और अघोरियों के कुकृत्य से क्षुब्ध होकर बाबा गोरखनाथ ने नाथ-संप्रदाय की स्थापना की। आज भी वही नाथ-संप्रदाय के अधिष्ठाता माने जाते हैं। इस संप्रदाय में निवृत्तिनाथ, संत ज्ञानेश्वर, बाबा गंभीरनाथ जैसे संत हुए हैं। महाराष्ट्र में संत ज्ञानेश्वर का व्यापक प्रभाव है। इसी प्रकार बंगाल में गंभीरनाथ का था। आज भी वहाँ उनके अनेक भक्त और शिष्य-प्रशिष्य हैं।

कलियुग में लोग तंत्र-मंत्र और तपस्या से बचना चाहते हैं। ऐसे साधकों के लिए कुछ संतों ने हरिनाम जपने का निर्देश दिया है, क्योंकि योग-साधना सरल नहीं है।

हरिनाम की साधना का निर्देश सर्वश्री बाबा सीताराम ओंकारनाथ, ठाकुर अनुकूलचन्द्र, जगद्बन्धु, ए०सी० भक्तिवेदान्त स्वामी, मोहनानन्द आदि संतों ने दिया है, केवल भारत में ही नहीं, इसका प्रसार सुदूर पश्चिम तक फैला है। संसार के अनेक देशों में मठ और मंदिर स्थापित हो गये हैं। हरे कृष्ण आन्दोलन इस युग की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। भारतीय संतों की इस देन को लोग भुला नहीं सकेंगे।

लेखक तथा प्रकाशक के पास अक्सर इस आशय के पत्र आते हैं कि वर्तमान काल में ऐसे जीवित संत कहाँ हैं ?

जिज्ञासु पाठकों के लिए यह बताना उचित होगा कि ऐसे अनेक संत भारत में हैं जो अपने को छिपाकर रखते हैं। इस संग्रह के अध्ययन से स्पष्ट हो जायगा।

कलकत्ता के श्री प्रमोदकुमार चट्टोपाध्याय बचपन से प्रौढ़ावस्था तक स्वयं यायावर संत के रूप में, संतों की तलाश करते रहे। उत्तर भारत तथा दक्षिण भारत के अनेक अंचलों में वे अनेक कापालिकों, अघोरियों और संतों से मिल चुके हैं। उनके योगैश्वर्य से प्रभावित हुए हैं। संभवतः वे इस दिशा में सहायक हो सकते हैं। वे ७७ रसा रोड दक्षिण, टालीगंज, कलकत्ता में रहते हैं। यह उनकी इच्छा पर निर्भर है कि आपकी सहायता करें या नहीं।

—लेखक

अनुक्रमणिका

पृष्ठ

१. किरणचन्द्र दरवेश २
२. स्वामी अद्भुतानन्द (लाटू महाराज) ३१
३. भोलानन्द गिरि ५०
४. तंत्राचार्य शिवचन्द्र विद्यार्णव ६२
५. महायोगी गोरखनाथ ७७
६. बालानन्द ब्रह्मचारी ८५
७. प्रभु जगद्बन्धु ९९
८. योगिराज गंभीरनाथ ११३
९. ठाकुर अनुकूलचन्द्र १२८
१०. बाबा सीतारामदास ओंकारनाथ १४१
११. मोहनानन्द ब्रह्मचारी १५६
१२. कुलदानन्द ब्रह्मचारी १७४
१३. अभयचरणारविन्द भक्तिवेदान्त स्वामी २१४
१४. स्वामी प्रणवानन्द २२७
१५. बाबा लोटादास २३६

भारत
के
महान् योगी

●

खण्ड ७-८

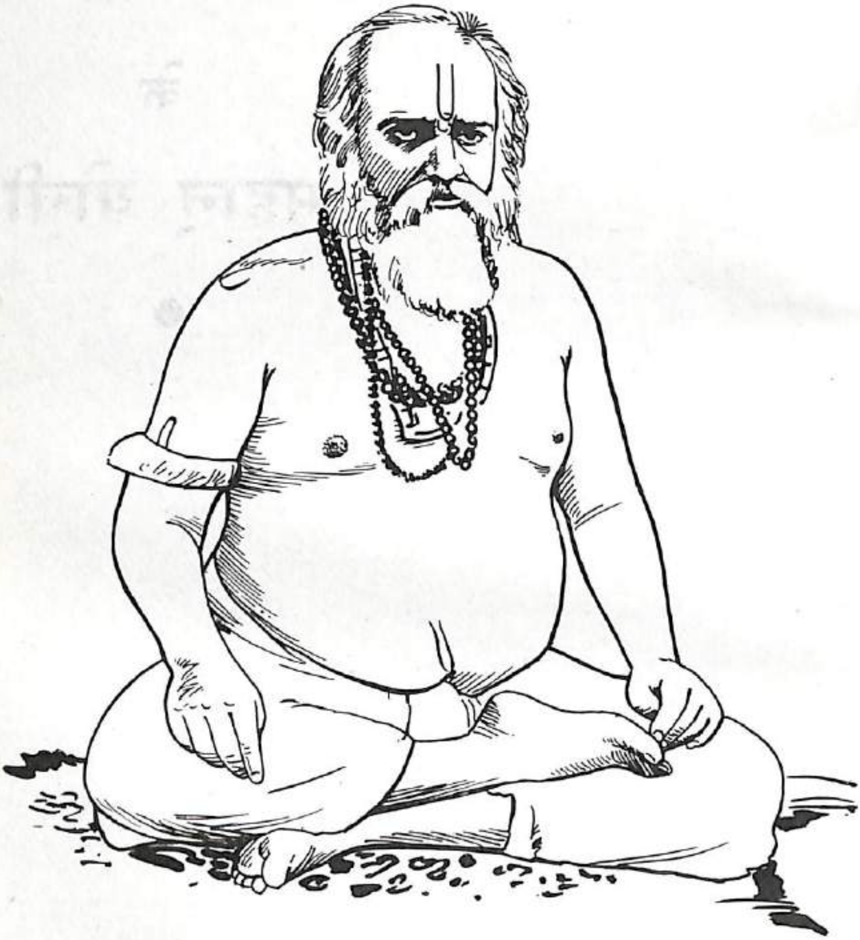

किरणचन्द्र दरवेश

किरणचन्द्र दरवेश

बंगाल के पुरुलिया जिले में रामचन्द्रपुर नामक एक गाँव है। यहाँ के कुछ लोगों ने यह निश्चय किया कि पूज्य दरवेशजी से दीक्षा ली जाय। इसके पूर्व इस गाँव के अन्नदा चक्रवर्ती उनसे दीक्षा ले चुके थे जो आगे चलकर संन्यास लेकर असीमानन्द बन गये। रामचन्द्रपुर के पास बेरो नामक एक स्थान है जहाँ दक्षिण भारत से आये आचार्य और गोस्वामी उपाधिधारी कुछ वैष्णव परिवार के लोग रहते हैं। ये लोग पूजा-पाठ के अलावा स्थानीय लोगों को दीक्षा देते हैं। दीक्षा देते समय किसी धातु का बना ठप्पा आग में काफी गरम करके दीक्षा लेनेवालों के बदन में दाग देते थे। यह दाग शिष्य के शरीर पर बना रहता था। इसे स्थानीय भाषा में 'छाप देना' कहा जाता है। इधर अन्नदा चक्रवर्ती के प्रयत्नों से कुछ लोग दरवेशजी से दीक्षा लेने आये। इनमें निवारण नामक एक भोलाभाला निरीह किसान भी था। उसने यह सोच रखा था कि दरवेशजी दीक्षा देते समय उसके शरीर पर गरम लोहे का कोई ठप्पा जरूर लगायेंगे।

एक बहुत बड़े कमरे में दीक्षा का आयोजन किया गया है जिसमें स्त्री-पुरुष मिलाकर चालीस आदमी हैं। दरवेशजी नियमानुसार रुद्राक्ष की माला आदि पहनकर गुरु के आसन पर विराजमान हैं। इधर निवारण के मन में दीक्षा लेने की भावना की जगह ठप्पे का आतंक प्रवेश कर गया। कार्यक्रम प्रारंभ होने के पहले कमरे के दोनों दरवाजे बन्द कर दिये गये। वह धीरे-धीरे खिसककर दरवाजे के पास आ गया ताकि ज्योंही गरम ठप्पा दागने की बारी आये त्योंही वह भाग जाय। दरवेशजी ने उपदेश देना शुरू किया, पर जिसके मन में आतंक प्रवेश कर गया है, वह इन बातों पर ध्यान कैसे देता। कुछ देर बाद आदेश हुआ कि सभी लोग अपनी-अपनी आँखें बन्द कर लें और यह मंत्र मन ही मन जपें। इतना कहकर दरवेशजी ने मंत्र पढ़ा। आँखें बन्द कर लेने की आज्ञा सुनते ही वह समझ गया कि अब ठप्पा लगाया जायगा। वह दरवाजे के और करीब आ गया। रह-रहकर आँखें खोलकर देख लेता था कि आगे क्या हो रहा है। कमरे के मध्य में कपड़े का एक पर्दा लगाया गया था। इधर पुरुष थे और उधर आड़ में महिलाएँ। अब दरवेशजी ने प्राणायाम की एक मुद्रा दिखाकर लोगों से करने को कहा। तभी महिलाओं की ओर से रोने की आवाज आयी। निवारण समझ गया कि अब ठप्पे लगाये जा रहे हैं। वह घबराकर उठ खड़ा हुआ। तभी दरवेशजी अपने आसन से उठकर आये और उससे बोले—"शान्त होकर बैठ जाओ। यहाँ ठप्पा नहीं लगाया जाता। तुम्हारी बेचैनी के कारण मुझे दो बार आसन बदलना पड़ा।"

दरवेशजी दीक्षा देते समय कभी आसन से नहीं उठते थे। गुरुदेव ने सिर पर हाथ क्या फेरा, सारा भय दूर हो गया।

धनबाद के क्षितीश चटर्जी और श्रीपति मुखर्जी आपस में गहरे मित्र थे। दोनों ही दरवेशजी के भक्त-शिष्य थे। श्रीपति की मृत्यु सन् १९४६ ई० में हुई थी। अपने निधन के पूर्व वे इस तरह बीमार हुए कि खाट पर से उठना दूभर हो गया।

मित्र की बीमारी का समाचार पाते ही क्षितीश बाबू उन्हें देखने गये। अन्तरंग मित्र और गुरुभाई को पाकर श्रीपति ने बड़े कातर भाव से कहा कि मुझे एक बार दरवेशजी का दर्शन करा दो। इस धराधाम से जाने के पूर्व मैं उन्हें एक बार देखना चाहता हूँ।

मित्र की दशा देखकर क्षितीश बाबू समझ गये कि इस हालत में इन्हें बनारस ले जाना संभव नहीं है। श्रीपति को आश्वासन देते हुए उन्होंने कहा कि आपको बनारस जरूर ले चलूँगा। जरा उठने-बैठने लायक हो जाओ। अगर डॉक्टर इस हालत में ले जाने का आदेश देगा तो कोई व्यवस्था जरूर करूँगा।

क्षितीश बाबू ने रोगी को आश्वासन तो दे दिया, पर उन्हें समझते देर नहीं लगी कि डॉक्टर इन्हें ले जाने की अनुमति नहीं देगा। इस बातचीत के बाद श्रीपति ने क्षितीश बाबू को बुलवाया। युद्ध के दिन थे, दफ्तर में काम अधिक था, इसलिए क्षितीश नहीं जा सके। पुनः दूसरी बार समाचार आया। जब तीसरी बार सूचना आयी कि केवल पाँच मिनट के लिए आ जाइये तब वे गये।

इनके जाते ही श्रीपति ने कहा — "अब तुम्हें कष्ट नहीं देना है। मैं काशी नहीं जाऊँगा। मैं बड़ा सौभाग्यशाली हूँ कि महागुरु, काका गुरु के साथ गुरुदेव मुझे दर्शन देने आये। मेरा जीवन पापमुक्त हो गया, मैं पवित्र हो गया। मुझे अपने सौभाग्य पर गर्व है।"

क्षितीश बाबू अवाक् होकर सुनते रहे। महागुरु यानी पूज्यपाद श्री श्री विजयकृष्ण गोस्वामी, काका गुरु यानी श्रद्धेय कुलदानन्द ब्रह्मचारी और गुरु दरवेश, इन तीनों का दर्शन हुआ। जीवन का अंतिम समय है, इसका मतिभ्रम हो गया है। गुरुदेव तो काशी में हैं और महागुरु का निर्वाण हो गया है।

इस घटना के कई दिनों बाद श्रीपति का निधन हो गया। क्षितीश बाबू के मन में श्रीपति की बातें गूँजती रहीं। शंका निवारण के लिए उन्होंने गुरुदेव के पास पत्र लिखा। दरवेशजी ने उत्तर दिया — श्रीपति ने जो कुछ कहा है, वह सब सत्य है। मैं परमगुरु और गुरुभाई के साथ श्रीपति के यहाँ गया था।

गुरु केवल मंत्र ही नहीं देते बल्कि अच्छे शिष्यों का काफी ख्याल रखते हैं। कदम-कदम पर सहायता करते हैं। द्वितीय महायुद्ध के समय कलकत्ते में जापानियों ने बम गिराया। लोग शहर छोड़कर भागने लगे। कलकत्ता तेजी से खाली होने लगा। रेल, जहाज, बस, कार, यहाँ तक कि लोग पैदल भागने लगे। स्थायी निवासियों की हालत काफी खराब हो गयी।

डॉक्टर मन्मथनाथ गुप्त के दवाखाने में मरीजों का आना बन्द हो गया। भूखों मरने की नौबत आ गयी। इन्हीं दिनों गुरुदेव का पत्र आया कि तुम इलाहाबाद चले जाओ। वहाँ कुंभमेला लगा है। वहाँ प्रैक्टिस करो, जम जाओगे। इस पत्र को पाते ही मन्मथ इलाहाबाद के लिए चल पड़ा।

स्टेशन आने पर टिकट बाबू ने कहा — "कुंभ में भीड़ न हो, इसलिए इलाहाबाद का टिकट देना बन्द कर दिया गया है।"

इस वक्तव्य को सुनकर उदास भाव से मन्मथ वापस लौटने लगे। तभी टिकट बाबू ने कहा— "आप डॉक्टर तो नहीं हैं ?"

"जी हाँ, मैं डॉक्टर हूँ।"

टिकट बाबू ने कहा— "डॉक्टरों के लिए रोक नहीं है। शायद वहाँ डॉक्टरों की सख्त जरूरत है।"

टिकट मिलने पर वे इलाहाबाद आये। यहाँ कई गुरु भाइयों से मुलाकात हुई। इनकी शोचनीय हालत सुनकर शांतिपुर निवासी धनंजय ने कहा— "आप हमारे यहाँ आकर प्रैक्टिस करिये। मैं वहाँ सारी सुविधाएँ दूँगा।"

धनंजय के इस निमंत्रण को स्वीकार कर मन्मथ शान्तिपुर चले आये। यहाँ भी कई डॉक्टर थे। अपरिचित वातावरण, नवागत डॉक्टर, कौन आता। धीरे-धीरे यहाँ भी उन्हें निराशा हाथ लगी। इसी बीच गाँव में हैजे का प्रकोप बढ़ा, फिर भी मन्मथ के पास कोई नहीं आया।

एक दिन दोपहर को एक मुसलमान आया। बाहर से 'डॉक्टर बाबू, डॉक्टर बाबू' आवांज देने लगा। दरवाजे के बाहर आने पर उसने पूछा— "क्या आप कलकत्ता के खिदिरपुर-वाले डॉक्टर हैं ?"

मन्मथ ने कहा— "हाँ।"

"ठीक है।" कहकर वह आदमी चला गया। दो दिन तक नहीं आया। तीसरे दिन मन्मथ मुसलमानी मुहल्ले से घर वापस आ रहे थे। अचानक वही मुसलमान दिखाई दिया। उससे पूछा— "क्यों बड़े मियाँ, फिर आप आये नहीं।"

बड़े मियाँ ने कहा— "क्या बताऊँ डॉक्टर साहब। जिस लड़की के इलाज के लिए आपके पास गया था, उसका बाप आपसे इलाज कराने को तैयार नहीं हुआ। लड़की मर गयी। मेरा विश्वास है कि अगर वह आपको बुलाता तो लड़की जरूर बच जाती।"

मन्मथ ने कहा— "यह तो अल्लाह की मर्जी होती तभी बचती। मैं तो इलाज ही करता।"

मुसलमान ने कहा— "नहीं, जरूर बच जाती। बात यह है कि जिस दिन मैं आपको बुलाने गया था, उसके एक रोज पहले शाम के वक्त लड़की की मौसी फरागत से लौट रही थी। बाँसों के झुरमुट के पास उसे एक फकीर मिले। उन्होंने मौसी से कहा—'कलकत्ते के खिदिरपुर में रहनेवाले एक डॉक्टर गाँव में आये हैं। तुम अमीना को उनके पास ले जाकर इलाज करवाओ, वह ठीक हो जायगी।' मौसी से यह खबर मुझे मिली। दूसरे दिन तलाश करते हुए मैं आपके पास गया, वर्ना मुझे क्या मालूम कि आप खिदिरपुर के डॉक्टर हैं। अगर रहमत भाई मेरी बात मान लेते तो अमीना बच जाती।"

इस लम्बी बातचीत के दौरान आसपास के लोग इकट्ठे होकर मियाँजी की बातें सुन रहे थे। उन पर इन बातों का प्रभाव पड़ा। दूसरे दिन से मुसलमानी मुहल्ले से इनकी बुलाहट आने लगी। मन्मथ का लड़का कम्पाउण्डर बना। वह बिलकुल अनाड़ी था, पर यहाँ ट्रेण्ड कम्पाउण्डर कहाँ से लाते। मजे की बात यह रही कि प्रत्येक रोगी स्वस्थ होने लगा। न केवल

मुसलमानी मुहल्ले में, बल्कि पूरे इलाके में मन्मथ की ख्याति फैल गयी। एक भी मरीज की मौत उनके इलाज से नहीं हुई।

कहने की आवश्यकता नहीं कि फकीर के रूप में स्वयं दरवेशजी ने यह समाचार उक्त मुसलमान को दिया था। इस प्रकार भुखमरी के शिकार होनेवाले डॉक्टर शिष्य की सहायता दरवेशजी ने की।

आज के युग में कौन सन्त है और कौन ठग, यह पहचानना कठिन है। कुछ लोग संत का जामा पहनकर चमत्कार दिखाते हैं। इस प्रकार भोलीभाली जनता को भ्रमित कर अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। आश्चर्य की बात है कि लोग ऐसे संतों के चक्कर में फँस जाते हैं तथा उन्हें गुरुवत् श्रद्धा करते हैं।

कान्तोड़ गाँव में दरवेशजी आश्रम की स्थापना के सिलसिले में गये। आपके साथ प्रभात भौमिक, प्यारी पोद्दार, मदन तिवारी आदि शिष्य-भक्त गये थे। किसी भी गाँव में जब कोई संन्यासी पहुँच जाता है तब लोग उसका दर्शन करने या उत्सुकतावश देखने के लिए आ जाते हैं। दरवेशजी को देखने के लिए दूर-दूर से लोग आये। इस गाँव में एक साधु कुछ दिनों से अपना आसन लगाये था। गाँव के लोगों के साथ वह भी अपने प्रतिद्वन्द्वी को देखने आया। बातचीत के सिलसिले में साधु ने कहा कि वह प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी का प्रशिष्य है।

इस परिचय को सुनते ही दरवेशजी उखड़ गये। वे स्वयं गोस्वामीजी के प्रिय शिष्य हैं। उन्होंने कहा— "गोस्वामीजी ने अपने किसी शिष्य को गैरिक वस्त्र पहनने की आज्ञा दी है, ऐसी जानकारी मुझे नहीं है। आप अनधिकारी हैं। आपने गैरिक वस्त्र पहनकर अपराध किया है, अतः तुरत यहाँ से चले जाइये।"

साधु का प्रभाव गाँव के लोगों में पिछले कुछ दिनों के भीतर व्यापक रूप से पड़ा था। दरवेशजी की इस फटकार पर कुछ लोग नाराज हो गये। यह देखकर दरवेशजी ने पुनः उक्त साधु से कहा— "मैं आपके पैरों पर पड़ता हूँ। आप अपना गैरिक वस्त्र छोड़ दीजिए।"

साधु चुप रहा। इतने दिनों से वे गाँव के लोगों से श्रद्धा-आदर पाते आये हैं और आज दरवेशजी के इस अपमान से दुःखी होकर आश्रम से चल पड़े। कुछ देर बाद अपना सामान लेकर वे आश्रम के सामने से गाँव के बाहर चले गये।

साधु के जाने के कई घण्टे बाद आसमान में काले-काले बादल छा गये। तूफान आने के लक्षण दिखाई देने लगे। आश्रम में दरवेशजी के आसन के लिए मिट्टी की एक वेदी बनायी गयी थी। वहीं वे चादर ओढ़कर सो गये। असमय में उनका सोना सभी भक्तों के लिए चिन्ता का विषय बन गया। इधर दरवेशजी सोये और उधर भयंकर तूफान आ गया। आश्रम काँपने लगा। बादल गरजने लगे। नदी किनारे स्थित ताड़ के वृक्ष पर बिजली गिरी और वह जलकर भस्म हो गया। आँधी और वज्रपात का वेग कम होने पर भी वर्षा में कमी नहीं हुई। मौसम का यह हाल देखकर लोग सोचने लगे कि अष्ट प्रहर का कीर्त्तन होगा या नहीं।

बार-बार भक्त लोग दरवेशजी से पूछने लगे कि इस हालत में कीर्त्तन प्रारंभ किया जाय या नहीं ? दरवेशजी ने कहा—"जब संकल्प किया गया है तब कीर्त्तन प्रारंभ करना उचित है। अगर यह संभव न हुआ तो देखा जायगा।"

इस आदेश के बाद कीर्त्तन प्रारंभ हुआ। पानी बरसता रहा। सबेरे दरवेशजी ने कहा—

"प्यारी पकड़ ।" इस आदेश को पाकर प्यारी पोद्दार यह समझ नहीं पाये कि क्या पकड़ना है । उन्होंने कीर्त्तन स्थल में लगाये तिरपाल के खंभे को पकड़ लिया । उसी से काम हो गया । आंधी-वर्षा के रुक जाने के बाद प्रभात भौमिक ने दरवेशजी से पूछा— "आपके असमय सो जाने का प्राकृतिक दुर्योग उक्त साधु से कोई मतलब रखता है या नहीं ?"

दरवेशजी ने कहा— "उक्त साधु तांत्रिक थे । अपने क्रिया-कलाप में पारदर्शी भी थे । मेरे फटकारने पर वे नाराज हो गये और श्मशान में जाकर अभिचार करने लगे जिसके कारण यह आफत आयी । वज्रपात से ताड़ का पेड़ जल गया । यही उनका आखिरी अभिचार था । अब उनकी पूँजी समाप्त हो गयी ।"

लोगों को दरवेशजी के इस कथन पर संशय बना रहा । इस घटना के कुछ दिनों बाद कलकत्ते में डॉक्टर प्रभात भौमिक के दवाखाने में वह साधु आया । बिलकुल निर्जीव तथा निस्तेज रहा । डॉ० भौमिक ने बाजार से जलपान मँगवाकर उसे बिदा किया । उस दिन उन्हें यह ज्ञात हुआ कि दरवेशजी ने जो कहा था, वह सत्य निकला ।

इसी प्रकार अपने एक शिष्य को उन्होंने एक तांत्रिक के आक्रमण से बचाया था । घटना सन् १६३२ ई० की है । मजे की बात यह है कि यह घटना डॉ० प्रभात भौमिक के साथ घटी है । वे अपनी ससुराल कमलापुर गाँव में आये हुए थे । वहाँ पर एक प्रतिष्ठासम्पन्न साधु पहले से रहते थे । जिस दिन प्रभात बाबू ससुराल आये, उसी दिन वह साधु इनके ससुराल आया । प्रभात से बातचीत करने के बाद उसने इन्हें अपने जाल में फँसाने का निश्चय किया । साधु महाराज कठिन पीड़ा से मुक्ति, बीमारी दूर करना, मुकदमा में विजयी बनाना आदि कार्य करते थे ।

ससुराल से वापस आने के बाद एक दिन प्रभात बाबू ने अजीब सपना देखा— एक मंडप में केवल कौपीन पहने वह साधु काली मूर्ति के सामने बैठा है । काली मूर्ति जिस वेदी पर स्थापित है, उस वेदी पर एक लाल रंग की हँड़िया है । उस हँड़िया के ऊपर आम का पल्लव और एक नारियल रखा है । ध्यान भंग होते ही साधु ने दण्डवत किया और फिर सड़क पर नाचते-नाचते आगे आने लगा । प्रभात और साधु के बीच एक चौड़ा मार्ग है । साधु के गले तथा बाँह में रुद्राक्ष की मालाएँ हैं । नृत्य के ताल पर प्रत्येक रुद्राक्ष से टार्च की रोशनी की तरह प्रकाश निकलकर प्रभात के शरीर को स्पर्श कर रहा है । इस दृश्य को वे रातभर देखते रहे ।

सुबह जब वे बाथरूम जाने लगे तब उनकी आँखों के आगे अँधेरा छा गया । सिर चकराने लगा । पाखाने में आने पर लगा जैसे वे सिर के बल उसमें प्रवेश कर रहे हैं । अजीब स्थिति थी । डॉक्टर को बुलाया गया । दवा दी गयी, पर कोई असर नहीं हुआ । क्रमशः उनके मन में यह विचार जन्म लेता रहा कि साधु के पास जाने पर यह रोग दूर हो जायगा । दवा काम नहीं कर रही है । अचानक उन्हें संदेह हुआ कि कहीं उस साधु ने कुछ किया तो नहीं है । आखिर उसके बारे में बार-बार मेरे मन में विचार क्यों आ रहा है ? क्यों उसके पास जाने की इच्छा हो रही है ।

तुरत सारी बातें लिखकर उन्होंने दरवेशजी के पास भेजा । वहाँ से उत्तर आया— "तुम्हारे स्वप्न के बाबत जानकारी मिली । तुम्हारा संदेह ठीक है । उस साधु ने तुम पर बाण

चलाया है। तुम कितने बड़े खतरनाक नाग हो, इसे अब वह साधु जान जायगा। उसने अब तक अनेक लोगों को परेशान किया है। तुम उसके आखिरी शिकार रहे। अब वे शिकार नहीं कर सकेंगे। मैं उनकी सारी शक्ति अपहरण कर ले रहा हूँ। तुम भगवान् की सन्तान हो। तुम्हारे ऊपर कोई तंत्र-मंत्र काम नहीं देगा। तुम्हें चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं। मैंने प्रतिकार कर दिया है।"

कभी-कभी दरवेशजी सामान्य चमत्कार से लोगों को अपना लेते थे। पुरी में आयोजित जटिया बाबा के तिरोधान उत्सव से दरवेशजी अपने अनेक शिष्यों के साथ कलकत्ता वापस आ रहे थे। युद्ध के दिन थे। कलकत्ता के बाजारों में उन दिनों धोती-साड़ी कपड़ों का भयंकर अभाव था। पैसे देने पर भी नहीं मिलते थे। दूसरी ओर पुरी में इसका बिलकुल अभाव नहीं था। लेकिन उड़ीसा सरकार की ओर से राज्य के बाहर कपड़े ले जाने पर सख्त पाबन्दी लगायी गयी थी। रेल, बस तथा मार्ग में तलाशी के साथ-साथ धर-पकड़ जारी थी। खुरदा स्टेशन पर गाड़ी के रुकते ही राज्य के कर्मचारियों ने तलाशी लेना शुरू किया।

इधर दरवेशजी के सभी शिष्य पुरी में नये कपड़े खरीद चुके थे। इस आकस्मिक तलाशी से लोग घबरा गये। कपड़े जब्त होने के अलावा गिरफ्तारी भी हो सकती है। इन लोगों को अफरा-तफरी करते देख दरवेशजी ने कारण का पता लगाया। बाद में उन लोगों से कहा— "सभी लोग अपने कपड़े यहाँ लायें और मेरे आसन के नीचे रख दें।"

कपड़ों की वेदी बन गयी। उस पर दरवेशजी का कम्बल बिछा दिया गया। थोड़ी ही देर बाद उस कमरे में तलाशी लेनेवाले आये और पूछा— "क्यों साधुजी, आपके पास नये कपड़े हैं ?"

प्रश्न अंग्रेजी में किया गया और उत्तर भी दिया दरवेशजी ने अंग्रेजी में— "नहीं, आप देख लें।"

कहीं कुछ संदेहजनक सामग्री उन्हें दिखाई नहीं दी। शिष्यों को समझते देर नहीं लगी कि गुरु के प्रताप के कारण सारे वस्त्र गायब हो गये थे।

इसी प्रकार एक बार परमहंस विशुद्धानन्दजी के आश्रम में उनका दर्शन करने के लिए दरवेशजी गये। बातचीत करने के थोड़ी देर बाद उन्होंने पीने के लिए पानी माँगा। परमहंसजी के आदेश पर एक शिष्य ने उन्हें गिलास में पानी दिया। गिलास हाथ में लेते ही उसमें से फिनायल की महक आने लगी।

दरवेशजी ने कहा— "मैंने पानी माँगा था और मुझे दूध दिया गया ?"

इतना कहकर उन्होंने गिलास को फर्श पर फेंक दिया। लोगों ने आश्चर्य से देखा— चारों ओर दूध बिखर गया है। दरअसल यह दो साधुओं का आपसी विनोद रहा। स्वामी विशुद्धानन्द ने कहा— "शेर का बच्चा है।"

सद्‌गुरु अपने शिष्यों के मन की बात अपनी अतीन्द्रिय-शक्ति के जरिये ज्ञात कर लेते हैं।

काशी में उन दिनों सर्वत्र चोरियाँ हो रही थीं। पुलिस को बराबर असफलता मिलती रही। लोग चोरों के कारण चारों ओर खिड़की-दरवाजा बन्द करके घर में सोते थे।

सोनारपुर स्थित विजयकृष्ण मठ के दरवाजे बराबर खुले रहते थे। अब चोरों के डर से रात को बन्द कर दिया जाता था। इसके अलावा भक्तों में कुछ लोग पारी लगाकर पहरा देते थे। एक दिन शैलेन राय जागते हुए पहरा दे रहे थे। उनकी आँखें ढपी जा रही थीं। अचानक उन्हें लगा कि सिरहाने किसीने सलाई जलाई है। चौंककर उसने देखा—देवीचरण दरवेशजी के तंबाकू की सामग्री के पास बैठा चिलम तैयार कर रहा है। उसे संदेह हुआ कि आखिर इस वक्त तंबाकू कौन पियेगा ? दरवेशजी भोजन के बाद एक बार हुक्का पीते हैं।

शैलेन ने पूछा— "यह क्या हो रहा है ?"

देवीचरण ने कहा— "ठाकुर ने चिलम चढ़ाने को कहा है।"

शैलेन ने आश्चर्य से देखा कि इतनी रात को दरवेशजी हुक्का पीने लगे। उसके लिए इससे अधिक विस्मय की बात यह रही कि कमरे के दोनों दरवाजे भीतर से बन्द करके वह लेटा था। आखिर देवीचरण भीतर कैसे आया ? दरवेशजी ने खोला नहीं और उसके बारे में प्रश्न नहीं उठता।

दूसरे देवीचरण से पूछने पर उसने कहा— "तुम तो यह जानते ही हो कि गुरुदेव मुझे कितना चाहते हैं। मुझे मठ की शोभा कहते हैं। मेरे सभी गुरुभाई उनकी सेवा करते हैं, पर मैं नहीं कर पाता। कभी हुक्का तैयार करके भी नहीं दे सका। कल रात को छत पर इसी चिन्ता में परेशान था। नींद नहीं आ रही थी। रात बढ़ रही थी और मेरे मन की पीड़ा भी। पता नहीं क्यों मन में उत्कट इच्छा हुई कि एक बार ठाकुर के कमरे के पास जाऊँ। तभी याद आया कि जाने से क्या फायदा। भीतर से बन्द होगा। भीतर जाने के लिए आवाज देनी पड़ेगी। ठाकुर की नींद में खलल पड़ेगा। लेकिन इधर मेरा मन बार-बार यही कह रहा था कि तुझे दरवेशजी बुला रहे हैं। काफी ऊहापोह करने के बाद मैं हल्के कदमों से दरवेशजी के कमरे के पास आकर खड़ा हो गया। सोचा, धीरे से आवाज दूँ। दरवाजे पर हाथ रखते ही वह अपने आप खुल गया। भीतर प्रवेश करते ही दरवेशजी ने कहा—'कौन ? देवी, जरा चिलम चढ़ा तो।' दरवेशजी ऐरे-गैरे के हाथ का बनाया चिलम नहीं पीते थे। मैं तो बिलकुल अनाड़ी हूँ। असल में मेरी मनोकामना पूर्ण करने के लिए उतनी रात गये मुझे अपने पास बुलाया था और मेरी सेवा को उन्होंने ग्रहण किया।"

देवीचरण की कहानी सुनकर शैलेन बाबू चकित रह गये। गुरुदेव कब किस समय भक्तों की इच्छापूर्ति करते हैं, इसे समझना कठिन है।

कलकत्ता के एक उद्योगपति अनाथ दरवेशजी का दर्शन करने आये। यहाँ आकर वे दरवेशजी के लिए चिलम तैयार करने के बाद टिकिया सुलगाने लगे। इसके बाद चिलम पर आग को ताव देने के लिए हवा करने लगे। आग लहलहा उठी। अनाथ का चेहरा आग की रोशनी में चमकने लगा। यह दृश्य देखकर दरवेशजी ने कहा—"टिकिया की आँच में अनाथ का चेहरा कितना सुन्दर दिखाई दे रहा है।"

हुक्के पर चिलम रखते हुए अनाथ ने कहा— "चेहरा सुन्दर कैसे लगेगा ठाकुर। मेरी खोपड़ी का घाव ठीक नहीं हो रहा है।"

दरवेशजी ने कहा— "कैसा घाव है, देखूँ जरा।"

अनाथ ने उनके आगे सिर झुकाया। दरवेशजी ने घाव पर हाथ फेरते हुए कहा— "दूर, यह कुछ भी नहीं है।"

इसके बाद कोई बातचीत नहीं हुई। स्नान करने के पश्चात् कंघी करते समय अनाथ ने अनुभव किया कि खोपड़ी का घाव गायब है। बार-बार हाथ फेरने पर भी घाव का पता नहीं चला। आँखों का भ्रम समझकर वह अपनी माँ के पास जाकर बोला— "माँ, मेरे सिर पर घाव था, क्या हुआ देखो तो।"

माँ ने कहा— "यह ठाकुर की कृपा है। अब तुम यह बात किसीसे मत कहना। यहाँ तक कि अपनी पत्नी को भी मत बताना।"

× × ×

पूर्वी बंगाल (बंगला देश) के फरीदपुर जिले में खालिया ग्राम का चटर्जी घराना प्राचीन घराना है। दुर्गाचरण चटर्जी साधारण क्लर्क से डिप्टी कलक्टर हुए थे। अपने जीवनकाल में उन्होंने काफी उपार्जन किया। गाँव में जमीन खरीदी, कलकत्ता, पुरी, बनारस आदि शहरों में मकान बनवाया। दुर्गाचरण के सबसे छोटे पुत्र कुलचन्द्र आगे चलकर इन सभी जायदादों के एकमात्र वारिस हुए।

कुलचन्द्र तंत्र-उपासक थे। तंत्र-प्रणाली के अनुसार साधना करते थे। इनके पुत्र किरणचन्द्र ने अपने पिता को शिवा-भोग देते देखा था। विभिन्न प्रकार के खाद्य बनाकर छत पर रख दिया जाता था। पता नहीं, कहाँ से एक सियार घर में आता और सीढ़ी से ऊपर जाकर चुपचाप सारा भोजन खाकर चल देता था। कुलचन्द्र तरह-तरह के तंत्र-मंत्र भी जानते थे।

कुलचन्द्र जमींदार, कुलीन ब्राह्मण होने के अलावा ऊँचे दर्जे के तांत्रिक भी थे। मात्र ५६ वर्ष की उम्र में कुलचन्द्र का देहान्त हो गया। उन दिनों किरणचन्द्र की उम्र ११ साल थी। कुलीन प्रथा के अनुसार कुलचन्द्र ने तीन विवाह किये थे। उनकी दूसरी पत्नी अन्य सौतों से उम्र में बड़ी होने तथा ज्येष्ठ पुत्र की जननी होने के कारण घर की मालकिन समझी जाती थी। ज्येष्ठ पुत्र जब तेईस वर्ष का किशोर था तब रसमयी को एक लड़की हुई। इस लड़की के जन्म के दो वर्ष बाद कनिष्ठ पुत्र किरणचन्द्र का जन्म हुआ। बड़ी बहू प्रसन्नमयी निस्संतान थीं, इसलिए मझली बहू रसमयी ने उन्हें इस पुत्र को दे दिया था। किरणचन्द्र अपनी बड़ी माँ को माँ समझते रहे। किरणचन्द्र ने जब जन्म लिया, उस वक्त इनके भतीजे की उम्र आठ साल थी, इसलिए रसमयी जरा लज्जा अनुभव करती थीं। यहाँ तक कि किरणचन्द्र अपनी भाभी प्रसन्नकाली के स्तनपान से बड़े हुए थे।

सहसा किरण के बड़े भाई का असामयिक निधन हो गया। रसमयी उन दिनों बनारस में थीं। पुत्र-शोक से वे बीमार पड़ गयीं। यह समाचार पाते ही किरण काशी आये। यहीं उन्हें रसमयी से अपनी जन्म-कहानी ज्ञात हुई। रसमयी ने कहा—"जब तू पैदा हुआ तब मेरी उम्र बच्चा जनने की नहीं थी। मासिक-धर्म बन्द हो चुका था। तेरे जन्म पर मुझे प्रसन्नता नहीं हुई थी। लेकिन जब श्रीश की मौत हो गयी तो सोचा कि अगर किरण न पैदा होता तो पिण्डदान लोप हो जाता।"

किरण के बारे में रसमयी ने कई विचित्र घटनाओं का भी जिक्र किया। उन्होंने बताया कि किरण की छठी के दिन रात को माँ ने एक अद्‌भुत स्वप्न देखा था। लाल साड़ी, माँग में

सिन्दूर लगाये घुटनों के बल एक महिला सौरी में आयी। सिरहाने की ओर से बच्चे को माँ के पास से उठाने का प्रयत्न करने लगी। तभी एक जटाधारी महापुरुष जो गले में तरह-तरह की मालाएँ तथा तन पर गेरुआ वस्त्र पहने हुए थे, प्रकट हुए। उन्होंने अपने दण्ड से उस महिला को मारते हुए कहा— "दूर हो जाओ। यहाँ नहीं।"

मार खाकर महिला डरकर भाग गयी। इसके बाद उस महापुरुष ने हँसते हुए रसमयी से कहा— "क्या तुम यह बच्चा मुझे दोगी ?" रसमयी बेहिचक महापुरुष की गोद में बच्चे को डालती हुई बोली— "पिताजी, यह बालक आपका है। आप जो चाहें, करें।"

महापुरुष ने बच्चे को माँ के हाथ वापस करते हुए कहा— "अभी तुम्हारे पास रहेगा। मैं जा रहा हूँ।" इसके बाद रसमयी की नींद खुल गयी।

दूसरे दिन इस स्वप्न का विवरण सुनकर किरण के पिताजी ने कहा—"स्वयं महादेव आये थे। किरण की माँ उन्हें महादेव समझकर निश्चिन्त हो गयी। मगर सन् १८९६ ई० में किरण जब प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी से दीक्षा लेकर लौटा तब अपने साथ उनका एक चित्र ले आया था। उस चित्र को देखते ही रसमयी ने कहा— "यही साधु थे जिन्हें मैंने सौरी में देखा था। आज मैं तेरी ओर से निश्चिन्त हो गयी।"

सन् १८९९ में गोस्वामीजी ने पुरी में किरण से कहा था—"छठी के दिन ही तुम्हें भगवान् ने ग्रहण किया था। तुम महादेव के दास हो। वे स्वयं आकर तुम्हें पूजा दे गये थे।"

किरणचन्द्र चट्टोपाध्याय श्री कुलचन्द्र चट्टोपाध्याय के कनिष्ठ पुत्र और श्री श्री विजयकृष्ण गोस्वामी के शिष्य थे। जब आपकी उम्र केवल १७ साल की थी तब आपकी दीक्षा हुई थी।

सन् १९०२ में जब आप अपने गुरुभाइयों के साथ दक्षिण भारत की यात्रा पर गये थे तब विजयवाड़ा नगर में पहुँचते ही आपको अपने पूर्वजन्म की स्मृतियाँ याद आ गयीं। आपको याद आया कि इस पहाड़ी पर एक गुफा है। उसके भीतर एक आसन है। उसी आसन पर बैठकर आप साधना किया करते थे। आपके कथन की सत्यता जाँचने के लिए अमृतलाल तथा अन्य कई व्यक्ति पहाड़ के दूसरी ओर गये। उन्हें यह देखकर चकित रह जाना पड़ा कि किरण की सारी बातें सही हैं।

किरण की उम्र जिन दिनों तीन साल की थी, उन्हीं दिनों पिता-माता के साथ वे काशी आये थे। माता-पिता के साथ वे तैलंग स्वामी का दर्शन करने गये थे। तैलंग स्वामी उस वक्त लेटे हुए थे। माँ की गोद में बच्चे को देखते ही उसे उन्होंने अपनी गोद में ले लिया। महापुरुष के शरीर से बच्चे का पैर स्पर्श हो रहा है देखकर माँ व्यस्त हो उठी। तैलंग स्वामी ने बच्चे के भाल पर विभूति लगाकर बच्चे को माँ की गोद में वापस कर दिया।

वहाँ जो लोग मौजूद थे, उन लोगों ने कहा कि आगे चलकर जरूर प्रतिभाशाली साधु होगा, क्योंकि बाबा किसी भी बच्चे को लेकर इस तरह न तो प्यार करते हैं और न विभूति लगाते हैं। जीवन्त विश्वनाथ के प्रतीक स्वामीजी ने बालक के भविष्य को पहचानकर अपना आशीर्वाद दिया है।

सन् १८९२ ई० में यानी पिता के निधन के १८ माह बाद बालक किरणचन्द्र का उपनयन हुआ। इस घटना के बाद किरण को ढाका के जुबली स्कूल में पढ़ने के लिए भेजा गया। वहाँ छात्रावास में रहते हुए वे 'ब्राह्म-समाज' से प्रभावित हुए। छात्रावास के अधिकांश

छात्र आवारा और शोहदे थे, पर 'ब्राह्म-समाज' के कारण किरण अधिक पतित नहीं हुए। निरन्तर 'ब्राह्म-समाज' में भाग लेने के कारण उन्होंने प्रथम बार विजयकृष्ण गोस्वामी का नाम सुना। गोस्वामीजी इस समाज के प्रमुख कर्णधार थे।

एक बार ढाका से स्टीमर से घर लौट रहे थे। डेक पर खड़े होकर सामने का दृश्य देख रहे थे। बगल में पर्दे से घिरे भाग में एक महिला अपने दो साल के बच्चे को लेकर बैठी थी। अचानक रेलिंग की दरार से वह नदी में गिर पड़ा। महिला के पति कुछ दूर बैठे थे। बच्चे को नदी में गिरते तथा उसकी माँ को आर्तनाद करते किरण ने देखा। इसके साथ ही वह एक छलाँग में मेघना की उत्ताल तरंगों पर कूद पड़ा। कूदते ही संयोग से बच्चा पकड़ में आ गया। जहाज के पास नदी अधिक हिलोरें ले रही थी। किरण के लिए बच्चे को पकड़कर देर तक तैरना या पानी में उतराये रहना संभव नहीं था। लेकिन साहस के साथ वह उतराया रहा। इसी बीच जूता और धोती को उसने उतार डाला। कमीज उतारना संभव नहीं हुआ। अब तक स्टीमर काफी दूर निकल गया था। वापस लौटकर बोट की सहायता आने में बीस मिनट लगा। जब दोनों को जहाज पर लाया गया तब बच्चा बेहोश था और किरण भी अर्द्ध-मूर्च्छित था।

थोड़ी ही देर में दोनों होश में आ गये। बच्चे की माँ किरण को कंठ से लगाकर "मेरे भइया" कहती हुई रो पड़ी। आसपास खड़े लोग उसे श्रद्धा की दृष्टि से देखते रहे। आगे चलकर गुरुदेव गोस्वामीजी ने इस कार्य के लिए किरण की प्रशंसा की थी।

सन् १८६३ ई० में इन्हें अध्ययन के लिए कलकत्ता भेजा गया। यहाँ का जीवन बहुत ही निकृष्ट रहा। किरण आवारा लड़कों की सोहबत में आकर शोहदा बन गये। थियेटर, अड्डेबाजी, लड़कियों का पीछा करना आदि अपकर्म करने लगे। उम्र में बड़े अपने भतीजे की उन्हें फिक्र नहीं थी। फलस्वरूप बड़े भाई ने इन्हें गाँव वापस बुला लिया। इन दिनों इनकी उम्र सोलह साल थी।

बड़े भाई ने बरिशाल स्थित ब्रजमोहन इंस्टीट्यूट के प्रधानाध्यापक श्री अश्विनीकुमार को पत्र लिखा और किरण को वहाँ अध्ययन के लिए रवाना किया। यहीं माखनलाल गंगोपाध्याय से परिचय हुआ। माखन से उनका पारिवारिक संबंध था। माखन की बुआ किरण की सौतेली माँ थीं। दूसरी ओर किरण की सौतेली बहन मनमोहिनी माखन की सौतेली माँ थीं। आगे चलकर इन दोनों में गहरी मित्रता हुई थी।

इन्हीं दिनों प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी से माखन को 'साधन' मिला। किरण ने निश्चय किया कि गोस्वामीजी अवश्य महापुरुष हैं। उनके प्रति श्रद्धा रखता हूँ, मन में पूजा करता हूँ, पर उनसे मंत्र नहीं लूँगा। क्या बिना मंत्र लिये किसीके प्रति भक्ति नहीं होती। इसी बीच दुर्गापूजा की छुट्टियों में किरण माखन के साथ अड़ियल आया। इसके पूर्व भी वह माखन के घर आ चुका था और उसकी बहन सरोजबाला को देख चुका था।

इस बार वह बाहर बरामदे में अकेला बैठा था तभी सरोजबाला ने आकर सीधा प्रश्न किया—"अभी तक आपको साधन नहीं मिला ?"

"कैसा साधन ?" किरण ने चौंककर पूछा।

किरण का प्रश्न सुनकर वह लड़की अवाक् रह गयी। बोली—"आश्चर्य की बात है,

आप साधन के बारे में कुछ नहीं जानते ?" इसके बाद बिना कुछ बोले वह अन्दर महल में चली गयी।

इधर किरण के अन्तर में हलचल मच गयी। नाना प्रकार के प्रश्न उभड़ने लगे। अगर मैं साधन न भी लूँ या ले लूँ तो इस लड़की का उससे क्या वास्ता है ? उसने निश्चय किया कि अगर अब मुलाकात होगी तो इस बारे में उससे प्रश्न करेगा।

इस घटना के कई दिनों बाद की बात है। एक रात को एक ही बिस्तर पर माखन और उसकी माँ के साथ किरण सो रहा था। स्वप्न में उसने श्री राधाकृष्ण की युगल मूर्ति का दर्शन किया। एक वेगवती नदी के इस किनारे वह खड़ा था और दूसरी ओर वह युगल मूर्ति थी। उस युगल मूर्ति के पास जाने के लिए उसका मन व्याकुल हो उठा। धोती-कुर्ता उतारकर फेंकने के बाद उसने 'ब्रह्म कृपा हि केवलम्' कहते हुए ज्योंही पानी में कूदना चाहा तभी पीछे से किसीने कंधे पर हाथ रखते हुए ममताभरे शब्दों में कहा—"ठहरो, स्वयं तैरकर नदी पार नहीं हो सकते।"

किरण ने पलटकर ज्योंही पीछे की ओर देखा त्योंही उसकी नींद गायब हो गयी। दूसरे दिन बिस्तर पर बैठा रात को देखे स्वप्न पर विचार कर रहा था। ठीक इसी समय सरोजबाला कमरे में आयी। उसे देखते ही किरण ने पूछा— "उस दिन तुम नाराज होकर चली गयीं। गोस्वामीजी से साधन माँगने पर क्या मिल जाता है ? मैंने सुना है कि न जाने कितने लोगों को उन्होंने साधन बिना दिये बार-बार लौटा दिया है। मुझे भी वापस नहीं करेंगे, इसका क्या प्रमाण है ?"

सरोजबाला ने कहा— "साधन पाना मनुष्य के वश की बात नहीं है, यह तो जिसका साधन है, वह समझ सकते हैं। मगर साधन-प्रार्थी होना सौभाग्य की बात है। आपमें है, मेरी ऐसी धारणा थी, इसीलिए उस दिन मैंने कहा था। इसके लिए मुझे क्षमा करें। साधन बिना पाये केवल प्रार्थी बनकर जो व्यक्ति मर सकता है, उसके लिए सौभाग्य की बात है। आप बेकार समय नष्ट कर रहे हैं।"

सरोजबाला की बातें सुनकर किरण स्तंभित रह गया। साधन न पाकर केवल प्रार्थी बनकर रहना भी सौभाग्य की बात है। ऐसी बात उसने कभी नहीं सुनी। गोस्वामीजी पर इन लोगों की निष्ठा देखकर वह चकित रह गया। पिछली रात को देखे गये स्वप्न की बात माखन से कहने पर उसने कहा—"किरण, तुम व्यर्थ में समय नष्ट कर रहे हो। जल्द-से-जल्द गोस्वामीजी के चरणों का आश्रय लो। उन्होंने तुम्हें बुलाया भी है। उम्र बढ़ती जा रही है।"

यह बात सुनकर किरण का सारा अन्तर रो पड़ा। उसने गोस्वामीजी के नाम एक पत्र लिखा। प्रेरणा देने के लिए सरोजबाला के प्रति उसने कृतज्ञता प्रकट की। यही सरोजबाला आगे चलकर किरण की प्रेरणादात्री, सहधर्मिणी, सहकर्मिणी बन गयी।

किरण के पत्र का उत्तर नहीं मिला। पुनः पत्र लिखा गया, पर गोस्वामीजी ने उत्तर नहीं दिया। वे बरिशाल लौट आये और यहाँ सत्संग करने लगे। कुछ दिनों के बाद समाचार मिला कि गोस्वामीजी वृन्दावन जा रहे हैं। इस समाचार को सुनकर वे विचलित हो उठे। वृन्दावन जाने के पूर्व अगर साधन नहीं मिला तो फिर मिलने की उम्मीद नहीं रहेगी। इसी

चिन्ता में परेशान होकर उन्होंने गोस्वामीजी के पुत्र योगजीवन गोस्वामी के नाम पत्र लिखा। वहाँ से जवाब आया— "पछाँह की यात्रा से लौटने के बाद साधन मिलेगा।"

इस जवाब को पढ़कर किरण बेचैन हो उठा। पता नहीं, वहाँ से कब लौटेंगे और कब मुझे साधन देंगे। गोस्वामीजी की वृन्दावन-यात्रा प्रारंभ हो, उसके पहले एक बार उनसे मिलना चाहिए। उनके दर्शन के लिए उसका हृदय व्याकुल हो उठा। तुरत वह अपने मित्रों के साथ कलकत्ता आया। गोस्वामीजी यहाँ अपने एक शिष्य के घर ठहरे हुए थे।

गोस्वामीजी का दर्शन करने के बाद किरण का चित्त शांत हो गया। बातचीत के सिलसिले में साधन की चर्चा चलने पर गोस्वामीजी ने कहा—"इसके पहले कोई पत्र भेजा था ?"

"जी हाँ। जवाब मिला था कि वृन्दावन से वापस आने पर दीक्षा दी जायगी।"

गोस्वामीजी ने कहा— "तब तो तुम्हें उत्तर मिल ही गया।"

पाँच दिनों तक गोस्वामीजी के साथ रहने के बाद किरण बरिशाल लौट आये। कुछ दिनों बाद किरण की मानसिक स्थिति खराब होने लगी। भोजन-नीद में उच्चाटन हो गया। किसी अदृश्य शक्ति के आकर्षण से वे कलकत्ता चले आये। यहाँ आने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि गोस्वामीजी कई रोज हुए वृन्दावन चले गये हैं। इस समाचार से उन्हें जबर्दस्त आघात लगा। गोस्वामीजी के बिना यह जीवन व्यर्थ है। उनके बिना मैं जीवित नहीं रह सकता।

इसी चिन्तन में एक दिन डेरे से चलकर वे गंगा किनारे जगन्नाथ घाट पर आये। आत्महत्या करने के पूर्व वे सोचने लगे— क्या इस अकिंचन को वे अपने पास बुला नहीं सकते ?

तभी उस घने अँधेरे में गोस्वामीजी की ज्योतिर्मयी मूर्ति प्रकट हुई। उन्होंने ऊपर आने के लिए हाथ से इशारा किया। वे कैसे गंगा पार हुए, यह याद नहीं। होश आने पर उन्होंने देखा कि भीगे वस्त्र पहने वे रेलवे के किनारे-किनारे पैदल चल रहे हैं। उनकी आँखों के सामने गोस्वामीजी की मनोमुग्धकारी मूर्ति विराजमान है और वे आँसुओं से उनके चरणों को धो रहे हैं। किरण को लगा जैसे वे युगों से पैदल वृन्दावन की ओर बढ़ते जा रहे हैं। उस वृन्दावन की ओर जा रहे हैं जहाँ उनके आराध्यदेव विराजमान हैं। यमुना किनारे श्रीकृष्ण की बाँसुरी की तान सुन रहे हैं। गोस्वामीजी की मूर्ति के साथ-साथ दूसरे दिन दोपहर को किरण बाली (कलकत्ते का एक उपनगर) पहुँचते ही थककर रेल की पटरी के पास बैठ गये।

तभी एक स्थानीय व्यक्ति वहाँ आया और उसे साथ लेकर अपने घर गया। यहाँ स्नान, भोजन करने के बाद जब खब्तीपन दूर हुआ तब किरण को लगा कि यह व्यक्ति तो परिचित है। उन्होंने किरण को हर तरह से समझाया। उनके भतीजे के पास समाचार भेजने को कहा, पर वे किसी बात पर राजी नहीं हुए। लाचारी में परिचित व्यक्ति ने उनके लिए विंध्याचल तक का टिकट बनवाकर गाड़ी पर चढ़ा दिया।

आखिर विंध्याचल तक का टिकट उसने क्यों लिया। यह बात उसकी समझ में नहीं आयी। दूसरे दिन विंध्याचल स्टेशन पर उतरते ही एक व्यक्ति ने आकर कहा— "मुझे आपको यहाँ से योगमाया मंदिर में ले जाने का आदेश दिया गया है।"

अब किरण की समझ में आया कि उसके लिए विंध्याचल का टिकट क्यों खरीदा गया।

योगमाया मंदिर तक पहुँचाकर वह व्यक्ति अदृश्य हो गया। किरण भीतर जाकर माता योगमाया का दर्शन करने लगे। किरण को लगा जैसे योगमाया देवी कह रही हैं—"डरने की क्या बात है ? अन्तर और बाहर मैं तुम्हारी शान्तिरूपा जननी हूँ। तुम्हें मार्ग दिखाती रहूँगी।" इतना सुनते ही किरण मूर्च्छित होकर गिर पड़े।

माता योगमाया का उन्हें दर्शन हुआ। अगर यह दर्शन उन्हें न होता तो गोस्वामीजी की कृपा भी प्राप्त न होती। जब किरण होश में आये तो देखा कि माता अन्तर्धान हो गयी हैं। पगडंडियों के सहारे किरण पहाड़ी पर स्थित सिद्धेश्वरी मंदिर आये। वहाँ पहुँचने पर पुजारी ने कहा— "आपके बारे में एक जटाधारी बाबा अभी-अभी कह गये हैं कि आज आप यहीं प्रसाद ग्रहण करेंगे।"

एकाएक किरण ने देखा— सिद्धेश्वरी मंदिर के सामने सुनहला प्रकाश फैल गया। मंदिर के भीतर विजयकृष्ण गोस्वामी और उनकी पत्नी योगमाया देवी युगल मूर्ति के रूप में उपस्थित हैं। उसे लगा जैसे हाथ के इशारे से उसे बुला रहे हैं। किरण बिलकुल आत्मविस्मृत हो गये। भूख-प्यास गायब हो गयी। उच्च स्वर में हरि-ध्वनि करते हुए वे पागलों की तरह दौड़ने लगे। इस आनन्द के कारण वे मार्ग भूल गये।

मार्ग भूलकर जब वे इधर-उधर भटक रहे थे तभी स्वामी कुमारानन्द के शिष्य स्वामी हरिहरानन्द भारती के साथ मुलाकात हो गयी। उन्हें भूखा समझकर स्वामी हरिहरानन्द एक गुफा में ले गये। नमक-मसाला विहीन उबला हुआ साग उन्हें खाने को दिया। स्वामीजी अपने गुरु के आदेशानुसार पिछले ग्यारह वर्ष से उबला हुआ साग खाते आ रहे हैं। उबला हुआ साग किरण को अच्छा लगा।

दो दिन यहाँ रहने के बाद किरण पुनः विंध्याचल स्टेशन आये। टिकट खरीदने लायक पैसे नहीं थे। सोचा पास में पैदल ही चलूँ। ठीक इसी समय एक सज्जन उपयाचक बनकर उन्हें अपने साथ इलाहाबाद ले आये। गाड़ी पर इस अपरिचित व्यक्ति की जबानी प्रयाग के रंगीन बाबा की कहानी सुनकर स्टेशन से सीधे बाबा के आश्रम पर आये। जोरों से प्यास लगी थी। आश्रम में आते ही बाबा ने घर के कोने में रखा मट्ठा पीने को कहा। मट्ठा पी लेने के बाद बाबा ने कहा—"अब देर मत करो। तुरत स्टेशन चले जाओ। गाड़ी आ रही होगी।"

किरण बिना कुछ बोले चलने लगा तब रंगीन बाबा ने कहा—"बाबा को मेरा प्रणाम कहना।" यहाँ रंगीन बाबा ने जिस बाबा को प्रणाम करने को कहा, वे थे—गोस्वामीजी। किरण को समझते देर नहीं लगी कि मैं यहाँ आऊँगा, इसकी जानकारी बाबा को पहले से थी।

स्टेशन आने पर उन्होंने देखा कि मथुरा जानेवाली गाड़ी बस छूटने ही वाली है। बिना टिकट गाड़ी पर सवार होने की इच्छा नहीं हुई। वे चुपचाप प्लेटफार्म पर खड़े रहे। गाड़ी चल पड़ी। चलती गाड़ी पर सवार एक टिकट चेकर ने इन्हें पकड़कर डिब्बे के भीतर खींच लिया।

किरण ने कहा कि न तो मेरे पास टिकट है और न पैसे। मैं रेलवे को धोखा नहीं देना

चाहता। कृपया मुझे अगले स्टेशन पर उतार दीजिएगा। वृद्ध रेल कर्मचारी किरण की सरलता पर मुग्ध हो गया। वे अपनी जिम्मेदारी पर उसे मथुरा ले आये।

स्टेशन पर उतरते ही पंडों ने किरण को घेर लिया। सहसा एक पंडे ने कहा कि मेरा नाम पुड़ी-कचौड़ी पंडा है। मैं गोस्वामीजी का खास पंडा हूँ। आप मुझ पर भरोसा कर सकते हैं।

गोस्वामीजी का नाम सुनकर किरण प्रसन्न हो गया। उसने पूछा—"मैं गोस्वामीजी के पास ही जाऊँगा, यह बात आपको कैसे मालूम हुई ?"

पंडे ने कहा— "आपकी तरह अनेक बाबू वहाँ हैं। चलिये, मथुरा-दर्शन कर लीजिए, फिर वहाँ जाइयेगा।"

पास में रकम न रहने की वजह से किरण मथुरा-दर्शन के लिए राजी नहीं हुआ। पुड़ी-कचौड़ी पंडा ने बाजार से जलपान खरीदकर किरण को खिलाया। इसके बाद एक गाड़ी में बैठाकर इन्हें वृन्दावन की ओर रवाना कर दिया। गाड़ीवान से कहा— "आपको गोस्वामीजी के आश्रम में पहुँचा देना।"

गाड़ी पर सवार कुछ दूर आने के बाद किरण ने देखा कि एक यात्री भूमि पर साष्टांग प्रणाम करते हुए यात्रा कर रहा है। इस दृश्य को देखकर उनकी इच्छा हुई कि ब्रजभूमि की रज शरीर पर लगाते हुए वे भी स्वयं इसी तरह यात्रा करें। बस, फिर क्या था, वे गाड़ी से कूद पड़े। इधर गाड़ीवान ने सोचा— यह लड़का पागल है। शायद भाग जाना चाहता है। किरण को पकड़ने के लिए छीना-झपटी करने लगा। काफी देर बाद किरण यह समझाने में सफल हुआ कि वह वाकई पागल नहीं है। वह यहाँ से पैदल ही वृन्दावन जाना चाहता है।

बात जम गयी। गाड़ीवान ने इसके बाद न कोई आग्रह किया और न कुछ कहा। किरण को यह बात मालूम नहीं थी कि गोस्वामीजी का आश्रम वृन्दावन में कहाँ है। पैदल चलकर वह दोपहर को वृन्दावन पहुँचा। धाम पर पहुँचते ही उसने देखा कि एक साधु "जय जय राधे गोविन्द" गाते हुए चल रहे हैं। उन्हें प्रणाम करने पर उन्होंने किरण को गले से लगा लिया और साथ लेकर चलने लगे। मार्ग में कोई बातचीत नहीं की।

उन दिनों गोस्वामीजी तीर्थमणि कुंज में निवास कर रहे थे। कुंज के सामने पहुँचकर साधु ने कहा— "वे इसी मकान में हैं। बाबा को मेरा प्रणाम कहना।"

किरण इस बात को समझ गये कि कलकत्ता से यहाँ आने तक जितनी अलौकिक घटनाएँ हो रही हैं, यह सब गोस्वामीजी की लीला है। बाली, विंध्याचल, प्रयाग, इलाहाबाद तथा मथुरा स्टेशन से लेकर इस साधु के आविर्भाव तक सभी कुछ उनके लिए एक स्वप्न जैसा था। दो दिन बाद ज्ञात हुआ कि उक्त साधु का नाम कमलदास बाबाजी है।

गोस्वामीजी के पास पहुँचते ही किरण फफककर रो पड़े। उन्हें अपनी गोद में खींचकर उनके सिर पर हाथ फेरते हुए गोस्वामीजी ने कहा— "कई दिनों से लड़के को भात खाने को नहीं मिला है। इसे भोजन कराओ।"

यमुना में स्नान करने के बाद किरण ने आश्रम में आकर भोजन किया। भोजन के बाद वे हुक्का पी रहे थे कि इसी समय कुंज गुहठाकुरता ने आकर कहा—"गोस्वामीजी का आदेश है कि आज रात को आपका साधन होगा।"

इस समाचार को सुनते ही किरण खुशी से नाचने लगे। आज उन्हें बहु प्रतीक्षित राज्य मिलेगा। फलस्वरूप हाथ से हुक्का गिर गया। मसहरी में आग लग गयी। एक अजीब हादसा हो गया। सारी घटना सुनने के बाद गोस्वामीजी ने कहा— "लड़के का दिमाग जरा क्रेक है।"

रविवार, आषाढ़ शुक्ल नवमी, सन् १८९६ ई० के दिन रात एक बजे वृन्दावन में, तीर्थमणि कुंज में श्री श्री गोस्वामी ने किरण को दीक्षा दी। किरण का जीवन धन्य हो गया।

आगे चलकर किरणचन्द्र ने गुरु की महिमा का उल्लेख करते हुए कहा है— "श्री गुरु भगवान्स्वरूप त्रिगुणातीत, निष्क्रिय ब्रह्म हैं। त्रिगुण प्रारंभ होने के पूर्व जो आदिगुण रहता है, श्री गुरु उसी आदिगुण अर्थात् तमस् में श्वेतवर्ण के रूप में विराजते हैं। यही तमस् जब त्रिगुण में परिणत होने के लिए स्पन्दन अनुभव करता है तब वही सत्त्व और रजरूप में पृथक् हो जाता है। यह रज ही रक्तवर्ण शक्ति के रूप में श्री गुरु को कर्म अर्थात् जीवों के उद्धार में लगाता है। इसीलिए सद्गुरु-शक्ति निष्क्रिय ब्रह्म सद्गुरु से उद्भूत है, सद्गुरु हीं दूसरे रूप में प्रकाशित हैं। दूसरी बात है— इस शक्ति के बिना जिस प्रकार सद्गुरु भगवान् केवल निष्क्रिय ब्रह्ममात्र हैं, उसी प्रकार स्पन्दनशील और सक्रिय सद्गुरु के आश्रय के बिना यह शक्ति भी निष्क्रिय रहती है। सद्गुरु और उनकी शक्ति दोनों ही एक-दूसरे के अवलंबन हैं।

सद्गुरु का कार्य अपने जीवन के ५०-६० वर्ष व्यतीत हो जाने पर समाप्त नहीं हो जाता। इतने कम समय के लिए भगवान् अवतीर्ण नहीं होते। सद्गुरु की कार्यधारा और शक्ति लगभग ५०० वर्ष तक बनी रहती है। उनसे अनुमतिप्राप्त शिष्य-प्रशिष्य के माध्यम से वे काम करते रहते हैं। साधन एक शक्ति है। इस शक्ति को प्राप्त कर लेने पर गुरु की अनुमति के बिना दूसरों में संचार करने की क्षमता उत्पन्न नहीं होती।"

किरणचन्द्र के गुरु ने भी प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ श्री विपिनचन्द्र पाल को कहा था— "सद्गुरु की कृपा प्राप्त होने पर सत्संग की आवश्यकता नहीं होती। महाजन के उपदेशों में कहा गया है— 'आद्यो श्रद्धा ततः साधुसंगोऽथं भजनक्रिया' की सूचना प्राप्त होते ही साधु-संग का पर्याय समाप्त हो जाता है।"

गोस्वामीजी से साधन प्राप्त करने के बाद किरण साधना में लिप्त हो गये। इस छोटे-से बाग में निर्जन स्थान कहाँ मिलता जब कि गोस्वामीजी के यहाँ भक्तों की भीड़ बराबर बनी रहती थी। गोस्वामीजी की सास मुक्तकेशी देवी ने अपने संरक्षण में रखने के लिए भंडारघर को छोड़ दिया। कहीं ऐरे-गैरे लोग भंडारघर की सामग्री को नष्ट न कर दें, इसलिए कमरे के भीतर किरण को भेजकर वे बाहर से ताला लगा देती थीं। लगभग तीन सप्ताह तक दिनभर किरण कमरे में बन्द रहे। इन दिनों वह बाहरी मामले में तनिक भी ध्यान नहीं दे सके थे।

इसी बीच एक दिन मजेदार घटना हो गयी। एक दिन वे कुंज के बाहर गोविन्द चौक में साधना करने में इतने मशगूल हो गये कि उनकी धोती खुल गयी है, इस ओर ध्यान नहीं रहा। गोविन्द चौक से जब वे कुंज में आये तब लोग उन्हें दिगम्बर देखकर हँस पड़े। प्रकृतिस्थ होते ही जब अपने-आपको उन्होंने उलंग पाया तब वह अपनी धोती लेने के लिए गोविन्द चौक रवाना हो गये। अगर वह चाहते तो माँगने पर कुंज में धोती मिल जाती।

गोस्वामीजी के साथ यहाँ किरण विपिनचन्द्र पाल तथा अन्य लोगों से मिलते रहे। एक

बार रामदास काठिया बाबा का दर्शन किया। यहीं मयूर मुकुट बाबा से परिचय हुआ जो किरण के गुरुभाई थे। इसके बाद वृन्दावन से वापस आकर तीर्थ-भ्रमण करने लगे।

ठीक इन्हीं दिनों किरण को ज्ञात हुआ कि गोस्वामीजी नीलाचल-यात्रा पर जा रहे हैं। इन दिनों किरण नवद्वीप की परिक्रमा कर रहे थे। यह समाचार पाते ही वे तुरत कलकत्ता आये। उनकी हार्दिक इच्छा थी कि गुरुदेव के साथ वे पुरी-दर्शन करने जायँगे। लेकिन गोस्वामीजी उन्हें अपने साथ ले जाने को राजी नहीं हुए।

क्षुण्ण होकर किरण ने कहा—"मैं बालक हूँ, शायद मेरी आयु अधिक है। आप बूढ़े हैं और मेरे आगे ही आप शरीर-त्याग करेंगे। मेरी हार्दिक इच्छा है कि आप जब तक इस जगत् में सशरीर रहें तब तक आपके साथ रहूँ।"

गोसाईंजी ने हँसकर कहा— "पागल-सम न होने पर भला कहीं साथ होता है ? जब दोनों का चित्त एक अवस्था में आ जाता है तभी साथ होता है। एक ही मकान में रहने का अर्थ साथ नहीं होता।"

किरण ने हाथ जोड़ते हुए कहा— "गुरुदेव, आपके साथ सम-प्राण होकर संग करना किसी जन्म में संभव नहीं होगा। मैं इस जन्म में, एक मकान में रहने जैसा संग करना चाहता हूँ। मेरे जैसे अभागे के लिए यही काफी है।"

गोस्वामीजी ने इस प्रश्न का उत्तर नहीं दिया। यह सही है कि इस यात्रा में वे किरण को अपने साथ नहीं ले गये।

प्रत्येक नवीन साधक में यह ललक होती है कि वह गुरु के सान्निध्य में रहकर साधना की संपूर्ण क्रियाएँ अपना ले। लम्बे अर्से तक प्रतीक्षा न करनी पड़े। लेकिन तपस्या या साधना का मार्ग इतना सरल नहीं होता जो पेड़ में पके फलों की तरह आसानी से तोड़कर खा लिया जाय। अधिकांश साधक नाम लेने का उपदेश देते हैं। नाम का सामान्य अर्थ है 'हरे कृष्ण हरे राम' आदि भजना। इस तरह का भजन करोड़ों भक्त भजते हैं, पर वे साधक नहीं बन पाते। उसकी प्रक्रिया अलग है। इसी प्रकार प्राणायाम और योग की विधियाँ हैं।

जिस प्रकार प्राणायाम साधन नहीं है, उसी प्रकार नित्यपाठ भी साधन नहीं है—यह तो साधन के सहायक और पूरकमात्र हैं। साधन के विकल्प की दृष्टि से सद्ग्रंथों का पाठ ग्राह्य नहीं है अर्थात् पाठ के खातिर नाम-साधन की कोई हानि होने की संभावना रहती है तो नित्यपाठ साधक के लिए एक उपद्रव बन सकता है। कहने का मतलब नित्यपाठ भी श्री गुरु द्वारा निर्दिष्ट होना चाहिए। हर प्रकार के ग्रंथ सभी साधकों के लिए कल्याणकारी नहीं होते।

गोस्वामीजी के एक शिष्य सतीशचन्द्र मुखोपाध्याय थे। वे अपनी लगन तथा शक्ति के जरिये इस तेजी से आगे बढ़ने लगे कि गोस्वामीजी की पकड़ के बाहर होने लगे। फलस्वरूप गोस्वामीजी ने उन्हें बुलाकर कहा— "अपनी जप संख्या आधी कर दो।" फिर भी वे अपनी ऐशी शक्ति के जरिये बढ़ते जा रहे थे। लाचारी में उन्हें निर्देश देना पड़ा—"तुम जप बिलकुल बन्द कर दो। तुम्हारे लिए जितनी आवश्यकता है, उसे मैं पूरा करूँगा। अभी कुछ दिन तुम देश-सेवा करो।"

गुरु द्वारा प्रदत्त मंत्र का जाप करने की अपनी विधि होती है। सिद्ध मंत्र प्रति श्वास-प्रश्वास के जप द्वारा आयत्त कर लेने पर प्रति मिनट ५ से १० बार मात्र श्वास-प्रश्वास प्रवाहित

होता है । इसका अर्थ यह है कि एक मिनट में पाँच बार से भी कम श्वास-प्रश्वास प्रवाहित होना इस साधन के साधकों के लिए अस्वाभाविक नहीं है । सबसे पहले प्राणायाम के रेचक का कुंभक अभ्यस्त हो जाने पर तथा कुंभक की स्थिति में ५-६ बार नाम करते रहने पर, एक मिनट में लगभग दो से अधिक श्वास-प्रश्वास नहीं होता । कुंभक में १२ बार नाम-जप होने पर एक मिनट में एक बार श्वास-प्रश्वास होता है और पूरक के कुंभक में अनवरत नाम-जप करते रहने पर एक श्वास लेने पर ३२, यहाँ तक कि ६४ बार नाम होना संभव है । कुंभक-रीति के अनुसार न करने पर भी श्वास-प्रश्वास के साथ करते रहने पर कुंभक की क्रिया स्वतः होती है और श्वास-प्रश्वास की संख्या घटती जाती है ।

गोस्वामीजी ने कुलदानन्द ब्रह्मचारी से कहा था—"स्वाभाविक कुंभक करते हुए सर्वदा नाम-जप करते रहना । धीरे-धीरे प्रति श्वास में कुंभक के साथ नाम जपते रहने पर इस ओर से पर्याप्त लाभ उठा सकोगे ।"

"सभी गुरु साधक से कुंभक के बारे में विस्तार से ज्ञान-चर्चा नहीं करते । चर्चा न करने का कारण चाहे जो हो, पर इतना स्पष्ट है कि नियमानुसार कुंभक की प्रक्रिया करने के अलावा एक स्वाभाविक क्रिया भी है जिसमें स्वाभाविक रूप से श्वास-प्रश्वास की गति रुद्ध हो जाती है और श्वास-प्रश्वास की संख्या घटती जाती है ।

अजपा साधकों के लिए जिस प्रकार जप-संख्या रखने की जरूरत नहीं है, उसी प्रकार श्वास-प्रश्वास की संख्या, जो कि शरीर-विज्ञान की दृष्टि से है, उस संख्या के अनुसार नाम-संख्या की गणना करना निरर्थक है । श्वास-प्रश्वास के आधार पर नाम करते-करते साधक की श्वास-प्रश्वास संख्या घटती जाती है, शरीर-विज्ञान की दृष्टि से एक अस्वाभाविक शारीरिक विवर्तन होता है ।"

श्री कुलदानन्द ब्रह्मचारी ने भी कहा है— श्वास-प्रश्वास की ओर ध्यान धर नाम जपने पर ध्यान की चरम अवस्था में श्वास-प्रश्वास ही नाम हो जाता है और नाम ही श्वास-प्रश्वास है, ऐसी अनुभूति होती है । उस वक्त नाम का कोई अर्थबोध उत्पन्न नहीं होता, किसी रूप का संस्कार नहीं पैदा होता । एक प्रकार से नाम अपने-आप होता जाता है । मैं निश्चेष्ट दर्शक की भाँति इसे अनुभव करता हूँ । इस अवस्था का वर्णन भाषा या वाक्यों के द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता । आर्य ऋषियों ने इसे 'अवाङ्मनसगोचर' कहा है ।★

वृन्दावन से जब गोस्वामीजी बंगाल की ओर रवाना हुए तब उनके साथ किरणचन्द्र थे । कुल ५८ दिनों तक गुरुदेव के साथ वे जुड़े रहे । इन दिनों के संग करते रहने के कारण किरण का विकास हुआ । अन्तर से साथ करने के कारण वे अन्तरंग हो गये । दिन-प्रतिदिन वे गोस्वामीजी के विभिन्न रूपों का अवलोकन करते रहे । आपात निस्तरंग, निष्कम्प भागवती तनु के सहारे महाभाव के विचित्र तरंगों को जी भरकर देखते रहे । कभी उन्हें ज्योतिर्मय

★यहाँ सद्गुरु तथा नाम के बारे में संक्षिप्त रूप से चर्चा इसलिए की गयी है कि इसके पूर्व प्रकाशित पुस्तकें पढ़कर अनेक पाठकों ने इस सम्बन्ध में प्रश्न पूछा था । नाम जपना सामान्य भी है और कठिन भी । सद्गुरु ही आधार देखकर साधक को क्रिया बताते हैं । हर कोई इसे नहीं बता सकता । पुस्तकीय अध्ययन से इसका ज्ञान प्राप्त नहीं किया जा सकता ।

मूर्ति में तो कभी शिवरूप में देखते रहे। उनका बाहरी रूप वज्र की तरह कठोर था तो कभी कुसुम से भी कोमल। गोस्वामीजी किरण के लिए एक प्रकार से देवता बन गये।

वृन्दावन-निवास-काल में किरण ने एक बार पूछा कि क्या मुझे भी वृन्दावन-लीला का दर्शन हो सकता है ? वृन्दावन-लीला क्या है, इसकी कोई जानकारी किरण को नहीं थी। लिहाजा वृन्दावन-लीला देखने की उत्कंठा उनके लिए अस्वाभाविक नहीं थी।

गोस्वामीजी ने आश्वासन देते हुए उपदेश दिया था—"लीला-दर्शन क्यों नहीं होगा ? मैं तो हर क्षण दर्शन कर रहा हूँ। यहाँ आज भी श्रीकृष्ण की नित्य-लींला जारी है, जरा भी विराम नहीं है। तुम लोग नहीं देखोगे तो कौन देखेगा। जो लोग साधन प्राप्त करेंगे, वे एक न एक दिन इस लीला का दर्शन अवश्य करेंगे। जिन लोगों को साधन प्राप्त हो गया है, उनके लिए भय की कोई बात नहीं है। कैसे, क्या हो जायगा, इसे वे ज़रूर समझ नहीं पायेंगे, पर होगा अवश्य। घर के मालिक जब यह समझ लेंगे कि अब दरवाजा खोल देना चाहिए तब क्षणभर में दरवाजा खुल जायगा और चारों ओर प्रकाश हो जायगा। उस वक्त घर हँस उठेगा और घर का मालिक प्रसन्नतापूर्वक ताली बजायेगा। साधन करते जाओ। हिसाब-किताब करने की जरूरत नहीं। अगर नहीं होता तो सब मेरे ऊपर छोड़ दो।"

किरण ने दूसरा प्रश्न किया— "आपने कहा था कि मैं न जाने कितने युगों से आपका सेवक था, मगर इस जीवन में मुझमें क्रोधादि रिपु इतने प्रबल क्यों हैं ?"

गोस्वामीजी ने कहा— "रिपु की प्रबलता संसर्गज है। खाद्य और पारिपार्श्विक अवस्था ने बचपन में, तुम्हारे शरीर में रिपु का प्रभाव फैला दिया था, फिर भी तुम्हारा अपनत्व मेरे निकट बँधा था। जब भी खींचा है, दौड़कर आना पड़ा है। रिपु में इतना साहस कहाँ है जो इस साधन के अधिकारी को अपने कब्जे में रख सके। सब अपने-आप दूर हो जायँगे। इसमें न डरने की कोई बात है और न चिन्ता करने की।"

यहाँ से किरण आड़ियल चला आया और अपने गुरुभाई माखन के यहाँ आया। साधन पाने के बाद यहाँ प्रथम बार आया और आदत के अनुसार माखन और उसकी माँ के साथ एक बिस्तर पर सोया। घर के लोगों को, खासकर सरोजबाला को यह जानकर प्रसन्नता हुई कि किरण को गोस्वामीजी से साधन मिल गया है।

अधिक रात को तीनों व्यक्तियों ने महसूस किया कि कमरे में किसी प्रेतात्मा ने प्रवेश किया है। तीनों भयभीत हो उठे। तभी माखन ने कहा—"किरण, आओ। इसे भगाना है।"

किरण ने मसहरी से निकल बत्ती जलायी। माखन की माँ ने धूपबत्ती जलायी और माखन जप करने बैठ गया। थोड़ी ही देर में तीनों ने महसूस किया कि कमरे से कोई बाहर निकल गया।

सन् १८६६ ई० में गोस्वामीजी ने धुलट उत्सव किया। इस आयोजन में भाग लेने के लिए किरण भी आये। गोस्वामीजी राधाभाव में नृत्य करते रहे। कार्यक्रम समाप्त होने के बाद किरण प्रसाद माँगने गये तो गोस्वामीजी के पुत्र ने कहा— "गोस्वामीजी ने प्रसाद देने को मना किया है। किसींको नहीं मिलेगा।"

इस आदेश को सुनकर किरण ने उत्तेजित होकर गोस्वामीजी के पास जाकर कारण पूछा। गोस्वामीजी ने कहा— "हाँ, प्रसाद अगर दे सकते हो तो ले भी सकते हो।"

इस उत्तर को सुनकर किरण का चेहरा लटक गया। यह देखकर गोस्वामीजी ने कहा— "प्रसाद का अर्थ है—प्रसन्नता। पत्तल का जूठन नहीं। नित्य मेरे पत्तल जूठन खाने से क्या होगा ? मैं यह देखता हूँ कि चाय पीने के बाद जो अवशिष्ट रहता है, उसे प्रसाद समझकर लोग पी जाते हैं। इसके बाद जब मैं मर जाऊँगा तब मेरे फोटो के पास चाय की प्याली रखकर लोग प्रसाद ग्रहण करेंगे। यह सब कुसंस्कार है।"

यह बात सुनकर किरण मन ही मन रो पड़े। उन्होंने निश्चय किया कि जब तक मुझे प्रसाद प्राप्त नहीं होगा तब तक मैं अन्न-जल ग्रहण नहीं करूँगा। उसी रात को किरण ने स्वप्न में देखा कि गोस्वामीजी कह रहे हैं— "प्रसाद के लिए तुम इतने परेशान क्यों हो रहे हो ? प्रसाद का अर्थ है— प्रसन्नता प्राप्त करना। मैं तो तुम पर सदा प्रसन्न रहता हूँ तब प्रसाद की क्या आवश्यकता है ?"

स्वप्न में ही किरण ने कहा— "नहीं, मुझे आपका प्रसाद चाहिए।"

गोस्वामीजी ने कहा— "जब तुम्हारा इतना आग्रह है तब तुम प्रसाद ग्रहण करना।"

आश्चर्य की बात यह हुई कि दूसरे दिन किरण को प्रसाद प्राप्त हुआ। किरण जब प्रसाद माँगने गये तब किसीने आपत्ति नहीं की।

इन्हीं दिनों किरण के प्रश्न करने पर गोस्वामीजी ने किरण को आदेश दिया कि वह सरोजबाला से विवाह कर ले। किरण को साथ लेकर गोस्वामीजी आड़ियल आये और यहाँ भी उन्होंने सरोजबाला से कहा कि तुम किरण से विवाह कर लो। इस प्रकार दोनों का सम्बन्ध हो गया।

गोस्वामीजी ने कहा था कि तुम्हें बारह साल तक गृहस्थ-धर्म पालन करना पड़ेगा। तुम्हारी साधना में सरोजबाला बाधक नहीं बनेगी, बल्कि सहायक होगी। निस्सन्देह किरण के जीवन में गुरुदेव के आशीर्वाद के अनुसार सरोजबाला सहायक हुई।

विवाह के पश्चात् ही गोस्वामीजी की पुरी-यात्रा हुई थी। किरण यह नहीं जान सका कि गुरुदेव उसे पुरी क्यों नहीं ले गये। घर वापस आने पर इस रहस्य की जानकारी हुई। घर आकर जब उसने माँ को प्रणाम किया तब वे प्रसन्नता प्रकट करने लगीं, पर उनके चेहरे पर संकोच की रेखाएँ खिंची हुई थीं। जैसे वे कुछ कहना चाहती थीं, पर संकोचवश उसे व्यक्त करने में हिचक रही थीं।

माँ का रंग-ढंग देखकर किरण ने पूछा—"क्या बात है माँ ? तुम इतना संकोच क्यों कर रही हो ?"

माँ ने कहा—"बेटा, मुझसे एक गलती हो गयी। तुम गोस्वामीजी के साथ पुरी जा रहे हो, सुनकर मैं डर गयी। मैं पुरी हो आयी हूँ। अत्यन्त कष्टकर मार्ग है। तेरे पिताजी सभी तीर्थों का दर्शन करके आने के बाद तेरे बड़े भाई को गृहस्थी की जिम्मेदारी देकर पुरी गये थे। उन्हें शंका थी कि शायद वे जीवित न लौट सकें। ऐसे कठिन मार्ग की यात्रा में अपने मासूम बच्चे को भेजने की इच्छा नहीं थी, इसीलिए मैंने गोस्वामीजी को पत्र लिखा था कि वे तुझे अपने साथ पुरी न ले जायँ। शायद इसीलिए वे तुझे अपने साथ नहीं ले गये। मेरे कारण तू पुरी नहीं जा सका।"

पास ही किरण के घर का गुमाश्ता खड़ा था। उसने कहा—"नहीं माँ। आपका ख्याल

गलत है। पत्र पाकर खोका बाबू को वापस नहीं किया गया। पत्र तो परसों डाक में छोड़ा है। परसों रात में छोड़ा गया पत्र शायद आज मिलेगा। इधर खोका बाबू तो यहाँ आज आये हैं।"

गुमाश्ता की बातें सुनकर किरण अवाक् रह गये। किरण के लिए पत्र लिखा जा रहा है, यह बात कलकत्ते में बैठे गोस्वामीजी अन्तर्दृष्टि से जान गये थे। सारी बातें समझने के बाद माँ ने कहा— "गोस्वामीजी सर्वज्ञ हैं। मेरा दुःख समझकर उन्होंने तुझे वापस भेज दिया है। ऐसे महापुरुष की जब तुझ पर कृपा है तब तू उन्हींके पास चला जा।"

माँ की बातें सुनकर किरण को संतोष हो गया। अब सवाल यह उत्पन्न हुआ कि जब तक गोस्वामीजी न बुलायें तब तक जाना उचित नहीं है। इसी घुटन में उसके दिन गुजरते जा रहे थे। इस बीच वह ससुराल हो आया, पर पुरी से कोई समाचार नहीं आया। उसने सोचा—शायद गुरुदेव को मेरी याद नहीं आ रही है। बात ठीक भी है। जिनके हजारों शिष्य हैं, उन्हें मेरे जैसे नगण्य की याद कैसे आयेगी। धीरे-धीरे उसकी मानसिक स्थिति खराब हो गयी। अन्त में उसने निश्चय किया कि वह आत्महत्या करेगा।

बाजार से एक रुपये की अफीम खरीद लाया। दूसरे दिन भोर में स्नान करने के बाद गोस्वामीजी के चित्र को माला-फूल से सजाकर पूजा की। दण्डवत करते समय उसने देखा कि चित्र के भीतर से वे मन्द-मन्द मुस्करा रहे हैं। इस दृश्य को देखकर वह पूजा-घर से हट गया। माँ के पास आकर उन्हें प्रणाम करते हुए कहा— "माँ, मैंने जीवन में अनेक अपराध किये हैं। आज मुझे क्षमा कर दो।"

बेटा आज क्यों क्षमा माँग रहा है, इसके पीछे क्या रहस्य है, वह बेचारी कैसे समझ पाती। अगर वह बेटे की आत्महत्या का उद्देश्य जान पातीं तो हँस नहीं सकती थीं। उसने हँसकर कहा— "तुमने मेरे निकट कोई अपराध नहीं किया है। आखिर आज क्यों क्षमा माँग रहा है ? क्या तू अभी पुरी जा रहा है ? जा, मुझे कोई एतराज नहीं है। तू तो उन्हींकी वस्तु है। मेरे पास केवल सुरक्षित है। तेरे लिए मुझे कोई चिन्ता नहीं है।"

इस आश्वासन को सुनकर किरण को आत्मसंतोष हो गया। माँ के कमरे से निकलकर वह बाहर आकर ज्योंही खड़ा हुआ त्योंही पोस्टमैन ने एक तार दिया। तार खोलकर देखा— तार पुरी से आया है। योगजीवन ने लिखा है— "गोस्वामीजी का आदेश है, आप पुरी तत्काल चले आइये।"

इस तार को पढ़ते ही आनन्द से किरण का अन्तर रो पड़ा। अन्तर्यामी गुरुदेव ने शिष्य की व्यथा को जान लिया। मैं उनके चरणों के निकट उपेक्षित नहीं हूँ। उसी दिन वह पुरी रवाना हो गया। यहाँ आने पर बातचीत के सिलसिले में योगजीवन ने कहा कि पुरी आने के कई दिनों बाद पिताजी ने आपको यहाँ आने के लिए, पत्र लिखने को कहा था। मैं यह बात भूल गया। जिस दिन किरण ने आत्महत्या करने का निश्चय किया, उस दिन रात को मुझसे पत्र लिखा या नहीं, यह पूछा गया। मैं भूल गया हूँ कहते ही उन्होंने कहा—"जाओ, अभी अर्जेण्ट तार कर दो।' सबेरे जो तार मिला, वह उसके आगे रात को ही भेजा गया था।"

पुरी-निवासकाल में एक दुर्घटना हो गयी। रात को उन्हें स्वप्नदोष हो गया। वे अत्यन्त

अनुतप्त हो उठे। दूसरे दिन अपने जीवन के सभी दुष्कर्मों का उल्लेख गोस्वामीजी के निकट किया।

गोस्वामीजी ने सहानुभूति प्रकट करते हुए कहा—"तुम्हारा जीवन विफल नहीं है, क्योंकि छठी के दिन तुम्हें स्वयं महादेव ने ग्रहण किया है। तुम महादेव के चिह्नित दास हो। तुम चिन्तित मत हो। तुममें काम-भावना नहीं रहेगी। नित्य त्रिसंध्या करो, समुद्र में स्नान करो और लोकनाथ-जगन्नाथ का दर्शन करो।"

काम-भावना दूर करने का उपाय तथा एक मंत्र गोस्वामीजी ने बता दिया। इस उपाय को 'लता-साधन' कहा जाता है। तंत्र-साहित्य में लता-साधन का उल्लेख है। कहा जाता है कि इस साधन-प्रणाली का विस्तार से उल्लेख है, पर तांत्रिकगण इसका गलत प्रयोग करते हैं। गोस्वामीजी ने कहा—"शास्त्रों में साधन-प्रणाली का उल्लेख नहीं रहता। इसे गुरु-परम्परा से सीखना पड़ता है। तुम तीन साल तक इसकी साधना करो। सब ठीक हो जायगा।"

किरण लगातार तीन साल तक लता-साधन करते रहे। इस अवधि में वे स्त्री से दूर रहते थे। फिर भी उन्हें काम सताता रहा। एक दिन उन्होंने गुरुदेव से रोते हुए कहा—"काम के कारण चित्त अस्थिर हो रहा है, पर किसी भी स्त्री को देखते ही मन में घृणा उत्पन्न होती है। जी चाहता है कि उसका गला दबाकर मार डालूँ।"

उत्तर में गोस्वामीजी ने कहा— "मैं तो कह चुका हूँ कि तुममें आगे चलकर यह भावना नहीं रहेगी। तुमसे मुझे काफी काम लेना है। तुम्हें मैं अपनी इच्छा के अनुसार तैयार कर लूँगा। तुम अपने को मुझ पर छोड़ दो। जाओ, साधना करते रहो, तीन साल बाद तुम एकदम नये आदमी बन जाओगे।"

लता-साधन के पीछे एक गूढ़ कारण था जिसके बारे में गोस्वामीजी जानते थे, इसीलिए उन्होंने इस साधना को तीन साल तक करने की आज्ञा दी थी। इस साधना के जरिये उन्होंने किरण के साधना-पथ को सरल और सुगम बना दिया था। किरण के साधना-जीवन के एक दुर्गम और नीरस अध्याय को उसे बिना जाने वे पार कराते गये थे।

इस साधना के बारे में गोस्वामीजी ने कहा है— "श्वास-प्रश्वास में जब नाम होने लगता है तब भयंकर जलन पैदा होने लगती है। नाम के साथ-साथ यह ज्वाला इतनी तेजी से बढ़ती है कि शरीर के अणु-परमाणु जलने लगते हैं। विंध्याचल में साधना करते समय मेरी भी यही स्थिति हुई थी। बाद में गुरु के आदेश से मुझे ज्वालामुखी जाना पड़ा था तब यह ज्वाला शान्त हुई थी। साधना-जीवन में एक ऐसा अवसर आता है जब इस ज्वाला को भोगना पड़ता है। साधक-भेद के अनुसार इसका बहिःप्रकाश भिन्न-भिन्न हो सकता है। साधना करने के लिए इस यंत्रणा को भोगना ही पड़ेगा। यह यंत्रणा ही अग्नि-परीक्षा है। इसमें जितना जलोगे, उतना ही लाभ है। यह यंत्रणा साधक के हृदय को जला डालती है। प्रकृति तथा संस्कार के अनुसार यह अधिकार करती है।"

आगे आपने कहा—"जब कोई रिपु नष्ट होने लगता है तब वह एकाएक प्रबल हो उठता है, निर्वाण के पूर्व प्रदीप की तरह। उस वक्त रिपु की उत्तेजना में इतनी वृद्धि होती है कि कुछ लोगों में साधन-भजन पर अविश्वास उत्पन्न हो जाता है। यह बहुत ही विषम परिस्थिति होती है। हर वक्त उन्मत्त भाव जाग्रत रहता है। अगर ऐसी स्थिति में गुरुप्रदत्त

नाम बिलकुल त्याग न करे तो साधक सामान्य ढंग से उत्तीर्ण होकर चरम पद प्राप्त कर लेता है ।"

किरण के विद्रोही मन को वशीभूत करने के लिए गोस्वामीजी अक्सर ऐसी घटनाएँ करते थे जिसका अर्थ वह समझ नहीं पाते थे । कभी गोस्वामीजी का प्रसाद पाने के लिए उन्होंने विद्रोह किया था और आगे चलकर उसका निराकरण उन्होंने किया । एक बार अधिक रात गये गोस्वामीजी को ब्राह्मण-भोजन कराने की झक सवार हुई ।

इतनी रात को भक्त ब्राह्मण कहाँ से लाते । इस समस्या का समाधान उन्होंने स्वयं ही किया— "नित्य समुद्र-स्नान, दर्शन और त्रिसंध्या करने के कारण किरण का चेहरा दिव्य हो गया है । वह सत्‌ब्राह्मण है । उसे बुलाकर भोजन कराओ ।"

उसे बुलाया गया तो उसने गोस्वामीजी से कहा— "प्रसाद दीजिए ।"

गोस्वामीजी ने कहा— "ऐसा कैसे हो सकता है ? ब्राह्मण को अपना जूठन कैसे दे सकता हूँ ?"

भोजन के बाद किरण जब अपना जूठन साफ करने को तैयार हुआ तब गोस्वामीजी ने कहा— "तुम ब्राह्मण हो, तुम्हें भोजन कराया है । तुमसे जूठन साफ नहीं करा सकता ।" इसके बाद वहाँ खड़े एक शिष्य से जूठन साफ कराया गया ।

दरअसल गुरु इन्हीं प्रक्रियाओं से शनैः-शनैः योग्य शिष्य को वशीभूत करके तैयार करते हैं । आधार समझकर उसे साधन देते हैं । जो जितने के योग्य होता है, उसे उतना ही दिया जाता है । बहुत कम लोग सब कुछ प्राप्त कर पाते हैं । किरण की साधना और घटनाओं से स्पष्ट है कि गोस्वामीजी उसके जीवन को किस प्रकार उन्नतिशील बनाते जा रहे हैं । कुछ शिष्य ऐसे भी होते हैं जो दस-बारह वर्ष तक सेवा करते रहने पर भी कुछ नहीं पाते । कुछ इतनी तेजी से तरक्की करते हैं जिनके लिए गुरु को लगाम कसना पड़ता है । किरण ऐसे ही शिष्यों में था ।

सन् १८६६ ई० के आषाढ़ मास में किरण को स्वप्न में जगन्नाथ भगवान् के दर्शन हुए । गोस्वामीजी से चर्चा करने पर उन्होंने कहा— "दर्शन दो प्रकार के होते हैं । मुक्तावस्था का दर्शन तथा मुक्तिमार्ग की ओर ले जानेवाला दर्शन । इससे साधक का उत्साह बढ़ता है । राह चलते समय भगवान् कृपा करके जो दर्शन देते हैं, उसे दर्शन कहते हैं । मुक्तावस्था का जो दर्शन होता है, वह आमतौर पर साधक की इच्छा से होता है, इसलिए इसे प्राप्ति कहा जाता है । साधक-जीवन में दर्शन साधन-मार्ग में चलने के लिए सुगम बनाता है । हम ठीक मार्ग पर बढ़ रहे हैं या नहीं, इसकी जानकारी इसीसे मिलती है ।"

किरण का जन्म सन् १८७६ ई० १६ श्रावण झूलन पूर्णिमा के दिन हुआ था । सन् १८६६ की पूर्णिमा के दिन जब वे जगन्नाथ मंदिर दर्शन करने गये तब दर्शन करते हुए वे विमला माई के मंदिर में आये । उन्होंने देखा कि विमला माई के आसन पर योगमाया देवी विराजमान हैं । वे दौड़कर पास गये और मूर्ति के चरणों को पकड़ लिया । मंदिर के सभी पण्डे नाराज होकर शोरगुल मचाते हुए आये । मंदिर के विग्रह को छूने के कारण उसे वे लोग मारने को तैयार हुए । लेकिन तभी उन्हें ज्ञात हुआ कि यह बालक जटिया बाबा के आश्रम

का है, इसलिए उसकी पिटाई नहीं हुई। विग्रह का नये सिरे से अभिषेक करने के निमित्त सवा रुपये जुर्माना देना पड़ा।

सारी बातें सुनकर गोस्वामीजी ने अप्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा—"इतना अस्थिर होना ठीक नहीं है। अब आगे से तुम किसी मंदिर में मत जाना।"

इसी दौरान एक दिन अर्द्धरात्रि के समय किरण को लगा जैसे कोई उनका गला कसकर दबा रहा है। जोर लगाकर वे उठ बैठे। पास ही गोस्वामीजी सो रहे थे। उनसे सारी घटना बताने पर उन्होंने कहा—"पाप पुरुष ने तुम पर आक्रमण किया था। पाप पुरुष जब यह देखता है कि यह व्यक्ति मेरे हाथ से निकला जा रहा है तब वह ऐसा करता है। तुम्हारी लता-साधन, समुद्र-स्नान, त्रिसंध्या, नित्य लोकनाथ और जगन्नाथ देव-दर्शन— इनके कारण पाप तुममें ठहर नहीं पा रहा है। डरने की कोई बात नहीं।"

पाप पुरुष आक्रमण कर सकता है, इस बात को गोस्वामीजी जानते थे, इसीलिए किरण को हमेशा अपने साथ रखते हुए त्रिसंध्या, दर्शन आदि कराते रहे। इस घटना के बाद किरण का साधन-भजन निर्विघ्न रूप से होने लगा।

सन् १६०० ई० में गोस्वामीजी का तिरोधान पुरी में हो जाने के कारण किरण वहाँ से वापस आ गये। काशी जाकर श्री विजयकृष्ण मठ में उन्होंने अपने सद्‌गुरु की प्रतिष्ठापना की।

सन् १६०१ में उनके जीवन में एक विचित्र घटना हुई। नित्य स्नान करने के बाद वे अलगनी पर कपड़े सूखने के लिए टाँग देते थे। उन्हें यह कतई पसन्द नहीं था कि कोई उनके कपड़ों का प्रयोग करे। इधर जिसकी इच्छा होती, वही उनके कपड़ों का उपयोग कर लेता था। सरोजबाला को इसके लिए हिदायत देने पर भी कार्याधिक्य के कारण वह उनके कपड़ों को ठीक से नहीं रख पाती थीं।

फलस्वरूप एक दिन क्रोध में आकर उन्होंने एक घूँसा सरोजबाला की पीठ पर मार दिया। बाद में चैतन्य होने पर वे अफसोस करने लगे। रात को स्वप्न में उन्होंने देखा कि गोस्वामीजी कह रहे हैं— "आज से तेरी लक्ष्मी अन्तर्धान हो गयी।"

तभी नींद खुल गयी और वे देर तक रोते रहे। पुनः सो गये। थोड़ी देर बाद उनके स्वप्न में योगमाया देवी आयीं और उसे गोद में लेकर बोलीं—"डरने की बात नहीं है। क्रोध में आकर उन्होंने ऐसा कहा है। तुम निश्चिन्त रहो। तुम्हारा और सरोज का जीवन सार्थक होगा।"

ज्ञातव्य है कि बंग-भंग-आन्दोलन का सबसे जबरदस्त प्रभाव बरिशाल जिले में पड़ा था। किरण ने किसी भी राजनीतिक पार्टी में न रहते हुए भी इस आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया था। काशी में बंगाली टोला कांग्रेस कमेटी के वे अध्यक्ष थे। कांग्रेस नेता अश्विनीकुमार दत्त और गुरुभाई मनोरंजन गुहठाकुरता के साथ बराबर सहयोग करते रहे।

अपने घर आकर वे जमींदारी का काम सम्हालने लगे। एक दिन आफिस में थककर वे कुर्सी पर माथा टेककर आराम कर रहे थे कि कमरे में सहसा गोस्वामीजी प्रकट हुए। गुरुदेव को देखकर वे चकित रह गये। तभी गोस्वामीजी ने कहा—"अब यह स्थान छोड़ दो।"

"क्यों ?"

"पानी जब एक जगह रुक जाता है तब गन्दा हो जाता है। एक ही जगह साधक को नहीं रहना चाहिए।"

"तब यह सब जमीन-जायदाद ?"

"इन्हें बेच दो। न बिके तो दान कर दो।"

किरण ने पूछा— "क्या तुरत ?"

गोस्वामीजी ने कहा— "नहीं, सब ठीक-ठाक करके जाना।"

यह आज्ञा सुनकर किरण ने गुरुदेव को प्रणाम किया। तब तक वे अन्तर्धान हो गये थे। रात साढ़े-आठ बजे नौकर भोजन के लिए बुलाने आया तो देखा— बाबू बेहोश हैं। तुरत भीतर जाकर सरोजबाला को सूचना दी गयी। वे आयीं और सिर पर पानी उड़ेलने के बाद हवा करने लगीं। होश में आने के बाद उन्हें जमीन-जायदाद से अनासक्ति हो गयी।

सन् १६१३ में किरणचन्द्र ने निश्चय किया कि अब घर-गृहस्थी छोड़कर संन्यास ले लिया जाय। इस निश्चय के बाद वे वाराणसी आये और हरिहरानन्द सरस्वती से उन्होंने संन्यास लिया। किरणचन्द्र का नाम हुआ— कैशोरानन्द सरस्वती।

संन्यास-ग्रहण करने के पहले किरणचन्द्र स्त्री-संग तथा अर्थोपार्जन छोड़ चुके थे। पत्नी से उन्होंने कहा— "तुमने मुझे कभी कष्ट नहीं दिया जबकि मैं कभी-कभी देता था। तुम इसके लिए मुझे क्षमा कर दो। जिस दिन मैंने अनुभव किया कि माताजी के अंश से तुम्हारा जन्म हुआ है, उस दिन से तुम्हारे साथ पत्नी की तरह व्यवहार नहीं किया। यह बात तुम अच्छी तरह जानती हो।"

संन्यास लेने के बाद उन्हें अपना नाम बिलकुल पसन्द नहीं आया। गोस्वामीजी हमेशा उसे 'किरण' कहकर पुकारते थे। फिर नाम के साथ सरस्वती उपाधि और भी विचित्र थी। एक बार यात्रा पर निकले और आगरा आये। आगरे का किला देखने के लिए प्रवेश-पत्र खरीदना पड़ता था। टिकट घर के पास जाते ही टिकट बेचनेवाले ने कहा—"आओ दरवेश, टिकट लो।"

दरवेश संबोधन से वे चौंक उठे। आमतौर पर साधु को स्वामीजी या बाबाजी कहकर लोग पुकारते हैं, पर यह तो परिचित नाम है। एक बार गोस्वामीजी ने भी किरण को 'दरवेश' कहा था। आगरा किला के दरवाजे के पास खड़े-खड़े किरण ने निश्चय किया कि आज से यही नाम ग्रहण करूँगा।

'दरवेश' नाम धारण करने के बाद गुरु की आज्ञा से भक्तों को साधन देने लगे। विमलचन्द्र भट्टाचार्य मुँह खोलकर एक दिन बोले— "क्या मुझे साधन नहीं मिलेगा ?"

दरवेशजी बोले— "मिलेगा।"

"कहाँ ?"

दरवेशजी ने कहा— "यहीं।"

विमलचन्द्र ने पूछा— "कब ?"

"आज और अभी।"

तुरत आनन-फानन में सारी व्यवस्था हो गयी। विमलचन्द्र की पत्नी को लोग बुलाने गये। वे भोजन करके स्नान करने जा रही थीं। वे आयीं तो बोलीं— "मैं तो भात खा चुकी हूँ। फिर कैसे दीक्षा होगी ?"

दरवेशजी ने कहा— "इससे क्या हुआ ? भात खा लेने के बाद मेरी भी दीक्षा हुई थी। गोस्वामीजी के यहाँ जब मैं पहुँचा तब कई दिनों का भूखा था। मेरे लिए चटपट खाने का इंतजाम हुआ। उसी रात को मुझे दीक्षा दी गयी। आज तुम लोगों को दीक्षा देने का समय आ गया है।"

इसी प्रकार तिलक नामक शिष्य के साथ घटना हुई थी। तिलक जब आश्रम में पहुँचा तब दिन चढ़ गया था। लोग चाय पी चुके थे। तिलक को देखते ही एक शिष्य ने कहा— "जल्दी से हाथ-मुँह धो लीजिए। दरवेशजी ने आपके लिए दूध रख देने को कहा है। मैं चाय बना दे रहा हूँ।"

अभी साधन में देर थी। तिलक कम पढ़ा-लिखा है। होमियोपैथी इलाज करता है, इसलिए दरवेशजी उसे डॉक्टर कहते हैं। केवल संबोधन ही नहीं, 'भारतीय भैषजावली' एक पुस्तक भी दी थी। इस पुस्तक के आधार पर तिलक रोगियों को दवा देता और वे अच्छे हो जाते थे। उसे समझते देर नहीं लगी कि मैं कठिन-से-कठिन रोगियों को दवा देता हूँ और वे अच्छे हो जाते हैं, इसमें मेरी कारसाजी नहीं है। जरूर गुरुदेव की कृपा है। इस बात को जाँचने के लिए वह अपने रोगियों को केवल शुद्ध पानी देने लगा। आश्चर्य की बात यह रही कि केवल पानी से वे अच्छे होने लगे। अब वह बेफिक्र होकर इलाज करने लगा।

दीक्षा चाहने पर नहीं मिलती और न चाहने पर मिल जाती है। उदाहरण के लिए अन्नदा बनर्जी को लीजिए। आप दरवेशजी के शिष्य कैसे बने ? सम्पन्न परिवार के होने के कारण हमेशा ठाट-बाट से रहते हैं। इनकी पत्नी लावण्य भी सम्पन्न घराने की लड़की थी। लावण्य के परिवार का कोई दरवेशजी का शिष्य था। अन्नदा बनर्जी को ईश्वर के प्रति कोई दिलचस्पी नहीं थी।

एक बार आप ससुराल गये तो वहाँ के लोगों के साथ काशी आये। लावण्य के ताऊ शैलजाकुमार चटर्जी गोस्वामीजी के शिष्य थे। काशी आकर उन्होंने अपने गुरुभाई दरवेश की खोज की। ताऊजी के साथ लावण्य भी दरवेशजी के पास गयी थी। बातचीत के सिलसिले में उसने दीक्षा के लिए प्रार्थना की।

दरवेशजी ने कहा— "आप अपने पति को साथ लेकर आइयेगा। नवमी के दिन दीक्षा दूँगा।"

डेरे पर आकर जब अन्नदा से लावण्य ने दीक्षा की चर्चा की तो वे बिगड़ गये। ताऊजी के अनुरोध पर भी राजी नहीं हुए। उन्होंने कहा—"मैं इन सब पर विश्वास नहीं करता। लावण्य चाहे तो ले सकती है। इस पर मुझे कोई आपत्ति नहीं है। अष्टमी के दिन के लिए दरवेशजी के यहाँ से पूरे परिवार को निमंत्रित किया गया। अन्नदा आश्रम में नहीं गये। घरेलू नौकर से पूरी, रबड़ी मँगवाया। महाष्टमी के दिन अन्न खाने की प्रथा नहीं है।

दोपहर को नौकर ने आकर कहा कि कोई फकीर आया है। अन्नदा ने साधु समझकर उसे कुछ पैसे देकर बिदा करने की आज्ञा दी। नौकर ने कहा कि वे भीख नहीं चाहते।

आपको नीचे बुला रहे हैं। नीचे आने पर फकीर ने कहा—"लोग मुझे दरवेश कहते हैं। आप ठहरे दामाद। आपको निमंत्रण देने के लिए मुझे आना चाहिए था। इस वक्त मैं आपको अपने साथ ले जाने के लिए आया हूँ।"

अन्नदा ने कहा—"निमंत्रण-प्रथा से मैं नाराज नहीं हूँ। हमारे यहाँ महाष्टमी के दिन अन्न नहीं खाना चाहिए, इसलिए आश्रम नहीं गया।"

दरवेशजी ने कहा— "आश्रम में खिचड़ी और पूरी दोनों प्रकार के भोग दिये गये हैं। आप अपने इच्छानुसार भोग ग्रहण कर सकते हैं।"

अन्नदा ने अनुभव किया कि दरवेशजी बिना साथ लिये टलनेवाले नहीं हैं तब वे तैयार होकर चल पड़े। उन्होंने सोचा—"काशी की गलियों में कहीं दन से वे खिसक जायँगे। इधर इनके मन की भावना को साधु ने भाँप लिया। उन्होंने कहा— "मैं बहुत तेज चलता हूँ। आप मेरे आगे-आगे चलिये। मैं पीछे से मार्ग बताता चलूँगा।"

दरवेशजी को बहलाना कठिन है जानकर अन्नदा चुपचाप आश्रम में आ गये। उस दिन केवल अन्नदा के परिवार के लोग ही नहीं, बल्कि अनेक अन्य साधु-महात्मा भी निमंत्रित थे। दरवेशजी हाथ-मुँह धोकर साधुओं की जमात में अपने आसन पर बैठे। उस वक्त उनका रूप देखकर अन्नदा की आँखों में आँसू आ गये। लगा जैसे भावविभोर हो गये हैं। बार-बार वे अपने आँसुओं को पोंछते रहे।

प्रसाद-ग्रहण के वक्त दरवेशजी ने उन्हें अपनी बगल में बैठाया ताकि उन्हें उनकी रुचि के अनुसार भोजन परोसा जा सके। भोजन के पश्चात् वे घर चले आये। घर आकर सोचने लगे कि ऐसे व्यक्ति से दीक्षा लेने पर वे भेड़ा बन जायँगे। ऐसी गलती वे कदापि नहीं करेंगे। इनके इस निश्चय को सुनकर लावण्य रातभर रोती रही।

अन्नदा इस स्थिति के लिए तैयार नहीं थे। समझौता करते हुए बोले—"ठीक है। दीक्षा ले लूँगा।"

दीक्षा देने के बाद दरवेशजी ने कहा—"अब आपको अपनी पत्नी से छः माह तक अलग रहना पड़ेगा।"

इस आज्ञा को मानकर वे अपने घर चले आये। साधना में उनकी एकाग्रता बढ़ने लगी। एक दिन आफिस में काम करते समय उनका मन बेहद चंचल हो उठा। काम में मन नहीं लगा। घर आकर आसन पर बैठे और जप करने लगे। अचानक उन्हें लगा जैसे कोई उनके कानों में कह रहा है—"तेरी पत्नी नहीं है। तेरी पत्नी नहीं है।"

इस आवाज को सुनते ही वे काँप उठे। आँखें खोलने पर देखा—कमरे का दीपक बुझ गया है। रात को बिना कुछ खाये वे सो गये।

दूसरे दिन सुबह एक आदमी आकर समाचार दे गया कि अगले दिन दोपहर को सामान्य बीमारी में लावण्य की मौत हो गयी है। अन्नदा उदास हो गये। दरवेशजी को पत्र लिखने पर वहाँ से उत्तर आया—"यह कच्चा घाव है। इन दिनों तुम्हें कुछ भी अच्छा नहीं लगेगा। कुछ दिनों के लिए मेरे पास आकर रहो।"

इस आदेश को पाते ही अन्नदा सब कुछ छोड़कर काशी चले गये।

अपने शरीरान्त के बाद भी उच्चकोटि के योगी कभी-कभी भक्तों को न केवल दर्शन देते हैं, बल्कि समस्या को सुलझा देते हैं, मुसीबतों से छुटकारा दिला देते हैं और दूसरों को सहायता देने का आदेश भी देते हैं।

नारायणदासजी ने साधन लेते समय देखा कि आसन पर गोस्वामीजी बैठे हैं। यह देखकर उन्हें मूर्च्छा आ गयी। केवल यही नहीं, दो बार उन्होंने आदेश भी दिया था। वही गुरु गंभीर कंठस्वर था।

बात उन दिनों की है जब कलकत्ता में वे दवाखाना चलाते थे। उन दिनों दरवेशजी 'श्री श्री विजयकृष्ण लीलामृत' नामक पुस्तक प्रकाशित कराने के लिए कलकत्ता आये हुए थे। तीसरे पहर नारायणदासजी ने निश्चय किया कि आज दरवेशजी के डेरे पर दर्शन करना चाहिए। अपनी दिनभर की आमदनी, खर्च काटने के बाद एक बक्स में रख देते थे। दूसरे दिन बैंक में जमा करते थे।

उस दिन दरवेशजी के यहाँ जाने के पहले उन्होंने कैशबाक्स खोलकर देखा कि दो सौ रुपये इकट्ठे हो गये हैं। कल इसे बैंक में जमा कर दूँगा। ज्योंही मन में यह विचार आया त्योंही उन्हें स्पष्ट आदेश मिला— "इसमें से एक सौ रुपये दरवेशजी को दे दो। अच्छा होगा। पुस्तक प्रकाशित करने के लिए उसे रुपयों की सख्त जरूरत है।" इस कंठस्वर को सुनते ही नारायणदासजी समझ गये कि यह आदेश गोस्वामीजी का है।

वे रुपये लेकर दरवेशजी के पास पहुँचे। नारायणदासजी अक्सर रुपये देते हैं, पर आज उन्हें एक सौ रुपये देते देख दरवेशजी ने पूछा—"आज इतने रुपये ?"

नारायणदासजी ने कहा—"पुस्तक प्रकाशित कराने के लिए। गोस्वामीजी से यही आदेश प्राप्त हुआ है।"

यह बात सुनकर दरवेशजी की आँखें छलछला आयीं। बोले—"मेरे लिए गोस्वामीजी ने भीख माँगना आरंभ कर दिया।"

सन् १६०१ की घटना है। किरणचन्द्र अपने गाँववाले मकान में गोस्वामीजी का जन्मोत्सव मना रहे थे। निमंत्रण पाकर दूर-दूर से अनेक शिष्य और भक्त आये थे। झूलन पूर्णिमा के दिन अष्ट प्रहर कीर्त्तन हुआ। गोस्वामीजी के चित्र के सामने भोग दिया गया। तब तक किरणचन्द्र को यह विश्वास नहीं था कि गोस्वामीजी प्रत्यक्ष रूप से भोग ग्रहण करते हैं, क्योंकि अब तक चित्र के सामने सरोजबाला ही भोग देती थी।

इसके पूर्व पूजा-गृह में पैरों की छाप, भोग में अँगुलियों के निशान, भोग में कमी आदि देखने पर भी उन्हें कभी विश्वास नहीं हुआ था। सोचते थे कि किसी व्यक्ति ने बदमाशी की है। गोस्वामीजी का तो तिरोधान हो गया है।

आज जब भोग निवेदन करने बैठे तब कमरे के दरवाजे को बन्द करके बैठे ताकि कोई बाहरी व्यक्ति भीतर न जा सके। इसके बाद दरवाजे से सटकर बाहर बैठे और नाम जपने लगे।

थोड़ी ही देर बाद उन्होंने स्पष्ट रूप से आवाज सुनी— "किरण।"

चौंककर उन्होंने आँखें खोलीं। शरीर में रहते समय गोस्वामीजी इसी तरह आवाज

देकर किरण को बुलाते थे। कहीं मेरे मन का भ्रम तो नहीं है ? यह विचार मन में आते ही उन्होंने पुनः सुना— "किरण !"

इस आवाज को सुनते ही दरवाजे को खोलकर वे पूजाघर के भीतर आये। उन्होंने देखा—गोस्वामीजी भोजन कर चुके हैं। थाली में कुछ अवशिष्ट है। किरण के भीतर आते ही उन्होंने इशारे से कहा कि मेरा हाथ धुला दो। आचमन का पानी एक ओर रखा था। किरणचन्द्र उस पात्र को उठाकर पानी गिराने लगे। बस, इतना उन्हें होश था।

कमरे के बाहर बैठे अनेक लोग किरण के वापस आने का इंतजार करते रहे। अनंत में सरोजबाला भीतर गयीं तो चीख उठीं। इस चीख को सुनकर कई व्यक्ति भीतर गये। किरण बेहोश पड़ा था। मुँह पर पानी के छींटे पड़ने के कुछ ही क्षण बाद वे होश में आये।

झटके से उठ बैठे और देखा—गोस्वामीजी अन्तर्हित हो गये हैं। अभी कुछ देर पहले जिन पात्रों को खाली देखा था, अब उन पर खाद्य पदार्थ मौजूद है। उन्होंने कमरे में उपस्थित लोगों से व्याकुल होकर पूछा—"आप लोगों ने कुछ देखा या नहीं ?"

सरोजबाला, किरण की भतीजी, ललित मोहन और यज्ञेश्वर सेन ने गोस्वामीजी को आसन पर बैठे देखा था। बाद में जो लोग कमरे में आये, उन लोगों को कोई चमत्कार दिखाई नहीं दिया।

इस बात पर कोई संदेह नहीं कि प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी के अगणित शिष्यों में दरवेशजी अन्यतम रहे। उन्होंने अपने गुरु की परम्परा को आगे बढ़ाया। काशी में उनके नाम पर स्थापित मठ में, सन् १६४७ ई०, आषाढ़ मास में रात ११ बजकर ४५ मिनट पर उन्होंने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया। आज भी उनके अगणित शिष्य तथा भक्त गोस्वामीजी के साथ-साथ उनका दर्शन यदाकदा करते रहते हैं।

●

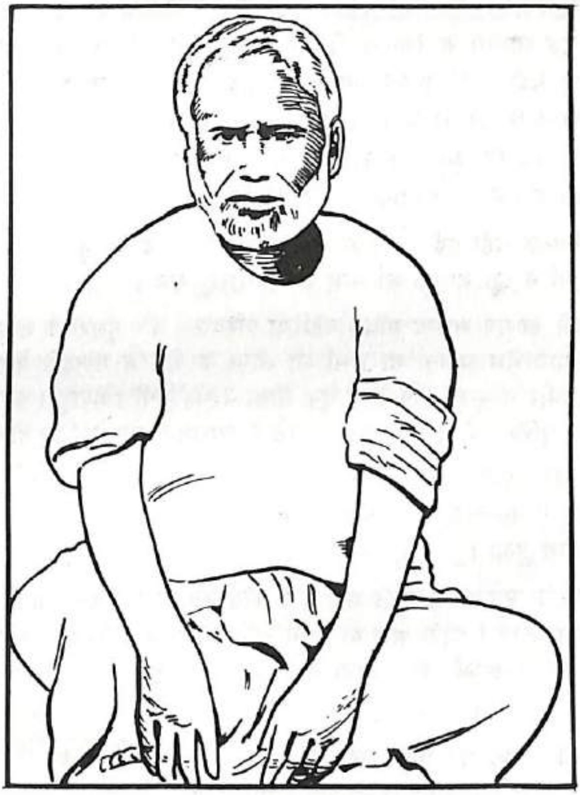

स्वामी अद्भुतानन्द

(लाटू महाराज)

स्वामी अद्भुतानन्द

(लाटू महाराज)

एकमात्र पुत्र शीतला का शिकार हो गया। संपूर्ण शरीर में चेचक के दाने उभर आये। हालत नाजुक हो गयी। माँ अपनी संतान को गोद में लेकर गाँव में स्थित राम-मंदिर में गयी। उसे विश्वास था कि भगवान् राम अवश्य कृपा करेंगे। वह विग्रह के सामने प्रार्थना करने लगी—"हे भगवान्, मेरे बच्चे को बचा ले। यही एकमात्र सहारा है, आँखों का तारा है। इसे ठीक कर दे। मैं नित्य आकर दर्शन करूँगी।"

प्रार्थना निष्फल नहीं हुई। बालक बच गया। रामचन्द्र की कृपा से उसे नया जीवन मिला, इसलिए माँ ने इस बालक का नाम रखा—राख्तू राम।

छपरा जिले का एक नगण्य गाँव। गड़ेरिया परिवार। बाप दूसरों के खेत में काम करता और लोगों की गाय-भैंस चराता था। माँ भी लोगों के खेत में मजदूरी करती थी। अपने पास न खेत था और न कुआँ। ले-देकर एक सामान्य मँड़ई थी। मजदूरी इतनी कम मिलती थी कि दोनों जून मुश्किल से पेट भरता था। बच्चे के लालन-पालन के लिए दोनों को अतिरिक्त श्रम मजबूरन करना पड़ता था। अधिक श्रम करने के कारण माँ तथा पिता दोनों ही चल बसे। बच्चे को न माँ का स्नेह मिला और न बाप का प्यार। उन दिनों उसकी उम्र पाँच साल थी जब वह अनाथ हुआ।

गाँव में उसके सगे चाचा रहते थे। उन्हें कोई संतान नहीं थी। अपने अनाथ भतीजे को उन्होंने अपना लिया। इनके पास थोड़ी-सी जमीन थी, खाते-कमाते व्यक्ति थे। राख्तू के पिता से इनकी स्थिति अच्छी थी। चाचा के निर्देशानुसार राख्तू लोगों के ढोर चराता और अपने में मगन रहता था।

विधाता को शायद यह मंजूर नहीं था। महाजनों के कर्ज के कारण चाचा की सारी जायदाद कुर्क हो गयी। वे बेसहारा हो गये। बिहार तथा उत्तर प्रदेश के अधिकतर लोग काम की तलाश में कलकत्ता, बम्बई और अहमदाबाद जाते हैं। यही इनके सपनों का संसार है। राख्तू अबोध नहीं था। चाचा क्यों बेघर हो गये, क्यों उनकी जमीन हड़प ली गयी और क्यों हमेशा के लिए गाँव छोड़कर परदेश जा रहें हैं, यह सब समझने में उसे देर नहीं लगी। अपनी मातृभूमि छोड़ते समय उसे भी कष्ट हुआ था। पता नहीं, फिर कब वह यहाँ वापस आयेगा? उसे गाँव की अमराई, तालाब, मंदिर, बँसवाड़ी, पनघट और वे ढोर याद आने लगे जिन्हें वह चराया करता था। इसके साथ अखाड़े के उन दोस्तों की याद आने लगी जिनके साथ कुश्ती और कबड्डी खेला करता था।

कलकत्ता आने पर चाचा को सबसे अधिक राख्तू की चिन्ता सताने लगी। गाँव के काफी लोग शहर में रिक्शा खींचते हैं, चटकल में काम करते हैं और बाबुओं के घर में काम करते हैं। अपने लिए वे कहीं न कहीं इन्तजाम कर लेंगे। सौभाग्य से गाँव के फूलचन्द से मुलाकात हो गयी। वह सिमलापल्ली स्थित रामचन्द्र दत्त बाबू के यहाँ अर्दली है। उसे अपनी समस्या कहने पर उसने कहा—"भइया, राख्तू को मैं अपने मालिक के यहाँ लगा दूँगा, पर काम मन लगाकर करना पड़ेगा। बड़े आदमी का घर है, कहीं कोई बात हो गयी तो राख्तू के साथ-साथ मेरी नौकरी भी खतरे में पड़ जायगी।"

चाचा ने जवाब दिया—"इस ओर से तुम बेफिक्र रहो। मेरा राख्तू बहुत सीधा और भोला है। काम में भले ही कुछ गलती हो जाय, पर मेहनत और ईमानदारी में फर्क नहीं पड़ेगा।"

फूलचन्द के प्रयत्न से राख्तू राम को रामचन्द्र दत्त के यहाँ घरेलू नौकर रख लिया गया। बाजार से सौदा खरीदकर लाना, बच्चों को स्कूल पहुँचाना या घुमाने ले जाना, बाबू का जलपान ले जाना और गृहिणी के आदेश के अनुसार फुटकर काम करना उसके जिम्मे था। अपने श्रम और लगन से वह बहुत जल्द दत्त-परिवार में घुलमिल गया। दत्ता साहब को बाबूजी, उनकी पत्नी को माँ, बच्चों को दादा-दीदी कहने लगा।

बचपन में रामजी की कृपा से जीवनदान मिला तो माँ ने नाम रखा—राख्तू राम। गाँव के हमजोली 'रखतू' कहते थे और दत्ताबाबू के घर में उसका नाम 'लाल्टू' रखा गया। बाद में परमहंस रामकृष्ण ने इस बालक का नाम 'लेटो, नेटो, लाटू' रखा। संन्यास लेने के बाद 'स्वामी अद्‌भुतानन्द' नामकरण हुआ था, क्योंकि स्वभाव और बातचीत में इनका हर काम अद्‌भुत हुआ करता था।

घर के काम से अवकाश पाने पर अपनी आदत के अनुसार वह कसरत करता। नगर में अखाड़े की सुविधा नहीं थी। घर के बच्चे उसे डंड-बैठक करते देख हँस पड़ते थे। एक दिन रामबाबू के एक मित्र ने सुझाव दिया—"पहलवान टाइप नौकर को घरेलू नौकर नहीं रखना चाहिए।" प्रत्युत्तर में रामबाबू ने कहा था—"तुम लोगों को नहीं मालूम, कुश्ती लड़ने से काम-भावना कम हो जाती है। अपने-आप वीर्य-रक्षा होती है।" मित्र ने कहा—"मगर इनकी खुराक असाधारण होती है।" रामबाबू ने कहा—"आप लोग जैसे कमजोर हैं, उसी प्रकार कमजोर नौकर चाहते हैं ताकि उसे भरपेट भोजन न देना पड़े। नौकर है, कोई कुत्ता-बिल्ली नहीं। कुत्ते को भरपेट भोजन दोगे, पर नौकर को नहीं। मालिक-नौकर में यह प्रभेद उचित नहीं है।"

इसी प्रकार दत्ताबाबू के एक मित्र को संदेह हुआ कि राख्तू बाजार से सौदा लाता है, जरूर कुछ चोरी करता है। एक दिन जब वह बाजार से सामान खरीदकर वापस आ रहा था तब उन्होंने पूछा—"क्यों बे लड़के, आज सौदा खरीदने में कितना कमीशन बनाया ?" इस अपवाद को सुनते ही राख्तू राम का खून खौल उठा। स्वाभिमान में चोरी का इल्जाम लगने पर वह असह्य हो उठा। कहा—"बाबू, कान खोलकर सुन लीजिए—मैं नौकर जरूर हूँ, पर नमकहराम नहीं हूँ। आइन्दा ऐसी गंदी बात मत कहियेगा वर्ना वैसा ही जवाब पाइयेगा।"

एक नौकर के मुँह से इतनी कड़वी बात सुनकर वे अपने को रोक नहीं सके। तुरत रामबाबू से शिकायत की। सारी बातें सुनने के बाद रामबाबू ने कहा—"लड़का स्वभाव का जरा गँवार जरूर है, पर चोर नहीं है। उसे जब किसी चीज की जरूरत होती है, तब वह अपनी माँ से माँग लेता है।" मालिक द्वारा नौकर की इस तरह की प्रशंसा आज के युग में दुर्लभ है।[१]

रामचन्द्र दत्त महाशय परमहंस रामकृष्णजी के मंत्र-शिष्य और भक्त थे। प्रत्येक रविवार को वे दक्षिणेश्वर जाकर ठाकुर का दर्शन करते और उपदेश सुनते थे। अक्सर रविवार की रात वहीं ठहर जाते और दूसरे दिन घर वापस आते थे। घर पर जब उनके मित्र आते तब वे ठाकुर के वचनामृतों की चर्चा किया करते थे।

इस चर्चा के दौरान लाटू (राखू) छोटे-मोटे काम के सिलसिले में जब रामबाबू के कमरे में आता तब वह इन बातों को बड़े गौर से सुना करता था। गाँव का भोला बालक लाटू क्रमशः इन वचनामृतों से प्रभावित होता गया। कभी-कभी वह सोचता कि जो साधु बाबा इस तरह की बातें कहते हैं, वे कैसे होंगे ? क्या कभी उनका दर्शन कर पाऊँगा ? खाली समय में वह उन उपदेशों को मन ही मन दुहराता। भावावेश के कारण उसकी आँखें छलछला उठतीं। बार-बार वह अपने गिरते आँसुओं को पोंछता।

उसकी यह दशा घर के लोगों से छिपी नहीं रह सकी। माँ (दत्त-गृहिणी) सोचतीं कि शायद इसे अपने चाचा की याद सता रही है। वह कभी अपने इस भतीजे को देखने भी नहीं आता। वे उसे सांत्वना देतीं। प्यार से सिर सहला देतीं। उन दिनों कोई यह भाँप नहीं सका कि अपने आधार को ठाकुर आकर्षित करने के लिए उसे चंचल कर रहे हैं।

उस साधु बाबा को देखने के लिए लाटू का मन सर्वदा उत्सुक रहने लगा जिसके वचनामृत ने उसके हृदय को मथ डाला है। पता नहीं, यह दक्षिणेश्वर कहाँ है ? अकेले जाना उचित नहीं है। घर के कामों से उसे इतना अवकाश नहीं मिलता कि किसीसे इस बारे में पूछता। उसे केवल इतनी जानकारी है कि प्रत्येक रविवार को बाबू वहाँ जाते हैं।

एक रविवार को बड़े साहस के साथ वह कह बैठा—"बाबू, आज मैं आपके साथ वहाँ जाऊँगा जहाँ आप जा रहे हैं।"

बालसुलभ आग्रह से रामबाबू प्रभावित हुए। भवितव्य सहायक हुआ। उसे अपने साथ लेकर रामबाबू दक्षिणेश्वर आये। यहाँ आने पर उन्होंने देखा कि ठाकुर अपने कमरे में नहीं हैं। लाटू को बरामदे पर खड़ा रहने का आदेश देकर वे ठाकुर को खोजने चले गये। थोड़ी देर बाद वे परमहंसजी के साथ आये। अचानक ठाकुर की नजर लाटू पर पड़ी। बोले—"राम, इस बालक को अपने साथ लाये हो, क्या ? इसमें तो साधु के लक्षण देख रहा हूँ।"

इतना कहने के बाद वे ठाकुर के साथ कमरे के भीतर चले गये। लाटू समझ गया कि यही वह साधु हैं जिन्हें देखने के लिए वह यहाँ आया है। भीतर आकर ठाकुर का पैर छूकर प्रणाम करने के बाद हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। उस समय ठाकुर कह रहे थे—"जो लोग नित्यसिद्ध होते हैं, वे प्रत्येक जन्म में ज्ञान-चैतन्य प्राप्त कर लेते हैं। वे लोग पत्थर से ढके

---

[१] श्री श्री लाटू महाराजेर स्मृति कथा— श्री चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय।

उस फौवारे की तरह होते हैं जो पत्थर हटाने या कहीं दबा देने पर फर्र-फर्र पानी फेंकने लगता है ।"

इतना कहने के बाद ठाकुर ने धीरे से लाटू को छू दिया । इस स्पर्श से लाटू के भीतर का सारा ज्ञान उछल पड़ा । होश-हवास गायब हो गया । आँखों से अविरल गति से आँसू बहने लगा । रामबाबू और ठाकुर दोनों ही यह दृश्य देख रहे थे । लगभग एक घंटे तक यही स्थिति रही तब रामबाबू ने पूछा-- "यह लड़का कब तक रोता रहेगा ?"

यह सुनकर ठाकुर ने पुनः लाटू को स्पर्श किया । तुरत ही वह अपनी दुनिया में वापस आ गया । रामबाबू से ठाकुर ने कहा—"इसे कभी-कभी यहाँ भेजना ।" फिर लाटू की ओर देखते हुए उन्होंने कहा—"कभी-कभी चले आना ।"

इस घटना के कुछ दिनों बाद की बात है । रामबाबू के यहाँ एक समस्या उत्पन्न हुई । उनके यहाँ से कभी-कभी ठाकुर के यहाँ भोग के लिए फल-मिठाई आदि भेजा जाता था । अब आज इसे कौन ले जायगा ? इस समाचार को सुनते ही उसने बड़े उत्साह के साथ कहा—"मुझे दीजिए, मैं पहुँचा आऊँ । मैं बाबू के साथ परमहंस महाशय के यहाँ गया था ।"

उस दिन फल-मिठाई लेकर वह दोपहर को ११ बजे दक्षिणेश्वर पहुँचा । परमहंसजी को देखते ही उसने दूर से प्रणाम किया । बातचीत करते हुए कुटिया में आये । उस दिन मंदिर की आरती देखकर वह प्रसन्न हो गया । दोपहर को मंदिर से ठाकुर परमहंसजी के लिए प्रसाद नित्य आता था । उसे अपनी बगल में बैठाते हुए परमहंसजी ने कहा—"विष्णु-मंदिर में जो भोग चढ़ाया जाता है, वह पूर्ण निरामिष होता है और गंगाजल से बनाया जाता है । अगर तुम्हारी इच्छा हो तो तुम उस भोग को ग्रहण कर सकते हो ।"

ठाकुर के लिए माता के मंदिर से आमिष भोजन आता था । उन्होंने सोचा कि कहीं बिहारी संस्कार के कारण वह आमिष भोग खाना पसन्द न करे । तभी लाटू ने कहा—"मैं यह सब पचड़ा नहीं जानता । आप जो पायेंगे, वही मैं भी खाऊँगा । इसके अलावा और कुछ नहीं खाऊँगा ।"

परमहंसजी अट्टहास करते हुए पास ही बैठे रामलाल दादा से बोले—"साला कितना चालाक है, समझ रहा है ? मैं जो पाऊँगा, साला उसीमें से हिस्सा लेगा ।"

भोजन के पश्चात् उस दिन शाम तक लाटू ठाकुर के आसपास रहा । उसे वापस न जाते देख ठाकुर ने पूछा— "शाम हो रही है, क्या वापस नहीं जायगा ? तेरे पास किराये के पैसे हैं या नहीं ?"

लाटू ने मुँह से कुछ न कहकर जेब में हाथ डालते हुए सिक्के बजाते हुए जताया कि उसके पास पैसे हैं ।

दक्षिणेश्वर से वापस आने के बाद से लाटू में तेजी से परिवर्तन होने लगा । पहले वह चटपट हाथ का काम निपटा देता था । अब उसमें व्यतिक्रम होने लगा । दत्त-परिवार में किंचित् असंतोष उत्पन्न हो गया । रामबाबू चिन्तित हो उठे । ठाकुर के पास जाकर उन्होंने कहा—"आजकल लाटू की स्थिति विचित्र हो गयी है । ठीक से काम नहीं करता । अक्सर आँखें बन्द कर चुपचाप बैठा रहता है । पुकारने पर आवाज नहीं देता । उस वक्त आँखों से

आँसू बहते रहते हैं। क्यों रो रहा है पूछने पर कोई जवाब नहीं देता। उसकी यह हालत देखकर गृहिणी भी चिन्तित हो उठी हैं।"

ठाकुर ने कहा— "यहाँ आने पर ऐसा हो जाता है। वास्तव में उसका मन यहाँ आने को करता है। मौका मिलने पर उसे यहाँ भेज देना।"

गुरुदेव के आज्ञानुसार एक दिन रामबाबू ने उसे दक्षिणेश्वर भेजा। इधर उसी दिन ठाकुर डॉक्टरों के निर्देशानुसार हवा-पानी बदलने के लिए कामारपुकुर जाने की तैयारी कर रहे थे। लाटू यहाँ आते ही बोला— "मैं आपकी सेवा में रहना चाहता हूँ। अब मैं नौकरी नहीं करूँगा।"

लाटू की बातें सुनकर ठाकुर हँस पड़े। बोले—"यहाँ तेरा रहना नहीं हो सकता। मैं आज ही बाहर चला जा रहा हूँ। बीमार हूँ, हवा बदलने जा रहा हूँ। कब लौटूँगा, पता नहीं। तू वापस चला जा। वहाँ मन लगाकर काम कर।"

यह बात सुनकर लाटू उदास हो गया। जब ठाकुर यहाँ नहीं रहेंगे तब अकेला यहाँ क्या करेगा? किसकी सेवा करेगा? परमहंसजी उसके मन की बात समझ गये। बोले— "जिसका नमक खाता है, उसे धोखा नहीं देना चाहिए। मालिक अन्नदाता होता है। इस तरह बिना सूचना दिये नौकरी छोड़ना पाप है। रामबाबू बहुत अच्छा मालिक है। तुम्हारी खुशी के लिए कभी-कभी तुम्हें यहाँ भेज देते हैं। मैं गाँव से वापस आ जाऊँ तब आ जाना।"

आगे चलकर लाटू महाराज ने अपने शिष्यों से कहा था—"देखो, उनकी मुझ पर कितनी कृपा थी। उस दिन गाँव जाने के पहले मुझे कितनी अच्छी बातें सुना गये। मालिक के घर कैसे रहना चाहिए। लेकिन मेरे मन का दुःख दूर नहीं हो रहा था।"

रामबाबू के घर में रहते हुए वह दुःख के दिन व्यतीत करने लगा। अक्सर जब वह अधिक बेचैन हो उठता तब चुपचाप घर के लोगों को बिना बताये दक्षिणेश्वर आकर घाट-किनारे बैठ जाता। यहाँ आने पर भी उसे शान्ति नहीं मिलती। पंचवटी में जाकर अकेला चुपचाप बैठा रहता। मंदिर-दर्शन के लिए जो लोग आते थे, उनमें से तथा स्थानीय लोग उसे इस तरह बैठा देखकर सोचते कि शायद रामबाबू ने डाँटा-फटकारा होगा। इसीलिए यहाँ चला आया है।

यहाँ आने पर रामलाल दादा उसका ध्यान रखते थे। एक दिन जब उसे प्रसाद देने गये तो देखा कि गंगा की ओर मुँह करके वह न जाने किसे प्रणाम कर रहा है। अचानक पीछे मुड़ते ही रामलाल दादा को देखकर उसने पूछा—"परमहंस महाशय कहाँ गये?"

रामलाल दादा अवाक् रह गये। लाटू ने कहा—"परमहंस महाशय यहीं हैं। वे गाँव नहीं गये हैं।" रामलाल दादा उसे समझाते कि वे गाँव गये हैं, पर वह नहीं मानता था।

इधर रामबाबू ने गौर किया कि उनके लाटू में तेजी से परिवर्तन हो रहा है। अब वह आज्ञाकारी सेवक नहीं है। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि ठाकुर के आकर्षण में यह बालक आ गया है। उन्होंने घर के लोगों को समझा दिया कि इससे अधिक छेड़छाड़ न की जाय। अपने मन से जो काम करे, करने दिया जाय। पत्नी जरा असंतुष्ट हुई, पर पति की आज्ञा का पालन करती रही। रामबाबू स्वयं ठाकुर के भक्त थे। ठाकुर को साधु नहीं, भगवान् समझते थे। घर के कामकाज के लिए रामबाबू ने एक नया नौकर रखा। जब घर में कोई

आयोजन होता तब काम का बोझ बढ़ जाने पर लाटू सारा काम करता था। इसी प्रकार दिन गुजर रहे थे कि अचानक रामबाबू के यहाँ नित्यगोपाल अवधूत बीमार हालत में आये। रामबाबू ने लाटू से कहा— "आज से बाबाजी की सेवा तुम करोगे।"

लाटू को मनपसन्द काम मिल गया। अवधूतजी ऊँचे दर्जे के साधक थे। बीमारी की हालत में भी उन्हें बराबर समाधि लग जाती थी। उस समय लाटू को नाम सुनाना पड़ता था। अवधूतजी की सेवा के साथ-साथ निरन्तर नाम (जप) करने की प्रवृत्ति लाटू में उत्पन्न हो गयी। लगातार चार माह तक उनकी सेवा में लगे रहने पर लाटू को चैतन्य महाप्रभु के बारे में जानकारी प्राप्त हो गयी। उन दिनों रामबाबू नित्य 'चैतन्य-चरितामृत' पढ़कर अवधूतजी को सुनाया करते थे।

आठ माह बाद परमहंसजी दक्षिणेश्वर वापस आये तब एक दिन लाटू वहाँ पहुँचा। उसे आया देखकर ठाकुर प्रसन्न हो गये। उन्होंने लाटू से कहा—"आज तुम यहीं ठहर जाओ। वापस जाने की जरूरत नहीं है।"

अंधे को क्या चाहिए—दो आँखें। लाटू यही चाहता था। यहाँ रुक जाने के कारण उसके जीवन की दिशा बदल गयी। उस दिन वहाँ केदारनाथ चट्टोपाध्याय नामक एक भक्त मौजूद थे। लाटू ठाकुर का पैर दबा रहा था। सहसा ठाकुर ने पूछा—"नींद आ रही है?"

"जी नहीं।"

"डर लग रहा है?"

"जी नहीं।"

"तब तुझे क्या हो गया है? ऐसा क्यों कर रहा है?"

इस प्रश्न का जवाब लाटू ने नहीं दिया। थोड़ी देर बाद उसकी आँखों से आँसू बहने लगे। यह देखकर ठाकुर ने केदारनाथ से कहा—"देखो तो, यह लड़का केवल रो रहा है। कुछ बोलता नहीं है।"

केदार बाबू ने कहा—"यह तो आपकी लीला है। आपने इस बालक में शक्ति-संचार किया है, इसलिए यह जम गया है।"

दूसरे दिन सबेरा हुआ, दोपहर हुआ, पर वह उसी प्रकार समाधिस्थ भाव में बैठा रहा। जब मंदिर में भोग की घंटी बजी तब ठाकुर ने पुकारा—"अरे लाटू, कब तक इस तरह बैठा रहेगा? नहायेगा-खायेगा नहीं?"

इस आवाज को सुनते ही उसकी चेतना लौट आयी। वह उठकर मंदिर में जाकर दर्शन करने के पश्चात् स्नान करने लगा। इस बार वह यहाँ लगातार तीन दिनों तक उपस्थित था। ठाकुर उसके मानसिक स्तर को सामान्य बनाने के लिए बराबर नाना प्रकार के कार्यों में व्यस्त रखते रहे।

ठाकुर ने गौर किया कि लाटू वापस जाने का नाम नहीं ले रहा है। कई बार समझाने पर भी उसने अस्वीकार कर दिया। ठाकुर ने कहा—"तेरे लिए वे लोग बहुत परेशान हैं।"

"मेरे यहाँ रहने पर मालिक गुस्सा नहीं करेंगे। घर के कामों के लिए एक नया नौकर उन लोगों ने रख लिया है।"

ठाकुर ने कहा—"तू कैसा लड़का है। राम का पैसा खाकर यहाँ रहेगा। ऐसा नहीं करना चाहिए। जिससे वेतन लेता है, उसका काम करना चाहिए। एक का पैसा खायेगा और दूसरे की हाजिरी बजायेगा, ऐसा कभी नहीं सुना।"

ठाकुर और लाटू में इन्हीं बातों की चर्चा हो रही थी, तभी रामबाबू सपत्नीक वहाँ हाजिर हो गये। उन्हें लाटू की जिद ज्ञात हो गयी। ठाकुर ने कहा—"अजी राम, देखो तो लड़के को क्या हो गया है। यह तुम्हारे यहाँ जाना नहीं चाहता। कितना समझाया, पर मानता नहीं है। हो सके तो तुम समझाओ।"

ठाकुर की बातों से भक्त रामबाबू को यह समझते देर नहीं लगी कि लाटू पर इनकी कृपा हो गयी है। कृत्रिम क्रोध के साथ उन्होंने पूछा—"क्यों रे, यहाँ क्यों पड़ा है ? घर नहीं चलेगा ?"

लाटू चुप रहा। बाद में उन्होंने ठाकुर से कहा—"स्नेह देकर आपने इसे सिर चढ़ा लिया है, अब क्यों मुझे परेशान कर रहे हैं ?"

इसी प्रकार की बातें होती रहीं। दत्त-गृहिणी के मनाने पर वह वापस जाने को राजी हो गया। लेकिन यहाँ आकर भी उसका हृदय ठाकुर के पास जाने के लिए निरन्तर छटपटाता रहा। बात यह है कि उन दिनों ठाकुर कुछ चुने हुए शिष्यों का एक गिरोह बनाने की चिन्ता में थे। भक्त तो अनेक थे, पर उनके मिशन के काम के लिए नवयुवकों की एक ऐसी टोली चाहिए थी जो देश और समाज को नयी दिशा दे सके। इस कार्य के लिए उन्होंने लाटू को परखा जो उनकी कसौटी पर खरा साबित हुआ। इसके बाद स्वामी विवेकानन्द, ब्रह्मानन्द आदि आये। यह सन् १८८० की घटना है।

इसी बीच एक दुर्घटना हो गयी। ठाकुर की देखरेख उनका भांजा हृदयनाथ करता था। उसका मंदिर में काफी रोब था। अपने घमंड में आकर उसने एक ऐसी हरकत की जिसके कारण मंदिर का निर्माण करानेवाली रानी रासमणि के दामाद मथुरनाथ ने तुरत उसे मंदिर से निकाल दिया। उसका अपराध ऐसा था जिसके प्रतिवाद में ठाकुर भी कुछ कह नहीं सकते थे। वे स्वयं हृदय के अत्याचारों से त्रस्त रहते थे। हृदय के चले जाने के कारण उनकी परेशानियाँ बढ़ गयीं। उन्हें खिलाना, नहलाना और सम्हालना किसीके द्वारा संभव नहीं हो रहा था। अचानक उन्हें लाटू का ख्याल आया। सेवक के रूप में वह बालक सब कुछ कर सकता है। वह यहाँ रहना भी चाहता है। कुछ दिनों बाद जब रामबाबू आये तब ठाकुर ने कहा—"लाटू शुद्ध चित्त का है। भगवत् प्रेमी। उसे हमें दे दो। उसका मन भी तुम्हारे यहाँ नहीं लगता। यहाँ रहेगा तो मेरी सेवा करेगा।"

ठाकुर के अनुरोध को रामबाबू ने शिरोधार्य कर लिया। लाटू हमेशा के लिए दक्षिणेश्वर आ गया। वे नगर में कहीं भी जाते, उसे अपना दरबान बनाकर ले जाते थे। इस प्रकार कलकत्ते के अनेक संभ्रांत परिवारों से उसका परिचय हो गया। इन दिनों के बारे में अपने भक्तों से चर्चा करते हुए उन्होंने कहा था—"मुझे ठाकुर हमेशा बहुत-सी बातें सिखाते थे। दिल साफ रखना। चित्त-शुद्धि करना, सत्य-पवित्र बनो। अपनी छाती दिखाते हुए कहते कि यहाँ काम-कामना घुसने मत देना। अगर कभी परेशानी हो तो नाम लेना। भगवान् को

बुलाना। वे तुम्हें बचा देंगे। अगर इससे भी लाभ न हो तो माँ के मंदिर के पास बैठ जाना या दौड़कर मेरे पास चले आना।''

बातचीत के सिलसिले में उन्होंने कहा—''ठाकुर ने मुझे नशा करना सिखाया था। वह भी मामूली नशा नहीं, राजा नशा, जिसे भगवान् का नशा कहा जाता है। तुम लोग अपने बच्चों को कामिनी-कांचन का नशा सिखाते हो, शराब-जुआ का नशा सिखाते हो, पर वे हमें ब्रह्म का नशा सिखाते रहे। इस नशे के आगे सारा नशा फीका है।''

एक भक्त ने कहा—''हम भी तो इस नशे में आकर भगवान् को पुकारते हैं, पर हमारी पुकार वहाँ तक नहीं पहुँचती।''

लाटू महाराज ने कहा—''जरूर पहुँचती है। तुम लोग रुपया-रुपया-रुपया की पुकार करते हो, इसलिए तुम्हारे पास रुपये आते हैं! जिस दिन तुम्हारी भावना यह हो जायगी कि मुझे रुपया, मान, यश कुछ भी नहीं चाहिए। केवल आप (भगवान्) चाहिए, उस दिन वे जरूर आयेंगे।''

परमहंसजी ने अनुभव किया कि लाटू बिलकुल गँवार है। इसे थोड़ी शिक्षा देनी चाहिए। पहली पोथी मँगाकर वे पहले अ, आ, इ, ई पढ़ाने लगे। इसके बाद जब आगे पढ़ाने लगे तब बड़ी कठिनाई उत्पन्न हुई। वे कहते—''बोल क।'' लाटू कहता—''का।'' कई बार 'का' सुनने के बाद ठाकुर बोले—तब 'का' को क्या कहेगा ?''

लाटू ने बिहारी-संस्कार के अनुसार कहा—'का।'

यह जवाब सुनकर उन्होंने कहा—''अब तुझे पढ़ने की जरूरत नहीं है।''

लाटू की शिक्षा यहीं समाप्त हो गयी। इसका यह अर्थ नहीं कि ठाकुर ने उसे त्याग दिया। वह समर्पित सेवक के रूप में आया था। ठाकुर के प्रति उसे असीम श्रद्धा थी। लाटू उन्हें भगवान् समझता था। यह तब की बात है जब स्वामी विवेकानन्द, स्वामी ब्रह्मानन्द आदि ठाकुर के पास नहीं आये थे। लाटू ज्ञानवान् बने, उसमें विवेक जाग्रत् हो, इसके लिए ठाकुर बराबर प्रयत्न करते रहे। इसके बाद वे तरह-तरह के उपदेश देते थे। धीरे-धीरे लाटू में आध्यात्मिक चेतना जागृत हो गयी। बचपन से लाटू को कुश्ती लड़ने का शौक था। पहलवान स्वभाववाले कुछ अधिक भोजन करते हैं। गाँव का बालक, कसरती शरीर। लाटू भी अधिक भोजन करता था।

एक दिन ठाकुर योगीन महाराज को डाँटते हुए कहने लगे—''भोजन पर ज्यादा ध्यान मत दो। इससे साधना में व्यतिक्रम होता है।''

लाटू आड़ में था। इस चेतावनी को सुनने के बाद से उसने अपने भोजन में कमी कर दी। कुछ दिनों तक उसे इससे काफी कष्ट हुआ। भूख के कारण वह व्याकुल हो उठता था। आगे अपने को योग्य बना लिया। इसी बीच राखाल महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द) से उसकी कुश्ती हो गयी। लाटू राखाल को पटक नहीं पा रहा था। यह दृश्य देखते ही परमहंसजी असली कारण समझ गये। अधिक श्रम और पर्याप्त भोजन न पाने के कारण लाटू कमजोर होता जा रहा है। उन्होंने उससे कहा—''दोनों पर कड़ाई करने पर यही दशा होगी।''

इस घटना के बाद से ठाकुर भोजन के वक्त उसे अपने पास बैठाकर खिलाने लगे। अपने हिस्से का सारा घी उसकी थाली में डाल देते थे। ठाकुर की कृपा को लाटू भाँप गया।

इसके बाद से वह कायदे के अनुसार भोजन करने लगा। कुश्ती के बदले अब केवल कसरत करने लगा।

एक दिन ठाकुर ने राखाल से (जिसे उन्होंने अपना मानसपुत्र बनाया था, जो आगे चलकर रामकृष्ण मठ के प्रथम अध्यक्ष स्वामी ब्रह्मानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए थे।) कहा कि जरा एक पान लगा दे। उसने इनकार कर दिया। ठाकुर ने कई बार कहा और प्रत्येक बार राखाल इनकार करता गया। लाटू को इस आचरण में पिता-पुत्र की झलक नहीं मिली। अपनी व्यावहारिक दृष्टि से उसने कहा—"राखाल बाबू, यह आपका कैसा सलूक है ? आप उनकी बात नहीं सुन रहे हैं। ऊपर से जवाब दे रहे हैं। आपका व्यवहार ठीक नहीं है।"

इतना सुनना था कि बालक राखाल नाराज हो गया। फिर दोनों में झगड़ा शुरू हो गया। राखाल ने कहा—"मुझे पान लगाना नहीं आता। क्या मैं तमोली हूँ ? मैं पान नहीं लगाऊँगा। बड़ा आया है नसीहत देनेवाला।"

दोनों एक दूसरे से दब नहीं रहे थे। श्रद्धा-भक्ति का झगड़ा चल रहा था। इस बाल-सुलभ झगड़े का आनन्द ठाकुर ले रहे थे। अचानक उन्होंने रामलाल को पुकारते हुए कहा—"रामलाल, जल्दी आ। राखाल-लेटो की लड़ाई देख।"

रामलाल के आने पर ठाकुर ने पूछा—"रामलाल, बता तो इनमें कौन अधिक भक्त है ?" रामलाल ठाकुर के मजाक को समझ गये। बोले—"मेरी समझ से राखाल बड़ा भक्त है।"

रामलाल की बातें सुनते ही लाटू क्रोध के साथ बोला—"हाँ, उनकी बात सुना नहीं और वह बन गया बड़ा भक्त।"

लाटू का क्रोध देखकर ठाकुर ने हँसते हुए कहा—"तुमने ठीक कहा रामलाल। राखाल की भक्ति अधिक है। देखो, राखाल कैसा हँस-हँसकर बातें कह रहा है और लाटू कितना क्रोधित है। जिसमें अधिक भक्ति है, (अपने को दिखाते हुए) इसके सामने नाराज हो सकता है ? क्रोध तो चाण्डाल है। क्रोध से भक्ति-श्रद्धा नष्ट हो जाती है।"

इतना सुनना था कि जैसे जोंक के मुँह में नमक पड़ गया हो, ठीक इसी प्रकार लाटू महाराज ठंढे पड़ गये। उसने चुपचाप एक ओर खड़े होकर रोते हुए कहा—"अब मैं आपके सामने गुस्सा नहीं होऊँगा।"

ठाकुर ने स्नेह के साथ कहा—"इस शरीर को पान खाने की इच्छा हुई थी, इसलिए राखाल ने इनकार कर दिया। इस शरीर के भीतर जो है, अगर वे इच्छा करते तो राखाल को इनकार करने की हिम्मत न होती।"

देर तक बातचीत करने के बाद लाटू ठाकुर के लिए पान लगाने लगा। इसी प्रकार की प्रबोधक बातों से ठाकुर लाटू में आध्यात्मिक चेतना जाग्रत् करते रहे। कभी पूछते—"तू तो रामजी का भक्त है ? बता तो इस वक्त रामजी क्या कर रहे हैं ?"

लाटू ने कहा—"मुझे क्या मालूम कि वे क्या कर रहे हैं ?"

ठाकुर ने कहा—"रामजी सूई के भीतर से हाथी को निकाल रहे हैं।"

उन दिनों ठाकुर के कहने का अर्थ लाटू समझ नहीं सका। इसका ज्ञान बहुत दिनों

बाद उसे हुआ था। बातचीत के सिलसिले में एक दिन ठाकुर ने अपने को दिखाते हुए कहा—"देख, इसे मत भूलना।" अपने को दिखाने का अर्थ कहीं वह उनके शरीर को समझ न ले, इसलिए बातचीत के जरिये उन्होंने बताया कि मुझमें भगवान् हैं। इस घटना के बाद से लाटू परमहंसजी को सर्वदा भगवान् समझकर भक्ति करता रहा। ठाकुर भी घटनाओं के माध्यम से उसे ज्ञानवान् बनाते रहे।

एक बार एक भक्त दक्षिणेश्वर आया। उनकी असभ्यता देखकर लाटू नाराज हो गया। यह दृश्य ठाकुर दूर खड़े होकर देख रहे थे। भक्त के जाने के बाद उन्होंने लाटू को बुलाकर कहा—"यहाँ जो लोग आते हैं, उन्हें इस तरह कड़ी बात नहीं कहनी चाहिए। एक तो वे लोग सांसारिक झंझट से तंग रहते हैं। ऐसी हालत में यहाँ आने पर जब उन्हें कड़ी बात सुनायी जायगी तब वे कहाँ जायँगे ?"

इसके बाद उन्होंने भक्त को सांत्वना देने के लिए लाटू को भेजा। उसके वापस आने पर उन्होंने पूछा—"यहाँ का प्रणाम उन्हें दिया था ?"

यहाँ का प्रणाम ? लाटू अवाक् रह गया। ठाकुर का प्रणाम एक भक्त को ? यह कैसी बात ? उसे चुप रहते देख ठाकुर ने कहा—"जा, एक बार फिर जा। उनसे यही कहना।"

लाटू को आदेश का पालन करना पड़ा। ठाकुर की बातें कहते ही वह भक्त फफककर रो पड़ा। अब लाटू समझ पाया कि भक्ति क्या है। इसी समझदारी का उदाहरण उन्होंने अपने एक भक्त को दिया था जब वे स्वामी अद्‌भुतानन्द बन गये थे।

एक बार एक धनी भक्त ने हाथ उठाकर लाटू महाराज को प्रणाम किया तो उन्होंने कहा—"साधु-संन्यासियों को दण्डवत् होकर करना चाहिए। ठाकुर का यही कथन था।"

"मतलब ?"

लाटू महाराज ने कहा—"मतलब बताने के लिए एक घटना सुनो। गिरीश बाबू ने ठाकुर को एक बार इसी तरह प्रणाम किया। ठाकुर ने हम लोगों के सामने उसी तरह किया। फिर गिरीश बाबू ने कमर झुकाकर प्रणाम किया तब ठाकुर ने भी उसी तरह प्रणाम किया। इस प्रकार नमस्कार करते-करते जब गिरीश बाबू ने साष्टांग दण्डवत किया तब ठाकुर ने आशीर्वाद दिया।"

दक्षिणेश्वर में श्री श्रीमाँ (ठाकुर की पत्नी शारदा माता) अकेली, सुनसान स्थान, नहबत में बड़े कष्ट से रहती थीं। उन्हें नित्य भक्तों तथा शिष्यों के लिए भोजन बनाना पड़ता था। कोई सहायक भी नहीं था। अन्तर्यामी ठाकुर को श्री श्रीमाँ के कष्टों का ध्यान आया तो वे सक्रिय हो उठे।

एक दिन गंगा-स्नान के समय ठाकुर ने देखा कि लाटू तट पर चुपचाप बैठा है। उन्होंने लाटू से कहा—"अरे लाटू, तू यहाँ अकेला बैठा है और उधर तेरी माँ परेशान हैं। उन्हें रोटी बेलनेवाला कोई सहायक नहीं मिल रहा है। चल, उठ।"

उसे साथ लेकर ठाकुर श्री श्रीमाँ के पास आये और कहा—"यह लड़का शुद्धसत्त्व का है। तुम्हें जब जिस चीज की आवश्यकता हो, इससे कहना। यह सब कर देगा।"

अब उसे बराबर माँ की सेवा में रहना पड़ेगा, जानकर लाटू को अपार प्रसन्नता हुई।

उसकी वास्तविक मनोकामना पूरी हो गयी। उसी दिन से वह माँ का प्रधान सहायक बन गया।

इसी बीच एक दिन रामबाबू आये और ठाकुर से बोले—"आपने इस छोकरे को क्या सिखाया है जो आठ मील का चक्कर लगाकर कलकत्ता आता है।"

ठाकुर ने कहा—"मैंने क्या कहा है, इस वक्त याद नहीं आ रहा है। बात क्या है?"

रामबाबू ने कहा—"लाटू को आपने शराब की महक से दूर रहने को कहा है, इसलिए वह कलवरिया के पास से नहीं गुजरता। जहाँ-जहाँ शराब की दुकानें हैं, उधर के रास्ते से जाता नहीं। काफी चक्कर काटकर जाता है।"

यह बात सुनकर ठाकुर गंभीर हो गये। तुरत लाटू को बुलाकर उन्होंने कहा—"मैंने तुझे शराब की महक सूँघने से मना किया है। इसका यह मतलब नहीं कि उधर से जाना मना है। शराब की दुकान की बगल से गुजरने पर कोई दोष नहीं होगा। उस वक्त (अपने को दिखाते हुए) इसे स्मरण करना तब कोई भी नशा तुझे अपनी ओर आकृष्ट नहीं करेगा।"

इसी तरह की घटनाओं से उसे उपदेश तथा योग की शिक्षा ठाकुर देते रहे। उन्होंने कहा—"यागयोग में जागते रहना चाहिए। काम करते हुए उनका ध्यान करना चाहिए। जीवन का प्रत्येक क्षण उन्हें समर्पित करना।"

एक बार लाटू सोये हुए ठाकुर को हवा कर रहा था। थकावट के कारण वह नींद में झूमने लगा। सहसा ठाकुर ने पूछा—"लाटू, क्या तू बता सकता है कि भगवान् सोते हैं या नहीं?"

लाटू ने बिहारी भाषा में कहा—"हमराके का मालूम। भगवान् सुतलन कि नाहीं।"

ठाकुर हँसकर बोले—"भगवान् को सोने का अवसर नहीं मिलता। वे चौबीसों घण्टा जागते रहते हैं, जीव-जन्तुओं की सेवा करते हैं, इसलिए जीव-जन्तु सो पाते हैं।"

इस घटना के बाद एक दिन लाटू थककर सो गया था। उसे जगाते हुए ठाकुर ने कहा—"क्यों रे लाटू, शाम को कहीं सोना चाहिए? इस वक्त भगवान् का ध्यान करना चाहिए, न कि लम्बी तानकर खर्राटे मारना।"

लाटू अप्रतिभ होकर उठ बैठा और उसने मन ही मन प्रतिज्ञा की कि अब आगे से शाम के समय कभी नहीं सोऊँगा। अपनी इस प्रतिज्ञा का पालन उन्होंने आजीवन किया। एक बार जब वे सन्निपात से पीड़ित हुए तब शाम के समय स्वामी शारदानन्दजी से उन्होंने कहा—"इस वक्त मुझे उठाकर बैठा दीजिए। मैं इस समय सो नहीं सकता।"

शारदा महाराज ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया। वे लाटू महाराज की देखभाल कर रहे थे। मरीज को आराम करना चाहिए, इस सिद्धान्त का पालन कर रहे थे। शारदा की उपेक्षा देखकर लाटू महाराज ने कहा—"अगर तुम लोग मुझे उठाकर नहीं बैठाओगे तो मुझे महावीरजी की शरण में जाना पड़ेगा।"

महावीरजी की शरण क्या बला है, इससे शारदा महाराज अपरिचित थे। ज्योंही वे आगे बढ़े त्योंही लाटू महाराज "जय बजरंग बली की" कहते हुए जोर लगाकर उठ बैठे।

यह दृश्य देखकर शारदा महाराज बिगड़ उठे—"तुम बीमार हो । तुम्हें बराबर लेटकर आराम करना चाहिए । यह क्या तमाशा कर रहे हो ? चलो, सो जाओ ।"

लाटू महाराज ने कहा—"मैं यह सब नहीं जानता । यह उनका हुक्म है । शाम को सोना नहीं चाहिए । मुझे उनका हुक्म मानना ही पड़ेगा ।"

अपने शिष्यों को मान-अपमान से रहित बनाने के लिए ठाकुर बराबर प्रयोग किया करते थे । एक बार भिक्षा के बारे में अपना संस्मरण सुनाते हुए लाटू महाराज ने कहा था—"एक दिन मुझे और राखाल बाबू को भिक्षा माँगने की आज्ञा मिली । जाते समय ठाकुर नित्य कहते कि कोई गाली देगा, कोई आशीर्वाद देगा, कोई पैसा देगा और कोई अनाज देगा । तुम लोग सब लेना । एक दिन हम लोगों पर एक सज्जन बिगड़ उठे—'जवान लड़के हो, भिक्षा माँगते हो ? काम करके कमा नहीं सकते ?' यह बात सुनकर राखाल बाबू बहुत मायूस हो गये । मैंने उन्हें समझाया कि ठाकुर ने तो हमें यह सब बता दिया था । उसी दिन एक विधवा बुढ़िया के दरवाजे पर जाकर खड़े हुए तो उसने पूछा—'किस दुःख के कारण तुम लोग भीख माँग रहे हो, बेटा ?' उन्हें सही बात कह दी गयी तो उन्होंने प्रसन्न होकर एक चवन्नी दी और आशीर्वाद देती हुई बोलीं—'तुम लोग जिस उद्देश्य से निकले हो, भगवान् सूर्यदेव तुम्हारी आशा पूरी करेंगे ।' इसके बाद कई घरों से चावल-दाल आदि सामान लेकर हम वापस आये । सारी घटनाएँ ठाकुर से विस्तारपूर्वक वर्णन करने पर उन्होंने कहा—'उस वृद्धा ने ठीक कहा है । इस स्थान से सूर्यनारायण का योग है ।'

परमहंसजी का सेवक होने के कारण लाटू को उनके साथ कलकत्ता के समृद्ध परिवारों में जाना पड़ता था । शिक्षित न होने पर भी वह इन लोगों के सम्पर्क में आने के कारण काफी सुसंस्कृत बन गया । गाँव का बालक, सरल प्रकृति का होने के कारण अपने मन की सारी कमजोरियों का उल्लेख कर देता था ।

एक बार उनके मन में आसक्ति उत्पन्न हुई । जप में मन नहीं लग रहा था । लाचारी में वे ठाकुर के पास गये और अपनी परेशानी का वर्णन किया । परमहंसजी ने कहा—"यह होगा, मगर नाम जपना बन्द मत करना । इससे मन स्वतः शान्त हो जायगा ।"

संन्यास ग्रहण करने के बाद लाटू का नाम अद्भुतानन्द स्वामी हुआ, लेकिन सभी लोग लाटू महाराज के नाम से संबोधित करते थे । आपके आचरण और बातों में अद्भुत का असर था । संभवतः इसीलिए आपका यह नाम रखा गया ।

सबेरे जब सोकर उठते थे तब आँख खोलते ही सबसे पहले ठाकुर का चेहरा देखते थे । अगर ठाकुर अपने कमरे में नहीं रहते तो आँखें बन्द कर चिल्लाते—"आप कहाँ चले गये ?" इस पुकार को सुनकर ठाकुर को तुरत पास आना पड़ता था ।

परमहंसजी अपने चुने हुए युवा भक्तों को लेकर कभी-कभी कीर्तन में नृत्य करते थे । एक बार नृत्य करते समय उन्होंने माँ जगदम्बा से कहा—"माँ, अगर तेरी इच्छा हो तो इन बच्चों को जरा भाव (समाधि) हो ।"

इस घटना के बाद एक दिन विष्णुघर में जब कीर्तन होने लगा तब लाटू महाराज ने इतने जोर से हुंकारा कि सारा कमरा गूँज उठा । कीर्तन के बाद खोका महाराज ने पूछा—"आज जो कीर्तन हुआ, उसमें ठीक-ठीक भाव किसे हुआ था ?"

ठाकुर कुछ देर तक चिन्तन करने के बाद बोले—"आज लाटू में ठीक-ठीक भाव हुआ था। बाकी लोगों को थोड़ा-थोड़ा।"

लाटू महाराज अत्यन्त कठोरता से साधना करते रहे। यह देखकर ठाकुर ने एक दिन कहा था—"अधिक नाचना-कूदना ठीक नहीं है। भाव को अगर छिपाया नहीं गया तो वह अन्तर्मुखी नहीं होता।"

लाटू महाराज की साधना कितनी कठोर थी और वे किस तेजी से आगे बढ़ रहे थे, इसका प्रमाण हमें उनके जीवन की कई घटनाओं से मिल जाता है।

एक दिन ब्राह्म मुहूर्त में सभी लोगों को अपने कमरे में ध्यान पर बैठाकर ठाकुर गाने लगे—"जाग माँ कुण्डलिनी।" तभी लाटू महाराज विकट स्वर में 'ऊहू' कर उठे। ठाकुर तुरत उसके पास आये और दोनों हाथों उसके कंधों को दबाया। इधर लाटू अपने आसन पर स्थिर नहीं रहना चाहता था। बाद में उसका बाह्य ज्ञान लुप्त हो गया।

एक दिन शिव-मंदिर में ध्यान करते समय वे समाधिस्थ हो गये। तीसरे पहर तक प्रस्तर-प्रतिमा की तरह बैठे रहे। समाचार पाते ही ठाकुर आये और पंखे से हवा करने लगे। शीतल वायु पाकर लाटू का शरीर काँपने लगा। ठाकुर ने कहा—"दिन ढल गया। आखिर दीयाबत्ती कब करेगा ?"

इस आदेश को सुनते ही लाटू प्रकृतिस्थ हो गया। ठाकुर को पंखा झलते देख वह संकोच से अप्रतिभ हो उठा। लाटू ने बताया—"शिवजी की ओर दृष्टि निबद्ध रखे हुए था कि अचानक एक ज्योति प्रकट हुई और चारों ओर प्रकाश फैल गया। इसके बाद का कुछ ज्ञात नहीं।"

ठाकुर ने कहा—"ठीक है, ठीक है। इस तरह के आगे न जाने कितने दृश्य देखेगा। अभी एक गिलास पानी पी ले।"

इसी प्रकार एक बार ध्यान करते समय अचानक जमीन से मुँह सटाकर विचित्र आवाज करने लगे। थोड़ी देर बाद परमहंसजी आये। उसे चित्त लेटाकर उसकी छाती पर हाथ फेरने लगे। थोड़ी देर बाद जब लाटू सहजावस्था में आया तब ठाकुर बिगड़कर बोले—"चुप रह साले, लगता है, आज तूने काली माता को देखा है।"

एक दिन गंगा किनारे बैठकर लाटू दिन के वक्त ध्यान कर रहा था। ठीक इसी समय गंगा में ज्वार आ गया। आमतौर पर लाटू जहाँ बैठता था, वहाँ तक पानी नहीं आता था। लेकिन उस दिन वहाँ तक पानी चढ़ आया। लाटू को वहाँ से हटते न देख स्वामी अद्वैतानन्द दौड़े हुए ठाकुर के पास गये और घटना का विवरण दिया। ठाकुर ने आकर देखा कि लाटू को चारों ओर से पानी ने घेर लिया है। वे शीघ्रता से उसके पास जाकर उसे ढकेलते हुए उठाया।

एक बार विष्णुघर के पुरोहित से ठाकुर ने कहा—"देख तो लाटू कहाँ है ? कई बार बुलाया, आया नहीं।" पुरोहित ने इधर-उधर खोजते हुए आकर देखा कि लाटू समाधिस्थ है। कई बार आवाज देने पर जब वह नहीं उठा तब ठाकुर से सारी बातें उन्होंने कह दीं। ठाकुर ने तब नरेन (स्वामी विवेकानन्द) को भेजा। नरेन ने भी यही दृश्य देखा तो परीक्षा करने के लिए एक डंडा लेकर दूर एक पेड़ पर पटकते हुए आवाज करने लगे। इस आवाज

को सुनकर ठाकुर स्थिर नहीं रह सके। तुरत आकर उन्होंने नरेन से कहा—"अब इसे परेशान मत कर।"

नरेन ने कहा—"जब आदमी होश में रहे तब परेशान होगा। यह तो बिलकुल बेहोश है।"

ठाकुर ने हँसकर कहा—"जब तक इस प्रकार बेहोश न हुआ जाय तब तक ध्यान जमता नहीं।"

इसी प्रकार की कई घटनाएँ लाटू के जीवन में हुई थीं। एक बार देर तक ठाकुर को मालिश करनी पड़ी थी। एक बार उसके पैर पर पैर रखकर देर तक चाँपना पड़ा था। शायद इसीलिए ठाकुर ने सिद्ध पंचमुंडी आसन पर लाटू को बैठाया था जहाँ बैठकर वे स्वयं सिद्ध हुए थे।

पंचमुंडी आसन पर बैठकर ध्यान करना साधारण बात नहीं है। दृढ़ ब्रह्मचर्य के अलावा शुद्ध-पवित्र शरीर और मन का होना जरूरी है। उस वक्त अनेक उपग्रह ध्यान में खलल डालते हैं, आसन से उठाने के लिए उपद्रव करते हैं। निर्भीक साधक ही सिद्ध आसन पर बैठकर जप करने में सफलता प्राप्त करते हैं। इस आसन पर ऐरे-गैरे शिष्यों को ठाकुर नहीं बैठाते थे। केवल उचित आधारवालों को भेजते थे। लाटू जैसे कसरती जवान का कलेजा काँप उठा था। ध्यान के वक्त चारों ओर विभीषिका देखकर वह डर से काँप उठा था। ठीक उसी समय अन्तर्यामी ठाकुर ने दूर से कहा था—"क्यों रे, डर गया ? डरने की क्या बात है ? आ, मेरे पास चला आ।" ठाकुर की आवाज सुनते ही सारा भय दूर हो गया था।

कुछ दिनों बाद लाटू को झक सवार हुई कि वह तीर्थयात्रा करेगा। ठाकुर ने कहा—"यहाँ रहते काफी दिन हो गया। जा, कहीं घूम-फिर आ।"

इस आज्ञा को सुनकर वह प्रसन्न हो उठा। बोला—"आप कहाँ जाने की आज्ञा दे रहे हैं ?"

ठाकुर ने कहा—"बाबूराम के आटपुरा में चला जा। वहाँ बाबूराम है, तुझे कोई कष्ट नहीं होगा।"

लाटू महाराज के बारे में बाबूरामजी ने अपने एक भक्त से कहा था— "एक बार लाटू मेरे यहाँ गया था। नित्य वह कहा करता था—'मुझे यहाँ अच्छा नहीं लग रहा है।' मेरी माँ मुझसे कहतीं—'उससे पूछ कि उसे किस बात की तकलीफ है ?' मैं यह जान गया था कि उसे यहाँ क्यों नहीं अच्छा लग रहा है। वहाँ ठाकुर नहीं थे। लाटू जैसा सेवक ठाकुर बिना चंचल हो उठा था। आखिर एक दिन रो पड़ा और कहा कि मैं कल ही दक्षिणेश्वर चला जाऊँगा। लाटू की हालत देखकर किसीने उसे रोका नहीं।"

दक्षिणेश्वर आते ही ठाकुर ने पूछा—"क्यों रे, बड़ी जल्दी वापस आ गया ?"

लाटू ने कहा—"वहाँ अच्छा नहीं लग रहा था।"

ठाकुर ने पूछा—"क्यों ? वह जगह तो काफी अच्छी है। बाबूराम की माँ भी भक्तिमती हैं। साधु-संन्यासियों की खूब अच्छी तरह सेवा करती हैं।"

लाटू—"पता नहीं। वहाँ आपके लिए मन न जाने कैसा कर रहा था। नाम-जप में मन नहीं लग रहा था।"

ठाकुर—"यह क्या बक रहा है ? मैं नहीं रहूँगा तो तेरा मन नहीं बैठेगा। क्या मैं हमेशा जीवित रहूँगा ?"

लाटू ने रोते हुए कहा—"आप मुझे इस तरह अपना लीजिए ताकि हमेशा आपके साथ रह सकूँ।"

ठाकुर ने कहा—"साले का नखरा देखो।"

दिन गुजरते गये। ठाकुर को गले का कैंसर हुआ। इलाज के सिलसिले में वे श्यामापुकुर आये। सेवक लाटू साथ में था। एक दिन यहाँ भी लाटू महाराज भावावेश में आ गये। बाद में ठाकुर के हाथ फेरने पर प्रकृतिस्थ हुए।

श्यामापुकुर के बाद ठाकुर काशीपुर आकर रहने लगे। एक दिन ठाकुर के सिर पर हाथ फेरते-फेरते लाटू महाराज समाधिस्थ हो गये। इस बारे में उन्होंने कहा—"एक दिन ठाकुर के सिर पर हाथ फेरते समय मेरे सामने मुल्लूक (मुल्क) खुल गया। उस मुल्लूक में जो देखा, उसे आँखों से पकड़ नहीं सका। जो आस्वाद मिला, उसे जीभ ग्रहण नहीं कर सकी।"

श्री श्रीमाँ वृन्दावन जा रही थीं। साथ में लाटू महाराज चल पड़े। वहाँ लोगों की अजानकारी में कुछ दिनों तक तपस्या करने के बाद कलकत्ता चले गये। यहाँ आने के बाद उन्हें संन्यास दिया गया।

ठाकुर के निधन के बाद लाटू महाराज निरन्तर साधना में मगन रहने लगे। रात को सोते नहीं थे। रात गये कमरे में खटखट आवाज सुनकर स्वामी शारदानन्द ने सोचा—कमरे में चूहे उपद्रव करते हैं। कई दिनों बाद एक दिन लालटेन मद्धिम करके रखा। ज्योंही आवाज होने लगी त्योंही रोशनी बढ़ाने पर उन्होंने देखा कि लाटू महाराज माला जप रहे हैं। यह आवाज माला के दानों की थी। जबकि लाटू महाराज भोजन के बाद जल्द सो जाते और थोड़ी देर बाद खर्राटे भरने लगते थे। जब सभी सो जाते तब वे चुपचाप उठकर जप-साधना करते थे।

सन् १८६२ से १८६७ ई० तक लाटू महाराज न तो मठ में थे और न किसीके घर पर। गंगा-तट ही उनका निवासस्थान था। भिक्षा में भुने चावल या चना खाकर दिन गुजारते थे। कपड़ों के लिए अपने पूर्व स्वामी रामचन्द्र दत्त के यहाँ जाकर माँग लेते थे। सलकिया का एक हलवाई इन्हें लगातार ७-८ माह तक चने की रोटी खिलाता था। कभी-कभी भीगे चने खाकर रह जाते थे। गंगा-तट पर भागवत-कथा सुनते और साधन-भजन करते। पानी बरसने पर स्टेशन पर स्थित खड़ी किसी मालगाड़ी में सो जाते थे।

एक बार आप पुरी गये। जगन्नाथ-विग्रह के सामने खड़े होकर आपने विचित्र प्रार्थना की। आपने कहा—"आपका जो रूप देखकर महाप्रभु (चैतन्यदेव) की आँखें सजल हो गयी थीं, आज मुझे अपना वही रूप दिखाइये।"

कहा जाता है कि आपकी मनोकामना पूर्ण हुई थी। पुरी से रवाना होने के पूर्व आपने जगन्नाथ देव से दो अद्‌भुत प्रार्थनाएँ की थीं। उनमें से एक यह थी कि अब मैं अधिक घूम-फिर नहीं सकता, इसलिए जो कुछ खाऊँ, सब हजम हो जाय।

इस बारे में प्रश्न करने पर आपने बताया— "भिक्षान्न में क्या-क्या मिलता है, यह आप

लोग जानते हैं ? अगर पाचन-शक्ति ठीक नहीं रहेगी तो स्वास्थ्य खराब हो जायगा। स्वास्थ्य खराब होने पर भजन में मन नहीं लगेगा।"

सन् १८६७ में स्वामी विवेकानन्द अमेरिका से वापस आये। सभी गुरुभाई उनसे मिले, पर लाटू महाराज नहीं गये। उन्होंने सोचा—मैं साधारण व्यक्ति हूँ। वह विलायत रिटर्न आदमी है। साहब हो गया है। भला मुझे पहचानेगा ?

लेकिन विवेकानन्दजी लाटू महाराज को भूले नहीं थे। एक दिन स्वयं ही आये और उन्हें गले से लगाते हुए बोले—"अरे लाटू भाई, मैं तेरा वही नरेन हूँ। चल, मठ में।"

लाटू महाराज मठ में आये तो यहाँ का रंग-ढंग देखकर परेशान हो गये। विवेकानन्द ने नियम बनाया था कि भोर में तीन बजे घंटा बजते ही सभी लोग जाग जायँगे। इस नियम की जानकारी होते ही एक दिन लाटू महाराज अपना बोरिया-बिस्तर लेकर चल पड़े। इन्हें मठ से जाते देख विवेकानन्दजी ने पूछा—"कहाँ जा रहा है ?"

लाटू—"कलकत्ता।"

विवेकानन्द—"क्यों ?"

लाटू—"तुम विलायत से आये हो। नये-नये नियम बना रहे हो। मैं यह सब नहीं मान सकता। मेरा मन ऐसा नहीं है कि उधर तुम्हारा घंटा बजा और इधर मेरा मन ध्यान में लग गया।"

विवेकानन्द—"तब जा।"

लाटू महाराज ज्योंही फाटक के पास पहुँचे त्योंही स्वामी विवेकानन्द ने दौड़कर उन्हें पकड़ते हुए कहा—"तुझे इस नियम को मानने की जरूरत नहीं है। जो लोग मठ में नये आये हैं, उनके लिए यह नियम है।"

इसी प्रकार एक बार आदेश हुआ कि सभी लोग व्यायाम के लिए डंबेल भाँजेंगे। इस आदेश को सुनकर लाटू महाराज ने कहा—"अजीब तमाशा है। अब इस बुढ़ापे में डंबेल भाँजना पड़ेगा।"

लोगों ने कहा—"यह नियम आपके लिए नहीं है।"

लाटू महाराज ने कहा—"यह कैसा नियम है ? मठ में रहूँगा और नियम नहीं मानूँगा ? यह अच्छी बात नहीं है।"

धर्म के विषय में लाटू महाराज बड़े उदार थे। मुसलमानों के ईद और मुहर्रम पर दरगाह में पूजा की सामग्री भेजते तो क्रिसमस और गुडफ्राइडे को प्रभु यीशु को अपने हाथ से भोग चढ़ाते थे। माला पहनाते थे। ईसाई डी मेलो के एक प्रश्न के उत्तर में उन्होंने पूछा—"आप किसे मानते हैं ?"

डी मेलो ने कहा—"यीशु और ठाकुर दोनों को मानता हूँ।"

"बराबर किसे मानते हैं ?"

डी मेलो ने कहा—"प्रभु यीशु को।"

"तब तुम यीशु को मानते रहो।"

सन् १६०७ की घटना है। दुर्गा-पूजा के अवसर पर श्री श्रीमाँ बलराम-मंदिर में आयीं।

अपनी प्रिय संतान लाटू को देखने के लिए उनके कमरे में आयीं तो लाटू महाराज बोल उठे— "आप शरीफ घर की लड़की हैं। मुझसे मिलने क्यों आयीं ? किसीको भेजकर मुझे बुलवा लेतीं।"

श्री श्रीमाँ लाटू के स्वभाव से परिचित थीं। वे हँसती हुई ऊपर चली गयीं। इधर अपने मन का विषाद दबाने के लिए लाटू महाराज कहने लगे—"संन्यासी का कौन पिता और कौन माता। संन्यासी तो निर्माया होता है।"

श्री श्रीमाँ उस समय सीढ़ी पर से उतर रही थीं। बोलीं—"बेटा लाटू, तुम्हें मुझे मानने की जरूरत नहीं है।"

श्री श्रीमाँ का इतना कहना था कि लाटू महाराज का सारा विषाद दूर हो गया। वे रोते हुए माँ के चरणों पर गिर पड़े।

श्री श्रीमाँ की आँखें भी सजल हो उठीं। यह देखकर लाटू महाराज अपने उत्तरीय से उनके आँसुओं को पोंछते हुए बोले—"अपने पिता के घर जा रही हो, भला ऐसे वक्त रोना चाहिए ?"

कुछ दिनों बाद लाटू महाराज को झक सवार हुई कि अब काशीवास करना चाहिए। काशी आकर वे कुछ दिनों तक अद्वैत आश्रम[१] में रहे। बाद में पांडे हवेली आकर रहने लगे।

इन्हीं दिनों यक्ष्मा का एक रोगी इनके पास आया और बोला—"मेरे पास इतने पैसे नहीं हैं कि मैं अपना इलाज करवा सकूँ। आप मुझे ऐसा आशीर्वाद दीजिए कि मैं रोगमुक्त हो जाऊँ या मर जाऊँ।"

लाटू महाराज ने कहा—"चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। ठाकुर की अगर कृपा हुई तो तुम निस्सन्देह रोगमुक्त हो जाओगे। आज से नित्य स्नान करने के बाद विश्वनाथ मंदिर जाकर बाबा का दर्शन करना। उनका चरणामृत पान करना। ईश्वर की कृपा से तुम ठीक हो जाओगे।"

कुछ दिनों बाद वह युवक पूर्ण स्वस्थ हो गया। इसी प्रकार उनके एक भक्त ने बंगाल से एक पत्र लिखा कि मेरी बहुत दिनों से इच्छा है काशी आने की, बाबा विश्वनाथ का दर्शन करना चाहता हूँ, पर मेरे पास आने-जाने के लिए किराये के पैसे नहीं हैं।

लाटू महाराज ने जवाब दिया—किसी प्रकार से आप आने के किराये का जुगाड़ कर लें और चले आयें। शेष का प्रबंध यहाँ हो जायगा। इस आश्वासन को पाकर वह भक्त काशी आया। विश्वनाथ-दर्शन करने के बाद उनका मन उदास हो गया। सभी लोग बाबा को दान दे रहे थे, पर उन्होंने केवल बेल-पत्र चढ़ाया। एक तो तीर्थ करने आकर संन्यासी का अन्न खा रहा हूँ, दूसरे पास में एक पैसा नहीं जो पुण्य अर्जन करूँ। मंदिर से वापस आकर वे अपने बन्द कमरे में रोने लगे।

समाचार पाते ही लाटू महाराज ने कहा—"कल सबेरे गंगा-स्नान के पश्चात् भगवान् के नाम पर गंगाजल अर्पण करते हुए कहना—"जगत् का समस्त दुःख दूर हो जाय।"

---

[१] काशी में उनकी स्मृति में बनवाया गया घर है और कमरे में उनकी सामग्री है।

भक्त ने सोचा—यह तो मन को सांत्वना देने का एक उपदेश मात्र है । लेकिन जब गुरुदेव की आज्ञा है तब यह करना ही पड़ेगा । आश्चर्य की बात यह हुई कि अर्घ्य देने के बाद उनके मन को अपार शान्ति प्राप्त हुई ।

एक बार एक भक्त उनके कमरे में सो रहा था । रात को वह नींद में गन्दा सपना देखने लगा । तभी लाटू महाराज ने उसे धक्का देते हुए कहा— "यहाँ आकर यही सब सोचते हो ?"

एक महिला अपने पति से झगड़कर तीर्थयात्रा करती हुई काशी आयी । लाटू महाराज को प्रणाम कर ज्योंही खड़ी हुई त्योंही उन्होंने कहा— "विवाहित महिलाओं को पति की आज्ञा मानकर चलना चाहिए । जो महिलाएँ ऐसा नहीं करतीं, वे अशान्ति भोग करती हैं ।"

यह बात सुनकर महिला चकित रह गयी । आखिर महाराज को मेरी गृहस्थी की बात कैसे मालूम हो गयी ? मैंने तो किसीसे जिक्र नहीं किया है ।

जीवन के अंतिम काल में लाटू महाराज मधुमेह के शिकार हो गये थे । इलाज से लाभ नहीं हो रहा था । २४ अप्रैल सन् १९२० के दिन वे महाप्रयाण कर गये ।

◆

भोलानन्द गिरि

भोलानन्द गिरि

विवाह के कई वर्षों बाद जब नन्दा देवी सन्तान की जननी नहीं बन सकीं तब पड़ोस की बूढ़ी महिलाएँ तथा सहेलियों ने उन्हें शंकर भगवान् की पूजा, पीपल वृक्ष में जलदान एवं फेरी लगाने और साधु-संतों की सेवा करने की सलाह दी। इस सलाह को मानकर नन्दा देवी देवाधिपति शंकर की आराधना में मगन रहने लगीं।

कुछ दिनों बाद उन्हें प्रथम पुत्र की प्राप्ति हुई। पिता ब्रह्मदास ने वंश के गौरव का नाम रखा—रतनदास। बालक पिता-माता की स्नेह-छाया में पलता रहा। बालक से किशोर हुआ और एक दिन लापता हो गया। एकमात्र सन्तान के गायब होने के कारण माँ-बाप टूट-से गये। दिन-रात यही चिन्ता उन्हें सताती रही—न जाने कहाँ होगा ? घर में भूख लगने पर कभी भोजन नहीं माँगता था। चुपचाप सुनसान जगह में जाकर रोता रहता था। पता नहीं, वह किस परिस्थिति में होगा ? कैसे, किससे माँगता होगा।

अब नन्दा देवी व्याकुल भाव से अपने देवता शंकर भगवान् से प्रार्थना करने लगीं कि उनके पुत्र को घर वापस भेज दें, अन्यथा रो-रोकर हम दोनों प्राण त्याग देंगे। पुत्र का बिछोह अब सहन नहीं हो रहा है।

एक दिन जब नन्दा देवी गहरी नींद में सो रही थीं तो स्वप्न में उन्होंने देखा— "देवाधिदेव शंकर भगवान् उनके सामने खड़े हैं। वे कह रहे हैं— "बेटी, तू क्यों दुःखित है ? तेरा बेटा अध्यात्म की खोज में चला गया है। अब वह कभी नहीं लौटेगा। उसने संन्यास ले लिया है। उसकी तपस्या से तेरे परिवार का भी भला होगा। तुझे पुत्र चाहिए न ? मैं आशीर्वाद देता हूँ कि तू तीन सुसन्तानों की जननी बनेगी। लेकिन वे भी बड़े भाई की तरह योगी बनेंगे। इनमें एक अद्वितीय होगा। केवल अन्तिम बालक तेरे पास रह जायगा। तेरे लिए यह गौरव की बात होगी जो ऐसे सन्तानों की जननी बनेगी। शोकसन्तप्त नर-नारियों को तेरे पुत्र शान्ति देंगे।"

शंकर भगवान् इतना कहकर अन्तर्धान हो गये। तभी नन्दा देवी की आँखें खुल गयीं। वे चौंककर जाग उठीं। देखा—पति गहरी नींद में सो रहे हैं। बाहर भोर का पक्षी काकली कर रहा है। पति को जगाती हुई नन्दा देवी ने अपने स्वप्न की कहानी सुनायी।

पति ब्रह्मदास ने कहा— "भोर का सपना सच होता है। शायद हम ऐसे पुत्रों के माँ-बाप बनें। तुम अपना पूजा-पाठ जारी रखना।"

दिन गुजरते गये। कुछ दिनों के बाद घर में दूसरे पुत्र ने जन्म लिया। शंकर भगवान् का कृपा-प्रसाद समझकर लड़के का नाम रखा गया—भोलादास।

फिर तीसरे पुत्र ने जन्म लिया। इस बालक का नाम रखा गया—शंकरदास। सभी शंकर भगवान् के आशीर्वाद थे।

भोलादास का नियमानुसार उपनयन-संस्कार हुआ। सारस्वत ब्राह्मण-परिवार का आवास है। आगे चलकर बालक यजमानों के यहाँ जायगा। लेकिन उपनयन होने के कुछ दिनों बाद यह बालक भी अपने बड़े भाई की तरह एक रात को गायब हो गया। काफी खोज की गयी, पर कहीं पता नहीं चला। घर में उदासी का दौर चलता रहा। इस घटना के बाद चौथे पुत्र ने जन्म लिया। इस बालक का नाम रखा गया—सुन्दरदास।

नन्दा देवी को देखे हुए सपने की कहानी बराबर याद आती रही। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि एक दिन शंकरदास भी अपने दोनों भाइयों की तरह कहीं गायब हो जायगा। भरसक उसे अपनी निगाहों के सामने रखती रहीं, पर एक दिन वह भी घर से गायब हो गया। अब ले-देकर घर में अन्तिम पुत्र सुन्दरदास रह गया। ब्रह्मदास को विश्वास हो गया कि अब यह बालक कहीं नहीं जायगा। अपने खोये हुए तीनों पुत्रों का प्यार उसे देने लगे।

इन घटनाओं के बाद एक युग बीत गया। नन्दा देवी अपनी प्रथम तीन सन्तानों को भूल गयीं। कभी-कभी याद आने पर वे अकेले में चुपचाप आँसू बहा लेती थीं। सुन्दरदास बूढ़े माँ-बाप की सेवा में लगा रहता था।

सहसा एक दिन जब ब्रह्मदास और सुन्दरदास घर से बाहर थे और नन्दा देवी घर के भीतर आँगन में काम कर रही थीं, ठीक इसी समय बाहर दरवाजे पर आवाज आयी—"जय शंकर।"

नन्दा देवी ने समझा कोई साधु भीख माँगने आया है। वे दरवाजे के पास खड़ी हो गयीं। सामने एक संन्यासी गेरुआ वस्त्र पहने खड़ा था। नन्दा देवी को देखते ही उसने चरण-स्पर्श किया।

नन्दा देवी चौंककर पीछे हट गयीं और तीखे स्वर में बोलीं—"संन्यासी होकर आप गृहस्थ घर की औरत के पैर छूते हैं। छिः बाबाजी, हमें पाप का भागी क्यों बनाया ?"

बाबा ने कहा— "मैंने तो माता जानकर चरण-स्पर्श किया है, माताजी। मुझे आशीर्वाद दें।"

नन्दा देवी ने कहा— "आशीर्वाद तो आपको देना चाहिए। मैं कैसे दे सकती हूँ ? ठहरिये, कुछ भिक्षा ले लीजिए।"

इतना कहकर नन्दा देवी घर में चली गयीं। लौटकर आयीं तो देखा—बाबा गायब हैं। दूर-दूर तक उनका पता नहीं है। न जाने क्यों मन में संदेह उत्पन्न हुआ। आज तक कोई संन्यासी इस तरह वापस नहीं गया और न किसीने प्रणाम किया। क्या वह मेरा रतन था ? फिर शक्ल की याद आने पर सब कुछ स्पष्ट हो गया। वह मेरा भोला था। भोला का स्मरण आते ही नन्दा का सिर चकराने लगा और वे दरवाजे के पास बेहोश होकर गिर पड़ीं।

उधर भोलादास ने अपने गुरु के पास जाकर उन्हें प्रणाम करते हुए कहा—"गुरुदेव, आपकी आज्ञा का पालन कर आया।"

गुरुदेव ने पूछा— "माँ या अन्य किसीने तुम्हें पहचाना तो नहीं ?"

"जी नहीं।"

गुरु गुलाब गिरि ने कहा— ''नारायण गिरि, (भोलादास का संन्यासी नाम) अब तुम पहले की तरह आश्रम की देखभाल करो। समय आने पर आगे का कार्यक्रम बताऊँगा।''

''जो आज्ञा।'' कहने के पश्चात् नारायण गिरि आश्रम के कार्यों में लग गये।

आश्रम में १४०० गायें, ५ सौ भैंसें तथा काफी जमीन थी। सभी शिष्यों को गाय-भैंस चराना, उन्हें सानी-पानी देना, जंगल से लकड़ी काटना, खेत जोतना-बोना तथा अन्य बहुत-सा गृहस्थी का कार्य करना पड़ता। इसमें जरा-सी चूक होने पर गुलाब गिरि क्षमा नहीं करते थे। डाँटना, मारना, गाली देना आम बात थी।

प्राचीनकाल से लेकर अब तक शिष्यों को साधना के क्षेत्र में योग्य बनाने के लिए गुरु लोग हर तरह की सेवाएँ लेते थे। जो सहज ही सिद्धि पाना चाहते थे, वे भाग जाते थे या सर्वज्ञाता गुरु उन्हें वापस भेज देते थे। मैंने स्वयं अपनी आँखों से देखा और सुना है। आज भी मध्य प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश के अनेक साधु अपने शिष्यों से आश्रम के लिए कठोर-से कठोर कार्य कराते हैं ताकि उनके अन्तर की सारी वासनाएँ और कामनाएँ निर्मूल हो जायँ। खेती कराना, ढोर चराना, नदी से पानी लाना, भोजन बनाना, जंगल से लकड़ी लाना, गृहस्थों के यहाँ से भीख माँगना आदि कार्य करने के बाद भजन-पूजन कराते हैं। विश्राम के लिए कम समय देते हैं। जब इन कार्यों में जरा भी त्रुटि होती है तब गुरु आपे से बाहर हो जाते हैं। उस वक्त गुरु के क्रोध का शिकार होना पड़ता है। अगर गुरु के क्रोध को शिष्य नहीं पचा पाता तो वह अच्छा साधक नहीं बन पाता।

जिस प्रकार बाँस को तेल पिलाकर क्रमशः पोख्ता किया जाता है, उसी प्रकार शिष्य को सीढ़ी दर सीढ़ी साधना के पथ पर अग्रसर किया जाता है।

नारायण गिरि जो आगे चलकर अपने पितृप्रदत्त नाम भोलादास के बदले भोलानन्द गिरि के नाम से प्रसिद्ध हुए, को इन सभी परीक्षाओं में उत्तीर्ण होना पड़ा था। भोर में तीन बजे उठकर वे साधना करते, एक मन दूध मथकर मक्खन निकालते। उन्हें शिव-मंदिर की पूजा, आश्रम में आनेवाले अतिथियों के भोजन का प्रबंध और फिर रात को आरती-पूजा, भजन करना पड़ता था। ऊपर से गुरुजी के कटु वाक्यों को प्रसन्न चित्त से हजम करना पड़ता था।

एक बार किसी गलती पर गुलाब गिरि महाराज ने बिगड़कर कहा— ''निकल जा, मेरे आश्रम से। केवल कौपीन पहनकर निकल जा। आज से तेरा यहाँ से कोई मतलब नहीं।''

गुरु की आज्ञा मानकर भोलानन्दजी अपने गुरु की कुटिया से बाहर एक पेड़ के नीचे खड़े हो गये। सर्दी की रात, बदन पर केवल कौपीन, ठंढी हवा तीर की तरह बदन से चुभती रही। हाथ जोड़ते हुए उन्होंने मन ही मन कहा— ''गुरुदेव, यह शरीर भी आपका है। आपका आश्रय छोड़कर मैं कहीं नहीं जा सकता। अब जो इच्छा हो, करिये। मैं इन चरणों को छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगा।''

भोर के समय गुरुदेव कुटिया के बाहर आये तो देखा— उनका प्रिय शिष्य आश्रम के बाहर एक पेड़ के नीचे हाथ जोड़े खड़ा है। पास जाकर बोले— ''यहाँ क्यों खड़ा है ? पूजा-पाठ नहीं करना है ? जाओ, मन्दिर में जाकर पूजा की तैयारी करो।''

भोलानन्दजी अपने गुरुदेव के स्वभाव को अच्छी तरह जानते थे, इसलिए उन्हें प्रणाम कर चुपचाप आश्रम के भीतर चले गये।

समय गुजरता गया। एक दिन गुरुदेव ने भोलानन्द को बुलाकर कहा—" वत्स, अब कुछ दिनों के लिए कृच्छ्र-साधना के लिए जाना होगा। तुम्हारे साथ तीन अन्य ब्रह्मचारी भी जायँगे। वहाँ से वापस आने के बाद तुम्हें आगे की साधना के बारे में बताऊँगा।"

गुरु की आज्ञा मानकर अपने तीनों गुरुभाइयों के साथ हिमालय की तराई के आगे एक सुनसान कन्दरा में चले आये। पास ही कुछ दूरी पर नदी बह रही थी। चारों ओर घना जंगल था। गुफा की सफाई करने के बाद चारों ब्रह्मचारी साधना में लग गये। रात्रि को हिंस्र जानवरों से बचने के लिए धूनी जलाकर बीज मंत्र जपते थे।

एक दिन धूनी की लौ मन्द पड़ गयी तो देखा— गुफा के बाहर एक बाघ जीभ निकालकर देख रहा है। मन्द प्रकाश में उसकी आँखें चमक रही थीं। भोलानाथ ने अपने गुरुभाइयों से कहा— "डरने की जरूरत नहीं। अपने-अपने आसन पर एकाग्र चित्त से मंत्र का जाप करते रहो। गुरुदेव हमारी रक्षा करेंगे।"

इन गुरुभाइयों में एक का हृदय बहुत कमजोर था। वह हमले के डर से सुरक्षित स्थान में जाने के लिए ज्योंही उठ खड़ा हुआ त्योंही एक छलाँग में बाघ ने उसे दबोच लिया। इसके बाद उसे घसीटता हुआ जंगल के भीतर ले गया।

बाद में भोलानन्द ने अपने गुरुभाइयों से कहा— "एकनिष्ठ भाव से अगर अपने आसन में जप करते रहो तो गुरु-कृपा से कोई खतरा नहीं होगा। गुरु हमेशा अपने शिष्यों की रक्षा करते हैं। प्रभासचन्द्र अपनी अकाल मृत्यु के लिए स्वयं उत्तरदायी है।"

इसी प्रकार एक बार जब वे पद्मासन लगाकर ध्यान लगाये हुए थे तब एक रीछ आया और पीछे से इन्हें जकड़ लिया। आसन्न विपद् से मुक्ति पाने के लिए भोलानन्दजी ने उसके मुँह को कसकर दबाया और पीठ पर लादकर एक गहरी खाई के पास आये। पीठ पर लदे भालू को एक झटके में खाई में फेंकते हुए बोले— "भइया, अब तुम अपना रास्ता नापो और मैं अपने रास्ते जाता हूँ।"

गुरु की आज्ञा से वे आगे और कठोर तप करने के लिए निबिड जंगल में चले गये। वहाँ खाने-पीने की असुविधा होने लगी। साधना-रत भोलानाथ अनाहार के कारण कृश होते गये। केवल झरने का पानी और वृक्ष की पत्तियों का सेवन करते रहे।

गर्मी के कारण झरने का जल सूख गया। एक दिन पानी लेने के लिए नीचे नदी की ओर आये। कमजोरी के कारण उनका पैर डगमगाया और वे नदी में गिर पड़े। होश आने पर उन्होंने अपने को एक कमरे में पाया। उनके ऊपर एक पहाड़ी झुका हुआ उनकी सेवा कर रहा था। कलेजे में सर्दी जम गयी थी।

बातचीत के सिलसिले में पहाड़ी ने कहा कि आप पता नहीं कहाँ से बहते हुए आ रहे थे। पहले सोचा कि आप मृत हैं, पर साँस चलती देखकर मैं आपको यहाँ ले आया। यह आपका ही घर है। यहाँ आप आराम से विश्राम कीजिए।

पहाड़ी की सेवा से भोलानन्दजी स्वस्थ हो गये। उसके अनुनय पर उन्होंने उसे दीक्षा दी। यही पहाड़ी स्वामी भोलानन्द गिरि का प्रथम शिष्य था। उसे अपने साथ लेकर भोलानन्दजी

अपने गुरु के पास आये। गुरुदेव का आश्रम कुरुक्षेत्र के पास पस्ताना में था। सारी बातें सुनने के बाद गुरुदेव ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा—"मेरे पास जो कुछ था, वह सब तुम्हें दे चुका। अब तुम पूर्ण हो गये हो। मेरा आशीर्वाद सदा तुम्हारे साथ रहेगा। अब आगे की साधना के लिए तुम अन्यत्र कहीं कुटिया स्थापित कर लो। अब तुम्हें मेरी आवश्यकता नहीं है।"

गुरुदेव की आज्ञा शिरोधार्य कर भोलानन्दजी हिमालय के विभिन्न क्षेत्रों में साधना करते हुए हरिद्वार स्थित लालतारा बाग में आये। यह स्थान उन्हें पसन्द आ गया। कुछ दिनों के भीतर भोलानन्द का योगैश्वर्य स्थानीय सन्तों में चर्चा का विषय हो गया। शिष्य और सेवकों की संख्या बढ़ती गयी।

अपने गुरुदेव की तरह आप भी सच्चे साधकों की तलाश में सभी के साथ उग्र व्यवहार करने लगे। शिष्यों से खेती करवाना, ढोर चरवाना, नाली साफ कराना, भंडारे के लिए भोजनादि बनवाने का काम लेते रहे। अपने कार्य में जो सेवक लापरवाही करता, उसे फटकारने के अलावा कभी-कभी मार भी देते थे। जब शिष्य मन में कष्ट अनुभव करते तब पास बुलाकर आदर भी करते थे।

एक बार महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज ने उनसे अजपा-रहस्य के बारे में प्रश्न किया था। इस बारे में उन्होंने कहा—"मनुष्य की स्वाभाविक श्वासों की संख्या २१६०० है, ऐसा कहा जाता है, इसलिए प्रति श्वास के साथ नाम का घनिष्ठ सम्पर्क है और अजपा-रहस्य के साथ इसका विशेष तात्पर्य देखने में आता है। ऐसा न कर पाने पर भी प्रतिदिन अभ्यास करते हुए, उसे पूरा करना चाहिए। मानव-शरीर धारण करने के बाद से, अर्थात् मातृ-गर्भ से भूमिष्ठ होने के बाद से प्रयाण-काल तक, समग्र जीवन के माध्यम से स्वाभाविक श्वास-प्रश्वासों की क्रिया होती रहती है, इसीको मूल जड़ बनाकर अजपा-साधना अनुष्ठित होती है। इसके लिए कोई विशेष उपकरण, किसी प्रकार की कृत्रिम प्रक्रिया या किसी प्रकार के विशेष अनुशासन की आवश्यकता नहीं होती। श्वास-प्रश्वास जिस प्रकार ज्ञात और अज्ञात रूप में हर वक्त प्रवाहित हो रहा है, श्वास-प्रश्वास के साथ ही सर्वश्रेष्ठ अजपा-क्रिया भी उसी प्रकार जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्तिकाल में, समरूप में जारी रहती है। यह साधना अत्यन्त निगूढ़ तथा इसका विज्ञान भी एक गंभीर रहस्य है। इसका फल अन्य कृत्रिम साधना की तरह नहीं होता। निष्क्रिय परमसत्ता के हृदय को आश्रय बनाकर जो क्रिया विश्व में निरन्तर जारी है, अजपा मनुष्य शरीर में उसकी प्रतिच्छाया मात्र है—यह स्वभाव की साधना है। प्रकृति के बीच व्यष्टि भूमि में एवं समष्टि में, समरूप से इसका प्रभाव पड़ता है। अजपा-विज्ञान को अगर ठीक से जान लिया जाय तो तत्त्वज्ञान का पूर्ण उदय हो जाता है। यह साधना जितनी स्वाभाविक है, इसका फल भी उतना ही स्वाभाविक है अर्थात् स्वभाव में स्थिति की प्राप्ति।

शिशु जब मातृगर्भ से बाहर आता है और जब उसकी नाल काटी जाती है, तभी से उसके शरीर में श्वास-प्रश्वास की क्रिया चालू हो जाती है। मातृगर्भ में रहते समय गर्भधारिणी जननी से अलग शिशु का श्वास-प्रश्वास नहीं रहता। गर्भस्थ शिशु माँ के द्वारा व्यवहृत भोजन से पुष्टि प्राप्त करता है और माँ के श्वास-प्रश्वास से ही उसके शरीर का विकास होता है। लेकिन प्रसव के साथ ही उस पर वैष्णवी माया का आक्रमण होता है और तभी से वह काल-राज्य में निवास करने लगता है। शिशु का प्रथम श्वास जन्म और अन्तिम श्वास-त्याग

मृत्यु के नाम से प्रसिद्ध है। जन्म से मृत्यु तक मध्यावस्था ही उसका जीवन है। इस दृष्टि से मनुष्य का समग्र जीवन ही श्वास-प्रश्वासमय है। प्रकृत प्रस्ताव में श्वास-प्रश्वास काल की लीला है। हम लोग जिसे जीवन कहते हैं, वह काल या मृत्यु की अपनी महिमा का प्रकाश मात्र है।

शिष्य का पुरुषकार या तपस्या ही सर्वदा गुरु-कृपा को आकर्षित करती है। कठोर भाव से बिना तपस्या किये वह कभी प्राप्त नहीं होती। साधनरूप पत्नी के साथ युक्त होकर ज्ञानरूप पुत्र-प्राप्ति शिष्य को ही करनी पड़ेगी। इसके लिए तीव्र तपस्या की जरूरत है। तपस्या की दीवार है—वैराग्य।

गुरु शिष्य को दीक्षा देने के बाद साधन-दान करते हैं। साधनरूप पत्नी का अगर संग नहीं किया, कठोर तपस्या में व्रती नहीं हुए तो मोक्षरूप पुत्र की प्राप्ति से वंचित रहना पड़ेगा। इसके लिए गुरु जिम्मेदार नहीं हैं, बल्कि इसके लिए शिष्य ही जिम्मेदार होगा।"

इस कथन से तप-साधना के साथ-साथ गुरु-शिष्य के संम्पर्क पर संक्षेप में प्रकाश डाला गया है। यह नियम केवल उनके लिए है जो शिष्य बनकर साधना के क्षेत्र में प्रगति करना चाहते हैं। भक्तों के लिए बाबा कृपालु रहते हैं। आज भी शक्तिधर सन्तों का अभाव नहीं है, पर उन्हें खोजना कठिन है।

प्रसिद्ध गणितज्ञ सोमेशचन्द्र बसु की पत्नी की मृत्यु हो गयी। वे अपनी पत्नी को बहुत चाहते थे। उसके अभाव में उनके मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया। उन्होंने निश्चय किया कि अब वे अपना सारा समय भजन-पूजन में व्यतीत करेंगे। दीक्षा लेने के लिए नाना प्रकार के संतों के पास गये। कहीं उनकी इच्छा पूर्ण नहीं हुई।

उनकी शर्त यह थी कि वे उस संत से दीक्षा लेंगे जो उनकी मृत पत्नी के साथ दोनों को ही दीक्षा दे सकेंगे। इस शर्त को सुनते ही संत लोग भड़क जाते थे। मृता पत्नी के साथ दीक्षा कैसे दी जा सकती है ? जो मर गया वह तो पंचभूत में विलीन हो गया। हम कोई ईश्वर नहीं हैं जो मृत को जीवित बना सकें।

इधर सोमेशचन्द्र अपनी जिद पर अटल रहे। ऐसे शक्तिधर सन्त की तलाश में चारों ओर चक्कर काटते रहे। अन्त में भोलानन्दजी से मुलाकात हुई। यह सन् १९१४ की बात है।

भोलानन्दजी ने कहा— "घबराओ मत, तुम्हारी कामना पूरी होगी।"

इतना सुनते ही सोमेशचन्द्र आनन्द से गद्‌गद हो उठे। आज ईश्वर की कृपा से वास्तविक सद्‌गुरु मिले। उन्होंने शंका प्रकट की— "क्या मेरे साथ मेरी पत्नी को भी दीक्षा देंगे ?"

हँसते हुए बाबा भोलानन्द ने कहा— "तुम्हारी यही इच्छा है न ? तुम्हारे साथ-साथ उसे भी दीक्षा दूँगा।"

पुनः शंकित हृदय ने प्रश्न किया— "मुझे कैसे मालूम होगा कि मेरे साथ उसे भी दीक्षा दी गयी ? क्या वह यहाँ सशरीर उपस्थित होगी ?"

भोलानन्द ने कहा— "अवश्य। वह तुम्हारे पास आकर बैठेगी। तुम उसे प्रत्यक्ष रूप से देख सकोगे। लेकिन इस बात की प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी कि तुम उसे स्पर्श नहीं करोगे।"

सोमेशचन्द्र इस बात पर राजी हो गये।

शुभ दिन देखकर आयोजन किया गया। तीन आसन बिछाये गये। एक गुरु के लिए और दो उनके सामने सोमेशचन्द्र तथा उनकी मृत पत्नी के लिए। सोमेशचन्द्र अपने आसन पर बैठ गये। सामने स्वामी भोलानन्द बैठे। दीक्षा-कार्य प्रारंभ हुआ।

सहसा बायीं ओर निगाह जाते ही सोमेशचन्द्र ने देखा— उनकी पत्नी बगल में विराजमान है। वही शक्ल, वही साड़ी, वही मुस्कान। दोनों ने एक-दूसरे को प्रेम से देखा। सोमेशचन्द्र के कलेजे का खून उछलकर मस्तिष्क में आ गया। तभी गुरुजी की चेतावनी कानों में गूँज उठी। अपने को संयत कर वे बैठे रहे।

भोलानन्दजी ने कान में बीज-मंत्र दिया। इसके बाद पत्नी के कान में दिया। दोनों शिष्यों ने गुरु को प्रणाम किया और तभी सोमेशचन्द्र की पत्नी अन्तर्धान हो गयीं।

बहुत दिनों की एक अभिलाषा को आज साकार होते देख सोमेशचन्द्र आनन्द और आदर से गद्‌गद हो उठे। भोलानन्दजी के चरणों पर मस्तक रखकर हर्ष के आँसू बहाने लगे।

इसी प्रकार असम प्रान्त के श्रीहट्ट जिले में अमरनाथ राय नामक एक भक्त की भोलानन्द के प्रति अपार श्रद्धा थी। उनका एकमात्र पुत्र बीमार हो गया। ज्यों-ज्यों इलाज होता गया, त्यों-त्यों मर्ज बढ़ता गया। पति-पत्नी तथा परिवार के सभी सदस्य इस संकट से बुरी तरह घबरा उठे।

अमरनाथ राय को अचानक अपने गुरुदेव की याद आयी। उन्होंने तुरत पोस्ट आफिस जाकर हरिद्वार के पते पर तार भेजा— "गुरुजी, मेरे बच्चे को बचाइये। अब आप ही का भरोसा है।"

उधर से पत्र द्वारा जवाब आया— "यथासंभव नाम-जप करो और दान दो।"

पत्र में केवल इतना ही लिखा था। उसी दिन रात को सहसा उनके लड़के ने पिता के गले में हाथ डालकर कहा— "पिताजी, मैं बिलकुल अच्छा हो गया।"

अभी दोपहर को जो लड़का बेहोश था, पुकारने पर आवाज नहीं दे रहा था, वह इस तरह आश्वासन दे रहा है! कहीं प्रलाप तो नहीं कर रहा है? अन्तिम समय जानकर वे रो पड़े।

लड़के ने कहा— "आप रो क्यों रहे हैं? सचमुच अच्छा हो गया हूँ। अभी कुछ देर पहले गुरुजी महाराज आये थे। उन्होंने अपने कमण्डल से मुझ पर पानी छिड़का और मैं अच्छा हो गया।"

"गुरुजी महाराज आये थे? कब, कहाँ?" अब अमरनाथ राय चौंके।

लड़के ने कहा— "अभी-अभी थोड़ी देर पहले आये थे। उनके पीछे कई और बाबा खड़े थे।"

उस वक्त लड़के के पास जितने लोग खड़े थे, उन सभी की आँखों में अविश्वास की झलक थी। पिता ने पूछा— "अच्छा, यह बताओ, गुरु महाराज की शक्ल कैसी थी?"

लड़के ने कहा— "लम्बा-चौड़ा शरीर, सिर पर पगड़ी, पैरों में खड़ाऊँ, हाथ में कमण्डल और उनके शरीर से एक प्रकार की ज्योति निकल रही थी।"

अमरनाथ राय ने मन में अन्दाज लगाया कि लड़का वर्णन तो सही कर रहा है। तभी

लड़के ने कहा— "तुम लोगों को विश्वास नहीं हो रहा है ? गुरु महाराज ने अपने कमण्डल से मुझ पर पानी छिड़का था। देखो, अभी तक मुँह, हाथ और बदन पर पानी है।"

इस बात का निरीक्षण किया गया तो सही प्रमाणित हुआ। अमरनाथ राय ने गुरुदेव को स्मरण करते हुए मन ही मन प्रणाम किया।

कुछ दिनों बाद हरिद्वार में अमरनाथ राय का एक पत्र लड़के के बारे में पहुँचा तो भोलानन्दजी ने अट्टहास करते हुए कहा— "अरे सुनो मेरे शिष्यो, श्रीहट्ट से एक शिष्य अमरनाथ का एक पत्र आया है कि मैं उसके घर जाकर बीमार लड़के को ठीक कर आया हूँ। तुम लोग तो जानते ही हो कि मैं यहाँ से इधर पिछले कई महीनों से कहीं नहीं गया। वास्तव में यह भगवान् की लीला है। अगर उन्हें सच्चे मन से स्मरण किया जाय तो उनकी कृपा अवश्य होती है। यही वजह है कि मैं तुम लोगों से बराबर कहता हूँ—सच्ची लगन के साथ उस परम ब्रह्म को स्मरण करते रहो। न जाने कितनी योनियों में जन्म लेने के बाद मानवतन प्राप्त हुआ है। जीवन क्षणभंगुर है। परमात्मा को निशि-दिन स्मरण करते रहो।"

श्री अचलनाथ मित्र कलकत्ते के प्रसिद्ध एटर्नी हैं और भोलानन्दजी के भक्त शिष्य हैं। उनकी इच्छा थी कि बाबा एक बार पूजा (दशहरा-पर्व) के अवसर पर उनके यहाँ अतिथि बनें। भक्त की इच्छा-पूर्ति करने गुरुजी आ गये।

कलकत्ता तथा आसपास के भक्तों तथा दर्शनार्थियों की भीड़ उनके यहाँ लग गयी। भोलानन्दजी नित्य उपदेश देते रहे। दशहरे के दिन उन्हें हरिद्वार वापस जाना था। गाड़ी में स्थान सुरक्षित हो गया था। सारा सामान ठीकठाक हो गया।

ठीक इसी समय भोलानन्दजी के एक अन्य शिष्य मोहिनीमोहन चक्रवर्ती वहाँ आये। उनकी इच्छा थी कि बाबा एक बार उनके घर चरण-रज दें तो असीम कृपा होगी। वे यहाँ नित्य आते थे और अपना निवेदन जताना चाहते थे, पर संकोचवश कह नहीं पाते थे। आज गुरुदेव को वापस जाते देख मन ही मन रो पड़े, पर अपनी इच्छा व्यक्त नहीं कर सके।

गुरुदेव धीरे-धीरे नीचे उतरने लगे और इधर चक्रवर्ती महाशय मन ही मन कातर स्वर में प्रार्थना करने लगे—"गुरुदेव, आप तो मेरे मन की बात जानते हैं, फिर यह उपेक्षा क्यों ? क्या मेरी कामना पूरी नहीं करेंगे ? क्या मैं इतना अधम हूँ ?"

देखते ही देखते गुरुदेव रवाना हो गये। चक्रवर्ती की हसरत मन में रह गयी। वे चुपचाप अपने घर वापस आ गये। घर पर आते ही पत्नी ने पूछा— "अब तक कहाँ मटरगश्ती करते रहे ? गुरुदेव यहाँ आकर चले गये। तुमसे मुलाकात भी नहीं हुई।"

"क्या ?" चक्रवर्ती महाशय चीख उठे— "गुरुदेव यहाँ आये थे ? कब ?"

"अभी थोड़ी देर पहले। उन्होंने हमें आशीर्वाद दिया। इसके बाद चुपचाप रवाना हो गये। अधिक देर ठहरे नहीं। शायद वे कहीं जाने की तैयारी में थे।"

चक्रवर्ती बाबू मानो इन बातों को चुपचाप निगल रहे थे। अन्तर्यामी गुरुदेव की आखिर कृपा हो गयी। गुरुदेव की इस कृपा पर उनकी आँखें छलछला आयीं।

सन् १८६३ ई० की घटना है। प्रयाग में कुंभ-मेला लगा था। दसनामी संतों के अखाड़े-आये थे। दूर-दूर तक तम्बुओं का जाल बिछ गया था। सहसा इसी बीच प्रभुपाद विजय-कृष्ण गोस्वामी को लेकर संन्यासियों में झगड़ा हो गया। दसनामी संन्यासी अपने क्षेत्र में उन्हें

तम्बू लगाने देना नहीं चाहते थे, क्योंकि वे वास्तव में गृही संन्यासी थे। जिसकी पत्नी हो, वह संन्यासी कैसा ?

समाचार भोलानन्दजी के पास आया। आसन्न संकट को दूर करने के लिए वे तुरत घटनास्थल पर आये और कहा— "आप लोग क्या तमाशा कर रहे हैं ? गोस्वामीजी असाधारण संन्यासी हैं। भले ही वे गृही हैं तो क्या हुआ ? आपमें से अधिकांश लोग इनके स्तर तक नहीं पहुँच सके हैं। अगर यह चाहें तो अभी यहाँ ताण्डव-नृत्य हो सकता है।"

भोलानन्द गिरि कितने महान् योगी हैं, यह बात संन्यासी-समाज से छिपी नहीं थी। भोलानन्दजी स्वयं भी दसनामी संन्यासियों में थे। भोलानन्दजी को हस्तक्षेप करते देख उग्रवादी संन्यासियों का क्रोध शान्त हो गया।

इसके बाद वे गोस्वामीजी की छोली में जाकर बोले— "मेरे आशुतोष, नाराज मत होना। ये सब बालक हैं। इन्हें क्षमा कर देना।"

गोस्वामीजी ने मुस्कराकर कहा— "आपका आदेश पाने के पूर्व ही मैंने यह कार्य कर दिया है। आइये, विराजिये।"

'प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी'[१] ने बाद में अपने भक्तों से कहा था—"हमारे भोलानन्द गिरिजी महाराज इस युग के असाधारण योगी हैं। अगर वे चाहें तो इस संसार को नष्ट कर सकते हैं।"

नाथ-सम्प्रदाय के महान् योगी गंभीरनाथ को भी वे बहुत चाहते थे। कुंभ-मेला के अवसर पर उन्होंने कहा— "मेरे तम्बू में गोस्वामीजी तथा बाबा गंभीरनाथ के भक्तों के बाद मेरे शिष्यों को स्थान मिलेगा। ये दोनों संत इस युग के युग-पुरुष हैं। सामान्य लोग इन्हें नहीं जानते।"

भोलानन्दजी के एक भक्त शिकार के शौकीन थे। वे अपने मित्रों के साथ सुन्दरवन में शिकार खेलने गये। सुन्दरवन भारत का प्रसिद्ध जंगल तथा खूँखार जानवरों का आरामगाह है। इधर-उधर शिकार करते समय भक्त महाशय मित्रों की टोली से बिछुड़ गये तभी उनका एक बाघ से सामना हुआ। बाघ को देखते ही भक्त महाशय के होश उड़ गये। बन्दूक के बदले हाथ में एक छोटा भाला था। इस छोटे हथियार से कब तक लड़ते। लेकिन भक्त साहसी था। उस हथियार को लेकर वह लड़ने के लिए तैयार हो गया। आखिर में लहूलुहान होकर वे गिर पड़े। उन्हें यह ज्ञात हो गया कि अब मौत निश्चित है। अंतिम काल में भगवान् की याद आती है। सहसा भक्त को अपने गुरुदेव की याद आ गयी। 'जय गुरुदेव' कहते हुए वे एक ओर लुढ़क गये।

ठीक उसी समय तेज आवाज आयी— "हिम्मत मत हारो। उठो और एक बार पूरी ताकत से भाला बाघ की ओर फेंको।"

इस आकाशवाणी को सुनते ही न जाने कहाँ से उनमें शक्ति उत्पन्न हो गयी। पास ही पड़े भाले को उठाकर पूरी ताकत से बाघ की ओर फेंका। भक्त को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि कई बार भाला मारने पर भी बाघ की हानि नहीं हुई, पर इस बार कमजोर हाथों ने कमाल कर दिखाया। बाघ वहीं ढेर हो गया था।

---

[१] देखिये 'भारत के महान् योगी' प्रथम भाग।

भक्त को समझते देर नहीं लगी कि गुरुदेव की कृपा से यह संभव हुआ, वरना आज मौत निश्चित थी।

बाबा भोलानन्द कभी-कभी मौज में रहने पर अपनी साधना, अपने गुरुदेव के बारे में, शिष्यों को कहानियाँ सुनाया करते थे। कभी-कभी विचित्र अनुभवों की भी चर्चा करते थे।

बातचीत के सिलसिले में एक दिन उन्होंने बम्बई के एक सेठ के बारे में अत्यन्त मनोरंजक कहानी सुनायी। एक बार वे तीर्थों का दर्शन करते हुए बम्बई शहर में एक धनी सेठ के यहाँ ठहरे। सेठजी के परिवार में पति-पत्नी और एकमात्र लड़की थी। स्वामी भोलानन्द सारस्वत ब्राह्मण तथा तपस्वी जीवन व्यतीत करने के कारण अत्यन्त क्रान्तियुक्त पुरुष लगते थे। सेठजी अपनी विशाल सम्पत्ति की सुरक्षा के लिए पुत्र की कामना करते रहे, पर उनकी यह इच्छा पूरी नहीं हुई।

भोलानन्दजी के रूप-गुण पर मुग्ध होकर सेठजी ने कहा— "स्वामीजी, क्या आप मेरा एक अनुरोध स्वीकार करेंगे ?"

"क्या ?"

"हम दोनों की इच्छा है कि आप स्थायी रूप से हमारे बन जायँ। एक लड़की के अलावा हमारी अन्य कोई सन्तान नहीं है। आप इसे ग्रहण कर मेरी जायदाद का भार सम्हालें।"

भोलानन्दजी को बड़ा विस्मय हुआ। व्यापारी को धन की लिप्सा नहीं। आखिर यह कैसे संभव हो रहा है ? क्षणभर में रहस्य समझ में आ गया। मुस्कराते हुए बाबा ने पूछा— "आप यह कृपा क्यों कर रहे हैं ? इतनी सम्पत्ति, विशाल भवन, इतनी सुविधाएँ, सुख को क्यों त्याग रहे हैं ? क्या आपको इनसे घृणा हो गयी या यह सब भारस्वरूप प्रतीत हो रहा है ?"

सेठ ने कहा— "आपका कहना ठीक है। लेकिन सब कुछ रहते हुए हमें शान्ति नहीं मिल रही है। दिन-रात नाना प्रकार की चिन्ताओं से परेशान रहते हैं। हम इनसे मुक्त होकर तीर्थ-भ्रमण और भजन-पूजन में लगना चाहते हैं।"

भोलानन्दजी ने कहा— "अब आप ही सोचिये कि जिस जंजाल से मुक्त होना चाहते हैं, उसे दूसरे के गले क्यों मढ़ना चाहते हैं ? अगर मुझे यही प्रिय होता तो शान्ति की तलाश में यह चोला क्यों धारण करता ? मैं एक संन्यासी हूँ, गृही नहीं। मुझे आप इसके लिए क्षमा करें।"

सेठवाली घटना से भोलानन्दजी को एक नयी दिशा मिली। वे गृहस्थों के घर से दूर हरिद्वार चले आये। इसके बाद यहीं उन्होंने अपना स्थायी आश्रम स्थापित किया। अब तक उनके गुरु गुलाबगिरि का तिरोधान हो गया था। आश्रम में साधकों की संख्या बढ़ती रही। लेकिन बाबा भोलानन्द के आश्रम में शिष्यों तथा भक्तों को एक परेशानी का सामना करना पड़ता था।

आश्रम में बन्दर भयंकर उत्पात करते थे। रोटी सेंककर रखिये, पलक झपकते ही गायब। कपड़े सूखने के लिए डालिए, लेकर चम्पत। गठरी खोलकर आटा, चावल, दाल निकाल ले जाते थे। यही स्थिति अयोध्या, मथुरा, गोकुल आदि स्थानों में थी। बन्दरों के

कारण नाक में दम हो जाने पर एक दिन कई शिष्यों ने इस बात की शिकायत गुरुजी से की।

गुरुजी का सख्त आदेश था कि आश्रम में स्थित किसी भी पशु-पक्षी को न मारा जाय। भक्तों की शिकायत सुनकर एक दिन गुरु भोलानन्दजी बाग में आये और तेज स्वर में कहा— "बन्दरो, तुम सब जो जहाँ है, वहाँ से सामने आकर बैठो।"

आश्रम के चारों ओर जितने बन्दर थे, सभी आकर भोलानन्दजी के सामने ऐसे बैठे जैसे उनका भाषण सुनने आये हों। शिष्यों और भक्तों के लिए यह अपूर्व दृश्य था।

स्वामी भोलानन्द ने कहा— "तुम लोगों के उपद्रव के कारण मेरे शिष्यों और भक्तों को बहुत कष्ट हो रहा है। मेरे आदेश के कारण तुम लोगों को कोई मारता नहीं। इसका यह अर्थ नहीं कि तुम लोगों को तंग करते रहो। आश्रम में जितने फल लगे हैं, उन्हें खाने का अधिकार तुम्हें है। भक्त और शिष्य जो कुछ खुशी से दें, उसे भी तुम खा सकते हो। मगर आइन्दा कभी किसीके कपड़े फाड़ना नहीं, किसीकी गठरी खोलकर सामान निकालना नहीं। समझे ?"

सामने एक बूढ़ा बन्दर बैठा था, उसने सिर हिलाया जैसे बाबा का आदेश समझ गया हो, शेष बन्दर चुपचाप शान्त थे।

बाबा भोलानन्द ने कहा— "जिस प्रकार तुम्हें फल खाने का अधिकार है, उसी प्रकार तुम्हें मुँह चिढ़ाने का अधिकार है। हम फलों को नुकसान होते देख मारने की धमकी देंगे, भगायेंगे और डाटेंगे। यह अधिकार हमें रहेगा। बोलो, मंजूर है ?"

बूढ़े बन्दर ने सिर हिलाकर अपनी सम्मति दी। दूसरे दिन से बन्दरों का उत्पात बन्द हो गया। ऐसे महान् सन्त थे—बाबा भोलानन्द गिरि। आपके बारे में प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी का कहना था— "आप उच्चकोटि के योगी हैं। पृथ्वी को ध्वंस करने की क्षमता रखते हैं।"

८ मई, सन् १६२८ ई० को हरिद्वार के आश्रम में आपका तिरोधान हो गया।

●

तंत्राचार्य शिवचन्द्र विद्यार्णव

तंत्राचार्य शिवचन्द्र विद्यार्णव

नदिया जिले के कुमारखाली गाँव में भट्टाचार्य-परिवार कई पुश्तों से निवास करता आ रहा है। कुमारीखाली इस परिवार का आदि निवास-स्थान नहीं है। यह परिवार फरीदपुर जिले के महीशाला गाँव से आकर बस गया था। वंश-परम्परा से इस परिवार के सदस्य तंत्र की चर्चा करते आये हैं। नेपाल, चीन और तिब्बत से प्राप्त तंत्र-साहित्य की अमूल्य पाण्डुलिपियाँ इस परिवार में सुरक्षित हैं। परिवार में जिसे इस साहित्य से रुचि होती है, वही इन ग्रंथों का अध्ययन करता है।

इस वंश के निमानन्द अलौकिक शक्ति-सम्पन्न साधक थे। आपके बारे में अनेक किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। कहा जाता है कि होमकुण्ड प्रज्वलित कर आपने आत्माहुति दी थी। आपके पौत्र पं० कृष्णसुन्दर तर्कालंकार केवल विद्वान् ही नहीं थे, बल्कि तंत्र-साधना में भी सिद्ध हो गये थे। आपके पुत्र चन्द्रकुमार तर्कवागीश संस्कृत-साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान् थे। गाँव में आयोजित पूजा-अर्चना में आप सक्रिय रूप से भाग लेते थे। आपकी पत्नी श्रीमती चन्द्रमयी देवी थीं।

कुछ दिनों बाद सन् १८६० ई० के मई माह में आपके यहाँ पुत्र का जन्म हुआ। पंचानन भगवान् के निकट आराधना करने के कारण प्रथम पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई थी, इसलिए माता ने इस बालक का नाम रखा—पंचानन भट्टाचार्य। आगे चलकर पितामह ने बालक का नया नामकरण किया—शिवचन्द्र। बाद में लोग पंचानन नाम भूलकर बालक को शिवचन्द्र के नाम से बुलाते रहे।

धीरे-धीरे बालक बड़ा होता गया। गाँव में हरिनाथ[१] की एक पाठशाला थी जहाँ गाँव के अधिकांश बालक अध्ययन करते थे। इस पाठशाला के अधिकांश विद्यार्थी आगे चलकर बंगला-साहित्य के प्रसिद्ध कवि, पत्रकार, कथाकार, राजनेता तथा तांत्रिक हुए हैं।

बंगाल के प्रसिद्ध पत्रकार तथा कथाकार श्री जलधर सेन इसी पाठशाला के छात्र और शिवचन्द्र के सहपाठी थे। अपने बचपन के संस्मरण में आपने लिखा है—

"उन दिनों की पद्धति के अनुसार नाना प्रकार के अनुष्ठान करने के बाद पुरोहित महाशय ने हमसे शिक्षा का श्रीगणेश[२] नहीं कराया था। न मेरा और न शिवचन्द्र का। यद्यपि सारा अनुष्ठान हुआ था, पर श्रीगणेश कराया था—हमारे परम आराध्य कांगाल हरिनाथ ने।

---

[१] आप एक महान् संत, पत्रकार, अध्यापक थे। कांगाल हरिनाथ के नाम से आगे चलकर प्रसिद्ध हुए थे।

[२] बंगाल में वसन्त पंचमी के दिन या सरस्वती-पूजा के अवसर पर पाठशाला में पढ़ने के लिए पहले दिन जो बटुक आते हैं, उनका हाथ पकड़कर खड़िया से श्री गणेशाय नमः लिखाया जाता है।

उन्होंने दो-तीन माह आगे-पीछे हम दोनों को पढ़ाना शुरू किया था। जब हमारी उम्र चार साल की हुई तब मैं तथा शिवचन्द्र "बंगला स्कूल" में पढ़ने गये। हम दोनों में से कोई भी गुरु महाशय की पाठशाला में पढ़ने नहीं गया था।"

शिवचन्द्र का परिवार कट्टरपंथी था, इसलिए घर के लोग प्रत्येक विषय में धार्मिक-संस्कारों का कड़ाई से पालन करते थे। अंग्रेजी भाषा को म्लेच्छ भाषा समझते थे। घर के सभी पुरुष देवभाषा संस्कृत का अध्ययन करते रहे। संस्कृत भाषा के प्रति इस परिवार के पुरुषों की अगाध श्रद्धा थी। इसका उदाहरण शिवचन्द्र के बचपन की एक घटना से प्राप्त होता है।

बचपन की इस घटना के बारे में श्री जलधर सेन ने लिखा है—"हम लोगों के चन्द्र काका यानी शिवचन्द्र के पिता बड़े तेजस्वी पुरुष थे। बचपन में शिवचन्द्र को कहानियाँ पढ़ने का शौक हो गया था।

एक दिन चन्द्र काका ने पूछा—"कौन सी पुस्तक पढ़ रहा है ?"

शिवचन्द्र ने कहा—"डुबाल की कहानियाँ।"

"डुबाल की कहानियाँ ? ला, देखूँ तो।" कहने के साथ ही उन्होंने शिवचन्द्र के हाथ से पुस्तक झटक ली। कई मिनट पढ़ने के बाद पुस्तक को दूर फेंकते हुए बोले—"आजकल यही सब किताबें पढ़ते हो ? क्या हमारे देश में महापुरुषों की कमी है जो डुबाल की कहानियाँ पढ़ते हो ? कल से तुम्हें स्कूल जाने की आवश्यकता नहीं है। डुबाल की कहानियाँ हमारे देश को एक दिन डुबो देंगी।"

तेजस्वी ब्राह्मण का आदेश पत्थर की लकीर बन गयी। शिवचन्द्र का इंगलिश स्कूल जाना बन्द हो गया। इसके बाद शिवचन्द्रजी को नवद्वीप की एक चटशाला में पढ़ने के लिए भेजा गया जहाँ उनका निर्माण शास्त्रीय ढंग से हुआ।

अल्प समय के भीतर वे व्याकरण, अलंकार, काव्य आदि विषयों में पारंगत हो गये। कुछ दिनों के भीतर इस बालक की ख्याति चारों ओर फैल गयी। नवद्वीप स्थित संस्कृत कालेज के अध्यापक श्री तारिणीचरण चटर्जी इस प्रतिभावान् बालक की मेधाशक्ति से इतने प्रभावित थे कि उन्होंने अपनी ओर से कलकत्ता के संस्कृत कालेज में संस्कृत के साथ-साथ अंग्रेजी पढ़ने के लिए इन्तजाम किया।

शिवचन्द्रजी उन दिनों नवद्वीप में अपने पिता के मित्र श्रीनाथ शिरोमणि के यहाँ रहते थे। शिरोमणिजी को तारिणी चटर्जी का प्रस्ताव पसन्द आया। उन्होंने इस समाचार को शिवचन्द्र के पितामह के पास पत्र लिखकर सूचित किया। उन्हें विश्वास था कि यह प्रस्ताव वे स्वीकार कर लेंगे।

इस प्रस्ताव को पढ़कर शिवचन्द्र के पितामह ने लिखा—"वत्स, तुम स्वर्गीय रामनाथ तर्कसिद्धान्त के पुत्र, देवी तर्कालंकार के प्रपौत्र और नवद्वीप के स्मार्त प्रधान हो। ऐसी स्थिति में मेरे पौत्र को अंग्रेजी पढ़ाने के लिए कैसे राजी हुए, यह समझ नहीं पाया। वही हमारा एकमात्र पौत्र है, हमारे पूर्वपुरुषों को पानी-पिण्डा वही देगा, वंश का सारा कार्य, देव-सेवा आदि सब कुछ इसी लड़के पर निर्भर है, उसी लड़के को तुमने अंग्रेजी पढ़ाने का प्रस्ताव कैसे भेजा, यह समझ नहीं पाया। लड़के को अंग्रेजी पढ़ाकर स्वधर्म नष्ट करना, पूर्वपुरुषों तथा अपना पिण्ड एवं वंश का धर्म-कर्म नष्ट करने की प्रवृत्ति मुझमें नहीं है। श्रीमान् का कलकत्ता

रहना या अंग्रेजी पढ़ना, किसी भी हालत में नहीं हो सकता।"

इस बारे में स्वयं शिवचन्द्र ने लिखा है—"तारिणी बाबू अंग्रेजी पढ़ने के लिए मुझे कलकत्ता ले जाना चाहते थे और एक अर्से तक प्रयत्न करते रहे। पर इसका कोई फल नहीं निकला, क्योंकि पितामह की आज्ञा के विरुद्ध कोई भी कार्य, प्रवृत्ति या उपादान विधाता ने मेरे शरीर को नहीं दिया है अतएव मैं संस्कृत कालेज में अंग्रेजी पढ़ने नहीं जा सका।"

जो लोग प्रतिभावान् होते हैं, वे बचपन से ही अपनी कुशाग्र बुद्धि का परिचय देते हैं। ऐसे मेधा-शक्तिवाले लोगों का भाग्य भी साथ देता है। प्राचीनकाल में संस्कृत के विद्यार्थियों में प्रतिस्पर्द्धा करने के लिए प्रतियोगिता का आयोजन होता था। इसी प्रकार की एक प्रतियोगिता में शिवचन्द्र को मजबूरन भाग लेना पड़ा था। इस प्रतियोगिता में भाग लेने के कारण संपूर्ण संस्कृत टोले में उनकी ख्याति फैल गयी। इस बारे में उन्होंने लिखा है—"नवद्वीप में हर भट्टाचार्य महाशय का वार्षिक श्राद्ध तत्कालीन पंडित-समाज के लिए एक महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम था। यह अनुष्ठान जाड़े के मौसम में होता था। पौष या माघ मास में। इस वक्त ठीक से स्मरण नहीं है। उक्त श्राद्ध के अवसर पर केवल नवद्वीप ही नहीं, बल्कि आसपास के गाँवों से अध्यापक तथा छात्र-समाज को भी आमंत्रित किया जाता था। यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि इस अवसर के लिए व्याकरण, साहित्य, स्मृति और न्यायशास्त्र के टोलों में महीनों पहले से छात्रों का दल तर्क-विचार के लिए शान चढ़ाते थे। मानो यह श्राद्ध-अनुष्ठान सभी के लिए वार्षिक परीक्षा का अवसर होता था। कौन किसे पराजित करके विजयश्री प्राप्त कर सकता है, इस बात की होड़ मच जाती थी।

मुझे इस प्रतियोगिता से कोई परेशानी नहीं थी। मैं ठहरा व्याकरण का छात्र—मुझे इस प्रतियोगिता से क्या लेना-देना है। अपने कई सहपाठियों के साथ मैं वहाँ गया। मुझे भी आमंत्रित किया गया था। वहाँ जाने पर देखा—विशाल सभा के प्रांगण में कहीं न्याय, कहीं स्मृति, कहीं साहित्य, कहीं व्याकरण के छात्रों की टोलियों में तर्क-वितर्क के दावानल जल रहे हैं। लगभग सात-आठ सौ छात्र और दो सौ अध्यापक—नाना प्रकार के शास्त्रों की भाषा पर अपने विचार प्रकट कर रहे थे। संपूर्ण वातावरण कोलाहल से मुखरित था। केवल मध्यस्थ अध्यापकगण मौन धारण किये हुए थे। इनके अलावा चारों ओर पाँच सौ से अधिक शिक्षित विद्वान् तथा संभ्रांत ब्राह्मण और दर्शक उपस्थित थे जो इस समारोह को देखने के लिए प्रतिवर्ष आते हैं।

अभी तक धुरंधर टोलों के छात्र नहीं आये थे। इन टोलों की संख्या सौ से ऊपर थी और सभी मैथिल थे। कविता का पादपूरण मैं कर सकता हूँ, इस बात की ख्याति थी। सभास्थल में पहुँचते ही सभा के कार्यकर्ता मुझे बड़े आदर के साथ वहाँ ले आये जहाँ तत्कालीन अध्यापक-समाज के शीर्षस्थानीय हरमोहन तर्कचूड़ामणि, प्रसन्नकुमार न्यायरत्न, भुवनमोहन विद्यारत्न आदि अध्यापक उपस्थित थे। मुझे यहाँ लाकर बैठाया गया। मेरे स्थान-ग्रहण करते ही समस्या-पूर्ति की तरंग उत्पन्न हो गयी।

उपस्थित अध्यापकगण मुझसे एक-एक करके प्रश्न पूछने लगे और मैं उनके उत्तर देता गया। इस तमाशे को देखने के लिए प्रसिद्ध इतिहास-लेखक तथा संस्कृत कालेज के भूतपूर्व अध्यापक तारिणीचरण चटर्जी, आनन्दबाबू तथा अन्य कई श्रद्धेय अध्यापक मुझे घेरकर खड़े हो गये। प्रश्नों के उत्तर देते हुए सहसा मैंने देखा कि धुरंधर टोले के छात्र इधर आ रहे हैं।

यह एक अपूर्व दृश्य था। सभी छात्र भारतीय वस्त्रों से सुसज्जित थे। गले में रुद्राक्ष की माला, भाल पर रक्तचन्दन का तिलक, मस्तक की शिखा में जवाकुसुम के फूल बाँधे हुए थे। सभी लम्बे-तड़ंगे, कृष्णवर्ण के थे और तेजी से सभास्थल की ओर आ रहे थे। वास्तव में यह एक अपूर्व दृश्य था। सभा में आकर वे लोग मण्डलाकार रूप में बैठ गये।

उधर विचार का प्रयत्न हो रहा था, पर इधर समस्या-पूर्ति की घटा तथा मेरी ख्याति के गौरव को सुनकर उन्हें असह्य हो रहा था। उन लोगों ने प्रश्न-विचार की दृष्टि से मेरी ओर देखते हुए हरमोहन तर्कचूड़ामणि से कहा—"हम लोग इनसे प्रश्न पूछना चाहते हैं और इनके ज्ञान की परीक्षा लेना चाहते हैं। अगर हमारी प्रदत्त समस्या की पूर्ति ये कर देंगे तो इन्हें कवि के रूप में हम स्वीकार कर लेंगे, अन्यथा नहीं।"

अब तक मैं समस्या-पूर्ति में बराबर निडर होकर भाग लेता रहा। कभी भय-विभीषिका से आतंकित नहीं हुआ था। मगर आज मैथिल छात्रों की भीम भैरव मूर्ति देखकर मैं सहम गया। न्यायशास्त्र में सभी पारंगत थे। वे लोग क्षिप्र गति से मुट्ठी बाँधे मेरे पास आये।

बड़े दंभ के साथ उन्होंने प्रश्न किया—"सूच्यग्रे षट्कूपं तदुपरि नगरी, तत्र गंगाप्रवाहः।"

अर्थात् एक सूई के अग्रभाग में छः कूप हैं, उसके ऊपर एक नगरी है जिसमें गंगा का प्रवाह है।

इस समस्या को सुनते ही मेरी आँखें विस्मय से बड़ी-बड़ी हो गयीं। आज से पहले समस्या-पूर्ति के लिए कभी मैंने अधिक समय नहीं लगाया था। न कभी चिन्तित हुआ था। प्रश्न सुनने के साथ ही मन में जो उत्तर आ जाता था, तुरत दे देता था। मगर आज के इस प्रश्न को सुनकर सहसा उत्तर नहीं दे सका। भय से संकुचित हो गया।

थोड़ी देर चिन्तन करने के बाद मैं उत्तर देने को तैयार हुआ। यह देखकर पाण्डित्य एवं चातुर्यचूड़ामणि हरमोहन तर्कचूड़ामणि महाशय ने इशारे से मुझे सावधान करते हुए कहा—"जबानी उत्तर देने की आवश्यकता नहीं है। कागज पर कलम से लिखना होगा।"

इतना कहकर उन्होंने कागज-कलम मेरी ओर बढ़ाया। एक बार ऊपर की ओर देखकर मैंने माता जगदम्बा को स्मरण किया। इसके बाद समस्या की पूर्ति की। मेरा लिखना समाप्त होते ही चूड़ामणि महाशय ने उस कागज को ले लिया और मन ही मन पढ़ने के बाद उसे अपनी मुट्ठी में बन्द कर लिया।

वहाँ उपस्थित सभी संभ्रांत अध्यापकों को बुलाकर उन्होंने कहा—"आप लोगों को यहाँ मध्यस्थ बनना पड़ेगा। आप लोग इस बात से अच्छी तरह परिचित हैं कि मैथिल-समाज से नवद्वीप-समाज की विद्या में बराबर स्पर्द्धा होती आ रही है। इसीलिए मेरा कहना है कि आज मैथिल छात्र-समाज ने इस बालक के प्रति जो भयंकर कूट समस्या निक्षेप की है, उसे आप लोगों ने अपने कानों से सुना और आँखों से देखा। इस बंगीय बालक ने उस समस्या का जो उत्तर लिखा है, वह मेरी मुट्ठी में बन्द है। मैं इसे पहले पढ़ने नहीं दूँगा। इन लोगों ने जिस श्लोक का एक चरण आज प्रश्न के रूप में पूछा है, उसके तीन अन्य चरण अवश्य होंगे—यह ध्रुव निश्चित है। इनके यहाँ इस समस्या के उत्तर में, उन तीन चरणों में जो लिखा है, उसे बिना देखे या सुने हम अपना उत्तर कदापि नहीं दिखायेंगे, अतएव मैथिल छात्र पहले हमें उन तीन चरणों को सुनाये।"

तर्कचूड़ामणि के इस कूट कौशल से बाध्य होकर उन लोगों को सुनाना पड़ा । उस समालोचना को भी कागज पर लिख लिया गया । उनके तीन चरणों में क्या लिखा था, इस वक्त स्मरण नहीं है । पर उसका भाव यह था—"चन्द्र, सूर्य की गति अगर स्तब्ध हो जाय, पानी में आग जले, पर्वत के शिखरों पर यदि कमल खिले तभी इस तरह के प्रश्न किये जा सकते हैं ।"

उनके श्लोक का अर्थ जनसाधारण को अच्छी तरह समझाने के बाद तर्कचूड़ामणिजी ने मुझे अपना श्लोक पढ़ने की आज्ञा दी । मैंने उसे पढ़ा और उपस्थित लोगों को उसका अर्थ भी समझा दिया । मुझे वह श्लोक याद नहीं है । मगर जो याद है, वह यों है--"मनुष्य-जीवन का अति सूक्ष्माग्र मन ही सुतीव्र सूच्यग्रस्वरूप है, उसके ऊपर ही छः कूप हैं—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य । इसके ऊपरवाली नगरी यही विशाल संसार है, जिसमें गंगा का प्रवाह है यानी इहलोक-परलोक में निरन्तर आवागमन ।"

मेरे इस श्लोक को सुनकर मैथिलों ने स्वयं ही मुक्तकंठ से स्वीकार किया—"हमारे यहाँ जो श्लोक है, इस श्लोक के आगे उसकी कोई कीमत नहीं है ।"

तब तर्कचूड़ामणिजी ने कहा—"अब बताओ कि तुम्हारे यहाँ प्रसिद्ध, प्रवीण और प्राचीन अध्यापकों के द्वारा जो नहीं हो सका है, हमारे बंगाल के दस-ग्यारह वर्ष के बालक द्वारा वह कार्य पूरा हो गया । इसके साथ ही आप लोग यह भी जान लें कि यह बालक हमारे नवद्वीप-समाज का गौरव है ।"

मैथिल विद्वानों ने मुक्तकंठ से प्रसन्नता प्रकट करते हुए यह स्वीकार किया और मुझे आशीर्वाद दिया । बाद में उन लोगों ने कहा—"यह बालक कवि नहीं, बल्कि 'कविरत्न' के रूप में प्रसिद्ध होकर इसने नवद्वीप के पंडित-समाज का मुखोज्ज्वल किया है ।"

इसी सभा में, मेरे बचपन में ही सर्वसम्मति से मुझे 'कविरत्न' की उपाधि दी गयी ।"

नवद्वीप में शिक्षा समाप्त करने के बाद शिवचन्द्रजी कलकत्ता आये 'विद्यासागर' उपाधि-परीक्षा के लिए । यहीं आपकी मुलाकात तत्कालीन पंडित-समाज के ख्यातिप्राप्त विद्वान् जीवानन्द विद्यासागर से हुई । आपने इनके पास जाकर अपना अभिप्राय प्रकट किया । इनका मंतव्य सुनकर जीवानन्द ने कुछ मौखिक प्रश्न किये । उन प्रश्नों के सटीक उत्तर शिवचन्द्र ने दिये । इससे संतुष्ट होकर जीवानन्दजी ने परीक्षा देने की अनुमति दी । इस परीक्षा में शिवचन्द्रजी सफलतापूर्वक पास हो गये । अब परीक्षकों के निकट एक कठिन समस्या उत्पन्न हो गयी । शिवचन्द्र ने 'विद्यासागर' उपाधि लेना अस्वीकार कर दिया, क्योंकि यह उपाधि उनके गुरु धारण किये हुए हैं । लोगों ने इन्हें काफी समझाया, पर वे अपने निश्चय पर अटल रहे । काफी सोच-विचार करने के बाद कलकत्ते की विद्वत्-मंडली ने इन्हें 'विद्यार्णव' की उपाधि प्रदान की ।

इस घटना के बाद वेदान्त पढ़ने के लिए इन्हें काशी भेजा गया । उन दिनों काशी में अनेक वेदान्तिक विद्वान् थे और इस नगरी को इसका गढ़ समझा जाता था । यहाँ अध्ययन करते समय आपका परिचय कतिपय महत्त्वपूर्ण तांत्रिक साधकों से हुआ । एक प्रकार से तंत्र के प्रति तीव्र गति से आपका झुकाव हुआ । काशी-यात्रा में यह घटना आपके जीवन के लिए वरदान सिद्ध हुई ।

तंत्र-चर्चा और उसकी साधना में इतनी दिलचस्पी बढ़ी कि आप घर वापस आ गये और अपने पितामह से अपनी इच्छा प्रकट की। उन्होंने कहा—"मैं इस दिशा में विस्तृत अध्ययन करना चाहता हूँ। आपसे अनुमति लेने आया हूँ।"

पितामह को मुँहमाँगी मुराद मिल गयी। वे अपने पौत्र की इच्छा को जानकर प्रसन्न हो उठे। आखिर तांत्रिक परिवार का वंशधर सही मार्ग पर आ गया। यही तो रक्त का प्रभाव है।

उन्होंने कहा—"यह तो प्रसन्नता की बात है। अनादिकाल से हमारे वंश में तंत्रशास्त्र का अध्ययन होता आ रहा है। इसके लिए तुम्हें अन्यत्र जाने की आवश्यकता नहीं है। हमारे वंश की ख्याति संपूर्ण बंगाल में है। इसके लिए सबसे पहले तुम्हें दीक्षा लेनी होगी।"

शिवचन्द्र ने कहा—"आप जो आज्ञा देंगे, वही करूँगा। मुझे दीक्षा किससे, कब और कहाँ लेनी होगी ?"

पितामह मुस्कराये। बोले—"इसके लिए तुम्हें अन्य किसीके पास जाने की जरूरत नहीं। मैं स्वयं तुम्हें दीक्षा दूँगा।"

पितामह कृष्णसुन्दर स्वयं ही प्रसिद्ध तांत्रिक थे। उन्होंने अपने पौत्र को दीक्षा देने के बाद बताया—"हमारे वंश में एक-दो नहीं, अनेक पूर्वपुरुष तंत्रसिद्ध हो गये हैं। कामदेव, जयदेव, निमानन्द आदि। हमारे यहाँ तंत्रशास्त्र की अनेक हस्तलिखित पोथियाँ हैं। तुम्हें इनका अध्ययन करना होगा। केवल अध्ययन ही नहीं, बल्कि इस दिशा में सिद्धि प्राप्त करनी होगी तभी हमारे वंश की मर्यादा बनी रहेगी।"

तंत्र-शास्त्र के विद्वानों का कथन है कि तंत्र-धर्म शिव द्वारा प्रचारित शक्ति-उपासना है। योगयुक्त साधना से इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। तंत्र-धर्म ही सार्वजनिक धर्म है जो पृथ्वी के सभी देशों में, प्रत्येक स्थिति में मनुष्य-समाज के लिए उपयोगी है। यही वजह है कि कभी इस धर्म का प्रसार सम्पूर्ण भारत में हुआ था। वैदिक या ब्राह्मण-धर्म में बाहरी तत्त्वों का प्रवेश निषिद्ध था और इसके लिए कठोरता के साथ कड़ाई की जाती थी। यहाँ तक कि शूद्र और महिलाओं का भी प्रवेश निषिद्ध था। वेद पर उनका अधिकार नहीं था। ठीक ऐसे समय में शिव द्वारा प्रचारित धर्म इस देश में वैदिक-धर्म के प्रतिवादस्वरूप आया और वह भी सार्वजनिक रूप में।

शिव के विचार से संसार में केवल दो जातियाँ हैं—पुरुष और स्त्री। मानव-जगत् के बाहर पशु जाति, पक्षी जाति, पतंग जाति, कीट जाति, उद्भिद् जाति हैं। प्रत्येक जीव मोक्ष का अधिकारी है। स्त्री और पुरुष दो पृथक् जाति होने पर भी इनके अधिकार समान हैं। अकेली स्त्री या अकेला पुरुष अर्द्ध या असंपूर्ण सत्ता मात्र है।

शिवोक्त तंत्र में कहा गया है कि "सृष्टि, स्थिति और लय की अधिष्ठात्री एवं चतुर्वर्ग-फलदात्री वही आद्याशक्ति भगवती स्वयं हैं। अन्य किसीमें यह शक्ति नहीं है जो जीव को मुक्ति दे सके। वैदिक पुरुष देवता की उपासना भी प्रकृति या शक्ति की उपासना है।[1]

"वैदिक साधना के मूल में वेद एवं तांत्रिक साधना के मूल में तंत्र है। आजकल साधना

---

[1] तंत्राभिलाषीर साधुसंग—श्री प्रमोदकुमार चट्टोपाध्याय। प्रथम संस्करण, १६८३, विश्ववाणी प्रकाशन, कलकत्ता।

की उपर्युक्त परम्पराओं में मिश्रण या सांकर्य हो गया है।

"साधना में एक बहिरंग-साधना और एक अन्तरंग साधना, इस प्रकार दो विभाग हैं। उसी प्रकार बहिरंग-साधना में भी एक भाग में आचारमूलक पार्थक्य है और दूसरे विभाग में आचार से असम्बद्ध आणव उपाय के विभिन्न अंशों का अवलम्बन—भेद किया गया है। विभिन्न प्रकार की योगांग प्रक्रियाएँ इस द्वितीय विभाग के अन्तर्गत हैं—यह जानना चाहिए। यह हुई साधना की बात। तत्त्व के विषय में भी उसी प्रकार द्वैत, द्वैताद्वैत, अद्वैत तथा परमाद्वैत, इस प्रकार के भेद हैं। एक दृष्टिकोण से यद्यपि तांत्रिक नाम से परिचित सभी शास्त्र एक श्रेणी के अन्तर्गत हैं तथापि उनमें भेद है।

"पूजा-तत्त्व का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर लेने पर साधक शिवत्व का अनुभव करके जीवन्मुक्ति के आनन्द का आस्वादन कर सकता है। चर्चा की सुगमता के लिए तंत्रशास्त्र में देवी-पूजा को साधारणतः उत्तम, मध्यम और अधम, इन तीन श्रेणियों में विभक्त किया जाता है। इन तीनों पूजाओं को कहीं-कहीं—परा, परापरा और अपरा कहा गया है। अपरा अथवा अधम-पूजा अन्यों की अपेक्षा निम्न कोटि की पूजा है। व्यवहार-क्षेत्र में साधारणतः जिस प्रकार की पूजा प्रचलित है, वह उन-उन अधिकारियों के आध्यात्मिक विज्ञान की दृष्टि से सर्वथा उपयोगी होने पर भी निम्नतम अर्थात् चतुर्थ श्रेणी की या अधमाधम कोटि की पूजा के अन्तर्गत है।"[१]

आम तौर पर सामान्य लोग तांत्रिकों से भयभीत रहते हैं। उन्हें अच्छी निगाह से नहीं देखा जाता। कहा जाता है कि अभिचार-क्रिया कापालिक और अघोरी करते हैं। वे शव पर साधना करते हैं। शराब तथा मछली का सेवन करते हैं। मैथुन के बारे में उनकी धारणा है कि पूर्ण युवती को उलंगकर मैथुनरत होकर साधना करनेवाला साधक अगर तन्मय हो जाय तो उसे सिद्धि प्राप्त हो सकती है। तंत्रशास्त्र के विद्वानों का कहना है कि यह पद्धति तिब्बत में बौद्ध कापालिकों में प्रचलित थी जिसका किसी समय भारत में आकर प्रभाव-विस्तार हुआ।

ऐसे कापालिक और अघोरी 'मद्यं मांसं च मीनं च मुद्रामैथुनमेव च' का जो अर्थ करते हैं और अपनी धारणा के अनुसार करते हैं, वह अधम पूजा है। उत्तम पूजा या साधना में उक्त तथ्य को दूसरे रूप में प्रयोग किया जाता है। शिव ने पार्वती से कहा है—

सोमधारा क्षरेद् या तु ब्रह्मरन्ध्राद् वरानने।
पीत्वानन्दमयीं तां यः स एव मद्यसाधकः॥

[जिस समय साधक की कुण्डलिनी षट्चक्र का भेदन करके ब्रह्मरन्ध्र में स्थित सहस्रार चक्र पर पहुँचती है, उस समय सोम कमल चक्र से श्वेत रंग का अमृत झरता है। उस मद्य या सुरा का सेवन करनेवाला या पीनेवाला ही मद्य-साधक कहलाता है।]

मा शब्दाद्रसना ज्ञेया तदंशान् रसना प्रिया।
सदा यो भक्षयेद्देवि स एव मांससाधकः॥

[जिसे रसना या जीभ कहते हैं, उसीको रसना या अमृत लेनेवाली समझना चाहिए। जो उस जीभ का भक्षण करता है अर्थात् जो जीभ को उलटकर, तालु में ले जाकर सहस्रारचक्र

---

[१] तांत्रिक वाङ्मय में शाक्त दृष्टि—महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना।

का अमृत पीता है, वही मांस-साधक है ।]

इस बारे में एक दूसरा श्लोक है—

पुण्यापुण्योभयं हत्वा ज्ञानखड्गेन योगविद् ।
परे लयं नयेच्चित्तं स मांसाशी निगद्यते ।

—भैरवयामल

[पुण्य-पाप को ज्ञान की तलवार से योगी मार देता है और फिर ब्रह्म में अपना चित्त लीन कर देता है, वही मांसभक्षी कहलाता है ।]

गंगायमुनयोर्मध्ये मत्स्यौ द्वौ चरतः सदा ।
तौ मत्स्यौ भक्षयेद् यस्तु स भवेत् मत्स्यसाधकः ॥

[गंगा (इडा), यमुना (पिंगला) नामक नदियों (नाड़ियों) के बीच जो दो मछलियाँ (श्वास-प्रश्वास का आना-जाना) हैं, उनका (प्राणायाम के द्वारा) नाश कर देनेवाला ही मत्स्य का साधक है ।]

सहस्रारे महापद्मे कर्णिका मुद्रिता चरेत् ।
आत्मा तत्रैव देवेशि केवलं पारदोपमम् ॥
सूर्यकोटिप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलः ।
अतीव कमनीयश्च महाकुण्डलिनीयुतः ॥
यस्य ज्ञानोदयस्तत्र मुद्रासाधक उच्यते ॥

—यामल

[सहस्रार महापद्म के अन्तर्गत बन्द कर्णिका (कोश) के भीतर (द्विदल पद्म के बीच में) विशुद्ध पारे जैसा, करोड़ों सूर्य के समान तेजस्वी होने पर भी जो करोड़ों चन्द्रमाओं के समान शीतल आत्मा है, वह महाकुण्डलिनी से युक्त है ऐसा ज्ञान प्राप्त करनेवाले साधक को ही मुद्रा-साधक कहते हैं ।]

मैथुनं परमं तत्त्वं सृष्टिस्थित्यन्तकारणम् ।
मैथुनाज्जायते सिद्धिः ब्रह्मज्ञानं सुदुर्लभम् ॥
रेफस्तु कुंकुमाभासः कुण्डमध्ये व्यवस्थितः ।
मकारश्च बिन्दुरूपो महायोगौ स्थितः प्रिये ॥
आकार हंसमारुह्य एकता च यदा भवेत् ।
तदा जातं महानन्दं ब्रह्मज्ञानं सुदुर्लभम् ॥

[सहस्रार के ऊपरवाले बिन्दु (परमात्मा) से जीवात्मा का मिलन ही मैथुन-क्रिया है । सम्पूर्ण सृष्टि, स्थिति और विलय का कारण यह मिथुनभाव ही परम तत्त्व है । इसी मैथुन-क्रिया से परम दुर्लभ ब्रह्मज्ञान की सिद्धि प्राप्त होती है । कुंकुम के रंगवाला (अग्निबीज) रेफ मूलाधार चक्रस्थ (शरीर के अधोभाग में) स्थित है जबकि बिन्दुरूप मकार ऊर्ध्व (सहस्रार) में । जब मूलाधारस्थ शक्ति (कुंडलिनी) आकाररूपी हंस (प्राण) पर सवार होकर सहस्रारचक्रस्थ बिन्दु से जा मिलती है तब अनन्त आनन्द देनेवाला दुर्लभ ब्रह्मज्ञान का बोध होता है ।]

संक्षेप में यही तंत्र-साधना का सार है । योग्य शिष्य का आधार समझकर ज्ञानी गुरु इस साधना की शिक्षा देते हैं । केवल पुस्तकीय ज्ञान से यह साधना नहीं की जा सकती ।

कापालिक और अघोरियों की पद्धति अलग है और योगी पुरुषों की साधना भिन्न प्रकार की है।

× × × ×

शिवचन्द्रजी सात्त्विक साधक थे। आपमें बचपन से ही भगवत् प्रदत्त प्रतिभा थी। अपनी इस प्रतिभा के कारण वंश-परम्परा से चले आ रहे तंत्रशास्त्र को आपने समृद्ध किया था।

भारतीय तंत्र-साधना को सर्वप्रथम विश्व के चिन्तनशील व्यक्तियों के सामने प्रस्तुत करने का श्रेय सर जान उडरफ को दिया गया है। आप तंत्राचार्य शिवचन्द्र के शिष्य थे। माना जाता है कि भारतीय तंत्र-साधना को प्रकाश में लाने का श्रेय प्रकाण्ड तांत्रिक शिवचन्द्र, परम श्रद्धेय स्वामी प्रत्यगात्मानन्द को है, पर इसे विश्व के सामने प्रस्तुत करने का श्रेय सर जान उडरफ को है। इनकी रचनाओं से ही पश्चिमी लोगों को भारत की इस साधना के बारे में जानकारी हुई।

सर जान उडरफ अपने गुरु शिवचन्द्र विद्यार्णव की जीवनी लिखना चाहते थे, पर उन्होंने यह कार्य करने को मना कर दिया। उन्होंने कहा—"मेरी जीवनी से भारतीय तंत्रशास्त्र का कोई उपकार नहीं होगा। इससे अच्छा है कि अब तक आप जो ज्ञान अर्जित कर चुके हैं, उसे लिखिये। आपके माध्यम से संसार के लोगों को इस साधना के बारे में जानकारी प्राप्त होगी।"

गुरु की आज्ञा से सर जान उडरफ ने अनेक तंत्राचार्यों के बारे में जानकारी दी और संसार के लोगों के सामने तंत्र-साहित्य के बारे में बताया। सर जान उडरफ की देन को लोग-भूल नहीं सकेंगे। शिवचन्द्रजी की रचनाओं के अलावा अन्य कई ग्रंथों की सहायता से सर जान उडरफ ने तंत्र-साहित्य की रचना की।[१]

बात उन दिनों की है जब सर जान उडरफ कलकत्ता उच्च न्यायालय के न्यायाधीश थे। अपने एक मित्र के सहयोग से भारतीय तंत्र-साहित्य के प्रति आकृष्ट हुए और उनकी यह तृष्णा इतनी तीव्र हो गयी कि वे मूल भाषा में तंत्र-साहित्य पढ़ने के लिए व्याकुल हो उठे। हाईकोर्ट के दोभाषिया पंडित हरिदेव शास्त्री संस्कृत के साथ-साथ अंग्रेजी के अच्छे जानकार थे। उन्हें उडरफ ने अपना शिक्षक नियुक्त किया। कुछ ही दिनों के भीतर भारत तथा तिब्बत के कुछ ग्रंथों का अध्ययन कर डाला। लेकिन इससे उनकी तृष्णा नहीं मिटी। वे किसी तंत्र-साधक के सम्पर्क में आकर इसकी वास्तविकता जानना चाहते थे।

सौभाग्य से उन्हीं दिनों शिवचन्द्रजी हाईकोर्ट के काम से कलकत्ता आये। यह समाचार हरिदेव शास्त्री को ज्ञात हो गया। शिवचन्द्रजी की ख्याति उन दिनों चारों ओर फैल चुकी थी। हरिदेव ने जान उडरफ से कहा—"अब तक आप जिस व्यक्ति की तलाश में परेशान थे, अब वे कलकत्ते में आ गये हैं। आप उनसे मिलकर अपनी समस्याओं का समाधान कर सकते हैं।"

---

१. श्री शिवचन्द्र विद्यार्णव रचित 'तंत्रतत्त्व' का 'प्रिंसिपल्स आव तंत्र' का अंग्रेजी में अनुवाद करने के अलावा उन्होंने 'शक्ति एण्ड शाक्त', 'सर्पेण्ट पावर', 'क्रियेशन ऐज एक्सप्लेन्ड इन द तंत्र', 'महामाया द वर्ल्ड ऐज पावर कान्शन्स', 'शाक्त कुण्डलिनी निगम', 'इण्ट्रोडक्शन टू तंत्रशास्त्र' आदि ग्रंथ लिखे।

"यह तो प्रसन्नता की बात है। कृपया उन्हें सादर मेरे बंगले पर ले आइये।"

हरिदेव शास्त्री ने कहा—"यह ठीक है, पर एक मुश्किल यह है कि वे अंग्रेजी बिलकुल नहीं जानते। उनसे आपकी बातचीत संस्कृत में हो सकती है।"

उडरफ ने कहा—"यह तो प्रसन्नता की बात है। अगर वे अंग्रेजी जानते तो शायद मैं उनकी गहराई को पकड़ नहीं पाता। आप उन्हें जरूर लाइये।"

इस प्रकार उडरफ भारत-प्रसिद्ध तंत्राचार्य से परिचित हुए। प्रथम दर्शन में ही वे अवाक् रह गये। प्रश्न पर प्रश्न उडरफ करते रहे और तेजस्वी पंडित उदात्त कंठ से उनका निराकरण करते रहे। श्रद्धा से उडरफ परिपूर्ण हो उठे। शिवचन्द्रजी को कहना पड़ा—"तंत्र के प्रति आपकी इतनी श्रद्धा देखकर मैं विस्मित हो उठा हूँ। आप इस दिशा में कार्य करते रहें। मेरी शुभकामना आपके साथ सर्वदा रहेगी।"

इस घटना के बाद वे काशी चले आये। काशी आने के पूर्व आपका विवाह चिन्तामणि देवी से हो गया था। कुछ दिनों बाद एक पुत्री को जन्म देकर वे परलोक चली गयीं। पिता के आग्रह पर पुनर्विवाह करना पड़ा गाँव की लड़की मनमोहिनी देवी से।

काशी आकर वे साधना करने लगे। आपकी इष्ट देवी थीं—सर्वमंगला माँ। आपने अपनी इष्ट देवी के नाम पर काशी, कुमारखाली तथा कलकत्ता में 'सर्वमंगला सभा' की स्थापना की। कभी आप काशी में तो कभी अपने गाँव रहते थे। गाँव के श्मशान में आप तंत्रादि की निगूढ़-क्रिया सम्पन्न करते रहे। प्रतिदिन रात के वक्त मातृ-पूजा करते हुए महीना पर महीना, वर्ष पर वर्ष गुजार दिये। कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करने के लिए व्याकुल होकर अनेक गीतों की रचना की। काशी और वैद्यनाथधाम उनकी साधना-भूमि थी। लेकिन उनका अधिकांश समय काशी में व्यतीत हुआ था। यहाँ अनेक तांत्रिक थे। कहा जाता है कि इन्होंने मणिकर्णिका घाट स्थित श्मशान में कौल-पद्धति के अनुसार अनेक तांत्रिक क्रियाओं का संपादन किया था। तपस्या के लिए अक्सर आप वैद्यनाथधाम जाते थे। वहाँ काशी की अपेक्षा अधिक निर्जनता थी। वैद्यनाथधाम की श्मशान-भूमि में आप शव-साधना करते रहे। आपकी साधना से प्रभावित होकर वहाँ के गंगाप्रसाद फलहारी नामक एक सज्जन ने आपकी काफी सहायता की थी।

काशी, वैद्यनाथधाम के अलावा आप साधना के सिलसिले में दक्षिण भारत के अनेक स्थानों में भी गये। उत्तर में काश्मीर, मानसरोवर, तिब्बत, हरिद्वार, ऋषिकेश, ज्वालामुखी, विंध्याचल, कामाख्या, तारापीठ आदि पीठस्थानों में सिद्धि प्राप्त करने गये थे।

श्री दानवीर गंगोपाध्याय ने लिखा है—"जिन दिनों आप काशी में रहते थे, उन दिनों आप एक जटाधारी, लाल आँखोंवाले एक प्राचीन तांत्रिक महात्मा के पीछे लगे रहते थे। इस महात्मा की सहायता से आपने मणिकर्णिका के श्मशान में, अमावस्या की अँधियारी रात में कई अनुष्ठान किये। दृढ़संकल्प, दुर्जय साहस और अपनी एकनिष्ठा के कारण उक्त महात्मा से लाभान्वित हुए थे। तंत्र-साधना में सिद्धि प्राप्त करने में शिवचन्द्रजी को उनसे पर्याप्त सहायता मिली थी।

यही बात उनकी मानसरोवर-यात्रा के समय हुई थी। वहाँ भी एक उच्चकोटि के कौलिक की कृपा पाने में सफल हुए थे। वहाँ आप एक अर्से तक अनुष्ठान और तपस्या करते रहे।

तंत्र-साधना के बारे में आपने लिखा है—

''आज भी तांत्रिक सिद्ध साधक महापुरुष लोग अपने-अपने तपःप्रभाव से भारत के दिग्-दिगन्त को प्रज्वलित कर रहे हैं। आज भी भारत के श्मशानों में प्रति अमावस्या की महानिशा में प्रज्वलित चिता के समीप भैरव-भैरवियों की ज्वलन्त दिव्यज्योति नैश तमिस्रा को विदीर्ण कर गगन को आलोकित कर रही है। आज भी श्मशान में जलमग्न मृत और सड़े हुए शव साधकों की मंत्र-शक्ति से जीवित होकर सिद्धों की साधना में सहायक होते हैं। आज भी तांत्रिक योगी दिव्य दृष्टि के प्रभाव से इस लोक में रहते हुए देवलोक के अतीन्द्रिय कार्यों को प्रत्यक्ष रूप से देख लेते हैं। आज भव-भयभीत प्रणत शरणागत भक्त साधक को मुक्त करने के लिए मुक्तकेशी श्मशान में दर्शन देती हैं। अभी भी मंत्र-शक्ति के अद्‌भुत आकर्षण से पर्वतनन्दिनी का सिंहासन डोल उठता है। मुक्तपुरी के शान्त साधकों के लिए यही चिर प्रशस्त राजपथ है और शय्याशायी मुमूर्षु अंधों के लिए अंधकार के अलावा अन्य कुछ नहीं है।

''साधक की आत्मशक्ति वायु और मंत्रशक्ति अग्नि है, इसलिए उसकी आत्मशक्ति निमिष भर में उसे विपुल बना सकती है। शास्त्र भले ही बहुत दूर क्यों न हो, नौका जैसे अग्रसर होती हुई तुम्हें पार तक पहुँचा देती है, उसी प्रकार ज्ञान, योग, समाधितत्त्व भले ही दूर हो, मंत्रमयी महादेवी मूर्तिमती होकर, तुम्हारा हाथ पकड़कर तुम्हें पार करा देंगी। ज्ञान, योग, समाधि के जरिये कोई भी अनुष्ठान क्यों न करो, तुम देखोगे कि इन सभी में सर्वेश्वरी आनन्दमयी माँ आनन्द से हँस-हँसकर नाच रही हैं। उनका अशान्त नृत्य हमारे ज्ञान-समुद्र को प्रेम की तरंग से उद्वेलित कर रहा है।''

× × × ×

कई महीने बाद उडरफ ने अपने मित्र हरिदेव शास्त्री से कहा—''मैंने निश्चय किया है कि आचार्य शिवचन्द्रजी से दीक्षा लूँ। मैं उन्हें भुला नहीं पा रहा हूँ।''

हरिदेव शास्त्री को आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहा—''सर, यह बहुत कठिन साधना है और फिर शिवचन्द्रजी आपको दीक्षा देंगे या नहीं, पहले इसका पता लगाना चाहिए। आप विदेशी संस्कृति और धर्म के हैं।''

उडरफ ने कहा—''इसीलिए आपकी सहायता चाहता हूँ। मैंने अपने को पूर्ण रूप से तैयार कर लिया है।''

इस बातचीत के बाद दोनों व्यक्ति काशी आये और अपना अभिप्राय निवेदन करने के लिए शिवचन्द्रजी के यहाँ आये। उस समय वे पूजा कर रहे थे। थोड़ी ही देर बाद पूजा के कमरे से बाहर निकले। उडरफ और हरिदेव शास्त्री के भाल पर उन्होंने भस्म लगाया। उस समय उडरफ को कैसी अनुभूति हुई, इसे उन्हीके शब्दों में सुनिये—

''काशी में ठाकुर शिवचन्द्र के भवन में जाते ही एक दिव्य अनुभूति हुई और मेरा बाह्यज्ञान लुप्त हो गया। सारे शरीर में जैसे बिजली दौड़ गयी। अंग-अंग में, नस-नस में। मुझे लगा जैसे सारी पृथ्वी मेरी आँखों के सामने चक्कर काट रही है। मन की समस्त क्रियाएँ स्तब्ध होने लगीं। कुछ देर बाद चेतना लौटी तब अपने भीतर एक अद्‌भुत परिवेश अनुभव

किया। बिजली की भाँति मेरी आँखों के सामने ॐकार साक्षात् रूप में दर्शन देने लगा। उसके भीतर पवित्र मातृबीज-समन्वित मंत्रों के समूह थे। बाद में हरिदेव शास्त्री ने बताया था कि जब मेरा बाह्यज्ञान लुप्त हो गया तब शिवचन्द्रजी ने उन्हें इशारे से बताया कि इसे धीरे-धीरे लिटा दो। कुछ देर बाद जब मुझे होश आया तब मैं गुरुदेव के उपदेशों को सुनकर धन्य हो गया था।"

कलकत्ता वापस आने के बाद उडरफ को बारंबार शिवचन्द्रजी की याद आती रही। उस दिव्य अनुभूति को वे भूल नहीं पा रहे थे।

कुछ दिनों बाद जब शिवचन्द्रजी कलकत्ता आये तब उडरफ ने दीक्षा देने का आग्रह किया। शिवचन्द्रजी ने कहा—"ठीक है, पर तुम्हारी शक्ति ?"

उडरफ ने कहा—"मेरी पत्नी भी आपसे दीक्षा लेने के लिए उत्सुक हैं।"

शुभ लग्न में पूजा-होम के बाद उडरफ दम्पती को दीक्षा दी गयी। अनुष्ठान समाप्त होने के बाद हाथ जोड़कर उडरफ ने कहा—"अब मेरा कर्त्तव्य है कि आपको गुरु-दक्षिणा दूँ।"

शिवचन्द्रजी ने कहा—"वत्स, मैं जागतिक वस्तुओं में दिलचस्पी नहीं लेता। मेरी इच्छा है कि तुम मातृतत्त्व और मातृनाम का संसार में प्रचार करो।"

इस अद्‌भुत दक्षिणा की बात सुनकर उडरफ हतप्रभ रह गये। श्रद्धा से विगलित होकर उन्होंने गुरु के चरणों में सिर रख दिया।

इस घटना के बाद ही उडरफ ने जीवनी लिखने का प्रस्ताव रखा था। उडरफ के माध्यम से आर्ट स्कूल के अध्यक्ष श्री ई० वी० हैवेल और प्रसिद्ध शिल्पी आनन्दकुमार स्वामी से परिचय हुआ। तंत्र के आलोक में भारतीय नन्दनतत्त्व, चारुकला और भास्कर्य की शिवचन्द्र ने व्याख्या की। इस व्याख्या से हैवेल को नयी रोशनी मिली। उन्होंने यह बात स्वीकार की है कि मुझे तंत्राचार्य शिवचन्द्रजी के प्रसाद से भारतीय मूर्ति-कला में छिपे भावों को समझने में पर्याप्त सहायता प्राप्त हुई है। हिन्दू-धर्म और दर्शन के प्रति डॉ० आनन्दकुमार स्वामी के मन में आस्था और श्रद्धा उत्पन्न कराने का श्रेय श्री शिवचन्द्र को दिया गया है।

श्री उडरफ काशी या कुमारखाली में जब अपने गुरु का दर्शन करने जाते तब उनका रूप कुछ और ही होता था। नंगे पाँव, काषाय वस्त्र, गले में रुद्राक्ष की माला और भाल पर तिलक लगाते थे। उनके इस रूप को देखकर कोई यह नहीं समझ पाता कि आप कलकत्ता हाईकोर्ट के जज हैं।

श्री उडरफ ने अपने गुरुदेव के बारे में कहा है—"मेरे जैसे नगण्य व्यक्ति पर गुरुदेव की असीम कृपा थी। उनके जीवनकाल में तथा उनके तिरोधान के बाद भी अनेक अलौकिक लीलाओं को प्रत्यक्ष रूप से देख चुका हूँ। उनकी योगविभूति के माध्यम से मेरा पथ प्रदर्शन हुआ है। कलकत्ते में रहते और बाद में लन्दन में निवास करते समय दोनों स्थानों में उनकी कृपा से लाभान्वित हुआ हूँ।

"एक बार कलकत्ता हाईकोर्ट में एक जटिल मुकदमे की पेशी हुई थी। कानून के कूट तर्क चल रहे थे। मुकदमे के गवाह बड़े चुस्त और चतुर थे। इस बात को मैं समझ रहा था। वे अपनी गवाही तथा बहस के द्वारा मुझे प्रभावित कर रहे थे। लेकिन मैं सत्य को पकड़ नहीं पा रहा था। संदेह की दृष्टि से चारों ओर देख रहा था। सहसा सामने की दीवार पर

नजर जाते ही देखा—विदेही गुरुजी की मूर्ति प्रकट हो गयी है। आँखें बन्द कर मैंने उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने मुस्कराते हुए हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया। भरी अदालत में गुरुजी का इस तरह आविर्भाव मेरे निकट एक अकल्पनीय घटना थी। मुकदमे की जटिलता समझ में आ गयी। इस प्रकार सत्य की विजय हुई।

"इसी प्रकार एक बार रात को अपने घर एक मुकदमे का फैसला लिख रहा था। अचानक देखा, गुरुदेव तांत्रिक वेष धारण किये सामने खड़े हैं। उनकी आँखों से अपूर्व आभा प्रकट हो रही है। तुरत उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया। इस प्रकार अक्सर गुरुदेव की कृपा-वर्षा मुझ पर होती रही।"

जिन दिनों शिवचन्द्रजी काशी में थे, उन दिनों देश-विदेश के विद्वान् तंत्र-सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करने आते थे। आप सभी को भारतीय तंत्र के बारे में जानकारी देते रहे।

कुमारखाली गाँव के समीप बंगाल के ख्यातिप्राप्त बाउल लालन फकीर रहते थे। हमेशा एकतारा बजाते हुए आशु कवियों की तरह बाउल गीतों की रचना करते थे। इनका आना-जाना शिवचन्द्रजी के यहाँ बराबर जारी था। एक मुसलमान का कट्टर हिन्दू-परिवार के यहाँ आना-जाना गाँव के लोगों को पसन्द नहीं था। लेकिन लोग जबानी विरोध करने पर भी शिवचन्द्रजी को कोई नुकसान नहीं पहुँचा पाते थे। इस मामले में शिवचन्द्रजी बहुत खुले दिल के थे। कांगाल हरिनाथ ने शिवचन्द्रजी के पिता से दीक्षा-मंत्र लिया था और दूसरी ओर वे शिवचन्द्रजी के प्राथमिक शिक्षक थे, इसलिए इस परिवार में उनका आना-जाना जारी था।

इन्हीं कांगाल हरिनाथ का जब निधन हुआ तब शिवचन्द्रजी ने उनके शव में कंधा लगाया था जिसके कारण कुमारखाली के कट्टर ब्राह्मणों के दल ने नाराज होकर इनकी घोर निन्दा की थी।

तारापीठ के साधक श्री वामा खेपा[१] की ख्याति उन दिनों बंगाल में ही नहीं, अन्य प्रान्तों में फैल गयी थी। अनेक लोग आपकी कृपा पाने के लिए आपके पास आते थे। कुछ लोग तंत्र-विद्या सीखने की गरज से आते थे। शशधर बनर्जी नामक एक साधक इसी उद्देश्य से बाबा के पास गया। बाबा ने कहा—"मैं इस दिशा में तुम्हारी कोई मदद नहीं कर सकता। मेरी सलाह मानो तो कुमारखाली के शिवचन्द्रजी के निकट जाकर अपनी इच्छा प्रकट करो। वे तुम्हें वास्तविक सलाह देंगे। उनके बताये सिद्धान्त पर साधना करने पर सफलता मिलेगी।"

इसी प्रकार एक बार आपके निकट दरभंगा-नरेश आये। तांत्रिकों के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा थी। उनका विश्वास था कि सिद्ध तांत्रिक असंभावित चमत्कार कर सकते हैं। इस सिलसिले में वे वामा खेपा के पास आये।

वामा खेपा ने कहा—"मैं ठहरा मूर्ख आदमी। तारा माँ का प्रसाद खाकर पड़ा रहता हूँ। अनुष्ठान आदि कुछ नहीं जानता। आप भारत के महान् तांत्रिक शिवचन्द्र की शरण में जाइये। वे उच्चकोटि के साधक हैं।"

इस सलाह को पाकर दरभंगा-नरेश शिवचन्द्रजी के पास आये। बातचीत से उन्हें ज्ञात हो गया कि ये बहुत बड़े विद्वान् हैं। इनके साथ आप श्मशान में एक अर्से तक साधना करते रहे।

---

[१] देखिये 'भारत के महान् योगी', प्रथम खण्ड।

शिवचन्द्रजी कितने उच्चकोटि के साधक थे, इस बात का उदाहरण एक घटना से मिल जाता है। कहा जाता है कि एक बार आप सर्वमंगला देवी का अनुष्ठान तांत्रिक विधान से कर रहे थे। आपके साथ फल-फूल और एक पात्र में कच्चा दूध रखा था। भोग निवेदन करने के बाद आप ध्यानस्थ हो गये।

पता नहीं, कहाँ से दो काले भयंकर विषधर आये। सबसे पहले उन्होंने भोग में रखे दूध का पान किया। इसके बाद फन काढ़कर कुछ देर झूमते रहे। इधर शिवचन्द्रजी आँखें बन्द कर 'जय माँ-जय माँ' कहते रहे। एकाएक दोनों साँप शिवचन्द्रजी के बदन से लिपटकर कुछ देर तक फन काढ़े लिपटे रहे। बाद में चुपचाप चले गये। साधक को इस घटना की जानकारी नहीं हुई।

साँपों के चले जाने के बाद उसके जूठन दूध को वे पी लेते। प्रत्यक्षदर्शी लोग उक्त दूध को पीने के लिए मना करते, फिर भी वे सर्वमंगला देवी का प्रसाद समझकर पी जाते थे।

कभी-कभी आर्थिक कठिनाई के कारण दूध का प्रबंध नहीं कर पाते तब हँसते हुए कहते—"कल अगर तारा माँ की कृपा नहीं हुई तो केवल करेमू का साग भोग में दूँगा।"

नेपालचन्द्र साहा पास के गाँव में रहता था। वह शिवचन्द्रजी का भक्त था। उसका भतीजा सख्त बीमार पड़ा। इलाज चलता रहा, पर दिन-ब-दिन हालत खराब होती गयी। व्याकुल होकर वह शिवचन्द्रजी के पास आकर रोने लगा—"ठाकुर, मेरे भतीजे की हालत बहुत खराब है। कृपया एक बार चलकर उसे प्राणदान दे दीजिए।"

शिवचन्द्रजी सारा रहस्य समझ गये। बोले—"सब तारा माँ की कृपा है। उसे पुकारो, बेटा।"

"मैं यह सब नहीं जानता। मुझे अपने भतीजे का जीवन-दान चाहिए।"

लाचारी में शिवचन्द्र को अनुष्ठान करना पड़ा। बालक स्वस्थ हो गया। लेकिन ईश्वरीय विधान में दखल देने का दण्ड शिवचन्द्रजी को भोगना पड़ा। अचानक एक दिन उनके पैर में काँटा गड़ गया। यही काँटा उनके लिए मृत्यु का काँटा बन गया। मार्च, सन् १६११ के दिन वे कुमारखाली गाँव को शोकमग्न कर चले गये।

●

महायोगी गोरखनाथ

"अलख निरंजन ।"

दरवाजे पर यह आवाज सुनते ही गृहिणी ने भीतर से कहा—"जरा ठहर जाओ, बाबा । अभी आयी ।"

थोड़ी देर बाद वह भिक्षा लेकर बाहर आयी । उसकी उदास शक्ल देखते ही बाबा ने पूछा—"क्या बात है बेटी ? इतनी उदास क्यों हो ?"

पास ही एक पड़ोसिन खड़ी थी । उसने कहा—"शादी हुए कई वर्ष हो गये, अभी तक माँ नहीं बन सकी, लोग अपशकुन के भय से इसका मुँह नहीं देखते, इसीलिए बेचारी उदास रहती है ।"

बाबा ने कहा—"चिन्ता मत कर बेटी । लो, यह भभूत खा लेना । भगवान् शिव की कृपा होगी तो तुम शीघ्र सुसंतान की जननी बन जाओगी ।"

भभूत देने के बाद बाबा चले गये । गृहिणी भभूत लेकर खड़ी रही । तभी पड़ोसिन ने कहा—"भीख माँगनेवाले बाबा के भभूत से भला बच्चा होता है । बच्चे तो भगवान् की देन हैं । बिना उनकी कृपा के कुछ नहीं होता ।"

गृहिणी को बात लग गयी और क्रोध में आकर उसने उस भभूत को घर के पीछे घूर में फेंक दिया । उसने बाबा के भभूत पर विश्वास नहीं किया ।

समय गुजरता गया । रमता योगी वही बाबा पुनः गृहिणी के दरवाजे पर आये तो वही उदास चेहरा देखा तो चौंककर पूछा—"बेटी, तेरा लड़का कहाँ है ?"

"लड़का ?" महिला चौंकी ।

बाबा ने कहा—"आज से बारह वर्ष पहले मैंने तुम्हें भभूत देते हुए कहा था कि इसे खा लो । तुम एक सुसंतान की जननी बनोगी ।"

महिला ने कहा—"पड़ोसियों के व्यंग्य करने पर मैंने उसे घूर में फेंक दिया ।"

बाबा ने कहा—"जहाँ तुमने फेंका है, वहाँ मुझे ले चलो ।"

महिला बाबा को घूर के पास ले आयी । बाबा ने आवाज दी—"अलख निरंजन ।"

इस ध्वनि को सुनते ही घूर में से एक गौरवर्ण का तेजस्वी बालक निकला और बाबा के पास नतमस्तक खड़ा हो गया । महिला विस्मय से अवाक् रह गयी । जब तक वह कुछ कहती, उसके पहले ही बाबा बालक को साथ लेकर अन्तर्धान हो गये ।

बाबा थे—योगिराज मत्स्येन्द्रनाथ और बालक था—गोरखनाथ । घूर में जन्म लेने के

कारण गुरु मत्स्येन्द्रनाथ ने बालक का नाम गोरक्षनाथ रखा था। यह घटना रायबरेली जिले के अन्तर्गत जायस नामक कस्बे में हुई थी। मराठी भाषा में लिखित 'नवनाथ भक्तिसार' में इसी तरह की घटना का उल्लेख है। कहा जाता है कि जायसवाली कहानी को मराठी भाषा में उल्लेख किया गया है।

'नाथ-सम्प्रदाय' के संस्थापक योगिराज गोरखनाथ के जन्मस्थान, संवत्, पिता-माता आदि का सही विवरण प्राप्य नहीं है। नाथ-सम्प्रदाय के सन्त उन्हें सतयुग, द्वापर, त्रेता और कलियुग चारों का मानतें हैं। काश्मीर से सिंहल और असम से काठियावाड़ तक उनके बारे में तरह-तरह की कहानियाँ प्रचलित हैं। अधिकांश लेखक उन्हें ११वीं या १२वीं शताब्दी का मानते हैं। नाथ-सम्प्रदाय के संत या भक्त लोग जनश्रुतियों के आधार पर उन्हें सहस्रों वर्ष का व्यक्ति मानते हैं। यह केवल कल्पना की बात है। यह ठीक है कि हठयोगी पुरुषों की आयु लम्बी होती है, पर अब तक कोई भी संत २५० वर्ष के ऊपर जीवित नहीं रहा। अगर यह बात सत्य होती तो हमारे ऋषि-मुनियों को 'जीवेम शरदः शतम्' वर माँगने की आवश्यकता नहीं होती।

मत्स्येन्द्रनाथ के बारे में कहा गया है—"पूर्व मध्ययुग में शैवधर्म नये रूप और नये आयाम में विकसित हो रहा था जिसे कालान्तर में नाथ-सम्प्रदाय या नाथ-पंथ अथवा हठयोग और सहजयान-सिद्धि कहा गया। इस सम्प्रदाय में नौ नाथों को दिव्य पुरुष के रूप में माना गया है। इसके पहले नाथ स्वयं शिव थे। दसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मत्स्येन्द्रनाथ अथवा मच्छन्दरनाथ ने इस सम्प्रदाय का प्रचार किया। उनका जन्म बंगाल के एक धीवर-परिवार में हुआ था। उन्होंने बंगाल, असम आदि विभिन्न स्थानों की यात्राएँ कीं और तत्पश्चात् 'योगिनी कौल' नामक नये सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। 'कौल ज्ञाननिर्णय' और 'अकुलवीर तंत्र' नामक उनके ग्रंथों में 'योगिनी कौल' सिद्धान्त की विस्तृत चर्चा की गयी है। इस सिद्धान्त के अनुसार शिव का नाम 'अकुल' है तथा शक्ति का 'कुल'। दोनों अन्योन्याश्रित हैं। इन दोनों के संयोग से सृष्टि होती है। मत्स्येन्द्रनाथ की यह साधना वज्रयानी बौद्धों की साधना से साम्य रखती है। इसीलिए मत्स्येन्द्रनाथ को 'अवलोकितेश्वर' के अवतार के रूप में स्वीकार किया गया है और तिब्बत में उन्हें सिद्ध लुईपाद के रूप में माना गया है।

"मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य गोरखनाथ को १०वीं-११वीं शताब्दी का माना गया है। नाथ-पंथ के प्रचार-प्रसार में आपका सशक्त योगदान है। इन्होंने भारत के संत्रस्त सामाजिक और धार्मिक जीवन को नवीन प्रवाह प्रदान किया। रावलपिण्डी जिला जो आजकल पाकिस्तान में है, उनका जन्मस्थान बताया गया है। गोरखनाथ से सम्बन्धित ऐसे अनेक स्थान पाकिस्तान में हैं। गोरखनाथ का टीला झेलम जिले में स्थित है, गोरख हटरी पेशावर शहर में है, गोरख की धूनी बलूचिस्तान की लालबेला रियासत में है।

"योगमार्ग, गोरक्षसिद्धान्त संग्रह जैसे ग्रंथों में अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। उनके अनुसार 'शिव' ही परमतत्त्व है। जब उसकी इच्छा होती है तब वह शक्ति के रूप में परिवर्तित हो जाता है। शक्ति की पाँच स्थितियाँ हैं—(१) निजा (परम शिव में लीन), (२) परा (प्रत्यक्ष होने की कला), (३) अपरा (अभिव्यक्ति की स्थिति), (४) सूक्ष्मा (अभिमान का उदय)

और (५) कुण्डली (अभिमान की चेतना की क्रिया)। इसी प्रकार शिव के पाँच रूप हैं— अपर, परम, शून्य, निरंजन और परमात्मा।

"वस्तुतः गोरखनाथ के कारण नाथ-सम्प्रदाय का शीघ्रता से विकास हुआ। यही नहीं, गोरखनाथ से सम्बन्धित अनेक चमत्कारिक कहानियाँ भी प्रचलित हुई तथा यह विश्वास किया जाता है कि उनका नाम लेने से सिद्धि प्राप्त हो जाती है। वे अपनी उच्च साधना से आध्यात्मिक शिखर पर पहुँच गये। नेपाल, तिब्बत, महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, पंजाब, बंगाल, असम आदि प्रान्तों में उनके देवत्व के सम्बन्ध में अनेक अनुश्रुतियाँ फैलीं। उन्हें ब्रह्मा, विष्णु, शिव जैसे देवताओं से ऊपर स्वीकार किया गया था तथा समाज में उनका उच्च स्थान था।

"उनके हठयोग और सहजयान योग का तत्कालीन समाज में तीव्रता से प्रसार हुआ जिसने भारत के सामाजिक और धार्मिक जीवन को आन्दोलित किया। उनके सिद्धान्तों में प्राचीन शैवों, आजीवकों, वज्रयानी बौद्धों आदि के मतों और सिद्धान्तों का अनुपम समन्वय है। अनंगवज्र या रमणवज्र जैसा उनका बौद्ध नाम भी मिलता है। गोरखनाथ ने महात्मा बुद्ध की तरह मध्यम मार्ग का अनुगमन किया। उन्होंने बौद्ध और हिन्दू तांत्रिकों की अनैतिक क्रियाओं का तथा आदर्शवाद के आध्यात्मिक सूक्ष्मीकरण और यौगिक क्रियाओं की अतिरंजना का कड़ा विरोध किया।"[१]

महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री का कथन है—"मत्स्येन्द्रनाथ का प्रसिद्ध ग्रंथ कौलग्रंथ अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि वे बौद्ध नहीं थे। दरअसल नाथ साधकों के परम श्रद्धेय गुरु के रूप में प्रतिष्ठित होकर भी मत्स्येन्द्रनाथ बौद्धों के उपास्य देवता बन गये थे और इस दिशा में उन्हें असामान्य मर्यादा प्राप्त हुई है। यही उनकी सबसे बड़ी विशेषता है।"[२]

महामहोपाध्याय पण्डित गोपीनाथ कविराजजी भी यही मानते हैं—"गोरखनाथ के कायाबोध ग्रंथ में उन्हें पशु हत्याकारी के रूप में चित्रण किया गया है। पशू-हत्या से सम्बन्धित व्यक्ति बौद्ध नहीं हो सकता।"

डॉ० कल्याणी मल्लिक ने इस दिशा में एक नये तथ्य का उल्लेख किया जो किसी हद तक उचित है। आपका कहना है—"मत्स्येन्द्रनाथ के बारे में यह प्रसिद्ध है कि वे गोरख के गुरु तथा कनफटा-सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक हैं। पाशुपत शैव संन्यासी के रूप में वे नेपाल गये थे, इसलिए शिव विग्रह नेपाल में है।"[३]

कुछ विदेशी लेखकों ने नाथ-सम्प्रदाय को कापालिक तथा अघोरी-सम्प्रदाय से सम्बन्धित माना है। वस्तुतः कापालिक और अघोरी अलग-अलग उपासक होते हैं। यह ठीक है कि इन दोनों के आचार-व्यवहार में विशेष अन्तर नहीं है। इन दोनों सम्प्रदायों में अनाचार काफी हद तक बढ़ गया था। उनकी इन क्रियाओं को सही रूप देने के लिए 'नाथ-सम्प्रदाय' की सृष्टि हुई थी। जैसा कि इसके आगे डॉ० जयशंकर अपने वक्तव्य में प्रकट कर चुके हैं।

पण्डित गंगाशंकर मिश्र ने भी इस बात पर प्रकाश डाला है—"मिस्टर कुवस ने लिखा है कि 'गुरु गोरखनाथ ने अघोर-पन्थ पुनः चलाया है।' पर यह ठीक नहीं जान पड़ता।

---

[१] प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृष्ठ ७११-१३। डॉ० जयशंकर मिश्र।

[२] बौद्धगान ओर दोहा, पृष्ठ १६। म० म० हर प्रसाद शास्त्री।

[३] नाथ सम्प्रदायेर इतिहास, डॉ० कल्याणी मल्लिक।

गोरखनाथ के सम्बन्ध में बहुत मतभेद है। लोग प्रायः उनका जन्म बारहवीं शताब्दी मानते हैं। उनका सम्प्रदाय नाथ-सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध है। कनफटे योगी भी उसी सम्प्रदाय के हैं। पर उनके सम्प्रदाय में अघोराचार की झलक नहीं है।"[१]

डॉ० रांगेय राघव का विचार है कि "गोरखनाथ के काफी पूर्व नाथ-सम्प्रदाय की उत्पत्ति हो गयी थी। बचपन से ही इन पर घुमक्कड़ नाथ सिद्धों का प्रभाव पड़ा था।"[२]

जो लोग ईसा की प्रथम शताब्दी से लेकर १३वीं शताब्दी तक गोरखनाथ की उपस्थिति मानते हुए इतिहास तथा घटनाओं के आधार पर प्रमाण देते हैं, वे भ्रम में हैं। वस्तुतः नाथ-सम्प्रदाय का विकास पाशुपत-सम्प्रदाय से हुआ है। बुद्ध के पूर्व भारत में ब्राह्मण-धर्म का संक्रमण-काल था, इसलिए मानव-जगत् को शान्ति-सद्भाव देने के लिए जब बुद्ध ने संदेश देना प्रारंभ किया तब लोग बौद्ध धर्म के प्रति आकृष्ट हुए और इस तेजी से यह धर्म फैला कि समस्त एशिया में इसका विस्तार हो गया। बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद इस धर्म के अनुयायियों में अनाचार बढ़ने लगा। तंत्र-मंत्र का प्रवेश होने के कारण लोग बौद्ध धर्म से विमुख होने लगे। ठीक इसी समय शैव धर्म का पुनः तेजी से विकास हुआ। शैव-धर्म का ही एक अंग पाशुपत-सम्प्रदाय था। महाभारत-काल के पहले ही इस धर्म का विकास हो चुका था। इसका उल्लेख पुराणों में भी है।

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने लिखा है—"हर्ष के स्कन्धावार में पाशुपत साधु भी एकत्रित थे। प्रथम शताब्दी ईस्वी के बाद से मथुरा और समस्त उत्तर भारत में पाशुपत शैवों का प्रचार हो गया था। शंकराचार्य ने पाशुपत-दर्शन का खंडन किया है।"[३]

"वायुपुराण और लिंगपुराण के अनुसार पाशुपत-मत का उद्भव लकुलिन नामक ब्रह्मचारी द्वारा हुआ था, जो शिव का अवतार था। (अध्याय २३, वायुपुराण, अध्याय २४, लिंगपुराण) । जिस समय वासुदेव कृष्ण उत्तरी भारत में अपना धर्म-प्रचार कर रहे थे, उस समय पश्चिमी भारत में कायावरोहण नामक स्थान पर लकुलिन का जन्म हुआ था।"[४]

"महाभारत के शान्तिपर्व के ही एक अन्य भाग में 'शिवसहस्रनाम' प्रसंग में कहा गया है कि स्वयं भगवान् शिव ने पाशुपत-सिद्धान्त को प्रकट किया था जो कुछ अंशों में वर्णाश्रम-धर्म के अनुकूल और कुछ अंशों में प्रतिकूल था।

"'सर्वदर्शन-संग्रह" नामक ग्रंथ में आया है कि लकुलिन ने लोगों को पाशुपत-योग सिखाया था। इस लकुलिन को शिव का अवतार और कृष्ण का समकालीन माना गया है।"

"पाशुपतों का उल्लेख साहित्य और शिलालेखों में बराबर होता रहा है। इससे सिद्ध होता है कि पाशुपत लोग शैवों का एक प्रमुख सम्प्रदाय बने रहे।"

"दसवीं से तेरहवीं शती तक मैसूर के अनेक शिलालेखों में लकुलिन और उसके पाशुपतों

---

[१] मनन मनोरंजन, भाग-१, पं० गंगाशंकर मिश्र।

[२] गोरक्षनाथ, डॉ० रांगेय राघव।

[३] हर्षकालीन भारत, डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृष्ठ ११०।

[४] प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, पृष्ठ ७०५।

का उल्लेख हुआ है। इससे स्पष्ट होता है कि समस्त काल में पाशुपतों का दक्षिण भारत में अस्तित्व था।"[१]

कहने का आशय यह है कि डॉ० कल्याणी मल्लिक के विचार वास्तव में सही हैं। बौद्ध तांत्रिकों, अघोरियों और कापालिकों के बढ़ते प्रभाव को कम करने तथा दिशाहीन लोगों को त्राण देने के लिए नाथ-सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा हुई। नाथ-सम्प्रदाय के संस्थापक पाशुपत-सम्प्रदाय के अनुयायी थे। इनके आराध्य देवता शिव हैं।

गोरखनाथ का जन्मस्थान सर्वश्री मोहनसिंह, टेसीटरी, ग्रियर्सन, जयशंकर मिश्र, रांगेय राघव आदि विद्वान् रावलपिण्डी में मानते हैं। जिस गाँव में बाबा गोरखनाथ ने जन्म लिया था, उस गाँव का नाम बाद में गोरखपुर कर दिया गया। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा डॉ० रांगेय राघव गोरखनाथजी को ब्राह्मण-वंश का मानते हैं। गोरखनाथजी पहले वज्रयानी थे, यानी बौद्ध थे। तारानाथ के अनुसार मुसलमानों के आने पर अपने को शैव कहकर राज्य-क्रोध से बच गये। तिब्बती बौद्ध इन्हें धर्मत्यागी के रूप में घृणा की दृष्टि से देखते हैं। दूसरी ओर सम्मान भी करते हैं। इससे स्पष्ट है कि उनका नाम सहजयान सूची में है।"

जो योगी कान नहीं फड़वाते, वे औघड़ कहलाते हैं। नाथ शब्द में 'ना' का अर्थ है—अनादि रूप और 'थ' का अर्थ है—(भुवनत्रय को) स्थापित करना।

नाथ-सम्प्रदाय के कनफटों को दर्शनी साधु कहा जाता है। दर्शनियों में जो बिलकुल नग्न रहते हैं, वे मद्य, मांस खाते हैं। कान की मुद्रा से यह नाम दिया गया है। कानवाली मुद्रा धातु या हाथीदाँत की होती है। मुद्राधारी 'कुण्डल' और 'दर्शन' दोनों नामों से ज्ञात हैं। दर्शन का सम्मान अधिक है। कुण्डल को 'पावित्री' भी कहते हैं। लेकिन गोरखनाथ भांग, मद्य, मांस से दूर रहते थे।

गोरखनाथ के पश्चात् इस सम्प्रदाय में जालन्धरनाथ, चौरंगीनाथ, गहिनीनाथ, भर्तृहरि, कृष्णपाद, चर्पटीनाथ, गोपीचन्द, निवृत्तिनाथ, गोगापीर, गम्भीरनाथ आदि महान् योगी आये। इन लोगों ने अपने योगैश्वर्य के द्वारा साधारण लोगों को ही नहीं, सुधीजनों को भी प्रभावित किया। बाबा गंभीरनाथ के अधिकांश भक्त बंगाल में हैं।

नाथ-सम्प्रदाय के महान् योगी संत ज्ञानेश्वर का आज तक महाराष्ट्र में व्यापक प्रभाव है। नित्य हजारों श्रद्धालु आलन्दी स्थित उनके समाधिस्थल की पूजा करते हैं। संत ज्ञानेश्वर अपने बड़े भाई योगी निवृत्तिनाथ के शिष्य थे। निवृत्तिनाथ के गुरु गहिनीनाथ थे।

× × ×

गोरखनाथजी अपने बारे में कहते हैं—

आदिनाथ नाती मछीन्द्रनाथ पूता।
निज तत निहारै गोरष अवधूता॥

—गोरखबानी, पद ३७।

---

[१] शैव मत- डॉ० यदुवंशी।

अर्थात् मैं आदिनाथ (शिव) का नाती और मत्स्येन्द्रनाथ का पुत्र हूँ। इसी गोरखबानी में एक जगह गोरखनाथ दूसरी बात कहते हैं—

अवधू ईश्वर हमारैं चेला भणीजै मछीन्द बोलिए नाती।
निगुरी पिरथी परलै जाती ताथैं हम उल्टी थापना थापी॥

अर्थात् शिव मेरे शिष्य हैं और मत्स्येन्द्रनाथ मेरे नाती हैं। यहाँ कबीरदास की तरह उल्टी वाणी गोरखनाथ ने प्रस्तुत कर दी

वस्तुतः गोरखनाथ महान् योगी के साथ-साथ शैव-धर्म के श्रेष्ठ प्रचारक थे। संपूर्ण भारत में उन्होंने नागरिकों को पुनः अपनी यौगिक शक्ति के द्वारा शिव-भक्त बनाया।

बंगाल के मुसलमान कवि फैजुल्ला के 'गोरख-विजय' काव्य से एक घटना का पता चलता है। गुरु मत्स्येन्द्रनाथ कदली देश[१] (सिंहल—स्त्री-राज्य) में गये थे जहाँ उन्हें शिवोदिष्ट ज्ञान प्राप्त हुआ था। लेकिन यह काल्पनिक बात है।

अधिकतर लोग यह मानते हैं कि बाबा गोरखनाथ एक बकुल वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ थे। आकाश-मार्ग से सिद्ध कृष्णपाद जा रहे थे। उनकी नजर इन पर पड़ी, तभी अपने योगबल से बाबा गोरखनाथ ने उन्हें नीचे उतारा।

कृष्णपाद ने कहा—"आप यहाँ ध्यान लगाये बैठे हैं और उधर आपके गुरु कदली वन में सौलह सौ सेविकाओं द्वारा सेवित महारानी कमला और मंगला के साथ विहार कर रहे हैं। महाज्ञान भूल चुके हैं। उनकी आयु के केवल तीन दिन शेष रह गये हैं।"

बाबा गोरखनाथ ने कहा—"तुम्हारे गुरु की इससे भी खराब हालत है। गौड़ के राजा गोपीचन्द ने उन्हें मिट्टी में गड़वा दिया है।"

एक-दूसरे के गुरु का विवरण सुनकर दोनों अपने-अपने गन्तव्य स्थान की ओर रवाना हो गये। गोरखनाथ के साथ लंग और महालंग नामक दो शिष्य भी गये। तीनों ब्राह्मण के वेष में कदली वन में आये। गोरखनाथ का रूप देखकर महल की एक दासी इन पर आसक्त हो गयी। उसकी जबानी ज्ञात हुआ कि मत्स्येन्द्रनाथ यहाँ हैं, पर महल में कोई पुरुष नहीं जा सकता।

उसी समय एक नर्तकी महल की ओर जाती हुई दिखाई पड़ी। तुरत गोरखनाथ नर्तकी का रूप धारण कर सभा में जा पहुँचे। अपने योगबल के द्वारा मृदंग से बोल निकालने लगे—'जाग मछीन्द्र गोरख आया।'

मृदंग के माध्यम से उन्होंने मत्स्येन्द्रनाथ को सूचित किया कि कृष्णपाद से सूचना पाकर मैं आपकी सेवा में आया हूँ। आप नारियों के चक्कर में क्यों फँस गये ? आप अपने 'काम-बिकार' को त्याग दीजिए।

---

[१] कदली देश के बारे में विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं। कुछ लोग सिंहल को कदली देश मानते हैं जहाँ कभी स्त्री-राज्य था। लेकिन प्राप्त विवरणों से यह स्पष्ट है कि असम का प्राग्ज्योतिषपुर ही कदली देश है। कल्हण ने राजतरंगिणी में लिखा है कि ललितादित्य प्राग्ज्योतिषपुर स्थित स्त्री-राज्य पर विजय प्राप्त करने गया था। फैजुल्ला ने भी सिंहल को माना है और इसी आधार पर आजादी के पूर्व एक फिल्म का निर्माण हुआ था।

शिष्य की वाणी सुनकर मत्स्येन्द्रनाथ को होश आया। दोनों ही व्यक्ति अलक्ष्य भाव से गायब हो गये और आकाश-मार्ग से गिरनार पर्वत पर उतरे जहाँ एक कुटिया थी। वहाँ मत्स्येन्द्रनाथ पहले से ही सशरीर उपस्थित थे। शिष्य-मण्डली उनके पास बैठी थी। गोरखनाथ यह दृश्य देखकर चकित रह गये। उन्होंने शिष्यों से जब पूछा तब पता लगा कि गुरुजी तो यहाँ कई वर्षों से उपस्थित हैं। यहाँ से कहीं गये नहीं।

यह जनश्रुति है कि गोरखनाथ के अहं को नष्ट करने के लिए मत्स्येन्द्रनाथ ने स्त्री-राज्य में लीला अभिनय किया था। पन्द्रहवीं शताब्दी में इसी जनश्रुति के आधार पर विद्यापति ने 'गोरक्ष विजय' नाटक लिखा था।

नेपाल में मत्स्येन्द्रनाथ का काफी महत्त्व है। यहाँ के नागरिक मत्स्येन्द्र-यात्रा-उत्सव मनाते हैं। कहा जाता है कि एक बार नेपाल-नरेश ने मत्स्येन्द्रनाथ के अनुयायियों पर बहुत अत्याचार किया था। इससे नाराज होकर उन्होंने नवनागों को समेट लिया था। इस वजह से नेपाल में बारह वर्ष पानी नहीं बरसा। लोग नेपाल छोड़कर भागने लगे। चारों ओर हाहाकार मच गया। राजा को अपनी भूल मालूम हुई। उन्होंने एक दूत मत्स्येन्द्रनाथ के पास भेजा। गुरु को देखते ही गोरखनाथ आसन से उठ खड़े हुए और नवनाग मुक्त हो गया। इसके साथ ही वर्षा हुई। इस उपकार के कारण मत्स्येन्द्रनाथ का उत्सव मनाने की प्रथा प्रारंभ हुई। नेपाल में मत्स्येन्द्रनाथ को अवलोकितेश्वर कहा जाता है।

नेपाल में बाबा गोरखनाथ जहाँ साधना करते रहे, वह गुफा आज भी मौजूद है। इसे गोरखनाथ की सिद्ध गुफा कहा जाता है। उज्जैन में भी गोरखनाथ तथा भर्तृहरि की गुफाएँ हैं, जहाँ साधक लोग जाते हैं और श्रद्धालु पूजा करते हैं। इसके अलावा, काठियावाड़, शाक द्वीप, गोरखपुर, गोरखमण्डी (पाटन) में भी गोरखनाथ की पूजा होती है।

त्रिपुरा के राजा तिलकचन्द्र की ख्याति उन दिनों पूरे बंगाल में थी। इनकी पुत्री का नाम शिशुमति था। बाबा गोरखनाथ यात्रा करते हुए त्रिपुरा में आये तो शिशुमति को देखते ही चौंक उठे। तिलकचन्द्र से उन्होंने कहा—"मैं इस लड़की को दीक्षा दूँगा।"

तिलकचन्द्र ने कहा—"बाबा, यह तो शिशु है। योग-साधन यह क्या करेगी ?"

गोरखनाथ ने कहा—"मैं इसके भविष्य को देख रहा हूँ और आप वर्तमान को। आपत्ति मत करिये।"

शिशुमति को दीक्षा देकर गोरखनाथ ने उसका नाम रखा—मयनामति।

मयनामति के पति थे—माणिकचन्द्र। मयनामति के पुत्र का नाम था—गोविन्दचन्द्र। माणिकचन्द्र के निधन के बाद गोविन्द का जन्म हुआ था। कहा जाता है कि माणिकचन्द्र के निधन के बाद मयनामति काफी घबड़ा गयी थी। राज्य का शासन तथा पेट में पलते बच्चे की देखरेख करना था। उन्हीं दिनों अचानक गोरखनाथ आविर्भूत होकर बोले—"तुम्हें परेशान होने की आवश्यकता नहीं है। तुम दोनों कार्य सकुशल सम्हाल लोगी। मैं आशीर्वाद देता हूँ, तुम सफल हो जाओगी। लेकिन एक बात याद रखना। जब तुम्हारा बालक किशोर बन जाय तब उसे भी नाथ-सम्प्रदाय में दीक्षित करा देना। आगे चलकर यह बालक नाथ-सम्प्रदाय का महत्त्वपूर्ण साधक बनेगा।"

बालक जब अठारह साल का हो गया तब उसका विवाह हुआ और उसके बाद ही

गोविन्दचन्द्र नाथ-सम्प्रदाय में दीक्षित हो गया। संपूर्ण बंगाल में बाउल फकीर गोपीचन्द्र और मयनामति के गीत गाते हुए भीख माँगते हैं। तत्कालीन कई लोकगीतों के कवियों ने इन गीतों को गाँव-गाँव में फैलाया है।

कहा जाता है कि राजा भर्तृहरि भी बाबा गोरखनाथ के शिष्य थे जो रानी पिंगला के विरह में व्याकुल होकर गोरखनाथ की शरण में आये थे। उत्तर भारत के योगी आज भी सारंगी बजाते हुए गाते हैं—"भिक्षा दे माई पिंगला।"

गेरुए रंग का धोती-कुर्ता और सिर पर पगड़ी बाँधे रहते हैं। शहर और गाँव सर्वत्र इनकी सारंगी बजती है।

सिलवाँ लेवी ने लिखा है—"गोरखा-जाति और गोरखा-राज्य के रक्षक के रूप में गोरखनाथ को महापुरुष माना जाता है और उनकी पूजा की जाती है।"

नेपाल में गोरखा नामक एक लड़ाकू जाति है जिनके परिवार के अधिकांश सदस्य सैनिक बनते हैं। इन लोगों का कहना है कि गोरखनाथजी हमारे यहाँ बारह वर्ष तक तपस्या करते रहे। तपस्या-भूमि का नाम 'गोरखा' है। इन्हींके नाम पर बसे स्थान के कारण गोरखा-जाति की उत्पत्ति हुई है।

बंगला-साहित्य के प्रसिद्ध आलोचक श्री दिनेशचन्द्र सेन ने लिखा है—'गोरक्ष विजय' से यह भी पता चलता है कि कालीघाट (कलकत्ता) की काली देवी की प्रतिष्ठा गोरखनाथ के द्वारा हुई है। वर्त्तमान समय में गोरखनाथ के नाम पर स्थापित गोरखपुर की ख्याति सर्वत्र है जहाँ बाबा गोरखनाथ लम्बे अर्से तक तपस्या करते रहे।

जिस प्रकार बाबा के जन्म तथा जन्मस्थान का पता नहीं चलता, ठीक उसी प्रकार उनके तिरोधान का पता नहीं लग सका। नाथ-सम्प्रदाय के लोगों का विचार है कि बाबा अमर हैं। अभी तक उनकी योग विभूति कभी-कभी प्रकट होती है।

●

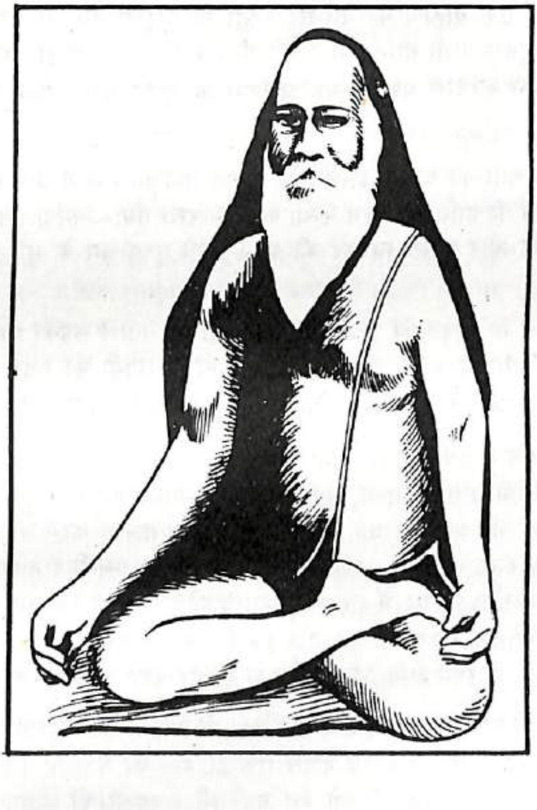

बालानन्द ब्रह्मचारी

बालानन्द ब्रह्मचारी

मध्यप्रदेश की सांस्कृतिक नगरी उज्जैन की ख्याति से सभी परिचित हैं। इस नगर में पुरुषोत्तम नामक एक ब्राह्मण का परिवार रहता था। पुरुषोत्तम की पत्नी का नाम लक्ष्मी था। नाम के अनुसार पत्नी वास्तव में लक्ष्मी थी। पति-पत्नी दोनों ही धार्मिक प्रवृत्ति के थे। शिप्रा नदी में स्नान करने के पश्चात् महाकालेश्वर का दर्शन करना इनके दैनिक कार्यक्रम का एक अंग था।

दुःख इसी बात का था कि इनके कोई संतान नहीं थी। लम्बे अर्से के बाद इस दम्पति को एक कन्यारत्न की प्राप्ति हुई। इस कन्या का नाम रखा गया—नर्मदा। नर्मदा अपूर्व सुन्दरी, आकर्षक आकृति और शान्त स्वभाव की थी। उसने पुरुषोत्तम के सूने घर को आलोकित कर दिया।

पिता-माता के लाड़-प्यार में पलकर वह बड़ी हो गयी। लड़की पराया धन होती है। विवाह के बाद ससुराल चली जायगी—इस कल्पना से लक्ष्मी का हृदय घबड़ा जाता था। इधर पुरुषोत्तम अपनी बेटी के लिए योग्य वर की तलाश में अलग परेशान थे।

पत्नी के मन में नया विचार जागा। वह चाहती थी कि दामाद ऐसा मिले जो घरजमाई बनकर रहे या कहीं पास-पड़ोस में, ताकि नर्मदा माँ-बाप की निगाहों से दूर न जा सके। ब्राह्मण देवता को भी पत्नी की यह बात पसन्द आयी। तलाश करने पर एक ऐसा वर उन्हें मिल भी गया। वर का नाम था—वंशीलाल। पंजाब के ज्वालामुखी क्षेत्र का निवासी, सारस्वत ब्राह्मण, भारद्वाज गोत्र। नगर में उसका अपना कहनेवाला कोई नहीं था। सौम्य तथा पंडित था। लड़का पुरुषोत्तम को पसन्द आ गया। नर्मदा का विवाह हो गया। विवाह के पश्चात् वंशीलाल ससुराल में रहने लगा और उज्जैन में ही महाकाल के मंदिर का पुजारी बन गया।

नर्मदा पर पिता-माता का प्रभाव पड़ा था। बचपन से ही वह धार्मिक प्रवृत्ति की थी। देव-द्विजों के प्रति आस्था थी। उसे केवल एक ही बात का कष्ट था। विवाह हुए कई वर्ष बीत गये, पर अभी तक वह माँ नहीं बन सकी थी। मुहल्ले की संतानवती महिलाओं को देखती तो उसके हृदय में एक टीस-सी उत्पन्न हो जाती। फलतः यदा-कदा पड़ोसियों के बच्चों को कंठ से लगाकर ही अपने मातृत्व की प्यास बुझाती।

सहसा एक दिन उसने स्वप्न में देखा—श्री गोपालकृष्ण उसके सामने खड़े हैं, बालरूप में। उसके पास आकर बोले—"नर्मदा, चिन्ता मत करो। मैं शीघ्र ही तुम्हारी कोख से जन्म लूँगा।" यह बात सुनकर नर्मदा चौंक उठी और जाग गयी। देर तक वह अपने स्वप्न के बारे में सोचती रही।

दूसरे दिन नर्मदा ने पति को अपने देखे गये सपने की कहानी सुनायी। पत्नी की बातें सुनकर वंशीलाल ने कहा—"महाकालेश्वर तुम्हारी मनोकामना पूरी करें।"

इस घटना के एक वर्ष बाद परिवार में एक शिशु ने जन्म लिया। बालक का नाम रखा गया—पीताम्बर। यह घटना सन् १८३३ ई० की है। एक अर्से के बाद संतान होने के कारण माँ का सारा प्यार शिशु पर केन्द्रित हो गया था। पीताम्बर भी पूरी तरह मातृभक्त बन गया था।

एक दिन जब वह स्नान कर चुका तब माँ अपने काम में व्यस्त रही। घर की नौकरानी गमछा लेकर उसका बदन पोंछने को आयी तो पीताम्बर ने कहा—"मैं तुमसे बदन नहीं पोंछवाऊँगा।"

नौकरानी अवाक् होकर बोली—"क्यों ? मैंने क्या किया ?"

पीताम्बर ने कहा—"मैं अपनी माँ का बेटा हूँ। वही मेरा बदन पोंछेगी। तुम जाओ।"

नर्मदा पास ही बैठी काम कर रही थी। अपने बेटे की बातें सुनकर पुलकित हो उठी। तुरत पास आकर वह पीताम्बर के अंग पोंछने लगी। इस तरह कई बातें वह माँ से ही करवाने की जिद करता था। माँ को अपने पुत्र की इन सेवाओं से आनन्द मिलता था।

माँ के दुलार के कारण पीताम्बर जरा नटखट हो गया था। पढ़ने-लिखने की अपेक्षा खेलकूद में उसका मन अधिक लगता था। कभी-कभी माँ डाँटती थी, पर स्नेह के कारण तुरत नरम पड़ जाती थी। एक बार देर से घर लौटने पर माँ सचमुच बेहद नाराज हो गयी। डाँटती हुई बोली—"दिनभर केवल खेलना। न पढ़ना न लिखना, और न घर का कोई काम करना। क्या साधु बनकर भीख माँगेगा ?"

अपने नाती का भविष्य जानने के लिए नाना ने जन्म-कुण्डली बनवायी थी। उसमें लिखा था कि जातक भविष्य में गृहत्यागी होकर संन्यास-धर्म अपनायेगा। इस बात को नर्मदा भुला नहीं पा रही थी।

इन्हीं दिनों पीताम्बर को एक नया शौक पैदा हुआ। वह दिनभर मदारियों के साथ चक्कर काटता रहता और साँपों को वश में करने के लिए मंत्र सीखता था। यहाँ तक कि कभी-कभी साँपों के साथ खेलता भी था। उसकी इस आदत से माँ भयभीत हो उठी। उसने वंशीलाल से कहा—"जरा पीताम्बर को देखो। वह पढ़ता-लिखता नहीं। दिनभर न जाने कहाँ-कहाँ चक्कर काटता फिरता है। साँपों से खिलवाड़ करता रहता है। ले-देकर हमारा एक ही तो लड़का है। कहीं कुछ हो गया तो क्या होगा ?"

वंशीलाल ने कहा—"लड़का बड़ा हो रहा है। अधिक कड़ाई करने से कोई लाभ नहीं है। बुद्धि का विकास होने पर सब अपने-आप ठीक हो जायगा। अधिक कड़ाई करोगी तो घर छोड़कर भाग जायगा। उसकी जन्मपत्रिका की बाते क्यों भूल जाती हो ? एक न एक दिन उसका वियोग हमें सहन करना ही पड़ेगा। मनुष्य अपने मिथ्या कर्तृत्व के अभिमान से ही सुख-दुःख भोगता है। संतान के प्रति तुम्हारा स्नेह उसकी रक्षा करेगा। जीव ही जीव का भक्ष्य है, जीव जीव की रक्षा नहीं करता। जन्म, मृत्यु, संयोग, वियोग आदि ज्ञान मानव की अज्ञानता से ही उत्पन्न होते हैं।"

पति के लम्बे भाषण को सुनकर नर्मदा चुप रह गयी। उसने सोचा—पता नहीं, लड़के के भाग्य में क्या बदा है।

धीरे-धीरे पीताम्बर नौ वर्ष का हो गया। शुभ दिन देखकर वंशीलाल ने उसका उपनयन-संस्कार करने का निश्चय किया। उस दिन सबेरे से ही वंशीलाल के घर में निमंत्रित व्यक्तियों की भीड़ आने लगी। इनमें कुछ साधु-संत भी थे। उपनयन के पश्चात् कंधे पर भिक्षा की झोली लेकर पीताम्बर ने अपनी माँ के पास जाकर व्रत-भिक्षा की माँग की। उस समय पुत्र की प्रशान्त और सौम्य आकृति को देखकर नर्मदा अपने आँसुओं को रोक नहीं सकी। यह दृश्य देखकर उपस्थित लोग नर्मदा पर असंतुष्ट होकर बोल उठे—"इस मौके पर तुम्हें रोना नहीं चाहिए।"

लेकिन नर्मदा का हृदय लोगों की नाराजगी को स्वीकार करना नहीं चाहता था। उसे रह-रहकर लड़का 'गृहत्यागी संन्यासी बनेगा' वाली बात याद आ रही थी। कुछ देर बाद अपने को संयत कर उन्होंने व्रत-भिक्षा दी।

उपनयन होने के तीसरे दिन नर्मदा देवी ने पीताम्बर से कहा—"बेटा, आज तुम्हें ब्रह्मचारी भेस त्याग करना है और शिप्रा नदी में दण्ड को प्रवाहित करना है।"

माँ की बात मानने से पीताम्बर ने इनकार कर दिया। उन्होंने पूछा—"यज्ञ सूत्र रखूँगा और बाकी सब क्यों बहा दूँगा ? आधा त्याग और आधा ग्रहण, यह कैसी व्यवस्था है ? मैं इसी भेस में रहकर भगवान् का मंत्र कंठस्थ करूँगा और वेद-पाठ करूँगा।"

अन्त में माँ को कहना पड़ा—"तुम्हें एक बार ब्रह्मचारी-भेस त्यागना पड़ेगा, फिर जब इच्छा हो तब ग्रहण कर लेना।"

इस शर्त पर पीताम्बर राजी हो गये और उन्होंने माँ की आज्ञा का पालन किया।

उपनयन के पश्चात् एक दिन पीताम्बर अपने उस उस्ताद के यहाँ गये जिससे साँप का मंत्र सीखा था। उस्ताद धारा नगरी में रहते थे। वहाँ जाकर दो-तीन दिन नगर-दर्शन करने के बाद पीताम्बर ने उनसे कहा—"अब आप मुझे कोई नया मंत्र सिखा दीजिए।"

उस्ताद ने कहा—"तुम्हारा उपनयन हो गया है। अब तुम नियमित रूप से वेद-मंत्र, गायत्री-जप और संध्यावन्दन करते रहना। नर्मदा नदी को माता समझना। इसी नर्मदा नदी के किनारे एक पुण्यात्मा महापुरुष तुम्हारे निकट गुरु के रूप में आविर्भूत होंगे और तुम्हें महामंत्र देंगे। अब तुम इस वक्त अपने घर जाओ और नर्मदा माता का दर्शन करो। उज्जैन से चालीस कोस दूर बाड़ोवा नगर के खेड़ीघाट से अपनी यात्रा आरंभ कर नर्मदा माता के किनारे-किनारे पद-यात्रा करते रहो।"

धारा से लौटने के बाद पीताम्बर कई दिनों तक अपने घर थे। बाद में एक दिन चुपचाप रात के वक्त बाड़ोवा नगर की ओर चल पड़े। मार्ग में भीख में जो प्राप्त होता, उसीसे अपना पेट भरते थे। गौर वर्ण किशोर संन्यासी को देखकर अधिकतर लोग आग्रह के साथ भोजन कराते थे। उन दिनों राह चलते अतिथियों को भोजन कराना, प्यासे को पानी पिलाना, शरणागत की रक्षा करना, मानव-धर्म समझा जाता था।

पुत्र के अचानक गायब हो जाने के कारण नर्मदा देवी बहुत व्याकुल हो गयीं। वंशीलाल के प्रबोध-वाक्यों से उन्हें किंचित् सांत्वना मिली, पर शान्ति नहीं मिली। दूसरी ओर वंशीलाल

ने सोचा—पुत्र होकर पीताम्बर मेरे लिए मार्गदर्शक बन गया। व्यर्थ ही मैं गृहस्थी की चक्की पीसता जा रहा हूँ। वैराग्य ही एकमात्र भगवद्-भक्ति का मार्ग है। इन्हीं बातों का चिन्तन वे लम्बे अर्से तक करते रहे।

कुछ दिनों बाद वास्तव में गृहस्थी के पचड़े से दूर होकर वंशीलाल ने भी संन्यास ग्रहण कर लिया। अब वे दिन-रात भगवान् शिव की आराधना में लग गये। कई वर्ष बाद वे शिव-लोक चले गये। पति के निधन के पश्चात् कई वर्ष तक नर्मदा देवी पैतृक निवास में रहती हुई पूजा-पाठ करती रहीं। लेकिन साथ ही उन्हें अपना अकेलापन खटकता रहा। आखिर एक दिन वे अपने पुत्र की तलाश में उज्जैन से चल पड़ीं।[1]

इधर पीताम्बर बाड़ोवा से खेड़रीघाट आये। यहाँ से सिद्धनाथ तक चालीस कोस पैदल आये। मार्ग में ओंकारनाथ का भयंकर जंगल था। कहा जाता है कि सिद्धनाथ महादेव काफी प्राचीन हैं। उस पार ऋद्धनाथ का मन्दिर है। नर्मदा माता का नाभि-स्थान होने के कारण ऋद्धनाथ की ख्याति है। अधिकांश साधु-महात्मा इसी स्थान से नर्मदा की परिक्रमा प्रारंभ करते हैं।

यहाँ आने पर बालक पीताम्बर को ध्यानानन्द ब्रह्मचारी ने अपने यहाँ शरण दी। बालक में उग्र वैराग्य देखकर गनपत चैतन्य ब्रह्मचारी तथा ध्यानानन्द ब्रह्मचारी प्रभावित हुए। उन्होंने निश्चय किया कि बालक को संन्यास देना चाहिए। पीताम्बर को दंड, कमंडलु, मृगचर्म, कौपीन, कटिसूत्र आदि देने के बाद कुछ नियमों का पालन करने की आज्ञा दी।

१. पंचकेश धारण करना।
२. छत्र और पादुका का प्रयोग मत करना।
३. स्त्री-जाति को माता समझना।
४. कुमारी लड़कियों को नर्मदा माता समझना।
५. गुरु के अलावा अन्य व्यक्ति के हाथ का भोजन ग्रहण मत करना।
६. नित्य नर्मदा माता और शिव की पूजा करना।
७. भोजन तैयार करने के बाद अग्नि में आहुति देकर भोजन करना।
८. कमर से अधिक नर्मदा के पानी में मत उतरना।
९. नर्मदा माता को कभी पार मत करना।
१०. नर्मदा माता के तीर से अधिक दूर रात मत गुजारना।
११. सिले हुए वस्त्र मत पहनना।
१२. किसी गृहस्थ के घर रात्रिवास मत करना।
१३. गाँवों से भीख माँगकर खाना।
१४. अगर कोई भूखा व्यक्ति दिखाई दे तो पहले उसे भोजन देकर तब भोजन करना।

इन चौदह उपदेशों को देने के बाद उन्हें नर्मदा माता की परिक्रमा करने के लिए रवाना

---

[1] बालानन्द ब्रह्मचारीर संक्षिप्त जीवन-कथा।

किया गया। साथ में गौरीशंकरजी महाराज थे। नर्मदा-परिक्रमा कितनी तितिक्षापूर्ण यात्रा है, इसे भाषा के माध्यम से समझाना कठिन है। वस्तुतः यह बड़ी कष्टदायक यात्रा है। यात्रा के पूर्व भोग लगाकर नर्मदा माता की पूजा होती है। भोग देने को स्थानीय भाषा में 'कड़ाई' कहा जाता है। प्रत्येक ढाई महीने बाद 'कड़ाई' का नियम पालन करना पड़ता है। इस यात्रा में उपदेश के अनुसार छाता, जूता, सिले हुए वस्त्रों का प्रयोग नहीं होता। शाम को हविष्यान्न ग्रहण किया जाता है। यात्रा के समय सर्वदा इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि किसी भी सूरत में नर्मदा को पार नहीं करना चाहिए वर्ना यात्रा खंडित हो जाती है। वैसी दशा में पुनः नये सिरे से 'कड़ाई' कर यात्रा करनी पड़ती है। नौ वर्ष के पीताम्बर को इस परिक्रमा-यात्रा में कुल बारह वर्ष लग गये।

नित्य प्रातःकाल बिस्तर से निकलने के बाद प्रातःक्रिया समाप्त करते। बाद में संध्या पूजन करने के पश्चात् गाँव में जाकर भिक्षा माँगते। लोगों के दरवाजे पर जाकर वे कुछ माँगते नहीं थे। केवल 'हर नर्मदे हर' की आवाज लगाते। इस आवाज को सुनते ही गृहस्थ बाहर आकर ब्रह्मचारी को भिक्षा देता था। भिक्षा में प्राप्त सामग्री वे साथ चल रहे संतों को बाँट देते थे।

आखिर एक दिन अन्य संतों के साथ वे भुड़िया बाबाजी के आश्रम में पहुँचे। भुड़िया बाबा सिद्ध महात्मा थे। उन्होंने बालक पीताम्बर से तरह-तरह के प्रश्न पूछे। इसके बाद बोले—"वत्स, तेरी मनोकामना पूर्ण होगी। तुम्हारे गुरु तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। उनसे तुम्हें शीघ्र दीक्षा प्राप्त होगी।"

इस समाचार को सुनकर पीताम्बर पुलकित हो उठा। उसने पूछा—"महाराज, मेरे गुरुदेव कहाँ प्रतीक्षा कर रहे हैं, अगर आप बता दें तो मैं उनके श्रीचरणों में जाकर प्रणाम करूँ।"

भुड़िया बाबा ने कहा—"वे गंगोनाथ के पास ही हैं।"

गुरु का पता लगते ही पीताम्बर का हृदय व्याकुल हो उठा। अगर उसके पास दो पंख होते तो उड़कर वह तुरत गुरु के पास पहुँच जाता। आखिरकार लम्बा रास्ता पार कर पीताम्बर गंगोनाथ पहुँचा। वहाँ उसे सिद्ध महापुरुष ब्रह्मानन्द ब्रह्मचारी के दर्शन हुए। ब्रह्मचारीजी बेल के पेड़ के नीचे एक कुटिया में रहते थे। कुटिया के भीतर अहरह धूनी जलती रहती थी। वहाँ घी का एक दीपक भी जल रहा था।

पीताम्बर की प्रार्थना सुनने के बाद ब्रह्मानन्दजी उससे तरह-तरह की बातें पूछने लगे। उसके उत्तरों से प्रसन्न होकर उन्होंने कहा—"तुम्हें इसी श्रावण मास की पूर्णिमा को दीक्षा दूँगा।"

दीक्षा देने के पूर्व ब्रह्मानन्दजी ने अपनी भिक्षा की झोली दिखाते हुए कहा—"इस झोली में ऋद्धि और सिद्धि दोनों हैं। इस झोली को लेकर जाओ और गाँव के लोगों से भिक्षान्न संग्रह करो। प्राप्त सामग्री से तुम्हें गाँव के निवासियों तथा नर्मदा-परिक्रमा करनेवाले सभी संतों को भोजन कराना पड़ेगा। मैं भी इसी झोली को लेकर गंगोनाथ आश्रम के लोगों को भोजन कराता हूँ।"

गुरु के आदेशानुसार पीताम्बर झोली लेकर भिक्षा माँगने निकल पड़ा। इस बालक की

तेजस्वी मूर्ति देखकर गाँव के लोग बहुत प्रभावित हुए। बड़े शौक और उत्साह से उन लोगों ने आटा, चावल, दाल, तरकारी आदि सामग्री प्रचुर मात्रा में दी जिसे लेकर वे आश्रम में आये। उन लोगों ने यह भी कहा—"दीक्षावाले दिन हम लोग आश्रम में नर्मदा माता का प्रसाद ग्रहण करेंगे।"

भिक्षा से वापस लौटने के बाद पीताम्बर ने यह समाचार ब्रह्मानन्दजी को सुनाया। सुनकर गुरुदेव प्रसन्न हो गये।

निश्चित दिन ब्रह्मानन्द ने पीताम्बर को दीक्षा देकर उनका संन्यासी नामकरण किया—बालानन्द ब्रह्मचारी। ब्रह्मानन्द महाराज तथा उनके शिष्य बालानन्द दोनों ही जगद्गुरु शंकराचार्य के जोशीमठ अन्तर्भुक्त 'आनन्द' आख्यायुक्त नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे।

एक बार बालानन्द ब्रह्मचारी ने अपने गुरुदेव के सामने यह इच्छा प्रकट की कि मैं संन्यास लेना चाहता हूँ। शिष्य की बातें सुनकर ब्रह्मानन्द ब्रह्मचारी ने कहा—"इस कलिकाल में पूर्ण रूप से संन्यास-धर्म का पालन करना कठिन कार्य है। ब्रह्मचर्य आश्रम में रहकर हमें सभी निष्काम कार्य करने का अवसर मिलता है। संन्यास लेने का मतलब शिखा-सूत्र त्यागकर नाना प्रकार के संतों से, अबाध गति से मिलना-जुलना पड़ेगा। इससे उच्छृंखलता और अशुचिता आने की संभावना रहती है। पूर्ण ज्ञान आने के पूर्व ही अज्ञान स्थिति में कर्म त्याग हो जाता है तब योग और ज्ञान दोनों के ही नष्ट हो जाने का भय रहता है।"

दीक्षा देने के बाद बालानन्द ब्रह्मचारी ने अपने गुरु से पूछा था—"गुरुदेव, दीक्षा देने के बदले गुरु-दक्षिणा के रूप में क्या दूँ?"

ब्रह्मानन्द महाराज यह बात सुनकर प्रसन्न हो गये। उन्होंने कहा—"वत्स, तुम्हारा कथन उचित है, पर बदले में कुछ लेने के लिए मैंने तुम्हें यह मंत्र नहीं दिया है। यह ठीक है कि गुरु से दीक्षा लेने पर उसे गुरु-दक्षिणा देनी पड़ती है। लौकिक प्रथा के अनुसार शिष्य धन, वस्त्र, अन्न आदि दक्षिणा के रूप में देता है परन्तु वास्तव में यह दक्षिणा नहीं है। सिद्धि में ही गुरु-दक्षिणा है, इसलिए तुम तपस्या करो और गुरु-प्रदत्त सिद्ध बीज मंत्र से सिद्धि प्राप्त करो। तुम्हारी दी हुई सामग्री प्रतिदिन मैं संचय करता रहूँगा। यही मेरी गुरु-दक्षिणा होगी।"

गुरुदेव की बातें सुनकर बालानन्द ब्रह्मचारी आनन्द से गद्गद हो उठा। तुरत उनके चरणों पर अपना मस्तक रख दिया। ब्रह्मानन्द महाराज ने उसे उठाते हुए कहा—"वत्स, तुमने ठीक वस्तु गुरु-दक्षिणा के रूप में दी है। शरीर में मस्तक ही श्रेष्ठ स्थान है। इसी स्थान पर एक सहस्रदल कमल है, वहीं गुरुदेव विराजमान हैं। तुम नित्य प्रातःकाल सहस्रकमलदल में गुरुदेव का ध्यान करना। आज से तुम्हारा तन, मन, धन, गुरुदेव का हुआ—इस बात को सर्वदा याद रखना। जब कोई कार्य करने के लिए जाओ तब अपने गुरु का ध्यान अवश्य करना। सर्वदा यह सोचना कि वे तुम्हारे साथ हैं। ऐसी धारणा बना लेने पर तुममें विवेक-बुद्धि उत्पन्न होगी। तुम्हारे आत्माभिमान का विनाश होगा और तब इस विश्व में एकमात्र गुरुदेव ही दिखाई देंगे। तभी तुम्हें अपनी साधना में सिद्धि प्राप्त होगी।"

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

इसके साथ ही उपस्थित साधुओं ने "हर नर्मदे हर" की ध्वनि की। इस प्रकार लोगों का भण्डारा समाप्त हुआ। अब बाल ब्रह्मचारी का नाम 'बालानन्द ब्रह्मचारी' हो गया।

इसके अनन्तर बालानन्द ब्रह्मचारी को पठन-पाठन में लगाया गया। गौरीशंकर ब्रह्मचारी आपको शिक्षा देने लगे। गौरीशंकर महाराज तथा ध्यानानन्द महाराज निरन्तर उन्हें अध्यात्म-दर्शन का ज्ञान देने लगे। लगभग आठ माह तक अध्ययन करने के बाद बालानन्द ब्रह्मचारी अपने शिक्षा-गुरु गौरीशंकर महाराज के साथ पुनः नर्मदा माता की परिक्रमा करने के लिए चले गये।

गौरीशंकर महाराज सिद्ध पुरुष थे। आपके पास स्थानीय लोग कभी-कभी अपने बीमार सदस्य को लेकर आते थे। उनका उद्देश्य था कि बाबा कोई जड़ी-बूटी दें ताकि रोगी स्वस्थ हो जाय। गौरीशंकर महाराज आगन्तुकों को मंत्रपूत कालीमिर्च और भभूत देते थे। इससे रोगी रोगमुक्त हो जाता था। कभी-कभी यह कार्य बालानन्द ब्रह्मचारी को करना पड़ता था।

भ्रमण और अध्ययन के पश्चात् बालानन्द महाराज को हठयोग का ज्ञान कराया गया। हठयोग के समय साधक को अपने दैनिक जीवन में काफी संयम बरतना पड़ता है, क्योंकि इसके बाद ही राजयोग का अभ्यास करना पड़ता है। उन्होंने कहा है—

"हठं विना राजयोगं राजयोगं विना हठः।
न सिद्ध्यति ततः युग्ममालिप्स्यते समभ्यसेत्।"

इन योगों को न तो सर्वसाधारण के सामने करना चाहिए और न इस सम्बन्ध में किसी से कुछ प्रकट करना चाहिए—

"हठविद्या परा गोप्या योगिना सिद्धिमिच्छता।"

अगर योगी हठयोग में पारंगत हो जाय तो वीर्यवान् पुरुष बन जायगा। प्रकट रूप से करने यानी नटों की तरह लोगों के सामने प्रदर्शन करने पर कोई लाभ नहीं होता, बल्कि इससे उसे हानि ही होती है तथा कोई आध्यात्मिक ज्ञान भी प्राप्त नहीं होता।

एक दिन की बात है। बालानंद महाराज भोजन का प्रबंध करने के बाद ज्योंही खाने के लिए बैठे त्योंही एक वृद्धा आयी और बोली—"बेटा, मैं भूखी हूँ। कुछ खाने को दो।"

बालानन्दजी वृद्धा की बातें सुनकर चकित रह गये। उन्हें गुरु के उपदेशों का ध्यान आया। वृद्धा देखने में अत्यन्त क्षीणकाय थी, पर उसकी आवाज में मधुरता थी जिसका प्रभाव बालानन्द महाराज पर व्यापक रूप से पड़ा। उनकी अन्तर्दृष्टि ने सूचित किया कि वृद्धा कोई साधारण मानवी नहीं है। इसमें जरूर कोई रहस्य है। उन्होंने एक रोटी और कुछ साग देते हुए कहा—"लो माँ, खाओ।"

वृद्धा रोटी लेकर खाने लगी। बालानन्द महाराज उसे एकटक देखते रहे। जब उसकी रोटी समाप्त हो गयी तब उन्होंने एक और रोटी उसकी ओर बढ़ायी। वृद्धा ने कहा—"नहीं बेटा, अब नहीं। तुम्हारे भोजन में कमी हो जायगी।"

ब्रह्मचारीजी ने कहा—"नहीं माँ। तुम भूखी हो। तुम भरपेट खा लो।"

इस अनुरोध पर वृद्धा ने आधी रोटी और लेकर खा गयी। पानी पीने के बाद बोली—"मेरी भूख मिट गयी। तुम्हारा हृदय पूर्ण हो, वासना-तृष्णा मिट जाय। तुम युग-युग जीते रहो।" इतना कहते-कहते वह अदृश्य हो गयी।

वृद्धा का इस प्रकार अन्तर्धान होना बालानन्दजी के लिए चकित कर देनेवाला दृश्य था। उन्होंने अनुमान लगाया कि वह सामान्य महिला नहीं थी। कहीं वह नर्मदा माता तो नहीं थीं ? क्या वृद्धा के रूप में जगदम्बा माता दर्शन देने आयी थीं ? इन्हीं बातों की चिन्ता में वे खो गये। सहसा उनकी नजर सामने रखी डेढ़ रोटियों पर पड़ी। अब उसे खाने की इच्छा नहीं हुई।

रह-रहकर वे उस वृद्धा के बारे में चिन्तन करने लगे। उनके हृदय से स्वतः ध्वनित होने लगा—"माँ, तुम आयी, पर आकर भी अपना रूप नहीं दिखा सकी।"

इस प्रकार वे कुछ देर तक विलाप करते रहे। सहसा कहीं से आवाज आयी—"वत्स, अब तुम कातर मत हो, विलाप मत करो। मेरा प्रसाद जो रोटियाँ सामने हैं—ग्रहण करो। मैं बराबर तुम्हारे हृदय के अनुराग के साथ हूँ।"

इन बातों से बालानन्द महाराज आनन्द से भर गये। नर्मदा माता का प्रसाद ग्रहण करने के साथ ही उनका हृदय अपूर्व क्रान्ति से भर उठा।

बालानन्द महाराज के गुरु ब्रह्मानन्द ब्रह्मचारी अत्यन्त शक्तिशाली योगी पुरुष थे। आपकी ऐसी (ईश्वरी) -शक्ति से महर्षि अरविन्द प्रभावित थे। ब्रह्मानन्द महाराज की आयु काफी लम्बी थी। वे अक्सर कहा करते थे कि उन्होंने अपने जीवनकाल में तीन गायकवाड़ों को गद्दी पर बैठते देखा है। बचपन में मैंने शिवाजी को देखा था। सन् १९०६ में जब देवघर में शिव मंदिर का निर्माण हुआ तब वे परलोकवासी हुए। ऐसे महात्मा स्वरोदय शास्त्र में सिद्ध होते हैं जिन्हें यह मालूम रहता है कि वे कब शरीर छोड़ेंगे। ब्रह्मानन्द महाराज ने हँसते-हँसते अपना प्राण त्याग दिया था।

भारतीय संत पर्यटन को साधना का एक अंग समझते हैं। पर्यटन करते हुए भारत के सभी तीर्थ एवं जाग्रत स्थानों का दर्शन करते हैं। इस दौरान अनेक उच्चकोटि के संतों से मुलाकातें होती हैं। बालानन्द महाराज भी पर्यटन पसन्द करते थे। वे हिमालय पर्वत के एक छोर से दूसरे छोर तक निरन्तर भ्रमण करते रहे, बिना किसी पाथेय के। केवल कौपीन, कमंडल और भिक्षा की झोली साथ रखते थे। गृहस्थों के घर या लोकालय में आना उन्हें पसन्द नहीं था। इस सम्बन्ध में वे कहा करते थे—"जंगल में ही मंगल है। शहरों में मानवों के जंगल में खो जाने में आता है।" इस यात्रा में कितनी मुसीबतें उठानी पड़ती हैं, इसका विवरण निम्नलिखित घटना से मिल जायेगा।

एक बार वे कामाख्या देवी का दर्शन करने के लिए रवाना हुए। मार्ग में हैजे से पीड़ित हो गये। उस समय तक आपका कोई शिष्य या भक्त नहीं बना था। एकाकी, निःसहाय थे। कई दिनों तक अनाहार रहने के कारण भूख से व्याकुल हो उठे। राह से गुजरनेवालों से आप यह अनुरोध करने लगे कि सामने के कुएँ से कई बाल्टी पानी निकालकर मुझ पर छोड़ने की कृपा करें। मेरी झोली में कुछ चावल है। कुएँ की जगत् पर दो ईंटें रखकर लोटे में चावल डाल दो। आसपास के सूखे पत्तों के जलावन से आग जला दो। उबल जाने पर मैं उतारकर खा लूँगा। कोई पथिक मदद कर देता और कोई आगे बढ़ जाता। इस प्रकार पथचारियों की मदद से आप भोजन करते रहे।

आपके बारे में आपके शिष्य श्री प्राणगोपाल मुखर्जी ने लिखा है—"गुरु महाराज पूर्ण

उपासक थे। प्राण के त्रिवेणी-संगम में उनकी पूर्ण प्रतिष्ठा थी। वे थे—कर्मी, भक्त और ज्ञानी। आपने अपने साधना-जीवन में, हठयोग-क्रिया में पारदर्शी बनकर शरीर की समस्त इन्द्रियों पर विजय प्राप्त की थी। बाद में राजयोग की साधना से मन-बुद्धि पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया था। उनकी बुद्धि सहज मुक्त अवस्था प्राप्त कर चुकी थी। मध्य जीवन में जप-ध्यान के साथ प्राणायाम करते थे। इससे प्राण स्वाभाविक रूप से न्यासाभ्यन्तचारी होता गया और तब स्वर के ऊपर लक्ष्य रखने लगे। इसी एक लक्ष्य पर उनकी अखण्ड स्थिति थी। अक्सर उनके प्राण स्वाभाविक गति से अपने-आप दीर्घ-सूक्ष्म होकर सहज-ध्यान में जुड़ जाते थे। यही कारण है कि उनके निकट बैठे रहने पर व्यक्ति को प्रायः महाध्यान का स्पर्श-बोध होता था।''

श्री प्राणगोपाल मुखर्जी महाराज उनके प्रिय शिष्य तो थे ही, स्वयं भी एक उच्चकोटि के साधक थे। गुरु महाराज के द्वारा बताये प्राणायाम और योग-साधना में वे जीवनपर्यन्त लगे रहे।

भ्रमण करते हुए बालानन्द महाराज एक बार वैद्यनाथ धाम आये। यहाँ स्थित तपोवन पहाड़ का रमणीक स्थान आपको इतना पसन्द आ गया कि वहीं आपने धूनी रमा ली। कुछ ही दिनों के भीतर आपकी योग-विभूति की चर्चा लोगों की जवान पर नाचने लगी। भक्तों की भीड़ बढ़ने लगी। ध्यानगृह और कुटिया का निर्माण हुआ। यहीं आप शंकर की उपासना में निमग्न हो गये। जटाधारी ब्रह्मचारी के अंग-प्रत्यंग से दिव्यज्योति निकलने लगी। भक्तों ने आपको जीवन्त शंकर मानकर श्रद्धा-पूजा करना प्रारंभ किया।[१]

कुछ दिनों बाद आप यहाँ से पुनः भ्रमण के लिए निकल पड़े। आपकी प्रिय भूमि देवतात्मा हिमालय की मिट्टी थी। वास्तव में वे शहर तथा गाँवों में रहना पसन्द ही नहीं करते थे। देश के पीड़ित नागरिकों को देखकर उन्हें कष्ट होता था। इसी चिन्ता में साधना नहीं कर पाते थे। कभी-कभी पर्यटन करते हुए नीचे चले आते थे।

एक बार आंप रानाघाट आये। न जाने कैसे वहाँ के मजिस्ट्रेट श्री रामचरण बसु आपसे बहुत प्रभावित हुए। यह दैवसंयोग की बात है। संभवतः गुरु महाराज की कृपा से बालानन्द महाराज के लिए यह संभव हुआ। रामचरण बसु तथा उनकी पत्नी ने आपसे दीक्षा ली। यहीं आपके प्रिय शिष्य पूर्णानन्द ब्रह्मचारी मिले जो दीक्षा लेने के बाद बराबर अपने गुरु बालानन्द ब्रह्मचारी के साथ रहने लगे। व्यक्तिगत सेवा के लिए बालानन्द महाराज को ऐसे सेवक की आवश्यकता थी।

बराबर बालानन्द महाराज की सेवा में रहने के कारण भक्त लोग पूर्णानन्द ब्रह्मचारी को 'छोटे बाबा' के नाम से पुकारने लगे। महाराज के साथ पूर्णानन्दजी हिमालय की यात्रा पर गये थे।

एक बार बालानन्द महाराज आमलीघाट से मण्डाला नगर में आये। उन दिनों आपके साथ हरनामदास नामक एक साधु थे। दोनों ही व्यक्ति नर्मदा के किनारे से चल रहे थे। मार्ग में किसी अंग्रेज का बँगला मिला। यह अंग्रेज जरा कड़े मिजाज का था। इसने इन दोनों

---

[१] संन्यासिनी आशापुरी।

संन्यासियों को छद्मवेशी डाकू समझकर सिपाहियों को बुलाया और आदेश दिया कि उन दोनों साधुओं को यहाँ ले आओ।

जब महाराज और हरनामदास वहाँ पहुँचे तब उसने सिपाहियों से इनकी तलाशी लेने की आज्ञा दी। हरनामदासजी के झोले में भिक्षान्न के अलावा अन्य कोई सामग्री नहीं मिली, पर महाराज के झोले में संखिया था। यह देखकर साहब आपे से बाहर हो गया। उसने कहा—"तुम लोग डाकू हो। भोले भाले लोगों को संखिया खिलाकर लूटते हो।"

महाराज ने कहा—"आपका ख्याल गलत है। हम लोग जाड़े के दिनों में सर्दी से बचने के लिए कभी-कभी इसका सेवन करते हैं।"

साहब को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ। उसने महाराज से कहा—"मैं विश्वास नहीं करता। मेरे सामने खाओ।"

साहब की बात पर महाराज ने संखिया से आधी रत्ती का एक टुकड़ा खाकर नर्मदा का पानी पी लिया। इसके बाद हठयोग की सहायता से उसे पचा गये और पहले की तरह खड़े होकर मुस्कराने लगे।

महाराज की हठयोग-शक्ति को देखकर साहब चकित रह गया। कहा जाता है कि आगे वह इनका भक्त बन गया था।

नर्मदा की परिक्रमा करते समय जैसे पहले उन्होंने कई जंगल और टीले पार किये थे उसी तरह इस यात्रा को भी पूर्ण किया। कुल मिलाकर लगभग १५०० कोस मार्ग तय करना पड़ता है। इस यात्रा को पूर्ण करने के बाद समुद्र किनारे स्थित सभी तीर्थस्थानों में गये। उन्होंने एक बार स्वयं ही कहा था कि मैं भारत के तीर्थों का तीन-तीन बार दर्शन कर चुका हूँ।

बालानन्द महाराज जिन दिनों देवघर के तपोवन में थे, उन दिनों एक महत्त्वपूर्ण घटना हो गयी थी। रामचरण बसु पुराणदह में ठहरे हुए थे। अचानक एक दिन उन्होंने अपने गुरुदेव को अपने यहाँ लिवा लाने के लिए एक आदमी को भेजा। अपने प्रथम तथा प्रधान शिष्य रामचरण बसु के बुलावे पर उनके घर आ गये।

कुछ देर गुरु-शिष्य आपस में बातचीत करते रहे। बाद में बसु महाशय गुरु के सामने पद्मासन लगाकर बैठ गये और बोले—"महाराज, आज्ञा हो तो मैं जाऊँ?"

महाराज ने कहा—"हाँ बच्चा, यही चलने का समय है।"

दूसरे ही क्षण गुरुभक्त रामचरण बाबू इष्टनाम लेते हुए गुरु के चरणों पर गिर पड़े।

पर्यटन-काल में एक दिन बालानन्द महाराज को एक पत्र प्राप्त हुआ। गुरुदेव के नाम आनेवाले सभी पत्र छोटे बाबा पढ़कर सुनाते थे। यह पत्र रामचरण की विधवा पत्नी कात्यायनी देवी का था। उन्होंने लिखा था कि मैं अपने पति की इच्छानुसार देवघर के करणीवाद में एक टुकड़ा जमीन खरीदकर एक शिव मंदिर बनवा चुकी हूँ। मेरी इच्छा है कि गुरुदेव अब यहीं आ जायँ। मैं अपने स्वर्गीय पति की इच्छानुसार सब कुछ बनवाकर आपके आने की प्रतीक्षा कर रही हूँ।

इस पत्र को सुनाने के बाद छोटे बाबा आग्रह करने लगे कि अब देवघर में ही आसन

लगाया जाय। किन्तु इस दिशा में कोई उत्साह बालानन्दजी ने नहीं दिखाया। वे हिमालय से नीचे उतरने को तैयार नहीं हुए।

अचानक एक दिन पूर्णानन्द को बुलाकर उन्होंने कहा—"परमात्मा का अजीब खेल है। करणीवाद जाने की तनिक भी इच्छा नहीं है, पर इधर जब भी आसन पर ध्यान लगाता हूँ तब ध्यानाकाश में करणीवाद का दृश्य नाचने लगता है। पता नहीं, कौन मुझे वहाँ जाने के लिए बार-बार आह्वान कर रहा है।"

परमात्मा की अमोघ इच्छा से बालानन्द महाराज को करणीवाद आना पड़ा। संभवतः यह उनके पूज्य गुरु ब्रह्मानन्द तथा उनकी माँ की प्रेरणा थी। जिन दिनों आप करणीवाद में आये, उन दिनों आपकी उम्र छप्पन वर्ष थी यानी यह सन् १८८६ ई० की घटना है।

वैद्यनाथ धाम के करणीवाद में कात्यायनी देवी के मातृस्नेह में आबद्ध हो गये। उनके स्वर्गीय पति श्री रामचरण बसु के नाम पर प्रतिष्ठित "राम निवास ब्रह्मचर्य आश्रम" प्रतिष्ठित हुआ। इसके बाद क्रमशः इस स्थान का विस्तार होता गया। श्री बालानन्द महाराज की अधिष्ठात्री देवी श्री श्री बालेश्वरी देवी की स्थापना हुई। इस देवी का नाम है—श्री श्री बालानन्दस्य ईश्वरीबाला त्रिपुरासुन्दरी। बालानन्द की इष्टदेवी होने के कारण बाला त्रिपुरा-भैरवी है। ज्ञातव्य है कि शंकराचार्यजी की भी यही देवी इष्ट हैं।

परमगुरु ब्रह्मानन्द महाराज के निर्देशानुसार पूर्णानन्द ब्रह्मचारी इस मूर्ति को नेपाल से लाये थे। इस मूर्ति की पूजा-पद्धति बालानन्द महाराज के निर्देशानुसार पूर्णानन्द ब्रह्मचारी करते रहे। श्री श्री बालेश्वरी माता का वाहन कूर्म है। चार हाथ हैं जिनमें वेद, अक्षमाला, अभयमुद्रा और वरमुद्रा है। ललाट पर अर्द्धचन्द्र और शरीर पर जनेऊ है।

बालानन्द महाराज जब यहाँ पूर्ण रूप से स्थापित हो गये तब परमगुरु ब्रह्मानन्दजी भी यहीं आ गये। उधर माँ अपनी खोयी हुई संतान को खोजती हुई एक दिन वैद्यनाथ धाम आ गयी। नौ वर्ष का बालक छप्पन का हो गया था। माँ को पाकर बालानन्द महाराज पुलकित हो उठे। नर्मदा देवी जीवन के अंतिम काल तक तपोवन में रहीं। उनके निधन के पश्चात् वहीं एक समाधि-मंदिर का निर्माण हुआ।

बालानन्द महाराज की एक अन्य शिष्या श्रीमती चारुबाला देवी ने उन दिनों नौ लाख रुपये से विशाल युगल मंदिर बनवाया। उसमें अपने गुरु बालानन्द महाराज तथा इष्ट बाल गोपाल विग्रह की स्थापना की गयी, इसीलिए इस मंदिर का नाम 'युगल मन्दिर' रखा गया। लेकिन स्थानीय लोग इस मंदिर को 'नौलखा मंदिर' कहते हैं।

बालानन्दजी के योगैश्वर्य की ख्याति धीरे-धीरे संपूर्ण बंगाल में फैल गयी। आपके शिष्यों में बंगाली अधिक हैं। संत मोहनानन्द ब्रह्मचारी आप ही के शिष्य हैं। बालानन्दजी साधन-भजन के अलावा स्थानीय लोगों की सेवा करते रहे। लोककल्याण के लिए आपने खैराती दवाखाना, वेद अध्ययन के लिए पाठशाला, ब्रह्मचारियों के लिए रामनिवास ब्रह्मचर्याश्रम, होमकुण्ड, नर्मदा कुण्ड और पूजा मंडप का निर्माण कराया।

अपनी अलौकिक शक्ति से उन्होंने मोहन को उस समय आकर्षित किया जब वे कालेज में पढ़ रहे थे। मोहन चुपचाप एक दिन कालेज से गायब हो गया और बालानन्द महाराज

की सेवा में आ गया।[१] मोहनानन्द ब्रह्मचारी के पिता-माता, मामा (प्राणगोपाल), मामी, चाचा आदि सभी बालानन्द महाराज के शिष्य बन गये थे।

परमहंस रामकृष्णजी ने स्वामी विवेकानन्दजी को अपनी सारी शक्ति देने के बाद कहा था—"आज तुझे अपना सब कुछ देकर मैं फकीर बन गया।" ठीक इसी प्रकार बालानन्द महाराज अपना सब कुछ मोहनानन्द ब्रह्मचारी को दे गये थे। प्रत्यक्षदर्शियों का कहना है कि जिस वक्त श्री बालानन्द महाराज अपना तन छोड़ रहे थे, उस वक्त एक दिव्यज्योति उनके शरीर से निकलकर सामने बैठे मोहनानन्द ब्रह्मचारी के शरीर में प्रवेश कर गयी थी।

महामहोपाध्याय पंडित गोपीनाथ कविराज ने बालानन्द के बारे में अपने संस्मरण में लिखा है—

"ब्रह्मचारीजी अधिकतर देवघर में रहते थे। उनसे मिलने की इच्छा तीव्र हो उठी। उनके तपोवन का पता मालूम था और वहाँ तक पहुँचने का रास्ता जानता था, पर साथी के अभाव में वहाँ जा नहीं सका। मेरे एक रिश्तेदार कम उम्र में संन्यासी बनकर भारत के अनेक तीर्थों का दर्शन कर चुके थे और अनेक साधु-सन्तों को देख चुके थे। आपकी जबानी ब्रह्मचारीजी के बारे में विस्तार से सुना था।

"उज्जैन के सारस्वत ब्राह्मण-वंश में आपका जन्म हुआ था। संन्यास ग्रहण करने के पूर्व आपका नाम पीताम्बर था। गंगोनाथ ब्रह्मानन्द महाराज से दीक्षा लेने के बाद आपका नाम हुआ—बालानन्द। इस प्रकार ज्योतिर्मठ की आनन्द उपाधि प्राप्त कर साधक-वंश के अन्तर्भुक्त हुए।

"सात्त्विक संस्कार आपमें बचपन से ही था। शिप्रा नदी के तट पर उज्जैन स्थित भर्तृहरि और गोरखनाथ की गुफाओं में आपका आना-जाना जारी था। कभी-कभी सन्दीपन मुनि के जंगलवाले आश्रम में जाते थे।

"गवर्नमेण्ट संस्कृत कॉलेज में जब मैं कार्यरत था तब एक बार बालानन्द ब्रह्मचारी के प्रधान शिष्य श्रीमान् प्राणगोपाल मुखोपाध्याय मुझसे मिलने के लिए काशी आये थे। आप स्वयं एक तपस्वी पुरुष थे। आपसे मुलाकात होने के बाद ब्रह्मचारीजी से मिलने की इच्छा तीव्र हो उठी, पर समयाभाव के कारण मिल नहीं सका।

"सन् १९३५ में बेरी-बेरी से पीड़ित होकर जब हवा-पानी बदलने के लिए शिमूलतला आकर रहने लगा तब शिवरात्रि के दिन शिव-पूजा करने के लिए वैद्यनाथ धाम गया। उन्हीं दिनों वहाँ प्राणगोपाल बाबू से भेंट हुई। गृहस्थाश्रम में रहते हुए वे संन्यासियों जैसा जीवन व्यतीत कर रहे थे। बालानन्द महाराज आपको 'शुक्ल संन्यासी' कहते थे और यही नाम आपका देवघर में प्रसिद्ध था। प्राणगोपाल बाबू मुझे साथ लेकर ब्रह्मचारीजी के पास आये। ब्रह्मचारीजी अस्वस्थ थे। उन दिनों नर्मदा कुण्ड के समीप एक निर्जन स्थान में रहते थे। इस बेमौके पर उन्होंने जिस ढंग से आदर-स्वागत किया, ऐसा कम लोग करते हैं।

"बातचीत के पूर्व मुझे तथा दो अन्य व्यक्तियों को उन्होंने बड़े स्नेह के साथ जलपान कराया। हम लोग फलाहार करने में व्यस्त थे और आप खिलाने का आनन्द ले रहे थे। उनके स्नेहपूर्ण व्यवहार को अनुभव करते हुए हम लोग भी आत्ममग्न हो गये।

---

[१] देखिये श्री मोहनानन्द ब्रह्मचारी का विवरण।

"फलाहार के बाद तत्त्वकथा की चर्चा होने लगी। 'स्वरोदय-विज्ञान' के बारे में मैंने कई सवाल किये। ब्रह्मचारीजी ने इस सम्बन्ध में अनेक नये तथ्यों को उदाहरण देते हुए मुझे समझाया। इसके बाद उन्होंने कहा—'कविराजजी, इस बारे में मैं क्या कहूँगा। आपके गुरुदेव[1] इस विषय के विशेषज्ञ हैं। उनकी तरह विज्ञान-अभिज्ञ पुरुष बिरले होंगे। पुरी के दिगम्बर बाबा (तोतापुरी) इस शास्त्र में पारंगत हैं।'

"बाद में अनेक गूढ़ तत्त्वों पर बातें होती रहीं। लौटते वक्त उन्हें सादर प्रणाम कर चला आया। यही मेरी प्रथम और अन्तिम मुलाकात थी।"

कविराजजी के अलावा भारत के अन्य कई सन्त-महात्मा बालानन्द महाराज के आश्रम में आये थे। जब दो संत मिलते हैं तब आपस में अध्यात्म की चर्चा होती है।

अपने शिष्यों को बराबर कहा करते थे—"ज्ञान और कर्म के माध्यम से हम ईश्वर के समीप पहुँचते हैं, यह बात सत्य है, पर भक्ति के बिना ईश्वर को स्पर्श नहीं किया जा सकता। इसके लिए विश्वास और भक्ति आवश्यक है और वह भी अनन्य भक्ति। यहाँ हरिनाम या शिवनाम में कोई भेद नहीं है।"

इसमें कोई संदेह नहीं कि बालानन्द महाराज एक साधक ही नहीं, बल्कि योगी पुरुष थे। जिस प्रकार स्नेहमयी माता अपने बच्चों को नजर से ओझल नहीं होने देती, ठीक उसी प्रकार महाराज अपने शिष्यों का ध्यान रखते थे। यही कारण है कि उनके अधिकांश शिष्य आपके देव ज्ञान में श्रद्धा-भक्ति करते थे। अपने आश्रम में शिष्यों को दीक्षा देने के बाद उनसे जन-सेवा का कार्य लेते थे। जब कभी कोई शिष्य साधना या तीर्थ-दर्शन करने के लिए बाहर जाना चाहता था तब उसे स्नेहमयी माता की तरह मना करते थे। अगर इस पर वह जिद करता तो कहते—"ठीक है। जाओ, पर मुझे छोड़कर दूर मत जाना। शीघ्र आश्रम चले आना। यह याद रखो, जब पेड़ों पर फल पकने लगते हैं तब वह मीठे लगते हैं। उनकी कीमत बढ़ जाती है। लेकिन मानव के बारे में यह बात लागू नहीं होती। मनुष्य जैसे-जैसे बूढ़ा होता जाता है, वह विस्वाद और अनादर की वस्तु बन जाता है। मैं निरन्तर बूढ़ा होता जा रहा हूँ, शायद इसीलिए तुम लोग मेरे पास नहीं रहना चाहते। कहाँ जाओगे ? जहाँ जाओगे; वहाँ कष्ट पाओगे। तब मुझे दुःख होगा। यहीं रहकर साधन-भजन करो। सिद्धि यहीं प्राप्त होगी।"

बालानन्द महाराज को अपना अन्तिम समय ज्ञात हो गया था। उन दिनों वे आहार, औषध, पथ्य, पानी आदि ग्रहण नहीं करते थे। यहाँ तक कि कौपीन तक दूर फेंक दिया था। मई, सन् १९३७ में १०४ वर्ष की अवस्था में वे ब्रह्मलीन हो गये थे।

भक्तों ने प्रणाम किया—

श्री बालानन्दं परमशिवदं,
सद्गुरुं त्वं नमामि।

●

---

[1] परमहंस विशुद्धानन्दजी।

प्रभु जगद्‌बन्धु

प्रभु जगद्बन्धु

मुर्शिदाबाद शहर के उस पार गंगा किनारे एक गाँव का नाम है—डाहापाड़ा। इस गाँव के दीनानाथ चक्रवर्ती ने अपनी प्रतिभा के बल पर 'न्यायरत्न' की उपाधि प्राप्त की थी। आपकी पत्नी श्रीमती वामासुन्दरी देवी शीतल चौधरी की कन्या थीं। १७ मई, सन् १८७१ ई० के दिन इस परिवार में एक बालक ने जन्म लिया जिसका नाम रखा गया—जगत्। कई बच्चों को खोने के पश्चात् इस बालक को पाकर चक्रवर्ती-दम्पती आनन्द के सागर में डूब गये।

लेकिन यह आनन्द अधिक दिनों तक स्थायी नहीं रह सका। बालक, जिसका अन्नप्राशन के समय जगद्बन्धु नाम रखा गया था, अभी चौदह महीने का ही था कि माँ चल बसी। पत्नी के बिछोह से दीनानाथ एक प्रकार से विक्षिप्त-से रहने लगे। मातृहीन बालक की देखरेख और जीविका के लिए कार्य करने में उन्हें परेशानी होने लगी। कुछ दिनों बाद अपनी विधवा भतीजी दिगम्बरी के यहाँ जाकर जगत् को सौंप आये।

इस घटना के चार वर्ष बाद पिता दीनानाथ भी सुरधाम चले गये। जगत् पूर्ण रूप से अनाथ होकर अपनी बहन की छत्रच्छाया में रहने लगा।

जगत् बचपन से ही चंचल स्वभाव का था। अपने हमजोलियों के साथ पेड़ पर चढ़ना, नदी में तैरना, बागों में घूमना उसका नित्य का काम था। इसके अलावा उसमें कई और खूबियाँ थीं। वह कभी लड़कियों के साथ नहीं खेलता था। हमजोलियों के साथ न मारपीट करता और न गाली बकता था। जिस प्रकार वह बड़ों का सम्मान करता, उसी प्रकार छोटों से प्यार करता था। उसकी इस आदत के कारण सभी लोग उसे चाहते थे।

समय गुजरता गया। उसे फरीदपुर स्थित एक स्कूल में भर्ती कर दिया गया। जिला स्कूल में अध्ययन करते समय उसकी चंचलता में थोड़ी कमी आ गयी। अब वह अक्सर सुनसान स्थान में जाकर बैठा रहता। अन्यमनस्क की तरह एकटक कहीं देखता रहता। स्कूल में सहपाठियों से रफ्त-जब्त नहीं करता था। स्कूल से लौटकर घर में न रहकर किसी सुनसान स्थान में चला जाता और जहाँ बैठता, वहीं कभी-कभी सो भी जाता था। राह चलते लोग यह दृश्य देखकर उसे कंधे पर लादकर घर ले आते थे।

जिन दिनों जगत् आठवीं श्रेणी में पढ़ रहा था, उन दिनों वार्षिक परीक्षा के दिन एक घटना हो गयी। आदत के मुताबिक कापी में लिखते-लिखते एकटक एक ओर देखने लगा। उसी समय प्रधान शिक्षक श्री भुवनमोहन आये। उसे इस तरह देखते देख उन्होंने सोचा कि अन्य किसीकी कापी से नकल कर रहा है। उसे तुरत परीक्षा हाल से बाहर निकाल दिया गया।

स्कूल से निकलकर जगत् घर न जाकर सीधे स्टेशन चला आया। वहाँ से कलकत्ता होकर राँची चला आया जहाँ उसके चचेरे भाई तारिणीचरण चक्रवर्ती रहते थे। तारिणीचरण ने उसे वहीं के एक स्कूल में भर्ती करा दिया।

राँची आने पर भी जगत् की आदतों में कोई खास परिवर्तन नहीं हुआ। पहले की ही तरह अब भी वह हमेशा खोया-खोया-सा रहता था। अधिकतर निर्जन या अपने कमरे में बैठा रहता। न समय से स्नान करता और न भोजन। स्नान करने में काफी देर लगाता। उसकी इस आदत के कारण घर के नौकर असंतुष्ट रहते। परिवार में अन्य कोई न रहने के कारण नौकर और रसोइया सामान चोरी करते थे। जगत् के आ जाने के कारण उन्हें चोरी करने में भय लगने लगा। उसे यहाँ से भगाने के लिए वे उसे भोजन ठीक से नहीं देते। बाद में जगत् को बेवकूफ समझकर वे दोनों पहले की तरह चोरी करने लगे। लेकिन उन्हें हमेशा इस बात का भय बना रहता कि कहीं किसी दिन तारिणी बाबू से वह हमारी शिकायत न कर दे। ऐसा सोचकर एक दिन दोनों ने सलाह करके उसके भोजन में जहरीली दवा मिला दी। इस भोजन को खाने के कारण जगत् की हालत खराब हो गयी। समाचार पाते ही आफिस से तारिणी बाबू आये। डॉक्टरी सहायता से वह सम्हल गया। रसोइया फरार हो चुका था। नौकर की जब जमकर पिटाई की गयी तब उसने अपना अपराध स्वीकार कर लिया। इस घटना के कारण तारिणी बाबू घबड़ा गये। अकेले घर में जगत् को रखना ठीक नहीं है समझकर उन्होंने अपने जीजा प्रसन्नकुमार लाहिड़ी के यहाँ उसे रखवा दिया। लाहिड़ी महाशय ने अपने नगर पाबना के एक स्कूल में उसे भर्ती करा दिया।

पाबना में रहते समय इस पर भगवत्-कृपा हुई। राह चलते किसी संन्यासी को देखते ही वह भूमिष्ठ होकर प्रणाम करता। दूर कहीं से हरिनाम-कीर्तन की ध्वनि सुनते ही उधर दौड़ा चला जाता। बाधा देने पर भी नहीं मानता था। कीर्तन में हरिनाम सुनते-सुनते उसे भाव-समाधि हो जाती थी। ऐसी स्थिति में लोग उसे कंधे पर लादकर घर पहुँचाते थे।

अक्सर ऐसी घटनाएँ होने लगीं तब सुशीलबाबू चिन्तित हो उठे उनकी पत्नी जगत् को डाँटने-फटकारने लगीं लेकिन इसका कोई असर जगत् पर नहीं हुआ। वह कीर्तन की ध्वनि सुनते ही जहाँ रहता था, वहीं से दौड़ता हुआ उस जगह पहुँच जाता था।

एक बार कहीं हरिकीर्तन होगा सुनकर वह जाने की तैयारी करने लगा। उसकी बहन ने उसे पकड़कर एक कमरे में बन्द कर दिया। इधर कीर्तन प्रारंभ हुआ और वह कमरे के भीतर प्रत्येक ताल पर नृत्य करते-करते बेहोश हो गया। खिड़की के बाहर से लोग यह दृश्य देख रहे थे। त्रस्त भाव से लोग भीतर आये। काफी सेवा-शुश्रूषा करने के बाद वह होश में आया।[१]

इसी प्रकार एक बार पाबना शहर में एक स्थान पर 'ध्रुव-चरित्र' नाटक हो रहा था। नाटक में ध्रुव का पार्ट करनेवाला अभिनय के दौरान गाने लगा—'कहाँ हो पद्म पलाश लोचन हरी'। यह गीत सुनते ही जगत् का हृदय व्याकुल हो उठा। कुछ देर तक रस-ग्रहण करने के बाद वह भावावेश में आ गया और देखते ही देखते चेतनाशून्य हो गया।

जगत् की यह स्थिति देखकर खलबली मच गयी। कुछ लोग जगत् की इस आदत से

---

[१] बन्धुकथा–श्री सुरेशचन्द्र चक्रवर्ती।

परिचित थे। दर्शकों में डॉ० चन्द्रशेखर काली भी थे। उन्हें भावावेश का यह नाटक ज्ञात हुआ। उन्होंने कहा—'यह बीमारी है। जरा मुझे जाँचने दीजिए।'

जगत् को पकड़कर लोग पास के कमरे में ले आये। डॉक्टर का ख्याल था कि यह स्नायविक रोग है या मस्तिष्क-विकृति के लक्षण हैं। अच्छी तरह जाँचने के बाद उन्हें कोई विकृति नजर नहीं आयी। लोगों ने कहा कि यह भावावेश है। कीर्तन या हरि-भजन सुनते ही जगत् की यह हालत हो जाती है और फिर भजन सुनते-सुनते प्रकृतिस्थ हो जाता है। इसे रंगभूमि में ले आइये। अपने-आप ठीक हो जायगा।

नाटक में एक जगह पुनः ध्रुव हरि-गुण गाने लगा। उसे सुनते-सुनते जगत् होश में आ गया। डॉ० चन्द्रशेखर विस्मय से यह अलौकिक दृश्य देखते रह गये।

पाबना शहर में एक बरगद वृक्ष के नीचे हाराण नामक एक फकीर रहता था। वह अपने-आप बड़बड़ाता, हँसता रहता था। उसकी इस आदत के कारण लोग उसे 'पगला बाबा' कहा करते थे, पर जगत् उन्हें 'बूढ़ा शिव' कहता था। पागला बाबा जगत् को बहुत चाहते थे। दूसरी ओर जगत् भी उनके प्रति श्रद्धा-भक्ति करता था। उन दिनों जगत् में विचित्र आदतें थीं। वह किसीको स्पर्श नहीं करता था। अगर कोई उसके पास आता तो कपड़े से अपनी नाक ढँक लेता था। कभी-कभी कह उठता था—"तुम लोगों के बदन से अजीब महक आती है जो मुझसे बर्दाश्त नहीं होती। जरा दूर हटकर रहा करो।" लेकिन फकीर से मिलते समय उसे महक नहीं मिलती थी। फकीर के साथ एक ही आसन पर बैठ जाता था। उसकी दुर्गन्ध से भरी कथरी को ओढ़कर एक साथ सो जाता था। दोनों आपस में न जाने कितनी बातें करते हुए रात गुजार देते थे।

इसी पगला बाबा ने एक बार जगत की बहन से कहा था—"देखो दीदी, जगा (जगत्) मनुष्य नहीं है। मैं भी मनुष्य नहीं हूँ, पर जगा राजा है। हम सब प्रजा हैं।"

दीदी उन दिनों इस बात का मर्म समझ नहीं पायी थी। आश्चर्य से पगला बाबा को देखती रह गयी। कई वर्षों बाद दीदी को इस बात की सत्यता ज्ञात हुई थी।

इन घटनाओं के बाद जगत् तीर्थयात्रा करते हुए वृन्दावन में आये। राधाकुंज में आकर वे साधन-भजन करने लगे। यहीं वे कठोर साधना में रत हो गये। एक दिन उनका हृदय राधारानी के दर्शन के लिए व्याकुल हो गया। हृदय में अपूर्व अनुभूति होने लगी। समस्त शरीर रोमांचित होने लगा। रोम-रोम खुल गये। मन आनन्द से परिपूर्ण हो उठा। चारों ओर आनन्द बिखर गया। कुछ ही क्षणों बाद श्री राधारानी के दर्शन हुए। जिस प्रकार वैष्णव कवि हितहरिवंश को बचपन में हुआ था।

श्री राधारानी का दर्शन पाते ही वे संज्ञाशून्य हो गये। काफी देर तक राधाकुंज में इसी स्थिति में पड़े रहे। राधानाम ही उनके लिए ध्यान-मंत्र बन गया। इन्हीं दिनों वैष्णव रघुनाथ गोस्वामी ने इनसे प्रश्न किया था—"प्रभो, आपके गुरु कौन हैं ?"

प्रत्युत्तर में आपने कहा—"आप लोगों की वृषभानु कुमारी ने मुझे मंत्र दिया है। वे ही मेरी गुरु हैं।"

श्री राधारानी से मंत्र प्राप्त करने के कारण वे आजन्म 'राधा' नाम का उच्चारण नहीं करते थे। इस नाम को सुनते ही वे भावावेश में आ जाते थे। उनके हृदय के तार-तार में

सनसनी पैदा हो जाती थी। राधारानी के बारे में कोई बात कहनी पड़ती तो कहते—"तुम लोगों की किशोरी।" राधाकुण्ड या राधाकुंज के बारे में कहते—'अमुक कुण्ड' - 'अमुक कुंज'। आगे चलकर एक भक्त उनका शिष्य बना जिसका नाम राधिकारंजन गुप्त था। उसे 'शारिका' कहकर सम्बोधन करते थे। ऐसे ही समर्पित व्यक्तियों के बारे में श्री रूप गोस्वामी लिख गये हैं—

इष्टे गाढ़ तृष्णा राग एइ स्वरूप लक्षण।
इष्ट आविंष्टता एइ तटस्थ लक्षण॥— मध्य २२।८६

श्री राधा प्रेम की अधिष्ठात्री हैं। कृष्ण की ह्लादिनी शक्ति हैं। वे कृष्ण को विमोहित करती हैं।

ह्लादिनीर सार प्रेम, प्रेम सार भाव।
भावेर परमकाष्ठा - नाम महाभाव॥
महाभाव स्वरूपा श्री राधा ठाकुराणी।
सर्व्वगुण खानि कृष्णकान्ता शिरोमणि॥

आठ माह वृन्दावन में रहने के बाद जगत् कलकत्ता आये। इस यात्रा के पूर्व ही वे जगत से प्रभु जगद्बन्धु नाम से प्रसिद्ध हो गये थे। हम सुविधा की दृष्टि से जगत् नाम का ही प्रयोग करेंगे।

सन् १८८८ ई० में लोगों के आग्रह पर वे अपना फोटो खिंचाने के लिए तैयार हुए। यह फोटो १६, बहुबाजार स्ट्रीट, कलकत्ता स्थित बेंगाल फोटोग्राफर की दुकान पर खींचा गया। उन दिनों आपकी उम्र महज १७ साल थी। इसके बाद जीवन में उनका फोटो नहीं खींचा जा सका। अब तक जितने संस्मरण या जीवनियाँ प्रकाशित हुई हैं, उन सबमें यही फोटो चित्र प्रकाशित है।

वर्तमान समय के हरिजन-आन्दोलन के जन्मदाता प्रभु जगत् ही थे। बंगाल में पिछड़ी जातियों में बागदियों को उच्छृंखल ही नहीं, बल्कि जरायम-पेशे का माना जाता है। फरीदपुर आने के बाद जगत् का ध्यान इस जाति के लोगों की ओर गया। रजनी नामक एक बागदी ने एक दिन जगत् को देखा और वह इस कदर प्रभावित हुआ कि इनके चरणों में अपने-आपको समर्पित करते हुए कहा—"मुझे आत्मोन्नति का मार्ग बताने की कृपा करें।"

जगद्बन्धु ने कहा—"तुम ब्रह्मचर्य-व्रत पालन करते हुए केवल हरिनाम जपते रहो। इससे तुम्हारा कल्याण होगा।"

उसी दिन से रजनी इस उपदेश पर अमल करने लगा। प्रभु जगद्बन्धु अक्सर उसके घर जाने लगे। रजनी के चरित्र में तेजी से परिवर्तन होने लगा। यह देखकर उसकी जाति के अन्य लोग भी जगत् की शरण में आये। धीरे-धीरे सभी बागदियों को यह दृढ़ विश्वास हो गया कि प्रभु जगद्बन्धु उनके उपास्य देवता हैं। सभी उन्हें देवता समझकर पूजा करने लगे।

जगद्बन्धु के उपदेशों का उन पर व्यापक प्रभाव पड़ा। अब वे सभ्य-समाज में प्रवेश करने लगे। कभी शहर के लोग इन्हें जरायम-पेशा और उच्छृंखल समझकर घृणा करते थे,

अब वही इनमें हुए परिवर्तन को देखकर चकित रह गये। जो कार्य शासन दण्ड देकर नहीं कर सका था, उसीको बहुत कम समय में जगत् ने कर दिखाया। इस समस्या को लेकर शहर में एक आन्दोलन हुआ और समाचारपत्रों में इसकी चर्चा हुई।

रजनी बागदी का नाम जगत् ने 'हरिदास महन्त' रखा। इसके साथ अन्य अनेक लोगों के नाम रखे गये। हरिदास को दलपति बनाकर बागदियों की एक कीर्तन मंडली बनायी गयी। इस सम्प्रदाय का नाम 'महन्त-सम्प्रदाय' रखा गया। इन लोगों को जगत् ने मृदंग, घण्टा, बिगुल, झाँझ आदि बजाना सिखाकर स्वरचित गीत गाना सिखाया। जब इनकी मंडली सड़कों पर कीर्तन करती हुई निकलती तब ईसाई पादरियों के हृदय में शूल चुभने लगता था। पादरियों का दल इन्हें ईसाई बनाता था। वे भौतिक सुख के लालच में तथा ब्राह्मणों के अत्याचार एवं उपेक्षा से पीड़ित होकर अपना धर्मान्तर कर लेते थे। जगद्बन्धु के इस कार्य से यह धर्म-परिवर्तन रुक गया। पिछड़ी जातियों को इसमें सम्मान और आनन्द मिलने लगा। स्वयं जगद्बन्धु इनके साथ भोज खाने लगे।

सारा पाबना शहर कृष्ण-राधा के नाम से गूँजने लगा—

भज कृष्ण कह कृष्ण लह कृष्णेर नाम रे।
जे जन कृष्ण भजे सेई आमार प्राण रे॥

× × ×

जय राधे राधे कृष्ण कृष्ण हरे राम हरे हरे।
ओई नाम बल बदने सुनाओ काने
बिलाओ जीवेर द्वारे द्वारे॥

पाबना, फरीदपुर आदि अंचलों में गंगा की लहरों की भाँति यह नाम फैलता गया। जगद्बन्धु अछूतों और वन-जाति के लोगों के निकट देवता बन गये। आर्त, पीड़ित तथा मुमुक्षु लोग आकुल होकर जगद्बन्धु के पास आने लगे। नगर में कीर्तन-मण्डली में शामिल होते समय वे सिर से पैर तक अपने को कपड़ों से ढककर एक लकड़ी के बक्स में बैठ जाते। इस दृश्य को देखकर कट्टरपंथी मजाक करते और पिछड़ी जाति के लोग उनका दर्शन करने के लिए व्याकुल हो उठते थे।

जगद्बन्धु के इस कार्य में स्थानीय बालकों को भी आनन्द मिलने लगा। वे दल के दल आपकी शरण में आने लगे। इनके लिए जगद्बन्धु ने आचार-संहिता बनायी। रात्रि चार दण्ड शेष रहते बिस्तर से उठ जाना पड़ेगा। शौच-स्नानादि के पश्चात् उपासना और योग करना पड़ेगा। साथ ही स्कूल का पाठ पढ़ना पड़ेगा। किसीके साथ सोना या बैठना, एक साथ एक ही पात्र में भोजन या जूठा भोजन नहीं करना होगा। इसके अलावा एक-दूसरे को स्पर्श करने का भी निषेध किया गया। राह से गुजरते समय निगाहें नीची रखने का भी विधान था। किसीकी ओर देखना वर्जित था। दूसरों के शरीर का ताप अपने शरीर में न लगे, इसलिए वस्त्रों से आच्छादित रहना भी एक नियम था।

आखिर एक दिन प्रभु जगद्बन्धु कलकत्ता आये। यहाँ आने के कुछ दिनों बाद आपकी दृष्टि रामबागान स्थित डोमों के मुहल्ले पर पड़ी। आपने डोमों के मुहल्ले में अड्डा जमाया

और उन्हें हरिनाम मंत्र से दीक्षित किया ।[१] इसके साथ ही कई पतिताओं का उन्होंने उद्धार किया । इनमें प्रमुख थीं—सुरताकुमारी । जगद्बन्धु इन्हें 'सुर-माता' के नाम से पुकारते थे । कीर्तन और श्री गौर गदाधर के जप से सारा मुहल्ला प्लावित हो उठा । इसी डोम-बस्ती में हरिनाम का प्रचार-केन्द्र स्थापित कर जगत् ने श्री चम्पटी को प्रमुख बनाया । उपदेश देते हुए वे कहते—"तारक ब्रह्म ही हरिनाम का उद्धारण मंत्र है । इसका प्रकाश सर्वदा होता है । तुम लोग गाँव-गाँव में जाकर इस नाम का प्रचार करो । हरिनाम से ही सृष्टि की रक्षा होगी । लोगों में निष्ठा और भक्ति उत्पन्न करो । इसीसे हम सबका कल्याण होगा ।"

जगत् के बढ़ते प्रभाव को देखकर बड़े-बड़े विद्वान् और मनीषी उनके प्रति आकर्षित हुए । अमृत बाजार पत्रिका के स्वनामधन्य संपादक महात्मा शिशिरकुमार घोष, अन्नदाचरण, महेन्द्रनाथ विद्यानिधि, संन्यासी प्रवर प्रेमानन्द भारती आदि अनेक लोग जगत् की शरण में आये । शिशिरकुमार घोष जगत् की प्रतिभा के बारे में लेख लिखकर तथा प्रेमानन्द भारती भाषणों के माध्यम से प्रचार करने लगे ।

इनके कार्यों को देखकर प्रभु जगत् ने कहा था—"उन लोगों से कह दो दीपक की रोशनी से सूर्य को नहीं देखा जाता । सूर्य तो स्वयं ही प्रकाशमान हैं । उसे सारा संसार देखता है ।"

प्रेमानन्द भारती इतने प्रभावित हुए थे कि अपनी जटा और काषाय वस्त्र को त्याग दिया था । आपका पूर्वाश्रम का नाम था—श्री सुरेन्द्र मुखोपाध्याय । लोकनाथ ब्रह्मचारी और पाबना के हाराण क्षेपा के आप कृपापात्र थे । बाद में काशी जाकर स्वामी ब्रह्मानन्द भारती से दीक्षा लेकर दसनामी संन्यासियों के दल में मिल गये थे । बाद में जगत् के प्रभाव में आकर उन्होंने वैष्णव का चोला अपनाया । यही प्रेमानन्द भारती आगे चलकर अमेरिका गये और वहाँ हरिनाम का प्रचार करते रहे । न्यूयार्क, कैलिफोर्निया, शिकागो आदि अनेक स्थानों की अमेरिकी जनता को उन्होंने दीक्षा दी थी । साधना निरन्तर जारी रहे, इसके लिए वहाँ 'श्रीकृष्ण होम' नामक एक केन्द्र स्थापित किया था ।

अमेरिका में हरिनाम का व्यापक प्रचार करने के बाद जब स्वदेश आये तब आपके साथ कुछ अमेरिकन शिष्य-शिष्याएँ आयी थीं । इनके नाम श्यामदास, गौरीदास, हरिदास, हरिमति जैसे रखे गये थे ।

एक दिन कलकत्ता से वृन्दावनधाम की ओर रवाना हो गये । इस प्रकार वे हरिनाम के प्रचार में दौरा करते रहे । पाबना में रहते समय आपने छात्रों का एक दल बनाया था जिसके बारे में पहले कहा जा चुका है । दूर जाकर भी वे अपने छात्रों को भूल नहीं सके । एक छात्र को उन्होंने वृन्दावन से लिखा—

"……ग्रेजुएट बनो । रात को बारह घण्टा पढ़ना । दिन को सोना । अमुक को पढ़ने के लिए कहना । परीक्षा जब तक न हो जाय तब तक निःसंग रहना, कीर्तन मत करना । सभी लोग निशाकाल में अध्ययन करते रहना ।"

दूसरे को लिखा—"गणित में कमजोर हो । एक वक्त भोजन करना । रात को केवल जलपान । फलाँ-फलाँ पुस्तकें पढ़ो । कंठस्थ कर लो ।"

---

[१] बांगलार साधक—श्री गंगेश चक्रवर्ती ।

तीसरे को लिखा—"इतिहास से जी मत चुराओ। मन लगाकर पढ़ो। ब्रह्मचर्य का प्रचार करो। डबल प्रमोशन प्राप्त करोगे।"

लड़कों को यह सब पढ़कर आश्चर्य होता कि प्रभु इन दिनों वृन्दावन में हैं, उन्हें हमारी कमजोरियाँ कैसे मालूम हो जाती हैं ? छात्रों में कोई भी एक-दूसरे की शिकायत लिखकर नहीं भेजता था।

एक बार एक लड़के ने कलकत्ता स्थित रामबागान में कीर्तन करते समय प्रभु जगत् के एक भक्त को करताल से मारा था। तुरत उस बालक को उन्होंने फटकारा था। इस प्रकार वे हमेशा अपने भक्तों तथा शरणागत बालकों का ध्यान रखते रहे। यहाँ तक कि कभी-कभी बालकों के जीवन की पाप-कहानी खुलेआम कह देते थे। एक बार बालकों के सामने बातचीत करते समय उनकी नजर एक बालक पर पड़ी। वे उसके पूर्व जीवन की पाप कहानी कहने लगे। सामने बैठे अन्य बालक हँसने लगे और वह बालक लज्जा, क्षोभ और विस्मय से ग्रस्त होकर रोने लगा।

यह देखकर प्रभु जगत् चुप हो गये। एक बालक को अधिक हँसते देख उन्होंने कहा—"तू बहुत हँस रहा है। मैं तेरी सारी बातें जानता हूँ। समझा ?"

उसने कहा—"तो कहिये न। चुप क्यों हैं ?"

प्रभु जगत् उसके पाप-जीवन की घटनाएँ एक के बाद एक कहने लगे। बाद में उन्होंने कहा—"क्यों, ठीक कह रहा हूँ न ? देख, मैं दर्पण हूँ। मेरे पास आने पर व्यक्ति का स्वरूप प्रकट हो जाता है। उसका कुछ भी छिपा नहीं रहता है। तुम लोग सोचते हो कि मैं कुछ जान नहीं पाता ? मैं सभी का सब कुछ जानता हूँ। मैं त्रिकाल की बातें जानता हूँ। इसीलिए कहता हूँ कि निर्जन में बैठकर स्थिर भाव से भगवान् को बताना चाहिए। उनसे प्रार्थना करनी चाहिए। उनके पास बिना गये, बिना बताये, वे भी कुछ नहीं कर पाते। अचल की तरह पड़े रहते हैं। तुम लोग सरल हृदय से निष्ठा के साथ हरिनाम-स्मरण करो। पवित्रता ग्रहण करो। मालिन्य दूर करो। मैं तुम लोगों के मंगल के लिए तुम्हारे पापों का उल्लेख कर देता हूँ।"

यहाँ तक कि बालकों से बहुत दूर रहते हुए भी वे इन्हें पत्र के द्वारा इशारे से निर्देश देते रहे। हर गलत कार्य के लिए चेतावनी देते रहे।

एक बार आप कुछ बालकों को लेकर राजमहल की ओर चल पड़े। चारों ओर ज्योत्स्ना अपनी छटा दिखा रही थी। रात होने के कारण लोगों का आवागमन कम था। मार्ग में प्रभु जगत् बालकों को तरह-तरह की कहानियाँ सुना रहे थे। इसके बाद मार्ग में अचानक रुक गये। उन्होंने सुदूर एक बबूल वृक्ष की ओर हाथ उठाकर दिखाते हुए कहा—"वहाँ जो बबूल का पेड़ दिखाई दे रहा है, तुम लोग वहाँ जाओ और उस वृक्ष के नीचे बैठकर ताली बजाते हुए हरिनाम-कीर्तन करो। मैं जरा विश्रामं करूँगा। जाओ। जब तक मैं तुम लोगों को न बुलाऊँ तबतक यहाँ मत आना।"

प्रभु के आज्ञानुसार बालकों का दल बबूल वृक्ष के पास जाकर कीर्तन करने में तन्मय हो गया। निर्मल आकाश, ज्योत्स्ना से भरा मैदान जगमगा रहा था। कहीं भी बादल का एक टुकड़ा नहीं था, पर देखते ही देखते वृक्ष की डालियाँ ऐसी हिलने लगीं जैसे तूफान आ गया हो। बरसात की तरह उसके पत्ते झरने लगे। इन दृश्यों को देखकर बच्चों को भय अनुभव

नहीं हुआ। कुछ देर बाद जब वृक्ष की एक डाली अपने-आप मरमराकर टूट गयी तब भयवश उन लोगों ने कीर्तन बन्द कर दिया। उनकी निगाहें पीछे की ओर प्रभु जगत् की ओर गयीं तो देखा कि वे ताली बजा रहे हैं। सभी बालक दौड़े हुए उनके पास आये।

जगत् ने पूछा—"तुम लोगों ने कीर्तन क्यों बन्द कर दिया ?"

लड़कों ने सारी कहानी सुनायी। जगत् ने कहा—"अगर तुम लोग कीर्तन बन्द न करते तो एक महात्मा का दर्शन पा जाते। वे अपने उद्धार की प्रतीक्षा में थे। तुम लोगों का कीर्तन सुनकर वे मुक्त हो गये। अगर तुम लोग कीर्तन बन्द न करते तो उनका दर्शन कर लेते।"

बालकों ने कहा—"राम भजिये। हम ऐसे दर्शन से दूर रहना चाहते हैं।"

बाद में सभी बच्चे प्रभु की आज्ञा पाते ही अपने-अपने घर चले गये।

इसी प्रकार की एक घटना कान्दा गाँव में हुई थी। ब्राह्मणकान्दा गाँव में एक रात को जगत् ने सोये हुए भक्तों को जगाकर कहा—"चलो, सब कोई मिलकर इमली के पेड़ के नीचे हरि-कीर्तन करो।"

प्रभु की आज्ञा को कोई अस्वीकार नहीं कर सका। सभी भक्त इमली के पेड़ के नीचे बैठकर कीर्तन करने लगे। संपूर्ण ब्राह्मणकान्दा गाँव कीर्तन-ध्वनि से मुखरित हो उठा। कुछ देर बाद देखा गया कि कीर्तन की लय पर पेड़ की प्रत्येक शाखा नाच रही है और हल्का-हल्का पानी बरस रहा है। इस घटना से प्रभावित होकर कीर्तनिया आत्महारा हो उठे। ऐसी घटना उनके जीवन में कभी नहीं हुई थी। बाद में लोगों ने जगत् से पूछा—"प्रभो, यह कैसा चमत्कार था ?"

उन्होंने हँसकर कहा—"एक तापक्लिश्ट आत्मा तुम लोगों से हरिनाम सुनकर मुक्त हो गया।"[१]

कभी-कभी उच्चकोटि के साधकों के जीवन में मनोरंजक घटनाएँ होती हैं।

मथुरा में एक संभ्रांत ब्राह्मण-परिवार रहता था जिसका दामाद लापता हो गया था। काफी दौड़धूप और अर्थव्यय करने पर भी उसका पता नहीं चला। लोग बहुत दुःखी थे। इधर लड़की दिन-प्रतिदिन जवान होती जा रही थी। उसकी मानसिक यातना बढ़ती जा रही थी।

ब्राह्मण की मित्र-मण्डली भी दामाद की खोज में लगी हुई थी। सभी चाहते थे कि इस परिवार का भला हो जाय। अचानक एक दिन जगत् को वृन्दावन में टहलते देख खोज करनेवालों को संदेह हुआ कि हो न हो यही है जो एक अर्से बाद यहाँ आया है। अपनी खोज पर उन लोगों को बेहद खुशी हुई।

ब्रज की भाषा में सम्बोधन करते हुए एक व्यक्ति ने कहा—"अब हम तुम्हें अच्छी तरह पहचान गये हैं। तुम हमारे खोये हुए दामाद हो। एक अर्से से गायब होकर नकली जामा पहनकर घूम रहे हो। आज हम लोग तुम्हें नहीं छोड़ेंगे।"

अब जगत् डर गये। उन्होंने कहा—"मैं आप लोगों का दामाद नहीं हूँ। आपको भ्रम हुआ है। मैं बंगाली ब्राह्मण का लड़का हूँ। फकीर बनकर तीर्थयात्रा करता हुआ ब्रज में आया हूँ।"

---

[१] बन्धुकथा—श्री सुरेशचन्द्र चक्रवर्ती।

लेकिन इस सफ़ाई पर उन लोगों को विश्वास नहीं हुआ। काफी मिन्नत करने पर भी उन लोगों ने इन्हें नहीं छोड़ा। अपने साथ पकड़कर ब्राह्मण-परिवार के घर ले आये। कुछ दूर खड़ी लड़की ने भी कहा—"यही मेरे पति हैं।"

अब लोग तरह-तरह की बातों से जगत् को समझाने-बुझाने लगे। वे लोग जितना समझाते, उतना ही कातर भाव से जगत् कहते कि मैं आप लोगों का दामाद नहीं हूँ। मगर उन लोगों ने जगत् की आपत्ति पर ध्यान नहीं दिया जब कि लड़की अपने पति को पहचानकर स्वीकार कर रही है तब यह जरूर झूठ बोल रहा है। इसके बाद उन लोगों ने एक कमरे में जगत् को ढकेलकर बाहर से बन्द कर दिया। उस कमरे में वह लड़की पहले से मौजूद थी।

लड़की अत्यन्त विनयपूर्वक जगत् से उलाहना देने लगी। अपने जीवन का दर्द कहते-कहते वह रो पड़ी। ज्योंही वह लड़की आगे बढ़कर उनके चरणों को पकड़ने के लिए आयी त्योंही जगत् ने हाथ के इशारे से दूर रहने का निर्देश दिया।

काफी देर बाद लड़की के अभिभावकों को ज्ञात हुआ कि हम लोगों के सभी प्रयत्न निष्फल हो गये हैं। जब जगत् कमरे के बाहर निकलने लगे तब उपस्थित लोगों ने उन्हें रोका।

जगत् ने अपना नाम बताते हुए कहा—"मेरे बारे में आप लोगों को भ्रम हुआ है। आप लोग राजर्षि वनमाली राय को जानते होंगे। आपमें से कोई उनके पास चला जाय और उन्हें मेरा नाम बताकर बुला लाये। उनके आने पर आप लोगों को यह ज्ञात हो जायगा कि मैं सत्य कह रहा हूँ या नहीं।"

राजर्षि वनमाली राय की ख्याति वृन्दावन में ही नहीं, मथुरा नगरी में भी थी। उनके पास जाकर लोगों ने जगत् का नाम तथा सारी बातें बतायीं।

यह बात सुनते ही राजर्षि वनमाली राय ने कहा—"प्रभु जगद्बन्धु बंगाल के प्रसिद्ध संत हैं। आप लोगों ने उन्हें इस तरह कैद कर गलत काम किया है। जल्द-से-जल्द उन्हें छोड़ दीजिए वर्ना आप लोगों का अकल्याण भी हो सकता है। उनके हजारों भक्त यहीं हैं।"

वनमाली राय की चेतावनी पर लोगों को विश्वास हो गया। इस प्रकार जगत् को वहाँ से मुक्ति मिली।[१]

अप्रैल सन् १९०० की घटना है। आँगन में कुछ बालक बैठे हुए थे। बातचीत के सिलसिले में आपने कहा—"जानते हो? मुझे साधु-संन्यासी समझकर लोग चालाकी से मेरी परीक्षा लेते हैं। सभी इन्द्रजाल चाहते हैं। कहते हैं—'प्रभु, मेरा लड़का सख्त बीमार है, कोई दवा दीजिए।' जब इस तरह के प्रश्नों का मैं कोई जवाब नहीं देता तब वे आँगन में लोटपोट लगाते हुए मन्नत मानते हैं—मेरा लड़का अगर स्वस्थ हो गया तो मैं महोत्सव करूँगा। कोई कहता है—कर्ज से लद गया हूँ, कहीं से रकम दिलाइये। रोजगार में खूब आमदनी हो, ऐसा आशीर्वाद दीजिए। कोई घर-गृहस्थी का सुख चाहता है। जिसे जिस चीज का अभाव है, वह वही आकर माँगता है। मैंने किसीको निराश नहीं किया, सभी को कुछ न कुछ दिया है। लोग सब कुछ माँगते हैं, पर कोई हरिनाम नहीं माँगता और न कोई यह कहता है कि मेरा

---

[१] महा महाप्रभु जगद्बन्धु—श्री मतिच्छन्न महेन्द्र।

उद्धार हो जाय। मैं सब कर सकता हूँ। मेरे लिए यह सब तुच्छ बात है। केवल इन्द्रजाल है और इसी इन्द्रजाल के चक्कर में सारा संसार फँसता जा रहा है। ऐसी स्थिति में हरिनाम का प्रचार करना बड़ा कठिन कार्य है। लोग हल्ला-गुल्ला पसन्द करते हैं। मगर तुम लोगों को निराश होने की जरूरत नहीं है। मैं सर्वदा तुम्हारे साथ हूँ। फिर किस बात का डर ? निष्ठा के साथ हरिनाम लेते रहो।"

प्रभु जगत् स्वतः कोई चमत्कार नहीं करते थे। अपने-आप अलौकिक चमत्कार हो जाता था। रोगाक्रांत व्यक्ति आता और उनसे कृपा की भीख माँगता। वे अभय वाक्य कहते और वह व्यक्ति कुछ दिनों बाद रोग-मुक्त हो जाता। हिस्टीरिया के कई रोगियों को अच्छा होते लोगों ने देखा है।

वे न कोई मंत्र पढ़ते और न झाड़-फूँक करते थे। यहाँ तक कि कोई दवा या ताबीज नहीं देते थे और रोगी से उनका आमना-सामना होता था। केवल संजीवनी वाणी के द्वारा पीड़ितों के कष्टों को दूर कर देते थे। उनके आशीर्वाद से कितने अक्षम व्यक्ति भी कार्य करने में सक्षम हुए हैं। किसके भीतर प्रतिभा सुप्त है, किसमें कौन-सा दोष है, कौन गलत काम करने जा रहा है, यह सब जैसे वे पारदर्शी शीशे से देखकर बता देते थे। इसके साथ ही उसे सावधान कर देते थे।

अपने एक भक्त को निर्देश दिया कि राह चलते दृष्टि नीची रखना। इस चेतावनी को सुनकर भक्त जगत् के कक्ष से बाहर आये और अपने घर की ओर चल पड़े। एक मील आने के बाद सहसा उनकी निगाह बारजे पर खड़ी एक वारवनिता पर पड़ी। केवल एक मिनट तक उसकी ओर मुग्ध दृष्टि से देखते रहे। सहसा उन्हें प्रभु जगद्बन्धु की चेतावनी याद आ गयी। बड़ा अफसोस हुआ। विषादभाव से क्षमा-याचना के लिए वापस लौटे। प्रभु के पास आकर प्रणाम किया।

जगत् ने मुस्कराते हुए कहा—"बाबूजी, इस तरह प्रकृति के रूप को घूरना नहीं चाहिए। मोह सब भुला देता है। यह पाप है। यहाँ तक कि माँ-बहन की ओर देखने की मनाही है—'माता, स्वसा, दुहिता वा नाविविक्ता मनोभवेत्। बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति।' भविष्य में इस बात को हमेशा ध्यान में रखना।"

एक थे खुदीराम प्रामाणिक। पिछड़ी जाति का एक युवक। उनसे प्रभु जगत् ने कहा—"आज रात को मेरे घर के बरामदे में सोना।"

प्रभु के इस आदेश को मानकर वह वहीं सो गया। गहरी रात को ताली बजाते हुए प्रभु ने उसे जगाया। अमावस की रात, बाहर वर्षा हो रही थी। प्रभु के इशारे पर नदी किनारे जाकर उसने एक नाव खोली। नाव पर प्रभु सवार हो गये। उनके आदेश पर नाव कुछ आगे वनमाली करके घर के समीप ले आया। प्रभु ने खुदीराम से कहा—"जाओ, वनमाली के यहाँ से कुछ खाने की सामग्री ले आओ।"

खुदीराम ने कर महाशय के घर जाकर देखा कि सभी गहरी नींद में सो रहे हैं। वह असमंजस में पड़ गया। बार-बार आवाज देने पर कर महाशय बाहर आये। जब उन्हें यह मालूम हुआ कि प्रभु कुछ खाने की सामग्री माँग रहे हैं तब वे परेशान हो उठे। क्या दूँ, कहाँ

से दूँ ? यही सोचने लगे। अचानक उन्हें याद आया कि कुछ दूध अलग से गरम करके सिकहर पर रख दिया गया है। खुदीराम वही दूध लेकर प्रभु के पास आये।

अब नौका किनारे से हटकर मँझधार में चलने लगी। राजापुर मुहाने की ओर। खुदीराम को टूटे डाँड़ से नाव खेने में कठिनाई हो रही थी। उसने कहा—"प्रभो, दोनों डाँड़ टूटे हैं। बड़ी परेशानी हो रही है।"

अब खुदीराम को हटाकर प्रभु स्वयं ही नाव खेने लगे। बरसात का मौसम था। नदी में बहाव अपनी जवानी पर था। नौका राजापुर के श्मशान पर आकर रुक गयी। खुदीराम को नाव पर बैठाकर प्रभो श्मशान में चले गये। प्रभो के आने में देर होते देख खुदीराम श्मशान के आतंक से भयभीत हो उठा। मन ही मन वह हरिनाम जपने लगा। आखिर जब अत्यधिक डर गया तब तीर पर उतर पड़ा। आसपास नजर दौड़ाने पर प्रभु दिखाई नहीं पड़े। कुछ दूर आगे बढ़ने पर खुदीराम ने देखा कि एक जगह से पूर्णिमा की ज्योत्स्ना की तरह प्रकाश छिटक रहा है। संपूर्ण श्मशान प्रभु की अंग-छटा से आलोकित है। यह दृश्य देखकर वह चकित रह गया।

धीरे-धीरे पास आकर उसने कहा—"अकेला नाव पर रहने में मुझे डर लग रहा था। रात समाप्त हो रही है। चलिये, हम वापस चलें।"

प्रभु मुर्दे की एक खाट पर लेटे हुए थे। खुदीराम की बात सुनते ही वे तुरत उठे और नाव पर आकर बैठ गये। बोले—"जरा तेजी से नाव को ले चल।"

खुदीराम ने कहा—"कैसे ले चलूँ प्रभो। दोनों ही डाँड़ टूटे हुए हैं। इससे नाव खेना ही कठिन हो रहा है।"

प्रभु ने कहा—"पतवार की तरह डाँड़ को लगा ले और चुपचाप बैठ जा। आँखें बन्द कर ले।"

प्रभु की आज्ञा पाकर खुदीराम ने एक डाँड़ को पतवार की तरह नाव के पीछे लगाया और आँखें बन्द कर बैठ गया। प्रभु स्वयं एक डाँड़ को नदी में डालकर खेने लगे। नाव तेजी से आगे बढ़ने लगी।

क्षणभर बाद नाव की गति धीमी होने पर खुदीराम ने देखा—नाव मंदिर के किनारे आ गयी है। वह अवाक् रह गया। इधर प्रभु हँसते हुए नदी में स्नान करने लगे।

जगद्‌बन्धु ज्योतिषियों की तरह न किसीका हाथ देखते थे और न जन्मपत्रिका बनाकर कुछ कहते थे। वे अपने कमरे का दरवाजा बन्द कर बैठ जाते। जिज्ञासु लोग कमरे के बाहर बैठे रहते। ऐसे लोगों के भूत, भविष्य और वर्तमान की बातें इस तरह बताते जैसे वे प्रत्यक्ष रूप से देख रहे हों। लोग विस्मय से चकित रह जाते। अगर कोई छिपाकर गलत काम कर डालता था तो उसे भी प्रकट कर देते थे। साथ ही मधुर संभाषण के जरिये उसे समझाते थे। किसका जीवन किस तरह व्यतीत होगा, इस बारे में बता देते थे। जो लोग उनकी बातों की उपेक्षा करते या मजाक समझते थे, उन्हें आगे चलकर अफसोस होता था।

जगद्‌बन्धु के बड़े भाई ने अपने एक अनुभव के बारे में कहा है—"जगत् में भविष्य बताने की अन्तर्यामी शक्ति थी। बात उन दिनों की है जब जगत् वृन्दावन में था। उन दिनों मैं फरीदपुर की एक घटना से परेशान था। समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करूँ। जगत्

को तार भेजूँ या पत्र। ठीक इसी समय डाकिया ने आकर एक पत्र दिया। यह पत्र जगत् का था। पत्र पढ़कर मैं चकित रह गया। जिस वजह से मैं परेशान था, उसकी मीमांसा इस पत्र में थी। मैंने पत्र पाने के पूर्व तक इस घटना की चर्चा किसीसे नहीं की थी। जगत् को मालूम होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। वह इतनी दूर परदेश में रहते हुए सारी समस्या को कैसे जान गया, इसे लाख सिर पीटने पर भी मैं समझ नहीं सका।''

कुछ दिनों बाद जब जगत् घर आया तब मैंने कौतूहलवश उससे पूछा कि तुम्हें यह बात कैसे मालूम हुई? उसने जवाब दिया—''फकीर ठहरा, दूर रहते हुए भी सब जान जाता हूँ।''

सन् १६१४ के नवम्बर माह की घटना है। अचानक प्रभु जगद्बन्धु को सूखी खाँसी तंग करने लगी जो काफी कष्टदायक थी। उनके सभी भक्त उद्विग्न हो उठे। उपस्थित लोगों में से एक व्यक्ति नगर से डॉ० प्रमोदलाल चौधरी तथा कविराज श्रीशचन्द्र गुप्त को अपने साथ ले आये।

प्रभु जगत् कभी बिस्तर पर सो जाते तो कभी दौरा पड़ने पर उठकर बैठ जाते रहे। रह-रहकर तेज स्वर में खाँसते रहे। दोनों व्यक्तियों ने नाड़ी-परीक्षा की। उन्हें किसी प्रकार का स्पन्दन महसूस नहीं हुआ। कई बार जाँच करने पर भी कोई सूराग नहीं मिला। सबसे बड़े आश्चर्य की बात यह रही कि हृदय की गति में भी कोई स्पन्दन नहीं मिला। बाहर से जिस प्रकार का कष्ट है, भीतर उसका कोई नाम-गंध नहीं है।

दिन इसी प्रकार गुजर गया। शाम के वक्त एक अन्य डॉक्टर को बुलाया गया। अब तीनों व्यक्ति जाँच करने लगे। इस बार भी कुछ समझ नहीं पाये। कविराजजी ने मुस्कराते हुए पूछा—''कहिये डॉक्टर साहब, कुछ समझ में आया?''

डॉक्टर ने कहा—''इनकी जाँच कैसे हो? आपने अपनी इच्छा के अनुसार स्पन्दन को बन्द कर रखा है। ऐसी हालत में बीमारी का पता कैसे लग सकता है। दरअसल इन्हें कोई बीमारी नहीं है। हम लोग यहाँ महापुरुष का दर्शन करने आये हैं, वही किया जाय।''

प्रभु जगद्बन्धु भी अन्य संतों की तरह कभी पुरी, कभी नवद्वीप, कभी वृन्दावन तो कलकत्ता, ब्राह्मणकान्दा आदि स्थानों में भ्रमण करते थे। जिस जगह जाते, वहाँ के भक्त आपको घेर लेते। वे सदैव कीर्तन, हरिनाम के अलावा सदुपदेश देते हुए लोगों का कल्याण करते रहे।

वृन्दावन और नवद्वीप आपका प्रिय स्थान था। वृन्दावन में श्यामदास नामक एक वैष्णव साधक थे। प्रभु जगत् से हाल में ही परिचय हुआ है। कहने का मतलब अभी वे प्रभु की प्रतिभा से विशेष प्रभावित नहीं हुए हैं। इधर जगद्बन्धु का मौन चल रहा था। रह-रहकर न जाने कहाँ लापता हो जाते थे।

एक दिन श्यामदास मधुकरी माँगने के लिए निकल पड़े। दूर से उन्होंने देखा कि कुछ गायें खड़ी होकर न जाने क्या लेहन कर रही हैं। आगे बढ़ने पर उन्होंने जो कुछ देखा, उसे देखते ही वे अवाक् रह गये। सोने-सा चमकता हुआ एक पुरुष जमीन पर लेटा हुआ था और गायें उनके शरीर के सौरभ को ग्रहण कर रही हैं यानी अवलेहन कर रही हैं। शायित

पुरुष बड़े स्नेह से गायों पर हाथ फेर रहे हैं। काफी पास जाने पर उन्होंने देखा कि वह पुरुष अन्य कोई नहीं, बल्कि प्रभु जगद्बन्धु हैं।

इस घटना से श्यामदास बहुत प्रभावित हुए। उन्हें लगा, जैसे साक्षात् श्रीकृष्ण का दर्शन उन्होंने किया है। बाद में वे एक दिन महाप्रभु को अपनी कुटिया में आदर-श्रद्धा के साथ ले गये। वहाँ प्रभु जगद्बन्धु ने अनेक अलौकिक विभूतियों का प्रदर्शन किया।

इसी प्रकार एक दिन श्यामदास अपनी कुटिया में बैठे थे। आसपास कोई नहीं था, पर उनकी कुटिया में चन्दन चर्चित तुलसीदल बार-बार गिर रहे थे। समझते देर नहीं लगी कि यह महाप्रभु की कृपा है।

एक दिन प्रभु तालाब में स्नान कर रहे थे। पास ही खड़े श्यामदास यह दृश्य देख रहे थे। देखते ही देखते पानी में न जाने कहाँ गायब हो गये। ऊपर जमीन पर एक छोटा बालक इधर-उधर किलकारियाँ मारता हुआ दौड़धूप कर रहा है। गुफा के पास आते ही वह बालक भी लापता हो गया। दूसरे ही क्षण उन्होंने देखा कि उनके सामने एक ज्योतिर्मयी मूर्ति खड़ी है।[१]

बातचीत के सिलसिले में एक दिन महाप्रभु ने भक्तों से कहा—"इस दुनिया में सबसे अधिक सुखी गधे हैं। दिन समाप्त हो जाने पर उन्हें घास खाने का अवसर मिलता है। गृहस्थ दिन-रात बाल-बच्चों को पालने में इतना व्यस्त रहता है कि उसे हरिनाम जपने का अवसर नहीं मिलता।

"इतनी चीजों के रहते सूअर केवल विष्ठा खाते हैं। इसी प्रकार पाखण्डी लोगों की निगाह कुविषयों की ओर लगी रहती है। सूअर का गू और पाखण्डियों का कु।

"ऊँट काँटेदार वृक्ष खाता है। इससे उसका मुँह क्षत-विक्षत हो जाता है, फिर भी वह खाना बन्द नहीं करता। उसी प्रकार संसारी व्यक्ति बार-बार संसार की माया से मोहित रहता है। उसकी गृहस्थी की प्यास मिटती नहीं। वह हरिनाम नहीं जपता।"

प्रभु जगद्बन्धु शिष्य बनाना पसन्द नहीं करते थे। उनका कहना था—"मनुष्य गुरु-मंत्र कान में कहता है, पर जगद्गुरु मंत्र प्राण को सुनाता है।" इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रभु जगत् समाज की पिछड़ी जातियों, वन-जाति, अवहेलित तथा अस्पृश्य लोगों के बीच जाकर उन्हें हरिनाम सुनाते थे। उनके साथ भाईचारे का व्यवहार करते थे। यही कारण है कि वे जन-जन में लोकप्रिय हो गये थे।

सन् १६२१ ई० के आश्विन मास में उनका तिरोधान हो गया। अपने अगणित भक्तों को शोक-सागर में डुबोकर वे सदा के लिए लीन हो गये।

●

---

[१] बन्धुकथा।

योगिराज गंभीरनाथ

योगिराज गंभीरनाथ

नाथ-सम्प्रदाय के साधुओंने एक दिन बड़े आश्चर्य से एक युवा पुरुष को देखा—गुलाब की पंखुड़ियों की तरह रंग, बड़ी-बड़ी आँखें, गंभीर आकृति, दाढ़ी सफाचट, पर बड़ी-बड़ी मूँछें, घुँघराले बाल, सिल्क का कुर्ता और चद्दर गले में लपेटे, मस्तानी चाल से गोरखनाथ के मंदिर में प्रवेश कर रहा है।

कुछ शक्लों में एक ऐसा आकर्षण होता है जो राह चलते लोगों को प्रभावित करती हैं। लोग विस्मय से देखते रहते हैं। सामने से आते एक साधु से आगन्तुक ने पूछा—"बाबा, मैं महन्तजी का दर्शन करना चाहता हूँ। क्या इस वक्त यह संभव है ?"

साधु ने कहा—"आप सीधे चले जाइये। वह उधर महन्तजी विराजमान हैं।"

आगन्तुक ने मंथर गति से महन्तजी के निकट आकर उन्हें सादर प्रणाम करते हुए कहा—"महाराज, मैं काश्मीर से आपकी शरण में आया हूँ। बड़ी कृपा होगी यदि आप मुझे अपना सेवक बनाकर अपने चरणों में स्थान दें।"

महन्तजी ने आशीर्वाद देते हुए कहा—"थके हुए हो। आज विश्राम करो। कल बातचीत होगी।"

चन्द दिनों में ही आगन्तुक ने अपने मृदुल व्यवहार से महन्त बाबा गोपालनाथजी को प्रभावित किया। साथ में काफी रकम लेकर आया था। न केवल मंदिर के साधुओं को, बल्कि बाहरी लोगों को भी वह दान देता रहा। लगता था, जैसे इस नवागन्तुक को दान करने का नशा है। लोगों को समझते देर नहीं लगी कि आगन्तुक बड़े परिवार से आया है।

गोरखपुर स्थित गोरक्षनाथ मंदिर के बारे में कहा जाता है कि प्राचीनकाल में योगिराज गोरक्षनाथ यहीं तपस्या करते रहे, इसलिए उनके योगासन पर इस मंदिर का निर्माण हुआ। वर्तमान मंदिर ऐतिहासिक मंदिर नहीं है। मुगल-शासनकाल में मुसलमानों ने इसे कई बार ध्वस्त कर दिया था। इनमें अलाउद्दीन और औरंगजेब प्रमुख थे। बाद में वर्तमान मंदिर का निर्माण बुद्धनाथ नामक एक योगी ने कराया। मंदिर के निर्माण के पश्चात् यहाँ अनेक परिवर्तन होते गये। महन्त तथा सिद्ध महात्माओं की समाधि पर मठ का निर्माण हुआ है। मंदिर के महन्त गोरक्षनाथ के प्रधान सेवक होते हैं। साधु तथा गृहस्थ आम तौर पर उन्हें गोरक्षनाथ के पद पर प्रतिष्ठित समझते हैं और उसी तरह उन्हें सम्मान देते हैं।

बाबा गोपालनाथ ने सम्प्रदाय के नियमानुसार आगन्तुक को संन्यास देते हुए उन्हें 'नाद' और 'सेली' पहनाया। बाद में उन्हें औघड़-सम्प्रदाय में शामिल कर लिया। इस घटना के कुछ दिनों बाद देवीपाटन में बाबा शिवनाथ ने 'कनफट', कर कानों में कुण्डल पहनाया। इस

प्रकार आगन्तुक नाथ-सम्प्रदाय का अन्तिम चिह्न धारण कर नाथ-सम्प्रदाय का संन्यासी बन गया ।

गोरक्षनाथ-मठ में प्रवेशकाल से लेकर दीक्षा के दिन तक आगन्तुक बहुत गंभीर मुद्रा में दिन व्यतीत करता रहा । प्रश्नों के उत्तर में संक्षेप में जवाब देकर अधिकतर मौन रहता था । आगन्तुक के इस रूप को देखकर गोपालनाथ ने अपने नये शिष्य का नाम रखा—गंभीरनाथ ।

अक्सर गुरुभाई और उत्सुक सामान्य नागरिक जब गंभीरनाथ से पूर्व जीवन के बारे में प्रश्न करते तो यही उत्तर मिलता— "इन सब प्रपंचों से क्या वास्ता ? मैं गुरुदेव गोपालनाथजी का शिष्य हूँ, यही मेरा वास्तविक परिचय है ।"

महन्तजी की जबानी इतना पता चला था कि गंभीरनाथजी काश्मीर के जम्बू जिले के निवासी हैं । गाँव में उनका आज भी घर है । लेकिन वे अपने घर या परिवार से हमेशा उदासीन रहे । घर से चलकर वे श्मशान चले आते थे । वहाँ नाथ-सम्प्रदाय के एक संन्यासी रहते थे । उनसे बराबर उपदेश ग्रहण करते रहे और अध्यात्म की चर्चा करते रहे । संन्यासी के ज्ञान और व्यक्तित्व से गंभीरनाथ इतने प्रभावित हुए कि एक दिन उनसे दीक्षा देने की प्रार्थना की ।

उक्त संन्यासी ने कहा—"मैं तुम्हें दीक्षा नहीं दे सकता । तुम्हें दीक्षा देनेवाले गुरु गोरखपुर में हैं । तुम वहाँ गोरक्षनाथ मंदिर में जाकर वहाँ के महन्तजी से दीक्षा लो । योगिराज परमगुरु गोरक्षनाथजी की कृपा से तुम भविष्य में एक महान् योगी बन जाओगे ।"

संन्यासी के सुझाव को शिरोधार्य करके योगिराज अपने गुरु की खोज में गोरखपुर आये, जहाँ उन्हें दीक्षा के साथ-साथ संन्यास-नाम गंभीरनाथ की प्राप्ति हुई । आप यहाँ अत्यन्त निष्ठा के साथ गुरु की सेवा करते रहे । शेष समय में भजन किया करते । साधारण लोगों को योगाभ्यास में पर्याप्त समय लगता है, पर जिनके पूर्वसंस्कार अच्छे होते हैं, वे बहुत जल्द साधना-मार्ग में अग्रसर हो जाते हैं । इसके लिए उन्हें विशेष श्रम नहीं करना पड़ता ।

गंभीरनाथजी आगे चलकर अपने शिष्यों तथा भक्तों से कहा करते थे—साधुओं के प्रति भक्ति करना, उनकी सेवा करना आप लोगों का कर्त्तव्य है । लेकिन अज्ञात चरित्रवाले साधुओं से दूर रहना चाहिए । वैराग्यविहीन वैरागी, भोगी संन्यासी, कपट-योगी आजकल प्रत्येक मठ और अखाड़े में हैं जो साधन-भजन के नाम पर केवल रोटी तोड़ते हैं और अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं । ऐसे लोगों से दूर रहने में ही कल्याण है ।

बाबा गोपालनाथ आपके स्वभाव और सेवा से बड़े प्रसन्न थे । इन्हें पुजारी का कार्यभार दिया गया । लेकिन मठ में कपट-योगियों की कमी नहीं थी । इससे आपकी साधना में व्याघात पहुँचता था । आपका मन मठ के वातावरण से उखड़ गया । एक दिन चुपचाप पैदल ही काशी की ओर रवाना हो गये । दो दिन भूखे-प्यासे सफर करते रहे । मार्ग में किसीने यह नहीं पूछा कि बाबाजी, कहाँ प्रस्थान कर रहे हैं ? आइये, मेरे यहाँ भोजन ग्रहण कर लीजिए । गंभीरनाथ ने सोचा—अगर मेरी साधना का प्रभाव होगा तो भगवान् स्वतः कोई उपाय करेंगे, वर्ना लक्ष्य तक पहुँचना ही है ।

तीसरे दिन अचानक एक परिचित ब्राह्मण मिला । यह ब्राह्मण गोरक्षनाथ-मठ का भक्त

था और बाबा गंभीरनाथ के स्वभाव से भलीभाँति परिचित था। उसने इनके थके चेहरे को देखकर बड़े आग्रह के साथ अपने यहाँ ले जाकर उन्हें भोजन कराया। प्रभु की कृपा हो गयी समझकर उस ब्राह्मण को आशीर्वाद देकर वे काशी रवाना हो गये।

यहाँ गंगा तट पर एक निर्जन स्थान पर आसन जमाकर वे अपनी साधना में रत हो गये। यहाँ लगभग तीन वर्ष तक थे। कहा जाता है कि इन तीन वर्षों में वे अध्यात्म के शिखर तक पहुँच गये थे। योगैश्वर्य की ओर से उदासीन रहने पर भी उन्हें यह प्राप्त हो गया था। यह मानी हुई बात है कि लोकालय में ऐसे साधकों की ओर लोगों की दृष्टि आकर्षित होती है और लोग व्यक्तिगत लाभ उठाने के लिए साधक के पास आकर उसे तंग करने लगते हैं।

गंभीरनाथ के साथ भी ऐसी घटनाएँ होने लगीं। वे अपनी साधना में बराबर निमग्न रहना चाहते थे और इधर आम लोग विघ्न डालने लगे। फलस्वरूप एक दिन आप चुपचाप इलाहाबाद स्थित झूसी में आ गये। यहाँ इन्होंने एक निर्जन गुफा देखकर आसन लगाया। गंगा किनारे स्थित यह गुफा उन्हें बेहद पसन्द आयी। यहाँ मुकुटनाथ नामक एक योगी मिले जो आपकी हर तरह से सेवा करते रहे। झूसी में आप दो वर्ष तक साधना करते रहे। कहा जाता है कि यहीं आप ब्रह्मवित् हुए थे।

झूसी में रहते समय आपने निश्चय किया कि परिव्राजक के रूप में तीर्थों का दर्शन किया जाय। यह कार्य सभी साधक करते हैं। आप झूसी से चलकर नर्मदा नदी के किनारे आये। मत्स्यपुराण में नर्मदा नदी के बारे में कहा गया है—"गंगा कनखल में तथा सरस्वती कुरुक्षेत्र में विशेष रूप से पवित्र है, पर नर्मदा गाँव एवं जंगलों में भी पवित्र है। सरस्वती का पानी मनुष्य को तीन दिन में, यमुना का पानी सात दिन में और गंगा का पानी स्नान करने पर ही पवित्र बना देता है। लेकिन नर्मदा का पानी दर्शन करने से ही मानव पवित्र हो जाता है।"

ज्ञातव्य रहे कि प्राचीनकाल के अधिकांश ऋषि तथा तपस्वी नर्मदा के किनारे साधना करते हुए मुक्ति प्राप्त कर चुके हैं। नर्मदा-परिक्रमा का अर्थ है—नर्मदा के उद्‌गम-स्थल से समुद्र तक और समुद्र से उद्‌गम-स्थल तक एक ही किनारे से आना-जाना पड़ता है। न केवल उन्होंने नर्मदा-परिक्रमा की, बल्कि कैलास, मानसरोवर, ज्वालामुखी आदि तीर्थस्थानों में भी गये। बाद में अपने शिष्यों को जो इस यात्रा पर जानेवाले थे, उन्हें मार्ग के बारे में तरह-तरह के निर्देश देते रहे।

नर्मदा नदी के किनारे चलते-चलते एक बार आप एक निर्जन कुटिया में ठहर गये। इस कुटिया में एक ब्रह्मचारी रहते थे। उस वक्त वे मौजूद नहीं थे। गंभीरनाथ इस कुटिया में तीन दिन विश्राम करते रहे। वे नित्य देखते कि न जाने कहाँ से एक बड़ा साँप फन उठाये आता और कुछ देर एकटक उन्हें देखता। इसके बाद उनकी प्रदक्षिणा कर वापस चला जाता था। किसी साँप को इस तरह का व्यवहार करते उन्होंने कभी नहीं देखा था। साँप के जाते ही वे स्वयं समाधिस्थ हो जाते थे।

तीसरे दिन कुटिया का स्वामी ब्रह्मचारी आया। बातचीत के सिलसिले में ब्रह्मचारी ने कहा—"यहाँ एक महात्मा साँप के रूप में निवास करते हैं।"

तब गंभीरनाथ ने सारी घटना सुनायी। ब्रह्मचारी ने अवाक् होकर कहा—"मैं यहाँ पिछले बारह वर्ष से कुटिया बनाकर उनकी प्रतीक्षा में हूँ और आज तक उनके दर्शन नहीं कर सका। इधर आप आगन्तुक के रूप में आकर तीन दिन में ही दर्शन कर चुके। वास्तव में आप बड़े भाग्यवान् हैं।"

गंभीरनाथ ने ब्रह्मचारी से यह नहीं पूछा कि आखिर उक्त महात्मा सर्प के रूप में यहाँ क्यों हैं ? उनसे तुम्हारा क्या रिश्ता है ? आखिर तुम बारह वर्ष से क्यों उनकी प्रतीक्षा कर रहे हो ? वह सर्प मेरी प्रदक्षिणा क्यों करता रहा ? दरअसल गंभीरनाथ मौन रहना अधिक पसन्द करते थे।

इसी बीच गंभीरनाथ को पता लगा कि उनके गुरुदेव गोपालनाथजी समाधि ले चुके हैं। उनके प्रथम शिष्य बलभद्रनाथ आजकल वहाँ महन्त बन गये हैं। महन्तजी के अनुरोध पर गंभीरनाथ गोरखपुर आये और यहाँ लगभग एक माह तक निवास करते रहे। परन्तु मठ का कोलाहल उन्हें रास नहीं आया। प्रारंभ से ही निर्जनता उन्हें पसन्द थी। उन्हें साधना के अलावा अन्य किसी बात में कभी रुचि नहीं हुई।

उपयुक्त स्थान की तलाश में वे गया आये और यहाँ के ब्रह्मयोनि पहाड़ पर स्थित कपिलधारा में उन्होंने आसन जमाया। यह स्थान उन्हें काफी पसन्द आया। यह वह स्थान है, जहाँ बुद्ध को ज्ञान प्राप्त हुआ था। चैतन्य महाप्रभु का गया में हृदय प्लावित हुआ था। महात्मा विजयकृष्ण गोस्वामी यहीं साधना करते रहे। कभी वे पेड़ के नीचे और कभी किसी सामान्य गुफा में साधना करते रहे। साथ में एक कम्बल और खर्पर था। तन पर एक कौपीन, हाथ में दण्ड। दो माह बाद एक योगी सेवा में आया। उनका नाम था—नृपतिनाथ। नृपतिनाथ के पहले अक्कू नामक एक कुर्मी युवक गंभीरनाथ के लिए सामान्य सेवा करता था। जंगल से सूखी लकड़ियाँ लाकर उनके लिए धूनी सजा देता था। इस प्रकार दो सेवकों के सहयोग से बाबा गंभीरनाथ साधना में लगे रहे। बीच में कुछ दिनों के लिए काशी और गोरखपुर आये थे। लौटते वक्त शुद्धनाथ नामक एक सेवक आपके साथ गया आ गया। इस प्रकार आप तीन सेवकों के साथ कपिलधारा में रहते रहे।

यहाँ दो अन्य गृहस्थों का उल्लेख करना आवश्यक है। इनमें पटना के मोतीलाल घोष और गया के माधोलाल पण्डा थे। माधोलाल पण्डा बाबा गंभीरनाथ की कृपा से अत्यन्त प्रभावित हुए थे। एक बार आप एक जटिल मुकदमे में फँस गये। इस मुकदमे में घर की सारी पूँजी समाप्त हो गयी। जीतने की कोई आशा नहीं थी।

मुसीबत के वक्त लोगों को भगवान् और साधु-संन्यासियों की याद आती है। माधोलाल गंभीरनाथ की ख्याति सुन चुके थे। दीनभाव से बाबा के पास आकर उनकी सेवा करने लगे। गंभीरनाथ कभी अलौकिक-शक्ति का प्रयोग नहीं करते थे। वे मन ही मन माधोलाल की स्थिति पर गौर करते रहे। एक दिन उन्होंने देखा—माधोलाल बहुत ही दुखी और मायूस है। बाबा गंभीरनाथ ने सहसा कहा—"अच्छा ही होगा, बेटा। दुखी होने की जरूरत नहीं।"

बाबा का आशीर्वाद फलीभूत हुआ। हाईकोर्ट में माधोलाल विजयी घोषित हुए। उन्हें यह समझते देर नहीं लगी कि इस जीत के पीछे बाबा का आशीर्वाद है वर्ना जीतने की कोई आशा नहीं थी। अब तक माधोलाल स्वार्थवश सेवा करते रहे। इस घटना के बाद वे निष्काम-भाव से सेवा करने लगे।

कुछ दिनों बाद माधोलाल ने बाबा के आगे प्रस्ताव रखा कि यहाँ एक योग-गुफा निर्माण करने की आज्ञा प्रदान करें। बाबा की स्वीकृति मिलते ही पहाड़ पर योग-गुफा का निर्माण हुआ। बाहर एक वेदी बनायी गयी। वेदी के बीच में एक बेल का पेड़ लगाया गया। बाबा ने वेदी पर कई त्रिशूल गड़वाये। इस गुफा में बाबा लगभग १२-१३ वर्ष तक साधना करते रहे।

जिन दिनों बाबा गया में साधना करते रहे, उस समय प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी ने अपने शिष्यों से कहा था—"बाबा बड़े प्रेमिक और शक्तिसम्पन्न साधक महात्मा हैं। हिमालय के नीचे आपकी तरह कोई महात्मा नहीं है। पहाड़ पर न जाने कितने हिंस्र बाघ-साँप आदि जानवर हैं, पर बाबा की शक्ति से वे इतने मुग्ध हैं कि कोई अनिष्ट नहीं करते।"

कुलदानन्द ब्रह्मचारी ने जो उन दिनों गया के ब्रह्मयोनि पहाड़ पर साधना कर रहे थे, कहा है—"हिमालय के नीचे इन दिनों इनकी तरह शक्तिशाली महापुरुष कोई नहीं है। आप क्षणभर में सृष्टि-स्थिति-प्रलय कर सकते हैं।" महापुरुष सच्चिदानन्दजी के शब्दों में—"वे साक्षात विश्वेश्वर हैं।" रामदास काठिया बाबा, भोलानन्द गिरि आदि तत्कालीन अनेक संतों ने आपकी साधना की प्रशंसा की है।[१]

गंभीरनाथ में एक और विशेषता थी। बचपन से ही वे सितार बजाते थे। श्री नवकुमार विश्वास ने लिखा है—"आकाशगंगा के आश्रम में हम लोग सोये हुए हैं। चारों ओर सन्नाटा है। बाहर चाँदनी फैली हुई है। अक्सर रात के एक या दो बजे सितार बजाते हुए भजन गाने की आवाज आने लगती। गोसाईजी (विजयकृष्ण गोस्वामी) कहते—'लो, सुनो। बाबा गंभीरनाथ कितने मीठे स्वर में भजन गा रहे हैं।' कभी-कभी भजन सुनते ही आधी रात को अकेले दौड़े चले जाते थे। डेढ़-दो घण्टे बाद वापस आ जाते थे। उधर बाबा सितार बजाते, भजन गाते हुए, इस पहाड़ से उस पहाड़ पर चले जाया करते थे।"

श्री बरदाकान्त बनर्जी गया शहर के प्रसिद्ध वकील और विजयकृष्ण गोस्वामी के शिष्य थे। आपने लिखा है—"बाबा असीम क्षमताशाली थे। उनमें पर्याप्त योगैश्वर्य था, पर वे कभी इसका प्रदर्शन नहीं करते थे। हमेशा अपने को छिपाकर रखते थे। उनके स्वभाव और व्यवहार को देखकर कोई यह कल्पना नहीं कर सकता था कि आप शक्तिशाली योगिराज हैं। मैंने प्रत्यक्षरूप से ३-४ घटनाओं को देखा है।

"एक बार गया के लखपति वकील हरिहरनाथ का एकमात्र पुत्र मृत्युशय्या पर था। उनके पिता ने मेरे पास एक आदमी भेजकर कहलवाया कि एक बार बाबा को ले आइये। अगर वे न आ सकें तो कोई जड़ी-बूटी दें अथवा अपना चरण-रज दें। आज तक मैंने कभी किसी महापुरुष से इन सब मामलों में कोई प्रार्थना नहीं की है। लेकिन मृत्युशय्या पर पड़े इस बालक के लिए मुझे बाबा के पास जाना पड़ा। बाबा के यहाँ जाकर मैंने अत्यन्त विनीत भाव से प्रार्थना की। बाबा उनके यहाँ जाने के लिए राजी नहीं हुए। फलतः मैंने उनसे चरण-रज देने की प्रार्थना की। इस बात को उन्होंने स्वीकार कर लिया। कुछ रज लेकर उनके पैरों में पोता और उसे लाकर वकील साहब को दे दिया। चलते समय बाबा से आशीर्वाद देने के लिए कहा तो बाबा ने कहा—'क्लेश दूर हो जायगा। दो-तीन रोज में शान्ति होगी। वह अच्छा हो जायगा।' कहने की आवश्यकता नहीं कि तीसरे दिन बालक पूर्णरूप से स्वस्थ हो

---

[१] महात्मा बाबा गंभीरनाथ—श्री नवकुमार विश्वास।

गया। यह बाबा के चरण-रज का प्रभाव था, वर्ना वह कब तक तड़पता या परलोकवासी ही बन जाता, कौन जाने।

"एक बार एक गृहस्थ तन-मन-धन से बाबा की खूब सेवा करता रहा। वह बहुत दिन से सुनता आ रहा था कि बाबा में असीम अलौकिक शक्ति है। गुरुदेव ने कभी किसीके सामने इस बात का उल्लेख नहीं किया है। उसके मन में तीव्र इच्छा उत्पन्न हुई कि गुरुदेव कुछ अलौकिक शक्ति का प्रदर्शन दिखायें। अतः बच्चों की तरह अत्यन्त दुलार दिखाते हुए अपनी प्रार्थना प्रकट कर दी।

"बाबा शिष्य के मनोभाव को समझकर बोले—'आज तुम्हें योगिगुरु बाबा गोरक्षनाथ की एक कहानी सुनाता हूँ। जिन दिनों योगिगुरु बाबा गोरक्षनाथ योग-साधना में निमग्न थे, उन दिनों एक ब्राह्मण उनकी लगातार अनेक वर्षों तक सेवा करता रहा। वह नित्य उन्हें पायस खिलाता रहा। ब्राह्मण की सेवा से योगिगुरु संतुष्ट थे। उस ब्राह्मण की इच्छा थी कि वह योगिगुरु का योगैश्वर्य देखेगा। मौका समझकर एक दिन उसने नाथजी से निवेदन किया। सेवक के अभिमान को चूर्ण करने तथा सेवा-अपराध से मुक्त करने के लिए, पहले दिन से आज तक जितना दूध और चावल उन्होंने ग्रहण किया था, सारी सामग्री अलग-अलग करके उगल दिया।'

"इस कहानी को सुनते ही उक्त शिष्य की बुद्धि खुल गयी। वह समझ गया कि इस कहानी के जरिये बाबा ने भर्त्सना की है। सेवा करने के बाद बदले में कुछ माँगना भयंकर अपराध है—इस बात को उस दिन वह समझ गया। आत्मग्लानि से भर जाने के कारण बाबा के चरणों पर गिरकर रोने लगा।

"बाबा ने उसे सांत्वना देते हुए कहा—'तुमने जान-बूझकर या घमण्ड के कारण यह प्रार्थना नहीं की है, मगर आगे ऐसा मत करना, इसके लिए मैंने यह चेतावनी दी है।' "

बरदा बाबू ने अपने अनुभवों का उल्लेख करते हुए लिखा है—"एक दिन मेरी तीव्र इच्छा हुई कि बाबा के पास जाकर उनका सितार बजाना सुनूँ। इस इच्छा को लेकर मैं बाबा के पास एक दिन सबेरे गया। मैंने उनसे कोई निवेदन नहीं किया। थोड़ी देर बाद एक खटिया पर बैठने के साथ उन्होंने अपने सेवक से सितार ले आने की आज्ञा दी। उनके सितार-वादन से मैं मुग्ध हो उठा। मेरे मन की कामना पूरी हो गयी। प्रणाम करने के बाद मैं वहाँ से चला आया।

"एक दिन की घटना याद आती है। मैंने सुना था कि बाबा चाय अच्छी बनाते हैं। एक दिन सबेरे पहुँचा। मैंने अपनी इच्छा को प्रकट नहीं किया। उन दिनों आश्रम में उस वक्त चाय नहीं बनती थी। मेरे बैठने के साथ ही बाबा ने गरम पानी चढ़ाकर चाय बनाने की आज्ञा दी। चाय तैयार होने पर उन्होंने सेवक से कहा—'बाबू को लाकर दो।' सेवक पीतल के गिलास में लाया तो उन्होंने कहा—'नहीं, ले जाओ। पत्थर के गिलास में ले आओ।' इस घटना से स्पष्ट हो गया कि महात्मा लोग भी साधारण गृहस्थों का कितना ध्यान रखते हैं।"

तीर्थयात्रा के सिलसिले में बाबा गंभीरनाथ राजस्थान के उदयपुर शहर में गये। आपके साथ ८-१० साधु थे। वहाँ एक निर्जन मैदान में धूनी जलाकर कई दिनों तक डेरा डालकर

रहे। यहाँ एक विचित्र घटना हो गयी थी। एक दिन भयंकर रूप से वर्षा हुई। सारा शहर, खेत, मैदान पानी से भर गया। लेकिन बाबा जहाँ अन्य साधुओं के साथ मौजूद थे, वहाँ पानी नहीं बरसा। यह चमत्कार देखकर स्थानीय लोगों ने समझा कि आप एक महापुरुष हैं। धीरे-धीरे यह बात फैलती चली गयी। दर्शन करने के लिए अनेक लोग आने लगे। बात उदयपुर-नरेश के पास पहुँची।

चाहे भक्ति की वजह से या कौतूहलवश या अपने स्वार्थ के लिए उन्होंने बाबा को राजमहल में आमंत्रित किया। बाबा ने निमन्त्रण अस्वीकार कर दिया। राजा की ओर से काफी कोशिश की गयी, पर कोई फल नहीं निकला। फलस्वरूप राजा उपहार-सामग्री लेकर बाबा का दर्शन करने के लिए चल पड़े। निष्किंचन संन्यासी के लिए राज-दर्शन स्वीकृत नहीं है। राजा साहब आ रहे हैं सुनकर बाबा तुरत अपने सहयोगियों को लेकर काश्मीर रवाना हो गये।

योगिराज गंभीरनाथ केवल एक बार अपनी इच्छा से एक गृहस्थ के घर गये थे। वह अन्य कोई नहीं, उनका प्रथम निष्काम सेवक अक्रू था। अक्रू के बारे में पीछे उल्लेख किया जा चुका है। यहीं उन्होंने अपनी अलौकिक शक्ति का प्रयोग किया था। अक्रू ही नहीं, उसका सारा परिवार साधु-सेवा करना अपना धर्म समझता था। आर्थिक दृष्टि से अक्रू का परिवार दरिद्र था। अक्रू और उसका भाई मेहनत-मजदूरी करके पूरे परिवार का भरण-पोषण करते थे।

इन दिनों अक्रू मृत्युशय्या पर है। जब लोगों ने अनुभव किया कि अब बचने की कोई आशा नहीं है तब उसे श्मशान ले जाने का निश्चय किया गया। तभी लोगों ने सोचा कि जीवन भर अक्रू बाबा की सेवा करता रहा। इसकी सूचना उन्हें दे दी जाय। अक्रू का भाई मुन्नी रोता हुआ बाबा के पास पहुँचा और कहा कि अक्रू भैया चल बसे हैं। आप हम कृपा करिये।

बाबा निश्चल नहीं रह सके। उन्होंने मुन्नी से कहा कि अक्रू को श्मशान अभी मत ले जाओ। तुम चलो, मैं आता हूँ। इसके बाद वे अक्रू के घर आये। मृत अक्रू को स्पर्श कर उन्होंने उसके मुँह में पानी डाला। मृत अक्रू के शरीर में जीवन लौट आया। इसके बाद उसे खिचड़ी खिलाकर बाबा वापस आ गये। थोड़ी देर बाद अक्रू स्वस्थ हो गया।

बाबा ने अपने नियमों का यहाँ उल्लंघन किया। उन्हें लगता था जैसे अक्रू की सेवा का ऋण उन पर है। बाबा के पहले ही अक्रू का निधन हो गया। बाद में बाबा जब गोरक्षनाथ-मठ के महन्त बने तब वे अक्रू के पुत्र को दस रुपया मासिक भिजवाते रहे। गोरखपुर आने-जाने के संपूर्ण व्यय के अलावा कम्बल, कपड़ा आदि से सहायता करते रहे।

गया पर्वत पर जहाँ बाबा के भक्तगण आते थे, वहीं कुछ दुष्ट प्रकृति के लोग भी आते थे। एक दिन कुछ बदमाश आये और आश्रम पर ढेला फेंकने लगे। बाबा गोकुलनाथ ने चीखकर कहा—"कौन ढेला फेंक रहा है ?"

बाबा नृपतिनाथ भी बाहर आये और शोरगुल सुनकर बाबा गंभीरनाथ आसन से उठकर बाहर आ गये। उन्होंने ढेला फेंकनेवालों से कहा—"तुम लोग ढेला क्यों फेंक रहे हो ? आश्रम में जो कुछ है, उसे सहर्ष ले जा सकते हो।"

गुरुदेव की आज्ञा होते ही नृपतिनाथ ने आश्रम का दरवाजा खोल दिया। चोर झेंपते हुए चावल, दाल, बरतन, कम्बल आदि सारा सामान उठा ले गये। जाते समय बाबा को प्रणाम करते हुए आशीर्वाद माँगा। बाबा ने करुण स्वर में कहा—"तुम लोग अभावग्रस्त हो, यह जानता हूँ। दस-पन्द्रह दिन बाद आना। आज जो कुछ ले जा रहे हो, उस वक्त भी यही सब सामान मिलेगा। बेकार का उपद्रव मत करना।"

चोर सारा सामान लेकर चले गये। दूसरे दिन माधवलाल पण्डा आये। वे बरतन तथा अन्य सामग्री आश्रम में दे गये। इस घटना के बाद भी चोरों का गिरोह अक्सर आता रहा और दया के सागर बाबा उनके अभाव की पूर्ति करते रहे। दूसरी ओर आश्रम के अभाव की पूर्ति माधोलाल करते रहे। इस क्रम से असंतुष्ट होकर बाबा ने गया परित्याग करने का निश्चय किया। माधोलाल ने सम्मति नहीं दी। उन्होंने कहा—"बाबाजी, ये गरीब बेचारे कितना लेंगे ?"

इस स्थान में रहते समय एक बाघ अक्सर वहाँ आता था। वह कुछ देर तक बाबा के सामने बैठा रहता और फिर उनकी प्रदक्षिणा कर चला जाता था। एक दिन जब बाबा अनेक भक्तों से घिरे बैठे थे तब वह आकर सामने बैठ गया। उपस्थित भक्तों की हालत खराब हो गयी। डर के कारण कुछ लोग खिसकने लगे। यह देखकर बाबा ने कहा—"डरने की कोई जरूरत नहीं। आप एक साधु हैं। बाघ के रूप में यहाँ आते हैं।"

बाबा से आश्वासन पाकर लोगों का भय दूर हुआ। बाबा रेशमी वस्त्रों का उपयोग नहीं करते थे। उनका कहना था कि रेशम के कीड़ों का नाश करके ये वस्त्र बनाये जाते हैं। अगर कोई रेशमी वस्त्र उन्हें देता था तो वे उसे अस्वीकार नहीं करते थे। भक्त से लेकर दूसरों को दान कर देते थे।

कुछ दिनों बाद प्रयाग में कुंभ मेला लगा। देश के विभिन्न स्थानों से साधु तथा श्रद्धालुओं की भीड़ इलाहाबाद में एकत्र होने लगी। योगिराज गंभीरनाथ भी नाथ-सम्प्रदाय के साधुओं के साथ वहाँ मौजूद थे। पता नहीं, किस कारण से नागा संन्यासियों का दल उत्तेजित होकर नाथ-सम्प्रदाय के संन्यासियों को मारने लगा। देखते ही देखते कई लोगों के सिर फट गये और कुछ घायल होकर बेहोश हो गये। नागाओं का दल मारपीट करते हुए गंभीरनाथजी के पास तक आ गया। इधर नाथ योगीगण संख्या में कम रहने के कारण पीटे जा रहे थे और रह-रहकर चीख रहे थे।

गंभीरनाथ आसन पर समाधिस्थ हो गये थे। अचानक भयंकर चीख-पुकार सुनने के कारण उनकी समाधि भंग हो गयी। सामने का दृश्य देखकर वे तेज आवाज में बोल उठे—"बस, शान्त हो जाओ। शान्ति-शान्ति।"

इतना कहना था कि अत्याचारियों का क्रोध क्षणभर में गायब हो गया। वे मंत्रमुग्ध की भाँति वापस चले गये। इस घटना की चर्चा पूरे मेले में होती रही।

कुछ दिनों बाद गोरखपुर-मठ में अशान्ति उत्पन्न हो गयी। वहाँ से नाथपंथी संन्यासी आकर बाबा से शिकायत करने लगे। लाचारी में बाबा को वहाँ जाना पड़ा। तत्कालीन महन्त सुन्दरनाथ की भूमिका अच्छी नहीं थी। वे मठ की आमदनी अपने घरवालों तथा गुण्डों के पीछे खर्च करते रहे। सज्जन साधुओं का समूह धीरे-धीरे मठ से हटता चला गया। ऐसे ही

अवसर पर उन्हें आना पड़ा। यहाँ आकर बाबा ने गया के वकील बरदाकान्त को तत्काल गोरखपुर आने के लिए पत्र लिखा।

बरदाकान्त उन दिनों वकालत का पेशा छोड़कर विजयकृष्ण गोस्वामी के गंडेरिया आश्रम में रहते थे। पत्र पाते ही वे तुरत गोरखपुर आये। यहाँ आने पर उन्हें सारी घटनाएँ ज्ञात हुईं। आश्रम की जायदाद को लेकर मनमुटाव चल रहा था। इस झगड़े को समाप्त करने के लिए हरिद्वार, गिरनार आदि स्थानों से नाथ-सम्प्रदाय के संत आये हुए थे। गोरखपुर के संभ्रान्त नागरिकों को बुलाकर एक सभा का आयोजन किया गया। सभा में सभी लोग अपने विचार प्रकट कर रहे थे, पर बाबा गंभीरनाथ मूक गाय की तरह शान्त बैठे रहे।

दूसरी ओर विपक्ष के लोग उत्तेजित स्वर में अनाप-शनाप बकते चले जा रहे थे। बहरहाल, सारी बातें तय हो गयीं और एक मसौदा तैयार हो गया। इस मसौदे की रजिस्ट्री दूसरे दिन हो गयी।

एक बार मठ में ब्राह्मण-भोजन का आयोजन किया गया। जितने लोगों को निमंत्रित किया गया था, उससे अधिक लोग आये। यह दृश्य देखकर प्रबंधकर्ताओं की हालत खराब हो गयी। खाद्य पदार्थों की कमी निश्चित रूप से होगी। दूसरी ओर किसी ब्राह्मण को बिना भोजन कराये वापस भेजना उचित नहीं है। कोई उपाय न सूझने पर लोग दौड़े हुए बाबा के पास गये और उन लोगों ने सारी कहानी सुनायी।

आसन्न संकट को समझकर बाबा ने एक नये चद्दर को खोलकर उसे देते हुए कहा—"खाद्य सामग्री को इस चद्दर से ढक दो और एक ओर से सामान निकालकर परोसते जाओ।"

अन्त में देखा गया कि सभी ब्राह्मणों को भोजन कराने के बाद भी काफी सामान बच गया है।

इसी प्रकार एक बार लोगों को आम खिलाने का आयोजन किया गया। इस बार भी लोगों की अपार भीड़ हुई। मठ में जितने आम थे, उससे पूरा नहीं होगा। बाजार से मँगाने का वक्त भी नहीं था। सभी परेशान हो उठे। समाचार बाबा के पास पहुँचा। उन्होंने आदेश दिया कि सभी आम इस खाट के नीचे रख दो। सब आम जब आ गये तब उसे चद्दर से ढक दिया गया। इसके बाद एक किनारे से आम निकालकर लोगों को खाने के लिए दिया गया। सभी लोगों को खिलाने के बाद भी काफी आम बच गये।

बाबा के पास अद्‌भुत लोग आते रहते थे। इनमें कालीनाथ ब्रह्मचारी स्मरणीय व्यक्ति हैं। आप विक्रमपुर के निवासी थे। नाम था—कालीकिशोर चक्रवर्ती। पुलिस-विभाग में पहले नौकरी करते थे। इस नौकरी से तंग आकर आपने त्यागपत्र दे दिया। इसके बाद सद्‌गुरु की तलाश में घर से निकल पड़े। घूमते हुए गया में बरदाकान्त वकील के यहाँ आये। यहीं उनकी बाबा से मुलाकात हुई। बाबा ने इन्हें उपदेश देकर काशी भेज दिया।

बाद में बाबा जब गोरखपुर आये तब वे भी काशी से यहाँ आ गये। यहाँ वे तन-मन से बाबा के सेवक बन गये। आपकी सेवा उल्लेखनीय है। जिस प्रकार माँ अपने शिशु का हर वक्त, हर क्षण ध्यान रखती है, ठीक उसी प्रकार आप बाबा का ध्यान रखते थे। इधर बाबा अपने बारे में एक प्रकार से उदासीन थे।

कालीनाथ ब्रह्मचारी भोजन बनाने में कुशल थे। हर तरह की चीजें बनाकर बाबा को

खिलाया करते थे। अगर कभी बाबा किसी वस्तु को खाने में आपत्ति करते तो वे जबर्दस्ती करके खिलाते थे। कभी-कभी इस तरह बाबा को समझाते जैसे वे नन्हे शिशु हों। कभी नाराज होकर कड़ी बात भी कहते या स्वयं उपवास कर जाते। कालीनाथ के डर से बाबा आहार करते थे। बाबा के भोजन के समय उस कक्ष में कोई नहीं रहता था। कालीनाथ अपने कमरे में बैठा गप लड़ा रहा है। अचानक याद आया कि फलाँ तरकारी में यदि हरी मिर्च मिलाकर खाया जाय तो स्वाद अच्छा होगा। तुरत वह हरी मिर्च लेकर वहाँ पहुँच जाता। बाबा को कब किस चीज की जरूरत होगी, इस ओर से कालीनाथ बराबर सतर्क रहते थे। बाबा के लिए अपने हाथ से बिछौना सजाते थे। बाबा का कोई कार्य नौकरों के जिम्मे नहीं छोड़ते थे। ऐसी सेवा बाबा का कोई भक्त या शिष्य नहीं कर सकता था। मगर उनमें एक दोष था। वे बहुत जल्द उखड़ जाते थे। उनकी इस आदत के लिए बाबा उन्हें अद्‌भुत सजा देते थे। कुछ दिनों के लिए आश्रम त्याग करने का आदेश देते थे। यह आदेश कालीनाथ के लिए जेल की सजा के बराबर था। वे बाबा की सेवा से दूर नहीं रहना चाहते थे। अक्सर ऐसी सजा पाने पर कहते—"इस बार मुझे क्षमा कर दीजिए। आपसे दूर रहना मेरे लिए संभव नहीं है।"

बाबा ने अपनी यौगिक-शक्ति का प्रदर्शन नहीं किया है, परन्तु उनके विशिष्ट भक्तों में चमत्कार जरूर हुए हैं।

बांगलादेश में नोआखाली जिले के एक गाँव में एक बालक रहता था। बचपन से ही वह धार्मिक प्रवृत्ति का था। मगर साधु-महात्माओं के सम्पर्क में आने को कौन कहे, कभी उनसे उसने उपदेश भी नहीं सुना था। अचानक एक दिन स्वप्न में उसने बाबा को देखा और अभिभूत हो उठा। स्वप्न में देखा गया सन्त कौन है और वे कहाँ रहते हैं—इस बारे में उसे कोई जानकारी प्राप्त नहीं हुई। उनके बारे में जानकारी प्राप्त करने की व्याकुलता उसके मन में निरन्तर जाग्रत होती रही।

एक अर्से बाद वह फेनी कस्बे में आया और अपने एक मित्र से इस बात की चर्चा की। बालक की जबानी बाबा के रंग-रूप तथा स्थान के बारे में जानकारी प्राप्त करने के बाद मित्र ने कहा—"शायद वे गोरखपुर के बाबा गंभीरनाथ हैं। तुम चिन्ता मत करो। बाबा के कुछ शिष्य यहाँ हैं। मुमकिन है कि इनमें से किसीके पास बाबा का चित्र हो।"

सौभाग्य से एक भक्त के यहाँ बाबा का चित्र मिला। उसे देखते ही बालक ने कहा—"इन्हींको मैंने स्वप्न में देखा था।"

अब प्रत्यक्ष रूप से उन्हें देखने की व्याकुलता उसके मन में उत्पन्न हुई। फेनी से गोरखपुर जाने का किराया उसके पास नहीं था। उसकी तीव्र इच्छा देखकर लोगों ने मदद दी। तीसरे दिन वह गोरखपुर पहुँचा। उस समय रात के तीन बजे थे। स्टेशन से इक्के पर गोरक्षनाथ-मठ में आया तो देखा—बाबा एक खटिया पर बैठे हैं। पास ही एक लालटेन जल रही है। बाबा को प्रणाम करते ही उन्होंने कुशल समाचार पूछा और उसके लिए सोने का प्रबंध कर दिया। उसे लगा कि इतनी रात को लालटेन जलाकर बाबा उसके लिए प्रतीक्षा कर रहे थे।

इसी प्रकार मैमनसिंह का एक बंगाली बालक जो कि योगियों के सम्पर्क में रहता था, नित्य उनके साथ भजन गाता था। एक दिन ध्यान करते समय उसके हृदयपट पर एक महापुरुष का चित्र उभड़ आया। यह महापुरुष कौन हैं ? क्या वे जीवित हैं ?

कुछ दिनों बाद घटना-क्रम से वह बाबा के एक शिष्य के घर गया। वहाँ उनके चित्र को देखकर चौंक उठा। इन्हीं बाबा की मूर्ति को उसने देखा था। शिष्य से पूछने पर पता चला कि बाबा गोरखपुर में रहते हैं। बालक होने के कारण वह अकेला गोरखपुर नहीं जा सका। कुछ दिनों बाद बाबा के एक भक्त के साथ वह गोरखपुर बाबा के आश्रम में आया।

कुमिल्ला के एक डॉक्टर ने स्वप्न देखा कि वे एक अपरिचित स्थान पर खड़े हैं। अचानक एक महापुरुष उन्हें बड़े स्नेह के साथ बुलाकर एक कमरे में ले गये और वहीं उन्हें दीक्षा दी। यह महापुरुष कौन हैं, कहाँ रहते हैं, कैसे उनसे मुलाकात हो सकती है ? ऐसे अनेक सवाल उनके मन में उत्पन्न होने लगे। गोस्वामीजी के एक शिष्य उनके मित्र थे। एक दिन वे डॉक्टर साहब के यहाँ मिलने आये। उनकी अजीब हालत देखकर वजह पूछी। डॉक्टर ने अपने स्वप्न की कहानी सुनायी।

मित्र महोदय ने कहा—"आप जिस महापुरुष के बारे में वर्णन कर रहे हैं, मेरी समझ से वे गोरखपुर के महात्मा गंभीरनाथजी हैं। आप उनके पास चले जाइये।"

इस सलाह को मानकर डॉक्टर साहब सपरिवार गोरखपुर आये। मंदिर में प्रवेश करने के बाद उन्होंने अनुभव किया कि स्वप्न में इसी स्थान को देखा था। बाबा से दीक्षा लेने के बाद डॉक्टर ने अपने स्वप्न की चर्चा की। बाबा ने कहा—"तुममें जो संस्कार हैं, तुम्हारे साथ मेरा पहले का सम्बन्ध था।"

श्री शारदाकान्त बनर्जी ने अपनी भाँजी के बारे में लिखा है—श्री हरेन्द्र जब दीक्षा लेने के लिए अपनी पत्नी तथा बहन श्रीमती किरण को लेकर गोरखपुर गया था, उन दिनों मेरी बड़ी भाँजी श्रीमती हिरण्मयी देवी दीक्षा ग्रहण करने नहीं जा सकी थी। इस बात का दुःख उसे बराबर बना रहा।

इधर हरेन्द्र जब दीक्षा लेकर गोरखपुर से वापस आया तब एक दिन भोर के वक्त बड़े प्रसन्न भाव से उसने हरेन्द्र से कहा—"पिछली रात को एक सुन्दर सपना देखा है।"

हरेन्द्र ने पूछा—"क्या देखा है ?"

हिरण्मयी ने कहा—"सपने में मैंने यह देखा कि गंगा के उस पार एक पर्णकुटी में गयी हूँ। वहाँ हमारे मामा के गुरु श्रीमद् विजयकृष्ण गोस्वामी मौजूद थे। उनके सामने एक खाली आसन बिछा हुआ था। गोस्वामीजी ने मुझे देखकर पूछा—'क्या चाहिए ?' मैंने कहा—'मैं आपसे दीक्षा लेना चाहती हूँ।' गोस्वामीजी ने कहा—'मैं तुम्हारा गुरु नहीं हूँ। बाबा गंभीरनाथ तुम्हें दीक्षा देंगे। वे पाखाने गये हैं। अभी आनेवाले हैं। मैं उनसे कह दूँगा।' बाबा के आने पर गोस्वामीजी ने सारी बातें बतायीं। मेरी दीक्षा हो गयी।"

सारी बातें सुनने के बाद हरेन्द्र ने अपने कमरे से एक फोटो लाकर कहा—"देख तो जिस महापुरुष को तुमने देखा है, क्या यह वही हैं ?"

हिरण्मयी ने कहा—"हाँ, यही हैं।"

आगे चलकर उसे बाबा से दीक्षा के बाद नाम प्राप्त हुआ तो उसने कहा—"स्वप्न में यही नाम मिला था।"

श्री मनोरंजन गुहठाकुरता ने लिखा है—"मेरे एक घनिष्ठ रिश्तेदार थे। इनके पिता ने किसी विशिष्ट साधु से इन्हें दीक्षा दिलाने के लिए तैयारी की थी। इन्हीं दिनों मेरे रिश्तेदार

ने स्वप्न में एक साधु-मूर्ति देखी, वह पिता द्वारा निर्धारित साधु-मूर्ति नहीं थी। आगे चलकर जब उन्होंने बाबा गंभीरनाथ से दीक्षा ली तब उन्होंने कहा कि मैंने अपने स्वप्न में इन्हीं बाबा को देखा था।"

वास्तव में यह सब घटनाएँ 'मिराकेल' नहीं हैं। मनुष्य का हृदय-राज्य जिस प्रकार हमारी दृष्टि में अन्धकारमय है, सभी के निकट ऐसा नहीं है। जिनका चित्त संयत होता है, उनका हृदय-राज्य पर काफी प्रभाव पड़ता है। योगिराज के अनेक शिष्यों को इसी तरह दीक्षा प्राप्त हुई है। कुछ लोग तो अपने जीवनकाल में प्रत्यक्ष रूप से दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं कर सके। बेसहारा लोगों को चमत्कारिक ढंग से यात्रा-व्यय भी प्राप्त हुआ है। योग्य शिष्यों को बाबा अपनी शरण में बुलाते रहे हैं। जब कभी कोई जिज्ञासु स्वप्न की चर्चा करते हुए प्रश्न पूछता तो जवाब देते—"तुम लोगों से मेरा रिश्ता था, तुममें संस्कार था।"

सन् १९१४ में ज्ञात हुआ कि बाबा की एक आँख खराब हो रही है। डॉक्टरों की राय हुई कि इसका आपरेशन करना आवश्यक है। भक्त लोगों के दबाव और अनुरोध पर बाबा कलकत्ता आये।

बाबा कलकत्ता आये हैं, सुनकर महात्मा रामदास काठिया, बाबा के प्रधान शिष्य और हाईकोर्ट के तत्कालीन वकील श्री ताराकिशोर चौधरी (जो आगे चलकर बाबा सन्तदास के नाम से प्रसिद्ध हुए थे।) महात्मा विजयकृष्ण गोस्वामी के कई शिष्य बाबा का दर्शन करने आये। इनके अलावा बाबा के अगणित भक्तों की भीड़ जमा हो गयी।

आपरेशन के दिन से लेकर जितने दिनों तक डॉक्टरों ने उन्हें बिस्तर से उठने नहीं दिया, उतने दिनों को छोड़कर शेष दिनों तक बाबा अपने भक्तों और शिष्यों से घिरे रहते थे। कलकत्ता आगमन के कारण अनेक धर्मप्राण बंगाली भक्तों ने आपसे दीक्षा ली। इसमें कोई संदेह नहीं कि बाबा के मृदु व्यवहार तथा सजगता के कारण अधिकांश बंगाली भक्त श्रद्धा से विगलित रहते थे।

स्वयं बाबा भी अन्तर्यामी प्रभु की तरह प्रत्येक भक्त का ख्याल रखते थे। कब, किसे, क्या चाहिए, वे अपने कमरे में बैठे समझ जाते थे और उसकी पूर्ति तुरत कर देते थे। एक प्रकार से भक्तों के निकट यह चमत्कार ही था। इस प्रसंग में बाबाजी के अन्यतम शिष्य श्री बरदाकान्त बसु ने कई मनोरंजक घटनाओं का उल्लेख किया है।

"एक दिन दोपहर को भण्डारा हुआ। सभी संन्यासी खा-पीकर चले गये। ठीक उसी समय बाबा ने मुझसे कहा—'बरगद के पेड़ के नीचे कुछ उदासी संत बैठे हैं। उन लोगों ने भोजन किया या नहीं, जरा पता लगाओ।' उस दिन स्कूल में छुट्टी थी, इसलिए मैं सुबह से बाबा की सेवा में था। उदासी संतों को बाबा के पास आते नहीं देखा था और न किसीको उनके बारे में कहते सुना था।

बाबा के आज्ञानुसार मैं उदासी संतों के पास आया। पूछने पर पता चला कि वे लोग सुबह नहीं, अभी थोड़ी देर पहले आये हैं। लगभग ग्यारह बजे। आते ही भण्डारे में जाकर प्रसाद ग्रहण कर चुके हैं।

श्री मनोरंजन गुहठाकुरता, श्री चित्तरंजन गुहठाकुरता तीर्थयात्रा करते हुए गोरखपुर में बाबा का दर्शन करने आये। लगातार यात्रा करने के कारण उन्हें कई दिनों से स्नान करने

का अवसर नहीं मिला था। सिर पर तेल नहीं। मठ में तेल माँगने में संकोच हो रहा था। इसी ऊहापोह में थे कि सहसा एक सेवक इन्हें तेल-साबुन दे गया। बंगाली अपने भोजन में मछली जरूर खाते हैं। शाम के भोजन में इन्हें मछली भी खाने को मिली।

गोरखपुर के डॉक्टर श्री कान्तिचन्द्र सेन बाबा के शिष्य नहीं थे, परन्तु भक्त थे। दूसरी ओर बाबा के चिकित्सक भी थे। कान्ति बाबू के घर में जब कोई बीमार पड़ता और एलोपैथी तथा आयुर्वेदिक दवा से अच्छा नहीं होता था तब बाबा कभी भभूत और कभी 'आशापूरी धूप' दे देते थे। इससे रोगी अच्छा हो जाता था।

एक बार कान्ति बाबू की पुत्रवधू प्रसव-काल में तीन दिन तक बेहोश पड़ी रही। मिडवाइफ तथा डॉक्टरी सहायता से कोई लाभ नहीं हुआ। लाचारी थी, कान्ति बाबू बाबा की शरण में आये। बाबा ने थोड़ी भभूत दी। भभूत के सेवन से प्रसव सकुशल हो गया। जच्चा-बच्चा दोनों स्वस्थ हो गये।

इसी प्रकार एक बार कान्ति बाबू का छोटा लड़का सन्निपात का शिकार हुआ। इलाज से लाभ नहीं हो रहा था। दिन-दिन हालत खराब होती गयी। कान्ति बाबू ने बाबा के यहाँ आदमी भेजकर समाचार कहलवाया। बाबा ने आशापूरी धूप दिया। उसके धुएँ से बुखार दूर हो गया। कुछ दिनों बाद लड़का पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गया।

एक बार बाबा अपने शिष्यों से घिरे बैठे थे। थोड़ी देर में एक सुसज्जित गाड़ी से एक अपूर्व सुन्दरी महिला उतरी। मंदिर के भीतर जाकर साथ लाये फल-मिष्टान्न रखने के बाद उसने बाबा को प्रणाम किया। प्रणाम भी उसने दूर से ही किया और इसके बाद वापस चली गयी। लोग उस महिला को गौर से देखते रहे।

पास ही बैठे एक शिष्य को लगा कि यह महिला वेश्या थी। वेश्या का मंदिर में प्रवेश! शिष्य के मन की बात बाबा भाँप गये, बोले— "वह वेश्या जरूर है, पर है तो हिन्दू।"

कभी-कभी अपने शिष्यों पर कृपा करके उनकी रक्षा करते थे। जिन दिनों वे कलकत्ता में थे, उन्हीं दिनों उन्होंने एक बंगाली सज्जन को दीक्षा दी। कलकत्ते में उस समय एक और योगी रहते थे जो अपने यौगिक चमत्कार का प्रदर्शन कर रहे थे।

योगिराज का कहना था कि अगर कोई व्यक्ति शान्त चित्त से अपने घर पर उनका आवाहन करे तो वे उसके सामने हाजिर हो जाते हैं। यह एक ऐसा प्रलोभन था जिसके प्रति साधारण लोग सहज ही आकृष्ट हो जाते थे।

एक व्यक्ति ने ध्यान में उनका आवाहन किया। थोड़ी देर में उक्त योगी उनके सामने आकर खड़े हो गये। उन्होंने कहा—"अब मैं तुम्हें दीक्षा दूँगा।"

यह बात सुनकर वह व्यक्ति डर गया, क्योंकि वह इसके पूर्व ही बाबा गंभीरनाथ से दीक्षा ले चुका था। उसने अपनी स्थिति स्पष्ट की। योगी ने कहा—"मैं पूर्व दीक्षा को नष्ट करके तुम्हें दीक्षा दूँगा।"

इतना कहना था कि उस व्यक्ति ने पीछे कोई है, ऐसा अनुभव किया। पलटकर देखा तो बाबा गंभीरनाथ को देखा, जिनकी आँखों से चिनगारियाँ निकल रही थीं। बाबा के उस तेज को सहन न कर पाने के कारण योगी उन्हें प्रणाम कर अन्तर्धान हो गया। थोड़ी ही देर

में बाबा की मूर्ति भी गायब हो गयी। इस प्रकार बाबा अपने शिष्यों की बराबर रक्षा करते रहते थे।

जैसा कि कहा जा चुका है, बाबा कभी अपनी यौगिक शक्ति का प्रदर्शन करना पसन्द नहीं करते थे। संकटग्रस्त व्यक्तियों को वे 'भला होगा' या 'अच्छा होगा' कहकर आशीर्वाद देते थे। इस प्रसंग में एक घटना विचारणीय है।

एक बार वे भक्तों के बीच बैठे थे। किसी अंग्रेजी समाचारपत्र में यह समाचार छपा था कि एक बाबा बिना टिकट रेल से यात्रा कर रहे थे। मार्ग में जाँच होने पर टिकट चेकर ने उन्हें एक स्टेशन पर उतार दिया। इससे बाबा सख्त नाराज हो गये। इंजन के सामने कुछ दूर वे खड़े होकर देखने लगे।

इधर गाड़ी के छूटने का समय हो गया था। ड्राइवर ने गार्ड से इशारा पाकर गाड़ी स्टार्ट की, पर गाड़ी आगे नहीं बढ़ी। नीचे-ऊपर चारों ओर अच्छी तरह जाँच करने के बाद भी इंजन ने आगे बढ़ने से इनकार कर दिया। सभी लोग परेशान हो उठे। सहसा एक खलासी की निगाह बाबा पर पड़ी। उसने सोचा—हो न हो, बाबा के कारण ही गाड़ी आगे नहीं बढ़ रही है।

बाद में उन्हें जब गाड़ी पर बैठा दिया गया तब जाकर गाड़ी आगे बढ़ सकी। भक्त लोग इस प्रसंग पर वहाँ चर्चा करते हुए उक्त बाबा की प्रशंसा करने लगे।

तभी बाबा गंभीरनाथ ने कहा—'इस तरह की शक्ति दिखाकर सिद्ध महापुरुष या महायोगी होना सिद्ध नहीं किया जा सकता। इस शक्ति को प्राप्त करना कोई असाधारण बात नहीं है। यह एक विद्या है। कुछ दिनों तक प्रयत्न करने पर यह विद्या प्राप्त की जा सकती है। यथार्थ योगी और महापुरुष इसे तुच्छ समझते हैं।'

बाबा गंभीरनाथ वास्तव में नाथ-सम्प्रदाय के एक ऐसे योगी थे जिन्हें योगिराज गोरखनाथ का एकमात्र प्रतिनिधि कहा जा सकता है। वे स्वयं बाबा गोरखनाथजी को शिव का अवतार समझते थे। उनकी भगवद्गीता के प्रति अपार श्रद्धा थी। अपने भक्तों को यही सलाह देते थे कि सर्वदा भगवन्नाम की साधना करते रहना चाहिए। इस नाम से सारा कष्ट दूर हो जायगा और मोक्ष की प्राप्ति होगी। यह स्मरण रखना कि अपने अहंकार यानी मैं के परित्याग से ही शान्ति और सुख की प्राप्ति होती है।

अपने मधुर व्यवहार से बाबा ने उत्तर प्रदेश और बिहार से कहीं अधिक बंगाल की जनता को प्रभावित किया था।

२० मार्च, १६१७ ई० को बाबा का शरीर खराब हुआ। सेवा करनेवाले भक्तों ने इस बात की सूचना बंगाल के अधिकांश भक्तों को तार द्वारा दे दी। गुरुदेव की अस्वस्थता का समाचार जानकर सभी गोरखपुर आने के लिए व्याकुल हो उठे। इन लोगों के रवाना होने के पहले ही एक और तार पहुँचा—२१ मार्च, बुधवार, सन् १६१७ ई०, त्रयोदशी को सुबह सवा दस बजे योगिराज बाबा गंभीरनाथ ने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया।

●

श्री श्री ठाकुर अनुकूलचन्द्र

श्री श्री ठाकुर अनुकूलचन्द्र

"मेरे बच्चो पास आओ। मैं तुम्हें सभी पापों से उद्धार कर तुम्हें प्रभु से क्षमा दिलवाऊँगा। मैं तुम्हें मुक्ति का संदेश देने आया हूँ। तुम्हारे शोक-संतप्त हृदय को शान्ति देने आया हूँ।" आज से २५०० वर्ष पूर्व पश्चिम में ईसामसीह ने यही संदेश तत्कालीन योरोपवासियों को दिया था।

भारत में इसके पूर्व भगवान् बुद्ध ने अपने अनुयायियों को यही संदेश दिया था और बीसवीं शताब्दी में ठाकुर अनुकूलचन्द्र ने।

उन्होंने कहा था—"अगर मेरे आदेशों का पालन करोगे तो तुम वास्तव में मुक्त हो जाओगे। 'सत्य' क्या है, इसे समझ जाओगे। तुम परम पिता के पुत्र हो। शक्तिवान् हो। दुर्बलों का कोई धर्म नहीं होता। पेड़ के नीचे ताली बजाने से जिस प्रकार सभी पक्षी पेड़ पर से उड़ जाते हैं, उसी प्रकार ताली बजाते हुए संकीर्तन करने से पाप-ताप उड़ जाते हैं। कृष्ण नाम से आफत नहीं आती। शब्द ही ब्रह्म है। पृथिवी पर प्राणी का उद्भव शब्द से ही हुआ है। जैसे आजकल हालैण्ड और फ्रांस में संगीत के माध्यम से दूध अधिक मिलता है, जापान तथा योरोप के खेतों में संगीत के माध्यम से अधिक फसल मिलती है, उसी प्रकार नाम करने से मुक्ति मिलती है। नाम ही शब्द ब्रह्म का प्रतीक है, इसीसे सभी का उद्‌भव हुआ है। नाम में ही विश्व-सत्ता का परिचय है। जिस प्रकार तुम्हारी प्राणशक्ति का तोषण करने पर तुम तृप्त होते हो, उसी प्रकार भगवान् के प्रति अनुराग रखते हुए नाम-संकीर्तन करने से वे तृप्त होते हैं। जितना नाम लोगे, उतना ही सद्‌गुरु के प्रति सत्ता का वेग बढ़ेगा। इसी प्रकार प्रगति करते रहने पर 'वासुदेवं सर्वमिति' हो जाते हैं। सभी में उसी एक को देखता हूँ और उसी एक को सबमें देखता हूँ।"

अनुकूलचन्द्र केवल उपदेश ही नहीं देते थे, बल्कि वे चमत्कारों के जरिये भक्तों में अपने उपदेशों पर विश्वास भी उत्पन्न कर देते थे।

श्री नगेन्द्रनाथ भट्टाचार्य कथावाचक थे। ठाकुर का भक्त बनने के बाद उन्होंने अपने रोजगार में दिलचस्पी लेना बन्द कर दिया। हर वक्त साधन-भजन करते रहते थे। फलस्वरूप अभाव में गुजर करते थे।

एक दिन सबेरे पत्नी ने आकर कहा—"चुपचाप बैठे हो, रसोई कैसे बनेगी ? बच्चे क्या खायेंगे ?"

"क्यो ?"

"न कोयला, न तेल, न नमक, न अनाज। घर में सोलहो दण्ड एकादशी है। पास में पैसे भी नहीं हैं जो बाजार से ले आऊँ।"

भट्टाचार्य ने शान्तस्वर में कहा—"तो मैं क्या कर सकता हूँ। ठाकुर (अनुकूलचन्द्र) की जो इच्छा है, वही होगा। मैं जैसे कह रहा हूँ, उसी प्रकार ठाकुर के निकट प्रार्थना करो।"

इतना कहने के बाद वे ध्यानस्थ हो गये। थोड़ी देर बाद घर के बाहर से आवाज आयी—"क्या यही नगेन पंडित का मकान है ?"

नगेन्द्र भट्टाचार्य झट बाहर आये तो देखा—कई मजदूरों के सिर पर चावल, दाल, तेल, मसाला, घी, कई कपड़े रखे हुए हैं। महिला ने उनके हाथ में कुछ रुपये देते हुए कहा—"एक जगह आप कथा बाँचने गये थे। यह सब आपका बकाया था। इन्हें सम्हालकर रख लीजिए।"

"मेरा तो कहीं बकाया नहीं है।" इतना कहने के पश्चात् वे वहीं बैठ गये। तभी भीतर से उनकी पत्नी आयी। सारा सामान देखकर वह चकित रह गयी।

बोली—"यह सब कहाँ से आया ?"

भट्टाचार्यजी खोये हुए थे। पत्नी के प्रश्न पर चौंक उठे। फिर धीरे से कहा—"सब ठाकुर की कृपा है।"

पत्नी के जरिये बात पूरे टोले में फैल गयी। लोगों को इस घटना पर विश्वास नहीं हुआ। एक दिन किसीने व्यंग्य किया—"जब ठाकुर की तुम पर इतनी कृपा है तब उनकी कृपा के जरिये अपनी जवान बेटी का विवाह क्यों नहीं कर देते ?"

नगेन्द्र भट्टाचार्य ने कहा—"जब मेरे ठाकुर की इच्छा होगी तब निश्चित रूप में बेटी का विवाह भी हो जायगा। मैं इस ओर से निश्चिन्त हूँ।"

भट्टाचार्य का दृढ़ विश्वास काम आया। कुछ दिनों बाद पड़ोस के गाँव के एक धनवान् लड़के के साथ बेटी का विवाह बिना दहेज के हो गया। अब गाँववालों को विश्वास हो गया कि निःसन्देह नगेन्द्र भट्टाचार्य के गुरुदेव महान् साधक हैं।

भूखे को भोजन देने के अलावा ठाकुर अनुकूलचन्द्र ने अंधे को दृष्टिदान भी दिया है। काशीपुर के निवासी श्री भवानीचरण पाल नदी के किनारेवाली पगडंडी से चल रहे थे। एक तो अँधियारी रात, तिसपर ऊबड़-खाबड़ पगडण्डी। परिचित मार्ग होने के कारण आगे बढ़ते जा रहे थे। अचानक उन्हें लगा जैसे वे राह भूल गये हैं। एक ओर नदी की खाई और दूसरी ओर घना जंगल। डर के कारण गला सूख गया।

एकाएक पीछे से पदचाप की आवाज आयी। चौंककर वे बोल उठे—"कौन है ?"

जवाब आया—"मैं हूँ।"

पास आने पर उन्होंने देखा कि पगडण्डी से स्वयं ठाकुर आ रहे हैं। भवानी बाबू से उन्होंने पूछा—"क्या बात है ?"

भवानी बाबू ने कहा—"बड़ी मुसीबत में फँस गया हूँ। चारों ओर इतना घना अँधेरा है कि कुछ दिखाई नहीं दे रहा है। कैसे घर पहुँचूँगा ?"

"इसमें घबराने की क्या बात है। आराम से चले जाइये।" इतना कहने के बाद ठाकुर ने उनका आलिंगन किया। इसके बाद ठाकुर चले गये। भवानी बाबू आगे की ओर चल

पड़े। कुछ दूर जाते ही उनकी बायीं आँख से ज्योति निकलकर चारों ओर प्रकाश फैलाने लगी। उसी प्रकाश के सहारे वे सकुशल चले आये।

ठाकुर अनुकूलचन्द्र अपने भक्तों तथा शिष्यों को बराबर यही उपदेश देते थे—"नाम-कीर्तन करो। नाम-कीर्तन करने से सारी मुसीबतें दूर हो जाती हैं या कमजोर हो जाती हैं। अगर सुख चाहते हो, शान्ति चाहते हो, स्वास्थ्य चाहते हो तो नाम-संकीर्तन करो। नाम का प्रचार करो। जिसके कारण जन्म लिया है, अगर उसे भूल गये तो अनन्त जीवन में फिर नहीं मिलेगा। अहंकार करना है तो नाम का करना। हनुमान्‌जी की तरह छाती चीरकर नाम दिखाना। मुँह बन्द मत रखो। चिन्ता शक्ति लाघव नहीं होगी। काम में कोई व्याघात नहीं होगा। नाम-कीर्तन करने से अनन्त ब्रह्माण्ड को भी तुम लय कर सकते हो। नाम के जरिये एनर्जी क्रिएट करो। इससे आयु में वृद्धि होगी। अधिक सोना नहीं चाहिए। जिस प्रकार शरीर पर हल्दी पोतने से मगर का डर नहीं रहता, उसी प्रकार सत्य नाम ग्रहण करने पर बेताल पर कदम नहीं गिरते। नाम ही परम ब्रह्म है।"

आगे आप कहते हैं—"एक मुलायम आसन पर पद्मासन लगाकर बैठ जाओ या ऐसे किसी आसन पर बैठो जिसमें आराम मिले। फिर कूटस्थ में मन को डालकर रीढ़ की हड्डी को सीधा करके नाम जपो। इस प्रकार नाम जपते-जपते शब्द प्राप्त करोगे। उस शब्द को स्थिर चित्त से सुनना चाहिए, मन लगाकर सुनो। सद्‌गुरु की तलाश में भटकने की जरूरत नहीं है। नाम के लिए भटकना चाहिए और वह भी मन में विश्वास लेकर। नाम क्या है, यह जानते हो ? यह मन को अन्तर्मुखी करता है। इससे सरल उपाय कुछ भी नहीं है।"

नाम का प्रभाव निम्नलिखित घटना से स्पष्ट हो जाता है। यह सन् १९२१ की घटना है। कलकत्ता के बागबाजार में, काली कृष्ण चक्रवर्ती स्ट्रीट में पन्नालाल मुखर्जी के घर यह घटना हुई थी; जब ठाकुर द्वारा निदेशित नाम का चमत्कार देखने में आया था।

पन्नालाल के घर की एक लड़की ने एक मृत पुत्री का प्रसव किया। गर्भ में ही लड़की मर गयी थी। उसका शरीर विवर्ण हो गया था। गरम तथा ठंढे पानी से स्नान कराने पर भी कोई लाभ नहीं हुआ। नर्स ने कहा —"लड़की मर चुकी है। इसे फेंक दीजिए।"

ठीक उसी समय पन्नालाल की माता ने मृत पुत्री को गोद में लेकर ठाकुर द्वारा प्रदत्त नाम जपने लगीं। नाम जपते हुए वे बार-बार उनके नाम से प्रार्थना करने लगीं—"ठाकुर, यह लड़की मर गयी है, इसके लिए हमें कोई दुःख नहीं है, पर तुम्हारे नाम पर जो कलंक लगाया गया, यह मुझसे सहन नहीं हो सकेगा।"

धीरे-धीरे आधा घंटा बीत गया। मृत पुत्री के संस्कार के लिए लोग कफन वगैरह ले आये। घर में लोग रोने लगे। इसी समय देखा गया कि लड़की के शरीर का रंग बदल रहा है। अभी कुछ देर पहले नीला था जो अब लाल रंग में बदल रहा है। यह देखकर सभी उत्साहित हुए। सभी मिलकर नाम जपने लगे। नाम का स्वर पूरे क्षेत्र में गूँजने लगा। अचानक लड़की रो पड़ी। सभी विस्मय से अवाक् रह गये। यह नाम का प्रभाव था।

इस प्रकार की कई घटनाएँ हुई हैं। ठाकुर के एक भक्त थे—श्रीकान्त सरकार। कठिन रोग से पीड़ित थे। बचने की कोई आशा नहीं थी। शायद इसीलिए वे सपरिवार रातुल से

कुष्टिया चले आये। बड़े-बड़े डाक्टरों को दिखाया गया। होमियोपैथिक इलाज हुआ। गुरु-भाइयों ने उनके जीवन की आशा नहीं छोड़ी। वे बराबर इलाज कराते रहे।

उस रात को वीरेन्द्रनाथ राय मुख्तार, डाक्टर सतीशचन्द्र और उनके सहायक उपेन्द्रनाथ दे रोगी की सेवा कर रहे थे। वे लोग उच्चस्वर में नाम-कीर्तन कर रहे थे। सहसा इन लोगों को ज्ञात हुआ कि रोगी धराधाम छोड़ चुका है। अब क्या किया जाय ? सोचा—यह सूचना सभी को दे दी जाय, फिर यह सोचकर इन लोगों ने विचार बदल दिया कि रात अधिक हो गयी है, अब कल सबेरे इसकी सूचना दी जायगी।

उपेन्द्रनाथ दे ने कहा—"अब हम शान्तिपूर्वक भोर होने तक नाम-संकीर्तन करते रहें। नाम-संकीर्तन से मुमूर्षु व्यक्ति को भी प्राणदान मिल जाता है। शायद ठाकुर की कृपा से चमत्कार हो जाय।"

अन्य दोनों मित्रों ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर कीर्तन करने लगे। थोड़ी-थोड़ी देर बाद वे श्रीकान्त बाबू के मुँह में चरणामृत डाल देते थे। भोर के वक्त देखा गया कि श्रीकान्त बाबू की साँस चलने लगी है। नाड़ी का पता लग गया। यह देखकर तीनों व्यक्ति प्रसन्नता से नाचने लगे। उन्हें उस दिन यह ज्ञात हो गया कि नाम का कितना प्रभाव है।

सद्गुरु का बड़ा प्रभाव होता है। यही वजह है कि योगी पुरुष आधार देखकर शिष्य बनाते हैं। अगर शिष्य अपने गुरु के बताये जप-साधन को पूर्ण नहीं करता या उनकी आज्ञा का पालन नहीं करता तो उसे गुरु को ही पूर्ण करना पड़ता है वर्ना शिष्य संकट में फँस जाता है। दूसरी ओर भक्तों और शिष्यों के संकट को दूर करने का अर्थ यह है कि ईश्वर-प्रदत्त नियम में व्यवधान डालना, जिसके कारण गुरुओं को कष्ट झेलना पड़ता है। परमहंस रामकृष्ण को कैंसर, जगद्गुरु शंकराचार्य को भगन्दर तथा विजयकृष्ण गोस्वामी को रोगी बनना पड़ा था। ठाकुर अनुकूलचन्द्र भी कई बार शिष्यों को रोग से मुक्ति दिलाने पर पीड़ित हुए थे।

ठाकुर अपने एक भक्त के यहाँ ठहरे हुए थे। वहीं सतीशचन्द्र गोस्वामी नामक दूसरे भक्त ठाकुर का दर्शन करने आये। प्रणाम करते समय कमर की पीड़ा से कराह उठे। यह देखकर ठाकुर ने पूछा—"क्या बात है, सतीश दादा ?"

सतीशचन्द्र ने ठाकुर के दोनों पैरों को पकड़ते हुए कहा—"अब इस बात की चर्चा मत कीजिए।"

मगर ठाकुर सारी बात समझ गये। इसके बाद दोनों व्यक्ति जलपान करने बैठे और तभी चमत्कार हुआ। जलपान के पश्चात् सतीशचन्द्र गोस्वामी तड़ाक से खड़े हो गये। लगा, जैसे वे कमर-दर्द से पीड़ित ही नहीं थे जब कि ठाकुर की हालत खस्ता हो गयी। कमर-दर्द के कारण वे खड़े नहीं हो पा रहे थे।

उनकी दशा देखकर गोस्वामीजी ने कहा—"मैंने आपसे पहले ही कहा था कि मेरे दर्द की बात न पूछें। मेरा दर्द तो ठीक हो गया, अब आप उस दर्द से परेशान हो गये।"

इसी भवन में रहते समय एक बार वे बुखार से पीड़ित हुए। इलाज से ठीक नहीं हो रहा था। भक्त डा० सतीशचन्द्र जोयारदार ने पूछा—"यह आपको क्या हो गया ?"

"मुझे तपेदिक हो गया है।"

डा० सतीशचन्द्र ने कहा—"यह रोग नाममय शरीर में हो नहीं सकता। उसके सभी विषाणु अपने-आप नर जायँगे।"

ठाकुर ने कहा—"एक व्यक्ति को हुआ था। उसने प्रार्थना की कि यह रोग ले लो, मुझसे सहा नहीं जा रहा है। तुम सहन कर लोगे। उसकी प्रार्थना के कारण यह रोग हो गया।"

इस रोग के कारण वे लगभग तीन माह तक कष्ट पाते रहे। कई जगह हवा-पानी बदलने पर भी स्वस्थ नहीं हुए। अन्त में हिमायतपुर आये तब उनका रोग दूर हुआ। इसी गाँव में आपका जन्म हुआ था।

आपके पिता का नाम शिवचन्द्र चक्रवर्ती और माता का नाम मनमोहिनी देवी था। आपके पिता कुशल प्रशासक, दयालु, परोपकारी, क्षमाशील एवं कर्मठ व्यक्ति थे। अपने इन गुणों के कारण वे अपने इलाके में गण्यमान्य माने जाते थे। छुआछूत या ऊँच-नीच की भावना को वे घृणा की दृष्टि से देखते थे।

कहा जाता है कि अपने मझले लड़के के विवाह के अवसर पर किसी अस्पृश्य जाति के लड़के से पानी माँगकर पी लिया था। उनके इस अपराध के कारण बिरादरीवालों ने इन्हें जातिच्युत करने का निश्चय किया। शिवचन्द्रजी ने अपने विरोध की कोई चिन्ता नहीं की। वे अपने निश्चय पर अटल रहे।

इसी परिवार में अनुकूलचन्द्र का जन्म १४ सितम्बर, सन् १८८८ ई० में हुआ था। दिन था—शुक्रवार। उस दिन बंगाल में 'ताल नवमी' का उत्सव मनाया जा रहा था। मनमोहिनी देवी के गुरु थे—उत्तर भारत के महान् योगी श्री श्री हुजूर महाराज। अनुकूल के जन्म के पहले ही उनका तिरोधान हो गया था। मनमोहिनी देवी ने अपने पुत्र के बारे में हुजूर महाराज के शिष्य सन्त महाराज सरकार को विस्तार से सूचना दी। महाराज के आदेशानुसार माता ने बालक अनुकूलचन्द्र को दीक्षा दी।

अनुकूलचन्द्र के जन्म के पूर्व एक संन्यासी भिक्षा माँगने मनमोहिनी देवी के दरवाजे पर आया था। भिक्षा लेने के बाद उसने कहा—"बेटी, तुम्हारा प्रथम पुत्र महापुरुष होगा। पूर्णानन्द दान करेगा। सत्संग से तुम्हारा भवन कोलाहलपूर्ण बन जायगा।"

दीक्षा देने के साथ ही बालक संज्ञाहीन हो गया। होश में आने पर उन्होंने कहा—"मैंने एक दाढ़ीवाले ज्योतिर्मय पुरुष को अपने चारों ओर खड़ा देखा। जिधर देखता, उधर ही वे दिखाई देते थे। आपने जो नाम सुनाया, इसे तो आपके गर्भ में रहते समय सुन चुका हूँ।"

आश्चर्य की बात यह हुई कि इधर माँ ने अपने बेटे को दीक्षा दी और उसी परम सन्त सरकार ने अपने प्रिय शिष्य श्री आनन्दस्वरूप से कहा—"आज मेरा काम हो गया।" इस कथन के कुछ दिनों बाद वे स्वर्गवासी हो गये।

अन्नप्राशन के समय इनके सामने मिट्टी का ढोंका, पुस्तक और रुपये रखे गये थे। बालक ने मिट्टी का ढोंका और पुस्तक को स्पर्श किया। यह देखकर पंडित ने कहा—"यह बालक आगे चलकर भूस्वामी, त्यागी और विद्वान् होगा।"

इसी अवसर पर माँ ने बालक का नाम अनुकूलचन्द्र रखा। केवल यही नहीं, 'अ नु कू ल' अक्षरों के आधार पर चार पंक्तियों की कविता लिखी—

अकूले पड़िले दीन हीन जने
नुयाइओ शिर कहिओ कथा
कूल दिते तारे सेध प्राणपंणे
लक्ष्य करि तार नाशिओ व्यथा ।

बचपन से ही आप मेधावी थे । हर वक्त हाथ में एक लाठी लेकर घूमते थे । पेड़-पौधे से लेकर हर किसीको जिसे सामने पाते, उसी पर रोब जमाते थे । इनकी इस आदत को देखकर लोगों ने इन्हें 'गाड़ीवान' कहना प्रांरभ किया था ।

इसमें कोई संदेह नहीं कि शिशु-अवस्था से ही आपमें अलौकिक प्रतिभा उत्पन्न हो गयी थी । अपनी ऐशी शक्ति के माध्यम से अनहोने काण्ड कर बैठते थे । एक बार आप अपनी माँ तथा नानीमाँ के साथ नाव द्वारा कहीं जा रहे थे । अचानक हवा तेज हो गयी । पद्मा नदी की ऊँची-ऊँची तरंगें उछलने लगीं । नाव और उस पर सवार लोगों की हालत नाजुक हो गयी ।

तभी बालक अनुकूल ने माझियों से कहा—''नाव तुरत किनारे लगाओ ।''

तीन वर्ष के बालक की चेतावनी काम कर गयी । नाव मँझधार से किनारे आने लगी । नाव में पानी भरता जा रहा था । ज्योंही नाव किनारे लगी त्योंही नाव पानी के बोझ से डूब गयी ।

इसी प्रकार एक बार माँ आपको गोद में लेकर अपने पड़ोसी के बीमार बच्चे को देखने गयी । बीमार बच्चे को देखते ही बालक अनुकूल ने कहा—''यह केवल १८ दिन जीवित रहेगा ।'' बात सही प्रमाणित हुई ।

गाँव के मुकुन्दलाल बसु के बाग में बच्चे उपद्रव किया करते थे, जिसके कारण वे नाराज होकर मारने दौड़ते, गालियाँ देते थे । एक दिन बालक अनुकूल ने कहा—''इस लोक के बाग की हिफाजत करने से अच्छा है कि आप परलोक के बाग की हिफाजत करें ।''

कहने की आवश्यकता नहीं कि कुछ दिनों के भीतर वे परलोक में बाग की रखवाली करने चले गये ।

मछुओं का तालाब से मछली पकड़ना उन्हें पसंद नहीं था । इसे वे साफ जीव-हत्या समझते थे । अक्सर वे मछुओं से पकड़ी गयी सारी मछलियाँ खरीदकर पुनः तालाब में छोड़ देते थे । लेकिन इससे समस्या हल नहीं हुई । इससे मछुओं को लाभ होता था ।

अन्त में एक दिन उन्होंने भगवान् से प्रार्थना की—''हे ईश्वर, इस तालाब को सुखा डालो । '' कुछ ही दिनों के भीतर तालाब सूख गया ।

दयालु इतने थे कि किसी गरीब बच्चे को तन ढकने के लिए कपड़े का अभाव देखते तो स्वयं अपने सारे कपड़े उतारकर उसे दे देते और पूर्ण रूप से नंगे होकर घर वापस आ जाते थे ।

गाँव की स्कूली शिक्षा समाप्त कर आप पाबना इंस्टिच्यूट में भर्ती हुए । वहाँ से आपने मेडिकल कालेज में दाखिला लिया । उन दिनों पिताजी ने आपको अमूल्य शिक्षा देते हुए कहा था—''तुम्हारे पास अच्छे घराने के लड़के बराबर आते हैं, यह अच्छी बात है । तुम्हें उन

लोगों के स्वागत-सम्मान का ध्यान रखना चाहिए। मेरे कहने का उद्देश्य यह है कि तुम मन लगाकर डाक्टरी पढ़ो। बाद में अच्छे ढंग से रोजगार करो। घर के सभी लोग आराम से खा-पी सकें, पहन सकें, इस ओर ध्यान रखना तुम्हारा कर्त्तव्य है। तुम्हें ठगकर कोई अपना स्वार्थ सिद्ध करे, इसे कभी सहन मत करना। यह लक्ष्य बराबर रखना कि तुम्हारे जरिये लोगों का भला हो। साथ ही यह भी ध्यान रखना कि उपकृत व्यक्ति साँप की तरह डस न ले। उसका उपकार इस प्रकार करना ताकि वह तुम्हें नुकसान न पहुँचा सके।"

अनुकूल ठाकुर ने अपने बचपन के बारे में कहा है—"जब मुझे काफी तकलीफ होती थी तब मैं 'माँ-माँ' कह उठता था। उस वक्त काली माता आतीं। मेरे साथ बातें करतीं, मेरे सिर पर हाथ फेरती थीं। इससे मुझे शान्ति मिलती थी। काली माता को देखने पर मुझे ऐसा आभास होता था जैसे उनमें और मेरी माँ में कोई अन्तर नहीं है। शायद इसीलिए अपनी माता के प्रति मेरा आदर अधिक बढ़ गया था। बचपन में हमारी हालत अच्छी नहीं थी। नौकरों के साथ मैं भी नारियलों का बोझा लादकर चला करता था। सिर पर भारी बोझ रहने के कारण ठीक से चल नहीं पाता था। उस समय कातर स्वर में माँ-माँ कह उठता था और तब सहसा मेरे सिर का बोझ हल्का हो जाता था। मेरी काली माता उस बोझ को अपने सिर पर लाद लेती थीं। मुझे आगे बढ़ने में कोई कठिनाई नहीं होती थी। मैं यह अनुभव करता कि अब मेरे सिर पर कोई बोझ नहीं है।"

ठाकुर ने अपने बचपन की गरीबी का जिक्र किया है। वास्तव में उन दिनों वे आर्थिक कठिनाइयों से गुजर रहे थे। जिन दिनों आप मेडिकल कालेज में अध्ययन कर रहे थे, उन दिनों आपकी स्थिति काफी खराब थी। दाने-दाने को मुहताज थे। एक मित्र के मेस में कुछ दिनों तक रहने के पश्चात् आप ग्रे स्ट्रीट स्थित कोयले के गोदाम में आकर रहने लगे। कभी फुटपाथ पर तो कभी सियालदह स्टेशन के प्लेटफार्म पर 'हितवादी' अखबार बिछाकर सोते थे। खाने-पहनने का अपार कष्ट आपने सहन किया है। अध्ययन के लिए स्ट्रीट लाइट के नीचे खड़े होकर पढ़ते थे। जाड़े के दिनों में हलवाई की भट्ठी के पास रात गुजारते थे। भूखे पेट सोना और तपती दोपहरी में नंगे पाँव पैदल चलते थे। पुस्तक खरीदना दूर की बात, एक कलम तक नहीं खरीद पाते थे। इस परिस्थिति में भी लोगों की सेवा करते हुए दृढ़ता के साथ जीवन से संघर्ष करते रहे। इन्हें अछूतों से घृणा नहीं थी। इनका कहना था कि "अछूत भी भगवान् के पुत्र हैं। जाति-भेद का निर्माण हमने किया है। कुलियों को सिर पर बोझ उठाते देख मुझे अपार कष्ट होता था। मैंने भी कुली का काम किया है। कुली लोग मुझे बहुत मानते थे।"

आपका विवाह १७ वर्ष की उम्र में हो गया था। आपकी पत्नी का नाम सरसीबाला (षोड़शीबाला) था। जिस दिन आपके विवाह की बात पक्की हुई, उस दिन आपकी नानी ने बतासे से अपना तुलादान करवाकर मुहल्ले में बँटवाया था।

पिताजी जब तक जीवित थे तब तक आपको कोई कष्ट नहीं हुआ, परन्तु उनके निधन के बाद परिवार पर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा। अत्यन्त धैर्य के साथ आप आनेवाले संकटों से जूझते रहे।

मेडिकल कालेज से पास होकर आप अपने गाँव चले आये। एलोपैथिक के साथ-साथ होमियोपैथी दवाओं का प्रयोग करते रहे। कुछ दिनों बाद आपकी ख्याति चारों ओर फैल

गयी। अब आपने उन गरीब और असहाय लोगों की सेवा शुरू की जिन्हें समाज उपेक्षित दृष्टि से देखता था। उनके इस कार्य से समाजपतियों का दल रुष्ट हो गया। लेकिन आप इस ओर से निर्विकार रहे। इन्हीं लोगों की सहायता से आपने कीर्त्तन-मंडली स्थापित की।

धीरे-धीरे यह मंडली विशाल बन गयी। इनके इस कार्य से माता भी अप्रसन्न हो गयी थी। लेकिन एक दिन जब पुत्र को भावाविष्ट होते देखा तो समझ गयीं कि मेरा पुत्र आध्यात्मिक जगत् में उच्चस्तर तक पहुँच गया है। वे अपनी मंडली लेकर पूरे शहर में कीर्त्तन करते रहे। आपकी संगठन-शक्ति देखकर पाबना शहर के लोग चकित रह गये।

इसी बीच एक घटना और हो गयी। माता तथा परिवारवालों के दबाव के कारण आपने अपनी पत्नी की बहन सर्वमंगला से विवाह किया। षोड़शीबाला को भक्त लोग बड़ी माँ और सर्वमंगला को छोटी माँ कहते थे।

अनुकूल ठाकुर ने नारा दिया—"मेरे पास आओ, चाहे तुम सिक्ख हो या बौद्ध, जैन हो या ईसाई, मुसलमान हो या अछूत, चाहे चाण्डाल हो। मेरे पास आओ, मैं तुम्हें मार्ग बताऊँगा। शान्ति दूँगा। अगर तुम अपना कल्याण चाहते हो तो साम्प्रदायिक भेदभाव भुलाकर एक हो जाओ। तुम्हारे कारण राष्ट्र है। जब तक जन-जीवन सुनियंत्रित नहीं होगा तब तक राष्ट्र दृढ़ नहीं होगा, मानवता का कल्याण नहीं होगा। अपने में आध्यात्मिक चेतना जाग्रत करो। मनुष्य की सेवा करो।"

कभी-कभी भक्तगण अपने गुरु की शक्ति आजमाने के लिए नाटक करते थे। कुछ लोगों को उनकी ऐशी-शक्ति पर सन्देह होता था। एक बार कोकनचन्द्र ने अपने मित्र किशोरीमोहन से कहा—"आज ठाकुर की परीक्षा लेनी चाहिए।"

उस दिन किशोरीमोहन के यहाँ 'नवान्न-भोग' का आयोजन किया गया था। ठाकुर की परीक्षा लेने के लिए दो जगह आसन बिछाकर दोनों स्थानों पर भोग दिया गया। प्रथम भोग पागल हरनाथ (एक योगी पुरुष) के नाम पर तथा दूसरा भोग ठाकुर अनुकूलचन्द्र को समर्पित किया गया। भोग समर्पित करने के बाद दोनों व्यक्ति इस बात की प्रतीक्षा करने लगे कि ठाकुर स्वतः अपना भोग खाने के लिए आते हैं या नहीं। अगर आते हैं तो अपना भोग खायेंगे या नहीं।

काफी देर प्रतीक्षा करने के बाद भी जब ठाकुर नहीं आये तब कोकनचन्द्र उन्हें बुलाने के लिए गये। किशोरीमोहन के घर से ठाकुर के घर की दूरी पाँच मिनट का रास्ता है। कोकनचन्द्र जब ठाकुर के घर पहुँचे तो पता चला कि अभी तुरत वे किशोरीमोहन के यहाँ गये हैं। यह समाचार सुनते ही तेजी से कोकनचन्द्र वापस आ गये। आज वे ठाकुर की शक्ति-परीक्षा करनेवाले थे।

ठाकुर ने कहा—"किशोरी, आज तो काफी इंतजाम किया है। क्या कुछ खिलाओगे ?"

"जरूर खिलाऊँगा।"

"सचमुच खिलाओगे ?"

"हाँ, सचमुच खिलाऊँगा। आइये।"

"अरे, यह तो दो जगह भोग रखा है। कौन-सा खाऊँ ?"

"इसमें से जो पसन्द आये, उसे खाइये।"

"नहीं भाई, तुम नाराज हो जाओगे।"

"हम नाराज नहीं होंगे। आपको जो पत्तल पसन्द आये, उसीका भोग लगायें।"

ठाकुर ने सबसे पहले हरनाथजी को निवेदित पत्तल पर से ढक्कन हटाया। यह देखकर कोकनचन्द्र प्रसन्न हो उठा कि ठाकुर की उस्तादी अब पकड़ लूँगा। इधर ठाकुर ने उस पत्तल पर ढक्कन ढाँकते हुए कहा —"इस पत्तल का भोग नहीं, खाऊँगा, वर्ना तुम लोग नाराज होगे।"

किशोरीमोहन ने कहा—"आप खाइये, हम कुछ नहीं कहेंगे।"

ठाकुर ने हरनाथजी को निवेदित भोग को ढँककर अपने नाम पर निवेदित पत्तल से खाते हुए बोले —"यही मेरा है भाई, यही मेरा है।"

यह दृश्य देखकर दोनों भक्त श्रद्धा से विगलित होकर प्रेमाश्रु बहाने लगे।

उस दिन स्टीमरघाट से लौटते समय एक हलवाई की दुकान पर खजूर का संदेश (एक प्रकार की मिठाई) दिखाई दिया। उन्होंने सोचा—कितनी सुन्दर मिठाई है। ठाकुर को खिलाना चाहिए। वे दोनों संदेश को खरीदकर घर ले आये। घर आते ही पुनः उनके मन में ठाकुर की परीक्षा लेने की इच्छा उत्पन्न हुई।

उन्होंने सोचा कि आज अगर ठाकुर बिना बुलाये मेरे घर आकर, संदेश माँगकर खायेंगे तभी समझूँगा कि वे वास्तव में अलौकिक योगी हैं ....।

मन में यह विचार आते ही उन्होंने दोनों संदेश को एक चित्र के पीछे छिपा दिया। कुछ देर बाद ठाकुर आये। कीर्त्तन करने के बाद वे अपने घर चले गये। यह देखकर किशोरीमोहन को आश्चर्य हुआ कि आज ठाकुर ने संदेश माँगा नहीं और न खाया। आखिर यह कैसे हो गया?

किशोरीमोहन इसी चिन्ता में बैठे थे कि पुनः ठाकुर आये और कहा—"डाक्टर बाबू, जरा मुझे पानी पिला सकते हो?"

डाक्टर ने कहा—"पानी पीना रहा तो घर जब चले गये थे तब वहीं पी लेते। यहाँ क्यों वापस आ गये?"

"नहीं भाई, तुम पानी पिला दो।"

"यहाँ क्यों पानी पिओगे?"

"तुम्हारे यहाँ पानी पीने की इच्छा हुई, इसीलिए वापस आ गया।"

किशोरीमोहन ने एक गिलास पानी दिया। गिलास हाथ में लेकर ठाकुर ने कहा—"खाली पानी पिलाओगे। कुछ दो, उसे खाकर पानी पिऊँ।"

"क्या चाहिए?"

"तुम्हारे घर जो हो।"

"मेरे घर में कुछ नहीं है।"

यह बात सुनकर ठाकुर ने कहा—"ऐसा हो नहीं सकता। जो कुछ हो, ले आओ।"

"कह तो रहा हूँ कि कुछ नहीं है।"

"मीठा वगैरह?"

"मीठा कहाँ है ?"

"अरे वही, संदेश।"

"संदेश कहाँ से आयेगा ?"

"दो संदेश हैं।"

"मेरे पास संदेश कहाँ से आयेगा ? अब पानी पी लो।"

ठाकुर ने कहा—"मेरे हिस्से का खजूर के गुड़ का दो संदेश है। उसे चटपट ले आओ।"

अब डाक्टर किशोरीमोहन चौंके। फिर भी कृत्रिम ढंग से बोले—"संदेश-फंदेश नहीं है।"

अब ठाकुर उनसे लिपटकर दुलार करते हुए चित्र के समीप गिर पड़े। इसके बाद कागज की पुड़िया की ओर इशारा करते हुए पूछा—"इसमें क्या है ?"

"तंबाकू।"

"तंबाकू ? वह भी तसवीर के पीछे ?" कहते हुए उन्होंने उस पुड़िया को निकाला। उसमें संदेश देखते ही खाने लगे।

यह दृश्य देखकर डाक्टर किशोरीमोहन आनन्द से गद्‌गद होकर ठाकुर के चरणों पर गिर पड़े।

बड़े-बूढ़े कहते हैं—'पानी पीजिए छानकर और गुरु बनाइये जानकर।' कुछ शिष्य गुरुओं की प्रतिभा जाँचने के लिए इस प्रकार की घटनाएँ करते हैं, पर सद्‌गुरुओं से छल नहीं किया जा सकता।

सद्‌गुरु की व्याख्या करते हुए ठाकुर ने कहा—"जाँचकर ही सद्‌गुरु बनाना चाहिए। उन्हें भगवान् समझकर पूजा करनी चाहिए। यही वास्तविक पूजा है। सद्‌गुरु का सारूप्यलाभ होने पर भगवान् का सारूप्यलाभ होता है। हमारे यहाँ के गुरु अगर प्रेममय होते, कर्मी होते, उदार होते तो हमारा देश ऐसा न होता। एक बार जो मेरी शरण में आता है, उसे किस बात की चिन्ता ? वह निश्चित रूप से ब्रह्म में लीन होगा। एक बार अगर वह स्पर्श कर लेता है तो प्राण-मन से उसके अज्ञात में उसे स्वर्गराज्य में भेज देता हूँ। बाद में वह मेरा ही सारूप्यलाभ करता है। सत्य के विरुद्ध कमाण्ड करना, सद्‌गुरु के अन्तर से कदापि नहीं हो सकता और न वह 'मिरकेल' करते हैं। अगर वे ऐसा करते हैं तो वे सद्‌गुरु नहीं हैं। भगवान् को पाना कठिन नहीं है। सद्‌गुरु पाना ही कठिन है। समय होने पर सद्‌गुरु मिलते हैं, वे ही भगवान् होते हैं। सद्‌गुरु खोजने की जरूरत नहीं है, बल्कि विश्वास को खोजना चाहिए। जब मुझमें मेरा गुरु हुआ तब मैं सद्‌गुरु हुआ। कूटस्थ में सद्‌गुरु का ध्यान करते-करते मुझमें लय हो जाता है और तब मुझमें समा जाता है।"

अनुकूल ठाकुर इतने लोकप्रिय हो गये थे कि सामान्य-से-सामान्य व्यक्ति भी उनके निकट आसानी से पहुँच जाता था और उनके उपदेशों से प्रभावित हो जाता था। आपके भक्तों में देशबन्धु चित्तरंजनदास, सुभाषचन्द्र बोस की माँ तथा तत्कालीन अनेक कथाकार, कवि, नाट्यकार एवं प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। आपने केवल संतों की तरह उपदेश ही नहीं दिया, बल्कि सामान्यजनों के जीविका-निर्वाह के लिए लघु उद्यमों की स्थापना भी की। यही वजह है कि न केवल देश के लोग, बल्कि अनेक विदेशी भी आपसे दीक्षा लेकर शिष्य बने।

शिष्यों में इस बात का कौतूहल था कि आखिर आप इतने सरल प्रकृति के होते हुए अतिमानव कैसे बने । इस कौतूहल को मिटाने के लिए शिष्यों ने मोहिनीमोहन शास्त्री को बुलाना चाहा । शास्त्रीजी अपने जमाने के प्रसिद्ध ज्योतिषी थे । ठाकुर के निकट भक्तों ने अपनी इच्छा प्रकट की । उन्होंने कहा कि ठीक है, बुला लो ।

पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि शास्त्रीजी कुष्टिया में नहीं हैं । ग्वालन्दो के राजा के यहाँ गये हुए हैं । भक्त लोग उदास हो गये ।

इधर राजमहल में रहते समय शास्त्रीजी का मन न जाने क्यों उखड़ गया । हृदय के भीतर से मानो कोई कहने लगा—चलो कुष्टिया—चलो कुष्टिया । राज-परिवार के सदस्यों ने काफी मनाया, पर वे नहीं माने । एक अज्ञात आकर्षण उन्हें बराबर आकर्षित करने लगा ।

सहसा उस दिन भक्तों को ज्ञात हुआ कि राजज्योतिषी मोहिनीमोहन कुष्टिया आ गये हैं । तुरत कुछ लोग उनके पास गये और ठाकुर के पास ले आये । भक्तों की इच्छा थी कि मोहिनीमोहन को ठाकुर का हाथ दिखाया जाय । लेकिन ठाकुर इसके लिए राजी नहीं हो रहे थे । काफी अनुनय-विनय करने पर राजी हुए ।

ठाकुर ने कहा—"मेरा हाथ देखना चाहते हो, ठीक है । क्या तुम देख लोगे ?"

शास्त्रीजी ने कहा—"आपकी इच्छा होने पर जरूर देख सकूँगा ।"

"ठीक है । लो, देखो ।" ठाकुर ने अपना हाथ बढ़ाया ।

शास्त्रीजी ने ठाकुर का हाथ पकड़कर देखा तो वे भौचक्के रह गये । असाधारण रेखाएँ थीं । अब तक अपने जीवन में हजारों लोगों की हस्तरेखाएँ देख चुके थे, पर ऐसी रेखाएँ किसी हाथ में नहीं देखीं । इसके साथ ही उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि रेखाएँ अपना स्वरूप दनादन बदल रही हैं । अब वे बतायें तो क्या बतायें ।

इधर भक्तगण उत्सुकता के साथ शास्त्रीजी की ओर देख रहे थे । अन्त में शास्त्रीजी को कहना पड़ा —"देखिये, मैंने जीवन में अनेक लोगों की हस्तरेखाएँ देखी हैं, पर ऐसा हाथ आज पहली बार देख रहा हूँ । ठाकुर के बारे में कुछ भी कहने का सामर्थ्य मुझमें नहीं है, क्योंकि आपकी रेखाएँ देखते-देखते इतनी तेजी से बदल रही हैं जो मेरी पकड़ के बाहर हैं । आप लोग मुझे क्षमा करें ।"

इधर शास्त्रीजी अपना निर्णय दे रहे थे और उधर ठाकुर मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे ।

शास्त्रीजी जब अपने घर लौटे तब मन में अपार श्रद्धा की भावना लेकर लौटे । कुछ दिनों बाद वे स्वयं अस्वस्थ हो गये । काफी दिनों तक इलाज होता रहा, पर बुखार दूर नहीं हो रहा था । आखिर एक दिन किसी भक्त के सुझाव पर वे ठाकुर के पास आये । ठाकुर उनकी पीड़ा को सुनने के बाद बोले —"आइये, आज आपको मैं नहला दूँ ।"

उपस्थित सभी लोग घबराये । इतने तेज बुखार में स्नान ? एक तो शास्त्रीजी का शरीर कमजोर है । लेकिन शास्त्रीजी घबराये नहीं । उन्हें ठाकुर के चमत्कार पर दृढ़ विश्वास था ।

ठाकुर ने उन्हें खूब नहलाया । स्नान करने के बाद शास्त्रीजी ने कहा—"जो बुखार पिछले एक माह से दूर नहीं हो रहा था, आज वही ठाकुर की कृपा से गायब हो गया । अब मैं आज से भात खा सकूँगा ।"

वास्तव में ठाकुर के योगैश्वर्य को समझना कठिन था । कब, कहाँ, कैसे वे भक्तों पर

कृपा करेंगे, कोई नहीं जान पाता था। मुसीबत के वक्त सच्चे हृदय से पुकारिये, बस वे वहाँ देवदूत की तरह हाजिर हो जाते थे।

कुष्टिया से कुछ भक्त नाव द्वारा हिमायतपुर आ रहे थे। शाम के समय रवाना हुए थे। रात को पद्मा नदी में नौका चल रही थी। बरसात का मौसम होने के कारण नदी का पाट पाँच मील तक फैल गया था। हवा के कारण रह-रहकर उत्ताल तरंगें नृत्य कर रही थीं। ठीक इसी समय आँधी आयी। बंगाल में और खासकर पद्मा नदी के इलाके के लिए यह रोजमर्रा की घटना है। देखते ही देखते घना अंधकार हो गया।

मल्लाहों ने कहा—"अब मुश्किल है कि किधर नाव चलायें। नाव इतना चक्कर काट चुकी है कि किस दिशा से आये और किधर जाना है, समझ में नहीं आ रहा है।"

आँधी के झटके के कारण नाव काफी उछल रही थी। मल्लाहों की बातें सुनकर सभी यात्री घबराने लगे। इधर नाव की हालत नाजुक होने लगी। तरंगों के छींटों से नाव में पानी भरने लगा। झटका खाकर लोग एक-दूसरे पर गिरने लगे।

मल्लाहों ने कहा—"खुदा का नाम लो। कयामत आ गयी है। बचना मुश्किल है।"

आसन्न संकट से सभी घबरा उठे। मल्लाहों ने नाव खेना बन्द कर दिया। नौका अपनी इच्छा के अनुसार चलने लगी। नाव पर बैठे भक्त मन ही मन ठाकुर को याद करने लगे।

ठीक इसी समय दूर कहीं से प्रकाश हिलता नजर आया। यात्रियों ने कहा—उस प्रकाश की ओर नाव ले चलो। प्रकाश की ओर से हरि-ध्वनि की आवाजें आ रही थीं। पास आने पर देखा गया कि कमरभर पानी में खड़े ठाकुर लालटेन हिला रहे हैं।

सभी यात्रियों ने सकुशल किनारे उतरकर ठाकुर के चरणों में प्रणाम किया। ठाकुर ने सभी को गले लगाया। लोगों को समझते देर नहीं लगी कि आज ठाकुर की कृपा से ही हम लोगों की जीवन-रक्षा हुई है।

ठाकुर के भक्तों ने उनके उपदेशों का संकलन किया है। लगभग सौ से अधिक पुस्तकें हैं। असमी, बंगाली, हिन्दी और उड़िया भाषा में जीवनी तथा उपदेश प्रकाशित हुए हैं। देवघर में आपका बहुत बड़ा आश्रम है। देश में लगभग १५ लाख से अधिक आपके भक्त हैं।

२७ जनवरी, सन् १९६९ ई० की रात को जब सारा जग सो रहा था, उस समय अनेक भक्त बड़ी उत्कंठा के साथ ठाकुर के बारे में चिन्तन कर रहे थे। बाहर झींगुरों की आवाज से निस्तब्धता भंग हो रही थी। अपशकुन का प्रतीक उल्लू रह-रहकर चीख उठता था। भोर के समय लगभग ४-५५ पर ठाकुर अनुकूलचन्द्र ने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया।

इस घटना के दो वर्ष बाद १० मई, सन् १९७१ ई० को बड़ी माँ भी चली गयीं।

●

बाबा सीतारामदास ओंकारनाथ

बाबा सीतारामदास ओंकारनाथ

मध्यप्रदेश स्थित ओंकारेश्वर तीर्थ दर्शन करने के पश्चात् बाबा सीतारामदास ओंकारनाथ अपने भक्तों के साथ बस द्वारा खंडवा आ रहे थे। बस के भीतर कीर्तन हो रहा था। खंडवा से बम्बई मेल पर सवार होकर हबड़ा जाना है। बस ड्राइवर तेजी से गाड़ी चला रहा था। स्टेशन पँहुचने के बाद ज्ञात हुआ कि अब तो गाड़ी के छूटने का समय हो गया है।

बाबा के भक्तों में कुछ यात्री रेलवे के अफसर थे। वे तुरत ड्राइवर के पास पहुँचे और अपना परिचय देते हुए कहा कि गाड़ी को कुछ देर बाद रवाना कीजिएगा। हमारे पास कुछ सामान है, इसके अलावा यात्रियों में कई वृद्ध तथा महिलाएँ हैं।

यह घटना ब्रिटिश शासनकाल की है। उन दिनों नियमों का कड़ाई से पालन होता था। ड्राइवर ने इनके अनुरोध को अस्वीकार कर दिया। लाचारी में लोग बाबा के पास आकर बोले—"इस गाड़ी से हम नहीं जा सकते।"

"क्यों ?" बाबा ने पूछा।

"हम लोगों के साथ सामान काफी है। इन्हें चढ़ाने में काफी वक्त लगेगा। उधर गाड़ी छूटने का वक्त हो गया है। ड्राइवर से हम लोगों ने अनुरोध किया, उसे अनेक प्रकार से समझाया, पर वह मान नहीं रहा है।"

बाबा ने कहा—"उस बेचारे की क्या गलती है। उसे तो अपने कानून के अनुसार चलना है।"

अनुरोध करनेवालों ने कहा—"तब ठीक है। अब हम लोग इसके बादवाली गाड़ी से रवाना होंगे।"

"नहीं, नहीं।" बाबा ने कहा—"हम इसी गाड़ी से चलेंगे। इसके बाद अन्य कोई गाड़ी नहीं है।"

"आपको तो सारी बातें बता दी गयीं, फिर कैसे हम सवार हो सकते हैं ?"

बाबा ने कहा—"इसके लिए तुम लोग चिन्तित मत हो। देखो, यहाँ सीताराम बैठ गया। अब तुम लोग गाड़ी पर सामान रखना शुरू करो। सीताराम को बिना लिये गाड़ी आगे नहीं जा सकती।"

इतना कहकर बाबा सीताराम प्लेटफार्म की बेंच पर बैठ गये। बाबा का आदेश पाते ही भक्त लोग बाबा की जयजयकार करते हुए सारा सामान गाड़ी पर रखने लगे। शेष लोग कीर्तन करते हुए गाड़ी में बैठते गये।

पाँच मिनट को कौन कहे, इस बीच दस-पन्द्रह मिनट बीत गये। गाड़ी टस से मस नहीं

हुई। गाड़ी तथा स्टेशन पर कीर्तन जारी रहा। बाद में एक सज्जन को खब्त सवार हुई तो वे इंजन के पास गये तो उन्हें सूचना मिली कि इंजन में कुछ खराबी आ गयी है। ड्राइवर उस खराबी की तलाश में परेशान है।

सारी बातें सुनकर बाबा सीताराम मुस्कराने लगे। भक्तों में से कई सज्जन ड्राइवर के पास गये और कहा —"आपकी गाड़ी आगे नहीं बढ़ सकती। बाबा ने रोक रखा है। आप बाबा के पास जाकर अनुरोध करिये तभी गाड़ी आगे बढ़ा सकेंगे।"

भक्तों की बातें सुनकर ड्राइवर ने बाबा के पास आकर आज्ञा माँगी। बाबा ने हँसकर कहा—"ठीक है। चलो, चालू करो,अब सीताराम तैयार हो गया।"

सभी गाड़ी पर बैठ गये। आश्चर्य की बात यह हुई कि इस बार ड्राइवर ने ज्योंही हेण्डिल पर हाथ रखा त्योंही गाड़ी चल पड़ी। इसके साथ ही भक्तों का दल हरिनाम-कीर्तन करने लगा।

राम ठाकुर की तरह आप भी नाम-प्रचार करते हुए संपूर्ण भारतवर्ष की यात्रा करते रहे। अपने भक्तों से वे कहा करते थे—"साधना के लिए तुम्हें पहाड़, जंगल या एकान्त में कहीं जाने की जरूरत नहीं। घर में रहते हुए केवल उस परमब्रह्म के नाम को भजते रहो। कीर्तन करो। इसका फल तुम्हें अवश्य मिलेगा। विभिन्न आश्रमों में चक्कर काटने की अपेक्षा अपने घर को आश्रम बना डालो।"

वे नाम के लिए यही मंत्र कहा करते थे—

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

बाबा सीताराम अपने भक्तों से बराबर कहते रहे—"सर्वदा नाम जपते रहो। भक्ति से, अभक्ति से, शुचि से, अशुचि से, उठते-बैठते, केवल नाम जपते रहो। नाम ही तुमसे सब कुछ करा लेगा। तुम्हें अपने-आप कुछ नहीं करना पड़ेगा। कलियुग में यही सबसे बड़ा और सरल मंत्र है। एक दिन देखोगे कि इस नाम के कारण तुम कहाँ से कहाँ पहुँच गये हो।"

वस्तुतः नाम जपने के कारण उन्हें सिद्धि प्राप्त हुई थी, इसीलिए वे अपने भक्तों तथा शिष्यों को यही सलाह देते थे। वे जहाँ कहीं जाते थे, उनके साथ भक्त-मंडली नाम का कीर्तन करती हुई चलती थी।

प्रसिद्ध उपन्यासकार शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय के अनन्य मित्र कविवर नरेन देव मरणासन्न स्थिति में थे। डाक्टरों का ख्याल था कि वे क्रमशः मृत्यु के दरवाजे की ओर बढ़ रहे हैं। इक्यासी वर्ष की उम्र, ऊपर से कारोनारी और सेरिब्राल थ्राम्बोसिस के आक्रमण से पीड़ित थे। रक्तचाप भी अत्यधिक था। पिछले दस-बारह दिनों से 'कोमा' की स्थिति थी। बायाँ अंग सुन्न पड़ गया था। नाक में आक्सिजन की नली, हाथ में सेलाइन ग्लूकोज। रात-दिन देखरेख के लिए दो ट्रेण्ड नर्सें थीं। डाक्टर प्रत्येक घण्टा के बाद आता है। एकमात्र लड़की श्रीमती नवनीता सेन दिल्ली से आ गयी हैं। पत्नी श्रीमती राधारानी के उदास चेहरे पर अश्रुपूरित आँखें। आत्मीय-स्वजनों से घर पूर्ण है। सभी के मन में उत्कण्ठा है कि क्या कविवर अच्छे हो जायँगे?

ठीक इसी मौके पर वे आये। संन्यासीजी। कविवर के घनिष्ठ मित्र बाबा सीतारामजी।

साथ में कीर्तन करती हुई भक्त-मंडली। कीर्तन करते हुए सभी लोग मकान के अहाते में आये। कीर्तन की आवाज सुनते ही घबराकर नवनीता सेन नीचे उतर आयीं। इस शोरगुल को सुनते ही पिताजी का हार्ट फेल हो जायगा।

भय से काँपती हुई उसने बाबा से निवेदन किया—"गोकि मेरे पिताजी बेहोश हैं, पर भीतर ज्ञान है। आप लोगों के कीर्तन की आवाज सुनकर बेमौत मर जायँगे। इस आवाज को सुनते ही वे यह समझ जायँगे कि उनकी मृत्यु हो गयी है और इसका असर बहुत ही भयानक होगा।"

बाबा ने हँसकर कहा—"कीर्तन नीचे होने दो। चलो, मैं अकेला कवि के पास जाऊँगा।"

गर्मी का मौसम। कमरे की सभी खिड़कियाँ बन्द थीं। पलंग पर कविवर आँखें बन्द किये सो रहे थे। बत्ती के प्रकाश में इतना दिखाई दिया। नाम जपते हुए ज्योंही बाबा ने कमरे में प्रवेश किया त्योंही नर्स दौड़ी हुई आयी—"कमरे में बाहरी लोगों का आना मना है।"

बाबा को समझा-बुझाकर बगल के कमरे में बैठाया गया। नर्स को संदेह हो गया कि यहाँ जब बाबा का प्रवेश हो गया है तब प्रसाद, जंतर-मंतर का पचड़ा जरूर होगा। झाड़-फूँक भी चालू हो जायगी। उसने आकर कहा—"कृपया रोगी को प्रसाद वगैरह मत दीजिएगा।"

कुछ देर बाद बाबा सीताराम कविवर के कमरे में आये और उनके सिर पर हाथ फेरते हुए बोले —"नरेन, नरेन, नरेन। बात क्या है, बोलो।"

पिछले बारह दिनों से जिस रोगी ने आँखें नहीं खोली थीं, उसकी आँखें अपने-आप खुल गयीं। सिन्दूर के रंग जैसी आँखें—लाल। वे आँखें बाबा के चेहरे पर जाकर टिक गयीं।

बाबा सीताराम ने पूछा—"अब तबीयत कैसी है ?"

कवि नरेन के ओठ हिले। पूरे बारह दिनों के बाद आवाज निकली—"आपने जैसी बनायी है, वैसी ही है।"

"मजाक कर रहे हो ? चलो, उठो।"

कवि की आँखें पुनः बन्द हो गयीं। बाबा सीताराम ने नवनीता से कहा—"घबराने की जरूरत नहीं है। तीन-चार दिन के बाद तेरे पिताजी बिलकुल ठीक हो जायँगे।"

इतना कहने के पश्चात् वे नाम जपते हुए नीचे उतर गये। कुछ देर तक भक्त लोग कीर्तन करने के पश्चात् वापस चले गये।

चौथे दिन कवि नरेन देव वास्तव में अच्छे हो गये। बिना किसीका सहारा लिये वे बाथरूम गये। यह सब देखकर डाक्टर दंग रह गया। उसने कहा—"वास्तव में यह 'मिराकेल' हुआ। शायद अपने विल पावर के जरिये कविजी स्वस्थ हो गये।"

बाबा सीताराम की इस आश्चर्यजनक योग-विभूति का प्रभाव इस परिवार पर पड़ा। सभी बाबा की दिव्य क्षमता के बारे में प्रभावित हुए।

इसी प्रकार एक घटना और हुई थी। बाबा सीताराम की पैतृकभूमि हुगली जिले के डुमुरदह गाँव में थी। इसी गाँव में बाबा के एकनिष्ठ सेवक थे—किंकर पूर्णानन्द। आपके मझले भाई प्रफुल्ल मुखर्जी का अंतिम काल आ गया था। जीवन-मृत्यु से संघर्ष करते हुए

उन्होंने परिवारवालों से कहा—"मैं जानता हूँ कि मेरा अन्तिम समय आ गया है, पर मरने के पहले एक बार बाबा का दर्शन करना चाहता हूँ।"

भाई साहब की इच्छा सुनकर पूर्णानन्द चिन्तित हो उठे। बाबा इन दिनों बंगाल के बाहर हैं। लाचारी में उन्होंने मन ही मन कहा—"बाबा, अपने भक्त की इच्छा पूर्ण करो!"

दिन बीतते गये। हालत खराब होती गयी। एक दिन डाक्टर ने आकर कहा—"रोगी का इलाज असाध्य हो गया है। अधिक-से-अधिक एक सप्ताह तक चल सकेंगे।"

इधर दिन-प्रतिदिन प्रफुल्ल बाबू की आकुलता बढ़ती गयी। डाक्टर की बातें सुनकर परिवार के सभी लोग सन्नाटे में आ गये। ठीक इसी समय ओंकारेश्वर से पत्र आया कि बाबा ने मौन धारण कर लिया है। केवल मौन नहीं हैं, बल्कि अन्न-ग्रहण भी नहीं कर रहे हैं। भोजन के नाम पर केवल सूरन और तुलसी की पत्तियों का रस ले रहे हैं। वह भी दोनों वस्तुएँ मिलाकर एक बड़े चम्मचभर। इन दिनों किसीका अनुरोध स्वीकार नहीं कर रहे हैं। अगर यही हालत रही तो उनकी शरीर-रक्षा नहीं हो सकेगी। इस संकट से केवल माँ बचा सकती हैं। हम सभी का अनुरोध है कि जल्द-से-जल्द बाबाजी की माताजी को ओंकारेश्वर ले आइये, वर्ना हालत बहुत खराब हो जायगी।

यह समाचार पाते ही पूर्णानन्द तुरत बाबा के घर गये। यहाँ आने पर पता चला कि इसी आशय का पत्र यहाँ भी आया है और लोग ओंकारेश्वर जाने को तैयार हो रहे हैं। इस समाचार को सुनते ही पूर्णानन्द ने कहा—"मैं भी आप लोगों के साथ चलूँगा।"

दूसरे दिन कई लोगों को साथ लेकर पूर्णानन्द ओंकारेश्वर रवाना हो गये। यहाँ आने पर लोगों की जबानी पता चला कि बाबा की हालत चिन्ताजनक है। बाबा की माताजी भय से व्याकुल हो उठीं। जिस कमरे में बाबा मौन होकर बैठे थे, उसका दरवाजा बन्द था। दरवाजे के पास जाकर रोती हुई माँ बोली—"बेटा प्रबोध, जल्द बाहर आ, वर्ना मैं इसी दरवाजे पर सिर पटक-पटककर प्राण दे दूँगी।"

माँ के आकुल क्रन्दन से व्याकुल होकर बाबा बाहर निकल आये। माँ अपने प्रिय पुत्र को गले से लगाकर रोने लगी। बाबा का मौन भंग हो गया। उन्हें ग्रहण करना पड़ा। इस घटना के कारण भक्त-मंडली प्रसन्न होकर जोरों से कीर्तन करने लगी।

मौका देखकर पूर्णानन्द ने अपने बड़े भाई की कहानी विस्तार से सुनायी। सारी बातें सुनने के बाद बाबा ने कहा—"डरने की कोई बात नहीं है। अभी तेरे भाई की आयु शेष है। वह फिलहाल नहीं मरेगा। बहरहाल, जब तुम लोग इतनी दूर आये हो तो कल मेरे साथ वाल्मीकि मुनि के तपोवन का दर्शन करने चलो।"

दूसरे दिन दो बैलगाड़ियों पर सवार होकर सभी तपोवन की ओर रवाना हुए। काफी दूर आने के बाद ज्ञात हुआ कि गलत रास्ते पर आ गये हैं। स्थानीय लोगों से राह पूछने पर उन लोगों ने सलाह दी कि अब आगे आज न जायँ। अँधेरा बढ़ रहा है और आगे घना जंगल है। जंगली जानवरों का डर है। मुसीबत में फँस जायँगे।

इस सलाह के अनुसार लोग उसी जगह ठहर गये। यह निश्चय हुआ कि रात यहाँ गुजारने के बाद कल सबेरे रवाना होंगे। उधर बाबा की गाड़ी वाल्मीकि आश्रम पहुँच गयी। काफी देर तक इन्तजार करने के बाद जब पूर्णानन्द की गाड़ी नहीं आयी तब बाबा लौट पड़े।

ओंकारेश्वर आने पर भी कुछ पता नहीं चला। पूर्णानन्द की माँ साथ आयी थीं। वे इस घटना से व्याकुल होकर रोने लगीं। पता नहीं, जंगली जानवरों का शिकार न हो गया हो।

बाबा ने कहा—"घबराइये नहीं। आपका बालक सकुशल है। कल वह मिल जायगा। सबेरे मैं उसकी तलाश में गाड़ी भेज दूँगा।"

दूसरे दिन पूर्णानन्द की तलाश में गाड़ी भेज दी गयी। मार्ग में वे लोग मिल गये। बाद में सभी लोग वाल्मीकि मुनि का तपोवन देखने के बाद ओंकारेश्वर लौट आये। इस प्रकार चारों ओर घूमने-फिरने में सात-आठ दिन लग गये। पूर्णानन्द और उसके साथ आये लोग उद्विग्न हो रहे थे। पता नहीं, घर की क्या हालत है। दूसरी ओर बाबा अपने-आपमें बेफिक्र रहे। बातचीत के सिलसिले में एक दिन उन्होंने कहा था—"जब तक हम वहाँ नहीं पहुँचेंगे तब तक प्रफुल्ल मर नहीं सकता।"

इसके बाद कोई चर्चा नहीं। जब बाबा निश्चिन्त हैं तब क्या किया जाय। लोग उनके जिम्मे सारा भार देकर चुप रह गये। अचानक आठवें दिन उन्होंने कहा—"चलो, डेरा कूच किया जाय। कल हमें यहाँ से चल देना है।"

डुमुरदह पहुँचते ही बाबा सबसे पहले पूर्णानन्द के घर गये। बाबा सीताराम को देखते ही प्रफुल्ल ने कहा —"अब तुम मुझे मुक्ति दो।"

बाबा सीताराम ने कहा—"हाँ, अब तुम्हें मुक्त करने का वक्त आ गया है। अब तुम्हें मुक्ति मिलेगी। तुम्हारे सभी लड़के बड़े हो गये हैं। केवल गौरांग अबोध है।"

"उसकी जिम्मेदारी तुम ले लो।"

"ठीक है, उसकी जिम्मेदारी मैं ले रहा हूँ। अब तुम सहर्ष यात्रा कर सकते हो। तुम्हें मुक्त कर रहा हूँ।"

इस वार्तालाप के बाद भक्तों का कीर्तन प्रारंभ हुआ। कीर्तन के मध्य ही प्रफुल्ल बाबू का शरीरान्त हो गया।

यद्यपि आपका पैतृक निवास हुगली जिले के डुमुरदह गाँव में था, परन्तु आपका जन्म इसी जिले के केवटा ग्राम में हुआ था। यहाँ आपका ननिहाल था। आपके पिता का नाम प्राणहरि चट्टोपाध्याय और माता का नाम माल्यावती देवी था। आपके घर के कुलदेवता श्री ब्रजेन्द्रनाथ और राधारानी प्रतिष्ठित थें, इसलिए भवन का नाम रखा गया था—श्री ब्रजनाथ निकेतन।

आप अपने पिता के द्वितीय पुत्र थे। ६ फाल्गुन, कृष्ण पंचमी, बुधवार, सन् १८६२ ई० के दिन सबेरे ८ बजकर १ मिनट पर आपका जन्म हुआ था। आपके मातृकुल में तंत्रशास्त्र की चर्चा होती थी। आपके पिता पहले चिकित्सा-कार्य करते थे। आगे चलकर न जाने मुख्तारी पास करके प्रैक्टिस करने लगे। स्वभाव से साहित्यिक थे। कई ग्रंथों की रचना कर चुके थे।

बाबा सीताराम का नाम प्रबोधचन्द्र था। गाँव की पाठशाला की शिक्षा समाप्त करने के बाद आपको बेण्डेल स्थित चर्च स्कूल में भर्ती किया गया। अचानक पिताजी के मन में आया कि इस बालक को संस्कृत की शिक्षा देनी चाहिए। पिताजी उन्हें चर्च स्कूल से दाशरथी मुखोपाध्याय (स्मृतिभूषण) की चतुष्पाठी में ले आये। दिगसुई गाँव में स्थित इस चतुष्पाठी

में उनका अध्ययन प्रारंभ हुआ। गुरु-गृह में भोजन-शयन करते रहे। चतुष्पाठी की शिक्षा समाप्त करने के बाद आगे का अध्ययन करने के लिए बंगाल के प्रसिद्ध विश्वनाथ चतुष्पाठी में आये। यहाँ आप वेद, वेदान्त, पुराणादि का अध्ययन करते रहे। लगभग सभी विषयों पर निरन्तर उन्नीत होते रहे। कुछ ही वर्षों में आप शास्त्रज्ञ बन गये। डुमुरदह गाँव में आपकी विद्वत्ता का डंका बजने लगा।

जिन दिनों आप दिगसुई गाँव में श्री दाशरथी स्मृतिभूषण महाशय की चतुष्पाठी में अध्ययन कर रहे थे, उन्हीं दिनों गुरुदेव दाशरथी स्मृतिभूषण ने आपका नामकरण किया—"सीतारामदास"। केवल यही नहीं, गुरुदेव के इच्छानुसार गुरुदेव की आत्मीया सिद्धेश्वरी देवी के साथ सन् १६१७ ई० के अगहन मास में आपका विवाह सम्पन्न हुआ था। उस समय तक आपका छात्र-जीवन समाप्त नहीं हुआ था।

अचानक आपके पिता का निधन हो गया। पिता की मौत से प्रबोध को घोर मानसिक पीड़ा हुई। उन्होंने इन्हीं दिनों यह अनुभव किया कि यह संसार कष्ट, दुःख और यातना से पूर्ण है। आपमें क्रमशः ऐशिक-भावना जागृत होने लगी। प्रायः एकान्त में आपके मन में तरह-तरह के प्रश्न उत्पन्न होने लगे, पर उन प्रश्नों का समाधान नहीं हो रहा था। अन्त में एक दिन आप अपने प्रश्नों के समाधान के लिए गुरुवर दाशरथी स्मृतिभूषण के समीप आये।

गुरुदेव सर्वज्ञाता थे। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि शिष्य में अलौकिक प्रतिभा जागृत हो गयी है। उन्होंने कहा—"वत्स, वह समय आ गया है जब तुम्हें दीक्षा लेनी है।"

छात्र को साथ लेकर दाशरथी स्मृतिभूषण प्रयाग के त्रिवेणी-तट पर आये। २६ पौष, यानी १४ जनवरी, सन् १६१२ ई०, मकर संक्रांति के दिन प्रबोध को दीक्षा दी गयी। इसी दिन प्रबोध को राम-नाम जपने का निर्देश दिया गया। इसके साथ ही प्रबोध का नाम रखा गया—सीतारामदास। राम-नाम के प्रेमी आगे चलकर सीतारामदास के नाम से ही प्रसिद्ध हुए। अब तक दाशरथी स्मृतिभूषण शिक्षागुरु थे और अब वे दीक्षागुरु बन गये।

दीक्षा ग्रहण करने के बाद सीतारामजी के भावों में क्रमशः परिवर्तन होता गया। उनकी आध्यात्मिक शक्ति बढ़ती गयी। अन्त में एक दिन उनमें सम्यक् ज्ञान का विकास हुआ। उस दिन उन्हें यह बोध हुआ कि परमात्मा ने अपनी लीला को स्पष्ट करने के लिए इस शरीर को धारण किया है। इस शरीर में मैं नहीं, बल्कि वे स्वयं हैं। आत्मा—अहं मैं। यही 'मैं' ही एक अद्वितीयम् ब्रह्म है।

बाबा सीताराम के बारे में महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज ने अपने एक संस्मरण में लिखा है—"बचपन में ही आपको भगवत्-कृपा प्राप्त हो गयी थी। सन् १६१७ के दिनों में आपने प्रत्यक्ष रूप से शिव का दर्शन किया और उनसे दीक्षा ली। सन् १६३० में पत्नी का निधन हो जाने के बाद आप एकनिष्ठ भाव से आराधना में सचेष्ट हो गये। इन्हीं दिनों स्वप्न में ब्राह्म दीक्षा प्राप्त हुई थी। इस घटना के बाद आप दो वर्ष तक मौनव्रत पालन करते रहे तथा साक्षात् जगन्नाथ देव से आदेश प्राप्त कर तारक-ब्रह्म नाम के प्रचार में लग गये।

जब वे चुंचड़ा स्थित चतुष्पाठी में पढ़ते थे तब शिव तथा जगदम्बा का साक्षात् दर्शन उन्हें प्राप्त हुआ था। उसका कितना प्रभाव उनके जीवन में पड़ा था, इन बातों का उल्लेख

उन्होंने किया था। पत्र के अन्त में कुछ प्रश्न भेजने का अनुरोध किया था। बाद में मैंने पत्रोत्तर दिया था। उन बातों की चर्चा मैं नहीं करना चाहता।

आपने ओंकार-साधना पूर्ण रूप से की थी। आप वैष्णव-सम्प्रदाय के थे, फिर भी ज्ञानमार्ग और योगमार्ग में आपकी दक्षता थी। आचार्य रामदयाल मजुमदार[1] को आप गुरु की तरह मानते थे। इस बारे में एक बात लिखना उचित समझता हूँ—कलकत्ता के 'उत्सव' पत्रिका कार्यालय में, सन् १९३७ के ज्येष्ठ मास में, रामदयालजी ने सीताराम ओंकारनाथ के वक्षःस्थल पर दाहिना हाथ रखते हुए कहा था—"तुम्हें मैं अपनी समस्त शक्ति दे रहा हूँ।"

बाबा सीतारामदास ओंकारनाथ इससे अभिभूत हो उठे। इसके बाद उन्होंने यह भी कहा था —"मैं मंच से उतर रहा हूँ, अब तुम मंच पर विराजमान हो।"

इसी वर्ष बाबा सीताराम ओंकारनाथ ने अपना प्रथम चातुर्मास्य व्रत का उद्यापन, कलकत्ता स्थित शांखारी टोला में प्रारंभ किया था। पूरे चार माह तक वहाँ थे। उन दिनों प्रति शनिवार को सत्संग में भाग लेते रहे। एक दिन रामदयाल बाबा ने बाबा सीतारामदास ओंकारनाथजी से कहा—"मैं अब "चण्डी" लिख नहीं पा रहा हूँ, तुम लिखो।"

इन दिनों बाबा सीतारामदासजी के हाथ अचल हो गये थे। लिखने लायक शक्ति उनमें नहीं थी। रामदयालजी ने उन्हें आशीर्वाद देते हुए कहा—"तुम जरूर लिख लोगे।"

इस आशीर्वाद को शिरोधार्य करके बाबा सीतारामदास ओंकारनाथ ने लिखना प्रारंभ किया और अपने कार्य में सफल रहे। पाण्डुलिपि के कुछ अंशों को पढ़ने के बाद स्वर्गीय श्री धीरेन्द्रनाथ ने उसे प्रकाशित करने की आज्ञा माँगी। बाबा ने कहा—"अभी नहीं, पुस्तक पूरी हो जाय।"

मेरे साथ आपका परिचय और दर्शन सन् १९४८ ई० में पुरी में हुआ था। उन दिनों आप मौन थे, पर आपके शिष्य चारों ओर से घेरकर हरिनाम कीर्त्तन करते रहे। आप जहाँ कहीं भी जाते, वहीं कीर्त्तन-मण्डली के लोग साथ जाते थे।

आप मुझे अच्छी तरह जानते थे। अपने यहाँ से प्रकाशित 'देवयान' नामक पत्र बराबर भेजा करते थे। जब आप ओंकारेश्वर में मौन धारण किये हुए थे तब आपसे मेरी घनिष्ठता हुई थी। इसके बाद आपके कुछ भक्तों ने सन् १९५६ में मुझसे अनुरोध किया कि मैं उनकी पुस्तक 'नादलीलामृत' की भूमिका लिख दूँ। आपके आदेशानुसार मैंने भूमिका लिख दी। उसे पढ़कर आपने मुझे एक बड़ा प्रशंसा-पत्र भेजा था।

बाबाजी के अनुरोध पर मेरे द्वारा सम्पादित ग्रंथ 'श्री विशुद्धानन्द प्रसंग' पाँचों खण्ड तथा 'विशुद्धवाणी' मैंने उन्हे भेजा था। इन ग्रंथों को पढ़ने के बाद वे मुझसे मिलने काशी आये थे। इसके बाद जब कभी काशी आते तब उनसे मिलने अवश्य जाता था।"

कहा जाता है कि चतुष्पाठी के अध्ययन काल में आपको भगवान् शिव ने दर्शन दिया था। इससे भयभीत होकर आपने पूछा—"आप कौन हैं?" शिवमूर्ति ने कहा—"मैं तुम्हारा गुरु हूँ।" बाबा जी जान से प्रणव मंत्र जपने लगे। बाद में रामनाम जपने लगे। कुछ देर बाद आपकी आँखों के सामने एक दिव्यज्योति प्रकट हुई। तभी आप मूर्च्छित हो गये। इस

---

[1] बंगाल के प्रसिद्ध साधक।

घटना के बाद से अक्सर उनके कानों के पास प्रणव मंत्र गूँजता रहा। यहाँ तक कि आपके अन्तर से स्वतः ओंकार ध्वनि प्रस्फुटित होती रही।

इसी प्रणव मंत्र के सहारे आपके साधना-जीवन का निर्माण होता गया। धीरे-धीरे ग्रंथि-विमोचन हुआ। प्रज्ञा चक्षु से आपने सब कुछ देखा।

इस घटना के बाद आपका विवाह हुआ। दिगसुई गाँव में स्थित ठाकुरचरण भट्टाचार्य की लड़की सिद्धेश्वरी आपकी पत्नी बनी। रिश्ते में आपके गुरुदेव की बहन थीं। विवाह के बाद सीतारामदास ओंकारनाथजी ने अपनी पत्नी का नाम रखा—कमला। दो पुत्र रघुनाथ और राधानाथ के अलावा जानकी नामक एक पुत्री को जन्म देकर पत्नी परलोकवासी हो गयी। पत्नी के निधन के पश्चात् बाबा ने गृहस्थाश्रम को हमेशा के लिए छोड़ दिया।

एक दिन वे पुरीधाम आये, जहाँ उन्हें ध्यान में जगन्नाथजी के दर्शन हुए। जगन्नाथजी ने उन्हें नाम प्रचार करने का आदेश दिया। इस आदेश को सादर ग्रहण करने के पश्चात् वे भारत के कोने-कोने में नाम का प्रचार करने लगे। उन्हें जो सिद्धि प्राप्त हुई थी, वह इसी नाम के कारण प्राप्त हुई थी।

ज्ञातव्य है कि वे हिन्दी, बंगला, उड़िया के अलावा दक्षिण भारतीय भाषाओं में कई पत्र प्रकाशित करते रहे। भारत के विभिन्न स्थानों में उनके ५७ आश्रम, ७ शिक्षा केन्द्र, ६ औषधालय, २६ अखण्ड संकीर्त्तन क्षेत्र हैं। इसके अलावा आपने अनेक ग्रंथों को लिखा है। लाखों लोग आपके शिष्य बने। अधिकांश शिष्य आपकी योग विभूति से लाभान्वित होकर दीक्षा ग्रहण करते रहे। आपके भक्तों को यह अटूट विश्वास था कि अगर बाबा किसी के मस्तक पर हाथ फेर दें तो उसके समस्त पाप विनष्ट हो जायँगे।

एक बार एक भक्त ने कहा था—"मैं बहुत बड़ा पापी हूँ।"

"कौन-कौन से पाप किये हैं?"

"ऐसा कोई पाप नहीं है जिसे मैंने न किया हो।"

बाबा ने हँसकर पूछा—"ब्रह्महत्या? नरहत्या? परदारी? भ्रूणहत्या? यही सब न?"

उक्त सज्जन ने लज्जा से सिर झुका लिया।

बाबा सीतारामदास ओंकारनाथ ने कहा—"तब पाप कैसे किया? झूठ नहीं बोलोगे, चोरी नहीं करोगे, परदारी नहीं करोगे तब कलियुग में क्यों जन्म लिया? इससे अच्छा था कि सत्ययुग में पैदा होते? अब अहरह राम नाम जपते रहो। राम नाम जपने से सभी पापों से मुक्त हो जाओगे।"

मुक्ति के इस सरल उपाय को ग्रहण करने के लिए भारत के कोने-कोने से दर्शनार्थी आपके पास आते रहे। साधारण लोगों के अलावा अनेक महान् लोग भी आते थे। बौद्धों के परमपावन दलाई लामा, माता आनन्दमयी, स्वामी स्वरूपानन्द, मोहनानन्द ब्रह्मचारी, महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज, दिलीपकुमार राय आदि प्रमुख रहे।

बाबा के एक भक्त पद्मलोचन कठिन रोग से पीड़ित हुए। घर के लोग तुरत उन्हें गाँव से लाकर कलकत्ता मेडिकल कालेज में ले गये। डाक्टर सर्वाधिकारी ने जाँच करने के बाद कहा—"इनका लिवर सड़ गया है। सिरोसिस आव लिवर रोग है। बचने की उम्मीद नहीं है।"

बंगाल के ख्यातिप्राप्त डाक्टर नलिनी रंजन सेनगुप्त आये। रोगी का अंतिमकाल आ गया था। नर्स ने नाड़ी देखा और घबराती हुई बाहर चली गयी। डाक्टर सर्वाधिकारी आये। रोगी की हालत देखने के बाद सिर हिलाते हुए बाहर चले गये। डाक्टर सेनगुप्त इसके पहले ही चले गये थे।

ठीक इसी समय बाबा सीतारामदास अपनी भक्त मण्डली के साथ कीर्त्तन करते हुए आये। डाक्टर सर्वाधिकारी ने आपत्ति की। बाबा ने कहा—"हम आहिस्ते आहिस्ते हरिनाम करेंगे।"

कहने के बाद उन्होंने रोगी के वक्षःस्थल पर हाथ रखा और हरिनाम कहने लगे। थोड़ी देर में रोगी में चंचलता बढ़ने लगी। नर्स ने नाड़ी देखा तो चीख उठी—"मिराकेल ! वाह !!"

नर्स की चीख सुनते ही डाक्टर सर्वाधिकारी वापस आये। उन्होंने रोगी को देखा तो अवाक् रह गये। अभी कुछ देर पहले वे जिसे प्राणहीन देख गये थे, अब वह सजीव होता जा रहा है। यह तो अद्‌भुत आश्चर्य है।

डाक्टर सर्वाधिकारी चकित दृष्टि से बाबा सीताराम की ओर देखने लगे। बाबा अपनी घनी दाढ़ियों से ढके ओठों को खोलकर हँस पड़े। सर्वाधिकारी अपने को सम्हाल नहीं सके। वे भूल गये कि स्वयं हाउस सर्जन हैं। तुरत बाबा के चरणों पर लोट गये। उसी दिन बाबा के भक्तों में एक संख्या और बढ़ गयी।

एक बार १५ अगस्त के दिन आसमान में घनघोर बादल छा गये। यह दृश्य देखकर शशांक शेखर बागची चिन्तित हो उठे। उस दिन उनके यहाँ पिता के श्राद्ध का आयोजन हो रहा था। बाबा को इस दिन आने का निमंत्रण भेजा गया था, पर बाबा ने आने में असमर्थता प्रकट की। उन दिनों वे गणपुर में चतुर्मासा व्यतीत कर रहे थे। बाबा ने निमंत्रण लेकर आनेवाले से कहा—"मैं सशरीर तो उपस्थित नहीं हो सकूँगा। मुमकिन है कि सूक्ष्म रूप में आ जाऊँ।"

बागची महाशय के लिए इतना ही काफी था। चूँकि बाबा जब नहीं आ रहे हैं, इसलिए पण्डाल-तम्बू उन्होंने नहीं लगवाया। सबरे से अखण्ड 'तारक ब्रह्म' नाम का कीर्त्तन होने लगा। बागची महाशय को दृढ़ विश्वास था कि जब बाबा सूक्ष्म रूप में यहाँ पधारने वाले हैं तब यहाँ पानी नहीं बरसेगा। लेकिन अन्य लोगों को उनके विश्वास पर भरोसा नहीं हो रहा था।

धीरे-धीरे दिन चढ़ता गया, बादल छाते गये। मेघ गरजते रहे, बिजली चमकती रही, पर चुंचड़ा में एक बूँद पानी नहीं बरसा। बाहर से आनेवाले सभी अतिथियों को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि चुंचड़ा कस्बे के बाहर घनघोर वर्षा हो रही है, पर यहाँ नहीं। बाहर से आनेवाले अधिकांश निमंत्रित अतिथि भींगते हुए आये थे। धीरे-धीरे शाम हो गयी, फिर रात आयी, पर उस दिन चुंचड़ा में एक बूँद पानी नहीं गिरा।

केवल यही नहीं, अतिथियों को खिलाते समय ज्ञात हुआ कि मिठाई कम पड़ जायेगी। तुरत कई लोग साइकिल लेकर बाजार से मिठाई खरीदने गये। पन्द्रह अगस्त होने के कारण सभी दुकानों से मिठाई गायब हो गयी थी। इधर-उधर से कुल मिलाकर केवल ५०-६० मिठाइयाँ प्राप्त हुई। इधर एक सौ के ऊपर अतिथि भोजन करनेवाले हैं।

बागची महाशय ने अपने मित्र महावीर से कहा—"अब क्या होगा, महावीर ?"

महावीर स्वयं भी बाबा का भक्त था। इस प्रश्न का कोई उत्तर उन्होंने नहीं दिया। बाबा का एक चित्र रसोईघर में लाकर सभी खाद्य पदार्थों को दिखाते हुए कहा—"बाबा, इस गृहस्थ की लाज रखना।"

बाहर आकर महावीर ने कहा—"आप सभी अतिथियों को पंगत में बैठा दें। किसी चीज की कमी नहीं होगी।"

बागची बाबू ने लोगों से पंगत में बैठने के लिए निवेदन किया, पर मन ही मन घबरा रहे थे। सभी लोग भोजन करने बैठे। कुछ देर बाद मिठाई परोसने के लिए स्वयं बाल्टी लेकर बागची महोदय आये। मन ही मन बाबा को स्मरण करते जा रहे थे। एक-एक कर अंतिम व्यक्ति को मिठाई दे दी गयी। इसके बाद निरीक्षण किया गया कि कहीं कोई मिठाई पाने से वंचित तो नहीं रह गया। एक सौ व्यक्तियों को मिठाई परोसने के बाद भी बाल्टी में २०-२५ मिठाइयाँ बच गयी थीं।

यह चमत्कार कैसे हो गया ? तभी बागची महोदय को याद आया कि बाबा ने कहा था—स्थूल शरीर से तो नहीं आ सकूँगा, पर सूक्ष्म शरीर से जरूर आऊँगा। यह बाबा की कृपा थी जिसके कारण आज इज़्ज़त बच गयी।

बाबा कब कौन लीला करेंगे, इस बात को उनके भक्त समझ नहीं पाते थे। जब बुद्धि के बाहर कोई चमत्कार हो जाता तब यह अनुभव करते थे कि यह बाबा की लीला है।

श्री हरिसाधन वेदतीर्थ ने बड़ी श्रद्धा से बाबा का एक चित्र बनवाकर सीताराम वैदिक महाविद्यालय में रखवा दिया। इसके बाद उस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। कई दिनों बाद देखा गया कि उस चित्र से शहद गिर रहा है। इस दृश्य को सर्वप्रथम वहाँ के छात्रों ने देखा। यह एक अद्‌भुत दृश्य था। चित्र से शहद कैसे निकल रहा है। उन लोगों ने इस घटना की सूचना हरिसाधन वेदतीर्थ को दी।

उन्होंने बिगड़कर कहा—"अध्यापक से मजाक करते हो ? एक जड़ पदार्थ से शहद झरेगा ? क्या वहाँ शहद का छत्ता है ? भागों यहाँ से।"

छात्रों ने कहा—"गुरुजी, हम मजाक नहीं कर रहे हैं और न यह हमारी आँखों का भ्रम है। आप स्वयं चलकर देख लीजिए। हम लोग सत्य वचन कह रहे हैं। चित्र से अनवरत शहद चू रहा है।"

वेदतीर्थ ने सोचा—चलकर देखने में क्या हर्ज है। अगर लड़के मजाक कर रहे हैं, वहीं इन्हें पीटूँगा। मन में अविश्वास की भावना लेकर वे आये। यहाँ आने पर देखा कि वास्तव में चित्र से शहद चू रहा है। यहाँ भी उन्हें संदेह हुआ। उन्होंने सोचा—इस घटना की आड़ में लड़कों ने जरूर कोई तिकड़म किया है। बालक-बन्दर दोनों एक ही स्वभाव के होते हैं। मजा लेने के लिए यह कार्यवाही की गयी है।

लड़कों को ताड़ना न देकर उन्होंने उक्त चित्र को एक दूसरे कमरे में रखवा दिया और बाहर से ताला बन्द करके चाभी अपने पास रखा। दूसरे दिन उस कमरे का ताला स्वयं उन्होंने खोला। चित्र पर नजर जाते ही वही दृश्य देखा। बाबा के मुँह से शहद चू रहा है।

यह कौन-सा रहस्य है ? तुरत दौड़े हुए बाबा के पास गये। सारी घटना सुनाने के पश्चात् पूछा —"आखिर इसमें क्या लीला कर रहे हैं ?"

बाबा ने हँसकर कहा—"इस चित्र को कुछ खिलाते रहना । अब समझा ?"

वर्धमान शहर के भक्त अनादि बाबू के यहाँ बाबा ठहरे हुए थे । यह समाचार पाकर दूर-दूर के भक्त बाबा का दर्शन करने आने लगे । सहसा बाबा अपने भंडारी श्री सच्चिदानन्द को खोजने लगे । उस समय तक वे वहाँ नहीं आये थे । बाबा किसी को एक हजार रुपये देना चाहते थे । सच्चिदानन्द के पास सारी रकम रहती है । बातचीत के सिलसिले में बाबा रह-रहकर सच्चिदानन्द के बारे में पूछते रहे कि वह अब तक आया या नहीं । बार-बार सच्चिदानन्द के पूछने के कारण भक्त-मण्डली भी व्यस्त हो उठी ।

ठीक इसी समय सच्चिदानन्द आते दिखाई दिये । लोगों ने उन्हें सूचना दी कि आपको बाबा देर से खोज रहे हैं । तुरत उनके पास जाइये । सच्चिदानन्द तुरत रिक्शा से उतरकर बाबा के पास आये । बाबा को प्रणाम करते ही उन्होंने कहा—"यह आदमी कब से बैठा है । इसे एक हजार रुपये दे दो । "

अब सच्चिदानन्द को होश आया तो उनके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं । रुपये की थैली तो जल्दीबाजी में रिक्शे पर छूट गयी । तुरत वे बाहर की ओर दौड़े । बाहर आने पर उन्होंने देखा—रिक्शेवाला गायब है । समझते देर नहीं लगी कि अब सब गया । उदास चेहरा लेकर बाबा के पास वापस लौटे । तभी बाबा ने नाराजगी के साथ कहा—"मैंने रुपये देने को कहा और तू न जाने कहाँ चला गया ।"

सच्चिदानन्द फफककर रो पड़े—"बाबा, सारी रकम रिक्शे पर छोड़कर हड़बड़ी में मैं यहाँ चला आया । रिक्शेवाला भी गायब हो गया है ।"

"अच्छा हुआ । कितने रुपये थे ।"

"बहुत ।"

"आखिर, कितने थे ।"

बाबा से झूठ कहा नहीं जा सकता । रोते रोते उन्होंने कहा—"बहुत थे, बाबा । क्या बताऊँ । "

"अरे नालायक, बहुत तो सुना, पर उसमें कितनी रकम थी ?"

अब डरते-डरते सच्चिदानन्द ने कहा—"चौदह हजार ।"

"क्या ? चौदह हजार रुपये और इतनी बड़ी रकम की थैली हाथ में न रखकर रिक्शे पर रख छोड़ा था ।"

इतना सुनना था कि सच्चिदानन्द फफक कर रो पड़ा । तभी बाबा ने मुस्कराते हुए कहा—"खैर, कोई बात नहीं । डरने की कोई जरूरत नही है ।"

थोड़ी देर बाद चमत्कार हुआ । पाँच मिनट बाद वही रिक्शेवाला दरवाजे पर आकर हाजिर हो गया । उसने आते ही पूछा—"जो दाढ़ीवाले सज्जन मेरे रिक्शे पर आये थे, कहाँ हैं ?"

इस आवाज को सुनते सच्चिदानन्द झपटकर बाहर आये । रिक्शेवाले ने रुपयों की थैली देते हुए कहा —"जल्दीबाजी में रुपयों की यह थैली मेरे रिक्शे पर छोड़ गये थे । अब आप इसे गिनकर देख लीजिए, रुपये पूरे हैं या नहीं ?"

सच्चिदानन्द इस चमत्कार से हतप्रभ रह गये। उन्हें गिनने की सुधि नहीं रही। थैली को लेकर बोले —"गिनने की कोई जरूरत नहीं है भैया। तुम कृपा करके ले आये हो, यही बहुत है।" इसके बाद एक सौ रुपये का नोट उसकी ओर बढ़ाते हुए बोले—"लो, इस रकम से मिठाई खा लेना।"

रिक्शेवाला लेना नहीं चाहता था। काफी मिन्नत करने के बाद उसने लिया। इसके बाद भीतर आकर सच्चिदानन्द ने बाबा को समाचार दिया। बाबा ने कहा—"उसे इनाम दे दिया न ?"

"हाँ, सौ रुपये दिये।"

"सिर्फ सौ रुपये ? कम-से-कम पाँच सौ देना चाहिए था।" बाबा ने हँसते हुए कहा—"आइन्दा ऐसी गलती कभी मत करना।"

सच्चिदानन्द सिर झुकाये बाबा की डाँट-फटकार चुपचाप सुनते रहे।

इसी प्रकार की एक और घटना हुई थी। धर्म-प्रचार के सिलसिले में वे दक्षिण भारत गये थे। गुण्टूर से दो सौ मील दूर उनका कैम्प लगा था। यहाँ से उन्हें गुण्टूर जाना था। सहसा एक दिन गुण्टूर जाने का निर्णय लिया गया। अपने दो सेवकों से उन्होंने कहा कि तुम लोग आज रवाना हो जाओ। वहाँ जाकर ठहरने आदि का इंतजाम करो। हम लोग कल यहाँ से रवाना होंगे।

इस आदेश को पाते ही पूर्णानन्द और रत्नेश्वर बस से रवाना हो गये। मार्ग में नाम कीर्त्तन करते हुए दोनों सेवक अपने गंतव्य स्थल की ओर बढ़ रहे थे। बीच में एक जगह बस रुक गयी। यात्री लोग उतरकर भोजन, चाय, जलपान करने लगे। यहाँ से बस आधे घँटे बाद रवाना होगी। दोनों सेवक शौच करने चले गये। शौच कार्य से निवृत्त होकर जब आये तब देखा कि बस उन्हें छोड़कर आगे रवाना हो गयी है।

जेब में एक पैसा नहीं और तमाम असबाब बस पर था। क्या करें, कुछ समझ नहीं पा रहे थे। स्थानीय भाषा न समझ पाने के कारण किसी से बातचीत नहीं कर पा रहे थे। धीरे-धीरे शाम हुई, रात आयी और सुबह हुआ। ठीक इसी समय एक अपरिचित व्यक्ति इनके पास आया। इशारे से बातें हुईं। उस व्यक्ति को समझते देर नहीं लगी कि परदेशी मुसीबत में फँस गये हैं। अपनी ओर से किराये की रकम देकर उन दोनों को गुण्टूर जानेवाली बस पर बैठा दिया।

इधर गुण्टूर आने पर बाबा के साथ आये लोगों ने देखा कि एक दिन पूर्व रवाना हुए दोनों सेवकों का पता नहीं है। ऐसी घटना तो नहीं हो सकती। मार्ग में किसी दुर्घटना का समाचार भी नहीं मिला। आखिर वे दोनों कहाँ गायब हैं। सभी लोग चिन्तित होकर बाबा के पास आये।

बाबा ने कहा—"चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। मेरी समझ से कोई खास दुर्घटना नहीं हुई। वे लोग आते ही होंगे। अब तुम लोग भोजन की तैयारी करो।"

जब बाबा कह रहे हैं कि कोई दुर्घटना नहीं हुई है तब निस्सन्देह कुछ नहीं हुआ है। फिर भी लोग शंकित हृदय से कार्य करते रहे। रसोई बन जाने के बाद जब लोग पंगत में

बैठने लगे तब बाबा ने कहा—"वे दोनों आकर प्रसाद ग्रहण करेंगे, इसलिए उनके लिए प्रसाद अलग से रख दो।"

बाबा ने भोग ग्रहण किया। इसके बाद भक्तों ने प्रसाद लिया। दोनों सेवकों के लिए अलग से प्रसाद रखा गया। फिर भी लोग दोनों सेवकों के बारे में तरह-तरह की चर्चा करते रहे। अनजाना क्षेत्र, जहाँ एक-दूसरे की भाषा नहीं समझ पाते। पता नहीं, किस हालत में होंगे।

ठीक इसी समय दोनों सेवक आये। सभी भक्तों से प्रश्नों की झड़ी लगा दी। उन दोनों ने कहा —"पहले बाबा का दर्शन करेंगे, फिर फुरसत से सारी बातें सुनायेंगे।"

"लेकिन इस वक्त बाबा का दर्शन नहीं हो सकता। वे आराम कर रहे हैं।"

"कोई हर्ज नहीं। हम लोग दूर से देखकर वापस आ जायँगे।"

"दर्शन बाद में कर लेना। बाबा ने आदेश दिया है कि उन लोगों को आते ही प्रसाद खिला देना।"

"बाबा का दर्शन बिना किये हम लोग कुछ भी ग्रहण नहीं करेंगे।"

फलस्वरूप दोनों सेवकों को बाबा के डेरे की ओर जाने की आज्ञा दे दी गयी। बाबा उस वक्त चादर ओढ़कर सो रहे थे। ज्योंही दोनों बाबा के द्वार के पास पहुँचे त्योंही उन्होंने अपनी चादर हटाते हुए कहा —"जाओ, पहले प्रसाद ग्रहण करो।"

सेवकों ने कातर स्वर में कहा—"बाबा, कल बस में हम लोगों के कपड़े, बरतन, रुपये आदि सब कुछ छूट गये। बस हम लोगों को छोड़कर रवाना हो गयी। हम लोग बड़ी मुसीबत में फँस गये थे। अगर एक सज्जन सहायता न करते तो हम लोग यहाँ तक नहीं आ पाते।"

बाबा मन्द-मन्द मुस्कराते रहे। इस ओर इन दोनों का ध्यान नहीं गया। एक ने पूछा—"अब क्या होगा, बाबा ?"

बाबा ने कहा—"इसके लिए घबराने की जरूरत नहीं है। तुम लोगों का सामान सीताराम का है। सीताराम ही लायेंगे।"

बाबा की बातें सुनकर फिर उन दोनों ने कोई प्रश्न नहीं किया। प्रणाम करने के बाद प्रसाद ग्रहण करने चले गये।

दूसरे दिन दोनों सेवकों को बुलाकर बाबा ने कहा—"तुम दोनों के साथ एक आदमी भेज रहा हूँ। इनके साथ बस अड्डे पर चले जाओ। वहाँ तुम लोगों का सामान सुरक्षित है। जाकर लेते आओ।"

दोनों सेवक स्थानीय एक व्यक्ति के साथ बस अड्डे पर गये। पूछताछ करने पर पता चला कि उनका सामान सुरक्षित रखा है। बस अड्डे के लोगों ने सामानों के बारे में पूछताछ करने के बाद सब वापस कर दिया।

मौरी ग्राम की घटना तो और भी विचित्र है। कहा जाता है कि यहाँ पहले कभी चण्डी देवी का जाग्रत स्थान था, पर पिछले १५० वर्ष के भीतर वह स्थान जंगल-झाड़ी में लुप्त हो गया। बाबा को ख्याल आया कि इस अपूजित स्थान का उद्धार करना चाहिए। यह विचार मन में आते ही वे अपने भक्तों के साथ जंगल में गये। स्थानीय लोगों ने उन्हें सूचित किया

कि आप इस कार्य में हाथ न लगायें। कुछ दिन पहले यहाँ एक संन्यासी आये थे। उन्हें सफलता नहीं मिली। जंगल की सफाई में जितने लोग लगे थे, उन सब की मृत्यु हो गयी।

बाबा ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया। उन्होंने साथ आये लोगों से कहा—"जिन लोगों को अपने प्राणों का मोह न हो, वे लोग मेरे साथ आयें।"

बाबा के इस आह्वान पर तीन व्यक्ति भीड़ में से निकलकर बाबा के पास आये। काम शुरू हुआ। एक पेड़ के नीचे कुदाल पटकते ही एक भयंकर साँप फन निकालकर खड़ा हो गया। बाबा ने राम-राम, शिव-शिव कहा और वह साँप फन झुकाकर चुपचाप चला गया। जब इन तीनों की कोई हानि नहीं हुई तब शेष भक्त भी काम में लग गये। देखते-देखते जंगल साफ हो गया। चण्डी देवी के चबूतरे का पता चल गया। वहाँ नये घट की स्थापना की गयी। लेकिन गाँव में स्थित चण्डी-पूजा करने वालों ने यहाँ पूजा करने से इनकार कर दिया। इनका कहना था कि हम लोग कई पुश्तों से पुराने घट की पूजा करते आ रहे हैं जो कि हमारे यहाँ हैं, इसलिए नये घट में पूजा नहीं करेंगे।

अन्त में यह निश्चय हुआ कि नये घट की पूजा दूसरे पुजारी करेंगे। यहाँ नये घट की पूजा करने के पहले बाबा पुराने घट को प्रणाम करने के लिए चण्डी के सेवभृत के घर गये। ज्योंही बाबा ने घट को प्रणाम किया त्योंही घट के ऊपर रखा जवा का फूल नीचे गिर पड़ा। इस दृश्य पर किसी की नजर नहीं गयी, पर नये घट की पूजा करते समय एक विचित्र घटना हुई।

पूजा के दिन सबेरे से कीर्त्तन हो रहा था। लगभग दो हजार भक्त एकत्रित थे। दोपहर को बाबा पूजा करने बैठे। घट के ऊपर फूल चढ़ाते ही चमत्कार हुआ। बिजली की तरह समस्त क्षेत्र में सहसा गर्म हवा फैल गयी। सभी व्यक्ति क्षण भर के लिए संज्ञाहीन हो गये।

आँखें खोलने पर लोगों ने देखा—चारों ओर जवाकुसुम (अड़हुल) के फूलों की वर्षा हुई है। बाबा समाधि में लीन हैं। संकीर्त्तन जोरों से होने लगा। लोग भूमि पर गिरे एक-एक करके फूल उठाने लगे। बाबा के आसन पर पाँच फूल थे जिसे किसी ने नहीं उठाया।

समाधि-भंग होने पर बाबा ने कहा—"आज जो कुछ हुआ, उसे समझा ?"

केवल एक व्यक्ति ने कहा—"बचपन से सुनता आया हूँ कि पुष्पवृष्टि होती है, आज प्रत्यक्ष देखा।"

वर्धमान के जौग्राम की घटना है। एक भक्त को अपने यहाँ नाम-यज्ञ कराने का शौक हुआ। नाम के बाद भोग का आयोजन हुआ। सबेरे से लोगों को भोग खिलाने के बाद कार्यकर्ता लोग खाने बैठे। गरम-गरम खिचड़ी जिसमें समूची मिर्च डाली गयी थी। सबेरे से मेहनत करने के कारण भूख तेज हो गयी थी, तिस पर कड़ाके की धूप में बैठे लोग खा रहे थे। बाबा स्वयं पंगत में चहलकदमी करते हुए देखरेख कर रहे थे। सहसा बाबा ने कहा—"तुम लोग पेट भरकर भोग खाओ।"

मिर्च की अधिकता के कारण खानेवालों की हालत खराब थी। बाबा के इस कथन से कि 'पेट भरकर खाओ' सुनते ही एक भक्त चिढ़ गया। बाबा स्वयं देख रहे हैं कि हम सबका बुरा हाल है। नाक-मुँह से पानी निकल रहा है। सभी पसीने से तर हो गये हैं। उसने

कहा—"कैसे पेट भरकर खाऊँ ? एक तो गरम खिचड़ी, दूसरे गाँव भर की मिर्च झोंक दी गयी है, ऊपर से तीखी धूप, हम तो सजा भोग रहे हैं।"

बाबा ने हँसते हुए कहा—"तिरपाल टाँग दूँ ?"

"टाँग दीजिए न।"

"अच्छी बात है। जय गुरु महाराज की जय।" बाबा बराबर जय-जयकार करने लगे।

एक मिनट के भीतर काले मेघों ने सूर्य को ढक लिया और ठंढी हवा बहने लगी। फिर क्या था, लोग सड़ाप-सड़ाप खिचड़ी पर टूट पड़े।

खिचड़ी का प्रसंग आने पर एक अन्य घटना की याद आती है। रामाश्रम में जगद्धात्री पूजा का आयोजन किया गया था। नित्य ३-४ सौ लोग भोग ग्रहण करते थे। भंडारे का सारा आयोजन असीमानन्द और तारापद बाबू करते थे। नित्य सबेरे से चूल्हा जलाकर भोजन बनाया जाता था। लगभग ६ ड्राम और ५-६ बड़े गमले में खिचड़ी बनाकर रखी जाती थी। इसके लिए चार चूल्हे जलाये जाते थे। दोपहर से लेकर रात तक असीमानन्द और तारापद ही खटते थे।

रात को भीड़ छँट गयी। बाबा १५-१६ व्यक्तियों को लेकर प्रतिमा के सामने कीर्त्तन कर रहे थे। रात के १२ बजे उन लोगों के लिए खिचड़ी बन रही थी जो आश्रम में रात को ठहर गये हैं।

ठीक इसी समय असीमानन्द ने कहा—"तारापद दादा, इस वक्त चाय पीने की इच्छा हो रही है।"

"आश्रम में चाय पीने की आज्ञा नहीं है। इससे अच्छा है कि चलो स्टाल पर जाकर पी आयें।"

"मैं तो बहुत थक गया हूँ। तुम दो कप चाय लेते आओ। आग के पास मौज से पीते रहेंगे। बाबा कुछ नहीं कहेंगे। अगर कुछ कहें तो मेरा नाम ले लेना।"

असीमानन्द के सुझाव पर तारापद दो कप चाय बाजार से ले आया। अभी गिलास ओठों से लगाया था कि पाँचू घोष नामक एक व्यक्ति अपने साथ एक बच्चे को लेकर आया और कहा—"भैया, एक कलछुल खिचड़ी दे दो।"

असीमानन्द ने कहा—"थोड़ी देर ठहर जाओ। चाय पीने के बाद दूँगा।"

यह बात पाँचू घोष को अच्छी नहीं लगी। उसने वापस जाकर बाबा से शिकायत कर दी। बाबा तुरत आये और पूछा—"इसे खिचड़ी क्यों नहीं दी ?"

असीमानन्द ने कहा—"मैंने इनसे कहा कि जरा ठहर जाओ। चाय पीने के बाद दूँगा।"

बाबा तड़प उठे—"मैं कुछ नहीं सुनना चाहता। तू अभी यहाँ से निकल जा।"

असीमानन्द ने भी गुस्से में कहा—"निकल जाने के लिए यहाँ नहीं आया हूँ।"

"तब क्यों आया है।"

"काम करने के लिए।"

"काम कहाँ कर रहा है। निकल जा यहाँ से।"

तभी तारापद कलछुल-पौना पटककर खड़ा हो गया। असीमानन्द ने उससे कहा—"तू

बैठ जा।" बाद में बाबा की ओर देखते हुए उसने कहा—"तुम इन सब कामों के बारे में क्या जानते हो ?"

"मैं कुछ नहीं जानता ? न जाने कितने भंडारे का इंतजाम किया है। हजारों लोगों को खिलाया है।"

"कोंपर जानते हो। साधन-भजन के बारे में भले ही कुछ जानते हो, पर इन सब कामों के बारे में कुछ नहीं जानते।"

बाबा इस बात पर क्रोधित हो उठे और कहा—"ठीक है, मैं कुछ नहीं जानता। अब तू यहाँ से चला जा।"

अब असीमानन्द और नाराज हो गया। कहा—"ले आओ रस्सी। इनके हाथ-पैर बाँध दूँ। फिर देखूँ कैसे भंडारा करते हैं।" इधर-उधर रस्सी खोजने पर नहीं मिली तो कमर से गमछा खोलकर वह बाबा की ओर बढ़ा।

यह देखकर बाबा तुरत नौ-दो ग्यारह हो गये। उस दिन काफी रात गये सभी लोगों को खिलाने के बाद दोनों व्यक्ति तालाब में नहाने गये। वहाँ आपस में बातचीत कर रहे थे कि ठीक इसी समय बाबा आ गये। बोले—"सब काम हो गया ?"

इन लोगों ने कहा—"हाँ।"

"तुम लोगों ने खाना खा लिया ?"

"हम लोगों ने खाया या नहीं, इसकी फिक्र आपको है ? दोपहर को दो-दो टुकड़े ककड़ी के मिले थे। ऊँट के मुँह जीरा।"

बाबा बिना कुछ बोले चले गये। दोनों स्नान करने के बाद चल पड़े। रास्ते में असीमानन्द ने कहा —"इस वक्त लिबड़ी हुई खिचड़ी खाने की इच्छा नहीं है। इस वक्त गरम-गरम भात, आलू का चोखा और ऊपर घी मिलता तो मजा आता।"

घर के पास आते ही असीमानन्द की पत्नी ने कहा—"कपड़े यहीं टाँगकर रसोईघर में चले आओ। तुम दोनों को खाना परोस देती हूँ।"

"क्या बनायी हो ?"

"भोर चार बजे बाबा ने आकर कहा—"देख री, दोनों बेचारे आज काफी मेहनत करते रहे। वे खिचड़ी नहीं खायँगे। दोनों नहाकर जब आयेंगे तब उनके लिए गरम-गरम भात, आलू का चोखा और घी दे देना।"

यह बात सुनकर असीमानन्द और तारापद एक दूसरे की ओर देखने लगे।

दूसरे दिन पता चला कि काफी लोग चले गये हैं, पर अभी तक २५०-३०० व्यक्ति मौजूद हैं। फलस्वरूप इनके भोजन के लिए दोनों व्यक्ति तैयारी में लग गये।

इधर कई दिनों तक भंडारे में बड़े-बड़े कुंदे आसानी से जलते रहे, पर आज न जाने क्यों जलने का नाम नहीं ले रहे हैं। एक गाड़ी सूखे बाँस मँगवाये गये। कुंदों पर चार बोतल मिट्टी का तेल छिड़का गया, पर धुआँ होता रहा। आग पकड़ नहीं रही थी। कई लोग आग जलाने के लिए कोशिश करते रहे।

तारापद ने कहा—"असीम दादा, कल आप बाबा को बाँधने जा रहे थे, यह उसी का नतीजा है।"

"माना कि तू ठीक कह रहा है, पर नौ बजे से अब साढ़े ग्यारह बज गये, भोग का इंतजाम कैसे होगा ?"

ठीक इसी समय बाबा स्नान करने के बाद दूर से अपनी कुटिया की ओर जा रहे थे। असीमानन्द की पत्नी ने कहा—"बाबा, जरा इधर आइये।"

"नहीं बेटी, मैं उधर नहीं आऊँगा। कल ये दोनों मुझे बाँधने आये थे। उन लोगों की जो इच्छा हो, करें।"

असीमानन्द की पत्नी एक दौड़ में पास जाकर बोली—"बेटी के रहते कौन तुम्हें बाँध सकता है। इतना साहस किसमें है ? आओ, चलो।"

असीमानन्द की पत्नी उनका हाथ पकड़कर खींच लायी। पास आकर बाबा ने पूछा—"क्या हो रहा है, सीताराम ?"

दोनों ने सिर खुजलाते हुए कहा—"आग नहीं जल रही है।"

बाबा ने कहा—"बोलो, रामजी की जय।" इसके साथ ही बाबा ने लकड़ियों को इधर से उधर कर दिया। आग जल उठी।

हँसते हुए बाबा ने कहा—"देख, गुरु के साथ उस्तादी मत दिखाना। समझा ?"

बीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में इस संत का तिरोधान ५ दिसम्बर, सन् १६८२ के दिन, रात को एक बजकर पच्चीस मिनट पर; सदर्न एवेन्यू में उनके ही शिष्य श्री गोपाल मित्र के भवन में हो गया। उन दिनों आपकी उम्र ६१ साल थी। इस बात में तनिक संदेह नहीं कि वे अपने भक्तों को नाम जपने का अमूल्य संदेश दे गये। उनका कहना था कि इसीसे सब कुछ प्राप्त हो जाता है। कलियुग में इससे बढ़कर अन्य कोई साधना नहीं है।

●

श्री मोहनानन्द ब्रह्मचारी

श्री मोहनानन्द ब्रह्मचारी

सेण्ट जेवियर्स कालेज के होस्टल में रहनेवाले छात्र मनोज मोहन को अपने बड़े भाई का एक पत्र मिला —

"अपनी आवश्यकता के लिए केवल पाँच रुपये ले रहा हूँ, बाकी पैसे और सारा सामान सजाकर रख दिया है। आकर ले जाना। मेरे लिए चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है। मैं जहाँ जा रहा हूँ, वहाँ जाने पर चिन्ता नहीं रहती।"

—काबू

मझले भैया मोहन का घरेलू नाम 'काबू' है और जिसके नाम पत्र लिखा गया, है उसका घरेलू नाम 'नेबू'। उसी दिन काबू का एक पत्र उसकी माँ के नाम भी मिला—

श्रीचरणकमलेषु, माँ, सेवक का असंख्य प्रणाम स्वीकार करना। आपके द्वारा प्रेषित रुपये मिल गये थे। मुझे अब बुखार नहीं है। मेरे बारे में चिन्तित होकर क्यों अपने आपको कष्ट देती हैं ? मेरे लिए आपको परेशान होने की आवश्यकता नहीं है।

आपका स्नेहाकांक्षी
काबू

मनोज मोहन यह पत्र पाते ही तुरत मझले भैया के होस्टल में आया। सुपरिण्टेण्डेण्ट गोपालजी को पत्र दिखाते हुए पूछा—"क्या मामला है ? दादा कहाँ गायब हो गये ?"

गोपाल प्रसाद मोहनानन्द को काफी प्यार करते थे। नित्य रात को होस्टल के प्रत्येक कमरे में जाकर लड़कों की उपस्थिति देखते थे, पर मोहनानन्द के कमरे में कभी नहीं जाते थे। होस्टल तथा कालेज के सभी अधिकारी इस बात से अच्छी तरह परिचित थे कि वह कहीं नहीं जाता। अपने कमरे में हमेशा अध्ययन करता रहता है। छात्रों से न तो विशेष सम्पर्क रखता है और न कहीं व्यर्थ में घूमने जाता है।

गोपाल प्रसाद ने कहा—"वह उस दिन शाम को अपनी बड़ी बहन के यहाँ गया था। वहाँ से लौटने पर उसने मुझसे यह कहा कि कल भोर में एक जरूरी काम से दीदी के यहाँ जाना है। भोर के वक्त गेट के दरवान से उसने यह कहा था कि 'मुझे दीदी के यहाँ जाना है।' मैंने सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब को रात में ही सूचना दे दी थी। इस वक्त उन्हें जगाकर परेशान करने की आवश्यकता नहीं है। उनके नाम पत्र भी छोड़ आया हूँ।' उसके मधुर व्यवहार से होस्टल के सभी कर्मचारी प्रसन्न रहते थे, इसलिए किसी ने उसे रोका नहीं।"

मनोज मोहन वहाँ से तुरत मोहनानन्द के कमरे में आया तो देखा—सारा सामान इस तरह बाँधकर रखा गया है जैसे कोई हमेशा के लिए यह कमरा खाली करके जानेवाला है।

दराज के भीतर एक लिफाफे में कई नोट और एक पुड़िया में रेजगारियाँ मिलीं। उसे गोपाल प्रसाद की जबानी यह मालूम हुआ कि मझले भैया दीदी के यहाँ गये हैं।

दीदी के यहाँ आने पर जीजाजी ने कहा—"यहाँ नहीं आया है। आज से चार दिन पहले जरूर आया था। यहाँ भोजन करके चला गया। कहीं जानेवाला है या जायगा, इस तरह का आभास हमें नहीं हुआ।"

जीजा की बातें सुनकर मनोज मोहन चिन्तित हो उठा। इन दिनों जो लोग गायब होते थे, वे बेलूर मठ में जाकर सेवक बन जाते थे। मनोज मोहन के कई मित्र इसी आशंका से वहाँ गये। यहाँ से भी निराश होकर लौटना पड़ा। आखिर मझले भैया गये कहाँ ?

मनोज मोहन इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि बड़े भैया के निधन के बाद से पिताजी और माताजी का सारा स्नेह मझले भैया पर केन्द्रित है। उन्हें जरा सा कष्ट होने पर वे दोनों काफी परेशान हो जाते हैं। मझले भैया अपने स्वभाव के कारण पूरे परिवार में ही नहीं, बल्कि मित्र-मण्डली में भी लोकप्रिय थे। अधिक बातचीत करना उन्हें पसन्द नहीं था। स्वभाव से वे मितव्ययी थे। घर से खर्च के लिए जितनी रकम आती थी, उसमें से काफी बचा लेते थे जबकि मुझे कमी पड़ जाती थी।

यह सितम्बर, सन् १९२१ ई० की घटना है। काफी उहापोह करने के बाद इस घटना की सूचना देने के लिए मनोज मोहन पिताजी को पत्र लिखने बैठा। पत्र बंगला में प्रारंभ करते ही उसके मन में संदेह हुआ कि इसे माँ ने पढ़ लिया तो गजब हो जायगा। वह पागलों की तरह दौड़ी आयेंगी अथवा सख्त बीमार पड़ जायँगी। इसके बाद उसने अंग्रेजी में पत्र लिखा।

श्रीचरणेषु, परमाराध्य पिताजी, आज तीसरे पहर पहले मुझे मझले भैया का एक पत्र मिला। उसमें लिखा था—"अपनी आवश्यकता के लिए केवल पाँच रुपये ले रहा हूँ। बाकी रुपये-पैसे और सामान ठीक-ठाक करके रख दिया है, यहाँ से ले जाना। मेरे लिए चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है। मैं जहाँ जा रहा हूँ, वहाँ जाने पर चिन्ता समाप्त हो जायगी।"

इस पत्र को पाते ही मैं मझले भैया के होस्टल में गया। वहाँ सुपरिण्टेण्डेण्ट श्री गोपाल दादा से मुलाकात की। गोपाल दादा को भी कुछ नहीं मालूम। उन्होंने केवल यही बताया कि कल शाम को होस्टल से बाहर कहीं घूमने गया। लौटकर जब वापस आया तब उसने कहा कि दीदी के घर गया था। कल सुबह एक जरूरी काम से एक बार दीदी के यहाँ जाना पड़ेगा। पर वह वहाँ नहीं गये। लगता है, दीदी के यहाँ जाने का बहाना करके सबेरे पाँच बजे होस्टल से चले गये। कहाँ गये, यह बात किसी को नहीं मालूम। दीदी के यहाँ आये नहीं। इस मामले में सारी बातें उन्होंने छिपा ली हैं। यहाँ तक कि गोपालदादा भी नहीं जानते।

गोपाल दादा को लेकर दीदी के घर गया। शायद जीजाजी से सलाह करने पर कोई सूराग मिले। मगर वे लोग भी मेरी तरह अँधेरे में हैं। दीदी ने कहा कि पिछले सोमवार को यानी चार दिन पहले मझले भैया उनके यहाँ निमंत्रण खाने गये थे। इसके बाद फिर नहीं आये। उस रात के बाद उनसे इन लोगों की मुलाकात नहीं हुई। हम सभी किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये हैं। क्या करें, कहाँ पता लगायें, कुछ समझ नहीं पा रहे हैं। यह भी समझ नहीं पा रहे हैं कि वे कलकत्ता में ही कहीं हैं या बाहर चले गये हैं। लेकिन एक बात का पता उनके

मित्रों तथा गोपाल दादा से चला है कि मंझले भैया इन दिनों बड़े ध्यान से रेलवे टाइम टेबुल पढ़ते थे। इससे यह अन्दाजा लगता है कि वे गाड़ी के द्वारा कलकत्ते से बाहर कहीं गये हैं। होस्टल छोड़ते समय उनके पास दस रुपये से अधिक रकम नहीं थी। हम समझ नहीं पा रहे हैं कि क्या करें ? आपके निर्देश की प्रतीक्षा करूँगा। मझले भैया की खोज में कुछ लोगों को बेलूर मठ में भेजा है। वे क्या सूचना लाते हैं, इस बारे में कल एक पत्र आपको लिखूँगा। इस वक्त यह पत्र जीजाजी के घर से लिख रहा हूँ। इति—

आपका स्नेहपात्र—नेबू।

नेबू का पत्र पाने के बाद हेमचन्द्र घबरा उठे। उन्होंने अपने मित्रों, रिश्तेदारों तथा ऐसे कई स्थानों में तार और पत्र भेजा जहाँ मोहनानन्द जा सकते थे। लेकिन कहीं से कोई आशाजनक सूचना प्राप्त नहीं हुई। मोहनानन्द के गायब होने पर घर की जो दशा हुई, उस बारे में हेमचन्द्रजी ने लिखा है—

"नेबू के पत्र से मोहनानन्द के गायब होने का समाचार सुनकर उसकी माँ की जो हालत हुई, वह वर्णनातीत है। वे इस कदर रोने लगीं जैसे उनका बेटा मर गया हो। खाना-पीना बन्द हो गया। पड़ोसी आकर उन्हें धीरज देते थे। उन दिनों स्वदेशी आन्दोलन का माहौल था, इसलिए यह संदेह हो रहा था कि प्रलोभन देकर कहीं लोगों ने उसे दल में शामिल न कर लिया हो। कभी हम यह सोचते थे कि रामकृष्ण आश्रम के किसी दूरवाले आश्रम में न चला गया हो। इन्हीं बातों के ऊहापोह के कारण पुलिस को सूचना नहीं दी गयी। केवल चारों ओर पत्र भेजा गया।

इसी परेशानी में तीन-चार दिन बीत गये। अचानक देवघर आश्रम से श्री श्री गुरुदेव का पत्र आया। उससे यह ज्ञात हुआ कि मोहनानन्द उनके आश्रम में है। इस समाचार से हम सब आश्वस्त हो गये। लड़का जीवित है और महाराज के आश्रम में है। फलस्वरूप हमारी आशंकाएँ दूर हो गयीं। मगर गुरुदेव की अन्य बातों से लेखक को समझने में यह देर नहीं लगी कि अब आगे क्या होनेवाला है। महाराजने लिखा था कि लड़के को हर तरह से समझाया, पर अब वह गृहस्थाश्रम में नहीं रहना चाहता। तीव्र वैराग्य लेकर यहाँ आया है। अगर यहाँ उसे बाधा प्राप्त हुई तो वह अन्यत्र चला जायगा। आश्रम में सकुशल है। इधर लड़के की माँ पुत्र के वापस आने की आशा त्याग नहीं सकी। उनका दृढ़ विश्वास था कि अगर वे समझायेंगी तो उसे जरूर वापस ले आयँगी। उसका गृहत्याग महज बचपना है। इसकी कोई खास बजह नहीं है। लेखक को आफिस में छुट्टी न मिलने के कारण पत्नी को एक चपरासी के साथ देवघर के आश्रम में भेज दिया।

अब मैं मोहनानन्द के आश्रम तक पहुँचने का विवरण लिख रहा हूँ। जो ट्रेन सुबह हबड़ा से चलकर शाम को देवघर पहुँचती थी, उसी ट्रेन से मोहनानन्द वैद्यनाथधाम स्टेशन पहुँचा। लोगों से पूछते हुए शाम को आश्रम आ गया। जब वह डेढ़ वर्ष का था तब एक बार अपनी माँ के साथ देवघर आया था। इन दिनों उसकी उम्र १७ साल है। इस बीच वह कभी देवघर नहीं गया। हम लोग कभी-कभी देवघर जाते हैं, केवल यही जानकारी उसे थी। ज्ञान होने के बाद से उसने कभी श्री बालानन्द महाराज का दर्शन नहीं किया था। फलस्वरूप उसे इस बात की जानकारी नहीं थी कि महाराज का आश्रम कहाँ है, किन रास्तों से चलकर वहाँ तक पहुँचा जा सकता है।

राह चलते लोगों से पूछते हुए वह देवघर आश्रम पहुँचा। वहाँ के एक कर्मचारी से पूछने पर पता चला कि इस वक्त महाराजजी शिव मंदिर के बरामदे में विराजमान हैं, मगर शीघ्र ही वहाँ से उठनेवाले हैं। फिर उनसे मुलाकात नहीं होगी। अभी तुरत जाने पर दर्शन हो सकता है। इतना सुनते ही मोहनानन्द ने तेजी से महाराज के पास आकर उन्हें प्रणाम किया। महाराज ने पहले पूछा—"मकान कहाँ है ?" इस प्रश्न के उत्तर में उसने "शिव निवास" बताया। इस जवाब को सुनकर महाराज ने पूछा, "कृष्ण बाबू तुम्हारे क्या लगते हैं ?" जवाब में उसने कहा, "वे मेरे पितामह थे।" इस जवाब को सुनकर उन्होंने पूछा—"क्या तुम हेम के लड़के हो ?" उसने "हाँ" कहा। बाद में अन्य पूछताछ से पता चला कि सुबह वह कलकत्ता से रवाना हुआ है, अभी तक कुछ खाया नहीं है। उस वक्त विशेष कुछ न कहकर उन्होंने अपने सेवकों से कहा कि इसके भोजन और ठहरने का इन्तजाम बड़े अच्छे ढंग से कर दिया जाय।

दूसरे दिन महाराज ने उससे इस तरह चले आने का कारण पूछा। मोहनानन्द ने दृढ़ स्वर तथा स्पष्ट रूप से सूचित किया कि अब वह गृहस्थाश्रम में नहीं जायगा। वह संन्यासी बनेगा। महाराज उसे हर तरह समझाते रहे। यह जीवन बड़ा कठोर है। इस प्रकार की तितिक्षा और कठोरता उससे सहन नहीं होगी। इसके अलावा इस मार्ग में आने के पूर्व पिता-माता की अनुमति लेना आवश्यक है। इसके अलावा इस वक्त अध्ययन छोड़ देने पर फिर मौका नहीं मिलेगा। इससे अच्छा है कि तुम पहले बी० ए० पास कर लो, इसके बाद देखा जायगा।

महाराज की बातें सुनने के बाद उसने दृढ़तापूर्वक कहा कि उसके माता-पिता कभी अनुमति नहीं देंगे। जब मैंने यह संकल्प किया है कि मुझे गृहस्थाश्रम में अब नहीं रहना है तब बी० ए० पास करके क्या करूँगा ? इससे अच्छा यह होगा कि साधु बनने के लिए जितने अध्ययन की जरूरत है, वही करूँगा। पिताजी से अनुरोध करने पर शायद वे अनुमति दे देंगे, पर माताजी कदापि नहीं देंगी। अगर वे सहज ढंग से अनुमति नहीं देंगी और उसे देवघर के आश्रम में रहने में बाधा प्राप्त हुई तो वह दूसरी जगह चला जायगा। लेकिन अब वापस घर नहीं जायगा।

बालक की दृढ़ता देखकर महाराज ने उसे आश्रम में रहने की आज्ञा दे दी और पिता-माता को पूर्ण विवरण लिखकर भेज दिया।

महाराज का पत्र पाते ही लड़के की माँ पुरुलिया से आश्रम में आयीं। यहाँ आने पर उन्होंने देखा कि उनके सबसे अधिक दुलारू पुत्र में पर्याप्त परिवर्तन हो गया है। बालक को इस रूप में देखकर माँ देर तक रोती रहीं। महाराज ने मोहनानन्द को बुलाकर माँ के साथ जाने की आज्ञा दी तो वह चुपचाप खड़ा रहा। बाद में माँ के साथ रात को रहने का आदेश दिया गया। इस आज्ञा का पालन उसने किया। माँ को किसी प्रकार की असुविधा न हो, इस ओर बराबर ध्यान देता रहा। माँ आश्रम में ४-५ दिन रहीं। हर तरह से रो-गाकर अपने पुत्र को समझाती रहीं, पर पुत्र अपनी दृढ़ता से टला नहीं। उसने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि वह संन्यास जरूर लेगा और इसमें बाधा पहुँचायी गयी तो अन्यत्र चला जायगा। अब गृहस्थाश्रम में लौटने की उसकी इच्छा नहीं है। माँ ने समझाया—"तुम घर लौट चलो। मैं वायदा करती हूँ कि तुम्हारी शादी नहीं करूँगी। बी० ए० पास करने के बाद भले ही साधु

बन जाना।" मोहनानन्द ने कहा कि जब साधु बनने का संकल्प लेकर गृहस्थाश्रम छोड़ चुका तब बी० ए० पास करने का क्या महत्व है।

माँ को आड़ में बुलाकर महाराज ने कहा—"वह जिस तरह तीव्र वैराग्य लेकर आया है, अब उसे गृहस्थाश्रम में लौटा ले जाना कठिन है। अगर तुम सब उसे ज्यादा तंग करोगे तो वह यहाँ से चला जायगा। यह आश्रम तुम्हारे परिवार के दो पुश्तों का है। यहाँ रहने पर चिन्ता की बात नहीं रहेगी। मैं सतर्क भाव से ध्यान रखूँगा। लड़का आगे चलकर उन्नति करे, इस दिशा में प्रयत्न करूँगा। आजकल भंड साधु काफी हो गये हैं। अगर इसे परेशान किया गया तो दूर कहीं भाग जायगा और संभव है कि भंड साधुओं के चक्कर में फँस जाय।

लड़के की माँ ने कलेजे पर पत्थर रखकर सारे उपदेशों को ग्रहण किया और निराश होकर पुरुलिया वापस आ गयीं। यह सितम्बर, सन् १६२१ की घटना है। यहाँ आकर पुत्र-बिछोह के कारण वे बराबर रोती रहीं। पिता की भी यही दशा थी। एक दिन तो पिता घर से चलकर दिन भर श्मशान में बैठे रहे। बाद में दामाद जाकर उन्हें वहाँ से ले आया। इसी प्रकार एक दिन माँ ने कहा—कल रात को एक अद्‌भुत सपना देखा। मेरा व्याकुल भाव और विषण्ण चेहरा देखकर श्री श्री बालानन्द महाराज शंकर भगवान् रूप में प्रकट हुए। इसके बाद मेरे सिर पर हाथ फेरते हुए बोले—"बेटी, तू दिन-रात क्यों रोती रहती है ? तू तो परम सौभाग्यवती है। तुम साधु की माँ बनोगी। यह सौभाग्य कम लोगों को प्राप्त होता है। मैंने तुम्हारे पुत्र को ग्रहण कर लिया है। अब तुम बेफिक्र हो जाओ।"

इस सपने की बात सुनकर पिता भी आश्वस्त हो गये और वे मोहनानन्द की माता को बुद्ध, शंकराचार्य, चैतन्यदेव आदि महापुरुषों की कहानियाँ सुनाने लगे। स्वप्न में महाराज का दर्शन पाकर और उनकी स्नेह पूर्ण बातें सुनकर बच्चे की माँ को प्रसन्नता का अनुभव हुआ।

कुछ दिनों बाद सूचना आयी कि महाष्टमी के दिन मोहनानन्द को दीक्षा दी जायगी। यह समाचार इष्ट-मित्रों तक पहुँच गया। काफी तादाद में लोग देवघर में दीक्षा-समारोह देखने के लिए आये। दीक्षा देने के पहले महाराज ने लेखक तथा उनकी पत्नी को बुलाकर पूछा कि आप दोनों अपने पुत्र को साधु-जीवन ग्रहण करने की प्रसन्नता पूर्वक अनुमति दे रहे हैं या नहीं। उस वक्त महाराज की आँखें आनन्द से सराबोर थीं। लेखक ने कहा—"गुरुदेव, आज आपके चरणों की सेवा करने के लिए इस पुत्र को समर्पित करते हुए अपने को सौभाग्यशाली समझ रहा हूँ।" इसी समय मोहनानन्द की माता ने मेरे कान में कहा—गुरुदेव का आज जो आनन्दमय रूप है, यही रूप मैंने स्वप्न में देखा था।

तब लेखक ने अपनी पत्नी से कहा—"तुम्हारे दो और पुत्र हैं। अब बिना ऊहापोह किये प्रफुल्ल मन से अपनी सहमति दे दो।" लड़के की माँ ने हाथ जोड़कर गद्‌गद स्वर में कहा —"बाबा, आपके श्रीचरणों में अर्पण कर रही हूँ। मगर मेरी प्रार्थना है, इसे अपनी नजरों से दूर मत रखियेगा।"

महाराज ने कहा—"एवमस्तु ! ऐसा ही होगा।"

इसके बाद मोहनानन्द को नैष्ठिक-ब्रह्मचर्य में दीक्षा दी गयी। दीक्षा के बाद गैरिक वस्त्र पहनकर उसने हम लोगों को प्रणाम किया। मेरी आँखों से आँसू बहने लगे। गुरुदेव की हम पर अपार कृपा है। हम इस बात के लिए चिन्तित थे कि मोहनानन्द बड़े नाजों में पला है, साधु-जीवन की कठोरता कैसे सहन करेगा। हमारी इस आशंका को महाराज ने दूर कर

दिया। आश्रम में संपूर्ण रूप से निस्व: होकर वह पैदल ही भारत के सभी तीर्थों का दर्शन कर आया है। अमरनाथ, बदरीनाथ, केदारनाथ, कैलास, मानसरोवर आदि दुर्गम तीर्थों का बार-बार पर्यटन कर चुका है। महाराज तथा हम लोगों को ऐसे स्थानों से बराबर पत्र भेजता रहा। सभी जगह उसे सम्मान मिला और मार्ग व्यय भी मिलता रहा। तीर्थों से वापस आते समय अपने लिए कुछ नहीं लाता जब कि महाराज तथा हमारे लिए और आश्रम के अन्य साधुओं के लिए कम्बल, फल, प्रसाद तथा अन्य सामग्रियाँ ले आता था। श्री गुरुदेव की ऐसी कृपा है कि मोहनानन्द के संन्यास लेने के कई महीने बाद मैं दासत्व की श्रृंखला से मुक्त हो गया यानी अवकाश ले लिया। इसके बाद सपत्नीक देवघर आकर गुरु महाराज की चरण-छाया में निवास करने लगा।"

मोहनानन्दजी के पिता द्वारा लिखित इस विवरण से उनके वैराग्य के बारे में पूर्ण जानकारी मिलती है। मोहनानन्द के गुरु श्री बालानन्द महाराज असाधारण योगी थे। मोहनानन्दजी के पिता-माता ही नहीं, बल्कि पितामह भी बालानन्द महाराज के शिष्य थे। देवघर में 'राम निवास ब्रह्मचर्याश्रम' नामक एक स्थान है, इसके निर्माणकर्ता रामचरण बसु और कृष्णचन्द्र बनर्जी थे। जिनके बारे में बालानन्दजी कहा करते थे—राम और कृष्ण—ये दोनों मेरे दायाँ-बायाँ हाथ हैं। मेरे सभी शुभ कर्मों के मूल हैं। कृष्णचन्द्र की पत्नी कात्यायनी देवी को गुरुदेव के भक्त 'कातू माँ' कहकर पुकारते थे। वे महाराज की शिष्या और महान् साधिका थीं। हेमचन्द्र बनर्जी का पालन-पोषण इन्होंने ही किया था। अपने विवाह के पश्चात् हेमचन्द्र बनर्जी ने भी महाराज से दीक्षा ली थी। इस प्रकार तीन पीढ़ी के गुरु बालानन्दजी थे।

१७ दिसम्बर, सन् १९०४, शनिवार, सुबह ७ बजे हेमचन्द्र बनर्जी के यहाँ तीन पुत्रियों के बाद दूसरा पुत्र पैदा हुआ। उन दिनों हेमचन्द्र के चाचा मेदिनीपुर में किराये के एक मकान में रहते थे। इसी मकान में श्री मोहनानन्द का जन्म हुआ था। हेमचन्द्र के चाचा एक स्टेट के मैनेजर थे और वे स्वयं आबकारी विभाग के अफसर थे।

मोहनानन्द जब माँ के गर्भ से निकले तब वे धरती पर नहीं, बल्कि अपनी दादी माँ के हाथों में गिरे थे यानी दादी माँ ने हाथ में लोक लिया था। उन्होंने सर्वप्रथम बालक का नाम रखा—काबली। आगे चलकर यही नाम 'काबू' बन गया।

मोहनानन्द बचपन से ही मेधावी और शान्तिप्रिय थे। भोजन करते वक्त परिहास अवश्य करते थे। मितव्ययी इतने थे कि शिक्षा के लिए उन्हें जो रकम दी जाती थी, उसमें से बचाकर हर छुट्टी पर घर आते और छोटे भाइयों के लिए उपहार लाते थे। आपको डायरी लिखने की आदत थी। डायरी के पृष्ठों से ज्ञात होता है कि विद्यार्थीकाल से ही आप योगासन करते थे। दूसरों को समोसा, राजभोग, कलाकन्द, कचौड़ी खिलाते और स्वयं दही-चिउड़ा खाते थे।

कीर्त्तन के प्रति आपका अपूर्व आकर्षण था और आजीवन आप कीर्त्तन करते रहे। अक्सर अधिक रात गये जब आप घर लौटते तब पिताजी और माताजी चिन्तित हो उठते। इस बारे में माता विनयिनी देवी उलाहना दे चुकी हैं। आप चुपचाप अपने कमरे में चले जाते थे। लेकिन कीर्त्तन-सभा में जाना बन्द नहीं करते थे। महाप्रभु जगद्बन्धु के प्रधान शिष्य वैष्णव शिरोमणि रामदास बाबाजी का कहना था कि जब तक मोहनानन्द नहीं आता

तब तक कीर्त्तन-सभा जमती नहीं। कीर्त्तन करते-करते अक्सर आप भावावेश में आ जाते थे।

परिवार के लोगों को बालानन्दजी से दीक्षा लेते तथा घर पर हमेशा उनकी चर्चा चलते रहने के कारण मोहनानन्द पर गुरुदेव का व्यापक प्रभाव था। होस्टल में रहते समय आसन का अभ्यास करने की उनकी आदत थी। इसी तरह हरिसभा में कीर्त्तन करते-करते भावावेश में आ जाना भी उनका स्वभाव बन गया था। संभवतः ऐसी ही बातों से उनमें साधु बनने की धुन सवार हुई थी। मोहनानन्द होस्टल से ९ सितम्बर को गायब हुए थे। इसके पूर्व मई में जब कालेज बन्द हो गया तब वह अक्सर माँ से बालानन्दजी महाराज तथा देवघर आश्रम, वहाँ के नियम-कानून के बारे में सवाल करता था। उस समय तक किसी को यह संदेह नहीं हुआ कि आखिर लड़का यह सब क्यों पूछ रहा है। इस घटना के तीन माह बाद लड़का गायब हुआ।

अवकाश ग्रहण करने के बाद हेमचन्द्रजी देवघर स्टेशन के पास किराये पर एक मकान लेकर रहने लगे। आश्रम से दूर रहने का निर्णय उन्होंने इसलिए लिया ताकि माँ की व्यथा लड़के की साधना में व्याघात न पहुँचाये। जब कभी गुरुदेव के दर्शन की इच्छा होगी तब शीघ्र आश्रम पहुँच जायँगे। अक्सर बालानन्द महाराज दुःखी माँ को सांत्वना देते हुए समझाते—"अपने आँसुओं से तुम मोहन को अपने आदर्श से विमुख मत करो। इससे अच्छा है कि तुम उसे आशीर्वाद दो, उसे शक्ति दो ताकि वह इस क्षुरधार संकुल मार्ग पर प्रसन्नता पूर्वक चलता रहे।"

लेकिन माँ इस आश्वासन से आश्वस्त नहीं होतीं। बालक का कष्ट देखकर महाराज से शिकायत करतीं—"आपको मालूम है बाबा, आज मोहन ने एक टुकड़ा पपीता उबालकर खाया है। इसके अलावा और कुछ भी नहीं। आप उसे डाँटते क्यों नहीं ? यह सब खाने की उसे आदत नहीं है। बचपन से उसकी देखरेख करती आ रही हूँ। अगर इतनी कड़ाई की गयी तो वह जीवित रह सकेगा ? उसे समझाइये बाबा।"

माँ की आकुलता देखकर बाबा अट्टहास कर उठे। मोहन कितना दुलारा है, कितने नाजों से पला है, यह बात वे जानते थे। अब आगे साधना-पथ पर वह कितना कृच्छ्र जीवन अपनायेगा, इस बात की भी उन्हें जानकारी थी। क्या वे विनयिनी देवी से कम उसे चाहते हैं। उनके सभी शिष्यों में यही तो सबसे प्रिय है। हर वक्त, हर घड़ी उसे अपनी आँखों के सामने रखते हैं।

विनयिनी देवी को क्या मालूम कि महाराज और मोहन में एक अनिर्वचनीय भाव का सम्बन्ध था। मोहन के बारे में गुरुदेव कहा करते थे—"यह मेरा मनोमय भक्त है। जबान पर एक शब्द नहीं, पर वह मन ही मन जानता है कि मुझे कब किस चीज की जरूरत है। जब तक मैं कुछ कहूँ, उसके पहले ही मेरी अभिलाषा को जानकर वह चुपचाप काम कर देता है।"

दूसरी ओर मोहन अपने गुरुदेव के बारे में लोगों के पूछने पर कहा करता था—"मैं गुरुदेव की कायिक सेवा क्या कर सकता हूँ। कायिक सेवा, बाह्यपूजा आदि अधमाधम है।"

लोग कहते—"गुरुदेव की कायिक सेवा अगर अधमाधम है तो यह जो अलौकिक अनुभूतियाँ हैं, वह क्या है ?"

दूसरा प्रत्यक्षदर्शी भक्त कहता—"मोहन को बकने दो। हमने अपनी आँखों से सब देखा है। मोहन ने जिस तरह अपने गुरु की कायिक-सेवा की है, वह सभी शिष्यों के लिए महान् आदर्श है। गुरुदेव ध्यान कुटीर में रहते थे। भीषण गर्मी का मौसम है। ठीक इन्हीं दिनों उन्हें बुखार हुआ। आश्रम में तबतक बिज़ली नहीं आयी थी। मसहरी लगाने पर ज्वर का प्रदाह बढ़ जायगा और यहाँ मच्छरों का इतना उपद्रव है कि अगर उनमें शक्ति हो तो आदमी को उठा ले जायँ। इस आशंका से मोहन शाम से लेकर भोर तक गुरुदेव को पंखा झलता रहा। दूसरी ओर बुखार के ताप के कारण बिना हवा के गुरुदेव को चैन नहीं मिलता था। इस प्रकार विनिद्र स्थिति में न जाने कितनी रातें मोहन गुजार चुका है। उसके फूल जैसे शरीर पर अगणित मच्छरों के काटे हुए दाग उभरे हुए थे। सारे शरीर में कहीं भी जगह नहीं बची थी। पूछने पर जवाब दिया—"गर्मी तथा बुखार के कारण महाराज को बड़ा कष्ट हो रहा था। मसहरी लगाने पर कष्ट और बढ़ जाता। इसीलिए रात भर उन्हें हवा करता रहा। शायद दो-चार मच्छरों ने मुझे काटा है।"

दूसरे भक्त ने कहा—"मोहन ध्यान कुटीर की बगलवाली कुटिया में रहता था। एक कम्बल बिछाकर एक कम्बल ओढ़कर एक-दो घण्टा सोता है। चादर ओढ़ता, कभी नहीं भी ओढ़ता। गेरुए रंग का कपड़ा जो जगह-जगह से काफी फट गया था, गाँठ लगाकर पहनता है। गुरुदेव के लिए पहाड़ के नीचे से कुएँ का पानी लाता है। ताँबे के कलशों को इमली से माँजता है। इस पानी से गुरुदेव स्नान करते थे। देवघर में गुरुदेव के स्नान और रसोई का पानी नर्मदा कुण्ड से कँधे पर लादकर लाता था। उन्हें स्नान कराता और मुँह धोने का पानी तथा दातौन लेकर गुरुदेव की प्रतीक्षा में खड़ा रहता। उनके बिछौने को धूप में देना, चादर, लुंगी, कोपीन में साबुन लगाना आदि उसके नित्य के कार्य हैं। सबसे बड़ी खूबी उसमें यह थी कि गुरुदेव के लिए भोजन बढ़िया बनाता है। बालानन्दजी पकौड़ी, दहीबड़ा, परवल के पत्तों की पकौड़ी, नीम की तरकारी अधिक पसन्द करते थे। अन्य शिष्यों की अपेक्षा बड़े प्रेम से मोहन बनाता है।"

मोहनानन्द में एक खूबी थी। जब मूड बनता तब वे बालानन्द महाराज को बिना सूचित किये, परिव्राजक रूप में तीर्थयात्रा करने चले जाते। राह में जो मिल गया, खा लिया। श्रद्धावश किसी ने रेलवे का टिकट खरीद दिया तो ठीक वर्ना पैदल ही यात्रा करते। आश्रम से गायब होने का उसका निजी टेकनीक था। बिस्तर पर कम्बल को इस तरह सजा देता जैसे कोई सो रहा है। इसके बाद खाली हाथ गायब हो जाता था।

एक बार कुंभ मेला में जाकर रेती में बेहोश हो गया। उस समय महाराज शिष्यों से घिरे कथा सुना रहे थे। तभी समाचार आया कि मोहन को कुंभ में हैजा हो गया है। तुरत लोग इलाहाबाद रवाना हो गये। इस समाचार को सुनते ही महाराज का चेहरा भावावेग से लाल हो उठा। फिर सत्संग से वे चुपचाप उठ गये और अपनी साधना कुटिया में चले गये। भीतर से दरवाजा बन्द कर लिया। भीतर वे अपने प्रिय शिष्य के लिए क्या करते रहे, इसे कोई नहीं जान सका। जब महाराज उस कमरे से निकले तब पसीने-पसीने हो रहे थे। चेहरे पर प्रसन्नता झलक रही थी।

आहार की कठोरता के कारण मोहनानन्दजी का पक्वाशय सूख गया। भोजन नहीं कर पाते थे। स्थिति विचित्र थी। न जाने कैसे यह बात माँ के पास पहुँच गयी। इस बजह से

उनका सारा अन्तर रो पड़ा। मोहन उनकी आँखों का तारा है, उसे वे अपने प्राणों से अधिक चाहती हैं। नित्य भोजन करते समय उनकी आँखें आँसुओं से भर जाती थीं। भोजन करने के बदले वे उँगलियों से खाना हिलोरा करती थीं। यह दृश्य देखकर एक दिन नेबू ने कहा—"माँ, तुम खाना क्यों नहीं खाती। सिर्फ भोजन को हिलोरा करती हो ?"

रुँधे कंठ से माँ ने कहा—"अभी भी तुम लोग मुझे खाने को कहते हो ? जिस माँ के बेटे का पेट बिना भोजन के सूख गया हो, वह माँ कैसे ऐसा सुस्वादु भोजन गले के नीचे उतार सकती है ?"

पत्नी के इस कष्ट को देखकर हेमचन्द्र को भी कष्ट होता था, पर वे कितना समझाते ? आखिर एक दिन चल बसे। इसके बाद मातृस्नेह से कातर माँ की बुलाहट आ गयी। समाचार मिलते ही मोहनानन्द माँ के पास आये। माँ की हालत देखकर अधिक देर तक नहीं ठहरे।

पुनः जब आये तब माँ के बिस्तर के पास बैठकर गीता पाठ करने लगे। लेकिन उन्हें बचाया नहीं जा सका। स्वयं अपने हाथ से माँ को रेशमी चादर ओढ़ाकर मस्तक पर चन्दन लगाया। फूलों की वर्षा कर शव को नीचे लाया गया। अंतिम बार माँ के शव को उन्होंने कंधा लगाया। शव दाह के बाद उस दिन देर तक कीर्त्तन करते रहे। सभी कार्यों में वे निस्पृह रहे। मोहनानन्द में यही सबसे बड़ी विशेषता थी कि वे कष्टों की शिकायत नहीं करते थे। उन्हें कभी क्रोधित या उत्तेजित होते नहीं देखा गया।

एक बार उनसे प्रश्न किया गया कि आप कहाँ तक साधना कर चुके हैं ? उन्होंने कहा—"साधना ? देवघर के आश्रम की धारा के अनुसार अष्टांग योग किया है। दर असल, साधना या क्रम मेरे लिए कुछ नहीं है। उदाहरण के लिए मान लो एक गुफा है जहाँ अभी तक कोई नहीं पहुँचा। हिमालय में ऐसी अनेक गुफाएँ हैं। कोई यात्री वहाँ पहुँचा और उसने सलाई की तीली जलायी तो तुरत अँधेरी गुफा आलोकित हो उठी। उस गुफा में युग-युगान्तर से अँधेरा था, पर रोशनी करने से क्रमशः अंधकार दूर नहीं हुआ। निमिष भर में अंधकार गायब होकर गुफा प्रकाशमान हो गयी। इसी तरह साधना करता रहा।"

वास्तव में मोहनानन्द अपने गुरु से हठयोग, प्राणायाम और राजयोग का ज्ञान बराबर ग्रहण करते रहे। मोहनानन्द के अलावा आश्रम में अन्य कई शिष्य थे, परन्तु जिस लगन और श्रद्धा से मोहनानन्द ने अपने गुरु द्वारा वर्णित क्रियाओं को अपनाया, उसे अन्य शिष्य नहीं अपना सके। आश्रम के पूर्णानन्द ब्रह्मचारी से स्वरोदय-साधना की शिक्षा लेते थे। दोपहर को संतोष आश्रम जाकर वेद-वेदान्त, पाश्चात्य-दर्शन का अध्ययन करते थे। सन् १६२२ से लेकर सन् १६३७ तक लगातार वे कठोर साधना करते रहे। यही वजह है कि प्रिय शिष्य पूर्णानन्द ब्रह्मचारी (जिन्हें सभी छोटे बाबा कहा करते थे) के निधन के पश्चात् बालानन्दजी का सारा ध्यान मोहनानन्द पर केन्द्रित हो गया। अपने विराट आश्रम का सारा भार वे अपने मोहन को देना चाहते थे और मोहनानन्द बार-बार इस पद को लेने से इनकार करते रहे।

मोहनानन्द कीर्त्तन करते, आश्रम में पत्रों का उत्तर देते, हिसाब-किताब रखते। गुरुदेव की सारी सेवाओं के अलावा उन्हें अभ्यागतों, भक्तों तथा ब्रह्मचारियों की सुख-सुविधा का ध्यान रखना पड़ता था। इसके बाद अध्ययन-अध्यापन भी करना पड़ता था। मोहनानन्द हमेशा मौन रहते और निर्जनता को पसन्द करते थे। गुरुदेव से कहते—"मैं इस पद के लिए अयोग्य हूँ। आप यह जिम्मेदारी परमानन्दजी को दें।"

गुरु देव अफसोस करते हुए अपने भक्तों से कहते—"मेरा मोहन बंधन से घबराता है। अरे बेटा, इसमें बंधन कहाँ है ? इससे तेरा कुछ नहीं बिगड़ेगा। कैसा जमाना आ गया है। कहते हैं बिन माँगे मोती मिले, माँगे मिले न भीख—वही दशा यहाँ है। यह आश्रम कितने सम्मान का है। जबकि सारे लोग मोहन को इस गद्दी पर चाहते हैं।"

आखिर में एक दिन हँसते हुए बोले—"ठीक है। किसको दी जाय, इसका चुनाव हो जाय। जिसके नाम पर वोट ज्यादा होगा, उसी को गद्दी दी जायगी।"

इस गद्दी के दो दावेदार थे—मोहनानन्द तथा परमानन्द। उपस्थित सभी को पर्चियाँ दी गयीं। लोगों ने अपनी पसन्द के उम्मीदवार का नाम लिखकर एक लोटे में डाला। बाद में सभी पर्चियाँ खोलने पर उनमें एक पर्ची को छोड़कर शेष में मोहनानन्दजी का नाम निकला। एक पर्ची में परमानन्द का नाम था जो मोहनानन्द का लिखा था।

बालानन्दजी के स्वर्गवासी होने के बाद उस आश्रम की जिम्मेदारी लेने से बचने के लिए वे इधर-उधर भागते-फिरते रहे। भागते हुए नैमिषारण्य के जंगल में चले गये और वहाँ एक कुटिया में रहने लगे। यह स्थान उन्हें बहुत पसन्द आया।

एक दिन सूक्ष्म रूप में गुरुदेव वहाँ प्रकट हुए और मोहनानन्द को फटकारते हुए बोले—"क्या तुम्हारा निर्माण मैंने इसीलिए किया था ? अपने स्वार्थ के लिए जंगल में आकर तपस्या करोगे ? तुम्हें इस संसार में कितना काम करना है। पापी-तापी लोगों का उद्धार करना है। संतप्त हृदय वालों को शान्ति देना है। तुरत यहाँ से चले जाओ।"

ठीक इसी प्रकार परमहंस रामकृष्ण ने अपने एक शिष्य को कहा था जब वे केवल अपने लिए समाधि लगाते रहे। लाचारी में उन्होंने उस शक्ति को वापस ले लिया था। सुश्री आशालता सिंह जो आगे चलकर मोहनानन्दजी से संन्यास लेने के बाद संन्यासिनी आशापुरी हो गयीं, वे लिखती हैं—"इसके बाद श्री श्री महाराज नीचे उतर आये। सन् १६३७ ई० में गुरुदेव अप्रकट हो गये। मोहनानन्दजी १६३६ ई० में लोगों को दीक्षा देने लगे। गुरुदेव अलक्ष्य रहकर निरन्तर उनकी सहायता कर रहे हैं। लज्जालु, भीरू, मौन प्रकृति का किशोर जो एक दिन अपना जीवन अर्पण करने गुरुदेव के चरणों में आया था, आज वह संसार के विभिन्न देशों में भारतीय संस्कृति-दर्शन और धर्म का प्रचार कर रहा है।

देवघर आश्रम की जिम्मेदारी देने के पीछे एक अन्य कारण भी था। बालानन्दजी का शैव आश्रम था। मोहनानन्दजी वहाँ हरि संकीर्त्तन करते थे। यह देखकर महाराज के अनेक शिष्यों और भक्तों ने आपत्ति की—इस आश्रम में कृष्ण का कीर्त्तन क्यों ?

उत्तर में महाराज ने कहा था—"ज्ञान-कर्म से ही ईश्वर के निकट जाया जाता है, पर भक्ति भाव के अलावा ईश्वर को स्पर्श नहीं किया जा सकता। इसके लिए भक्ति और विश्वास की जरूरत है। यहाँ हरिनाम या शिवनाम में कोई अन्तर नहीं है।"

महाराज को यह समझते देर नहीं लगी कि यह सामान्य आपत्ति आगे चलकर ज्वालामुखी बन जायगी। उनकी सारी साधना ओर तपस्या खाक में मिल जायगी। इस घटना के बाद से वे मोहनानन्द को बराबर कीर्त्तन करने का आदेश देते रहे। स्वयं भी ताली बजाते हुए लोगों के साथ ध्यान कुटीर की परिक्रमा किया करते थे। शैव-आश्रम में हरि कीर्त्तन की धूम मच गयी। अब नित्य कीर्त्तन होने लगा। मीन-मेष करनेवालों के मुहँ में ताला जड़ गया।

इस विष को हमेशा के लिए शान्त करने के लिए बालानन्दजी ने देवघर आश्रम की गद्दी मोहनानन्दजी को देने का निर्णय लिया।

मोहनानन्द ने देवघर आश्रम में गुरु से देवीमंत्र में दीक्षा ली थी। इसके बाद नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण करके वे देवी की सेवा में नियुक्त हुए थे। जब मोहनानन्द आश्रम में नहीं रहते थे तब अन्य ब्रह्मचारी पूजा करते थे। बालानन्दजी की शिष्या ने लिखा है—"कौन है वह उज्ज्वल कान्तिवाला युवक जो हरिनाम में मतवाला होकर हरिकीर्त्तन कर रहा है।"

श्री गंगेशचन्द्र चक्रवर्ती लिखते हैं—"गुरु बालानन्द की स्नेहछाया में लम्बे अर्से तक मोहनानन्द की साधना चलती रही। उनकी साधना-धारा वैदिक और तांत्रिक-धारा का मिश्रण है। ब्रह्मचर्याश्रम की अधिष्ठात्री देवी श्री श्री बालेश्वरी देवी हैं—त्रिपुरा सुन्दरी की मूर्ति। गायत्री मूर्ति श्रीमंत्र। आगम धारातंत्र की यहाँ प्रधानता है। मोहनानन्द शक्ति मंत्र में दीक्षित हैं। होम वैदिक मतानुसार करते हैं। हठयोगी शैवाचार्य बालानन्दजी से उन्होंने योग-शिक्षा ली। मोहनानन्द शरीर, इन्द्रियादि, मन-बुद्धि पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर चुके हैं। बाद में धीरे-धीरे उन्हें निज स्वरूप में स्थिति मिल गयी। यही वजह है कि आपके शिष्य उनके निकट बैठकर महाध्यान की स्पर्शानुभूति प्राप्त करते हैं। खुली आँखों की स्थिति में वे सहज समाधि की स्थिति में हैं, इसे समझ पाते हैं।"

मोहनानन्द के भक्तों का दृढ़ विश्वास है कि उनके गुरुदेव वास्तव में श्री श्री गौरांग प्रभु के अवतार हैं, इसलिए वे राधारानी के प्रभाव में मगन रहते हैं। उनका तन नारायण को निवेदित है। वे जो वस्त्र और अलंकार पहनते हैं, वह श्रीकृष्ण के लिए ही।

इस बात की पुष्टि मोहनानन्दजी के एक उपदेश से हो जाती है। उन्होंने कहा था—"वे और जीव अलग नहीं हैं। मगर जीव मलिन हो गया है, इसलिए उससे मिल नहीं पाता। मिलन न होने का दर्द ही राधारानी के शत वर्ष का विरह-अश्रु है।"

मोहनानन्द के इस वक्तव्य से स्पष्ट है कि उन पर सखी-संप्रदाय का प्रभाव रहा। श्री श्री राधा की भावद्युति के बारे में आपने कहा है—"मैं उन्हें सर्वदा स्मरण करता हूँ। उन्हीं के भावों में अपने भाव को सम्मिलित करने का प्रयत्न करता हूँ।"

सुश्री आशापुरी ने अपने गुरुदेव के इस भाव की समीक्षा करते हुए लिखा है—"ऐसा दृढ़ विश्वास है कि उसी रासेश्वरी राधा की विभूति ही आपकी निजी विभूति है। श्रीमती राधारानी की विभूति विशिष्टता है—वे शक्तिरूपिणी हैं, उनकी तरह सामर्थ्यमयी कोई नहीं है। स्वयं श्रीकृष्ण ने भी श्री राधा के प्रेमरस का आस्वादन करने के बाद अनुभव किया था गौरांग बनकर। मगर वे भी नीरव राधा के भावों को दबा नहीं सके। महाप्रभु गौरांग कृष्ण-प्रेम की उन्मत्तता में कभी कूर्म की तरह आकृति बना लेते थे और कभी अंधिसंधि शिथिल शरीर में उत्तान होकर मूर्च्छित रूप में पड़े रहते थे। किन्तु राधा ? शास्त्रों में है—समस्त ब्रह्माण्ड, वैकुंठ, स्वर्ग-मर्त्य की समस्त वेदना राशि को एकीभूत करने पर भी राधिका के प्रेमोत्थित आनन्द-वेदना का लेश मात्र बराबरी नहीं कर सकता। उनके हृदय में क्या हो रहा है, यह प्रकट नहीं होता। अविकृत शांत मूर्ति। नीरव भाव।"

मोहनानन्द का अपना निजी व्यक्तित्व था। वे कभी चमत्कार के लिए योग विभूति का प्रदर्शन नहीं करते थे। स्वतः जो हो जाता था, उसीसे शिष्य और भक्त प्रभावित होते रहे। उदाहरण के लिए दार्जिलिंग की घटना को लीजिए। वहाँ वे अपने एक भक्त के यहाँ ठहरे

हुए थे। अचानक वहाँ प्रलयंकर भूकंप आया। मोहनानन्दजी जिस भवन में ठहरे हुए थे, उसके चारों ओर के मकान जमीनदोज हो गये। यह भवन भी किसी क्षण गिर सकता है, ऐसी आशंका से सभी त्रस्त हो उठे। मोहनानन्द अपने बन्द कमरे में नित्य की भाँति पूजा-पाठ और होम करने में व्यस्त थे।

गृहस्वामी तथा परिवार के लोग भय से व्याकुल होकर उनका दरवाजा पीटने लगे। दरवाजा बिना खोले ही मोहनानन्दजी ने कहा—"कुछ देर इंतजार करो। होम समाप्त करने के बाद दरवाजा खोल दूँगा।"

होम समाप्त करने के बाद उन्होंने दरवाजा खोला। चेहरे पर निरुद्विग्न भाव विराजमान था जहाँ भय या उद्वेग की छाया तक नहीं थी।

धीरे-धीरे प्रलयंकर दृश्य बदला। अगल-बगल के भवनों की काफी क्षति हुई, लेकिन इस भवन का एक तिनका भी नष्ट नहीं हुआ।

सन् १९५७ ई० में ७०-८० भक्त शिष्यों के साथ मोहनानन्दजी अमरनाथ दर्शन करने जा रहे थे। मार्ग में बरफ से ढकी खाई के समीप तम्बू लगाकर लोग आराम कर रहे थे। शाम होने के बाद तेज तूफानी हवा चलने लगी, साथ ही बरफ गिरने लगी। सरकार की ओर से माइक पर चेतावनी दी जाने लगी—"मौसम विभाग की सूचना के अनुसार हिमपात की सूचना मिली है। सभी यात्रियों को आगाह किया जाता है कि वे पहलगाँव वापस चले जायँ।"

कई सरकारी अधिकारी मोहनानन्दजी के यहाँ आकर इस बात की सूचना दी।

मोहनानन्दजी इस समाचार से जरा भी विचलित नहीं हुए। मधुर मुस्कान के साथ बोले—"कल सूर्योदय अवश्य होगा। बादल छँट जायँगे। घबराने की कोई बात नहीं है।"

कौल साहब जो अधिकारी थे, बोले—"जब आप कह रहे हैं तब ऐसा हो सकता है।"

मोहनानन्दजी ने दृढ़ता पूर्वक कहा—"मैं कह रहा हूँ, कल सभी दुर्योग समाप्त हो जायँगे। बादल छँट जायँगे। सूर्योदय होगा। सभी तीर्थयात्री अमरनाथ दर्शन अवश्य करेंगे।"

दूसरे दिन वही हुआ। कहाँ रात भर प्रलयकारी हिमपात, झंझावात और कहाँ निर्मल प्रभात। प्रातःकाल होम करने के बाद होमकुण्ड को सड़सी से पकड़े मोहनानन्द तम्बू से बाहर आये। बाहर काश्मीर के कई राजकर्मचारी हाथ जोड़े खड़े थे। सभी के भाल पर उन्होंने तिलक लगाया। लोगों ने मोहनानन्दजी के चरण स्पर्श किये।

इसी अमरनाथ यात्रा की दूसरी कहानी है। मोटर से जा रहे थे। अचानक उन्होंने ड्राइवर से कहा —"हम लोग गलत रास्ते से जा रहे हैं। मोटर को उस रास्ते पर मोड़ लो।"

ड्राइवर ने आदेश का पालन किया। काफी दूर जाने पर देखा गया कि कुछ भक्त मार्ग में खड़े हैं। दरअसल वे स्वयं ही गलत रास्ते पर चले आये थे। उनका ख्याल था कि महाराज इसी रास्ते से गुजरेंगे तब उनका दर्शन किया जायगा।

मोहनानन्दजी कार से उतरे। प्रतीक्षा में खड़े सभी भक्तों को उन्होंने तिलक लगाया। इसके बाद उन्होंने ड्राइवर से कहा—"अब गाड़ी वापस मोड़ लो। तुम ठीक रास्ते से ही चल रहे थे। मुझसे गलती हो गयी। देखो, मेरी तरह इन लोगों से गलती हो गयी और गलत रास्ते पर आ गये।"

वहाँ के सभी यात्री भी वापस लौटे तब उन्हें ज्ञात हुआ कि महाराज उनके लिए ही गलत रास्ते पर आये और दर्शन देकर सही रास्ता बता गये ।

पटना से कार द्वारा मोहनानन्दजी राँची जा रहे थे । शाम हो गयी थी । वे कार के भीतर आँखें बन्द किये आराम कर रहे थे । अचानक एक मोड़ पर आकर उन्होंने ड्राइवर से कहा—"इस ओर चलो । "

लगभग दस मील आने पर देखा गया कि सड़क के किनारे एक वृद्ध ब्राह्मण हाथ जोड़कर खड़ा है । उसने गाड़ी रोकने का इशारा किया । गाड़ी के रुकते ही वह मोहनानन्दजी के चरणों पर लोट गया । कहा —"कल रात को मुझे स्वप्न में निर्देश मिला कि आज सवेरे एक महापुरुष का आगमन होगा । वे ही तुम्हारे अभीष्ट देव हैं, वे ही तुम्हारे मन को शान्ति देंगे । यही वजह है कि मैं स्नान करने के बाद यहाँ भूखा-प्यासा दर्शन करने के लिए खड़ा हूँ ।"

गाड़ी से उतरकर उस भक्त को आशीर्वाद देने के बाद मोहनानन्दजी ने ड्राइवर से कहा—" गलत रास्ते पर आ गये हैं । गाड़ी वापस मोड़ लो ।"

इसी प्रकार एक बार भागलपुर से मोहनानन्दजी कुछ लोगों के साथ कलकत्ता जा रहे थे । साथ में 'पाखापिसी' (पँखावाली बुआ) थीं । इनका काम था—समय-असमय में पंखे से हवा करती थीं, इसीलिए इन्हें भक्त मंडली 'पाखापिसी' कहती थी । काफी सम्पन्न थीं, तितिक्षा और अनुराग रहने पर भी इनमें एक सनक थी । मोहनानन्द जब भक्तों के साथ किसी भक्त के यहाँ ठहरते थे तब 'पाखापिसी' किसी की साड़ी तो किसी का साया-ब्लाउज या इस तरह की अन्य सामग्री गायब करके अपनी गठरी में बाँध लेती थी ।

उस दिन सबेरे स्नान करने के बाद भक्त मंडली में हलचल मच गयी । अधिकांश लोगों के सामान गायब हो गये थे । रेलगाड़ी में इसी समस्या पर कचकच हो रहा था ।

तभी महाराज ने हरि ठाकुर नामक एक पहरेदार से कहा—"जाओ, पाखापिसी की गठरी उठा लाओ । यहाँ लाकर उसे खोलो ।"

साहबगंज स्टेशन पर गाड़ी ठहरी । हरि बाबू पाखापिसी की गठरी उठा लाये । उसमें से चोरी गया एक-एक सामान निकालकर लोगों के सामने रखा गया । इसके बाद हरि बाबू को आदेश दिया गया कि लोगों को उनकी चीजें दे दो ।

भागलपुर का एक दम्पत्ति मोहनानन्दजी का शिष्य था । अच्छा खाता-पीता परिवार, तरुणी वधू, पति डाक्टर, दो नन्हीं सुकुमार लड़कियाँ । अचानक तरुणी वधू पागल हो गयी । इलाज से ठीक न होने पर उसे राँची स्थित मानसिक अस्पताल में भर्ती किया गया । कुछ दिनों बाद अस्पताल से सूचना आयी कि इस रोगी को हम यहाँ नहीं रख सकते । कृपया तुरत आकर ले जाइये ।

वहाँ जाने पर पता चला कि रोगी हमेशा अशान्त रहती है । हर वक्त आत्महत्या करने का प्रयत्न करती है । कभी छत पर से कूद जाती है तो कभी कपड़ों में आग लगाने की कोशिश करती है । आखिर कब तक देखरेख की जाय ।

लाचारी में उसे लेकर वापस लौटे । साथ में उसके माँ, बाप तथा पति थे । काफी सावधानी के साथ उसे ला रहे थे । भागलपुर पहुँचने में जब ८-१० मील का रास्ता बाकी

रह गया तब सभी लोग थकावट से चूर होकर आराम करने लगे। जब यहाँ तक शान्त रही तब अब कुछ नहीं होगा। अब तो कुछ ही देर में भागलपुर आ जायगा।

इधर लोग असतर्क हुए और उधर वह गाड़ी का दरवाजा खोल चलती गाड़ी से नीचे कूद गयी। पूरे डिब्बे में हलचल मच गयी। चेन खींची गयी। गाड़ी के रुकते ही लोग दौड़े। कुछ लोगों के अनुरोध करने पर गाड़ी को पीछे ले जाया गया। वहाँ जाने पर देखा गया कि वह एक झाड़ी में बेहोश पड़ी है। उसके सिरहहाने एक वृद्ध लालटेन लेकर पहरा दे रहा है। लोग उस वृद्ध की इस कृपा से अभिभूत हो उठे। उसे पुरस्कार देने के लिए ज्योंही लोग उत्सुक हुए त्योंही उसे गायब पाया।

इस घटना के कुछ दिनों बाद वह लड़की पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गयी। बातचीत के सिलसिले में उसने कहा—"अब मैं बिलकुल ठीक हूँ। पागलपन के दौरान की सारी बातें याद हैं। मैं तो अस्पताल में भी गुरुदेव का कीर्त्तन सुनती रही। यह कीर्त्तन एक मिनट के लिए भी बन्द नहीं हुआ था। जिस दिन मैं रेल से कूदी, जमीन पर नहीं गिरी। महाराज ने अपने हाथों में ले लिया था। इसके बाद एक लालटेन लेकर सिरहाने बैठ गये। मैं बेहोश नहीं थी। एक टक गुरुदेव को देखती रही। जब आप लोग आये तब वे गायब हो गये।"

उससे पूछा गया कि क्या अब भी तुम निरन्तर कीर्त्तन सुन पाती हो ? उसने कहा—"ठीक हो जाने के बाद से अब नहीं सुन पाती।"

मोहनानन्दजी की ऐशी-शक्ति देखकर बाबा भोलानन्द गिरि, बाबा सीताराम ओंकारनाथ, माँ आनन्दमयी प्रभावित हुए थे और इन्हें आदर देते थे।

हेमचन्द्र बनर्जी तथा विनयिनी देवी का लाड़ला जिसके बचपन का नाम मनोमोहन था, सौम्य प्रकृति तथा आकर्षक व्यक्तित्व का महापुरुष है। इन्होंने विदेशों में जाकर नाम-महिमा का प्रचार किया है। आपके शिष्य ब्रिटेन, जर्मनी, फ्रांस, इटली, स्विट्जरलैण्ड तथा अमेरिका में भी हैं। इन सभी शिष्यों को नाम मँत्र जपने का उपदेश देते हैं। जब आप वहाँ जाते हैं तो नाम-कीर्त्तन करते हैं।

जिस प्रकार सिक्खों की बस्ती जहाँ होगी, वहाँ गुरुद्वारा स्थापित होगा, इसी प्रकार बंगाली कालीबाड़ी (कालीजी का मंदिर) का निर्माण करते हैं। अमेरिका के न्यूजर्सी क्षेत्र में वहाँ के बंगालियों ने उपासना के लिए कालीबाड़ी बनाकर श्री श्री मोहनानन्द आश्रम बनाया है। अस्पताल स्थापित किया है और बंगला-शिक्षा का प्रबंध किया है। इसके अलावा अमेरिका के कई शहरों में इस प्रकार के आयोजन चल रहे हैं। देवघर में मोहनानन्दजी ने अपने गुरु के नाम पर अनेक महत्वपूर्ण कार्य करवाया है।

कभी स्वामी विवेकानन्द पाश्चात्य देशों में जाकर भारतीय धर्म, दर्शन और अध्यात्म का प्रचार करते रहे और अब मोहनानन्द जैसे अनेक सन्त विश्व कल्याण के लिए प्रयत्नशील हैं।

●

कुलदानन्द ब्रह्मचारी

कुलदानन्द ब्रह्मचारी

सन् १९०३ या १९०४ की घटना है। गया के आकाश गंगा पहाड़ पर एक युवा संन्यासी कठोर तपस्या में मग्न था। एक ही आसन पर वह हमेशा बैठा रहता। यहाँ तक कि शौच-स्नान के लिए भी आसन त्याग नहीं करता। बिना निद्रा के वह अपनी साधना के जरिये लक्ष्य मार्ग की ओर बढ़ रहा था। अगर कभी कोई तीर्थयात्री यहाँ तक आता और साधु बाबा समझकर कुछ दे देता तो उसे वे खा लेते वर्ना भूखे रह जाते थे।

आकाश गंगा गया का जाग्रत पर्वत है जहाँ कभी प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी, गंभीरनाथ आदि अनेक महात्मा साधना करते रहे। आम तौरपर यहाँ कोई नहीं आता। यही वजह है कि अधिकांश साधु-संत यहाँ आकर साधना करते हैं। इस स्थान की एक खूबी और है। सूनसान ज़गह होने के कारण चोर तथा डाकू यहाँ आकर शरण लेते हैं और माल छिपाकर रखते हैं।

युवा संन्यासी और कोई नहीं, प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी का प्रिय शिष्य कुलदानन्द ब्रह्मचारी था। गुरु के आदेश पर वह यहाँ साधना करने चला आया था। इन्हीं दिनों डाकुओं का एक गिरोह भी कहीं से छिपता-छिपाता वहाँ आ गया जहाँ गोस्वामीजी के शिष्य कुलदानन्द ब्रह्मचारी की कुटिया थी। डाकुओं ने देखा कि बाबाजी हमेशा आँखे खोले चुपचाप बैठे सारा दृश्य देखते रहते हैं। कहीं बाबा ने पुलिस को सूचना देकर सब कुछ बता दिया तो बेड़ा गर्क हो जायगा। माल भी हाथ से निकल जायगा और हवालात में सजा काटनी पड़ेगी।

यही सब तीन-पाँच सोचकर उन लोगों ने निश्चय किया कि बाबाजी को यहाँ से खदेड़ देना उचित होगा। षड़यंत्र के अनुसार भोर होने के पहले कुटिया के पास स्थित एक बेल के पेड़ के नीचे लाठी लेकर एक डाकू खड़ा होकर बाबा के निकलने की प्रतीक्षा करने लगा। प्रातःकाल वे शौच के लिए जायँगे तब पीछे से दो-चार लाठी मारते ही सीधे परलोकधाम चले जायँगे।

बाबा की कुटिया बन्द थी। अभी बाबा अपनी कुटिया से बाहर नहीं निकले तभी प्रतीक्षारत डाकू की तेज आवाज गूँज उठी। पहाड़ी बिच्छू ने उसे काट खाया था। यंत्रणा से वह छटपटाने लगा। एकाएक बाबा कुटिया के बाहर आये। उन्हें रहस्य समझते देर नहीं लगी। पास आकर उन्होंने उस डाकू को देखा, फिर कुटिया से दवा लाकर दंश स्थान में लगाया। थोड़ी देर बाद वह डाकू वापस चला गया।

डाकुओं के सरदार लहटन सिंह को इस पर विश्वास नहीं हुआ कि बाबा के चमत्कार के कारण ऐसा हुआ है। उसने इसे मात्र दुर्घटना समझा। लहटन सिंह ने पुनः षड़यंत्र किया। दर असल उसे यह अनुभव हुआ कि बाबाजी पुलिस के गुप्तचर हैं, वर्ना ऐसे निर्जन स्थान में

क्यों रहते हैं जहाँ भोजन-पानी की असुविधा है। सरदार ने अब एक दूसरे सदस्य को भेजा। आगन्तुक डाकू एक पेड़ पर छिपकर बैठ गया।

धीरे-धीरे सबेरा हुआ और बाबा कुटिया से बाहर आये। डाकू उन्हें मारने के लिए पेड़ से उतरने लगा और तभी पुनः एक दुर्घटना हो गयी। पता नहीं, कहाँ से एक अजगर आकर उससे लिपट गया। मृत्यु यंत्रणा से अधीर होकर वह बुरी तरह चिल्लाने लगा। दूर खड़े बाबा यह दृश्य देख रहे थे। वे कमरे के भीतर चले गये। आश्चर्य की बात यह हुई कि इधर बाबा कुटिया में गये और इधर अजगर का बंधन ढीला होता गया। बंधन ढीला होते ही डाकू उछलकर कुटिया की ओर भागा। भीतर बाबा पद्मासन लगाये बैठे थे। उनके चरणों पर मस्तक रखने के बाद उसने अपराध के लिए क्षमा माँगी।

बाबा मुस्कराये और अभय मुद्रा में हाथ उठाकर डाकू को क्षमा कर दिया।

दो बार की असफलताओं से लहटन सिंह को होश नहीं आया। उसने अपने साथियों के इस चमत्कार को कोई चमत्कार नहीं माना। इन दोनों डाकुओं के साथ हुई घटना का प्रभाव गिरोह के अन्य लोगों पर पड़ा। बाकी लोग में से अब कोई भी बाबा के पास जाने को राजी नहीं हुआ। यह देखकर लहटन सिंह ने निश्चय किया कि अब वह स्वयं जाकर बाबा को मारेगा।

इस निश्चय के बाद वह भोर के वक्त तलवार लेकर बाबा की कुटिया के पास आकर उनके बाहर निकलने की प्रतीक्षा करने लगा। दूर खड़े उसके साथी अपने सरदार के साहस तथा कार्यवाही को देखते रहे। अचानक न जाने कहाँ से एक चीता प्रकट हो गया। उसकी हिंस्र आँखें देखते ही लहटन सिंह की घिग्घी बँध गयी। तलवार फेंककर वह बाबा की कुटिया की ओर दौड़ा और चिल्लाने लगा —"बाबा, मेरी रक्षा करो।"

बाबा कुटिया के बाहर आकर उसे जमीन से उठाते हुए बोले—"शान्त हो जाओ। संतों से छेड़छाड़ नहीं करना चाहिए। भगवान् उनकी रक्षा करते हैं। मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है जो मुझे मारने पर तुले हो। जाओ, भगवान् का भजन करो।"

लहटन सिंह का ख्याल था कि बाबा जादू दिखाते हैं। लेकिन जब अपने साथ घटना हुई तब उसे विश्वास हो गया कि यह भगवान् का चमत्कार है वर्ना बिच्छू, अजगर और चीता तीनों मेरे साथियों को मारने में संकोच न करते।

× × × ×

सन् १८६७ ई० के नवम्बर माह में ढाका जिला के पश्चिमपाड़ा नामक गाँव में इस बाबा का जन्म हुआ था। पिता कमलाकान्त वंद्योपाध्याय और माता थीं, हरसुन्दरी देवी। कमलाकान्त काली के उपासक थे। कुलदाकान्त हरसुन्दरी देवी का चौथा बालक था। कुलदाक़ान्त अभी जीवन का पाँचवाँ वसन्त देख पाये थे कि पिता चल बसे। परिवार में अवसाद की काली छाया घिर आयी। चार पुत्र और तीन लड़कियों को लेकर हरसुन्दरी देवी कठिनाई से गुजर करती हुई जीवन से संघर्ष करने लगी।

ढाका में उन दिनों ब्राह्मसमाज का व्यापक प्रभाव था। लोग पाश्चात्य प्रभाव में आकर धड़ाधड़ ईसाई बन रहे थे। इसी बीच राजा राममोहन राय द्वारा स्थापित ब्राह्मसमाज ने दिशाहीन हिन्दुओं को एक नयी दिशा दी। कट्टरवादियों ने इस नये धर्म का विरोध किया।

लेकिन ब्राह्मसमाज का विस्तार तेजी से होता गया। मूर्ति पूजा का विरोध, काली-दुर्गा आदि देवी-देवताओं का बहिष्कार, जाति-बन्धन न मानना जैसे अनेक नियम ब्राह्मसमाज के कर्णाधारों ने बनाये। आचार्य केशवसेन, पण्डित शिवनाथ शास्त्री, ठाकुर परिवार के अधिकांश सदस्य ब्राह्मसमाज के विस्तार में सहयोग कर रहे थे। ढाका ब्राह्मसमाज के कर्णधार विजयकृष्ण गोस्वामी थे। उन दिनों उनका स्थायी निवास ब्राह्मसमाज मंदिर में ही था। जहाँ लोग उपासना के लिए जाते थे।

किशोर मन पर नये आन्दोलन का प्रभाव पड़ता है, फिर जबकि सर्वजन समादृत गोस्वामीजी जैसे महापुरुष इस नगर के प्रमुख प्रचारक हों। कुलदाकान्त तथा उसके साथी भी ब्राह्मसमाज के प्रचारक बने, पर अभी उन्हें ब्राह्मसमाजी बनने के लिए जनेऊ आदि त्यागना बाकी था। कुलदाकान्त के बड़े भाइयों में वरदाकान्त और शारदाकान्त ने भी ब्राह्मसमाज को अपनाया। इन दोनों भाइयों की प्रेरणा से कुलदाकान्त भी ब्राह्मसमाजी बने। वरदाकान्त के उत्साह देने के कारण कुलदाकान्त डायरी लिखने लगे। पाँच भागों में प्रकाशित इनकी डायरियों को पढ़कर सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने कहा था—"आप आधुनिक भारतीय साधकों के महानतम प्रतिनिधि हैं।" महात्मागाँधी, विपिनचन्द्र पाल, अश्विनी कुमार दत्त, डॉ० वेणीमाधव बरुआ आदि अनेक विद्वानों ने इनकी डायरियों की प्रशंसा की है।

गाँव की पाठशाला में शिक्षा समाप्त करने के बाद कुलदाकान्त को ढाका शहर भेजा गया। बचपन में एक बार अपने घर विजयकृष्ण गोस्वामी को कुलदाकान्त ने देखा था। उनकी वह छवि स्थायी रूप से उनके हृदय पटल पर जम गयी थी। नगर में आने पर भाइयों के साथ नित्य ब्राह्मसमाज में जाने लगे। गोस्वामीजी के प्रवचनों का किशोर कुलदाकान्त पर व्यापक प्रभाव पड़ा। अन्त में एक दिन उन्होंने घोषणा की कि अमुक दिन अपना जनेऊ त्यागकर ब्राह्मसमाजी बन जाऊँगा। यह घोषणा चारों ओर फैल गयी। लोग उसे डराने धमकाने लगे। आत्मीय स्वजन इस कार्य के विरुद्ध आन्दोलन करने लगे। इधर जितना विरोध हो रहा था, उधर उतना ही उत्साह और निर्भीकता बढ़ती जा रही थी।

एक दिन भोर के वक्त कुलदाकान्त ने एक अजीब स्वप्न देखा। उन्होंने देखा—वह ब्राह्म-मंदिर के दरवाजे के पास खड़े हैं। बाग में पारिजात वृक्ष के पास गोस्वामीजी खड़े हैं। उन्हें देखते ही हाथ के इशारे से पास बुलाने लगे। उस वक्त वे कह रहे थे—"जल्द मेरे पास चले आओ। तुम जो चीज चाहते हो, वही मैं तुमको दूँगा।"

गोस्वामीजी की बातें सुनकर कुलदानन्द आनन्द से विह्वल हो उठे। भगवान् को पाने की कामना से वह उनके चरणों पर गिर पड़े। तभी उनकी नींद खुल गयी। वे देर तक गोस्वामीजी की सौम्य शान्त, स्निग्ध, पवित्र मूर्ति अपनी आँखों के सामने देखते रहे। बार-बार उनकी वाणी कानों में गूँजती रही। उन्हें लगा जैसे अभी गोस्वामीजी बाग में उनकी प्रतीक्षा में खड़े हैं। बिस्तर पर पड़े-पड़े वे रोने लगे —"प्रभु, मैं तुम्हारे मामले में अज्ञानी हूँ। मुझे यहाँ से ले चलो।"

इस प्रार्थना के साथ-साथ उनका हृदय बेहद बेचैन हो उठा। सबेरा होने के पूर्व ही वे ब्राह्ममंदिर की ओर दौड़कर जा पहुँचे। अभी दरवाजा बन्द था। दीवार फाँदकर बाग में कूदने के पश्चात् वे अपने लक्ष्य स्थान की ओर बढ़ चले।

कुछ दूर जाने पर उन्होंने देखा—स्वप्न में जिस स्थान को देखा था, पारिजात वृक्ष के

नीचे गोस्वामीजी वहीं खड़े हैं। मुण्डित मस्तक, गैरिक वसन, पवित्र मूर्ति। हाथ में डण्डा और पैरों में खड़ाऊँ पहने हैं। कुलदा को देखते ही वे नीचे गिरे पारिजात फूलों की ओर इशारा करते हुए बोले —"देखो, कितना सुन्दर लग रहा है। लगता है जैसे दूब पर धान के लावे बिखरे पड़े हैं।"

आज के पहले कुलदानन्द ने कभी गोस्वामीजी को प्रणाम नहीं किया था। हमेशा सिर झुकाकर अभिवादन करता आया था। आज न जाने क्यों व्याकुल होकर रोते हुए उनके चरणों पर गिर पड़े।

गोस्वामीजी उच्चकोटि के साधक थे। बालक कुलदाकान्त क्यों इतना भावातुर हो गया है, इसे वे समझ गये। उन्होंने कहा—"तुम्हें इसके पहले आना चाहिए था। अब समय उत्तीर्ण हो गया है। अभी कुछ दिनों तक इंतजार करो।"

कुलदा ने कहा—"मैं इतना व्याकुल हूँ कि अभी साधन लेना चाहता हूँ।"

गोस्वामीजी ने कहा—"यह अच्छी बात है। यही मौका है। इसी उम्र में साधन लेना चाहिए। अभी मैं पछाँह जा रहा हूँ। तुम लोगों की छुट्टी होनेवाली है। घर होकर वापस आने पर साधन होगा। साधन लेने पर कम से कम पन्द्रह दिनों तक तुम्हें मेरे पास रहना पड़ेगा।"

छुट्टियाँ समाप्त होने के बाद कुलदानन्द ढाका आये और कालेज में पढ़ने लगे। अगहन में जब गोस्वामीजी आये तब साधन के प्रसंग पर उन्होंने कहा—"साधन लेनेवालों को स्वतंत्र रूप से नहीं रहना पड़ता। जिसका जो कार्य है, उसे करना पड़ेगा। तुम छात्र हो, तुम्हें बराबर अध्ययन करते रहना पड़ेगा।"

कुलदानन्द ने इस शर्त को स्वीकार कर लिया। गोस्वामीजी ने पुनः कहा—"यह अच्छी बात है। अब एक बात और है। अपने अभिभावकों से तुम्हें अनुमति लेनी पड़ेगी। बिना उनकी अनुमति प्राप्त हुए साधन नहीं दिया जा सकता। अगर एक सौ वर्ष का वृद्ध भी साधन लेना चाहे तो उसे भी इसी नियम का पालन करना पड़ेगा।"

यह बात सुनकर कुलदानन्द की हालत पतली हो गयी। उन्होंने कहा—"मेरे अभिभावक बड़े भाई हैं।"

"उन्हीं से आज्ञा ले लो।"

एक दिन स्कूल से वापस लौटने पर छोटे भाई ने कहा—"मझले दादा (वरदाकान्त वंद्योपाध्याय) ढाका आये हैं।" यह बात सुनकर कुलदानन्द भयभीत हो उठे। उनसे मुलाकात होते ही वे काफी बिगड़े। यहाँ तक कि चप्पल निकालकर मारने को तैयार हो गये। तभी मझली भाभी नें बाधा डाली।

मझले भैया ने कहा—"भविष्य में कभी 'योग' शब्द जबान पर मत लाना, वर्ना जूतों से पीटकर सीधा कर दूँगा।"

आधे घण्टे तक अपमानित होने के बाद कुलदानन्द ने गोस्वामीजी के पास आकर उन्हें सारा समाचार सुनाया। सारी बातें सुनने के बाद गोस्वामीजी ने कहा—"तुम्हारे बड़े भाई जब मौजूद हैं तब उनसे अनुमति ले लो।"

"वे फैजाबाद में असिस्टेण्ट सर्जन हैं।"

गोस्वामीजी ने कहा—"उन्हें पत्र लिखो और उनसे अनुमति प्राप्त कर लो। वे तुम्हें अनुमति देंगे। घबड़ाने की कोई बात नहीं है।"

मायूस होकर कुलदानन्द घर आये और गोस्वामीजी के निर्देशानुसार बड़े भाई को पत्र लिखने पर उन्होंने अनुमति दे दीं। साथ ही यह भी लिखा कि जब हम लोगों की माँ मौजूद हैं तब सबसे पहले उनसे अनुमति लेनी चाहिए।

इस समाचार को सुनकर गोस्वामीजी ने कहा—"इस पत्र को सम्हालकर रखना। अब माँ से अनुमति ले लो। उन्हें यह बताने की जरूरत नहीं है कि तुम दीक्षा ले रहे हो। उनसे कहना कि साधन लूँगा। तब वे आपत्ति नहीं करेंगी।"

अब माँ को राजी करने की जिम्मेदारी आ गयी। शहर से गाँव जाने के लिए मौका नहीं मिल रहा था। अचानक एक दिन वह अवसर मिला। छोटे भाई ने कुछ सामान देते हुए गाँव पहुँचाने का अनुरोध किया। कुलदानन्द तुरत गाँव रवाना हो गये। गाँव आकर उन्होंने गोस्वामीजी के कथनानुसार साधन लेने की चर्चा की। माँ ने कहा—"यह तो खुशी की बात है, पर जनेऊ मत निकालना। जनेऊ फेंककर ब्राह्म होने की जरूरत नहीं है।"

माँ के चरणों पर सिर रखते हुए कहा—"नहीं माँ, मैं जनेऊ नहीं फेकूँगा। अब तुम मुझे आशीर्वाद दो।"

माँ ने कहा—"मैंने कोई धर्म-कर्म किया नहीं। तू करेगा तो मना क्यों करूँगी ? लेकिन जब तक मैं जीवित हूँ, तबतक घर से भागना नहीं। गृहस्थी में रहकर धर्म-कर्म कर। भगवान् तेरी इच्छा पूरी करेंगे। मैं तुझे हृदय से आशीर्वाद देती हूँ।"

माँ से अनुमति मिलते ही कुलदानन्द शहर चले आये। उन्होंने सारा समाचार गोस्वामीजी को दिया। दिन निश्चित करके उन्हें दीक्षा दी गयी। दीक्षा देने के बाद गोस्वामीजी ने कहा—"सुबह-शाम दोनों वक्त इसे जपते रहना।"

अब नित्य गोस्वामीजी के यहाँ वह जाने लगा। गोस्वामीजी ने उसे प्राणायाम और नाम जपने का उपदेश दिया। वह देखता कि भक्तों की बैठक में अक्सर जब गोस्वामीजी को भाव-समाधि हो जाती तब वे 'जय वारिदी के ब्रह्मचारी की ! जय रामकृष्ण परमहंस की ! जय माताजी, जय गुरुदेव !' कहते-कहते समाधिस्थ हो जाते थे। लेकिन उसे कुछ नहीं होता। उसे नित्य आते देख गोस्वामीजी ने कहा —"तुम्हें रोज यहाँ आने की जरूरत नहीं है। सप्ताह में एक दिन आना। अब पढ़ने-लिखने में मन लगाओ।"

छोटे भइया के एक मित्र की माँ मर गयी। यह समाचार उसे बताया नहीं गया। कुलदानन्द उसे लेकर उसके घर आये। यहाँ आने पर जब उसे ज्ञात हुआ कि उसकी माँ मर गयी है तब वह रोते-रोते बेहोश हो गया।

अचानक कुलदानन्द ने सोचा कि अगर मेरी माँ इस तरह मर जायें तो मैं क्या करूँगा ? माँ बीमार हैं। माँ की बात सोचकर उन्हें काफी घबड़ाहट महसूस हुई। वे अपनी माँ को देखने के लिए तुरत रवाना हो गये। पूरे पाँच क्रोश पैदल चलकर आने के बाद जब घर आये तो देखा—मुहल्ले के सभी लोग उसके घर भीड़ लगाये हुए हैं।

कुलदानन्द को देखते ही कई लोगों ने कहा—"माँ जा रही हैं। तू आ गया, अच्छा हुआ। अब जाकर आखिरी बार माँ का दर्शन कर ले।"

सारा शरीर थकावट से चूर-चूर हो गया था। फिर यह स्थिति देखकर वह रो पड़े। मन ही मन कहने लगे—अब अगर इस वक्त गोस्वामीजी कृपा करें तभी माँ बच सकती हैं, वर्ना अब कोई आशा नहीं है। इन्हीं बातों का चिन्तन करते हुए पुनः मन ही मन वह गोस्वामीजी से प्रार्थना करने लगा।

ठीक इसी समय एक भतीजी को कै की बीमारी हो गयी। डाक्टर आये और बोले—"माँ की आशा छोड़ो। तुम्हारी भतीजी बच सकती है।" इतना कहने के बाद उन्होंने दवाओं का पुर्जा दिया।

गाँव में दवा नहीं मिली। उसे शहर आना पड़ा। दवा लेने के बाद कुलदानन्द गोस्वामीजी के पास आये। उसे देखते ही वे चौंककर बोले—"क्या घर नहीं गये। यहाँ कैसे ? अच्छा तो घर से आ रहे हो ? कैसी हालत है ?"

कुलदानन्द ने कहा—"माँ और एक भतीजी को हैजा हो गया है।"

"दवा लेने आये हो ?"

"जी हाँ।"

"तब देर करने की जरूरत नहीं। क्या भतीजी बहुत छोटी है ?"

"हाँ, सात-आठ साल की होगी।"

यह बाद सुनकर गोस्वामीजी 'आहा' कहा और फिर आँखें मूँद ली। कुलदा ने माँ के स्वास्थ्य के बारे में प्रार्थना की तो बोले—"माँ के लिए परेशान होने की जरूरत नहीं है। दवा लेकर जाओ। इससे गाँववालों का भला होगा।"

गोस्वामीजी के यहाँ मन उद्विग्न रहने के कारण कुलदानन्द अन्य बातें सोच नहीं सके, मगर रास्ते में सोचने लगे कि गोस्वामीजी को कैसे पता लगा कि मैं घर छोड़कर आया हूँ। फिर क्या हालत है ? यह प्रश्न क्यों पूछा। लड़की के बारे में जिस ढंग से उन्होंने बातें की, इससे लगता है कि शायद अब तक चल बसी होगी। अब दवा उसके लिए बेकार है। गाँव का अन्य कोई लाभ उठायेगा। तो क्या माँ अच्छी हो जायँगी ? यही सब सोचते-सोचते जब वह घर आया तो पता लगा कि भतीजी को बचाया नहीं जा सका। माँ की हालत अच्छी है।

धीरे-धीरे माँ ठीक हो गयीं। अब कुलदा ने सोचा—क्या गोस्वामीजी ज्योतिष जानते हैं ? ज्योतिष में भी गणना करनी पड़ती है। पर उन्होंने ऐसा कुछ नहीं किया। क्या यह उनकी योग-शक्ति का प्रभाव है ? इन प्रश्नों को वह सुलझा नहीं सका। जब माँ पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गयीं तब वह पुनः स्कूल चला आया।

एक अर्से के बाद गोस्वामीजी दरभंगा से लौटे। उनके आगमन पर भक्तों की भीड़ जुटने लगी। इसी बीच एक घटना हो गयी। इस घटना के कारण कुलदा को ज्ञात हुआ कि संतों में अलौकिक शक्ति रहती है। गोस्वामीजी से मुलाकात करनेवालों में एक संत आये थे जो रह-रहकर गाँजा पी रहे थे। इस वजह से अन्य भक्तों को कष्ट हो रहा था, पर गोस्वामीजी बड़े आदर और श्रद्धा के साथ उनसे बातचीत कर रहे थे।

कुलदानन्द को जब यह ज्ञात हुआ कि एक गँजेड़ी के कारण भक्तों को कष्ट हो रहा है

तो उत्तेजित हो उठे। यह भी पता चला कि उस गँजेड़ी संत को गोस्वामीजी के शिष्य ही गाँजा दे रहे हैं। गँजेड़ी संत को कोई भी मना करने का साहस नहीं कर पा रहा है।

कुलदानन्द ने गोस्वामीजी के भक्तों से कहा—"आप लोग इंतजार करिये। मैं भीतर जा रहा हूँ। उन्हें गाँजा पीते देखने पर तुरन्त ब्राह्म-मंदिर से निकाल दूँगा।"

इतना कहने के बाद बड़े गर्व के साथ भीतर गया। सीढ़ियों पर चढ़ते समय धड़ाम से नीचे गिर पड़ा। पैरों में मोच आ गयी। नीचे गिरकर वह कराहने लगा। लोग उसे गोद में उठाकर घर ले आये। तीन-चार दिनों के बाद वह स्वस्थ हुआ तब उसे पता चला कि संतजी बहुत पहुँचे हुए महात्मा थे। ऐसे संत लोकालय में शीघ्र नहीं आते। ऐसे लोगों का दर्शन सौभाग्य से होता है। अब उन्हें समझते देर नहीं लगी कि उनकी उद्दंडता के लिए ही उन्हें यह सजा मिली है।

गोस्वामीजी अब उन्हें प्राणायाम के नियम कुंभक आदि बताने लगे। यहाँ तक कि अपने एक शिष्य पंडित श्यामाकान्त को यह कार्य सिखाने की जिम्मेदारी गोस्वामीजी ने दे दी। कैसे प्राणवायु को आकर्षित करते हुए मूल में स्थापन करना पड़ेगा। कैसे ऊर्ध्व, अधः सभी इन्द्रियों के द्वारों के छिद्रों को बन्द कर श्वास, प्रश्वास और साधारण वायु की अन्तर्गति को पूर्ण रूप से रोकते हुए, अपना चित्त नाम में संयुक्त करना पड़ेगा और इसे दृढ़तापूर्वक पूरी शक्ति के साथ करना पड़ेगा। इस प्रक्रिया से अनुष्ठान के साथ-साथ बाहरी स्मृतियाँ विलुप्त हो जाती हैं। केवल नाम का अस्तित्व रह जाता है।

निरन्तर पंडित श्यामाकान्त तथा गोस्वामीजी के बताये नियमों के अनुसार वह नाम का अभ्यास करता रहा। एक दिन उसने अचानक देखा कि उसके सामने एक अद्भुत ज्योति चमक उठी। देखते-देखते वह ज्योति धीरे-धीरे उज्ज्वल होती गयी और उसमें से बिजली की तरह किरणें विकीर्ण होकर चारों ओर प्रकाश देने लगीं। अपने ललाट से निकली इस विचित्र ज्योति को देखकर वह बेहोश होकर गिर पड़ा।

इसके बाद ढाका जाकर उसने इस घटना का जिक्र पंडित श्यामाकान्त से किया। पंडितजी ने कहा —"वह दोनों भौं के बीच में स्थित दिव्यचक्षु है। अगर वह प्रकाशित रहे तो विश्व ब्रह्माण्ड दिव्यलोक मधुमय लगता है। तब जीवन-मरण, यहलोक, परलोक सब एक-सा लगता है। गुरु की कृपा से ही यह स्थिति प्राप्त होती है। उन्हीं की इच्छा से यह स्थायी होती है।"

अप्रैल, सन् १८८८ ई० में कुलदाकान्त ने जो दृश्य देखा, वह उसके जीवन की महत्त्वपूर्ण घटना थी। घटना यों है—शनिवार का दिन था। ढाका के पश्चिम दिशा में, आसमान पर एक टुकड़ा काला बादल दिखाई दिया। नवाब गनी मियाँ के घर के दक्षिण से अचानक चक्रवात उठा जिससे बूढ़ी गंगा का पानी आलोड़ित होने लगा। देखते ही देखते नदी में हाथी के सूँड़ जैसा जलस्तंभ ऊपर उठकर बादलों में समा गया। इसके बाद उस बादल से अनेक अग्नि गोले नीचे गिरने लगे। आवाज इस तरह निकलने लगी जैसे २०-२५ इंजन एक साथ चल रहे हों। सारा शहर काँप उठा।

ठीक इसी समय गोस्वामीजी अपने आसन से उठकर बाहर आये। रूँधे स्वर में काली और महावीर का स्तव पाठ करने लगे। उन्होंने देखा—काली और महावीर भीषण आकार में शून्य में नृत्य करने लगे। यह देखकर हाथ जोड़ते हुए गोस्वामीजी कंपित स्वर में प्रार्थना

करने लगे । इस तरह दोनों देवताओं को वे संतुष्ट करते रहे । यह उपद्रव केवल २-३ मिनट तक होता रहा । लेकिन यह जो अस्वाभाविक घटना हुई, वह कैसे और क्यों हुई, इसका पता नहीं चला । इस दुर्घटना के कारण ढाका तथा विक्रमपुर में जो घटनाएँ हुई, वह यों हैं—

१. बूढ़ी गंगा के उस पार से एक बुढ़िया को, तूफान उड़ाकर शहर के बड़े-बड़े मकानों को पार करते हुए नार्मल स्कूल की छत पर स्थित एक कमरे में ले आया था । ६५ वर्ष की वृद्धा को कहीं भी चोट नहीं लगी ।

२. 'ढाका प्रकाश' प्रेस का एक टेबुल २०० कदम की दूरी पर स्थित एक मकान में चला आया । टेबुल जिस कमरे में था, वहाँ से निकालने के लिए ८-१० व्यक्तियों की जरूरत होती और दरवाजे से बाहर निकालने के लिए तिर्छा करना पड़ता ।

३. एक गगरी जिसमें लाई थी, ढक्कन सहित दूसरे के घर पर हाजिर । मजे की बात गगरी और ढक्कन सही सलामत थे ।

४. एक बड़े मकान का काफी बड़ा हिस्सा गायब हो गया, पर वहीं एक आधा सूखे हुए गुलाब के पौधे से एक पत्ती भी नीचे गिरी नहीं ।

५. एक महिला का केवल एक स्तन ऐसे गायब हो गया जैसे किसी ने तेज तलवार से काट दिया हो ।

इसी तरह की अूक्ष्भुत घटनाएँ हुई थीं जिसके प्रत्यक्षदर्शी कुलदाकान्त थे और इन घटनाओं को उन्होंने डायरी में लिख रखा है ।[१]

गोस्वामीजी की जबानी बार-बार बारिदी के ब्रह्मचारी की प्रशंसा सुनकर कुलदा की उत्सुकता बढ़ गयी । गोस्वामीजी ने यह भी बताया कि वे मेरे प्रपितामह के छोटे भाई हैं । भारत के विभिन्न अंचलों, पहाड़ों और जंगलों में घूम चुका हूँ, इस प्रकार के उच्चस्तर वाले महापुरुष का[२] दर्शन नहीं मिला । उनकी आँखों की पलक नहीं झपकती है । अगर कोई उनकी आँखों की ओर पाँच मिनट देखता रहे तो वह बेहोश हो जायगा । हिमालय तथा तिब्बत से आज भी लोग रात को इनके पास योग-शिक्षा के लिए आते हैं । यही वजह है कि रात को कोई उनके निकट नहीं जाता । शाम के बाद उनके कमरे का दरवाजा बन्द हो जाता है ।

इन सारी बातों को सुनने के बाद कुलदा ने कहा—"मैं एक बार ब्रह्मचारीजी का दर्शन करने जाना चाहता हूँ ।"

गोस्वामीजी ने कहा—"जरूर जाओ । लेकिन एक बात याद रखो कि वहाँ जाकर उनसे कोई सवाल मत पूछना । चुपचाप दूर बैठे रहना । तुम्हारे लिए जो आवश्यक है, वह तुम्हें अपने आप बुलाकर बता देंगे ।"

दूसरे दिन चारों भाई यात्रा पर निकले । जिस समय ये लोग वारिदी गाँव पहुँचे, उस वक्त शाम हो गयी थी । कुलदा को मालूम था कि शाम के वक्त ब्रह्मचारीजी के कमरे का दरवाजा बन्द हो जाता है, इसलिए वह नाव पर रह गया । बाकी तीनों भाई ब्रह्मचारीजी के दर्शन के लिए व्याकुल होकर चल पड़े । जब वे कुटिया के पास आये तो देखा—द्वार खुला है । यह देखकर तीनों भाई प्रसन्न हो उठे ।

---

[१] श्री श्री सद्गुरु प्रसंग, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ७५-७६

[२] देखिये, भारत के महान् योगी, प्रथम खण्ड ।

तभी भीतर से ब्रह्मचारीजी बाहर निकले और बोले—"तुम लोगों के आने की प्रतीक्षा में अभी तक दरवाजा बन्द नहीं किया । अब तुम लोग वापस चले जाओ । कल सुबह मिलना ।" इतना कहने के बाद उन्होंने दरवाजा बन्द कर लिया ।

दूसरे दिन चारों भाई ब्रह्मचारी के आश्रम पहुँचे । बरामदे पर जाते ही उन्होंने सबसे बड़े भाई का हाथ पकड़कर अपने आसन की बगल में बैठाते हुए कहा—"तुम तो महापुरुष हो । छद्मवेष में यहाँ आये हो ।"

"मैं तो हमेशा इसी पोशाक में रहता हूँ ।"

बाद में काफी देर तक बातें होती रही । बड़े भाई हरकान्त की बातें सुनकर ब्रह्मचारी ने कहा —"मैं साफ देख रहा हूँ कि तुम्हारा कर्म समाप्त हो गया है । तुम आये हो मेरा दर्शन करने ? दस साल बाद नित्य सैकड़ों लोग तुम्हारा दर्शन करेंगे ।"

हरकान्त ने पूछा—"यथार्थ कल्याण कैसे होगा, इस पर प्रकाश डालें तो बड़ी कृपा होगी ।"

ब्रह्मचारी ने कहा—"फिर तुम गोस्वामी से दीक्षा ले लो । सत्यवस्तु उसी के पास है । उसके आश्रय में जाने पर तुम्हारा भला होगा ।"

मझले भैया के प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा—"तुम खूब उपार्जन करो और सारी रकम निर्लिप्त भाव से लोगों की सेवा में खर्च करो ।"

सहसा कुलदानन्द को बुलाकर उन्होंने पूछा—"क्यों रे, तू क्यों आया है ? क्या देवता देखने आया है ?"

"नहीं ।"

ब्रह्मचारीजी ने मुक्का दिखाते हुए कहा—"नहीं कह रहा है । इस मुक्के से तेरा सिर तोड़ दूँगा । चुप मत रह, जबान खोल । तू तो नित्य डायरी लिखता है ? उसमें यह लिख रखना—विलासिता छोड़ दे । विद्या नहीं होगी । मेरी बातों का अर्थ समझा ?"

कुलदा को इस बात पर आश्चर्य हुआ कि मैं नित्य डायरी लिखता हूँ, इस बात का पता इन्हें कैसे चला ?

ब्रह्मचारी ने कहा—"विलासिता मत करना, पोशाक मत पहनना । अपने तन पर एक धोती और चद्दर रखना । जूता के बदले चप्पल का प्रयोग करना । जब मन बहुत खराब हो जाय तब यहाँ चले आना । उतावला होने की जरूरत नहीं, तुझे सब मिलेगा । आखिर तू यहाँ चुपचाप क्यों बैठा हे । बोलता क्यों नहीं ?"

कुलदा ने कहा—"गोस्वामीजी ने कहा है कि भविष्य के लिए मुझे जो जरूरत होगी, वह सब आप बता देंगे । मुझे प्रश्न करने के लिए मना किया गया है, इसलिए चुप हूँ ।"

ब्रह्मचारी ने कहा—"तुझे अपने मन की बात मिल गयी न ?"

"जी हाँ ।"

"तब इन बातों को अपनी डायरी में लिख लेना । तेरी छाती में जो दर्द है, यह प्रारब्ध का दोष है । अगर मैं हाथ फेर दूँ तो ठीक हो सकता है, पर फिर कब भोगना पड़ेगा, कहा नहीं जा सकता । दवा आदि मत खाना । जब अधिक तकलीफ हो तब ताजी मिट्टी लेकर कलेजे पर मल देना, आराम मिलेगा ।"

दोपहर के भोजन के पश्चात् पुनः जब लोग बैठे तब एक प्रश्न के उत्तर में बाबा लोकनाथ ब्रह्मचारी अपनी जीवन कहानी सुनाने लगे—"शान्तिपुर के विशुद्ध अद्वैतवंश में मेरा जन्म हुआ। गोस्वामी महाशय के प्रपितामह मेरे सहोदर थे। हम लोग चार भाई थे, शायद इसीलिए उपनयन के बाद मुझे एक षटचक्रभेदी संन्यासी को सौंप दिया गया। वे मुझे दीक्षा देने के बाद साधन शिक्षा देने लगे। अपने साथ अनेक तीर्थस्थानों में दर्शन कराते रहे। जवानी के दिन थे। मैं रिपुओं की उत्तेजना से छटपटाने लगा। यह देखकर एक पहाड़ी गाँव में स्थित एक कुटिया में रहने लगा। पास ही एक विधवा सुन्दरी युवती रहती थी। गुरुदेव नित्य भिक्षा में अन्न लाकर पकाते और मुझे खिलाते थे। मैं दिन भर अकेला उस युवती के साथ मनोविनोद किया करता था। इस प्रकार तीन साल गुजर जाने पर एक दिन मन ने कहा—तुम यह क्या कर रहे हो ? क्या यही सब करने के लिए माँ-बाप, घर-द्वार छोड़कर महापुरुष के साथ आये हो ? यह विचार मन में उठते ही मैंने गुरुदेव से आग्रह किया कि हमें यह स्थान त्याग देना चाहिए। गुरुदेव बराबर टालते गये। कभी कल, तो कभी बीमार हूँ, कहते रहे। आखिर एक दिन क्रोध में आकर मैं उन्हें मुगदर लेकर मारने के लिए बढ़ा। तुरत वे भाग गये। बाद में बोले—"अब ठीक हुआ है। चलो, चला जाय।"

"वहाँ से रवाना होने के बाद मार्ग में मैंने गुरुदेव से पूछा—"जब तक मैं विनती करता रहा, आप यह स्थान छोड़ने को राजी नहीं हुए और मारने के लिए तैयार हुआ तो तुरत चल पड़े। आखिर इसका क्या रहस्य है ?" उन्होंने कहा—"अब तक तुमने ठीक से कहा नहीं था। तुम भोग को छोड़ चुके थे, पर भोग ने तुम्हें नहीं छोड़ा था।"

"इसके बाद सुनसान पहाड़ी स्थान पर गुरुदेव मुझे पैंतीस वर्ष हठयोग की शिक्षा देते रहे। बाद में परीक्षा लेने के पश्चात् राजयोग की शिक्षा देने लगे। काफी दिनों तक राजयोग सिखाया गया। इसके बाद एक दिन मेरे गुरुदेव अन्तर्धान हो गये।"

कुलदा ने पूछा—"सुना है कि आप उदयाचल तक गये थे ?"

ब्रह्मचारी ने कहा—"प्रयत्न किया था, पर जा नहीं सका। इस यात्रा में मेरे साथ तीन अन्य साथी थे। हितलाल मिश्र (तैलंग स्वामी), वेणीमाधव गंगोपाध्याय नामक एक महात्मा और अब्दुल गफूर नामक एक मुसलमान फकीर। हम लोग पैदल ही जा रहे थे। हिमालय से उत्तर बराबर आगे बढ़ते गये। कन्द और फल हमारा आहार था। लगातार बरफ पर चलने के कारण हमारे शरीर की चमड़ी सूख गयी थी। बाद में साँप के केंचुल की तरह वह अपने आप झर गयी। सारा शरीर दूध की तरह सफेद हो गया। इसके बाद हमें फिर कभी बरफ पर सर्दी महसूस नहीं हुई। जहाँ दिन छह माह और रात छह माह होती है, उससे भी आगे हम गये थे। वहाँ यहाँ की तरह दिन-रात, चन्द्र-सूर्य कुछ भी नहीं था।"

प्रश्न– "कब तक आप वहाँ थे ?"

उत्तर– "जहाँ कुछ भी नहीं है, वहाँ समय का ज्ञान कैसे होता ? इतनी जानकारी है कि काफी समय तक था।"

प्रश्न– "जब चन्द्र-सूर्य नहीं था तब आप मार्ग कैसे देख पाते थे ?"

उत्तर– "ऐसे स्थानों पर चलते समय आँखों के उपादान अन्य प्रकार के हो गये थे। चन्द्र-सूर्य के न रहने पर भी हम सब कुछ देख पा रहे थे।"

प्रश्न– "क्या उदयाचल तक आप गये थे ?"

उत्तर– "हम लोग काफी ऊपर गये थे। वेणीमाधव अधिक दूर तक चढ़ नहीं सका। अब्दुल गफूर काफी दूर जाकर वापस लौट आया। मेरी भी वही हालत हुई। हितलाल मिश्र कहाँ तक गये थे, पता नहीं। लेकिन उन्हें भी वापस आना पड़ा था। ऊपर हवा काफी हल्की है। हवा में तरंग नहीं। श्वास लेने में कठिनाई हो रही थी। सुना था कि हितलाल मिश्र हम लोगों से आगे काफी दूर जाकर हवा के अभाव में लौट आया था।"

प्रश्न– "इन दिनों वे महात्मा कहाँ हैं ?"

उत्तर– "अब्दुल गफूर मक्का चले गये। वे अभी तक जीवित हैं। वेणीमाधव चन्द्रनाथ पहाड़ पर चला गया। मैं नीचे आकर दो बार मक्का एशिया तथा योरप का चक्कर लगाकर वापस आ गया।"

इसके बाद अन्य प्रकार की बातें हुई। बिदा लेते समय हरकान्त और वरदाकान्त से उन्होंने कहा कि तुम दोनों गोस्वामी से दीक्षा ले लेना। इससे तुम लोगों का भला होगा।

कुछ दिनों से लगातार कुलदा साधन-भजन करता जा रहा है। भोर के वक्त छत पर जाकर पूर्व की ओर मुँह करके बैठ जाता है। सर्वप्रथम श्री गुरुदेव को स्मरण-प्रणाम करने के बाद गुरु मंत्र का एक हजार जाप करता है। इसके बाद एक घण्टे प्राणायाम, फिर इष्टनाम जपता है। कुछ दिनों बाद उसने अनुभव किया कि उसका ललाट सहसा काँपता है और एक अपूर्व ज्योति प्रकट होती है। इस अपूर्व ज्योति का वर्णन किसी से नहीं कर पाता। बाद में यह ज्योति अहरह उसकी आँखों के सामने नाचने लगी। आँखें चाहे बन्द रहें या खुली रहें, प्रति क्षण वह ज्योति आँखों के सामने प्रस्फुटित होने लगती है। चन्द्र किरणों की तरह इस ज्योति की रश्मि शीतल, शुभ्र है, बिजली की तरह उज्ज्वल और सबसे मजेदार बात यह है कि अति मनोहर और निर्मल है।

लेकिन यही ज्योति-दर्शन एक पाप के कारण सहसा गायब हो गयी। अपने इस अपराध के लिए वह लगातार कई दिनों तक मणिहारा सर्प की तरह छटपटाता रहा। घटना यों है—

शूद्र जाति की एक विधवा युवती पड़ोस में रहती थी जो आफत-विपद में कुलदा की सहायता करने के कारण घनिष्ठ हो गयी थी। इन दिनों वह अपनी जीविका निर्वाह के लिए विशेष रूप से चिन्तित हो उठी थी और अपने को असुरक्षित समझ रही थी। एक दिन कुलदा को घर पर बुलाकर उसने अपना दुखड़ा सुनाया। उसकी हालत देखकर कुलदा को दया आ गयी। उसने उसकी सुरक्षा की व्यवस्था कर दी। कुछ दिनों बाद एक दिन विधवा ने कुलदा को अपने यहाँ बुलाया। घर पर अकेली थी। उसने कुलदा का हाथ पकड़कर बिस्तर पर बैठाया। कुछ देर बाद अस्वाभाविक रूप से प्यार जताने लगी। उसके काँपते ओठ, लाल चेहरा और लोलुप दृष्टि के कारण कुलदा भी उत्तेजित हो उठा। ठीक इसी समय उसके ललाट की वह ज्योति काँपने लगी। वह तुरत बिस्तर से उठ खड़ा हुआ। महिला के वस्त्र पर 'अशुचि' के लक्षण देखकर उसने पूछा—"यह क्या ?" युवती ने उसका उत्तर दिया। उसे समझते देर नहीं लगी कि उसका सर्वनाश हो गया। नाम मात्र पतन के कारण उसका स्थिर ज्योतिमण्डल अन्तर्हित हो गया। जैसा कर्म वैसा फल मिल गया। अब क्या होगा ?

इस बीच पता चला कि गोस्वामीजी ढाका आ रहे हैं। उन्हें अपना मुँह कैसे दिखायेगा ? उनके स्वागत के लिए अपने गुरु भाइयों के साथ वह भी स्टेशन पर हाजिर हो गया, पर संकोच के कारण पीछे खड़ा था। उसे अनुभव हुआ कि गुरुदेव को मेरे पतन का कारण ज्ञात हो जायगा। इधर इसी तरह की घटना एक और गुरु भाई के साथ हो गयी थी। वह लज्जावश स्टेशन नहीं आया था। पड़ोस के लोगों ने उसकी बदनामी फैला दी थी। वह चुपचाप अपने घर में अनुतप्त जीवन व्यतीत कर रहा था।

गाड़ी के रुकते ही गोस्वामीजी ने सबसे पहले कुलदा को बुलाकर कहा—"तुम आ गये हो ? अच्छी बात है। मैं यहाँ नहीं उतरूँगा। अगले स्टेशन पर उतरूँगा।"

शिष्य लोग समझ नहीं पाये कि आखिर इस स्टेशन पर न उतरकर वे यहाँ से एक घण्टा दूर वाले स्टेशन पर क्यों उतरेंगे। गाड़ी छूटने के पहले एक बार कुलदा की ओर उन्होंने देखा और मुस्करा उठे। कुलदा को इससे अपार शान्ति मिली।

दोलाईगंज स्टेशन से गाड़ी छूट गयी। सभी शिष्य अगले स्टेशन पर पहुँचे। गाड़ी से उतरकर गोस्वामी सीधे उस गुरु भाई के घर गये जो कुलदा की तरह अनुतप्त था। दरवाजा खोलकर ज्योंही वह बाहर आया त्योंही उसे उन्होंने छाती से लगा लिया। गोस्वामीजी ने कहा—"तुम मेरे यहाँ नहीं आओगे जानकर मैं स्टेशन से सीधे चला आया।"

गुरु भाई रोते-रोते चरणों पर गिर पड़े। इस दृश्य को देखकर कुलदा को विश्वास हो गया कि उसके अपराध को गोस्वामीजी ने क्षमा कर दिया है।

इस घटना के काफी दिनों बाद एक बार वह स्कूल से छुट्टियों में घर आया। उन दिनों उसका मन बड़ा अशान्त था। गोस्वामीजी भी बाहर थे। परीक्षा फल भी ठीक नहीं था। साधन-भजनमें मन नहीं लग रहा था। ज्योति दर्शन भी लुप्त हो चुका था। ऐसी मानसिक स्थिति में उसने लोकनाथ ब्रह्मचारीजी को पत्र लिखा। लौटती डाक से उनका उत्तर आया—"मन खराब है तो यहाँ आकर उपदेश ले जाओ।"

इस पत्र को पाते ही कुलदा ब्रह्मचारीजी के पास जाने के लिए छटपटाने लगा। दूसरे दिन एक ब्राह्मण साथी के साथ वह पैदल रवाना हो गया। वहाँ जाते ही पहला प्रश्न हुआ—"मेरा पत्र मिल गया था ?"

"हाँ।"

"क्या खाया है ?"

"कुछ भी नहीं।"

यह उत्तर सुनकर ब्रह्मचारीजी ने भजलेराम को बुलाकर कहा—"आज जो लड्डू तैयार किया है, सब ले आओ।"

स्नेहमयी सेविका एक थाली लड्डू ले आयी। ब्रह्मचारीजी ने कहा—"ले सब खा जा।"

कुलदा ने कहा—"इतना कैसे खाऊँगा। मैं तो पेट के रोग के कारण दो मुट्ठी भात खाता हूँ।"

ब्रह्मचारीजी ने कहा—"शुरू कर। सब खा लेगा।"

इसके बाद सेविका उसे अपने साथ लेकर रसोईघर में आयी और एक आसन बिछाकर लड्डुओं को खाने का आदेश दिया। उसने अनुभव किया कि अब छुटकारा नहीं है। पेट के

रोगी के लिए लड्डू जहर के बराबर है। तभी भजलेराम ने कहा—"आज दोपहर को बाबा ने बुलाकर मुझसे कहा कि एक लड़का यहाँ भूखा-प्यासा आ रहा है। उसके लिए बढ़िया लड्डू बनाकर रख दे। यहाँ आने पर उसे खिला देना।"

भोजन के पश्चात् कुलदा बाबा के पास जाकर बैठ गया। बातचीत होने लगी। शाम को साढ़े पाँच बजे बाबा ने कहा—"चलो, प्रसाद खालो।"

कुलदा ने कहा—"एक थाली लड्डू अभी तो खाया है। अपने जीवन में इतना कभी नहीं खाया था। अब फिर कैसे खा सकूँगा।"

ब्रह्मचारीजी ने कहा—"खूब खा लेगा। पहले जाकर पत्तल पर बैठ तो। अपने आप भूख लग जायगी।"

बिना प्रतिवाद किये कुलदा पुनः रसोईघर में आकर बैठ गया। प्रसाद के गंध से भूख महसूस हुई। इस दिन उसने चौगुना भोजन किया।

बाद में सोचने लगा—यह कैसे संभव हुआ ? जरूर इसमें बाबा का चमत्कार काम करता रहा।

इस घटना के कुछ दिनों बाद कुलदा बीमार हो गया। लोगों की सलाह पर वह फैजाबाद आकर बड़े भाई के पास रहने लगा। लोगों ने कहा था कि पछाँह की जलवायु से स्वास्थ्य में सुधार होगा और बड़े भाई इलाज भी करेंगे। खाना, पीना, घूमना आदि के अलावा कोई काम नहीं था। इलाज भी चलता रहा।

सहसा एक दिन उसे गोस्वामीजी की बात याद आ गयी—काशी, अयोध्या, वृन्दावन आदि तीर्थों में अनेक महात्मा रहते हैं। उन्हें पहचानना कठिन है। कुली, मजदूर के रूप में वे घूमते रहते हैं। बड़े भाई से बातचीत करने पर दो संतों का पता चला। इनमें एक थे—नागा बाबा। आप गुप्ता घाट से डेढ़-दो मील दूर सरयू के उस पार सुनसान स्थान में रहते हैं। एक टीले पर। आसपास पेड़-पौधे नहीं थे। एक नहर जो कि सरयू नदी के इधर है, बाढ़ के समय उपद्रव करती है। एक बार बाढ़ के समय उसमें इतना पानी भर गया कि बाबा के आसन के लिए खतरा पैदा हो गया। बाबा ने नहर से कहा —'माई, इधर मत आओ।' इस आवेदन का कोई परिणाम नहीं निकला। यह देखकर बाबा बोले —"ऐसी बात है। अच्छा, अब बन्द हो जाओ।" इस शाप के बाद से वह नहर सूख गयी।

बाबाजी जिस मैदान में रहते हैं, उसके पास ही सैनिकों का कैम्प है। काफी लम्बा-चौड़ा भूभाग होने के कारण यहाँ सैनिक युद्धाभ्यास करते हैं। एक बार युद्धाभ्यास करने के पहले बाबाजी को नोटिस दिया गया कि आप अपना डेरा-डण्डा हटा ले जायँ। अन्य लोग हट गये। बाबाजी ने कहा—'बेटा, तुम लोग अपना खेल खेलो। मैं यह आसन छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगा। मेरा कुछ नहीं होगा। तुम लोग अपना खेल खेलो।"

बाद में पुनः सूचना दी गयी कि आप जल्द हट जाइये। अगर आप इस नोटिस पर नहीं हटेंगे तो आपकी मौत के लिए सरकार जिम्मेदार नहीं होगी। फिर भी बाबाजी नहीं हटे। बन्दूक, तोप चलने लगे। बाबाजी धूनी जलाकर बैठे रहे। कर्नल ने एक ओर से देखा कि बाबाजी क्या कर रहे हैं। इतने गोले बरसाये गये हैं, कहीं बाबाजी हैं या शहीद हो गये। उन्होंने आश्चर्य के साथ देखा कि बाबाजी एक हाथ वरद मुद्रा में उठाये चुपचाप बैठे हैं। बन्दूक की गोलियाँ और तोप के गोले उनके ऊपर तथा अगल-बगल से गुजर रहे हैं। यह

दृश्य कर्नल क्रूली के लिए विस्मयजनक था। अभ्यास समाप्त होने के बाद कर्नल क्रूली बाबा के पास आकर बोले—"मैं आपकी इस अलौकिक शक्ति को देखकर चकित रह गया हूँ। इस घटना को मैं आजीवन कभी भुला नहीं सकूँगा।" इस घटना का उल्लेख गजट में है।

बाबाजी के बारे में इतनी चमत्कारपूर्ण बातें सुनने के बाद कुलदा की उत्सुकता बढ़ गयी। बाबाजी के पास आकर ज्योंही उसने आशीर्वाद माँगा त्योंही वे चौंक उठे। कुलदा के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—"बेटा, तुम तो भगवान् के आश्रम में हो। तुम्हारे गुरु बड़े शक्तिमान संत हैं। वे बड़े दयालु हैं। वही तुम्हारे मालिक हैं। विश्वास और भक्ति तुम्हें उन्हीं से मिलेगी। जाओ, आनन्द करो।"

दूसरे बाबाजी का नाम पतितदास था। उनसे मिलने के लिए बड़े भाई ने मना किया। उन्होंने बताया कि वे अपनी कुटिया से जल्द बाहर नहीं आते। छह-छह माह बिना आहार के कुटिया में पड़े रहते हैं। कहते हैं कि बराबर समाधि में लीन रहते हैं। बड़े भाग्य से कभी-कभी उनका दर्शन लोगों को प्राप्त होता है। तुम जाना चाहते हो तो जाओ। मैं तुम्हें रोकना नहीं चाहता, पर उनका दर्शन दुर्लभ है।

कुलदा थोड़ा मायूस हो गया, पर निराश नहीं हुआ। उसने मन में निश्चय किया कि दर्शन हो या न हो, कम-से-कम उनकी कुटिया तक जाकर दरवाजे पर अपनी श्रद्धा ज्ञापन करेगा। इस निश्चय के साथ वह रवाना हो गया। फैजाबाद से अयोध्या जाने के मार्ग में एक जगह दोनों ओर बहुत बड़े मैदान के सामने दो रास्ते हैं। एक देवकाली की ओर तथा दूसरा राणुपाली की ओर जाता है। राणुपाली के मार्ग में बायीं ओर बाबाजी का आश्रम है।

आश्रम में प्रवेश करने पर उसने देखा कि कुटिया का दरवाजा बन्द है। बाबाजी के नाम पर कुटिया के सामने उसने साष्टांग प्रणाम किया। सिर उठाते ही उसने देखा—बाबाजी दरवाजा खोल रहे हैं। बड़े स्नेह से उन्होंने कहा—"आओ बच्चा, यहाँ बैठो। थोड़ी देर पहले मालूम हुआ कि तुम आओगे। तब से मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करता रहा।"

बाबाजी एकटक उसकी ओर देखते हुए बोले उठे—"आह ! धन्य हो गया, धन्य हो गया। दुर्लभ सद्गुरु का आश्रय पा गया। धन्य हो गया।"

कुलदा ने कहा—"बाबा, मेरा कल्याण कैसे होगा ?"

बाबा ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—"अब क्या है, बच्चा ? तेरा सब पूर्ण हो गया। उसी सद्गुरु का ध्यान कर।"

बाबाजी यही कहते-कहते रो पड़े। उनकी उम्र १५० वर्ष के लगभग थी। गौर वर्ण, चेहरा लाल, लम्बे-तड़ंगे थे। हाथ-पैर के नाखून सँड़सी की तरह तिर्छे और लम्बे थे। बातचीत करते समय आँखों से पानी बहता रहा। ऐसे दुर्लभ बाबा का दर्शन पाकर कुलदा फूला नहीं समाया।

अयोध्या में इन दोनों बाबाओं के अलावा कुलदा ने गोपालदास बाबा, तुलसीदास बाबा, अन्ध बाबा आदि संतों के दर्शन करने के बाद कलकत्ता चला आया। कलकत्ता से ढाका आया। अभी तक बीमारी ठीक नहीं हुई थी। लोगों के अनुरोध पर इस बार वह भागलपुर आकर रहने लगा।

यहाँ एक स्वामीजी से मुलाकात हुई। आप ढाका विश्वविद्यालय के छात्र थे। यहाँ

आने के बाद से कुलदा नियमित रूप से पुनः प्राणायाम और साधन करने लगा। रात को तीन बजे जागने के बाद उसकी क्रिया प्रारंभ हो जाती थी। कुंभक करने के बाद वह जलपान करता। इसके बाद सुबह ७ से १० तक त्राटक। भोजन के पश्चात् गंगा किनारे जाकर साधन का अभ्यास करता। कभी-कभी गहरी रात को जंगल में जाकर धूनी जलाकर नाम भजने में उसे अपूर्व आनन्द मिलता। गोस्वामीजी ने उसे बताया था कि नाम करते-करते सत्यवस्तु अपने आप प्रकट हो जायगी।

एक दिन भोर के समय गंगा-स्नान के पश्चात् नाम करते हुए स्वामीजी के साथ डेरे की ओर लौट रहा था। हृदय गुरु के प्रति आविष्ट था। अचानक ललाट-स्थल से अपूर्व ज्योति समन्वित सूर्य मण्डल प्रकाशित हुआ। वह भी केवल कुछ सेकेण्डों के लिए। यह दृश्य देखकर वह 'जयगुरुदेव-जयगुरुदेव' कहता हुआ रेत पर गिर पड़ा। योग-साधन राज्य में कितने चमत्कार हैं, कौन जानता है ?

नियमित रूप में गंगा-स्नान करते रहने के कारण उसने अनुभव किया कि इस वक्त मेरे साथ देवगण, ऋषिगण और पितृ पुरुषगण गंगाजल पाने के लिए चल रहे हैं। स्नान के पश्चात् जब वह ऊर्ध्व की ओर मुँह करके गंगा जल का अर्घ देता है तब रो पड़ता है, क्योंकि उस वक्त अर्घ जल में अँगूठे के बराबर अस्पष्ट मनुष्याकृति छायाएँ तैरने लगती हैं। देव तर्पण या ऋषि तर्पण में इच्छा करने पर भी कोई छाया दिखाई नहीं देती। पितृ तर्पण करने के बाद छायाएँ क्षण भर भी नहीं रहतीं।

एक दिन तर्पण करते समय उसने देखा कि पितृ तर्पण के वक्त ७-८ हाथ दूर गंगा किनारे एक बड़ा कुत्ता सतृष्ण दृष्टि से उसकी ओर देख रहा है। जाड़े का सबेरा था। वह कुत्ता क्रमशः उसके पास आने लगा। स्वामीजी तथा महाविष्णु बाबू जो पास ही स्नान कर रहे थे, कुत्ते को पास आते देख दुतकारने लगे। कुत्ते ने क्षीण स्वर में क्लेश सूचक आवाज निकाली। यह देखकर लोग रुक गये। जाड़े में जब स्नान करते समय लोग ठिठुर जाते हैं, ऐसी स्थिति में वह कुत्ता गले तक पानी में आकर खड़ा हो गया। जब-जब पितृ तर्पण करते हुए कुलदा अर्घ पानी में गिराता, उसे लपककर वह पी जाता था। तर्पण समाप्त करने के बाद कुलदा किनारे की ओर बढ़ा। इसके साथ ही वह कुत्ता भी किनारे की ओर बढ़ा। आश्चर्य का विषय यह रहा कि दूर-दूर तक फैले इस रेत में वह कुत्ता न जाने कहाँ गायब हो गया। द्रुतगामी घोड़ा भी इस रेत पर इतने शीघ्र अदृश्य नहीं हो सकता था। उस दिन वह दिन भर इस कुत्ते के बारे में सोचता रहा।

सन् १८६० ई० की घटना है। फागुन का महीना था। कुलदा एक साधन कर रहा था। ठीक इसी समय लाल नामक एक गुरु भाई उसके सामने हाजिर हो गया। उसे देखते ही कुलदा साधन छोड़कर खड़ा हो गया और अपने कमरे में लाकर बैठाते हुए उससे पूछा—"अचानक कैसे चले आये ?"

लाल ने कहा—"वृन्दावन में गोसाईजी (गोस्वामीजी) के साथ था। एक दिन तुम्हारी चर्चा चल पड़ी। तुम्हें देखने के लिए न जाने क्यों मन बड़ा व्याकुल हो उठा। बिना किसी को कुछ बताये पैदल चल पड़ा।"

कुलदा ने चकित होकर पूछा—"क्या वृन्दावन से यहाँ तक पैदल ही आये हो। तुम्हारे पास सामान के नाम पर यह कम्बल और लंगोट देख रहा हूँ। रास्ते में कोई कष्ट नहीं हुआ ?"

लाल ने कहा—"कष्ट किस बात का ? गुरुदेव भला किसी को कष्ट सहने देते हैं। मार्ग में कोई भगत मिला तो २-४ स्टेशन का टिकट दे देता था।"

एक नाबालिग बालक वृन्दावन से केवल एक कम्बल और लंगोट के सहारे भागलपुर तक पैदल चला आया। कुलदा के लिए यह आश्चर्य की बात थी। भागलपुर में नित्य कीर्त्तन होता था। लाल ने आकर इस कार्य में तूफान मचा दिया। लाल कितना योग्य है, इसका प्रमाण उसे उस दिन मिला जिस दिन उसे साथ लेकर पड़ोस के पार्वती बाबू के घर गया।

बातचीत के सिलसिले में जब धार्मिक चर्चा चल पड़ी तब लाल ने इतने गंभीर ढंग से दर्शन और अध्यात्म की चर्चा की जिसे सुनकर कुलदा दंग रह गया। केवल यही नहीं, अपने तर्क को प्रमाणित करने के लिए उसने संस्कृत, पालि, तिब्बती, अरबी और अन्य भाषाओं के उद्धरण देते हुए अपने तर्क को सिद्ध किया। उसने बताया कि गुरु कृपा से ब्रह्मज्ञान, तत्त्वज्ञान, भगवद् भक्ति शिष्यों में संचारित होती है।

उसके इस कथन का प्रमाण कुलदा को एक दिन प्रत्यक्ष रूप में मिल गया। उस दिन वह अपने कमरे में बैठा पतंजलि का दर्शन पढ़ रहा था। लाल ने आते ही पूछा—"कौन सी पुस्तक पढ़ रहे हो ?"

"पतंजलि।"

लाल ने कहा—"यह दुर्बुद्धि तुम्हें क्यों हुई। यह सब पढ़कर क्या करोगे। एक वाक्य का अर्थ नहीं समझ सकोगे। बेकार समय नष्ट करने से फायदा ? इससे अच्छा है कि नाम करो। गुरु की कृपा से सभी शास्त्र हृदय में प्रकट हो जाते हैं।"

कुलदा ने कहा—"अगर पढ़ोगे-लिखोगे नहीं तो गुरु की कृपा से सरस्वती-पुत्र कैसे बनोगे ?"

लाल ने कहा—"तुम्हारा ख्याल गलत है। वास्तव में गुरु की कृपा से सब कुछ ज्ञात हो जाता है।"

बार-बार कुलदा के विरोध करने पर लाल ने पतंजलि की पुस्तक को हाथ में लेकर प्रथम और अंतिम पृष्ठ को कई सेकेण्ड तक देखता रहा। फिर उस पुस्तक को सिर से लगाया। कुलदा को पुस्तक वापस देते हुए कहा—"पाठशाला में मेरी शिक्षा तीसरी पुस्तक तक हुई है। वर्णज्ञान की दृष्टि से इस पुस्तक का वर्णन करना कठिन है। अब तुम इस पुस्तक के किसी भी जगह से कोई भी प्रश्न करो, मैं उत्तर देता हूँ।"

कुलदा ने ७-८ स्थानों से प्रश्न किया। उन सभी प्रश्नों का सटीक उत्तर पाद टिप्पणियों के साथ लाल ने दिया। कुलदा विस्मय से अवाक् रह गया। उसने पूछा—"क्यों भाई, यह शक्ति तुम्हें कहाँ से प्राप्त हुई ?"

लाल ने कहा—"गुरु-कृपा। बात यह है कि एक दिन मैं गुरुभाई सुरेशचन्द्र सिहं के यहाँ मनोविज्ञान विषय पर बातचीत कर रहा था। बात करते-करते सुरेशचन्द्र सिंह किसी काम से भीतर चले गये। उनकी टेबुल पर अंग्रेजी की एक पुस्तक रखी हुई थी। मैंने पढ़ा-लिखा नहीं, अगर अंग्रेजी पढ़ लेता तो इन पुस्तकों का अध्ययन कर विषय की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर लेता। यह सोच कर उस पुस्तक को कई बार सिर से लगाया और गुरुदेव को स्मरण करने लगा। अचानक मुझे अनुभव हुआ मेरे मस्तक में कुछ हो रहा है। इस पुस्तक के भीतर

जो कुछ है, वे सभी विचार मेरे दिमाग में प्रवेश करते गये। यह क्यों और कैसे हुआ, इसे बता नहीं सकता। शायद यह गुरु-कृपा है।"

स्वामीजी जिनकी चर्चा आगे की गयी है, संन्यास व्रत ले चुके थे। संगदोष के कारण आचार भ्रष्ट होकर स्वेच्छाचारी हो गये थे। यह जानकार लाल को क्लेश हुआ। उसने स्वामी (हरमोहन) को समझाना शुरू किया कि आप यह सब छोड़कर गुरु के बताये पथ पर चलें। लेकिन स्वामीजी की आदतों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। उन्होंने लाल के सुझावों को अनसुना कर दिया। यह देखकर लाल ने सोचा—अब जरा योगैश्वर्य दिखाकर इन्हें ठीक करना पड़ेगा।

फागुन का महीना था। रात १० बजे कमरे में बैठकर सभी लोग बातें कर रहे थे। लाल ने पुनः स्वामीजी को समझाना शुरू किया। आदत के अनुसार स्वामीजी ने उपेक्षा दिखायी। यह देखकर लाल एकाएक उछल पड़ा और ऊपर की ओर हाथ हिलाते हुए कहने लगा—"मत आओ, मत आओ। क्यों आ रहे हो ? चले जाओ, चले जाओ।"

ठीक इसी समय बैठे हुए लोगों के सामने से न जाने क्या सों-सों आवाज करता हुआ गुजर गया। सभी लोग हतप्रभ रह गये। थोड़ी देर बाद पुनः बोल उठे—"हाय, हाय ! यह क्या हुआ ? आत्महत्या ? कितना भयानक है ! अब तो देखते नहीं बन रहा है।" कहने के साथ ही वह रोने लगा। रोते-रोते उसने कहा—"मेरे पास आने की जरूरत नहीं। गुरुजी के पास जाओ। मुझसे कोई कल्याण नहीं होगा। सुनाई नहीं दिया ? तब आओ।"

इतना कहना था कि पुनः सों-सों शब्द करता हुआ अदृश्य कुछ गंगा की ओर वाली खिड़की के तरफ गिरा। शीशे की खिड़की बन्द थी। आश्चर्य की बात यह हुई कि खिड़की अपने आप खुल गयी और उसके शीशे टूट गये। सभी लोग चौंक उठे। कुछ देर चुप रहने के बाद लाल ने पुनः कहना शुरू किया —"यह क्या देख रहा हूँ ? जीवित व्यक्ति को चिता पर चढ़ा दिया ? हाय, हाय यह क्या हुआ ? यह तो भयानक चिता है। जिन्दे व्यक्ति को जला दिया।"

तभी स्वामीजी दौड़कर बाहर बरामदे में आये और वे भी चीत्कार करते हुए बोले—"हाय, हाय, जिन्दे व्यक्ति को जला दिया ?" कहने के साथ ही वे भी बेहोश होकर गिर पड़े।

स्वामीजी लगभग डेढ़ घण्टा बेहोश रहे। होश में आते ही बिना कुछ बोले उन्होंने अपना कम्बल लाल पर फेंका और उसके लंगोट को खींच लिया। बाद में वें बोले—"आप लोग मेरे पागलपन को क्षमा कर दें।" कहने के साथ ही वे बरामदे से कूदकर तीव्र गति से दौड़ते हुए अदृश्य हो गये। उस वक्त रात के डेढ़ बज चुके थे।

कुछ देर बाद लाल ने कहा—"अब स्वामीजी को खोजने की जरूरत नहीं है। वे वृन्दावन की ओर जा रहे हैं।"

× × × ×

कुलदा का पुराना रोग पुनः उभड़ आया। भागलपुर का जलवायु भी उसके पित्तशूल को ठीक नहीं कर सका। उसने वृन्दावन जाने का निश्चय किया। जब जलवायु, दवा आदि से रोग अच्छा नहीं हो रहा है तब गुरुदेव की शरण में जाकर अपने को समर्पित कर दूँ। यही सब सोचकर वह वृन्दावन आ गया।

दूर से कुलदा ने देखा कि गुरुदेव बगीचे के दरवाजे के पास खड़े हैं। पास जाते ही गोस्वामीजी ने कहा —"आ गये कुलदा। चलो, अच्छा हुआ।"

उनके साथ मकान के दोतल्ले के एक कमरे में आकर उसने गोस्वामीजी को प्रणाम किया। गोस्वामीजी ने कहा—"अस्वस्थ हो, जरा आराम कर लो। बाद में जाकर यमुना में स्नान कर लेना। हम लोगों का भोजन हो चुका है। तुम्हारा प्रसाद रखा है, खा लेना।"

वृन्दावन आये कई दिन हो गये, पर पेट का दर्द दूर नहीं हो रहा है। कभी-कभी रात भर छटपटाने लगता है। तीसरे पहर गोस्वामीजी के पास वह बैठ नहीं पाता था। भागलपुर में दर्द कम था। यहाँ आने के बाद से यह दर्द बढ़ता जा रहा है।

नित्य सबेरे स्नान करने के बाद वह गोस्वामीजी के पास बैठकर नाम करता है। उस दिन दर्द से बहुत बेचैन हो उठा। कहीं गोस्वामीजी न जान जायँ, इस भय से वह अधिक देर तक साँस रोककर लम्बी साँस लेने लगा। पास ही गोस्वामीजी समाधिस्थ थे। अचानक चौंककर बोले—"ओफ ! तुम्हें तो बहुत कष्ट हो रहा है। अच्छा, अब तुम्हें भोगना नहीं पड़ेगा।" इतना कहने के बाद गोस्वामीजी ने दो-तीन बार कुलदा की ओर देखा और फिर समाधिस्थ हो गये।

कुलदा को इस बात पर आश्चर्य हुआ कि मेरे पेट के दर्द को कोई नहीं जानता। गोस्वामीजी कैसे जान गये ? 'अब तुम्हें भोगना नहीं पड़ेगा', क्यों कहा ? इन्हीं बातों को सोचता हुआ वह नीचे चला आया। भोजन के पश्चात् गुरुदेव के पास बैठकर नाम जपते-जपते ध्यानमग्न हो गया। इस बीच पता नहीं कैसे पेट का दर्द गायब हो गया। इसका अनुभव होते ही वह चौंक उठा। इतने दिनों से जिस दर्द के कारण परेशान था, वह कैसे गायब हो गया ? यह असंभव बात संम्भव कैसे हो गयी ? उसने अनुमान लगाया कि यह गुरुदेव की कृपा है। दर्द वास्तव में गायब ही गया है या नहीं, इसे आजमाने के लिए रात को जमकर रोटी, दाल, अचार, मसालेदार तरकारी खाकर सो गया। रात को गहरी नींद आयी।

दूसरे दिन सबेरे स्नान करके जब आश्रम में वापस आया तो देखा—गुरुदेव आसन पर स्थिर होकर बैठे हैं। उनका चेहरा काला हो गया है। यह देखकर वह भीगे कपड़ों को फेंककर रोते हुए उनके चरणों पर गिर पड़ा। उसने कहा—"गुरुदेव, आप मेरा रोग लेकर काले हो गये मेरा रोग मुझे दे दीजिए। मैं उसे भोग लूँगा।"

गुरुदेव ने उसे झटकारते हुए कहा—"क्या बक रहा है ? किसका भोग कौन लेता है ? यह सब कुछ नहीं है।" इतना कहने के बाद गोस्वामीजी ने अपनी आँखें बन्द कर लीं।

कुलदा को आगे प्रश्न करने का मौका नहीं मिला। वह पास ही बैठकर सुबुक-सुबुक कर रोता रहा। अपने पेट दर्द की अपेक्षा गुरुदेव का दर्द उसे अधिक कष्ट देने लगा।

पेट दर्द दूर हो जाने के बाद एक नयी चिन्ता से कुलदा परेशान हो उठा। अब वह स्वस्थ हो गया है, इसलिए गुरुदेव उसे अपने यहाँ अधिक दिनों तक नहीं रखेंगे। उसे घर जाने का आदेश देंगे। वहाँ जाने पर कालेज में भर्ती होना पड़ेगा या कोई नौकरी करनी पड़ेगी। फिर विवाह होगा, पत्नी आयेगी और बच्चे होंगे। इन सभी के पालन-पोषण का प्रबंध करना पड़ेगा।

इस समस्या को सुनने के बाद गुरुदेव ने कहा—"तुम्हारी जो हालत है, इसे देखते हुए

तुम्हें विवाह नहीं करना चाहिए। पूर्ण रूप से स्वस्थ होकर नौकरी करते हुए भाइयों की सेवा कर सकते हो।''

कुलदा ने कहा—''मेरी इच्छा है कि अविवाहित रहते हुए साधन-भजन करूँ।''

गुरुदेव ने कहा—''ठीक है। तुम ब्रह्मचारी बने रहना चाहते हो। यही तुम्हारे लिए उचित है। तुम अब ब्रह्मचर्य व्रत ले लो।

इस घटना के कुछ दिनों बाद गोस्वामीजी ने सन् १८६१ ई० के श्रावण माह में कुलदा को ब्रह्मचर्य की दीक्षा दी। इसी समय कुलदाकान्त का नया नामकरण हुआ। गोस्वामीजी ने कुलदानन्द ब्रह्मचारी नाम रखा।

ब्रह्मचारी के रूप में कुछ दिनों तक साधन भजन कराने के बाद गोस्वामीजी ने कहा—''अब तुम बापस चले जाओ। कुछ दिनों तक बड़े भाइयों और बाद में माताजी की सेवा करो। यही मेरा आदेश है। इससे कितना लाभ होगा, इसे आगे समझ सकोगे। नौकरी या रोजगार करने की तुम्हें जरूरत नहीं होगी। मातृसेवा करने पर तुम्हारा सब कुछ कट जायगा।

कुलदानन्द ने कहा—''अगर माँ मेरी सेवाओं से संतुष्ट होकर, मुझे धर्म लाभ के लिए आशीर्वाद देकर छोड़ दें तो मैं आपके साथ रह सकता हूँ ?''

गुरुदेव ने कहा—''तुम्हारी सेवाओं से माँ सन्तुष्ट होकर अगर तुम्हें छोड़ दें तो उनकी अनुमति से तुम यहाँ रह सकते हो। जाओ, भक्तिपूर्वक उनकी सेवा करो।''

अभी यह सब बातें हो रही थीं कि उसके नाम दस रुपये का एक मनिआर्डर आया। फैजाबाद से बड़े भइया ने भेजा था। उन्होंने रुपये क्यों भेजे, वह समझ नहीं सका। गुरुदेव से चर्चा करने पर उन्होंने कहा—''यहाँ से तुम सीधे फैजाबाद चले जाओ। वहाँ कुछ दिनों तक भाई की सेवा करो। उनकी आज्ञा पाने के बाद घर जाकर माँ की सेवा करना। सेवा के द्वारा सभी को संतुष्ट करते हुए उनकी अनुमति और आशीर्वाद लेकर धर्मपथ पर चलना चाहिए। परिवार का कोई भी सदस्य विरोधी होता है तो धर्मपथ में विघ्न होता है।''

इतना कहकर गुरुदेव ने कुलदानन्द को आशीर्वाद दिया। वृन्दावन से कानपुर होते हुए वे फैजाबाद पहुँचे। बड़े भाई को यह जानकर अपार आश्चर्य हुआ कि उनका काफी पुराना पित्तशूल पूर्ण रूप से ठीक हो गया है। बातचीत के सिलसिले में उन्होंने कहा—''मेरी क्या सेवा करोगे ? पत्नी है, कई नौकर हैं। मेरा विचार है कि जब गुरुदेव की कृपा से तुम्हारा पुराना रोग ठीक हो गया है तब उन्हीं के निर्देश पर चलो। यहाँ रहकर अपना साधन-भजन करो।''

कुछ दिनों के बाद कलकत्ता की सरकारी नौकरी छोड़कर मझला भाई फैजाबाद में वकालत करने के उद्देश्य से आया। कुलदानन्द से उन्होंने कहा—''बेकार बैठे रहने से अच्छा है कि कोई नौकरी करो। खाली समय में अपना साधन-भजन करते रहना।''

कुलदानन्द ने कहा—''नौकरी करना मना है।''

मझले भाई ने कहा—''ठीक है। भाई साहब की पेटेण्ट दवाएँ बनाओ और उन्हें बाजार में बेचने का कार्य करो।''

इन प्रस्तावों को सुनकर कुलदानन्द की हालत खराब हो गयी। उन्होंने कहा—"ब्रह्मचर्य व्रत में न नौकरी करनी चाहिए और न व्यवसाय। क्यों मुझे परेशान कर रहे हैं ?"

मझले भाई वरदाकान्त ने कहा—"यह सब चोंचलेबाजी छोड़ दे। व्यवसाय कर और अपनी साधना भी।"

इस निर्णय को सुनते ही कुलदानन्द का दिमाग चकरा गया। उन्होंने तुरत गोस्वामीजी को सारी स्थिति लिखते हुए राय माँगी। पत्र भेजने के साथ ही भयंकर सर दर्द होने लगा। देखते ही देखते १०५ डिग्री बुखार आ गया। बड़े भाई हरकान्त हर तरह की कोशिशें करने लगे। वे ज्यों-ज्यों प्रयत्न करते त्यों-त्यों एक नयी मुसीबत पैदा हो जाती थी। अन्त में हरकान्त को कहना पड़ा—"शायद इसे बचाना अब कठिन हो गया।"

घर के सभी लोग परेशान हो उठे। अगले हफ्ते उत्तर आया—"तुम्हारे शरीर की जो दशा है, उससे विषय कार्य कराना उचित नहीं है वर्ना पीड़ा की वृद्धि होगी। अपने भाइयों से कहो कि गृहस्थी के कार्य भले ही करायें। उनकी नौकरी जरूर करो। भगवान् के राज्य में एक मुट्ठी अन्न की कमी नहीं होगी। भगवान् जिसे जिस प्रकार रखते हैं, उसे उसी तरह रहना चाहिए।"

इस पत्र को पढ़कर हरकान्त ने कहा—"तुम्हें नौकरी करने की जरूरत नहीं। अब अच्छे हो जाओ, यही मैं चाहता हूँ।"

अट्ठारहवें दिन दादा के मुँह से यह बात सुनकर उन्हें संतोष हो गया। उन्नीसवें दिन से सरदर्द घटना शुरू हो गया और बीसवें दिन पूर्ण रूप से रोग मुक्त होकर उन्होंने पथ्य ग्रहण किया। कुछ दिनों बाद हरकान्त ने कहा—"अब तो तुम काफी स्वस्थ हो गये हो। मेरी इच्छा है कि कुछ दिनों तक माँ के पास रहकर उनकी सेवा करो। उन्हें इसकी जरूरत है।"

बड़े भाई से अनुमति पाने पर कुलदानन्द घर की ओर रवाना हुए। सबसे पहले वे ढाका के आश्रम में आये। यहाँ अनेक गुरु भाइयों से मुलाकात हुई। लोगों ने गुरुदेव के बारे में अनेक प्रश्न किये। यहीं छोटे भाई शारदाकान्त से मुलाकात होने पर पता चला कि आजकल माँ बीमार हैं। कुलदानन्द ने गौर किया तो देखा—शारदा भाई का स्वास्थ्य भी संतोषजनक नहीं है। इस बार वे बी० ए० की परीक्षा देंगे। कमजोर शरीर लेकर अधिक श्रम करना इनके लिए मुसीबत हो गयी है। परीक्षा दे सकेंगे या नहीं, इसकी चिन्ता में घुल रहे हैं।

छोटे भइया की सलाह के मुताबिक कुलदानन्द तुरत घर की ओर रवाना हो गया। पित्तशूल, आमाशय आदि रोगों के कारण माँ काफी कमजोर हो गयी हैं। माँ की यह हालत देखकर कुलदा को अपार कष्ट हुआ। उन्होंने मन ही मन निश्चय किया कि अब जी जान से माँ की सेवा शुश्रूषा करेंगे।

लड़के का पुराना रोग बिलकुल ठीक हो गया है और अब वह स्वस्थ है देखकर माँ ने पूछा—"क्यों रे, तेरा रोग कैसे ठीक हुआ ?"

माँ से सारी बातें कहने पर उन्हें आश्चर्य हुआ। माँ ने कहा—"सौभाग्य से जब ऐसा गुरु तुझे प्राप्त हुआ तब उन्हें छोड़कर क्यों चला आया ? उनके साथ रहता तो और उपकार होता।"

कुलदानन्द ने कहा—"उनकी आज्ञा से मैं तुम्हारी सेवा करने आया हूँ।"

माँ ने कहा—"यह बात है ? तब गुरु की आज्ञा की तरह तू मेरी सेवा कर।"

अब वे नित्य भोर में उठकर शौचादि के बाद स्नान करते हैं। इसके बाद निर्जन कमरे में बैठकर साधन, पितृ तर्पण आदि करने के बाद माँ के पास आते हैं और भूमिष्ठ होकर माँ को प्रणाम करते हैं। माँ उनके पीठ पर हाथ फेरती हुई आशीर्वाद देती हैं—"तेरी मनोकामना पूरी हो। सर्वदा सुखी रहो।"

कुछ दिन इसी प्रकार गुजर जाने के बाद शारदाकान्त का एक पत्र मिला जिसमें लिखा था कि कलेजे-में दर्द उत्पन्न हो जाने के कारण तीन दिन से बिस्तर पर हूँ। काफी दर्द है। परीक्षा के दिन निकट हैं। एक-एक दिन पहाड़ जैसा लग रहा है। लगता है, इस साल परीक्षा नहीं दे सकूँगा। मेरे लिए प्रार्थना करना।

इस पत्र को पाकर कुलदानन्द बेचैन हो उठे। वे अपने छोटे भाई से काफी प्यार करते हैं। कातर कंठ से उन्होंने गुरुदेव से प्रार्थना की—"गुरुदेव छोटे भाई की पीड़ा मुझसे सहन नहीं होती। उसका रोग मेरे शरीर को दे दो। मैं अविचलित रूप से उस कष्ट को भोग लूँगा।" मन ही मन इस निवेदन को अर्पित करने के बाद उन्होंने गुरुदेव को प्रणाम किया। इसके बाद प्राणायाम के जरिये वायु को आकर्षित करने लगे, फिर रेचक के जरिये अपना स्वास्थ्य छोटे भाई के शरीर में प्रवेश करने लगे। इस क्रिया के करते रहने पर उन्होंने अपने कलेजे में दर्द महसूस किया और देखते ही देखते वेदना बढ़ने लगी। तुरत उन्होंने छोटे भाई को पत्र लिखा। उधर से पत्र का जवाब आया कि ठीक उसी दिन, उसी समय वह स्वस्थ हो गया। कुलदानन्द को भी यह पीड़ा अधिक दिनों तक नहीं सहनी पड़ी।

इस घटना के कुछ दिनों बाद छोटे भाई की परीक्षा आरंभ हुई। परीक्षा के तीन दिन पहले वे पुनः बीमार हो गये। कुलदानन्द को उनका एक पत्र उस समय मिला जब वे किसी काम से जैनसार गाँव जा रहे थे। कुलदानन्द को भाई की मुसीबत समझते देर नहीं लगी। रोगमुक्त होकर भी भाई साहब परीक्षा नहीं दे सके। इस बात की ऊहापोह में कुलदानन्द बेचैन हो उठे। धीरे-धीरे आगे बढ़ने पर एक विशाल बरगद का वृक्ष दिखाई दिया। उसके नीचे बैठकर वे भाई साहब के स्वस्थ होने तथा परीक्षा के शुभ फल की कामना लेकर गुरुदेव से प्रार्थना करने लगे। तीन घण्टे के बाद उन्हें लगा जैसे उनकी प्रार्थना सफल हो गयी और तभी वे बेहोश होकर गिर पड़े। कब तक बेहोश रहे, इसका पता नहीं चला। लेकिन इतना अनुभव हुआ कि छोटे भइया संपूर्ण रूप से रोग मुक्त होकर परीक्षा में सफलता प्राप्त करेंगे। इन बातों को सोचते हुए उन्होंने आगे की यात्रा प्रारंभ की। आगे एक डाकखाने से कार्ड खरीदकर छोटे भइया को उन्होंने पत्र लिखा—"चिन्ता करने की जरूरत नहीं। गुरुदेव आपका कल्याण अवश्य करेंगे। आप परीक्षा में पास होंगे। मेरा ख्याल है कि आपका बुखार उतर गया होगा। अब क्या हालत है, लिखियेगा।"

कई दिनों बाद छोटे भइया का उत्तर आया—"परीक्षा के दिन पथ्य लेकर बड़े कष्ट से परीक्षा देने गया। मार्ग में अचानक मेरे दिल में अपूर्व तेज उत्पन्न हुआ। लगा जैसे मैं कभी बीमार नहीं था। भगवान् की कृपा से पेपर अच्छे हुए हैं।"

इस पत्र को पाने के बाद कुलदानन्द ने गुरु के उद्देश्य से बार-बार प्रणाम किया।

अब पुनः पूर्ववत ब्रह्मचर्य नियमावलियों का पालन करते हुए माँ की सेवा में वे लगे रहे। लेकिन जिस व्यक्ति के जीवन में एक-से-एक बढ़कर घटनाएँ होनेवाली हैं, वह कैसे शान्त

जीवन व्यतीत कर सकता है। गाँव में रहते समय एक अद्भुत घटना कुलदानन्द के साथ हुई।

एक दिन एक अपूर्व सुन्दरी, पूर्ण यौवना, ब्राह्मण कन्या कुलदानन्द के पास आयी और रोती हुई बोली —"मेरे दिल में आग जल रही है। जब तुम्हारी याद आती है तब मेरी स्थिति असह्य हो जाती है। भोग की लालसा से तड़पने लगती हूँ। तुम मेरी काम-ज्वाला को शान्त करो।"

कुलदानन्द ने उत्तर दिया—"कभी तुम्हारे प्रति मेरा लोभ था। अब गुरुदेव ने उसे शान्त कर दिया है। मैंने ब्रह्मचर्य ग्रहण कर लिया है। अब हमेशा के लिए इस कार्य से वंचित हो गया हूँ।"

"तब मेरी काम-वासना जिससे शान्त हो जाय, वह उपाय शीघ्र करो। मुझसे बर्दाश्त नहीं हो रहा है।"

युवती को सांत्वना देते हुए कुलदानन्द ने कहा—"तुम निश्चिन्त रहो। इस दिशा में कुछ उपाय मैं करूँगा।"

इस घटना के बाद अक्सर वह युवती कुलदानन्द के पास आने लगी। उसे संयम का उपदेश देते रहे, पर केवल उपदेश से वासना शान्त नहीं होती। कई दिनों तक ऊहापोह करने के बाद कुलदा ने सोचा —रति मंदिर में महाशक्ति की पूजा करने पर संभवतः युवती की काम-वासना शान्त हो जाय। इस क्रिया में उपासक की शक्ति-परीक्षा हो जायगी। मुझे इस युवती का कोई अंग स्पर्श करना नहीं है, दूर से पूजा करने में कोई दोष नहीं है। कुलदानन्द ने अपने अभिप्राय को बताया। युवती राजी हो गयी।

कुलदानन्द पूजा के लिए यज्ञ काष्ठ, घृत, विल्वपत्र, अतसी, जवा पुष्प, अपराजिता, धूप, चन्दन आदि उपकरण संग्रह करके युवती के पास गया और उसे साथ लेकर सन्नाटे स्थान में आया। उसे अपने से कुछ दूर बैठने की आज्ञा देकर उसने होमकुण्ड प्रज्वलित किया। इसके बाद इष्ट को ध्यान करने के बाद यज्ञ सामग्रियों का हवन किया। बाद में हाथ जोड़ते हुए गुरुदेव के उद्देश्य से प्रणाम करते हुए कहा —"भगवन्, आज एक महान् कार्य के लिए लगा हूँ। ऐसी अवस्था में जो कल्याणकारी हो, वही करने की कृपा करें। अगर प्रकृति-पूजा उचित न हो तो कोई विघ्न उपस्थित करके इसे नष्ट कर दें। मैं पाँच मिनट प्रतीक्षा करने के बाद कार्य प्रारंभ कर दूँगा।"

पाँच की जगह सात मिनट गुजर गये। अब वे पूजा की तैयारी में जुट गये। कुलदानन्द के इशारे पर युवती पूर्ण नग्न होकर खड़ी हो गयी। उन्होंने पुष्पादि सामग्री को मस्तक पर धारण करते हुए चण्डी पाठ करने लगे। साथ ही युवती के नखाग्र से लेकर केशाग्र तक निरीक्षण करते रहे। अचानक उन्होंने एक आश्चर्यजनक दृश्य देखा—युवती के नाभि प्रदेश से दोनों जाँघों के बीच तक के हिस्से में गोल काली छाया घिर गयी और सहसा महाकाली का आविर्भाव हुआ। यह दृश्य देखकर वे रोमांचित हो उठे। अपने मस्तक पर बार-बार पुष्पांजलि देने के पश्चात् साष्टांग प्रणाम किया। गुरुदेव की यह कैसी लीला है, देवी भगवती का यह कैसा खेल है ? वे स्तंभित होकर देखने लगे—युवती का मुखमण्डल लाल हो गया है, ओंठ काँप रहे हैं। उसकी चंचल आँखों के कटाक्षों से तड़ित वेग कामोत्तेजना निकलकर उनमें

संचारित होने लगा। अपनी विचलित अवस्था अनुभव करते ही उन्होंने युवती को चले जाने का निर्देश दिया।

युवती के चले जाने के बाद उन्होंने होमकुण्ड के आगे मस्तक नवाया। इधर युवती के जाते ही कुलदानन्द में अदम्य कामोत्तेजना उत्पन्न होने लगी। प्राणायाम, कुंभक आदि से उसका शमन करना चाहा, पर ऐसा नहीं हो सका। आसन्न विपत्ति से घबड़ाकर वे आसन से उठकर खड़े हो गये। उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि आखिर युवती की काम वासना उनमें क्यों संचारित हुई। क्या यह गलत कार्य किया?

वे अहरह काम-पीड़ा से बेचैन रहने लगे। युवती अपनी काम-पीड़ा से मुक्ति पा चुकी थी। लेकिन कुलदानन्द की हालत खराब होने लगी। शायद गुरुदेव ने युवती पर दया करके मेरे विषम अनुष्ठान की हठकारिता से असंतुष्ट होकर, उसकी काम-पीड़ा को मुझमें संचारित कर दिया। अब इससे कैसे मुक्ति मिल सकती है, यही बात वे दिन-रात सोचने लगे। बाद में एक दिन उन्होंने निश्चय किया कि अब कठोर-साधना करूँगा। अपने भोजन में एक चौथाई कमी कर दी। जंगल में जाकर साधना करने लगे। निद्रा से दूर रहने के लिए बिस्तर का प्रयोग बन्द कर दिया। सामने धूनी जलाकर खड़े-खड़े साधना करने लगे। कभी-कभी चहलकदमी करते हुए नाम जपने लगे। जब नींद से परेशान हो जाते तब खड़े-खड़े झपकी ले लेते थे। तीन वक्त स्नान, अम्ल, कटु, मधुरस का त्याग कर दिया। इससे कुछ लाभ हुआ, पर पूर्ण रूप से उन्हें मुक्ति नहीं मिली।

अन्त में उन्होंने गुरुदेव को विस्तार से एक पत्र लिखा और अपनी मुक्ति का उपाय पूछा। वहाँ से कई पत्र आये। गुरुभाई हरिमोहन ने लिखा—"तुम्हारा पत्र पाकर गुरुदेव ने तीन बार 'मा भैः, मा भैः, मा भैः' कहा, बाद में कुछ देर चुप रहने के बाद बोले—'हरेर्नाम, हरेर्नाम, हरेर्नामैव केवलम्, कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा'। इसके बाद तुम्हें अभय देने के लिए पत्र लिखने को कहा। तुम निर्भय हो जाओ।"

गुरुदेव के पुत्र योगजीवन ने लिखा—"गाँव में अशान्त हो तो ढाका के आश्रम में चल जाओ। परेशान मत हो। हम लोग आ रहे हैं।"

इसी प्रकार श्रीधर तथा गुरु-पत्नी के पत्रों में भी अभय दान दिया गया था।

बड़े आश्चर्य की बात यह हुई कि इन पत्रों को पढ़ने के बाद कुलदानन्द की सारी बेचैनी दूर हो गयी। उसकी काम-पीड़ा की ग्लानि क्षण भर में गायब हो गयी। मन की मलिनता साफ हो गयी। गुरुदेव के उद्देश्य से उन्हें प्रणाम करते हुए कुलदानन्द ने भगवान् को धन्यवाद दिया।

इस बार बहुत दिनों के बाद अर्द्धोदय योग आने के कारण पूर्वी बंगाल के हजारों लोग गंगा नहाने जाने की तैयारी कर रहे हैं। माँ ने कुलदानन्द से कहा—"मैं तो तीर्थयात्रा पर जा रही हूँ। कब तक लौटूँगी, पता नहीं। इन दिनों मेरा स्वास्थ्य बहुत अच्छा है। तीर्थयात्रा से लौटने के बाद तेरी शादी कर दूँगी।"

कुलदानन्द ने कहा—"माँ, मैंने निश्चय किया है कि मैं ब्रह्मचारी जीवन व्यतीत करते हुए धर्म-कर्म करूँगा। विवाह कर लेने पर मेरी सभी पुरानी बीमारियाँ उभड़ आयेंगी। मैंने गुरुदेव से ब्रह्मचर्य व्रत की दीक्षा ले ली है।"

सारी बातें सुनने के बाद माँ ने कहा—"अगर तू शादी या विवाह न करे तो गृहस्थी

में कोई परेशानी नहीं होगी। मेरे अन्य सभी लड़के तो शादीशुदा हैं। तेरे सुख के लिए ही मैं शादी के बारे में कह रही थी। अब अगर तुझे पसन्द नहीं है तो जाने दे। गृहस्थी में कोई सुख नहीं है बल्कि परेशानियाँ अधिक हैं। अगर धर्म-कर्म लेकर दिन गुजारना चाहता है तो वही कर।"

माँ की सरलता से प्रसन्न होकर कुलदानन्द ने कहा—"माँ, अगर आप मुझ पर प्रसन्न होकर अपनी अनुमति दें तो मैं गुरुदेव के पास रह सकता हूँ। उन्होंने तुम्हारी सेवा करने के लिए यहाँ भेजते हुए कहा था—जाकर माँ की सेवा करो। तुम्हारी सेवा से संतुष्ट होकर अगर माँ तुम्हें कर्म-बन्धन से मुक्ति दे दें तो तुम यहाँ आकर रह सकते हो।"

माँ ने तुरत कहा—"मैं तो तेरी सेवा से काफी संतुष्ट हूँ। अपने कर्म से मैं आज ही छुट्टी देती हूँ। घर पर रहने से धर्म-कर्म नहीं होता। गोंसाई के पास जाकर रह। इससे तेरा भला होगा और मेरा कलेजा ठंढा होगा।"

कुलदानन्द ने कहा—"गुरुदेव ने साफ-साफ कहा था कि सेवा के द्वारा माँ को संतुष्ट कर उनकी अनुमति लाना पड़ेगा। किसी तिकड़म के माध्यम से नहीं। अगर तुम वास्तव में मेरी सेवा से संतुष्ट हो तो मुझे धर्मार्थ के लिए उनके चरणों में समर्पित कर दो। इससे तुम्हें पुत्रदान का पुण्य मिलेगा।"

"मैं तो अपने जीवन में कोई धर्म-कर्म कर नहीं सकी। अगर तू करता है तो इससे मेरा भला होगा। इसमें बाधा क्यों डालूँगी। जा, मैंने तुझे गोंसाई के हाथ समर्पित कर दिया।"

कुलदानन्द माँ की बातें सुनकर पुलकित हो उठे। उन्होंने कहा—"तब मेरे गुरुदेव को एक पत्र इसी आशय का लिख दो।"

माँ ने गोस्वामी विजयकृष्ण के नाम पत्र लिख दिया। इसके बाद बोलीं—"मेरी दो बातें याद रखना। मेरे मरने के बाद ब्राह्मण को दान देना और जब तक जीवित रहना तबतक भरपेट भोजन करना।"

"मेरी हालत तो जानती हो माँ। अगर कभी भरपेट भोजन न मिला तो क्या करूँगा ?"

"मेरा आशीर्वाद है तुझे कभी इसकी कमी नहीं होगी।"

माँ को काशी भेजकर कुलदानन्द ढाका चले आये। यहाँ आने पर पता चला कि गुरुदेव वृन्दावन से आ गये हैं।

बहुत दिनों के बाद आश्रम में आने के कारण सभी गुरुभाई प्रसन्न हो गये। गुरुदेव के निर्देशानुसार नित्य कुलदानन्द को महाभारत पाठ करना पड़ता था। एक दिन जब वे नित्य की तरह पाठ कर रहे थे, ठीक इसी समय गुरु बहन श्री मनोहरा दीदी आयीं। वे गुरुदेव की प्रत्यक्ष घटना के बारे में कहने लगीं—"पिछले वर्ष चैत्र में गुरुदेव जब पूर्णकुंभ मेला के अवसर पर हरिद्वार गये थे तब अनेक गुरुभाई और बहनों के साथ वे भी गयी थीं। गंगा में स्नान करते समय उन्होंने देखा कि गंगा के गर्भ में लाल, पीला, काला, नीला आदि रंगीन चक्र की तरह पत्थर बिखरे पड़े हैं। स्नान करते वक्त अपनी पसन्द का एक पत्थर वे साथ लेती आयीं। गेण्डरिया आकर उस पत्थर से पेपरवेट का काम लेने लगीं। इन दिनों उस पत्थर के कारण परेशानी में फँस गयी हैं।"

उन्होंने कहा—"टेबुल पर उसे रखा है। पता नहीं, क्यों अक्सर उस पत्थर में महादेवी

और महादेव के दर्शन होते हैं। पिछली रात को पत्थर को कहते सुना—'गंगा में बड़े आनन्द से था। पता नहीं, यहाँ क्यों लाकर रखा है। बड़ी तकलीफ हो रही है।' यह सब क्या है, समझ नहीं पा रही हूँ।"

कुलदानन्द इस विचित्र कहानी को सुनकर चुप रह गये। कुछ देर बाद गुरुदेव ने कहा—"हरिद्वार के गंगागर्भ के पत्थरों को गौरीशंकर कहा जाता है। महादेव और पार्वती उसमें रहते हैं। अगर पूजा न करना हो तो ऐसी शिला नहीं रखनी चाहिए।"

दीदी ने उस पत्थर को कुलदानन्द को सौंपते हुए कहा—"भाई, मैं इसे नहीं रख सकती। अब तुम्हें जो कुछ करना है, करो।"

एक दिन बातचीत के सिलसिले में गुरुदेव ने कहा—"विशुद्ध सात्त्विक शरीर नाम-साधन से प्राप्त होता है। श्वास-प्रश्वास में नाम करते रहने पर शरीर सात्त्विक बन जायगा। श्वास-प्रश्वास से ही शरीर की रक्षा होती है, श्वास-प्रश्वास का कार्य शरीर के प्रत्येक परमाणु में हो रहा है। खून भी श्वास-प्रश्वास से ही स्वच्छ होता है और संपूर्ण शरीर में वह संचारित होता है। इसी श्वास-प्रश्वास के साथ जब नाम गुँथ जायगा तब प्रति श्वास-प्रश्वास में अपने आप नाम चलता रहेगा। उस वक्त शरीर में जिस प्रकार श्वास-प्रश्वास अन्य कार्य करेगा, उसी प्रकार नाम भी प्रत्येक परमाणु में चलता रहेगा। इस प्रकार संपूर्ण शरीर नाममय हो जायगा।"

एक प्रश्न के उत्तर में गुरुदेव ने कहा—"सद्‌गुरु का सहारा पाने पर कर्म अपने आप समाप्त हो जाता है। आग के ऊपर काफी लकड़ी लाद देने पर धुआँ ही धुआँ होता है। और जब उसे हवा मिलती है तब भक् से जल उठती है। इसके बाद वह भस्म हो जाती है। इसी प्रकार गुरु प्रदत्त शक्ति भी अनेक जन्मों के कर्मरूपी कूड़े के नीचे से धीरे-धीरे अपना कार्य करती रहती है, उस कूड़े को धीरे-धीरे नष्ट करते-करते गुरु कृपा से, भक् से जल उठती है तब सभी कर्मराशि क्षण भर में नष्ट हो जाती है और शान्ति प्राप्त होती है। गुरुशक्ति अपने आप कार्य करती है।"

कुलदानन्द को ब्रह्मचर्य व्रत लिये एक वर्ष गुजर गया। गुरुदेव से निवेदन करने पर उन्होंने कहा —"अब कल से तुम एक वर्ष नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का पालन करो।"

नित्य की तरह उस दिन कुलदानन्द गुरुदेव के सामने महाभारत पढ़ रहे थे। अचानक गुरुदेव पश्चिमोत्तर दिशा में आकाश की ओर देखते हुए बोल उठे—"आहा, कितना सुन्दर। कितना सुन्दर !! सोने का रथ, कितनी शोभा है, पीली पताकाएँ उड़ रही हैं। चारों ओर देवकन्याएँ हैं। सभी चँवर डुला रही हैं। आज गुणों के सागर विद्यासागर जा रहे हैं—स्वर्ग की ओर। हरिबोल, हरिबोल।"

इतना कहने के बाद गुरुदेव ने आँखें मूँद लीं और समाधिस्थ हो गये। कुलदानन्द को समझते देर नहीं लगी कि आज ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का स्वर्गवास हो गया।

बातचीत के सिलसिले में कुलदानन्द ने प्रश्न किया—"गुरुदेव ऊर्ध्वरेता कैसे हो सकता हूँ ?"

गोस्वामीजी ने कहा—"ऊर्ध्वरेता होना साधारण बात नहीं है। यह सब के लिए संभव नहीं है। इसके लिए कोई निश्चित समय भी नहीं होता है और कभी-कभी तीन दिन के भीतर साधक को हो भी जाता है। किसी को तीन महीने में तो किसी को तीन साल में और किसी

को और भी समय लगता है। तुम्हारा वीर्य काफी नष्ट हो गया है। जरा समय लगेगा। चिन्ता की बात नहीं है। अगर नियम से चलते रहोगे तो अच्छा होगा। अब से अपनी नजर पैरों के अँगूठे की ओर रखना। दूसरी ओर मत देखना। अँगूठे की ओर न रख सको तो नासाग्रे में रखना। लेकिन इससे सिर पर गरमी चढ़ जाती है। पैर के अँगूठे पर रखने से दिमाग ठंढा रहता है। अँधेरी रात को भी इधर-उधर मत देखना। सर्वदा सिर झुकाये रहना।''

अचानक एक दिन गोस्वामी अपने शिष्यों के साथ शान्तिपुर आये। यहाँ आपकी माताजी रहती हैं जो इन दिनों अस्वस्थ थीं। गोस्वामीजी गाँव आये हैं, सुनकर आसपास के गाँव के लोग काफी तादाद में दर्शन के लिए आने लगे।

एक दिन बातचीत के सिलसिले में गोस्वामीजी अपनी साधना-जीवन की कहानी सुनाने लगे। लोगों के इस प्रश्न पर कि शान्तिपुर में जन्म लेनेवाले संतों में श्री लोकनाथ ब्रह्मचारी जीवित हैं या नहीं।

गोस्वामीजी ने कहा—''अब जीवित हैं या नहीं यह नहीं जानता। लेकिन हिमालय में एक ऐसे महापुरुष का दर्शन मैंने किया था जो इसी शान्तिपुर के निवासी थे। मैं जब किसी संत के पास जाकर गुरु बनाने की प्रार्थना करता तब वे कहते कि तुम्हारे गुरु निर्दिष्ट हैं। समय आने पर उनसे मुलाकात हो जायगी। इधर मैं गुरु की तलाश में चक्कर काटा करता था। उन्हीं दिनों मैं हिमालय के अनेक दुर्गम स्थानों, लामा गुरुओं के मठों में चक्कर काटता रहा। कई बौद्ध योगियों की जबानी सुना कि झरना के ऊपर, जंगल के भीतर एक गुफा है। उसी के पास ही एक ऊँचा पहाड़ है, वहाँ एक बंगाली महापुरुष युगों से मौजूद हैं। वे दिन-रात समाधिस्थ रहते हैं। समय-समय पर आसपास के गुफाओं में रहनेवाले उनके शिष्य बाहर आकर उन्हें चैतन्य करते हैं। इन महापुरुष के बारे में विवरण पाकर मैं उनका दर्शन करने के लिए व्याकुल हो उठा। हिमालय की दुर्गम पहाड़ियों को पार करते हुए जंगल के भीतर से उस अज्ञात महापुरुष के पास रवाना हो गया। दो दिन, दो रात मुझे भूख-प्यास की परवाह नहीं हुई। तीसरे दिन मेरी हालत बहुत खराब हो गयी। थककर एक वृक्ष के नीचे बेहोश होकर गिर पड़ा। भगवान् की माया भी अजीब है। एक नंगे पहाड़ी वृद्ध संन्यासी मेरे पास आये और उन्होंने मुझे स्वस्थ किया। बाद में मेरे हाथ पर छोटे-छोटे न जाने किस पौधे का बीज रखते हुए बोले—'बच्चा, यह दाना खा लेना। इससे तुम्हारी भूख-प्यास मिट जायगी। जितने दिनों तक पर्वत पर रहोगे, उतने दिनों तक रोज दो-एक दाना करके खा लेना। इससे तुम्हें कभी भूख-प्यास नही लगेगी।' मैंने एक दाना खाया और मेरी भूख-प्यास गायब हो गयी। मैं जब तक पहाड़ पर था तब तक नित्य उन बीजों को खाता रहा। उक्त पहाड़ी संत से बंगाली संत के बारे में पूछा तो उन्होंने कहा—'हाँ, वहाँ एक बाबाजी रहते हैं। कभी-कभी झरना में स्नान के लिए आते हैं और बिजली की तरह चले जाते हैं। लम्बी जटाएँ हैं जिसमें से पानी झरता है। इधर से चले जाओ, मिल जायँगे।' इतना कहकर वे जंगल में चले गये। मैं संत द्वारा बताये मार्ग से उक्त बंगाली महापुरुष के समीप आया। दो शिष्य उनकी सेवा में लगे हुए थे। वे अनावृत्त स्थान पर समाधि लगाये बैठे थे। रात को बरफ से ढँक जाते हैं। दूसरे बरफ में अम्बार के अलावा कुछ दिखाई नहीं देता। जैसे-जैसे दिन चढ़ता है, वैसे-वैसे बरफ गलता जाता है और तब महापुरुष प्रकट होते हैं। उस वक्त महापुरुष के सामने दोनों शिष्य आग जला देते हैं। इसके बाद ठीक समय पर उनके मुँह में गरम चाय डाल देते हैं।

लगभग ११ बजे उन्हें होश आता है। बौद्ध संन्यासी हमेशा चाय पीते हैं। वहाँ चाय के बड़े-बड़े पौधे हैं। उन पौधों के पत्ते सुखाकर रखे जाते हैं। वहाँ की गायें जब दूध के भार से घबड़ा उठती हैं तब कहीं-कहीं वे गिरा देती हैं, जो तुरत जम जाता है। महात्मा लोग उस दूध को खोजकर लाते हैं। गरम पानी में गिरते ही वह शुद्ध दूध बन जाता है। चाय में वे चीनी नहीं डालते। कुछ ऐसे पौधे वहाँ हैं जिनकी पत्तियाँ चाय में डालने पर वह चीनी का काम देती हैं।"

"क्या आपकी उनसे बातचीत हुई थी ?"

गोस्वामीजी ने कहा—"हाँ, अपना परिचय देते हुए उन्होंने बताया कि उनका जन्म शान्तिपुर यानी इसी गाँव में हुआ है और उपनयन के पश्चात् वे विरागी होकर उधर चले गये। कुछ देर तक मुझे उपदेश देते रहे जैसा कि अब मैं तुम लोगों को बताता हूँ।"

बातचीत के सिलसिले में कुलदानन्द ने पूछा—"जिन नियमों का मैं पालन कर रहा हूँ, कितने दिनों में सिद्धि प्राप्त होगी ?"

गोस्वामीजी ने कहा—"सिद्धि क्या ? थोड़ी शक्ति प्राप्त कर लेने को सिद्धि समझते हो ? षड़ैश्वर्य तुच्छ विषय है। इसके प्रति कभी आसक्ति मत रखना। जिस अध्यवसाय से साधन भजन कर रहे हो, उससे अगर ऐश्वर्य प्राप्त करने की इच्छा रखो तो एक साल के भीतर बहुत ऐश्वर्य प्राप्त कर सकते हो। अगर एक साल वीर्य धारण कर सत्य वाक्य, सत्य चिन्ता और सदव्यवहार कर सको तो पर्याप्त ऐश्वर्य प्राप्त कर सकोगे। लेकिन इसे सिद्धि नहीं कहते। जब शरीर की प्रत्येक इन्द्रियाँ, अंग-प्रत्यंग आदि अपने आप भगवान् का नाम लेंगे तभी समझना कि सिद्धि प्राप्त हुई है। किसी विषय पर लोभ या आसक्ति रहने पर यह प्राप्त नहीं होती। सभी मामले में निर्लोभी और अनासक्त रहना पड़ेगा। यह स्थिति आ जाने पर ही नाम में रुचि उत्पन्न होती है। यही है वास्तविक सिद्धि।"

आज कुलदानन्द की समझ में आया कि साधना क्या है, सिद्धि क्या है और ऐश्वर्य क्या है ?

इसी तरह दिन बीतते गये। एक दिन सुबह साधन करते समय अजीब सी जलन महसूस हुई। कुलदानन्द चिन्तन करने लगे—आज छह वर्ष हो गया दीक्षा प्राप्त किये, निरन्तर मैं निष्ठापूर्वक साधन-भजन करता आ रहा हूँ, पर अपने जीवन में किसी प्रकार की उन्नति नहीं देख रहा हूँ। क्या बचपन की उन गंदी आदतों से आज तक लिपटा हुआ हूँ, क्या उन दोषों से मुक्त नहीं हो सका ? आखिर इन सबसे कब छुटकारा मिलेगा ? कब तक इन रिपुओं से लड़ना पड़ेगा ? गुरु की कृपा से इतना जरूर हुआ कि काम-रिपु से मुक्ति मिल गयी, पर लोभ की अग्नि में जल रहा हूँ। गुरुदेव के साथ रहने पर मैं तमाम अवगुणों से मुक्त हो जाऊँगा, यही कामना थी। लेकिन अपने लोभ पर विजय नहीं पा रहा हूँ। भगवान् की आराधना के लिए ही घर-द्वार, परिवार आदि छोड़कर आया हूँ और यहाँ मिला क्या ?

जब यह ऊहापोह सहन नहीं हो सका तब कुलदानन्द गुरु के पास अपना दर्द कहने गये। सारी बातें सुनने के बाद गुरुदेव ने कहा—"इतना परेशान क्यों हो रहे हो ? एक बार में सब कुछ नहीं होता। बार-बार प्रयत्न करो। अगर असफलता ही मिलती है तो सब कुछ उन पर छोड़कर केवल नाम जपते रहो। सारे उपद्रव धीरे-धीरे कट जायँगे। जब मुझ में शक्ति नहीं है तब सब कुछ छोड़कर उन पर निर्भर रहने के अलावा अन्य कोई चारा नहीं

है। मन को साफ करके, सरल भाव से उनसे निवेदन करो—'प्रभो, मुझसे नहीं हो रहा है। अब आप मेरी रक्षा करें।' समझ गये ?"

बातचीत के सिलसिले में गोस्वामीजी ने अपने जीवन की वास्तविक घटना का वर्णन किया। उन्होंने कहा—"एक दिन मछुआ बाजार से पैदल जा रहा था। एकाएक मेरा जूता फट गया। फुटपाथ पर एक मोची को बैठा देखकर उसे सिलने के लिए दे दिया। कितनी मजदूरी लेगा, इस बारेमें उसने कुछ नहीं कहा। जूते की मरम्मत हो जाने के बाद मैंने उसे इकन्नी दी। उसने दो पैसे मुझे वापस किये और अपना सामान समेटकर झोले में रखा। इसके बाद डेरा उठाकर चल पड़ा। मुझे जरा आश्चर्य हुआ। उसके पीछे-पीछे मैं चल पड़ा। वह गंगा के किनारे बाबूघाट के पास आया और अपना सामान सड़क के नीचे एक खंडहर में रखने के बाद नीचे गंगा में स्नान करने लगा। संध्या-तर्पण करने के बाद वह खिदिरपुर की ओर रवाना हुआ। मैं कुछ दूरी बनाकर उसके पीछे-पीछे चल पड़ा। आगे जाकर वह एक मकान के भीतर गया। मैं भी उसके पीछे मकान के दरवाजे पर आ गया। अतिथि समझकर एक आदमी मुझे मकान के भीतर ले आया। भीतर जाकर देखा कि वह मोची महन्त है। उसके अनेक शिष्य हैं। अखाड़े में विग्रह प्रतिष्ठित है। काफी धूमधाम हो रही है। यह सब देखकर मैं अवाक् रह गया। मैंने महन्तजी से पूछा—आपके इतने शिष्य और सेवक हैं, स्वयं महन्त हैं, जाति से ब्राह्मण हैं, कोई कमी नहीं है, फिर आप मोची का काम क्यों करते हैं ?"

महन्तजी मेरे इस प्रश्न को सुनकर रो पड़े और हाथ जोड़ते हुए, गुरुदेव को स्मरण कर बार-बार नमस्कार करते हुए उन्होंने कहा—"मेरे गुरु बड़े दयालु थे। एक दिन अतिथि के भोजन करने के पूर्व ही मैने खाना खा लिया था। इस अपराध के कारण मुझे डाँटते हुए उन्होंने कहा—'अरे, तू साधु क्यों हुआ ? तू तो चमार है। गुरुदेव के वाक्य का मैं उल्लंघन नहीं कर सकता। इसीलिए मैं उसी दिन से चमार वृत्ति अपनाकर जीविका निर्वाह कर रहा हूँ। दिन भर जूतों की मरम्मत करने के बाद अपने भोजन के लिए चार आने कमाता हूँ। ज्योंही यह रकम हो जाती है त्योंही मैं चल देता हूँ। अपने तिरोधान के पूर्व गुरुदेव ने इसीलिए मुझे अपनी गद्दी पर बैठाया है। इतना होने पर भी, भरसक चमार वृत्ति के द्वारा उनकी सेवा करते हुए अपना दिन गुजार रहा हूँ। आप मुझे आशीर्वाद दें ताकि मैं गुरुदेव के उस वाक्य की रक्षा आजीवन करता रहूँ।"

"इस संत की कहानी सुनकर मुझे प्रतीत हुआ कि इस प्रकार के अनेक महात्मा छद्मवेष में यहाँ-वहाँ हैं, जिनके बारे में हमें कोई जानकारी नहीं है। उनके बाहरी रूप, आचार-व्यवहार और पहनावा देखकर उन्हें आसानी से पहचाना नहीं जा सकता। साधारण व्यक्ति इन्हें कभी नहीं पहचान सकता। इस घटना के बाद से जब मैं घर से बाहर निकलता हूँ तब सड़क से गुजरनेवाले प्रत्येक स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध, डोम-चमार, कुली-गाड़ीवान आदि सभी को नमस्कार करता चलता हूँ। लोगों की भीड़ में भी छद्मवेषी संतों को पहचान लेता हूँ।"

ब्रह्मचर्य व्रत देते समय गोस्वामीजी ने कुलदानन्द से कहा था कि महिलाओं से दूर रहना श्रेयस्कर है। वह चाहे युवती हो या वृद्धा, या बालिका क्यों न हो। उनसे बातचीत भी नहीं करना चाहिए। इससे वास्तविक ब्रह्मचर्य की रक्षा नहीं होती। स्त्री-देह ऐसे उपादानों से निर्मित है कि वह पुरुषों के शरीर को आकर्षित करती है। लेकिन कुलदानन्द इस आज्ञा का

पालन करने में चूक जाते थे। पैर के अँगूठा दर्शन करने के बदले उनकी निगाहें इधर-उधर फिसल जाती थीं। उनकी हार्दिक इच्छा रहती थी कि महिलाएँ उन्हें देखें और आकर्षित हों।

इसी बीच एक दिन छोटे भइया आये और कहा कि माँ तुम्हें बहुत याद करती हैं। रोहिणी का विवाह होनेवाला है। जल्द घर चले जाओ। इस समाचार को सुनते ही कुलदानन्द ने गोस्वामीजी से घर जाने की अनुमति माँगी।

गोस्वामीजी ने कहा—"ऐसे अवसरों पर जरूर जाना चाहिए। कुछ दिनों तक माँ की सेवा करने का अवसर मिलेगा।"

गोस्वामीजी से आज्ञा लेकर कुलदानन्द बूढ़ी गंगा के तट पर आये। एक नाव जा रही थी, उस पर सवार हो गये। काफी दूर आने के बाद तूफानी हवा चलने लगी। यात्रियों ने मल्लाहों से नाव को किनारे लगाने को कहा। मल्लाहों ने इस बात को अनसुनी करके पाल टाँग दी। अब नाव तेजी से आगे बढ़ने लगी। माझी आँधी-तूफान से डरते नहीं। थोड़ी देर बाद गरज के साथ पानी बरसने लगा। माझी पाल उतारने लगे, पर उन्हें सफलता नहीं मिली। नाव लहरों पर नाचने लगी और बार-बार करवट लेने के कारण सभी लोगों की हालत खराब होने लगी। यह देखकर कुलदानन्द मन ही मन अपने गुरुदेव को स्मरण करने लगे। सहसा उन्हें लगा कि गोस्वामीजी उन्हें एक टक देख रहे हैं। तभी उल्लास के साथ कुलदानन्द ने चीखते हुए कहा—"आप लोग डरिये नहीं। ठाकुर हमारी रक्षा करेंगे। शान्त होकर बैठे रहें।"

ठीक इसी समय तेज हवा का एक झोंका आया और पाल फटकर टुकड़े हो गया। पाल के फटते ही नाव तीर की तरह आगे बढ़कर किनारे अपने आप लग गयी। किनारे उतरने-वाले यात्रियों ने कहा—"साथ आये साधु के कारण आज हम सब बच गये।"लोगों की बातें सुनकर कुलदानन्द ने मन ही मन गुरुदेव को नमस्कार किया।

घर में विवाह-कार्य सम्पन्न होने के बाद कुलदानन्द पुनः आश्रम चले आये। अब उन्हें गोस्वामीजी के सान्निध्य में रहने पर प्रसन्नता होती है। बरसात का मौसम था। होम तथा प्राणायाम करने के बाद आसन पर बैठे थे। बाहर तेज बारिश हो रही थी। एकाएक उन्होंने सोचा—अगर ऐसे समय में घर पर रहते तो लाई-चना खाते। पाँच-सात मिनट बाद उन्होंने देखा कि विधु घोष महाशय की लड़की दामिनी एक कटोरे में लाई-चना और साथ में मिर्च और भूने हुए कटहल के बीज लायी। उसने कहा—"माँ ने आपको खाने के लिए दिया है।"

इसी प्रकार एक दिन उन्हें केला खाने की इच्छा हुई, तभी फणीभूषण ने पाँच केलों का गुच्छा लाकर देते हुए कहा—"नानीजी ने आपके खाने के लिए भेजा है।"

इस घटना के कई दिनों बाद एक दिन मुसलाधार वर्षा हो रही थी। कमरे से बाहर निकलना कठिन था। आसन पर बैठे-बैठे कुलदानन्द ने कहा—"ठाकुर, इस समय गरम-गरम चाय एक कप मिल जाती तो आनन्द आ जाता।" अभी मुश्किल से ५-६ मिनट भी नहीं हुए थे कि श्री कुंज घोष गरम चाय और मोहनभोग ले आये और बोले—"क्या आप बीमार हैं ? गोस्वामीजी ने आपके लिए चाय और मोहनभोग भेजा है।"

कुलदानन्द अपनी इच्छा की पूर्ति इस तरह होते देख विस्मय से अवाक् रह गये। कुलदानन्द अभी तक यह भाँप नहीं सके कि गुरु कृपा के कारण उनकी अतीन्द्रिय-शक्ति शनैः-शनैः जाग रही है। उनकी साधना अपने प्रभाव का विस्तार कर रही है।

एक दिन वे भोर के वक्त स्नान, संध्या आदि समाप्त करने के बाद जब होम करने लगे तो अचानक बड़े दादा की याद सताने लगी। न जाने क्यों उन्हें देखने के लिए मन व्याकुल हो उठा। उनके मन ने कहा —तुरत दादा के पास चलो। जबकि दादा ने बुलाया भी था।

इसी ऊहापोह में गुरुदेव के पास आये और अपनी उलझन बतायी। गोस्वामीजी ने कहा—"तुम्हें अपने दादा के पास जाकर उनकी सेवा करनी चाहिए। अब तक वे अयोध्या में थे तो सत्संग मिलता रहा। इन दिनों वे जहाँ है, वहाँ कोई सुविधा नहीं है। अभी घर जाकर माँ से मिल लो और फिर तुरत पछाँह चले जाना। एक बात याद रखना, जहाँ भी रहना, वहाँ नियमित चण्डीपाठ और होम करते रहना। ब्राह्मणों को अग्नि सेवा करनी चाहिए। सत्संकल्प के साथ होम करोगे तो सिद्ध हो जाओगे।"

दूसरे दिन गोस्वामीजी को प्रणाम कर वे घर की ओर रवाना हुए। कई दिनों बाद माँ ने दादा के पास जाने की आज्ञा दी। सियालदह स्टेशन से उतरकर उन्होंने सोचा कि छोटे भइया यहाँ रहते हैं, उनसे मुलाकात करता चलूँ। लेकिन मुश्किल में पड़ गये। छोटे भइया मछुआ बाजार या झामापुकुर में रहते हैं, यह पता नहीं। मकान नं० १२ है, इतना स्मरण है।

कुली के सिर पर बोझा लादकर शहर की ओर चल पड़े। उन्हें अनुभव हुआ की गुरुदेव उनके आगे-आगे चल रहे हैं। कुछ दूर आगे बढ़ने पर चौराहा आया तो कुली ने पूछा—"बाबू, किधर चलूँ ?"

यह बात सुनकर कुलदानन्द पसोपेश में पड़ गये। जब व्यक्ति को यही नहीं मालूम कि उसका सही पता क्या है। तभी एक ओर से आवाज आयी—"कुलदा, यहाँ कैसे ? चलो घर।"

यह आवाज छोटे भइया की थी। जिन खोजा, तिन पाइयाँ वाली स्थिति हो गयी। कुआँ स्वयं ही प्यासे के पास आ गया। कुलदानन्द समझ गये कि यह घटना भी गुरुदेव की कृपा है। उस दिन दिनभर गुरुदेव के प्रति अभिभूत रहे।

गुरुदेव की आज्ञा थी कि कहीं भी जाओ, वहाँ भिक्षा माँगकर स्वयं बनाकर खाना। प्रथम दिन छोटे भइया के यहाँ भोजन हुआ। दूसरे दिन अचिन्त्य बाबू के यहाँ से भीख लेकर खिचड़ी चूल्हे पर चढ़ा दी गयी और लगे गप लड़ाने। नतीजा यह हुआ कि खिचड़ी जलने लगी। महक लगते ही अचिन्त्य बाबू ने कहा—"गप लड़ाना बन्द करो। खिचड़ी चौपट हो गयी।"

कुलदानन्द दौड़े गये तो देखा—धुएँ से कमरा भर गया है। चटपट खिचड़ी चूल्हे से उतारकर थाली में फैला दी गयी। गुरुदेव को जली खिचड़ी का भोग देकर वे होम करने लगे। बाद में दो-तीन लोगों को बुलाकर खिचड़ी खाने बैठे। सभी को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि जल जाने पर भी खिचड़ी बहुत अच्छी बनी थी। उसमें जल जाने का गंध नहीं थी।

तीसरे दिन खिचड़ी पुनः बनाने लगे। इस दिन महेन्द्र भाई के यहाँ से भीख लाये थे। महेन्द्र ने पूछा —"सारा सामान दे दिया। अब और क्या चाहिए ?"

कुलदानन्द ने कहा—"अगर नारियल मिल जाता तो कतरकर छोड़ देता।"

महेन्द्र ने कहा—"अब इस वक्त नारियल कौन लायेगा ? पहले मालूम होता तो मँगा लेता ।"

भोग लगाकर होम करने के बाद मित्रों के साथ कुलदानन्द खिचड़ी खाने लगे । सभी को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि खिचड़ी में नारियल के टुकड़े मिलने लगे ।

कलकत्ता से चलकर कुलदानन्द भागलपुर आ गये । यहाँ गुरुभाई मनोरंजन गुहठाकुरता से मुलाकात करनी थी । बातचीत के सिलसिले में मनोरंजन की पत्नी श्रीमती मनोरमा ने भी गुरुदेव की असीम कृपा का उल्लेख किया ।

मनोरंजनजी ब्राह्मधर्म के सशक्त प्रचारक थे । दीक्षा लेने के बाद उनके उत्साह में कमी होने लगी । दिन-रात भजन-पूजन करने में लगे रहते थे । परिवार में वे, उनकी पत्नी, ७ बच्चे और कई फालतू प्राणी थे । कैसे खर्च चलता है, समझ में नहीं आया । मनोरंजन ने बातचीत के सिलसिले में बताया कि गोस्वामीजी ने आदेश दिया—भागलपुर चले जाओ । गुरुदेव का आदेश सुनते ही पत्नी तुरत जाने की तैयारी करने लगी । मैं सोचने लगा कि पास में पैसे नहीं हैं । रेल का किराया कहाँ से लाऊँगा । जब पत्नी से मैंने इस बात की चर्चा की तो वे बोलीं—"मैं यह सब नहीं जानती । ठाकुर ने भागलपुर जाने को कहा है, मैं वहाँ जाऊँगी । स्टेशन पर गाड़ी छूटने तक प्रतीक्षा करूँगी । अगर ठाकुर ने रेलवे से भेजने का इन्तजाम किया तो रेल से वर्ना रेलवे लाइन के किनारे-किनारे पैदल जाऊँगी । बच्चों को लेकर तुम मेरे साथ चल सकते हो वर्ना यहीं रह सकते हो ।"

"मुझे यह मालूम था कि मेरी पत्नी कभी असत्य बात नहीं कहती । जब उसने निश्चय किया है तो वह पैदल ही चली जायगी । फलस्वरूप लड़की का कंगन गिरो रखकर कुछ रुपये का प्रबंध किया और हबड़ा स्टेशन हाजिर हो गया । पास में जितनी रकम है, उससे सभी को लेकर भागलपुर जाना असंभव है । इसी ऊहापोह में था कि एक सज्जन आये और एक प्रतिष्ठित व्यक्ति का नाम लेकर कुछ रुपये देते हुए बोले कि आपके लिए कपड़े खरीदने के लिए ये रुपये भिजवाये हैं । उन्हीं रुपयों के सहारे भागलपुर आ गया । यहाँ चला तो आया, पर न कोई परिचित न कोई नौकरी । किसी प्रकार से आधा पेट खाकर दिन गुजारता रहा । एक दिन मालूम हुआ कि आज घर में कुछ नहीं है । बच्चे माँ से कहने लगे—'माँ बड़ी भूख लगी है । कुछ खाने को दो ।' माँ ने कहा—'बेटा, तुम लोगों को ठाकुर बहुत मानते थे । उनसे भोजन माँगो ।' कहने के साथ ही पत्नी ने गोस्वामीजी के चित्र की ओर इशारा किया । लड़के भी माँ-बाप की तरह अद्‌भुत हैं । चित्र के सामने जाकर बोले—'गोसाईजी आप कीर्त्तन बहुत पसन्द करते हैं । हम लोग कीर्त्तन करें ।'

"कुछ देर बाद दरवाजे की साँकल बज उठी । दरवाजा खोलने पर देखा—कई मजदूरों के सिर पर खँचिया है । उनमें दाल, चावल, आटा, तेल, मसाला आदि सामान है । उनसे पूछा गया कि सब किसने भेजा है तो जवाब मिला—'बाबू आ रहे हैं ।' देर तक आनेवाले बाबू की प्रतीक्षा करता रहा, पर कौन आता है । समझते देर नहीं लगी कि यह सब गुरुदेव की कृपा है ।"

इस कहानी को सुनकर कुलदानन्द चकित रह गये । अपने गुरुदेव के अलौकिक चमत्कारों को वे स्वयं अपने जीवन में अनुभव कर चुके हैं । भागलपुर, बस्ती आदि शहरों का चक्कर काटकर कुलदानन्द गुरुदेव की सेवा में हाजिर हो गये ।

एक दिन गुरुदेव ने कहा—"अब तुम्हें स्वतंत्र रूप से तपस्या करनी है ताकि तुम सिद्धि प्राप्त कर सको। जब तक इस दिशा में सफल नहीं होगे तबतक पूर्णज्ञान प्राप्त नहीं कर सकोगे।"

गुरुदेव से अलग होना पड़ेगा सुनकर कुलदानन्द व्याकुल हो उठे। लेकिन यह जानकर उन्हें संतोष हुआ कि साधना करने के लिए एकान्त में भेज रहे हैं। यहाँ साधना करने की वैसी सुविधा नहीं है।

गुरुदेव के आज्ञानुसार कुलदानन्द हरिद्वार स्थित चण्डी पहाड़ पर चले आये।

चलते समय गोस्वामीजी ने कहा—"वहाँ जाकर नियमित होम, संध्या, गायत्री पाठ करना। वहाँ शालग्राम मिल जायगा। शालग्राम को सदा साथ रखना। आसन में स्थिर होकर बैठना। साधु-संतों के साथ झगड़ा मत करना। आसन का त्याग कभी मत करना। जब तुम्हारी जरूरत होगी, तब मैं तुम्हें बुला लूँगा। मेरा आशीर्वाद सदा तुम्हारे साथ रहेगा।"

अप्रैल, सन् १८६८ ई० में कुलदानन्द विभिन्न शहरों का चक्कर काटते हुए हरिद्वार आ गये। चण्डी पहाड़ पर आकर के एक पेड़ के नीचे बैठकर मायापुरी (हरिद्वार) का सौन्दर्य देखने लगे। थोड़ी दूर आगे बढ़ने पर चण्डी देवी का मंदिर देखा जहाँ अनेक दर्शनार्थी पूजा कर रहे थे। वहाँ जाकर उन्होंने साष्टांग प्रणाम किया।

यहीं उनका परिचय आत्माराम ब्रह्मचारी से हुआ। कुलदानन्द के उद्देश्य को समझकर आत्माराम ने कहा —"चण्डी पहाड़ में साधना करना, मौत को निमंत्रण देना है। इस पहाड़ पर अजस्र हिंस्रक जानवर रहते हैं। यहाँ रात को कोई नहीं रहता। इसके अलावा नित्य यहाँ से ३-४ मील पैदल चलकर भिक्षा माँगने जाना और वापस आना कष्टसाध्य काम है। दूसरे अभी तो नील नदी पार कर लोगे, पर बरसात में इसे पार करना कठिन हो जायगा। मेरा कहना मानें तो आप अपना आसन दाम पहाड़ पर लगाइये। वहाँ मेरे अलावा अन्य कई संत हैं। हम सब आपकी मदद कर देंगे। दाम पहाड़ भी चण्डी पहाड़ का एक हिस्सा है।"

कुलदानन्द ने सोचा गुरुदेव ने यह तो नहीं कहा था कि तुम चण्डी पहाड़ पर ही तपस्या करना। पहाड़ पर करना, यही निर्देश था। इसके अलावा दाम पहाड़ चण्डी पहाड़ का हिस्सा है और ये लोग वहाँ मेरी मदद भी करेंगे। यह सब सोचकर वह दाम पहाड़ पर चला आया। कई दिन आत्माराम की कुटिया में रहने के बाद अपने लिए अलग से एक कुटिया का निर्माण कर लिया।

आसन पर बैठकर साधना करते वक्त एक नया उपद्रव प्रारंभ हुआ जिसके कारण ध्यान में मन लगाना कठिन हो गया। करोड़ों मक्खियाँ न जाने कहाँ से आकर सारे शरीर पर सवार होने लगीं। कपड़े से फटकारने पर भी भागती नहीं थीं। धुआँ देने से कोई लाभ नहीं हुआ। इनके उपद्रव के कारण एक दिन रोते हुए कुलदानन्द के मुँह से निकल पड़ा—"गुरुदेव, यह कौन-सी सजा दे रहे हो ? मुझसे यह कष्ट सहन नहीं हो रहा है। इस उपद्रव से मेरी रक्षा करें वर्ना आज्ञा दें मैं इस दुनिया से विदा ले लूँ। मैं आपको स्मरण भी नहीं कर पाता।"

उस रात को कुलदानन्द ने एक स्वप्न देखा कि वे गंडेरिया आश्रम में मौजूद हैं। वहाँ कई गुरुभाई आपस में हँसी-दिल्लगी कर रहे हैं, पर किसी का ध्यान गुरुदेव की ओर नहीं है। असंख्य कुत्सित मक्खियाँ उनके सारे शरीर पर बैठी हैं। गुरुदेव निष्पन्द, निर्विकार रूप

से बैठे हैं । यह देखकर कुलदानन्द हवा करने लगे । लेकिन एक भी मक्खी भागी नहीं । यह देखकर वे गुरुदेव के शरीर से मक्खियों को पकड़कर हटाने लगे तभी नींद खुल गयी ।

दूसरे दिन जब आसन पर बैठकर ध्यान करने लगे तब एक भी मक्खी दिखाई नहीं दी । गुरुदेव की कृपा हो गयी समझकर उन्होंने गुरुदेव को मन ही मन प्रणाम किया ।

मई माह की बात है । कुंभक करते समय अचानक कुलदानन्द के ललाट से ज्योति प्रकट हुई । क्रमशः यह ज्योति काफी उज्ज्वल हो उठी । फिर ध्यान के साथ-साथ विलीन हो गयी । इसके दर्शन से चित्त प्रफुल्लित हो उठा । गुरुदेव के निकट उन्होंने प्रार्थना की—"गुरुदेव, आपके अनन्त सौन्दर्य भंडार में तुमसे बढ़कर कोई चीज है तो वह मेरे निकट अप्रकाशित रहे, यही आशीर्वाद मुझे चाहिए ।"

दाम पहाड़ में तपस्या करते समय अनेक महात्माओं से परिचय हुआ । स्वामी शिवानन्द से कुलदानन्द को एक अद्‌भुत शालग्राम प्राप्त हुआ । इस शालग्राम को पाकर कुलदानन्द फूले नहीं समाये । दिन को भिक्षा माँगने जाते, भोजन बनाते और शेष समय ध्यान, योग, साधना में दिन गुजारते रहे ।

जुलाई माह में एक बार पुनः एक नया संकट उत्पन्न हुआ । एक दिन प्राणायाम के पश्चात् खट्-खट् आवाज सुनकर कुटिया के बाहर उन्होंने देखा कि एक बहुत बड़ा साँप बेड़ा के भीतर से कुटिया में आने का प्रयत्न कर रहा है । जिस जगह से वह प्रवेश कर रहा है वहीं वे टेक लगाकर आसन पर बैठते हैं । अगर किसी सूरत से वह भीतर आने में समर्थ हुआ तो सीधे उनके ऊपर आ जायगा । कुलदानन्द पड़ोस के लोगों को आवाज देने लगे । इनकी आवाज सुनकर साँप भाग गया । वह किधर गायब हो गया, पता नहीं चला ।

इधर तबतक आत्मानन्द और वरदानन्द आ गये थे । सारी बातें सुनने के बाद उन लोगों ने कहा—"एक भंयकर प्राचीन साँप इस पेड़ के नीचे के गड्ढे में रहता है । आपके आसन के नीचे से बेड़ा के भीतर तक बिल है । बेड़ा के बाहर से आपके आसन तक बिल है । दर असल आप साँप के सिर पर आसन जमाये हुए हैं । मेरे विचार से यहाँ आसन लगाना ठीक नहीं है । आप अपना आसन और कहीं लगाइये । यह साँप काफी पुराना है । अब तक इसने किसी को काटा नहीं है । यहाँ एक ऐसा साँप है, इस बात को काफी लोग जानते हैं, पर आज तक किसी ने देखा नहीं है । आप बड़े सौभाग्यवान संत हैं, सहज ही आपको दर्शन मिल गया ।"

इन लोगों की बातें सुनने के बाद वे अपने आसन पर आकर नित्य क्रिया करने लगे । संध्या-होम करने के बाद अचानक साँप का ध्यान आने पर प्रार्थना करने लगे—"हे सर्पराज, कृपया मुझे क्षमा कर दीजिये । आपकी वास्तविकता न जानने के कारण मुझसे अपराध हो गया । क्या करूँ ? मानव-संस्कारवश ऐसा करना पड़ा । आपका आदर कर सकूँ, यह साहस मुझमें नहीं है । आपके दर्शन की इच्छा है, पर आप दूर से दर्शन दें । आपको प्रणाम करना चाहता हूँ ।"

प्रार्थना समाप्त होने के साथ ही पुनः आवाज हुई और कुलदानन्द ने देखा कि उनका प्रणाम ग्रहण करने के लिए सर्पराज बेड़ा के भीतर प्रवेश कर झूम रहे हैं । बेड़ा के भीतर वे एक हाथ आ चुके थे । यह दृश्य देखकर कुलदानन्द की हालत खराब हो गयी । वे झटपट कुटिया के बाहर भाग खड़े हुए ।

इस घटना के कई दिनों बाद गुरुदेव के आश्रम से दो पत्र प्राप्त हुए जिसमें लिखा था कि भय और संकोच वश वहाँ रहने की जरूरत नहीं है। जब इच्छा हो वापस आ सकते हो। इसी प्रकार ऊहापोह में कुछ दिन व्यतीत हो जाने के बाद पुनः एक पत्र आया—"तुम शीघ्र ढाका चले आओ। तुम जो कुछ जानना चाहते हो, यहाँ आने पर ज्ञात हो जायगा।"

इस पत्र को पाने के बाद कुलदानन्द ने वापस जाने का निश्चय किया। यहाँ आने के बाद से कभी आसपास के स्थानों में दर्शन करने नहीं गये थे। अब वापस जाने के पहले वे कनखल, हृषीकेश आदि स्थानों का दर्शन करने के बाद कलकत्ता चले आये। यहाँ आने पर ज्ञात हुआ कि आजकल गुरुदेव यहीं हैं।

उनके निकट जाने पर उन्होंने कहा—"जिस उद्देश्य से तुम्हें पहाड़ पर भेजा था, वह पूरा हो गया। अब तुम मेरे साथ रह सकते हो।"

गुरुदेव से बिछुड़ने का उन्हें बहुत कष्ट था। अब इस आज्ञा से अपार शान्ति प्राप्त हुई। कलकत्ते में गुरुदेव सुकिया स्ट्रीट में ठहरे थे और कुलदानन्द अभय बाबू के यहाँ थे। नित्य संध्या-वन्दन करने के पश्चात् वे अपने हाथ से भोजन बनाकर शालग्राम को भोग लगाकर तब कहीं जाते थे। गुरुदेव का आदेश था कि शालग्राम को सर्वदा अपने साथ रखना।

आज भोजन बनाने में देर हो गयी। जल्दी से खिचड़ी बनाकर गरम-गरम शालग्राम को भोग लगाया। इसके बाद उन्हें डिब्बे में बन्दकर गुरुदेव के पास आये। इन्हें देखते ही गोस्वामीजी ने कहा —"जल्द शालग्राम को खोलो। उन्हें अपार क्लेश हो रहा है। उन्हें हवा करो। लो यह पंखा।"

कुलदानन्द ने शालग्राम का डिब्बा खोला तो देखा—ओस की बूँद की भाँति उनके तमाम बदन पर पानी है। वे हवा करने लगे।

सन् १६०८ में गोस्वामीजी ने निश्चय किया कि पुरीधाम जाकर कुछ दिन निवास किया जाय। गोस्वामीजी की माँ स्वर्णमयी देवी ने एक बार भविष्यवाणी की थी—"पुरी जाने पर विजय फिर वापस नहीं लौटेगा।" माँ की वाणी सत्य हुई। वहीं गोस्वामीजी का तिरोधान हो गया।

कुलदानन्द की स्थिति मणिविहीन साँप की तरह हो गयी। वे अब तक गुरुदेव की छत्रछाया में थे और आज वे बिलकुल अकेले हो गये। एक दिन वे मझले भाई के यहाँ जाने के लिए रवाना हुए। उन दिनों वरदाकान्त गया में वकालत कर रहे थे। वहीं एक दिन स्वप्न में उन्होंने देखा कि गया के पहाड़ की ओर इशारा करते हुए गुरुदेव कह रहे हैं—"यहीं बैठकर साधन भजन करो।"

इस स्वप्न की चर्चा वरदाकान्त से करने पर वे बोले—"इसी पहाड़ पर गुरुदेव साधना करते रहे। बाबा गंभीरनाथ अब भी यहाँ हैं। जब गुरुदेव ने आज्ञा दी है तो जाकर तपस्या करो।"

वरदाकान्त ही नहीं, कुलदानन्द के अन्य तीन बड़े भाई भी गोस्वामीजी से दीक्षा ले चुके थे। भाई साहब से अनुमति लेकर कुलदानन्द ब्रह्मयोनि पहाड़ पर तपस्या करने आये। कपिलधारा के समीप योगी गंभीरनाथ से मुलाकात हुई। उन्होंने कहा— "साधना के लिए यह स्थान बहुत ही उपयुक्त है। तुम्हारी कामना पूर्ण होगी।"

आकाश गंगा पहाड़ के श्वापद संकुल स्थान पर वे रहने लायक एक कुटिया बनाकर तपस्या करने लगे। इधर अगर तीर्थयात्री आते और भिक्षा में कुछ दे देते तो भोजन कर लेते वर्ना उपवास पर दिन गुजार देते रहे। श्वापद संकुल क्षेत्र होने के कारण यहाँ चोर-डाकू अपना माल छिपाने के लिए आते थे। यहीं लहटन सिंह वाली घटना हुई थी जिसका जिक्र प्रारंभ में किया जा चुका है।

आकाश गंगा में दिन, सप्ताह, वर्ष गुजरते गये और एक दिन वहाँ से पूर्ण सिद्ध होकर विजयकृष्ण गोस्वामी के मानस पुत्र कुलदानन्द जगत् के सामने प्रकट हुए। अपनी विपुल शक्ति को छिपाकर वे अगणित नर-नारियों को अपने गुरुदेव की वाणी सुनाने लगे।

आपके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर कलकत्ता के हलवाई पुंटीराम की पत्नी ने अपने यहाँ कुलदानन्द को आमंत्रित किया। कुलदानन्द ने इस आमंत्रण को स्वीकार किया। पुंटीराम निस्संतान थे। पितृमातृहीन अपने एक भतीजे को उन्होंने गोद ले रखा था। भतीजा जितेन्द्र बहुत ही उच्छृंखल स्वभाव का था। पुंटीराम दम्पत्ती इस लड़के के स्वभाव से बड़े मनोकष्ट में थे। आगे चलकर वह विशाल सम्पत्ति का मालिक होनेवाला था।

सारी बातें सुनने के बाद कुलदानन्द ने उसकी मति गति को बदल दिया। इस घटना के छह माह बाद पुनः पुंटीरम के यहाँ आये। सपत्नीक पुंटीराम के अलावा जितेन्द्र को भी कुलदानन्द ने दीक्षा दी। कुलदानन्द के प्रथम शिष्य यही लोग थे।

कुलदानन्द ब्रह्मचारी के बारे में उनके गुरुभाई दरवेशजी ने लिखा है—"ब्रह्मचारीजी की कठोर-साधना को देखकर हम सभी अनुप्राणित होते थे। उनका तेजपूर्ण शरीर देखकर मुग्ध हो जाते थे। अपने जीवन में उन्होंने कभी झूठ का सहारा नहीं लिया। गुरु भाइयों के संकटपूर्ण जीवन के मार्ग को वे बाधाहीन बना देते थे। उनकी तरह उदार हृदयवाले, भ्रातृवत्सल मित्र को पाकर हम गर्व अनुभव करते थे।"

दूसरे गुरुभाई हेमेन्द्र गुहाराय का कहना है—"ब्रह्मचारीजी स्वयं केवल उबले चावल या लिट्टी सेंककर खाते थे। मगर जब हम लोग उनके यहाँ जाते थे तब तरह-तरह के सुस्वादु भोजन बनाकर हमें खिलाते थे। वे अविराम नाम-साधन में मगन रहते थे। उनके अंग-प्रत्यंग से दिव्यज्योति प्रकट होती थी। उनके शरीर से कमल पुष्प की महक निकलती थी। कुटिया का वातावरण नाम की हवा से लहराता था। उनकी यह स्थिति देखकर हम विभोर हो जाते थे। ऐसे व्यक्ति को छोड़कर आने में हमें बड़ा कष्ट होता था।"

हरिदास शास्त्री ने लिखा है— "श्रीयुक्त कुलदानन्द ब्रह्मचारी इस पहाड़ पर अकेले रहते थे। उनकी अयाचक वृत्ति थी। नित्य झरने में दो-तीन बार स्नान करते थे। दिन-रात साधन-भजन करते रहते थे। उनके शरीर की ज्योति, साधना की तीव्रता और गुरुशक्ति का प्रभाव देखकर हम चकित रह जाते थे।"

संतोषनाथ नामक एक व्यक्ति को कुलदानन्द ने दीक्षा दी। वे तेजी से नाम, कुंभक, प्राणायाम करने लगे। फलतः उनकी हालत खराब हो गयी। आफिस में काम करते-करते गुरुदेव का दर्शन करने चल देते थे। सड़क पर ठीक से चल नहीं पाते थे। अक्सर लोग उन्हें पकड़कर कुलदानन्द के पास ले आते। उस वक्त उनकी हालत देखकर उन्हें दया आ जाती। कुलदानन्द कहते—"दर्शन हमारा लक्ष्य नहीं है। अगर इस तरह का दर्शन हो तो खूब नाम

करना चाहिए। इसमें आसक्ति होने पर अनिष्ट होता है। देव-देवी का दर्शन सिद्धि नहीं है। आप मन लगाकर आफिस का काम कीजिए। कीर्तन के पीछे दीवाने न बनें।"

कुलदानन्द का यह उपदेश काम नहीं आया। समाचार मिलते ही काशी से कुलदानन्द ने एक पत्र लिखा —"आजकल तुम जो कुछ कर रहे हो, वह उचित नहीं है। अब तुम प्राणायाम-कुंभक बन्द कर दो। नित्य क्रिया संध्या, पाठ और होम करना। नाम दस-बारह बार करना।"

पत्र लिखने के बाद कहीं संतोषनाथ ध्यान न दें, इसलिए उन्होंने शक्ति का प्रयोग किया। फलस्वरूप उनका नाम जपना अपने आप बन्द हो गया। दस-पन्द्रह दिनों के बाद उनकी स्थिति ठीक हो गयी। अब वे नियमित रूप से आफिस जाने लगे।

कुलदानन्दजी उन दिनों पुरी में थे। आपके शिष्य गंगानन्दजी कटक से गुरुदेव के पास आये। जाड़े का मौसम था। गंगानन्द शाम को ही वापस लौटनेवाले थे, इसलिए अपने साथ गरम कपड़े या ओढ़ने लायक वस्त्र नहीं लाये थे। इधर गुरुदेव ने कहा—"गंगानन्द, आज रात को यहीं विश्राम करो।"

अब गंगानन्द की हालत खराब। गुरुदेव की आज्ञा के विरुद्ध कुछ कहने का साहस नहीं हुआ। यह भी कह नहीं सके कि अपने ओढ़ने-बिछाने लायक कोई सामान नहीं ले आया हूँ।

उसी दिन उनके सामने एक घटना हो गयी थी। उन्हीं के एक गुरुभाई अपनी पत्नी के साथ आश्रम में आये थे। उनसे कुलदानन्दजी ने कहा—"तुम लोगों की दुर्बुद्धि के कारण कभी-कभी मुझे कष्ट होता है।"

यह बात सुनकर उपस्थित सभी लोग सन्नाटे में आ गये। गुरुभाई भी गुरुदेव का तात्पर्य न समझ पाने के कारण एक टक देखते रहे।

कुलदानन्द ने कहा—"मैंने तुमसे कहा था कि इसे ब्राह्मण का पादोदक पिलाना। यह न करके डाक्टरों के चक्कर में पड़कर न जाने कितनी रकम बरबाद कर चुके, इसीलिए कहा कि तुम लोगों की दुर्बुद्धि के कारण मुझे कष्ट होता है।"

गुरुभाई ने कहा—"गले में जनेऊ डाल लेने से कोई ब्राह्मण नहीं होता। मेरी श्रद्धा ऐसे ब्राह्मणों के प्रति नहीं है। बड़े-बड़े डाक्टर जवाब दे चुके हैं। पत्नी की इच्छा हुई कि एक बार आपका दर्शन करूँगी। इसी वजह से यहाँ आया।"

गुरुदेव के मुँह पर ऐसी बात कोई कह सकता है, इस पर उपस्थित लोग विश्वास नहीं कर सके। कुलदानन्दजी नाराज नहीं हुए। आश्रम के पास से एक उड़िया ब्राह्मण जा रहा था। पीलपाँव का रोगी था। कुलदानन्दजी ने आश्रम के एक सेवक से कहा—"जाओ, उस ब्राह्मण का पादोदक लेते आओ।"

पादोदक आने पर उक्त सज्जन ने नाक सिकोड़ा, पर पत्नी से आग्रह करने पर वह उस पानी को पी गयी। पानी पीते देर नहीं कि उसका मुरझाया चेहरा खिल उठा। कई दिनों बाद पूर्ण स्वस्थ होकर वह अपने घर चली गयी।

गंगानन्दजी ने सोचा—जब गरम कपड़े साथ नहीं लाया हूँ तब आज की रात गुरुजी

के दरवाजे पर साधन-भजन करूँगा। गंगानन्द उन दिनों ब्रह्मचर्य व्रत पालन कर रहे थे, इसलिए दूसरे लोगों के कपड़ों का उपयोग नहीं कर सकते थे।

रात साढ़े दस बजे उन्होंने आसन जमाया। थोड़ी देर बाद उन्हें हल्की गर्मी महसूस होने लगी। उन्हें लगा जैसे किसी एयर कण्डीशन कमरे में बैठे हैं। रात आराम से गुजरी। इस बीच उनके मन में यह विचार उत्पन्न नहीं हुआ कि आखिर इतना आराम इस सर्दी में कैसे मिला।

दूसरे दिन जब वे गुरुदेव को प्रणाम करने गये तब कुलदानन्दजी ने पूछा—"रात को कोई तकलीफ तो नहीं हुई थी ?"

गुरुदेव की असीम कृपा से वे आराम से रात गुजार चुके हैं, यह बात तब उनके दिमाग में उत्पन्न हुई।

प्रसिद्ध संगीतज्ञ तुकाराम भातकुलिकर कुलदानन्द के शिष्य थे। मद्रास में आयोजित संगीत-सम्मेलन में गये। वहीं उनकी आँख एक सुन्दरी गायिका से लड़ गयी। दोनों एक दूसरे पर मोहित हो गये। दोनों मिलन के लिए व्याकुल हो उठे।

सम्मेलन की समाप्ति के बाद तुकाराम उस युवती के घर जाकर ठहरे। आधी रात को एक कक्ष में जाकर दोनों एक ही बिस्तर पर सो गये। अचानक घर के सभी दरवाजे और खिड़कियाँ अपने आप खुल गयीं। प्रत्येक वातायन में श्री कुलदानन्द खड़े दिखाई दिये। यह देखकर दोनों विस्मित और लज्जित हो उठे। अब क्या करें और क्या न करें, समझ नहीं पा रहे थे। थोड़ी देर बाद यह दृश्य गायब हो गया। दोनों पुनः बिस्तर पर आये और पुनः वही दृश्य सामने उपस्थित हुआ।

विस्मित भाव से महिला ने पूछा—"क्या यह साधु तुम्हारा परिचित है ?"

तुकाराम ने अपने गुरु का विस्तृत रूप में परिचय दिया। दोनों का मोह भंग हुआ। अवैध कार्य से दोनों विरत हो गये। तुकाराम की पत्नी और बच्चे उन दिनों पुरी में थे। मद्रास से वे पुरी आये और सीधे अपने गुरुदेव के दरबार में पहुँचे।

इन्हें देखते ही कुलदानन्द ने पूछा— "तुकाराम, कैसा भोग किया ?"

तुकाराम सिर झुकाकर खड़े रहे। अगर पृथ्वी फट जाती तो शायद वहीं मुँह छिपा लेते।

कुलदानन्द अधिकतर गया के आकाश गंगा पहाड़ पर रहना पसन्द करते थे। वहाँ साधना करने की अनेक सुविधाएँ थीं और वह स्थान भी बहुत जाग्रत था। सहसा एक दिन उन्हें गंभीरनाथ ने कहा—"अब आप जल्द बनारस चले जाइये। वहाँ आपके लिए सारा प्रबंध हो गया है। गोस्वामीजी ने मुझसे कहा है कि आपको यह सूचना दे दूँ।"

कुलदानन्द आकाशगंगा से काशी आ गये। कई दिनों तक परेशान थे। इसी बीच गंभीरनाथजी के शिष्य कालीनाथ सहायता के लिए आ गये। एक के बाद एक करके गुरु की कृपा होती गयी। यहाँ उन्होंने सोनारपुरा मुहल्ले में अपने गुरुदेव के नाम पर आश्रम की स्थापना की। इसी भवन में सर्व प्रथम आश्रम की स्थापना हुई। काशी, पुरी, कलकत्ता तथा बंगाल के कई अंचलों में कलुदानन्दजी यात्रा करते रहे। इनके अलौकिक प्रभाव से अनेक लोग प्रभावित हुए जिन्हें बाद में इन्होंने दीक्षा भी दी।

कुलदानन्द ने एक बार अपनी माँ से वायदा किया था कि माँ, मैं जहाँ कहीं भी रहूँगा वहाँ से तुम्हारा प्राण छूटने के पहले पहुँच जाऊँगा। इन दिनों आपकी माँ काशीवास कर रही थीं। उनके निधन के पूर्व कुलदानन्द पहुँच गये। वेटे की गोद में सिर रखकर माँ अनन्तधाम चली गयी।

इस यात्रा के दौरान उनके शिष्य अतीन चक्रवर्ती सख्त बीमार हुए। डाक्टरों ने जवाब दे दिया। एक रात को बेहोशी की हालत में अतीन बाबू ने अनुभव किया कि गुरुदेव अपने कमंडल से उनके ऊपर पानी छिड़क रहे हैं। इसके बाद अभयदान देकर वे गायब हो गये। सहसा उनकी आँखें अपने आप खुल गयीं। उन्होंने अनुभव किया कि वे तो स्वस्थ हैं। बिस्तर से उठकर टहलने लगे। डाक्टर आया और यह दृश्य देखकर चकित रह गया।

इन्हीं दिनों आप श्री श्री सद्‌गुरुसंग ग्रंथ के प्रकाशन में लग गये। इस ग्रंथ में अपने गुरु श्री विजयकृष्ण गोस्वामी के बारे में प्रति दिन की घटना लिखते रहे। इस पुस्तक से श्री महादेव देसाई बहुत प्रभावित हुए थे।

अक्सर आप कीर्तन समारोह करते थे। इस कार्यक्रम में सर्वश्री विपिनचन्द्र पाल, हेमेन्द्र मित्र, देशबन्धु चित्तरंजन दास, बैरिस्टर भुवन मोहन चटर्जी, 'डान' दैनिक के संपादक सतीशचन्द्र मुखर्जी आते थे। केवल यही नहीं, अनेक विदेशी धर्मयाजक भी आप से बातचीत करते रहे। डॉ० इवान्स ने जो १२ साल तक तिब्बत में अध्ययन करते रहे, 'भारतीय तथा तिब्बती संतों का इतिवृत्त' नामक पुस्तक में कुलदानन्द के ज्ञान और दर्शन के बारे में लिखा है।

योगिराज अरविन्द ने कहा है—विजयकृष्ण ने अपने भीतर जो सत्य छिपा रखा है, वह आज भी प्रकट नहीं हुआ। सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने कहा है—'ही वाज वन ऑव दी ग्रेट रिप्रेजेन्टेटिव सेण्टस् ऑव माडर्न इंडिया।' आपकी पुस्तक श्री श्री सद्‌गुरुसंग पढ़कर महात्मा गाँधी, विपिनचन्द्र पाल और अश्विनी कुमार दत्त मुग्ध हो गये थे। गाँधीजी ने उन्हें राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के लिए बुलाया, पर कुलदानन्द को गाँधीजी का मार्ग पसन्द नहीं था। उनका कहना था—'प्रतिष्ठा सुअर की विष्ठा है।'

अपने गुरु प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी की तरह आप भी अपने शिष्यों का निरन्तर ध्यान रखते थे। यही वजह है कि गोस्वामीजी के शिष्यों में आप सर्वजन आदृत हैं। आपके एक शिष्य छकुदास थे। एक बार जब कुलदानन्दजी चन्दन नगर गये थे तब अनेक लोगों के साथ छकुदास को भी दीक्षा प्राप्त हुई थी।

छकुदास चाँदभोग गाँव में रहते थे और एक बालिका विद्यालय में अध्यापक थे। साथ ही उसी गाँव के पोस्टमास्टर भी थे। इन दोनों नौकरियों से आपको अच्छी आमदनी हो जाती थी। उनका ख्याल था कि इसी तरह सुखी जीवन वे व्यतीत करेंगे।

लेकिन यह कल्पना ख्याली पोलाव थी। अचानक उन्हें अपनी दोनों नौकरियों से हाथ धोना पड़ा। काफी दौड़धूप करने पर भी सफलता नहीं मिली और न कोई नौकरी जुटा सके। एक-एक कर घर की चीजें बिकती गयी। कुछ दिन उधार पर गाड़ी चली और बाद में लोगों ने उधार देना बन्द कर दिया।

आखिर एक दिन ऐसी हालत हो गयी कि कुलदानन्द के चित्र के आगे हाथ जोड़ते हुए रो पड़े—"ठाकुर अगर आप कृपा नहीं करेंगे तो मेरा जीना कठिन हो जायगा। मेरे सारे अपराधों को क्षमा कर दो।"

उस दिन वे रात भर रोते रहे। बेचैनी से करवट बदलते रहे। अभी नित्य कर्म से खाली हुए थे तभी दरवाजे की साँकल बज उठी। कोई तगादगीर आया है, समझकर वे घबड़ा उठे। गुरुदेव का नाम लेते हुए उन्होंने दरवाजा खोला।

सामने खड़े व्यक्ति ने प्रश्न किया—"क्या आपका नाम छकुदास मालाकार है ?"

"जी हाँ।"

आगन्तुक ने कहा—"मैं पुरी से आ रहा हूँ। ठाकुर ने मुझे भेजा है।"

"कृपया भीतर आइये।"

आगन्तुक ने पूछा—"अभी भीतर नहीं आऊँगा। आप मुझे यह बताने की कृपा करें कि आप पर कुल कितना कर्ज है ?"

"बात क्या है ?"

आगन्तुक ने कहा—"बात खास नहीं है। ठाकुर ने यह जानना चाहा है कि आप पर कितना कर्ज है ?"

इसके बाद छकु बाबू ने मौखिक रूप से बताया कि उन पर कितने लोगों का कितना कर्ज है। सारी बातें सुनने के बाद आगन्तुक ने कहा—"आप उन लोगों को बुलाइये। अभी आपका सारा कर्जा चुका दूँगा।"

यह बात सुनकर छकुदास का मन कृतज्ञता से भर उठा। वे भाव विभोर होकर बोले—"पहले आप स्नान-भोजन कर लीजिए तब बाकी बातें होंगी।"

आगन्तुक ने कहा—"वह बाद में हो जायगा। पहले ठाकुर की आज्ञा का पालन करना है।"

अब छकु बाबू क्या कहते ? उन्हें साथ लेकर वे सभी पावनादारों के यहाँ गये। सारा कर्ज चुकाने के बाद वह व्यक्ति चुपचाप गायब हो गया। छकु बाबू अवाक् रह गये।

सारा समाचार लिखकर उन्होंने गुरुदेव के पास भेजा। पुरी से पत्र आया—"ऐसा कोई आदमी यहाँ से नहीं भेजा गया था।"

सन् १६२६ में एक प्रसिद्ध साधिका कुलदानन्द से मुलाकात करने आयी। बातचीत एकान्त में हुई। उनके जाने के बाद कुलदानन्द ने अपने शिष्यों से कहा—"साधिकाजी क्या कह गयीं, जानते हो ? महाप्रस्थान का समय आ गया है। कोई हर्ज नहीं। यह शरीर हमेशा रहता नहीं।"

शिष्यों को सारी बातें समझ में आ गयी।

२६ जून सन् १६३० ई० को उन्होंने अपना पार्थिव शरीर कलकत्ता के मिर्जापुर स्ट्रीट में त्याग दिया। जाते-जाते कह गये—"जीवन-मरण में मैं सदा तुम लोगों के साथ रहूँगा।"

●

अभयचरणारविन्द भक्ति वेदान्त स्वामी

अभयचरणारविन्द वेदान्त स्वामी

संसार में भारत ही एक ऐसा देश है जहाँ एक से एक महामानव उत्पन्न हुए जिन्होंने संसार को शान्ति का संदेश दिया। अतृप्त, व्याकुल मानव को सही मार्ग दिखाया। पथभ्रष्ट लोगों के जीवन में क्रान्ति उत्पन्न की। बुद्ध, महावीर, शंकराचार्य, गोरखनाथ, चैतन्य महाप्रभु, कबीर, रैदास जैसे रत्न यहीं पैदा हुए। इन लोगों ने तलवार के बल पर अपना संदेश नहीं फैलाया। न जुल्म ढाये और न कोई प्रलोभन दिया। फलतः ज्ञान पिपासु और शान्ति की खोज में भटकनेवाले लोग इन संतों के शरण में आकर तृप्त हो गये।

आधुनिक युग में परमहंस रामकृष्ण के अनन्य शिष्य स्वामी विवेकानन्द ने पश्चिम को अपना संदेश सुनाया। यह धर्म परिवर्तन का निमंत्रण या आकर्षण मंत्र नहीं था। लाखों-करोड़ों लोगों के अशान्त हृदय को ठंढक पहुँचाने तथा दिक भ्रमितों को अध्यात्म का मार्ग बताने गये थे। यही वजह है कि महर्षि रोम्या रोलाँ से लेकर सिस्टर निवेदिता तक सभी प्रभावित हुए।

बाद में स्वामी रामतीर्थ, स्वामी अभेदानन्द आदि पश्चिम को पूर्व के अध्यात्म-चिन्तन का संदेश देने गये। इन लोगों की भावधारा से प्रभावित होकर वहाँ के लोगों ने आश्रम स्थापित किये और इन संतों के उपदेशों का प्रचार किया।

इसी उद्देश्य से संपूर्ण पश्चिमी देशों को कृष्ण नाम की महिमा बताने के लिए अभय चरणारविन्द वेदान्त स्वामी गये थे।

कलकत्ता के हरिसन रोड पर स्थित एक भवन में गौरमोहन दे रहते थे। संपूर्ण बंगाल में चैतन्य महाप्रभु का आज भी व्यापक रूप से प्रभाव है। नवद्वीप से राधाकृष्ण का नाम संगीत भारत के कोने-कोने में गूँजता रहता है जो ब्रज भूमि में जाकर एकाकार हो जाता है। दे परिवार के लोग राधाकृष्ण के अनन्य पुजारी थे। शुद्ध वैष्णव। बंगाली होते हुए भी मत्सभोजी नहीं थे। इसी परिवार में १ सितम्बर, सन् १८६६ ई० को एक बालक ने जन्म लिया। पिता ने बालक का नाम रखा—अभयचरण। पिता कपड़े का व्यवसाय करते थे। खाली समय में कृष्ण नाम के संकीर्तन में मशगूल रहते थे।

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

यही मंत्र दे परिवार का इष्ट था। खाली समय में वे चैतन्य चरितामृत पढ़ते थे। यहाँ तक कि गौरमोहन ने अपने लड़के को भी कृष्ण भक्त बना दिया। गौरमोहन चाहते थे कि उनका पुत्र कृष्ण भक्त बने, पर माँ चाहती थी कि मेरा बेटा बैरिस्टर बने। पत्नी की इच्छा सुनकर गौरमोहन असंतुष्ट हो गये। उन्होंने प्रतिवाद करते हुए कहा—"बैरिस्टरी पढ़ने के

लिए लन्दन जाना पड़ेगा । वहाँ लड़कियाँ इसे फाँस लेंगी । लड़का वहाँ जाकर शराब पीने लगेगा । मुझसे यह अधःपतन देखा नहीं जायगा ।"

गौरमोहन की पत्नी रजनी देवी के मन में यह बात बैठ गयी । उन्होंने सोचा—पति का अंदेशा सही है । अब गौरमोहन ने अपने पुत्र को कीर्तन में लगा दिया । उसे मृदँग बजाने की शिक्षा दिलाने लगे । अभय की माँ ने बच्चे के जन्म के समय से ही बायें हाथ से भोजन करने लगी थी ताकि अभय रोग, संकट, अकालमृत्यु से सुरक्षित रहे । जिस दिन बालक बायें हाथ से भोजन करने का कारण अपनी इच्छा से पूछेगा, उसी दिन यह प्रतिज्ञा भंग करेगी ।

अभय बचपन से नटखट रहे । हर काम में जिद्द करना उनका स्वभाव था । लेकिन माँ इस जिद्द के आगे हार स्वीकार नहीं करती थी । अपने दृढ़ संकल्प से उसे झुका देती थी । फलस्वरूप अभय को विवश हो जाना पड़ता था ।

अभय कृष्ण भक्त बन गये थे । खासकर रथयात्रा मेला, रासलीला बड़ी श्रद्धा से देखते थे । घर के समीप एक मंदिर में जाकर घंटों मुग्ध भाव से राधाकृष्ण के विग्रह को देखते । इससे उन्हें अपार आनन्द की अनुभूति होती । अपने बचपन की इन अनुभूतियों का उल्लेख उन्होंने किया है ।

पुरी के उत्सव की भाँति बचपन में अपनी छोटी बहन के सहयोग से रथयात्रा उत्सव मनाते रहे । एक छोटे से रथपर कृष्ण, सुभद्रा और बलराम की मूर्तियाँ बैठाकर अपने मित्रों के साथ खींचते थे । पड़ोसी इस बाल सुलभ रथयात्रा के लिए भोग का प्रबंध करते रहे ।

इसी प्रकार दिन गुजरते गये । जिन दिनों वे कालेज में अध्ययन करते थे, उन्हीं दिनों उनका विवाह हो गया । आपके साथ नेताजी सुभाषचन्द्र बोस भी पढ़ते रहे जो एक क्लास सीनियर छात्र थे । सुभाषचन्द्र अपने अध्ययनकाल से ही अपने हमजोलियों को स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लेने के लिए आह्वान करते थे जिसका प्रभाव अभयचरण पर पड़ता था ।

जालियां बाग हत्याकाण्ड के सिलसिले में गाँधीजी ने असहयोग आन्दोलन छेड़ा । गौरमोहन अपने लड़के को राष्ट्रीयधारा में जुड़ते देख चिन्तित हो उठे । प्रत्यक्ष रूप से वे विरोध करने का साहस नहीं कर पाते थे । परीक्षा में उत्तीर्ण होने के बावजूद अभय ने डिप्लोमा नहीं लिया । पिता ने अपने एक मित्र से चर्चा की । वे दवाओं के निर्माता थे । उन्होंने अपनी कम्पनी में अभय को मैनेजर के पद पर नियुक्त कर दिया ।

कुछ दिन सामान्य ढंग से गुजर गये । अभय राष्ट्रीयधारा से नहीं जुड़ सके । इनकी कृष्ण-भक्ति देखकर अभय के एक मित्र एक दिन इन्हे गौड़ीय मठ में ले आये जहाँ इनकी मुलाकात भक्तिसिद्धान्त सरस्वती से हुई ।

भक्तिसिद्धान्त के समीप प्रणाम कर ज्योंही दोनों युवक बैठे त्योंही उन्होंने कहा—"तुम लोग शिक्षित तरुण हो, क्यों नहीं आम जनता में कृष्ण-नाम प्रचारित करते । महाप्रभु चैतन्य समस्त भारत में यह कार्य करते रहे ।"

भक्तिसिद्धान्त की बातें अभय के दिल में लग गयी । उन्हें लगा जैसे कोई अदृश्य शक्ति इस कार्य को करने के लिए उन्हें प्रेरित कर रही है । इसके बाद भक्तिसिद्धान्त से कृष्ण-नाम के बारे में देर तक बातें होती रही । उनके निश्छल और उदार भाव से अभय प्रभावित हुए

बिना रह नहीं सके। इन दिनों उनकी उम्र २६ साल की थी। मन ही मन उन्होंने निश्चय कि भविष्य में इनसे दीक्षा लूँगा।

भक्तिसिद्धान्त से मिलने के बाद से अभय अब बराबर गौड़ीय मठ में जाने लगे। मठ के शिष्यों और भक्तों से उनका सम्पर्क बढ़ने लगा। यहाँ उन्हें पढ़ने के लिए पुस्तकें प्राप्त हुई और इस प्रकार वे चैतन्य महाप्रभु के चरित्र को अच्छी तरह समझने में सफल हुए।

सन् १९३२ में अपने व्यवसायिक कार्य के सिलसिले में इलाहाबाद आये। यहीं उन्हें भक्तिसिद्धान्त सरस्वती से दीक्षा प्राप्त हुई। गुरु ने इनसे कहा—"केवल भारत ही नहीं, संपूर्ण विश्व में तुम्हें कृष्ण भावना का प्रचार करना है। आज का विश्व पथभ्रष्ट हो गया है, इसीलिए असंतोष की अग्नि में जल रहा है। कृष्ण-नाम विस्मरण करने के कारण आज उसकी यह दुर्दशा है।"

इस घटना के बाद से उन्हें अपने दैनिक जीवन में दो कार्य करना पड़ता था। जीविका चलाने के लिए व्यवसाय की देखरेख और दूसरी ओर गुरु द्वारा बताये मार्ग पर चलना पड़ता था। दीक्षा के तीन वर्ष बाद गुरुदेव ने अभय से कहा—"कुछ पुस्तकें छपवाने की मेरी इच्छा थी। अगर कभी तुम अर्थ संग्रह कर सको तो यह कार्य करना।"

अपने निधन के एक माह पूर्व भक्तिसिद्धान्त ने अभय के नाम एक पत्र लिखा—"जो लोग बंगला या हिन्दी नहीं जानते, ऐसे लोगों के निकट तुम अंग्रेजी में हमारे सिद्धान्तों, चिन्तन तथा भावधारा को तर्क सहित उपस्थित करना। मेरा आशीर्वाद है, तुम्हें सफलता मिलेगी और तुम एक महान् धर्म प्रचारक बन सकोगे।"

सन् १९३६ में भक्तिसिद्धान्त का तिरोधान हो गया। गुरु की आज्ञा अभय के जीवन का कर्त्तव्य बन गया। ठीक इन्हीं दिनों द्वितीय महायुद्ध प्रारंभ हुआ। वहीं अभय ने 'बैक टु गाडहेड' नामक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया।

आर्थिक संकट के कारण पत्रिका का प्रकाशन नियमित रूप से नहीं हो रहा था। इसके बावजूद कृष्णनाम प्रचार बन्द नहीं हुआ और न उनकी लेखनी ने विश्राम लिया। ठीक इन्हीं दिनों आप श्रीमद्भागवत का अंग्रेजी में अनुवाद करने लगे। धीरे-धीरे वे लेखन कार्य में इस कदर डूब गये कि उनका व्यवसाय समाप्त हो गया। इलाहाबादवाले मकान में चोरी हो जाने के कारण वे पूर्णतः फकीर बन गये।

अभय का परिवार कलकत्ते में रहता था। आप वहाँ आये। यहाँ एक ऐसी घटना घटी जिसके कारण उन्होंने पत्नी से अलग हो जाना उचित समझा। भागवत कथा की पाण्डुलिपि बेचकर पत्नी ने बिस्कुट खरीदा था। इस घटना से उन्हें गहरी चोट पहुँची। वे कलकत्ता से दिल्ली चले आये। उन्हें विश्वास था कि दानदाताओं के पास जाने पर उन्हें प्रकाशन कार्य के लिए मदद मिलेगी। लेकिन उनकी यह धारणा निर्मूल प्रमाणित हुई। अपनी पत्रिका में लेख लिखते, प्रूफ देखते और उसे घर-घर बेचते थे। उन दिनों आपके पास पहनने लायक वस्त्र भी नहीं थे। चाय की दुकानों, होटलों, धर्मशालाओं में जाकर अपनी पत्रिका का प्रचार करते रहे। एक प्रकार से वे जिन कठिनाइयों से गुजर रहे थे, उसका वर्णन करना कठिन कार्य है।

दिल्ली में जब रहना असहनीय हो उठा तब आप वृन्दावन चले आये। नित्य सुबह की

गाड़ी से दिल्ली जाकर पत्रिका बेचते और दान माँगते थे। शाम को वृन्दावन वापस आ जाते थे।

वृन्दावन के निवासकाल में एक रात को उन्होंने अदभुत स्वप्न देखा। उनके गुरुदेव भक्तिसिद्धान्त ने उनसे कहा—"अब वह समय आ गया है जब तुम्हें संन्यास ग्रहण करना चाहिए। मेरा आदेश है कि अब तुम शीघ्र संन्यास ले लो।"

तभी उनकी आँखें खुल गयी तो उन्होंने अपने आपको अँधेरी कोठरी में पाया। बाद में उनके किसी गुरुभाई ने उनसे कहा—"तुम्हारे लिए आवश्यक है कि तुम संन्यासी बनो। बिना संन्यासी बने कोई भी व्यक्ति धर्मोपदेशक नहीं बन सकता।" गुरुभाई के इस कथन पर उन्हें आश्चर्य हुआ। लगा जैसे इनके माध्यम से गुरुदेव आदेश दे रहे हैं।

अन्त में उन्होंने विधिपूर्वक संन्यास ग्रहण किया। संन्यास लेने के पश्चात् आपका नया नामकरण हुआ—अभयचरणारविन्द भक्तिवेदान्त स्वामी।

कुछ दिनों बाद एक पुस्ताकाध्यक्ष ने आपको सलाह दी कि पत्रिका प्रकाशित करने से कोई लाभ नहीं होगा। इससे अच्छा है कि आप पुस्तकें लिखें। पत्रिकाएँ पढ़कर फेंक दी जाती हैं और लोग उन सारी बातों को भूल जाते हैं। पुस्तकें स्थायी महत्त्व की चीजें होती हैं।

अभयजी के मन में यह बात घर कर गयी। उन्होंने निश्चय किया कि वे श्रीमद्भागवत का अनुवाद करते रहेंगे। उन्हें यह ज्ञात था कि यह कार्य सरल नहीं है। कम-से-कम पाँच-छह वर्ष इस कार्य में लग जायेंगे। एक ओर उनका अनुवाद कार्य चलता रहा, दूसरी ओर अपनी आध्यात्मिक साधना करते रहे। अब घर से कम निकलते थे। खाली समय में ध्यान, जप और पूजा करते रहे। अपने कमरे में उन्हें कृष्णदास कविराज[१] द्वारा पूजित कृष्ण मूर्ति के दर्शन होते थे। साथ ही उन्हें अनुभव होता कि उनके इस कार्य में वृन्दावन बिहारी उन पर कृपा-वर्षा कर रहे हैं। यह वह भवन था जहाँ पन्द्रहवीं शताब्दी के संत रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी, रघुनाथ गोस्वामी, जीव गोस्वामी आदि निवास करते थे। इन संतों के निवास का प्रभाव उस कक्ष में पड़ रहा था। पास ही स्थित रूप गोस्वामी की समाधि पर जाकर प्रार्थना करते मुझे अपने कार्य में सफलता मिले, ऐसा आशीर्वाद देने की कृपा करें।

सबसे बड़ी समस्या यह थी कि इतने बड़े ग्रंथ को कौन प्रकाशित करेगा। साठ खण्डों का यह बृहद ग्रंथ छापना और बेचना एक कठिन समस्या थी। प्रकाशकों के दरवाजे खटखटाने पर भी उन्हें सफलता हासिल नहीं हुई। अन्त में उन्होंने निश्चय किया कि वे स्वयं प्रकाशित करेंगे। इस कार्य के लिए उन्होंने दान लेना प्रारंभ किया।

जिस वक्त प्रथम खण्ड छपकर तैयार हुआ, उस वक्त वे अन्तिम खण्ड लिख रहे थे। जिस प्रकार वे अपनी पत्रिका द्वार-द्वार पर जाकर बेचते थे, उसी प्रकार इसे बेचने लगे। विद्वानों ने इनकी कृति की जमकर प्रशंसा की। सर्वपल्ली राधाकृष्णन् डा० जाकिर हुसैन, लाल बहादुर शास्त्री, विश्वनाथदास (राज्यपाल, उत्तर प्रदेश) ने भूरि-भूरि प्रशंसा की। लेकिन पुस्तकें मंदगति से बिकती रही।

अभयजी ने हिम्मत नहीं हारी। अपने कार्य में लगे रहे। किसी प्रकार दान आदि लेकर

---

[१] वैष्णव साहित्य की सर्वश्रेष्ठ पुस्तक 'चैतन्य चरितामृत' के लेखक।

तृतीय खण्ड उन्होंने प्रकाशित किया। इस खण्ड के प्रकाशन के साथ ही विद्वानों में इनकी चर्चा होने लगी।

इसी बीच रूप गोस्वामी की समाधि के समीप प्रार्थना करते समय उन्हें अपरोक्ष रूप से आदेश हुआ—'पाश्चात्य देशों में शीघ्र जाओ और कृष्ण-नाम का प्रचार करो।'

यह आदेश पाते ही भागवत के प्रकाशन से दिलचस्पी हट गयी। अब वे गुरु की आज्ञा के अनुसार विदेश यात्रा के लिए तत्पर होने लगे। सम्बलहीन व्यक्ति की विदेश यात्रा करना, एक प्रकार से आसमान से तारे तोड़ लाना के बराबर था। अपने परिचितों से इस बात की चर्चा बराबर करते रहे। इन मित्रों में एक अग्रवाल साहब थे जिनका पुत्र पेन्सेल्वेनिया में इंजीनियर पद पर था। उन्होंने कहा कि मैं अपने लड़के को पत्र लिख रहा हूँ। वह अमेरिका में आपका जमानतदार रहेगा।

इस प्रकार वीजा, पासपोर्ट, जमानतदार की समस्याएँ हल होती गयीं। अब केवल यात्रा व्यय का प्रश्न बाकी रह गया। अभय स्वामी का प्रभाव श्रीमती सुमति मोरारजी पर था। पुस्तक बेचने के सिलसिले में उनसे परिचय हुआ था। इस उदार महिला ने पहले यात्रा के लिए निषेध किया, पर अभय स्वामी के दृढ़ निश्चय को देखकर उन्होंने उनकी यात्रा के लिए प्रबंध कर दिया। श्रीमती मोरारजी सिंधिया स्टीमशिप लाइन की अध्यक्षा थीं और उनके जलयान संसार के सभी देशों की यात्रा करते थे।

अध्यक्षा ने 'जलदूत' जहाज को हिदायत दी थी कि स्वामीजी हमारे खास मेहमान हैं। शुद्ध शाकाहारी हैं। इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखा जाय कि उन्हें मार्ग में कोई कष्ट न हो। इनके लिए पर्याप्त फल और सब्जियाँ यहीं से खरीद ली जायँ। उन्हें कोल्ड स्टोरेज कर दिया जाय ताकि मार्ग में कहीं भी कमी न पड़े। 'जलदूत' के कप्तान श्री अरुण पण्डया ने अपने स्वामिनी को आश्वासन दिया कि आपके सभी निर्देशों का पालन किया जायगा। स्वामीजी हमारे अतिथि के रूप में रहेंगे।

स्वामीजी को यह ज्ञात था कि अमेरिका के निवासी क्या खाते हैं, इसलिए अपने साथ पर्याप्त मात्रा में दलिया ले जा रहे थे। साथ में एक बक्सा और छाता था। उनकी यह यात्रा १३ अगस्त, सन् १९६५ ई० में प्रारंभ हुई थी।

ठीक दसवें दिन आप 'सी-सिकनेस' यानी समुद्री यात्रा की बीमारी से पीड़ित हुए। सिर दर्द, चक्कर, वमन, अजीर्ण के शिकार हो गये। इसी बीच दो बार दिल का दौरा पड़ा। जहाज के कप्तान से लेकर अधिकांश कर्मचारी आपकी सेवा में लग गये।

उसी रात को आपने स्वप्न देखा कि एक नाव पर वृन्दावन बिहारी श्रीकृष्ण बैठे डाँड़ चला रहे हैं। श्रीकृष्ण के इस रूप को देखकर उन्हें संतोष हो गया कि खतरा टल गया। अब उनकी यात्रा निर्विघ्न होगी। जिस व्यक्ति की सहायता स्वयं श्रीकृष्ण कर रहे हैं, उसे किस बात का डर?

सबेरे नींद खुली। नित्य क्रिया से खाली होने के बाद उन्होंने अनुभव किया कि उनकी सारी बीमारी दूर हो गयी है। अब वे पूर्ण रूप से स्वस्थ हैं। कप्तान को यह देखकर आश्चर्य हुआ। आखिर रात को ऐसा कौन-सा चमत्कार हो गया? उसे स्वामीजी की शक्ति के बारे

में कुछ ज्ञान हुआ। निस्सन्देह इन बाबा में कोई शक्ति है वर्ना जिसे दो बार हार्ट अटैक हुआ, वह इस वक्त अपना तेजस्वी चेहरा लिए डेकपर मधुर मुस्कान न बिखेरता।

१ सितम्बर को स्वेज नहर में 'जलदूत' ने प्रवेश किया और पुनः आगे रवाना हुआ। १० सितम्बर के दिन कप्तान श्री अरुण पण्डया इनके केबिन में आया और कहा—"अब तक मैं संसार का कई चक्कर लगा चुका हूँ। अपने गर्व के लिए क्षमा चाहता हूँ कि कभी भी मैंने अटलांटिक सागर को इतना शान्त नहीं देखा जितना इस बार की यात्रा में देख रहा हूँ। अटलांटिक सागर के उपद्रव से हर कप्तान बुरी तरह घबड़ा जाता है। मेरी समझ से अपनी बीमारी की तरह आपने अवश्य इस सागर को शान्त बनाया है। यह आप ही का चमत्कार है जो जहाज निर्विघ्न रूप से अटलांटिक सागर पर चल रहा है।"

स्वामीजी अपनी मोहक मुस्कान से कप्तान को प्रभावित करते हुए बोले—"कप्तान साहब, मेरे जैसे अकिंचन में यह शक्ति कहाँ है ? यह तो मेरे गुरु की कृपा है जिनकी आज्ञा का पालन करने जा रहा हूँ। उस वृन्दावन बिहारी की माया है। मैं तो आप लोगों की तरह सामान्य व्यक्ति हूँ।"

जहाज के सभी कर्मचारी भी चकित थे कि आखिर अटलांटिक इस बार इतना शान्त क्यों है। श्रीमती पण्डया ने स्वामीजी से अनुरोध किया—"हम सब का अनुरोध है कि जब हमारा जहाज अमेरिका से वापस आने लगे तब आप इसी 'जलदूत' से वापस आयें। आपके रहने से हमारी यात्रा निर्विघ्न होगी। इसके लिए हम कृतज्ञ रहेंगे।"

अपनी मुस्कान की सम्मोहन शक्ति से श्रीमती पण्डया को प्रभावित करते हुए स्वामीजी ने कहा था—"मैं तो अमेरिका में दो माह रहने के लिए जा रहा हूँ। 'जलदूत' से वापस आ सकूँगा या नहीं, इसे मेरे प्रभु श्रीकृष्ण ही बता सकते हैं। उनकी गति-मति की जानकारी मुझे नहीं है।"

१७ सितम्बर को जहाज बोस्टन पहुँच गया। १६ सितम्बर को वे न्यूयार्क बन्दरगाह पर उतर गये। उस वक्त उनके पास चालीस रुपये थे। बीस डालर कप्तान को भागवत के तीन खण्ड बेचकर प्राप्त किये थे।

बन्दरगाह पर उन्हें यात्री सहायक मिला जिसके निर्देश पर वे बस की सहायता से बटलर आये। यहाँ उन्हें गोपाल अग्रवाल के यहाँ ठहरना था।

बटलर के यहाँ रहने पर उन्हें पर्याप्त अमेरिकी जीवन का ज्ञान प्राप्त हुआ। उन्हें यह देखकर संतोष हुआ कि यहाँ शाकाहारी भोजन आसानी से प्राप्त हो जाता है। वे अमेरिका में किस उद्देश्य से आये हैं, इस बात का समाचार स्थानीय पत्रों में छपा जिसमें इन्हें 'भक्तियोग का राजदूत' लिखा गया था। स्वामीजी का कहना है—"ईश्वर हजारों भिन्न रूपोंवाले समस्त जीवों का पिता है। विकास क्रम में मानव-जीवन पूर्णता की अवस्था है। यदि हम ध्येय को ग्रहण करने से चूके तो इस प्रक्रम से पुनः गुजरना होगा।"

"भक्तिवेदान्त स्वामी गेहुएँ रंग के हैं जो गेरुए रंग का वस्त्र पहनते हैं यानी भिक्षुक की तरह रहते हैं। यहाँ अपना भोजन स्वयं पकाकर खाते हैं। पूर्ण शाकाहारी हैं। उनका कहना है कि अमेरिकी लोग अगर आध्यात्मिक जीवन की ओर ध्यान दें तो वे अधिक सुखी हो सकते हैं।"

भक्तिवेदान्त स्वामी को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि अमेरिका जैसे समृद्ध देश में भी अनेक असंतुष्ट युवक हैं। यहाँ के भौतिक सुख में वे घुटन अनुभव कर रहे हैं। अधिकांश लोगों पर विषाद के लक्षण हैं। वे नशे के शिकार हो गये थे। आखिर क्यों ? वे क्या चाहते हैं ?

वे निराश नहीं हुए। हिप्पी के नाम से मशहूर इन दिग्भ्रमित युवकों में कृष्ण-भक्ति का प्रचार करने का उन्होंने व्रत लिया। बावरी इलाके में हिप्पियों की घनी बस्ती है। यहीं से उनकी साधना प्रारंभ हुई।

दो-एक युवकों को अपना अनुगत बनाने के बाद उन्होंने होवर्ड नामक युवक से कहा—"तुम अपने मित्रों को कीर्त्तन मण्डली में ले आओ। मैं उन्हें शान्ति दूँगा। उन्हें प्रकाश दूँगा।"

होवर्ड अपने साथियों को लेकर आया। स्वामीजी चटाई पर बैठ गये। लोगों को कई जोड़े मजीरे बाँट दिये गये। साथ ही एक-दो-तीन के साथ सभी मजीरे बजने लगे। साथ ही 'हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे, हरे राम, हरे राम, राम राम हरे हरे' की ध्वनि गूँजने लगी। स्वामीजी की मंडली जब कई बार गा चुकी तो उपस्थित लोगों से भी निवेदन किया गया कि वे भी इसे गाये। कुछ लोगों ने गाना शुरू किया और बाद में सभी गाने लगे।

ये सभी गायक साधारण नहीं, असाधारण थे। जो एल० एस० डी०, पियोट तथा अन्य नशा करते थे। स्वभाव के अत्यन्त उग्रवादी और गन्दे रहन-सहनवाले थे। ऐसे ही युवकों को लेकर भक्तिवेदान्त स्वामी ने एक नयी संस्था को जन्म दिया, जिसका नाम रखा गया—'इस्कान'। उस समय किसी ने यह कल्पना नहीं की थी कि आगे चलकर 'इस्कान' अन्तरराष्ट्रीय संस्था बन जायगी। संसार के अधिकांश देशों में रामकृष्ण मिशन की तरह शाखाएँ स्थापित होंगी।

इस संस्था के सात नियम बनाये गये। जिसका मुख्य उद्देश्य था—आध्यात्मिक ज्ञान का प्रचार करना। कृष्ण भावना का प्रचार करना। कीर्त्तन करना आदि। जो लोग इस धर्म में दीक्षित होते थे, उनके लिए चार नियम बनाये गये थे। १- मांसाहार न करना, २- अवैध यौनाचार न करना, ३- मादक द्रव्य सेवन न करना, और ४- जुआ न खेलना। जबकि हिप्पी इन सभी आदतों के शिकार थे। लेकिन इसके बावजूद भक्तिवेदान्त स्वामी का प्रभाव बढ़ता गया और लोग 'इस्कान' में शामिल होकर इस धर्म का प्रचार करने लगे। यह स्वामीजी की बहुत बड़ी उपलब्धि थी। भगवान् बुद्ध की तरह लोगों से कहते थे—मेरे पास आओ। मैं तुम्हें शान्ति दूँगा। ज्ञान दूँगा—भक्ति और मुक्ति दूँगा।

दीक्षा के दिन वे यज्ञ करते और नये बटुकों का मुण्डन करवाते केवल शिखा रखवाते थे। बटुक काषाय वस्त्र धारण करते थे। उनका पूर्वनाम बदल जाता था। कीथ का नाम कीर्तनानन्द, स्टेव का सत्यस्वरूप, ब्रूस का ब्रह्मानन्द तथा चक का अच्युतानन्द रखा गया।

अब तक अनेक हिप्पी और अन्य लोग इस संस्था के प्रति आकर्षित नहीं हुए थे। लेकिन जब उन्होंने यह देखा कि 'हाउल' का विश्व विख्यात लेखक, 'बीट' पीढ़ी का अग्रणी व्यक्ति एलेन गिन्सबर्ग भी 'इस्कान' में प्रवेश कर रहा है तब वे अपने अनजाने आकर्षित हुए। एलेन गिन्सबर्ग जिन दिनों भारत आया था, उन दिनों प्रयाग में लगे कुंभ मेला में उसने

'हरे कृष्ण' कीर्त्तन सुना था और उससे प्रभावित हुआ था। एलेन गिन्सबर्ग ही वह व्यक्ति था जिसने 'लोवर ईस्टसाइड' के नवयुवकों को अपने कारनामों से प्रभावित किया था। अधिकतर अमेरिकी युवक उसके मुक्त यौनाचार, मैरिजुआना तथा एल० एस० डी० के प्रति समर्थन, उसके राजनीतिक विचार, उसके द्वारा पागलपन की खोज, विद्रोह, नग्नता आदि से प्रभावित थे। आज उसे यहाँ आते देख सभी चकित रह गये।

उस दिन वह स्वामीजी के साथ कीर्त्तन में शामिल हुआ और कहा—"धर्म निरपेक्ष तो है ही, किन्तु हरेकृष्ण की सानी नहीं।"

उन दिनों अमेरिका के उस क्षेत्र में खुलेआम हर तरह की नशीली चीजें बिकती थीं जिसके शिकार ये लोग थे। स्वामीजी ने इन्हें बताया कि एल० एस० डी०, पियोट, कोकिन, हीरोइन आदि से अधिक मादक नशा हरे कृष्ण कीर्त्तन में है। कुछ दिन करके देखो, स्वतः अनुभव करोगे।

शंकित युवक पूछते—"क्या यह सच है?"

स्वामीजी ठंढे स्वर में कहते—"हाँ। यहाँ जितने शिष्य हैं, वे इसके प्रमाण हैं। उनसे पूछ लो।"

वह युवक उद्भ्रान्त दृष्टि से चारों ओर देखता रहा। ऐसे अशान्त नवयुवकों से उनका हमेशा सामना होता था और वे अपने शिष्यों को लेकर कीर्त्तन करने लगते थे।

धीरे-धीरे हरेकृष्ण कीर्त्तन लोकप्रिय होता गया। पार्कों और सड़कों पर कीर्त्तन होने लगे। समाचार पत्रों में इस बात की चर्चा होने लगी। 'हयग्रीव' पत्र ने इसे "हरे कृष्ण विस्फोट" नाम दिया। 'लोवर ईस्ट साइड' ने हिप्पी कीर्तन को "सबसे संधियुक्त घटना" कहा। आश्चर्य इस बात का था कि 'इस्कान' में सहयोग करनेवाले अब नशा मुक्त होते जा रहे थे। हरे कृष्ण कीर्त्तन उन्हें एल० एस० डी० आदि से मुक्त कराता गया। लेकिन कभी-कभी ऐसे प्रश्न उपस्थित हो जाते थे जो भारतीय परम्परा के अनुसार गुरु या श्रद्धेय व्यक्तियों से नहीं पूछा जाता था। मगर अमेरिकी संस्कृति में ये सब सामान्य बातें थीं। ऐसे प्रश्नों से भक्तिवेदान्त स्वामी संकुचित नहीं होते थे।

'इस्कान' के अटार्नी स्टेवे गोल्डस्मिथ ने एक दिन प्रश्न किया—"संभोग के संबंध में आपका क्या मत है?"

स्वामीजी ने कहा—"संभोग केवल अपनी पत्नी के साथ करना चाहिए और वह भी संयम के साथ। संभोग तो कृष्ण-भक्त सन्तान चलाने के लिए है। मेरे गुरु कहा करते थे कि कृष्णभक्त सन्तान उत्पन्न करने के लिए मैं सैकड़ों बार संभोग करने को तैयार हूँ। किन्तु इस युग में यह कठिन है, इसलिए वे ब्रह्मचारी रहे।"

गोल्डस्मिथ ने पूछा—"काम वासना तो प्रबल शक्ति है। स्त्री के लिए मनुष्य जैसा अनुभव करता है, उसे इनकार नहीं किया जा सकता।"

स्वामीजी ने कहा—"इसीलिए तो प्रत्येक संस्कृति में विवाह का विधान है। आप अपना विवाह करके एक स्त्री के साथ शान्तिपूर्वक रह सकते हैं, किन्तु इन्द्रिय-तृप्ति के लिए पत्नी का उपयोग किसी मशीन की तरह नहीं होना चाहिए। संभोग मास में केवल एक बार किया जाय और वह सन्तानोत्पत्ति के लिए।"

गोल्डस्मिथ ने कहा—"तब तो इसे भुला दिया जाय।"

स्वामीजी ने हँसकर कहा—"यह अच्छी बात है। सबसे अच्छा है कि इस विषय पर सोचा न जाय और हरे कृष्ण का जप किया जाय।" इतना कहने के पश्चात् वे माला फेरने लगे।

स्वामीजीने भारतीय परम्परा निबाहने के लिए यह निश्चय किया कि प्रीतिभोज का आयोजन किया जाय। वे अपने शिष्यों को भोजन बनाना सिखाते रहे। हलवा, दाल, सब्जियाँ, भात, पूरियाँ, समोसे, पोलाव, सेब की चटनी, गुलाब जामुन बनाने की तरकीब बताते रहे। प्रीती भोज में लोग चटखारे लेकर खाते रहे। खासकर गुलाब जामुन में उन्हें अपूर्व स्वाद मिलता।

स्वामीजी की एक अर्से से इच्छा थी कि वे जिस पत्रिका का संपादन-प्रकाशन करते थे, उसका प्रारंभ यहाँ से किया जाय। यहाँ अर्थ और कार्यकर्ताओं की कमी नहीं थी। 'बैक टु गाडहेड' के प्रकाशन-संपादन का भार दो शिष्यों को देकर वे श्रीमद्भागवत के अनुवाद में व्यस्त हो गये। एक बार जब उन्होंने न्यूयार्क से सैनफ्रांसिस्को जाने का निश्चय किया तो उनके शिष्यों में हलचल मच गयी। गुरुदेव हमें छोड़कर एक अनजाने स्थान में जा रहे हैं।

भक्तिवेदान्त स्वामी ने उन्हें आश्वासन दिया कि मैं तुम लोगों को छोड़कर नहीं जा रहा हूँ। मैं यहाँ जिस उद्देश्य को लेकर आया हूँ, उसे पूरा करना है। तुम लोग इस मठ का कार्य आसानी से चला सकते हो। फिर मैं हमेशा तुम्हारे साथ नहीं रहूँगा। वृक्ष मैंने लगा दिया है और अब उसे जीवित रखना तुम्हारा कार्य है।

जब वे सैनफ्रांसिस्को के हवाई अड्डे पर उतरे तब वहाँ आये संवाददाताओं ने उन्हें घेर लिया। तरह-तरह के प्रश्न पूछने लगे। एक ने पूछा—"आपके आन्दोलन का सदस्य बनने के लिए क्या-क्या करना होता है ?"

स्वामीजी—"चार नियम हैं। मैं अपने शिष्यों को कुमारी मित्र बनाने की अनुमति नहीं देता। मैं सभी प्रकार के मादक द्रव्यों का सेवन, इनमें काफी, चाय, सिगरेट भी शामिल है, वर्जित है। मैं शिष्यों को मांसाहार करने नहीं देता और जुआ खेलने से रोकता हूँ।"

स्वामीजी के यहाँ आने का महत्व इसी से समझा जा सकता है कि उस रात को उनके आगमन का दृश्य वहाँ के टेलीविजन पर दिखाया गया। दूसरे दिन 'एक्जामिनर' नामक पत्र ने छापा—'हिप्पियों का स्वामीजी को निमंत्रण।' सैनफ्रांसिस्को के सबसे बड़े दैनिक 'क्रोनिकल' ने छापा— 'हिप्पी प्रदेश में स्वामी—पवित्रात्मा द्वारा सैनफ्रांसिस्को मंदिर का उद्घाटन।"

यहाँ भी उनका कीर्त्तन समारोह प्रांरभ हो गया। एलेन गिन्सबर्ग अपने तमाम साथियों को लेकर आया था। स्वामीजी को यह देखकर हर्ष हुआ कि भले ही सभी नशीली दवा खाये हुए हैं, पर वे कीर्त्तन में रम गये हैं। न्यूयार्क में भी यही स्थिति थी। धीरे-धीरे वहाँ सुधार हुआ था।

एक अर्से तक कीर्त्तन तथा जप की शिक्षा देने के बाद स्थानीय लोगों ने स्वामीजी से आग्रह किया कि अब हमें दीक्षा देकर 'इस्कान' का स्थायी सदस्य बना लें। स्वामीजी अभी दीक्षा देना नहीं चाहते थे। उसे स्पष्ट शब्दों में अस्वीकार न कर उन्होंने एक दिन प्रार्थना-सभा में कहा—"दीक्षा लेने पर शिष्य को मोक्ष प्राप्ति नहीं होती। इसके लिए गुरु उत्तरदायी रहता

है, इसीलिए महाप्रभु चैतन्य ने आगाह किया है कि गुरु को चाहिए कि वे अधिक शिष्य न बनायें।"

इस घटना के कुछ दिनों बाद एक पुरुष ने पूछा—"क्या मैं दीक्षित हो सकता हूँ।"

इस प्रश्न पर शिष्य उससे कुछ कहते, उसके पहले ही स्वामीजी ने कहा—"क्यों नहीं। लेकिन मेरे प्रश्नों का उत्तर पहले दो। बताओ कृष्ण कौन हैं ?"

"कृष्ण ईश्वर है।"

स्वामीजी ने कहा—"ठीक। तुम कौन हो ?"

उस व्यक्ति ने कहा—"मैं ईश्वर का दास हूँ।"

तब स्वामीजी ने कहा—"बहुत अच्छे। कल तुम दीक्षित हो सकते हो।"

भारतीय पद्धति से खाना बनाना, कीर्त्तन करना, ध्यान करना आदि सिखाने के बाद स्वामीजी पूजा करने की पद्धति सिखाने लगे। तेल या कपूर मिला नहीं, इसलिए वे मोमबत्ती से आरती करवाने लगे। आरती की थाली जब उनके पास आयी तब उन्होंने उसकी लौ की ओर हाथ बढ़ाकर मस्तक को स्पर्श किया। बाद में कहा—"उपस्थित सभी लोगों के पास ले जाओ। सभी लोग इस लौ को छू सके।"

पुराने शिष्य इस नियम को जानते थे। हरिदास जब मोमबत्तीवाली थाली लेकर आगे बढ़ा तो कुछ लोगों ने उसमें सिक्के डाले। यह देखकर अन्य अनजान व्यक्तियों ने ऐसा ही किया। इस प्रकार स्वामीजी क्रमशः तिलक लगाना, साष्टांग प्रणाम करना, अंगन्यास-करन्यास करना सिखाते गये। यहाँ तक भजन-पूजन के बाद प्लेटों में लोगों को प्रसाद दिये गये। प्रसाद में समोसा, हलवा, पूरी, चावल और कई तरकारियों के अलावा चटनी तथा मिठाइयाँ थीं। भक्तों ने उसे खाया। उनके लिए यह नये स्वाद की वस्तु थी।

सैनफ्रांसिस्को में 'इस्कान' की शाखा स्थापित करने के बाद एक दिन वे स्वदेश के लिए रवाना हो गये। यह २५ जुलाई सन् १९६७ ई० की घटना है। साथ में कीर्तनानन्द था जिसका सिर घुँटा हुआ था।

दिल्ली की सड़कों पर कार से गुजरते हुए स्वामीजी कीर्तनानन्द को स्थानों के बारे में बताते रहे। टैक्सी छिपीवाड़ा के एक सूनसान स्थान पर रुक गयी। रात का वक्त था। चारों ओर सन्नाटा था। स्वामीजी को टेंट से चालीस रुपये निकालते देख टैक्सीवाले ने झपटकर ले लिया। स्वामीजी ने प्रतिवाद किया तो उसने कहा—इतना ही किराया हुआ।

स्वामीजी ने कहा—"हवाई अड्डे से यहाँ तक के बीस से कम होते हैं।"

लेकिन सुनता कौन है ? दिल्ली इस दृष्टि से काफी बदनाम शहर है। टैक्सीवाला अपनी कार लेकर चला गया। इस वक्त पुलिस की सहायता भी नहीं मिल सकती थी। पास ही राधाकृष्ण का मंदिर था। स्वामीजी वहीं आकर ठहरे। पुनः कई दिनों बाद वृन्दावन चले आये। दिल्ली में रहते समय स्वामीजी को ब्रह्मानन्द का एक पत्र मिला था जिसमें यह सूचना दी गयी थी कि अमेरिका की सबसे बड़ी प्रकाशन संस्था 'मैकमिलन' उनकी 'भगवद्गीता' छापने को तैयार है। यह एक सुखद समाचार था। अनेक वर्षों की तपस्या अब फल देने को तैयार हो गयी है। पहले स्वामीजी की इच्छा जापान या भारत से छपाने की थी, पर इस संदेश को पाते ही वे राजी हो गये।

वृन्दावन में कुछ दिनों तक रहने के बाद स्वामीजी पुनः अमेरिका लौट आये। सैनफ्रांसिस्को में कुछ दिन रहने के बाद लॉसएंजिल्स गये, जहाँ इनके शिष्यों ने एक मंदिर बनवाया था। वहाँ से बोस्टन गये, जहाँ 'इस्कान' की एक शाखा स्थापित हो चुकी थी। इस प्रकार अमेरिका में लगातार एक के बाद एक 'इस्कान' की शाखाएँ स्थापित होती रहीं। यहीं पर स्वामीजी ने 'प्रभुपाद' नाम ग्रहण किया।

अमेरिका में हरे कृष्ण आन्दोलन की सफलता से स्वामीजी काफी प्रसन्न थे। अब उन्होंने निश्चय किया कि इसका प्रचार योरोप के अन्य देशों में हो। सबसे पहले उनकी दृष्टि इंग्लैण्ड की ओर गयी। उन्होंने अपने अमेरिकन शिष्य सर्वश्री मुकुन्द और श्यामसुन्दर को लन्दन में जाकर 'इस्कान' केन्द्र स्थापित करने का आदेश दिया।

हरे कृष्ण आन्दोलन से प्रभावित होकर एक दिन हेनरी फोर्ड का नाती यहाँ आया। एक ही दिन की बातचीत से वह इतना प्रभावित हुआ कि उसने प्रभुपाद से दीक्षा ले ली। उसका नाम रखा गया—अम्बरीष दास। प्रभुपाद जिसे दीक्षा देते थे, उसके पैतृक नाम को बदल देते थे। कृष्ण भावना संघ का यह नियम था।

मुकन्द और श्यामसुन्दर लन्दन में 'इस्कान' केन्द्र स्थापित करने गये। यहाँ उन्होंने बीटल्सों के प्रमुख जार्ज हैरिसन से मुलाकात की। दरअसल इंग्लैण्ड में बीटल सम्प्रदाय का वही एक प्रकार से प्रतिष्ठाता था। उसने इन लोगों से कहा—"मेरे पास हरेकृष्ण चित्रावली थी जिसमें प्रभुपाद अपने शिष्यों को हरे कृष्ण कीर्त्तन करा रहे थे। इसका रिकार्ड मेरे पास था। मुझे अच्छी तरह स्मरण है कि आज से दो वर्ष पहले जब हम ग्रीस में यात्रा कर रहे थे तब हम इस रिकार्ड को बजाते रहे। तुम लोगों से मुलाकात होने के काफी पहले से मैं इस कीर्त्तन से परिचित रहा। मैं प्रभुपाद को भी जानता हूँ। इस सम्प्रदाय के लोगों को न्यूयार्क और लासएंजिल्स की सड़कों पर कीर्त्तन करते देखा है। भारत की यात्रा कर आने के कारण इनकी वेष-भूषा से भी परिचित हूँ। मैं यह भी जानता हूँ कि अन्य दलों की अपेक्षा ये लोग अधिक संयम बरतते हैं।"

जार्ज ने यह भी बताया कि आजकल वह भारत के ही महेश योगी द्वारा प्रदत्त एक मंत्र का अभ्यास कर रहा है।

श्यामसुन्दर को इस बात की प्रसन्नता हुई कि लन्दन में बीटलों के एक प्रमुख व्यक्ति से उसका परिचय हुआ। उसके माध्यम से श्यामसुन्दर अपना कार्यक्रम आगे बढ़ाता गया। महेश योगी के मंत्र ने उसे वह शान्ति नहीं दी जिसकी तलाश में जार्ज परेशान था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अगर जार्ज की सहायता न मिलती तो लन्दन में 'इस्कान' की शाखा खोलना और वहाँ राधाकृष्ण मन्दिर स्थापित करना कठिन हो जाता। श्यामसुन्दर ने अपने गुरु भाइयों मुकुन्द, गुरुदास, मालती, यमुना और जानकी की सहायता से लन्दन में 'इस्कान' की शाखा खोल दी।

कृष्ण भावना संघ यानी प्रभुपाद के 'इस्कान' की यह सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। उन्हें लगा जैसे इस सत्कार्य के लिए भगवान् कृष्ण, महाप्रभु चैतन्य और गुरुजी सहायता कर रहे हैं। प्रभुपाद को ज्ञात था कि अमेरिका के हिप्पी बहुत उग्रवादी हैं। उन्हें वश में करना साधारण बात नहीं है। हिंसा उनके लिए साधारण बात थी। समाज के लोग उन्हें घृणा की दृष्टि से देखते हैं और भयभीत रहते हैं। इंग्लैण्ड में भी बीटलों की यही स्थिति थी। वे

विटनिक के नाम से जाने जाते थे। इन्हें प्रभु के दरबार में लाना जब सहज हो गया तब जन साधारण अपने आप आकृष्ट हुए।

प्रभुपाद ने निश्चय किया कि अब वे विश्व भ्रमण करेंगे। अशान्त, विक्षिप्त तथा समाज के उपेक्षित वर्ग को हरे कृष्ण आन्दोलन से जोड़ेंगे। भारत में आकर उन्होंने बम्बई, कलकत्ता, सूरत, हैदराबाद, हरिद्वार, आसाम, बंगाल, बिहार, तमिलनाडु, उड़ीसा, महाराष्ट्र, केरल, पंजाब, गोवा आदि स्थानों का दौरा किया और शिष्यों के माध्यम से इन प्रान्तों में कृष्ण भावना संघ की स्थापना की।

विदेशों में उन्होंने कनाडा, इंग्लैण्ड, आयरलैण्ड, इटली, आस्ट्रेलिया, हालैण्ड, ग्रीस, स्पेन, डेनमार्क, स्वीडेन, फिनलैण्ड, पश्चिमी जर्मनी, पोर्तुगाल, नार्वे, फ्रांस, बेलजियम, आस्ट्रिया, स्वीट्जरलैण्ड, न्यूजीलैण्ड, फिजी द्वीप, ब्राजील, मैक्सिको, कोलम्बिया, पेरू, अर्जेनटाइना, बोलविया, चिली, गुआना, उरुगुए, पनामा, पूर्वी द्वीप समूह, ईरान, इजरायल, थाइलैण्ड, हाँगकाँग, इण्डोनेशिया, नेपाल, जापान, घाना, नाइजेरिया, केनिया, जिम्बाबवे आदि देशों में 'इस्कान' की शाखाएँ स्थापित की। केवल खाड़ी देशों तथा साम्यवादी देशों में उन्हें सफलता नहीं मिली। वस्तुतः इन देशों के नागरिक खुले दिमाग के नहीं थे।

प्रभुपाद का कहना था—"ईश्वर है। कुछ लोग कहते हैं कि ईश्वर नहीं है, कुछ कहते हैं कि वह निर्गुण या शून्य है। यह बकवास है। मैं इन बेहूदों को सिखाना चाहता हूँ कि ईश्वर है। यही मेरा लक्ष्य है। कोई भी मेरे पास आये, मैं सिद्ध कर दूँगा कि ईश्वर है। यही मेरा कृष्णभावनामृत आन्दोलन है। नास्तिकों के लिए यह चुनौती है। जिस प्रकार हम एक-दूसरे के सामने हैं, अगर आप निष्ठावान हैं तो ईश्वर को प्रत्यक्ष देख सकते हैं।"

'इस्कान' की आय रेकर्डों की बिक्री तथा पुस्तक प्रकाशन से होती थी। केवल इंग्लैण्ड में दो दिनों के भीतर सत्तर हजार रेकर्डों की बिक्री हुई थी। अंग्रेजी में आपकी पुस्तकों की ४,३४,५०,००० प्रतियाँ बिक गयी थीं। रूसी भाषा सहित २३ भाषाओं में आपकी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। इन पुस्तकों की संख्या ५,५३,१४,००० थीं। भगवद्‌गीता के प्रकाशन के लिए ७६ रेल डिब्बों में कागज ले जाया गया था।

अमेरिका में आपके विरुद्ध उन लड़कों के माता-पिता ने मुकदमा दायर किया जो 'इस्कान' के सदस्य बनकर सड़कों पर हरेकृष्ण गाते हुए नाचते थे। आपके ऊपर दो चार्ज लगाये गये। अवैध बन्दीकरण तथा जान बूझकर अपहरण। उच्चन्यायालय के जज ने अपने फैसले में लिखा—"हरे कृष्ण आन्दोलन वैध धर्म है जिसकी जड़ें भारत में हजारों वर्ष पूर्व से जमी हुई है।"

श्री अभयाचरणारविन्द भक्तिवेदान्त स्वामी ने अपने जीवन में आठ बार विश्वभ्रमण करते हुए हरे कृष्ण आन्दोलन को सार्थक किया। वर्तमान युग के वे एक तरह से चैतन्य महाप्रभु के अवतार थे। विश्व में 'इस्कान' की जितनी शाखाएँ हैं, उतनी अन्य किसी सम्प्रदाय की नहीं हैं। सम्पूर्ण विश्व को हरेकृष्ण नाम से मुखरित करते हुए उन्होंने १४ नवम्बर सन् १९७७ ई० को वृन्दावन धाम में अपना नश्वर शरीर त्याग दिया।

●

स्वामी प्रणवानन्द

स्वामी प्रणवानन्द

प्रति वर्ष माघी पूर्णिमा के दिन भारत सेवाश्रम संघ का वार्षिकोत्सव मनाया जाता था। यद्यपि उन दिनों संघ की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी नहीं थी, परन्तु निष्ठा की कमी नहीं थी। हजारों लोग प्रसाद ग्रहण करने के लिए आसपास के गाँवों से आते थे।

कलकत्ता से आते समय आचार्य प्रणवानन्द प्रचुर मात्रा में ताजा फल संग्रह करके लाये थे। भक्तों, शिष्यों तथा कार्यकर्ताओं के अलावा आगत लोगों को भोजन कराया जाता था।

अचानक आचार्यजी ने कहा कि केले के पत्तों का इन्तजाम हो गया है न ? गाँव में सारा सामान मिल जाता है, पर ऐन मौके पर केले के पत्ते और सूखी लकड़ियाँ नहीं मिलतीं।

लोगों ने आचार्यजी को सूचित किया कि चार व्यक्तियों को इस कार्य की जिम्मेदारी दी गयी है। इधर जो लोग केले के पत्ते संघ को बेचनेवाले थे, उन लोगों ने लकड़ी के एक पुल पर खड़े होकर निश्चय किया कि अब हम पहलेवाली कीमत में नहीं देंगे। दस आने से बढ़ाकर ग्यारह आने प्रति हजार में बेचेंगे। कम-से-कम हमें कुछ तो फायदा होगा। उन्हें भी अधिक देना नहीं पड़ेगा।

दूसरे व्यक्ति ने कहा—"मुझे एक आने के प्रति उतनी दिलचस्पी नहीं है। साधु महाराज शहर से कई दौरी फल ले आये हैं। सब अपने पास रख छोड़ा है। बाबा जी हैं, इतना संग्रह क्यों करते हैं ? हम उनकी आज्ञा पर काम करते हैं, क्या हम उन फलों का स्वाद चख नहीं सकते ?"

तीसरे व्यक्ति ने कहा—"यहाँ बेकार बक-बक करने से क्या फायदा ? आखिर साधु आदमी हैं, कुछ तो हमारे निवेदन पर ख्याल करेंगे।"

चौथा व्यक्ति आचार्यजी के पूर्वाश्रम के रिश्ते से चचेरा भाई था। वह चुप रहा।

यह सब सलाह करने के बाद चारों मठ में आये। स्वामी प्रणवानन्द एक कमरे में बाघ की छाल पर वीरासन में बैठे थे। चारों इनके कमरे में आये और प्रणाम करके खड़े हुए। जब तक ये लोग अपनी बात कहते, उसके पहले ही आचार्यजी ने उस व्यक्ति की ओर देखते हुए मुस्कराकर कहा—"ठीक है। इस बार से ग्यारह आने प्रति हजार केले के पत्ते खरीदे जायँगे। जाओ, इन्तजाम करो।"

आचार्यजी की बातें सुनकर चारों भौचक्क रह गये। जो बात सुदूर लकड़ी के पुल पर हम चारों के बीच हुई थी, उसे आचार्यजी ने कैसे जान लिया ? क्या आचार्यजी अन्तर्यामी हैं ? लज्जा से प्रथम व्यक्ति का मस्तक अवनत हो गया।

तभी दूसरे व्यक्ति की ओर देखते आचार्यजी ने पुनः एक नया शिगूफा छेड़ा। अपने एक सेवक को बुलाकर उन्होंने कहा—"इन लोगों को कलकत्ता से लाये सन्तरे की टोकरी से दो-दो सन्तरे दे दो।"

सेवक ने सन्तरे लाकर दिये। चारों भय और संकोच के साथ कमरे के बाहर हो गये। यह तो भूतहा रहस्य है। ऐसे आदमी के सामने खड़े रहना कठिन है।

इसी केले के पत्ते को लेकर एक बार अन्य घटना हुई थी। इस बार चौरासी गाँव के एक छोटी जाति के आदमी को दस हजार केले के पत्ते लाने का ठीका दिया गया था। सभी लोग इस बात को जानते थे कि प्रत्येक काम तथा सामानों के प्रति आचार्यजी की तीक्ष्ण दृष्टि रहती है। चारों ओर संन्यासी तथा गृहस्थ काम में व्यस्त हैं। केले के पत्तों का बण्डल आचार्यजी के पास रखते हुए रमेश दास ने कहा —"दस हजार पत्ते आये हैं। तीन रुपये प्रति हजार की दर से तीस रुपये देना है।"

इस प्रश्न के उत्तर में आचार्यजी ने कुछ नहीं कहा। रमेश दास ने सोचा कि शायद स्वामीजी ने ध्यान नहीं दिया। पुनः अपनी बातों को उन्होंने कहा।

आचार्यजी ने पूछा—"दस हजार पत्ते हैं, यह तुम्हें कैसे मालूम हुआ?"

रमेश दास ने कहा—"प्रत्येक बण्डल में ५०-५० पत्ते हैं। कुल २०० बण्डल हैं। मैंने बण्डलों को अपने हाथ से गिना है।"

"बण्डल गिन लेने पर पत्तों की संख्या मालूम हो जाती है? इन बण्डलों में कितने पत्ते हैं, मालूम है?"

इस प्रश्न का उत्तर रमेशदास नहीं दे सके। बण्डलों में कितने पत्ते बँधे हैं, इसे उन्होंने गिना नहीं था। उन्हें चुप रहते देख प्रणवानन्द ने कहा—"दस हजार नहीं, महज छह हजार पत्ते हैं और उसमें भी ५०० के लगभग फटे पत्ते हैं। समझे?"

इतना कहकर वे कमरे के बाहर चले गये। बाद में गिनती करने पर प्रणवानन्द की बातें सही निकलीं।

× × × ×

अविभाजित बंगाल के एक जिले का नाम है—फरीदपुर। इसी जिले के बाजितपुर गाँव में विष्णुचरण दास भुंइया रहते थे। गाँव के जमींदार के यहाँ कारिन्दा थे। मध्यम वर्ग के कायस्थ। आपकी पत्नी श्री शारदा देवी थीं। विष्णु भुंइया के चार पुत्र और दो पुत्रियाँ थीं। तीसरे पुत्र का नाम था—विनोद।

कहा जाता है कि विनोद के भूमिष्ठ होने के पहले एक रात को शारदा देवी ने स्वप्न में देखा—जटाधारी शुभ्र ज्योतिर्मण्डित महादेव पुत्र के रूप में उनकी गोद में खेल रहे हैं। इस स्वप्न के बारे में शारदा देवी ने अपने पति को समाचार दिया।

विष्णु भुंइया यह सुनकर प्रसन्न हो गये। बोले—"तब तो हमारे इष्ट देव हमारे घर पधार रहे हैं।" भुंइया परिवार के कुल देवता नीलरुद्र थे।

विनोद जन्म से ही निरामिष भोजी था। पढ़ने-लिखने की अपेक्षा व्यायाम करना उसे अधिक पसन्द था। उसके शारीरिक सौष्ठव को देखकर सभी उसके प्रति आकृष्ट हो जाते थे।

हरिनाम संकीर्तन के प्रति उसके हृदय में प्रबल अनुराग था। स्वयं कीर्तन नहीं करता था, पर कहीं कीर्तन होता तो वहाँ घंटों आत्मविभोर होकर बैठा रहता था।

बचपन से ही उसमें जिज्ञासा प्रवृत्ति प्रबल थी। वह देखता कि माँ तुलसी के पौधे में नित्य जल चढ़ाकर, गले में आँचल डालकर प्रणाम करती हैं। शाम को एक दीपक पौधे के पास रखती हैं। पूजा करती हैं। आखिर तुलसी का पौधा इतना पवित्र क्यों है ?

बचपन की शरारत उसमें जाग उठी। उसने तुलसी के पौधे पर थूकना शुरू किया और हर बार मन ही मन कहता—तुम अगर पवित्र हो तो मुझे प्रमाण दो वर्ना मैं तुम्हें पवित्र नहीं मान सकता। यह तो कुसंस्कार है।

अचानक एक दिन तुलसी के पौधे पर थूकते ही वह बेहोश हो गया। उसी स्थिति में उसने देखा कि तुलसी के पौधे से एक दिव्य मूर्ति प्रकट हुई। उस मूर्ति ने तीव्र स्वर में कहा—"तूने मेरा अपमान किया ? मैं हूँ नारायण। तुलसी के पौधे में ही मैं रहता हूँ।"

इस फटकार को सुनने के बाद उसे होश आया। इस घटना के बाद से वह तुलसी के पौधे का काफी सम्मान करने लगा। यहाँ तक कि आगे चलकर वे किसी भी व्यक्ति का तुलसी के प्रति अवज्ञा करना सहन नहीं कर पाते थे।

इस घटना के कई वर्ष बाद अपने गाँव में हरि विलास कविराज के यहाँ आयोजित दुर्गा पूजा देखने गये। तुलसी के पौधे का चमत्कार देख चुके थे। यहाँ भी उनके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि यह जो मिट्टी की प्रतिमा है, क्या इसमें कोई शक्ति है ?

मन में यह संशय उत्पन्न होते ही वे ध्यान लगाकर बैठ गये। मन ही मन उन्होंने कहा—अगर इस मृण्मयी प्रतिमा में कोई शक्ति है तो उसका प्रत्यक्ष प्रमाण मेरे सामने प्रकट हो।

इतना कहना था कि क्षण भर में परिवर्तन हुआ। विनोद ने साश्चर्य देखा—उसके सामने जाग्रत दुर्गा देवी हैं। अपनी दस भुजाओं से चतुर्दिक आलोकित कर रही हैं। विनोद का भ्रम दूर हो गया। इस दिन से उसकी मति-गति में परिवर्तन हो गया।

विनोद बचपन से संयमी और ब्रह्मचर्य व्रती था, इसीलिए गाँव के हमजोली उसे विनोद ब्रह्मचारी के नाम से सम्बोधन करते थे। डेढ़ मन का मुगदर भाँजना, डंड-बैठक तथा प्राणायाम करना, उसका दैनिक कार्य था। बहुत कम समय के लिए वह सोता था।

अपने पुत्र के इस आचरण को देखकर विष्णु भुंइया चिन्तित हो उठे। न अण्डा और न मछली। न गोश्त और न घी। ऊपर से इतना श्रम कैसे सहन कर सकेगा। पिता ने अपना दर्द कुल पुरोहित महेन्द्र चक्रवर्ती से कहा।

महेन्द्र चक्रवर्ती ने जब उसे बंगालियों का प्रिय व्यंजन मछली खाने को कहा तब विनोद ने कहा—"देखिये पण्डितजी, भगवान् ने जो शक्ति मुझे दी है, अगर मैं अच्छा भोजन करने लगूँगा तो वह नष्ट हो जायगी। उस शक्ति को बचाना मेरा कर्त्तव्य है। तामसिक भोजन करके मैं उत्तेजना की सृष्टि नहीं करना चाहता। फिलहाल मैं जो कुछ भोजन करता हूँ, उससे मेरी शक्ति बनी हुई है अतएव आप आगे अनुरोध न करें।"

पुत्र की बात सुनकर पिता शान्त हो गये। आगे उन्होंने कभी इसके लिए दबाव नहीं

डाला। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि विनोद को कीर्तन बहुत पसन्द था। उसने निश्चय किया कि हमजोलियों को लेकर एक कीर्तन मण्डली स्थापित की जाय। दरअसल कीर्तन मण्डली की स्थापना के पीछे वही सूत्र काम कर रहा था जो आगे चलकर 'भारत सेवाश्रम संघ' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। कीर्तन मण्डली की स्थापना के कारण विनोद ब्रह्मचारी के स्थान पर उसका नाम विनोद साधु हो गया।

कुछ दिनों बाद भ्रमण करते हुए प्रसिद्ध संत बाबा भोलानन्द गिरि इस गाँव में आये। अनेक लोग बाबा का दर्शन करने गये। शारदा देवी अपने पुत्र के साथ उनका दर्शन करने गयीं। बाबा को प्रणाम करने के बाद बोली—"बाबा, यह लड़का अधिक पढ़-लिख नहीं सका। इसका मन ही नहीं लगता। घर-गृहस्थी में भी मन नहीं लगाता। आखिर यह क्या करेगा ?"

भोलानन्द गिरि ने गौर से विनोद को देखने के बाद कहा—"बेटी, तेरा बेटा तो राज चक्रवर्ती है। तू नाहक घबड़ाती है।"

बाबा भोलानन्द गिरि का यह आशीर्वाद विनोद के जीवन में फलीभूत हुआ था। सन् १६२५ में जब बाबा एक बार पुनः आये तब उन्होंने देखा कि किशोर विनोद अब प्रणवानन्द स्वामी के रूप में प्रतिष्ठित होकर जन-जन की सेवा कर रहा है।

अपने कठोर संयम के आधार पर विनोद ने अपने हमजोलियों का एक संघ बनाया। मुसीबतजदा लोगों की मदद के लिए संघ के सदस्य मदद करने पहुँच जाते थे। बीमारों को अस्पताल ले जाना और उनकी सेवा करना। भूखों के लिए अन्न का प्रबंध करना, गरीब-असहायों की सहायता करना, इस संघ के सदस्यों का कार्य था। इसके साथ ही पूर्वी बंगाल के मुसलमानों के अत्याचारों से पीड़ित हिन्दुओं की रक्षा करने के लिए इनका संघ खड्गहस्त हो जाता था। हिन्दू संस्कृति के प्रचार में संघ के सदस्य बराबर संघर्ष करते रहे। आगे चलकर संघ के सदस्यों ने हिन्दू जाति में व्याप्त उन कुसंस्कारों को परिष्कृत किया जिससे सामान्यजन पीड़ित थे। तीर्थस्थानों में पण्डों के अत्याचारों से मुक्ति दिलाने के लिए गया, काशी, इलाहाबाद आदि स्थानों में उन्होंने भारत सेवाश्रम संघ स्थापित किया था।

दंगे से पीड़ित लोगों की सहायता तथा अकाल पीड़ितों को भोजन देना। बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में आम जनता को राहत देने का कार्य बड़े पैमाने में करते थे। शान्तिकाल में लोगों को हिन्दू संस्कृति के बारे में भाषण देते थे। संघ के सदस्य न केवल संन्यासी थे, वक्त-जरूरत पर वे शस्त्र भी चलाते थे। यही वजह है कि असहाय लोगों के निकट संघ श्रद्धेय और पूजनीय बन गया।

प्रणवानन्दजी स्वयं कठोर श्रम और संयम के पक्षपाती थे और अपने शिष्यों को भी इस दिशा में शिक्षित करते रहे। इन्हीं कारणों से फरीदपुर षड़यंत्र के मामले में इन्हें क्रान्तिकारी समझकर गिरफ्तार किया गया, पर अकाट्य प्रमाण न पाने के कारण इन्हें रिहा कर दिया गया। यह सत्य है कि तत्कालीन अनेक विप्लवी आपके मठ में आकर शरण लेते रहे।

बाद में अनेक शिष्यों को लेकर आप कलकत्ता के निवासियों से द्वार-द्वार जाकर चन्दा माँगने लगे। भारत सेवाश्रम के उद्देश्य और उसकी सेवाओं का प्रचार करते रहे। सर्वश्री

देशबन्धु चित्तरंजन दास, डा० विधानचन्द्र राय, व्योमकेश चक्रवर्ती, श्यामा प्रसाद मुखर्जी जैसे लोगों से आप मिले और उनसे सहयोग करने की अपील की।

यहाँ एक घटना का उल्लेख करना आवश्यक है। जिन दिनों आपकी उम्र १६ वर्ष थी, उन्हीं दिनों आपके स्कूल में प्रधानाध्यापक पद पर वीरेन्द्रलाल भट्टाचार्य आये। इनकी तेजस्वी आकृति, दीप्त नयन तथा व्यवहार के प्रति विनोद आकर्षित हुआ। दूसरी ओर वीरेन्द्रलाल भी विनोद के प्रति आकर्षित हुए। विनोद के कार्यकलापों के बारे में जानकारी प्राप्त करने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि लड़का बहुत ही अच्छा है, पर पढ़ने-लिखने में दिलचस्पी नहीं लेता।

आगे चलकर वीरेन्द्रलाल ने विनोद के बारे में संस्मरण लिखते हुए लिखा था—"राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति इस बालक का झुकाव था। ब्रह्मचर्य को आदर्श मानता था। वह चाहता था कि सभी हमजोली शक्तिशाली बनें ताकि हम सब मिलकर देश में क्रान्ति लायें। विदेशी सत्ता उखाड़ फेंकें। समाज के कुसंस्कारों को दूर करें और राष्ट्र तथा समाज को दृढ़ बनायें। शक्तिहीन समाज कभी उन्नति नहीं कर सकता।"

प्रधानाध्यापक वीरेन्द्रलाल भट्टाचार्य नाथ सम्प्रदाय के संत योगिराज गंभीरनाथ के शिष्य थे। इनकी जबानी गंभीरनाथजी के बारे में अलौकिक कहानियाँ सुनकर विनोद ने कहा—"मैं ऐसे ही महात्मा का दर्शन करना चाहता हूँ। कृपया मुझे उनके पास एक बार ले चलिए।"

वीरेन्द्रलाल विनोद की कर्मठता और त्याग से प्रसन्न थे। अपने साथ विनोद को लेकर गोरखपुर आये। योगिराज गंभीरनाथ को देखते ही विनोद उनके चरणों पर लोट गया। उसने कहा—"गुरुदेव, कृपया मुझे दीक्षा देकर अपने शरण में ले लीजिए।"

गंभीरनाथ ने तुरत कहा—"वत्स, तुम तो अपनी साधना कर चुके हो। तुम्हें दीक्षा की क्या जरूरत है?"

अब विनोद को तनिक भी संदेह नहीं रह गया कि वह योग्य गुरु के पास आया है। वह ध्यान लगाता है और साधना करता है, इस बात को बाबा ने अपनी अतीन्द्रिय शक्ति से जान लिया है। उसने कहा—"मैं बड़ी आशा लेकर आया हूँ। मुझे निराश मत कीजिए। मुझ अकिंचन पर कृपा कीजिए।"

"एवमस्तु।"

दूसरे दिन विधिपूर्वक विनोद को दीक्षा दी गयी। विनोद ब्रह्मचारी से वह विनोद साधु हो गया। दीक्षा लेने के बाद उनमें कार्यक्षमता बढ़ गयी। गंभीरनाथ ने इस किशोर में अपनी आध्यात्मिक शक्ति को संचारित किया। यही वजह है कि आगे चलकर वे श्री श्री युगाचार्य स्वामी प्रणवानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए। प्रणवानन्द दीक्षा लेने के बाद सफेद वस्त्र धारण करने लगे।

अपने जीवन में विनोद जिस प्रकार कठोर संयम बरतते थे, उसी प्रकार गाँव के लड़कों को अपनी तरह बनाते रहे। वे अपने हमजोलियों से कहते—"निद्रा, आलस, तन्द्रा, जड़ता, दीर्घसूत्रता—यही सब हमारे शत्रु हैं। अधिक निद्रा या आलस हमें बरबाद कर देती है।"

विनोद केवल इन्हीं बातों का उपदेश नहीं देता था, स्वयं अपने जीवन में चरितार्थ करके दिखाता था। एक तरह से वे निद्रा को त्याग चुके थे। बाद में वे शिष्यों से कहा करते

थे—"हमें दृढ़प्रतिज्ञ होना चाहिए। अपने संकल्प में अटल रहने पर ही कार्य सिद्धि होती है। अपनी साधना के जरिये हम रिपुदमन करके इन्द्रजीत बन सकते हैं। यह युग महाजागरण का युग है। यह युग महासमन्वय का युग है। यह युग महामुक्ति का युग है।"

सन् १९२३ ई० में प्रयाग में कुंभ मेला आयोजित हुआ था। इसी मेले में गोविन्दा गिरि से संन्यास लेकर आप दसनामी संन्यासियों में सम्मिलित हुए। इसके बाद आप सफेद वस्त्र त्याग कर गेरुआ कपड़ा पहनने लगे। संन्यास ग्रहण करने के पश्चात् आपका नाम हुआ स्वामी प्रणवानन्द गिरि।

सन् १९२७ ई० में हरिद्वार में पूर्ण कुंभ मेला लगा। आपने जटामाई के मंदिर में अपना कैम्प लगाया। अब वे आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हो गये थे। भारत के विभिन्न शहरों में स्थापित आश्रम और सेवा कार्यों से जन-जन के हृदय में बस गये थे। आपने भक्तों को दीक्षा देने का कार्य प्रारंभ किया।

जमालपुर के एक युवक को विधिवत दीक्षा देने के बाद उन्होंने कहा—"ब्रह्मचर्य व्रत पालन करना और मंत्र को प्रत्येक श्वास में जप करना। अगर कभी कोई संकट आ जाय तो मुझे स्मरण करना। संकट दूर हो जायगा।"

गुरु के वचनों को ब्रह्मवाक्य मानकर युवक अपना दैनिक कार्य करता रहा। एक दिन एक बड़े तालाब में स्नान करते समय उसका पैर फिसल गया। तैरना नहीं आता था। सहसा आसन्न मृत्यु संकट के समय गुरुदेव की बातें याद आ गयीं। उनका स्मरण करते ही पानी में उनकी दिव्य मूर्ति प्रकट हुई और साथ ही उसे एक मोटा बाँस दिखाई दिया। उसी बाँस को पकड़कर वह किसी सूरत से किनारे आया।

युवक को समझते देर नहीं लगी कि गुरुदेव की कृपा से आज वह बच गया। स्नान करते समय यह बाँस उसे कहीं नहीं दिखाई दिया था।

आचार्य ने एक दिन अपने शिष्यों से कहा—"ब्रह्म देश पास ही है। वहाँ अनेक बंगाली हैं। उन्हें भारत सेवाश्रम के बारे में कोई जानकारी नहीं है। तुम लोगों को वहाँ जाकर आश्रम के बारे में प्रचार करना होगा ताकि आगे वहाँ आश्रम की स्थापना करने में आसानी हो। इस कार्य के लिए वहाँ से अर्थ संग्रह भी करना है।"

इस कार्य के लिए स्वामी योगानन्द और स्वामी अद्वैतानन्द की नियुक्ति की गयी। अनजाना देश, राह-घाट दूर की बात कोई परिचित भी नहीं है। गुरुदेव के सुझाव पर दोनों स्वामी कलकत्ता के तत्कालीन मेयर सुभाषचन्द्र बोस के पास आये। अपनी समस्या उनके सामने रखते हुए परिचय पत्र देने का आग्रह किया।

सुभाष बोस ने कहा—"मैं वहाँ के किसी व्यक्ति को नहीं जानता। यह ठीक है कि मैं वहाँ माण्डले की जेल में नजरबन्द था। फिर भी कलकत्ता के मेयर पद से आपको एक परिचय पत्र दूँगा। मैं आप लोगों की सेवाओं से परिचित हूँ और आचार्यजी को अच्छी तरह से जानता हूँ।

परिचय पत्र लेकर स्वामी अद्वैतानन्द वगैरह रंगून गये। इनका आवेदन सुनकर हजारों लोगों ने सहायता दी। दस हजार रुपये और स्नेह की झोली भरकर लोग वापस लौटे।

सारी बातें सुनने के बाद आचार्यजी ने कहा—"आप लोगों ने ठीक से प्रचार नहीं किया। आप लोगों का वहाँ विरोध होना चाहिए था। बिना विरोध पाये इस तरह चले आना उचित नहीं हुआ।

आचार्य प्रणवानन्द की बातें सुनकर सभी अवाक् रह गये। जहाँ इतना समादर हुआ, वहाँ विरोध क्यों होता ? एक साल बाद इन लोगों को पुनः ब्रह्म देश भेजा गया।

इस बार आचार्यजी की बात सही निकली। पिछले वर्ष जिस व्यक्ति ने बड़े उत्साह के साथ नेतृत्व किया था, वही व्यक्ति इस बार विरोधी बन बैठा।

दरअसल बात यह हुई थी कि जितेन्द्रनाथ घोष रंगून के प्रसिद्ध व्यक्ति थे। उन्होंने ही पहले भारत सेवाश्रम संघ का जोरदार शब्दों में प्रचार किया था। जब ये लोग वापस चले गये, उसके बाद घोष महाशय दीक्षा लेने के लिए यहाँ आये। अस्वस्थ रहने के कारण आचार्यजी ने उन्हें दीक्षा नहीं दी। तब बेलूर मठ में जाकर उन्होंने दीक्षा ले ली।

स्वस्थ होते ही प्रणवानन्दजी पुरी आये। रंगून वापस लौटते वक्त जितेन्द्र बाबू भी पुरी आये। यहाँ की गुरुपूजा उन्हें पसन्द नहीं आयी। रंगून से प्राप्त दान का हिसाब माँगने पर उन्हें जो कुछ बताया गया, उससे वे सन्तुष्ट नहीं हुए। फलस्वरूप रंगून जाकर जितेन्द्र बाबू भारत सेवाश्रम संघ के बारे में कुप्रचार करने लगे।

उन दिनों एक सज्जन रंगून में रहते थे जो गया, पुरी, कलकत्ता आदि स्थानों में सेवाश्रम की गति-विधियाँ देख चुके थे। उन्होंने प्रतिवाद छपवाया। इस प्रतिवाद के छपने के बाद जितेन्द्र बाबू का पुनः भेजा गया प्रतिवाद नहीं छपा। खिजलाकर उन्होंने हैण्डबिल छपवाकर बँटवाया। जितेन्द्र बाबू ने किया— कुप्रचार, लेकिन इस कुप्रचार के माध्यम से सेवाश्रम संघ तथा स्वामी प्रणवानन्द का प्रचार हो गया।

इधर सेवाश्रम की ओर से आये स्वामी आत्मानन्द प्रोम में आये। यहाँ उन्हें विरोध का सामना करना पड़ा। कई दिनों बाद जब यहाँ अद्वैतानन्द आदि आये तब आत्मानन्द ने उनसे कहा कि यहाँ के श्री चटर्जी हमारे बड़े विरोधी हो गये हैं। उन्होंने मुझे भगा दिया है। सारा प्रोम शहर हमारे विरुद्ध है। अब हमें वापस चले जाना चाहिए।

गुरुभाई की बातें सुनकर अद्वैतानन्द ने मन ही मन संकल्प लिया—जिस चटर्जी ने इन्हें अपमानित करके भगा दिया है, जबतक वे अनुतप्त होकर हम लोगों को अपने घर निमंत्रित नहीं करेंगे और क्षमा नहीं माँगेंगे तब तक हम यहाँ से नहीं जायँगे। अब अपमानित हुए तो गुरुदेव का फोटो और अपना गेरुआ वस्त्र नदी में फेंक देंगे।

अद्वैतानन्द स्टेशन से चलकर नगर स्वास्थ्य अधिकारी के यहाँ ठहरे। यह दृश्य देखकर स्थानीय बंगाली चकित रह गये। कई लोग यह समाचार देने के लिए चटर्जी के यहाँ गये। इनमें से एक व्यक्ति ने कहा— जब ये लोग आ गये हैं तब इनकी बातें हमें सुननी चाहिए। पसन्द न आने पर हम बायकाट कर देंगे। घर आये मेहमानों का अनादर नहीं करना चाहिए।

दूसरे दिन तीसरे पहर कीर्तन और भाषण का कार्यक्रम हुआ। अद्वैतानन्द के भाषण से सभी लोग प्रभावित हुए। इन लोगों ने अपनी गलती महसूस की। दूसरे दिन भी भाषण हुआ। इस दिन प्रचण्ड रूप से सेवाश्रम के संन्यासियों का स्वागत हुआ।

इतना होने पर भी अद्वैतानन्द सोचते रहे कि अभी तक चटर्जी ने न क्षमा माँगी और न अपने यहाँ हम सबको निमंत्रित किया। क्या वास्तव में गुरुदेव का फोटो और वस्त्र प्रोम नदी में फेंकना पड़ेगा ? गुरुदेव की महिमा व्यर्थ प्रमाणित होगी ?

रात भर इसी चिन्ता में अद्वैतानन्द करवट बदलते रहे। सवेरे की गाड़ी से सभी स्वदेश लौटनेवाले हैं। पता नहीं, कौन भोर के वक्त दरवाजा खटखटा रहा है। दरवाजा खोलते ही देखा गया कि सामने चटर्जी बाबू खड़े हैं। वे अद्वैतानन्द के चरणों पर गिर पड़े।

बोले—"सुना कि आज आप लोग चले जानेवाले हैं। मेरी पत्नी की इच्छा है कि आप लोग आज शाम का भोजन मेरे घर करें। कल चले जाइयेगा। इसके लिए मुझे क्षमा करना होगा।"

गुरुदेव की महिमा से अद्वैतानन्द की आँखें छलछला आयीं। मन ही मन उन्होंने गुरुदेव से क्षमा माँगते हुए प्रणाम किया।

इस प्रकार की अनेक घटनाएँ शिष्यों और भक्तों के साथ हुई हैं। उन घटनाओं का उल्लेख अक्सर लोग करते रहते हैं। आज भी भारत सेवाश्रम संघ में हिन्दू संस्कृति तथा शक्ति-पूजा के बारे में प्रति वर्ष विद्वानों के भाषणों के आयोजन होते हैं।

भारत के प्रमुख तीर्थ स्थलों में स्थापित उनके आश्रम आज भी जन सेवा कर रहे हैं। सन् १६४१ ई० के जनवरी माह में आपने महासमाधि ले ली।

●

बाबा लोटादास

वर्तमान वाराणसी के उत्तर ईश्वरगंगी मुहल्ला है। प्राचीनकाल में नगर का यह प्रमुख क्षेत्र था। पास ही छाग कुण्ड (बकरिया कुण्ड) पवित्र तीर्थस्थल था जो अब उजाड़खण्ड हो गया है। कहा जाता है कि जौनपुर में शर्कियों को परास्त करने के बाद सिकन्दर लोदी ने यहाँ भयानक अत्याचार किया था। उस अत्याचार के कारण उन दिनों वाराणसी एक तरह से मानव-विहीन हो गयी। कई मंदिर गिराकर मस्जिदें बनायी गयीं। ईश्वरगंगी तालाब का क्षेत्र भी नष्ट हो गया था।

१८वीं शताब्दी के अन्त में यहाँ एक बाबा आये। यहाँ के शान्त वातावरण ने उन्हें प्रभावित किया। संभव है कि स्थान ने आकर्षित किया हो। वे यहीं एक टीले पर आसन जमाकर भजन करने लगे। काशी के नागरिकों में एक खूबी यह है कि वे किसी भी संत के प्रति सहज ही आकृष्ट हो जाते हैं। धर्म कथा सुनने के लिए एकत्र हो जाते हैं।

भक्तों के सुझाव पर बाबा गोवर्धन ने तालाब के समीप एक मंदिर बनवाया और राम, लक्ष्मण, सीता तथा पवनसुत हनुमानजी की प्रतिमा स्थापित की। बाबा गोवर्धनदास ने पहले ही निश्चय कर लिया था कि इस उपलक्ष्य में एक भंडारा किया जायगा। भक्तों तथा स्थानीय लोगों ने प्रचुर सहायता दी और भंडारे का इन्तजाम हो गया।

नगर तथा आसपास के जिले से अनेक साधु इस भंडारे में निमंत्रित होकर आये थे। कार्यकर्ताओं तथा संतों के कारण वातावरण मुखरित था। पत्तलें बिछायी गयीं। भोजन परसा गया। ज्यों ही संतों ने भोग लगाने की तैयारी की त्योंही सभी चौंककर पत्तल पर से उठ गये। चारों ओर तूफान शुरू हो गया। लड्डू-पुरी के स्थान पर सभी पत्तलों पर मांस-मंदिरा आदि अखाद्य सामग्री दिखाई देने लगी। बात बाबा गोबर्धनदास तक पहुँची। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि किसी योगी ने बदला लेने के लिए अपनी शक्ति का दुरुपयोग किया है। अगर जल्द ही इसका निराकरण न किया गया तो बुरी तरह अपमानित होना पड़ेगा।

अपने आसन से वे उठे और अपने लोटे से पानी निकालकर प्रत्येक पत्तल पर छिड़कने लगे। एक सिरे से दूसरे सिरे तक पहुँचते ही पुनः पहले जैसा शाकाहारी भोजन पत्तलों पर दिखाई देने लगा। साधुओं का समूह भोजन करने लगा।

अपने आसन पर आकर ध्यान लगाते ही बाबा गोबर्धनदास को ज्ञात हुआ कि यह खुराफात बाबा कीनाराम ने की है। तुरत उन्होंने अपने भक्तों से कहा कि तुम सब चारों ओर खोजो। बाबा कीनाराम आये हैं। पता लगने पर मैं स्वयं उनके पास जाऊँगा।

थोड़ी देर बाद एक भक्त ने आकर कहा—"बाबा, कीनाराम महाराज तालाब के उस पार पीपल के पेड़ के नीचे बैठे हैं।"

इतना सुनते ही बाबा गोवर्धनदास तुरत वहाँ पहुँचे। मन में क्षोभ था ही, नमस्कार करते हुए उन्होंने कहा — "कहो कीनाराम, गुरु भाई होकर आपने यह कौन-सा बदला लिया? अपनी जानकारी में मैंने तो कोई अपराध नहीं किया है।"

कीनाराम ने कहा—"गुरुभाई होकर तुमने अपने इस भंडारे में निमंत्रण न देकर क्या अपराध नहीं किया है जबकि मैं इसी नगरी में रहता हूँ? क्या मेरी उपेक्षा मेरा अपमान नहीं है?"

तर्क सही था। गोवर्धनदास ने कहा— "हाँ, महाराज! यह गलती अनजाने में हो गयी। शायद मेरा आदमी आपके पास सूचना लेकर नहीं गया। लेकिन जब आप कृपा करके यहाँ आ गये थे तो सीधे मेरे पास आकर मुझे दंड देते। यह नाटक करने की क्या जरूरत थी? अब चलिये, मेरी कुटिया में। वहाँ जूठन गिराइये।"

गोवर्धनदास के विनय से प्रसन्न होकर बाबा कीनाराम ने कहा—"पंगत लग चुकी है। अब वहाँ जाना उचित नहीं है। मुझे अगर खिलाना चाहते हो तो यहीं जो कुछ है, ले आओ।"

बाबा गोवर्धनदास स्वयं भोजन ले आये। कीनाराम ने कहा—"पत्तल की जरूरत नहीं। इस खोपड़ी में डाल दे।"

बाबा कीनाराम ने एक नर कपाल आगे रख दिया। उस पात्र में भोजन रखने के बाद वे भोजन करने लगे। थोड़ी देर में खा लेने पर उन्होंने कहा— "गोवर्धन, अब पानी पिला।"

बाबा गोवर्धनदास उसी नर कपाल में अपने लोटे से पानी देने लगे। वे बराबर पानी उड़ेलते रहे, पर नर कपाल पूर्ण नहीं हो रहा था। यहाँ भी कीनाराम को चमत्कार करते देख गोवर्धनदास मुस्कराते रहे, क्योंकि उनके लोटे से पानी निरंतर गिर रहा था। न लोटा खाली हो रहा था और न नर कपाल पूर्ण हो रहा था।

अन्त में कीनाराम ने हँसते हुए कहा—"अरे भाई, तू तो सचमुच लोटादास है। अपने लोटे से संतों का भोजन सामिष से आमिष बनाया और मेरे सामने अपने लोटे का तमाशा दिखाया।"

गोवर्धनदासजी एक सिद्ध महात्मा हैं और चमत्कार कर सकते हैं, ईश्वरगंगी के लोग स्वप्न में भी विश्वास नहीं करते थे। बाबा को वे एक उच्चकोटि का सन्त मानते थे। आज की हुई घटना को प्रत्यक्ष रूप से देखने के बाद उन्होंने मान लिया कि बाबा असाधारण हैं। बाबा कीनाराम के नये सम्बोधन के कारण बाबा गोवर्धनदास को उसी दिन से लोग बाबा लोटादास कहने लगे। इस अद्‌भुत घटना की कहानी तेजी से चारों ओर फैल गयी।

× × × ×

श्री शोभनाथ लाल के कथनानुसार बाबा गोवर्धनदास पंजाब के गुरुदासपुर के निवासी थे। गुरुदासपुर के ध्यानपुर पिंडोरी आश्रम में एक सिद्ध महात्मा रहते थे जिनका नाम नारायण-दास स्वामी था। इसी आश्रम में गोवर्धन तथा अन्य संत रहते थे। मुगलों के शासन का दीप

बुझ रहा था, पर उनके अत्याचारों में कमी नहीं हो रही थी। उनके उपद्रवों से तंग आकर पश्चिम से काफी तायदाद में लोग पूर्व की ओर भागने लगे।

पिंडोरी आश्रम से तीन संतों की टोली पूर्व की ओर चल दी। इनमें बाबा द्वारिकादास, रामसूरत और गोवर्धनदास थे। कई जगह पड़ाव डालते हुए ये लोग जौनपुर जिले के आराजी थाना—गछी गाँव में आये। यह गाँव केराकत के समीप है।

यहाँ आते ही मूसलाधार वृष्टि होने लगी। तीन दिन प्रलय जैसा दृश्य रहा। चारों ओर लोग त्रस्त होने लगे। यह देखकर बाबा गोवर्धनदास अपना लोटा लेकर गाँव के चारों ओर पानी छिड़कते हुए अपने स्थान वापस आये। फलस्वरूप वर्षा में कमी तो न हुई, परन्तु गाँव को कोई नुकसान भी नहीं हुआ। पहले जहाँ गली-सड़क, घर-द्वार पानी से डूब गये थे, अब उस कष्ट से मुक्ति मिल गयी।

यह दृश्य देखकर गाँव के निवासी दंग रह गये। तीनों संतों पर उनकी श्रद्धा-भक्ति उमड़ पड़ी। यह समाचार तेजी से फैल गया। फलतः अब लोग नित्य सत्संग करने आने लगे।

आज का मानव इतना स्वार्थी हो गया है कि भौतिक-सुखों को प्राप्त करने के लिए हर प्रकार के प्रपंच रचता है। ऐसे माहौल में जब किसी संत को अलौकिक चमत्कार करते देखता है तब वह अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए उनकी सेवा में लग जाता है। सिद्ध योगी अपनी विभूतियों का प्रदर्शन नहीं करते। ऐसा करने से उनकी हानि होती है। अनायास जो हो जाता है, वह उनकी कृपा से हो जाता है। गोवर्धनदास के चमत्कार के कारण तीनों संतों की कहानी आसपास तेजी से फैल गयी। जनता की बढ़ती भीड़ के कारण संतों को कुछ परेशानी होने लगी। भजन-साधना में व्याघात होने लगा।

ठीक इन्हीं दिनों स्थानीय जमींदार का एक मात्र पुत्र चल बसा। गाँव का सम्पन्न जमींदार होने के कारण शव यात्रा में अपार भीड़ चल रही थी। अपने आसन पर बैठे गोवर्धनदास ने इस दृश्य को देखा। शव-यात्रियों से आवश्यक बातचीत करने के बाद उन्होंने कहा—"कुछ देर के लिए शव को यहाँ रख दो।"

एक तो शोकाकुल जनता, दूसरे एक सामान्य संत का अमानवीय अनुरोध सुनकर लोग नाराज हो उठे। वे लाश को नीचे रखने को राजी नहीं हुए। तभी स्थानीय लोगों ने बाबा गोवर्धनदास का विशेष परिचय देते हुए कहा कि बाबा पहुँचे हुए संत हैं। जरूर कोई बात होगी वर्ना ऐसा न कहते।

शववाहक दूर दूसरे गाँव से आ रहे थे। उनमें से अधिकांश लोग बाबा की योग विभूति से अपरिचित थे। बात बढ़ने पर बुजुर्गों ने समझाया—"आखिर कोई बात है तभी बाबा ने यह आदेश दिया। जरा रखकर देख तो लो।"

लाश नीचे रख दी गयी। बाबा गोवर्धनदास ने लोटे से जल लेकर उस पर छिड़का और ध्यानस्थ हो गये। लोगों ने आश्चर्य के साथ देखा—"कफन से लिपटी लाश हिलने लगी।"

कई लोगों की जबानें आश्चर्य से चीख उठीं। बाबा ने आँखें खोलते हुए कहा—

"कभी-कभी यमराज के दरबार में भी गलती हो जाती है। इस बालक की आयु शेष थी। भूल से इसकी मृत्यु हो गयी।"

बाबा का यह चमत्कार तेजी से फैल गया। जमींदार तो खुशी से उछल पड़ा। उसने बाबा से अनुरोध किया कि अब वे इसी स्थान पर स्थायी रूप से आसन लगायें। मैं यहाँ आपके लिए आश्रम बनवा देता हूँ।

बाबा की कृपा से लाभान्वित होने के कारण जमींदार ने उनके नाम पर बावन बीघा जमीन लिख दी। तभी से उस क्षेत्र का नाम 'बावन बिघवा' हो गया। जमींदार के प्रयत्न से वहाँ एक वैष्णव आश्रम बन गया। नित्य शाम के समय भजन-कीर्तन होने लगा। लेकिन सबसे बड़ी कठिनाई यह रही कि पीड़ित और संतप्त लोग अपने कष्टों के निराकरण के लिए निरन्तर आने लगे।

इन आगन्तुकों के कारण गोवर्धनदास ऊब गये। एक दिन वे अपने बड़े गुरुभाई द्वारिकादास से आज्ञा लेकर इस आश्रम से काशी की ओर चल पड़े। अब यह बताना कठिन है कि जौनपुर से बाबा गोवर्धनदास सीधे बनारस आये या बनारस से आगे गाजीपुर चले गये, क्योंकि संत कीनाराम के प्रथम वैष्णव गुरु बाबा शिवाराम गाजीपुर जिले के कारो ग्राम में रहते थे। जब उन्होंने पुनर्विवाह करने का निश्चय किया तब सन्त कीनाराम वहाँ से नाराज होकर चले गये। अनुमान किया जाता है कि जिन दिनों बाबा गोवर्धनदास कारो ग्राम में थे, उन्हीं दिनों कीनाराम बाबा वहाँ गये हों अथवा काशी निवास काल में कीनाराम से परिचय होने के बाद गोवर्धनदासजी कारो ग्राम गये हों। बहरहाल इन तथ्यों में कोई भी बात हो, पर यह निश्चित मत है कि संत कीनाराम और गोवर्धनदासजी गुरु भाई थे। वयो ज्येष्ठ संभवतः कीनारामजी थे। संत कीनाराम के वय के बारे में नाना मत हैं। इस दिशा में सन्त साहित्य के विद्वान परशुराम चतुर्वेदीजी का मत है— संवत् १७४१ से १८४४ वि० कीनारामजी का जीवन काल था। इस दृष्टि से बाबा गोवर्धनदासजी का भी यही समय था। श्री शोभनाथ लाल यह मानते हैं कि सं० १८२४ तक बाबा गोवर्धनदास जीवित थे। ईश्वरगंगी के आश्रम में ५० वर्ष तक महन्त पद पर थे। बाद में अपनी गद्दी उन्होंने अपने शिष्य लक्ष्मणदास को दे दी थी।

बाबा शिवाराम का शिष्य बनने के पूर्व गोवर्धनदासजी ध्यानपुर पिंडोरी के संत भगवान् नारायण नामक संत के शिष्य थे। ऐसी हालत में ऐसे सिद्ध योगी के शिष्य बनने के बाद गोवर्धनदासजी बाबा शिवराम के शिष्य क्यों बने, यह एक अद्‌भुत घटना है जिसका कोई सूत्र प्राप्य नहीं है। यों यह माना जाता है कि गुरु की कृपा से ही ज्ञान की प्राप्ति होती है। गुरु का स्थान सर्वोच्च है। सद्‌गुरु की कृपा से ही ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है। यहाँ तक कि उच्चस्तर के गुरु अकमर्ण्य लोगों को शीघ्र शिष्य इसलिए नहीं बनाते कि उनके जप-ध्यान की पूर्त्ति उन्हें करनी पड़ेगी।

शिवाराम से दीक्षा लेने के पहले या बाद में काशी आकर बाबा गोवर्द्धनदास ईश्वरगंगी में बस गये। इनके चमत्कारों की कहानियाँ सुनकर तत्कालीन काशी नरेश बलवन्त सिंह आपका दर्शन करने आये। उन दिनों बाबा गोवर्धनदास जो कि संत कीनाराम के कारण लोटादास के नाम से प्रसिद्ध हो चुके थे, मलेरिया से पीड़ित थे।

काशी नरेश को आते देखकर भक्तों ने शीघ्र बाबा लोटादास को उनके आगमन की सूचना दी। बाबा को समझते देर नहीं लगी कि महाराजा क्यों यहाँ आये हैं। वे उठे और अपने रोग को आसन के नीचे दबा दिया।

जब तक काशी नरेश भीटा पर आयें, उसके पहले ही वे स्वस्थ रूप में बैठ गये। उन्हें देखते ही बाबा लोटादास ने कहा— "आओ राजन! प्रजापालक का स्वागत है।"

कुछ देर तक धर्म चर्चा होती रही। अचानक बलवन्त सिंह ने देखा—एक ओर कोने में रखा आसन अपने आप काँप रहा है। क्या उसमें साँप या चूहा तो नहीं है?

बलवन्त सिंह अभी अपना प्रश्न पूछ भी नहीं पाये थे तभी बाबा लोटादास ने कहा— "आसन के नीचे न साँप है और न चूहा। वहाँ जड़ैया बुखार है। इधर कई रोज से मैं पीड़ित था। आप मेरी कुटिया में मुझसे मिलने आ रहे हैं, सुनकर मैंने कुछ देर के लिए उसे आसन के नीचे दबा दिया है। इस वक्त वह अपनी क्रिया कर रहा है।"

बलवन्त सिंह के लिए यह एक अद्‌भुत घटना थी। अपने रोग को कोई शरीर से निकालकर आसन के नीचे कैसे दबा रखता है? उन्होंने शंका प्रकट की— "जब आप रोग को शरीर से निकाल सकते हैं तब उसे समाप्त कर निरोग क्यों नहीं हो जाते?"

बाबा लोटादास ने कहा— "मनुष्य को अपने कर्म का फल भोगना पड़ता है। चाहे वह सन्त हो या राजा। आज नहीं तो कल इसे भोगना ही पड़ेगा। ईश्वर के विधान को हम-आप बदल नहीं सकते।"

राजा बलवन्त सिंह बाबा की बातों से काफी प्रभावित हुए और वहाँ ही मढ़ी पर एक मंदिर बनवा दिया जिसमें स्थानीय नागरिकों के सहयोग से मूर्तियाँ स्थापित हुई। सं० १८२४ वि० के बाद किसी वर्ष उनका नश्वर शरीर छूट गया। आज भी वहाँ बाबा लोटादास द्वारा स्थापित आश्रम है, जहाँ उनके परंपरा-प्राप्त शिष्य पीठासीन हैं।

●

भारत के महान योगी

विश्वनाथ मुखर्जी

चौदह भाग, ७ जिल्द में, प्रत्येक सौ रुपये

भारत योगियों, संतों, साधकों और महात्माओं का देश है। देश के सभी भागों में अनेक योगी तथा संत हुए हैं जिन्होंने देश की चिन्तनधारा और जीवन को प्रभावित किया है। अपने चमत्कारी जीवन से जनमानस को चमत्कृत भी किया है। ऐसे योगियों का जीवन-चरित चौदह भागों (७ जिल्द) में प्रस्तुत किया गया है।

भाग : १-२ तंत्राचार्य सर्वानन्द, लोकनाथ ब्रह्मचारी, प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी, वामा खेपा, परमहंस परमानन्द, संत ज्ञानेश्वर, संत नामदेव, संत रविदास, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी ब्रह्मानन्द, स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस।

भाग : ३-४ योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी, महर्षि रमण, भूपेन्द्रनाथ सान्याल, योगी वरदाचरण, नारायण स्वामी, बाबा कीनाराम, तैलंग स्वामी, परमहंस रामकृष्ण ठाकुर, जगद्गुरु शंकराचार्य, सन्त एकनाथ।

भाग : ५-६ स्वामी रामानुजाचार्य, रामदास काठिया बाबा, राम ठाकुर, साधक रामप्रसाद, भूपतिनाथ मुखोपाध्याय, स्वामी भास्करानन्द, स्वामी सदानन्द सरस्वती, पवहारी बाबा, हरिहर बाबा, साईं बाबा, रणछोड़दास महाराज, अवधूत माधव पागला।

भाग : ७-८ किरणचन्द्र दरवेश, स्वामी अद्भुतानन्द (लाटू महाराज), भोलानन्द गिरि, तंत्राचार्य शिवचन्द्र विद्यार्णव, महायोगी गोरखनाथ, बालानन्द ब्रह्मचारी, प्रभु जगद्बन्धु, योगिराज गंभीरनाथ, ठाकुर अनुकूलचन्द्र, बाबा सीतारामदास ओंकारनाथ, मोहनानन्द ब्रह्मचारी, कुलदानन्द ब्रह्मचारी, अभयचरणारविन्द भक्तिवेदान्त स्वामी, स्वामी प्रणवानन्द, बाबा लोटादास।

भाग : ९-१० भक्त नरसी मेहता, सन्त कबीरदास, नरोत्तम ठाकुर, श्रीम, स्वामी प्रेमानन्द तीर्थ, सन्तदास बाबाजी, बिहारी बाबा, स्वामी उमानन्द, पाण्डिचेरी की श्रीमाँ, महानन्द गिरि, अन्नदा ठाकुर, परमहंस योगानन्द गिरि, साधु दुर्गाचरण नाग, निगमानन्द सरस्वती, नीब करौरी के बाबा, परमहंस पं० गणेशनारायण, अवधूत अमृतनाथ, देवराहा बाबा।

भाग : ११-१२ बालानंद ब्रह्मचारी, श्री भगवानदास बाबाजी, हंस बाबा अवधूत, महात्मा सुन्दरनाथजी, मौनी दिगम्बरजी, गोस्वामी श्यामानन्द, फरसी बाबा, भक्त लाला बाबू, श्रीपाद माधवेन्द्रपुरी, नंगा बाबा, तिब्बती बाबा, गोस्वामी लोकनाथ, काष्ठ-जिह्वा स्वामी, रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी, अवधूत नित्यानन्द।

भाग : १३-१४ श्री मधुसूदन सरस्वती, आचार्य रामानुज, आचार्य रामानन्द, अद्वैत आचार्य, चैतन्यदास बाबाजी, भक्त दादू, गुरुनानक देव, सिद्ध जयकृष्ण दास, शैवाचार्य अप्पर, साधक कमलाकान्त, राजा रामकृष्ण, यामुनाचार्य, आचार्य मध्व, स्वामी अभेदानन्द, भैरवी योगेश्वरी, सिद्धा परमेश्वरी बाई।

Rs. 100.00

ISBN 978-81-89498-16-0
9 788189 498160

अनुराग प्रकाशन
विशालाक्षी भवन,
चौक, वाराणसी - 221001
Phone & Fax : **(0542) 2421472**
Shop at : **www.vvpbooks.com**

SV
S.N
Su
Su

नौ-दस

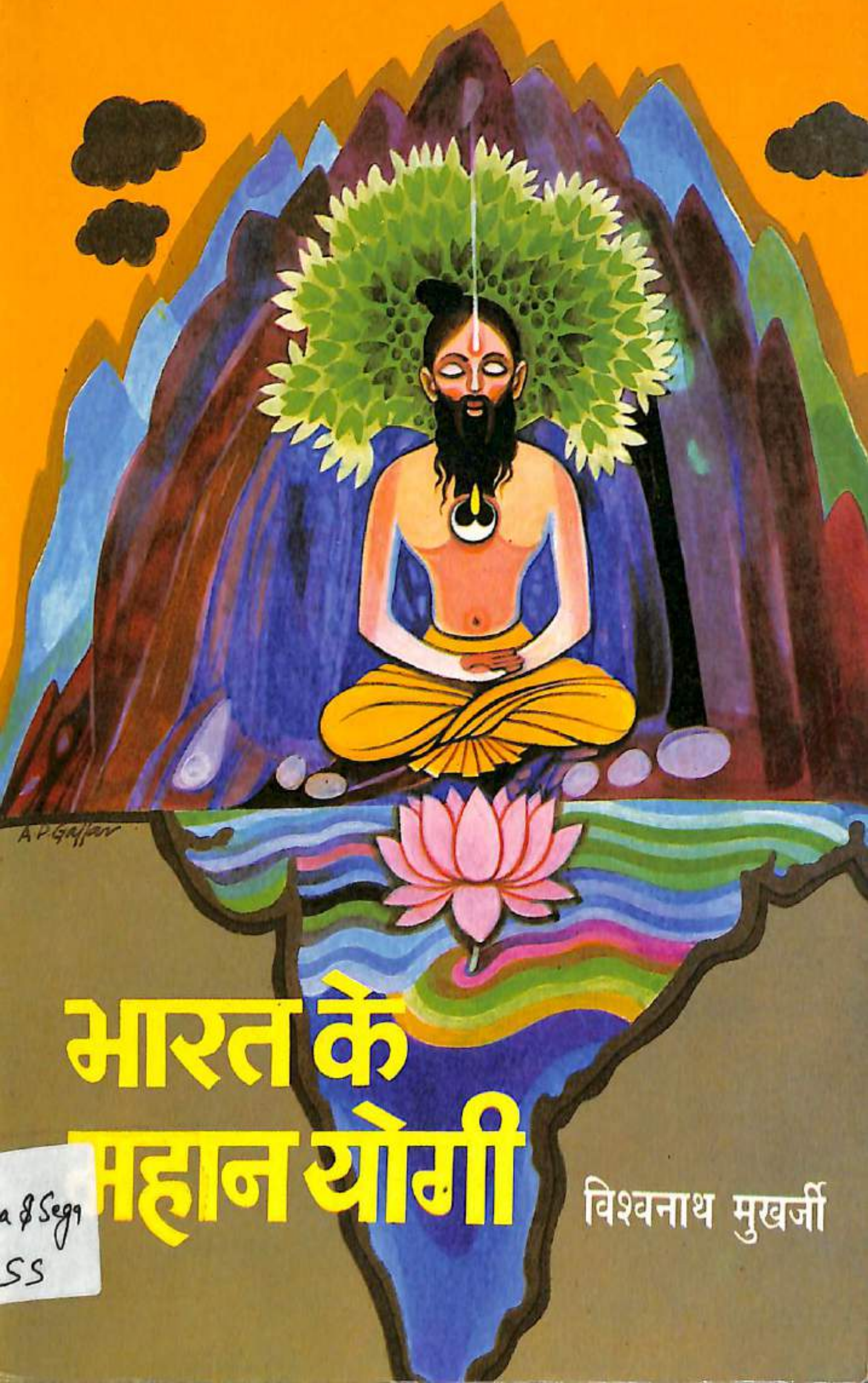

भारत के महान योगी

विश्वनाथ मुखर्जी

a 8 Seg1
SS

SS-16

भारत के महान् योगी

खण्ड नौ–दस

विश्वनाथ मुखर्जी

अनुराग प्रकाशन, वाराणसी

BHARAT KE MAHAN YOGI
Part IX & X
by
VISHWANATH MUKHERJEE
2000

© विश्वनाथ मुखर्जी

द्वितीय संस्करण
२००० ई०

प्रकाशक
अनुराग प्रकाशन, चौक, वाराणसी - २२१००१

मुद्रक
वाराणसी एलेक्ट्रानिक कलर प्रिण्टर्स प्रा० लि०, चौक, वाराणसी

उन सभी विद्वानों को
जिनकी रचनाओं से तथा उन अगणित
शिष्यों और भक्तों को जिनसे संतों के बारे में
मौखिक सूचना प्राप्त की है,
उन्हें सादर प्रणाम सहित।

कथनिका

जनवरी, १९९५ के समाचार पत्रों में प्रकाशित सूचना के अनुसार अब आधुनिक वैज्ञानिकों का ध्यान मानव में निहित उस अपार-शक्ति की खोज की ओर गया है जिसकी खोज भारतीय ऋषि-मुनि लाखों वर्ष पूर्व कर चुके हैं और परम्परा के अनुसार आज के अनेक संत उस साधना को अपनाये हुए हैं। भारतीय योगी इस रहस्य को केवल उपयुक्त शिष्यों को समर्पित करते थे।

आधुनिक वैज्ञानिकों ने यह स्वीकार किया है कि मानव में निहित शक्ति से समुद्र सूख सकता है, पृथ्वी मनचाही जगह ट्रांसमिट हो सकती है। ज्वालामुखी तथा भूकम्प शान्त हो सकते हैं। इस पृथ्वी को तहस-नहस किया जा सकता है और सुन्दर भी बनाया जा सकता है।

अब तक इस शक्ति का सम्बन्ध योगियों, तांत्रिकों और जादूगरों से रहा है। योगियों की भाषा में इसे परामानसिक तरंग कहा गया है, सम्मोहकों ने इसे इच्छा-शक्ति अथवा चुम्बकीय-शक्ति कहा है। यह शक्ति साधारण मनुष्यों में सामान्य रूप में है जिसे प्राणायाम और यौगिक क्रियाओं द्वारा बढ़ाया जा सकता है। अगर इस शक्ति को हजार या लाख गुना तक बढ़ाया जाय तो कोई भी व्यक्ति चमत्कार दिखा सकता है। इसे 'सिण्डीरियन' कहा गया है।

सिण्डीरियन दो रूपों में प्राप्त होता है। प्रथम तरंगों और दूसरा किरणों से प्राप्त किया जा सकता है। जिन लोगों ने महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज द्वारा लिखित स्वामी विशुद्धानन्द की जीवनी तथा अन्य रचनाओं का अध्ययन किया है, उन्हें ज्ञात होगा कि विशुद्धानन्दजी सूर्य किरणों के माध्यम से अनेक चमत्कार दिखा चुके हैं। उन्होंने योग को विज्ञान कहा है। सूर्य विज्ञान के वे प्रणेता थे। उन्होंने कहा है कि सूर्य विज्ञान की भाँति चन्द्र विज्ञान, वायु विज्ञान, नक्षत्र विज्ञान आदि कई प्रकार के विज्ञान हैं जिनकी शिक्षा ज्ञानगंज में दी जाती है।

विशुद्धानन्दजी को यह ज्ञान उनके गुरुओं ने ज्ञानगंज में दिया था।

सिण्डीरियन के बारे में सुश्री सुमन रस्तोगी ने कहा है कि यदि इस शक्ति को १० लाख गुना बढ़ा लिया जाय तो इसके द्वारा अनन्त आकाश में किसी भी सौर-मण्डल में मौजूद ग्रह की समस्त गतिविधियों की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। यहाँ से संदेश भेज सकते हैं। शायद भविष्य में कोई भी रहस्य अछूता नहीं रह जायगा।

यहाँ तक कि इस साधना के जरिये हम आकाश में विचरण कर सकते हैं, सूक्ष्म शरीर धारण कर सकते हैं तथा एक स्थान पर रहते हुए दूरस्थ किसी व्यक्ति से सम्पर्क कर सकते हैं। अगर विज्ञान को इस दिशा में सफलता मिली तो सामान्य लोगों को योगियों का रहस्य ज्ञात हो सकेगा।

प्रस्तुत खण्ड अन्य खण्डों से अलग किस्म का है। नरसी मेहता को स्वयं शंकर भगवान् कृष्ण के दरबार में ले गये थे। उनकी हर मुसीबत में मदद भगवान् देते रहे। इसी प्रकार अन्नदा ठाकुर जो कि स्वप्नदर्शी थे यानी उन्हें भविष्य की जानकारी और निर्देश स्वप्न से ज्ञात होता रहा, वे भी राधा-कृष्ण से सहायता प्राप्त कर चुके हैं।

पाण्डिचेरी की श्रीमाँ की साधना अपने आप में अद्‌भुत है। ओराविल उनकी ऐसी देन है जो विश्व में अपने ढंग का अकेला है। महर्षि अरविन्द के सम्पर्क में आने के बाद उन्हें अपनी साधना के माध्यम से अधिमानस ज्ञान प्राप्त हुआ। महाप्रभु गौरांग के छः गोस्वामियों की देन को नरोत्तम ठाकुर ने सम्पूर्ण बंगाल में प्रचारित कर वैष्णव-धर्म की ध्वजा को स्थापित किया था।

संत कबीरदास केवल समन्वयकारी नहीं थे, बल्कि ऐसे महान् योगी थे जिनके साहित्य की व्याख्या आज भी हो रही है, पर संपूर्ण रहस्य स्पष्ट नहीं हो सका है। वास्तव में वे उच्चकोटि के साधक और क्रान्तिकारी थे। स्वामी विवेकानन्द की तरह योगानन्दजी अमेरिका जाकर वहाँ के लोगों को क्रियायोग का ज्ञान देते रहे जिनके गुरु और गुरु के परमगुरु इस योग के प्रणेता थे।

शेष संतों का चरित्र कम अद्‌भुत नहीं है। कुछ संतों को अपने गुरुओं से ज्ञान प्राप्त हुआ है तो कुछ ऐसे संत हैं जिन्हें ऐशी-शक्ति बचपन में ही ईश्वर से प्राप्त हुई है।

संत-साहित्य के पाठकों को यह पुस्तक अधिक पसन्द आयेगी, ऐसा लेखक को विश्वास है। अन्त में उन लेखकों, संतों के भक्तों का आभारी हूँ जिनसे मुझे प्रेरणा तथा सहायता मिली है। सबसे अधिक आभारी उन पाठकों का हूँ, जिन लोगों ने अपने प्रेम से मुझे सींचा है।

— विश्वनाथ मुखर्जी

अनुक्रम

पृष्ठ

१. भक्त नरसी मेहता २
२. सन्त कबीरदास २०
३. नरोत्तम ठाकुर ३६
४. श्रीम ५०
५. स्वामी प्रेमानन्द तीर्थ ६६
६. सन्तदास बाबाजी ८२
७. बिहारी बाबा १०२
८. स्वामी उमानन्द ११६
९. पाण्डिचेरी की श्रीमाँ १३८
१०. महानन्द गिरि १५६
११. अन्नदा ठाकुर १७२
१२. परमहंस योगानन्द गिरि १९२
१३. साधु दुर्गाचरण नाग २०८
१४. निगमानन्द सरस्वती २१८
१५. नीब करौरी के बाबा २३२
१६. परमहंस पं० गणेशनारायण २४८
१७. अवधूत अमृतनाथ २६०
१८. देवराहा बाबा २६६

भारत
के
महान् योगी

●

खण्ड ६-१०

भक्त नरसी मेहता

भक्त नरसी मेहता

गुजरात स्थित गिरनार पर्वत योगियों और संतों की तपोभूमि रही है। भारत के अनेक साधकों को इसी पर्वत की चोटी पर दत्तात्रेय ऋषि के दर्शन हुए हैं। प्राचीनकाल में इस नगर का नाम गिरिनगर था जो आजकल जूनागढ़ के नाम से प्रसिद्ध है। रैवतक पहाड़ी (गिरनार) को जैन तीर्थंकर नेमिनाथ का जन्म-स्थल कहा जाता है। नेमिनाथ और पार्श्वनाथ का मंदिर यहाँ होने के कारण जैनियों का भी यह नगर तीर्थस्थल है। इस पर्वत के शिखर पर चढ़ने के लिए ९९९९ सीढ़ियाँ हैं। चढ़ाई बहुत कठिन है। कम लोग चढ़ पाते हैं।

इसी जिले के कुतियाड़ा तहसील में विष्णुदत्त मेहता नामक एक गुजराती नागर ब्राह्मण रहते थे जो मुंशी का कार्य करते थे। आपका एकमात्र पुत्र था—कृष्णदास। कृष्णदास दो पुत्रों के पिता बने। बड़े का नाम वंशीधर और छोटे का नाम नरसी था। दोनों बालक अभी छोटे ही थे कि पिता का निधन हो गया। दोनों अनाथ बच्चों का लालन-पालन दादी जयकुमारी को करने के लिए बाध्य होना पड़ा। दादी परमवैष्णव थीं। दोनों बच्चों पर दादी का प्रभाव पड़ता गया। बड़ा लड़का वंशीधर ठीक था, पर नरसी बचपन से ही गूँगा था। नरसी को लेकर दादी चिन्तित रहा करती थीं। कभी-कभी सोचतीं कि क्या यह जीवन भर गूँगा ही रहेगा या भगवान् इस पितृ-मातृहीन बालक पर दया करेंगे। उन्हें नरसी का हर वक्त ध्यान रखना पड़ता था। अकेला कहीं नहीं भेजती थीं।

एक दिन जयकुमारी शिव मंदिर में भागवत-कथा सुनने के लिए अपने साथ नरसी को लेकर गयीं। कथा समाप्त होने के बाद वे मंदिर की सीढ़ियों से नीचे उतरने लगीं तो देखा—एक किनारे एक संन्यासी बैठे हैं। उनकी भव्य आकृति ने भक्तमति जयकुमारी को आकर्षित किया। पास जाकर उन्होंने प्रणाम किया। दादी का अनुसरण नरसी ने किया।

''आयुष्मान भव।'' स्वामीजी ने आशीर्वाद दिया।

जयकुमारी ने उदास भाव से कहा—''महाराज, यह बालक जन्म से गूँगा है। ऐसा आशीर्वाद दीजिए ताकि बोलने लगे। इस गूँगे को लेकर मैं परेशान रहती हूँ।''

संन्यासी ने नरसी को सिर से पैर तक कई बार देखा और तब मुस्कराते हुए कहा—''माताजी, तेरा यह बालक भाग्यवान है। तेरे वंश का महापुरुष।''

इतना कहने के बाद स्वामीजी ने अपने कमण्डल से जल निकालकर नरसी पर छिड़का और फिर उसके कान के पास मुँह ले जाकर कहा—''बोलो, राधाकृष्ण।''

''राधाकृष्ण।'' नरसी ने कहा।

पौत्र को बोलते देख जयकुमारी खुशी से नाच उठीं — ''मेरा नरसी बोलने लगा ?''

संन्यासीजी के चरणों के पास जयकुमारी ने माथा टेककर प्रणाम किया। उनके चरणों की धूल लेकर वे अपने पौत्र पर छिड़कने लगीं।

''आप मेरे लिए भगवान् हैं। मेरा बेटा कृष्णदास अगर आज जिन्दा होता तो आपको कंधे पर बैठाकर घर ले जाता।''

संन्यासी ने मुस्कराते हुए कहा—''अब घर जाओ, माँ। बालक को 'राधाकृष्ण' नाम रटते रहना।''

पोते को गोद में उठाकर जयकुमारी घर आयीं। नरसी बोलने लगा है सुनकर घर के लोग प्रसन्नता प्रकट करने लगे। दूसरे दिन संन्यासी को सिद्धा देने के लिए जयकुमारी जब मंदिर आयीं तब देखा—वे वहाँ नहीं थे। स्थानीय लोगों ने बताया—''हमने कभी किसी संन्यासी को यहाँ बैठते नहीं देखा।''

उन दिनों पूरे गुजरात में दूध का व्यवसाय ब्रज के ग्वाले करते थे। नरसी ब्रज के लोगों से ब्रज के बारे में, श्रीकृष्ण और राधा के बारे में प्रश्न करता और उनकी जबानी कहानियाँ सुना करता था। ब्रज के लोगों में एक विशेषता यह थी कि वे श्रीकृष्ण-लीला की चर्चा अधिक करते थे। 'नमस्कार-प्रणाम' के स्थान पर 'राधे-गोविन्द' कहा करते थे। नरसी का बाल-मन श्रीकृष्ण की कहानियाँ सुनते-सुनते आत्मविभोर हो जाता था। ब्रज के बाद द्वारिका कृष्ण की दूसरी राजधानी थी। गाँव में जहाँ कहीं कीर्तन-भजन होता, वहाँ नरसी अवश्य जाते। इस प्रकार बचपन से ही उन पर कृष्ण-भक्ति का रंग चढ़ता गया। कृष्ण ही उनके आराध्य बन गये।

बड़ा भाई राज्य का कर्मचारी था। आर्थिक तंगी नहीं थी। लेकिन नरसी का घुमक्कड़पन घर में किसी को पसन्द नहीं था। सभी यही चाहते थे कि वह लायक बने, घर के काम में हाथ बटाये ताकि वह घर-गृहस्थी के योग्य बन सके। फलस्वरूप भाई-भाभी के अलावा दादी से भी वे झिड़कियाँ सुना करते थे। नरसी मेहता पर इन बातों का असर नहीं पड़ता था। एक प्रकार से वे चिकना घड़ा बन गये थे।

पोते का रंग-ढंग देखकर दादी ने सोचा—अगर नरसी का विवाह कर दिया जाय तो इसका पागलपन दूर हो सकता है। पत्नी के आने पर गृहस्थी की जिम्मेदारी समझेगा

और तब नौकरी या रोजगार में मन लगायेगा। उन दिनों भारत में बाल–विवाह की प्रथा थी। जयकुमारी अपने निश्चय के अनुसार रघुनाथ–पुरुषोत्तम की कन्या मानिक बाई से नरसी का विवाह कर दिया। मानिक बाई न केवल रूपवती थी, बल्कि गुणवती और बुद्धिमती भी थी।

विवाह के पश्चात् जयकुमारी ने कहा—"अब कहीं नौकरी कर ले। घर में बहू आ गयी है । भाई के भरोसे कब तक रहेगा ? अपनी गृहस्थी सम्हालने का गुण मेरे रहते सीख ले। अगर अब भी ध्यान नहीं दिया तो बहुत भोगेगा।"

नरसी मेहता ने दादी के वचन को इस कान से सुना और उस कान से निकाल दिया। पहले की तरह मंदिरों में जाते और कीर्तन में लगे रहते थे।

कुछ ही दिनों के भीतर मानिक बाई यह समझ गयी कि उसकी जेठानी दुरित बाई केवल कलह–प्रिया ही नहीं, बल्कि दिल की बहुत काली है। इस घर में आने के बाद से घर का सारा काम मानिक बाई को करना पड़ता था, फिर भी जेठानी ताना देने से बाज नहीं आती थी। पति के बेकार होने के कारण उन्हें सारी पीड़ाएँ चुपचाप सहनी पड़ती थीं।

जयकुमारी को विश्वास था कि विवाह के बाद नरसी के व्यवहार में परिवर्तन होगा, पर ऐसा नहीं हुआ। देखते–देखते कई वर्ष गुजर गये। इस बीच नरसी एक पुत्र तथा एक पुत्री के पिता बन गये। लेकिन नरसी ने रोजगार या नौकरी के लिए कोई प्रयत्न नहीं किया। नरसी के इस व्यवहार के कारण दादी क्षोभ से असंतुष्ट रहने लगीं। नित्य भला–बुरा कहती रहीं। इस बीच नरसी के जीवन में एक घटना हो गयी।

बड़े भाई के घोड़े के लिए नित्य नरसी जंगल से घास काट कर लाते थे। उस दिन थके–माँदे घास का गट्ठर सिर पर लादे घर आये। आंगन में गट्ठर रखने के बाद उन्होंने कहा—"भाभी, एक गिलास पानी देना। बड़ी प्यास लगी है।"

एक तो देवर के निकम्मेपन से भाभी नाराज रहती है। उसके पति की कमाई पर चार–चार प्राणी खा रहे हैं। ऊपर से नखरे दिखाते हैं। तुरंत वह बोली —"घास काटने के बहाने सबेरे निकल जाते हो तो शाम को घर लौटते हो। इतनी बड़ी गृहस्थी कैसे चलती है, इसकी चिन्ता तुम्हें है ? चार पैसे कमाने की फिक्र नहीं, सिर्फ करताल बजाना और नाचना आता है। खाने को चार–चार प्राणी। शर्म नहीं आती ? अब यह सब घर में नहीं चलेगा। दूर हो जाओ यहाँ से।"

मानिक बाई दूर खड़ी सारी घटना को देख–सुन रही थी। पति की अकर्मण्यता पर उसे भी क्षोभ था। पता नहीं, कैसे पत्थर दिल के आदमी हैं। अपमान की पीड़ा भी इन्हें नहीं सताती। अगर कमासुत होते तो यह सब सुनना नहीं पड़ता।

पानी देने के बदले भाभी जिस ढंग से पेश आयी, उससे नरसी ने अपमानित अनुभव किया। बिना कोई प्रतिवाद किये वे घर से निकलकर जंगल में चले गये।

कंटकाकीर्ण मार्ग से क्रोधित होकर चलने के कारण उनका शरीर लहूलुहान हो गया। कई जगह से रक्त बहने लगा। इस ओर उन्होंने ध्यान नहीं दिया।

चलते-चलते सहसा ठोकर लगने के कारण नरसी के पैर रुक गये। सामने नजर जाते ही उन्हें आश्चर्य हुआ। उनकी आँखों के सामने एक मंदिर था। आखिर इस जंगल में यह मंदिर कहाँ से आ गया ? घास काटने के लिए नरसी अक्सर इधर आते थे, पर आज के पहले इस मंदिर को उन्होंने कभी नहीं देखा। क्या कभी मैं इधर नहीं आया था ? दु:ख और क्रोध के कारण वे अधिक सोच नहीं सके। इतनी दूर भूखा-प्यासा आने के कारण थककर वे वहीं सो गये।

पता नहीं, कब उस सुनसान जंगल में एक दैववाणी सुनाई दी —''वत्स नरसी, उठो! तुम्हारी मृत्यु अभी नहीं होगी। तुम भाग्यवान व्यक्ति हो। श्रीकृष्ण तुम्हारे माध्यम से जगत् का कल्याण करना चाहते हैं ! तुम्हारे माध्यम से लीला करना चाहते हैं। ऐसे देवता जिसके सहायक हैं, उसे किस बात की चिन्ता ?''

इस मधुर वचन को सुनकर नरसी की आत्मा आनन्द से परिपूर्ण हो गयी। जो व्यक्ति अहरह दादी, भाई, भाभी से ताने सुनता आया है, उसे आज प्रथम बार स्नेहपूर्ण वचन सुनने को मिला।

आँखें खोलने पर उसने देखा—साक्षात् शंकर भगवान् खड़े हैं। लोगों की जबानी शंकर भगवान् के बारे में जो कुछ उन्होंने सुना है, ठीक उसी रूप में खड़े हैं। उनके शरीर से निकलने वाली ज्योति से सम्पूर्ण क्षेत्र आलोकित हो उठा है। नरसी को समझते देर नहीं लगी कि वह स्वप्न नहीं देख रहा है। शंकर भगवान् प्रत्यक्ष रूप में दर्शन दे रहे हैं।

भक्ति से गद्गद होकर उसने शंकर भगवान् को साष्टांग प्रणाम करते हुए कहा—''न जाने किस पुण्य बल के कारण मुझ जैसे व्यक्ति को आपका दर्शन मिला। मैं आपसे कोई वर नहीं चाहता। मुझे अपनी शरण में ले लीजिए।''

आशुतोष भगवान् ने कहा—''तुम जिसके भक्त हो, वही तुम्हें अपनायेंगे। आओ, हम उन्हीं लीलामय की गोपी-लीला देखने चलें। लेकिन हम वहाँ गोपी के रूप में चलेंगे, वर्ना गोपियाँ हमें वहाँ रहने नहीं देंगी। गोपी रूप में हम अपने को छिपा लेंगे।''

यह कहकर शंकर भगवान् ने अपना तथा नरसी का रूप बदल डाला। इसके बाद उन्होंने कहा—''बिना गोपी बने हम श्रीकृष्ण की रासलीला में भाग नहीं ले सकते।''

वृन्दावन रवाना होते समय नरसी ने आश्चर्य के साथ देखा—मंदिर की सीढ़ियों पर उनका स्थूल शरीर पड़ा है और वे सूक्ष्म शरीर में गोपी रूप धारण कर हवा में उड़ते जा रहे हैं।

रासलीला की भूमि पर आने के बाद नरसी ने देखा —शरत्–पूर्णिमा की चाँदनी चारों ओर छिटकी हुई है। मल्लिकादि कुसुमों से वनभूमि सुशोभित है। मन्द–मन्द वायु में श्रीकृष्ण की बाँसुरी के स्वर गूँज रहे हैं। उपस्थित सभी गोपियाँ मुरलीधर के समीप जाने के लिए व्याकुल हैं। कुछ गोपिकाएँ श्रीकृष्ण के साथ नृत्य कर रही हैं।

अपने गोल में दो नयी गोपियों को देखकर शेष गोपिकाएँ चकित हैं। उनकी आँखें एक दूसरे से टकराकर पूछ रही हैं —ये दोनों सखियाँ कहाँ से आ गयीं ? दूसरी ओर श्रीकृष्ण शंकर और नरसी को गोपी रूप में देखकर मुस्करा रहे हैं। ये लोग भी इन गोपियों के साथ नृत्य करने लगे।

रासलीला समाप्त होने के बाद नरसी रूपी गोपी को श्रीकृष्ण ने अपने पास बुलाकर पद–सेवा करने की आज्ञा दी। भगवान् भक्त की सेवा से प्रसन्न होकर बोले—''वत्स, मैं तुम्हारी सेवा–भक्ति से प्रसन्न हूँ। बोलो, क्या चाहते हो ?''

नरसी ने भाव विभोर होकर कहा —''प्रभो, जब आप मिल गये तब मुझे कुछ और नहीं चाहिए। मेरी यही इच्छा है कि जागरण में, शयन में, मरण में, प्रत्येक क्षण में, आपके चरणों का ध्यान करता रहूँ।''

श्रीकृष्ण ने कहा—''प्रिय वत्स, तुम्हारी तरह भक्ति परायण, कामना–वासना–हीन इस जगत् में अन्य कोई नहीं है। आज से तुम सभी ऋणों से मुक्त हो गये। मेरी पूजा मन में करते हुए संसार–धर्म का पालन करते रहना। तुम्हारी सारी जिम्मेदारी आज से मैं ले रहा हूँ। मुसीबत के वक्त मेरा स्मरण करते ही तुम छुटकारा पा जाओगे। लोक–कल्याण के लिए घर–घर जाकर कीर्तन करते रहना।''

इतना कहने के पश्चात् श्रीकृष्ण यमुना में जाकर जल–क्रीड़ा करने लगे। प्रभु की इस लीला को तट पर खड़े नरसी देखते रहे। धीरे–धीरे प्रभात होने लगा और यह सारा दृश्य पल भर में गायब हो गया।

इस दृश्य के गायब होते ही नरसी का हृदय हाहाकार कर उठा और वे मूर्च्छित हो गये। मूर्च्छा भंग होने पर उन्होंने देखा कि वे जंगल में स्थित उसी मंदिर की सीढ़ियों पर पड़े हुए हैं।

तो क्या मैं स्वप्न देख रहा था? सामने तो शंकरजी का मंदिर है। अपने शरीर को गौर से देखने पर लगा— सारे घाव मिट गये हैं। नरसी दौड़कर मंदिर के भीतर गये और शंकर की मूर्ति को प्रणाम करते हुए आँसू बहाने लगे।

दीर्घकाल तक तपस्या करने पर भी साधक को भगवान् के दर्शन नहीं मिलते, उस दर्शन को शंकर भगवान् की कृपा से नरसी ने अनायास प्राप्त कर लिया। अगर भाभी की फटकार सुनकर यहाँ मरने के लिए न आते तो प्रभु का दर्शन कैसे मिलता? लीलामय प्रभु, तुम्हारी माया अपरम्पार है।

मंदिर से चलकर नरसी घर आये तो लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। बड़े भाई ने विस्मय से पूछा —''एक सप्ताह कहाँ गायब रहा ?''

इस प्रश्न को सुनते ही नरसी का रूप बदल गया। वह कभी हँसने, कभी रोने और कभी नाचने लगा। दूसरे ही क्षण दोनों हाथ ऊपर उठाकर 'जय श्रीकृष्ण' कहते हुए कीर्तन करने लगे। घर के लोगों ने अंदाजा लगाया कि नरसी जरूर पागल हो गया है। पिछले एक सप्ताह से गायब था। जरूर कोई घटना हुई है। ऐसे आदमी को घर में रखना उचित नहीं है।

आखिर एक दिन भाई–भाभी ने नरसी के पूरे परिवार को घर से बाहर निकाल दिया। यह भी प्रभु की इच्छा है, समझकर नरसी हमेशा के लिए पैतृक निवास छोड़कर नगर के बाहर की ओर चल पड़े।

मानिक बाई की आँखें सावन–भादों बरसाने लगीं। पति एक छदाम कमाता नहीं, कल क्या होगा? कम–से–कम यहाँ दो कौर भोजन तो मिल जाता था। सिर छिपाने की जगह थी। अब भूखों किसी पेड़ के नीचे रहना पड़ेगा।

मानिक बाई को कल की चिन्ता खाये जा रही थी, पर नरसी के चेहरे पर चिन्ता की कोई रेखा नहीं थी। वे मन ही मन कह रहे थे —प्रभो, दुःख देकर परीक्षा ले रहे हो? कम–से–कम इतनी शक्ति दो कि इसे सहन कर सकूँ। जब आप मेरे मालिक हैं, तब मुझे कोई चिन्ता नहीं है। जय श्रीकृष्ण।

चलते–चलते जब वे लोग थक गये तब एक धर्मशाला में आये। इनकी हालत देखकर रक्षक ने कहा —''यहाँ केवल तीन दिन ठहर सकते हो।''

दो दिन अनाहार में गुजर गये। आज तीसरा दिन है। गाँव रहता तो कहीं से कुछ माँगकर मानिक बाई ले आती। बच्चों का पेट भरता। इस परदेश में भला कोई क्या देगा? भूख से बिलबिलाते बच्चों को देखकर मानिक बाई स्वयं रोने लगी। दूसरी ओर अटल विश्वास के साथ नरसी अपने कीर्तन में मस्त थे। उनकी यह गति देखकर मानिक बाई कड़ी बात कहने ही जा रही थी कि अचानक दरवाजे की साँकल बज उठी। मानिक बाई ने सोचा—शायद धर्मशाला से बाहर चले जाने को कहने के लिए कोई आया है।

इस अनजान जगह में और कौन आ सकता है? कहीं बड़े भैया तो नहीं आये हैं। दरवाजा खोलने पर मानिक बाई ने देखा—कोई अपरिचित व्यक्ति है। पूछा—''कहिये, क्या बात है ?''

अपरिचित व्यक्ति ने कहा—''जय श्रीकृष्ण, जय श्रीकृष्ण।''

प्रभु का नाम सुनते ही नाम जपनेवाले नरसी मेहता उछलकर खड़े हो गये। पास आकर बोले—''भाईजी, मैं आपको पहचान नहीं सका। जबकि आप मेरा और मेरे प्रभु का नाम ले रहे थे। इस गरीब के घर कैसे पदार्पण हुआ? मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ?''

आगन्तुक ने कहा —"मैं जाति का बनिया हूँ। मेरा घर बहुत दूर है। मैं सर्वदा साधु–सन्तों की तलाश में लगा रहता हूँ। उनसे हरि कथा सुनता हूँ। उनकी सेवा करना धर्म समझता हूँ। मार्ग में आपके बारे में सुना तो सेवा में हाजिर हो गया। मैं आपकी सेवा करके धन्य होना चाहता हूँ। मैंने सुना है कि आप लोग निराश्रय हैं। आप लोगों के रहने लायक एक घर ठीक कर आया हूँ। आपके ठाकुर को भोग देने लायक कुछ अन्न उस घर में रख दिया है। कृपया आप लोग मेरे साथ चलिए और उस घर को आबाद कीजिए।"

नरसी मेहता को समझते देर नहीं लगी कि यह सब उनके प्रभु श्रीकृष्ण की देन है। उस बनिये के साथ उसके ठीक किये भवन में पूरा परिवार आ गया। नरसी का पूजा घर अलग है। भण्डार में खाद्य–सामग्री पर्याप्त मात्रा में है। किसी बात की कमी नहीं है।

इस मकान में रहते हुए नरसी श्रीकृष्ण के प्रेम में मगन हो गये।

+ + + +

कुछ दिनों बाद एक अपरिचित व्यक्ति इनके पास आया और कहा—"मैं द्वारिका–दर्शन के लिए जाना चाहता हूँ। कृपया आप एक सौ रुपये की हुण्डी लिख दीजिए। यहाँ के कई महाजनों के पास गया, पर कोई लिखने को तैयार नहीं हुआ। कुछ लोगों ने आपका नाम बताया। अगर आप लिख दें तो मैं द्वारिका तीर्थ दर्शन कर आऊँ।"

नरसी ने सोचा—शायद प्रभु की यही इच्छा है। द्वारिका में मेरा कौन है जो मेरी हुण्डी को स्वीकार करेगा? प्रभो, अगर तुम यही चाहते हो तो यही सही। प्रकट रूप में उन्होंने कहा—"एक सौ रुपये से क्या होगा? मैं एक हजार रुपयों की हुण्डी लिख देता हूँ। वहाँ जाकर श्यामल साह से ले लेना। वे मेरी हुण्डी स्वीकार कर लेंगे।"

उक्त सज्जन द्वारिका सकुशल आ गये। यहाँ के महाजनों से श्यामल साह का नाम पूछने लगे। जब कोई श्यामल साह होता तब लोग पता बताते। सभी लोगों ने कहा कि द्वारिका जैसे छोटे स्थान में इस नाम का कोई आदमी नहीं है। उक्त सज्जन सोचने लगे कि क्या मुझे धोखा दिया गया है? अब इस परदेश में क्या करूँ? घर कैसे जाऊँगा।

अचानक एक व्यक्ति उनके पास आया और पूछा —"क्या आप जूनागढ़ से आये हैं?"

"जी हाँ।"

"नरसी मेहता की हुण्डी साथ लाये हैं?"

"जी हाँ।"

उस व्यक्ति ने कहा—"आज ही मेरे पास जूनागढ़ से नरसी मेहता का एक पत्र

आया है कि उन्होंने मेरे नाम एक हजार की हुण्डी लिखकर किसी के हाथ भेजी है।''

यह बात सुनकर उस व्यक्ति ने कहा—''वह व्यक्ति मैं ही हूँ। क्या आप ही श्यामल साह हैं? यहाँ के लोग तो कहते रहे कि इस नाम का कोई भी व्यक्ति यहाँ नहीं रहता।''

श्यामल साहरूपी श्रीकृष्ण ने कहा—''कोई आदमी रहता है या नहीं, इससे आपका क्या मतलब। मुझे सभी लोग नहीं जानते। आप हुण्डी दीजिए और रुपये ले लीजिए।''

+ \+ \+ \+

नरसी की दो पुत्रियाँ थीं। पहली वाली विवाह के योग्य हो गयी थी। मानिक बाई ने कई बार उसके विवाह के बारे में नरसी से चर्चा की, पर हर बार यही कहते—''यह कार्य मुझसे नहीं होगा। जो कुछ करना है, प्रभु श्रीकृष्ण करेंगे। तुम बेकार परेशान होती हो। मैंने अपना सब कुछ उन्हें सौंप दिया है।''

मानिक बाई मन ही मन यह अनुभव जरूर करती रही कि प्रभु की इच्छा से उनकी गृहस्थी चल जरूर रही है, पर विवाह के बारे में बिना प्रयत्न किये अपने आप कैसे हो जायगा? घर में इतनी रकम भी नहीं है कि सारा इन्तजाम किया जा सके।

एक दिन नरसी सबेरे पड़ोस के एक गाँव में एक भक्त के घर चले गये। वहाँ कीर्तन का आयोजन था। इन्हें विशेष रूप से बुलाया गया था। इसी दिन एक ब्राह्मण इनके घर आया। उसने कहा —''मैं ऊना गाँव के ब्राह्मण श्री रंगधर मेहता का कुल-पुरोहित हूँ। उन्होंने मुझे आपसे यह कहने के लिए भेजा है कि वे आपकी पुत्री को कुलवधू के रूप में अपनाना चाहते हैं। मैं उसे अपने साथ ले जाना चाहता हूँ। आप इसके लिए सारा प्रबंध कर दें।''

मानिक बाई को इस समाचार से प्रसन्नता हुई, पर घर में कुछ भी नहीं है। आखिर खाली हाथ लड़की को कैसे भेजी जाय?

बोली —''मेहताजी घर में नहीं हैं। वे दूसरे गाँव गये हुए हैं। उनके आने तक आपको प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।''

इतना कहकर वह भीतर जाकर सोचने लगी कि अतिथि को खिलाने लायक सामान भी घर में नहीं है, फिर लड़की को कुछ सामग्री देकर भेजना पड़ेगा। पता नहीं, कहाँ जाकर बैठ गये हैं।

पड़ोसी के यहाँ से वह चावल, दाल, तरकारी माँग लायी। इस प्रकार अतिथि का स्वागत हुआ। दोपहर को जब नरसी आये तब अतिथि ने उन्हें अपने आने का कारण बताया।

सारी बातें सुनने के बाद आदत के मुताबिक नरसी ने कहा —"चिन्ता करने की जरूरत नहीं। प्रभु इच्छा से सब कुशल पूर्वक निपट जायगा।"

कुल पुरोहित ने कहा —"अगर आप कल बहू को मेरे साथ विदा कर दीजिए तो अच्छा होगा।"

नरसी ने कहा —"कृपया दो दिन आप ठहर जाइये। लड़की की विदाई की व्यवस्था कर लूँ तब आप चले जाइयेगा।"

लाचारी में कुल पुरोहित को रुकना पड़ गया। लेकिन समस्या हल नहीं हो रही थी। निर्धारित दिन को सबेरे पत्नी और पुत्र श्यामलदास को लेकर नरसी मंदिर में आये और भजन गाने लगे —"राखो प्रभु लाज हमारी।"

कुछ देर बाद एक नवदम्पति मंदिर में आया और बोला —"हम लोग अपने एक मित्र के निर्देश पर यहाँ आये हैं। उन्होंने आपकी लड़की के विवाह के लिए हमें उपहार देकर भेजा है। आप यह सब सामग्री ग्रहण करें और अपनी लड़की को विदा कर दीजिए।"

इतना कहने के पश्चात् सारा सामान मानिक बाई के पास रखकर वह दम्पति जैसे आया था, उसी प्रकार चला गया। कृतज्ञता प्रकट करने का मौका नहीं मिला। नरसी ने खड़ा होकर देखा —वह दम्पति हवा में विलीन हो गया था। नरसी समझ गये कि यह मेरे प्रभु की कृपा है। घर वापस आकर उन्होंने उसी दिन कन्या को विदा कर दी।

पग–पग पर प्रभु की कृपा–वर्षा होते देख नरसी का अनुराग उनके प्रति बढ़ता गया। अब वे श्रीकृष्ण के भजन में दिन गुजारने लगे।

पुत्री के विवाह के पश्चात् पुत्र के विवाह की चिन्ता मानिक बाई को सताने लगी। दरिद्रता की चक्की में पीसते–पीसते वह थक गयी थी। घर में एक बहू आ जाय तो कुछ भार हल्का हो जायगा। दूसरे ही क्षण सोचती कि कौन हमारे जैसे दरिद्र परिवार को अपनी लड़की देगा? यहाँ दोनों जून पेट भर भोजन तक नसीब नहीं होता। भगतजी दिन–रात भजन–कीर्तन में लगे रहते हैं। घर की फिक्र ही नहीं करते।

+ \+ \+ \+

गुजरात के भावनगर में नागर ब्राह्मणों की काफी आबादी है। इस राज्य के दीवान मदन मेहता काफी धनी तथा सम्मानित व्यक्ति माने जाते थे। वे अपनी लड़की के लिए योग्य लड़के की तलाश में थे। अपने कुल पुरोहित को उन्होंने जूनागढ़ इसी उद्देश्य से भेजा। उन्हें यह ज्ञात था कि जूनागढ़ में नागर ब्राह्मणों के नेता सारंगधर हैं। वे इस कार्य में मदद दे सकते हैं। उन्हें अपने यहाँ के योग्य लड़कों की जानकारी होगी। उन्होंने सारंगधर के नाम पत्र लिखते हुए लिखा कि इस दिशा में मेरे कुल पुरोहित की मदद कर दें।

जूनागढ़ आकर कुल पुरोहित कई ब्राह्मण नागरों के घर गये। उनमें से उन्हें एक भी लड़का पसन्द नहीं आया। कोई गूँगा, कोई बहरा, कोई तोतली जबान का और कुछ तो बज्र मूर्ख मिले। कुल पुरोहित के नखरे देखकर सारंगधर नाराज हो गये। उसकी अयोग्यता प्रमाणित करने के लिए वे कुल पुरोहित को नरसी मेहता के घर ले आये।

यहाँ का रहन-सहन और श्यामलदास का रूप-रंग देखकर कुल पुरोहित मुग्ध हो गया। बातचीत पक्की करके वे भावनगर लौट आये। यहाँ आकर उन्होंने मदन मेहता से कहा —''लड़का सर्वगुण सम्पन्न है, केवल गरीब है।''

मदन मेहता ने सोचा —गरीब है तो क्या हुआ? सर्वगुण सम्पन्न तो है।

इस घटना के कुछ दिनों बाद बदले की भावना से सारंगधर ने मदन् मेहता को पत्र लिखा कि आपके कुल पुरोहित कितने योग्य हैं, इसकी जानकारी आपको हो जायगी। उसने नरसी के पुत्र को आपकी लड़की के लिए वर चुना है। नरसी तो भिखमंगा है, जातिच्युत। वैरागियों के साथ रहता है। आपके सम्मान के लायक नहीं है। अच्छा होगा कि अन्यत्र अपने दामाद की तलाश करें।

इस पत्र को पाकर मदन मेहता परेशान हो गये। कुल पुरोहित के घटियापन से वे नाराज हो गये। बात पक्की हो गयी थी, सहसा रिश्ता तोड़ना अशोभनीय होगा। इस प्रकार की अनेक बातें सोचने के बाद मदन मेहता ने नरसी को इस आशय का पत्र लिखा—

मान्यवर, आपके सुपुत्र चि० श्यामलदास के साथ मेरी पुत्री का विवाह अगले माह शुक्ल पंचमी को होना स्थिर हुआ है। कृपया मेरे सम्मान योग्य बरात लेकर आयें। अगर ऐसा करने में असमर्थ हों तो मैं अपनी लड़की का विवाह अन्यत्र करने के लिए बाध्य होऊँगा। नमस्कार।

आपका

मदन मेहता

इस पत्र को पाकर नरसी मेहता चिन्तित हो उठे। अपने प्रभु का स्मरण करते हुए उन्होंने पत्रोत्तर दिया —''श्रीकृष्ण की कृपा से ऐसा ही होगा। आप निश्चिन्त रहें।''

शुभ दिन करताल बजाते हुए कौपीन धारण किये वैष्णवों का दल भावनगर की ओर रवाना हुआ। न बाजा, न पालकी, न घोड़ा। केवल सभी बराती 'जय श्रीकृष्ण' कहते हुए चले जा रहे हैं। जूनागढ़ के लोगों को यह मालूम हो गया था कि नरसी अपने लड़के की बरात लेकर भावनगर जायँगे। बरात की यह दशा देखकर सभी हँसने लगे। बराती हैं या पागल?

भावनगर जब कुछ दूर रह गया तब नरसी तथा साथ आये वैष्णवों ने देखा—एक खुले मैदान में बाजा, हाथी, घोड़ा, पालकी के साथ एक बरात जा रही है। सभी बराती मूल्यवान पोशाक पहने हुए हैं। शायद किसी राजकुमार की बरात है।

एकाएक बरातियों में से एक सज्जन ने आगे बढ़कर नरसी से कहा —''वत्स, मैं तुम लोगों के आने की प्रतीक्षा कर रहा था। मेरे रहते तुम्हें किस चीज की कमी है ? लो, यह पोशाक तुम अपने लड़के को पहना दो। ये लोग तुम्हारे बराती हैं। अब शान के साथ जाओ।''

कृपासिन्धु की बातें सुनकर नरसी आत्मविभोर हो गये। झट चरण–स्पर्श कर पागलों की तरह श्रीकृष्ण नाम जपते हुए नृत्य करने लगे।

बरात का रंग–रूप देखकर मदन मेहता के होश उड़ गये। इस वक्त सारंगधर मिल जाता तो उसका गला दबा देते। घबराये हुए वे नरसी के पास आकर बोले —''मेरा अपराध क्षमा कर दें। मैं आपके सम्मान के लायक स्वागत करने में अपने को असमर्थ पा रहा हूँ।''

विवाह सम्पन्न हुआ। कन्या–पक्ष ने विवाह की प्रशंसा करते हुए कहा —''जूटी बाई को अच्छा वर मिला है।''

बरात विदा हुई। मार्ग में श्रीकृष्ण मिले। उन्होंने अपना सारा तामझाम वापस ले लिया। बरात जब जूनागढ़ आयी तब लोग नरसी के भाग्य पर ईर्ष्या करने लगे।

+ \+ \+ \+

इसी प्रकार नरसी के नाती का भी विवाह हुआ था। 'भक्तमाल' के रचयिता लालदासजी महाराज ने लिखा है —''उन दिनों नरसी की तरह भगवान् श्रीकृष्ण का अन्य कोई भक्त नहीं था। यही वजह है कि उनकी हर मुसीबत में श्रीकृष्ण नरसी की सहायता करने चले आते थे। नरसी के जीवन में अनेक अलौकिक घटनाएँ हुई हैं जो भक्त–भगवान् की लीला की कहानियाँ बनकर रह गयी हैं।''

नरसी की बड़ी लड़की की ससुराल की स्थिति अच्छी नहीं थी। वह अधिकतर अपने पिता के पास रहती थी। ससुराल में आर्थिक कष्ट था। अपने पुत्र के विवाह के बाद जब वह पुनः ससुराल आयी तब एक दिन सास ने कहा —''बहू, घर की हालत कैसी है, देख रही हो। अपने पिता से कुछ मदद क्यों नहीं माँगती? किसी को भेजकर कुछ मँगवाओ ताकि हम कुछ दिन पेट भर भोजन कर सकें।''

लड़की ने एक आदमी को पीहर भेजा जिसे नरसी ने खाली हाथ वापस कर दिया। यह देखकर सास आग बबूला हो गयी और खूब खरी–खोटी सुनाई। बेटी अपने पीहर की हालत जानती थी। लाचारी में पुनः एक आदमी भेजा कि मेरी कुछ सहायता नहीं कर सकते तो कम–से–कम एक बार आकर देख तो जाओ।

नरसी इस प्रार्थना को अस्वीकार नहीं कर सके। तुरंत बेटी के घर रवाना हो गये। फटे कपड़े, हाथों में करताल और मुँह में श्रीकृष्ण का भजन।

नरसी की इस हालत को देखकर समधी समझ गये कि इस व्यक्ति से कुछ वसूल

नहीं किया जा सकता। जिसकी यह दशा है, वह क्या सहायता करेगा? 'भक्तमाल' के अनुसार लड़की की ससुराल में उनकी घोर उपेक्षा की गयी। एक टूटी झोपड़ी में उनको ठहराया गया।

भक्तों की दृष्टि में झोपड़ी और राजमहल दोनों ही बराबर होते हैं। सास द्वारा की गयी उपेक्षा से लड़की मन ही मन क्षुब्ध हो उठी। बरसात का मौसम था। झोपड़ी में चारों ओर से पानी टपकने लगा।

इसी समय नरसी बेटी के पास आकर बोले —"बेटी, पूजा के कुछ फूल, बताशा और पानी दे जाओ।"

कुछ देर में लड़की सारी सामग्री ले आयी। नरसी पूजा करने बैठे तो मूसलाधार वर्षा होने लगी। पूजा करते हुए उन्होंने कहा —"हे इन्द्र, तुम इतने निष्ठुर हो गये हो कि मेरे प्रभु की पूजन-सामग्री को चौपट करने लगे।"

इतना कहना था कि झोपड़ी पर पानी का गिरना बंद हो गया। शेष स्थानों पर पानी बरसता रहा। यह दृश्य देखकर समधी चमत्कृत हुए, पर उनके मन की भावना नहीं बदली।

भोजन के पश्चात् बेटी ने कहा —"पिताजी, इन लोगों के ताने सुनते-सुनते मैं तंग आ गयी हूँ। पूरा परिवार ही दरिद्र है। आप इन लोगों की कुछ सहायता कर दें। आप यहाँ खाली हाथ आये हैं, देखकर ये लोग निराश हो गये हैं और ताना दे रहे हैं।"

'भक्तमाल' के अनुसार नरसी ने कहा —"मेरे प्रभु के पास क्या नहीं है? तू अपनी सास से पूछ आ कि उसे क्या चाहिए ?"

यह बात सुनते ही लड़की खुशी से उछलती हुई अपनी सास के पास आयी और उनकी जरूरत के बारे में पूछा।

सास ने व्यंग्य भरे शब्दों में कहा —"तेरा बाप क्या दाता कर्ण बन गया है? जिसके तन पर ठिकाने के कपड़े नहीं है, वह हमें क्या देगा। जा, कुएँ की जगत पर कपड़े कचारने के लिए दो पत्थर देने को कह देना। पता नहीं, यह भी दे सकेगा या नहीं ?"

दुखित होकर बेटी अपने बाप के पास आकर सारी बातें बतायीं।

नरसी ने कहा —"तुझे दुखी होने की जरूरत नहीं है, जो माँगेगी, वही मिलेगा। अब तू बता, तुझे क्या चाहिए ?"

लड़की ने कहा —"तुम पहली बार गाँव आये हो, यह बात सभी को मालूम हो गया है। इस गाँव के लोग बड़े गरीब हैं। यहाँ की औरतों को एक-एक नयी साड़ी देने की मेरी इच्छा है।"

नरसी ने कहा —"तेरी इच्छा पूरी हो जाएगी और तेरी सास को दो पत्थर देता जाऊँगा।"

'भक्तमाल' में आगे लिखा है —बेटी के जाने के बाद बड़े कातर भाव से नरसी ने अपने प्रभु श्रीकृष्ण को पुकारते हुए कहा —"भगवन्, मैंने अपने लिए आप से कभी कुछ नहीं माँगा। आप मेरे सम्मान की रक्षा के लिए सब करते आये हैं। इस बार भी मेरी इच्छा पूरी कर दो।"

कुछ देर बाद एक बैलगाड़ी दरवाजे के पास आकर रुक गयी जिसमें नाना प्रकार के कपड़े और सोने–चाँदी के दो पत्थर थे। गाड़ीवान ने कहा —"सेठजी ने इन सामानों की कीमत चुकता करने के बाद कहा कि यह सब सामान यहाँ पहुँचा दूँ। अपना सामान सहेज लीजिए।"

लड़की गाँव के प्रत्येक घर में जाकर साड़ी दे आयी। नरसी ने समधी को सोने–चाँदी वाला पत्थर सौंप दिया। पूरे गाँव में नरसी की प्रशंसा होने लगी। उनकी शक्ति देखकर समधी भी सन्न रह गये।

इस घटना के बाद लड़की हमेशा के लिए अपने पिता के घर चली आयी। यहाँ पिता के साथ वह भी श्रीकृष्ण की आराधना में लिप्त हो गयी।

+ + + +

एक अर्से के बाद बड़ा भाई वंशीधर अपने छोटे भाई नरसी के घर आया। उद्देश्य था —पिताजी का वार्षिक श्राद्ध करना।

वंशीधर ने कहा —"कल पिताजी का वार्षिक श्राद्ध करना है। कहीं अड्डेबाजी मत करना। बहू को लेकर मेरे यहाँ आ जाना। काम–काज में हाथ बटाओगे तो तुम्हारी भाभी को आराम मिलेगा।"

नरसी ने कहा —"पूजा–पाठ करके ही आ सकूँगा।"

इतना सुनना था कि वंशीधर उखड़ गये —"जिन्दगी भर यही सब करते रहना। जिसकी गृहस्थी भिक्षा से चलती है, उसकी सहायता की मुझे जरूरत नहीं। तुम अपना श्राद्ध अलग से अपने इच्छानुसार करना।"

नरसी ने कहा —"नाराज क्यों होते हो, भैया? मेरे पास जो कुछ है, उसी से पिताजी का श्राद्ध कर लूँगा।"

दोनों भाइयों में श्राद्ध के प्रश्न पर झगड़ा हो गया है, नागर–मण्डली को मालूम हो गयी। नरसी अलग से श्राद्ध करेगा, सुनकर नागर ब्राह्मणों ने बदला लेने को सोचा। पुरोहित प्रसन्न राय ने सात सौ ब्राह्मणों को नरसी के यहाँ आयोजित श्राद्ध में आने के लिए आमंत्रित किया। प्रसन्न राय यह जानते थे कि नरसी का परिवार माँगकर भोजन करता है। वह क्या सात सौ ब्राह्मणों को भोजन करायेगा? आमंत्रित ब्राह्मण नाराज हो जायँगे और तब उसे जातिच्युत कर दिया जायगा।

कहीं से इस षड़यंत्र का पता मानिक बाई को लग गया। वह चिन्तित हो उठी। दूसरे दिन स्नान करने के बाद नरसी श्राद्ध के लिए घी लेने बाजार गये। वे उधार में घी चाहते थे, पर किसी भी दुकानदार ने उधार देना स्वीकार नहीं किया। अन्त में एक दुकानदार इस शर्त पर घी देने को राजी हुआ कि बदले में नरसी को भजन सुनाना पड़ेगा। जब वह प्रसन्न हो जायगा तब घी देगा।

भगवान् का भजन सुनाने के लिए नरसी सर्वदा प्रस्तुत रहते हैं। भजन सुनायेंगे और घी भी लेंगे। नरसी भजन सुनाने में इतने भाव विभोर हो गये कि उन्हें समय का ध्यान नहीं रहा। वे यह भी भूल गये कि यहाँ श्राद्ध के लिए घी लेने आये हैं।

उधर नरसी के रूप में श्रीकृष्ण श्राद्ध का सारा आयोजन करते रहे। सात सौ ब्राह्मणों ने छककर भोजन किया। दक्षिणा में एक-एक अशरफ़ी प्राप्त किया। कहाँ वे आये थे नरसी को अपमानित करने और बदले में सुस्वादु भोजन तथा दक्षिणा में अशरफ़ी पाकर सोचने लगे कि क्या नरसी कोई जादू जानता है?

इधर दिन ढले घी लेकर नरसी जब घर आये तो देखा —पत्नी भोजन कर रही है। उन्हें इस बात का क्षोभ हुआ कि अभी श्राद्ध-क्रिया प्रारंभ नहीं हुई और पत्नी भोजन करने बैठी है। क्रोध को दबाकर उन्होंने कहा —''जरा देर हो गयी। क्या करूँ, कोई उधार घी दे नहीं रहा था। मगर तुम श्राद्ध होने के पहले भोजन क्यों करने लगी?''

मानिक बाई ने कहा —''तुम्हारा दिमाग तो ठीक है? स्वयं खड़े होकर तुमने श्राद्ध का सारा कार्य किया। ब्राह्मणों को भोजन कराया। लोगों के विदा होने पर खाना खाने बैठी हूँ। चलो, तुम भी खा लो।''

पत्नी की बातें सुनकर नरसी समझ गये कि श्रीकृष्ण प्रभु अपने भक्त के सम्मान की रक्षा के लिए यहाँ पधारे थे। मेरे लिए उन्हें कितना कष्ट उठाना पड़ रहा है। पता नहीं, अब कितने दिनों तक यह भार उठाते रहेंगे।

कुछ दिनों बाद एक दिन पति-पत्नी मिलकर भजन गा रहे थे। अचानक मानिक बाई को जाड़ा देकर तेज बुखार आ गया। पत्नी की सेवा करने के बदले वे भजन गाने के लिए दामोदर कुण्ड चले गये।

जब वहाँ से लौटे तब देखा —सुख-दुःख की चिरसंगिनी मानिक बाई उनका साथ हमेशा के लिए छोड़ गयी है। अब तक वही उनके परिवार को सम्हालती रही।

सच तो यह है कि नरसी के लिए मानिक बाई एक बंधन थी। अब दोनों लड़कियों को साथ लेकर वे गाँव-गाँव में, डगर-डगर में घूम-घूमकर प्रभु का गुण गाने लगे।

कृष्णजी कृष्णजी कृष्णजी कहें तो उठो रे प्राणी ।
कृष्णजी ना नाम बिना जे बोलो तो मिथ्या रे वाणी ॥

+ \+ \+ \+

नरसी भगत पढ़ना-लिखना नहीं जानते थे, पर आशु कवियों की तरह भजनों की रचना जबानी करते रहे। कहा जाता है कि वे पाँच हजार पद बना चुके हैं जो वैष्णव-साहित्य की अमूल्य निधि है। इन भजनों के आधार पर गुजराती साहित्य में अनेक काव्य ग्रंथ लिखे गये हैं। रास सहस्त्रपदी, सुदामा-चरित, शृंगारमाला, गोविन्द गमन, सूरत संग्राम आदि ग्रंथों में नरसी के भजनों का प्रभाव है।

नरसी का एक भजन बहुत लोकप्रिय है। इसका उपयोग महात्मा गाँधी किया करते थे —

वैष्णवजण तो तेणे कहिए जो पीड़ पराई जाणे रे ।
पर दुःखे उपकार करे तोये मन अभिमान न आणे रे ॥
सकल लोकमां सहुने वंदे, निन्दा न करे केणी रे ।
वाच काछ मन निश्चल राखे धन-धन जननी तेणी रे॥
समदृष्टि ने तृष्णा त्यागी, पर स्त्री जेणे मात रे ।
जिह्वा थकी असत्य न बोले, पर धन नव झाले हाथ रे ॥
मोह माया व्यापे नहिं जेणे, दृढ़ वैराग्य जेणा मनमां रे ।
रामनाम शुं ताली लागी, सकल तीरथ तेणा पैनमां रे ॥
वर्णलोभी न कपट रहित छे, काम-क्रोध निवार्या रे ।
भणे नरसैयो तेणूँ दरसन करतां कुल एकोतेर तार्या रे ॥

+ \+ \+ \+

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है कि जूनागढ़ के नागर-ब्राह्मणों के नेता सारंगधर थे। वे दिल के बड़े कुटिल और स्वार्थी थे। नरसी के स्वभाव, सज्जनता तथा चमत्कारों से प्रभावित होकर लोग उनके प्रति श्रद्धा ज्ञापन करते थे। इससे सारंगधर का महत्त्व घटता जा रहा था।

नरसी में एक विशेषता यह थी कि वे गुजराती समाज के ढेड़ (हरिजन) लोगों से प्रेम करते थे। उन्हें गले लगाते थे। उनके द्वारा आयोजित भजन-कीर्तन में शामिल होते थे। नरसी को जातिच्युत करने पर भी सारंगधर को कोई सफलता नहीं मिली। इससे चिढ़कर उसने एक षड़यंत्र किया।

एक वेश्या को प्रलोभन देकर फुसलाया। उससे कहा गया कि किसी प्रकार उसके चरित्र पर कलंक का दोष लगाओ। चंचला नामक उस कुलटा ने वैष्णवी का रूप धारण किया। करताल बजाती हुई कृष्ण नाम जपने लगी। इस वैष्णवी को देखकर नरसी ने पूछा —''आप कहाँ की रहनेवाली हैं? इधर कहाँ जा रही हैं?''

चंचला ने कहा —''मेरा निवास स्थान प्रभास है। इस समय द्वारिका में अवताररूपी श्रीकृष्ण का दर्शन करने जा रही हूँ। लोगों की जबानी सुना कि आप भी श्रीकृष्ण प्रेमी हैं, इसलिए आपसे मिलने चली आयी।''

यह बात सुनकर नरसी गद्‌गद हो उठे। चंचला ने गौर से नरसी को देखा। गदराये हुए शरीर का आलिंगन करने के लिए वह व्याकुल हो उठी।

दिन के बाद रात्रि का आगमन हुआ। संध्या–आरती के पश्चात् प्रसाद लेकर सभी लोग घर चले गये। मंदिर का वातावरण सुनसान हो गया। केवल चंचला और नरसी रह गये। आधी रात को वैष्णवी पोशाक बदलकर अप्सरा के रूप में चंचला नरसी के सामने प्रकट हुई।

नरसी विस्मय से उस कुलटा को देखते रह गये। उन्हें चकित रूप में देखते देख वह बोली —''मैं आपका मनोहर रूप देखकर मोहित हो गयी हूँ। मुझे रति–सुख देकर मेरी अभिलाषा पूर्ण करें।'' कहती हुई वह इनके पास आयी।

नरसी घबराकर पीछे हटते हुए बोले —''सुभगे, तुम वैष्णवी हो, तीर्थयात्रा के लिए निकली हो। कई घंटे के भीतर तुममें यह कैसा परिवर्तन हो गया? तुम देवी से दानवी बन गयी। न जाने कितने जन्मों के बाद तुम्हें यह मानव–तन मिला है। क्षणिक–सुख के लिए मैं नरकगामी नहीं होना चाहता। अच्छा होगा कि तुम अपने घर चली जाओ।''

इस तरह देर तक नरसी उसे समझाते रहे। उनके प्रबोध वचनों का प्रभाव कुलटा पर पड़ा। उसकी काम–वासना कर्पूर की तरह उड़ गयी। तुरंत नरसी के चरणों पर गिरकर अपने दुष्कर्मों के लिए क्षमा माँगने लगी।

प्रश्न करने पर उस कुलटा ने सारंगधर के षड़यंत्र का पर्दाफाश कर दिया। कई दिनों बाद लोगों ने देखा —चंचला ने वेश्यावृत्ति त्यागकर तपस्विनी का रूप धारण कर लिया है। अब नित्य मंदिर में जाकर भजन गाती है।

अपनी असफलता पर सारंगधर जल भुन गये। एक दिन वे कहीं से आ रहे थे तभी उन्हें साँप ने काट लिया। उन्हें भगवान् के भक्त को परेशान करने का दण्ड मिल गया। उनके चीखने चिल्लाने पर आसपास के लोग दौड़ आये। घर के लोग आकर रोने लगे। ओझा–वैद्य को बुलाया गया, पर कोई लाभ नहीं हो रहा था।

नरसी के एक भक्त ने कहा —"हमारे नरसी भक्त तो चमत्कार करते हैं। एक बार उन्हें बुला लो। शायद उनके श्रीकृष्ण सारंगधर को बचा लें।"

लोग नरसी के यहाँ दौड़े। नरसी भक्त समदर्शी थे। वे किसी को अपना शत्रु नहीं मानते थे। वे तुरंत आये और सारंगधर के मुँह में श्रीकृष्ण का चरणामृत उड़ेलकर भजन गाने लगे। थोड़ी देर बाद विष का प्रभाव घटने लगा और सारंगधर को पुनर्जन्म प्राप्त हुआ।

नरसी भक्त के जीवन में ऐसे अनेक चमत्कार हुए हैं। इन सभी चमत्कारों के पीछे उनके प्रभु श्रीकृष्ण सहायता करते रहे।

योग एक प्रक्रिया है, उसमें साधना–तपस्या करनी पड़ती है। नाम जपना एक दुर्लभ मार्ग है। नाम जपकर डाकू वाल्मीकि महर्षि वाल्मीकि हो गये। उच्चकोटि के संत हमेशा लोगों को नाम जपने की सलाह देते हैं।

एक दिन नरसी ने अपने प्रभु के निकट निवेदन किया कि भगवन् अब मुझे अपने चरणों में स्थान दें। कब तक मैं आपको कष्ट देता रहूँगा। सन् १४८७ ई० में आप परलोकवासी हो गये।

सन्त कबीरदास

सन्त कबीरदास

कबीरदासजी का जीवन जन्म से लेकर मृत्यु तक अनेक विवादास्पद घटनाओं से भरा पड़ा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तथा अन्य अनेक विद्वानों ने लिखा है कि स्वामी रामानन्द ने किसी विधवा ब्राह्मणी को पुत्रवती होने का आशीर्वाद दिया था। फलस्वरूप कबीर का जन्म हुआ।[1] कुछ लोग महाराज रघुराज सिंह की रचना से उद्धरण देते हैं—

रामानन्द रहे जगस्वामी । ध्यावत निशिदिन अंतर्यामी॥
तिनके ढिंग विधवा इक नारी। सेवा करै बड़ो श्रमधारी॥
प्रभु इक दिन रह ध्यान लगाई। विधवा तिय तिनके ढिंग आई॥
प्रभुहि कियो बदन बिन दोषा । प्रभु कह पुत्रवती भरि घोषा॥
+ \+ \+ \+
सो सुत लै तिय फेंक्यो दूरी। कढ़ी जुलाहिन तहँ यकरूरी॥[2]

दूसरी ओर डा० रामकुमार वर्मा का तर्क है—"यदि कबीर विधवा के संतान थे तो यह बात लोगों को कैसे मालूम हुई? उसने तो लहरतारा तालाब के पास छिपा दिया था। यदि रामानन्द के आशीर्वाद से हुआ था तो इसे विधवा ने छिपाने का प्रयत्न क्यों किया? रामानन्द के आशीर्वाद से कलंक-कालिमा की आशंका नहीं हो सकती। इस प्रकार कबीर साहब की यह कलंक-कथा निर्मूल सिद्ध होती है।"

आगे आप लिखते हैं—"कबीर पंथियों में अनेक हिन्दू थे जो अपने गुरु को जुलाहा जैसी हीन और नीच जाति से हटाकर वे उनका सम्बन्ध ब्राह्मण जाति से जोड़ना चाहते थे। दूसरी ओर कुछ कट्टर हिन्दू-मुसलमान कबीर की धार्मिक उच्छृंखलता से चिढ़कर उन्हें अपमानित करने के लिए उनके जन्म का सम्बन्ध इस कलंक-कथा से घोषित करना चाहते थे।[3]

---

[1] हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।

[2] भक्तमाला, श्री रघुराज सिंह, पृष्ठ ७२२-२४।

[3] कबीर का रहस्यवाद, डा० रामकुमार वर्मा, पृष्ठ १६४।

संवत् १६६१ में संपादित श्री गुरुग्रंथ में कबीर के मुसलमान-कुल में जन्म लेने की चर्चा है। केवल यही नहीं, 'सद्गुरु गरीबदासजी साहिब वाणी' से स्पष्ट है कि कबीर ने काशी में सीधे मुसलमान (मोमिन) को दर्शन दे, उसके घर जन्म लिया। गरीबदासजी साहिब की वाणी संवत् १६८० की एक प्राचीन हस्तलिखित प्रति के आधार पर प्रकाशित की गयी है।[1]

कुछ विद्वान कबीरदास को मुसलमान मानते हैं, पर डा० रामकुमार वर्मा का कहना है कि कबीर ने अपने को जुलाहा तो कई बार कहा है, किन्तु मुसलमान एक बार भी नहीं कहा। वे अपने को न हिन्दू मानते थे और न मुसलमान, बल्कि इन दोनों से परे अपने को योगी कहते थे जो जुगी जाति का पर्याय है।[2]

कबीरपंथी इन सभी धारणाओं को नहीं मानते। उनका कथन है कि कबीर अवतारी संत थे। उनका जन्म मानव शरीर से नहीं हुआ है। नीरू जुलाहा अपनी पत्नी नीमा को ससुराल से विदा करवाकर अपने घर लौट रहा था। लहरतारा के पास प्यास लगने पर नीमा तालाब में पानी पीने गयी। वहाँ कमलदल पर कबीर को अठखेलियाँ करते देख उन्हें उठा लायी।

कबीरपंथियों के इस तर्क को आज के युग में लोग नहीं मान सकते। अब एक प्रश्न उठता है कि जो व्यक्ति कभी पाठशाला नहीं गया—'मसि कागद छूयो नहीं, कलम गह्यो नहिं हाथ।' किसी तेजस्वी योगी से विधिवत योग की शिक्षा नहीं ली, वह व्यक्ति योगियों की तरह जीवन में अनेक बार योग-विभूति किस शक्ति के आधार पर दिखाता रहा? कबीर के जीवन में जैसी घटनाएँ हुई हैं, वैसी घटनाएँ भारत के महान् योगियों के जीवन में हुई हैं। कुछ लोग उनके गुरु का नाम शेखतकी कहते हैं, पर यह गलत तर्क है। 'दबिस्तान मुहासीन फनी' के अनुसार कबीर अपने आध्यात्मिक गुरु की तलाश में अनेक हिन्दुओं और मुसलमानों के पास गये, पर कोई उनकी ज्ञान तृष्णा को सन्तुष्ट नहीं कर सका । इसी उद्देश्य से वे जौनपुर, मानिकपुर, इलाहाबाद आदि स्थानों का भ्रमण करते रहे।

कबीर में जो यौगिक प्रतिभा थी, निस्सन्देह उन्हें किसी अलौकिक योगी से प्राप्त हुई थी। इस बात की पुष्टि परमहंस योगानन्द के इस कथन से हो जाती है—''क्रिया-योग एक सरल मनःकायिक प्रणाली है जिसके द्वारा मानव-रक्त कार्बन से रहित तथा आक्सीजन से प्रपूरित हो जाता है। इस अतिरिक्त आक्सीजन के अणु जीवन-प्रवाह में रूपान्तरित होकर मस्तिष्क और मेरुदण्ड के चक्रों को नवशक्ति से पुनः पूरित कर देते हैं। अशुद्ध और नीले रक्त-संचय को रोककर योगी तन्तुओं के अपक्षय कम कर देने या रोक देने में समर्थ होता है। प्रगत योगी अपने कोशाणुओं को जीवन-शक्ति में

---

[1] सम्पादन-श्री अजरानन्द गरीबदासजी रमता राम, आर्यसुधारक छापाखाना, बड़ौदा।

[2] संत कबीर, रामकुमार वर्मा, पृष्ठ ६६।

रूपान्तरित कर सकता है। एलिजाह, ईसामसीह, कबीर एवं अन्य महापुरुष 'क्रियायोग' या उसके समान ही किसी अन्य प्रविधि के प्रयोग में अवश्य निष्णात थे, जिसके द्वारा वे अपने शरीर को इच्छानुसार प्रकट या अदृश्य कर सकते थे।''[1]

सन्त श्यामाचरण लाहिड़ी इस शताब्दी के महान् योगी हो गये हैं। आपके गुरु महावतारजी ने आपको दानापुर से आकर्षित कर देहरादून में बुलाया था और वहीं क्रियायोग की दीक्षा दी थी।[2] इसका उल्लेख परमहंस योगानन्दजी ने किया है—''भारतवर्ष में महावतार बाबाजी का उद्देश्य रहा है महापुरुषों के जन्म लेने के विशेष प्रयोजन की पूर्ति में उनकी सहायता करना। इस प्रकार शास्त्रीय वर्गीकरण के अनुसार वे एक महावतार हैं। उन्होंने स्वयं बताया है कि संन्यास-आश्रम के पुनः संगठक एवं अद्वितीय तत्त्वज्ञानी जगद्गुरु शंकराचार्य तथा सुप्रसिद्ध मध्ययुगीन कबीर को उन्होंने योग-दीक्षा दी थी।''[3]

परमहंस योगानन्द स्वयं योगी पुरुष थे। आपके गुरु श्री युक्तेश्वर गिरि संत श्यामाचरण लाहिड़ी के प्रिय शिष्य थे। श्री युक्तेश्वर गिरि ने प्रत्यक्ष रूप से अपने दादा गुरु का दर्शन किया था। हिमालय में रहनेवाले अनेक सन्त लम्बी उम्रवाले होते हैं। स्वामी विशुद्धानन्दजी के गुरु महातपाजी १२०० वर्ष के हैं। योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी ने अपनी डायरी में बार-बार कबीर के नाम का उल्लेख किया है जिससे यह बोध होता है कि वे संभवतः कबीर के रूप में अवतरित हुए थे। भले ही कुछ लोग इस तथ्य को स्वीकार न करें, पर योगियों की एषणा-शक्ति पर विश्वास करनेवाले इस सत्य पर आस्था रखते हैं।

कबीर का व्यक्तित्व न केवल विलक्षण रहा, बल्कि उनकी वाणियाँ भी अपने निरालेपन के लिए महत्त्वपूर्ण है। उनके विचारों में बौद्धों, नाथों, सूफियों का प्रभाव है। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी की दृष्टि में वे महान् व्यंग्य लेखक थे। भले ही मुस्लिम परिवार में उनका पालन-पोषण हुआ हो, पर बनारस के हिन्दू वातावरण का उन पर प्रभाव पड़ा था।

''कबीर का जन्म ऐसी परिस्थिति में हुआ था जब विषमताएँ, नैराश्य, विश्वासघात, नृशंसता अपना ढोल पीट-पीटकर हिन्दुओं के दुर्बल मन को भयभीत कर रहा था। समाज में कुत्सित विचार एवं बाह्याडम्बरों का प्राबल्य था। धर्म के ठीकेदार मठाधीश बनकर अनाचार का जीवन व्यतीत कर रहे थे। सामाजिक विषमताओं से तंग आकर निम्न जाति के लोग जाति-परिवर्तन पर उतारू हो गये थे। आर्थिक संकट से सामान्य जनता की रीढ़ टूट गयी थी। भावुक कबीर से समाज की यह दशा देखी न

---

[1] एक योगी की आत्मकथा, पृष्ठ ३४३-४४।

[2] भारत के महान् योगी, भाग ३।

[3] एक योगी की आत्मकथा, पृष्ठ ४३३।

गयी। इस विकट स्थिति के विरुद्ध उनके मानस-जगत में इतनी प्रचण्ड प्रतिक्रिया हुई कि उनकी वाणी तत्कालीन सभी क्षेत्रों को आवृत्त कर सकी। बाह्याडम्बर, असत्य, अनाचार, व्यभिचार, वर्णभेद के प्रति उद्‌भूत यही प्रतिक्रिया ही कबीर की वास्तविक क्रान्ति की भावना थी।''[1]

+ + + +

नीरू और नीमा अपने नवजात शिशु को अपने घर ले आये। सन्तान-हीन दम्पति अपना सम्पूर्ण स्नेह और प्यार देकर उसका पालन-पोषण करने लगे। श्री यूसुफ हुसैन के कथनानुसार नीरू नवजात शिशु के नाम के लिए जब काजी साहब के पास गया तब 'कुरान शरीफ' खोलने पर जो शब्द चुना गया, वह था—कबीर। अरबी में कबीर का अर्थ 'महान्' है। कबीर ने अपने नाम के बारे में कहा है—

कबिरा तू ही कबीरू तोरे नामकबीर।
राम रतन तब पाइये जब पहले तजशरीर॥

नीरू को जुगी या कोरी जाति का माना गया है जिसे जुलाहा कहा जाता है। भारत के अधिकांश जुलाहा जिन्हें वयनजीवी या बुनकर कहा गया है, हिन्दू जाति के थे। समाज से उपेक्षित और शासन के अत्याचार से पीड़ित होकर इन लोगों ने मुस्लिम-धर्म को स्वीकार कर लिया था। काशी में कोरी जाति के लोगों ने मुस्लिम-धर्म को अपना लिया था।

पाठशाला जाने लायक उम्र होने पर एक दिन नीरू कबीर को लेकर मौलवी साहब के पास आया। पहले ही दिन मौलवी साहब ने जो पाठ पढ़ाया उसे सुनकर कबीर ने उन्हें 'साम्प्रदायिक' कहा और घर वापस चले आये। इसके बाद फिर कभी मदरसा नहीं गये।

लड़के का पढ़ाई में मन लगता नहीं, देखकर नीरू ने उसे अपने पुश्तैनी काम में लगाया। चन्द दिनों में पिताजी का सहयोग पाकर कबीर ने कपड़ा बुनना और सूत कातना सीख लिया। नीरू के साथ बाजार जाता, सूत खरीदता और कपड़ा बेचता था।

उन दिनों हिन्दुस्तान की हालत खराब थी। लोगों पर खासकर गरीब और हिन्दुओं के साथ अमानुषिक व्यवहार किया जाता था। लोग अपनी दर्द भरी कहानी भगवान् के निकट सुनाते थे। अपने गम को भुलाने के लिए भजन-कीर्तन तथा कथाओं में भाग लेते थे। भक्तिकाल की सम्पूर्ण रचनाएँ इस बात की साक्षी हैं कि उन दिनों के संत मानव-संवेदना को काव्य के माध्यम से प्रकट करते रहे।

कबीर का किशोर-हृदय मानव-पीड़ा से विचलित होने लगा। अक्सर घर पर जब डाँट पड़ती तब वह घर से चलकर गंगा किनारे घाट पर आता जहाँ भजन-कीर्तन होता

---

[1] मध्ययुगीन भारतीय समाज एवं संस्कृति, पृष्ठ ३४५।

था। कबीर की मति-गति देखकर नीरू-नीमा चिन्तित हो उठे। उन्होंने अनुभव किया कि लड़का स्वधर्म के विपरीत बुतपरस्त बनता जा रहा है।

उन दिनों रामानंद स्वामी की ख्याति चारों ओर फैल रही थी। वे अपना उपदेश क्षेत्रीय भाषा में दे रहे थे। सबसे बड़ी खूबी यह थी कि वे दु:खी समाज के हृदय को शान्त कर रहे थे। केवल यही नहीं, पिछड़ी जाति को समान अधिकार देकर उन्होंने इन्हें मुसलमान बनने से रोका। उच्च जाति के अलावा शूद्रों को भी उन्होंने अपना शिष्य बनाया। वस्तुतः स्वामी रामानन्द अपने युग के अन्यतम महापुरुष थे। उत्तर भारत में भक्ति आन्दोलन के वे जन्मदाता थे।

इन्हीं दिनों किसी अज्ञात प्रेरणावश कबीर ने निश्चय किया कि वह स्वामी रामानन्द से दीक्षा लेगा। पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि वे विधर्मियों को कभी दीक्षा नहीं देते। लेकिन इस बात पर उसे विश्वास नहीं हुआ। संन्यासियों के निकट तो सभी धर्म समान हैं। बालक-वृद्ध में भेद नहीं होता। जरूर यह अफवाह है। स्वामी रामानन्द उन दिनों पंचगंगाघाट स्थित अपने मठ में रहते थे जहाँ अनेक शिष्य उनकी सेवा करते थे।

कबीर ने गुपचुप रूप से पता लगाया तो ज्ञात हुआ कि स्वामीजी नित्य ब्राह्म मुहूर्त में गंगा-स्नान करने जाते हैं। किशोर-बुद्धि या भवितव्य के कारण उसने सोचा कि जब स्वामीजी सबेरे स्नान करने के लिए आयेंगे तब उनसे मिलकर अपनी बात कहेगा। कबीर को इस बात की जानकारी हो गयी थी कि रामानन्द स्वामी बहुत ही उदार और समदर्शी हैं। उनके बारे में कुछ लोग व्यर्थ का अपवाद फैलाते हैं। वे अछूतों के यहाँ जाने में संकोच नहीं करते। जब सामान्य ढंग से उनसे मुलाकात नहीं हुई तब वह एक दिन रात गये पंचगंगाघाट की सीढ़ी पर आकर सो गया।

उसे विश्वास था कि स्वामीजी जब सबेरे स्नान के लिए आयेंगे तब उनकी खड़ाऊँ की आवाज सुनते ही वह जाग जायगा और तब उनसे अपना निवेदन करेगा।

दूसरे दिन भोर के समय स्वामी रामानन्दजी स्नान के लिए सीढ़ियों से नीचे उतर रहे थे कि अचानक एक चीख गूँज उठी। स्वामीजी समझ गये कि उनका खड़ाऊँवाला पैर किसी सोते हुए व्यक्ति पर पड़ गया है। वे तुरंत बैठ गये और घायल को उठाकर उसके मस्तक को सहलाने लगे। भरपूर वजन शरीर पर पड़ने के कारण कबीर को सम्हलने में जरा समय लगा। फिर कराहते हुए उसने स्वामीजी के चरण पकड़ लिए।

स्वामीजी के मुँह से अचानक निकला—''राम-राम कहो बेटा। राम-राम। सब कष्ट दूर हो जाएगा।''

कबीर को मुँह माँगी मुराद मिल गयी। स्वामीजी के स्पर्श से उसे नया जीवन मिला। कबीर की सुप्त अतीन्द्रिय शक्ति ने राम-नाम जपने को बाध्य किया। क्रमशः राम-नाम उसके मन तथा मस्तिष्क में अपना प्रभाव जमाने लगा।

जो लोग कबीर को मुसलमान मानते हैं, उन्हें भी स्वीकार करना पड़ेगा कि नाम जपने का प्रभाव प्रत्येक जाति और धर्मवालों पर समान रूप से पड़ता है। निस्सन्देह कबीर हिन्दू के औरस थे अन्यथा मुस्लिम परिवार में पालित होने पर भी हिन्दू-संस्कार से प्रभावित न होते। यहाँ तक अपनी रचनाओं में भी राम-नाम की महिमा का वर्णन उन्होंने किया है।

स्वामी रामानन्द को यह जानकर आश्चर्य हुआ कि उनका कोई शिष्य मुसलमान जुलाहा है। पूछताछ करने पर ज्ञात हुआ कि नीरू जुलाहे का पुत्र कबीर अपने को उनका शिष्य कहता है। उसे बुलाकर स्वामीजी ने पूछा—''क्यों बेटा, तुम्हें मैंने शिष्य कब बनाया? मुझे तो स्मरण नहीं हो रहा है। इस तरह असत्य का प्रचार क्यों कर रहे हो?''

कबीर ने कहा—''मेरी इच्छा थी कि आपसे दीक्षा लूँ, पर कहीं आप विधर्मी को दीक्षा न दें, इसलिए आपके चरणों का सहारा लिया। आपके चरण-स्पर्श से मुझे मंत्र मिल गया। याचक बनकर माँगने की आवश्यकता नहीं हुई। अब आप चाहें तो अपना लें या ठुकरा दें, इसे भी आपकी कृपा समझकर स्वीकार कर लूँगा।''

स्वामी रामानन्द ने मुस्कराते हुए कहा—''तुम्हारी भक्ति देखकर मुझे आत्म संतोष ही नहीं हुआ, बल्कि एक नयी प्रेरणा मिली। शिष्य के रूप में तुम मेरे निकट प्रिय बन गये। अब आगे से समाज से उपेक्षित सभी लोगों को दीक्षा दूँगा। इससे समाज का कल्याण होगा। मेरा आशीर्वाद सर्वदा तुम्हारी रक्षा करेगा। खूब राम-नाम जपो। नाम जपने से वाल्मीकि जैसे डाकू भी महान् संत बन गये जिनकी राम कथा से सारा संसार प्रभावित है। भगवान् तुम्हारा कल्याण करेंगे।''

इस घटना के बाद से स्वामी रामानन्द ने उच्च श्रेणी के लोगों के अलावा नीच श्रेणी के लोगों को अपना शिष्य बनाना प्रारम्भ कर दिया। सर्वश्री अनन्तानन्द, कबीर, सुखानन्द, सुरसुरानन्द, पीपा, भवानन्द, रैदास, धन्ना, सुरसुरी, सेना, सदना आदि उनके शिष्य थे। इनमें जुलाहा, चमार, जाट, दर्जी, कसाई, राजपूत आदि जाति के लोग थे। रामानन्द के समन्वयवाद ने समाज में अद्‌भुत क्रान्ति की।

इसमें कोई संदेह नहीं कि गुरु के प्रति कबीर की असीम भक्ति थी। उन्होंने प्रत्यक्ष रूप से अनेक बार महसूस किया था कि मुसीबत वक्त उनके गुरु उनकी रक्षा करते हैं। अपने एक पद में गुरु के बारे में कहते हैं—

गुरु कुम्हार सिष कुंभ है, गढ़ि गढ़ि काढ़ै खोट।
अन्तर हाथ सहार दै, बाहर बाहै चोट ॥
गुरु धोबी सिष कापड़ा, साबुन सिरजन हार।
सुरती सिला पर धोइये, निकसै जोति अपार ॥
कबीर ते नर अंध हैं, गुरु के कहते और।
हरि रुठे गुरु ठौर हैं, गुरु रुठे नहीं ठौर ॥
यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिले तो भी सस्ता जान ॥

+ \+ \+ \+

श्री जी०एच० वेस्टकाट ने लिखा है—''कबीर की सत्यवादिता तथा सामाजिक रूढ़ियों के प्रति उनके अनादर के फलस्वरूप चारों ओर उनके दुश्मन खड़े हो गये। कबीरपंथियों की मान्यता के अनुसार यह शेखतकी ही थे जिन्होंने मुसलमानों की भावनाओं को स्वर दिया। यह प्रसिद्ध पीर बादशाह सिकन्दर लोदी के पास पहुँचा और उसने कबीर पर आरोप लगाते हुए शिकायत की कि वह अपने आपको दैवी गुणों से सम्पन्न बतातां है। मेरी आपसे दरख्वास्त है कि ऐसे जुर्म के लिए काफिर को सजा-ए-मौत देनी चाहिए।''

पीर के कथन से सहमत होकर बादशाह ने फरमान निकाला कि कबीर को पकड़कर दरबार में हाजिर किया जाय।

कबीर को पकड़कर लानेवाले लोग उन्हें मनाकर दरबार में ले आये। मिन्नत करने में सिपाहियों को देर हो गयी थी। शाम के वक्त कबीर को बादशाह के सामने पेश किया गया।

कबीर बिना बोले, चुपचाप खड़े रहे। शाही दरबार में बादशाह के सामने आने पर हर कोई सलाम करता है, पर कबीर को ऐसा न करते देख काजी क्रोध से चीख उठा—''अरे काफिर, तू बादशाह सलामत को सलाम क्यों नहीं करता?''

कबीर ने शान्त भाव से कहा—''जो दूसरों का दुःख दर्द जानते हैं, वे पीर होते हैं। बाकी तो सब काफिर हैं।''

बादशाह ने पूछा—''मैंने हुक्म दिया था कि सबेरे तक यहाँ हाजिर हो जाना। तुम उस वक्त क्यों नहीं आये?''

कबीर ने कहा—''मैं एक नजारा देखने में अटक गया था।''

बादशाह ने गुस्से से पूछा—''वह ऐसा कौन-सा नजारा हो सकता है जो सुलतान की हुक्मउदूली करने को मजबूर करे। बोलो?''

कबीर ने जवाब दिया—''मैंने सूई की नोंक से भी बारीक छेद से एक कारवाँ गुजरते देखा।''

बादशाह ने कहा—''तुम झूठे हो।''

कबीर ने कहा—''ऐ सुलतान, स्वर्ग और नरक के बीच कितना बड़ा अंतर है। सूरज और चाँद के बीच अन्तरिक्ष में अनगिनत हाथी और ऊँट समाये हुए हैं और यह सब एक आँख की पुतली की नोंक से देखे जा सकते हैं जो कि सूई के छेद से भी छोटी है।''

यह जवाब सुनकर सिकन्दर लोदी ने प्रसन्न होकर कबीर को छोड़ दिया। लेकिन इस आरोप से मुक्त होने पर भी उन्हें मुक्ति नहीं मिली। सनातनी ब्राह्मण कबीर की कार्यवाही से काफी चिढ़े हुए थे। उन लोगों ने इन्हें अधार्मिक ही नहीं कहा, बल्कि

इनके चरित्र पर दोष लगाते हुए एक बुरे चलन की औरत से मिताई की अफवाह फैलायी।

पुनः बात सुलतान के पास पहुँची। कबीर बन्दी के रूप में पेश किये गये। इनकी सफाई पर बिना ध्यान दिये सुलतान ने इन्हें प्राणदण्ड की सजा दी।

कबीर को सांकल से बाँधा गया और एक नाव पर बैठा दिया गया। इसके बाद नाव को पत्थरों से भर दिया गया ताकि कबीर नाव डूबने के साथ ही जल समाधि ले लें। इन्हें नदी में जिन्दा डुबो देने की सजा दी गयी थी। नाव तो डूब गयी, पर कबीर एक चीते की खाल पर बैठे एक बच्चे के रूप में नदी में से तैरते हुए ऊपर आ गये।

यह दृश्य देखकर राज्यकर्मचारी दंग रह गये। पुनः कबीर को पकड़ा गया। अब उन्हें जिन्दा जला देने का प्रयत्न किया गया। इस कार्य में भी लोगों को असफलता मिली। सुलतान के पास समाचार भेजा गया कि कबीर कोई जादूगर है। इसे अवश्य पिशाच-सिद्धि प्राप्त है। बादशाह की ओर से आदेश हुआ कि उसे हाथी के पैरोंतले कुचल दिया जाय।

लोग एक पागल हाथी को ले आये। कबीर के सामने उसे खड़ा किया गया। जब तक लोग इधर-उधर भाग खड़े हों, उसके पहले ही हाथी और कबीर के बीच एक सिंह न जाने कहाँ से पैदा हो गया। इस प्रकार कबीर को मार डालने की सारी योजनाएँ नाकाम साबित हुईं।

कुछ फारसी और अरबी की पुस्तकों में भी कबीर के बारे में इस तरह की घटनाओं का उल्लेख है। कबीरदास आजीवन समाज के विभिन्न लोगों से उत्पीड़न सहते रहे। उन्हें अनेक प्रकार के शारीरिक दण्ड दिये गये हैं। सांकल, बेड़ियों से बाँधा गया था और हाथों को पीठ पीछे बाँधकर हाथी के सामने छोड़ दिया गया था। श्री ब्रिग्स के अनुसार सिकन्दर लोदी सन् १४९४ ई० में जब काशी आया था तब कबीर के साथ इस प्रकार की घटनाएँ हुई थीं।

कबीरपंथियों के अनुसार कबीरदास बादशाह के सामने तीन बार पेश हुए थे। दो बार की घटनाओं का उल्लेख किया गया है। दो-दो बार कबीर के बच जाने पर भी विरोधी शान्त नहीं हुए। उनकी कोशिश यह थी कि जिस प्रकार बादशाह ने काशी के अनेक मंदिरों को नष्ट कर दिया, उसी प्रकार कबीर को मौत की सजा दी जाय। इस बार हिन्दू और मुसलमान दोनों मिलकर बादशाह के पास गये। दोनों की शिकायत यह थी कि वह हमारे धर्म में हस्तक्षेप कर रहा है। मुसलमान होकर राम-राम जपकर मुसलमानी-धर्म का अपमान कर रहा है। कट्टरपंथी हिन्दुओं ने कहा कि मुसलमानों को राम-राम कहना नहीं चाहिए।

पुनः कबीर को दरबार में हाजिर किया। कबीरदास सारी बातें जान चुके थे। दरबार में आकर उन्होंने एक बार चारों ओर देखा और जोर से अट्टहास कर उठे।

सभी दरबारी चौंक उठे। बादशाह की आँखें क्रोध से लाल हो गयीं। उसने पूछा—"तुम्हारे हँसने का मतलब क्या है ?"

कबीर ने कहा—"जहाँपनाह, मैं यही चाहता था। इसी कार्य के लिए जीवन भर संघर्ष करता आ रहा हूँ। मैं चाहता था कि हिन्दू-मुसलमान में मेल हो। मेरे इस प्रयत्न का लोग हँसी उड़ाते आये हैं। आज यह संभव हो गया। लेकिन मैं इन्हें ईश्वर के दरबार में मिलाना चाहता था। मगर ये लोग जहाँपनाह के दरबार में मिल रहे हैं। बस, ठिकाना जरा गलत हो गया। इसीलिए हँसा था। यह सिंहासन छोटा है। मैं तो उस परमेश्वर के सिंहासन के पास इन्हें ले जाना चाहता था जो सारी दुनिया का मालिक है। आज इन्हें एक ही कठघरे में खड़ा देखकर मुझे विश्वास हो गया कि मेरा रास्ता गलत नहीं है। मेरा कार्य असंभव नहीं है। जहाँपनाह, बेअदबी के लिए मुझे क्षमा करें।"

कबीर की इस सफाई से सिकन्दर लोदी प्रसन्न हो उठा। उसके हृदय में कबीर के प्रति आदर की भावना पैदा हो गयी। उन्हें सम्मान के साथ छोड़ दिया गया।

कबीरदास संपूर्ण भारत ही नहीं, बल्कि अरब मुल्कों की यात्रा भी कर चुके हैं। जौनपुर, प्रतापगढ़ आदि स्थानों की यात्रा करते हुए आप झूसी आये जहाँ इक्कीस गुरुओं की समाधि थी। इस समाधि के सामने इस्लाम के बड़े-बड़े नेता और शासक आकर सिर झुकाते थे। जब यहाँ कबीर साहब आये तब उन्होंने प्रश्न किया—"कहिये महाशय, आप लोग तो मूर्तिपूजक नहीं हैं, पर यह क्या कर रहे हैं? क्या ये समाधियाँ कभी कुछ बोलती हैं? यदि बोलती हैं तो आज जरा बोलाइये। अगर नहीं बोलती हैं तो आपकी मान्यताएँ भ्रमपूर्ण हैं या नहीं? जैसे हिन्दू मूर्तिवादी हैं, ठीक उसी प्रकार आप लोग भी कब्रवादी हैं। आप दोनों में कोई अंतर नहीं है। केवल नाम का अंतर है। आप दोनों का धर्म भ्रामक दशा में है।"

मुहम्मद शेखतकी की आगे चर्चा की गयी है जिन्होंने कबीरदास की शिकायत सिकन्दर लोदी से की थी। मेरी समझ से निम्न घटना के कारण शेखतकी ने कबीरदासजी से चिढ़कर ही शिकायत की थी। इस घटना के बारे में श्री आचार्य महन्त गंगाधर शास्त्री ने लिखा है—शेखतकी अपने शिष्यों के साथ गंगा तट पर टहल रहे थे। ठीक इसी समय एक शव बहता हुआ आ रहा था। कबीर साहब वहाँ मौजूद थे। शेखतकी की ऐशी-शक्ति की परीक्षा लेने के लिए कबीर साहब ने पूछा—"शेख साहब, यह जो शव आ रहा है, यह मृतक है या जीवित?"

शेख साहब मौन रहे, क्योंकि उनके पास दैवी-शक्ति का अभाव था। उन्हें चुप रहते देख कबीर साहब ने कहा—"यह मृत नहीं है। दरअसल यह एक योगी है। इसने प्राणवायु को ऊपर चढ़ा लिया, पर उतार नहीं सका। फलस्वरूप इसे मृतक समझकर लोगों ने नदी में बहा दियां है।" इसके बाद कबीरदास ने पद्मनाभदास से कहा—"उस शव को यहाँ ले आओ।"

शव के आने पर कबीरदास ने उसके शरीर को सहलाते हुए मस्तिष्क के नसों को दबाया। उसके प्राणवायु को ब्रह्माण्ड से उतार कर कण्ठ में ले आये। इससे उसकी कुण्डलिनी की क्रिया शुद्ध हो गयी। मृतक योगी अंगड़ाई लेते हुए उठकर बैठ गया। चारों ओर देखते हुए उसने पूछा—"मैं यहाँ कैसे आ गया?"

कबीर साहब ने ज्योंही उसके मस्तक को सहलाया, त्योंही उसे ज्ञान प्राप्त हो गया। बिना बताये वह समस्त घटना से अवगत हो गया।

+ + + +

विभिन्न स्थानों का भ्रमण करते हुए कबीर साहब गुजरात प्रान्त में आये। मार्ग में जंगल के भीतर एक कुटिया देखकर कबीर साहब अपने शिष्यों के साथ वहाँ आये तो देखा—एक साधु वहाँ मौजूद है।

इन दिनों यहाँ एक मेला लगता था। बाहरी साधुओं को यहाँ रुकते देखकर उक्त साधु ने कहा—"तुम लोग यहाँ से भाग जाओ। अन्यथा तुम लोगों को अन्न-जल तक नहीं मिलेगा।"

कबीर ने कहा—"तुम संत हो और हम सब भगवान् के भक्त हैं। यहाँ रात भर ठहरना है। क्यों व्यर्थ में ईर्ष्या करते हो?"

साधु ने कहा—"ठीक है, रहो। लेकिन अन्न, जल और अग्नि तुम्हें नहीं मिलेगा।"

कबीर ने कहा—"हमें केवल रहने दो। हम तुमसे कुछ नहीं माँगेंगे।"

अब साधु के पास कुछ कहने को नहीं था। सभी लोग पूजा-पाठ करने लगे। कुछ देर बाद कबीर ने कहा कि संत लोग दिन भर के भूखे हैं, इनके लिए कुछ उपाय करना चाहिए।

पद्मनाभ ने कहा—"गुरुदेव, यहाँ कौन-सा उपाय करियेगा? यहाँ तो सभी चोलीपंथी साधु हैं। वे अपने पास किसी को फटकने नहीं देते।"

कबीर ने कहा—"अब तुम लोग अपना-अपना जलपात्र तथा अन्न बरतन बाहर रख दो।"

कबीरदास के सभी शिष्यों ने आज्ञा का पालन किया। दूर अनेक चोलीपंथी साधु चूल्हा जलाकर अपना-अपना भोजन पका रहे थे। देखते ही देखते उन सबका चूल्हा बुझने लगा। उनके पात्रों का जल तथा अन्न इनके पात्रों में आ गया। बिना आग जलाये कबीर के शिष्यों के बरतनों में भोजन पकने लगा। यह दृश्य देखकर सभी चोलीपंथी साधु चकित रह गये। इस चमत्कार से वे लोग इतना प्रभावित हुए कि कुटियावाले साधु का संगत छोड़कर सभी चोलीपंथी कबीरदासजी के चरणों के पास आकर प्रणाम करने लगे।

गुजरात में हुई एक घटना का उल्लेख आचार्य क्षितिमोहन सेन ने किया है—

"बात उन दिनों की है जब सन्त कबीर भड़ौच में नर्मदा तट पर स्थित शुक्ल-तीर्थ में थे। कबीर की ख्याति हिन्दुस्तान की सीमा लाँघकर फारस के आगे तक पहुँच गयी थी। फारस का एक फकीर कबीर का दर्शन करने के लिए व्याकुल हो उठा। हिन्दुस्तान आने के लिए उसके पास कोई साधन नहीं था।

कुछ दिनों बाद उसे पता चला कि एक नाव फारस बन्दरगाह से भड़ौच जा रही है। प्रार्थना करने पर नाव के मालिक ने थोड़ी सी जगह दे दी। कई दिनों बाद वे भड़ौच आये। यहाँ आने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि नाव दूसरे दिन फारस वापस चली जायगी।

नाव जब भड़ौच पहुँची तब दोपहर हो गया था। फकीर छः कोस पैदल चलकर शाम को शुक्ल-तीर्थ पहुँचा। कबीर उस समय ध्यानावस्थित थे। शिष्यों ने आगन्तुक फकीर का स्वागत किया। कुछ देर बाद जब कबीर बाहर आये तब दोनों एक दूसरे का हाथ पकड़कर रात भर बैठे रहे। दूसरे दिन तृप्त होकर फकीर अपनी नाव पर बैठने के लिए चला गया।"

फकीर के जाने के बाद कबीर के भक्तों ने उनसे पूछा—"इतनी दूर से आकर वे चुप क्यों रहे और आप भी कुछ बोले नहीं। आखिर यह क्या माजरा था?"

कबीर ने कहा—"हम दोनों में इतनी बातें हुईं कि भाषा में वे अँट नहीं सकतीं। मन के भाव को यदि मैं मुख की भाषा में अनुवाद करके बोलता तो उसमें विकार आ जाता, फिर जब वे उन बातों को मन की भाषा में अनुवाद करते तो और भी विकार आ जाता। इससे असल भाव का कुछ अंश न बचता। आईने से किसी चीज को उल्टा प्रतिफलित करके पुनर्वार दूसरे आईने से उलटकर प्रतिफलित करने से चीज सीधी दीखने लगती है, पर उससे अच्छा क्या यह नहीं होगा कि असली चीज को सीधा देखा जाय, क्योंकि दो दर्पणों के दोष से चीज कुछ-की-कुछ हो सकती है।"

इस उत्तर को सुनकर सभी भक्त चुप रह गये। उन्हें अपने गुरु के योग-ऐश्वर्य का भान हो गया।[1]

इसी प्रकार की एक घटना काशी में हुई थी। कबीर साहब घाट पर देर से गंगा की पानी में झाँक रहे थे। रह रहकर वे प्रसन्न होते तो कभी-कभी उनका चेहरा चमक उठता था। गुरुदेव के इस कार्य से भक्तों को कौतूहल हुआ कि आखिर इस बहते पानी में है क्या? गुरुदेव की आँखें इस प्रकार चमक क्यों रही हैं?

एक शिष्य ने पूछा—"गुरुदेव, आप गंगा में क्या देख रहे हैं?"

कबीर ने कहा—"इसमें मैं अपने मन को देख रहा हूँ।"

"आपका मन तो आपके शरीर में है और आप गंगा में देख रहे हैं।"

---

[1] संस्कृति संगम।

कबीर ने कहा—मैं मन को मिला रहा हूँ जो बिलकुल गंगाजल जैसा हो गया है—'मन ऐसा निर्मल भया जैसे गंगा नीर।'

कबीर का दर्शन शिष्य समझ नहीं सका। उसकी सवालिया सूरत देखकर कबीर ने कहा—''तुम गंगा के निर्मल जल को देखो, सारी बातें स्पष्ट हो जायेंगी।''

शिष्य गौर से जल को देखने लगा। कबीर ने पूछा—''इस जल में क्या-क्या दिखता है?''

शिष्य ने कहा—''जल, मछलियाँ, तल तथा प्रतिविम्बित आकाश दिखाई दे रहा है।''

''ये सारी वस्तुएँ क्यों दिखाई दे रही हैं?''

शिष्य ने कहा—''क्योंकि जल स्वच्छ तथा पारदर्शी है।''

कबीर ने कहा—''बस, इसी तरह निर्मल और स्वच्छ मन होता है। यदि मन निर्मल हो जाय तो इतना पारदर्शी हो जाता है कि उसका अपना स्वरूप, उसमें उत्पन्न छोटे-छोटे कोमल संकल्पों का स्वरूप तथा उसके बीच प्रतिविम्बित आत्मा का स्वरूप सभी कुछ दृष्टिगत हो सकते हैं। गंगाजल में आकाश का प्रतिविम्ब देखने के लिए छोटी-छोटी मछलियाँ बाधक नहीं हैं। हाँ, बड़ी-बड़ी मछलियाँ जब हलचल करके तल की धूल को जल में मिला देती हैं तब जल गंदा हो जाता है, फिर न तो स्वच्छ जल दिखता है और न अपना तथा आकाश का प्रतिविम्ब ही दिखता है। तैरनेवाली मछलियाँ भी नहीं दिखाई देतीं। इसी प्रकार मन में रहनेवाले बुदबुद की तरह छोटे संकल्प जो बुद्धि के द्वारा विशेष विचारणीय नहीं हैं, वे आत्मदर्शन में बाधा नहीं डालते। किन्तु जिस संकल्प में बुद्धि का विचार, जो तल के धूल के समान है, मिल जाता है, वह मन की स्वच्छता का बाधक है। इसीलिए सात्त्विक संकल्प परमात्मा-प्राप्ति में बाधक नहीं है, क्योंकि उससे मन की सरलता का बोध नहीं होता। किन्तु अति बौद्धिकता ही मन की सरलता को इतना जटिल कर देती है कि न मन ही दिखता है और न मन के संकल्प।''[1]

कबीर के इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि कबीर निस्सन्देह हठयोग की साधना करते रहे। यों उनकी रचनाओं में अनेक जगह योग के उद्धरण हैं।

+ + + +

प्राचीन काल से आधुनिक काल तक के अधिकांश संत अपने भक्तों तथा शिष्यों को नाम जपने की सलाह देते आये हैं। सामान्यजन नाम जपने के माध्यम से भगवद् प्राप्ति कर सकते हैं। इससे सरल अन्य कोई साधना नहीं है, पर इसके लिए व्याकुलता

---

[1] स्वामी श्री भगवत्स्वरूपाचार्य, 'भास्कर'।

और निष्ठा आवश्यक है। चंचल मन को एकाग्र करने का सबसे अच्छा साधन यही है। स्वयं कबीर ने नाम जपने को बार-बार कहा है—

नाम अमल उतरै न भाई।
और अमल छिन-छिन चढ़ै उतरै,
नाम अमल दिन बढ़ै सवाई॥
देखत चढ़ै, सुनत हिय लागै,
सुरत किये तन देत घुमाई॥
पियत पियाला भये मतवाला,
पायौ नाम मिटी दुचिताई॥
जो जन नाम-अमल रस चाखा,
तरी गइ गनिका सदन कसाई॥
कहै कबीर गूँगे गुड़ खाया,
बिन रसना क्या करै बड़ाई॥

एक-दो स्थानों पर नहीं, अन्यत्र अनेक स्थानों में उदाहरण देते हुए वे राम-नाम जपने की सलाह देते हैं—

अजामिल-गज-गनिका पतित करम कीन्हां।
तेऊ उतरि पार गये राम-नाम लीन्हां॥
मन रे राम सुमरि राम सुमरि राम सुमरि भाई।
राम नाम सुमिरन बिना, बूढ़त अधिकाई॥

कहा जाता है कि राम-नाम सुमिरन करने का प्रभाव एक कसाई पर भी पड़ा था जो कबीर साहब के घर के पास रहता था।

कबीर तेरी झोपड़ी गलकट्टों के पास।
जो जैसा करेगा सो भरेगा तू क्यों होत उदास॥

कबीरदास ने पड़ोसी कसाई को कई बार समझाया कि तू यह कार्य छोड़ दे। कुछ और काम कर। नाहक जीव-हत्या करके पाप-संचय कर रहा है। कसाई पर इन बातों का प्रभाव नहीं पड़ा। फलस्वरूप कबीर साहब अपने भक्तों के साथ ठीक उस समय राम-नाम गाने लगे जब वह अपना कार्य करता था। राम-नाम का प्रभाव उस पर पड़ने लगा। आखिर एक दिन अपना पुश्तैनी धंधा हमेशा के लिए बंद कर दिया और कबीर साहब का भक्त बन गया।

कबीर साहब समाज सुधार तथा राम-भक्ति प्रचार के सिलसिले में भारत के विभिन्न प्रान्तों में यात्रा करते रहे। 'आइने अकबरी' के अनुसार पुरी और मराठी साहित्य के अनुसार पंढरपुर गये थे।

'कबीर मंसूर' ग्रंथ के अनुसार कबीर साहब बगदाद, समरकन्द, बुखारा आदि शहरों में गये थे। किसी ग्रंथ में उनके मक्का जाने का भी उल्लेख है। लेकिन इन शहरों की यात्रा का क्या उद्देश्य था, यह स्पष्ट नहीं है।

इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि कबीर योगी-पुरुष थे। अपनी रचनाओं में व्यंग्य करने के अलावा अष्ट कमल, साँसों का प्राणायाम, कुंभक, रेचक, साधना-पद्धतियों का उल्लेख किया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि उन्हें योग का ज्ञान था और वे विधिवत इसकी साधना करते रहे तभी आपके जीवन में ऐसी चामत्कारिक घटनाएँ हुई हैं।

कबीर के संबंध में तमाम विरोधाभास वाली बातें हैं। इसका भी एक राज है। वास्तविक कबीर एक ही थे, पर उनके पूर्व और बाद में कुल ग्यारह कबीर और हो गये हैं। सभी कबीरों की कहानियों में रंग चढ़ाकर अनेक बातें लिखी गयीं जिसके कारण असली कबीर के साथ अनेक नकली कबीरों की घटनाएँ जुड़ गयीं। इस प्रकार खोज करनेवाले भ्रमजाल में फँस गये।

श्री वेस्टकाट ने 'कबीर एण्ड द कबीर पंथ' में कबीर नाम से ग्यारह कबीरों को खोजा है—

''नागौर के कबीर चिश्ती जिनका निधन गुजरात में सन् १५४४ में हुआ था। शेख कबीर जुलाहा जिसे मुसलमान पीर कबीर और हिन्दू भगत कबीर कहते हैं, १५६४ ई० में मरे। ख्वाजा औलिया कबीर जो बुखारा भी गये थे, उनकी मृत्यु सन् १५६४ ई० में हुई। सैयद कबीरउद्दीन हसन बल्ख में १४६० ई० में मरे। शेख कबीर बजौरा के रहनेवाले थे और अफीमची थे। शेख अब्दुल्ला कबीर या बालापीर का निधन १५३६ ई० में हुआ था। मुसलमानों के शेख कबीर जो बल्ख भी गये थे, फिर वहाँ से वे हिन्दुस्तान लौटे और हमारे कबीर के साथ घूमते रहे, वे फतेहपुर में १५८५ ई० में मरे। अमीर कबीर मीर सैयद अली हमदानी जो १३७६ ई० में काश्मीर गये और पाँच साल बाद वहीं मर गये। सैयद जलालुद्दीन के पिता सैयद अहमद कबीर थे, सैयद जलालुद्दीन जो सन् १४२१ में मरे और इनके पोते कबीर उनदीन इस्माइल थे। एक दीवान शाह कबीर थे जिनकी याद में हुमायूँ के शासन काल में जौनपुर में एक मस्जिद बनवायी गयी है।

पहले पाँच कबीरों का उल्लेख 'खजीनात-उल-आसफिया' में है। छठें का 'सैरउल अकताब' में, सातवें का 'मुकुखुल उस तवारीख' में, आठवें का 'अखबार उल इखयार' में तथा बाकी लोगों का 'फरिश्ता' में वर्णन है।''

कबीरपंथियों की मान्यता है कि कबीर साहब का जन्म १४५६ में और निधन १५७५ संवत में हुआ था। वर्तमान समय में जहाँ कबीर मठ है, यहीं नीरू-नीमा कबीरदास को लेकर रहते थे।

चौदह सौ छप्पन जेठी पुनम चन्द सुवारा।
श्री कबीर साहब का जनहित काशी में अवतारा॥

+ \+ \+ \+

पन्द्रह सौ पचहत्तर सबत मगहर ज्ञान निधाना।
माघ सूदि एकादशि तिथि को जग से अन्तर्धाना॥

यह सूचना कबीरचौरा मठ में अंकित है। कबीरदासजी को योग का कितना ज्ञान था, इसका पता निम्न पंक्तियों से मिल जाता है जो आज भी जन-जन में लोकप्रिय है—

झीनी झीनी बीनी चदरिया।
काहे कै ताना, काहे कै भरनी, कौन तार से बीनी चदरिया।
इंगला पिंगला ताना भरनी, सुखमन तार से बीनी चदरिया॥
आठ कंवल दस चरखा डोलै, पाँच तत्त गुन तीनी चदरिया।
सांई को सियत मास दस लागे, ठोंक ठोंक के बीनी चदरिया॥
सो चादर सुर नर मुनि ओढ़े, ओढ़ कै मैली कीनी चदरिया।
दास कबीर जतन से ओढ़ी, ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया॥

नरोत्तम ठाकुर

वर्तमान बांग्लादेश में स्थित यशोहर जिला के तालखड़ी जागली गाँव में पण्डित पद्मनाभ चक्रवर्ती सपरिवार रहते थे। आपकी पत्नी का नाम सीता था। इस दम्पति का एक मात्र पुत्र लोकनाथ था। साध्वी माता और साधु स्वभाववाले पिता के कारण बचपन से ही लोकनाथ भक्तिरस में मुग्ध हो गया था। विशेष रूप से वह श्रीकृष्ण नाम से आत्मविभोर हो उठता था। ठीक इन्हीं दिनों उसने सुना कि नवद्वीप में शची के गर्भ से श्रीकृष्ण ने स्वयं जन्म लिया है।

यह समाचार सुनते ही लोकनाथ खुशी से पागल हो उठा। उसने निश्चय किया कि वह नवद्वीप जाकर प्रभु का दर्शन करेगा। लोकनाथ के इस निश्चय से माता-पिता चिन्तित हो उठे। उनके मन में यह भावना घर कर गयी कि गौरांग महाप्रभु का दर्शन करने के बाद फिर लड़का घर वापस नहीं आयेगा। माता तथा पिता ने चुपचाप निश्चय किया कि लोकनाथ का विवाह कर दिया जाय।

पिताजी के दौड़-धूप का रहस्य समझते ही एक दिन लोकनाथ रात को चुपके से उठा और आँगन में आकर पिता-माता के उद्देश्य से प्रणाम कर नवद्वीप की ओर पैदल रवाना हो गया। दूसरे दिन शाम को वह नवद्वीप शहर में पहुँच गया।

अब तक तेजी से चलते रहने के कारण उसके मस्तिष्क में यह बात नहीं आयी कि आखिर यहाँ के किस मकान में गौरांग प्रभु रहते हैं। पूछते-पूछते वह गौरांग प्रभु के घर के सामने आकर खड़ा हो गया। उस समय गौरांग प्रभु अपने पार्षदों से घिरे बैठे थे। इस ब्राह्मण को देखते ही वे दोनों हाथ फैलाये दौड़े। उसे गले से लगाते हुए बोले—"लोकनाथ, तुम अब तक मुझे कैसे भूले रहे?"

लोकनाथ महाप्रभु की गोद में बेहोश हो गये।

महाप्रभु के यहाँ लोकनाथ पाँच दिनों तक थे। इन दिनों उन्हें बाह्यज्ञान नहीं था। वास्तव में महाप्रभु के सम्पर्क में आने के कारण उनका पुनर्जन्म हुआ। उनके लोकनाथत्व का अस्तित्व समाप्त हो गया था।

छठें दिन जब लोकनाथ होश में आये तब महाप्रभु ने कहा— "लोकनाथ, अब तुम सीधे वृन्दावन चले जाओ और वहीं निवास करो।"

''प्रभु, आप मुझे यह आज्ञा क्यों दे रहे हैं? आपसे बिछुड़ने पर मेरा प्राणान्त हो जायगा।''

महाप्रभु ने कहा— ''नहीं। सुख-भोग के लिए न तो मेरा जन्म हुआ है और न तुम्हारा। वृन्दावन का उद्धार तुम्हारे हाथों होना है। तुम वहाँ जाकर उसका उद्धार करो। पश्चिम में भक्ति-धर्म का प्रचार तुम्हें करना है। अगले माघ मास में मैं स्वयं यहाँ से रवाना हो जाऊँगा। पहले तुम जाओ, बाद में मैं आऊँगा।''

''प्रभु, आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, पर मैं वहाँ कहाँ रहूँगा?''

प्रभु ने कहा— ''तुम वहाँ चिरघाट पर रहना। पास ही कदम्ब, तमाल, बकुल वृक्षों से सुशोभित कुंज है। वह कुंज तुम्हारा ही है। वहीं रहना। अपने साथ भूगर्भ को भी लेते जाओ।''

महाप्रभु के आदेशानुसार दोनों व्यक्ति वृन्दावन आये तो देखा— चारों ओर जंगल ही जंगल हैं। मुगलों ने यहाँ के सभी मन्दिर, पांथशालाओं को ही नहीं, घरों को भी खंडहर बना दिया है। केवल यमुना नदी और गोवर्धन पहाड़ मौजूद हैं जिसे आक्रमणकारी नष्ट नहीं कर पाये। यह घटना शक संवत १४३२ की है।

इसके बाद यहाँ स्वयं महाप्रभु आये। सुबुद्धि राय और सनातन आये। धीरे-धीरे महाप्रभु के सभी भक्त यहाँ आते रहे। इन लोगों ने वृन्दावन के लुप्त तीर्थस्थानों का उद्धार किया। नये विग्रहों को स्थापित किया। एक प्रकार से वृन्दावन को नये सिरे से बसाने का सारा श्रेय लोकनाथ तथा महाप्रभु के भक्तों को है। जंगलों से आच्छादित वृन्दावन में नये जीवन की शुरुआत हुई। इस प्रकार महाप्रभु के आदेशानुसार लोकनाथ वहाँ साधक-जीवन व्यतीत करने लगे। उन्होंने यह भी निश्चय किया कि वे भविष्य में किसी को अपना शिष्य नहीं बनायेंगे। लेकिन इस प्रतिज्ञा की रक्षा वे नहीं कर सके।

+ \+ \+ \+

बंगाल के रामपुर जिले में खेतरी नामक एक गाँव कभी एक छोटे राज्य की राजधानी थी। यहाँ के राजा थे— श्री कृष्णानन्द दत्त और पुरुषोत्तम दत्त। कृष्णानन्द बड़े भाई थे। खेतरी नरेश एक मुसलमान जागीरदार के मातहत थे।

एक अर्से के बाद कृष्णानन्द को एक पुत्र की प्राप्ति हुई, बच्चे का नाम रखा गया— नरोत्तम। घर के सभी लोग 'नरू' नाम से बुलाते थे। बचपन से ही बालक मेधावी था, इसलिए न केवल माता-पिता बल्कि प्रजाजनों के निकट वह लोकप्रिय बन गया। शान्त स्वभाव, श्यामवर्ण, कमल नयन, मनोहर मुखाकृति थी।

इन दिनों खेतरी गाँव में एक वृद्ध ब्राह्मण रहते थे। उनका नाम था— कृष्णदास। आप महाप्रभु गौरांग के समकालीन तथा उनके भक्त थे। नरोत्तम प्रायः इनके निकट आता

था। कृष्णदास की जबानी वह महाप्रभु चैतन्य[1] की कहानियाँ सुना करता था। वृद्ध से निरन्तर कहानियाँ सुनते-सुनते नरोत्तम के भाव में परिवर्तन होने लगा। यहाँ तक कि वह स्वप्न में भी महाप्रभु को देखने लगा।

अक्सर पद्मावती नदी के किनारे आकर नरोत्तम भावातुर हो जाता था। कृष्णदास की जबानी उसे पता चला कि एक बार गौरांग प्रभु अपने पार्षदों के साथ उस पार आकर नृत्य करते रहे जिसे लाखों भक्तों ने देखा था।

एक दिन नरोत्तम नदी में स्नान करने आया तो घर समय पर नहीं लौटा। राजा-रानी चिन्तित हो उठे। लोग नदी किनारे आये तो देखा— एक गौरवर्ण का बालक दोनों हाथ ऊपर उठाकर नृत्य कर रहा है। नरोत्तम श्यामवर्ण का था। नृत्य करते-करते भावातुर हो जाने के कारण उसकी मुखाकृति में परिवर्तन हो गया था। इसीलिए लोग उसे पहचान नहीं सके। लोगों का कोलाहल सुनकर नरोत्तम चौंक उठा और माँ को देखते ही उनकी ओर दौड़ा हुआ आया।

बातचीत के सिलसिले में नरोत्तम ने कहा— "आज अचेतन अवस्था में यहाँ स्नान करने आया। थोड़ी देर बाद एक गौरवर्ण का बालक नृत्य करता हुआ मेरे पास आया। उसने मुझे गले से लगाया, फिर मेरे भीतर प्रवेश कर गया। वही मुझे नचा रहा था। इसके बाद कुछ पता नहीं। आप लोगों की आवाज सुनकर मुझे होश आया।"

नरोत्तम की ऐसी दशा क्यों हुई, इस बारे में 'प्रेम विलास' में लिखा है— "वृन्दावन जाते समय महाप्रभु चैतन्य उस पार पद्मा नदी के किनारे आकर खेतरी गाँव की ओर देखते हुए बार-बार "बाप नरोत्तम" कहकर पुकारते रहे। इस घटना के बाद ही नरोत्तम का जन्म हुआ था। बाद में उन्होंने पद्मा नदी से कहा था— 'नरोत्तम के जन्म ग्रहण के बाद उसे दान कर देना।' आगे चलकर श्री नित्यानन्द ने नरोत्तम को स्वप्न में आदेश दिया था कि कल तुम नदी में अकेले स्नान करने जाना। वहाँ तुम्हें परम धन प्राप्त होगा। इस आदेश को सुनकर नरोत्तम अकेले स्नान करने गया था जहाँ पद्मा नदी ने मानव शरीर धारण कर चैतन्य देव के दिये धन को दिया और वे प्रेम में उन्मत्त हो उठे।"

इस घटना के बाद से नरोत्तम अस्वस्थ रहने लगा। कभी वह हँसता तो हँसता ही रह जाता और कभी रोता तो रोता ही रह जाता। लड़के की इस हालत को देखकर माता-पिता चिन्तित हो उठे। वैद्य-ओझा बुलाये गये, पर कोई सुधार नहीं हुआ।

एक दिन नरोत्तम ने अपनी माँ से कहा— "मैं यहाँ अच्छा नहीं होऊँगा। आप लोग प्रसन्न चित्त से मुझे वृन्दावन जाने की अनुमति दें तभी मेरे जीवन की रक्षा हो सकती है।"

---

[1] महाप्रभु गौरांग, चैतन्य महाप्रभु, निमाई आदि सभी नाम एक ही व्यक्ति के हैं, जिन्हें भक्त लोग अपनी रुचि के अनुसार पुकारते हैं।

पिताजी राजी नहीं हुए। लड़के की शोचनीय स्थिति से माँ चिन्तित हो उठी। अन्त में पिता ने वृन्दावन जाने की आज्ञा दी। आश्चर्य की बात यह हुई कि आज्ञा प्राप्त करने के दूसरे ही दिन से नरोत्तम के स्वास्थ्य में सुधार होने लगा। यह चमत्कार देखकर सभी विस्मित रह गये।

प्राचीनकाल में लोग बैलगाड़ी से या पैदल यात्रा करते थे। नरोत्तम पैदल ही चल पड़ा। मार्ग में जितने तीर्थस्थल थे, उन सभी स्थानों का दर्शन करता हुआ वह मथुरा पहुँच गया। पद-यात्रा करने के कारण उसका सुकुमार शरीर कृशकाय हो गया था। थका-माँदा मथुरा के विश्रामघाट पर लेटे हुए वह नाना प्रकार की चिन्ताओं से घिर गया। यहाँ तक तो आ गया। अब वृन्दावन अन्तिम मंजिल है। वहाँ कहाँ रहेगा? कौन उसे आश्रय देगा? नरोत्तम को यह ज्ञात हो गया था कि महाप्रभु का तिरोधान हो गया है। अब क्या करना चाहिए?

ठीक इसी समय एक आदमी नरोत्तम के पास आया। परिचय पूछने के बाद उसने कहा— "श्री जीव गोस्वामी ने मुझे आपको वृन्दावन ले आने की आज्ञा दी है। कृपया आप मेरे साथ चलें।"

गौरांग प्रभु ने अपने शिष्यों को यह आदेश दिया था कि मेरे जितने भक्त यहाँ आयेंगे, उन सभी को आश्रय देना। उन दिनों श्री जीव गोस्वामी वृन्दावन धाम के प्रधान थे और वे ही सभी को आश्रय देते थे।

नरोत्तम को समझते देर नहीं लगी कि महाप्रभु अलक्ष्य रूप में उसकी सहायता कर रहे हैं। वृन्दावन आने पर जीव गोस्वामी ने उसका स्वागत करते हुए गले से लगा लिया। नरोत्तम का सारा अवसाद दूर हो गया। उसे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि यहाँ अगणित गौरांग महाप्रभु के भक्त हैं। वह प्रत्येक कुंज में जाकर सभी भक्तों को प्रणाम करता रहा। सभी घोर विरागी और प्रभु-प्रेम में पागल हैं। इन्हीं भक्तों में लोकनाथ भी थे जिनके दर्शन से नरोत्तम के हृदय की समस्त तंत्रियाँ नृत्य करने लगीं।

लोकनाथ के स्पर्श से ही उसकी आत्मा गद्‌गद हो उठी। मन ही मन उसने उनके चरणों में आत्म समर्पण कर दिया। लोकनाथ इस रहस्य से अपरिचित रहे, क्योंकि वे तो गौरांग प्रभु के आदेश पर वृन्दावन आये हैं। इस क्षेत्र का उद्धार करने के बाद अब अपनी साधना में लीन रहते हैं। यहाँ आने के साथ ही उन्होंने दृढ़ निश्चय कर लिया था कि कभी किसी को अपना शिष्य नहीं बनायेंगे। शिष्य बनाने पर उसका सारा पाप लेना पड़ता है। उसकी साधना में सहायता देनी पड़ती है। इससे अपनी साधना में व्याघात होता है। अनेक लोग उनकी साधना से प्रभावित होकर शिष्य बनने आये, पर लोकनाथ अपने संकल्प से च्युत नहीं हुए। नरोत्तम को यह बात मालूम हो गयी थी। वह चुपचाप उनकी सेवा करता रहा। आखिर एक दिन वह पकड़ में आ गया। लोकनाथ ने पूछा— "तुम कौन हो, और मेरी सेवा इस तरह क्यों कर रहे हो?"

नरोत्तम ने संक्षेप में अपनी राम कहानी सुनाई। सारी बातें सुनने के बाद लोकनाथ ने कहा— ''तुम तो गौरांग प्रभु के कृपा-पात्र हो। वे तुम्हारे शरीर में प्रवेश कर चुके हैं, फिर तुम दीक्षा क्यों चाहते हो? तुम्हें जो कुछ चाहिए, वह तो तुम्हें मिल गया है। मैंने यह निश्चय किया है कि मैं किसी को अपना शिष्य नहीं बनाऊँगा। तुम मेरा यह संकल्प भंग मत करो।''

नरोत्तम ने कहा— ''मैंने अपने आपको आपके निकट समर्पण कर दिया है। अब आपकी आज्ञा शिरोधार्य कर रहा हूँ।''

नरोत्तम नित्य दो लाख नाम जप करते और लोकनाथ की सेवा करते रहे। दोनों में किसी प्रकार का वार्तालाप नहीं होता था। एक दिन लोकनाथ ने नरोत्तम को बुलाया। वह उनके सामने हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। लोकनाथ ने कहा— ''तुम्हारे कारण मेरा संकल्प शिथिल हो गया। क्या दो प्रतिज्ञाएँ कर सकते हो?''

राजकुमार नरोत्तम ने कहा—''आज्ञा दीजिए।''

''पहला मांसाहार नहीं करोगे। दूसरा विषय स्पर्श नहीं करोगे।''

''प्रतिज्ञा करता हूँ।''

''ब्रह्मचर्य रहना पड़ेगा। दारा परिग्रह नहीं करोगे। इसका उत्तर सोचकर देना। इन्द्रिय को समूल नष्ट करना पड़ेगा।''

नरोत्तम ने कहा— ''आपका आशीर्वाद रहा तो ऐसा ही होगा। ब्रह्मचर्य का पालन तो कर ही रहा हूँ।''

श्रावण पूर्णिमा को यमुना में स्नान करने के बाद नरोत्तम को स्तव पाठ करने का आदेश दिया गया। इसके बाद अपनी बायीं ओर बैठाते हुए लोकनाथ ने कहा— ''अब तुम अपने को मेरे निकट समर्पित करो। तुम्हारे शरीर के जितने पाप हैं, मुझे दो।''

कुछ देर ठहरकर उन्होंने कहा— ''गुरु-पद बड़ा कठिन पद है। शिष्य के सभी पापों को ग्रहण करना पड़ता है। अब तुम उपस्थित सभी संतों को प्रणाम करो।''

चन्दन और माला से सज्जित नरोत्तम ने जीव गोस्वामी से लेकर उपस्थित सभी संतों को प्रणाम किया। इस अवसर पर श्री जीव गोस्वामी ने नरोत्तम को ''ठाकुर महाशय'' की उपाधि दी। अब वे राजकुमार नरोत्तम नहीं रहे।

+ \+ \+ \+

गौरांग प्रभु ने शक्ति-संचार करके लोकनाथ तथा श्री निवास आचार्य को पहले पहल वृन्दावन भेजा था। बाद में नरोत्तम की सृष्टि कर उन्हें भी वृन्दावन भेजा। उम्र में श्री निवास आचार्य नरोत्तम से कुछ बड़े थे। दोनों ही गौरांग महाप्रभु के वर-पुत्र थे। इनके अलावा अन्य छः गोस्वामियों में उन्होंने शक्ति-संचार किया था। इन गोस्वामियों

ने सहस्त्रों ग्रंथों का अध्ययन करके जिन ग्रंथों का निर्माण किया था, उन्हें 'भक्ति ग्रंथ' कहा जाता है।

ग्रंथ-लेखन संपूर्ण होने के बाद गोस्वामियों ने सोचा कि गौड़ देश में इसका प्रचार कैसे किया जाय। महाप्रभु का आदेश था कि गोस्वामी लोग वृन्दावन त्याग नहीं करेंगे। विचार-विमर्श करने के बाद यह तय किया गया कि श्री निवास आचार्य को प्रचार-कार्य के लिए भेजा जाय। इनके साथ नरोत्तम ठाकुर और श्यामानन्द को भेजने का निश्चय किया गया।

श्री जीव गोस्वामी ने मथुरा के एक महाजन को बुलाकर आदेश दिया कि गौड़ देश में तीन भक्त ग्रंथ लेकर जानेवाले हैं। इस कार्य के लिए एक बैलगाड़ी और दस सशस्त्र सिपाही का प्रबंध कर दें। कई दिनों बाद सारी सामग्री आ गयी। इस काफिले के साथ नरोत्तम ठाकुर, श्री निवास आचार्य और श्यामानन्द रवाना हुए। मथुरा तक श्री जीव गोस्वामी साथ-साथ आये और इन्हें विदा देकर वापस चले गये।

यात्रा आरम्भ करने के पूर्व नरोत्तम अपने गुरु लोकनाथ के पास आये। लोकनाथ गोस्वामी ने कहा— "अब यहाँ से जाकर समस्त गौड़ देश में महाप्रभु गौरांग की कथा का प्रचार करोगे। ग्रंथ की व्याख्या केवल तुम लोग ही कर सकते हो। अब तुम्हें वृन्दावन आने की आवश्यकता नहीं है।"

इस आज्ञा को सुनकर नरोत्तम फफककर रो पड़ा। यह देखकर लोकनाथ बोले— "वत्स, व्याकुल मत हो। महाप्रभु ने इसी कार्य के लिए तुम्हारी सृष्टि की है। उनके संदेश का प्रचार तुम्हें करना ही होगा। जाओ, यह कार्य निष्ठा के साथ करो। मेरा आशीर्वाद सदा तुम्हारे साथ रहेगा।"

मथुरा से गौड़ देश तक अनेक नदी, जंगल, नाले पार करने पड़ते हैं। मार्ग में कई जगह विश्राम करते हुए यह काफिला विष्णुपुर आ गया। गोपालपुर के निकट मालियाग्राम में जब सभी लोग सो रहे थे, ठीक इसी समय डाकुओं ने हमला किया। डाकुओं की संख्या अधिक थी। साथ चल रहे सैनिक उनके हमले का मुकाबला नहीं कर सके। डाकुओं के चले जाने के बाद लोगों ने देखा कि सारा सामान सुरक्षित है, केवल बैलगाड़ी और उस पर लदा सामान गायब है।

यह समाचार सुनते ही तीनों व्यक्ति बेहोश होकर गिर पड़े। होश में आने पर श्री निवास आचार्य ने कहा— "तुम दोनों वापस चले जाओ। मैं गाड़ी की तलाश करता हूँ, क्योंकि डाकू पाण्डुलिपि लेकर क्या करेंगे। जीव गोस्वामी ने ग्रंथ-प्रचार की जिम्मेदारी मुझे दी थी। ग्रंथ-चोरी का कलंक मुझ पर लगेगा। तुम लोग अपना काम करो और मैं अपना करूँ।"

इस घटना की सूचना पत्र लिखकर श्री निवास आचार्य ने जीव गोस्वामी के पास भिजवा दी।

आचार्यजी के आदेशानुसार नरोत्तम और श्यामानन्द बुझे मन से गौड़ देश की ओर रवाना हो गये। कई दिनों बाद दोनों व्यक्ति पद्मावती नदी के किनारे आये। उस पार खेतरी गाँव दिखाई देने लगा।

अचानक नरोत्तम ठाकुर को अपने माता-पिता की याद आयी— पता नहीं, वे लोग जीवित हैं या नहीं। यहाँ से जाने के बाद इनसे कभी कोई सम्पर्क स्थापित नहीं हो सका था। नाव से दोनों व्यक्ति चिरपरिचित घाट पर उतरे। पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि माता-पिता अभी जीवित हैं, पर पुत्र-शोक से व्याकुल हैं।

श्यामानन्द ने कहा— "कृपया आप लोग राजाजी को सूचित करें कि उनका पुत्र जीवित है और वह यहाँ आ गया है।"

इस समाचार को सुनते ही राजा-रानी के साथ अनेक लोग नदी किनारे आये। सभी के चेहरे पर आश्चर्य मिश्रित प्रसन्नता थी। नरोत्तम ठाकुर इस वक्त तन पर कौपीन और साधारण चद्दर से अपने को ढँके हुए थे। लड़के की इस हालत को देखकर रानी माँ रो पड़ीं। पदयात्रा के कारण लड़के की आकृति पर थकावट के चिह्न मौजूद थे। नरोत्तम ठाकुर ने आगे बढ़कर माँ तथा पिताजी के चरण-स्पर्श किये। राजकर्मचारी आगे बढ़कर नरोत्तम ठाकुर का चरण-स्पर्श करने लगे।

ठाकुर ने कहा— "मैं राजधानी में नहीं रहूँगा, पर आप लोगों के स्नेह के कारण यहाँ ठहर रहा हूँ। आप लोगों के निकट मेरी यही प्रार्थना है कि मैं धर्म की रक्षा करता रहूँ, इस प्रकार का व्यवहार मेरे साथ किया जाय।"

नरोत्तम ठाकुर महल के भीतर नहीं गये। मंदिर में जाकर रहने लगे। स्वयं अपने हाथ से भोजन बनाते और खाते थे। संध्या-पूजन के बाद दिन-रात भजन गाते थे। माता-पिता को संतोष इसी बात का था कि उनका पुत्र उनकी आँखों के सामने मौजूद है।

+ \+ \+ \+

इधर श्री निवास आचार्य इन लोगों को विदा करने के बाद गाँव-गाँव में जाकर ग्रंथों की तलाश करने लगे। जब कहीं कोई सुराग़ नहीं मिला तब वे राजधानी विष्णुपुर वापस आये। विष्णुपुर के नागरिकों ने देखा— एक गौर वर्ण का युवक फटा-पुराना कपड़ा पहनकर उनके नगर में पागलों की तरह घूमता है।

भवितव्य होकर ही रहता है। एक दिन आचार्य महाशय एक वृक्ष के नीचे विश्राम कर रहे थे तब उन्होंने देखा कि एक ब्राह्मण युवक तड़ित वेग से जा रहा है। उन्होंने उसे पुकारते हुए पास बुलाकर पूछा— "आप यहाँ कहाँ रहते हैं? क्या करते हैं?"

ब्राह्मण ने कहा— "मैं संस्कृत पढ़ता हूँ और यहाँ राजा के आश्रय में रहता हूँ।"

बातचीत के सिलसिले में युवक ने अपना नाम कृष्णबल्लभ बताया। आगे उसने

यह भी बताया कि यहाँ का राजा बड़ा क्रूर स्वभाव का है। दूसरों का धन हड़प लेता है, पर वंश-परम्परा से पूजा-पाठ करता है। नित्य भागवत-कथा सुनता है।

आचार्य के अनुरोध पर कृष्णबल्लभ उन्हें राजदरबार में ले आया। आचार्य श्रोताओं के बीच बैठकर पाठ सुनने लगे। रास पंचाध्यायी का पाठ हो रहा था, पर पाठक गलत अर्थ बता रहा था। श्रोताओं में से किसी को प्रतिवाद न करते देख आचार्य ने कहा— ''पण्डितजी, आप श्लोकों का गलत अर्थ बता रहे हैं। इन श्लोकों का अर्थ ऐसा नहीं है।''

अब सभी श्रोता चौंक उठे। पाठ करनेवाले पण्डितजी क्रुद्ध होकर बोले— ''शुद्ध अर्थ क्या होगा, आकर बताइये।''

इस आदेश को सुनकर आचार्यजी आगे आये और ग्रंथ लेकर पाठ करने लगे। एक-एक श्लोक का वास्तविक अर्थ समझाते गये। आचार्यजी के पाठ को सुनकर राजा और अन्य श्रोता प्रसन्न हो गये। राजाज्ञा से आचार्यजी के रहने तथा भोजनादि की व्यवस्था हो गयी। भागवत-पाठक भी आचार्य के भक्त बन गये। अब आचार्यजी नित्य भागवत पाठ करने लगे।

कुछ दिनों बाद राजा ने पूछा— ''ठाकुर, आप कौन हैं? आपका निवास स्थान कहाँ है? इस अधम के यहाँ क्यों आये हैं? कृपया विस्तार से बतायें।''

आचार्यजी ग्रंथ चोरी हो जाने की घटना का विवरण देते हुए कहा— ''कृपया ग्रंथ खोजने में मेरी मदद कर दें तो मैं जीवन भर कृतज्ञ रहूँगा।''

राजा ने हँसकर कहा— ''यह गौरांग महाप्रभु की कृपा है जो पहले ग्रंथ और उसके बाद आपका दर्शन हुआ। हे प्रभो, मैं राजा जरूर हूँ, पर कार्य से डाकू हूँ। मैंने ही आपकी गाड़ी लुटवायी है। आपके सभी ग्रंथ सुरक्षित हैं। इस पाप के लिए मुझे दण्ड दीजिए।'' कहने के पश्चात् राजा ने आचार्यजी के दोनों पैर पकड़ लिये।

राजा की बातें सुनकर आचार्य ने कहा— ''अब आप मेरे पैर को छोड़ दीजिए ताकि प्रसन्नता पूर्वक नृत्य कर सकूँ।''

नृत्य समाप्त करके आचार्यजी राजा के साथ भण्डारघर में गये और वहाँ रखे ग्रंथों को देखा। दूसरे दिन उन ग्रंथों की पूजा की गयी और उसी दिन राजा को दीक्षा दी गयी।

+ + + +

नरोत्तम ठाकुर के स्थान पर उनके चचेरे भाई संतोष दत्त को युवराज बनाया गया। खेतरी में रहते हुए नरोत्तम ठाकुर दिन-रात भजन-कीर्तन में मस्त रहते थे। इस प्रकार इनकी साधना की ख्याति चारों ओर फैलने लगी।

सन्तोष को दीक्षा देने के बाद नरोत्तम ठाकुर क्रमशः अन्य दीक्षार्थियों को दीक्षा

देने लगे। इसी बीच बलराम मिश्र को उन्होंने दीक्षा दी। इस घटना से ब्राह्मण-समाज नाराज हो गया। वे नरोत्तम ठाकुर की निन्दा करते हुए कहने लगे— "तुम साधु हुए हो, कोई बात नहीं। शूद्र होकर तुमने ब्राह्मण को कैसे मंत्र दिया ?"

नरोत्तम ठाकुर ब्राह्मणों के इस विरोध की उपेक्षा करते हुए सभी को दीक्षा देते रहे। फलस्वरूप गाँव के नहीं, बल्कि अन्य गाँव के ब्राह्मण इन्हें पिशाच कहने लगे। यहाँ तक कहा गया कि इसके जैसा नीच मनुष्य दूसरा कोई नहीं है।

सबसे कठिन समस्या तब आयी जब रामकृष्ण और हरिराम नामक दो भाइयों को उन्होंने दीक्षा दी। इन दोनों के पिता पण्डित शिवानन्द प्रचुर वित्तशाली, विद्वान तथा भगवती के उपासक थे। इसके अलावा दोनों भाई संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे।

वास्तव में दोनों भाई नरोत्तम ठाकुर की कथा सुनने और बातचीत के ढंग से मुग्ध हो गये थे। उन लोगों को यह विश्वास हो गया था कि ठाकुर भवसागर के कर्णधार हैं। यही कारण है कि दोनों भाई नरोत्तम के चरणों पर गिर पड़े।

नरोत्तम ठाकुर इनके वंश परिचय से अवगत थे। इन्हें दीक्षा देने के पहले उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा था— "तुम लोगों के पिता बड़े आदमी हैं, प्रकाण्ड विद्वान हैं। तुम दोनों भी पण्डित हो। मेरे दीक्षा देने पर वे नाराज होंगे। समाज के लोग तुम्हें जाति-च्युत कर देंगे।"

दोनों भाइयों ने कहा— "अगर आप कृपा करेंगे तो पिताजी कुछ नहीं कर सकते। समाज जो चाहे करे। हमें उसकी चिन्ता नहीं।"

अन्त में दोनों भाई दीक्षा लेकर खेतरी में पढ़ने लगे। यह समाचार गयेशपुर पहुँचा। आचार्य शिवानन्द इन दोनों भाइयों को पकड़ लाने के लिए कुछ लोगों को भेजा। पिता के भय से दोनों भाई गयेशपुर वापस आ गये।

इन्हें देखते ही पिता क्रोध से बरस पड़े— "मेरे पुत्रों ने एक वैष्णव से मंत्र लिया और वह भी एक कायस्थ से? तुम लोगों के मन में घृणा नहीं हुई। अब तुम दोनों को उनका प्रसाद खाना पड़ेगा। ऐसी हालत में क्या ब्राह्मण-समाज तुम्हें अपने समाज में बैठने देगा?"

पुत्रों ने हाथ जोड़ते हुए कहा— "पिताजी, हम लोगों ने कोई अन्याय नहीं किया है? कृपया विचार करके हमें निरस्त कर दीजिए तब हम लोग प्रायश्चित करके पुनः मंत्र लेंगे।"

शिवानन्द को यह सुझाव पसन्द आया। सभी स्थानों से, खासकर मिथिला से पण्डितों को बुलाया गया। विचार में पुत्रों की विजय हुई। पण्डितों को उनके तर्क के आगे हार स्वीकार करनी पड़ी।

+ + + +

गाम्भिला गाँव में पण्डित गंगानारायण चक्रवर्ती रहते थे। कुलीन ब्राह्मण थे। विद्वान होने के कारण सभी लोग इनका सम्मान करते थे। अचानक एक दिन गाँव में ही हरिराम और रामकृष्ण से मुलाकात हुई। इन्हें देखते ही गंगानारायण क्रोध से आग बबूला होकर बोले— "तुम लोग स्वयं पण्डित हो, इतने बड़े विद्वान के पुत्र हो, फिर कैसे शूद्र से मंत्र लिया? घृणा नहीं हुई? छिः, बड़ी लज्जा की बात है।"

दोनों भाइयों ने कहा— "भगवान् की दृष्टि में शूद्र और ब्राह्मण में कोई भेद नहीं है। जो उनका भक्त है, वही ब्राह्मण है।"

इन लोगों में इसी प्रकार तर्क होता रहा, पर गंगानारायण ने पराजय स्वीकार नहीं की। लेकिन उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि दोनों पहले की अपेक्षा काफी नम्र हो गये हैं और व्यवहार मधुर ढंग से कर रहे हैं। केवल इसी गुण के कारण उनकी उत्सुकता वैष्णव-धर्म के प्रति बढ़ी।

वे दोनों भाइयों को अपने घर ले गये। वहाँ काफी देर तक इनसे बातें करते रहे। इन दोनों भाइयों की बातों से वे अत्यन्त प्रभावित हुए। अन्त में एक दिन उन्होंने नरोत्तम ठाकुर के पास आकर दीक्षा ली।

गंगानारायण के मंत्र लेने का समाचार सुनते ही सारा ब्राह्मण-समाज कुपित हो गया। इस अशास्त्रीय अपराध के न्याय के लिए पण्डितों का दल राजा नरसिंह के दरबार में पहुँचा और कहा— "आप हमारे राजा हैं। हम लोग कृष्णानन्द के पुत्र नरोत्तम ठाकुर को शास्त्रार्थ में परास्त करके इस क्षेत्र से भगा देंगे।"

राजा नरसिंह भक्तिमान पुरुष थे। वे स्वयं नरोत्तम ठाकुर का दर्शन करना चाहते थे। ब्राह्मणों की जिद्द पर वे उन्हें साथ लेकर खेतरी के समीप कुमारपुर आये। यहीं शास्त्रार्थ करने का निश्चय किया गया।

इस समाचार को सुनकर गंगानारायण और रामचन्द्र ने आपस में सलाह करके यह निश्चय किया कि वे दोनों कुम्हार तथा तमोली के छद्मवेश में बाजार जायेंगे। एक हँड़िया बेचेगा और दूसरा पान। यह निश्चित है कि वहाँ पण्डितों के विद्यार्थी सामान खरीदने आयेंगे तब उन्हें परेशान किया जायगा।

इन दोनों ने जैसी कल्पना की थी, ठीक उसी प्रकार की घटना हुई। एक विद्यार्थी ने रामचन्द्र से पान का भाव पूछा तो उसने संस्कृत में उत्तर दिया। विद्यार्थी ने चौंककर पूछा— "क्या तुम संस्कृत जानते हो?"

रामचन्द्र ने संस्कृत में उत्तर दिया— "मेरा घर खेतरी गाँव में है। क्या तुम्हें नहीं मालूम कि वहाँ नरोत्तम ठाकुर रहते हैं। वहाँ का निवासी होने के कारण उनसे सुन-सुनकर हम लोगों ने संस्कृत भाषा सीखी है। तुम लोग क्या पढ़ते हो?"

विद्यार्थी ने बड़े गर्व के साथ बड़े-बड़े ग्रंथों के नाम बताये। रामचन्द्र ने उन ग्रंथों में से प्रश्न किया तो विद्यार्थी ने कहा— "हम लोग सामान्य लोगों से तर्क नहीं करते।"

बस, इतना सुनना था कि रामचन्द्र के साथ-साथ गंगानारायण विद्यार्थियों की खिल्ली उड़ाने लगे। बाजार में हलचल मच गयी। चारों ओर फैले विद्यार्थी आ गये। अब दोनों ओर से तर्क-युद्ध होने लगा। धीरे-धीरे विद्यार्थियों की हालत खराब होने लगी। एकाएक एक विद्यार्थी दौड़ा हुआ पण्डित-मण्डली के पास गया और कहा— "गुरुवर, जल्दी चलिये। बाजार में एक तमोली और कुम्हार के आगे सभी विद्यार्थी शास्त्रार्थ में पराजित होते जा रहे हैं।"

सभी पण्डित और उनके साथ राजा साहब भी घटनास्थल पर आये। छोटी जातिवालों को शास्त्रार्थ करते देख पण्डित-मण्डली उन्हें मारने को उद्यत हुई। राजा साहब ने कहा— "यह गलत काम है। शर्त यह थी कि शास्त्रार्थ में पराजित करोगे। मारपीट न्याय का रास्ता नहीं है।"

शास्त्रार्थ में भक्ति-शास्त्र का प्रसंग छिड़ गया। इस विषय पर पण्डितों का अध्ययन नहीं था। पण्डितों का दल मौन रह गया। राजा ने न्याय का पक्ष लिया। सभी चुपचाप वापस लौट गये।

इस घटना के बाद एक दिन राजा साहब अपने पार्षदों के साथ खेतरी गाँव आये। नरोत्तम ठाकुर ने अत्यन्त आदर के साथ उनका स्वागत किया।

राजा ने कहा— "मैं आपकी शरण में आया हूँ। कृपया मुझे ग्रहण कीजिए।"

राजा तथा उनके भाई ने ठाकुर से मंत्र लेकर शिष्यत्व स्वीकार किया। कई दिनों तक वहाँ कीर्तन होता रहा। इस प्रकार गाम्भिला के अनेक लोगों ने वैष्णव-धर्म को अपना लिया।

+ \+ \+ \+

गौड़ के समीप ही एक राज्य के राजा राघवेन्द्र राय थे। आपके दो पुत्र थे— संतोष राय और चाँद राय। राज्य में पाँच हजार घुड़सवार और दस हजार पैदल सैनिक थे। शक्ति मंत्र के उपासक होने के अलावा वे अत्यन्त नृशंस थे। आपका लड़का चाँद राय सख्त बीमार था। काफी इलाज कराया गया। झाड़-फूँक, शान्ति स्तवन कराया गया, पर इससे कोई लाभ नहीं हुआ। लड़के की इस दशा से पूरा परिवार चिन्तित था।

इन्हीं दिनों दरबार के किसी सज्जन ने सुझाव दिया कि अगर आप नरोत्तम ठाकुर को यहाँ ले आयें तो उनके आशीर्वाद से आपका पुत्र ठीक हो सकता है।

राघवेन्द्रजी अब तक नरोत्तम ठाकुर के बारे में अनेक बातें सुन चुके थे, फिर भी उनके प्रति इनके मन में श्रद्धा उत्पन्न नहीं हुई थी। बाद में काफी ऊहापोह करने के बाद उन्होंने सोचा कि अगर नरोत्तम में कोई दैवी-शक्ति होगी तभी लड़का ठीक

हो सकता है। कृष्णानन्द सामान्य जमींदार थे। वहाँ लड़के को ले जाने में उन्हें संकोच हुआ। एक पत्र अपने आदमी के जरिये भेज दिया।

इस पत्र को पढ़ने के बाद कृष्णानन्द ने नरोत्तम को दिया। नरोत्तम ठाकुर ने कहा— "आप यह सब झमेला क्यों लेते हैं? मैं किसी का रोग दूर नहीं कर सकता।"

नरोत्तम ठाकुर का यही उत्तर राघवेन्द्र के पास गया। उसी दिन जब राघवेन्द्र रात को गहरी नींद में सो रहे थे तब उन्होंने स्वप्न में देखा— श्री दुर्गा माता आकर उनसे कह रही हैं— "तुम अपने पुत्र को नरोत्तम ठाकुर के पास ले जाओ। केवल यही नहीं, परिवार के सभी लोगों को ले जाओ तभी तुम्हारा कल्याण होगा।"

दूसरे दिन राघवेन्द्र ने पुनः एक पत्र कृष्णानन्द के नाम इस आशय का लिखा— मेरा अनुरोध है कि आप श्री नरोत्तम ठाकुर को यहाँ भेज दें। लड़के की ऐसी स्थिति नहीं है कि वहाँ तक ले जा सकूँ। यहाँ आने पर वे स्वयं प्रत्यक्ष रूप में देख लेंगे। अगर लड़के की स्थिति ठीक होती तो मैं स्वयं इसे लेकर उनके चरणों में उपस्थित होता।

इस पत्र को पाकर नरोत्तम ने रामचन्द्र से सलाह माँगी। रामचन्द्र ने कहा— "शुभस्य शीघ्रम।"

अब नरोत्तम ठाकुर ने कहा— "गौरांग महाप्रभु क्या आदेश देते हैं, इसकी जानकारी प्राप्त कर लूँ।"

आम लोग इस बात पर विश्वास करते थे कि नरोत्तम ठाकुर एकान्त में महाप्रभु गौरांग से वार्तालाप करते हैं। यही कारण है कि लोग उनका भजन करते हैं, भक्ति करते हैं, उन पर विश्वास करते हैं।

उस दिन स्वप्न में नरोत्तम ठाकुर ने देखा— गौरांग महाप्रभु कह रहे हैं कि नरोत्तम, जीव का उपकार करना परम-धर्म है। इसके लिए क्यों ऊहापोह कर रहे हो? कल सबेरे चले जाओ।

दूसरे दिन रामचन्द्र से सारी बातें हुईं। यह समाचार खेतरी के लोगों तक पहुँच गयी। बहुत से लोग नरोत्तम ठाकुर के साथ पैदल चलने को तैयार हो गये।

नरोत्तम ठाकुर हमारे गाँव आ रहे हैं, जब यह समाचार राघवेन्द्र राय के नगर के लोगों को मालूम हुआ तब वे हर्ष से नृत्य करने लगे। ठाकुर के स्वागत के लिए नगर को सजाया गया।

राजमहल में पहुँचते ही पैर धोने के पश्चात् नरोत्तम ठाकुर ने कहा— "मुझे शीघ्र रोगी के पास ले चलिये।"

नरोत्तम ठाकुर को अपने साथ लेकर राघवेन्द्र अपने पुत्र के कमरे में आये। बिस्तर पर बैठकर उसे गोद में उठाते हुए राघवेन्द्र ने कहा— "बेटा, ठाकुर आये हैं, इन्हें प्रणाम करो।"

लड़के के मुँह से किसी और की आवाज निकली— "मैं ब्राह्मण हूँ। हमेशा मैंने कुकर्म किया। जैसा मैं हूँ, ठीक उसी प्रकार चाँद राय का रहा है। इसी कारण इसके शरीर के आश्रय में हूँ। आपके शुभागमन से मेरा उद्धार हो गया। अब मैं मुक्त होकर जा रहा हूँ। ठाकुर महाशय, आपके चरणों में कोटि-कोटि प्रणाम।"

इतना कहने के बाद चाँद राय एक भयानक चीख के साथ शय्या पर गिर पड़ा। पानी के छींटे तथा हवा करने पर जब वह होश में आया तब उसके भाई संतोष राय ने कहा— "दादा, देखो ठाकुर महाशय आये हैं। आपके प्रभाव से तुम्हें पीड़ा देनेवाला, ब्रह्मदैत्य भाग गया। अब तुम ठाकुर महाशय को प्रणाम करो।"

चाँद राय के प्रणाम करने के बाद परिवार के सभी सदस्य और उपस्थित लोग ठाकुर का चरण स्पर्श करने लगे। जिस राघवेन्द्र राय के नाम से पड़ोसी राज्य के लोग हमेशा काँपते आये हैं, उसी परिवार के लोग आज एक कायस्थ के चरणों पर सिर रख रहे थे।

ठाकुर महाशय का प्रभाव चाँद राय पर इस प्रकार पड़ा कि उन्होंने जमींदारी का सारा कामकाज दूसरों को सौंप दिया। इस समाचार को सुनकर स्थानीय नवाब ने नाराज हो इन्हें गिरफ्तार कर लिया। चाँद राय को अपनी गिरफ्तारी की तनिक भी चिन्ता नहीं हुई। इन दिनों उनके हृदय में नरोत्तम ठाकुर की अभय वाणी काम कर रही थी।

बादशाह ने हुक्म दिया कि तुम मुस्लिम-धर्म स्वीकार कर लो वर्ना हाथी के पैरों तले कुचल दिये जाओगे। चाँद राय ने इस शर्त को स्वीकार नहीं किया। फलस्वरूप उन्हें मौत की सजा सुनाई गयी।

निश्चित दिन मैदान में एक हाथी को शराब पिलाकर लाया गया। बादशाह ने कहा— "हाथी तुम्हें कुचलने को तैयार है। अब भी मेरा हुक्म मानकर मुसलमान बन जाओ।"

चाँद राय ने कहा— "जहाँपनाह, भगवान् की कृपा होगी तो मेरा कुछ नहीं होगा। मुझे आप हाथी के पैरों तले कुचलने का आदेश दे सकते हैं।"

इतना कहने के पश्चात् चाँद राय 'हरे कृष्ण' कीर्तन करते हुए हाथी की ओर बढ़ गये। भगवान् के प्रति चाँद राय की इस आस्था को देखकर बादशाह चमत्कृत हुआ। उसने हाथ के इशारे से महावत को रोक दिया। इसके बाद बादशाह तख्त से उतरकर चाँद राय के पास आये और उसे गले से लगाते हुए बोले— "तुम्हारे हिम्मत की दाद देता हूँ।"

कई दिनों तक अपने यहाँ मेहमान रखने के बाद बादशाह ने पाँच सौ अश्वारोही सैनिकों के साथ उन्हें वापस भेज दिया। चाँद राय अपने घर न जाकर खेतरी की ओर रवाना हो गये।

इधर पुत्र के गिरफ्तार हो जाने के बाद राघवेन्द्र राय का दिल टूट गया। अपने शोक संतप्त हृदय में शान्ति देने के लिए वे खेतरी चले गये। यहाँ वे नरोत्तम ठाकुर के कीर्तन में भाग लेते हुए पुत्र-शोक को भुलाने लगे।

सहसा एक दिन चाँद राय को सकुशल वापस आते देख राघवेन्द्र राय का आनन प्रसन्नता से चमक उठा।

तभी चाँद राय ने नरोत्तम ठाकुर के चरणों पर मस्तक रखते हुए कहा— ''तुम्हारे दासों पर कभी विपत्ति नहीं आ सकती प्रभो।''

+ + + +

समय गुजरता गया। कई बसन्त आये और सकुशल चले गये। महाप्रभु गौरांग का संदेश समस्त गौड़ देश में फैलता गया और फिर अन्य प्रदेशों में भी भक्तगण इससे अनुप्राणित होते गये। इस कार्य में नरोत्तम ठाकुर तथा उनके शिष्य लगे रहे।

धीरे-धीरे नरोत्तम ठाकुर के शरीर पर बुढ़ापा असर दिखाने लगा। अब पहले की तरह उनसे भजन करते नहीं बनता। कभी-कभी स्तव पाठ करते समय कह उठते थे— ''हे गौरांग, अब मुझे अपने चरणों में स्थान दो। मैं बहुत दुर्बल होता जा रहा हूँ।''

एकाएक एक दिन नरोत्तम ठाकुर ने अपने शिष्यों से कहा— ''मैं गाम्भिला जाऊँगा।''

इस निश्चय के बाद वे अपने भक्तों के साथ गाम्भिला रवाना हो गये। यहाँ वे गंगानारायण के घर ठहरे। गाम्भिला निवासी पुनः अपने निकट नरोत्तम ठाकुर को पाकर हर्ष से आत्मविभोर हो उठे। नित्य भजन का कार्यक्रम चलने लगा।

कार्त्तिक महीना था। कृष्णपक्ष की पंचमी तिथि के दिन कमर भर पानी में बैठे नरोत्तम ठाकुर अवगाहन करने लगे। गंगानारायण और रामकृष्ण उनके शरीर को रगड़ते रहे।

ठीक इसी समय गंगा की एक ऊँची लहर आयी और नरोत्तम ठाकुर को अपने अंक में लेकर न जाने कहाँ विलीन हो गयी। कुछ देर तक गंगानारायण चारों ओर देखते रहे। सहसा स्वयं आत्मोत्सर्ग करने के लिए वे दौड़ पड़े। उनका उद्देश्य समझते ही कुछ लोगों ने उन्हें कसकर पकड़ लिया।

पूरे गाँव में यह समाचार दावानल की तरह फैल गया और फिर दूर-दूर तक फैलता गया। विभिन्न स्थानों से भक्तगण गाम्भिला में आने लगे। इन भक्तों को लेकर राजा रूपनारायण, चाँद राय, नरसिंह आदि खेतरी गाँव आये जहाँ नरोत्तम ठाकुर की स्मृति में वृहद् उत्सव हुआ।

आज भी प्रत्येक वर्ष कार्त्तिक कृष्णपक्ष की पंचमी तिथि को खेतरी गाँव में ठाकुर की स्मृति में मेला लगता है और भजन-कीर्तन होता है।

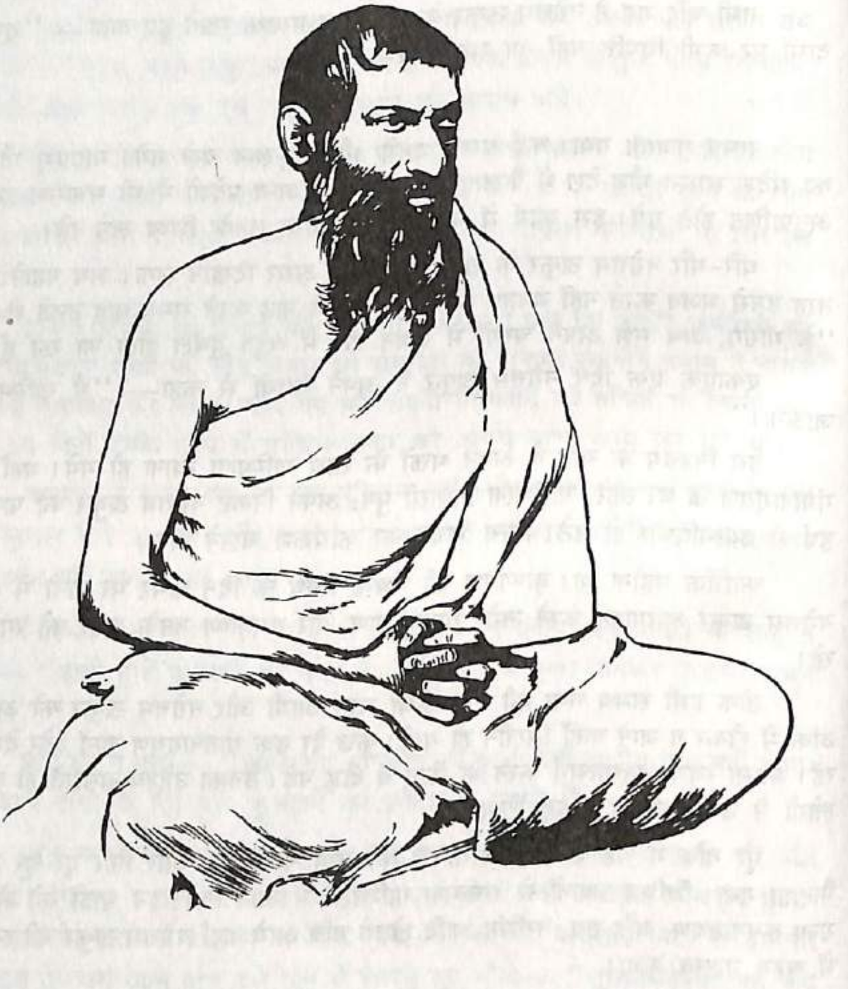

श्रीम

श्रीम

मायावती अद्वैत आश्रम के अध्यक्ष स्वामी अनन्यानन्द के निकट एक दिन एक विदेशी पर्यटक आया और कहा—''क्या आप कृपा करके कोई ऐसा गाइड दे सकते हैं जो मुझे दक्षिणेश्वर मंदिर दर्शन करा दे। मेरे पास समय कम है। पाँच घण्टे बाद मेरा हवाई जहाज यहाँ से रवाना होनेवाला है। इस थोड़े समय के भीतर उस पवित्र स्थान का दर्शन करना चाहता हूँ।''

इसके पूर्व किसी विदेशी ने स्वामीजी से ऐसा अनुरोध नहीं किया था। इस विदेशी के आग्रह को सुनकर उन्होंने उत्सुकतावश पूछा—''आप वहाँ क्यों जाना चाहते हैं?''

विदेशी ने अपना आत्म-परिचय देते हुए कहा—''मैं आइसलैण्ड का निवासी हूँ। एक अर्सा पहले मिस्टर श्रीम लिखित 'गस्पेल आव श्रीरामकृष्ण' पढ़कर अत्यन्त प्रभावित हुआ। बहुत दिनों से इच्छा थी कि भारत जाकर उस पवित्र स्थान का दर्शन करूँगा जहाँ वह महान् योगी लेखक को ज्ञान देता रहा। अपने व्यापार के सिलसिले में आज भारत में रुकना पड़ रहा है। इस समय का सदुपयोग करना चाहता हूँ।''

पर्यटक की बातों से स्वामी अनन्यानन्द इतने प्रभावित हुए कि किसी अन्य को न भेजकर स्वयं गाइड के रूप में उसे दक्षिणेश्वर ले आये। उक्त पर्यटक परमहंसजी के निजी कमरे में जाकर स्तब्ध भाव से कुछ देर बैठा रहा। इसके बाद बाहर निकलकर उसने कहा—''आज मेरे जीवन की एक अभिलाषा पूरी हो गयी। मैं एक अर्से से यहाँ आना चाहता था।''

दक्षिणेश्वर से वह यात्री सीधे दमदम हवाई अड्डे की ओर रवाना हो गया। भारत के अन्य स्थानों को देखने की इच्छा उसकी नहीं हुई।

श्री महेन्द्रनाथ गुप्त ने जिन्हें 'मास्टर महाशय' कहा जाता था, श्रीम के उपनाम से बंगला में सर्वप्रथम 'रामकृष्ण कथामृत' लिखा। पुस्तक छपने के साथ ही वह जनता में लोकप्रिय हो गयी। भारत में उड़िया, तमिल, तेलगु, कन्नड़, मराठी, गुजराती, मलयालम तथा हिन्दी में अनुवाद हो गया। इस पुस्तक का प्रथम खण्ड श्रीम ने अंग्रेजी में अनुवाद किया जिसका प्रथम प्रकाशन दिसम्बर, १९०७ ई० को न्यूयार्क स्थित वेदान्त

सोसायटी की ओर से हुआ। समग्र यूरोप में हलचल मच गयी। देखते ही देखते चेक, डेनिस, फ्रेंच, जर्मन, इतालवी, स्पेनिश, स्वीडिश आदि भाषाओं में अनुवाद हुए।

इस पुस्तक के बारे में स्वामी विवेकानन्द ने एक पत्र में श्रीम को लिखा—"तोफा हुआ है बन्धु तोफा। इतने दिनों बाद आपने ठीक कार्य में हाथ लगाया। आपको अनेक लोग आशीर्वाद देंगे, पर अधिकतर लोग अभिशाप देंगे। इसके पहले कभी किसी महान् आचार्य की जीवनी को किसी ने अपने मन के रंगों में रंगकर नहीं लिखा था जिसे आपने कर दिखाया। भाषा तो प्रशंसा के अतीत है—इतना सजीव, तीक्ष्ण, प्रत्यक्ष और स्वच्छन्द है, क्या कहूँ। अब समझ में आया कि हम लोगों में से किसी ने उनकी जीवनी लिखने का प्रयत्न क्यों नहीं किया।"

स्वामी ब्रह्मानन्द ने एक दिन अपने भक्त और शिष्यों से कहा था—"तुम लोगों को क्षण भर में ब्रह्मज्ञान दे सकता हूँ।" इसके बाद कथामृत पुस्तक दिखाते हुए उन्होंने कहा—"इस ग्रन्थ के अध्ययन से ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।"

मनीषी रोमां रोला ने इस पुस्तक को पढ़ने के बाद श्रीम को एक पत्र लिखा—"संभवत: आपने सुना होगा कि मैंने श्री रामकृष्णजी की जीवनी फ्रांसीसी भाषा में लिखने का संकल्प किया है। आपकी कृति श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत के प्रति मेरी असीम श्रद्धा है और इसके लिए मैं ऋणी हूँ। अगर आप अनुमति दें तो मैं कुछ प्रश्नों का उत्तर आपसे प्राप्त करना चाहता हूँ। सुना है कि आपके गुरु शिक्षित नहीं थे। यहाँ तक कि वे पूर्णत: निरक्षर थे। जो कुछ ज्ञान था, वह जबानी सुनकर ही था। यह कैसा ज्ञान है, कौन जाने। यूरोप में इसकी कल्पना नहीं की जा सकती।"

पत्र काफी बड़ा है और परमहंसजी के बारे में अनेक प्रश्न पूछे गये थे जिनका उत्तर श्रीम ने दिया था। संसार के इतिहास में श्रीम ही एक ऐसे लेखक हुए जिनकी एक कृति से सम्पूर्ण विश्व आकर्षित हुआ था।

१४ जुलाई, सन् १८५४ ई० को श्री मधुसूदन गुप्त के यहाँ एक पुत्र ने जन्म लिया जिसका नाम रखा गया—महेन्द्रनाथ। कलकत्ता के सिमलापल्ली स्थित शिवनारायण दास लेन में गुप्तजी सपरिवार रहते थे। चार पुत्र और तीन पुत्रियों में महेन्द्रनाथ तृतीय सन्तान थे।

रानी रासमणि ने दक्षिणेश्वर में काली माता का एक वृहद् मंदिर बनवाया था जहाँ पुजारी के रूप में परमहंस रामकृष्णजी रहते थे।

जिन दिनों महेन्द्रनाथ की उम्र चार साल की थी, उन दिनों माँ तथा मुहल्ले के लोगों के साथ वे यहाँ के मेले में आये। मेला घूमते समय अचानक बालक को ज्ञात हुआ कि वह अपनी माँ से बिछड़ गया है। भय से व्याकुल होकर वह रोने लगा।

परमहंस की अतीन्द्रिय शक्ति को अपने भावी एक भक्त की सूचना मिली। वे

बाहर आये और बालक के सिर पर हाथ फेरते हुए बोले—"चुप हो जा बेटा। मैं तेरी माँ को खोजता हूँ।"

अबोध बालक इस स्नेह-स्पर्श से शान्त हो गया। माँ की तलाश करने के बाद परमहंसजी ने बालक को उनके हाथ सौंप दिया। लेकिन कोई यह नहीं जान सका कि बालक पर रामकृष्णजी की कृपा-दृष्टि पड़ गयी है। अब उसके भावी जीवन के डोर का संचालन यहीं से होगा। बालक के भविष्य का सारा दृश्य चित्रपट की भाँति परमहंसजी के सामने से गुजर गया। परमहंसजी प्रारंभ से ही दो भक्तों पर विशेष कृपा करते थे। इनमें प्रथम थे—नरेन्द्रनाथ और द्वितीय थे—महेन्द्रनाथ। नरेन्द्रनाथ स्वामी विवेकानन्द हुए और महेन्द्रनाथ 'मास्टर महाशय।'

महेन्द्रनाथ में बचपन से ही कुछ ऐसी आदतें थीं जो कि आमतौर पर सामान्य बच्चों में नहीं पाई जातीं। स्कूल या बाजार जाते समय जितने मंदिर दिखाई देते, सभी के आगे ठहरकर प्रणाम करके आगे बढ़ते थे। दुर्गा-पूजा के अवसर पर वे मृन्मयी मूर्ति के सामने दीर्घकाल तक बैठे रहते थे। तेरह वर्ष की उम्र से उन्होंने डायरी लिखना प्रारंभ किया था। उन दिनों वे आठवें दर्जे के विद्यार्थी थे। जब कालेज में भर्ती हुए तब रामायण, महाभारत, पुराण, उपनिषद तथा चैतन्य चरितामृत बराबर पढ़ने लगे। कालिदास की रचनाएँ, दर्शन, इतिहास और साहित्य आपके प्रिय विषय थे। बातचीत के सिलसिले में वे उन ग्रंथों से उद्धरण देते थे।

जिन दिनों आप बी०ए० में पढ़ते थे तभी आपका विवाह हो गया। कालेज में पढ़ते समय कानून के अलावा संस्कृत ग्रंथों का निरन्तर अध्ययन करते रहे। जिन दिनों महेन्द्रनाथ डायरी लिखना प्रारम्भ किया था, उन्हीं दिनों परमहंसजी ने आप में शक्ति-संचार किया था। एल-एल०बी० करने के पश्चात् आप वकालत करना चाहते थे, पर अदृश्य-शक्ति ने वकालत करने नहीं दिया। बाद में जब आप आई०सी०एस० हुए तब विदेश जाने की तैयारी करने लगे ताकि यहाँ आकर उच्चाधिकारी बने। उस समय भी परमहंसजी का चक्र चला और आप विदेश नहीं जा सके। अगर वे विदेश जाते तो उनका मार्ग बदल जाता, फिर परमहंसजी का व्यास कौन बनता?

परमहंसजी के तिरोधान के काफी दिनों बाद 'गुप्त भारत की खोज' पुस्तक के लेखक श्री पाल ब्रण्टन मास्टर महाशय से मिलने आये। बातचीत के सिलसिले में पाल ने कहा—"क्या आप अपने गुरुदेव के बारे में कुछ कहना पसन्द करेंगे?"

श्रीम ने कहा—"यह तो मेरा प्रिय विषय है। उन दिनों मेरी उम्र सत्ताइस वर्ष की थी जब उनका दर्शन प्राप्त किया था। इसके बाद पाँच वर्ष तक उनके परिमण्डल में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। फलस्वरूप मुझे नया जीवन प्राप्त हुआ। मेरे जीवन की धारा बदल गयी। उस देव मानव का मुझ पर व्यापक प्रभाव पड़ा। केवल मैं ही नहीं, अन्य जितने लोग उनके सम्पर्क में आये, उन सभी पर आध्यात्मिक प्रभाव पड़ा था। यहाँ तक कि जड़वादी लोग जो उन्हें गाली देने आये थे, उनकी बोलती बन्द हो गयी थी।"

पाल ने प्रश्न किया—"जो लोग ईश्वर को नहीं मानते या अध्यात्म के प्रति आस्था नहीं रखते, वे कैसे प्रभावित हो सकते हैं?"

श्रीम मुस्करा उठे। बोले—"मान लीजिए दो व्यक्ति हैं। दोनों मिर्च खाते हैं। इनमें एक ने कभी मिर्च देखा नहीं और दूसरा मिर्च से भलीभाँति परिचित है, वह समझ जाता है कि उसने क्या चबाया है। मगर दोनों की अनुभूति एक प्रकार की है यानी तीता लगना। यही वजह है कि श्री रामकृष्ण के आध्यात्मिक विराटत्व के सम्बन्ध में जानकारी न रहने पर भी जड़वादी लोग उनके शरीर से निकलनेवाली ऐश्वरिक ज्योति का प्रभाव अनुभव कर चुके हैं।"

कुछ देर ठहरकर पुनः उन्होंने कहा—"गुरुदेव ने मुझसे कहा था—तुम्हारी आँखें, भौंह, कपाल और चेहरे का चिह्न देखकर मैंने तुम्हें पहचान लिया है कि तुम एक योगी हो। तुम अपना काम करते रहो, पर मन ईश्वर की ओर रखो। जिस प्रकार बड़े घर की नौकरानियाँ मालिक के यहाँ नौकरी करती हैं। उनके बच्चों की देखरेख करती हैं, पर उसका मन घर पर छोड़ आये अपने बच्चों के प्रति लगा रहता है। ठीक इसी प्रकार एक बार मेरे मन में संन्यास-ग्रहण करने की प्रबल इच्छा जागृत हुई। उनसे निवेदन करने पर उत्तर मिला—'तुम्हें संन्यासी बनकर अपने घर में रहना होगा।' मैंने सोचा कि राखाल, तारक, योगेन आदि को गुरुदेव ने संन्यास दिया तो मेरे बारे में आपत्ति क्यों? वे लोग भी विवाहित हैं। इस बार उन्होंने डाँटकर कहा कि तुम्हें गृहस्थाश्रम में रहते हुए काम करना है। बाद में एक दिन मुझे तांत्रिक-संन्यास दिया गया था।"

+ \+ \+ \+

२६ फरवरी, सन् १८८२, रविवार के दिन महेन्द्रनाथ ने सर्वप्रथम अपने आराध्य देव को देखा। सिद्धेश्वर मजूमदार के भवन में अनेक लोगों के बीच बैठे रामकृष्णजी हरिकथा सुना रहे थे। महेन्द्रनाथ अवाक् होकर सुनते रहे।

परमहंसजी कह रहे थे—"जब एक बार हरि या राम कहने पर शरीर रोमांचित हो या अश्रुपात हो तब समझ लेना कि अब संध्या-पूजन की आवश्यकता नहीं है। उस समय कर्म त्याग का अधिकार प्राप्त हो जाता है, कर्म का त्याग अपने आप हो जाता है।"

इस दर्शन के बाद महेन्द्रनाथ का हृदय न जाने क्यों व्याकुल हो उठा। वे दक्षिणेश्वर मंदिर की ओर रवाना हो गये। यहाँ आने पर उन्होंने देखा—कमरे के भीतर रामकृष्णजी मौन बैठे हैं। महेन्द्रनाथ को किसी ने यह बताया था कि शाम के वक्त परमहंसजी कभी-कभी समाधिस्थ हो जाते हैं।

यह बात मन में आते ही महेन्द्रनाथ बोल उठे —"इस वक्त आप संध्या कर रहे हैं। ठीक है, मैं फिर कभी आऊँगा।"

भावस्थ रामकृष्ण ने कहा—''नहीं। मैं संध्या नहीं कर रहा हूँ।''

महेन्द्रनाथ भीतर आये। कुछ देर बातें होती रहीं। बाद में रामकृष्णजी ने कहा—''फिर कभी आना।''

लौटते समय महेन्द्रनाथ ने अनुभव किया जैसे वे साक्षात् भगवान् से मिलकर आ रहे हैं। उन्हें इसकी जानकारी नहीं हुई कि रामकृष्णजी इसी प्रकार सात्त्विक पुरुषों को पहचानकर अपना भक्त बनाते हैं। रामकृष्ण के प्रभाव का उन पर असर इस तरह बढ़ा कि महेन्द्रनाथ निरन्तर यहाँ आने लगे।

एक दिन रामकृष्णजी ने इन्हें देखकर कहा—''अरे, यह फिर आ गया। पता नहीं, इस शरीर में क्या है। जो एक बार आता है, वह अफीमचियों की तरह ठीक समय पर चला आता है।'' बातचीत के सिलसिले में उन्होंने महेन्द्रनाथ से पूछा—''तुम साकार में विश्वास करते हो या निराकार में?''

महेन्द्रनाथ इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि साकार और निराकार दोनों ही ईश्वर की अवस्था है। कुछ देर चुप रहने के बाद उन्होंने कहा—''मुझे निराकार अच्छा लगता है।''

रामकृष्णजी ने कहा—''यह ठीक है। किसी एक पर विश्वास करना चाहिए। निराकार में विश्वास रखना उचित है, पर यह मत समझना कि यही सत्य है बाकी सब मिथ्या। दोनों ही सत्य है।''

महेन्द्रनाथ—''मानता हूँ कि साकार में विश्वास हुआ, पर वह तो मिट्टी का पुतला है।''

रामकृष्ण—''मिट्टी क्यों? वह तो चिन्मयी प्रतिमा है।''

महेन्द्रनाथ के अहं को धक्का लगा। रामकृष्णजी के साथ यही उनका प्रथम और अन्तिम तर्क था। रामकृष्णजी धीरे-धीरे उनका निर्माण करते गये। महेन्द्रनाथ ने स्वयं अनुभव किया कि इस विराट्-संसार के कर्णधार ठाकुर रामकृष्ण हैं।

पुनः महेन्द्रनाथ ने पूछा—''ईश्वर को कैसे स्मरण किया जाय?''

रामकृष्ण—''ईश्वर का गुण-गान सर्वदा करते रहना चाहिए। कभी-कभी निर्जन स्थान में जाकर चिन्तन करना चाहिए। पहले पहल निर्जन स्थान में ईश्वर को स्मरण करना कठिन होता है। जिस प्रकार पौधे को लगाते समय बकरी-गाय से बचाने के लिए काँटे या ईंटों का घेरा बनाया जाता है, उसी प्रकार ईश्वर का ध्यान प्रारंभ में निर्जनता के घेरे में करना चाहिए। घर पर काम करते समय भी उनका चिन्तन आवश्यक है। जिस प्रकार कछुआ पानी में रहता है, पर उसका ध्यान अपने अण्डों की ओर लगा रहता है जिसे उसने किनारे रख छोड़ा है।''

आगे रामकृष्णजी ने इस प्रश्न की सरल व्याख्या करते हुए कहा—''भक्ति के लिए निर्जन स्थान होना चाहिए। जिस प्रकार दही जमाने के लिए निर्जन स्थान की जरूरत होती है। अगर अथरी को ज्यादा हिलाया-डुलाया गया तो दही ठीक से नहीं जमती। उसी प्रकार भक्ति के लिए निर्जन स्थान आवश्यक है। दही के मथने पर ही मक्खन निकलता है।''

महेन्द्रनाथ ने अनुभव किया कि इस तरह उदाहरण देकर सरल ढंग से ईश्वर-भक्ति के बारे में कोई नहीं समझाता। ठाकुर आसपास की घटनाओं तथा तथ्यों के उदाहरण देकर विषय को सरल बना दे रहे हैं।

निर्जन स्थान के महत्व पर प्रकाश डालते हुए आगे ठाकुर ने कहा—''संसार पानी है और मन दूध। अगर इसकी उपेक्षा करोगे तो पानी-दूध एक में मिल जायगा। शुद्ध दूध नहीं मिलेगा। दूध को दही बनाओ और उससे मक्खन निकालकर पानी में रखो तो वह तैरता दिखाई देगा। इसीलिए निर्जन स्थान में साधना करनी चाहिए, तभी ज्ञान-भक्ति का नवनीत प्राप्त करोगे। संसार के पानी में उसे रखने पर यह घुल नहीं सकता।''

इस उदाहरण से महेन्द्रनाथ की शंका दूर नहीं होती। वे स्पष्ट रूप से यह जान लेना चाहते हैं कि क्या ईश्वर प्रत्यक्ष रूप से दर्शन देते हैं ?

इस प्रश्न के उत्तर में भगवान् रामकृष्ण ने कहा—''व्याकुल होकर पुकारने पर वे जरूर दर्शन देते हैं। लोग पत्नी और बच्चों के लिए रोते हैं। धन के शोक में रोते हैं, पर ईश्वर के लिए कौन रोता है? बच्चे के प्रति माँ का आकर्षण, पति के प्रति सती का आकर्षण और विषयी का विषय पर आकर्षण रहता है। इन तीनों आकर्षणों को एक में मिलाकर ईश्वर के प्रति व्याकुलता दिखाओ तब देखोगे कि वे दर्शन देने आ गये हैं।''

परमहंस रामकृष्णजी दिल खोलकर महेन्द्रनाथ को उदाहरण सहित उपदेश देते रहे। उन्हें ज्ञात था कि मेरा यह प्रिय शिष्य आगे चलकर संसार के लोगों को मेरे विचार संदेश के रूप में प्रचारित करेगा।

महेन्द्रनाथ गुप्त अधिकतर जो प्रश्न करते और उसका जो उत्तर रामकृष्णजी से मिलता, उन सभी बातों को वे नित्य डायरी में लिखा करते थे। केवल यही नहीं, परमहंसजी से कब, कौन मिला, उसने कौन-सा प्रश्न किया, परमहंसजी ने क्या जवाब दिया, वे कब किसके यहाँ गये, वहाँ क्या-क्या हुआ, इन सारी बातों को वे बराबर लिखते रहे। आगे चलकर यही सामग्री 'श्री श्रीरामकृष्ण कथामृत' के नाम से प्रकाशित हुई।

महेन्द्रनाथ गुप्त परमहंस की मण्डली में 'मास्टर महाशय' के नाम से प्रसिद्ध थे। आप एक साथ तीन स्कूलों के हेडमास्टर थे। तत्कालीन समाज के अनेक मूर्धन्य विद्वान,

राजनेता और समाजसेवी आपके छात्र थे। यहाँ तक कि परमहंसजी के अनेक शिष्य भी आपके शिष्य थे।

एक शिक्षक होने के कारण महन्द्रनाथ की ख्याति नहीं हुई बल्कि उनकी ख्याति हुई कथामृत पुस्तक के लेखक होने के कारण। पहले वे 'श्रीम' उपनाम से विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लिखते रहे। बहुत दिनों तक लोग यह नहीं जान सके कि इन धारावाहिक लेखों का लेखक कौन है?

कुछ दिनों बाद एक दिन रामकृष्णजी ने पूछा—''आजकल ईश्वर-चिन्ता किस प्रकार कर रहे हो? साकार अच्छा लग रहा है या निराकार?''

महेन्द्रनाथ—''साकार की ओर मन नहीं लग रहा है, दूसरी ओर निराकार में मन जम नहीं रहा है।''

परमहंसजी—''निराकार में मन जल्द स्थिर नहीं होता। पहले साकार ठीक है।''

इस प्रकार धीरे-धीरे रामकृष्णजी के प्रति उनका आकर्षण बढ़ता गया। यहाँ तक कि स्कूल से चलकर जब अचानक भक्तों से घिरे रामकृष्णजी के पास पहुँच जाते तब वे पूछते—''कैसे आये? क्या आज छुट्टी है?''

महेन्द्रनाथ का स्कूल पास ही था। वे जवाब देते—''स्कूल से आ रहा हूँ। इस वक्त कोई विशेष कार्य नहीं था।''

भक्तों में से कोई परिहास करता—''जी नहीं, स्कूल से भाग आये हैं।''

यह बात सुनकर लोग हँस पड़ते। दूसरी ओर महेन्द्रनाथ सोचते—''यहाँ आये बिना रहा नहीं जाता। पता नहीं, कौन मुझे यहाँ खींच लाता है?''

महेन्द्रनाथ नगर के प्रतिष्ठित नागरिक, शिक्षक ही नहीं, बल्कि कई बच्चों के पिता थे। घर पर पिता, भाई तथा सुन्दर पत्नी थी। ऐसे परिवार का सदस्य अगर उन दिनों घर से बराबर बाहर रहे तो अच्छा नहीं समझा जाता था। परिवार में अशान्ति अलग से होती थी। लेकिन जिस व्यक्ति में ईश्वर-दर्शन की तीव्र लालसा हो, वह कैसे गृहस्थी में रह सकता है। घर में अशान्ति बढ़ने पर एक दिन रात को जब सभी लोग सो गये तब पत्नी और बच्चों को लेकर वे सीधे अपनी बड़ी बहन के यहाँ चले आये। इस प्रकार संयुक्त परिवार से अलग हो गये।

घरेलू बातचीत के सिलसिले में एक दिन महेन्द्रनाथ ने कहा—''मेरा लड़का।''

तुरंत रामकृष्णजी ने कहा—''कभी यह मत कहना कि मेरा लड़का। कहना—ईश्वर का लड़का। उन्होंने संतान को तुम्हारे पास भेजा है, केवल उसके माध्यम से उनकी सेवा करने के लिए।''

इस चेतावनी के बाद फिर कभी महेन्द्रनाथ ने 'मेरा लड़का-मेरी लड़की' शब्द का प्रयोग नहीं किया। इस घटना के अढ़ाई साल बाद जब उनके प्रथम पुत्र की मृत्यु

हो गयी तब उन्हें शोक नहीं हुआ। यहाँ तक कि लड़के की माँ की मानसिक स्थिति खराब हो गयी तब भी वे निस्पृह रहे। जब लड़कों की माँ रामकृष्णजी के निकट आतीं तब उनका शोक दूर हो जाता था।

बातचीत के सिलसिले में एक दिन महेन्द्रनाथ ने कहा—"आजकल मैं अक्सर स्वप्न देखता हूँ। कल स्वप्न में देखा कि यह संसार जल से भरा हुआ है। चारों ओर अनन्त जलराशि है। कुछ नौकाएँ तैर रही हैं, बाकी डूब गयी थीं। मैं कुछ लोगों के साथ एक जहाज पर सवार था। ऐसे माहौल में देखा कि एक ब्राह्मण उस जलराशि पर से पैदल ही चला जा रहा है। मैंने उनसे पूछा—"आप कैसे जा रहे हैं?" ब्राह्मण ने हँसकर कहा—यहाँ कोई कष्ट नहीं है। पानी के नीचे सहारा है। मैंने उनसे प्रश्न किया—इस वक्त आप जा कहाँ रहे हैं? उन्होंने कहा—भवानीपुर जा रहा हूँ। मैंने कहा—जरा ठहरिये, मैं भी आपके साथ चलूँगा।"

सारी कहानी सुनने के बाद रामकृष्णजी ने कहा—"अब तुम शीघ्र दीक्षा ले लो। समय हो गया है।"

६ दिसम्बर, सन् १८८३ के दिन दक्षिणेश्वर मंदिर के एक निर्जन स्थान पर महेन्द्रनाथ अपने आप में तन्मय होकर खड़े थे। सहसा उन्हें परमहंसजी की वाणी सुनाई दी—"होगा, तुम्हारा जल्द होगा। तुम्हारा समय आ गया है। समय के पूर्व चिड़िया अपने अण्डे को नहीं फोड़ती। सभी को अधिक तपस्या करनी पड़ती है, ऐसी बात नहीं है।"

इस चेतावनी के द्वारा रामकृष्णजी ने सूचित किया कि पिछले जन्म में इतनी तपस्या कर चुके हो कि योगी बन गये। अतएव इस जन्म में तुम्हें अधिक तपस्या की जरूरत नहीं होगी। असल में परमहंसजी शनैः-शनैः उनमें शक्ति-संचार करते रहे। संभवत: इसीलिए एक दिन बातचीत के सिलसिले में परमहंसजी ने स्पष्ट शब्दों में कहा था—"गृहस्थ आश्रम में रहते हुए भी ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।"

इसके बाद एक दिन माँ (काली माता) के मंदिर में रामकृष्णजी उन्हें ले गये और माँ के चरणों पर उत्सर्ग कर दिया। माँ का ज्योतिर्मय रूप देखकर वे मातृ-स्नेह-सागर में अवगाहन करने लगे। ठाकुर ने कहा—"अब तुम्हें डरने की जरूरत नहीं। तुम पर माँ की कृपा हो गयी है।"

कुछ दिनों बाद बातचीत के सिलसिले में परमहंसजी ने कहा—"पता नहीं, तुम लोग ध्यान करते हो तो क्या देखते हो। एक दिन ध्यान के समय मैंने देखा—मेरे सामने रुपया, दुशाला, मिठाई और दो औरतें थीं। अपने मन से पूछा कि क्या तुझे इन सब चीजों की जरूरत है? मिठाई का स्वाद टट्टी की तरह लगा। औरतों को गौर से देखा तो उनके भीतर की सारी चीजें मल, मूत्र, नाड़ी, खून दिखाई देने लगीं। मेरे मन को एक भी चीज पसन्द नहीं आयी। यह बात याद रखो कि ध्यान में यह सब चीजें आयेंगी, लालच दिये जायेंगे। यहाँ साधक को अटल रहते हुए चरण-कमल पर ध्यान रखना होगा।

इसके अलावा मैं सर्वदा तुम्हारे पीछे रहूँगा। जर, जोरू और जमीन का त्याग करना जरूरी है। संन्यासियों को संचय नहीं करना चाहिए। ईश्वर का ही ऐश्वर्य है, मनुष्य ईश्वर को भूल जाता है और ऐश्वर्य को लेकर अहंकार करता है।''

+ + + +

एक ओर परमहंसजी ज्ञान देकर अपने व्यास को सही मार्ग पर ला रहे थे और दूसरी ओर महेन्द्रनाथ अपने गुरुदेव के उपदेशों का संकलन करते जा रहे थे। नये भक्तों से अक्सर कहा करते थे—''आज मेरी तबीयत ठीक नहीं है। मास्टर के पास जाकर उपदेश सुनो।'' परमहंसजी इसी बहाने 'कथामृत' के लेखक को प्रेरणा देते रहे।

केवल यही नहीं, अपने सबसे छोटे शिष्य सुबोधानन्द से भी परमहंस ने कहा था—''कभी-कभी महेन्द्र मास्टर के यहाँ भी जाना।''

उन दिनों सुबोधानन्दजी छात्र-जीवन व्यतीत कर रहे थे और उनके अध्यापक महेन्द्रनाथ थे। तुरन्त सुबोधानन्द ने कहा—''उनके पास क्यों जाऊँगा? वे तो गृहस्थ हैं।''

परमहंस ने कहा—''नहीं रे। वह यहाँ की बातों के अलावा अन्य कुछ नहीं कहता। मास्टर से मेलजोल रखना।''

महेन्द्र का कितना ख्याल परमहंसजी रखते थे, इसका उदाहरण एक घटना से मिल जाता है। उन दिनों परमहंसजी अस्वस्थ थे। महेन्द्रनाथजी का अधिकांश समय उनकी देखरेख में व्यतीत होता था। फलस्वरूप स्कूल का रिजल्ट खराब हुआ। यह जानकर श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने कहा—''आजकल आपका अधिकांश समय उनके यहाँ गुजरता है, इसलिए स्कूल का रिजल्ट खराब हुआ। यह ठीक नहीं है।''

अपने गुरु के बारे में इस तरह की टिप्पणी सुनकर महेन्द्रनाथ को धक्का लगा। उन्होंने त्यागपत्र दे दिया। यह समाचार सुनकर परमहंसजी ने कहा—''ठीक किया, ठीक किया, ठीक किया।''

ठीक तो किया, पर जीविका के लिए अब क्या करेंगे? बाल बच्चेवाले गृहस्थ हैं। परमहंसजी ने आगे कहा—''ईश्वर के लिए जो कुछ किया जाय, वह ठीक है। पहले ईश्वर-सेवा। इसके बाद अन्य काम करना चाहिए।''

महेन्द्रनाथ की उदासी देखकर अन्तर्यामी गुरु सारी बात समझ गये। कई दिनों बाद श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की गाड़ी आयी और उन्हें ले जाकर ससम्मान रिपन कालेज का अध्यापक बना दिया।

+ + + +

परमहंसजी के तिरोधान के पश्चात् महेन्द्रनाथजी का जीवन सन्तों की भाँति हो गया। उनकी समस्त चेतना को परमहंसजी के नाम ने आच्छन्न कर रखा था। अपने कपड़ों को स्वयं कचारते थे। भोजन के बाद अपना बरतन स्वयं माँजते और जूठन फेंकते

थे। भोग-विलास से दूर हट गये थे। एक बार कोई उनके लिए इटालियन कम्बल ले आया तो बोले—"यह आपने क्या किया? दिन-रात इसकी सुरक्षा की ओर मेरा मन लगा रहेगा।"

अगर कोई अच्छा खाद्य पदार्थ लाता तो कहते—"आप इसे अद्वैत आश्रम में ले जाइये। वहाँ साधु लोग खायेंगे तो आपको आशीर्वाद देंगे।"

परमहंसजी की चर्चा चलने पर कहते—"ठाकुर (परमहंस रामकृष्णजी) कहा करते थे कि ईसा, चैतन्य और मैं एक अविभाज्य सत्ता हैं। जगदम्बा मेरे कण्ठ में बैठकर बातें कहलाती हैं। मैं तो निरा मूर्ख हूँ। जगदम्बा पीछे से ज्ञान की राशि ढकेल देती हैं मेरे मुँह में, यह सब बातें मैं बाइबिल में पढ़ चुका हूँ। ईसा प्रभु की बातें सुनकर तत्कालीन विद्वान चकित रह जाते थे कि इतना ज्ञान इस व्यक्ति में कैसे आ गया।"

अपने गुरु भाइयों के निकट महेन्द्रनाथ श्रद्धेय थे। यद्यपि अपनी विनम्रता के कारण गुरुदेव के सभी संन्यासियों को वे श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे तद्यपि सभी गुरु भाई इन्हें स्वामी विवेकानन्द और राखाल महाराज के समकक्ष मानते रहे। मास्टर महाशय अपने भक्तों से कहा करते थे—श्री रामकृष्ण जिस-जिस रास्तों से गुजरे हैं, अगर उन रास्तों की धूल सिर से लगाया जाय तो योगी होना संभव है।

जब कभी मास्टर महाशय दक्षिणेश्वर आते तब साथ में एक गमछा लाना नहीं भूलते थे। यहाँ आने के बाद उस ग़मछे को गंगाजल में भिंगोकर दर्शनार्थी भक्तों के मस्तक पर पानी के छींटें देते हुए कहते—"श्री रामकृष्णजी जिस घाट पर स्नान करते थे, उसी घाट का यह पानी है।"

अपने गुरुदेव के प्रति उनका इतना विश्वास था। गुरुदेव के बारे में अगर उनसे कोई कुछ कहता तो वे भावातुर होकर अजस्र कहानियाँ सुनाया करते थे।

अद्वैत आश्रम के सभी साधु यह जानते थे कि मास्टर महाशय किसी को अपना चरण छूने नहीं देते। विजयादशमी के दिन बड़े बुजुर्गों का चरण कनिष्ठ लोग स्पर्श करके प्रणाम करते हैं। उस बार विजयादशमी के दिन मास्टर महाशय अद्वैत आश्रम आये। साधुओं ने पहले से ही षड़यंत्र रच रखा था। एक साधु ज्योंही झुककर उनके चरण की ओर हाथ बढ़ाया त्योंही महेन्द्रनाथ ने उनके दोनों हाथ पकड़ लिए। महेन्द्रनाथ की पकड़ को उक्त साधु ने जकड़ लिया। बस मौका पाकर उपस्थित साधु महेन्द्रनाथ के चरण स्पर्श करने लगे। इस प्रकार साधुओं की प्रेमलीला समाप्त हुई। मास्टर महाशय अपने स्नेहियों के आगे हार गये।

स्वामी प्रेमानन्द हमेशा मास्टर महाशय को दण्डवत करते हुए प्रणाम करते हैं। एक बार मास्टर महाशय परमहंसजी की जन्मतिथि के अवसर पर बेलुड़ मठ में आये। इन दिनों वे जरा अस्वस्थ थे। यहाँ दर्शन-प्रणाम करने के बाद जरा जलपान करेंगे।

साथ में धान का लावा ले आये हैं, जरा दही चाहिए। उन्होंने ब्रह्मचारी हेमेन्द्र से कहा—"देखो, भण्डारघर में दही है या नहीं।"

पता लगाने पर हेमेन्द्र ब्रह्मचारी को ज्ञात हुआ कि दही तो है, पर अभी भोग चढ़ाया नहीं है, इसलिए अभी देना उचित नहीं होगा। हेमेन्द्र यही बात कहने के लिए वापस जा रहे थे। तभी स्वामी प्रेमानन्द ने देखा कि हेमेन्द्र भण्डारघर से वापस जा रहे हैं। उन्होंने पूछा— "भण्डारघर में क्यों आये थे।"

सारी बात सुनकर स्वामी प्रेमानन्द ने कहा—"ठहरो।" इसके बाद वे भण्डारघर में आये और दहीवाला बरतन लेकर परमहंसजी के चित्र के सामने आकर आँख बन्दकर खड़े हो गये। इसके बाद दही की हँड़िया हेमेन्द्र ब्रह्मचारी को देते हुए कहा—"आज एक अपराध से ठाकुर ने हम लोगों की रक्षा की। तुम भी तो जानते हो कि वे ठाकुर के अन्तरंग पार्षद हैं। ठाकुर इन लोगों के मुँह से खाते हैं। 'कथामृत' पढ़ा नहीं है, ठाकुर ने कहा है कि इन लोगों को खिलाने पर हजार साधुओं को खिलाने का लाभ होता है। आप रामकृष्णावतार के व्यास हैं। दिन-रात ठाकुर की वाणी इनके मुँह से निकलती है। आज हम लोगों से होनेवाली एक बड़ी त्रुटि से ठाकुर ने बचा लिया।"

उस समय मास्टर महाशय दूर एक आम के पेड़ के नीचे विश्राम कर रहे थे। ठाकुर के सभी शिष्य महेन्द्रनाथ का सम्मान इस प्रकार करते थे।

३० अक्टूबर, १८८८ ई० को मास्टर महाशय की पत्नी श्रीमती निकुंज देवी को श्री शारदा माता ने दीक्षा दी। इसके बाद ठाकुर के इंगित पर माँ ने महेन्द्रनाथ को महामंत्र दिया। सबसे पहले ठाकुर ने इन्हें तांत्रिक संन्यास दिया था और अब तंत्र की अधिष्ठात्री श्री माँ ने मंत्र में प्राण का संचार किया।

+ + + +

बात उन दिनों की है जब मुकुन्द घोष परमहंस योगानन्द नहीं हुए थे। अपनी माँ की असामयिक निधन के कारण बहुत व्याकुल हो उठे थे। वे प्रत्यक्ष रूप से जगज्जननी का दर्शन करना चाहते थे ताकि उनसे निर्देश प्राप्त कर अपने भावी जीवन के मार्ग का चुनाव कर सकें। उन्हें यह ज्ञात था कि मास्टर महाशय जगन्माता के कृपा-पात्र हैं। उनसे बातचीत करते हैं। एक दिन वे मास्टर महाशय के यहाँ आये। इनके हृदय के भीतर उमड़ते तूफान का अनुभव करते हुए मास्टर महाशय ने कहा—"जरा शान्त होकर बैठो। इस वक्त मैं जगज्जननी के साथ बातें कर रहा हूँ।"

कुछ देर बैठने के बाद मुकुन्द घोष अस्थिर हो उठे। उन्होंने कहा—"आप मेरे बारे में जगज्जननी से आदेश प्राप्त कर लें। इस वक्त मैं जा रहा हूँ। कल आपकी सेवा में पुनः हाजिर होऊँगा।"

मास्टर महाशय इन दिनों जिस मकान में रहते हैं, वह मकान कभी मुकुन्द घोष

के पिताजी का था। इसी मकान में मुकुन्द घोष की माँ का निधन हुआ था और यहीं मास्टर महाशय के पुण्य स्पर्श से जगन्माता के लिए उनका हृदय व्याकुल हो उठा था।

दूसरे दिन भोर के समय मुकुन्द घोष पहुँच गये। मास्टर महाशय के कमरे का दरवाजा बंद था। क्षण भर में खुला तो मुकुन्द ने कहा—''समाचार जानने के लिए जल्दी आ गया। मेरे बारे में माँ ने आपको कुछ कहा है?''

गौर से कुछ देर देखने के बाद मास्टर महाशय ने कहा—''पहेली बुझाने की चेष्टा कर रहे हो या मेरी परीक्षा ले रहे हो? उस करुणामयी जगज्जननी के निकट से कल रात को तुम्हें आदेश मिला है। इसके बाद भी उन बातों को मुझसे सुनना चाहते हो? बोलो? बात सच है या नहीं?''

यह बात सुनते ही मुकुन्द ने मास्टर साहब को साष्टांग प्रणाम किया। इस वक्त वे आनन्द से अश्रुपात करने लगे। बात सही थी। कल रात को दस बजे जब मुकुन्द ध्यान पर बैठे तब उन्हें जगज्जननी की ओर से निर्देश मिला था।

मास्टर महाशय ने कहा—''क्या तुम यह सोच रहे हो कि तुम्हारी भक्ति माँ की असीम करुणा को स्पर्श नहीं कर सकी? ईश्वर के मातृभाव की जिसे तुम मानवी और देवी के रूप में पूजा करते आये हो, तुम्हारे आकुल क्रन्दन से प्रभावित हुए बिना रह सकती हैं?''

एक बार जब मुकुन्द ने मास्टर महाशय से अनुरोध किया कि वे मंत्र देकर शिष्य बना लें तब उन्होंने कहा—''मैं तुम्हारा गुरु नहीं हूँ। तुम्हारे गुरु कुछ दिनों बाद आयेंगे। उनके निर्देश से तुममें प्रेम-भक्ति का प्रभाव होगा। उससे जो दिव्यानुभूति प्राप्त होगी, वह अनन्त ज्ञान देगी।''

मुकुन्द घोष तीसरे पहर नित्य मास्टर महाशय के घर जाते थे। सच तो यह है कि मास्टर महाशय की अतीन्द्रिय शक्ति से वे इतना प्रभावित हो गये थे कि उनके प्रति प्रगाढ़ भक्ति मुकुन्द के हृदय में उत्पन्न हो गयी थी।

एक दिन एक माला लाकर मुकुन्द ने कहा—''यह माला आपके लिए लाया हूँ।''

मास्टर महाशय ने उसे पहनने से इनकार कर दिया। जब उन्हें यह महसूस हुआ कि इससे बालक की आत्मा को ठेस पहुँची है तब उन्होंने कहा—''हम दोनों ही माँ के भक्त-संतान हैं तब माँ का आवास इस देह-मन्दिर में है। ऐसी हालत में तुम उन्हें अर्घ दे सकते हो। मगर मुझे नहीं।''

एक दिन मुकुन्द और मास्टर महाशय स्कूल के एक ओर टहल रहे थे। इतने में एक सज्जन आये और बेकार की बातें करने लगे। कुछ देर बाद धीरे से मास्टर महाशय ने मुकुन्द से कहा—''मैं देख रहा हूँ कि इस व्यक्ति की उपस्थिति से तुम प्रसन्न नहीं

हो। इसे यहाँ से भगाना चाहिए। बहरहाल मैं माँ को सूचित कर रहा हूँ। वे हमारी मुसीबत समझ जायेंगी। अब देखो, इसे माँ किस तरह हमारे पास से हटाती हैं। माँ ने कहा कि यह आदमी उधर जो लाल मकान दिखाई दे रहा है, वहाँ तक पहुँचते ही इस आदमी को एक जरूरी काम याद आयेगी और यह व्यक्ति चला जायगा।''

मास्टर महाशय ने जैसा कहा था, ठीक वैसा ही हुआ। इसी प्रकार एक दिन मुकुन्द घोष किसी कार्य के सिलसिले में हावड़ा गये थे। अचानक उन्होंने देखा—लोगों की एक मण्डली ढोल-मंजीरा बजाते हुए प्रचण्ड स्वर में भगवान् का नाम ले रही है। पर उनमें भक्ति का नाम-गंध नहीं है। अभी यह सोच ही रहे थे कि देखा— सामने से मास्टर महाशय उनकी ओर आ रहे हैं। मुकुन्द ने कहा—''मास्टर महाशय, आप यहाँ कैसे?''

मास्टर महाशय ने इस प्रश्न का जवाब नहीं दिया, बल्कि मुकुन्द की चिन्ताधारा को पकड़ते हुए कहा—''खोका बाबू, भगवान् का नाम ज्ञानी-मूर्ख सभी के मुँह से सुनने पर मधुर नहीं लगता।''

मास्टर साहब की बातें सुनकर मुकुन्द दंग रह गये। वे तो अपने मन में सोच रहे थे कि भक्त-मंडली में भक्ति का नाम-गंध नहीं है।

इसी प्रकार एक बार तीसरे पहर श्रीम (मास्टर महाशय) ने अचानक मुकुन्द से पूछा—''क्या बायस्कोप देखना पसन्द करोगे?''

श्रीम का प्रश्न रहस्यजनक लगा। इस प्रश्न का उत्तर न देकर मुकुन्द श्रीम के साथ घूमने निकल पड़े। कुछ देर बाद दोनों व्यक्ति विश्वविद्यालय के सिनेट हाल में पहुँचे, जहाँ एक सज्जन भाषण दे रहे थे। भाषणकर्ता का भाषण बहुत ही नीरस और बेमतलब का था। मुकुन्द सोचने लगे— मास्टर साहब यही बायस्कोप दिखाने ले आये हैं। लेकिन जबानी उन्होंने कुछ नहीं कहा ताकि उन्हें नागवार न लगे।

तभी श्रीम ने धीरे से कहा—''देख रहा हूँ, यह बायस्कोप तुम्हें पसन्द नहीं आ रहा है। माँ को मैंने सूचित कर दिया है। इसके लिए वे भी दुःखित हैं। बहरहाल, उन्होंने सूचित किया कि इस हाल की सारी बत्तियाँ क्षण भर बाद गुल हो जायेंगी। उसी समय हम लोग चुपचाप यहाँ से चल देंगे। जब तक हम लोग बाहर नहीं पहुँचेंगे तब तक बत्तियाँ नहीं जलेंगी।''

मास्टर साहब की बात समाप्त होते ही किसी अदृश्य हाथ ने हाल की सारी बत्तियों को बुझा दिया। चारों ओर अँधेरा हो गया। वक्ता महोदय चुप हो गये। किसी ने कहा—''हाल की सारी बत्तियाँ खराब हैं।''

इसी बीच मास्टर महाशय के साथ मुकुन्द घोष हाल के बाहर निकल आये। ज्योंही इन लोगों के कदम बाहर बरामदे पर पड़े त्योंही पहले की तरह सारी बत्तियाँ जल उठीं।

श्रीम ने कहा—"खोका बाबू, इस बायस्कोप को देखकर तुम प्रसन्न नहीं हुए। कोई बात नहीं। अब एक नये प्रकार का बायस्कोप दिखा रहा हूँ। इसे देखकर तुम जरूर प्रसन्न होगे।"

विश्वविद्यालय की सीमा के बाहर निकलकर फुटपाथ पर चलते-चलते अचानक श्रीम ने मुकुन्द घोष के वक्षस्थल पर हाथ से थपकी मारी।

तुरंत अद्‌भुत परिवर्तन हुआ। कोलाहल से मुखर वातावरण स्पन्दन-हीन नीरव हो गया। सिनेमा के पर्दे पर जब साउण्ड बाक्स खराब हो जाता है तब चलचित्र के सभी पात्रों के हाथ, पैर, मुँह हिलते-डुलते हैं, पर कोई आवाज सुनाई नहीं देती। ठीक उसी प्रकार यहाँ की सारी आवाजें थम गयीं। राहगीर, दौड़ती हुई ट्रामगाड़ी, मोटर, रिक्शा, बैलगाड़ी आदि की आवाजें गायब हो गयीं। लगा जैसे सभी चुपचाप बिना शोर किये गन्तव्यस्थल की ओर चले जा रहे हैं। सर्वदर्शी आँखों से वे अपने चारों ओर का दृश्य अवाक् होकर देखने लगे। कलकत्ता स्थित एक शोरगुलवाले कारखाने को प्रत्यक्ष रूप से देख रहे हैं, पर वहाँ के लोग जैसे बिना शोर किये अपना काम कर रहे हैं। एक स्निग्ध प्रकाश चारों ओर बिखर गया है। उन्हें यह भी देखकर आश्चर्य हुआ कि राह चलते अनेक मित्र उनके पास से गुजर रहे हैं, पर कोई उन्हें पहचान नहीं रहा है।

इस अपूर्व मूक दृश्य को देखकर वे आनन्दित हो उठे। इस अनास्वादित दृश्य का वे जीभरकर पान कर रहे थे। अचानक पैरों में ठोकर लगी और तभी मास्टर महाशय ने पहले की तरह उनके वक्षस्थल पर आघात किया। तुरंत ही कर्णभेदी कोलाहल से वे त्रस्त हो उठे। मधुर स्वप्न क्षण भर में चूर-चूर हो गया।

मास्टर महाशय ने कहा—"देख रहा हूँ, यह बायस्कोप तुम्हें अधिक पसन्द आया। क्यों ठीक कह रहा हूँ न?"

+ \+ \+ \+

अक्सर कभी-कभी श्रीम का शरीर विद्रोह करने लगता था। कभी-कभी दम घुटने लगता या बेतहाशा दर्द महसूस करने लगते थे। उस दिन घर पर स्वामी नित्यानन्द भजन गा रहे थे। अचानक गोष्ठी से उठे और अपने कमरे में चले आये। इधर एक माह से वे बुखार से पीड़ित थे। लगभग तीन घण्टे तक बिस्तर पर सोये रहे।

घर के लोगों ने भक्त डाक्टर सत्यशरण चक्रवर्ती को बुलाया। उन्होंने जाँच के बाद कहा—"आपकी जो इच्छा हो कीजिए।"

श्रीम परमहंसजी की कथा सुनाने लगे। थोड़ी देर में बुखार उतर गया।

३ जून, सन् १६३२ को 'कथामृत' के पाँचवें खण्ड का प्रूफ देख रहे थे। उस समय रात के पौने दस बजा था। कलेजे में दर्द शुरू हुआ। घर के लोगों से कहा—"मुझे जमीन पर लिटा दो।"

भोर पाँच बजे कै हुआ और उसके साथ ही 'कथामृत' का महान् लेखक महेन्द्रनाथ गुप्त, मास्टर महाशय, श्रीम चिरनिद्रा में सो गये।

देखते ही देखते रामकृष्ण भगवान् के शिष्य, भक्त तथा अगणित शोकातुर लोग आये और काशीपुर महाश्मशान की ओर रवाना हो गये। रामकृष्णजी का अद्वितीय पार्षद सदा के लिए अपनी स्मृति रखकर चला गया।

स्वामी प्रेमानन्द तीर्थ

स्वामी प्रेमानन्द तीर्थ

नित्य दिन चढ़ने के साथ ही गाँव के कुछ रोगी व्यक्ति पण्डित महेशचन्द्र के घर के सामने हाजिर हो जाते हैं। महेशचन्द्र न डाक्टर हैं और न कविराज, वे न्यायशास्त्र के पण्डित हैं। ये मरीज आते हैं उनके तृतीय पुत्र हरिदेव के पास जो स्वप्न में प्राप्त दवाओं की सूचना देता है।

हरिचरण को गाँव के सभी लोग हरिदेव के नाम से बुलाते हैं। बचपन से ही उसे दैवी-प्रतिभा प्राप्त हुई है। वे नित्य स्वप्न में श्रीकृष्ण भगवान् से खेलते, उनसे बातें करते और इन घटनाओं की चर्चा अपनी बुआ से करते थे। माँ के निधन के पश्चात् बुआ ने इन्हें पाला था, इसलिए वे बुआ को अपनी माँ समझते थे। बुआ पहले इनकी बातों पर विश्वास नहीं करती थीं। सारी बातें सुनने पर भी उन्हें लगता जैसे बालक अपने मन से कहानी गढ़कर सुना रहा है। लेकिन एक बार जब वे स्वयं बीमार हुईं और हरिदेव द्वारा बतायी गयी दवा से अच्छी हो गयीं तब उन्हें विश्वास हो गया कि बालक जो कुछ कहता है, वह सब सच है।

बुआ के द्वारा इस बात का प्रचार गाँव में हो जाने के कारण अक्सर लोग अपनी बीमारी के बारे में उसे आकर बता जाते। उसी रात को हरिदेव अपने सखा कृष्ण भगवान् से रोगी के बारे में दवा की जानकारी प्राप्त करके दूसरे दिन उसे बता देते। हरिदेव द्वारा बतायी दवाओं से लोग निरामय होते रहे।

पंडित महेशचन्द्र के तीन पुत्र थे। प्रथम गंगाचरण, द्वितीय गुरुचरण और तृतीय हरिचरण था। कहा जाता है कि भूमिष्ठ होने के बाद बालक हरिदेव को रोते न देख लोगों ने समझा कि शायद मृत पैदा हुआ है। लेकिन यह अनुमान गलत निकला। बचपन में अक्सर जब पेड़ पर से गिरते या चोट लगती तब भी वे रोते नहीं थे। बाद में आपने किसी पत्र में लिखा था—''इतना सामर्थ्य किसी में नहीं है जो मुझे दुःख दे सके।''

बचपन में इन्हें स्वप्न में श्रीकृष्ण दर्शन देते थे और रोगियों के लिए दवाओं के नाम बताते थे। फलस्वरूप बचपन से ही हरिदेव का श्रीकृष्ण के प्रति अनुराग हो गया। अपनी कुशाग्र बुद्धि का परिचय वे बराबर देते रहते थे। भय किस चिड़िया का नाम है, इसे वे नहीं जानते थे।

एक बार इनके पड़ोसी के घर में चोरी का माल पकड़ा गया। आसपास के लोगों ने जाँच करनेवाले दरोगा को घूस देकर कहा—"आप रिपोर्ट में लिख दें कि माल बरामद नहीं हुआ है।"

इतना सुनते ही हरिदेव ने एक झपाटे से कलम-दावात उठाते हुए कहा—"मेरी दावात-कलम से झूठी रिपोर्ट नहीं लिखी जायगी।"

केवल दरोगा ही नहीं, उपस्थित सभी लोग सन्न रह गये। चूँकि बालक गाँव का दुलारा था, इसलिए दरोगा अपमान का घूँट पीकर रह गया।

बंगाल में उन दिनों ब्राह्मणों के घरों में पाठशालाएँ लगती थीं जहाँ गाँव के बच्चे पढ़ते-लिखते थे। बच्चों को ताड़पत्र या केले के पत्तों पर अक्षरांभ कराया जाता था। कागज-स्याही गाँव में नहीं मिलते थे। स्याही के लिए विभिन्न प्रकार के रंगों का प्रयोग होता था। हरिदेव के घर में पाठशाला थी। उनकी प्रारंभिक शिक्षा घर में हुई थी।

गाँव में अस्पृश्यता का पालन अत्यन्त कठोरता से होता था, पर हरिदेव का स्वभाव इसके विपरीत था। कट्टर ब्राह्मण परिवार का बालक नीच जातियों के बालकों के साथ खेलता और उनके घर जाया करता था। एक बार बरसात के समय पानी से बचने के लिए एक अछूत बालक इनके पूजावाले कमरे के बरामदे पर आकर खड़ा हो गया। यह देखकर घर के लोगों ने उसे डाँटते हुए भगा दिया। इसके बाद पूजा का सामान फेंककर विग्रह का नूतन अभिषेक किया गया। इस घटना का बालक हरिदेव के मन पर व्यापक प्रभाव पड़ा। उसने सोचा—अगर उस अछूत बालक के बदले कोई कुत्ता आता तो क्या यह सब कार्य किया जाता? क्या एक अछूत बालक कुत्ते से भी नीच है?

इस घटना से उन्हें इतनी पीड़ा हुई कि उसी दिन शाम को उस बालक के घर गये। उसे गले से लगाया और अपने हाथ से जलपान कराया। बालक जब प्रसन्न हो गया तब उन्हें संतोष हुआ।

बंगाल के ब्राह्मणों में यह नियम है कि यज्ञोपवीत होने के बाद एक वर्ष तक शुचिता का पालन किया जाता है। ब्राह्मणों के अलावा अन्य किसी जाति के घर भोजन नहीं करना चाहिए। हरिदेव का जब यज्ञोपवीत हुआ तब एक दिन अपने पड़ोस में रहनेवाली एक छोटी जाति की महिला के घर जाकर बोले—"मुझे भूख लगी है। मुझे कुछ खाना खिलाओ। मैं भी यह देखना चाहता हूँ कि इससे क्या अनिष्ट होता है।"

महिला हरिदेव का हठ देखकर सहम गयी, पर लगातार अनुरोध करने पर उसे खिलाना पड़ा। बचपन से ही हरिदेव अछूतों के घर खाते रहे। इस परम्परा का पालन उन्होंने आजीवन किया।

संन्यास लेने के पश्चात् वे हरिजनों के लिए विशेष रूप से प्रिय बन गये थे। एक बार जब वे आगरा में थे तब महामारी के कारण मेहतरों ने हड़ताल कर रखी थी। आप जिस मुहल्ले में रहते थे, वहाँ महामारी का प्रकोप अधिक था। आगरा के घरों

में पाखाना दरवाजे के समीप बनवाये जाते थे ताकि मेहतर को घर के भीतर न आना पड़े। दोपहर के वक्त घर के पुरुष अपने काम से चले जाते थे और महिलाएँ अपने काम में व्यस्त रहतीं अथवा विश्राम करती थीं। जहाँ शहर में सफाई नहीं होती थी, वहाँ उनके घरों के पाखाने साफ रहते थे। महिलाएँ इस बात की चर्चा करती थीं कि हमारे मुहल्ले के मेहतर हड़ताल पर नहीं हैं। लेकिन एक दिन महिलाओं ने देखा कि उनके मुहल्ले के बाबाजी कमर में गमछा लपेटे और सिर पर एक कपड़ा बाँधे, झाड़ू और बाल्टी लेकर घर-घर जाकर सफाई कर रहे हैं।

आगरा शहर की दूसरी घटना सन् १९०४ की है। वे एक गली से गुजर रहे थे। सहसा उनकी निगाह एक वृद्धा मेहतरानी पर पड़ी जो पाँव में काँटा गड़ जाने के कारण कष्ट पा रही थी। उसके पास जाकर 'माँ' सम्बोधन करते हुए हरिदेव ने उसके पैर से काँटा निकाल दिया।

हरिदेव के साथ उनके कुछ मित्र थे। उन्हें हरिदेव की यह सेवा पसन्द नहीं आयी। प्रतिवाद में उन्होंने कहा—''आपने मुझे पहचाना नहीं। मैं मेहतरानी का पुत्र हूँ। आज मुझे अपनी माँ की सेवा करने का अवसर मिल गया। जब तक हम स्त्री जाति को मातृरूप में ग्रहण कर उसकी पूजा करना नहीं सीखेंगे तब तक हमें जगन्माता के दर्शन नहीं होंगे।''

जिन दिनों आप कलकत्ता के एक कालेज में अध्ययन कर रहे थे, उन दिनों बराबर हरिजनों की बस्तियों में जाते थे। उनसे घनिष्ठता करते और बीमारी या कष्ट के समय मदद करते थे। मुसलमान और अछूतों की बस्ती में जब महामारी फैलती तब वहीं ठहर जाते थे। यहाँ तक कि पीड़ित व्यक्तियों के मलमूत्र की सफाई अपने हाथ से करते थे।

अपनी चित्रकूट यात्रा के बारे में आपने एक जगह लिखा है—''यहाँ के गरीब लोगों विशेष रूप से मेहतर और चमारों से मेरा बड़ा प्रेम हो गया है। मित्रों के अनुरोध पर इनके बच्चों को मैंने अपने हाथ से मिठाई खिलाई। शाम को जब घूमने निकलता हूँ तब मेहतरों के बच्चे 'बाबाजी-बाबाजी' कहकर मुझसे लिपट जाते हैं तब मुझे ऐसा अनुभव होता है जैसे मैं स्वर्ग में हूँ। जीव वेशधारी ये शिव हैं—यह देखने का यहाँ बहुत सुन्दर सुयोग मिला। गरीबों के साथ मुझमें जैसे नवयौवन आ जाता है।''

जीवन की प्रत्येक घटना से उन्होंने ज्ञान प्राप्त किया है और यह गुण उनमें बचपन से था। एक बार आप अपने छोटे मामा के साथ नदी में नहाने गये। जुकाम से पीड़ित होने के कारण आप स्नान करने के बदले नदी किनारे खड़े थे। थोड़ी देर बाद नदी में जोरों से लहर आयी जिसकी वजह से मामा की हालत खराब हो गयी। हरिदेव किनारे पर थे। लहर का पानी उनका चरण स्पर्श कर वापस चला गया। बालक हरिदेव ने तुरंत कहा—''मामा, आज मेरे जीवन का पथ ठीक हो गया। देखिये, नदी की लहर ने आपको

बेचैन कर दिया और मेरा पैर धोकर वापस चली गयी। संसार भी नदी के समान है जिसमें लहरें आती रहती हैं। मैं संसार से थोड़ा अलग होकर रहूँ तो संसार मेरी सेवा करके चला जायगा। मुझे कष्ट नहीं देगा।''

आठ वर्ष के बालक के मुँह से ऐसी बातें सुनने की आशा मामा को नहीं थी। वे अवाक् होकर हरिदेव की ओर देखने लगे। बाद में इस बात की सूचना उन्होंने महेशचन्द्र को दी।

बंगाल में दुर्गापूजा के अवसर पर भैंसा और बकरे का बलिदान दिया जाता है। बचपन में हरिदेव ने एक बकरा पाला था। अपने हाथ से उसे खिलाते तथा घुमाने ले जाते थे। एक बार कालीपूजा के समय बलिदान के लिए कोई बकरा नहीं मिला तो बड़े भाई ने इनके बकरे की बलि चढ़ा दी। उस वक्त हरिदेव सो रहे थे। रात दो बजे नींद खुली तो भाई के कपड़ों पर लाल रक्त का दाग देखकर उन्होंने पूछा—''यह कैसा दाग है?'' इनके भतीजे ने कहा—''चाचाजी, आपके बकरे की बाबूजी ने बलि चढ़ा दी है।''

यह बात सुनते ही अचानक हरिदेव के मुँह से निकल पड़ा—''ऐसे लोगों के संतान नहीं जीतीं।''

कुछ ही दिनों बाद भाभी और भतीजे की मृत्यु हैजे में हो गयी। हरिदेव को बड़ा दुःख हुआ। इस घटना के बाद से वे अपनी जबान को सम्हालकर कुछ कहते थे।

पशु-पक्षी आदि के प्रति हरिदेव हमेशा स्नेह प्रदर्शित करते थे। एक बार दुर्गापूजा के अवसर पर बलिदान का बाजा बजने लगा। इस बाजा को सुनते ही वे घर से चलकर जंगल की ओर बढ़ गये। इधर मण्डप से भैंसा रस्सी तुड़ाकर भाग चला। उसे पकड़ने के लिए लोग दौड़े। भैंसा का पीछा करनेवाले लोग चिल्लाते हुए आगे बढ़ रहे थे—''हट जाओ, बलिदानी भैंसा भाग रहा है।'' इस चेतावनी को सुनते ही हरिदेव सड़क से हटकर एक पेड़ के नीचे खड़े हो गये ताकि भैंसा गुजर जाय। आश्चर्य की बात यह हुई कि भैंसा सड़क से हटकर हरिदेव के पास आकर शान्त भाव से खड़ा हो गया। जैसे वह मुक्तिदाता हैं। हरिदेव बड़े स्नेह से उसे सहलाते हुए चूम लिया। पीछा करनेवाले लोग यह दृश्य देखकर विस्मय से अवाक् रह गये। जब लोग काफी करीब आ गये तब हरिदेव ने कहा—''अब भाग जा, फिर इनके हाथ मत आना।''

इस चेतावनी को सुनते ही भैंसा पुनः आगे की ओर दौड़ गया। पकड़नेवाले चिल्लाते हुए आगे बढ़ गये।

अपना अन्तकाल समीप आ गया है, समझकर एक दिन माँ ने हरिदेव को पास बुलाकर कहा—''बेटा, मेरे मरने के बाद तुम मत रोना। तुम्हारी बुआ हैं, वे तुम्हें मेरी तरह प्यार करेंगी। फिर मैं हमेशा तेरे पास रहूँगी।''

माँ की इस आज्ञा का पालन हरिदेव ने किया था। चन्द्रमुखी के निधन के समय सारा परिवार रो रहा था, पर हरिदेव की आँखों में आँसू नहीं थे। पूछने पर उसने कहा—''माँ ने मना किया है। मेरे रोने पर उन्हें कष्ट होगा।''

माँ के निधन के कुछ दिनों बाद एक दिन पिताजी उसे एक मंदिर में ले गये। वहाँ उन्होंने हरिदेव से पूछा—''बेटा, मैंने एक संन्यासी को वचन दिया था कि अपने अन्तिम पुत्र को संन्यासी बनाऊँगा। तुम मूर्ति को छूकर शपथ करो कि मेरी इच्छा की पूर्ति करोगे। याद रखो, संन्यास लेने के पूर्व पुत्रैषणा, वित्तैषणा, लोकैषणा त्यागकर जीव के कल्याण के लिए जीवन-दान करना पड़ता है। संन्यास के माने है—त्याग। मैंने गौर किया है, यह सब गुण तुममें है। मेरे अन्य पुत्रों में नहीं है। एक मात्र तुम संन्यास लेने के लिए उपयुक्त पात्र हो।''

हरिदेव ने कहा—''अभी जल्दी क्या है? जब उपयुक्त समय आयेगा तब आप संन्यास दिला दीजिएगा।''

पिता ने कहा—''मैं शीघ्र ही काशी जा रहा हूँ। वहाँ से सकुशल लौटकर आ सकूँगा या नहीं, यह कहना मुश्किल है। मैं चाहता हूँ कि आज तुम प्रतिज्ञा कर लो। इससे मुझे संतोष हो जायगा। लेकिन याद रखना कि वास्तविक संन्यासी बनना। गांजा-भांग पीकर आश्रम-मठ की स्थापना करनेवालों की तरह संन्यासी मत बनना।''

बालक हरिदेव के सामने यह कठिन परीक्षा थी। दैवी प्रेरणा से उन्होंने पिता को वचन दे दिया। पिताजी काशी चले गये। तीन दिन बाद समाचार आया कि वहाँ उन्होंने मुक्तिलाभ किया है।

+ \+ \+ \+

सन् १८८२ ई० की बात है। एक दिन हरिदेव ने स्वप्न में देखा कि वे जंगल में एक पेड़ के नीचे बैठे हैं। थोड़ी देर में तीन-चार संन्यासी आये और उनसे कहा—''तुम हमारे साथ हिमालय चलो।''

हरिदेव ने कहा—''इतनी दूर पैदल कैसे चलेंगे?''

एक संन्यासी ने कहा—''हम लोग आकाश-मार्ग से चलेंगे।''

इसके बाद सभी लोग आकाश-मार्ग से हिमालय के किसी क्षेत्र में आये। एक पेड़ के नीचे हरिदेव को बैठाकर संन्यासियों ने कहा—''तुम यहीं बैठो। हम लोग अपने गुरुदेव का दर्शन करके आते हैं।''

हरिदेव ने साथ ले चलने के लिए बड़ा आग्रह किया, पर वे साथ ले जाने को राजी नहीं हुए और चले गये। थोड़ी देर बाद एक संन्यासी दौड़ता हुआ आया और कहने लगा—''तुम बड़े भाग्यवान हो। गुरुजी तुम्हें बुला रहे हैं। आओ, मेरे साथ।''

हरिदेव प्रसन्नता पूर्वक गुरुजी के पास आये। गुरुजी ने कहा—''जाओ, सामने के झरने में स्नान कर आओ।'' जब हरिदेव स्नान करके वापस आये तब गुरुदेव ने कहना प्रारंभ किया—''भगवान् प्रेम स्वरूप हैं। प्रेम ही हमारी साधना है। मनुष्य का मुख्य कार्य है जीव की सेवा करना। तुम्हारा जीवन सेवा में व्यतीत हो। यह भी याद रखना कि सेवा के बदले किसी से प्रतिदान लो या उस पर उपकार कर रहे हो, यह भावना मन में मत लाना। सेवा करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। इससे परमब्रह्म परमात्मा चित्तशुद्धि करते हैं। मनुष्य मात्र ईश्वर का अंश होता है। उनकी सेवा भगवान् की सेवा है।''

इतना कहने के बाद गुरुदेव ने एक मंत्र—''ॐ विश्वरूपाय परमात्मने नमः' देकर नित्य जप करने का आदेश दिया। हरिदेव भावविभोर हो उठे। ज्योंही उन्होंने गुरुदेव को साष्टांग प्रणाम किया त्योंही उनकी नींद खुल गयी।

+ + + +

सन् १८९० ई० में हरिदेव छात्रवृत्ति परीक्षा पास करके बारिशाल शहर के एक स्कूल में भर्ती होने आए। उन्हें पाँचवीं क्लास में भर्ती किया गया। अब तक वे संस्कृत, बंगला और व्याकरण पढ़ते रहें, अब यहाँ अंग्रेजी की शिक्षा लेने लगे। बचपन से मेधावी रहने के कारण वे शिक्षा के क्षेत्र में निरन्तर अपनी कुशाग्र बुद्धि का परिचय देते रहे। क्लास के सहपाठियों के निकट ही नहीं, बल्कि अध्यापकों की दृष्टि में लोकप्रिय हो गये।

छात्र-जीवन में जब किसी सहपाठी को पीड़ित देखते तो तुरंत सेवा के लिए चल देते थे। एक बार एक छात्र हैजे का शिकार हो गया। दरअसल वह छात्र कुसंगत में पड़कर शराब पीने तथा कोठे पर जाने लगा था। इस बात की जानकारी कुछ लोगों को थी। शहर के एक प्रभावशाली व्यक्ति की सहायता से उसे वेश्या के कोठे से एक अस्पताल में उन्होंने दाखिल कर दिया और उसकी सेवा करने लगे। जब वह अच्छा हो गया तो उसके पास जाना बन्द कर दिया। वह छात्र कृतघ्न नहीं था। शुक्रिया अदा करने के लिए इनके पीछे लग गया, पर हरिदेव हमेशा मुलाकात से कतराते रहे।

उस छात्र को पता लगा कि हरिदेव रात को श्मशान में देर तक रहते हैं। वह वहाँ जाकर अनुरोध करने लगा कि अपनी इस कृपा के बदले वह कुछ उपहार स्वीकार कर लें। हरिदेव ने कहा—''तुम अपनी शराब पीने और वेश्या के कोठे पर जाने की आदत दान दे सकते हो तो मैं ले सकता हूँ। इसके अलावा मुझे कुछ और नहीं चाहिए।''

छात्र ने कहा—''मुझे यह शर्त मंजूर है, पर मैं अब अपना समय कैसे बिताऊँगा?''

हरिदेव ने कहा—''घर पर तुम्हारी माँ है। घर जाकर उनकी सेवा करो। माँ सजीव भगवान् हैं। माँ की सेवा से तुम्हारा जीवन सुधर जायेगा।''

इसी प्रकार एक बार उन्हें पता लगा कि स्कूल के पास एक व्यक्ति बेहोश पड़ा

है। हरिदेव ने क्लास के अध्यापक से दो घण्टे की छुट्टी माँगी। उन्होंने इनकार कर दिया। हरिदेव ने कहा—"एक बेहोश व्यक्ति को उचित चिकित्सा और सेवा प्राप्त न हुई तो वह मर जायगा। मुझे मत रोकिये। मैं जा रहा हूँ।" कहने के साथ ही हरिदेव क्लास के बाहर चला गया। कुछ दिनों बाद वह व्यक्ति स्वस्थ हो गया। इस घटना को सुनकर शिक्षक महोदय अपनी रूढ़ता पर अफसोस प्रकट करने लगे।

हरिदेव को भ्रमण का शौक था। गाँव में रहते समय प्रायः जंगलों की ओर चले जाते थे। श्मशान उनका प्रिय स्थान था। एक बार वे पैदल बनारस की ओर रवाना हुए। उन्हें बार-बार अन्तर से यह प्रेरणा मिलती थी कि भगवान् तुम्हारे रक्षक हैं। वे हमेशा सहायता करेंगे। इस बात की परीक्षा लेने के लिए वे काशी की ओर चल पड़े। रास्ते में उन्हें कहीं कोई कष्ट नहीं हुआ। काशी आने का उद्देश्य था—यहाँ के संतों का दर्शन करना। उन दिनों यहाँ अनेक प्रसिद्ध संत रहते थे।

यहाँ आने पर वे भास्करानन्द स्वामी के प्रति विशेष रूप से आकर्षित हुए। लेकिन यहाँ का रंगढंग उन्हें पसंद नहीं आया। एक दिन रूस के जार का पुत्र भारत के प्रधान सेनापति के साथ स्वामीजी का दर्शन करने आया। तभी आश्रम के एक शिष्य ने अतिथि रजिस्टर उनके सामने खोलते हुए हस्ताक्षर करने का आग्रह किया। यह दृश्य देखकर हरिदेव के मन में चोट पहुँची। जो व्यक्ति सब कुछ त्यागकर संन्यास ले चुका है, उसे इस प्रदर्शन के प्रति इतना मोह क्यों है? क्या स्वामीजी अभी उस कोटि तक नहीं पहुँचे हैं?

हरिदेव ने स्वामीजी से पूछा—"महाराज, आप तो वीतरागी महात्मा हैं, फिर इस विजिटर बुक के प्रति इतना मोह क्यों है? क्या आप इसे साथ ले जायेंगे?"

यह एक ऐसा प्रश्न था जिसे सुनकर भास्करानन्द के कई शिष्य नाराज होकर बोल उठे—"तुमसे मतलब? तुम कौन होते हो पूछनेवाले?"

हरिदेव के प्रश्न ने स्वामी भास्करानन्दजी को प्रभावित किया। उन्होंने रजिस्टर को उठाकर धूनी पर रख दिया। देखते ही देखते वह जलकर भस्म हो गया। बाद में हरिदेव को पास बैठाकर स्वामीजी नाना प्रकार के उपदेश देते रहे।

काशी से वापस आकर हरिदेव पुनः अध्ययन में जुट गया। एक ओर अध्ययन और दूसरी ओर जीव-सेवा निरन्तर जारी रहा। स्कूल में पढ़ते समय ही हरिदेव ने एक सेवा-समिति स्थापित की थी। महामारी के समय वे अपने मित्रों को लेकर लोगों की चिकित्सा, पथ्य आदि का प्रबंध करते रहे। इस सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है—"मनुष्य का दुःख देखकर मुझे बहुत कष्ट होता है और मैं यथासंभव, यथासाध्य उसे दूर करने की चेष्टा करता हूँ, किन्तु मेरी दृष्टि विशेष रूप से इधर रहती है कि उसको संसार-सुख की असारता का ज्ञान हो जाय और भगवान् को प्राप्त करने की पिपासा बढ़ जाय। एक बार पिपासा बढ़ जाने पर उसे कहीं न कहीं से पानी ढूँढ़कर निकालना पड़ेगा।"

अधिकांश संतों को अपने गुरुओं से शक्ति प्राप्त हुई है। दीक्षा के पश्चात् गुरु मंत्र देकर साधना करने की आज्ञा देते हैं। शिष्य साधना के माध्यम से कितना उन्नत हुआ है, उस आधार को देखकर शिष्य में वे शक्ति का संचार करते हैं। दूसरी ओर कुछ ऐसे संत हुए हैं जो अपने पूर्वजन्म के संस्कारों अथवा दैवी प्रेरणा से एषणा-शक्ति प्राप्त कर लेते हैं। आगे चलकर जब इन्हें वास्तविक गुरु के दर्शन होते हैं तब उन्हें इष्ट के दर्शन होते हैं। हरिदेव ऐसे संतों में थे।

बारिशाल की शिक्षा समाप्त करने के बाद उन्हें उच्च शिक्षा के लिए कलकत्ता आना था। अब सवाल यह था कि कलकत्ता में ठहरेंगे कहाँ? अपने एक मित्र को हरिदेव ने पत्र लिखा कि वह स्टेशन पर आ जाय ताकि उसकी सहायता से वह गन्तव्य स्थान पर पहुँच जाय।

सियालदह स्टेशन पर तथाकथित मित्र दिखाई नहीं दिया। एकाएक उन्हें याद आया कि दूर के रिश्ते का एक भाई कालीघाट के पास कहीं रहता है। उनका नाम श्रीकृष्ण वेदान्तवागीश है। प्रत्यक्षरूप से कभी मुलाकात नहीं हुई है। हरिदेव के लिए कलकत्ता नया शहर था। कालीघाट के बारे में पूछने पर पता चला कि यहाँ से ४-५ मील दूर है। हरिदेव ने भगवान् को स्मरण करते हुए मन में कहा—जहाँ मेरे पाँव रुक जायँगे, वहीं वेदान्तवागीश का घर मिल जायगा।

इस विश्वास के साथ वे पैदल रवाना हो गये। अचानक एक जगह इनके पाँव रुक गये। वहीं चबूतरे पर बैठे एक व्यक्ति से इन्होंने वेदान्तवागीश का पता पूछा। उस व्यक्ति ने पता बताने के बदले हरिदेव का नाम-गाँव पूछा। ज्योंही हरिदेव ने अपना परिचय दिया त्योंही उस व्यक्ति ने हर्षपूर्वक उसे गले से लगाते हुए कहा—''मैं ही हूँ तेरा दादा वेदान्तवागीश।''

इस चमत्कार को देखकर हरिदेव आनन्द से विह्वल हो उठे। मन ही मन उस परमब्रह्म परमात्मा को अशेष धन्यवाद देने लगे। उन्हें लगा जैसे माँ का आशीर्वाद उनका सहायक है। इस तरह की कई घटनाएँ उनके जीवन में हुई हैं। हरिदेव पग-पग पर यही अनुभव करते रहे कि कोई दैवी शक्ति उनकी रक्षा कर रही है।

कुछ दिनों बाद मित्रों की सहायता से वे वहाँ एक मेस में रहने लगे। यहाँ बी०ए० में अंग्रेजी, संस्कृत और दर्शन का अध्ययन करने लगे। अध्ययन करते हुए लोगों की सेवा करने के लिए 'रिलीफ फ्रेटरनिटी'' नामक संस्था की स्थापना की। नित्य स्टेशन जाकर गरीब रोगियों की तलाश कर उन्हें अस्पताल में भर्ती कराते, उनकी देखरेख करते थे। छुट्टियों के दिन मूक-बधिर विद्यालय, कुष्ठाश्रम, अनाथाश्रम जाते और वहाँ के लोगों की यथासंभव सहायता करते थे। यहाँ तक कि मेडिकल कालेज में जाकर शवच्छेदन का कार्य भी करते थे। इनके श्रम, निष्ठा को देखकर सभी चकित रह जाते थे। फलस्वरूप इनकी चर्चा चारों ओर होने लगी।

कलकत्ता विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार कालीचरण बनर्जी हरिदेव को पुत्र समान प्यार करते थे। कुलीन ब्राह्मण होते हुए उन्होंने ईसाई-धर्म अपना लिया था। ईसाई-धर्म को जानने के लिए हरिदेव उनके साथ प्रत्येक रविवार को गिरजाघर जाते थे। इन्हीं दिनों लन्दन से लार्ड विशप भारत आये। बातचीत के सिलसिले में विशप को हरिदेव की प्रतिभा के बारे में जानकारी प्राप्त हुई। उन्होंने सोचा कि ऐसे युवक को अगर ईसाई-धर्म के प्रचार में लगाया जाय तो धर्म-प्रचार में सुविधा होगी।

बातचीत के सिलसिले में विशप ने हिन्दू-धर्म की कुप्रथाओं की चर्चा की तो हरिदेव ने कहा—"जब ईसाई-धर्म को आप अच्छी तरह नहीं जानते तब हिन्दू-धर्म के बारे में भला क्या जान सकेंगे?"

विशप ने चौंककर पूछा—"क्या मतलब?"

हरिदेव ने कहा—"बाइबिल में लिखा है—'आई एण्ड माई फादर आर वन'—इसका अर्थ मुझे समझाइये।"

विशप साहब को चुप रहते देख हरिदेव ने तुरंत दूसरा वार किया। पूछा—"बाइबिल में है—'इन दी विगनिंग देयर वाज वर्ड, दी वर्ड वाज गॉड एण्ड दी वर्ड वाज गॉड' क्या आप इसका तात्पर्य बता सकते हैं? बाइबिल के इस वाक्य का अर्थ वेदान्तदर्शन का अध्ययन किये बिना नहीं बताया जा सकता। भारत में धर्म तत्त्व सिखाने मत आना। अगर सीखने की इच्छा हो तो आना।"

इतना कहकर हरिदेव उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना उठकर चले गये। विशप को स्वीकार करना पड़ा कि लड़का बहुत ऊँचे दर्जे का ज्ञानी है। हरिदेव के जीवन में इसी प्रकार की एक और घटना हो गयी। उन दिनों वे स्वामी के रूप में शिमला के एक पार्क में एक बेंच पर बैठे हुए थे। इस पार्क में भारतीयों का आना मना था। केवल अंग्रेज आते-जाते थे। अचानक एक अंग्रेज अफसर आया और स्वामीजी को बेंच खाली करने का आदेश दिया।

स्वामीजी ने कहा—"बेंच पर काफी जगह है। जहाँ इच्छा हो, बैठ जाइये।"

एक काले नेटिव के इस उत्तर पर उक्त अंग्रेज ने क्रोधपूर्वक कहा—"जानते हो किससे बात कर रहे हो?"

स्वामीजी ने ठंडे स्वर में कहा—"एक भ्रष्ट ईसाई से। मैं यहाँ चुपचाप बैठकर सूर्यास्त देख रहा हूँ। तुम व्यर्थ में चिल्लाकर मेरी शान्ति भंग कर रहे हो। ईसा के 'ब्रदरहूड आफ मैन' का यही अर्थ तुमने समझा है?"

इतना सुनना था कि उक्त अंग्रेज नरम हो गया। इसके बाद दोनों देर तक बातें करते रहे।

बी०ए० की परीक्षा के दिन निकट आ गये थे। ठीक इन्हीं दिनों पता चला कि ढाका में महामारी फैल गयी है। ये दवा आदि सामान लेकर तुरंत रवाना हो गये। जब

वे वहाँ से वापस आये तो स्वयं ही हैजा से पीड़ित हो गये। परीक्षा तीन दिन बाद शुरू होनेवाली थी। लोगों ने परीक्षा देने से मना किया, पर ये माने नहीं। बीमार हालत में परीक्षा दी। संस्कृत और दर्शन के पर्चे में कोई परेशानी नहीं हुई, पर अंग्रेजी का पर्चा लिखते समय बेहोश हो गये।

बी०ए० की परीक्षा देने के बाद शिक्षा से इनका मन उचाट हो गया। एक अज्ञात शक्ति इन्हें अपनी ओर खींचने लगी। इन्हें पिताजी को दिये वचन की याद आयी। उन्होंने निश्चय किया कि अब वह समय आ गया है।

इसी बीच एक दिन उनकी इच्छा दक्षिणेश्वर जाने की हुई। अपने एक मित्र से कहा कि तुम अपनी मोटर लेकर आना। एक दूसरे मित्र से कहा कि दक्षिणेश्वर चलने की इच्छा हो तो आ जाना। जिस मित्र से मोटर लाने को कहा था, वह समय पर नहीं आया। कुछ देर इंतजार करने के बाद दूसरे मित्र से उन्होंने कहा—''चलो, हम लोग स्टीमर से चलेंगे।''

घाट पर आने पर मालूम हुआ कि अभी थोड़ी देर पहले आखिरी स्टीमर रवाना हो गया है। वहाँ से दोनों लोग स्टेशन आये ताकि उत्तरपाड़ा पहुँचकर नाव से उस पार दक्षिणेश्वर जायेंगे। उत्तरपाड़ा आने पर ज्ञात हुआ कि अंधेरी रात में कोई नाव नहीं चलाता। सरकार की ओर से रोक भी है।

इस बात को सुनकर मित्र महोदय घबड़ा गये। उन्हें सांत्वना देते हुए हरिदेव ने कहा—''घाट पर चलो। वहाँ कोई न कोई तैयार हो जायेगा।''

कुछ दूर आगे बढ़ने पर सहसा एक बालक सामने आया और उसने कहा—''क्या आप लोग दक्षिणेश्वर जायेंगे? चलिये, मैं पहुँचा दूँ।''

दोनों व्यक्ति उस बालक की नाव से दक्षिणेश्वर के घाट पर उतरे। स्वामीजी ने अपने मित्र से कहा कि बालक को मजदूरी के अलावा कुछ इनाम जरूर दे देना। मित्र महोदय जब बालक को पैसे देने के लिए नाव की ओर आये तो देखा नाव के साथ-साथ बालक भी गायब था। हरिदेव समझ गये कि यहाँ भी भगवान् ने कृपा की है। उनकी महिमा को स्मरण करते ही उनकी आँखें डबडबा गयीं।

इधर कुछ दिनों से हरिदेव यह अनुभव कर रहे थे जैसे कोई अज्ञात शक्ति अपनी ओर आकर्षित कर रही है। कलकत्ते से मन उचाट हो गया। उन्होंने निश्चय किया कि पिताजी की प्रतिज्ञा की रक्षा करने का समय आ गया है।

यह मई, सन् १८९९ ई० की घटना है जब वे कलकत्ता से चल पड़े। विन्ध्याचल स्टेशन पर उतरकर गंगा-स्नान करने गये। आते समय एक गठरी में गेरुआ वस्त्र लाये थे। अपने सफेद वस्त्रों को उतार कर उन्होंने संन्यासियों का वेश धारण कर लिया। शेष सामग्री एक पेड़ के नीचे रखते हुए स्थानीय पण्डे से कहा—''कृपया आप इन सामानों को ले लें।''

बचपन से भगवान् श्रीकृष्ण को स्वप्न में देखते रहने के कारण वे कृष्ण के एकनिष्ठ भक्त बन गये थे। शायद इसीलिए गेरुआ वस्त्र धारण करने के बाद उन्होंने अपना नवीन नाम कृष्णानन्द रखा। विन्ध्याचल में कुछ दिनों तक रहने के बाद अपने आराध्य देवता श्रीकृष्ण की सेवा में वृन्दावन आ गये। यहाँ से हरिद्वार रवाना हो गये। हरिद्वार में कोई योग्य सन्त न मिलने के कारण वे और आगे बढ़ गये। इस वक्त उनका हृदय किसी सिद्ध पुरुष की तलाश में बैचेन हो रहा था।

कई दिनों तक चलने के बाद एक मनोरम स्थान पर पहुँचे। उन्होंने देखा— दूर एक गुफा के समीप एक वृक्ष के नीचे एक महात्मा पद्मासन लगाये बैठे हैं। एक अज्ञात शक्ति उन्हें इस समाधिस्थ सन्त की ओर आकर्षित करने लगी। महात्माजी के पास आने पर वे सहसा चौंक पड़े। उन्हें याद आया कि बचपन में इसी महापुरुष को उन्होंने स्वप्न में देखा था। कृष्णानन्द विस्मय से अभिभूत होकर खड़े रह गये।

उस सन्त ने मुस्कराते हुए कहा—''पास आओ बेटा। मैं तुम्हारे मन की स्थिति समझ रहा हूँ। शंका मत करो। मैं वही हूँ। उचित समय समझकर तुम्हें यहाँ बुलाया है।''

सन्त के पास जाते ही उन्होंने बड़े स्नेह से उन्हें गले लगाया और आशीर्वाद दिया। सन्त के आज्ञानुसार वे आश्रम में रहते हुए आध्यात्मिक प्रसंगों में अपनी शंकाओं का समाधान करते रहे।

कुछ दिनों बाद सन्त ने कहा—''बेटा, अब तुम्हें यहाँ से जाना पड़ेगा। तुम्हारा जन्म जीव-सेवा के लिए हुआ है। इन दिनों देहरादून में महामारी फैली है। वहाँ तुम्हारी आवश्यकता है। शीघ्र चले जाओ।''

कृष्णानन्द अपने गुरुदेव से अलग होना नहीं चाहते थे। यह जानकर गुरुदेव ने कहा—''मैं तुमसे दूर कहाँ हूँ? तुम जहाँ कहीं रहोगे, वहाँ सर्वदा तुम्हारे साथ रहूँगा। मैंने जो मंत्र तुम्हें दिया है, उसका जप बराबर करते रहना। मेरी जब जरूरत होगी तब मैं उपस्थित हो जाऊँगा। अब जल्द तुम रवाना हो जाओ।''

आगे चलकर कृष्णानन्द ने हर मुसीबत के वक्त अपने गुरु को सहयोग देते देखा था। गुरु की आज्ञा से वे देहरादून आये। यहाँ का कार्य समाप्त कर हरिद्वार चले आये। उन्होंने यह सुन रखा था कि यहाँ कन्हैयालाल नामक एक उच्चकोटि के योगी रहते हैं। लेकिन वे गुप्त रहते हैं। उनका दर्शन विरला ही कोई कर पाता है। उन दिनों कुंभ का समय था। एक दिन रात को अपनी कुटिया में बैठे कृष्णानन्द कन्हैयालाल के बारे में चिन्तन कर रहे थे। अचानक दरवाजे पर धक्के की आवाज आयी। कृष्णानन्द ने पूछा—''कौन?''

बाहर से आवाज आयी—''मैं हूँ, कन्हैयालाल। दरवाजा खोलो।''

कृष्णानन्द खुशी से झूम उठे। दरवाजा खोलने पर उन्होंने देखा कि सामने एक विशालकाय संन्यासी खड़े हैं। संन्यासी ने कहा—"तुमने मुझे स्मरण किया और मैं हाजिर हो गया।"

कन्हैयालाल ने कृष्णानन्द को गले से लगाया और फिर दोनों व्यक्ति धार्मिक विषयों की चर्चा करते रहे। भोर होने के पहले कन्हैयालालजी ने कहा—"अब मुझे यहाँ से चलना चाहिये। दिन निकलने पर लोग मुझे पहिचान लेंगे।"

कृष्णानन्द ने कहा—"कुंभ में स्नान नहीं करेंगे?"

कन्हैयालाल ने कहा—"पहले कुंभ में बड़े-बड़े महात्मा आते थे। वे शास्त्रार्थ करते थे। आजकल तो रोजगार करनेवाले साधु आते हैं।"

कृष्णानन्द उन्हें पहुँचाने के लिए नीलधारा तक आये। कन्हैयालाल गंगा में कूदकर उस पार पहुँच कर चण्डी पहाड़ के जंगल में अन्तर्धान हो गये।

जिन दिनों स्वामीजी हरिद्वार में थे, उन दिनों सहारनपुर का एक सेठ इनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर बड़े आदर के साथ अपने घर ले आया। कृष्णानन्दजी को भ्रमण का शौक बचपन से ही था। आप नित्य शाम के समय टहलने निकलते थे।

एक दिन एक मकान के दो तल्ले से आवाज आयी—"ओ ब्रह्मदैत्य, यहाँ आओ।"

कृष्णानन्द ने सिर उठाकर देखा तो एक बंगाली बाबू नजर आये। वे ऊपर गये तो बंगाली बाबू ने अपना असली रूप दिखाया। उसने सोचा कि यह युवक घर से भागा है और यहाँ गेरुआ वस्त्र धारण कर घूम रहा है। इसे धमकाकर घरेलू नौकर बनाया जा सकता है। बंगाली बाबू ने कहा—"लगता है तुम घर से भागे हुए हो। कोई हर्ज नहीं। यहाँ रहने पर तुम्हें कोई पकड़ नहीं सकेगा। तुम मेरे यहाँ रहकर बच्चों की देखभाल करते रहना।"

कृष्णानन्द बंगाली बाबू का आशय समझ गये। उन्होंने कहा—"और जो कुछ कहना हो, कह डालिये। ओनली फाइव मिनट्स टाइम है। मेरा एक जगह इंगेजमेण्ट है जहाँ पहुँचना आवश्यक है।"

कृष्णानन्द के मुँह से अंग्रेजी शब्दों को सुनकर वह जरा सकपकाया। फिर कहा—"तुम्हें यहाँ कोई कष्ट नहीं होगा।"

यह बात सुनते ही कृष्णानन्द उठकर खड़े हो गये। यह देखकर बंगाली बाबू जो पेशे से चिकित्सक थे, अपने नौकरों को बुलाने लगे और कहने लगे—"अभी मैं तुम्हें पुलिस के हवाले करता हूँ।"

कृष्णानन्द बलवान पुरुष थे। उसके हाथ को झटककर बाहर चले आये। दूसरे दिन कृष्णानन्द अपने मेजबान के घर के बैठक में बातें कर रहे थे, ठीक इसी समय

बंगाली बाबू आये। सेठजी को कृष्णानन्दजी के साथ आदर से बातें करते देख वह सहम गया। जिस युवक को वह भगोड़ा समझ रहा था, उसे सेठजी इतना सम्मान दे रहे हैं।

उसने इशारे से कृष्णानन्द को दूसरे कमरे में बुलाया। उनके आने पर उनके पैर पकड़कर क्षमा माँगने लगा। कृष्णानन्द ने अभयदान देते हुए वादा किया कि कल की घटना का जिक्र वे किसी से नहीं करेंगे। तुम निश्चिन्त रहो।

एक बार स्वामीजी लाहौर में मोहनलाल बैरिस्टर के घर ठहरे हुए थे। बातचीत के सिलसिले में कृष्णानन्दजी ने कहा—"भगवान् सब कुछ करते हैं, मनुष्य कुछ नहीं कर सकता।"

मोहनलाल को यह बात चुभ गयी। मेरे यहाँ ठहरे हैं। दोनों वक्त भोजन कर रहे हैं, क्या इसमें मेरा कर्तृव्य कुछ भी नहीं है? मोहनलाल के अन्तर में विद्वेष की भावना उत्पन्न हो गयी। उन्होंने कहा—"स्वामीजी, आप शायद कलकत्ता जा रहे हैं। अगर मैं या कोई मित्र आपको टिकट खरीदकर न दे तो आप कैसे जायँगे?"

स्वामीजी को मोहनलाल के घमण्ड की बात समझते देर नहीं लगी। उन्होंने कहा—"मोहनलाल, तुम समझते हो कि मेरे लिए सारा प्रबंध तुम कर रहे हो, यह तुम्हारी भूल है। मैंने तुम्हारे या अन्य किसी के सहारे घर नहीं छोड़ा है। मैंने जिनके सहारे इस मार्ग को पकड़ा है, वह प्रतिपल मेरी सहायता कर रहे हैं।"

इतना कहकर वे यात्रा की तैयारी करने लगे। मोहनलाल उन्हें अपनी गाड़ी से स्टेशन छोड़ने आये तो उन्होंने कहा—"अब तुम मुझसे कुछ दूर खड़े रहकर भगवान् की लीला देखो।"

मोहनलाल कुछ दूर खड़े होकर इंतजार करने लगे। स्वामीजी एक बेंच पर बैठे थे। दो मिनट बाद एक अपरिचित सज्जन आये और स्वामीजी से पूछा—"आप कहाँ जायँगे स्वामीजी?"

"मैं कलकत्ता जाऊँगा।"

"आपके पास टिकट है?"

"नहीं।"

उस व्यक्ति ने कहा—"आपके लिए टिकट ला दूँ?"

स्वामीजी ने कहा—"इच्छा हो तो ला दो।"

"पहले या दूसरे दर्जे का?"

"मैं तीसरे दर्जे में सफर करता हूँ। तीसरे दर्जे का ही टिकट लाना।"

इसके बाद उक्त सज्जन ने तीसरे दर्जे का एक टिकट लाकर स्वामीजी को दिया। यह सारा दृश्य दूर खड़े मोहनलाल देख रहे थे। दौड़े हुए पास आकर उक्त सज्जन का

टिकट वापस करने के लिए अनुनय करने लगे। स्वामीजी ने कहा—"अब ऐसा नहीं हो सकता। भगवान् पर भरोसा न करना नास्तिकता है।"

+ + + +

स्वामीजी काश्मीर में काफी दिनों तक थे। वहाँ भी इस प्रकार की एक घटना हुई थी। स्वामीजी का परिचय वहाँ दो विदेशियों से हो गया था। एक दिन उन लोगों के साथ बहुत दूर निकल गये। दोपहर को भोजन का समय हुआ जानकर विदेशियों ने कहा—"स्वामीजी, आप बराबर यह कहते हैं कि भगवान् ने मुँह दिया है तो भोजन की भी व्यवस्था वही करेंगे। आपके पास भोजन नहीं है और आप हमारा भोजन खायेंगे नहीं। इस जंगल में आपके लिए भगवान् कौन-सी व्यवस्था करते हैं, आज इसे हम देखना चाहते हैं।"

इतना कहकर वे लोग अपना भोजन सामग्री निकालकर भोजन करने बैठे। स्वामीजी कुछ दूर एक पेड़ के नीचे बैठ गये। दस-पन्द्रह मिनट बाद काश्मीर के वन विभाग के अफसर के यहाँ से एक व्यक्ति एक टोकरी फल लाकर दे गया। उसने कहा—"तिब्बत के साधुओं के लिए महाराजा साहब फल भिजवा रहे थे। उन्होंने कहा कि एक संन्यासी यहाँ भी हैं। उन्हें यह फल दे आओ।"

इस आकस्मिक घटना को देखकर दोनों विदेशी हतप्रभ रह गये। उन्हें यह विश्वास हो गया कि भारतीय संतों की ऐशी-शक्ति का प्रभाव कम आश्चर्यजनक नहीं है।

सन् १६०४ में स्वामीजी काशी आये और यहाँ कामरूप मठ के महन्त रामानन्द तीर्थस्वामी से संन्यास की दीक्षा ली। दण्डी-स्वामी बनने के बाद इनका नाम प्रेमानन्द तीर्थस्वामी हो गया।

आप यहाँ जप, ध्यान और जीव सेवा करते रहे। जब किसी बीमार आदमी की सेवा करने जाते तब उसके यहाँ पानी तक नहीं पीते थे। परोक्ष या अपरोक्ष रूप से किसी का उपकार ग्रहण नहीं करते थे। अपने सेवा-कार्य के बारे में उन्होंने कहा है—"अक्सर लोग मुझसे पूछते हैं कि मैं संन्यासी होकर जीव-सेवा में इतना व्यस्त क्यों रहता हूँ। मेरी जीव-सेवा की प्रवृत्ति जन्मजात है। मेरे भगवान् इसके संचालक हैं। स्वप्न में कितनी बार जीव-सेवा में जीवन-दान करने के लिए आदिष्ट हुआ हूँ।"

महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज ने आपके बारे में लिखा है—"ये एक महापुरुष थे। मुद्रादि स्पर्श नहीं करते थे। किसी से कुछ माँगते नहीं, फिर भी किसी प्रकार के अभाव का इन्हें सामना नहीं करना पड़ा।"

"प्रेमानन्दजी कृष्णानुरागी थे और इष्टदेव के पुरुषोत्तम रूप का ध्यान करते थे। इस आदर्शरूप की उपासना से इन्हें विश्वजननी महाशक्ति की कृपा प्राप्त हुई थी। बंग-

देश में इनके बारे में अनेक अलौकिक कथाएँ प्रचलित थीं। अपने भक्तों को इन्होंने जो पत्र लिखे थे, उनमें से अधिकांश का प्रकाशन हो गया है। इनके गुरुदेव हिमालयवासी कोई महान् सिद्धपुरुष थे। वे इनके जीवन का संचालन करते थे। मुझसे इनकी घनिष्ठता हो गयी थी। इन महात्मा ने 'पूजा' नामक एक विशिष्ट ग्रंथ का संकलन किया था जिसमें मेरा भी कुछ हाथ था।''

''स्वामीजी ने एक दिन प्रसंगत: श्रीकृष्ण तत्त्व पर कुछ सुनने की इच्छा प्रकट की। तत्त्वालोचन आरंभ हुआ। उसे सुनकर उनका चित्त इतना आकृष्ट हुआ कि उस दिन प्रसंग समाप्त होने पर उन्होंने इसे लिखा देने के लिए कहा। श्रुतलेख लिखनेवाले ने ८०० पृष्ठों का ग्रंथ उन्हें समर्पित किया जिसकी प्रतिलिपि उन्होंने स्वयं अपने हाथ से की। स्वामीजी के यही इष्टदेव थे। इस ग्रंथ को हमेशा अपने साथ रखते थे। नित्य अध्ययन-मनन करते थे। सन् १६५६ में जब उनका निधन हुआ तब उनके झोले में यह पुस्तक रखी मिली थी। इस ग्रंथ के प्रति उनकी इतनी श्रद्धा थी कि १४ वर्ष तक अपने से अलग नहीं किया। बाद में यह ग्रंथ मुझे लौटा दिया। अब यह ग्रंथ हिन्दी तथा बंगला में प्रकाशित हो गया है।''

स्वामीजी में किसी प्रकार की सांप्रदायिकता अथवा संकीर्णता नहीं थी। वे बाहर से जैसे प्रेमानन्द थे, वैसे उनके भीतर भी प्रेमसागर लहराता रहता था।

अपने बारे में स्वयं ही उन्होंने एक जगह कहा है—''मैं नित्यमुक्त आत्माराम हूँ। अभाव नाम की कोई वस्तु मेरे कोश में नहीं है। मैं कर्म करता हूँ स्वभाव से। जैसे अग्नि का स्वभाव है ताप देना, बरफ का स्वभाव है शीतल करना, आलोक का स्वभाव है प्रकाश करना, चुम्बक का स्वभाव है लोहे को आकर्षित करना, बालक का स्वभाव है बाजा सुनकर नाचने लगना, बीज का स्वभाव है वृक्ष में परिणत होना, जीवाणु का स्वभाव है पूर्ण जीवत्व लाभ करना, आनन्दमय का स्वभाव है आनन्द विकिरण करना, ठीक वैसे ही मेरी आत्मा का स्वभाव है — मेरे सच्चिदानन्द का स्वभाव है त्रिविध देहों को भेदकर अपनी सत्ता, चैतन्य और आनन्द को जगत् में प्रस्फुटित-विकसित-प्रकाशित करना।''

२ मई, सन् १६५६ को आपने देहत्याग कर अमृतधाम में प्रवेश किया था।

सन्तदास बाबाजी

सन्तदास बाबाजी

उस दिन हाईकोर्ट में छुट्टी थी। दोपहर का भोजन करने के पश्चात् ताराकिशोर की इच्छा हुई कि इस वक्त गंगा-किनारे चलकर कुछ देर भजन करूँ। आमतौर पर वे घर पर ही भजन-पूजन आदि करते हैं, पर आज न जाने क्यों गंगा-किनारे जाने की तीव्र इच्छा हुई।

जेठ का महीना, कड़ी धूप के कारण सड़कें तप रही थीं। हवा में बला की गर्मी थी। ऐसे माहौल में वे गंगातट की ओर पैदल ही चले जा रहे थे। हरिसन रोड और चितपुर रोड के संधिस्थल पर एक मस्जिद है। दरवाजे के पास एक सिद्ध मुसलमान फकीर रहते थे। चलते-चलते ताराकिशोर ने सोचा कि फकीर साहब का दर्शन करता चलूँ। पास जाकर उन्होंने फकीर साहब को प्रणाम किया।

फकीर ने हाथ उठाकर आशीर्वाद देते हुए कहा—''वहाँ बड़ी धूप है। क्या घर में नहीं होता?''

ताराकिशोर उस वक्त अपनी धुन में थे। फकीर साहब के कथन का तात्पर्य नहीं समझ सके। काफी आगे बढ़ने पर अपनी पैनी बुद्धि से काम लिया तब सारी बातें समझ गये। फकीर साहब के कथन का मतलब था—''जहाँ जा रहे हो, वहाँ कड़ी धूप है। क्या घर पर साधन-भजन नहीं कर सकते?'' बातों का मतलब समझने पर भी वे क्रमशः आगे बढ़ते गये।

घाट पर आने पर उन्होंने देखा कि फकीर साहब की बात सही निकली। चारों ओर धूप है जैसे अंगारें बरस रहे हैं। लेकिन वे वापस नहीं गये। स्नानार्थियों के उपयोग में आनेवाली एक लकड़ी के तख्त पर बैठ गये। उस दिन की स्मृति के बारे में आपने लिखा है—

''मैं स्थिर चित्त होकर चिन्तन करने लगा। गंगा तो पापहारिणी हैं। क्या मैं इतना बड़ा पापी हूँ कि गंगामाता मेरे पापों को धो नहीं सकतीं? इसी क्षण मेरी आँखों के सामने गोमुखी का वह स्थान प्रकाशमान हो उठा जहाँ से गंगामाता प्रवाहित हो रही हैं और उस स्थान पर उमा-महेश्वर दिखाई देने लगे। मैं चकित दृष्टि से उस दृश्य को

देखने में इतना बेसुध रहा कि उन्हें प्रणाम करना भूल गया। थोड़ी देर बाद महेश्वर ने एकाक्षरी बीज मंत्र देते हुए कहा कि इसके जप से मुझे सद्‌गुरु प्राप्त होंगे। फिर देखते ही देखते दोनों मूर्तियाँ अन्तर्धान हो गयीं।''

ताराकिशोरजी गाँव की शिक्षा समाप्त कर जब उच्च शिक्षा ग्रहण करने के लिए कलकत्ता आये तब पं० शिवनाथ शास्त्री आदि ब्राह्मसमाजियों के सम्पर्क में आये। ज्ञातव्य है कि प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी भी ब्राह्मसमाजी थे। उन्हें उस युग का सर्वश्रेष्ठ प्रचारक माना गया था। कट्टर हिन्दू ब्राह्मसमाजियों से नफरत करते थे, परन्तु विरोध में कुछ कर नहीं पा रहे थे। महर्षि देवेन्द्र ठाकुर के कारण तत्कालीन अनेक महापुरुष ब्राह्मसमाज से प्रभावित थे।

ठीक इन्हीं दिनों एक ऐसी घटना हो गयी जिसकी वजह से ताराकिशोरजी की जीवन-धारा बदल गयी। इस घटना के बारे में उन्होंने लिखा है —

''शौचादि के बाद मुझे नित्य समाचार पत्र पढ़ने की आदत थी। काशी से लौटने के बाद एक दिन मैं 'स्टेट्समैन' पत्र पढ़ रहा था। इस पत्र ने 'आस्ट्रेलियन टाइम्स' में प्रकाशित एक समाचार को उद्धृत किया था। उन दिनों 'चियारिनी सर्कस' आस्ट्रेलिया में अपना खेल दिखा रहा था। ज्ञातव्य है कि 'चियारिनी सर्कस' इसके पूर्व कलकत्ते में खेल दिखा चुका था। मुझे सर्कस से कोई दिलचस्पी नहीं थी। लेकिन 'स्टेट्समैन' में प्रकाशित समाचार ने मेरा ध्यान आकर्षित किया। ऐसा क्यों हुआ, आज मैं बता नहीं सकता।''

''उस समाचार में छपा था कि सर्कसवाले दो बाघों को जहाज पर लादकर ले जा रहे थे। समुद्र के उत्ताल तरंगों से वे डर ही नहीं गये, बल्कि उत्तेजित हो गये। इसी वजह से आस्ट्रेलिया पहुँचने के बाद वे लोग जितने खेल दिखाते थे, उनमें बाघवाला खेल तीन दिन नहीं दिखाया। चौथे दिन यह सोचकर कि अब बाघ शान्त हो गये हैं, आज खेल दिखाया जा सकता है। बाघों को लोहे के कटघरे में लाकर चारों ओर से घिरे लोहे के जंगले में प्रवेश कराया गया। जंगले के भीतर आते ही बाघ पुन: उत्तेजित होकर गुर्राने लगे। स्थिति नाजुक हो गयी। रिंग मास्टर घबराया नहीं। वह दृढ़, स्थिर और गंभीर रूप में उनकी ओर दृष्टिपात करने लगा। थोड़ी देर में बाघ शान्त हो गये और जंगले के भीतर आ गये। रिंग मास्टर आगे बढ़कर उनके शरीर पर हाथ फेरने लगा।''

इस समाचार ने मेरे मन में एक नयी बात पैदा कर दी। जो हिंस्र-पशु आक्रमण के लिए तैयार थे, वे कैसे शान्त हो गये? जबकि रिंग मास्टर के हाथ में कोई अस्त्र नहीं था जिससे जानवर डर जाते। केवल दृष्टि-शक्ति के वशीकरण से उनकी पाशविक-प्रवृत्ति दूर कर दी गयी है?

फलस्वरूप मेरे मन में एक अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न हो गया। हमारे यहाँ के गुरु अपनी

शक्ति के द्वारा शिष्य के आभ्यन्तरिक पाशविक-वृत्तियों को विशुद्ध कर देते हैं, इसीलिए लोग सद्गुरु के आश्रय में जाते हैं। मैं अब तक इसे ढोंग समझता रहा। रिंग मास्टर ने जिस प्रकार अपनी शक्ति को बाघों में संचारित किया, उसी प्रकार अगर गुरु शक्तिमान हो तो क्या वे शिष्य में अपनी शक्ति संचारित नहीं कर सकते? मैं अब तक इसे कुसंस्कार समझता रहा। मैंने जड़-विज्ञान और मनोविज्ञान का गहरा अध्ययन किया है। उस दिन ऐसा लगा कि हमारा यह शरीर यंत्र मात्र है। यह उसके आभ्यन्तरिक तड़ित-शक्ति के द्वारा संचालित हो रहा है और प्रत्येक के आभ्यन्तरिक प्रकृति के अनुरूप तड़ित-शक्ति सर्वदा उसके शरीर से विनिःसृत होकर बाह्य वस्तु में प्रविष्ट हो रही है। अगर उसकी इच्छा-शक्ति उन्नत हो जाय तो वह अपनी इच्छानुसार दूसरों के प्रति अधिक परिमाण में संचारित कर सकता है। हमारी उँगलियों का तड़ित-शक्ति से सम्पर्क बना हुआ है। उसके द्वारा तड़ित-शक्ति अपने आप निकलकर अपर वस्तु में संचारित होती है। इस तरह प्रकृतिगत गुणों के कारण ही हमारे यहाँ जातिभेद का निर्माण हुआ है।

देर तक इस समस्या पर विचार करने के बाद मैं एक नया मानव बन गया। मैंने अपने ब्राह्म मित्र कालीनाथ दत्त से इस बात की चर्चा की। उन्होंने कहा कि आपका विचार पूर्णतः सत्य है। मैंने तो शक्ति-सम्पन्न गुरु प्राप्त कर लिया है और उनकी आज्ञा का पालन कर रहा हूँ। इस समाचार को मैंने अब तक ब्राह्मसमाज के किसी भी मित्र को नहीं बताया है और न बताने की इच्छा है। गुरु के निर्देशानुसार नित्य साधना करता हूँ।

कालीनाथ दत्त की बातों का उन पर प्रभाव पड़ा। ताराकिशोर ने सोचा कि मैं भी उनकी तरह उनके गुरु का शिष्यत्व स्वीकार कर साधना करूँ। कालीनाथ की तरह लोगों से छिपाकर साधना करने में हर्ज क्या है? इस बारे में आप लिखते हैं—

"अपने मित्र कालीनाथ दत्त के साथ उनके गुरु के यहाँ जाकर मैंने शिष्यत्व ग्रहण किया। उनका नाम था—श्री जगत्चन्द्र सेन। वे किसी आफिस में क्लर्क थे। गृहस्थ थे। शिष्यत्व ग्रहण करने के बाद वे मुझे कतिपय शिष्यों के साथ बैठाकर शक्ति-संचार करने लगे। उस वक्त मैंने सामान्य क्रिया-शक्ति का अनुभव किया। उनके द्वारा बताये नाम का भजन करने लगा। उन दिनों कलकत्ते में ट्राम-बस नहीं थीं, इसलिए नित्य शाम को उनके यहाँ जाना मेरे लिए संभव नहीं था। मैं घर पर ही भजन करता था। मैंने अपने गुरु तथा गुरु भाइयों में जिस प्रकार श्वास-क्रिया चलते देखा था, ठीक उसी प्रकार मुझमें भी चलने लगी। शरीर के भीतर से एक अद्भुत-शक्ति प्रकट होने लगी। मैंने इसकी सूचना गुरुदेव को दी। वे अपने सामने बैठाकर मुझसे साधना कराने लगे। मेरी स्थिति कुछ देर देखने के बाद उन्होंने कहा—तुम्हारे शरीर में साधन-शक्ति प्रकट हो गयी है। षट्चक्र खुल गया है।"

कुछ दिनों बाद मेरे गुरु सेन महाशय अपनी नौकरी से त्यागपत्र देकर अपने पैतृक भवन में आकर रहने लगे। उनकी बीमारी का समाचार पाकर मैं उन्हें देखने के लिए गया और सेवा करने लगा। अस्वस्थ रहते हुए भी वे प्राणायाम के द्वारा मुझमें शक्ति

संचारित करने लगे। मैं भी उनके साथ प्राणायाम करता था। मेरे शरीर में अनेक क्रियाएँ होती रहीं। अन्त में एक दिन उन्होंने कहा—"आज तुम्हारा मूलाधार से द्विदल तक छः चक्र भेद हो गया। इस तरह से षट्चक्र भेद किसी अन्य का नहीं हुआ है।"

मैं झूमता हुआ घर आकर साधना करने लगा। इन्हीं दिनों ताराकिशोर ने समाचार पत्र में पढ़ा कि अमेरिका निवासी अलकट के मकान में एक दिन कोई भारतीय महापुरुष सहसा आविर्भूत हुए। उन्होंने अलकट को भारत आने का उपदेश दिया है। उनके आगमन को स्वप्न या भौतिक घटना न समझें, इसे प्रमाणित करने के लिए उन्होंने अपनी पगड़ी उतार कर अलकट के हाथ पर रख दी ताकि उन्हें यह विश्वास हो जाय कि वे एक जीवित भारतीय व्यक्ति हैं। इसके बाद उक्त महापुरुष अन्तर्हित हो गये।

इस घटना के पश्चात् कर्नल अलकट लम्बी यात्रा करके भारत आये। वे उक्त महापुरुष की तलाश में जगह-जगह भटकते रहे। बाद में उक्त महापुरुष का दर्शन उन्हें एक पहाड़ पर हुआ।

इस समाचार ने ताराकिशोर के नास्तिक-हृदय को झकझोर डाला। उन्हें प्राचीन ऋषियों की अलौकिक क्षमता के बारे में दृढ़ विश्वास हो गया। उनके प्रति श्रद्धा और भक्ति उत्पन्न होने लगी। इसी बीच एक घटना और हो गयी जिसकी वजह से उनकी बची खुची नास्तिकता-अविश्वास आदि समाप्त हो गयी। इस घटना के बारे में उनकी जबानी सुनिये —

"लाहौर से एक छोटी पुस्तिका अंग्रेजी में प्रकाशित हुई थी। जिसमें लिखा था कि मद्रास में एक भारतीय ईसाई रहते थे जो कुछ दिनों के लिए बर्मा जाकर बौद्ध-धर्म का अध्ययन करते रहे। बाद में मद्रास वापस आकर अध्यापन करने लगे। एक दिन उन्होंने रात के समय सुना कि दूर से कोई उन्हें कहीं जाने के लिए आह्वान कर रहा है। उस शब्द के प्रति वे इतने आकृष्ट हुए कि बिना विचार किये, बिना किसी को कुछ बताये, बिस्तर से उठकर तेजी से उस ओर चल पड़े। सारी रात शब्द का अनुसरण करते हुए चलते रहे। भोर के समय वे एक शिव मंदिर के सामने आकर हाजिर हुए। मंदिर में उन्होंने केवल शिवमूर्ति को देखा। वहीं से आकाशवाणी हुई कि सीधे आगे चले जाओ। साथ ही यह भी आदेश दिया गया कि सीधे जाकर जहाँ पहाड़ देखना, वहाँ रास्ता बन्द मिलेगा। वहाँ एक व्यक्ति आयेगा जो तुम्हें गन्तव्य स्थान पर ले जायगा। इस आदेश के आधार पर वे आगे बढ़ गये। आगे पहाड़ मिला जहाँ मार्ग अवरुद्ध था। कुछ देर बाद एक जटाधारी बाबा आये और उन्हें अपने साथ एक पहाड़ी के पास ले गये। वहाँ एक पत्थर के चट्टान को हटाते ही एक गुफा नजर आयी। जटाधारी बाबा ने इशारे से सूचित किया कि गुफा के भीतर चले आओ। बाबा स्वयं भीतर प्रवेश कर गये। जब दोनों व्यक्ति भीतर आ गये तब बाबा ने चट्टान को खींचकर गुफा का मुँह बन्द कर दिया।

ईसाई ने देखा—गुफा काफी बड़ी और प्रकाशयुक्त थी। गुफा के भीतर अनेक लोग मौजूद हैं जिनमें कुछ ध्यानस्थ हैं, कुछ पाठ कर रहे हैं और कुछ रोजमर्रा के काम कर रहे हैं। सारा दृश्य अद्भुत है। वास्तव में यह अगस्त मुनि का आश्रम है। अगस्त मुनि इस गुफा के बहुत ऊपर निमग्न अवस्था में हैं। प्रत्येक पचास वर्ष के बाद इस गुफा में अनेक ऋषि-मुनि आते हैं। उनकी सभा में अगले पचास वर्षों के कार्यक्रम निर्धारित किये जाते हैं। विभिन्न लोगों के जिम्मे कार्यभार सौंपा जाता है। इसके बाद आगत ऋषि-मुनि अपने-अपने स्थानों में वापस चले जाते हैं। इस गुफा में अनेक ग्रंथ हैं जिनमें से कुछ ग्रंथों का ईसाई ने अध्ययन भी किया।

बाद में उसकी इच्छा मानस-सरोवर जाने की हुई। यह जानकर उसे गुफा से बाहर निकाल दिया गया। वह पैदल ही मानस-सरोवर गया। वहाँ स्नान करके जब वह वापस आ रहा था तब मार्ग में एक ऋषि से मुलाकात हो गयी। उसने उनसे कैलाश पर्वत के बारे में जानकारी चाही। ऋषि उसकी आँखें बन्द कर आकाश मार्ग से उसे कैलाश पर्वत पर ले आये। यहाँ दर्शन आदि करवाने के बाद पुनः पहले की तरह आँखें बंद कर भूतल पर उतार दिया और तब अगस्त-आश्रम जाने के लिए इशारा किया। वह वहाँ से चलते-चलते लाहौर पहुँच गया। यहाँ अंग्रेजी भाषा के जानकारों से मुलाकात होने पर उसने अपनी इस रोमांचकारी यात्रा की कहानी सुनाई। इसी कहानी को अंग्रेजी में लिखकर उसने प्रचारित किया।''

ताराकिशोर के मन पर इस कहानी का भी असर हुआ। वे मन ही मन सद्गुरु पाने की तलाश में लग गये।

+ + + +

श्रीहट्ट जिले के चौधरी वंश की ख्याति थी। वंश परम्परा से चौधरी लोग जमींदार थे। कहा जाता है कि १६वीं शताब्दी में कान्यकुब्ज से एक ब्राह्मण यहाँ आकर बस गया। उन्हीं के वंशज आगे चलकर चौधरी के नाम से प्रसिद्ध हुए। इस वंश के लोग कट्टर धार्मिक और शक्ति के उपासक थे। केवल हरकिशोर चौधरी वैष्णव-धर्म के अनुयायी हुए।

श्रीहट्ट जिले में बामै गाँव के जमींदार हरकिशोर चौधरी को शुक्रवार, १० जून, सन् १८५९ ई० को प्रथम पुत्र की प्राप्ति हुई। वैष्णव होने के कारण हरकिशोर चौधरी निरामिषभोजी थे। पति को निरामिष भोजन करते देख पत्नी श्रीमती गिरिजासुन्दरी देवी भी निरामिषभोजी हो गयीं।

अन्नप्राशन के दिन बालक का नाम ताराकिशोर रखा गया। बालक ताराकिशोर जब छः वर्ष का हुआ तब उसे ज्येष्ठ ताऊ के घर पर अक्षर-बोध कराया गया। आगे चलकर ताऊ पहाड़ा तथा व्याकरण पढ़ाने लगे। दादाजी संस्कृत के श्लोक कंठस्थ कराने लगे। अन्य बालकों से अधिक मेधावी होने के कारण ताराकिशोर की प्रगति तीव्रगति से हुई। सबेरे सभी बालकों को आलेख दिया जाता था। उन दिनों गाँवों में कागज, स्लेट या

पटिये का प्रचलन नहीं था। लड़के पहले जमीन पर अंगुली से लिखते थे। बाद में बाँस की कलम से लिखते थे। इसके बाद दीपक को कालिख से स्याही बनाकर सनई की कलम से केले के पत्तों पर लिखते थे। बाद में ताड़ के पत्तों पर उन्हें लिखने की आज्ञा दी जाती थी। दुकानों में स्याही नहीं बिकती थी। घर पर ही तरह-तरह की स्याही बनायी जाती थी। बत्तक, साही, मयूर आदि के पंख से कलम बनाकर तब कहीं श्रीरामपुरी कागजों पर सुलेख लिखना पड़ता था। ताराकिशोर को इन सभी क्रियाओं से गुजरना पड़ा था।

सात वर्ष की उम्र में उन्हें गाँव की पाठशाला में भर्ती कराया गया। वहाँ वे बंगला, अंग्रेजी और गणित पढ़ने लगे। नौ वर्ष की उम्र में माँ का निधन हो गया। कहा जाता है कि माँ का जब अंतिम काल आया तब किसी ने ताराकिशोर से कहा—"तेरी माँ जा रही है, आकर देख जा।" हिन्दू परम्परा के अनुसार जीवन के अन्तिम समय में पिता-माता पुत्र के हाथ का जल ग्रहण करते हैं। लोगों के कहने पर ताराकिशोर ने अपनी माँ के मुँह में पानी डाला। पानी पीते ही उनका प्राण पखेरू उड़ गया।

अपने बचपन के बारे में ताराकिशोर ने लिखा है—"बचपन में मैं अत्यन्त चंचल प्रकृति का था। कहीं भी कुछ देर के लिए शांत होकर बैठे रहना मेरे स्वभाव से मेल नहीं खाता था। गाँव के सभी लोग मुझे शरारती समझते थे। मैं पिताजी से बहुत डरता था। हमेशा उनसे दूर-दूर रहता था। अगर किसी वजह से पास जाना पड़ता तो उन्हें 'जूजू' समझता था।"

दस वर्ष की उम्र में ताराकिशोर श्रीहट्ट शहर में पढ़ने आये और चौदह वर्ष की उम्र में प्रवेशिका परीक्षा में, आसाम प्रदेश के छात्रों में सर्वोच्च अंक प्राप्त किया। इन्हीं दिनों आपका विवाह हरचन्द्र भट्टाचार्य की पुत्री अन्नदा देवी से हुआ जिनकी उम्र उन दिनों दस वर्ष थी।

कहा जाता है कि जमींदार घराना होने के कारण गाँव के सभी पुरुष बाराती बनकर आये थे। कन्यापक्षवाले इस बात से परिचित थे कि जमींदार साहब अपनी प्रजाओं को लेकर आयेंगे। उन्होंने पहले से तैयारी की थी और जमकर स्वागत किया था।

एण्ट्रेस पास करने के बाद ताराकिशोर उच्चशिक्षा के लिए कलकत्ता आये। यहाँ वे प्रेसीडेन्सी कालेज में भर्ती हो गये। आपके सहपाठियों में डाक्टर सुन्दरीमोहन दास, विपिनचन्द्र पाल जैसे लोग थे जिन्होंने संपूर्ण बंगाल में उथल-पुथल मचाया था।

यहाँ अध्ययन करते समय आप पं० शिवनाथ शास्त्री के सम्पर्क में आये और ब्राह्मसमाज के आन्दोलन में शामिल हो गये। ब्राह्म-प्रचारकों का आप पर गहरा प्रभाव पड़ा। मूर्ति-पूजा तथा ब्राह्मण-धर्म के प्रति आस्था घट गयी।

ठीक इन्हीं दिनों एक और घटना हो गयी। माँ के निधन के पश्चात् पिताजी ने दूसरा विवाह किया। इस विवाह के कई वर्ष बाद आपका विवाह हुआ था। सौतेली माता ताराकिशोर की पत्नी अन्नदा को बेटी की तरह स्नेह देती रही। लेकिन वे अधिक

दिनों तक जीवित नहीं रहीं। इसके बाद हरकिशोर ने तीसरा विवाह किया। यह सौतेली माँ काफी कड़े स्वभाव की निकली। बालिका वधू को अपना स्नेह नहीं दे सकी। उन दिनों ताराकिशोर की बड़ी दादी जीवित थीं। घर में उनका अनुशासन चलता था। जब तक वे जीवित थीं, तब तक अन्नदा को कोई कष्ट नहीं हुआ। उनके निधन के बाद तीसरी पत्नी अन्नदा को पीड़ा देने लगी। फलस्वरूप अन्नदा अपने पिता के पास जाने के लिए मजबूर हो गयी।

ताराकिशोर उन दिनों कलकत्ता में थे। इन घटनाओं की जानकारी उन्हें नहीं हुई। बाद में पिता और श्वशुर के निरन्तर प्राप्त पत्रों से वे वस्तुस्थिति से अवगत हुए। वे यह समझ गये कि पत्नी का ससुराल या पित्रालय में रहना ठीक नहीं है। जब विवाह किया है तब पति के रूप में सारी जिम्मेदारी उन्हीं की है। ऐसी स्थिति में अन्नदा को अपने पास रखना उचित होगा। दूसरी ओर उन्हें यह भी समझने में दिक्कत नहीं हुई कि पत्नी को साथ में रखने पर पिता उसका खर्च नहीं देंगे। संभव है कि पत्नी का पक्ष लेने के कारण उसका खर्च भी बन्द कर दें तब उन्हें शिक्षा से वंचित होना पड़ेगा।

उन दिनों उन्हें कालेज से २० रुपये मासिक वजीफ़ा मिलता था। वे ससुराल की ओर रवाना हो गये। सीधे ससुराल न जाकर वहीं पास में एक जगह ठहर गये और श्वशुर के पास सूचना भिजवायी कि उनकी पत्नी को यहाँ भेज दिया जाय। वे अपने साथ कलकत्ता ले जायँगे। इस सूचना को पाकर श्वशुर ने अपनी लड़की भेज दी और ताराकिशोर उसे लेकर कलकत्ता चले आये।

कलकत्ता पहुँचकर ताराकिशोर ने अपने पिताजी को सूचित किया कि मेरी पत्नी की जैसी स्थिति हो गयी थी, उसके कारण मैं उसे ससुराल से लेकर चला आया। अब वह मेरे साथ रहेगी। इस पत्र को पाकर हरकिशोर आग बबूला हो उठे। लड़का ब्राह्मसमाजी होकर विधर्मी बन गया है, इसकी जानकारी उन्हें थी। वे यह सोचते थे कि शिक्षा समाप्त होने के बाद प्रायश्चित करवाकर उसे पुनः हिन्दू बना लिया जायगा। लेकिन पुत्रवधू का वहाँ जाना उन्हें पसन्द नहीं आया। कहीं पुत्रवधू भी ब्राह्मसमाजी न हो जाय, इस बात की चिन्ता उन्हें सताने लगी। इसी आशंका के कारण वे तुरन्त कलकत्ता आये और यहाँ आकर बाग बाजार में ठहर गये।

ताराकिशोर पटलडांगा में रहते थे। अपने घर से नित्य पिताजी से मिलने के लिए वे पैदल जाते थे। पिताजी के यहाँ आने का एक ही उद्देश्य था कि लड़का ब्राह्मसमाज से नाता तोड़ ले, क्योंकि इससे उनकी अप्रतिष्ठा हो रही है और वे इसे सहन नहीं कर पा रहे हैं। हरकिशोरजी हर तरह से समझाते-समझाते जब हार गये तब एक दिन तलवार निकालकर अपने बेटे का कत्ल करने को तैयार हो गये।

पिताजी को काबू से बाहर होते देख ताराकिशोर ने कहा—"मेरा शरीर आपके शरीर से उत्पन्न हुआ, यह सत्य है। लेकिन मेरी आत्मा नहीं। आप मेरे शरीर को नष्ट कर सकते हैं, पर आत्मा को नहीं।"

पिता के साथ घर का नौकर राधू सिंह भी आया था। उसने हरकिशोर को काफी समझाया तब कहीं जाकर वे शान्त हुए। बाद में उन्होंने कहा—"तुम्हारे पढ़ाने-लिखाने में जो रकम खर्च हुए हैं, उसे तुम्हें चुकाना है। मुझे कागज पर यह शर्तनामा लिखकर दो।"

अगत्या ताराकिशोर को यही करना पड़ा। उन्होंने 'तीन हजार रुपये देंगे', यह लिखकर दे दिया। इस घटना के कई रोज बाद वे गाँव की ओर रवाना हो गये। जाते समय लड़के को खर्च के लिए एक छदाम भी उन्होंने नहीं दिया। कलकत्ते से जब काफी दूर निकल गये तब न जाने उनके मन में कौन-सी भावना उत्पन्न हुई कि राधू सिंह के हाथ चार माह के खर्च के लिए रुपये भिजवा दिये। लेकिन पिता-पुत्र के सम्बन्ध में गाँठ पड़ गयी।

ताराकिशोर सन् १८८० ई० में एम०ए० पास हो गये। उन्होंने निश्चय किया कि अब अपने पैरों पर खड़ा होंगे। उन्होंने सिटी स्कूल में अध्यापन करना प्रारंभ किया। थोड़े ही दिनों में लोकप्रिय हो गये। पूजा की छुट्टियों में घर आये तो परिवार के लोगों ने प्रसन्नता प्रकट की। लेकिन एक आपत्ति हुई। इन्हें ब्रह्मज्ञानी और म्लेच्छ कहा गया। ताराकिशोर यह बात जानते थे कि गाँव के कट्टरवादी ऐसा कहेंगे। वे घर के भीतर नहीं गये। बाहर खाना मँगवा लेते और वहीं सो जाते थे।

पिताजी इन दिनों कलकत्ते में थे। लड़का घर गया है सुनकर तुरंत उन्होंने पत्र लिखा कि उसे घर के बाहर रखना। भीतर न जाने पाये। वहाँ से उत्तर आया कि यहाँ आने के साथ ही लड़का बाहर ही रहता है। इसके बाद पिताजी काशी चले गये। अचानक अस्वस्थ हो जाने पर ताराकिशोर को अपने पास बुला लिया। यहाँ आकर वे पिताजी की सेवा करने लगे।

काशी से लौटने के बाद ही ताराकिशोर ने सर्कसवाला समाचार पढ़ा और सेन महाशय का शिष्य बनकर प्राणायाम करने लगे। इसके बाद लाहौरवाली पुस्तिका मिली और गुरु-कृपा से उनका चक्र भेद हो गया।

+ \+ \+ \+

एक अर्से के बाद एक बार पुनः गाँव आये। इस बार लड़के में अद्भुत परिवर्तन देखकर हरकिशोर संतुष्ट हो गये। शास्त्रोक्त धर्म के प्रति अब पहले जैसी अश्रद्धा उसमें नहीं है। बातचीत के सिलसिले में एक दिन पिता ने ताराकिशोर से कहा कि वह प्रायश्चित कर हिन्दू-धर्म अपना ले।

सच तो यह है कि प्राणायाम करते रहने तथा धार्मिक-साहित्य के अध्ययन से ताराकिशोर में व्यापक परिवर्तन हो गया था। कालेजों में अध्यापन करते रहने के कारण इस ओर उनकी अभिरुचि बदल गयी थी।

इसी बीच प्रसिद्ध ब्राह्मधर्म प्रचारक विजयकृष्ण गोस्वामी गया गये। जहाँ तिब्बत के किसी महापुरुष ने आपको दीक्षा दी। यह समाचार ताराकिशोर सुन चुके थे। इस समाचार को सुनने के बाद उन्होंने निश्चय किया कि अध्यापक बने रहने पर एक जगह बँधा रहना पड़ेगा। इससे अच्छा है कि वकालत जैसा स्वतंत्र पेशा अपना लूँ। पहले आपकी इच्छा वकालत करने की नहीं थी।

इस निश्चय के बाद वे अपनी जन्मभूमि में वापस आ गये। श्रीहट्ट शहर में वकालत करते हुए ताराकिशोर ने अपूर्व ख्याति प्राप्त की। तभी पिताजी की आज्ञा मानकर उन्होंने प्रायश्चित के पश्चात् पुनः हिन्दू-धर्म को अपना लिया।

वकील के रूप में कार्य करते हुए उन्होंने अपना एक नियम बना लिया। सबेरे से शाम तक इस पेशे में समय देते थे। शाम के बाद मुकदमे के बारे में कोई बातचीत या काम नहीं करते थे। उस वक्त गुरुदत्त साधना करते थे।

आगे का क्रियायोग जानने के लिए एक बार आप कलकत्ता आये। गुरुदेव के निर्देशानुसार लगातार कई दिनों तक साधना करते रहे। इस क्रिया के कारण उनका शरीर षट्चक्र अतिक्रम कर ऊर्ध्व में सहस्रार की ओर दौड़ने लगा। उन्होंने अनुभव किया कि भ्रूमध्य स्थित द्विदलयुक्त षष्ठ आज्ञापुर नामक चक्र और ब्रह्मस्थान सहस्त्रदल में स्थित अन्य पर्दों का भेद होने पर सहस्त्रदल पद्म के मूल में प्रवेश किया जा सकता है। वे निरन्तर इस क्रिया में लगे रहे। इस प्रकार उनका प्रथम पर्दा-भेद हो गया।

कुछ दिनों बाद ताराकिशोर ने अनुभव किया कि श्रीहट्ट की अदालत में प्रैक्टिस करने से काम नहीं चलेगा। कलकत्ता में उनकी प्रतिभा का उपयोग हो सकता है। इसके अलावा गुरुजी कलकत्ता में रहते हैं। उनके निर्देश से आगे उन्नति की जा सकती है। यह सोचकर वे कलकत्ता चले आये। यह सन् १८८८ ई० की बात है। यह निश्चित है कि किसी भी स्थान में नये व्यक्ति को जमने में कठोर परिश्रम करना पड़ता है। कलकत्ता आकर वे हाईकोर्ट में प्रैक्टिस करने लगे। प्रारंभ में उनकी हालत ऐसी हो गयी कि खर्च घटाने के लिए उन्होंने जलपान बंद कर दिया। गृहस्थी में भी कंजूसी करने लगे। लेकिन साधना में निरन्तर सक्रिय रहे।

+ + + +

लगातार बारह वर्ष तक प्राणायाम और साधना करने के बाद उन्हें उनका अभीष्ट प्राप्त हुआ। उन्हें रह रहकर किसी योग्य गुरु की याद आने लगी। उन्होंने सोचा कि अगर कोई सद्‌गुरु मिल जाय तो उनकी मुराद पूरी हो सकती है। ऐसे ही समय में उन्हें गंगातट पर महेश्वर से एकाक्षरी बीज मंत्र प्राप्त हुआ जिसका जिक्र प्रारंभ में किया जा चुका है। इस घटना के तीन साल बाद उन्हें ब्रजविदेही श्री १०८ रामदास काठिया बाबा से दीक्षा प्राप्त हुई थी।

सन् १८९२ में पिताजी का निधन हो गया था। इस बीच हाईकोर्ट में वे अच्छी तरह जम गये थे। गाँव से सौतेली माता, भाई आदि कलकत्ते में आकर इनके पास रहने लगे थे। एक प्रकार से परिवार विस्तृत हो गया था। आर्थिक स्थिति सुदृढ़ हो गयी थी।

सन् १८६३ का कुंभ मेला प्रयाग में लगनेवाला था। ताराकिशोर ने सोचा—मेले में भारत के सभी सम्प्रदाय के संत आते हैं। संभव है कि मेरे भावी गुरु का दर्शन यहीं हो जाय। यह सोचकर वे तीर्थयात्रा करने के उद्देश्य से चल पड़े। वैद्यनाथ, गया और काशी होते हुए प्रयाग आये। यहाँ विजयकृष्ण गोस्वामी का तम्बू लगा हुआ था। इसके अलावा अन्य अखाड़ों के महन्त आये हुए थे। यहीं पर सर्वप्रथम उन्होंने रामदास काठिया बाबा का दर्शन किया। दूर से प्रथम दर्शन करते ही वे अभिभूत हो उठे। उन्हें लगा कि अब तक जिस सद्गुरु की तलाश में वे परेशान थे, आज सौभाग्य से उनका दर्शन हो गया। बाबा की सेवा में लगे सेवकों से पूछने पर पता चला कि वे अब किसी को चेला नहीं बनाते। आपने निश्चय किया था कि केवल चार चेला बनायेंगे। अब तक चार को दीक्षा देकर चेला बना चुके हैं। अब नया चेला नहीं बनायेंगे।

ताराकिशोर ने सोचा कि जब बाबा की ऐसी प्रतिज्ञा है तब इनसे निवेदन करना व्यर्थ है। संभव है मेरा गुरु अन्य कोई होगा। एकाएक उनके मन में आया कि जब यहाँ तक आ गया हूँ तब एक बार प्रणाम कर लेना उचित है। संतों के आशीर्वाद से सौभाग्य प्राप्त होता है। बाबा के तम्बू के भीतर प्रवेश करते ही ताराकिशोर ने देखा—बाबा एक आसन पर बैठे हैं। पास जाकर प्रणाम करने के बाद यथास्थान बैठते ही ताराकिशोर ने सुना—"मेरे पाँच चेले हैं। सुपात्र मिलने पर अब भी चेला बना सकता हूँ।"

ताराकिशोर के सारे शरीर में बिजली दौड़ गयी। उन्हें लगा जैसे बाबा ने उन्हें देखकर यह मन्तव्य प्रकट किया है। अगर वे दीक्षाप्रार्थी होकर न आते तो यही समझते कि यहाँ उपस्थित लोगों से वार्तालाप के प्रसंग में इस बात का जिक्र बाबा ने किया है।

प्रयाग से वापस आते समय ताराशंकर एक बार पुनः बाबा का दर्शन करने उनके तम्बू में गये। आशीर्वाद देते हुए काठिया बाबा ने कहा—"तुम चैत्र के महीने में एक बार वृन्दावन में आकर दर्शन देना।"

ताराकिशोर ने कहा—"महाराज, मैं वकालत करता हूँ। चैत्र के महीने में इतनी लम्बी छुट्टी नहीं होती कि वृन्दावन आ सकूँ। अगर आप बुला लें तो जरूर आ जाऊँगा।"

बाबा ने हँसकर कहा—"हाँ, तुमको महावीरजी जरूर ले आयेंगे।"

अपनी वृन्दावन यात्रा के बारे में ताराकिशोरजी ने अपने अनुभवों के बारे में लिखा है—

"चैत्र के महीने में वृन्दावन आया। यहाँ श्री गरीबदासजी, मौनीजी आदि संतों को प्रणाम किया। गरीबदासजी मुझे नित्य दाल-रोटी बनाकर खिलाते थे। चावल खानेवाले प्रान्त का आदमी हूँ, पर इससे मुझे कोई कष्ट नहीं हुआ। चावल की जरूरत महसूस नहीं हुई। आश्रम के नियमानुसार अपना जूठन फेंकना और बरतन माँजने में संकोच नहीं होता था।"

''लेकिन बाबा का कार्य कलाप देखकर मुझे घोर निराशा हुई। मेरा ख्याल था कि बाबा आश्रम में समाधिस्थ रहते होंगे या भजन-पूजन में व्यस्त रहते होंगे। लेकिन मैंने देखा साधारण व्यक्तियों से बढ़कर निम्नस्तर का कार्य करते हैं। नित्य बाजार जाते हैं। दुकानदारों से सब्जियों का मोलभाव करके खरीदते हैं। छाँट-बिनकर सौदा लेते हैं। यह सब काम चेलों से नहीं कराते। बाजार से सारा सामान खरीदने के बाद कंधे पर लादकर लाते हैं। अगर कभी किसी दिन कोई सामान चेलों से मँगवाते हैं तो बड़ी कड़ाई से हिसाब-किताब पूछते हैं। आश्रम के किनारे सड़क पर बैठ जाते हैं। आते-जाते यात्री या पथयात्री उन्हें पाई, अधेला और पैसा देते हैं। अगर कोई एक पैसा देता है तो बड़े प्रसन्न हो जाते हैं। इस प्रकार दोनों वक्त जो कुछ मिलता है, उसे अपने पास रखते हैं। किसी को भी उस रकम में हाथ लगाने नहीं देते।''

''शाम के समय भगवद्-प्रसंग की जगह बेकार फालतू बातें करते हैं। मसलन किस स्थान का पानी अच्छा है, किस जगह कौन-सी चीजें सस्ती मिलती हैं, किस व्यक्ति ने कितना रुपया दिया—यही सब कहते रहते हैं। कभी किसी शिष्य को अकारण चिमटे से मारते, अश्लील बातें कहते और कंजूस सेठों की आलोचना करते रहते हैं।''

''इन घटनाओं को देखकर मेरा मन डाँवाँडोल हो उठा। क्या करूँ, समझ नहीं पा रहा था। जब तक गुरु को अच्छी तरह समझ न लिया जाय तब तक उनके निकट कैसे आत्मसमर्पण करूँ? यह सब सोचते हुए मैंने मन को सांत्वना दी कि सोच लो वृन्दावन घूमने आये थे। सो अच्छी तरह देख लिया।''

''इस घटना के दो-तीन दिन बाद अभय बाबू के भाई हरिनारायण का एक पत्र मेरे नाम उनके द्वारा आया। उस पत्र को स्वयं पढ़ने के बाद अभय बाबू ने मुझे दिया। उस वक्त हमारे सामने बाबाजी विराजमान थे। यों अभय बाबू के नाम आनेवाले पत्रों के बारे में बाबाजी कभी कोई प्रश्न नहीं करते। लेकिन इस बार उन्होंने पूछा—''चिट्ठी में क्या लिखा है?''

मेरे बदले अभय बाबू ने जवाब दिया—''मेरे भाई ने ताराकिशोर से पूछा है कि इन्होंने बाबा से दीक्षा ली है या नहीं।''

''यों इस बात को मैंने कभी किसी से नहीं बतायी थी कि मैं बाबा से दीक्षा लूँगा। ऐसी हालत में यह प्रश्न मुझसे क्यों पूछा गया, समझ नहीं सका।''

बाबाजी के प्रश्न का उत्तर अभय बाबू ने दिया—''इस पत्र में लिखा है कि बाबूजी ने आपसे दीक्षा ली है या नहीं?''

''बाबाजी ने कहा—'उनको जवाब में लिख दो कि इन्हें मुझसे दीक्षा मिल गयी है।' इसके बाद मेरी ओर देखते हुए बोले—इस वक्त तुमको दीक्षा नहीं देंगे। अपनी पत्नी के साथ श्रावण मास में आना। उस वक्त दोनों को एक साथ दीक्षा देंगे।''

"यह बात सुनकर मेरा मन शान्त हो गया। मैंने सोचा कि अभी मेरा मन दीक्षा लेने का हुआ भी नहीं था। अगर इस समय दीक्षा न भी दें तो अच्छा है। इस बातचीत के दो दिन बाद मैं कलकत्ता वापस जाने के लिए तैयार हुआ। आश्रम में रहते समय बाबाजी का व्यवहार मेरे प्रति जरा कठोर था। लेकिन विदाई के समय परिवर्तन हो गया। उन्होंने इतने मधुर ढंग से मेरी ओर देखा कि मेरी आत्मा गद्‌गद हो गयी। एक अद्‌भुत प्रेम उत्पन्न हो गया जो कलकत्ता आने तक स्थायी बना रहा।"

"आते समय तीन उपदेशों का पालन करने की मुझे हिदायत दी गयी थी।"

१- चौथे प्रहर में सोते मत रहना।

२- भीतर से काम करना, निन्दा-स्तुति को मत देखना।

३- सदा शुक्ल रहना यानी निष्पाप, निष्कपट रहना।

"इधर मुझमें बुरी आदत थी। सबेरे के वक्त ठंडी हवा लगने पर गहरी नींद आ जाती थी। आषाढ़ मास की घटना है। उस दिन एक अजीब बात हुई। कमरे की खिड़की के पास मच्छरदानी लगाकर सोता था। उस दिन चौथे प्रहर गहरी नींद आ गयी थी। ठीक उसी वक्त "उठ" कहते हुए किसी ने ढेला फेंका जो मेरे ऊपर गिरा। मैं तुरंत उस ढेले को लेकर खिड़की के पास आया ताकि यह मालूम कर सकूँ कि किसने फेंका है? वहाँ कोई दिखाई नहीं दिया। दूसरे ही क्षण मुझे इस बात पर आश्चर्य हुआ कि मच्छरदानी में कहीं कोई छेद नहीं है, ऐसी हालत में यह ढेला भीतर कैसे आ गया?"

"इसी प्रकार एक रात को मैं छत पर सो रहा था। पता नहीं किसने मेरा नाम लेकर दो-तीन बार पुकारा। जागकर देखा तो कहीं कोई नजर नहीं आया। इन घटनाओं का मूल कारण क्या था, समझ नहीं पाया।"

"सच तो यह है कि अभी तक बाबाजी पर मेरी आस्था नहीं जमी थी। यहाँ तक कि श्रावण मास में उनके यहाँ जाकर उनसे दीक्षा लेने की इच्छा जाग्रत नहीं हुई थी। मैं दिन-रात यही सोचा करता था कि कब मुझे सद्‌गुरु के दर्शन होंगे। मेरी इस उलझन को दूर करने के लिए गुरुदेव ने एक अकल्पनीय उपाय का सहारा लिया।"

"आषाढ़ मास के अंतिम दिनों की घटना है। मैं छत पर सो रहा था। रात के चौथे पहर नींद खुल गयी। ज्योंही उठकर बिस्तर पर बैठा त्योंही आकाश को भेदकर बाबाजी प्रकट हुए और धीरे-धीरे पास आकर छत पर खड़े हो गये। मुझे आश्वासन देते हुए उन्होंने मेरे कान में एक मंत्र सुनाया। मंत्रोपदेश देने के बाद तुरंत आकाश-मार्ग से अन्तर्धान हो गये। गुरुदेव जब मुझे दीक्षा देकर चले गये तब मैंने अनुभव किया कि मेरे अंतर के प्रत्येक स्तर में गुरु प्रदत्त मंत्र अनुप्रविष्ट हो गया है और मेरे सभी संशय समाप्त हो गये हैं। क्षण भर बाद मैंने अनुभव किया कि मेरा जीवन धन्य हो गया है। वास्तव में आज मुझे सद्‌गुरु मिल गये थे।"

"श्रावण मास में सपत्नीक वृन्दावन चला आया। गुरुदेव ने कहा—"भादों मास की जन्माष्टमी तिथि को तुम दोनों को एक साथ दीक्षा दूँगा।"

"जन्माष्टमी के आने में अभी ८-१० दिन की देर थी तब तक के लिए हमें वहाँ ठहरना पड़ा।"

जन्माष्टमी के दिन सबेरे शौच और स्नानादि के बाद जब गुरुदेव के पास आया तब उन्होंने कहा—"बाजार से नये कपड़े, तुलसी की लकडी की माला और गोपी चन्दन ले आओ।"

"मेरे पास रकम थी नहीं। पत्नी से रुपये लेने गया तो वे बोलीं—"मेरे लिए सारा सामान लेते आना।"

मैं यह सुनकर अवाक् रह गया। दीक्षा लेने के उद्देश्य से वे मेरे साथ आयी थीं, पर यहाँ आने के बाद सहसा न जाने क्यों उनका विचार बदल गया और अब फिर तैयार हो गयीं। मैंने पूछा—"तुम तो कहती थी कि दीक्षा नहीं लोगी, फिर अचानक विचार कैसे बदल गया?"

पत्नी ने कहा—"इरादा तो यही था, पर आज सबेरे से न जाने क्यों मन उतावला हो उठा है।"

"बाजार से सारी सामग्री लाया। पूर्वाह्नकाल में दीक्षा-कार्य सम्पन्न हो गया। यह घटना सन् १८६४ ई० में हुई थी।"

जन्माष्टमी के बाद ब्रज मण्डल की परिक्रमा आरंभ होती है। इस बार की परिक्रमा में ताराकिशोरजी अपनी पत्नी के साथ बाबाजी की मंडली में शामिल हो गये थे।

ताराकिशोरजी सन् १८८८ ई० से लेकर सन् १६१५ तक हाईकोर्ट में वकालत करते रहे। उन दिनों आपकी गणना प्रथम श्रेणी के वकीलों में की जाती थी। यहाँ तक कि आपकी प्रतिभा का लोहा भारत के प्रसिद्ध वकील रासबिहारी घोष भी मानते थे। जिस केस में घोष महाशय के विरुद्ध ताराकिशोर खड़े होते थे, उसमें तर्कों का ऐसा जाल बिछ जाता था कि न्यायाधीश तक प्रभावित हो उठते थे।

दीक्षा लेने के बाद ताराकिशोरजी कलकत्ता आकर अपना काम करने लगे। घर में तुलाराम नामक एक नौकर था। वह नित्य शाम को घर के प्रत्येक कमरे में धूना देता था। एक दिन शाम के वक्त तुलसी के पौधे के पास धूपबत्ती जला रहा था। सहसा वह डरकर ताराकिशोर की पत्नी के पास आकर थरथर काँपने लगा। पूछने पर उसने कहा—"माताजी, मैं तुलसी के नीचे धूपबत्ती जला रहा था। अचानक बाबाजी के फोटो की तरह एक आदमी आया और मेरे हाथ से धूपदानी छीन लिया। जाते वक्त उन्होंने कहा कि शाम के समय तुम लोग आरती क्यों नहीं करते? इसके बाद वे न जाने कहाँ गायब हो गये। धूपदानी भी नहीं मिल रही है।"

ताराकिशोरजी की पत्नी यह बात सुनकर अवाक् रह गयीं। सारी घटना पति को सुनाने के बाद नित्य आरती की व्यवस्था की गयी। कई रोज बाद चहबच्चे के पास खोयी हुई धूपदानी मिली।

दीक्षा के बाद ताराकिशोरजी की काफी उन्नति हुई। आमदनी के साथ-साथ खर्च भी बढ़ गया। विमाता भी गाँव से आकर इनकी गृहस्थी में रहने लगी। रसोइया, नौकर-नौकरानियाँ, सईस, कोचवान आदि के अलावा अनेक रिश्तेदारों का आना-जाना प्रारंभ हो गया। ऐसी दशा में स्वाभाविक है कि कभी-कभी आर्थिक संकट आ जाता था। उस वक्त ताराकिशोरजी पत्नी को ढाँढ़स देते हुए कहते—''घबराओ मत। सब ठीक हो जायगा।''

उनके इस कोरे आश्वासन से पत्नी की चिन्ता दूर नहीं होती, क्योंकि घर की सारी जिम्मेदारी उन पर थी। लेकिन वे देखती कि ऐन मौके पर संकट टल जाता है। कभी-कभी ग्रहण या गंगा स्नान के लिए गाँव से काफी तायदाद में लोग आकर उनके घर डेरा जमाते थे। उनके स्वागत के लिए रकम की कमी हो जाती थी। पत्नी अपनी मुसीबत कहतीं तो ताराकिशोर कहते—''अभी काम चलाओ। अमुक दिन रकम आ जायेगी।'' निर्धारित समय पर रकम आ जाती और इस प्रकार उनकी गृहस्थी चलती थी।

एक बार ताराकिशोर ने सोचा—मैं इतना श्रम करता हूँ, रकम आती है तभी इतने लोगों का पालन-पोषण हो रहा है। अगर कहीं मैं बीमार हो गया तो क्या होगा? कैसे इतनी बड़ी गृहस्थी चलेगी?

इस कल्पना को साकार रूप देने के लिए भगवान् ने शीघ्र प्रबंध किया। ताराकिशोरजी सचमुच बीमार पड़ गये। लगातार कई महीने तक खाट पर पड़े रहे। इस बीच किसी को कोई शिकायत नहीं हुई। आवश्यक सामग्री अपने आप आती चली गयी।

सन् १९०४ में आपकी आय काफी कम हो गयी थी। रिश्तेदार लोग स्थायी रूप से डेरा जमाये हुए थे। दैनिक खर्च में कमी नहीं हो पा रही थी। आय की अपेक्षा व्यय अधिक होने के कारण कर्ज बढ़ता गया। हर माह गुरुदेव को पचहत्तर रुपये भेजने पड़ते थे। हर साल पूजा की छुट्टी पर वृन्दावन जाना पड़ता था। इस बार तीन सौ रुपये कर्ज लेकर वृन्दावन गये।

वृन्दावन में उन्हें प्रतिदिन भोग के लिए फल-फूल खरीदना पड़ता था। एक दिन काठिया बाबा[1] ने कहा—''मौनी गाय के लिए जो भूसा आया है, वह अच्छा नहीं है। तुम कुछ ले आओ।''

---

[1] श्री रामदास काठिया बाबा का जीवन चरित्र पाँचवें भाग में देखिये।

गुरुदेव कभी स्वेच्छा से कुछ माँगते नहीं और आज जब भूसे के लिए आदेश दिया गया तब ताराकिशोरजी प्रसन्न हो उठे। वे एक गाड़ी भूसा खरीद लाये। लेकिन गुरुदेव को यह भूसा भी पसन्द नहीं आया। अब उन्होंने घास लाने का आदेश दिया। एक दिन बातचीत के सिलसिले में काठिया बाबा ने कहा—"आश्रम में अनाज नहीं है।"

इधर ताराकिशोरजी की रकम समाप्त होने को आयी। वे तुरंत बनिये की दुकान से उधार अनाज, तरकारी आदि खरीद लाये। इस प्रकार तरह-तरह के बहाने से काठिया बाबा ताराकिशोर की परीक्षा लेते चले गये। लेकिन ताराकिशोर ने अपना धैर्य खोया नहीं।

इन्हीं दिनों बाबा को ब्रज परिक्रमा करने की धुन सवार हुई। बाबा परिक्रमा में बराबर पैदल यात्रा करते हैं। ताराकिशोर और उनकी पत्नी बैलगाड़ी पर जाते थे। इस बार जब इनके लिए गाड़ी आयी तो बाबा उस पर बैठ गये। सभी को इस घटना पर आश्चर्य हुआ, पर किसी ने कुछ नहीं कहा। ताराकिशोरजी अपनी पत्नी को लेकर पैदल चल पड़े। पैदल चलने का अभ्यास न होने के कारण अन्नदा देवी को काफी कष्ट हो रहा था। जमीन कंकरीली होने के कारण मार्ग के काँटे चुभ रहे थे। ताराकिशोरजी निरन्तर अन्नदा देवी को ढाँढ़स बँधा रहे थे। अन्तर्यामी बाबा को स्थिति का ज्ञान हो गया। जब वे दोनों काफी पिछड़ गये तब बाबाजी गाड़ी रोकवाकर उनकी प्रतीक्षा करने लगे।

जब अन्नदा देवी बिल्कुल पास आ गयीं तब बाबा ने कहा—"बेटी, तुम्हें पैदल चलने में कष्ट हो रहा है। तुम गाड़ी पर आकर बैठ जाओ।"

अन्नदा देवी ने कहा—"गुरुदेव, ऐसी आज्ञा न दें। मैं आपके पास कैसे बैठ सकती हूँ? मुझसे यह अपराध नहीं होगा।"

बाबा ने कहा—"तू तो मेरी बेटी है। तुझे बहुत कष्ट हो रहा है। चली आ।"

परिक्रमा के बाद लोग आश्रम में आये। कार्त्तिक का महीना था। बंगाल की अपेक्षा पछांह का मौसम ठंडा रहता है। कई दिनों बाद ताराकिशोरजी कलकत्ता वापस जानेवाले थे। ऐसे ही माहौल में एक दिन सुबह अन्नदा देवी शौच के लिए बाहर गयी हुई थीं। ठीक इसी समय मूसलाधार पानी बरसने लगा। ताराकिशोर भजन कर रहे थे। उन्हें अन्नदा के बारे में कोई जानकारी नहीं थी। इधर काठिया बाबा ने अपने एक शिष्य से कहा—"बाहर का दरवाजा बन्द कर दे।"

आज्ञा का पालन किया गया। अन्नदा देवी शौच के बाद आयीं तो देखा—दरवाजा भीतर से बंद है। वर्षा में आवाज भीतर तक नहीं पहुँच पा रही थी। इधर सर्दी और बरसात के कारण वे काँपने लगीं। थोड़ी देर में बेहोश हो गयीं। घण्टे भर बाद बाबा ने कहा—"दरवाजा खोलकर देख कोई चादर तो नहीं उड़ गया?"

रामफल नामक शिष्य ने दरवाजा खोला तो देखा—माताजी बेहोश पड़ी हैं। बात फैल गयी। तुरंत उन्हें उठाकर भीतर लाया गया। आग के पास रखकर उनकी सेवा की

गयी। ताराकिशोर ने अपनी पत्नी से कहा—"देखो, नाराज मत होना। गुरुदेव जो कुछ कर रहे हैं, हमारी भलाई के लिए कर रहे हैं।"

शाम को अन्नदा देवी बाबा के निकट उन्हें प्रणाम करने आयीं। तभी बाबा ने कहा—"माई, इस बार मैंने तुम दोनों की परीक्षा कई तरह से ली। मुझे हर्ष है कि तुम दोनों पास हो गये हो। मैं प्रसन्न हूँ। अब तुम लोगों को चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। तुम्हें सर्वार्थसिद्धि प्राप्त होगी। जाओ, आनन्द मनाओ।"

बाबा से इस प्रकार का आशीर्वाद पाकर दोनों पति-पत्नी आनन्द से विभोर हो उठे। उनकी आँखों से आँसू फूट पड़े।

कलकत्ता वापस आने पर ताराकिशोरजी को एक बहुत बड़ा मुकदमा मिला। उससे इतनी आमदनी हुई कि उनका सारा कर्ज चुकता हो गया। इस बार वृन्दावन से वापस आने के बाद से दिन-प्रतिदिन उनकी उन्नति होती गयी। आगे कभी उन्हें अर्थाभाव नहीं हुआ।

+ + + +

काठिया बाबा जिस आश्रम में रहते थे, वहाँ साँपों का अड्डा था। ताराकिशोर ने आश्रम को नये सिरे से बनवाकर उसमें मंदिर बनवाया। वे कलकत्ता से बराबर रकम भेजते रहे और बाबाजी अपनी देखरेख में बनवाते रहे। आश्रम तथा मंदिर बन जाने के बाद विग्रह की स्थापना हुई। जब ताराकिशोरजी आये तब बाबा ने कहा—"यहाँ जिस ठाकुरजी की स्थापना हुई है, वे बड़े करामाती हैं। जाओ, उनसे वर माँग लो। तुम्हारे जो मन में आये, वही माँग लेना।"

ताराकिशोरजी मंदिर के भीतर जाकर विग्रह के सामने खड़े होकर बोले—"मुझ पर तुम्हारी कृपा बनी रहे, इसके अलावा मैं कुछ नहीं चाहता।"

बाबाजी दरवाजे के पास खड़े होकर सुन रहे थे। उन्होंने कहा—"तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध होगा। तुम्हें ऋद्धि-सिद्धि मिलेगी और महन्तई भी मिलेगी। भगवद्-दर्शन भी होगा। अगर यह बात सच्ची नहीं है तो हम भी सच्चा साधु नहीं हैं।"

इस वरदान को सुनकर ताराकिशोरजी सन्न रह गये। उन्हें ऐसी आशा नहीं थी। यह वरदान तो भिखारी को राजा बनाने के समतुल्य था।

इस घटना के बाद से उनके जीवन में बराबर चमत्कार होते गये। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि जो कुछ हो रहा है, वह सब गुरुजी का आशीर्वाद है। एक बार ब्रज का परिक्रमा करने गये तो चलते-चलते नन्दगाँव पहुँचे। कुण्ड की बगल में हलवाई की दुकान के समीप खड़े हुए तो अनेक ब्रज बालकों ने उन्हें घेर लिया और कहा—"हमें जलेबी खिलाइये।"

ताराकिशोरजी ने हलवाई को जलेबी बनाने का आर्डर दिया। जब जलेबी तैयार हो गयी तभी दो अन्य बालक वहाँ आ गये। उन दोनों बालकों का भोलापन देखकर ताराकिशोरजी मुग्ध हो गये। उनमें से एक में अजीब सम्मोहन-शक्ति थी।

इन बालकों ने कहा—"बाबूजी, ये सब उपद्रवी बालक हैं। आप जलेबी का दोना हमें दीजिए। हम सभी को ठीक से बाँट देंगे।" बालकों के मधुर स्वभाव और स्वर के आकर्षण से ताराकिशोर प्रभावित हो गये थे। उन्होंने जलेबी का दोना उन्हें दे दिया। दोनों बालक सभी को ठीक से वितरण करने के बाद स्वयं खाने लगे। एकाएक ताराकिशोरजी ने देखा कि वे दोनों बालक न जाने कहाँ गायब हो गये। शेष बच्चे अभी तक मौजूद हैं। उपस्थित बच्चों से उन बालकों का परिचय पूछने पर कोई कुछ बता नहीं सका। ताराकिशोर ने अनुमान लगाया कि वे दोनों कृष्ण और बलराम थे। आज दोनों बाल रूप में दर्शन दे गये। इसके बाद जब भी वे वृन्दावन में परिक्रमा करने जाते थे, कहीं न कहीं कृष्णलीला का रूप देखते रहे।

ताराकिशोरजी अन्न कम और दूध अधिक पीते थे। एकादशी का व्रत करते थे। एक बार एकादशी के दिन नन्दघाट जब पहुँचे तब तक उन्होंने पानी तक का स्पर्श नहीं किया था। गाँव में दूध के लिए आदमी भेजा गया। कई व्यक्ति खाली हाथ लौटे। उन्होंने सोचा—आज दूध के स्थान पर किसी वृक्ष या लता की पत्तियाँ खाकर रह जाऊँगा। कई वृक्ष और लताओं को देखने के बाद एक पोखरी में सिंघाड़ा के पौधे नजर आये। ज्योंही सिंघाड़े के पौधे की ओर हाथ बढ़ाया त्योंही ध्यान आया कि सूर्यास्त के बाद वृक्ष की पत्तियाँ नहीं तोड़नी चाहिए। निराश होकर डेरे पर चले आये। ठाकुरजी की आरती और भजन के बाद जब वे सोने की तैयारी कर रहे थे, उस वक्त रात के ग्यारह बज चुके थे।

तभी आँगन में एक बालक लोटे में दूध लेकर आया और तेज आवाज में बोला—"बाबूजी कहाँ हैं?"

इस यात्रा में काठिया बाबा साथ में थे। वे अपने कमरे में थे। उन्होंने एक सेवक से कहा कि बालक को बाबूजी के पास ले जाओ।

सेवक बालक से दूध लेकर ताराकिशोर के पास आया तो उन्हें आश्चर्य हुआ। गुरुदेव ने अपने कमरे से कहा—"पी ले, तेरे लिए आया है।"

दूध का एक घूँट पीते ही ताराकिशोर चौंक उठे। इसमें केसर, बदाम, पिस्ता मिला हुआ था। दूध पीते ही उनकी सारी सुस्ती दूर हो गयी। आश्चर्य की बात यह रही कि दूध का लोटा वापस लेने कोई नहीं आया।

इसी प्रकार क्रम चलता रहा। गुरुदेव की महानता धीरे-धीरे इतनी बढ़ गयी कि ताराकिशोर के मन में वैराग्य उत्पन्न हो गया। उन्होंने निश्चय किया कि गृहस्थी के जंजाल से मुक्त होकर अब शेष समय साधना तथा भजन में लगायेंगे। परिवार के लिए गुजारे का प्रबंध करके उसकी देखरेख का भार उन्होंने अपने एक मित्र को सौंप दिया। जिस दिन ताराकिशोरजी ने यह कार्य सम्पन्न किया, उसी दिन उन्हें अपने इष्ट के दर्शन हुए।

जब रात को वे अपने कमरे में सोने के लिए गये तब दरवाजा खोलते ही देखा—''श्रीकृष्ण भगवान् चतुर्भुज रूप में खड़े हैं। उनकी ज्योति से कमरा आलोकित है। लगता था जैसे समस्त जगत् का आनन्द उनके कमरे में सिमटकर आ गया है। उन्होंने उस रूप को साष्टांग प्रणाम किया। ज्योंही वे उठकर खड़े हुए त्योंही वह दृश्य गायब हो गया। ताराकिशोरजी विस्मय से अवाक् रह गये।''

इस घटना के काफी दिनों बाद जब ताराकिशोरजी वृन्दावन आये तब उन्होंने इस घटना का जिक्र गुरुदेव से किया। सारी बातें सुनने के बाद उन्होंने कहा—''यह दर्शन बड़े भाग्य से मिलता है। योगी पुरुषों के भाग्य में ऐसे दर्शन होते हैं। यह तो छाया दर्शन रहा। इसके आगे तुम्हें अनेक प्रकार के दर्शन होंगे।''

+ \+ \+ \+

वैष्णवों के चार सम्प्रदाय हैं। १- निम्बार्क, २- श्री, ३- विष्णु स्वामी और ४- माध्व। इनमें श्री सम्प्रदाय की दो शाखाएँ हैं— (क) रामानुजी, (ख) रामानन्दी। इन चारों सम्प्रदाय के महन्त भी अलग-अलग होते हैं।

काठिया बाबा निम्बार्क सम्प्रदाय यानी हंस सम्प्रदाय के महन्त थे। सन् १६०६ में रामदास काठिया बाबा का तिरोधान हो गया। इस सम्प्रदाय का नियम यह है कि महन्तजी का शिष्य ही महन्त बनता है।

बाबा के तिरोधान के पश्चात् नये महन्त का प्रश्न उपस्थित हुआ। ताराकिशोरजी के अनुरोध पर बाबा के एक शिष्य का महन्त पद पर अभिषेक किया गया। कुछ दिनों बाद अन्य शिष्यों ने नये महन्त का विरोध करना शुरू किया। फलस्वरूप उन्होंने त्याग-पत्र दे दिया।

अब पुनः नये महन्त का प्रश्न उपस्थित हुआ। विभिन्न सम्प्रदायों के महन्तों का सम्मेलन किया गया। सभी सम्प्रदाय के महन्तों ने सर्वसम्मति से ताराकिशोरजी का नाम नये महन्त के लिए निर्वाचित किया।

महन्त-पद ग्रहण करने के बाद उनका नया नाम वज्रविदेही सन्तदास हुआ। उन्हें याद आया—एक बार गुरुदेव ने कहा था कि महन्तई भी मिलेगी। उनकी भविष्यवाणी सत्य हो गयी।

महन्त-पद ग्रहण करने के कुछ दिनों बाद नासिक में कुंभ मेला का आयोजन हुआ। यह सन् १६२० की बात है। सूक्ष्मरूप में आकर गुरु ने सन्तदास को आदेश दिया—''अब संकोच या ऊहापोह मत करो। महन्त हो गये हो। लोगों को दीक्षा देने का कार्य मेला से प्रारंभ कर दो। सम्प्रदाय के महन्तों का यह कर्त्तव्य है।''

आपने अपने जीवन काल में अनेक लोगों को दीक्षा देकर शिष्य बनाया। आपके शिष्यों ने भी अनेक अलौकिक घटनाओं का दर्शन किया है।

श्री संतदास के नाम पर काशी में उनकी शिष्या शोभा माँ ने एक मुहल्ले का नामकरण 'सन्त नगर' किया है जहाँ एक मन्दिर, आश्रम और बच्चों का एक स्कूल स्थापित है।

बिहारी बाबा

सर्दी, गर्मी, बरसात सभी मौसमों में काशी के गंगातट पर स्नानार्थियों की भीड़ होती है। मंदिरों में सुबह घंटा-घड़ियाल बजाकर विग्रह की आरती की जाती है। घाट पर स्थित पण्डे स्नानार्थियों का आह्वान करते हैं। नगर का प्रमुख घाट दशाश्वमेधघाट है जहाँ प्राचीनकाल में भारशिवों ने दस अश्वमेध यज्ञ किये थे।

इसी घाट पर एक दिन एक दिगम्बर संन्यासी आया और स्नान करने के पश्चात् घाट के ऊपर बैठ गया। नगर में भिन्न-भिन्न संप्रदायों के मठ, मंदिर, आश्रम और अखाड़े हैं। सड़कों पर इन संप्रदाय के संत और अनुयायी चलते-फिरते नजर आते हैं। पहले लोगों ने इस दिगम्बर बाबा की ओर ध्यान नहीं दिया। होगा किसी मठ का, चला जायगा। लेकिन उन्हें घाट से कहीं आते-जाते न देख पण्डों को आश्चर्य हुआ। स्नानार्थी भी विस्मय से इस बाबा को देखने लगे।

पण्डों का शह पाकर कुछ शरारती लोग दिगम्बर बाबा को तंग करने लगे। दूसरी ओर कुछ धार्मिक और सात्त्विक लोगों ने शरारती लोगों को डाँटते हुए कहा— ''क्यों तुम लोग सीधे-सादे संत को छेड़ते हो? तुम्हारा कोई नुकसान तो नहीं कर रहे हैं।''

शरारती लोग उद्दण्डता से जवाब देते— ''इस घाट पर न जाने कितने घरों की बहू-बेटियाँ और माताएँ स्नान के लिए आती हैं। इस नंगे साधु को देखकर उनके मन में कैसा प्रभाव पड़ता है, कभी आपने यह भी सोचा है?''

इस तरह की किचकिच अक्सर होती थी। सात्त्विक लोगों की अपेक्षा शरारती लोगों का पलड़ा भारी पड़ता था। लोग मौका पाते ही बाबा को तंग करते थे। लेकिन बाबा निर्विकार रहकर समस्त अत्याचारों को सहन करते रहे।

काशी नगरी में संत तुलसीदास, रैदास, परमहंस सदानन्द, तैलंग स्वामी, भास्करानन्द आदि महात्माओं को तंग किया गया था। अगर बिहारी बाबा यहाँ के शरारती तत्त्वों के शिकार हुए तो कोई आश्चर्य नहीं। यहाँ के लोग बिहारी बाबा की योग विभूति से अपरिचित थे।

इसके बावजूद कुछ ऐसे लोग भी थे जो श्रद्धावश बाबा के पास बैठते और उनसे प्रश्न करते थे। बिहारी बाबा किसी के प्रश्न का उत्तर नहीं देते थे। हमेशा मौन रहते या आँखे बंद कर ध्यानस्थ रहते थे। निरन्तर मौन रहने के कारण नगर के लोगों ने आपका नाम 'मौनी बाबा' रख दिया था।

बाबा के बराबर मौन रहने के कारण लोगों को उनके पूर्व इतिहास की जानकारी नहीं हो पाई। किस सम्प्रदाय के हैं? कहाँ के निवासी हैं? जाति क्या है? गुरु कौन हैं? काशी में आकर रहने का क्या उद्देश्य है? ऐसे अनेक प्रश्न थे जिनका उत्तर लोग चाहते थे, पर हमेशा निराशा हाथ लगती थी। बहुत दिनों बाद बंगाल से आये तीर्थयात्रियों ने बाबा को पहचाना और उनसे पूछताछ करने पर लोगों को जानकारी प्राप्त हुई।

काशी के नागरिक जिस बाबा को 'मौनी बाबा', 'नागा बाबा' के नाम से जानते हैं, वे वास्तव में बंगाली हैं। पूर्वी बंगाल के ढाका जिला के निवासी हैं। बचपन में इनका नाम रासबिहारी रखा गया था जिसे कुछ लोगों ने 'बिहारीलाल' के रूप में प्रसिद्ध कर दिया।

+ + + +

सन् १८५६ ई० की बात है। श्रावण के महीने में मूसलाधार पानी बरस रहा था। पूर्वी बंगाल के त्रिपुरा जिले के 'चालतातली' गाँव में एक बालक ने कृष्णपक्ष द्वादशी के दिन जन्म ग्रहण किया। चालतातली नवजात शिशु का ननिहाल था। पिता महेशचन्द्र मुखर्जी ढाका जिले के 'तारपाशा' गाँव के निवासी थे। पद्मा नदी की बाढ़ में संपूर्ण गाँव नष्ट हो जाने के कारण महेशचन्द्र अपनी ससुराल चले आये थे। बाद में आपने ढाका के 'राजदिया' गाँव में अपना नया घर बनवाया।

महेशचन्द्र मुखोपाध्याय निष्ठावान धार्मिक प्रवृत्ति के ब्राह्मण थे। परिवार की आमदनी अच्छी थी। आपकी दो पत्नियाँ थीं। बड़ी का नाम श्रीमती गंगा देवी और छोटी का नाम श्रीमती सूर्यकुमारी देवी था। गंगा देवी के तीन पुत्र हुए— पहला अभयचन्द्र, दूसरा नवीनचन्द्र और तीसरा रासबिहारी। सूर्यकुमारी को एक पुत्र हुआ था जिसका नाम नीलरतन था।

गंगा देवी का तीसरा पुत्र रासबिहारी ही भविष्य में 'परमहंस बिहारी बाबा' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

रासबिहारी का जन्म एक ऐसी परिस्थिति में हुआ था जो अपने आप में अद्भुत घटना थी। कहा जाता है कि उन दिनों महेशचन्द्र उन्माद-रोग से पीड़ित थे। आपके उपद्रव से तंग आकर लोगों ने आपको जंजीर से बाँधकर एक कमरे में बंद कर रखा था। केवल भोजन और नित्यक्रिया के समय पुरुषों के घेरे में आपको मुक्त किया जाता था। उस वक्त कोई भी आपके सामने आने का साहस नहीं करता था।

एक दिन गंगा देवी घर में अकेली थीं। शाम होने के कारण घर के कमरों में दीपक जला रही थीं। ठीक इसी समय महेशचन्द्र अपने जंजीरों को खोलकर कमरे से बाहर आकर गंगा देवी के पास खड़े हो गये। पागल पति को अपने पास शांत भाव से खड़े होते देख गंगा देवी को बड़ा विस्मय हुआ। पति के चेहरे पर पागलपन के चिह्न नहीं थे। फिर भी गंगा देवी का सारा शरीर भय से काँपने लगा। यह देखकर महेशचन्द्र ने उन्हें आलिंगन पाश में बाँधते हुए कहा— "डरो मत।"

शायद पति का पागलपन दूर हो गया है यह समझकर गंगा देवी ने अपने को आत्मसमर्पण कर दिया। गंगा देवी गर्भवती हो गयीं। थोड़ी देर बाद एक-एक कर लोग घर में आते रहे। महेशचन्द्र को कमरे के बाहर शृंखला से मुक्त देखकर सभी गंगा देवी से प्रश्न करने लगे। उन लोगों को बताया गया कि महेशचन्द्र का पागलपन दूर हो गया है। परीक्षा के लिए लोग उनसे बातें करने लगे। सही जवाब और ठीक ढंग से व्यवहार करते देख लोगों ने राहत की साँस ली।

अभी लोग बातचीत कर ही रहे थे कि पुनः महेशचन्द्र को दौरा आया और वे पहले की तरह उपद्रव करने लगे। अत्यन्त कठिनाई के साथ उन्हें पुनः जंजीरों से बाँधकर कमरे में बंद कर दिया गया। गंगा देवी को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि अभी-अभी जो व्यक्ति बुद्धिमानों की तरह व्यवहार करता रहा, वही सहसा बदल कैसे गया?

महेशचन्द्र की यह बीमारी लगातार बनी रही। जिस दिन बिहारीलाल भूमिष्ठ हुए, उसी दिन से उनमें सुधार होना प्रारंभ हुआ। कुछ दिनों बाद वे रोगमुक्त हो गये। लोगों ने अनुमान लगाया कि सन्तानोत्पत्ति के समय जिस प्रकार वे स्वस्थ हुए थे, उसी प्रकार बालक के जन्म के पश्चात् स्वस्थ हो गये हैं। यद्यपि घर के लोग काफी दिनों तक उन्हें संदेह की दृष्टि से देखते रहे। मुखोपाध्याय परिवार के लिए यह एक अद्‌भुत घटना थी।

सन् १८६४ ई० में बिहारीलाल जब पाँच वर्ष के हुए तब उनके मामा हरकान्त ठाकुर ने उन्हें अक्षरांभ कराया। बिहारीलाल बचपन से ही मेधावी थे, पर साथ ही साथ चंचल और नटखट भी थे। अक्सर घर से भागकर किसी पेड़ पर चढ़ जाते और वहीं घंटों बैठे रहते। भूख लगने पर कोयल की तरह कूकते तब माँ या परिवार का कोई व्यक्ति इन्हें वहाँ से पकड़ लाता था। साँपों के जानी दुश्मन थे। साँप को देखते ही उसे लाठी से मारकर घायल कर देते थे। घायल साँप को लेकर मित्रों के साथ खिलवाड़ करने की आदत रही। बिहारीलाल की इस आदत से नाराज होकर जब बड़े-बूढ़े डाँटते तब वे उनकी उपेक्षा कर देते थे।

बाल सुलभ चंचलता के अलावा एक विशेषता उनमें और थी। नदी या पोखर से करैली मिट्टी लाकर देव-देवियों की मूर्ति बनाकर पूजा किया करते थे। मित्रों में

अगर कोई सहयोग नहीं करता अथवा मजाक उड़ाता तो उससे झगड़ पड़ते थे। आपके बाल्यजीवन में इस तरह की अनेक घटनाएँ हुई हैं।

बालक धीरे-धीरे बड़ा होता गया। उपनयन-संस्कार के बाद बालक को त्रिसंध्या करना सिखाया गया। लोगों को इस बात की आशंका थी कि कहीं अपने जिद्दी स्वभाव के कारण ब्राह्मणोचित कार्य न करे। लेकिन यह आशंका निर्मूल सिद्ध हुई। संध्या गायत्री और पूजा-पाठ में उसका मन रम गया। यह देखकर घर के लोग आनन्दित हुए।

इस तरह कई वर्ष बीत गये। बिहारीलाल बालक से किशोर बन गया। कई जगहों से इनके विवाह के लिए निमंत्रण आने लगे। अन्त में कोला निवासी अभयचन्द्र घटक की पुत्री दक्षिणा देवी के साथ इनका विवाह हो गया।

विवाह के बाद बिहारीलाल प्रवेशिका परीक्षा (मैट्रिक) में उत्तीर्ण हुए। सन् १८७७ ई० में बिहारीलाल नारायणगंज आये जहाँ बड़े भाई साहब किसी जूट कम्पनी में कार्यरत थे। बड़े भाई के प्रयत्न से 'वार्कमायर ब्रदर्स' कम्पनी में आपकी नियुक्ति हुई। अपने श्रम और लगन के कारण कुछ ही दिनों में आपका वेतन साठ रुपये हो गया। केवल यही नहीं, जिस कुशलता से आप काम कर रहे थे और कम्पनी लाभान्वित हो रही थी, उसे देखते हुए अधिकारियों ने आपको कमीशन देना प्रारंभ किया। इस प्रकार उन दिनों आपकी मासिक आय २०० रुपये हो गयी। यह एक बड़ी उपलब्धि थी। आपके बड़े भाई अभी सामान्य बाबू मात्र थे। बिहारीलाल कम्पनी के अंग्रेज मैनेजर के सहायक बन गये।

कम्पनी के मैनेजर से घनिष्ठता बढ़ने के कारण बिहारीलाल को घर वापस आने में देर हो जाती थी। फलस्वरूप साहब के यहाँ भोजन करना पड़ता था। अंग्रेजों के दस्तरखान में शराब अनिवार्य रूप से रखा जाता था। फलस्वरूप बिहारीलाल को भी साहब के अनुरोध पर पीना पड़ता था। लेकिन इस बात की सावधानी वे बराबर बरतते थे कि रात को चुपचाप घर आकर अपने कमरे में सो जाया करते थे। अपने बड़े भाई से वे काफी डरते थे। कहीं शराब की महक का पता उन्हें न लग जाय, इस ओर से बराबर सावधान रहते थे। लेकिन अपराध का पाप अधिक दिनों तक छिपा नहीं रह सका।

बड़े भाई ने तिरस्कार करते हुए कहा— ''प्रथम अपराध होने के कारण क्षमा कर रहा हूँ। भविष्य में इसकी पुनरावृत्ति हुई तो तुम्हारे दोनों हाथ काट दूँगा।''

बड़े भाई की फटकार से बिहारीलाल को बड़ी आत्मग्लानि हुई। उन्होंने कहा— ''अब कभी शराब स्पर्श नहीं करूँगा।'' बड़े भाई के प्रति बिहारीलाल की असीम श्रद्धा थी। अपने इस अपराध के कारण उन्होंने कम्पनी में जाना बंद कर दिया।

इनकी अनुपस्थिति मैनेजर को खल गयी। आखिर उसने आना क्यों बंद कर दिया। बिना सहयोगी के नशेबाजों को आनन्द नहीं मिलता। एक दिन मैनेजर घर आया

और बिहारीलाल को मनाकर ले गया। बातचीत के सिलसिले में सारी घटनाएँ सुनने के बाद मैनेजर ने कहा—''शराब न छूने की प्रतिज्ञा तुमने की है। कोई हर्ज नहीं। तुम्हें छूने की कोई जरूरत नहीं। तुम मुँह खोलो, मैं उसमें उड़ेल दूँगा।''

इस दिन पुनः उसे शराब पीनी पड़ी। धीरे-धीरे उसके चरित्र में दोष आने लगा। इसी बीच पत्नी गर्भवती हो गयी थी। प्रसव के लिए पीहर गयी हुई थी। एक दिन रात को बिहारीलाल ने स्वप्न में देखा कि उसकी आत्मा उसे फटकार रही है। चकित भाव से वह आत्मा की बातें सुनता रहा। उसे लगा जैसे सब कुछ माया है। यहाँ रहने से ऐसे ही लोग उसे पतन की ओर जबरन खींच ले जायेंगे। उस रात नींद से जागते ही उसने अपना कर्त्तव्य निश्चित कर लिया।

मानव-चरित्र अद्‌भुत है। कब, किसके मन में कौन-सी समस्या उत्पन्न होती है, इसे भोक्ता भी नहीं समझ पाता। एक दिन सब कुछ त्यागकर बिहारीलाल घर से गायब हो गये। कोई कुछ नहीं जान सका। चारों ओर उनकी तलाश में आदमी भेजे गये। जगह-जगह तार तथा पत्र लिखे गये। पुत्र के गायब होने के कारण पिता की हालत अधिक खराब हो गयी। उन्हें पुनः दौरा आने लगा। लाचार होकर लोगों ने हथकड़ी-बेड़ी लगाकर उन्हें पुनः कैद में डाल दिया। एक दिन रात को हथकड़ी-बेड़ी तोड़कर खिड़की के रास्ते वे न जाने कहाँ गायब हो गये।

महेशचन्द्र सबसे पहले ढाका गये। यहाँ पता न लगने पर वे पागलों की तरह अपने बेटे की तलाश में विभिन्न स्थानों पर चक्कर काटते हुए वृन्दावन चले आये। 'जिन खोजा तिन पाइंया' की भाँति आखिर एक दिन महेशचन्द्र की मुलाकात बिहारीलाल से हो ही गयी। पुत्र को देखते ही महेशचन्द्र का रोग दूर हो गया। उसे गले लगाते हुए वे देर तक रोते रहे। रोते-रोते महेशचन्द्र ने घर का सारा हाल बताया। अन्त में बिहारीलाल ने घर वापस जाने का निश्चय किया। यह सन् १८८६ की घटना है।

घर वापस आने पर माँ ने बड़े स्नेह के साथ कहा— ''क्यों हमें इतना कष्ट दे रहा है? अब अगर घर से भागा तो मैं आत्महत्या कर लूँगी। मातृ-हत्या का पाप तुझे लगेगा।''

बिहारीलाल ने प्रतिज्ञा की कि अब वह माँ के जीवनकाल में घर से नहीं भागेगा। इन्हीं दिनों सूचना आयी कि बिहारीलाल की तीन साल की एक मात्र कन्या की मृत्यु हो गयी है। इस समाचार से बिहारीलाल को कोई दुःख नहीं हुआ। वैराग्य-भाव उदय होने के कारण उनके स्वभाव में परिवर्तन हो गया था। घर के लोगों ने प्रयत्न किया कि ऐसी हालत में बहू को यहाँ ले आये, पर बिहारीलाल राजी नहीं हुए। अपनी पत्नी का उन्होंने परित्याग कर दिया।

+ \+ \+ \+

इस प्रकार कुछ दिन बीत जाने के बाद परिवार के लोगों के अनुरोध पर उन्होंने

काम करने का निश्चय किया। इसी बीच जूट कम्पनी का मैनेजर अपने यहाँ नौकरी दिलाने का वचन दे गये, पर बिहारीलाल पुनः उस कीचड़ में पाँव रखना नहीं चाहते थे। उन्होंने निश्चय किया कि अब स्वतंत्र रूप से अपने पैरों पर खड़े होंगे। उनके इस निश्चय का स्वागत किया गया। माँ को इस बात की आशंका बराबर बनी रहती थी कि कहीं पुनः घर से भाग न जाय। आखिर एक दिन माँ ने अनुरोध किया कि वह पुनर्विवाह करके घर बसा ले।

बिहारीलाल ने कहा — ''क्यों मुझे बन्धन में फँसाना चाहती हो। एक को छोड़ चुका हूँ। दूसरे की जान साँसत में क्यों डालना चाहती हो? मैं अधिक दिनों तक यहाँ नहीं रहूँगा। केवल तुम्हारे कारण हूँ। फिर मेरी पत्नी और बच्चों की परवरिश कौन करेगा?''

माँ ने कहा — ''तुम्हारे मझले भैया निःसंतान हैं। भगवान् न करे तुम पुनः घर से भाग जाओ। अगर ऐसी घटना हुई तो मझली बहू और तुम्हारा भाई उनके देखरेख करेंगे।''

इस तर्क में मझली बहू ने सहयोग किया। फलस्वरूप बिहारीलाल को स्वीकृति देनी पड़ी। गोविन्द चक्रवर्ती की सुपुत्री सावित्री देवी के साथ बिहारीलाल का पुनर्विवाह हो गया। उन दिनों बिहारीलाल की उम्र तीस साल की थी। विवाह के एक साल बाद हैजे की बीमारी में माँ का देहान्त हो गया। इन दिनों बिहारीलाल त्रिपुरा जिले के चाँदपुर में स्वतंत्र रूप से जूट का कारबार करते थे। माँ के निधन के पश्चात् बिहारीलाल की उदासी बढ़ती गयी। पत्नी प्राणपण से सेवा करती थी, फिर भी उनकी वेदना में कमी नहीं हुई। इसी बीच उन्हें एक पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई।

कुछ दिनों बाद बिहारीलाल ने अपनी पत्नी से कहा कि मैं तीर्थयात्रा पर जाना चाहता हूँ। क्या तुम मेरे साथ चल सकोगी? बच्चा अभी कुल जमा छह माह का था। माँ उसकी ममता को त्यागने में असमर्थ हो गयी। यह जानकर बिहारीलाल एक दिन पहले की तरह चुपचाप घर से चले गये। कुछ दिनों तक वे अपने एक मित्र के यहाँ रहकर साधन-भजन करते रहे। इसके बाद हरिद्वार चले आये। उत्तराखण्ड के विभिन्न स्थानों का दर्शन करने के बाद पुनः हरिद्वार आये। यहाँ वर्षा के समय साधु-संत नहीं रहते। सभी सुदूर चले जाते हैं। बिहारीलाल चण्डी पहाड़ पर चले गये। उन्होंने निश्चय किया कि लोकालय से दूर जंगल में साधना शांति से हो सकती है। दिन भर शांत परिवेश में वे साधन-भजन करते और रात को पेड़ पर चढ़ जाते। बचपन में वे पेड़ों पर चढ़कर कैसे रहा जाता है, इसका अभ्यास कर चुके थे। एक डाली पर लेटकर अपने शरीर को धोती से बाँध लेते थे ताकि गहरी नींद आ जाने पर नीचे गिर न पड़े। रात के समय जंगली जानवर शिकार की तलाश में चक्कर काटते रहते थे। एक बार एक चीते ने उछलकर हमला किया था और इनकी जाँघ को नोंच लिया था। दूसरी बार एक बाघ

ने इनकी जाँघ पर दाँत गड़ाया तो बिना विचलित हुए बिहारीलाल ने कहा– ''तू मुझे खाना चाहता है? खा ले। शायद भगवान् की यही इच्छा है।''

बिहारीलाल ने सुन रखा था कि जंगली जानवरों से सद्‌व्यवहार करने पर हिंसक-प्रवृत्ति का प्रदर्शन नहीं करते। इनकी बात सुनते ही बाघ चुपचाप नीचे उतर गया। चीता और बाघ द्वारा किये क्षत के निशान उनकी जाँघ पर आजीवन बना रहा। बिहारीलाल को इस बात पर आश्चर्य होता कि उनके जैसे अकिंचन पर भी भगवान् की कृपादृष्टि निरन्तर बरसती है। जंगली फलों का सेवन करते हुए वे गुफाओं में दिन गुजारते रहे। एक बार उन्हें लगातार पाँच दिनों तक अनाहार रहना पड़ा। भूख के कारण साधन-भजन में मन नहीं लग रहा था। ठीक इसी समय एक चील के मुँह से एक पोटली उनके सामने गिरी। यह देखकर बिहारीलाल अपने स्थान से दूर जाकर बैठे ताकि चील निडर होकर अपना भोजन ले जा सके। कुछ देर बाद चील पुनः आयी और उस पोटली को मुँह से उठाकर उड़ गयी। पुन: बिहारीलाल के पास उक्त पोटली गिरी। इस बार काफी नजदीक गिरी थी। आश्चर्य की बात यह रही कि पोटली गिराने के बाद चील न जाने कहाँ गायब हो गयी। अब बिहारीलाल उत्सुकतावश पोटली के समीप आये और उसे खोलकर देखा—उसमें गरम-गरम पूरियाँ, आलू की तरकारी और हलवा था।

इस भयंकर जंगल में ऐसी सामग्री को पाकर बिहारीलाल उस परमब्रह्म परमात्मा की कृपा के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए आनन्दाश्रु बहाने लगे जिनकी आराधना के लिए वे यहाँ आये हैं। भोजन समाप्त करके वे पानी की तलाश में पहाड़ पर से नीचे उतरने लगे। कहीं कोई झरना, सोता नहीं दिखाई दिया। ठीक इसी समय कुछ महिलाएँ पानी का कलश लिए जाती हुईं दिखाई दीं। उनमें से एक पास आकर बोली—''पानी पिओगे?''

बिहारीलाल ने सिर हिलाकर जताया कि हाँ। वह कलश से पानी उनकी अंजलि में उड़ेलने लगी। भरपेट पानी पीने के बाद बिहारीलाल ने उस महिला को साक्षात् भगवती समझकर प्रणाम किया। वह महिला कलश लेकर एक पेड़ के पीछे गयी और अचानक अदृश्य हो गयी। यह देखकर बिहारीलाल अवाक् रह गये। इस सुनसान स्थान पर भगवान् ने कैसी लीला की?

इस घटना के बाद से उन्हें भोजन की कभी कमी नहीं हुई। वे कुछ दूर स्थित एक गाँव में जाते और वहाँ से भीख में आटा माँग लाते। आटे की लिट्टी बनाकर झोले में रख लेते। जब भूख लगती तब दो-एक खा लेते थे। इसी प्रकार साधन-भजन करते हुए अगले साल काशी आये। यहाँ अपने उन मित्रों से मिले जिनके साथ हरिद्वार, ऋषिकेश में वे साधना करते रहे। यहाँ कुछ दिनों तक रहने के पश्चात् पुनः तीर्थयात्रा के लिए निकल पड़े। चारों धाम के अलावा अन्य अनेक स्थलों की यात्रा उन्होंने की, पर उन्हें अपने गुरु के दर्शन नहीं हुए। बिहारीलाल योग्य गुरु की खोज में चारों ओर

भटकते रहे। दरअसल उनकी एक प्रतिज्ञा थी। उनकी माता ने देहत्याग के समय एक 'इष्टमंत्र' सुनाया था। बिना प्रश्न किये जो व्यक्ति उस मंत्र को सुनायेगा, वही मेरा गुरु होगा। भारत के विभिन्न स्थानों में अनेक संतों से मुलाकात हुई, पर बिहारीलाल की प्रतिज्ञा अभी तक पूरी नहीं हुई थी।

+ + + +

पुनः उत्तराखण्ड की ओर चल पड़े। इस बार उनका लक्ष्य मानस-सरोवर था जिसके बारे में उन्होंने सुन रखा था—

मानस सरोवर कोन पर्श्वे, जहाँ बिन बादल हिम वर्षे।
उड़त कस्कर जीव तरसे, नर-नारायण जाय पर्शे ॥

सन् १८९७ ई० में बिहारीलाल मानस-सरोवर पहुँचे। कई दिनों तक भ्रमण करने के बाद सहसा एक संत के दर्शन हुए। इस दिव्यमूर्ति को देखकर बिहारीलाल का हृदय अपूर्व भाव से विमोहित हो गया। उन्हें लगा जैसे यही मेरे वास्तविक गुरु हैं जिनकी तलाश में अब तक वे परेशान थे।

बाबा जिन्हें स्थानीय लोग "पहाड़ी बाबा" के नाम से जानते थे, मानस-सरोवर में उनका स्थायी आश्रम है, पर वे गंगोत्री के समीप एक गुफा में अधिकतर रहते थे। इस वक्त गंगोत्री से मानस-सरोवर स्थित सिद्धाश्रम जा रहे थे। बिहारीलाल के निवेदन करने पर बाबा ने उन्हें बंगाली, दुर्बल चित्त आदि कहकर दुत्कार दिया। लेकिन बिहारीलाल इस अपमान से निराश नहीं हुए। बराबर कृपा-भिक्षा माँगते रहे। बाबा चुपचाप अपनी गुफा के भीतर चले गये। शायद वे सूक्ष्म रूप से बिहारीलाल के अस्तित्व की परीक्षा लेते रहे। बिहारीलाल गुफा के बाहर बैठकर बाबा के आगमन की प्रतीक्षा करते रहे। आहार-निद्रा त्यागकर बिहारीलाल दो सप्ताह तक बाहर बैठे रहे तब जाकर बाबा बाहर आये।

बिहारीलाल जब तीर्थयात्रा के लिए रवाना हुए थे तब तीस हजार रुपया लेकर चले थे। अब तक की यात्रा में छब्बीस हजार रुपये खर्च हो गये हैं। शेष चार हजार के नोट कमर में बाँध रखा है। पहाड़ी बाबा ने अपनी अतीन्द्रिय शक्ति से इस रहस्य को जान लिया। उन्होंने बिहारीलाल से कहा—"चला है साधना का मार्ग ढूँढ़ने, यहाँ दीक्षा लेने आया है, पर अभी तक माया से जकड़ा हुआ है।"

थोड़ी देर तक चुप रहकर पहाड़ी बाबा ने मुस्कराते हुए कहा— "मोह-माया में जब तक उलझा रहेगा तब तक इष्ट नहीं मिलेगा। क्या करेगा चार हजार रुपये? फेंक दे इसे।"

बाबा की बातों ने बिहारीलाल पर जादू सा असर डाला। उस वक्त वे पहाड़ी बाबा के आकर्षण से प्रभावित हो गये थे। बिना द्विधा के उन्होंने सारी रकम पहाड़ पर

बिखेर दिये। पहाड़ी बाबा ने कहा— ''अब तू मुक्त हो गया। भगवान् भक्तों की हमेशा रक्षा करते हैं।''

पहाड़ी बाबा ने बिहारीलाल को यथाविधि दीक्षा दी। दीक्षा के समय मातृ वाक्य को सुनते ही बिहारीलाल आनन्द से विभोर हो गये। आज उनकी मनोकामना पूर्ण हो गयी।

दीक्षा देने के बाद गुरुदेव ने कहा — ''आज से तीन साल तक तुम्हें मौन रहकर साधना करनी होगी। हरिद्वार, वृन्दावन या काशी जहाँ तुम्हारी इच्छा हो, सुविधा प्राप्त हो, वहाँ रहना। तीन साल के बाद पुनः यहाँ आना।''

इस आदेश को पाकर बिहारीलाल ने गुरुदेव को साष्टांग प्रणाम किया। आशीर्वाद देने के पश्चात् गुरुदेव अपने आश्रम चले गये।

बिहारीलाल कुछ दिनों तक हरिद्वार और वृन्दावन में व्यतीत करने के बाद काशी आकर जम गये। उन दिनों वे पूर्ण दिगम्बर थे, इसलिए 'नागा बाबा' के नाम से प्रसिद्ध हो गये। अचानक तीर्थ करने के लिए बड़े भाई काशी आये और उनकी मुलाकात बिहारीलाल से हो गयी। वे घर वापस चलने के लिए अनुरोध करने लगे। वहीं चलकर तुम साधना करना। पिताजी तुम्हारे लिए बड़े व्याकुल हैं। सारी बातें सुनने के बाद बिहारीलाल इस शर्त पर चलने को तैयार हुए कि कोई मुझे वहाँ रहने के लिए मजबूर नहीं करेगा।

गाँव आते ही उन्हें यह ज्ञात हो गया कि उनके आज्ञानुसार पत्नी ने मझली भाभी को अपना पुत्र दान कर दिया है। लेकिन एक दिन जब वे भोजन कर रहे थे तब उन्होंने सुना कि उनकी पत्नी मझली भाभी से पूछ रही हैं — ''बच्चा रोता है क्या?'' पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि अभी तक पत्नी में अपने बच्चे के प्रति मोह है। इस सम्बन्ध में उन्होंने अपनी पत्नी से कुछ नहीं कहा। एक दिन चुपचाप काशी चले आये। काशी में दशाश्वमेधघाट पर आसन जमाकर गुरु के निर्देशानुसार साधना करने लगे।

अभी तक उन्होंने संन्यास नहीं लिया था। शीतलाघाट के ऊपर सरस्वती मंदिर के पास धूनी लगाकर मौन बैठे रहते। शरारती लोग उन्हें छेड़ने लगे। कभी धूनी बुझा देते, कभी धूनी पर इन्हें ढकेल देते। एक बार उन्हें इस तरह ढकेला गया कि उनकी जाँघ जल गयी। दूसरी ओर कुछ ऐसे लोग भी थे जो उनकी सेवा करते थे। दो-तीन भद्र महिलाओं की सेवा से वे पुनः स्वस्थ हो गये। बिहारीलाल शरारत करनेवालों को कभी डाँटते या बिगड़ते नहीं। वे यह समझकर उन्हें माफ कर देते थे कि यह मेरा प्रारब्ध भोग है। इसके विपरीत इन तथाकथित गुण्डों से स्नेह पूर्वक व्यवहार करते रहे।

साधना के तीन वर्ष पूर्ण होने के बाद बिहारीलाल पुनः गुरु-चरणों में उपस्थित हुए। शिष्य साधना के माध्यम से काफी उन्नत हो गया है समझकर उन्होंने बिहारीलाल

को संन्यास देने का निश्चय किया। सभी लोगों को पिण्डदान देने के बाद गुरु के निर्देश से उन्होंने कहा—

तृप्यध्वं पितरो देवा देवर्षिमातृकागणाः ।
गुणातीतपदे यूयमनृणीकुरुताचिरात ॥

अर्थात् "हे पितृगण, हे देवगण, हे देवर्षि और ऋषिगण, आप सभी तृप्त हों, मैं गुणातीत पद की ओर गमन कर रहा हूँ। आप लोग अपने-अपने ऋण से मुझे मुक्त करें।"

इसके पश्चात् आत्मश्राद्ध, पिण्डदान, त्र्यम्बक मंत्र की उपासना के बाद धूनी प्रज्वलित कर आहुति दी गयी। पूर्णाहुति के पश्चात् विरजा-यज्ञ समाप्त हुआ। यज्ञाग्नि संभूत भस्मांश खाते ही बिहारीलाल अपने में अपूर्व तेज अनुभव करने लगे। गुरु के संन्यास मंत्र प्राशन देने के बाद बिहारीलाल ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। गुरु ने उनके दोनों बाँहों को पकड़कर उठाया और कहलवाया—

नमस्तुभ्यं नमोमूह्यं तुभ्यं महं नमोनमः।
त्वमेव तदहमेव विश्वरूपं नमोहस्तु ते॥

[तुम्हें नमस्कार, मुझे नमस्कार, तुम्हें और मुझे बार-बार नमस्कार करता हूँ। हे विश्वरूप, तुम वही पदवाच्य, तुम वही परब्रह्म हो, अतएव तुम्हें बार-बार नमस्कार।]

सन् १९०१ में उन्होंने संन्यास-ग्रहण किया। उन दिनों आपकी उम्र एकतालीस वर्ष की थी। गुरु की आज्ञानुसार आप काशी चले आये और दशाश्वमेधघाट के ऊपर अपना आसन लगाया। अभी पिताजी जीवित थे। उनकी इच्छा हुई कि एक बार वे अपने रासबिहारी को देख लें। अपनी इस इच्छा की पूर्ति के लिए वे अपने लड़कों के साथ काशी आए और गाँव चलने का आग्रह किए। बिहारीलाल ने पहलेवाली शर्त रखी। इसके बाद भाइयों के साथ गाँव चले गये।

पिताजी ने संन्यास लेने की सारी कहानी सुनने के बाद घर में रहने का आग्रह नहीं किया। कुछ दिनों बाद वे पुनः काशी चले आये। घाट के ऊपर बिहारी बाबा का रहना पण्डों को पसंद नहीं था। नगर की अधिकांश महिलाएँ इसी घाट से शीतला मंदिर दर्शन करने तथा गंगा-स्नान के लिए आती हैं। बाबा को यहाँ से खदेड़ने पर अधिकांश लोगों को नाराज होते देख लोगों ने उनके लिए लकड़ी का एक कमरा बनवा दिया। इस कार्यवाही पर म्युनिसिपल बोर्ड ने आपत्ति की। फलतः वे अस्सीघाट चले गये। बिहारी बाबा के चले जाने पर अनेक भक्तों ने जिला कलक्टर के पास आवेदन दिया। फलस्वरूप कलक्टर ने अपनी देखरेख में पुनः नया निवास स्थान बनवाया। इसके पूर्ववाला तोड़ दिया गया था। बाबा पुनः यहाँ आकर रहने लगे। स्नानार्थी, भक्त लोग फल, मीठा, दूध आदि चढ़ाते थे। लेकिन बाबा इन सामग्रियों का उपयोग नहीं करते

थे। भक्त, बालक तथा अन्य लोग चढ़ावा खा जाते थे। अगर कोई बहुत आग्रह करता तो उसकी सामग्री से कुछ अंश खा लेते थे।

सन् १६११ में बाबा ने इशारे से लोगों को बताया— "मैं यहाँ विशेष कारण से रह रहा हूँ। मेरे गुरु का आदेश है कि नगर के लोगों के मंगल के लिए यहाँ साधना करो ताकि तुम सब में धार्मिक-भावना का विकास हो, साधना और तपस्या के प्रति लगाव हो। इस काशी नगरी में अनेक संत इसी उद्देश्य से यहाँ आते रहे। मैं भी गुरु के आदेश से यहाँ आया हूँ, वर्ना मेरे लिए स्थान की कमी नहीं है।"

बिहारी बाबा गुरु के आदेशानुसार मौन रहकर इशारे से अपना भाव व्यक्त करते थे। जिन भक्तों की मनोकामना बिहारी बाबा के आशीर्वाद से पूरी हो जाती थी, वे उनके कट्टर भक्त बन जाते थे। यहाँ तक कि आपकी ख्याति अंग्रेजों में भी फैल गयी। कभी-कभी मौज आने पर वे लीला करते थे। पण्डों के साथ टहलने निकलते तो अचानक अदृश्य हो जाते। गंगा में स्नान करने गये तो डुबकी लगाते ही न जाने कहाँ गायब हो जाते। लोग बेचैन होकर उन्हें खोजते। एकाएक पीछे की ओर नजर जाते ही लोग देखते कि बाबा यहाँ खड़े-खड़े मुस्करा रहे हैं।

इसी प्रकार की अनेक घटनाओं को निरन्तर देखते रहने पर स्थानीय पण्डों को विश्वास हो गया कि बाबा साधारण संन्यासी नहीं हैं। सिद्धयोगी हैं। अब अगर कोई व्यक्ति बाबा के साथ शरारत करता तो उसे सजा देते थे। बाबा के कारण उनकी आय में भी वृद्धि हो रही थी।

+ \+ \+ \+

एक बार बाबा के पास एक शराबी दो बोतल शराब लेकर आया। उद्देश्य था कि बाबा इसे प्रसाद बना दें। उसका उद्देश्य समझते ही बाबा ने एक के बाद एक करके दोनों बोतलों को खाली कर दिया। बाबा को इस तरह शराब पीते देख शराबी की हालत 'काटो तो खून नहीं' जैसी हो गयी। वह तुरंत वहाँ से कुछ दूर हटकर शराब की प्रतिक्रिया देखने लगा। बाबा पर कोई असर नहीं हुआ।

इसी प्रकार एक बार एक बदमाश व्यक्ति विष मिलाकर दूध ले आया और बाबा से पीने के लिए आग्रह करने लगा। बिहारी बाबा अपनी अतीन्द्रिय शक्ति से इस व्यक्ति की हरकत को जान गये। वह व्यक्ति सामने बैठा रहा। इसी बीच दो-चार भक्त और आ गये।

ठीक इसी समय एक कुत्ता आया और दूध के बरतन में मुँह लगाया तो बैठे हुए भक्तों ने उसे भगाना चाहा, पर बाबा ने मना कर दिया। कुत्ते के थोड़ा-सा पी लेने के बाद बाबा ने उसे हटा दिया। देखते ही देखते कुत्ता बेहोश होकर गिर पड़ा। यह दृश्य देखकर उपस्थित लोगों को समझते देर नहीं लगी कि यह दूध बाबा को दिया गया है। तुरंत उस व्यक्ति को पकड़कर लोगों ने पुलिस के हवाले कर दिया।

बारिशाल जिले की सुधा बसु बालविधवा थी जो काशी आकर अपना शेष जीवन व्यतीत कर रही थी। ब्रह्मचर्य व्रत का पालन अत्यन्त कठोरता के साथ करती रही। एक दिन जब वह गंगा स्नान के लिए जा रही थी तब उसने देखा कि बाबा स्नान करके मंदिर के सामने खड़े हैं। एक अनजानी प्रेरणा से सुधा देवी गमछे से बाबा का शरीर पोछने लगी। बाबा ने विरोध नहीं किया। इस घटना के बाद से वह बराबर बाबा की सेवा करने लगी।

यहाँ तक कि एक दिन बाबा ने इशारे से सूचित किया— ''तुम मेरी माँ हो। मैं स्तन-पान करना चाहता हूँ।''

सुधा बालविधवा है, यह बात वह बाबा को बता चुकी थी। बाबा की इच्छा जानकर उसने बाबा को स्तनदान किया। बाबा छोटे बालक की तरह स्तन-पान करने लगे। बाबा की धूनी पर पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं की अधिक भीड़ देखकर कुछ मनचले विद्यार्थियों का हृदय कलुषित हो गया। एक दिन उन्होंने एक अन्य ब्रह्मचारी से शिकायत करते हुए कहा— ''बाबाजी बहुत ही भ्रष्ट प्रकृति के हैं। रात को महिलाओं के साथ रंगरेलियाँ मनाते हैं।''

ब्रह्मचारीजी को आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा — ''क्या तुम लोगों ने अपनी आँखों से देखा है?''

उद्दण्ड विद्यार्थियों ने कहा — ''जी हाँ। चाहे तो आप रात को किसी भी दिन छिपकर यह दृश्य देख सकते हैं।''

ब्रह्मचारीजी ने कहा — ''ठीक है। आज मैं यह दृश्य देखूँगा। अगर तुम लोगों की बात सही निकली तो कल सबेरे बाबा के हाथ-पैर बाँधकर गंगा में फेंक दूँगा। बाबा बनने का सारा ढोंग समाप्त हो जायगा।''

उस दिन रात के समय ब्रह्मचारीजी आड़ में छिपकर बिहारी बाबा के पास आने-जाने वालों की हरकत गौर से देखते रहे। सारा दृश्य देखकर वे अवाक् रह गये।

सबसे पहले दो-एक मुसलमान आये। उन लोगों ने बाबा को माला पहनाकर प्रणाम किया। बोले— ''हम लोग नमाज के वक्त आपको देखते हैं। हमारे ऊपर आपकी बड़ी मेहरबानी है।''

कुछ मुसलमान बाद में फल-दूध ले आये और उनके निकट रखकर चले गये। बाबा के कुछ भक्त मुसलमान भी थे। इन लोगों के जाने के बाद एक महिला आयी और अपने स्तन को खोलकर उनकी ओर बढ़ायी। बाबा अपने दोनों हाथ जमीन पर रखकर बच्चों की तरह स्तनपान करने लगे। कुछ देर बाद महिला ने स्तनदान बंद कर दिया। बाबा भी तनकर बैठे। महिला ने भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया और कहा — ''बाबा, आज्ञा दीजिए।''

इन सभी दृश्यों को देखकर ब्रह्मचारीजी अभिभूत हो उठे। विद्यार्थियों का दल चकित रह गया। अपने इस अपराध के कारण वे बाबा के निकट आये और उन्हें प्रणाम कर वापस चले गये। ब्रह्मचारीजी ने इस घटना का जिक्र बाद में अनेक लोगों से किया था।

सन् १६११ में बिहारी बाबा की पत्नी श्रीमती सावित्री देवी काशी आयीं। उनकी इच्छा थी कि यहाँ रहकर पति की सेवा करें, पर बाबा ने मना कर दिया। वे बाबा से दूर एक पण्डे के घर में रहने लगीं। बाबा मंदिर का दरवाजा खोलकर रात भर बैठे रहते।

५ फरवरी, सन् १६१२ ई० के दिन गंगा स्नान करने के बाद बाबा पण्डाजी के घर आये और सुधा देवी से कहा— "जरा केदार पण्डा को बुला लाओ।"

केदार पण्डा ने आकर कहा— "हुक्म बाबाजी।"

हाथ के इशारे से बिहारी बाबा ने कहा— "अब मैं जा रहा हूँ।"

यह बात सुनकर सभी घबड़ा गये। केदार पण्डा तुरंत उमाचरण कविराज को बुलाने गये। सावित्री और सुधा देवी उनकी पीठ सहलाने लगीं। तभी बाबा ने कहा— "तुम लोग अब मुझे स्पर्श मत करो। तुम लोगों को अब रोने की जरूरत नहीं है। मैं जा रहा हूँ।" कहने के साथ ही वे लुढ़क गये। तभी केदार पण्डा और कविराजजी आये। कविराजजी ने कहा— "बाबा चले गये।"

देखते ही देखते अपार भीड़ एकत्रित हो गयी। 'हर-हर महादेव' की ध्वनि के साथ पत्थर की पेटिका में बाबा का स्थूल रखकर लोगों ने गंगा में विसर्जित कर दिया।

कहा जाता है कि उच्चकोटि के साधक अपनी ऐशी-शक्ति के प्रभाव से बराबर भक्तों तथा प्रियजनों को दर्शन देते हैं और सत्कर्म में सहायता करते हैं। एक दिन जब सावित्री देवी ने मंदिर के दरवाजे को खोला तो देखा— सामने पद्मासन लगाये बाबा बैठे हैं। इसी प्रकार एक दिन वे एक लड़की के साथ पण्डाजी के घर में बैठी बातें कर रही थीं अचानक दोनों महिलाओं ने देखा कि बगलवाली सीढ़ी से वे शिव मंदिर में चले गये। कई बार इस तरह की घटना होने के बाद अक्सर संकट के समय बाबा का ध्यान करने पर वे प्रकट होकर सावित्री देवी को अभय देते थे।

एक दिन पण्डाजी के घर पर कई मुसलमान भक्तों ने आकर कहा— "पण्डितजी, बाबा आप लोगों के संत जरूर रहे, पर आज भी हमें नमाज के वक्त दर्शन देते हैं, इसीलिए हम उनका आसन छूने आते हैं।"

सुधा देवी एक बार बदरीनाथ दर्शन करने गयीं तो डाकुओं ने उन्हें एकांत में पकड़ लिया। साथ के लोग काफी आगे चले गये थे। डाकुओं ने सुधा को घायल करके सब कुछ छीन लिया। पत्थरों से इतना मारा था कि सामने के कई दाँत टूट गये थे। ठीक से बोल नहीं पाती थीं। इसके बाद उन्हें सड़क से दूर एक गुफा में फेंककर भाग गये। होश आने पर वे बाबा का स्मरण करने लगीं।

अचानक बाबा सशरीर उपस्थित हो गये। सुधा देवी को गोद में उठाकर ऊपर झरने के पास ले आये। मुँह में पानी के छींटे देकर उन्हें होश में लाये। जब वे पूर्ण रूप से होश में आयीं तो देखा बाबा गायब हो गये थे।

थोड़ी देर बाद आगे बढ़ गये लोगों में से मृत्युंजय सुधा देवी की खोज में आया। सारी कहानी सुनने के बाद साथ के सभी लोग चारों ओर डाकुओं को खोजने लगे। बाबा की कृपा से सभी अवश होकर एक जगह बैठे थे। उन सभी को पकड़कर इन लोगों ने पुलिस को सौंप दिया। इसी प्रकार न जाने कितने भक्तों पर बाबा कृपा करते रहे।

जिस प्रकार डेढ़सी के पुल के समीप रहनेवाले खिचड़ी बाबा के बारे में लोगों को कम जानकारी है, उसी प्रकार बिहारी बाबा के बारे में बहुत कम लोग जानते हैं। खिचड़ी बाबा भूखे भिखारियों को बराबर खिचड़ी खिलाते थे। कहा जाता है कि उनकी हँड़िया कभी खाली नहीं होती थी। खिचड़ी बाबा के पूर्वाश्रम का परिचय किसी को नहीं मालूम है। केवल उनकी चमत्कारपूर्ण कहानियाँ ही प्रसिद्ध हैं।

ठीक यही स्थिति मौनी बाबा के बारे में है। न जाने कितने लोग दशाश्वमेधघाट पर स्नान करने और गंगा माता का दर्शन करने जाते हैं। घाट के ऊपर एक छोटे से मंदिर में मौनी बाबा की संगमरमर की मूर्ति स्थापित है। बाहर छोटा-सा शिलापट्ट है, पर उनके बारे में पूर्ण जानकारी कहीं प्राप्य नहीं है।

इस मंदिर के निर्माण में स्वनामधन्य वकील श्री राममोहन दे, राजा मोतीचन्द, तत्कालीन कमिश्नर आदि का हाथ था। बिहारी बाबा की पत्नी सावित्री माता अगर उग्र रूप धारण कर मंदिर की रक्षा न करतीं तो कुछ दुष्ट प्रकृति के लोग इसे गिरवा देते। इसके बाद सावित्री देवी के प्रयत्न से 'मौनी बाबा सिद्धाश्रम' की स्थापना हुई।

स्वामी उमानन्द

स्वामी उमानन्द

कुछ संतों को गुरु के निर्देशानुसार कठोर साधना करनी पड़ती है। कुछ ऐसे हुए हैं जो नाम के सहारे योगी बन गये हैं और कुछ ऐसे भी हुए जिन्हें बचपन में ही दैवी शक्ति प्राप्त हो जाती है। स्वामी उमानन्द को स्वप्न में भी विश्वास नहीं था कि बिना प्रयास के एक दिन उन्हें घर-द्वार छोड़कर संन्यास ग्रहण करना पड़ेगा।

पूर्वी बंगाल (वर्तमान बांग्लादेश) के विक्रमपुर परगना के अन्तर्गत तेटिया नामक गाँव था। पद्मा नदी के किनारे वहाँ के जमींदार का एक महलनुमा विशाल भवन था जिसमें पचास के ऊपर कमरे थे। जमींदार कायस्थ थे, उपाधि दत्त थी।

बंगाल में एक लोकोक्ति प्रचलित है— धनवानों के यहाँ चार प्रकार के राम जन्मग्रहण करते हैं— १- केनाराम, २- बाबूराम, ३- बेचाराम और ४- हाभातराम। अर्थात् प्रथम पुत्र केनाराम अपनी बुद्धि और कार्यकुशलता से बाप-दादों की सम्पत्ति में श्रीवृद्धि करते हैं। दूसरे बाबूराम बाप-दादों की जायदाद के जरिये गणमान्य यानी प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं। तीसरे बेचाराम एय्याशी, बढ़ते खर्च के निवारण के लिए पूर्वपुरुषों की जायदाद बेचते हैं। चौथे हाभातराम के भाग्य में पूर्वपुरुषों का कर्ज, खण्डहरवाला मकान, पारिवारिक कलह और वंश के आभिजात्य का झूठा अभिमान रहता है जबकि उनके लिए दोनों जून दो मुट्ठी अन्न मयस्सर नहीं होता।

चौथे प्रकार के हाभातराम यानी नृपेन्द्र कुमार इसी तेटिया गाँव के खण्डहर में, रविवार, नवम्बर माह, सन् १८८९ ई० के दिन भूमिष्ठ हुए थे। पिताजी समय पर स्कूल की फीस नहीं दे पाते थे। कर्ज का बोझ इतना बढ़ गया था कि भोजन को कौन कहे, कभी-कभी नाश्ते में कटौती करनी पड़ती थी। ऐसे माहौल में नृपेन्द्र कुमार का लालन-पालन हुआ।

सन् १९०५ ई० में बंग-भंग आन्दोलन प्रारंभ हुआ। उस समय बालक नृपेन्द्र ११वीं क्लास में अध्ययन करता था। उसके अध्यापक और तत्कालीन आन्दोलन के प्रमुख नेता सर्वश्री अश्विनी कुमार दत्त, जगदीश बाबू, कालीश पण्डित आदि उसके कालेज के अध्यापक थे। इन लोगों के कर्मठ जीवन का उस पर प्रभाव पड़ा। बारिशाल आन्दोलन में वह सक्रिय कार्यकर्ता था।

सन् १९१२ ई० में जब नृपेन्द्र कुमार की नियुक्ति ढाका कालेज के इतिहास विभाग में हुई तब वह कालीश पण्डित को प्रणाम करने गया। आशीर्वाद देते हुए पण्डितजी ने कहा—"देखो बेटा, एक बात याद रखना कि गीता-पाठ कभी मत छोड़ना।"

कालीश पण्डित के आशीर्वाद का असर यह हुआ कि वह रामायण, महाभारत, पुराण, उपनिषद आदि ग्रंथों का अध्ययन करता रहा। आगे चलकर पी-एच०डी० की डिग्री प्राप्त की। अब वेतन में बढ़ोत्तरी हो गयी। कर्ज का बोझ हल्का होता गया। इसी बीच दो पुस्तकें प्रकाशित हुईं। कलकत्ते में अपना मकान हुआ और गाड़ी भी खरीदी। लेकिन एक दुर्घटना भी हुई। प्रथम पुत्र १७ वर्ष का होकर चल बसा। दूसरा पुत्र अभी पाँच वर्ष का था। साथ ही सिर पर कर्ज का बोझ था और बंगाल में संस्कृत भाषा के प्रचार का कार्य करना था।

ठीक इन्हीं दिनों अर्थात् सन् १९२९ ई० में उनका श्रीमत् साधु ताराचरण परमहंसदेव से सम्पर्क हुआ। साधु बाबा बंगाली-समाज में सर्वमान्य महात्मा माने जाते थे। पाश्चात्य-शिक्षा तथा इतिहास का अध्यापक होने के कारण नृपेन्द्र को साधु-संन्यासियों के प्रति तनिक भी श्रद्धा नहीं थी। साधु बाबा से मित्रों के घरों में अक्सर मुलाकात हो जाती थी। उनका प्रवचन सुनता, बातें सुनता और कुछ आकर्षण अनुभव करता। यह सब करते लगभग सात-आठ साल गुजर गये। अचानक साधु बाबा एक दिन उसके घर आये और एक मंत्र बताकर जप करने का आदेश दिया। इसके बाद वे चले गये। उस वक्त नृपेन्द्र को यह महसूस नहीं हुआ कि उनकी दीक्षा हो गयी। करते भी कैसे? जबकि मंत्र देते समय कोई अनुष्ठान नहीं हुआ और न मंत्र कान में सुनाया गया। बातचीत के सिलसिले में मंत्र बताकर साधु बाबा चले गये। मंत्र तो स्मरण रहा, पर आस्था न रहने के कारण उसने जप प्रारंभ नहीं किया। वास्तव में जप, मंत्र, दीक्षा, ध्यान आदि के प्रति उन्हें विश्वास नहीं था।

इस घटना के बाद ३-४ वर्ष और बीत गये। नृपेन्द्र यह नहीं जान सके कि जप न करने पर भी दीक्षा ने अपना प्रभाव दिखाना शुरू कर दिया है। अपने अनजाने वे साधु बाबा के प्रति आकर्षित होकर उनके यहाँ आने-जाने लगे।

एक रात को उन्हें स्वप्न में निर्देश मिला कि तुम अपने घर काली-पूजा करो। इस स्वप्न का क्या अर्थ है, यह पूछने के लिए वह साधु बाबा के पास आया। साधु बाबा पूजा करवाने के लिए उस पर दबाव डालने लगे। यहाँ तक कि अपने जीवन में जो कार्य कभी नहीं किया है, उसके लिए भी तैयार हो गया। काली-पूजा में वे पुरोहित बनेंगे। नृपेन्द्र को इस बात पर आश्चर्य के साथ-साथ प्रसन्नता भी हुई। पूजा के बाद साधु बाबा ने कहा—"पूजा खूब अच्छी तरह हुई है। इसका फल शुभ होगा।"

कौन-सा शुभ फल होगा, इसे नृपेन्द्र तत्काल नहीं समझ सका। बाद में धीरे-धीरे सब स्पष्ट हो गया।

इस पूजा के बाद साधु बाबा के प्रति नृपेन्द्र की आस्था बढ़ती गयी। अब वे नियमित रूप से उनके यहाँ आने-जाने लगे। पूरे ३१ वर्ष अध्यापन करने के बाद प्रोफेसरी से जी ऊब गया और समय से पहले उन्होंने त्यागपत्र दे दिया। उन्होंने निश्चय किया कि शेष जीवन धार्मिक ग्रंथों के अध्ययन में व्यतीत करेंगे। लेकिन सबसे बड़ी समस्या यह हुई कि जब भी वह कोई पुस्तक लेकर पढ़ने बैठते तब साधु बाबा हाजिर हो जाते थे। इस प्रकार उन्हें अध्ययन से विरत रहना पड़ता था। समझते देर नहीं लगी कि मैं कोई पुस्तक पढ़ूँ, बाबा को पसन्द नहीं है। इस प्रकार और पन्द्रह वर्ष गुजर गये। इसी बीच मन में अशान्ति उत्पन्न होने पर नृपेन्द्र ने अपने मन की स्थिति साधु बाबा को सुनाई। उन्होंने कहा—"माँ काली का ध्यान निरन्तर करो।"

माँ काली का ध्यान करने पर कुछ अनुभव नहीं हुआ। एकाएक एक दिन अपने भीतर से उसे दैववाणी सुनाई दी—"श्मशान।" श्मशान के प्रति नृपेन्द्र के मन में भय और घृणा की भावना थी, पर वे दैववाणी की उपेक्षा नहीं कर सके। जलती चिता के पास जाकर वह बैठने लगे। धीरे-धीरे भय और घृणा की भावना दूर हो गयी। गंगापुत्र और डोम आत्मीय जैसे प्रतीत होने लगे। शवदाह से अशुचि और रोगाक्रान्त होना पड़ता है, यह भावना भी दूर हो गयी। साधु बाबा ने एक दिन कहा—"मनुष्य के मर जाने पर मृतदेह और देवता में कोई अंतर नहीं रहता। उन्हें प्रणाम करना चाहिए। चाहे वह किसी जाति का हो।"

अब उन्होंने चाय पीनी बंद कर दी। स्वल्पाहार करने लगे। लेकिन इन सब क्रियाओं से मन शान्त नहीं हो रहा था। पता नहीं, साधु बाबा ने क्या कर दिया है। नौकरी छोड़ दिया, भोजन भी छूटने की तरह है, पत्नी-बच्चों की माया से अलग हो गये। अब क्या होगा? क्या साधु बाबा मुझे गलत राह पर ले जा रहे हैं?

अन्त में बेचैनी इतनी बढ़ी कि वह कलकत्ता से चलकर अपने पैतृक निवास स्थान पर चले आये। उनके जाते ही पैतृक भवन में निवास करनेवाले सज्जन अन्यत्र चले गये। पचास कमरे, आम का बाग, दो तालाब, पद्मा नदी का किनारा, ३-४ डचोढ़ी वाले भवन के भीतर पूजा मण्डप, दरबार हाल, सब कुछ सामने था। प्रजाओं में लोहार, नाई, धोबी, कैवर्त्त, भूँईमाली आदि थे। इनके अलावा बेलदार लठैत, मुसलमान किसान और कुछ शूद्रों के घर थे। दो हजार की आबादीवाले गाँव में ७५ प्रतिशत मुसलमान्थे।

यहाँ आकर उन्हें संतोष मिला। श्मशान जैसा सुनसान वातावरण था। यहाँ वे कृच्छ्रसाधन में लग गये। दैनिक कार्यों को समाप्त कर शेष समय जप-ध्यान में लगाते रहे। घर की बगल में श्मशान भूमि थी। वहीं माँ की चिता पर कालीमाता का मंदिर बनवाया।

आश्चर्य की बात यह रही कि जिस दिन मंदिर का निर्माण पूर्ण हुआ, उसके दूसरे दिन से गाँव में मलेरिया, हैजा और चेचक जैसी बीमारियाँ कम होने लगीं। लोगों में साहस

बढ़ाने के लिए नृपेन्द्र ने एक संकीर्तन-मण्डली स्थापित की। लेकिन इस मण्डली में बहुत कम लोग आते थे। कुछ आस्थावान हिन्दू महिलाएँ आकर कालीमाता से मन्नत माँगने लगीं। उन्हें उनका अभीष्ट मिल गया। इस प्रकार प्रचार होता गया।

गाँव का चौकीदार कालाजार से मरणासन्न था। बरवट काफी बढ़ गया था। इलाज के लिए पैसे नहीं थे। उसकी पत्नी ने स्वप्न देखा कि नृपेन्द्र के हाथ से प्राप्त सामग्री से उसका पति स्वस्थ हो गया है। जब चौकीदार की पत्नी ने नृपेन्द्र से पाद-अर्घ माँगा तो वह भौचक्का रह गया। उसने कातर स्वर में कहा कि देवी ने मुझे आपका पाद-अर्घ लेने की आज्ञा दी है। लाचारी में उसने पानी में पैर स्पर्श करके दे दिया। आश्चर्य की बात है कि उस जल से चौकीदार ३-४ दिन में स्वस्थ हो गया। इस घटना का प्रचार इतनी तेजी से हुआ कि हिन्दुओं के अलावा मुसलमान भी कीर्तन में भाग लेने आने लगे।

नृपेन्द्र कुमार दिन पर दिन विस्मय के सागर में तैरने लगे। आखिर यह कौन-सा चमत्कार हो रहा है। क्या यह कालीमाता की कृपा से हो रहा है या परोक्ष रूप से गुरुदेव का आशीर्वाद फलीभूत हो रहा है? गाँव में एक मौलाना रहते थे। वे १४ साल मक्का में थे। अरबी-फारसी और उर्दू के विद्वान थे। उनके अनेक शिष्य थे। उनसे अपनी चमत्कारवाली घटनाओं का जिक्र किया तो उन्होंने कहा—"आपके पास जो कोई आये, चाहे वह हिन्दू हो या मुसलमान, उसे अपने मन से आप जो कुछ भी देंगे, उससे उसका भला होगा। इसके लिए संकोच न करें।"

कहने की आवश्यकता नहीं कि मौलाना के सुपुत्र भी नृपेन्द्र से प्राप्त आशीर्वाद के फूल से स्वस्थ हो गया था। नृपेन्द्र ने अनुभव किया कि जब वे किसी को कुछ देते हैं या आशीर्वाद देते हैं तो उससे उसका लाभ होता है। इन घटनाओं के बारे में उन्होंने कहा—

"एक मुसलमान की लड़की आकर बोली कि उसका पति आज छः माह हुए कमाने के लिए आसाम गया है। आज तक न तो उसने एक पत्र भेजा और न रकम। मुझे डर है कि कहीं वहाँ किसी गैर औरत से शादी करके बस न गया हो या मर न गया हो।"

"मैंने उसे सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद दिया। तीसरे दिन उसके पति का पत्र आया और पत्र आने के कई रोज बाद वह काफी रकम कमाकर वापस आ गया।"

गाँव में एक नाई रहता था। आमदनी अधिक न होने के कारण पूरा परिवार कभी आधा पेट तो कभी अनाहार रहता था। उसकी आठ से बारह आने की दैनिक आमदनी थी। उन दिनों चावल की कीमत दो रुपये सेर थी। अन्त में नाई ने आत्महत्या करने को सोचा। उसी दिन मैंने उससे कहा—"ऐसा गलत कार्य मत करो। भगवान् का नाम लेकर काम पर जाओ। मंगल होगा।"

"कहने को मैंने आश्वासन दे दिया, पर भगवान् की क्या इच्छा है, यह वही जाने। उस दिन उसकी आमदनी तीन रुपये हुई थी और बाद में इसी प्रकार की होती गयी।"

''अब मुसलमान महिलाएँ भी मेरे पास आने लगीं। पहले रात को आती थीं। लम्बा घूँघट काढ़कर मेरे पास सिकुड़कर बैठती थीं। बहुत धीरे-धीरे अपनी बातें कहती थीं। बाद में पता चला कि उनके घर के पुरुषों ने उन्हें आने के लिए कहा है। एक दिन एक महिला ने संकोच के साथ पूछा—''आप तो अल्लाह के आदमी हैं, फिर कुरान में मनाही रहते आप क्यों मूर्तिपूजा करते हैं?'' मैं इस तरह के प्रश्न के लिए तैयार नहीं था। दार्शनिक व्याख्या करने पर लोग समझ नहीं पाते। मैंने कहा—''मैं मूर्ति-पूजा नहीं करता। मेरे देवता मेरी माँ है। मैं खुदा को अर्थात् सृष्टिकर्ता को माँ मानते हुए सम्बोधन करता हूँ। कारण, मेरी माँ ने मुझे अपने पेट में रखा था, पैदा होने के बाद से वे अपने शरीर से आहार देकर मेरा लालन-पालन करती रहीं। जब तक मैं सक्षम नहीं हुआ तब तक वे मेरी रक्षा करती रहीं। उनसे बढ़कर मेरा कौन है। यही वजह है कि मैं अल्लाह को माँ मानता हूँ। संसार की प्रत्येक महिला मेरी माँ है, पर इतनी महिलाओं की पूजा कैसे कर सकता हूँ। यह कुरान में वर्णित मूर्तिपूजा नहीं है। मैं मूर्ति की पूजा नहीं करता। विश्वस्रष्टा माँ की पूजा करता हूँ।''

''मुझे मस्जिद में जाकर प्रार्थना करने में कोई संकोच नहीं होता था। मुझे लगता था जैसे मंदिर में बैठकर माँ का ध्यान कर रहा हूँ। धीरे-धीरे मुझमें वैष्णव-भाव का विकास होता गया। अन्न का त्याग कर चुका हूँ। गोश्त-मछली का प्रश्न ही नहीं उठता। चूहे, तेलचिट्टा, चींटी, खटमल, मच्छर, मक्खी आदि को समभाव से देखने लगा। साँप, गोजर, बिच्छू, कुत्ता, बिल्ली को प्यार करने लगा। अब मुझे साँप से डर नहीं लगता। साँप कमरे में, बिछौने पर, पूजा-स्थान पर विचरण करते थे। इन सभी के बीच मैं साधना करता रहा।''

+ \+ \+ \+

सन् १९४५ में नृपेन्द्रजी कलकत्ता चले आये। बातचीत के सिलसिले में एक दिन साधु बाबा ने उनसे पूछा कि ''गाँव के मंदिर में कौन पूजा करता है?''

''पुरोहित करता है।''

''तुम क्यों नहीं करते थे?''

नृपेन्द्र ने चौंककर कहा—''ऐसा कैसे हो सकता है? एक तो मैं ब्राह्मण नहीं हूँ। दूसरे मेरे खानदान की चौदह पीढ़ियों में किसी ने कभी काली-पूजा नहीं की है। मैं मंत्र-तंत्र भी नहीं जानता।''

साधु बाबा ने कहा—''हृदय में भक्ति और एकाग्रता रहना चाहिए। इसी से काली-पूजा हो जाती है।''

इस बातचीत के दो दिन बाद साधु बाबा काशी यात्रा के लिए जब चलने लगे तब उन्होंने कहा-''आश्रम में स्थित कालीमाता की पूजा की जिम्मेदारी आज से तुम पर होगी।''

नृपेन्द्रजी ने कहा–"मैं काली-पूजा की पद्धति या मंत्र वगैरह कुछ भी नहीं जानता। कम-से-कम कुछ सीखने का अवसर तो दीजिए।"

"मंत्र-तंत्र सीखने की जरूरत नहीं है। अपनी इच्छा के अनुसार पूजा करना।" इतना कहकर साधु बाबा गाड़ी पर बैठ गये।

कुछ देर बाद कई व्यक्तियों ने आकर कहा कि शाम हो गयी है। चलिये, आरती कर दीजिये। नृपेन्द्रजी बड़े असमंजस में पड़ गये। आरती में कौन-कौन से उपकरण लगते हैं, नहीं जानता। घण्टा कैसे बजाया जाता है, जो व्यक्ति नहीं जानता, वह पूजा करना कैसे जान सकता है? इधर नये पुजारी की आरती देखने के लिए लोग उत्सुक हो उठे। यह देखकर नृपेन्द्रजी का हृदय रो पड़ा। कैसे आरती हुई और क्या-क्या किया, यह उन्हें स्मरण नहीं रहा।

दूसरे दिन से नियमित रूप में घर से आश्रम आते, गंगा में स्नान करते, पूजा-आरती के बाद चण्डी पाठ करते। यह सब करने में दो बज जाता था। फिर शाम को यही सब करना पड़ता और तब रात दस बजे घर वापस आते। नित्य आठ मील पैदल चलना पड़ता था। यहाँ तक कि सन् १९४६ के दिनों जब दंगा, उपद्रव आदि का जोर था तब भी बिना नागा किये उन्हें आश्रम जाना पड़ता था। प्रचण्ड गर्मी, घुटने भर पानी में और कड़ाके की सर्दी में भी नृपेन्द्र को नित्य पूजा करना पड़ता था। बाबा जब काशी से लौटे तब नृपेन्द्रजी को विश्वास हो गया कि अब कालीमाता की पूजा से उन्हें मुक्ति मिल जायगी। बाबा से यह बात कहते ही वे उखड़ गये। बोले–"ठीक है, आज से अपना काम मैं स्वयं करूँगा। किसी को मदद करने की कोई जरूरत नहीं है।"

बाबा को नाराज होते नृपेन्द्र ने कभी देखा नहीं था। उन्होंने निश्चय किया कि अब तक जिस ढंग से वह पूजा करता आया है, उसी प्रकार वह करता जायगा। अपने इस निश्चय की सूचना उन्होंने बाबा को दी। उस वक्त बाबा की आकृति पर मधुर मुस्कान छा गयी। दरअसल इस पूजा के माध्यम से नृपेन्द्र को शक्ति सम्पन्न बनाने की इच्छा उनके मन में थी, परन्तु इसे प्रकट करना नहीं चाहते थे, इससे पात्र में अभिमान उत्पन्न हो जाता और ऐशी-शक्ति की हानि होती। बाबा यह समझ गये थे कि माँ की कृपा नृपेन्द्र पर हो गयी है जो शनैः-शनैः विकसित होती जायेगी।

इस घटना के कुछ दिनों बाद बाबा हिचकी-रोग से पीड़ित हुए। दिन-रात हिचकी लेते थे। आहार-निद्रा गायब हो गया था। दवा से लाभ नहीं हो रहा था। अपने गुरुदेव की यह हालत देखकर नृपेन्द्र मन ही मन बहुत दुःखी रहा। अचानक एक दिन पूजा करने के पहले उन्होंने सोचा कि पूजा के माध्यम से गुरुदेव का कष्ट दूर हो सकता है या नहीं? यह विचार आते ही उस दिन इस उद्देश्य से गुरु के निकट निवेदन करने के पश्चात् वे पूजा करने बैठे।

दूसरे दिन नृपेन्द्र जब घर से पूजा करने आये तो देखा कि गुरुदेव पहले की तरह खाट पर पड़े हैं। झल्लाकर उसने कहा—"अब मैं पूजा नहीं करूँगा।"

"क्यों? क्या हुआ जो पूजा नहीं करोगे?"

"जिस कार्य के लिए व्रती हुआ, उसका फल नहीं मिला। मैंने पूजा की, पर आपकी बीमारी दूर नहीं हुई। ऐसी निष्फल पूजा से क्या लाभ?"

बाबा ने हँसकर कहा—"पूजा करने के बाद से ही मेरी बीमारी दूर हो गयी। कमजोरी के कारण मैं खाट पर सोया हुआ हूँ।"

नृपेन्द्र को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने सोचा कि बाबा मुझे बहला रहे हैं। बाद में आश्रम के लोगों से पूछने पर पता चला कि पूजा समाप्ति के बाद से बाबा की हिचकी बंद हो गयी थी। यह जानकर नृपेन्द्र को हार्दिक प्रसन्नता हुई। उस दिन से विशेष भक्ति और उत्साह के साथ वे पूजा करने लगे।

+ \+ \+ \+

काली-पूजा निरन्तर करते रहने के कारण उनके साथ बराबर अलौकिक घटनाएँ होती रहीं। यद्यपि इसकी शुरुआत गाँव में रहते समय हो गयी थी जिसका जिक्र आगे किया जा चुका है। कठिन रोगों से मुक्ति, मुकदमे में जीत, नौकरी पाना, परीक्षा में पास होना, खोयी हुई वस्तु की प्राप्ति आदि के मामले में नृपेन्द्र की विभूति प्रकट होने लगी। नृपेन्द्र यह बात अच्छी तरह से जानते थे कि एक साधक के लिए यह सब प्रक्रिया उचित नहीं है। साधना करते रहने पर यह अपने आप हो जाती है। किन्तु इधर ध्यान देने पर भगवान् साधक का ध्यान विपरीत दिशा की ओर मोड़ देते हैं, तब मन में स्वार्थ की भावना उत्पन्न होती है। इससे शक्ति की क्षय और हानि होती है। अब सवाल यह उठता है कि भगवान् इसे देते क्यों हैं? पुराणों में तप-भंग करने के लिए अप्सराएँ भेजी जाती थीं, नाना प्रकार के उपद्रव कर साधक को भयभीत किया जाता था, उसी प्रकार साधक के आत्मसंयम की परीक्षा के लिए विभूति दी जाती है। एक दृष्टि से यह लाभप्रद भी है। विभूतियाँ साधक के मन के अवसाद को दूर करती हैं, शक्ति-संचार करती हैं, पीड़ितों का मंगल करती हैं और साधना के मार्ग को प्रशस्त करती हैं। किन्तु योग्य गुरु "सावधान" करते हुए उसका मन साधना की ओर लगा देते हैं। नृपेन्द्रजी यह सारी बातें जानते हुए भी विभूति के लिए प्रयोग करते रहे।

टालीगंजवाले आश्रम में एक बूढ़ा नौकर रहता था। वह कमर-पैर की गठिया से पीड़ित हो गया। धीरे-धीरे हालत ऐसी हो गयी कि उसका चलना-फिरना दूभर हो गया। उसका इलाज जारी था, पर कोई भी दवा आराम नहीं दे रही थी। एक दिन जब नृपेन्द्र जप कर रहे थे तब उसे असह्य दर्द से कराहते देख उसे अपने पास बुलाया। जहाँ-जहाँ दर्द हो रहा था, वहाँ-वहाँ उन्होंने हाथ फेरने के बाद पूछा-"दर्द में कुछ कमी हुई?"

पहले धीरे-धीरे और बाद में उछलते हुए उसने हर्ष से चिल्लाते हुए कहा–"मैं बिलकुल ठीक हो गया ठाकुर।"

नृपेन्द्र को अपने इस चमत्कार पर विश्वास नहीं हुआ। जब उस बूढ़े को पहले की तरह काम-काज में संलग्न पाया तब उन्हें विश्वास हो गया कि माँ की कृपा से वृद्ध स्वस्थ हो गया। अपने इन चमत्कारों को नृपेन्द्र बाबू गुरुदेव से छिपाते थे। कहीं वे नाराज न हो जायँ। लेकिन गुरुदेव को अपने शिष्य की योग्यता की जानकारी थी। एक दिन एक महिला को लेकर गुरुदेव उसके पास आये। उस वक्त नृपेन्द्र पूजा करने बैठ गया था। बाबा ने कहा–"इनका रोग दूर कर दो।"

बात को ठीक से न समझ पाने के कारण नृपेन्द्र भयवश चुप रहे। यह देखकर बाबा ने क्रुद्ध स्वर में कहा–"आप माँ काली के उपासक हैं और यह मामूली सा काम आप नहीं कर सकते?"

उनके तिरस्कार से नृपेन्द्र का भय दूर हो गया। उन्होंने कहा–"ठीक है, आपके आदेश का पालन करूँगा।"

बाबा रोगिणी को नृपेन्द्र के पास छोड़कर चले गये। दो-तीन मिनट बाद जब रोगिणी स्वस्थ हो गयी तब उन्होंने कहा–"मैंने आपके लिए कुछ भी नहीं किया। जो कुछ हुआ, उसकी जड़ में साधु बाबा स्वयं हैं।"

इस प्रकार यदाकदा साधु बाबा नृपेन्द्र की अजानकारी में रोगियों को भेजते थे। अक्सर वह सोचता कि यह सब करना उचित है या नहीं, क्योंकि कभी-कभी पीड़ित व्यक्ति के रोग का शिकार उसे भी होना पड़ता था।

एक बार एक शिशु जो कि सन्निपात से पीड़ित था, उसे ठीक करने पर वे स्वयं सर्दी-खाँसी से पीड़ित हो गये। एक महिला के पेट का दर्द ठीक करने के बाद उनके पेट में पीड़ा उत्पन्न हो गयी और कई दिनों तक पूजा के समय कष्ट पाते रहे। इस बारे में प्रश्न करने पर साधु बाबा ने कहा–"दूसरों की भलाई करने में अगर हम स्वयं कुछ पीड़ा अनुभव करते हैं तो कोई हर्ज नहीं। यह याद रखना अपने स्वार्थ, अर्थ या यश के लिए अगर किया जायगा तो अध:पतन होगा। दूसरों को बचाने के लिए अपने प्राण का नाश कर देना श्रेयष्कर है।"

इसी सिलसिले में एक असफलता के कारण उनके मन में गहरा आघात लगा। टायफाइड रोग से पीड़ित एक शिशु को नृपेन्द्र ने आशीर्वाद का एक फूल दिया और वह बच्चा मर गया। यह पहली असफलता थी। गाँव से लेकर कलकत्ते में होनेवाली किसी भी घटना में असफलता नहीं मिली थी। उसका कष्ट देखकर साधु बाबा ने कहा–"दु:ख मत करो। तुमने अपना कर्त्तव्य किया। सफलता और असफलता में भगवान् का हाथ है। उसके प्रारब्ध दोष से उसका निधन हो गया।"

+ + + +

कुछ दिनों बाद साधु बाबा तीर्थयात्रा के लिए चल दिये। जाते समय सभी से कह गये कि जिसे जिस बात की कमी या शिकायत हो, वह डाक्टर (नृपेन्द्र कुमार को वे इसी नाम से बुलाते थे।) से कह सकता है।

आश्रम के पास ही हरिश्चन्द्र घोष रहते थे। इनके परिवार के सभी लोग आश्रम में आते-जाते थे। एक दिन सबेरे आरती करने के लिए नृपेन्द्र बाबू आश्रम जा रहे थे। तभी मार्ग में हरिश्चन्द्र ने कहा—''मेरी पत्नी घर पर बेहोश पड़ी है। आपको कुछ करना होगा। साधु बाबा मुझसे कह गये हैं कि कभी कुछ होने पर आपसे कहूँ।''

लाचारी में उन्हें जाना पड़ा। हरिश्चन्द्र की पत्नी सुशीला जमीन पर बेहोश पड़ी थी। पूछने पर पता चला कि पेट में रोग है। पेट पर उंगली रखते ही सुशीला चीख उठी। बाद में पता चला कि पेट में ट्यूमर हुआ था। आपरेशन के बावजूद ठीक नहीं हुआ था। साधु बाबा के पास आने पर दर्द में कमी होती रही। बाद में वह स्वस्थ हो गयी। इस घटना के बाद हरिश्चन्द्र घोष नृपेन्द्र बाबू के पीछे पड़ गये।

एक दिन आयें और कहा—''मेरा लड़का गणित में बहुत कमजोर है। पिछले साल फर्स्ट इयर में फेल हो जाने के कारण अटका हुआ है। इस साल पुनः परीक्षा देने जा रहा है। अगर इस साल फेल हो गया तो उसकी पढ़ाई बंद हो जायगी। आप कुछ करिये।''

घोष बाबू की बातें सुनकर नृपेन्द्र अवाक् रह गया। समझ में नहीं आया कि इस सम्बन्ध में वह क्या कर सकता है। कुछ सोचने के बाद उन्होंने कहा कि परीक्षा वाले दिन आश्रम में आकर मुझसे पूजा के फूल ले जाय। इस बार की परीक्षा में लड़के को १०० में ९० अंक प्राप्त हुए थे। वह प्रथम श्रेणी में पास हो गया था।

कुछ दिनों बाद समाचार आया कि हरिश्चन्द्र घोष को कालरा हो गया है। पेशाब बंद है, हालत चिन्ताजनक है। नृपेन्द्र को लोग बुलाकर ले गये। उन्होंने सोचा कि आर्थिक कठिनाई के कारण ठीक से इलाज नहीं हो रहा है। गृहिणी के हाथ बीस रुपये देते हुए नृपेन्द्र ने कहा—''किसी अच्छे डाक्टर को बुलाकर इलाज कराइये।'' बाद में पता चला कि रोगी ठीक हो गया है। नृपेन्द्र पर विश्वास रहने के कारण डाक्टर को नहीं बुलाया गया था।

साधु बाबा के एक भक्त आशुतोष घोष थे जो एक कारखाने के मालिक थे। वे उस वक्त आये जब नृपेन्द्र पूजा प्रारंभ करने जा रहे थे। तीन घंटे तक पूजा करने के बाद जब नृपेन्द्र कमरे से बाहर आया तो देखा—पूजाघर के सामने वे चुपचाप बैठे हैं। उन्होंने कहा—''आप जब पूजा कर रहे थे तब मैंने देखा कि पूजाघर से एक कमल का पौधा निकला जिसमें सोने का फूल था। मैं यह दृश्य देखकर अवाक् रह गया।'' आगे चलकर उन्होंने आश्रम को सोने का एक कमल फूल दान में दिया था।

प्रत्येक रविवार को कीर्तन और धार्मिक कथा का आयोजन आश्रम में होता है।

अनेक भक्त आते हैं। एक बार वर्षा के समय मूसलाधार पानी बरसने लगा। रात बढ़ने लगी, पानी रुकने का नाम नहीं ले रहा था। लोग घर जाने के लिए छटपटाने लगे। ठीक इसी समय श्री के०सी० रायचौधुरी ने नृपेन्द्र कुमार से कहा—"ठाकुर, कोई व्यवस्था करिये।" नृपेन्द्र ने कहा—"पानी रोकने के लिए मैं क्या व्यवस्था कर सकता हूँ। और १०-५ मिनट आप लोग रुक जाइये।"

ज्योंही नृपेन्द्रजी ने अपनी बात पूरी की त्योंही जादू की तरह वर्षा थम गयी। लोग अपने-अपने घर चले गये। इस तरह वर्षा रोकने की घटना कई बार हुई थी।

सरदार छत्तर सिंह साधु बाबा के भक्त थे। उनका एक मुकदमा हाईकोर्ट में चल रहा था। एक साल से वकील लोग रकम खा रहे थे, पर मुकदमे की पेशी नहीं हो रही थी। एक दिन वे आये और साधु बाबा के न रहने के कारण नृपेन्द्र के पीछे पड़ गये। एक दिन वे पूजा के समय नृपेन्द्र के साथ आश्रम में बैठे रह गये। उस दिन घर पर जब गये तब मालूम पड़ा कि मुकदमे में तारीख लग गयी है। आगे चलकर वे विजयी बने।

साधु बाबा ने नृपेन्द्र कुमार को कालीमाता का केवल पुजारी ही नहीं बनाया बाकायदा पुरोहित बनाते चले गये। भक्तों से मंत्र पढ़वाना, ग्रहण के अवसर पर गंगा स्नान करते समय मंत्रोच्चार करवाना आदि कार्य करना पड़ता था। भक्तों में केवल हिन्दू ही नहीं, मुसलमान और ईसाई भी थे। कहाँ वह था— जमींदार, प्रिंसिपल, गवेषक और लेखक। आज वह पुरोहित बनकर लोगों की निगाह में ठाकुर महाशय बन गया। लेकिन इनकी पत्नी अपने पति के इस रूप को तनिक भी पसंद नहीं करती थीं। यहाँ तक कि कभी वह आश्रम में नहीं गयीं। इधर नृपेन्द्र कालीमाता की पूजा और गुरुदेव के आदेश में इतना रम गये थे कि उन्हें गृहस्थी से अरुचि हो गयी थी। इस अशांति से बचने के लिए उन्होंने गेरुआ वस्त्र धारण कर लिया। गेरुआ वस्त्र धारण करने के बाद घर की समस्या हल हो गयी। अब तक परिवार के लोगों का विश्वास था कि डराकर-मनाकर नृपेन्द्र को पुनः सही रास्ते पर लाया जा सकेगा, किन्तु अब उनकी उस आशा पर वज्रपात हो गया। एक गेरुआधारी बाबा के साथ पैदल या गाड़ी पर सफर करने में इनकी पत्नी को संकोच होने लगा। लेकिन एक मुसीबत बढ़ गयी। दाढ़ी-मूँछ बढ़ गयी थी। पहनावा गेरुआ देखकर बसवाले किराया नहीं माँगते थे। मंदिर में बैठकर जप-ध्यान करते समय लोग पैरों के पास माथा टेककर चावल, फूल या पैसे देने लगे।

एक बार बस की प्रतीक्षा में एक जगह लाइन में वे खड़े थे। सहसा एक जीप वहाँ आकर रुकी। उस पर ३-४ पंजाबी सज्जन थे। उनमें से एक ने पूछा—"कहिये संतजी, कहाँ जायँगे?" नृपेन्द्र ने अपना गन्तव्य स्थल बताया तो उन लोगों ने कहा कि हम उधर से ही आगे जायँगे। आइये, बैठ जाइये। नृपेन्द्र राजी नहीं हो रहे थे। एक प्रकार से वे लोग जबरन बैठा कर ले चले। जबकि वहाँ कुछ अन्य लोग बस की प्रतीक्षा में खड़े थे, फिर अकेले उनसे क्यों पूछा गया? शायद बाबा का भेष देखकर। इसी उधेड़बुन के कारण नृपेन्द्र को इतना क्रोध आया कि घर आते ही सिर के बाल ही नहीं, दाढ़ी-मूँछें बनवा डालीं।

सन् १६४८ ई० के जुलाई माह में श्री साधु ताराचरण का महाप्रयाण हो गया। नृपेन्द्र कुमार के जीवन का एक अध्याय यहीं समाप्त हो गया।

+ \+ \+ \+

सन् १६४६ ई० में गाँव में स्थित काली मंदिर की पूजा की जिम्मेदारी प्रियनाथ चक्रवर्ती को देकर नृपेन्द्र कलकत्ता चले आये थे। गाँव में नृपेन्द्र बाबू के हम उम्र का एक मित्र था जिसकी देखरेख में प्रियनाथ नामक बालक सारा कार्य करता था। देश के बँटवारे के कारण तेटिया गाँव से ही नहीं, विभिन्न जगहों से लोग भारत चले आये थे। प्रियनाथ बालक होने पर भी उतने बड़े भवन में अकेला रहने में डरता नहीं था।

ऐन दीपावली के दिन उसी घर के आँगन में नृपेन्द्र बाबू के मित्र का निधन हो गया। लोगों की कमी के कारण रात को शवदाह नहीं हो सका। प्रियनाथ शाम को पूजा-आरती करने बैठा। श्मशान भूमि में मंदिर, भीतर आँगन में उसके रक्षक का शव, चारों ओर सन्नाटा। एक अनजाने आशंका से वह भयभीत हो उठा। धीरे-धीरे उसका भय इस कदर बढ़ा कि उस पर बेहोशी छाने लगी। तभी उसने देखा कि उसकी बगल में नृपेन्द्र काका बैठे हैं। उसका साहस लौट आया। पूजा निर्विघ्न रूप से समाप्त हो गया। उस वक्त नृपेन्द्र कुमार कुर्सियांग स्थित एक गुफा में नेपाली काली मंदिर में पूजा कर रहे थे। बाद में कलकत्ता आने पर प्रियनाथ के पत्र से सारी बातें मालूम हुईं। उसने यह भी लिखा कि प्रत्येक अमावस्या की पूजा में आप मेरी बगल में विराजमान रहते हैं। नृपेन्द्रजी यह पत्र पढ़कर चकित रह गये। कौन मेरा रूप धारण कर प्रियनाथ को ढाँढ़स बँधा रहा है? क्या कालीमाता? इस प्रश्न का उत्तर उन्हें नहीं मिला।

सन् १६४३ ई० में नृपेन्द्र बाबू संस्कृत कालेज के अध्यक्ष थे और हाईकोर्ट के जज माननीय डा० विजन मुखोपाध्याय बंगीय संस्कृत असोसियेशन के सभापति थे। इसलिए दोनों व्यक्तियों में गहरी मित्रता हो गयी थी। नौकरी से अलग होने पर भी मैत्री बनी रही। विजन बाबू को नृपेन्द्र कुमार की अलौकिक शक्ति के बारे में कुछ-कुछ जानकारी हो गयी थी। एक दिन उन्होंने नृपेन्द्र से कहा कि मेरी पुत्रवधू तीन साल से बीमार है। हर तरह की चिकित्सा की गयी, पर कोई लाभ नहीं हुआ। आखिर कौन-सी बीमारी है, इसे डाक्टर समझ नहीं पा रहे हैं। अगर आप इस दिशा में कुछ मदद कर सकें तो कृपा होगी।

नृपेन्द्र ने कहा—''मैं राजी हूँ। इसके लिए आपके घर में ही पूजा करनी होगी। आप तैयारी कीजिए। सुबह ६ बजे से लेकर दोपहर १ बजे तक पूजा होगी।''

विजन बाबू की पत्नी का निधन हो गया था। घर के सदस्यों में वे, उनका पुत्र, पुत्रवधू और एक भांजी थी। पुत्र ६ बजे आफिस चला जाता है। विजन बाबू ने कहा कि मैं पूजा प्रारंभ करवाकर कचहरी चला जाऊँगा। यह बात सुनकर नृपेन्द्र जरा हिचकिचाया, पर दूसरे ही क्षण राजी हो गया।

दोपहर को एक बजे पूजा समाप्त करने के बाद नृपेन्द्र ने देखा कि विजन बाबू पूजावाले कमरे के दरवाजे के पास तन्मय होकर बैठे हैं। नृपेन्द्र के प्रश्न करने पर उन्होंने कहा कि मेरे घर में पूजा हो रही है और मैं न रहूँ, ऐसा कैसे हो सकता है। कचहरी में समाचार भिजवा दिया है कि आज डेढ़ बजे के बाद आऊँगा।

विजन बाबू की पुत्रवधू स्वस्थ हो गयी। ज्ञातव्य है कि आगे चलकर विजन बाबू सर्वोच्च न्यायालय के प्रधान विचारपति नियुक्त हुए थे।

नृपेन्द्र बाबू को कभी-कभी आकस्मिक घटनाओं पर स्वतः आश्चर्य होता था कि कैसे यह बात हो जाती है? क्या यह सब कोई दैवी-सत्ता कराती है या गुरुदेव का प्रच्छन्न आशीर्वाद काम करता है।

+ \+ \+ \+

एक दिन नृपेन्द्र कालीघाट से ट्राम द्वारा टालीगंज जा रहे थे। कुछ देर बाद नृपेन्द्र को लगा जैसे वे गन्तव्य स्थल तक आ गये हैं। झट ट्राम से उतर पड़े। अब गौर से चारों ओर देखने के बाद उन्हें यह प्रतीत हुआ कि वे बहुत पहले उतर गये हैं। आखिर ऐसी गलती कैसे हो गयी? इस वक्त वे सदर्न एवेन्यू के मोड़ पर थे। पास ही मणि बाबू का मकान था। अपने आप उनके कदम उधर मुड़ गये।

वहाँ पहुँचते ही मणि बाबू की पत्नी श्रीमती साधना बोली— "आज सबेरे से आपके आगमन की प्रतीक्षा कर रही थी। मैं मुसीबत में फँस गयी हूँ। मेरे भाई के पेट में घाव हो गया है। डाक्टरों ने आपरेशन कराने की सलाह दी है।"

इन सारी बातों को सुनने के बाद नृपेन्द्र को ज्ञात हो गया कि वे प्रमादवश यहाँ नहीं उतरे हैं। इस महिला की इच्छा-शक्ति ने उन्हें आकर्षित किया है।

इसी प्रकार एक बार महालया के दिन नृपेन्द्र बीमार होकर खाट पर पड़े थे। उसी दिन ज्योतिर्मय का साला श्री शैलेन मुखोपाध्याय जो कि कालीघाट स्थित गंगातट पर गये हुए थे, देखा— नृपेन्द्रजी कमर भर पानी में खड़े होकर तर्पण कर रहे हैं। उसने सोचा कि पानी से ज्यों ऊपर आयँगे त्यों मैं उन्हें डाँटूँगा। देर तक प्रतीक्षा करने पर भी वे ऊपर नहीं आये। दूसरे दिन शैलेन यही शिकायत लेकर नृपेन्द्रजी के घर आया तब उसे ज्ञात हुआ कि उस दिन से आज तक वह घर से बाहर नहीं निकले। शैलेन को विश्वास नहीं हुआ। अंत में नृपेन्द्र ने मंदिर के लोगों को बुलाकर गवाही दिलायी तब उसे लगा कि शायद उसे आँखों का भ्रम हो गया था।

नृपेन्द्र को इस घटना पर अविश्वास नहीं हुआ, क्योंकि लगातार इस तरह की घटनाएँ उनके जीवन में हो रही थीं।

बोड़ाल के नीलरतन मुखोपाध्याय को अंतर से प्रेरणा मिलने पर वे मंदिर में आये और सहयोग देने लगे। एक कर्मठ नेता के कारण मंदिर का दिनों दिन विकास होता गया। मंदिर में नियमित रूप से कीर्तन होने लगा। यह सब होने के बावजूद एक कर्मठ गायक के अभाव के कारण आनन्द नहीं आ रहा था।

कुछ दिनों बाद श्रीकृष्ण तपस्वी नामक एक व्यक्ति को अपने साथ लाकर नीलू बाबू ने कहा—"आप एक अच्छे गायक हैं। बोड़ाल में यात्रा, नाटक, कीर्तन आदि में काम करते थे। हमारे यहाँ 'मास्टर' के नाम से प्रसिद्ध हैं। फिलहाल कलकत्ते के हिन्दुस्तान बीमा कम्पनी में नौकरी करते हैं। पिछले दस वर्षों से डिस्पेप्सिया रोग से पीड़ित होने के कारण सूखकर लकड़ी हो गये हैं। अगर यही हालत रही तो नौकरी से निकाल दिये जायँगे। अगर आप इनके लिए कुछ कर सकें तो अच्छा होगा।"

कुछ देर तक गौर से देखने के बाद नृपेन्द्र ने कहा—"कोई भी भजन सुनाइये।"

मास्टर ने कहा—"पिछले दस साल से उसका गाना-बजाना बंद है। तान ले नहीं सकूँगा।"

नृपेन्द्र ने कहा—"कोई हर्ज नहीं। आपसे जैसे हो सके, उसी ढंग से सुनाइये।"

नृपेन्द्र के अनुरोध पर मास्टर भजन गाने लगे। उसकी आवाज सुनते ही यह ज्ञात हो गया कि इस व्यक्ति में दम नहीं है। नृपेन्द्र ने कहा—"आपको ठीक किया जा सकता है, पर मेरी तीन शर्तें हैं। प्रथम भविष्य में भक्ति गीतों के अलावा फालतू गीत नहीं गायँगे। दूसरा देव-स्थान या भक्तों के समूह के अलावा अन्यत्र गाना नहीं गायँगे। तीसरा और अन्तिम शर्त यह है कि इस मंदिर में नियमित रूप से माँ को अपना भजन सुनायेंगे।"

जो व्यक्ति पिछले दस वर्ष से परेशान है, वह ऐसे साधारण शर्तों को सुनकर कैसे इंकार करता? तुरंत राजी हो गया। माता काली की कृपा से उसके स्वास्थ्य में काफी प्रगति हुई। धीरे-धीरे गला भी ठीक हो गया। इस प्रकार मास्टर के सहयोग से मंदिर में कीर्तन-मण्डली भी जम गयी। मास्टर नित्य आफिस से छुट्टी पाते ही मंदिर में चला आता और रात साढ़े दस बजे तक गाते-बजाते थे। यह कार्यक्रम लगातार दस वर्ष तक जारी रहा। एक दिन के लिए वे गैरहाजिर नहीं हुए।

कुछ दिनों बाद जब मास्टर स्वस्थ हो गये तब एक दिन नृपेन्द्रजी ने कहा—"मास्टर, तुमसे कुछ खाने की इच्छा हो रही है।"

मास्टर ने कहा—"आज्ञा कीजिए ठाकुर। आप जो कुछ कहेंगे, मैं हाजिर करूँगा।"

नृपेन्द्र ने कहा—"भादों का महीना है। तालपीठा (ताड़ के रस से बनी पीठी) खाने की इच्छा है।"

यह बात सुनकर उपस्थित सभी लोग हँस पड़े, क्योंकि यह बहुत मामूली चीज थी जैसे दालपीठी। लोग सोचते रहे कि ठाकुर कोई नायाब खाद्य सामग्री माँगेंगे। यह बात सुनकर नीलू बाबू ने कहा—"मेरे बाग में ताड़ के अनेक पेड़ हैं। कल वहाँ चले जाओ और ले आओ।"

दूसरे दिन मास्टर नीलू के बाग में गये तो वहाँ किसी भी पेड़ में पके ताड़फल नहीं मिले। जबकि मौसम ताड़फलों का ही है। नीलू बाबू के बाग के अलावा आसपास के कई बागों में खोजने पर भी नहीं मिला। मास्टर हताश होकर सोचने लगे कि अब कलकत्ता वापस जाकर वहाँ तलाश करूँगा। राह चलते एक सज्जन ने कहा कि आप देवी

त्रिपुरेश्वरी के मंदिर के पास तलाश करिये। शायद वहाँ मिल जाय। यहाँ आने पर भी नहीं मिला। इन्हें देखकर मंदिर के चबूतरे पर बैठी मण्डली ने इनसे भजन गाने का अनुरोध किया। मास्टर की तबीयत तो इस वक्त ताड़फल की ओर था। गायन में मन कैसे लगता। लेकिन भक्तों के विशेष आग्रह पर गाने लगे।

ठीक इसी समय एक अपरिचित बुढ़िया ताड़ के तीन फल लेकर दूर से पुरोहित से पूछने लगी—"कोई ताड़फल·लेगा?" लोकालय से दूर सड़क के किनारे, दोपहर के वक्त कोई वृद्धा ताड़फल बेच सकती है, इसका कल्पना कोई नहीं कर सकता। पुरोहित ने दो आने में तीनों ताड़फलों को खरीदकर मास्टर को समर्पित किया। ताड़फल हाथ में लेते ही मास्टर की आँखें भर आयीं। वह समझ गया कि ताड़फल इस बहाने कौन आकर दे गयी है। शाम के समय नृपेन्द्र से सारा समाचार कहने पर उन्होंने कहा— "तुम बड़े भाग्यवान हो मास्टर।"

इसी प्रकार एक बार मास्टर को अपने साथ लेकर नृपेन्द्र बाबू काशी आये। मास्टर की पत्नी उन्हें नृपेन्द्र के साथ जाने नहीं देना चाहती थी। उसे भय था कि मेरे पति काशी जाकर संन्यासी बन जायँगे। यहाँ तक कि जोड़ा मंदिर में आना भी वे पसन्द नहीं करती थीं। आफिस और घर पर जाते समय कह गये थे कि एक सप्ताह में वापस आ जाऊँगा। लेकिन उन्हें काशी का वातावरण इतना अच्छा लगा कि कुछ दिन और ठहर गये। कब लौटना होगा, निश्चित न होने के कारण घर पर कोई सूचना मास्टर ने नहीं भेजी। इसी तरह कुछ दिन और बीत गये।

इधर पति का कोई समाचार न पाने पर पत्नी बहुत बेचैन हो उठी। क्या करे, किससे मदद ले, समझ नहीं पा रही थी। एक दिन दोपहर को एक भिखारिन बुढ़िया आयी और पीने के लिए पानी माँगा। बातचीत के सिलसिले में बुढ़िया ने कहा—"लगता है आपके पति कहीं बाहर गये हैं।" मास्टर की पत्नी के 'हाँ' कहने पर बुढ़िया ने निश्चिन्त भाव से कहा—"गृहस्थ आदमी ठहरे। जल्द वापस आ जायँगे। वे परदेश में अधिक दिन नहीं रुकेंगे। जल्द आ जायँगे।"

मास्टर की पत्नी को कौतूहल हुआ। पूछा—"तुम कहाँ रहती हो, तुम्हारे कौन-कौन हैं, कैसे गुजारा करती हो।"

बुढ़िया ने कहा—"मैं गड़िया के जोड़ा मंदिर में रहती हूँ। मेरे साथ एक लड़का है। भक्त लोग जो कुछ देते हैं, उसी से गुजारा होता है। शाम को कीर्तन होता है, सुनती हूँ। अच्छा लगता है।"

मास्टर की पत्नी कभी मंदिर में गयी नहीं थी। उसने सोचा कि शायद बुढ़िया अपने मंदिर में रहती है। इसके अलावा और कितने लोग वहाँ रहते हैं वह नहीं जानती। इधर कई दिनों के बाद नृपेन्द्र और मास्टर कलकत्ता के लिए रवाना हुए। नृपेन्द्र या मास्टर किसी ने अपने रवाना होने की कोई सूचना नहीं भेजी।

जिस दिन ये दोनों लोग रवाना हुए, उसी दिन पुनः दोपहर को वह बुढ़िया मास्टर

के घर आयी। इस बार उसने कहा कि आज उसके पति रवाना हुए हैं। विश्वास है कि कल तक घर आ जायँगे। मास्टर की पत्नी ने उससे कोई प्रश्न नहीं किया। उसने समझा कि इस बात की सूचना मंदिर में आयी होगी।

मास्टर सबेरे देर से घर पहुँचे और तुरंत आफिस चले गये। दूसरे दिन बुखार आ जाने के कारण वे अपने आफिस नहीं जा सके। दोपहर को पत्नी ने बुढ़िया द्वारा प्राप्त सूचनाओं की जानकारी दी तो मास्टर अवाक् रह गये। उसे समझते देर नहीं लगी कि भिखारिन के भेष में उसके यहाँ कौन आयी थी। वह बुखार की हालत में तुरंत मंदिर आया और नृपेन्द्र से कहा—''माँ मेरे घर गयीं और बिना आदर किये उन्हें विदा कर दिया गया। इस अपराध का प्रायश्चित कैसे करूँ?''

नृपेन्द्र ने हँसकर कहा—''भक्तों से चावल-दाल लेकर कल मंदिर में भोग दिया जायगा। चिन्ता मत करो।''

यहाँ एक बात बता देना आवश्यक है । पूर्वी बंगाल में इतने जोर से दंगा होने लगा कि आजादी के बाद तेजी से हिन्दू भागने लगे। इसी माहौल में तेटिया स्थित काली मंदिर का पुजारी प्रियनाथ चक्रवर्ती कलकत्ते में नृपेन्द्र के पास चला आया। यहाँ आकर वह जोड़ा मंदिर का पुजारी बन गया।

नृपेन्द्र को बचपन से भुट्टा खाने का शौक था। भुट्टा गँवार लोग खाते हैं, परिवार में यह अपवाद जारी था, क्योंकि जमींदार का घराना था। लेकिन नृपेन्द्र को घर से बाहर जहाँ कहीं भुट्टा खाने का अवसर मिलता तो जरूर खाते थे।

एक दिन घर से मंदिर जाने के लिए तैयार हो रहे थे तभी बाहर सड़क से किसी फेरीवाले की आवाज आयी—''भुट्टा चाहिए, हरा-हरा भुट्टा।'

भुट्टे का नाम सुनते ही नृपेन्द्र के मुँह में पानी भर आया। तुरंत नौकर को आवाज देकर कहा कि उससे भुट्टा खरीद ले। थोड़ी देर बाद वापस आकर नौकर ने कहा—''भुट्टावाला न जाने कितनी दूर चला गया, उसका पता नहीं चला।''

बात आयी और गयी हो गयी। मंदिर आने के कुछ देर बाद प्रियनाथ आकर बोला—''आज एक सज्जन भोग में दो भुट्टा चढ़ा गये हैं। इसका क्या होगा?''

देवी को आज तक किसी ने कभी भोग में भुट्टा नहीं चढ़ाया था। नृपेन्द्र को समझते देर नहीं लगी कि कालीमाता ने उसकी इच्छा की पूर्ति की है। माँ के प्रसाद को उस दिन नृपेन्द्र ने बड़ी श्रद्धा के साथ ग्रहण किया। इस बात को सुनकर उपस्थित भक्तों ने कहा कि जब माँ ने आपकी इच्छा की पूर्ति की है तब हम लोग भी कल से भोग में भुट्टा चढ़ायेंगे। लेकिन वे लोग कालीमाता की लीला से परिचित नहीं थे। माँ की ऐसी कृपा हुई कि सभी यह बात भूल गये। कोई भक्त कभी भुट्टा नहीं लाया।

+ \+ \+ \+

एक बार नृपेन्द्र गया शहर गये। वहाँ उनके कई भक्त थे। ठाकुर आये हैं सुनकर

कीर्तन का आयोजन किया गया। इसके बाद कभी इनके यहाँ तो कभी उनके यहाँ नित्य कीर्तन का आयोजन होने लगा। शिबू बाबू नामक एक सज्जन ने नृपेन्द्र बाबू से पूछा—"आपके गुरु कौन हैं?"

नृपेन्द्र ने कहा—"यह बात मैं आपको बाद में बताऊँगा। अभी आप कीर्तन-सभा में चलिये।"

शिबू बाबू गया शहर के वाशिन्दा हैं। एक अर्से से यहाँ रहते हैं। उनके साथ एक रिक्शे पर नृपेन्द्र बाबू एक सज्जन के यहाँ आयोजित कीर्तन-समारोह में जा रहे थे। काफी दूर आकर एक घर के सामने रिक्शावाले से रोकने को कहकर शिबू बाबू उतर पड़े। रिक्शे से उतरने के साथ ही बोले—"बड़ी गलती हो गयी। यह मकान नहीं है।"

पुनः रिक्शे को मोड़कर दूसरी ओर चलने का निर्देश देते हुए शिबू बाबू ने कहा—"इधर के सभी मकान मेरे परिचित हैं, फिर भी मुझसे गलती हो गयी। ऐसी गलती नहीं होनी चाहिए थी। बेकार आपसे चक्कर लगवाया। इसके लिए माफी चाहता हूँ।" फिर कुछ सोचकर बोले—"इस भूल का एक कारण समझ में आ रहा है। इस मकान में आज से कई वर्ष पूर्व एक महापुरुष मकान मालिक के यहाँ अतिथि के रूप में रहते थे। शायद यह भवन आपको देखना था, इसलिए यह भूल हो गयी।"

नृपेन्द्र ने पूछा—"कौन से महापुरुष यहाँ थे?"

शिबू बाबू ने कहा—"श्रीमत् ताराचरण परमहंसदेव।"

यह जवाब सुनते ही नृपेन्द्र रोमांचित हो उठे। तभी शिबू बाबू ने पूछा—"हाँ, आपने अपने गुरु का नाम नहीं बताया?"

"आपने मौका कहाँ दिया? स्वयं ही मेरे गुरु का नाम आपने उच्चारण किया।"

यह बात सुनते ही शिबू बाबू आनन्द से विभोर हो उठे। केवल वे ही नहीं, कीर्तन-मण्डली के लोगों को आज की घटना सुनाने पर सभी खुशी से झूम उठे, क्योंकि सभी साधु ताराचरण के भक्त थे। इसके साथ ही यह भी ज्ञात हुआ कि वह स्वयं जिस मकान में ठहरा है, उसी मकान के कोनेवाले कमरे में कई दिनों तक साधु बाबा ठहरे थे। ऐसा संयोग उनके जीवन में कभी नहीं हुआ था। यहाँ साधु बाबा के बारे में लोग अनेक अलौकिक कहानियाँ सुनाते रहे। नृपेन्द्र बाबू साधु बाबा के शिष्य हैं जानकर गया में उनका काफी आदर-सम्मान हुआ।

इसी गया शहर में एक और घटना हो गयी जिसके कारण नृपेन्द्र बाबू संकट में फँस गये और न चाहते हुए उन्हें शीघ्र चल देना पड़ा। बात यह हुई कि परेश बाबू के यहाँ कीर्तन का आयोजन किया गया था। काफी भक्त थे, पर स्वयं परेश बाबू जरा उदास थे। पूछने पर पता चला कि आज की गोष्ठी में उनकी लड़की गानेवाली थी, पर दोपहर को एक साँड़ ने उसे ऐसा हुरपेटा कि बेचारी घायल होकर पड़ी है।

सभी लोग दुःख प्रकट करने लगे। एकाएक नृपेन्द्र बाबू ने कहा—''मैं उस लड़की को देखना चाहता हूँ।''

परेश बाबू उन्हें अन्दर महल में ले आये। उस वक्त भी लड़की दर्द से कराह रही थी। नृपेन्द्र बाबू ने कहा—''आज के कीर्तन समारोह में तुम्हारा गाना होगा और तुम्हें गाना पड़ेगा।'' कहने के साथ ही उसके शरीर पर कई बार थपकी देने के बाद बोले—''चलो उठो।''

बिना किसी कष्ट के लड़की बिस्तर पर बैठ गयी और फिर कीर्तन गोष्ठी में आयी। उसके बाद मधुर कंठ से गीत गाने लगी। गीत के बाद जब वह वापस जाने लगी तब लगा जैसे कुछ हुआ नहीं था। नृपेन्द्र बाबू की इस विभूति को लोगों ने प्रत्यक्ष रूप से देखा और फिर दूसरे दिन से कुछ लोग उनके पीछे पड़ गये। कुछ चमत्कार करने के बाद वे काशी चले आये।

काशी में बाबा विश्वनाथ की शयन आरती देखने के बाद एक दिन अन्नपूर्णा मंदिर में आये। मूर्ति के सामने प्रांगण में एक जगह बैठकर देवी मूर्ति को एकटक देखते हुए ध्यानमग्न हो गये। कुछ देर बाद मंदिर के पुजारी ने अन्नपूर्णा देवी पर चढ़ाई गयी कुछ मालाएँ लाकर नृपेन्द्र बाबू के गले में डाल दी। पुजारी के इस कृत्य से वे आनन्दमग्न हो गये। देवी के गले की मालाओं को कहाँ रखें, यह नृपेन्द्र बाबू की समझ में नहीं आया। यत्र-तत्र फेंकना उचित नहीं है। इसे गंगा में प्रवाहित कर दूँगा। यह सोचकर वे मंदिर से बाहर निकले। तभी एक साँड़ इनके सामने आकर इनके गले की मालाओं को खाने लगा। राह चलते लोग साँड़ को मारने के लिए उद्यत हुए और दो-तीन लोग चिल्लाकर उसे भगाना चाहा। नृपेन्द्र बाबू ने लोगों को ऐसा करने से मना किया। सभी मालाओं को खाने के बाद साँड़ उन्हें बिना नुकसान पहुँचाये आगे बढ़ गया। नृपेन्द्र बाबू ने इसे देवी की कृपा समझा।

+ + + +

नृपेन्द्र बाबू को देवी की पूजा करना, कीर्तन करना और पीड़ितों की भलाई करना पसंद था, पर वे गुरुवाद के विरुद्ध थे। किसी को दीक्षा देने की कल्पना तक नहीं करते थे। इस आकांक्षा से जो लोग उनके पास आते थे, उन्हें निराश होना पड़ता था। दीक्षा देने का अर्थ है कि शिष्य के सभी भार को वहन करना। यह बात अलग है कि किसी रोगी को मंत्र या कवच दिया, उससे उसका भला हो गया। यद्यपि एक बार बातचीत के प्रसंग में साधु बाबा ने कहा था-''आप दीक्षा दे सकते हैं।'' किन्तु गुरुवाद के भय से वे अब तक बचते आये हैं। यहाँ तक कि मंदिर में आनेवाले जिन भक्तों को आपने दीक्षा देने से इंकार किया, वे सभी नाराज हो गये। उन लोगों ने मंदिर में आना बंद कर दिया।

लेकिन नृपेन्द्र बाबू ने कभी इस बात की कल्पना नहीं की थी कि एक दिन प्रियनाथ यह प्रस्ताव पेश करेगा। उसने कहा कि मुझे स्वप्न में आदेश मिला है कि आपसे दीक्षा लूँ। नृपेन्द्र बाबू यह बात सुनकर चौंक उठे। उन्होंने यह सोचकर मन को सान्त्वना दी कि कालीमाता ने उन्हें ऐसा आदेश नहीं दिया है। इसी बीच एक घटना और हो गयी। कालीरंजन भट्टाचार्य की पत्नी लम्बे अर्से से उन्माद रोग से पीड़ित रहीं। अनेक चिकित्सा कराने पर भी राहत नहीं मिली। पत्नी के कारण पति का जीना हराम हो गया था। इस रोगी को देखने के बाद नृपेन्द्र बाबू ने अनुभव किया कि साधारण प्रक्रिया से यह रोग दूर नहीं होगा। इसका एक मात्र इलाज है– दीक्षा दान। सामान्य लोग भी निरंतर दीक्षा देने के लिए तंग करते रहे। अन्त में एक दिन उन्हें कहना पड़ा–''माँ की आज्ञा के बिना मैं यह कार्य नहीं कर सकता। अगर स्पष्ट आदेश या इशारा करेंगी तो मैं दीक्षा देना प्रारंभ करूँगा।''

इस निश्चय के बाद कुछ दीक्षा प्रार्थियों को अपने साथ लेकर नृपेन्द्र बाबू कालीघाट के मंदिर में आये। उन्होंने निश्चय किया कि आज कोई उत्तर बिना प्राप्त किये यहाँ से नहीं जाऊँगा। साथ में जो लोग आये थे, वे लोग भी उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगे कि ठाकुर को आज क्या मिलता है, देखा जाय।

कुछ देर बाद वहाँ एक व्यक्ति आया और नृपेन्द्र की बगल में बैठकर भजन गाने लगा। गीत का अर्थ था–''मैं जीर्ण अशक्त काष्ठ खण्ड हूँ। तुम मुझे अपने इच्छानुसार जलाकर, पीटकर नाव बना लो, जिससे लोग इस पार उस पार आ–जा सकें। मैं यह जानता हूँ कि यह एक जीर्ण नाव है और इसकी शक्ति कम है, पर परापार के स्वामी तो तुम्हारे चरणरूपी नाव हैं, मैं तो केवल उपलक्ष्य मात्र हूँ।''

गीत के भाव को समझते ही नृपेन्द्र सन्नाटे में आ गये। यह गीत उनके द्विधाग्रस्त मन के प्रश्न का उत्तर था। नृपेन्द्र अब तक यही समझते रहे कि इतना बड़ा बोझ वे कैसे उठायेंगे? लेकिन आज उन्हें ज्ञात हो गया कि यह बोझ उन्हें नहीं उठाना है, वह तो केवल उपलक्ष्य मात्र हैं। कालीमाता उनके द्वारा जो कुछ करायेंगी, उसे करते जाना है।

नृपेन्द्र ने गायक का हाथ झट से पकड़कर पूछा–''तुम्हें यह गीत कहाँ मिला और आज यहाँ क्यों गाया?''

अचानक एक अपरिचित व्यक्ति के द्वारा इस तरह हाथ पकड़ने से वह व्यक्ति घबरा गया। फिर धीरे से कहा–''काफी दिन पहले यह भजन मैंने सीखा था। इधर ४–५ वर्षों से कभी इस भजन को नहीं गाया। आज मंदिर में आकर यहाँ बैठते ही मेरी अन्तरात्मा ने इस भजन को गाने की प्रेरणा दी। क्या मुझसे कोई गलती हो गयी?''

नृपेन्द्र बाबू उसे गले से लगाते हुए भावातुर होकर बोले–''नहीं। आज आपने इस भजन के माध्यम से मेरी एक बड़ी समस्या को हल कर दी। आपने मेरा बड़ा उपकार किया।''

पता नहीं, उस व्यक्ति ने क्या सोचा, फिर धीरे-धीरे सीढ़ियों पर कदम रखता हुआ मंदिर के बाहर चला गया।

साधु बाबा का पूर्व आदेश तथा आज माँ की प्रेरणा पाने के बाद नृपेन्द्र ने अपना कर्त्तव्य निश्चित कर लिया। उन्होंने समवेत लोगों से कहा—"आगामी महाष्टमी (सन् १९५४ ई०) की पूजा के दिन मैं आप लोगों को दीक्षा दूँगा।"

इस घोषणा से सभी को प्रसन्नता हुई। उस दिन सर्वप्रथम प्रार्थी प्रियनाथ की दीक्षा हुई। प्रियनाथ ने दीक्षा लेते समय देखा कि नृपेन्द्र बाबू की गोद में एक छोटी लड़की बैठी है। जब उसने यह बात बतायी तब नृपेन्द्र बाबू ने कहा—"दीक्षा वही लड़की दे रही है। मैं तो केवल मंत्र पढ़ रहा हूँ।"

नृपेन्द्र बाबू समझ गये कि असली दीक्षा कालीमाता दे रही हैं, वह केवल उपलक्ष्य मात्र हैं। प्रियनाथ की इच्छा आज पूरी हो गयी। कालीरंजन भट्टाचार्य की पत्नी को दीक्षा देने के दो-चार दिन बाद उसका रोग दूर हो गया। इसी प्रकार जिन लोगों ने दीक्षा ली, उन सभी के रोग दूर होते गये। दीक्षा कैसे दी जाती है, क्या-क्या उस समय करना होता है, इसकी जानकारी उन्हें नहीं थी, पर वे गुरु के रूप में प्रतिष्ठित हो गये।

+ \+ \+ \+

एक बार एक सज्जन सिद्धि प्राप्त करने के उद्देश्य से नृपेन्द्र बाबू के पास आये। उन्होंने कहा—"मैं भारत के तमाम तीर्थों का दर्शन कर चुका हूँ। अनेक साधु-संतों का साथ किया है, पर मेरी मनोकामना पूरी नहीं हुई। गया में मुझे लोगों ने बताया कि आपके पास जाऊँ। इसी उद्देश्य से आपके निकट आया हूँ। कृपया मुझे अपनाइये।"

नृपेन्द्र बाबू ने कहा—"मैं साधन-पथ का एक राही मात्र हूँ। सिद्धि किसे कहते हैं, यह मैं नहीं जानता। मैं माँ को पुकारता हूँ, वे जो कुछ देती हैं या दिखाती हैं, मैं उसी से संतुष्ट रहता हूँ। इससे अधिक मैं कुछ नहीं चाहता।"

इतना सुनने के बाद भी वह व्यक्ति लगातार कई महीने तक मंदिर में बड़ी आशा लेकर आता रहा। अंत में नृपेन्द्र बाबू ने कहा—"मेरे धर्म का मूल मंत्र है त्याग और भक्ति। लज्जा, घृणा और भय के रहते यह प्राप्त नहीं होता। आपको त्याग करना पड़ेगा— यथा धन का, वंश का, विद्या का, मान का। सभी जीवों में भगवद् रूप देखना पड़ेगा। माँ को सब कुछ समर्पण करने की शिक्षा मुझे प्राप्त हुई है। यदि आप प्रथम उद्योग के रूप में नित्य श्मशान में जाकर, एक माह तक चिता-कार्य में संलग्न डोमों का चरणरज अपने मस्तक से लगा सकें तो आगे क्या और करना पड़ेगा, उसे बताऊँगा।"

इस राय को सुनकर उक्त सज्जन फिर नहीं आये। कारण वंश-गौरव को त्याग करना उनके लिए संभव नहीं हो सका। संन्यासियों की विभूति देखकर कुछ लोग स्वतः इसे प्राप्त करना चाहते हैं, पर यह कितना कठिन मार्ग है, इसे भाँप नहीं पाते। साधना की प्रारंभिक अवस्था में चंचल मन को वश में करना चाहिए। ऐसा करने के लिए काम-क्रोध आदि रिपुओं पर विजय प्राप्त करना चाहिए। पूर्वजन्म की सुकृति न रहने पर गीता

के प्रवचन के अनुसार वैराग्य का आश्रय लेना पड़ेगा। पर यह सहज साध्य नहीं है। इसके लिए गुरु के उपदेश तथा भगवान् की कृपा चाहिए। गुरु के उपदेशों पर अमल करने के लिए उन पर पूर्ण श्रद्धा और विश्वास करना आवश्यक है। भगवान् की कृपा प्राप्त करने के लिए चाहिए—आत्म-विसर्जन।

कालीरंजन भट्टाचार्य की श्रीमती परिमलवासिनी का उन्माद रोग नृपेन्द्र बाबू ने ठीक कर दिया था। इस घटना के बाद से इस परिवार के सदस्य अधिकतर किसी भी कार्य के लिए नृपेन्द्र बाबू से आज्ञा लेने आते थे। एक दिन काली बाबू आये और कहा कि वे जमशेदपुर में अपनी लड़की के यहाँ घूमने जाना चाहते हैं। ठाकुर से आज्ञा लेने आये हैं। आम तौर पर नृपेन्द्र बाबू ऐसे कार्यों के लिए अनुमति दे देते हैं। लेकिन इस बार उनके मुँह से निकल पड़ा—''नहीं, मत जाइये।''

बात सामान्य थी। काली बाबू ने इस पर ध्यान नहीं दिया और वे जमशेदपुर चले गये। उनके जाने के बाद उनकी पत्नी पर थ्राम्बोसिस का आक्रमण हुआ और वे बेहोश हो गयीं। कई घंटे बाद उनका निधन हो गया। काली बाबू की अनुपस्थिति के कारण शव-दाह के लिए परेशानी हुई। दुर्भाग्य की बात यह हुई कि इस मौके पर नृपेन्द्र बाबू का ध्यान किसी को नहीं आया। उन्हें किसी ने सूचना नहीं दी। काली बाबू इतने पास थे, फिर भी उन्हें तार दो दिन बाद मिला। यहाँ आने पर उन्हें मृत पत्नी का मुँह तक देखने को नहीं मिला।

काली बाबू पर पत्नी के निधन के बाद दूसरा आघात हुआ। उनका बड़ा लड़का खड़गपुर इंस्टिट्यूट से प्रथम श्रेणी में पास हुआ और उसे अमेरिकी सरकार ने छात्रवृत्ति दी। आगे की शिक्षा के लिए वह अमेरिका जाने की तैयारी करने लगा। अचानक नृपेन्द्र बाबू ने सोचा कि अमेरिका जाने के पहले अगर उसे दीक्षा दे दी जाय तो अच्छा होगा। अपनी इच्छा को उन्होंने काली बाबू के सामने प्रकट की, पर जोर देकर नहीं कह सके। किशोर होने के कारण लड़के ने दीक्षा को महत्त्व नहीं दिया। लड़का अमेरिका रवाना हो गया।

इधर न जाने क्यों नृपेन्द्र बाबू के मन में काँटा सा चुभता रहा, पर इसे वे प्रकट नहीं कर पा रहे थे। उधर लड़का सफलतापूर्वक एम०एस० पासकर डाक्टरेक्ट की डिग्री के लिए तैयारी करने लगा। ठीक इन्हीं दिनों समाचार आया कि लड़के को ब्रेन हेमरेज हो गया है। काली बाबू दौड़े हुए नृपेन्द्र बाबू के पास आये। नृपेन्द्र ने ध्यान लगाया तो अन्तरात्मा ने शुभ संकेत नहीं दिया। गुरुदेव प्राण विनिमय की क्रिया जानते थे, पर नृपेन्द्र बाबू इससे अपरिचित रहे। माँ ने कोई आदेश नहीं दिया। लड़का चल बसा।

इन्हीं काली बाबू का सबसे छोटा पुत्र परीक्षा में फेल होकर घर के लोगों को बिना सूचना दिये भाग गया। घर के लोग दो दिनों तक उसकी तलाश में चक्कर काटते रहे। मित्र, आत्मीय-स्वजन, ज्योतिषी, साधु-सन्त और पुलिस की सहायता ली गयी। कुछ पता नहीं चला। काली बाबू की बड़ी लड़की मंदिर में सूचना देने आयी।

नृपेन्द्र बाबू ने कहा—"आज की रात तुम लोग मंदिर में ठहर जाओ।"

परिवार के लोग राजी नहीं हुए। कारण, एक तो मन खराब है, दूसरे काशीपुर में लड़के के होने का आभास मिला है। सभी लोग तुरंत वहाँ जायँगे। नृपेन्द्र बाबू ने पुनः जोर देकर मंदिर में ठहरने को कहा। बाप-बेटी आपस में सलाह करने के बाद रात को ठहर गये। भोर के वक्त घर चले गये। दूसरे दिन काली बाबू लड़के को लेकर मंदिर में आये।

लड़के ने जो आपबीती सुनाई, वह अविश्वसनीय सी लगी। वह दो दिन तक वर्धमान और बोलपुर में था। नौकरी की तलाश में चक्कर काट रहा था। साथ में रकम न ले जाने के कारण भूखा-प्यासा चक्कर काट रहा था। उसकी बातों तथा चाल-चलन से लड़का गायब करनेवालों को संदेह हुआ। नौकरी दिलाने का लालच देकर उसे वे लोग निर्जन स्थान में ले गये। वहाँ हाथ-पैर बाँधकर मुँह में कपड़ा ठूँस दिया। उसी हालत में कंधे पर उठाकर रेल पर चढ़े और बेंच के नीचे छिपा दिया। उनकी बातचीत से पता चला कि दोनों मुसलमान हैं और इस वक्त पाकिस्तान जा रहे हैं। दो स्टेशन के बाद गाड़ी पाकिस्तान (बांग्लादेश) में प्रवेश कर जायेगी। अगले स्टेशन पर अचानक उसके हाथ-पैर के बंधन अपने आप खुल गये। वह पीछे खिसक कर गाड़ी से कूद गया और सीधे स्टेशन मास्टर के कमरे में घुस गया। वहाँ से उसे थाने पर लाया गया। उससे पता पूछकर पुलिस ने उसके पिता को सूचित किया। दूसरे दिन काली बाबू वहाँ जाकर लड़के को ले आये। जिस रात काली बाबू जोड़ा मंदिर में थे, उसी रात को लड़का आततायियों के कब्जे से मुक्त हुआ था। शरण में आये भक्तों की रक्षा माँ कैसे करती हैं, यह वही जानें।

इस प्रकार की अनेक घटनाओं की चर्चा स्वामी उमानन्द (नृपेन्द्र कुमार ने दीक्षा लेने के बाद यह नाम ग्रहण किया था।) ने अपनी जीवनी में लिखा है। अन्त में आप यह स्वीकार करते हैं कि सभी घटनाओं का निराकरण माँ काली की कृपा से हुई है। मैं तो निमित्त मात्र था। मुझमें योग-विभूति दिखाने की क्षमता नहीं है। अन्तरात्मा के माध्यम से माँ जो कुछ कहलाती थीं या जितना कराती थीं, मैं केवल उतना ही करता था। उनके सभी कार्यों में माँ की कृपा और गुरु का आशीर्वाद सहायता देते रहे।

उमानन्दजी ने धर्म के विषय पर न कहीं कोई भाषण दिया, न कोई आश्रम बनाया, यहाँ तक कि अपने मत का प्रचार भी नहीं किया। चन्दा माँगना, बड़े आदमी से सहायता लेना, उनकी रुचि के विपरीत था। जब आप प्रोफेसर थे तब प्राचीन भारत के सम्बन्ध में दो पुस्तकें लिखीं और इसके बाद अपनी जीवनी। कलकत्ता में आज भी जोड़ा मंदिर है जहाँ भक्त लोग कालीमाता का दर्शन करने जाते हैं।

आपका तिरोधान मई, १९७६ ई० शुक्ल चतुर्दशी के दिन हुआ था।

पाण्डिचेरी की श्रीमाँ

पाण्डिचेरी की श्रीमाँ

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध की बात है, उन दिनों फ्रांस की राजधानी पेरिस में श्री मरिस अलफासा (जो कि प्रसिद्ध बैंकर थे) सपरिवार रहते थे। यद्यपि अलफासा के पूर्वज कई पुश्तों से फ्रांस के नागरिक बन गये थे, परन्तु इस परिवार का मूल निवास-स्थान फ्रांस नहीं था। इस परिवार का आदि निवास मिस्र के आसपास किसी देश में था जिसके बारे में इन्हें विशेष दिलचस्पी नहीं थी। अपने मूल स्थान से आपके पूर्वज फ्रांस क्यों चले आये, इसकी भी जानकारी अलफासा को नहीं थी।

इसी परिवार में सन् १८७८ के २१ फरवरी को एक बालिका ने जन्म लिया। इस बालिका का नाम मीरा रखा गया जो चित्तौड़ की महारानी मीरा के नाम पर था। फ्रांस जैसे देश में बालिका का ऐसा नाम क्यों रखा गया, कहा नहीं जा सकता। श्री मरिस या उनकी पत्नी को स्वप्न में भी विश्वास नहीं हुआ कि उनकी पुत्री अतिमानवी के रूप में पैदा हुई है जो आगे चलकर अध्यात्म-जगत् में ''श्रीमाँ'' के रूप में प्रतिष्ठित होगी। जिन्हें विश्व के अनेक लोग माताजी, मदर, श्रीमाँ, डुसमैर आदि नामों से सम्बोधन करेंगे। इन नामों के बावजूद वे 'पाण्डिचेरी की श्रीमाँ' के नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं।

योगिराज अरविन्द ने एक बार कहा था—''माँ जन्म से ही माँ हैं। भगवान् जब मनुष्यों के बीच आते हैं तब मनुष्य के रूप में आते हैं, पर इसका यह अर्थ नहीं कि वे अपना ईश्वरत्व छोड़कर आते हैं। उनमें सब कुछ रहता है, वह सब ऐश्वर्य समय पर प्रकट होता है। हमारी माँ बचपन से सभी मानवों के ऊपर हैं।''

स्वयं माँ ने भी इस बात को एक जगह स्वीकार किया है—''जब मेरी उम्र चार साल की थी तभी से मुझमें योग की प्रक्रिया आरंभ हो गयी थी। मैं चुपचाप कुर्सी पर बैठी रहती थी। इन दिनों मेरे मस्तिष्क में एक प्रकार का प्रकाश अठखेलियाँ करता था। इसका मतलब क्या है, समझ नहीं पाती थी। सच तो यह है कि इसे समझने लायक मेरी उम्र नहीं थी। आगे चलकर जब इस रहस्य को समझ पायी तब समझा कि मुझे इस संसार में विराट् कार्य करना है।''

संसार में अनेक ऐसे प्रतिभावान नर-नारी हुए हैं जिनमें बचपन से ही अध्यात्म-

शक्ति का विकास हो गया था। आनन्दमयी माँ, गौरी माँ, सिद्धमाता आदि इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। जबकि अधिकतर लोगों में यह शक्ति समय के साथ प्रकट होती है अथवा गुरु से प्राप्त होती है।

बचपन से ही माँ किसी का दु:ख देखकर गम्भीर हो जाती थीं। माँ के इस रूप को देखकर उनकी माँ प्राय: पूछ बैठतीं—''क्यों बेटी, तू हर वक्त इतनी गम्भीर क्यों रहती है? क्या सारे जहान का दर्द तेरे सिर है?''

नन्हीं माँ जवाब देती—''हाँ, माँ! तुमने ठीक समझा है। सारे जहाँ का दर्द मुझे ढोना पड़ रहा है, इसलिए कभी-कभी गम्भीर हो जाती हूँ।''

लड़की की बातें सुनकर माँ अवाक् रह जाती। कच्ची उम्र की लड़की कैसे यह बात कह सकी? इसे तो अभी तक संसार के रहस्य का ज्ञान ही नहीं है।

दरअसल बचपन से ही माँ को एक विराट्-शक्ति ने आच्छादित कर रखा था। अहरह वे यह अनुभव करती थीं कि एक उज्ज्वल प्रकाश उनके मस्तक में मौजूद है। बचपन से ही उन्हें वृक्ष, लता, गुल्म, पशु, पक्षी से अपार प्रेम था। पेरिस के बागों में जाकर वे किसी वृक्ष के नीचे बैठ जाती थीं।

इस सम्बन्ध में माँ ने कहा है—''वृक्ष के नीचे बैठ जाने के बाद मैं तन्मय हो जाती थी। मुझे ऐसा लगता था जैसे इन सभी से मेरा आन्तरिक योग है। पेड़ों पर बैठे पक्षी तथा गिलहरी मेरे निकट आकर बैठते, उछलते और नाचा करते थे। यहाँ तक कि मेरे शरीर पर से गुजर जाते थे। वे सब मुझे अपना आत्मीय समझते थे। एक बार जब मैं एक वृक्ष के नीचे आकर खड़ी हुई तब वह जैसे उलाहना देते हुए कहने लगा—''मुझे काटने का निश्चय किया गया है। कृपया आप मेरी रक्षा करने का प्रयत्न कीजिए।''

जिन दिनों माँ की उम्र सात साल थी, उन दिनों दैवयोग से एक घटना हो गयी। राह चलते बड़े भाई ने एक साइनबोर्ड की ओर इशारा करते हुए पूछा—''बता तो, उस बोर्ड पर क्या लिखा है?''

माँ पढ़ना-लिखना नहीं जानती थी, ऐसी स्थिति में वह क्या बतलाती। भाई को शरारत करनी थी। उसने माँ का मखौल उड़ाया। माँ आवेश में घर लौट आयी और पढ़ने बैठ गयी। इस जिद्द का परिणाम साल भर बाद प्रकट हुआ जब वे परीक्षा में प्रथम श्रेणी में पास हुईं।

इन्हीं दिनों की एक और घटना है। स्कूल में तेरह वर्ष का एक बालक अक्सर माँ से परिहास किया करता था। वह उम्र में माँ से छ: साल बड़ा था। उसकी निर्लज्जता पर एक दिन माँ ने उसे बुरी तरह फटकारा, पर उसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ। वह पहले की तरह परिहास करता रहा। ठीक इन्हीं दिनों माँ में अतुलित शक्ति अपने आप उत्पन्न हो गयी। एक दिन उस लड़के को शून्य में उठाकर जमीन पर पटक दिया। इस

घटना की चर्चा करते हुए माँ ने एक बार कहा था—"मुझमें यह शक्ति ईश्वर की कृपा से अचानक उस समय आ गयी थी।"

वय:संधि काल पार होने के बाद माँ का विवाह फ्रांस के प्रसिद्ध विद्वान पल रिशा के साथ हुआ। विवाह के पश्चात् माँ का नाम मैडम क्यासा हुआ, पर वे मीरा रिशा लिखा करती थीं। विवाह के काफी दिनों बाद माँ उत्तरी अलजीरिया के क्लेमसन विशिष्ट अतीन्द्रिय-साधक मसियो तेंओ के निकट आयीं। उद्देश्य था— गुप्त-विद्या की शिक्षा प्राप्त करना। माँ की अलौकिक शक्ति देखकर तेंओ प्रभावित हुआ। उसने माँ को अपनी विद्या की शिक्षा देने का निश्चय किया।

एक दिन माँ पियानो बजा रही थीं। अचानक संगीत रुका तो सदर दरवाजे के पास से एक बड़े मेढक की आवाज आयी—'कोआक।'

इस आवाज को सुनते ही माँ ने मेढक की ओर देखा। मेढक ने क्या कहा, इसे केवल माँ समझ पायी। मेढक ने कहा—"फिर बजाओ।"

माँ उसके अनुरोध पर पुनः बजाने लगीं। मेढक चुपचाप संगीत सुनता रहा। इस बार जब संगीत समाप्त हुआ तब वह चुपचाप चला गया। इस प्रकार वह मेढक नित्य आता और अनुरोध करता था। माँ के संगीत में स्वर्गीय आनन्द था।

अलजीरिया में हुई एक घटना की चर्चा करती हुई माँ ने कहा था—"गर्मी के मौसम में अलजीरिया की जमीन आग उगलती है। कारण पास ही सहारा का रेगिस्तान है। उन दिनों मैं तेंओ से अतीन्द्रिय-विद्या सीख रही थी। नित्य दोपहर को एक वृक्ष के नीचे ध्यान लगाती थी। एक दिन की बात है। नित्य की तरह गहरे ध्यान में तन्मय हो गयी थी। ठीक ऐसे समय न जाने क्यों मैं बेचैनी अनुभव करने लगी। अचानक मैंने आँखें खोलकर देखा— सामने से एक काला नाग फन फैलाये मेरी ओर बढ़ रहा है। मैं समझ नहीं पा रही थी कि नागराज अचानक मुझ पर कुपित क्यों हो गये। अचानक मुझे महसूस हुआ कि मैं उसके बिल पर बैठी हुई हूँ। लेकिन इस समय यहाँ से भागना खतरे से खाली नहीं था। अगर हटा तो काट खाएगा। मैं इस आकस्मिक घटना से न तो भयभीत हुई और न अधीर हुई। उसकी आँखों से आँखें मिलाकर शक्ति का प्रयोग करने लगी। धीरे-धीरे वह काबू में आ गया। उसका फन झुक गया और वह पीछे की ओर लौट गया।"

इस घटना की चर्चा करने पर तेंओ ने कहा—"वह साँप स्नान करने के बाद अपने घर में प्रवेश करना चाहता था, पर तुमने उसका रास्ता बंद कर रखा था, इसलिए वह क्रुद्ध हो गया था।"

माँ तेंओ तथा उसकी पत्नी से आकल्टीज्म (दैवी-शक्ति) विद्या की शिक्षा ग्रहण करती रही। इस शिक्षा के लिए माँ को दो बार अलजीरिया आना पड़ा था। उन दिनों इस विद्या का सर्वश्रेष्ठ साधक तेंओ ही था जो स्थूल शरीर को समाधिस्थ करने के

पश्चात् सूक्ष्म शरीर में प्रवेश करने की विद्या जानता था। केवल यही नहीं, सूक्ष्म शरीर को निद्रित कर और गहरे में जाने की क्रिया जानता था, जहाँ चैतन्यावस्था प्राप्त की जा सकती है। इसी प्रकार सीढ़ी-दर-सीढ़ी उन्नत होकर साधक लक्ष्य तक पहुँच सकता है। इस क्रिया को अतीन्द्रियवादी अनैसर्गिक स्तर कहते हैं। माँ इस स्तर तक पहुँच गयी थीं।

इस विद्या के बारे में माँ ने कहा है—''अतीन्द्रिय जगत् का ज्ञान जड़-जगत् तथा शरीर के आसपास स्थित सूक्ष्म-जगत् और सूक्ष्म-शरीर की नींव पर आधारित है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इसे 'चेतना अवस्था का निश्चय' कहा जाता है, पर उक्त चेतन-अवस्था समूह वास्तव में भिन्न-भिन्न जगत् के चेतन अवस्था के समूह हैं। अतीन्द्रिय-प्रक्रिया में इसीलिए सत्ता के भीतर स्थित विभिन्न स्तरों तथा सूक्ष्म-शरीर से परिचित होना पड़ेगा। इस बारे में जानकारी प्राप्त करनी होगी जिससे एक के बाद एक करके उनका प्रकाश सम्भव हो सके। स्थूल-शरीर से निकलकर सूक्ष्म से सूक्ष्मातिसूक्ष्म-जगत् में प्रवेश करने तथा अतीन्द्रिय-प्रक्रिया के क्रम-पर्याय में स्थूल से सूक्ष्म एवं अतिसूक्ष्म से इथर के स्तर में मिल जाना पड़ेगा।''

आगे माँ ने इस प्रक्रिया के बारे में कहा—''इस अद्‌भुत जगत् में तुम देखोगे—भय-संकुल दृश्य। साधारण तौर पर तुम्हें महसूस होगा कि यहाँ हवा नहीं है— सब खाली है। आकाश नीला है, सफेद बादल हैं, धूप झिलमिला रही है। किन्तु जब दूसरी ओर देखोगे तब ऐसा लगेगा जैसे सब कुछ बदल गया है— मानो समस्त वातावरण बदल गया है। आवहवा में हजारों-लाखों छोटी-छोटी आकृतियाँ उभर आयी हैं, वे सब मानसिक या प्राणिक इच्छा से गठित जीव समूह हैं, मानसिक विकलांग समूह हैं। ये सब चारों ओर से तुम्हें इस प्रकार घेर लेंगे कि तुम भयभीत हो जाओगे। अगर तुम भयभीत नहीं हुए और शांत भाव से देखते रहे तो भय का कोई कारण नहीं रहेगा।''

+ \+ \+ \+

जिन दिनों माँ अलजीरिया में तेंओ के निकट यह विद्या सीख रही थीं, उन दिनों एक बार पेरिस में आपके कुछ मित्र एक जगह बैठे आपस में बातें कर रहे थे। माँ अपने स्थूल शरीर से निकलकर सहसा वहाँ पहुँच गयीं और एक कागज पर कुछ लिखकर वापस अपने स्थान पर आ गयीं। इस तरह के चमत्कारों का प्रयोग भविष्य में उन्होंने फिर कभी नहीं किया। दरअसल वे मानव-कल्याण के लिए विशेष रूप से सक्रिय रहीं। उच्चकोटि के साधक इस प्रकार की योग-विभूतियों का प्रदर्शन नहीं करते। इसे हेय दृष्टि से देखते हैं।

अतीन्द्रिय-शक्ति के माध्यम से मानव-कल्याण किया जा सकता है। माँ के जीवन में एक बार ऐसी घटना हुई थी। इस घटना में उन्हें भाग लेना पड़ा था। यह घटना उस समय हुई थी जब माँ अलजीरिया से वापस घर की ओर आ रही थीं। आपके

साथ गुरुवर तेंओ भी थे जो यूरोप घूमने के लिए साथ चल रहे थे।

इस घटना के बारे में माँ लिखती हैं—"अलजीरिया से मैं हमेशा के लिए रवाना हुई। साथ में तेंओ भी थे। वे यूरोप घूमने की इच्छा से साथ में आ रहे थे। सहसा समुद्र में भयंकर तूफान उत्पन्न हो गया। सभी यात्री भय से व्याकुल हो उठे। यहाँ तक कि कप्तान की आकृति पर भय के चिह्न प्रकट हो गये। तेंओ ने मेरी ओर देखते हुए कहा—'इस तूफान को रोक दो।'

"इस आदेश को पाकर मैं अपने केबिन में जाकर सो गयी। इसके बाद अपना स्थूल शरीर छोड़कर समुद्र में सूक्ष्म शरीर में घूमने लगी। मैंने विस्मय से देखा कि समुद्र की तरंगों पर अगणित प्रेतात्माएँ पागलपन कर रही हैं। सबके सब जहाज के साथ खिलवाड़ कर रही हैं। मैंने उन्हें नम्र भाव से समझाया। अंत में मेरी बातों का प्रभाव उन पर पड़ा। तुरंत समुद्र शांत हो गया। वहाँ से मैं अपने स्थूल शरीर में वापस आ गयी। बाद में डेक पर आकर मैंने देखा— तूफान गायब हो गया था। सभी यात्री प्रसन्नता प्रकट कर रहे थे।"

सन् १९१० में आपके पति पल रिशा भारत यात्रा के लिए चल पड़े। वे फ्रांस सरकार द्वारा नियुक्त पाण्डिचेरी के गवर्नर बनकर आये थे। तभी माँ ने उन्हें एक योगचक्र देकर कहा—"इस नक्शे की व्याख्या भारत में कोई योगी ही कर सकता है। आप ऐसे योगी की तलाश अवश्य करें। जो व्यक्ति इसकी व्याख्या कर सकेगा, वही मेरे योग-मार्ग का सहायक होगा। वास्तव में वही योगी मेरा गुरु होगा।"

पल रिशा स्वयं अध्यात्म से दिलचस्पी रखते थे। पत्नी के अनुरोध को उन्होंने स्वीकार कर लिया। मई माह में वे पाण्डिचेरी पहुँचे। उन दिनों महर्षि अरविन्द वहाँ निर्वासित जीवन व्यतीत कर रहे थे। पाण्डिचेरी फ्रांस के अधिकार में था। रिशा महर्षि के निकट आये और उक्त योगचक्र के बारे में प्रश्न किया।

प्रत्युत्तर में श्री अरविन्द ने कहा—"यह सत्, चित्त, आनन्द का प्रतीक है— प्राण, प्रकाश और प्रेम का प्रतीक है— सृष्टि के वैचित्र्य प्रवाह का प्रतीक है। इसके भीतर के विकसित पद्म सूचित कर रहे हैं— चेतना का उन्मीलन।"

दूसरी ओर यही योगचक्र श्री अरविन्द का प्रतीक था जो आगे चलकर अरविन्द और माँ के योग-सूत्र का प्रतीक बना।

श्री अरविन्द की इस व्याख्या को पति की जबानी सुनकर माँ भारत आने के लिए व्याकुल हो उठीं। यह सन् १९१४ की बात है।

अपनी आकुलता के बारे में माँ ने लिखा है—"मुझे नींद में ही नाना प्रकार के अनुभव होते रहे। मैं भिन्न-भिन्न गुरुओं से उपदेश प्राप्त करती रही। आगे चलकर उनमें से कुछ गुरुओं का दर्शन भी प्राप्त हुआ था। बाद में ज्यों-ज्यों आध्यात्मिक जीवन में

उन्नति होती गयी त्यों-त्यों किसी न किसी के साथ घनिष्ठता बढ़ती गयी। उस समय तक मैं भारतीय धर्म-दर्शन से पूर्णतः अपरिचित थी। पता नहीं, किसने कृष्ण रूप में चिन्तन करना सिखाया। जब मैंने पहले पहले श्री अरविन्द को देखा तब उन्हें पहचान लिया। इसी व्यक्ति को जो मेरे निकट कृष्ण हैं, इन्हें इसी नाम से पुकारती हूँ ......।''

+ \+ \+ \+

सन् १९१४ ई० संसार के इतिहास में इसलिए प्रसिद्ध है कि इसी सन् को विश्व-युद्ध प्रारंभ हुआ था। इन्हीं दिनों माँ के हृदय में श्री अरविन्द के दर्शन के लिए इस कदर व्याकुलता बढ़ी कि वे ७ मार्च को 'कामागारू' नामक जहाज से भारत की ओर रवाना हुईं। जहाज के रवाना होने पर वे परमब्रह्म परमेश्वर के निकट प्रार्थना करने लगीं—

''हे भगवान्, हे अनुपम बंधु, हे सर्वशक्तिमान प्रभु, मेरी समग्र सत्ता में तुम प्रवेश करो।''

एक अर्से तक यात्रा करने के बाद जहाज कोलम्बो बन्दरगाह पर आया और जब यहाँ से जहाज रवाना हुआ तब माँ की कैसी स्थिति हुई, इस सम्बन्ध में वे कहती हैं—''पाण्डिचेरी किस दिशा में है, इसकी जानकारी मुझे नहीं थी। जहाज किस दिशा की ओर जा रहा है, इसकी जानकारी कुतुबनुमा यंत्र से प्राप्त हो रही थी। किनारा कहीं नजर नहीं आ रहा था। अचानक मुझे ऐसा महसूस हुआ कि एक ओर से चुम्बक की तरह आकर्षित किया जा रहा है। तुरंत मेरी अतीन्द्रिय शक्ति ने सूचना दी कि पाण्डिचेरी किस दिशा में है। श्री अरविन्द की योग-शक्ति का विस्तार यहाँ तक हो गया है। ज्यों-ज्यों जहाज किनारे की ओर बढ़ने लगा त्यों-त्यों मेरी अतीन्द्रिय शक्ति यह दिखाने लगी कि शहर के एक केन्द्र में नीले रंग की एक रश्मि झलमला रही है।''

जब श्रीमाँ के चरण भारतमाता की पवित्र भूमि पर पड़ी तब उक्त रश्मि और गहरे रंग की हो गयी।

२९ मार्च, सन् १९१४ के दिन माँ को सर्वप्रथम अपने गुरु का दर्शन मिला। स्वप्न में वे जिस ज्योति को निरन्तर देखती रहीं, इस वक्त वही ज्योति प्रत्यक्ष रूप में उनके सामने मौजूद है। उन्होंने यह भी देखा—श्री अरविन्द के भीतर एक पूर्ण समर्पित प्राण, आत्मा प्रचण्ड-शक्ति का आधार बनकर मौजूद है।

दूसरी ओर श्री अरविन्द ने देखा— उनके सामने एक विराट्-शक्ति उपस्थित है। मानवी-तन में ऐसा भगवत्-समर्पित प्राणी आज तक उनकी दृष्टि में कोई नहीं आया। वे अपने अतिमानस काल के बारे में निश्चिन्त हो गये। अब पृथ्वी में उनके योग का एक नया अध्याय प्रारंभ होगा।

३ अप्रैल, १९१४ ई० को माँ ने अपनी डायरी में लिखा—''लगता है, मैं एक नये जीवन के लिए पुनर्जन्म लेने जा रही हूँ। अतीत का कोई भी नियम, कोई भी अभ्यास मेरे काम नहीं आयेगा। मैं जिसे परिणाम समझती थी, वह तो आयोजन मात्र

है। अब मैं अनुभव कर रही हूँ कि अब तक मैंने कुछ भी नहीं किया है। आध्यात्मिक जीवन यापन तो किया ही नहीं, केवल उस मार्ग की ओर बढ़ रही हूँ। शायद मैं कुछ भी नहीं जानती। लगता है, पुनः नये सिरे से सब कुछ अर्जित करना पड़ेगा।''

+ \+ \+ \+

१५ अगस्त, १९१४ के दिन श्री अरविन्द का जन्म दिवस था। उसी दिन से 'आर्य' नामक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ हुआ। उसे अंग्रेजी तथा फ्रांसीसी भाषा में छापने का निश्चय किया गया। श्रीमाँ तथा उनके पति श्री पल रिशा ने सारा मैटर फ्रांसीसी भाषा में अनुवाद करने की जिम्मेदारी ली। पत्रिका के लिए सामग्री एकत्रित करना, प्रूफ पढ़ना, संपादन, ग्राहकों के पते लिखना, डाकखाने भिजवाना, सारा हिसाब-किताब रखना आदि कार्यों की जिम्मेदारी माँ को सौंपी गयी। एक प्रकार से माँ का कर्म-यज्ञ प्रारंभ हो गया।

इसी बीच विश्वयुद्ध प्रारंभ हो गया था। माँ को फ्रांस वापस लौटना पड़ा। अगर श्री अरविन्द उन्हें रोक लेते तो शायद माँ यहाँ रुक जातीं, पर ऐसा नहीं हुआ। माँ उदास भाव से युद्ध में भाग लेने के लिए वापस चली गयीं। युद्ध समाप्त होने के बाद २४ अप्रैल, सन् १९२० को महर्षि के आश्रम में पुनः वापस आ गयीं।

इस बार माँ का आगमन अरविन्द आश्रम के लिए वरदान प्रमाणित हुआ। योगिराज अरविन्द क्रमशः सभी ओर से अपना हाथ समेटने लगे। फलस्वरूप माँ पर नाना प्रकार के कार्यों का बोझ बढ़ता गया। आश्रम का संचालन, भक्त और शिष्यों के आध्यात्मिक उन्नयन की जिम्मेदारियाँ सम्हालने लगीं।

इन दिनों की स्थिति के बारे में श्री नलिनी कान्त गुप्त लिखते हैं—''माँ के आने के बाद से हम लोगों की जीवन-धारा पूर्ण रूप से बदल गयी। श्री अरविन्द को माँ ने महायोगेश्वर की वेदी पर स्थापित किया। यह कार्य करके उन्होंने हमें यह सिखाया कि गुरु-शिष्य का वास्तविक अर्थ क्या है। इसे जबानी न कहकर करके दिखाया। माँ कभी श्री अरविन्द के सामने, बगल में या बराबर के आसन पर नहीं बैठती थीं। अपने इस आचरण से वे हमें यह दिखाती थीं कि गुरु के प्रति किस प्रकार श्रद्धा-शिष्टाचार करना चाहिए।''

''मुझे यह जानकर सुखद आश्चर्य हुआ कि माँ फ्रांस में रहते समय गीता, उपनिषद, योगसूत्र, नारदसूत्र का अध्ययन ही नहीं करती थीं, बल्कि फ्रांसीसी भाषा में अनुवाद कर चुकी हैं।''

श्री के०डी० शेठना साहब लिखते हैं—''आश्रम में माँ अत्यन्त सादगी से रहती थीं। उनके पास दो या तीन साड़ियों के अलावा अन्य कोई वस्त्र नहीं था। उसे स्वयं अपने हाथ से साफ करती थीं। आश्रम में ऐसा कोई काम नहीं था जिसे करने में उन्हें हिचक हुई हो।''

२४ नवम्बर, सन् १६२६ ई० को सिद्धि दिवस के बाद श्री अरविन्द गम्भीरतम साधना के लिए अन्तराल में चले गये। अब आश्रम का सम्पूर्ण भार माँ के कंधों पर आ गया। पहले तो कुछ लोगों को नागवार लगा— एक विदेशी महिला पर इतना विश्वास क्यों? लेकिन चन्द दिनों बाद लोगों ने अनुभव किया कि माँ के अलावा इतने सुचारु रूप से सारी व्यवस्था अन्य कोई नहीं कर सकता था।

इन्हीं दिनों एक दिन जब माँ ध्यान कर रही थीं, तब एक विराट्-शक्ति आकर उनमें समाहित हो गयी। माँ उस क्षमता को प्राप्त करने के बाद श्री अरविन्द के कक्ष में आकर बोलीं— मैं सृष्टि की नाद-ध्वनि की अधिकारिणी हो गयी हूँ।''

श्री अरविन्द ने उत्तर दिया—''यह ध्वनि आयी है— अधिमानस से। इसे हम नहीं चाहते। हम इस संसार में अतिमानस का निर्माण करना चाहते हैं।''

बिना कोई प्रतिवाद किये माँ अपने कमरे में आ गयीं। दो घण्टे तक ध्यान में निमग्न रहीं। उन्होंने इस अधिकार को स्वेच्छा से त्याग दिया। यौगिक-इतिहास में इतना बड़ा त्याग आज तक किसी ने नहीं किया है।

माँ की दिव्य-शक्ति कैसी थी, इसका उल्लेख उनके कुछ शिष्यों ने किया है। एक ने लिखा है—''आज जब मैं माँ का काम कर रहा था तब अपने अंतर में मैंने एक शान्त तेज अनुभव किया। लगा जैसे मस्तक में हिमस्पर्श हुआ। हृदय में ज्ञान उतर आने पर देखा कि माँ यद्यपि सशरीर उपस्थित नहीं हैं, पर वे हमारे चारों ओर सर्वत्र हैं। वे अपना स्नेहहस्त हम पर फेरती हुई सारे कष्टों को दूर कर दे रही हैं।''

दूसरे व्यक्ति ने लिखा है—''विगत एक पखवाड़े से जब कभी मैंने माँ को प्रणाम किया तभी उनके स्पर्श से शक्ति और आनन्द प्राप्त किया। लगता था जैसे कोई नयी चीज मेरे भीतर उड़ेली जा रही है।''

+ + + +

श्री गणपति शास्त्री सम्पूर्ण दक्षिण भारत में गणपति मुनि के नाम से प्रसिद्ध थे। संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे। सन् १६२८ में आप पाण्डिचेरी में श्री अरविन्द और श्रीमाँ का दर्शन करने आये। १७ अगस्त को आप माँ के साथ ध्यान पर बैठे। अपनी अभिज्ञता के बारे में आपने कहा है—''साधारण तौर पर जब मैं ध्यान पर बैठता हूँ तब सिर पर प्रवाह का अनुभव करता हूँ, किन्तु माँ के साथ जब ध्यान पर बैठा तब सभी ओर से विद्युत-प्रवाह का अनुभव करने लगा।''

इस बात के उत्तर में माँ ने कहा—''गणपति का ध्यान सार्थक हुआ है। लगातार बिना किसी व्यतिक्रम के आधे घण्टे तक चलता रहा। दूसरों के लिए इतनी देर तक ध्यान लगाना सम्भव नहीं होता।''

इस घटना के दो दिन बाद यानी १६ अगस्त को शास्त्रीजी माँ के साथ ४५ मिनट

तक ध्यान करते रहे। इस दिन के अनुभव के बारे में आपने कहा—"बोधि में मुझे शाकम्बरी और योगेश्वरी के दर्शन हुए। ज्योंही मेरी दृष्टि माँ पर पड़ी त्योंही उन्हें मैंने शाकम्बरी देवी के रूप में देखा।"

जिस समय शास्त्रीजी अपने इस अनुभव के बारे में चर्चा कर रहे थे, ठीक उसी समय माँ की आँखें बन्द हो गयीं और उन्हें भाव-समाधि लग गयी। शास्त्रीजी ने विस्मय से देखा— माँ के शरीर से उज्ज्वल प्रकाश निकलकर उनके चारों ओर फैलकर बलाकार रूप ले रहा है। उन्हें प्रतीत हुआ कि इस वैद्युतिक प्रभा और शक्ति से सम्पूर्ण कक्ष संजीवित हो उठा है।

ध्यान और प्रार्थना के पश्चात् माँ प्रत्येक को आशीर्वाद देकर एक-एक फूल देती थीं। फूल देने का एक विशेष महत्त्व था। प्रत्येक फूल साधक की चेतना में एक प्रकार का स्पन्दन उत्पन्न करता था। जिसे जैसी जरूरत होती, उसे उसी प्रकार का देकर वे आगे बढ़ जाती थीं।

इस प्रक्रिया के बारे में एक सज्जन ने श्री अरविन्द से पूछा कि माँ के इस तरह फूल वितरण करने का क्या अर्थ है? उत्तर में उन्होंने कहा था—"माँ जब उक्त फूल में अपनी शक्ति का प्रयोग करती हैं तब वह प्रतीक से कुछ अधिक हो जाता है। उस वक्त जो फूल ग्रहण करता है, अगर उसमें ग्रहिष्णुता रहती है तो वह खूब कार्यकारी हो सकती है।"

इसी प्रकार किसी योग-शिक्षार्थी के प्रश्न के उत्तर में माँ ने कहा था—"किस उद्देश्य से तुम योग चाहते हो? शक्ति-संचय के लिए? अविकम्प शान्ति प्राप्त करने के लिए? इन दोनों में से किसी एक से यह नहीं समझा जा सकता कि तुम योग के अधिकारी हो। जिस प्रश्न का तुम्हें जवाब देना है, वह यह है कि क्या तुम भगवान् के लिए योग चाहते हो? क्या भगवान् तुम्हारे जीवन की चरम वस्तु है? यहाँ तक कि वे ही तुम्हारी सत्ता के कारण हैं, उन्हें अलग कर देने पर तुम्हारे जीवित रहने का कोई अर्थ नहीं रहता? अगर ऐसी भावना है तो तुमने योग के मार्ग में प्रवेश करने का अधिकार प्राप्त किया है। इसके लिए सबसे पहले चाहिए तुम्हारे हृदय में भगवान् के प्रति अस्पृहा आकुति। इसके बाद तुम्हारा काम होगा— इस आकुति का पोषण करना, इसे सदा जाग्रत और जीवन्त रखना। इसके लिए आवश्यक है— एकाग्र अभिनिवेश की। तुम्हारे भीतर अभिनिवेश के अनेक केन्द्र हैं। जैसे एक शीर्ष स्थान में, एक भौंहों के मध्य। इनमें प्रत्येक की उपयोगिता है। प्रत्येक से विशिष्ट फल प्राप्त होता है। यहाँ स्मरण रखना होगा कि हृदय में तुम्हारी सत्ता का केन्द्र है। इस केन्द्र से निकलते हैं— सभी मूल वृत्तियाँ, सभी गतियाँ, सभी प्रेरणाओं की उपलब्धि।"

भारतीय साधना के बारे में माँ ने कहा है—"भारत ही एक मात्र देश है जो संसार

को सत्य का मार्ग दिखा सकता है। पश्चिम का अनुसरण किये बिना भारत भगवत्-शक्ति और एषणा का प्रकाश उत्पन्न कर संसार को अपना उपदेश दे सकता है।''

+ + + +

श्री अरविन्द और श्रीमाँ के शरीर में अधिमानस-शक्ति उतरने के बारह वर्ष बाद माँ को लगा जैसे अतिमानस सिद्ध होनेवाला है। माँ ने कहा था—''सन् १९३८ में मैं श्री अरविन्द के भीतर अतिमानस-शक्ति का अवतरण होते देख चुकी हूँ। उस समय तक उस शक्ति को पृथ्वी में स्थायी नहीं किया जा सका था।''

+ + + +

५ दिसम्बर के दिन सबेरे आश्रम के सभी दरवाजे खोल दिये गये ताकि सभी वर्ग के लोग अपने परमगुरु का अन्तिम दर्शन कर सकें। उन्हें प्रणाम कर सकें। समस्त आश्रमवासियों ने उस दिन विस्मय से स्तब्ध होकर महामानव के महाप्रयाण का संवाद सुना। केवल सम्पूर्ण भारत ही नहीं, समस्त संसार में यह समाचार प्रसारित हो गया।

माँ ने कहा—''संसार को यह नहीं मालूम कि इस जगत् के लिए उन्होंने कितना बड़ा त्याग किया। आज से एक वर्ष पूर्व बातचीत के सिलसिले में मैंने उनसे कहा था कि मुझे ऐसा लग रहा है जैसे मुझे शरीर-त्याग करना पड़ेगा। तब उन्होंने कहा था—''नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। आवश्यक होने पर मैं जा सकता हूँ। तुम्हें अभी अतिमानस योग के आरोहण और रूपान्तर के कार्य करना पड़ेगा।''

गुरुदेव की इस आज्ञा को माँ ने शिरोधार्य कर लिया था। इसके बाद उनकी अभिनव-साधना चलने लगी। अतिमानस-शक्ति को पृथ्वी पर स्थायी करना है। श्री अरविन्द के ईप्सित कार्य को पूरा करना है।

१५ फरवरी, सन् १९५६ के दिन श्री अरविन्द की ईप्सित ज्योति और शक्ति को माँ इस पृथ्वी की चेतना में ले आयीं। ३ फरवरी, सन् १९५८ के दिन माँ ने इस सम्बन्ध में कहा था—''अतिमानस जगत् में स्थायी रूप से है और मैं स्वयं भी अतिमानस शरीर में स्थायी रूप से वर्तमान हूँ। इसका प्रमाण आज ही अपराह्न काल में प्राप्त हुआ।''

+ + + +

श्रीमाँ की सबसे विस्मयकारी सृष्टि है— अरोविल। सन् १९१२ में इसका सपना माँ ने देखा था। श्री अरविन्द के नाम पर इस नगर का नामकरण किया गया है— अरोविल। इसका एक अर्थ है— भोर की नगरी— नवजीवन की नगरी— भविष्य की नगरी। इस नगरी को कोई भी पाण्डिचेरी जाकर देख सकता है। माँ की यह सबसे बड़ी देन है। सन् १९६६, १९६८ और १९७० में आयोजित युनेस्को की मीटिंग में सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव स्वीकार किया गया था और इस कार्य के लिए सहायता दी गयी थी।

अरोविल का एक मात्र उद्देश्य है— सभी प्रकार के सामाजिक, राजनीतिक और

धार्मिक विश्वास से ऊपर उठकर यह एक मात्र मानव की सेवा करेगा। अरोविल होगा विश्वस्तता, सत्य और शान्ति का प्रतीक।

अरविन्द आश्रम का यह नगर दर्शकों के लिए सबसे प्रिय है यह नगरी जो प्रत्येक वय: के लोगों को आकर्षित करती है।

+ + + +

महर्षि अरविन्द के प्रभाव के कारण भारत ही नहीं, बल्कि अनेक विदेशी भी यहाँ शिक्षार्थी के रूप में आते हैं। अनेक लोग आश्रम में निवास करते हुए अपनी सेवाएँ देते हैं। डा० नीरदवरण आश्रम के चिकित्सक थे। श्री अरविन्द का भक्त होने के कारण माँ के प्रति उनकी भक्ति असाधारण थी।

एक दिन की बात है। श्रीमाँ अपने गुरु के कमरे में उनका केश-विन्यास करने के लिए आयीं। उस समय कमरे में डा० नीरदवरण के अलावा एक अन्य सज्जन बैठे थे। इन लोगों को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि श्री अरविन्द का केश सँवारते-सँवारते माँ को भाव-समाधि हो गयी। उनकी दोनों आँखें अधखुली थीं। सारा शरीर सख्त हो गया था, पर दोनों हाथ बराबर कार्य कर रहे थे।

इस दृश्य को देखकर दोनों विस्मृत हो गये। दूसरे ही क्षण वे इस प्रकरण पर आपस में परिहास करने लगे। इशारे से। उनके निकट यह दृश्य परिहास का विषय बन गया था। चूँकि माँ की पीठ इन लोगों की ओर थी, इसलिए वे यह समझ रहे थे कि उनके इस विनोदी इशारे को माँ देख नहीं रही हैं।

माँ समाधि-अवस्था में ही केश-विन्यास कर चल पड़ीं। दरवाजे के पास आकर पीछे की ओर मुखातिब होकर बोलीं—"तुम लोग यह मत समझना कि तुम लोग जो कुछ कर रहे थे, उसे मैंने नहीं देखा । मैंने सब कुछ देखा। याद रखना, मेरे सिर के पीछे भी दो आँखें हैं। मेरे अगोचर में कुछ नहीं होता और न कुछ रह सकता है।"

इतना कहकर माँ बिना किसी उत्तर की प्रतीक्षा किये चल दीं। यद्यपि दोनों मित्र अपने कुकृत्य के लिए सन्न रह गये, तद्यपि उन्हें यह समझते देर नहीं लगी कि माँ की अजानकारी में कुछ भी छिपा नहीं रह सकता। सब कुछ जान लेती हैं, समझ लेती हैं।

श्रीमाँ के भक्त उन पर कितनी आस्था और विश्वास करते हैं, इसका उदाहरण यतीन्द्रनाथ सेनगुप्त के जीवन की एक घटना से प्राप्त होता है। विश्वास, भक्ति और श्रद्धा से ही फल प्राप्त होता है। अगर गुरु के प्रति आस्था और विश्वास नहीं है तो साधना व्यर्थ है।

यतीन्द्रनाथ कलकत्ता के श्याम बाजार मुहल्ले में रहते थे। आप श्रीमाँ के एकनिष्ठ भक्त थे। माँ द्वारा निर्देशित क्रियाएँ करते और अक्सर उनका दर्शन करने के लिए पाण्डिचेरी जाते थे।

यतीन्द्र बाबू का एक भतीजा था जिसे वे बचपन से ही लाड़-प्यार में पालते आये हैं। एक तरह से यह बालक उनकी आँखों का तारा था । भतीजे के पेट में अल्सर था। अल्सर पीड़ा से उसे भयानक कष्ट होता था। इलाज जारी था, पर लाभ नहीं हो रहा था।

एक दिन की बात है। उनका भतीजा किसी दूसरे शहर में गया और वहाँ बुरी तरह पीड़ित हो गया। वहाँ के लोग उसे बेहोशी की हालत में कलकत्ता ले आये। तुरत अस्पताल पहुँचाया गया। जाँच के बाद डाक्टरों ने कहा— ''पेट का अल्सर फट गया है। बचना मुश्किल है। आपरेशन के बाद अगर आँतों को जोड़ने में सफलता मिली तो बच सकता है।''

लोगों ने डाक्टर की राय को स्वीकार कर लिया । आपरेशन के बाद जब डाक्टर थियेटर से बाहर निकले तब उनका चेहरा गंभीर था। उनकी बातों से ज्ञात हुआ कि आँत बिलकुल सड़ गया है। कोई आशा नहीं है।

डाक्टर की इस राय को सुनकर उपस्थित सभी लोग चिन्तित हो उठे। उन्हें इस बात की चिन्ता सताने लगी कि इस आघात को यतीन्द्र बाबू कैसे बर्दाश्त करेंगे? सभी इस बात से परिचित थे कि यतीन्द्र बाबू अपने प्राण से अधिक भतीजे को चाहते हैं।

लेकिन जब लोग घर पर आये तब यतीन्द्र बाबू ने अपने भतीजे के बारे में किसी से कोई प्रश्न नहीं किया। उनके चेहरे पर चिन्ता की लकीर नहीं थी। वे शान्त और निस्पृह रूप में घर का कामकाज कर रहे थे। लोग यह समझ नहीं पा रहे थे कि इतने बड़े हादसे के बाद वे पत्थर की तरह बुत क्यों हैं?

पता लगाने पर लोगों को ज्ञात हुआ कि आपने श्रीमाँ के नाम तार भेजा है— 'मेरे भतीजे को स्वस्थ कर दीजिये।' यतीन्द्र बाबू को दृढ़ विश्वास था कि माँ का आशीर्वाद प्राप्त होने के बाद संकट टल जायगा। उनका भतीजा स्वस्थ हो जायगा। श्रीमाँ में अपूर्व शक्ति है।

आगन्तुक लोगों ने इस बारे में उनसे कोई बात नहीं की। सभी उद्विग्न भाव से चले गये। दूसरे दिन समाचार मिला कि रोगी की हालत बिगड़ गयी है। नाड़ी का पता नहीं चल रहा है। मौत की साया धीरे-धीरे उतर रही है। जो लोग नर्सिंग होम में थे, सभी दौड़-धूप में व्यस्त हो गये। इधर घर पर यतीन्द्र बाबू बेफिक्र थे। यहाँ तक कि पहले की अपेक्षा अधिक प्रसन्न थे।

पाण्डिचेरी से तार का जवाब आ गया था। वहाँ से माँ ने केवल एक शब्द भेजा था—'आशीर्वाद' (ब्लेसिंग)। इस एक शब्द से यतीन्द्र बाबू इतने आश्वस्त हो गये, मानो उन्हें सब कुछ मिल गया। उनका विश्वास था कि अगर माँ किसी को 'ब्लेसिंग' देती हैं तो उसकी कोई हानि नहीं होती। यही वजह है कि यतीन्द्रनाथ प्रसन्न मुद्रा में थे।

परिवार के अधिकांश लोग भतीजे का अन्तिम दर्शन करने नर्सिंग होम में आने लगे। आनेवालों में अधिकतर लोग यतीन्द्रनाथ की आलोचना करते रहे। कुछ लोगों ने यह भी कहा कि जब यतीन्द्र बाबू बेफिक्र हैं तब मंगल ही होगा। वे इतने हृदय-हीन नहीं हैं। अपने भतीजे को वे कितना चाहते हैं, इसे हम जानते हैं। जरूर कोई बात है।

मरीज को लगातार देखनेवाले आते रहे। कुछ देर बाद उस कमरे से निकलने वालों ने कहा—"मरीज को होश आ गया है। अब तो वह पहचानकर लोगों से बातें कर रहा है।"

यह बात सुनकर पुनः नये सिरे से भीड़ कमरे के भीतर जाने लगी। आलोचना करनेवालों के मुँह से निकला—"आश्चर्य! मिराकेल!!"

यहाँ तक कि डाक्टरों ने भी कहा—"यह मरीज हमारी चिकित्सा से अच्छा नहीं हुआ है। कैसे यह चमत्कार हुआ, इसे हम समझ नहीं पा रहे हैं।"

जब लोग घर वापस आये तब यतीन्द्रनाथ ने कहा—"माँ का आशीर्वाद पाने के बाद मैं यह समझ गया था कि खोका (मुन्ना) पर अब यमराज भी हाथ नहीं लगा सकते।"

दूसरे दिन सम्पूर्ण विवरण लिखकर उन्होंने माँ के नाम पत्र भेज दिया।

+ \+ \+ \+

श्री दिलीप कुमार राय, प्रसिद्ध नाट्यकार द्विजेन्द्रलाल राय के सुपुत्र, रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा नेहरूजी के स्नेहपात्र ही नहीं, सुभाष बाबू के घनिष्ठ मित्र थे।

योगिराज अरविन्द ने इन्हें एक पत्र में लिखा कि योग की दीक्षा तुम्हें माँ से लेनी पड़ेगी। दिलीप बाबू की इच्छा थी कि वे श्री अरविन्द से दीक्षा लेंगे। मन ही मन उन्हें गुरु के रूप में मान लिया था। अरविन्द के बुलावे पर उन्हें पाण्डिचेरी आना पड़ा। आते समय मार्ग में उन्होंने सोचा—जब मुझे माँ से दीक्षा लेनी है तब उन्हें परख लूँगा। मुझे दीक्षा देने की शक्ति उनमें है या नहीं; यह जाने बिना उनसे दीक्षा कदापि नहीं लूँगा।

यह अगस्त, सन् १९२८ की बात है। वे सीधे माँ के निकट आये और आते ही उन्होंने प्रश्न किया—"आपकी योग-शक्ति के बारे में श्री अरविन्द अनेक बातें कह चुके हैं। क्या आप अपना वास्तविक परिचय देंगी?"

यह एक प्रकार से चैलेंज था। माँ मुस्कराकर बोलीं—"मेरा वास्तविक परिचय जानना चाहते हो? वास्तविक परिचय से तुम्हारा क्या मतलब है?"

माँ के मुस्कराहट की बिना परवाह किये दिलीप कुमार एकटक उनकी ओर देखते रहे। मन ही मन सोचते रहे कि बिना योग-शक्ति का परिचय पाये कैसे वे माँ को अपना गुरु बनायेंगे? चाहे कुछ भी हो, पहले इन्हें आजमाना होगा।

अचानक दिलीप कुमार ने कहा—"देखिये माँ, बचपन में श्री रामकृष्ण परमहंस के चित्र के सामने बैठकर मैं ध्यान लगाता था। इससे मेरे मन में भक्ति का उद्रेक होने पर भी कभी कुछ अलौकिक अनुभव नहीं हुआ। न कोई प्रकाश देखा और न कोई ज्योति मूर्ति। दरअसल योग-शक्ति के बारे में मेरी कोई धारणा नहीं बनी। मैं यहाँ आया हूँ योग-शक्ति अर्जन करने। श्री अरविन्द ने कहा कि मैं आपसे दीक्षा लूँ। यही वजह है कि मैं आपसे यह जानना चाहता हूँ कि मेरे मन में विश्वास उत्पन्न कर सकती हैं या नहीं?"

हँसकर माँ ने कहा—"प्रयत्न करूँगी। अच्छा, तुम तो होटल में ठहरे हो न?"

"जी, हाँ।"

"कब सोने जाते हो?"

"नौ बजे।"

"नौ बजे सोने जाते हो। सोने के पहले एक काम करना।"

दिलीप कुमार राय ने आग्रह के साथ पूछा—"उस वक्त क्या करना होगा?"

माँ ने हँसकर कहा—"कोई खास काम नहीं है। उस वक्त ध्यान लगाकर बैठ जाना। ध्यान में बैठकर अपने को मेरी ओर उन्मोचित करना। मैं यहाँ से तुम्हारी एकाग्रता बनाये रखूँगी। शायद कुछ महसूस कर सकते हो जिसकी जानकारी विज्ञान या तर्क के द्वारा प्राप्त नहीं कर सकोगे?"

माँ की बातें सुनकर दिलीप बाबू प्रसन्न हो उठे। उन्होंने अनुमान लगाया कि ध्यान के समय माँ अपनी शक्ति का प्रदर्शन करेंगी। आखिर मेरे चैलेंज को इन्होंने स्वीकार कर ही लिया। माँ से विदा लेकर वे होटल में चले आये। भोजनादि से निवृत्त होकर फर्श पर बैठ गये।

यद्यपि सर्दी का मौसम था, फिर भी पंखा चालू कर दिया। इसके बाद चारों ओर सतर्क भाव से देखने के बाद वे ध्यान पर बैठ गये। अपने मन को केन्द्रीभूत करने लगे। धीरे-धीरे उनकी अनुभूति उन्हें घेरने लगी। सारा शरीर लकड़ी की तरह सख्त हो गया। तमाम बदन पसीने से तर होता गया। दिल की धड़कन तेज हो गयी। एक अज्ञात भय से उनका शरीर काँपने लगा। उन्हें यह महसूस होने लगा कि अगर कुछ देर तक यही स्थिति रही तो मृत्यु अनिवार्य है। प्रयत्न करने पर भी वे इस कष्ट से मुक्ति नहीं पा रहेथे।

कब तक यह स्थिति रही, पता नहीं चला। ठीक इसी समय उन्हें एक साधक की सलाह याद आयी। उस साधक ने कहा—"अगर साधना या ध्यान में डर लगे तो माँ का स्मरण करना। तब देखोगे कि तुम्हारा सारा भय, सारी परेशानी दूर होती जाएगी।"

उस समय साधक की इस सलाह पर दिलीप बाबू को हँसी आयी थी। लेकिन इस वक्त न जाने क्यों उनका मन माँ को स्मरण करने के लिए उतावला हो उठा।

आश्चर्य! माँ का नाम लेते ही हृदय की धड़कन स्वाभाविक गति पर आ गयी। मस्तिष्क शांत होने लगा। गोकि शरीर पसीने से तर था, पर वह पहले की अपेक्षा और कड़ा हो गया था। उन्हें लगा कि अब और कड़ा होने पर सारा बदन टूट जायगा। इस कष्ट में भी वे यह अनुभव कर रहे थे कि अब मन से भय गायब होता जा रहा है। उन्हें यह समझते देर नहीं लगी कि बाहर से कोई उन पर क्रिया कर रहा है। आज के पहले इस तरह का अनुभव उन्हें कभी नहीं हुआ था।

सिर के ऊपर पंखा तेजी से घूम रहा है, फिर भी पसीना बहता चला जा रहा है। शरीर की प्रत्येक माँसपेशी को कोई अज्ञात शक्ति जैसे मरोड़ रही है। वस्तुतः वे जाग्रत अवस्था में बैठे हैं। नींद में कोई सपना नहीं देख रहे हैं।

दूसरे दिन जब वे आश्रम में आये तब माँ ने पूछा—"मजे में हो?"

दिलीप बाबू इस प्रश्न का क्या जवाब देते? उन्हें लगा जैसे माँ कह रही हैं—"कल रात को मेरी योग-शक्ति का परिचय तुम्हें मिल गया था न?"

नहीं, माँ ने मौखिक रूप से कुछ नहीं कहा। दिलीप बाबू से रहा नहीं गया। बोले—"माँ।"

"बोलो।"

"कल मुझे आपकी योग-शक्ति का परिचय मिला था।"

"सच? किस तरह?" माँ हँस पड़ीं।

दिलीप कुमार ने कल रात की घटना का जिक्र करते हुए सारी राम कहानी सुनायी। उनकी बातें सुनकर माँ खिलखिलाकर हँस पड़ीं।

बाद में माँ गंभीर होकर बोलीं—"मैं तुम्हें कष्ट देना नहीं चाहती थी। मगर तुमने जबरन मुझे बाध्य किया, अन्यथा मेरी शक्ति तुम्हें शांति और आनन्द देती। तुम अपने मन में अविश्वास लेकर जबर्दस्ती अड़ गये। भगवान् के ऊपर विश्वास रखना सीखो।"

दिलीप बाबू अपलक दृष्टि से माँ को देखने लगे। माँ ने आगे कहा—"अब नित्य ध्यान करते रहना। भविष्य में किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा।"

इस घटना के बाद से दिलीप कुमार आजीवन माँ की कृपा प्राप्त करते रहे।

इसी प्रकार की एक घटना श्री चारुचन्द्र दत्त के साथ हुई थी। दत्त महाशय जवानी के आलम में श्री अरविन्द के सहयोगी और क्रान्तिकारी थे। अपने अनुभव के बारे में उन्होंने लिखा है—

''मैं आश्रम में माँ के निकट अपरिचित था। उनके भक्तों तथा अन्य लोगों की जबानी अनेक बातें सुनता रहा। परन्तु कभी इन सब बातों पर ध्यान नहीं दिया। यह सत्य है कि मैं उन्हें शक्ति-सम्पन्न महिला समझता रहा। इसके पहले मैं श्रीमती एनी वेसेण्ट और भगिनी निवेदिता के सम्पर्क में था। किन्तु उन्हें साष्टांग प्रणाम करने का प्रश्न ही नहीं था। पाण्डिचेरी की माँ के सामने जाने तक यह समस्या मेरे मन में उत्पन्न नहीं हुई। जब अचानक यह समस्या मेरे सामने आयी तब स्वयं प्रभु ने अपने आप हल कर दिया, अन्यथा प्रारंभ में ही योग-शिक्षा की समाप्ति हो जाती।

उन दिनों दर्शन के समय माँ सभी को आशीर्वाद देती थीं। एक दिन मैं दर्शक-मण्डली के मध्य खड़ा था। खड़े-खड़े मैंने सोचा— अगर मैं इस यूरोपीय महिला का चरण-स्पर्श न करूँ तो मेरा क्या होगा? तुरंत मैंने निश्चय किया कि कपट आचरण नहीं करूँगा। अगर चरण-स्पर्श करने की मेरी इच्छा नहीं होगी तो केवल दोनों हाथ उठाकर नमस्कार करूँगा। इसके बाद आश्रम से वापस जाकर माँ को पत्र लिखूँगा— 'श्रद्धास्पद माँ, आश्रम के नियमों का पालन करने में अपने को असमर्थ पाकर मैं पाण्डिचेरी से चला जा रहा हूँ।' लेकिन मेरे प्रभु ने मेरी रक्षा की। जिस क्षण मेरी निगाहें माँ के चरण-कमलों पर पड़ीं त्योंही मेरे अन्तर ने कहा—'अरे निर्बोध, इन चरणों को तू मानव का समझ रहा है?' तभी मैं उनके ज्योतिर्मय चरणों पर गिर पड़ा। तुरंत मेरे शरीर में तड़ित वेग से शक्तिशाली स्पन्दन दौड़ गयी और माँ का देवत्व प्रकट हो गया।''

+ \+ \+ \+

सन् १९७३ के प्रारंभ से माँ धीरे-धीरे अन्तराल में अधिक रहने लगी थीं। २१ मई, सन् १९७३ के दिन से उन्होंने बाहरी कामकाज करना बिलकुल बंद कर दिया। इस वर्ष महर्षि के जन्मदिन के अवसर पर यानी १५ अगस्त के सिलसिले में भक्तों की काफी भीड़ आने लगी। लोगों को यह कहते सुनकर कष्ट हुआ कि माँ तो अन्तराल में चली गयी हैं।

इस समस्या को सुनकर लोगों को इस बात की उत्सुकता होने लगी कि क्या हमें माँ का दर्शन प्राप्त होगा? माँ समाधि पर बैठी हैं। आश्रम के सेक्रेटरी तथा कर्मचारी इस बारे में ठीक से कुछ बता नहीं पा रहे हैं।

१४ अगस्त के दिन समाधि भंग करने के पश्चात् माँ ने पूछा—''आज कौन-सी तारीख है?''

माँ को बताया गया। तब माँ ने कहा—''१५ अगस्त को सायंकाल ६-१५ पर सभी को दर्शन प्राप्त होगा।''

उस दिन अपार जनसमूह ने माँ का दर्शन किया।

इसके बाद ६ नवम्बर तक पुनः समाधि में नहीं गयीं। १० नवम्बर को सहसा वे अस्वस्थ हो गयीं। १७ नवम्बर को ७ बजकर २५ मिनट पर अन्तिम श्वास लेने के बाद वे परमब्रह्म में लीन हो गयीं।

१८ नवम्बर सन् १९७३ के दिन आकाशवाणी के जरिये यह समाचार प्रसारित हुआ कि श्री अरविन्द आश्रम की श्रीमाँ ने महासमाधि ले ली है।

माँ के बारे में श्री अरविन्द ने कहा था—"मेरी सारी उपलब्धियाँ, निर्वाण और सब कुछ—केवल कहानी बनकर रह जाती— माँ ने उसे सही मार्ग दिखाया। उसे कार्य-रूप में परिणत किया। अगर वे न आतीं तो पूर्ण प्रकाश न होता। वे इस तरह की साधना और क्रिया तो बचपन से ही करती आ रही हैं।"

महानन्द गिरि

महानन्द गिरि

सर्वेयर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी को चुपचाप बैठा देखकर उनके सहयोगी अमियदास ने पूछा— "बनर्जी बाबू, आज बड़े उदास दिखाई दे रहे हैं, क्या बात है?"

सुरेन्द्रनाथ ने एक बार अमिय बाबू की ओर देखा, फिर कहा—"आजकल मेरे ग्रह ठीक नहीं हैं। बड़ी परेशानी झेल रहा हूँ।"

"कैसी परेशानी?" अमिय बाबू ने पूछा।

सुरेन्द्रनाथ ने कहा—"पत्नी एक अर्से से बीमार चल रही थी। परसों से लड़की भी बीमार हो गयी है। पानी की तरह पैसा बह रहा है। दीदी और जीजा भी परेशान हैं।"

अमिय बाबू ने सुझाव दिया—"कुछ दिनों की छुट्टी ले लीजिए।"

एक गहरी श्वास लेकर सुरेन्द्रनाथ ने कहा—"पत्नी की बीमारी में ही सारी छुट्टियाँ समाप्त हो गयी हैं। अब लेने पर वेतन कट जायगा। फिर पता नहीं साहब देंगे या नहीं।"

शाम को सुरेन्द्रनाथ घर आये तो दीदी ने कहा—"बेबी को लेकर डाक्टर के पास चले जाओ। तीसरे पहर से वह बिलकुल शांत है।"

डाक्टर ने जाँच के बाद कहा—"दवा तो दे रहा हूँ, पर आश्वासन नहीं दे सकता। अगर रात कट गयी तो लड़की खतरे से बाहर हो जायेगी।"

सुरेन्द्रनाथ सारी बात समझ गये। राह चलते-चलते उन्हें याद आया कि विवाह के बाद जब वे प्रथम पुत्री के पिता बने तब दीदी ने कहा था—"पहली संतान बेटी होने पर पिता की लम्बी आयु होती है। इसका कन्यादान मैं करूँगी।"

दो परिवारों के बीच लड़की पलती रही। बुआ से अधिक प्यार पिता से मिला। बहुत खूबसूरत होने के कारण उसका नाम रखा गया— आभा। माँ केवल दूध पिलाती थी। शेष समय वह बुआ या पिता की गोद में रहती थी।

दूसरे दिन मुहल्लेवालों को मालूम हो गया कि सुरेन्द्रनाथ की इकलौती बेटी चल

बसी। अभी यह घाव सूखा भी नहीं था कि दो सप्ताह बाद पत्नी भी साथ छोड़ गयी। इन दो मौतों के कारण सुरेन्द्रनाथ की मानसिक दशा खराब हो गयी। लोग सांत्वना देते रहे, पर इसका कोई असर नहीं पड़ रहा था।

बचपन में माँ-बाप को खोने के बाद बड़ी दीदी ने उन्हें पाल पोसकर बड़ा किया। पढ़ाया-लिखाया और गरीब घराने की खूबसूरत लड़की से विवाह कराया। बी०ए० पास करने के बाद जीजाजी के प्रयत्नों से सप्लाई विभाग में काम करने लगे। सब कुछ ठीक चल रहा था और आज सहसा वज्रपात हो गया।

दीदी को बिना सूचना दिये एक दिन सुरेन्द्रनाथ घर से गायब हो गये। काशी, अयोध्या, मथुरा, वृन्दावन, हरिद्वार, ऋषिकेश आदि तीर्थस्थानों का भ्रमण करते हुए गोदावरी तट के किनारे चले आये। इन सभी स्थानों में उन्हें ऐसा कोई नहीं मिला जिसके प्रति उनके मन में आस्था उत्पन्न हो। उद्‌भ्रांत की भाँति वे घूमते रहे। गोदावरी तट पर एक संन्यासी को देखते ही सुरेन्द्रनाथ आकर्षित हुए। हृदय की वेदना में कमी होने लगी। मन ही मन उन्होंने निश्चय किया कि इस संत से निवेदन करेंगे ताकि वे अपना शिष्य बना लें।

इस उद्देश्य से एक दिन जब उक्त संन्यासी अपनी कुटिया में ध्यानस्थ थे तब उनके चरणों पर अपना मस्तक रखते हुए सुरेन्द्रनाथ ने कहा—"महाराज, मुझे अपना सेवक बना लीजिए।"

संन्यासी ने कहा—"आज तक तुमने कोई सत्कर्म किया है जो चेला बनने चले आये? अगर चेला बनना है तो जाओ, पहले सत्कर्म करो।"

"आज्ञा कीजिए महाराज।"

संन्यासी ने कहा—"इस संसार में पीड़ित मनुष्यों की संख्या कम नहीं है। उन पीड़ितों की सेवा करो।"

"जो आज्ञा।" कहकर सुरेन्द्रनाथ कलकत्ता चले आये। अभावग्रस्त, लाचार, दुःखी मनुष्यों की सेवा करने लगे। उन्हें अस्पताल ले जाकर भर्ती करने लगे। निराश्रितों के सिरहाने बैठकर उनकी सेवा करते हुए वे गरीबों के मसीहा बन गये। धीरे-धीरे पास की सारी रकम समाप्त हो जाने पर वे कुली का काम करने लगे। उससे जो आमदनी होती, उससे अपाहिजों की सहायता करने लगे।

आहेरी टोला स्थित भगवान् लेन नामक गली सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के पिता भगवान् बनर्जी से प्रसिद्ध हुआ था। उसी वंश का संतान अब जूट मिल में कुली का काम कर रहा है, क्योंकि भावी गुरु का यही आदेश है।

सन् १८७० ई० की बात है, उन दिनों सुरेन्द्रनाथ बनर्जी २६ वर्ष के जवान थे।

एक जूट मिल में गुरु की आज्ञा से काम कर रहे थे। एक दिन जब वे मिल से बाहर निकले तो देखा— उनके सामने गुरुदेव खड़े हैं।

प्रणाम करते ही उन्होंने कहा—"सुरेन्द्र, तुम्हारी परीक्षा समाप्त हो गयी है। अब मेरे साथ चलो।"

इस आदेश को शिरोधार्य कर वे चुपचाप गुरु के पीछे-पीछे चल पड़े। एक अर्से बाद बंगाल, आसाम को पारकर दोनों व्यक्ति ब्रह्मा के घने जंगलों में प्रवेश कर गये। चारों ओर घने वृक्षों के कारण सूर्य का प्रकाश सामान्य रूप से छनकर आ रहा था। आसपास से हिंस्र पशुओं की आवाजें आ रही थीं। राह चलते अचानक रास्ते से साँप सरसराते गुजर जा रहे थे। यह सब देखकर सुरेन्द्रनाथ का हृदय काँपने लगा। भरोसा इतना था कि आगे-आगे गुरुदेव चल रहे थे।

ऊबड़-खाबड़ रास्ते से चलने में कष्ट हो रहा था। बगल की नदी में गिरने का भी डर था। दूसरी ओर ऊँची कगार थी। इस रास्ते से गुरुदेव आगे-आगे चल रहे थे। सुरेन्द्रनाथ पिछड़ जाने के भय से तेज कदमों से चलकर गुरु के समीप आ जाते रहे। काफी दूर आने के बाद एक घाटी के पास गुरुदेव ठहर गये। यहाँ जरा चारों ओर खुला क्षेत्र था। पास ही एक शिला पर बैठकर गुरुदेव ने कहा—"आज हम लोग काफी पैदल चले हैं। यहाँ थोड़ी देर विश्राम करेंगे।"

सुरेन्द्र स्वयं ही बुरी तरह थक गया था, पर इस भय से कुछ कह नहीं पा रहा था कि वृद्ध गुरुदेव बिना विश्राम किये चल रहे थे। उनके साहस को देखकर वह स्वयं चकित था। शायद अन्तर्यामी गुरुदेव उसके मन के भावों को समझ गये थे।

थोड़ी देर बाद सूर्यानन्द गिरि ने कहा—"भूख लग रही है, कुछ खा लिया जाय।"

सुरेन्द्र को भी भूख लगी थी, पर मुँह खोलकर कुछ कह नहीं पा रहे थे। अब सवाल यह है कि इस बियावान जंगल में खायेंगे क्या? आसपास फलों का कोई वृक्ष भी नहीं है। धीरे से सुरेन्द्र ने कहा—"इस जंगल में खाना कहाँ मिलेगा? किसी पेड़ में कोई फल भी नहीं है जो तोड़ लाऊँ।"

गुरु ने कहा—"बात तो ठीक कह रहे हो। यहाँ कुछ दिखाई नहीं दे रहा है। एक काम करो। तुम जिस पत्थर पर बैठे हो, उसे हटाकर देखो। उसके नीचे कुछ है या नहीं?"

पत्थर हटाकर देखने के बाद सुरेन्द्र ने कहा—"हाँ, है। कन्दे की तरह कोई जड़ है।"

"लाओ देखूँ।"

शिष्य ने उस जड़ को उखाड़कर गुरु को दिखाया। उसे अच्छी तरह देखने के बाद सूर्यानन्द स्वामी ने कहा—"बहुत बढ़िया चीज है। तुम एक काम करो। इसे भून डालो।"

गुरु के आदेश पर सुरेन्द्र ने उस जड़ को भूनकर साफ किया। इसके बाद चोखा की तरह मीज दिया। अब उसे एक पत्ते पर रखकर गुरुदेव को देते हुए सुरेन्द्र ने कहा—"लीजिए गुरुदेव, सेवन कीजिये।"

गुरुदेव एक बार उस पदार्थ को, फिर शिष्य की ओर देखने के बाद 'शिवोहम-शिवोहम' कहते हुए थोड़ा-सा लेकर खा गये। शेष भाग सुरेन्द्र की ओर बढ़ाते हुए बोले—"लो, अब इसे तुम खा जाओ।"

सुरेन्द्र को खाने में हिचक होने लगी। पता नहीं, किस चीज की जड़ है। स्वयं गुरुदेव ने थोड़ा-सा खाया और बाकी अधिक भाग उसे दे दिया। डरते-डरते उसने थोड़ा-सा खाया।

खाने के साथ ही स्वाद से ज्ञात हुआ— यह तो अमृत है। जीवन में ऐसी स्वाददार चीज इसके पूर्व कभी चखा नहीं था। वे अपने लोभ को सम्हाल नहीं सके। शेष भाग को तुरंत मुँह में डाल लिया। लेकिन तुरंत उगलना पड़ा। उतना खा नहीं पाये। शिष्य की यह हालत देखकर गुरुदेव मुस्करा उठे।

गुरु ने कहा—"हम भोजन कर चुके। अब थोड़ी देर यहाँ विश्राम करेंगे ताकि थकान मिट जाय। क्या विचार है तुम्हारा?"

जड़ का चोखा खाने से सुरेन्द्र की भूख तथा थकान दोनों दूर हो गयी थी। वह गुरु की राय पर सहमत होते हुए एक पत्थर पर लेट गया। गुरु पास ही एक बड़े चट्टान पर सो गये।

अभी थोड़ी देर हुए झपकी लगी थी कि शिष्य की आँखें सहसा खुल गयीं। उसने देखा— सूर्य पेड़ की शिखा से उतरकर जड़ के समीप आ गये हैं। चारों ओर अंधकार बढ़ता जा रहा है। क्या आज की रात इस खुले चट्टानों पर गुजारनी होगी? भयभीत दृष्टि से उसने गुरु की ओर देखा। गुरु ध्यानमग्न हो चुपचाप पड़े रहे।

धीरे-धीरे तरोई की बीज की तरह अंधकार और घना हो गया। आसपास से जंगली जानवरों की आवाजें आने लगीं। भय से शिष्य की आँखें बड़ी-बड़ी हो गयीं। वह अपनी कमजोरी को छिपाने के लिए भगवान् का नाम जपने लगा। जब भय की मात्रा और बढ़ गयी तब धीरे से गुरु के चरणों के समीप आकर बैठ गया।

ठीक इसी समय न जाने साँप या अन्य कोई जानवर पैरों के समीप से गुजर गया। उसके चलने की सरसराहट आवाज से सुरेन्द्रनाथ के मुँह से चीख निकलते बची। भय से जबान सूख गयी। वे पत्थर के ऊपर चढ़ गये। इधर गुरुदेव बेफिक्र होकर सोते रहे। भय-आतंक के चिह्न उनके चेहरे से प्रकट नहीं हो रहे थे। यह देखकर सुरेन्द्रनाथ मन ही मन इष्ट नाम जपने लगे।

धीरे-धीरे अंधकार काफी घना हो गया। हवा के झोंके खा बड़े-बड़े वृक्ष

वातावरण को और भी डरावना बना रहे थे। अचानक न जाने कौन-सा जानवर सुरेन्द्र के शरीर को स्पर्श करता हुआ उछलकर भाग गया। डर के कारण सुरेन्द्र की घिग्घी बँध गयी। तभी जंगली सियार एक स्वर से चिल्लाने लगे। अब सुरेन्द्र गुरु से सटकर बैठा।

ठीक इसी समय गुरुदेव ने कहा—''सुरेन्द्र, इस जंगल में बाघ हैं। यहाँ तुम्हारा रहना ठीक नहीं होगा।''

गुरु की बातें सुनकर सुरेन्द्रनाथ की परेशानी बढ़ गयी। दिन रहते अगर यह बात कहते तो कहीं आश्रय खोजा जाता। अब इस घनघोर अंधियारे में जहाँ अपना हाथ-पैर दिखाई नहीं दे रहा है, कहाँ जायगा? गुरुदेव कहना क्या चाहते हैं, यह भी समझना कठिन हो रहा था। इस जंगल में आश्रय मिलेगा कहाँ? कहीं गुरुदेव उसे डरपोक समझकर भयभीत तो नहीं कर रहे हैं?

तभी गुरुदेव ने कहा—''तुम यहाँ बहुत डर गये हो। रात भर के लिए तुम्हें सुरक्षित स्थान में जाकर रहना होगा। पुनः हम गन्तव्य स्थल की ओर चलेंगे। तुम एक काम करो। सामनेवाले जंगल की ओर बढ़ जाओ। कुछ दूर आगे जाने पर तुम्हें सुरक्षित आश्रयस्थल मिल जायेगा।''

सुरेन्द्र ने प्रश्न किया—''और आप कहाँ रहेंगे?''

गुरुदेव ने कहा—''मैं तो माँ की छत्रच्छाया में हूँ। मुझे कोई डर नहीं है। तुम बुरी तरह डर गये हो। तुम्हारे लिए यह जरूरी है कि तुम सुरक्षित स्थान में जाकर आराम की नींद ले सको।''

गुरु का आदेश मानकर भयभीत अवस्था में सुरेन्द्र सावधानी के साथ आगे बढ़ता गया। रह-रहकर पीछे दूर बैठे गुरुजी को देख लेता रहा। कुछ दूर आगे बढ़ने पर एक जगह से हल्की रोशनी आती दिखाई दी। अब वे तेज कदमों से चलने लगे। धीरे-धीरे प्रकाश स्पष्ट हो उठा। दूर से लगा जैसे किसी झोपड़ी के बरामदे से यह रोशनी जंगल को आलोकित कर रही है।

मिट्टी की एक छोटी झोपड़ी। बाहर बरामदे में एक प्रदीप जल रहा था। प्रदीप की हल्की रोशनी में सुरेन्द्रनाथ ने देखा कि बरामदे में एक भैरवी खड़ी है। सिर पर जटा। श्यामवर्ण और पूर्ण युवती। सुरेन्द्रनाथ सहमकर खड़े हो गये। गौर से उन्होंने भैरवी की ओर देखा। उनके शांत चेहरे पर वात्सल्य का भाव था। इस आकृति को देखते ही सुरेन्द्रनाथ को अपनी माँ की याद आ गयी। उनकी माँ की शक्ल ऐसी थी। उन्होंने आगे बढ़कर कहा—''माँ।''

''कहो बेटा?''

''क्या रात भर के लिए आप मुझे अपनी कुटिया में आश्रय देंगी?''

"अवश्य दूँगी। आओ, भीतर आ जाओ।"

भैरवी से आश्वासन पाकर सुरेन्द्रनाथ का भय दूर हो गया। वे भैरवी के साथ कुटिया के भीतर आये। प्रदीप के प्रकाश में उन्होंने देखा— छोटी कुटिया जरूर है, पर काफी साफ सुथरा है। जमीन पर बिस्तर लगा था। उस ओर इशारा करते हुए भैरवी ने कहा—"बैठो, बेटा।"

संकोच के साथ सुरेन्द्रनाथ बिस्तर पर बैठे। इस कमरे के अलावा अन्य कोई कमरा दिखाई नहीं दे रहा था। उनके मन में प्रश्न उठा कि क्या इसी कमरे में मुझे इस जवान भैरवी के साथ सोना पड़ेगा? नीतिबोध का संस्कार उन्हें पीड़ा देने लगी।

इधर तब तक भैरवी कुटिया का दरवाजा बंद कर सुरेन्द्र के पास बिछौने पर आकर बैठ गयी। कुटिया के बाहर बाघ गरज रहे थे और दूर कहीं से हाथी के चिग्घाड़ने की आवाजें आ रही थीं। सुरेन्द्र का हृदय भय से काँपने लगा।

भैरवी ने कहा—"रात हो गयी है, अब तुम सो जाओ, बेटा।"

पैदल चलने के कारण सुरेन्द्रनाथ बुरी तरह थक गये थे। इस वक्त नींद के कारण आँखें बोझिल हो रही थीं। मगर एक समस्या उनके दिल को कुरेद रही थी। निर्जन कमरे में इस युवती के साथ एक ही बिस्तर पर कैसे रात गुजारेंगे? कहीं पतन हो गया तब साधना की क्या गति होगी?

"सो जाओ बेटा।" भैरवी ने पुनः कहा।

इधर सुरेन्द्रनाथ के मस्तिष्क में नाना प्रकार की बातें दौड़ रही थीं। अगर इस वक्त कुटिया के बाहर जाकर रात गुजारता हूँ तो निस्सन्देह बाघ का शिकार होना पड़ेगा।

सुरेन्द्रनाथ के मन का ऊहापोह भैरवी से छिपा नहीं रहा। वह बोली—"ऊहापोह करने की आवश्यकता नहीं है। जितना सोचोगे, उतना बढ़ता ही जायेगा। इस वक्त तुम थक गये हो, चुपचाप सो जाओ।"

अब सुरेन्द्रनाथ ने प्रश्न किया—"आप कहाँ सोयेंगी?"

"तुम्हारे पास। इधर सो जाऊँगी।"

"मेरे पास?"

"हाँ, माँ-बेटे का जो रिश्ता है। लड़के के पास सोने में माँ को हिचक कैसी?"

"यह संभव नहीं होगा माँ।"

"तब तो मुझे बाहर बरामदे में सोना पड़ेगा?" कहने के साथ ही भैरवी उठी और दरवाजे की ओर बढ़ गयी।

यह देखकर सुरेन्द्रनाथ ने कहा—"माँ।"

"कहो, बेटा?"

"आप बाहर मत जाइये। इस कमरे में ही रहिये।"

"ठीक है। जब तुम कह रहे हो तब कमरे में रह जाऊँगी।" कहने के पश्चात् वे वापस लौटकर बिस्तर के एक ओर सो गयीं।

चिड़ियों के कोलाहल से सुरेन्द्रनाथ की आँखें खुलीं। वे चौंककर उठ बैठे। चकित दृष्टि से चारों ओर देखा— न भैरवी दिखाई दी और न बिस्तर। कुटिया भी न जाने कहाँ गायब है। वे तो जंगल के भीतर पड़े हुए हैं। चारों ओर बाघ के पदचिह्न साफ दिखाई दे रहे हैं। रात भर शायद बाघों का दल उनके चारों ओर घूमता रहा। क्या यह भी गुरुदेव की कोई लीला थी। एक भी रहस्य उनकी समझ में नहीं आ रहा था। धीरे-धीरे वे गुरुदेव के पास चले आये।

यहाँ आते ही गुरु सूर्यानन्द ने पूछा—"क्यों सुरेन्द्र, कल तुम्हें आश्रम मिल गया था न?"

यह बात सुनते ही सुरेन्द्रनाथ फफककर रो पड़ा। उसे समझते देर नहीं लगी कि यह घटना गुरु-कृपा के कारण हुई है।

उसकी यह दशा देखकर गुरु ने उसे पास खींचकर गले से लगाते हुए कहा—"तू बड़ा बेवकूफ है। इतने पास पाकर भी तू माँ को पहचान नहीं सका। बहरहाल दुःखी होने की जरूरत नहीं है। यह सब साधना करते समय देख लेगा।"

उसी जंगल में एक दिन स्वामी सूर्यानन्द गिरि ने सुरेन्द्रनाथ को संन्यास की दीक्षा दी और उनका नाम रखा— महानन्द गिरि।

गुरु के आदेश से वे कठोर-साधना में निमग्न हो गये। एक अर्से तक बटुक से साधना कराने के पश्चात् सन् १८८१ में गुरुदेव उन्हें साथ लेकर तारापीठ आये। यहाँ वामाखेपा के सिद्धासन में तपस्या करने का आदेश हुआ। अन्त में एक दिन वे सिद्ध योगी पुरुष बन गये। उस दिन उन्हें पुनः माँ का दर्शन हुआ। आनन्द से उनका मन तृप्त हो गया।

इस सिद्धि के पश्चात् वे कामाख्या में आये। यहाँ से केदारनाथ-बदरीनाथ गये। इसके आगे मानससरोवर जाने की तैयारी करने लगे। ठीक उसी समय गुरु का आदेश हुआ कि अब आगे जाने की जरूरत नहीं है। लोकालय चले जाओ। पीड़ित-मानव की सेवा करो। जनसाधारण का कल्याण करो।

गुरु का आदेश मानकर महानन्द गिरि महाराज हरिद्वार के आगे कनखल में आये। यहाँ १९०६ ई० में उन्होंने आश्रम बनवाया। आश्रम के निर्माण के बाद उन्होंने बारह वर्ष के लिए मौन धारण कर लिया। यहाँ उनकी अनेक योग विभूतियाँ प्रकट हुईं। गुरु के आदेशानुसार दुःखी और पीड़ित मानव की सेवा करने लगे। लोगों को यही उपदेश देते— नाम जपो। नाम के प्रभाव से सारा क्लेश दूर हो जायगा और अन्तकाल में मुक्ति

प्राप्त करोगे। भगवान् के नाम में अपार-शक्ति है। किसी को ताराशंकर, किसी को सीताराम या राधेश्याम मंत्र देते थे।

+ + + +

सन् १९०८ की घटना है। लुधियाना निवासी द्वारिकानाथ बोहरा की पत्नी का सहसा निधन हो गया। प्रौढ़ावस्था में पत्नी का न रहना बहुत खल जाता है। यहाँ तक कि मानसिक संतुलन खराब हो जाता है। द्वारिकानाथ अपनी पत्नी को बहुत चाहते थे। पत्नी भक्तिमती और सेवापरायण थी।

द्वारिकानाथ ने सोचा कि मृतात्मा की मुक्ति के लिए उसका चिता-भस्म हरिद्वार में विसर्जित करेंगे। सौभाग्य से इस वर्ष हरिद्वार में पूर्ण कुंभ का मेला लगा है। अपने इस निश्चय की सूचना उन्होंने अपने छोटे भाई को दी।

इस समाचार को सुनकर छोटे भाई की पत्नी कुलदीप ने निश्चय किया कि वह भी जेठजी के साथ कुंभ में जायगी। वहाँ देश के कोने-कोने से न जाने कितने साधु-संत आयेंगे। शायद उनके आशीर्वाद से मेरा भला हो जाय।

कुलदीप को इस बात का कष्ट था कि एक के बाद एक करके उसके आठ बच्चे हुए और सभी शिशु-अवस्था में मरते गये। किसी बच्चे के मुँह से 'माँ' शब्द सुनने का अवसर नहीं मिला। डाक्टरों के इलाज से भी कोई लाभ नजर नहीं आ रहा है। पति दीनानाथ इस गम को कड़वे घूँट की तरह पी जाते थे, पर कुलदीप की मानसिक अवस्था बिगड़ती जा रही थी।

जेठजी के साथ हरिद्वार जाने के बारे में जब उसने दीनानाथ से कहा तो पति ने इनकार नहीं किया। कम-से-कम इसके मन को शान्ति तो मिलेगी। यात्रा से मन भी बहल जायगा। उन्होंने अनुमति दे दी।

छोटी बहू भी हरिद्वार जायगी, सुनकर द्वारिकानाथ ने विरोध नहीं किया। वे कुलदीप की मानसिक स्थिति से अच्छी तरह परिचित थे। उन्होंने भी सोचा—भले ही कोई लाभ न हो, इस यात्रा से उसे मानसिक शान्ति मिल जायगी।

हरिद्वार आकर द्वारिकानाथ ने अपनी पत्नी का चिता-भस्म गंगा में प्रवाहित किया। इसके बाद भातृ-वधू को साथ लेकर वे कनखल, स्वर्गाश्रम और ऋषिकेश का दर्शन करने के पश्चात् पुनः हरिद्वार आये।

दोनों ही की आँखें उच्चकोटि के उस संत की तलाश में लगी रहीं जो इन्हें सांत्वना दे सके। कुंभ का अंतिम स्नान समाप्त हो गया। यात्री और संन्यासियों का दल अपने-अपने स्थान की ओर रवाना हो गये। चहल-पहल में कमी आ गयी। लेकिन इनकी इच्छा की पूर्ति नहीं हुई।

सहसा एक दिन काला चश्मा पहने एक संन्यासी की ओर कुलदीप आकर्षित हुई। उनके चरणों को स्पर्श करते ही वह फफककर रो पड़ी।

संत ने आशीर्वाद देते हुए कहा—''बेटी, तुम्हारे कष्ट का ज्ञान मुझे हो गया, पर इस दिशा में मैं तुम्हारी कोई सहायता नहीं कर सकता। मेरा अनुमान है कि तुम्हें अपने वर्तमान कष्ट से मुक्ति पाने के लिए स्वामी महानन्द गिरि का आश्रय लेना पड़ेगा। वे इस कष्ट को अवश्य दूर कर देंगे।''

कुलदीप को आशा की किरण दिखाई दी। उसने उत्सुकता के साथ पूछा—''महाराज, वे कहाँ मिलेंगे?''

संत ने कहा—''वे नित्य भोर के समय यहाँ स्नान करने आते हैं। अपने को छिपाकर रखते हैं। बिलकुल सामान्य नागरिकों की तरह आते हैं।''

कुलदीप जरा चिन्तित हो उठी। बोली—''तब मैं उन्हें कैसे पहचान पाऊँगी? अगर आप उनका पता दे दें तो मैं उनकी सेवा में पहुँच जाऊँगी।''

संत ने कहा—''उनके आश्रम में जाने की जरूरत नहीं है। वे यहीं मिल जायेंगे। बस प्रयत्न करते रहना।''

कहने के साथ संतजी ऊपर सड़क पर जाकर न जाने कहाँ खो गये। उनके प्रबोध वचन से कुलदीप के मन में आशा का संचार हुआ। एक अपूर्व आनन्द उसके हृदय में हिलोरें लेने लगीं। अपने भसुर के साथ नित्य ब्राह्म मुहूर्त में गंगा तट पर आती और उस अपरिचित संत की तलाश में कस्तूरी मृग की तरह चारों ओर खोजती रही। इस प्रकार दिन गुजर रहे थे। निराशा के बादल हृदयाकाश में मँड़राने लगे।

कहा जाता है कि तीव्र इच्छा होने पर भक्तों की कामना ईश्वर पूरी करते हैं। एक दिन भोर के समय एक संत को सन्नाटे में स्नान करते देख कुलदीप ने अनुमान लगाया कि यह वही संत हैं जिनकी तलाश में वह परेशान है! वह हल्के कदमों से संत के पास गयी और उनके चरण-स्पर्श किये।

क्षण भर बाद संत ने कहा—''उठो बेटी। आज तुम्हारे जीवन के सभी अमंगल दूर हो गये। ईश्वर तुम्हारा मंगल करेंगे।''

इसके बाद संत महाशय पुनः गंगा में उतरे और नदी से एक पिंडुकी निकालकर कुलदीप को देते हुए बोले—''यही है तुम्हारा पुत्र। इसे पुत्र की भाँति मानकर नित्य इसकी पूजा और सेवा करना तब तुम गर्भवती हो जाओगी। इसके बाद सन्तान का जब जन्म होगा तब इस पिंडुकी को सोने से मढ़वाकर यहाँ गंगा में विसर्जित कर देना। ऐसा करने पर ही तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी।''

इस आदेश को सुनकर कुलदीप ने आगे बढ़कर उस पिंडुकी को ले लिया। महानन्द गिरि ने पुनः कहा—''देखो बेटी, इस पिंडुकी को सोने से मढ़वाकर यहाँ की गंगा में विसर्जित करना होगा यानी हरिद्वार में।''

महानन्द गिरि के आदेश को कुलदीप बड़े ध्यान से सुन रही थी। इसके बाद अत्यन्त श्रद्धा के साथ उसने नमस्कार किया। द्वारिकानाथ ने भी चरण-स्पर्श किया। दोनों

हाथ उठाकर इन दोनों पुरुष-नारी को आशीर्वाद देकर महानन्द गिरि तेजी से कनखल की ओर रवाना हो गये। द्वारिकानाथ के साथ कुलदीप लुधियाना वापस आ गयी।

पत्नी की जबानी सारी घटना सुनकर दीनानाथ अविश्वास के साथ हँस पड़े। दरअसल पिछले १२-१४ वर्ष के भीतर वे आठ-आठ बच्चों को खोकर अविश्वासी बन गये थे। उन्हें ऐसे चमत्कारों के प्रति श्रद्धा नहीं थी।

पति के मजाक करने पर भी कुलदीप का विश्वास डगमगाया नहीं। वह अत्यन्त श्रद्धा के साथ पिंडुकी की पूजा करती रही। उसका फल उसे मिला। कुछ दिनों बाद वह गर्भवती हुई और दसवें माह के प्रारंभ में एक पुत्र की जननी बनी। इस घटना के कारण दीनानाथ के अविश्वासी मन में परिवर्तन हुआ। वे इधर बड़े भाई तथा पत्नी की भक्ति देखकर उपेक्षा पूर्वक मुस्कराते रहे, पर आज वे उसी सन्त की कृपा से पुत्र के पिता बन गये थे।

उन्होंने अपनी पत्नी से कहा— "स्वामीजी ने पिंडुकी को सोने से मढ़ाने की आज्ञा दी है। कल ही मढ़वा दूँगा। इस हालत में तुम्हारा हरिद्वार जाना संभव नहीं है। मैं स्वयं जाकर इस पिंडुकी को प्रवाहित कर दूँगा।"

पति की आस्था देखकर कुलदीप को आत्मसंतोष हो गया। उसने स्वीकृति दे दी। दूसरे दिन स्वर्ण मंडित पिंडुकी लेकर दीनानाथ हरिद्वार रवाना हो गये।

दैवयोग से जिस समय वे पिंडुकी को गंगा में प्रवाह करने जा रहे थे, ठीक उसी समय उनके सामने एक संत दिखाई दिये जिनके रंग-रूप और आकृति के बारे में बड़े भाई तथा पत्नी ने उल्लेख किया था। दीनानाथ ने सोचा— यह महात्मा वही हैं जिनकी कृपा से वे पिता बने हैं। एक अज्ञात प्रेरणा से दीनानाथ उक्त महात्मा के चरणों पर लोट गये।

महात्मा ने उन्हें आशीर्वाद दिया। तभी दीनानाथ ने कहा— "महाराज, जब आपकी इतनी कृपा हुई है तब आपको मेरे घर चलकर बच्चे को आशीर्वाद देना पड़ेगा।"

महानन्द गिरि ने हँसकर कहा— "तुम्हारे यहाँ अवश्य जाऊँगा। बच्चे को आशीर्वाद भी दूँगा। लेकिन इस समय जाना संभव नहीं।"

दीनानाथ ने कहा— "आप अपनी सुविधा के अनुसार आइये महाराज। लेकिन आइये जरूर।"

"ठीक है बेटा। समय होते ही मैं आ जाऊँगा।"

महानन्द गिरि के इस आश्वासन को पाकर दीनानाथ घर की ओर रवाना हो गये।

इधर जिस दिन दीनानाथ रवाना हो रहे थे, उसी दिन उनके लुधियानावाले मकान में एक अद्भुत घटना हो गयी। दोतल्ले में स्थित अपने कमरे में दीनानाथ की पत्नी कुलदीप बच्चे को गोद में लेकर उसे थपकी दे रही थी। अचानक उसने देखा— सामने

महाराज महानन्द गिरि खड़े हैं। वह अवाक् होकर उन्हें देखने लगी। महाराज मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे। उन्होंने आगे बढ़कर बच्चे को गोद में उठा लिया। उसके सिर पर हाथ फेरते हुए आशीर्वाद दिया। इसके बाद बच्चे को माँ की गोद में डाल दिया।

अब तक कुलदीप बेसुध रही। फिर झटपट बिस्तर से उतरकर महाराज के चरण-स्पर्श किये। इसके बाद अपने जेठ को बुलाने के लिए नीचे चली गयी। स्वामीजी आये हैं सुनकर द्वारिकानाथ तेजी से ऊपर आये और उन्होंने भी प्रणाम किया। आशीर्वाद देने के बाद महाराज ने कुशल-मंगल पूछा।

कुछ देर रुकने के बाद द्वारिकानाथ अपने भाई की तलाश में नीचे आये। दीनानाथ ही महाराज को यहाँ ले आया होगा। नीचे कहीं भी दीनानाथ का पता नहीं था। यहाँ तक कि सदर दरवाजा भी बन्द था। द्वारिकानाथ अजीब द्वन्द्व में फँस गये। दीनानाथ गया कहाँ और यहाँ महाराज आये कैसे। तब तक कुलदीप नीचे आ गयी थी। उससे द्वारिकानाथ ने पूछा—''दीनानाथ कहाँ है?''

कुलदीप ने कहा—''मुझे नहीं मालूम।''

''तुमसे दीनानाथ की भेंट नहीं हुई?''

''नहीं।''

''फिर महाराज किसके साथ आये?''

''मैं क्या बताऊँ?''

अब दोनों ही विस्मय के सागर में गोता खाने लगे। दोनों को रहस्य समझ में नहीं आ रहा था। दीनानाथ के अलावा यहाँ महाराज किसके साथ आये हैं? दरवाजा भी बन्द है,.आखिर वे किधर से भीतर आये। उन्होंने सोचा कि इस शंका का समाधान महाराज से किया जाय। यह सोचकर दोनों ऊपर आये तो देखा— स्वामीजी गायब हैं। अगर यह दृश्य एक आदमी देखता तो आँखों का भ्रम मान लिया जाता, पर यहाँ दो आदमियों ने एक साथ इस घटना को देखा। द्वारिकानाथ ने समझ लिया कि बच्चे को आशीर्वाद देने के लिए महाराज आये और चमत्कार दिखाकर चले गये। महाराज जहाँ खड़े थे, उस भूमि को स्पर्श कर दोनों ने प्रणाम किया।

दूसरे दिन दीनानाथ वापस लौटे और बड़े भाई से कहा—''हरिद्वार में महाराज से मुलाकात हुई थी। वे शीघ्र ही हमारे घर आयेंगे।''

द्वारिकानाथ ने मुस्कराकर कहा—''वे आये थे और मुन्ना को आशीर्वाद दे गये हैं।''

इतना कहकर उन्होंने सारी घटना का विवरण सुनाया। बड़े भाई की जबानी सारी बातें सुनकर दीनानाथ ने महाराज के नाम पर प्रणाम किया। इस घटना के कुछ दिनों बाद इस परिवार के लोगों ने महाराज से दीक्षा ले ली।

इसी तरह की एक घटना महानन्द गिरि के शिष्य प्रफुल्ल कुमार मित्र के साथ हुई थी। प्रफुल्ल बाबू की माँ काफी दिनों से अस्वस्थ थीं। मित्र महोदय का घर कलकत्ता से ३०-३२ किलोमीटर दूर चन्दननगर में है। प्रफुल्ल बाबू की माँ ने अनुभव किया कि उनके जाने के दिन आ गये हैं। उनका बचना अब मुश्किल है। उन्होंने अपने पुत्र से कहा कि एक बार महाराज का दर्शन करना चाहती हैं।

प्रफुल्ल बाबू इसके पूर्व माँ को महाराज के निकट ले जाना चाहते थे, परन्तु पता लगाने पर ज्ञात हुआ कि महाराज इन दिनों तीर्थयात्रा के सिलसिले में भारत भ्रमण कर रहे हैं। सौभाग्य की बात है कि वे शीघ्र कलकत्ता आ रहे हैं।

निर्दिष्ट दिन को प्रफुल्ल बाबू हबड़ा स्टेशन पर हाजिर हुए और अपनी माँ की हालत का वर्णन करते हुए अपने यहाँ चलने की विनती की। महाराज ने कोई ध्यान नहीं दिया, बल्कि अन्य जितने लोग अभ्यर्थना के लिए आये थे, उन लोगों में व्यस्त रहे।

यह देखकर प्रफुल्ल बाबू का हृदय रो पड़ा। उन्होंने पुनः एक बार कहा—"माँ, आपके दर्शन के लिए व्याकुल हैं। उनका अंतिम समय उपस्थित है। गुरुदेव, केवल पाँच मिनट के लिए चलिये।"

महाराज ने कहा—"इस वक्त चन्दननगर जाना मेरे लिए असंभव है।"

इतना कहने के पश्चात् महाराज स्वागत के लिए आये भक्तों के साथ स्टेशन से बाहर चले गये।

प्रफुल्ल बाबू की आँखों से आँसुओं की धार बहने लगी। गुरुदेव इतनी उपेक्षा करेंगे, ऐसा विश्वास उन्हें नहीं था। महानन्द गिरि पर सख्त नाराज होकर वे चन्दननगर वापस आये। जब महाराज नहीं आये तब माँ भी नहीं बचेगी। उनके दर्शन की आशा लेकर वह इस धराधाम से अब तक चली गयी होगी। इस तरह की जलपना-कल्पना करते हुए घर आये।

यहाँ आकर देखा— सभी निश्चिन्त हैं। तुरंत माँ के कमरे में गये तो देखा— जो माँ करवट नहीं ले पाती थी, वह खाट पर आराम से पैर फैलाये बैठी न जाने क्या खा रही है।

प्रफुल्ल को देखते ही माँ बिगड़ती हुई बोलीं—"अब तक कहाँ था? गया था महाराजजी को ले आने के लिए और अब आ रहा है? महाराजजी आये, मुझे आशीर्वाद दिया। उस समय सभी को पुकारती रही, पर कोई नहीं आया। किसी ने महाराज को प्रणाम तक नहीं किया।"

प्रफुल्ल बाबू चौंककर बोल उठे—"क्या सचमुच महाराजजी आये थे?"

"तो क्या मैं झूठ बोल रही हूँ?"

"नहीं माँ, तुम पहले की अपेक्षा इस वक्त ठीक दिखाई दे रही हो, इसीलिए पूछा।"

माँ ने कहा—"महाराजजी ने इस सिर पर हाथ रखकर जब आशीर्वाद दिया तभी से मेरी बीमारी दूर हो गयी। अब कोई कष्ट नहीं है।"

"कोई कष्ट नहीं है?"

"नहीं रे। केवल कुछ कमजोरी है। महाराज ने कहा कि डरने की कोई बात नहीं है। जल्द ठीक हो जाओगी।"

महाराज की इस कृपा को देखकर प्रफुल्ल की आँखें पुनः भर आयीं। महाराज की अयाचित कृपा इसके पूर्व भी वे प्राप्त कर चुके हैं। उन दिनों इन्हें दीक्षा नहीं दी गयी थी। दीक्षा लेने के लिए वे कनखल जा रहे थे। महाराज का बुलावा आया था। फीरोजपुर से लुधियाना तक आराम से आ गये। लुधियाना से दूसरी गाड़ी से हरिद्वार जाना है। उस समय शाम के पाँच बजे थे। दुर्भाग्य की बात यह हुई कि वे जिस गाड़ी पर सवार होने का प्रयत्न करते, उस पर चढ़ नहीं पाते थे। एक तो पहले से भीड़ भरी रहती है, दूसरे प्लेटफार्म पर अनेक मुसाफिर भरे हैं।

एक के बाद एक करके तीन गाड़ियाँ निकल गयीं, पर किसी में तिल रखने की जगह नहीं थी। अपनी असफलता से प्रफुल्ल बाबू बेचैन हो उठे। क्या उन्हें दीक्षा प्राप्त नहीं होगी? मन ही मन वे गुरुदेव को स्मरण करने लगे। पुनः एक गाड़ी आयी। उस समय रात के साढ़े ग्यारह बज चुके थे। इस गाड़ी में वे प्रत्येक डिब्बा देखने लगे। कुछ देर बाद गाड़ी ने सीटी बजायी और गार्ड ने हरी झण्डी हिलाना शुरू किया। तभी उनके सामने सर्वेण्ट वाला डिब्बा आया और वे अपनी छोटी पोटली लेकर सवार हो गये। इस डिब्बे में ५-६ रेलवे कर्मचारी एक बेंच पर बैठे हुए थे। इन्हें देखकर दो व्यक्ति उतरकर नीचे बैठ गये और वे उस पर जा बैठे। मन ही मन गुरुदेव को स्मरण करने लगे जिनकी कृपा से बैठने की जगह मिल गयी।

कुछ देर बाद बाकी चारों व्यक्ति बेंच से नीचे उतर गये और इन्हें आराम से सोने का आग्रह किया। दूसरे दिन सुबह नींद खुलने पर उन्होंने देखा कि कमरे में ठसाठस लोग भर गये हैं, पर किसी ने उन्हें छेड़ा नहीं।

सुबह नौ बजे हरिद्वार स्टेशन पर गाड़ी रुकी। वहाँ से कनखल आये। तलाश करते हुए जब वे आश्रम के दरवाजे की समीप पहुँचे तब एक सज्जन ने पूछा—"क्या आप फीरोजपुर से आ रहे हैं?"

प्रफुल्ल बाबू ने सिर हिलाकर स्वीकार किया। उस व्यक्ति ने कहा—"तब देरी मत करिये। जल्द आइये। महाराज बुला रहे हैं।"

प्रफुल्ल बाबू अवाक् रह गये। वे आ गये हैं, यह बात गुरुदेव कैसे जान गये? पास जाकर उन्हें प्रणाम करने के बाद प्रफुल्ल बाबू ने कहा—''आज गाड़ी में बड़ी भीड़ रही। मैं तो चढ़ नहीं पा रहा था। किसी सूरत से सर्वेण्ट रूम में आया।''

महाराज ने कहा—''इससे क्या हुआ? तुम तो रात भर आराम से सोते हुए आये हो।''

यह बात सुनकर प्रफुल्ल बाबू चौंक उठे। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि सामने बैठे महाराज सर्वज्ञ हैं। तुरंत उनके चरणों पर लोट गये।

+ + + +

दिसम्बर माह में हिमाचल-प्रदेश के गृह सचिव पुरुषोत्तम सिंह की पत्नी श्रीमती लावण्यप्रभा सिंह अपने तीन बच्चों को लेकर गुरुजी के आश्रम में निवास कर रही थीं। आश्रम के सामने स्थित तीन कमरेंवाले फ्लैट में वे ठहरी थीं जिस पर फूस का छाजन था। दिन के एक बजे न जाने कैसे फूस में आग लग गयी। हवा के कारण आग फैलती गयी। लावण्यप्रभा दौड़ी हुई आयी। इन्हीं कमरों में उसके बच्चे हैं।

माँ के चीखने पर दो बच्चे तो बाहर दौड़कर आ गये। छोटा बच्चा कमरे में रह गया। लावण्यप्रभा के चीखने पर भी कोई जलते हुए मकान में जाने का साहस नहीं कर पा रहा था। वह बाहर खड़ी जोर-जोर से रो रही थीं।

ठीक उसी समय महानन्द गिरि जलते हुए कमरे में गये और बच्चे को गोद में उठाकर बाहर लाये। आग की लपटों ने उन्हें स्पर्श तक नहीं किया।

महानन्दजी की भोजन-सामग्री अजीब थी। दोपहर को वे चरणामृत पीने के बाद एक गिलास बेलपत्तियों का रस पीते थे। रात को उबले आलू और भुनी हुई मूँगफलियाँ खाते थे। अन्न नहीं खाते थे। दरअसल मूँगफली का सेवन वे अधिक करते थे।

महानन्द गिरि के सभी शिष्यों को यह बात मालूम थी। लोग उनके लिए मूँगफलियों का बराबर प्रबंध करते रहे। एक दिन एक भक्त ने देखा— भण्डार में जितनी मूँगफली है, वह आज समाप्त हो जायगी। लेकिन कल के लिए इन्तजाम कैसे होगा?

भक्त महाशय तुरंत बाजार गये। सभी दुकानदारों के यहाँ तलाश करने पर भी मूँगफली नहीं मिली। वहाँ से लौटकर वह महाराज के कमरे में आया।

महाराज ने पूछा—''क्या बात है, परेशान क्यों हो?''

भक्त ने अपनी समस्या बतायी। महाराज ने कहा—''अब क्या होगा?''

बेचारा भक्त इस प्रश्न का क्या जवाब देता? तभी महाराज ने पूजाघर में ठक-ठक आवाज होते सुनकर उधर उत्सुकतावश देखने लगे। थोड़ी देर बाद भक्त की ओर

देखते हुए उन्होंने कहा—"तुम एक काम करो। अभी तुरंत हरिद्वार स्टेशन चले जाओ। पार्सलघर में पता लगाना कि मूँगफली का कोई पार्सल मेरे नाम से आया है या नहीं। अगर आया हो तो लेते आना।"

हरिद्वार स्टेशन आकर भक्त ने पता लगाया तो ज्ञात हुआ कि आज ही महाराजजी के नाम एक पार्सल आया है। पार्सल लेकर वे सीधे आश्रम आये। पार्सल खोलने पर देखा गया— वह मूँगफलियों से भरा हुआ है।

इस प्रकार की अनेक कहानियाँ महानन्द गिरिजी के बारे में प्रचारित हैं। आपके यौगिक ऐश्वर्य को देखकर भक्त प्रभावित हो जाते थे। सन् १९२८ के १ अप्रैल को आप ब्रह्मलीन हुए थे। कनखल स्थित उनके आश्रम में आपके शिष्य और प्रशिष्य आज भी उनकी स्मृति की पूजा करते आ रहे हैं।

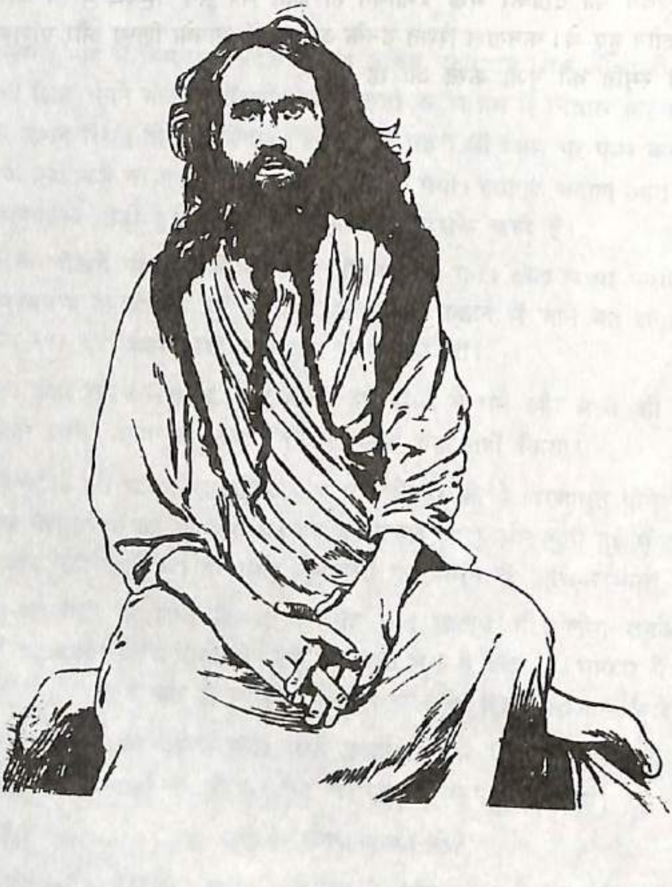

अन्नदा ठाकुर

अन्नदा ठाकुर

चटगाँव से भट्टाचार्य परिवार का एक बालक संस्कृत का अध्ययन करने के लिए काशी नगरी में आया। उसका उद्देश्य था कि संस्कृत भाषा में कृतित्व प्राप्त कर लेने पर वह अपनी जीविका का निर्वाह कर सकेगा। यहाँ उसकी बुआ की ससुराल थी। बुआ की स्नेह साया में रहते हुए वह अध्ययन करने लगा।

एक दिन फूफाजी ने कहा–"संस्कृत का अध्ययन कर रहे हो, ठीक है। लेकिन इससे तुम्हें कोई लाभ नहीं होगा। केवल मान-सम्मान अवश्य प्राप्त होगा। गाँव में जाकर चटशाला में छात्रों को शिक्षा दे सकते हो। बहुत होगा, कुल पुरोहित बन जाओगे। अगर तुम्हारा यही उद्देश्य है तो तुम यहाँ संस्कृत का अध्ययन कर सकते हो। काशी संस्कृत के पंडितों की नगरी है। नगर में वे सम्मानित माने जाते हैं, पर आर्थिक दृष्टि से वे बहुत पिछड़े हुए हैं। ले-देकर यहाँ एक ही कालेज है। अधिकतर पंडित अपने घरों में चटशाला खोलकर छात्रों को पढ़ाते हैं। इससे अच्छा है कि तुम वैद्यगी की शिक्षा लो।"

फूफाजी की बातें सुनकर अन्नदा का सारा उत्साह ठंडा पड़ गया। गरीब परिवार के बालक बहुत सचेतन होते हैं। वह यह समझ गया कि पुरोहित या अध्यापक बनने से कोई लाभ नहीं है। जिस शहर में अधिकांश मुसलमान रहते हैं, वहाँ संस्कृत-भाषा का क्या महत्त्व है। पुरोहितगिरी से जीविका चलाना कठिन होगा। वैद्यगी से जरूर आमदनी हो सकती है। यह सब सोचकर वह कलकत्ता चला आया। यहाँ उसके गाँव के कई भारत प्रसिद्ध कविराज प्रैक्टिस कर रहे थे। वह अपने परिचित दुर्गादास भट्टाचार्य के यहाँ आया और अपना उद्देश्य बताया।

सारी बातें सुनने के बाद उन्होंने कहा–"बेटा, मेरे पास समय का बड़ा अभाव है, वर्ना तुम्हें शिक्षा देने में प्रसन्नता होती। तुम्हारे पिता मेरे घनिष्ठ मित्र हैं, पर आजकल रोगियों की इतनी भीड़ होती है कि मैं सभी का ठीक से निदान नहीं कर पाता। ऐसी हालत में तुम्हें क्या बता सकूँगा। मेरी राय मानो, विजयरत्न के पास चले जाओ। उनसे मेरा नाम बताते हुए सारी बातें कहना। वे तुम्हारी अवश्य मदद करेंगे।"

दुर्गादास के यहाँ से निराश होकर वह कविराज विजयरत्न के पास आया। उन्होंने कहा—"मैं भी भट्टाचार्य की तरह व्यस्त रहता हूँ, पर मैं तुम्हारी मदद अवश्य करूँगा।

एक नया आयुर्वेदिक कालेज खुला है। मैं पत्र लिख देता हूँ। वे तुम्हें ले लेंगें। कुछ दिनों बाद तुम्हें छात्रवृत्ति दिला दूँगा।''

इस आश्वासन से अन्नदा को प्रसन्नता हुई। कुछ दिनों बाद उसे कालेज में प्रवेश मिल गया और अगले माह से छात्रवृत्ति मिलने लगी। मन ही मन उसने भगवान् को धन्यवाद दिया। इस कालेज में उसके गाँव के कई छात्र अध्ययन कर रहे थे। इनमें गिरीशचन्द्र भट्टाचार्य से गहरी मित्रता हो गयी।

एक दिन गिरीशचन्द्र के अनुरोध पर वह उसके मित्र के घर १०० नं० आमाहर्स्ट स्ट्रीट में आया। सामने बैठक में एक युवक बैठा था। उस युवक को अन्नदा का परिचय देते हुए गिरीश ने कहा—''यतीन, आप मेरे मित्र अन्नदा हैं। मेरे सहपाठी और ब्राह्मण हैं। इन्हें प्रणाम करो।''

यतीन ने चरण-स्पर्श किया। इसके बाद गिरीश ने पुनः कहा—''आप हैं, यतीन्द्रनाथ बसु। काम्बेल में पढ़ते हैं। आपका छोटा भाई शचीन परमहंस रामकृष्णजी का शिष्य है। इन दिनों वह बदरीनाथ की यात्रा कर रहा है। पता नहीं, घर वापस आयेगा या नहीं। सुना है कि वह संन्यास-व्रत लेगा।''

इस सामान्य परिचय के बाद अन्नदा का इस घर में आना-जाना प्रारंभ हो गया। कुछ दिनों बाद पता चला कि शचीन बदरीनाथ की यात्रा से वापस आ गया है। गिरीश ने आकर कहा—''चलो, उससे मिल आया जाय। वह विचित्र लड़का है।''

शचीन के घर आने पर अन्नदा ने देखा— एक किशोर युवक मुण्डित-मस्तक, गेरुआ वस्त्र और गले में रुद्राक्ष की माला पहने सामने खड़ा है। गिरीश ने इन दोनों का आपस में परिचय कराने के बाद कहा—''शचीन, मेरे मित्र अन्नदा बाबू हस्तरेखा के विशेषज्ञ हैं। इन्हें अपना हाथ दिखाओ। इन्हें आज इसीलिए साथ ले आया हूँ ताकि तुम लोगों को अपने बारे में कुछ जानकारी हो जाय।''

शचीन का हाथ देखने के बाद अन्नदा ने कहा—''आपको विवाह करना पड़ेगा। आपका विवाहित जीवन सुखमय होगा।''

शचीन ने उपेक्षा की हँसी हँसते हुए कहा—''दीक्षा लेते समय मैंने श्री माँ (शारदा माता) के सामने प्रतिज्ञा की है कि मैं विवाह नहीं करूँगा।''

अन्नदा ने पुनः कहा—''आपको विवाह करना ही पड़ेगा। केवल यही नहीं, आप एक सफल चिकित्सक होंगे।''

शचीन ने कहा—''मेडिकल कालेज में भर्ती होने के लिए ही वापस आया हूँ। बाबूराम महाराज, महिम बाबू आदि लोगों ने यही आज्ञा दी है।''

''तुम डाक्टर बनोगे और विवाह भी करोगे।''

"बकवास है।" कहता हुआ शचीन घर के भीतर चला गया। उपस्थित लोग मुस्कराकर चुप रहे।

यतीन के बाद शचीन से मित्रता होने के कारण अब अन्नदा अक्सर इस घर में अकेला आने लगा था। एक दिन जब वह शचीन के यहाँ से अपने घर जा रहा था तब एक विचित्र घटना हो गयी। राह चलते उसने देखा- चार महिलाएँ अपने सिर पर काली देवी की एक मूर्ति लेकर गंगा तट की ओर जा रही हैं। शायद विसर्जन देने जा रही हैं। देवी मूर्ति देखकर उसने दोनों हाथ उठाकर प्रणाम किया।

अन्नदा के पीछे-पीछे एक सज्जन आ रहे थे। बराबर में आकर उन्होंने अन्नदा को गौर से देखते हुए पूछा-"आप कहाँ से आ रहे हैं?"

"आमाहर्स्ट से। क्यों, क्या बात है?"

उक्त सज्जन ने पूछा-"क्या मैं आपका परिचय जान सकता हूँ?"

"मेरा नाम अन्नदा भट्टाचार्य है। मैं आमाहर्स्ट स्थित सिद्धेश्वर बाबू के यहाँ कल से रहने लगा हूँ। मूल निवास चटगाँव में है। और कुछ?"

"अच्छा, यह बताइये कि अभी-अभी राह चलते आपने किसे देखकर प्रणाम किया?"

अन्नदा ने विस्मय के साथ कहा-"क्या आपने नहीं देखा? चार महिलाएँ श्यामा माँ की मूर्ति सिर पर उठाये विसर्जन के लिए जा रही थीं।"

"मुझे तो नहीं दिखाई दिया। चलिये, आगे बढ़कर यह भी देख लेते हैं।"

"यह आप क्या कह रहे हैं? इतने उजाले में आपको मूर्ति दिखाई नहीं दी?"

"संभव है, मैंने नहीं देखा, पर इस सड़क से कितने लोग आ-जा रहे हैं, इनमें से किसी से पूछ कर देखिये।"

अन्नदा ने आने-जानेवाले कई लोगों से इस बारे में पूछा, पर किसी ने यह नहीं बताया कि उन्होंने महिलाओं को मूर्ति ले जाते देखा है। एक ने तो यहाँ तक कह दिया कि आपका दिमाग खराब हो गया है। भला इस मौसम में कहीं काली-पूजा होती है? बौखलाकर अन्नदा तेजी से गंगा तट की ओर बढ़ गया। काफी दूर जाने पर भी कुछ नजर नहीं आया।

थका-माँदा डेरे पर आकर बैठ गया। कुछ देर बाद गिरीश ने आकर कहा-"जाओ, संध्या कर लो।"

इस आदेश को सुनकर वह चुपचाप पूजावाले कमरे में आकर संध्या (धार्मिक क्रिया) करने लगा। कमरे में गिरीश ने आकर धूप-दीप जलाया, फिर चला गया। इसी बीच अन्नदा का बाह्यज्ञान लुप्त हो गया। उसकी आँखों के सामने माँ की अनेक लीलाएँ होने लगीं।

पता नहीं, यह सब दृश्य वह कब तक देखता रहा। होश आने पर पता चला कि वह पिछले आठ दिनों तक पागल-सा रहा। उसके सारे उपद्रवों को सहन करते हुए गिरीश उसकी सेवा करता रहा। अपने बारे में इस तरह की बातें सुनकर उसे आश्चर्य हुआ। आखिर ऐसा क्यों हुआ? मगर इस प्रश्न का जवाब उसे कौन देता?

गिरीश ने कहा—"अब तुम स्वस्थ हो गये हो। मेरी राय है कि कुछ दिनों के लिए गाँव चले जाओ। परिवार के बीच रहने से मन बहल जायगा। वहाँ माँ का स्नेह, पत्नी का प्यार मिलेगा।"

इस सलाह को मानकर अन्नदा चटगाँव चला आया। एक अर्से बाद उसे अपने निकट पाकर घर के लोग ही नहीं, पड़ोसी भी प्रसन्नता प्रकट करने लगे। कुछ दिनों बाद एक दिन उसके स्वप्न में एक संन्यासी आये और बोले—"तुम जल्द कलकत्ता रवाना हो जाओ। तुम्हें यह सामग्री दूँगा।" यह कहकर उन्होंने काली देवी की प्रतिमा दिखाई।

दूसरे दिन माँ से कलकत्ता जाने की चर्चा करने पर माँ ने विरोध करते हुए कहा—"अब कलकत्ता जाने की जरूरत नहीं। वैद्यगी पास कर चुके हो, गाँव में वैद्यगी करो।"

प्रतिवाद में अन्नदा कुछ कह नहीं सका। स्वप्न की बात कहने पर वे विश्वास नहीं करेंगी। उसे ज्ञात है कि शचीन के पिता सिद्धेश्वर बाबू उसके लिए कलकत्ता में वृहद रूप से दवा कम्पनी खोलने का प्रबंध कर चुके हैं। अखबारों में विज्ञापन दिया गया है। शहर में पोस्टर लगाये गये हैं और हैण्डबिल बाँटे गये हैं। ऐसी हालत में गाँव में रहकर क्या करेगा?

दूसरे दिन रात को स्वप्न में संन्यासी पुनः आया और बोला—"कल ही कलकत्ता चले जाओ वर्ना भयंकर दुर्घटना का सामना करना पड़ेगा।"

उसी रात को पड़ोसी के मकान में आग लगी। इस आग ने अन्नदा के बैठक और गोशाले को भस्म कर दिया। दूसरे दिन बिना किसी को कुछ कहे अन्नदा कलकत्ता चला आया। उसे अपने स्वप्न पर विश्वास हो गया था।

सिद्धेश्वर बाबू की पत्नी ने अन्नदा के थके चेहरे को देखकर कहा—"चलो ठाकुर, खा-पीकर आराम करो। काफी थके हुए मालूम पड़ते हो।"

भोजन के पश्चात् अन्नदा गहरी नींद में सो गया था। ठीक इसी समय वही पूर्व-परिचित संन्यासी स्वप्न में आकर बोला—"कल सबेरे गंगा तट पर जाकर अपना मुण्डन कराने के बाद स्नान करना।"

अन्नदा ने पूछा—"किस अपराध के कारण मुझे मुण्डन कराना पड़ेगा?"

"अपराध नहीं, आदेश है।"

"किसका आदेश है?"

"गुरुजी का।"

अन्नदा ने झल्लाकर कहा–"तेरी गुरुजी की ऐसी की तैसी। जाओ, अपने गुरुजी से कह दो कि वह अपना मुण्डन करवा लें। मैं किसी का आदेश मानने को तैयार नहीं।"

संन्यासी ने मृदु स्वर में काफी समझाया, पर अन्नदा ने जिद्द पकड़ ली कि वह कोई राय नहीं मानेगा। यहाँ तक कि दूसरे दिन मुण्डन कराने को कौन कहे, गंगा-स्नान करने भी नहीं गया। अनमने भाव से दिन भर घूमता रहा। रात को पुनः वही संन्यासी सपने में आया, उसे देखकर अन्नदा भयंकर रूप से क्रोधित हो उठा। उसका रौद्र-रूप देखकर संन्यासी नौ-दो ग्यारह हो गया।

थोड़ी देर बाद एक नये संन्यासी का आविर्भाव हुआ। इनकी शक्ल देखते ही अन्नदा चौंक उठा। ये संन्यासी थे– रानी रासमणि के आराध्य, स्वामी विवेकानन्द के देवता, ब्रह्मानन्द के पिता– परमहंस रामकृष्णजी। इन्हें देखते ही वह उठकर बैठ गया और प्रणाम किया। परमहंसजी ने हँसकर पूछा–"मुझे पहचान लिया?"

"जी हाँ।"

"मैंने उस संन्यासी को भेजा था। तुमने उसकी सलाह क्यों नहीं मानी?"

अन्नदा ने कहा–"उन्होंने स्पष्ट रूप से कोई कारण नहीं बताया।"

परमहंसजी ने कहा–"अब मैं जो कुछ कह रहा हूँ, उसे ध्यान से सुनो। कल सबेरे मुण्डन करवाने के बाद गंगा-स्नान करना। दिन को शुद्ध आहार करके शुद्ध बिस्तर पर सोना। इसके बाद क्या करना होगा आकर बताऊँगा।"

इतना कहकर परमहंसजी चले गये। परमहंसजी के आदेशानुसार सबेरे अन्नदा ने मुण्डन कराया। स्नान-भोजन के बाद सो गया। रात को परमहंसजी स्वप्न में आये और कहा–"कल भोर के वक्त अपने भक्त मित्रों को लेकर इडेन गार्डेन जाना। वहाँ जिस स्थान पर पाकुड़ और नारियल का पेड़ एक साथ दिखाई दे, वहीं एक मूर्ति है। उसे ले आना। आते समय मौन रहना। जहाँ तक हो सके मूर्ति छिपाकर लाना। अब समय नहीं है। जल्द काम शुरू करो।"

परमहंसजी के जाते ही उसकी नींद खुल गयी। तुरंत शचीन के कमरे में आकर उसने सारी बातें कहने के पश्चात् चलने की तैयारी की। शचीन तुरंत घर से बाहर जाकर अपने दो मित्रों को बुला लाया। राह चलते शचीन ने कहा–"ठाकुर, अपने स्वप्नों के बारे में तुमने अब तक अनेक चण्डूखाने की गप सुनाई है। आज तुम्हारी परीक्षा होगी। अगर मूर्ति मिल गयी तो विश्वास हो जायगा, वर्‌ना हमेशा के लिए गप बंद।"

गवर्नर भवन पार करने के बाद लोग इडेन गार्डेन आये। चारों ओर नारियल के वृक्ष थे, पाकुड़ के साथ कहीं कोई नारियल का वृक्ष दिखाई नहीं दिया। लोग इसी असमंजस में थे कि अचानक शचीन ने कहा—''ठाकुर, वह देखो। तालाब के किनारे पाकुड़ और नारियल के पेड़ हैं। नारियल का पेड़ तो पाकुड़ के भीतर से निकला है।''

सभी उस स्थान पर आये और तेजी से चारों ओर सूखी पत्तियों को उलटने लगे, पर कहीं भी मूर्ति नहीं मिली। बाद में शचीन के एक मित्र के दिमाग में यह बात आयी कि कहीं जड़ के पास पानी में मूर्ति न हो। वह तुरंत पानी में उतर गया। लकड़ी से कोंचते हुए तलाश करने पर पानी के भीतर मूर्ति मिल गयी। काले पत्थर की एक कालीजी की मूर्ति थी। लगभग एक फुट से कुछ अधिक ऊँची थी। एक ही पत्थर से सम्पूर्ण मूर्ति निर्मित थी। सिर पर मुकुट, गले में मुण्डमाल, चतुर्भुज, चरणों के नीचे शिव मूर्ति थी। आँखों में न जाने कौन-सा रत्न था जो चमक रहा था।

स्वप्न में दिये गये आदेशानुसार मूर्ति को छिपाकर मौन रूप में सभी घर ले आये। शचीन की माँ ने कहा—''तुम लोग मूर्ति की सफाई कर डालो। मैं पूजा की सामग्री लेकर आती हूँ। इस घर में कालीमाता का पदार्पण हुआ है, यह खुशी की बात है।''

धूमधाम से पूजा हुई। आसपास के लोगों की भीड़ दर्शन करने आयी। रात को भोजन करने के बाद अन्नदा सो गया। आधी रात के बाद उसके स्वप्न में कालीमाता ने आकर पूछा—''तुम मुझे यहाँ क्यों ले आये?''

अन्नदा ने कहा—''परमहंस रामकृष्णदेव की आज्ञा से।''

कालीमाता ने कहा—''मुझे इस घर में मत रखो। कल गंगा में ले जाकर विसर्जन कर देना।''

''ऐसी आज्ञा न दें। मैं ऐसा नहीं कर सकता।''

''अगर तुमने मेरी आज्ञा का पालन नहीं किया तो अमंगल होगा। निर्वंश हो जाओगे?''

''ऐसी आज्ञा क्यों दे रही हैं, माँ? मैं आपकी पूजा श्रद्धा-भक्ति से करूँगा।''

''मैं एक जगह रहकर पूजा नहीं चाहती। सभी भक्तों के पास रहना चाहती हूँ। मुझे कल विसर्जन कर देना। यही मेरा अंतिम आदेश हैं।'' इतना कहकर कालीमाता चली गयीं। तभी अन्नदा की नींद उचट गयी। देवी के इस आदेश से उसका मन खिन्न हो गया।

सबेरे जब उसने घर के लोगों को अपने स्वप्न का समाचार सुनाया तो सभी सन्न रह गये। इतने उत्साह से देवी को घर ले आया गया और अब विसर्जित करना पड़ेगा? अच्छा तमाशा है। विसर्जन के विरुद्ध जनमत हो गया।

अन्नदा ने कहा—"कृपया आप लोग बाधा न दें। माँ जब नहीं रहना चाहतीं तब कोई उपाय नहीं है। मुमकिन है कि इस घर में कोई आफत आये या मैं निर्वंश हो जाऊँ। देवी ने स्वप्नादेश में जो आज्ञा दे गयीं, मैं उसका पालन करने के लिए विवश हूँ।"

यह बात घर के बाहर फैल गयी। दर्शन करनेवालों का ताँता लग गया। धूप, दीप, माला से मूर्ति का अभिषेक होने लगा। यतीन ने कहा—"मेरा एक विचार है। मूर्ति को विसर्जित करने के पहले एक फोटो ले लिया जाय। जो लोग देवी के उपासक हैं, उन्हें पूजा करने के लिए एक-एक प्रिण्ट दे दिया जायगा।"

यह सुझाव पसन्द आया और तुरंत मूर्ति की फोटो ली गयी। इसके बाद अन्नदा सिर पर मूर्ति रखकर गंगा की ओर चल पड़ा। मार्ग में 'जय कालीमाता की जय' ध्वनि के साथ लोग गंगा तट पर आये और एक नाव पर मूर्ति रखकर बीच गंगा में उसे विसर्जित कर दिया।

मूर्ति को प्रवाह करने के साथ ही अन्नदा मूर्च्छित होकर गिर पड़ा। उसकी यह हालत देखकर साथ के लोग चिन्तित हो उठे। किसी प्रकार उसे घर तक ले आये।

इस घटना के कुछ दिनों बाद शचीन के पिता सिद्धेश्वर बाबू ने कहा—"तुम कविराजी करोगे जानकर मैंने हजारों रुपये विज्ञापन, पोस्टर आदि में खर्च किया। अब काम पर लग जाओ ताकि दो पैसा घर में आये।"

अन्नदा ने कहा—"बाबूजी, आपका कहना ठीक है, पर मैं जब दुकान पर जाकर बैठता हूँ तब वहाँ मन नहीं लगता। दिल धड़कने लगता है और घबराहट सी महसूस होती है।"

अब सिद्धेश्वर बाबू नाराज होकर बोले—"वास्तव में तुम्हारा दिमाग खराब हो गया है। व्यर्थ में तुम्हारे पीछे इतने रुपये बर्बाद करना पड़ा। पता नहीं, तुम्हारे भाग्य में क्या लिखा है।" इतना कहकर वे तेजी से भीतर चले गये।

सिद्धेश्वर बाबू बराबर उसे अपने पुत्र की तरह प्यार करते आये हैं। उन्हें इस तरह नाराज होते देख अन्नदा ने सोचा— अब यहाँ रहना उचित नहीं है। पता नहीं, कब चले जाने की आज्ञा दें। इससे अच्छा है कि समय रहते स्वयं ही हट जाय।

यह अवसर भी उसे शीघ्र मिल गया। उसका पूर्वपरिचित मित्र भूपेन एक दिन आया और कहा—"ठाकुर, तुमसे जो गीत कुछ दिन पहले माँगकर ले गया था, उसकी स्वरलिपि बनाकर हरिभूषण इस ढंग से गाता है, उसे सुनकर स्वयं झूम उठोगे।"

भूपेन की बातों से अन्नदा को कौतूहल हुआ। दोनों मित्र तुरंत वृन्दावन मल्लिक लेन की ओर रवाना हो गये। भूपेन ने बातचीत के सिलसिले में कहा—"तीन भाई हैं।

मेरे गाँव के निवासी हैं। बड़ा भाई गाँव पर रहता है बाकी दोनों यहाँ कहीं नौकरी करते हैं। बड़े खुशदिल हैं। हरिभूषण का कण्ठ बहुत ही मीठा है।''

इसी तरह बातचीत करते हुए दोनों हरिभूषण के घर आये। उसका गाना सुनकर अन्नदा मुग्ध हो उठा। उनकी सरलता से वह इतना प्रभावित हुआ कि कुछ दिनों बाद यहाँ आकर रहने लगा। भूपेन ने बातचीत के सिलसिले में कहा था—''उनकी एक बहन है। लगभग १५-१६ वर्ष की। इन लोगों के पास इतनी रकम नहीं है कि उसका विवाह कर सकें। तुम तो अब तक २०-२२ लड़कियों का विवाह करा चुके हो। अगर इनकी सहायता कर दो तो सभी भाई आजीवन कृतज्ञ रहेंगे।''

हरिभूषण की बहन की चर्चा अन्नदा ने शचीन से भी की। शचीन ने कहा—''ठाकुर, एक बार इनके गाँव जाकर इनकी बहन को देख आओ। अगर लड़की कायदे की होगी तो अपने मित्रों से चर्चा करूँगा।''

अन्नदा को यह सुझाव पसन्द आया। दूसरे दिन वह मजिलपुर चला गया। कलकत्ता वापस आने पर अन्नदा की जबानी हरिभूषण की बहन की प्रशंसा सुनकर शचीन की माँ ने उसे यहाँ ले आने का आदेश दिया। कलकत्ते में रहने पर वर पक्ष के लोगों को देखने तथा बात करने की सुविधा होगी।

कुछ ही दिनों बाद सरला को लोग कलकत्ता ले आये। उसे शचीन के घर ठहराया गया। उसकी चाल-चलन और कर्मठता देखकर घर के सभी लोग प्रसन्न हो गये। अब सरला को देखने के लिए यदा-कदा लोग आने लगे। इस प्रकार कुछ दिन गुजर जाने के बाद एक दिन अन्नदा ने सपना देखा। उसके स्वप्न में परमहंसजी ने आकर कहा—''सरला पूर्वजन्म में शचीन की पत्नी थी। यह बात तुम किसी से मत कहना।''

अन्नदा को ज्ञात था कि शचीन विवाह नहीं करेगा। अब इस समाचार को सुनकर उसे कौतूहल हुआ कि उसकी पूर्वजन्म की पत्नी इस जन्म में किसकी पत्नी बनती है। सरला को कुछ लोग देखने आये, पर किसी से बात पक्की नहीं हो सकी।

एक दिन मजाक में अन्नदा ने शचीन का मन टटोलने के लिए कहा—''शचीन, तुम न हो तो सरला से विवाह कर लो। अगर अविवाहित रूप में गाँव वापस जायगी तो संभव है कि वह आत्महत्या कर ले। बंगाल की कितनी लड़कियाँ इस प्रकार आत्महत्या कर रही हैं। तुम्हारे माध्यम से अगर एक लड़की का उद्धार हो जाय तो बड़ा पुण्य कार्य होगा।''

शचीन को यह सुझाव पसन्द आ गया। उसने शारदा माता को पत्र लिखा। वहाँ से उत्तर आया—''बेटा, अपना जीवन देकर अगर किसी का जीवन सँवारा जा सके तो यह जीवन सफल हो जाता है। यह तो शुभ कार्य है। मैं आज्ञा दे रही हूँ, तुम विवाह करो। तुम्हारा विवाहित जीवन आनन्दमय होगा।''

इस आशीर्वाद को पाने के बाद २१ वर्षीय शचीन का विवाह १५ वर्षीय सरला के साथ हो गया। शचीन के विवाह के १० माह बाद तक अन्नदा हरिभूषण के मकान में था। यहाँ स्वप्न में अक्सर परमहंसजी आते थे। उनके आदेशानुसार अन्नदा पैदल ही दक्षिणेश्वर जाकर कालीमाता का दर्शन करता था। अन्नदा अक्सर दक्षिणेश्वर जाता है, इस बात की जानकारी किसी को नहीं थी।

बातचीत के सिलसिले में एक दिन शचीन ने कहा—''ठाकुर, मेरा विचार है कि तुम कम्पाउण्डरी पास कर लो। कुछ ही दिनों में मैं अपनी शिक्षा पूरी कर लूँगा। दवाखाना खोलकर हम दोनों एक साथ काम करेंगे। तुम्हारी कविराजीवाली दवाओं का भी हम उपयोग करेंगे। अब हमें अर्थोपार्जन की ओर ध्यान देना पड़ेगा।''

अन्नदा को यह प्रस्ताव पसन्द आया। लेकिन भवितव्य की जानकारी उसे नहीं थी। उसी रात को स्वप्न में आकर रामकृष्णजी ने कहा—''कम्पाउण्डरी का पचड़ा छोड़ दो। तुम्हें शीघ्र ही लक्ष्मणझूला तपस्या के लिए जाना पड़ेगा।''

इस आज्ञा को सुनकर वह चौंक पड़ा। लक्ष्मणझूला है कहाँ, इसकी जानकारी उसे नहीं थी। फिर वहाँ तक जाने के लिए राह खर्च की समस्या थी। उसने कहा—''मेरे पास इतनी रकम कहाँ है? फिर वहाँ कहाँ रहूँगा, क्या खाऊँगा?''

रामकृष्णज़ी ने कहा—''इन सब बातों की चिन्ता छोड़ो। सारा इन्तजाम हो जायगा। जल्द ही तुम्हें यहाँ से जाना है।''

परमहंसजी के इस आदेश को सुनकर वह सन्न रह गया। यात्रा का व्यय कौन देगा ही समस्या नहीं थी, उस अपरिचित स्थान में कैसे तपस्या करेगा? रहने का स्थान और भोजन की समस्या कैसे हल होगी, समझ में नहीं आ रहा था।

दूसरे दिन यही समाचार देने के लिए वह शचीन के यहाँ आया तो उसे देखते ही शचीन की माँ ने कहा—''ठाकुर, चरका की हालत बहुत खराब है। पता नहीं, वह बचेगा या नहीं।''

यह समाचार सुनकर वह घबड़ा गया। शचीन के छोटे भाई का नाम चरका है। दौड़कर ऊपर आया तो देखा— उसकी टट्टी में खून, पीप के साथ माँस के टुकड़े निकल रहे हैं। डॉक्टर इसे रोकने में असमर्थ हो गये हैं। यतीन बाबू की पत्नी विमला देवी ने कहा—''ठाकुर, चरका को बचाने के लिए कुछ करो वर्ना लोग कहेंगे कि काली माता का पदार्पण इस घर के लिए अपशकुन हुआ है। सभी तुम्हारी आलोचना करेंगे।''

यह एक ऐसा आक्षेप था जिसका जवाब अन्नदा को देते नहीं बना। वह एकटक मृतप्राय चरका की ओर देखता रहा। फिर न जाने क्या सोचकर ध्यान लगाकर आद्या देवी का स्तोत्र पाठ करने लगा।

डेरे पर जब लौटा तब मन खिन्न था। कहीं सिद्धेश्वर बाबू और उनके लड़कों के मन में यह बात बैठ गयी तो कलकत्ता में उसका रहना कठिन हो जायगा। रात को सपने में उसके सामने एक वृद्धा महिला आयीं। उनके केश चारों ओर बिखरे हुए थे। अन्नदा की ओर तीव्र दृष्टि से देखती हुई बोलीं—''मुझे जिस तरह रख छोड़ा है, उसी तरह की सजा मैंने दी है। कहती थी कि मेरी पूजा करेगी और इतना अनादर? कूड़ेदानी में रख दिया है। इसका फल कौन भोगेगा?'' इतना कहती हुई वह रमणी कमरे के बाहर चली गयी।

रमणी के बाहर जाते ही अन्नदा की नींद उचट गयी। उस समय भोर के चार बजे थे। उसने सोचा— यह स्वप्न अमूलक नहीं है। जरूर इसके पीछे कोई रहस्य है। उजाला होते ही वह शचीन के घर आया और अपने स्वप्न की चर्चा की।

माँ ने कहा—''अपनी जानकारी में मैंने कालीमाता की अवज्ञा नहीं की है। मैंने उनके दो फोटो लिये थे। इनमें से एक को मढ़वाकर यतीन ने अपने कमरे में रखा है। दूसरा कहाँ, पता नहीं चल रहा है।''

अन्नदा ने कहा—''शायद वही फोटो किसी ऐसे स्थान में होगा जहाँ नहीं रखना चाहिए। जल्द तलाश कीजिए।''

घर के सभी लोग उस फोटो की तलाश में लग गये। काफी देर बाद चरका के कमरे में, कपड़ों के ढेर के नीचे मिला। फोटो के चारों ओर दीमक लग गये थे। यह देखकर अन्नदा ने कहा—''इसे बाजार ले जाकर तुरंत फ्रेम में मढ़वा लीजिए। इसके बाद नित्य धूप-दीप दिखाकर पूजा कीजियेगा।''

जिस दिन से अन्नदा के आदेश का पालन होने लगा, उसी दिन से चरका स्वस्थ होने लगा। परमहंसजी के आदेश को अन्नदा भूल गया था। इसी बीच शचीन के मझले भाई धीरेन्द्र बसु अम्बाला से आ गये। बातचीत के सिलसिले में उनसे लक्ष्मणझूला की चर्चा हुई। उनसे काफी जानकारियाँ मिलीं।

कई दिनों बाद परमहंसजी पुनः स्वप्न में आकर बोले—''यह याद रखना कि झूलन पूर्णिमा के दिन तुम्हें लक्ष्मणझूला में रहना है। उस दिन जो आदेश दिया जायगा, उसका पालन करना होगा तभी तुम्हारा जीवन सार्थक होगा। इस वर्ष तुम्हें काफी संघर्ष करना होगा।''

कुछ दिनों बाद अन्नदा को ज्ञात हुआ कि धीरेन्द्र बाबू की छुट्टियाँ समाप्त होनेवाली हैं। वे शीघ्र ही वापस जानेवाले हैं। यह बात सुनकर वह चिन्तित हो उठा। शचीन के जरिये माताजी को यह बात मालूम हुई तो वे कह उठी—''ठाकुर का सारा खर्च मैं दे दूँगी। वे धीरेन्द्र के साथ चले जायँ।''

तीसरे दिन अन्नदा ने धीरेन्द्र से कहा—"मैं सीधे लक्ष्मणझूला न जाकर मथुरा-वृन्दावन दर्शन करते हुए जाना चाहता हूँ।"

धीरेन्द्र ने कहा—"ठीक है।"

यात्रा के दिन विदा देते समय परिवार के सभी लोग रो पड़े। उन्हें लगा जैसे अब अन्नदा कभी वापस नहीं आयेगा। स्टेशन पहुँचानेवालों की अपार भीड़ थी। लोगों का प्रेम देखकर अन्नदा की आँखें छलछला आयीं।

हाथरस स्टेशन पर गाड़ी बदलकर अन्नदा मथुरा आ गया। यमुना में स्नान करते वक्त भिखारियों की आपस में हो रही बातों से उसे पता चला कि इनमें से कई लोगों को दो दिनों से मथुरानाथ का प्रसाद नहीं मिला है। बेचारे भूखे हैं। स्नान करने के पश्चात् अन्नदा घाट पर उन भिखारियों को आठ आनेवाले सिक्के बाँट दिये। भिखमंगों के दल ने चकित दृष्टि से उसकी ओर देखा। इस तरह कोई भक्त कभी भिखमंगों को पैसे नहीं दिया था। ठीक इसी समय एक वैष्णव करताल बजाते हुए पास आया। अन्नदा ने उसकी ओर एक चौवन्नी बढ़ाया तो उसने लेने से इंकार करते हुए कहा—"बाबाजी, मैं गरीब जरूर हूँ, पर मेरे भोजन का प्रबंध है। मैं भीख नहीं माँगता। यहाँ अपने के बाद से आपने मथुरानाथ का प्रसाद ग्रहण किया है या नहीं? यहाँ आनेवाले यात्रियों को मंदिर का प्रसाद खाना पड़ता है। यही यहाँ की परम्परा है। चलिये मेरे साथ।"

अन्नदा ने कहा—"मुझे इसकी जरूरत नहीं है। मेरे बदले दूसरे को मिल जाने पर मुझे प्रसन्नता होगी। मेरे पास पैसे हैं, खरीदकर खा लूँगा।"

वैष्णव ने कहा—"इस तरह पैसा लुटाने की अपेक्षा संचय करिये। कोई बात नहीं। आप इंतजार कीजिए। मैं आपके लिए मथुरानाथ का प्रसाद ले आ रहा हूँ।"

यह कहकर वैष्णव तेजी से एक ओर चला गया। अन्नदा को आश्चर्य हुआ कि यहाँ के लोग पैसे को अधिक महत्त्व देते हैं। कुछ देर बाद वैष्णव प्रसाद ले आया। भरपेट खाने के बाद बातचीत के सिलसिले में अन्नदा ने कहा—"तीन दिन यहाँ रहने के बाद मैं वृन्दावन जाऊँगा।"

तीसरे दिन वैष्णव ने कहा—"महाराज, आज आपको मैं दुर्वासा आश्रम ले चलूँगा। ऐसा दिव्य स्थान भारत में अन्यत्र कहीं नहीं है।" इसके बाद वह दुर्वासा आश्रम की इतनी प्रशंसा करने लगा कि अन्नदा को उक्त स्थान देखने की इच्छा हो गयी।

तीसरे पहर नाव के द्वारा दोनों व्यक्ति दुर्वासा आश्रम की ओर रवाना हुए। उस पार नाव लगने के बाद वैष्णव ने कहा— "अब यहाँ से एक क्रोश पैदल चलना पड़ेगा।"

दोनों व्यक्ति बातचीत करते हुए चलते रहे। काफी दूर चलने के बाद अन्नदा ने

कहा—"भगतजी, आपने कहा था कि एक क्रोश चलना पड़ेगा। मुझे लगता है जैसे दो क्रोश आ गया हूँ। इधर जंगल भी देख रहा हूँ। आगे और भी घना होगा। शायद रास्ता भूल गये हैं?"

यह बात सुनते ही वैष्णव चलते-चलते रुक गया और कहा—"आप यहीं ठहरिये। मैं आगे बढ़कर पता लगा लूँ।" यह कहकर वह गायब हो गया।

अंधकार बढ़ता जा रहा था। बड़े-बड़े वृक्षों से चाँदनी छनकर आ रही थी। अन्नदा मन ही मन जय मथुरानाथ जपने लगा। अगर उसे यह ज्ञात होता कि ऐसे दुर्गम मार्ग से सफर करना पड़ेगा तो वह न आता। सहसा घने जंगल के भीतर से दो लट्ठधारी व्यक्ति सामने आकर खड़े हो गये और कड़ककर पूछा—"कौन हो तुम?"

अन्नदा ने कहा—"साधु।"

इतना सुनते ही दूसरे व्यक्ति ने कसकर उसके हाथ को पकड़ लिया। क्षणभर में अन्नदा सारा रहस्य समझ गया। उसने पूछा—"क्या चाहते हो तुम लोग?"

"जो कुछ तुम्हारे पास है, सब दे दो, वर्ना जान से मार डालेंगे।"

अन्नदा ने सात रुपये चौदह आने पैसे देते हुए कहा—"मुझे एक वैष्णव ले आया था। वह कहाँ है?"

"वह वैष्णव नहीं, डाकू था। इस गठरी में क्या है? इसे भी दे दो।"

अन्नदा ने कहा—"नहीं, यह गठरी नहीं दूँगा।"

तभी एक डाकू ने उसे धक्का देकर कहा—"अभी पेड़ से बाँधकर पिटाई करता हूँ तब......"

ठीक इसी समय "पकड़ो-पकड़ो" की आवाज आयी। इस आवाज को सुनते ही दोनों डाकू भाग गये। क्रमशः वह आवाज पास आने लगी। सामने से एक गधा दौड़ता हुआ आ रहा था। उसके पीछे धोबी और उसकी पत्नी आ रहे थे। पास आकर धोबी ने पूछा—"लगता है, आपको डाकुओं ने पकड़ा था?"

अन्नदा के 'हाँ' कहने पर धोबी ने कहा—"यह जगह बहुत ही खतरनाक है। यहाँ चार आने पैसे के लिए हत्या होती है। आप बच गये, यह बहुत है। आइये, आपको जंगल के बाहर छोड़ दूँ।"

कुछ देर बाद यमुना नदी दिखाई देने लगी। धोबी ने एक ओर इशारा करते हुए कहा—"उधर जो सफेद मकान दिखाई दे रहा है उस मकान के पास चले जाइये। बाहर दो लठैतों से घिरे एक बाबू दिखाई देंगे। उनसे आप अपनी रामकहानी सुनाइयेगा। वे बंगाली हैं, आपकी मदद कर देंगे। मैं उनके कपड़े धोता हूँ। बड़े सज्जन पुरुष हैं।"

इतना कहकर दोनों पति-पत्नी नमस्कार करने के पश्चात् चले गये। अन्नदा सफेद मकान की ओर बढ़ गया। थोड़ी दूर जाने पर उसने चाँदनी में देखा- एक वृद्ध सज्जन टहल रहे हैं। उनके पीछे दो व्यक्ति लाठी लेकर घूम रहे हैं। उनके पास जाते ही वे बोले-''कहिये।''

अन्नदा ने चकित भाव से पूछा-''क्या आप मुझे पहचान रहे हैं?''

सज्जन ने उनका हाथ पकड़कर कहा- ''पहचान तो नहीं रहा हूँ, पर तुम भी उन भगोड़ों में हो जो अपने माँ-बाप को सताने के लिए ऐसा भेष धारण करते हैं।''

बातचीत के सिलसिले में सारी बातें सुनने के बाद सज्जन ने कहा-''ऐसा कभी हो नहीं सकता। एक विवाहित लड़के को माँ-बाप संन्यासी बनने के लिए अनुमति देंगे। यह पट्टी किसी और को पढ़ाना। बहरहाल, इस वक्त तुम आ कहाँ से रहे हो?''

अन्नदा ने मथुरा से वैष्णव के साथ चलने से लेकर धोबी के सहयोग देने तक का विवरण सुनाया। सारी बातें सुनने के बाद सज्जन ने कहा-''ठीक हुआ है। माँ-बाप को कष्ट देकर जो लड़के घर से भागते हैं, उनकी ऐसी दुर्दशा होती है। मगर मैं एक बात समझ नहीं सका। तुमने जिस धोबी की चर्चा की। उसे मैं जानता तक नहीं। मेरे यहाँ से किसी धोबी को कपड़े नहीं दिये जाते।''

अन्नदा को यह सुनकर आश्चर्य हुआ। क्या उसने गलती से यहाँ का परिचय दिया? आखिर वह कौन था जिसने मुसीबत से बचाया।

अन्नदा को ऊहापोह करते देख जमींदार ने कहा-''खैर, जो हुआ, उसे जाने दो। चलो, मेरे साथ।''

रात दस बजे उनके घर में तीसरी मंजिल के एक कमरे के सामने लाकर जमींदार ने अपने दरवानों से कहा-''इन्हें इस कमरे में ठहराओ। देखो, ये यहाँ से भागने न पायें वर्ना तुम लोगों का छः माह का वेतन काट लूँगा।''

दरवानों के साथ-साथ अन्नदा भी चकित रह गया। उसने कहा-''मुझे पहरा क्यों देना पड़ेगा? मैं कहीं नहीं जाऊँगा।''

''दरअसल तुम्हें यहाँ से कलकत्ता ले जाकर तुम्हारे माता-पिता के हाथ सौंपना है। शायद इस पुण्य कार्य से मुझे मेरा खोया बेटा मिल जाय। मेरा दृढ़ विश्वास है कि तुम घर से भागकर संन्यासी बन गये हो। मैं स्वयं इसका भुक्तभोगी हूँ। मेरा लड़का आज छः साल से बी०ए० पास करने के बाद घर से भाग गया है। हम लोग उसे पागलों की तरह तलाश कर रहे हैं। ऐसा कोई तीर्थ नहीं है जहाँ हमने उसकी खोज न की हो। प्रत्येक वर्ष झूलन-पूर्णिमा को यहाँ आता हूँ ताकि वह कहीं दिखाई दे जाय। लेकिन आज तक वह नहीं मिला, इसलिए तुम्हें यहाँ कैद में रखूँगा और बाद में कलकत्ता ले जाऊँगा।''

जमींदार साहब की सारी बातें सुनकर अन्नदा ने मर्माहत होकर कहा—"आपका लड़का गायब हो गया है जानकर मुझे अपार कष्ट हो रहा है। यकीन मानिये, मैं घर से भागा नहीं हूँ। सभी लोगों से अनुमति लेकर रवाना हुआ हूँ।"

जमींदार साहब ने इस सत्य को स्वीकार नहीं किया। बहस करते रहे। ठीक इसी समय भोजन आ गया। जमींदार ने कहा—"इस कमरे में मेरी विधवा ब्रह्मचारिणी कन्या रहती है। अब तुम खा-पीकर आराम करो। कल सबेरे जो होगा, किया जायगा।"

दूसरे दिन पहरेदारों से घिरे अन्नदा ने यमुना में स्नान किया और मथुरानाथ का दर्शन करके वापस आया। यहाँ आने पर देखा कि उसके कमरे के सामने जमींदार की कन्या एक अंग्रेजी पत्र लेकर पढ़ रही है।

अन्नदा को वापस आया देखकर बेटी के पास माँ भी चली आयी। नाना प्रकार की बातों के बीच जमींदार गृहिणी ने पूछा—"जब तुम संन्यासी नहीं हो तो गेरुआ वस्त्र पहनकर क्यों तीर्थयात्रा कर रहे हो?"

"माँ, इन कपड़ों को एक अन्य माँ ने दिया तो पहन लिया। रहा तीर्थयात्रा का प्रश्न। वास्तव में मैं स्वप्न में दिये गये आदेशानुसार यात्रा कर रहा हूँ।"

यह बात सुनते लड़की ने चौंककर माँ से कहा—"यह वही तो नहीं हैं, माँ?"

अन्नदा चौंक उठा। तभी जमींदार कन्या ने पूछा—"आप कलकत्ता में कहाँ रहते हैं?"

"आमहर्स्ट स्ट्रीट में। मगर आजकल उस रोड का नाम २० नं० बलाई सिंह लेन हो गया है।"

"१०० नं० आमहर्स्ट स्ट्रीट में रहते थे?"

"मेरी बगल के मकान का यही नम्बर है।"

इसके बाद लड़की ने माँ से कहा—"मेरा विश्वास है कि आप वही व्यक्ति हैं जिन्हें स्वप्न में आद्या माँ प्राप्त हुआ था।"

गृहिणी ने पूछा—"क्या यह बात सच है, बेटा? तुम वही हो?"

अन्नदा ने संकोच से सिर झुका लिया। यह देखकर कन्या ने कहा—"माँ, पिताजी किसे पकड़ लाये हैं। इन्हें चुपके से विदा कर दो वर्ना पिताजी के आने पर झंझट होगा।"

जमींदार गृहिणी ने आगे बढ़कर पदधूलि लेते हुए कहा—"बेटा, अब तुम तुरंत यहाँ से रवाना हो जाओ। स्टेशन की ओर मत जाना। पैदलवाले रास्ते से चले जाओ। डेढ़-दो घण्टे में वृन्दावन पहुँच जाओगे।"

इतना कहने के बाद वे कुछ रुपये देने लगीं तो अन्नदा ने अस्वीकार कर दिया।

यह देखकर गृहिणी ने कहा—"इसे रख लो। अभी तुम्हें वृन्दावन से लक्ष्मणझूला तक जाना है। रास्ते में तुम्हें कौन देगा? फिर भोजन का खर्च है। एक माँ अपने बेटे को राह खर्च दे रही है, समझकर रख लो।"

रुपये लेकर अन्नदा निर्देशानुसार मार्ग से वृन्दावन की ओर रवाना हो गया। प्रचण्ड गर्मी के कारण प्यास महसूस होने लगी। काफी दूर आने के बाद एक कुएँ पर एक व्यक्ति को स्नान करते देख उससे अन्नदा ने अनुरोध किया कि मुझे प्यास लगी है, कृपया पानी पिला दीजिए।

उस व्यक्ति ने कहा—"इस कुएँ का पानी खारा है। आप पी नहीं सकते।"

"खारा हो या मीठा। आप मुझे पिला दीजिए। प्यास के कारण मेरा गला सूख गया है।"

"नहीं महाराज, मैं यह पाप नहीं कर सकता।" यह कहकर वह व्यक्ति चला गया।

इधर अत्यधिक प्यास के कारण अन्नदा की आँखों के सामने तारे नाचने लगे। उसे चक्कर आ गया। होश आने पर उसने देखा— सामने से एक बालक और एक बालिका आपस में चुहल करते हुए कुएँ की ओर आ रहे हैं। उनके हाथ में डोरी और लोटा है। जब वे दोनों पास आ गये तब अन्नदा ने उनसे अनुरोध किया—"बेटा, मुझे बहुत प्यास लगी है। जरा पानी पिला दो।"

"अभी लीजिए महाराज।" कहकर बालक ने कुएँ से पानी निकालकर पिलाया। कितना मीठा जल है और वह कमबख्त कह रहा था कि बहुत खारा है। निष्ठुर कहीं का। पानी पीने के बाद उसका मन प्रसन्न हो गया। अन्नदा ने बालक से पूछा-"तुम लोग कहाँ रहते हो?"

"वृन्दावन के रंगनाथ मंदिर में।"

"मैं भी वहीं जा रहा हूँ। क्या वहाँ तुम लोगों से मुलाकात हो सकेगी?"

"जरूर। तलाश करने पर हम मिल जायेंगे।"

बहुत देर तक अन्नदा इन दोनों भोले-भाले बालक-बालिका को देखता रहा। इसके बाद वह वृन्दावन की ओर बढ़ गया।

उन दिनों वृन्दावन में झूलन का मेला प्रारंभ हो गया था। चारों ओर चहल-पहल थी। रंगनाथ मंदिर में जाकर उसने दर्शन किया। इसके बाद वह उक्त बालक-बालिका को खोजने लगा। यहाँ जितने बालक-बालिका राधाकृष्ण का शृंगार करके नाच रहे थे, वे उतने सुन्दर नहीं थे। कुछ देर बाद नाट मंदिर में गया। वहाँ भी रासलीला करनेवाली युगल जोड़ी में वे दोनों दिखाई नहीं दिये। पता लगाने पर मालूम हुआ कि यहाँ अन्यत्र

दो-तीन स्थानों में रासलीला हो रही है। उन सभी स्थानों को अतृप्त नयनों से देखने पर भी कुएँ वाली जोड़ी कहीं दिखाई नहीं दी। अन्त में थककर वह यमुना किनारे रेती पर चादर बिछाकर सो गया। चाँदनी में उसने देखा— आसपास अनेक संत और वैष्णव धूनी जलाकर ध्यान-मग्न हैं।

इसी समय एक वैष्णव की जोड़ी आयी। वैष्णव की उम्र १८ या २० के लगभग थी और वैष्णवी २४-२५ वर्ष की लग रही थी। दोनों मधुर कंठ से भजन गा रहे थे। थोड़ी देर बाद वैष्णवी ने कहा—''खाली बकवाद ही करेगा या पेट-पूजा का कोई इंतजाम करेगा। वह कहावत सुनी है, भूखे भजन नहिं होहिं गोपाला।''

वैष्णव ने कहा—''बात तो ठीक कह रही है, पर कितना ले आऊँ, यह तो बता।''

वैष्णवी बोली—''जितना खा सकता है, उतना ले आ।''

यह बात सुनकर वैष्णव चला गया। कुछ देर बाद वैष्णव वापस आया। अन्नदा ने देखा— काफी भोजन की सामग्री ले आया है। उसे जोरों की भूख लगी हुई थी। अपरिचित से माँगने में शर्म लग रही थी। तभी वैष्णवी बोली—''क्यों रे, इतना कौन खायेगा?''

वैष्णव ने कहा—''यहाँ हम अकेले थोड़ी ही खायेंगे। देख नहीं रही हो, यहाँ कितने साधु-संन्यासी बैठे हैं। उन्हें भी देना पड़ेगा।''

वैष्णवी बोली—''ठीक है। जा, इन लोगों में बाँट दे। शेष जो रहेगा, उसे हम खायेंगे।''

वैष्णव आसपास बैठे और लेटे हुए संन्यासियों के पास जाकर भोजन करने का अनुरोध करने लगा। सभी संतों ने कहा कि वे अभुक्त नहीं हैं। उन्हें नहीं चाहिए। अन्त में जब अन्नदा के पास वैष्णव आया तब उसने इस तरह प्रश्न किया जैसे वह कुछ जानता नहीं।

अन्नदा के स्वीकार करने पर वैष्णव-दम्पति उसके पास आकर परोसा दे गये। थोड़ी देर बाद पुनः वैष्णवी कुछ और सामान लेकर आयी और बोली—''स्वामीजी, दो कचौड़ी और लीजिए।''

''पत्तल पर डाल दीजिए माताजी।'' कहने के पश्चात् अन्नदा भोजन करने लगा। वैष्णवी को खिलाते देख वैष्णव भी एक पुरवे में रबड़ी लाकर उसके पत्तल पर रख दिया।

भोजन करने के पश्चात् अन्नदा मुँह धोने गया। वापस आकर देखा कि वैष्णव-दम्पति भोजन कर रहे हैं। वह सिर से पैर तक चादर तानकर सो गया। नींद में उसने एक अद्भुत दृश्य देखा— मथुरा से आते समय जिस बालक और बालिका ने उसे पानी

पिलाया था, वही यहाँ वैष्णव-दम्पति के रूप में भोजन करा गये। वह चौंक उठा। उस वक्त भोर होने में एक घंटा बाकी था। वह तेजी से उस स्थान पर आया जहाँ वैष्णव-वैष्णवी थे। वहाँ केवल एक चद्दर बिछा था। उन दोनों का दूर-दूर तक कहीं पता नहीं था। यह सब देखकर अन्नदा उदास हो गया। वहाँ से चलकर वह बाजार आया और वहाँ से रस्सी का एक बण्डल खरीदकर पैदल मथुरा के रास्ते चल पड़ा। कुएँ के पास आकर उसने लोटे से पानी निकालकर एक चुल्लू मुँह में देते ही थू-थू कर उगल दिया। यह पानी न केवल खारा था, बल्कि न जाने कितना दुर्गन्ध से भरा था। इस पानी को तो जानवर तक नहीं पी सकते।

अन्नदा को समझते देर नहीं लगी कि मथुरापति, वृन्दावनविहारी ने दो-दो बार दर्शन दिये, पर वह ऐसा अभागा है कि उन्हें पहचान नहीं सका। उनका चरण-स्पर्श नहीं कर सका। कुएँ की जगत् पर बैठा वह आकुल स्वर में रोने लगा। लेकिन उस सुनसान स्थान में कौन उसे सांत्वना देता।

+ \+ \+ \+

वृन्दावन से वह यथा समय हरिद्वार होते हुए ऋषिकेश आ गया। यहाँ काली कमली वाले धर्मशाले में ठहरा। यहाँ यात्रियों को ठहरने के अलावा भोजन भी दिया जाता है। दूसरे दिन वह धर्मशाला में ठहरे यात्रियों में बंगाली यात्री खोजने लगा ताकि उनकी सहायता से स्वर्गाश्रम जा सके। तभी दरवाजे के पास खड़े एक संन्यासी ने आवाज दी—''यहाँ स्वर्गाश्रम के कौन-कौन यात्री हैं। जिन्हें वहाँ जाना है, वे बाहर चले आयें।''

इस संदेश को सुनते ही अन्नदा उनके निकट जाकर कहा—''स्वामीजी, मैं स्वर्गाश्रम जाना चाहता हूँ।''

उक्त स्वामी ने अन्नदा को गौर से देखने के बाद पूछा—''क्या आप वहाँ कुछ दिन ठहरना चाहते हैं?''

''जी हाँ।''

''लेकिन वहाँ एक भी कुटिया खाली नहीं है। आप कुछ देर इन्तजार कीजिए। जब तक आपकें लिए कोई कुटिया न मिले तब तक आप मेरी कुटिया में रह सकते हैं।'' यह कहकर उक्त स्वामीजी चले गये।

तीसरे पहले अन्नदा को लेकर वे स्वर्गाश्रम आये। सौभाग्य से उसी दिन एक कुटिया खाली हो गयी थी। उस कुटिया में आकर अन्नदा ने उसे रहने लायक बनाया। गंगा किनारे, छायादार वृक्षों के पास साधना करने लायक उपयुक्त कुटिया थी। उस दिन रात को बहुत दिनों के बाद स्वप्न में परमहंसजी आये और कहा—''अब यहाँ आनन्दपूर्वक साधना करते रहो।''

"आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। अब जो आज्ञा देंगे, उसका पालन करता चलूँगा। अगर मेरी साधना से मानव-जीवन का कल्याण हो सके तो मैं अपना अहोभाग्य समझूँगा।"

परमहंसजी ने कहा–"इस कल्पना को त्याग दो। इसके लिए तुम्हें सौ वर्ष तक तपस्या करनी पड़ेगी जो तुम्हारे लिए संभव नहीं है। इससे अच्छा है कि घर वापस जाकर दस साल तक माँ-बाप की सेवा करो और इसके बाद गंगा तट पर सपत्नीक दस साल तक साधना करो।"

"मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा। बीस वर्ष के बाद फिर क्या करना पड़ेगा?"

परमहंसजी ने कहा–"एक भव्य मंदिर की स्थापना। आद्यापीठ का। दक्षिणेश्वर में जहाँ जगन्माता काली देवी हैं, उसी गंगा तट के किनारे एक मंदिर का निर्माण।"

इतना कहने के पश्चात् परमहंसजी ने अन्नदा को एक पहाड़ के किनारे स्थित मंदिर को दिखाया। मंदिर की प्रथम वेदी पर परमहंस की मूर्ति थी जिसके नीचे लिखा था– गुरु। दूसरी वेदी पर आद्या माँ की मूर्ति थी जिसे इडेन गार्डेन से वह ले आया था और तीसरी वेदी पर राधाकृष्ण की युगल मूर्ति थी। मूर्ति के नीचे लिखा था– प्रेम। मंदिर का निर्माण इस ढंग से किया गया था कि बाहर से तीनों मूर्तियों का दर्शन एक साथ हो रहा था।

अब परमहंसजी ने कहा–"इस तरह की मूर्ति बना सकोगे। मंदिर भी इसी ढंग का हो।"

अन्नदा ने कहा–"अगर आप शक्ति प्रदान करें तो मैं अपने कार्य में अवश्य सफलता प्राप्त करूँगा।"

इसके बाद अन्य कुछ बातें कहने के पश्चात् परमहंसजी चले गये।

स्वर्गाश्रम का वातावरण बहुत सुन्दर था। इस प्रकार दिन गुजर रहे थे। अचानक एक दिन पुनः स्वप्न में परमहंसजी आये और कहा–"अभी तक तुम रवाना नहीं हुए? समय कम है। शीघ्र अपने गाँव चले जाओ। अब तुम्हें दस वर्ष नहीं, केवल एक वर्ष माता-पिता की सेवा करनी पड़ेगी। इसके बाद पत्नी को लेकर दक्षिणेश्वर चले जाना। वहाँ मंदिर निर्माण के साथ-साथ साधना करते रहना।"

अन्नदा ने संकोच के साथ पूछा–"प्रभो, इतना विशाल मंदिर बनवाने के लिए प्रचुर धन कहाँ से प्राप्त करूँगा।"

परमहंसजी ने हँसकर कहा—"चन्दा से। इसकी चिन्ता क्यों करते हो। किसी भी सत्कार्य के लिए अर्थाभाव नहीं होता। तुम स्वयं इसे अनुभव करोगे।"

इस आश्वासन को पाकर अन्नदा दूसरे दिन कलकत्ता की ओर रवाना हो गया। कलकत्ता के मित्रों से मुलाकात करने के बाद चटगाँव चला आया। यहाँ एक वर्ष तक माता-पिता की सेवा करने के पश्चात् परमहंसजी के आज्ञानुसार पत्नी को साथ लेकर दक्षिणेश्वर चला आया। सन् १९२० में अन्नदा ठाकुर ने दक्षिणेश्वर में पुरश्चरण व्रत किया। यही तिथि आद्यापीठ की प्रथम सिद्धोत्सव तिथि है। बंगाल के कोने-कोने से भक्तों का आगमन होने लगा। सन् १९२६ में मंदिर के लिए वहीं जमीन खरीदा गया और १९२७ ई० में मंदिर की नींव डाली गयी। आद्यापीठ स्थित वर्तमान मंदिर में छः शिव मंदिरों के अलावा परमहंसजी, श्रीआद्या माँ और श्रीराधाकृष्ण युगल मूर्ति की स्थापना हुई।

इस घटना के एक वर्ष बाद अर्थात् सन् १९२८ ई० में अन्नदा ठाकुर का स्वर्गवास हो गया। उनके निधन के पश्चात् उनके शिष्यों ने शेष कार्य पूरा किया।

परमहंस योगानन्द गिरि

परमहंस योगानन्द गिरि

दिन-प्रतिदिन लड़के की बिगड़ती हालत देखकर घर के सभी लोग चिन्तित हो उठे। दो दिन के भीतर वह इतना कमजोर हो गया कि उठना-बैठना मुश्किल हो गया। डॉक्टर ने कहा—''यह हैजे का उग्र रूप है।''

लेकिन लड़के की माँ के चेहरे पर शिकन तक नहीं थी। उन्हें दृढ़ विश्वास था कि उनके मुकुन्द को यमराज भी स्पर्श नहीं कर सकेंगे। भले ही इसे कुछ दिन कष्ट भोगना पड़े। जिस बालक को गुरुदेव का आशीर्वाद मिला है, उसकी अकाल मृत्यु नहीं हो सकती। उन्हें याद है। जब मुकुन्द गोद में था तब भगवती चरण घोष सपरिवार काशी में योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी का दर्शन करने आये थे। दरअसल वे शिष्य बनने आये थे। मुकुन्द को गोद में लेकर घोष-पत्नी काफी लोगों के पीछे बैठी थीं। एकाएक उनके मन में यह इच्छा उत्पन्न हुई कि इस बालक पर अगर लाहिड़ी महाशय की दृष्टि पड़ जाय तो इसका जीवन मंगलमय हो जायगा।

अन्तर्यामी गुरुदेव ने इस इच्छा को जान लिया। घोष-पत्नी को पास बुलाकर बच्चे के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा था—''आयुष्मान भव।''

बस, इस आशीर्वाद को सुनकर माँ मुकुन्द के भावी जीवन के प्रति आस्थावान हो गयी थीं। पति के साथ उन्होंने भी योगिराज के निकट दीक्षा ली थी।

केवल यही नहीं, एक और संत का आशीर्वाद मुकुन्द को मिला है। लाहिड़ी महाशय से दीक्षा लेने के कुछ दिनों बाद भगवती चरण की बदली लाहौर हो गयी।

एक दिन एक अपरिचित संन्यासी आया और घोष बाबू से कहा—''मैं मुकुन्द की माँ से मिलना चाहता हूँ।''

मुकुन्द की माँ जब बाहर आयीं तब उक्त संन्यासी ने कहा—''माताजी, अब आप अधिक दिनों तक नहीं रहेंगी। अब जब कभी बीमार होंगी तब आपके जाने का समय होगा। लेकिन उसके पहले आपको एक काम करना होगा।'' जेब से एक ताबीज निकालकर दिखाते हुए संन्यासी ने कहा—''कल जब आप ध्यान करने बैठेंगी तब अचानक शून्य से आपके हाथ में एक ताबीज गिरेगा। आप उस ताबीज को हिफाजत

से रख देंगी। जब आप बीमार होंगी तब किसी ऐसे व्यक्ति के हाथ में तावीज देते हुए उसे बता देंगी कि आपके निधन के एक वर्ष बाद इसे मुकुन्द को दे दिया जाय, उसके पहले नहीं। वह तावीज मुकुन्द का कल्याण करने के पश्चात् जिस प्रकार आयेगा, ठीक उसी प्रकार चला जायेगा।''

इतना कहने के बाद साधु चला गया। घोष पत्नी अवाक् होकर देखती रहीं। दूसरे दिन भगवती बाबू की पत्नी जब ध्यान में बैठीं तब संन्यासी के बताये हुए निर्देश के अनुसार न जाने कहाँ से एक तावीज हाथ पर गिरा। चौंककर वे चारों ओर देखने लगीं। कमरे में कोई नहीं था। मुकुन्द की माँ को विश्वास हो गया कि यह तावीज मेरे बच्चे की रक्षा करेगा। आज भी वह तावीज उनके पास है।

इस घटना के बाद से वे मुकुन्द पर विशेष ध्यान देने लगीं। मुकुन्द जब अपने पलंग पर अकेला बैठता न जाने क्या सोचता रहता है तब उसके चेहरे के चारों ओर एक प्रकार की आभा प्रस्फुटित होती है। एक बार उन्होंने मुकुन्द से पूछा—''तू बैठा-बैठा क्या सोचता है?''

मुकुन्द ने कहा—''आँखों के सामने सब कुछ दिखाई देता है, पर आँखों के पीछे क्या है, पता नहीं चलता।'' फिर अचानक जैसे भूली हुई बात याद आ गयी हो, इस तरह कहने लगा—''माँ, माँ, एक दिन मेरी आँखों के सामने कई संत आकर खड़े हो गये। मैंने उन लोगों से पूछा कि आप लोग कौन हैं? उन लोगों ने बताया कि हम सब हिमालय के संत हैं। वहीं जा रहे हैं। कभी तुम्हें भी वहाँ ले जायेंगे।''

यह बात सुनकर विस्मय से माँ की आँखें बड़ी-बड़ी हो गयीं। उन्हें लाहिड़ी महाशय की बातों पर विश्वास हो गया। उन्होंने कहा था—''आगे चलकर यह बालक संत बनेगा।''

गुरुदेव की याद आते ही घोष बाबू की पत्नी ने सामने की दीवार पर टँगे चित्र को नमस्कार किया। एकाएक उनके मन में विचार आया कि अगर मुकुन्द गुरुदेव के चित्र को प्रणाम करे तो अवश्य चमत्कार होगा। उन्होंने तुरंत मुकुन्द से कहा—''बेटा, सामने गुरुदेव का चित्र टँगा है, उन्हें प्रणाम करो।''

मुकुन्द ने प्रयत्न किया, पर कमजोरी के कारण उसके हाथ नहीं उठे। उसने कहा—''माँ, मेरे हाथ उठ नहीं रहे हैं।''

''कोई हर्ज नहीं। मन ही मन उन्हें प्रणाम करो। मुझे विश्वास है कि गुरुदेव की कृपा से तुम बहुत जल्द अच्छे हो जाओगे।''

मुकुन्द ने माँ की आज्ञा का पालन किया। उसी दिन से वह स्वस्थ होने लगा।

बाबू भगवती चरण घोष बंगाल-नागपुर रेलवे के उपाध्यक्ष पद पर काम कर रहे थे। जिन दिनों वे गोरखपुर में थे, उन्हीं दिनों ५ जनवरी, सन् १८९३ के दिन मझले

पुत्र के रूप में मुकुन्द ने जन्म लिया था। स्वयं सात्त्विक विचार के थे। घर पर माँ बच्चों को रामायण तथा महाभारत की कहानियाँ सुनाया करती थीं। पिताजी के साथ अविनाश बाबू कार्य करते थे। अक्सर उनके यहाँ जाने पर अनेक संतों की कहानियाँ वह सुना करता था। खासकर वे अपने गुरुदेव श्यामाचरण लाहिड़ी की चर्चा करते थे जिनका चित्र उसके घर पर है।

स्वयं मुकुन्द को अपने ऊपर कभी-कभी आश्चर्य होता था। अगर वह कोई बात दृढ़ता से कहता है तो वह हो जाती थी। उसकी बहन उमा अपने पैर के फोड़े पर मरहम लगा रही थी। मुकुन्द ने डिबिया से थोड़ी सी दवा निकालकर अपनी बाँह पर लगाया। यह देखकर उमा ने पूछा—"तुमने दवा क्यों लगायी? तुम्हें तो कुछ नहीं हुआ है।"

"दीदी, देखना कल यहाँ फोड़ा हो जायगा।"

"चल हट। बेमतलब फोड़ा क्यों होगा?"

दूसरे दिन ठीक उसी जगह फोड़ा हो गया जहाँ मुकुन्द ने दवा लगायी थी। इस प्रकार की अनेक घटनाएँ उसके बचपन में हुई थीं।

एक अर्से के बाद बड़े भाई के विवाह की बातचीत करने के लिए माँ कलकत्ता चली गयीं। उन्हीं दिनों एक दिन मुकुन्द के स्वप्न में आकर माँ ने कहा—"मुकुन्द, तुम अपने पिताजी को लेकर शीघ्र कलकत्ता चले आओ, अन्यथा मुझे जीवित नहीं देख पाओगे।"

मुकुन्द ने सारी बातें पिताजी से कहने के पश्चात् कलकत्ता चलने का आग्रह किया। भगवती बाबू ने इस बात पर विश्वास नहीं किया। वे टाल गये। ठीक इसी समय कलकत्ते से पत्नी की अस्वस्थता का तार आया। इस तार को पाते ही वे कलकत्ता रवाना हो गये। यहाँ आने पर पता चला कि कल रात को ही पत्नी का निधन हो गया था।

माँ के निर्देशानुसार बड़े भाई अनन्त ने १४ माह बाद मुकुन्द को माँ का एक पत्र और उस ताबीज को दिया जिसका जिक्र किया जा चुका है। माँ के निधन के कारण घर के सभी लोग रिक्तता महसूस करते रहे। इन्हीं दिनों मुकुन्द को सनक सवार हुई कि वह बनारस जाकर योग की शिक्षा लेगा। उसकी जिद्द के आगे पिता को झुकना पड़ा।

बनारस आकर वह एक विद्यालय में दाखिल हुआ जहाँ योग की शिक्षा दी जाती थी। मुकुन्द के भावी गुरु बनारस में अपनी बीमार माँ की सेवा कर रहे थे। जब गुरु की अतीन्द्रिय-शक्ति ने उन्हें सूचित किया कि उनके शिष्य का आगमन नगर में हो गया है तब वे उसे अपनी ओर आकर्षित करने की क्रिया करने लगे।

एक दिन जब मुकुन्द बंगाली टोला से दशाश्वमेध की ओर आ रहा था तब उसने महसूस किया कि आगे बढ़ने से उसके पैर इंकार कर रहे हैं। पैर सुन्न पड़ गये हैं।

ऐसा क्यों हो रहा है, इसे वह समझ नहीं पा रहा था। पीछे की ओर चलने पर पैरों में स्वाभाविक गति आ गयी। पुनः जब आगे बढ़ा तो पूर्ववाली स्थिति आ गयी। मुकुन्द समझ गया कि कोई अदृश्य शक्ति उसे आकर्षित कर रही है। अब वह आगे न बढ़कर पीछे की ओर मुड़ा। एक गली की मोड़ पर आकर उसने देखा— गेरुआ वस्त्रों से आच्छादित, दाढ़ीवाला एक संन्यासी उसे तीव्र दृष्टि से देख रहा है। पास जाते ही संन्यासी ने कहा— ''आ गये वत्स, मेरे पीछे-पीछे चले आओ।''

एक अद्‌भुत आकर्षण से मुकुन्द उनके पीछे-पीछे चल पड़ा। जलपान कराने के बाद संन्यासी ने कहा— ''तुम यहाँ क्रियायोग की शिक्षा जिस ढंग से ले रहे हो, वह अवैज्ञानिक है। मेरे आश्रम में आओ, तुम्हें वास्तविक क्रियायोग का ज्ञान दूँगा जिसकी तुम्हें जरूरत है।''

मुकुन्द ने कहा—''जब यहाँ सीख रहा हूँ तब आपके यहाँ आने की क्या आवश्यकता है। मैं नहीं आऊँगा।''

संन्यासी ने हँसकर कहा—''तुम्हें आना ही पड़ेगा। आज से २८वें दिन तुम मेरे आश्रम में अपने को पाओगे जो कि कलकत्ता से १२ मील दूर श्रीरामपुर में है।''

मुकुन्द ने कहा—''यह असंभव है।''

प्रत्युत्तर में संन्यासी केवल मौन रह गये। उनके चेहरे पर स्निग्ध मुस्कान फैली हुई थी।

भवितव्य होकर ही रहता है। मुकुन्द जिस आश्रम में रहता था, वहाँ नित्य उपद्रव होने लगा। वह अपने को अछूता नहीं रख सका। फलस्वरूप एक दिन उस आश्रम को नमस्कार कर घर की ओर रवाना हो गया। उन दिनों उसका परिवार कलकत्ता में रहता था।

एक अज्ञात प्रेरणा से मुकुन्द को श्रीरामपुर आना पड़ गया। आश्रम में प्रवेश करते ही उसने सुना—''आ गये वत्स?''

मुकुन्द इस स्वागत वाणी से प्रसन्न हो उठा। भीतर आकर संन्यासी के चरणों पर मस्तक रखते हुए उसने कहा—''मैं अपने आपको पूर्ण रूप से आपके निकट समर्पित कर रहा हूँ। कृपया मुझे योग्य बनाइये।''

संन्यासी ने कहा—''आओ, तुम्हें अपना आश्रम दिखा दूँ जहाँ तुम्हें रहकर साधना करनी है।''

एक कमरे में योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी का चित्र देखकर मुकुन्द चौंक उठा। कहा—''यह चित्र तो मेरे माता-पिता के गुरुदेव का है।''

संन्यासी ने कहा—''यही मेरे पूज्य गुरुदेव हैं। मुझे तुम्हारी सारी बातें मालूम हैं। अब मेरा आदेश है कि क्रियायोग सीखने का चक्कर छोड़कर तुम मन लगाकर अध्ययन

करो। आगे चलकर तुम्हें भारतीय योग-पद्धति का ज्ञान देने के लिए पश्चिमी देशों में जाना पड़ेगा। केवल यही नहीं, वहाँ आश्रम स्थापित कर लोगों को अध्यात्म का ज्ञान देना पड़ेगा। वस्तुतः वहाँ के लोग भारतीय अध्यात्म से परिचित नहीं हैं। इस सम्पदा को विस्तार से बताने के लिए तुम्हें वहाँ जाना पड़ेगा। लेकिन उसके पहले भारत में आश्रम स्थापित करके योग-विद्या की शिक्षा देनी पड़ेगी। इस कार्य के लिए शिक्षा और ज्ञान की आवश्यकता है जिसकी पूर्ति तुम्हें कालेज और विश्वविद्यालय से करनी होगी। मेरी इच्छा है कि तुम कालेज की शिक्षा में ढील मत दो।''

संन्यासी की आज्ञा मानकर मुकुन्द ने कालेज में दाखिला ले लिया। एक दिन संन्यासी ने कहा—''आज तुम्हें क्रियायोग की दीक्षा दूँगा।''

उस दिन के अनुभव के बारे में मुकुन्द ने लिखा है—''उनके स्पर्श मात्र से ही मेरे शरीर में एक प्रचण्ड ज्योति प्रवाहित होती प्रतीत हुई, मानो करोड़ों सूर्य एक साथ जाज्वल्यमान हो उठे हों। मेरे हृदय का अन्तर प्रदेश एक अपूर्व आनन्द की धारा से आप्लावित हो उठा। मैंने गुरुदेव में रूपान्तर करने की एक महाशक्ति का अनुभव किया।''

दरअसल सिद्ध योगी इस क्रिया के द्वारा शिष्य में ऐशी-शक्ति का समावेश करते हैं। इसके बाद शिष्य क्रिया के द्वारा उन्नति करता रहता है। ऐशी-शक्ति देने के बाद गुरु निरन्तर अपने शिष्य पर नजर रखते हैं ताकि उससे चूक न हो जाय या लापरवाही न करे।

गुरु के आश्रम से लौटने पर सर्वप्रथम पिता ने अपनी शुभकामना देते हुए कहा—''यह बड़े सौभाग्य का विषय है कि जिस आश्चर्यजनक ढंग से मैंने अपने गुरु लाहिड़ी महाशय को पाया था, उसी प्रकार तुमने पाया। जो हिमालय के संत नहीं हैं, बल्कि बिलकुल समीप रहते हैं। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि अब तुम पढ़ने की ओर ध्यान लगा रहे हो।''

गुरु के आदेशानुसार मुकुन्द कालेज में शिक्षा लेने के साथ-साथ नित्य उनके आश्रम में आता रहा। उन दिनों मुकुन्द का परिवार कलकत्ता में रहता था और गुरुजी का आश्रम यहाँ से १२ मील दूर श्रीरामपुर में था। संन्यासी गुरु का नाम युक्तेश्वर गिरि था जो कि योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी के प्रिय शिष्य थे।

बातचीत के सिलसिले में एक दिन गुरुदेव ने कहा—''जगत् में निरन्तर वैद्युतिक और चुम्बकीय शक्तियों का विकिरण होता रहता है। मानव-शरीर पर उनका अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव पड़ता रहता है। युगोंपूर्व हमारे ऋषि-मुनियों ने सूक्ष्म जागतिक शक्ति-किरणों के प्रतिकूल प्रभावों का सामना करने की समस्या पर गहन चिन्तन किया और आविष्कार किया कि शुद्ध धातुओं में से सूक्ष्म प्रकाश-किरणें प्रस्फुटित होती रहती हैं जिनमें ग्रहों के प्रतिकूल प्रभावों को निष्फल बना देने की प्रचण्ड प्रतिशक्ति विद्यमान

है। कई वृक्ष-लताओं का संयोग भी सहायक सिद्ध हुआ है। इन सब में विशुद्ध और निर्मल रत्न, जिसका वजन दो रत्ती से कम न हो, सबसे अधिक प्रभावकारी है। इस विषय पर भारत के बाहर बहुत कम अध्ययन हुआ है। यह बात बहुत कम लोग जानते हैं कि समुचित रत्नों, धातुओं और औषधि सामग्री से कोई लाभ नहीं होता, यदि वे उचित मात्रा या वजन में उपलब्ध न हों और उन्हें इस तरह न पहना जाय कि उनका स्पर्श त्वचा से होता रहे।''

इन बातों को सुनकर मुकुन्द को ध्यान आया कि गुरुदेव ने इसके पूर्व चाँदी और सीसे का कड़ा पहनने की आज्ञा दी थी। उसने कहा—''गुरुदेव, आपके आदेशानुसार मैं कड़ा जरूर धारण करूँगा।''

गुरुदेव युक्तेश्वर ने कहा—''तुम्हारे ऊपर शीघ्र ही ग्रहों की कुदृष्टि पड़नेवाली है, पर भय की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारी रक्षा होगी। एक माह के भीतर ही तुम्हारे यकृत में विकार उत्पन्न होनेवाला है जिसकी वजह से बहुत कष्ट भोगना पड़ेगा। ईश्वर की इच्छा से लगभग छः मास तक तुम कष्ट भोगोगे, पर अगर कड़ा धारण करोगे तो यह कष्ट घटकर चौबीस दिन की रह जायगी।''

दूसरे दिन मुकुन्द जौहरी की दुकान पर निश्चित मात्रा का कड़ा बनाने का आदेश दिया और कड़ा बनते ही पहन लिया। बाद में वह यह बात भूल गया। इसी बीच गुरुदेव आश्रम से काशी चले गये। इसके बाद मुकुन्द को अपार कष्ट होने लगा। तेईस दिन तक भयंकर कष्ट सहने के बाद साहस करके वह बनारस के लिए रवाना हो गया। वहाँ गुरुदेव अनेक लोगों से घिरे हुए थे। वह अपने कष्ट की बात कह नहीं सका। रात को जब गुरुदेव सभी कार्यों से निवृत्त हुए तब वे मुकुन्द के पास आये और कहा—''तुम अपनी पीड़ा की बात कहने आये हो न? तुम्हें मैंने पेट का व्यायाम करने को कहा था। उसे कर रहे हो या नहीं?''

मुकुन्द ने कहा—''अगर आप मेरे पेट की असह्य पीड़ा को समझ लेते तो ऐसी आज्ञा न देते।''

फिर भी गुरु की आज्ञा मानकर वह व्यायाम करने लगा। एकाएक कह उठा—''गुरुदेव, अब मुझसे व्यायाम न होगा। बहुत कष्ट हो रहा है।''

गुरुदेव ने कहा—''ऐसा हो नहीं सकता। तुम कह रहे हो कि असह्य पीड़ा हो रही है और मैं देख रहा हूँ कि पीड़ा नहीं है।''

इतना कहने के बाद गुरुदेव ने प्रश्न सूचक दृष्टि से मुकुन्द की ओर देखा। तभी मुकुन्द ने अनुभव किया कि जादू की तरह उसका सारा कष्ट दूर हो गया है। इस पीड़ा के कारण वह लगातार कई सप्ताह तक सो नहीं सका था। इस वक्त वह पीड़ा बिलकुल गायब हो गयी है। उसे अपने कष्ट से मुक्ति पाने की बेहद प्रसन्नता हुई।

युक्तेश्वर गिरि के श्रीरामपुर स्थित आश्रम में मुकुन्द के अलावा अन्य कई शिष्य गुरुदेव की सेवा में लगे रहते थे। इनमें अधिकांश क्रियायोग की शिक्षा लेने के लिए आश्रम में आते-जाते थे। मुकुन्द ने अपने सहपाठी दिजेन से कहा कि तुम मेरे गुरुदेव के पास चलो। वे तुम्हें क्रियायोग की शिक्षा देंगे। इससे ईश्वरीय आन्तरिक विश्वास द्वारा द्वैतवादी खलबली को शान्ति प्राप्त होगी।

मुकुन्द के आह्वान पर दिजेन भी आश्रम में आया। युक्तेश्वरजी की कृपा हुई। मुकुन्द क्रियायोग में साधना करते-करते उन्नत अवस्था प्राप्त कर चुका था। अक्सर उसे गुरुजी का संदेश अथवा किसी घटना की सूचना अन्तर्देश से प्राप्त हो जाती थी।

एक दिन मुकुन्द और दिजेन शाम के समय जब आश्रम में आये तब उन्हें कन्हाई नामक एक बालक ने सूचना दी—"गुरुदेव यहाँ नहीं हैं। किसी आवश्यक कार्य से कलकत्ता चले गये हैं।"

दूसरे दिन मुकुन्द को एक पोस्टकार्ड मिला। गुरुदेव ने लिखा था—"मैं बुधवार को प्रातःकाल कलकत्ता से प्रस्थान करूँगा। तुम और दिजेन प्रातःकाल ९ बजे श्रीरामपुर स्टेशन पर मिलो।"

बुधवार को ८.३० बजे मुकुन्द के मन में गुरुदेव द्वारा संचालित टेलीपैथी द्वारा समाचार मिला—"मैं रुक गया हूँ। ९ बजे की गाड़ी पर मत पहुँचो।"

यह समाचार जब मुकुन्द ने दिजेन को सुनाया तब उसने कहा—"अपनी अन्तर्ध्वनि को रखे रहो। मैं लिखित बातों पर अधिक विश्वास करता हूँ।" इतना कहकर दिजेन स्टेशन की ओर रवाना हो गया।

कमरा जरा अंधकार पूर्ण था। खिड़की से बाहर की ओर देखते समय मुकुन्द को सूर्य के प्रकाश में सहसा गुरुदेव की मूर्ति दिखाई दी। तुरंत श्रद्धा के साथ वह घुटनों के बल बैठ गया। उनका वस्त्र हवा में लहराता हुआ मुकुन्द के शरीर को स्पर्श करने लगा। गुरुदेव ने कहा—"तुमने मेरा मनः संदेश पढ़ लिया। कलकत्ते का काम पूरा हो गया। अब मैं १० बजे वाली गाड़ी से आ रहा हूँ।"

मुकुन्द अवाक् होकर गुरुदेव को एकटक देखने लगा। उसके लिए यह अद्‌भुत दृश्य था। उसे इस तरह देखते देख युक्तेश्वर ने कहा—"यह मेरा भूत नहीं, हाड़-माँस वाला शरीर है। ईशाज्ञा से मैं तुमको यह अनुभव प्रदान कर रहा हूँ जो पृथ्वी पर दुर्लभ है। स्टेशन पर मिलो। तुम और दिजेन मुझे इसी पोशाक में देखोगे।"

स्टेशन आने पर दिजेन ने कहा—"गुरुदेव न तो ९ बजे वाली गाड़ी से आये और न ९.३० बजे वाली से।"

मुकुन्द ने कहा—"गुरुदेव १० बजे वाली गाड़ी से आ रहे हैं।"

दिजेन को विश्वास नहीं। मुकुन्द ने कहा—"वह देखो, गाड़ी आ रही है। उनके

प्रकाश से सम्पूर्ण गाड़ी आलोकित है।'' इसके बाद उसने गुरुदेव किस पोशाक में रहेंगे, इस बात का उल्लेख किया।

दिजेन ने कहा—''तुम दिन-रात इसी तरह का सपना देखते रहो। मैं चला।''

मुकुन्द ने कहा—''केवल इस गाड़ी को देख लो। वह देखो, गुरुदेव गाड़ी से उतर रहे हैं।''

थोड़ी देर में चलकर गुरुदेव दोनों के पास आकर खड़े हो गये। दिजेन का आनन लज्जा से झुक गया।

क्रियायोग की चर्चा करते हुए युक्तेश्वर गिरि ने एक दिन मुकुन्द से कहा—''मेरे परमगुरु (गुरु के गुरु यानी योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी के गुरु महावतार बाबाजी) ने गुरुदेव को बताया था—इस १६वीं शताब्दी जो क्रियायोग तुम्हें दे रहा हूँ, वह उसी विज्ञान का पुनरुज्जीवन है जिसे भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को दिया था। बाद में जिसे पातंजलि, ईसामसीह, सेण्ट जान तथा कबीर ने प्राप्त किया था। गीता में इसका उल्लेख है

अपान वायु में प्राणवायु के हवन के द्वारा और प्राणवायु में अपान वायु के हवन के द्वारा योगी प्राण और अपान, दोनों की गति को निरुद्ध कर देता है। इस प्रकार वह प्राण को हृदय से मुक्त कर लेता है और प्राणशक्ति पर नियंत्रण प्राप्त कर लेता है यानी योगी फेफड़ों और हृदय की क्रिया को शान्त कर प्राण की अतिरिक्त पूर्ति के द्वारा शरीर के अपक्षय को रोक देता है। इस प्रकार वह अपक्षय और प्रवृद्धि को प्रभावहीन बनाते हुए प्राणशक्ति पर नियंत्रण प्राप्त कर लेता है।''

आगे आपने कहा—''क्रियायोगी अपनी प्राणशक्ति को मेरुदण्ड के छः चक्रों (आज्ञा, विशुद्ध, अनाहत, मणिपुर, स्वाधिष्ठान और मूलाधार) जो विश्व पुरुष के प्रतीक राशिचक्र की बारह राशियों के समान है, में मानसिक शक्ति के द्वारा ऊपर या नीचे की ओर प्रवाहित करता है। मनुष्य के संवेदनशील मेरुदण्ड के चारों ओर प्राणशक्ति की आधा मिनट की परिक्रमा से मनुष्य के विकास में सूक्ष्म प्रगति होती है। साधारण गति से जो आध्यात्मिकता एक वर्ष में प्रकट होती है, वह आधे मिनट के क्रिया-अभ्यास के समान होती है। यह याद रखना चाहिए कि अनेक मार्गभ्रष्ट उत्साहोन्मत्त व्यक्तियों द्वारा सिखाये जानेवाले अवैज्ञानिक श्वास-व्यायामों से क्रियायोग का कोई सम्बन्ध नहीं है। फेफड़ों में बलपूर्वक श्वास को रोक रखने की चेष्टा अप्राकृतिक तथा निस्सन्दिग्ध रूप से कष्टकर भी है। इसके विपरीत आरंभ से ही क्रियायोग के अभ्यास के बाद शान्ति की भावना की और मेरुदण्ड में पुनरुज्जीवनी शक्ति के प्रभाव की सुखद अनुभूति होती है।''

योगसूत्र के रचनाकार महर्षि पातंजलि ने योग को दो श्रेणियों में विभक्त किया है— प्रथम समाधियोग और दूसरा क्रियायोग। जिस साधक का चित्त बहिर्मुख हो, उसे क्रियायोग करना चाहिए और जिसका चित्त अन्तर्मुख हो, वह समाधि-योग कर सकता

है। क्रियायोग के रूप में तपस्या, स्वाध्याय यानी जप, सद्ग्रंथ पाठ तथा भजन करना चाहिए। इन तीनों साधनों का समान रूप से या मुख्य रूप से अनुष्ठान होने पर क्रियायोग सिद्ध होता है। चित्त की प्रकृति के अनुसार किसी की साधना-तपस्या मुख्य रहती है। अन्य दोनों साधनों के अंग भी गौण रूप में उसमें रहते हैं। किसी की साधना में स्वाध्याय की प्रधानता रहती है अथवा भजन की, परन्तु गौण रूप में अन्य दो अंगों का सन्निवेश रहता है। दीर्घकाल तक यथाविधि अपने-अपने गुरु द्वारा निर्दिष्ट प्रक्रिया से क्रियायोग के मार्ग में अग्रसर हो सकने पर उसके प्रभाव से चित्त क्रमशः बहिर्मुखता त्यागकर शान्त भाव धारण करता है और अन्तर्मुख हो जाता है। इस समय साधक समाधि-योग का अभ्यास कर सकता है।

क्रियायोग का मुख्य फल है चित्त में स्थित अज्ञानादि सभी क्लेशों को सूक्ष्म करना। साधक के हृदय में अनन्त क्लेश संस्कार के रूप में संचित रहते हैं। क्रियायोग का समुचित ढंग से अनुष्ठान करने पर सभी क्लेश सूक्ष्म होकर निर्बल हो जाते हैं। क्रियायोग के अलावा अन्य किसी उपाय से उसे दबाया नहीं जा सकता।

क्रियायोग से कितना लाभ होता है, इसका उल्लेख करते हुए योगानन्दजी कहते हैं—"साढ़े आठ घंटे में एक हजार बार क्रिया का अभ्यास एक दिन में एक हजार वर्ष के स्वाभाविक विकास तुल्य है यानी ३ लाख ६५ हजार वर्षों का विकास एक वर्ष में। क्रियायोगी अपनी आत्मप्रचेष्टा के द्वारा तीन वर्ष में वही परिणाम प्राप्त कर लेता है जिसे प्राकृतिक रूप से प्राप्त करने में १० लाख वर्ष लगते हैं। गुरु के मार्ग-दर्शन से ऐसे योगियों ने सावधानी पूर्वक अपने शरीर और मस्तिष्क को इस प्रकार तैयार किया है कि वे उग्र अभ्यास से उत्पन्न शक्ति सहन कर सकें।"

+ \+ \+ \+

मुकुन्द के पिता इधर उस पर दबाव डालने लगे कि वह रेलवे की नौकरी में लग जाय। लेकिन इस दिशा में रुचि न रहने के कारण वह टाल-मटोल करता रहता। आखिर एक दिन अपनी समस्या युक्तेश्वरजी के सामने प्रकट करते हुए उनसे आग्रह किया कि वे उसे संन्यास दें। गोकि इसके पूर्व वह अपने मन की इच्छा को निरन्तर उनके सामने प्रकट करता रहा।

उस दिन गुरुजी ने न जाने क्या सोचा और कुछ देर चुप रहने के बाद कहा—"ठीक है। कल तुम्हें संन्यास दूँगा।"

वृहस्पतिवार, जुलाई, सन् १६१४ के दिन युक्तेश्वरजी ने सिल्क के एक टुकड़े को गेरुआ रंग में रंगकर मुकुन्द को ओढ़ा दिया। फिर उन्होंने कहा—"एक दिन तुम्हें पश्चिम जाना है। वहाँ के लोगों को रेशमी वस्त्र बहुत पसन्द है। यही वजह है कि तुम्हें रेशमी वस्त्र से सजा रहा हूँ। अब तुम्हें अपनी रुचि के अनुसार नाम चुन लेने का अधिकार देता हूँ।"

मुकुन्द ने कहा—''योगानन्द।''

गुरुदेव ने कहा—''तथास्तु, अब से तुम्हारे पारिवारिक नाम मुकुन्दलाल घोष के स्थान पर तुम 'स्वामी सम्प्रदाय' की 'गिरि' शाखा के 'योगानन्द गिरि' के नाम से जाने जाओगे।''

युक्तेश्वरजी के चरणों के निकट साष्टांग प्रणाम करते हुए योगानन्द ने कहा—''आज का दिन गुरु-कृपा से मेरे जीवन का महत्त्वपूर्ण दिन है।''

युक्तेश्वर ने कहा—''अब तुम्हें कार्यक्षेत्र में उतरना है। सबसे पहले यहाँ के बालकों को योग-शिक्षा देनी है ताकि इसके माध्यम से उनमें मानवता का विकास हो। प्रचलित विषयों के अलावा योग-ध्यान पर भी नजर रखनी होगी ताकि बालकों में आध्यात्मिक विकास हो सके।''

योगानन्द ने कहा—''गुरुदेव, यह कार्य मेरी रुचि के अनुकूल है। आपका आशीर्वाद मिलता रहा तो मैं सहर्ष इस कार्य को करने का प्रयत्न करूँगा।''

योगानन्द ने बंगाल के एक नगण्य गाँव में केवल सात बालकों को लेकर कार्य प्रारंभ किया। यह सन् १९१७ ई० की बात है। इसके बाद कासिम बाजार के महाराज सर मणीन्द्रचन्द्र चौधरी के दान से रांची में 'योगदा सत्संग ब्रह्मचर्य विद्यालय' की स्थापना हुई। यहाँ सामान्य शिक्षा के अलावा योग पर अधिक ध्यान दिया जाता था। आश्चर्य की बात है कि प्रथम वर्ष में इस विद्यालय में भर्ती होने के लिए दो हजार आवेदन-पत्र प्राप्त हुए। लेकिन वहाँ केवल १०० विद्यार्थियों के लिए व्यवस्था थी। शेष बच्चों के लिए केवल दिन की शिक्षा व्यवस्था की गयी। इस प्रकार विद्यालय क्रमशः उन्नति करता रहा।

एक दिन बाल मण्डली को लेकर योगानन्द विद्यालय से दूर एक पहाड़ी पर सैर कराने के लिए ले गये थे। वहीं एक बालक ने सहसा प्रश्न किया—''स्वामीजी, कृपया यह बताइये कि क्या मैं वैराग्य-पथ पर सदा आपके साथ बना रहूँगा?''

योगानन्द की अतीन्द्रिय शक्ति ने जवाब दिया—''नहीं बच्चे, तुम बलपूर्वक ले जाये जाओगे और बाद में तुम्हारी शादी हो जायगी।''

बालक ने तेवर बदलकर कहा—''ऐसा नहीं हो सकता। मेरे मरने पर ही लोग मुझे यहाँ से ले जा सकते हैं।''

लेकिन ऐसा नहीं हुआ। उसके अभिभावक आये और उसे जबरन अपने साथ ले गये। बाद में उसका विवाह हो गया।

इस बालक के प्रश्न को सुनकर काशी नामक बालक को अपने भविष्य के बारे में उत्सुकता हुई। उसने योगानन्द से प्रश्न किया—''मेरे भाग्य में क्या है?''

योगानन्द ने कहा—''शीघ्र ही तुम्हारी मृत्यु हो जायगी।'' इतना कहने के बाद योगानन्द चौंक उठे। मुझे ऐसा नहीं कहना चाहिए था। इसके पहले अन्य लड़के अपने बारे में सवाल करें, वे तुरंत अपने कमरे में चले गये। अन्य लड़के प्रश्न करते रह गये, पर उन्होंने किसी को कोई जवाब नहीं दिया।

विद्यालय से लौटने के बाद काशीराम पुनः योगानन्द के कमरे में आया और प्रश्न किया—''अगर मैं मर जाऊँ और पुनर्जन्म लूँ तो क्या आप मुझे खोज निकालेंगे और पुनः आध्यात्मिक मार्ग पर ले आयेंगे?''

इस प्रश्न का उत्तर सहसा योगानन्द नहीं दे सके। कुछ देर बाद उन्होंने कहा—''अगर परमपिता मेरी सहायता करेंगे तो तुम्हें खोजने का प्रयत्न करूँगा।''

योगानन्द को कुछ दिनों के लिए बाहर जाना था। सहसा उन्हें बोध हुआ कि अगर काशी विद्यालय से बाहर न जाय तो उसका संकट टल सकता है। उसे बुलाकर योगानन्द ने कहा—''मैं कुछ दिनों के लिए बाहर जा रहा हूँ। मेरी अनुपस्थिति में तुम बाहर कहीं मत जाना।''

योगानन्द के जाने के चार दिन बाद काशी के पिता उसे घर ले जाने के लिए आये, पर वह जाने को राजी नहीं हुआ। पिता ने कहा—''तेरी माँ की तबीयत ठीक नहीं है। वह एक बार तुझे देखना चाहती है।''

इस बात पर भी जब काशी जाने को राजी नहीं हुआ तब पिता ने कहा कि मैं तुझे पुलिस की सहायता से ले जाऊँगा तब देखूँगा कि तू कैसे नहीं चलता। पुलिस के विद्यालय में आने से यहाँ की अप्रतिष्ठा होगी। यह सोचकर वह पिता के साथ चला गया। कलकत्ता जाकर बाजार का चाट खाने पर उसे हैजा हुआ और मर गया।

इधर जब योगानन्द विद्यालय आये तब सारा समाचार उन्हें ज्ञात हुआ। वे तुरंत काशी को ले आने के लिए कलकत्ता रवाना हो गये। जब हावड़ा-पुल पर से रवाना हो रहे थे तब उन्होंने काशी के पिता को अशौच अवस्था में देखा। तुरंत गाड़ी पर से कूदकर बोले—''तुम हत्यारे हो। तुमने मेरे काशी के प्राण जिद्दवश ले लिया।''

काशी के निधन के छः मास तक योगानन्द योगक्रिया का प्रयोग करते रहे। एक दिन सबेरे कलकत्ता में टहलते हुए अपनी आदत के अनुसार इन्होंने हाथ को ऊपर उठाया। तुरंत रेडियो की तरह उँगलियों में तरंगें महसूस हुईं। योगानन्द वहीं गोल चक्कर काटते हुए यह महसूस करने लगे कि तरंगें किसी दिशा से आ रही हैं। दिशा का ज्ञान होते ही उस ओर बढ़ गये तो तरंगों का विकिरण तेजी से होने लगा। इसके बाद उस गली में तेजी से बढ़ते गये। सहसा एक मकान के पास आते ही उनके पैर अटक गये। योगानन्द को समझते देर नहीं लगी कि इसी मकान में किसी माता के गर्भ में काशी है।

दरवाजा खटखटाने पर गृहस्वामी बाहर निकल कर सवालिया सूरत में इन्हें देखने

लगे। योगानन्द ने पूछा—"कृपया मुझे यह बतायें कि क्या आपकी पत्नी छः माह से गर्भवती है?"

उन्होंने इस बात को स्वीकार किया तब योगानन्द ने काशी के बारे में सारी बातें कहने के बाद कहा—"आपको एक गौर वर्ण का पुत्र प्राप्त होगा जिसका मुँह चौड़ा होगा। ललाट पर भ्रमरी रहेगी। बड़ा होने पर उसकी अध्यात्म के प्रति बेहद रुचि होगी।"

बाद में पता चला कि गृहस्वामी ने योगानन्द के इस बात पर विश्वास करके लड़के का नाम काशी रखा था।

+ + + +

एक दिन गुरुदेव युक्तेश्वर ने कहा—"योगानन्द, अब समय आ गया है। तुम्हें अमेरिका जाना है जहाँ क्रियायोग का ज्ञान उचित व्यक्तियों को देना है।"

योगानन्द को इस बात की जानकारी थी कि दीक्षा लेने के पूर्व से ही गुरुदेव उन्हें पश्चिम जाने की प्रेरणा देते रहे। अतएव इस समय दिया गया यह आदेश समयानुकूल है। निश्चित रूप से यात्रा की सारी व्यवस्था गुरुदेव की ओर से होगी। योगानन्द ने कहा—"आपका आदेश शिरोधार्य है। मैं पिताजी से भी आज्ञा ले लूँ।"

युक्तेश्वर मुस्कराये। बोले—"अगर वे विरोध करेंगे तो क्या यात्रा स्थगित कर दोगे?"

योगानन्द ने कहा—"संभवतः वे ऐसे महान् कार्य के लिए विरोध नहीं करेंगे। अगर ऐसा संभव हुआ तो मैं गुरु के आदेश को महत्त्व दूँगा, क्योंकि अब मैं संन्यासी हूँ।"

दूसरे दिन जब यह समाचार पिताजी को सुनाया गया तो वे नाराज होकर बोले-"तुम अमेरिका नहीं जा सकते। यह मत समझना कि मैं तुम्हें यात्रा-व्यय दूँगा।"

योगानन्द ने कहा-"मैं आपसे यात्रा-व्यय माँग कहाँ रहा हूँ? केवल अनुमति के लिए निवेदन किया है। गुरुदेव की इच्छा जब वहाँ भेजने के लिए है तब सारी व्यवस्था भगवद्कृपा से वे ही करेंगे।"

ठीक उन्हीं दिनों योगानन्द के नाम अमेरिका में आयोजित एक धार्मिक सम्मेलन में भाग लेने का निमंत्रण-पत्र मिला। यह आयोजन बोस्टन में होनेवाला था। इस पत्र को पाकर योगानन्द विस्मय से अवाक् रह गये। उसी दिन गुरुदेव के पास आये।

सारी बातें सुनने के बाद युक्तेश्वर ने कहा—"तुम्हारे लिए यह सुनहला अवसर है। अगर चूक गये तो फिर कभी नहीं जा सकोगे।"

योगानन्द ने अपनी मजबूरी प्रकट करते हुए कहा—"मुझे सार्वजनिक रूप में व्याख्यान देने का अभ्यास नहीं है। अंग्रेजी में तो बोल ही नहीं सकता।"

''अंग्रेजी हो या न हो, पर योगक्रिया पर तुम्हारा भाषण लोग बड़े मनोयोग से सुनेंगे।''

घर वापस आने पर योगानन्द ने देखा कि पिताजी का क्रोध ठंडा हो गया है। उन्होंने एक बड़ी रकम का चेक उसे देते हुए कहा—''मैं तुम्हें यह रकम पिता होने के नाते नहीं, बल्कि लाहिड़ी महाशय का शिष्य होने के नाते दे रहा हूँ। तुम अमेरिका जाओ और वहाँ क्रियायोग का प्रचार करो।''

पिताजी से यात्रा व्यय मिल जाने के बाद योगानन्द यात्रा की तैयारी करने लगे। इसी बीच एक दिन सदर दरवाजे पर खड़खड़ आवाज सुनकर उन्होंने दरवाजा खोला तो सामने एक कौपीनधारी युवक को देखा। कौपीनधारी बाबा कमरे के भीतर आये। पल भर में योगानन्द ने आगन्तुक को पहचान लिया। आप परमगुरु के गुरु यानी बाबाजी थे। योगानन्द के मन की भावना को भाँपकर उन्होंने कहा—''हाँ, मैं बाबाजी हूँ। तुम्हें यह आदेश देने आया हूँ कि अपने गुरु की आज्ञा मानकर तुम शीघ्र अमेरिका चले जाओ। तुम्हें कभी कोई परेशानी नहीं होगी।''

इतना कहने के बाद वे अन्तर्धान हो गये। बाबाजी का आदेश पाने के बाद योगानन्द बिलकुल निर्भय हो गये। पासपोर्ट, बीसा आदि की व्यवस्था कर निश्चित दिन अमेरिका के लिए रवाना हो गये। उन्हें विश्वास था कि मार्ग में किसी प्रकार का संकट आने पर गुरु और बाबाजी सहायता करेंगे। योगानन्द को इस विश्वास का फल जहाज में मिला।

बातचीत के सिलसिले में योगानन्द ने जब जहाज के सहयात्रियों को बताया कि वे अमेरिका में आयोजित धर्म-सम्मेलन में भाग लेने जा रहे हैं तब सभी को उत्सुकता हुई। सहयात्रियों में एक ने अनुरोध किया—''स्वामीजी, गुरुवार की रात्रि को आप अपने प्रवचनों से उपकृत करें। विषय मेरी समझ से ''जीवन युद्ध और उस पर विजय पाने के उपाय'' रखें तो हमें लाभ होगा।''

योगानन्द की हालत खराब हो गयी। ऐसे कठिन विषय पर अंग्रेजी में धारा-प्रवाह कैसे बोल सकेंगे? बुधवार को अपने केबिन में बोलने का अभ्यास करने लगे। रह-रहकर उलझ जाते रहे। धाराप्रवाह बोलते समय अपने मन की बात स्पष्ट नहीं कर पा रहे थे। आखिर गुरुवार की रात्रि आ गयी। जहाज के हाल में लोग बैठ गये। योगानन्द भाषण देने के लिए खड़े हुए, पर उनके मुँह से एक शब्द नहीं निकला। लगा जैसे होंठ आपस में चिपक गये हैं। सामने बैठे कई दर्जन श्रोता योगानन्द की परेशानी गौर से देख रहे थे। दस मिनट तक योगानन्द को चुप रहते देख सभी श्रोता हँस पड़े।

शर्म से क्षुब्ध होकर योगानन्द अपने गुरु को स्मरण करते हुए प्रार्थना करने लगे। तभी उनकी अन्तरात्मा से आवाज आयी—''तुम बोल सकते हो। बोलना शुरू करो।''

इस प्रेरणास्पद संदेश को पाते ही योगानन्द की जड़ता क्षण मात्र में दूर हो गयी। गुरु-शक्ति ने उन्हें धारा-प्रवाह भाषण देने के लिए प्रेरित किया। उन्हें अपने ऊपर आश्चर्य हो रहा था कि वे कैसे बोलते चले जा रहे हैं। भाषण समाप्ति के बाद उन्होंने श्रोताओं से अपने भाषण के बारे में पूछा। लोगों ने कहा कि शुद्ध अंग्रेजी में दिया गया उनका भाषण अपूर्व और अविस्मरणीय रहा। मन ही मन गुरुचरणों में प्रणाम करते हुए योगानन्द ने कहा कि इसी प्रकार सहायता करते रहें।

बोस्टन की धर्म-सभा में भी अपने भाषण के माध्यम से योगानन्द ने श्रोताओं को प्रभावित किया। उन्हें यह समझते देर नहीं लगी कि यह सब गुरुकृपा से हो रहा है। मैं तो अंग्रेजी में ठीक से बोलने में हिचकता रहा। गुरु का आशीर्वाद निरन्तर साथ दे रहा है। गुरु ने जिस महान् कार्य के लिए उन्हें अमेरिका भेजा है, अब उस दिशा में कार्य करने लगे। सन् १९२० से १९३० तक हजारों अमेरिकी जनता ने आपकी क्रियायोग पद्धति से आकृष्ट होकर शिष्यत्व ग्रहण किया। आपने स्थानीय साधकों को संस्था का अध्यक्ष बनाया और स्वयं अमेरिका के विभिन्न शहरों में भाषण देते रहे। इसी बीच कैलिफोर्निया में 'सेल्फ रियलाइजेशन फेलोशिप— योगदा सत्संग सोसायटी ऑफ इण्डिया' का अन्तर्राष्ट्रीय कार्यालय की स्थापना उन्होंने की। इस संस्था के माध्यम से अध्यात्म तथा क्रियायोग का प्रचार होने लगा।

इन सब कार्यों में वे इस तरह लगे रहे कि कब पन्द्रह वर्ष गुजर गये, इसका पता नहीं चला। ठीक इन्हीं दिनों अन्तरात्मा से गुरुदेव की वाणी सुनाई दी—''भारत लौट आओ। पिछले पन्द्रह वर्ष तक मैंने इन्तजार किया। मैं शीघ्र शरीर त्याग कर प्रस्थान करनेवाला हूँ। योगानन्द, अब देर मत करो। शीघ्र चले आओ।''

गुरुदेव के इस आदेश को उन्होंने अपने एक मित्र को सुनाया। उसने योगानन्द की यात्रा की सारी व्यवस्था कर दी। योगानन्द वापस जा रहे हैं जानकर अनेक छात्रों ने मिलकर विदाई समारोह का आयोजन किया। वे अमेरिका से ९ जून, सन् १९३५ के दिन रवाना होकर भारत आ गये। बम्बई से कलकत्ता आने पर योगानन्द का अभूतपूर्व स्वागत हुआ। यहाँ से वे अपने अमेरिकी शिष्यों के साथ श्रीरामपुर स्थित गुरुदेव के आश्रम में आये। अमेरिका से गुरुदेव के लिए अनेक उपहार ले आये थे जिसे योगानन्द ने उन्हें समर्पित कर दिया।

इसके बाद गुरुदेव से अनुमति लेकर अपने शिष्यों के साथ वे भारत के विभिन्न स्थानों में भ्रमण करने लगे। कुछ दिनों बाद योगानन्द के गुरुभाई श्री अतुलचन्द्र राय के पास एक तार पहुँचा—''जल्द पुरी आश्रम आ जाइये।''

उन दिनों युक्तेश्वरजी अपने पुरी आश्रम में थे। इस तार की सूचना योगानन्द को अतीन्द्रिय-शक्ति ने दी। इस तार का क्या अर्थ है, समझते ही वे धम्म से जमीन पर बैठ गये। भगवान् से गुरुदेव के जीवन-दान के लिए प्रार्थना करने लगे। थोड़ी देर बाद

वे कलकत्ता स्थित घर से स्टेशन की ओर रवाना हुए तो उनके अन्तर्मन से आवाज आयी—"आज रात पुरी मत जाओ। तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार्य नहीं है।"

"हाय भगवान्" कहते हुए योगानन्द बेचैन हो उठे। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि अंतिम समय में मेरा उपस्थित रहना भगवान् को मंजूर नहीं है। दूसरे दिन जब वे पुरी के लिए रवाना हुए तब मार्ग में श्री युक्तेश्वर प्रकट हो गये। उनकी मुद्रा गंभीर थी।

"क्या सब कुछ समाप्त हो गया?" विनयपूर्वक शून्य में प्रणाम करते हुए योगानन्द ने पूछा।

उन्होंने सिर हिलाया और फिर शून्य में वे धीरे-धीरे अन्तर्धान हो गये। पुरी स्टेशन पर उतरकर योगानन्द चारों ओर देख रहे थे, तभी एक व्यक्ति पास आकर बोला—"क्या आपने गुरुदेव के देहत्याग का समाचार सुन लिया है?"

इतना कहकर वह व्यक्ति भीड़ में गायब हो गया। बोझिल मन से योगानन्द पुरी आश्रम में आये। सामने गुरुदेव का निष्प्राण शरीर जीवन्त लग रहा था। योगानन्द चीख उठे—"बंगाल का शेर चला गया।"

९ मार्च को उनका निधन हो गया था। १० मार्च के दिन संन्यासियों की परम्परा के अनुसार श्री युक्तेश्वर को समाधि दे दी गयी।

गुरुदेव के निधन के पश्चात् योगानन्दजी भारत के विभिन्न संतों से मिलते रहे। श्री आनन्दमयी माँ, निराहार योगिनी, महात्मा गाँधी आदि इनमें प्रमुख रहे। सन् १९३८ में दक्षिणेश्वर में उन्होंने योगदा आश्रम स्थापित किया। इसके बाद वे पुनः पश्चिम चले गये और कई देशों में भाषण देने के बाद अमेरिका चले आये। यहाँ आकर १९४० से १९५१ तक वे अनेक लोगों को योगक्रिया के बारे में प्रशिक्षण देते रहे।

७ मार्च, सन् १९५२ के दिन भारतीय राजदूत श्री विनय रंजन सेन के सम्मान में आयोजित समारोह में भाषण देने के बाद योगानन्द ने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया। ७ मार्च से २७ मार्च तक उनका पार्थिव शरीर जनता के दर्शन के लिए रखा गया था। इसके बाद २७ मार्च को उन्हें समाधि दे दी गयी। स्वामी विवेकानन्द के पश्चात् योगानन्दजी ने भारतीय अध्यात्म का प्रचार पश्चिमी देशों में करके यह प्रमाणित कर दिया कि इस क्षेत्र में भारत अन्य देशों से आगे है।

साधु दुर्गाचरण नाग

साधु दुर्गाचरण नाग

बीसवीं शताब्दी के चतुर्थ दशक की बात है। उन दिनों कलकत्ता शहर आज की तरह जनाकीर्ण नहीं था। कालीघाट के आगे भयंकर जंगलों का सिलसिला बहुत दूर तक फैला हुआ था। रेलगाड़ी के अस्तित्व का पता नहीं था। राह चलते मुसाफिरों को चोर-डाकू लूट लेते थे। अधिकतर व्यापार जल-मार्ग से होता रहा।

सेठ राजकुमार और हरिचरण पाल की गद्दी की ख्याति पूरे बंगाल में थी। इस गद्दी में दीनदयाल नाग कारिन्दा थे। नाग महाशय कलकत्ता से नाव पर माल लादकर गन्तव्य शहरों के व्यापारियों के यहाँ पहुँचाते थे। इनकी ईमानदारी की फर्म में धाक थी।

नाग महाशय कितने धर्मभीरु और ईमानदार थे, इसका अंदाजा एक घटना से लगाया जा सकता है। एक बार आप माल नाव पर लदवाकर नारायणगंज जा रहे थे। चलते-चलते एक जगह शाम हो गयी। नदी किनारे से कुछ दूर बस्ती तथा किनारे के समीप एक भवन देखकर उन्हें बस्ती का आभास हुआ। उन्होंने मल्लाहों से लंगर डालने का आदेश दिया।

सभी मल्लाह नीचे उतरकर रात के भोजन की तैयारी करने लगे। दूसरे दिन हाजत के लिए दीनदयाल बड़े मकान के पीछे चले गये। मकान में कोई रहता है, इसका आभास उन्हें नहीं हुआ। उन्हें लगा जैसे यह भवन विरान है। आदत के अनुसार हाथ मटियाने के लिए एक जगह की मिट्टी नाखून से खरोचने लगे। सहसा एक गोल-सा सिक्का हाथ लगा। गौर से देखने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि यह मोहर है। उत्सुकतावश वे उस स्थान की मिट्टी हटाने लगे। नीचे उन्हें मोहरों से भरा घड़ा नजर आया। तुरंत उस पर मिट्टी डालकर नाव पर चले आये।

नाव पर आते ही उन्होंने हुक्म दिया—''जल्दी से नाव खोल दो।''

मल्लाहों को आश्चर्य हुआ। आखिर इतनी जल्दी क्यों? उन लोगों ने कहा—''बाबू, अभी सभी लोग फरागत से खाली नहीं हुए हैं। कुछ देर बाद चलेंगे।''

नाग महाशय घबड़ाकर बोले—''ना, ना। तुरंत नाव खोल दो। आगे किसी जगह हाजत करना। यहाँ खतरा है। जल्दी करो। यहाँ रुकने पर मुसीबत आ जायेगी।''

नाग महाशय क्यों इतना घबड़ा गये हैं, आखिर कौन सी मुसीबत आ जायगी, इसे कोई समझ नहीं सका। इच्छा न रहते हुए भी नाव खोलना पड़ा। काफी दूर जाकर पुनः लंगर डाला गया जहाँ लोग हाजत करने गये।

दीनदयाल चाहते तो मोहरों से भरे घड़े को हजम कर सकते थे। कम-से-कम इस नौकरी से छुट्टी पाकर शेष जीवन आराम से गुजार सकते थे। गरीबी से तो मुक्ति मिल ही जाती। लेकिन स्वभाव से धर्मभीरु थे। पराया धन को मिट्टी समझते थे। यही वजह है कि उनके मालिकों का इन पर गहरा विश्वास था।

ऐसे चरित्रवाले व्यक्ति के यहाँ २१ अगस्त सन् १८४६ के दिन एक बालक ने जन्म लिया। अन्नप्राशन के दिन उसका नाम दुर्गाचरण रखा गया।

दीनदयाल तत्कालीन बंगाल के नारायणगंज जिले के देवभोग गाँव के निवासी थे। उनका पूरा परिवार गाँव में रहता था। केवल वे अकेले नौकरी के सिलसिले में कलकत्ता में रहते थे।

दुर्गाचरण की उम्र जिन दिनों आठ वर्ष की थी, उन्हीं दिनों उनकी माँ का निधन हो गया। बचपन के शेष दिन बुआ की गोद में गुजारने लगे। बुआ से उन्हें इतना प्यार मिला कि वे उन्हें 'माँ' कहते थे।

शाम होते ही वे चटाई बिछाकर बुआ के साथ लेट जाते और आकाश में बिखरे तारों को देखकर कह उठते थे—"माँ, चलो हम लोग ताराओं के देश में चलकर रहें।"

चाँद को देखकर उससे खेलने के लिए मचल उठते थे तब बुआ उन्हें धार्मिक कथाएँ सुनाने लगती थीं। बचपन से भोला और शान्त स्वभाव का होने के कारण वह अपने हमजोलियों से कभी उलझा नहीं। अगर किसी मित्र से पीटे जाते तो घर आकर उसकी शिकायत नहीं करते थे। नारायणगंज में केवल एक ही स्कूल था जहाँ दर्जा तीन तक की शिक्षा दी जाती थी। आगे की शिक्षा के लिए गाँव के बालकों को ढाका शहर जाना पड़ता था जो नारायणगंज से चार मील दूर था। सबेरे खा-पीकर सभी बच्चे आठ बजे रवाना हो जाते थे।

ढाका के स्कूल की शिक्षा समाप्त करने के बाद दुर्गाचरण उच्चशिक्षा के लिए कलकत्ता आये। कलकत्ता आने के पूर्व बुआजी के काफी दबाव के कारण उन्हें विवाह करना पड़ा था।

विवाह के पश्चात् दुर्गाचरण के स्वभाव में विचित्र परिवर्तन हो गया। बुआजी उसका आचरण देखकर मन ही मन झुँझलाती थीं। रात को एक ही बिस्तर पर पत्नी के साथ सोना पड़ेगा, यह सोचकर वे दिन ढलते ही पेड़ पर जा बैठते थे। नीचे उतरने का नाम नहीं लेते थे। जब बुआ अपने साथ सोने का वादा करतीं तब वे पेड़ से नीचे उतरते थे। बुआ का ख्याल था कि आगे चलकर जब पत्नी के प्रति आकर्षण बढ़ेगा

तब सब ठीक हो जायगा। पर ऐसा होने के पहले ही पत्नी का स्वर्गवास हो गया। दुर्गाचरण को इससे मुक्ति मिल गयी।

कलकत्ता आकर वे पिताजी के साथ रहते हुए उच्च शिक्षा प्राप्त करने लगे। इस बीच होमियोपैथ चिकित्सा का ज्ञान प्राप्त करते रहे। प्रैक्टिस के लिए घर-घर जाकर मुफ्त में इलाज करने लगे। लड़का फोकट में इलाज करे, यह बात पिता को पसन्द नहीं आयी। उन्होंने विरोध प्रकट किया। लेकिन दुर्गाचरण ऐसे चिकने घड़े थे जिस पर उनकी बातों का कोई असर नहीं पड़ा। वे दु:खी लोगों का इलाज अपनी गाँठ की रकम खर्च करके करते रहे।

खाली समय में 'ब्राह्म-समाज' में जाकर केशवचन्द्र सेन का भाषण सुनते। पुराणों का अनुवाद पढ़ते या श्मशान जाकर गंगा किनारे बैठे संतों से धार्मिक विषयों पर बातचीत करते थे। एक बार एक अपरिचित ब्राह्मण ने इन्हें बताया कि महानिशा के दिन श्मशान में जप करने से साक्षात् ईश्वर का दर्शन होता है। उन्होंने ऐसा किया। जप करते-करते आपने शुभ्र ज्योति का दर्शन किया था। इस घटना के बाद आप अक्सर जप करने में मग्न हो जाते थे।

लड़के की यह गति देखकर दीनदयाल ने निश्चय किया कि इसका पुनर्विवाह कर दिया जाय। इस बात का प्रस्ताव आते ही दुर्गाचरण ने साफ इन्कार कर दिया। जैसे बाप थे वैसे बेटा। लड़के ने जब विवाह से इन्कार कर दिया तो वे अनशन करने लगे। अन्त में बाप की जीत हुई और दुर्गाचरण को राजी होना पड़ा।

विवाह के पश्चात् वे पुन: कलकत्ता चले आये। इच्छा न होते हुए भी फीस लेकर रोगियों की चिकित्सा करने लगे। चिकित्सा-कार्य के साथ-साथ उनका जप-ध्यान भी जारी रहा। इस प्रकार सात वर्ष निकल गये और तभी गाँव से समाचार आया कि बुआजी सख्त बीमार हैं।

यह सूचना मिलते ही वे तुरंत गाँव चले आये और बुआजी की सेवा करने लगे। काफी कोशिश करने पर भी वे बुआजी को बचा नहीं सके। मातृ-शोक का अनुभव दुर्गाचरण को नहीं हुआ था, पर बुआजी के निधन से उनकी दशा विक्षिप्त-सी हो गयी। दिन-रात श्मशान भूमि का चक्कर काटते या घाट किनारे गुमसुम बैठे रहते।

लड़के की यह दशा देखकर दीनदयाल चिन्तित हो उठे। उसे जबरन कलकत्ता ले आये। यहाँ आने पर दुर्गाचरण की मानसिक दशा में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। आखिर एक दिन खिजलाकर बाप को कहना पड़ा—"तुझसे बड़ी आशाएँ थीं, पर तू तो दरवेश बनता जा रहा है।"

दुर्गाचरण में एक विशेषता थी। वे विरोध में पिता से कभी उलझते नहीं थे। जो मन में आया, उसे अवश्य करते थे। क्रमश: चिकित्सा-क्षेत्र में उनकी ख्याति बढ़ती गयी। पर अपनी आदतों पर वे अंकुश नहीं रख सके। गरीब-परिवारों का मुफ्त इलाज

तो करते ही थे, धनाढ्य-परिवारों से पर्याप्त रकम पाने पर निर्धारित पारिश्रमिक लेकर शेष रकम वापस कर देते थे। जहाँ उनकी आमदनी ३००-४०० रुपये मासिक होती, वहाँ केवल ३०-४० रुपये होती रही। कभी-कभी आवश्यकता से अधिक रकम प्राप्त होने पर उसे पिताजी को दे देते थे, फिर किसी गरीब की सहायता के लिए माँग लेते थे। एक बार मरीज देखने गये तो उस मरीज को अपना चद्दर दे आये। दूसरी बार किसी मरीज के पास खटिया नहीं थी तो अपने घर में रखी अतिरिक्त खटिया दे आये।

घर की हालत यह थी कि कभी बाप तो कभी बेटा अपने हाथ से भोजन बनाकर खाते रहे। फलस्वरूप अक्सर इस कारण बाप-बेटा में तकरार हो जाती थी। इस परेशानी से बचने के लिए दुर्गाचरण ने गाँव से अपनी पत्नी को बुला लिया। स्थानाभाव की वजह से दूसरा मकान किराये पर लिया गया। दीनदयाल को यह देखकर प्रसन्नता हुई कि अब बहू के आ जाने के कारण लड़के में कुछ परिवर्तन होगा, पर उनकी आशा धूमिल हो गयी। दुर्गाचरण पहले की तरह भागवत-गीता-पाठ में मगन रहने लगे।

ठीक इन्हीं दिनों कुलगुरु कैलाशचन्द्र भट्टाचार्य नाग-परिवार के अतिथि बने। इनसे दुर्गाचरण नाग ने सपरिवार शक्ति मंत्र की दीक्षा ली। दीक्षा के पश्चात् दुर्गाचरण की साधना और भी कठोर हो गयी। जप-ध्यान में भोर हो जाता था और अमावस के दिन उपवास रहकर गंगा किनारे जप करते-करते बेहोश हो जाते थे। यहाँ तक कि जप करते वक्त इतने तन्मय हो जाते कि एक बार नदी का ज्वार इन्हें बहा ले गया था। बाद में तैरकर किनारे आये थे।

इधर दीनदयालजी के बुढ़ापे ने उन्हें इतना कमजोर बना दिया कि वे काम करने में असमर्थ हो गये। दुर्गाचरण ने सोचा— अब पिताजी अर्थ-चिन्ता छोड़कर धर्म की ओर उन्मुख हों तो अच्छा हो। यह सोचकर उक्त फर्म में पितावाली नौकरी दुर्गाचरण करने लगे।

कुछ दिनों बाद पिताजी को चलने-फिरने में असमर्थ होते देख दुर्गाचरण ने उन्हें गाँव भेज दिया। पत्नी को भी उनके साथ भेजते हुए कहा—"अब तुम गाँव जाकर अपने श्वशुर की सेवा करो।"

इन लोगों के जाने के बाद दुर्गाचरण नये भवन को छोड़कर पुनः पहलेवाले मकान में आकर रहने लगे। ब्राह्म-समाज में आते-जाते रहने के कारण अपने मित्र सुरेशचन्द्र की जबानी इन्हें पता चला कि दक्षिणेश्वर में एक साधु हैं जो कंचन-कामिनी त्याग कर चुके हैं और उच्चकोटि के साधक हैं। दुर्गाचरण को उत्सुकता हुई। सुरेशचन्द्र के साथ दक्षिणेश्वर आये तो देखा— एक कमरे में चौकी पर पैर फैलाये एक संत बैठे हैं। वे परमहंस रामकृष्णजी थे। इन लोगों को देखते ही उन्होंने हाथ के इशारे से पास बुलाया। कमरे के भीतर प्रवेश करने के साथ ही सुरेशचन्द्र ने दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार किया। दुर्गाचरण ने आगे बढ़कर चरण-स्पर्श करना चाहा, पर उन्होंने स्पर्श करने नहीं

दिया। आपस में परिचय हो जाने के बाद रामकृष्णजी ने कहा—''जाओ, पंचवटी में ध्यान करो।''

दोनों ही युवक आधा घण्टा बाद जब वापस आये तब रामकृष्ण परमहंसजी ने कहा—''फिर आना।''

ईश्वर-प्राप्ति की इच्छा से दोनों युवक एक सप्ताह बाद पुनः गये। इन्हें आया देखकर रामकृष्णजी ने कहा—''आ गये? अच्छा किया। मैं तो तुम लोगों के लिए ही यहाँ मौजूद हूँ।'' इसके बाद नाग बाबू को अपने पास बैठाकर बोले—''डर किस बात का? तुम्हारी तो उच्चावस्था है।''

इसके बाद नाग बाबू परमहंसजी के पास आने-जाने लगे। रामकृष्णजी उनसे तरह-तरह के काम करवाने लगे। एक बार जब नाग बाबू आये तब रामकृष्णजी ने कहा—''तुम तो डॉक्टर हो। देखो तो मेरे पैर में क्या हुआ है?''

नाग महाशय ने अच्छी तरह जाँचने के बाद कहा—''कहाँ, कुछ भी नहीं हुआ है।''

दरअसल नाग बाबू रामकृष्णजी का तिकड़म समझ नहीं पाये। एक दिन चरण स्पर्श करने से उन्हें रोका गया था और आज इसी बहाने रामकृष्णजी ने चरण स्पर्श करने का मौका दिया।

थोड़ी देर बाद रामकृष्णजी ने अपने अंग को दिखाते हुए पूछा—''तुम इसे क्या समझते हो?''

नाग महाशय बिना किसी द्विधा के बोले—''यह मुझसे मत कहलाइये, ठाकुर। आपकी कृपा से समझ गया हूँ कि आप वही हैं।''

तुरंत ठाकुर को समाधि लग गयी। उसी दौरान नाग महाशय के वक्षस्थल पर उनके पैर पड़ गये। नाग महाशय को तुरंत एक नयी अनुभूति हुई। वे सर्वत्र दिव्य ज्योति देखने लगे।

एक दिन भोजन के पश्चात् रामकृष्णजी चौकी पर लेट गये और नाग महाशय के हाथ में एक पंखा देते हुए बोले—''जरा हवा करो।''

काफी देर से निरन्तर पंखा डुलाते रहने के कारण नाग महाशय का हाथ दर्द करने लगा, पर वे इस पीड़ा को इसलिए सहन करते रहे कि कहीं इनकी नींद में खलल न पहुँचे। धीरे-धीरे पीड़ा असह्य हो गयी। रामकृष्णजी को भक्त की पीड़ा का ज्ञान हुआ और उन्होंने नाग महाशय का हाथ पकड़कर हवा करने से रोक दिया।

बातचीत के सिलसिले में एक दिन रामकृष्णजी ने कहा—''डॉक्टर, वकील, मुख्तार, दलाल आदि को धर्म-लाभ नहीं होता।''

इतना सुनना था कि नाग महाशय वहाँ से घर वापस आकर अपनी दवा की पेटी गंगा में फेंक आये। उन्होंने निश्चय किया कि भविष्य में चिकित्सा-कार्य नहीं करेंगे। अब जीविका चलाने के लिए पिताजी वाली नौकरी का सहारा रह गया।

नाग बाबू के अन्तर में सर्वदा त्याग की अग्नि जलती रही। यह देखकर उनके गुरुदेव रामकृष्ण ने कहा था—"तुम राजा जनक की तरह गृहस्थाश्रम में रहोगे। तुम्हें देखकर गृही लोग गृहस्थ-धर्म के प्रति आस्था रखेंगे।"

रामकृष्णजी की इस शिक्षा के कारण वे अपनी पत्नी का त्याग नहीं कर पा रहे थे। अपनी चिन्ता उन्हें नहीं थी, नौकरी तो पत्नी के लिए कर रहे थे। एक दिन न जाने क्या ख्याल आया कि अपने सहायक रणजीत हाजरा को सारा चार्ज देकर अपने कार्य से मुक्त हो गये। पाल बाबू की दासता को हमेशा के लिए छोड़ दिया।

पाल बाबुओं को जब यह समाचार मिला तब उन लोगों ने इन्हें बुलाकर काफी समझाया, पर नाग बाबू पुनः नौकरी करने के लिए तैयार नहीं हुए। पाल बाबू ने सोचा—इतना ईमानदार कर्मचारी, बिलकुल बाप की तरह। आखिर इसकी गृहस्थी कैसे चलेगी? धर्म तो खाने को नहीं देगा। इन लोगों ने नाग बाबू के सहायक रणजीत को बुलाकर कहा—"आगे से मुनाफे की आधी रकम तुम नाग बाबू को देते रहना। इन्हें किसी प्रकार का कष्ट न हो।"

भगवान् अपने भक्तों का ध्यान सर्वदा रखते हैं। रणजीत नाग बाबू के स्वभाव से अच्छी तरह परिचित था। वह यह जानता था कि इन्हें पूरी रकम देने पर गरीब, दुखिया लोगों को बाँट देंगे। उधर गाँव में पिता और पत्नी को उपवास करना पड़ेगा। वह इनके खर्च लायक रकम इन्हें देकर शेष रकम गाँव भेज देता था।

इधर नाग बाबू की साधना क्रमशः उग्र से उग्रतर होती गयी। भोजन से नमक ही नहीं, बल्कि मीठा गायब हो गया। अपने मकान का आधा हिस्सा उन्होंने एक अनाज के व्यापारी को किराये पर दे रखा था। दुकानदार बोरे से गिरे चावलों को झाड़ू लगाकर एक जगह रख देता था। नाग बाबू उस अनाज को लाकर सेवन करने लगे। जब दुकानदार को यह रहस्य ज्ञात हुआ तब पाप के भय से वह उस कूड़े को उठाकर ले जाने लगा।

अगर कोई भक्त इन्हें प्रसाद के रूप में मीठा या नमकीन देता तो हजरत प्रसाद के साथ-साथ दोना भी चबा जाते थे। यह दृश्य देखकर कुछ लोग प्रसाद समाप्त होते ही इनके हाथ से दोना छीन लेते थे।

नाग महाशय कितने विचित्र स्वभाव के हो गये थे, इसका उदाहरण निम्न घटना से आँका जा सकता है—

पिताजी से मुलाकात करने के लिए एक बार गाँव गये तो पिता ने कहा—"घर-गृहस्थी की दशा सुधरे, ऐसे काम करना चाहिए। लेकिन तेरा काम तो उल्टा होता है। सुना कि डॉक्टरी छोड़ दिया, अब क्या खाकर गुजारा करेगा?"

"भगवान् जो देंगे, वही खाऊँगा।"

पिता तुरंत बिगड़ उठे—"वह तो मैं भी जानता हूँ। अब नंगा रहेगा और मेढक खायेगा।"

पुत्र ने पिता की बातों का प्रतिवाद नहीं किया। तुरंत अपने सभी कपड़े उतारकर नंगे हो गये और आँगन से एक मृत मेढक उठाकर खाते हुए बोले—"आपके दोनों आदेशों का पालन मैंने कर दिया। अब आपके चरणों में निवेदन है कि आप विषय-चिन्ता छोड़कर परमार्थ का चिन्तन करें। अपने इष्ट को स्मरण करें।"

गाँव से वापस आने के बाद नाग बाबू नियमित रूप से दक्षिणेश्वर जाने लगे। केवल छुट्टियों के दिन नहीं जाते थे। उस दिन वहाँ अनेक विद्वानों की भीड़ होती थी। रामकृष्ण ठाकुर के विद्वान भक्तों के सामने उनके जैसा मूर्ख की उपस्थिति अशोभनीय होगी।

रुपये-पैसे या गंदी बातों की चर्चा करते अगर किसी से सुनते तो तुरंत ईंट या पत्थर का टुकड़ा लेकर अपने सिर पर मारते और कहते—"चुप हो जाइये। रामकृष्ण भगवान् का नाम लीजिए।" केवल यही नहीं, किसी के मुँह से निन्दा की बात नहीं सुनना चाहते थे।

अगर कोई रामकृष्णजी की आलोचना करता तो उससे तुरंत उलझ जाते थे। उनके उग्र रूप को देखकर लोग दंग रह जाते थे।

घर पर रहते हुए वनवासी संन्यासियों की तरह रहन-सहन अपनाये हुए रहते थे। इस समय तक वे योग के यम-नियम और आसन में सिद्धि प्राप्त कर चुके थे। इसकी जानकारी बहुत कम लोगों को थी।

वे अपनी साधना से इतने उच्चकोटि के साधक बन गये थे कि एक बार स्वयं रामकृष्णजी को उनसे सहायता माँगनी पड़ी। उन दिनों किसी कारण से रामकृष्णजी का सारा शरीर असह्य ज्वाला से जलने लगा था। वे परेशान थे। ठीक इसी समय नाग महाशय हाजिर हुए। इन्हें देखकर रामकृष्णजी ने कहा—"जरा मेरे पास सटकर बैठो।"

इससे किंचित राहत मिली तो उन्होंने नाग बाबू को बाँहों में भर लिया। पर्याप्त आराम मिलने पर रामकृष्णजी ने कहा—"डॉक्टर-कविराज हार गये हैं। अगर तुम कुछ उपकार कर सको तो अच्छा हो।"

नाग बाबू कुछ देर तक स्तब्ध भाव से खड़े रहे। इसके बाद वे अपनी इच्छा के बल से रामकृष्णजी की बीमारी को अपने शरीर में लेने के लिए आगे बढ़ते हुए बोले—"हाँ, मैं आपकी कृपा से सब कर सकता हूँ।"

रामकृष्णजी तुरंत उनकी मन:स्थिति को भाँप गये। तुरंत उन्हें दूर ढकेलते हुए बोले—"तुम यह कार्य कर सकते हो।"

नाग बाबू अपने स्वभाव और गुणों के कारण रामकृष्ण के भक्तों में श्रद्धा के पात्र बन गये थे। आपके जैसा त्यागी अन्य कोई गृहस्थ नहीं था।

एक बार अर्धोदय योग के समय नाग बाबू अपने गाँव आये। इन्हें देखते ही पिताजी क्रोध से उबल पड़े—"तुम्हारी धर्म-बुद्धि कैसी है? ऐसे शुभ अवसर पर लोग गंगा स्नान के लिए जाते हैं और तुम यहाँ चले आये? अभी भी तीन-चार दिन का समय है। मुझे गंगा-तट पर ले चलो।"

नाग महाशय ने कहा—"अगर विश्वास रहे तो माँ गंगाभक्तों के घर आकर दर्शन देती हैं।"

पिता ने बहस करना उचित नहीं समझा। वे अपने लड़के के स्वभाव से परिचित थे। लेकिन वे अपने घर की घटना देखकर चकित रह गये।

बात यह हुई कि ठीक योग वाले दिन दोपहर को नाग बाबू के घर में आँगन के एक कोने से प्रबल वेग से पानी निकला। आँगन को भरने के बाद पानी का स्रोत बाहर बह चला। चारों ओर कोलाहल शुरू हो गया। नाग महाशय कोलाहल सुनकर कमरे के बाहर आये।

यह दृश्य देखकर वे "जय माँ गंगे" कहकर अंजलि में पानी भर-भरकर पीने लगे। केवल दीनदयाल ही नहीं, गाँव के अधिकांश लोगों ने इस पानी में स्नान किया।

घटना क्रम से नाग बाबू की योग-शक्ति प्रकट हो गयी, अन्यथा वे अपने गुरुदेव की भाँति योग-शक्ति को विष्ठा समझते आये हैं।

झोपड़ी की मरम्मत करने के लिए उनकी पत्नी ने एक मजदूर को बुलाया। जब वह काम शुरू कर चुका तब थोड़ी देर बाद कहीं से नाग महाशय आये। उन्हें जब यह बात मालूम हुई तब वे सिर पकड़कर बोले—"हाय गुरुदेव, क्यों मुझे गृहस्थाश्रम में रहने का आदेश दिया था। मेरे सुख के लिए दूसरा व्यक्ति श्रम करेगा। आज मुझे यह दिन देखना पड़ रहा है।"

बेचारा मजदूर काम छोड़कर नीचे आया। उसे गुड़ खिलाकर पानी पिलाया गया। इसके बाद तम्बाकू दिया गया। पूरी मजदूरी देकर उसे विदा कर दिया गया।

इसी प्रकार एक बार घर में साँप निकला तो नाग-पत्नी भय से चीखकर बाहर आ गयीं। पड़ोस के लोग लाठी लेकर उसे मारने आये। अचानक नाग बाबू वहाँ आये और कहा—"आप लोग नाग देवता की हत्या मत करिये।"

इसके बाद वे चुटकी बजाने लगे। उसी आवाज के सहारे साँप घर से बाहर आकर एक ओर चला गया। जीव-हत्या से नाग बाबू को बेहद चिढ़ थी। झोपड़ी के एक खम्भे

में दीमक लगी थी। एक सज्जन मिलने के लिये आये थे। यह दृश्य देखकर उन्होंने खम्भे को हिला दिया। दीमकों का घर ढह गया।

यह देखकर नाग बाबू ने कहा—"आहा, यह आपने क्या किया?" फिर दीमकों की ओर देखते हुए बोले—"गलती हो गयी। अब आप लोग पुन: घर बसा लीजिये।"

इसी प्रकार एक बार पड़ोस के घर में आग लगी जो तेजी से इनके घर की ओर बढ़ रही थी। यह देखकर पत्नी बिस्तर, रजाई, सन्दूक आदि सामान बाहर निकालने लगीं।

यह देखकर नाग महाशय ने अपनी पत्नी से कहा—"अरे, यह क्या? स्वयं ब्रह्मा हमारे घर आ रहे हैं। इनकी पूजा करनी चाहिए। अभी तक तुममें इतना अविश्वास है?"

यह कहकर वे आँगन में नाचते हुए 'जय कृष्ण-जय कृष्ण' कहने लगे। बोले—"अगर कृष्ण को हमारी रक्षा करनी है तो कौन हमें मारेगा?"

देवक्रम से नाग महाशय की झोपड़ी बच गयी। उनकी बगलवाली झोपड़ी तक आग आकर बुझ गयी थी।

नाग बाबू सर्वदा सत्य बोला करते थे। अपने इस स्वभाव के कारण सभी को सत्यवादी समझते थे। दुकानदार सामानों का जो भाव बताता, उसी भाव से सामान खरीदते थे। मोलचाल करने की अपेक्षा वे कहते—"सभी को जिस भाव में देते हैं, वही कीमत मुझसे लीजिए। यहाँ तक कि अतिरिक्त पैसा वापस नहीं माँगते थे। जो लोग इनके स्वभाव से परिचित थे, वे शेष रकम वापस कर देते थे। यहाँ तक कि कुछ लोग कम कीमत पर इन्हें सामान देते थे।

इनके जीवन से प्रभावित होकर गाँव के अनेक लोगों ने आध्यात्मिक जीवन को अपनाया था। नाग बाबू में सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि पुनर्विवाह करने के बाद उन्होंने कभी पत्नी को स्पर्श नहीं किया था।

कलकत्ता से वापस आकर जब स्थायी रूप से गाँव में रहने लगे तब वे बाहर बरामदा में सोने लगे। पत्नी उनकी मंशा समझ गयी। वह बोली— "बाहर ठंड लग जायगी। आप भीतर कमरे में सोया करिये। आपकी इच्छा के विरुद्ध मैं कभी कोई काम नहीं करूँगी।"

देहत्याग के तीन दिन पूर्व उन्होंने पत्रा मँगाकर देखा और समझ लिया कि २७ दिसम्बर सन् १८९९ के दिन १० बजे के बाद समय अच्छा है। उन्होंने निश्चय किया कि उसी दिन देहत्याग करेंगे।

अपने मित्र शरत् बाबू को बुलाकर उन्होंने कहा—"आप एक-एक तीर्थ का नाम लेते रहें। मैं उन सभी तीर्थों को देखता रहूँगा।"

शरत् बाबू काशी, मथुरा, प्रयाग, हरिद्वार, नासिक, गंगासागर, पुरी का नाम लेते रहे। उन स्थानों का वर्णन करते-करते नाग महाशय ने अपनी आँखें बन्द कर लीं।

निगमानन्द सरस्वती

निगमानन्द सरस्वती

बंगाल का नदिया जिला महाप्रभु गौरांग के कारण संपूर्ण वैष्णव-समाज के लिए तीर्थस्थान है। महाप्रभु को लोग 'नदेर निमाई' कहते हैं। इस जिले के कुतुबपुर गाँव में भुवनमोहन चटर्जी सपरिवार रहते हैं। आपकी पत्नी मानिक सुन्दरी अत्यन्त भक्तिमती है। मानिक सुन्दरी को अहरह एक ही दुःख पीड़ा देती रही। विवाह हुए ७-८ वर्ष व्यतीत हो गये, पर उन्हें माँ बनने का गौरव प्राप्त नहीं हुआ। पूजा-पाठ, व्रत-उपवास के अलावा हाथों में अनेक ताबीज धारण करती आ रही हैं।

एक दिन न जाने कहाँ से एक संन्यासी गाँव में आया और भिक्षा माँगते हुए मानिक सुन्दरी के दरवाजे के पास आकर खड़ा हो गया। भिक्षा लेने के पश्चात् संन्यासी ने दोनों हाथ उठाकर कहा—"दूधो नहाओ, पूतो फलो।"

इस आशीर्वाद को सुनते ही मानिक सुन्दरी रो पड़ी। मुँह में आँचल ठूँसकर दुःख के आवेग को रोकने का असफल प्रयत्न करने लगी। संन्यासी पहले अवाक् रह गया और थोड़ी देर में रहस्य समझ गया। पूछा—"क्या बात है, माताजी?"

सहानुभूति के स्वर से मानिक का दुःख पिघला। बोली—"मैं बाँझ हूँ, बाबाजी। लोग मुझे दिशाशूल समझते हैं।"

संन्यासी ने कहा—" यह बात गलत है। मैं साफ देख रहा हूँ कि तुम सुसंतान की जननी बननेवाली हो।"

इतना कहने के बाद संन्यासी ने अपनी झोली से थोड़ा भभूत देकर कहा—"ले, इसे अभी खा ले। मैं एक वर्ष बाद आकर तेरे संतान को आशीर्वाद दूँगा।"

संन्यासी का आशीर्वाद फलीभूत हुआ। समय पर वह एक पुत्र की जननी बन गयी। अब वे बेसब्री के साथ संन्यासी के आगमन की प्रतीक्षा करने लगीं। अन्नप्राशन के दिन संन्यासी महाशय आये और आशीर्वाद देते हुए बोले—"जातक भाग्यवान होगा। बालक का क्या नाम रखा है?"

पिता ने कहा—"नलिनीकान्त।"

बालक शनैः-शनैः बड़ा होता गया। पाठशाला में अक्षर-बोध होने के साथ ही माँ का देहान्त हो गया। बहुत दिनों बाद पिता बनने के कारण भुवनमोहन का समस्त

प्यार लड़के पर केन्द्रित हो गया। उन्होंने पुनर्विवाह इसलिए नहीं किया कि कहीं सौतेली माता आकर उनके नलिनीकान्त को कष्ट न दे। यक्ष के धन की तरह उसका लालन-पालन करने लगे। गौर वर्ण का नटखट बालक गाँव के लोगों के निकट जनप्रिय बनता गया। कालेज की शिक्षा पूरी करने के बाद वह पटवारी बन गया। गाँव में किसी को मुसीबत में देखता तो तुरंत मदद के लिए चला जाता। कुलीन घराने का युवक छुआ-छूत को नहीं मानता था। कभी कोई कुछ कहता तो उत्तर देता—"ईश्वर के घर सभी एक हैं। जात-पाँत का पचड़ा तो हमने बनाया है।"

आश्चर्य की बात यह थी कि ब्राह्मण घराने का लड़का धीरे-धीरे घोर नास्तिक बनता जा रहा था। पुत्र के इस आचरण से पिता दुःखी रहते थे। मुँह खोलकर पुत्र से कुछ कह नहीं पाते थे। इन्हीं दिनों कुल पुरोहित सत्यनारायण कथा के सिलसिले में भुवनमोहन के घर आये तो बातचीत के मध्य नलिनीकान्त की चर्चा चल पड़ी।

कुल पुरोहित ने जन्मकुण्डली देखकर कहा—"चटर्जी महाशय, बड़े आश्चर्य की बात है। चरित्र से लड़का घोर नास्तिक है और ग्रह बता रहे हैं कि आगे चलकर संन्यासी बनेगा।"

भुवनमोहन ने कहा—"मेरे लिए क्या करना उचित है, यह बताइये। ले-देकर एक ही लड़का है, अगर वह भी दण्ड-कमण्डल लेकर चला जायगा तो बुढ़ापे में क्या करूँगा?"

पुरोहित ने कहा—"झटपट इसका विवाह कर दीजिए। गृहस्थी के चक्कर में पड़कर लोग संन्यास की बात भूल जाते हैं।"

पुरोहित की बात चटर्जी बाबू को पसन्द आ गयी। उन्होंने घटक के जरिये लड़की तलाश कर नलिनीकान्त का विवाह करा दिया। सूने घर में एक बहू आ जाने से उन्हें आराम मिला। नववधू का नाम सुधांशुबाला था। नलिनीकान्त पटवारी का काम छोड़कर ओवरसियर हो गये थे। दिन आराम से गुजर रहे थे। सहसा हैजे का शिकार होने के कारण दो दिन के भीतर सुधांशुबाला का निधन हो गया। किशोर उम्र का प्रेम बड़ा तीव्र होता है। इस उम्र में पत्नी का वियोग असह्य हो जाता है। वियोग के इस दर्द को भुलाने के लिए नलिनीकान्त विभिन्न स्थानों का भ्रमण करने लगे।

कई ज़िलों का चक्कर काटते हुए वे तारापीठ आये। उन दिनों अवधूत वामाखेपा के कारण तारापीठ साधकों के निकट तीर्थस्थल बन गया था। अनेक लोग जो कष्ट से पीड़ित थे, वे बाबा के पास आते थे। इस स्थान के बारे में अनेक जनश्रुतियाँ नलिनीकान्त सुन रखा था। उसने सोचा, शायद बाबा उसके अशान्त हृदय को शान्ति दे सकेंगे।

तारापीठ आने पर उसे ज्ञात हुआ कि इन दिनों बाबा कुण्ड के पास रहते हैं। उनके निकट जाकर वह साष्टांग प्रणाम करते हुए रो पड़ा। बाबा उसके मस्तक पर हाथ फेरते हुए बोले—"शान्त हो जाओ बेटा, तारा माँ की कृपा से सब मंगल होगा।"

नलिनी ने कहा—"मैं बड़ा दुःखी हूँ, बाबा। मुझे तारा माँ का दर्शन चाहिए।"

बाबा ने हँसकर कहा—"तारा माँ तो सर्वत्र हैं। इस मंदिर में, कुण्ड के इस जल में, श्मशान में, नदी में, डूबते हुए सूरज की रोशनी में। कर ले दर्शन। चिन्ता किस बात की?"

नलिनी ने कहा—"प्रभो, आप सिद्ध योगी हैं। मेरे पास वह दृष्टि नहीं है जो आपके पास है। मैं तो प्रत्यक्ष रूप से माँ का दर्शन करना चाहता हूँ। मूर्तिमयी रूप में।"

"वह भी हो जायगा। इसके लिए प्रतीक्षा करनी होगी। आकुल-हृदय से माँ को पुकार। आकुल-हृदय से पुकारने पर माँ अपनी सन्तान के निकट बिना आये कैसे रह सकती हैं। वे जरूर आयेंगी। जा, जगज्जननी का आह्वान कर।"

बाबा के इस आश्वासन पर नलिनी चुपचाप श्मशान के किनारे जाकर बैठ गया। दिन गुजरते गये। नलिनी एकाग्र चित्त से माँ को पुकारता रहा। साधना चलती रही।

एक गहरी रात को अंधेरे से आवाज आयी—"वत्स, आँखें खोलो।"

नलिनी ने चौंककर देखा— घनघोर अंधेरे में एक ओर से तीव्र प्रकाश आ रहा है। उसने पूछा—"आप कौन हैं?"

"तुम्हारी इष्ट देवी।"

"अगर आप मेरी इष्ट देवी हैं तो अपना साक्षात् रूप दिखाइये ताकि मेरी आँखें धन्य हो जायँ।"

"एवमस्तु।" इसके साथ ही वह प्रकाश चारों ओर फैल गया। श्मशान का कोना-कोना प्रकाश से झलमला उठा। देवी को साक्षात् सामने देखते ही भय से उसका कण्ठ सूख गया। उन्हें प्रणाम करते-करते वह बेहोश हो गया। होश आने पर उसने अपने आपको बाबा की गोद में पाया।

उसे होश में आया देख बाबा ने कहा—"अबे साले, तेरा जीवन धन्य हो गया। तू तो भाग्यवान निकला। अब तीर्थयात्रा कर। किसी योग्य गुरु के पास जाकर साधना करना। तेरा जीवन सफल हो जायगा।"

नलिनीकान्त ने कहा—"आपकी कृपा से ही मुझे जगन्माता का दर्शन प्राप्त हुआ। आपसे योग्य गुरु मैं कहाँ खोजने जाऊँगा। मुझे दूर मत भगाइये। अपनी सेवा में रख लीजिए।"

बाबा ने कहा—"मैं तेरा निर्दिष्ट गुरु नहीं हूँ। तुझे वैदिक संत से दीक्षा लेनी पड़ेगी। मैं तो अवधूत हूँ। तेरा-मेरा मेल नहीं है। तुझे अभी कठोर साधना करनी पड़ेगी।"

नलिनी ने कहा—"ऐसे गुरु मुझे कहाँ मिलेंगे। न जाने वे कब मिलेंगे। मैं उन्हें पहचानूँगा कैसे?"

बाबा ने कहा—"गुरु को खोजना नहीं पड़ता। गुरु योग्य शिष्य को आकर्षित करके अपने निकट बुला लेते हैं। शक्तिमान आचार्यों की इच्छा-शक्ति के प्रताप से शिष्य में कुण्डलिनी-शक्ति का जागरण होता है। वास्तविक गुरु जब दीक्षा देते हैं तब उसके हृदय को स्पर्श कर आत्मज्ञान देते हैं। समय आने पर तुझे तेरे गुरु मिल जायेंगे। जो गुरु तुझे आत्मज्ञान देंगे, वे ही वास्तविक गुरु होंगे। जा, अब गुरु की तलाश में तीर्थाटन कर। कहीं न कहीं तुझे अपने गुरु का दर्शन हो जायगा।"

इस आज्ञा को शिरोधार्य कर नलिनीकान्त वहाँ से चल पड़ा। भागलपुर, गया आदि शहरों का दर्शन करते हुए वह काशी आया। काशी के बारे में उसने सुन रखा था कि यहाँ कोई भूखा नहीं सोता। माँ अन्नपूर्णा सभी को भोजन देती हैं। उसने सोचा— इस प्रवाद की परीक्षा लेनी चाहिए। उसने निश्चय किया कि अनायास भोजन मिलने पर ही वह खायेगा वर्ना भूखा रह जायगा। इस निश्चय के बाद वह गंगा किनारे आकर बैठ गया।

सबेरे का समय था। स्नानार्थी लोग गंगा-स्नान करने तथा करके जाने वाले आ-जा रहे थे। चारों ओर 'हर-हर महादेव शंभु, काशी विश्वनाथ गंगे' का नारा लग रहा था। मीठी धूप में बैठा नलिनीकान्त एकाग्र चित्त से गंगा की ओर देख रहा था। धीरे-धीरे समय गुजरता गया। घाटों पर भीड़ में कमी होती गयी। ठीक इसी समय एक बुढ़िया नलिनी के पास आकर एक पिटारी देती हुई बोली—"बेटा, इसे अपने पास रखो। मैं स्नान करने जा रही हूँ। वापस आकर ले लूँगी। घाट पर बहुत कुत्ते घूम रहे हैं। जरा सम्हालकर रखना।"

नलिनी ने कहा—"ठीक है माताजी। आप स्नान करके आइये। मैं कहीं नहीं जाऊँगा। आपके आने की प्रतीक्षा करूँगा।"

धीरे-धीरे दोपहर ढलने लगी, पर अभी तक बुढ़िया वापस नहीं आयी। पता नहीं, किस जगह नहाने गयी है। नलिनीकान्त को संदेह हुआ कि कहीं वह भूल तो नहीं गयी। आखिर कब तक वह यहाँ बैठा रहेगा। उत्सुकतावश पिटारी खोला तो उसने देखा— उसमें वर्धमान का प्रसिद्ध सीताभोग और मिहिदाना रखा हुआ है। नलिनीकान्त को वर्धमान की इन मिठाइयों से बहुत प्रेम है। नलिनी ने अनुमान लगाया कि बुढ़िया जरूर भूल गयी है। जोरों से भूख लगी थी। सारी मिठाइयाँ खाकर वह अपने डेरे पर वापस चला आया।

अधिक रात गये उसने सपने में देखा कि पिटारी वाली बुढ़िया आकर कह रही है—"अब तो विश्वास हो गया कि काशी में कोई भूखा नहीं सोता?"

नलिनी ने कहा—"तुम तो मुझे सुरक्षा का भार देकर चली गयी थी। अगर वापस आकर माँगती तो मैं भूखा रह जाता।"

बुढ़िया ने कहा—"मैं तो तेरे पास जान बूझकर छोड़ गयी थी। अगर वापस लेना होता तो मैं पुनः न आती?"

न जाने क्यों नलिनी को संदेह हुआ। उसने पूछा—"आप कौन हैं देवी?"

"मैं अन्नपूर्णा हूँ।" कहने के पश्चात् देवी ने साक्षात् अपना रूप दिखाया।

श्रद्धा से गद्‌गद होकर नलिनी ने कहा—"माँ, अपने इस बालक के अपराध को क्षमा कर दो।" कहने के पश्चात् उसने देवी के चरणों की ओर हाथ बढ़ाया तभी उसकी नींद खुल गयी। उसने अपने आपको एक अंधेरी कोठरी में पाया।

+ \+ \+ \+

प्रयाग, मथुरा, हरिद्वार, कुरुक्षेत्र आदि क्षेत्रों का दर्शन करते हुए नलिनी पुष्कर क्षेत्र में आया। अजमेर नगर से दूर, शान्त वातावरण और अनेक साधकों की साधना-भूमि है यह क्षेत्र। यहाँ अनेक संन्यासियों का नित्य वह दर्शन करता रहा। इन संन्यासियों में सच्चिदानन्दजी की ओर वह विशेष रूप से आकृष्ट हुआ। वे नित्य जिज्ञासुओं के बीच योग-सम्बन्धी चर्चा करते थे। बराबर यहाँ आते रहने के कारण नलिनी का उनके प्रति आदर की भावना उत्पन्न हो गयी। सच्चिदानन्द भी नलिनी के प्रति आकृष्ट हुए।

एक दिन सच्चिदानन्द ने अध्यात्म-दर्शन की चर्चा करते हुए कहा— "विश्व ब्रह्माण्ड ही ब्रह्म है और ब्रह्म ही विश्व ब्रह्माण्ड है । जो व्यक्ति इस तथ्य को अच्छी तरह समझ लेता है, वही वास्तविक योगी है। स्वयं योगियों ने स्वीकार किया है कि योग एक विज्ञान है। साधना करते हुए जब कोई इसे आत्मसात कर लेता है तब वह योगसिद्ध हो जाता है। इसके लिए अष्ट सिद्धियों पर विजय करना आवश्यक है। उदाहरण के लिए 'अणिमा' को लो। इसका अर्थ है कि योगी साधना की चरम अवस्था प्राप्त कर लेने पर सूक्ष्म रूप धारण कर सकता है। 'लघिमा' के माध्यम से शरीर को हल्का किया जाता है। इससे जल, पंक और काँटे बाधा उत्पन्न नहीं करते। आकाश में गमन करने की शक्ति आ जाती है। 'महिमा' से शरीर विशाल बनाया जा सकता है। 'गरिमा' से शरीर को पहलवानों की भाँति वजनी बनाया जाता है। 'प्राप्ति' किसी भी वस्तु को इच्छा करते ही प्राप्त किया जा सकता है। 'प्राकाम्य' बिना किसी बाधा के भौतिक पदार्थ को संकल्प मात्र से प्राप्त किया जा सकता है। 'वशित्व' पाँच भूतों का और तंजन्य पदार्थों का वश में होना। 'ईशित्व'— भूत और भौतिक पदार्थों का नाना रूपों में उत्पन्न करने की और उन पर शासन करने की क्षमता आ जाती है।"

इसी प्रकार योग के सम्बन्ध में विभिन्न बातें वे उपस्थित लोगों को सुनाया करते थे। बातचीत के सिलसिले में नलिनी ने एक दिन दीक्षा देने की प्रार्थना की।

सच्चिदानन्द ने कहा—"नलिनीकान्त, दीक्षा लेना आसान है, पर देना कठिन है। तुम केवल मेरे प्रवचनों से प्रभावित होकर दीक्षा लेना चाहते हो। जन सामान्य में एक कहावत प्रचलित है— गुरु कीजिए जानकर, पानी पीजिए छानकर। जब कोई गुरु किसी शिष्य को दीक्षा देता है तब उसके समस्त पापों को वह ग्रहण करता है। अगर शिष्य ठीक से जप-ध्यान या साधना नहीं करता तब शिष्य के बोझ को गुरु को सम्हालना पड़ता है। अभी तुम दीक्षा के योग्य नहीं हो। तुम्हारे हृदय में मृत-पत्नी की स्मृतियाँ

पत्थर की लकीर की तरह जमी हुई हैं। पहले जप से उस कालिमा को धोकर स्वच्छ हृदय बना लो। जब तक आसक्ति रहेगी तब तक तुम साधना नहीं कर सकोगे।''

नलिनी ने कहा—''प्रभु, मैं अध्यात्म के मार्ग की ओर अग्रसर हो सकूँ इसके लिए जो निर्देश देंगे, उसका पालन अवश्य करूँगा। यह ठीक है कि पत्नी के निधन के पश्चात् मेरे मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ। संभव है कि उसकी स्मृतियाँ हृदय के किसी भाग को आच्छन्न कर रखा हो। आप सक्षम हैं, कृपया उस धब्बे को मिटाकर अपने चरणों में स्थान दें।''

सच्चिदानन्द ने कहा—''साधु, साधु। इस कार्य में समय लगेगा। प्रतीक्षा करो।'' इसके बाद एक मंत्र देते हुए उन्होंने कहा—''सोते, जागते, चलते, फिरते, इस मंत्र का जाप करते रहना। धीरे-धीरे स्वतः अनुभव करोगे कि ब्रह्म ही सत्य है, जगत मिथ्या है अर्थात् ब्रह्म ही वर्तमान, अतीत और भविष्य है। इस कथन का वास्तविक अर्थ है—जीव-जगत् और ब्रह्म के अलावा अन्य कुछ नहीं है— सर्वं खल्विदं ब्रह्म।''

समय गुजरता गया। नलिनीकान्त मनोनीत गुरुदेव के निर्देशानुसार जप-ध्यान करते गये। उनमें अद्‌भुत परिवर्तन होता गया। इन्हीं दिनों एक दिन स्वामी सच्चिदानन्द ने कहा—''कल तुम्हें ब्राह्ममुहूर्त में दीक्षा दी जायगी। स्नान करने के बाद सीधे मेरे पास चले आना।''

दूसरे दिन विधिवत दीक्षा देने के बाद सच्चिदानन्द ने कहा—''आज से तुम निगमानन्द सरस्वती के नाम से जाने जाओगे। प्रथम गुरु होने तथा सरस्वती शाखा का संन्यासी होने के कारण यह उपाधि तुम्हें प्रदान कर रहा हूँ। जो मंत्र तुम्हें दिया है, उसका निरन्तर जप करते रहना। मेरे दिये मंत्र से तुम्हें ज्ञान प्राप्त होगा। आत्मज्ञान की दृष्टि प्राप्त होगी। श्रीकृष्ण ने कहा है—

योे न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांछति ।
शुभाशुभ परित्यागी भक्तिमान् यः स मे प्रियः ॥

जिस दिन तुम्हारे हृदय में प्रज्ञा के साथ-साथ ज्ञान का उदय होगा, उसी दिन तुम मुक्त पुरुष हो जाओगे।''

निगमानन्द ने पूछा—''इसका ज्ञान मुझे कब होगा कि मैं अब मुक्त पुरुष हो गया हूँ?''

सच्चिदानन्द ने जवाब दिया—''यह ज्ञान स्वतः अर्जित करते रहोगे। तुम्हारी यह साधना तब तक चलती रहेगी जब तक तुम्हारे हृदय में ब्रह्म और जीव-जगत् भिन्न है, की भावना रहेगी। अभेद ज्ञान के लिए साधना की आवश्यकता होती है। साधना का मार्ग निर्दिष्ट है। उसी मार्ग पर निरन्तर तुम्हें स्थिर गति से चलना है। जब इस मार्ग में सिद्ध हो जाओगे तब भेदभाव लुप्त हो जाएगा।''

कुछ देर निगमानन्द की ओर देखने के पश्चात् उन्होंने पुनः कहा—''एक बात

और बता दूँ। मैं साधक हूँ, योगी नहीं। मैं जानता हूँ, तुम्हें योग सीखने की लालसा है। अभी कुछ दिनों तक साधना करने के बाद भक्ति-मार्ग में परिपक्व हो जाओगे तब योग सीखने के लिए किसी योग्य गुरु के पास जाना पड़ेगा। परिस्थितियाँ ऐसी बन जायँगी कि गुरु तुम्हें आकर्षित कर लेंगे। जिस प्रकार शिष्यों को योग्य और वास्तविक गुरु की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार गुरुओं को भी योग्य शिष्य की आवश्यकता होती है।''

सच्चिदानन्द के निर्देशानुसार निगमानन्द सरस्वती गुरु-सेवा के साथ-साथ कठोर-साधना में निमग्न हो गये। उन्हें याद आया वामाखेपा की बातें— तुम्हारा वास्तविक गुरु वैदिक होगा। कई वर्षों बाद निगमानन्द को आत्मोपलब्धि हुई। उन्होंने स्वयं अनुभव किया कि एक प्रकार का तेज उनके शरीर से प्रस्फुटित हो रहा है। उनके अन्तर में एक प्रकार की हलचल होती है।

इस उपलब्धि की सूचना देने के लिए वे गुरुदेव के पास आये। साष्टांग प्रणाम करते ही सच्चिदानन्द ने कहा—''निगमानन्द, तुम सफल हुए। आज से मैं मुक्त हो गया। तुम्हारे कारण मैं यहाँ निवास कर रहा था। अब मैं अपने गुरु की सेवा में लौट जाऊँगा। मेरे विचार से तुम अन्यत्र न जाकर कामाक्षा-पीठ चले जाओ। तुम्हारे योगी गुरु वहीं तुम्हें आकर्षित करेंगे।''

+ + + +

उत्तर भारत की यात्रा करते हुए निगमानन्द एक बार पुनः काशी आये। उन्हें अन्य शहरों की अपेक्षा काशी का वातावरण अधिक पसन्द आया था।

एक दिन चौसट्टीघाट के समीप एक बुर्जी पर बैठे श्रद्धालु भक्तों के प्रश्नों का उत्तर दे रहे थे। उनके आकर्षक व्यक्तित्व के कारण लोग बड़े मनोयोग से उनकी बातें सुन रहे थे। धीरे-धीरे श्रोताओं की भीड़ छँटने लगी। शाम के बाद रात्रि का आगमन हो गया। केवल एक वृद्ध को बैठा देखकर निगमानन्द ने पूछा—''कहिये महाशय, आप कुछ पूछना चाहते हैं?''

वृद्ध ने जो कुछ कहा, उसका आशय यह है कि वे चटगाँव के निवासी हैं। यहाँ वे बाबा विश्वनाथ और माता अन्नपूर्णा देवी का दर्शन करने इतनी दूर से आये हैं। बाबा का दर्शन हो गया है, पर अन्नपूर्णा देवी के मन्दिर में दर्शन कराने के लिए यहाँ के पण्डे बहुत तंग कर रहे हैं। वे चार रुपये दक्षिणा देने को तैयार हैं, पर उनकी माँग इससे अधिक है। इनके पास उतनी रकम नहीं है। अगर वे उतनी रकम पण्डे को दे देंगे तो घर वापस नहीं जा सकते। घर पर पत्र लिखकर रुपये मँगाने में काफी दिन लगेंगे। अगर स्वामीजी किसी उपाय से माता अन्नपूर्णा का दर्शन करा दें तो वे अपने घर चले जायेंगे।

वृद्ध की समस्या को सुनकर निगमानन्द ने कहा—''ठीक है। मैं आपको माता अन्नपूर्णा का दर्शन करा दूँगा। आइये, मेरे साथ।''

आगे-आगे निगमानन्द और उनके पीछे वृद्ध महाशय चल पड़े। कुछ दूर जाने के बाद वृद्ध ने महसूस किया कि यह गली अन्नपूर्णा मंदिर की ओर नहीं जाती। संन्यासी के भेष में कोई ठग तो नहीं है? काशी में ऐसे लोगों की कमी नहीं है। लेकिन अपने पास है क्या जो ठग लेगा। एकाएक मन में विचार आया कि शायद मेरे लिए दर्शन के रुपये लेने अपने डेरे पर चल रहे हैं।

तभी पीछे की ओर पलटकर निगमानन्द ने कहा—"मैं यहाँ रहता हूँ। आप बेफिक्र होकर यहाँ आ जाइये।"

एक कमरे के भीतर उन्हें बैठाकर निगमानन्द ने कहा—"कृपया कुछ देर के लिए अपनी आँखें बन्द कर लें। जब मैं कहूँगा तभी खोलियेगा।"

आदेश के अनुसार उन्होंने अपनी आँखें बन्द कर लीं। कुछ देर बाद उन्हें महसूस हुआ कि कमरे में एक प्रकार का सुगंध फैलता जा रहा है, जैसे पूजा-मण्डप में महसूस होता है।

तभी निगमानन्द ने कहा—"अब आप धीरे-धीरे अपनी आँखें खोलिये।"

आँखें खोलते ही वृद्ध ने देखा— उनके सामने साक्षात् माता अन्नपूर्णा अभय-मुद्रा में विराजमान हैं। वृद्ध को लगा जैसे वह स्वप्न देख रहा है। इस घोर कलियुग में देवी साक्षात् दर्शन देंगी? यह कल्पना से परे है। भाव विह्वल हो उन्होंने साष्टांग प्रणाम किया और बेहोश हो गये।

होश आने पर वृद्ध ने कहा—"सचमुच मैंने माँ का दर्शन किया? अब मुझे कुछ नहीं चाहिए। स्वामीजी, कृपा करके अब मुझे इन चरणों में स्थान दीजिए। शेष जीवन इसी काशीधाम में आपकी सेवा में व्यतीत कर दूँगा।"

निगमानन्द ने हँसकर कहा—"मैं स्वयं प्रभु का दास हूँ। मेरा न रहने का ठिकाना है और खाने-पीने का। इसके अलावा अभी मुझे बहुत दूर जाना है जहाँ मेरे आराध्य मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। आपका काम हो गया, अब आप अपने घर वापस चले जाइये।"

वृद्ध ने हताश होकर कहा—"अच्छी बात है। लेकिन एक बार मेरे गाँव में आपको दर्शन देना पड़ेगा। कृपया इस अनुरोध को मत ठुकराइये। चटगाँव के मेघला गाँव में आने पर आपसे मुलाकात हो जायगी। आपके आगमन से मेरा गाँव धन्य हो जायगा।"

निगमानन्द ने इस अनुरोध को स्वीकार कर लिया। वृद्ध के जाने के बाद वे दूसरे दिन कामाख्या की ओर रवाना हो गये। सच्चिदानन्द स्वामी ने कहा था— योग सीखने के लिए तुम्हें कामाख्या जाना पड़ेगा। वहाँ के वन तथा पहाड़ों में अनेक योगी रहते हैं। जो तुम्हारे गुरु होंगे, वे तुम्हें आकर्षित कर लेंगे। आधार मैंने बना दिया है। चिन्ता करने की जरूरत नहीं है।

गुरुदेव सच्चिदानन्द की बातें रह-रहकर उनके मस्तिष्क में गूँज रही थीं। देवी

का दर्शन करने के बाद वे गारो पहाड़ियों में भावी गुरु की तलाश में चक्कर काटने लगे। बारहवें दिन वे एक नदी के किनारे आये तो देखा— घनघोर जंगलों के बीच एक कुटिया है। बाहर एक संन्यासी ध्यान लगाये बैठा है। निगमानन्द के अन्तर्मन ने कहा— यही हैं, तुम्हारे मनोवांछित गुरु।

हल्के कदमों से पास आकर निगमानन्द ने उन्हें प्रणाम किया। बाबाजी की दाढ़ी तथा सिर के बाल सन की तरह सफेद हो गये हैं। शरीर पर कौपीन के अलावा अन्य कोई वस्त्र नहीं है।

शाम होने में अभी देर थी, परन्तु बड़े-बड़े वृक्षों के कारण अंधेरा हो चला था। तभी बाबाजी ने कहा— "थके हो। आज विश्राम करो। कल विस्तार से बातें होंगी।"

दूसरे दिन से निगमानन्द बाबाजी की सेवा में लग गये। नदी से जल भरकर लाते, वृक्षों के नीचे से सूखी लकड़ियाँ तथा जंगली फलों का संग्रह करने लगे। मच्छरों को भगाने के लिए हमेशा धुनी जलाकर रखना पड़ता था। सुबह बाबा यौगिक क्रियाओं का ज्ञान देते और अभ्यास करने का निर्देश देते रहे। शाम के समय परमार्थ की चर्चा करते थे। धीरे-धीरे दिन गुजरते गये। निगमानन्द परिपक्व होते गये।

आखिर एक दिन बाबा सुमेरदास ने कहा—"मेरे पास जो कुछ था, सब तुम्हें दे चुका। मेरा आदेश है कि इनका कभी दुरुपयोग मत करना। तुम्हारे लिए मेरा आदेश है कि दुःखी मानव को, पथभ्रष्टों को सही मार्ग दिखाते हुए उन्हें शान्ति प्रदान करना। धर्म के प्रति लोगों की रुचि जागृत करना। मनुष्य मात्र की सेवा से बढ़कर अन्य कोई महत कार्य नहीं है। संतप्त मानव को परमेश्वर की साधना की ओर लगाने का कार्य तुम्हें करते रहना है।"

गुरु से आज्ञा प्राप्त होने के बाद निगमानन्द वापस लौटे। उन्हें याद आया कि चटगाँव जिले के मेघला गाँव में जाने का वादा कर चुके हैं।

गाँव में आकर उस वृद्ध को खोजने लगे। वह वृद्ध कविराज था। बहुत दिनों बाद निगमानन्द को देखकर वह खुशी से फूला नहीं समाया। इनके योग ऐश्वर्य की कहानी इसके पूर्व प्रचारित हो चुकी थी। गाँव के अनेक लोग निगमानन्द से दीक्षा लेने आये। आनेवाले लोगों में गाँव के सबसे बड़े महाजन ईश्वर धर के सुपुत्र महेन्द्रलाल ने भी दीक्षा ली।

दीक्षा लेने के बाद महेन्द्रलाल के स्वभाव में अद्‌भुत परिवर्तन होने लगा। जहाँ के निवासी हमेशा आमिष भोजन करते हैं, वहीं महेन्द्रलाल निरामिषभोजी बन गया। दिन-रात पूजा, जप और ध्यान करने लगा। पुत्र की यह गति देखकर ईश्वर धर बौखला उठे। अगर पुत्र की ऐसी स्थिति रही तो इतना बड़ा कारोबार कैसे सम्हलेगा। उनकी झल्लाहट का कोई असर लड़के पर नहीं पड़ा। धीरे-धीरे उन्हें इस बात का भय सताने लगा कि कहीं लड़का बाबाजी न बन जाय।

इधर क्रमशः वे भी यह अनुभव करने लगे कि अब उनका मन भी कारोबार के

प्रति उतना नहीं लग रहा है। तीर्थयात्रा करने की इच्छा क्रमशः प्रबल होती जा रही है। ऐसा क्यों हो रहा है, स्वयं ही समझ नहीं पा रहे थे। अन्त में एक दिन पत्नी से परामर्श करने के बाद ईश्वर धर ने यात्रा करने का निश्चय किया।

इस बात का पता चलते ही महेन्द्र ने विरोध किया। बुढ़ापे का शरीर है, आप दोनों को एक साथ यात्रा के लिए नहीं जाने दूँगा। अगर बहुत इच्छा है तो सुरक्षा के लिए मैं स्वयं चलूँगा। ईश्वर धर ने लड़के की राय का विरोध नहीं किया। उन दिनों निगमानन्द बनारस में थे। महेन्द्र ने पिता-माता के तीर्थभ्रमण के बारे में पत्र लिखकर निगमानन्दजी के पास भेज दिया था।

महेन्द्र अपने माता-पिता के साथ जब निगमानन्दजी के डेरे पर आया तो ईश्वर धर को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि यह कैसा साधु है! न जटा और न दाढ़ी। राजकुमारों की तरह आकृति है। वे भाव विह्वल होकर देखते ही रहे। महेन्द्र के अनुरोध पर उन्हें भी दीक्षा दी गयी। बाद में उन्होंने कहा—"डरने की जरूरत नहीं, तुम्हारा लड़का कभी साधु नहीं बनेगा। मुझे साधुओं की फौज नहीं तैयार करनी है। मैं संसार-त्यागी संन्यासियों को नहीं, आदर्श-गृहस्थों को चाहता हूँ। गृहस्थ-धर्म की प्रतिष्ठा करना मेरा एक मात्र उद्देश्य है।"

बनारस से वापस लौटने के पूर्व ईश्वर धर ने अपने गुरुदेव से निवेदन किया—"गुरुदेव एक बार मेरे घर आपको चरण-रज गिराना होगा।"

निगमानन्द ने इस निमंत्रण को स्वीकार करते हुए कहा—"उधर जब यात्रा करूँगा तब आऊँगा।"

इस घटना के दस वर्ष बाद की बात है। नित्य की तरह ईश्वर धर पूजा करने के पश्चात् कमरे के बाहर आये तो अचानक उन्हें मिरगी का दौरा पड़ गया। बेहोश होकर वे गिर पड़े। चारों तरफ हलचल मच गयी। पहले लोगों को संदेह हुआ कि शायद किसी साँप ने काटा है। ओझा ने आकर कहा—"नहीं, इनके शरीर में साँप का जहर नहीं है।"

कविराज आये और जाँच के बाद कहा—"यह तो मिरगी है। इस रोग का इलाज मेरे पास नहीं है।"

शहर से बड़े कविराज को बुलाया गया। उन्होंने जाँच के बाद कहा—"बहुत देर हो गयी है। हालत चिन्ताजनक है। दस-बारह घण्टे तक जीवित रहेंगे।"

कविराज की इस राय को सुनकर घर के लोग ही नहीं, पड़ोसी भी दुःखी हो गये। इधर एक और मुसीबत इंतजार कर रही थी। ईश्वर धर को सूचित किया गया था कि चटगाँव शहर में स्थित हजारी रोड पर प्रसन्नदास के यहाँ गुरुदेव मौजूद हैं। यहाँ से कोई आदमी जाकर उन्हें गाड़ी से ले आयेगा। अब इस मुसीबत के वक्त उन्हें बुलाकर झंझट में क्यों डाला जाय। लोगों ने सुझाव दिया कि गुरुदेव को आज नहीं, किसी और दिन आने को कहा जाय।

यह सूचना देने के लिए महेन्द्र को शहर भेजा गया। महेन्द्र को देखते ही निगमानन्द ने कहा—"अजीब लड़के हो, आज ले जाने की बात थी और अभी आ रहे हो। खैर, टैक्सी लाये हो न ?"

साथ आये प्रसन्न ठाकुर ने कहा—"हम आपको मना करने आये हैं कि आप आज न आयें। कारण ईश्वर भाई की हालत बहुत खराब है। शायद सुबह तक जीवित नहीं रहेंगे। अगर आप ऐसे मौके पर वहाँ जायेंगे और कहीं ईश्वर मर गया तो आपकी बदनामी होगी। मेरी राय है.........।"

प्रसन्न ठाकुर की बात पूरी होने के पहले ही निगमानन्दजी गरज उठे–"गुरु की बदनामी होगी? महेन्द्र, जल्दी से एक टैक्सी ले आओ।"

टैक्सी आते ही सभी तुरंत मेघला गांव की ओर रवाना हो गये। अधिकांश लोगों को इस बात की सूचना थी कि स्वामी निगमानन्दजी आज ईश्वर के घर आ रहे हैं अतएव यहाँ लोगों की अपार भीड़ एकत्रित हुई थी।

टैक्सी से उतरकर निगमानन्द सीधे मरणासन्न ईश्वर धर के पास आये। कुछ देर तक बेहोश पड़े ईश्वर धर की ओर देखने के बाद बोल उठे–"ईश्वर, ईश्वर।"

निगमानन्दजी की तेज आवाज सुनकर सभी लोग चौंक उठे। जो आदमी बेहोश है, वह इस पुकार को कैसे सुनेगा? इसके बाद निगमानन्द उस कमरे में चले गये जहाँ उनके लिए ठहरने की व्यवस्था की गयी थी।

निगमानन्दजी के जाने के कुछ देर बाद ईश्वर धर की आँखें खुलीं। उसने चकित दृष्टि से चारों ओर लोगों की भीड़ देखकर पूछा–"इतनी भीड़ यहाँ क्यों है?"

छोटे पुत्र ने कहा–"गुरुदेव आये हैं।"

ईश्वर धर ने चौंककर कहा–"जा, जल्दी से एक लोटा पानी ले आ।"

पुत्र के पानी लाने पर उसके सहारे ईश्वर धर उस कमरे में आये जहाँ निगमानन्दजी विराजमान थे। उपस्थित लोगों को इस बात पर आश्चर्य हो रहा था कि जो व्यक्ति मरणासन्न था, वह इस संत की आवाज पर कैसे तुरंत होश में आ गया।

निगमानन्द ने पूछा–"क्या बात है?"

ईश्वर ने कहा–"जरा चरणामृत दीजिये।"

लोटे के पानी में उन्होंने पैर का अँगूठा स्पर्श किया और तब कहा–"अब जाओ, आराम करो।"

+ \+ \+ \+

इसी प्रकार की एक अद्‌भुत घटना मैमनसिंह जिले के बेनियारचर गाँव में हुई थी। वहाँ एक हलवाई रहता था। उसकी पत्नी के पेट में हमेशा दर्द बना रहता था। पाँच–छः साल तक लगातार इलाज करने पर भी ठीक नहीं हुआ। तंग आकर उसने इलाज कराना बन्द कर दिया।

हलवाई की पत्नी को ज्ञात हुआ कि गाँव में एक उच्चकोटि के संत आये हैं तब वह पति से बोली—"एक बार संतजी के यहाँ मुझे ले चलो।"

पति ने सोचा, सन्तजी के यहाँ पैसा लगेगा नहीं। अगर मुफ्त में भला हो जाता है तो बुरा क्या है। वह पत्नी को लेकर काली मंदिर में आया। गाँव के अधिकांश लोग हलवाई की पत्नी की बीमारी से परिचित थे। मंदिर में दर्शकों की भीड़ लग गयी।

हलवाई की जबानी सारी बातें सुनने के बाद निगमानन्द ने कहा—"देखो भाई, मैं कोशिश करूँगा, पर नतीजा भगवान् के हाथ है। तुम एक मिट्टी की हाँड़ी ले आओ और सरसों का तेल भी लेते आना।"

हलवाई दोनों सामग्री ले आया। आग जलाकर हाँडी में तेल उड़ेल दिया गया। तेल जब खौलने लगा तब उसमें पैर डालकर निगमानन्द ने उस महिला के पेट पर रख दिया। पैर रखने के साथ ही दर्द में कमी होने लगी। कुछ देर बाद सारा दर्द जाता रहा। यह दृश्य देखकर सभी दर्शक अवाक् रह गये।

इसी प्रकार निगमानन्दजी अनेक बीमार तथा पीड़ितों का उपकार करते रहे। धीरे-धीरे उनकी योग-विभूति का प्रचार होता गया।

त्रिपुरा जिले की घटना तो और भी अद्‌भुत है। इस गाँव में अश्विनी नामक एक व्यक्ति अपनी माँ और पत्नी के साथ रहता था। अश्विनी निगमानन्द का भक्त था। गरीबी में जीवन का निर्वाह कर रहा था। अचानक गाँव में हैजे का प्रकोप हुआ। अश्विनी हैजे का शिकार हुआ और उसकी मृत्यु हो गयी। पूरा परिवार अनाथ हो गया। सारा परिवार पहले से ही दरिद्रता से जूझ रहा था और अब मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा। अब क्या होगा? कौन उनका पेट पालेगा? कौन मुसीबतों के समय उनका सहायक होगा? यही सब सोचते-सोचते माँ की निगाह सामने दीवार पर टँगी निगमानन्द की तस्वीर पर पड़ी।

इस चित्र पर नजर पड़ते ही माँ आवेश में आकर बोली—"सारा दोष इसी संत का है। दिन-रात इनके प्रति भक्ति रखने के कारण मेरा लड़का चल बसा।"

दीवार के पास आकर वह चित्र फेंकने को उद्यत हुई तो देखा— चित्र में संत मुस्करा रहे हैं। यह देखकर वह और आग बबूला हो उठी। दीवार से चित्र उखाड़कर तेजी से तालाब की ओर आयी और ज्योंही वह उसे फेंकने को उद्यत हुई त्योंही पीछे से आवाज आयी—"माँ।"

वृद्धा चौंक उठी। यह कौन पुकार रहा है। यह तो अश्विनी की आवाज है। तभी पुनः वही आवाज आयी—"माँ, मैं भी तो तेरा बेटा हूँ। तुझे किस बात का दुःख है?"

वृद्धा ने देखा— यह तो तस्वीरवाला संत है जिसे वह फेंकने आयी थी। यह दृश्य देखकर वह भय से काँपने लगी।

संत ने कहा—"चलो माँ, अब घर चलो। मैं तुझे माँ कहकर पुकारूँगा। इससे तुझे शान्ति मिलेगी। अश्विनी मेरे पास ही है।"

वृद्धा सोचने लगी कि यह संत अचानक यहाँ कैसे आ गया? किसने इन्हें बताया कि मैं तालाब की ओर उनका चित्र फेंकने आयी हूँ?

वृद्धा को क्या मालूम कि उच्चकोटि के साधक अपने भक्तों की रक्षा सर्वदा करते हैं। धीरे-धीरे वृद्धा की शोचनीय दशा सुधरती गयी।

इस घटना के कुछ दिनों बाद एक नयी आफत आयी। पुत्रवधू और एक मात्र पौत्र को लेकर वृद्धा समय गुजार रही थी। बहू खूबसूरत होने के अलावा जवान थी। गाँव के मनचलों की आँखों में वह जँच गयी। कुछ लोगों ने मिलकर उसके घर पर हमला करके अपनी वासना पूर्ति के लिए तैयार हुए।

प्रथम दिन सभी मनचले कामयाब नहीं हुए। कुछ दिनों बाद पुनः रात के वक्त घर के चारों ओर से हमला शुरू हुआ। कमरे के भीतर वृद्धा, अश्विनी की पत्नी और दो वर्ष का बालक था। दरवाजा टूटते देख वृद्धा एकाग्र मन से संत को पुकारने लगी—''बाबा, हमारी रक्षा करो। बहू की इज्जत बचा लो। दया करो, मेरे देवता।''

दरवाजा टूट चुका था और कुछ मनचले भीतर आ गये थे। अचानक उन लोगों ने देखा कि सामने एक हृष्टपुष्ट संत आग्नेय दृष्टि से उनकी ओर देख रहा है। उस दृष्टि में ऐसा उत्ताप था कि कोई आगे बढ़ नहीं पा रहा था। धीरे-धीरे सभी दुर्वृत्त पीछे हटने लगे और अचानक 'जल गया, बाप रे,' कहते हुए भाग खड़े हुए। इस प्रकार अश्विनी के परिवार की रक्षा हुई।

जाते समय संत निगमानन्द ने कहा—''अब डरने की जरूरत नहीं। मैं मकान के चारों ओर रेखा खींच देता हूँ। इस रेखा के बाहर मैं हमेशा पहरा देता रहूँगा। रात को इस रेखा के बाहर कभी मत जाना।''

स्वामी निगमानन्द अपने गुरु के निर्देशानुसार पहाड़ या जंगल में साधना करने नहीं गये। कष्ट से पीड़ित और संतप्त मानव की सेवा में लगे रहे। उनके जीवन का मुख्य लक्ष्य था— सनातन-धर्म की रक्षा, सत्शिक्षा का प्रचार और जीव सेवा। वे कहा करते थे—''अगर मनुष्य को शान्ति देना है तो पहले स्वयं मनुष्य बनो। मनुष्य की सेवा करते हुए उन्हें मनुष्य बनाओ।''

अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने कुमिल्ला में आश्रम की स्थापना की। यहाँ से 'आर्य दर्पण' नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ किया। आश्रम में ब्रह्मचर्य विद्यालय स्थापित किया। इसके अलावा 'शंकर का मत और गौरांग का मार्ग', 'प्रेमिक गुरु', 'जयगुरु', 'ब्रह्मचर्य की साधना' आदि ग्रंथों का निर्माण किया। नवम्बर माह सन् १९३५ ई० के दिन दोपहर वक्त वे योगासन में ध्यानमग्न हो गये और तब लोगों को ज्ञात हुआ कि स्वामी निगमानन्द ने सायुज्य प्राप्त कर लिया है।

नीब करौरी के बाबा

नीब करौरी के बाबा

फरूखाबाद का रेलवे स्टेशन। एक गाड़ी खड़ी थी। लोग गाड़ी पर चढ़-उतर रहे थे। इन्हीं यात्रियों में कम्बल लपेटे एक बाबा प्रथम श्रेणी के डिब्बे में सवार हो गये। अगले स्टेशन पर एक एंग्लो इंडियन टिकट चेकर आया। प्रथम श्रेणी के डिब्बे में एक नेटिव साधु को देखकर वह क्रोध से जल उठा। वह यह जानता था कि भारत के अधिकांश साधु बिना टिकट रेल में सफर करते हैं। उसने ऐसे अनेक साधुओं को पकड़ा था। लेकिन इस साधु की यह मजाल जो प्रथम श्रेणी में आकर बैठ गया?

ब्रिटिश शासन काल था। टिकट है या नहीं, बिना पूछे अगले स्टेशन पर उसने बाबा को डिब्बे से बाहर निकाल दिया। बिना प्रतिवाद किये बाबाजी चुपचाप गाड़ी से उतरकर स्टेशन के एक बेंच पर बैठ गये।

गाड़ी छूटने का समय हो गया जानकर स्टेशन के कर्मचारी ने घण्टी बजाई। गार्ड ने हरी झण्डी दिखाई। गाड़ी छोड़ने के कागजात दे दिये गये। इंजन की सीटी बज उठी। लेकिन गाड़ी अपनी जगह से नहीं हिली। ड्राइवर-खलासी गाड़ी और इंजन की जाँच करने लगे। गाड़ी के न छूटने पर स्टेशन के कर्मचारी और गार्ड आकर ड्राइवर से कारण पूछने लगे।

ड्राइवर ने कहा—"इंजन में कोई खराबी नहीं है। पूरी गाड़ी चेक कर चुका। माजरा क्या है, समझ में नहीं आ रहा है?"

धीरे-धीरे दो घण्टे बीत गये। गाड़ी जहाँ की तहाँ खड़ी रही। सभी लोग परेशान थे। यात्रियों में एक युवक ने विनोद के रूप में बाबाजी से कहा—"बाबा, कोई मंतर-वंतर फूँकिये गाड़ी चले। सभी परेशान हो रहे हैं।"

बाबा ने कहा—"तो हम क्या करें। एक तो हमें गाड़ी से उतार दिया और दूसरे हमसे गाड़ी चलाने के लिए मंतर फूँकने को कह रहे हो।"

बाबा की शिकायत सुनने पर उस युवक ने कहा—"आपके पास टिकट नहीं होगा।"

बाबा ने तुरंत एक नहीं, कई टिकट प्रथम श्रेणी के दिखाये। यह देखकर उपस्थित सभी लोगों को विस्मय हुआ। टिकट रहते क्यों मुसाफिर को उतारा गया? क्या फर्स्ट क्लास में केवल अंग्रेज ही सफर कर सकते हैं? ब्रजभूमि में संतों को श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है। लोग उस चेकर को खोजने लगे जिसने बाबा को उतार दिया था।

लोगों में उत्तेजना फैलते देख उक्त टिकट चेकर स्टेशन मास्टर के कमरे में जाकर बैठ गया। इसके बाद कुछ लोगों ने आदर के साथ बाबा को डिब्बे के भीतर बैठाया।

बाहर खड़े किसी व्यक्ति ने कहा—"बाबा, अब तो गाड़ी चलाइये।"

बाबा ने गाड़ी को थपथपाते हुए कहा—"चल भाई।"

इतना कहना था कि बिना सीटी के गाड़ी चल पड़ी। अब लोगों को समझते देर नहीं लगी कि बाबाजी के कारण ही गाड़ी रुकी हुई थी। इस घटना का प्रचार इस क्षेत्र में तेजी से हो गया। अगले स्टेशन पर बाबा उतरे जिसका नाम था— नीब करौरी।

+ + + +

बाबा आगरा जिला के अकबरपुर गाँव के निवासी थे। इसी गाँव के एक सम्पन्न परिवार में आपका जन्म हुआ था। यह उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दिनों की बात है। स्कूली शिक्षा सामान्य हुई थी। कभी-कभी किसी प्रश्न के उत्तर में आप कह देते थे—"हम पढ़े-लिखे नहीं हैं।"

बाबा की जन्मतिथि, माता-पिता का नाम आदि के बारे में किसी को कुछ पता नहीं है। बाबा इन बातों का किसी से उल्लेख भी नहीं करते थे। कहा जाता है कि आपके बचपन का नाम लक्ष्मीनारायण शर्मा था। सिद्धि प्राप्त करने के पश्चात् जब आप नीब करौरी गाँव में आकर रहने लगे तब वहाँ के लोग आपको बाबा लक्ष्मणदास वैरागी कहने लगे। यहाँ तक कि नीब करौरी गाँव से कुछ दूर जहाँ आप रहते थे, वहाँ एक हाल्ट स्टेशन बनाकर रेलवे ने उस स्टेशन का नाम रखा—बाबा लक्ष्मणदास पुरी।

कहा जाता है कि आप बचपन से ही सिद्ध थे। मित्रों तथा पड़ोसियों को भविष्य की सूचनाएँ देते थे। आगे चलकर वैसी घटनाएँ हो जाती थीं। एक बार आपने अपने घर के लोगों से कहा कि आज रात डाका पड़ेगा। बालक समझकर किसी ने आपकी बात पर ध्यान नहीं दिया, पर आपकी भविष्यवाणी सत्य हुई। उस रात को डाका पड़ा था।

जिन दिनों आपकी उम्र ग्यारह वर्ष की थी, उन्हीं दिनों किसी अज्ञात प्रेरणावश लक्ष्मीनारायण घर से भाग गये। गुजरात के बबानियाँ गाँव में आकर रहने लगे। यह गाँव मोरवी से ४० मील दूर है। यहाँ वैष्णवों का एक प्राचीन आश्रम है। यहीं आप साधन-पूजन करने लगे। बाद में रमाबाई के आश्रम में चले आये।

संतों में एक परम्परा है। वे अपने शिष्यों को उचित समय पर बुलाकर दीक्षा देते हैं। लक्ष्मीनारायण को उनके गुरु ने आकर्षित किया और समय पर दीक्षा दी। दीक्षा के पश्चात् उनका नाम हुआ— लछ्मनदास वैरागी।

बाबा लछ्मनदास में कुछ खूबियाँ थीं। वे बाह्य आडम्बर नहीं करते थे। रंगीन वस्त्र पहनना, जटा-दाढ़ी रखना, त्रिपुण्ड लगाना, माला जपना, शिष्य बनाकर दीक्षा देना या भक्तों को उपदेश देना आदि कार्य नहीं करते थे। शरीर पर केवल धोती रखते थे। आगे चलकर कम्बल ओढ़ने लगे। जाड़े के दिनों में स्वेटर जरूर पहनते थे।

बबानियाँ गाँव में बाबा लगभग सन् १९०७-८ में आये थे। स्थानीय लोगों की मदद से यहाँ स्थित तालाब के किनारे हनुमानजी का एक मंदिर बनवाया था। बबानियाँ में आप सात वर्ष तक तपस्या करने के बाद तीर्थयात्रा के लिए निकल पड़े। विभिन्न तीर्थों का दर्शन करते हुए आप नीब करौरी गाँव में आये।

नीब करौरी के ग्रामवासियों ने आपको सादर अपनाया। निश्छल ग्रामवासियों की आत्मीयता और मधुर व्यवहार ने आपको स्नेह-पाश में बाँध लिया। यहाँ के लोग आपके योगैश्वर्य से प्रभावित हो गये। इन लोगों ने साधना करने के लिए जमीन के भीतर एक गुफा बना दी। अगली बरसात के मौसम में जब गुफा नष्ट हो गयी तब पुनः ऊँचे स्थान पर दूसरी गुफा का निर्माण किया गया। आप दिन भर गुफा में साधना करते थे। शाम के समय गाँव के लोगों से मिलते थे।

नीब करौरी गाँव ब्रज का पिछड़ा इलाका था। यहाँ एक भी मंदिर नहीं था। बाबा ने निश्चय किया कि हनुमानजी का मंदिर बनवाऊँगा। इस गाँव में एक अर्से से रहने के कारण यहाँ के लोगों की स्थिति के बारे में जानकारी उन्हें थी। गाँव के एक समृद्ध बनिये से उन्होंने कहा कि हनुमानजी का मंदिर बनवा दे।

वह राजी हो गया। निश्चित स्थान पर ईंट-पत्थर गिर गये। इसके बाद उसने हाथ खींच लिया। बाबा समझ गये कि अब उसकी दिलचस्पी समाप्त हो गयी है।

कई दिनों बाद सहसा उसके दुकान में आग लग गयी। गाँव में आग बुझाने का कोई साधन नहीं था। बाबा की योग-शक्ति से बनिया परिचित था। वह दौड़ा हुआ बाबा के पास आया। उनसे प्रार्थना करने लगा।

बाबा ने कहा—"तूने हनुमानजी का मंदिर बनवाने का वायदा किया, बाद में मुकर गया। जा, उनसे क्षमा माँग और मंदिर बनवा दे।"

बनिये ने कहा—"मंदिर मैं बनवा दूँगा। इस वक्त तो मुझे बचाइये। वर्ना में तबाह हो जाऊँगा।"

"जा, जा। हनुमान मंदिर में जा। उनसे प्रार्थना करने पर सब ठीक हो जायगा।"

वह तुरंत हनुमानजी के विग्रह के पास आकर प्रार्थना करने लगा। थोड़ी देर बाद दुकान के नौकर ने आकर कहा—"मालिक, दुकान की आग अपने आप बुझ गयी। सिर्फ मिर्च के दो बोरे थोड़े से जल गये हैं।"

इस घटना के बाद बनिये ने गाँव में हनुमानजी का मंदिर बनवा दिया और हवन-कुण्ड भी बन गया। बाबा ने देखा— मंदिर के आसपास कुआँ नहीं है। इस कार्य के लिए उन्होंने एक दूसरे बनिये को आदेश दिया।

"तू कुआँ बनवा दे। तुझे पुत्र होगा।" बाबा ने कहा।

बनिया अपुत्रक था। बाबा का आदेश पाते ही उसने मंदिर के समीप एक कुआँ बनवा दिया। उसी वर्ष उसे पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई। इसी प्रकार बाबा गाँव के लोगों पर अपनी कृपा की वर्षा करते रहे।

+ \+ \+ \+

बाबा के बढ़ते प्रभाव को देखकर गाँव के कुछ ब्राह्मण स्वार्थ सिद्ध करने के लिए उनके दरबार में आते रहे। एक बार एक सेठ चाँदी की थाली में सोने के कुछ सिक्के लेकर भेंट देने आया। बाबा ने उसे ग्रहण नहीं किया। सेठ भेंट लेकर वापस चला गया।

बाबा के इस व्यवहार से ब्राह्मणों का दल नाराज हो गया। वे इस रकम को बाबा के माध्यम से प्राप्त करना चाहते थे। लेकिन उनकी आशाओं पर पानी फिर गया। उनका कहना था कि बाबा को जरूरत नहीं थी तो उसे लेकर हम ब्राह्मणों को बाँट देते। उन लोगों ने बदला लेने को सोचा। इसके लिए मौका ढूँढ़ने लगे।

प्रति वर्ष की भाँति इस वर्ष भी बाबा यज्ञ करानेवाले थे। तैयारियाँ चल रही थीं। इस यज्ञ के लिए एक सेठ तीस टीन घी लेकर आया। उस समय बाबा गाँव में नहीं थे। गंगा नहाने फरूखाबाद गये हुए थे। मौका पाकर ब्राह्मणों ने बदला ले लिया। सेठ को बताया गया कि कुछ कारणों से इस वर्ष यज्ञ नहीं होगा।

यह समाचार सुनकर सेठ घी के टीनों को लेकर वापस चला गया। गंगा-स्नान से वापस आने के बाद बाबा को सारी बातें मालूम हुईं। उन्होंने स्थानीय ब्राह्मणों को खूब फटकारा। यह एक ऐसी घटना थी जिसके कारण बाबा का मन इस गाँव से उचट गया। उनके अन्तर की घुमक्कड़ प्रवृत्ति जाग उठी। उन्होंने इस गाँव को हमेशा के लिए छोड़ दिया। लेकिन गाँव ने इन्हें नहीं छोड़ा। वे सर्वत्र 'नीब करौरी के बाबा' के नाम से आजीवन प्रसिद्ध रहे।

यहाँ से आप फतेहगढ़ आये। यहाँ से कई स्थानों का चक्कर काटते हुए अकबरपुर आये। यहाँ अपने घर न जाकर डाक बंगले में रुक गये। आपके आगमन का समाचार पाकर कुछ भक्त दर्शन करने चले आये।

बाबा सभी को 'तू' या 'तुम' कहते थे और अपने बारे में 'हम' शब्द का प्रयोग करते थे। एक दिन उपस्थित लोगों से बातचीत करते हुए सहसा पास बैठे श्यामसुन्दर शर्मा से उन्होंने कहा—"तू बगिया चला जा। अभी कोई नीब करौरी के बाबा को खोजता हुआ आयेगा। उसके साथ एक गूँगा-बहरा लड़का होगा। उनसे कहना कि यहाँ कोई आबा-बाबा नहीं है। जा, तेरा गूँगा-बहरा लड़का ठीक हो जायगा। इसके अलावा और जो मन में आये कह देना।"

शर्माजी तुरंत बाहर आये। फाटक के पास पहुँचते ही एक कार आकर डाक बंगले के पास रुक गयी। उसमें से एक सज्जन उतरे और कहा—"मैं फिरोजाबाद का सिविल सर्जन डॉ० बेग हूँ। पता चला है कि इस बंगले में नीब करौरी के बाबा ठहरे हैं। उनसे मिलना चाहता हूँ। मेरा यह लड़का पैदाइशी गूँगा-बहरा है। काफी इलाज किया गया, पर ठीक नहीं हुआ। बाबा का आशीर्वाद मिल जाय तो ठीक हो जाय।"

शर्माजी ने बाबा के निर्देशानुसार सारी बातें कहने के बाद अज्ञातवश लड़के की ओर देखते हुए पूछा—"क्या नाम है तुम्हारा?"

डॉ० बेग कुछ कहते, उसके पहले ही लड़के ने अस्पष्ट स्वर में अपना नाम बताया। डॉ० बेग चौंक उठे।

शर्माजी ने कहा—"आपका लड़का बोलता तो है और सुन भी लेता है। घबड़ाने की जरूरत नहीं जल्द ठीक हो जायगा।"

अकबरपुर से बाबा आगरा आये। यहाँ भी बाबा के अनेक भक्त थे। वे एक भक्त के यहाँ ठहर गये। आपका दर्शन करने के लिए आपके भक्त डॉक्टर लक्ष्मीचन्द्र के साथ डॉक्टर सुरेशचन्द्र मेहरोत्रा भी आये थे। इनकी शक्ल देखते ही बाबा ने कहा—"खाली हाथ क्या आया है, मिठाई खिला, हम मिठाई खायेंगे।"

तुरंत बाजार से मिठाई मँगवायी गयी। एक टुकड़ा खाने के बाद बाबा ने सारी मिठाई लोगों में बँटवा दी।

डॉ० मेहरोत्रा ने पूछा—"बाबा, किस खुशी में मिठाई बँटवायी गयी?"

बाबा ने कहा—"तू बाप बन गया है, इस खुशी में।"

यह बात सुनकर डॉ० मेहरोत्रा विस्मित हुए। उनकी पत्नी गर्भवती थी और प्रसव के सिलसिले में इन दिनों मायका गयी हुई हैं। बच्चा पैदा होने की सूचना अभी तक उन्हें नहीं मिली है। ऊहापोह स्थिति में वे घर वापस आये तो इस आशय का तार प्राप्त हुआ कि उनकी पत्नी को लड़का हुआ है।

+ \+ \+ \+

सन् १९४० के आसपास बाबा नैनीताल आये। यहाँ आकर आदत के अनुसार चारों ओर घूमते रहे। एक बार मनोरा आये तो यहाँ का वातावरण उन्हें इतना पसन्द

आया कि भविष्य में नैनीताल के भक्तों के यहाँ न रुक कर इस सुनसान स्थान में चले आते थे और किसी पेड़ के नीचे रात गुजारते थे। आगे चलकर यहाँ आश्रम तथा हनुमानजी का मंदिर बनवाने के कारण इस स्थान का नाम हनुमानगढ़ हो गया।

श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी जिन दिनों उत्तर प्रदेश के राज्यपाल थे, उन दिनों बाबा की ख्याति सुनकर आपके सम्पर्क में आये थे। नैनीताल में बाबा से आपकी मुलाकात बराबर होती थी। आपने अपने एक संस्मरण में लिखा है—''नीब करौरी के बाबा हमेशा एक कम्बल ओढ़े घूमा करते हैं। वे प्रायः नैनीताल आते हैं। यहाँ हनुमानगढ़ में ठहरते हैं। यह बात कोई नहीं जानता कि वे कहाँ से आते हैं और कहाँ चले जाते हैं। कोई उनका वास्तविक नाम तक नहीं जानता।''

हनुमानगढ़ के बाद इस क्षेत्र में बाबा ने कई जगह आश्रम और मंदिर बनवाये। भूमियाधार, काकड़ीघाट, पिथौरागढ़, धारचूला, जित्ती, गर्जिला, बदरीनाथ, ऋषिकेश आदि स्थानों पर आश्रम बनवाये, पर मुख्य आश्रम कैंची रहा। नैनीताल से कुछ दूर पर यह आश्रम है। नीब करौरी के बाद कैंची आश्रम में उनका अधिकतर समय गुजरा है।

गर्मियों में आपका दर्शन करने के लिए अनेक गणमान्य व्यक्ति आते थे। इनमें उत्तर प्रदेश के राज्यपाल सर्वश्री वी०वी० गिरि, राजा भद्री (राज्यपाल), भगवान सहाय (केरल के भू०पू० राज्यपाल), उपराष्ट्रपति गोपालस्वरूप पाठक, गुलजारीलाल नन्दा, लालबहादुर शास्त्री, जगन्नाथ प्रसाद रावत जैसे राजनेता और प्रसिद्ध उद्योगपति जुगल-किशोर बिड़ला भी थे।

एक ओर जहाँ आपका इतना प्रभाव था कि बड़े-बड़े लोग आते थे, वहीं दूसरी ओर अनजाने क्षेत्र में एक बार आपको संदिग्ध व्यक्ति समझकर दफा १०६ में चालान कर दिया गया और आप हवालात में बन्द हो गये।

इस थाने के इंचार्ज नासिर अली थे जो किसी मामले की जाँच करने के लिए दूर कहीं गये थे। रात ग्यारह बजे वापस आकर थाने का हालचाल पूछा तो पता लगा कि एक व्यक्ति को दफा १०६ में बन्द कर दिया गया है। नासिर अली ने बन्दी बाबा को उड़ती निगाह से देखा और घर चले गये।

दूसरे दिन भोर के समय थाने से सिपाही आया और भयभीत स्वर में कहा—''हुज़ूर, कल जिस आदमी को दफा १०६ में बन्द किया गया था, लगता है वह कोई भूत-प्रेत है। बाहर से हवालात में ताला बन्द है, मगर जब देखता हूँ तब वह बाहर निकल आता है। उसके बाहर आते समय ताला अपने आप खुल जाता है और उसके भीतर जाते ही बन्द हो जाता है। थाने के सभी लोग घबड़ाये हुए हैं। मेहरबानी करके जल्दी चलिये।''

नासिर अली समझ गये कि यह आदमी कोई ऊँचे दर्जे का फकीर है जो अपना चमत्कार दिखा रहा है। तुरंत वे थाने पर आये और सिपाहियों द्वारा की गयी बेअदबी के लिए माफी माँगी।

बाबा ने कहा—''न तुझसे कोई गलती हुई है और न हमारी किसी तरह की तौहीनी, फिर तू माफी क्यों माँग रहा है?''

बाबा की उदारता देखकर नासिर अली प्रसन्न हो गये। उन्होंने कहा—''अगर आप मेरे यहाँ चलकर भोजन करें तो मैं समझूँगा कि आप मुझ पर खुश हैं।''

बाबा ने कहा—''ऐसी बात? चल, आज तेरे यहाँ भोजन करूँगा।''

इस घटना के बाद नासिर अली जब कभी मुसीबत के वक्त बाबा को याद करते, उन्हें उससे छुटकारा मिल जाता था। यह बात केवल नासिर अली पर लागू नहीं थी, बल्कि ऐसे अनेक भक्त थे जिनकी समस्याएँ बाबा दूर रहकर हल कर दिया करते थे। बाबा के ऐसे चमत्कारों से कविवर सुमित्रानन्दन पन्त और श्री हरिवंश राय बच्चन भी प्रभावित हुए थे।

+ \+ \+ \+

द्वितीय महायुद्ध की बात है। झाँसी के सिविल सर्जन बाबा के भक्त थे। उन दिनों बाबा उनके यहाँ ठहरे हुए थे। एक दिन भोजन के पश्चात् बाबा तख्त पर सो गये। सिविल सर्जन साहब ने बाबा के पास ही फर्श पर बिस्तर लगाया ताकि रात को अचानक बाबा को कोई जरूरत हो तो तुरंत सेवा कर सकेंगे।

रात एक बजे अचानक बाबा तड़पने लगे। सिविल सर्जन की नींद खुल गयी। बाबा ने अपने शरीर से कम्बल उतारकर उन्हें देते हुए कहा—''इसे किसी जलाशय में फेंक आ।''

सिविल सर्जन ने कहा—''इतनी रात को कहाँ जाऊँगा?'' कल सबेरे फेंकवा दूँगा।''

बाबा ने कहा—''नहीं, अभी ले जा।''

बाबा की आज्ञा का उल्लंघन करने की हिम्मत सर्जन साहब को नहीं हुई। गैरेज से गाड़ी निकालकर चल दिये। जब वे लौटे तब सबेरा हो गया था। घर में प्रवेश करने पर उन्होंने देखा— बाबा प्रसन्न-मुद्रा में सबसे बातचीत कर रहे हैं।

बाद में उन्होंने बाबा से कम्बल बहाने का कारण पूछा।

बाबा ने कहा—''तेरा जो लड़का फौज में है, कल वह जर्मन सैनिकों का सामना नहीं कर सका। उसकी टुकड़ी में भगदड़ मच गयी। वह स्वयं भी भागा और पहाड़ की चोटी से नीचे कूद गया। नीचे दलदली जमीन थी, उसमें फँस गया। पहाड़ पर से सैनिक गोलियों की बौछार करते रहे। बाद में उन लोगों ने सोचा कि अब तक वह मर गया होगा। जर्मन सैनिक ऊपर से ही वापस चले गये। वे सारी गोलियाँ मेरे कम्बल में आ गयी थीं। उसकी गर्मी मुझे परेशान कर रही थी। जब तूने कम्बल को पानी में बहाया तब शान्ति मिली।''

बाबा इस घटना का वर्णन इस तरह कर रहे थे जैसे घटनास्थल पर स्वयं मौजूद थे। रात की नींद खराब होने के कारण सिविल सर्जन साहब असंतुष्ट होकर भीतर चले गये। उन्होंने बाबा की बातों पर विश्वास नहीं किया।

बाबा के वापस जाने के दो सप्ताह बाद लड़के ने अपनी पत्नी के नाम पत्र लिखते हुए इस घटना का जिक्र किया। अन्त में लिखा, किसी दैवी-शक्ति के कारण मैं उस दिन जीवित बच गया। इस पत्र को पढ़ने के बाद सिविल सर्जन साहब दंग रह गये। मन ही मन अविश्वास के अपराध के लिए बाबा से क्षमा माँगते रहे।

+ \+ \+ \+

बाबा के एक भक्त हैं— केहर सिंह जो उत्तर प्रदेश शासन के सचिवालय में सचिव पद पर कार्य करते थे। अब अवकाश ग्रहण कर चुके हैं। बाबा के एकनिष्ठ भक्त हैं। लखनऊ आने पर बाबा अधिकतर इन्हीं के घर ठहरते थे। इनका लड़का २ जनवरी, सन् १९५८ के दिन टेनिस खेल रहा था। अखरोट वाला गेंद उसकी आँखों से टकराया। आँख का चश्मा फूट गया और शीशे के अनेक कण रेटिना में धँस गये। घटना की सूचना मिलते ही केहर सिंह तुरंत आये और उसे मेडिकल कालेज ले गये। जाँच के बाद डॉक्टरों ने कहा—''इसका इलाज यहाँ सम्भव नहीं है। इसे यथाशीघ्र सीतापुर ले जाइये।''

आँख के इलाज के लिए सीतापुर की ख्याति समस्त उत्तर भारत में है। लड़के की एक आँख बचपन से ही खराब थी और अब दूसरी आँख भी खराब होने जा रही है। शायद जीवन भर लड़का अंधा बनकर रहेगा? मन में यह विचार आते ही वे फफककर रो पड़े।

तभी अचानक टेलीफोन की घंटी बज उठी। फोन उठाते ही उधर से आवाज आयी—''तू रो रहा है? सुन, लड़के को सीतापुर मत ले जाना। अलीगढ़ में डॉ० मोहनलाल के यहाँ ले जा। रोने की जरूरत नहीं। सब ठीक हो जायगा।''

केहर सिंह इतना तो समझ गये कि यह बाबा का फोन है। वे कुछ पूछना चाहते थे, पर तभी फोन रख दिया गया। बाबा का फोन करने का ढंग अलग किस्म का होता है। कहीं से किसी को वे फोन कर लेते हैं जबकि दूसरा उनसे सम्पर्क नहीं कर पाता।

बैठे-बैठे वे डॉ० मोहनलाल के बारे में सोचने लगे। तभी उन्हें याद आया कि चिकित्सा-विभाग सचिव श्री विनोद चन्द्र शर्मा की डॉ० मोहनलाल से घनिष्ठता है। तुरंत केहर सिंह ने शर्माजी को सारी घटना बताते हुए कहा कि आप डॉ० मोहनलाल से सम्पर्क करके मुझे सूचना दें।

थोड़ी देर बाद विनोद चन्द्र शर्मा ने फोन करते हुए कहा—''ठाकुर साहब, आप मुझसे मजाक करते हैं? डॉ० मोहनलाल को फोन करने पर ज्ञात हुआ कि तीन दिन हुए तुमने वहाँ एक कमरा रिजर्व करवाया है। बहरहाल मैंने उनसे कह दिया है। कल तुम लड़के को लेकर चले जाओ।''

केहर सिंह समझ गये कि यह घटना होनेवाली है जानकर बाबा ने सारा प्रबंध पहले से कर रखा है, इसीलिए सीतापुर की जगह अलीगढ़ जाने का निर्देश मिला है। दूसरे दिन केहर सिंह की पत्नी बच्चे को लेकर अलीगढ़ गयी। स्टेशन पर स्वागत के लिए डॉ० मोहनलाल उपस्थित थे।

लड़के की आँख का आपरेशन हुआ, फिर भी उसमें २०-२२ कण रह गये। उन्हें निकाला नहीं जा सका। घर वापस आने के आठ-दस दिन बाद उसकी आँखों की पट्टी खोली गयी तो एक नयी समस्या उत्पन्न हो गयी। शीशे के शेष कणों के कारण उसे अनेक बल्ब, तारे, चाँद दिखाई देने लगे। वह ४-५ फीट दूर की वस्तु देख नहीं पाता था। डॉक्टरों से शिकायत करने पर जवाब मिला— "यह तो होगा ही, अब कोई उपाय नहीं है।"

केहर सिंह मन मसोस कर रह गये। लड़का लोगों की दृष्टि में दया का पात्र बन गया। फरवरी, १९५८ ई० को कानपुर से सहसा बाबा का फोन आया। उस समय केहर सिंह सचिवालय जाने की तैयारी कर रहे थे।

बाबा ने फोन पर आदेश दिया— "फौरन कानपुर में पं० कामता प्रसाद दीक्षित के घर चले आओ।"

सिंह साहब को समझते देर नहीं लगी कि कोई महत्त्वपूर्ण कार्य होगा। वे अपनी कार से कानपुर रवाना हो गये। अज्ञात प्रेरणावश लड़के को भी साथ ले लिया। दीक्षितजी के घर आकर केहर सिंह ने बाबा के चरण स्पर्श किया।

बाबा ने बालक के हाथ को पकड़कर अपनी गोद में बैठाया और उसकी आँखों पर हाथ फेरने लगे। बाबा ने प्यार करते हुए बालक से कहा— "तेरे लिए केहर सिंह को यहाँ बुलाया।"

थोड़ी देर बाद बाबा ने पुनः कहा— "केहर सिंह, अब तुम वापस अपने कार्यालय जा सकते हो।"

इस घटना के सातवें दिन बालक ने अपने पिता से कहा— "पिताजी, मेरी आँखें बिलकुल ठीक हो गयी हैं। अब मैं बिना चश्मे का सब कुछ देख पा रहा हूँ।"

इस सुखद समाचार को सुनकर केहर सिंह खुशी से उछल पड़े। डॉक्टर के पास जाकर उन्होंने लड़के की आँखें दिखाईं। डॉक्टर ने जाँच करने के बाद कहा— "चिकित्सा-जगत् की यह अद्भुत घटना है। डॉक्टर ऐसा चमत्कार नहीं कर सकते।"

केहर सिंह बाबा के प्रिय भक्तों में अन्यतम हैं। इस घटना के दो वर्ष बाद बाबा घूमते हुए लखनऊ आये। बाबा के आगमन की सूचना पाते ही केहर सिंह उनका दर्शन करने गये। बाबा को रात का भोजन करने का निमंत्रण दिया।

बाबा ने कहा— "आज नहीं, कल शाम को तेरे यहाँ आयेंगे।"

दूसरे दिन केहर सिंह ने अपनी पत्नी से दो आदमियों के लायक भोजन बनाने को कहा। पत्नी को यह बात मालूम हो गयी थी कि आज बाबा का अपने यहाँ निमंत्रण है।

शाम को सब्जी बनाकर वे आटा गूँथने लगीं। सिंह साहब बाजार से मिठाई लाने के बाद पत्नी से बोले— "मैं बाबा को लिवाने जा रहा हूँ। उनके आने पर पूरी तलना। गरम-गरम पूरी वे पसन्द करते हैं।"

वापस आते समय बाबा के साथ आठ आदमी और चले आये। केहर सिंह ने सोचा— बाबा जहाँ जाते हैं, वहाँ कुछ भक्त उनके पीछे-पीछे लगे रहते हैं। सिंह साहब एक थाली सजाकर ले आये।

बाबा ने कहा— "इन लोगों को भी थाली परोस दो।"

इस आदेश को सुनते ही केहर सिंह स्तंभित रह गये। सिंह साहब असमर्थ नहीं थे, पर सभी लोगों के लिए भोजन बनाने में नये सिरे से प्रबंध करना पड़ेगा। तुरंत रसोईघर में जाकर पत्नी से परामर्श करने लगे। पति की बातें सुनकर पत्नी झल्लाकर बाहर चली गयी।

इस स्थिति को सम्हालने के लिए केहर सिंह को नौकरों की सहायता लेनी पड़ी। वे सब मदद देने लगे और सिंह साहब थालियाँ सजाकर आगन्तुकों को परोसने लगे। आश्चर्य की बात यह हुई कि सभी लोगों को भरपेट भोजन कराने के बाद भी सामग्रियाँ बच गयीं।

सिंह साहब समझ गये कि बाबा की योग-शक्ति के कारण आज उनकी इज्जत बच गयी। दरअसल किसी वस्तु का उत्पादन, वृद्धि या रूपान्तर कर देना योगियों के लिए सामान्य बात है। भले ही उसे लौकिक दृष्टि से चमत्कार समझा जाय।

+ \+ \+ \+

बाबा की अतीन्द्रिय-शक्ति कितनी प्रबल थी, इसका अन्दाजा निम्न घटना से लगाया जा सकता है।

घटना सन् १६५० ई० की है। उन दिनों बाबा हल्द्वानी में एक भक्त के यहाँ ठहरे हुए थे। भक्तों के प्रश्नों का उत्तर देते-देते सहसा मौन हो गये। कुछ देर बाद पास बैठे पूरनचन्द्र जोशी से उन्होंने कहा— "पूरन, एक चम्मच पानी पिला। उन्हें बहुत तकलीफ हो रही है।"

बाबा के इस कथन का क्या अर्थ है, इसे कोई समझ नहीं सका। पूरन ने एक के बदले दो चम्मच पानी पिलाया। थोड़ी देर बाद बाबा की आँखों से आँसू ढुलकने लगे। लोग अवाक् होकर देखते रहे।

बाबा ने कहा— "आज भारत का एक़ महान् संत चला गया। महर्षि रमण नहीं रहे।"

जिन लोगों की बाबा पर आस्था थी, उन्हें इस कथन पर विश्वास हो गया। अन्य लोग सोचने लगे कि महर्षि रमण तो तिरुमल्लाई में हैं, बाबा को यहाँ बैठे-बैठे उनके निधन की बात कैसे मालूम हो गयी? दूसरे दिन समाचार पत्रों के जरिये लोगों को यह समाचार जब ज्ञात हुआ तब लोग दंग रह गये।

+ \+ \+ \+

कैंची में आश्रम बनने के बाद बाबा का अधिकांश समय यहीं गुजरता था। लेकिन वे लोगों की जबान पर 'नीब करौरी के बाबा' के नाम से प्रसिद्ध थे। यहाँ उनकी अनेक योग विभूतियाँ प्रकट हुई हैं जिसका वर्णन 'स्मृति सुधा' में प्रकाशित है।

एक बार बाबा ने आश्रम के लोगों से कहा कि आज रात भर तुम लोग पूरी बनाओ। आदेश के अनुसार काम होने लगा। दूसरे दिन लोगों को नित्य की भाँति प्रसाद दिये गये। लोगों को यह बात समझ में नहीं आ रही थी कि आखिर कई मन पूरियाँ क्यों बनवायी गयीं? बाबा से पूछने का साहस किसी को नहीं हो रहा था। लोगों ने समझ लिया कि सारा सामान अन्त में फेंकना पड़ेगा।

उस दिन शाम होने के पहले एक बस आयी और आश्रम की दीवार से इस कदर टकराई कि उसके दो पहिये निकल कर खड्ड में जा गिरे। बस इस तरह खड़ी हो गयी कि रास्ता बन्द हो गया। कुछ ही देर में दोनों ओर डेढ़ सौ के लगभग कार, बस आदि की लाइनें लग गयीं। अंधेरा बढ़ने लगा।

उन दिनों कैंची में केवल चाय की एक दुकान थी। आखिर इतने आदमी भोजन कहाँ करते? बाबा ने आगत सभी यात्रियों को पूरी-हलवा खिलाया। बच्चों और महिलाओं को आश्रम में तथा पुरुषों को बस में सोने का आदेश दिया। सभी लोगों को कम्बल दिये गये। यह सब देखकर आश्रमवासियों को ज्ञान हुआ कि बाबा ने कल इतनी पूरियाँ क्यों बनवायी थीं।

इसी कैंची आश्रम की घटना है। बाबा की कार का ड्राइवर हबीबुल्ला खाँ था। एक दिन उसने कहा— "बाबा, गाड़ी में पेट्रोल नहीं है। अगर आपको कहीं जाना हो तो आज्ञा दें जाकर पेट्रोल भरवा लाऊँ।"

बाबा ने कहा कि उन्हें कहीं जाना नहीं है। दूसरे ही दिन रात को खाँ को बुलाकर उन्होंने कहा— "गाड़ी निकाल, जाना है।"

खान ने कहा— "गाड़ी में पेट्रोल आपने भरवाया नहीं, गाड़ी कैसे चलेगी? इस वक्त आपको कहाँ जाना है?"

बाबा ने कहा— "अल्मोड़ा जाना है। तू गाड़ी चला।"

गाड़ी रवाना हुई। चार या पाँच किलोमीटर चलने के बाद गाड़ी रुक गयी। अब जंगल में रात गुजारनी पड़ेगी, यह समझकर खान अपनी सीट पर सो गया।

यह देखकर बाबा ने कहा— "सो क्यों गया? आसपास के किसी झरने से पानी लाकर टंकी में डाल दे।"

"क्या?" हबीबुल्ला बुरी तरह चौंक उठा। फिर कहा— "पेट्रोल की जगह पानी डाल दूँ? पानी छोड़ने से गाड़ी खराब हो जायगी। अब अगर यही हुक्म दोबारा देंगे तो कल ही मैं आपकी नौकरी छोड़ दूँगा।"

बाबा ने कहा— "ज्यादा पानी मत डालना। सिर्फ तीन कैन डालना।"

टंकी में पानी डालने के बाद हबीबुल्ला गाड़ी चलाने लगा। रात भर गाड़ी चलाने के बाद सबेरे आश्रम में वापस आया। बाबा के इस चमत्कार को देखकर वह स्वयं चकित रह गया। पानी से गाड़ी कैसे रात भर चलती रही?

+ + + +

उत्तर प्रदेश कांग्रेसी मंत्रिमंडल के मंत्री श्री जगन प्रसाद रावत रानीखेत में आयोजित एक मीटिंग में भाग लेने आये थे। कार्यक्रम समाप्त होने के बाद वे बाबा का दर्शन करने आये। बाबा ने उन्हें प्रसाद खिलाने के बाद कहा— "अब तू यहाँ से जल्द भाग जा।"

रावतजी जरा परेशान हुए। आखिर बाबा मुझे यहाँ से क्यों भगा रहे हैं। प्रश्न करने का साहस नहीं हुआ, तुरंत नैनीताल चले आये। अपने कमरे में जाते ही उन्हें भूकम्प का सामना करना पड़ा। दूसरे दिन उन्हें पता चला कि भूमियाधार से नैनीताल के बीच अनेक नुकसान हुआ है। अब उनकी समझ में आया कि बाबा ने कल क्यों भाग जाने को कहा था।

+ + + +

सन् १९६६ ई० में कुंभ मेला लगा। यह प्रयाग की घटना है। बाबा का कैम्प संगम के पास उस पार लगा था। कैम्प में अनेक भक्त थे। बातचीत के दौरान एक व्यक्ति ने कहा— "कड़ाके की इस सर्दी में अगर सभी को चाय मिलती तो कुछ आराम मिलता।"

अन्तर्यामी बाबा लोगों की इच्छा समझ गये। उन्होंने चाय बनाने का आदेश दिया। कैम्प में चाय, चीनी, बरतन आदि थे, पर दूध नहीं था। ब्रह्मचारी की जबानी यह बात सुनकर बाबा ने कहा— "जा, बाल्टी ले जा। गंगा से दूध भरकर ले आ। कह देना— मइया, दूध लिए जा रहा हूँ। कल लौटा दूँगा।"

ब्रह्मचारी ने आज्ञा का पालन किया। वे गंगा से एक बाल्टी पानी ले आये। बाबा ने उसे ढक देने को कहा। कुछ देर बाद बाबा ने कहा— "अब क्या बैठा है? चाय क्यों नहीं बनाता?"

चूल्हे पर पानी चढ़ाने के बाद ब्रह्मचारी ने बाल्टी का ढक्कन हटाया तो देखा— एक बाल्टी दूध है। सभी लोगों ने चाय पी। दूसरे दिन एक बाल्टी दूध गंगा में प्रवाहित कर दिया गया।

इसी प्रकार एक बार बाबा दाढ़ी बनवाने के लिए एक नाई की दुकान पर गये। बाबा के बारे में नाई बहुत कुछ सुन चुका था। उसने विनय पूर्वक कहा— ''बाबा, बहुत दिन हुए मेरा लड़का घर से भाग गया है। आज तक उसका पता नहीं लगा।''

कुछ देर बाद बाबा सहसा उठकर खड़े हो गये और बोले— ''मुझे अभी बाहर जाना है।''

नाई ने कहा— ''अभी तो आधी दाढ़ी बनी है। शेष बना लेने दीजिए।''

लेकिन बाबा ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया। वे दुकान से बाहर निकल गये। पास ही लघुशंका करके वापस आये तब उनकी शेष दाढ़ी बनी। इसके बाद वे चले गये।

दूसरे दिन नाई का लड़का घर वापस आ गया। उसने विचित्र कहानी सुनाई। उसने कहा— ''यहाँ से सौ मील दूर मैं एक होटल में काम करता था। कल वहाँ एक आदमी आया जिसकी आधी दाढ़ी बनी थी और दूसरी ओर साबुन लगा था। उन्होंने मुझे पचास रुपये देकर कहा कि तुम आज ही पहली गाड़ी से घर चले जाओ।''

+ \+ \+ \+

उन दिनों बाबाजी आश्रम से कहीं बाहर गये हुए थे। उसी समय एक सज्जन आश्रम में आये। उक्त सज्जन ने यहाँ मंदिर का निर्माण कराया था। बातचीत के सिलसिले में उन्होंने पुजारी से जाति पूछी और संस्कृत-ज्ञान के बारे में प्रश्न किया।

उत्तर में पुजारी ने कहा— ''मैं ब्राह्मण नहीं, ठाकुर हूँ।''

इतना सुनना था कि उक्त सज्जन क्रोधित हो उठे। ठीक इसी समय बाबा आ गये। बाबा उन्हें साथ लेकर एक बड़े हाल में आये। पुजारी के बारे में चर्चा होने लगी।

बाबा ने पुजारी से कहा— ''तुम तो संस्कृत जानते हो। भगवद्गीता का पाठ सुनाओ।''

पुजारी ने कहा— ''नहीं महाराजजी।''

बाबा बिगड़े— ''झूठ मत बोलो। तुम्हें गीता के अट्ठारहों अध्याय कंठस्थ हैं।''

तभी उक्त सज्जन ने कहा— ''आप ग्यारहवाँ और बारहवाँ अध्याय सुनाइये।''

बाबाजी ने अपना कम्बल पुजारी के ऊपर डाल दिया। इसके बाद दो-तीन बार उसकी पीठ को थपथपाया। पुजारी सस्वर गीता के श्लोकों की आवृत्ति करने लगा। उपस्थित सभी लोग मुग्ध हो गये। उक्त सज्जन बाबा के चरणों पर सिर रखकर अपने अपराध के लिए क्षमा माँगने लगा।

+ \+ \+ \+

घटना लखनऊ की है। बाबा लखनऊ आकर कभी-कभी कर्णवीर के यहाँ ठहर जाते थे। कर्णवीर बचपन से उन्हें देखता आ रहा है। अक्सर जब वह बाबा को चिढ़ाता तब घर के लोग उस पर बिगड़ उठते थे।

एक बार बाबा इनके यहाँ आये और कर्णवीर से कहा— "कर्णवीर, तू गोविन्द बल्लभ पन्त के यहाँ चला जा। उन्हें यहाँ बुला ला। कहना बाबा ने बुलाया है।"

कर्णवीर ने कहा— "पन्तजी अब कांग्रेसी नेता नहीं हैं। मुख्यमंत्री हैं। उनसे मुलाकात करना आसान नहीं है।"

बाबा ने कहा— "तू उनके घर में घुसते चले जाना और कह देना कि बाबा ने बुलाया है।"

कर्णवीर ने हँसकर कहा— "यह बात कहूँगा तब न, जब मुझे कोई उनके बंगले में घुसने देगा। पकड़कर बन्द कर देंगे तब मेरी जमानत देनेवाला कोई नहीं मिलेगा।"

बाबा बार-बार उसे समझाते रहे कि तू एक बार वहाँ चला जा। तुझे कोई कुछ नहीं कहेगा। दूसरी ओर कर्णवीर बराबर इन्कार करता रहा।

अन्त में बाबा ने खिजलाकर कहा— "मत जा! हम उसे यहीं बुला लेंगे।"

इसके बाद बाबा कुछ देर तक इधर-उधर की बातें करने के बाद बोले— "आओ, जरा सड़क पर टहलें।"

पाँच-सात मिनट टहलने के बाद कर्णवीर ने देखा कि लालबत्ती वाली एक गाड़ी बाबा के पास आकर रुक गयी। उसमें से पं० गोविन्द बल्लभ पन्त बाहर निकलने लगे। तभी बाबा ने पंतजी से कहा— "तू गाड़ी में बैठ। हम तेरे साथ चलेंगे।"

इतना कहकर बाबा गाड़ी के भीतर बैठ गये। फिर बाहर झाँकते हुए कर्णवीर से बोले— "देख, बुला लिया। अब हम जाते हैं।"

+ \+ \+ \+

हठयोगी अपनी योग विभूति का प्रयोग वहीं तक करते हैं जहाँ तक उनकी सीमा होती है। इसके आगे प्रकृति के कार्य में वे हस्तक्षेप नहीं करते। योग विभूति के प्रदर्शन से साधना की क्षति होती है, इसीलिए उच्चकोटि के साधक इससे बचते हैं। उनके अनजाने या दयावश कुछ योग विभूतियाँ प्रकट हो जाती हैं।

बाबा के अधिकांश भक्तों का विश्वास था कि बाबा में अपूर्व शक्ति है। वे असंभव को संभव करते हैं। इसी विश्वास को लेकर एक महिला उनके निकट आयी। यह घटना इलाहाबाद की है। बाबा यहाँ चर्च लेन स्थित एक भक्त के यहाँ ठहरे हुए थे।

बातचीत के सिलसिले में महिला ने कहा— "मेरे बहनोई सख्त बीमार हैं, उन्हें बचा लीजिए।"

बाबा ने कहा— "उसे जलोदर हुआ है।"

महिला ने इस बात को स्वीकार करते हुए कहा— "सात लड़कियों का बाप है। उसके न रहने पर पूरा परिवार अनाथ हो जायगा। उसे बचा लीजिए।"

बाबा ने कहा— "हमसे झूठ मत कहलाओ। अब हम उसके लिए सिर्फ प्रार्थना कर सकते हैं।"

इसका अर्थ यह हुआ कि उसकी मृत्यु अनिवार्य है। बाबा इसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकते। इस प्रकार की कई घटनाएँ हुई हैं जिसमें बाबा ने अपनी असमर्थता प्रकट की है।

नीब करौरी के बाबा बीसवीं शताब्दी के अन्तिम महापुरुष थे। संभव है कि ऐसे अनेक बाबा भारत में हैं, पर वे प्रकट रूप से लोगों के बीच नहीं आये हैं। भारत में सन्तों की कमी नहीं है, पर सभी लोक कल्याण नहीं कर पाते।

हिमालय के विभिन्न क्षेत्रों के अलावा बाबा ने लखनऊ, कानपुर, शिमला आदि शहरों में हनुमानजी का मंदिर बनवाया है। उनका एक अमेरिकी भक्त डॉ० रिचार्ड एल्पर्ट ने न्यू मैक्सिको स्थित टाओस में एक हनुमानजी का मंदिर बनवाया है जहाँ अमेरिकी नागरिक तथा वहाँ स्थित भारतीय नित्य दर्शन करते हैं। आपने बाबा के सम्बन्ध में 'मिराकेल ऑफ लव' नामक पुस्तक लिखी है।

बाबा जीवन भर यायावरों की तरह घूमते रहे। लेकिन सन् १९७३ के बाद से वे कैंची आश्रम से बाहर नहीं निकले। यह उनकी प्रवृत्ति के विरुद्ध था। सन् १९७२ में एक बार एक भक्त से पूछा था— "हमें अपना शरीर कहाँ छोड़ना चाहिए।"

इस प्रश्न को सुनकर सभी भक्त बेचैन हो उठे। किसी भी महात्मा का इस तरह का प्रश्न करना अशुभ होता है। उन दिनों जो लोग उनका दर्शन करने आते, उनसे कहते— "अब हमारी मुलाकात नहीं होगी।"

९ सितम्बर, सन् १९७३ को वे अस्वस्थ हुए। भक्त लोग तुरंत उन्हें वृन्दावन के अस्पताल में ले आये। गहन चिकित्सा आरंभ हुई। ११ सितम्बर को नीब करौरी के बाबा इस धराधाम से सदा के लिए चले गये।

:

परमहंस पं० गणेशनारायण

परमहंस पं० गणेशनारायण

राजस्थान में अक्सर अकाल पड़ता है। उस समय देश के कोने-कोने से समाजसेवी सहायता के लिए वहाँ पहुँच जाते हैं। तन, मन, धन से मारवाड़ी लोग अपने प्रान्त के लोगों की सेवा करने लगते हैं। एक बार बिड़ला बंधुओं ने वर्षा के लिए यज्ञ का आयोजन किया। इस आयोजन में भाग लेने के लिए ब्राह्मणों को आमंत्रित किया गया।

आमंत्रित ब्राह्मणों में पंडित कालूराम रुंथला भी थे। जो उन दिनों चिड़ावा के संस्कृत पाठशाला में अध्ययन कर रहे थे। अचानक एक दिन पंडित गणेशनारायण टहलते हुए पाठशाला में आये। बातचीत के सिलसिले में कालूराम ने कहा—"बिड़लाजी पिलानी में वर्षा के लिए यज्ञ करवा रहे हैं। मुझे भी जाना है।"

परमहंस गणेशनारायण ने छूटते ही कहा—"यज्ञ तो हो जायगा, पर इससे वर्षा नहीं होगी। तुम वहाँ जाओ, पर याद रखना कि यज्ञस्थल से चले मत आना। अन्न त्याग देना। इस बीच तू 'ॐ ऐं क्लीं ह्रीं' मंत्र जपते रहना। छठे दिन वर्षा होगी यानी तीन दिन तुझे बराबर मंत्र जपते रहना पड़ेगा।"

परमहंसजी के प्रति कालूराम की असीम श्रद्धा थी। उनके आदेश को वे वेदवाक्य समझते थे। तीन दिन यज्ञ हुआ। पण्डितों को दक्षिणा देकर विदाई दी गयी। कालूराम यज्ञ-स्थल पर बैठे रहे।

बिड़लाजी के मुनीम सुखदेव उनके पास आकर बोले—"पंडितजी, अब कुछ नहीं मिलेगा। आप घर जा सकते हैं। यहाँ बेकार क्यों बैठे हैं?"

कालूराम ने जवाब दिया—"वर्षा होने पर ही मैं यहाँ से जाऊँगा। मुझे कुछ नहीं चाहिए। भोजन भी नहीं।"

कालूराम की बातें सुनकर उपस्थित लोग आपस में परिहास करने लगे। कालूराम के इस निश्चय की सूचना बलदेवदास बिड़ला तक पहुँची। उन्होंने कहा—"अगर ब्राह्मण हठ करके बैठा है तो उन्हें उठाकर ऊँची पैड़ीवाले मंदिर पर बैठा दो। यज्ञ करना चाहें तो सामग्री भिजवा दो।"

आदेश के अनुसार सारी सामग्री आ गयी। पंडित कालूराम परमहंसजी से प्राप्त मंत्र का जाप करते रहे। ठीक छठे दिन जोरदार वर्षा हुई। हवेली से सेठ का परिवार आया। नगर से अनेक लोग आये। लोगों ने कालूराम का चरण स्पर्श किया। दक्षिणा में काफी रकम मिली। सभी धन्य-धन्य कहने लगे। ऐसा था— परमहंसजी का मंत्र।

+ + + +

पंडित कालूराम के पिता पंडित भोलाराम एक बार किसी काम से पिलानी गये। वहाँ जुगलकिशोर बिड़ला से बातचीत के सिलसिले में परमहंसजी की चर्चा चल पड़ी। आपके योग विभूति की चर्चा हुई। धार्मिक प्रवृत्ति के होने के कारण बिड़लाजी परमहंसजी का दर्शन करने चले आये। बातचीत से वे इतने प्रभावित हुए कि अक्सर परमहंसजी की सेवा में आते रहे। यह उन दिनों की बात है जब जुगलकिशोर बिड़ला ३६ वर्ष के युवा थे।

एक बार अपनी आदत के अनुसार जब जुगलकिशोरजी आये तब परमहंसजी ने इन्हें देखते ही कहा—"रे जुगला, आज तेरा चोखा दिन है। जो कुछ करना-धरना है, करके तुरंत भाग जा।"

सेठ जुगलकिशोर बिड़ला को समझते देर नहीं लगी कि आज उनके जीवन का शुभमुहूर्त आया है और इसका उपयोग तुरंत करना चाहिए। घर वापस आकर उन्होंने तुरंत नारनौल के रास्ते अपनी गाड़ी बढ़ायी। चाँदनी रात, दोनों ओर सफेद बालू के ढेर थे। कुछ दूर आगे बढ़ने पर बायीं ओर एक काला साँप फन उठाये दिखाई दिया। यात्रा के अवसर पर सर्प-दर्शन? यह तो अशुभ शकुन है। वे वापस लौटने लगे।

मार्ग में परमहंसजी मिले। उन्होंने विस्मय से पूछा—"क्यों रे जुगला, वापस कैसे आ गया?"

बिड़लाजी ने कहा—"रास्ते में बायीं ओर एक काला साँप फन उठाये दिखाई दिया। यात्रा में यह तो अपशकुन है, इसलिए वापस चला आया।"

परमहंसजी ने खेद प्रकट करते हुए कहा—"तूने बड़ी भारी गलती कर दी। अगर उस वक्त चला जाता तो चक्रवर्ती बन जाता। अब भी चला जा, तेरी कीर्ति सारे जग में फैल जायगी।"

इस आज्ञा को शिरोधार्य कर जुगलकिशोरजी कलकत्ता चले आये। कुछ ही दिनों में वे अपार सम्पत्ति के स्वामी बने और अपने परिवार के वे सर्वश्रेष्ठ दानी हुए।

इसी प्रकार की एक घटना ओंकारमल पंसारी के जीवन में हुई थी। बाजार में परमहंसजी बच्चों से घिरे खड़े थे। सहसा उनकी दृष्टि ६-१० वर्ष के उम्रवाले ओंकारमल पर पड़ी। उन्होंने उससे कहा—"कहीं से कागज ला। तेरा मुहूर्त निकाल दूँ।"

ओंकारमल ने इस बात की सूचना तुरंत अपने पिताजी को दी। परमहंसजी का मुहूर्त बताना एक अद्‌भुत चमत्कार है, इसे चिड़ावा के लोग जानते थे। उन्होंने बही से एक पृष्ठ फाड़कर देते हुए कहा—"जा लिखवा ला।"

ओंकारमल परमहंसजी के पास आया। पंसारी की हालत उन दिनों अच्छी नहीं थी। नगर के बाहर कहीं विशेष परिचय भी नहीं था। परमहंसजी के लिखे मुहूर्त के अनुसार उस बालक को पिता ने कलकत्ता भेज दिया।

कुछ दिनों बाद परमहंसजी पंसारी-परिवार में आये। उस दिन घर में खीर बनी थी। एक कटोरा खीर उन्हें खाने को दे दी गयी। उसे लेकर परमहंसजी गंदे नाले में डालते हुए बोले—"तेरी खीर ऐसी है।"

इतना कहकर परमहंसजी चले गये। ओंकारमल के भाग्य का सितारा उसी दिन से चमक उठा। आज उनकी गणना चिड़ावा के श्रेष्ठ सेठों में होती है।

+ \+ \+ \+

परमहंसजी रमता योगी प्रकृति के थे। श्मशान उनका स्थायी निवास जरूर था, पर वे कब कहाँ चल देंगे, इसे कोई समझ नहीं पाता था। एक बार इसी प्रकार टहलते हुए पंडित रामजीलाल शास्त्री के घर आये। उस समय शास्त्रीजी किसी अनुष्ठान की तैयारी कर रहे थे।

परमहंसजी ने पूछा—"रामजी, क्या कर रहा है?"

शास्त्रीजी ने उत्तर दिया—"महाराज, बड़े कष्ट में हूँ। आर्थिक कठिनाई के कारण लड़की का विवाह नहीं हो पा रहा है। इधर पास में कुछ नहीं है। अब अनुष्ठान की तैयारी कर रहा हूँ, शायद कष्ट दूर हो जाय।"

परमहंसजी ने हँसकर कहा—"अनुष्ठान करने से भला रकम आती है? मैं एक मंत्र बता रहा हूँ, उसे जप करते रहना। इससे तेरे पास रुपये आ जायेंगे। याद कर ले—ॐ ड ड ड।"

इतना कहकर परमहंसजी चले गये। शास्त्रीजी इस मंत्र का जाप दो माह तक करते रहे। अचानक एक दिन उनके मन में आया कि अब तीर्थयात्रा करनी चाहिए। इस उद्देश्य से वे घर से चल पड़े। जहाँ कहीं गये, वहाँ स्थित चिड़ावा निवासी इन्हें धन-सम्मान देते गये। प्राप्त रकम से उन्होंने अपनी लड़की की शादी धूमधाम से की। दो साल तक उनकी समृद्धि में वृद्धि होती गयी।

एक दिन मंत्र जपना भूल गये। फलस्वरूप दूसरे दिन मंत्र याद नहीं आया। दौड़े हुए परमहंसजी के पास आये। इन्हें देखते ही परमहंसजी ने कहा—"उस मंत्र की सिद्धि समाप्त हो गयी। अब वह काम नहीं देगी और न तुझे इसकी जरूरत है।"

+ \+ \+ \+

भूरामल नामक एक वृद्ध चिड़ावा में रहता था। सट्टा में घाटा उठाने के कारण बाजार जाना बन्द कर दिया था ताकि महाजन लोग परेशान न करें। घर में कठिनाई बढ़ती जा रही थी।

एक दिन जोशियों के मंदिर के पास से गुजर रहे थे। रास्ते में परमहंसजी से मुलाकात हो गयी। भूरामलजी को यह मालूम था कि इनका आशीर्वाद पाकर कुछ लोगों की माली हालत सुधर गयी है। फलस्वरूप इसी लालसा से उनके निकट बैठ गये।

अपनी अतीन्द्रिय-शक्ति से परमहंसजी उसकी समस्या को समझ गये। कुछ देर बाद बोले—"यहाँ क्या बैठा है? जा, छः अमल का सट्टा कर ले।"

भूरामल ने कहा—"मैं सौदा करना नहीं जानता।"

परमहंसजी बिगड़ उठे—"तो यहाँ क्या बैठा है? जा भाग जा।"

इस फटकार को सुनकर भूरामल अनिच्छा से उठे। उनके कदम अनायास बाजार की ओर उठ गये। रास्ते में जानकीदास अपनी दुकान में बैठे दिखाई दिये। इन्हें देखते ही उन्होंने आवाज दी। भूरामल ने सोचा— मारे गये। आज वे बकाया रकम की तगादा करेंगे। मेरी मति मारी गयी जो इधर चला आया। भागने का उपाय भी नहीं था।

पास जाने पर जानकीदास ने कहा—"तेरी दो पेटी अमल का सौदा कर दूँ?"

भूरामल ने कहा—"जैसी आपकी मर्जी हो, कर दें।"

जानकीदास ने सौदा कर दिया। तीन-चार दिन बाद जानकीदास ने भूरामल को बुलाकर कहा—"तेरे सौदे में सात सौ रुपये आये हैं। ले, रख ले।"

+ + + +

राजस्थान के एक जिले का नाम है— झुन्झुनूं। इसी जिले में एक छोटा-सा गाँव बुगाला है। गाँव में पंडित कुशालचन्द्र सपरिवार रहते थे। सात्त्विक ब्राह्मण तथा संस्कृत के विद्वान थे। कुशालचन्द्र के पुत्र हुणतराम थे। आप गाँव में यजमानी करते और शेष समय में बच्चों को पढ़ाया करते थे। हुणतराम के पाँच पुत्र हुए। इनमें सबसे बड़े घनश्यामदास थे। घनश्यामजी के दो पुत्र हुए। बड़े का नाम गणेशनारायण और छोटे का नाम स्योनारायण था।

गणेशनारायण का जन्म पौष कृष्णपक्ष, प्रतिपदा, गुरुवार, संवत् १९०३ को हुआ था। गणेशनारायण के जन्म के १६ वर्ष बाद स्योनारायण का जन्म हुआ था।

बुगाला गाँव से १२ मील दूर नवलगढ़ में दौलतराम चोखानी नामक सेठ द्वारिकाधीश का मंदिर बनवा रहे थे। इस मंदिर के निर्माण का सारा कार्य घनश्यामजी देख रहे थे। इसी कारण उन्हें बुगाला गाँव छोड़कर हमेशा के लिए नवलगढ़ आकर बस जाना पड़ा।

गणेशनारायण की प्रारंभिक शिक्षा द्वारिकाधीश के मंदिर में हुई। बाद में उन्हें पंडित रुड़ेन्द्रजी की पाठशाला में भेजा गया। 'होनहार विरवान के होत चिकने पात' के अनुसार गणेशनारायण अपनी प्रतिभा का परिचय देते रहे। बचपन से ही आप में अलौकिक शक्ति जागृत हो गयी थी।

एक बार आपके चाचा का सबसे छोटा पुत्र बीमार पड़ गया। देखते ही देखते उसकी हालत खराब होती गयी। घनश्यामदास अच्छे ज्योतिषी थे। चाचा बच्चे की कुण्डली लेकर आये तो पता चला कि वे घर पर नहीं हैं। चाचा ने घबराकर गणेशनारायण से कहा—''जरा लड़के की कुण्डली देख। क्या चक्कर है?''

चाचा के आदेशानुसार बालक गणेशनारायण ने फलादेश निकालकर कहा—''यह जातक कल दोपहर तक जीवित रहेगा।''

यह बात सुनकर घर में रोना-चिल्लाना प्रारंभ हो गया। किसी ने यह नहीं सोचा कि बालक की गणना का क्या महत्व है। इतने में घनश्याम आ गये। लोगों से रोने का कारण पूछने पर सारी बातें मालूम हुईं। वे बिगड़कर बोले—''मूर्ख, गणेश को इन बातों की जानकारी कैसे हो सकती है? अभी कल तक मैं उसे सिखाता रहा, फिर मेरे रहते उसे कुण्डली क्यों दिखायी गयी?''

इसके बाद वे स्वयं कुंडली लेकर विचार करने लगे तो देखा— मारकेश है। वह लड़का दूसरे दिन दोपहर को चल बसा। पिता को मानना पड़ा कि गणेश को फलादेश का ज्ञान हो गया है।

सन् १९१७ ई० में गणेशनारायण का विवाह हो गया। विवाह के पश्चात् उनका अध्ययन छूट गया। इसके बाद से वे घर के प्रति उदासीन हो गये। यह क्रम लगभग १२ वर्ष तक चलता रहा। लड़के की इस स्थिति से घनश्यामदास चिन्तित रहने लगे। अन्त में उन्होंने सोचा कि जब तक इस पर घर की जिम्मेदारी नहीं सौंपी जायगी तब तक यह नहीं सुधरेगा।

सन् १९३१ ई० को आपको घर से अलग कर दिया गया। आपका प्रथम पुत्र एक साल तक जीवित रहा। बाकी दो लड़कियाँ थीं। कई वर्ष बाद आपकी माँ का देहान्त हो गया।

घर से अलग होने के पश्चात् आप दुर्गा का अनुष्ठान कर अपनी जीविका चलाते थे। शेष समय में आप भुवनेश्वरी देवी के मंत्र को सिद्ध करने में लगे रहे। लेकिन इसमें आपको वांछित सफलता नहीं मिली। सन् १९४४ में आप सदा के लिए घर से अलग होकर श्मशान पर रहने लगे। यहाँ पर श्मशान-काली की साधना करने लगे।

महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज के शब्दों में—''काली अनेक प्रकार की हैं। कालीमूर्ति के नीचे शवरूपी शिव रहते हैं। शिव की चैतन्य-शक्ति जब शरीर से उठ जाती है तब शरीर शवाकार में परिणत हो जाता है। उसी शव पर चैतन्य-शक्ति क्रिया

करती है। शिव के वक्ष पर काली विराजमान रहती हैं। बिना शिवत्व प्राप्त किये काली को हृदय में धारण नहीं किया जा सकता। शिवत्व प्राप्त कर शवावस्था तक पहुँचा जाता है तब काली का पता लगता है। शिव ही शव हो सकते हैं, जीव नहीं हो सकता। .... शवरूपी शिव के हृदय पर इसी प्रकार विचरण करती हैं। वे श्मशानवासिनी हैं। श्मशान शवशयान अर्थात् वहाँ इसी प्रकार शव रहते हैं।''

कहा जाता है कि गणेशनारायणजी को इस साधना से सफलता मिली थी। देवी ने प्रत्यक्ष रूप से दर्शन देकर कहा था कि शिव की आराधना करो। शिव का बीज मंत्र 'ड' है। आप इस बीज मंत्र का निरन्तर जाप करने लगे। इस साधना में आपको शीघ्र सफलता मिल गयी। आप वाक् सिद्ध तथा सर्वज्ञ हो गये।

इस सिद्धि के सिद्धों की चर्चा करते हुए श्री दानवीर गंगोपाध्याय कहते हैं—''आज भी तांत्रिक सिद्ध साधक महापुरुष अपने-अपने तपः प्रभाव से भारत के दिग् दिगन्त को प्रज्ज्वलित कर रहे हैं। आज भी भारत के श्मशानों में प्रति अमावस्या की महानिशा में प्रज्ज्वलित चिता के समीप भैरव-भैरवियों की ज्वलन्त दिव्य ज्योति नैश तमिस्रा को विदीर्ण कर गगन को आलोकित कर रही हैं। आज भी श्मशान में जलमग्न मृत और सड़े शव साधकों की मंत्र-शक्ति से जीवित होकर सिद्धों की साधना में सहायक होते हैं। आज भी तांत्रिक योगी दिव्य दृष्टि के प्रभाव से इस लोक में रहते हुए देवलोक के अतीन्द्रिय कार्यों को प्रत्यक्ष रूप में देख लेते हैं। आज भव-भय-भीत प्रणत शरणागत भक्त-साधक को मुक्त करने के लिए मुक्तकेशी श्मशान में दर्शन देती हैं। अभी भी मंत्र-शक्ति के अद्‌भुत आकर्षण से पर्वतनन्दिनी का सिंहासन डोल उठता है।''

पुत्र की यह हालत देखकर घनश्यामजी ने अपनी सारी जायदाद छोटे पुत्र के नाम लिख दी। गणेशनारायण की दोनों पुत्रियों का विवाह का भार भी स्योनारायण के जिम्मे कर दिया गया।

गणेशनारायण एक अर्से तक जसरापुर के श्मशान में रहने के बाद अपनी अन्तःप्रेरणा से चिड़ावा चले आये। यह संवत् १६४७ की बात है। चिड़ावा में कोई भी आपकी शक्ति से परिचित नहीं था। आपके रहन-सहन और अघोरी प्रवृत्ति को देखकर लोग आपको पागल समझते रहे। आज भी समाज के अधिकांश लोग अघोरी संतों से भयभीत रहते हैं। उनके प्रति श्रद्धा की भावना उत्पन्न नहीं होती। जब ऐसे संतों की योग विभूति प्रकट होती है तब लोग इनके मुरीद बनते हैं।

चिड़ावा की श्मशान भूमि इनका प्रिय स्थान था। अघोरियों की तरह आप भी समदर्शी हो गये थे। जिस पात्र में आप खाते, उसी में आपके साथ कुत्ते और कौवे भी भोजन करते थे। काली के साधक अधिकतर नीले रंग का वस्त्र धारण करते हैं जिसे सामान्य नागरिक पसन्द नहीं करते।

शनैः-शनैः आप साधना करते हुए सिद्ध हो गये। कभी-कभी अपनी योग विभूति दिखाते थे जिसके कारण स्थानीय लोग आपके प्रति श्रद्धावनत हो जाते थे। स्थानीय लोगों के अलावा जुगलकिशोर बिड़ला आपके भक्त बन गये थे। अक्सर आपसे मिलने कें लिए पिलानी से चिड़ावा आते थे।

एक बार आपने नारायणदास चोटिया के द्वारा परमहंसजी के लिए चार रजाई भिजवायी। सर्दी का मौसम था। चोटिया अपने घर के लिए रजाई बनवा रहे थे, पर वह बनकर नहीं आयी थी। इन्होंने सोचा कि जब तक अपनी रजाई बनकर नहीं आ जाती तब तक इनका उपयोग कर लूँ, बाद में दे आऊँगा। चौथे दिन इनकी रजाई बनकर आ गयी। पाँचवें दिन वे रजाइयों को लेकर पहुँचे।

परमहंसजी ने कहा—"इन रजाइयों को कैरे के पेड़ पर डाल दे। सभी रजाइयाँ बीमार हैं।"

परमहंसजी के आदेशानुसार सभी रजाइयों को कैरे के पेड़ पर टाँगने के बाद नारायणदास अपने घर आये तो ज्ञात हुआ कि जिन लोगों ने परमहंसजी की रजाइयाँ ओढ़ी थीं, वे सब बीमार हैं। तुरंत घबराकर वे परमहंसजी के पास आये और क्षमा याचना करते हुए बोले—"अपनी रजाइयाँ बनकर नहीं आयी थीं इसलिए उनके उपयोग का अपराध मुझसे हो गया। इस अपराध के लिए क्षमा कर दें।"

परमहंसजी ने कहा—"जा, सब ठीक हो गये।"

घर आने पर मालूम हुआ कि वास्तव में सभी प्राणी ठीक हो गये हैं।

इसी प्रकार एक बार बिड़लाजी ने हरदेव बाठोलिया के हाथ चार अनार परमहंसजी के यहाँ भिजवायी। रास्ते में नवलगढ़ के एक ब्राह्मण के माँगने पर उन्होंने एक अनार उसे दे दिया। सोचा—परमहंसजी को क्या मालूम कि चार अनार भेजे गये हैं।

हरदेवजी जब परमहंसजी के पास आकर उनके सामने तीन अनार रखे तो उन्होंने कहा—"पिलानी से तो चार चले थे, पर एक कहाँ रह गया?"

यह बात सुनते ही हरदेवजी के होश उड़ गये। वे समझ गये कि संतों से कुछ छिपा नहीं रहता। उन्होंने क्षमा माँगते हुए अपराध स्वीकार कर लिया।

+ \+ \+ \+

पंडित रामजीलाल शास्त्री और गजानन शर्मा प्रायः परमहंसजी का दर्शन करने चले आया करते थे। एक बार इनके आने पर उन्होंने कहा—"चलो नवलगढ़, अपनी मावड़ी से मिल आयें।"

परमहंसजी अपनी पत्नी को 'मावड़ी' कहा करते थे। तीनों व्यक्ति नवलगढ़ आये। घर पर आकर परमहंसजी चौक में बैठ गये। आपकी पत्नी स्योनन्दी देवी ने

कहा—''आपने यह स्वांग बना लिया है, पर यहाँ खर्च के लाले पड़े हैं। मैं कहाँ से कमाकर घर चलाऊँ?''

इतना सुनने के पश्चात् परमहंसजी जहाँ बैठे थे, वहीं से मिट्टी कुरेदने लगे। थोड़ी-थोड़ी मिट्टी हटाते गये और चाँदी के सिक्के निकालते गये। इस प्रकार ४२ सिक्के निकालने के बाद बोले—''तू कहती है कि तेरे पास रुपये नहीं हैं। देख, तेरे पास इतने रुपये हैं और तूने जमीन में गाड़ रखा है।''

यह दृश्य देखकर स्योनन्दी देवी ही नहीं, साथ आये दोनों व्यक्ति भी दंग रह गये।

+ + + +

चेनसुखदास का एक रिश्तेदार बीमार था। उनकी जन्म कुण्डली लेकर वे पड़ोस के पंडित बदरी प्रसाद चौरसिया के पास गये ताकि ग्रह-संकट के बारे में जानकारी मिले।

बदरी प्रसाद जन्म पत्रिका लेकर मेष, वृष, राहू, केतु का हिसाब लगा रहे थे। ठीक उसी समय उधर से जाते हुए परमहंसजी ने पूछा—''बदरिया, क्या कर रहा है?''

बदरी प्रसाद शंकित हो उठे। पता नहीं, परमहंसजी क्या कह बैठे जो वे नहीं कह सकेंगे। बोले—''सेठ कुंजीलाल की जन्म कुण्डली देख रहा हूँ।''

यह बात सुनते ही परमहंसजी ने कहा—''तीन दिन हो गया। मुरदे की क्यों कुण्डली देख रहा है?''

इतना सुनना था कि सभी के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। तभी चेनसुख का नौकर एक तार लेकर आया जिसमें कुंजीलाल के तीन दिन हुए निधन का समाचार था।

चिड़ावा में ही गुरुदयाल उन दिनों घूम-घूमकर मिठाई बेचता था। रास्ते में अगर परमहंसजी मिल जाते तो उन्हें अवश्य कुछ न कुछ देता था।

एक दिन परमहंसजी ने उससे पूछा—''गुरदिया, तुझे क्या चाहिए, बोल?''

गुरुदयाल ने कहा—''मेरे मरे हुए माँ-बाप को एक बार दिखा दो।''

परमहंसजी ने कहा—''उन्हें देखकर क्या करेगा? इससे अच्छा है कि कुछ और चाहिए तो बता।''

लेकिन गुरुदयाल अपनी जिद्द पर अड़ा रहा। यह देखकर परमहंसजी ने कहा—''आज खेत में चलेंगे। वहाँ हम भुट्टे खायेंगे। साथ में कोयला ले चलना।''

गुरुदयाल कोयला लेकर खेत में आया। कोयला जलाकर परमहंसजी की ओर देखा। परमहंसजी ने कहा—''ऊँचे टीले पर से भुट्टे तोड़ ला।''

गुरुदयाल टीले के पास पहुँचा तो देखा कि वहाँ उसके स्वर्गवासी माता-पिता बैठे हैं। उन्हें देखते ही उसकी घिग्घी बँध गयी। भय से चीखता हुआ वह परमहंस के पास आकर गिर पड़ा।

परमहंसजी ने कहा—''अरे कमबख्त, माँ-बाप से भला कोई डरता है?''

इस घटना के बाद वह तीन दिनों तक बुखार में बेहोश पड़ा रहा।

इसी प्रकार की एक घटना पिलानी के एक नाई के साथ हुई थी। उन दिनों आप नवलगढ़ में थे। आज से ५०-६० वर्ष पहले लोग पैदल अधिक चलते थे। सवारी की उतनी सुविधा नहीं थी। फिर राजस्थान में ऊँट के अलावा अन्य कोई सवारी नहीं थी।

एक नाई पैदल यात्रा करते हुए सोचा कि रात भर पैदल चलने पर वह झुंझुनूं पहुँच जायगा और फिर वहाँ से चलकर दूसरे दिन पिलानी पहुँच जायगा। यही सब सोचता हुआ वह चला जा रहा था।

आगे टीले पर परमहंसजी बैठे थे। उसे पास आते देख बोले—''कहाँ जा रहा है?''

नाई ने कहा—''महाराज, अभी झुंझुनूं जा रहा हूँ। वहाँ से पिलानी जाऊँगा।''

परमहंसजी ने कहा—''सुबह चले जाना। रात को कहीं भटक गया तो परेशान होगा। सो जा यहाँ।''

नाई ने सोचा— जब टोक दिया गया है तब आगे यात्रा नहीं करनी चाहिए। वह वहीं सो गया। सुबह जब उसकी नींद खुली तो उसने आश्चर्य से देखा कि वह पिलानी के एक टीले पर बैठा है।

+ + + +

सेठ पाटेदिया काफी दिनों से बीमार थे। इस मुसीबत से छुटकारा पाने के लिए परमहंसजी के पास आये। प्रथम प्रयास में उनसे मुलाकात न हो सकी। कई दिनों तक खोजने के बाद परमहंसजी मिले। साथ में नीले रंग का एक थान भेंट देने के लिए ले आये थे।

परमहंसजी ने इन्हें देखते ही मौन धारण कर लिया। काफी देर तक आग्रह करने के बाद नीले रंग का मलमल उन्होंने लिया। मलमल बढ़िया थी। उस थान को लेकर वे पैर पर लपेटने लगे। यह देखकर सेठजी खिन्न हो गये। इतना बढ़िया मलमल जो पगड़ी के लायक है, उसकी यह दुर्गति हो रही है। जब सेठजी से रहा नहीं गया तब बोल उठे—''महाराज, यह मलमल तो पगड़ी बाँधने के काम आता। पैर में लपेटने के लिए नहीं लाया था।''

परमहंसजी ने कहा—''टोक टाक करके तूने बुरा किया। मैं तो तेरी मौत को बाँध रहा था। अब तू नहीं बचेगा।''

इतना सुनना था कि सेठजी की हालत खस्ता हो गयी। कुछ ही दिनों बाद उनका निधन हो गया।

इसी प्रकार की एक घटना शिवबक्स राय ककरानिया के साथ हुई थी। उस दिन परमहंसजी नोहर के आगे पेशाब करने लगे। यह देखकर शिवबक्स राय लज्जित हो उठे। अपने पुत्र से कहा—''पंडित तो बड़े बेशर्म हैं। यह भी भला कोई पेशाब करने की जगह है। मुहल्ले की औरतें इधर से आ-जा रही हैं। यह दृश्य देखकर वे स्वयं ही लज्जित हो जायेंगी।''

इतना कहने के पश्चात् उन्होंने अपने नौकर से कहा—''जाकर पंडित से कहो कि वे यहाँ से चले जायें।''

नौकर ने आदेश का पालन किया।

परमहंसजी ने कहा—''मैं तो चला जा रहा हूँ, पर पन्द्रह दिन आगे-पीछे तुम जाओगे।''

उस वक्त लोगों ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया। लेकिन उसी दिन रात को सेठ को बुखार आया और आठवें दिन वे चल बसे। उनका पुत्र भगवानदास हट्टा-कट्टा था। श्मशान में पिता की दाह क्रिया करके लौटा तो उसने खाट पकड़ ली। पन्द्रह दिन के भीतर बाप-बेटा दोनों ही परलोकवासी हो गये।

दूसरी ओर परमहंसजी का एक और रूप प्रकट होता था। घूमते हुए एक दिन गजानन्द मिश्र के घर आये। उन दिनों मिश्रजी मियादी बुखार से पीड़ित थे। परमहंसजी को देखते ही मिश्रजी की माताजी ने कहा—''मेरा गजू तो बीमार है पंडित।''

परमहंसजी ने कहा—''आज मैं इसी के लिए आया हूँ। तू मुझे रोटी-रबड़ी लाकर दे।''

मिश्रजी की माताजी ने तुरंत रोटी-रबड़ी लाकर उनके सामने रख दी। उन्होंने रोटी के कुछ टुकड़े तोड़-तोड़कर चारों ओर फेंक दी और कुछ खा लीं। इसके बाद कहा—''शिवबक्स (वैद्यजी) की दवा बन्द कर दे। गजू जब रोटी माँगे तब खाने को दे।''

इतना कहकर परमहंसजी चले गये। उनके जाने के कुछ देर बाद गजानन्दजी को कड़ाके की भूख लगी। वे खाना माँगने लगे। घर के लोग परेशान हो उठे। वैद्यजी अभी तक रोगी के पास बैठे थे। उनसे खाना देने के बारे में पूछा गया। उन्होंने रोगी की नाड़ी देखी तो बिलकुल स्वस्थ पाया।

चलते समय हल्का पथ्य देने का आदेश देकर वे चले गये। लोग दौड़कर परमहंसजी के पास इसी प्रश्न को लेकर गये तो उन्होंने कहा—''जो माँगे, वही दे दो।''

इस आज्ञा को मानकर लोगों ने गजानन्दजी को भरपेट भोजन दिया। दो-चार दिन में वह स्वस्थ हो गया।

+ + + +

कभी-कभी मूड आ जाने पर परमहंसजी ऐसा चमत्कार करते थे कि देखनेवाले डर जाते थे। परमहंसजी नियमित रूप से न तो हजामत बनवाते थे और न मुण्डन कराते थे।

उस दिन कालूराम नाई को देखते ही बोले—"आज मेरा मुण्डन कर दे।"

कालूराम तुरंत तैयार हो गया। उसे यह मालूम था कि पंडितजी श्मशान में ही क्षौर-क्रिया करवाते हैं। श्मशान में आकर परमहंसजी ने मुर्दों पर फेंकने वाले नाद से पानी लिया। छूकर देखा— काफी ठंडा पानी था। सर्दी के दिन थे।

परमहंसजी ने कहा—"कालिया, श्मशान से कुछ हड्डी के टुकड़ों को बटोर ला।"

कालूराम इधर-उधर बिखरी हड्डियों को बटोर लाया। उन हड्डियों पर पानी का बरतन रखकर परमहंसजी ने कहा—"फूँक मार दे।"

ज्योंही उसने फूँक मारी त्योंही हड्डियाँ जल उठीं। इस भयानक दृश्य को देखते ही कालूराम हजामत की पेटी वहीं छोड़कर भाग गया।

+ + + +

भगीनिया तालाब से परमहंसजी का विशेष प्रेम देखकर जुगलकिशोर बिड़ला ने एक घाट पक्का बनवा दिया। इस घाट पर उनकी स्मृति में 'गणेश लाट' के नाम से एक स्तूप भी बनवाया। यह वि० संवत् १९५५ की बात है। इस स्तूप से पिलानी दिखाई देता है और चिड़ावा का सारा दृश्य भी।

संवत् १९६९ पौष मास सुदी नवमी को आपने अपना नश्वर शरीर चौरासियों के शिवाला में त्याग दिया था। यहाँ आपका समाधि-मंदिर है जहाँ नित्य लोग दर्शन करने जाते हैं। पास ही अपने पूज्य पिता बलदेवदास बिड़ला के नाम पर जुगलकिशोर बिड़ला ने एक लाट बनवा दिया है।

प्रस्तुत आलेख चिड़ावा निवासी पण्डित सागरमल शर्मा की पुस्तक से तैयार की गयी है। शर्माजी के प्रति लेखक कृतज्ञ है।

अवधूत अमृतनाथ

अवधूत अमृतनाथ

अपने पूर्वपुरुषों की जन्मभूमि छोड़कर चेतनराम ने बऊ (सीकर-राजस्थान) में बसने का निश्चय किया। बिसाऊ में लगान अधिक है और पानी आवश्यकता से कम प्राप्त होती है। परिवार के लोगों ने उनके इस निश्चय का विरोध नहीं किया। केवल चेतनराम की पत्नी उदास हो गयी। बिसाऊ में सभी परिचित हैं। सुख-दुःख में काम आते हैं। अब नयी जगह जाकर नये सिरे से परिचय प्राप्त करना होगा। पता नहीं, वहाँ के लोग किस स्वभाव के होंगे।

सारा सामान लाद देने के पश्चात् खाली गाड़ी पर चेतनराम का परिवार सवार हुआ। तीन साल के बालक यशराम को गोद में उठाकर जब चेतनराम बैलगाड़ी पर बैठाने लगे तब वह जिद्द कर बैठा—"मैं पैदल चलूँगा। गाड़ी पर नहीं बैठूँगा।"

बालक की जिद्द से नाराज होकर चेतनराम ने कहा—"थक जायगा बेटा। चल गाड़ी पर माँ के पास बैठ जा।"

लेकिन लड़का नहीं माना। बाप की गोद से छिटककर दूर भाग गया। चेतनराम ने सोचा— चलने दो। थक जायगा तो खुद ही चला आयेगा। बऊ यहाँ थोड़े ही है। लम्बा सफर है। वहाँ पहुँचते-पहुँचते दोपहर ढल जायगी।

यशराम गाड़ी के आगे-आगे चल रहा था। धीरे-धीरे गाड़ी और यशराम में अन्तर बढ़ता गया। अचानक चेतनराम ने देखा— लड़का बहुत दूर निकल गया है। जैसे उसे पंख लग गया हो। गाड़ीवान से बोले—"जरा तेज चलाओ।"

थोड़ी देर तक यशराम काले धब्बे की तरह दिखाई देता रहा, फिर वह भी लुप्त हो गया। पता नहीं, किधर गया। बिसाऊ से बऊ सत्तर किलोमीटर है। तेज रफ्तार से गाड़ी चलाने पर भी शाम के कुछ पहले लोग बऊ पहुँचे। गाड़ी से उतरकर चेतनराम की निगाहें यशराम को खोजने लगीं। लोगों ने बताया कि वह तो यहाँ तीसरे पहर आ गया था।

यह बात सुनकर चेतनराम ने लड़के की जिद्द की बातें बतायीं। लोग लड़के का साहस देखकर चकित रह गये। उसके इस साहस की चर्चा गाँव भर में फैल गयी। इस बालक को देखने के लिए काफी लोग आये।

चेतनराम के पिता बिसाऊ (पिलानी) गाँव के राजस्थानी जाट थे। अब वे स्वयं बऊ (सीकर) के निवासी बन गये। यहाँ आने के कुछ दिनों बाद चेतनराम की पत्नी ने सभी से आत्मीयता स्थापित कर ली।

कुछ प्रतिभाएँ ऐसी होती हैं जिन्हें ईश्वर-प्रदत्त यौगिक-शक्ति बिना गुरु की सहायता अथवा साधना बिना किये अनायास प्राप्त हो जाती हैं। चेतनराम का पुत्र ऐसे ही भाग्यशालियों में रहा। बिसाऊ से बऊ सत्तर किलोमीटर तीन वर्ष का बालक पैदल कैसे चला आया, इस चमत्कार से लोग प्रभावित ही नहीं हुए बल्कि इसे अनूठा कार्य माना।

यशराम की एक बड़ी बहन न्योजाबाई जवानी के दिनों विधवा हो गयी थी। पति की मृत्यु के पहले से उस पर कर्ज था। खर्च बचाने के लिए यशराम उसे बऊ ले आये। बहन के यहाँ खेती होती थी। लोगों का अनुमान था कि इस बार अधिक से अधिक ६-१० मन धान होगा। लेकिन यशराम के सहयोग ने चमत्कार कर दिखाया। खेत में कुल ७० मन धान हुआ। उसे बेचकर यशराम ने बहन का सारा कर्ज चुका दिया।

इसी प्रकार एक बार यशराम खेत में पिता और भाई के साथ बैठे थे। पीने के लिए भाई मनसाराम दूर से कलश में पानी ला रहा था। अचानक कलश फूट गया और सारा पानी बह गया। राजस्थान में पानी का यों ही अकाल रहता है। पिता-भाई को प्यासा रहते देख यशराम ने मन ही मन कहा—"अगर आज रात में खेत पानी से न भरा तो मैं शरीर त्याग दूँगा।"

उस रात को चेतनराम के खेत में ही नहीं, बल्कि आसपास के खेतों में भी खूब पानी बरसा। गाँव के सभी तालाब भर गये। एक प्रकार से सोना बरस गया। सन् १८८८ ई० में उनकी माँ का देहान्त हो गया। उन दिनों यशराम की उम्र ३७ साल की थी।

एक बार अपने पिताजी के साथ यशरामजी बीकानेर आये। उनकी साधु-प्रकृति को देखकर मोतीनाथजी की शिष्य-मण्डली ने इनसे अपने साथ रहने का आग्रह किया। इस मण्डली में संत चम्पानाथ भी थे। उन्होंने यशराम की योगैश्वर्य को भाँप लिया। उन्होंने निश्चय किया कि इस युवक को अपना शिष्य बनाऊँगा।

यशराम स्वयं विरक्त स्वभाव के थे। संन्यासी के सभी गुण उनमें पहले से मौजूद थे। चम्पानाथ के प्रस्ताव को उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया। एक प्रकार से वे 'नाथ-सम्प्रदाय' के अन्तर्गत साधु बन गये। इसके बाद गुरु-आज्ञा से वे देश भ्रमण के लिए निकल पड़े।

अपने भ्रमणकाल में वे कठोर-साधना करने लगे। भोजन के लिए आधा किलो नीम की पत्तियों का सेवन करते थे। बऊ में वे एक नीम के वृक्ष के नीचे रहते थे। गाँव के चौधरी को ज्ञात था कि बाबा नीम की पत्तियाँ खाते हैं। पता नहीं, उसे क्या सूझा कि उसने पेड़ कटवा दिया। यह देखकर बाबा ने कहा—"यह वृक्ष नहीं कटा,

बल्कि साधु का सिर कट गया।'' इनके मुँह से यह अभिशाप निकलने के कुछ ही घण्टे बाद चौधरी की मृत्यु हो गयी।

नाथ-सम्प्रदाय में दीक्षित होने के बाद जब परम्परा के अनुसार यशराम का कनच्छेदन हुआ तब आपका नाम अमृतनाथ रखा गया।

इसी प्रकार एक बार आप फतहपुर थाने के पास से गुजर रहे थे तो थानेदार ने अकारण बेंत मारी। बाबा के मुँह से 'शाबाश' शब्द निकला और वह तुरंत पागल हो गया। यह दृश्य देखकर थाने के अन्य लोग घबरा उठे। बाबा से प्रार्थना की कि कृपया इसे ठीक कर दें। बाबा ने कहा—''इसे खूब छाछ पिलाओ, ठीक हो जायेगा।''

छाछ पिलाते ही थानेदार ठीक हो गया। बाबा स्वयं भी दही और छाछ के प्रेमी थे। छाछ पिलाकर अनेक असाध्य रोगियों का रोग दूर कर चुके थे। एक बार शाम के समय एक भक्त दस किलो छाछ लेकर आया। बाबा शाम के समय केवल दही का सेवन करते थे। उन्होंने अपने एक शिष्य से कहा—''इसका दही जमा दो।''

शिष्य ने चकित होकर कहा—''बाबा, यह दूध नहीं, छाछ है। यह कैसे जमेगा?''

बाबा ने कहा—''जैसा कहा, वैसा करो।''

शिष्य ने आज्ञा का पालन किया। लोगों ने आश्चर्य के साथ देखा कि छाछ पूरी तरह से दही बन गया है।

साधारण भक्त बाबा की यौगिक-शक्ति से प्रभावित थे। उन्हें विश्वास हो गया था कि बाबा ने अवश्य ईश्वर को देखा होगा। इस सम्बन्ध में एक बार जब एक भक्त ने प्रश्न किया तो उन्होंने कहा-''ईश्वर अथवा ब्रह्म का न विशेष प्रकार का रूप है और न उसका मुख्य या निश्चित स्थान है। न वह कार्य, कर्त्ता और कारण आदि उपाधियों से युक्त है। वह सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, पूर्ण प्रकाश स्वरूप, शक्तिमान और अनन्त है। जगत् उसका रूप है, माया उसकी छाया है और जीव उसका अभिन्न अंश है।''

प्रश्नकर्त्ता ने पूछा-''माया जब छाया है तब तो ईश्वर उनके सहगामी होंगे?''

बाबा ने कहा-''नहीं। माया सनातन है, वह न सत् है और न असत् है। वह अनादि है, अनन्त है, क्योंकि ईश्वर अनादि और अनन्त है। इसलिए उसकी छाया-माया भी अनादि और अनन्त है। ब्रह्म के बल से माया के द्वारा जीव के आधार हेतु जगत् की सृष्टि हुई है, यह परिवर्तनशील है। सृष्टि की रचना का सूक्ष्म तत्व यह है कि ब्रह्मरूप महाकाश में भरे महाप्राण में स्पन्दन से नाद हुआ। नाद से परमाणु उत्पन्न हुए। परमाणु से सृष्टि हुई। गुणात्मक परमाणु ही सत्त्व, रज और तम है। इन्हीं गुणों से कार्य-कारण-सम्बन्ध होता है, जगत् की रचना होती है। पाँच्त्र ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय और पाँच भूतों के तत्त्वों से स्थूल शरीर की रचना होती है। चित्त, मन, बुद्धि और अहंकार- इन चार अन्तःकरणों, पाँच तन्मात्रा से सूक्ष्म शरीर बनता है। चित्त का स्थान हृदय है, मन का स्थान नाभि के अन्तर्गत मणिपुर चक्र है। बुद्धि अहंकार का निवास स्थान मस्तिष्क है।''

''नाथ सम्प्रदाय'' के विद्वान श्री रामलाल श्रीवास्तव ने बंगला, अंग्रेजी, मराठी आदि विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित ग्रन्थों से 'नाथ-सम्प्रदाय' पर विस्तार से प्रकाश डाला है। यद्यपि आपके ग्रंथ में अनेक तथ्य हैं, पर अनेक विवादास्पद घटनाएँ भी हैं जिसे विद्वानों ने स्वीकार नहीं किया है। बौद्ध-तंत्र का काफी प्रभाव नाथ-सम्प्रदाय पर पड़ा है। कुछ विद्वान यह भी मानते हैं कि कापालिक साधना का भी प्रभाव पर्याप्त रूप में अघोर-तंत्र पर पड़ा है। जहाँ तक दर्शन और साधना का प्रश्न है, उस परम्परा का पालन बीसवीं शताब्दी के अनेक संतों पर भी पड़ा है।

+ + + +

बाबा के एक शिष्य थे— नारायण गिरि। बिलोचिस्तान में हिन्दुओं का पवित्र स्थल हिंगलाज तीर्थ है। देश के बँटवारे के पहले अधिकांश लोग यहाँ स्थित देवी मूर्ति का दर्शन करने जाते थे। इस ग्रंथमाला के पाठकों को ज्ञात होगा कि इस स्थान पर ८०० से १००० वर्ष के योगी रहते थे जो केवल साधकों को दर्शन देते रहे। इस स्थान का दर्शन करने के लिए नारायण गिरि ने बाबा से अनुमति माँगी।

बाबा ने कहा—''जाने को तुम जा सकते हो, पर दर्शन की तीव्र इच्छा हो तो यहीं देवी का दर्शन कर सकते हो।''

यह बात सुनकर नारायण ने कहा—''इससे बढ़कर कौन-सा सौभाग्य होगा?''

आधी रात के समय बाबा ने नारायण गिरि से कहा—''देवी आ रही हैं। उनका चरण-स्पर्श करना।''

थोड़ी देर में एक प्रकाश हुआ और उस प्रकाश के भीतर से सिंह पर सवार देवी मूर्ति आविर्भूत हुईं। इस प्रकार अमृतनाथ ने अपने शिष्य की मनोकामना पूरी की।

अमृतनाथ में एक विशेषता थी। वे एक स्थान पर जमकर नहीं रहते थे। हमेशा भ्रमण करते रहते थे। अपने निवास स्थान से दो रोटी और करील का साग खाकर रवाना हो जाते और चौबीस घंटे में १५६ किलोमीटर की यात्रा करने के बाद वापस आ जाते थे।

इसी भ्रमण काल में एक बार रामगढ़ कस्बे से गुजरते समय एक खेत में गाजर देखा तो किसान से कहा कि बच्चा, कुछ गाजर खाने की इच्छा है। किसान अपने कार्य में व्यस्त था। उसने कहा—''महाराज, खेत से जितनी इच्छा हो, खा लें।''

महाराज को काफी भूख लगी थी। तीन क्यारी गाजर उखाड़कर खा गये। यह देखकर किसान की आँखें फटी-फटी-सी रह गयीं। उसकी रोनी सूरत देखकर बाबा उसकी मनःस्थिति समझ गये। उन्होंने कहा—''देख, तेरा खेत तो पहले की तरह हरा-भरा है।''

अब जब किसान ने अपने खेत की ओर देखा तो चकित रह गया। तुरंत उसने महाराज के चरण पकड़ लिए।

सन् १९१२ में महाराज ने निश्चय किया कि अब वे भ्रमण नहीं करेंगे। कहीं

स्थान बनाकर स्थायी रूप से रहेंगे। इसके साथ ही एक विचित्र आदत भी उन्होंने अपनायी। अब अपना सारा कार्य लेटकर करने लगे। अपने अनुभवों के आधार पर शिष्यों को सहज-योग के बारे में समझाते रहे। सहज-योग के बारे में उनका कथन है—"मूलाधार चक्र शरीर में स्थित व्यर्थ मल को शरीर के बाहर निकालता है। इसका आकार हाथी के सूँड़ के समान है। आधार-चक्र के अशुद्ध रहने पर सारा शरीर दोषयुक्त रहता है। स्वाधिष्ठान-चक्र लिंगस्थानीय है। यह मूत्र-विसर्जन में सहायता करता है। मूलाधार में ४० मिनट तक और स्वाधिष्ठान में ८० मिनट तक वृत्ति संयमित करने से धैर्य, विवेक और बल की प्राप्ति होती है। मणिपुर चक्र से सारे शरीर को पोषण मिलता है। इसमें प्राण-अपान का मेल होता है, श्वास ऊर्ध्वमुखी हो शिखर में पहुँचता है। इस चक्र में १६० मिनट तक ध्यान करने से शान्ति, आनन्द, समता, निर्मोहता, वैराग्य, तन्मयता और एकान्तप्रियता होती है। अनाहत चक्र का स्थान हृदय है। यहाँ प्राणवायु का निवास है। इस वायु से शरीर का रक्षण और पोषण होता है। इस चक्र में ३२० मिनट तक चित्तवृत्ति एकाग्र करने से अथवा ४८०० बार श्वास लेने से निर्लोभता, प्रेम, सत्यता, समदर्शिता, अहिंसा-भावना, दया, क्षमा की प्राप्ति होती है। विशुद्ध चक्र का स्थान कण्ठ है। आज्ञाचक्र का स्थान भ्रूमध्य-त्रिकुटी है। यहाँ २०० मिनट तक ध्यान के द्वारा ३००० श्वास की आवृत्तियाँ पूरी होने पर वृत्तियाँ अन्तर्मुखी हो जाती हैं। त्रिकुटी में नेत्र स्थिर करने से मन की चंचलता मिट जाती है। बाहर-भीतर के अंग-प्रत्यंग दिखाई देने लगते हैं। आत्मतत्त्व में स्थिरता होती है। सहस्रार का स्थान मस्तिष्क है। यही समस्त ज्ञान की उत्पत्ति का स्थान है। इसमें सद्गुरु रहते हैं, यही ब्रह्मस्थान, अमरलोक, भ्रमरगुफा कहलाता है। महाशक्ति कुण्डलिनी का प्रवेश इसी में होता है। यहीं से अद्वैतानुभूति होती है। यहीं से अमृत झरता है। इस स्थान पर वृत्ति का स्थिर होना सहज समाधि है।"

जो लोग योग के लिए व्याकुल रहते हैं, उन्हें चाहिए योग की परिभाषा का ज्ञान वे योग्य गुरु से लें। बाबा अमृतनाथ ने सहज-समाधि के बारे में जो प्रवचन दिया, वह अन्य योगियों द्वारा वर्णित परिभाषा से अपेक्षाकृत सरल है। आज योग-शिक्षा देनेवाले अधकचरे ज्ञानी योग के नाम पर केवल पाखण्ड करते हैं। इनसे बचना चाहिए।

सन् १६१३ में बाबा ने निश्चय किया कि अब वे प्रकृति प्रदत्त मधु का सेवन करेंगे। अन्न या अन्य कोई सामग्री नहीं खायेंगे। लगातार दस माह तक वे नित्य एक किलो मधु का सेवन करते रहे। इसके बाद दो माह तक एक किलो नीबू का रस पीते रहे। इसके बाद चार माह तक प्रत्येक घंटा एक किलो दूध पीने लगे यानी चौबीस घंटे में चौबीस किलो दूध। इन दिनों जितने रोगी आपके निकट आते रहे, सभी को उपचार बताकर स्वस्थ करते रहे।

जीवन का अंतिम काल आया जानकर अमृतनाथजी ने अपने शिष्य ज्योतिनाथ को अपना उत्तराधिकारी बनाया। सन् १६१६ में आपने शरीर त्याग दिया। एक वर्ष बाद फतहपुर शेखावाटी में बाबा का समाधि-मंदिर बनाया गया जिसका दर्शन करने के लिए भक्त तथा नाथ-सम्प्रदाय के संत बराबर आते हैं।

देवराहा बाबा

देवराहा बाबा

घर में बाहर से अनेक मेहमान आये थे। इन लोगों को सैर कराने का कार्यक्रम बनाया गया। मेहमानों में से किसी ने कहा—"नगर के दर्शनीय स्थानों को हम देख चुके हैं। उस पार रामनगर चलिये।"

अपने मेहमानों के साथ सपरिवार गुलाबदास वर्मा दशाश्वमेधघाट आये और नाव द्वारा रामनगर की ओर रवाना हुए। रामनगर पहुँचने के पूर्व उस पार एक मचान पर देवराहा बाबा बैठे दिखाई दिये। मचान के सामने अनेक लोग बैठे हुए थे।

सहसा गुलाबजी का विचार बदला। उन्होंने सभी लोगों से कहा—"चलिये, पहले सन्तजी का दर्शन कर लें, फिर घूमने चलेंगे। सुना है, देवराहा बाबा सिद्ध महात्मा हैं।"

नाव किनारे रुकी। गुलाबदासजी अपने परिवार के साथ बैठे हुए लोगों के पीछे जाकर बैठे। अचानक बाबा ने इन्हें इशारे से बुलाया। गुलाबजी ने अपनी जगह पर खड़े होकर पूछा—"महाराजजी, क्या मुझे बुला रहे हैं?"

देवराहा बाबा ने कहा—"हाँ, क्या कष्ट है?"

गुलाबजी को सहसा कुछ समझ में नहीं आया। साथ आये छोटी बच्ची को गोद में उठाकर बोले— "महाराज, यह लड़की पाँच वर्ष की हो गयी है। ठीक से बोल नहीं पाती। बाकी आपकी कृपा से सब ठीक है।"

देवराहा बाबा ने मंच पर रखे फलों में से एक केला फेंकते हुए कहा—"ले, प्रसाद खिला दे। सब ठीक हो जायगा। घबराने की बात नहीं है।"

इसके बाद बाबा ने गुलाबजी के परिवार के कई सदस्यों को प्रसाद के रूप में केले दिये। बाद में उन्होंने कहा—"बच्चा, अब तुम तुरन्त घर वापस चले जाओ। रामनगर घूमने मत जाना। यहाँ रुको मत। भयंकर आँधी आनेवाली है।"

गुलाबजी ने आसमान की ओर देखा— वह धुले हुए स्लेट की तरह स्वच्छ था। आँधी आने के एक भी लक्षण दिखाई नहीं दे रहे थे। ब्राह्मण और संतों के प्रति गहरी आस्था रहने के कारण गुलाब ने बाबा की आज्ञा का पालन किया। वे रामनगर की सैर बिना किये नाव से घर की ओर रवाना हो गये। एक घण्टे बाद नाव दशाश्वमेधघाट

पर आकर रुकी। पूरे परिवार के साथ वे सीढ़ियों को पार करते हुए ज्योंही सड़क पर आये त्योंही प्रबल आँधी आयी। इस तूफान से काफी नुकसान हुआ। कुछ दिनों बाद लड़की की जबान ठीक हो गयी और आज तक वह सकुशल है।

ठीक इसी प्रकार की एक घटना बाबा के अनन्य भक्त रामकृष्णजी के साथ हुई थी। देवरहा बाबा जब कभी काशी आते तब वे उस पार गंगा किनारे डेरा लगाते थे। उनके अधिकांश भक्त नियमित रूप से वहाँ पहुँचते थे।

एक दिन रामकृष्णजी अपनी पुत्री तथा एक भाँजे के साथ बाबा का दर्शन करने के लिए रवाना हुए। रामकृष्णजी महाकवि रत्नाकरजी के पौत्र थे। बनारस के शिवाला मुहल्ले में रहते थे।

इन्हें देखते ही बाबा ने बेचैनी के साथ कहा—''आज क्यों चले आये। लो, प्रसाद लो और तुरंत वापस लौट जाओ।''

बाबा ऐसा आदेश क्यों दे रहे हैं, इस बात का अनुमान रामकृष्णजी नहीं लगा सके। लेकिन इतना विश्वास हो गया कि किसी खास वजह से ऐसा आदेश दे रहे हैं। इस बारे में वे कोई प्रश्न करते तब तक बाबा ने अपने एक शिष्य से कहा—''किसी नाववाले को बुला लाओ।''

नाववाले मल्लाह के आते ही बाबा ने कहा—''चौधरी, बाबू और इनके साथ आये बच्चों को लेकर तुरंत सामने घाट चले जाओ। बाबू के कहने पर भी शिवाला-घाट मत जाना। जाओ देर मत करो।''

रामकृष्णजी असमंजस की स्थिति में चलने के लिए तैयार हुए तो बाबा ने कहा—''तूफान आ रहा है। सामने घाट उतरकर वहीं ठहर जाना। जब तूफान शान्त हो जाय तब घर जाना।''

अब रामकृष्णजी को बाबा की बेचैनी समझ में आ गयी। आसमान में अंधरा छा रहा था। मझधार पहुँचने के पूर्व तूफान पूरी गति से आ गया। उसका विकराल रूप देखकर सभी काँप उठे। रामकृष्णजी मन ही मन देवराहा बाबा का स्मरण करते हुए कहने लगे-''इससे अच्छा था, बाबा उस पार ही रोक लेते। गंगा में ऊँची-ऊँची लहरें उठने लगीं। दस गज की दूरी के आगे ताण्डव नृत्य हो रहा था। दोनों बच्चे भयभीत होकर रामकृष्णजी से लिपट गये। लेकिन रामकृष्ण को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि नाव के चारों ओर का जल बिलकुल स्थिर है। तूफान का कोई प्रभाव यहाँ नहीं है।''

नाव घाट किनारे लगी। ज्योंही सभी लोग नाव से नीचे उतरे त्योंही मुँह के बल गिर पड़े। नाव को तूफान न जाने कहाँ उड़ा ले गया। रामकृष्णजी बच्चों के साथ कब तक बेहोश पड़े रहे, यह स्मरण नहीं रहा। रात के प्रथम पहर में घर लौटे। उन्हें लगा कि जैसे नया जीवन मिला है।

इन दोनों घटनाओं का जिक्र भुक्तभोगियों ने लेखक से किया था। रामकृष्णजी का देहावसान हो गया है, पर श्री गुलाबदास वर्मा आज भी जीवित हैं।

+ \+ \+ \+

२१ जून, १९९० में जब बाबा ब्रह्मलीन हो गये तब तमाम पत्रों में उनके बारे में विचित्र बातें छपने लगीं। यहाँ तक कि उनकी उम्र ८०० वर्ष तक बतायी गयी। डॉ० राजेन्द्रप्रसाद जब बचपन में उनका दर्शन करने गये थे तब बाबा १५० वर्ष के थे। एक भक्त चार जन्मों से उनकी सेवा करता रहा। किसी श्मशान पर बाबा ३० वर्ष, अमरकण्टक में ५० वर्ष, सरयू नदी के किनारे ९० वर्ष साधना करते रहे। नेपाल, तिब्बत, चीन तथा मानससरोवर में न जाने कितने वर्ष वे तपस्या करते रहे। दरअसल यह सब बातें उनके भक्तों द्वारा फैलायी गयी अफवाहें हैं।

हिमालय के क्षेत्र में अलक्ष्य संन्यासी भले ही दीर्घजीवी हों, पर लोकालय में रहनेवाले योगी इतनी लम्बी आयु के नहीं होते। ऐसे संतों में महात्मा तैलंग स्वामी ही २८० वर्ष तक जीवित रहे। संस्कृत में एक श्लोक में कहा गया है—

अश्वत्थामो बलिर्व्यासो हनूमांश्च विभीषणः।
कृप परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः॥

अर्थात् ये सातों व्यक्ति अमर हैं, ऐसी हम सबकी धारणा है। अगर यह बात सत्य है तो इन सातों में से किसी एक को महाभारत युद्ध के बाद से अब तक किसी ने देखा है? इस श्लोक का वास्तविक अर्थ यह है कि इस प्रकृति के पुरुष प्रत्येक युग में रहते हैं—

१- अश्वत्थामा— कोरे पशुबल या शारीरिक बलवाला व्यक्ति।

२- बलि— सत्य संकल्प का दानशील व्यक्ति जो सत्य के निर्वाह के लिए अपने जीवन को समर्पण करता है।

३- व्यास— ज्ञानशील व्यक्ति जिसमें त्रिलोकी ज्ञान संकलित हो और जो लोक और वेद दोनों के बीच समन्वय करता हो।

४- हनुमान— वह व्यक्ति जो सेवा धर्म को ही जीवन का मूल मानता है और सेव्य की भक्ति ही जिसका प्राण है। यह दास्य भाव का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है।

५- विभीषण— यह घर का भेद बाहर प्रकट करने वाले स्वभाव का द्योतक है।

६- परशुराम— यह क्षात्र तेज का उदाहरण है, जैसे ब्राह्म-धर्म के लिए व्यास, ऐसे ही क्षात्रधर्म के लिए परशुराम।

७- कृपाचार्य— यह एक ऐसे व्यक्ति का उदाहरण है जो पढ़ा-लिखा बहुत हो, पर गुण कुछ भी न हो।[1]

देवराहा बाबा के बारे में विस्तार से सारी बातें प्रकाशित करने के बाद समाचार पत्रों ने उनका जीवन परिचय नहीं छापा। कहाँ के निवासी थे? किसके पुत्र थे? कौन गुरु था? केवल एक पत्र ने लिखा कि देवरिया में रहने के कारण उनका नाम देवरिया बाबा की जगह देवराहा बाबा हो गया। ऐसा अनुमान किया जाता है। लेकिन यह बात गलत है।

+ \+ \+ \+

देवराहा बाबा का जन्म बस्ती जिले के उमरिया गाँव में हुआ था। आपके पिता पं० रमयश गाँव के दबंग आदमी थे। पं० रामयशजी के तीन पुत्र थे— सर्वश्री सूर्यबली, देवकली और जनार्दन दत्त। ब्राह्मण परिवार होने के कारण घर पर संस्कृत का सामान्य पठन-पाठन होता रहा। सबसे छोटे पुत्र को आगे पढ़ने की इच्छा थी, पर गाँव में कोई साधन नहीं था। दूसरी ओर रामयशजी चाहते थे कि सभी बच्चे खेती पर अधिक ध्यान दें। गाँव में यादवों का दबदबा था और उनकी संख्या अधिक थी, पर सभी पं० रामयश से दबते थे।

इसी बीच सन् १९२६ में जनार्दन दत्त घर से भागकर काशी चले गये। उन्हें यह मालूम हो गया था कि काशी में संस्कृत की शिक्षा दी जाती है। सेठों द्वारा संचालित पाठशालाओं में निवास के अलावा मुफ्त में भोजन दिया जाता है। यहाँ आकर वे व्याकरण पढ़ने लगे।

आचार्य पं० सीताराम चतुर्वेदी ने अपने एक पत्र में लिखा है—"सन् १९२६ में देवराहा बाबा १२-१३ वर्ष की अवस्था में, देवरिया (बस्ती) जिले के किसी गाँव से व्याकरण पढ़ने के लिए काशी आये थे। यहाँ भदैनी में पंडित गयाप्रसाद ज्योतिषी के पास रहते थे। व्याकरण कहीं और जगह पढ़ते थे। सन् १९३० ई० के दिनों हरिद्वार के श्री निरंजन देव सरस्वती उन्हें अपने साथ ले गये। उसके बहुत दिनों बाद देवरिया जिले के तुर्तीपार रेलवे स्टेशन के पास सरयू नदी के किनारे मचान बनवाकर रहने लगे। मुझे वे भलीभाँति जानते थे। पंडित विजयानन्द त्रिपाठी के पूरे परिवार को भी। उन्होंने ८०० वर्ष की कोई घटना नहीं सुनाई। अभी फरवरी-मार्च (१९९०) को एक सज्जन रतन[2] को साथ लेकर उनसे मिलने मथुरा जा रहे थे। मैंने उनसे कहा कि जाकर उनसे कहना ये (रतन) सीताराम चतुर्वेदी के पुत्र हैं। जब यह परिचय उन्हें प्राप्त हुआ तब वे दो घण्टे तक इन लोगों से बातें करते रहें। मेरा, मेरे ससुराल तथा पं० विजयानन्द त्रिपाठी के परिवार के बारे में जानकारी प्राप्त करते रहे।"

---

[1] भारत सावित्री, भाग २, डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल।

[2] पं० सीताराम चतुर्वेदी के चौथे पुत्र प्रियशील चतुर्वेदी।

चतुर्वेदी के पत्र से कई बातें साफ हो जाती हैं। बाबा ८०० वर्ष के नहीं थे। बाबा सन् १९२६ में जब १२-१३ वर्ष के थे तब काशी आये थे। इस प्रकार उनका जन्म सन् १९१३-१४ माना जा सकता है। पं० सीताराम चतुर्वेदी उम्र में बाबा से ७-८ वर्ष बड़े हैं। सन् १९३० में वे स्वामी निरंजन देव सरस्वती के साथ हरिद्वार चले गये। अब यह बताना कठिन है कि उक्त स्वामीजी आपके गुरु थे या अन्य कोई संत या योगीपुरुष था।

कहा जाता है कि पंडित रामयशजी हरिद्वार के कुंभ मेला में स्नान करने गये थे। वहीं उनकी मुलाकात जनार्दन दत्त से हो गयी। उस समय तक वे केवल ब्रह्मचारी थे। पिता का आतंक मन में था। चुपचाप पिता के साथ घर चल पड़े। अयोध्या आकर पंडित रामयश श्रीराम मंदिर दर्शन करने गये। दर्शन करने के पश्चात् न जाने कैसे उनका निधन हो गया। जनार्दन दत्त बेहद घबरा गया। पास में रकम नहीं थी ताकि दाह-संस्कार करते। पिताजी की झोली में जितनी रकम थी, उसी के सहारे गाँव आकर उन्होंने पिता के निधन का समाचार दिया।

सभी लोग अयोध्या आये। यहीं पर पंडित रामयश का दाह-संस्कार करने के बाद लोग गाँव वापस गये। रामयश के निधन के बाद यादवों का साहस बढ़ गया। दुबे और यादव की लड़ाई में चार मौतें हुईं। काफी लोग घायल हुए। कहा जाता है कि जनार्दन दत्त पर भी मुकदमा कायम हुआ था। वे गाँव से भागकर देवरा जंगल में जाकर छिप गये। बस्ती जिले में एक प्रकार का छोटा पौधा होता है जिसे 'देवरा' कहा जाता है। उस जंगल में भोर के वक्त गाँव की महिलाएँ प्रातःक्रिया करने जातीं तो एक व्यक्ति को उकड़ूँ बैठा देखतीं जिसके सिर तथा दाढ़ी के बाल बढ़ गये थे। स्थानीय महिलाओं द्वारा प्रचारित हो गया कि देवरा जंगल में कोई देवरा बाबा हैं। इस प्रकार आपका नाम देवराहा बाबा पड़ा।

यहाँ से आप कुछ दिनों बाद हरिद्वार अपने गुरु के पास चले गये। कई वर्षों के बाद देवरिया जिले के मइल गाँव में सरयू किनारे आकर रहने लगे। आपके बारे में कहा जाता है कि शरीर पर वस्त्र धारण नहीं करते थे। श्रद्धालुओं के आगमन पर लंगोटी पहन लेते थे। सर्वदा मचान पर रहते थे। जब कभी इच्छा होती तब काशी, मथुरा, वृन्दावन, झूँसी और अयोध्या चले जाते थे। यह भी कहा जाता है कि आपको वेद, पुराण, गीता, स्मृति, उपनिषद, रामायण का ज्ञान था। विदेशियों से उनकी भाषा में बातें करते थे।

+ \+ \+ \+

देवराहा बाबा के पूर्व जीवन में जो भी घटनाएँ हुई हों, पर इसमें संदेह नहीं कि वे योगीपुरुष थे। अपनी साधना के माध्यम से एषणा-शक्ति प्राप्त कर चुके थे। सिद्ध योगी ही विभूति का प्रदर्शन करने में सक्षम होते हैं। सामान्य संत विद्वान, भक्त और ज्ञानी जरूर होते हैं, पर योगी नहीं।

बिहार के एक भूतपूर्व मंत्री थे श्री ज्ञानेश्वर प्रसाद। १७ जून, सन् १६६६ को उनकी लड़की का विवाह होनेवाला था। एक मंत्री की लड़की का विवाह और वह भी बिहार की राजधानी पटना में सम्पन्न होगा। फलस्वरूप काफी जोरशोर के साथ तैयारियाँ हो रही थीं।

१२ जून को तिलक भेजना था। उस दिन ज्ञानेश्वर प्रसाद बिहार के राजस्व मंत्री वीरचन्द्र पटेल से इस बारे में परामर्श कर रहे थे। बातचीत के सिलसिले में सहसा वीरचन्द्र ने पूछा—''सब तो ठीक है, पर एक बात यह बताइये कि इस विवाह के सम्बन्ध में देवराहा बाबा से आशीर्वाद ले लिया था न?''

वीरचन्द्र पटेल स्वयं बाबा के भक्त थे और बाबू ज्ञानेश्वर प्रसाद तो उन्हें ईश्वर समझते थे। उन्होंने उत्तर दिया—''प्रत्यक्ष रूप से मैंने उनसे आशीर्वाद प्राप्त नहीं किया है, पर मेरा दृढ़ विश्वास है कि उनकी कृपा से मैं वंचित नहीं रहूँगा।''

इस जवाब से श्री पटेल को संतोष नहीं हुआ। उनका दृढ़ विश्वास था कि किसी भी शुभकार्य में सबसे पहले गुरुदेव का आशीर्वाद लेना चाहिए। प्रत्यक्ष रूप से उन्होंने कुछ नहीं कहा, पर मन में खटका उत्पन्न हो गया था। तिलक भेजने के बारे में बातचीत करने के बाद वे वापस चले गये।

उसी दिन दोपहर को समाचार आया कि रांची से लौटते समय खगड़िया में दूल्हा भयंकर रूप से आहत हो गया है। पटना के अस्पताल में लोग उसे ले आये हैं। डाक्टरों का कहना है कि शायद पेट में अपेण्डिसाइटिस है।

इस समाचार को सुनते ही लड़कीवालों के घर मातम छा गया। लड़की की माँ तुरन्त अस्पताल चली गयी। घर में आशंका और अशुभ की कल्पना होने लगी।

अस्पताल के डॉक्टरों ने कहा—''केस जरूर संगीन है, पर आपरेशन की जरूरत शायद नहीं होगी।''

इस आश्वासन के आधार पर शादी की तैयारियाँ चलने लगीं। सभी लोग ऊहापोह की स्थिति में थे। इधर १४ जून तक लड़के की स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ था। ज्ञानेश्वर प्रसाद यह समझ नहीं पा रहे थे कि ऐसी हालत में क्या किया जाय। एक सहयोगी मंत्री की इस स्थिति से मुख्यमंत्री भी चिन्तित थे।

१४ तारीख को नाना प्रकार की चिन्ताओं के बीच उन्हें वीरचन्द्र पटेल की एक बात याद आ गयी। उन्होंने महसूस किया कि श्री पटेल की चेतावनी में दैवी आदेश था। शायद इसीलिए उन पर यह आफत आ गयी है।

मन में यह विचार उत्पन्न होते ही वे देवराहा बाबा के चित्र के सामने बैठकर आकुल भाव से प्रार्थना करने लगे। मन में उन्हें इस बात का विश्वास हो गया कि इस मुसीबत से बाबा बचा सकते हैं।

शाम के समय देवराहा बाबा के अनन्य भक्त राजेन्द्र किशोर से उनकी मुलाकात हुई। ज्ञानेश्वर प्रसाद ने अपना दुखड़ा रोते हुए उनसे कहा—"सारी बातों से आप परिचित हैं। कृपया इस मुसीबत से छुटकारा दिलाने का कोई उपाय करें। बाबा ही मुझे परित्राण दे सकते हैं। उनसे प्रार्थना कीजिए।"

इस आग्रह को सुनने के बाद राजेन्द्र किशोर अपनी आँखें बंदकर ध्यान लगाने लगे। राजेन्द्र बाबू बाबा के प्रिय भक्त हैं। उनसे दीक्षा ले चुके हैं। देवराहा बाबा द्वारा दिये गये मंत्र का प्रभाव इनके जीवन में फलीभूत हुआ है।

आँखें खोलते हुए राजेन्द्र किशोर ने कहा—"चिन्ता करने की जरूरत नहीं। बाबा की कृपा से आपकी मुसीबत दूर हो जायेगी।"

बात सन् १९६४ ई० की है जब बाबा पटना आये थे। उन दिनों बाबा की सेवा में राजेन्द्र किशोर लगे हुए थे। ठीक इन्हीं दिनों इनकी पत्नी विमला देवी अचानक अस्वस्थ हो गयीं। डॉक्टरों की समझ में नहीं आया कि कौन-सी बीमारी है। इस कारण घर के लोग चिन्तित हो उठे।

इस हालत में वे बाबा का दर्शन करने गयीं। इन्हें देखते ही बाबा ने पूछा—"क्या बात है बेटी?"

विमला देवी ने कहा—"आजकल अस्वस्थ हूँ। आप आये हैं, सुनकर दर्शन करने चली आयी।"

बाबा ने कहा—"तुम्हें कुछ नहीं हुआ है। तुम तो भलीचंगी हो। लो, यह प्रसाद खा लो।"

प्रसाद खाने के कुछ देर बाद विमला देवी ने महसूस किया कि जैसे सारा अवसाद दूर हो गया।

राजेन्द्र किशोर की पत्नी की इस घटना से पटना के अनेक लोग परिचित थे। लोगों के मन में यह बात बैठ गयी थी कि राजेन्द्र बाबू पर बाबा की असीम कृपा है।

इधर डॉक्टरों ने निर्णय लिया कि ज्ञानेश्वर बाबू के दामाद का आपरेशन करना पड़ेगा। यह बात सुनकर कन्या पक्ष के लोग चिन्तित हो उठे। समय कम है, निमंत्रण कार्ड बँट चुके हैं, सारी तैयारियाँ हो गयी हैं, अब क्या होगा? विवाह की तिथि टालने का अर्थ सारा आयोजन चौपट हो जायगा। इस वर्ष का यही आखिरी लगन है। आपरेशन के बाद पता नहीं, कब तक लड़का स्वस्थ हो।

१४ जून की रात को लड़के का आपरेशन सकुशल हो गया। १७ जून को बारात आयी और विवाह बिना किसी बाधा के हो गया।

+ + + +

सारन जिले के गुठनी थाने के इंचार्ज थे— श्री सत्यनारायण सिंह। वे पिछले कई वर्षों से अपनी लड़की के विवाह के लिए परेशान थे। प्रत्येक रिश्ते में बाधा आ जाती थी। यह सन् १९५६ की घटना है।

उनकी पत्नी ने एक दिन सुझाव दिया कि किसी सन्त से आशीर्वाद लिया जाय। शायद किसी ग्रहदोष के कारण विवाह नहीं हो पा रहा है। लड़की मंगली रहती तो एक बात थी। यह दोष भी नहीं है।

सिंहजी देवरहा बाबा का नाम सुन चुके थे। अन्य किसी सन्त के बारे में उन्हें जानकारी नहीं थी। देवरहा बाबा पड़ोस में थे। पत्नी की बात जम गयी। उन्होंने सोचा— इसी बहाने बाबा की योगविभूति का अन्दाजा लग जायगा। गुठनी से लार रोड केवल १४ मील दूर है।

एक दिन वे सपत्नीक देवरहा बाबा के आश्रम की ओर रवाना हो गये। जाड़े का मौसम था। आश्रम तक पहुँचने में १२ बज गये। आश्रम के सामने काफी भीड़ थी। यहाँ पुलिसिया रोब नहीं चलेगा, इसे वे समझ गये थे। भीड़ के पीछे वे बैठ गये। बाबा एक-एक कर लोगों को बुलाते, उनकी समस्या सुनते और प्रसाद देकर निराकरण करते रहे। सत्यनारायण सिंह के बाद आये लोगों की पुकार हुई और वे लोग चले गये, पर अभी तक इनकी पुकार नहीं हुई। यह देखकर वे मन ही मन क्षुब्ध होते रहे। इस दरबार में उनके क्रोध का कोई मूल्य नहीं है, इसका अनुभव उन्हें प्रतिक्षण हो रहा था।

धीरे-धीरे दिन ढलता गया। उन्हें इस बात की चिन्ता सताने लगी कि अभी यहाँ से वापस जाना है। पश्चिमी बिहार का क्षेत्र कैसा है, उन्हें इसकी जानकारी थी। साथ में पत्नी तथा बेटी भी है। इधर के डाकू सामान्य बात पर हत्या करने से नहीं चूकते। केवल संतोष इस बात का था कि साथ में पिस्तौल है और काफी कारतूस भी।

अनेक लोगों के जाने के बाद सत्यनारायण सिंह की पुकार हुई। एक तो ठाकुर, दूसरे दरोगा, क्रोध से अपना पिस्तौल लगड़ने लगे। बाबा के पास जाते ही वे चौंक उठे।

बाबा कह रहे थे—''तू अपनी लड़की के विवाह के लिए आशीर्वाद माँगने आया है? मेरा आशीर्वाद है तेरी लड़की का विवाह जल्द होगा। तू जहाँ चाहता है, वहीं होगा।''

बाबा की बातें सुनकर सत्यनारायण सिंह ही नहीं, बल्कि उनकी पत्नी भी चौंक उठी। अभी तक हमने अपने आने का उद्देश्य नहीं बताया, फिर बाबा को कैसे जानकारी हो गयी? बाबा की बातें सुनकर दरोगा का क्रोध पानी-पानी हो गया। पति-पत्नी और बेटी ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया।

सत्यनारायण सिंह कोई सवाल करते, उसके पहले ही बाबा ने कहा—''क्यों बेटा, तेरा पिस्तौल असली है या नकली?''

सत्यनारायण सिंह ने आत्मविश्वास के साथ कहा—''मेरा पिस्तौल असली है, बाबा। हम नकली पिस्तौल क्यों रखेंगे?''

''तब तो तेरे पास गोलियाँ भी होंगी?''

''जी हाँ।''

बाबा ने मुस्कराते हुए कहा—''जरा पिस्तौल चलाकर दिखा। देखूँ, कैसी आवाज होती है?''

बाबा के मनोरंजन के लिए दरोगा ने हवा में पिस्तौल दागी। एक-दो बार नहीं, कई बार ट्रिगर दबाने पर भी पिस्तौल से गोली नहीं छूटी। शर्म से उनका चेहरा लाल हो उठा। जीवन में ऐसी घटना कभी नहीं हुई थी। कई बार पिस्तौल को उलट-पुलटकर देखने के बाद उन्हें कोई खराबी नजर नहीं आयी।

बाबा ने हँसकर कहा—''इसी पिस्तौल के भरोसे तू यहाँ चला आया। यह इलाका कैसा है, इसे तू अच्छी तरह जानता है। ऐसी पिस्तौल से कैसे मुकाबला करेगा?''

सत्यनारायण सिंह पसीने-पसीने हो गये। सहसा उनके मन में विचार उत्पन्न हुआ कि कहीं बाबा ने कोई जादू तो नहीं कर दिया? यह बात मन में आते ही वे व्याकुल भाव से बोले—''महाराज, मेरी रक्षा कीजिए। आपकी लीला को मैं समझ गया। दया करिये वर्ना मैं बेमौत मर जाऊँगा।''

सत्यनारायण सिंह की परेशानी देखकर बाबा ने हँसते हुए कहा—''आदमी को अपनी शक्ति पर अभिमान नहीं करना चाहिए। ठीक है, अब तुझे घबराने की जरूरत नहीं है। पिस्तौल चला। सब ठीक है।''

देवराहा बाबा से आशीर्वाद पाने के पश्चात् दरोगा ने पिस्तौल का ट्रिगर दबाया और तेज आवाज के साथ गोली दग गयी। यह दृश्य देखकर उपस्थित सभी लोग दंग रह गये। देवराहा बाबा की अलौकिक शक्ति ने कमाल कर दिया।

प्रसन्न मन से दरोगा साहब सपत्नीक चलने के पहले बाबा को अंतिम प्रणाम करते हुए बोले—''आपकी कृपा बनी रहे।''

दरोगा साहब जहाँ चाहते थे, वहीं उनकी पुत्री का विवाह हो गया।

+ + + +

अपने प्रवचनों में देवराहा बाबा नवयुवकों तथा नवयुवतियों से कहा करते थे—माता को जानकी और पिता को राम के रूप में समझना चाहिए। जन्म देनेवाले माता-पिता ही देवता हैं। इनकी सेवा से देव-सेवा होती है। तुम लोगों को आमिष भोजन करना चाहिए। इससे सात्त्विक प्रवृत्ति मन में जन्म लेती है। तामसिक भोजन सभी रोगों का मूल है। इससे बचना चाहिए।

इलाहाबाद निवासी वीरेश्वर मुखर्जी तथा उनकी पत्नी बाबा के एकनिष्ठ भक्त थे। बाबा जब इलाहाबाद आते तब दोनों ही व्यक्ति नियमित रूप से दर्शन करने जाते थे।

वीरेश्वर मुखर्जी के यहाँ मोटर मरम्मत करने का कारखाना है। लोहा-लक्कड़ के कार्य में एक प्रकार के रसायन का उपयोग होता है जो तेज जहर होता है। उसे खाने को कौन कहे अगर कटे स्थान पर रसायन छू जाय तो आदमी को बचाना मुश्किल हो जाता है। कारखाने के सभी लोगों को इस बात की चेतावनी दे दी गयी थी।

इस चेतावनी के बाद भी होनी होकर रही। मुखर्जी बाबू के ड्राइवर का भाई जिसका नाम टुन्नी था, पता नहीं क्या सोचकर उसने एक दिन इस रसायन को चखा और कड़वा लगने पर थूकने लगा। मुखर्जी बाबू की पत्नी खिड़की से बाहर झाँक रही थीं। सहसा उनकी नजर टुन्नी पर पड़ी। यह दृश्य देखते ही वे ऊपर से चीखती हुई नीचे की ओर दौड़ीं।

इधर तेज विष अपना प्रभाव जमाने लगा था। कारखाने में हलचल मच गयी। टुन्नी की आँखें उलट गयीं। वह बेहोश हो गया। उस वक्त सभी लोग हतप्रभ रह गये। उपस्थित कारीगर तुरंत अस्पताल ले जाने की तैयारी करने लगे।

तभी मुखर्जी बाबू की पत्नी को याद आया कि देवरहा बाबा का प्रसाद और अमृत की बूटी घर पर है। अस्पताल ले जाने के पहले इसके मुँह में डाल दूँ। संभवतः बाबा की कृपा से विष की प्रतिक्रिया में कमी आ जाय। वे तेजी से घर के भीतर गयीं। बतासा तथा अमृत बूटी ले आयीं। जबरन मुँह खोलकर उसके मुँह में देकर पानी डाल दिया गया।

इस प्रसाद तथा अमृत बूटी ने अपना चमत्कार दिखाया। टुन्नी ने आँखें खोलकर चारों ओर देखा और तब धीरे से उठ बैठा। लेकिन विष ने अपना चिह्न उसकी जीभ पर दाग के रूप में हमेशा के लिए रख दिया था।

इसी प्रकार की अनेक चमत्कारपूर्ण घटनाएँ बाबा के भक्तों के जीवन में हुई हैं।

देवरहा बाबा का प्रचार अधिक हो जाने के कारण कुछ अवांछनीय तत्त्व आश्रम में जम गये थे जो सामान्य लोगों को बाबा के पास जाने नहीं देते थे। उसके पहले ही परिचय आदि पूछकर केवल धनिकों को उनके पास भेजते थे और उनसे रकम वसूल करते थे।

धीरे-धीरे बाबा को इस बात की जानकारी हो गयी और वे हमेशा के लिए लार रोड छोड़कर मथुरा में आकर रहने लगे। यहीं २१ जून, सन् १९९० को उन्होंने जल-समाधि ले ली। ❑❑

अध्यात्मपरक साहित्य

महामानव महावीर	*डॉ॰ गुणवन्त शाह*
करुणामूर्ति बुद्ध	*डॉ॰ गुणवन्त शाह*
मनीषी की लोकयात्रा म॰ म॰ पं॰ गोपीनाथ कविराज का जीवन-दर्शन	*डॉ॰ भगवतीप्रसाद सिंह*
साधुदर्शन एवं सत्प्रसंग भाग-१-२	*पं॰ गोपीनाथ कविराज*
साधुदर्शन एवं सत्प्रसंग भाग-३	*पं॰ गोपीनाथ कविराज*
सूर्य-विज्ञान प्रणेता योगिराजाधिराज स्वामी विशुद्धानंद परमहंसदेव : जीवन और दर्शन	*नंदलाल गुप्त*
ज्ञानगंज	*पं॰ गोपीनाथ कविराज*
योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी	*सत्यचरण लाहिड़ी*
योग एवं एक गृहस्थ योगी : योगिराज सत्यचरण लाहिड़ी (प्रपौत्र महायोगी लाहिड़ी महाशय)	*शिवनारायण लाल*
तैलंग स्वामी	*विश्वनाथ मुखर्जी*
प्रकाशपथ का यात्री	*डॉ॰ भानुकुमार नायक*
भारत के महान योगी १ से १० भाग	*विश्वनाथ मुखर्जी*
मारण पात्र (योगी, साधकों तथा तांत्रिकों के चमत्कार)	*अरुणकुमार शर्मा*
जपसूत्रम (द्वितीय खण्ड)	*स्वामी श्री प्रत्यगात्मानन्द सरस्वती*
शक्ति का जागरण और कुण्डलिनी	*पं॰ गोपीनाथ कविराज*
श्रीसाधना	*पं॰ गोपीनाथ कविराज*
दीक्षा	*पं॰ गोपीनाथ कविराज*
सनातन साधना की गुप्तधारा	*पं॰ गोपीनाथ कविराज*
अखण्ड महायोग	*पं॰ गोपीनाथ कविराज*
तन्त्राचार्य गोपीनाथ कविराज और योग-तंत्र-साधना	*रमेशचन्द्र अवस्थी*
कृष्ण और मानव सम्बन्ध	*हरीन्द्र दवे*
भ्रमरगीत	*करपात्रीजी महाराज*
गोपी-गोपी	*करपात्रीजी महाराज*

अनुराग प्रकाशन, वाराणसी

मूल्य : एक सौ रुपये

ग्यारह-बारह

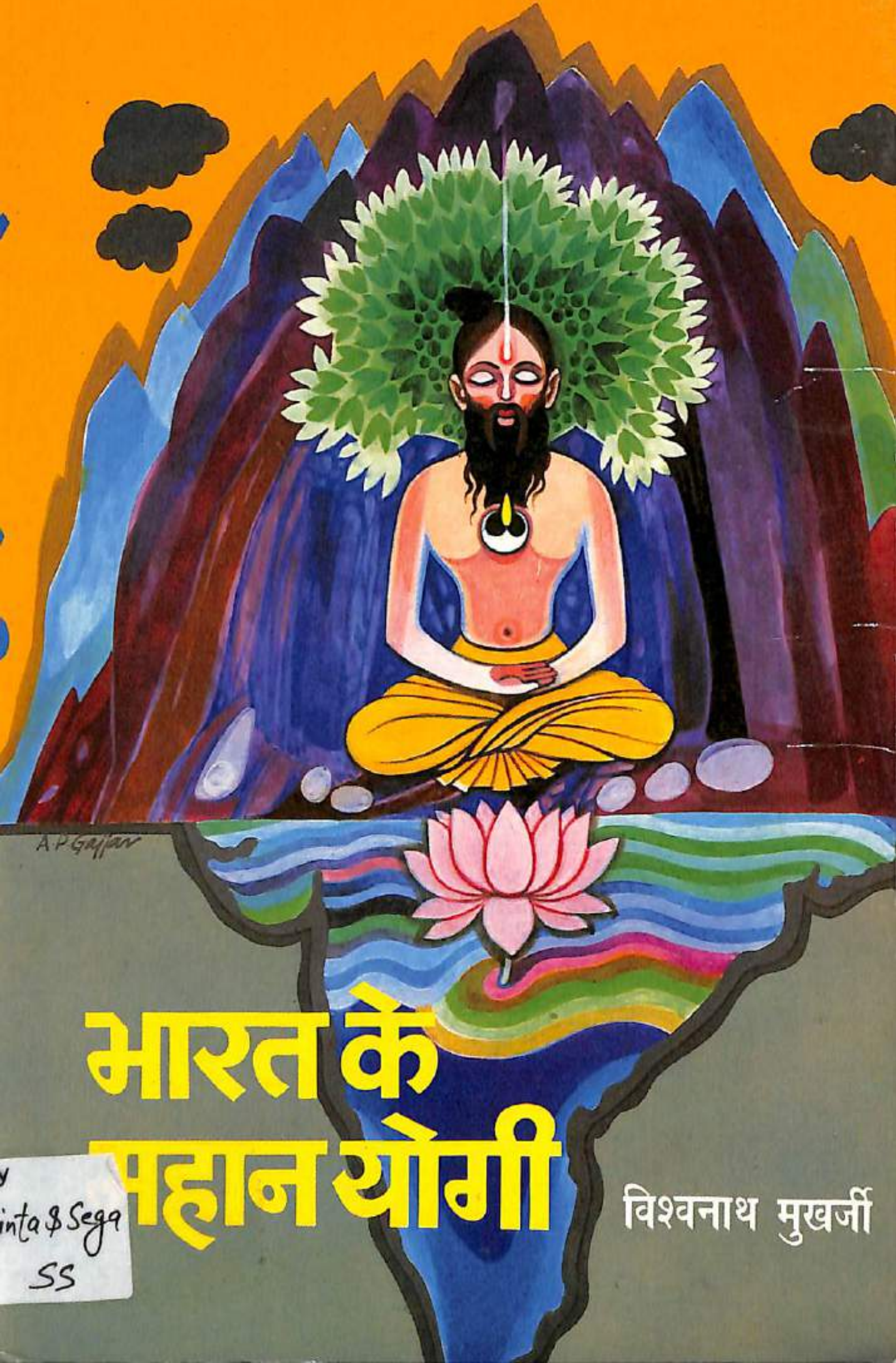

भारत के महान योगी

विश्वनाथ मुखर्जी

inta $ Sega
SS

SS-17

भारत के महान् योगी

(भाग ११-१२)

विश्वनाथ मुखर्जी

अनुराग प्रकाशन, वाराणसी

BHARAT KE MAHAN YOGI
(Part 11-12)
by
Vishwanath Mukherjee

ISBN : 81-902534-8-4

द्वितीय संस्करण : 2007 ई०

मूल्य : एक सौ रुपये (Rs. 100.00)

प्रकाशक
अनुराग प्रकाशन
चौक, वाराणसी–221 001
फोन व फैक्स : (0542) 2421472
E-mail : vvp@vsnl.com • sales@vvpbooks.com
Shop at : www.vvpbooks.com

मुद्रक
वाराणसी एलेक्ट्रॉनिक कलर प्रिण्टर्स प्रा० लि०
चौक, वाराणसी–221 001

अनुक्रमणिका

पृष्ठ

१. बालानंद ब्रह्मचारी १

२. श्री भगवानदास बाबाजी १४

३. हंस बाबा अवधूत २१

४. महात्मा सुन्दरनाथजी ३४

५. मौनी दिगम्बरजी ४५

६. गोस्वामी श्यामानन्द ५८

७. फरसी बाबा ६६

८. भक्त लाला बाबू ७६

९. श्रीपाद माधवेन्द्रपुरी ९१

१०. नंगा बाबा १०४

११. तिब्बती बाबा १२७

१२. गोस्वामी लोकनाथ १३७

१३. काष्ठ-जिह्वा स्वामी १४७

१४. रूप गोस्वामी १५२

१५. सनातन गोस्वामी १६४

१६. अवधूत नित्यानन्द १७७

●

बालानंद ब्रह्मचारी

बालानंद ब्रह्मचारी का जन्म उज्जैन के एक सारस्वत ब्राह्मण परिवार में हुआ था। बचपन का नाम था पीताम्बर। घर की वृत्ति थी शास्त्र-पाठ और पुरोहित-कर्म। शिक्षा ग्रहण करने लायक उम्र हुई तो घर के पास ही स्कूल में दाखिल करा दिया गया लेकिन नटखट का मन पढ़ाई-लिखाई में नहीं लगा। पीताम्बर का रुझान तो अध्यात्म की ओर था। बालक पीताम्बर शिप्रा नदी की जलधारा के हर मोड़ पर और गोरखनाथ की गुफाओं में चक्कर लगाता रहा। कभी महाकाल के कुंड में और कभी संदीपनि मुनि के जंगल-झाड़ से भरे हुए आश्रम में घूमता रहा। भग्न भुतहे मकानों में जहाँ कोई दिन में भी जाने का साहस नहीं करता था, वहाँ पीताम्बर कई रातें गुजार देता। इस दुस्साहसी और नटखट बालक के भविष्य को लेकर माँ नर्मदा बाई बहुत ही चिन्तित रहा करती थीं। पति की मृत्यु के उपरान्त बालक पीताम्बर के लालन-पालन की जिम्मेदारी उन्हीं के कन्धों पर थी।

पीताम्बर के पिता की मृत्यु बचपन में ही हो चुकी थी। घर की आर्थिक स्थिति भी कोई अच्छी नहीं थी। कुछ घरों की जजमानी थी और दो-एक बीघा जमीन। माँ की चिन्ता यह थी कि पीताम्बर को न तो खेती-बारी से कुछ लेना-देना था और न ही जजमानी से कोई सरोकार। जब वह अध्ययन में रुचि नहीं रखता था, शास्त्र आदि का ज्ञान हो ही नहीं रहा था तो कैसे सम्हालेगा पिता की विरासत के रूप में मिली जजमानी? माँ इसी चिन्ता में बुरी तरह ग्रस्त थीं।

इस बात को लेकर माँ अक्सर पीताम्बर को डाँटती-फटकारती रहतीं। एक दिन माँ ने पीताम्बर को डाँटते हुए कहा कि जब तुम कुछ नहीं करोगे तो क्या साधु बनोगे? माँ की डाँट चुपचाप सुन रहे पीताम्बर के मन में एक बात कौंध गई—''क्या साधु बनोगे?'' इस वाक्य का पीताम्बर पर इस कदर जादुई असर पड़ा कि जैसे उसका अन्तर्लोक प्रकाशित हो गया हो और उसे एक रास्ता मिल गया हो। पूर्वजन्म का सात्विक संस्कार मन में उदित हो उठा और पीताम्बर माता के सामने से ही अचानक गायब हो गया।

बालक पीताम्बर ने अपने सारे कपड़े जला दिए। देह में भस्मी पोतकर और एक कौपीन पहनकर माँ के सामने उपस्थित हुआ। पीताम्बर ने कहा, ''माँ, देखो मैं सचमुच साधु बन गया हूँ।'' पुत्र की यह करतूत देखकर माँ को हँसी छूट गई।

लेकिन बालक पीताम्बर का यह साधु-वेश सिर्फ खेल नहीं था। उसके अन्तर्लोक की वास्तविक अभिव्यक्ति थी जो उसी दिन आलोकित हो गई थी, जिस दिन माँ के मुँह से अनायास ही यह वाक्य फूट पड़ा था—''क्या साधु बनोगे?''

इस घटना के कई दिनों बाद बालक पीताम्बर का उपनयन संस्कार हुआ लेकिन यह क्या? उपनयन संस्कार के तीन-चार दिनों बाद ही पीताम्बर ने हमेशा के लिए घर त्याग दिया। उस समय पीताम्बर की आयु सिर्फ नौ साल की थी। माँ की ममता भी उसे बाँध नहीं पाई। माँ का भविष्य अंधकार में डूब गया। पीताम्बर ही तो उसके जीवन का एकमात्र सहारा था।

उज्जयिनी नगर के एक उपान्त में प्रतिष्ठित द्वादश ज्योतिर्लिंगों में एक महाकाल के विग्रह के सम्मुख माँ पुत्र-वियोग में व्याकुल हो कई दिनों तक गुहार करती रहीं। तपोनिष्ठ शुद्धात्मा नर्मदा बाई की गुहार व्यर्थ नहीं गई। लेकिन नर्मदा बाई को लगभग चालीस वर्षों तक तपस्या करनी पड़ी।

देवधर से कुछ दूर तपोवन पर्वत स्थित है। दिन के आखिरी पहर में इसी पर्वत के शिखर पर खड़ी होकर माँ पुकार रही थीं—''पीताम्बर! पीताम्बर!! तुम कहाँ हो पीताम्बर?'' यह पुकार सुनकर एक अधेड़ संन्यासी माँ के सामने आ खड़े हुए। चेहरे पर दिव्य आभा। मुखमण्डल पर बढ़ी हुई दाढ़ी-मूँछ और सिर पर विशाल जटा-जूट। माँ को देखते ही संन्यासी उनके चरणों पर नत हो गया और उसके कंठ से फूट पड़ा—''माँ!'' माँ ने इस संन्यासी को गले से लगाया और बोलीं, ''यही तो मेरा पीताम्बर है। विख्यात योगी—बालानंद ब्रह्मचारी।'' माँ के नेत्रों से खुशी के आँसू ढलक पड़े। माँ ने पीताम्बर के लापता होने और योगी बालानंद ब्रह्मचारी के रूप में मिलने के बीच के अन्तराल की कहानी यों सुनाई—

ध्यान और शिव-अर्चना में उनके दिन एक-एक कर बीतते जा रहे थे। एक दिन उन्हें अनुभव हुआ कि उनका अन्तिम समय अब ज्यादा दूर नहीं है। मन में आकांक्षा हुई कि अन्तिम साँस लेने से पूर्व उनके पुत्र पीताम्बर के दर्शन मिल जाते। एक दिन जब वह शिवजी के चरणों में माथा टेक कर रोती हुई अपनी यह मनोकामना पूर्ण होने की याचना कर रही थीं तो प्रभु ज्योतिर्मय रूप में प्रकट हुए और कहने लगे, ''बेटी, तुम्हारी प्रार्थना शीघ्र पूरी होगी। वैद्यनाथ धाम के समीप तपोवन पहाड़ पर बैठ कर तुम्हारा पुत्र पीताम्बर इस समय तपस्यारत है। इस समय उसका नाम है—बालानंद। तुम शीघ्र वहाँ जाओ, खोए हुए पुत्र की प्राप्ति तुम्हें हो जाएगी।''

नर्मदा बाई ने अपनी जमीन बेच दी और कुछ तीर्थयात्रियों के साथ वैद्यधाम के तपोवन पहाड़ पर गईं तो यह पवित्र दिन आया जब वह अपने पुत्र पीताम्बर से

मिल सकीं। ममतामयी माँ आनन्द-विभोर थीं अपने तपस्वी पुत्र बालानंद से मिलते हुए। नर्मदा बाई ने संकल्प किया था कि यदि उनका खोया हुआ पुत्र उन्हें प्राप्त हो जाएगा तो वह सवा लाख बेलपत्रों से देवाधिदेव महेश्वर की पूजा करेंगी। उन्होंने यह बात अपने पुत्र को बताई और बालानंद ने सभी चीजों का प्रबन्ध कर दिया। पूजा समाप्त होने के कुछ दिनों बाद ही नर्मदा बाई स्वर्ग सिधार गईं।

उन्नीसवीं शताब्दी का दूसरा चरण था जब बालक पीताम्बर बालानंद ब्रह्मचारी के नाम से विख्यात हुए।

सिर्फ नौ वर्ष की अवस्था में पीताम्बर जब सारा माया-मोह त्याग कर सत्य की तलाश में निकल पड़े थे तब उन्हें खुद नहीं पता था कि उनकी तलाश कब और कैसे पूरी होगी। वे उदासीन भाव से चले जा रहे थे तभी मार्ग में एक व्यक्ति मिला। उपनयन के समय पीताम्बर को जो स्वर्णाभूषण—कुण्डल, वलय, हार, आदि—दिए गए थे, वे सभी उसके शरीर पर शोभायमान थे। वह व्यक्ति ताड़ गया कि यह बालक घर से भागा हुआ है। पीताम्बर के आभूषणों को देखकर उसके मन में लालच समा गया। उसने कहा, ''बच्चा, तुम्हारे शरीर पर ये आभूषण रहेंगे तो चोर-डाकू तुम्हारा पीछा करेंगे। आभूषण पहन कर अकेले जाना ठीक नहीं है। इन्हें हमारे पास छोड़ दो, लौटते समय ले लेना।'' बालक पीताम्बर ने निर्विकार भाव से सारे स्वर्णाभूषण उस व्यक्ति को सौंप दिए।

पीताम्बर आगे बढ़े। मार्ग में एक साधु से भेंट हुई और उसी के साथ लग गए। साधु नर्मदा-परिक्रमा का यात्री था। नर्मदा नदी के किनारे-किनारे भ्रमण करते हुए पीताम्बर साधु के साथ में गंगोनाथ में ब्रह्मानंद के आश्रम में गए। स्वम्भूलिंग श्री गंगोनाथजी बड़ौदा से चालीस मील दूर स्थित हैं। इन्हीं के बगल में महायोगी ब्रह्मानंद महाराज ने अपनी कुटिया बना रखी थी। सामने अखण्ड दीप और अखण्ड धुनी प्रज्वलित हो रही थी। ब्रह्मानंदजी महाराज के पास बैठते ही बालक पीताम्बर की आत्मा जाग्रत् हो उठी और उसने ब्रह्मानंदजी से निवेदन किया कि वे उसे अपनी शरण में ले लें। योगेश्वर ब्रह्मानंद से पीताम्बर का भूत और भविष्य छिपा नहीं रहा। उन्होंने श्रावणी पूर्णिमा के दिन पीताम्बर को दीक्षा दी। इस बीच बालक पीताम्बर ने आसपास के गाँवों से भिक्षा माँग कर अन्न आदि संग्रह किया जिससे उसकी दीक्षा के दिन ग्रामवासियों और नर्मदा-परिक्रमा के तीर्थयात्रियों को भोजन कराया गया।

लेकिन आश्रम में भण्डारा से पूर्व बालक पीताम्बर चिन्तित थे कि उन्हें इतनी भिक्षा कहाँ मिलेगी जिससे ढेर सारे लोगों को भोजन कराया जा सके। पीताम्बर की चिन्ता का आभास ब्रह्मानंद को हो गया। उन्होंने अपनी भिक्षा-झोली की ओर संकेत करते हुए कहा, ''बच्चा, तुम जानते नहीं हो कि मेरी इस झोली के अन्दर ऋद्धि-सिद्धि दोनों हैं।'' सचमुच इस झोली की अलौकिक शक्ति

आश्चर्यजनक थी। बहुत से लोगों का विश्वास था कि इस करिश्माई झोली की बदौलत ही आश्रमवासियों और अभ्यागत साधु-सन्तों के भोजन की व्यवस्था होती रहती है।

बालक पीताम्बर के मोहक व्यक्तित्व में लोगों को प्रभावित करने की अद्‌भुत क्षमता थी। लोक खुले दिल से दान देने लगे। पीताम्बर की दीक्षा के दिन भारी भण्डारा हुआ। दीक्षोपरान्त पीताम्बर बालानंद हो गए। ज्योतिमठ के आनन्द उपाधिकारी साधुकुल में वह अन्तर्भुक्त हुए।

दीक्षा ग्रहण के बाद जब बालानंद ने गुरु-दक्षिणा के बारे में ब्रह्मानंदजी से पूछा तो वे बोले, ''वत्स, सद्‌गुरु सब प्रकार की कामना, वासना से परे होते हैं, उन्हें तुम कौन-सी, लौकिक वस्तु देकर प्रसन्न कर सकते हो? जान रखो, प्रकृत गुरुदक्षिणा ऋद्धि में नहीं, सिद्धि में है। मेरे द्वारा प्रदत्त बीज मन्त्र का साधन करके जो सिद्धि तुम प्राप्त करोगे, उसे ही तुम मेरे प्रति निवेदन कर देना, मैं उसे सँजो कर रखूँगा। यही तुम्हारी वास्तविक गुरु दक्षिणा होगी। इसी से मैं प्रसन्न होऊँगा।''

इसके बाद शुरू हुई बालानंद की साधना।

गंगोनाथ आश्रम में साधु-सन्तों और अतिथियों की सेवा तथा उन्हें अन्नदान का क्रम चलता ही रहता था। साल में वहाँ एक-दो यज्ञानुष्ठान चलते ही रहते थे। दीनहीन लोगों के लिए आश्रम का द्वार हमेशा खुला रहता था।

एक बार आश्रम में भण्डारा चल रहा था। भोजन समाप्त होने को था तभी कई सौ अभ्यागत वहाँ आ पहुँचे। आश्रम के भण्डारी उन्हें देखकर घबरा गए और खिचड़ी का गाला तैयार कराने लगे। ब्रह्मानंद महाराजजी को जब इस बात का पता चला तो वे क्रोधित हो उठे। भण्डारी को बुला कहा, ''मुझे लगता है, तुम बंगाली का लड़का है, कम खाने वाला। क्यों इतना कम अन्न देते हो? तुम पूरा-पूरा दो, कुछ चिन्ता मत करो।'' उन्होंने अपने हाथ की मुट्ठी बाँध कर दिखाया कि गाला कितना बड़ा होगा। वहाँ उपस्थित लोगों के आश्चर्य की सीमा नहीं रही कि महाराजजी के स्पर्श से सभी लोगों की क्षुधा शान्त होने के बाद भी प्रचुर मात्रा में खाद्य-सामग्री बची रही।

दुर्भिक्ष के दिनों में महाराजजी स्वयं अपनी झोली लेकर भिक्षाटन के लिए निकलते थे। सर्वसाधारण की निगाह में महाराजजी की झोली माँ अन्नपूर्णा की सिद्ध झोली थी। आसपास के गाँवों के भूखे लोग महाराजजी के आश्रम में ही भोजन करके अपनी भूख मिटाते थे।

कभी-कभी महाराजजी हास्य-कौतुक का प्रदर्शन भी करते थे। एक बार वे बड़ौदा रियासत के शासक गायकवाड शिवाजी राव के पास गए और हँसी-

हँसी में राव से पूछा, ''महाराज, सुना है आपके पास चाँदी की तोप है जिसका गोला लगभग एक मील तक निशाना साधता है।''

गायकवाड ने कहा, ''महाराजजी, आपने ठीक सुना है।''

इस पर महाराजजी ने कहा, ''आपका गोला मात्र एक मील तक जाता है, और मेरा गोला दस-दस कोस तक जाता है। और आपका गोला चाँदी की तोप का है, जबकि मेरा गोला ही खिचड़ी।''

वहाँ उपस्थित लोगों ने जोरदार ठहाका लगाया।

बड़ौदा की महारानी यमुनाबाई ने एक बार ब्रह्मानंदजी को आमंत्रित किया। ब्रह्मानंदजी अपने शिष्य बालानंद को साथ लेकर चले। मार्ग में एक ग्रामीण मिल गया। वह महाराजजी का दर्शन करके धन्य हुआ। उन्हें घर ले गया और खूब आवभगत की। चलते समय महाराजजी की झोली में साग-सब्जी भर दी।

जब महाराजजी महल में पहुँचे तो महारानी ने मजाक किया, ''आज हमलोगों को ढेर सारी चीजें खाने को मिलेंगी।''

''बोलिए क्या चाहिए?'' महाराजजी ने पूछा।

''अंगूर।'' महारानी ने कहा यद्यपि उस समय अंगूर का मौसम नहीं था।

महाराजजी ने तुरन्त झोले में से अंगूर का गुच्छा निकाल कर महारानी के समक्ष रख दिया। फिर हँसते हुए बोले, ''माई के लिए अंगूर तो ठीक ही मिल गया।''

वहाँ उपस्थित सारे लोग आश्चर्यचकित रह गए। महारानी का भक्तिभाव और उमड़ आया।

पूरे क्षेत्र में ब्रह्मानंदजी के अलौकिक कार्यों की चर्चाएँ सुनने को मिलती थीं।

बालानंद जी गंगोनाथ आश्रम में सात-आठ माह रहने के बाद नर्मदा की परिक्रमा के लिए निकल पड़े। इस यात्रा के दौरान उनकी भेंट गौरीशंकर महाराज से हुई। वे हर वर्ष नर्मदा-परिक्रमा पर निकलते थे और इनकी योगसिद्धि समय-समय पर प्रकट होती थी। साथ-साथ तमाम शिष्य चलते रहते थे। भण्डारा होता रहता था। ऋद्धि-सिद्धि का चमत्कार देखने को मिलता रहता था। 'दीयतां भुज्यतां' शब्द से नर्मदा तट गुंजरित होता रहता था। योग ब्रह्मानंद के साथ घनिष्ठ मैत्री थी। जब उन्हें पता चला कि बालानंद ब्रह्मानंद के शिष्य हैं तो बहुत स्नेह के साथ आश्रय दिया। गौरीशंकर महाराज के साथ बालानंद ने सात-आठ वर्ष बिताए क्योंकि वह उनके शिक्षा-शिष्य थे।

इसके बाल बालानंद कई वर्षों तक देश के सभी तीर्थ-स्थलों और अन्य स्थानों का भ्रमण करते रहे। बीच-बीच में वे गुरु ब्रह्मानंद का दर्शन करते रहे। यह सिलसिला ब्रह्मानंद के महाप्रयाण तक चलता रहा।

कष्टसाध्य नर्मदा परिक्रमा करते हुए एक दिन बालानंदजी मंडला पहुँचे। उनके साथ एक उदासी साधु थे। दोनों के हाथ में एक-एक माला और वस्त्रों आदि जरूरी वस्तुओं की गठरी थी। उन दिनों उस अंचल में चोरों-डकैतों की बाढ़ थी। कमिश्नर साहब स्वयं तहकीकात के लिए आए हुए थे। अपने बँगले के पास जब उन्होंने दो नवयुवक साधुओं को देखा तो पकड़वा मँगाया। छानबीन के दौरान साधुओं की झोली में खंतियाँ और कुठार पाए गए। कमिश्नर साहब गुस्से से तमतमाते हुए बोले, ''अब साबित हो गया कि तुम्हीं लोग सेंधमारी और चोरी-डकैती करते हो।''

बालानंद ने समझाया, ''साहब, इन खंतियों से हम कंदमूल मिट्टी से खोद कर निकालते हैं और कुठार का प्रयोग झोपड़ियाँ बनाने में करते हैं।''

लेकिन कमिश्नर के आदेश पर इन लोगों की गठरी की तलाशी होती रही। छानबीन में गाँजा और सँखिया (विष) भी मिल गया।

कमिश्नर साहब गरजे, ''तुम लोग केवल चोरी-डकैती ही नहीं करते लोगों को सँखिया खिलाकर हत्याएँ भी करते हो। तुम लोगों को तीन-तीन साल की कैद की सजा दी जाएगी।''

बालानंद ने समझाने की कोशिश की, ''गाँजा और सँखिया साधुओं के लिए आवश्यक वस्तुएँ हैं। इससे साधु लोग जाड़े से बचाव करते हैं।'' इस पर कमिश्नर ने आदेश दिया, ''तो सँखिया हमारे सामने खा कर दिखाओ।''

बालानंद की गाँठ में सँखिया बँधा था। उन्होंने गाँठ खोली और सारी सँखिया एक ही बार में खा गए।

बालानंद ने सोचा अब मृत्यु अनिवार्य है।

कमिश्नर के चंगुल से मुक्त होने के बाद उनके बँगले के बाहर बैठकर वे अपने साथ के साधुओं से कहने लगे, ''मेरे कंठ सूख रहे हैं, आँखों के आगे अँधेरा छा रहा है, जल्द ही मेरा देहान्त हो जाएगा। तुम लोगों से अनुरोध है कि प्राण त्यागने के बाद इस शरीर को नर्मदा में प्रवाहित कर देना।''

बालानंद का बाह्य ज्ञान लुप्त होने लगा लेकिन उस समय उनके अन्तर में नर्मदा माँ की ज्योतिर्मयी मूर्ति उद्भासित हो उठी। अभयदान देकर देवी क्षण भर में अंतर्ध्यान हो गईं। कुछ ही क्षणों बाद उनका चेतनाशून्य शरीर पृथ्वी पर लोट गया।

इसी समय कमिश्नर साहब के युवा बेटे की मृत्यु हो गई। वह कुछ देर पूर्व ही शिकार से लौट कर चाय पी रहा था कि अचानक उल्टियाँ होने लगीं। इससे पहले की डॉक्टर पहुँचते, उसके प्राण-पखेरू उड़ गए।

कमिश्नर के पुत्र की मृत्यु का समाचार सुनकर एक सज्जन उनसे मिलने आए। बँगले के बाहर एक साधु को अचेत पड़ा हुआ देखा तो उनका माथा ठनका। पूछने पर पता चला कि कमिश्नर के आदेश पर सँखिया खाने के बाद इनकी ऐसी दशा हुई है। उक्त सज्जन ने कमिश्नर को समझाया, सर्वत्यागी साधु को इस प्रकार कष्ट देकर आपने अच्छा नहीं किया। चिकित्सा द्वारा इन्हें स्वस्थ करके शीघ्र छोड़ दीजिए। बालानंद की चिकित्सा हुई। वे स्वस्थ हो गए। कई दिनों तक उक्त सज्जन के यहाँ रहने के बाद पुनः नर्मदा परिक्रमा के लिए निकल पड़े।

नर्मदा परिक्रमा के दौरान बालानंद दैवी शक्ति के नाना प्रकाश से प्रकाशित हुए इससे उनका साधक जीवन काफी प्रभावित हुआ।

एक बार बालानंदजी कई साधुओं के साथ नर्मदा के तटवर्ती जंगल में जा रहे थे। धीरे-धीरे अंधकार घिरता आ रहा था। शरीर थककर चूर हो गया था। भूख-प्यास से बेहाल थे। उन्होंने देखा कि एक भीलनी गाय के साथ एक वृक्ष के नीचे खड़ी थी। बालानंदजी उसके पास गए और बोले, ''माई, हम भूख-प्यास से बेहाल हैं। हमने इसी वृक्ष के नीचे रात गुजारने का निश्चय किया है। तुम अपने गाँव से हमारे लिए खाने-पीने की कोई सामग्री लाओ ताकि हमारी क्षुधा शान्त हो।''

भीलनी ने हँसते हुए कहा, ''बेटे, चिन्ता मत करो। हमारी इस गाय के दूध से तुम सभी लोगों की भूख शान्त हो जाएगी। तुम लोग बर्तन लेकर खड़े हो जाओ, मैं एक-एक कर सभी लोगों के बर्तन में दूध भर देती हूँ।''

भीलनी ने सभी साधुओं के तूँबे भर दिये। सभी ने भरपेट दूध पिया। जब सभी लोगों ने दूध पी लिया, तब भीलनी अपनी गाय के साथ जंगल में गायब हो गई। इससे सभी साधुओं को हैरत हुई। सब इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि भीलनी कोई साधारण महिला नहीं थी, साक्षात् नर्मदा माँ थीं।

अपने परिक्रमा काल के दौरान बालानंद महाराज ने कई बार नर्मदा माँ के अलौकिक आविर्भाव का प्रत्यक्ष दर्शन किया। देवी के वरदहस्त ने एकाधिक बार उनकी प्राण-रक्षा की।

एक बार बालानंदजी कामाख्या तीर्थ में पहुँचे। कामाख्या देवी का दर्शन करने के बाद कई दिनों तक पहाड़ के ऊपर साधना में व्यतीत किया। इसके बाद आसपास के क्षेत्रों में भ्रमण करने के दौरान हैजे की बीमारी से पीड़ित हो गए। शरीर बिल्कुल अशक्त हो गया। परमात्मा में ध्यान लगाकर निश्चल पड़े रहे। इसी बीच उनके समक्ष दिव्य कुमारी मूर्ति प्रकट हुई और कहने लगी, ''गोसाईं, तुम चिन्ता मत करो। तुम मरोगे नहीं, किन्तु शीघ्र यहाँ से चले जाओ।'' देवी अंतर्ध्यान हो गईं और बालानंदजी गाढ़ी नींद में सो गए।

दूसरे दिन नींद टूटी तो उन्होंने स्वयं एकदम स्वस्थ पाया। लेकिन दुर्बल काफी थे। किसी तरह उठते-बैठते समीप के कुएँ पर पहुँचे। वहाँ उपस्थित लोगों ने बालानंद के सिर पर जल डाला। वे शीतल हुए। भूख से व्याकुल थे पर किसी का दिया हुआ अन्न खा नहीं सकते थे। एक व्यक्ति ने दया करके उन्हीं के लोटे में खिचड़ी चढ़ा दी। खिचड़ी पक जाने पर उन्होंने अपने हाथ से उतारा और भूख मिटायी।

कामाख्या से लौट कर बालानंदजी तारकेश्वर गए। एक बार जब वे हुगली जिला का भ्रमण कर रहे थे तभी उन्हें ज्ञात हुआ कि जलेश्वर में एक जाग्रत् एवं प्राचीन शिवलिंग है जिसे जलेश्वर शिव के नाम से जाना जाता है। जंगल का रास्ता तय करके जब वे जलेश्वर शिव के पास पहुँचे तो रात हो चुकी थी। उन्होंने देखा कि जलधरी के ऊपर अर्धहस्त परिमाण का एक शिवलिंग विराजमान है। उसके ऊपर पास में ही कुछ ऊँचाई पर पंचमुण्डी का आसन है। मन्दिर से सटे कुएँ पर हाथ-पाँव धोकर बालानंदजी ने मन्दिर में प्रवेश किया। जप-ध्यान में लीन हो गए। इस बीच उन्हें एक विचित्र अनुभव हुआ। उन्हें ऐसा लगा जैसे मन्दिर के चारो ओर की दीवारों के बीच दबते जा रहे हैं। शून्य में हाहाकार करती हुई एक अदृश्य शक्ति मानों बवंडर उठा रही है। सहसा एक देववाणी सुनाई पड़ी, ''अरे, तुम पंचमुण्डी आसन पर अघोर मंत्र का जप करो।'' बालानंदजी ने जप प्रारम्भ किया। जप करते-करते भोर हो गयी। वे सुबह मन्दिर से बाहर आए।

एक बार बालानंदजी उत्तराखण्ड के भ्रमण पर थे। इस बीच एक अद्‌भुत प्रकार के आकाशचारी साधु से उनकी भेंट हुई। बालानंदजी के शिष्य श्री हेमचन्द्र बंधोपाध्याय ने इसका वर्णन इस प्रकार किया है—''कांगड़ा उपत्यका के मागसुत स्थान में जाकर गुरुदेव कुछ दिनों तक गोमती स्वामी के निकट वास कर रहे थे। वहाँ दोनों अपने-अपने आसन पर बैठे हुए थे जबकि एक महात्मा ने वहाँ उपस्थित होकर दोनों के दर्शन किए। कुछ देर तक बातचीत के बाद साधु वहाँ से चले गए। कुछ दूर जाने के बाद वे 'जय गुरुदेव, जय गुरुदेव' कहकर ताली पीटने लगे। यह सुनकर गुरुदेव और गोमती स्वामी बाहर आए और उस साधु को देखने लगे। दोनों ने देखा कि वे 'जय गुरुदेव' कह कर ताली पीट रहे हैं। इसी समय उनके दोनों पाँव जमीन से कुछ ऊपर उठ रहे हैं। ऐसा करते हुए वे शून्य मार्ग से आकाशगामी होकर एक उच्च पर्वत-शिखर की ओर उड़ने लगे और कुछ क्षणों के बाद वहाँ से अदृश्य हो गए। यह दृश्य देखकर गुरुदेव चमत्कृत हो गए। उक्त महात्मा का परिचय भलीभाँति नहीं प्राप्त कर सके, इस बात का उन्हें दुःख हुआ। जब अपने आसन पर लौट कर उन्होंने गोमती स्वामी से पूछा तो उन्होंने बताया—''इस साधु के बारे में वे स्वयं ज्यादा कुछ नहीं

जानते। उन्हें वे नीचे आते और आकाशचारी होते एक-दो बार देखा है। ऊपर किस शिखर पर वे वास करते हैं, किस तरह रहते हैं, बीच-बीच में नीचे क्यों उतरते हैं, इस बारे में ज्यादा कुछ नहीं मालूम।''

उन महात्मा को खेचर-सिद्धि प्राप्त थी जो दो प्रकार से प्राप्त होती है—एक योग के बल से, दूसरे द्रव्य-बल से। उन महात्मा ने किस प्रकार यह सिद्धि प्राप्त की यह नहीं मालूम।

कालान्तर में बालानंदजी एक असामान्य योगी के रूप में ख्यात हुए। उन्हें सिद्धि प्राप्त हुई।

बालानंद ब्रह्मचारी अपने शिष्यों को उपदेश दिया करते थे—''मक्षिका बन जायँ''। अर्थात जहाँ जो कुछ अध्यात्म अमृत का संचय देखो, वहाँ से अपने भण्डार को समृद्ध कर लो। अध्यात्म-मार्ग के इस आदर्श का उन्होंने अपने जीवन में भी पालन किया।

बालानंदजी के ऊपर अपने गुरुओं ब्रह्मानंदजी और गौरीशंकर महाराज के अलावा भी कई महापुरुषों का प्रभाव पड़ा था। नर्मदा-तट पर साधनारत मारकण्डेय महाराज से उन्होंने हठयोग की समस्त दुरूह क्रियाओं का अभ्यास किया था। इसी प्रकार काशी ध्रुवेश्वर मठ के मण्डलेश्वर रामगिरिजी से उन्होंने वेदान्त के विभिन्न सूक्ष्म तत्त्वों को अधिगत किया था। उत्तराखण्ड के त्रियुगीनारायण में वास कर रहे महात्मा मनसागिरि के पास कुछ समय बिताकर बालानंदजी ने नाना निगूढ़ मंत्रों का रहस्य हृदयंगम किया। योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी की कृपा से उनके साधनारत जीवन का एक विशिष्ट अध्याय उन्मोचित हो गया था।

इसके बाद बालानंदजी का ज्ञान-प्रकाश चतुर्दिक् फैलने लगा। बहुत से लोग इससे लाभ उठाकर धन्य हुए। इनके सर्वप्रथम शिष्य बने रामचरण वन्द्योपाध्याय जिन्हें रामबाबू भी कहते हैं। रामबाबू के शिष्यत्व ग्रहण करने की कथा भी बड़ी रोचक है।

बालानंदजी महाराज कामाख्या से लौटकर बंगाल के विभिन्न भागों का भ्रमण कर रहे थे। एक दिन वे रानाघाट पहुँचे। रामचरण बाबू वहाँ के एस०डी० ओ० थे। इसी समय वे एक विपत्ति में पड़ गए। रानाघाट के निकट एक ट्रेन दुर्घटना हुई जिसमें काफी लोग हताहत हुए। रामबाबू पर आरोप लगा कि उन्होंने अपने कर्तव्य का ठीक से पालन नहीं किया। उनकी नौकरी खतरे में पड़ गई।

रामचरण बाबू की माताजी आध्यात्मिक प्रवृत्ति की थीं। एक दिन वह अपने इष्टदेव के चरणों में बैठकर अपने पुत्र के मंगल की कामना कर रही थीं तो उसी समय उनके अंतर में कोई आवाज आई, ''भय मत करो। एक साधक तुम्हारे घर आए हैं, इस बार विपत्ति के बादल दूर हो जाएँगे।''

क्षण भर बाद ही उस वृद्धा ने देखा कि एक जटाजूट वाले साधु उनके घर के भीतर प्रवेश कर रहे हैं। भीतर आकर साधु ने रामचरण बाबू से कहा कि मुझे एक बघछाला चाहिए। मुझे ज्ञात हुआ है कि आप एक अच्छे शिकारी हैं, इसीलिए आया हूँ। साधु के दिव्य रूप को देखकर राम बाबू आकर्षित हो उठे। एक-दो बघछाला उन्होंने साधु को दिखायी लेकिन उसे कोई बघछाला पसन्द नहीं आयी।

रामबाबू को एक साधारण साक्षात्कार ही साधु का हुआ लेकिन रात में उस साधु का स्वप्न बार-बार आने लगा। जैसे कोई कह रहा हो, ''अरे, इस साधु के द्वारा ही तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध होगा, इन्हीं के चरणों का आश्रय ग्रहण करो।''

रामबाबू बालानंद महाराजजी के शरणागत सपरिवार हुए। रामबाबू और उनकी पत्नी ने बालानंदजी से दीक्षा ली।

रामबाबू बालानंदजी के परमशिष्य हो गए। एक बार उनके फोड़े का ऑपरेशन हो रहा था। उन्होंने बेहोशी की दवा नहीं सूँघी। केवल गुरु के चरणों का स्मरण करते रहे। इससे पीड़ा का अनुभव बिल्कुल नहीं हुआ।

कुछ समय बाद रामबाबू को महाराजजी का एक पत्र मिला। उस समय वह गिरनार पर्वत पर बैठ कर तपस्या में लीन थे। एक दिन जब वे ध्यानावस्थित थे, तभी रामबाबू के फोड़े के ऑपरेशन का दृश्य उनके ध्यान में घूम गया। उन्होंने देखा कि रामबाबू के फोड़े का ऑपरेशन हो रहा है और वह जरा भी पीड़ा का अनुभव नहीं कर रहा है। इसी के बाद उन्होंने रामबाबू को पत्र लिखा जिसे पाकर वह काफी प्रसन्न हुए।

बालानंदजी के एक और प्रिय शिष्य थे दयानिधि। देवघर में महाराज के करवीबाद आश्रम स्थापित होने पर यह शिष्य अपने पुत्र के साथ उसी आश्रम में निवास करने लगे। एक रात उनके पुत्र को एक साँप ने डँस लिया। लेकिन दयानिधि जरा भी विचलित नहीं हुए और वे महाराजजी का जप करने लगे। जब वह ध्यानावस्था में थे तभी उन्हें एक अलौकिक दृश्य दिखायी पड़ा। उन्होंने देखा कि यमदूत की तरह कतिपय विकराल मूर्तियाँ आश्रम में प्रवेश करना चाह रही हैं और बालानंद महाराज हाथ में त्रिशूल लिये उन्हें भगा रहे हैं। दयानिधि का पुत्र सर्पदंश से आश्चर्यजनक रूप से बच गया।

देवघर के समीप बालानंदजी तपोवन पहाड़ पर घोर तपस्या कर रहे थे। एक दिन वे गुफा के अन्दर बैठे थे। जब ध्यानावस्था से बाहर आए और उनकी आँखें खुलीं तो देखा कि एक विशाल सर्प फन उठाए उनके सामने है। उसके मुँह में मनुष्य की मूँछ की तरह लम्बे-लम्बे बाल थे। महाराजजी के मन में आया कि यह साधारण सर्प नहीं हो सकता। सर्प के रूप में कोई महात्मा उनकी परीक्षा ले रहे हैं। महाराज ने त्राटक मुद्रा का अवलम्बन करते हुए सर्प की दृष्टि के साथ

अपनी दृष्टि निबद्ध कर ली। ऐसा करते ही सर्प ने अपना फण संकुचित कर लिया और गुफा से बाहर चला गया।

एक दूसरी अलौकिक घटना इस प्रकार है—महाराजजी धुनी के पास रात में लेटे हुए थे। वे कम्बल ओढ़े हुए थे। भोर में उन्हें महसूस हुआ कि किसी ने उनके पाँव पर से कम्बल खींच कर फेंक दिया है। उनकी नींद खुली तो उन्होंने देखा कि कम्बल धुनी के समीप पड़ा हुआ है। इसी समय उन्होंने देखा कि कोई उनके सामने खड़े होकर पहाड़ के ऊपर चलने का इशारा कर रहा है। महाराज ऊपर चलने लगे। चलते-चलते गुफा तक जा पहुँचे। गुफा में दिन में ताला लगा दिया था। लेकिन वहाँ जाकर देखा कि गुफा का द्वार खुला हुआ है। जो उन्हें बुलाकर ले गया था वह गुफा में प्रवेश करने लगा। पीछे-पीछे महाराजजी भी गुफा में प्रविष्ट हुए।

गुफा में अंधकार था। महाराजजी अपनी माचिस टटोल रहे थे तभी गुफा में प्रकाश फैल गया। लेकिन उसे नहीं देखा जा सका जो महाराजजी को लेकर आया था। महाराजजी को चिन्ता होने लगी कि वे उस समय जाग्रत् हैं या स्वप्नाविष्ट! ऐसा सोचते हुए वे समाधिस्थ हो गए। सुबह होने पर शिष्यों ने उन्हें धूनी के पास नहीं पाया तो ऊपर गुफा में गए। महाराजजी समाधिस्थ थे। उस समय दोपहर का समय था। शिष्यों की आवाज से उनका ध्यान टूटा।

तपोवन पर्वत के इस तपोमय जीवन में ही महाराजजी को अपनी माँ नर्मदा बाई का दर्शन मिला था।

रामबाबू के निधन के उपरान्त उनकी धर्मपरायण पत्नी ने करवीबाद आश्रम स्थापित किया जिसमें रहकर योगेश्वर बालानंद ब्रह्मचारी ने न जाने कितने लोगों का उद्धार किया। उनके दो संन्यासियों मौजागिरि और पूर्णानन्द स्वामी यहाँ आकर महाराजजी के आश्रम में रहने लगे। कृष्ण बन्धोपाध्याय, प्राणगोपाल मुखोपाध्याय प्रभृति भक्तों के आगमन के बाद धीरे-धीरे शिक्षित समाज में महाराजजी का प्रभाव बढ़ने लगा। महाराजजी कहते—

चारों परीक्षा में जब शिष्य उतरे।
तभी गुरु उसको पक्का ठहरे॥

ये चार परीक्षाएँ थीं—घर्षण, तापन, छेदन और ताड़न। शिष्यों की परख में महाराजजी एक स्वर्णकार की भूमिका में होते थे। पहले उसे कसौटी पर 'रगड़' कर देखते थे कि यह 'खरा' है या नहीं, फिर 'तापन' त्याग की बारी आती थी यानी तितिक्षा की अग्निपरीक्षा द्वारा जाना जाता था कि वह निष्कलुष हुआ है या नहीं। फिर 'छेदन' की प्रक्रिया द्वारा रहा-सहा कलुष साफ किया जाता है इसके बाद उसे अपने अनुकूल ढालने के लिए हथौड़े की चोट या 'ताड़न' की

आवश्यकता होती है। महाराजजी संन्यासी या ब्रह्मचारी के लिए जितनी कठोरता के पक्षपाती थे उतने ही गृहस्थ के लिए सहज-साध्य मार्ग की बात किया करते थे। महाराजजी अपने शिष्यों और भक्तों के कल्याण के लिए हमेशा तत्पर रहते थे।

बालानंदजी महाराज कलकत्ते के बरानगर में कुछ दिनों से रह रहे थे। उनके वास-स्थल के पास भक्तों की सदा भीड़ लगी रहती थी। एक दिन महाराज यतीन्द्रमोहन ठाकुर ने अपना प्रतिनिधि भेजकर निवेदन किया कि महाराजजी उनके महल में पधारकर उन्हें कृतार्थ करें। महाराजजी ने परिहास किया, ''यतीन्द्रमोहन महाराज हैं, यह मैंने सुना है। इधर बहुत से लोग मुझे भी 'महाराज' कहते हैं। एक महाराज यदि दूसरे महाराज के पास आये तो इसमें निन्दा की कौन-सी बात होगी? महाराज यतीन्द्रमोहन यदि एक बार स्वयं यहाँ आते तो अच्छा होता।''

इसके बाद बालानंदजी ने एक सिद्ध महापुरुष की कहानी भक्तजनों को सुनाई—नगर के राजमार्ग पर आसन बिछाकर महात्मा एक दिन बैठे हुए थे। इस समय शोर हुआ कि थोड़ी देर बाद उस अंचल के अधिपति उसी मार्ग से कहीं जाने वाले हैं। महात्मा मार्ग के मध्य में बैठे हुए थे। अग्रगामी सैन्य दल ने संन्यासी को सावधान किया—यहाँ नहीं बैठ सकते, राजा आ रहे हैं।

साधु ने आँखें खोल कर केवल इतना कहा—''राजा को कह दो, यहाँ एक महाराज बैठे हुए हैं।'' डरते हुए लोगों ने राजा को खबर दी। पालकी से उतरकर राजा उसी क्षण महात्मा की ओर चल पड़े। महात्मा को प्रणाम करने के बाद बोले, ''सुना है, सरकार भी महाराजा हैं किन्तु महाराजा की फौज कहाँ है?''

''फौज की क्या जरूरत है, कोई मेरा शत्रु नहीं है।'' महात्मा ने हँसकर कहा।

''अच्छी बात है, किन्तु खजाना कहाँ है।'' राजा का दूसरा सवाल था।

''कोई खर्च ही नहीं है, फिर खजाने की क्या जरूरत है? मेरे लिए तो 'स्वदेशः भुवनत्रयम्'। मेरा राजत्व त्रिभुवन में विस्मृत तो फिर महाराजा नहीं तो और क्या हूँ?'' महात्मा ने कहा।

राजा ने महात्मा के कथन के मर्म को समझा। उन्हें साष्टांग प्रणाम करके मार्ग के एक तरफ से होकर चले गए।

महाराज यतीन्द्र सरकार के प्रतिनिधि ने लौटकर यह सारी कहानी महाराज को बता दी। यह सुनकर महाराज लज्जित हुए। इसके बाद वे स्वयं महाराजजी के चरणों में भक्तिभाव से उपस्थित हुए।

''मेरे जैसे संसारी व्यक्ति का क्या कर्तव्य है?'' महाराज ने ब्रह्मचारीजी से प्रश्न किया, ''नाना प्रकार के बन्धनों में फँसे रहकर आध्यात्मिक उन्नति के लिए वे किस मार्ग पर अग्रसर होंगे?''

''महाराज अब आप उलट जाइए।'' बालानंदजी ने कहा।

महाराज जब बालानंद की बात का मर्म नहीं समझ पाए तो बालानंदजी ने कहा, ''महाराज, इस समय आपके पास जो कुछ है, सब यथावत रहेगा, केवल अपनी बुद्धि और दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना होगा। 'सब मेरा' की जगह कहना होगा, 'सब तेरा', अर्थात अपने अहं बोध के स्थान पर भगवान को स्थापित करना होगा। यह बोध त्यागना होगा कि आप मालिक हैं। स्वयं मैनेजर समझना होगा।'' किसी माई को यदि यह बात समझानी होती तो कहता—''माई, अब दाई बन जाइए।''

एक घटना १९०६ ईस्वी की है। बालानंदजी गंगोनाथ आश्रम में आए थे। गुरुजी ब्रह्मानन्द महाराजजी ने इस समय पूर्ण समारोह के साथ महारुद्र यज्ञ और महामृत्युंजय यज्ञ का अनुष्ठान किया। एक दिन हँसी में उन्होंने बालानंदजी से कहा, ''बाला, अब मैं इस मर्त्य शरीर का त्याग करूँगा।''

''यह क्या बात हुई गुरुजी, आप स्वेच्छा से और भी बहुत दिनों तक इस शरीर को धारण किए रख सकते हैं।'' बालानंदजी ने कहा।

''और नहीं, यह बहुत पुराना हो गया।'' ब्रह्मानंदजी ने कहा।

माघ महीने के एक पुण्य दिवस को भोर में महायोगी ब्रह्मानंद महाराज अपने कुटीर में ध्यानस्थ हुए। उनका ध्यान भंग फिर कभी नहीं हुआ। आश्रम के एक किनारे नर्मदा के तट पर बैठकर बालानंदजी तपस्या में लीन थे। सहसा उन्होंने देखा नर्मदापुत्र योगेश्वर ब्रह्मानंदजी जिस कुटिया में आसन लगा कर बैठा करते थे, वह धू-धू करके जल उठा। दूसरे ही क्षण वहाँ से एक अग्निशिखा उठी और आकाश में जाकर विलीन हो गई। बालानंदजी को यह समझते देर नहीं लगी कि योगेश्वर की ज्योति सत्ता हमेशा के लिए देहत्याग करके चली गई।

बालानंदजी ब्रह्मानंदजी के प्रथम शिष्य थे। गुरुजी के देह-त्याग के बाद वे उनके आश्रम में नहीं रहना चाहते थे। गंगोनाथ की गद्दी ब्रह्मानंदजी उन्हें दे गए थे लेकिन बालानंदजी ने उसे अपने गुरुभाई केशवानंदजी को सौंप दिया और स्वयं देवघर लौट आए।

धीरे-धीरे बालानंदजी के शिष्यों की संख्या काफी बढ़ गई। एक समय बालानंदजी अपना करवीबाद आश्रम छोड़ कर वैद्यनाथ धाम में वास कर रहे थे। १९९४ सं० के २६ ज्येष्ठ को मध्यरात्रि में वे ब्रह्मलीन हो गए। इस प्रकार नौ साल की अवस्था में उज्जयिनी के महाकाल ज्योतिर्लिंग के पादपीठ से जो जीवनयात्रा शुरू हुई थी, वैद्यनाथ ज्योतिर्लिंग की परम सत्ता में विलीन हो गई।

●

श्री भगवानदास बाबाजी

श्री भगवानदास बाबाजी प्रसिद्ध वैष्णव संत थे। उन्होंने श्री श्री नाम ब्रह्म विग्रह को अपने भक्ति बल से जाग्रत् किया था। इस विग्रह की जीवन्तता का प्रचार देश भर में हुआ और मन्दिर के प्रांगण में भक्तों तथा वैष्णव जनों की अपार भीड़ उमड़ने लगी।

यह काल उन्नीसवीं शताब्दी के तृतीय चरण का था।

उस दिन ठाकुर का बाल भोग समाप्त हुआ था तभी बाबाजी महाराज ने अपनी झोली और माला के साथ निकटस्थ भजन-कुटीर में प्रवेश किया। कुछ क्षणों के जप और अनुष्ठान के बाद वे भावविह्वल हो उठे। उनके दोनों नेत्र अर्ध-निमीलित हो गए और हाथ की माला यंत्रवत् घूमती-घूमती ठहर गई थी।

इसी समय वर्द्धमान के महाराजा ने कुटीर में प्रवेश किया। बाबाजी ने अपने हाथ की माला आसन पर रखी और चीखे—"ओ रे! मारो, मारो निकाल दो, निकाल दो।" महाराजा बाबाजी के क्रोध से सहम गए। लेकिन दूसरे ही क्षण बाबाजी एकदम शान्त हो गए। उनकी आँखें बंद हो गईं। शरीर श्लथ हो गया। वर्द्धमानाधिपति ने सोचा कि बाबा की स्थिति सामान्य हो तो उनके इस अचानक क्रोध का रहस्य पूछा जाए।

थोड़ी देर बाद बाबाजी का बाह्यज्ञान लौट आया और वे सहज हो गए। उन्होंने सामने देखा। विशिष्ट भक्त पर निगाह पड़ते ही पूछा, "बाबा, कब हुआ आपका आना? श्री ठाकुर ने आनन्द से तो रखा है? श्री श्री नाम ब्रह्म का प्रसाद पावा है न?"

महाराजा बाबाजी के इस भाव-परिवर्तन से आश्चर्यचकित हो गए। उन्होंने साहस करके बाबाजी से पूछा, "बाबा, कुटीर में घुसते ही आप क्रोधित होकर मुझे मारकर निकाल देना क्यों चाह रहे थे? यह ठीक है कि मैं विषयी हूँ लेकिन हूँ तो श्री श्री नाम ब्रह्म का भक्त। बाबा, किस कारण से ऐसे कटु वाक्य मुझे कहे आपने?"

"यह क्या जी! सर्वथाभ्यागतो गुरुः। अभ्यागत मात्र ही वैष्णवों के निकट परम आराध्य हैं। उन्हें कोई कटु बात कहने से तो श्री भगवान का ही असम्मान होता है। आपको कब मैंने कटु बातें कहीं?" बाबाजी ने आश्चर्य व्यक्त किया।

''जी, आपके चरण दर्शन करने आने के साथ ही 'निकाल दो' कहकर आप मेरे प्रति रोष व्यक्त करने लगे थे।''

यह बात सुनकर बाबाजी बहुत लज्जित हुए। कोमल एवं मधुर वाणी में कहने लगे, ''नहीं बाबा, आप अपने मन में जरा भी दुःख न लाएँ। मैंने आपको लक्ष्य कर यह सब नहीं कहा। आप कब आए, यह भी इन स्थूल नेत्रों से मैंने नहीं देखा। उस समय श्री वृन्दावन धाम में गोविन्द मन्दिर के तुलसी-चबूतरा के ऊपर चढ़कर एक बकरी तुलसी पत्रों को खा रही थी। प्रभु की सेवा में विघ्न होगा, यह सोचकर मैं उसे भगाने लगा था।''

बाबाजी की बात सुनकर महाराजा विस्मय में पड़ गए। उन्होंने बाबाजी को प्रणाम किया और घर की राह पकड़ी। मन में निश्चय किया कि बाबाजी की बात की सत्यता का पता लगाना जरूरी है। उसी दिन उन्होंने अपने वृन्दावन-निवासी एक मित्र को तार भेजा। मित्र ने बताया कि महाराजा ने तार में जिस समय का उल्लेख किया है, उस समय गोविन्द मन्दिर के तुलसी चबूतरा पर लगे हुए तुलसी के नवीन पौधे को एक बकरी खा रही थी। परन्तु कालूना निवासी भगवानदास बाबाजी अकस्मात मन्दिर-प्रांगण में प्रकट हुए और चिल्लाते हुए हाथ और डंडे से उस बकरी को भगा दिया। भजन करते समय बाबाजी वृन्दावन भी पहुँच गए, उनकी इस अलौकिक लीला से महाराजा और क्षेत्र की जनता के मन में उनकी छवि अलौकिक संत के रूप में बन गई।

उड़ीसा के एक गाँव में जन्में बालक भगवानदास बचपन में ही वैष्णव महात्माओं से प्रभावित हुए और एक कंगाल वैष्णव के वेश में वृन्दावन वनधाम के लिए चल पड़े। उन्हीं दिनों विख्यात वैष्णव आचार्य सिद्ध कृष्णदास बाबाजी गोवर्द्धन पर्वत पर भजन में लीन थे। उत्कल देश के रहने वाले इस महा वैष्णव के आशीर्वाद के लिए देश के विभिन्न भागों से गौड़ीय वैष्णव आ रहे थे। उसी दिन भगवानदास ने भी इन्हीं महापुरुष के चरणों में आश्रय ग्रहण कर उनके हाथों से 'भेक' ग्रहण किया। इसके बाद गुरु के आश्रय में बहुत दिनों तक रहकर निगूढ़ साधना की। विविध भक्ति-शास्त्रों का अध्ययन किया। फिर गुरुकृष्णदास बाबाजी के आदेशानुसार वर्द्धमान के अम्बिका-कालूना में वास करने लगे। वहीं वैष्णव-साधना प्रसिद्ध श्री नाम ब्रह्म 'विग्रह की सेवा' प्रकट हुई।

यही उत्कलीय वैष्णव काल-क्रम से गौड़ीय भक्त और साधक समाज में एक महासमर्थ आचार्य के रूप में प्रसिद्ध हुए। आपकी कीर्ति दूर-दूर तक फैली।

बाबाजी रामानुगा साधना को निगूढ़ तत्त्व की जानकारी उसी शिष्य को देते जो उनकी परीक्षा पर खरा उतरता। इस साधना की जो सिद्धि उन्हें मिली थी उसे अपनी सत्ता के गम्भीर स्तर में बिना प्रयास के ही संगोपित रख सकते थे।

उच्छ्वास और भावावेग-वर्जित सदा गम्भीर-मूर्ति वैष्णव ने समकालीन भक्त-समाज में श्रद्धा का स्थान बना लिया था।

श्री मन्दिर के भोग एवं आरती के बाद बाबाजी के लिए महाप्रसाद लाया जाता लेकिन वे इसे पहले स्पर्श नहीं करते। एक पुराने सर्प की प्रतीक्षा करते। सर्प आकर प्रसाद का कुछ अंश ग्रहण करते, उसके बाद ही बाबाजी प्रसाद ग्रहण करते। कोई नहीं जानता था कि सर्प कहाँ से आता है। एक दिन एक भक्त ने इस सर्प को लाठी पर उठा कर सहन के सिरे पर फेंक दिया। बाबाजी यह सुन कर बहुत दु:खी हुए। उन्होंने भक्त को बुलाकर कहा, ''वह मेरे नाम ब्रह्म के बड़े भाई अनंतदेव हैं। तुमने आज उनके साथ ऐसा निष्ठुर व्यवहार किया।'' बाबाजी ने उस भक्त को तुरन्त आश्रम से निकाल दिया।

भजन-सिद्ध महासाधक बाबाजी एकान्त निष्ठा के साथ अपने इष्टदेव की आराधना में संलग्न रहते। जिस दिन भजन का सम्यक स्फुरण न होता उस दिन भोजन नहीं ग्रहण करते। कभी-कभी आहार के बिना तीन-चार दिन भी बीत जाते। कभी-कभी भंजन के फल से आनंदानुभूति के कारण आहार की खोज में एक बालक की तरह निकल पड़ते। किसी दिन देर रात्रि में आहार की इच्छा कर बैठते। भक्तगण दौड़ कर बाजार से मिष्ठान्न लाते तब वे सन्तुष्ट होते। बाबाजी श्री विग्रह के चरणामृत का छींटा देकर बाजार से लाई गई भोजन-सामग्री को शुद्ध करके ग्रहण करते।

बाबाजी की श्रद्धा-भक्ति और सरलता अतुलनीय थी। एक बार प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी बाबाजी का दर्शन करने के लिए कालूना पधारे। गोस्वामीजी ब्रह्म समाज के एक विशिष्ट आचार्य थे। विजयकृष्ण का परिचय पाते ही बाबाजी ने उन्हें साष्टांग दण्डवत किया। गोस्वामीजी उनके परमाराध्य श्री अद्वैत के वंशोद्भव थे।

गोस्वामीजी सफर से थके और प्यासे आए थे। आश्रम में प्रवेश करते ही उन्होंने एक भक्त से जल माँगा। बाबाजी स्वयं बाहर आए और अपना कमण्डल अच्छी तरह धो-माँज कर स्वयं जल ले गए। बाबाजी के इस आचरण को देखकर गोस्वामीजी भौंचक रह गए। सरल भाषा में उन्होंने कहा, ''बाबा, मैं ब्राह्म हूँ, मुझे अपने कमण्डल में जल पीने के लिए न दें। ब्राह्म होने के अलावा मैं जाति-भेद नहीं मानता। जिसका-तिसका छुआ भात खाता फिरता हूँ।'' बाबाजी हाथ जोड़कर गोस्वामीजी के समक्ष खड़े हो गए। मुस्कराते हुए बोले, ''प्रभु, जाति-बुद्धि और भेद-बुद्धि रहते क्या कभी भक्ति देवी की कृपा होती है? आप इस आश्रम की और परीक्षा न लें, कृपा कर पानी पीएँ।'' प्रभुपाद के जल ग्रहण करने के बाद बाबाजी ने कमण्डल माथे से लगाया और उसमें बचा जल खुद पी गए।

उस समय आश्रम में कई व्यक्ति उपस्थित थे। उनमें से एक ने इस कार्य की आलोचना कर दी, ''देखता हूँ कि गोस्वामीजी ने ब्राह्मण संतान होकर भी यज्ञोपवीत का त्याग कर दिया है।'' इस पर बाबाजी ने विनती की, ''बाबा, ऐसी बात कभी मुँह से मत निकालना। जानते हो, मेरे अद्वैत प्रभु की देह में भी कभी जनेऊ नहीं रहता था। जरा देखो तो मेरे श्री अद्वैत की संतान की कैसी महिमा है। ब्रह्म समाज में प्रवेश किया है, परन्तु वहाँ भी आचार्य होकर ही बैठे हैं।''

इस पर आलोचक व्यक्ति ने विद्रूपता से कहा, ''कैसे आचार्य हैं, यह तो दिखाई ही पड़ रहा है। कोट-जूता पहनने वाले आधुनिक आचार्य।'' इस कटु बात से बाबाजी की आँखों में आँसू भर आए। दुःखी होकर बोले, ''ऐसा कहना महा अपराध है, बाबा। अपने प्रभु को अच्छी तरह सजा-सँवार कर रखना तो हमलोगों का ही कर्तव्य है, परन्तु हमलोग कैसे अभागे हैं कि कुछ भी नहीं कर पाते। इतने पर भी उन्होंने अपने प्रयोजन के अनुसार कुछ संग्रह कर लिया है तो उसे देखकर जो हम लोग थोड़ा आनंदित होते, यह सौभाग्य भी हमें नहीं प्राप्त है।'' आलोचक का सिर उसी क्षण लज्जा से झुक गया।

कालूना आश्रम में बाबाजी ने एक बिल्ली भी पाल रखी थी। वह प्रतिदिन प्रसाद का एक अंश ग्रहण करती। बाबाजी को जिस दिन भोजन में विलम्ब होता उस दिन वह बिल्ली चिल्लाती हुई उनके चारों ओर चक्कर लगाती। बाबाजी की थाली का ढक्कन हटते ही बिल्ली खूब प्रसन्न होती और अपना हिस्सा खाकर हट जाती। उसके बाद बचा हुआ भोजन बाबाजी अपनी सुविधानुसार ग्रहण करते।

परमसिद्ध भगवानदास बाबाजी का यश दूर-दूर तक फैल चुका था। रामानुगा भजन के निगूढ़ धारापक्ष का अनुगमन करके ही बाबाजी की साधना आगे बढ़ रही थी। किन्तु बाबाजी के बाह्यावरण को भेद कर उनके इस मधुर स्वरूप का दर्शन करने का सौभाग्य विरलों को ही प्राप्त होता। मधुर रस से आच्छादित भजन के भावोच्छ्वास को सुसंयत कर सकने की शक्ति बाबाजी महाराज के जीवन में अत्यन्त सहज हो गई थी। यही थी उनके साधक जीवन की चरम विशिष्टता।

एक बार आश्रम से श्री नाम ब्रह्म के कई कीमती आभूषणों की चोरी हो गई। यह कुकृत्य विग्रह के ब्राह्मण पुजारी ने ही किया था और आभूषणों की चोरी करके भाग गया था। इस खबर को सुनते ही कालूना के सामाजिक जीवन में एक भूचाल आ गया। उत्तेजित भक्तगण पुलिस की सहायता लेना चाहते थे। किन्तु बाबाजी इससे असहमत थे। वे मुस्कराते हुए कहते, ''आहा! तुम लोग इतने परेशान क्यों हो रहे हो? हो सकता है, श्री नाम ब्रह्म की इस समय आभूषण पहनने की इच्छा न हो। इसलिए उन्होंने पुजारी को यह सब ले जाने दिया है। अच्छा, अभी कुछ दिन ऐसे ही रहें न!''

इस घटना के कई महीने बाद वही पुजारी एक दिन प्रातः आश्रम में उपस्थित हो गया। उसके पास एक पोटली थी जिसमें वे सभी आभूषण बँधे थे जिन्हें वह चुरा कर ले गया था। बाबाजी के समक्ष वह पोटली रखने के बाद पुजारी रोने लगा। उसने स्वीकार किया, ''लोभ में पड़कर ही श्री नाम ब्रह्म के इन सभी आभूषणों को लेकर मैं भाग निकला था। किन्तु इन्हें तोड़ने के लिए मन राजी नहीं हुआ। अनुताप और प्राण की अशांति से इतने दिनों तक मैंने भयंकर कष्ट सहा है। इसलिए इन गहनों को लौटा लाया हूँ। बाबा, आप मुझे क्षमा करें।''

बाबाजी ने उस ब्राह्मण को आश्वस्त करने के बाद भक्तों से कहा, ''यह देखो ठाकुर का नया खेल! श्री नाम ब्रह्म की फिर आभूषण पहनने की इच्छा हुई। तभी तो स्वयं ही फिर उन सबों को मँगा लिया है। छिछोरा-छिछोरा। चिर दिन का छिछोरा। कब उसकी इच्छा क्या होगी, कोई नहीं जानता। जाओ, फिर सब गहने पहना दो।'' बाबाजी ने उस ब्राह्मण को फिर पुजारी पद पर बहाल कर दिया।

एक बार आश्रम में विष्णुदास नामक शिष्य बीमार पड़ गए। रोग बढ़ता जा रहा था। एक दिन बाबाजी ने बुलाकर कहा, ''ओरे विष्णुदास, तुम्हारा ज्वर तो जा नहीं रहा है, डॉक्टर को दिखाकर कोई दवा लाओ न।''

''जी, औषध-वौषध क्यों लाऊँ? श्री नाम ब्रह्म से ही अच्छा हो जाऊँगा।'' विष्णुदास ने सविनय उत्तर दिया।

बाबाजी आक्रोश में बोल उठे, ''हाँ, तू अभी ही जैसे बड़ा सिद्ध पुरुष हो गया है। श्री नाम ब्रह्म को तुम्हारे लिए डॉक्टर बनाना पड़ेगा। रोग हुआ है, औषधि खाओ, तभी तो रोग छूटेगा! यह सब प्रायश्चित्त के अन्दर है, इसे जान रखो। जो सब कर्तव्य तुम्हारे करने के हैं, उनका मार श्री नाम ब्रह्म पर क्यों छोड़ेगा, बता तो सुनूँ?''

विष्णुदास को गुरुदेव के निर्देशानुसार आलम्ब वैद्य की औषधि खानी पड़ी और वह बहुत जल्द ही स्वस्थ हो गए।

एक बार बाबाजी के मन में आया कि वह श्री नाम ब्रह्म के आँगन के सामने तालाब खुदवाएँगे। जल में एक मंच बनवाएँगे और उस पर बैठकर श्री विग्रह के सामने ध्यान-जप करेंगे। बाबाजी ने दूसरे दिन से ही पोखर के लिए मजदूर लगाने का आदेश दे दिया। भक्तों और शिष्यों ने कार्य शुरू कर दिया। भारी संख्या में मजदूर लगाए गए। शीघ्र ही एक छोटी सी पोखर तैयार हो गई। उसमें बाँस का एक ऊँचा मंच भी बन गया। किन्तु यह सब देखकर बाबाजी बच्चों की तरह भाव-विभोर हो गए। उनका उत्साह देखते ही बनता था। उन्होंने मंच पर चढ़ कर भजन आरम्भ कर दिया। किन्तु एक घटना ऐसी घटी जिसने बाबाजी की सारी परिकल्पना को ही विफल कर दिया। बाबाजी ने कई दिनों तक

इसी मंच पर बैठकर भोजन किया। एक दिन उन्होंने देखा कि बछड़ा फिसल कर जल में गिर गया है। वह सोचने लगे, इस स्थान पर क्या गो-वध होगा? बाबाजी जोर-जोर से चीखने लगे। उनकी आवाज सुनकर भक्तगण इकट्ठा हुए और बछड़ा जल में से बाहर निकाला गया। इस तरह उस जीव की प्राण-रक्षा हुई। किन्तु बाबाजी ने इस तालाब को पटवा देने का निश्चय कर लिया। उन्होंने तुरन्त भक्तों से कहा, "ओरे, अब मैं इस पोखर में बैठकर भजन नहीं करूँगा। तुम लोग इसे अभी भर दो, अंत में क्या मुझे गो-वध के पाप में लिप्त होना है?" आनन-फानन में वह तालाब भर दिया गया।

आश्रम में रसोई बनाने के लिए लकड़ी खरीदी जाती। बाजार में उसका मूल्य तीन आना प्रति बोझा था। बाबाजी एक दिन लकड़ी बेचने वाली एक बुढ़िया को तीन आना देते देख कर वहीं खड़े हो गए। इन्हें ज्ञात हुआ कि बुढ़िया की रोजी यही है और उसे घर में कई प्राणियों का पालन करना पड़ता है। वह सुनते ही बाबाजी आग-बबूला हो गए। बोले, "यह कैसी बात? तीन आने से इसका संसार कैसे चलेगा? इसे इतने लोगों का पालन करना पड़ता है। इसे दो गुना दाम देना होगा।" बुढ़िया को दूने पैसे दिए गए।

उसी समय नवद्वीप धाम के चैतन्यदास बाबाजी भी खूब प्रसिद्ध थे। जब इन दोनों सिद्ध महापुरुषों का मिलन होता तो आनन्द का रस फूट पड़ता। प्रेमलीला और कृत्रिम कोप-प्रकाश से दोनों लोग अद्‌भुत प्रेम-नाटक करते। दोनों विभूतियों का रहन-सहन भिन्न किस्म का होता है। बाबाजी में भाव-गांभीर्य था किन्तु चैतन्यदास सखीवेश, रसानुभूति के उबाल और उन्माद का प्रदर्शन करते। उन्हें देखकर बाबाजी कटाक्ष करते, "छिछोरा, छिछोरा, पूरा-पूरा निर्लज्ज ओ छिछोरे!" फिर भी इन दोनों महात्माओं में अंतरंगता की सीमा नहीं रहती।

एक बार बाबाजी नवद्वीप आश्रम आए। उद्देश्य था, श्रीमान महाप्रभु के मन्दिर में सदा जाग्रत् मोहन मूर्ति का दर्शन करना। इसी बहाने वह चैतन्यदासजी से भेंट भी करना चाहते थे। बाबाजी जब श्री मन्दिर गए तो देखा कि गौर-प्रेमिक सदा भावोन्मत्त चैतन्यदास आँगन में झाड़ू लगा रहे हैं। किन्तु चैतन्यदास ने बाबाजी को देखते ही एक अद्‌भुत आचरण किया। हाथ में झाड़ू उठाए दौड़ते आए भगवानदास बाबाजी के पास और कुपित होकर कहने लगे, "मैं समझता हूँ, तू मेरे प्राण-वल्लभ को ले जाने आज आया है। इसी क्षण बाहर निकल जाओ नहीं तो झाड़ू से मारकर देह तोड़ दूँगा।" उपस्थित भक्त-मण्डली तो चैतन्यदास का यह रूप देखकर अवाक् रह गई। बाबाजी के प्रति ऐसा व्यवहार देख कर सभी लोग क्षुब्ध हो उठे।

लेकिन बाबाजी आँगन में खड़े होकर मधुर मुस्कान बिखेर रहे थे। इसके बाद चैतन्यदास के भाव से भाव-प्रवण होकर वह भी कहने लगे, "अजी, तुम मेरे ऊपर व्यर्थ ही इतना कोप क्यों करते हो ? मैं तो नहीं चाहता कि तुम्हारे प्राण वल्लभ नदिया त्याग करें, किन्तु वह तो चोरी-चोरी कालूना आ जाते हैं। बेहतर हो तुम उनके ऊपर ही ज्यादा नजर रखा करो।"

चैतन्यदास का अभिमान बाबाजी की मधुर वाणी सुनकर काफूर हो गया। वे मन्दिर में घुसे और दरवाजा अंदर से बन्द कर लिया। बाहर खड़े लोगों को केवल चैतन्यदास के आर्तनाद सुनाई पड़ रहे थे। कुछ देर बाद चैतन्यदास जब मन्दिर के बाहर निकले तो बिल्कुल सहज लग रहे थे। वे बाबाजी का हाथ पकड़ कर मन्दिर के भीतर ले गए। दो महाप्रेमियों के आनन्द और भाव-विह्वल नर्तन से वहाँ प्रेम की धारा प्रवाहित हो गई।

बाबाजी के आचरण में रसावेश बहुत कम देखा जाता। रागानुगा भजन के वे एक सिद्ध साधक थे, किन्तु प्रेमोच्छल की रसधारा उनके बाह्य जीवन में बहुत कम दिखाई पड़ती थी। इस अंतर्मुखी प्रेम-प्रवाह को भगवानदास बाबाजी अपने भाग्यवान शिष्यों के साधक जीवन में सहज ही संचारित कर सकते थे। परन्तु निगूढ़ प्रेम-रस की इस धारा को धारण करना सभी के लिए सहज-साध्य नहीं था। इसी तरह कुछ चुने हुए शिष्य गण ही इस परमवस्तु को प्राप्त कर सके। वैष्णव साधना के बहिरंग ज्ञान में भी बाबाजी का अवदान कम नहीं था। भजन और सेवा से आदर्श को महिमा से भरकर वे सारे प्रदेश में फैल गए। परिणत वपस में नित्य लीला में प्रविष्ट न होने के बावजूद उनके इस व्रत में किसी दिन त्रुटि नहीं हुई।

अलौकिक सिद्धि के बावजूद बाबाजी उसका प्रदर्शन या इस्तेमाल आमतौर पर नहीं करते थे। भक्तों और शिष्यों को भी अपने जीवन में अकपट भजन, निष्ठा और स्वाभाविक शुद्धाचारी जीवन के आदर्श को रूपायित करने पर ही ज्यादा जोर देते। शिष्यों के द्वारा किसी लौकिक कर्तव्य या सामाजिक आचार का उल्लंघन वह कभी पसन्द नहीं करते। भाव-भण्डार से चोरी करने वाले दुर्बल साधक को बाबाजी का कठोर शासन और निर्मम आघात सहना पड़ता। जैसे विष्णुदास की बीमारी के मामले में हुआ। बाबाजी चाहते तो अपने अलौकिक प्रभाव से उन्हें तुरन्त रोगमुक्त कर सकते थे किन्तु उन्हें लौकिकता का आश्रय लेने के लिए विवश किया। उन्हें वैद्य के यहाँ जाना पड़ा और उसी की दवा से वे ठीक हुए लेकिन बाबाजी का आशीर्वाद तो साथ था ही।

●

हंस बाबा अवधूत

शिवरात्रि का दिन था। दिन भर भजन-कीर्तन और इसके बाद ब्रह्मसूत्र का पाठ करने के बाद स्वामी अनुभवदेव अपनी साधन-कुटी में जाकर बैठे ही थे कि एक बालक उन्हें साष्टांग दण्डवत किया। अलौकिक आभा से प्रदीप्त मुखमण्डल वाले इस बालक को देखकर स्वामीजी पुलकित हो उठे। बालक से पूछा, ''तुम्हारा घर कहाँ पर है ? तुम्हारे साथ किसी को भेज दूँ?''

''महाराज, उसकी जरूरत नहीं है। मैं सब दिन के लिए घर-बार छोड़कर यहाँ चला आया हूँ। आपके आश्रम में ही शरण पाना चाहता हूँ।'' बालक ने व्यग्र कण्ठ से उत्तर दिया।

स्वामीजी ने सोचा था कि रात ज्यादा चली गई है। चारों ओर जंगल और अंधेरा है, इसलिए इस बालक को अब अपने घर चले जाना चाहिए। लेकिन उसका उत्तर सुनकर स्तब्ध रह गए। उनकी भौंहों पर बल पड़ गए। बोले, ''बेटा, क्या तुम माँ-बाप से झगड़ आए हो ? तुम्हें पढ़ना-लिखना अच्छा नहीं लगता। साफ-साफ बताओ।''

''महाराज, ऐसा कुछ नहीं है। मैं साधु बनना चाहता हूँ। शिवजी के चरणों में सदा के लिए उत्सर्ग कर दूँगा। आप मुझ पर कृपा करें। अपनी शरण में आश्रय दें।'' बालक ने अनुनय करते हुए कहा।

अनुभवदेव इस बालक की ओर अपलक निहारते रहे। समझ गए कि पूर्वजन्म का सात्विक संस्कार प्रबल है। वही संस्कार बालक को घर से निकाल लाया है और इसके भीतर आध्यात्मिक भाव भर गया है। इसे यूँ ही नहीं छोड़ा जा सकता।

''बेटा, तुम्हारी उम्र कितनी है ?'' स्वामीजी ने पूछा।

''बारह साल।'' बालक ने उत्तर दिया।

''इस उम्र में संन्यासी बनने की बात तुम्हारे मन में कैसे आई ?'' स्वामीजी का अगला प्रश्न था।

''महाराज, मैंने आपके बारे में अनेक बातें सुन रखी हैं। एक दिन मेरे घर एक संन्यासी आए थे। उन्होंने बताया कि अमृतसर के वेदान्ती साधु अनुभवदेव की कोई तुलना नहीं है। सम्पूर्ण पंजाब के गौरव हैं। उनकी बात सुनकर मेरे मन में आपके प्रति श्रद्धा उमड़ आई। उसके बाद शरीर पर जो कपड़ा था उसी में मैं

घर से निकल पड़ा और आपके चरणों में आश्रय पाने के लिए पैदल ही चला आया।'' बालक ने कहा।

''देखो बेटा, साधु का एक ही लक्ष्य रहता है ईश्वर की प्राप्ति। इसके लिए सभी तरह के सुखों का विसर्जन करना पड़ता है। देहबोध, अहंबोध सभी को उखाड़ फेंकना पड़ता है। तभी उस परम रस में अपने को मिला देने का अधिकार मिलता है। तुम बच्चे हो। इन सब बातों को अभी समझ नहीं पाओगे। जब शरीर के तमाम सुख-आराम को छोड़ सको, तभी सच्चे साधु बन सकते हो।'' स्वामीजी ने कहा।

यह बालक अपने संकल्प पर अटल था। जीवन की सारी सुख-सुविधाओं को त्याग कर, परम सुख और परमशांति की प्राप्ति के लिए उसने आश्रम-जीवन ग्रहण कर लिया। चरमकृच्छ साधना, स्वाध्याय और योग-तप के माध्यम से वह अंततः एक महा वेदांती संन्यासी के रूप में विख्यात हुआ। हंसदेव अवधूत के नाम से। संथाल परगना के जसीडीह में स्थित कैलाश पर्वत पर इस सिद्ध महापुरुष का आश्रम स्थापित हुआ। इस आश्रम में सैकड़ों मुमुक्षगण इनका आश्रय पाकर धन्य हुए।

हंस बाबा का आविर्भाव उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में पंजाब की एक छोटी-सी बस्ती में हुआ। एक उच्च ब्राह्मण कुल में इन्होंने जन्म लिया। माता-पिता सात्विक प्रवृत्ति के थे। आर्थिक स्थिति ज्यादा अच्छी नहीं थी लेकिन घर पर प्रायः साधु-संतों का आगमन होता रहता था। इन साधु-संतों से बालक हंसदेव को प्रायः आध्यात्मिक कहानियाँ सुनने को मिलतीं, और उसका मन इन कहानियों में रमा रहता।

उन दिनों समाज में साधु-संतों के प्रति आदर-भाव कुछ ज्यादा ही रहता था। हंस बाबा कभी-कभी बताते, ''देखो, पिछले जमाने में हम लोगों का ग्राम-जीवन इन दिनों जैसा नहीं था। अपनी ही समस्या को केन्द्रित करके समाज-जीवन नहीं चलता था। गाँवों में खाद्य-सामग्री प्रचुर मात्रा में थी। सभी लोग भौतिकता से अधिक आध्यात्मिकता का ध्यान रखते। लोगों में साधु-सेवा और परोपकार-वृत्ति प्रमुख थी। पंजाब के हर गाँव में गृहस्थ लोग अपने दैनिक प्रयोजन के अतिरिक्त तीन अंश और रोटियाँ प्रस्तुत करते। पहला साधुओं के लिए, दूसस अतिथि अभ्यागत के लिए और तीसरा धर्मशाला में आने वाले व्यक्तियों के लिए तैयार रख छोड़ा जाता था। ऐसे वातावरण में हम लोग पैदा हुए। इसलिए बचपन से ही सात्विक भावना की ओर झुकाव होना स्वाभाविक था।''

हंस बाबा बताते—''गाँव के मध्य में एक विशाल बरगद का पेड़ था। इसी के नीचे नागा संन्यासियों की छावनी लगती थी। एक आकर्षण से मैं इस नग्न संसार से विरक्त साधुओं की ओर खिंचता चला जाता। बड़े उत्साह से उन

लोगों की गाँजे और चरस की चिलम भरने लगता। गाँव में घर-घर जाकर वहाँ से दल-पूड़ियाँ, साग-भाजी, हुलुए आदि ला-लाकर उन लोगों को खिलाता-पिलाता। इससे मुझे काफी आत्मिक सुख और परितोष मिलता। सर्वत्यागी, ईश्वरीय पथ के पथिक इन साधकों की ओर ध्यान लगाए रहता और उस समय मुझे गाँव-घर किसी की सुध नहीं रहती। ऐसे ही अवसर पर किसी समय मैंने किसी संन्यासी से अमृतसर के निकट ब्रह्मज्ञानी महापुरुष अनुभवदेव की चर्चा सुनी। दूसरे ही दिन उनकी खोज में निकल पड़ा। फिर उस आश्रम में उपस्थित हुआ। मुझे भाग्य ने महात्माजी के चरण का आश्रय दिला दिया।''

अनुभवदेव के आश्रम में बालक हंसदेव को अनेक जिम्मेदारी निभानी पड़ती थी। विग्रह मूर्ति का पूजन-अर्चन, अभ्यागतों की सेवा के अलावा आश्रम के भक्तगणों के लिए भोजन की तैयारी करनी पड़ती थी। आश्रम में सैकड़ों गाय-भैसें थीं, सबकी देखभाल काफी कष्टकर थी।

ब्रह्म-मुहूर्त से ही शुरू हो जाती थी बाल ब्रह्मचारी की दिनचर्या। ध्यान-जप तथा स्वाध्याय के बाद जंगल में पशुओं को चराने के लिए निकल जाता। शाम को लौटने के बाद भोजन पकाना पड़ता। फिर खाने-पीने के बाद बर्तन-भाड़े साफ करने पड़ते। रात में साधन-भजन और आश्रम के काम पूरे कर जब सोने के लिए जाता तो अंग-अंग पीड़ा से भरा होता।

इस प्रकार श्रम-साधना में पता नहीं कितने वर्ष बीत गए। एक दिन आचार्य ने बुलाकर कहा—''वत्स, आश्रम के काम में इतने दिनों तक तुमने जो प्राणपात परिश्रम किया उससे मैं प्रसन्न हुआ। अब से तुम वेदांत का पाठ ग्रहण करोगे। पंडित काला सिंह इस अंचल के वेदान्तियों में अग्रगण्य हैं और मेरे अत्यन्त अनुगत हैं। वह तुम्हें ज्ञान-दर्शन की उच्चतम शिक्षा देंगे। तुम उन्हें शिक्षा-गुरु के रूप में वरण करो, ज्ञानमार्गीय साधना की भित्ति को और सुदृढ़ कर लो।''

आचार्य ने पंडित काला सिंह के नाम एक पत्र दिया। उसे लेकर हंसदेव उनके पास गए। उन्होंने स्नेह से आश्रय दिया। हंस बाबा ने उनके सान्निध्य में रहकर कई वर्षों तक वेदान्त की शिक्षा ग्रहण की और वेदान्त के जटिल तत्वों को हृदयंगम करने में समर्थ हुए।

इसी बीच एक दिन महात्मा अनुभवदेव का तिरोधान हो गया। हंसदेव अधीर हो उठे। सोचने लगे, अब उनका मार्ग-दर्शन कौन करेगा? मुमुक्षा की जो आग अन्दर धधक रही थी, उस पर अमृत की वर्षा कौन करेगा? वे उद्विग्न हो उठे और निकल पड़े ज्ञान की खोज में। अनेक मठों, मन्दिरों और तीर्थ-स्थलों में भटकते रहे। एक दिन उन्हें निर्वाणी अखाड़े में हीरानन्द अवधूत के दर्शन हुए।

इन्हीं महात्मा ने उन्हें संन्यास-दीक्षा दी। इसके बाद उनका नाम रखा गया हंसराज अवधूत। बाद में वे हंस बाबा के नाम से प्रसिद्ध हुए।

महात्मा हीरानन्द एक सिद्ध महात्मा थे। साधना, त्याग और वैराग्य के मूर्तिमान विग्रह ? हंस बाबा से उन्होंने कहा, ''बेटा, यह बड़े हर्ष की बात रही कि तुमने इतने दिनों तक निष्ठापूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन किया है। अब तुम निवृत्ति मार्ग पर आरूढ़ हुए हो। अब परिव्राजक के रूप में बारह वर्षों तक घूमने निकलो। किन्तु तुम्हें इस दौरान दो नियमों का पालन करना होगा। कभी किसी गृहस्थ के यहाँ रात्रिवास नहीं करना और अयाचकता का व्रत पालन करते रहना। अपने आप जो भोजन मिल जाय उसी पर जीवन-निर्वाह करना। बेटा, हमेशा याद रखना कि तुम्हारी परम-प्राप्ति वैराग्य-साधना पर ही निर्भर है। चरम कृच्छ्रव्रत का अवलम्बन किए रहो और देह बुद्धि को विसर्जित करने के लिए सर्वस्व न्योछावर कर दो। आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारी साधना सफल होकर रहेगी, आत्मज्ञान से तुम्हारी हृदय-कंदरा उद्भासित हो उठेगी।''

गुरु के वचनों को शिरोधार्य कर हंस बाबा परिव्राजक के रूप में निकल पड़े। गुरु के निर्देशों का बड़ी ही कड़ाई से पालन किया। उन दिोनं कौपीनधारी, तितिक्षामय इस संन्यासी के हाथ में कमण्डल तक नहीं था। जिस मिट्टी के बर्तन में वे पानी पीते, उसका इस्तेमाल दूसरे दिन नहीं करते।

हिमालय की उपत्यका में भयानक ठंड सहे। इस कालावधि के दौरान की कृच्छ्रसाधना के प्रसंग में वे कहा करते—''हमारे गुरु महाराज अत्यन्त कृपालु थे। देहबोध को विनष्ट करने के लिए उन्होंने मेरी कठिन परीक्षा ली। अत्यन्त कठिन परिस्थितियों के बीच से वे मुझे बाहर निकाल लेते। कौपीन-मात्र धारण करके मैंने उत्तराखण्ड में अनेक बार भ्रमण किया। जब हिमपात तेज होता, बाहर रहना असंभव हो जाता तब भी भ्रूक्षेप नहीं करता। किसी-किसी दिन पेड़ के नीचे पत्तों के ढेर पर सोना पड़ता। सिरहाने मिट्टी के पात्र में जल रखा रहता, वह रात में जमकर बिल्कुल बर्फ हो जाता। कड़ाके की ठंड भी मेरी नींद में बाधा नहीं पहुँचा सकती थी। महीने-महीने भर बर्फीले पहाड़ पर वास करने के कारण शरीर के चमड़े एकदम चिभरे और बदरंग हो जाते। मैदान में रहने वालों को हठात् मुझे देखकर मनुष्य कहने में भी हिचक होती।''

गुरु के आदेश से हंस बाबा ने बारह वर्ष तक वैरागी के रूप में परिव्राजक जीवन बिताए। एक दिन भी अपने हाथ का पका भोजन नहीं ग्रहण किया। बिना माँगे जो भिक्षा मिलती, उसी पर जीवन गुजारते। 'हरिहर' की आवाज लगाकर हंस बाबा गृहस्थ के घर प्रतिदिन एक बार उपस्थित होते। कभी कुछ खाने को मिल जाता, कभी भर्त्सना और व्यंग्यवाण मिलते। किन्तु उस तितिक्षावान् संन्यासी के लिए निन्दा और स्तुति में कोई फर्क नहीं था। कोई सांसारिक आचार उन्हें

प्रभावित नहीं कर सका। विश्व के सारे पदार्थ उनके लिए विनाशशील, प्रपंच और माया मात्र थे। उन्हें अनेक बार हिंसक पशुओं के सामने से गुजरना पड़ा। किन्तु इस तपोनिष्ठ साधक के प्राणों की रक्षा अलौकिक भाव से सम्पन्न होती रहती।

एक बार हंस बाबा नंदा देवी पर्वत पर घूम रहे थे। वहीं जंगल के बीच उन्हें एक पर्णकुटी मिल गई। किसी साधु द्वारा बनाकर छोड़ी गई थी। उस पर्णकुटी में रहकर हंस बाबा काफी दिनों तक ध्यान में लीन रहे। ठंड, वर्षा और गर्मी उन्हें प्रभावित नहीं कर पाई। वे अविचल साधना में लीन रहे।

उस समय हंस बाबा की अवस्था 'गुजर गई गुजरान, क्या झोपड़ी क्या मैदान' वाली थी। प्रायः आकाश के नीचे ही उनकी रातें बीततीं। पेड़ के नीचे सूखे पत्तों पर सोकर रातें गुजारते। हिंसक पशुओं का आतंक जहाँ होता, वहाँ पेड़ की डाल पर सोकर रात बिताते। नीचे घास-फूंस की धूनी जलती रहती। इसी तरह ब्रह्माभ्यास का अनुष्ठान चलता रहता।

हिमालय से लेकर सागर तक जितने तीर्थस्थल थे, हंस बाबा ने सबकी प्रदक्षिणा पूरी की। एक बार घूमते-घामते वे अफगानिस्तान पहुँच गए। काबुल से कुछ दूर एक निर्जन पहाड़ी पर उनका मन रम गया। उनकी ख्याति शीघ्र ही चारों ओर फैल गई। दूर-दूर से आकर अफगानी लोग उनका दर्शन करके स्वयं को धन्य समझते। अखरोट, बादाम, किसमिस आदि की भेंट चढ़ाते। बहुत से दुःखीजन बाबा की करुणाधारा में तृप्त होने लगे। लोगों की मुरादें पूरी होतीं। किन्तु दर्शनार्थियों के लगातार बढ़ते जाने से बाबा की साधना में व्यवधान पड़ने लगा। अतएव यहाँ लगभग डेढ़ साल के बाद बाबा ने अचानक वह स्थान छोड़ दिया।

लम्बी राह तय करने के बाद वे फिर हिमालय आ गए। हिमालय और पवित्र नर्मदा नदी का तट हंस बाबा के प्रिय स्थान रहे। इन दोनों स्थानों में उन्होंने घोर तपस्या की। कुछ दिन तराई अंचल में भ्रमण किया। इस स्थान में बाघों का बड़ा उपद्रव था। एक दिन जब ध्यान-भजन के बाद हंस बाबा ने खिड़की खोली तो देखा कि एक नरभक्षी बाघ आँगन में आकर बैठा है। उसे मनुष्य-गंध लग चुकी थी। इसलिए चुपचाप बैठकर प्रतीक्षा कर रहा था। हंस बाबा ने सोचा, जिस परमात्मा का ध्यान उनके अंतर में चल रहा है, इस बाघ की प्राण-शक्ति भी उसी का अनुकर्षण जारी है। फिर दोनों में भेदभाव कहाँ। मन में यह विचार कौंधते ही एकाएक उन्होंने घर का द्वार खोल दिया। हंस बाबा ने बाघ के सम्मुख आकर दोनों हाथ जोड़ लिये और कहा, ''महात्मन्, हमारे और आपके भीतर वास्तव में भेद नहीं है। एक ही परमात्मा दो भिन्न शरीरों में स्पंदित हो रहे हैं। फिर हम दोनों के बीच बैर-भाव रहे, इसका तो कोई कारण नहीं?'' हंस बाबा की बातें सुनकर उक्त नरभक्षी बाघ शांतचित्त होकर उठा और धीरे-धीरे चला गया जंगल की ओर।

एक बार कुछ संन्यासियों के साथ हंस बाबा मध्य प्रदेश के घने जंगल से होकर जा रहे थे। अचानक एक भारी-भरकम बाघ सामने आ गया। उस समय दल का एक वृद्ध संन्यासी जाकर बाघ के सामने खड़ा हो गया और कहा, ''भाई रे, शान्त रहना। यह देख, तेरे खाने के लिए मैंने अपने को तेरे आगे उत्सर्ग कर दिया है। मैं बूढ़ा हो चला, अब कितने दिन शेष रह गए हैं, इस जीवन के? मुझे ग्रहण कर ले और मेरे साथियों को छोड़ दे।'' बाघ का गुर्राना बंद हो गया। उसने सहज ही प्राप्त इस शिकार की परवाह नहीं की। संन्यासी की ओर एक क्षण देखा, फिर जंगल में चला गया।

एक बार वे संन्यासियों के साथ कामाख्या पर्वत पर पहुँचे। दिन भर की यात्रा और ऊपर से पहाड़ की चढ़ाई। सभी थककर चूर हो गए। फिर भी वे रात में देवी के दर्शन के बाद लौटकर जो थोड़ा फलफूल मिला उसी से उन लोगों का भोज़न सम्पन्न हुआ। उसके बाद एक पेड़ के नीचे सभी ने विश्राम किया। अभी नींद भी नहीं आई थी कि एक बाघ आकर खड़ा हो गया। उन दिनों में इस इलाके में बाघ का बहुत ही उपद्रव था। बिना आग जलाए कोई बाहर नहीं रह सकता था। लोग इतना थक गए थे कि किसी को आग जलाने की सुध ही नहीं रही। सभी ने जल्दी से कम्बल तान लिया था। बाघ संन्यासियों की शैया के समीप घात लगाकर बैठ गया। साथियों में से किसी की दृष्टि उस बाघ पर पड़ी। वह चीख पड़ा, ''महाराज, जरा एक बार उठकर देखिए तो। एक शेर आ पहुँचा है। एकदम जमात के बीच घुस गया है।''

दल के मुखिया संन्यासी ने सोए हुए ही कहा, ''आने दो भाई, उनके साथ बातचीत करने की अभी फुरसत नहीं है। अभी जमात में ही उनकी भर्ती कर लो।''

सभी संन्यासी मुखिया की बात सुनकर जड़वत लेटे रहे। अचानक बाघ को सद्‌बुद्धि आई और वह एक छलाँग लगाकर सामने के गड्ढे को पार करते हुए कहीं अदृश्य हो गया। थोड़ी ही देर में खर्राटे लेते हुए सभी संन्यासी नींद में डूब गए।

इस प्रकार घूमते हुए हंस बाबा का मन अध्यात्म में रमता गया।

हिमालय की तराई में हंस बाबा पर्यटन को निकले थे। इस समय एक उच्चपदस्थ अधिकारी उनका भक्त था। हंस बाबा के कष्ट को देखकर भक्त ने कहा, ''महाराज, मैंने आपके लिए तम्बू की व्यवस्था कर दी है। जितने दिन आप इस इलाके में परिभ्रमण करें, इसका उपयोग करते रहें। यहाँ से जाने के बाद आप इसे लौटा दीजिएगा। इसमें कोई नुकसान नहीं।''

''नहीं बाबा, मैं जंगली आदमी ठहरा। जब इच्छा हुई जंगल-झाड़ी में कहीं ठहर गया। यह सरकारी तम्बू कहीं भुला जाए तो एक और आफत खड़ी हो जाएगी। इससे मेरा काम नहीं चलने का।'' हंस बाबा ने विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया।

''इसके लिए आपको चिन्ता नहीं करनी महाराज! मैं अपना एक आदमी आपके साथ लगा देता हूँ, वह तम्बू की देखभाल करेगा। आपको मेरी यह व्यवस्था अंगीकार करनी पड़ेगी नहीं तो मुझे ही आपके साथ चलना पड़ेगा।''

इस अधिकारी के हठ के आगे बाबा को झुकना पड़ा। उन्होंने आगे की यात्रा में तम्बू साथ ले लिया। एक चौकीदार भी उनके साथ लगा दिया गया।

बाबा रात के समय अपने सोने के घर में किसी को फटकने नहीं देते। इसका कारण यह था कि रात में वे अनेक प्रकार की योग-क्रिया करते। इस बार वह सरकारी चौकीदार को साथ लेकर वह बड़ी विपत्ति में पड़े। वह व्यक्ति रात में तम्बू के बाहर रहने के लिए राजी नहीं होता। उसे हिंसक पशुओं से डर लगता रहता। अन्ततः बाबा को सोने की व्यवस्था बदलनी पड़ी। चौकीदार को उन्होंने तम्बू में सुलाया और खुद पेड़ के नीचे सोने लगे। जब वे लौट कर उस अधिकारी के पास आए तो यह बात छिपा ली, क्योंकि इसकी जानकारी अधिकारी को होने का मतलब था चौकीदार पर विपत्ति का आना। बाबा के भीतर मानवता की भावना जो शुरू थी, उसका निर्वाह वह जीवन भर करते रहे।

निरंतर बारह वर्षों तक परिव्राजक के रूप में बाबा ने बिताए। उसी के साथ चरम कृच्छ्रव्रत और वैराग्य तपस्या का उद्यापन उन्होंने सम्पन्न किया।

यह अवधि समाप्त कर बाबा स्वामी हीरानन्द अवधूत के पास लौट कर आए। इस बार गुरुजी के सान्निध्य में रहकर उन्होंने ब्रह्म साधना का अभ्यास किया। उनकी साधना-सत्ता में परमात्मबोध स्फुटित हो उठा।

स्वामी हीरानन्द अवधूत ने कहा, ''वत्स, तुम अब आप्तकाम हो चुके। सर्वपाशविमुक्त होकर तुम अब अवधूत हो। इस बार बंधन में पड़े जीवों के कल्याण की साधना में तुम्हें कुछ काम करना पड़ेगा। अब तुम आचार्य जीवन आरम्भ करो।''

गुरुजी के चरणों की धूल माथे लगाकर हंस बाबा निकल पड़े और अनेक स्थानों का भ्रमण करते हुए संथाल परगना के जसीडीह में आकर आश्रम की स्थापना की।

त्रिकूट पर्वत, तपोवन और दिगुरिया पहाड़ी की लम्बी शृंखला और कुछ दूरी पर परेशनाथ पर्वतमाला। इसी पृष्ठभूमि में जसीडीह के एक भाग में एक छोटी-सी पहाड़ी की चोटी पर हंस बाबा की साधना-स्थली। यहाँ के एकांत वातावरण में बैठकर इस तपस्वी की साधना की कल्याणधारा फूट पड़ी। भक्तों ने श्रद्धा से इस आश्रम का नाम कैलास रखा।

साल के कुछ महीने हंस बाबा यहीं वास करते, शेष समय नर्मदा नदी के किनारे एकांत पर्णकुटी में।

पहले तो आश्रम के नाम पर सिर्फ एक कच्चा घर था। बाबा किसी के साथ एक कुटी में रात्रिवास नहीं करते थे। कभी कोई अभ्यागत आ जाता तो उसके लिए कुटी खाली कर देते। स्वयं आँगन में ही रात बिताते।

शुरुआत में रसोई भी खुले में पकती। वर्षा के दिनों में चूल्हा नहीं जलता। उस दिन बाबा उपवास करते। एक बार बरसात में कुटी का छप्पर बिल्कुल चुने लगा। सारे सामान भींग गए। सारी रात बाबा एक छाते के साये में बैठे रहे। दूसरे दिन एक भक्त महिला वहाँ पहुँची। उसे बाबा की यह स्थिति देखकर बहुत ही कष्ट हुआ। महिला भक्त के आश्चर्य व्यक्त करने पर बाबा ने कहा, ''क्यों माँ, मैंने तो बड़े आनन्द से जगे रह कर रात बिताई है। मेघ-वर्षा ने हमारा क्या बिगाड़ रखा है। हाँ, मेरे शरीर को कुछ कष्ट हुआ हो, परन्तु मैं तो अब शरीर मात्र नहीं रहा।''

इसके बाद भक्त महिला निरुत्तर होकर इस महान तपस्वी की ओर देखती रह गईं।

कुछ वर्षों के भीतर भक्तों के प्रयास से एक दो मंजिला मकान और पक्का कुआँ बनकर तैयार हो गया।

कैलास पहाड़ पर पहले साँप बहुत रहते थे। उस समय हंस बाबा के आश्रम में एक ब्रह्मचारी रहा करते थे। कुछ ही दिनों में वे बाबा के प्रिय पात्र बन गए। रोज देर रात्रि में ब्रह्मचारी बिस्तर छोड़ देते। स्नान एवं संध्यातर्पण कर चुकने के बाद जप-तप एवं ध्यान में मगन हो जाते। एक दिन रात के अंधेरे में एक मील दूर कुतुनिया नदी में स्नान के लिए चल दिए। पहाड़ से आधा रास्ता ही उतर पाये थे कि हंस बाबा की आवाज कान में पड़ी—''ब्रह्मचारी, होशियार।'' ब्रह्मचारी तुरन्त ठिठक कर खड़े हो गए। नीचे धरती पर नजर पड़ी तो उन्होंने देखा कि एक विशाल विषधर फन काढ़े सामने बैठा है। क्रोध में आकर फुफकार रहा है। ब्रह्मचारी उस पर डंडे से वार करना चाहते ही थे कि वाणी सुनाई दी—''अरे! उसे मारना नहीं।'' ब्रह्मचारी की तनी लाठी जस की तस रह गई और ब्रह्मचारी मूर्तिवत खड़े हो गए। थोड़ी ही देर बाद सर्प का गुस्सा शान्त हुआ और वह एक ओर को चला गया। दूसरे दिन ब्रह्मचारी ने इस बारे में जब बाबा से पूछा तो उनका उत्तर था—''हम क्या जानें, यह सब परमात्मा की इच्छा है।'' इस तरह बाबा अपनी अलौकिक शक्तियों से भक्तजनों की रक्षा करते थे।

एक दिन एक भक्त ने उनसे पूछा, ''बाबा, यह तो जंगली भूमि है। इसमें इतने साँप और बाघ बसते हैं, फिर भी आपने इनके बीच क्यों अपना वास-स्थल बनाया है? क्या आपको डर-भय नहीं लगता?''

महापुरुष ने हँसते हुए उत्तर दिया—''वत्स, साँप, बाघ और साधु—ये ही तो वन के असली अधिवासी हैं। फिर हमलोगों को भय करने की बात कैसे उठती है?''

धीरे-धीरे हंस बाबा की कीर्ति फैलने लगी और भक्तों तथा पीड़ित जनों की भीड़ बढ़ती गई। हंस बाबा खुद आयुर्वेद के मर्मज्ञ थे। उस पर से योगशक्ति का प्रभाव। परिणामस्वरूप दूर-दूर से रोगी आश्रम में जुटने लगे। बाबा उनका कल्याण करते रहे। बाबा के श्रीमुख से निकली 'हरिहर' की नामधुनि श्रोताओं पर अमृतवर्षा करती रही। जब कभी कोई आनन्दभरा मंगल-संवाद बताता तो बाबा कहते कि "ओह! हरिहर में मशकूल हो गया।" किसी की मृत्यु की सूचना पर कहते, "उसको हरिहर हो गया।"

हंस बाबा की ऋद्धि-सिद्धि का प्रताप इलाहाबाद के संगम तट पर कुंभ मेले के उनके अखाड़े में देखने को मिलता। मेले में निर्वाणी साधु की गैरिक पताका फहराते हुए वे अपनी महिमा से मंडित हो वह विराजते। बस, दल के दल बंगाली, गुजराती, मराठी आदि देश के विभिन्न क्षेत्रों के भक्त उमड़ आते। ज्ञात-अज्ञात साधु-संन्यासियों की भीड़ जुट जाती। नित्य भण्डारा चलता रहता। 'दीपती भुज्यताम्' का महामहोत्सव लगातार चालू रहता। साधु-संन्यासी जब भिक्षा के लिए पहुँचते, महापुरुष उनकी अगवानी के लिए स्वयं खड़े मिलते। "आओ मेरे नारायण", "आओ मेरे प्राण" कहते हुए उन्हें आदर-सम्मान के साथ भीतर ले जाते। प्रत्येक पंगत में हजार-हजार पत्तल परोसे जाते। रुपए, पैसे, अन्न, घी, आटा इत्यादि कहाँ से आता, कोई नहीं जानता। लोगों के लिए यह विस्मय की चीज थी। लोग इसे बाबा की योग-विभूति का प्रभाव मानते क्योंकि बाबा आश्रम में कभी कुछ जमा नहीं करते।

हंस बाबा से जब इस बारे में प्रश्न किया जाता तो वे हँसते हुए उत्तर देते—"देखो, यहाँ तो जो कुछ चलता है, परमात्मा की इच्छा से ही।"

बाबा अपने इस प्रिय दोहे को बराबर गुनगुनाते रहते—

साईं सबको देत हैं, पोसत हैं दिन-रैन।
लोक नाम मेरे कहे, ताते नीचे नैन॥

अर्थात परमेश्वर ही सबका पोषण करता है, फिर भी लोग घोषित करते हैं कि मैं ही देता हूँ। इसी से मेरी आँखें संकोच से झुकी हैं।

हरिद्वार, नासिक और प्रयाग में कुंभ पर्व के समय हंस बाबा के अखाड़े में अनेक सिद्ध और शक्तिधर संन्यासियों का आगमन होता है। सभी हंस बाबा को ब्रह्मज्ञानी का पद और सम्मान देते।

जसीडीह पहाड़ी पर स्थित बाबा के आश्रम में प्रतिदिन सायंकाल भक्तों की भीड़ एकत्रित होती और बाबा अपने प्रवचन से सभी को कृतार्थ करते। जटिल तत्त्वों की व्याख्या अपूर्व कौशल से महाराजजी किया करते। वेदांत के

गूढ़तम तत्त्वों को सरलता से समझाया करते। इसमें वे मनोरम आख्यानकों का प्रयोग करते। इस महातपस्वी और महान साधक के श्रीमुख से फूटता—

शिवोऽहम्, शुद्धोऽहम् निरञ्जमोऽहम् निर्विकारोऽहम्

त्रिताप से कष्ट जीवन को लेकर जो समस्याएँ लोगों के मन को दुःखी किए रहतीं वे बाबा के आगे निवेदित होतीं और बाबा बड़ी ही आसानी से वे गुत्थियाँ सुलझा देते। एक बार एक भक्त ने जिज्ञासा प्रकट की—"बाबा, हम लोगों के निस्तार का, मुक्ति का मार्ग कौन-सा है?"

बाबा ने उत्तर दिया—"देखो, मानव की इन्द्रियाँ बड़ी प्रबल हैं। विचार और संयम के बिना उसका दमन करना कदापि सम्भव नहीं। मनुष्येतर प्राणियों की ओर दृष्टि डालने पर स्पष्ट होगा कि पतंग, कुरंग, मातंग, मृंग और झीन—ये सब केवल किसी एक ही विषय में आसक्त हैं। पतंग के नाश का कारण है—उसका रूप-ग्राही चक्षु, जिससे वह दीपशिखा की रूपज्वाला में जलकर भस्म हो जाता है। मृग को मृत्युचाल में फँसाने के लिए उसकी कर्णेन्द्रिय ही कारण रहती हैं जो उसे वंशी-ध्वनि सुनने को विवश कर व्याध के शर का शिकार बना देती है। हाथी स्पर्शेन्द्रिय की दुर्बलता से छलनामई हथिनी की ओर अग्रसर होकर जाल में जा फँसता है। मृग पुरुष के रसगंध पर विमुग्ध होकर सर्वस्व गँवा देता है और मछली रसना के आवेश में आकर बंसी बिंध जाती है। इन सब जीवों का विनाश केवल एक-एक इन्द्रिय के असंयम के कारण होता है। फिर सोच कर देखो तो जो मानव समष्टि रूप में इन पाँचों इन्द्रियों का गुलाम है उसकी विपत्ति की सीमा कहाँ है? पाँचों इन्द्रियाँ अपनी-अपनी ओर खींचतीं, ढकेलतीं उसे विनाश के गर्द में गिराती रहती हैं। फिर बाबा ने विषयमुक्ति के उपाय बताए दुर्गम विषयों से निकलने का रास्ता बन्द नहीं है। भगवान ने उसे विचार की शक्ति दी है और संयम का मार्ग प्रशस्त किया है।"

एक भक्त ने प्रश्न किया, "महाराज, हम लोग ठहरे संसारी जीव, दिन-रात तरह-तरह के झंझटों में उलझे रहते हैं। मुक्ति के लिए साधना-भजन करें, उसके लिए समय-सुविधा कहाँ है? भगवान की गुहार कैसे कर पाएँ?"

"अच्छा बाबा," हंस बाबा ने कहा, "कोई व्यक्ति समुद्र में स्नान के लिए जाता है तो वह किनारे बैठकर प्रतीक्षा करता है कि समुद्र से लहरें खत्म हो जायँ तो हम स्नान करें। संसार का कोलाहल पहले थम जाय तब हम साधन-भजन करें! यदि ऐसा सोचते रहें तो कभी मुक्ति का प्रयास चलने वाला नहीं। जितना बन सके, इसी क्षण से शुरू कर दो।"

एक दिन हंस बाबा शिष्यों के साथ इष्ट गोष्ठी में थे। कर्म और प्रारब्ध पर चर्चा चल पड़ी। महाराजजी ने कहा, "कर्म तीन प्रकार के होते हैं—संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण। संचित कर्म का अर्थ है—जीव ने जन्म-जन्म में जो कर्म

किए हैं उनकी समष्टि, अर्थात जो कर्मफल जीव के भोग के लिए जमा है। प्रारब्ध का अर्थ इन संचित कर्मफलों में उस अंश से ही है जो जीव को वर्तमान जीवन-काल में भोगना होगा।'' बाबा ने आगे कहा, ''प्रारब्ध-भोग के लिए ही जीव को देह धारण करना पड़ता है। जन्म लेना पड़ता है। संचित कर्म से जो अंश जीव के भोग के निमित्त उपस्थित है वही हुआ प्रारब्ध। यही प्रारब्ध कभी सम्पत्ति और विपत्ति के रूप में दिखाई पड़ता है।'' बाबा ने कहना जारी रखा, ''यदि किसी भण्डारघर में बहुत-सी चीजें जमा की गई हैं और प्रयोजन के अनुसार संचित भण्डार में से कुछ अंश का प्रयोग कर लिया जाता है तो वह भोग में लाई गई चीज ही प्रारब्ध कही जाएगी। जो भण्डार में संचित है वह कर्मफल। यह प्रारब्ध ही बलवान है।''

''तब क्या इस प्रारब्ध कर्म से हमारा परित्राण सम्भव नहीं है बाबा?'' एक भक्त का सवाल था।

''प्रत्येक व्यक्ति को अपना कर्मफल भोगना ही होगा। किन्तु कड़ी धूप में जैसे कोई राही छाता के द्वारा सहूलियत प्राप्त कर लेता है उसी प्रकार यदि कोई मनुष्य भगवान के चरण में छाया का आश्रय ले तो कठोर प्रारब्ध की तीव्रता कुछ कम हो जाती है।'' बाबा ने कहा।

''क्रियमाण कर्म का तात्पर्य क्या है बाबा?'' एक भक्त ने पूछा।

''वर्तमान जीवन में जीव जो कर्म करता जाता है वही उसका क्रियमाण कर्म है। जीव का संचित कर्मफल क्रियमाण कर्म द्वारा लघु किया जा सकता है। प्रारब्ध पूर्वजन्मों के कर्म का ही तो फल है। इस जन्म के सत्कर्म एवं पुरुषार्थ द्वारा कुछ तो बदलाव सम्भव ही है।'' बाबा ने बताया।

''तो बाबा इस जन्म में क्रियमाण कर्म का फल किस प्रकार विनष्ट किया जा सकता है।'' एक भक्त ने जिज्ञासा प्रकट की।

बाबा ने मधुर वाणी में कहा, ''ज्ञान द्वारा। ज्ञानाग्नि सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा।''

एक दिन बाबा ने कहा था, ''प्रत्येक कर्म से दो प्रकार के फल उत्पन्न होते हैं। उन्हीं से हमारे भाग्य का निर्माण होता है। नीच कर्म से नीच वासना की सृष्टि होती है और उच्च कर्म एवं साधु-संगत से उच्च वासना जगती है। इन्हीं वासनाओं से प्रारब्ध सूचित होते एवं कर्मफलानुसारी भाग्य पर जन्म में गठित होते हैं। योग के बिना प्रारब्ध का क्षय नहीं होता। 'प्रारब्ध कर्मणां भोगादेव क्षय:।' जिस प्रकार पुनर्जन्म में अर्जित प्रारब्ध जिस भाव से इस जन्म में सूचित हुआ है, उसमें भी कोई बदलाव सम्भव नहीं है।''

''याग यज्ञ शांति से भी क्या भाग्य नहीं बदला जा सकता?'' एक भक्त का सवाल था।

''ऐसा नहीं होता।'' बाबा ने कहा, ''जिसने कुत्ते के रूप में जन्म लिया है, वह कुत्ता ही रहेगा। हाँ, कोई कुत्ता धनी की गोद में बैठता है, सुख और स्नेह से पाला जाता है, तो कोई मारा-मारा फिरता है।''

''फिर लोग शांति स्वस्त्ययन क्यों करते हैं बाबा?''

''याग-यज्ञ द्वारा क्रियमाण पाप का नाश होता है। भगवत भजन से क्रियमाण पाप नष्ट होता है और शुभ वासना की सृष्टि होती है। प्रारब्ध का फल भी कुछ मीठा हो जाता है। वासना ही बन्धन का कारण और दुःख का मूल है, यह हमेशा स्मरण रखना चाहिए। वासना के नाश होने पर मोक्ष की प्राप्ति होती है।''

''जीव तो क्लेश पाता है तृष्णा के कारण किन्तु उसकी तृष्णा कैसे दूर होती है?''

''तत्त्व-विचार द्वारा—वैराग्य द्वारा'' बाबा ने आगे कहा, ''मनुष्य के अंतर में सच्चिदानन्द चिरविराजमान रहते हैं। वह सकल आनन्द के उत्स हैं। इस उत्स को खोजना होगा। उसका उपाय है अविद्याजन्य मोह को दूर कर, स्थिर भाव से विचार करते हुए, उस उत्स-पथ की तलाश करनी होगी।''

विचार-बुद्धि के प्रयोग की बात समझाते हुए बाबा ने एक सुन्दर कथा का वर्णन किया—

''एक महिला स्नान करने के लिए एक सरोवर में उतरी। उसका एक हार तट पर रखा था। उसे एक कौआ ले उड़ा और सरोवर के किनारे एक पेड़ पर जा बैठा। वह चोंच से हार को देर तक कुरेदता रहा। जब उसे कोई स्वाद नहीं मिला तो वह निराश होकर उड़ गया। हार पेड़ की डाल में उलझा रहा।

बाद में एक दूसरा व्यक्ति स्नान के लिए उसी सरोवर में पहुँचा। पेड़ की डाल से लटक रहे हार की प्रतिछाया जब पानी में पड़ी तो उस व्यक्ति की निगाह उस पर गई। उसने सोचा, जल के नीचे कोई हार है। वह उस हार की तलाश में जुट गया। सारा जल गँदला हो गया। सरोवर का तट तक भींग गया पर उस व्यक्ति के हाथ कुछ भी नहीं लगा। वह निराश होकर चला गया।

फिर एक अन्य स्नानार्थी आया। उसकी दृष्टि भी जल में प्रतिबिम्बित हार पर पड़ी। शांत चित्त से उसने सोचा, जल में दिखाई दे रहा हार का प्रतिबिम्ब मात्र है। फिर असली हार है कहाँ? पेड़ पर जब उसने नजर डाली तो उसे हार दिखाई पड़ गया। फिर तो वह रत्नजटित हार उसके हाथ लग गया। इस प्रकार धीर विचार-बुद्धि से परमात्मा को प्राप्त करना होता है।''

मोक्ष प्राप्ति की इच्छा रखने वाले एक भक्त ने एक बार खिन्न होकर बाबा से पूछा, ''संसार की इस माया, मोह और कर्मजाल में हम लोग ऐसे उलझे हैं कि भगवान की ओर मन लगाना असम्भव हो जाता है। कृपया कोई उपाय बताएँ।''

बाबा ने कहा, ''बद्ध जीव का मन तो प्रवृत्ति की ओर भागेगा ही। इसका प्रतिकार तभी सम्भव होगा जब मन के लिए एक विकल्प खात की नूतन सृष्टि की जाय। उस खात के जरिए प्रवाहित करना होगा भगवदभिमुखी मन के प्रवाह को। इस नये खात में परिचालित प्रवाह तुम्हारे विषयाभिमुखी मन को भ्रम से स्पन्दनहीन करता जाएगा। फिर मन अन्तर्मुखी होगा। और परमात्मा की ओर सहज से निविष्ट होता चलेगा। धीरे-धीरे इस पथ की साधना करते चलो। यही तो है साधक का ब्रह्माभ्यास या आत्मध्यान—

सतत ब्रह्मअभ्यास से मनविक्षेप को नाश।
ज्ञान दृढ़ निर्वासना जीव मुक्ति प्रतिभास॥

बाबा ने आगे कहा—''सदा इस अभ्यास को बलवान बनाए रखो। इसके फलस्वरूप मन के मल का नाश होगा, मन वासनारहित होगा। इस मार्ग से ही जीव मुक्त होता है और पराकोटि के ज्ञान का लाभ पाता है।''

कैलास पहाड़ पर विराजमान—इस महापुरुष के दर्शन के लिए देश-विदेश से श्रद्धालुओं का आगमन होता रहता है। बहुत से भक्त आग्रह-पूर्वक उनसे प्रस्ताव रखते हैं—''बाबा यदि विचार प्रकट करें तो हम इस कैलास पहाड़ पर एक विशाल मठ का निर्माण करें जिससे बाबा की इस साधना भूमि को एक विराट साधना केन्द्र के रूप में बदला जा सके।''

महासाधक हंस बाबा हँसते हुए उत्तर देते—''बेटा, मैं तो एक वैरागी हूँ। इस निर्जन पहाड़ी पर नंग-धड़ंग घूमता हूँ। एकांत में शांतचित्त होकर बैठता-उठता हूँ। बहुधा जाकर नर्मदा-तट पर आश्रय ग्रहण करता हूँ। वह मन्दिर लेकर क्या करूँगा? अर्थ से तो मुझे कोई सरोकार है ही नहीं। शहंशाह के रूप में मैं बैठा हूँ। यह दोहा जानते हो?

चाह गई चिन्ता गई, मनुआ बेपरवाह।
जिस मन में संतोष है, वह है शाहंशाह॥

जिसे कोई चाह नहीं, चिन्ता नहीं, अंतर में जिसके संतोष विराजमान है, वही वास्तव में शाहंशाह है—राजाधिराज है।

इस महान तपस्वी और साधक ने अंत में ८वीं वैशाखी १९६० ईस्वी को शरीर छोड़ दिया। हजारों लोगों को शोक-संतप्त छोड़कर जसीडीह के आश्रम में ब्रह्मलीन हो गए। वे ईश्वरीय दूत और अपनी मर्जी के शाहंशाह थे।

●

महात्मा सुन्दरनाथजी

उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध। गर्मी के मौसम में बदरीनारायण का मन्दिर दर्शनार्थियों के लिए खोल दिया गया था। भक्तों की भीड़ प्रतिदिन आ रही थी। ऐसे ही समय महात्मा सुन्दरनाथजी भी बदरीनाथ धाम पहुँच गए थे।

मन्दिर के पास ही स्थित एक दुकान पर विश्राम करना चाहा। किन्तु दुकानदार गिड़गिड़ाया—"महात्माजी, आज तीर्थयात्रियों की भारी भीड़ है। दुकान में स्थान की कमी है। इस कारण मैं आपको स्थान देने में असमर्थ हूँ।"

"अच्छी बात है"। कहते हुए सुन्दरनाथजी दुकान से बाहर निकल आए। वहाँ से थोड़ी दूर स्थित एक विशाल भवन के बरामदे में पहुँचे। झोली उतार कर पास रख ली और आसन जमा लिया। उन्हें लोग आश्चर्यभरी निगाहों से देखने लगे। जिज्ञासा हुई दिव्य कांति और जटाजूट वाले ये महात्मा कौन हैं?

कुछ भक्तों ने निवेदन किया, "महाराज, अगर आप अनुमति दें तो आपके लिए खाने-पीने की चीजें लाई जायँ। आज भीड़ काफी है। देर हो जाएगी तो सामान मिलने में कठिनाई होगी।"

"मेरी धूनी के लिए कुछ लकड़ी मँगा दो और कुछ नहीं।" सुन्दरनाथजी ने कहा।

उत्साही भक्तों ने लकड़ी ला दी। धूनी प्रज्वलित हो गई। सुन्दरनाथजी प्रसन्न हो गए। कुछ तीर्थयात्री धूनी के आसपास जमा हो गए।

इसी बीच भवन के रक्षकों और चौकीदारों ने आकर आपत्ति की। क्या यह धर्मशाला है जो आग जलाकर आराम से बैठे हो तुम लोग?

"मकान खाली पड़ा था, इसलिए यहाँ महात्माजी के बैठने की व्यवस्था की गई। इससे क्या नुकसान हो गया?" एक शिक्षित तीर्थयात्री सज्जन ने कहा।

"जानते हो, यह टिहरी के राजा साहब का प्रासाद है। तुम सभी के प्राण संकट में हैं।" रक्षक और उत्तेजित हो गए।

"हमको तो कम से कम एक रोज यहाँ ठहरना होगा भाई।" महात्माजी ने निर्विकार भाव से मधुर वाणी में कहा।

"सुनिए, राजा साहेब और रानी साहिबा आज सुबह ही अपने लाव-लश्कर के साथ यहाँ पहुँच जाएँगे। यह कार्यक्रम पूर्व निर्धारित है। इसीलिए कल सारे दिन भवन की सफाई की गई है। कुछ देर के लिए हमलोग दुकान पर

भोजन करने चले गए और इसी बीच आप लोगों ने अधिकार जमा लिया। महाराज जब आप लोगों को धूनी जला कर बैठे देखेंगे तो आग-बबूला हो जाएँगे। उस समय सबके सिर धड़ से अलग कर दिये जायेंगे।'' एक रक्षक ने भक्तों को समझाने की कोशिश की।

''तुम्हारे राजा साहब को मैं खुद ही बोल दूँगा। हम भी तो एक ठो महाराज हैं। डरो मत।'' महात्माजी ने मुस्कराते हुए कहा।

''यह क्या पागलपन है, किसी भी समय महाराज आ जाएँगे, तो क्या तुम हमारी रक्षा कर सकोगे ?''

इसी बीच टिहरीनरेश अपने दल-बल के साथ आ गए। मन्दिर के पुजारी रावल साहब राजा की अभ्यर्थना करने के बाद उन्हें लिये आ रहे थे। साथ में रानी साहिबा और दास-दासियों का समूह था। राजा साहब के वहाँ पहुँचते ही रक्षकों ने सारी कथा कह सुनाई। यह सुनकर रावल गुस्से से तमतमा उठे।

लेकिन टिहरीनरेश ने इशारे से उन्हें शान्त कर दिया। वे अपने दल-बल के साथ बरामदे में जाकर खड़े हो गए। उन्होंने हाथ जोड़कर महात्माजी को प्रणाम किया। इसके बाद पूछा, ''महाराज, कहाँ से आपका आगमन हुआ है ? क्या मैं आपका परिचय जान सकता हूँ ?''

''परिव्राजन करता हुआ सतोपंथ से उतर रहा हूँ'', महात्माजी ने मधुर वाणी में कहा, ''एक दिन यहाँ रुकने की इच्छा है। रही मेरे परिचय की बात, उसे तो आपने मुझे सम्बोधित कर ही दिया राजा साहब। आपने मुझे महाराज कहा है। फिर मैं एक महाराज के अलावा और क्या हो सकता हूँ।''

''यदि आप सचमुच महाराज हैं तो आपका राज्य कहाँ है ?''

''ऊपर आकाश और नीचे जनपद, अरण्य, पहाड़, सागर सभी जो परमात्मा ने रचा है। वे सभी मेरे राज्य हैं।''

राजा चतुर थे। क्षणभर में ही वे महात्माजी की बातों में अंतर्निहित तथ्य समझ गए। फिर भी मुस्कराते हुए प्रश्न किया, ''मैं राजा हूँ और मेरे साथ फौज भी है। आपने अपनी फौज कहाँ रख छोड़ी है ?''

''मेरी फौज तो सारी पृथ्वी में फैली हुई है'', महात्माजी ने कहा, ''जहाँ मनुष्य के हृदय में परमात्मा के लिए भक्ति और प्रेम का आलोक है, वे सभी हमारी फौज में हैं।''

''किन्तु राज-ऐश्वर्य ? वह कहाँ से दिखाएँगे महाराज ?''

''अब आप ही से एक प्रश्न करूँगा राजा साहब।'' महात्माजी ने मुस्कराते हुए कहा।

''अवश्य प्रश्न करें।'' राजा ने कहा।

"ऐश्वर्यवान आप किसे कहते हैं?" महात्माजी ने पूछा, "जिसे इस संसार में कोई अभाव नहीं है, उसे ही तो।"

"जी हाँ।"

"फिर देखिए। मुझे किसी वस्तु के अभाव का बोध नहीं होता, इसीलिए अभाव नहीं है। इसके अलावा, परमात्माजी की सृष्टि के अनन्त ऐश्वर्य को मैं अपना ही मानता हूँ। इसीलिए राजा साहब, मैं आप से ज्यादा ऐश्वर्यवान हूँ।"

"यह तो स्वीकार करना ही होगा, मुझसे बहुत अधिक ऐश्वर्य है आपके पास।" टिहरीनरेश ने सिर झुका कर हार मान ली।

अब तक भीड़ काफी हो गई थी। चारों और तीर्थयात्री जमा हो गए थे।

सुन्दरनाथजी ने मुस्कराते हुए कहा, "राजा साहब, असली बात यदि मैं कहूँ तो आप एक अभावग्रस्त व्यक्ति हैं। तभी तो आप तमाम तरह के झमेलों से ग्रस्त रहते हैं। आपकी जो राजमहिषी हैं, उन्हें कोई संतान आज तक नहीं नहीं हुई। इस कारण आपके और रानीजी के दुःख की कोई सीमा नहीं है। यह बात सत्य है या नहीं?"

"जी हाँ, यह बिल्कुल सत्य हैं। रानीजी असाध्य हत्पिड के वातरोग से ग्रस्त हैं। आजकल प्रायः वह बिस्तर पकड़ लेती हैं। उनके जीवन में कोई रस नहीं है।" महात्माजी ने कहा।

अब टिहरीनरेश धूनी के पास बैठ गए और कातर स्वरों में निवेदन किया, "मैं समझ गया कि भगवान ने कृपा करके आपको मेरे लिए ही यहाँ भेजा है। आप प्रसन्न हों और मेरी तथा रानीजी की व्याधि से रक्षा करें। हम दोनों आपके सेवक और सेविका के रूप में रहेंगे।"

"परमात्मा आप पर प्रसन्न हों, यही आशीर्वाद देता हूँ आपको राजा साहब", महात्माजी ने कहा, "विश्राम एवं स्नान-तर्पण करके आप लोग बदरी-विशाल की पूजा समाप्त करें, उसके बाद मेरे साथ आगे बातचीत होगी। आप लोगों के दुःख-निवारण की दिशा में चेष्टा करूँगा, सम्भव है, परमात्मा की इच्छा से इसीलिए मेरा यहाँ आगमन हुआ है।"

मन्दिर से वापस आने पर राजा दम्पति ने सुन्दरनाथजी को प्रणाम किया। उसी समय ज्वलंत धूनी से एक चिमटा भस्म उठाते हुए योगेश्वर ने कहा, "राजा साहब, आप और रानी साहिबा इस पवित्र धूनी की भस्म खा डालें। रानीजी व्याधि-मुक्त हो जाएँगी और दो वर्ष बाद आपको पुत्र-लाभ होगा।"

राजा और रानी साहिबा ने भस्म गले से नीचे उतारी और भाव-विह्वल होकर महात्माजी के चरणों में अपना सिर रख दिए।

फिर शान्त और गम्भीर स्वर में सुन्दरनाथजी ने कहा, "परमात्मा की कृपा आपने पाई है राजा साहब, यह आपका सौभाग्य है। लेकिन दो जरूरी बातों का मैं आपको सदा स्मरण रखने को कहूँगा।"

"आदेश करें महाराज।"

"आप इस अंचल के राजा हैं," महात्माजी ने कहा, "केवल यही नहीं, पवित्र बदरीनाथ धाम के रख-रखाव का गुरुतर दायित्व भी आपके ऊपर है। आपके किए हुए पुण्य और पाप का प्रभाव स्वभावतः क्षेत्र पर पड़ेगा। इसलिए व्यक्तिगत जीवन में जो भी इंद्रियगत अनाचार करते रहे हैं उससे निवृत्त हो जायँ। एक और गुरुतर कर्तव्य में भी आपसे त्रुटि होती रही है। इस पुण्य पीठ में परमात्मा की पूजा अनुष्ठित होती रहती है तथा सैकड़ों तीर्थयात्री यहाँ अपना भक्ति-अर्घ्य प्रदान करते हैं। परन्तु इस पवित्र स्थान की रक्षा यथायोग्य नहीं हो पा रही है। इसके परिचालन में नाना प्रकार की त्रुटियाँ और अनाचार दिखाई पड़ रहे हैं। इन सभी को दूर करने की कोशिश आप द्वारा होनी चाहिए।"

टिहरीनरेश ने आश्वासन दिया कि वे महात्मा के आदेश का पालन करेंगे।

दूसरे दिन प्रभात होने से पहले ही सुन्दरनाथजी उस स्थान से अंतर्ध्यान हो गए। इसके बाद वे काफी दिनों तक इस अंचल में नहीं देखे गए।

लगभग पाँच वर्षों बाद जब वे अपनी प्रिय पुण्यभूमि शतोपंथ का परिव्राजन करके जिस दिन बदरीधाम में उनका आगमन हुआ, उस दिन मन्दिर के रावल एवं राजपुरुषगण ने समारोह में उनकी अभ्यर्थना की।

पिछली बार बदरीधाम आगमन के समय टिहरीनरेश और रानी साहिबा को जो आशीर्वाद महात्माजी ने दिया था, वे फलीभूत हो गए थे। रानी साहिबा की व्याधि ठीक हो गई थी और उन्होंने एक पुत्ररत्न को भी जन्म दिया था।

योगेश्वर के आगमन की सूचना मिलते ही टिहरीनरेश अपनी रानी साहिबा के साथ उनके दर्शन के लिए पधारे। मन्दिर के पुजारी रावल भी महात्माजी के भक्त हो गए थे।

सुन्दरनाथजी का एक खूबसूरत चित्र आज भी बदरीनाथ के कार्यालय में टँगा हुआ है। उसे रावल ने एक कलाकार द्वारा तैयार कराया था।

एक बार बदरीनाथ धाम से थोड़ी दूर ऋषि गंगा के पार एक निर्जन कुटिया में सुन्दरनाथजी अपने नव संकल्पित तपस्या का उद्यापन कर रहे थे। यहाँ की कुटिया के साधु लोग दिन-रात का अधिकांश भाग ध्यान, भजन तथा योग में ही काट देते थे। आहार के लिए भी वे बाहर नहीं जाते थे। इसीलिए काली-कमलीवाले सदाव्रत के कर्मचारी प्रतिदिन इन साधकों को भोजन दे जाते थे। परन्तु सुन्दरनाथजी उस भोजन को ग्रहण नहीं करते थे। लगभग एक माह

बाद यह बात बदरीनाथ के पुजारी और महात्माजी के भक्त रावल के पास तक पहुँची। इसके तुरन्त बाद वे प्रचुर मात्रा में खाद्य-सामग्री लेकर सुन्दरनाथजी की कुटिया में पहुँचे। दोनों हाथ जोड़ कर निवेदन किया, ''बाबा, सुना कि सदाव्रत द्वारा प्रदत्त आहार आप ग्रहण नहीं कर रहे हैं। इसलिए अपनी सेवा की अनुमति मुझे दीजिए। मैं अपने आदमियों से रोज खाद्य-पदार्थ भेज दिया करूँगा।''

''नहीं बेटा, इसकी जरूरत नहीं है।'' महात्माजी ने मधुर वाणी में कहा, ''कुछ दिनों पूर्व परमात्मा का आदेश हुआ है, उसी समय से केवल कच्चा दूध और फल ले रहा हूँ।''

''ठीक है, वही मैं प्रतिदिन आपके लिए भेज दिया करूँगा।'' रावल ने भक्तिपूर्वक अनुनय किया।

इसी समय एक वृद्धा अपने किशोर पुत्र के साथ वहाँ आ गई। उसके हाथ में एक छोटा-सा लोटा था जिसमें दूध भरा था। दूसरे हाथ में केले थे। सुन्दरनाथजी को प्रणाम करने के बाद उसने साथ लाई हुई खाद्य-सामग्री धूनी के पास रख दी। योगेश्वर ने माँ-बेटे को आशीर्वाद दिया। फिर रावल की तरफ देखते हुए मुस्कराकर बोले, ''इस माई का नाम रुक्मिणी और उसके पुत्र का नाम रामभजन है। ये दोनों बड़े पवित्रात्मा हैं। इन लोगों ने बहुत दुःख झेला है। परमात्मा की कृपा से अब ठीक हैं। इनका दिया हुआ आहार बहुत शुद्ध है। जब तक इस क्षेत्र में हूँ, इन्हीं के दूध और फल पर समय कट जाएगा, यही निश्चय किया है।''

रावल के मन में जिज्ञासा हुई कि इस वृद्धा के ऊपर महात्माजी की कृपा का रहस्य जाना जाय। वे लौटते समय रुक्मिणी से मिले और उससे कारण पूछा। रुक्मिणी का मुखमण्डल तेजोदीप्त हो उठा। उसने रास्ता चलते-चलते सुन्दरनाथजी की कृपा की आश्चर्यजनक कहानी बयान करना शुरू किया—

''मैं बदरीनाथ धाम से लगभग १२ मील दूर पाण्डुकेश्वर गाँव में रहती हूँ। उसके स्वामी के पास पहाड़ के ढलान पर दो बीघा जमीन थी, जिससे उसके परिवार का गुजारा होता था। कुछ वर्ष पूर्व उसके स्वामी बुधन सिंह आय में थोड़ी वृद्धि करने के लिए माना दर्रे के पार तिब्बत में व्यवसाय करने चले गए। पहाड़ धँस जाने से उनका प्राणांत हो गया। हम लोग बिल्कुल बेसहारा हो गए।

''इन्हीं विपत्ति के दिनों में एक दिन सुन्दरनाथ बाबा हमारे घर आए। उन्होंने मुझे आश्वासन दिया, ''माई, विपत्ति के कारण दिग्भ्रमित मत होना। स्वामी की पवित्र स्मृति हृदय में सँजोकर इस बालक का भरण-पोषण करना। परमात्मा अवश्य सहायता करेंगे।''

सुन्दरनाथजी ने निर्देश दिया, ''माई, तुम इस बालक के साथ खेत में कार्य किस तरह करोगी? अपनी जमीन बेच डालो और इस पैसे से मोदी की

दुकान खोल लो। गर्मी के दिनों में दुकान बदरीनाथ में रखना और दूसरे मौसम में अपने गाँव में। इस कार्य में तुम्हारा पुत्र रामभजन भी कुछ सहायता करेगा।

''महात्माजी के इस आदेश को मैंने शिरोधार्य कर लिया। बच्चे को साथ लेकर दुकान खोल ली। पुत्र भी धीरे-धीरे बड़ा होकर व्यवसाय में दक्ष हो गया।''

रुक्मिणी ने अपनी कहानी सुनाना जारी रखा—

''दो वर्षों पूर्व महात्माजी इसी कुटिया में आए थे। रुक्मिणी एक दिन अकेले ही महात्माजी की सेवा में उपस्थित हुई। उन्होंने पूछा, ''माई, रामभजन को आज कहाँ छोड़ आई?''

''बाबा, दुकान के लिए कुछ सामान लेने जोशीमठ गया है। बदरीनाथ में इस साल यात्रियों की बहुत भीड़ है। किसी वस्तु की आपूर्ति करना सम्भव नहीं हो पा रहा है।'' रुक्मिणी ने कहा।

क्षणभर में ही योगेश्वर की मुद्रा गम्भीर हो गई। दाहिना हाथ उठा कर अस्वाभाविक रूप से गरजे, ''ठहर जाओ, ठहर जाओ, डरो मत बेटा। बस, बस''। ऐसा लगा जैसे किसी अदृश्यलोक में विपदाग्रस्त भक्त को अभय दे रहे हों। इसके बाद चुप हो गए। पास पड़े चिमटे से धूनी की आग को कुरेदा। इससे आग की गर्मी तेज हो गई। महात्माजी की आक्रोशित मुद्रा धीरे-धीरे शान्त हो गई।

धूनी से थोड़ी दूर रुक्मिणी विस्मित बैठी हुई थी। बाबा का यह रूप उसने पहली बार देखा था।

रुक्मिणी की ओर देखते हुए सुन्दरनाथजी ने कहा, ''माई, तुम्हारा पुत्र रामभजन बड़ी मुश्किल में पड़ गया था। मैंने देखा कि जोशीमठ में भेड़े पर माल लादते समय उसका पैर फिसल गया। वह अलकनन्दा में गिर पड़ा। अलकनन्दा की तीव्र धारा उसे डुबोए हुए चली जा रही थी। उस भीषण धारा से उबर पाना मनुष्य के बस की बात नहीं है। परमात्मा की कृपा से वह किनारे आने में सफल हो गया है। फिर भी वह धारा के साथ लगभग तीन मील दक्षिण बहता हुआ चला गया है। एक देहाती आदमी के घर में उसने आश्रय पाया है। अच्छी तरह है। माई, तुम अभी रवाना हो जाओ और तुम उसे बदरीनाथ धाम ले आओ।''

पुत्र पर विपत्ति की बात सुनकर रुक्मिणी अधीर हो उठीं। वह जोर-जोर से रोने लगीं और वहीं कुटिया में जमीन पर लेट गईं।

महात्माजी ने कहा, ''तुम्हारा पुत्र बिल्कुल स्वस्थ है माई। जिस व्यक्ति ने उसे आश्रय दिया है, वह उसकी सेवा कर रहा है। उसके पास आग जला दी है। उसे पीने के लिए गरम दूध दे रहा है।''

रुक्मिणी उठीं और जोशीमठ की तरफ रवाना हो गईं। रामभजन के पास पहुँचीं। वह स्वस्थ था। उसने माँ को जो कहानी सुनाई, उससे उन्हें विस्मय और आश्चर्य दोनों हुआ। रामभजन ने कहा—

''पहाड़ से नदी में गिरकर वह असहाय अवस्था में बहता जा रहा था। वह निराश हो चुका था। समझ रहा था कि अब जान नहीं बचेगी। या तो धारा के भँवर में फँसकर नीचे चला जाएगा या किसी चट्टान से टकराकर चूर हो जाएगा। इसी बीच उसने सुन्दरनाथजी की वाणी सुनी—'ठहर जाओ।' क्षण भर में ही रामभजन के सम्मुख योगेश्वर का जटाजूट-मण्डित मुख-मण्डल प्रकट हो गया। अवाक् होकर उसने देखा कि उसके डूबते हुए शरीर को दो सबल हाथों ने उठा लिया और किनारे की मिट्टी पर लाकर लिटा दिया। इसके बाद क्या हुआ, उसे स्मरण नहीं क्योंकि वह बेहोश हो गया था। होश में आने पर उसने देखा कि एक परिवार में उसे आश्रय मिला है। लोग आग जलाकर उसे सेंक रहे हैं। सामने एक कटोरा गरम दूध रखा हुआ है।''

महात्माजी की कृपा-लीला का रावल के समक्ष वर्णन करते हुए रुक्मिणी बीच-बीच में अपने आँसू पोंछती जा रही थीं। फिर कहा, ''रावल साहब, कोई कहता है ये बड़े योगी हैं, कोई कहता है ये मनुष्य नहीं देवता हैं। मैं केवल पिता ही मानती हूँ। उन्होंने मुझे पिता के समान स्नेह दिया है।''

महायोगेश्वर, परमसिद्ध, महात्माजी का अंतर प्रेम से भरा हुआ था। जो भी भक्ति-भाव से इनके समीप आता, स्नेह और प्रेम का भागी होता।

एक बार विनायक मुखुज्ये महाशय एक उच्च कोटि के साधु की सलाह पर सुन्दरनाथजी के दर्शन को पधारे। महात्माजी उस समय उत्तरकाशी से थोड़ी दूर एक निर्जन स्थान में वास कर रहे थे।

मुखुज्ये महाराज ईश्वर-अनुसंधानी व्यक्ति थे। बहुत से मतावलम्बी साधु-संन्यासियों के सम्पर्क में आ चुके थे। सुन्दरनाथजी के पास पहुँचकर उन्होंने प्रणाम किया और बैठ गए। उन्होंने बताया कि किस-किस साधु-महात्माओं का आशीर्वाद उन्हें मिला है।

इस बीच एक गृहस्थ ने चकमक घिसकर कुटिया के भीतर पड़ी लकड़ियों को जला दिया। सुन्दरनाथजी आनन्दपूर्वक उसके द्वारा लाई हुई वस्तुओं से खीर तैयार करने में लग गए। खीर तैयार हो जाने पर उन्होंने स्नेहमयी माता की तरह सबका सब मुखुज्ये महाशय को भोजन करा दिया। अप्रत्याशित स्नेह और आदर पाकर मुखुज्ये महाशय कृतार्थ हो उठे। उन्होंने अपने सम्पर्क में आए साधु-सन्तों के जीवन-दर्शन के बारे में तर्क-वितर्क करना शुरू कर दिया।

अर्धनिमीलित नेत्रों से दो मिनट तक मुखुज्ये की बातें सुनने के बाद सुन्दरनाथजी बोल उठे—''बस, बस, ठहर जाओ।'' मुखुज्ये महाशय चुप हो गए।

महात्माजी ने जो कुछ कहा उसका सारांश इस प्रकार है—

''बेटा, इतनी कहानी और इतना तर्क-वितर्क करके तुम अपना दिमाग क्यों खराब कर रहे हो। मानव-जीवन अमूल्य है। कितने संचित पुण्यों के कारण तुमने यह जन्म पाया है। क्यों, परमात्मा का लाभ करूँगा, ऐसा कह कर नहीं पाया है। फिर व्यर्थ समय क्यों गँवा रहे हो? अब एक भी क्षण व्यर्थ मत जाने दो बेटा। आज ही और अभी ही तुम इस कुटिया में एक तरफ बैठ जाओ। प्राण की चिन्ता छोड़ कर ध्यान और जप करो। अब कलकत्ते के कोलाहल और अविद्या के संसार में वापस जाने का कोई प्रयोजन नहीं है।''

''यह तो बाबा आप ठीक ही कहते हैं लेकिन कलकत्ते में अभी कुछ कार्य शेष है। अबकी बार जाकर सारे कार्य निपटा कर फिर आपके चरणों में बैठूँगा।'' मुखुज्ये ने निवेदन किया।

''नहीं, नहीं बेटा! मानव-जीवन का एक क्षण भी व्यर्थ मत करो। यह वस्त्र पहने ही गंगा में स्नान कर आओ और उसके बाद दृढ़ता से जप और ध्यान लगाओ। जो तुम्हारे कदम पीछे खींच रहा है, उसका सर्वदा के लिए त्याग कर दो। जिसके ज्ञान से जीवन सफल होता है, उसी परमात्मा के ध्यान में डूब जाओ।''

मुखुज्ये महाशय को घर-बार और सांसारिकता का स्मरण बार-बार हो रहा था। इसके साथ ही महात्माजी भी लगातार छड़ते जा रहे थे।

अंततः मुखुज्ये महाशय महात्माजी से पिण्ड छुड़ा कर कुटिया से बाहर आए और राहत की साँस ली। उस समय महात्माजी के असली मकसद को समझ नहीं पाए। जीवन की संध्या में योगेश्वर सुन्दरनाथजी के इस आंतरिक आमंत्रण की चर्चा छिड़ते ही मुखुज्ये महाशय के दोनों नेत्र सजल हो आते।

मुखुज्ये के पूर्व परिचित मनीष मजूमदार नामक कलकत्ते के ही एक शिक्षित व्यक्ति एक बार सुन्दरनाथजी का महात्म्य सुनकर उनके पास गए। साष्टांग दण्डवत करने के बाद कहा, ''बाबा, मेरे ऊपर कृपा कीजिए। आपके चरणों में आश्रय की भिक्षा माँगता हूँ।''

उस समय योगेश्वर ध्यानस्थ थे। ध्यान भंग होने पर बोले, ''तुम इधर काहे आया? हिमालय में तुम्हारा क्या काम है?''

मजूमदार महाशय महात्माजी की बेरुखी पर रो पड़े। उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर निवेदन किया, ''बाबा, मैं बड़ा दुःखी हूँ, इसीलिए आपका आश्रय चाहता हूँ।''

योगेश्वर बोले, ''दुःखी और अभागे तो तुम निश्चय ही हो। किन्तु तुम्हारा दुर्भाग्य लाम्पट्य और इंद्रियजन्य दोषों के कारण हुआ है।''

''बाबा, आपकी सारी बातें सत्य हैं किन्तु क्या मेरे उद्धार का कोई उपाय नहीं है? आप जैसे महात्मा भी क्या मेरा उद्धार नहीं कर सकते? फिर मैं कहाँ जाऊँ?'' मजूमदार फूट-फूट कर रोने लगे।

मनीष मजूमदार कलकत्ता के एक धनी स्वर्णकार परिवार में शिक्षक थे। गृहस्वामिनी कुछ वर्ष पूर्व विधवा हो गई थीं। इस समय घर की अपार घर-सम्पदा एवं परिवार के परिचालन का भार उन्हीं पर था। उम्र लगभग ४० वर्ष की थी। लेकिन रूप और यौवन आकर्षक था। गृहस्वामिनी सुदर्शन मनीष के प्रति आकर्षित हो गईं। मनीष भी उनकी ओर झुक गए। इसके बाद एक रात में इन्दुमती अपने एक लाख के जेवरों के साथ मनीष के साथ कलकत्ते से भाग निकलीं। काफी जगहों घूमने-फिरने के बाद दोनों लोग हरिद्वार के एक घनी आबादी वाले इलाके में किराया का मकान लेकर रहने लगे।

कुछ वर्षों में दोनों के बीच शारीरिक आकर्षण कम होने लगा। खासतौर पर इन्दुमती अपने बाल-बच्चों के पास वापस कलकत्ता लौटने के लिए परेशान हो उठीं। इसके लिए अचानक ही उन्हें अवसर भी मिल गया। एक दिन वह हरिद्वार के बाजार में गई थीं। वहीं एक आत्मीय व्यक्ति से उनकी मुलाकात हो गई। बाल-बच्चों का समाचार सुनकर पुरानी स्मृतियाँ उनके दिमाग में कौंध गईं। मन व्याकुल हो उठा। उन्होंने यह भी सुना कि उनकी लड़की अब सयानी हो गई है। घर के लोगों ने उसका विवाह भी तय कर दिया है। इसके बाद इन्दुमती मनीष को छोड़कर कलकत्ता वापस लौट गईं। घर पर यही प्रचार किया कि कुछ वर्षों के लिए वह भारत में पर्यटन के लिए गई थीं। अब कन्या के विवाह में योगदान के लिए घर वापस लौट आई हैं। बंधु-बांधवों और परिवारीजनों को इन्दुमती की इस बात पर विश्वास नहीं हुआ लेकिन वह अपने कारोबार में जुट गईं थीं।

इन्दुमती के जाने से मनीष का मन व्यग्र हो उठा। कलकत्ता के रास्ते हमेशा के लिए बन्द हो चुके थे। हरिद्वार में रहने पर आर्थिक समस्या उठ खड़ी हुई थी। इन्दुमती के बचेखुचे गहनों से दो-चार माह का ही खर्च चल सकता था। मनीष जब भविष्य के बारे में सोचते थे तब दिल मुँह को आ जाता था।

परेशान मजूमदार नाना प्रकार की चारित्रिक बुराइयों के शिकार हो चुके थे।

सब तरह से हताश होने के बाद मनीष ने गेरुआ वस्त्र धारण कर लिया और हिमालय के तीर्थाटन पर निकल पड़े। सदाव्रत में मिले भोजन पर जी रहे थे। इन्हीं दिनों अचानक अपने पुराने मित्र मुखुर्ज्ये से उनकी मुलाकात हो गई। मुखुर्ज्ये ने उन्हें महात्मा सुन्दरनाथजी से मिलने की सलाह दी और मनीष सीधे सुन्दरनाथजी के पास आकर उनका आश्रय चाहने लगे।

मनीष का विलाप देखकर सुन्दरनाथजी का हृदय कुछ पसीजा। उन्होंने कहा, ''बेटा तुम्हारे लम्पटपने से मुझे घृणा है, तुमसे नहीं। मैं चाहता हूँ तुम अपने पूर्व आचरण का त्याग करके परमात्मा की तपस्या में लीन हो जाओ। किन्तु बेटा, तुम्हारा पूर्वजन्म का संस्कार बार-बार तुम्हारे मार्ग में बाधक हो रहा है।''

''तो आप इसे मिटाने का विधान कर दें।'' मनीष गिड़गिड़ाए।

''बेटा, मेरा कोई स्थायी स्थान तो है नहीं। अपनी इच्छानुसार हिमालय की कंदराओं में घूमता-फिरता हूँ और तपस्या करता हूँ। तुम्हारा भार वहन करने का समय कहाँ है मेरे पास?''

''तो क्या मेरा उद्धार नहीं होगा?''

''तुम्हें मैं दो निर्देश दे रहा हूँ'', महात्माजी ने कहा, ''तुम उनका पालन करने का प्रयास करो। प्रतिदिन एक लाख बार शिवजी का जप करने के बाद ही तुम भिक्षाटन के लिए निकलोगे। दूसरी बात यह है कि कभी भी हिमालय की गोद छोड़कर नीचे के अंचलों में या मैदान में नहीं उतरोगे। तुम्हारी इन्द्रिय-लालसा का पुंजीभूत संस्कार अभी भी रह गया है। देवात्मा हिमालय की गोद छोड़कर नीचे उतरते ही तुम फँस जाओगे। उसके बाद तुम्हारे उद्धार की कोई आशा नहीं रह जाएगी।''

लेकिन मनीष मजूमदार के पूर्व संस्कारों ने उन्हें महात्माजी के इन निर्देशों का पालन नहीं करने दिया। किसी कार्यवश उन्हें हरिद्वार जाना पड़ा। वापस आते समय वे देहरादून में कई दिनों तक रुक गए। इसी समय वे एक खूबसूरत पर्वतीय रमणी के प्रति आकर्षित हो गए। उनका पतन हो गया। कई माह तक लकवाग्रस्त रहने के बाद कनखल के अस्पताल में उनकी मृत्यु हो गई।

एक बार एक जिज्ञासु भक्त ने महात्माजी से प्रश्न किया, ''बाबा, आप लोगों का परमात्मा बहुत ही निष्ठुर प्रकृति का है। व्यावहारिक जीवन में मैंने पाया है कि कितने निरपराध व्यक्ति दैवविधान से पीड़ित होते हैं और कितने दुष्ट और पापी व्यक्ति जीवन का सुखोपभोग करते हैं। इस विधान में न्याय-नीति और निरपेक्षता कहाँ है?''

''तुम इस दर्शन को उलट कर देखो, तुम्हें जवाब मिल जाएगा।''

''आपकी बात का गूढ़ार्थ नहीं समझ पा रहा हूँ, कृपया समझाएँ।''

बाबा ने जो व्याख्या दी उसका सारांश इस प्रकार है—

जीवन में सभी कुछ तुमने भ्रान्तभाव से ही देखा है। खण्ड-खण्ड करके। अपनी दृष्टि भंगी को तुम उलट दो और जीवन का अखण्ड भाव से दर्शन करना सीखो। ऐसा होने पर तुम क्या कर पाओगे? जो एक और अखण्ड वस्तु है, जो भूमा है, जो सत्-चित्-आनन्द है, वह ही जीव के हृदय में वास कर रहा है। सुख-दुःख सब कुछ अंततः वे ही तो भोग रहे हैं। तुम्हारा हृदय का दुःख और ताप वास्तव में वही तो अपने को वहीं स्थापित करके स्वयं ले रहे हैं।

एक बार एक भक्त ने बाबा से प्रश्न किया, ''बाबा, योग विभूतियों की अनेक लीलाएँ मैंने स्वयं देखी हैं तथा अनेक सुनी भी हैं। इन सब अलौकिक और अस्वाभाविक शक्तियों का असल रहस्य क्या है बताएँ।''

योगेश्वर ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया, ''बेटा, योगशक्ति को अस्वाभाविक और रहस्य क्यों समझ रहे हो? दरअसल योग-मुक्त होना ही तो स्वाभाविक बात है। परमात्मा के साथ योग—वही तो असल है, वियोग अथवा विच्युति नकली होती है। वह लोगों का बनाया हुआ होता है। तुम निर्मोह हो, योगमुक्त हो तो देखोगे कि तुम्हारा जीवन स्वभाव में अवस्थित है। तब योग विभूति या योगैश्वर्य को वस्तु या अस्वाभाविक और अलौकिक तुम नहीं समझोगे।''

1955 के बाद सुन्दरनाथजी नहीं देखे गए। कुछ लोगों की धारणा है कि शतोपंथ के पास ही किसी गुफा में साधनारत हैं तो कुछ लोग सोचते हैं कि इस योगेश्वर महात्मा ने स्वयं को परमात्मा में लीन कर लिया।

योगेश्वर सुन्दरनाथजी को एक बार दर्शन करने के बाद उन्हें विस्मृत कर पाना कठिन है। सुन्दर, लम्बा, पंजाबी शरीर, गौर वर्ण, बड़ी-बड़ी आँखें, खड़ी लम्बी नाक—ऐसा था उनका गम्भीर व्यक्तित्व। शरीर पर लम्बी जटाजूट। जब वे आसन पर ध्यानस्थ होते तो उनके शरीर का बहुत बड़ा भाग उनकी लम्बी जटा से ढँक जाता। वे एक कठोर साधक थे। उनका अधिकांश समय हिमालय की दुर्गम पहाड़ियों एवं कंदराओं में व्यतीत हुआ। वे मैदान में बहुत कम रहे जंगलों और पर्वत की चोटियों पर ज्यादा।

नाथयोग पंथ के शिखर साधक थे सुन्दरनाथजी। उनका ज्यादा समय गुरुस्थल, गोरखपुर में व्यतीत हुआ। योगसिद्धि प्राप्त करने के बाद वे कठोरतम तपस्या के लिए बाहर निकल पड़े। फिर केदारखण्ड से लगी गुफाओं, बदरीनाथ धाम के अंचल में ऋषिगंगा के ऊपरी किनारों पर कुटिया में लम्बे समय तक तपस्या करते रहे। उनका प्रिय परिव्राजन क्षेत्र शतोपंथ था। हर दो-एक वर्ष बाद वे यहाँ जरूर आते थे।

मैदानों में उनका भ्रमण बहुत कम था, इसलिए उनके बारे में ज्यादा जानकारी नहीं सुलभ हो सकी।

●

मौनी दिगम्बरजी

बाल्यकाल से ही पुरन्दर साधु-जीवन के प्रति आकर्षित थे। युवा अवस्था आते-आते उनके भीतर आध्यात्मिक चेतना और प्रबल हो उठी। एक दिन वे कॉलेज से लापता हो गए। बाद में उन्होंने इलाहाबाद में एक सिद्ध योगी त्रयम्बक बाबा से दीक्षा ले ली। गुरु के आदेश से कलकत्ता के काली क्षेत्र में गंगा नदी के किनारे एकांत स्थान में साधना करते रहे। योगेश्वर त्रयम्बक बाबा से दीक्षा लेने के उपरांत साधना-पथ पर अग्रसर पुरन्दर के भीतर की आध्यात्मिक चेतना आलोकित हो रही थी। वे प्रतिदिन डायरी लिखा करते थे जिसमें अपने आध्यात्मिक संसार के अनुभवों और तत्त्व-चिंतन का लेखा-जोखा होता था। उनकी डायरी के पृष्ठ उनके साधक-जीवन के आलोक-पथ से हमें परिचय कराते हैं। यहाँ प्रस्तुत है इस महान साधक की दैनन्दिनी में अंकित तत्त्व-चिंतन के कुछ आयाम—

सभी वस्तुओं की शुरुआत का एक आरम्भ होता है, जैसे अंकुर के उद्‌गम से पूर्व मिट्टी के नीचे बीज की उपस्थिति है। मौनी दिगम्बरजी के इस विवरण के मूल में भी वैसी ही एक अन्तरालचारी स्रोत धारा गोपन है उसका प्रकाश एक दिव्य कृपाभिषिक्त घटना के माध्यम से हुआ था। लौकिक और अलौकिक सीमा रेखा पर इसे अपने चक्षुओं के सामने घटते हुए देखा था।

माघ मास था तथा पवित्र शिव चतुर्दशी की अंधकारमय रात्रि थी। निविड़ अंधकार मानो तीव्र शीत में अमरकंटक पर्वत के अंचल में और तीव्रतर हो उठा है।

इस पर्वत के हृदय को चीरती हुई निकलती है नर्मदा की पवित्र जल-धारा का स्रोत। इसी उद्‌गम-स्रोत के कुण्ड के किनारे नर्मदा माई की प्रतिमा एवं स्वयंभू लिंग विराजित है। सहस्रों पुण्य-लोभातुर नर-नारी प्रति वर्ष इन दिनों एकत्रित होते हैं। अबकी बार भी अनेक दलों में यहाँ एकत्रित हैं। कुण्ड-जल में स्नान एवं तर्पण के उपरान्त सभी नर्मदा माई को श्रद्धा-निवेदन कर रहे हैं तथा अपने अन्तर के उद्‌गार प्रकट कर रहे हैं।

साधु-महात्माओं की विराट जमात इस महापुण्यमय तीर्थ पर जमी हुई है। इस जमात में आप विशाल भारत के नाना साधु-समाजों को देख सकते हैं। आप

देखेंगे धूनी जमाए हुए योगी, वेदान्तिक एवं परमहंस से आरम्भ करके उदासी, नागा, नाथपंथी, वैष्णव और अघोरियों के दल बैठे हुए हैं।

तामसी रात्रि ने दिग-दिगन्त में अपना आँचल फैला दिया है। विन्ध्य गिरि की उपत्यका, अरण्य एवं विस्तीर्ण प्रदेश सूचीभेद्य अंधकार में ढक गया है। ऊपर आकाश में ताराओं का मण्डल टिमटिमा रहा है। दूर पहाड़ पर पेन्ड्रा रोड नामक पहाड़ी कस्बे में जगह-जगह जलती हुई रोशनी से दीपावली का भान होता है। यह दीपावली मानो नर्मदा माई का अर्घ्य हो।

रात्रि अभी नहीं हुई है। धूनी की अग्नि को घेरकर साधु-संन्यासियों का ध्यान एवं जप चल रहा है। गाँजा, भाँग, चरस का धुआँ अविराम उड़ रहा है। हजारों तंद्रिक नयनों में भोर के प्रकाश की प्रतीक्षा दृष्टिगोचर हो रही है। प्रभात होते ही सभी देवी के चरणों में पुष्पांजलि-अर्पण करके नर्मदा की परिक्रमा में निकल पड़ेंगे।

परिक्रमा के उपरान्त साधु-सन्त एवं गृहस्थ नर-नारी, अभी अपने आश्रमों, घरों को अपने चिर अभ्यस्त जीवन के बीच वापस चले जाएँगे।

सहसा सिद्धनाथजी के उच्च एवं उत्फुल्ल कण्ठ से सुनाई दिया, ''माईजी की पूजा समाप्त हो गई। अभी परिक्रमा शुरू होगी। जल्दी से डेरा-डंडा उठाओ, डेरा-डंडा उठाओ।''

सबसे अधिक शोर-गुल कर रहे हैं बाबा के चेला, प्रौढ़ एवं सदा हास्योज्वल सिद्धनाथजी।

त्रयम्बक बाबा का ध्यान तथा जप समाप्त हो गया है। धूनी छोड़कर वे खड़े हो गए हैं। सेवक सिद्धनाथजी के पास एक मुहूर्त का भी समय नहीं है। चटपट उन्होंने गुरुजी का व्याघ्राम्बर एवं झोली उठा लिया है। नर्मदाजी के विग्रह एवं कुण्ड के स्पर्श के उपरान्त बहुप्रतीक्षित पदयात्रा का आरम्भ हुआ।

नर्मदा-तट की यात्रा करने के बाद सभी को यहाँ के विग्रह के चरणों में पुन: वापस आना होगा।

किसी समय इलाहाबाद के उस पार झूँसी के बालुकामय तट पर त्रयम्बक बाबा पर्णकुटी बनाकर निवास करते थे। शिक्षित एवं अशिक्षित बहुत से लोग इन्हें एक शक्तिमान महापुरुष समझते थे तथा श्रद्धापूर्वक इनके पास आते-जाते थे। मेरे साथ भी इनका बहुत पहले परिचय हुआ था। कैसे उनके स्नेह-स्पर्श का लाभ प्राप्त हुआ था, यह ध्यान नहीं, किन्तु अवसर मिलते ही उनके पास चला आता था। अबकी बार वे नर्मदा की परिक्रमा में निकले हैं, सुनते ही साथ हो जाने का लोभ हो गया। विलासपुर में एक कार्य था, इस कारण व्यवस्था भी

आसानी से हो गई। रीवाँ राज्य एवं अमरकंटक काफी पास ही हैं। कुछ दिनों के अन्दर ही मैं इस जमात के साथ हो गया।

नर्मदा के उद्गम से क्षीण धारा नीचे बहती हुई चलती है। सर्दियों में यह जलधारा लुप्त ही रहती है। और इसको खोज निकालना बड़ा कठिन है। इसी के साथ पहाड़ के वक्ष-स्थल से उतर कर मील-पर-मील स्निग्ध हरित क्षेत्र का प्रसार है। नर्मदा की अंत:सलिला धारा इसको स्निग्ध प्राणरसों से पुष्ट करती है। हरी घास का एक सुन्दर गलीचा बिछा कर मानो अबोध बालकों का निरन्तर आह्वान करती है।

अमरकंटक से उतरता जा रहा हूँ। इसी समय गंगाधर चटर्जी से सहसा साक्षात हुआ। ऐसे समय में तथा इस परिवेश में मुलाकात होने पर आश्चर्यचकित हो उठा। पास के एक बड़े वृक्ष के पास खड़े हैं। साहेबी सूट पहने हुए हैं तथा शरीर पर आभिजात्य वर्ग की स्पष्ट छाप है। मुँह में तिरछी पकड़ी हुई टोबैको पाइप पड़ी है।

कौतूहलपूर्वक वे चिमटाधारी, नग्न, अर्धनग्न एवं भस्म-भभूत रमाए हुए साधु-संन्यासियों के दल को देख रहे हैं। पहले जैसे आज भी उनके पतले ओठों पर वक्र हँसी है। नाम लेकर पुकारते ही दौड़ आए।

गंगाधर बाल्यकाल के मेरे घनिष्ठ बंधु हैं। प्रवासी बंगालियों के बीच उनके परिवार की काफी प्रतिष्ठा है एवं गणमान्य पुरुषों से परिचय भी काफी है।

काफी दिनों से उनसे साक्षात नहीं हुआ था। सुना है, विलायत से बैरिस्टर होकर वापस आए हैं और इलाहाबाद हाईकोर्ट में काफी अच्छी तरह धाक जमा ली है।

दोनों हाथ बढ़ाकर गंगाधर ने मुझे सस्नेह पकड़ लिया।

विस्मयपूर्वक उसने स्मरण दिलाया—''कितने दिनों के बाद मुलाकात हुई, बता तो! तुम्हारी कोई खबर भी नहीं पा सका। सोचा था, बिल्कुल कलकतिया हो गए होंगे। फिर, यहाँ इस वेश में क्या कर रहे हो? कंधे पर एक झोला झुलाते हुए तथा हाथ में इतना बड़ा चिमटा और शबल लिये ठक-ठक करते हुए कहाँ जा रहे हो?''

हँस कर कहा, ''नर्मदा की परिक्रमा में। हाथ का चिमटा, यह मेरा नहीं है, त्रयम्बक बाबा महाराज का है। चिमटा छोड़ कर चलने का कोई उपाय नहीं है, कारण रात में धूनी की अग्नि इसी से प्रज्वलित करनी होती है एवं दिन में शिष्य तथा सेवक लोग चिमटा तथा शबल से ही कंद-मूल खोज कर निकालते हैं तथा खोद कर बाहर करते हैं।''

"वे करें, इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं है, किन्तु तुम किस तरह इन लोगों के साथ जुट गए हो? साधु होओगे क्या?"

"भाई ऐसा भाग्य तो मेरा नहीं हुआ है। फिर भी अबकी बार इस तीर्थ-यात्रा का लोभ नहीं छोड़ पाया। इसके अलावा, पता नहीं कैसे नर्मदा माई ने इस बार बहुत अधिक आकर्षण किया है। किन्तु अमरकंटक के इस कंटकवन में तू कौन-सी बैरिस्टरी कर रहा है, बताओ?"

"एक बन्धु अस्वस्थ है, पेन्ड्रा रोड के सैनेटोरियम में रह रहा है। उसे ही देखने इधर आया था। सुना परिक्रमा के लिए अमरकंटक में साधुओं की विशाल जमात इकट्ठी हुई है तथा मेला लगा हुआ है। कौतूहल जाग्रत हुआ, इसी कारण एक जीप लेकर निकल पड़ा। पहाड़ के नीचे तक काम करने के लिए एक गाड़ी का रास्ता इन दिनों तैयार हुआ है, उसी से तो आ सका।"

"समझता हूँ कि अब पेन्ड्रा रोड वापस चले जाओगे?"

"बात तो ऐसी ही थी। फिर भी यहाँ की सारी बातें देख-सुनकर सहसा एक विचार मन में उठा है। इन सभी के साथ पर्यटन में निकल पड़ने में क्या बुराई है?"

"ऐसा कैसे सम्भव है रे? सुनता हूँ तुम्हारी प्रैक्टिस काफी बढ़ी हुई है। इतने दिनों की परिक्रमा से क्या क्षति नहीं होगी? इसके अलावा बिना सूचना दिए सहसा दो-तीन मास के लिए निकल पड़ोगे? घर में स्त्री, पुत्र भी तो रहते हैं? वे तो आशंका में मर जाएँगे। नहीं भाई, यह बात उचित नहीं है। देखता हूँ, बाल्यकाल की लापरवाही तुम्हारे अन्दर रह गई है। संसार की बाधा, संसारी लोगों को माननी पड़ती है रे।"

"नहीं रे, ये सब कोई बाधाएँ मेरे साथ नहीं हैं। है तो केवल अपने मन की ही बाधा। देखो, व्यवसाय के प्रसार पर मैंने कोई ध्यान नहीं दिया—वह तो अपने आप ही बढ़ गया। तुम तो जानते ही हो, मेरे पिता तथा पितामह काफी दूरदर्शी थे। अपने खा-पी कर भी मेरे लिए काफी कुछ छोड़ गए हैं। मुझे परिश्रम करने की बहुत आवश्यकता नहीं है। इसके अलावा मैं भी कम बुद्धिमान नहीं हूँ, इसका प्रमाण भी है—अर्थात विवाह भी अब तक नहीं किया है।"

"कुछ भी हो, इतना कष्ट क्यों सहेगा, बता तो?"

"नहीं भाई, मैंने निश्चय कर ही लिया है। तुम्हारे साथ ही निकल पड़ूँगा। एक नवीन प्रेरणा से कौतूहल जग पड़ा है, शुद्ध मात्र कौतूहल। तुम्हारे लाइन की बात इसमें कुछ भी नहीं है। भाग अरण्य जीवन का स्वाद एक बार देखूँगा। अपने बाबा महाराज से चटपट अनुमति ले ले भाई।"

गंगाधर हमलोगों के साथ ही पदयात्रा में मस्त था। रास्ता चलने के दुस्सह नशे ने मानो उसे ग्रस लिया है तथा उसके ही नर्मदा के बालुकामय तट तथा जलधारा के प्रति भी उसका एक अहैतुकी अनुराग भी बढ़ गया है।

चलते-चलते उस दिन मण्डली के सभी चन्दोनी के विख्यात मन्दिर के सामने उपस्थित हुए। श्वेत संगमरमर का एक विशाल शिवलिंग वहाँ स्थापित है। इस स्थान के साथ बहुत से सिद्ध-साधकों की स्मृतियाँ जुड़ी हुई हैं। नर्मदा के घाट पर स्नान करके बिल्वपत्र लेकर सभी पूजा-अर्चना समाप्त कर रहे हैं।

अकस्मात गंगाधर के मन में न जाने क्या विचार आया, मुझसे कहा, "अच्छा नर्मदा के जल के ऊपर मन में बहुत लोभ क्यों हो रहा है, बता तो? इच्छा हो रही है कि किनारा पकड़कर परिक्रमा न करके जलधारा में ही शरीर भिगाता चलूँ। आज से रास्ते में जब भी इच्छा होगी, बार-बार स्नान करूँगा।"

विज्ञ अभिभावक के रूप से मैंने उसे जवाब दिया, "ऐसा तो करोगे—मैंने समझा, परन्तु इतने कपड़े तुम्हारे पास कहाँ हैं? देख रहा हूँ, काट-शर्ट ट्राउजर ही तुम्हारे एकमात्र संबल हैं। केवल पथ चलना तथा स्थान परिवर्तन ही तो करना है। यह सब सुखाओगे कब?"

"उसका डर नहीं है—शरीर पर ही सुखा लूँगा।" गंगाधर ने अनायास ही कह दिया।

"अरे, इतनी वीरता दिखाने की आवश्यकता नहीं है। एकदम से इतना सह नहीं पाओगे। मैं तो यही कहूँगा पेन्ड्रा रोड के अपने होटल में वापस चला जा। अभी भी हम लोग बहुत दूर नहीं आए हैं।"

जैसी उसने बात की वैसा ही कार्य भी किया। नित्य रास्ता चलते हुए बीच-बीच में विश्राम के समय गंगाधर नर्मदा की गोद में डुबकी लगा लेता था। उल्लासपूर्वक तैरता तथा दुष्ट बालक के सदृश अपने साथियों के छींटे देता। जल से निकल कर पक्षियों की तरह मात्र शरीर को फटकार देता। वस्त्रों का थोड़ा जल मिट्टी में गिर पड़ता बाकी उसके शरीर पर सूखता रहता, केवल धूप और हवा में।

इस स्नान से उसके हृदय में अपूर्व आनन्द था। चेहरे से ही खुशी टपकती थी। हाथ के 'टुबैको पाइप' को उसने अवहेलनापूर्वक जल में ही विसर्जित कर दिया है।

साधुओं की जपध्वनि में अब तक गंगाधर को योगदान देते हुए नहीं देखा था। कब सुयोग पाते ही परम उत्साहपूर्वक चिल्ला उठता है—"नर्मदा माई की जय।"

ऐसी ही दशा में काफी दिन बीत चुके हैं तथा गंगाधर में अद्भुत रूपान्तर हो गया है। गले की नेकटाई पता नहीं कब की गायब हो चुकी है। शरीर के

ऊपर पड़ा कीमती कोट पता नहीं कब जलधारा में विसर्जित हो गया है—उसे कोई सुध नहीं है। मात्र गंदा ट्राउजर पहने वह महाआनन्द में परिक्रमा में चल रहा है।

खंभात की खाड़ी में पहुँच कर नर्मदा ने अपनी पवित्र जलधारा, सागर में विसर्जित कर दी है। नदी के मुहाने पर स्नान तथा तर्पण समाप्त करके, उस पार जाकर साधुओं की जमात फिर अमरकंटक के उद्‌गम स्थान की ओर वापस चली।

इतना लम्बा रास्ता इन लोगों के साथ पैदल ही तय करता चला जा रहा हूँ। मन में उत्साह के उद्दीपन में लेशमात्र भी कमी नहीं है, फिर शरीर कुछ क्लान्त-सा हो गया है।

किन्तु, सभी गंगाधर को देखकर विस्मित हो रहे हैं। धनी घर का लड़का है, जिसका सारा जीवन ऐश्वर्य में बीता है। संभवतः उसने अपने सारे जीवन से भी इस पद-परिक्रमा जितना रास्ता तय नहीं किया होगा। उसके शरीर तथा मन में एक अपूर्व भाव का उद्दीपन एवं अपूर्व शक्ति दृष्टिगोचर हो रही है। नर्मदा के घाट-घाट पर वह स्नान करता जा रहा है; तथा मुख से अविराम भजन तथा स्तुति गाता चल रहा है। धूसर केश तथा बढ़ी हुई दाढ़ी। शरीर पर मात्र एक ट्राउजर ही सहारा था परन्तु वह भी स्नान करते-करते सड़कर क्षत-विक्षत हो गया है, जिससे लज्ज निवारण भी सम्भव नहीं है। उसकी ऐसी अद्‌भुत अवस्था क्यों? इसे क्या कहा जायगा? दिव्य भाव का आवेश या वायुरोग? परिक्रमारत सभी साधु-सन्तों ने उसका नवीन नामकरण किया है—दिगम्बरजी। वस्त्रों की दृष्टि से—एकदम नंगा।

त्रयम्बक बाबा से कुछ भी कहने का साहस नहीं हुआ। सिद्धनाथजी को बुलाकर मैंने कहा, ''क्यों आपके साधु जमात के साथ के कारण गंगाधर अब पागल हो जायगा?''

''मारूँगा एक चिमटा!'' सिद्धनाथजी ने कृत्रिम कोप दर्शाते हुए कहा—''अरे पागल तो तुम हो। जैसा आनन्द गंगाधरजी के जीवन में आया है वह किसी को मिलना बड़ा कठिन है। सब हमारी नर्मदा माई की कृपा और लीला है। बड़ा भाग्य है तुम्हारे दोस्त का। पवित्र धारा में स्नान करते-करते ही देवी की कृपा मिल गई।''

सिद्धनाथजी का यही सबसे बड़ा दोष है कि वकालत के अलावा अन्य कोई बात कभी नहीं बोलते। उनका कण्ठ स्वर त्रयम्बक बाबा के कानों में पड़ा। आगे बढ़कर उन्होंने हमारी बातचीत सुनी। हँसते हुए उन्होंने कहा, ''बाबा, सिद्धनाथ की बात अक्षरशः सत्य है। गंगाधर के जीवन में नर्मदा माई की कृपा

का अवतरण हो गया है। उसका सारा अन्तर ध्यानावस्थित हो गया है। ऐसा लगता है कि अपने इस मित्र को केन्द्र करके और भी बहुत सी बातें देखोगे। बाबा, सभी परमात्मा की इच्छा है।''

अमरकंटक पहाड़ के शिखर पर वह साधु जमात वापस आ गई है। उनकी यह पुण्य परिक्रमा पूर्ण हो चुकी है। नर्मदा माई के छोटे तुषार शुभ्र मन्दिर के चतुर्दिक एक आनन्द का पारावार है। उस दिन धर्मप्राण, धनकुबेर सेठ बृजलाल का भण्डारा मध्याह्न में चल रहा है। पूरी, कचौड़ी, लड्डू, मालपूआ के भोजन से साधुओं की मण्डली में सरगर्मी है।

अपराह्न में त्रयम्बक बाबा ने मुझे पास बुलाया। मन्दिर के पिछवाड़े आँवले के वन में उन्होंने डेरा डाल रखा है। पास ही कम्बल पर गंगाधर अर्धबाह्य अवस्था में सोया हुआ है।

उसकी ओर अँगुली से इशारा करते हुए त्रयम्बक बाबा ने कहा, ''बाबा, अपने मित्र को साथ लेकर तुम उसे यथास्थान उसके घर पहुँचा आओ। चिन्ता की कोई बात नहीं है, उसे उन्माद नहीं हुआ है। फिर भी, वह बिल्कुल ही बदल गया है, यह कथन सत्य है। संसारी मनुष्यों के साथ अब उसका निर्वाह नहीं हो सकेगा। अब वह बिल्कुल मौनी है, सदा ध्यान के गम्भीर सागर में डूबा रहेगा।''

''ऐसा क्यों बाबा? क्या पुराना गंगाधर हमें वापस नहीं मिल पाएगा? वह अपने आत्मीय परिजन एवं बंधु-बांधवों के बीच क्या अब से वह अपरिचित तथा दुरूह ही बना रहेगा?''

''इसमें ग्लानि की क्या बात है बाबा? मनुष्य को जब अपने स्वरूप का बोध हो जाता है, तब उसके लिए अन्य सारी वस्तुएँ निरर्थक हो जाती हैं। याद रखो गंगाधर दिव्य आनन्द का स्वाद ले रहा है। अगर यह सत्य है तुम्हें उसके लिए दुःख क्यों है?'' सहज भाव से त्रयम्बक बाबा ने उत्तर दिया।

''फिर उसे इलाहाबाद तक पहुँचा देना होगा?''

''नहीं वहाँ का वातावरण इन दिनों उसके लिए सह्य नहीं होगा। उसे गाँव वाले घर पर ही छोड़ आओ।''

''वह तो गाजीपुर अंचल के पौड़ी ग्राम में है। उसी काफी दिनों से परित्यक्तघर में?''

''हाँ, एकांत तथा शान्त वातावरण न होने से तो इस समय उसका काम नहीं चलेगा। उसे वहीं छोड़ आओ, बाबा।''

गंगाधर को साथ लेकर सिद्धनाथ तथा मैं पौड़ी ग्राम पहुँचे। पहले से ही तार दे दिया था। स्टेट के मुनीम एवं दूर के एक रिश्तेदार के हवाले कर हम लोग वापस आए, उस समय भी वह अर्धोन्माद की अवस्था में ही था। शरीर पर मात्र

ट्राउजर का ही एक हिस्सा था, वह भी कुछ दिन पहले उसने छोड़ दिया था, अब एकदम नंगा ही था।

सिद्धनाथजी का आदेश था, इसलिए उसी दिन वापस आना पड़ा। साधु नयनों से मैंने अपने बाल्यबंधु गंगाधर से बिदा ली। किन्तु वह स्वयं मौन था। इसके अलावा उसके चेहरे से भी कोई भाव प्रकट नहीं हुआ। निर्मोह जीवन के एक उत्तुंग शिखर पर आसीन है। विस्फारित नयन द्वय से वह निर्निमेष देखता ही जा रहा है। उज्ज्वल एवं प्रदीप्त दो नेत्र ही मानों उसके सारे शरीर पर छा गए हैं। किसका प्रकाश उस दृष्टि में अलोकित हो रहा है ? कौन जानता है ?

कलकत्ता वापस आकर मैं अपने व्यक्तिगत कार्यों में व्यस्त हो गया। इच्छा होने पर भी गंगाधर को देख आने का सुयोग नहीं पा रहा था। फिर भी, उसके घर के मुनीम से बीच-बीच में समाचार लेता रहता था।

गाँव के पैतृक निवास पर जाने के बाद से गंगाधर ने फिर स्थान त्याग नहीं किया। घर के पास स्थित बेल के पेड़ के नीचे ही उसका आसन था। उसी आसन पर बैठ कर सारा दिन तथा रात ध्यान में ही व्यतीत करता था। शीतकाल तथा ग्रीष्म दोनों समय में नंगा ही रहता था। मुँह से कोई शब्द नहीं निकलता था, बिल्कुल मौनी। गाँव के नर-नारियों में वह दिगम्बरजी के नाम से ही परिचित हो उठा था। स्टेट के मुनीम ने और भी लिखा था, उसके जीवन में विस्मयकर विभूतियों का प्रकाश भी अवतरित हो गया था। उसके आशीर्वाद से बहुत लोगों के कठिन रोगों का भी निवारण हो रहा है। घर के प्रांगण में तथा आस-पास आर्त भक्तों की भीड़ का अंत नहीं है।

बहुत वर्षों से गंगाधर से साक्षात्कार नहीं हुआ है, परन्तु क्या भूल पा रहा हूँ ? उसकी स्मृति मेरे मानस-पट पर दिन प्रतिदिन और भी उज्वल होती जा रही है। वह मुख तथा नेत्र तथा नाटकीय रूपान्तर की स्मृति क्या भूल पाना सहज है ?

अकस्मात कलकत्ता में ही सिद्धनाथजी का एक जरूरी तार मिला। गौहाटी से भेजा गया था। त्रयम्बक बाबा का एक जरूरी आदेश था—अविलम्ब मुझे गंगाधर के गाजीपुर जिला स्थित गाँव में जाना होगा। वहाँ से उसे लेकर बाबा के अनन्य भक्त हिरण्य सरखेल के गौहाटी वाले बँगले पर पहुँचाना होगा।

नंगे भावाविष्ट साधक गंगाधर के शरीर पर चादर ओढ़ाकर किसी तरह उसे साथ लेकर गौहाटी पहुँचा।

बँगले पर पहुँच कर विश्राम या देरी करने का आदेश नहीं था। सिद्धनाथ पहले से नदी के घाट पर नाव लेकर प्रस्तुत थे। थोड़ा हँस कर उन्होंने मेरी अभ्यर्थना की।

तरंग विक्षुब्ध ब्रह्मपुत्र नदी के बीच में अपरूप महिमा के साथ स्थित है— शैलतीर्थ उमानन्द भैरव का स्थान। नौका छूटने के कुछ देर बाद उस स्थान पर ज़ा लगी। त्रयम्बक बाबा अपनी आनन्दघन मूर्ति लिये पहले से ही घाट के सामने उपस्थित थे। परम स्नेह से उन्होंने हाथ बढ़ा कर गंगाधर के भावकम्पित शरीर को पकड़ लिया।

पहाड़ के ऊपर क्षुद्रायतन मन्दिर है। कुछ कदम आगे जाने के बाद मन्दिर के गर्भ में स्थित अंधेरी कोठरी में उतरना पड़ता है। त्रयम्बक बाबा गंगाधर का हाथ पकड़ कर चल रहे हैं। वह भी निर्वाक मंत्रमुग्ध जैसे चला जा रहा है।

गर्भ मन्दिर में प्रवेश करने के साथ-साथ गंगाधर के कण्ठ से एक भीम भैरव हुंकार सुनाई पड़ा। मौनी ने मानो अपनी अनुभूति की भाषा खोज ली है। दोनों हाथ ऊपर की ओर उठा कर वह स्तम्भिक खड़ा है। दोनों नेत्र जैसे उदीप्त हैं तथा सारे शरीर में प्रबल स्पन्दन है। मुँह से 'बम-बम्' का गम्भीर घोष निकल रहा है। सामने ही एक व्याघ्र-चर्मासन बिछाया हुआ है। त्रयम्बक बाबा ने उसे आसन पर बिठा दिया।

कुछ ही क्षणों में मन्दिर के गर्भ में एक परम प्रशान्ति का वातावरण छा गया। गंगाधर धीरे-धीरे ध्यान के अतल सागर में निमग्न हो गया। उसके चेहरे से दिव्य ज्योति की आभा फूट रही है। मानो समग्र चेतना भास्वर होकर निष्कल दीपशिखा जैसी जल उठी है।

मेरे मनोलोक पर एक के बाद एक विस्मय का धक्का पड़ रहा है। कितने आश्चर्य की बात है कि सारी दैवी घटनाएँ मेरे बंधुवर गंगाधर को केन्द्र कर के चल रही हैं।

मन्दिर से बाहर आकर मैंने सिद्धनाथजी की शरण ली। प्रश्न किया, ''भाई मामला क्या है, सारी बातें खोलकर बताइए। अकस्मात यह आपका टेलीग्राम कैसे? क्यों इतनी जल्दीबाजी करके इतनी दूर से गंगाधर को ले आया गया? वह आकर इस तरह समाधिस्थ क्यों हुआ? इसका रहस्य क्या है?''

सिद्धनाथजी सबल प्राण तथा सदानन्दमय पुरुष हैं। आधा बँगला तथा आधी हिन्दी में उन्होंने अबतक की सारी बातें विस्तारपूर्वक खोलकर बताईं।

पूर्वी हिमालय के नाना अंचलों में घूमकर कुछ दिन हुए, सभी उमानन्द भैरव पहुँचे। यहाँ के मन्दिर-गर्भ में घुसते ही त्रयम्बक बाबा ध्यानस्थ हो गए। महापुरुष की दृष्टि के समक्ष एक अलौकिक दृश्यपट का अनावरण हो उठा। उन्होंने अपने गंगाधर की ज्योतिर्मण्डित मूर्ति को देखा—उसकी पीठ दीर्घ जटाओं से लदी हुई है तथा दोनों चक्षुओं से योगसिद्धि की दिव्य द्युति निकल रही है, तथा पूरे स्थान के अस्फुट ओंकार नाद ध्वनित हो रहा है। आकाश में, हवा में

तथा ब्रह्मपुत्र के उर्मिकल्लोल में भी निरन्तर गंगाधर के कण्ठ से अपरूप ध्वनि ॐ ॐ ॐ निरन्तर तरंगित हो रही है।

शक्तिधर योगी त्रयम्बक बाबा की दृष्टि निमेष मात्र में गंगाधर के अपने ग्रामस्थित साधन आसन की ओर प्रसारित हो गई—इस दृष्टि ने उसके वर्तमान एवं पूर्वजन्म के जीवन क्षेत्र का भी भेदन कर दिया।

गम्भीर स्वर में महापुरुष ने कहा, "अरे, यहीं इसी स्थान पर—इसी आनन्द भैरव मन्दिर में ही गंगाधर की साधना (अतीत की) का अपना स्थान है। यहीं की भूमि में, आकाश में तथा वायु में उसने अपने पूर्वजन्म की अष्ट सिद्धियों का ऐश्वर्य रख छोड़ा है। पूर्व जन्म के सिद्ध आसन पर वह सदा ही प्रणव मंत्र का उच्चारण करता था। वही मंत्र, वही स्पन्दन अभी भी यहाँ अविरक्त तरंगित होता रहा है। अबकी शीघ्र ही उसे बुला लो। यहीं बैठ कर उसके इस जीवन के सारे अभीष्ट का लाभ हो।"

कमण्डल से थोड़ा जल लेकर घर-घर करते हुए गले को सिंचित करने के बाद सिद्धनाथजी ने हँसकर कहा, "अरे बाबा, इसलिए ही तो हमने तुमको तार भेजा और इतना काण्ड यहाँ हो रहा है।"

गंगाधर की यह गम्भीर ध्यानावस्था एवं समाधि, महासमाधि के रूप में परिणत हो गई। ब्रह्मरंध्र के पथ के प्राणवायु का उत्क्रमण हो गया।

प्रभात सूर्य के स्वर्णालोक में ब्रह्मपुत्र उस दिन झिलमिला रही थी, परन्तु उसके हृदय में यह कैसा विक्षोभ है? यह किस अशान्ति का आलोड़न है? एक के बाद एक तरंग शैल द्वीप उमानन्द भैरव के कठिन शिलास्तूप पर उन्मत्तता की अवस्था बार-बार टकरा रही है।

नीरव तथा नतशिर कई आदमियों ने मिलकर गंगाधर की देह को नीचे उतार लिया है। उसे पुष्प तथा चंदन से सजाकर नदी की धार में विसर्जित कर दिया।

फेनिल जलधारा के आवर्त में एक मुहूर्त में ही न जाने शव देह कहाँ अदृश्य हो गया।

मेरे दोनों नेत्र अश्रु-सजल हो उठे हैं। मानस में एक मर्मांतक पीड़ा उमड़ आई है तथा एक के बाद एक प्रश्न मन से उठ रहे हैं।

गम्भीर रात्रि में निःशब्द धीरे-धीरे त्रयम्बक बाबा के पास आकर बैठ गया। आशादण्ड का सहारा लेकर महापुरुष बैठे हुए हैं। वे तन्द्राच्छन्न हैं या घनाविष्ट, समझ नहीं पाया। मेरी ओर न देखते हुए धीमे स्वर में उन्होंने कहा, "बैठो, कोई प्रश्न है?"

जल्दी से पास बैठते हुए मैंने कहा, "जी, है।"

कुछ समय नीरवता में ही कट गया। बात आगे बढ़ाते हुए मैंने कहा, "गंगाधर का मामला जितना दुखान्त है, उतना ही रहस्यमय है।"

"नहीं, बाबा, उसका यह तिरोधान विषाद का विषय तो है नहीं, वरन् महाआनन्द का है।"

चौंक कर प्रश्नसूचक दृष्टि से मैंने उनकी ओर देखा।

त्रयम्बक बाबा कहते रहे, "थोड़ा शान्तिपूर्वक विचार करो, वित्तवान बैरिस्टर का जीवन यापन करते हुए तथा अपने को सदा भोग-विलास में डुबाए रखने से क्या उसका सचमुच कोई काम होता? आत्मिक जीवन की पूर्णता तो नहीं घटती। यही होता कि यह जन्म एक पालतू विलायती कुत्ते जैसे आराम से बिताता। यह क्या काम्य है?"

उत्तर में मैंने संक्षेप में कहा, "ऐसा तो नहीं ही है।"

"मानव साधना का श्रेष्ठ फल है, आत्मज्ञान लाभ तथा ब्रह्मानन्द की प्राप्ति होती है। इस फल की प्राप्ति न होने पर मानव-जीवन वन्ध्या एवं निष्फल होकर ही रहेगा। बाबा, जीव को शिवत्व प्राप्त करना होगा—ब्रह्मज्ञान का अधिकारी होना होगा। यह परम सौभाग्य प्रत्येक मनुष्य के भाग्यलेख में लिखा है। जन्म-जन्मान्तर की त्याग-तितिक्षा एवं तपस्या की भित्ति पर वह इस भाग्य लेख को रूपान्तरित करने के सतत प्रयास में है। गंगाधर के जीवन में इसी साफल्य का प्रकटन हुआ। इसी कारण परमानन्दपूर्वक ब्रह्म में विलीन हो गया। फिर इसमें दुःख का क्या प्रयोजन है, बता दो बाबा? विगत जीवन की साधना से जो कुछ प्राप्ति हुई थी इस बार वह पूर्ण हो उठी।"

मैंने जिज्ञासा की, "एक बात बार-बार मन में आती है! नर्मदा के जल में किस अलौकिक शक्ति का बीज है, यह तो मैं नहीं जानता, परन्तु यह बात तो सत्य ही है कि उसी का पवित्र स्पर्श पाकर ही गंगाधर का यह अद्भुत रूपान्तर हुआ था। सोच रहा हूँ, यह अदभुत काण्ड किस तरह सम्भव हुआ?"

"असल बात क्या है, जानते हो बाबा? मनुष्य की मुक्ति प्रधानतः उसके प्रारब्ध के खण्डन के ऊपर निर्भर करती है। पुण्य लग्न एवं पुण्य स्थान का प्रभाव भी कुछ कम नहीं है। गंगाधर के सम्बन्ध में देखा गया, उसका प्रारम्भ शेष हो आया था। पुण्य सलिका नर्मदा के स्नान तथा तर्पण से उसके जीवन में मानो एक सहारा मात्र मिल गया। तामसी निद्रा शेष हो गई। उसका जीवन एक आत्मिक ज्योति से उद्भासित हो गया। उसके बाद उसका सारा अभीष्ट सिद्ध हो गया।"

मैंने प्रश्न किया, "फिर क्या समझूँ, इस तीर्थ के स्पर्श से ही गंगाधर के अन्दर यह आश्चर्यजनक रूपान्तर हुआ?"

"बाबा, यह बात तो माननी ही पड़ेगी कि मनुष्य के अध्यात्म-रूपान्तर का सबसे बड़ा कारण उसके पूर्वजन्म की साधना और संस्कार तथा इस जन्म की

गुरुकृपा है। किन्तु यह संस्कार और गुरुकृपा एक विशेष लग्न तथा एक विशेष भूमि पर ही सक्रिय हो उठता है। अमरकंटक तथा नर्मदा तट पर उस दिन इसे प्रत्यक्ष देखा गया।''

''अब तक यही सोचता था कि तीर्थ महात्म्य शुद्ध भावुक भक्तों की कल्पनामात्र है। देव स्थान या कोई भूमि विशेष ऐसी जाग्रत हो सकती है या ऐसे इन्द्रजाल की सृष्टि कर सकता है, ऐसा मैंने कभी विश्वास नहीं किया था। अब भी यह आश्चर्यजनक ही लग रहा है कि किस तरह यह सम्भव होता है।''

आशादण्ड को आसन पर रख कर मेरी ओर उन्मुख होकर त्रयम्बक बाबा बैठ गए। शान्त स्वर में उन्होंने कहा, ''इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। तीर्थभूमि मात्र भूमि नहीं है, वह तो जाग्रत तपस्या-लोक है। युग-युगान्तर से बहुत से सिद्ध-साधक इस भूमि पर मंत्रों का उच्चारण करते रहे हैं। इससे प्रत्येक धूलिकण, आकाश तथा वायु चैतन्यमय हो उठता है। ब्रह्मज्ञ पुरुष का स्पन्दन तथा उनकी तपस्या द्वारा प्रदीप्त ताप वहाँ बराबर रहता है। जो स्थान स्वयं ही चैतन्यमय है, वह मुक्तिकामी मनुष्यों का चैतन्य क्यों नहीं जगा सकेगा? उन्मुक्त मन से एवं श्रद्धापूर्वक मुमुक्षु होकर वहाँ तपस्या पर बैठो। स्वयं अनुभव करोगे कि सारी सत्ता पर दिव्य आनन्द की तरंग खेलती मिलेगी।''

मैंने प्रश्न किया, ''मंत्रों की वह शक्ति, वह गूँज, तपस्या का वह स्पन्दन तथा ताप किस तरह युग-युग से अव्याहत रहता है?''

''क्यों, क्या तुम्हारे आधुनिक पदार्थ विज्ञान में क्या यह नहीं बताया कि सृष्टि के किसी भी उपकरण का पूर्णतया लय कभी नहीं होता? वस्तु का रूपान्तर होता है, सूक्ष्म से सूक्ष्मतर हो जाता है, परन्तु उसका अस्तित्व तो रह ही जाता है।''

''जी हाँ, यह बात तो ठीक है।''

''तपस्या का ताप भी इस प्रकार चिर अक्षय रहता है। इस देश के तीर्थ तथा सिद्धपीठों में यह ताप चिर विराजमान है। तुम्हारे भीतर की प्रस्तुति ठीक होने पर इसका प्रभाव सक्रिय हो उठता है। तुमने स्वयं भी तो नर्मदा के पीठ स्थान, अमरकंटक का प्रभाव देख लिया है। गंगाधर के जीवन में चैतन्य के प्रकाश का अवतरण हो गया—जैव जीवन से निकल कर वह एक मुहूर्त में शैव जीवन के द्वार पर आ उपस्थित हुआ। यहाँ आकर भी तुमने प्रत्यक्ष देखा है, किस तरह गंगाधर ने अपने पूर्व जीवन की साधना के सूक्ष्म स्पन्दन को ढूँढ़ लिया—इतनी लम्बी अवधि के बाद, उमानन्द भैरव की जाग्रत पीठ पर उसकी पूर्वसंचित साधना, उसके लिए ही, उसकी अपेक्षा में थी। यहाँ पहुँचते ही गंगाधर को अपना

ताप एवं स्पन्दन पहचान लेने में एक मुहूर्त का भी विलम्ब नहीं हुआ। उसके भीतर ही डूब कर उसने अपनी परम मुक्ति का वह साधन कर लिया।''

सहज भाव से त्रयम्बक बाबा ने सूक्ष्म लोक के इस अपूर्व तथ्य की प्रस्तुति की और उसके बाद बिल्कुल मौन हो गए।

पहाड़ पर तथा नदी के तट पर स्थित वन में अंधकार फैल गया है। भीम भैरव गर्जन के साथ उत्ताल ब्रह्मपुत्र इस शेषपीठ पर बार-बार थपेड़े दे रही है। सिर के ऊपर का आकाश मानो एक सीमाहीन अतलस्पर्शी पारावार बना हुआ है।

नीरवता भंग करते हुए मैंने निवेदन किया, ''आपके मुख से जन्मान्तर के संस्कार, गुरुकृपा तथा सिद्धपीठ की महिमा सुनकर आज मैंने एक नवीन दिगन्त का संधान पा लिया है। सोच रहा हूँ, अब देरी न करके परिव्राजन के लिए बाहर निकल पड़ूँ।''

''अभी नहीं। दो वर्ष बाद ही हरिद्वार में पूर्ण कुम्भ का पर्व आ रहा है। उस अवधि तक प्रतीक्षा करो।''

●

गोस्वामी श्यामानन्द

श्रीकृष्ण मण्डल जाति के सद्गोप थे। बंगाल के दण्डेश्वर गाँव के रहने वाले थे। लेकिन कालक्रम में उड़ीसा में आकर घारेन्दा-बहादुरपुर अंचल में बस गए है। श्रीकृष्ण मण्डल के कई संतानें हुईं परन्तु सभी काल-कवलित हो गईं। श्री मण्डल और उनकी पत्नी दुरिका इससे काफी दु:खी रहने लगे। अंतत: एक सन्तान जीवित रही। चूँकि इसका जन्म दु:ख के समय हुआ, इसलिए इसका नाम दु:खी रख दिया गया। गाँव के लोग इसे दुखी नाम से ही पुकारते थे। कालांतर में यही बालक गोस्वामी श्यामानन्द के नाम से विख्यात हुआ।

माता-पिता चाहते थे दुखीराम एक महापण्डित के रूप में समाज में प्रतिष्ठित हों। फलस्वरूप इन्हें गाँव के संस्कृत टोल में भेजा गया। दुखीराम की प्रतिभा को देखकर भी शिक्षक हैरत में थे। दुखीराम न केवल अपना पाठ शीघ्र याद कर लेते वरन कठिन से कठिन शास्त्र-ग्रन्थों को भी यथाशीघ्र ही समझ लेते।

जब दुखीराम किशोरावस्था में पहुँचे तो इनके भीतर सांसारिक विषयों के प्रति उदासीनता जाग उठी। बड़ा ही अद्भुत स्वभाव था इनका। लगता था भाव-भाव जन्मजात इन्हें प्राप्त था और अपने समस्त जीवन को भक्तिपथ पर ही अग्रसर कर देना चाहते थे।

उस समय निताई गौरांग का प्रभाव समस्त बंगाल और उड़ीसा में व्याप्त था। बालक दुखीराम भी उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। निताई गौरांग के प्रभाव में आकर ही किशोर दुखीराम ने संकल्प कर लिया कि वह सांसारिक माया-मोह त्याग कर वैष्णव-साधना मार्ग ग्रहण करेंगे। कालना के परम भागवत हृदय चैतन्य का नाम उसने पहले से ही सुन रखा था। उन्हीं से दीक्षा लेने का निश्चय कर लिया।

जब किशोर दुखीराम ने अपनी भावना से माता-पिता को अवगत कराया तो उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा और वे बेहद दुखी हुए। एक ही तो बेटा था बुढ़ावे का सहारा, वह भी वैराग्य ग्रहण करने को कह रहा है। उन्होंने बेटे को लाख समझाया पर बेटे ने कहा, ''मैं समझता हूँ कि दीक्षा और साधना से रहित जीवन पशु के समान होता है। अम्बिका-कालना के वैष्णवाचार्य हृदय-चैतन्यदेव के सान्निध्य में उन्हीं से दीक्षा लेकर मैं साधना करूँगा। आप लोग मुझे आज्ञा दें।''

दुखीराम के माता-पिता के ऊपर तो मानों आकाश टूट पड़ा। वे जड़ हो गये। उनके सारे सपने बिखर गए। वे बेटे के भविष्य को लेकर भी चिन्तित हुए। अभी उम्र क्या थी दुखीराम की। वह कहाँ भटकेंगे।

माता-पिता के आँसू और घर छोड़कर न जाने का आग्रह भी दुखीराम को अपने संकल्प से नहीं डिगा सका। वह अविचलित रहे। सांसारिक माया से विमुक्त हो चुके थे। माता-पिता की चरणधूलि माथे लगायी और निर्विकार भाव से साधना-पथ पर चल पड़े।

आज वही दिन था जब किशोर दुखीराम की मनोकामना पूरी होने वाली थी। महावैष्णव गौरीदास पण्डित के प्रिय शिष्य ठाकुर हृदय चैतन्य के गौर-विग्रह मन्दिर में सदा की भाँति कीर्तन होने के बाद सांध्यकालीन आरती भी समाप्त हो गई थी। ठाकुर हृदय चैतन्य प्रांगण में बैठकर अपने भक्तों को महाप्रभु की लीला-कथा सुना रहे थे। इतने में ही एक किशोर ने आकर साष्टांग दण्डवत किया। इसके बाद अश्रुरुद्ध कण्ठ से उसने निवेदन किया, ''प्रभु, मैं बहुत दूर से आकर आपके चरणों में उपस्थित हुआ हूँ। आपसे शिष्यत्व ग्रहण कर अपने जीवन को धन्य करना चाहता हूँ। कृपा करके मुझे दीक्षा देकर अपने चरणों में आश्रय देने की कृपा करें।''

इस किशोर के विनम्र निवेदन और हृदय की व्याकुलता हृदय चैतन्य की दृष्टि से छिपी न रह सकी। उन्होंने उसे उठा कर गले लगा लिया। अपने पास बैठाया। फिर स्नेह से पूछा, ''वत्स, तुम्हारा परिचय क्या है ? तुम कहाँ के रहने वाले हो ? तुम्हारे मन में मेरा आश्रय प्राप्त करने की भावना कैसे जगी ?''

दुखीराम ने बताया, ''महामुनि, मैं उड़ीसा के धारेन्दा-बहादुरपुर का रहने वाला हूँ। अम्बिका-कालना तक पैदल ही आया हूँ। जाने किस दिन किस शुभ मुहूर्त में हृदय चैतन्यदेव का नाम मेरे कानों में प्रवृष्टि हुआ और मैंने उन्हें अपने दीक्षागुरु के रूप में वरण कर लिया।''

चैतन्य स्वामी किशोर का उत्तर सुनकर विस्मय से भर उठे। सोचने लगे, उड़ीसा से बंगाल तक का बीहड़ रास्ता इस किशोर ने पैदल तय किया है। घने जंगलों से गुजरा है। लगातार चलते-चलते उसके पैरों में फफोले पड़ गए हैं। शरीर थक गया है। किन्तु इस किशोर के नेत्रों में वैराग्य की अग्नि-शिखा प्रज्वलित है। उसके हृदय में कृष्णनाथ का मधुर गुंजन निरन्तर चल रहा है।

''वत्स, तुमने अपना नाम तो बताया नहीं।'' आचार्य ने कहा।

''मेरा नाम दुखी है आचार्य।'' किशोर ने विनम्रतापूर्वक उत्तर दिया।

''नहीं वत्स, तुम केवल दुखी नहीं हो, दुखी कृष्णदास हो,'' आचार्य ने अध्यात्म-जीवन के परम अधिकारी इस किशोर की ओर प्रदीप्त नेत्रों से देखते

हुए कहा, "तुम जन्म-जन्मान्तर से दुखी कृष्णदास हो। प्रभु की चिरन्तन वियोग-व्यथा को तुम अपने हृदय में छिपाए हुए दुखी बने हो। आज से तुम्हारा नाम यही रहेगा—दुखी कृष्णदास। मैं इस गौर-विग्रह के सामने खड़ा होकर तुम्हें दीक्षा दूँगा। मेरे पास जो भी शक्ति है, तुम्हें अवश्य प्राप्त होगी।"

यही दुखी अम्बिका-कालना के वैष्णव समाज में दुखी कृष्णदास के रूप में जाना गया। गौड़ीय वैष्णव साधना के द्वारा अमृतमय महाजीवन की दिशा में उसने कदम बढ़ाया और सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में बंगाल और उड़ीसा के जन-जीवन में जो अध्यात्म और भक्ति की बाढ़ आ गई थी उसमें निर्बाध-से तैरने लगा। श्री चैतन्य के भाव-तरंगों में रम गया।

हृदय चैतन्य के मन्दिर में स्थापित और विग्रह के समक्ष इस किशोर का दीक्षा दान देकर इसी विग्रह की सेवा में नियुक्त कर दिया गया। इस नए साधक के आनन्द की कोई सीमा न रही। उसने अपनी साधना शुरू कर दी।

विग्रह को स्नान कराने के लिए दुखी कृष्णदास को गंगाजल लाना पड़ता था। नदी का घाट काफी दूर था जबकि जलपात्र बड़ा। प्रतिदिन गंगाजल कई बार लाना पड़ता था। जलपान होते-होते माथे पर एक घाव हो गया, पर गौर की सेवा में अपूर्व आनन्द और उत्साह का बोध हो रहा था। घाव के बारे में सोचने का समय ही कहाँ था दुखी कृष्णदास के पास।

एक दिन दुखी कृष्णदास गुरुजी को प्रणाम कर रहे थे। गुरु की निगाह जब कृष्णदास के माथे पर बन गए घाव की ओर गई तो वे चौंके। ज्ञात हुआ कि यह घाव गंगाजल से भरे भारी-भरकम पात्र को ढोते-ढोते बन गया है। प्रभु की सेवा में बाधा होगी, यह सोचकर नित्य कर्म का परित्याग नहीं किया। हृदय चैतन्यदेव कृष्णदास की इस सेवा-भाव के प्रति समर्पण को देखकर मुग्ध हो गए। उन्होंने किशोर वीतरागी को गले लगा लिया। वे बोले, "वत्स, मैं जानता हूँ कि तुम्हारे निकट आ रही है प्रेम-भक्ति साधना की एक बड़ी सम्भावना। मेरी इच्छा है कि तुम तुरन्त वृन्दावन चले जाओ। वहाँ श्री जीव गोस्वामी के आश्रम में रहकर गौड़ीय वैष्णव शास्त्र का अध्ययन करो। बंगाल के वैष्णव समाज में तुम जैसे आचार्य की आवश्यकता है।"

वृंदावन जाने के आदेश से कृष्णदास दुखी हो गए। उनकी आँखों से आँसू बहने लगे। वह गुरु का सान्निध्य छोड़कर जाना नहीं चाहते थे। लेकिन उन्हें बाध्य कर रहे थे। उन्होंने कृष्णदास से कहा, "वत्स, गुरु-सेवा का अर्थ है गुरु को सुख देना। तुम्हें वही करना चाहिए जिससे गुरु को सुख मिले। मेरा मत है कि तुम वृन्दावन जाओ, तभी तुम्हें सुख मिलेगा।" कृष्णदास के समक्ष गुरु के आदेश का पालन करने के सिवा कोई दूसरा चारा नहीं रहा।

कृष्णदास वृन्दावन के लिए चल पड़े। मार्ग में नवद्वीप तथा कई अन्य तीर्थों से होते हुए वे वृन्दावन पहुँचे। उस समय व्रजमण्डल में श्री जीव गोस्वामी थे। उनके नाम हृदय चैतन्य ने एक पत्र दिया था।

रघुनाथदास गोस्वामी का साधन प्रभाव उस समय समस्त ब्रजमण्डल में परिव्याप्त था। पवित्र राधाकुण्ड के तट पर प्रेमभक्ति के ये साधक एक नव वृन्दावन की सृष्टि कर चुके थे। कुण्ड तट पर स्थित उनके भजन कुटीर को केन्द्र कर चारों ओर बहुत से साधन स्थल बन गए थे।

कृष्णदास ने रघुनाथदास गोस्वामी की कुटीर में पहुँचकर साष्टांग दण्डवत किया। उन पर स्वामीजी की स्नेह-वर्षा होने लगी। स्वामीजी ने कृष्णदास से कहा—''वत्स, तुम्हारे गुरु का निर्देश है कि श्रीजीव के पास ही रहो। अतः तुम अविलम्ब वहीं चले जाओ और शास्त्र-ज्ञान एवं साधना को मजबूत करो।'' यह कहकर उन्होंने एक भक्त के साथ कृष्णदास को श्रीजीव गोस्वामी के पास भेज दिया।

असामान्य वैराग्य और भक्ति की प्रतिमूर्ति कृष्णदास को देखते ही श्रीजीव का हृदय प्यार से भर गया। हृदय चैतन्य का अनुरोध-पत्र पढ़ने के बाद उन्होंने कृष्णदास को तुरन्त आश्रय प्रदान किया।

वैष्णव समाज के एकपत्री पण्डित श्रीजीव के शिष्य के रूप में दुखी कृष्णदास के जीवन का नया अध्याय शुरू हुआ। शीघ्र ही उन्होंने साधक मण्डल में असामान्य मर्यादा प्राप्त की। उनका वैष्णव शास्त्र का अध्ययन सुचारु रूप से शुरू हो गया। श्रीजीव गोस्वामी का कुशल निर्देशन मिल रहा था।

कृष्णदास के अलावा दो अन्य प्रतिभाशाली शिष्य थे—श्रीनिवास तथा श्रीनरोत्तम। ये दोनों लोग कृष्णदास के पूर्व से ही शास्त्र-ज्ञान में पारंगत हो रहे थे। धीरे-धीरे इन तीनों लोगों में गहरी दोस्ती हो गई। बंगाल और उड़ीसा के धर्म एवं संस्कृति के इतिहास को इन तीनों महापुरुषों ने गहराई तक प्रभावित किया।

कृष्णदास कविराज द्वारा 'चैतन्य चरितामृत' की रचना हो चुकी थी। वृन्दावन के गोस्वामी गण ने निश्चय किया कि इस अपूर्व अमृत को बंगाल में भेजा जाय। श्रीरूप सनातन तथा श्रीजीव शास्त्र ग्रन्थों की संख्या भी पर्याप्त थी। आचार्य श्रीजीव ने इन शास्त्र ग्रन्थों के साथ श्रीनिवास को बंगाल भेजा। उनके साथ नरोत्तम ठाकुर और कृष्णदास भी गए। कृष्णदास बाद में श्यामानन्द के नाम से विख्यात हुए।

विष्णुपुर पहुँचने से पूर्व ही रास्ते में डाकुओं ने शास्त्र ग्रन्थों की पेटी लूट ली। इस घटना से तीनों वैष्णव संत काफी दुखी हुए। श्यामानन्द उड़ीसा चले गए और वहाँ वैष्णव धर्म के प्रचार का दायित्व अपने हाथों में लिया।

उड़ीसा में श्यामानन्द (कृष्णदास) ने वैष्णव धर्म का काफी विस्तार किया। वे कभी-कभी वृन्दावन भी आ जाते थे। श्रीजीव के चरणों में बैठकर वैष्णव शास्त्र एवं साधन के निगूढ़ तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त कर लौट जाते थे।

श्रीजीव की कुटीर में कृष्णदास नियमित भक्तिशास्त्र का पाठ किया करते थे। इसके साथ ही वे विग्रह-सेवा भी करते थे। इस दौरान उन्होंने अनुभव किया था कि सेवा ही भक्तिशास्त्र का मूल सिद्धान्त है। इसीलिए वे सेवा में ही ज्यादा मन लगाते थे। वृन्दावन निकुंज मन्दिर में दुखी कृष्णदास झाड़ू देने का कार्य करते थे। उनकी एकमात्र अभिलाषा थी कि राधा के चरण-दर्शन कर अपने जन्म को सार्थक बनाया जाय। वे हर समय राधागोविन्द की आनन्द लीला के स्मरण में डूबे रहते थे। कब श्री राधा देवी की कृपा होगी, कब अपनी सखियों के साथ निकुंज-विहार दर्शन करने के लिए वे आयेंगी इसी चिन्ता में वे दिन गिनते रहते थे।

एक दिन भोर में कृष्णदास मन्दिर की सफाई कर रहे थे। अचानक उनकी निगाह आँगन के कोने में एक चमकती हुई वस्तु पर पड़ी। वे करीब पहुँचे तथा देखा कि एक स्वर्ण नूपुर पड़ा हुआ है। इस नूपुर को देखकर दुखी कृष्णदास प्रेम विह्वल हो उठे। अश्रु, कम्पन, पुलक आदि अष्ट सात्विक भाव-विकार उनके शरीर से उद्‌गत हो रहे थे और वे जमीन पर लोट-पोट रहे थे।

कुछ देर बाद सचेतन हुए। उठकर बैठे। स्वर्ण नूपुर को उन्होंने भक्तिभाव से अपने हाथ में लिया। दूसरा आश्चर्य यह था कि उस दिव्य वस्तु से सुगन्ध भी निकल रही थी।

दुखी कृष्णदास के हृदय में अचानक एक परम उपलब्धि-भाव जाग्रत हुआ। सोने का नूपुर तो कोई प्राकृतिक वस्तु हो नहीं सकता। अंतरात्मा में जैसे कोई बोल रहा हो—"अहो, परम भाग्यवान, तूने प्रियाजी का चरण नूपुर प्राप्त किया है।"

दुखी कृष्णदास ने नेत्रों से निरन्तर अश्रुधारा बह रही थी और वे कह रहे थे—"कृपामयी राधे! इस कंगाल पर यदि तूने कपा ही की, तो केवल नूपुर ही देकर भुलाया क्यों? अपने चरण कमलों के दर्शन मुझे दो।"

इसी बीच दस-ग्यारह वर्ष की एक परम सुन्दरी बालिका चंचल पैरों से चलते हुए निकुंज मन्दिर के द्वार पर उपस्थित हुई। उसने दुखी कृष्णदास से मधुर स्वर में पूछा—"भैया, एक सोने का नूपुर तुमको मिला है?" कृष्णदास विस्मय में डूब गए।

"हाँ बेटी, एक नूपुर मुझे मिला है। पर यह किसका है, बता सकती हो?" कृष्णदास ने पुलकित होकर कहा।

किशोरी ने बताया कि उसकी सहेली का एक स्वर्ण नूपुर कल रात खो गया है। वह तरुणी राजनन्दिनी है। लोगों के समक्ष आने में उसे बहुत संकोच होता है। इसलिए उसे उसने नूपुर की तलाश के लिए भेजा है।

"किन्तु तुम्हारा कथन सत्य है अथवा नहीं, यह मैं कैसे समझूँ?" कृष्णदास ने कौशलपूर्वक कहा, "इसलिए जिसका नूपुर है, उसे मेरे पास ले आओ। इस नूपुर के साथ उसके चरणों को मिलाकर ही मैं तुम्हारी बातों पर विश्वास करूँगा। यदि यह तुम्हारी सहेली का ही होगा तो उसके चरणों में पहना दूँगा। अन्यथा यह नूपुर तुम्हें नहीं मिल सकता।"

कृष्णदास की बात सुनकर वह बालिका वापस चली गई और थोड़ी देर बाद ही वह अपनी राजनन्दिनी सहेली के साथ वापस लौटी।

कृष्णदासजी का रोम-रोम पुलकित हो उठा। राजनन्दिनी के सम्पूर्ण शरीर में रूपमाधुरी छलक रही थी। कृष्णदास उसे अपलक निहारते ही रहे।

"तुम दोनों गत रात्रि में क्यों आई थी इस मन्दिर में?" कृष्णदास ने प्रश्न किया।

"मैं ज्यादा क्या कहूँ," राजनन्दिनी ने मधुर शब्दों में जवाब दिया, "यह मेरा निकुंज मन्दिर है। तुम समझ लो। ज्यादा हठ न करो। देखो सुबह होने को आई। मेरा नूपुर लौटा दो।"

साधक कृष्णदास के नेत्रों का आवरण न जाने कौन धीरे-धीरे खोलने लगा था। सर्वसत्ता के माध्यम से उन्हें यह समझते देर नहीं लगी कि सामने खड़ी राजनन्दिनी कोई और नहीं स्वयं कृष्णप्रिया राधारानी हैं। साथ ही किशोरी उनकी सहेली ललिता है। आज वृषभानुनंदिनी ने उन्हें कृपापूर्वक दर्शन दिया है। खो गए नूपुर को वापस कराने की छलना में आज दुखी कृष्णदास के उद्धार के लिए देवी की यह सम्पूर्ण कारुण्य लीला है।

कृष्णदास ने अश्रुपूर्ण स्वरों में हाथ जोड़ कर प्रार्थना की—"राधारानी, यदि इस अधम पर इतनी कृपा है तो एक बार अपना वास्तविक स्वरूप दिखाकर कृतार्थ कर दो।"

राजनन्दिनी ने मुस्कराकर कहा, "इन आँखों से सत्य रूप देख सकोगे?"

दुखी कृष्णदास के आँसुओं को देखकर ललिता का दिल पसीज गया। उसने अपनी सहेली से कहा—"प्यारी जी, अब तुम्हारी कृपा हुई है, तो थोड़ी शक्ति भी दान कर दो।"

राधारानीजी ने अपना कृपा-भण्डार खोल दिया और कृष्णदास की आँखों के सामने खुल गया पूरा अतीन्द्रिय लोक। श्री गोविन्द की प्रिया के दर्शन कृष्णदास को हो गए।

इस क्षणभर के दर्शन से उनकी सर्वसत्ता दिव्य आनन्द से भर गई। प्यारीजी ने उन्हें आशीर्वाद दिया—"कृष्णदास, तुम्हारी एकनिष्ठ सेवा और भक्ति से मैं प्रसन्न हुई। मेरी कृपा के चिह्न स्वरूप यह नूपुर चिह्नित तिलक तुम आज से अपने ललाट में धारण करो।" ऐसा कहते हुए वृन्दावन का रजलिप्त नूपुर कृष्णदास के ललाट से स्पर्श कराकर राधारानी अपनी सखी के साथ अदृश्य हो गईं। इसके साथ ही भक्त कृष्णदास चेतनाशून्य होकर जमीन पर गिर पड़े।

कृष्णदासजी की चेतना लौटी तो रोते हुए श्रीजीव गोस्वामी के पास आए। राधारानी के अलौकिक दर्शन और उनकी कृपा प्राप्त करने की बात से उन्हें अवगत कराया। पूरा विवरण सुनकर श्रीजीव के नयनों से खुशी और भक्ति के आँसू बहने लगे। उन्होंने कृष्णदास को आशीर्वाद देते हुए कहा—"वत्स, आज से तुम्हारा नाम दुखी कृष्णदास नहीं रहा। अब तुम गोस्वामी श्यामानन्द हो गए। श्रीमतीजी का नूपुर लांछित तिलक चिह्न तुम अपने ललाट पर आज से तिलक भूषण के रूप में धारण करोगे।"

इसके बाद तो केवल ब्रज मण्डल में ही नहीं, सम्पूर्ण गौड़ीय वैष्णव समाज में श्यामानन्द का नाम प्रचारित हो गया।

श्यामानन्द के बारे में तरह-तरह की बातें ठाकुर हृदय चैतन्य के कानों में पहुँचीं। एक बार एक वैष्णव पण्डित ने वृन्दावन से लौटकर उनसे कहा—"ठाकुर, दुखी कृष्णदास ने आपको त्याग कर दूसरे गुरु को ग्रहण कर लिया है। यही नहीं, आपके दिए हुए नाम और तिलक भी उसने बदल लिए हैं।"

हृदय चैतन्य ने क्रुद्ध होकर श्रीजीव गोस्वामी को पत्र लिखा जिसमें दुखी कृष्णदास को अविलम्ब वापस भेजने को कहा।

वृन्दावन से श्यामानन्द वापस कालना आए और गुरुदेव को प्रणाम कर हाथ जोड़ कर खड़े हो गए। हृदय चैतन्य काफी उत्तेजित थे। उन्होंने आवेश में आकर पूछा, "क्यों तुमने गुरु प्रदत्त वेश का नाम बदला? चिराचरित गौड़ीय वैष्णवों का तिलक त्याग करने का साहस कैसे हुआ तुम्हें?"

"प्रभु आप ही की कृपा से यह सब सम्भव हो सका है।" श्यामानन्द ने सविनय निवेदन किया।

लेकिन हृदय चैतन्य इस उत्तर से सन्तुष्ट और शान्त नहीं हुए। वे बोले, "ऐसी चालाकी नहीं चलेगी। यदि मैं ही तुम्हारे इन परिवर्तनों का कारण हूँ तो फिर मैं तुम्हारा गुरु, आज्ञा देता हूँ कि यह नाम और तिलक बदल कर तुम फिर पहले जैसे हो जाओ।"

श्यामानन्द शान्त और आत्म समाहित होकर खड़े थे। उन्होंने निवेदन किया, "प्रभु यह नया तिलक गुरु-कृपा का ही प्रसाद है। यदि परिवर्तन करना है तो आप स्वयं कर दीजिए। यह तिलक मेरे ललाट से मिटा दीजिए।"

आवेशित ठाकुर महाराज अपने वस्त्र से घिस-घिस तिलक मिटाने लगे। परन्तु वह तिलक जस का तस बना रहा। तभी गुरु की समझ में आ गया कि वास्तविकता क्या है। वास्तव में यह तिलक असाधारण है। राधारानी के नूपुर से चिह्नित यह दिव्य तिलक वास्तव में अनुपम है तथा उनका शिष्य अब भक्ति-सिद्ध हो उठा है। दिव्य शक्ति से शक्तिमान है। गुरु को अपनी भूल समझ में आ गई।

गुरु की आँखें आसुओं से भर गईं। उन्होंने अपने प्रिय शिष्य को गले से लगा लिया। वृन्दावन से प्राप्त राधा-गोविन्द का एक जाग्रत विग्रह उनके पास था। श्यामानन्द को उन्होंने उस विग्रह की सेवा का उत्तरदायित्व सौंप दिया। इस विग्रह को प्राप्त कर श्यामानन्द आनन्दित हो उठे। उन्होंने उड़ीसा के भीप वल्लभपुर मठ में इस विग्रह की स्थापना की।

इसी समय गुरु के निर्देशानुसार उन्हें विवाह करना पड़ा और उनका आचार्य जीवन शुरू हुआ।

राधा-गोविन्द के विग्रह की सेवा करते हुए उन्होंने वैष्णवीय आधारों को उड़ीसा के जन-जन में फैला दिया। लाखों उड़िया भक्तों ने दीक्षा ली। पूरा उड़ीसा भक्तमय हो गया। सभी वर्णों के लोग इन वैष्णव चूड़ामणि का आश्रय ग्रहण कर धन्य हुए।

श्यामानन्द ने दीर्घ कर्ममय जीवन बिताया। अपने शिष्यों और भक्तों के बीच गौरतत्व की व्याख्या करते रहे। अंत में नित्य लीला में प्रवेश किया। इस तरह इनका आचार्य जीवन समाप्त हुआ।

आपके बारह विशिष्ट शिष्य थे। इन्हीं से बारह वैष्णव शाखाओं ने जन्म लिया। इन शिष्यों में सर्वश्रेष्ठ थे—रयनी के रसिक मुरारी। ठाकुर गोसाईं अथवा रसिकानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए। सुवर्ण रेखा के तट पर गोपी वल्लभपुर में श्यामानन्दी सम्प्रदाय का प्रधान केन्द्र स्थापित हुआ। इस केन्द्र ने उड़ीसा के धर्म और संस्कृति को लम्बे समय तक प्रभावित एवं प्रसारित किया।

●

फरसी बाबा

परमसिद्ध, योगी पीताम्बरदास फरसी बाबा के नाम से कैसे प्रसिद्ध हुए इसकी एक रोचक और अलौकिक घटना है।

पीताम्बरदास भीमगोड़ा और सप्तधारा के बीच एक निर्जन स्थान पर कुटिया बनाकर साधना कर रहे थे। दिन में दो-एक बार वे हरिद्वार भी आकर अपने भक्तों को दर्शन दे जाते।

रोज की तरह उस दिन भी बाबा हरिद्वार आए थे। बाजार के समीप ही लाला मोतीचन्द की गद्दी थी। गद्दी के लोगों ने बाबा को लाकर गद्दी पर बैठा दिया। बाबा तम्बाकू का सेवन आनन्दपूर्वक करते थे। इसीलिए गद्दी के परिचालक ने हाथ जोड़कर निवेदन किया, ''बाबा, कल दिल्ली से शुद्ध सुगन्धित अंबरी तम्बाकू आया है। आज उसी को हुक्के में चढ़ाकर आपको पिलाऊँगा। थोड़ी देर बैठिए।''

बाबा इस बात से प्रसन्न हुए कि उन्हें आज अंबरी तम्बाकू पीने को मिलेगा। वह गद्दी के एक ओर आराम से बैठ गए। धीरे-धीरे आसपास की दुकानों के लोग भी आ गए।

दिल्ली के लाला मोतीचन्द बाबा के पुराने भक्त थे। उनसे भी अधिक श्रद्धालु उनकी पत्नी यमुनाबाई थीं। उन्हें कोई सन्तान नहीं थी, इसलिए ज्यादा समय पूजा-पाठ और तीर्थाटन में ही बीतता था। उन्हीं की इच्छा और प्रेरणा से लाला मोतीचन्द प्रतिवर्ष लाखों रुपए विग्रह, साधु-सन्तों तथा जन-कल्याण में खर्च कर देते थे।

श्रीमती यमुनाबाई ने बहुत दिनों पूर्व ही बाबा से कृष्ण मंत्र की दीक्षा ली थी। लाला मोतीचन्द भी बाबा से बहुत प्रभावित थे और उन्हें अपना अभिभावक मानते थे। हरिद्वार में उनकी गद्दी व्यापार में मुनाफे के उद्देश्य से स्थापित नहीं की गई थी। इसके माध्यम से यमुनाबाई का एक सदाव्रत चलता रहता था। यहीं साधु-सन्तों तथा गरीबों को राह खर्च, खाद्य-पदार्थ, कम्बल, लोटा, कमण्डल आदि आवश्यक वस्तुएँ दान की जाती थीं। गद्दी के परिचालक ने बाबा के लिए फरसी में जल भर कर रख दिया। चिलम में अंबरी तम्बाकू चढ़ाई और उसमें आग रखकर फरसी की निगाली बाबा के हाथ में पकड़ा दी।

गद्दी के एक किनारे मसनद के सहारे लेटे हुए बाबा अर्धनिमीलित नेत्रों से निश्चिंततापूर्वक तम्बाकू का आनन्द ले रहे थे।

बाबा बड़ी मौज में थे। तभी साधुओं और गरीब गृहस्थों का एक दल उनके पास आया और निवेदन करने लगा, ''बाबा, हरिद्वार में चैत्र संक्रान्ति का स्नान आ रहा है। किन्तु गद्दी के मुनीमजी ने बताया है कि हम लोगों को लोटा, कम्बल आदि के वितरण की कोई व्यवस्था अभी तक नहीं हुई है। कृपया आप हम लोगों की तरफ से इन लोगों को ताकीद कीजिए।''

''हम क्या जानें, पकड़ो यमुनाबाई को।''

''समस्या तो यही है बाबा कि यमुना बहिन अभी तक यहाँ नहीं आ सकी हैं।''

बाबा लेट कर तम्बाकू पी रहे थे लेकिन एकाएक चौकन्ने हो गए। हाथ से फरसी की निगाली गिर पड़ी। वे बड़बड़ा रहे थे, ''नहीं-नहीं, मोतीचन्द आगे मत बढ़ो, मत बढ़ो......आह, यह क्या किया?'' फिर देखते ही देखते अंतर्ध्यान हो गए। उनकी प्रिय फरसी भी गायब हो गई। लोग इस दृश्य को आश्चर्य एवं विस्मय से देख रहे थे। साधु-सन्त तथा अन्य दर्शनार्थी हतबुद्धि और जड़ हो गए थे। उनके मन में एक ही सवाल था—बाबा, फरसी के साथ कहाँ चले गए? किसी ने देखा भी नहीं उन्हें जाते हुए।

लगभग दस मिनट बाद बाबा अपने स्थान पर पूर्ववत दिखाई पड़े। परन्तु उनकी प्रिय फरसी नहीं दिखाई पड़ी।

बाबा गम्भीर थे। वे कह रहे थे, ''मोतीचन्द बेवकूफ जैसे चलेंगे। नाहक ही मुझे दिल्ली तक दौड़ना पड़ा।''

बाबा की इस अलौकिक क्रिया से सभी अवाक् थे। गद्दी का मुनीम समझ रहा था कि लाला मोतीचन्द की किसी भूल, भ्रान्ति या विपत्ति से उद्धार के लिए ही बाबा को दिल्ली तक जाना पड़ा है।

''बाबा, आपने फरसी कहाँ गायब कर दी? वह फरसी कहाँ गई?'' मुनीम ने पूछा।

''हम तो गृहस्थ नहीं, हर चीज सम्हालना हमारा काम नहीं है।''

''नहीं बाबा, वह तो आपकी निजी फरसी थी। आप उसे कहाँ फेंक आए। मुझे चिन्ता हो रही है।''

''उसके लिए चिन्ता मत करो,'' बाबा ने मुस्कराते हुए कहा, ''यमुनाबाई खुद आएगी फरसी लेकर।''

लोग सोच नहीं पा रहे थे कि उस फरसी को बाबा ने इंद्रजाल की तरह गायब कर दिया। अब वह दिल्ली में यमुनाबाई के पास कैसे पहुँच गई।

शाम होने के बाद बाबा अपनी कुटिया के लिए चल पड़े।

इस घटना के लगभग एक सप्ताह बाद लाला मोतीचन्द और यमुनाबाई हरिद्वार आए। साथ में सदाव्रत के लिए प्रचुर मात्रा में घी, आटा, चीनी और साधुओं के लिए वस्त्र, लोटा और कमण्डल आदि लेते आए। साधु-जन यमुनाबाई को घेर कर खड़े हो गए और यमुनाबाई अपने साथ लाई गई वस्तुओं का दान करने लगीं।

''सभी को देख रही हूँ, लेकिन हमारे बाबा महाराज कहाँ हैं?'' यमुनाबाई ने मुनीम से आग्रहपूर्वक पूछा।

''बाबा तो सात दिनों पूर्व इस गद्दी पर बैठे हुए एक अद्‌भुत अलौकिक कार्य कर गए। इसके बाद से उनका कुछ पता नहीं है।'' मुनीम ने कहा, ''यहाँ बैठे फरसी से तम्बाकू पी रहे थे। स्वयं ही लालाजी के सम्बन्ध में कुछ बातें कीं और अचानक फरसी सहित गायब हो गए। दस मिनट बाद आए तो फरसी उनके हाथ में नहीं थी।''

''बाबा की वह फरसी अब तुम लोग नहीं पा सकोगे। उसे मैंने सम्हाल कर पूजा-घर में रख दिया है।''

इसके बाद यमुनाबाई साधु और गरीबजनों के समक्ष अश्रपूरित नेत्रों से बाबा की योग-विभूति और कृपालीला की कथा का वर्णन करने लगीं—

दिल्ली में सेठ मोतीचन्द के महल के पास ही स्थित एक बाग है। सात दिनों पूर्व यमुनाबाई और मोतीचन्दजी बगीचे में टहल रहे थे। मोतीचन्दजी बगीचे में टहलते-टहलते झाड़ी की तरफ बढ़ गए। एक गुच्छा फूल खिला हुआ था, जिसे वे तोड़ना चाह रहे थे। उसी समय आकाशवाणी हुई, ''मत जाओ, वहाँ खतरा है।''

मोतीचन्द ने अपने कान में पड़ी इस वाणी पर विश्वास नहीं किया। उन्होंने इसे भ्रम समझा। जब वे झाड़ी के समीप खड़े होकर फूल तोड़ रहे थे, तभी एक गेहुअन साँप ने उनके हाथ में डँस लिया। इस घटना के थोड़ी ही देर पूर्व साँप के ऊपर पेड़ की एक सूखी डाल गिर पड़ी थी। वह क्रुद्ध था। इसीलिए जैसे ही मोतीचन्द उसके पास गए उसने डँस लिया।

मोतीचन्द की चीख सुनकर यमुनाबाई आगे बढ़ आईं। उन्होंने देखा कि एक उग्र गेहुअन साँप उनके बगल से ही बाहर निकल रहा है। उसके दंश से पीड़ित मोतीचन्द जमीन पर गिरकर छटपटा रहे हैं।

भय और शोक से व्याकुल यमुनाबाई जोर-जोर से क्रंदन करने लगीं। इसी समीप बगीचे की दीवार से एक जलती हुई फरसी, चिलम के साथ वहाँ गिरी। दूसरे क्षण योगेश्वर बाबाजी मोतीचन्द के पास आकर बैठ गए। उन्होंने कोई

वनौषधि मोतीचन्द के हाथ में उस स्थान पर मली जहाँ साँप ने डँसा था। इसके बाद उन्होंने यमुनाबाई से कहा, ''माई, अब तुमको चिन्ता नहीं करनी। इन्हें घर ले जाओ और थोड़ा गरम दूध पिलाओ।'' इतना कहने के बाद बाबा अंतर्ध्यान हो गए। दीवार के पास पड़ी उनकी फरसी रह गई।

लगभग आधे घण्टे बाद मोतीचन्द की चेतना लौटी और वे आँखें खोलकर देखने लगे।

इस घटना की जानकारी जब घर के लोगों को हुई तो दरबान और नौकर-चाकर सभी हाथ में लाठी-बल्लम लेकर साँप की तलाश में निकल पड़े। थोड़ी देर बाद साँप उन्हें दिखाई पड़ा और वह मारा गया।

यमुनाबाई जब इस घटना का वर्णन कर रही थीं तो उनकी आँखों से लगातार आँसू निकल रहे थे।

इसके बाद उन्होंने मुनीम से मुस्कराते हुए कहा, ''तुम लोगों ने जो फरसी बाबा के इस्तेमाल के लिए रखी थी, वह दिल्ली स्थानान्तरित हो गई है। उस फरसी का स्थान हमारे पूजाघर में है। आज ही बाबा के लिए एक सुन्दर फरसी खरीद लाओ। मैं दिल्ली से प्रचुर मात्रा में अंबरी तम्बाकू ले आई हूँ। उसे बाबा के लिए सुरक्षित रख दो।''

इस घटना के बाद से बाबा सारे हरिद्वार और ऋषिकेश क्षेत्र में महात्मा पीताम्बरदासजी फरसी बाबा के नाम से विख्यात हो गए।

पीताम्बरदासजी बीसवीं सदी के प्रथम चरण में वृन्दावन से हरिद्वार आए और कुछ ही वर्षों में अपने दिव्य प्रेम, आनन्द और कृपा से सारे साधुओं, अखाड़ों और भक्त समाज का हृदय जीत लिया।

बाबा का मुखमण्डल सर्वदा हास्य से दीप्त रहता। जहाँ रहते, आनन्द की गंगा प्रवाहित हो उठती। रसः वै सः। परब्रह्म रस या आनन्दस्वरूप हैं। इसी परम तत्त्व के धारक तथा वाहक थे पीताम्बरदास।

भक्तों और साधु-संतों को देखते ही फरसी बाबा हाथ उठा कर चीख पड़ते—''वाह, वाह! कितनी प्रिय और मोहक सृष्टि है भगवान की!'' उनके चारो ओर उल्लास से मतवाले मनुष्यों की भीड़ जमा हो जाती।

भक्त सेठ बाबा को अपनी गद्दी पर बुलाते। तम्बाकू पीने के लिए आमंत्रित करते। कुछ लोग उलाहना देते। बाबा, आप तो गद्दी वाले सेठों को ही स्नेह देते हो, गरीबों के लिए आपके हृदय में कोई स्थान नहीं है। आपको हम लोगों के साथ पेड़ के नीचे बैठना होगा। चिलम चढ़ाना होगा। हम लोग आपके साथ आनन्द मनाएँगे और आपके मुखारबिन्दु से श्रीकृष्णजी की कथा सुनेंगे।

एक-एक दिन, एक-एक दल का आमंत्रण स्वीकार करते महाराजजी। रास्ते के किनारे वट-वृक्ष के नीचे आनन्द की महफिल जम जाती। फिर

स्वेच्छाचारी पक्षी की तरह बाबाजी कब यहाँ से छूट कर गायब हो जाएँगे, कोई नहीं जानता था।

बाबा फरसी की नली मुँह में दबाए-दबाए ही नाना प्रकार के गूढ़ तत्त्वों का वर्णन कर डालते। तरह-तरह के अलौकिक कार्य सम्पन्न कर देते।

फरसी बाबा के शिष्यों और भक्तों की संख्या हजारों में थी। इनमें सेठ-साहूकार और राजे-रजवाड़े भी थे। कई लोगों ने बाबा से मठ या कोई भव्य आश्रम बनवाने का प्रस्ताव किया किन्तु बाबा हरिद्वार से कुछ मील दूर स्थित सुनसान जगह में निर्मित अपनी साधारण सी कुटिया में त्याग, साधना और तितिक्षा की धूनी रमाए प्रेम और आनन्द का सन्देश देते रहते थे। धनी, निर्धन, शूद्र और ब्राह्मण सभी के लिए बाबा प्रियतम, सखा और रहस्यमय व्यक्ति के रूप में ही थे। बाबा समदर्शी थे। सिद्ध महापुरुष थे। कभी अरण्य, कभी गंगातट और कभी पर्वतीय अंचलों में घूमते रहते थे। भक्तों को देखकर सोल्लास बोल पड़ते, ''वाह, वाह, वाह वा, देख लो मेरे गिरिधारी किशनजी की चतुराई, और देख लो मेरे परमात्मा की लीला।'' हँसते-गाते, नाचते सभी को अंक में भर लेते थे, आशीर्वाद देते थे और मन के द्वार खुले रहने पर अध्यात्म जीवन का पथ-निर्देश भी कर देते थे।

हरिद्वार और कनखल में स्थायी और अस्थायी रूप से तमाम मठ-मण्डलियाँ हैं। प्रमुख हैं—निर्वाणी, निरंजनी, जूना अखाड़ा, वैरागी, रामाइत, निम्बार्क, उदासी आदि। लेकिन इन सभी अखाड़ों के साधु-संन्यासी पीताम्बरदास के प्रति समान रूप से आदर एवं श्रद्धा का भाव रखते थे। बाबा एक ब्रह्मविद् और जीवन-मुक्त महात्मा थे, इसी कारण उनमें समदर्शिता थी, प्रेम था और आनन्द-भाव था। उनके वास्तविक परमसिद्ध स्वरूप से सभी भिज्ञ थे। साधुगण बाबा से फरियाद करते, ''बाबा, तुम यमुना बाई को मेरी सिफारिश कर दो।'' लोग जानते थे कि यमुनाबाई बाबा की परम भक्त हैं। बाबा कहेंगे तो हमें ज्यादा दान मिल जाएगा। लेकिन बाबा का उत्तर होता, ''ये गृहस्थी के बारे में हम क्या जानें? तुम्हारे सेठ और राजा-रानी की हम क्यों परवाह करें? हट जाओ हमारे सामने से।'' बाबा माया-मोह से मुक्त हो चुके थे। उन्हें इन सब सांसारिक चीजों से क्या लेना-देना था।

कोई भक्त बाबा की आसक्ति के वश में होकर कहता, ''बाबा, इस समय काफी जाड़ा पड़ रहा है। देखता हूँ आपके शरीर पर गरम अँगरखा नहीं है। भरतपुर के राजा यहाँ आए हुए हैं। उन्हें आपकी कृपा की आवश्यकता है। वे आपकी तलाश कर रहे हैं। आपको निश्चित रूप से सुन्दर कश्मीरी शाल भेंट करेंगे।''

फरसी बाबा सहज भाव से उत्तर देते, ''राजा आया, सेठ आया, बहुत अच्छा। ब्रह्मकुण्ड में स्नान करो और अपने घर लौट जाओ। मेरे साथ भेंट करने

की क्या जरूरत है। वे सब यदि मेरे पास आएँगे तो मारेंगे एक चिमटा।'' फिर बाबा फरसी छोड़कर अचानक उठते और किसी ओर निकल पड़ते। अंतरंग साधुगण कहने से नहीं चूकते, ''बाबा, आप कुछ भी कहें लेकिन जब राजा लोग कीमती शाल देंगे तो आपको लेना ही होगा।''

दरअसल साधु-संत बाबा की इस खासियत को जानते थे कि जब सेठ-साहूकार या राजा-रजवाड़े बाबा को गरम कपड़े भेंट करते तो बाबा के पास वह नहीं टिक पाते। बाबा उसे रास्ते में खड़े किसी गरीब व्यक्ति या साधु को दे देते। बाबा के लिए साधु-संन्यासी और साधारण व्यक्ति में कोई भेद नहीं होता। जो जिस लायक होता, उसे वैसा ही मार्ग-दर्शन मिलता। किसी को तात्विक, गूढ़ और दार्शनिक विवेचन तो किसी को उत्तम जीवन के लिए उचित मार्गदर्शन।

एक बार वैरागी अखाड़े के कुछ साधुओं ने बाबा को तम्बाकू भेंट की थी। बाबा उसी को फरसी पर रख कर गुड़गुड़ा रहे थे। विविध प्रसंगों पर चर्चा चल रही थी। बाबा भक्तों से घिरे थे। एक भक्त ने पूछा, ''साधन-भजन के लिए चेष्टा करता हूँ। इष्ट को चाहे जितना पुकारता हूँ किन्तु मन वश में नहीं आता है। फिर मेरा कुछ भी नहीं होगा ?''

''गीता पढ़े हो ?''

''जी हाँ।''

''कृष्णजी ने स्वयं ही अर्जुन से कहा है—अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते। मन तो सर्वदा ही चंचल है, आसानी से वश में नहीं आता। इसे वश में लाने के लिए वैराग्य तथा नियमित अभ्यास की आवश्यकता है।'' बाबा ने कहा।

''इन दोनों के लिए प्रयास करता हूँ, परन्तु मेरी चेष्टाएँ व्यर्थ जा रही हैं। सफलता नहीं मिल रही है। जब भी ध्यान लगाने की कोशिश करता हूँ, मन में निरर्थक बातें आ जाती हैं। इसके बाद प्रभुजी का स्मरण एवं ध्यान सम्भव नहीं हो पाता।''

''बेटा, मन इन्द्रियों का अधिपति है। इसका स्वभाव ही यही है। इसका कार्य है संकल्प और विकल्प। सुख और भोग के लिए केवल यह एक-एक विषय का ग्रहण और त्याग करता रहा है।'' बाबा ने मधुर वाणी में कहा।

''इस संकल्प और विकल्प से छुटकारा पाने का मार्ग क्या है ?''

''जब तक भोग की आकांक्षा नहीं जाएगी, संकल्प और विकल्प दूर नहीं होगा। सुख प्राप्त करने की कल्पना मनुष्य के भोग की आकांक्षा को बढ़ाती है। सुख प्राप्त करने की कल्पना के मूल पर ही आघात करना होगा।''

''इसका उपाय क्या है ?''

''कृष्ण ने गीता में इसका उपाय भी तो बताया है। उन्होंने फल की आकांक्षा का त्याग करने को कहा। सभी कार्य तुम करोगे, भोग भी करोगे किन्तु

सदा अनासक्त होकर ही करोगे। भोजन-शयन, संसार के सब कर्तव्य ठीक से करोगे, परन्तु प्रत्येक कार्य करते हुए आंतरिक रूप से यही सोचते रहोगे—यह सभी कार्य मैं ईश्वर की प्रीति के लिए ही कर रहा हूँ। उनका ही होकर मैं यह कार्य कर रहा हूँ—मेरा कोई अधिकार नहीं है। तुम अपने सारे कार्यों का उत्सर्ग भगवत् सेवा के रूप में ही करो। तुम देखोगे कि कार्यों का बंधन क्रमशः ढीला पड़ता जा रहा है और परम प्रभु कृष्ण की ज्योतिर्मय छटा तुम्हारी तरफ बढ़ती चली आ रही है।''

गृहस्थ भक्त ने मुस्कराते हुए कहा, ''बाबा, आप जो भी कहें, मेरे जैसे क्षुद्र मनुष्य की क्षुद्र चेष्टाओं द्वारा सफलता प्राप्त करना कठिन है।'' भक्त ने अपना मस्तक बाबा के समीप किया और बोला, ''बाबा, आप माथे पर स्पर्श करके आशीर्वाद दें तभी सम्भव है कि प्रभु की कृपा मुझे प्राप्त हो जाय।''

बाबा ने फरसी की निगाली एक ओर रख दी और हँसते हुए बोले, ''अपने को चतुर समझ कर माथा तो खूब बढ़ा रहे हो, किन्तु पूछता हूँ कि यदि संकल्प करके ब्रह्मरंध्र स्पर्श कर दूँ, तब यह स्त्री, पुत्र, कन्या और संसार कहाँ रह पाएगा? नंगे होकर उन्मत्ततापूर्वक थेई-थेई करते हुए नाचने लगोगे तब?'' इसके बाद प्रसन्न हृदय से सिर हिलाते हुए फरसी बाबा ने कहा, ''बेटा, त्याग और वैराग्य का अभ्यास करते हुए धीरे-धीरे एक-एक संकल्प और सुख-भोग की आकांक्षा छोड़ो और प्रभुजी की ओर बढ़ो। मन में दुविधा या अनुताप को स्थान मत दो। वे तो तुम्हारी बाँट जोह रहे हैं। इसके अलावा उनका और कार्य ही क्या है?''

फरसी बाबा की मजलिस एक दिन ब्रह्मकुण्ड के पास चौड़ी सीढ़ी पर लगी थी। वह अपने भक्तों से घिरे थे। तम्बाकू का धुआँ छोड़ते जा रहे थे। इसी बीच एक भक्त ने प्रश्न किया—''बाबा, अभी हाल ही में हरिद्वार में कुम्भ मेला समाप्त हुआ। इस कुम्भ में बड़े-बड़े महात्मा आए थे जो लय-प्रलय में सक्षम हैं, क्या यह सत्य है?''

''हाँ, हाँ, वे लोग अवश्य आए थे।''

''परन्तु बाबा, हम तो ऐसे लोगों को पहचानने में असमर्थ थे।''

बाबा ने इस प्रश्न का जो उत्तर दिया उसका सारांश इस प्रकार है—

ब्रह्मविदों को छोड़ कर कोई भी ऐसे महात्माओं को नहीं पहचान सकता। यदि स्वेच्छा से तुम्हारी पकड़ में ना आएँ तो तुम जैसे गलीज में पड़े विषय-कीट उन्हें कैसे पहचान सकते थे?

सुशिक्षित बंगाली भक्त ने कहा, ''बाबा, सूर्य क्या कभी अपना तेज छिपा सकता है? जो ब्रह्मज्ञानी है, उसके भीतर से ब्रह्मतेज फूट पड़ेगा।''

बाबा ने गम्भीर स्वर में कहा, ''ऐसे भी महात्मा हैं जो अनायास ही ब्रह्म-ज्योति तथा ब्रह्मशक्ति करने की शक्ति रखते हैं। तब भी कोई उन्हें नहीं पहचान सकता जब सहज और साधारण भाव से समाज में रहें।''

''आपकी बात मैं पूरी तरह मानने के लिए तैयार नहीं हूँ,'' भक्त ने कहा, ''ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति। उनके तेज अच्छादन करने पर भी जिज्ञासु मनुष्य की दृष्टि में कुछ तो अवश्य दिखाई पड़ेगा।'' भक्त ने आत्मविश्वास के साथ कहा।

फरसी बाबा विरक्त हो उठे। गम्भीर मुद्रा में उन्होंने कहा, ''सारा जीवन तुमने अविद्या का ही अर्जन किया है। जो विद्या मनुष्य को ज्योतिर्मान करती है, उसका तुमने स्पर्श नहीं किया है। प्रकृत ब्रह्मविद् को पहचानने की शक्ति तुम पाओगे कहाँ से?''

तम्बाकू का एक लम्बा कश खींच कर जोरदार धुआँ छोड़ते हुए बाबा ने करवट बदल ली। फिर इस भक्त से प्रश्न करने लगे—

''बेटा, तुम तो सिपाहियों के हिसाब वाले दफ्तर में काम करते हो?''

''हाँ बाबा, मैं सैनिक एकाउण्ट्स में कार्य करता हूँ।''

''दो साल पूर्व तुम मेरठ बदली होकर आए हो।''

''हाँ बाबा।''

''जब तुम कलकत्ता में थे तब सोच भी नहीं सकते थे कि तुम्हारा तबादला यहाँ हो जाएगा। तुम्हें यह भी नहीं मालूम था कि तुम्हारे कार्यालय में तुम्हारा एक विरोधी गुट भी है और जिसने तुम्हें मेरठ भिजवाया है। यहाँ एक बदमिजाज अफसर के हाथ में पड़कर परेशान हो रहे हो। ऐसा है न।''

''जी, ऐसा है।''

''देखो, तुमने ख्याति के साथ अपना कार्य किया है। तुम कार्य में दक्ष हो। फिर भी इतने सारे तथ्य तुम अपनी विद्या-बुद्धि से समझ भी नहीं पाए।''

बाबा ने तम्बाकू का एक कश और खींचा। हवा में धुआँ छोड़ने के बाद फिर प्रश्न करने लगे—

''बेटा, तुम्हारी पत्नी की मृत्यु पाँच वर्ष पूर्व हुई है। उससे पहले दो वर्ष तक उसने रोगग्रस्त होकर अपार कष्ट झेला, क्या यह सत्य है?''

''हाँ बाबा, आपकी बात अक्षरशः सत्य है। मैं तो अंत तक इस रोग का थाह नहीं लगा सका। कलकत्ता के बड़े-बड़े डॉक्टर भी नहीं समझ पाए।''

''बेटा, तुमने इस जीवन में बड़ा कष्ट उठाया है। तुम्हारी एक शिक्षित कन्या भी तो थी?''

''जी।''

''पिछले साल वह भी अपने पुराने सहपाठी के साथ कहीं भाग गई है न?''

''हाँ, बाबा।''

''यह बात भी सच है कि इस कन्या ने कुछ वर्ष पहले से ही लड़के से घनिष्ठता स्थापित कर ली थी। तुम्हें संदेह तो हुआ था किन्तु तुमने इस बात को महत्त्व नहीं दिया था। पिता की तरह सतर्क भी नहीं हुए।''

''बाबा, आप अंतर्यामी हैं, भगवान स्वरूप हैं। आपसे कुछ भी नहीं छिपा है।''

अब कोमल और स्नेहपूर्ण स्वर में फरसी बाबा ने बोलना शुरू किया, ''बेटा, तुम देख तो रहे हो कि तुमने जो विद्या प्राप्त की है वह सारी की सारी अविद्या है। तुम कभी भी ज्ञान के आलोक का स्पर्श भी नहीं कर सके। इसीलिए तुम्हारे आसपास जो घटता रहा है, उसे तुम समझ नहीं पाए, जान नहीं पाए। बता बेटा, तू किस तरह ब्रह्मज्ञानियों को पहचान सकेगा? जो सच्चिदानन्द परम सत्ता के स्वरूप हैं, उन्हें पहचानना क्या सहज है?''

भक्त महोदय ने फिर जिज्ञासा प्रकट की, ''फिर बाबा, वे लोग किस तरह और किस रूप में आते हैं और किस तरह मनुष्य का कल्याण करते हैं?''

बाबा उठकर बैठ गए। उन्होंने कहना शुरू किया—

''सुरापान किए हुए तुमने अनेक लोगों को देखा होगा। वे सभी एक-दो पात्र पीने के बाद अपना होश खो बैठते हैं। निरर्थक बकझक करते हैं। फिर उल्टी कर डालते हैं। कुछ मदिरासेवी ऐसे हैं जो पाँच-दस पात्र पीने के बाद भी स्थिर रहते हैं। ईश्वर का प्रेम, शक्ति या ज्ञानप्राप्त करने के बाद भी यही क्रम देखा जाता है। कोई थोड़ा-सा भगवत रस पाने के बाद ही अत्यधिक अधीर हो उठता है। आँखें चढ़ जाती हैं और बाह्य ज्ञान नहीं रह जाता। इसके अलावा ऐसे भी ईश्वर-प्रेम में मतवाले महापुरुष हैं जो हमेशा सहज समाधि में रहते हैं। ईश्वरीय प्रेमशक्ति, प्रज्ञा को सहज रूप से धारण करने की क्षमता रखते हैं। इससे भी उच्च कोटि के लोग हैं, जो ब्रह्मस्वरूप होकर ब्रह्म जैसे ही हो जाते हैं। उनके लिए सभी सहज और स्वाभाविक है। ऐसे समर्थ हैं वे लोग—'स्वाभाविकी ज्ञान बलं क्रिया च' बाकी बात ऐसे ही ब्रह्मविदों के विषय में है।''

दो-एक भक्तों ने हाथ जोड़कर निवेदन किया—''फिर बाबा, यदि हम ऐसे लोगों को पहचान पाएँ तथा इनका पुण्यमय सान्निध्य प्राप्त कर लें तो इससे ही अपना जीवन सार्थक कर सकते हैं।''

''यह तुम लोगों से सम्भव नहीं हो सकता,'' फरसी बाबा ने मुस्कराते हुए कहा, ''केवल ब्रह्मविद ही ब्रह्मविद को पहचान सकता है। वे लोग साधारण मनुष्य के बाद अनेक बार उन्मादग्रस्त रूप में रहते हैं। किसी-किसी महात्मा को पिशाचवत् आचरण करते भी पाया जाता है। ये लोग स्वैच्छिक और स्वतन्त्र हैं।

कुछ भिखारी, मोची या अन्य रूपों में रह लेते हैं। इनका सान्निध्य तभी पाया जा सकता है, जब ये स्वयं कृपा करें।''

''बाबा, इनके इस तरह रहने से मानव समाज का क्या कल्याण हो सकता है ?'' एक भक्त ने पूछा।

''परदे के पीछे से विश्व का कल्याण यही लोग तो करते हैं। परम प्रभु का अमृतकुण्ड इन्हीं लोगों के हाथों में तो सुरक्षित है। प्रयोजन के अनुसार यही तो उसके वितरण के अधिकारी हैं।''

सन् १९४२ तक इस महान् तपस्वी, सिद्ध और संरस हृदय महात्मा को हरिद्वार तथा उत्तर प्रदेश के उत्तराखण्ड में विचरण करते देखा गया। भक्त, गृहस्थ, साधु-संत सदा प्रसन्नमूर्ति, ब्रह्मस्वरूप एवं दिव्यानंद फरसी बाबा अमृतरस की वर्षा करते रहे। इसके बाद कब अंतर्ध्यान हो गए, किसी को पता नहीं चला। कब अपनी सत्ता ईश्वर की सत्ता में विलीन कर दी, कोई नहीं जान पाया।

●

भक्त लाला बाबू

लाला बाबू का वास्तविक नाम कृष्णचन्द्र सिंह था। अनुमानित तौर पर उनका जन्म १७७५ ई० में एक बहुत बड़े जमींदार परिवार में हुआ था। अठारहवीं सदी के अन्त में इतिहासप्रसिद्ध गंगागोविन्द सिंह के एकमात्र पुत्र प्राणकृष्ण सिंह की प्रिय संतान थे कृष्णचंद्र सिंह। कृष्णचंद्र सिंह का अन्नप्राशन इतनी धूमधाम से मनाया गया कि आज तक उस क्षेत्र में किंवदन्ती बना हुआ है। स्वर्णपत्र पर खुदे हुए अक्षरों में निमंत्रणपत्र भेजे गए थे। कांथी का सिंह भवन उल्लास, उत्साह और भीड़-भाड़ से जगमगा रहा था। बंगाल, बिहार और उड़ीसा के बड़े-बड़े पण्डित तथा सारे प्रतिष्ठित व्यक्ति इस उत्सव में आमंत्रित थे। लेकिन गंगागोविंद सिंह ज्यादा दिनों तक पौत्र-सुख नहीं प्राप्त कर सके। कृष्णचन्द्र सिंह के जन्म के कुछ सालों बाद ही परलोक सिधार गए।

गंगागोविन्द सिंह के भाई राधागोविन्द सिंह भी प्रचुर सम्पत्ति के मालिक थे। चूँकि उन्हें कोई संतान नहीं थी, इसलिए उनकी सम्पत्ति भी कृष्णचन्द्र सिंह को मिल गई। इसलिए कृष्णचन्द्र सिंह बंगाल, बिहार और उड़ीसा में अत्यन्त वैभवशाली और ऐश्वर्यवान व्यक्ति के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

गंगागोविन्द सिंह अंग्रेज गवर्नर वारेन हेस्टिंग्स के दीवान थे और लम्बे समय तक बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी उनके पास रही क्योंकि वे असाधारण रूप से योग्य थे। उन्होंने अपने कुल-परिवार के लिए बहुत बड़ी जमींदारी हासिल की। अकूत दौलत के स्वामी बने।

गंगागोविन्द सिंह अपने पौत्र को प्यार से लाला कहते थे। बाद में वह लाल बाबू के नाम से चर्चित हुए।

बालक लाला जब बड़े हुए तो उनकी शिक्षा के लिए उचित व्यवस्था की गई। संस्कृत, बँगला, अंग्रेजी, फारसी, अरबी के नामी-गिरामी विद्वानों द्वारा उन्हें शिक्षा दी जाने लगी। असाधारण प्रतिभा के धनी लाला को इन सभी भाषाओं पर अधिकार हो गया। लेकिन फारसी पर उनका विशेष अधिकार हो गया था। इसी भाषा के विद्वान के रूप में वे सम्मानित हुए। संस्कृत के कठिन से कठिन श्लोकों की सरल व्याख्या सुनकर विद्वान लोग दाँतों तले उँगली दबा लेते।

बाल्यकाल से लाला बाबू में सत्य के प्रति निष्ठा और ईश्वर के प्रति भक्ति के अंकुर फूट चुके थे। घर के देवमन्दिर में जब कभी पुराणों का पाठ होता था,

धर्मसभा बैठती थी, तब लाला बाबू एक अदृश्य आकर्षण में बँधे वहाँ मौजूद रहते। कभी-कभी वह अकेले ही इष्टदेव की प्रतिमा के समक्ष ध्यानमग्न बैठे देखे जाते।

लाला बाबू के चरित्र की एक और विशेषता थी, उनकी परोपकारी वृत्ति। दीन-दु:खियों को देखकर अधीर हो उठते और खुले दिल से उनकी मदद करते।

लाला बाबू की किशोरावस्था थी। एक गरीब ब्राह्मण को अपनी कन्या की शादी की चिन्ता सता रही थी। वह इस आशय से उनके दरवाजे का प्राय: चक्कर लगाया करता था कि कुछ मदद मिल जाएंगी तो वह कन्यादान कर सकेगा। लेकिन प्राणकृष्ण सिंह की हवेली के अंदर घुसने का मौका हाथ नहीं लग पा रहा था। जैसे वह अंदर घुसने की कोशिश करता, दरबान भगा देते। एक दिन हठात् लाला बाबू की दृष्टि उस पर पड़ गई। उन्होंने उससे आने का कारण पूछा तो उसने अपनी करुण गाथा विस्तार से कह सुनाई। लाला बाबू का हृदय द्रवित हो उठा। उसी समय खजाने में जाकर आदेश दिया, ''इस ब्राह्मण को आज ही एक हजार रुपए मिल जाने चाहिए।'' बूढ़े खजांची मुसीबत में पड़ गए। मालिक के हुक्म के बिना तहसील से इतने रुपए कैसे निकाले जा सकते थे। खजांची दौड़े-दौड़े प्राणकृष्ण के पास गए और सारा किस्सा उनसे बयान किया।

प्राणकृष्ण गम्भीर हो गए। थोड़ी देर तक सोचने के बाद बोले, ''देखो, लाला ने जब वचन दे दिया है तो रुपए दे दो। इसके सद्व्यय होने में तो कुछ संदेह है नहीं। किन्तु सावधान रहो, ऐसी घटना फिर न दुहराई जाय। लाला को समझा देना कि भविष्य में ऐसा आदेश न दिया करें। आगे उनके आदेश नहीं माने जाएँगे। उनसे यह भी कह देना कि अपनी सामर्थ्य से कोई रोजगार करें, जमींदारी की आमदनी बढ़ाएँ, फिर उसके बाद ही दान-पुण्य करें।''

दरिद्र ब्राह्मण को रुपए तत्काल दे दिए गए। उसके बाद ही खजांची ने लाला को उनके पिता के आदेश से अवगत करा दिया।

लाला के दिल में पिताजी की बातें तीर की तरह चुभ गईं। इतनी बड़ी सम्पत्ति का एकमात्र वारिस फिर भी एक पैसा दान करने का अधिकार नहीं। कैसी विचित्र विडम्बना है।

किशोर लाला बाबू ने आत्मनिर्भर बनने का दृढ़ निश्चय कर लिया। उन्होंने अविलम्ब महल छोड़ दिया। न तो माँ के नेत्रों के आँसू की परवाह की और न ही पिता की चिन्ता और उदासी की। वे वर्धमान जा पहुँचे। फारसी के अच्छे जानकार रहने के कारण काम मिलने में विलम्ब नहीं हुआ। वर्धमान कलक्टरी में सिरिस्तेदार के रूप में उनका कर्ममय जीवन शुरू हुआ। उनकी कार्य-कुशलता के कारण उत्तरोत्तर पदोन्नति होती गई।

इस बीच उनका विवाह भी हो गया और पुत्ररत्न की प्राप्ति भी हुई।

१८०३ ई० में उड़ीसा प्रान्त अंग्रेजों के अधीन हुआ। लाला बाबू की नियुक्ति 'जरीप' (पैमाइशी) के पद पर हुई। इसके कुछ सालों बाद दीवान के सर्वोच्च पद पर आसीन हुए। इस कार्य के दौरान उनका परिचय उड़ीसा के राजा से हो गया और यह घनिष्ठता में बदल गया।

उड़ीसा के पुरी मन्दिर को सरकार से जो वार्षिक सहायता मिलती थी, वह कुछ समय से बन्द हो गई थी। राज्य सरकार ने इसके लिए श्री मन्दिर को नीलाम पर चढ़ाने का निश्चय किया। नीलामी की तिथि के ठीक एक दिन पूर्व इसकी भनक लाला बाबू को लग गई। उन्हें बेहद पीड़ा हुई। यह पवित्र मन्दिर जनता-जनार्दन की आस्था का केन्द्र था। देश का गौरव था। सरकारी कानून के जाल में फँसकर इसकी मर्यादा नष्ट होने जा रही थी। यह हिन्दू समाज के लिए कलंक की बात थी।

लाला बाबू ने तत्काल नीलामी रोक दी। इसका नतीजा यह हुआ कि मन्दिर के कर्ता-धर्ता हरकत में आए और दूसरे ही दिन बकाया राशि का भुगतान मन्दिर को कर दिया गया। धर्मप्राण जनता लाला बाबू की जय-जयकार करने लगी। लोग उनके प्रति कृतज्ञता अर्पित करने लगे। राजा भी काफी प्रसन्न हुए और इसके लिए लाला बाबू को धन्यवाद ज्ञापित किया।

इस कार्य के एवज में राजा ने लाला बाबू को अपने राज्य में कुछ अचल सम्पत्ति अर्पित की। श्री जगन्नाथजी का कलेवर आज तक उसी स्थान से लायी गई नीम की लकड़ी से परिवर्तित किया जाता है। इस नव कलेवर का अनुष्ठान हर बारह वर्ष पर पुरुधाम में होता है।

जगन्नाथजी के विग्रह का दर्शन लाला बाबू के हृदय में प्रेम और भक्ति का संचार करते गए। प्रेमावतार श्री चैतन्य महाप्रभु के लीलास्थल का महात्म्य दिन प्रतिदिन उनके अंतर में स्फुरित होता गया। इस बीच वे तीर्थाटन के लिए वृन्दावन गए। श्रीकृष्ण के लीलास्थल के दर्शन से प्रफुल्लित हो उठे। ब्रज-मण्डल के गहन वनांचल में तितिक्षावान और साधन-भजन परायण वैष्णवों की भजन-गुफाएँ और कुटिया देखने के लिए वे प्रायः पहुँच जाया करते। वैराग्य की भावना बलवती होती गई। जीवन की नश्वरता, भोग-विलास, ऐश्वर्य, वैभव की निस्सारता का बोध होने लगा। सांसारिक जीवन से वितृष्णा होने लगी। लेकिन वे कर्म-पथ को बीच धारा में कैसे छोड़ सकते थे?

जब वे उड़ीसा में थे तभी उन्हें खबर मिली कि पिता का स्वर्गवास हो गया। पिता से बिछुड़ने का घाव सालने लगा। याद आया जब गरीब ब्राह्मण को दान देने के प्रकरण पर लाला बाबू ने घर छोड़ दिया था। पिता के इस अनुरोध

को ठुकराते चले गए थे कि एक बार आकर दर्शन दे दे उनका प्रिय पुत्र। अंततः उनके स्वाभिमान का अंत हुआ। कलकत्ता लौट कर पिता का श्राद्ध-कार्य सम्पन्न किया। पिता का उत्तराधिकार सम्हालने के लिए लाला बाबू ने अब कलकत्ता में ही रहने का निश्चय किया।

एक तरफ बाहर का वैभव, ऐश्वर्य और विलासितापूर्ण जीवन और दूसरी ओर उसी के समानान्तर अंतर में बह रही भक्ति की अमृत धारा। वे भक्तिरस के स्रोत की तलाश में लगे रहते।

कचहरी के कार्य से निवृत्त होकर लाला बाबू पालकी में बैठकर घर लौट रहेथे। उनका मन हुआ कि क्यों न थोड़ी देर तक माँ गंगा के तट पर गुजारा जाय। गंगा-तट पर पेड़ की छाया में पालकी उतार दी गई। शाम हो चली थी। गंगा की पवित्र लहरें कल-कल करती सूर्य की सुनहली किरणों से अठखेलियाँ कर रही थीं। तट पर बैठे-बैठे लाला बाबू की आँखें गंगा पर जमी थीं और उसके साथ ही अम्बरी तम्बाकू का गड़गड़ा धुआँ छोड़ रहा था। लाला बाबू दुहरे आनन्द में आकण्ठ डूबे थे।

गंगा-तट पर स्थित मल्लाह की झोपड़ी से आवाज आई—"बाबू, बेला बीत रही है, अब तो उठो। दिन तो अभी शेष होने को है।"

धीवर बाला की यह आवाज लाला बाबू के हृदय के आर-पार हो गई। "बेला बीत रही है......दिन शेष होने को है। बेला बीत......।" यह आवाज अनुगूँज बनकर उनके भीतर घुमड़ने लगी। इस यथार्थ को अस्वीकार कैसे कर सकते थे लाला बाबू। एक तरफ संध्या का अँधेरा सघन होता जा रहा है, दूसरी तरफ उनकी जीवन-मंच पर वैराग्य की यवनिका धीरे-धीरे गिरती जा रही है। उनके हृदय में एक संकल्प जागृत हो उठा। नहीं, नहीं, उन्हें अपना शेष जीवन भोग-विलास में नहीं बिताना है। ईश्वर को समर्पित कर देना है। उनकी प्रवृत्ति एक महायोगी के रूप में रूपान्तरित होने लगी।

लाला बाबू तामदान छोड़कर धीवर बाला के पास गए। बोले, माँ! तुम्हारा यह ऋण मैं कभी चुका नहीं पाऊँगा। तुम्हारी पुकार ने मुझे बन्धन-मुक्त कर दिया। मुझे आज महसूस हुआ कि बेला सचमुच बीतती जा रही है, उसी के साथ ही मेरे जीवन के शेष क्षण भी खत्म होते जा रहे हैं। जीवन-दीप बुझने के निकट आ गया है। सामने अंधकार फैलता दिखाई दे रहा है। तुम्हारे मुख से आज राधारानी ने ही मुझे वृन्दावन जाने के लिए पुकारा है। मैं वहीं जा रहा हूँ। तुम्हें मेरा आशीर्वाद है, तुम चिरसुखी रहो।

महल को लौटते ही लाला बाबू बिल्कुल बदल गए। उनका विलासी जीवन अचानक लुप्त हो गया। सर्वस्व त्याग कर, दीन-हीन के वेश में वे

वृन्दावन जाने के लिए तैयार हो गए। अश्रु-सागर में डूबे परिजनों से उन्होंने कहा, "श्री राधारानी ने कृपा करके मुझे पुकारा है। उन्होंने याद दिलाया कि बेला बीत रही है। मुझे साफ दिखाई दे रहा है कि जीवन मन्दिर के दीप एक-एक कर बुझते जा रहे हैं। मैं अपना शेष जीवन कृच्छ साधन, राधा-कृष्ण की सेवा-पूजा, भजन-कीर्तन में व्यतीत करूँ, यही आशीर्वाद आप लोग दें मुझे।"

लाला बाबू दूसरे ही दिन भिखारी के वेश में घर से निकल गए वृन्दावन के लिए। कृष्ण नाम जपते-जपते पहुँच गए वृन्दावन।

लाला बाबू को वृन्दावन के कण-कण में रमी राधा-माधव की अलौकिक लीलाएँ आकर्षित कर रही थीं। उनके मन-प्राणों में वृन्दावन की आध्यात्मिकता इस कदर रची-बसी थी कि न उन्हें पत्नी कात्यायनी के प्रेम-पाश और प्रेम-अश्रु बाँध पाए और न ही पुत्र नारायणचन्द्र का वात्सल्य। परिजन और क्षेत्रीय वृन्दावन के कृष्णधाम में आ-आकर समझाने के यत्न करते, "इष्टदेव की सेवा में आप सारा जीवन बिता देना चाहते हैं, यह तो अच्छी बात है, लेकिन प्रभु की सेवा-अर्चना के लिए सुव्यवस्था करना भी तो जरूरी है।"

"मैं तो ठहरा अकिंचन। प्रभु की सेवा के लिए उपयुक्त व्यवस्था मेरे बस की बात नहीं। भिक्षा में मिले अन्न पर निर्भर रहूँगा और उसी में से भोग-प्रसाद की व्यवस्था करूँगा।" परम कृष्णभक्त लाला बाबू का टका-सा जवाब होता।

दीवानजी समझाने की कोशिश करते, "हुजूर यह कैसे हो सकता है? आप लोगों का तीन पीढ़ियों से धन-वैभव संचित होता आ रहा है, यह सब तो परम प्रभु का ही दिया हुआ है न। उन्होंने कृपा करके, स्वयं अपने सेवक का चयन किया है। पूजन-अर्चन की जिम्मेदारी सौंप चुके हैं। यह सब व्यवस्था आप क्यों तोड़ रहे हैं? ईश्वर के सेवक के रूप में आपको जो धन-सम्पत्ति मिली है, उसे क्यों नहीं सेवा-कार्य में लगाते?"

"प्रभु का दिया हुआ धन उन्हीं की सेवा में लगे, इसमें भला मुझे क्या आपत्ति हो सकती है।" लाला बाबू ने मधुर स्वर में शान्त भाव से कहा और जब उनके ध्यान में वृन्दावन के मन्दिरों की दुर्दशा आई तो रोने लगे। श्री विग्रह की पूजा-अर्चना भी ठीक से नहीं हो रही थी। उनके मन में आया, पुत्र और पत्नी को उनका हिस्सा देने के बाद उनके हिस्से में जो सम्पत्ति आएगी उसका उपयोग वह भग्न मन्दिरों के उद्धार में करेंगे। वृन्दावन का सेवानुष्ठान भी हो सकेगा। इससे सम्पूर्ण देश के साधु-सन्तों में सेवा-पूजा का उत्साह बढ़ेगा। क्या इस कल्याणकारी कार्य के लिए प्रभु उन्हें ही निमित्त बनाना चाहते हैं?

तय हुआ कि लाला बाबू अपने जीवन का निर्वाह तो भिक्षाटन से करेंगे, किन्तु स्टेट से होने वाली आय को प्रभु-सेवा में खर्च किया जाएगा। केवल

मन्दिर-निर्माण और विग्रह प्रतिमा की पूजा-अर्चना ही नहीं, ब्रज़मण्डल में स्थित पवित्र साधनापीठों, कुण्डों और स्नान-घाटों का जीर्णोद्धार भी कराया जायेगा। लाला बाबू ने इष्टदेव के भव्य मन्दिर का निर्माण कराने का भी निर्णय किया। इस मन्दिर में ऐसी भव्य एवं जाग्रत प्रतिमा स्थापित होगी जो भक्तों के अन्दर भक्तिभाव को उद्दीप्त करे। मन्दिर में साधु-सन्त अविरल प्रसाद पाते रहें और भूखे लोगों की क्षुधा शान्त होती रहे।

थोड़े ही दिनों में बंगाल और उड़ीसा की जमींदारी से पचीस लाख रुपए उनके पास पहुँच गए। सिद्ध महात्माओं एवं शास्त्र-पुराणों के अनुसार लाला बाबू ने पहले श्री राधा-कृष्ण स्थलों को चिह्नित किया फिर इन सभी पवित्र स्थलों को स्वायत्त करने के लिए चुयोरिटी परगना एक-एक करके खरीद लिया। वृन्दावन से लेकर सेतुबंध रामेश्वर तक प्रचारित करा दिया गया कि लाला बाबू श्री राधा-कृष्ण के पवित्र स्थलों एवं उसके आसपास के स्थलों को खरीदने के इच्छुक हैं। यदि कोई इन स्थलों को हस्तांतरित करेगा तो उसे उचित मूल्य दिया जाएगा। विक्रेतागण एक-एक कर लाला बाबू से मिलते गए और उनकी सम्पत्ति वे खरीदते गए। इस प्रकार जमींदारी से प्राप्त होने वाली सारी आय श्रीविग्रह की स्थापना, मन्दिर-धर्मशाला के निर्माण और देश-सेवा के विधि-विधान में लगाई गई।

लाला बाबू की बढ़ती लोकप्रियता से कुछ लोगों को ईर्ष्या होने लगी और वे स्थानीय जंनता में यह बात फैलाने लगे कि लाला बाबू छल-बल और कपट-कौशल से ब्रजमण्डल की बहुत सारी जमीन-जायदाद हड़प रहे हैं और लोगों को उसका उचित मूल्य भी नहीं दे रहे हैं। जब इस साजिश का पता लाला बाबू को चला तो उन्होंने आदेश दिया कि यहाँ से लेकर सेतुबंध तक मुनादी करा दी जाय कि जो लोग महसूस कर रहे हों कि उन्हें उनकी जायदाद का उचित मूल्य नहीं मिला है तो वे अपनी जायदाद वापस ले सकते हैं। इस मुनादी के बाद लोगों के मन का सारा संशय दूर हो गया। एक भी विक्रेता अपनी जायदाद लौटाने के लिए नहीं आया।

लाला बाबू के वृन्दावन पहुँचने की बात का पता जब भरतपुर नरेश को लगा तो उन्होंने भरतपुर प्रासाद में उनके व्यवस्था कराई।

कुछ दिनों बाद की घटना है। वृन्दावन में इष्ट विग्रह के मन्दिर के लिए जयपुर से पत्थर मँगाए जा रहे थे। इसके लिए लाला बाबू को कभी-कभी स्वयं राजस्थान जाना पड़ता था। एक बार वे भरतपुर के महाराज से मिले। महाराज से घनिष्ठता बढ़ने पर वह एक विपत्ति में फँस गए। उस समय राजस्थान के राज-घरानों से अंग्रेजों की कोई संधि-वार्ता चल रही थी। भरतपुर के राजा उस संधि को मानने वालों में अग्रणी थे। लेकिन किसी कारणवश बाद में वे असहमत हो

गए। अंग्रेजों को यह बात बुरी लगी। उनके मन में शंका हुई कि भरतपुर के राजा द्वारा अचानक संधि से मुकर जाने के पीछे लाला बाबू का हाथ हो सकता है।

ईस्ट इण्डिया की तरफ से उन दिनों सर चांर्ल्स मेटकाफ उस समय दिल्ली दरबार में रेडिजेण्ट थे। संधिपत्र पर हस्ताक्षर करवाने की जिम्मेदारी उन्हें ही सौंपी गई थी। कर्मचारियों ने उन्हें बताया कि राजा तो हस्ताक्षर करने को तैयार थे किन्तु लाला बाबू ने उन्हें भड़का दिया। मेटकाफ इस बात पर क्रोध से तमतमा उठा। इस बात की असलियत जानने के लिए उसने मथुरा के कलेक्टर को निर्देश दिया। कलक्टर खूँखार व्यक्ति था। उसने लाला बाबू को कैद कर दिल्ली भेज दिया। वहीं पर फैसला लिये जाने की व्यवस्था हुई।

लाला बाबू की गिरफ्तारी की खबर जंगल की आग की तरह सम्पूर्ण ब्रजमण्डल में फैल गई। हजारों की संख्या में नर-नारी इस त्यागव्रती वैष्णव के पीछे-पीछे चल पड़े। दिल्ली में जन सैलाब उमड़ पड़ा। लाला बाबू की इस लोकप्रियता को देख कर मेटकाफ घबड़ा गया। बहरहाल उसने लाला बाबू के खिलाफ सबूत और उनके जीवन का रिकॉर्ड जुटाने की जिम्मेदारी फारसी-लेखक शांतिपुर के देवीप्रसाद राय को सौंप दी। राय महाशय ने अपनी रिपोर्ट में लिखा कि लाला बाबू और उनके पूर्वज हमेशा से कम्पनी के उपकारी रहे हैं। उन्होंने हर क्षेत्र में कम्पनी से सहयोग किया है। इस रिपोर्ट के बाद मेटकाफ ने सारे अभियोग तुरन्त वापस ले लिये।

सम्भवतः ईश्वर ने लाला बाबू की यह प्रथम परीक्षा ली, जिसमें वे उत्तीर्ण हुए। मेटकाफ लाला बाबू का भक्त हो गया।

एक दिन मेटकाफ ने लाला बाबू को सम्मानपूर्वक अपने आवास पर आमंत्रित किया। बातचीत के दौरान उसने पूछा, ''इतने दिनों तक दीवान के पद पर कार्य करते हुए आप सरकार और रियाया का उपकार करते रहे। अब सभी कुछ छोड़छाड़ कर कैसे बैठ पाएँगे।''

''मैंने तो अब नई नौकरी कर ली है।''

''कौन सी नौकरी, किसकी नौकरी?''

''जो सबसे बड़ा मालिक है, उसकी।''

''वह कौन?''

''नए मालिक का नाम है श्रीकृष्ण,'' लाला बाबू ने हँसते हुए कहा, ''मेरे लिए अनवरत कार्य यही है कि उनका कीर्तन-भजन करते रहें।''

मेटकाफ जिज्ञासा की दृष्टि से लाला बाबू को समझाते रहे। मुंशी ने उन्हें समझाया—''श्रीकृष्ण वैसे ही भगवान हैं, जैसे ईसाई लोग ईश्वर को परमपिता 'गॉड' कह कर स्मरण करते हैं।''

ईस्ट इण्डिया के अधीन लाला बाबू बहुत दिनों तक काम कर चुके थे। उनकी निष्ठापूर्ण कार्य-दक्षता से खुश होकर ब्रिटेन के सम्राट ने उन्हें महाराजा की उपाधि देनी चाही थी लेकिन उन्होंने उसे विनम्रतापूर्वक अस्वीकार कर दिया था।

मेटकाफ से मिलकर लाला बाबू वृन्दावन लौट आए। इष्टदेव के मन्दिर का निर्माण-कार्य तेजी से शुरू हो गया और धीरे-धीरे पूरा भी हुआ। गर्भ-गृह में श्रीकृष्ण का विग्रह भव्य समारोह के साथ प्रतिष्ठित हुआ। मन्दिर का खर्च चलाने के लिए ब्रजमण्डल की जमींदारी का बहुत बड़ा भाग मन्दिर से जोड़ दिया गया। अतिथिशाला में नियमित प्रसाद-भोजन की व्यवस्था की गई। प्रतिदिन सैकड़ों की संख्या में साधु-सन्त तथा मुमुक्ष लोग भोजन ग्रहण करते। इस सदाव्रत की चर्चा पूरे ब्रजमण्डल में फैल गई। लाला बाबू स्वयं निःस्व वैष्णव की तरह रहते। श्रीविग्रह को भोग लगने के बाद कुछ प्रसाद मुँह में डालते। इसके बाद निरन्तर ठाकुरजी के भजन-कीर्तन में लीन रहते।

लाला बाबू की एकमात्र इच्छा यह थी कि उनके द्वारा प्रतिष्ठित श्री विग्रह शीघ्र ही जाग्रत उजागर हो। इसके लिए वे लगातार मन्दिर में कातर भाव से बैठकर प्रार्थना करते रहते। उनके नेत्रों से आँसू झरते रहते। वे कहते, ''हे ठाकुर, अपने श्री विग्रह में तुम नित्य लीलारत हो। किन्तु यह लीला एक बार इस अधम को भी दिखाओ। इस अंधे अभागे की आँखें खोल दो। दयामय, सर्वजन-समक्ष तुम जाग्रत हो उठो। तुम्हारी कृपा की अजस्र धारा चतुर्दिक विस्तारित हो और यह देखकर मैं धन्य होता रहूँ।'' लाला बाबू का यह करुण-क्रंदन व्यर्थ नहीं गया। शीघ्र ही ठाकुर के श्री विग्रह से प्रभु की दिव्य लीला स्फुरित होने लगी। यह लीला अलौकिक भी थी और दया-करुणा के रस से पूर्ण भी।

माघ का महीना था। ठिठुरन भरी सर्दी पड़ रही थी। सुबह से ही ठाकुर की षोडषोपचार पूजा चल रही थी। मन्दिर के एक कोने में बैठे लाला बाबू मन-प्राण से एकतन होकर श्री मूर्ति को एकटक निहार रहे थे। भावावेश के कारण सम्पूर्ण शरीर रोमांचित हो रहा था। आँखों से लगातार आँसू बह रहे थे। इसी बीच उनके मन में एक अदभुत विचार आया। इस बात की जाँच कर ली जाय कि ठाकुरजी की प्रतिमा में प्राणों का संचार हुआ है या नहीं? उसी क्षण भोग-राग के उपकरणों में से मक्खन का गोला उन्होंने उठा लिया। पुजारी के हाथ में देकर कहा, ''इस माखन को लेकर श्री मूर्ति के शीर्ष-तालु पर डाल दो तो। हमारे प्रतिष्ठित श्रीकृष्ण प्राण हो चुके हैं कि नहीं, इस बात की परीक्षा मैं आज ही कर लेना चाहता हूँ।''

पुजारी लाल बाबू के इस प्रस्ताव पर चौंके। संकोच के साथ कहा, ''आपके आदेश का पालन तो मैं कर रहा हूँ लेकिन इस प्रकार की परीक्षा किसी ने की हो, ऐसा तो कभी नहीं सुना।''

"पुजारीजी, यदि श्री विग्रह चैतन्यमय हैं, उनके जड़ प्रतिमा-शरीर में भी चैतन्य-चिह्न क्यों नहीं पाया जायेगा? इस प्रतिमा काय में उत्ताप एवं प्राणों के स्पंदन क्यों नहीं होंगे?" लाला बाबू ने प्रश्नात्मक लहजे में कहा।

पुजारीजी ने मक्खन का गोला प्रतिमा पर चढ़ा दिया और पूजा चलने लगी। देखते ही देखते ठाकुरजी के ऊपर डाला गया कठोर मक्खन का गोला गलने लगा। सारी प्रतिमा मक्ख-रस से भींग उठी। इस ठिठुरन भरी ठंड में मक्खन का गोला गल जाएगा, यह असम्भव था। निश्चय ही अलौकिक कारणों से ब्रह्मताप उष्ण हो आई है तभी मक्खन इस तरह गल रहा है। वहाँ उपस्थित भक्त गण यह दृश्य देखकर आनन्द से जय जयकार कर उठे। लाला बाबू का शरीर आनन्द के रोमांच से इस कदर काँपने लगा कि वह मूर्च्छित होकर वहीं लुढ़क गए।

एक और घटना—लाला बाबू के दिमाग में एक नई बात का संचार हुआ। श्रीमूर्ति के मस्तिष्क तल में यदि ताप-उष्णता संचरित हो सकती है तो उनकी नाक से साँस क्यों नहीं चल सकती? एक बार इसकी परीक्षा भी ली जाय। मन्दिर के एक सेवक से उन्होंने रूई मँगवाई। फिर पुजारी से बोले, "आप कृपाकर श्री विग्रह की नासिका तले इस रूई के गोले को कुछ देर तक रखे रहें। श्वासोच्छ्वास चल रहा है या नहीं, इसे प्रत्यक्ष करना चाहता हूँ।"

पुजारी ने हँसते हुए कहा, "उस दिन श्रीमूर्ति के ब्रह्माण्ड पर मक्खन का गोला रखवा कर आपने परीक्षा ले ली, फिर भी कौतूहल बना हुआ है?"

"यह अधम लम्बे काल तक विषय का कीड़ा बना रहा है। इसी से संशय मिट नहीं सका है। प्रभु के चरणों में अभी तक पूरा विश्वास नहीं हो पाया है। अतः स्वभावतः बार-बार अलौकिक ऐश्वर्य देखने का कौतूहल जाग उठता है। लेकिन यह स्वतः धीरे-धीरे खत्म हो जाएगा। आप जाकर देखिए साँस सचमुच चल रही है या नहीं।" लाला बाबू ने विनम्रतापूर्वक कहा।

रूई श्री विग्रह की नासिका के नीचे रखी गई। फिर देखा गया कि श्री मूर्ति की नाक के छिद्र से साँस आ-जा रही है क्योंकि रूई का छोटा गोला रह-रहकर हिल रहा है।

श्रीमूर्ति में प्राण-संचार हुआ है, इससे आश्वस्त होकर लाला बाबू आनन्दोल्लास से भर उठे। वे मन्दिर की रंगशाला में बार-बार दण्ड प्रणाम करने लगे।

एक दिन इष्टदेव लाला बाबू को स्वप्न में दिखाई दिए। कहने लगे, "लाला, तुम्हारी सेवा स्वीकार कर मैं प्रसन्न हूँ। विशाल मन्दिर, पूजा-सेवा, भोग-राग और अन्न-सत्र सभी कुछ है। साथ ही तुम्हारी दैव्य भक्ति भी है।

किन्तु इतना सब होते हुए भी मुझे कुछ और चाहिए। तुम मुझे और कुछ भीख में दे सकते हो ?''

ब्रह्माण्ड के स्वामी के श्रीमुख से यह बात सुनकर लाला बाबू चौंक उठे। बोले, ''प्रभु और जो चाहे कहें लेकिन यह भीख की बात आपके मुँह से अच्छी नहीं लगती। मेरा उद्धार श्रीचरणों में है, मुझे लगा रहने दीजिए। जो बात हो, खुल कर कहिए।''

''क्यों जी, तुम जानते नहीं कि मैं शाश्वत भिखारी हूँ ? जीवों के द्वार-द्वार क्या मैं प्रेम की भीख के लिए दौड़ता नहीं रहा ? किन्तु रहने दो यह सब तत्त्व-कथा। मेरे लिए तुम्हें इस बार नूतन मन्दिर का निर्माण करना होगा।''

''नया मन्दिर ? प्रभो, जो पचीस लाख रुपए मैं आपकी सेवा के लिए लाया था वह सारा चुक गया। सर्वस्व चढ़ा चुका हूँ। अब एक और मन्दिर कैसे बनवा सकूँगा भगवन ?''

''लाला, जिस मन्दिर के निर्माण की बात मैं कर रहा हूँ, वह साधक के सर्वस्व चुकने के बाद ही तो निर्मित हो सकता है।'' लाला बाबू को चिन्तामग्न देखकर श्री ठाकुर ने कहा, ''लाला, सर्वस्व दान करने के बाद ही तो अपने हाथों भक्त हृदय का श्री मन्दिर गढ़ा जाता है। वही मन्दिर तो मेरा प्रिय स्थान है। इस बार तुम अपनी हृदय-वेदी पर मेरे लिए चिरस्थायी प्रेम मन्दिर की रचना करो। इसी भिक्षा के लिए तो मैं यहाँ आ खड़ा हूँ।''

''दयानिधान, तो आप स्वयं बता दें कि इस शरीर के हृदय मन्दिर में आपको किस प्रकार प्रतिष्ठित कर पाऊँगा ?''

''तुम इसी क्षण गोवर्धन चले जाओ। वहाँ की महापवित्र भूमि और निर्जनता तुम्हारे भजन-भाव के सदा अनुकूल है। तुम्हें परमप्राप्ति वहीं होगी।''

लाला बाबू ने निवेदन किया, ''प्रभु, कृपा कर मेरे द्वारा स्थापित इस श्रीमूर्ति में आप जाग्रत हो उठे हैं। कहिए तो, इसे छोड़कर मैं कहा जाऊँ ? किस तरह जाऊँगा ?'' लाला बाबू का हृदय हाहाकार कर उठा था।

''मेरी लीला केवल तुम्हारे द्वारा स्थापित प्रतिमा में ही सीमित है क्या ? यह लीला तो सभी विग्रह मूर्तियों, जल, थल और आकाश में रूपायित है। श्री चैतन्य के महाभाव से जो लीला तीर्थ सृजित हुए हैं। तुम ब्रजमण्डल के सभी तीर्थों में परिव्रजन करो। उसके बाद गोवर्धन जाकर अपनी तपस्या पूर्ण करो।''

लाला बाबू ने एक-एक कर ब्रजमण्डल के सभी तीर्थों का दर्शन किया, फिर गोवर्धन में आ गए। वे गोवर्धन की नित्य परिक्रमा करने लगे। उसके बाद भूगर्भ गुफा के अन्दर बैठ कर जप-ध्यान में लीन हो गए। दिन में एक बार मधुकरी के लिए बाहर निकलते। भिक्षा में जो कुछ मिलता उसी से दिन कटने लगा।

एक दिन गिरि गोवर्धन में मूसलाधार वर्षा शुरू हो गई। गिरि-परिक्रमा समाप्त करने के बाद लाला बाबू ने सोचा कि क्यों न श्री विग्रह में सायंकालीन प्रसाद पाया जाय। फिर मधुकरी के लिए बाहर जाने का क्या प्रयोजन? पूरा दिन तप और साधना में क्यों न लगाया जाय। मन्दिर के पुजारी को कहला दिया, रात में ठाकुरजी का प्रसाद उनके लिए भिजवा दिया करें।

किन्तु मन्दिर में आरती और भोग राज का समय समाप्त होते ही भारी वर्षा होने लगी। पुजारी सोच में पड़ गए। भक्त लाला बाबू प्रसाद की प्रतीक्षा कर रहे होंगे किन्तु इस वर्षा की झड़ी में क्या किया जा सकता है?

देर रात गए वर्षा मद्धिम हुई तो पुजारी ठाकुरजी के घर में दौड़े। प्रसाद लेकर जल्दी ही लाला बाबू के पास जाएँगे। लेकिन यह क्या? प्रसाद की थाल तो यहाँ है ही नहीं! कौन ले जा सकता है, प्रसाद की थाली? उनके सिवा कोई और तो नहीं था। अंततः अगत्या ठाकुरजी का जो कुछ फल-फूल प्रसाद रखा था, उसे हँडिया में रख कर पुजारीजी लाला बाबू के यहाँ उपस्थित हुए।

पुजारीजी को देखते ही विस्मय से लाला बाबू बोले, ''यह क्या पुजारीजी, अभी कुछ देर पहले तो प्रभु का प्रसाद भरा थाल दे गए हैं, फिर यह क्या ले आए।''

पुजारीजी के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा, वह बोले, ''लालाजी, यह आप क्या कह रहे हैं। मैं तो सायं से ही थाल रखकर पानी बन्द होने की प्रतीक्षा करता रहा। अब बरसात थोड़ी मद्धिम हुई है तो आया हूँ।''

''उधर देखिए ठाकुरजी के भोग-प्रसाद का थाल अभी भी पड़ा हुआ है'', गुफा के एक कोने में इशारा करते हुए लाला बाबू ने कहा, ''आप स्वयं दे गए हैं थाल। जल्दी भोजन करने की बात भी कह गए हैं। क्या विक्षिप्त हूँ जो थोड़ी देर पहले की बात भूल जाऊँगा।''

पुजारी ने हाथ जोड़ कर कहा, ''ठाकुरजी की शपथ लेकर कह रहा हूँ लाला बाबू कि मैं आज मन्दिर से बाहर निकला ही नहीं। ठाकुरजी के गृह से प्रसाद भरा हुआ थाल भी गायब हो गया था। उसे काफी खोजा, जब नहीं मिला तो जो कुछ था, इस हाँडी में लेकर आया हूँ।''

पुजारी की यह बात सुनकर लालाजी की देह में सात्विक प्रेम विकार फूट पड़े—स्तंभ, स्वेद, रोमांच, गदगद वाली, कंप, विवर्णता और अश्रु आदि। और वे चेतनाशून्य होकर जमीन पर लुढ़क गए।

चेतना लौटने के बाद आँसू भरे कण्ठ से कहने लगे, ''हाय नाथ! अधम के प्रति क्यों इस प्रकार छलना दिखा गए हो। पुजारी के रूप में आए। स्वयं भोग-प्रसाद दे गए किन्तु मैं मोहाच्छन्न अंध-सा तुम्हें पहचान भी नहीं पाया! हे दयानिधान! एक बार, सिर्फ एक बार प्रकट होकर दर्शन दे दीजिए।''

गुरु की प्राप्ति के लिए लाला बाबू काफी दिनों तक भटके। साधु-संतों के यहाँ मत्था देखा। लेकिन बार-बार उन्हें एक ही बात सुनने को मिली, समय आने पर गुरु का आविर्भाव स्वयं होगा। इसके लिए परेशान होने की आवश्यकता नहीं है। लेकिन गोवर्धन पर्वत पर रह कर तपस्या करते सद्गुरु के प्रति व्यग्रता और बढ़ गई।

उस समय के सिद्ध साधुओं में मथुरा के कृष्णदास बाबा की ख्याति ज्यादा थी। भक्तमाल का बँगला में अनुवाद करने के बाद वह प्रसिद्धि के शिखर पर पहुँच गए थे। निगूढ़ वैष्णीय साधना में उन्हें सिद्धि प्राप्त थी। इस बार वे गोवर्धन की परिक्रमा के लिए पहुँचे थे। लाला बाबू ने उनके पास पहुँच कर प्रणाम किया फिर बोले, ''प्रभु, गुरु के श्रीचरण में आश्रय पाने के लिए मेरी आत्मा तड़प रही है। बहुत समय से आपको ही सद्गुरु के रूप में वरण किया है। इस बार मुझे आश्रय देकर कृतार्थ कीजिए।''

कृष्णदासजी लाला बाबू को दीक्षा देने के लिए सहमत हो गए। लेकिन शर्त यह थी कि लाला बाबू को कुछ समय तक कठोर साधन-भजन करना था। विषयी जीवन के अवशेष को वैराग्य की आग में भस्म करना था। फिर समय आने पर कृष्णदासजी स्वयं उपस्थित होकर दीक्षा देंगे।

लाला बाबू ने कृष्णदासजी के निर्देशानुसार अपनी साधना शुरू कर दी। कौपीन कंथा मात्र धारण कर ब्रज के एक-एक तीर्थ में घूमते। कुछ दिन एक जगह बिताकर फिर दूसरी जगह चले जाते। दिन-ब-दिन चरम कोटि की त्याग-तितिक्षा और दैन्य उनकी आध्यात्म साधना प्रवाहित होने लगी। कुछ दिनों के लिए वृन्दावन आए। दिन श्रीकृष्ण मन्दिर में बैठकर श्रीमूर्ति विग्रह को घण्टों निहारते। शाम को गलियों में भिक्षा के लिए निकलते। जो कुछ मिलता, उसी पर गुजारा करते।

काफी दिन बीत गए श्रीकृष्णदासजी का 'उपयुक्त समय' नहीं आया। लाला बाबू को उनकी याद सताने लगी। गुरु-कृपा की संजीवनी-सुधा से अबतक वंचित रहे। वह आत्मविश्लेषण करते रहे। आखिर जीवन में कौन सी त्रुटि, कौन से संस्कार और कौन सा माया-मोह उनके मार्ग में अवरोध बन रहा है।

लाला बाबू को याद आया कि बहुत से सेठ-साहूकारों के मठ-मन्दिरों में वह अभी तक नहीं जा सके हैं। मठ-मन्दिर के निर्माण में, श्री विग्रह की सेवा में और दान-पुण्य में कितने सेठ लोग लाला बाबू के प्रतिद्वन्द्वी बने रहे हैं। कई मुद्दों को लेकर दोनों पक्षों में टकराव भी हुए थे। वे दिन लाला बाबू भूल जाना चाहते थे क्योंकि वे अब कौपीन-मेखलाधारी वैष्णव थे। क्या वही अंश अब भी हृदय में शेष नहीं बचा है? यह विचार मन में आते ही लाला बाबू ने सेठों के मठों-मन्दिरों में जाने का निश्चय कर लिए—एक वैष्णव भिखारी के रूप में।

एक दिन भिखारियों की भीड़ में लाला बाबू भी थे। आँगन में खड़े होकर, खँजड़ी बजाकर लाला बाबू मधुर-स्वरों में कृष्ण-कीर्तन में तन्मय हो गए थे। सुध-बुध खो बैठे थे। स्वर्ण-गौर वर्ण, लम्बे शरीर वाले लाला बाबू को वृन्दावन में भला कौन नहीं पहचानता था। तुरन्त ही यह खबर अधिकारी के कानों में पहुँची। लाला बाबू वैष्णव भिखारी के वेश में भिक्षा माँगने आए हैं। यह सेठ लोगों की कल्पना से परे था। मन्दिर में हलचल मच गई। वृद्ध सेठ स्वयं भिक्षा देने के लिए आए। वह थाल लिये हुए थे। थाल में चावल, दाल और फल के अलावा एक सौ एक अशर्फियाँ थीं। बहुत ही सम्मान और विनम्रता के साथ सिर झुका कर सेठ ने कहा, ''बाबूजी, आपके चरण-रज से दीन की यह कुटिया धन्य हुई। कृपा कर यह थाल ग्रहण करें, हम अत्यन्त कृतार्थ होंगे।''

''मैं तो मधुकरी के लिए आया था। कृष्ण नाम स्मरण कराया। मुझे सिर्फ एक मुट्ठी चावल भिक्षा में चाहिए। थाल में जो कुछ सजाकर लाए हैं आप, उसे तो भिक्षा नहीं माना जाएगा।'' लाला बाबू ने विनम्रतापूर्वक कहा।

''आप सही कह रहे हैं। लेकिन आपको भिक्षा देना मेरी शक्ति से बाहर है। यह तो भेंट-नजराना है। राजा लाला बाबू ने आज भिक्षुराज होकर हमें पराभूत कर दिया है। इसी से यह नजराना हाजिर है।''

''यह नहीं हो सकता सेठजी,'' लाला बाबू बोले, ''वैष्णव को जीवन-पर्यन्त भिक्षुक ही रहना पड़ेगा। आपके इस स्वर्ण थाल का स्पर्श नहीं कर पाऊँगा। थाल में से एक मुट्ठी चावल मेरी झोली में डाल दीजिए। ज्ञात-अज्ञात भाव से यदि आपको मुझसे कष्ट पहुँचा हो तो मुझे क्षमा करें। सब लोग मिलकर मुझे आशीर्वाद दीजिए, जिससे मुझ जैसे अपात्र के हृदय में सहज कृष्ण भक्ति का उदय हो सके।'' कहकर लाला बाबू ने दोनों हाथ उठाकर अपने पूर्व प्रतिद्वन्द्वी सेठजी को हृदय से लगा लिया। उनकी आँखों से आँसुओं की वर्षा होने लगी। भावावेश और प्रेमोच्छ्वास का यह दृश्य देखकर वहाँ खड़े तमाम लोग द्रवित हो उठे।

सेठ के मन्दिर से लाला बाबू धीरे-धीरे निकले। निकट की गली से अपनी भजन कुटी की तरफ बढ़े ही थे कि बाबा कृष्णदास अचानक प्रकट हो गए। लाला बाबू ने उन्हें साष्टांग दण्डवत किया। बाबा ने लाला बाबू को उठाकर हृदय से लगा लिया। भक्तवत्सल बाबा ने कहा, ''अब समय आ गया है। देखो, इसी उद्देश्य से मैं भी यहाँ आ गया हूँ। प्रतिद्वन्द्वी धन कुबेर सेठजी के यहाँ इतने दिनों तुम मधुकरी माँगने नहीं गए। अंतर में जो अहंभाव मौजूद था, वह दूर हो गया। अब दीक्षा-बीज के आरोपण में कोई बाधा नहीं रह गई है वत्स!''

बाबा कृष्णदास ने लाला बाबू को दीक्षा दी। इसके बाद उनका जीवन और गहन हो गया।

निगूढ़ वैष्णव साधना का पथ निर्देशन करते हुए गुरु ने कहा, ''इस बार तुम्हें सर्वस्व अर्पण करना होगा। चरम कृच्छ्र व्रत का अवलम्बन कर साधना में जुट जाना होगा। अब तुम गोवर्धन पर्वत की गुफा में जाकर निवास करो। वहाँ रहकर ही तुम इष्ट दर्शन और परमप्राप्ति होगी। जब तक अभीष्ट सिद्ध न हो तब तक साधन-गुफा में एकांत जीवनयापन करोगे और तब तक मनुष्य का मुख नहीं देखोगे।''

गोवर्धन पर्वत की गुफा में लाला बाबू घोर तपस्या में लीन हो गए।

कुछ वर्षों बाद उनकी तपस्या सार्थक हुई। उन्हें इष्ट-दर्शन मिला। इष्ट के लीलारस-पान से वह पूर्ण काम हुए। ब्रजमण्डल के अन्यतम वैष्णव महापुरुष के रूप में चिर प्रतिष्ठित हुए।

इसी समय सिंधिया नरेश वृन्दावन पहुँचे। विशिष्ट तीर्थस्थलों का दर्शन करते-करते उनके अंतर में अध्यात्म-जीवन बिताने की प्रबल आकांक्षा पैदा हुई। सोचने लगे, किस महात्मा से आश्रय माँगें। लोगों ने उन्हें परमसिद्ध महापुरुष लाला बाबू का नाम बताया। अतः सदल बल गोवर्धन में पहुँच गए।

सिंधिया नरेश पारेखजी ने लाला बाबू से उनका मंतव्य बताया तो लाला बाबू ने कहा, ''महाराज, दीक्षा के सम्बन्ध में मैं अपने गुरुजी द्वारा निर्देशित मार्ग का अनुसरण करता हूँ। उसे मानकर ही आपको मेरे निकट आना होगा।''

''वह मार्ग क्या है?''

''गुरु ने मुझे तभी दीक्षा दी थी जब मैं विषय और विषय का अभिमान दोनों ही त्याग कर उनके चरणों में आत्मसमर्पण कर पाया था। श्री भगवान को पाना हो तो उन्हें दोनों हाथ से गहना होगा। एक हाथ से संसार को जकड़े रहना और दूसरे हाथ से भगवान के चरणस्पर्श करना—यह संभव नहीं है।''

''तो इसके लिए मुझे क्या करना होगा?''

''महाराज, कृष्ण-प्रेम के सागर में लीन होने के लिए आपको जीवन के इन दोनों किनारों के तटबंधों से अलग होना होगा। सर्वत्यागी, कौपीनधारी होकर इस गोवर्धन गुफा में आना होगा। क्या यह कर सकेंगे महाराज?''

''आपका कहना सत्य है, प्रभु। मैं अब समझ रहा हूँ—ऐसा कृच्छ्र साधन, ऐसा त्याग वैराग्य का मार्ग हम जैसे साधारण मनुष्य के लिए नहीं है। इसके लिए जन्म-जन्मान्तर की साधना और विपुल पुण्य-सुकृति की आवश्यकता है।'' सिंधिया नरेश ने दोनों हाथ जोड़कर कहा।

महाराज लाला बाबू की चरण वंदना करके गोवर्धन से विदा हुए।

लाला बाबू की ख्याति जैसे-जैसे बढ़ने लगी, वैसे ही वैसे वहाँ जुटने वाले भक्तों की भीड़ बढ़ने लगी। इससे उनकी साधना में व्यवधान पैदा होने लगा। वह

सोचने लगे, उन्हें गोवर्धन-गुफा छोड़ कर किसी निर्जन स्थान में चले जाना चाहिए जहाँ पूरी तरह भक्ति का सुख उठा सकें। एक रात को उन्होंने अपना स्थान छोड़ दिया। गहन अंधकार था। लेकिन उसी समय गुफा के निकट एक घटना घटित हुई। ग्वालियर से आने वाला यात्रियों का एक दल घोड़े पर सवार होकर चला आ रहा था। उन लोगों में से किसी एक के घोड़े की टाप लाला बाबू के पैर पर पड़ी और वह गिर पड़े। इस चोट के कारण जो घाव हुआ, वह थोड़े ही दिनों में काफी बढ़ गया। भक्तगण उन्हें वृन्दावन मन्दिर में ले गए किन्तु चोट की पीड़ा से लाला बाबू उबर नहीं पाए।

भक्त पूछते, ''प्रभु, आपको आपके प्राण-प्रिय श्रीकृष्णजी के पास लाकर रखा गया है, फिर भी आप रोग-मुक्त क्यों नहीं होते?''

''तुम तो प्रभु के दिए गए इस दैहिक रोग को ही देखते हो, उनका दिया हुआ अमृतमय आलोक भी तो देखो। वैसा आलोक तो मेरे हृदय को आलोकित कर रखा है। कृष्णचन्द्र और राधारानी का मधुर लीला-विलास वहाँ अविराम गति से चल रहा है। बताओ तो, कौन-सा पलड़ा भारी है—सुख का या दुःख का।''

भक्त और सेवक हार मानकर चुप हो जाते।

लाला बाबू का जीवन धीरे-धीरे चिर विराम के निकट आ गया। भक्तों को संकेत मिला तो वे दुःखी मन से उन्हें झटपट यमुना के किनारे ले गए। युगल लीला की अनन्त वैचित्र्य-परम्परा के दर्शन में लीन होकर उन्होंने अन्तिम साँस ली। सारा ब्रज-मण्डल इस महान साधक के महानिर्वाण के शोक में डूब गया।

साधारण समाज छाती पीट-पीट कर रो रहा था। तमाम दुःखों से उनका एक महान उद्धारकर्ता चला गया। लाला बाबू वास्तव में उस समय के महान साधक और राजर्षि थे।

●

श्रीपाद माधवेन्द्रपुरी

त्यागव्रती माधवेन्द्रपुरी कुण्ड के किनारे पेड़ की छाया में चुपचाप लेटे थे। प्रचण्ड गर्मी थी। वातावरण ऐसा लग रहा था जैसे आग की लपटें उठ रही हों। लोग घरों, मन्दिरों और मठों में दुबके हुए थे। महावैष्णव माधवेन्द्र बहुत दिनों से अयाचक व्रत ग्रहण किए हुए थे। जो भिक्षा मिल जाती, उसी से काम चल जाता। नहीं मिलती तो व्रत ही रहते। दूर-दूर तक सन्नाटा पसरा था। दोपहरी नाच रही थी। ऐसी स्थिति में कोई प्राणी इधर आ टपकेगा, इसकी सम्भावना दूर-दूर तक नहीं थी।

लेकिन माधवेन्द्र ने विस्फारित नेत्रों से देखा कि एक गोप बालक हाथ में दूध का बर्तन लिये सामने खड़ा था। अत्यन्त सुन्दर। काले-काले घुँघराले बाल। सुगठित शरीर। साँवला शरीर। बड़ी-बड़ी आँखें। मोहक रूप-रंग सौन्दर्य।

मधुर हँसी बिखेरते हुए बालक ने कहा, ''सुनते हो जी! जरा उठकर बैठ जाओ। तुम्हारे लिए डाबाभर दूध ले आया हूँ। आओ छककर दूध पीओ। अनशन-उपवास करने से क्या लाभ मिलने वाला। बोल तो। ग्वालों के घर में दूध-दही की कमी नहीं, तब तुम भूखे क्यों रहोगे?''

''बच्चे, तुम कौन हो? किस गाँव में रहते हो? तुमने यह कैसे जाना कि मैं यहाँ उपवास किये बैठा हूँ?'' बालक के सम्मोहन से उबर कर माधवेन्द्र ने पूछा।

''मैं पास की बस्ती में रहता हूँ। तुम्हें मालूम नहीं, कोई यदि अयाचक वृत्ति लेकर रहता है, माँग कर कुछ नहीं खाता, तो मैं उसके लिए दूध का बंदोबस्त करता हूँ। ग्वालों की बहू-बेटियाँ इस घाट पर नहाने-धोने आई थीं, उन्हीं से तुम्हारे उपवास के बारे में पता चला। दूध भी उन्हीं लोगों ने भिजवाया है। तुम दूध पीओ, मैं थोड़ी देर बाद हाँड़ी ले जाऊँगा।''

माधवेन्द्र ने इष्टदेव को दूध का भोग लगाया, इसके बाद सारा दूध पी गए।

धीरे-धीरे दिन ढल गया। लेकिन जो बालक दूध लेकर आया था, वह फिर नहीं लौटा। उसकी हाँड़ी एक तरफ रखी हुई थी।

चारो तरफ अँधेरा छा गया, माधवेन्द्र ने पूजन-कीर्तन और जप पूरा किया। मध्यरात्रि के आसपास आसन बिछाकर लेट गए। जल्दी ही नींद आ गई।

कुछ ही देर बाद एक अलौकिक घटना ने माधवेन्द्र की नींद तोड़ दी। वे हड़बड़ा कर उठ बैठे। मंद-मंद मुस्कराते हुए एक किशोर बालक उनके सामने

खड़ा था, बोला—"माधवेन्द्र, तुम आ गए हो, अच्छा ही हुआ। तुम्हारे अलावा किसी अन्य के द्वारा मेरी प्रतिभा का उद्धार नहीं हो सकता। बहुत दिन पहले की बात है। गोवर्धन पर्वत के समीप इस गाँव के एक भाग में मेरे पौत्र वज्रनाभ ने स्थापित की थी मेरी एक शिला प्रतिमा—गोवर्धनधारी श्री गोपाल मूर्ति। वह प्राचीन विग्रह आज भी लोगों की नजरों से ओझल भू-गर्भ में पड़ा है। मुसलमानों के आक्रमण के समय पुजारियों ने उसे वहीं छिपाकर रख दिया था। मेरी इस मूर्ति का उद्धार तुम्हीं कर सकते हो। तुम्हारे जैसे परम भक्त की ही सेवा अंगीकार करने की इच्छा सँजोए मैं प्रतीक्षा कर रहा हूँ। इस मूर्ति की पुनर्प्रतिष्ठा करो और अगणित मानवों का कल्याण साधित करो।"

वह दिव्य मूर्ति गायब हो गई। माधवेन्द्र का आर्तनाद और करुण क्रंदन शुरू हुआ। भूमि में लोटते, जोर-जोर से बिलखते माधवेन्द्र बार-बार कह उठते—"हे नाथ! अपने हाथ हाँड़ी लिये मुझे दूध पिलाने आए। दर्शन दिए। मेरी सेवा स्वीकार की। फिर भी यह अधम तुम्हें पहचान नहीं सका। हे दयामय, मेरा दुःख अब असह्य हो चुका है।"

थोड़ी देर बाद सहज हुए। सोचा, ऐसा करते रहने से तो प्रभु की आज्ञा का पालन नहीं होगा। अपने श्रीमुख से सेवा ग्रहण करने की बात प्रभु ने कही है और यह भी संकेत दे दिया है कि इस वन भूमि में उनका विग्रह कहाँ गड़ा है। अब सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य मेरे समक्ष यही है कि उस मूर्ति की खोज करके उसे प्रतिष्ठित किया जाय। फिर गाँव के लोगों को बुलाकर उनसे इस अलौकिक वार्ता की बात कहने लगे।

यह बात सुनकर गाँव वालों में प्रबल उत्साह का संचार हो गया। गाँवभर के लोग फरसे-कुदाल लेकर आ गए और माधवेन्द्रजी के साथ जंगल में स्थित उस कुंज की ओर चल पड़े जहाँ मूर्ति होने की बात की गई थी। वहाँ से पेड़-पौधों और लता-गुल्मों की सफाई करने के बाद खुदाई करने पर गोपाल की मूर्ति मिल गई। मूर्ति देखकर ग्रामीणों के अन्दर आनन्द का सागर हिलोरें लेने लगा। माधवेन्द्र तो प्रमत्त हो गए। उस दिन सभी लोगों ने मिलकर उत्साहपूर्वक उस मूर्ति का अभिषेक-विधान सम्पन्न किया।

माधवेन्द्रपुरी की अभिलाषा हुई कि इस अभिषेक के उपलक्ष में अन्नकूट का अनुष्ठान हो तथा वैष्णव साधुओं का भण्डारा किया जाय। महान वैष्णव संत की यह अभिलाषा पूर्ण होने में देर नहीं लगी। मथुरा के भक्त सेठों में इस कार्य के लिए होड़ मच गई। दूध, दही, आँटा, घी, चीनी आदि प्रचुर मात्रा में पहुँचने लगे। महापुरुष की कृपा से श्री गोपाल प्रकट हुए हैं, इससे उनके निर्देश के पालन में लोग उत्साह के साथ लगे हैं।

बहुत ही धूमधाम से अन्नकूट तथा भण्डारा सम्पन्न हुआ। गोपाल एक भव्य और विशाल मन्दिर में प्रतिष्ठित हुए। माधवेन्द्र की ऋद्धि-सिद्धि देखने को मिली। वह ब्रजमण्डल में सिद्ध संत के रूप में लोकप्रिय हो गए। वैष्णव समाज में उनकी कथा की चर्चा जोरों पर थी। सभी का मत था कि श्री गोपालजी ने बाबा की सेवा को स्वयं अंगीकार किया। वह कौपीन-लंगोटधारी वैष्णव निश्चित ही भक्तिसिद्ध महापुरुष हैं। इस महापुरुष के बारे में वृन्दावन दास अपने चैतन्य-भागवत में कह गए हैं—

भक्तिं रसे माधवेन्द्र सूत्रधार।
गौरचन्द्र ईहा कहिया देन बार-बार॥
(चै०भा० १/६/६१)

माधवेन्द्र का आविर्भाव बंगाल की प्रेमभक्ति के निजी ऐश्वर्य के अधिकारी के रूप में हुआ लेकिन उनकी साधना आकर मिली दक्षिणात्य आलवार के भक्ति-रस में। राधा-कृष्ण लीलातत्त्व के एक श्रेष्ठ धारक और वाहक के रूप में उनका आलोक फैला। जीवन में निगूढ़ वैष्णवीय साधना का विस्तार हुआ। ज्ञानवादी पुरी सम्प्रदाय के अंतर्भुक्त संन्यासी होने पर भी उनके अन्तर में कृष्णप्रेम-रस प्रवाहित होता रहा। भक्तशिरोमणि माधवेन्द्र ने जन चेतना को भगवत-प्रेम रस से सींचना जारी रखा।

जिस समय माधवेन्द्र बंगाल, उड़ीसा, दक्षिणात्य और ब्रजमण्डल में प्रेम-रस के साधकों की टोलियाँ कायम करने में लगे थे उस समय उत्तर भारत में रामानन्द-कबीर का प्रभाव था। लगभग पूरा देश भक्ति-आन्दोलन से प्रभावित था। इस भक्ति-आन्दोलन में माधवेन्द्रपुरी ने एक नए प्रेम-रस का संचार किया। महाप्रभु चैतन्य की प्रेम-यमुना के वृहत्तर प्रवाह में मिलकर उनका भक्ति स्रोत फलितार्थ हो गया। लाखों भक्तगण इस में अवगाहन कर धन्य हुए।

भक्तिभाव माधवेन्द्रपुरी को विरासत में मिला था। श्रीहट्ट जिले में पूर्तिपाट नाम के एक छोटे से गाँव के जिस ब्राह्मण परिवार में माधवेन्द्र का जन्म हुआ था वह धर्मप्राण ही था। उनमें असाधारण जन्मजात प्रतिभा विद्यमान थी। उपनयन संस्कार के बाद जब गाँव की पाठशाला में उनकी शिक्षा शुरू हुई तो व्याकरण, काव्य तथा धर्मशास्त्र में वे इतनी जल्दी पारंगत हो गए कि आचार्यगण आश्चर्य-चकित थे। युवा अवस्था में पहुँचते-पहुँचते माधवेन्द्र वेद-वेदांग के शास्त्रीय ज्ञान के साथ भागवत तथा अन्य भक्ति शास्त्रों में पारंगत हो गए। केवल श्रीहट्ट अंचल में ही यह वारेन्द्र ब्राह्मण थे। मूल ग्राम करजा गाँव था जहाँ कश्यप गोत्र के शुद्ध श्रोत्रिय थे। 15वीं शती में लिखे गए 'हरि चरित्र' नामक ग्रन्थ में उल्लिखित है कि ग्रंथकार चतुर्भुज के पूर्व पुरुष स्वणरिखा ने राजा धर्मपाल के यहाँ से वारेन्द्र

अंचल का करजा नामक गाँव प्राप्त किया था। सुराँ करजा ग्राम के श्रीपाद माधवेन्द्र भी चतुर्भुज के समान स्वर्णरेखा के ही वंशधरों में अन्यतम थे। इसके अलावा इनके वंश के सम्बन्ध में कोई अन्य जानकारी उपलब्ध नहीं हो पाई है।

माधवेन्द्रपुरी की ख्याति धीरे-धीरे पूर्वी बंगाल में फैल गई। इनके व्यक्तित्व में इतना आकर्षण था कि एक बार जो सम्पर्क में आता, मुग्ध हो जाता। शिक्षा पूरी करके अध्यापन-कार्य में लग गए थे। उनका विवाह भी हो गया और एक पुत्र-रत्न की प्राप्ति भी हुई। पुत्र जन्म के बाद अचानक पत्नी का निधन हो गया जिसका काफी सदमा माधवेन्द्र को लगा। प्रायः उदास रहने लगे। उन्होंने गंगा-तट पर निवास करने का निश्चय किया। कुण्डिया और कुमारहट्ट के बीच विष्णुग्राम था। अपने किशोर पुत्र के साथ इस स्थान पर माधवेन्द्र ने अपनी कुटी बनाई। अध्ययन-अध्यापन के लिए एक चतुष्पाठी की स्थापना हुई। आचार्य के रूप में शीघ्र ही उनकी ख्याति फैल गई। कुमारहट्ट, कांचनपल्ली से लेकर कुलीन ग्राम, शांतिपुर और नवद्वीप तक उनकी विद्वत्ता का प्रसार हो गया। स्वनामधन्य ईश्वरपुरी ने माधवेन्द्र से ही शास्त्र-ज्ञान अर्जित किया और बाद में गया धाम में श्री चैतन्य को गोपाल मंत्र की दीक्षा दी जिसके बाद उनका जीवन ही बदल गया।

माधवेन्द्र के साधन-भजन करते कई वर्ष बीत गये। इसी बीच कमलाक्ष नामक छात्र उनके सम्पर्क में आया। यह तरुण छात्र श्रीहट्ट के निकट लाउड़ परगना के नवग्राम का रहने वाला था। बाद में चलकर यही कमलाक्ष श्री चैतन्यदेव के लीला पार्षद श्री अद्वैत नाम से प्रसिद्ध हुए। गौड़ीय वैष्णवों की प्रभुत्रयी में एक प्रभु रूप में पूजित हुए।

इस बीच माधवेन्द्र में निरन्तर कृष्ण प्रेम की पिपासा जाग रही थी। यही धीरे-धीरे रागानुरागा भक्ति में परिवर्तित हो गई। भागवत उनकी साधना का आधार बना। बंगाल की जो भाव कल्पना एवं प्रेम का आवेग उनमें था वह उद्वेलित हो उठा। जयदेव, विद्यापति और चंडीदास ने जो रस की धारा बहाई थी, उसमें आकण्ठ डूब गए माधवेन्द्रपुरी। वे राधाकृष्ण के अनुष्ठान में निरन्तर भाव-विभोर रहने लगे।

एक दिन माधवेन्द्रपुरी अपने किशोर पुत्र विष्णुदास को अपने प्रिय छात्र कमलाक्ष के पास छोड़ कर भागवत धर्म-रस की तलाश में चल पड़े। विदा के समय कमलाक्ष को बुलाकर उन्होंने कहा, ''परम प्रभु का हाथ मैंने टेक लिया है। अब से मेरे नए जीवन का अध्याय शुरू हुआ है। मैंने निश्चय किया है कि अब संसार को छोड़कर कौपीन धारण कर मैं निकल पड़ूँगा। भगवान ने तुम्हें मेरे पास लाकर एक बड़ा सुयोग लगा दिया है। विष्णुदास ठहरा अबोध बालक, उसके जीवन का भार तुम्हारे ऊपर छोड़कर जा रहा हूँ। जीवन का स्वप्न यदि सफल कर सका, इष्टदेव श्रीकृष्ण के दर्शन यदि मिले, तभी मैं लौट सकूँगा।''

गुरुदेव की यह मर्मभेदी वाणी सुनकर कमलाक्ष एक बार तो तिलमिला उठे। माधवेन्द्र ने अपना सम्बोधन जारी रखा, ''कमलाक्ष, मेरे जैसे दीन-हीन साधक के लिए तुम्हारी आँखों में आँसू शोभनीय नहीं। वत्स! यदि रोना ही है तो सारे विश्व के दुर्भाग्य पर रोओ। आँसू बहाना ही है तो उनके लिए बहाओ जिनके आविर्भाव के बिना कलिहत जीवों का उद्धार सम्भव नहीं। ऐसा ही रोना रोओ, ऐसा ही अश्रुजल बहाते रहो।''

''किन्तु प्रभुवर! क्या सचमुच वह साधक जन्म ग्रहण करेगा? क्या यह सौभाग्य जीवधारियों को प्राप्त होगा?'' कमलाक्ष के हृदय में आशा की किरणें पनप गईं।

''हाँ वत्स! उनके आने का अवसर आ गया है।'' माधवेन्द्र ने कहा, ''मेरी दृष्टि में यह दिव्यता झलक रही है। उस समय मनुष्यता का चरम पतन हो चुका है। ईर्ष्या-द्वेष से पृथ्वी कलुषित हो चुकी है। उसके अवतरण का यही उपयुक्त अवसर है। किन्तु वत्स! इस सौभाग्य को शीघ्र चरितार्थ करने के पूर्व शुद्ध-सत्व साधकों एवं प्रेम-मार्गी मानवों को आगे आकर मार्ग का परिष्कार करना होगा। उनके आविर्भाव के लिए तिल-तुलसी हाथ में लेकर त्याग-समर्पण का शुद्ध संकल्प लेकर मैं भारत के हर तीर्थ में रोने-धोने के लिए प्रस्थान कर रहा हूँ। तुम भी इसी उद्देश्य को लेकर उन्हीं के लिए रोओ उनके चिरप्रतिक्षित महाप्रकाश के अवतरण को सम्भव बनाओ।''

फिर कमलाक्ष और विष्णुदास को सजल नेत्रों में छोड़कर माधवेन्द्र परम घन श्रीकृष्ण के सन्धान में निकल पड़े।

कुछ दिनों बाद दीक्षा ग्रहण के लिए माधवेन्द्र की व्याकुलता बढ़ी। लेकिन सवाल था कि किस दिव्य पुरुष से दीक्षा ले? अन्ततः पुरी सम्प्रदाय के एक संन्यासी दल के अग्र पुरुष को पाकर उनका मन-कमल खिल उठा। एक दिन शुभ मुहूर्त में इसी महात्मा के आश्रम में जाकर उन्होंने संन्यास की दीक्षा प्राप्त की। गुरु के पास कुछ दिन बिताकर वे परिव्राजन के लिए निकल पड़े। काफी दिनों तक दक्षिण भारत के तीर्थ-स्थलों का भ्रमण करते रहे। लेकिन जिस परम-ब्रह्म की प्राप्ति के लिए वह घर-परिवार छोड़ आए थे, वह नहीं मिल रहा था, इसलिए व्यग्र हो उठे थे। वे मानसिक द्वन्द्व में पड़ गए। जिस रसलोक की आकांक्षा उनके भीतर थी, उसके दर्शन क्यों नहीं हो पा रहे। भागवत का कृष्ण प्रेम उनका लक्ष्य रहा और श्रीधर स्वामी का प्रेम रसाश्रित भाष्य जीवन-पथ का परम पाथेय रहा। किन्तु ज्ञानमार्गी इस संन्यास-जीवन में उनका वह लक्ष्य, वह पाथेय क्या अपने रूप में जीवित रहा?

जीवन का वह बहुपरिचित स्वर, न जाने क्यों और कैसे भूल गया हो और जीवन के अंतर्द्वन्द्वमय संकट में आ फँसे हैं।

दक्षिण भारत का परिव्रजन करते हुए माधवेन्द्र उदीपी मठ में आ गए। मध्वाचार्य के उत्तराधिकारी साधकों का यह मठ काफी प्रतिष्ठित था। द्वैतवाद की धारा यहाँ प्रबल वेग से प्रवाहित होती रही। इस मठ के धर्माचार्य लक्ष्मीपति थे। साधक समाज में उनकी ख्याति थी। माधवेन्द्र ने इसी महात्मा के आश्रय में साधना करने का निश्चय किया। कुछ समय तक वह मध्व-सम्प्रदाय में अवस्थित रहे। आचार्य लक्ष्मीपति के निर्देशन में साधना की गहराई में डूब गए। माधवेन्द्र के अध्यात्म जीवन में नैष्ठिक भक्ति साधना के स्थान में कृष्ण प्रेम का रस-मधुर साधना-पथ आ गया और उसे ही उन्होंने अभीष्ट बना लिया।

इस समय उनके जीवन का प्रधान आकर्षण-सूत्र बना जयदेव का गीत गोविन्द और विल्वमंगल का कृष्ण कार्णामृ ग्रन्थ। इसके अतिरिक्त तमिल साधक आलवाड़ों का प्रेम धर्म और उनका निगूढ़ तत्त्वदर्शन उन्हें विशेष रूप से प्रभावित करता रहा।

कुछ दिनों के भीतर ही माधवेन्द्र का अभीष्ट सिद्ध हुआ। साधक जीवन का स्रोत शीघ्र ही आकर कृष्ण प्रेम के रस-सागर में समाहित हो गया। उन्हें प्रभु की कृपा हुई और उन्होंने उदीपी मठ त्याग दिया। रामानुराग भक्ति के जिस स्तर पर वे आ पहुँचे थे वहाँ आकर मध्व मठ के साथ रहना सम्भव नहीं रह गया था। कृष्ण प्रेम रस में वे इतने डूब गए थे कि शास्त्रीय तत्त्व चर्चा उनके लिए नीरस और अर्थहीन वस्तु बन गई थी।

भारतीय प्रेम साधना के क्षेत्र में एक जीवंत उत्स के रूप में आविर्भूत माधवेन्द्रपुरी का आचार्य जीवन इसके बाद ही प्रारम्भ हुआ। प्रेम साधना के इस उत्स से देश का विभिन्न भाग आप्लावित हुआ। इसी से अवतरित हुई चैतन्यदेव की भावमयी प्रेमगंगा। महाप्रभु स्वयं और उनके अनुयायी माधवेन्द्रपुरी के प्रति अपनी कृतज्ञता स्वीकार कर गए हैं।

माधवेन्द्रपुरी ने जिस नए जीवन-दर्शन का सूत्रपात किया उस पर उनकी निजी साधना और व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप देखी जा सकती है। "भागवत के लीलावाद और आलवारों की साधन प्रणाली के साथ ही बंगाल की प्रेम साधना एवं युगल रूप की भजन-उपासना इन सब का वह अपूर्व सम्मिश्रण कर गए हैं।"

माधवेन्द्र के शिष्यवर्ग में परमानन्दपुरी, श्रीरंगपुरी, अद्वैत और पुण्डरीक विद्यानिधि, गौड़ीय शिष्यों में ईश्वरपुरी तथा केशव भारती प्रधान थे। अन्य शिष्यों में हैं—ब्रह्मानन्दपुरी, ब्रह्मानन्द भारती, मैथिल विष्णुपुरी, रघुपति उपाध्याय, कृष्णानन्द, नृसिंह तीर्थ, सुखानन्दपुरी, अनन्तपुरी आदि। ईश्वरपुरी और केशव भारती प्रेममार्गी संन्यांसी श्री चैतन्य को दीक्षा और संन्यास देकर इतिहास में विख्यात हो गए हैं। माधवेन्द्रपुरी के गृहस्थ बंगाली शिष्य श्री अद्वैत महाप्रभु के एक प्रधान पार्षद के रूप में गिने जाते हैं। दूसरे विशिष्ट शिष्य हैं श्रीवास पंडित

जिनके प्रभाव से चैतन्य पुत्र के पहले नवद्वीप में एक छोटा-मोटा भक्तमण्डल गठित हो चुका था।

पूर्व बंगाल में माधवेन्द्र के प्रतिनिधि थे पुण्डरीक विद्यानिधि। इन्हीं के शिष्य पं० गदाधर श्री चैतन्य के अन्तरंग भक्त थे। गदाधर से दीक्षा लेने के बाद ही श्री वल्लभाचार्य उत्तर भारत में श्री राधाकृष्ण की उपासना का विस्तार करने में समर्थ हुए।

माधवेन्द्र के एक अन्य कृपापात्र राघवेन्द्र राम रामानन्द के गुरु संकर्षणपुरी ने भी महाप्रेमिक माधवेन्द्र को गुरु के रूप में वरण किया था। माधवेन्द्रपुरी के गृहस्थ शिष्य भी अनेक हुए। माधवेन्द्र एक बार अपने शिष्य श्रीरंगमपुरी के साथ नवद्वीप आए थे। इस दौरान उन्होंने श्री चैतन्य के पिता जगन्नाथ मिश्र के घर आतिथ्य ग्रहण किया था।

माधवेन्द्रपुरी ने ब्रजमण्डल में श्रीगोपाल की सेवा में दो साल बिताए। श्रीमूर्ति के प्रकट होने के बाद दर्शनार्थियों की अपार भीड़ जुटने लगी। भोग राग चलने लगा। कहाँ से अपार भोगराग सामग्री जुटती, कोई नहीं जानता। माधवेन्द्र भावावेग और प्रेमानन्द में दिन-रात मस्त रहा करते। उन्हें यह जानने में कोई रुचि नहीं रहती कि कहाँ से श्री ठाकुर के लिए इतनी प्रचुर मात्रा में भोग सामग्री आती।

श्री गोपाल एक दिन स्वप्न में आए और क्लांत स्वर में बोले, ''पुरी गोसाईं, मेरी पूजा तो पूरे घटाटोप से करते हो, किन्तु इधर ग्रीष्म के उत्ताप से सारा शरीर जल रहा है, प्राण निकले जा रहे हैं, इसका कोई तो उपाय करो।'' श्री ठाकुर के श्रीमुख से ऐसी आर्तवाणी सुनकर माधवेन्द्र विस्मय से उनकी ओर एकटक देखने लगे। प्रभु ने पुनः कहा, ''सुनो, पुरी के मलयज चंदन लेप के बिना मेरे शरीर की यह ज्वाला शांत नहीं होगी। यह चंदन तुम्हें नीलाचल में मिलेगा। इस भयंकर गर्मी में भक्तगण दारुब्रह्म जगन्नाथ को यही चंदन चढ़ाते हैं। वही मुझे चाहिए। किन्तु और किसी को उसे लाने के लिए मत भेजना, तुम स्वयं जाकर संग्रह करो। मेरे सारे शरीर में उसका अनुलेपन कर ताप दूर करो।'' प्रभु के आदेश का पालन करने के लिए माधवेन्द्रपुरी ब्रजमण्डल से विदा हुए। वे गौड़ देश से होकर नीलाचल को चल पड़े।

उस समय अद्वैत शांतिपुर में वास कर रहे थे। उस अंचल में वे काफी लोकप्रिय हो गए थे। माधवेन्द्र सर्वप्रथम अपने इसी शिष्य से जाकर मिले। एक-दूसरे से मिलकर अद्भुत आनन्द की प्राप्ति हुई। गुरु में इस महापरिवर्तन से अद्वैत काफी प्रसन्न थे। एक शुभ घड़ी में पुरी महाराज से इन अद्वैत ने दीक्षा ग्रहण की। इस दीक्षा के उपरान्त भक्तिमार्ग में रोपा गया यह बीजांकुर बाद में महान अक्षयवट में परिणत हो गया।

शांतिपुर और नवद्वीप में कुछ दिन व्यतीत कर माधवेन्द्रपुरी उड़ीसा के लिए रवाना हुए। कई दिनों तक पदयात्रा करते हुए रेगुना गाँव पहुँचे। श्री गोपीनाथ की मनोहर विग्रह मूर्ति रेमुना गाँव में विद्यमान थी। इस जाग्रत मूर्ति को देखकर माधवेन्द्रपुरी प्रेमानन्द से विह्वल हो गए। उन्होंने पुजारी को पुकार कर कहा, ''भाई, गोपीनाथजी की सेवा-पूजा का यह आयोजन देखकर मैं बड़ा मुग्ध हूँ। आँखें उधर से हटती नहीं। दया करके मुझको एक बात बतलाओ, प्रभु के भोगराग में कौन-कौन से सुस्वादु पदार्थ निवेदित किए गए हैं।''

पुजारी ने मुस्कराते हुए बताया, ''महाराजजी, प्रभु के भोग पदार्थों में सबसे बढ़कर है—अमृतकेली खीर। यह तो सर्वथा अमृत के समान है। रोज ठाकुरजी के सामने खीर से भरी नौ हाड़ियाँ रखी जाती हैं। ऐसा भोग पदार्थ दूसरा नहीं मिल सकता। यह हमारे गोपीनाथ की खास चीज है।'' भोगराग समाप्त होने पर माधवेन्द्रपुरी मन्दिर से बाहर निकल कर गाँव के हाट में पहुँच गए।

रात हो गई थी। हाट के लोग अपने घरों को लौट गए थे। माधवेन्द्र एक सुनसान झोपड़ी में बैठ गए। वह सोचने लगे, वे अयाचक संन्यासी थे। उनके मन में अमृतकेली खीर के लिए लालच क्यों आया? इस पाप को दूर करने के लिए सारी रात जागकर प्रभु का नामगान करेंगे। काफी रात तक नामधुन चलती रही।

इधर गोपीनाथ मन्दिर के पुजारी ठाकुरजी को शयन कराने के बाद बगल की कोठरी में सोने चले गए। थोड़ी देर में ही नींद आ गई। हठात् उनके कानों में आवाज सुनाई पड़ी—''उठो, उठो, शीघ्र किवाड़ खोलो।'' पुजारी हड़बड़ा कर उठ बैठे। उन्हें फिर सुनाई पड़ा—''अरे सुनो और देरी मत करो। देखो, मेरे पीताम्बर की ओट में छिपा कर रखी है एक हाँड़ी अमृतकेली खीर। यह छिपा कर रख छोड़ी है अपने प्राणप्रिय भक्त माधवेन्द्र के लिए। इस खीर प्रसाद को खाने की इच्छा उसके मन में जगी थी लेकिन संकोचवश उसने माँगा नहीं। उसकी यह इच्छा पूरी हुए बिना मुझे चैन नहीं मिलेगी। पुरी गोसाईं इस समय हाट के एक कोने में बैठा मेरा नामगान कर रहा है। उसे खोज-ढूँढ़ कर मेरा यह प्रसाद शीघ्र उसे दे आओ।''

भक्तवत्सल भगवान की यह कैसी अपूर्व लीला! यह कैसा अद्‌भुत प्रेम-रंग! पुजारी रोमांच से भर उठे। आँखें पुलकाश्रु भर आईं। वे ठाकुर के शयनकक्ष में दौड़े। देखा, सचमुच ही पीताम्बर परिधान की ओट में एक हड़िया अमृतकेली खीर छिपाकर रखी हुई है। झटपट उसे उठा कर वह हाट की ओर दौड़ पड़े। हाट में पहुँच कर जोर-जोर से पुरी महाराज को पुकारने लगे। अंततः वे मिले। प्रसाद की हाँड़ी उनके आगे रखकर पुजारी ने कहा, ''महाराज, आप अद्‌भुत भाग्यवान हैं। यह देखिए, स्वयं गोपीनाथजी ने आपके लिए यह अमृतकेली खीर भेजी है। आपने खीर प्रसाद माँगा नहीं, यह ठीक है, किन्तु दयालु ठाकुरजी ने

आपके लिए स्वयं इसे छिपाकर रख लिया था। प्रिय भक्त के लिए गोपीनाथ स्वयं आज खीरचोर बने।''

प्राणप्रभु की कैसी यह लीला! गोपीनाथ के हृदय में कृष्ण-प्रेम का सागर उत्ताल तरंगों में उद्वेलित हो उठा। स्वयं आत्मविस्मृत होकर भूमि पर लोट गए। अंग-अंग सात्विक भाव के प्रेमविकार से पुलकित हो उठा। पुजारी आनन्द में भरकर सुध-बुध खो बैठा। अस्फुट स्वरों में बोलता रहा, ''पुरी महाराज, आप धन्य हैं! आपकी प्रेमभक्ति सार्थक है। कृष्णभक्ति की साधना अनन्य है। आपके लिए प्रभु गोपीनाथ क्यों खीर चुराने के लिए विवश हुए, अब यह समझ में आ रहा है।''

जब माधवेन्द्र प्रकृतिस्थ हुए तो पुजारी ने साष्टांग दण्डवत किया और प्रसाद की हांड़ी उनके समक्ष रख दी। माधवेन्द्र का सारा शरीर थर-थर काँप रहा था और आँखों से अश्रुधार बह रही थी। महावैष्णव प्रेमावेश में कहे जा रहे थे— ''हे प्राणनाथ, हे दीनदयाल! अपार है तुम्हारी कृपा, प्रभु! इस अधम के लिए तुमने आप ही आप प्रसाद चुराये! इतना ही क्यों? वाहक द्वारा इस घोर निशीथ में भिजवा भी दिए।''

माधवेन्द्रजी ने प्रसाद ग्रहण किया और हँड़िया के टुकड़े-टुकड़े करके अपनी चादर में बाँध लिया। स्नान और भोग-राग के बाद इन टुकड़ों का एक कण नित्य अपने मुँह में डालते और दिव्य प्रेम में उन्मत्त हो जाते। हँसते-रोते, नाचते-गाते और श्रीकृष्ण के प्रेमरस से सराबोर हो जाते।

रेमुना से चलकर माधवेन्द्र नीलाचल आ गए। दीर्घ परिव्राजन के बाद भगवान जगन्नाथजी के दर्शन का सौभाग्य मिला। माधवेन्द्रपुरी असीम प्रेम भाव में विभोर होकर सुध-बुध खो बैठे। भक्ति और प्रेम की इस पराकाष्ठा को देखने का जिसे एक बार भी सौभाग्य मिला वह विस्मयग्रस्त हो उठा। भक्तिनिष्ठ महापुरुष माधवेन्द्र के आने की खबर चारों ओर फैल गई। भक्तों की भीड़ माधवेन्द्रजी के दर्शन को उमड़ पड़ी। जगन्नाथपुरी के पंडे, राजा के अनुचर तथा अन्य दर्शनार्थी आते रहते। पुरी महाराज श्री गोपालजी के लीला विलास की कथा कहते, ''भाई लोग हमारे गोपाल का आग्रह है कि वह जगन्नाथजी की भाँति चंदन और कर्पूर से अपने अंग को अनुलिप्त करेंगे। यह सब होना चाहिए इसी पवित्र क्षेत्र के जंगल में की उपज से। आप सब कृपा करके हमारे लिए इसका उपाय कर दो। मेरी मुख-लज्जा की रक्षा करो।''

देखते ही देखते चंदन और कपूर का ढेर लग गया। इसके बाद इन वस्तुओं को ढोने वाले कहारों के साथ पुरी महाराज वृन्दावन के लिए रवाना हो गए। अभी वे रेमुना तक ही पहुँच पाए थे। वृन्दावन काफी दूर था। एक रात प्रसाद ग्रहण के उपरान्त पुरी महाराज जगमोहन के कमरे के एक कोने में सो गए। रात्रि में उन्होंने

एक स्वप्न देखा। ज्योतिर्मय मूर्ति से निकलकर त्रिभंग बंकिम रूप में गोपाल उनके सम्मुख खड़े हैं। वे मधुर-मधुर मुस्कराते हुए कह रहे हैं, ''वत्स माधवेन्द्र। तुम्हें अधिक दौड़-धूप करने के लिए बाहर नहीं जाना है। तुम्हारे द्वारा लाये गए चंदन और कर्पूर वृन्दावन में मेरे पास पहुँच गए हैं।'' गोपाल आगे कहते हैं, ''यह क्या! सब तो मुझे प्राप्त हो गया है। क्या इसका विश्वास नहीं हो रहा है? तब सुनो। गोपीनाथ का और हमारा एक ही विग्रह शरीर है। जो मैं वृन्दावन में हूँ वही रेमुना में भी हूँ। तुम गोपीनाथ के अंग में नित्य चंदन-कर्पूर का अनुलेपन करो, हमारी देह शीतल होगी। मन में संशय, दुविधा मत करो।''

भोर होते ही पुरी महाराज ने मन्दिर के सेवकों और भक्तों को बुलाकर उन्हें स्वप्न में सुनी गई बातों से अवगत कराया। स्वयं प्रभु की आज्ञा हुई है, और वह भी प्रेम-भक्ति-सिद्ध पुरी गोसाईं के मुख से, सभी ने उल्लास के साथ यह कथा मान ली। अतएव, निष्ठावान सेवक द्वारा प्रतिदिन श्रीगोपाल के विग्रह को कर्पूर-चंदन का अनुलेपन चलने लगा। गर्मीभर माधवेन्द्रपुरी रेमुना में ही प्रभु की सेवा करते रहे। उसके बाद फिर नीलाचल लौट गए।

भक्तशिरोमणि माधवेन्द्रजी की अमृत कथा आगे चलकर श्री चैतन्य के श्रीमुख से बहुधा सुनने को मिला करती। पुरी महाराज का अपूर्व प्रेमोन्माद और अष्ट सात्विक विकार की बात सुनकर भक्तों के विस्मय की सीमा नहीं रहती।

संन्यास ग्रहण करने के बाद महाप्रभु नीलाचल जाते समय रेमुना पधारे थे। यहाँ प्रवास के दौरान पुरी महाराज की स्मृति और गोपीनाथ की लीलारंग-कथा उन्हें बार-बार स्मरण हो आती। भक्तकवि कृष्णदत्त कविराज ने बड़ी ही श्रद्धा के साथ इसका उल्लेख किया है—

प्रभु कहे नित्यानन्द करह विचार।
पुरी सम भाग्यवान् जगते नहिं आर॥
दुग्धदानच्छले कृष्ण यारे कृपा कैला।
यार प्रेमेवश इआ प्रगट हइला॥
सेवा अंगीकार करि जगत तारिला।
यार लागि गोपनीय क्षीर चूरि कैला॥
कपूर चन्दन चार अंगे चरवाइला।

(चैतन्य चरितामृत, मध्य-४)

वैधी भक्ति का अनुसंधान करते हुए माधवेन्द्र ने जीवन-साधना शुरू की। उत्तरकालिक जीवन में वही उन्हें रागानुगा प्रेम रसाश्रित भक्ति की चरम साधना तक पहुँचा गई। भागवत द्वारा प्रचारित प्रेमरस की साधना में वे लीन हुए। अपूर्व महिमा-मण्डित उनका जीवन सार्थक हो उठा। श्री चैतन्य देव को माधवेन्द्र के

परम शिष्य राय रामानन्द के मुख से भक्ति धर्म का पूर्णांग परिचय प्राप्त हुआ। एक बार महाप्रभु ने पुरी धाम पर सार्वभौम से कहा था—"दक्षिणात्यदेश जाकर नाना पंथों, नाना धर्म-सम्प्रदायों का परिचय प्राप्त हुआ उनके सम्पर्क-संसर्ग में आया भी, पर इनमें राय रामानन्द का ही मतवाद मुझे श्रेष्ठ प्रतीत हुआ। राय रामानन्द के मुख से जिस साध्य-साधना की व्याख्या सुनकर महाप्रभु मुग्ध हुए थे वह माधवेन्द्रपुरी द्वारा प्रवर्तित प्रेम साधना का ही परम तत्त्व था।"

परन्तु माधवेन्द्रपुरी के मन में एक प्रश्न बार-बार कौंधता रहा। क्या प्रभु का प्रत्यक्ष आविर्भाव वह कर पाएँगे? इसके लिए कुछ करना चाहिए। यह सोच कर माधवेन्द्रपुरी झारखण्ड के सघन वन में कठोर तपस्या करने लगे। श्रीपाद के ही निर्देश से इसी दिशा में उनके सर्वाधिक प्रिय शिष्य अद्वैत आचार्य उसी समय शांतिपुर में रहकर आकुल प्राणों से प्रार्थना किया करते—"हे कलुषहारी प्रभु! एक बार आइए, भू-भार हरण के लिए आप अवतार ग्रहण कीजिए।"

गौड़ीय सम्प्रदाय के वैष्णव कवियों के मतानुसार आचार्य माधवेन्द्रपुरी का संकल्प सिद्ध हुआ। नवद्वीप में आकर वह नवजात गौर-सुन्दर के दर्शन कर गए।

माधवेन्द्रपुरी अब पूर्णकाम हो चुके थे। उनके जीवन की सारी आकांक्षाएँ पूरी हो चुकी थीं। महाभागवत के इस नश्वर जीवन के महाप्रयाण की तैयारी शुरू हो चुकी थी। एक दिन अपने प्रिय शिष्य मैथिल ब्राह्मण परमानन्द को बुलाकर कहा, "मेरे विदा होने के दिन अब आ गए हैं। किन्तु मेरे लिए तुम शोक मत करना। आनन्द मनाना। तुम बड़े भाग्यवान हो। परम प्रभु के आविर्भाव की आलोक-छटा देख पाओगे और धन्य होओगे। मैं विधाता के विधान से पहले ही चल बसूँगा।" माधवेन्द्रपुरी के शेष दिन अपूर्व भावावेश में बीत रहे थे। प्रतिदिन शिष्यगण आकर उनकी कृष्ण-विरह-विदग्ध मूर्ति के दर्शन करके अभिभूत हो रहे थे।

काफी समय बाद वे अर्धचेतना में लौटे थे। व्याकुल होकर रोने लगे, "कहाँ हो कृष्ण? कहाँ हो कृष्ण? कहाँ हो हमारे प्राण प्रभु? दयामय, कृपा कर इस अभाजन के प्राण बचाओ।" महाभक्त माधवेन्द्र के इस विलाप का रहस्य कौन समझ सकता था? कभी वह कृष्ण रस के महासागर में डूब जाते, कभी तैरने लगते। कभी जब बाहर तैरने की चेतना आती तो डूबने के लिए फिर रो उठते।

रामचन्द्रपुरी माधवेन्द्र के अनन्य शिष्य थे। ज्ञानमार्गीय वैधी भक्ति-साधना की ओर उनका अधिक झुकाव था। अन्तिम शैया पर गुरुदेव की इस विरह-लीला को देख कर एक दिन पूछ बैठे—"प्रभु, क्यों इस तरह रो-रोकर आप व्याकुल हो रहे हैं? अस्वस्थ शरीर को और अस्वस्थ क्यों बना रहे हैं? आप जैसे ब्रह्मज्ञानी को यह रुदन शोभा नहीं देता। पूर्ण ब्रह्मानन्द का स्मरण करें, हृदय का ताप-दुःख सब दूर हो जाएगा। आप स्वस्थ हो उठेंगे।"

श्रीपाद क्रोधावेश में गरज उठे, ''अरे, तुम महापापी हो, कृष्ण प्रेम की रीति तुम क्या जानो। कृष्णप्रेम और कृष्णलीला की सीमा कहाँ है रे? हृदय मंच पर प्रभु को स्थापित कर लिया है। बुभुक्ष भोगने का इच्छुक हो उठा हूँ—रसराज की नवीन शिलाएँ देखने के लिए। अपनी रहन-ज्वाला में खुद-ब-खुद दग्ध हो रहा हूँ। हमारा हृदय जल-जल कर खाक बनता जा रहा है और तुम हतभागे मुझे और मारने पर उतारू हो गए हो? दूर हटो, तुम्हारे जैसे पाखण्डी का मुख देखने से मेरा परलोक नष्ट हो रहा है।''

रामचन्द्रपुरी गुरु के पास से चले गए और गुरु की सेवा का दायित्व ईश्वरपुरी ने सम्हाला। ईश्वरपुरी की सेवा से माधवेन्द्र परम सन्तुष्ट थे। शिष्य से श्रीकृष्ण लीला और श्रीकृष्णनाम का जाप सुनते और शिष्य पर आशीर्वाद और अभयवाणी की वर्षा करते।

महाप्रयाण से एक दिन पूर्व की बात है। श्रीपाद ने स्नेहपूर्वक सेवकों एवं भक्तों को पास बुलाया। बोले, ''वत्स, अब मेरा समय पूरा हो चुका है। जाने के पहले अंतःकरण से आशीर्वाद देता हूँ, प्रकृत कृष्ण-प्रेम तुम्हारे हृदय में उपजे और श्रीकृष्ण को प्राप्त होओ।'' उत्तर काल में श्रीपाद के इसी आशीर्वाद के सागर में डूब कर मेमदेव श्री चैतन्य महाप्रभु धन्य हुए।

श्रीपाद की रस-लीला का परदा गिरने वाला था। शिष्य और भक्तगण उन्हें घेरे हुए खड़े थे। सभी की आँखें सजल थीं। महापुरुष माधवेन्द्रपुरी के मधुर कण्ठ से उच्चरित हो रहा था उनका स्वरचित श्लोक—

अपि दीन दयार्द्र नाथ हे,
मथुरा नाथ कदाव लोक्यमे।
हृदयं त्वदनवलोक-कातरं,
दयित भ्राम्यति किं करोम्यहम्॥

अर्थात हे दीनदयालु, हे नाथ, हे मथुरानाथ! कब तुम मुझे अपने दर्शन दोगे? तुम हमारे चिर-प्रिय हो—प्राणों से भी बढ़कर प्रियतर। तुम्हारे दर्शन न मिलने के कारण हमारा हृदय कातर हो उठा है। भ्रममयी दशा में गिरा हुआ हूँ। इस समय मैं क्या करूँ? तुम्हारे सिवा मेरा कोई सहारा नहीं।

कृष्ण भक्तों में यह श्लोक इतना लोकप्रिय हुआ कि स्वयं महाप्रभु चैतन्य भी इस चिर विरहमूलक श्लोक को दुहराते-दुहराते प्रेमोन्मत्त हो उठते थे। अश्रु-कम्प-स्तम्भ वैवर्ण्य जैसे आठो सात्विक विकार उनके शरीर में देखकर भक्तगण विस्मय से भर उठते।

माधवेन्द्र के इस श्लोक की प्रशंसा करते हुए दार्शनिक कवि कृष्ण लिखते हैं—

रत्नगण मध्य जद्दे हय कौस्तुभ भवि।
रस-वाक्य मध्ये तैछे एइ श्लोक गणि॥
एइ श्लोक कहियाछेन राधा ठकुराणी।
तार कृपाय कुरिपा छे माधवेन्द्र वाणी॥
किंवा गौरचन्द्र इहा करे आस्वादन।
इहा आस्वादिते अधिकारी नाहिं ठोठजन॥
(चै०च० मध्य-४)

"माधुर्यमूर्ति कृष्ण के माधुर्य रस का अंत नहीं, रूपैश्वर्य की भी सीमा नहीं। उसी प्रकार उनके प्रेमिक भक्त के भी रस भोग की समाप्ति नहीं। यह रस जितना आस्वादित होगा, उतना ही उसका उत्स फूटता आएगा।

अनादि अनन्त माधुर्य विग्रह का आस्वादन भी अनादि अनन्त ही है। इसी से महाप्रेमिक माधवेन्द्र की यह कृष्णार्ति है! इस प्रकार का विरह-उत्ताप और इस तरह का दारुण दहकता हुताश!"

"अपि दीन दयार्द्र" बोलते-बोलते श्रीपाद ने अपनी आँखें बन्द कर लीं। रागानुभा भक्ति साधना का अनन्यतम ज्योतिर्मय नक्षत्र हमेशा-हमेशा के लिए अस्त हो गया।

कविराज गोस्वामी द्वारा रचित ये पंक्तियाँ आज भी प्रेमभक्तिमय साधकों की चेतना को झकझोरती रहती हैं—

पृथिवी ते रोपण करि
गेला प्रेमाङ्कुर।
सेई प्रेमाङ्कुर वृक्ष।
चैतन्य ठाकुर॥

●

नंगा बाबा

पुरी तीर्थ में असंख्य स्थानों पर मठ-मन्दिर, आश्रम तथा साधनापीठ स्थित हैं। इनमें गिर्नारी बन्ता स्थित नंगा बाबा का आश्रम बिल्कुल आडम्बररहित है किन्तु है साधारण। गिर्नारी बन्ता लोकनाथ शिव के निकट बालू के एक टीले पर स्थित है। इस टीले का प्राचीन माहात्म्य है। पौराणिक युग का साक्षी है यह टीला। एक कथा के अनुसार राजा इन्द्रद्युम्न ने जब देवताओं के आदेश से नीलाचल नाथ का बालुका स्तूप से उद्धार किया था, उस समय खुदाई की गई बालुका राशि का कुछ अंश इस गिर्नारी बन्ता पर डाला गया था। इसी कारण यह टीला उनके लिए एक असामान्य एवं परम पवित्र वस्तु है।

इसी पवित्र बालुका राशि पर अवस्थित है एक साधारण-सा आश्रम जिसके एक कक्ष में विराजमान थे आत्मज्ञानी महासाधक नंगा बाबा। जटाजूटधारी महाकाय संन्यासी एकदम दिगम्बर थे। अजानुलम्बित दोनों हाथों को आँखों पर स्थापित करके, व्याघ्रचर्म के ऊपर सुखासन में ध्यानस्थ। ये भीमकाय संन्यासी अद्वैत वेदान्त सिद्धि के एक अमूर्त विग्रह और साक्षात शिव थे। इस आश्रम में बाबा के अलावा सिर्फ उनके दो-तीन सेवक ही रहते थे। यदि कोई दर्शनार्थी भूले-भटके आ जाता और बाबा के पास ज्यादा समय तक बैठा रह जाता तो बाबा कहते, ''हाँ, हाँ, दर्शन हो गया, अब चले जाओ। शहर में जाकर मन्दिर-वंदिर देखो।'' इसके बाद भी यदि कोई भक्त बैठा रह जाता तो बाबा सेवक-संन्यासी ज्ञानानन्द को बुलाकर कहते, ''ज्ञाना, ब्रह्मज्ञान की किताब ले आओ।'' और ज्ञानानन्द वेदान्त अथवा पंचदशी का पाठ आरम्भ कर देते। शुष्क तत्त्व विचार शुरू होते ही अवांछित दर्शनार्थीगण बाबा के पास से खिसक जाते। लेकिन बाबा उस दर्शनार्थी पर कृपालु हो उठते जिसमें उन्हें त्याग और वैराग्य की भावना दिखाई देती।

पुरी धाम का श्मशान, समुद्रतट और गिर्नारी बन्ता के आश्रम में नंगा बाबा कुल मिलाकर पचास वर्षों तक रहे। इस अवधि में जिन्हें बाबा के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त था वे सभी एक स्वर में यही कहते हैं, ''आधी शताब्दी की लम्बी अवधि में इस महापुरुष के चेहरे में उन्हें कोई विशेष परिवर्तन नहीं नजर आया।'' वेदान्ती, योगी, तांत्रिक, वैष्णव—किसी भी पंथ के अनुयायी हों, सभी की श्रद्धा समान रूप से बाबा के प्रति रही। परन्तु बाबा अत्यधिक आत्मगोपनशील थे। वे

अपने बारे में कभी कुछ भी नहीं बताते थे। इसीलिए साधकों और गृहस्थों के लिए नंगा बाबा हमेशा एक रहस्य बने रहे। दैवयोग से एक ऐसा सुयोग आया जब बाबा के बारे में कुछ जानकारी उपलब्ध हो पाई।

१९४७ की सर्दियों में पुरी में एक ब्रह्मविद महायोगी का आगमन हुआ। प्रसंगवश उन्होंने एक दिन नंगा बाबा के सम्बन्ध में कुछ तथ्यों से परिचय कराया। उन्होंने कहा, ''नंगा बाबा का शरीर पंजाबी है, और यही है इतिहास-ख्यात महावेदान्ती तोतापुरी महाराज जिन्होंने दक्षिणेश्वर में श्री रामकृष्ण को दीक्षा दी थी।''

''फिर इन महात्मा की अवस्था कितनी है?'' जिज्ञासुओं ने यह सवाल करते हुए कहा, ''श्री रामकृष्ण के साथ तो तोतापुरी का साक्षात १८३२ में हुआ था। उस समय पुरी महाराज की अवस्था साठ के लगभग रही होगी। रामकृष्ण की जीवनी में लिखा गया है कि तोतापुरीजी ने करीब ४० साल तक अद्वैत वेदान्त की कठोर साधना की थी। यदि नंगा बाबा ही तोतापुरी हैं तो इस समय उनकी अवस्था निश्चित रूप से डेढ़ सौ साल तो होगी ही।''

''इससे भी अधिक। लगभग ढाई सौ वर्ष।''

''वर्तमान समय में इतनी आयु की बात तो हम सोच भी नहीं सकते।''

''इसमें अचरज की क्या बात है? इनके जैसे विराट महापुरुष योग और वेदान्त के पारंगत महात्मा हिमालय के नीचे अर्थात मैदानों में कम ही रहते हैं। ये लोग शरीर के क्षय, क्षति तथा परिणति को स्तंभित करके चार-पाँच सौ वर्ष तक जीवित रह सकते हैं, यह कोई असम्भव बात नहीं है।''

''प्रभु, आपने जो कहा, इसमें सन्देह नहीं, परन्तु यह अजीब लगता है कि तोतापुरी महाराज जीवित हैं और रामकृष्ण मण्डली के साधकगण भी इन श्रद्धेय परम गुरु का पता नहीं जानते।'' एक भक्त ने प्रश्न किया।

''पुरी महाराज ने स्वयं अपनी इच्छा से अपने अतीत के सारे अध्यायों को जन स्मृति से विलुप्त कर रखा है। इसी कारण किसी के लिए यह साध्य नहीं है कि उनके सम्बन्ध में अनुसंधान के लिए अग्रसर हो सके अथवा उन्हें खोज सके।''

इसके बाद योगिराज ने प्रसंग बदल दिया और इससे आगे कोई जानकारी भक्तगणों को नहीं मिल सकी।

काशी के निकट बनपुरवा में रह रहे ब्रह्मविद साधक वीतराग बाबा ने १९६० में नंगा बाबा की आयु के बारे में बताया था कि वे जब सत्रह-अठारह वर्ष के थे, उस समय नंगा बाबा की उम्र काफी अधिक थी। सुना था कि उनका शरीर पंजाबी है। काशी में रहते हुए वे शहर से दूर निवास करते और कभी-

कभी नाव द्वारा उनके गुरु के आश्रम में आते रहते। वे हर समय नग्न रहते। वे विराटकाय शक्तिमान महात्मा थे। काशी के प्रत्यक्षदर्शियों ने उस समय यानी १९६० में अनुमान लगाया था कि नंगा बाबा १९० वर्ष के रहे होंगे। इस प्रकार वे ढाई सौ वर्ष की उम्र तक तो जीवित ही देखे गए।

नंगा बाबा का परिचय भी हठात् मिल गया। आश्रम कक्ष का वेदान्त पाठ तथा व्याख्या समाप्त हो चुकी थी। बाबा ने कहा, ''हमारा एक ठो बात तुम लोग हर बखत याद रखो। वेदान्त का विचार है, सबसे बढ़िया साधना। कलियुग के लिए यह साधना बहुत उपयोगी है। वेदान्त है, एक अच्छावाला सेतु। इसके ऊपर से एक चिंउटी भी नदी पार कर सकती है।''

''बाबा, आधुनिक काल में वेदान्त के लिए सबसे अधिक कार्य विवेकानन्द ने किया है न ?'' एक भक्त ने उत्सुकतावश पूछा।

''हाँ, हाँ, वह वेदान्त के प्रचार में एक बड़े कर्मी थे।''

''ऐसा क्यों बाबा, यह बात कहना क्या उचित है ?'' विस्मित स्वर में एक भक्त ने कहा, ''स्वामीजी ने शिकागो के धर्म सम्मेलन में जाकर विश्व के श्रेष्ठ ज्ञानी-गुणी लोगों के बीच वेदान्त की ध्वजा फहराई है तथा पश्चिमी देशों में वेदान्त के बीज का रोपण कर गए हैं। यह क्या एक विराट कार्य नहीं है ?''

''लेकिन इस कर्म के बीज से पेड़ कैसे हुआ बताओ ?'' मृदु हँसी के साथ बाबा ने कहा, ''आत्मज्ञान का लेक्चर देने की क्या जरूरत है ? और वह लेक्चर सुनने से भक्तों को आत्मज्ञान कैसे हो जाएगा, यह भी मुझे समझाय दो।''

''बाबा, आप जो भी कहें, बाबा एक विराट कीर्ति कर गए हैं। इसके अलावा उनके गुरु श्री रामकृष्ण ? वे भी तो एक विश्वविख्यात महासाधक हैं, जो कि अध्यात्म साधना के उच्चतम शिखर पर अधीष्ठित थे।''

''हाँ, हाँ वे देवी काली के श्रेष्ठ भक्त थे।''

कलकत्ते के एक विशिष्ट भक्त पास ही बैठे थे। यह बात वे जानते थे कि नंगा बाबा ही महावेदान्ती तोतापुरी हैं और उनके ही समीप श्री रामकृष्ण परमहंस ने दीक्षा ली थी। इस प्रसंग का लाभ उठा कर उन्होंने सीधा प्रश्न करना शुरू किया—

''अच्छा बाबा, आप कलकत्ता गए हैं ? दक्षिणेश्वर को क्या पहचानते हैं ? क्या वहाँ आप ठहरे है ?''

''सागरतीर्थ के रास्ते में कई दफा तो मैं कलकत्ता गया रहा। दक्षिणेश्वर भी एक दफे ठहरा था।'' बाबा ने उत्तर दिया।

''बाबा, क्या आपने श्री रामकृष्ण को संन्यास की दीक्षा दी थी ? कृपा कर सारी बातें खोलकर बताइए।''

''वैसे तो और गृहस्थों को भी मैंने दीक्षा दी है। लेकिन संन्यास किसको दिया, बताओ।''

भक्त जब फिर प्रश्न करने को उद्यत हुआ तो नंगा बाबा से तिरस्कार से कहा, ''यह खबर मिलने से तुम्हारा क्या फायदा, बताओ। ब्रह्म-ज्ञान तुमको मिल जाएगा?''

बाबा का यह कठोर-भाव देखकर भक्तगण चुप हो गए।

एक भक्त साधक बाबा के दर्शन के लिए आए। बाबा से उनका स्नेहपूर्ण सम्पर्क हो गया। उन्होंने एक दिन बाबा से पूछा, ''बाबा, आपके सम्बन्ध में कई तरह की चर्चाएँ होती रहती हैं। सच बताइए कि आप ही ठाकुर श्री रामकृष्ण के वेदान्त साधना के गुरु तोतापुरी महाराज हैं?''

बाबा सहज बने रहे। उन्होंने थोड़ी देर बाद कहा, ''हाँ रे, इतनी छोटी-सी बात सुनने के लिए तुम कलकत्ता में इतना कष्ट करके आया है। इस खबर को मिल जाने से तुम्हारा कोई फायदा होगा?''

आश्रम के विशिष्ट उड़िया भक्त मजू बाबू जो बाद में शंकरानन्द के नाम से जाने गए, बड़े ही कर्मनिष्ठ व्यक्ति थे।। एक बार कुछ भक्तों के साथ मिलकर उन्होंने निश्चय किया कि बाबा की जीवनी का संकलन किया जाय। साहस करके उन लोगों ने यह प्रस्ताव बाबा के समक्ष रखा। बाबा ने गुरु गम्भीर वाणी में कहा, ''हाँ, हाँ, हमको तुम लोग जीव समझो तो जीवनी लिखो, कोई हर्ज नहीं।''

उनका संकेत इस बात की ओर था कि जो आत्मज्ञान के आलोक स्तम्भ के रूप में सर्वदा दीप्तिमान है, जो शिवत्व में चिर प्रतिष्ठित है, उनको जीव के रूप में ज्ञात करना तथा उनके जीवन के तथ्य संकलन करना कोई युक्तिसंगत बात नहीं है।

बाबा की बातें सुनकर भक्तगणों की चेतना जागृत हुई। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि ब्रह्मविद महात्माओं की जीवनी संकलन असम्भव है। उनके निकटस्थ भक्तगणों के माध्यम से उनके अलौकिक रूप का अंकन ही हो सकता है।

एक बार एक भक्त ने नंगा बाबा से उनकी उम्र के बारे में जिज्ञासा प्रकट की। बाबा ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया, ''आत्मज्ञानी साधक का जीवन-मरण क्या कुछ है? हमारा तो जन्म ही नहीं हुआ। उमर कैसे बता सकता हूँ?''

गिर्नारी बन्ता के आश्रम में प्रवास के दौरान उनके सबसे निकटस्थ सेवक रहे ज्ञानानन्द कहा करते—''बीच-बीच में विभिन्न प्रकार के साधु-सन्तों के दल आश्रम में अतिथि रूप में आते रहते। इनमें संन्यासी भी होते, कबीरपंथी भी और उदासी भी। उत्तर भारतीय भी होते, और आंध्र, तमिलनाडु तथा केरल के भी। विचित्र बात यह थी कि बाबा सभी से उनकी मातृभाषा में ही बात करते। इसी से

ज्ञात होता है कि बाबा ने पूरे भारत का परिव्राजन किया है और बहुत-सी भाषाओं पर उनका पूरा अधिकार हो गया है। अतिथियों के आदर-सत्कार में बाबा कुछ भी उठा नहीं रखते। कुछ तो वेदान्तिक संन्यासी थे, परन्तु उच्च कोटि के अवैदान्तिक साधु-संतों के साथ उत्साह के साथ मिलते।''

ज्ञानानन्द ने नंगा बाबा के पहले के शिष्यों को आश्रम में आते नहीं देखा था। बाबा अपने शिष्य को एक बार साधना-पथ पर प्रतिष्ठित करने के बाद उससे निर्लिप्त हो जाते। बाबा का एक बार स्पर्श तथा कृपा ही इन नवीन साधकों के लिए पर्याप्त होता था। माया-मोह से मुक्त इन आत्मज्ञानी महासंन्यासी अपने शिष्यों के सम्बन्ध में सर्वदा निरासक्त रहते थे।

पुरी तीर्थवास के आरम्भिक दिनों में नंगा बाबा सागर तट पर स्थित श्मशान के पास रहते थे। नंग-धड़ंग महाकाय महापुरुष प्राय: अपनी मौज में ध्यानस्थ तथा समाहित रहते। दो-चार स्थानीय भक्त उनकी सेवा में लगे रहते। सारा दिन ध्यानस्थ रहने के बाद शाम को एक सेर दूध और दो डाभ आहार के रूप में ग्रहण करते। मधुसूदन ग्वाले की कुटिया श्मशान के पास ही थी। रोज शाम होते ही एक सेर दूध बाबा की सेवा में लेकर उपस्थित होता। उसके साथ उसका पुत्र वंशीधर भी रहता। वह सुगंधित पुष्पों की माला ले आता और बाबा के गले में डाल कर साष्टांग प्रणाम करता। वह जन्मांध था। डॉक्टरों ने जवाब दे दिया था कि अब उसे ज्योति नहीं मिल सकती। एक दिन मधुसूदन ने अपने पुत्र को सिखा दिया था कि वह बाबा के गले में माला डालने और दण्डवत करने के उपरान्त अपने जन्मांध होने की बात उन्हें बताए और ज्योति के लिए प्रार्थना करे। वंशीधर ने वैसा ही किया। उसने आर्त स्वर में कहा, ''बाबा, मैं जन्मांध हूँ। आप स्वयं भगवान हैं। आप एक बार आँखें खोलकर मेरी दुर्दशा देखें तथा मेरे ऊपर कृपा करें। आपके अलावा मुझे और किसी का आसरा नहीं है।''

यह आर्तनाद सुनकर नंगा बाबा की आँखें खुलीं। उस समय सौभाग्य से मन के द्वार खुले हुए थे। वंशीधर की अंधी आँखों की ओर देखते ही वे करुणा से विचलित हो उठे। व्याकुल स्वर में महापुरुष कह उठे, ''हाँ रे, तुम आँखें तो खोलो। देखो, अब तुम अंधे नहीं हो। तुम्हारी आँखों में पूरी दृष्टि आ गई है।''

''हाँ बाबा, ऐसा ही है, ऐसा ही है।'' वंशीधर चीख उठा। उसके नेत्रों से आनन्द के आँसू बहने लगे। वह कहने लगा, ''कितना सुन्दर! कितना सुन्दर! जो कुछ देख रहा हूँ, सभी अपूर्व सुन्दर है।'' वंशीधर के आनन्द की सीमा नहीं रही। इस आनन्द के अतिरेक में वह रो उठता। कभी-कभी बाबा के चरणों पर लोटने लगता। उसके सामने सृष्टि के सुन्दरतम दृश्य उपस्थित थे। उसका पिता मधुसूदन विस्मय से जड़ बना बाबा के समक्ष हाथ जोड़े खड़ा है।

एक माला वंशीधर के माथे पर रखकर बाबा ने हँसते हुए कहा, "हाँ, हाँ, तुम अभी घर चले जाओ। एक और भी अच्छी माला लेकर आना।"

कई वर्ष बाद नंगा बाबा दक्षिण भारत के परिव्राजन के लिए निकल पड़े। दक्षिण-भ्रमण से लौटे तो पुरी के समुद्रतट पर १९२० में फ्लैग स्टाफ के पास कासिम बाजार के भवन के सामने बालू के ऊपर ही उन्होंने आसन लगाया। भीषण गर्मी में भी गर्म बालू पर सोए रहते। चाहे वर्षा हो, या प्रचण्ड आँधी, उनका आसन बालू पर ही लगा रहता।

पुरी आने-जाने वालों का इस रास्ते गुजरना होता। वे इस जटाजूटधारी, विशालकाय अलौकिक महापुरुष के समक्ष श्रद्धावनत होते और चले जाते। प्रत्यदर्शी भक्त श्री कुमुदबन्धु सेन ने उस समय की एक घटना का उल्लेख 'पुरी धामे न्याँगटा बाबा' में किया है—

पुलिस सुपरिंटेण्डेण्ट ने मजिस्ट्रेट के पास बाबा के विषय में रिपोर्ट भेज दी थी। "जन-साधारण के समक्ष दिन में साधु नग्न अवस्था में बैठा रहता है, यह देखने में वीभत्स लगता है, साथ ही यह भद्रता के विपरीत है। और यह गैर-कानूनी है, विशेषकर सागर-कूल पर पर्यटक, साहेब-मेम लोग बीच-बीच में घूमने आते हैं तथा सभी दृश्यों का फोटो भी खींच लेते हैं। इसलिए साधु को इस स्थान से हटा देना ही उचित है।"

मजिस्ट्रेट नंगा बाबा के बारे में बहुत कुछ सुन चुका था। कई दिन पहले उनकी पत्नी नंगा बाबा का दर्शन करके गई थीं। एक दिन मजिस्ट्रेट स्वयं आए। महात्माजी शिव की तरह बैठे हुए थे। उनके बैठने की भंगिमा ऐसी थी कि निम्नभाग की नग्नता ढँक गई थी। उनके उज्ज्वल नेत्रों की ओर देखने मात्र से सिर अपने आप नत हो जाता था। मजिस्ट्रेट दर्शन से मुग्ध हो गए और श्रद्धापूर्वक प्रणाम निवेदित किया। बाबा ने स्नेहपूर्ण शब्दों में कहा, "हमारी माई आपकी जनाना यहाँ आई थी। लड़के का इम्तहान था। वह अच्छी तरह पास करे—इसके लिए मुझसे बहुत आरजू की थी। लड़का अच्छी तरह पास हो गया न?"

"हाँ, बाबा। आपकी शुभेच्छा से बहुत अच्छी तरह पास हो गया है। अब उसको बाहर भेज रहा हूँ सिविल सर्विस की परीक्षा देने के लिए। वह जल्दी ही यहाँ आ जाएगा। कुछेक दिन हम लोगों के साथ रहकर वह विलायत चला जाएगा।"

नंगा बाबा मौन हो गए। उनके पास कुछ देर और रुकने के बाद मजिस्ट्रेट अपने बँगले पर चले गए। एक-दो दिनों के भीतर ही मजिस्ट्रेट का लड़का घर आया। दूसरे दिन उसे लेकर मजिस्ट्रेट और उनकी पत्नी नंगा बाबा के यहाँ गए। बाबा को सभी ने प्रणाम किया। इसके बाद मजिस्ट्रेट ने निवेदन किया, "बाबा,

यह हमारा पुत्र है। मात्र कुछ दिन ही हमलोगों के साथ है। इसके बाद इंग्लैण्ड चला जाएगा। आप कृपया इसके माथे पर हाथ रखकर आशीर्वाद दें।''

बाबा ने मजिस्ट्रेट का निवेदन जैसे अनसुना कर दिया हो। उनकी पत्नी ने जब बार-बार आशीर्वाद का आग्रह किया तो बाबा गम्भीर स्वर में बोले, ''चार रोज बीत जाने दो, इसके बाद आओ मेरे पास।''

मजिस्ट्रेट और उनकी पत्नी के मन में तरह-तरह के भाव आने लगे। वे लोग थोड़ी देर तक नंगा बाबा के पास बैठे रहे, फिर प्रणाम करके वापस चले गए। इस घटना के तीसरे ही दिन मजिस्ट्रेट का पुत्र किसी असाध्य रोग से पीड़ित हो गया। डॉक्टरों के लाख प्रयास के बावजूद उसकी हालत बिगड़ती गई और दूसरे दिन उसका प्राणांत हो गया।

इस घटना के बाद बाबा का नाम जन-चर्चा में प्रचलित हो गया।

गिर्नारी बन्ता में छोटे से आश्रम के स्थापित होने तक नंगा बाबा 'रमता जोगी' ही बने रहे। कब एक जगह आसन जमाए रहते और कब सहसा अन्तर्ध्यान हो जाएँगे, किसी को पता नहीं होता। पुरी आसन का त्याग करके कुछ दिनों के लिए वे साक्षीगोपाल के निर्जन वन में देखे गए। उनके पास कुछ भक्त भी पहुँच गए। बाबा ने उन लोगों से कहा, ''वे सब तरह से ही नंगे एवं संन्यासी मनुष्य हैं। किसी तरह के अभाव के लिए उनके शरीर अथवा मन में कोई विकार नहीं है। उनके साथ होकर भक्तगण इतना कष्ट क्यों सहन करेंगे?''

लेकिन भक्तगण भी अपने संकल्प से डिगे नहीं। उन लोगों ने निवेदन किया कि बाबा आपके जैसे महापुरुष के साथ रहकर हम परम लाभ तथा आनन्द प्राप्त कर रहे हैं। यदि उपवास भी करना पड़े और दुःख-कष्ट भी सहना पड़े तो हम लोग उसे प्रसन्नतापूर्वक सहन कर लेंगे।

नंगा बाबा ने बता दिया कि वे किसी कुटिया के भीतर निवास नहीं करेंगे। किसी वृक्ष के नीचे आसन जमा कर उसी पर रात-दिन व्यतीत करेंगे। भक्तगणों को निर्देश दिया कि जंगल की लकड़ियों और पत्तों से वे लोग अपने लिए पर्ण-कुटी तैयार करें और उसी में साधना और भजन करें।

कुछ ही दिनों में जंगल के आसपास के क्षेत्रों में यह बात फैल गई कि नंगा बाबा जंगल में निवास कर रहे हैं। फिर गाँवों के गृहस्थ लोग खाद्य-पदार्थ लेकर उपस्थित होने लगे।

एक दिन एक गाड़ी भरकर डाभ भेट में आया। अपने एक भक्त को बुलाकर बाबा ने आदेश दिया, ''देखो, ये डाभ तुम अपनी कुटिया में ले जाओ और तुम लोग सब खा लेना। अऊर एक ठो काम तुमको करना होगा। मेरे दर्शनों के लिए जो आदमी आते हैं, और दो-एक रुपया दे जाते हैं, जिसे मैं कभी हाथ

से छूता नहीं—वह सभी अपने पास रखो और दर्शन के लिए जो आदमी आते हैं, उन्हें उस रुपए से खिला दो। तुम लोग भी उससे खाना-पीना करो। तुम लोगों के लिए ही वह रुपया आता है।''

जंगल का यह प्रवास अधिक दिनों तक नहीं चल पाया। एक दिन भक्त यह देखकर आश्चर्यचकित रह गए कि बाबा अपने आसन पर नहीं हैं।

१९२१ में नंगा बाबा फिर पुरी क्षेत्र में वापस आए। उन्हें अपने बीच पाकर लोग प्रफुल्लित हो गए। निश्चय किया कि बाबा के लिए एक आश्रम बनाया जाय। शहर के एक निर्जन स्थान में बाबा ने एक साधारण आश्रम के निर्माण की स्वीकृति दी। गिर्नारी बन्ता के एक बालुका स्तूप पर आश्रम बनाया गया। इस स्थान का एक पवित्र इतिहास भी था। बाबा ने यहीं अपना स्थायी निवास बना लिया। दो-एक बार गंगा अथवा नर्मदा की तीर्थयात्रा को छोड़कर लम्बे समय तक के लिए कहीं नहीं गए।

एक बार बाब़ा सागर संगम की ओर गए थे। पुण्यतीर्थ में स्नान किया फिर पदयात्रा करते हुए उड़ीसा वापस लौट रहे थे। कलकत्ते के पास ही रिसड़ा में एक वृक्ष के नीचे आसन जमाया। स्थानीय जमींदार लालजी उधर से कहीं जा रहे थे। दर्शन मात्र से ही वे बाबा के प्रति आकृष्ट हो गए। उन्होंने हाथ जोड़कर निवेदन किया, ''आप कृपा करके जब इस अंचल में आ ही गए हैं तो इस अधम के घर पर भी चलें। आपकी सेवा का सुयोग पाकर हम धन्य होंगे।''

नंगा बाबा मुस्कराए। मृदु गंभीर भाव में जो कुछ कहा, उसका सारांश इस प्रकार है—''मैं तो इस वृक्ष के नीचे ही काफी सुखी हूँ। तुम्हारे भवन में जाकर मुझे क्या इतना आराम मिल पाएगा? तुम सभी विषयी हो। दिन-रात विषय में ही उलझे रहते हो। यह सब देख कर मुझे विरक्ति ही होगी।''

''बाबा, निश्चय ही हम लोग विषयकीट हैं। स्वयं अपने पाप की ज्वाला से संतप्त हैं। परन्तु आप जैसे साधु-सन्तों का सान्निध्य पाने तथा अमृतमय वाणी सुनने से हृदय में थोड़ी शांति अवश्य मिल जाएगी।'' जमींदार ने कहा।

''साधु-सन्तों की बातें तुम लोगों ने काफी सुनी हैं, उनमें से कितनी हृदयंगम की हैं, और अपने जीवन में उतार पाए हो? उपनिषद तथा वेदान्त में ऋषियों की सार तत्त्व की बातें हैं, किन्तु कितने लोग उसे ग्रहण कर पाए हैं?'' बाबा बोले, ''साधु-महात्माओं का गृहस्थों के घर में निवास, मैं एकदम पसन्द नहीं करता। यही सही है कि साधु-संग के लाभ की थोड़ी इच्छा आपके भीतर अवश्य है, लेकिन इससे अधिक अहं की भावना है—मेरे निवास पर एक मस्त साधु आकर ठहरते हैं। यह बात अन्यथा मत समझना। एक अप्रिय सत्य कह रहा हूँ। बाग-बगीचा, घर एवं रक्षिता रखने जैसे ही आडम्बरपूर्ण साधु रखने की भी प्रवृत्ति आजकल बड़े लोगों के भीतर प्रवेश कर गई है।''

''बाबा, पर मैं उतना बड़ा आदमी नहीं हूँ।''

''मेरी बात सुनो। तुम्हारा वह स्थान मुझे पसन्द आ गया है। कुछ दिन यहीं काट लेने का विचार है। परन्तु तुम्हारे मकान में नहीं, इसी वृक्ष के नीचे ही रहूँगा। नित्य दो सूखी रोटी और सब्जी रहने से ही मेरा काम चल जाएगा।''

जमींदार का मकान पास में ही था।

रिसड़ा में नंगा बाबा कुछ दिन रहे। जमींदार तथा उनके पुत्र राधारमण दोनों ही इस महान तपस्वी की सेवा-परिचर्या से धन्य हो उठे।

यहाँ प्रवास के दौरान एक दुर्घटना के कारण नंगा बाबा की अंत:स्थिति एक दिन प्रकट हो गई।

प्रात:काल उठकर लालजी नित्यकर्म आदि से निवृत्त होकर बाबा के दर्शनार्थ निकले। मकान के पास ही जंगल था जिसमें फूलों के वृक्ष थे। जब वे इस जंगल को पार कर रहे थे तभी एक विषधर पर उनका पैर पड़ गया और उसने उलट कर डँस लिया। लालजी की चीख सुनकर आसपास के लोग दौड़े-दौड़े आए। परिजनों ने रोना-धोना शुरू कर दिया। लालजी दोनों हाथ आगे करके बाबा-बाबा पुकारते हुए बाबा की ओर दौड़े। सर्प का विष उनके शरीर में तेजी से फैलता जा रहा था। बाबा के पास आते-आते लालजी गिर पड़े। शरीर नीला पड़ गया था और मुँह से झाग निकलने लगा था। नेत्र भी धीरे-धीरे निष्प्रभ होने लगे। आसपास काफी लोग इकट्ठे हो गए थे।

नंगा बाबा अपलक दृष्टि से भक्त की ओर देख रहे थे। कुछ पल इसी तरह बीत गए। उसके बाद बाबा ने अपने कमण्डल से सागर तीर्थ से लाया हुआ जल लालजी के मुँह पर छिड़का। क्षणभर बाद ही लालजी की चेतना लौटने लगी और शरीर का रंग भी स्वाभाविक होने लगा। कुछ ही पलों में वे स्वस्थ हो गए और बाबा के चरण पकड़ कर उनकी स्तुति करने लगे। नेत्रों से अविरल अश्रु-धारा बह रही थी।

वहाँ उपस्थित लोग बाबा की यह अद्‌भुत लीला देखकर उनकी जय-जयकार करने लगे।

लालजी को प्रबोध देने के बाद बाबा ने स्नेहपूर्ण वाणी में कहा, ''बेटा, अब कुछ भय नहीं है। अभी थोड़ा सा दूध पी लेव। घर जाकर विश्राम करो। कल सुबह मेरे पास आओ।''

दूसरे दिन प्रात: भेंट होते ही बाबा ने लालजी से कहा, ''अभी तो तुम्हारी समझ में आ गया—जीवन ऐसा ही एक स्वप्न है। तुम्हारा धन-दौलत, इतना बड़ा मकान, लड़का-लड़की, स्त्री सबकुछ स्वप्न के माफिक झूठ है। एक मुहूर्त में सब छूट जाने लगा था। सबकुछ प्रपंच है, स्वप्न है—यह याद रखने से दु:ख की निवृत्ति होगी, मोक्ष आ जाएगा तुरन्त।''

उपरोक्त घटना के बाद नंगा बाबा की योग-विभूतियों की ख्याति इस क्षेत्र में फैल गई। इसके बाद बाबा के यहाँ दर्शनार्थियों की भीड़ लगने लगी। एक दिन बाबा चुपचाप यहाँ से खिसक लिये।

भक्त लालजी के अनुरोध से रिसड़ा में एक छोटा से आश्रम का निर्माण हुआ। बाबा पुरी से बीच-बीच में यहाँ आते रहते। १९२१ से १९२६ के मध्य कई बार आगमन हुआ। कलकत्ते के कुछ भाग्यवानों को बाबा का दर्शन-लाभ मिला।

१९२६ के बाद गिर्नारी बन्ता बाबा का स्थायी निवास हो गया। दो-तीन शिष्य बाबा की सेवा में लगे रहते। बाबा भक्तों, दर्शनार्थियों और आगंतुकों को अद्वैत तथा आत्मज्ञान का उपदेश देते। त्याग, वैराग्य एवं वेदान्त साधना के मूर्त विग्रह शिवकल्प इन महात्मा से मानव कल्याण की अविरल धारा बहती रही। नंगा बाबा कहते रहते—कलिकाल में मनुष्य की आयु कम है। दृढ़ शरीर अथवा मन कहाँ है? स्वास्थ्य हानि और नाना प्रकार के सांसारिक दुःखों से वे दुःखी रहते हैं। इसलिए योग अथवा तंत्र साधना उनके लिए इतनी उपयोगी नहीं है। उनके लिए वेदान्त साधना का पथ तथा अनात्म-आत्म विचार का पथ ही कल्याणकारी है। वेदान्त विचार के रास्ते पर एक चींटी भी चली जा सकती है मोक्ष के द्वार की ओर।

बाबा कहते—देखो, मनुष्य-मात्र सुख चाहता है। किन्तु वह गलत मार्ग पर भटक जाता है। इसलिए सुख से वंचित हो जाता है। बाह्य जगत का सब कुछ नश्वर है। जो विनाशशील तथा परिवर्तनशील है, वह स्थायी सुख-शान्ति कैसे देगा? पार्थिक भोग्य वस्तु अन्ततः दुःख का ही सृजन करता है। भोग्य वस्तु को ध्यान में न रख कर भागी मनुष्य की ओर एक बार देखो। तुम देखोगे कि वह नश्वर है। अपनी असहायता के सम्बन्ध में अनुभव अभिज्ञता एवं प्रत्यक्ष दर्शन के बाद भी उसकी भोग लिप्सा नहीं दूर होती।

भक्तों ने एक बार प्रश्न किया, ''बाबा स्थायी सुख-लाभ के लिए हम लोगों को क्या करना चाहिए?''

बाबा का उत्तर था, ''स्थायी सुख के लिए सबसे पहले इस बात का ज्ञान होना चाहिए कि सत्य क्या है? सत्य स्वतः प्रकाशशील है, उसे देखने के लिए किसी प्रदीप का प्रयोजन नहीं होता। फिर भी तुम्हारे नेत्रों में जो मल है, उसे अवश्य दूर करना होगा। सत्य को देखने के लिए पहले दृष्टिदोष को दूर करो। स्वयं के बारे में भी मूल बात है सत्य का संधान। अपने सम्बन्ध में सत्य किस तरह प्रतिभास होता है? यह सत्य बता देता है कि बाह्य दृश्यमान पदार्थ मात्र जड़ ही नहीं है तथा मैं अदृश्य एवं चैतन्यमय हूँ। जड़ पदार्थ में अहं भावना का बोध करते ही उसका दोष जैसे—जड़ता, क्षणभंगुरता, विनाशत्व, इसकी अपने भीतर

उपलब्धि होने लगती है। चैतन्य में अहं भावना करने पर चैतन्यमय स्वरूप भावुक हो उठेगा तथा सत्-चित् आनन्द स्वरूप हो उठेगा। आत्म-ज्ञान के अलावा और कोई स्थायी सुख नहीं होता। आत्मतत्त्व के नीचे ही आश्रय को यही सर्वसिद्धिदाता होता है। श्रुति में भी कहा है—'नान्यः पन्था विद्यते।''

''आत्मा को जानने का उपाय क्या है बाबा?''

''आत्मा सर्वदा प्रकाशमान रहता है। लोग उसे महसूस नहीं कर पाते क्योंकि उनका चित्त अशुद्ध रहता है। मलिन दर्पण में क्या अपना प्रतिबिम्ब दिखलाई पड़ता है? सूर्य-प्रतिबिम्ब क्या उसमें प्रकाशमान हो सकता है? अविद्या के कारण चित्त में मल का विक्षेप अथवा आवरणरूपी मैला पड़ा हुआ है, इस मैले को दूर करने के लिए ब्रह्मनिष्ठ श्रीगुरु के मुख से वेद के तत्त्व मसि आदि महावाक्यों का श्रवण करना होता है। इसके बाद उसका निष्ठापूर्वक मनन एवं निधिध्यासन करना होता है। यही वेद द्वारा दर्शाया गया कल्याणकारी पथ है।''

बाबा कहते हैं, इस प्रपंचमय विश्व सृष्टि के स्वप्नरूप में समझने से तथा क्षणभंगुर बुदबुद के रूप में कल्पना करने से साधक के लिए आत्मज्ञान की ओर अग्रसर होने में सुविधा होती है।

एक बार अमेरिकी साधु ने बाबा से प्रश्न किया, ''बाबा, मनुष्य का अहं किस तरह खत्म हो सकता है? तथा इसी शरीर से, इसी जन्म में ही क्या मोक्ष-लाभ सम्भव है?'' अमेरिकी साधु ने बाबा का दर्शन उस समय किया जब वे रिसड़ा आश्रम में थे।

बाबा ने कहा, ''साधना के दो प्रशस्त पथ हैं। पहला, इस जगत को मिथ्या समझकर चलना एवं त्याग-वैराग्य के पथ से कर्म संन्यास लेना। दूसरा, इस जगत को भगवान स्वरूप तथा भगवतमय समझकर निष्काम कर्मव्रती हो जाना। पहला अद्वैत तथा दूसरा द्वैत मार्ग है। इसे पूर्णरूप से समझ लेना होगा कि कौन से पथ के तुम अधिकारी हो।''

''हम लोग अज्ञानी अहं बोधयुक्त मनुष्य हैं। कौन से पथ के अधिकारी हैं, यह किस तरह समझ पाएँगे?''

''इसीलिए गुरु की आवश्यकता पड़ती है। मूर्ख अज्ञानी गुरु नहीं, ब्रह्मविद गुरु जो तुम्हारे जन्म-जन्मान्तर की खबर जान जाएँगे तथा जो इस बार की साधना का मार्ग प्रदर्शन करने में समर्थ होंगे।''

नंगा बाबा वेदांती के हिमायती थे। वे अद्वैत ब्रह्मज्ञान के पथ का ही दिग्दर्शन करते और कर्म संन्यास को प्रधानता देते। उनके मतानुसार आत्मज्ञान साधन के दो ही आयाम हैं, एक अंतरंग तथा दूसरा बहिरंग। गुरु के सान्निध्य में रह कर त्याग-वैराग्यमय जीवन व्यतीत करते हुए माहात्म्य का श्रवण-मनन एवं

निदिध्यासन ही अन्तरंग साधन है। इस साधना की परम्परा यथा क्रम से विवेक, वैराग्य, षट सम्पत्ति (शम, दम, उपरति, तितीक्षा, श्रद्धा एवं समाधान, मुमुक्षत्व, 'तत', 'त्वं', शब्द) के अर्थ का सतत श्रवण-मनन एवं निदिध्यासन है। आत्मज्ञान की बहिरंग साधना दो पंथ से अनुसूत होती है—निष्काम कर्म एवं निष्काम उपासना से।

सत् एवं मुक्तिकामी साधारण गृहस्थ के लिए बाबा का विचार था, ''गृहस्थ मनुष्य यदि मोक्ष का द्वार उन्मुक्त करना चाहता है तो उसे तीन विषयों की ओर अग्रसर होना पड़ेगा—सद्ग्रन्थ एवं शास्त्र ग्रन्थ का पाठ, सत्संग तथा सद्गुरु के उपदेशानुसार साधन।''

साध्य साधन-तत्त्व को बाबा बहुत ही सहज ढंग से समझाते। श्री राधारमण लाल के अनुसार—''हम लोग एक बार पुरी धाम स्थित गिर्नारी पहाड़ पर बैठ कर उसका मनोमुग्धकारी रमणीय सौन्दर्य देख रहे थे। दक्षिण दिशा में तुरंगमाल से समन्वित बंग सागर, पूर्व में पुरी का श्रीमन्दिर, उत्तर की ओर यमुना नदी तथा पश्चिम में उच्च बालुका राशि के ऊपर बाबा ऐसे आसीन थे जैसे साक्षात् शिव हों। मैंने कहा—यही तो हम लोगों का प्रेय और श्रेय है जो हम लोग निर्भयता के साथ स्वर्ग-सुख भोग रहे हैं। प्रकृति ने इस निर्जन आश्रम को उसकी मनोरमता में वृद्धि के लिए नाना रूपों में मानों सजा रखा है। कौन नहीं चाहेगा कि इस सुन्दर परिवेश में आपके श्रीचरणों की सेवा का सौभाग्य लाभ करे?''

प्रत्युत्तर में बाबा ने कहा—''जो लोग सृष्टि के प्राकृतिक तत्त्व एवं रहस्य के मर्मज्ञ हैं, एकमात्र वे आत्मानुभवी महापुरुष ही निर विच्छिन्न आनन्द प्राप्त करते हैं और उस आनन्द को प्राप्त करने के वे अधिकारी भी हैं। तुम मात्र अभिनय देखते हो। समझ रखो—अभिनय एवं अभिनेता दोनों ही मिथ्या हैं। अभिनेता समझते हैं कि वे हरिश्चन्द्र नहीं हैं, परन्तु अभिनेता स्वयं तथा दर्शक रूप में तुम लोग, जब करुण दृश्य आता है तो करुणा से तथा भयंकर दृश्य आने पर भय से अभिभूत हो उठते हो। अपने को सदैव तटस्थ अभिनयद्रष्टा समझ कर रहो, जैसे मैं अपने कैलास पर आसीन हूँ। पार्श्व में मेरा अक्षयवट वृक्ष के नीचे संसार के जीव जब माथे पर अपनी ही बाँधी गठरी लेकर अतिकष्ट से चलते-फिरते नजर आते हैं, तब मुझे देख कर हँसी आती है। इसलिए कि ये लोग गठरी स्वयं बाँधकर ढोते समय किस तरह दुःखी हो रहे हैं। इसलिए लोगों की बातचीत से सुख तथा शांति मिल पाना बड़ा मुश्किल है। कारण इसको वे स्वयं ही नहीं चाहते हैं।''

कुमुदबन्धु सेन ने लिखा है—''मैंने भगवान लाभ के बारे में पूछा। नंगा बाबा ने उत्तर दिया—''तुम उसी ब्रह्म की गोद में बैठे हुए हो और वे तुम्हारे अन्तर के हृदय-पद्म पर आसीन हैं।'' मैंने कहा—''क्या ऐसा तुरन्त हो जाता है? आपने भी तो कितनी योग-तपस्या की थी।''

बाबा ने कहा—"वह सब करके ही तो कह रहा हूँ। कलियुग में, विशेषतः बंगाली शरीर से योग, प्राणायाम अधिक करने पर अस्वस्थ हो जाओगे। मैं यह सब करके ही तो तुम्हें इतनी बात बता रहा हूँ।"

मैंने कहा—"ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या, यही तो वेदान्त कहता है।" उन्होंने कहा—"तुम्हें इतनी बड़ी-बड़ी बातों से क्या प्रयोजन? जो बताया, वही करो। यही सहज मार्ग है। उन सबके सम्बन्ध में जब धारणा हो जाएगी, तब लम्बी-चौड़ी बातें करना। देख रहा हूँ, तुम्हारा गुरुकरण हो चुका है। उसी इष्ट मंत्र का जप करोगे। वही इष्ट ही ब्रह्म है। उसी की गोद में बैठे हुए हो। वही तुम्हें ब्रह्मानन्द रस पान करने देंगे, और तुम्हारे दृश्यपथ पर आसीन होकर रहेंगे।"

श्रीयुत सेन उस दिन भीषण गर्मी और धूप में टहल-घूमकर आए थे। नंगा बाबा ने ज्ञानानन्द से कहा, "जल्दी से एक डाभ दो।" ज्ञानानन्द चुपचाप हाथ जोड़े खड़े थे। बाबा ने रुष्ट होकर कहा, "मामला क्या है? क्या तुमने मेरी बात सुनी नहीं?"

"जी ऐसी बात नहीं है। वास्तविकता यह है कि भण्डार में केवल एक ही डाभ बचा है, उसे आपके लिए रक्खा है।"

बाबा के आदेश से वह डाभ सेन को दे दिया गया। इसके कुछ ही देर बाद देखा गया—नीचे गेट के पास डाभ से भरी एक बैलगाड़ी खड़ी है। गाड़ी का मालिक एक सम्पन्न गृहस्थ था। उसने बाबा को प्रणाम करके निवेदन किया, "बाबा, मेरे बगीचे में बहुत से नारियल के वृक्ष हैं। एक पेड़ पर मैंने निशान लगाकर मन्नत मानी थी कि इस बार उस पर पहली बार जो फल लगेंगे उसे आपके चरणों में समर्पित कर दूँगा। मैं इसे लेकर आया हूँ, कृपा करके ग्रहण करें।"

बाबा ने उसे आशीर्वाद देकर तुरन्त ज्ञानानन्द के पास भेज दिया। जैसे प्रसाद ग्रहण कर लिया हो। फिर सेन की तरफ देख कर मुस्कराते हुए बोले, "तुमने प्रत्यक्ष किया तो, असल में हम सभी ब्रह्म की गोद में बैठे हुए हैं। हमारे लालन-पालन का भार भी उन्हीं के ऊपर है। परन्तु हमलोग अहं बोध से ग्रसित हैं। इसलिए तो हम लोग उसकी सारी व्यवस्था उलट-पुलट देते हैं। हमारे दुःख-कष्ट हमारी अपनी ही सृष्टि हैं। जो ब्रह्म के ऊपर एकान्त से निर्भर रहता है, उसके सम्मुख आत्मसमर्पण करता है, उसे कष्ट क्यों कर होगा?"

नंगा बाबा ने अपने जीवन में अनेक अलौकिक लीलाएँ की थीं। मनुष्य का करुण क्रन्दन तथा विनती बार-बार बाबा के हृदय में करुणा का भाव जगा देता था।

एक दिन आश्रम में बाबा भक्तों के साथ सत्संग में लीन थे। इसी बीच एक रुग्ण शरीर उड़िया ग्रामवासी उनके सम्मुख उपस्थित हुआ। वह भयानक संग्रहणी

रोग से ग्रसित था। उसने झुककर बाबा को प्रणाम किया। बाबा ने पूछा, ''क्यों रे, तुम्हारी क्या खबर है?''

रोगी ने आर्तकण्ठ से कहा, ''अब यह कष्ट सहन नहीं होता बाबा। आजकल जल-सत्तू भी हजम नहीं हो पा रहा है।''

''देखता हूँ बड़े कष्ट में पड़ गए हो। फिर यहाँ किसलिए आए हो? मैं डॉक्टर हूँ जो रोग अच्छा कर दूँगा? या तो डॉक्टर के पास जाकर अच्छी तरह इलाज कराओ या लोकनाथ शिवजी के मन्दिर में चला जा।''

''बाबा डॉक्टर ने जवाब दे दिया है। उन्होंने कहा है कि अब यह रोग ठीक होने वाला नहीं है। उसी से आपके शरण में आया हूँ। आप ही व्यवस्था कीजिए।''

''मैं क्या करूँगा? यह तो काल व्याधि है। शिवजी के चरणामृत के अलावा, इसके लिए कोई अन्य उपाय नहीं है। नित्य वहाँ एक घड़ा चरणामृत सेवन करो। उसी से ठीक हो जाओगे।'' बाबा ने फिर आश्वासन दिया, ''डरने की कोई आवश्यकता नहीं, उसी से ठीक हो जाओगे।''

कुमुदबन्धु ने कहा, ''बाबा, योग विभूति की सहायता से तो रोगमुक्त करना आप पसन्द करते नहीं, फिर भी इसकी प्राण-रक्षा के लिए आपको उसी की मदद लेनी पड़ी।''

नंगा बाबा मुस्कराए। उन्होंने कहा, ''देखो, द्रव्यगुण को भी मानना ही पड़ेगा। शिवजी के भक्तगण कितने किस्म के फूल, चंदन, अर्घ्य आदि डाल देते हैं। उन सभी मिलीजुली वस्तुओं का एक विशेष द्रव्यगुण नहीं है क्या?''

पुरी के जमींदार कृष्णा बाबू की पत्नी तुलसी देवी नंगा बाबा की भक्त थीं। गिर्नारी बन्ता का आश्रम तैयार होने के पूर्व से ही इन्होंने बाबा का आश्रय ग्रहण किया था। प्रतिदिन प्रातः एक नियत समय पर तुलसी देवी बाबा के आश्रम में आतीं। वह अपने साथ एक बर्तन में दूध और अर्घ्य सामग्री लातीं। धूप-गुगुल की सुगंध से सारा कक्ष सुगंधित हो उठता। बाबा के गले में बड़े-बड़े सुगन्धित पुष्पों की माला पहनाई जाती। इसके बाद घण्टी और पंचप्रदीप लेकर परम भक्त तुलसी देवी बाबा की आरती करतीं। इस प्रकार का बाह्य अनुष्ठान बाबा को कभी पसन्द नहीं था, किन्तु उस भक्त साधिका के अन्तर की इच्छा का उन्होंने प्रतिरोध नहीं किया। आरती एवं पूजा के बाद सत्संग शुरू होता।

एक बार नंगा बाबा अचानक पुरी धाम से अंतर्धान हो गए। सभी भक्त मर्माहत हो उठे। लेकिन भक्तगणों को आशा थी कि बाबा किसी-न-किसी दिन आश्रम में अवश्य प्रकट होंगे। लेकिन तुलसी देवी ने संकल्प ले लिया कि जब तक आश्रम में बाबा का अवतरण नहीं होगा तब तक वह अन्न-जल ग्रहण नहीं

करेंगी। इस प्रकार उपवास करते दो साल व्यतीत हो गए लेकिन बाबा ने अपनी अलौकिक शक्ति से उन्हें जीवित और स्वस्थ रक्खा। इसके बाद भक्तगणों को सूचना मिली कि बाबा भागलपुर के समीप निर्जन वन में तपस्या कर रहे हैं। कृष्ण बाबू बाबा को खोजते हुए उनके समक्ष उपस्थित हुए और अपनी धर्मपत्नी के उपवास की बात बाबा को बताई। बाबा का हृदय द्रवीभूत हो गया और वे तुरन्त पुरी धाम लौट आए। वे सीधे कृष्ण बाबू के घर गए। तुलसी देवी से कहा, "ये क्या बात है? खाना-पीना एकदम काहे छोड़ दिया? खा लो, खा लो।"

लम्बे उपवास के बावजूद तुलसी देवी के जिन्दा रहने के बारे में जब भक्तगणों ने बाबा से पूछा तो उन्होंने कहा, "उसे विश्वास था, इसलिए जिन्दा रही।"

देहात्म बोध के लोप की प्रचेष्टा आत्मज्ञान, साधना की प्रथम स्थिति होती है। यदि कोई आर्त व्यक्ति नंगा बाबा की शरण में आता तो इसी प्रचेष्टा की ओर उसका ध्यान आकृष्ट करते।

एक दिन एक दर्शनार्थी ने बाबा के गले में ढेर सारी मालाएँ डाल दीं। बाबा ने कहा, "और हो तो दो, लेकिन समझ रक्खो कि यह प्रपंच है।" कभी कोई भक्त प्रणाम निवेदित करता तो बाबा बोल उठते, "हाँ, हाँ, प्रणाम करो, इस हाड़-मांस की देह को तो प्रणाम कर लेव।" इस तरह बाबा भक्त को अपनी ज्ञानमय सत्ता तथा शिवसत्ता की ओर उन्मुख करते।

एक दिन शाम को आरती हो रही थी। बाबा ने भजूबाबा (जो बाद में शंकरानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए) से कहा, "भजू, जल्दी खतम करो। अपने भूत समों (वाद्ययंत्रों) को भगाओ यहाँ से।" भजूबाबा ने विनम्रतापूर्वक कहा, "बाबा, भूत भगाने की बात क्यों कर रहे हैं? आपकी पूजा-आरती के लिए ही तो ये सभी वाद्य-यन्त्र लाए गए हैं और इन्हें कह रहे हैं—भूत?"

"असली पूजा में होता है मन का ध्यान। इतना हल्ला तो भूत भगाने के लिए ही होता है।" बाबा ने कहा।

बाबा का हिन्दी, गुरुमुखी, तमिल तथा तेलुगु भाषाओं पर पूर्ण अधिकार था। एक दिन एक उड़िया सज्जन आए। भक्तिमार्गी होते हुए भी बाबा के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा थी। उन्होंने निवेदन किया, "बाबा, आजकल मेरा मन भजन-कीर्तन के अलावा अन्य चीज में नहीं रमता। अन्य किसी कार्य के लिए होश नहीं रहता।"

"वह भी तो एक विषय है।" बाबा ने कहा।

एक दिन एक कीर्तन-मण्डली बाबा के दर्शन के लिए आई थी। उनमें से एक सज्जन ने बाबा से कीर्तन सुनाने के लिए निवेदन किया। बाबा बोले, "बेकार

गीदड़ के माफिक चिल्लाने से क्या फायदा?'' बाबा की इस कठोर वाणी से कीर्तन मण्डली के लोग सहम गए। बाबा को एहसास हुआ कि उन्हें इतना कठोर नहीं होना चाहिए था। उन्होंने कहा, ''देखो, भजन-कीर्तन अच्छा ही है। मन को वह भगवतमुखी कर देता है, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु उसी में लिप्त होकर लोग भूल करते हैं। प्रपंच से मन को हटा लेना होगा। त्याग-वैराग्य तथा स्मरण, मनन-निदिध्यासन के मार्ग पर अग्रसर होना होगा, तभी मोक्ष प्राप्त होगा।''

एक दिन पंचदशी का पाठ चल रहा था। बीच-बीच में बाबा एक-एक सूत्र की व्याख्या करते जा रहे थे। इसी बीच एक भक्त आकर एक कोने में बैठ गया और बाबा को एकटक देखने लगा। कुछ देर बाद बाबा ने उससे कहा, ''दर्शन हो गया, अब चले जाओ।'' भक्त ने कुछ देर और बैठे रहने के लिए निवेदन किया किन्तु बाबा ने उसे भगा दिया। एक भक्त ने साहस करके इस बारे में पूछा। बाबा ने उत्तर दिया, ''तुम सभी बालक हो, इस बारे में क्या समझोगे? उसकी स्त्री को राजयक्ष्मा हो गया, बचने का कोई उपाय मैं नहीं देख रहा हूँ। उसके मन में यही कामना थी कि मैं कृपा करके उसकी पत्नी को रोगमुक्त कर दूँ। यदि कोई कामना या वासना लेकर मेरे पास बैठा हुआ है तो शास्त्र-पाठ क्या चल सकता है? बार-बार पवित्र भाव-प्रवाह में बाधा पड़ जाती है। इसी से उसे चले जाने को कहा।'' फिर उन्होंने कहा, ''यहाँ मन-रोग मुक्ति तथा मोक्ष का लाभ अवश्य हो सकता है, यदि त्याग-वैराग्य एवं ध्यान-मनन में गति हो।''

एक दिन एक बहुत धनी भक्त बाबा के पास आए। वे अपने भारत-भर के तीर्थस्थलों के भ्रमण का हाल सुनाने लगे। कुछ देर बाबा सुनते रहे, फिर बोले, ''हाँ, हाँ, जाओ तीर्थ में, बहुत घूमो। लेकिन यहाँ भी पत्थर, वहाँ भी पत्थर। हाथ में बहुत पैसा है, घूमते-फिरते भी हो। तीर्थ से लौट कर सबके साथ गप करो, ऐसा किया, ऐसा देखा। यह अहं छोड़ कर कोई स्थान में बैठ जाओ, आत्मज्ञान के लिए कोशिश करो।''

पुरी के एक साधक ने एक दिन बाबा से कहा, ''बाबा, इतने दिनों से जप कर रहा हूँ, कृच्छ साधन कर रहा हूँ, किन्तु कुछ नहीं हो रहा है। देवी-देवताओं का दर्शन अथवा अतीन्द्रिय दर्शन-श्रवण—ये प्राथमिक प्राप्तियाँ भी तो अभी तक कुछ नहीं हुईं। चित्त भी प्रायः अशान्त रहता है।''

बाबा ने कहा, ''इन सब दर्शनों से क्या फायदा, मुझे बताओ, इससे तुम्हें आत्मज्ञान होगा?'' बाबा ने आगे कहा, ''अर्जुन के विश्वरूप दर्शन की बात तुमने पढ़ी है? महायुद्ध के प्रारम्भ में ही कृष्ण ने उन्हें विश्वरूप दर्शन करा दिया। किन्तु अर्जुन की साधना की प्रस्तुति क्या थी? इससे पहले तो उनका समय धनुर्विद्या, बहुविवाह तथा नारी के साहचर्य में ही कटा था। सोच-समझकर बताओ तो विश्वरूप दर्शन के पश्चात क्या हुआ था? यदि ऐसा हुआ था तो अभिमन्यु की

मृत्यु पर अज्ञानी की तरह उन्होंने शोक क्यों किया?'' बाबा ने हँसते हुए कहा, ''कृष्णजी बड़े चतुर हैं, परन्तु अर्जुन के आचरण के कारण वे बड़ी विपत्ति में पड़ गए। क्या अर्जुन मात्र शोक से ही अभिभूत हुआ था? कृष्ण-सखा को डर भी काफी हुआ था, क्योंकि दूसरे पक्ष में भी दुर्जेय महारथी थे। वे अजेय हैं, इसे अर्जुन सबसे अधिक जानते थे। भीष्म समर में किसी दिन भी पराजित नहीं हुए थे। द्रोण मंत्रपूत बाण-संधान में अद्वितीय थे। कर्ण का भी पराक्रम अपरिसीम था। इन सभी चिन्ताओं को लेकर विषाद के साथ-साथ डर नहीं लगा, यह तुम कैसे कह सकते हो? इसी डर को हटाने के लिए कृष्ण ने दिखाया कि पहले से ही इन महारथियों को काल ने कवलित कर डाला है। किन्तु यह भी सोचो, अभिमन्यु जो मारा गया, उसे उन्होंने बिल्कुल ही नहीं दिखाया।''

''यह दिखा देने से क्या होता, बाबा?'' एक भक्त ने प्रश्न किया।

''अरे ऐसा हो जाने पर क्या कृष्णजी द्वारा निश्चित यह धर्मयुद्ध होता? उसकी पोल ही खुल जाती। गाण्डीवधारी गांडीव छोड़कर हाथ-पाँव ढीले करके रथ पर बैठ जाते। उनके द्वारा युद्ध कराया नहीं जा पाता, और कौरवों का पतन भी सम्भव नहीं हो पाता। फिर सोचो अर्जुन ने इतनी तत्व व्याख्या स्वयं कृष्ण के मुख से सुनी, विश्वरूप का भी दर्शन किया, फिर भी शोक के मोह से ग्रस्त रहे।''

एक भक्त ने कहा, ''बाबा, भगवद्गीता परम श्रद्धेय वस्तु है। किन्तु अनेक मत और मार्गों की बात पढ़कर समय-समय पर विभ्रान्त हो जाता है।''

''वह तो एक जादू की डिबिया जैसी खिचड़ी है। सब किसिम का रस उसमें घुसा दिया है।'' बाबा ने कहा।

''बाबा, मैं दिनों दिन हताश होता जा रहा हूँ, साधना के पथ में अब वैसे अग्रसर नहीं हो पा रहा हूँ।'' एक भक्त ने निवेदन किया।

''पहले एक-एक करके बन्धनों को तो कटाओ। इसके अलावा आगे बढ़ने का उपाय क्या है? भाग्यक्रम से तुमने ब्राह्मण शरीर पाया है। प्राण-प्रण से चेष्टा करो कि इसी शरीर से ही आत्मज्ञान का उदय हो।'' बाबा बोले। फिर अन्य भक्तों की ओर देख कर कहने लगे, ''मात्र ध्यान-भजन से ही कार्य नहीं होता। इसके साथ ही कृच्छ एवं त्याग-वैराग्य की आवश्यकता है। जिसका आहार-विहार में संयम नहीं है, उसके जीवन में ज्ञान का उदय किस तरह होगा।''

एक भक्त कलकत्ता से आए थे। उन्हें पास का एक लड़का रोज चाय बनाकर दे जाता था। एक दिन बाबा ने कहा, ''देखो, तुम इस छोकरे के हाथ की चाय अब नहीं लेना। इसने धर्म को व्यवसाय बना लिया है। दर्शनार्थियों को मेरे पास आने से पहले वह उन्हें फूलों की माला पकड़ा देता है जिसकी कीमत वसूलता है। ऐसे हीनबुद्धि लोगों द्वारा स्पर्श की हुई चाय पीना उचित नहीं है। उसके अधर्म का भाव तुम्हारे मन को भी संक्रमित कर सकता है।''

एक अन्य भक्त से बाबा ने कहा, ''तुम आश्रम में निवास की अवधि में बाहर इतना क्यों घूमते हो? एकनिष्ठ होकर कार्य किया करो। आश्रम में आने पर मात्र स्वाध्याय और ज्ञान-विचार की बात सोचनी चाहिए। तभी तो बन्धन-मुक्ति के पथ पर अग्रसर हो सकोगे।''

एक भक्त की जिज्ञासा शांत करते हुए बाबा ने कहा, ''मैंने हर किस्म की साधना की। हठयोग, राजयोग, वेदान्त-विचार सबकुछ। इसके बाद ही मैं तुम लोगों से कह रहा हूँ कि साधारण मनुष्य के लिए वेदान्त-विचार का मार्ग ही अधिक उपयोगी है। योग साधना के लिए दृढ़ शरीर तथा कष्ट सहिष्णुता की आवश्यकता है। इसके अलावा योगसिद्ध गुरु, अच्छा वास-स्थान तथा अच्छा आहार अनिवार्य है। पचास वर्षों के उपरान्त योगाभ्यास तो किसी तरह सम्भव नहीं है। इसी कारण आज के युग में वेदान्त ही सबसे सरल मार्ग है। असल वेदान्त साधना आरण्यक जीवन की साधना ही होती है। सर्वत्यागी और महा वैराग्यवान साधना में दृढ़चित एवं निष्ठावान जो साधक वेदान्त के मार्ग में अग्रसर होते हैं, उन्हें न्याय तथा सांख्य अच्छी तरह पढ़ लेना चाहिए।'' एक प्रश्न के उत्तर में बाबा ने कहा, ''शंकर (शंकराचार्य) तभी तक शंकर हैं जब तक उनके भाष्यों का श्रुतियों के साथ मतैव्य है। इस बात का भी स्मरण रखना होगा कि योग-समाधि को उन्होंने 'मूर्छा' कहकर भूल की है। हाँ, यह बात माननी होगी कि शंकर उच्चतम योग-समाधि से भिज्ञ थे। फिर भी अद्वैत वेदान्त के वे श्रेष्ठ आचार्य एवं प्रवक्ता थे, इसमें सन्देह नहीं है।''

एक अन्य भक्त के प्रश्न के उत्तर में बाबा बोले, ''साधना के मार्ग में समय-समय पर दैव का आघात आता रहता है। इसे सुरविघ्न कहते हैं, मानव देवताओं को पशु-सेवक विशेष होता है। मानव द्वारा अनुष्ठानित सेवा, पूजा, उत्सर्ग इत्यादि पर उनका काफी आकर्षण है। जब वे देखते हैं कि वही मानव साधना के माध्यम से मुक्त होता जा रहा है अर्थात सेवक उच्चतर लोक की ओर चला जा रहा है, तब वे बाधा देते हैं। ऐसे समय में स्त्री-पुत्रों पर आघात आता है। आर्थिक तथा वैयक्तिक संकट आते हैं। इस विघ्न को जो मानव बर्दाश्त कर आगे बढ़ते हैं, उस पर देवता प्रसन्न होते हैं और उसकी सहायता करते हैं।'' बहिर्मुखी कर्मकाण्ड का निषेध करते हुए वे कहते हैं, ''चित्त का विक्षेप और भक्त दूर होने के बाद जो दर्शन होता है, वही है असली दर्शन।''

भक्ति के बाह्य प्रदर्शन को नंगा बाबा कोई महत्त्व नहीं देते। किसी व्यक्ति के हृदय में सही माने में भक्ति का आभास होने पर उसके आनन्द की सीमा नहीं रहती। इस तरह के भक्तिसिद्ध महापुरुषों को वे उचित मर्यादा देते।

जब एक भक्त ने बाबा से कहा, महाप्रभु श्री चैतन्य जगन्नाथजी के दर्शन करके संज्ञा-शून्य हो जाते थे तो बाबा ने कहा, ''महाप्रभु श्री विग्रह का दर्शन

करते हुए अन्तर में ब्रह्मदर्शन करते थे। ब्रह्म ही सबकुछ है। ये सब ऊँची बातें हैं।'' उन्होंने कहा, ''भगवान, मन्दिर इत्यादि, इन सब वस्तुओं को लेकर मिथ्या व्यवसाय करना मैं हेय समझता हूँ। जो इन कार्यों में लगे रहते हैं, उनका उद्धार होना मैं अत्यन्त कठिन समझता हूँ।''

एक दिन नंगा बाबा ने कहा, ''आत्मज्ञान के उदय होने से देह टूट जाता है।'' एक प्रश्न के उत्तर में बोले, ''ईश्वर स्वयं आकर प्रार्थना करते हैं, इसी के परिणामस्वरूप पूर्ण आत्मज्ञानी साधक को अपने शरीर की रक्षा करनी पड़ती है। इस शरीर के माध्यम से ईश्वर के अनेक कार्य सम्पन्न होते हैं। आत्मज्ञान की दीपशिखा एक साधक के शरीर से अन्यान्य साधकों के शरीर में संचालित होती है। इसी तरह साधना तथा सिद्धि की पवित्र परम्परा की रक्षा होती है।'' एक भक्त के प्रश्न के उत्तर में बाबा ने कहा, ''आत्मज्ञानी की इच्छा मात्र से सृष्टि उलट सकती है, प्रलय हो सकता है।''

''परन्तु बाबा, वेदान्त के भाष्य में आचार्य शंकर स्वयं कह गए हैं—जगत् व्यापार वर्जः। प्रकृति के ऊपर तथा सृष्टि के ऊपर आत्मज्ञानी का कोई कर्तव्य नहीं है, फिर?''

''शंकर की बात से घबड़ाओ मत'' बाबा ने कहा, ''देखो, श्रुति के साथ मेल है कि नहीं? श्रुति की बात याद रखना—ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति। जब ब्रह्म बन जाय, तब ब्रह्मविद् को किसी प्रकार की कमी क्यों रहेगी?''

एक व्यक्ति के अनुरोध पर बाबा बोले, ''इस आलमारी में से स्वरोदय योग का ग्रन्थ निकाल लाओ। कुछ दिनों में ही मैं तुम लोगों को सारे गूढ़ रहस्य सिखा देता हूँ। मात्र स्वरोदय योग ही क्यों, परकाया प्रवेश भी सिखा दूँगा। फिर भी यह प्रश्न रह जाएगा कि इन सबके माध्यम से क्या आत्मज्ञान होगा? स्पष्ट रूप से बता देना चाहता हूँ कि वह नहीं हो पाएगा। वरन आत्मज्ञान साधना के मार्ग में ये सब बाधा स्वरूप हो जाएँगे। मैंने किसी समय ये सब सीखा था, उसके बाद सब भूल जाना चाह रहा हूँ।''

भक्त तुरन्त बोल उठा, ''नहीं बाबा, यदि ऐसा है तो इन सारी वस्तुओं का हम लोगों को कोई प्रयोजन नहीं है।''

एक व्यक्ति पहले बहुत धनी था लेकिन बाद में विपन्न हो गया। उसके एक मित्र ने बाबा से उसका उद्धार करने का निवेदन किया। इस पर बाबा ने कहा, ''उसके पास में पैसा आने से वह विषय की खाई में गिर जाएगा। उसे अभाव में रखा जाय, तब उसका कल्याण होगा।'' महापुरुष की कल्याण की धारणा और साधारण मनुष्य की सोच में अन्तर स्पष्ट हो गया।

एक भारतविख्यात तांत्रिक बाबा के प्रति काफी कृतज्ञ थे क्योंकि बाबा का प्रोत्साहन पाकर ही इन्होंने संन्यास व्रत ग्रहण किया था। उसने एक ग्रन्थ भी रचा

था। एक दिन इस तांत्रिक ने बाबा के एक भक्त से कहा, "बाबा की मैं अपार श्रद्धा करता हूँ। हिमालय के नीचे ऐसे उच्च कोटि के महात्मा का मिलना दुर्लभ है। उन्हें मेरा श्रद्धार्घ्य अर्पित कीजिएगा तथा अनुरोध कीजिएगा कि अवकाश होने पर वे मेरे इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करें।" भक्त ने गिर्नारी बन्ता आश्रम में आकर बाबा के पास ग्रन्थ रखा और तांत्रिक के मंतव्य से उन्हें अवगत कराया। भक्त ने दो पृष्ठ पढ़ कर सुनाए तभी बाबा ने कहा, "किताब के लेखक से बोल देओ, किताब लिखना छोड़कर वह आत्म चिन्तन में ध्यान दे। उससे ही असली कल्याण आ जायगा।"

बुद्ध पूर्णिमा के दिन भगवान बुद्ध के अवतार के बारे में एक भक्त की जिज्ञासा प्रकट करने पर बाबा ने कहा, "तुम लोगों ने अवतार को सहज सुलभ कर डाला है। अवतार के आने पर युग परिवर्तन हो जाता है, जैसा राम और कृष्ण के काल में हुआ। आजकल तो प्रत्येक मुहल्ले में अवतार का आविर्भाव है, अरे, असल में तुम भी एक अवतार ही हो। हमारी सृष्टि में जितने भी जीव हैं, प्रत्येक ब्रह्म के ही अवतार हैं।" बाबा ने आगे कहा, "बुद्ध का गुरु कौन है? सद्‌गुरु की सहायता तथा ईश्वरीय शक्ति का प्रयोग छोड़कर परम प्राप्ति अथवा पूर्ण ब्रह्मज्ञान तो कभी सम्भव नहीं होता।" बाबा अक्सर कहा करते, "सद्‌गुरु जहाँ सशरीर उपस्थित नहीं हैं, वहाँ साधक के लिए देह की साधना में सिद्ध होना अथवा ज्ञान के उच्चतम सोपान पर आरोहण करना सम्भव नहीं है।"

जन्माष्टमी का दिन था। भक्त रामनन्दन मिश्र बाबा के समक्ष बैठकर मन ही मन श्रीकृष्ण की लीलाओं का स्मरण कर रहे थे। बाबा अन्तर्यामी थे ही। वे समझ गए और बोले—"देखो, लोग समझाते हैं कि मैं भक्ति को प्रधानता नहीं देता तथा मैं कृष्ण का विरोधी हूँ। किन्तु यह एकदम असत्य है। श्रीकृष्ण भगवान के अवतार हैं, इसमें सन्देह क्या? जो प्रेम भक्ति पाना चाहता है, उसे कृष्ण के प्रति इष्ट भावना रखनी ही होगी। कृष्ण-भजन तथा आत्म-समर्पण के माध्यम से ही कृष्ण को एवं पराभक्ति को पा सकेंगे। ब्रह्मज्ञान यदि उनके भाग्य में होगा तो कृष्ण ही इस परम प्राप्ति के लिए उनकी सहायता करेंगे।" बाबा ने फिर कहा, "कृष्ण ने गोपियों के साथ रासोत्सव किया था। इस सम्बन्ध में भागवत में एक जगह ध्रुवपद से च्युति का आरम्भ हुआ। यह सोचने की बात है कि इस जगह ब्रह्म धारण का इंगित है या नहीं? वहाँ देखा जाता है—रस की प्रगाढ़ता के परिणामस्वरूप इष्ट के साथ चित्त की एकात्मकता के कारण ताल भंग होता जा रहा है। वैष्णव के भजन तथा कीर्तन में क्या देख पाते हो? सभी बहिरंग सुर तथा ताल को पकड़े हुए हैं। यदि ऐसा ही होता है तब इष्ट के साथ-साथ वास्तविक तारतम्य भाव किस तरह होगा? प्रकृत रूप में जहाँ भागवत में कथित ध्रुवपद भंग होने की बात है, वहीं से आत्मज्ञान आरम्भ होता है।"

एक दिन संध्या-आरती के बाद सृष्टि के रहस्य की बात चल पड़ी। बाबा ने कहा, ''इस सृष्टि का रहस्य बहुत ही दुर्ज्ञेय है। जिन सभी उच्चकोटि के साधकों को पंचभूतात्मक ज्ञान हुआ है, मात्र वे ही रहस्य का भेद कर पाते हैं।'' विद्वानों द्वारा बाबा की इस स्थापना की खिल्ली उड़ाए जाने की बात पर बाबा ने रोष भरे स्वरों में कहा, ''उसकी बात छोड़ दो। वह क्या समझेगा? पंचभूत का थोड़ा भी ज्ञान नहीं हुआ उसको।''

एक फ्रांसीसी महिला रोजेनवर्ग भारतीय तत्त्व ज्ञान एवं साधना का परिचय प्राप्त करने के सिलसिले में भारत आई थीं। वे बाबा के आश्रम में भी कुछ दिन ठहरीं। पुरी के जन-जीवन में उस समय हलचल थी। गाँधीजी के शिष्य तथा अग्रणी समाजसेवी उन दिनों शहर में आए थे। जातीय जीवन के पुनरुत्थान के सन्दर्भ में उन्होंने अनेक भाषण दिए। एक दिन उन्होंने 'समाधि' के बारे में बताया। श्रीमती रोजेनवर्ग ने भी वह भाषण सुना। उन्होंने इसकी पूरी जानकारी बाबा को दी। थोड़ी देर तक उनकी बात सुनने के बाद बाबा बोले, ''बेकार तुमने इतना समय नष्ट किया। समाधि क्या है, उसे कुछ नहीं मालूम। तब तुम्हें कैसे बता सकेगा? जो साधक समाधि में प्रविष्ट हो चुका है, वह कभी बाजार में और सभा में खड़ा होकर चिल्ला सकता है?''

कलकत्ता विश्वविद्यालय के दर्शन विभाग के रीडर डॉक्टर अनिलराय चौधरी अविवाहित थे। साधना के विषय में उनकी जिज्ञासा कभी शान्त नहीं हुई थी। वे बाबा के पास आए। उनके पास बैठकर उनकी धीर-गम्भीर मुद्रा देख कर वे रोने लगे। बाबा ने उनका सिर पकड़ कर अपनी जाँघों पर टिका दिया और डॉ० चौधरी के आँसुओं से बाबा की जाँघ भींगती रही। जब वे थोड़ा स्वस्थ हुए तो बाबा ने उनसे जो कुछ कहा उसका सारांश इस प्रकार है—''क्यों असहायों जैसे रो रहे हो? ईश्वर ने तुम्हारे ऊपर अनेक कृपाएँ की हैं। स्त्री, पुत्र एवं संसार के बन्धन में जकड़ कर तो तुम्हें उन्होंने बाँधा नहीं है। सात्विक मन तथा वृत्ति भी प्रदान की है। तुम तुरन्त आश्रम में चले आओ। यहीं स्थायी रूप से जीवन के अन्तिम दिन तक रुक जाओ। आत्मचिन्तन में लीन हो जाओ।''

''बाबा, मैं एशियाटिक सोसायटी और कई अन्य प्रतिष्ठानों के साथ इकरारनामों से बँधा हूँ। उनके लिए लिखना समाप्त किए बिना कलकत्ता नहीं छोड़ पा रहा हूँ।''

''नहीं, नहीं। तुम वह सब छोड़कर यहाँ चले आओ। हो सके तो वापस नहीं जाओ, यहीं रुक जाओ। देखो, जीवन बड़ा क्षणभंगुर है। आत्म चिन्तन के कार्य में एक मुहूर्त भी गँवाना उचित नहीं है। तुम मेरे पास ही रुक जाओ।'' बाबा ने बार-बार आग्रह किया।

डॉ० चौधरी कलकत्ता चले आए। बाबा का प्रसंग आते ही उनमें अद्‌भुत रूपान्तर होता था। आँखों से आँसू झरने लगते। कुछ सप्ताह के भीतर ही डॉ० चौधरी चल बसे। अंतर्यामी बाबा सम्भवतः इसीलिए उन्हें अपने आश्रम में ही रखना चाहते थे। यदि वे बाबा के आश्रम में होते तो उनका आयुकाल बढ़ जाता और वे आत्म-साक्षात्कार के भाग पर भी आगे बढ़ने में समर्थ हो जाते। ऐसा कहना था कुछ संन्यासियों का।

एक दिन बाबा ने कहा, ''जिस मनुष्य ने आत्मज्ञान का अर्जन नहीं किया तथा प्रवृत्ति के प्रताड़नस्वरूप असहाय होकर भटकता रहता है, वह पशुतुल्य है।'' बाबा ने आगे कहा, ''गृहस्थों के भीतर भी सत्, त्यागी एवं आत्मज्ञानी लोग होते हैं। तुम यह मत सोचो कि साधु होने से ही कोई सच्चा ज्ञानी हो जाएगा। इसमें भी अनेक फालतू लोग होते हैं।''

बाबा ने पुराण की कथा सुनाई, ''दधीचि जैसे त्याग और तितिक्षावान थे वैसे ही तपस्वी थे। सभी उनका प्रचुर सम्मान करते थे। देवराज इन्द्र की सभा में सभी ऋषि दर्शन दे जाते थे, केवल दधीचि ही अपवाद थे। इन्द्र इससे दुःखी और रुष्ट हुए। सोच-विचार के बाद उन्होंने निश्चय किया कि दधीचि ऋषि के पास उनके स्वयं जाने की आवश्यकता है।

''एक दिन इन्द्र तपोवन में गए और ऋषि को साष्टांग प्रणाम करने के बाद उन्होंने करबद्ध निवेदन किया, ''ऋषिवर, आप स्वयं हमलोगों के पास नहीं आते हैं, इसीलिए मैं स्वयं आपके दर्शन के लिए उपस्थित हुआ हूँ। पहले एक प्रश्न निवेदित करना चाहता हूँ—मेरे विषय में आपकी धारणा क्या है?''

''कुत्ते के जैसा।'' दधीचि ने निर्विकार भाव से कहा।

''यह आप क्या कह रहे हैं ऋषिवर?'' देवराज इन्द्र चौंक गए।

''देवराज, मैंने ठीक ही कहा है। तुम राजस्व का भोग कर रहे हो तथा इन्द्रियों की चर्चा तो कुत्तों का कार्य है। इसीलिए तुम्हारे और कुत्तों के कार्यों में मुझे कोई पार्थक्य नहीं दिखाई पड़ा।''

कलकत्ते के एक युवा बैरिस्टर असाध्य रोग से पीड़ित थे। काफी इलाज किया लेकिन ठीक नहीं हुए। उनके एक मित्र बाबा के भक्त थे। उन्होंने बाबा से उनका जिक्र किया। बाबा ने कहा, ''तुम्हारे दोस्त की बीमारी है पुरुषत्वहीनता। पहले उसे दारू और पर-स्त्री प्रसंग छोड़ने को कहो। लेकिन यह भी सुन लो कि वह दारू और पर-स्त्री कभी नहीं छोड़ेगा। फिर हम कैसे उसे बचा सकेंगे? उसका प्रारब्ध उसे फिर उसी पापाचार में रख देगा।''

एक दिन प्रातःकाल एक व्यक्ति बाबा के आश्रम में गए। बाबा के एक भक्त से उनका परिचय था। भक्त ने उस व्यक्ति की विपन्नता की बात बाबा को बताते हुए उस व्यक्ति का उद्धार करने के लिए निवेदन किया। बाबा ने एक कथा

सुनाई, ''वैकुण्ठ में बैठे हुए नारायण और लक्ष्मी एक दिन बातचीत कर रहे थे। लक्ष्मी ने कहा, ''प्रभु, तुमने इस विश्व चराचर की सृष्टि अवश्य की है, परन्तु मनुष्य तुम्हें पाने के लिए अधिक व्याकुल नहीं है। वास्तविक रूप में वे मुझे ही चाहते हैं।'' कुछ तर्क-वितर्क के बाद निश्चय हुआ कि इस बात की सत्यता परखी जाय। मर्त्यलोक के एक दानी के घर दोनों उपस्थित हुए। लक्ष्मी महल में प्रविष्ट हो गईं और नारायण ने एक दरिद्र ब्राह्मण के वेश में भवन से संलग्न बगीचे की एक झाड़ी में आश्रय किया।

''सेठ के घर में लक्ष्मी सभी द्रव्यों का स्पर्श कर रही थीं और वह स्वर्ण में परिवर्तित होता जा रहा था। खाट, आलमारी, खाद्य-सामग्री……सभी कुछ सोने में परिवर्तित हो गया। सेठ और उसके परिवार के उत्साह की सीमा नहीं थी। सारा घर स्वर्ण से भर गया। स्थान रहा ही नहीं, अब क्या किया जाय। उन्होंने निश्चय किया कि बगीचे में नया घर बनवा कर स्वर्ण रखने की व्यवस्था की जाय। इस कार्य के लिए सेठ के आदमियों ने ब्राह्मणवेषी भिखारी को निकालने की तैयारी की। वृद्ध ब्राह्मण (जो नारायण थे) की प्रार्थना पर भी वे नहीं पसीजे। अन्ततः यही देखा गया कि लक्ष्मी की बात ही यथार्थ है। लोग जगतस्रष्टा परम पुरुष को नहीं चाहते, आत्मज्ञान की परम प्राप्ति को भी नहीं चाहते, मात्र अर्थ, वैभव चाहते हैं जो बन्धन का प्रधान कारण है।''

आगन्तुक श्रीपाल से बाबा ने कहा, ''श्वाँस ही जीवन है और इतने वर्षों से बहुत सी श्वाँस को तुमने व्यर्थ के कामों में नष्ट कर डाला है। अब अवशिष्ट श्वाँसों को ईश्वर की भावना में लगाओ। इसी से प्रकृत कल्याण होगा और प्राणों में यथार्थ शान्ति मिलेगी।''

बाबा ने एक दिन कहा, ''मैं तो आज एक ही दवाई लेकर बैठा हूँ—भवरोग की दवाई। अभागा मनुष्य मेरे पास भव-बन्धन के लिए आकर खड़ा होता है। नई-नई आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए मेरे पास दौड़ा चला आता है। किन्तु मेरी असली दवाई की बात तथा परम मुक्ति की बात पर वह ध्यान नहीं देना चाहता।''

कुछ वर्षों पूर्व एक रोगग्रस्त मृतकल्प रोगी बाबा के आशीर्वाद से बच गया। इस रोग को बाबा अपने शरीर पर धारण किए हुए थे। भक्त सेवक ज्ञानानन्द ने एक बार बाबा का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया था। बाबा ने कहा था, ''ज्ञानानन्द, वह हमारे तुणीर में एक ठो बाण है, जो हमको देहांत के रास्ते पर ले जाएगा।''

इसी बाण को एक दिन इस अद्वैत ब्रह्मज्ञानी ने तुणीर से बाहर निकाला जिससे शरीर काल व्याधि से आक्रान्त हो गया। कुछ दिनों के भीतर ही यानी २४ अगस्त १९६१ को आत्मज्ञान का यह आलोक स्तम्भ सदा के लिए बुझ गया।

●

तिब्बती बाबा

शिव चतुर्दशी की पुण्य तिथि थी। बालक नवीनचन्द्र को ठाकुर घर में पूजा-सामग्री की रखवाली का जिम्मा सौंप कर माँ तालाब में स्नान करने चली गई थीं। सारे दिन भाग-दौड़ से थके नवीन को नींद आ गई। माँ ने लौटकर देखा, कई चूहे नैवेद्य की थाली पर चढ़कर चावल और केले खाने में जुटे हैं। उनके आते ही लिंग विग्रह के ऊपर चढ़ते हुए बिलों में भाग गए। माँ ने नवीन को जगाया। डाँट लगाई—''तुम्हें सोने का कोई और समय नहीं मिला? देखो तो चूहों ने सभी नैवेद्य उच्छिष्ट कर दिया है। मुझे फिर से थाली सजानी होगी।''

थोड़ी देर तक मौन रहने के बाद बालक नवीन ने उत्तर दिया, ''जो ठाकुर अपने भोग के चावल और केले की रक्षा नहीं कर सकते, उसकी पूजा का क्या फल होगा माँ?''

''क्या कुलक्षण की बात कर रहा है? अन्ततः नास्तिक हो जाएगा क्या?''

''मैं उस ईश्वर की बात सोचता हूँ माँ, जो जल, थल, अंतरिक्ष तथा अनंत कोटि ग्रह, ताराओं में विद्यमान हैं। ईश्वर को इस घर में बैठाए रहने का मेरा मन नहीं करता।''

''इतनी बड़ी-बड़ी बातें कहाँ से सीख गया तू?'' माँ ने हँसते हुए कहा।

इसी बीच पुरोहित स्मृतिरत्न ने कमरे में प्रवेश किया। उन्होंने कहा, ''नवीन बड़ी-बड़ी बातें नहीं कर रहा है, अपने संस्कार के अनुरूप बातें कर रहा है। उसके सारे शरीर में अपूर्व सात्विक चिह्न विद्यमान हैं। पूर्व जन्म के त्याग-वैराग्यमय साधन संस्कार लेकर ही इसने जन्म ग्रहण किया है। मुझे विश्वास है कि बड़ा होकर यह वंश का नाम उज्ज्वल करेगा।''

नवीन की माँ ने कहा, ''पुरोहितजी, एक ज्योतिषी ने मेरी हस्तरेखा देखकर भविष्यवाणी की थी, माँ, तुम्हारे छठें गर्भ से एक पुत्र जन्म लेगा जो संसारत्यागी महात्मा बनेगा। नवीन मेरी वही सन्तान है।''

ज्योतिषी की भविष्यवाणी सही हुई। इस घटना के दो वर्षों बाद ही बालक नवीन ने सांसारिक मोह-माया त्याग दी और तिब्बती बाबा के नाम से प्रसिद्ध हुए।

बंगलादेश में सिलहट जिले के अधुना नामक गाँव में सन् १८२० में तिब्बती बाबा ने जन्म लिया था। पिता रामचन्द्र चक्रवर्ती एक साधारण जमींदार थे। धार्मिक कार्यों में इस परिवार की काफी रुचि थी। माँ भी काफी भक्तिमती थीं। नवीन चन्द्र का मन पढ़ाई-लिखाई में नहीं लगता था। आध्यात्मिक सवाल तथा सृष्टि का रहस्य उन्हें मथ रहा था। एक दिन नवीन ने माँ से कहा, ''मैं यह भी समझ रहा हूँ कि संसार का त्याग किए बिना मेरे जीवन की जिज्ञासाओं का उत्तर नहीं मिलेगा।''

''घर में बैठकर क्या धर्म नहीं होता'' माँ ने कहा, ''शास्त्र-पाठ करो, साधन-भजन करो, उसी से तुम्हें परम वस्तु का लाभ होगा।'' लेकिन जब नवीन ने माँ की बात नहीं मानी तो उन्होंने कहा, ''तुम ईश्वर के संधान में जा रहे हो तो मैं बाधक नहीं बनूँगी। आशीर्वाद देती हूँ कि कुल को पवित्र और उज्ज्वल करो।''

''माँ, तुम्हारी इतने दिनों की देव-पूजा सार्थक है, तुम महान हो।'' कहते हुए नवीन ने माँ को साष्टांग दण्डवत किया और परिजनों से विदा लेकर उसी रात घर से निकल पड़े।

नवीनचन्द्र परिव्राजन करते हुए गंगातट स्थित सिद्धपीठ कालीघाट गए। यहीं आदिगुरु की तलाश पूरी नहीं होगी तो पश्चिम की ओर अग्रसर होंगे। उन्होंने सोचा था।

कलकत्ता उस समय एक साधारण नगर था। भवानीपुर जंगल से घिरा था। इसी ग्राम के एक अंचल में भागीरथी के तट पर सिद्धपीठ कालीघाट अवस्थित था। कुछ दिनों तक इस क्षेत्र में घूमने-फिरने के बाद नवीन गया आ गए। दीनदयाल उपाध्याय गया के शीर्ष कविराज और शास्त्रविज्ञ पण्डित थे। एक दिन जब उनकी नजर नवीनचन्द्र पर पड़ी तो बोला, ''बेटा, तुम्हारे मुख पर प्रतिभा की दीप्ति है। भविष्य में तुम कर्मठ (कृती) पुरुष के रूप में सर्वत्र सम्मानित होगे। इस तरह घूम-फिर कर अपना अमूल्य जीवन नष्ट क्यों कर रहे हो? मेरी कुटिया में आकर निवास करो तथा दर्शन एवं आयुर्वेदशास्त्र की शिक्षा प्राप्त करो, इससे तुम्हारा मंगल होगा।''

''परन्तु मैं तो बैठे-बैठे बिना किसी कार्य के आपका अन्न-भक्षण नहीं कर पाऊँगा। इसके अलावा गृहस्थ के अन्न की भिक्षा ग्रहण करने का मेरी माता का निषेध भी है।'' नवीन ने कहा।

''ठीक है बेटा,'' कविराजजी ने कहा, ''मेरे औषधालय में एक कर्मचारी की आवश्यकता है। तुम उसमें कार्य करो। उसके पारिश्रमिक के रूप में तुम मेरे घर भोजन कर लिया करना। एक अर्थकारी वृत्ति को सीख लेना तुम्हारे लिए लाभप्रद होगा। तुम उपार्जन करते हुए अपने भोजन की व्यवस्था भी करोगे।''

नवीन राजी हो गए। उनके पास के पैसे भी खत्म होने को आए थे। माँ द्वारा दिया गया टट्टू घोड़ा भी गंगा पार करने से पूर्व ही त्याग दिया था। कुछ पैसे चोरी हो गए थे। इस नौकरी से उन्हें आयुर्वेद का कुछ ज्ञान भी हो जाएगा। इससे वे परोपकार भी कर सकेंगे और कुछ आय भी होगी। नवीन ने सोचा।

उपाध्यायजी के पास रहते तीन साल बीत गए। अब वे दुविधा में पड़ गए। आयुर्वेद की थोड़ी-बहुत जानकारी तो उन्हें हो गई थी लेकिन इससे उनका वह मकसद नहीं पूरा हो रहा था जिसके लिए उन्होंने गृह त्यागा था। एक दिन वे चुपचाप खिसक लिये और वाराणसी के मार्ग पर चल पड़े। कुछ दिनों की पैदल यात्रा के बाद वे वाराणसी पहुँचे। बाबा विश्वनाथ का दर्शन किया। साधुओं के मठों और अखाड़ों में घूमते रहे। इसके बाद वृन्दावन पहुँचे। यहाँ हर जगह 'जय राधे' की ध्वनि मुखरित हो रही थी। साधु कृष्ण और राधारानी की पूजा में आत्म-विभोर थे। पूरा वृन्दावन भक्तिरस से आप्लावित था। यमुनाघाट पर भ्रमण करते हुए नवीन की मुलाकात एक जमींदार के पुत्र जगन्नाथ चौधरी से हुई। धीरे-धीरे यह मित्रता घनिष्ठता में बदल गई। ज्ञात हुआ कि नवीन की तरह उसके मन में भी वैराग्य की भावना उत्पन्न हो चुकी है और उसे भी किसी समर्थ गुरु की तलाश है जिससे संन्यास की दीक्षा ले सके।

जगन्नाथ नवीन को लेकर एक कापालिक के यहाँ गए। ये शक्ति साधक वृन्दावन के दूसरी तरफ, यमुना के उस पार धारवाड़ के निर्जन जंगल में रहते थे। वहीं धूनी रमाकर तपस्या कर रहे थे। चर्चा थी कि इनमें मृत व्यक्ति को जिन्दा करने की शक्ति है। वे कृष्ण वर्ण तथा अजानु लम्बित बाहु वाले एक भीमकाय, रक्तवर्ण नेत्र, रुक्ष जटाओं वाले देदीप्यमान शक्तिपुरुष थे—साक्षात कालभैरव के मूर्त रूप। उस दिन साष्टांग दण्डवत और दर्शन करने के बाद दोनों लौट आए।

थोड़े ही दिनों बाद चौधरी भागते हुए नवीन के पास आए। उत्साहपूर्वक बोले, "हम दोनों के जीवन में बड़ा सुयोग आ गया है। महात्मा से अभी मिलकर आ रहा हूँ। वह परसों रात में अमावस्या के मध्य प्रहर में शक्ति साधना की विशेष क्रिया करेंगे। इसके बाद शव देह में जीवन का संचार करने के बाद इस क्रिया की समाप्ति होगी। इस अवसर पर उपस्थित रहने की हमें अनुमति दी है। हम लोगों को यमुना में स्नान करके तथा नवीन वस्त्र धारण करके जाना होगा। हो सकता है हमें उसी समय दीक्षा दे दें।"

चौधरी और नवीन निर्धारित समय से पहले ही धारवाड़ जंगल में पहुँच गए। मन्दिर में प्रवेश करने के बाद देखा कि भीतर के कक्ष में मशाल जल रही है। कापालिक का चेहरा भयानक और उग्र है। उसके गले में हड्डी की माला तथा ललाट पर बहुत बड़ा रक्त चन्दन का टीका है। कारणवारि पान करने के बाद नेत्र

रक्ताभ हो उठे हैं। इन लोगों को देखते ही बोले, ''तुम लोग आ गए हो, यह बड़ा अच्छा हुआ। दोनों आसनों पर बैठ जाओ।'' दोनों ने आसन ग्रहण कर लिया।

कापालिक ने एक दीपाधार नवीन को पकड़ाते हुए कहा, ''ध्यान रखना कि यह दीप बुझने न पाए। तेल खत्म हो जाएगा तो भाण्ड में रखा हुआ तरल पदार्थ डाल देना।'' दीप की दुर्गंध से नवीन विचलित हो गया। उसे देखकर कापालिक ने कहा, ''यह मृतक के माथे की चर्बी है। इसी कारण थोड़ी दुर्गन्ध आ रही है। दरअसल इस अनुष्ठान में तेल अथवा घी का प्रयोग वर्जित है।''

गर्भ-गृह में दीवार से टँगी दो मोटी रस्सियों के बारे में कापालिक ने कहा, ''यह रस्सी मन्दिर के गर्भ तक सीढ़ी की तरह चली गई है। मंत्र द्वारा जीवित एक शव इसी रस्सी के सहारे धीरे-धीरे अवतरण करेगा और तुम लोगों के पास आएगा। घबराना नहीं।''

अब कापालिक मन्दिर के गर्भ-गृह में प्रवेश करके गम्भीर स्वर में थोड़ी देर तक मंत्रोच्चारण करते रहे। क्षण भर बाद ही मन्दिर के विस्तृत कक्ष में एक अप्रत्याशित दृश्य प्रकट हुआ। दोनों रस्सियों के सहारे एक कृष्ण वर्ण मनुष्य का शव आ रहा है। इस शव में जीवन के लक्षण भी दिखाई दे रहे हैं। उसके दोनों हाथों में दो बड़े खड्ग हैं। यह शव उत्तेजित होकर विचित्र शब्दों का उच्चारण कर रहा है।

नवीन और चौधरी बुरी तरह डर गए। चौधरी हट्टाकट्टा युवक था। उसने डाली के ऊपर रखे खड्ग को उठाया और रस्सी के सहारे शव ऊपर आ रहा था उस पर जोरदार प्रहार करके उसे काट दिया। फिर दोनों गर्भगृह से निकल कर मन्दिर के प्रांगण में आ गए और भाग निकले। कापालिक इससे काफी क्रोधित हुआ और हाथ में मशाल लेकर दोनों को पकड़ने के लिए दौड़ा। दोनों लोग भागते-भागते खरोपा के जंगल के छोर पर आ गए। इसके बाद यमुना में छलाँग लगाई और तैरकर इस पार वृन्दावन तट पर आ गए। कापालिक निराश होकर बीच से ही लौट चुका था।

रात का आखिरी पहर था। ये लोग एक झोपड़ी के पास पहुँचे। भगवान का भजन गाते-गाते एक साधक बाहर निकला। साधक ने यहाँ आने का प्रयोजन पूछा तो युवकों ने रात में घटी पूरी घटना कह सुनाई। बाबा ने कहा, ''बेटा, तुम लोगों का भाग्य ठीक था। मौत के मुँह में जाते-जाते बचे हो। वह एक नर-घातक कापालिक है। उसने नौ नरमुण्डों का संकल्प ले रक्खा है ताकि नवमुण्डी आसन पर तपस्या करके सिद्धि प्राप्त कर सके। उसे कुछ सिद्धियाँ प्राप्त हैं। वह शव के साथ कुछ बाजीगरी दिखाकर भी अपने कुकर्म सिद्ध करता है।''

जगन्नाथ चौधरी ने जब घर जाकर यह कथा अपने पिता को बताई तो वे काफी क्रोधित हुए। क्षेत्र के प्रभावशाली जमींदार थे। उन्होंने अपने साथ कई

लोगों को लेकर इस कापालिक की खोज में जंगल में प्रवेश किया। किन्तु कापालिक का कहीं पता नहीं चला। मन्दिर में रात की सारी वस्तुएँ इधर-उधर बिखरी हुई थीं। कापालिक गायब हो चुका था।

नवीनचन्द्र ने कुछ समय वृन्दावन में बिताने के बाद परिव्राजन आरम्भ किया। कुरुक्षेत्र, पुष्कर, ज्वालामुखी होते हुए वह कश्मीर के प्रसिद्ध तुषार तीर्थ अमरनाथ पहुँचे। वहाँ से वापसी के समय उनकी भेंट एक सिद्ध योगी से हुई। योगी ने कुछ दिनों तक अपने पास रखकर उन्हें योग साधना की अनेक क्रियाएँ सिखाईं। कुछ दिनों बाद योगेश्वर ने नवीन से कहा, ''बेटा, अब मैं यहाँ से डेरा-डण्डा उठाऊँगा, तुम्हें भी अब मेरा साथ छोड़ना होगा।''

नवीन ने योगी से प्रार्थना की कि वे उन्हें स्वयं से विमुख न करें। लेकिन योगी ने ऐसा करने में असमर्थता व्यक्त करते हुए कहा कि, ''मैं तुम्हारा गुरु नहीं हूँ। तुम्हारे गुरु तिब्बत में हैं। तुम अब उसी तरफ परिव्राजन आरम्भ करो। लेकिन तिब्बत में प्रवेश करना बहुत कठिन होगा। तुम पहले नेपाल जाओ। वहाँ के प्रधानमंत्री मेरे भक्त हैं। मेरा नाम लेकर उनसे मिलना, वे तुम्हारी तिब्बत-यात्रा का प्रबन्ध करेंगे।''

नवीनचन्द्र नेपाल पहुँचे। वहाँ के प्रधानमंत्री ने व्यापारियों की टोली के साथ उन्हें तिब्बत में प्रवेश की व्यवस्था कर दी। कुछ दिनों तक नेपाल के मन्दिरों तथा साधना-पीठों का दर्शन करने के बाद वे तिब्बत चले गए। काफी खोजबीन के बाद उन्हें पता चला कि एक पर्वत की गोद में भरत गुहा अवस्थित है, वहीं एक शैव साधक रहते हैं। दुर्गम चढ़ाई पार करके नवीनचन्द्र इस साधक के पास पहुँच गए। इस शैव तांत्रिक साधक का नाम था—परमानन्द ठक्कर। योगबल और तंत्र-सिद्धि से प्राप्त दिव्य शक्ति के सहारे बाबा ने कई सौ साल तक शरीर धारण किया था। इन्हीं महात्मा से नवीनचन्द्र ने दीक्षा ग्रहण की और अपनी साधना के बल पर अल्पकाल में ही तिब्बती बाबा के नाम से प्रसिद्ध हो गए।

तिब्बती बाबा के गुरु तंत्र एवं योग युग्म रश्मियों के धारक थे। तिब्बती बाबा को उन्होंने इन दोनों साधनाओं में पारंगत बना दिया था। शिष्य के साधन जीवन के मूल में पूर्व जन्मों के सात्विक संस्कारों की भी दृढ़ भित्ति थी। इसके अलावा साधना के प्रति उनकी अखण्ड निष्ठा थी। इसीलिए शुद्ध-सत्व एवं शक्तिमान इस तरुण के आधार पर अकृष्ण भाव से अपने साधन ऐश्वर्य को ढालने लगे।

सात वर्ष की कठोर साधना की समाप्ति पर ठक्कर बाबा ने कहा, ''वत्स, तुम्हें मैं अपने हृदय से आशीर्वाद देता हूँ। अब तुम आप्तकाम हो चुके हो। अब तुम तिब्बत के जाग्रत देवस्थान एवं साधना पीठों में बैठ कर तपस्या करो और पूर्ण आत्मज्ञान का लाभ करो।''

इसी परिव्राजन काल में वे स्थानीय लोगों में तिब्बती बाबा के रूप में प्रचलित हो गए। उनका प्रभाव उच्च स्तर के लामाओं जैसा ही हो गया।

स्वनामधन्य पण्डित सत्यचरण शास्त्री महाशय एक बार परिव्राजन हेतु तिब्बत गए थे। एक तिब्बती मठ के मठाधीश लामा ने इनके बारे में शास्त्रीजी से चर्चा की थी। सिक्किम महाराज के लामा गुरु की पूजा-वेदी पर तिब्बती बाबा का चंदन मालायुक्त चित्र स्थापित है। एक सज्जन के प्रश्न करने पर इस चित्र को माथे से लगाकर लामा गुरु ने कहा, "हम लोगों में जिन लोगों ने इस महात्मा को देखा है, वे इनकी पूजा करते हैं। बहुत से तिब्बती साधक तथा गृहस्थ इनको एक परमश्रद्धेय लामा ही मानते हैं। काफी दीर्घ-अवधि तक तिब्बत में रहने के कारण वे इस देश के वासियों के लिए आत्मीय हो गए हैं।" तिब्बती बाबा लगभग बत्तीस वर्षों तक तिब्बत में रहे। इस दौरान उन्होंने न केवल प्राचीन योगियों के सान्निध्य का लाभ लिया वरन् सिद्ध लामा एवं बौद्ध तांत्रिकों के घनिष्ठ सम्पर्क में आए और उनसे साधना की निगूढ़ क्रियाएँ सीखीं। इसी दौरान उन्होंने आयुर्वेद में भी निपुणता हासिल की। अन्तिम सात वर्षों में बाबा ध्यान की गहराइयों में निमज्जित हो गए। कभी गगनचुम्बी हिम मण्डित गिरि गुहाओं में, कभी निर्झरणियों के किनारे और कभी घने जंगलों में बैठकर तपस्या करते। कुछ तिब्बतवासी उन्हें पागल बाबा कहकर भी पुकारते। पूर्ण मनस्काम होने के बाद वे मध्य एशिया की यात्रा पर निकल पड़े। कैलाश के निकट च्याँट्याँ क्षेत्र से ही इनकी पदयात्रा आरम्भ हुई। इस परिव्राजन के सम्बन्ध में एक भक्त अमियलाल मुखोपाध्याय ने आकर्षक वर्णन किया है—

"च्यांग् ट्यांग से तिब्बती बाबा विदेशी साथियों के साथ प्राचीन काल के प्रशस्त उत्तरगामी वाणिज्य पथ से मंगोलिया की राजधानी उर्गा नगर की ओर अग्रसर हुए। योग पारंगत होने से विजातीय भाषा-भाषियों के साथ व्यवहार में कोई असुविधा नहीं हुई। उर्गानगरवासी गणों ने भी इसी श्रेणी के एक भारतीय हिन्दू पर्यटक को अतिथि रूप में पाकर अपने को कृतार्थ अनुभव किया और उनकी इच्छानुसार उन्हें साइबेरिया भ्रमण में भी सुविधा तथा सुयोग प्रदान किया।

"तिब्बती बाबा ने इस स्थान से उत्तर स्थित साइबेरिया में प्रवेश किया। उर्गा से पेमात् चीन होकर प्राचीन राजपथ उत्तर और बैंकाक झील तक गया है। इसी झील के निकट एक पर्वत के ऊपर विशाल यज्ञभूमि है। वहाँ बुरकान देवता के लिए भारतीय वैदिक अश्वमेध-यज्ञ जैसा यज्ञ समय-समय पर अनुष्ठित होता है। यज्ञ के वृहद कुण्ड में अग्नि प्रज्वलित करके उसमें चारों पैर बाँध कर जीवित अश्व की आहुति दी जाती है और उसके साथ ही तारासुन नामक देशी सुरा भी डाल दी जाती है। इस क्षेत्र में वैदिक वज्र देवता इन्द्र भी विभिन्न नामों से पूजित हैं। चीन में भी पुरातन काल में इसका उल्लेख मिलता है।

''तिब्बती बाबा साइबेरिया से पूर्व चीन आए। वे कैलाश से काराकोरम, क्विलिन, आलटिन इत्यादि पर्वतीय रास्तों का संकट झेलते हुए दुर्गम जंगलों से पूर्ण तथा हिंस्र जन्तुओं की वासभूमि तथा पर्वतीय नदी-नालों को पार किया। चांट्यांग होते हुए उर्गा पहुँचने तक लगभग तीन हजार मील की पदयात्रा की।

''बहुत साल बाद कलकत्ता में रहते समय एक बार तिब्बती बाबा की झोली से रूसी, चीनी तथा मंगोलियन भाषा में लिखे अनेक पत्र तथा मानपत्र निकले थे।''

बाबा लगभग बीस वर्षों तक कलकत्ता तथा उसके आसपास के क्षेत्रों में रहे। चीन, मंगोलिया तथा साइबेरिया के भ्रमण के दौरान करीब ६ हजार मील की पदयात्रा की। इसके बाद बर्मा आ गए। अकिंचन और अपरिग्रही बाबा ने एक भक्त से कहा, ''तिब्बती लामाओं से भेषज विद्या तथा द्रव्य गुण की जो जानकारी सीखी उसी से मध्य एशिया भ्रमण में अपनी प्राण-रक्षा कर सका।'' परिव्राजन के दौरान असाध्य रोगों की चिकित्सा से भी कुछ आय हो जाती।

बाबा ने एलोरा के राजा को भी असाध्य रोग से छुटकारा दिला कर पुनर्जीवन दिया था।

हैदराबाद के निजाम द्वारा अपने प्रासाद में आयोजित धर्मसभा में भाषण देते हुए तिब्बती बाबा ने कहा, ''हिन्दू धर्म कोई साम्प्रदायिक धर्म नहीं है, वरन् यह सनातन धर्म है। हमारे सत्यद्रष्टा ऋषियों ने मानवात्मा एवं परमात्मा के अभेदत्व तथा ऐक्य का ही प्रतिपादन किया है। सत्य सर्वदा अपरिछिन्न एवं अविभाज्य है—इस आदर्श को प्रस्तुत करने में अन्य धर्मों—जैसा इसमें विरोधाभास नहीं है। मेरा धर्म यह स्पष्ट घोषणा करता है कि अविद्या हननकारी, वह परमात्मा जीवदेह में हंस रूप में विराजमान है। जो कुछ भी ऊपर, नीचे, दक्षिण या बाईं ओर, सम्मुख या पीछे है, वे वही हैं—स एवदः सर्वः। सब कुछ वही है। उन्हीं का स्वरूप मैं हूँ और मैं ही सब कुछ हूँ। अहमे वेदः सर्वः। हम लोगों का धर्म निर्भीक भाव से यह घोषणा करता है—मैं आत्मस्वरूप हूँ, मैं स्वाधीन हूँ। किसी से भय करने का मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। मात्र इतना ही नहीं, वरन् मैं ही अविनाशी परम सत्य हूँ।'' बाबा का भाषण उपस्थित जनों ने मंत्रमुग्ध होकर सुना। सभा के समापन पर स्वयं निजाम बाबा के समक्ष आए और बार-बार अपनी श्रद्धा के सुमन उनपर अर्पित किए। जब उन्होंने बहुमूल्य खिल्मअत प्रदान करने का प्रस्ताव किया तो बाबा ने कहा—''निजाम बहादुर, आपके इस प्रस्ताव के लिए धन्यवाद, परन्तु ये सब वस्तुएँ तो ग्रहण करना मेरे लिए सम्भव नहीं है। वास्तविक साधु और गृहस्थ के मनोभाव में काफी अन्तर है। आप जिसे धन, ऐश्वर्य के नाम से पुकारते हैं, वह मेरी दृष्टि में बंधन मात्र के सिवा कुछ नहीं है।''

मद्रास क्षेत्र में थोड़े दिनों तक निवास करने के बाद बाबा उत्तर भारत चले आए। नैमिषारण्य, अयोध्या आदि तीर्थस्थलों का भ्रमण करने के बाद काशीधाम आए। एक दिन तिलभाण्डेश्वर के पास की गली में घूम रहे थे। सहसा एक ब्रह्मचारी वेशी भीमकाय साधक सामने आ खड़ा हुआ। प्रणाम निवेदित करने के बाद कहा, "बाबा, मैं मुमुक्ष होकर देश-देशान्तर में भ्रमण कर रहा हूँ। आपको देख कर मुझे प्रतीत हो रहा है कि आप ही मेरे निर्दिष्ट गुरु हैं। कृपा करके मुझे दीक्षा दें, जिससे यह जीवन सफल हो।"

बाबा ने कहा, "देखते ही सद्‌गुरु की पहचान हो गई? तुम तो बाबा खूब चतुर हो! दीक्षा शिक्षा लेने से पहले ही तुमने उसका फल प्राप्त कर लिया है और शक्तियाँ भी अर्जित कर ली हैं।"

"अपने चक्षुओं से नहीं वरन् आप जैसे एक सिद्ध महात्मा के चक्षुओं से मैंने आपको पहचान लिया है। कुछ दिन पूर्व हिमालय क्षेत्र में परिव्राजन कर रहा था। वहीं बड़े रहस्यमय ढंग से इन महात्मा से परिचय हुआ। उन्होंने ही कहा— "जल्दी काशीधाम पहुँचो। पहुँचने के दूसरे ही दिन तुम्हें अपने निर्दिष्ट गुरु का दर्शन मिल जाएगा। पहचानने में तुम्हें कोई कष्ट नहीं होगा।" उसके बाद उन्होंने चेहरे का भी वर्णन किया और उसी से आपका चेहरा हूबहू मिल गया। इसीलिए तो कृपा-भिक्षा चाहता हूँ।"

"अच्छी बात है, परन्तु बाघ से लड़ाई करने का शौक अकस्मात मिट कैसे गया?"

"बाबा, यह बात सत्य है कि मैंने अपने शारीरिक बल के गर्व के नशे में बाघों से लगातार लड़ाई की है। पता नहीं, मेरा वह नशा एक दिन अनायास लुप्त कैसे हो गया। अब मन के व्याघ्र को पददलित करने की सोच रहा हूँ। परन्तु इस कला से तो मैं सर्वथा अनभिज्ञ हूँ।"

"वन का बाघ ही अच्छा था रे। मन के बाघ पर लगाम लगाना अधिक कठिन है। जानते हो, वायु पर विजय प्राप्त करके मन को वश में करना होता है। यह बाघ तो वायु नहीं, सिंह है। वश में आते ही तुम सिद्धि के द्वार में पहुँच जाओगे, वश में न आने पर कभी-कभी इसी के हाथों प्राण भी विसर्जित कर देने पड़ते हैं।"

"इसीलिए तो आपकी शरण में आया हूँ।"

"शिष्य के कान कभी-कभी जोर से ऐंठने पड़ते हैं। उस समय पलायन तो नहीं कर जाओगे?"

"एक बार चरणों में आश्रय देकर परीक्षा लीजिए।"

"घबराओ नहीं, तुम्हारा कार्य होगा। जिन महात्मा ने तुम्हें मेरे पास भेजा है उनसे मैं भिज्ञ हूँ। इतनी देर से यहाँ पर तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रहा था।"

इस मुमुक्ष का नाम श्यामाकान्त मुखोपाध्याय था। यह ढाका का रहने वाला था। अद्‌भुत बलशाली था। इसकी एक सर्कस पार्टी थी, जिसमें बाघ से मल्लयुद्ध कर अद्‌भुत शौर्य का प्रदर्शन करता था। अचानक इस संसार से मोहभंग हो गया और मुक्ति के मार्ग पर चल पड़े। हिमालय की तराई में एक महात्मा से मुलाकात हुई। महात्मा ने श्यामाकान्त की शक्ति की प्रशंसा की तो वे गर्व से फूले नहीं समाए। महात्मा ने अपना चिमटा जमीन में गाड़ कर उसे उखाड़ने को कहा। श्यामाकान्त ने पूरा जोर लगाया लेकिन वह टस से मस नहीं हुआ। अन्ततः हार गए। महात्मा ने स्नेहपूर्वक कहा, "बेटा, तुम देख चुके कि तुम्हारी शारीरिक शक्ति कितनी नगण्य है।"

श्यामाकान्त का गर्व चूर हो चुका था। वे महात्मा के चरणों में गिर पड़े और आश्रय तथा दीक्षा की याचना की। महात्मा ने उन्हें काशी में रह रहे तिब्बती बाबा की शरण में जाने का निर्देश दिया।

तिब्बती बाबा ने श्यामाकान्त को संन्यास दीक्षा दी। १८९९ में दीक्षा देने के बाद उनका नाम रखा—सोहं स्वामी। इसके बाद तपस्या का अध्याय शुरु हुआ। तपस्या इतनी कठोर कि आहार और निद्रा का भी ख्याल नहीं। मल-मूत्र का भी ख्याल नहीं। स्वयं तिब्बती बाबा अपने शिष्य की मल-मूत्र की सफाई करते। ६ महीने बाद इन्हें साधना के बारे में कुछ निर्देश देकर तिब्बती बाबा चले गए। सोहं स्वामी भी परिव्राजन पर निकल पड़े। अन्ततः साधनारत अवस्था में नैनीताल के समीप गेटिया गाँव स्थित अपने आश्रम में उन्होंने शरीर का त्याग किया।

तिब्बती बाबा कलकत्ता को केन्द्र बनाकर इधर-उधर भ्रमण करते रहे। मधुपुर उनका प्रिय स्थान था। उसी के समीप रहने वाले सतीश बन्धोपाध्याय नामक एक पत्रकार बाबा के काफी करीब आ गए। उन्होंने बाबा के जीवन दर्शन का अध्ययन किया। उनका कहना था कि बाबा निरीश्वरवादी अथवा शून्यवादी बौद्ध थे या उसी तरह के कोई साधक। ईश्वर के सम्बन्धों में प्रायः मौन रहते और आत्मचिंतन को प्रधानता देते। इनके जीवन का दूसरा पहलू जनकल्याण था। द्रव्यगुण के ऊपर उनका असाधारण अधिकार था। इसी से असाध्य रोगों की चिकित्सा किया करते। औषधि के रूप में कभी-कभी उन्हें कृष्ण साँड़ का चमड़ा, बादुर का मांस और भैंसे के सींग आदि का व्यवहार करते देखा गया। एक कुष्ठ रोगी का रोना-धोना देख कर बाबा ने बाजार से एक हाँड़ी मँगाई। उसमें कुछ औषधियों के साथ मांस डाल कर जमीन के नीचे गड़वा दिया। कुछ दिनों बाद हाँड़ी निकाली गई। उसमें से भयंकर दुर्गन्ध उठ रही थी। कुछ दिनों तक व्यवहार करके कुष्ठ रोगी को ठीक कर दिया। चिकित्सा के क्षेत्र में वे धन्वंतरि के स्वरूप थे।

तिब्बती बाबा वर्धमान के पालितपुर में थे। वहाँ के रहने वाले एक सज्जन थे भूतनाथ दा। उनका पुत्र यकृत की गड़बड़ी तथा ज्वर के कारण कंकाल-मात्र रह गया था। डॉक्टरों ने जवाब दे दिया था। वे लोग पुत्र को लेकर बाबा के पास आए। बाबा उनके आर्तनाद से द्रवित हो उठे। उन्होंने एक सफेद रंग का भेंड़ का बच्चा मँगाया। पूरी रात एक तांत्रिक अनुष्ठान करते रहे। प्रातः होने पर देखा गया कि भूतनाथ का पुत्र तो स्वस्थ हो गया किन्तु भेड़ का बच्चा बीमार हो गया। पुत्र का रोग उसके भीतर स्थानान्तरित हो गया। कुछ देर बाद बाबा स्वयं भीषण ज्वर से आक्रान्त हो गए। उनका शरीर पीला पड़ गया? तभी लोगों ने देखा कि भेंड़ का शावक धीरे-धीरे स्वस्थ होता जा रहा है। कई घण्टे बाद बाबा भी स्वस्थ हो गए।

पालितपुर के जमींदार और भूतनाथ के प्रयास से पालितपुर में ही तिब्बती बाबा के लिए एक स्थायी आश्रम का निर्माण हुआ। नाम रखा गया प्रज्ञा मन्दिर। १८ नवम्बर १९३० ईस्वी को इसी आश्रम में बाबा ने १८२ वर्ष की अवस्था में शरीर-त्याग किया।

●

गोस्वामी लोकनाथ

श्री गौरांग के नवीन प्रेमभक्ति की लहर उत्तर बंगाल के तालखड़ी गाँव में भी पहुँच चुकी थी। तालखड़ी के संस्कृत टोल के तरुण पण्डित लोकनाथ चक्रवर्ती आनन्दित थे। गौरांग तो उनके घनिष्ठ मित्र थे जो विश्वम्भर मिश्र के नाम से अभिहित थे। दोनों समवयस्क थे। आचार्य अद्वैत के सान्निध्य में जब लोकनाथ भागवत का अध्ययन कर रहे थे उसी समय विश्वम्भर पण्डित गंगादास के टोल पर व्याकरण का पाठ कर रहे थे। वही विश्वम्भर गौड़ीय वैष्णवों के महानायक के रूप में आविर्भूत हुए जिन्हें श्रेष्ठ साधक साक्षात् भगवत्स्वरूप समझते थे। लोकनाथ ने संसार-त्याग का संकल्प लिया और वे नवद्वीप में उपनीत हुए।

गौरांग प्रभु अपने अलिंद में शिष्यों के बीच श्रीकृष्ण-लीला की चर्चा कर रहे थे तभी लोकनाथ वहाँ उपस्थित हुए। विरहातुर लोकनाथ एक कटे वृक्ष की तरह प्रभु के चरणों पर गिर पड़े। गौरांग प्रभु ने उन्हें प्रेमालिंगन में आबद्ध कर लिया। दोनों लोग आह्लादित थे। लोकनाथ के नयन, मन और प्राण मानो सार्थक हुए। प्रभु की आज्ञा से लोकनाथ घर चले गए, लेकिन रातभर सो नहीं सके।

दूसरे दिन जब लोकनाथ गौरांग प्रभु के पास आए तो उन्होंने उन्हें वृन्दावन जाने को कहा। लोकनाथ इस आदेश से बहुत दुःखी हुए। उन्हें वृन्दावन में कृष्ण तीर्थों के उद्धार का कार्य सौंपा गया जिसे तपस्या के साथ पूरा करना था। लोकनाथ प्रभु के आदेश के पाँच दिनों बाद वृन्दावन के लिए रवाना हुए। उनके साथ भूगर्भ भी गए।

वृन्दावन में श्रीकृष्ण लीला स्थलों के पुनरुद्धार के प्रथम पथिक थे गोस्वामी लोकनाथ। उनकी लगातार चेष्टा के परिणामस्वरूप ही सुदूर दुर्गम अरण्य में भक्तों का समागम शुरू हुआ। लोकनाथ द्वारा डाली गई नींव पर ही परवर्ती काल में रूप, सनातन और श्रीजीव प्रभृति-प्रतिभाशाली गोस्वामियों ने प्रेमधर्म के प्राण-केन्द्र वृन्दावन में गौड़ीय धर्म एवं संस्कृति का विराट सौंध खड़ा किया।

लोकनाथ गोस्वामी का एक और अवदान था नरोत्तम को दीक्षा देना जो बाद में गौड़ीय धर्म के अन्यतम प्राणपुरुष सिद्ध हुए। अनुमानित तौर पर १८८४ ईस्वी में यशोहर जिला के तालखड़ी ग्राम में गोस्वामी लोकनाथ का जन्म हुआ। उनके पिता का नाम पद्मनाभ चक्रवर्ती और माता का नाम सीता देवी था। पद्मनाभ

एक प्रख्यात पण्डित थे। उन्होंने नवद्वीप में रह कर विद्योपार्जन किया था और वैष्णवाचार्य श्री अद्वैत से वैष्णव धर्म में दीक्षित हुए थे। पद्मनाभ ने एक चतुष्पाठी (संस्कृत टोल) की स्थापना की। लोकनाथ इनकी तृतीय संतान थे।

बाल्यावस्था में लोकनाथ ने अपने पिता की चतुष्पाठी में ही शिक्षा ग्रहण की। १४ वर्ष की अवस्था में वे संस्कृत साहित्य और शास्त्र में निपुण हो गए थे। उच्चतर शिक्षा के लिए वे नवद्वीप गए। उन्होंने अपने पिता के गुरु अद्वैताचार्य के समक्ष भागवत का पाठ प्रारम्भ किया। गदाधर उनके अन्यतम सहयोगी थे। अद्वैत की शास्त्र-व्याख्या और वैष्णव-साधना से प्रभावित होकर लोकनाथ कृष्ण-भजन और कृष्ण तत्त्व-अध्ययन में अभिरुचि लेने लगे। कई वर्षों के उपरान्त वे भागवत-तत्त्व के आधिकारिक विद्वान हो गए। अब उनके अन्तर में कृष्ण-प्रेम की भावना जाग उठी। अतएव अद्वैताचार्य ने उन्हें कृष्ण-मंत्र की दीक्षा दी। इसी के साथ ही लोकनाथ के जीवन में दूरगामी परिवर्तन आ गया। अन्तर्मन में प्रेमाभक्ति का रस उत्पन्न होने पर वे साधना, तत्वानुसंधान और साधन-भजन में निविष्ट हो गए।

नवद्वीप में निवास के दौरान ही लोकनाथ की विश्वम्भर से घनिष्ठता हो गई। नवद्वीप में अध्ययन समाप्त कर लोकनाथ अपने गाँव लौट आए और चतुष्पाठी में अध्यापन कार्य करते हुए और एक विद्वान अध्यापक तथा कृष्ण-भक्त आचार्य के रूप में उन्होंने ख्याति अर्जित की। एक जनश्रुति के अनुसार विश्वम्भर एक बार तालखड़ी ग्राम में आए थे। लोकनाथ के पिता पद्मनाभ ने गाँव की सीमा पर जाकर उनकी अगवानी की थी और अपनी अतिथिशाला में रखा था। इस घटना के कई साल बाद विश्वम्भर श्री गौरांग प्रभु के नाम से विख्यात हुए।

लोकनाथ के गृह-त्याग को उनके पिता सहन नहीं कर सके और उनके वैराग्य ग्रहण करने के कुछ ही समय पूर्व इहलीला समाप्त कर दी। लोकनाथ ने अग्रहण महीने की एक रात को घर छोड़ा था और कृष्ण-कृष्ण का जाप करते चल पड़े थे। तीन दिनों तक पैदल चलने के बाद वे नवद्वीप में गौरांग प्रभु का दर्शन कर धन्य हुए थे। लेकिन इस दर्शन के मात्र पाँच दिनों बाद ही उन्हें वृन्दावन जाना पड़ा था।

लगातार तीन माह चलकर लोकनाथ और भूगर्भ वृन्दावन पहुँचे थे। दोनों ने मथुरा तथा ब्रजमण्डल के अनेक स्थलों का भ्रमण करना शुरू किया और इसके साथ ही शुरू हुआ श्रीकृष्ण के लीला-स्थलों के अनुसंधान का कार्य। शास्त्र, पुराण और जनश्रुतियों से संकेत पाकर उन लोगों ने अनेक स्थानों का सूक्ष्म निरीक्षण किया। मथुरा और वृन्दावन का बहुत बड़ा भाग उस समय जंगल

से आच्छादित था। मार्ग दुर्गम थे। तस्करों और दस्युओं का आतंक था। दोनों लोगों को कार्य-सम्पादन का कोई मार्ग दिखाई नहीं दे रहा था।

स्थानीय साधुओं के पास पुराण-वर्णित कृष्ण के लीला-स्थलों का उल्लेख अवश्य मिलता था परन्तु उनकी प्रामाणिकता जानने का कोई रास्ता नहीं दिखाई दे रहा था। सभी स्थान जंगल में परिवर्तित हो गए थे जिनमें जंगली जातियों ने अपना बसेरा बना लिया था।

वृन्दावन के लुप्त तीर्थों के दर्शन और उद्धार के लिए अद्वैताचार्य और नित्यानन्द प्रभु ने भी काफी चेष्टा की थी लेकिन उनका प्रवास बहुत कम समय तक रहा। इसके विपरीत लोकनाथ और भूगर्भ ने स्थायी रूप से रहने का संकल्प किया था। लेकिन इन लोगों को अनेक कष्टों का सामना करना पड़ रहा था। निद्रा और आहार का कोई ठिकाना नहीं था। श्रीकृष्ण के लीला-स्थलों का कोई चिह्न दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था।

मथुरा का उल्लेख रामायण में भी मिलता है। महर्षि वाल्मीकि कहते हैं— ''इषं मधुपुरी रम्य मधुरा देव निर्मिता।'' यही मधुपुरी बाद में मधुराह हो गया और उसी का अपभ्रंश हुआ मथुरा। परवर्ती काल में दक्षिणात्यों ने मधुराई अथवा मदुरा नगरी का निर्माण किया। शास्त्र और पुराणों के अनुसार मधु दैत्य ने मधुराई की स्थापना की थी। उसके अनुज शत्रुघ्न ने मधुपुरी अथवा मधुरा पर अपना अधिकार जमाया। बाद में शूरसेन वंश के आर्यों ने यहाँ अपना निवास स्थापित किया और शक्तिशाली राजवंश के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त की। इसी वंश में ययाति पैदा हुए जिनके पुत्र यमदुर को यादवों ने पराजित किया। इन्हीं यादवों की वृष्णिशाखा में अवतार लिया वासुदेव कृष्ण ने।

युधिष्ठिर ने हिमालय-यात्रा पर प्रस्थान से पूर्व श्रीकृष्ण के पौत्र वज्रनाभ को मथुरा मण्डल के राजा के रूप में राज्यारोहण किया। उसके उत्साह और प्रयास से श्रीकृष्ण के कतिपय विग्रहों का निर्माण हुआ जिनके नाम हैं—श्री गोविन्द, श्री मदनगोपाल एवं श्री गोपीनाथ। इसके बाद विग्रहों की अर्चना-पूजा की पद्धति प्रवर्तित हुई। इसके परिणामस्वरूप आम जनता के बीच ये विग्रह जाग्रत विग्रह के रूप में प्रतिष्ठित हुए। धीरे-धीरे भक्तों के प्रयास से भगवान श्रीकृष्ण के अनेक लीला-स्थल नवीन रूप में आविष्कृत हुए और इनकी गणना पवित्र तीर्थस्थलों में होने लगी।

परवर्ती काल खासतौर से कलियुग के प्रभाव से सभी विग्रह और तीर्थ लुप्त हो गए। बौद्ध और जैन धर्मों के प्रभाव से ब्रजमण्डल और मथुरा की धर्म-संस्कृति को जबर्दस्त आघात लगा। चीनी परिव्राजकों ने मथुरा का चित्रण एक बौद्ध नगरी के रूप में किया है। कालक्रम में मथुरा और ब्रजमण्डल की आबादी कम हो गई

और सम्पूर्ण अंचल अरण्य में परिवर्तित हो गया। वृन्दावन पौराणिक युग में एक वन के रूप में अवस्थित था। अनेकानेक साधु, महात्मा और भक्त अपने-अपने घरों का परित्याग करके इस जनपद के आसपास निवास करते थे। स्कन्दपुराण में वृन्दावन का उल्लेख मिलता है। इतिहासविद् श्री सतीशचन्द्र मित्र के अनुसार— चौरासी कोस की सीमा में यह विशाल वन अवस्थित है। अभी भी इसके बारह वन और चौबीस तपोवन तीर्थस्थान में परिणत हुए हैं। पूर्व काल में इन सभी में मुनियों के आश्रम थे। साधकगण स्वेच्छा से साधन-भजन करते थे और वनों के मध्य में आभीर प्रकृतिं उन्तत जातियों तथा अन्य जंगली जातियों की बस्तियाँ यत्र-तत्र फैली हुई थीं। सुदूर पश्चिम के सीमान्त गिरि-पथ द्वारा जब मुसलमानों की वाहिनी धन-वैभव लूटने की प्रत्याशा में भारत में प्रवेश करने लगी तो मथुरा की उपनगरी होने के कारण वृन्दावन को आक्रमण का परिणाम भुगतना पड़ा।

गजनीपति महमूद ने जब मथुरा को लूटा और देव-विग्रहों को भग्न कर दुर्भेद्य गगनचुंबी मन्दिरों को धराशायी किया तब वृन्दावन भी उसके प्रकोप से वंचित न रहा। वृन्दावन की परिक्रमा के अन्तर्गत एक वन का नाम है महावन। वहाँ का राजा महमूद से पराजित हुआ और उसने उसके चरणों पर गिर कर क्षमा-याचना की परन्तु उसकी रक्षा न हुई। जब उसने अपनी प्रजा की निर्मम हत्या देखी तो आत्महत्या कर ली। इससे मथुरा के बहुत से लोग पलायन कर गए।

१२वीं शताब्दी के अन्तिम समय में गौड़ाधिपति लक्ष्मण सेन के सभा पण्डित जयदेव जब वृन्दावन पधारे थे तो यह स्थान जंगल था। बंगालियों के लिए यह गौरव की बात है कि उन्होंने ही वृन्दावन के जंगलों को आबाद करके वहाँ भक्ति की नींव डाली थी। उस समय बंग-देश का स्वर्णिम युग था। इसी युग में श्री गौरांग देव का आर्विभाव हुआ नवद्वीप में। उनकी प्रारम्भिक अवस्था में ही उनकी अलौकिक शक्तियों के प्रभाव से सभी समस्याओं एवं विकारों का अभिनव समाधान हो गया। उन्हीं के प्रयास से वृन्दावन में बंगालियों का एक नवीन उपनिवेश स्थापित हो चुका था। उन उपनिवेशिकों का एकमात्र लक्ष्य था— भक्तिराज्य की स्थापना, भक्तिवाद की नींव डालना तथा लीला-धर्म का प्रवर्तन। इन्हीं के अग्रदूत थे गोस्वामी लोकनाथ और दूसरे ब्राह्मण श्री भूगर्भ गोस्वामी।

लोकनाथ के वृन्दावन पहुँचने के दो माह बाद ही गौरांग प्रभु ने संन्यास ग्रहण कर लिया और उनका नया नाम पड़ा श्री चैतन्य। पुरी में कुछ दिनों तक रहने के बाद श्री चैतन्य दक्षिण की यात्रा पर निकल पड़े। श्री चैतन्य के दर्शन के लिए लोकनाथ और श्री भूगर्भ भी दक्षिण भारत की ओर प्रस्थान कर गए। परन्तु श्री चैतन्य के दर्शन का सौभाग्य नहीं मिला।

इधर श्री चैतन्य पुराधाम में आकर प्रेमभक्ति आन्दोलन की नींव डाल रहे थे और इससे आकर्षित होकर भारी संख्या में वैष्णव साधकगण एकत्रित हो रहे थे। इसके बाद गौड़ जाकर प्रभु ने रूप और सनातन को आत्मसात किया। बाद में जब श्री चैतन्य वृन्दावन गए तो लोकनाथ और श्री भूगर्भ वहाँ नहीं थे। उस समय वे दोनों लोग दक्षिण में उनकी तलाश कर रहे थे। जब वे लोग दक्षिण की यात्रा से वापस वृन्दावन लौटे तो श्री चैतन्य प्रयाग प्रस्थान कर चुके थे। वे लोग तुरन्त प्रयाग के लिए चल पड़े। रात्रि में एक वृक्ष के नीचे आश्रय ग्रहण किया। लोकनाथ को स्वप्न में श्री चैतन्य ने दर्शन दिया और मधुर कण्ठ से बोले—

सदा तेरे पास है मेरा रहना
वृन्दावन छोड़ तुम कहीं न जाना॥
प्रयाग होकर जाऊँगा मैं नीलाचल।
सुन पाओगे तुम मेरा वृत्तांत सकला॥

(नरोत्तम विलास)

इस स्वप्न के बाद लोकनाथ ने वृन्दावन लौटने का निश्चय किया। लौटते समय वे ब्रजमण्डल के किशोरी कुण्ड के समीप पहुँचे। पवित्र कुण्ड में स्नान करते समय उन्हें श्री राधा विनोद के एक परम सुन्दर विग्रह की प्राप्ति हुई। इस विग्रह की सेवा और जप ही उनके जीवन का प्रधान उपजीव्य हो गया। अकिंचन लोकनाथ के लिए प्रभु की पूजा के उपकरणों की व्यवस्था असंभव थी। उनके पास तो एक पर्णकुटीर भी नहीं थी। वनवासी इन साधु को बहुत प्यार करते थे। एक दिन उन लोगों ने कहा, "बाबाजी, आप तो स्वयं इधर-उधर घूमते-फिरते रहते हैं लेकिन ठाकुर को तो भली-भाँति रखना होगा। आपके लिए हम लोग एक झोपड़ी डाल देते हैं, उसमें रखकर ठाकुर की भली भाँति पूजा-अर्चना करें।" लोकनाथ ने कहा, "बाबा, जब तक मैं जंगलों में घूमता रहूँगा, तब तक ठाकुर भी मेरे साथ रहेंगे। मेरा निवास होगा वृक्षों के नीचे और प्रभु रहेंगे कोटरों में।" प्रत्येक दिन लोकनाथ वन-तुलसी और वनफूलों का चयन कर और निविष्ट हो विग्रह पूजा सम्पन्न करते थे। वनों से कंद-मूल, शाक-पात और फल तोड़कर लाते और भगवान को भोग-राग प्रस्तुत करते। विग्रह को सुलाने के लिए पुष्प-शैय्या बनाते और उस पर सुलाने के बाद वृक्ष पल्लवों का चमर डुलाते। नित्य सेवा-पूजा और जप-ध्यान के पश्चात भूगर्भ को साथ लेकर पूरे दिन लुप्त, अज्ञात और प्रच्छन्न लीला-स्थलों का संधान करते। उन्होंने पके हुए पटुए के गुच्छों से निर्मित झोले में अपने विग्रह को स्थापित कर उस झोले को गले से लटका लिया और जंगलों में घूमते रहे।

लोकनाथ के पवित्र चरित्र, सेवा-निष्ठा, वैष्णवोचित दीनता और उनके प्रेमावेश को देखकर वनवासी लोग उनके प्रति आकृष्ट होने लगे। दूर के जनपदों

से लोग आने लगे। वे विग्रह की सेवा हेतु फल-फूल खरीद कर ले आते। प्रभु को आनन्द से भोग लगा कर लोकनाथ उन फलों को भक्तों और वनवासियों के मध्य वितरित कर देते। सेवा-पूजाजन्य कोई भी उपचार या भेंट वे एक दिन के लिए भी संचय नहीं करते। इस तपस्या और वैराग्यमय कर्मनिष्ठा का फल मिलना प्रारम्भ हो गया। लोकनाथ ने एक-एक करके कई लुप्तप्राय तीर्थों का उद्धार किया। भक्त समाज लोकनाथ की ओर श्रद्धा से देखने लगा। श्री चैतन्य ने ब्रजमण्डल में पधार कर अनेक तीर्थस्थलों और कुण्डों का आविष्कार किया था। इससे साधु-संन्यासियों और जनसाधारण में नवीन श्रद्धा का प्रादुर्भाव हुआ। कुछ दिनों बाद श्री चैतन्य ने पुरी से दो शास्त्रविदों रूप और सनातन को वृन्दावन भेजा। इससे लोकनाथ का कार्यभार बहुत कम हो गया। अब पूर्व की तरह उन्हें वन-प्रांतरों में दौड़ने की कोई जरूरत नहीं रह गई।

रूप और सनातन के साथ बैठकर लोकनाथ ने अपने द्वारा खोजे गए तीर्थस्थलों का शास्त्र और पुराणों के तथ्यों से मिलान किया। दोनों मनीषियों द्वारा अनुमोदन करने के बाद इनका प्रकटीकरण किया। इस अवधि में अनेक स्थलों का नए सिरे से नामकरण भी किया गया। बाद में रघुनाथ गोस्वामी की चेष्टा से श्यामकुण्ड और राधाकुण्ड का उद्धार हुआ और इसके साथ ही सम्पूर्ण ब्रजमण्डल में तीर्थों, विग्रहों और कुण्डों के महात्म्य का कार्य पूरा हुआ।

ब्रजमण्डल से सम्बन्धित एक अनुसंधानकर्ता श्री मद्नारायण भट्ट ने 'श्री ब्रजनाथ विलास' की रचना की है। इस ग्रन्थ में उन्होंने उल्लेख किया है कि प्रभु श्री चैतन्य के आदिष्ट कार्यों का उद्यापन करते हुए लोकनाथ गोस्वामी तीन सौ तैंतीस वनों और तीर्थों का आविष्कार करने में समर्थ हुए।

इसी बीच श्री चैतन्य का नीलाचल में निर्वाण हो गया। यह गौड़ीय भक्त समाज पर वज्राघात था। श्री चैतन्य महाप्रभु के निर्वाण की सूचना लेकर भक्त-प्रवर रघुनाथदास वृन्दावन आए थे।

वृन्दावन में जहाँ गोकुल आश्रम है, वहाँ पहले जंगलों के मध्य लोकनाथ कुंज था। उसी पथ से होकर थोड़ी दूरी पर सघन वृक्षों के पीछे एक सुनसान घर था। उसे सहज रूप में खोज करना सम्भव नहीं था। विशेष प्रयोजन नहीं रहने के कारण लोकनाथ भी अपने कुंज को छोड़ कर बाहर नहीं जाते। जिनके संधान में वे वृन्दावन आए थे, उसी की पूजा-अर्चना और ध्यान-धारणा में उनका समय व्यतीत हो रहा था। उस समस्त ब्रजमण्डल के कर्ता, विपन्न भक्तों के सहायक और निराश्रितों के आश्रय रूप गोस्वामी ही थे। पाण्डित्य की भित्ति पर उस समय एक प्रकार के जिस वैष्णव विश्वविद्यालय की स्थापना हुई थी उसके कर्णधार तो थे श्री रूप गोस्वामी। गोस्वामियों के नव सिद्धान्तों का मूलोच्छेद करने एवं उनके

पाण्डित्य परीक्षण हेतु कितने ही दिग्विजयी पण्डित आते जिनके साथ विचार-विमर्श और जय-पराजय का उत्तरदायित्व होता रूप गोस्वामी पर। यदि किसी प्रकार का नूतन विधि निषेध प्रवर्तित करना होता तो सभी रूप गोस्वामी से ही परामर्श ले वैसा करते। इन सभी कार्यों में लोकनाथ अपना समय कभी भी अपव्यय नहीं करते, वे तो अहर्निश साधन-भजन और देव-सेवा में निमग्न रहते।

(सप्त गोस्वामी—सतीशचन्द्र मिश्र)

कृष्ण-भक्ति आन्दोलन से पूरे देश को प्रकाशित करने वाली इन विभूतियों में से सर्वप्रथम सनातन फिर रूप और रघुनाथ भट्ट ने भी प्रयाण किया।

रघुनाथ गोस्वामी राधाकुण्ड के समीप रहते हुए कृच्छ साधना में तल्लीन हो गए। इस समय वृन्दावन में साधना की दीपशिखा प्रज्वलित रखने वालों में तीन व्यक्ति मुख्य रूप से थे—लोकनाथ, गोपाल भट्ट और श्रीजीव। इनमें श्रीजीव शास्त्रों में निष्णात और विपुल मनीषा वाले थे। इनकी संगठन शक्ति भी असाधारण थी। रूप गोस्वामी के निधन के उपरान्त वृन्दावन के भक्ति सम्प्रदाय के प्रधान परिचालक और व्यवस्थापक यही थे। गोपाल भट्ट ने वैष्णव धर्म की संहिता का निर्माण किया। लगभग अर्ध शताब्दी तक वृन्दावन के गोस्वामियों ने अनेक शास्त्र-ग्रन्थों की रचना की। कुछ समय के बाद श्रीनिवास, नरोत्तम और श्यामानन्द वृन्दावन में उपस्थित होकर वैष्णव धर्म की मशाल जलाए रखी। श्री निवास ने यदि बंग प्रदेश की बाढ़ में सहस्त्रों भक्तों को आश्रय प्रदान किया तो श्यामानन्द ने उड़ीसा और नरोत्तम ने उत्तर बंग और असम को अपना कार्यक्षेत्र बनाया। श्री निवास गोपाल भट्ट गोस्वामी से दीक्षित हुए, श्यामानन्द ने श्रीजीव गोस्वामी का शिष्यत्व ग्रहण किया तो नरोत्तम के लिए उस समय भी दीक्षा-ग्रहण सम्भव नहीं हो सका क्योंकि उनके हृदय में गोस्वामी लोकनाथ की मूर्ति अंकित हो चुकी थी। उन्होंने गोस्वामी से दीक्षा लेने का काफी प्रयास किया किन्तु लोकनाथ किसी को दीक्षा न देने के संकल्प पर दृढ़ रहे। इसी से नरोत्तम मानसिक रूप से काफी कष्ट में थे। उन्होंने मन ही मन लोकनाथ को गुरु स्वीकार कर लिया था।

नरोत्तम राजशाही जिले में पद्मा नदी के किनारे बसे खेतरी ग्राम के निवासी थे। इनके पिता कृष्णानन्द मजुमदार एक बड़े जमींदार थे। उन्हें राजा की उपाधि दी गई थी। उनकी माता नारायणी देवी धर्मप्राण महिला थीं। अनेक व्रत, पूजा और अनुष्ठान के उपरान्त नरोत्तम जैसे तपःपूत की प्राप्ति हुई थी जो बचपन से ही वैराग्य के प्रति आकर्षित थे। चैतन्य महाप्रभु के प्रभाव में आकर उन्होंने अपना वैभवपूर्ण जीवन त्याग दिया। श्रीजीव ने उन्हें शास्त्र-तत्त्व की पूर्ण शिक्षा दी। वे शास्त्रविद् कृच्छ्रव्रती और भजननिष्ठ साधक थे। यदि लोकनाथ ने उन्हें

दीक्षा नहीं दी तो उन्होंने भी किसी अन्य से दीक्षा न लेने के संकल्प का आजीवन पालन किया। उन्होंने लोकनाथ की कुटी के समीप ही एक झोपड़ी लगाई और ध्यान-साधना में लीन हो गए। उनका बराबर यही प्रयास रहता कि लोकनाथ की एकांत साधना में उनकी वजह से व्यवधान न पड़े।

नरोत्तम ने गुरु-सेवा की एक अनोखी प्रणाली ईजाद की। लोकनाथ ब्राह्म-बेला में शौचादि के लिए निकटस्थ वन में एक निर्दिष्ट स्थान पर जाया करते थे। नरोत्तम ने निश्चय किया कि वे भंगी का कार्य करेंगे। इससे एक ओर वृद्ध गुरु की परिचर्या होगी, दूसरी ओर अपनी अहंता का विनाश होगा। नरोत्तम प्रतिदिन भोर में उस स्थान को कंटकशून्य करते, झाड़ू लगाते और उसे लीपते। निकट ही एक पात्र में सद्य:उपनीत जल रख लेते। तत्पश्चात उस झाड़ू को रख कर वहाँ से खिसक जाते। उसके बाद कुछ समय बीत जाने पर वे पुन: उपस्थित होकर कुदाली से उस स्थान को मल-मुक्त करते। इस प्रकार अन्तर में आत्मगोपन करके नरोत्तम गुरु-सेवा का कार्य करते रहे। लगभग एक वर्ष बीतने को आया। लोकनाथ समझ रहे थे कि उनका यह सेवा-कार्य कोई वनवासी करता होगा। एक दिन उन्हें बहुत ही धक्का लगा। उन्होंने सोचा, "मेरी ओर से बड़ा ही गर्हित कार्य हो रहा है। मैंने सर्वस्व त्याग कर संन्यास धारण किया है, अत: मैं किस प्रकार यह सेवा ग्रहण करूँगा? किस प्रकार इस पाप में अपने को लिप्त करूँगा? यह नहीं हो सकता। निश्चय ही कोई उपाय ढूँढ़ना होगा।" रात बीतने में अभी पाँच-छ: दंड बाकी थे, उसी समय लोकनाथ वन में पहुँच कर एक पेड़ की ओट में छिप गए। उसी समय गहन अंधकार में एक आकृति दिखाई दी। लोकनाथ ने पूछा—"तुम कौन हो? इस समय यहाँ पर तुम क्या कर रहे हो?" उस मनुष्य की ओर से कोई उत्तर नहीं मिला। वह धीरे-धीरे आकर लोकनाथ के चरणों पर लोट गया। अंधकार में लोकनाथ उस व्यक्ति को पहचान नहीं पाए। लोकनाथ ने फिर पूछा, "तुम कौन हो भाई?" उस व्यक्ति ने नतमस्तक होकर उत्तर दिया—"मैं हूँ नरोत्तम।" लोकनाथ विस्मय से भर उठे। बोले, "क्या तुम्हीं प्रतिदिन यह कार्य करते हो?" नरोत्तम ने कहा, "यदि आपको कोई विघ्न न हो तो मैं कुछ सेवा करना चाहता हूँ, प्रभु इसकी आज्ञा प्रदान करें।"

"राजातुल्य जमींदार के पुत्र होकर तुम एक भंगी का कार्य कर रहे हो भैया। यह उचित नहीं है नरोत्तम। मैं यहाँ से चला जाऊँगा।" लोकनाथ ने व्याकुल होकर कहा।

"प्रभो, मैं तो अत्यन्त कंगाल, आश्रयहीन और अपात्र हूँ। आपके चरणों में आत्म-समर्पण किया है। आपको छोड़ मेरी दूसरी गति नहीं है। मुझे अन्त तक यह सेवा करने की अनुमति प्रदान करें।" नरोत्तम ने गिड़गिड़ाते हुए कहा।

"हूँ," कहकर लोकनाथ गम्भीर हो गए और निर्निमेष दृष्टि से तरुण भक्त की ओर देखते रहे।

"प्रभो, मुझे गुरु-कृपा के अभाव में आप्रभु की कृपा और इष्ट-कृपा नहीं मिल सकती।"

लोकनाथ सोच में पड़ गए थे कि वे किस प्रकार अपनी प्रतिज्ञा तोड़ें। नरोत्तम ने उनका चरण-स्पर्श किया और वहाँ से चले गए।

इस घटना के दूसरे दिन कुंज परिक्रमा समाप्त कर ज्यों ही नरोत्तम अपनी भजन-कुटी में लौटे कि उसी समय लोकनाथ ने उन्हें बुलाया। नरोत्तम के हृदय में नवीन आशा का संचार हुआ। लोकनाथ ने कहा, "मेरे समीप तुम्हें कतिपय शपथ लेनी होगी। आज से तुम भोग-विलास से कोई सम्पर्क नहीं रखोगे। तुम्हें आजन्म ब्रह्मचारी रहना पड़ेगा।" वैराग्य साधना के जिन कठोर व्रतों को लोकनाथ एकान्त भाव से पालन कर रहे थे, उन सबसे नरोत्तम को अवगत कराया। फिर कहा, "वत्स नरोत्तम, तुम यथार्थ में नरोत्तम ही हो। तुम जैसे योग्य शिष्य के निमित्त ही कृष्ण ने मेरी प्रतिज्ञा भंग कराई। मैं तुम्हें दीक्षा दूँगा। आगामी श्रावणी पूर्णिमा को तुम्हें इष्ट मंत्र की दीक्षा दी जाएगी।" अतिशय आनन्द का अनुभव करते हुए नरोत्तम यह शुभ सूचना देने के लिए श्रीजीव तथा अन्य वैष्णव साधकों की ओर दौड़ पड़ा। नरोत्तम को गुरु से दीक्षा मिली और वह प्रेम-साधना में लीन हो गया। उनके द्वारा की जा रही गुरु-सेवा और परिचर्या पूरे ब्रजमण्डल में चर्चा का विषय बनी।

कालान्तर में नरोत्तम तपोबल और गुरु-कृपा से देव-मानव बन गए। श्रीजीव गोस्वामी ने नरोत्तम को 'ठाकुर' की उपाधि से विभूषित करने का प्रस्ताव ब्रजमण्डल के साधु-समाज के समक्ष रखा जिसे सर्वसम्मति से स्वीकार किया गया। अब वे 'नरोत्तम ठाकुर' हो गए।

कालक्रम में लोकनाथ जर्जर होकर शैय्या पर पड़ गए। पूजा-अर्चन में भी असमर्थ थे। फिर भी वे दूसरे पर निर्भर नहीं रहना चाहते थे। इसी के चलते उन्होंने नरोत्तम को गृह-प्रस्थान की अनुमति दे दी। उन्होंने फिर किसी अन्य व्यक्ति को शिष्य नहीं बनाया।

लोकनाथ एकान्त साधक थे। प्रचार-प्रसार से दूर। यही कारण है कि जब कृष्णदास कविराज ने 'श्री चैतन्य चरितामृत' की रचना की तो उसमें काफी सहयोग के बावजूद लोकनाथ का नामोल्लेख तक नहीं है। उस युग के गोस्वामियों में लोकनाथ को छोड़कर किसी अन्य ने इतना आत्म-गोपन नहीं किया। यही कारण है कि लोकनाथ के अनेक चारित्रिक तथ्य लोकचक्षु से ओझल हैं।

उस समय रचित अनेक शास्त्र-ग्रन्थों के प्रचार-प्रसार की जरूरत महसूस हुई। इसके लिए वाहन और रक्षादल की जरूरत महसूस हुई। लोकनाथ की अवस्था लगभग १०० वर्ष की थी। वृन्दावन के वे प्राचीनतम सिद्ध पुरुष थे। श्रीजीव ने लोकनाथ के कुंज आकर श्रीनिवास, श्यामानन्द और नरोत्तम को वैष्णव धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए गौड़ देश भेजने का प्रस्ताव किया, लोकनाथ ने इसे सहर्ष समर्थन दिया। विदा-बेला में लोकनाथ ने नरोत्तम से कहा, ''वत्स नरोत्तम, मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारा यह नूतन व्रत सुसम्पादित हो। तुम तो मेरे एकमात्र शिष्य हो। जहाँ भी रहो, विषय-वासनाओं को सम्पूर्ण रूप से वर्जित रखना। भजनानन्द और अष्ट प्रहर की लीला के अनुध्यान में ही अपना दिन यापन करना।''

गुरु से विछोह के कारण नरोत्तम शोकाकुल थे। लोकनाथ ने उन्हें उपदेश दिया, ''वत्स, अपनी चिरकालीन प्रतिज्ञा भंग करते हुए ही मैंने तुम्हें अपना शिष्य बनाया था। तुम्हारी भक्ति और पुण्य के कारण ही मेरी प्रतिज्ञा भंग हुई। तुम्हारी कृत विद्यता और साधनोज्वलता देख कर मैं परम प्रसन्न हूँ। मेरे जो दिन शेष हैं, उनमें अब किसी को अपना शिष्य नहीं बनाऊँगा। मेरी शिक्षा-दीक्षा और साधना-प्रदीप को अकेले तुम्हीं प्रज्वलित रख सकोगे।''

''प्रभु आशीर्वाद दें, गौड़ देश के कर्म-व्रत के दौर में यह अधम आपके चरणों के दर्शन कर सके।'' नरोत्तम ने कातर कण्ठ से हाथ जोड़कर निवेदन किया।

''नहीं वत्स, अब वृन्दावन आने की आवश्यकता नहीं है। मेरी और तुम्हारी यह अन्तिम भेंट है।'' गोस्वामी लोकनाथ ने कहा।

नरोत्तम के ऊपर जैसे व्रज्राघात हुआ हो। वे तुरन्त मूर्च्छित हो गए। जब उनकी चेतना कुछ देर बाद लौटी तो उन्होंने गुरु से चरणपादुका देने की याचना की। गुरु की चरण पादुकाओं को ही सिर पर धारण कर वे वृन्दावन से रवाना हुए।

इस घटना के बाद तपःपूत गोस्वामीजी अधिक दिनों तक जीवित नहीं रहे। अनुमानतः १५८८ ईस्वी में अन्तिम बेला आ पहुँची। अपने इष्टदेव श्रीराधा विनोद के विग्रह की ओर अपने सजल नेत्रों को निबद्ध करके वे चिरनिद्रा में लीन हो गए।

●

काष्ठ-जिह्वा स्वामी

काशिराज बलवन्त सिंह का निधन हो चुका था। उनके उत्तराधिकार के दावेदार तीन व्यक्ति थे। बलवन्त सिंह की पहली पत्नी की कन्या से उत्पन्न महीपनारायण सिंह, भतीजा मनियार सिंह और दूसरी पत्नी से उत्पन्न चेतसिंह। इनमें मनियार सिंह की दावेदारी सबसे सशक्त थी क्योंकि महीपनारायण सिंह नाबालिग थे और चेतसिंह उस पत्नी के गर्भ से पैदा हुए थे जिसे मान्यता नहीं मिली थी। अपने छोटे भाई के पुत्र मनियार सिंह को बलवन्त बहुत मानते थे और अपने उत्तराधिकारी के रूप में तैयार भी कर रहे थे। लेकिन बलवन्त सिंह की मृत्यु के उपरान्त जब मनियार सिंह मणिकर्णिका घाट पर उनका अन्तिम संस्कार कर रहे थे, तभी मौका पाकर चेतसिंह ने बनारस की गद्दी पर अधिकार जमा लिया और मनियार सिंह जान बचाकर भाग निकले।

लेकिन गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स द्वारा अपदस्थ किये जाने के बाद चेतसिंह ने भाग कर ग्वालियर-नरेश माधोजी सिंधिया का आश्रय ग्रहण किया। इधर ताजपोशी के लिए महीपनारायण सिंह की तलाश होने लगी।

घनघोर जंगल में एक प्राचीन मन्दिर था। अश्वत्थ तथा वट की अनेक शाखाएँ उसके भीतर उग आई थीं जिससे उसमें लगे पत्थर भी जगह-जगह से खिसक गए थे। चारो तरफ काँटे और झाड़ियाँ उग आई थीं। उसे देखकर कोई नहीं कह सकता था कि निकट अतीत में कोई मनुष्य इधर आया था। इसी भग्न मन्दिर में छिपे थे महीपनारायण सिंह। ऐश्वर्य और वैभव त्याग कर इस बीहड़ में छिपे महीप को रह-रहकर घर की याद आ रही थी। लेकिन एक भय भी सता रहा था कि जब वे हेस्टिंग्स के हाथ में पड़ेंगे तो वह जिन्दा नहीं छोड़ेगा। लगता है नाना के वंश का समूल नाश करना चाहता है वह। इसीलिए मेरी तलाश जोर-शोर से हो रही है। महीप को जब यह सूचना मिली कि हेस्टिंग्स उनकी खोज में है, तभी उन्होंने अपना प्रासाद छोड़कर इस अरण्य में स्थित सुनसान भग्न मन्दिर में शरण ले ली।

परन्तु आज उनका चित्त और चंचल हो उठा था। कुछ ही देर पहले मुंशी कुन्दनलाल गुप्त रूप से उनसे मिल गए थे। यह अफवाह उन्हें सुना गए थे कि हेस्टिंग्स ने किसी भी कीमत पर उन्हें ढूँढ़ निकालने का ऐलान किया है। महीप

नारायण काफी चिंतित हो उठे थे। एक ही सवाल उनके दिमाग में उठ रहा था कि—क्या अंग्रेजों के हाथों फाँसी पर लटकना ही उनकी नियति है? असुरक्षा की भावना से महीप यह स्थान त्याग कर और घने जंगल में प्रविष्ट हो गए।

लगभग एक कोस जाने के बाद उनका ध्यान एक वट वृक्ष के नीचे धूनी जमाए, तपस्यारत एक साधु पर पड़ी। भारी जटाजूट वाले ध्यानस्थ साधु के शरीर में स्पन्दन के कोई चिह्न भी नजर नहीं आ रहे थे लेकिन शरीर स्वस्थ और सुन्दर था। महीप चौंक कर खड़े हो गए। वे एकटक साधु को देखने लगे। सोचा कि भाग्यवश जब इस तपस्वी का दर्शन मिल ही गया है, तब आशीर्वाद लेकर ही आगे बढ़ेंगे। थोड़ी देर बाद महात्मा ने आँखें खोलीं। महीप ने उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। तपस्वी ने कहा, ''बेटा, कुछ चिन्ता मत करो। अंग्रेजों से काहे डरते हो? तुम्हारे लिए फाँसी का फन्दा नहीं, राजमुकुट ध्रुव निश्चित है। कल ही तुम उनसे मिलो।''

लेकिन महीप नारायण को संन्यासी की बातों पर यकीन नहीं हुआ। वे पशोपेश में पड़ गए। संन्यासी उनकी मनःस्थिति को भाँप गए। मुस्कराते हुए बोले, ''देखो बेटा, तुम्हारे भविष्य का दृश्य अनायास ही मेरे मानस-पटल पर अंकित हो उठा है। योगी का यह अतीन्द्रिय दर्शन कभी मिथ्या नहीं हो सकता। तुम कल ही अंग्रेजी राज के प्रतिनिधि के पास चले जाओ। इससे ही तुम्हारा भला होगा।''

महीपनारायण अब भयमुक्त थे। वे वापस लौट गए। १७८२ ईस्वी में उनकी ताजपोशी हुई। अब वे काशी के राजाधिराज थे।

महीपनारायण सिंह ने उन महात्मा का वास्तविक परिचय जानना चाहा। काशी के कई क्षेत्रों में खोजबीन के बाद पता चला कि साधु समाज में वे महात्मा आत्माराम तीर्थ के नाम से विख्यात थे। वे महाशक्तिधर थे। उनकी शिष्य-मण्डली में ही महान सिद्ध और ज्ञानी दण्डी स्वामी भी थे। वे लम्बे समय से उस घने जंगल में तपस्या कर रहे थे।

महीपनारायण सिंह लाव-लश्कर के साथ उस महात्मा के पास गए। प्रणाम किया। फिर कहा, ''महाराज, आपके श्रीमुख की वाणी सत्य हुई। अंग्रेजी कम्पनी ने मुझे राजगद्दी पर अधिष्ठित किया है। उस दिन आपका निर्देश नहीं मिला होता तो मुझे सर्वदा के लिए असहाय अवस्था में छिपकर ही रहना होता। इसीलिए आज अपनी आन्तरिक कृतज्ञता का ज्ञापन करने यहाँ उपस्थित हुआ हूँ। साथ ही आपका आशीर्वाद एवं आश्रय पाने का भी इच्छुक हूँ।''

महीप ने महात्माजी से मंत्र-दीक्षा लेकर तथा उन्हीं के आश्रित रहकर राजकाज चलाने की इच्छा व्यक्त की। परन्तु महात्माजी ने इसे अस्वीकार करते

हुए कहा कि मैं गृहस्थ मनुष्य को दीक्षा नहीं देता। महीप बार-बार श्रद्धावनत होकर निवेदन करते रहे, ''प्रभु, आपकी दिव्य दृष्टि ने ही मुझे राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित किया है। इसी दिव्य-दृष्टि के आश्रय में मैं सदा जीवन काट देना चाहता हूँ। आपकी कृपा के बगैर मेरा जीवन व्यर्थ हो जाएगा।'' काशी के इस किशोर राजा के नेत्रों से आसुओं की धारा बह निकली।

परन्तु महात्मा मूर्तिवत बैठे रहे। वे जरा भी विचलित नहीं हुए।

हताश होकर महाराजा राजप्रासाद लौट आए। परन्तु दीक्षा-ग्रहण के संकल्प का उन्होंने सर्वथा त्याग नहीं किया। ठीक है यदि महात्माजी ने दीक्षा नहीं दी तो उन्हीं के किसी परम शिष्य को गुरु के रूप में वरण करेंगे।

जानकारी करने पर ज्ञात हुआ कि महात्माजी के पटु और ज्ञानी शिष्य हैं, दण्डी स्वामी देवतीर्थ। सारे उत्तर भारत में उनकी ख्याति एक अपराजेय महावेदान्तिक के रूप में थी। विलक्षण मेधा, प्रतिभा और तर्कशक्ति के अधिकारी थे। परन्तु उनमें एक कमी यह थी कि वे विद्यामद में चूर होकर बिना विचार के ही अपनी इस शक्ति का उपयोग करते। अवसर मिलते ही वे विशिष्ट संन्यासियों, सिद्ध आचार्यों को वाक्युद्ध के लिए ललकार देते और उन्हें अनायास ही पराजित कर डालते। उनकी उस प्रवृत्ति की खबर गुरु महाराज को मिली। उन्होंने एक दिन अपने इस शिष्य को पास बुलाकर कहा, ''देवतीर्थ, तुम आत्मज्ञानी संन्यासी बनने के मार्ग से च्युत होकर डाकू बन गए हो? इस तरह साधु-संत, भागवत-रसिक आचार्यगणों को निरर्थक घायल करते जा रहे हो? यह तो महापाप है।''

उसी दिन महात्माजी ने अपने इस प्रिय शिष्य की जिह्वा रुद्ध कर डाली। तेज छुरी लेकर उन्होंने दण्डी स्वामी की जिह्वा का अग्रभाग काट दिया और उसकी जगह एक काष्ठ-निर्मित जिह्वा जोड़ दी। उसी समय से दण्डी स्वामी देवतीर्थ जन साधारण में काष्ठ-जिह्वा स्वामी के नाम से प्रसिद्ध हो गए। उन्होंने मौन धारण कर लिया। फिर घोर तपस्या में लीन हो गए। महातांत्रिक वेदांती का अनायास ही रूपान्तर हो गया।

महीपनारायण सिंह ने इन्हीं काष्ठ-जिह्वा स्वामी को गुरु-रूप में वरण करने का निश्चय किया। एक दिन वे इस मौनी आचार्य के समक्ष उपस्थित हुए और मंत्र-दीक्षा की याचना की। किन्तु मौनी स्वामी ने कमरे में खड़िया से लिखकर बताया कि बहिरंग जीवन के सारे सम्पर्क उन्होंने छोड़ दिए हैं। केवल अध्यात्म साधना में ही निमग्न रहने का संकल्प लिया है। इसलिए किसी का आचार्य बनने की इच्छा नहीं है।

महाराज महीपनारायण सिंह फूट पड़े। व्याकुल होकर उन्होंने कहा, ''प्रभु, आपके गुरु महाराज ने भी मुझे वापस लौटा दिया है। आपके उनके पुत्र-

स्वरूप शिष्य हैं। इसलिए मैंने संकल्प किया है कि या तो आपसे दीक्षामंत्र प्राप्त करूँगा या अपना यह पापी शरीर गंगा में विसर्जित कर दूँगा।''

महीपनारायण के विलाप से काष्ठ-जिह्वा स्वामी का अन्तर करुणा से भर उठा। महाराज को शांत करते हुए उन्होंने आश्वासन दिया कि उन्हें वे शिष्य के रूप में ग्रहण करेंगे।

इस घटना के कई दिन बाद काष्ठ-जिह्वा स्वामी अपने गुरुदेव के चरण-दर्शन के लिए उनकी कुटिया पर गए। साधन-भजन के लिए निर्देश प्राप्त करने के बाद उन्होंने निवेदन किया—''काशी के महाराज बड़े सज्जन तथा भक्त हैं। मैंने उन्हें दीक्षा-दान का वचन दिया है। इसके लिए आपकी अनुमति चाहता हूँ।''

वृद्ध महात्मा गरज उठे। बोले, ''देवतीर्थ! यह तुम क्या कह रहे हो? आखिर दीक्षा भी दोगे तो गृहस्थ को? भोग-विलास में लिप्त राजा को? सर्व-त्यागी, निवृत्त मार्गी संन्यासी होते हुए भी तुम्हारी जघन्य प्रवृत्ति हो गई? इस दीक्षा-दान के बाद तुम पतित हो जाओगे।''

''प्रभु, आपकी सारी बातें अक्षरशः सत्य हैं। परन्तु राजा की आर्त पुकार तथा रुदन देखकर मेरा हृदय द्रवित हो उठा। मैं उनको वचन दे चुका हूँ। उसकी रक्षा न कर पाने से असत्य भाषण का दोष मेरे ऊपर पड़ेगा। यह भी तो महापाप है?''

''ठीक है बेटा, तुम जब वचन दे चुके हो, तो उसका पालन अवश्य करो।'' महात्माजी ने अनुमति दे दी।

अब काष्ठ-जिह्वा स्वामी के समक्ष विकट समस्या थी। गृहस्थ और भोग-विलासी व्यक्ति को वे दीक्षा देकर जो पाप करेंगे उसका प्रायश्चित्त कैसे होगा? वे रोते हुए गुरु के चरणों पर गिर पड़े और कहा, ''इस पाप से उद्धार के लिए महाराज जो व्यवस्था देंगे, उसे शिरोधार्य करेंगे।''

गुरु महाराज ने थोड़ी देर सोचने के बाद कहा, ''बेटा देवतीर्थ, राजा महीपनारायण के दीक्षा-दान के सन्दर्भ में तुम्हारी करुणा अवश्य रही है, परन्तु इसके अलावा तुम्हारे अंतर्मन में तुम्हारा सूक्ष्म अहं भी था। मन के अवचेतन अवस्था में, आचार्यगीरी की इच्छा भी छिपी है। प्रायश्चित्त करके उसके मूल को सर्वथा विनष्ट कर डालो। प्रायश्चित्त की विधि मैं तुम्हें बताता हूँ। अपने गले में एक काष्ठ फलक बाँध लो। उस पर लिखो—''आप लोग हमसे सुन लीजिए—दण्डी स्वामी पतित है।'' काशीधाम में जितने भी मठ-मन्दिर, अखाड़े इत्यादि हैं, सभी स्थानों पर जाकर दीन वेश में खड़े हो जाओ, नतमस्तक होकर, जिससे सभी के सामने तुम्हारी पाप-कहानी प्रकाश में आए और उस पाप का मार्जन हो।''

एक दिन वाराणसी के राजमार्गों, गंगा के घाटों, मन्दिरों तथा मठों में अभूतपूर्व दृश्य दिखाई पड़ा। दिग्विजयी तर्कवेत्ता, महावेदान्ती देवतीर्थ को काष्ठ-

जिह्वा स्वामी बनाकर भी गुरु महाराज शांत नहीं हुए. आज फिर उन्हें जन-साधारण के समक्ष भेज रहे हैं, उनके द्वारा अपने पतित होने की घोषणा करवाने। सर्वजन श्रद्धेय महापुरुष, काशीराज के गुरु, काष्ठ-जिह्वा स्वामी की यह कैसी दुर्दशा है ?

जन-जन में यह खबर फैल गई।

आखिर किस पाप का प्रायश्चित्त कर रहे हैं काष्ठ-जिह्वा स्वामी ? लोग इस सवाल का उत्तर खोज रहे थे। उन्हें बताया जा रहा था, जिह्वा स्वामी का पाप सिर्फ यही था कि सारे सांसारिक माया-मोह के बंधन तोड़ने के बावजूद उन्होंने भोग-विलास में लिप्त एक गृहस्थ राजा को दीक्षा-मंत्र का दान दिया था। इसी के कारण वे पतित हो गए थे।

गुरु द्वारा निर्देशित प्रायश्चित्त करने के उपरान्त काष्ठ-जिह्वा स्वामी हाथ जोड़ कर अपने गुरु के समक्ष उपस्थित हुए। गुरु ने गम्भीर स्वर में कहा, ''बेटा, पाप के प्रायश्चित्त स्वरूप जो भी तुमने किया, उससे केवल तुम्हारा ही उपकार होगा, ऐसा नहीं है। इससे दण्डी समाज के सम्मुख भी दीर्घकाल तक संन्यास की पवित्र पताका लहराएगी। आदर्श-भ्रष्ट रखने वाले भी सिर नीचा किए सशंकित रहेंगे। परन्तु बेटा, अभी भी तुम्हारा प्रायश्चित्त पूर्ण नहीं हुआ है।''

अब किस प्रायश्चित्त की बात गुरु करना चाहते हैं ? यह सवाल मन में लिये हुए काष्ठ-जिह्वा स्वामी चिंतित होकर गुरु की ओर देखने लगे।

महात्माजी ने शान्त स्वर में कहा, ''बेटा, तुम काष्ठ फलक गले में बाँध कर बनारस के सारे मार्गों, घाटों और मन्दिरों में घूम चुके हो। पर इस फलक पर जो भी लिखा है, उसे लोग भूल जाएँगे। इस लेख को तुम्हें स्थायित्व प्रदान करना होगा। विश्नाथ मन्दिर के प्रस्तर निर्मित द्वार पर इसे उत्कीर्ण कर डालो।''

अब काष्ठ-जिह्वा स्वामी काशी विश्वनाथ मन्दिर के तोरण द्वार पर आकर उपस्थित हुए। उनके हाथ में छेनी और हथौड़ी थी। उन्होंने मन्दिर के प्राचीर के अग्रभाग पर खोदा—''देवतीर्थ नामे दण्डी पतित है।''

इतने दीर्घकाल के बाद भी तीर्थयात्री विश्वनाथ मन्दिर पर खुदे इस आचार्य की हस्तलिपि देख जाते हैं। फाटक में प्रवेश-द्वार की बाईं तरफ ऐतिहासिक उक्ति भक्तों के मन को आलोड़ित करती है। ब्रह्मचारी, संन्यासी और ब्रह्माभ्यासी हर प्रकार साधकों के मानस पर नए सिरे से भारतीय संन्यास-धर्म एवं आध्यात्मिक साधनामय जीवन के शुचि-शुभ्र तथा महान आदर्शों को स्थापित कर देता है।

●

रूप गोस्वामी

रूप गोस्वामी सनातन गोस्वामी के अनुज थे। ये तीन भाई थे—अमर, संन्तोष और बल्लभ। प्रभु चैतन्य ने इनका नाम रखा क्रमशः सनातन, रूप और अनुपम। अनुपम अपने पुत्र श्रीजीव को छोड़कर स्वर्ग सिधार गए। शेष दोनों भाइयों ने वैराग्य धारण कर लिया। ये लोग गौड़ के सन्निकट रामकेलि ग्राम में रहते थे। दोनों भाइयों ने साथ ही वैराग्य का निश्चय किया लेकिन रूप पहले सांसारिक माया-मोह से मुक्त हो गए जबकि सनातन को कुछ विलम्ब हुआ क्योंकि वे गौड़ के सुल्तान हुसेन शाह के अमात्य थे और बड़े प्रिय थे। जब उन्होंने राजकार्य छोड़ने की इच्छा व्यक्त की तो सुल्तान ने पहले तो उन्हें समझाया, फिर जेल में डाल दिया। सुल्तान जब उड़ीसा पर आक्रमण करने गया था तो सनातन जेल के सुरक्षा कर्मियों को प्रलोभन देकर भाग निकले और वैष्णव साधना में रत हो गए।

इस परिवार की गौरव-गाथा का उल्लेख चूँकि सनातन गोस्वामी के प्रसंग में किया गया है, इसलिए उसकी यहाँ पुनरावृत्ति अनावश्यक है। हम सिर्फ रूप गोस्वामी की साधना और उनके कर्तृत्व पर प्रकाश डालेंगे।

रूप और सनातन को धर्म और वैष्णव साधना के बीज संस्कार में मिले थे जो उनकी युवा अवस्था में प्रस्फुटित होने लगे थे। रूप भी सुल्तान के राजस्व विभाग में उच्च अधिकारी थे। लेकिन मुस्लिम शासक के यहाँ नौकरी करते हुए भी दोनों भाइयों में आध्यात्मिक चेतना थी जो समय-समय पर साधु-संन्यासियों, विद्वतजनों तथा धर्माचार्यों के सत्संग के कारण पुष्पित और पल्लवित होती रही।

दोनों भाइयों में इस बात पर काफी तर्क-वितर्क हुआ कि पहले कौन वैराग्य धारण करे। अन्ततः जीत रूप की हुई। उन्होंने अपने लेखा-जोखा का कार्य शीघ्र समाप्त किया। रामकेलि राजधानी गौड़ के अति निकट थी इसलिए परिजनों को चन्द्रदीप के महल में भिजवा दिया। फतेहाबाद के प्रेमभाग में एक और महल था। कुछ लोग वहाँ भेजे गए। धन-सम्पत्ति आदि सभी वस्तुओं की व्यवस्था पूरी कर ली गई। विग्रह की सेवा, कुलगुरु, ब्राह्मण तथा प्रापकों को कोई असुविधा न हो, इसलिए मुक्तहस्त दान दिया। इस दान के बारे में चैतन्य चरित्रामृत में उल्लेख है—

तब रूप गोसाईं नौका भरकर,
प्रचुर धन ले लौटे अपने घर पर।
दिया अर्द्धभाग ब्राह्म वैष्णवों को,
पुनः चतुर्थांश बाँटा निज परिजन को।
मुक्ति-धन हेतु रखा चतुर्थांश को,
कई स्थानों पर रखा सद् विप्रों को।

इसके अतिरिक्त किसी भावी संकट की आशंका से सनातन के निमित्त दस सहस्त्र मुद्राएँ एक हलवाई के पास जमा कर दीं।

रूप को ज्ञात हुआ श्री चैतन्य नीलाचल से वृन्दावन प्रस्थान कर चुके हैं तो वे भी शीघ्र ही झारखण्ड के लिए रवाना हो गए। साथ थे मुमुक्षु कनिष्ठ भ्राता अनुपम। रूप श्री चैतन्य से रास्ते में ही मिलना चाहते थे।

प्रयाग पहुँचने पर रूप और अनुपम को ज्ञात हुआ कि वृन्दावन से लौटती यात्रा में श्री चैतन्य वहाँ उपस्थित हुए हैं। श्री चैतन्य बिन्दुमाधव के मन्दिर में अपार जनसमूह के बीच मधुर कण्ठ से श्रीकृष्ण-भक्ति का रस बरसा रहे थे। इस भीड़ में प्रभु से मिलने का कोई उपाय नहीं था। उस दिन एक दक्षिणात्य ब्राह्मण के घर श्री चैतन्य को भिक्षा ग्रहण करना है। रूप और अनुपम वहीं पहुँचे और प्रभु को साष्टांग दण्डवत निवेदित किया। प्रभु यह देखकर खुशी से झूम उठे और बार-बार कहने लगे, ''कृष्ण को तुम लोगों पर अपार करुणा है कि इस बार दोनों जनों का उन्होंने विषय कूप से उद्धार किया है। तुम दोनों भाई, अहा कितने भाग्यवान हो!''

त्रिवेणी के संगम पर प्रभु भक्तगृह में निवास कर रहे थे। उसी के बगल में रूप और अनुपम ने अपनी कुटिया लगा ली। उन्हीं दिनों वैदिक यज्ञों में पारंगत और शास्त्रविद बल्लभ भट्ट पास के एक गाँव में निवास कर रहे थे। उन्होंने श्री चैतन्य को अपने दोनों भक्तों सहित अपने घर निमंत्रित किया। श्री चैतन्य उनके आवास पर पहुँच गए। रूप की दिव्यकांति देखकर बल्लभ भट्ट ने उनका आलिंगन करना चाहा लेकिन रूप पीछे हटने लगे। बोले, ''नहीं, नहीं भट्टजी आप मेरा स्पर्श न करें। मैं तो एक अस्पृश्य पामर हूँ। इतना समय मैंने पाप-कर्मों में ही व्यतीत किया है। मैं आपके स्पर्श योग्य नहीं हूँ।''

रूप के इस कार्य से श्री चैतन्य अत्यधिक प्रसन्न हुए। वे मंद-मंद मुस्करा रहे थे।

प्रयाग में दस दिनों तक रूप ने प्रभु के सान्निध्य में बिताया। इन्हीं दस दिनों में प्रभु ने रूप के भीतर के अवांछित तत्त्वों को विनष्ट कर दिया। उनमें वैष्णवीय साधना के गूढ़ तत्त्व भरे। निज मुख से व्याख्या और विश्लेषण किया ब्रजरस के परम तत्त्वों का। श्रद्धा, भक्ति और कृष्ण-सेवा का निरूपण करने के

बाद प्रभु ने भक्ति-साधना के क्रम में कृष्ण-भक्ति के रस का वैचित्र्य तथा सर्वोपरि कान्ता-भाव-सम्पन्न मधुर रस का दिग्दर्शन कराया। इस नवीन साधना रूप के अन्दर उन्होंने शक्ति का संचार भी किया। श्री चैतन्य ने वाराणसी प्रस्थान करने से पूर्व रूप को आशीर्वाद देने के बाद कहा, ''रूप, तुम वृन्दावन जाओ। तुमने जिस तत्त्व को पाया है, वह वृन्दावन की पावन भूमि में स्फुटित हो उठे, यही मेरी कामना है।''

रूप और अनुपम वृन्दावन चले गए। वहाँ उनकी मुलाकात भक्त-प्रवर सुबुद्धि राय से हुई। सुबुद्धि राय गौड़ देश के प्रभावशाली जमींदार थे। बादशाह हुसेन शाह युवा अवस्था में अत्यन्त गरीब थे और सुबुद्धि राय के यहाँ नौकरी करते थे। एक दिन किसी गलती पर राय साहब नाराज हुए और हुसेन को कोड़ों की सजा दी गई। हुसेन का समय बदला, वह गौड़ देश के बादशाह हो गए लेकिन कोड़े का दाग पीठ पर बचा रह गया। एक दिन बेगम ने स्नान करते समय पीठ पर दाग देखे तो पूछा। हुसेन शाह ने सारी कथा बयान कर दी। बेगम गुस्से से तमतमा उठीं। उन्होंने सुबुद्धि राय को मौत की सजा देने का आग्रह किया लेकिन शाह यह दण्ड देने को तैयार नहीं हुए। उन्होंने कहा कि प्राक्तन अन्नदाता को इतनी कठोर सजा देना सम्भव नहीं है। बेगम हठ पर अड़ी हुई थी। बेगम और सरदारों ने मिलकर तय किया कि राय साहब को धर्मभ्रष्ट किया जाय। राय साहब के मुँह में अखाद्य ठूँस कर यह प्रस्ताव क्रियान्वित किया गया।

जातिभ्रष्ट और मर्माहत सुबुद्धि राय राज-पाट त्याग कर काशी चले गए। प्रायश्चित्त के लिए काशी के शास्त्रविद पण्डितों के समक्ष उपस्थित हुए। पण्डितों ने कहा कि जलता हुआ घी पीकर प्राण त्याग देना चाहिए।

उस समय महाप्रभु चैतन्य काशी में ही विराजमान थे। महाप्रभु के चरणों पर गिर कर सुबुद्धि राय ने कहा, ''प्रभु, आप ईश्वर हैं। आप मुझे जाति विनाशजन्य पाप से छुटकारा हेतु प्रायश्चित्त का विधान बताएँ।''

महाप्रभु ने कहा, ''जितने भी पाप हैं, वे एक बार भी कृष्ण-नाम लेने से ही धुल जाएँगे। जीवों की क्या बिसात जो उतना पाप कर सके। तुम्हें कोई भय नहीं है। तुम वृन्दावन जाकर प्रतिदिन वहाँ की पवित्र भूमि में लुंठित होओ और कृष्ण नाम के जप और ध्यान से अपने जीवन को सार्थक करो। यही तुम्हारे प्रायश्चित्त का विधान है।''

सुबुद्धि राय के प्राणों में अब नई आशा का संचार हुआ और उन्होंने वृन्दावन में आकर त्याग और तितिक्षामय वैष्णव जीवन प्रारम्भ किया।

गौड़ बादशाह के उच्च अधिकारी रूप को सुबुद्धि राय भलीभाँति पहचानते थे। वैरागी होकर वे प्रभु की शरण में आ गए हैं, यह जानकर वे

अत्यन्त प्रसन्न हुए। रूप और अनुपम को उन्होंने प्रेमपाश में जकड़ लिया और द्वादश वनों का दर्शन कराया।

लगभग एक महीना बीत गया। रूप के मन में उच्चाटन होने लगा। उन्हें अपने बड़े भाई सनातन के बारे में कोई सूचना नहीं मिली थी कि वे अभी भी बादशाह की जेल में हैं या मुक्त हुए। मन में चिंता होने लगी थी। कुछ दिनों तक विचार के बाद सनातन की खोज-खबर लेने के लिए उन्होंने वृन्दावन छोड़ देने का विचार किया। दोनों भाई काशी की ओर चल पड़े।

इसी बीच कारागार से मुक्ति पाकर सनातन काशी आ गए जहाँ उन्हें श्री चैतन्य का दर्शन सुलभ हुआ। इसके पश्चात वे वृन्दावन चले गए। रूप और अनुपम से उनकी मुलाकात नहीं हो पाई। लेकिन जब उन्हें ज्ञात हुआ कि सनातन काशी आए थे और उन्हें महाप्रभु का दर्शन सुलभ हुआ था तो उनकी खुशी का ठिकाना न रहा।

अनुपम रामचन्द्रोपासक थे, इसीलिए वृन्दावन में उनका मन नहीं लगा था। उन्हीं की सलाह पर रूप और अनुपम गौड़ देश की ओर चल दिए। वहाँ पहुँचने पर एक असाध्य रोग से अनुपम ने शरीर त्याग दिया। अनुज के असामयिक निधन ने रूप को अनेक सांस्कारिक समस्याओं में धकेल दिया। लेकिन श्री चैतन्य के दर्शन के लिए वे अधीर हो उठे अतएव घर की समस्याएँ निपटा कर वे पैदल ही नीलाचल के लिए रवाना हो गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने हरिदास की कुटिया में आश्रय ग्रहण किया। हरिदास ने आत्मीयता के साथ उनका स्वागत किया।

श्री चैतन्य प्रतिदिन दर्शन देने के लिए हरिदास की कुटिया में आते थे और यहाँ भक्तों के बीच इष्ट गोष्ठी और प्रेमरस का दौर चलता। इसके उपरान्त वे लौट जाते। उस दिन भी श्री चैतन्य जैसे ही हरिदास की कुटिया में आए, रूप ने दौड़कर चरण स्पर्श किया। प्रभु ने आशीर्वाद दिया और कुशल-क्षेम पूछा। फिर थोड़ी देर तक सत्संग हुआ।

एक दिन रूप का आलिंगन करते हुए महाप्रभु ने अद्वैत एवं नित्यानन्द से कहा, ''कृष्ण के आवाहन पर रूप विषय-कूप छोड़कर चले आए हैं। आप दोनों इन्हें आशीर्वाद दें जिससे ये कृष्ण भजन में सिद्धि प्राप्त कर कृष्ण भक्ति के ग्रन्थों का निर्माण कर सकें, जिसकी साधना करने से जीवों का कल्याण हो।''

वरिष्ठ गौड़ीय वैष्णवों के आशीर्वाद, रूप-लावण्य, विनयशीलता और माधुर्य के कारुण रूप शीघ्र ही गौड़ीय एवं उड़िया भक्तों के बीच लोकप्रिय हो गए। कीर्तन-भजन, स्नान-ध्यान और प्रभु के साथ गूँदीचा में सफाई कार्य में दिन बिताने लगे। भक्त हरिदास के समान रूप भी स्वयं को दैन्यवश म्लेच्छाधम समझते। उसी लिए जगन्नाथ मन्दिर में कभी भी प्रवेश नहीं करते। दूर से ही

प्रणाम कर लेते। प्रभु के नर्तन, कीर्तन और अन्य अनुष्ठानों का रसपान दूर से ही करते। रात्रि का अधिकांश समय हरिदास के साथ उनकी कुटिया में ही बीतता। कुटिया के एक कोने में बैठकर वे ग्रन्थ-निर्माण में लग गए।

जगन्नाथजी के भाग-रात के पश्चात इन दोनों संन्यासियों हरिदास और रूप के लिए प्रत्यक्ष प्रसाद आता। इस प्रसाद को ग्रहण करने के पश्चात दोनों लोग अपने-अपने कार्य में लग जाते।

रूप गोस्वामी कवि भी थे। गौड़ देश में रहते हुए उन्होंने 'हंसदूत' और 'उद्धव-संदेश' नामक ग्रन्थों की रचना की जो बाद में वृन्दावन में लोकप्रिय हुई। नीलांचल में कृष्ण लीला विषय नाटक लिखना शुरू किया। इसे नाम दिया— 'विदग्ध-माधव'। इसके अलावा एक और नाटक 'ललित-माधव' लिखा। इन दोनों नाटकों की समाप्ति वृन्दावन में हुई और शुरुआत नीलाचल में।

नीलाचल में भगवान जगन्नाथ की रथयात्रा का समय ज्यों-ज्यों समीप आता गया देश भर से भक्तों का आगमन भी बढ़ता गया। इस रथ-यात्रा का एक बड़ा आकर्षण था—श्री चैतन्य की उपस्थिति और उनका नृत्य-कीर्तन।

रथ का कर्षण प्रारम्भ होते ही उसके आगे प्रभु का अपने भक्तों और पार्षदों के साथ कीर्तन-नर्तन प्रारम्भ हो गया। उनकी दिव्य श्री मण्डित गौर देह में सात्विक प्रेम-विकार का ऐश्वर्य प्रकट हो रहा था। इसे देखकर अगणित यात्री उद्वेलित हो रहे थे।

प्रभु इच्छा के अनुरूप रूप ने दस महीने तक नीलाचल में वास किया। महाप्रभु के सान्निध्य के कारण इनके शरीर में दिव्य रस की धारा प्रवाहित होने लगी। कृष्ण भक्ति और कृष्ण प्रेम की लीला से सम्बन्धित जिन पुस्तकों की रचना प्रभु चाहते थे उन सभी के लिए भावना मन में उमड़ने लगी। प्रभु ने रूप के साधन-आधार में अपनी शक्ति का संचार कर दिया था। अब जन-कल्याण हेतु उसी शक्ति-स्रोत को विस्तार देना चाहते हैं। ब्रज-रस-तत्त्व के दो रस पार्षद थे—राय रामानन्द तथा स्वरूप दामोदर। रूप के नवरचित काव्य-रस के आस्वादन और मूल्य निरूपण के लिए प्रभु ने इन दोनों लोगों को नियोजित किया था। दोनों पार्षद अपने कार्य में प्रवीण थे। रस-तत्त्व के शास्त्र में राय रामानन्द श्री चैतन्य के भी बाह्य उपदेष्टा थे। दक्षिण यात्रा के दौरान श्री चैतन्य ने इस साधक को आत्मसात किया था और उसी के मुख से मधुर एवं निगूढ़ भजन की मर्म कथा को प्रकाशित भी करवाया था। महाप्रभु से राय रामानन्द कहते हैं—"प्रभु ब्रजरस-तत्त्व, कान्ताभाव और राधा तत्त्व की महिमा मैं क्या जानूँ? मैं तो आपकी कठपुतली हूँ, आप मुझे जिस प्रकार नचाते, बुलवाते, मैं उसी प्रकार कार्य करता हूँ और बोलता हूँ।"

दैन्यभाव से प्रभु ने उत्तर दिया—''राय, मैं संन्यासी हूँ अतः महाभावमयी श्री राधा का रस-तत्त्व मैं क्या जानूँ? अहा, तुम्हीं ने तो मुझे वह तत्त्व सिखाया था।''

दोनों के बीच यह मत द्वैध और आनन्द-कलह प्रायः चला करता जिसे सुन कर अंतरंग पार्षद और भक्तगण मंद-मंद मुस्कराते रहते।

राय रामानन्द उड़ीसा के एक श्रेष्ठ वैष्णव थे जो कृष्णरस-तत्त्व में पारंगत और यशस्वी नाटककार थे। महाप्रभु से भेंट होने से पूर्व ही इन्होंने 'जगन्नाथ बल्लभ' संस्कृत भाषा में लिख कर भरपूर प्रसिद्धि प्राप्त की थी। महाप्रभु के आश्रय में आकर वे प्रेमभक्ति साधना में सिद्धकाम हो चुके थे। प्रभु के अन्य श्रेष्ठ पार्षद स्वरूप दामोदर भी कृष्णतत्त्व एवं ब्रजरस के एक मर्मज्ञ साधक के साथ-साथ उसके धारक और वाहक थे। वे वैष्ण साहित्य के मर्मज्ञ तथा कठोर समालोचक भी थे।

महाप्रभु तो महाभाव के मूर्त विग्रह थे अतएव प्रेम-भक्ति-धर्म के किसी वाक्य अथवा रचना के प्रतिकूल सिद्धान्त अथवा रसाभास कभी भी उन्हें सह्य नहीं था।

एक दिन महाप्रभु जगन्नाथजी के रथ के आगे नृत्य कीर्तन कर रहे थे। हठात् भाव प्रमत्त होकर वे 'पः कौमारहर' इत्यादि 'काव्य-प्रकाश' के श्लोकों का उच्चारण करने लगे। इस वाक्य द्वारा निभृत मधुमय परिवेश तथा अनन्य चित्र से कान्ता तथा कान्त के एकान्त मधुर मिलन रस का उत्सारण होता है। महाप्रभु के अन्तर के भाव को समझकर स्वरूप दामोदर ने तत्क्षण इस रस के अनुसार एक मधुर संगीत की रचना की और उसे तत्काल उन्हें गाकर सुनाया भी जिसे सुनकर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए।

एक दिन राय रामानन्द एवं स्वरूप दामोदर के साथ महाप्रभु हरिदास की कुटिया में पहुँचे तो उनकी नजर कुटिया के छप्पर में खोंस कर रक्खे गए ताल-पत्र पर पड़ी। महाप्रभु ने कहा, ''ले आओ उसे, देखें उसमें क्या है?''

''नहीं प्रभु, आपके देखने योग्य उसमें कुछ नहीं है।'' रूप ने विनयपूर्वक कहा।

लेकिन महाप्रभु ने उक्त तालपत्र मँगाया। उसे देखकर ज्ञात हुआ कि इसमें सद्यः निर्मित प्रेमरस के अनेक मनोरम श्लोक हैं जिनकी रचना रूप ने ही की थी। रूप ने अपनी अनुपम भाषा, भाव और छन्दों में यमुना किनारे कृष्ण-राधा के एकान्त मिलन के आनन्द की कथा लिखी थी। महाप्रभु ने आह्लादित होकर कहा, ''अहा, इस प्रकार का रस-तत्त्व तो चराचर में कहीं नहीं पाया जाता है। रूप, निश्चय ही आज मुझे अत्यधिक आनन्द दिया है।''

एक दिन महाप्रभु ने रूप द्वारा रचित 'विदग्ध माधव' की पाण्डुलिपि से एक रमणीय रचना पढ़कर भक्तजनों को सुनाई जो इस प्रकार थी—

'कृष्ण', 'कृष्ण' क्या ही हैं ये दोनों वर्ण।
मानो अमृत देकर हुई है इनकी सृष्टि॥
रसना द्वारा होता जब इनका उच्चारण।
जगती हृदय में शत रसना पाने की कामना॥
कर्णो द्वारा श्रवण होते ही जगती स्पृहा।
कोटि-कोटि कानों को पाने की वासना॥
इस नाम की चेतना का जब होता स्फुरण।
तभी होती जीव की इन्द्रियाँ सभी पराभूत॥

महाप्रभु की आँखें तृप्तिजन्य आनन्द से भर आईं। वे बार-बार रूप को आशीर्वाद देने लगे।

महाप्रभु वृन्दावन में वैष्णव शास्त्रों का लेखन और प्रसार, तीर्थों का उद्धार और विग्रह-सेवा तथा कृष्ण-भक्ति के पथ पर भक्त समाज का परिचालन—इन्हीं तीन ईश्वरीय कर्मों की सूचना और उसका प्रसार चाहते थे। रूप के वृन्दावन रवानगी के पूर्व ये ही दायित्व उन्हें सौंपा। रूप और सनातन की संयुक्त प्रतिभा और कर्मनिष्ठा का परिणाम अनेक वर्षों के उपरान्त पुष्पित और फलित होते देखा गया। अपनी कठोर साधना से दोनों जनों ने भक्तों की दृष्टि अपनी ओर आकर्षित कर ली। कुछ ही दिनों में भारत के अन्य भागों में विविध प्रकार के ग्रन्थ वृन्दावन में आ गए।

रूप में बड़े भाई सनातन की अपेक्षा व्यवहारकुशलता अधिक थी। नाना दिशाओं से भक्तों का दल जिस प्रकार का पहुँचता उसकी देखरेख उसी प्रकार होती। जिस व्यक्ति की प्रकृति जैसी होती उसी के अनुरूप कुटिया बनाकर रूप उसे प्रदान करते। सभी के अभावों की छानबीन करके उसकी व्यवस्था करते। इस प्रकार रूप गोस्वामी वृन्दावन की भक्तमण्डली के कर्ता बन बैठे। धीरे-धीरे रूप गोस्वामी की लोकप्रियता इतनी बढ़ गई कि जो भी बाहर से वृन्दावन आता, रूप को ही खोजता। पर्वों या उत्सवों के अवसर पर सारी व्यवस्था वे ही करते। श्रीकृष्ण यदि वृन्दावन के राजा थे तो रूप उनके प्रतिनिधि जैसे थे। रूप इतने लोकप्रिय हो गए कि उनका अनुवर्तन कर ब्रजमण्डल में एक संघ की स्थापना की गई।

इस प्रकार वृन्दावन में कार्यारम्भ हुए कई वर्ष बीत गए। इस कार्य में योगदान के लिए गोपाल भट्ट, रघुनाथ भट्ट प्रभृति पण्डित और साधकगणों तथा रघुनाथदास प्रभृति विशिष्ट भक्तों का पदार्पण हो चुका है। गौड़ीय सम्प्रदाय के

गोस्वामियों की तपस्या, पाण्डित्य और संगठन के कारण वृन्दावन अब भारतवर्ष के एक श्रेष्ठ वैष्णव केन्द्र के रूप में परिवर्तित हो गया।

एक दिन रूप गोस्वामी बैठे थे तभी एक बालक आकर बोला, "अरे बाबाजी, बैठे-बैठे नींद ले रहे हो या गोविन्द का ध्यान भी कर रहे हो। गोविन्द तो उस मिट्टी के टीले के भीतर हैं।"

"भाई, मिट्टी के टीले में वह कहाँ छिपे हैं, कौन बतलाएगा मुझे," रूप गोस्वामी ने व्याकुल होकर कहा।

"जानते हो, उस टीले पर एक जगह दोपहर में एक गाय आकर अपने थन से दूध टपकाती है। उसी के नीचे तो निवास करते हैं तुम्हारे गोविन्दजी।" कहकर बालक अन्तर्धान हो गया।

रूप गोस्वामी इस अलौकिक आनन्द के अतिरेक में मुदित हो गए। थोड़ी देर बाद जब चेतना लौटी तो उन्होंने स्वयं से पूछा, "क्या वह बालक ही गोविन्द था?" रूप गोस्वामी ने निकट के ग्रामवासियों से जब इस घटना का जिक्र किया तो लोगों ने इसकी पुष्टि की। इसके बाद ही रूप की आँखों से आँसू बरसने लगे। उन्होंने ग्रामवासियों से सहायता की प्रार्थना की, "उस स्थान पर हम सभी के प्राणाप्रिय गोविन्दजी निवास करते हैं।" ग्रामवासियों ने तत्काल उस स्थान की खुदाई शुरू की तो श्रीगोविन्द देव का पवित्र विग्रह आविष्कृत हुआ। रूप गोस्वामी ने शास्त्र-वचनों के उद्धरणों से साबित किया कि यह टीला द्वापर युग की योगपीठ है। और ये ही विग्रह ब्रजनाम महाराज द्वारा प्रतिष्ठित एवं पूजित श्री गोविन्दजी हैं। यह समाचार पूरे ब्रजमण्डल में फैलते देर नहीं लगा। भक्तों और साधु-संतों ने मिलकर वहाँ एक विशाल भण्डारा का आयोजन किया। बाद में रघुनाथ भट्ट के एक धनवान शिष्य ने गोविन्ददेव का एक सुन्दर मन्दिर और चबूतरे का निर्माण करवाया। इसके पश्चात उड़ीसा के राजा प्रतापरुद्र के पुत्र पुरुषोत्तम ने इस मन्दिर विग्रह के समीप एक राधिका-मूर्ति की स्थापना की। बाद में जब मन्दिर जीर्ण हो गया तो अम्बेर के राजा मानसिंह ने इस स्थान पर लाल पत्थरों से एक भव्य मन्दिर बनवाया जिसके प्रधान अंश को औरंगजेब ने ध्वस्त करा दिया जिससे मन्दिर का सौन्दर्य और वैभव नष्ट हो गया।

वृन्दावन के गौड़ीय गोस्वामियों के शास्त्र-प्रणयन, संकलन और प्रकाशन को देखकर आश्चर्य होता है कि साधनहीन होते हुए भी इन महापुरुषों ने अपनी साधना, तपस्या और कर्मनिष्ठा के बल पर इतनी उपलब्धियाँ कैसे हासिल कीं। कितने कष्टों को समाहित किया होगा अपने आन्दोल्लास में।

वैष्णव इतिहास के अनुसंधानकर्ता और विश्लेषक सतीशचन्द्र मित्र ने लिखा है—"सोलहवीं शताब्दी के प्रथम पाद में इन लोगों ने जिस धर्म का गठन

कर सम्पूर्ण देश में एक सशक्त आन्दोलन का श्रीगणेश किया, उसका प्रवाह परवर्ती युग में कितने शताब्दियों तक चलेगा, इसे भला कौन बता सकता है ? कारण कि बंग के जो शक्तिशाली लोग हैं, समाज में कुलीन के रूप में जो चिह्नित हैं, बंग समाज के उच्च स्तर के उन ब्राह्मण, कायस्थ, वैद्य प्रभृति जाति के अधिकांश लोग उस समय शाक्त मतावलम्बी थे—उस समय वे गौड़ीय वैष्णव मत के प्रबल शत्रु थे। पाण्डित्य, प्रतिभा, वंश-परम्परा के कारण जो ब्राह्मणगण सर्वत्र ख्यातिसम्पन्न थे, धर्म-साधना की अपेक्षा आचार-निष्ठा में जिनका विशेष आग्रह था, वे इस नूतन मत को अशास्त्रीय एवं अनाचरणीय कह कर उसकी उपेक्षा कर रहे थे। फलत: प्रवर्तक महाप्रभु आदि लोगों के अन्तर्धान के पश्चात उनके धर्म की रक्षा करना एक गुरुतर समस्या थी। इस देश में शास्त्र की भित्ति पर प्रतिष्ठापित न होने पर कोई भी धर्म नहीं टिक सकता। पण्डितों के इस देश में सबों को तर्क-युद्ध में पराजित कर कोई भी अपना मत स्थापित नहीं कर सका। इस विषय में सभी चेष्टाएँ व्यर्थ होंगी, महाप्रभु चैतन्य ने इस रहस्य को समझा था।....इसीलिए तो श्री चैतन्य देव ने अपने भक्तों के बीच से चुन-चुन कर लोगों को भेजा और उनके द्वारा ही वैष्णव मत सम्बन्धी शास्त्रों का गठन और संकल्प करवाया था। जगत के सभी जातियों के नेतृवृन्द के मध्य जो लोग उपयुक्त, लोक-निर्वाचन में पटु और गुणग्राही तथा सूक्ष्मदर्शी थे, उन्होंने ही जगत में विजय प्राप्त की थी। चैतन्य मत की सफलता का यही प्रधान कारण है।

"अपनी मोहिनी मूर्ति से उन्होंने जिन लोगों पर शक्ति-संचार करके उन्हें आत्मसात किया था, वे ही चुने हुए लोग हिन्दू शास्त्र के आकर ग्रन्थों से रत्नोद्धार करके नव-प्रवर्तित गौड़ीय मत को एक सुदृढ़ भित्ति पर प्रतिष्ठित कर गए थे। उनके समीपवर्ती लोगों ने ही सर्वप्रथम पाण्डित्य में उनसे पराजित हो अपना मस्तक अवनत कर लिया था, तभी तो इस नूतन मत की विजय पताका लहराने लगी। अन्यथा श्री चैतन्य के धर्म की आज क्या दशा होती, इसे कौन बता सकता है ? जिन सभी संसार-त्यागी, असाधारण, शास्त्रदर्शी और दैन्यवेशी संन्यासी भक्तों ने वृन्दावन को अपना केन्द्र-स्थान एवं आवास बनाकर असंख्य वैष्णव ग्रन्थों की रचना की और एतद्‌वारा वैष्णव धर्म की भित्ति का मूल निर्माण किया, उनके मध्य सर्वप्रधान और सर्वप्रथम थे तीन व्यक्ति—श्री सनातन और रूप गोस्वामी तथा उनके भातृपुत्र एवं शिष्य श्री जीव गोस्वामी। यदि सनातन ने अपने धर्म को तथा भक्तिवाद के सिद्धान्तों को सनातन धर्म का अन्तर्भुक्त कहकर उन्हें प्रमाणित किया था तो रूप ने उस धर्म की साधन-प्रणाली का स्वरूप निर्धारित किया और श्री जीव ने उनकी विविध सन्दर्भों में तत्त्व-व्याख्या करके उस धर्म को चिरंजीवी बनाया।"

इन गोस्वामियों के मध्य त्याग, तपस्या, संगठन-शक्ति तथा शास्त्र एवं काव्य-रचना की दृष्टि से रूप गोस्वामी थे असाधारण परन्तु उनके श्रेष्ठतम अवदान थे कृष्ण-लीला एवं कृष्ण-रस से ओतप्रोत उनके काव्य और नाटक। रूप गोस्वामी में कवि प्रतिभा जन्मजात थी और वे कम आयु से ही परम पण्डित थे। जितने काव्य, नाटक, स्तोत्र, मंत्र, टीकाएँ तथा शास्त्र-संग्रह उनकी लेखनी से सृजित हुए वे अवर्णनीय हैं। श्री जीव ने अपने ग्रन्थ 'लघु तोषणी' में अपने वंश-परिचय के साथ रूप गोस्वामी द्वारा लिखे गए सभी ग्रन्थों का उल्लेख किया है। रूप गोस्वामी वैष्णवी साधना और सिद्धि के मूर्त रूप थे। उनमें कठोरता भी थी और कोमलता भी थी। वैराग्य भी था और अनुराग भी था। साधना की वैधी एवं रागानुगा धृति एकसाथ अपूर्व विशिष्टता लिये प्रस्फुटित थी और उसके साथ ही घटित हुआ था भक्ति और ज्ञान का विराट समन्वय।

एक असाधारण वैष्णव नायक के रूप में रूप गोस्वामी व्यावहारिक जीवन में दीनहीन एवं कौपीनधारी थे लेकिन उनका आध्यात्मिक जीवन बहुत ही कठोर साधक का था। उनके भीतर धार्मिक आदर्शों की रक्षा सम्बन्धी निष्ठा और दृढ़ता भी थी। शिष्यों के क्षणिक स्खलन को भी वे बर्दाश्त नहीं कर पाते थे। वे श्री चैतन्य के वैष्णवीय आदर्श की प्रतिमूर्ति थे। उनकी चारित्रिक विशेषता थी वैष्णवी दैन्य एवं विनय और उनकी दृष्टि में प्रतिष्ठा थी शूकरी निष्ठा थी।

एक बार आचार्य बल्लभ भट्ट रूप गोस्वामी से मिलने आए। वे विष्णु स्वामी सम्प्रदाय से सम्बन्धित थे। प्रकाण्ड विद्वान थे। उस समय रूप गोस्वामी 'भक्ति-रसामृत' की रचना में तल्लीन थे। रूप गोस्वामी ने भट्टजी की अभ्यर्थना की और अपने पार्श्व में बैठने के लिए आसन बिछा दिया। भट्टजी के आग्रह पर रूप गोस्वामी ने अपने ग्रन्थ के मंगलाचरण के एक-दो श्लोक सुनाए। भट्टजी ने विवाद का सृजन करते हुए कहा, ''गोस्वामीजी, आप देखते हैं, इस श्लोक में एक त्रुटि रह गई है।''

''अत्युत्तम कथा''। रूप गोस्वामी के मुँह से तुरन्त फूट पड़ा। उन्होंने भट्टजी से संशोधन का आग्रह किया और स्वयं यमुना-स्नान के लिए चले गए। श्री जीव गोस्वामी वहीं कुटिया में बैठे थे। भट्टजी ने लेखनी हाथ में ली, तभी वे कठोर स्वर में बोल उठे, ''आचार्य जरा ठहरें। इस श्लोक में कोई त्रुटि है अथवा नहीं, पहले इसका निर्णय तो कर लें। हम लोगों के गोस्वामी प्रभु दैन्य के अवतार हैं। आप पूर्णतया भ्रान्त हैं, इस कथा को समझते हुए भी उन्होंने आपके अहंभाव को थोड़ा प्रश्रय दिया है।''

''तुम कौन हो नवयुवक? देखता हूँ तुम्हारी स्पर्धा कम नहीं है। जानते हो, मैं कौन हूँ?''

''जी, आपका परिचय मैंने सुना है।''

''तब? इस प्रकार का साहस तुम्हें कैसे हुआ?''

''गुरु-कृपा से ही मुझमें यह साहस हुआ है आचार्यवर'', श्री जीव ने कहा, ''आप जिनके आलेख में संशोधन करने जा रहे हैं, उन्हीं के समीप हुई है हमारी दीक्षा एवं शास्त्र-विद्या। उस शिक्षा का एक कण भी मैं आपत्र नहीं कर पाया। फिर भी उनके प्रसाद के फलस्वरूप मेरे सदृश नवयुवक ने वृन्दावन में दो-चार दिग्विजयी पण्डितों को परास्त किया है।''

''हूँ।'' आन्तरिक क्रोध पर काबू पाते हुए भट्टजी बोले, ''अच्छा गोस्वामीजी के इस श्लोक की प्रासंगिकता और औचित्य का कारण समझाओ।''

श्री जीव ने प्राचीन शास्त्रों से उस श्लोक की यथार्थता सप्रमाण सिद्ध कर दी।

आचार्य बल्लभ भट्ट थोड़ी देर तक सोचते रहे फिर रूप गोस्वामी की पाण्डुलिपि बन्द कर वहाँ से चले गए।

रूप गोस्वामी जब यमुना-स्नान से लौट रहे थे तब मार्ग में भट्टजी से उनकी भेंट हुई। भट्टजी ने उनसे पूछा, ''गोस्वामीजी, आपकी कुटिया में उपविष्ट वह तरुण वैष्णव कौन है?''

''क्यों, क्या बात है, कहें। वह तो मेरा शिष्य श्री जीव है।'' रूप गोस्वामी ने शंका के स्वर में मधुरता के साथ कहा। भट्टजी ने उन्हें सारी घटना कह सुनाई, फिर चले गए।

कुटी में प्रवेश करते रूप गोस्वामी ने कठोर स्वर में श्री जीव को पास बुलाया। फिर जो विस्फोटक स्थिति उत्पन्न हुई उसका वर्णन 'प्रेम विलास' में इस प्रकार किया गया है—

श्री जीव पुकार कर कहते श्री जीव के प्रति।
असमय में वैराग्य वेश धारण किया मूढ़मति॥
क्रोध के ऊपर तुम्हें क्रोध नहीं हुआ तब।
अतएव तुम्हारा मुख नहीं देखूँगा अब॥

श्री जीव गोस्वामीजी के समक्ष सिर झुकाए खड़े रहे। उन्हें अपने अपराध का बोध हुआ। कृष्ण-रस के पान के लिए क्रोध और अहं का परित्याग पहली शर्त है।

रूप गोस्वामी ने कहा, ''तुम क्या समझते हो, बल्लभ भट्ट भ्रांत हैं, क्या हम नहीं जानते? सबकुछ जानते हुए भी मैंने उन्हें प्रश्रय दिया है। उनके समीप झुकना स्वीकार किया है। वृन्दावन में अनेक दिग्विजयी पण्डितों को बिना तर्क के मैंने जप पत्र दे दिए हैं। तुमसे कुछ भी अज्ञात नहीं है। महाप्रभु के पवित्र धर्म का यदि प्रचार करोगे, तो इस प्रकार के आचरण का होना उचित नहीं। केवल

क्रोध ही नहीं, सूक्ष्म अहं का बोध भी तुम्हारे इस मनोभाव में प्रच्छन्न रूप से विद्यमान था। यदि तुम इन सबों का परित्याग कर सको तो मेरे पास रह सकते हो अन्यथा नहीं।'' वैष्णवी नीति और निष्ठा के प्रति इतने कठोर थे रूप गोस्वामी।

गुरु की इस प्रताणना के बाद श्रीजीव गोस्वामी घने जंगल में चले गए और वहाँ पर्ण-कुटी बनाई। उसी में अपनी कृच्छ साधना शुरू की। कई महीने बीत गए। इस निर्जन वन में कभी-कभार जो कुछ मिल जाता उसी से उदर-पूर्ति करके फिर लीन हो जाते अपनी तपस्या में।

एक दिन अचानक इस वन से सटे एक गाँव में सनातन गोस्वामी का आगमन हुआ। ग्रामवासियों से बातचीत में इस नवीन संन्यासी का प्रसंग आया। सनातन गोस्वामी उससे मिलने के लिए चल पड़े। वे कुटिया के पास पहुँचे ही थे कि श्री जीव चरणों पर गिर पड़े और इस कुटिया में वास का कारण बताया। सनातन का हृदय द्रवित हो उठा। उन्होंने श्री जीव को सान्त्वना दी किन्तु रूप गोस्वामी की स्वीकृति लिये बिना श्री जीव को अपने साथ ले जाने का साहस नहीं जुटा पाए।

वृन्दावन लौटने पर रूप के साथ बातचीत में श्री जीव का उल्लेख आया। सनातन ने कहा, ''श्री जीव से मेरी मुलाकात हुई। अनाहार, अनिद्रा और कठोर तपस्या से उसकी जो दशा हुई है, उसे देख पाना सम्भव नहीं है। उसके शरीर में बस प्राण मात्र रह गया है।'' सनातन की व्यथा को समझते देर नहीं लगी। रूप ने श्री जीव को क्षमा करने का निश्चय किया। उन्होंने एक शिष्य को भेज कर श्री जीव को बुलवाया। उसे क्षमा किया। श्री जीव को नया जीवन मिला।

कंथा और करंगधारी सनातन और रूप बंधु ने वृन्दावन में एक विशाल भक्ति-साम्राज्य स्थापित कर लिया था। ये लोग महाप्रभु द्वारा प्रचारित भक्ति-प्रेमधर्म के चिह्नित अधिनायक के रूप में मान्य थे। कृष्णराज कविराज ने लिखा—

सनातन की कृपा से पाया भक्ति के सिद्धान्त।
श्री रूप की कृपा से पाया रसभार प्रान्त॥

इन दोनों महासाधकों के बीच श्रीजीव गोस्वामी का उदय हुआ। सनातन और रूप वृद्ध हो गए थे। सनातन स्वामी ने आषाढ़ी पूर्णिमा को अपना देह-त्याग किया। देवतुल्य ज्येष्ठ भ्राता का विछोह रूप के लिए अत्यन्त मार्मिक था। सनातन के श्राद्ध और भण्डारा के बाद जब वे अपनी कुटिया में घुसे तो उससे बाहर निकलते नहीं देखे गए। १५५४ खीष्टाब्द के चिह्नित क्षण में इस महान साधक की चिर विदा बेला का लग्न आने पर, प्राण-प्रभु गोविन्द देव की ओर अपनी दृष्टि निबद्ध करते हुए वे चिरनिद्रा में लीन हो गए।

●

सनातन गोस्वामी

श्री चैतन्य नीलाचल से नवद्वीप आये थे। जननी के चरण-दर्शन पाकर कुछ दिनों तक गंगा-तट पर वास के उपरान्त वृन्दावन के लिए रवाना हुए लेकिन पहुँच गए गौड़ से सन्निकट रामकेलि के समीप। रात में विश्राम कर रहे थे तभी दीन-वेष में दो स्थानीय सम्मानित पुरुष उनके समक्ष आ खड़े हुए। भक्तों ने परिचय कराया, "प्रभु, ये दोनों भाई गौड़ के बादशाह हुसैन शाह के प्रधान अमात्य हैं। बड़े भाई अमरदेव दबीर खास हैं और छोटे भाई संतोषदेव साकर माल्लिक के नाम से जाने जाते हैं। इनकी अटूट कृष्ण-भक्ति सर्वोपरि है।" प्रभु ने अमरदेव को आलिंगनबद्ध कर लिया। बोले, "तुम दोनों भाई कृष्ण-कृपा के महान अधिकारी हो। इसीलिए तुम दोनों के दर्शनार्थ दौड़ आया। देखो, मेरे कृपामय कृष्ण की क्या अपार लीला है। ब्रजधाम जाने के लिए निकला हूँ, परन्तु अज्ञात आकर्षण से इस क्षेत्र में दौड़ा आया। गौड़ आने का मेरा कोई प्रयोजन ही नहीं है। मात्र तुम लोगों के लिए ही इधर आ गया हूँ।"

प्रभु की इस कृपा से दोनों भाइयों की आँखों में आँसू आ गए। उन्होंने श्री चरणों का सेवक बनने की प्रार्थना की। दोनों भाइयों को आशीर्वाद देते हुए श्री चैतन्य ने कहा, "शीघ्र ही कृष्ण तुम लोगों पर कृपा करेंगे, अपने व्यक्तिगत कार्य में लगा लेंगे। आज से तुम लोगों का मैं नवीन नामकरण कर रहा हूँ। अमर का नाम होगा सनातन और संतोष का नाम होगा रूप।" बाद में चलकर दोनों भाई श्री चैतन्य के निकटतम पार्षदों के रूप में प्रसिद्ध हुए। सनातन गोस्वामी ने गौड़ीय वैष्णव धर्म की सुदृढ़ शास्त्रीय भित्ति का निर्माण किया और रूप गोस्वामी ने राधाकृष्ण लीला-रस की परिपुष्टि एवं विस्तार किया।

सनातन के पूर्वज दक्षिणात्य के थे। चौदहवीं सदी के मध्य में कर्नाटक के पराक्रमी नृपति सर्वज्ञ जगद्गुरु थे। इनके वंशधर रूपेश्वर देव ने सत्ताच्युत होने के बाद गौड़ देश में आश्रय किया। इस वंश की शास्त्र विद्या एवं राजकार्य दोनों में ही समान दक्षता थी ही, साथ ही दाक्षिणात्य की वैष्णवीय साधना की धारा भी इनके जीवन में बह रही थी। इसी वंश के कुमारदेव के घर में तीन पुत्रों का जन्म हुआ। अमर, संतोष तथा बल्लभ देव। ज्येष्ठ पुत्र अमर का जन्म १४६५ ईस्वी में हुआ जो कालान्तर में सनातन गोस्वामी के नाम से प्रसिद्ध हुए। गौड़ीय-साधक

समाज में श्री चैतन्य के जीवन-दर्शन के विशिष्ट एवं श्रेष्ठ भाष्यकार के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

सनातन के पितामह मुकुन्ददेव रामकेलि के रहने वाले थे और गौड़ सरकार में उच्चपद पर आसीन थे। वे भी एक भक्तिवान साधक थे। उन्होंने अपने पुत्रों को उच्च शिक्षा दिलाई। पण्डित वासुदेव सर्वभौम एवं उनके अनुज रत्नाकर विद्यावाचस्पति की देखरेख में सनातन एवं रूप ने साहित्य, व्याकरण तथा धर्मशास्त्रों का गहन अध्ययन किया। इसके बाद अरबी और फारसी भाषाओं पर भी अधिकार जमाया। बाद में वृन्दावन प्रवास के प्रथम चरण में परमानन्द भट्टाचार्य नामक एक विशिष्ट भक्तिसिद्ध आचार्य से भी सनातन ने शिक्षा ग्रहण की तथा भागवत एवं अन्य भक्ति शास्त्रों में पारंगत हुए।

पितामह मुकुन्ददेव के देहांत के बाद सनातन उन्हीं के पद पर राज्य सरकार में आरूढ़ हुए. उस समय उनकी अवस्था अठारह वर्ष थी। धीरे-धीरे अपनी प्रतिभा और कर्तव्यनिष्ठा के कारण वे इस पठान राज्य के प्रधान अमात्य बन गए। वे सुल्तान हुसैन शाह के दाहिने हाथ बन गए। रामकेलि में इन भ्राताओं की कीर्ति, प्रभाव, वैभव और मर्यादा असाधारण थी। उनके प्रासाद के चारों ओर मन्दिर, मण्डप एवं नाट्यशालाएँ निर्मित थीं। विख्यात साधु-संन्यासियों, विद्वानों, आचार्यों का आवागमन बना रहता। दीन-दुखियों को सहायता प्राप्त होती रहती। सनातन की ख्याति सारे गौड़ देश में फैल गई।

परन्तु इतनी मर्यादा और ख्याति के बावजूद हिन्दू समाज इस परिवार को मान्यता नहीं देता था। कारण था मुसलमानों से घनिष्ठता एवं स्पर्शदोष। इसीलिए बंगीय कायस्थों की वंशावली में इन लोगों का कोई उल्लेख नहीं मिलता। लेकिन प्रभु श्री चैतन्य के दर्शन और आशीर्वाद से उनके जीवन में एक नए आनन्द और उल्लास का संचार हो गया था। वैसे राज्य-अमात्य पद को विभूषित करते हुए भी सनातन का अन्तर दैन्यमय, त्यागव्रती महावैष्णव का ही था।

सनातन बादशाह हुसेन के बड़े प्रिय थे। युद्धाभियान में प्राय: उनके साथ रहते। एक बार बादशाह के सेनापति ने उड़ीसा में देव-मन्दिरों को ध्वस्त कर दिया, तभी भक्त सनातन का हृदय विदीर्ण हो उठा। यह विचार उनके मन में आने लगा कि वे कैसा पाखण्डपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे हैं। इस जीवन से उन्हें जल्द ही मुक्त हो जाना चाहिए। रामकेलि के आध्यात्मिक वातावरण में रहते हुए सनातन के जीवन में भक्ति-प्रेम की सुप्त भावना जाग उठी। वे स्वनिर्मित कृष्ण लीला स्थलों में घूमते हुए अद्भुत आनन्द का अनुभव करते। इसी बीच उन्होंने नीलाचल में भक्तिरस का प्रसार कर रहे श्री चैतन्य के बारे में सुना और उन्हें एक मार्मिक पत्र लिखा जिसमें श्री चैतन्य के चरणों में सारा जीवन उत्सर्ग कर देने की

अनुमति माँगी। पत्रवाहक के हाथ श्री चैतन्य ने जो पत्रोत्तर भेजा उसमें मात्र यही श्लोक लिखा—

परव्यसनी नारी व्यग्रापि भृकर्म सु।
तदेवास्वादायत्यन्तर्नवसंग रसायनः ॥

अर्थात परपुरुष आसक्ता नारी जैसे गृह-कार्य करते हुए भी प्रेमी की स्मृति बनाए रखती है, उसी तरह विषय-लिप्त अवस्था में भी, 'उसके' प्रेम में चित्त डुबाए रखा जा सकता है। यह श्लोक स्वामी विद्यारण्य के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'पंचदशी' से लिया गया था।

प्रभु के इस पत्र को पाकर सनातन की व्याकुलता और बढ़ गई। अन्ततः उस दिन प्रभु ने स्वयं रामकेलि में आकर ही दर्शन दिया। सनातन का तप्त हृदय शान्त हुआ।

श्री चैतन्य जब अपने भक्तगणों के साथ वृन्दावन जाने को तैयार हुए तो सनातन ने उनसे विनती की थी, "प्रभु, इस समय उत्तर भारत में राजनीतिक उथल-पुथल मची हुई है। राजाओं और मुस्लिम शासकों में युद्ध छिड़ा हुआ है, इसलिए इतने साधुओं के साथ वृन्दावन जाना उचित नहीं है। वहाँ तो अत्यन्त कंगाल वेश में जाना ही उचित है।"

श्री चैतन्य को सनातन की यह सलाह पसन्द आई और वे शांतिपुर की ओर रवाना हो गए।

प्रभु के जाने के बाद सनातन के भीतर इस सांसारिक मोह से छुटकारा पाने की आकांक्षा तेजी से जगी। अन्ततः दोनों भाइयों ने निश्चय किया कि पहले रूप गृहत्याग करेंगे, उसके बाद सनातन। गृहत्याग से पूर्व सनातन राजकीय दायित्वों से मुक्त होना चाहते थे।

रूप ने गृह त्यागने से पूर्व अपने और सनातन के आश्रित ब्राह्मणों, साधु-सन्तों और आत्मीय स्वजनों के भरण-पोषण की व्यवस्था कर दी। रूप के जाने के बाद सनातन के अन्दर निवृत्ति मार्ग तेजी से पनपने लगा और एक दिन उन्होंने सुल्तान को खबर भेज दी कि अस्वस्थता के कारण वे राजकीय दायित्वों को वहन करने में स्वयं को समर्थ नहीं पा रहे। हुसेन शाह चिंतित हो उठे। चारों ओर छाए युद्ध के बादलों के बीच एक कुशल अमात्य को खोना विपत्ति को दावत देने के समान है। बादशाह सनातन के घर चले आए। उन्होंने देखा कि सनातन स्वस्थ हैं और साधु-संतों से धर्म-चर्चा में परमानन्द प्राप्त कर रहे हैं। उन्होंने सनातन से पुनः अपना दायित्व सम्हालने का अनुरोध किया। इससे भी जब बात नहीं बनी तो धमकियाँ दीं। सनातन ने स्पष्ट शब्दों में कहा, "जहाँपनाह, सही बात यह है कि मैं दरबार के कार्य में किसी तरह का योगदान

देने में असमर्थ हूँ। आज से मैं केवल भगवान का दास हूँ, और किसी का नहीं। मेरा यह संकल्प अपरिवर्तनीय है। आप कृपया क्षमा करें।''

सनातन की इस स्पष्टोक्ति से बादशाह आगबबूला हो उठा और उन्हें गिरफ्तार करके जेल में डाल दिया।

थोड़े ही दिनों बाद हुसेन के सेनापति उड़ीसा के युद्ध में परास्त होकर वापस लौट आए। शाह हुसेन ने स्वयं राजा प्रतापरुद्र के खिलाफ युद्ध का नेतृत्व करने का निश्चय किया। उन्हें सनातन जैसे कुशल अमात्य की आवश्यकता महसूस हुई। उन्होंने सनातन को जेल से बाहर निकाला और अपना साथ देने के लिए समझाया। सनातन ने उत्तर दिया, ''जहाँपनाह, आपके अभिमान का दृश्य मैं स्पष्ट देख रहा हूँ। आपकी सेना सारे मार्ग में देव-मन्दिरों को ध्वस्त करेगी तथा पवित्र विग्रहों को कलुषित करेगी। इसलिए किसी भी प्रकार मैं आपके पाप-कार्यों में साथ नहीं दूँगा।''

अमात्य को पुनः जेल में डाल दिया गया और शाह ने युद्ध के लिए विशाल सेना के साथ प्रस्थान किया।

एक दिन सनातन को छोटे भाई का पत्र मिला। उसमें सलाह दी गई थी कि जो रुपए मोदी के पास रखे गए हैं उनमें से सात हजार रुपए लेकर वे जेल से मुक्ति को क्रय करें। सनातन ने इसी सलाह के अनुरूप जेलरक्षकों को प्रलोभन में फँसाया और जेल से मुक्त होकर पश्चिम भारत की ओर रवाना हो गए। उनके साथ उनका विश्वस्त मित्र एहसान भी था।

उन दिनों श्री चैतन्य बनारस में निवास कर रहे थे।

बादशाह के रक्षकों द्वारा पीछा किए जाने के भय से सनातन दीन-दरिद्र के वेश में यात्रा कर रहे थे। मार्ग में उन्हें एक भूमिया मिला। उसने खूब आदर-सत्कार किया। सनातन भूमियाओं के चरित्र से परिचित थे। वे यात्रियों की सेवा करके उन्हें अपने यहाँ ठहराते थे, रात में सबकुछ लूट कर उनकी हत्या कर देते थे। सनातन के पास तो कुछ नहीं था लेकिन एहसान के पास कुछ धन हो सकता था। उन्होंने जब एहसान से पूछा तो उसने स्वीकार किया कि राह-खर्च के लिए उसने सात मुहरें छिपा रखी हैं। सनातन ने इसके लिए एहसान को फटकारते हुए कहा, ''मैं सर्वस्व त्याग कर वैराग्य के मार्ग पर निकल पड़ा हूँ और तुम मेरे मार्ग में विघ्न की सृष्टि कर रहे हो?''

सनातन भूमिया के पास गए और कहा कि ''मेरे साथी के पास सात मुहरें हैं, इसे आप ग्रहण कीजिए और हम लोगों को इस दुर्गम पहाड़ को पार करा दीजिए।'' उससे भूमिया काफी प्रसन्न हुआ और दोनो अतिथियों को वह खतरनाक इलाका पार करा दिया।

एहसान को अपराधबोध साल रहा था। उन्होंने अपने पास एक मुहर और होने की बात सनातन को बताई और इसके लिए क्षमा की प्रार्थना की। सनातन काफी कुपित हुए और एहसान को वापस लौट जाने को कहा। एहसान ने अश्रुपूरित नेत्रों से वापस रामकेलि की ओर प्रस्थान किया।

पैदल यात्रा करते हुए सनातन सोनपुर पहुँचे। वहाँ हरिहर क्षेत्र का मेला चल रहा था। अचानक उनकी मुलाकात भगिनीपति श्रीकान्त से हुई जो राज्य सरकार में एक वरिष्ठ पद पर तैनात थे। उनकी नौकरी सनातन ने ही लगवाई थी। वे बादशाह के लिए घोड़े खरीदने मेले में आए थे। श्रीकान्त ने सनातन से काफी आग्रह किया कि वे वैराग्य का मार्ग त्याग दें, किन्तु उन्होंने ठुकरा दिया। फिर श्रीकान्त ने कहा कि भिखारी वेश में न जायँ, आपके लिए कुछ वस्त्र खरीद दूँ, इसके लिए भी सनातन तैयार नहीं हुए। अन्त में पश्चिमी भारत में भयंकर सर्दी को देखते हुए एक कम्बल लेने को तैयार हुए और श्रीकान्त ने एक मूटिया कम्बल खरीद कर उन्हें अर्पित किया।

सनातन कई दिनों की यात्रा के बाद बनारस पहुँचे। उनकी खुशी की सीमा नहीं रही जब उन्होंने सुना कि श्री चैतन्य इन दिनों यही हैं। वे चन्द्रशेखर मिश्र के घर निवास कर रहे थे। भिखारी वेश में हाथ जोड़े सनातन मिश्रजी के दरवाजे पर आ खड़े हुए। घर में श्री चैतन्य भक्तों के साथ चर्चा में लीन थे। उन्होंने अचानक चन्द्रशेखर मिश्र से कहा, ''मिश्रजी, आज बड़ा ही शुभ दिन है। बाहर जाकर देखो कोई महावैष्णव तुम्हारे द्वार पर खड़े हैं। उन्हें परम आदर के साथ मेरे पास ले आओ।'' चन्द्रशेखर मिश्र सनातन को घर में ले आए।

श्री चैतन्य को देखते ही सनातन भाव-विभोर हो गए। अश्रुजल की धारा बह निकली। प्रभु के चरणों पर गिर पड़े। प्रभु ने उन्हें उठाकर सीने से लगा लिया।

कुछ देर बाद श्री चैतन्य ने उन्हें गंगा-स्नान करके भिक्षा ग्रहण करने का आदेश दिया। सनातन ने मिश्रजी से एक पुराने कपड़े का टुकड़ा लिया। उसके दो हिस्से करके एक का कौपीन और दूसरे का वहिर्वास बनाया।

सनातन गंगा-स्नान करके लौटे। भिक्षा ग्रहण की। कंधे पर मोटिया कम्बल डाले। हाथ में भिक्षा की झोली ली और घर-घर भिक्षा माँगने के लिए उठे। तभी श्री चैतन्य की निगाह उनके कीमती कम्बल पर पड़ी। वे थोड़ी देर तक घूरते रहे। सनातन को समझते देर नहीं लगी। वे भागते हुए गंगा के घाट पर आए। वहाँ एक गरीब वृद्ध अपना कंथा धूप में सूखा रहा था। सनातन ने विनती करके उस वृद्ध का जीर्ण कंथा ले लिया और अपना मोटिया कम्बल उसे दे दिया। उसके बाद प्रसन्न मन से जीर्ण कंथा लपेटे वापस आ गए।

श्री चैतन्य को सनातन का यह रूप देखकर अपार खुशी हुई फिर भी उन्होंने पूछा, ''यह क्या सनातन! अपना मोटा कम्बल कहाँ भुला आये?''

उत्तर में सनातन ने पूरी घटना बयान कर दी। सनातन के जीवन में यह त्याग-वैराग्य की पराकाष्ठा थी। कुछ दिनों तक सनातन वाराणसी में प्रभु के समीप रहे। इस दौरान उनकी तमाम शंकाओं का समाधान प्रभु ने किया जिसके परिणामस्वरूप सनातन उत्तर काल में ब्रजमण्डल के वैष्णव समाज में शीर्ष स्थान पर पहुँच गए। एक दिन सनातन के सिर पर हाथ रखकर श्री चैतन्य ने कहा था, ''सनातन, आज जिन देववांछित तत्त्वों का तुमने श्रवण किया, आशीर्वाद देता हूँ कि उनका तुम्हारे अन्तर में स्फुरण हो।''

सनातन बनारस से वृन्दावन आ गए। उनकी भेंट सुबुद्धि राय, लोकनाथ गोस्वामी और भूगर्भ पण्डित जैसे वैष्णव भक्तों से हुई। इसके बाद उन्होंने यमुना-पुलिन स्थित आदित्य टीले पर आश्रय लिया। उनके इस समय के त्याग-वैराग्य, भजननिष्ठ जीवन की झाँकी 'भक्त पदावली' में उपलब्ध होती है—

कमु कान्दे कमु हाँसे कमु प्रेमानन्दे भासे
कमु भिक्षा कमु उपवास।
छेड़ा कांथा नेड़ा माता मुखे कृष्ण गुण गाथा
परिधान छेड़ा बहिर्वास।
कखनओं बनेर शाक अलवणे करि पाक
मुखे देय दुई एक ग्रास।

सनातन झोली कंधे से लटका कर भिक्षा के लिए मथुरा चले जाते। जो कुछ भिक्षा मिलती, उसी से भूख मिटाते। वे लोकनाथ गोस्वामी के साथ ब्रजमण्डल में लुप्त श्रीकृष्ण के लीला-स्थलों के उद्धार में लग गए। लगभग एक वर्ष तक वृन्दावन में रहने के उपरान्त सनातन उड़ीसा के लिए लिए चल पड़े। झारखण्ड के रास्ते वे उड़ीसा की तरफ बढ़ रहे थे। एक दिन उन्होंने देखा कि उनके शरीर में विषाक्त कण्डु रोग का आक्रमण हो चुका है। उन्होंने इसे सुल्तान की नौकरी के दौरान स्वयं द्वारा किए गए पाप-कर्मों का परिणाम समझा और निश्चय किया कि पुरीधाम पहुँच कर श्री जगन्नाथ तथा प्रभु श्री चैतन्य के चन्द्र- बदन का दर्शन करके रथ के पहियों के नीचे अपने प्राण विसर्जित कर देंगे। धाम में पहुँचकर सनातन ने नगर के दूरस्थ क्षेत्र में स्थापित हरिदास की कुटिया में शरण ली।

श्री चैतन्य प्रतिदिन भक्त हरिदास को दर्शन-दान देने के लिए उनके पास आते और काफी समय व्यतीत करके वापस लौट जाते। उस दिन जब उन्होंने सनातन को देखा तो दीनतापूर्वक प्रणाम निवेदित किया। वे हाथ बढ़ाकर सनातन

के आलिंगन का जितना प्रयास करते, सनातन उतना ही पीछे हटते जाते। अन्ततः सनातन ने कातर स्वर में कहा, ''प्रभु, अपने देव-दुर्लभ शरीर से मेरा स्पर्श मत करो। मैं अत्यन्त हीन तथा भ्रष्टाचारी हूँ। मेरे शरीर में कण्डु की घृणित व्याधि भी है। इसकी छूत अपने शरीर में लगाकर मुझे और अधिक पापी मत बनाओ।''

परन्तु प्रभु सनातन से बार-बार लिपटते रहे। उनके शरीर की पीप श्री चैतन्य के शरीर में लगती रही और सनातन पश्चात्ताप की आग में जलते रहे। अन्ततः उन्होंने सोचा कि उन्हें यथाशीघ्र शरीर विसर्जित कर देना चाहिए।

श्री चैतन्य एक दिन हरिदास की कुटिया में बैठकर कृष्ण-भक्ति की कथा कह रहे थे। अचानक सनातन की तरफ मुड़े और कहा, ''सनातन, केवल शरीर त्याग करने से कृष्ण नहीं मिलते। उनकी प्राप्ति उनके भजन से होती है। ऐसे अशुभ संकल्पों का त्याग कर दो। मैं आशीर्वाद देता हूँ कि शीघ्र ही तुम्हारी मनोकामना सिद्ध होगी और परम प्रभु के दर्शन पाओगे।'' सनातन ने सोचा, उनकी आत्महत्या की इच्छा प्रभु से छिपी नहीं रही। प्रेमावेग में सनातन प्रभु के चरणों पर गिर पड़े। रोते हुए बोले, ''प्रभु मैं पतित और पातकी हूँ। इस शरीर को जीवित रखने का लाभ ही क्या है, यह तो बताओ? मुझे अनुमति दो कि मैं श्री जगन्नाथजी के रथ के नीचे अपने को डाल दूँ।''

प्रभु ने जो बात कही उससे सनातन की महिमा प्रकट होती है—

प्रभु कहे तोमार देह मोर निज घन,
तुंमि मोरे करियाछो आत्मसमर्पण।
परेर द्रव्य तुमि कैनो चाह विनाशिते,
धर्माधर्म विचार किंवा ना पार करिते।
तोमार शरीर मोर प्रधान साधन,
ऐ शरीरे साधियो आमि बहु प्रयोजन।

(चैतन्य चरितावली)

प्रभु द्वारा की गई भर्त्सना के बाद सनातन सिर झुकाए बैठे रहे। हरिदास ने सनातन का आलिंगन करते हुए कहा, ''सनातन, तुम्हारे सौभाग्य की सीमा नहीं है। स्वयं प्रभु ने तुम्हारे शरीर पर अपना दावा किया है। मात्र यही नहीं, अपने शरीर से जो कार्य सम्भव नहीं है, उसे तुम्हारे माध्यम से कराने का निश्चय किया है। तुम सत्य ही धन्य हो। हम लोग नितान्त अधम हैं, इसीलिए प्रभु के किसी काम नहीं आ सके।''

श्री चैतन्य के अंतरंग भक्त जगदानन्द पण्डित नीलाचल आए हुए थे। वे सनातन से मिलने गए। सनातन ने कहा कि प्रभु प्रतिदिन मेरे शरीर का आलिंगन करते हैं। मैं वीभत्स कण्डु रोग से ग्रसित हूँ। मेरे शरीर की पीप प्रभु के शरीर में

लगती रहती है। यह अपराध नित्य मुझसे हो रहा है। मैं प्रभु को मना भी नहीं कर पा रहा हूँ। आप ही कोई रास्ता बताइए। प्रभु ने मुझे आत्महत्या करने से भी रोक दिया है। जगदानन्द यह बात सुनकर सिहर उठे। उन्होंने सनातन को वृन्दावन चले जाने की सलाह दी।

दूसरे दिन जब प्रभु हरिदास और सनातन को दर्शन देने आए तो प्रभु ने फिर सनातन को आलिंगन किया और उनके शरीर का पीप प्रभु के शरीर में लगा। सनातन बहुत दु:खी हुए और उन्होंने जगदानन्द की सलाह का उल्लेख करते हुए नीलाचल छोड़ देने की इच्छा व्यक्त की। यह सुनते ही प्रभु गुस्से से फट पड़े। बोले, ''क्या कहते हो तुम? कल का जगा, तुम्हें उपदेश देने आया था? उसकी ऐसी स्पर्धा! क्या वह नहीं जानता कि बुद्धि, शास्त्रज्ञान तथा भजन-साधन में तुम उसके गुरु होने योग्य हो? इसके अलावा तुम मेरे प्राणाधिक प्रिय सहचर हो। बालक-बुद्धि जगा, तुम्हें उपदेश देने आया था, ऐसी धृष्टता उसने कैसे की?''

सनातन की आँखों से आँसू झरने लगे थे।

हरिदास ने जब सनातन के कण्डु रोग के न ठीक होने के बारे में पूछा तो प्रभु ने हँसते हुए कहा, ''हरिदास, सनातन ने अपना देह, मन और प्राण सभी मुझे समर्पित किया है तथा मैं अपना सर्वस्व अपने प्राणप्रभु कृष्ण को समर्पित करके बैठा हूँ। सनातन की वे निश्चित रूप से रक्षा करेंगे।''

और भक्तों ने विस्मयपूर्वक देखा कि सनातन का रोग कुछ दिनों में जाता रहा और शरीर में अपूर्व लावण्यश्री प्रस्फुटित हो उठी।

रथयात्रा भी आ गया। इस बार का सबसे बड़ा आकर्षण था—जगन्नाथ रथ के अग्रभाग पर भावाविष्ट श्री चैतन्य का नर्तन। भक्तगण इस दृश्य को देखकर भावविभोर हो गए। चतुर्मास्य खत्म होने पर भक्तगण वापस लौट गए पर सनातन को प्रभु ने दोलयात्रा (होली) तक रोक लिया।

दोलयात्रा समाप्त होने पर सनातन वृन्दावन के आदित्य टीले की पर्ण-कुटीर में लौट आए। प्रभु ने जिस नवीन भक्ति साम्राज्य के गठन की जिम्मेदारी उन्हें सौंपी थी उसके बारे में चिन्तन करते रहे—भक्तिसाधन के साथ-साथ।

एक दिन भिक्षाटन के लिए सनातन मथुरा गए थे। वहीं रहने वाले दामोदर चौबे के घर उपस्थित हुए। आँगन में पैर रखते ही श्री श्री मदनगोपाल के नयनाभिराम विग्रह पर दृष्टि पड़ी। उनके अन्दर इस विग्रह की सेवा की भावना पैदा हुई लेकिन उसे त्यागकर वापस लौट आए वृन्दावन। लेकिन जब वे साधन-भजन में लीन होते वही विग्रह उनके ध्यान में आ जाता। जब वे मधुकरी के लिए मथुरा जाते, चौबेजी के आँगन में खड़े होकर उसका दर्शन अवश्य करते।

चौबेजी की विधवा कृष्ण के बालरूप की सेवा करतीं। उन्हें एक पुत्र था सदन। दूसरे गोपाल कृष्ण थे मदन। सनातन ने उन्हें कृष्ण के बाल-स्वरूप के अर्चन की बजाय अन्य वैष्णव भक्तों की तरह पूजा-अर्चना का सुझाव दिया क्योंकि उनके अन्दर यशोदा जैसा वात्सल्य उत्पन्न होना असम्भव था। चौबेजी की विधवा ने सनातन के निर्देशानुसार ही पूजा करना प्रारम्भ किया। कुछ दिनों बाद जब सनातन जाकर चौबेजी के आँगन में खड़े हुए तो उनकी विधवा दौड़ते हुए आईं। बोलीं, ''बाबाजी, तुम्हारे कहे अनुसार पूजा करने पर मदनगोपालजी क्षुब्ध हो गए। एक दिन उन्होंने स्वप्न में आदेश दिया—''तू मेरी माँ बनी थी, यही अच्छा था। अब इष्ट के रूप में मुझे दूर खिसका देती है, यह मुझे बिल्कुल अच्छा नहीं लगता। तुम्हारे दोनों पुत्रों सदन और मदन में भेद रखना क्या अच्छी बात है?''

सनातन चौंक पड़े। ठीक ही तो है। सहजात प्रेम तथा हृदय की स्वाभाविक पुकार—यही तो है प्रभु की सेवा का श्रेष्ठ उपचार। चौबेजी की गृहिणी के स्वप्नादेश के माध्यम से इस मूल तत्त्व को मदनगोपाल ने आज मुझे समझा दिया।

वृन्दावन लौट कर सनातन मदनगोपाल के विरह से दग्ध रहने लगे। वे बार-बार मदनगोपाल को पुकारते। रोते। अपनी विरह-वेदना उन तक पहुँचाते। मदनगोपाल ने उनकी आर्त पुकार सुन ली और अपनी 'माँ' यानी चौबेजी की पत्नी से कहा कि अब मुझे सनातन के यहाँ पहुँचा दो। सनातन जब अगली बार चौबेजी के घर आए तो उनकी पत्नी ने विनती की, ''बाबाजी, आज से ही मदन गोपाल की सेवा का भार सम्हालो। गोपाल अब बड़ा हो चुका है, माँ के आँचल के नीचे क्यों रहना चाहेगा? तुम्हारी कुटिया में जाने की जिद पकड़ ली है। कल रात ही स्वप्न में उसने यह बात कही।''

सनातन को बेहद खुशी हुई। वे मदनगोपाल के विग्रह को ले आए और उसे स्थापित कर दिया। इस विग्रह का विशेष महत्त्व था। जनश्रुति के अनुसार श्रीकृष्ण के पौत्र वज्रनाभ ने सारे ब्रजमण्डल में अनुसंधान करके जिन आठ प्राचीन विग्रहों का पता लगाया, मदनगोपाल की श्री मूर्ति उनमें सर्वश्रेष्ठ थी। भिक्षा में मिले आटे का पिण्ड बनाकर उसे आग में सेकने (मौरीयाबट्टी) के बाद सनातन उसी का भोग मदनगोपाल को लगाते। वैष्णव समाज में यह भोग वस्तु आँगाकड़ि-भोग के नाम से विख्यात हुआ। बाद में बड़े-बड़े धनी लोगों द्वारा लाए गए विविध चढ़ावों के साथ यह भोग भी अनिवार्य हो गया।

इसके अलावा सनातन कुटिया के आस-पास उगे साग ले आते उसे बिना नमक के ही पका कर उसका भी भोग लगाते। एक दिन मदनगोपाल ने स्वप्न में

दर्शन देकर इस रूखे-सूखे भोग-पदार्थ पर एतराज जताया तो सनातन भारी मुसीबत में पड़ गए लेकिन कोई उपाय नहीं सूझ रहा था। अन्ततः मदनगोपाल ने स्वयं व्यवस्था कर दी।

पंजाब के एक धनी व्यापारी रामदास कपूर रात में नाव से वृन्दावन के पास से गुजर रहे थे। उनकी नाव में काफी माल लदा था। सहसा वह नौका आदित्य टीले के सामने सूर्य घाट की रेती में फँस गई और टेढ़ी-सी हो गई। माझियों ने काफी प्रयास किया किन्तु सफलता नहीं मिली। कृष्णपक्ष का गहन अन्धकार था। आसपास कोई बस्ती भी नहीं थी। कपूर चिंतित हो उठे। सम्भावना थी कि टेढ़ी नौका जल-समाधि ले ले और उस पर लदा सारा सामान जल में समा जाय। दस्यु आकर सामान लूट भी तो सकते हैं। सहसा एक टीले पर दीपक का मद्धिम प्रकाश दिखाई दिया। वे तैरकर टीले के पास गए। उन्हें एक पर्ण-कुटीर दिखाई दी। उस कुटीर के पास गए। वहाँ एक नयनाभिराम श्रीकृष्ण-विग्रह दिखाई पड़ा। विग्रह के सामने एक देवतास्वरूप वैष्णव साधक तपस्यारत थे। उन्होंने साधक को प्रणाम निवेदित किया। कपूर ने अपनी राम कहानी इस तपस्वी को सुना डाली। सनातन ने आश्वासन दिया, ''बाबा, तुम इतने अधीर न हो। मदनगोपालजी तुम्हारे ऊपर दया करेंगे।'' रामदास ने कहा, ''महाराज, मैंने संकल्प किया है कि इस संकट से मुक्त होने पर इस बार के व्यापार में जो लाभ होगा, सब देव-विग्रह की सेवा में अर्पित कर दूँगा।''

पता नहीं कहाँ से यमुना में एक जलधारा फूट पड़ी। उससे रेत हटी और नौका मुक्त हो गई।

रामदास व्यापार से वापस लौटे। सनातन से सपत्नीक दीक्षा लेकर धन्य हुए। उस बार के व्यापार का सारा लाभ मदनगोपाल के चरणों में अर्पित कर दिया। इस विपुल अर्थ से जगमोहन मन्दिर तथा नाट्यशाला का निर्माण हुआ। इसी के साथ ही कपूर ने काफी भूमि क्रय करके ठाकुर के भोग-वितरण की स्थायी व्यवस्था भी कर दी। जन साधारण में मदनगोपाल मनमोहन के नाम से परिचित हो गए। बाद में प्रभु का यह लीलामय श्री-विग्रह जयपुर में स्थानान्तरित हो गया।

इस नवनिर्मित इष्ट मन्दिर में सनातन ने एक दिन भी वास नहीं किया। कभी गोवर्धन के नीचे, कभी राधाकुण्ड के तट पर या कभी गोकुल के वन क्षेत्रों में झोपड़ी बना कर पूर्व-निष्ठा के साथ साधन-भजन करते रहे। इस बीच श्रीकृष्ण के लुप्त तीर्थ-स्थलों की खोज का उनका प्रयास भी चलता रहा। अनेक तीर्थों को पुनर्जीवित किया तथा उनको जनसाधारण के समक्ष प्रतिष्ठित किया। इन स्थलों में उल्लेखनीय हैं—नन्दग्राम में नन्द-यशोदा, बलभद्र तथा कृष्ण-विग्रह की स्थापना।

श्री चैतन्य के इस निर्देश को सनातन कभी नहीं भूले कि उन्हें नए-नए वैष्णवीय दर्शन, स्मृति तथा साधन-भजन ग्रन्थों का प्रचार करना होगा। वे प्राचीन भक्ति-शास्त्र के ग्रन्थों का संग्रह करते रहे। नवीन रचनाओं पर भी उनकी दृष्टि पड़ी। उन्होंने स्वयं अनेक शास्त्र-ग्रन्थों की रचना की। उनकी प्रेरणा से गौड़ीय वैष्णव दर्शन, स्मृति तथा भजन-पूजन के ग्रन्थ और टीका भाष्य रचे गए। सनातन गोस्वामी ने गौड़ीय वैष्णवों की शास्त्र-भित्ति के निर्माण तथा गौरवमयी परम्परा को प्रतिष्ठित करने में अतुलनीय योगदान दिया है। उनके जीवन में त्याग-तितिक्षा, वैराग्यमय साधना एवं कृष्णप्रेम की अनुभूति के साथ ही असाधारण प्रतिभा, शास्त्रज्ञान एवं प्रेमनिष्ठा का अपूर्व सम्मिश्रण था। स्वरचित रचनाएँ, संकलन एवं सम्पादन के माध्यम से उनके व्यक्तित्व की विशिष्टता झलकती है। शास्त्रचर्चा का पाण्डित्य प्रत्यक्षीभूत सूक्ष्म लोक की अनुभूति का समावेश सनातन गोस्वामी में देखा जा सकता है। उनके स्वरचित ग्रन्थ हैं—लीला स्तव, वैष्णवीय स्मृति, हरिभक्ति विलास की दिग्दर्शिनी टीका, वृहत् भागवतामृत, भागवतामृत की टीका तथा वृहत् वैष्णवतोषनी टीका।

वैष्णवतोषनी टीका के रचना-काल में सनातन गोस्वामी अत्यन्त वृद्ध हो गए थे और चलने-फिरने में भी असमर्थ थे। रघुनाथ भट्ट तथा रघुनाथ दास उनकी सेवा में रहकर इस ग्रन्थ के प्रणयन में उनकी मदद करते रहे। यह सनातन गोस्वामी की अन्तिम रचना है। इस ग्रन्थ के पूर्ण होने के साथ ही सनातन गोस्वामी के जीवन पर भी पूर्ण विराम लग गया। उनके निर्वाण के लगभग २५ वर्षों बाद उनके मातृपुत्र श्री जीव गोस्वामी ने इस ग्रन्थ का सहजबोध संस्करण किया जिसका नाम रखा गया 'लतोषननी'।

ब्रजमण्डल के गौड़ीय साधकों एवं शास्त्रविदों में सनातन की अवस्था सबसे अधिक थी। कृच्छ व्रत, साधना, पाण्डित्य एवं प्रज्ञा में भी वे अतुलनीय थे। १५३३ ईस्वी में नीलाचल में श्री चैतन्य के शरीर-त्याग के बाद से उनके जीवन में व्यवधान दिखाई देने लगा था। उन्होंने कर्म जीवन से स्वयं को लगभग मुक्त कर लिया था। इस समय तक सनातन गोस्वामी की ख्याति पूरे उत्तर भारत में फैल चुकी थी। दूर-दूर तक भक्तगण उनके दर्शन को आते थे।

सनातन के साधन-ऐश्वर्य से सम्बन्धित नाना कहानियाँ प्रचलित हैं। एक बार बनारस के एक से एक ब्राह्मण सनातन के कुटीर में आकर उपस्थित हुए। उनका घर वर्धमान जिले के मानकड़ में था तथा नाम जीवन ठाकुर था। जन-साधारण में एक धर्मनिष्ठ के रूप में उनकी ख्याति थी। सारा जीवन दरिद्रता में बीत चुका था। अब वृद्धावस्था में संचय की सामर्थ्य नहीं रह गई थी। एक दिन आर्तस्वर में बाबा विश्वनाथ के चरणों में प्रार्थना करने लगे, "प्रभु दरिद्रता की

अवस्था असह्य हो गई है। अर्थ प्राप्ति का कोई साधन बताने का कष्ट करो।'' रात्रि में स्वप्न हुआ, ''तू शीघ्र ब्रजमण्डल चला जा। वहाँ जाकर सनातन गोस्वामी की शरण ले।''

जीवन ठाकुर इस स्वप्न के बाद यथाशीघ्र ब्रजमण्डल चले गए। वहाँ जाकर सनातन गोस्वामी के शरणागत हुए और स्वप्नादेश की बात विस्तार से बताई।

यह कहानी सुनकर स्वयं सनातन गोस्वामी आश्चर्यचकित हुए। वे तो स्वयं एक अकिंचन संन्यासी हैं। ब्राह्मण का दरिद्र निवारण किस तरह कर सकेंगे? सहसा, एक पुरानी घटना की याद आ गई। इस ब्राह्मण की सहायता करने में तो वे सक्षम हैं। बहुत दिनों पूर्व की बात है। यमुना का किनारा पकड़े सनातन चले जा रहे थे। अचानक पैरों में एक दुर्लभ रत्न से ठोकर लगी। उसे उन्होंने जल्दी से उठा लिया। दूसरे ही क्षण उनका मन चिन्ता में पड़ गया। वे स्वयं संन्यासी हैं, इस रत्न का उन्हें क्या प्रयोजन? उसे उन्होंने पत्थरों के पीछे छिपा दिया। अब इस रत्न के बारे में उन्हें स्मरण नहीं रह गया था।

जिस स्थान पर यह रत्न रखा था, उसका पता बताते हुए प्रसन्न होकर उन्होंने ब्राह्मण से कहा, ''बाबा, यह रत्न तुम अभी उठा के लाओ जिससे तुम्हारी दरिद्रता दूर हो जाएगी।'' गोस्वामीजी फिर इष्ट ध्यान में मग्न हो गए।

जीवन ठाकुर उसी समय यमुना तट की ओर दौड़ पड़े और वह रत्न खोज निकाला। रत्न सूर्य रश्मियों में झिलमिला उठा।

सनातन गोस्वामी की कृपा से जीवन ठाकुर विपुल सम्पदा के अधिकारी हैं। इसका स्मरण होते ही उनकी आँखें सजल हो गईं।

लेकिन सनातन गोस्वामी के वैराग्य की याद आते ही जीवन में सम्पदा की निरर्थकता का बोध होने लगा और जीवन ठाकुर के मन में परम-धन लाभ की तीव्र लालसा जाग उठी। वे एक अपूर्व दिव्य चेतना से उद्‌बुद्ध हो उठे। क्षणभर में ही उन्होंने इस रत्न को यमुना में फेंक दिया। फिर तेजी से सनातन गोस्वामी की कुटिया में आ गए। साष्टांग दण्डवत करने के बाद निवेदन किया, ''प्रभु, मैं अत्यन्त अधम जीव हूँ। अपनी तुच्छ घर-गृहस्थी में फँसा हुआ हूँ। आपके सान्निध्य में आकर मेरे ज्ञानचक्षु खुल गए हैं। जिस धन के कारण यह अलभ्य मणि भी आपके लिए नगण्य है, उसी का अंशदान मुझे करने की कृपा करें। कृपया अर्थ के बदले परमार्थ का दान करें। आज से मैंने आपके चरणों में ही उत्सर्ग कर दिया है।''

सनातन गोस्वामी से दीक्षा ग्रहण करने के बाद जीवन ठाकुर का आध्यात्मिक जीवन शुरू हुआ। बाद में उनका वंश काठभांगुर के गोस्वामी परिवार के नाम से विख्यात हुआ।

जीवन के अन्तिम समय में सनातन गोस्वामी नंदीश्वर के मानस गंगा नामक पुण्य सरोवर के तट पर गुप्त रूप से निवास करने लगे थे। बाद में यही स्थान बैठान के नाम से प्रसिद्ध है। सन्निकट ही चक्रेश्वर महादेव का मन्दिर है। इसी स्थान पर एक बिल्व वृक्ष के नीचे बैठकर, महासाधक अपनी चरम अध्यात्म साधना के व्रती हुए। नब्बे वर्ष की वृद्धावस्था में स्वयं श्रीकृष्ण ने बाल स्वरूप में दर्शन देकर उनके दैनिक आहार का भार ग्रहण कर लिया था। यह बात जब जनसाधारण में प्रचलित हुई तो लोग भाग चले सनातन गोस्वामी की ओर। इन लोगों की प्रार्थना पर सनातन अपनी कृच्छ साधना में कमी के लिए बाध्य हुए। लोगों ने एक कुटिया बना दी, जिसमें वे रहने लगे।

सनातन गोस्वामी जब गोवर्धन पर्वत की परिक्रमा के लिए अशक्त हो गए तो श्रीकृष्ण ने स्वयं दर्शन दिया। उन्होंने कहा, "तुम्हारे अन्तर में मेरे गोवर्धन गिरि की परिक्रमा न कर पाने के कारण ग्लानि हो रही है। इसीलिए मैं भाग कर यहाँ आया हूँ। मेरे हाथ में यह गोवर्धन का ही शिलाखण्ड है। इस पर मेरे चरण-चिह्न अंकित हैं। इस चरण पहाड़ी को भक्तिपूर्वक तुम अपने कुटीर में स्थापित करोगे। भजन की समाप्ति पर नित्य इसकी प्रदक्षिणा करोगे। इससे ही तुम्हारे गोवर्धन परिक्रमा के व्रत का उद्यापन हो जाएगा।" अब इस चरण पहाड़ी को ध्यान में रख कर ही सनातन की साधना होने लगी। धीरे-धीरे १५४५ ईस्वी की आषाढ़ी पूर्णिमा की तिथि आ गई। सनातन गोस्वामी के द्वार पर उस दिन उनके परमप्रिय कृष्ण का आवाहन ध्वनित हुआ। चरण पहाड़ी पर खड़े होकर इष्टदेव ने दर्शन दिया। सनातन गोस्वामी नश्वर जीवन त्याग कर शाश्वत लीलाधाम में प्रविष्ट हो गए। प्रभु मदनमोहनजी के प्रांगण में सनातन गोस्वामी के नश्वर शरीर को समाधिस्थ किया गया। आज भी हजारों भक्तों का श्रद्धार्घ्य उस पवित्र भूमि पर निवेदित होता है।

●

अवधूत नित्यानन्द

वीरभूम के एकचक्र गाँव के निवासी हाड़ाई पण्डित के घर एक परिव्राजक संन्यासी उपस्थित हुए। पण्डित के आग्रह पर आतिथ्य ग्रहण किया। पण्डित ने भरपूर सेवा-सुश्रूषा की। दूसरे दिन प्रातः जब चलने को हुए तो पण्डित के पुत्र कुबेर को साथ ले जाने का प्रस्ताव किया। पण्डित को काटो तो खून नहीं। ज्येष्ठ पुत्र, आँखों का तारा इस साधु के साथ चला जाएगा?

पण्डित ने यह बात अपनी पत्नी पद्मावती को बताई। पद्मावती को कई दिनों पूर्व की घटना का स्मरण हो आया। कुबेर एक दिन अचानक गम्भीर ध्यान में मूर्च्छित हो गया। जब उसकी चेतना लौटी तो उसने बताया, ''माँ, पता नहीं क्यों मेरी चेतना लुप्त हो गई। मैंने स्वप्न में देखा—एक महापुरुष के साथ मैं सुदूर तीर्थस्थानों में घूम रहा हूँ। उसके बाद जो दृश्य मेरे समझ में आए, उनका स्मरण नहीं है।'' उस दिन की बात को याद करते हुए पद्मावती ने कहा, ''धर्म की ओर दृष्टिपात करते हुए, जो भी तुम स्थिर करोगे, उसी से मेरी सहमति है।''

गौर वर्ण तथा सुन्दर देहयष्टि, रूप-लावण्य से भरपूर, नेत्रों में दिव्य आनन्द की आभा। यही था कुबेर का रूप-रंग। यह खूबसूरत बालक संन्यासी के साथ चला गया। उस समय उसकी अवस्था बारह वर्ष की थी।

आगे चलकर यह बालक नित्यानन्द अवधूत के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उन दिनों नदिया श्री चैतन्य के कीर्तन-भजन से ओतप्रोत था। अद्वैत प्रभु इसी की स्तुति उस समय गा उठे थे—

तुमि से बुझाओ चैतन्येर प्रेम भक्ति,
तुमि से चैतन्येर वक्षे घर पूर्ण शक्ति।

धर्मपरायण हाड़ाई दम्पति को बहुत दिनों तक जब कोई सन्तान नहीं हुई तो पत्नी पद्मावती व्रत, पूजन और अनुष्ठान करने लगीं। एक दिन उन्हें स्वप्न हुआ, ''वत्से, तुम्हारी ग्लानि की अब कोई आवश्यकता नहीं है। शीघ्र ही एक महा शक्तिधर पुरुष, पापी-तापी जनों के उद्धार के लिए जन्म ग्रहण करेंगे।'' यह वाणी एक जटा जूटधारी, अजानुलम्बित बाहुओं वाले, ज्योतिर्मय आभा वाले एक महापुरुष की थी। स्वप्न साकार हुआ। १३९५ शकाब्द के माघ मास की शुक्ला त्रयोदशी के एक शुभ लग्न में पद्मावती ने एक सुन्दर शिशु को जन्म दिया जो

आगे चलकर गौड़ीय वैष्णव आन्दोलन का श्रेष्ठतम नायक नित्यानन्द हुआ। गौड़ीय वैष्णवों के लिए वे प्रभु-स्वरूप थे।

संन्यासी के साथ परिव्राजन करते हुए किशोर कुबेर वृन्दावन पहुँचे। यहाँ आकर उनका सारा अन्तर कृष्णवेश से परिपूर्ण हो उठा। कृष्ण के लीला-स्थलों में घूमते रहे। उनकी आर्त पुकार अन्तर से निकलती रहती—जीवन सर्वस्व कृष्ण-घन कहाँ है? पागल प्रेमी की तरह सारे वृन्दावन में चक्कर लगाते रहे। एक दिन कुबेर की दृष्टि शिष्यों से घिरे संन्यासी पर पड़ी जिनका नाम था—माधवेन्द्रपुरी। श्री चैतन्य लीला के सहायक ईश्वरपुरी एवं अद्वैत आचार्य इन्हीं के कृपापात्र थे। महात्मा के दर्शन-मात्र से कुबेर के शरीर में भक्तिरस का ज्वार उमड़ पड़ा। वे सुधबुध खो बैठे थे। माधवेन्द्रपुरी यह दृश्य देखकर विस्मित हो उठे। कौन है यह वैष्णव जो सर्वदा कृष्ण-रस में अवगाहन करता है? इस तरुणाई में ही इस तरह कृपाधन्य हो चुका है। उसके सारे शरीर पर अष्ट सात्विक विकार हैं तथा मुख पर अपरूप ज्योति की आभा फूट पड़ी है। धरती पर गिरे शरीर को माधवेन्द्र निर्निमेष दृष्टि से देखते ही रह गए।

कुबेर की चेतना लौटी तो उसने रोते हुए कहा, ''प्रभु, बहुत भाग्य से आज आपके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। कृपा करके, इस अधम का उद्धार करें।''

माधवेन्द्रपुरी ने इस तरुण को बाहों में भर लिया। एक शुभ लग्न में उन्होंने इस साधक को दीक्षा प्रदान की और उसका नामकरण हुआ नित्यानन्द। कुछ दिनों के वृन्दावन-प्रवास के बाद नित्यानन्द परिव्राजन के लिए निकल पड़े। लेकिन कुछ ही दिनों बाद कृष्ण-विरह में व्याकुल नित्यानन्द फिर वापस आ गए। अब वे निरन्तर भवसागर में डूबे रहे। आहार एवं निद्रा की कोई चिन्ता नहीं। वे धीरे-धीरे प्रेम-साधना के गम्भीर स्तर में प्रवेश करते गए। एक दिन भगवान कृष्ण ने आदेश दिया, ''अवधूत, क्यों इस तरह व्यर्थ घूम-फिर कर समय नष्ट कर रहे हो, गौड़ देश से नवद्वीप जाओ। वहाँ प्रेम-भक्ति का सुधा-पात्र लेकर निमाई पण्डित चाण्डाल तक को परम सम्पदा वितरित कर रहे हैं, उन्हीं के कार्य में अपना तन-मन-प्राण समर्पित कर डालो। भागवत धर्म एवं भागवत प्रेम के प्रचार हेतु तुम चिह्नित पुरुष हो।''

नित्यानन्द उसी समय उठ कर बैठ गए। प्रेम-भक्ति के स्रोत का संधान अब उन्हें मिल चुका था। वे तुरन्त बाहर निकल गए।

लम्बा रास्ता तय करके नित्यानन्द नवद्वीप आ गए। सर्वप्रथम उनकी मुलाकात नन्दन आचार्य से हुई। नित्यानन्द की देव दुर्लभ कान्ति को देखकर उनके अन्दर एक महापुरुष के उदय के लक्षण दृष्टिगोचर हुए। आचार्य ने उन्हें आदरपूर्वक अपने घर में स्थान दिया। उधर सर्वज्ञ गौरांग अपने भक्तों के बीच बार-बार घोषणा कर रहे थे, ''तुम सभी देखोगे, शीघ्र ही नवद्वीप धाम में एक

महापुरुष का आविर्भाव होगा।'' लेकिन गौरांग इस महापुरुष के दर्शन के लिए इतने अधीर हो उठे कि अपने भक्तों के साथ स्वयं उनकी खोज में निकल पड़े। नन्दन आचार्य के घर के सामने आकर प्रभु के पैर थम गए। वे सीधे आँगन में घुस गए। उनके सामने ही खड़े थे शुभ्र कांति प्रेमरस की प्रतिमूर्ति नित्यानन्द। प्रभु ने अपने भक्तों के साथ उन्हें साष्टांग प्रणाम निवेदित किया। जिस परम वस्तु के लिए नित्यानन्द वर्षों तक वन-प्रांतरों की खाक छान रहे थे, वे स्वयं उनके सामने उपस्थित थे। इस चमत्कार को देखकर वे अभिभूत थे। वृन्दावन दास ने इस स्थिति का वर्णन इस तरह किया है—

विश्वम्भर मूर्ति येन,. मदन समान।
दिव्य गंध माल्य, दिव्य वास परिधान॥
कि हय कनक द्युति, से देहेर आगे।
से बदन देखिते, चांदेर साध लागे॥
देखिते आयत दुई, अरुण नयन।
आर कि कमल आछे, हेम हय ज्ञान॥
से अजानु दुई भुज, हृदय सुपीन।
ताहे शोभे यज्ञसूत्र, अति सूक्ष्म क्षीण॥

प्रभु ने भक्तप्रवर श्रीवास से कहा, ''पण्डित, यदि तुम दिव्य प्रेमावेश का दर्शन करना चाहते हो तो नित्यानन्द की उद्दीपना को जाग्रत कर दो। शीघ्र ही भागवत से श्री नन्दनन्दन के रूप का वर्णन करो।'' प्रभु की आज्ञा पाते ही श्रीवास परम आनन्दपूर्वक श्लोक पढ़ने लगे—बर्हापीऽं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं····। श्यामसुन्दर के रूप वर्णन से नित्यानन्द का पूरा शरीर उद्वेलित हो उठा। प्रेम विकार के चिह्न अश्रु, कम्प एवं पुलकादि प्रकट होने लगे। थोड़ा बाह्य ज्ञान होते ही भजन-कीर्तन शुरू हुआ। भक्तगण आनन्दित हो उठे।

धीरे-धीरे नित्यानन्द शांत हुए। परस्पर कुशलक्षेम का दौर चलने लगा। आनन्द के आँसू नित्यानन्द की आँखों से झरने लगे। उन्होंने कहा, ''प्रभु, इतने दिनों तक तुम्हारी खोज में भटकता रहा पर नहीं ढूँढ़ पाया। अन्त में पता लगा कि तुम्हारा आविर्भाव नवद्वीप में हुआ है। तुमने जीवों के उद्धार का व्रत लिया है। इसीलिए दर्शन की आशा लेकर भागता हुआ यहाँ चला आया।''

प्रभु ने नित्यानन्द की मर्यादा बढ़ाते हुए कहा—

महाभाग्य देखिलाम तोमार चरण।
तोमा मजिले से पाई कृष्ण प्रेमघन॥

उसी समय नित्यानन्द गौरांग के प्रधान पार्षद हो गए तथा नवद्वीप के प्रेम भक्ति-आन्दोलन के प्रधान नियंता के रूप में प्रतिष्ठित हुए।

एक दिन श्रीवास के घर में व्यास पूजा समारोह था। समारोह खत्म होने के बाद नित्यानन्द उन्हीं के घर रुक गए। प्रातः होने पर श्रीवास पण्डित ने विस्मय-पूर्वक देखा कि श्रीपाद नित्यानन्द भाववेश में संज्ञाशून्य हो रहे हैं। उनका संन्यास दण्ड तथा कमण्डल जमीन पर बिखरा पड़ा है। सूचना मिलते ही गौरांग प्रभु आ गए। देखा, नित्यानन्द अर्धबाह्य अवस्था में पड़े हुए हैं, शरीर से दिव्य आनन्द की ज्योति झर रही है। प्रभु उन्हें स्नान-घाट पर ले गए। भग्न दण्ड और कमण्डल गंगा में विसर्जित कर दिए गए। अवधूत नित्यानन्द, महप्रेमिक नित्यानन्द में परिवर्तित हो गए— श्री गौरांग के प्रधान पार्षद। नित्यानन्द गंगा में बच्चों की तरह केलि-क्रीड़ा में निमग्न थे। गौरांग प्रभु किसी तरह समझा-बुझा कर घर लाए।

व्यास पूजा का समय हो चुका था। नित्यानन्द व्यास पूजा के आसन पर बैठ गए। पूजा की समाप्ति पर माला अर्पण करके प्रणाम निवेदित करना था किन्तु नित्यानन्द को तो जैसे होश ही नहीं था। श्रीवास बार-बार आग्रह कर रहे थे— ''श्रीपाद व्यासदेव को माला अर्पित कर अब पूजा समाप्त कीजिए।'' लेकिन श्रीवास की कोई बात नित्यानन्द नहीं सुन रहे थे। पूर्णतया भावाविष्ट थे। पता नहीं किसे खोज रहे थे। अन्य कोई उपाय न देखकर श्रीवास गौरांग प्रभु को बुला लाए। उन्हें स्थिति से अवगत कराया। गौरांग पूजा-घर में घुसे और नित्यानन्द से व्यासदेव को अर्घ्य देने के लिए कहा। नित्यानन्द ने गौरसुन्दर के गले में माला डाल दी। समवेत भक्त कण्ठों की जय ध्वनि से सारा परिवेश गूँज उठा।

निमाई अपने घर में विश्राम कर रहे थे। तीसरा पहर था। नित्यानन्द एकदम नग्न रूप में आ गए। महिलाएँ लज्जावश घरों में छिप गईं। निमाई उठे देखा कि नित्यानन्द उल्लास और आनन्द के वशीभूत होकर आँगन में नृत्य कर रहे हैं। अपने सिर पर लिपटे वस्त्र को नित्यानन्द के कमर में बाँध दिया। प्रेमोन्माद से ओतप्रोत नित्यानन्द को सम्हालने में उन्हें ज्यादा समय नहीं लगा। अपने हाथों से उन्हें चन्दन चर्चित किया और सुगन्धित पुष्पों की माला पहना दी।

एक दिन गौरांग ने नित्यानन्द के कौपीन के टुकड़े-टुकड़े कर दिये। फिर भक्तों से कहा, ''तुम सभी इस पवित्र वस्त्र के टुकड़ों को सिर पर धारण करो। नित्यानन्द कृष्णरसमय हैं। उनकी कृपा के फलस्वरूप तुम सभी में कृष्ण-भक्ति का उदय होगा।'' भक्तों ने इस आदेश का पालन किया। इसके बाद नित्यानन्द का पादोदक लिया। परन्तु अवधूत पूर्ववत प्रेमाविष्ट एवं मौन धारण किए हुए थे। भक्तों ने समझा कि नित्यानन्द प्रभु के प्रधान पार्षद ही नहीं, अभिन्न हृदय-सखा एवं प्रधान सहकर्मी भी हैं।

गौरांग प्रेम धर्म एवं कीर्तन यज्ञ के प्रवर्तक थे। जीव के उद्धार का व्रत ग्रहण किया था। अवधूत नित्यानन्द ने समर्पित भक्त की कमी पूरी कर दी।

नित्यानन्द श्रीवास के घर में निवास करने लगे। श्रीवास की पत्नी मालिनी देवी को निताई माँ कह कर पुकारते थे। शची माता से नित्यानन्द का परिचय गौरांग ने इस तरह कराया, "माँ, यह तुम्हारा खोया हुआ लड़का विश्वरूप है।"

नित्यानन्द हरिदास को साथ लेकर कृष्ण-भक्ति का प्रचार कर रहे थे। उन्हें तरह-तरह के विरोध और कठिनाइयों का सामना करना पड़ता। नित्यानन्द कहते, "भाई, कृपा करके एक बार कृष्ण नाम का उच्चारण करो तथा हमको बिना मूल्य के खरीद लो।"

शहर में दो शराबी, अत्याचारी, हिंसक भाई जगन्नाथ और माधव रहते थे। उन्हें लोग जगाई और मधाई कहते थे। नित्यानन्द ने उन्हें कृष्णभक्त बनाने का संकल्प लिया। एक दिन वे अपने साथी भक्त हरिदास के साथ गए और उनके पास नर्तन-भजन करने लगे। मधाई ने क्रोधित होकर नताई के सिर पर एक हाँड़ी दे मारी जिससे खून बहने लगा। इसके बावजूद नताई (नित्यानन्द) और हरिदास नर्तन और भजन करते रहे। जगाई को दया आ गई। लेकिन मधाई का गुस्सा शान्त नहीं हुआ। वह पुनः कृष्ण-भक्तों को मारने के लिए दौड़ा लेकिन जगाई ने उसे पकड़ लिया। उसने दृढ़ स्वर में कहा, "अरे, क्यों इस बाहरी संन्यासी को मार रहा है ?" मधाई रुक गया और नित्यानन्द प्राणघाती आघात से बच गए। यह खबर जब गौरांग को लगी तो पहले तो वे क्रोधित हुए लेकिन जब नित्यानन्द ने उन्हें बताया कि उसी हमलावर के भाई जगाई ने उन्हें बचाया तब उनके अंदर करुणा का उदय हुआ और उन्होंने जगाई का आलिंगन करते हुए कहा, "जगाई, तुमने आज मेरे प्राण-सर्वस्व नित्यानन्द के जीवन की रक्षा कर मुझे खरीद लिया है। आशीर्वाद देता हूँ कि कृष्ण-कृपा की तुम्हारे ऊपर वर्षा होती रहे। आज से तुम्हें भक्ति का लाभ हो।" बाद में नताई ने मधाई को भी माफ कर दिया। उसका आलिंगन कर उसे प्रेम-भक्ति दान कर कृतार्थ कर डाला।

नित्यानन्द के आदेशानुसार मधाई ने पिछले पापों का प्रायश्चित्त करने के लिए गंगा पर एक घाट का निर्माण कराया जो 'मधाई घाट' के रूप में आज भी विद्यमान है। स्वयंनिर्मित घाट पर मधाई प्रतिदिन प्रातःकाल स्नान करता तथा दो लाख नाम-जप करता। उसके बाद स्नानार्थियों के चरणों में भक्तिपूर्वक प्रणत होकर कातर स्वर में निवेदन करता—

ज्ञाने वा अज्ञाने यत करिनु अपराध
सकल क्षामिया मोरे करह प्रसाद।

गौरांग प्रभु ने नवद्वीप में व्यापक विरोध को देखते हुए संन्यास ग्रहण करने का निश्चय किया और एक दिन गृह त्याग दिया। कटोआ नगर में परम भागवत संन्यासी केशव भारती का आश्रम था। इन्हीं महापुरुष से उन्होंने संन्यास मंत्र की

दीक्षा ली। उनका नवीन नामकरण हुआ श्रीकृष्ण चैतन्य। इस समय उनके साथ थे अवधूत नित्यानन्द तथा गदाधर इत्यादि पंच पार्षद। दीक्षा ग्रहण करने के बाद श्रीकृष्ण चैतन्य ने नीलाचल जाने का निश्चय किया किन्तु इससे पूर्व शान्तिपुर में अद्वैत आचार्य के भवन में माता शची, पत्नी विष्णुप्रिया और भक्तगणों से भेंट की। इन लोगों को नित्यानन्द लेकर आए थे।

परिजनों तथा भक्तगणों को सांत्वना देकर वापस विदा करने के बाद श्री चैतन्य कुछ अंतरंग भक्तों और पार्षदों के साथ नीलाचल की ओर चल पड़े। नृत्य एवं कीर्तन करते सुवर्ण-रेखा के तट पर पहुँचे। श्री चैतन्य स्नान करने गए थे। उनका दण्ड नित्यानन्द के हाथ में था। सोचा, जीवों के उद्धार के लिए प्रेमावतार प्रभु का आविर्भाव हुआ है, फिर उन्हें दण्ड-कमण्डल का क्या काम? उनके अन्तर में न जाने कैसे भाव का संचार हुआ कि उन्होंने दण्ड को टुकड़े-टुकड़े कर नदी में फेंक दिया। श्री चैतन्य ने जब घटना सुनी तो पहले तो आवेश में आए लेकिन जब उन्हें ज्ञात हुआ कि यह कार्य नित्यानन्द ने किया है तो उन्होंने अपने रोष पर काबू किया। उन्होंने कहा, ''इस पृथ्वी पर एकमात्र दण्ड ही मेरा प्रधान अवलम्बन था। कृष्ण की इच्छा से आज वह भी टूटकर टुकड़े-टुकड़े हो गया। अच्छा ही हुआ। अब किसी के साथ भी मेरा कोई सम्पर्क नहीं रहा। अब से मैं अकेला ही मार्ग पर चलूँगा। तुम लोग भी यदि नीलाचल जाना चाहते हो तो मुझसे अलग रह कर चलो।'' भक्तों ने इस व्यवस्था का अनुसरण किया।

जब श्री चैतन्य जलेश्वर गाँव पहुँचे तो उन्हें शिव के एक जाग्रत विग्रह का दर्शन हुआ। प्रभु एक नए भाव से उदीप्त हो उठे। कीर्तन और नर्तन के फलस्वरूप वहाँ लोगों की भीड़ जुट गई। तब तक भक्तगण भी आ पहुँचे। वे भी भाव-विभोर होकर नृत्य करने लगे। श्री चैतन्य का अन्तर परम प्रसन्नता से भर उठा।

श्री चैतन्य सबसे पहले नीलाचल पहुँचे। जगन्नाथ के विग्रह का दर्शन करते ही प्रेम-विह्वल हो उठे। सारे शरीर में अष्ट सात्विक विकार दृष्टिगोचर होने लगे। थोड़ी देर बाद ही वे संज्ञाशून्य हो गए। राजपण्डित वासुदेव सार्वभौम, मन्दिर के गर्भगृह में थे। तरुण संन्यासी के इस अद्‌भुत प्रेम विकार को देखकर उनके विस्मय की सीमा न रही। परिचारकों की मदद से श्री चैतन्य को अपने कक्ष में ले गए। इसके थोड़ी देर बाद ही नित्यानन्द और अन्य भक्तगण भी आ गए।

नित्यानन्द जब भावोन्मेष से ग्रसित होते तो आश्चर्यजनक हरकतें कर डालते। एक दिन वे मन्दिर के गर्भगृह में खड़े कीर्तन कर रहे थे। साथ में उनके सहयोगी भी थे। सहसा वे महाभाव से उद्दीप्त हो उठे। भाव के प्रचण्ड वेग से वे जगन्नाथ बलराम विग्रह-द्वय को आलिंगन करने दौड़े। उन्हें रोकना किसी के लिए सम्भव नहीं हो सका। वेदी के ऊपर चढ़ कर अवधूत नित्यानन्द ने बलराम

के विग्रह को आलिंगनबद्ध कर डाला और उनकी माला निकाल कर अपने गले में डाल ली। उस समय उनका शरीर दिव्य आनन्द से उद्‌भासित था। पूरा मन्दिर परिचारकों एवं भक्तों की जय ध्वनि से मुखरित हो उठा। इस तरह की प्रेम-विह्वलता से वे चैतन्य के प्रधान पार्षद के रूप में सर्वत्र असाधारण मर्यादा के अधिकारी हो गए।

कुछ दिनों यहाँ बिताकर श्री चैतन्य दक्षिणात्य की यात्रा पर चले गये। इस यात्रा में उन्होंने ब्रजरस-तत्त्व के मर्मज्ञ रामानन्द राय को आत्मसात किया। सारे दक्षिण तथा पश्चिम भारत में प्रेम-धर्म का बीजारोपण करके लौट आए।

अब उनकी दृष्टि अपनी मातृभूमि गौड़ पर पड़ी। यहाँ के जन-जीवन पर तांत्रिक प्रभाव अत्यन्त प्रबल था। वे स्वयं स्थायी रूप से पुरी धाम में निवास कर रहे थे। समस्या थी कि यह उत्तरदायित्व किसे सौंपें। अन्ततः यह गुरुतर दायित्व निताई यानी नित्यानन्द को सौंपने का निश्चय किया। नित्यानन्द को बुलाकर उन्होंने कहा, ''तुम गौड़ देश वापस चले जाओ। वहाँ जाकर गृहस्थ-धर्म में प्रवेश करो एवं समाज की ऊसर भूमि में प्रेम-भक्ति का अमृत-प्रवाह उड़ेल दो।'' श्री चैतन्य के इस आदेश से नित्यानन्द मर्माहत हो गए। वह अत्यन्त छोटी उम्र में घर से निकल पड़े हैं। उनका उद्देश्य है—संन्यास एवं अवधूत जीवन के माध्यम से भागवत प्रेम के माधुर्य की तलाश में घूमते रहे हैं। अब उन्हें गृहस्थ-जीवन अंगीकार करना पड़ेगा? लेकिन प्रभु के आदेश को शिरोधार्य करने के अलावा नित्यानन्द के सामने और कोई चारा नहीं था। इसीलिए बिना विलम्ब किए वे गौड़ देश की यात्रा पर निकल पड़े। उनके साथ कुछ अन्य भक्तगण भी थे जिनमें प्रमुख थे—रामदास, गदाधर दास, सुन्दरानन्द, परमेश्वर दास तथा पुरुषोत्तम दास।

गौड़ देश में नित्यानन्द का आविर्भाव 'दयाल निताई' के रूप में हुआ। उनके ऐश्वर्य एवं करुणा का दिग्दर्शन कराते हुए वृन्दावन दास ने लिखा है—

या हारे करेन दृष्टि, नाचिते नाचिते।
सेई प्रेमे ढलिया, पड़ेन पथिवीते॥

नृत्यानन्द ने सारे गौड़ देश में अद्‌भुत प्रेम-तरंग की सृष्टि कर डाली।

एक दिन पानिहाटी ग्राम के राघव पण्डित के घर वे उपस्थित थे। पार्षदों एवं भक्तों की भीड़ लगी थी। कीर्तन-भजन की पवित्र धारा बह रही थी। वे सहसा ईश्वरीय भाव से उद्दीप्त हो उठे। भक्तों को आदेश दिया कि अभी उन्हें समारोहपूर्वक अभिषेक कराना होगा। गंगाजल लाकर नित्यानन्द का अभिषेक किया गया। गले में माला डाले चौकी पर बैठे थे और राघव पण्डित उनके सिर पर छत्र लगाए खड़े थे। भक्तों के कीर्तन चल रहे थे। जनश्रुति है कि उस दिन राघव पण्डित के घर पर लीलाकौतुकी नित्यानन्द ने एक अलौकिक कार्य कर

डाला। पण्डित की ओर देखकर मुस्कराते हुए बोले, ''पण्डित, शीघ्र मेरे लिए एक कदम्ब की माला गूँथ कर ले आओ। कदम्ब मेरे लिए अत्यन्त प्रिय है।''

राघव परेशान थे कि इस समय बिना मौसम के कदम्ब उन्हें कहा मिलेगा। वह बार-बार नित्यानन्द से अनुरोध कर रहे थे कि इस समय कदम्ब नहीं मिलेगा। नित्यानन्द ने उनसे घर के अन्दर जाकर देखने को कहा। राघव पण्डित के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उन्होंने देखा कि आँगन के एक कोने में एक नीबू का पेड़ है जिसमें कदम्ब के कई फूल खिले हैं। राघव ने फूल तोड़े। माला गूँथी और नित्यानन्द के गले में डाल दिया।

किंवदन्तीं है कि उस दिन कीर्तन में नित्यानन्द ने एक और अलौकिक लीला कर डाली। कीर्तन कर रहे भक्तों को सहसा दमनक पुष्प की सुगन्ध का अनुभव हुआ। विस्मय से सभी एक-दूसरे का मुँह देखने लगे। नित्यानन्द ने इस घटना का स्वयं वर्णन किया है—

चैतन्य गोसाई आज शुनिते कीर्तन।
नीलाचल हैते करिलेन आगमन॥
सर्वांगे परिया दिव्य दमनक माला।
एक वृक्षे अवलंम्ब करिया रहिला॥
सेई श्री अंगेर दिव्य दमनक गन्धे।
चतुर्दिक सबाकार नृत्य कीर्तन देखिते॥

पनिहार में लगभग तीन महीने तक प्रवास के बाद नित्यानन्द गड़रह चले आए। वहाँ भी आनन्द का सागर लहरा उठा। कभी माटी में लोट कर तो लोगों के गले में बाँहें डालकर रोते-रोते कहते, ''भाई, दया करके एक बार कृष्ण को भजो, गौरांग को भजो। बिना मूल्य मुझे सर्वदा के लिए खरीद लो। मुझे अपना दासानुदास बना लो।'' जो भी इस दृश्य को देखता उसके लिए आँसू रोक पाना कठिन हो जाता। उनका प्रेम जिस तरह स्वर्णिम था, उसी तरह उनकी प्रचार-पद्धति भी अभिनव थी। भागीरथी के दोनों तटों पर प्रेम रस के स्रोत बह उठे। यह खबर सर्वत्र फैल गई कि पतितपावन के रूप में गौड़ देश में नित्यानन्द का आविर्भाव हो गया है।

नित्यानन्द ने अपनी वेश-भूषा में परिवर्तन किया। गले में रत्नहार, हाथ में स्वर्ण वलय, अँगुलियों में रत्न-जटित अँगूठियाँ तथा चरणों में रमणीय रौप्य नूपुर। शरीर चंदन चर्चित तथा ललाट पर तिलक अंकित हो गया। गले में मल्लिका मालती की शुभ्र माला। शरीर पर नील वसन। गोरे नित्यानन्द को जो इस रूप में देखता, मोहित हुए बिना नहीं रहता। जो उनका नृत्य देखता, कीर्तन सुनता उसका सारा अन्तर सदा के लिए बन्दी हो जाता। लगभग ऐसे ही वेश में उनका परिषद भी रहता।

खड़दह इत्यादि क्षेत्रों की परिक्रमा करते हुए नित्यानन्द अपने भक्त गणों के साथ सप्तग्राम पहुँचे। यहाँ त्रिवेणी घाट पर परमभक्त उद्धारण दत्त से मुलाकात हुई। उद्धारण दत्त अतुल ऐश्वर्य का त्याग कर नित्यानन्द के पार्श्वचर हो गए। उद्धारण दत्त यहाँ के वणिक समाज के नेता थे। इन्हीं के प्रभाव से गौड़ीय वणिक नित्यानन्द का आश्रय ग्रहण कर धन्य हो गए। इसके बाद निताई शान्तिपुर आए। अद्वैत ने बाँहें फैलाकर उनका आलिंगन किया। शान्तिपुर प्रेम-रस से सराबोर हो गया।

एक बार नित्यानन्द नवद्वीप में हिरण्य पण्डित के घर में निवास कर रहे थे। पण्डित दरिद्र होने के बावजूद सात्विक एवं भक्त थे। उनके घर पर डकैतों की दृष्टि पड़ी। उनका नेता एक ब्राह्मण था। दल-बल के साथ एक दिन हिरण्य पण्डित के घर के पीछे छिप गया। उसकी निगाह नित्यानन्द के कीमती आभूषणों पर थी जिन्हें वह लूटना चाहता था। डकैत मध्यरात्रि में धावा बोलना चाहते थे लेकिन थोड़ी ही देर बाद इस कदर नींद में डूबे कि सुबह होने पर ही आँखें खुलीं। उस समय वे जल्दी-जल्दी वहाँ से खिसक लिये। डकैतों के इस दल ने एक बार फिर डाका डालने का निश्चय किया। उस रात उनका सामना कुछ ऐसे रक्षकों से हुआ जिनके हाथों में घातक हथियार थे। वे फिर लौट गए। तीसरे दिन फिर वे आए। इस बार आँगन में घुसने में सफल हो गए। लेकिन किसी अदृश्य शक्ति के प्रभाव से उनकी आँखों की ज्योति जाती रही। वे आपस में ही भिड़ गए। इसी समय तेज आँधी के साथ उपल-वृष्टि होने लगी। किसी तरह जान बचाकर वे पण्डित के घर से बाहर निकल पाए। डकैतों को महसूस हुआ कि नित्यानन्द असाधारण आदमी है। उसी की शक्ति से उन्हें ऐसे दुर्दिन देखने पड़े। अन्ततः उन्होंने नित्यानन्द के सामने आत्मसमर्पण कर दिया। उनके सरदार ने कहा, ''प्रभो, मैं महापातकी हूँ। आपके आभूषणों के लोभ में पड़कर पण्डित का घर लूटने आया था। मेरे पापों की कोई सीमा नहीं है। आप कृपालु हैं। इस अंधम को अपने चरणों में स्थान दीजिए।'' अवधूत नित्यानन्द ने इस दस्यु ब्राह्मण का आलिंगन कर लिया और बोले, ''बाबा, तुम्हें क्षमा नहीं करूँगा तो किसे करूँगा? तुम तो महाभाग्यवान हो जो कृष्ण-कृपा के फलस्वरूप इन तीन दिनों तक कृष्ण के ऐश्वर्य-प्रकाश को इस तरह देख सके हो। अब तुम लूटपाट तथा नर-हत्या बन्द करके पापियों को धर्म के मार्ग पर ले जाओ।''

नित्यानन्द ने वैष्णवीय उदारता एवं प्रेम की पराकाष्ठा दिखाई तथा अब्राह्मण वैष्णवों को भी धर्मगुरु की भूमिका निभाने का अधिकार दे दिया। लाखों दरिद्र, निरक्षर, अंत्यज, हिन्दू उनकी कृपा से शुद्धाचारी वैष्णव में परिणत हो गए। समकालीन समाज की अनुदारता, प्राणहीन धर्माचरण एवं असंख्य

विधि-निषेध की प्राचीर को तोड़ कर निताई ने नवीनतम मुक्ति के प्रवाह को प्रतिष्ठित किया। लेकिन इस उदारता से ब्राह्मण समाज उनका आलोचक हो गया। वैष्णवों का एक तबका भी उन्हें गलत समझने लगा। उनकी वेश-भूषा की भी कुछ लोग निन्दा करने लगे।

निताई नीलाचल चले गए। पुरी धाम की एक पुष्प वाटिका में अनमने-से बैठे थे। उनके मन में एक आशंका है—प्रभु उन्हें इस बार किस रूप में ग्रहण करेंगे। धर्म-प्रचार की नवीन पद्धति के बारे में उनके विचार कैसे होंगे? नित्यानन्द की इस उदासी की खबर श्री चैतन्य तक पहुँची तो वे भक्त के साथ उनके पास आए। नित्यानन्द से कुछ कहने की बजाय हाथ जोड़ कर उनकी प्रदक्षिणा करने लगे। तब तक काफी भक्तों की भीड़ वहाँ इकट्ठी हो गई। श्री चैतन्य सभी को सुना कर नित्यानन्द की स्तुति गाने लगे। नित्यानन्द इसे सहन नहीं कर सके और रोते-रोते भावविह्वल होकर प्रभु के समक्ष पछाड़ खाकर गिर पड़े। कहने लगे, ''प्रभु, संन्यासी का धर्म छुड़ा कर तुमने मुझे कैसी अवस्था में रख दिया? मैं अपनी भावधारा में अपनी इच्छानुसार चलता रहा हूँ। मुझे बता दो कि मेरा वास्तविक कर्तव्य क्या है?''

प्रभु ने कहा, ''नित्यानन्द, क्या तुम नहीं जानते कि तुम मुझसे जो कराते हो, वही मैं करता हूँ। और तुम्हारे जैसे महामुक्त पुरुष के लिए आचरण में क्या निन्दनीय हो सकता है? तुम्हारे शरीर में जो अलंकार शोभा पा रहे हैं वे तो श्रवण-कीर्तनादि नवधा भक्ति के प्रतीक हैं। तुम समस्त जनसाधारण को जो भक्ति-सम्पदा वितरण कर रहे हो उसकी तुलना कैसे हो सकती है? तुम तो जीव-उद्धार के लिए अवतरित हुए हो, साधारण विधि-विधान तो तुम्हारे लिए हैं ही नहीं।'' प्रभु के ये वचन सुनकर निताई स्थिर होकर बैठ गए।

प्रातः उठकर चैतन्य और निताई ने समुद्र-स्नान किया। शाम को दारुब्रह्म जगन्नाथ के दर्शन किए। उसी दिन से चैतन्य का विराट भावांतर दृष्टिगोचर होने लगा। वह भक्तों का सान्निध्य त्यागकर कृष्ण-विरह के महासागर में डूब गए। भक्तकवि वृन्दावनदास ठाकुर ने लिखा है—

से दिन हइते प्रभुर, हैल कोन दशा।
निरन्तर कहे कृष्ण विरहेर भाषा॥

चैतन्य उस दिन से गंभीरा के गर्भ में प्रवेश कर गए तथा नित्यानन्द के उदार उन्मुक्त प्रांगण में निकल पड़े। मानों चैतन्य की शक्ति नए सिरे से उनके शरीर में संचारित हो चुकी है।

नित्यानन्द पनिहटी में इष्ट गोष्ठी में पधारे थे। इसी समय एक तरुण ने आकर प्रणाम निवेदित किया। सेवकों ने बताया, ''प्रभु, ये सप्तग्राम के जमींदार

के पुत्र हैं—रघुनाथ। आपके कृपा-प्रार्थी हैं।'' रघुनाथ श्री चैतन्य का दर्शन कर चुके थे और प्रभु ने कुछ दिन और गृहस्थी में रहकर धर्माचरण करने का उपदेश दिया था। इस जमींदार ने उस दिन चूड़ा-दही का महाभोज आयोजित किया। इसके लिए निताई का आदेश था। किंवदन्ती है कि इस भोज में श्री चैतन्य भी शरीक हुए थे। इसके उपरान्त राघव पण्डित के घर भजन-कीर्तन हुआ। इसमें निताई की एक अलौकिक लीला देखने को मिली—

कीर्तन के बाद प्रसाद-ग्रहण करने के लिए पुकार हुई। नित्यान्द के आसन के दाहिनी ओर चैतन्य प्रभु के लिए आसन लगाया गया। राघव पण्डित ने विस्मय से देखा कि नित्यानन्द के बगल में श्री चैतन्य प्रसाद पाने के लिए बैठे हुए हैं। कहाँ सुदूर नीलाचल, कहाँ पनिहाटी। भक्त का आकर्षण प्रभु को यहाँ खींच लाया है। एक दिव्य अलौकिक शरीर धारण कर वे यहाँ उपस्थित हो गए हैं।

इस बीच रघुनाथ ने पुनः कृपा-आकांक्षा व्यक्त की। अपने साथी पार्षदों से उन्होंने कहा, ''भक्त रघुनाथ की विषय-वासना नष्ट हो चुकी है। तो सभी आशीर्वाद दो कि प्रार्थित चैतन्यपद को शीघ्र प्राप्त हो।'' नित्यानन्द ने फिर कहा, ''मैं आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हें शीघ्र ही चैतन्य-चरणों की प्राप्ति होगी और तुम उनके अंतरंग परिकरों में गिने जाओगे।'' नित्यानन्द की कृपा से इस वैराग्य-साधक ने शीघ्र ही चैतन्य चरणों का लाभ लिया। इससे वैष्णव संगठन और मजबूत हो गया।

नाना स्थानों का भ्रमण करते हुए नित्यानन्द अम्बिका कालना पहुँचे। चैतन्य देव के प्रिय भक्त गौरीदास पण्डित इसी नगर के निवासी थे। उनके भाई सूर्यदास की दो पुत्रियाँ वसुधा एवं जाह्नवी विवाहयोग्य हो गई थीं। दोनों ही सुलक्षणा एवं रूपवती थीं। नित्यानन्द ने वसुधा से विवाह का प्रस्ताव किया जिसके लिए सूर्यदास राजी नहीं हुए। इसके बाद नित्यानन्द सेवक भक्त उद्धारण दत्त को साथ लेकर गंगा-तट पर चले गए और एक एकान्त कुटीर में निवास करने लगे। इस बीच वसुधा असाध्य रोग से पीड़ित हो गई। नित्यानन्द ने अपनी अलौकिक शक्ति से वसुधा को स्वस्थ कर दिया। इसके बाद सूर्यदास ने अपनी इस कन्या का विवाह नित्यानन्द से कर दिया। इसके कुछ दिनों बाद पण्डित ने अपनी कनिष्ठ कन्या जाह्नवी को भी उन्हें अर्पित कर डाला। नित्यानन्द अपनी दोनों पत्नियों के साथ खड़दह में ही निवास करने लगे।

नित्यानन्द की पहली पत्नी वसुधा देवी के गर्भ से परम वैष्णव वीरभद्र का जन्म हुआ। गड़दह के गोस्वामी गण इन्हीं की वंश के संतान-संतति हैं। द्वितीय पत्नी जाह्नवी के पोष्या पुत्र रामाई गोस्वामी ने एक और गोस्वामी शाखा का विस्तार किया।

नवद्वीप के एक ब्राह्मण श्री चैतन्य के सहपाठी थे। नित्यानन्द का सर्वसाधारण के साथ प्रेम रसपान उन्हें अच्छा नहीं लगता था। उन्होंने इसकी चर्चा चैतन्य से की। प्रभु ने हँसते हुए कहा, ''यह कौन सी बात है भाई, क्या तुम नहीं जानते कि अधिकारी पुरुष एवं महासमर्थ साधक गण सारे गुण-दोषों से परे हैं।'' प्रभु ने कहा, ''भाई, जिस प्रकार कमल के पत्रों पर जल का स्पर्श नहीं होता, उसी तरह मेरे नित्यानन्द पर पाप का स्पर्श भी नहीं लग सकता है।''

बाद में एक बार चैतन्य का गौड़ आगमन हुआ। गंगा के तट पर आनन्द का मेला लग गया। उसी दिन पानिहाटी में राघव पण्डित के घर पर एक दिन प्रभु ने उनके समक्ष नित्यानन्द तत्त्व का वर्णन किया। इस प्रकार गौड़ तथा निताई का अभेदत्व उनकी साधना सत्ता में पूर्ण रूप से प्रस्फुटित हुआ।

धीरे-धीरे निताई के जीवन में एक दिव्य भावान्तर का दिव्य प्रकाश घटित होने लगा। वे आत्मकेन्द्रित होने लगे। भक्तगण निताई की अंतर्मुखता से दुःखी थे ही कि नीलाचल से उन्हें समाचार प्राप्त हुआ कि श्री चैतन्य अंतर्धान हो गए हैं।

भावगंभीर दशा में रहते हुए निताई को नौ वर्ष व्यतीत हो गए। १४६४ की शकान्द की सुबह। श्यामसुन्दर मन्दिर में मंगला आरती के उपरान्त भजन-कीर्तन हो रहा था। अवधूत नित्यानन्द के साक्षात्कार हेतु प्रभु उस दिन गड़दह मन्दिर में उपस्थित थे। दोनों प्रभुओं के मिलन से भक्तों के आनन्द की सीमा नहीं थी। निताई भी उस दिन कीर्तन में द्रव्य भाव से उद्दीप्त हो उठे थे। उनके भीतर महाभाव का गंभीर आवेश दृष्टिगोचर होने लगा। फिर वह आवेश कभी भंग नहीं हुआ। नित्यानन्द सदा के लिए नित्य लीला में प्रविष्ट हो गए। सारे भारत का भक्त समाज विषाद के सागर में डूब गया। नित्यानन्द की अवस्था का वर्णन करते हुए एक भक्त ने लिखा—

बड़ गूढ़ नित्यानन्द एई भवतारे।
चैतन्य देखान यारे से देखिते पारे॥

●

भारत के महान योगी

विश्वनाथ मुखर्जी

चौदह भाग, ७ जिल्द में, प्रत्येक सौ रुपये

भारत योगियों, संतों, साधकों और महात्माओं का देश है। देश के सभी भागों में अनेक योगी तथा संत हुए हैं जिन्होंने देश की चिन्तनधारा और जीवन को प्रभावित किया है। अपने चमत्कारी जीवन से जनमानस को चमत्कृत भी किया है। ऐसे योगियों का जीवन-चरित चौदह भागों (७ जिल्द) में प्रस्तुत किया गया है।

भाग : १-२ तंत्राचार्य सर्वानन्द, लोकनाथ ब्रह्मचारी, प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी, वामा खेपा, परमहंस परमानन्द, संत ज्ञानेश्वर, संत नामदेव, संत रविदास, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी ब्रह्मानन्द, स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस।

भाग : ३-४ योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी, महर्षि रमण, भूपेन्द्रनाथ सान्याल, योगी वरदाचरण, नारायण स्वामी, बाबा कीनाराम, तैलंग स्वामी, परमहंस रामकृष्ण ठाकुर, जगद्‌गुरु शंकराचार्य, सन्त एकनाथ।

भाग : ५-६ स्वामी रामानुजाचार्य, रामदास काठिया बाबा, राम ठाकुर, साधक रामप्रसाद, भूपतिनाथ मुखोपाध्याय, स्वामी भास्करानन्द, स्वामी सदानन्द सरस्वती, पवहारी बाबा, हरिहर बाबा, साईं बाबा, रणछोड़दास महाराज, अवधूत माधव पागला।

भाग : ७-८ किरणचन्द्र दरवेश, स्वामी अद्‌भुतानन्द (लाटू महाराज), भोलानन्द गिरि, तंत्राचार्य शिवचन्द्र विद्यार्णव, महायोगी गोरखनाथ, बालानन्द ब्रह्मचारी, प्रभु जगद्‌बन्धु, योगिराज गंभीरनाथ, ठाकुर अनुकूलचन्द्र, बाबा सीतारामदास ओंकारनाथ, मोहनानन्द ब्रह्मचारी, कुलदानन्द ब्रह्मचारी, अभयचरणारविन्द भक्तिवेदान्त स्वामी, स्वामी प्रणवानन्द, बाबा लोटादास।

भाग : ९-१० भक्त नरसी मेहता, सन्त कबीरदास, नरोत्तम ठाकुर, श्रीम, स्वामी प्रेमानन्द तीर्थ, सन्तदास बाबाजी, बिहारी बाबा, स्वामी उमानन्द, पाण्डिचेरी की श्रीमाँ, महानन्द गिरि, अन्नदा ठाकुर, परमहंस योगानन्द गिरि, साधु दुर्गाचरण नाग, निगमानन्द सरस्वती, नीब करौरी के बाबा, परमहंस पं० गणेशनारायण, अवधूत अमृतनाथ, देवराहा बाबा।

भाग : ११-१२ बालानंद ब्रह्मचारी, श्री भगवानदास बाबाजी, हंस बाबा अवधूत, महात्मा सुन्दरनाथजी, मौनी दिगम्बरजी, गोस्वामी श्यामानन्द, फरसी बाबा, भक्त लाला बाबू, श्रीपाद माधवेन्द्रपुरी, नंगा बाबा, तिब्बती बाबा, गोस्वामी लोकनाथ, काष्ठ-जिह्वा स्वामी, रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी, अवधूत नित्यानन्द।

भाग : १३-१४ श्री मधुसूदन सरस्वती, आचार्य रामानुज, आचार्य रामानन्द, अद्वैत आचार्य, चैतन्यदास बाबाजी, भक्त दादू, गुरुनानक देव, सिद्ध जयकृष्ण दास, शैवाचार्य अप्पर, साधक कमलाकान्त, राजा रामकृष्ण, यामुनाचार्य, आचार्य मध्व, स्वामी अभेदानन्द, भैरवी योगेश्वरी, सिद्धा परमेश्वरी बाई।

Rs. 100.00
ISBN 81-902534-8-4
9788190253482

अनुराग प्रकाशन
विशालाक्षी भवन,
चौक, वाराणसी - 221001
Phone & Fax : **(0542) 2421472**
Shop at : **www.vvpbooks.com**

SVB
S.No
Subj
Sub

तेरह-चौदह

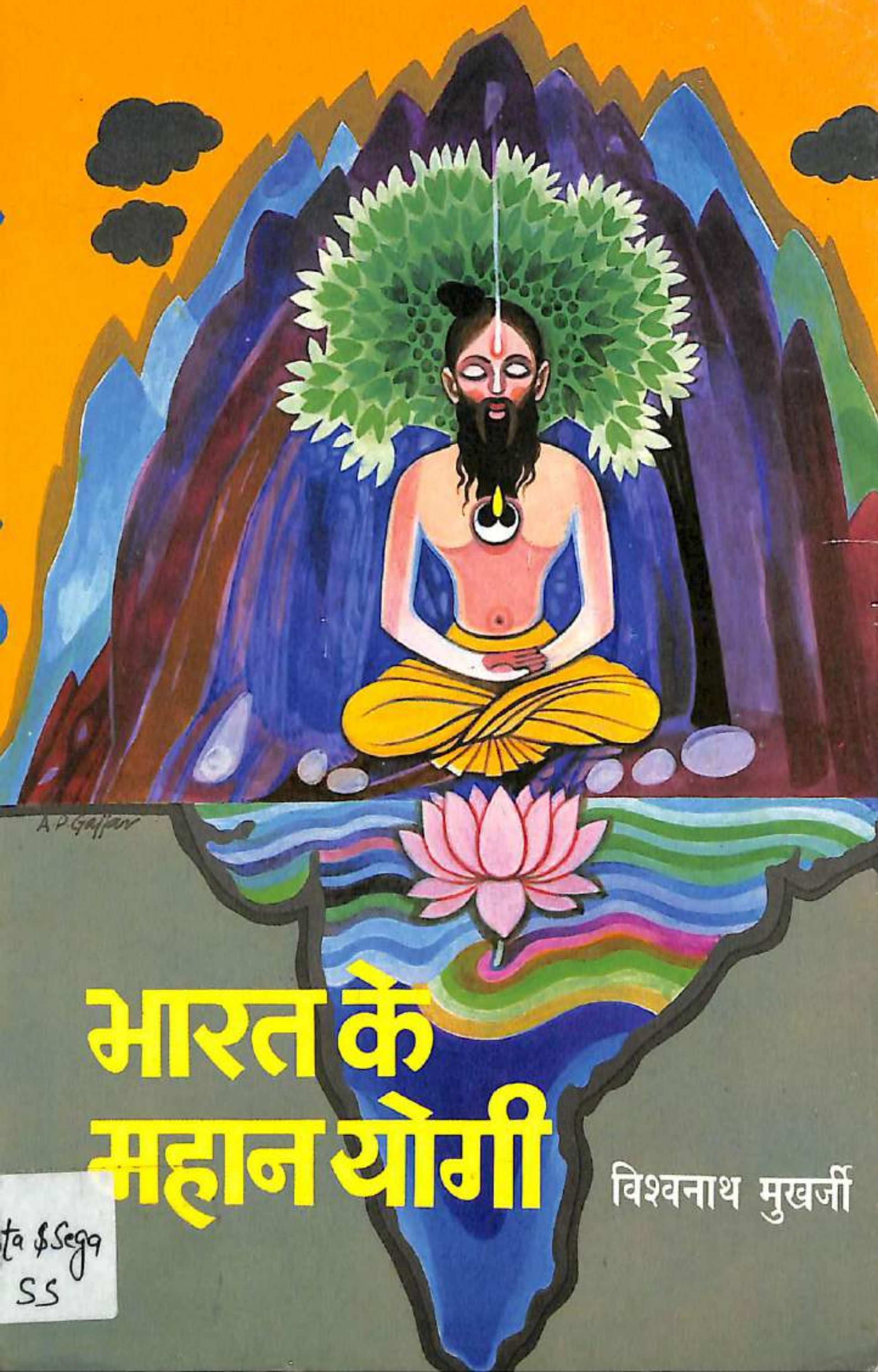

भारत के महान योगी

विश्वनाथ मुखर्जी

ta $ Sega
SS

55-18

भारत के महान् योगी

(भाग १३-१४)

विश्वनाथ मुखर्जी

अनुराग प्रकाशन, वाराणसी

BHARAT KE MAHAN YOGI
(Part 13-14)
by
Vishwanath Mukherjee

ISBN : 81-89498-14-2

प्रथम संस्करण : 2006 ई०

प्रकाशक
विश्वविद्यालय प्रकाशन
चौक, वाराणसी-221 001
फोन व फैक्स : (0542) 2421472

मुद्रक
वाराणसी एलेक्ट्रॉनिक कलर प्रिण्टर्स प्रा० लि०
चौक, वाराणसी-221 001

अनुक्रमणिका

पृष्ठ

१. श्री मधुसूदन सरस्वती १
२. आचार्य रामानुज ९
३. आचार्य रामानन्द २७
४. अद्वैत आचार्य ३३
५. चैतन्यदास बाबाजी ४२
६. भक्त दादू ४७
७. गुरु नानक देव ५६
८. सिद्ध जयकृष्ण दास ७४
९. शैवाचार्य अप्पर ७८
१०. साधक कमलाकान्त ८४
११. राजा रामकृष्ण ९२
१२. यामुनाचार्य ९९
१३. आचार्य मध्व १०८
१४. स्वामी अभेदानन्द १२०
१५. भैरवी योगेश्वरी १३३
१६. सिद्धा परमेश्वरी बाई १७८

१

श्री मधुसूदन सरस्वती

सोलहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध। बंगाल में एक छोटा-सा हिन्दू राज्य था। चंद्रदीप (वर्तमान वारिसाल अंचल में)। इसकी राजधानी कापचा थी। राजा कन्दर्प नारायण गुणीजनों का बहुत सम्मान करते थे लेकिन मुगलों के आक्रमणों और उनकी अधीनता स्वीकार करने के दबाव से काफी चिंतित रहा करते थे।

इसी समय कोटालिपाड़ा के अनसिया गाँव के प्रसिद्ध पंडित श्री प्रमोदन पुरन्दराचार्य अपने प्रतिभाशाली पुत्र मधुसूदन के साथ राजा के दरबार में पधारे। वे अपने पुत्र की प्रतिभा से राजा को परिचित कराना चाहते थे लेकिन राजा मुगलों के आक्रमण की खबर से इतने चिंतित थे कि इसके लिए समय न निकाल सके।

इस अपमान से क्षुब्ध पुरन्दराचार्य जब अपने पुत्र के साथ नाव द्वारा घर लौट रहे थे तभी मधुसूदन उनके पावों के पास बैठकर बोला-पिताजी, मैने निश्चय कर लिया है कि अब घर नहीं जाऊंगा। मैंने सोचा है, मनुष्य की आराधना न कर भगवान की आराधना करूँ। राजप्रासाद की बजाय देवता के प्रासाद में ही मैं अपना जीवन व्यतीत करना चाहता हूँ। राजा की अवहेलना केवल मेरा ही अपमान नहीं, मेरे पिता का भी अपमान है। इससे समस्त ब्राह्मण, पण्डित समाज और विद्यावेत्ताओं की मर्यादा को आघात लगा है। यह हमारे देश का शास्त्र और धर्म-संस्कृति का, ब्राह्मण धर्म का अपमान है। बारह वर्षीय बालक मधुसूदन के ओठ रोष से काँपने लगे। मधुसूदन ने आगे कहा, 'सुना है नवद्वीप में श्री गौरांगदेव का आविर्भाव हुआ है, मैं उनकी ही शरण में जाऊँगा।'

पिता पुरन्दराचार्य ने मधुसूदन को अनुमति दे दी लेकिन उसे माँ की सहमति लेने के लिए भी कहा। मधुसूदन ने घर आकर माँ से कहा, 'माँ मैं संन्यास लेना चाहता हूँ, तुम्हें इसकी अनुमति देनी होगी।' इतना सुनते ही माँ पर वज्रपात हो गया। वह विलाप करने लगीं।

मधुसूदन ने माँ को आश्वस्त किया, 'माँ मैं नवद्वीप ही जा रहा हूँ। वहाँ गौरांग प्रभु के चरणों में रहूँगा। नवद्वीप कोई दूर नहीं है। तुम जब चाहो आकर मुझसे मिल सकती हो।

पिता ने कहा, 'बेटा नवद्वीप में शास्त्र-ज्ञान के लाभ का बड़ा सुयोग है। तुम पहले ज्ञान प्राप्त करना, उसके बाद संन्यास ग्रहण करना। शीघ्रता मत करना।'

मधुसूदन माता-पिता का आशीर्वाद प्राप्त करके नवद्वीप चले आए।

मधुसूदन की जन्मभूमि उनसिया संस्कृति सम्पन्न ब्राह्मणों का गाँव था। यह प्राचीन, विक्रमपुर का अंश-विशेष तथा वर्तमान फरीदपुर जिला के कोटालिपाड़ा परगना में पड़ता था। किसी समय कोटालिपाड़ा मदारीपुर का ही अंश माना जाता था। गंगा और ब्रह्मपुत्र की बहुमुखी धाराएं इस भूमि को अभिसिंचित करती हुई बहती हैं। मधुसूदन का जन्म अनुमानित तौर पर १५२५ में हुआ। वे अपने पिता के चतुर्थ पुत्र थे।

मात्र आठ वर्ष की आयु में मधुसूदन काव्य अलंकार और न्यायशास्त्र में पारंगत हो गए। पुरन्दर के घर प्राय: विद्वत्जनों का जमावड़ा रहता। जब भी मधुसूदन से कहा जाता उनके कण्ठ से स्वरचित श्लोकों की धारा फूट पड़ती। इस बालक की प्रतिभा देखकर लोग आश्चर्यचकित हो जाते।

घर से निकल कर मधुसूदन मधुमती नदी के किनारे पहुंचे। समस्या थी कि नदी कैसे पार की जाय। कहीं कोई नाव नहीं। वे वहीं बैठकर देवी जाह्नवी का स्मरण करने लगे। दीर्घकाल तक आवाहन करने के बाद देवी प्रकट हुईं। आविर्भूत होकर कहा, 'वत्स, मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ। आशीर्वाद देती हूँ कि तुम शीघ्र ही नदी पार कर लोगे।'

'करुणामयी जननी! मुझे केवल इस नदी को पार करा देने से काम नहीं चलेगा। मुझे वह वर दो जिससे मैं भव-नदी पार कर सकूँ।' मधुसूदन ने कहा। 'तथास्तु' कहकर देवी अन्तर्ध्यान हो गईं।

कुछ देर बाद ही मछुआरे नाव लेकर आ गए। उन्हें बालक मधुसूदन पर दया आ गई। उन्होंने उसे नदी पार करा दी।

मधुसूदन जब नवद्वीप पहुँचे तो प्रेमावतार गौरांग हमेशा के लिए नवद्वीप त्यागकर नीलांचल चले गए थे। मधुसूदन वहीं रुककर न्यायशास्त्र का अध्ययन करने लगे। इनके गुरु थे प्रख्यात नैयायिक पण्डित मथुरानाथ। इस बालक की अद्‌भुत प्रतिभा पर वे मुग्ध थे। मधुसूदन एक के बाद एक ग्रंथ का पाठ पूरा करने लगे। उन्होंने नैयायिक श्रेष्ठ गंगेय उपाध्याय का ग्रंथ 'तत्व चिंतामणि', उसके बाद पक्षधर मिश्र, रघुनाथ शिरोमणि और मुथरानाथ की टीकाओं पर भी अधिकार कर लिया। कुछ समय में ही न्यायशास्त्र पर अधिकार हो गया।

मधुसूदन ने न्यायशास्त्र का अध्ययन तो कर लिया किन्तु नवद्वीप के भक्तिमार्गीय साधकों के सानिध्य से उनका अंतर रससिक्त हो उठा। न्यायशास्त्र के मत में ईश्वर, जीव, जगत् सबकुछ ही पृथक है। इसी कारण इस शास्त्र का सिद्धान्त द्वैत-परक है। मधुसूदन ने एक अकाट्य द्वैतवादी ग्रंथ की रचना का संकल्प किया। लेकिन शंकर के अद्वैत मत का खण्डन किए बिना यह कार्य संभव नहीं हो सकता था। अतएव उन्होंने निश्चय किया कि इसके लिए उन्हें वेदान्तविद्या के केन्द्र वाराणसी जाना होगा और मधुसूदन तमाम बाधाओं को पार करते हुए अपने ग्रन्थों को कंधे पर लादे वाराणसी जा पहुँचे।

काशीधाम विद्या का केन्द्र था। वहाँ हर समय शास्त्र-चर्चा और वैचारिक द्वन्द चला करता। देश के विख्यात विद्वान अपने शिष्यों के साथ काशी में निवास कर रहे थे। रामतीर्थ, उपेन्द्र, तीर्थनारायण, भट्ट, माधव सरस्वती, नृसिंहाश्रम, आप्पय दीक्षित, जगन्नाथ आश्रम, कृष्ण तीर्थ, विश्वेश्वर सरस्वती प्रभृति महापण्डितों की प्रतिभा की छटा से काशी का कोना-कोना आलोकित था। इनके बीच वेदान्त के मर्मज्ञ-आचार्य रामतीर्थ ही मधुसूदन की पसंद आए। उन्हीं के सानिध्य में वेदान्त का अध्ययन करने लगे। अपनी कुशाग्र बुद्धि, त्याग, वैराग्य और भक्ति भाव के कारण मधुसूदन जल्द ही वेदान्त के पंडित हो गए।

एक दिन दक्षिण भारत के प्रकाण्ड विद्वान पण्डित नारायण भट्ट के साथ काशी के प्रसिद्ध वेदान्तिक नृसिंहाश्रम और उपेन्द्र सरस्वती का विचार द्वन्द चल रहा था। इस विचार-द्वन्द में वेदान्तवादी पण्डित द्वय ने तरुण नैयायिक मधुसूदन की यथेष्ठ सहायता की। लेकिन नारायण भट्ट एक धुरंधर मीमांसा शास्त्रविद थे। उनके समक्ष काशी के दोनों विद्वान निरुत्तर हो गए। इस घटना ने मधुसूदन को सजग कर दिया। उन्होंने मीमांसा-शास्त्र का अध्ययन भी शुरू कर दिया। काशी में उस समय माधव सरस्वती नैयायिक मीमांसक के रूप में खूब प्रख्यात थे। मधुसूदन ने उनका शिष्यत्व ग्रहण किया और थोड़े ही समय में मीमांसा-शास्त्र में भी पारंगत हो गए। इसके बाद भारतीय दर्शन और अध्यात्म का गहरा अध्ययन किया। एकनिष्ठ साधना और शास्त्रानुशीलन के परिणामस्वरूप उनके जीवन में अपरूप तपोज्वल बुद्धि विकसित हो उठी और उसी के साथ-साथ वेदान्त का निहितार्थ भी उनके अन्तर में उद्‌भासित होने लगा।

मधुसूदन ने पाया कि भगवान को अन्तर्रात्मा के रूप में जाने बिना जीवन के लिए सच्ची भक्ति, सच्चा आत्म-समर्पण कभी सम्भव नहीं होता और इस आत्मस्वरूप का बोध ही साधक के समस्त भेद-ज्ञान को समाप्त कर देता है अभेद और अद्वैतभाव उसके मन में उद्‌भासित हो उठता है। अन्तर्रात्मा तो मैं स्वयं हूँ। भक्ति और आत्मसर्पण में इसी से सामान्यतम भेद ज्ञान रहने से जीव का 'निजत्व' बचा रहा है—द्वैत वहाँ खड़ा हो जाता है। वृहदारण्यक में महर्षि याज्ञवल्क्य ने इसी परम अद्वैत ज्ञान आत्मप्रीति के उदाहरण द्वारा समझाया है—'न वा अरे पत्यु: कामाय प्रति: प्रियो भवति, आत्मनस्तु कामाय पति: प्रियो भवति।' अर्थात् श्रुति कहती है, पति के लिए पति प्रिय नहीं होता, अपने लिए ही पति प्रिय होता है। इसका निहितार्थ प्रकृति प्रेम आत्मा से ही होता है एवं उसके साथ समन्वित हो यह दूसरे पर जन्मता है। पूर्णतम प्रेम इसी से केवल भगवान की—आत्मा की उपलब्धि करने से ही संभव हो सकता है। पूर्ण अभेद ज्ञान में ही पूर्ण भक्ति निहित रहती है। मधुसूदन ने समझा कि सर्वापेक्षा प्रामाणिक शास्त्र एवं श्रुति प्रकृत पक्ष में अद्वैत ब्रह्म का ही तत्त्वनिर्देश करती है।

मधुसूदन ने आचार्य रामतीर्थ के निकट अपने वेदान्त पाठ के प्रकृत उद्देश्य को गोपन ही देखा था। इस पाप का प्रायश्चित करने के लिए उन्होंने गुरु से निवेदन किया—'भगवन् मैंने आपके चरणों में भयंकर अपराध किया है। आप कृपाकर मेरे इस पाप के लिए मुझे उपयुक्त दण्ड का विधान करें।'

स्वामी रामतीर्थ ने आश्चर्यचकित होकर कहा, 'यह क्या वत्स, तुम्हारे समान सदाचारी गुरुभक्त विद्यार्थी तो मेरे यहाँ कोई आया ही नहीं। कोई अन्याय आचरण भी तो मैंने करते तुम्हें नहीं देखा। तुम्हारे मुख से यह सब मैं क्या सुन रहा हूँ?'

मधुसूदन ने नवद्वीप यात्रा और अपने अध्ययन के उद्देश्य के बारे में बताते हुए कहा कि मैं अद्वैतवाद के खण्डन में एक ग्रंथ लिखना चाहता था किन्तु आप के पास आकर स्वयं अद्वैतवाद में रम गया। यह आपके साथ कपट था यद्यपि आपकी कृपा के बिना प्रकृत सत्य और सिद्धान्त की खोज मैं नहीं पा सकता था। इस कपट के लिए आप मुझे दण्डित करें।

रामतीर्थ का हृदय हर्ष और विस्मय से भर गया। उन्होंने मधुसूदन का स्नेहालिंगन किया और बोले, 'तुम प्रायश्चित की दृष्टि से संन्यास लो। संन्यास से पुनर्जन्म होगा। पाप का भी मोचन हो जाएगा। तुम मण्डलेश्वर विश्वेश्वर सरस्वती के निकट संन्यास ग्रहण करो।' थोड़ी देर रुकने के बाद रामतीर्थ ने पुनः कहा, 'एक बात और सुनो वत्स। मध्व सम्प्रदाय के व्यास रामतीर्थ ने हम लोगों के अद्वैतवाद का खण्डन के लिए एक सुविस्तृत ग्रंथ-'न्यायमृत' लिखा है। इस ग्रन्थ ने हमलोगों की अपूरणीय क्षति की है। तुम इसका खण्डन कर अद्वैत मत को सिद्ध करो, सुप्रतिष्ठित करो।' मधुसूदन सानन्द सम्मत हो गुरु-चरणों में प्रणत हुए।

मधुसूदन विश्वेश्वर सरस्वती के पास गए और संन्यास की इच्छा व्यक्त की। सरस्वती महाराज ने कहा, 'वत्स, मैं कुछ दिनों के लिए तीर्थ पर्यटन में जा रहा हूँ। वहां से लौटकर तुम्हें संन्यास-दीक्षा दूंगा। इस बीच तुम गीता पर एक टीका लिखो। उससे तुम्हारी योग्यता की परीक्षा होगी।' सरस्वती महाराज तीर्थयात्रा से लौटे। मधुसूदन द्वारा रचित टीका देखकर प्रसन्न हुए और उन्हें संन्यास-दीक्षा दे दी।

काफी दिनों के परिश्रम से मधुसूदन ने एक ग्रंथ की रचना की जिसका नाम था 'अद्वैत-सिद्धि'। इस पुस्तक में उन्होंने अद्वैत मत के समर्थन में अकाट्य तर्क दिए। इस ग्रंथ ने उन्हें देशव्यापी कीर्ति दी। कुछ दिनों बाद मधुसूदन विश्वेश्वर सरस्वती और अन्य गुरु-भाइयों के साथ तीर्थ यात्रा के लिए निकले। यमुनातट के एक स्थान पर गुरु बोले, 'मधुसूदन यह स्थान तुम्हारे साधन-भजन के लिए अत्यन्त अनुकूल है। यहाँ कुछ दिन तक तुम तपस्या करो, हम लौटते

समय तुमसे मिलेंगे।' गुरु का निर्देश पाकर मधुसूदन नदी तट पर आसन जमाकर बैठ गए। इसी बीच एक अलौकिक घटना घटी। सम्राट अकबर की राज महिषी उस समय शूल रोग से पीड़ित थीं। एक रात उन्होंने स्वप्न देखा कि यमुना के किनारे एक संन्यासी तपस्यारत हैं। उनसे औषधि पाते ही वह रोगमुक्त हो गई हैं।

सम्राट अकबर ने पता लगवाया कि यमुनातट पर कोई संन्यासी तपस्यारत है या नहीं। जब उन्हें इसकी सत्यता का पता लगा तो वे छद्मवेश में अपनी पत्नी के साथ वहाँ गए। दोनों लोगों ने देखा कि कृच्छव्रती तरुण तपस्वी एकान्त भाव से तपस्या में लीन है। उनका शरीर चारो ओर से बालुका से आच्छादित है। बहुत दिनों बाद इस साधु का ध्यान भंग हुआ। राज महिषी ने अपने रोग के बारे में मधुसूदन को बताया। मधुसूदन ने कृपापूर्वक कहा, 'माँ, तुम घर जाओ, भगवत कृपा से तुम शीघ्र ही रोगमुक्त हो जाओगी।' राज महिषी घर लौटीं। उन्हें शीघ्र ही रोग से छुटकारा मिल गया। अकबर बेहद प्रसन्न हुए। उन्होंने मधुसूदन को भारी दौलत भेंट में देना चाहा लेकिन मधुसूदन ने सब कुछ अस्वीकार कर दिया। उन्होंने कहा, 'सम्राट, आप प्रजा और धर्म के रक्षक हैं। इस कर्तव्य का पालन करते रहें, यही मैं चाहता हूँ।' तीर्थ से लौटकर स्वामी विश्वेश्वर सरस्वती को इस घटना का पता लगा। वे बहुत प्रसन्न हुए। अब मधुसूदन की कीर्ति चारो ओर फैल गई।

गीता की टीका और 'अद्वैतसिद्धि' के बाद मधुसूदन सरस्वती ने अनेक महान ग्रंथों की रचना की। उनकी कीर्ति पूरे देश में फैल चुकी थी। वे काशी के शास्त्र-मर्मज्ञों के सर्व स्वीकार्य प्रतिनिधि बन चुके थे। उनका आश्रम गंगा के योगिनी घाट पर था। भक्त तुलसीदास भी इसी के पास हरिश्चन्द्र घाट के समीप रहते थे। मधुसूदन सरस्वती और तुलसीदास के बीच बहुत ही घनिष्ठ स्नेह-भाव था।

काशी के पण्डित रामचरित मानस की रचना लोकभाषा अवधी में करने के कारण तुलसीदास के कट्टर विरोधी हो गए थे। उन्हें समझाने के लिए तुलसीदास ने एक दोहे की रचना की जो इस प्रकार है—

हरिहर यश सुरनर गिरा, वरणहि सन्त सुजान।
हाँड़ी हाटक चाक-चिक, रांधे स्वाद समान॥

अर्थात् हरिहर यश-वर्णन साधुगण देवभाषा में करें अथवा जनसमाज की भाषा में, उसका फल एक ही है। चमकते हुए सोने के बर्तन में रंधन कीजिए अथवा मिट्टी की हांड़ी में, भोजन का स्वाद एक ही रहेगा।

विक्षुब्ध पण्डितगण इस दोहे को लेकर संत-शिरोमणि मधुसूदन सरस्वती के पास गए। उन लोगों ने उनका मत जानना चाहा। मधुसूदन सरस्वती ने तत्काल एक श्लोक के माध्यम से पण्डितों को उत्तर दिया—

परमानन्द पत्रोऽयं, जङ्गमस्तुलसी तरुः।
कविता मंजरी यस्य, रामभ्रमर चुम्बिता॥

अर्थात् तुलसीदास रूप चलमान तुलसीतरु के परमानन्दमय हैं, उस तुलसीदास की मंजरी है तुलसीदास की कविता और वह कविता-मंजरी भी है राम-भ्रमर द्वारा चुम्बित।

प्रवीण वेदांतिक मधुसूदन सरस्वती की यह उदारता देखकर ब्राह्मण बड़े ही विस्मित हुए। फिर वे तुलसीदास का विरोध न कर सके। मधुसूदन के इस समर्थन ने काशी के शास्त्रज्ञ पण्डित समाज को तुलसीदास के गुणों के बारे में सजग कर दिया। इससे तुलसीदास को भक्तिभाव के प्रचार में बड़ी सहायता मिली।

भक्ति और ज्ञान की गंगा-यमुना मधुसूदन के जीवन-दर्शन और साधना में शामिल हो गई थी। द्वैतवाद के समस्त युक्ति-तर्कों का खण्डन कर जिन्होंने अद्वैतवाद को सिद्ध किया, उन्होंने प्रेमभक्ति से सिक्त रसमय श्लोकों की रचना की। जैसे—

अद्वैत-सामाज्य-पथाधिरुढ़ा स्तृणीकृताखण्डलवैभवाश्च।
शठेन केनापि वयं हठेन दासीकृता गोपवधू विटेन॥

श्रीकृष्ण के परम मधुर रूप और अपनी उपासना का उल्लेख करते हुए मधुसूदन सरस्वती ने कहा है—

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्,
पीताम्बरादरुण विम्बफलाधरोष्ठात्।
पुर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्,
कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने॥

मधुसूदन सरस्वती नहीं मानते कि श्रीकृष्ण तत्व से परे भी कोई तत्व है। बाहरी तौर पर यह बात अद्वैत-विरोधी लगती है किन्तु प्रकृत पक्ष में ऐसा नहीं है। वह जिस साकार कृष्ण की उपासना करने को कहते हैं वह 'उपास्य परम तत्व' है। उपास्य तत्व के बीच वे श्रेष्ठतम है किन्तु उनका 'श्रेय-तत्व', अवश्य ही निर्गुण और निर्विशेष है। मधुसूदन के अनुसार 'कृष्ण-तत्व' की इस बात से अद्वैत-तत्व खण्डित नहीं होता।

मधुसूदन सरस्वती कहते हैं, प्रथम स्तर में जीव अपने को भगवान का दास मानता है, द्वितीय स्तर में भावना करता है कि भगवान उसके भक्ति-प्रेम के अधीन है, तृतीय स्तर में वह अपने को भगवान से अभिन्न मानता है। यह अभेद उपासना ही भक्ति की चरम सीमा है।

मधुसूदन सरस्वती अपनी समन्वयवादी दृष्टि के कारण भी ख्यात हुए। वे ज्ञान और भक्ति में समन्वय करते थे। किन्तु उनकी ख्याति का सबसे बड़ा कारण उनकी अलौकिक योगशक्ति थी। वाराणसी स्थित उनके आश्रम में विद्यार्थियों की भीड़ लगी रहती थी। उनके शिष्यों में प्रमुख थे बलभद्र, शेष गोविन्द, पुरुषोत्तम सरस्वती आदि। दौ अद्वैतवाद विरोधी प्रतिभाशाली छात्रों ने भी मधुसूदन सरस्वती

से शिक्षा ग्रहण की थी। इनमें से एक थे मध्व-सम्प्रदाय के पण्डित व्यासराम और दूसरे थे गौड़ीय वैष्णव-दर्शन के श्रेष्ठ प्रचारक श्री जीव गोस्वामी।

व्यासराम द्वैतवादी थे लेकिन छल से मधुसूदन सरस्वती से शास्त्र-ज्ञान प्राप्त किया। उन्होंने द्वैतवाद पर एक पुस्तक भी लिखी—जिसे देखकर मधुसूदन सरस्वती ने कहा, 'वत्स, तुम द्वैतवादी मध्व-सम्प्रदाय-मुक्त व्यासराम के आदेश से ही अद्वैतवाद के खण्डन के लिए गुप्तरूप से मेरे आश्रम में आए। मैं सब जानता था। तुमने मेरा शिष्यत्व ग्रहण किया है, आचार्य होकर मैं तुम्हारे इस ग्रंथ का प्रतिवाद नहीं कर सकता। यह काम मेरा कोई शिष्य ही करेगा।' मधुसूदन के शिष्य बलभद्र ने अपनी सिद्धि व्याख्या में व्यासराम के ग्रंथ का समुचित उत्तर दिया।

रूप सनातन के भ्रातृष्वपुत्र, श्रेष्ठ गौड़ीय पण्डित श्रीजीव ने भी मधुसूदन सरस्वती के निकट ही अद्वैत-वेदान्त अध्ययन किया। परवर्ती काल में षट्सन्दा-र्भिति बहुत से ग्रंथों की रचना कर अद्वैतवाद के ऊपर उन्होंने करारा प्रहार किया। उनका अभिप्राय जानते हुए भी मधुसूदन सरस्वती ने उन्हें उदारतापूर्वक शास्त्र ज्ञान दिया।

एक समय जब हिन्दू संन्यासियों पर मुसलमानों का अत्याचार काफी बढ़ गया। तब बहुत से संन्यासीगण मधुसूदन सरस्वती के पास गए। सम्राट अकबर और उनके मंत्री टोडरमल से मधुसूदन का अच्छा परिचय था। दोनों उनका सम्मान करते थे। कुछ दिनों पूर्व ही टोडरमल के साथ पण्डितों का तर्क-वितर्क हुआ था। पण्डित टोडरमल को कायस्थ कह कर उनका उपहास करते थे। उस समय मधुसूदन के समर्थन से ही टोडरमल की मान-रक्षा हुई थी। पण्डितों ने मधुसूदन से अपना मत व्यक्त करने की याचना की। मधुसूदन ने टोडरमल को क्षत्रिय-वंशीय ठहराया। संन्यासियों की रक्षा के लिए मधूसूदन ने टोडरमल से कहा। टोडरमल ने सारी बात अकबर के कानों में पहुंचाई। अकबर मुल्लाओं को नाराज किए बिना इस समस्या का हल निकालना चाहते थे। उन्होंने सभी शास्त्रविदों की एक सभा बुलाई। इस सभा में मधुसूदन भी उपस्थित हुए। उनके दार्शनिक विचार, तर्कशक्ति विद्याध्ययन और आकर्षक व्यक्तित्व ने सभी को मोहित कर दिया। मुल्लाओं ने भी मधुसूदन की प्रशंसा की। पण्डितों ने मधुसूदन के सम्बन्ध में उस समय इस श्लोक की रचना की—

वेत्तिपारं सरस्वत्याः मधुसूदन सरस्वती।
मधुसूदन-सरस्वत्यः पारं वेत्ति सरस्वती॥

अर्थात् ज्ञानाधिष्ठात्री देवी सरस्वती का ओर-छोर मधुसूदन ही जानते हैं और मधुसूदन का थाह केवल देवी सरस्वती ही जान सकती हैं।

मधुसूदन ने बादशाह से संन्यासियों के रक्षार्थ निवेदन किया। मौलवी उस समय मधुसूदन की प्रतिभा, अध्यात्मशक्ति और गंभीर विद्या से मुग्ध हो रहे थे।

किसी ने उनका विरोध नहीं किया। चतुर बादशाह ने इतना ही आदेश दिया कि संन्यासीगण भी आत्मरक्षा करते रहें, किन्तु संघर्ष उपस्थित होने पर मुल्ला या संन्यासी किसी भी पक्ष को विचारालय में खींच कर नहीं लाया जा सकेगा। इसके बाद मधुसूदन के समर्थन से नागा संन्यासियों को अस्त्र-शस्त्र से सज्जित किया गया। अस्त्र में निपुण होने पर भी मुस्लिम शासन में वे उनका प्रयोग करने में डरते रहे। इस बार मधुसूदन की कृपा से उन्हें सुविधा मिली। इसके अलावा बहुत से हिन्दू योद्धाओं को भी इस समय मधुसूदन के निर्देशानुसार संन्यास मंत्र में दीक्षित किया गया। मधुसूदन के नेतृत्व में संन्यासीदल आत्मरक्षा में और अन्याय के प्रतिरोध में तत्पर हो गया।

मधुसूदन सरस्वती वृद्ध हो चुके थे। एक दिन महायोगी गोरक्षनाथ की विदेही सत्ता का साक्षात्कार हुआ। मधुसूदन जैसे ही गंगास्नान कर तट पर आए गोरक्षनाथ ज्योतिर्मण्डित सूक्ष्म देह में उनके सम्मुख आविर्भूत हुए। आत्मपरिचय देने के बाद योगेश्वर ने मधुर हंसी के साथ मधुसूदन के सम्मुख एक अमूल्य रत्न बढ़ा दिया और कहा, 'वत्स यह चिंतामणि रत्न है। इस परमवस्तु को मैं किसे दूँ, इसकी ही खोज कर रहा था। तुम्हीं इसे धारण करने के परम अधिकारी हो। यह तुम सदा अपने पास रखो, जब जिस वस्तु को चाहोगे, इसके प्रसाद से वह सुलभ हो जाएगी।'

मधूसूदन ने प्रणति ज्ञापित कर शान्त स्वर से कहा, 'योगिराज, मुझे तो किसी वस्तु का अभाव नहीं है। अत: चिन्तामणि का मैं अपने लिए कोई प्रयोजन नहीं देख पा रहा हूँ। आप योग्यतर पात्र ढूँढ़कर यह अमूल्य रत्न उसे दे दें।'

गोरक्षनाथ के काफी आग्रह पर मधुसूदन ने कहा, 'यदि आप मेरे सिवा किसी अन्य को यह रत्न नहीं देना चाहते तो दे दें। लेकिन पहले यह बात कह दें कि मैं इसके अधिकारी रूप में इसके साथ जो चाहूँगा करूँगा।' गोरक्षनाथ ने स्वीकृति दी और मधुसूदन ने उनके हाथ से रत्न ग्रहण कर लिया। इसके तुरन्त बाद उसे गंगा में फेंक दिया। गोरक्षनाथ हँसते हुए बोले, 'मधुसूदन, अब कहो, चिन्तामणि मैंने सच्चे अधिकारी को ही दी है अथवा नहीं।'

लगभग १९३२ ईस्वी में मधुसूदन १०७ वर्ष के हो चुके थे। अंतिम यात्रा के लिए वे हरिद्वार गए। सिद्ध पुरुष ने योग बल से जान लिया कि उनके महाप्रयाण का समय निकट है। जीवन के सारे बहिरंग कार्यों से मुक्त हो चुके हैं। शेष दिनों की बात भी अपने शिष्यों को बता चुके हैं। निर्दिष्ट पुण्य लग्न में आप्तकाम महापुरुष मोक्षदायिनी हरिद्वार की गंगा के तट पर समाधिमग्न हो गए। यह उनकी महासमाधि थी।

●

२

आचार्य रामानुज

रामानुज का जन्म १०१७ ई० में पेरेमबुदुर में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ। पिता केशवाचार्य विद्वान और शास्त्रों के मर्मज्ञ थे और माता काँतिमती को भक्तिसम्पदा विरासत में मिली थी। माता और मातुल वंश की अतुलनीय भक्ति रामानुज को बचपन में ही उत्तराधिकार में प्राप्त हुई।

धीरे-धीरे रामानुज शैशवावस्था से बाल्यावस्था में प्रविष्ठ हुए। एक दिन वे अध्यापक के यहाँ से घर आ रहे थे। शाम का समय था। उनकी दृष्टि उधर से गुजरते हुए एक साधु पर पड़ी। रामानुज उस साधु के पास गए और घर चलने का हठ करने लगे। साधु को उनका हठ मानना पड़ा। साधु के साथ रामानुज घर गए। केशवाचार्य साधु को देखकर अति प्रसन्न हुए। बेटे से कहा, 'वत्स, काँचिपूर्ण इस क्षेत्र के एक प्रसिद्ध साधु और परमभागवत हैं। श्री वरदराज का निर्वाक विग्रह अपने इस परमभक्त के मुख से ही बोलता है। इन्हीं के मुख से सभी को उस देवता का निर्देश प्राप्त होता है। पूर्ण श्रद्धा और आदर से तुम इनकी सेवा और अभ्यर्थना करो।' तब रामानुज को पता चला कि जिस व्यक्ति को वे घर ले आए हैं वह कोई साधारण साधु नहीं है। वे विष्णु कांचि के जाग्रत विग्रह श्री वरदराज के परमभक्त और अनुग्रहीत हैं।

खाना खाने के बाद काँचिपूर्ण विस्तर पर लेटे। रामानुज उनके पैताने बैठे थे। जब उन्होंने साधु का चरण दबाने के लिए हाथ लगाया, तभी कांचिपूर्ण उठ बैठे। कहा, 'यह क्या, वत्स। तुम कैसे मेरी चरण-सेवा कर सकते हो? तुम ब्राह्मण-पत्र हो और मैं शूद्र। नहीं, नहीं, यह उचित नहीं होगा।'

प्रभो। उपवीत धारण करने मात्र से क्या कोई ब्राह्मण हो जाता है? मेरी समझ से तो हरिभक्ति-परायण व्यक्ति ही सच्चा ब्राह्मण है। विख्यात भक्त तिरूप्पान आलोचार क्या चांडाल होकर भी ब्राह्मणों के पूज्य नहीं हुए? लगता है मेरा अदृष्ट मंद है, तभी आप जैसे परमभागवत की सेवा का अधिकार मुझे नहीं मिल रहा है।' बालक की बातें सुनकर काँचिपूर्ण के विस्मय का पारावार नहीं रहा। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि यह बालक भस्मावृत स्फुलिंग है। वरदराज के अत्यंत असाधारण कृपा-भाजन जाग्रत देव विग्रह श्री कांचिपूर्ण के पुण्य स्पर्श और मधुर स्मृति ने रामानुज के भीतर आध्यात्मिक जीवन को उसी दिन बीजारोपण कर दिया।

रामानुज जब १६ वर्ष के हुए तो उनका विवाह एक सुन्दर और सुशील कन्या से कर दिया गया। इस विवाह के एक माह ही हुए थे कि केशवाचार्य का निधन हो गया। रामनुज ने शास्त्रों का अध्ययन करने का निश्चय किया और काँची के प्रख्यात अद्वैतवादी विद्वान आचार्य यादव प्रकाश से शास्त्राध्ययन करने लगे। कुछ ही दिनों के भीतर वे आचार्य के चतुष्पाठी के उत्तम छात्र गिने जाने लगे।

एक दिन रामानुज आचार्य के स्नान से पूर्व उनकी देह-मालिश कर रहे थे। रामानुज ने आचार्य से छान्दोग्य उपनिषद् के इस पद की व्याख्या जाननी चाही— 'तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीकमेवभक्षिणी।' यादव प्रकाश ने इस छंद की बहुप्रचलित व्याख्या ही सुनाई—'स्वर्ण-वर्ण पुरुष की आंखें बंदर के गुदा-प्रदेश के समान रक्त वर्ण थी।' भगवन् के नयनकमल की यह कैसी अश्लील और घृणित उपमा? रामानुज इस व्याख्या से उद्वेलित हो उठे। क्या उपनिषद के मंत्र-स्रष्टा ऋषि को भगवान के कमलनयनों के लिए और कोई उपमा नहीं मिली? रामानुज रो पड़े। उनके अन्तर में बार-बार यह बात उठने लगी। नहीं, ऐसा कदापि नहीं हो सकता। आचार्य की अनावृत्त जांघ पर रामानुज के आंसू की बूंदे गिर पड़ीं। आचार्य ने सिर उठाकर देखा, रामानुज रो रहे थे। आचार्य ने इसका कारण पूछा। रामानुज ने कहा, 'प्रभो, आपके जैसे महानुभाव के मुख से उपनिषद् की ऐसी व्याख्या सुनकर मर्माहत हूँ। सच्चिदानन्द विग्रह के नयन-कमल के साथ बंदर के अपान-देश की तुलना केवल अशोभनीय ही नहीं, पापजनक भी है। आपके समान प्रज्ञ महापुरुष के मुख से ऐसे कदर्थ की आशा मुझे कभी नहीं थी।'

'क्या इससे उत्कृष्ट व्याख्या तुम दे सकते हो?' आचार्य ने पूछा।

'प्रभो, आपके आशीर्वाद से सब कुछ संभव हो सकता है।' रामानुज बोले।

'बहुत अच्छा अपनी नई व्याख्या तुम दे डालो। लगता है तुम शंकराचार्य से आगे बढ़कर रहोगे।'

'जी हाँ, आपके आशीर्वाद से यह भी परे नहीं है।' रामानुज ने हाथ जोड़कर निवेदन किया। रामानुज ने व्याख्या की, 'कप्यास' पद के 'क' का अर्थ जल 'पि' का पीना, आकर्षित करना, 'आस' का 'आस'—धातु सम्बंध निहितार्थ विकसित होने वाला संभव है। इस प्रकार सम्पूर्ण पद का ध्वन्यर्थ कमल-जल को आकृष्ट करने वाले सूर्य द्वारा खिलाये जाना वाला हुआ। अर्थात् सूर्य-मंडल के मध्य में स्थित पुरुष की दोनों आँखें सूर्य द्वारा विकसित किये गये कमल-युगल की तरह हैं।'

यह व्याख्या सुनकर आचार्य रुष्ट हुए। बोले, 'तुमने जो कुछ कहा, वह प्रधान अर्थ नहीं है, गौण अर्थ हो सकता है। फिर भी तुम्हारी व्याख्या-चातुर्य

प्रशंसनीय है।' आचार्य यादव प्रकाश इस घटना से भीतर ही भीतर काफी क्रोधित थे किन्तु उन्होंने इसे प्रकट नहीं होने दिया।

आचार्य की प्रतिष्ठा तांत्रिक के रूप में भी थी। एक बार काँची की राजकन्या किसी दुष्ट प्रेतात्मा के गिरफ्त में आ गई। काफी चिकित्सा के बावजूद ठीक नहीं हुई। आचार्य को राज-प्रासाद में बुलाया गया। उन्होंने रोगिणी के निकट मंत्रपाठ किया। मंत्र-प्रेरित प्रेत ने राजकुमारी को मुक्त तो कर दिया लेकिन एक निराली बात कही। उसने अनुरोध किया, 'पण्डित जी, मैं राजकुमारी को छोड़कर तो चला जाऊँगा, किंतु इसके पहले सामने खड़े अपने शिष्य रामानुज को मेरे सिर पर चरणस्पर्श करने दो। तुम्हारे इस शिष्य की देह बहुत पवित्र है। यह एक अद्‌भुत विष्णुभक्त ब्राह्मण है।'

आचार्य यादव प्रकाश के आश्चर्य की सीमा न रही। लेकिन उन्हें प्रेत के अनुरोध की रक्षा करनी ही थी अतएव उन्होंने रामानुज को ऐसा करने का आदेश दिया। तदनुसार रामानुज ने सभी लोगों के सम्मुख राजकुमारी के प्रेतग्रस्त मस्तक पर चरण-स्थापन किया। राजकुमारी पूरी तरह स्वस्थ हो गई।

इस साधारण घटना ने रामानुज को असाधारण ख्याति दिलाई। एक तरुण पुण्यात्मा साधक के रूप में समाज धीरे-धीरे उन्हें जानने लगा।

मत वैभिन्यता के कारण—रामानुज और आचार्य में दूरी बढ़ती गई। आचार्य की क्रोधाग्नि भीतर ही भीतर प्रज्वलित होती गई। इसमें योगदान था रामानुज के तर्क और युक्तपूर्ण तरीके से आचार्य की स्थापनाओं के खण्डन का। एक दिन आचार्य का क्रोध चरम पर पहुँच गया। फलस्वरूप उन्होंने न केवल रामानुज को अपनी भरी चटसार में अपमानित ही नहीं किया, वरन् आश्रम से निष्कासित कर दिया। गुरु की चरण-वंदना करके रामानुज आश्रम से चले गए। घर वापस होने के बाद एकांत विद्याध्ययन की साधना में लग गए।

रामानुज तो चले गए किन्तु आचार्य के मन की ईर्ष्या वेगवती होती गई। उन्हें रामानुज के भीतर अद्‌भुत आध्यत्मिक शक्ति का दर्शन हो चुका था। जिसके कारण उनका अपना वर्चस्व खतरे में पड़ सकता था। यादव प्रकाश ने रामानुज को रास्ते से हटाने के लिए एक भयंकर षड्‌यंत्र रच डाला।

यादव प्रकाश ने एक दिन रामानुज को बुलाया। उनके आने पर स्नेह का अभिनय करते हुए बोले, 'गुरु और शिष्य का सम्बंध क्या कभी टूट सकता है?' रामानुज गुरु के प्रिय थे ही, अतएव उन्हें इसमें कोई संदेह नहीं दिखाई पड़ा। उन्हें आश्रम में सादर स्थान दिया गया। इसके कुछ दिनों बाद आचार्य यादव प्रकाश ने घोषणा की कि वे कुछ शिष्यों के साथ तीर्थयात्रा पर निकलेंगे।

इस तीर्थयात्रा के रहस्य का रामानुज को पता नहीं थी। वे अपने गुरु के साथ उत्साहपूर्वक तीर्थयात्रा पर निकल पड़े। उस मण्डली में रामानुज के साथी

और मौसेरे भाई गोविन्द भी थे। ये लोग विन्ध्य प्रदेश के गोड्डा अरण्य में पहुँचे। इस गहन वन में मनुष्य का वास दूर-दूर तक नहीं था। चारो ओर जंगली जानवर विचरण कर रहे थे। षडयंत्रकारियों को लगा कि रामानुज की हत्या के लिए इससे उपयुक्त स्थान कोई अन्य नहीं हो सकता। काम तमाम करने के बाद यह बात फैला दी जाएगी कि रामानुज किसी हिन्स्त्र पशु की चपेट में आ गए। षडयंत्रकारी-योजना बना रहे थे कि इसकी भनक रामानुज के मौसेरे भाई गोविन्द को लग गई।

शाम के समय रामानुज पास के एक सरोवर में हाथ-पैर धोने गए। गोविन्द जी के लिए यह मौका अच्छा था। उन्होंने षडयंत्रकारियों की सारी बातें रामानुज को बता दी। उन्होंने कहा कि उन्हें तत्काल यहाँ से प्रस्थान कर जाना चाहिए। रामानुज तुरंत घर वापस हो लिए। काँची दक्षिण दिशाा में थी। वे उसी दिशा में तेजी से चल पड़े।

इधर रात होने पर भी जब रामानुज नहीं आए तो यादव प्रकाश और उनके शिष्यों ने उनकी तलाश शुरू कर दी। जंगल में सघन अंधकार था। किसी के लिए अकेले संभव नहीं था जंगल पार कर पाना। लिहाजा आचार्य और उनके शिष्यों ने मान लिया कि रामानुज किसी हिन्स्त्र पशु का शिकार हो गए। दूसरे दिन वे लोग निश्‍चित मन से भंभा-वीर के तीर्थ की ओर चल पड़े।

इधर रामानुज घने जंगल में चलते ही जा रहे थे। रात होने पर एक विशाल पेड़ की डाल पर चढ़ गए, वहीं रात बिताई। दूसरे दिन फिर चलना शुरु किया। भूखे-प्यासे चलते हुए अत्यंत शिथिल हो गए थे। शाम को एक वृक्ष के नीचे बैठ गए। कुछ देर बाद वहीं मूर्छित हो गए। चेतना लौटने पर स्वयं को तरोताजा पाया। थकान मिट गई। उन्होंने देखा कि सिरहाने बैठकर एक व्याघ-दम्पति उनकी परिचर्या कर रहे हैं। रामानुज उठकर बैठ गए। व्याघ-पत्नी ने पूछा, 'बाबा तुम कौन हो? इस घोर जंगल में कैसे आना हुआ?'

रामानुज ने पूरी स्थिति बताने के बाद कांची नगर का मार्ग दिखाने की याचना की। व्याघ बोला, 'हम लोग भी वहीं जा रहे हैं। चलो, साथ ही चलते हैं।'

कुछ कंद-मूल खाकर रामानुज इन लोगों के साथ चल पड़े।

लेकिन थोड़ी देर में ही जंगल में अंधेरे का घटाटोप घिर आया। एक साफ-सुथरी जगह देखकर लोगों ने सोने का निश्चय किया। रामानुज सोने ही जा रहे थे कि उनके कानों में व्याघ-दम्पति की आवाज सुनाई पड़ी। पत्नी पति से कह रही थी कि उसे काफी तेज प्यास लगी है। निकट ही स्थित एक प्रसिद्ध कुएँ से ठंडा पानी ले आते तो वह अपना प्यास बुझा लेती। पति समझा रहा था, 'इस अंधेरी रात में क्यों दौड़ा रही हो, रात बिता लो, सुबह पानी लाएँगे।'

रामानुज ने जब यह बात सुनी तो व्याघ-दम्पति के पास गए और पानी लाने की इच्छा व्यक्त की। इस पर दोनों ही बोल उठे, 'बाबा, तुम्हें इतना घबराने की आवश्यकता नहीं। कल प्रातःकाल ही उठकर पानी ले आना।'

दूसरे दिन तड़के ही व्याघ-पत्नी उठ गई। उसने रामानुज से कहा, 'बाबा, कल रात में तूने पानी लाने की इच्छा व्यक्त की थी। यहाँ से थोड़ी दूर ही वह कूप है, चलो, उसी दिशा में चलते हैं।'

वन से बाहर आने पर वह विशाल कुआं दिखाई दिया जिसमें पानी तक सीढ़ियाँ बनी थीं। लोग सीढ़ियां उतर कर पानी ला रहे थे। रामानुज ने पानी लेकर हाथ-मुंह धोया, फिर अंजुरी भर कर पानी व्याघ-पत्नी को पिलाने लगे। तीन बार अंजुरी भर कर पानी लाए लेकिन व्याघ-पत्नी की प्यास नहीं बुझी। वे चौथी बार पानी लेने गए। लेकिन जब पानी लेकर लौटे तो व्याघ-दम्पति का कोई पता नहीं था।

रामानुज के विस्मय का ठिकाना नहीं रहा। उन्होंने वहाँ उपस्थित जनों से पूछा, 'भाई, इस स्थान का नाम क्या है? कांची यहाँ से कितनी दूर है?' कुछ लोग ठठा कर हँसे। आश्चर्य से पूछा, तुम्हें क्या हो गया है रामानुज, तुम अपनी चिरपरिचित काँची नगरी को भी नहीं पहचान रहे हो? तुम यादव प्रकाश के छात्र हो न? इतने ही दिनों में भूल गए इस स्थान को? देखते नहीं, पास ही स्थित श्रीवरदराज के मंदिर का शिखर! यह महातीर्थ शाल-कूप! यह भी याद नहीं है तुम्हें?'

यह कैसा इंद्रजाल? रामानुज के मन में सवाल उठने लगे। मध्य प्रदेश के वनांचल से महज एक मध्यान्ह चलकर सुदूर दक्षिण काँची कैसे पहुँच गए? उनकी आँखों में उल्लास के आंसू छलक आए। हो सकता है कि व्याघ-दम्पति के रूप में स्वयं वैकुण्ठपति और लक्ष्मी ने ही यह लीला रची हो। भाव के आवेग में रामानुज वहीं मूर्छित होकर गिर पड़े।

रामानुज की चेतना लौटी। उनके आसपास भीड़ एकत्र थी। वह किसी के प्रश्न का उत्तर देने में असमर्थ थे। बस रोए जा रहे थे। उन्हें जीवन-पथ का आभास हो चुका था। वह घर जाकर शास्त्रों के अध्ययन में लीन हो गए। एक दिन सिद्ध भक्त वरदराज के साक्षात् विग्रह कांचिपूर्ण रामानुज के घर आए। रामानुज ने उन्हें पूरी कथा सुना कर दीक्षा देने का आग्रह किया लेकिन कांचिपूर्ण ने इसमें असमर्थता व्यक्त की। परन्तु रामानुज उस महाभक्त के चरणों में सदा के लिए स्वयं को समर्पित कर बैठे। पवित्र दास्यभक्ति का बीज उनके जीवन में कांचिपूर्ण के प्रसाद से ही अंकुरित होने लगा।

कुछ दिनों पश्चात् यादव प्रकाश तीर्थाटन से वापस आए और रामानुज उनके चटसार में आने-जाने लगे। रामानुज यादव प्रकाश के षड्यंत्र से जानबूझ कर अनभिज्ञ बने रहे।

एक बार सुप्रसिद्ध विष्णुभक्त श्री रंगनाथ के एकांत सेवक यामुनाचार्य कांची पहुंचे। जाग्रत-विग्रह श्री वरदराज के दर्शन और आराधना के लिए उनका यह आगमन था। रामानुज उनकी सेवा में थे। उनके बारे में जानने की उत्सुकता व्यक्त करने पर एक भक्त ने कहा—'महात्मन, यह युवक कांची का रत्न है। श्रीवरदराज के परम भक्त तथा महापुरुष श्री कांचिपूर्ण ने इन्हें अनुग्रहीत किया है। यह प्रतिभावान शास्त्रवेत्ता भी हैं। आजकल 'सत्यं ज्ञानमनन्त ब्रह्म' इस मंत्र की एक भक्ति-प्रधान, विस्तृत व्याख्या कर इस तरुण ने यहाँ के सुधी समाज में तहलका मचा दिया है।' यामुनाचार्य दाक्षिणात्य भक्ति-धर्म के श्रेष्ठ साधक थे। वे इस समाचार से पुलकित हो उठे। रामानुज की स्मृति उनके मानस पटल पर अंकित हो गई थी। अतएव देह-त्याग के पूर्व, बैष्णव जनता के भावी दिक्‌पाल के रूप में रामानुज को वह भक्तजनों के समक्ष चिन्हित कर गए। उस समय यामुनाचार्य के मुख से जो श्लोक स्फुरित हुए थे उसकी अंतिम दो पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

लक्ष्मीश, पुण्डरीकाक्ष, कृपां रामानुजे तव,
विधाय, स्वमतेनाथ, प्रविष्टः कर्त्तुमहसि।

अर्थात्, 'हे कमल नयन श्रीपते, श्री रामानुज के ऊपर अपनी कृपा करो। नाथ, उसे अपने मत में ले आओ।'

उपनिषद् की व्याख्या को लेकर एक दिन आचार्य यादव प्रकाश से विवाद हो गया। विवाद इतना बढ़ गया कि आचार्य ने रामानुज को अपने आश्रम से निष्कासित कर दिया। रामानुज घर आकर एकांतभाव से भक्तिवादी शास्त्रचर्चा में डूबे रहने लगे। प्रतिदिन पवित्र शालकूप से घड़ा भर कर जल लाते और श्रीवरदराज को स्नान कराते। परम भागवत श्री कांचिपूर्ण के निकट सम्पर्क के लाभ द्वारा उनका आध्यात्मिक जीवन भी प्रस्फुटित होने लगा।

यामुनाचार्य को जब ज्ञात हुआ कि रामानुज ने आचार्य यादव प्रकाश का चटसार छोड़ दिया है तब उन्हें बुलाने के लिए अपने एक शिष्य महापूर्ण को भेजा। रामानुज वरदराज को स्नान कराने के लिए शालकूप का जल लेकर आ रहे थे तभी महापूर्ण उनके समक्ष खड़े होकर मधुरकण्ठ से एक श्लोक की कुछ पंक्तियां गाने लगे—

धिगशुचिमविनीतं निर्दयं मामलज्जं
परम पुरुष, योऽहँ योगिवऽर्य्याग्रागण्यः
विधि शिव सनकाद्यै ध्यातुमत्यंतदूरम्
तव परिजनभावं कामये कामवृत्तः।

अर्थात् 'हे प्रभो, मुझ अपवित्र, अविनीत, निर्दय और निर्लज्ज को धिक्कार है।

पुरुषोत्तम, योगियों में अग्रगण्य, विधि-शिव-सनक आदि भी जिसे ध्यान में पाने के समर्थ नहीं है, उस तुम्हारे दास्य भाव का मैं कामप्रकृत प्रार्थी हूँ।

रामानुज खड़े हो गए। कैसी अपूर्व स्तोत्रावली! उन्होंने आगे बढ़कर उस गेरुआ वस्त्रधारी वैष्णव साधक से पूछा—'प्रभो, दयाकर मुझे बताएँ, इस मधुर रसमयी स्तुति की रचना करने वाले कौन महापुरुष हैं ?' महापूर्ण ने बताया कि इसके रचयिता मेरे प्रभु महामुनि यामुनाचार्य हैं। यहाँ आने का प्रयोजन पूछने पर महापूर्ण ने बताया, 'मेरे प्रभु यामुनाचार्य के शरीर त्याग का समय निकट आ गया है। वह तुमसे मिलने के लिए व्यग्र हैं। तुम्हें ले जाने के लिए ही मैं काँची आया हूँ। रामानुज ने जल को शीघ्र ही मंदिर पहुँचाया और घर सूचना दिए बिना ही महापूर्ण के साथ चल दिए।'

लेकिन रामानुज के पहुँचने से पूर्व ही यामुनाचार्य गोलोकवासी हो चुके थे। अंतिम दर्शन के लिए अपार जनसमूह उमड़ रहा था।

रामानुज ने देखा कि यामुनाचार्य के दाहिने हाथ की तीन उंगलियाँ बद्धमुष्ठि हैं। विचारमग्न रामानुज धीरे-धीरे भावाविष्ट हो गए। पवित्र शव को लक्ष्य कर वह उच्च कण्ठ से सद्य:रचित श्लोक में अपना संकल्प घोषित करने लगे जिसका आशय इस प्रकार है—

'वैष्णव मत में दृढ़ रह कर मैं अज्ञान-मुग्ध जनता को पंच-संस्कार युक्त द्रविड़ वे में शिक्षित और नारायण शरणागत कर, उसकी सर्वदा रक्षा करूँगा।'

रामानुज के इस श्लोक से पवित्र शव के दाहिने हाथ की बंधी मुट्ठी की एक उंगली सीधी हो गई। लोग यह चमत्कार देखकर दंग रह गए। रामानुज ने फिर एक श्लोक की रचना की जिसका आशय यह था—

'लोक रक्षा के उद्देश्य से मैं सर्वार्थ—संग्रह, कल्याणकर और तत्व ज्ञानमय श्रीभाष्य की रक्षा करुंगा।'

यामुनाचार्य के दाहिने हाथ की दूसरी उंगली भी सीधी हो गई।

रामानुज ने अपना तीसरा संकल्प श्लोक पढ़ा—

'जो कृपामय पराशर मुनि जीवों के उद्धार के लिए ईश्वर-तत्व और साधन-पद्धति की सरलता से समझाने वाले पुराण-रत्न विष्णु पुराण की रचना कर गए हैं, मैं किसी महापंडित वैष्णव को उन्हीं के नाम से अभिहित करूँगा।'

मृत यामुनाचार्य की तीसरी उंगली भी सीधी हो गई।

रामानुज की इस अलौकिक लीला को देखकर वहाँ उपस्थित जन समूह चमत्कृत था। वे शीघ्र ही सारे अंचल में प्रसिद्ध हो गए। लेकिन रामानुज शीघ्र ही कांचीपुरम लौट आए। उनके अंदर दीक्षाग्रहण की तीव्र आकांक्षा हिलोरें लेने लगी। रामानुज जब भी कांचिपूर्ण से दीक्षा-देने की याचना करते उनका उत्तर

होता—'वत्स, मेरे समान शूद्राधम को पाप में लिप्त नहीं करो। तुम्हारे समान पुण्यशील ब्राह्मण-संतान का गुरु होना तो दूर की बात है—किसी के भी गुरु होने की योग्यता मुझ में नहीं है।'

रामानुज ने इसके लिए एक युक्ति सोची। उन्होंने कांचिपूर्ण को अपने घर मध्याह्न भोजन को आमंत्रित किया। अतिथि-सत्कार के किए विस्तृत आयोजन किया। अनेक तरह के स्वादिष्ट भोजन तैयार किए गए। इसी बीच कांचिपूर्ण ने एक लीला की। वे दूसरे मार्ग से रामानुज के घर पहुँच गये और उनकी पत्नी जामाम्वा से भोजन देने के लिए कहा। जामाम्वा ने व्यग्र होकर उत्तर दिया—'प्रभो, वह तो आप को ही बुलाने के लिए गए हैं। आपको आश्रम में न पाकर वे तुरन्त वापस लौट आएंगे। थोड़ी देर में ही भोजन परोस कर मैं ला रही हूँ।'

काँचिपूर्ण ने बहाना बनाया कि इसी समय उन्हें प्रभु वरदराज की सेवा में उपस्थित होना होगा। अतएव भोजन तुरंत आवश्यक है।

रामानुज की पत्नी ने शीघ्र ही भोजन परोस दिया। कांचिपूर्ण ने भोजन ग्रहण किया उच्छिष्ट आदि को दूर फेंक दिया। बर्तन धो-माज कर रख दिया। भोजन स्थल लीपा। यह कार्य सम्पन्न कर जैसे ही खड़े हुए रामानुज श्रांत-क्लांत अवस्था में उपस्थित हो गए। कांचिपूर्ण को देखकर वे भौंचक रह गए। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि सर्वज्ञ महापुरुष ने उन्हें अपने प्रसाद से वंचित रखने के लिए ही यह लीला रची है। रामानुज को अपना जूठा प्रसाद देने के लिए दास्य-भावयुक्त कांचिपूर्ण तैयार नहीं हैं।

कांचिपूर्ण के प्रति रामानुज की अनुरक्ति दिनोंदिन बढ़ने लगी। लेकिन कांचिपूर्ण यह कह कर टाल देते, 'वत्स तुम हो ब्राह्मण, मैं हूँ शूद्र। तुम तो जानते ही हो कि ब्राह्मण को मंत्रदान का अधिकार शूद्र को नहीं है। श्रीविष्णु ही तुम्हारे निकट तुम्हारे निर्धारित गुरु को नियत समय पर प्रेरित करेंगे।'

प्रभु वरदराज कांचिपूर्ण के श्रीमुख से ही अपनी इच्छा व्यक्त करते थे। रामानुज कांचिपूर्ण से निवेदन करते रहे कि इस सम्बंध में वे श्री वरदराज का आदेश प्राप्त करें। कांचिपूर्ण ने ऐसा ही किया और एक दिन उन्हें अभिलषित वाणी मिल गई। रात्रि में कांचिपूर्ण ध्यानमग्न थे। इस समय श्री वरदराज उनके सम्मुख आर्विभूत हुए। उनकी वाणी का आशय निम्नलिखित था—

'तुम शीघ्र रामानुज को मेरे विशेष तत्वों का उपदेश दो। मैं ही जगत् का कारण हूँ। प्रकृति-कारण और परब्रह्म हूँ। जीव और ईश्वर का भेद स्वतः सिद्ध है। मोक्षार्थियों की मुक्ति का एकमात्र उपाय है मेरे पाद-पद्मों पर आत्मसमर्पण; अंतिम समय में मेरा स्मरण करने में असमर्थ होने पर भी उनका मोक्ष अवश्यंभावी है; देह-त्याग होते ही मेरे भक्तगण परमपद को प्राप्त होते हैं। हे रामानुज, तुम सर्वमाण्यान्वित महात्मा महापूर्ण का आश्रय ग्रहण करो।'

इन प्रत्यादेशों को सुनकर रामानुज आत्म-विभोर हो गए। दीक्षा ग्रहण के लिए उनकी व्याकुलता और भी बढ़ गई। परम आश्रयदाता दीक्षागुरु का नाम भी वह परमप्रभु की कृपा से जानने में समर्थ हुए। आनंद-अधीर रामानुज उस दिन कांचिपूर्ण के चरणों पर दण्डवत् प्रणाम कर बैठे। उसके बाद यामुनाचार्य के शिष्य महात्मा महापूर्ण की खोज में वह श्रीरंगम् की ओर उन्मत्त हो दौड़ पड़े।

विधि की विडम्बना था कि इधर रामानुज महात्मा महापूर्ण की खोज में श्रीरंगम् जा रहे थे उधर मठ के नए मठाधीश श्री तिरुवरांग के आदेशानुसार रामानुज को लेने के लिए महात्मा महापूर्ण सपत्नीक काँची जा रहे थे। राह में था मादुरांतक का श्री विष्णु मंदिर। इसके सामने स्थित सरोवर में स्नान करने के लिए रामानुज उसके तट पर पहुंचे तो वहाँ महापूर्ण को सपत्नीक देखकर हर्षातिरेक में झूम उठे।

सरोवर में स्नान करने के बाद रामानुज ने महापूर्ण से वैष्णव मंत्र की दीक्षा ग्रहण की। यज्ञ, अंकन ऊर्ध्वपुण्ड्र और दास्य नाम के द्वारा ये संस्कृत किए गए। रामानुज के अनुरोध पर महापूर्ण ने उनकी पत्नी जामाम्बा को भी दीक्षा प्रदान की। रामानुज ने अपने घर के एक हिस्से में महापूर्ण के रहने की व्यवस्था की और उनकी सेवा करने लगे। महापूर्ण के निकट नियमित रूप से भक्ति-शास्त्र का अध्ययन करने के कारण वैष्णवशास्त्र पर रामानुज का पूर्ण अधिकार हो गया।

भक्तिशास्त्र, द्रविड़ आग्नाय या तमिल वेद में चार हजार भक्ति रसात्मक श्लोक हैं जो तिरुवाई मुड़ि के नाम से इस अंचल में प्रसिद्ध हैं। रामानुज ने छः महीने में ही इन पर अधिकार कर लिया। गुरु-दक्षिणा चुकाने की गरज से रामानुज एक दिन प्रातःकाल फल, फूल, पूजा की सामग्री और नवीन वस्त्रों को जुटाने के लिए बाजार चले गए कि इसी बीच उनके घर में एक विचित्र घटना घट गई।

शास्त्र अध्ययन और गुरुसेवा में रामानुज इतने तल्लीन हो गए थे कि पत्नी से उनकी दूरी काफी बढ़ गई थी। इस कारण वह अप्रसन्न रहने लगी थीं। मन की भड़ाँस निकालने का एक मौका उनके हाथ लग गया।

हुआ यह कि वह घड़ा लेकर कुएँ पर पानी भरने गईं। इसी समय गुरु की पत्नी भी कुएँ पर पहुँच गईं। दोनों ने एक समय कुएँ में घड़े डाल दिए। जब वे घड़े खींच रही थीं तभी महापूर्ण की पत्नी के घड़े का जल छलककर जामाम्बा के घड़े पर पड़ गया। वह क्रोध से उबल पड़ीं। चीखीं, 'आँखें फूट गई हैं क्या? मेरी कलश का सारा जल खराब कर दिया। गुरुपत्नी हो तो क्या माथे पर चढ़कर बैठोगी? तुम्हारा कुल हमारे कुल से कितना हीन है। छोटे कुल वालों की छूत से अपवित्र जल का भला मैं क्या उपयोग करूँगी?' कह कर वहीं कुएं पर बैठकर

रोने लगीं। बीच-बीच में कहती जातीं—'यह सब मेरे भाग्य का दोष है, नहीं तो ऐसे मूर्ख पुरुष के हाथ में पड़कर मैं इतनी दुर्दशा क्यों सहती?'

महापूर्ण की धर्मपत्नी शांत स्वभाव की धार्मिक महिला थीं। वह कुछ बोले बिना लौट आईं। उन्होंने सारी बातें पति से बताईं। महापूर्ण ने इसे प्रभु की इच्छा माना। पत्नी से बोले, 'हम लोगों ने बहुत दिनों से श्रीरंगनाथ के चरण कमलों की पूजा नहीं की है। इसी बहाने उनका बुलावा आया है। हम लोगों को अविलम्ब लौट चलना चाहिए।'

दोनों लोगों ने सामान बांधा और कांची से चल पड़े। महापूर्ण सोच रहे थे कि रामानुज आ जाएंगे तो शायद रुकना पड़े अतएव उनके आने से पहले ही वापस हो लेना चाहिए।

रामानुज घर लौटे तो पत्नी ने उन्हें घटना को तोड़मरोड़ कर बताया किंतु रामानुज जानते थे कि, गुरु और गुरुपत्नी का घर में जामाम्बा को नहीं सुहाता था। इसलिए उसने जानबूझ कर ऐसी परिस्थिति पैदा की जिससे वे लोग उनकी अनुपस्थिति में चले गए। रामानुज ने पत्नी की कड़ी भर्त्सना की और जाकर आत्मशांति के लिए वरदराज के मंदिर में बैठ गए।

पत्नी की बेरुखी के कारण रामानुज को इस प्रकार की ग्लानि प्राय: भुगतनी पड़ती थी। एक बार रामानुज के घर एक गरीब ब्राह्मण उपस्थित हुए। उन्होंने जामाम्बा से भोजन की याचना की किन्तु बदले में मिली भर्त्सना। भूखे ब्राह्मण निराश होकर लौट गए। मार्ग में वे रामानुज से मिले। ब्राह्मण की दशा देख कर रामानुज को दया आई। उन्होंने ब्राह्मण को घर भोजन के लिए आमंत्रित किया। ब्राह्मण ने जो कुछ कहा उससे पता चला कि वे घर से फटकार खाकर आ रहे हैं। बार-बार अनुरोध करने पर भी ब्राह्मण रामानुज के घर आने के लिए तैयार नहीं हुए। रामानुज बहुत दुखी हुए। भूखे ब्राह्मण को घर से भगा देने से बढ़ कर पाप क्या हो सकता था। रामानुज इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि धर्मविमुख पत्नी के साथ रहना उनके लिए संभव नहीं है। उन्होंने संसार त्याग की प्रतिज्ञा कर ली।

रामानुज ने एक बहाने से पत्नी को मायके भेज दिया। स्वयं श्री वरदराज के मंदिर में उपस्थित हुए और सद्गुरु श्रीवरदराज-विग्रह से संन्यास-दीक्षा पूरी की। परम भागवत कांचिपूर्ण भी दीक्षा के समय वहां भावानिष्ट बैठे थे। अनुष्ठान के अंत में रामानुज को उन्होंने 'यतिराज' कह कर सम्बोधित किया। दिव्य कांति, तेजोमय शरीर वाले इस नवीन संन्यासी को देखने के लिए उस दिन मंदिर के प्रांगण में भारी भीड़ उमड़ पड़ी थी। इसके पश्चात वे कांची के वरदराज मठ के महंत बना दिए गए।

सर्वप्रथम रामानुज के भांजे श्री दाशरथि (आंजन) ने दीक्षा ग्रहण की। इस नए शिष्य में हरिभक्ति और वेदान्त-ज्ञान का अद्‌भुत मिश्रण था। प्रतिष्ठित जमींदार, दानवीर और प्रकांड विद्वान के रूप में पहले से ही प्रतिष्ठित रामानुज का आचार्य के रूप में अभ्युदय हुआ।

एक दिन यादव प्रकाश की माताजी कांची मठ गईं। वह रामानुज के देदीप्यमान मुखमण्डल से बेहद प्रभावित हुईं। घर आने पर उन्होंने पुत्र यादव प्रकाश से कहा कि वह देवतुल्य रामानुज का शिष्यत्व ग्रहण करें। इस विचित्र प्रस्ताव से यादव प्रकाश उद्विग्न हो गए। जो व्यक्ति मेरा शिष्य रहा हो उसका शिष्यत्व मैं गहण करूँ? उनके मन में रामानुज के प्रति अतीत में किए गए कार्यों की ज्वाला धधक उठी। उन्होंने इस अशांति के शमन के लिए महापुरुष कांचिपूर्ण से राय ली। कांचिपूर्ण ने प्रभु वरदराज से इस सम्बन्ध में पूछ कर यादव प्रकाश को दूसरे दिन बताया—'प्रभु वरदराज ने कहा है कि यादव प्रकाश रामानुज का ही शिष्यत्व ग्रहण करे, इसी में उसका कल्याण निहित है।'

इसके बाद यादव प्रकाश एक दिन मठ में गए। रामानुज ने ससम्मान अभ्यर्थना प्रकट करते हुए उन्हें आसन प्रदान किया। यादव प्रकाश ने रामानुज के रूपांतर की परीक्षा लेने के उद्देश्य से पूछा, 'वत्स! देखता हूँ कि संन्यास ग्रहण करने के बाद भी तुमने माथे पर ऊर्ध्वपुण्ड और दोनों बाहुओं में पद्‌म तथा चक्र धारण कर रखा है। ज्ञात होता है कि सगुण ब्रह्म की आराधना के प्रति अभी भी तुम एकांत भाव से अनुरक्त हो, किन्तु इसका सैद्धांतिक आधार क्या है? अपने मत का सार मुझे बताओ तो पता चले।'

रामानुज ने उत्तर दिया, 'प्रभु! ब्रह्म को मैं सगुण या सविशेष कहकर अभिहित करता हूँ क्योंकि जिसमें कोई विशेष नहीं, जो अद्वितीय तथा एकरस हो, उससे सब की उत्पत्ति कैसे हो सकती है? नामरूपमय वैचित्र्य की उपस्थिति कैसे होती है? मूलतः जो द्वैतहीन सत्ता है वह द्वैत की जनक कैसे हो सकती है? द्वैतहीन सत्ता से द्वैत का उत्पादन होना स्वीकार कर लेने पर यह मान लेना होगा कि कारण के बिना ही कार्य की उत्पत्ति होती है! क्या इससे तर्क-प्रणाली दूषित नहीं हो जाती? इसलिए मानना होगा कि इस जगत-प्रपंच के मूल में एक अदृश्य और अतिसूक्ष्म प्रपंचमय ब्रह्म रूप या कारण तत्व है। सृष्टि के मूल में यह चिद्-अचिद् विशिष्ट ब्रह्म या कारण ब्रह्म अवस्थित है। निर्गुण या निर्विशेष ब्रह्म को कारण कहना असंगत है। उस दिन श्री वरदराज ने कृपा करके अपने नित्य सेवक कांचिपूर्ण के मुख से मुझे यही तत्व बताया।' फिर रामानुज ने विशिष्टाद्वैत की व्याख्या की, 'मुक्ति से जीव पूर्णतः ब्रह्म के साथ एकाकार नहीं हो जाता है, जीव भगवान का नित्यदास है, उसके पक्ष में भगवान के प्रति नित्यदास ही मुक्ति है।

इस दास्य में मात्र निरवच्छिभ आनंद है। इसी में परममुक्ति है, क्योंकि जीव स्वरूपत: ही भगवान का दास है। केवल इस भगवत् दास्य रूप अपने मूल स्वरूप से विच्युत होना ही दुख है।'

आचार्य ने रामानुज से अपने कथन के समर्थन में शास्त्रीय प्रमाण देने के लिए कहा तो रामानुज ने अपने शिष्य कुरेश को निर्देशित किया। फिर तो कुरेश के कण्ठ से शास्त्रीय प्रमाण की अजस्रधारा बह निकली। उनके सम्मुख ही तेजपुञ्जदेह रामानुज भावानिष्ठ हो बैठे थे। यादव प्रकाश और ज्यादा देर स्थिर नहीं रह सके। उनका मिथ्याभिमान वर्फ की तरह गल गया। वे रोते-रोते भूतल पर गिर पड़े। कहने लगे, 'रामानुज तुम सत्य ही राघव के अनुज हो। मैं अब तक तुम्हारी महिमा नहीं समझ सका था। मेरे सभी अपराधों का मार्जन कर आज तुम मुझे आश्रयदान दो।' आचार्य की यह दशा देख कर रामानुज चकित रह गए। वे प्रेमभाव से बार-बार आचार्य का आलिंगन करने लगे। उसी दिन यादव प्रकाश ने रामानुज के निकट संन्यास की दीक्षा ग्रहण की। उनका नाम गोविन्ददास रखा गया। वह परम भक्तिनिष्ठ वैष्णव के रूप में प्रसिद्ध हुए।

गोविन्ददास ने रामानुज की सलाह पर 'यति धर्म समुच्चय' नामक ग्रंथ की रचना की। जब यह ग्रंथ रचा गया तब उनकी अवस्था ८० वर्ष की थी।

रामानुज को श्रीरंगम् मठ लाने के लिए भक्त वररंग को कांची भेजा गया। उनसे कहा गया कि वे प्रभु वरदराज की आज्ञा रामानुज को दिलाएं तभी वे कांची छोड़ेंगे। वररंग कांची स्थित वरदराज के मंदिर में गए। उनकी प्रार्थना श्री वरदराज ने स्वीकार की और रामानुज को श्रीरंगम् मठ जाने का आदेश दिया। रामानुज अपने शिष्यों के साथ श्रीरंगम् मठ आ गए और मठ-प्रधान का पद ग्रहण किया। कहते हैं, इसी समय शेष नागशाई श्रीरंगनाथ ने रामानुज पर प्रसन्न हो उन्हें दो विशेष विभूतियों का अधिकारी बनाया। एक तो मनुष्य के सन्ताप निवारण की क्षमता प्रदान की और दूसरी भक्त-प्रतिपालन के उपयुक्त दैवी शक्ति दी। इसके साथ ही रामानुज ने महापूर्ण की असामान्य भक्ति के आलोक में न्यास-तत्व, गीतार्थ संग्रह, सिद्धिमय, व्यास-सूत्र, पंचरात्रागम जैसे शास्त्रों का अध्ययन किया। उनकी अलौकिक प्रतिभा को देखकर महापूर्ण ने अपने पुत्र से रामानुज का शिष्यत्व ग्रहण कराया।

आगे की शिक्षा के लिए रामानुज अपने समय के प्रकाण्ड विद्वान गोष्ठिपूर्ण के पास गए। लेकिन गोष्ठिपूर्ण रामानुज को शिक्षा देने के लिए तैयार नहीं हुए। रामानुज उनके पास अठारह बार गए लेकिन निराशा ही हाथ लगी। अंतत: श्रीरंगम् लौट आए और रोने लगे। गोष्ठिपूर्ण के एक शिष्य श्रीरंगम् में थे। उन्होंने रामानुज की यह दशा तिरुकोष्ठिर लौट कर गोष्ठिपूर्ण को बताई। गोष्ठिपूर्ण ने कहा,

'वत्स रामानुज को मैं उनका प्रार्थित मन्त्रार्थ प्रदान करूँगा। किन्तु वह केवल दण्ड और कमण्डल लेकर आये। वह जब भी मेरे यहाँ आता है, साथ में दो चेलों को लेकर आता है।'

यह संवाद मिलते ही रामानुज की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। वह अपने दो शिष्यों दाशरथि और श्रीवत्सोक के साथ तिरुकोष्ठिर गए। गोष्ठिपूर्ण ने गंभीर भाव से कहा, 'मैने तुम्हें केवल दण्ड और कमण्डल के साथ आने को कहा था, फिर तुम दो शिष्यों के साथ क्यों आए?' रामानुज ने सहजता से उत्तर दिया, 'प्रभु ये ही मेरे दण्ड और कमण्डल हैं।' रामानुज के इस शिष्य-प्रेम से गोष्ठिपूर्ण प्रसन्न हुए और उन्हें मंत्र का गूढ़ार्थ प्रदान किया। इस मंत्र की प्राप्ति के साथ ही रामानुज का हृदय उद्‌भासित हो उठा, मानो उन्हें नया जीवन और नया रूप प्राप्त हुआ हो। अलौकिक आनन्द से रामानुज का शरीर कांप रहा था। महात्मा गोष्ठिपूर्ण के चरणों में साष्टांग प्रणाम निवेदित कर रामानुज वहाँ से विदा हुए।

रास्ते में जो मिला उसी से अनुसरण का आवाहन करते। जब वह तिरुकोष्ठिर के श्री विष्णु-मंदिर पहुंचे तो उनके पीछे काफी भीड़ जुट गई थी। भीड़ को संकेत करते हुए उन्होंने कहा, 'तुम सभी श्री विष्णु मंदिर के सम्मुख खड़े हो जाओ। जो अमूल्य रत्न मैंने पाया है, आज उसे तुम सब में वितरित कर दूँगा।' रामानुज ने अपने मुख से निकले मंत्र को तीन बार दुहराने का आग्रह किया और मंत्रोच्चारण करने लगे—'ॐ नमो नारायणाय।' जनता ने दुहराया। यह सिलसिला तीन बार चला। जनता के अंदर का कलुष मिट गया। लोग आत्मानन्द में लीन हो गए।

गोष्ठिपूर्ण के पास जब यह खबर पहुँची तो वे क्रोध से तमतमा उठे। रामानुज जब उनके दर्शन को गए तो वे गुस्से में बोले, 'नराधम, मैं तुम्हारा मुख नहीं देखना चाहता हूँ। दूर हो जाओ यहां से। मैंने तुम्हें पवित्र और निगूढ़ महामंत्र दिया था और तुमने इस तरह उसका व्यवहार किया? तुम्हारे लिए अनन्त नरक ही उपयुक्त है।' रामानुज अविचलित रहे। उन्होंने शांत भाव से कहा, 'प्रभु, आपके ही श्रीमुख से सुना है कि यह महामंत्र जो लाभ करेगा, उसे परमगति प्राप्त होगी। यदि मेरे समान नगण्य मनुष्य के अनन्त नरक में जाने से सहस्र-सहस्र लोगों को मुक्ति लाभ हो जाय, तो वह अनन्त नरक ही मुझे मिले। बैकुण्ठवास की अपेक्षा यही मेरे लिए अधिक काम्य है।' रामानुज के इस उत्तर से गोष्ठिपूर्ण अभिभूत हो गए। प्रेम से भर कर उन्होंने रामानुज को गले लगा लिया। बोले, 'रामानुज तुम धन्य हो और धन्य है तुम्हारा मानव-प्रेम।' इसके बाद गोष्ठिपूर्ण ने अपने पुत्र को रामानुज का शिष्यत्व ग्रहण कराया। उन्होंने अपने शिष्यों को निर्देश दिया कि के लोग अब से सम्पूर्ण विष्णु-उपासना के सिद्धान्त को 'रामानुज सिद्धान्त' के नाम से अभिहित किया करें।

रामानुज शिष्यों के साथ श्रीरंगम् लौट गए। इस समय से जनसाधारण उन्हें देवांश-स्वरूप मानने लगा। बहुत से लोगों की दृष्टि में वे श्री रामचन्द्र के अनुज लक्ष्मण के द्वितीय अवतार के रूप में परिगणित होने लगे।

यामुनाचार्य के तीन अन्तरंग शिष्य कांचीपूर्ण, महापूर्ण और गोष्ठिपूर्ण की कृपा और साधन निर्देश रामानुज अब तक पा चुके थे। केवल मालाधार और बररंग बाकी रह गए थे। इन दोनों महापुरुषों के चरणों में बैठकर रामानुज वैष्णव तत्व की शिक्षा समाप्त की। इसके बाद वे दक्षिणात्य के भक्त और जन समाज में अभिनन्दित होने लगे।

रामानुज के प्रभाव और शक्ति को देखकर श्रीरंगम् मठ के प्रधान पुजारी शंकित हो उठे। अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए उन्होंने रामानुज के प्राणान्त का निश्चय किया। इस उद्देश्य के लिए एक दिन रामानुज को अपने घर भोजन का आमंत्रण दिया। पत्नी को विषमिश्रित भोजन परोसने का निर्देश दे दिया था। लेकिन जब वे भोजन में विषाक्त पदार्थ मिलाने लगीं तब उनके मन में विचित्र भाव का उदय हुआ। रामानुज की ओर देखकर वह रोने लगीं और कहा, 'वत्स, यदि प्राण बचाना चाहते हो तो और कहीं जाकर भोजन करो। यहां के भोजन में विष मिलाया गया है, इसे तुम्हें ग्रहण नहीं करने दूँगी।' यह सुनते ही रामानुज के विस्मय की सीमा न रही। वह भोजन ग्रहण किए बिना ही घर से बाहर चले गए।

इसमें सफलता न मिलने पर प्रधान पुजारी और खींझ गया और रामानुज की हत्या स्वयं करने का संकल्प किया। रामानुज एक दिन शाम को श्रीरंगनाथ के दर्शन के लिए आए। प्रधान पुजारी ने जल्दी-जल्दी श्री विग्रह के स्नानाभिषेक जल को पीने के लिए दिया। इस जल में तेज विष मिला हुआ था। परम श्रद्धा से इसे पान करते ही रामानुज को आनन्द की अनुभूति हुई। वे रंगनाथ से कहने लगे—'कृपामय प्रभु, दास के प्रति तुम्हारी यह कैसी अहेतुक कृपा है। आज तो मैंने तुम्हारे स्नान जल में स्वर्णिम अमृत रस का ही पान किया है। प्रभु तुम धन्य हो, धन्य है तुम्हारी कृपा।'

पुजारी को रामानुज के मृतदेह की प्रतीक्षा थी लेकिन यह क्या! यहाँ तो श्रीरंगम् मठ के सहस्र-सहस्र भक्त रामानुज के साथ भजन-कीर्तन में मगन हैं। रामानुज दिव्यभाव से उनके बीच बैठे हैं। एक महासाधक की तरह भाव-विभोर। पुजारी आत्मग्लानि से भर उठा। वह रामानुज के चरणों पर गिर कर अपने पापकर्म के लिए क्षमा-याचना करने लगा। रामानुज ने पुजारी के सिर पर हाथ रख कर कहा, 'भाई, श्री रंगनाथ स्वामी ने तुम्हारे समस्त अपराध क्षमा कर दिए। इस समय से मानव-प्रेम में लीन हो तुम जीव-सेवा में लग जाओ।' प्रधान पुजारी इसके बाद एक परम वैष्णव में रूपांतरित हो गए।

दक्षिणात्यवासी पंडित यज्ञमूर्ति समस्त उत्तर भारत में दिग्विजय करते घूम रहे थे। रामानुज के बारे में जानकारी मिलने पर ये श्रीरंगम् पधारे। उनके साथ उनके तमाम शिष्य और अनुचर थे और था शकट पर लदा हुआ शास्त्र-ग्रंथ। रामानुज और यज्ञमूर्ति के बीच शास्त्रार्थ शुरु हुआ जो सत्रह दिनों तक चला। रामानुज स्वयं को पराजित होते देख श्री देवराज विग्रह के सम्मुख निवेदन किया, 'प्रभु अपने भक्ति-धर्म की अनुपम महिमा तुम जगत में कब प्रकाशित करोगे? मायावादी तार्किकों का यह प्रचार और कितने दिन चलता रहेगा?' रात्रि में श्री ठाकुर ने प्रत्यादेश दिया, 'वत्स यतिराज, तुम इतने उद्विग्न न बनो। जान लो, विष्णुभक्ति का प्रकृति महात्म्य शीघ्र तुम्हारे द्वारा ही प्रचारित होगा।' प्रातःकाल उठने पर रामानुज एक असीम आत्मविश्वास से भरे थे। रामानुज के भीतर एक अलौकिक शक्ति को देखकर यज्ञमूर्ति को लगा कि इस व्यक्ति ने परमतत्व प्राप्त कर लिया है। यज्ञमूर्ति रामानुज के चरणों पर झुक गए। वे एक विष्णु पंथी साधक हो गए। श्री देवराज विग्रह की कृपा से उनकी मोह से मुक्ति हुई और वे देवराज मुनि के नाम से प्रसिद्ध हुए। श्री रामानुज के निर्देश पर उन्होंने तमिल भाषा में 'ज्ञानसार' और 'प्रमेयसार' नामक दो अमूल्य ग्रंथों की रचना की।

रामानुज ने श्रीभाष्य का प्रणयन का संकल्प किया। इसके लिए बोधायनवृत्ति की सहायता आवश्यक थी। किंतु यह ग्रंथ दुष्प्राप्य था। रामानुज को खबर मिली कि कश्मीर के शारदापीठ में उसकी एक प्रति संरक्षित है। रामानुज प्रधान शिष्य कुरेश को लेकर कश्मीर पहुँचे। लेकिन शारदापीठ के पण्डितों ने बहाना बनाया कि इस ग्रंथ को कीड़े खा गए। सुदूर श्रीरंगम् से चल कर कश्मीर तक आए रामानुज को यह सुनकर बहुत ही मनस्ताप हुआ।

लेकिन इस घटना को लेकर उस रात एक अलौकिक काण्ड हो गया। सहसा उनका कक्ष प्रकाशमय हो गया। स्वयं देवी शारदा प्रकट हुईं। उनके हाथ में आचार्य बोधायन के ग्रंथ की एक प्रति थी। ग्रंथ रामानुज को सौंपते हुए माँ शारदा ने कहा, 'वत्स, यह ग्रंथ तुम्हें यहाँ के लोग देना नहीं चाहते। अविलम्ब स्थान त्याग कर दो अन्यथा यह तुम्हारे अधिकार में नहीं रह पाएगा।' रामानुज भोर में ही श्रीरंगम् के लिए रवाना हो गए।

कई दिन बीत चुके। हठात् शारदापीठ के पण्डितों को ज्ञात हुआ कि ग्रंथागार से वह ग्रंथ गायब हो गया है। उन लोगों ने रामानुज पर संदेह किया और घुड़सवार दौड़ा दिए। घुड़सवारों ने रामानुज को रास्ते में पकड़ा और ग्रंथ छीन ले गए। रामानुज बहुत चिन्तित हुए। लेकिन उनके शिष्य कुरेश ने पूरा ग्रंथ कंठस्थ कर रखा था। उन्होंने अपनी विलक्षण स्मरणशक्ति से यह ग्रंथ दुबारा लिख डाला। श्रीरंगम लौटकर रामानुज ने अपने महाभाष्य की रचना पूर्ण की। इसके

बाद आचार्य ने जिन महत्वपूर्ण ग्रंथों की रचना की वे हैं—वेदान्त-दीपन, वेदान्तसार, वेदांत संग्रह और गीताभाष्यम्। आचार्य रामानुज के विचार इस समय से विशिष्ट-द्वैतवाद के रूप में भारत में प्रचलित हो गया।

चोल राज्य के अधीश्वर कृमि कंठ वैष्णवों के घोर विरोधी थे। उन्होंने अपने राज्य में बलपूर्वक शैव मत का प्रचार करना चाहा। वे सोचने लगे कि जब तक वैष्णवाचार्यों को पराभूत नहीं किया जाएगा तब तक शैवमत की प्रधानता स्थापित नहीं होगी। एक बार चोल राज ने रामानुज को बुलवाया। श्री रंगम् मठ के भक्तगणों को समझते देर नहीं लगी कि आचार्य की हत्या कराना ही चोलराज का उद्देश्य है। भक्त-प्रधान कुरेश ने रामानुज से याचना की, 'गुरुदेव चोल राजा के यहाँ आपके रूप में मैं उपस्थित हो जाऊँगा। आप शिष्यों के साथ वन में चले जाँय।' रामानुज ने कुरेश की बात मान ली। कुरेश चोलराज के दरबार में रामानुज के रूप में उपस्थित हुए। चोलराज ने कहा, 'यह दुर्वृत्त मृत्युदण्ड का भागी है लेकिन एक बार इसने मेरी बहन को दुरारोग व्याधि से बचाया था इसलिए इसे चिर-अंधत्व का दण्ड देता हूँ। इसकी दोनों आंखें शलाका से नष्ट कर दी जाँय।' कुरेश इस आदेश से प्रसन्न थे क्योंकि अंधे होकर वे माया-मोह से सदा के लिए दूर हो रहे थे। उनकी आंखें फोड़ दी गईं। वे नेत्रहीन अवस्था में श्रीरंगम् मठ लौट आए। इसके कुछ दिनों बाद ही चोलराज गंभीर रोग-यंत्रणा से मर गए।

किन्तु उत्तर जीवन में कुरेश की आंखें अलौकिक ढंग से ठीक हो गईं। आचार्य रामानुज यादवाद्रि नामक स्थान में अवस्थान कर रहे थे। कुरेश गुरुदेव की चरण वंदना करने वहाँ गए। रामानुज ने उन्हें गले से लगाया। इसके बाद बोले 'वत्स, तुम श्रीवरदराज के निकट अपने दोनों नेत्रों की भिक्षा मांगो, शीघ्र ही तुम्हारी दृष्टि लौट आएगी। कुरेश ने कांची लौट कर श्री वरदराज से नेत्रज्योति की प्रार्थना की और वह लौट आई।

रामानुज यादवाद्रि (वर्तमान में मेलकोट) में भ्रमण कर रहे थे। उन्हें वल्मीकस्तूप में से यादवाद्रिपति का पुरातन शिलामय विग्रह मिल गया। शास्त्रीय विधि से इसका संस्कार और अभिषेक आदि सम्पन्न हुआ फिर पूजा होने लगी। इस श्रीविग्रह ने एक दिन स्वप्न में कहा, 'वत्स, रामानुज, तुमने मुझे प्रतिष्ठित कर अच्छा किया किन्तु मेरा एक प्रतीक विग्रह है जिसका नाम है सम्पत्कुमार। वह स्थानाच्युत हो दूर चला गया है। इस प्रतीक के द्वारा ही मैं मन्दिर के बाहर शुभ-यात्रा किया करता हूँ। यह विग्रह दिल्ली के मुसलमान सम्राट के अंतःपुर में है, इसे तुम ले आओ।'

रामानुज कई अंतरंग शिष्यों के साथ दिल्ली आए। रामानुज के दर्शन से सम्राट अति प्रसन्न हुए और उन्हें ज्ञात हुआ कि आचार्य उनके पास लुठित

शिलाविग्रह माँगने आए हैं। उन्होंने उसी समय उसे प्रत्यार्पण करने का आदेश दिया। किन्तु श्री सम्पत कुमार का विग्रह राजकुमारी लछिमा का अत्यन्त प्रिय था। लेकिन उस समय वह दिल्ली से बाहर थीं। अतएव उनकी अनुपस्थिति में ही सम्राट ने यह विग्रह रामानुज को अर्पित कर दिया।

लौटने पर लछिमा को जब पता चला कि उक्त विग्रह रामानुज ले गए तो वह अश्रुपूरित नेत्रों से उसे वापस लाने का आग्रह पिता से करने लगीं। पिता ने उसे लाने के लिए एक सैनिक टुकड़ी रवाना कर दी। इसके साथ शाहजादी लछिमा और उनके प्रेमी कुबेर भी थे। इसकी भनक जब रामानुज को लग गई तब उन्होंने जल्दी से इस विग्रह को लाकर प्रतिष्ठित कर दिया। इसके बाद लछिमा भी आ गईं। विष्णु-विग्रह के प्रति उनकी भक्ति को देखकर रामानुज मुग्ध हो गए। उन्हें मंदिर में प्रवेश की इजाजत दे दी गई। कहते हैं भक्तिमती लछिमा की देह श्री सम्पत्कुमार के विग्रह में लीन हो गई। उसके प्रेम में कुबेर स्वप्नादेश पाकर नीलांचल चले गए और वैष्णव बन गए।

एक बार एक मुमुक्ष ब्राह्मण ने रामानुज से कहा, 'प्रभु, मैं आपका दास होकर एकांत भाव से चरण सेवा करना चाहता हूँ। मात्र इसी के फल से मेरा जीवन शुद्ध और पवित्र हो जाएगा, मुझ पर दया करें।'

रामानुज ने मुस्कराते हुए कहा, 'विप्रवर दास्य और सेवा द्वारा ही मनुष्य शुद्ध-बुद्ध होने में सक्षम होता है। किन्तु मेरे निकट इस दास्य साधना में आप को जो करना पड़ेगा, उनके लिए क्या आप तैयार होंगे? ब्राह्मण ने व्यग्र भाव से कहा, 'प्रभु, आप आदेश प्रदान करें, अविलंब मैं उसका पालन करने को प्रस्तुत हूँ।'

आचार्य ने कहा, 'विप्रवर, मैने आज से संकल्प किया है कि प्रतिदिन विष्णु आराधना से पहले भुवन-पावन ब्राह्मण का पादोदक पान करूँगा। आपको इसी मठ में अवस्थान कर मुझे रोज पादोदक दान करना होगा।' ब्राह्मण इस कार्य के व्रती हो गए। वह प्रतिदिन अपना चरणोदक रामानुज को दान करने लगे। एक दिन रामानुज एक विशेष भुव्ययोग से कावेरी तट गए। स्नान-तर्पण और पूजा-अर्चना में पूरा दिन निकल गया। देर रात्रि में मठ लौट कर रामानुज ने देखा कि उनका चरणोदक-दाता ब्राह्मण नित्य दिन निर्दिष्ट स्थान पर अविचल भाव से दण्डायमान हैं। ब्राह्मण भोर से ही अपने स्थान पर स्थिर थे। उस ब्राह्मण की सेवा पराकाष्ठा देख रामानुज के मुख से धन्य-धन्य निकल पड़ा। उन्होंने ब्राह्मण के पादोदक को स्वयं तो ग्रहण किया ही, शिष्यों को भी ग्रहण कराया। आचार्य अपने शिष्यों को भी साधन सत्ता में दास्य और सेवा का महात्म्य इस तरह हमेशा के लिए अंकित कर देते।

इसी तरह की लीलाएं करते हुए आचार्य रामानुज १३० वर्ष के हो गए। परम भागवत यामुनाचार्य की अभिलाषित कर्मसूची को उन्होंने इस बीच में पूरा कर दिया। इस असामान्य महापुरुष को केन्द्र बनाकर समस्त दक्षिणात्य उस काल में एक विराट विष्णुसेवा साधक गोष्ठी के रूप में परिणत हो गया। त्याग, तितिक्षा, शास्त्र-ज्ञान और वैष्णवीय दैन्य में उसकी तुलना विरल थी। देश के कोने-कोने में रामानुज-पंथियों का आदर्श और प्रभाव उनके जीवनकाल में ही फैलने लगा।

प्रिय शिष्य कुरेश इसी बीच शरीर त्याग कर परमपद में प्रतिष्ठित हो गए। रामानुज काफी वृद्ध हो गए थे। उनके अंतरंग शिष्यों ने प्रार्थना की—'प्रभु आप अपने जीते जी अपनी दिव्यमूर्ति की व्यवस्था कर दें।' आचार्य ने सहमति व्यक्त कर दी। एक निपुण भास्कर को बुलाया गया। आचार्य की एक प्रस्तरमूर्ति निर्मित की गई। आचार्य ने उसमें स्वयं शक्तिसंचार किया। गुरुदेव का प्रतिरूप उनके जीवनकाल में ही पाकर उनके अनुयायियों के आनन्द की सीमा नहीं रही। इस मूर्ति-प्रतिष्ठा के कुछ दिनों पश्चात् ही १०५९ शकाब्द (११३७ ई०) की शुक्ल दशमी मध्यान्ह काल में अध्यात्म-गमन का यह महाज्योतिर्मय नक्षत्र विलीन हो गया।

●

३

आचार्य रामानन्द

पंचगंगा घाट पर फूलों से आच्छादित वृक्षों से घिरा एक आश्रम। चारों ओर चारदीवारी से घिरा हुआ। बालक रामदत्त प्रतिदिन भोर में चारदीवारी लाँघ कर फूल चुनता है अपने गुरुदेव के लिए।

एक दिन रामदत्त फूल चुनते पकड़ा गया। उससे पूछा गया—'आश्रम से प्रतिदिन तुम फूल क्यों चुरा लेते हो?'

'अपने लिए नहीं देवता के लिए फूल चुनता हूँ। इसलिए यह चोरी तो नहीं हुई।'

रामदत्त को टोकने वाले सौम्य आकृति के महापुरुष ने उसे पास बुलाया। इस बीच सबेरा हो चुका था। रामदत्त निकट पहुँचे तो उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। अरे, यह तो प्रसिद्ध संत स्वामी राघवानन्द महाराज हैं। रामानन्द-संप्रदाय के अग्रणी आचार्य। जटाजूट-समन्वित विशालकाय आचार्य को सम्मुख पाकर रामदत्त सुध-बुध खो बैठा। आत्मविस्मृत होकर आचार्य के चरणों पर गिर पड़ा।

आचार्य ने रामदत्त को प्यार से उठाया। पूछा, 'डरो मत वत्स। बताओ कि तुम कहाँ रहते हो? किसी आचार्य ने तुम्हें अब तक आश्रय नहीं दिया है?'

रामदत्त ने अपने शिक्षा-गुरु का नाम बताया और स्मृति का कंठस्थ अंश पूरा सुना दिया।

आचार्य ने कहा, 'इससे तुम्हारा कल्याण नहीं होगा वत्स। अब तुम रात-दिन केवल हरिनाम का ही जप करना और उसी में मगन रहना।'

'हमारे आचार्य शास्त्र ज्ञान के बाद शायद जप और साधना की बात बताएँ।' रामदत्त ने कहा।

'अरे मूर्ख प्रदीप के जलने की सीमा तो तेल की मात्रा पर निर्भर करती है। कब तेल चुक जाय, इसका पता भी तो रहना चाहिए।' कहते-कहते राघवानन्द अचानक रुक गए। उन्हें महसूस हुआ कि वे गलत कह गए। यह तो मृत्यु की भविष्यवाणी है.......। फिर उन्होंने स्नेहार्द्र होकर कहा, 'वत्स, अब जाओ। पुष्प के अभाव में तुम्हारे आचार्य को देवपूजा में विलम्ब हो जाएगा।'

रामदत्त के दिमाग में आचार्य की वाणी-लगातार गूँज रही थी, 'प्रदीप का तेल तो चुकने जा रहा है?' हिम्मत बटोर कर उसने कहा, प्रभो, आप तो सर्वज्ञ

हैं। आपके श्रीमुख से जो बात निकल गई, वह कभी विफल नहीं हो सकती। मेरी आयु के सम्बंध में अपनी दिव्य दृष्टि से आपने जो देख लिया है, वह कृपा करके मुझे साफ-साफ बता दें।'

रामदत्त की आर्त्तता से आचार्य द्रवित हो उठे। वे बोले, 'वत्स, अभी तो तुम निर्भय होकर आश्रम लौट जाओ। मैं तुम्हें वचन देता हूँ कि तुम्हारे लिए भय का कोई कारण नहीं है। अपने आचार्य से मेरा संदेश कह देना कि वह किसी समय मुझसे आकर मिल लें।'

थोड़ी ही देर बाद रामदत्त के शिक्षागुरु आचार्य राघवानन्द के समक्ष उपस्थित हुए। उन्होंने कहा, 'रामदत्त की बात सुनकर मैं आपके समक्ष आया हूँ। ज्योतिष विद्या की जानकारी की वजह से मैं भी इस सम्बंध में जान गया था लेकिन इसकी काट के लिए मेरे पास कोई उपाय नहीं है। आप ही कुछ कर सकते हैं। सभी जानते हैं कि आपकी योग-विभूति असाधारण है। इच्छामात्र से आप नियति के लेख को पलट सकते हैं।'

आचार्य बोले, 'इसे एक महान् कर्म के प्रति संलग्न कर देने की ईश्वरीय आज्ञा भी मुझे मिल चुकी है। जन-कल्याण के लिए आवश्यक है कि इसे धरती से अभी विदा नहीं होने दिया जाय।'

आचार्य की बात से रामदत्त के शिक्षागुरु अत्यंत प्रसन्न हुए। उन्होंने रामदत्त को आचार्य को सौंप दिया। आचार्य ने उसे संन्यास की दीक्षा दे दी और उसका नया नाम रखा गया—रामानन्द।

ऐसी जनश्रुति है कि दीक्षा के कुछ ही दिनों बाद रामानन्द का निर्धारित मृत्यु-लग्न उपस्थित हुआ और आचार्य राघवानन्द ने अपनी असाधारण योगशक्ति से इसका निवारण कर दिया। उसके बाद रामानन्द ने दीर्घ आयु विपुल कर्मशक्ति प्राप्त की। वे एक सौ ग्यारह वर्ष तक जीवित रहे।

रामानन्द ने भक्ति आन्दोलन को उदार बनाया और मानवता बोध का नवीन आलोक प्रदान किया। मध्ययुग के अधिकांश साधकों और रहस्यवादी संतों पर उनका व्यापक प्रभाव पड़ा है। कबीर, गोस्वामी तुलसीदास, नानक, दादू, रैदास और बंगाल के गौड़ीय भक्तों पर रामानन्द की भक्तिधारा का अपूर्व प्रभाव पड़ा। कहा जा सकता है कि उत्तर भारत का भक्ति साहित्य रामानन्द जैसे आदि पुरुष से सर्वाधिक प्रभावित हुआ।

डा० रामकृष्ण भण्डारकर ने अपने ग्रंथ 'वैष्णविज्म, शैविज्म ऐण्ड अदर रेलिजन्स' में आचार्य रामानन्द का जन्म ख्रिस्ताब्द की तेरहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध (१२९९ ई०) में माना है। इस ग्रन्थ के अनुसार रामानन्द का जन्म प्रयाग के पास मालकोट नामक स्थान में गौड़ ब्राह्मण परिवार में हुआ था। पिता का नाम श्री

पुण्य सदन और माता का नाम सुशीला देवी था। पहले मालकोट शैव मतावलम्बी ब्राह्मणों का साधना केन्द्र था। एक बार आचार्य रामानुज मालकोट आए और वहाँ एक विष्णुमंदिर की स्थापना की। उसके बाद गाँव के लोग वैष्णवी हो गए।

बालक रामदत्त का उपनयन संस्कार आठ वर्ष में ही कर दिया गया। इसके बाद के चार वर्षों में उन्होंने गाँव के चतुष्पाठी में धर्मशास्त्रों के अनेक दुरुह पाठ सीख लिए। उनकी प्रतिभा की चर्चा गाँव के पास-पड़ोस में होने लगी। फिर उच्च अध्ययन के लिए उन्हें काशी भेज दिया गया जहाँ एक स्मार्त आचार्य की चतुष्पाठी में वे दाखिल हुए। इसके बाद विशिष्टाद्वैत के सुविख्यात आचार्य माधवानन्द के आश्रम में रहकर रामानन्द धीरे-धीरे विद्या और साधना के शिखर पर पहुँचने लगे। वयस्क होते-होते योग-विभूति और शास्त्र साधक के रूप में उनकी चर्चा न केवल काशी के विद्वत्-समाज में, वरन् समस्त उत्तर भारत में होने लगी। कुछ वर्षों बाद वे गुरु माधवानन्द के आदेश से साधुओं की जमात के साथ परिव्रजन के तीर्थ-पथ पर निकल पड़े।

वन-प्रांतरों एवं पर्वतीय क्षेत्रों की कठिन दूरी तय करके रामानन्द बद्रिकाश्रम पहुँचे। वहाँ साधुओं की जमात से अलग हो गए और मंदिर के निकट ही एक शांत स्थान पर भगवान विष्णु के ध्यान में निमग्न हो गए। लम्बे समय तक ध्यानावस्थित रहने के बाद वे गंगा के किनारे-किनारे चलते हुए पूर्व दिशा की ओर उन्मुख हुए। धीरे-धीरे वे गंगा सागर तट तक पहुँच गए। यहाँ वे दिव्य परमभाव में अचानक निमग्न हो गए। इसी महाभाव की दशा में उन्होंने वह स्थान खोज निकाला जहाँ त्रेता के आरंभ में कपिल मुनि ने घोर तपस्या की थी। स्थानीय लोगों के सहयोग से उन्होंने उस पुण्य भूमि में एक छोटे से मन्दिर का निर्माण कराया। कालांतर में यह मंदिर लाखों भक्तजनों की श्रद्धा का केन्द्र बन गया।

अनेक वर्ष तक परिव्रजन के उपरांत रामानन्द पुनः माधवानन्द के आश्रम में बनारस आ गए। गुरु अपने इस योग्य शिष्य को पाकर धन्य हुए। लेकिन रामानन्द ज्यादा दिनों तक आश्रम में न रह सके और गुरु से आदेश प्राप्त कर बहिर्गत हुए। शीघ्र ही उन्होंने वैष्णव भक्तों के एक नूतन सम्प्रदाय की स्थापना की जो कालांतर में रामावत सम्प्रदाय नाम से चर्चित हुआ। इस सम्प्रदाय के साधु रामानन्दी साधुओं के नाम से प्रख्यात हुए। रामानन्द ने पूरे देश में घूम-घूम कर अपने नए धर्मान्दोलन को व्यापक आधार प्रदान किया। उनके इस नए पंथ का मुख्य आधार था त्याग और वैराग्य। वैराग्य और कृच्छ साधना की अचल भित्ति के सहारे उनके अनुयायियों ने अपने को नागा साधुओं के चार पृथक विभागों में विभक्त कर लिया। सनातन धर्म और हिन्दू तीर्थस्थलों की रक्षा के

लिए रामानन्दी साधुओं ने समय-समय पर हाथ में शस्त्र लिया और अद्‌भुत साहस एवं शौर्य का प्रदर्शन किया।

वैष्णव आचार्य के रूप में रामानन्द ने घोषणा की कि जो भक्त सब कुछ त्याग कर भगवान के शरण में स्वयं को सौंप देता है, प्रेम के साथ अखण्ड सेवाव्रत का पालन करता है, वैसे भक्तों के सम्बन्ध में जाति-भेद और छुआछूत को प्रश्रय देना समाज के लिए आवश्यक नहीं है। साधु समाज में सभी वर्ग के साधुओं के एक साथ साधना-आराधना करने और भोजन-पान करने का अधिकार है। भगवान के मंदिर में छोटे-बड़े का भेद मान्य नहीं हो सकता। इस प्रकार स्वप्रवर्तित वैष्णव-सम्प्रदाय का उदार द्वारा वृहत्तर भक्त समाज के लिए उन्मुक्त कर दिया। मध्ययुग के लिए यह बहुत बड़ी क्रांति थी। इस क्रांति के संवाहक छोटे और दबे-कुचले लोग भी बन गए। उन्हें भगवत् भक्ति का अधिकार मिल गया था।

रामानन्दी साधुओं की एक विशिष्ट नागा-संघ को अवधूत कहकर पुकारा जाता है। आचार्य रामानन्द ने ऐसे बन्धनमुक्त अवधूतों का एक देशव्यापी संगठन बनाया। ये अवधूत दल बाँधकर लगातार यात्रा करते रहते तथा देश और धर्म की रक्षा के लिए सर्वस्व न्योछावर करने को उद्यत रहते। बाद में चलकर काशी में गोस्वामी तुलसीदास ने इनके लिए एक व्यायामशाला भी स्थापित कर दी। महाराष्ट्र में समर्थ स्वामी रामदास ने भी उसी नमूने पर लड़ाकू साधुओं की जमात तैयार की थी जिनका काम देश और धर्म की रक्षा करना था।

स्वामी रामानन्द ने निरीश्वरवादी नास्तिकों भगवत् विमुख तार्किकों और विधर्मी आतताइयों से समाज की रक्षा करना अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया। इसी का परिणाम था कि आचार्य रामानन्द के पहले जैनों, बौद्धों, कापालिकों और वामाचारियों की जो राष्ट्रव्यापी वितंडा चल रही थी, उसे सर्वसाधारण जनता के सहयोग से निष्प्रभाव कर दिया गया और अन्ततः उनका क्षेत्र गुप्त अड्डों के रूप में ही अवशिष्ट रहकर धीरे-धीरे सुप्त हो गया।

आचार्य रामानन्द ने लोकभाषा में उपदेश देकर अपने विचारों को जन-जन तक पहुँचाया। पूर्ववर्ती आचार्य प्रायः संस्कृत भाषा में प्रवचन किया करते थे जो सर्वसाधारण के लिए बोधगम्य नहीं थी। इस प्रकार रामानन्द संतों और साधुओं के अधिक निकट थे। इसके अलावा राधाकृष्ण की रागानुगा भक्ति से ओतप्रोत भजनों के स्थान पर उन्होंने सीता राम के मर्यादामार्गी भजनों को लोकप्रिय बनाकर विशिष्ट कीर्ति अर्जित कर ली।

आचार्य रामानन्द की साधना एवं दार्शनिक स्थापना का मूल आधार है—भगवत्प्रेम। पुरुष हो या स्त्री, ब्राह्मण हो या चाण्डाल—किसी भी विधि से

भगवान की उपासना करने वाला रामानन्द के लिए समानरूप से आदरणीय है। रामावत सम्प्रदाय ने इसीलिए उन्हें समान आदर का अधिकारी मान लिया है। उस सम्प्रदाय के साधुओं के बीच यह उक्ति प्रचलित थी—

'जाति-पाति पूछे नहिं कोई।
हरिको भजै सो हरि के होई॥'

रामानन्द के नायक विष्णु के अवतार श्री रामचन्द्र हैं। वे ही रामावत सम्प्रदाय की साधना के परमधन भी हैं। राममंत्र और राम-भजनावली के सहारे ही उन्होंने समाज के सभी वर्गों और वर्णों की जनता को परम आश्रय प्रदान करने की प्रतिश्रुति दी। इसी प्रतिश्रुति को पूरा करने में अपने सम्पूर्ण जीवन को उन्होंने लोककल्याण के निमित्त आहुति दे डाली।

चौदहवीं शताब्दी के अधिकांश समय तक आचार्य रामानन्द भारतवर्ष में परिभ्रमण करते रहे। जिस समय अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर आक्रमण किया था, उस समय रामानन्द के तरुणाई के दिन थे। मुहम्मद तुगलक के समय वे पूरे देश में विख्यात हो चुके थे। तैमूर लंग की राक्षसी हिंसा के भी वे साक्षी रहे। ग्रियर्सन के अनुसार संभवत: इसी कारण उन्होंने परम कृपालु दुष्ट दलन श्री राम के वीर रूप की अराधना को उपयुक्त पाया।

रामानन्द के कुछ पद हिन्दी भाषा में रचित मिलते हैं। उनके अधिकांश शिष्यों के भजन और पद या तो हिन्दी में रचित हैं या हिन्दी से प्रभावित आंचलिक बोलियों में। इससे प्रकट होता है कि रामानन्द ने अपने उपदेश की भाषा हिन्दी को ही बनाया था। ग्रियर्सन कहते हैं कि रामानन्द के पहले हिन्दी बोलचाल की मिलीजुली खिचड़ी भाषा थी। उसकी साहित्यिक योग्यता तो आचार्य रामानन्द और उसके शिष्यों के अतुलनीय प्रभाव से ही विकसित और प्रतिष्ठित हुई। रामानन्द के स्मरणीय शिष्यों में प्रमुख थे- अनन्तानन्द, सुखानन्द, सुरेश्वरानन्द, नरहरियानन्द, योगानन्द, गालमानन्द, पीपानन्द, कबीर, घनानन्द, भवानन्द, सेनानन्द, रैदास, पद्मावती और सुरेश्वरी आदि। इनमें पद्मावती और सुरेश्वरी स्त्री थीं। कबीर जुलाहा थे, घनानन्द जाट थे, सेनानन्द नाई थे और रैदास चमार थे। ये सभी-लोग सिद्ध संत थे।

काशी वेदान्त और शैव धर्म के केन्द्रीय स्थान के रूप में प्राचीनकाल से ही प्रसिद्ध रही है। आचार्य रामानन्द ने इस नगर को वैष्णवधर्म की पवित्र भूमि के रूप में भी प्रसिद्ध कर दिया। बाद में भारतवर्ष के दूर-दूर के क्षेत्रों से वैष्णव साधुओं का वहाँ आगमन होने लगा। भक्ति धर्म के उदार प्रवर्तक के रूप में रामानन्द ने सम्पूर्ण भारत के वैष्णवों की एक लोकव्यापी सरल प्रेम-मार्ग का संधान दे दिया। उनकी योग-सिद्धि, वाग्मिता, प्रतिभा और आचार्यत्व के

सम्मिलित प्रभाव ने वैष्णव धर्म को पूरे देश में असामान्य प्रतिष्ठा सहज ही प्राप्त हो गई।

एक सौ ग्यारह वर्षों के अपने जीवनकाल के उत्तरार्द्ध में स्वामी रामानन्द का समग्र अस्तित्व पूरी तरह ईष्टमय हो चुका था। सर्वातिशायी परमप्रभु की ज्योतिसत्ता उनमें निरन्तर ओतप्रोत रही, इसका अनुभव जन साधारण के द्वारा भी किया जा चुका था। नानक-पंथियों के ग्रंथ-साहिब में भी स्वामी रामानन्द की गाथा संकलित है।

जीवन के अंतिम काल में रामानन्द ने स्वयं को एकांतवासी बना लिया था। उसी अवधि में एक दिन १४१० संवत् में उन्होंने अपने नश्वर शरीर का त्याग कर दिया।

●

४

अद्वैत आचार्य

गोड़ीय वैष्णव समाज में श्री चैतन्यदेव की प्रतिष्ठा महाप्रभु के रूप में है तथा नित्यानन्द एवं अद्वैताचार्य की प्रतिष्ठा प्रभुओं के रूप में। प्रभुत्व की यह मर्यादा अन्य किसी चैतन्य पार्षद को प्राप्त नहीं थी।

सिद्ध महावैष्णव माधवेन्द्रपुरी के शिष्य अद्वैत आचार्य का जन्म श्री हट्ट में हुआ था। आज का सुनामगंज महकुला अंचल तब लाउड़ परगना के नाम से सुविख्यात था। इसी परगना के अन्तर्गत नवग्राम में अद्वैत इस भूमि पर अवतरित हुए थे। इनके पिता कुबेर पंचानन लाउड़ के सम्राट दिव्य सिंह के महापंडित थे। धर्मपरायण एवं शास्त्रविद मनीषी के रूप में वे दूर-दूर तक विख्यात थे। उनके पूर्वज भी ख्यातनाम थे।

अद्वैत के माता-पिता (मां लामादेवी) इस बात से अत्यंत दुखी थे कि उनकी कोई संतान जीवित नहीं थी। इसी व्यथा के साथ वे लाउड़ का परित्याग कर शांतिपुर आ गए। वे पवित्र भागीरथी के तट पर रहकर पूजा-पाठ में निमग्न हो गए। इसी बीच लामादेवी गर्भवती हो गईं। इस दम्पत्ति की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। तभी राज्य से आमंत्रण आ गया और वे लोग लौट आए।

माघी सप्तमी को कुबेर पंचानन के घर एक पुत्र रत्न ने जन्म लिया जिसका नाम रखा गया कमलाक्ष। बाल्यकाल से ही कमलाक्ष में धर्मपरायणता कूट-कूट कर भरी हुई थी। १२ वर्ष की उम्र में कमलाक्ष अध्ययन के लिए शांतिपुर भेज दिए गए। असाधारण प्रतिभा के धनी इस किशोर ने कुछ वर्षों में ही वेद-वेदान्त, स्मृति एवं षडदर्शनों को कंठस्थ कर लिया।

इस बीच कमलाक्ष के माता-पिता श्री हट्ट से आ गए थे और नवद्वीप तथा शांतिपुर में गंगातट पर ही रहकर शेष जीवन पुत्र के साथ बिता रहे थे। नब्बे वर्ष की उम्र में कुबेर पंचानन ने अपना शरीर त्याग दिया। कुछ दिनों बाद पत्नी लामादेवी भी चल बसीं। कमलाक्ष के मन में वैराग्य की आँधी चल पड़ी। ईश्वर प्राप्ति की तीव्र इच्छा से आह्लादित हो उठे। भक्तिसाधना एवं भजन में लीन हो गए।

गया में माता-पिता का पिंडदान करने के उपरांत कमलाक्ष दक्षिण के तीर्थों के दर्शन के लिए निकल पड़े। उन्हें एक सद्गुरु की तलाश थी जो उनके जीवन में आलोक पैदा कर सके। दक्षिणात्य का भ्रमण करते हुए एक दिन वे

माधवाचार्य सम्प्रदाय के साधुओं की सभा में उपस्थित हो गए। उस सभा में नारदीय सूत्र की व्याख्या हो रही थी। इस व्याख्या को सुनते-सुनते कमलाक्ष अचानक भावाविष्ठ हो संज्ञाशून्य हो गए। उनके अंगप्रत्यंग से विस्मयकारी सात्विक भाव फूट रहे थे। दक्षिणात्य के अद्वितीय ज्ञानी एवं भक्त श्रीपाद माधवेन्द्रपुरी इस दृश्य को देखकर भाव विभोर हो उठे। भक्तसाधुओं ने 'हरि-हरि' का जाप शुरू कर दिया और कमलाक्ष की तंद्रा भंग हुई। उन्होंने पुलकित माधवेन्द्रपुरी को देखते ही निवेदन किया—'प्रभु मेरा परम सौभाग्य है कि आज मैं आपका दर्शन कर पाया। आप इस युग के भक्तिकल्पवृक्ष हैं। अपने चरणों में आश्रय देकर मेरे इस अधम जीवन को धन्य कर दें। मुझे वैष्णमंत्र की दीक्षा प्रदान करें।' माधवेन्द्रपुरी ने कमलाक्ष का अनुरोध स्वीकार लिया। उन्हें दीक्षा दे दी।

कुछ समय गुरु के सानिध्य में बिताने के बाद एक दिन कमलाक्ष ने निवेदन किया, 'प्रभु, इस कलिकाल में मनुष्य धर्मविहीन एवं आदर्शरहित हो संस्कारच्युत हो गया है। उसने स्वयं को ही सर्वोपरि मान लिया है। लोकहितकारी कृष्ण नाम, हरिनाम उसके मुख से उच्चरित नहीं होता। आप ही कहें, किस प्रकार जीवों का कल्याण होगा, किस प्रकार उनका उद्धार संभव होगा।'

पुरी महाराज के मुखमण्डल पर स्मित हास्य की रेखा कौंध गई। उन्होंने कहा, 'कमलाक्ष पृथ्वी पर पाप इतना बढ़ गया है कि इससे त्राण के लिए प्रभु के आविर्भाव की आवश्यकता है। तुम महाभक्त हो। तुम्हारे अन्तर में असीम ईश्वरीय शक्ति है। ईश्वर को पुकार कर, उसे जाग्रत कर धरती पर उतार लो।'

सद्गुरु का निर्देश पाकर कमलाक्ष तीर्थाटन पर निकल पड़े। देश के दक्षिण और पश्चिम के तीर्थों की परिक्रमा करने के बाद वे ब्रजमण्डल पहुँचे। कृष्ण की लीलाभूमि का दर्शन कर भावविभोर हो गए। नृत्य और कीर्तन में इतना डूब गए कि समय कब निकल गया पता ही नहीं चला। एक पूरा दिन गोवर्धन पर्वत पर बीत गया। रात कब घिर आई पता ही नहीं चला। शांत, निश्चल होकर एक वटवृक्ष के नीचे सो गए। उन्होंने एक अद्भुत स्वप्न देखा। साक्षात् कृष्ण उनसे कह रहे थे—'आचार्य। जीवों के मंगल कामना का व्रत तुमने धारण किया है। यह परम आनन्द की कथा है। इस धरती पर यथासाध्य भक्ति-तत्व का प्रचार करो। जन-जन को कृष्ण नाम से उद्बुद्ध करो। इसके साथ ही छोटे तीर्थस्थलों का उद्धार करो। और सुनो, मैं तुम्हें एक निगूढ़ संवाद दे रहा हूँ। मेरी एक दिव्य मूर्ति द्वादश-आदित्य तीर्थ में यमुना नदी के तट पर छिपी हुई है। उस विग्रह का नाम है—मदनमोहन। द्वापर में कुब्जा ने मेरी इस मूर्ति की सेवा की थी। तुम

उसका उद्धार करो।' इस अपूर्व स्वप्न के आनंद में कमलाक्ष की शेष रात जागते ही कट गई। सुबह होते ही गाँव वालों को बुलाया और उन्हें स्वप्न की बात बताई। ग्रामवासी द्वादश आदित्य तीर्थ की ओर निकल पड़े। उक्त स्थान की खुदाई की गई तो ललित त्रिभंगी मुद्रा में खड़ी कृष्ण की मनोरम मूर्ति मिल गई। लोगों की खुशी का ठिकाना नहीं रहा। कमलाक्ष एक ब्राह्मण को इसके पूजा-पाठ का दायित्व सौंप कर वृन्दावन की ओर निकल पड़े।

कृष्ण ने अद्वैत आचार्य को नित नूतन लीला दिखाना प्रारंभ किया।

भूगर्भ से निकली इस मूर्ति के दर्शन के लिए भक्तगणों की अपार भीड़ लगी रहती थी। पठानों के एक दल की कुदृष्टि इस ओर पड़ी। एक दिन पठानों ने इस मूर्ति को तोड़कर फेंक देना चाहा। लेकिन इस इरादे से उन्होंने जब कुटी में प्रवेश किया तब कृष्ण की वह मनोरम मूर्ति वहाँ थी ही नहीं। किसी ने विद्युतगति से उस मूर्ति को कहीं फेंक दिया था। निराश होकर पठान वहाँ से चले गए।

नए पुजारी यमुना तट पर स्नान-तर्पण में तल्लीन थे। पठानों के आक्रमण की घटना सुन कर वे तुरंत अस्तव्यस्त अवस्था में कुटी में गए। वहाँ मूर्ति न पाकर वे रोने लगे। यह दुखद समाचार सुनकर आचार्य अद्वैत भी वहाँ आ गए। उनकी दोनों आँखों से आँसू झर रहे थे। क्लान्त आचार्य ने उस मूर्ति को काफी ढूढ़ने का प्रयास किया लेकिन वह नहीं मिली। रात में जब तटवृक्ष के नीचे आचार्य सो रहे थे तो कृष्ण ने स्वप्न में दर्शन दिया। कह रहे थे, 'अरे ओ आचार्य! क्यों इस प्रकार विकल हो रहे हो। मुझे उन दुष्ट पठानों ने न तो फेंका न ही अपसरित किया। उन दुष्टों को आते देख मैं वेदी से कूद पड़ा था। उसके बाद चुपचाप बाहर निकल कर कुटी के पास वाले पुष्पोद्यान में छिप गया हूँ। वहाँ से तुम मुझे ले आओ। और सुनो, मेरे इस विग्रह का नाम अब होगा—मदनगोपाल। उल्लसित कमलाक्ष उस मूर्ति को ले आए और विधिवत उसकी पूजा-अर्चना शुरू हुई।'

परन्तु प्रभु ने अपने लिए एक दूसरी व्यवस्था की। पुनः कमलाक्ष को स्वप्न में आदेश दिया—'आचार्य, जिस स्थान में तुमने मेरी मूर्ति रखी है, वहाँ वह सुरक्षित नहीं है। दो-एक दिनों में मथुरा के एक परमभक्त चौबे जी यहाँ आएंगे। तुम मुझे उन्हें अर्पित कर देना। उससे मेरी पूजा-अर्चना में कोई बाधा नहीं आएगी।' कृष्ण ने फिर कहा, 'मेरा एक अत्यंत प्राचीन चित्रपट निकुञ्जवन में संगोपित है। श्री राधा की प्रिय सखी विशाखा की परिकल्पना से मेरी यह प्रतिकृति रचित हुई थी। इस प्रतिकृति को अपने साथ लेकर तुम देश चले जाओ।'

दूसरे दिन मथुरा के चौबेजी आ पहुंचे। प्रभु मदन गोपाल का संदेश उन्हें मिल गया था। अश्रुपूरित नेत्रों से आचार्य ने अपने प्राणप्रिय विग्रह को उन्हें अर्पित कर दिया। वे पवित्र चित्रपट के साथ शांतिपुर लौट आए। इसी समय माधवेन्द्रपुरी महाराज तीर्थाटन करते हुए शांतिपुर आ गए। उन्होंने भी कृष्ण के उस दिव्य चित्रपट का दर्शन किया और भावाविष्ट हो गए। उन्होंने चैतन्य प्राप्त होने पर अपने परमप्रिय शिष्य कमलाक्ष को निगूढ़ उपदेश दिया—

"वत्स! तुम सचमुच हो पुण्यमय, प्रेमवान।
राधिका की छवि है प्रत्यक्ष कर दी तुमने।
राधा और कृष्ण के दर्शन की उत्कंठा,
तेरे सहारे लोकगोचर है हो रही,
गोपी भाव बनकर।
यही युगल सेवा सर्वश्रेष्ठ रूप भक्तिका"

–अद्वैतप्रकाश

अद्वैत आचार्य ने गुरु के निर्देशानुसार इस युगल मूर्ति की उपासना प्रारंभ की। शांतिपुर से प्रस्थान करने से पूर्व श्री माधवेन्द्रपुरी ने आचार्य को एक और निर्देश दिया। बोले—'वत्स! तुम अब विवाह कर गृहस्थ बनो। संसार में कृष्ण नामके प्रचार का व्रत ग्रहण करो, जीवों के कल्याण की साधना करो।' फिर राधा और मदनगोपाल का अभिषेक सम्पन्न करके माधवेन्द्रपुरी जगन्नाथधाम की ओर चल पड़े।

आचार्य कमलाक्ष ने अपने घर में ही एक चतुष्पाठी की स्थापना की। धीरे-धीरे प्रतिभाशाली विद्यार्थियों का एक दल तैयार हो गया। पंडित श्यामदास कमलाक्ष के अन्यतम भक्त और शिष्य थे। तत्व-विचार में आचार्य कमलाक्ष से पराजित हो उन्होंने उनके भक्ति सिद्धान्त को सहज स्वीकार कर लिया था। उन्होंने ही कमलाक्ष का नया नामकरण किया—अद्वैत आचार्य।

अद्वैत आचार्य के सामने कोई ऊँच-नीच, छूत-अछूत नहीं था। एक दिन उन्होंने अपने भक्त अस्पृश्य हरिदास को गले लगाने के बाद उसे समझाया—

'सुनो वत्स, धर्मशास्त्र सिद्ध वाणी यह
छोटा कौन? बड़ा कौन?
निश्चित यह होता नहीं
आचरण पवित्र जिसका हो,
श्रेष्ठ उसको ही मै मानता।
अष्टविध भक्ति यदि म्लेच्छ में प्रकट हो,
मैं तो उसे ही
श्रेष्ठ द्विज से कहूँगा। किन्तु-

उत्तम वही है जो भजता है कृष्ण को
विमुख उससे है जो
वही तो अधम है!' –अद्वैत प्रकाश

आचार्य ने हरिदास को सन्यास प्रदान किया। मस्तक मुण्डन कर उन्हें कोपीन-डोर एवं गले में तुलसी माला दिया गया। इस महाभक्त के कानों में शक्ति संचारित करने के लिए नाम का बीज-मंत्र आचार्य ने डाला। उन्हें नाम दिया—'ब्रह्म हरिदास'।

नारायणपुर के नृसिंह भादुड़ी एक कुलीन एवं धर्मनिष्ठ ब्राह्मण थे। उनके दो कन्याएँ थीं—सीता एवं श्रीरूपा। उन्होंने अपनी दोनों कन्याएँ अद्वैत आचार्य को व्याह दी।

एक बार गौरांग प्रभु नवद्वीप पधारे। उन्होंने अद्वैत आचार्य को बुलवाया। आचार्य सपत्नीक नवद्वीप आए लेकिन प्रभु की सभा में नहीं गए। वह नन्द आचार्य के घर में गुप्त रूप से रहने लगे। प्रभु के आदेश से उन्हें सपत्नीक उनकी सभा में लाया गया। अद्वैत ने देखा, प्रभु भावाविष्ट हो श्रीविष्णु की तरह बैठे हैं। श्रीपाद नित्यानन्द ने सिर पर छत्र रख दिया है। नरहरि प्रेमावेश से चँवर डुला रहे हैं। श्रीनिवास, मुरारी आदि भक्त जन हाथ जोड़कर दण्डायमान हैं। इस अलौकिक दर्शन ने आचार्य अद्वैत और उनकी पत्नी को आनन्द से भर दिया था। दोनों ने श्री गौरांग के चरणों की पूजा सम्पन्न की। पूजा सम्पन्न हो जाने के बाद जब वे लोग साष्टांग दण्डवत कर रहे थे तभी प्रभु ने अपने दोनों पावों को आचार्य के मस्तक पर रख दिया। भक्तजनों की हरिध्वनि से सभी दिशाएँ गूँज उठीं। आज का दिन अद्वैत के जीवन का श्रेष्ठ दिन था। इसके बाद प्रभु ने आदेश दिया—'अद्वैत अब शांत होकर उठो। सपत्नीक पंच-उपचारों से मेरे चरणों की पूजा करो।' यही तो अद्वैत की चिर कामना थी।

पूजा सम्पन्न हो जाने के बाद प्रभु का दूसरा आदेश था—'अब कीर्तन होगा। उसमें तुम नृत्य करो।'

भक्तगणों ने कीर्तन प्रारंभ किया और महाज्ञानी, परमगंभीर, वृद्ध आचार्य आनन्द विभोर हो दोनों हाथ उठा कर नृत्य करने लगे।

महाप्रभु ने आचार्य के नृत्य से प्रसन्न होकर मधुर कंठ से कहा—'आचार्य, तुम्हारी प्रार्थना क्या है? तुम स्वेच्छा से वर माँगो। जो चाहो, मैं दूँगा।'

आचार्य दोनों हाथ जोड़कर चुपचाप खड़े हो गए।

'नहीं आचार्य, तुम प्रार्थना करो, तुम्हारे अन्तर की अभिलाषा से मैं परिचित होना चाहता हूँ।'

अद्वैत आचार्य ने कहा—'प्रभु यदि तुम कृपा कर अवतरित हुए हो, यदि तुम्हारी देवदुर्लभ भक्ति हमे प्राप्त हुई है, तो तुम्हारी कृपा, तुम्हारा अनुग्रह उन चिरवंचितों को भी प्राप्त हो। शूद्रों एवं स्त्रियों को भी तुम्हारी यह परम भक्ति की अनुकम्पा प्राप्त हो।'

भावविष्ट प्रभु ने आचार्य की प्रार्थना स्वीकार कर ली। चतुर्दिक जय जयकार होने लगी।

प्रभु के साहचर्य एवं भक्तजनों के सामीप्य में आचार्य के आनन्द से भरे दिन व्यतीत हो रहे थे, परन्तु उनके अन्तर में कहीं दूर तक एक कांटा गड़ा हुआ था। उसकी कसक से वे व्यथित और उन्मन बने रहते थे। कुछ ही दिनों बाद हरिदास को साथ लेकर आचार्य शांतिपुर लौट आए।

आचार्य की भक्ति का वह मधुर, प्रेममय रूप अब पूर्णतया परिवर्तित हो चुका था। प्रेमभक्ति के बदले अब ज्ञान-विचार की तार्किक पद्धति का अनुसरण दिग्दर्शन ही उन्हें मान्य था। सरस और मोहक प्रेम का स्थान अब ज्ञान ने ले लिया था। सब आशंकित थे कि क्या आचार्य ने अपने जीवन के आदर्शों को बदल दिया है?

अद्वैत आचार्य की इस चतुराई और अद्‌भुत कौशल का फल शीघ्र ही प्रकट हुआ। अचानक गौरांग महाप्रभु श्री पाद नित्यानन्द के साथ शांतिपुर आ पहुँचे। प्रभु को देख आनन्दमग्न आचार्य एवं उनके घर के लोग प्रभु के चरणों में लौट पड़े। अद्वैत दोनों हाथ जोड़ कर प्रभु के समक्ष खड़े हो गए। प्रभु ने तीक्ष्ण नेत्रों से देखते हुए उत्तेजित स्वरों में पूछा—'अरे मूर्ख, भक्ति श्रेष्ठ है या ज्ञान? आज मुझे स्पष्ट कहो।' प्रभु क्रोध से थर-थर काँप रहे थे।

अद्वैत का अन्तर अलौकिक आनन्द से भर उठा क्योंकि उनका अभीष्ट सिद्ध होने जा रहा था। उन्होंने सविनय उत्तर दिया—'युग-युग से सर्व समाज में ज्ञान की श्रेष्ठता सर्वमान्य है। ज्ञानहीन भक्ति के बिना तो सारे कार्य निष्फल हैं।'

प्रभु के क्रोध का पारावार नहीं रहा। वे बोले, 'मूर्ख, भक्ति से ज्ञान श्रेष्ठ है? मेरे समक्ष खड़े होकर तुम यह कह रहे हो?'

प्रभु ने आचार्य को बरामदे से खींच कर जमीन पर गिरा दिया और मारने लगे। वृद्ध आचार्य अशक्त हो गया। यह दृश्य पत्नी से देखा नहीं गया। वह चीत्कार कर उठीं, 'अब नहीं प्रभु, शांत हो जाएँ। इस वृद्ध ब्राह्मण के प्राण एक बार ही न लें।'

भक्त हरिदास एक पाँव पर दण्डायमान थे। प्रभु की इस विचित्र क्रोध लीला ने उसे भय और विस्मय से भर दिया था। वे अविरल कृष्णनाम का जप

कर रहे थे। पास-पड़ोस के अनेक लोग वहाँ जमा होकर आचार्य की दुर्दशा दुखी मन से देख रहे थे। किन्तु खिलखिलाकर हँस रहे थे तो सिर्फ नित्यानन्द। अंत में अद्वैत आचार्य को मुक्ति मिली। प्रभु का कृपादण्ड शिरोधार्य कर उनके आनन्द की कोई सीमा नहीं थी। वे दोनों हाथ उठाकर नृत्य करने लगे।

नृत्य की समाप्ति के उपरांत आचार्य ने अपना मस्तक प्रभु के चरणों पर रख कर कहा, 'प्रभु अपने हाथों दंड देकर तुमने अपनी प्रभुता प्रदर्शित की है। तुम्हारे इस स्वरूप का उद्घाटन ही तो मैं चाहता था। अब मुझे अपने चरणों में आश्रय प्रदान करो।'

प्रबल प्रेम से भर कर प्रभुने आचार्य को आलिंगनबद्ध कर लिया। दोनों के कपोल आँसुओं से भींग गए।

प्रभु ने कहा—'अपने कल्याण के लिए जो तुम्हारा आश्रय ग्रहण करेगा, उसके शत अपराधों को मैं क्षमा करूँगा।'

प्रभु के पास बैठे आचार्य के वस्त्र आँसुओं से भींग रहे थे।

इस तरह की लीलाएं कई दिनों तक चलती रहीं। भक्तगण आनन्द में डूबते रहे। अंततः अपने भक्तजनों के साथ चैतन्य महाप्रभु नवद्वीप लौट आए। अद्वैत आचार्य को प्रभु ने अपने में आत्मसात कर लिया था।

कई वर्ष बीत गए। गौरसुन्दर ने इसी बीच संन्यास ग्रहण कर लिया था इसके बाद नीलांचल जाने का निश्चय किया लेकिन इसके पूर्व वे शांतिपुर आ गए। आचार्य अद्वैत के आंगन में गोष्ठी जमी थी कि आचार्य का पुत्र अच्युत अचानक वहाँ उपस्थित हो गया। धूल-धूसरित शिशु को गोद में लेकर प्रभु ने सस्नेह कहा—'अच्युत, तुम मेरे कौन हो? जानते हो, आचार्य मेरे पिता हैं, इसलिए हम दोनों भाई हैं।'

'ना ना, ऐसा नहीं। ईश्वर की कृपा से तुम जीवों के सखा रूप में आए हो। तुम्हारा पिता कौन हो सकता है? तुम तो स्वयं प्रकाश हो।' बालक के इस उत्तर से सभी अवाक् रह गए। लगा जैसे प्रभु ने अपने तत्वों को स्वयं प्रकाशित किया हो।

शांतिपुर में कुछ दिन रुकने के बाद प्रभु नीलांचल चले गए। उनके दर्शन के लिए अपने भक्तों के साथ आचार्य भी वहाँ पहुँच गए। एक दिन आचार्य ने अपनी कुटिया में प्रभु को भोजन के लिए आमंत्रित किया। स्वयं तरह-तरह के पकवान बनाए। पत्नी प्रत्यूष ने सहयोग किया। आचार्य की इच्छा हुई प्रभु अकेले आएँ तो आराम से भोजन ग्रहण कर सकेंगे। आचार्य ने अपने मन की बात पत्नी को बताई। अचानक बादल घिर आए और मूसलाधार बारिश होने लगी। इस बीच आचार्य ने देखा कि वर्षा से भींग कर प्रभु उनकी कुटिया के द्वार पर खड़े

हो 'हरे कृष्ण, हरे कृष्ण' का जाप कर रहे हैं। आचार्य दौड़कर प्रभु को भीतर ले आए। थोड़ी देर बाद प्रभु ने भोजन ग्रहण करना शुरू किया। अन्तर तृप्त हुआ। फिर आचार्य ने वर्षा बंद होने के लिए इन्द्र देवता की स्तुति प्रारंभ कर दी। विस्मित हो प्रभु ने पूछा—'आचार्य, अचानक इन्द्र देवता पर तुम्हारी इतनी भक्ति और श्रद्धा कब से हो गई?'

'प्रभु आज इन्द्र के अनुग्रह से ही तुम्हें मैंने यहाँ अकेले पाया है। अब मेरी अधीर लालसा तृप्त हो गई है।'

प्रभु ने समझ लिया, यह असमय की वर्षा आचार्य का ही खेल है। अपनी भक्ति के बल से ही उन्होंने यह अलौकिक दृश्य उपस्थित किया है। आवेग कम्पित अद्वैत तत्क्षण प्रभु के चरणों पर गिर पड़े।

आचार्य अन्य भक्तों के साथ प्रतिवर्ष नीलांचल पर्वत अवश्य जाते थे। प्रभु का दर्शन कर उनके सामीप्य में कुछ दिन बिताकर अपने कर्मक्षेत्र गौड़ देश लौट जाया करते थे। उस प्रदेश में प्रभु द्वारा प्रवर्तित भक्ति आन्दोलन के अन्यतम श्रेष्ठ धारक एवं वाहक के रूप में उनकी परिगणना होती थी।

आचार्य घोर आर्थिक संकट में थे। उनके एक भक्त बाउलिया विश्वास से देखा न गया। उसने उड़ीसा के राजा प्रतापरुद्र से तीन सौ रुपए की सहायता की याचना की। इस बात का पता जब चैतन्यदेव को चला तो वे बेहद नाराज हुए। उन्होंने अपने सेवकों को आदेश दिया—'विश्वास कभी भी मेरे पास न आने पाए। मैं उसका मुँह नहीं देखना चाहता। शुद्ध, पवित्र अद्वैत आचार्य को उस विषयी अधिपति से दान दिलवाना चाहता है। मैं उसे कभी क्षमा नहीं करूँगा।'

प्रभु के इस क्रोध से विश्वास तो दुखी हुआ है, आचार्य भी दुखी हुए क्योंकि विश्वास ने सहायता की याचना उन्हीं के लिए की थी।

कुछ दिनों बाद नीलांचल में आचार्य का प्रभु से साक्षात्कार हुआ। आचार्य ने कहा, 'प्रभु बाउलिया विश्वास पर तुम्हारी ऐसी कृपा है? हम लोगों की ओर तुम एक बार भी पलट कर देखते नहीं हो।'

प्रभु ने हँसते हुए उत्तर दिया, 'आचार्य, तुम सब वैष्णवों के आश्रयस्थल हो। प्रकृत वैष्णव का जीवन ईश्वर के चरणों में निवेदित है। वह सदैव ईश्वर प्रेम में उन्मत्त रहता है। जिसने भोग-विषयों के भयावह अंधेरे पथ का वरण किया है, उसके समक्ष सहायता की याचना क्यों? जो सबों का योग-क्षेम वहन करते हैं, उन्होंने तुम्हारा भार लेना भी स्वीकार किया है। फिर उस बाउलिया ने यह हठ और दुराग्रह क्यों किया? इसीलिए मैंने उसे दण्डित किया है। पर बाउलिया विश्वास तुम्हारा भक्त है और भक्त के दण्ड ने तुम्हें विचलित कर दिया है। अच्छा इस बार मैं उसे क्षमा करता हूँ।'

भक्त जगदानन्द एक बार गौड़ गए थे। अद्वैत आचार्य ने उनके हाथ एक संदेश प्रभु के पास भेजा। जगदानन्द ने प्रभु का वह संदेश दिया। प्रभु उस समय भक्तों से घिरे थे। विचित्र रहस्यमय था आचार्य का निवेदन। स्मित हास्य से प्रभु ने कहा—'तुम्हारी जैसी आज्ञा।'

भक्त दामोदर के आग्रह पर प्रभु ने उस पत्र का रहस्य खोला। कहा, 'आचार्य आगमशास्त्र के विज्ञ पण्डित हैं। देवताओं का आवाहन एवं विसर्जन दोनों ही अनुष्ठान उन्हें ज्ञात हैं। लगता है आचार्य ने संकेत से कुछ कहना चाहा है। किन्तु तुम लोगों की तरह मैं भी वह सब समझ नहीं पाता।'

प्रभु ने वास्तविक रहस्य पर पर्दा ही डाले रखा लेकिन खुद समझ गए कि आचार्य ने अपने देवता के विसर्जन का इंगित इसके माध्यम से करना चाहा है। यह अनुमान सही साबित हुआ। आचार्य के इस निवेदन को सुन प्रभु अतिशय गंभीर होकर अंतर्मुखी एवं अन्तर्लीन हो गए थे।

अद्वैत आचार्य के अवसान की बेला धीरे-धीरे निकट आ रही थी। तिल, तुलसी और अश्रजल से सिक्त कर जिस जीवन-लीला का सूत्रपात उन्होंने किया था उसका अंत हो गया।

गौड़ीय वैष्णव समाज के अन्यतम स्तम्भ के रूप में अतीव श्रद्धा एवं सम्मान की दृष्टि से आचार्य अद्वैत को देखा जाता है।

●

५

चैतन्यदास बाबाजी

जगबन्धु का जन्म मैमन सिंह जिले के सुप्रसिद्ध और प्रतिष्ठित घोष-राय वंश में हुआ था। भद्रा गाँव के निवासी ये लोग कायस्थ थे। इस परिवार के पूर्वज नवाबी सल्तनत में ऊँचे ओहदों पर थे।

जगबन्धु के पिता वैद्यनाथ और माता का बचपन में ही देहान्त हो गया था इसलिए चाचा गौरखनाथ ने अपने इस होनहार भतीजे का पालन-पोषण बड़े ही लाड़-प्यार से किया था। जगबन्धु उनकी आँखों के तारा थे।

एक बार जगबन्धु को हैजा हो गया। हालत गंभीर हो गई थी। चाचा गौरखनाथ ने कोई दवा-दारु नहीं की बस परिवार द्वारा बनवाए गए मंदिर में स्थापित देवता श्री गोविन्दराय का चरणामृत पिला दिया और जगबन्धु ठीक हो गए। इससे बालक जगबन्धु के अंतर में अपूर्व भक्ति-विश्वास का भाव जाग उठा। देवता के प्रसाद में उसकी ऐसी आस्था बनी कि बिना देवता के अर्पित की हुई कोई वस्तु ग्रहण ही नहीं करता था। कीर्तन के समय वह इतना भाव-विभोर हो जाता कि मानो किसी पूर्व जन्म का सात्विक संस्कार लेकर आया हो।

बारहवें वर्ष में उसकी शिक्षा-दीक्षा के लिए एक मुंशी को लगा दिया गया। बालक जगबन्धु इतनी कुशाग्र बुद्धि का था कि जल्दी ही बंगला और फारसी भाषाओं पर उसका अधिकार हो गया।

संसार से वैराग्य होने के साथ ही जगबन्धु के हृदय में चैतन्य महाप्रभु के प्रति अनुराग जागा। नित्य प्रति 'चैतन्य-चरितामृत' का पाठ किए बिना वह जल भी नहीं ग्रहण करता था। उसके जीवन में मुक्ति-कामना और वैष्णव जनोचित दीनता का भाव क्रमशः तीव्र होता गया।

जगबन्धु के वैराग्य भाव को देखकर चाचा गौरखनाथ चिन्तित हुए। उन्होंने उसे सांसारिक माया-मोह में फाँसाने के लिए उसके विवाह का निश्चय किया। जब यह सूचना जगबन्धु को मिली तो उसने रात के अंधेरे में घर त्याग दिया। पैदल चलकर वह नवद्वीप पहुँचा। उसने वैष्णव दीक्षा ले ली। नया नामकरण हुआ चैतन्यदास।

अपनी साधना, पाण्डित्य और वैष्णवीय दीनता के कारण शीघ्र ही चैतन्यदास की कीर्ति चारो तरफ फैल गई। वे अपने को सदैव गौरांग-प्रिया के भाव में रखते। वे स्वयं को नारीवेश में सज्जित कर गौरांग की मूर्ति के सामने

खड़े होकर पंखा झलते। बाह्य ज्ञान लौटने पर वे अकिंचन वैष्णव साधक के रूप में अतिदीन भाव से भक्तमण्डली में बैठ जाते। वे निरंतर चैतन्य महाप्रभु का 'गोरा' नाम जपते रहते। प्रतिदिन 'गोरा' नामांकित एक पवित्र पुंगी की पूजा किए बिना अन्न-जल ग्रहण नहीं करते। वे हमेशा ध्यानमग्न रहते।

एक दिन चैतन्यदास का क्षौरकर्म करने के लिए नाई बैठा था। अचानक उन्हें छींक आई और वे चुटकी बजाते हुए 'गौर'-'गौर' चिल्लाने लगे। इसके थोड़ी ही देर बाद उठे और उन्मत्त भाव से कीर्तन करने लगे। बड़ी कठिनाई से शांत किया गया उन्हें।

एक बार ग्रहण के दिन चैतन्यदास गंगा-स्नान के लिए गए। लोग स्नान करके निकल रहे थे। पुरोहित उन्हें मंत्र पढ़ा रहे थे। परंतु चैतन्यदास ने सब लोगों के बीच में खड़े होकर अपना ही मंत्र पढ़ना शुरू कर दिया—'गौरांग-नागरी बनूँगा, गौरांग-नागरी बनूँगा।' सभी लोग अवाक् रह गए। पंडितगण परिहास से कहने लगे—'बाबाजी महाराज, आप यह कौन सा अद्भुत मंत्र पढ़ रहे हैं। स्नान-तर्पण के घाट पर कभी किसी ने ऐसा नहीं सुना।'

चैतन्यदास बोले, 'भाई, तुम लोगों का जो मंत्र है, तुम लोग पढ़ो, मैं अपना मंत्र पढ़ता हूँ। जिसकी जैसी भावना रहेगी उसे वैसी ही सिद्धि मिलेगी।'

एक दिन नवद्वीप के घाट पर बाबा चैतन्यदास ने स्नान किया। स्नान करने के बाद जब कौपीन धारण करने जा रहे थे तो हवा के झोंके से कौपीन हाथ से छूट गया। बाबाजी नग्न हो गए। यह दृश्य जगदीश मैत्र नामक एक ब्राह्मण देख रहा था। वह बाबाजी के निकट आया और उन्हें डांटने लगा, 'लम्पट कहीं का। तुम स्नान-घाट पर कुल बधुओं के सामने नंगा होता है। यथाशीघ्र यहाँ से चले जाओ, नहीं तो मार-मार कर दुरुस्त कर दूँगा।'

बाबाजी गिड़ागिड़ाए, 'बाबा' अचानक हवा के झोंके से कौपीन हाथ से छूट कर गिर गया। कृपा कर अपराध क्षमा कर दो।'

मैत्र और ज्यादा क्रोधित हो गया, बोला, 'तुम अपना दोष हवा पर मढ़ने की कोशिश कर रहे हो?' और उसने बाबाजी के गाल पर एक जोर का थप्पड़ जड़ दिया। इससे वहाँ उपस्थित लोग क्रुद्ध हो गए। लेकिन बाबा ने उन्हें शांत करते हुए हाथ जोड़कर मैत्र से कहा, 'मुझसे जो अपराध हुआ, उसका दण्ड मुझे मिल गया। आगे कभी भी मुझसे ऐसा अपराध नहीं होगा। आपने मुझे अच्छी शिक्षा दी है। आप मेरे शिक्षा गुरु हुए।'

बाबाजी घाट से चले गए।

तीन दिन बाद मैत्र अचानक गंभीर रूप से बीमार पड़ गया। उसके बचने की कोई उम्मीद नहीं रही। ज्वर के उत्ताप में कहता, 'बाबाजी महाराज, मैं घोर अपराधी हूँ, महापापिष्ट हूँ। मुझे क्षमा कीजिए, मुझ पर कृपा कीजिए।' यह

कहकर वह बेहोश हो जाता। उसके परिजन बाबा चैतन्यदास की शरण में आए। बाबा ने पहले ही मैत्र को क्षमा कर दिया था। उन्होंने गौरांग महाप्रभु की मूर्ति पर चढ़ाया गया तुलसीदल दिया और बोले, 'तुम लोग जाओ, किसी प्रकार का भय नहीं है। रोगी को यह महौषधि खिला देना, ठीक हो जाएगा।'

जगदीश मैत्र को बाबाजी का प्रसाद खिलाया गया। वह स्वस्थ हो गया। इसके बाद उसने बाबाजी का आश्रय ग्रहण किया और वैष्णव साधक हो गया।

चैतन्यदास चैतन्य महाप्रभु के मंदिर परिसर में स्थित एक निर्जन कुटी में रहा करते थे। रागानुगा भक्ति के भावोच्छवास में प्रायः तन्मय रहा करते थे। एक दिन गौरांग मंदिर के चबूतरे पर कीर्तन चल रहा था। कीर्तनिया दल गा रहा था—'गौरांग सुन्दर नदिया छोड़ चले।' इस विरह-गीत को सुनते ही साधक चैतन्यदास उछलकर सामने आ गए। उत्तेजित स्वर में बोले, 'अरे यह क्या कह रहे हो, यही तो नवद्वीपचन्द्र, विष्णुप्रिया प्राणवल्लभ महाप्रभु साक्षात खड़े हैं। अब दुबारा कहा तो मारकर भगा देंगे।' कीर्तन समारोह में हो-हल्ला मच गया। कीर्तनियों ने नया गीत गाना शुरू कर दिया। फिर कभी उस यात्रा गीत को नहीं गाया।

कालना के सिद्ध संत भगवानदास जी से चैतन्यदास के निकट सम्बंध थे। लेकिन दोनों के गौड़ीय वैष्णव जगत के स्तंभ होते हुए भी उनके बहिरंग आचरण भिन्न थे। भगवानदास जी की प्रेम-साधना अंतः संचारिणी थी जबकि चैतन्यदास का साधना जीवन प्रेमा-भक्ति के उच्छल-तरंगायित रहता था। गौरांग-प्रेम को लेकर दोनों महान साधकों के बीच प्रेम-कलह भी होता रहता था।

चैतन्यदास नदिया छोड़कर कहीं नहीं गए। उन्हें वृन्दावन ले जाने का भगवानदास जी का प्रयास भी विफल हो गया। बहुत आग्रह पर वे तैयार हो गए लेकिन जब अंतिम अवसर आया और चैतन्य महाप्रभु के मंदिर के समक्ष खड़े होकर हाथ जोड़कर आज्ञा लेने लगे तो बेहोश होकर गिर पड़े। काफी देर तक भजन-कीर्तन करने पर उन्हें होश आया। भगवानदास जी ने कहा, 'चैतन्य का वृन्दावन यही है।'

चैतन्यदास बाबाजी तमाम वैष्णव भक्तों की आशंकाओं का निराकरण करते। एक दिन भक्त प्रवर शिशिर कुमार घोष चैतन्यदास का दर्शन करने आए। उन्होंने प्रश्न किया, 'बाबाजी महाराज, भक्ति-साधना कैसे होता है?'

'भक्ति लाभ तो दो पैसे में होता है।'

'बाबाजी, आप मेरा उपहास कर रहे हैं।'

'हरे कृष्ण, हरे कृष्ण! मैंने आपका उपहास नहीं किया,' बाबाजी ने कहा, 'आप बंगला में छपी हुई नरोत्तम ठाकुर की प्रार्थना-पुस्तक खरीद लीजिए। उसे आर्तभाव से पढ़िये। उसी से भक्ति-लाभ होगा।'

बाबाजी के लिए आर्तप्राण और प्रार्थना ही गौरांग-प्रेम की सर्वापेक्षा बड़ी साधना थी।

एक बार ब्रह्मसमाज के शीर्षस्थ नेता गोस्वामी विजय कृष्ण चैतन्यदास बाबाजी के पास आए। उन्होंने पूछा, 'बाबाजी महाराज, मैं प्रकृत भक्ति का अधिकारी किस प्रकार बनूँगा।'

यह प्रश्न सुनकर बाबाजी महाराज अपलक उनका मुँह देखते रहे। कुछ देर बाद उनकी देह रोमांचित हो उठी। थर-थर कांपने लगी। धीरे-धीरे उनकी शिखा भी रोमांच होने से खड़ी हो गई। उन्होंने एक हुंकार भरी और आवेगकंपित स्वर से बोले, 'तुम यह क्या कह रहे हो गोसाईं। तुम यह पूछते हो कि भक्ति कैसे होती है?' इतना कहते-कहते उनके शरीर में अश्रु, रोमांच और कम्पन जैसे आठो सात्विक विकार उत्पन्न हो गए।

इस भावोन्मत्ता को समाप्त होने पर चैतन्यदास जी ने विजयकृष्ण जी को साष्टांग प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहने लगे, 'प्रभु! आप भक्ति की बात पूछते हैं? वह दुर्लभ वस्तु मैं अपात्र भला कहाँ पाऊँगा? आप आशीर्वाद दीजिए कि सर्वथा अकिंचन कंगाल बन सकूँ क्योंकि उससे आगे भक्ति की नाम-गंध का पता भी नहीं मिलता? हाँ, एक बात मैं आज आपसे कहना चाहता हूँ, ध्यान देकर सुनिए। आजकल आप जैसा-कुछ भी क्यों न करते हों, मैं स्पष्ट देख रहा हूँ कि आप तिलक लगाएंगे, कण्ठी-माला धारण करेंगे। भक्ति तो आपके अपने भंडार का धन है। आप तो अद्वैत वंश की संतान हैं। हमारे अद्वैत भंडार में क्या भक्ति का अभाव है।'

गोस्वामी जी के संबंध में चैतन्यदास की भविष्यवाणी गोस्वामी जी के परवर्ती जीवन में अक्षरशः फलवती सिद्ध हुई।

गौरांग मंदिर के एक कोने में बैठकर चैतन्यदास भजन-कीर्तन समाप्त होने पर रात्रि में प्रेमा भक्ति की साधना में डूब जाते थे। उस ध्यानावस्था में गौरांग के साथ उनकी विरह-मिलन की रंगरेलियाँ चलती और अनेक प्रकार के प्रेमालाप होते।

उन दिनों नवद्वीप में भीम नामक एक खौफनाक दुराचारी रहता था। वह जाति से गंध-बनिक था। वैष्णवों का तो वह जानी दुश्मन था। उसने गौरांग और चैतन्यदास के पारस्परिक प्रेम संलाप की चर्चा सुनी। उसने इसके पीछे छिपे गूढ़ रहस्य का पता लगाने का निश्चय किया। एक रात वह मंदिर की दीवार लांघ कर भीतर आया। बाबाजी की कुटिया के सामने आकर खड़ा हो गया। उस समय बाबाजी भावाविष्ट अवस्था में थे। अपने इष्टदेव के साथ प्रेमालाप में मग्न थे। बार-बार अपने हृदय की आर्त्तवेदना निवेदित कर रहे थे।

भीम ने समझ लिया कि प्रेमा भक्ति और साधना की बात झूठी है। कुटी के अन्दर निश्चय ही बाबाजी की कोई प्रेमिका है। इस समय कुटी के अंदर

जाकर बाबाजी के कपटाचार का पर्दाफाश किया जा सकता है। उसने दरवाजे को ठोकर मारकर तोड़ दिया लेकिन कुटी के अंदर प्रवेश करते ही विस्मय से भर उठा। उसने देखा कि बाबाजी महाराज सामने निष्पंद भाव से ध्यान-निमग्न हैं, उनके शरीर से एक दिव्य ज्योति निकल रही है। सारी कुटिया फूलों की सुगन्ध से भरी हुई है। किन्तु भीतर कोई और नहीं है।

भीम वहीं मूर्छित होकर गिर पड़ा। होश आने पर वह और भी आश्चर्य में पड़ गया। भजन कुटी के जिस दरवाजे को उसने तोड़ दिया था, वह बिल्कुल साबूत खड़ा है।

भीम के हृदय में तीव्र शोक और मर्मांतक पीड़ा की ज्वाला उठने लगी। ज्वाला असह्य होने पर एक दिन वह बाबाजी के चरणों पर आकर गिर पड़ा। उसकी आँखों से आँसू गिर रहे थे। उसने विगलित भाव से कहा, 'बाबाजी मेरा उद्धार कीजिए। अपने चरणों का आश्रय दीजिए।' चैतन्यदास ने स्नेहपूर्वक उसे हृदय से लगा लिया। बोले, 'बेटा भीम, उठो। कोई भय नहीं। आज से तुम गौरदास हुए। निष्ठापूर्वक हरिनाम जपते जाओ और वैष्णवों की सेवा करो। शीघ्र ही तुम्हें भगवत कृपा प्राप्त होगी।'

भीम का रूपान्तर देखकर द्वीपवासी चकित हो गए।

चैतन्यदास के जीवन के अंतिम काल में आत्मसात का आखिरी अंक प्रारंभ हो रहा था।

अन्ततः वह शुभ लग्न भी आया। उस दिन बाबाजी दिनभर, रातभर भजन-रस में डूबे रहे। हठात् गंभीर रात में भाव-तन्मय अवस्था में ही अचानक उठ बैठे और अपने को गौर प्रिया के रूप में सजाने लगे। फिर प्रेम-रस के नशे में लड़खड़ाते पैरों से गौर-विग्रह के बाईं ओर जाकर खड़े हो गए। धीरे-धीरे निमग्न होकर गाने लगे—

मेरा भजन समाप्त हुआ,
मेरी पूजा समाप्त हुई,
नदिया के चन्द्रमा की प्रिया मैं हूँ,
मेरा स्वामी 'गोरा' है।

गाते-गाते चैतन्यदास के शरीर में एक अपूर्व ज्योति प्रस्फुटित हुई। उनकी प्रेमाविष्ट आंखें गौरांग मूर्ति की आंखों से निश्चल जड़ी थीं। उस दिन प्रभु की नित्य लीला का ज्योतिर्मय रूप उनको स्पष्ट हो गया।

गौराब्द ३९२ साल में अगहन की पूर्णिमा के दिन सिद्ध साधक चैतन्यदास बाबाजी महाप्रस्थान कर गए।

●

६

भक्त दादू

भक्त दादू का जन्म सन् १५४४ ई० में फाल्गुन मास की शुक्लाष्टमी को वृहस्पतिवार के दिन एक निर्धन मुस्लिम परिवार में हुआ। इस चर्मकार परिवार में उन्हें शिक्षा नहीं नसीब हुई। उनकी अक्षय सम्पदा थी उनके अंतर का नितांत सहज प्रेम और निराभिमानता। इसके मध्य से उनके भीतर मर्मी साधक की धारा फूट पड़ी। ऐसा कब हुआ, इस बारे में कुछ नहीं कहा जा सकता क्योंकि उनके बाल्य-जीवन के संबंध में बहुत कम जानकारी प्राप्त है। केवल इतना ही ज्ञात है कि उनके पिता का नाम लोदी और माता का नाम बसीबाई था। चमार पल्ली की चरम दरिद्रता और अशिक्षा के वातावरण में रहते हुए दादू अपनी एकांत साधना में सहज गुणों के विकास पर ही निर्भर थे।

दादू अपने गृहस्थ जीवन में रमे रहे। उन्होंने कभी निवृत्त मार्ग नहीं अपनाया। पत्नी 'हावा' और चार पुत्र-पुत्रियों का छोटा सा परिवार था। सत् और असत् उनके जीवन में एकाकार हो रहे थे। उनके ज्येष्ठ पुत्र गरीबदास उत्तरकाल में मर्मी साधक-रूप में प्रसिद्ध हुए। कनिष्ठ पुत्र मास्किनदास और दोनों कन्याएँ ननी बाई और माताबाई का जीवन भी आध्यात्मिक था।

दादू की आय का मुख्य स्रोत मशक की मरम्मत था।

एक दिन दादू घर से निकल पड़े। वे काशी, बिहार और बंगाल के नाना स्थानों में भटकते रहे। सहजमत, शून्यवाद, निरंजनवाद, नाथपंथ आदि के साधन-तत्वों का आस्वादन करते रहे। नाथपंथ की योग-साधना में उन्होंने अपार सफलता प्राप्त की और 'कुम्भारीपार' नाम से नाथ योगियों के बीच प्रसिद्ध हो गए। 'कुम्भारीपार' शब्द इस पंथ के एक प्राचीन महायोगी की योग-विभूतियों का द्योतक था। कुम्भारीपार रचित कितने ही ग्रंथ आज भी दादूपंथी योगियों के बीच संरक्षित हैं, जैसे—अजपा गायत्री ग्रंथ, विराट पुराण, योग शास्त्र, अजपा ग्रंथ और अजपाश्वास।

परिव्राजन के दौरान काफी समय बंगाल में व्यतीत होने के कारण दादू पर बंगाल के नाथपंथी योगियों का काफी प्रभाव पड़ा। दादूपंथियों के वाणी-संग्रह में बंगाली नाथ योगियों के भाव और भाषा का पूरा प्रभाव पड़ा है—

दादू हिंदू तुरकन होइबा साहब सेतीकाम।
षड़दर्शन के संगनजइवा निरपथ कहिबा राम।

देश में भ्रमण के उपरांत भक्त दादू राजस्थान के साँभर नामक स्थान में रहने लगे। उनके साथ उनके परिवार के अलावा शिष्यमंडली भी थी। परिजनों के काफी परिश्रम से दो जून की रोटी जुटती। दादू इसे भी ईश्वर की कृपा मानते—

दादू रोजी राम है, राजिक रिजक हमार।
दादू उस परसाद सौं पोष्य सब परिवार।

अर्थात् हे दादू, राम ही मेरा प्रतिदिन का अन्न है। वही मेरी वृत्ति है। वही मेरी जीविका है। उनका प्रसाद पाकर ही तो मेरे समस्त परिवार का भरण-पोषण होता है।

दादू हिन्दू-मुसलमान और मंदिर-मस्जिद का भेद नहीं मानते थे। उनका अभीष्ट मानव-कल्याण था। हिन्दू साधक और मुस्लिम उलेमा आकर दादू से कहते—'दादू, धर्म-साधना या सेवा-कार्य किसी एक सम्प्रदाय में ही रहकर संभव है। तुम किस सम्प्रदाय के हो?' दादू कहते, 'भाई, चन्द्र, सूर्य, पृथ्वी, आकाश, हवा, जल—ये सभी तो निरंतर सेवा-कार्य में रत रहते हैं। ये सब किस धर्म सम्प्रदाय को मानने वाले हैं?' वह जिज्ञासुओं से कहते, 'अलख इलाही जगत् गुरु, दूजा कोई नाहिं।'—'जो अलख था वही ईश्वर और गुरु है।'

दादू की साधना प्रेम और भक्ति की साधना थी। उनके अनुयायियों और भक्तों को लोग ब्रह्म-सम्प्रदायी कहा करते थे। वे अपने शिष्यों और भक्तों के साथ नृत्यगीत में विभोर हो जाते। गुजरात के काठियावाड़ अंचल में भ्रमण करते समय दादू एक बार भजनियां दल के मंजीरा, वाद्य एवं नृत्य को देखकर मोहित हो गए। उसके बाद वे अपने भक्तों के बीच स्वयं नृत्यगीत में रमने लगे। वे अंतर की आकुलता और भावमयता पर विशेष जोर देते थे। उनकी संगीत-शैली में तान और आलाप की प्रधानता थी। एक बार उन्होंने उस्ताद से कहा, 'भाई, प्रभु की स्तुति क्या इस तरह से गाई जाती है? इस भाव से गान करो कि उनका ही प्रकाश प्रमुख रहे। सतर्क रहना कि तुम्हारे अहं का प्रकाश कहीं बड़ा न हो उठे। ऐसा हुआ तो भजन-स्तुति के साथ तुम्हारी यह ललित कला भी व्यर्थ जाएगी।'

एक बार नारायण ग्राम में होली मनाई जा रही थी। प्रसिद्ध लोकगायक बरवना के गीतों पर लोग झूम रहे थे। दादू ने थोड़ी देर तक सुनने के बाद कहा—'भाई, आज इस बसंत को आपने अपने गीतों को मूर्त करने का जो प्रयास किया है, सब व्यर्थ है। यदि प्रियतम प्रभु के संग मिलन न हुआ तो यह नाचगान सब अर्थहीन है। 'ऐसी देह रची रे भाई, रामनिरंजन पाबो आईं'—अरे मेरे भाई ऐसी आनन्द की रचना करो जिसमें प्रभु का गुणगान हो। दादू के इन शब्दों ने शब्दशिल्पी बरवना को झकझोर दिया। वह भक्त दादू का परमशिष्य हो गया और श्रेष्ठ भक्त के रूप में विख्यात हुआ।

बाद के वर्षों में दादू ने राजस्थान के अम्बर शहर में लगभग चौदह वर्ष बिताए। उनके भक्तों की संख्या बढ़ती गई। वे दिन में गृहस्थ आश्रम का पालन करते लेकिन शाम को दादू के पास इकट्ठा होते। कभी-कभी भिन्न धर्मों के धर्माचार्य और उलेमा भी आ जाते। फिर भक्ति और साधना की चर्चा चल पड़ती। भजन-कीर्तन होने लगता। दादूपंथी इसे अलख दरीबा अर्थात् अलख निरंजन के आनंद-हाट की संज्ञा देते। दूसरी तरफ दादू हर समय प्रभु की साधना में डूबे रहते। प्रेम की साधना में निमग्न रहते। वे गाते—

दादू है को भय घणां, नाहीकौं कुछ नाहि।
दादू नाही हाइं रहु, अपने साहिब मांहि॥

अर्थात् हे दादू! जिसके पास अनेक कुछ है उसे भय भी अनेक है; जिसके पास कुछ नहीं उसे भय भी कुछ नहीं। हे दादू! अपने स्वामी में इसी प्रकार शून्यवत् वास करो—अपनी सत्ता और मैं को निःशेष कर दो।

वे कहते—

जहां राम तंह मैं नहीं, मैं तंह नाहीं राम।
दादू महल बारीक है, दोउ कू नाहीं ठांउ॥

अर्थात् जहाँ मेरे राम है (ईश्वर हैं) वहा 'मैपन' का लेश नहीं, और जहाँ 'मैं हूँ, वहाँ राम नहीं। हे दादू, अत्यन्त सूक्ष्म तथा संकरा है वह श्री मंदिर—उसमें दोनों के लिए जगह नहीं।'

दादू की समग्र सत्ता में उस समय सकरुण आवेदन ध्वनित हो रहा है—

दादू पेआला प्रेम का, साहिब राम पिलाई।
परगट पेआला देहु भरि, मिरतक लेहु जिलाई॥

अर्थात् हे भगवान, हे मेरे स्वामी, प्रेम का प्याला तो तुमने पान कराया किन्तु अब अपना दिव्य दर्शन देकर इस प्याले को पूर्ण कर दो, इस मृतक में इस बार जीवन-दान करो।

एक रचना में भक्त दादू कहते हैं—'हे राम! मेरे समान तुम्हारे अनेक हैं किन्तु तुम्हारे समान तो मेरा और कोई नहीं। दादू का कभी परित्याग न करना। सदा मेरे नयनों में रहना। तुमसे ही सब कुछ होगा—दरस-परस और प्रेम-वैवश्य। मैं जानता हूँ, युग-युगान्त काटने पर भी मुझसे कुछ नहीं होगा। प्रभु, तुम्हारी कृपा होने से एक पल में तुम्हें पा लूंगा। किन्तु मेरी शक्ति द्वारा कोटि-कल्प काल में भी यह नहीं होगा।'

प्रियतम के साथ मिलन की यह साधना दुष्कर तपस्या और दैन्यमय जीवन का पथ नहीं—बल्कि रस-मधुर प्रिय-पथ-यात्रा है। दादू के अंतरंग शिष्य रज्जब की साधना और आचरण में यह रसोज्वल तत्व खूब प्रस्फुटित हुआ है। उनकी

प्रेम साधना में भावमयता के साथ मिश्रित थी प्रियतम के अनुरूप साज-सज्जा। इस वेश-भूषा के सम्बन्ध में प्रश्न करने पर वह दादू का विख्यात अर्थभरा वाक्य कहते, 'भाई, प्रियतम के संग क्या दीन-हीन, अशुचि वेश में मिलना शोभादायक है ? प्रेम, आनंद और ऐश्वर्य—यही तो इस महा मिलन का पाथेय है।'

दादू एक जगह कहते हैं—

मसि करि दीपक कीजिए, सब घट भया प्रकाश।
दादू दीपा हाथ करि, गया निरंजन पास॥

अर्थात् इस साधन-सत्ता-रूप घट का मंथन कर प्रदीप प्रज्वलित करो। उसके आलोक से सारा घर ही प्रकाशित हो गया। दादू, प्रदीप हस्त से निरंजन के पास पहुँच गया।

साधना की सार्थकता ने इस बार दादू के जीवन को रूपांतरित कर दिया। सद्‌गुरु की कृपा से अतीन्द्रिय जीवन का सद्-द्वार उनके सम्मुख उन्मुक्त हो गया। महा-जीवन-पद्‌म रंग और रस से भर कर खिल उठा। उसके सौरभ से चारों दिशाएं आमोद में डूब गईं। अज्ञात आकर्षण से खिंचकर चतुर्दिक से पुष्पलोभी मुमुक्षु-दल लुब्ध भ्रमर के समान आ आकर भीड़ करने लगे। एक के बाद एक भक्त-साधक-दल ने उनका आश्रय ग्रहण किया। दादू के इन प्रधान शिष्यों की संख्या बावन थी। उनमें से कुछ उल्लेखनीय हैं—रज्जबजी, सुन्दरदास (छोटे) जाइसा, माधोदास, प्रयागदास, गरीबदास, बरवनाजी, बनवारीदास, शंकरदास, जन गोपाल, जगजीवन इत्यादि। सम-सामयिक दादू-पंथियों की भाषा में ये सब एक-एक 'खंभा' या 'साधक-स्तम्भ' के प्रवर्तक माने जाते हैं।

दादू के जीवन में कई विलक्षण घटनाएं देखने को मिलती हैं। एक बार दादू चातुर्मास्य—अनुष्ठान के उपलक्ष्य में आंधी-ग्राम में जाकर कुछ दिन रहे। वहाँ भयंकर सूखा पड़ा था। सभी ग्रामवासी दादू के पास गए। दादू की एक भगवत् प्रार्थना से वहाँ वर्षा होने लगी।

टोंक अंचल में एक विराट महोत्सव आयोजित था। साधु-संतों और जन-साधारण इतनी संख्या में जुटे कि खाद्य पदार्थों की कमी हो गई। प्रबंधक चिंतातुर हो दादू के पास गए। दादू ने अपने उपास्य का भोग लगाया और उधर भोज्य का भण्डार अक्षय हो उठा। दादू की अलौकिक शक्ति के कारण कोई बिना प्रसाद ग्रहण किए नहीं गया।

दादू सिद्धि-प्रदर्शन के पक्षधर नहीं थे। केवल भक्तों के कल्याण के लिए ही अपनी सिद्धि का कभी-कभी इस्तेमाल करते थे। उनका मानना था कि किसी उद्देश्य से हरि का भजन करना हो तो भक्ति के उद्देश्य से ही भजन करना चाहिए। अष्टसिद्धि, नव-निधि सब कुछ उस भक्त के सम्मुख सदा आज्ञाकारी के समान खड़े रहते हैं।

दादू कहते हैं—'योग समाधि सुख सुरति से 'सहजै' 'सहजै' आर।' एक ओर योग-समाधि का साधन-पथ और दूसरी ओर आनंद-सुरति; इन्हीं के मध्यवर्ती सहज-पथ का दादू ने प्रधानतया अनुसरण किया। किंतु यह महाप्रेमी क्या योग-साधना की पूर्णतया अवहेलना करते थे? उनकी एक विशिष्ट वाणी में इस पर प्रकाश पड़ता है—'हे दादू! सबद (शब्द) हुई सुई, प्रेम ध्यान हुई तागा, इस काया को ही बनाया अपनी कथा। योगी लोग युग पर युग इसी कन्या का परिधान करते हैं, यह कभी भी छिन्न नहीं होती।'

एक सिद्ध पुरुष के रूप में दादू की कीर्ति पूरे उत्तर भारत में फैल चुकी थी। अकबर के कानों में भी पड़ी। अकबर ने उनके पास दूत भेजा। दूत ने निवेदन किया—'सम्राट आपके साथ साक्षात्कार करने के बड़े अभिलाषी हैं।' दादू ने धीर कंठ से उत्तर दिया, 'भाई मैं समझ नहीं पाता कि मेरे साथ दिल्ली के बादशाह के साक्षात्कार करने का क्या प्रयोजन हो सकता है? मुझे लेकर इतनी खींचातानी क्यों? मेरे लिए तो जाना संभव नहीं है।'

दूत ने लौट कर सम्राट को यह बात बताई। सम्राट ने कहा, 'इस महासाधक के संग इस तरह की बात कर तुमने भला नहीं किया। तुम पुनः वहाँ जाकर निवेदन करो कि भगवत-प्रसंग-लब्ध अकबर आपके दर्शन की प्रार्थना करते हैं। कब और कहाँ भेंट होगी, आप दया कर बतायें।' दूत ने दुबारा सम्राट की प्रार्थना से दादू को अवगत कराया। दादू बोले, 'ऐश्वर्यमय दिल्ली जाकर मिलने से सम्राट उन्हें ठीक तरह पहचान नहीं सकेंगे। फिर उन्हें भी कम असुविधा नहीं होगी। उस भीड़ और आडम्बर में अपने को खोज पाना कठिन होगा।' 'अकबर ने इसके उत्तर में कहलाया, 'राजधानी के मायावी वातावरण में आपको बुलाऊँ, ऐसा मूढ़ मैं नहीं। सागर से एक पात्र जल लाकर सागर का रूप मैं देख सकूँगा? उत्तराखण्ड की एक शिला लाकर ही हिमालय की महिमा क्या समझूँगा? मैं आपके अपने निजस्व परिवेश में, भक्त-साधकों के केंद्रस्थल में ही आपके दर्शन करने आता, किन्तु मेरा दुर्भाग्य कि मैं इस देश का सम्राट हूँ। मेरे आपके यहाँ जाने से बावेला मच जाएगा। आपकी शांति में बाधा पड़ेगी और आपका साधना-स्थल अशांत हो उठेगा। आपके या मुझे किसी को भी स्वस्ति नहीं मिलेगी।' अंत में तय हुआ कि दादू और सम्राट का साक्षात्कार फतेहपुर सिकरी के निकट एक निर्जन प्रांतर में होगा।

अकबर ने उस निर्जन स्थान में डेरा डाल दिया जहाँ दादू पहले से ही उपस्थित था। अकबर के साथ प्रकाण्ड पण्डित भी थे। अकबर ने प्रश्न करना शुरू किया। पूछा—'महात्मन् इस ब्रह्माण्ड-सृष्टि का क्रम क्या है? अल्लाह ने पहले किस वस्तु का सृजन किया? आकाश, वायु जल अथवा भूमि को?'

दादू ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया—'मेरे प्रभु की शक्ति को सीमित क्यों कर रहे हैं सम्राट? सर्वशक्ति के जो आधार हैं उनके लिए कौन आगे कौन पीछे का प्रश्न ही क्यों उठता है?'

एक सबद सब कुछ किया, ऐसा समरथ सोई।
आगे पीछे तौ करै, जे बलहीना होई॥

अर्थात् मेरे प्रभु इतने समर्थ हैं कि वे एक आनंद-ध्वनि से ही समस्त सृष्टि का एक साथ सृजन कर सकते हैं। आगे-पीछे तैयारी करने का प्रश्न तो उनके साथ उठता है जो बलहीन हो।

अकबर का अन्य सवाल था, 'साधारण लोगों की धारणा है कि संत कबीर अपनी साधना के द्वारा अध्यात्म-तत्व का जो कुछ मक्खन था, मथकर ले गये। इस कथन का अर्थ क्या है?

दादू यद्यपि कबीर को गुरु की तरह मानते थे फिर भी इस प्रश्न ने उद्वेलित कर दिया। वे बोले, 'कोई कितना बड़ा साधक क्यों न हो, इस भगवत्-रस-सागर को कौन उलीच कर खाली कर सका है? यह केवल संकीर्ण चित्त की कल्पना है। यद्यपि कबीर मेरे गुरु स्वरूप हैं फिर भी मैं गुरु के नाम पर अन्याय को प्रश्रय नहीं दे सकूँगा। अपने गुरु को लाठी बनाकर दूसरे का माथा फोड़ने जाना—यह तो अपने ही गुरु का घोर अपमान है।'

दादू के ज्ञान से चकित एक पण्डित ने प्रश्न किया, 'दादू! तुम्हारा शास्त्र कौन है? साधना की पद्धति और मंत्र क्या है?'

दादू ने कहा, 'अपने इस काया-महल में ही मैं नमाज पढ़ता हूँ। वहाँ कोई जन-प्राणी नहीं आ सकता। मन की माला पर मेरा निरंतर जप चलता है। इसी से स्वामी का मन तुष्ट रहता है। चित्त-सागर में मेरा स्नान और 'वजू' चलता है। फिर निर्मल अंतर को बिछाकर, अपने प्रभु की वंदना करता हूँ। उसके चरणों में अपने को अर्पित कर देता हूँ।' सम्राट विस्मय-विमुग्ध नेत्रों से इस सिद्ध पुरुष की ओर देखते रहे।

दादू के शिष्यों के मुताबिक सम्राट और दादू के बीच यह संवाद चालीस दिनों तक चला।

अंबर में रहते हुए भी दादू कभी अंबर नरेश राजा भगवंतदास से मिलने नहीं गए। राजा का अहं जाग उठा। वह स्वयं दादू की कुटिया पर आए। पूछा, 'आप कितने दिनों से रह रहे हैं यहाँ?'

'बहुत वर्षों से रहता हूँ।'

'आपको तो कभी देखा नहीं?'

दादू ने कोई उत्तर नहीं दिया।

दादू की दो लड़कियां विवाह योग्य हो गई थीं। राजा ने पूछा, 'इन लड़कियों का विवाह की उम्र क्या बीत नहीं रही है ?'

'लड़कियों ने अध्यात्म जीवन को ही गले लगा लिया है। साधन-भजन में ही वे लीन हैं। 'जो पति बर्‍यो कबीर जी, सो करि बर्‍यो निचाहि।'—कबीर ने जिसे पतिरूप में वरण किया था, कन्याओं ने उसे ही पतिरूप में ग्रहण कर लिया है।' दादू ने सविनय उत्तर दिया।

राजा चले गए किन्तु दादू ने कुछ दिनों बाद अंबर त्याग दिया। मारवाड़, बीकानेर, कल्याणपुर आदि स्थानों का भ्रमण करते हुए नारायणा में डेरा जमा दिया।

दादू की साधना का पथ है सहज पंथ। भौतिक एवं शाश्वत जीवन के बीच सहज योग-सूत्र की स्थापना ही इसकी परिपूर्णता और सार्थकता है। इसीलिए उन्होंने कहा है—'नदी के समान एक संग ही प्रतिदिन की साधना और शाश्वत साधना के भीतर अपने को ढाल लो। व्यर्थ ही संसार के कर्तव्य को बाधा देकर अस्वाभाविकता का बेड़ा न खड़ा करो। एक ही साथ अपनी सेवा द्वारा दोनों वाद वालों को तृप्त करो, फिर सहज योग के आनंद से उद्वेलित हो महासागर में जाकर मिलन के आनंद का उपभोग करो। भक्त साधक के जीवन में नदी का धर्म और द्वैत-साधना ही विकसित हो उठे।' किन्तु दादू के इस मत से सभी शिष्य सहमत नहीं हुए। बहुत से ऐसे थे जो साधना के लिए संसार को त्याग देना चाहते थे। दादू पंथी नागा संन्यासियों की संख्या भी काफी थी जो परवर्ती काल में उत्तर भारत में प्रभावी हुए।

दादू ने अपने भक्तिगीतों के दो संग्रह-ग्रंथों की रचना का अपने शिष्यों को निर्देश दिया। उनके हिन्दू शिष्य जगन्नाथजी और मुस्लिम शिष्य रज्जबजी ने क्रमशः 'गुण गञ्जनामा' तथा 'सर्वांगी' नामक दो संकलन किए। इनमें मरमी साधना के पदों और संगीत का समावेश है। अन्य सम्प्रदायों के भक्तिसाधकों की रचनाएँ भी इसमें संग्रहीत हैं।

दादू की साधना के मुख्य रूप से दो सूत्र हैं—ईश्वर-प्रेम और ईश्वर-विरह। यह प्रेम और विरह ही चरम सत्य है। क्योंकि मनुष्य की आत्मसत्ता तो परम प्रभु की ही सृष्टि है और परम प्रभु के रस-सिंचन से ही वह जीवंत है। प्रभु के लिए भक्त जैसे रोता फिरता है—भक्त के लिए भी हमारे प्रभु वैसे ही व्याकुल, विरह-विधुर नहीं? प्रियतम का प्रेमाकर्षण ही तो मानव-साधना के रस-सागर को अविरत उद्वेलित करता रहता है।

हां भाई,
म्हारो लागी राम वरागी

तजा नहीं जाई।
प्रेम बिथा करत उर अन्तर
बिसरि सुख नहीं पाई
जोगिन है फिरूँगी विदेश
जिउ की तपन मिटाई।
दादू को स्वामी है रे उदासी
घर सुख रहा किमि जाई।

दादू की प्रेम-साधना में नाम-जप का स्थान बहुत ऊँचा है। वह कहते हैं—पहले नाम-श्रवण होता है, फिर नाम में रस उपजता है, इसके बाद हृदय में नाम-ज्ञान ध्वनित होता है, फिर मन मगन होता है और प्रति रोम-कूप में भक्ति और प्रेम-रस उफनता है। उनके 'सहज-पंथ' ने भक्त और साधक के सम्मुख सहज तीर्थ का पथ खोल दिया था—'सहज समर्पण सुमिरन सेवा, तिरबेनी तट संगम सवरा।' सहज आत्मसमर्पण, स्मरण और सेवा के द्वारा ही इस पुण्यत्रिवेणी पर साधक पहुँचने में समर्थ होता है। दादू ने काया के मध्य कायाहीन का और सीमा के मध्य परम असीम का दर्शन पाया था। उन्होंने कहा है—'मैंने त्रिकुटी का तीर काया के अंतर में ही पाया है। प्रभु ने सहज ही स्वयं को प्रकाशित किया और सारे शरीर में परिव्याप्त हो गए। काया के भीतर ही पाया उस निराकार को। अपनी काया के अंदर ही मैंने पाया उनकी असीम-अनाहत वंशी-ध्वनि को। शून्य-मण्डल में विराजित हो उन्होंने अपने को सुप्रकट किया, काया के अभ्यंतर ही दर्शन किया देवों के देव का। प्रभु मेरे अलख और अनिर्वचनीय हैं।'

प्रेम-साधना की सार्थकता ने दादू की सत्ता को पूर्ण कर ऊपर उठा दिया है। बहिरंग जीवन पर एक यवनिका गिरती जा रही है। अंतर्लोक में चल रहा है—अविराम आनंद-रसपान। वह अब मौन हो गए हैं। इससे हैरान भक्त-प्रवर वाजिद खां पूछते हैं—आप पहले भक्तों और मुमुक्ष साधकों का साथ देते थे। उनके साथ आनंद-चर्चा चलाते थे। इस समय केवल भगवान में लीन रहते हैं। क्या भगवान के बनाए गए मनुष्यों का कोई मूल्य नहीं?' दादू ने उत्तर दिया—'निश्चय ही है भाई! मनुष्य सच्चे रूप में जो पाना चाहता है, वह उसे भगवान के माध्यम से ही पाना होगा।' परम-प्रभु के मध्य ही तो सब विधृत हैं। इसी से उसके भीतर से देखना ही तो यथार्थ देखना है, उसे पाना ही तो यथार्थ पाना है—

देव निरंजन पूजिए, सब आयो उस माहिं।
डाल पात फल फूल सब दादू न्यारे माहिं॥

मन के गोपन मणि-कोण में प्रेममय स्वामी के साथ दादू का रास-रंग और अनिर्वचनीय लीला-विलास सदा ही चलता रहता है। श्यामसुंदर वनमाली दादू

के वनमाली के रूप में अवतीर्ण हो जाते हैं। अंतर्कुंज में रास का यह रस-माधुर्य, यह परम-अमृत त्याग देना क्या दादू चाहेंगे? इसी से उन्होंने अपनी आकुल आकांक्षा प्रभु के ज्ञापित की 'जुगि-जुगि तारनहार जुगि-जुगि दरशन देखिये, जुगि-जुगि मंगलचार जुगि-जुगि दादू भाइये!'

दादू अपने जीवन के अंतिम काल में रसोज्वल साधना के दीर्घ पथ को पार कर पहुँच गए थे। राजस्थान के छोटे से जनपद नारायणा में वास कर रहे थे। महासमाधि का परमलग्न आ गया था। भक्तगण भी जान गए थे। तमाम साधु-महात्मा भी आ गए थे। ऐसे समय दादू अपने हर्षोत्फुल्ल कंठ से बोल उठे—

दादू मम सिर मोटे भाग, साधूं का दर्शन किया।
कहा करै जमकाल, राम रसाइन भर दिया॥

अर्थात् कैसा है मेरा सौभाग्य! इन साधुओं का दर्शन किया। राम-रसायन पान किया, अब काल-यम मेरा क्या करेंगे?

१६०३ खृष्टाब्द, ज्येष्ठमास, कृष्णाष्टमी, शनिवार—दादू ने शरीर त्याग दिया। उस समय वे उनसठ साल के थे। नारायणा में आज भी दादू की 'गद्दी' परम श्रद्धा से पूजी जाती है। उनके ग्रंथ के सम्मुख देश-देशांतर के साधक और भक्तगण अपनी प्रणति अर्पित करते हैं।

●

७

गुरु नानकदेव

नानक को एक दिन पंडित जी पढ़ा रहे थे। नानक ने पूछा, 'यह अनाप-शनाप पढ़ कर क्या होगा पण्डित जी? इतनी देर परमेश्वर का नाम लेता तो अच्छा था। जब एक दिन इस दुनिया से जाना ही है तो यह मगज-पच्ची क्यों?' पण्डित जी विस्मय से नानक को देखने लगे थे।

नानक के पिता कालू बेदी पुत्र के इस तरह की बातों से चिन्तित रहने लगे थे। जंगल-जंगल घूमना, पढ़ाई-लिखाई से दूर भागना, एकांत में घण्टों बैठे रहना—कालू के लिए चिंता का विषय थे। वह अपने एकमात्र पुत्र से कैसे अपेक्षा कर सकते थे कि उनके न रहने पर नानक खेती-बारी सम्हाल लेगा?

नानक का उपनयन संस्कार था। गाँव के सारे लोग भोज में शरीक होने के लिए आए थे। नानक ने उपनयन मण्डप में ही पण्डित जी से पूछ लिया, 'पण्डित जी, ऐसे शास्त्रीय अनुष्ठानों से क्या लाभ? यह यज्ञ-सूत पहनाकर नश्वर शरीर को अमर तो नहीं किया जा सकता? इस सूत की माला से प्रभु के नाम की माला ज्यादा भली है। कल्याण की शक्ति तो उसी में है।'

पिता नानक की बात सुनकर बहुत दुखी हुए। वे मण्डप से उठकर चले गए।

अंततः नानक के व्यवहार से क्षुब्ध होकर कालू बेदी ने नानक के घर से बाहर जाने पर पाबंदी लगा दी। भजन गाने से मना कर दिया। यह बात जब मुसलमान जमींदार जिन्हें लोग राय बुलाड़ कहते थे, को पता लगी तो उन्होंने कालू को बुलवाया। भरे गले से बोले, 'कालू यह क्या सुना है मैंने? क्या नानक जैसे मासूम बच्चे को डंडे से पीटना कोई समझदारी की बात हो सकती है? अचानक कैसी सनक सवार हो गई है, तुम पर!'

'अब सहा नहीं जाता हुजूर!' कालू ने कहा, 'उस छोकरे ने मुझे मुसीबत में डाल दिया है। न पढ़ता है, न लिखता है। न कोई काम, न धंधा। बस जंगल में भटकता रहता है। बस गीत गुनगुनाता रहता है। खाने-पीने की सुध भी नहीं रहती। लगता है, किसी काम लायक नहीं रहेगा।'

'सुनो, कालू, तुम्हारे लड़के के चेहरे से लगता है कि वह सामान्य लड़का नहीं, खुदा का खास बन्दा है। उसे लीक में जोतने की तुम्हारी कोशिश कामयाब नहीं होगी।'

कालू को कुछ कहते नहीं बना। उन्होंने तय कर लिया कि अब वह नानक पर सख्ती नहीं करेंगे। जो उसके भाग्य में होगा, बनेगा।

नानक का जन्म सन् 1469 ईस्वी के बैसाख मास में लाहौर से लगभग 30 किलोमीटर दूर गुजरांवाला जिले के तालवंडी गाँव में हुआ था।

वह समय भारत में मुस्लिम शासन का पूर्वमध्यकाल था। दिल्ली के तख्त पर सुल्तान बहलोल लोदी बैठा था। उसके शासनकाल में हिन्दू जनता पर मुस्लिम जुल्म पराकाष्ठा पर था। लेकिन तालवंडी गाँव और उसके आसपास का इलाका लगभग शांत था।

कुछ सालों के बाद नानक की बहन नानकी की शादी धूम-धाम से हो गई। अब माँ तृप्ता ने घर का सूनापन दूर करने के लिए नानक का विवाह करने का निश्चय किया। नानक का विरोध काम नहीं आया। अंततः महज चौदह की उम्र में गुरुदासपुर जिले के बाताला नामक गाँव की एक रूपवती, सुशील तथा गुणवती कन्या सुलक्षणी से नानक का विवाह हो गया। लेकिन इससे नानक की दिनचर्या में कोई अंतर नहीं आया।

नानक फारसी पढ़ लेंगे तो उन्हें अच्छी नौकरी मिल जाएगी—जमींदार की इस सलाह पर पिता कालू ने बेटे को फारसी पढ़ने के लिए मौलवी रूकनउल-उद्दीन के चटसार में भेज दिया। थोड़े ही समय में नानक ने फारसी की बहुत सी आयतें सीख लीं। मौलवी साहब नानक की प्रगति से भौंचक और प्रसन्न थे। कभी-कभी जब नानक सवालों के जवाब में सादे पन्नों पर स्वरचित भजनों की पंक्तियाँ लिख दिया करते, तभी दुखी हो जाते मौलवी साहब। एक दिन नानक ने मौलवी साहब के चटसार को हमेशा के लिए छोड़ दिया। इससे पिता कालू बहुत ही क्षुब्ध और कुपित हो गए। उन्होंने नानक को खेती के काम में लगा दिया।

एक दिन नानक भैसें चराने सीवान में गए। भैसें विशाल चरागाह में चरने लगीं और स्वयं एक एकांत स्थान देखकर ध्यानमग्न हो गए। पता नहीं कब नींद आ गई। देर तक घर नहीं वापस हुए। इधर भैंसें चरागाह से सटे हुए भट्ट जी के खेत में आराम से चर रहीं थीं। धुंधला होने पर भट्ट जी खेत देखने आए तो अपने खेत में भैंसों को चरते हुए देखकर आग बबूला हो गए। वे नानक को जोर-जोर से डाँटने-फटकारने लगे। शोर सुन कर कुछ और किसान वहाँ आ गए। उन लोगों ने भट्टजी को जमींदार से शिकायत करने की सलाह दी। भट्टजी जमींदार के यहाँ गए और अपनी फसल को नुकसान पहुँचाने की शिकायत करके दहाड़ मार कर रोने लगे। जमींदार ने खेत का मौका मुआयना करने के लिए अपने आदमी दौड़ाए। लोगों ने आकर देखा कि खेत में एक तिनका भी नहीं चरा गया है। पूरी फसल सही-सलामत है। लोग इस चमत्कार को देख कर भौंचक रह गए।

इसकी चर्चा दूर-दूर तक फैलने में देर नहीं लगी। नानक के पिता कालू ने भी चैन की सांस ली, नहीं तो पता नहीं कितना दण्ड भरना पड़ता भट्टजी को।

खेत में बुआई हो रही थी। पिता जमींदार के यहाँ जा रहे थे। नानक को सहेज गए कि वह बुआई हो जाने के बाद खेत की रखवाली करें ताकि पक्षी दाने न चुगने पाएँ। नानक खेत पर गए। पेड़ की छाया में बैठ गए। बुआई होने के बाद तोतों का झुण्ड खेत में उतर गया। जंगल से ढेर सारे तीतर भी आ गए। पक्षी खेत में डाले गए बीज चुगने लगे। यह देखकर नानक की खुशी का ठिकाना न रहा। वह स्वरचित भजन की दो पंक्तियाँ गाते हुए नाचने लगे—

'रामजी की चिरई, रामजी का खेत,
खाले चिरई, भर-भर पेट।'

जब पिताजी जमींदार के यहाँ से खेत पर लौटे तो यह दृश्य देखकर दंग रह गए। उन्होंने पक्षियों को उड़ाया और नानक को कसकर डाँट पिलाई। इसकी शिकायत पत्नी से भी की। उन्होंने भी नानक को फटकार लगाई। पक्षियों के बीज चुगने के बावजूद उस खेत में इतना अनाज पैदा हुआ जितना कभी नहीं हुआ था।

कई दिनों से घर के एक कोने में गुमसुम बैठे नानक को देखकर माँ की चिंता बढ़ी। डरते-डरते वह बेटे के पास गईं। कही, 'इस तरह भोजन-शयन की सुध-बुध खोकर घर के कोने में बैठे रहोगे तो लोग क्या कहेंगे? तुम्हारी दुल्हन के मन में कितनी वेदना हो रही होगी, इसका अंदाज है तुम्हें? जरा लोक-रीति का भी ध्यान रखो बेटा।'

माँ के कथनों का उत्तर नानक ने एक भजन के जरिए दिया।

फिर पिता ने समझाया, 'बेटा मुझसे गृहस्थी का बोझ अब नहीं सम्हल रहा है। इस तरह बैठे रहने से कैसे गुजारा होगा?'

उत्तर में नानक ने गीत की ये पंक्तियाँ सुनाईं—

'एहु तनु धरती, बीच बीज करमन बहु
बरिसे सारिंग पानी
मन किसानु हरि हिरदे जमायो
उपजे फसलि निरबानी।'

इस शरीर रूपी धरती में विविध सत्कर्म के बीज उन्होंने बो दिये हैं। राम अपनी कृपा-दृष्टि से इस खेत को जब सींच देते हैं तो निर्वाण की फसल आप ही उपज आती है। मन, किसान की तरह हृदय में हरि-नाम का बीज जमा रखे— इतना ही आवश्यक है इसके लिए।

'अच्छा, यह सब रहने दो, यह बताओ कि व्यवसाय में मन लगेगा?' पिता ने पूछा।

'कारबार की चिन्ता ही तो कर रहा हूँ पिताजी। प्रभु ने नाम की जो पूँजी दे रखी है, उसका हिसाब क्या दूँगा ? यह चिंता ही तो मुझे बेचैन किए रहती है।' नानक ने उत्तर दिया।

नानक की बात सुनकर कालू हताश हो गए। उन्होंने समझ लिया कि यह लड़का कुछ करने वाला नहीं है।

एक बार नानक ने कई दिनों तक अन्न-जल नहीं ग्रहण किया। घर के लोग घबरा गए। जमींदार के यहाँ से हकीम बुलाए गए। हकीम ने नाड़ी देखी। घर वालों से कुछ प्रश्न किया। इसी दौरान नानक ने एक भजन गुनगुना कर सबको स्तब्ध कर दिया। भजन का भावार्थ था—'यदि भव रोग की कोई औषधि है तो मात्र प्रभु नाम का स्मरण। इस व्याधि से नानक पीड़ित है उसका इलाज हकीम के बस की बात नहीं है।'

अंत में हकीम ने घरवालों से कहा, 'इस युवक को कोई रोग नहीं है। यह तो सिर्फ अल्ला के प्यार का मरीज है। यह मर्ज किसी खुदकिस्मत को ही नसीब होता है। धीरे-धीरे सब ठीक हो जाएगा।'

हकीम की बात से घर वालों की चिंता दूर हो गई।

पिता के कहने पर नानक एक बार गाँव में बिसातबाने की दुकान खोलने के लिए थोक मण्डी से सामान लेने एक नौकर बाला के साथ चले। मण्डी से लगभग एक कोस पहले पेड़ों के झुरमुट में विश्राम के लिए रूके। जब चलने को हुए तो दिगम्बर साधुओं का एक झुण्ड आ पहुँचा। सभी नग्न, जटाजूट बढ़ाए हुए। नानक ने एक-एक कर सभी के चरणों में दण्डवत किया। बाला ने भी दुहराया। नानक की श्रद्धा-भक्ति से साधु गण प्रसन्न हुए। इस जमात के मुखिया वृद्ध साधु ने नानक को अनेक आध्यात्मिक प्रसंग सुनाए। युवा साधु खाना पकाने के लिए सूखी टहनियां तोड़ने बाग में निकल पड़े।

नानक ने जटाधारी साधु से विनयपूर्वक पूछा, 'बाबा, आप लोगों के पास न अन्न है, न कोई पात्र। फिर खाना कैसे बनाएँगे ?'

बाबा ने कहा, 'प्रभु का प्रेम जब संसार का त्याग आवश्यक कर देता है तब प्रभु पर भरोसा करने के अलावा कुछ भी आवश्यक नहीं रह जाता। यह बात महात्मा कबीरदास हमें बता गए हैं'—

'साधु गाँठ न बाँधई, उदर समाता लेइ,
आगे पाछे हरि खड़ा, जब मांगे तब देइ।'

'मान लो प्रभु आज हमें भूखा ही रखना चाहते हों तो उनकी मर्जी भी कबूल है। हम उनकी मर्जी के खिलाफ तकरार क्यों करें। भोजन की सामग्री वह नहीं भेजेंगे तो नहीं बनेगा। किन्तु वो धूनी तो रमेगी ही। लकड़ियाँ उसी में काम आएँगी।'

नानक ने पिता द्वारा व्यापार के लिए दी गई पूँजी साधु को विनम्रतापूर्वक दे दी। बाला बाजार से भोजन की सारी सामग्री ले आया। साधुओं को भोजन कराकर नानक को अति तृप्ति हुई। वे बाला के साथ अपने घर लौट आए।

पिता ने जब बाला से यह बात सुनी तो आग-बबूला हो गए। वह नानक को मारने के लिए उद्यत हुए लेकिन गाँव वालों के हस्तक्षेप से बच गए। यह बात जब जमींदार को पता लगी तो उसने कालू और नानक को बुलवा भेजा। नानक के मासूम चेहरे को देखकर जमींदार की आँखों से आँसू बह निकले। उन्होंने नानक को छाती से लगा लिया और उन्हें पास में बैठने की जगह दी। अलग हटकर बैठे दुखी और निराश कालू से जमींदार ने कहा, 'साधुओं को भोजन कराकर नानक ने कोई गलत काम तो नहीं किया। इसने तो अपने देश और धर्म के सुसंस्कारों को ही प्रमाणित किया है। कालू जी, तुम्हारा पुत्र निर्दोष ही नहीं ज्ञानी, गुणी और प्रशंसनीय भी है। इसे सांसारिक हानि-लाभ का ज्ञान नहीं लेकिन अच्छे-बुरे का विचार करने में इसने कोई गलती नहीं की। जिसे अल्लाह ने जिस काम के लिए पैदा किया है, उससे दूसरा काम ले लेना संभव नहीं होता। नानक व्यापार से मुनाफा कमाने के लिए पैदा नहीं हुआ है। अल्लाह ने इसे कहीं बड़े काम के लिए पैदा किया है। तुम्हारे कुछ रूपये नानक ने खर्च कर दिए। वे रूपये मैं तुम्हें अभी दे देता हूँ। मगर इस निरपराधी बालक पर हाथ उठाकर तुम अल्लाह की नजर में गुनहगार हो गए हो। आगे ऐसी गलती मत करना कालू जी।'

थोड़ा ना-नुकुर के बाद जमींदार से पैसे लेकर कालू नानक के साथ घर आ गए।

लेकिन अगले ही दिन एक और घटना घट गई। नानक स्नान करके आ रहे थे। रास्ते में एक अवधूत भीख मांग रहा था। उसने नानक के सामने भी हाथ फैलाया। नानक ने पीतल का लोटा और शादी में मिली सोने की अंगूठी उसे दे दी।

घर खाली हाथ लौटे तो पिता ने पूछा। नानक ने सही-सही बात उन्हें बता दी। पिता का धैर्य जवाब दे गया। उन्होंने नानक को घर छोड़ देने का हुक्म दे दिया। नानक की बहन नानकी को जब यह बात मालूम हुई तो उसने नानक को अपने घर सुल्तानपुर बुला लिया। नानक सुल्तानपुर आ गए। उनके साथ उनका भृत्य बाला भी था। नानकी के पति जयराम की उन दिनों सुल्तानपुर के नवाब के दरबार में बहुत इज्जत थी। उनके प्रयास से नानक को सरकारी सरबदराह महकमे में नौकरी मिल गई। विभाग में नानक की साख जम गई।

जयराम के घर साधुओं का जमावड़ा लगा रहता था। हमेशा भण्डारे जैसी स्थिति रहती थी। यह बात कुछ मुसलमान कर्मचारियों को बुरी लगती थी।

उन्होंने नवाब से शिकायत की, 'जयराम के घर पर काफिर भिखारियों की भीड़ लगी रहती है। हमें शक है कि खाने-पीने की चीजें मालगोदाम से ले जाई जा रही हैं। दोनों साले-बहनोई हमारी नजर के सामने सरकारी दौलत को पानी की तरह बहाकर लूट मचाते रहें, यह तकलीफदेह है। इस लूट का पता लगाने के लिए मालगोदाम की जांच बाहर के हिसाबनवीशों से कराई जाय।'

नवाब ने जांच का हुक्म दे दिया और दूसरे ही दिन हिसाबनवीशों का एक दल मालगोदाम पर पहुँच गया। इधर जांच होती रही, उधर नानक 'तेरा-तेरा' बुदबुदाते बैठे रहे। शाम तक जांच चलती रही। मालगोदाम का हिसाब-किताब बिल्कुल ठीक पाया गया। जांचकर्ताओं ने नवाब से नानक की दक्षता की प्रशंसा की। नवाब ने नानक को दरबार में बुलाकर सम्मानित किया। उस समय भी नानक मन में 'तेरा-तेरा' का जाप करते रहे।

पंजाबी में तेरा का अर्थ होता है तेरह लेकिन नानक के तेरा का अर्थ था—प्रभु सब कुछ तुम्हारा है। मेरा कुछ नहीं है—'जा कछु है सो तेरा।'

कुछ दिनों बाद नानक की पत्नी सुलक्षिणी भी सुल्तानपुर आ गई। उसने दो पुत्रों को जन्म दिया—श्रीचन्द्र और लक्ष्मीचन्द्र। पंजाब के सिखों में वे सिरीचाँद और लक्ष्मी चाँद के नाम से जाने गए।

सुल्तानपुर में नानक कई वर्ष तक रहे। इस दौरान उनके कई मित्र भी सुल्तानपुर आ गए। नानक ने सभी को सरकारी नौकरी दिलवाई। इनमें एक मर्दाना नामक मुसलमान भी था। वह नानक के साथ ही रहता था और परिवार का अंग बन गया था।

सुल्तानपुर के समीप रोहरी नामक विशाल जंगल था। नानक कभी-कभी उस जंगल में घुस जाते। रात भर साधना चलती, सुबह आते। एक बार उस जंगल में गए तो तीन दिनों तक बाहर नहीं आए। कहते हैं तीन दिनों के उसी एकांतवास में नानक को पूर्ण आत्मसिद्धि का मार्ग मिल गया। संभवतः उसी अवधि में उन पर उस गुरु-भक्ति की भी कृपा-दृष्टि हुई, जिसकी महिमा का गान वे कृतज्ञतापूर्वक करते हैं, किन्तु जिसके रूप-नाम के संबंध में निरन्तर मौन हैं। तीन दिनों के उसी अज्ञातवास में नानक को प्रभु का आदेश प्राप्त हुआ था—'नानक! अब मैं निरंतर तुम्हारे अन्तर में रहूँगा। तुम निर्लिप्त भक्त पुरुष के रूप में जगत् के अशेष प्राणियों के उद्धार का कार्य शुरू कर दो।'

नानक ने नवाब की नौकरी छोड़ दी।

नानक के वैराग्य की संभावना ने पत्नी सुलखनी को दुख के अपार सागर में डुबो दिया। वह प्रायः रोती रहतीं। एक दिन नानक ने कहा, 'रो मत सुलखनी!' नानक पत्नी के पास जाकर बोले, 'अपने व्यक्तिगत योग-क्षेम को

इतनी कल्पित महिमा मत दो कि जगत् के शेष प्राणियों के प्रति अपने कर्तव्य का सर्वथा विस्मरण हो जाय। अपने चारो ओर फैले विश्व की दीन-दशा पर विचार करोगी तो अपने सुख-दुख की चिन्ता की तुच्छता स्वत: प्रकट हो जाएगी। सामाज में हिंसा, कलह, द्वेष, लोभ, मोह, शोक, अहंकार और उत्पात का जो वातावरण है, क्या उसके निवारण के प्रति तुम्हारा कोई दायित्व नहीं है? ऐसा मत समझो कि मैं लौट कर वापस कभी न आऊँगा। मेरा व्रत ही है, गृहस्थ बना रह कर जगत् की और प्रभु की आराधना करते रहने का। इसलिए अभी तो तुम मुझे प्रसन्नातापूर्वक इस घर से विदा कर दो।'

पत्नी को आश्वासन देकर नानक उसी दिन देशांतर-भ्रमण के लिए निकल पड़े। उनके साथ उनका बाल सखा मर्दाना भी था। सत्संग के दौरान लोग पूछते—'आप किस पंथ के साधु हैं? आपका मठ कहां है?'

'हमारा किसी पंथ से कोई विरोध नहीं। इसलिए हम किसी मठ या पंथ की ओर से नहीं आए। आप पंथ का आग्रह रखते हों तो हमे निरंकारी कह सकते हैं। हम उस निराकार की आराधना करते हैं जिसने इस अखिल सृष्टि के नाम—रूपों को आकार दिया है और जिसका एक आकार यह असीम विश्व भी है। निरहंकार होकर उस निराकार की उपासना करने वालों को निरंकारी कहकर जानना-पहचानना आपके लिए आसान होगा।'

नानक कहते—'ऊँच-नीच, हिन्दू-मुसलमान जैसे भेद हमारे लिए निरर्थक हैं। हम यह भी देख रहे हैं कि इस मुल्क में जैसे हिन्दू अब सच्चे हिन्दू नहीं रहे, वैसे मुसलमान भी सच्चे मुसलमान नहीं रह गए। हम सच्चे मुसलमानों को उतना ही प्यार करते हैं, जितना कि सच्चे हिन्दुओं को।'

मुसलमानों के बारे में नानक के इस कथन की शिकायत काजी से की गई। काजी काफी क्रोधित हुआ। उसने नवाब से शिकायत की—'नानक हिन्दू खानदान में पैदा हुआ, उसे इस्लाम के बारे में बोलने का हक नहीं है। उसे जल्दी रोका नहीं गया तो इलाके में बदगुमानी फैल सकती है।'

नवाब ने नानक को दरबार में हाजिर किए जाने का हुक्म दिया। नानक यथासमय दरबार में हाजिर हुए। नवाब ने पूछा—'तुम कहते फिरते हो कि इस मुल्क में कोई भी मुसलमान सच्चा मुसलमान नहीं है। तो क्या तुम्हारी नजर में मैं भी सच्चा मुसलमान नहीं हूँ?'

'नवाब साहब, मैं किसी को तकलीफ पहुँचाने के लिए कुछ नहीं कहता', नानक ने संजीदगी से कहा, 'पर सचाई के तकाजे पर जायज बात कहने में मुझे कोई हिचक नहीं होती। इसके साथ-साथ यह भी सच है कि मुझे किसी मजहब के खिलाफ कोई द्वेष नहीं है। धार्मिक भेदभाव को मैं अनुचित मानता हूँ। मेरी

नजर में वही मुसलमान सच्चा मुसलमान है जो सत्य के प्रति श्रद्धालु होगा और रसूल के उपदेश जिसके आचरण के ही सहारे उदाहृत और प्रचारित हुए होंगे। जिसके जीवन में इस्लाम की अच्छाइयाँ सचाइयों की शक्ल ले चुकी हैं, उसे सच्चा मुसलमान मानने में मुझे एतराज नहीं है। सच्चा मुसलमान निरभिमान, निर्लोभ, निष्काम और शान्त प्रकृति का व्यक्ति होता है। वह स्वयं भी निर्भय होता है और दूसरों की निर्भयता में भी खलल नहीं पहुँचाता। उसकी जिन्दगी अल्लाह की मर्जी के हवाले रहती है और वह अल्लह-तलाह के ही जमाल को देखता रहता है। मुझे बड़ी खुशी होगी अगर हमारे नवाब साहब और उनके काजी साहब को पूरी सच्चाई के साथ इसका एहसास हो रहा हो कि वे सचमुच सच्चे मुसलमान हैं।'

नवाब साहब को महसूस हुआ कि नानक के इस कथन से कुफ्र का कोई सरोकार नहीं है। दरबारियों की भी यही राय थी।

नमाज का समय हो रहा था। नवाब ने परिहास के स्वर में कहा—'तुम हिन्दू और मुसलमान में कोई फर्क नहीं करते। इसलिए मंदिर और मस्जिद में भी फर्क नहीं करते होगे। क्या हमारे साथ नमाज अदा करने मस्जिद चल सकोगे?'

नानक ने कहा—'मैं मंदिर में जाता हूँ तो मस्जिद में भी जरुर जा सकता हूँ। नमाज में आपके साथ शरीक होना मुझे मंजूर है।' नानक नवाब के साथ मस्जिद चले गए।

मस्जिद से वापस आते हुए काजी ने नवाब से कहा,—'नानक मस्जिद में चुपचाप हाथ बाँधे खड़ा रहा। इसने नमाज अदा करने में हमारा अनुकरण नहीं किया।'

नवाब ने इस सम्बंध में जिज्ञासा प्रकट की तो नानक बोले, 'काजी साहब ने ठीक ही फर्माया है। मुझे यह देखकर दुख हुआ कि नमाज के वक्त भी काजी साहब का ध्यान अल्लाह पर न रहा। ये उस समय अपने अस्तबल की उस नई घोड़ी के बारे में सोचते रहे, जिसने दो दिन पहले एक बछड़े को जन्म दिया था। ऐसी हालत में इनका अनुकरण करना मेरे लिए मुमकिन नहीं हो सका।'

काजी यह सचाई सुनकर लज्जित हो गया।

नवाब बोले, 'नानक लेकिन मेरा ध्यान तो घोड़े-घोड़ी की तरफ न था। इसलिए तुम मेरा अनुकरण तो कर सकते थे?'

थोड़ी देर चुप रहने के बाद नानक ने कहा, 'गुस्ताखी माफ हो हुजूर, नमाज के समय नवाब साहब का चित्त कन्दहार के पास-पड़ोस में विचरण कर रहा था। प्रचुर रुपयों के साथ नवाब साहब ने जिस कर्मचारी को कन्दहार भेजा है, उसे तो घोड़ा खरीदने की ही जिम्मेदारी नवाब साहब ने दी थी। इस तरह उस आदमी को दिए गए रुपयों की चिन्ता में घोड़े की चिन्ता भी शरीक हो गई होगी।'

नवाब विस्मित और लज्जित थे। उन्होंने कहा, 'नानक, तुम सचमुच ऊँचे दरजे के फकीर हो। तभी तो दूसरों के दिल की बात जान जाते हो। तुमसे मिलकर आज मुझे खुशकिस्मती नसीब हुई। तुम अपने पंथ का प्रचार करने के लिए इस इलाके में आजाद हो। तुम्हें रोक-टोक करने वाले को मैं कड़ी से कड़ी सजा दूँगा।'

नवाब ने नानक को आदरपूर्वक विदा किया।

नानक घूमते-फिरते सईदपुर नामक गाँव में पहुँचे। वहाँ एक गरीब बढ़ई लालो ने विनयपूर्वक आतिथ्य ग्रहण करने के लिए निमंत्रण दिया जिसे नानक ने स्वीकार कर लिया। लालो और उसकी पत्नी नानक की सेवा में तन-मन-धन से लगी रहतीं। नानक काफी दिन वहाँ रह गए। इस गाँव से थोड़ी ही दूर पठान सूबेदार के दीवान मलिक मागों की कोठी थी। मागो का रूझान कुछ अध्यात्म की ओर हो गया था। वे साधु-फकीरों के लिए लंगर चलाया करते थे जिसमें सुस्वादु व्यंजन परोसे जाते थे। जब उन्होंने सुना कि लालो बढ़ई के यहाँ एक सिद्ध संत रूके हैं तो उनको ईर्ष्या हुई। हमारे यहाँ लंगर में एक दिन भी नहीं आया वह साधु। लालो के यहाँ रूखी-सूखी रोटी पर टिका हुआ है। मागो ने एक दिन नानक को बुला भेजा।

नानक गए तो मागो ने गर्वोक्ति में पूछा, 'हमारे यहाँ लंगर में आप शामिल क्यों नहीं हुए?'

नानक को हँसी आ गई। उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। इस चुप्पी ने मागो को और उत्तेजित कर दिया।

बात आगे बढ़ी तो नानक ने विनम्रतापूर्वक कहा, 'आप अपने लंगर के मालपुए और लालो की सूखी रोटी का अंतर अपनी आंखों से खुद देख लें।'

मागो ने सुस्वादु व्यंजन से भरी थाल मँगाई और नानक के सामने रख दिया। लालो के घर से दो सूखी रोटियाँ मँगाई गईं।

नानक ने पहले रोटियाँ हाथ में लीं और दोनों हथेलियों के बीच में रखकर जोर से गारा। उसमें से दूध की धार बह निकली। फिर नानक ने थाल में से मालपुए उठाए। उसे गारा तो रक्त की धारा बह निकली। फिर नानक ने मागो की ओर देखते हुए कहा—'गरीब लालो की रोटी और आपके मालपुए का फर्क आपकी नजरों के सामने जाहिर हो चुका है। इससे ही आप समझ गए होंगे कि मालपुओं की उपेक्षा करके लालो के घर की सूखी रोटियाँ क्यों खाता रहा।'

नानक की लीला देखकर मागो का घमंड चूर-चूर हो गया। उसने हाथ जोड़कर अपने उद्धार की प्रार्थना की।

इस बीच नानक के इस चमत्कार की चर्चा चारो ओर फैल गई। उनके यहाँ भक्तों का हुजूम उमड़ पड़ा। नानक ने वह स्थान छोड़ देना उचित समझा और मर्दाना तथा बाला के साथ अन्यत्र चल दिए।

दूसरे दिन रात में नानक दस्यु सरदार सुजन सिंह के यहाँ रुके। सुजन का कार्य था अतिथियों को लूटना और मार डालना। बगल के कमरे में कुछ सौदागर रुके थे। रात में सुजन के गोल के दस्युओं की फुसफुसाहट सुनकर नानक की नींद टूट गई। उन्होंने मर्दाना और बाला के साथ भजन गाना शुरू कर दिया। भजन सुनकर सुजन का हृदय विचलित होने लगा। वह आकर नानक के चरणों पर गिर पड़ा। डाकू जीवन त्यागकर नानक का शिष्य बन गया। उसे निष्ठावान सिख के रूप में आज भी स्मरण किया जाता है। उसने अपना सर्वस्व विसर्जित कर उसी स्थान पर एक धर्मशाला बनवाया जहाँ नानक से उसका साक्षात्कार हुआ। वह धर्मशाला प्रथम सिख धर्मशाला के रूप में आज भी स्मरण किया जाता है।

अनेक दिनों की पदयात्रा के पश्चात नानक पंजाब के बटाला नामक स्थान में पहुँचे। रावी के तट पर एक बरगद के वृक्ष के नीचे डेरा जमा दिया। सतसंग चलने लगा। नानक की शोहरत दूर-दूर तक पहुँची। इलाके का दबंग कड़ोरिया को यह सहन नहीं हुआ। वह नानक को सबक सिखाने के लिए घोड़े पर सवार होकर चल पड़ा। उसके साथ सशस्त्र रक्षकों की एक टुकड़ी भी थी। लेकिन रास्ते में एक दुर्घटना हो गई। कड़ोरिया के घोड़े के पैर में मोच आ गई और वह उन्हें लिए-दिए एक खाईं में गिर पड़ा। कड़ोरिया दो दिनों तक बिस्तर पर पड़े रहे।

कुछ दिनों बाद कड़ोरिया फिर बटाला के लिए चल पड़े। जब वे रास्ते में थे तभी उनकी आँखों की रोशनी चली गई। बड़े मुश्किल से उनके अनुचर उन्हें महल में लाए। महल में आते ही उनकी नेत्र-ज्योति वापस आ गई। इस घटना ने कड़ोरिया साहब को आश्चर्य में डाल दिया।

कड़ोरिया घमण्डी व्यक्ति थे। बटाला जाने की धुन उन पर सवार थी। वे फिर घोड़े पर सवार होकर चले। महल के हाते से बाहर होते ही उनकी और घोड़े दोनों की नेत्र-ज्योति चली गई। वृद्ध भृत्य उन्हें महल के भीतर ले गया। फिर आश्चर्यजनक ढंग से उनकी ज्योति भी लौट आई और घोड़े की भी। वृद्ध भृत्य को असली माजरा समझते देर नहीं लगी। वह दोनों हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। बोला, 'गुस्ताखी माफ हो हुजूर! मुझे लोगों ने बताया है कि हुजूर बटालावाले निरंकारी बाबा से मिलने का इरादा लेकर जब-जब विदा होते हैं, तब-तब कोई न कोई अवूझ बाधा उपस्थित हो जाती है। निरंकारी बाबा के महात्म्य की चर्चा घर-घर फैली है। वे महान् सिद्ध पुरुष हैं। ऐसे लोगों से मिलने के लिए पैदल जाने की परम्परा इस मुल्क में है। लाव-लश्कर के साथ जाना साधु बाबा को मंजूर नहीं है। इन विघ्न-बाधाओं के रूप में शायद उनकी वही नामंजूरी जाहिर हो रही है।'

कड़ोरिया के मन में भृत्य की बातें जम गईं। दूसरे दिन वे पैदल ही बटाला पहुँचे। जाते ही नानक देव के चरणों पर गिर पड़े। नानक देव ने उन्हें उठा कर हृदय से लगा लिया और आशीर्वचन दिए।

कड़ोरिया ने विनयपूर्वक कहा, 'महाशय, आपने मेरा दंभ तोड़कर मेरे ऊपर असीम कृपा की है। मैं इस जमींदारी में रहने वाले हर व्यक्ति को अपनी प्रजा मान कर अपनी शान दिखाता रहा। मैं समझ गया हूँ कि अपने को सबसे बड़ा दिखाने की इच्छा सबसे बड़ा पाप है। परमेश्वर इस पाप को सह नहीं पाते। मेरी प्रार्थना है कि इस ऊर्वर भूमि का स्वामित्व अपने धर्म-प्रचार की केन्द्र भूमि स्थापित करने के निमित्त, कृपया आप स्वीकार करें। यहाँ, आपके आश्रम के चारो ओर आपके भक्त-परिजनों की बस्तियाँ बसें और कर्तार के भजन-पूजन का वातावरण तैयार हो—यह मेरी हार्दिक इच्छा है।'

नानक देव ने जमींदार की प्रार्थना स्वीकार की और उस भूभाग का नाम कर्तारपुर रख दिया। धीरे-धीरे यहाँ एक भरा-पूरा गाँव बस गया। नानक पंथी लोगों का जमावड़ा हो गया। तालवंडी गाँव के नानक के परिवार के लोग भी यही आकर बस गए।

नानक देव को अचानक तालवंडी की याद आई। वे अपने दोनों शिष्यों मर्दाना और बाला के साथ वहाँ पहुँच गए। जमींदार अंतिम घड़ियाँ गिन रहे थे! लेकिन नानक देव के आगमन का समाचार सुनकर उनके चेहरे पर प्रसन्नता के भाव उभर आए। उन्होंने नानकदेव की ओर वात्सल्यस्निग्ध दृष्टि से देखा। नानक देव राय बुलाड़ के बालों को सहलाने लगे। बोलें, 'मैं आ गया हुजूर। आपकी बुलाहट का मौन संदेश मेरे पास पहुँच गया था। मैं आपकी आज्ञा मान कर बीच पथ से लौट आया हूँ।'

राय बुलाड़ ने बोलने की चेष्टा की किंतु आवाज उनके मुँह से नहीं फूटी। शायद उनके प्राण नानक की ही प्रतीक्षा में अटके थे। नानक देव को देखने के लिए वृद्ध-जर्जर राय बुलाड़ ने जब आँखें खोलीं तो वे खुली की खुली रह गईं। आँसू बहते-बहते रुक गए और पुतलियाँ ठहर कर बुझ गईं। राय बुलाड़ ने नानक की ओर देखते-देखते आखिरी साँस छोड़ी। मृत्यु का दृश्य इतना उज्जवल, शांतिमय और विश्रुब्ध उल्लास का चित्र अपने पीछे छोड़ जा सकता है, इसका एहसास, इसके पहले किसी को शायद ही हुआ होगा।

राय बुलाड़ के अंतिम क्रिया की तैयारी हो ही रही थी कि नानक देव अपने शिष्यों के साथ वहाँ से चल दिए। कर्तारपुर से काफी आगे निकल आए। राजपथ से थोड़ा ही हटकर कोई मेला लगा था। यह मेला—'सदा सुहागन' के नाम से प्रसिद्ध फकीर साहब के जन्मदिन पर लगा था। वे अपने को प्रेममय प्रभु

की अन्यतम प्रेमिका मानकर आध्यात्मिक साधना करते-करते सिद्धावस्था प्राप्त कर चुके हैं। यह वृत्तांत सुनकर नानक देव के भीतर भी फकीर के दर्शन की इच्छा जाग्रत हुई। वे मेला स्थल पर पहुँचे तो उन्हें बताया गया—'अभी तो फकीर साहब किसी को दर्शन नहीं देते। अभी उन्हें फुर्सत नहीं है। इस समय वे अपने प्रियतम अल्लाह के साथ प्रेमालाप में मगन हैं। लोग पता नहीं कब से उनके दर्शन की प्रतीक्षा में खड़े हैं।'

नानक देव ने कहा—'इस रहस्य का तो पता लगाओ कि आखिर फकीर साहब इतनी देर से क्या कर रहे हैं?' कह कर नानक देव आम्रकुंज की छाया में जाकर बैठ गए।

परन्तु नानक देव की इस बात से एक साहसी और ताकतवर व्यक्ति ने एक ही धक्के में किवाड़ खोल दिया। उसके पीछे अन्य लोग भी फकीर साहब के एकांत प्रकोष्ठ में पैठ गए। दर्शनार्थियों की भीड़ ने जो कुछ देखा वह लज्जाजनक था। वे कई तरुणियों के साथ रासरंग में लीन थे। उग्र दर्शनार्थियों की भीड़ ने खूब तोड़फोड़ मचाई। फकीर साहब और उनके खास चेले मौका पाकर पलायित हो गए। थोड़ी देर बाद फकीर नानक देव की शरण में आया। उसके पीछे आक्रोशित भीड़ भी थी। नानक देव ने उसे समझा-बुझाकर शांत किया। फकीर को साधना का गूढ़ रहस्य बताया। आगे चलकर यही फकीर सिद्ध महापुरुष के रूप में पंजाब की जनता में प्रसिद्ध हुआ।

कर्तारपुर के पास-पड़ोस में नानक देव के कई मुसलमान शिष्य थे। एक भक्त की सलाह पर नानक देव हज यात्रा पर चल पड़े। सारी बाधाओं को पार कर वे एक दिन मक्का पहुँच गए। थकान इतनी कि मस्जिद की दहलीज पर बैठे-बैठे ही सो गए। पता नहीं कब किसने कहाँ ले जाकर लिटा दिया। उन्हें इतना भी पता नहीं कि उनके पाँव काबा शरीफ की तरफ फैले हैं। नमाज पढ़ने के समय हाजियों की भीड़ मस्जिद की ओर उमड़ पड़ी। एक व्यक्ति की नजर नानक देव पर पड़ी। वह गुस्से से चीख उठा—'कौन हो जी तुम? काबे की तरफ पाँव पसारे खर्राटे भर रहे हो?'

नमाजी की आवाज नानक देव के कानों से टकाराई लेकिन उनकी आँखें खुल नहीं रही थीं। अर्धनिद्रा में ही वे बोले, 'भइया इस समय मैं बहुत थका हूँ। हाथ-पावों पर मेरा बस नहीं है। मेरा पैर कृपा करके उधर कर दो जिधर काबा न हो।'

गुस्से से तमतमाया हुआ नमाजी नानक देव का पैर घुमाने लगा। लेकिन उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि जिधर नानक का पैर घुमाता उधर ही काबा का रुख हो जाता।

इस अजनबी दरवेश के चमत्कार को चारो ओर फैलने में देर नहीं लगी। मक्का शरीफ के मुसलमानों की भीड़ लग गई। अतः वे उसी रात मक्का शरीफ को छोड़कर मदीने की तरफ चल पड़े। मदीने के बाद बगदाद होते हुए कर्तारपुर आ गए।

उस समय बाबर पंजाब तक आ पहुँचा था। गुजरांवाला जिले का जो अंचल आजकल अमीनाबाद के नाम से मशहूर है वह उन दिनों सईदपुर के नाम से जाना जाता था। वहाँ मुगल फौजों का आंतक चरम पर था। नानक देव अपने बाल सखा मर्दाना के साथ एक दिन उस इलाके से गुजर रहे थे। बाबरी फौज ने दोनों को गिरफ्तार कर लिया। नानक देव पीत वस्त्र पहने हुऐ थे। सिर पर पगड़ी थी, गले में रुद्राक्ष की माला। मुगल सैनिक दोनों लोगों को घसीटते हुए सेनाध्यक्ष मीर खां के पास ले गए। मीर खां ने उन लोगों को कैदखाने में डालने का हुक्म दे दिया साथ ही हिदायत दी कि दोनों से मशक्कत कराई जाय।

कैदखाना वहाँ से दो कोस दूर था। नानक के सिर पर गट्ठरों का बोझ डाला गया और मर्दाना को सईसी के काम में जोत दिया गया। नानक देव सिर पर भारी बोझ उठाकर भी प्रसन्न थे। मगर मर्दाना मायूस था। घोड़े की रास थामे-थामे उसकी कलाई ऐंठ गई थी।

नानक देव ने मर्दाना से भजन सुनाने को कहा। मर्दाना ने कहा, गुरु जी, हाथ से घोड़े की रास थामे हूँ, तंबूरा कैसे बजा सकता हूँ ?

'अरे, अकाल पुरुष की महिमा में अब तक भी तुझे पक्का विश्वास नहीं हुआ ? घोड़ा छोड़ दे, तंबूरा बजा।'

मर्दाना ने घोड़े की रास छोड़ दी और तंबूरा बजाकर भजन गाने लगा। नानक देव ने भी भजन गाना शुरू किया।

नानक देव के साथ चल रही कैदियों की टोली और सैनिकों की टुकड़ी भजन सुनकर मुग्ध हो गई। इसी बीच मुगल जमादार ने देखा कि नानक देव के सिर की गठरी उनके सिर से ऊपर उठी हुई अधर में लटकी उनके साथ-साथ चल रही थी। मर्दाना का घोड़ा भी चुपचाप उसके पीछे-पीछे चल रहा था।

किसी सैनिक के जरिए यह बात बाबर तक पहुँची। बाबर नानक देव से मिलने जेल पहुँचा। उस समय नानक देव चक्की चला रहे थे। उनका एक हाथ चक्की के हत्थे पर था दूसरे से अनाज डालते जा रहे थे। मगर बाबर को लगा कि चक्की अपने आप चल रही है। बाबर से न रहा गया। उसने नानक देव के पास जाकर सलाम अर्ज किया—'मैं आपकी क्या खिदमत करूँ ?'

ध्यानावस्थित नानक देव की अर्ध-मुँदी आँखों को बाबर की उपस्थिति का पता न चला। इसी बीच मीर खां भी अधिकारियों के साथ आ पहुँचा। नानक देव

ने बाबर से निवेदन किया—'जहाँपनाह आप तो खुराशान पर शासन कर चुके हैं। फिर हिन्दुस्तान पर इस तरह आफत ढाना जरूरी क्यों हुआ? आज जो हाल लोदी खानदान के सुल्तान की है, क्या मुगल खानदान के बादशाह की भी वही हालत नहीं हो सकती? फिर हत्या, आगजनी और लूटपाट से क्या लाभ? परमेश्वर की महिमा की अनदेखी कर आप द्वारा अपने क्षणिक प्रताप का दिखावा बेकार का धंधा ही तो है।'

'जो हुआ सो हुआ, अब मुझे बताएँ कि आगे क्या किया जाय?' थोड़ी देर तक मौन रहने के बाद बाबर ने कहा।

'यदि मुमकिन हो तो सईदपुर के कैदियों को जहाँपनाह रिहा करा दें।'

बाबर ने तुरंत सभी कैदियों को मुक्त करने का आदेश दिया और अपने पड़ाव की ओर वापस हुआ।

वादे के मुताबिक दूसरे ही दिन नानक देव बाबर के पड़ाव पर पहुँचे और उसे नशे की लत से मुक्ति दिलाई।

नानक देव पंजाब में घूमते-घूमते एक ऊँचे टीले के पास पहुँचे। मर्दाना प्यास से व्याकुल था। लोगों ने बताया कि उस टीले पर एक पुराना कुँआ है। पास की कुटिया में सिद्ध फकीर बली कवन्दरी रहते हैं। मर्दाना उस टीले पर पहुँचे। फकीर से पानी मांगा और यह बताया कि नीचे नानक देव खड़े हैं। इतना सुनते ही फकीर आग बबूला हो गए। नानक देव को इतना घमण्ड कि नीचे खड़े हैं और मुझसे मिलने नहीं आए। उन्होंने मर्दाना को झिड़का, 'जा अपने गुरु से माँग पानी। उसे मामूली तमीज से भी कोई वास्ता नहीं है।'

मर्दाना ने टीले से उतरकर नानक देव को किस्सा सुनाया। नानकदेव ने कहा, 'जोर से बोल सत श्री अकाल। फिर जहाँ खड़ा है वहाँ की मिट्टी हाथ से थोड़ा-थोड़ा हटा दे। फकीर का कुआं टीले से उतर कर स्वयं आ जाएगा तुम्हारे पास। जी भर पानी पी लेना और एक चुल्लू फकीर को भी दे आना।' सिख ग्रंथ 'जनमसाथी' में लिखा है कि मर्दाना ने नानक देव की आज्ञा का पालन किया और जमीन के नीचे से जल स्रोत फूट पड़ा। उसने अपनी प्यास बुझा ली। उधर टीले का कुआं सूखने लगा। फकीर कुपित होकर टीले से नानक देव को गालियाँ देने लगा। उसने एक पत्थर भी नानक देव की ओर लुढ़काया। जिसे उन्होंने बीच में ही रोक दिया। यह देख फकीर का गुस्सा और घमण्ड दोनों ही कपूर की तरह उड़ गये। वह टीले से नीचे उतर कर नानक देव के चरणों पर श्रद्धावनत हो गया और उनकी कृपा पाकर धन्य हुआ।

जनश्रुति है कि अपने पंजे से जिस पाषाण को नानक देव ने रोका था उस पर पंजा का निशान आज भी है। जो जल स्रोत फूटा था उसने झरने का रूप ले

लिया और आज भी विद्यमान है। हसन अब्दुल नामक वह स्थान पंजा-साहब के नाम से पवित्र तीर्थस्थल बन गया है।

पैदल यात्रा करते-करते नानक देव पुरी धाम पहुँचे। सायंकाल की पूजा-आरती हो रही थी। नानक देव ने मंदिर में प्रवेश किया और भावावेश में बेसुध हो गए। फिर ध्यानावस्थित हुए। तभी एक पण्डे का ध्यान नानक देव की ओर गया। आरती के रसमय माहौल में नानक देव का ध्यानावस्थित होना उसे बुरा लगा और वह उन्हें फटकारने लगा। नानक देव ने उत्तर दिया—'भैया, हमारे जगन्नाथ देव काष्ठ-मूर्ति के कठघरे में कैद नहीं हैं। वे सर्वव्यापक जगन्नियंता हैं। वे अपनी महिमा से आप ही दीप्त हैं। उन्हें आरती से ज्योति उधार लेने की जरूरत नहीं होती। हाँ, श्रद्धालुओं के श्रद्धा-दीपों को भी वे कृपापूर्वक स्वीकार कर लेते हैं।' फिर नानक देव भजन गाने लगे। भजन की मधुर ध्वनि जिसके कान में पड़ी वही आकर वहां खड़ा हो गया। नानक देव भक्तों से घिर गए। बाद में लोग जान पाए कि भजन गाने वाला कोई साधारण साधु नहीं है। ये हैं—श्री नानक देव महाराज।

नानक देव पुरी से मथुरा आ गए। एक दिन वे यमुना स्नान करने के बाद अपने पड़ाव की ओर लौट रहे थे कि रास्ते में एक भिखारी मिला। वह जन्मांध था। भिखारी की आश्रयहीनता की कथा सुनकर नानक देव की आंखें सजल हो गईं। उसके पास जाकर बोले—'भैया, गुजरने वाले राहगीरों के सहारे नहीं, परमेश्वर की करुणा के सहारे जीवन का शेष दिन व्यतीत करो। श्रीकृष्ण की जन्मभूमि में रहकर भगवान के भजन गाते रहो। वे सबका भार उठाते हैं, तुम्हारा भार क्यों न उठाएंगे।' इतना कह कर नानक देव ने कमण्डल से एक चुल्लू जल हाथ में लिया और अंधे की आंखों पर छिड़का। अंधा आनन्द-विह्वल होकर चीख उठा—'क्या आप ही नानक महाप्रभु हैं? रात स्वप्न में मुझे यही बताया गया था। मेरी आंखों की रोशनी सचमुच लौट आई है। स्वप्न में मुझे बताया गया था कि गुरु नानक देव की कृपा से मेरा अंधापन दूर हो जाएगा।'

कहते हैं नानकदेव की कृपा से वह व्यक्ति सनाथ हो गया। मथुरावासियों के बीच नानक देव के प्रथम शिष्य के रूप में उसे असीम प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।

कालांतर में गुरु नानक देव मानवता की उज्ज्वल करुणा की मूर्ति के रूप में ही लोक द्वारा पूजे गए। आने वाली सदियों में भी सर्वजन-सुलभ लोक-गुरु के रूप में पूजे जाते रहेंगे। जपुजी के प्रारंभ में ही उन्होंने अपने प्रतिपाद्य का सार-भाग अंकित कर दिया है—

'एक ओम् सति नामु करता
पुरुखु निरभउ निरवैरु'
अकाल मूरति अजून
सैभं गुरु प्रसादि।

तत्वज्ञान की उपलब्धि का प्रधान उपाय है नाम-जप। गुरुमुखी होकर, गुरु के प्रति सतत उन्मुख और आश्रित रहकर-गुरु की कृपा पर भरोसा रखना, उपासक को निर्भय, निर्वैर कर देता है। 'जपुजी' में वे कहते हैं—

'सुनि ए जोग जुगुति कौ भेद
सुनि ए सासत सिमरित वेद
नानक जगता सदा बिगासु
सुनि ए दूख पाप का नासु'।

नानक देव ने एक रूपक के माध्यम से कहा है—

'इन्द्रिय-संयम है भाती और धैर्य है सुनार। मति, शुभ-बुद्धि और संकल्प है निहाई। वेद अर्थात् शास्त्रों का अनुशासन है हथौड़ा। परमेश्वर के प्रति समय चाकरी की तत्परता है साहागा और तपस्या है आंच। प्रेम ही वह भाण्ड है, जहाँ सोने को रखकर, इच्छित आकार की योग्यता दी जाती है। सत्य टकसाल है और गुरु का उपदेश है सुवर्णरस। सदगुरु की कृपा जिसे प्राप्त है, वही इन सभी युक्तियों को साध कर अलंकार तैयार कर सकता है। नानक कहते हैं, कृपामय अकाल पुरुष, जिसे भी चाहें, कृत कृत्य कर सकते हैं।'

बाह्याडंम्बरों की निरर्थकता पर गुरु नानक देव कहते हैं—'लाख-लाख बार शौच-क्रिया करते रहने मात्र से कोई पवित्र नहीं हो जाता। मौन अवलम्बन कर लेने से ही चित्त की चंचलता दूर हो जाती है। ऐसा मानना भी निरर्थक है। सप्तपुरी का ऐश्वर्य प्राप्त कर लेने पर भी विषय-वासना से पीछा नहीं छूटता। कोई भी चतुराई इस लोक से परे जाकर जीवात्मा को मदद नहीं पहुँचाती। जब प्रकाशस्वरूप परमेश्वर का साक्षात्कार चाहते हो, तो माया के ये आवरण किस काम आयेंगे?' वे कहते हैं—

'सतनाम का निरंतर जप करते-करते अज्ञान-तिमिरांध जीव की दृष्टि माया के आवरण को छिन-भिन्न कर सकने की योग्यता अर्जित कर लेती है। गुरु की कृपा का प्रकाश, ऐसी स्वच्छ दृष्टि के ही काम आता है। फिर जब माया के सारे आवरण-तंतु एक-एक कर क्षीण हो जाते हैं, तो तिमिरान्ध का उच्छेद मुहुर्त मात्र में संभव होकर, अकाल-पुरुष का साक्षात्कार होता है।'

नानक देव के अन्यतम शिष्यों में थे—भाई बुआ, अंगद और श्रीचन्द। भाई बुआ का नामकरण किया गया रामदास। श्रीचन्द गुरुदेव के पुत्र भी थे और शिष्य भी। पश्चिमोत्तर भारत में इन सभी को परमसिद्ध महापुरुष के रूप में जाना जाता रहा।

'अमृतसर' के बारे में एक जनश्रुति है। एकदिन गुरु अंगद नानक देव के साथ उस अंचल में पर्यटन कर रहे थे। भयंकर गर्मी थी। गुरु अंगद देव प्यास से

व्याकुल हो उठे। दूर-दूर तक जल का पता नहीं। ताल-तलैया सब सूख गए थे। नानक देव ने उन्हें अगले पड़ाव पर जल का आश्वासन दिया। अगले पड़ाव पर एक तालाब था। नानक देव पास के एक वृक्ष के छाये में रुक गए और गुरु अंगद तालाब के पास पहुँचे। लेकिन उसमें पानी नहीं था। अंगद ने वापस लौट कर गुरु नानक देव को जानकारी दी। नानकदेव ने कहा, 'अंगद तुम्हें अभी तक न अपने गुरु के वचन पर श्रद्धा हुई है, न अकाल-पुरुष की महिमा का भान हो पाया है। तालाब में जल अवश्य रहा होगा, तुमने खोजने में ही गलती कर दी। एक बार प्रभु का नाम लेकर जाओ और तालाब में जल खोजो।'

अंगद दुबारा उस तालाब पर पहुँचे और 'वाहे गुरु' की हाँक लगाई। इस बार उन्होंने देखा कि तालाब निर्मल जल से लबालब भरा हुआ है। अंगद ने जी भर कर जल ग्रहण किया और लौट कर सारी बात गुरु नानक देव को बताई। यह बात पूरे अंचल में फैल गई। श्रद्धालु उस तालाब पर जुटने लगे। उन्होंने उस तालाब का नाम रखा—'अमरित सागर'। बाद में चौथे सिख गुरु गुरु रामदास ने उस तालाब को वृहद रूप दिया और उसके बीच में एक सुन्दर मंदिर का निर्माण किया। सिख-समाज ने उस मंदिर को 'दरबार-साहिब' के नाम से पुकारा और तालाब का नाम पड़ा—'अमृतसर'।

नानक देव की अपने प्रिय शिष्य अंगद पर असीम कृपा थी। इससे दूसरे शिष्यों, खासतौर पर उनके पुत्र श्रीचन्द के मन में ईर्ष्या का भाव पैदा हो गया था। इसे समाप्त करने के लिए नानक देव ने एक लीला रची। वे अपने शिष्यों के साथ रावी नदी के तट पर बैठे थे। उफनती रावी में एक शव बहता हुआ आ रहा था जो इतना सड़ गया था कि उससे भयानक दुर्गन्ध उठ रही थी। नानक देव ने अपने शिष्यों से कहा—'मेरी आज्ञा मानकर उस शव को तुममें से कोई खाना चाहेगा?'

सभी शिष्य निरूत्तर थे। अपने नाक को कपड़े से ढँक रखी थी क्योंकि दुर्गन्ध असहनीय थी। तभी अंगद देव हाथ जोड़कर सामने आए और बोले, 'गुरुजी, मैं आज्ञा का पालन करूँगा।'

नानक देव की आज्ञा पाकर अंगद देव पानी में उतर गए और लाश को खींचकर किनारे लाए। वह उसे खाने जा रहे थे तभी नानक देव ने मुस्कराते हुए कहा, 'जिसे तुम लोगों ने लाश समझ कर अखाद्य समझ लिया था वह चंदन का काष्टखण्ड प्रतीत होता है। उसकी सुगंध से तो यही लगता है। अंगद, तुम यह काष्ट खाकर पेट मत खराब करो, लौट आओ।'

चंदन से सचमुच सुगंध निकल रही थी। सभी आश्चर्यचकित थे कि जिस शव से असह्य दुर्गंध निकल रही थी, वह सुगंधित चंदन में कैसे बदल गया।

इसके बाद गुरु नानक देव अपने शिष्य अंगद का गुरु-पद पर अभिषेक किया। उन्हें गुरु अंगद के रूप में स्वस्ति दी और भूमि पर लेटकर साष्टांग दण्डवत किया। शिष्य मंडली ने भी उनका अनुसरण किया।

इसके बाद नानक देव रावी नदी के तट पर स्थित उसी बरगद के पेड़ के नीचे जाकर ध्यानस्थ हो गए जिसके नीचे वे करतारपुर नामक बस्ती बसाने के पहले बैठा करते थे।

धीरे-धीरे सभी तरफ यह दारुण खबर फैल गई कि नानक देव ने शरीर-त्याग करने का निश्चय कर लिया है। पूरी जनता शोकाकुल हो उठी और एक दिन गुरुनानक देव ने शरीर-त्याग कर दिया। जनता में यह खबर बिजली की तरह फैल गई। लोग अंतिम दर्शन के लिए उमड़े। नानक देव का नश्वर शरीर वस्त्राच्छादित पड़ा हुआ था।

इसी बीच एक नई समस्या खड़ी हो गई। पंजाब के कुछ मुसलमान भक्त नानक देव को मुसलमान मानते थे। इस संदर्भ में उनकी मक्का-मदीना की यात्रा का हवाला देते थे। वे नानक देव के शव को मुस्लिम रीति से दफनाना चाहते थे। दूसरी तरफ हिन्दू भक्त उनकी अंतिम क्रिया हिन्दू रीति से करना चाहते थे। दोनों तरफ से लोग हथियारों से लैस होकर जुटने लगे। खून-खराबा होने के आसार दिखाई देने लगे।

तभी कुछ श्रद्धालुओं ने गुरुदेव के अंतिम दर्शन के लिए शव पर से वस्त्र हटाने की माँग कर दी। उनके माँग पर जब वस्त्र हटाया गया तो शव के स्थान पर रंग-बिरंगे फूलों की राशि पड़ी मिली। सवाल उठा कि क्या शव अन्तर्ध्यान हो गया है? कुछ लोगों का मानना था कि गुरु का शरीर सुगंधित फूलों में बदल गया है।

जिस गुरुदेव ने जीवनपर्यन्त हिन्दुओं और मुसलमानों को एकता का पाठ पढ़ाया, मरने के बाद उन्हें कैसे मंजूर हो सकता था कि उनके शव के लिए हिन्दू-मुसलमान आपस में लड़ें।

●

८

सिद्ध जयकृष्ण दास

ब्रजभूमि के घने वन में परम सिद्ध जयकृष्ण दास एक कुटी में तपस्यारत थे, बिल्कुल निस्पंद। तभी एक रमणी की चीखें उनके कानों में पड़ीं और उनका ध्यान भंग हो गया। मौका मिलते ही रमणी ने इस तपस्वी के मुँह में दुग्ध उड़ेल दी। जयकृष्ण की आंखों से अश्रुधारा बहने लगी। वे बोले, 'भाई, यह क्या कर डाला तुमने ? प्रभु के दुर्लभ लीला-दर्शन में तुमने व्यवधान डाल दिया।'

'सुनो बाबाजी, श्रीमती का मुझे आदेश है कि इस काम्य वन में कोई आकर तथा उपवासी रहकर कोई शरीर-पात न करे। देह के आधार की रक्षा करके ही तो उससे भजन सिद्धि के परम रस को पकड़ सकेंगे। तू चिन्ता न कर, राधा-कृष्ण की नित्य लीला का तू जीवन भर दर्शन कर सकेगा। तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी।' कहती हुई वह रमणी कुटिया से निकली और जंगल में खो गई।

क्लांत जयकृष्ण दास लेट गए और प्रगाढ़ निद्रा में लीन हो गए। इसी समय उन्होंने स्वप्न में देखा कि ज्योतिर्मण्डल की मध्यवर्तिनी नारी मूर्ति उनकी ओर देखकर स्नेह मधुर हँसी हँस रही है। देवी ने उनसे कहा, 'बाबाजी, उस समय तुम मुझे पहचान नहीं पाए। मैं, वृन्दा देवी हूँ। अब राधारानी की कृपा पाने में तुम्हें अधिक देर नहीं है। तुम्हें यहाँ की साधना में कठोरता की आवश्यकता नहीं है।'

अल्पकाल में ही साधक जयकृष्ण आप्तकाम हो गए। रागानुगा भक्ति उन्हें हस्तगत हो गई। धीरे-धीरे उनकी कीर्ति चारों ओर फैल गई। उच्चकोटि के वैष्णव साधक दल उनके चरणों का आश्रय लेने लगे। इनमें उल्लेखनीय थे—श्री गोवर्धनदास और मधुसूदन दास। साधक जयकृष्ण कठोर ब्रह्मचर्य, दैन्य एवं वैराग्य की साधना के उपरांत ब्रजमण्डल के काम्यवन में तपस्यारत थे। अठारहवीं सदी के अंतिम दो चरणों में काम्यवन के सिद्ध बाबा के रूप में वैष्णव समाज में वे विख्यात हो गए।

अठारहवीं सदी के प्रथम दशक में पश्चिम बंगाल के एक वैष्णव-परिवार में जयकृष्ण दास का जन्म हुआ था। पूर्व जन्म के संस्कार एवं घर के वातावरण ने उन्हें बाल्यकाल से ही कृष्णमय बना दिया था। जीवन के उत्तरकाल में उन्हें काम्यवन में इष्टदेव ब्रजेन्द्रनन्दन एवं महाभावमयी प्यारी जी के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

एक बार काम्यवन के विचेल्लीवास नामक एक निर्जन स्थान पर वे भजन साधना में रत थे। उनकी ख्याति सुनकर ढाका से नित्यानंद वंश के एक भक्त वैष्णव नवल गोस्वामी उनकी कुटिंया में उपस्थित हुए। उनके पास राधा मदन मोहन का विग्रह भी था। जब गोस्वामी जी लौटने को तैयार हुए तो विग्रह ने यहीं रहकर जयकृष्ण दास की सेवा लेने की इच्छा व्यक्त की। यह सुनकर जयकृष्ण बाबा के आनंद की सीमा न रही। दूसरे ही दिन परम उत्साह से उन्होंने श्री विग्रह के लिए दूसरी कुटिया तैयार कर डाली। अब उनके बंधनहीन एकाकी तपस्यामय जीवन में इष्ट सेवा एवं जन-कल्याण का दौर प्रारंभ हुआ। धीरे-धीरे बाबा जी महाराज के व्यक्तित्व एवं साधना को केन्द्र करके निगूढ़ रागात्मिका भजन की एक वैष्णव-गोष्ठी का गठन हो गया। कुछ ही दिनों बाद एक तरुण वैष्णव साधक बाबाजी के पास आया और वह श्री विग्रह तथा बाबाजी दोनों की सेवाएँ करने लगा।

कुछ दिनों बाद बाबा जी ने तरुण साधक को गुरुप्रणाली लाने के लिए वापस बंगाल भेजा। तरुण वैष्णव जाना नहीं चाहते थे लेकिन बाबा की आज्ञा शिरोधार्य करनी पड़ी। वापस होने पर उनका हृदय हाहाकार कर उठा। बाबा जी ने कहा था कि गुरुप्रणाली के बिना श्री विग्रह की सेवा में कठिनाई होगी। लेकिन सौभाग्यवश जब तरुण साधक ट्रेन पकड़ने के लिए हाथरस पहुँचे तो ट्रेन छूट चुकी थी। वे उल्टे पाँव वापस हुए।

इधर बाबा जी चिंतातुर कुटिया के बाहर टहल रहे थे। तरुण साधक को देखकर उनकी खुशी का ठिकाना नहीं रहा।

हुआ यह कि तरुण साधक के जाने के बाद वृन्दा देवी ने स्वप्न में दर्शन दिया। बोली, 'तुमने नाहक ही तरुण साधक को उतनी दूर भेज दिया। उसकी गुरुप्रणाली तो श्री विग्रह के सिंहासन के नीचे है। बाबा जयकृष्ण दास ने जब सिंहासन के नीचे देखा तो वास्तव में गुरुप्रणाली वहाँ रखा था। वे चिंतातुर हो उठे।'

तरुण साधक का ट्रेन छूट जाने और उनके वापस लौटने को वह वृन्दा देवी का प्रताप ही मान रहे थे।

बाबा जयकृष्ण दास के बारे में ब्रजमण्डल में नाना जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं। प्रसिद्ध वैष्णव साधक और आचार्यगण, बीच-बीच में काम्यवन आकर इन महात्मा से रागानुगा साधक का दिग्दर्शन ले जाते तथा वैष्णवशास्त्रों के निगूढ़ तत्वों की विवेचना इनके श्रीमुख से श्रवण करते। इस दौरान बाबा जी के रोम ही नहीं वरन् सिर के बाल भी प्रेमविकार से कांटों की तरह कड़े हो जाते। एक दिन इस तरह का तत्वविवेचन और भजन-कीर्तन चल रहा था। बाबा ने प्रेम प्रमत्त होकर ऐसा हुंकार भरा कि कुटिया का छप्पर फट गया।

राजा-महाराजाओं का आगमन बाबा को पसंद नहीं था। भरतपुर के महाराज वैष्णव सेवा परायण था। उन्होंने बाबाजी को राज प्रासाद बुलाने की चेष्टा की पर सफल न हुए। फिर खुद वहाँ उपस्थित होने की आज्ञा चाही, वह भी न मिली। एक दिन जब बाबा भिक्षा के लिए निकटवर्ती गाँवों में गए थे, भरतपुर के राजा एक वैष्णव भिखारी के वेश में आकर उनके भजन कुटीर के कोने में चुपचाप बैठ गए। उन्होंने सोचा था कि बाबा जब लौटेंगे तो उनका चरण पकड़ कर विनती करेंगे और कृपा भिक्षा की याचना करेंगे। राजा की यह मनोरथ बाबा से छिपा नहीं रहा। भिक्षापात्र लिए हुए जैसे ही उन्होंने वन में प्रवेश किया ग्रामवासियों से कातर प्रार्थना करने लगे—'भाई लोगों, मेरे भजन कुटीर में आग लग गयी है। तुम सभी दया करके वहाँ जुट जाओ तथा किसी तरह आग बुझा डालो।'

गांव के लोग बाबा की कुटिया की ओर भागे। अग्नि का प्रकोप नहीं था। भरतपुर के राजा दीन वेश में अवश्य बैठ हुए थे। लोगों को समझते देर नहीं लगी कि बाबा ने यह लीला भरतपुर के राजा को दूर रखने के लिए ही रची। राजा भी वैष्णव सेवा परायण थे, इसलिए अपने का अपमानित महसूस नहीं कर रहे थे। कुछ दिनों बाद ये राजा सिद्ध बाबाजी का आशीर्वाद पाकर धन्य हुए।

जीवन के अंतिम दिनों में बाबा जी ने सारे बंधनों का त्याग कर दिया और निगूढ़ प्रेम-साधना के गंभीरतम स्तर में निमज्जित हो गए। इन दिनों गोप बालकों का झुण्ड प्राय: आकर उनकी कुटिया के समक्ष शोरगुल करता, इसीलिए बाबा जी ने वह स्थान त्याग दिया। ग्रामवासियों ने मिलकर और गहन वन में उनकी कुटिया निर्मित की। वहीं बाबा जी एकांत साधना में लीन हो गए।

एक दिन गोप बालकों का झुण्ड कुटिया में आकर शोरगुल करने लगा। बालक पानी मांग रहे थे। बाबा भजन में लीन थे। अंतत: बालकों के शोरगुल से उनका ध्यान भंग हुआ। वे कुटिया के बाहर निकले। उन्होंने देखा कि दिव्यकाँतियुक्त चंचल बालकों का दल लूट-पाट कर रहा है। इन पर दृष्टि पड़ते ही बाबा जी का मन शांत और प्रसन्न हो गया। उन्होंने स्नेहपूर्वक प्रश्न किया, 'लाला, तुम लोग यहाँ कहाँ से आए हो? तुम लोगों का नाम क्या है? एक श्यामकाँति बालक ने आगे बढ़कर कहा, 'उसका नाम कन्हैया और बगल में खड़े साथी का नाम बलदेव है।'

बालक चीखे—'बाबा, पहले पानी पिलाओ, प्यास लगी है।'

बाबा ने कमण्डल से पानी लाकर बालकों की प्यास बुझाई। बालक जाते-जाते कह गए—'देखो बाबा जी कल से हम लोगों के लिए शीतल जल और बाल-भोग रख देना।' कहकर बालक जंगल में खो गए।

जयकृष्ण दास को आश्चर्य हुआ। इतनी जल्दी बालक आँखों से ओझल हो गए। जब उन्होंने ध्यान लगाया तो ज्ञात हुआ कि वे श्रीकृष्ण और बलराम थे।

उनके दोनों नेत्रों से आँसू बह निकल पड़े। आर्त होकर वे जमीन पर लोटने लगे। हाय! अपने इष्ट को पहचान क्यों नहीं पाये।

अचानक उनके कानों में देववाणी पड़ी। 'जयकृष्ण, तुम दुखी मत हो। धीरज रखो। कल ही मैं तुम्हारी कुटिया के द्वार पर उपस्थित हूँगा। काफी लम्बी अवधि तक तुम्हारी सेवा-पूजा लूँगा।'

दूसरे दिन प्रात: भजन कुटीर के द्वार पर एक ब्रज माई आकर उपस्थित हुईं। उनके हाथों में एक परम मनोहर श्री गोपाल मूर्ति थी। बोली, 'बाबा जी, यह विग्रह मैं तुम्हें देने के लिए लाई हूँ। मैं बूढ़ी और अशक्त हो चुकी हूँ। आज से तुम्हीं इसका सारा भार लो।'

महाजाग्रत, दिव्य मधुर विग्रह! बाबा जी शंकित हो उठे। कहा, 'माई, प्रभु की उपयुक्त सेवा कर सकूँ ऐसी सामर्थ्य मुझमें कहाँ? गोपाल को दही, दूध तथा छेना नित्य चाहिए। इस कंगाल की कुटिया में वह कहाँ मिलेगा?'

उत्तर मिला, 'उसके लिए तुम्हें क्या चिन्ता है? सेवा के लिए सारी सामग्री तो मैं जुटा दूँगी।'

आनंद से विभोर जयकृष्ण श्री विग्रह को कुटीर में ले गए। उसी रात उन्होंने स्वप्न देखा, विग्रह को हाथ में लेकर जो वृद्धा माई उनके पास आई, वह कोई नहीं, स्वयं वृन्दा जी थीं।

उसके बाद काफी दिन बीत गए। जयकृष्ण बाबा के नश्वर शरीर के त्याग की बेला आ गई। चैत मास की शुक्ल द्वादशी तिथि थी। बसन्त श्री और आनन्द उल्लास प्रेम सिद्ध महासाधक के हृदय को उद्वेलित कर रही थी। रागानुगा भजन के सिद्ध साधक अपने परम प्रासिक आनन्द में लीन थे।

भक्त मण्डली की तथा समर्थ वैष्णव साधकगण चारो ओर खड़े थे। बाबा जी की देह अलौलिक आनन्द के आवेश से थर-थर काँप रही थी। व्याकुल कष्ठ से बाबा जी, बीच-बीच में प्रश्न कर रहे थे—'अरे मेरी घांघरी कहाँ है, ओढना तथा कंचुकी कहाँ है?'

भक्तजनों की आँखें सजल हो गईं। सभी समझ रहे थे कि प्रियमिलन की परम लग्न समुपस्थित है। अभिसार प्रस्तुति की बात कहते-कहते, प्रेमाश्रुओं का ज्वार उपना कर सिद्ध बाबा जी अपने परम अभिसार के मार्ग पर सदा के लिए चले गए।

●

९

शैवाचार्य अप्पर

तमिलनाडु के दक्षिण आर्कट जिला के एक छोटे से गाँव में लगभग 6 शताब्दी पहले एक मेधावी बालक ने जन्म लिया। पिता नैष्ठिक शिवभक्त थे। लेकिन बचपन में बालक अप्पर के माता-पिता स्वर्गवासी हो गए। उसका लालन-पालन बाल विधवा साध्वी बहन ने किया। दीदी ने भक्ति सिद्धि शैव गुरु से दीक्षा ग्रहण की थी। अप्पर ने बहन की देखरेख में स्कूली शिक्षा पूरी की। उच्च शिक्षा के लिए उन्होंने कांची प्रस्थान किया। वह जैन सम्प्रदाय का गढ़ था। जैन धर्म के साधकों और विद्वानों ने इस तरुण में अपार संभावनाएँ देखी और भाँप लिया कि यह मेधावी बालक कालान्तर में जैन धर्म के आन्दोलन का नेतृत्व करेगा। अप्पर ने राजगुरु से भी जैन धर्म की दीक्षा ग्रहण की।

तरुण अप्पर एक बार गाँव आए। उनका तर्क-वितर्क दीदी से होता रहता था। दीदी ने एक दिन कहा—'तुम्हारे भीतर ज्ञान का प्रचंड गर्व जाग्रत हो उठा है। जैन पंडितों के शुष्क तर्कवाद से प्रभावित हो तुम जैन मतावलम्बी हो गए हो। हमारे पूर्वज उच्चकोटि के शैव-साधक थे। उनके पथ से आज तुम विमुख हो गए हो।'

कुछ दिनों बाद अप्पर मारात्मक शूल से पीड़ित हो गए। सारे उपचार व्यर्थ हो गए थे। उनकी हालत मरणासन्न हो गई थी। तभी दीदी के गुरु का आगमन हुआ। उनके युग की विभूति एवं महिमा से सभी परिचित थे। गुरु ने अप्पर को देखकर कहा, 'इनके ठीक होने का एक ही उपाय है कि देवाधिदेव शिव से अपने प्राणों की भीख मांगे। उनसे विमुख होने से ही इन विपत्तियों की सृष्टि हुई है।'

शिवमंदिर में जाग्रत शिव-लिंग स्थापित था। रात में चारो ओर अंधकार बिखरा था। मंदिर के भीतरी प्रकोष्ठ में प्रदीप्त प्रदीप के क्षीण आलोक में अप्पर सो रहे थे। स्फुट स्वरों में शिव नाम जप रहे थे। अचानक उन्होंने देखा, एक अलौकिक, स्वर्गीय ज्योति की दीप्ति से मंदिर का समस्त गर्भगृह आलोकित था। उस प्रकाश के साथ ही देवी भगवती का मधुर स्वर सुनाई पड़ा—'वत्स अप्पर! मैं तुमसे अत्यंत प्रसन्न हूँ। सारे रोग विकारों से मुक्त हो तुमने नव-जन्म प्राप्त किया है। तुममें नवीन ईश्वरीय चेतना का आविर्भाव हुआ है।'

देवी के शीतल स्वर के साथ ही अप्पर की वेदना तिरोहित हो चुकी थी। उन्होंने अलौकिक शक्ति के दर्शन किए। एक नूतन चेतना का ज्वार उन्हें अभिभूत कर गया था। स्वर्णिम प्रभात के साथ ही अप्पर का नव जागरण हुआ था। अप्पर शिव वेदी के पास भावाविष्ट हो शिव-महिमा का गान करने लगे। फिर एक देववाणी उनके कानों में पड़ी—'वत्स। तुम्हारे स्तोत्रों की निर्मलता ने मुझे अतीव प्रसन्नता दी है। आज से शिवभक्त तुम्हें तिरुनावक के नाम से जानेंगे। ईश्वर के आशीषपुत्र, वाक्पति के रूप में इस समस्त अंचल में तुम्हारी प्रसिद्धि रहेगी।' अप्पर ने निवेदन किया—'प्रभु! तुम्हारे सेवक के रूप में इस जीवन का उत्सर्ग कर दूँ, तुम्हारे चरणों में इस काया, इस मान-प्राण को उत्सर्जित कर दूँ, तुम्हारी महिमा का ध्यान ही मेरा एकमात्र व्रत हो।'

मंदिर की वह स्वर्गीय ज्योति धारा अन्तर्हित हो उठी थी। दिव्य उत्साह से भर कर अप्पर मंदिर से बाहर आये। देखा, दीदी भावविह्वल हो दौड़ती आ रही हैं। उनकी आंखों से आँसू झर रहे हैं। भाई ने पुनर्जीवन प्राप्त किया है। अपने धर्म की ओर उन्मुख हो गया है।

अप्पर ने कुलगुरु शैवाचार्य से दीक्षा ग्रहण की। फिर अपनी कठोर साधना प्रारंभ की। बाद में गुरु के आदेश से माणिक्यवाचक का शिष्यत्व ग्रहण किया। कुछ वर्षों बाद शैवसाधकों के अन्यतम तीर्थ चिदम्बरम में माणिक्यवाचक ने अपनी जीवन लीला समाप्त कर दी। जनश्रुति है कि दिव्य भावावेश में शिव की स्तुति करते-करते ही यह सिद्ध महात्मा चिदम्बरम् में नटराज के विग्रह में लीन हो गये थे। माणिक्यवाचक ने एक स्तवमाला की रचना की थी जो काफी प्रसिद्ध हुई। 'तिरुवाचकम्' उनकी अपूर्व कृति थी।

इष्टदर्शन और मोक्ष की आकांक्षा से अप्पर पुनः अपने गुरु महाराज के पास गए। गुरु महाराज ने कहा—'वत्स, साधना के इस क्रम को अब समाप्त करो।' इसके साथ ही अपने स्वबोध को प्रोत्साहित करो। मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हें अपने आराध्यदेव का साक्षात्कार सदैव होता रहेगा। इष्ट की कृपा से तुम परममोक्ष को प्राप्त करोगे।

अप्पर स्वरचित स्तोत्रों का पाठ करते रहते। वे एक झोपड़ी में रहते थे। गाँव के सीमांत पर बने शिवमंदिर की सेवा में रत रहते थे। उनके हाथ में एक खुरपी थी जिससे वे हमेशा साफ-सफाई करते रहते थे।

शैव साधक के रूप में अप्पर पूरे तमिल देश में प्रसिद्ध हो गए। आत्म-अहंकार का निष्कासन ही उनका एकमात्र व्रत था। शिव ने उन्हें दर्शन दिया और वर माँगने को कहा। अप्पर दोनों हाथ जोड़कर बोले, 'प्रभु! दास ने जिस सेवा के बल पर तुम्हारा दुर्लभ साक्षात्कार प्राप्त किया है, वह चिरकाल तक बना रहे बस तुम्हारी इसी कृपा की आकांक्षा है।' स्मित हास्य से शिव ने कहा, 'तथास्तु'।

अब अप्पर के जीवन का एक नया पृष्ठ खुल गया था। उनके पास नित्य सैकड़ों शिवभक्त उपस्थित रहते थे। अप्पर की ख्याति से कांची के जैन साधकों एवं शास्त्राचार्यों के मन में ईर्ष्या जाग उठी। राजपंडित गण जैन धर्मावलम्बी पाण्ड्यराज से शिकायत की—'महाराज! जैनधर्म के विकास के लिए अप्पर ने महान त्याग किया है। वे सरकारी विद्यापीठ में अध्ययन कर उपकृत हुए। अब शैवधर्म का प्रचार कर रहे हैं। उन्हें अविलम्ब दंडित किया जाय अन्यथा राजधर्म का अस्तित्व संकट में पड़ जाएगा।'

राजा क्रोधित हो उठे। उन्होंने अप्पर को शीघ्र ही राजसभा में बुला भेजा। अप्पर राजसभा में उपस्थित हुए और उन्हें दण्ड देने पर विचार होने लगा। अप्पर ने कहा—'महाराज! मैं चिरकाल से सत्य का उपासक हूँ। मैंने जैनधर्म ग्रहण जरुर किया है, परन्तु प्रभु की करुणा के परमतत्व को हृदयंगम कर लिया है। भगवान शिव का साक्षात्कार ही मेरा सायुज्य है। इससे मेरा जीवन धन्य हो उठा है। मुझसे क्या अपराध हुआ है, मैं स्वयं नहीं समझ पा रहा हूँ।'

पाण्ड्यराज ने क्रोध से तमतमाते हुए कहा—'जैनधर्म राजधर्म है। उस धर्म को अंगीकार कर तुमने उसका परित्याग किया है। इसका कठोर दण्ड तुम्हें भुगतना होगा। तुमने राजकीय विद्यापीठ में अध्ययन किया है। राज्य का पर्याप्त धन तुम पर व्यय हुआ है।'

अप्पर ने दृढ़ता से कहा—'महाराज आपने सत्य कहा है। परन्तु मैंने कोई अधर्माचरण नहीं किया है। सत्य ही धर्म का चरम लक्ष्य है। उस परम सत्य का अन्वेषण कर मैंने उसका वरण किया है। शैव धर्म की स्निग्ध छाया में, परमपुरुष शिव के आश्रय में मैंने सत्य को प्राप्त किया है। मेरा सम्पूर्ण जीवन धन्य हो उठा।'

'राजधर्म जैन धर्म असत्य है केवल शैव धर्म ही सत्य है, तुम यही कहना चाहते हो क्या?'

'महाराज, राजधर्म की अवज्ञा करने वाले इस दुष्ट को आप घोर दण्ड दें, अन्यथा इस राज्य का अमंगल होगा।' राज सभा में समवेत स्वर गूँजा।

'आचार्य अप्पर, राजधर्म का परित्याग कर तुमने उसके विरुद्ध आपत्ति-जनक बातें कह कर गंभीर अपराध किया है। पंडित होकर तुमने ऐसा किया है, इससे तुम्हारा अपराध और बढ़ जाता है। मैं तुम्हें प्राणदण्ड देता हूँ।' राजा ने आवेश में सजा सुनाई। राजा ने आदेश दिया, 'अप्पर का वध पहाड़ की चोटी से धकेल कर किया जाय।'

नियत समय पर फौजदार ऐसा करने के लिए उपस्थित हुआ। जनता की अपार भीड़ इस दृश्य को देखने के लिए उमड़ पड़ी थी। अप्पर को पहाड़ की

चोटी पर ले जाया गया और उस पर से धकेल दिया गया। अप्पर बिल्कुल सुरक्षित रहे। उनकी देह एक वृक्ष के ऊपर टँगी थी।

यह सूचना राजा को दी गई। प्रश्न उपस्थित हुआ कि क्या अप्पर को दुबारा पहाड़ की चोटी से धकेला जाय? राजा ने दूसरा तरीका सुझाया। अप्पर को समुद्र के किनारे ले जाओ। उनके शरीर में एक भारी पत्थर बांधकर समुद्र में फेंक दो।'

लेकिन यह क्या? अप्पर यहाँ भी बच गए। समुद्र तल में पत्थर उनकी देह से सरक कर गिर गया। समुद्र की लहरों ने उन्हें ऊपर फेंका और वे आकर तट के पास लग गए। मल्लाहों ने उनकी सेवा की। उन्हें पुनः होश आ गया। उन्होंने धीवरों को पूरी बात बताई। इस बात की चर्चा पूरे प्रदेश में फैल गयी। हजारों लोगों ने राजा से कहा, 'महाराज, शिव की असीम अनुकम्पा से पुनः अप्पर को नवजीवन मिला। अप्पर सिद्ध पुरुष हैं। इस युग के प्रहलाद हैं। इन्हें मुक्त कर आप जन-मन को संतुष्ट करें।' अप्पर को राजा के समक्ष लाया गया। उन्होंने कहा—'लगता है किसी विराट शक्ति ने तुम्हारी रक्षा की है। गोपन रहस्य को मुझे स्पष्ट करो।'

उद्धारक शिव की कृपा का स्मरण कर अप्पर भावाविष्ट हो गए। उनकी दोनों आँखें उन्मीलित थीं। चेहरे पर दिव्य ज्योति बिखरी थी। कपोल पर आनन्दाश्रु छलक रहे थे। युक्तपाणि अप्पर ने स्वरचित श्लोक द्वारा शिव की स्तुति की—

माला अनन्त कोटि, अगणित ब्रह्माण्ड की,
पहने हुए हैं गले में हमारे प्रभु आदि देव,
सृष्टि और प्रलयों की लहरों की लीला में,
कभी तो मंगलमय शिव रूप होते वे,
और कभी रुद्र रूप धारण कर
करते हैं कामरूप अपने को वे अनेक।
ये जो हैं आदि से अतीत
और अन्त से असीम अन्तहीन विभु,
कर लोगे उनको तुम धारण क्या?
क्षुद्र मानवीय इस अन्तर के पट में?
पाओगे कैसे उद्धार?
आ भयार्त बोलो तो,
मृत्यु और ध्वंस के कठोर, क्रूर हाथों से?
मूर्ख हैं हम भी और तुम भी,
हम लोग सभी मूर्ख निरे,

तभी तो दंभ के खड़े हैं कर लिये ये,
अपने प्राचीर,
और कैद करना हैं चाहते, उन्हें वे घेर,
ज्योति, त्रिनयन की।
चाहते हैं सत्य शिव सुन्दर को
औरों से दूर कर अपना बना लेना
तोड़ो प्राचीर में, अपने अभिमान को,
आगे बढ़ो दैन्य के शिकंजे को व्यर्थ कर
तेरे निजस्व के साधन एकान्त,
प्रभु होंगे कैसे वे सबके शरण्य जो,
आश्रयदाता, अनन्त, जो हैं सभी जीवों के?
अपने को कर दो विलीन, नि:शेष कर,
सेवक ओ प्रभु के,
पूछो मत—'किं करोमि?'
किंकर बने रहो।
प्रभु को करुणा सम्पति, तभी देखोगे।
देखोगे तभी आशुतोष प्रभु,
करते हैं ये आत्मसात,
अपने प्रिय दास को
और तभी देखोगे धारा पीयूष की
कल्याणकारिणी, अहेतुकी,
उतरती है कैसे सब ओर से
जीवन के एक-एक स्तर को भिगाती हुई,
होकर सहस्त्रधार।

—'तेवरम्'

दिव्य भावेश एवं प्राणों को बेधने वाली मधु झंकार से पाण्ड्यराज विगलित हो उठे। अप्पर के चरणों में लोट-पोट कर उन्होंने उनकी कृपा एवं आश्रय की कामना की।

शैवाचार्य अप्पर से दीक्षित हुए। समस्त तमिल संस्कृति में शैव-साधना मुख्य बन गई। मदुराई, कांची, चिदम्बरम् सर्वत्र शैव संन्यासियों एवं आचार्यों की प्रमुखता रही। कमर में बँधा हुआ एक जीर्ण वस्त्र, हाथों में एक झोली और खुरपी। इसी वेश में अप्पर ने शैव तीर्थों और जनपदों का भ्रमण किया। उनके साथ चलती थी कुदाली और खुरपी लिए जनता की अपार भीड़। शैव मंदिरों को स्वच्छ करते हुए जनता आगे बढ़ती रही। त्याग, तितिक्षा एवं विनम्रता की प्रति-

मूर्ति अप्पर जिस मंदिर में उपस्थित होते; असंख्य लोगों की भीड़ जमा हो जाती। उनके द्वारा प्रचारित दासमार्गीय शैव साधना की जय जयकार होने लगी थी।

एक दिन अप्पर मंदिर के प्रांगण की खुरपी से सफाई कर रहे थे, तभी भक्तप्रवर सम्बन्धर वहाँ उपस्थित हुए। अप्पर को देखते ही भावाविष्ट हो सम्बन्धर उनके चरणों पर लोटते हुए अप्पर-अप्पर की आकुल पुकार करने लगे। अप्पर ने उन्हें उठाकर हृदय से लगा लिया। भक्तजन जय-जयकार करने लगे। अप्पर ने सम्बन्धर को पुत्रवत स्नेह दिया। दोनो महान विभूतियाँ साथ-साथ परिभ्रमण करने लगीं। अप्पर एकान्त साधना चाहते थे। तिरुप्पुगालूर का मन्दिर रास्ते में पड़ा। अप्पर वहीं ठहर गए। वे एकांतवास करने लगे। अप्पर के विरोधियों ने इस सिद्ध पुरुष को बदनाम करने के लिए अनेक षडयंत्र रचे। उन लोगों ने अप्पर के पास अनेक सुन्दरियों को भेजे। उन्हें धन एवं रत्न के प्रलोभन दिए गए। किंतु इस महान साधक की अलौकिक शक्ति एवं प्रचंड तेज से अभिभूत हो सुन्दरियां उनके पैरों पर गिर पड़ीं। विरोधियों ने अन्ततः आत्म-समर्पण कर दिया।

शैवाचार्य अप्पर दासमार्ग के विशिष्ट व्याख्याता थे। उनके अनुसार देवाधिदेव महादेव इस सृष्टि के प्रलय के नियन्ता हैं। जड़-चेतन सभी के प्रभु हैं। जीव उनके नित्य दास हैं। आत्माभिमान का परित्याग कर, दास्य भाव से उनकी आराधना कर तन, मन, प्राण को उनमें समाहित कर ही उस चरम सायुज्य को प्राप्त किया जा सकता है। अप्पर की यह दास मार्गी शिवभक्ति तमिल देश में ही नहीं, दक्षिण भारत के अन्य अंचलों में भी द्रुत गति से प्रसारित हो उठा। पाण्ड्य-राज महेन्द्र उनके अनुगत थे। सभी विद्या केन्द्रों के शास्त्रविद एवं महात्मा अप्पर के शैव आन्दोलन से विशेष प्रभावित थे।

महात्मा अप्पर अब अपने आराध्य शिव के चरणों में लीन होने को उत्सुक हो उठे थे। वे बार-बार प्रार्थना करते—'प्रभु! इस बार सेवक पर अपनी कृपा करो। अपने ज्योति लोक में उसे समाहित कर लो। परम मुक्ति के महासागर में उसे निमज्जित कर लो। इष्टदेव ने अप्पर की प्रार्थना स्वीकार की। उदित होकर उनके समक्ष आविर्भूत हुए। बोले—'तथास्तु'। 81 वर्ष की अवस्था में महसिद्ध अप्पर ने अपने पार्थिव शरीर का परित्याग कर दिया। अपने अभीप्सित गन्तव्य महाशिवलोक की ओर महाप्रयाण किया।

●

१०

साधक कमलाकान्त

कमलाकान्त महाशय का गाँव चन्ना अभी लगभग दो कोस दूर था। शाम ढलने लगी थी। रास्ते में डाकू दल ने उन्हें घेर लिया। 'पास जो कुछ है, रख दो' —दस्यु सरदार ने गर्जना की। भट्टाचार्य के पास शिष्य के घर से जो कुछ मिला था, उसकी पोटली थी। कुछ पैसे थे। उन्होंने दस्यु सरदार के सामने रख दिया।

'तुम्हारा घर कहाँ है ?'

'पास के चन्ना गाँव में। मेरा नाम है कमलाकान्त देव शर्मा।'

'तुम पास के गाँव के हो? तब तो तुम्हें नहीं छोड़ा जा सकता। तुम्हें छोड़कर हम लोग मुसीबत में पड़ जाएँगे। गाँव के लोगों को हमारी पहचान बताओगे। वे हमें पहचान जाएँगे। हम तुम्हें जीवित नहीं छोड़ेंगे।'

'लेकिन इससे पहले हमे माँ का नाम गान कर लेने दो, फिर तुम्हारी जैसी इच्छा।'

'ठीक है।'

'डाकू कमलाकान्त को घेर कर बैठ गए। कमलाकान्त माँ श्यामा की स्तुति गान करने लगे। वे इतने निमग्न हो गए कि उनके आँखों से अश्रुधारा बह निकली। उनकी आकुल रूलाई से डाकुओं का दिल भी पसीज गया। भावावेश में उनकी आँखें भी सजल हो गईं।'

गान समाप्त होने पर डाकू दल कमलाकान्त के चरणों पर गिर पड़ा। सरदार बोला, 'ठाकुर हम लोग घोर पापी हैं। हम लोगों को अपने चरणों में आश्रय दो, हमारी रक्षा करो। हम लोगों पर कृपा करो। डाकुओं ने एक साथ 'जयकाली' का उद्घोष किया। उनके समवेत स्वर से उड़गाँव का तट गूँज उठा।

डाकुओं का यह दल भक्त और साधक बन गया।

यह लगभग पौने-दो सौ वर्ष पहले की बात है। कमलाकान्त की प्रसिद्धि एक शक्तिमान तंत्र साधक के रूप में फैल गई। उन्होंने बंगाल के जनजीवन में मातृ साधना की एक प्राणवंत धारा प्रवाहित कर दी। कुशल गायक, कवि और शक्तिधर सिद्ध साधक के रूप में वहाँ की लोक-चेतना में विशेष रूप से प्रतिष्ठित हो गये।

कमलाकान्त तंत्रमंत्र के साधक थे। शक्तिरूपिणी आद्याशक्ति माँ काली की साधना उनके जीवन का व्रत था। उन्हें सिद्धि लाभ भी हुआ। उन्होंने गाँव-गाँव में मातृ नाम की शांति प्रदायिनी धारा प्रवाहित कर दी।

कमलाकान्त का जन्म अनुमानतः 1770 ई० में बंगाल के बर्दमान जिले के अम्बिका कालना गाँव में हुआ था। उनके पिता महेश्वर भट्टाचार्य की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। उनके मरने के बाद परिवार की स्थिति और खराब हो गई। माता महामाया देवी सब तरह से निरूपाय होकर अपने मायके चन्ना गाँव चली आईं। कमलाकान्त के नाना ने उन्हें थोड़ी जमीन दे दी जिससे गुजर-बसर होने लगा। गरीबी के कारण कमलाकान्त को अम्बिका गाँव के अपने एक यजमान के घर भेजा जहाँ वे पढ़ाई-लिखाई करते।

उपनयन संस्कार के बाद कमलाकान्त में अद्‌भुत परिवर्तन आया। समय मिलते ही वे चन्ना गांव के विशालाक्षी मंदिर के निभृत एकान्त में ध्यानस्थ होकर बैठ जाते और घण्टों बैठे रहते। गाँव के निकट ही गोविन्द मठ था। उसके सेवाइत प्रभुपाद चन्द्रशेखर गोस्वामी थे। वे अच्छे साधक थे। कमलाकान्त अक्सर उनके पास बैठकर उपदेश ग्रहण करते।

कमलाकान्त का वैराग्य भाव देखकर चिंतातुर उनकी माता ने उनका विवाह समीप के लड्डुका गाँव के एक भट्टाचार्य परिवार की सुलक्षणा कन्या से कर दिया लेकिन यह कन्या ज्यादा दिनों तक जीवित नहीं रही।

पत्नी के असामयिक निधन ने कमलाकान्त के मन में वैराग्य और निर्वेर जागृत कर दिया। उन्होंने निश्चय किया कि वे अब फिर संसार-बंधन में नहीं बंधेंगे। माँ श्यामा का नाम-जप करते चरम वैराग्य-पथ पर चलेंगे। किन्तु माँ के अनुनय-आग्रह पर उन्हें पुनः विवाह करना पड़ा। कन्या वर्दमान जिले के कांचनपुर गाँव की थी। किन्तु त्याग-वैराग्य की जो धारा उनके जीवन में प्रवाहित हो रही थी वह विवाह के पश्चात् और बेगवती हो गई। वे माँ काली के नाम-जप के उन्माद में चारों ओर भटकने लगे।

चन्ना के पास एक गाँव था सुघड़े। वहाँ एक बार काली पूजा का आयोजन था। कमलाकान्त वहाँ पहुँच गए। वहाँ केनाराम भट्टाचार्य नामक एक तन्त्र साधक उपस्थित थे। कमलाकान्त को ज्ञात हुआ कि केनाराम शक्तिधर कौल साधक हैं। उनका घर पास ही है जहाँ वे पंचमुण्डी का आसन और काली की मूर्ति स्थापित कर साधना करते हैं। कमलाकान्त ने उन्हीं से दीक्षा ग्रहण की। केनाराम ने उन्हें बताया कि माँ काली की उपासना के लिए घर-बार छोड़ने की आवश्यकता नहीं है। कमलाकान्त ने गृहस्थ जीवन में रहते हुए उन्होंने निगूढ़ तन्त्र साधना और आचार-अनुष्ठान का व्रत लिया। माँ काली की आराधना करते-करते उनके अन्तर में दिव्य आनन्द का स्रोत फूट पड़ा और अनायास ही वे शास्त्रीय संगीत की रचना करने लगे। उनका संगीत दूर-दूर तक प्रसारित होने लगा।

कमलाकान्त ने अध्यापन वृत्ति के लिए एक पाठशाला खोल ली। लेकिन उसमें मन नहीं लगा। आठ-दस वर्ष यूँ ही बीत गए। हमेशा साधन-भजन में निमग्न रहने लगे। कभी-कभी श्मशान चले जाते। 'मां-मां' के जाप से श्मशान की नीरवता भंग हो जाती।

पाठशाला की जिम्मेदारी-विद्यार्थियों ने ले ली। वे स्वयं नए बच्चों को पढ़ाने लगे। पाठशाला चलता रहा।

कमलाकान्त एक दिन वीरभूम जिला स्थित तारापीठ चले गए। वहाँ उनकी मुलाकात एक शक्तिधर साधक से हुई। उनके द्वारा बताए गए निगूढ़ कौल-साधना-पथ पर वे क्रमशः आगे बढ़ने लगे।

पाठशाला ठीक से चल नहीं रहा था। छात्रों की संख्या कम होती गई। परिवार भयंकर अर्थसंकट में पड़ गया। एक दिन घर में एक पैसा भी नहीं था। बेटी के लिए दूध कहाँ से आये। पत्नी चुपचाप बैठी थीं। तभी किसी स्त्री ने दरवाजे पर दस्तक दी—'भट्टाचार्य महाशय क्या घर में हैं? कृपा करके दरवाजा खोलिए।'

दरवाजा खुला। सामने अत्यंत लावण्यमयी-सांवली-सलोनी किशोरी खड़ी थी। उसके साथ दो सेवक थे जिनके सिर पर खाद्य सामग्रियों से भरपूर बड़ी-बड़ी टोकरियाँ थीं। किशोरी ने कहा, 'माँ ने आप लोगों के लिए यह सब भेजा है, ले लीजिए।' सेवकों ने टोकरियाँ घर में रख दीं। कमलाकान्त की पत्नी इसे देखकर भौंचक थीं। किशोरी एक मधुर मुस्कान छोड़ कर सेवकों के साथ चली गई।

आधी रात को भावाविष्ट अवस्था में कमलाकान्त घर आए। वे खाद्य पदार्थ से भरी टोकरियाँ देखकर चौंक पड़े। पत्नी ने सारी घटना कह सुनाई तो कमलाकान्त के नेत्रों से अश्रुधारा बह चली। उन्हें समझते देर नहीं लगी कि यह सामग्री भेजने वाली माँ कौन हैं।

कमलाकान्त का पूरा दिन जंगल के बीच में स्थित विशालाक्षी के मंदिर में भक्ति-गीत गाते बीतता था। बिना किसी स्थायी स्रोत के देवी की पूजा-अर्चना का काम जैसे-तैसे चल रहा था।

माँ काली मानव रूप में दर्शन देती रहीं। एक दिन विशालाक्षी को भोग लगाने के लिए मछली का जुगाड़ नहीं हो पाया तो किशोरी के रूप में पास के तालाब से दो मांगुर मछलियां पकड़कर देर रात में दे गईं। इसके बाद जंगल के अंधकार में अदृश्य हो गईं।

एक दिन पंचमंडी की क्रियाएँ समाप्त कर कमलाकान्त विशालाक्षी की मूर्ति के समीप बैठे थे। भक्ति-गीत गा रहे थे। अड़उल की मालाएँ मन में गूँथ कर माँ को अर्पित करते जा रहे थे। उनके गीत का अभिप्राय निम्नवत था—

— मैं जानता हूँ, तुम तो पाषाण कन्या हो। मुझसे छिपकर अंतर में रहती हो।

— तुमने चतुर्दिक अपनी माया फैला रखी है। अनेक जीवों की तुमने सृष्टि की है और निर्गुण छाया को भी तीन गुणों में बाँध रखा है।

— तुम किसी की दुर्मति बनती हो तो किसी की सुमति। अपने दोषों को ढँककर किसी दूसरे को ही दोष देती हो।

— माँ, मैं निर्माण की आशा नहीं करता। मैं स्वर्ग भी नहीं चाहता। मैं तो तुम्हारे दोनों नेत्रों की ओर टकटकी लगाकर देखते रहना चाहता हूँ, उन्हें अपने हृदय में संजोकर रखना चाहता हूँ।

गान रुक गया। कमलाकान्त ध्यान के आनन्द में विभोर थे। आँखों से अविरल आँसू की धारा बह रही थी।

'चुप क्यों हो गए बाबा? फिर से गाओ।' अचानक एक आवाजा आई।

कमलाकान्त ने देखा, मंदिर के द्वार पर एक वृद्धा प्रसन्न मुद्रा में बैठी है। बोली, 'तुम्हारा यह गीत बड़ा ही मधुर है। मुझे कुछ और सुनाओ न, बेटा।'

'तुम कौन हो? रात्रि के इस अंधकार में कहाँ से आई हो?' कमलाकान्त ने कहाँ, 'मां, मैं तो तुम्हें गीत सुनाता हूँ, किन्तु इसके पहले अपना परिचय दो।'

'तुमने मुझे पहचाना नहीं?' वृद्धा ने कहा, 'मैं तो तुम लोगों के धर्मनारायण की माँ हूँ।'

धर्मनारायण उसी गाँव का ग्वाला है। वह प्रतिदिन विशालाक्षी मंदिर में दूध खीर भेंट चढ़ाने आता है। यह महिला उसकी माँ है, यह जानकर कमलाकान्त प्रसन्न हुए। फिर एक पर एक श्यामा गीत सुनाने लगे। कुछ देर बाद उन्होंने देखा वृद्धा वहाँ नहीं है।

दूसरे दिन सबेरे जब कमलाकान्त ने इस बात की चर्चा धर्मनारायण से की तो पता चला उसकी माँ तो बचपन में ही मर चुकी हैं। उसका लालन-पालन दूसरों ने किया है।

कमलाकान्त समझ गए कि कल रात जगज्जननी ही वृद्धा का रूप धारण कर उनके पास आई थीं। माँ के विछोह की तीव्र वेदना आर्त्त क्रन्दन बनकर फूट पड़ी। वे 'माँ-माँ' पुकारते हुए मूर्छित हो गए।

उनके परिवार की दयनीय हालत देखकर कमलाकान्त का एक मित्र उनके परिवार को अपने घर अम्बिका गाँव ले गया। कुछ दिनों बाद कमलाकान्त की माँ का वहीं देहांत हो गया। कमलाकान्त का मन चन्ना गाँव की साधन पीठ और विशालाक्षी मंदिर के बिना नहीं लगा। वे फिर विशालाक्षी की शरण में आ गए। उन्होंने और कठिन तपश्चर्या शुरू की। अन्त में एक दिन जगज्जननी की कृपा का कपाट खुल गया और उन्हें तन्त्र-साधना की चरम सिद्धि की उपलब्धि हुई।

कमलाकान्त की कीर्ति चतुर्दिक फैलने लगी। वर्दमान के महाराज के कानों में भी पहुँची। महाराजा तेजचन्द्र ने उन्हें सम्मान के साथ बुलवाया और दीक्षा ग्रहण की। तत्पश्चात वर्दमान के निकट कोटालहाट में उनके लिए एक घर बनवा दिया। उनकी श्यामा-विग्रह की पूजा-अर्चना के लिए मासिक वृत्ति और समय भी नियत कर दिया। कुछ दिनों बाद युवराज प्रतापचन्द्र ने भी उनसे दीक्षा ली और कमलाकान्त के आश्रम में रहकर ही तंत्र-साधना करने लगे।

कोटालहाट स्थित कमलाकान्त की श्यामामूर्ति महाजाग्रत देवी के रूप में प्रसिद्ध हो गईं। देश-विदेश के श्रद्धालुजनों की भीड़ एकत्रित होने लगी।

अमावस्या की रात थी। घोर अंधकार। जोरों की वर्षा और आंधी। कमलाकान्त काली मंदिर में भावाविष्ट बैठे थे। उन्हें ध्यान ही नहीं रहा कि पूजा का लग्न बीता जा रहा है। उनके मानस पटल पर जगन्माता का एक भीम-भयंकर रूप उद्भाषित हो रहा था। ध्यानावेश के कटने पर माँ के रुद्राणी रूप का स्तव-गान करने लगे—

कराल बदनां घौरां मुक्तकेशीं चतुर्भुजां।
कालिकां दक्षिणां दिव्यां मुंडमाला विभूषितां।
सद्यश्छिन्न शिरः खड्ग बामाधोर्द्ध करांबुजां।
अभय वरदैष्ण दक्षिणाधोर्द्ध पाणिकां।
महामेघ प्रेमं श्यामां तथा चैव दिगम्बरी।
कंटावसक्त मुंडाली गलद्रुधिरचर्चितां।

महाकाली के इस स्तोत्र और मातृ-नाम के जप से पूजास्थली! प्रकम्पित हो रही थी। तभी विष्णु कर्मकार ने मंदिर में घुस कर निवेदन किया—'ठाकुर, पूजा का लग्न बीता जा रहा है।'

'आज मेरी माँ का दनुज-विनाशिनी रूप प्रस्फुटित हो रहा है। आज तो पूजा में भैंसे की बलि देनी होगी।'

कमलाकान्त की बात सुनकर विष्णु भैंसे की खोज में निकल पड़ा। मूसलाधार वर्षा के साथ तेज हवा चल रही थी। कुछ दूर जाने पर कुछ लोग मंदिर की ओर आते हुए दिखाई पड़े। उनके साथ एक भैंसा और पूजा की सामग्री भी थी।

मंदिर के परिचारक के रूप में विष्णु पूरे इलाके में परिचित था। उसे देखते ही आगन्तुकों का मन खिल उठा। यह जानकर वे प्रसन्न हुए कि मातृपूजा अभी शुरू नहीं हुई है। विष्णु की खुशी का भी ठिकाना नहीं रहा कि माँ ने अपनी पूजा का इंतजाम स्वयं कर दिया।

माँ काली की पूजा विधिवत सम्पन्न हुई।

महाराज तेजचन्द्र ने कमलाकान्त को गुरु रूप में वरण किया। तत्पश्चात इस साधक का आचार्य रूप में जीवन शुरू हुआ। भक्तों की साधना में कमलाकान्त तन्त्राचार और योगमार्ग दोनों का समावेश करने लगे। उनकी इस साधना प्रक्रिया का परिचय उनकी पुस्तक 'साधक-रंजन' में मिलता है।

कमलाकान्त एक साथ ही साधक, कवि और लोक कल्याणकारी पुरुष थे। उनकी संगीत-रचना में उनके पूर्ववर्ती साधक रामप्रसाद का कुछ प्रभाव दिखाई देता है। निस्संदेह रामप्रसाद के बाद कमलाकान्त का ही स्थान है। उनकी पुस्तक 'साधकरंजन' में तन्त्र-साधना के सभी गूढ़ तत्त्वों को सहज रूप में समझाया गया है। उन्होंने लिखा है—

> 'मां, मैं तुम्हारे श्याम रूप को कितना प्यार करता हूँ।
> तुम भुवन मनमोहिनी हो, मुक्तकेशिनी हो।
> तुम्हें सब लोग काली-कलूटी कहते हैं, लेकिन मैं तो देखता हूँ,
> तुम निष्कलंक चन्द्रमा जैसी धवल हो।'

ईष्टदेवी की चिद्‌घन सत्ता निरन्तर उनके अन्तर में प्रकाशित रहती थी। कमलाकान्त के काली तत्त्व में सन्निहित था सर्वव्यापिनी ब्रह्मशक्ति का परम तत्त्व। वे सम्पूर्ण सृष्टि को जगज्जननी माँ श्यामा से ओतप्रोत देखते थे।—

> 'मेरी माँ स्थल में, शून्य में, वायु और जल में सर्वत्र व्याप्त है।
> तुम लोग मेरी ब्रह्माण्ड रूपिणी माँ को जानते नहीं?
> मेरी माँ घट में है, पट में है, सम्पूर्ण शरीर में है।
> वह रमणी का नयन-कटाक्ष भी है जिसके फलस्वरूप संसार का मन मोहित करती है।
> अरे, कमलाकान्त का मन, तुमको कितना भय है? तुम्हें तो विरंची ब्रह्मा का वांछित धन मिल गया है।'

अखण्ड ब्रह्मतत्त्व स्वरूपिणी इष्टदेवी महाकाली का जो रूप कमलाकान्त के अन्तर में प्रकाशित रहता था, उसमें आकाश-तत्त्व और शब्द-तत्त्व के साथ काली और शिव की, प्रकृति और पुरुष की परमसत्ता एकाकार होकर निहित थी। वे निरंतर अखण्ड चैतन्यमयी महाकाली के ध्यान में मगन थे, इसलिए उनकी दृष्टि में श्यामा और श्याम में कोई अन्तर नहीं था।

वर्दमान के महाराजा तेजचन्द्र के कानों में यह बात पहुँची थी उनके पुत्र राजकुमार प्रतापचन्द्र शराब के आदी हो गए हैं। वे क्रोधित हुए और कमलाकान्त से मिलने कोटालहाट पहुँचे। कमलाकान्त श्मशान से आ रहे थे। माँ का गीत गाते हुए। उनके हाथ में घड़ा था जिसमें शराब थी। कमलाकान्त के निकट आने पर महाराज ने पूछा, 'ठाकुर मैंने अपने पुत्र प्रताप को आपके हाथों में सौंप दिया था।

आशा था कि आपसे दीक्षित होकर वह आदमी बनेगा। लेकिन आपके साथ-साथ रहते-रहते वह घोर शराबी हो गया है।'

कमलाकांत ने कहा, 'महाराज किस आधार पर आप ऐसी बात कह रहे हैं?'

महाराज ने कहा, 'इसका सबसे बड़ा प्रमाण तो ठाकुर आपके हाथ का घड़ा है। इसमें से शराब की गंध आ रही है।'

'लेकिन इसमें तो शुद्ध दूध है।'

महाराज और उनके साथ आए अधिकारियों ने आगे बढ़कर घड़े को देखा। उसमें सचमुच दूध था। शराब की गंध गायब थी।

महाराज को आश्चर्य हुआ। लेकिन उन्होंने कहा, 'ठाकुर, यदि इसमें दूध है तो इसमें मक्खन भी निकलना चाहिए।'

'अवश्य'। कहते हुए कमलाकांत ने घड़ा महाराज के आदमियों को दे दिया। उस दूध से मक्खन निकाला गया। फिर उसे गलाकर घी बनाया गया। उस घी से कमलाकान्त ने होम भी किया।

महाराज को खेद हुआ कि उन्होंने अपने गुरु पर अविश्वास किया।

इस घटना के कुछ ही दिनों बाद युवराज प्रतापचन्द्र गृह त्याग कर कहीं चले गए।

कमलाकांत की प्रसिद्धि दूर-दूर तक हो गई। उन्हें काली पूजा के लिए बनारस आमंत्रित किया गया। कमलाकान्त बनारस आए। काली पूजा कर रहे थे। मध्यरात्रि में वे बीच-बीच में सुरापान भी करते रहे। आयोजकों में से कुछ ने एतराज किया। माँ की पूजा में सुरापान। यह तो अनर्थ हो रहा है। कुछ लोगों ने समझाया— 'कमलाकान्त सिद्ध पुरुष हैं। उनकी पूजा-पद्धति में व्यवधान नहीं डालना चाहिए।'

'तो क्या मिट्टी की काली प्रतिमा में प्राण-प्रतिष्ठा कर देंगे?'

कमलाकांत की आंखें मुहूर्त भर में प्रदीप्त हो उठीं। उन्होंने उच्च स्वर में कहा, 'क्या सचमुच देखना चाहते हो कि मूर्ति जीवन्त हुई या नहीं? तो देखो।'

इतना कहकर उन्होंने सामने पड़ा बलिदान वाला खड्ग उठा लिया और प्रतिमा के हाथ पर उसे बैठा दिया। माटी की उस मूर्ति के हाथ से जहाँ तलवार का घाव था, झर-झर रक्त की धारा बहने लगी।

भय और विस्मय से विमूढ़ आलोचकगण कमलाकान्त के चरणों पर गिर पड़े। इसके बाद कमलाकान्त कोटालहाट लौट गए। किन्तु काशी में उनका मन भरा नहीं था। अन्तर्मुख हो कर वे धीरे-धीरे आत्मसत्ता में डूबने लगे। उनकी मानसिक स्थिति इस कविता में अभिव्यक्त हुई है—

रे मन, किसी अन्य के घर मत जा,
तुम अपने आपको ही देख
अपने अन्त:पुर में ही जो कुछ खोजोगे
मिल जाएगा।
तीर्थ यात्रा केवल दु:ख पूर्ण भ्रमण है
लेकिन तुम उचाट क्यों होते हो मेरे मन?
तुम मूसलाधार की आनन्द-त्रिवेणी में स्नान कर
शीतल क्यों नहीं हो जाते?

कमलाकान्त अब वृद्ध हो गए थे। उनकी द्वितीय पत्नी भी चल बसी थीं। शिष्य प्रतापचन्द्र भी नहीं रहे। सिर्फ एक कन्या थी। अंतिम समय आ गया। महाराज तेजचन्द्र गुरु के दर्शन के लिए आए। वे उन्हें गंगा तट पर ले जाना चाहते थे लेकिन कमलाकान्त ने मना कर दिया। बोले, 'महाराज, मन का संताप दूर कीजिए। मैं यहाँ मंदिर के सामने ही प्राण छोड़ना चाहता हूँ। आप कल दोपहर को एक बार आइए।'

दूसरे दिन तमाम भक्तगणों के साथ महाराज तेजचन्द्र भी आ गए थे। कमलाकान्त सुबह से ही भाव-विभोर थे। उन्होंने उपस्थित मण्डली से कहा, 'मेरे लिए तृण-शैय्या बिछा दो।'

तृणशैया बिछाकर कमलाकान्त को उस पर सुला दिया गया। उनके मुखमण्डल पर अलौकिक आभा छिटक रही थी। क्षीण स्वर में उन्होंने गाना शुरू किया—

मां श्यामा के रूप में मेरी आंखें डूब गई हैं।
उनका अनुपम रूप कितना कोमल काला है, चिकना-चिकना।
उस सुचिक्कन, काले, अनुपमेय रूप को देखकर
त्रिलोचन शिव ने उन्हें अपने-हृदय में रख लिया है।

जगज्जननी के उस नील मेघवर्णी रूप का ध्यान करते-करते मातृसाधक कमलाकान्त ने सदा के लिए आँखें मूद लीं।

उपस्थित जनता ने विस्मय से देखा कि उस तृणशैया के नीचे पृथ्वी तक को फोड़ कर भगवती की पवित्र जलधारा फूट पड़ी है। उस अलौकिक जलधारा को देखकर साधक कमलाकान्त को अंतिम समय में गंगा-तट नहीं ले जाने का खेद महाराज तेजचन्द्र के मन से मिट गया।

●

११

राजा रामकृष्ण

साधक रामकृष्ण का जन्म बंगाल के राजशाही के आठ ग्राम नामक स्थान में उच्च ब्राह्मण वंश में हुआ था। उनके पिता का नाम हरिदेव राय था। इस राय परिवार से नाटोर-राजवंश का जातीय सम्बंध थे। नाटोर राजवंश ने रामकृष्ण को गोद ले लिया था। रानी भवानी के अगाध ऐश्वर्य और प्रताप की छत्रछाया में बालक रामकृष्ण की परवरिश होने लगी।

राज प्रासाद में कंगाली भोजन हो रहा था। एक लाख ब्राह्मणों की पदधूलि ग्रहण करने के व्रत का रानी उद्यापन कर रही थीं। कुमार रामकृष्ण भी माता के साथ रहकर स्वयं पात्र में उसी धूलि का संग्रह कर रहे थे। यह दृश्य प्रायः देखने को मिलता था।

कुमार की शिक्षा श्रेष्ठ आचार्यों के अधीन चल रही थी। कुमार राजप्रासाद के कोलाहल के प्रति उदासीन रहते थे। कुमार के मनोभाव और आचरण से रानी चिन्तित रहने लगीं। उन्होंने अपने गुरु तर्कवागीश से परामर्श लिया। वे बोले—'माँ, रामकृष्ण की शादी कर दें और कुमार के हृदय में धर्म जीवन की जो आकांक्षा उग्र हो रही है, उस ओर देखते हुए अविलम्ब उसे दीक्षा देने की व्यवस्था करें।'

कुमार की शादी अत्यंत रूपवती कन्या से हुई। तर्क वागीश ठाकुर के निर्देश से कुमार को माता रानी भवानी ने ही दीक्षा-मंत्र दिया। ऐसा इसलिए किया गया क्योंकि उत्तरकाल में कम से कम गुरु-ज्ञान में माता के प्रति ही भक्तिमान रहें रामकृष्ण।

रानी भवानी अपना ज्यादातर समय पूजा पाठ में ही व्यतीत करने लगीं। कभी मुर्शिदाबाद में गंगा के किनारे, कभी बढ़नगर के प्रासाद में लेकिन ज्यादातर समय बनारस में।

इधर राजा रामकृष्ण का मन सभी बंधनों से मुक्त होने के लिए अधीर हो रहा था। नाटोर के प्रख्यात काली मंदिर में उनका ज्यादातर समय बीतने लगा। बीच-बीच में वान्सर के श्मशान में जाकर भी ध्यान मग्न हो जाते थे।

नाटोर के समीप ही भवानीपुर में एक सिद्ध शक्तिपीठ है। रामकृष्ण वहाँ जाकर पूजा-अर्चना करने लगे। पंचमुंडी के आसन पर बैठकर कई-कई दिनों तक ध्यान-मग्न रहते।

एक बार तारापीठ जाकर उन्होंने प्रसिद्ध तांत्रिकों के साथ मुलाकात की। उन्हें वहां साधन-निर्देश और निगूढ़ तंत्र-क्रियादि की शिक्षा ग्रहण करने का अवसर प्राप्त हुआ।

इस समय भवानीपुर में एक महाशक्तिमान कौलाचार्य का आविर्भाव हुआ। इनके निकट राजा रामकृष्ण पूर्णाभिषिक्त हुए और उन्होंने शव-साधना का अनुष्ठान किया। कौलाचार्य की निष्ठायुक्त साधन धारा को पकड़ कर रामकृष्ण का आध्यात्मिक जीवन प्रवाहित होने लगा। वे प्रायः भवानीपुर के शक्तिपीठ में जाकर तपस्या में मग्न हो जाते थे।

शाक्त ग्रन्थों के अनुसार भवानीपुर शक्तिपीठ में ही सती का पतन हुआ था। यहां की अधिष्ठात्री प्रतिमा का नाम अपर्णादेवी है। लेकिन जनसाधारण में यह शक्ति-प्रतिमा भवानी देवी के नाम से विख्यात है।

राजा रामकृष्ण ने काली मंदिर के चारो ओर पंचमुंडी आसन स्थापित किए। पास ही दो सरोवरों के पास वकुल-वाटिका थी। यह उनकी सन्ध्याकालीन धर्मसभा का स्थान था। प्रसिद्ध तांत्रिक आचार्यों के कुलाचार की विवेचना और साधनमार्ग के अनेक मूल्यवान निर्देश इस सभा में ग्रहणकर सभी उपकृत होते थे।

भवानी देवी की सेवा-पूजा के लिए राजा रामकृष्ण ने उस समय बड़ी राशि की आय का एक तालुका अलग कर दिया था।

अमावस्या की अंधेरी रात थी। रामकृष्ण काली मंदिर में बैठकर ध्यानमग्न थे। बार-बार हाथों में लाल अढ़उल और बेलपत्र मां के चरणों में अर्पित कर रहे थे और 'माँ-माँ' का उच्चारण कर रहे थे। उनके पास सिर्फ पुरोहित और अनुचर भोला थे। अकस्मात् मंदिर प्रांगण में दण्ड-कमण्डल और त्रिशूल धारण किए हुए एक संन्यासी दिखाई पड़े। सुडौल शरीर भूरीजटा, सिद्ध साधक की दिव्य ज्योति! पुरोहित ने स्वागत सत्कार किया। उन्हें आशीर्वाद देते हुए संन्यासी ने कहा, 'मैं राजा रामकृष्ण से मिलने आया हूं, तुरंत उनके पास ले चलो।'

मंदिर के द्वार पर पहरा दे रहे भोलानाथ ने निवेदन किया, 'प्रभु, ध्यान में मग्न रहने के समय महाराज के पास जाने का कोई उपाय नहीं है। अच्छा यही होगा कि आप कल प्रातः काल आकर उनसे अपनी बात कहें।'

क्रोध से संन्यासी की आंखें लाल हो गईं। वे मंदिर के चबूतरे पर जाकर खड़े हो गए और चीखने लगे, 'रामकृष्ण तुम्हें धिक्कार है।' तुम अपने को ही भूल गए? तुम क्या थे? तुम्हारा असल परिचय क्या है? एक बार तुम अपना पहला जीवन याद करो। तोड़ डालो माया के बंधन!, और संन्यासी अंधेरे में गुम हो गए।

रामकृष्ण के कानों में संन्यासी की आवाज पड़ी। उन्हें लगा कि यह कोई, परिचित स्वर है। वे दौड़कर मंदिर से बाहर आए। पूछा, 'कहाँ गए वे संन्यासी?'

बहुत खोजने पर भी संन्यासी नहीं मिले। रामकृष्ण जब प्रातः प्रासाद लौटे तो उन्हें लगा जैसे कोई कह रहा हो—'तोड़ डालो ये बंधन।' वे उद्विग्न हो उठे।

तभी मुक्ति का अवसर भी आ गया। वारेन हेस्टिंग्स ने यह परगना अपने एक ताबेदार के नाम लिख दिया। यह अठारहवीं शती का उत्तरार्ध था। नाटोर राज्य के लिए यह बड़ी क्षति थी। एक आश्रित व्यक्ति के विश्वासघात के कारण भुलना परगना भी हाथ से निकल गया। रामकृष्ण एक संन्यासी की तरह स्थिर रहे। एक-एक इन परिसम्पत्तियों की नीलामी होती रही, रामकृष्ण सांसारिक बंधनों से मुक्ति की खुशी में निश्चिन्तता की सांस लेते रहे। मंदिर में महा समारोह और षोडशोपचार पूजा की व्यवस्था हो रही थी। मुक्ति के लिए रामकृष्ण अधीर हो उठे।

आठ ग्राम के रिश्तेदार रामकृष्ण को गद्दी से हटाने का षडयंत्र करने लगे। किंतु सफलता नहीं मिली। यह बात जब रामकृष्ण को पता लगी तो उन्होंने षड्यन्त्रकारियों को बुलाया और अपनी जमींदारी का एक बड़ा हिस्सा उन लोगों को लिख दिया। शुभचिंतकों के एतराज पर बोले—'जमीन पाकर उन लोगों की अशांति थोड़े ही दूर होगी।'

नाटोर से पाँच-छह मील दूर प्रसिद्ध वान्सर श्मशान में राजा रामकृष्ण की साधना चलती रहती थी। साधना के कई साल बीत गए। धीरे-धीरे पूरे बंगाल में रामकृष्ण की साधना, सिद्धि और दानशीलता की बात फैल गई। राज्य का ऐश्वर्य अब पहले जैसा नहीं रहा। लेकिन जब रामकृष्ण राजप्रासाद में होते तो उनके पास से कोई निराश नहीं जाता।

एक दिन रामकृष्ण राजसभा में बैठे थे। एक गरीब ब्राह्मण आया। उसने एक पत्थर का टुकड़ा राजा को दिया। उस पर एक श्लोक खुदा था—

यदुपतेः क्व गंगा मथुरापुरीः।
रघुपतेः क्व गतोत्तर कोशला॥
इति विचिन्त्य कुरुस्व मनः स्थिरं।
न सदिदं जगदिव्यधारय॥

अर्थात् यदुपति कृष्ण की मथुरापुरी कहाँ गई, रघुपति का उत्तर कौशल भी आज कहाँ है? यह विचार कर तुम अपना मन स्थिर करो और जगत् के नश्वरत्व को समझो।

राजा ने पूछा, 'यह पत्थर तुम्हें कहाँ मिला?'

'महाराज, मैं दरिद्रता से ऊबकर फाँसी लगाने के इरादे से वान्सर के जंगल में चला गया। वहां एक संन्यासी प्रकट हुए। उन्होंने यह पत्थर का टुकड़ा देते हुए कहा, 'इसे रामकृष्ण को दे देना तुम्हारी गरीबी दूर हो जाएगी।'

रामकृष्ण ने उस ब्राह्मण की दरिद्रता दूर करने का आदेश देकर सभा भंग कर दी।

रामकृष्ण के मन में बार-बार यह सवाल कौंधने लगा। कौन है वह संन्यासी जो उनका अनुसरण कर रहा है ?

रामकृष्ण की विरक्ति और दानशीलता के कारण राजकोष शून्य हो चला था। रानी भवानी उन दिनों बनारस में थीं। उन्हें समाचार मिला तो चिन्तातुर हो गईं। जमींदारी का बड़ा भाग हाथ से जा चुका था। जो बचा था उसकी देखभाल का जिम्मा स्वयं सम्हालने के निश्चय के साथ वह लौट आईं।

रानी भवानी के आने से रामकृष्ण जमींदारी की जिम्मेदारियों से मुक्त हो गए। वे तमाम शक्तिपीठों में जाकर साधना करने लगे। बनारस जाकर काशी विश्वनाथ और माँ अन्नपूर्णा का दर्शन किया। अंत में एक दिन उनकी साधना तब पूरी हुई जब भवानीपुर की पीठस्थली पंचमुंडी के आसन पर बैठकर इष्टदेवी आद्यशक्ति के साक्षात् दर्शन उन्हें प्राप्त हुए।

अमावस्या की अँधेरी रात में महापूजा के अनुष्ठान में कुछ विलम्ब था। राजा रामकृष्ण प्रेमानन्द में मतवाले हो उदात्त स्वर में स्वरचित गीत गा रहे थे। उनके आँखों से अश्रुधारा अविरल बह रही थी। अकस्मात सामने के वनांचल से 'हा-रे-रे' की भयावह आवाज आई। डाकुओं का एक दल मंदिर लूटने के लिए आ रहा था। डाकू जानते थे कि मंदिर के संदूक में चढ़ावे का पैसा होगा। देवी प्रतिमा पर लाखों के आभूषण होंगे। महिलाएँ भी आभूषणों से लदी होंगी। लेकिन यह कैसा अद्भुत दृश्य। डाकुओं का दल हाथों में मशाल लिए एक बार आगे बढ़ रहा है तो एक बार पीछे लौट रहा है। अंत में थक-हार कर डकैत वापस लौट गए। डाकुओं के आने और फिर लौट जाने का रहस्य भक्तों की समझ में नहीं आया। लेकिन सिद्ध-साधक रामकृष्ण ने यह रहस्य जान लिया। उनकी आँखों से आनंद के आँसू बह रहे थे। माँ ने अवतीर्ण होकर दस्यु दल को भगाया था।

डाकू दल का सरदार दूसरे दिन मंदिर में आया और रामकृष्ण के चरणों पर गिर पड़ा। पिछली रात उसने माँ की अलौकिक लीला देखी थी। इस दस्यु सरगना का नाम शंकरा था। उत्तरी बंगाल में इसका आतंक था। उसने रामकृष्ण से कहा, 'महाराज मुझे पता था कि केवल कुछ ही लोग मंदिर की रक्षा कर रहे हैं। एक बार भी नहीं सोचा कि स्वयं जगज्जननी अवतीर्ण होकर मंदिर की रक्षा करेंगी। आज पता चला कि आपका आश्रय ही सबसे बड़ा आश्रय है।' रामकृष्ण ने शंकरा को गले लगा कर कहा, 'भाई, तुम्हारा भाग्य असीम है, तुमने स्वयं माँ की हाथों में तलवार पकड़ा दी। मैं सारा दोष क्षमा करता हूँ। अब से माँ की वंदना करते हुए आनंदपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करो।'

एक दिन संवाद मिला, बादशाह ने नाटोरा अधिपति को 'महाराजाधिराज पृथ्वीपति' की उपाधि से अलंकृत किया है। बादशाह और ईस्ट इंडिया के प्रतिनिधि यह उपाधि देने नाटोरा आ रहे हैं। राजधानी में उत्सव आयोजित था। लेकिन रामकृष्ण इस सबसे निस्पृह थे। उन्होंने दीवान को आदेश दिया, 'कई दिनों तक षोडशोपचार के साथ नित्य देवी-पूजा, ब्राह्मण-भोज तथा कंगालों को दान देने की व्यवस्था की जाय।' बड़ी संख्या में प्रार्थियों की भीड़ लगने लगी।

बड़-बड़े परगना एक-एक कर नीलाम होने लगे। अर्थ की कमी और रामकृष्ण की उदारता से दीवान तंग आ गए। दरअसल रामकृष्ण ने यह जानते हुए कि खजाना खाली है, जानबूझ कर यह व्यवस्था अपना भार हल्का करने के लिए हो तो की थी।

एक दिन फिर उसी रहस्यमय संन्यासी का आगमन हुआ।

उत्सव की शोभायात्रा में हाथी की पीठ पर सवार होकर वे उस दिन नाटोर के राजपथ पर जा रहे थे कि उनकी नजर दिव्यकांति वाले संन्यासी पर पड़ गई।

रामकृष्ण हाथी से उतर गए। उनके दिमाग में कौंधा ये वही संन्यासी हैं जो अमावस्था की रात को काली मंदिर में आए थे और उस ब्राह्मण को पत्थर का टुकड़ा दिया था। संन्यासी ने उन्हें अपना परिचय दिया। वे उच्च कोटि के साधकों के बीच श्री जी के नाम से विख्यात थे। राजस्थान के बूंदी राजवंश में उनका जन्म हुआ था। युवावस्था में ही उन्होंने गृहत्याग किया था। उसके बाद एक महायोगी के आश्रम में उन्होंने सिद्धि प्राप्त की थी।

दोनों लोग नगर के पास एक निर्जन स्थान में जाकर बैठ गए। श्रीजी ने अकस्मात रामकृष्ण के मेरुदण्ड का स्पर्श किया। रामकृष्ण के शरीर में विद्युत लहर सी उठी। पूर्वजन्म की स्मृति मानस-पटल पर अंकित हो गई। उन्होंने देखा, हरिद्वार के पुथ क्षेत्र की एक गुफा में वे बैठे हुए हैं। गुरु और उनके प्रवीण गुरुभाई सामने ध्यानस्थ हैं। ये गुरु भाई ही आज के श्री जी थे।

दोनों तरुण शिष्यों के साधन-जीवन के अंतस्तल में छिपी हुई थी एक क्षीण भोग-कामना। सद्गुरु की दिव्य दृष्टि को उस दिन वे धोखा नहीं दे सके थे। प्रारब्ध मिटाने के लिए ही यह दूसरा जन्म हुआ था। श्री जी बहुत पहले आविर्भूत हुए थे। स्वयं बंधनमुक्त होकर अब वे बार-बार गुरुभ्राता की मुक्ति के लिए आ रहे थे।

संन्यासी फिर अन्तर्ध्यान हो गए।

रामकृष्ण राज-पाट, पत्नी-बच्चों सबका मोह त्याग कर, भवानीपुर के पंचमुंडी आसन पर बैठ गए। अब उनकी चरम साधना शुरु हुई।

काफी दिन बीत गए। अमावस्या को घोर अंधकार था। रामकृष्ण ध्यानमग्न थे। अकस्मात् पंचमुंडी की साधन कुटी दिव्य ज्योति से आलोकित हो

उठी। आद्यशक्ति जगज्जननी उस समय उनके समक्ष अविर्भूत हुईं। देवी ने कहा, 'इससे पहले कि मैं तुम्हें आत्मसात कर लूँ, तुम्हें अंतिम कार्य सम्पन्न कर लेना होगा। रानी भवानी तुम्हारी मां हैं। अध्यात्म-जीवन में प्रवेश के लिए तुमने दीक्षा भी उन्हीं से ली है। उनके साथ तुम्हारा मन-मुटाव हो गया है। इसे मिटाए बिना परम प्राप्ति संभव नहीं है।'

रामकृष्ण ने हाथ जोड़ कर कहा, 'जगज्जननी तुम्हीं बताओ, मुझे क्या करना चाहिए।'

'बेटे, रानी भवानी की इच्छा थी, तुम्हें प्रजापालक राजा और महान साधक दोनों एक साथ देखने की। लेकिन तुम राजत्व को ठोकर मारकर मुक्तिकामी साधक बन बैठे हो। इसी कारण यह मतभेद है। प्रारब्ध का भोग इस बार खण्डित होगा। तुम माँ से क्षमा याचना करो। सांसारिक जीवन की सभी इच्छाओं को मिटाकर फिर मेरे पास आओ।' इतना कहकर आद्यशक्ति अन्तर्ध्यान हो गईं।

रानी भवानी मुर्शिदाबाद में थीं। रामकृष्ण को वहाँ जाना होगा।

कहा जाता है, सिद्ध साधक की अमोघ इच्छा उस समय अविलम्ब और अलौकिक रूप में पूरी हो गई। क्षण मात्र उनका सिद्ध शरीर पंचमुंडी के ध्यानासन से झटके के साथ उठा और बड़ नगर की तरफ चल पड़ा। पहरा दे रहे शिष्य भोलानाथ से कहा, 'भोला, कुछ चिन्ता मत करना, मैं इस क्षण माँ के पास जा रहा हूँ।'

कुछ समय बाद संवाद मिला, रामकृष्ण का शरीर उस दिन रात में भवानीपुर से बहुत दूर पाकुड़िया अंचल के एक पुल के समीप गिर पड़े हैं। उस अंधेरी रात में, इतने कम समय में वे पाकुड़िया तक की दूरी कैसे तय कर सके, यह रहस्य कोई नहीं जान सका।

पाकुड़िया में नाटोरा के गुरुवंशीय ब्राह्मण निवास करते थे। संवाद मिलते ही वे दौड़कर आए। उन लोगों ने रामकृष्ण को पालकी में बैठा कर रानी भवानी के पास पहुँचा दिया।

माता और पुत्र का मिलन बहुत ही मर्मस्पर्शी था। माता से क्षमा प्राप्त करने के बाद रामकृष्ण का जीवन रूपान्तरित हो गया। परम पद प्राप्त करने का समय आ गया था।

बड़नगर के गंगातट पर तीन रात बिताने के बाद राजा रामकृष्ण ने मानो अंतिम रूप से आद्यशक्ति के दर्शन प्राप्त किए। उनकी सम्पूर्ण सत्ता मातृमयी हो उठी।

अंतिम साँस निकट रही। आप्तकाम साधक इस समय परमानन्द में स्फुट स्वर से गाने लगे—

मेरा मन यदि भूले,
तो मृत्युशय्या पर काली का नामामृत
पहुँचा देना मेरे कानों में।
यह शरीर अपना नहीं है,
दुश्मन के साथ चला है।
लाओ हे भोला। जप की माला,
विलीन हो जाऊँ गंगाजल में।

उत्तर साधक भोलानाथ उनके कानों में बार-बार मातृनाम सुधा पहुँचा रहा था। इष्ट क्षण में रामकृष्ण के हाथ की जयमाल सर्वदा के लिए स्थिर हो गई।

आप्तकाम महासाधक की सर्वसत्ता जगज्जननी के ज्योतिसागर में एकाकार हो गई।

1795 खृष्टाब्द के तंत्र साधना के क्षेत्र में बंगाल के इस महान साधक का देहावसान हो गया।

●

१२

यामुनाचार्य

दक्षिण के पांड्य राजा की राज-सभा। एक तरफ परम विद्वान दिग्विजई आचार्य कोलाहल और दूसरी ओर ईश्वरीय प्रतिभा से सम्पन्न बारह वर्षीय बालक यामुन। इस बेमेल 'योद्धाओं' के बीच बाद-विवाद देखने और सुनने वालों की भीड़ ठसाठस भरी राज-सभा।

पांड्यराज का निर्देश पाकर आचार्य कोलाहल ने शास्त्रार्थ शुरु की। उन्होंने पाणिनि और अधर कोष से कई प्रश्न पूछे। ऋजुता और दीप्त भंगिमा से खड़े होकर यमुना ने उनके प्रश्नों के उत्तर सहजता से दे दिए। तुमुल करतल ध्वनि से सभागृह गूंज उठा।

अब बारी-यामुन की थी। उसने कहा, 'आचार्य, आप के प्रश्न कोई गूढ़ नहीं थे। प्रतीत होता है कि मुझे एक बालक समझ कर आपने मेरी अवहेलना की है। शायद आपके अनुसार विशालकाय और विराट् उदर होने पर ही कोई अगाध पण्डित माना जा सकता है। तो क्या मैं यहा समझूँ कि एक विशालकाय हाथी आपकी अपेक्षा श्रेष्ठ पंडित है?'

सभा में हँसी के फौव्वारे फूट पड़े।

यामुन ने कहा—'आचार्यवर, आपको विदित है, जब अष्टावक्र ने जनक के सभा-पंडित बन्दी को पराजित किया था, उस समय उसकी अवस्था मात्र बारह वर्ष की थी। इसलिए मेरे साथ प्रश्नोत्तर के लिए उम्र का विचार नहीं करेंगे।'

फिर पाण्ड्यराज के निर्देश पर यामुन ने प्रश्न किया—'आचार्य कोलाहल, मैं आपसे अत्यंत सरल तीन प्रश्न करूँगा। मेरा प्रथम वक्तव्य है : आपकी माता बंध्या नहीं हैं। इस वाक्य का आप खंडन करें।'

आचार्य कोलाहल सकते में आ गए। यह क्या घृणित वाक्य है। निज माता के ज्वलंत पुत्र के रूप में जब वे राजसभा में बैठे हुए हैं, तब कैसे कहेंगे कि उनकी माता बंध्या है! नहीं, यह कोई प्रश्न नहीं है। इसका उत्तर कुछ नहीं दिया जा सकता।

यामुन ने फिर कहा—अब मेरे दो वाक्यों को आचार्यवर सुनें। मैं कहता हूँ कि पाण्ड्यराज पूर्णतः निष्पाप हैं। आपका इसका खंडन करें। मेरा शेष वाक्य है—हम लोगों की राजमाता जो इस समय राजसिंहासन पर उपविष्टा हैं, सावित्री के सदृश पवित्र हैं, आप मेरे इस वाक्य का भी खण्डन करें।

आचार्य कोलाहल विभ्रांत और विवृत हो उठे। अभियोग के स्वर में राजा से कहा—'महाराज, इन दोनों वाक्यों का खंडन करने के क्रम में मुझे प्रमाणित करना होगा कि आप पापी हैं और हम लोगों की राजमाता सती साध्वी नहीं हैं। नहीं, नहीं, यह बड़ा धृष्ट प्रश्न है। इसमें कूट और घृणा भी है। मैं इनका उत्तर नहीं दूँगा।'

पंडित कोलाहल के पक्ष में पंडितों और छात्रों ने शोर मचाना शुरू कर दिया—ये सभी प्रश्न अशालीन और असमीचीन हैं। कोलाहल के विरोधी भी अत्यधिक उत्तेजित हो उठे। उन्होंने जिद की कि जब प्रश्न किया गया है तो उस का उत्तर भी देना होगा। दोनों तरफ से वाक् युद्ध शुरु हो गया।

सभी लोगों को शांत रहने का आदेश देते हुए राजा ने कहा—'अच्छा, जब आचार्य कोलाहल इन प्रश्नों का उत्तर देने में असमर्थ हो गए हैं तो यामुन ही इनका उत्तर दें।'

यामुन ने खड़े होकर राजा और विद्वत्जनों का अभिवादन किया और कहा—'अब मैं अपने वाक्यों का एक-एक कर खंडन करता हूँ। आचार्य कोलाहल अपनी माता के एकमात्र पुत्र हैं, फिर भी मैं कहूँगा कि उनकी माता बन्ध्या हैं। श्रेष्ठ धर्मशास्त्रकार मनु ने विधान दिया है कि एकाकी पुत्र का पिता एकाधिक पुत्र की कामना से पुनर्विवाह कर सकता है। शास्त्रकार चाहते थे कि पुत्रों के बीच से जो एक बचेगा, वह गया जाकर पिण्डदान देने में समर्थ तो हो सकेगा। मेघातिथि के भाष्य में भी हमलोग देखते हैं—एकः पुत्रोऽपुत्रो वा। अतएव आचार्य कोलाहल की माता को बन्ध्या कहा जा सकता है।'

सभा-कक्ष 'वाह-वाह' से गूंज उठा। जिस प्रकार का कूट प्रश्न, उसी प्रकार का कौशलपूर्ण उत्तर।

इसके बाद यामुन ने कहा—'अब राजा के निष्पाप होने का प्रश्न आता है। संहिता के एक श्लोक में मनु ने कहा है कि प्रजा की देखभाल के बदले में राजा प्रजा से कर लेता है। प्रजा की उत्पन्न वस्तुओं का षष्टांश उसका प्राप्य है। इस उत्पन्न वस्तु से आशय भौतिक और आध्यात्मिक दोनों ही वस्तुओं से है। इसीलिए तो ऐसा कहा जाता है कि राजा अपनी प्रजा के पाप-पुण्य के भी एक षष्टांश को ग्रहण करता है। अब आप ही लोग बोलें कि प्रजा क्या निष्पाप है? यदि प्रजा निष्पाप नहीं है तो राजा भी निष्पाप नहीं है।'

'जहाँ तक महारानी के साध्वी होने का सवाल है तो मनु ने कहा है—अभिषेक-अनुष्ठान के समय राजा के शरीर में सूर्य, चन्द्र, इन्द्र, वरुण प्रभृति अष्ट दिग्पाल विराजते हैं। तदनुयायी साम्राज्ञी, राजा और उनके अभ्यँतर स्थित अष्ट दिग्पाल दोनो की महिषी हैं। इस दृष्टिकोण से विचार करने पर आप क्या कहेंगे, वे सावित्री के समान साध्वी हैं?'

पूरा सभा-मंडप बाल-पंडित के जयघोष से गूंज उठा। आचार्य कोलाहल नतसिर थे। राजा ने अब वेदों और उपनिषदों से सवाल-जवाब के आदेश दिए। चूंकि आचार्य कोलाहल का आत्मविश्वास डिग चुका था और पूरा माहौल यामुन के पक्ष में था, इसलिए इस शास्त्रार्थ में भी आचार्य कोलाहल अंततः निरुत्तर हो गये। राजा ने बाल पंडित यामुन के विजय की घोषणा की। विजय माला उनके गले में डाली गई। रानी से किए गए वादे के अनुसार पांड्यराज ने अपने राज्य का आधा भाग बाल पंडित को दे दिया। आचार्य कोलाहल के पराजय की खबर पलक झपकते ही न केवल राज्य में वरन् राज्य से बाहर भी फैल गई।

यही विजयी बालक बाद में चलकर महान् तपस्वी यामुनाचार्य के रूप में विख्यात हुआ।

दक्षिण भारत के मदुराई में एक विख्यात वैष्णव ब्राह्मण के घर यामुनाचार्य का जन्म हुआ था। पिता का नाम ईश्वर मुनि था। पितामह नाथमुनि दिक्पाल पंडित थे। इनकी ख्याति एक सिद्धभक्त महापुरुष के रूप में थी। विशिष्टद्वैत के प्रथम पुरोधा नाथमुनि ही थे। प्रसिद्ध वैष्णवाचार्य वेंकटनाथ के अनुसार 'समस्त अज्ञान-अंधकार के बिनाशार्थ यह दर्शन नाथमुनि द्वारा सूचित हुआ, यामुन के अनेक प्रयासों के फलस्वरूप इसने वृद्धि प्राप्त की एवं रामानुज द्वारा यह सम्यक् रूप में विस्तीर्ण हुआ।

नाथमुनि के एकमात्र पुत्र थे ईश्वरमुनि और 953 ई० में इन्हें यामुन के रूप में एक यशस्वी पुत्ररत्न की प्राप्त हुईं। असाधारण मेधा और प्रतिभा से सम्पन्न। पुत्र ईश्वर मुनि की अकाल मृत्यु से दुखी नाथ मुनि ने संसार-त्याग का निश्चय किया और संन्यास लेकर कृच्छ साधना शुरु की। उनका शेष जीवन प्रभु रंगनाथ जी के पवित्र पीठ में व्यतीत हुआ।

परिवार के लोगों के भरण-पोषण की व्यवस्था करने के उपरांत नाथ मुनि ने पौत्र को गुरु-गृह भेज दिया। प्रख्यात शास्त्रविद भाष्याचार्य की देख-रेख में बालक यामुन की शिक्षा-दीक्षा शुरु हुई। प्रारंभ में ही भाष्याचार्य को ज्ञात हो गया कि यह बालक ईश्वर प्रदत्त असाधारण प्रतिभा से सम्पन्न है। इसीलिए उन्होंने यामुन को सर्वशास्त्रविद के रूप में तैयार किया था। उस दिन भाष्याचार्य के आनंद की सीमा न रही जब उनके चतुष्पाठी के छात्र यामुन ने दिग्विजयी और अहंकारी राजपंडित कोलाहल को शास्त्रार्थ में पराजित कर दिया और कोलाहल राज्य छोड़कर कहीं भाग गए।

बालक यामुन पांड्यराज के अभिभावकत्व और सहायता से अपने नए राज्य का परिचालन करने लगे। इसके साथ ही उनकी सारस्वत धारा भी प्रवाहित होने लगे। देश-देशांतर के विद्वान उनकी राजधानी में एकत्रित होने लगे। इन्हीं लोगों के साहचर्य से उन्होंने एक शास्त्र पारंगत विद्वत्मण्डली का गठन किया।

जैसे-जैसे समय व्यतीत होने लगा, राज्य की सीमा बढ़ती गई। कोषागार सम्पन्न हो गया। युवक यामुन धन धान्य से पूर्ण एक राज्य के अधीश्वर हो गए। वे राजशक्ति और राजवैभव की ओर आकृष्ट हुए। लगभग तेइस वर्षों तक उन्होंने राज्य का कुशल संचालन किया।

इधर नाथमुनि के महाप्रयाण की बेला सन्निकट थी। वह यामुन के विलासितापूर्ण जीवन से खिन्न थे। उन्होंने अपने प्रिय शिष्य उच्चकोटि के साधक मानाक्काल नम्बिके आदि को यह दायित्व सौंपा कि वह यामुन को श्री रंगनाथ के चरणों तले ले आएँ। यह दायित्व सौंपने के बाद नाथमुनि महाप्रयाण कर गए।

नम्बि अपने कार्य में लग गए। वे यामुन की राजधानी पहुँच गए। उन्हें अपना परिचय दिया। नाथमुनि के अंतिम क्षणों की कथा सुनाई। यामुन ने उन्हें उचित सम्मान देने के पश्चात् राज अतिथि भवन में ठहरा दिया नम्बि कई दिनों तक यामुन से वार्ता के प्रयास में रहे लेकिन सफलता नहीं मिली। इसी बीच उन्हें पता चला कि पड़ोसी राज्य के दुष्ट राजा के साथ युद्ध की तैयारी में यामुन व्यस्त हैं।

काफी चेष्टा के बाद नम्बि की मुलाकात यामुन से संभव हुई। यामुन ने कहा—'भक्त प्रवर एक आसन्न युद्ध की तैयारी में मैं व्यस्त हूँ। इच्छा रहने पर भी आप जैसे वैष्णव साधक के साथ कथावार्ता न कर सका।' यामुन ने कहा, 'प्रतिपक्षी अत्यधिक खल और बलशाली है। उस पर अकस्मात आक्रमण कर मैं उसका पूर्ण विनाश चाहता हूँ। इसके लिए अश्वारोहीवाहिनी की जरुरत है। इसके लिए अत्यंत बलवान और बेगवान् अश्वों के आयात की आवश्यकता है। इसके लिए विपुल धन चाहिए। इसी के इंतजाम में मैं व्यस्त हूं। थोड़ी प्रतीक्षा करें, समय आने पर आपके साथ फिर वार्ता करुंगा।'

नम्बि ने कहा—'महाराज अर्थ की चिंता आप न करें। मेरे पास प्रचुर द्रव्य संचित हैं। आप ही उसके एकमात्र अधिकारी हैं। आपके हाथों में यह धन सौंपकर मैं अपने दायित्वों से मुक्त होना चाहता हूँ महाराज।'

यामुन की आंखें चमक उठीं। उन्होंने जिज्ञासा प्रकट की।

'महाराज, आपके पितामह नाथमुनि संन्यास लेने के बाद विपुल सम्पत्ति के अधिकारी हो गए। श्रीरंगम् की पुण्य भूमि में एकांत तपस्यारत रहते समय प्रभु की कृपा से उन्हें अपार सम्पत्ति प्राप्त हुई। सब आपके लिए संचित रखी हुई हैं।'

राजा यामुन की जिज्ञासा बढ़ गई।

नम्बि ने कहा, 'महाराज सिर्फ मैं ही इसे जानता हूँ। यदि उस गुप्त सम्पत्ति को प्राप्त करना चाहते हैं तो अविलम्ब मेरे साथ चलें।' नम्बि ने आगे कहा, 'महाराज, गुप्तधन यहाँ से दूर श्रीरंगम अंचल में हैं। वहाँ आपको मेरे साथ अकेले और क्षद्मवेश में चलना होगा।'

राजकाज मंत्रियों को सौंपकर राजा यामुन श्री रंगम् की पुण्यभूमि की ओर चल पड़े। तीन कोस चलकर किसी गांव में दोनों लोग विश्राम करते। प्रातः उठकर नम्बि नित्यक्रिया के बाद पूजा-पाठ करते। गीता का पाठ प्रारंभ करते ही उनका सम्पूर्ण शरीर रोमांचित हो उठता। उनके मुखमण्डल से एक दिव्य ज्योति की आभा प्रस्फुटित होने लगती और वे दिव्यानन्द से भर जाते। यामुन विस्मय के साथ परम भक्त की इस आनन्दमयी मूर्ति को एकटक देखते रहते। उनके अन्दर बार-बार एक भूचाल सा होता। वे सोचते कि नम्बि असीम आनन्द का अधिकारी है और उस स्वर्गिक आनन्द का आस्वादन कर उसका जीवन धन्य हो गया है।

६ दिनों के रास्ते में नम्बि ने इष्टाध्यायी का पाठ किया। इस पाठ से यामुन के भीतर दिव्यालोक का स्पर्श प्रतीत हुआ। मंत्रचैतन्य की तरह उसने काम किया। विषय-विमोहित राजा यामुन के जीवन में 'निर्झर का स्वप्न-भंग' घटित हुआ।

सातवें दिन प्रत्यूष में दोनों श्रीरंगम् पहुंचे। कावेरी में स्नान कराकर नम्बि ने यामुन को श्रीरंगनाथ जी के श्री विग्रह के सम्मुख उपस्थित किया और प्रेम-परिपूरित स्वर में कहा—'महाराज देखें अपने पितामह नाथमुनि का यह गुप्त भंडार। आपको इस भंडार का सधान देने हेतु मैं अपने गुरु के प्रति प्रतिश्रुत था जो आज पूरा हुआ।'

विग्रह दर्शन के साथ ही यामुन प्रेमावेश से व्याकुल हो गए और उनकी आंखों से पुलकाश्रु झरने लगे। उनके हृदयाकाश में श्रीरंगनाथ की ज्योतिर्मय और आनन्दघन मूर्ति उद्भासित हो उठी और इसके साथ ही वाह्य चेतना शून्य होकर वे मंदिर में मूर्छित हो गए।

उस दिन यामुन नूतन मानव में परिणित हो गए। राजा यामुन तो अब मर चुके थे, उनकी जगह जागृत हो गया था भक्ति-प्रेम के पथ का एक भिखारी साधक। शीघ्र ही यामुन ने राजसिंहासन का परित्याग कर पितामह नाथमुनि का पदानुशरण करते हुए संन्यास ग्रहण किया। इसके साथ ही प्रारंभ हुआ उनका अभियान प्रेम, भक्ति, प्रपत्ति और इष्ट-प्राप्ति के पथ पर।

राजधानी से तमाम राज्याधिकारी, स्वजन और मित्रगण श्रीरंगम आए। उन लोगों ने यामुन को काफी मनाने का प्रयास किया लेकिन वे अपने निर्णय पर अटल रहे। लोग हताश होकर लौट गए।

इधर श्रीरंगम के भक्त समाज विशेषकर विशिष्टा द्वैतवादियों में हर्ष की लहर दौड़ गई। उन्होंने सोचा नाथमुनि ने जिस प्रेममार्ग को प्रवर्तित किया था, प्रतिभावान यामुन की साधना और सिद्धि के द्वारा अब वह और अधिक प्रशस्त और आलोकमय होगा। कुछ ही वर्षों के भीतर यामुन एक भक्ति सिद्ध महापुरुष

के रूप में विख्यात हो गए। विशिष्टाद्वैत के श्रेष्ठ आचार्य के रूप में मान्य हुए। यामुन से हो गए यामुनाचार्य।

यामुनाचार्य ने विशिष्टाद्वैतवाद की एक विस्तृत व्याख्या उपस्थापित की। पितामह नाथमुनि की दार्शनिकता को दृढ़तर किया। परवर्ती काल में यामुनाचार्य के पौत्र के शिष्य रामानुज ने विशिष्टाद्वैतवाद को और परिपुष्ट किया। आचार्य शंकर के प्रतिपक्षी दार्शनिक मतवाद के रूप में इसका आत्म-प्रकाश हुआ। यामुनाचार्य ने निर्विशेष ब्रह्मवादी आचार्यगणों का नामोल्लेख करके उनके मतों के निरसन हेतु ही 'प्रकरण प्रक्रम' की आवश्यकता स्वीकार की है।

शांकर मत की प्रबलता और भास्कर मत के अभ्युदय के समय ही वैष्णव भक्तवाद के स्थापनार्थ यामुनाचार्य का प्रयास प्रारंभ हुआ। उस समय दक्षिण भारत में सभी सम्प्रदाय अपने-अपने मतवाद की प्रतिष्ठा हेतु प्रयासरत थे, यामुनाचार्य भी वैष्णवमत की प्रतिष्ठा हेतु दार्शनिक क्षेत्र में अवतीर्ण हुए थे। उस समय पूरा देश शंकर के ज्ञानवाद से सराबोर था। यामुनाचार्य ने जिन ग्रन्थों का प्रणयन किया उनमें प्रमुख हैं—सिद्धित्रयम, स्तोत्ररत्नम् आगम प्रकाव्यम् तथा गीतार्थ संग्रह। सिद्धित्रयम में विशिष्टाद्वैत का निरुपण किया गया है।

यामुनाचार्य ने मुख्य रूप से शंकर के निर्विशेष ब्रह्मात्मवाद पर प्रहार किया है। उनके अनुसार चेतन-अचेतन ब्रह्म के शरीर हैं और ब्रह्म उस शरीर की आत्मा एवं अधिष्ठाता है। शरीर और शरीरी एक है क्योंकि ब्रह्म स्वरूपतः एक और अद्वितीय है। जिस प्रकार तरंग, फेन आदि अंशों के रहने पर भी निश्चय ही समुद्र को एक और अखंड कहा और समझा जाता है उसी प्रकार जीव, जगत् और ईश्वर आदि अनेकत्व के बावजूद समष्टि भूत सत्ता, पुरुषोत्तम नारायण तो एक और अखंड है। ईश्वर पुरुषोत्तम है। सृष्टजीव से वे श्रेष्ठ हैं। ईश्वर पूर्ण है, जीव अणु अंश हैं। ईश्वर तथा जीव नित्य पृथक हैं। मुक्तजीव ईश्वर का सानिध्य प्राप्त करता है परन्तु वह ईश्वर भाव प्राप्त करने में सक्षम नहीं है। ब्रह्म और जीव में स्वगत भेद रहता है। भौतिक पदार्थ तीन हैं—चित्, अचित् और पुरुषोत्तम। चित् जीव, अचित् जगत् और पुरुषोत्तम ब्रह्म है। ब्रह्म सविशेष-सगुण, अशेष कल्याणमय गुणों के आगार और सर्व नियंता है। जीव उसका चिर दास है।

यामुनाचार्य परम प्रभु का एकान्तिक नित्यकिंकर बनकर रहना चाहते थे। वे दास्य एवं पराभक्ति के आकांक्षी थे इसीलिए सविशेष ब्रह्म एवं उनका मूर्त ब्रह्मस्वरूप ही उनका ध्येय था। अपने इस दार्शनिक सिद्धांत को उन्होंने ब्रह्मपुराण से ग्रहण किया था। उनकी रचनाओं में पराभक्ति और शरणागति सम्बन्धी तत्त्वों का मनोरम प्रस्फुटन हुआ है। वे लिखते हैं—

मखनाथ यदस्ति सोहस्म्याहम्
संकलं तृद्धि तवैव माधव
निपतं स्वमिति प्रबुद्धधीरथवा
किन्तु समर्पणामि ते ॥

अर्थात् हे नाथ, हे माधव, जो कुछ मैं हूं, जो कुछ भी मेरा है वह सभी तो तुम्हारी ही है। यदि कभी भी मुझे इस प्रकार का ज्ञान हो कि मैं सभी समय एकान्त भाव से तुम्हारा हूँ तब मैं अपनी कौन सी वस्तु और किस विधि से तुम्हें समर्पित कर सकूँगा?

इस शरणागति के साथ गौड़ीय वैष्णवों का सादृश्य है—मैं तुम्हें क्या दूँ, तुम्हें जो धन प्रदान करुंगा वह धन तो तुम ही हो। यामुनाचार्य ने इसीलिए अपनी सभी वस्तुएँ बेच दी थीं और सभी वस्तुओं को नारायण स्वरूप समझकर एक वैष्णव की भांति ग्रहण करते थे। उनका भाव था—तवैवाहम्। वैष्णव कवि का भाव अनेक परिमाण में यह भी था—ममैवत्वम्।

यामुनाचार्य—दास्यभाव को श्रेष्ठ मानते थे। एक स्तोत्र में वे प्रार्थना करते हैं—हे प्रभु, तुम्हारे प्रति सभी भावों की अपेक्षा दास्यभाव ही सर्वश्रेष्ठ है। एकमात्र दास्यसुख में आसक्त व्यक्ति के गृह में कीट रूप में जन्म लेना भी सार्थक है। परन्तु अन्य बुद्धिविशिष्ट के घर चतुर्मुखब्रह्मा के रूप में अवतरित होना मुझे काम्य नहीं।

यामुनाचार्य अब वृद्ध हो चले थे। उनकी चिंता थी कि उनके द्वारा स्थापित दार्शनिक सिद्धान्तों को कौन आगे बढ़ाएगा? एक दिन उनकी भेंट कांचीपूर्ण से हो गई। बातचीत में प्रसंग आने पर कांचीपूर्ण ने वेदान्ती यादव प्रकाश के कृती छात्र लक्ष्मण का नाम सुझाया। यामुनाचार्य के खुशी का ठिकाना न रहा। वह कुछ दिनों बाद वरदराज के विग्रह के दर्शन के लिए कांचीपुर गए। स्नान, तर्पण और पूजा आदि समाप्त कर वह कांचीपूर्ण तथा अन्य भक्तों के साथ अपने आवास के लिए लौट रहे थे तभी रास्ते में वेदान्त केसरी यादव प्रकाश अपनी शिष्य मंडली के साथ आते हुए दिखाई पड़ गए। उनके साथ लक्ष्मण भी था।

यामुनाचार्य मार्ग के किनारे खड़े हो गए। कांचीपूर्ण ने कहा—'आपकी आज्ञा हो तो मैं लक्ष्मण को बुलाकर ले आऊँ।'

'नहीं कांचीपूर्ण, इसकी आवश्यकता नहीं। लक्ष्मण को मैंने आशीर्वाद प्रदान कर दिया है। उसके भीतर पराभक्ति के उन्मेष हेतु मैंने अपनी दृष्टि का शक्तिपात कर दिया है। आज निर्भ्रान्त होकर मैंने जान लिया है कि यही लक्ष्मण श्री सम्प्रदाय का भावी नायक है।'

कालांतर में इसी प्रतिभा सम्पन्न छात्र का अभ्युदय रामानुज के रूप में हुआ।

यामुनाचार्य श्रीरंगम लौट आए। उनके दिमाग में लक्ष्मण का लावण्यमय, तेजस्वी और पवित्र रूप घूमता रहा।

इसी बीच एक खबर मिली कि लक्ष्मण का अपने गुरु यादव प्रकाश से तीव्र मतभेद हो गया है जिसके कारण लक्ष्मण उनसे अलग हो गए हैं और कांचीपूर्ण का आश्रय ग्रहण कर लिया है।

लक्ष्मण महात्मा कांचीपूर्ण से दीक्षा लेना चाहते थे लेकिन वे लगातार टालते रहे। कहते, 'वत्स मैं तो प्रभु वरदराज का कंगाल भक्त हूँ। इसके अलावा मैं जाति से शूद्र हूँ। तुम जैसे पवित्र ब्राह्मण को मैं कैसे दीक्षा दे सकता हूँ। मैं जानता हूँ कि प्रभुकार्य के निमित्त तुम्हारी दीक्षा अन्यत्र होनी है।'

इधर यामुनाचार्य रोग शैया पर पड़ गए। उन्होंने अपने अंतरंग शिष्य महापूर्ण को बुलाकर कहा—'मेरी विदा-बेला प्रायः समागत है। इस समय श्री सम्प्रदाय के भक्तिवाद और उसके भविष्य के सम्बंध में व्याकुल हो रहा हूं। वाचस्पति मिश्र का अभ्युदय हो गया है, शांकर मत को उन्होंने निपुणता के साथ प्रपंचित किया है। इसके विरुद्ध विशिष्टाद्वैत कितने दिनों तक टिक सकेगा?' उन्होंने आगे कहा, 'एक ही उपाय है। तुम शीघ्र कांची जाकर लक्ष्मण को श्रीरंगम ले आओ।'

महापूर्ण कांची पहुँच गए। प्रभु वरदराज के मंदिर में जाकर उन्हें प्रणाम किया और लक्ष्मण की प्रतीक्षा करने लगे। लक्ष्मण जब सिर पर जल से भरा घड़ा लेकर समीप आए तो महापूर्ण ने यामुनाचार्य प्रणीत एक स्तोत्र का गान करने लगे। इसने लक्ष्मण के भीतर दिव्य उन्माद जागृत किया। उन्होंने महापूर्ण से प्रश्न किया—'महात्मन् अमृत-सिंचित इस स्तोत्र को आपने कहाँ पाया?'

'यह मेरे प्रभु यामुनाचार्य की रचना है।'

'क्या कृपा पूर्वक उनके आश्रय में आप मुझे ले जाएंगे?'

'वत्स आचार्य तुम्हारे दर्शन के लिए व्याकुल हैं। वे तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। वे मृत्यु शैया पर पड़े हुए हैं। यदि उनके दर्शन की अभिलाषा हो तो विलम्ब न करो।'

करीब चार दिनों तक पैदल चलने के उपरांत जब महापूर्ण और लक्ष्मण श्रीरंगम् पहुँचे तो उन्हें ज्ञात हुआ कि यामुनाचार्य अब इस संसार में नहीं रहे। उनके पार्थिव शरीर को घेरकर तमाम लोग क्रंदन कर रहे हैं। लक्ष्मण ने उनके शव को साष्टांग दण्डवत किया। जब उनकी निगाह हाथ पर गई तो देखा कि यामुनाचार्य की तीन अगुलियाँ मुष्ठिवद्ध होकर रह गयी है। सेवकों ने बताया कि आचार्य तीन संकल्पों के लिए अधिक चिंतित रहते थे, इसीलिए ये तीनों अंगुलियाँ मुष्ठिबद्ध हैं।

भक्तप्रवर लक्ष्मण दिव्य भावाविष्ट होकर गिर पड़े। उन्होंने तीनों संकल्पों का उच्चारण किया। उन्होंने कहा—'विष्णुभक्तिमय द्राविड़ वेद का मैं प्रचार करूँगा, ज्ञानहीन जनों के मध्य उस भक्ति-सुधा का वितरण करूँगा और लोक-रक्षा का व्रत लेकर मैं तत्वज्ञानमय श्री भाष्य की रचना करूँगा। पुराण-रत्न विष्णु पुराण के रचयिता पराशर मुनि के नाम से चिन्हित करके मैं भक्तिवाद में एक श्रेष्ठ व्याख्याता का निर्माण करूँगा।'

अंतरंग भक्तों ने एक अलौकिक दृश्य देखा। इन संकल्पवाणियों के उच्चरित होते ही प्राणहीन यामुनाचार्य की तीनों बद्ध अँगुलियाँ खुल गईं। सभी जान गए कि लक्ष्मण ही यामुनाचार्य के भावी उत्तराधिकारी हैं, जिन्होंने अब श्री सम्प्रदाय का नेतृत्व-भार ग्रहण कर लिया है।

यामुनाचार्य की अंतिम क्रिया प्रारंभ होने के साथ ही कावेरी की विशाल तटभूमि मुखरित हो उठी सहस्र कंठों के स्तुति—गान से और तत्पश्चात् फूट-पड़ा अंतरंग भक्त गणों का शोकाकुल क्रंदन।

●

१३

आचार्य मध्व

तेरहवीं सदी में आचार्य मध्व का आविर्भाव एक अविस्मरणीय घटना है। ब्रह्म-सूत्र की ब्रह्मवादी व्याख्या के माध्यम से उन्होंने एक नवीन द्वैतवादी दर्शन का प्रचार किया है। वे भक्तिवादी चतुःसम्प्रदाय में श्रेष्ठतम ब्रह्मसम्प्रदाय के प्रवर्तक के रूप में जाने जाते हैं। उनके द्वारा प्रचारित तत्व एवं धर्मादर्श ने गौड़ीय वैष्णव एवं बल्लभाचारियों के मतवाद को काफी हद तक प्रभावित किया है।

मध्व का आविर्भाव ११९९ ई० में भारत के दक्षिणी-पश्चिमी तट के पास बेले ग्राम के पाजका क्षेत्र में हुआ। उस समय यह क्षेत्र तुलुब राज्य के अंतर्गत था। शंकर का जन्मस्थान शृंगेरी तथा मंगलोर मध्व के जन्म स्थान से ४० मील से अधिक नहीं रही होगी। मध्व के पिता का नाम मध्यगेह नारायण भट्ट था। वे वेद वेदांत के प्रकाण्ड विद्वान थे। निष्ठावान विष्णु भक्त थे। उनकी पत्नी वेदवती भी परम भक्तिनिष्ठ थीं। घर के अंदर नारायण शिला प्रतिष्ठित थी। मध्यगेह भट्ट के दो पुत्र और एक कन्या थी। लेकिन तरुण अवस्था में ही दोनों पुत्र काल-कवलित हो गए। पिण्डदान की चिंता से ग्रसित मध्यगेह भट्ट उडुपी के नारायण मंदिर में बैठे एकाग्र हो जप-ध्यान कर रहे थे। नवमी थी। दिन बीता। रात गहरा गई लेकिन भट्ट ध्यानस्थ रहे। अकस्मात् मंदिर का गर्भगृह शुभ्र-स्निग्ध स्वर्गीय ज्योति से उद्भासित हो उठा। भविष्यवाणी हुई, 'आज दशहरे का अंतिम दिन नवमी है। एक वर्ष बाद इसी पवित्र तिथि को तुम्हारे घर एक पुत्र जन्म लेगा।' घर लौट कर उन्होंने पत्नी वेदवती को यह कथा सुनाई तो दोनों के ही नेत्र सजल हो गए।

उडुपी के अनन्तेश्वर की देववाणी फलित हुई। ठीक एक वर्ष बाद ११९९ ई० की नवमी को भट्ट की धर्मपत्नी ने एक पुत्र को जन्म दिया जो आगे चल कर माधवाचार्य के नाम से विख्यात हुआ। इसका नामकरण किया गया—वासुदेव।

बालक वासुदेव के संबंध में कई अलौकिक कहानियां प्रचलित हैं। एक दिन वे अपने बाल सखाओं के साथ खेल रहे थे। बगल से एक सांड़ गुजरा। वासुदेव उसका पूंछ पकड़कर झूल गये। साड़ क्रुद्ध होकर दौड़ पड़ा और जंगल में घुस गया। इधर देखने वाले चीखने-चिलाने लगे—बचाओ बच्चे को। साड़ जंगल में अनेक कंटकाकीर्ण मार्गों से गुजरा। वासुदेव ने पूंछ नहीं छोड़ी। थक-

हार कर साड़ लौटा और मध्यगेह के घर के सामने आकर लोट गया। वासुदेव गर्वपूर्वक वन-भ्रमण की कहानी उपस्थित लोगों को सुनाने लगे।

एक दिन संध्या के बाद भट्ट दम्पति वासुदेव के साथ उडुपी के अनन्तेश्वर मंदिर गए हुए थे। स्नान-ध्यान में काफी समय बीत गया। रात में जंगली मार्ग से घर लौट रहे थे। सहसा एक प्रेत उनका रास्ता रोककर खड़ा हो गया। भट्ट दम्पति जड़वत हो गए। लेकिन वासुदेव के चेहरे का भाव क्षणभर में ही परिवर्तित हो गया। समुंन्नत ग्रीवा और क्रोध से नेत्र रक्ताभ। पता नहीं किस मंत्र का उच्चारण करने लगे। प्रेत तुरंत अन्तर्ध्यान हो गया। वासुदेव फिर सहज हो गए। भट्ट दम्पति बालक वासुदेव को सीने से चिपकाए इष्टजाप करते घर आए।

खेल प्रतियोगिताओं में भी बलिष्ठ शरीर वाले वासुदेव हमेशा आगे रहे। कुश्ती में कभी हारे नहीं। उनके साथी इसीलिए उन्हें भीम कहा करते थे। विचारशक्ति भी अद्वितीय थी।

अल्प वयस्क काल में ही वासुदेव प्रतिभाधर पण्डित एवं शुद्धाचारी भक्ति परायण साधक के रूप में परिणत हो गए थे। उन्होंने मन ही मन आचार्य अच्युत प्रकाश से वेद-वेदान्त एवं दर्शनों का उच्चतम पाठ ग्रहण करने का निश्चय किया। उडुपी मठ में आचार्य अच्युत प्रकाश का आश्रय ग्रहण करने के उपरांत वासुदेव के जीवन में एक नये अध्याय का सूत्रपात हुआ। अपूर्व निष्ठा से न्याय, सांख्य, वेद-वेदांत के अध्ययन की ओर अग्रसर हुए और एक के बाद एक सभी में पारंगत हो गए। धीरे-धीरे इस प्रतिभाशाली छात्र की कीर्ति सभी मठ-मंदिरों में फैलने लगी।

विद्याध्ययन के पश्चात् पिता ने वासुदेव से शादी करके गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने की इच्छा व्यक्त की जिसे वासुदेव ने विनम्रतापूर्वक अस्वीकार करते हुए कहा, 'पिताजी गार्हस्थ जीवन हमारे लिए नहीं है। मैं जल्द ही संन्यास ग्रहण करने वाला हूँ।'

पिता के ऊपर तो जैसे वज्रपात हो गया। उनके सारे तर्क जब विफल हो गए तो उन्होंने मृत्योपरांत पिण्डदान की समस्या प्रस्तुत की। इस पर वासुदेव ने कहा 'पिताजी, मेरे द्वारा आपके पारलौकिक कल्याण में कोई क्षति न हो इसका मैं ध्यान रखूँगा। मैं आचार्य अच्युत प्रकाश के आश्रम में रहते हुए संन्यास ग्रहण का कार्यक्रम फिलहाल स्थगित रखूँगा। मेरा अंतर कह रहा है कि निकट भविष्य में मेरा एक अनुज जन्म ग्रहण करेगा। उसके बाद आप लोगों को पिण्डदान के लिए कोई चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं रहेगी। उसके जन्म के बाद ही मैं संन्यास-आश्रम में प्रवेश करूँगा।'

और वासुदेव ने अपने अनुज के जन्म के बाद संन्यास ग्रहण कर लिया। उन्होंने आचार्य अच्युत प्रकाश के आश्रम में ही रहकर साधना तथा स्वाध्याय जारी रखा। इस तरह बारह वर्ष बीत जाने के बाद मध्यगेह नारायण भट्ट के एक और पुत्ररत्न प्राप्त हुआ।

अब वासुदेव के मार्ग में कोई बाधा नहीं रही। उन्होंने पिता की सहमति लेकर गृह त्याग दिया और फिर शुरु हुआ संन्यास जीवन का कठोर व्रत। गुरु ने इस शिष्य का संन्यास नाम पूर्णप्रज्ञ-तीर्थ रखा। आचार्य मध्यगेह का पुत्र होने के नाते वे आचार्य मध्व के नाम से भी परिचित हो गए।

एक दिन आचार्य अच्युत प्रकाश ने उडुपी मठ का सारा भार मध्व को सौंप दिया और उनका नया नाम रखा-आनंदतीर्थ।

देश में उन दिनों शास्त्रार्थ की परम्परा चरम पर थी। उडुपी मठ में भी तमाम शास्त्रविद आते रहते और उनसे शास्त्रार्थ में मध्व ही स्वयं को प्रस्तुत करते। इसलिए साधु-संन्यासियों और शास्त्रविधों के मध्य मध्व के शास्त्रज्ञान तथा विचार निपुणता की बात काफी फैल गई थी। आचार्य मध्व अपने तर्क युद्ध में भक्तिवादी व्याख्या एवं विचारों से उन्हें परास्त करते। दरअसल मध्व भक्ति आंदोलन के नवीन धारा का प्रवर्तन करना चाहते थे। इसके लिए सर्वप्रथम शंकर के अद्वैतवाद का खण्डन जरुरी था। इसके साथ ही रामानुज के विशिष्टाद्वैतवाद से पृथक एक नवीन भक्तिवाद की धारा को वे जन्म देना चाहते थे। इसके लिए शास्त्र पण्डितों को पराजित करके विद्वत् जगत का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करना आवश्यक था।

आचार्य अच्युत प्रकाश अपने शिष्य की तर्कशक्ति से आनंदित थे। एक दिन उन्हें पास बुलाकर बोले, 'वत्स सुरक्षात्मक तर्क युद्ध का समय समाप्त हो गया है। अब आक्रामक तर्क युद्ध का समय आ गया है। इसके लिए तुम्हें मठ से बाहर निकलना होगा और राजदरबारों तथा मठों-आश्रमों के विद्वत्जनों को शास्त्रार्थ की चुनौती देनी होगी।'

मध्व ने गुरु का आदेश शिरोधार्य किया और मठ से निकल पड़े। पहले उन्होंने दक्षिण भारत का दौरा किया। एक-एक कर विभिन्न दार्शनिकों और साधकों को शास्त्रार्थ में पराजित किया। घूमते-फिरते वे विष्णुमंगल तीर्थ में उपस्थित हुए। यहाँ गुरु अच्युत प्रकाश से उनकी मुलाकात हुई।

रिद्धि-सिद्धि सम्पन्न मध्व ने कई अवसरों पर कुछ यौगिक क्रियाओं का प्रदर्शन भी किया है। एक बार वे अपने साथियों के साथ घोर जंगल से गुजर रहे थे। न कोई आश्रम, न कोई गाँव। सभी साथी भूख से पीड़ित थे। यही हाल रहा तो कुछ का प्राणांत तय था। मध्व एक छतनार वृक्ष की छाया में बैठ गए। सहसा

उनके शरीर में एक दिव्यभाव का आवेश दृष्टिगोचर हुआ। एक साथी के झोले में रोटी का एक टुकड़ा मिल गया। उसे टुकड़े को हाथ में लेकर मध्व कुछ बुदबुदाएँ। सभी ने विस्मयपूर्वक देखा कि न जाने कहां से रोटियाँ झोली में आ गईं। सभी ने अपनी-अपनी क्षुधा शांत की।

एक और कथा : मध्व अपने साथियों के साथ त्रिवेन्द्रम आ गए। यहाँ के राजा भक्त और विद्याव्यसनी थे। मध्व ने राजा से साक्षात्कार किया। मध्व के कांतियुक्त चेहरे को देखकर राजा उनकी ओर आकर्षित हुए। सादर अभ्यर्थना के बाद उन्होंने कहा, 'सन्यासीवर, आदेश करें, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ।'

'महाराज मैं सर्वत्यागी संन्यासी हूँ। मेरा व्यक्तिगत सेवा की कोई आवश्यकता नहीं है। मैं भक्तिवाद के प्रचार के लिए कृतसंकल्प हूँ। आप शीघ्रातिशीघ्र एक विचार-सभा का आयोजन करें। उस सभा में भक्तिहीन अद्वैतवाद पर निर्मम प्रहार करूँगा।' आचार्य मध्व ने धीर-गंभीर स्वर में कहा।

'क्या आप रामानुज के विशिष्टाद्वैत के अनुयायी हैं?'

'नहीं महाराज, मेरा भक्तिवाद उससे बिल्कुल अलग है। मेरे विचार से ब्रह्म एवं जीव नित्य पृथक हैं। ब्रह्म स्वतंत्र है तथा जीव अस्वतंत्र। इसीलिए इस द्वैतवाद को स्वतंत्र-अस्वतंत्रवाद के नाम से सम्बोधित करना उचित होगा। इसमें शंकर और रामानुज दोनों से ही चरम विरोध है।'

'इस तत्त्व के प्रणेता कौन हैं?'

'महाराजा सनत् कुमार इस तत्व के आदिगुरु हैं। ईश्वर की कृपा से मेरे माध्यम से इसका पुन: प्रचार होने जा रहा है।'

'परन्तु यतिवर, आपने क्या अपने इस मतवाद के समर्थन में ब्रह्मसूत्र के किसी भाष्य की रचना की है? ऐसा न होने से देश के साधु-संन्यासी तथा पण्डित समाज इस मतवाद को किस तरह ग्रहण करेगा?'

'महाराज, मेरा सूत्र भाष्य मेरे कण्ठ में ही विराजमान है। आप शीघ्र विचार-सभा की व्यवस्था करें और प्रतिपक्षी के रूप में किसी अद्वैतवादी को आमंत्रित करें।'

'यतिवर, निकट ही श्रृंगेरी में गुरु विद्याशंकर महाराज निवास करते हैं। वे मात्र श्रृंगेरी मठ के ही अधीश्वर नहीं हैं, वरन् सारे दक्षिणात्य में शांकर अद्वैतवाद के श्रेष्ठ स्तंभ हैं। मैं उन्हीं को आमंत्रित करता हूँ।'

विचार-सभा का आयोजन हुआ। लोग कौतूहल से इस सभा में उपस्थित हुए। दोनों विद्वानों में भीषण तर्क युद्ध शुरु हुआ। लेकिन आचार्य मध्व साधक शिरोमणि विद्याशंकर के श्रतिसिद्ध युक्तिजाल को तोड़ने में असमर्थ रहे। अंतत: उन्हें अपनी पराजय स्वीकार करनी पड़ी।

इस पराजय से आचार्य मध्व ने श्रृंगेरी मठ और मूर्धन्य पंडित विद्याशंकर को अपना दुश्मन नम्बर एक मान लिया। उनका द्वैतवाद की स्थापना का संकल्प और दृढ़ हो गया। सन् 1228 ई० के लगभग आचार्य मध्व ने अपना दक्षिण भारत का पर्यटन समाप्त किया और इससे ठीक पहले उनका आचार्य विद्याशंकर से पुनः शास्त्रार्थ हुआ। आचार्य मध्व उस समय लगभग तीस वर्ष के थे।

आचार्य मध्व त्रिवेन्द्रम से सीधे रामेश्वर धाम चले आए। वहां उन्होंने चार महीने एकांत तपस्या में बिताया। यहां भी अद्वैतवादी पण्डित और संन्यासीगण उन्हें अद्वैतवाद पर शास्त्रार्थ के लिए ललकारते रहे। लेकिन मध्व ने उधर धान न देकर अपना चतुर्मास व्रत समाप्त किया। इसके बाद अपने साथियों और शिष्यों के साथ श्रीरंगम् चले आए। परम प्रभु नारायण की सेवा—अर्चना में कुछ समय व्यतीत करने के बाद वे उडुपी वापस आ गए।

उडुपी वापस होने से पहले जब वे विष्णुकाँची में थे तभी उन्हें अद्वैती एवं शैव संन्यासियों के एक दल ने घेर लिया। मध्व को उन लोगों ने शास्त्रार्थ के लिए विवश किया। उसी समय मध्व के भीतर एक दिव्यभाव का प्रवेश हुआ। शास्त्रार्थ के दौरान ऐसा लगा जैसे स्वयं माँ सरस्वती इस संन्यासी के कंठ में विराजमान हों। विरोधी पण्डितगण मध्व की अलौकिक प्रज्ञा देखकर अवाक् रह गये। विष्णुकांची और शिवकांची दोनों ही स्थान मध्व के जय जयकार से गूँज उठे।

उडुपी मठ में गुरु के आदेश से आचार्य मध्व ने अपने मत के समर्थन में गीता भाष्य की रचना की। इसमें कई वर्ष लग गए। इसके बाद उनकी दृष्टि वाराणसी एवं हरिद्वार पर पड़ी। उन्होंने पहले वाराणसी जाने का निश्चय किया ताकि वहाँ के पण्डितों और विद्वानों द्वारा अपने भाष्य की समालोचना के अनुसार उसमें संशोधन कर सकें। इसके बाद वे हिमालय जाकर व्यासदेव का आशीर्वाद ग्रहण करेंगे तनुपरांत हरिद्वार में नूतन भक्तिवाद की घोषणा करेंगे।

दक्षिण से उत्तर की ओर पदयात्रा के दौरान आचार्य मध्व और उनके दल के सदस्यों को नाना प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उन पर अपनी अलौकिक शक्तियों तथा योग द्वारा मध्व ने विजय प्राप्त किया। जब वे महाराष्ट्र के खण्ड राज्य देवगिरि से गुजर रहे थे, तब उनके साथ एक कौतुकपूर्ण घटना घटी। यहाँ के तरुण राजा महादेव को सिंहासनारूढ़ हुए कुछ ही दिन बीते थे। जनसाधारण के कल्याण के लिए उन्होंने एक बड़ा तालाब (खाल) खोदने का आदेश जारी किया। राजा ने ऐलान किया था कि इस खाल के करीब से जो व्यक्ति गुजरेगा, उसे एक दिन श्रमदान करना पड़ेगा। मध्व का दल जब खाल के निकट से जा रहा था तब उन्हें राज्य के प्रहरियों ने पकड़ लिया। उन लोगों को

राजा का आदेश सुनाया और श्रमदान के लिए बाध्य करने लगे। उस दिन संयोगवश राजा स्वयं खनन-व्यवस्था देखने आए हुए थे। उन्होंने रक्षकों और मध्व के दल के बीच तर्क वितर्क सुनकर जिज्ञासा जाहिर की। पहले रक्षकों ने अपनी बात बताई। फिर मध्व ने कहा, 'महाराज, साधारण प्रजा की मंगल-कामना से आपने इस खाल के खनन का आदेश दिया है, यह अच्छी बात है। पर इसके लिए साधु-संन्यासियों की धर पकड़ क्यों?'

'राजा का विधान साधु-असाधु सबके लिए ही प्रयोजनीय है।' राजा का उत्तर था।

'कार्य का उत्तरदायित्व प्रधानत; राजा और उसके गृहस्थ प्रजा-जनों का है। साधु-संन्यासी क्यों इसके लिए परिश्रम करें?'

'साधु-संन्यासियों के भोजन-वस्त्र की व्यवस्था समाज ही करता है। इसके प्रतिदान में क्या जनकल्याण के कार्य में साधु-संन्यासियों को अंशदान नहीं करना चाहिए?'

थोड़ी देर तक तर्क-वितर्क के बाद आचार्य मध्व ने कहा, 'महाराज, आप इस राज्य के अधीश्वर हैं, प्रजा के पिता तथा रक्षाकर्ता हैं। प्रजा के मंगल हेतु जो पवित्र अनुष्ठान आपने शुरु किया है, उसमें आपके मंगल-हस्त का स्पर्श रहना उचित है। इतना बड़ा कार्य हो रहा है, परन्तु उसमें आपका स्पर्श पड़ रहा है क्या?'

'नहीं, वह तो नहीं पड़ रहा है।'

'उस भूल का आज ही तथा अभी मार्जन करें महाराज।'

'संन्यासीवर आप ठीक कह रहे हैं, मैं अभी खनन कार्य में लग जाता हूँ।' कहते हुए कुदाल और टोकरी लेकर राजा खाल के भीतर उतर पड़े।

खुदाई करते-करते राजा प्रेताविष्ठ हो गए। पहर पर पहर बीतते गए। राजा पसीने से तर-वतर हो गए। अनुचरों ने उनसे खुदाई रोक देने की विनती की लेकिन वे खुदाई करते रहे। प्रासाद में भी खबर की गई। रानियां भयभीत हो उठीं। सभी लोग उनकी ओर दौड़ पड़े।

मध्व के एक शिष्य ने अतत: इस रहस्य का भेद खोल दिया। उसने कहा, 'दुर्भाग्यवश राजा हमारे आचार्य की शक्ति को नहीं समझ पाए। आचार्य वायु के अवतार हैं तथा प्रभु नारायण की लीला के प्रधान सहायक हैं। राजा के ऊपर वे क्रुद्ध हो गए हैं इसलिए राजा के ऊपर वायु का प्रकोप हो रहा है। आचार्य को प्रसन्न किए बिना राजा की रक्षा असंभव है।'

यह सुनते ही सभी लोग आचार्य मध्व के चरणों पर गिरकर उनसे शांत होने का अनुनय करने लगे। आचार्य का क्रोध समाप्त होने पर राजा पूरी तरह

स्वस्थ और स्वाभाविक हो गए। राजा भी आचार्य के चरणों पर नत हो गए। आचार्य ने उनसे कहा, 'महाराज, एक बात सर्वदा स्मरण रखिएगा, साधु-संन्यासीगण, कर्म एवं ध्यान के माध्यम से ही समाज का प्रकृत कल्याणसाधन करते जा रहे हैं। भगवान श्री नारायण का दर्शन कितने लोग पाते हैं? परन्तु नारायण के चिन्हित सेवक, साधु-संन्यासियों के दर्शन सभी अनायास ही पाते हैं। इन्हीं के माध्यम से पृथ्वी और बैकुण्ठ में योग-सूत्र की रचना होती है। इसलिए इस बात का ध्यान रखें कि आपके राज्य में साधुओं की अमर्यादा न हो। आशीर्वाद देता हूँ कि आप के खाल का खनन कार्य अत्यल्प काल में ही समाप्त हो जाएगा।'

आचार्य मध्व राजा को आशीर्वाद देकर आगे चल पड़े। उन्होंने राज्य में कुछ दिन टिकने का राजा का अनुरोध स्वीकार नहीं किया।

परिव्राजन करते-करते मध्व एक घने जंगल में पहुँचे। दिन ढलने पर उन्होंने अपने शिष्यों के साथ एक पेड़ के नीचे विश्राम करने का निश्चय किया। मध्व के एकनिष्ठ शिष्य सत्यतीर्थ अपने गुरु के खाने के लिए फल लाने के लिए जंगल में प्रविष्ट हुए। थोड़ी ही देर बाद एक बाघ का गर्जन सुनाई पड़ा। सभी को सत्यनिष्ठ की चिंता सताने लगी। मध्व अपने शिष्यों के साथ उस ओर चल पड़े। उन लोगों ने देखा—सत्यतीर्थ पेड़ पर चढ़कर फल तोड़ रहे थे। बाघ थोड़ी दूर पर आक्रामक मुद्रा में बैठा दहाड़ रहा था। बार-बार वह अपने शिकार की ओर देख रहा था। इस समय आचार्य मध्व के शरीर में एक दिव्य का आवेश दृष्टिगोचर हुआ। भावकम्पित शरीर से धीरे-धीरे इस बाघ की ओर अग्रसर हुए। बाघ सम्मोहित सा स्थिर बैठा उनकी ओर ताक रहा था। मध्व ने बाघ के ऊपर हथा फेरा। बाघ सिर झुकाये धीरे-धीरे जंगल में खो गया। सभी की जान में जान आई। सत्यतीर्थ को पेड़ से उतार कर वे लोग वापस चले गए।

सत्यतीर्थ के कृतज्ञता ज्ञापन पर मध्व ने कहा, 'वत्स, तुम्हारा जीवन तो विष्णु भगवान के काम में उत्सर्गित हैं। ईश्वरीय काम के सम्पादन हेतु तुम्हारा बचे रहना आवश्यक था। तुमने मेरे गीता-भाष्य एवं सूत्र-भाष्य की अनुलिपि लिखीं है। सेवा तथा कर्म में मेरी नाना प्रकार से सहायता की है। इसी बात को तो मैंने हिंस्रबाघ को इशारे द्वारा समझाया। इसी से वह कोई प्रतिवाद न करके तुम्हें छोड़कर चला गया।'

मध्व की इस योगविभूति रूप को देखकर सभी शिष्य आश्चर्यचकित रह गए।

लम्बे परिब्राजन के बाद मध्व वाराणसी पहुँचे। यहाँ मठाधीशों से उनकी घनिष्ठता हुई। गीता-भाष्य और ब्रह्मसूत्र-भाष्य की जिस नूतन द्वैतवादी भक्ति-धर्म

की उन्होंने व्याख्या की थी, उस सम्बन्ध में स्थानीय साधकों एवं पण्डितों के साथ विचार-विनिमय का सुयोग प्राप्त हुआ। इसके बाद मध्व ने पवित्र साधन-धाम हरिद्वार में प्रवेश किया।

मध्व ने व्यास-गुहा में बैठकर कई दिनों तक तपस्या की। सुदीर्घ ध्यान तथा मनन के पश्चात् महामुनि व्यास उनके समक्ष आविर्भूत हुए। मधुर हँसी के साथ अपने हाथों के सूत्र का भाष्य उठाकर उन्हें कृतार्थ किया। इसके बाद महामुनि ने कहा, 'मध्व मैं तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हूँ। तुम्हारे मतवाद ने भारतीय दर्शन को पुष्ट किया है। यह इस युग में भक्तिधर्म के विस्तार साधन का हेतु बना है। अब तुम महाभारत के भाव निर्णयकारी एक ग्रंथ की रचना करो! इससे तुम्हारा पुण्य कर्म सहजतर होता जायेगा।' मध्व के हाथों में एक संपुट देते हुए उन्होंने स्नेहपूर्वक आगे कहा, 'वत्स इसमें तीन परम पवित्र शालग्राम शिलाएं हैं। वापस जाकर इन शिलाओं को जिन-जिन स्थानों पर तुम स्थापित करोगे, वे जाग्रत पीठों के रूप में प्रसिद्ध हो जाएँगे।' महामुनि के चरणों में साष्टांग प्रणाम करके मध्व गुहा के बाहर आ गए। इन परम पवित्र शिलाओं को मध्वाचार्य ने समारोहपूर्वक सुब्रमण्य, उडुपी एवं मध्यतल, इन तीन मठों में स्थापित किया था।

हिमालय की गोद में स्थित तीर्थों के परिब्राजन के पश्चात् मध्व समतल भूमि में आ गए। फिर शुरु हुई भक्तिसिद्धि महासाधक, अद्वैतवादी, महादार्शनिक माध्वाचार्य की अविस्मरणीय भूमिका। सारा जीवन उन्होंने शंकर के अद्वैतवाद के विरुद्ध संघर्ष में लगा दिया। अपने मत के प्रचार में मध्व ने स्मृतियों एवं पुराण-शास्त्रों की अधिक सहायता ली। वे रामानुज के विशिष्टाद्वैतवाद के ऊपर आघात करने में भी पीछे नहीं रहे।

मध्वमत की प्रधान भित्ति है भेदवाद। ईश्वर एवं जीव, सेवावस्तु तथा सेवक नित्य पृथक् तथा नित्य भेदयुक्त है। मात्र यही नहीं, ईश्वर स्वतंत्र है तथा और सभी परतन्त्र अथवा ईश्वर पर निर्भर। उनका यह द्वैतवाद दार्शनिक क्षेत्रों में स्वतंत्र-अस्वतंत्रवाद नाम से परिचित है। मध्वपंथीगण अपने सम्प्रदाय को सद्-वैष्णव कहते हैं।

मध्वाचार्य ने ब्रह्म अथवा परमात्मा के स्थान पर विष्णु अथवा नारायण को स्थापित किया है। उनका कहना है कि सृष्टि के आदि से एक एवं अद्वितीय आनन्दस्वरूप भगवान नारायण विराजित थे। उस समय ब्रह्मा अथवा शिव कोई भी नहीं थे इस विष्णु के शरीर से ही यह विश्वचराचर सृष्टि हुआ है एवं ये विष्णु या नारायण ही एकमात्र सत् वस्तु हैं। अशेष सद्गुण के आधार भी वे ही हैं। वे निर्दोष एवं स्वतन्त्र हैं। वे व्यतीत हैं और सारा कुछ अस्वतन्त्र अर्थात् ईश्वर के आधीन हैं।

जीव और ईश्वर के इस केवल-भेद के अलावा आचार्य ने पाँच तरह के और भेदों का समर्थन किया है। जीव और ईश्वर का भेद, जड़ और ईश्वर में भेद, जड़ एवं जीव में भेद तथा जीव-समूह एवं जड़ पदार्थ समूह में अभ्यन्तरीय एवं परस्पर भेद—इन्हीं पाँचों भेदों को उन्होंने प्रपंच कहा है।

आचार्य मध्व कहते हैं कि जीव को मोक्ष अथवा मुक्ति तभी मिलती है जब उसके जन्म-मृत्यु का यातायात या पुनर्जन्म का अवसान घटित होता है तथा वह तभी संभव होता है जब वह बैकुण्ठ में नारायण के पास स्थिति लाभ करता है। मुख्यप्राणवायु की ही उपासना श्रेष्ठ है। नारायण के पुत्र, वायु की कृपा के अलावा, मोक्ष-लाभ की और कोई संभावना नहीं है। मध्व के अनुगामी वैष्णवों का विश्वास है कि इस युग में मध्व ही वायु के अवतार हैं। इसी कारण, वे ही मनुष्य के त्राणकर्ता हैं। पुण्यकर्म के लिए मध्व ने अक्षय स्वर्गवास की व्यवस्था दी है तथा मध्व वैष्णववाद के विरोधियों के लिए उन्होंने अनन्त नरकवास की व्यवस्था दी है।

मध्व के अनुसार, जीवात्मा स्वाभाविक रूप से ही अविद्या द्वारा आवृत्त है। भगवान के स्वरूप के सम्बन्ध में ज्ञान-लाभ होने पर ही यह आवरण हटता है और मोक्ष लाभ संभव हो पाता है। उन्नत श्रेणी के जीवात्मा ही यह ज्ञान-लाभ कर पाते हैं। इसके लिए उन्होंने अठारह अनुशासनों की व्यवस्था दी है। इनमें से प्रधान हैं—वैराग्य, शम, गुरुसेवा, भगवत चरणों में भक्ति, उपासना, पूर्वमीमांसा के अनुसार शास्त्रीय अनुष्ठान तथा मतवादों का विरोध इत्यादि।

उन्होंने विष्णुसेवा के तीन उपाय बताए हैं—

(1) अंकन अथक साधक के विभिन्न अंगों पर विष्णु के शंख-चक्र इत्यादि चिन्हों का धारण।

(2) नामकरण अर्थात विष्णु के विभिन्न नामों के अनुरूप पुत्रादिकों के नाम रखना।

(3) कायिक, वाचिक एवं मानसिक त्रिविध भजन।

जीवन के अंतिम चरण में माध्वाचार्य ने उडुपी तथा अन्य स्थानों में कृष्णमंदिरों की स्थापना की। परन्तु अखिल रसामृत-मूर्ति श्रीकृष्ण को उन्होंने इष्टरूप में ग्रहण किया था अथवा मधुर-भजन मार्ग का अनुसरण किया था, ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता। कुछ लोगों का मत है कि मध्व-मतवाद से ही गौड़ीय वैष्णव आंदोलन का उद्भव हुआ है तथा गौड़ीय वैष्णव सम्प्रदाय मध्व सम्प्रदाय का ही एक अंग है। लेकिन इस अवधारणा के लिए भी कोई ठोस प्रमाण नहीं है।

कुछ दिनों तक उत्तर भ्रमण के उपरांत आचार्य दक्षिणात्य की ओर वापस लौट आए। इस क्षेत्र में शोभन भट्ट तथा स्वामी शास्त्री का व्यापक प्रभाव था। इन दोनों शास्त्रविदों ने आचार्य मध्व से शास्त्रार्थ में परास्त होकर उनका शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। शोभन भट्ट का संन्यास नाम पड़ा—पद्मनाभ तीर्थ। मध्व के बाद वे ही उडुपी के अध्यक्ष हुए। कालांतर में गुरु अच्युत प्रकाश ने भी मध्व से प्रभावित होकर उनके दार्शनिक मतवाद एवं साधन-प्रणाली को ग्रहण किया। अब आचार्य मध्व का वैष्णव आंदोलन पहले की अपेक्षा काफी शक्तिशाली हो उठा। दिन-प्रतिदिन आचार्य मध्व के शिष्यों, भक्तों एवं अनुयायियों की संख्या बढ़ती गई।

मध्व के प्रभाव-विस्तार से श्रृंगेरी मठ के अध्यक्ष धर्मतीर्थ को ईर्ष्या हुई और उन्होंने आचार्य मध्व के खिलाफ प्रचार में पूरी ताकत झोंक दी। मध्व तथा उनके शिष्यों के लांछना तथा उत्पीड़न की सीमा न रही। श्रृंगेरी मठ के अनुयायियों की संख्या अधिक थी। आचार्य मध्व की ग्रंथशाला का भी विनाश कर डाला गया। आचार्य एवं उनके अनुयायी इस चरम आघात से संज्ञाशून्य हो गए। इन्हीं ग्रंथों को तो आधार बनाकर आचार्य मध्व ने अपने नए मतवाद का प्रणयन किया था।

आचार्य मध्व एक दिन विष्णुमंगल के राजा जयसिंह के पास गए। कहा, 'महाराज प्राचीन ग्रन्थों का यह अपहरण मात्र वैष्णवों की ही क्षति नहीं है, वरन यह सारे शास्त्रविदों की और देश की क्षति है। धर्म तथा संस्कृति के भावी गवेषकों की इससे हानि होती है। आप श्रृंगेरी के मठाधीश को समझाएँ और अमूल्य शास्त्रग्रंथों के उद्धार में सहायक हों।'

राजा जयसिंह ने सफलतापूर्वक मध्यस्थता की। उन्होंने अपने प्रभाव का उपयोग कर श्रृंगेरी के मठाधीश को समझाया और बलपूर्वक ले जाए गए प्राचीन धर्मग्रंथों को उडुपी मठ को लौटाने में सफल हुए।

काफी दिनों बाद दोनों मतावलम्बियों में मेलजोल स्थापित हुआ और दोनों के अनुयायी एक-दूसरे के मठों की यात्रा करने लगे। जिन वैष्णव विरोधी आचार्यों ने मध्व का शिष्यत्व ग्रहण किया उनमें विशिष्टतम थे त्रिविक्रम आचार्य। ये एक विख्यात शैव थे। इन्होंने बहुत से शैव मतावलम्बियों को वैष्णव बना डाला। बाद में इन्हीं के पुत्र नारायण आचार्य ने मध्व की जीवनी लिखी। दीक्षादान के समय मध्व ने त्रिविक्रम आचार्य को एक मनोरम कृष्णमूर्ति उपहार में दी। यह मूर्ति आज भी कोचीन राज्य में (दक्षिण कनारा में) भक्त वैष्णवगण तीर्थयात्रियों को इस अनुपम विग्रह का दर्शन कराते हैं।

1275 ई० में मध्व के पिता का देहावसान हो गया। इसके कुछ ही दिनों बाद मध्व के अनुज ने भी संन्यास ग्रहण कर लिया। इनका नामकरण हुआ विष्णुतीर्थ।

जीवन के अंतिम दिनों में आचार्य मध्व की भक्तिसाधना में परिवर्तन हुआ। इतने दिनों तक उनके हृदयासन पर शेषशायी विष्णु अधिष्ठित थे, परंतु अब उस पर अधिकार कर लिया श्रीकृष्ण ने। ध्यानमग्न प्रभु के नयनों के समक्ष प्रभु बाल गोपाल रूप में आविर्भूत हुए। श्रीकृष्ण ने कहा, 'सागर से आती नौका के अंदर मैं रहूंगा। मुझे निकालकर तुम अपने मंदिर में स्थापित करना।' इतना कहकर प्रभु अन्तर्ध्यान हो गए।

एक दिन आचार्य मध्व अपने शिष्यों और भक्तों के आमंत्रण पर मालपी बन्दरगाह गए हुए थे। सुबह ध्यान-जप करने के बाद आचार्य बन्दरगाह के किनारे टहल रहे थे। सहसा उनकी नजर समुद्र में तैर रही एक नौका पर पड़ी। इस नौका के नाविक एक अदृश्य टीले से मुसीबत में पड़ गए थे। जिधर भी वे नाव बढ़ाने की चेष्टा करते, नौका, उससे जा टकराती। दूर से ही आचार्य मध्व को देखकर नाविक ने पुकारा, 'साधु बाबा, मैं महान विपत्ति में फंस गया हूँ। इस रेती से नौका निकाल पाना संभव नहीं हो पा रहा है, कृपया गहरे पानी की ओर निकलने का रास्ता बता दें।'

मध्व ने चिल्ला कर कहा, 'नाविक तुम जरा भी भय मत करो। मैं अपना उत्तरीय जिधर को हिला रहा हूँ, उधर ही नौका ले जाओ।' आचार्य मध्व तट पर खड़े होकर अपना उत्तरीय हिलाने लगे। माझी उधर ही नौका ले गया और इस मुसीबत से बाहर निकल आया। उसकी नौका बन्दरगाह के तट पर आ लगी। इस नौका में गोपचन्दन के टुकड़े पड़े हुए थे। आचार्य ने उसमें से एक टुकड़ा लेने की इच्छा व्यक्त की। माझी ने जब टुकड़े हटाए तो उसके भीतर से शिलामयँ, एक अनिन्द्य सुन्दर, बालगोपाल की मूर्ति बाहर निकल आयी। गोपाल के दाहिने हाथ में दही मथने का दण्डा और बाएं हाथ में मन्थन-दण्ड की रस्सी थी।

इस श्रीमूर्ति को लेकर आचार्य मध्व और शिष्यगण उल्लासपूर्वक उडुपी आए। यहाँ के सबसे बड़े सरोवर में इस मूर्ति का स्नान-अभिषेक करने के बाद इसे एक नवनिर्मित मठ में स्थापित किया गया। आचार्य मध्व ने आठ प्रधान संन्यासी-शिष्यों के ऊपर बालगोपाल की पूजा-अर्चना का भार सौंपा। यह सरोवर आज मध्व सरोवर के नाम से प्रसिद्ध है।

बाद में इन आठ सन्यासी-शिष्यों ने विभिन्न क्षेत्रों में आठ कृष्ण मंदिरों की प्रतिष्ठा की। ये ही आठ मठ फिर दो-दो करके द्वन्द मठ के नाम से विख्यात

हुए। उडुपी के मूल मठ को उत्तरादि मठ के नाम से सम्बोधित किया जाता है। आचार्य मध्व के बाद पद्मनाभतीर्थ मूल मठ के अध्यक्ष हुए।

१३०३ ई० में शुक्ला नवमी। इन दिनों आचार्य सरिदन्तर नामक स्थान में ऐतरेय उपनिषद् की व्याख्या कर रहे थे। इसी समय उनके लीलाअवसान का परम मुहूर्त अग्रसर हुआ। ईष्टध्यान समाहित होकर आचार्य मध्व ने अंतिम निःश्वास त्याग किया तथा ईष्टधाम की नित्यलीला में प्रविष्ट हो गए।

आचार्य मध्व ने कुल 38 धर्मग्रन्थों की रचना की है। इनमें तीन प्रमुख हैं—गीता भाष्य, ब्रह्मसूत्र भाष्य, महाभारत तात्पर्य निर्णय।

●

१४

स्वामी अभेदानन्द

पिता रसिकचन्द्र और माता नयनतारा के दो अक्टूबर सन् 1866 ई० को एक संतान हुई। यह संतान मां काली की कृपा से हुई थी इसलिए इसका नामकरण हुआ था काली प्रसाद। काली प्रसाद विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। अल्प समय में ही बंगला, संस्कृत और अंग्रेजी भाषाओं पर उनका अधिकार हो गया। विल्सन रचित भारत के इतिहास में आदि शंकर की कथा पढ़ने के बाद कालीप्रसाद ने वैसा ही बनने का संकल्प किया। किशोरावस्था में ही उन्होंने स्टुअर्ट मिल, हेर्सेल, ग्यानो, लुइस हेमिल्टन आदि विद्वानों की पुस्तकें पढ़ डालीं। इसके साथ ही कालिदास के रघुवंश, कुमारसंभव और शकुंतला का भी अध्ययन किया। भट्टनाथ को भी पढ़ा। गीता का भी अध्ययन करते रहे।

एक दिन प्रसिद्ध धर्मवक्ता शशिधर तर्कचूड़ामणि अलबर्ट हाल में पंतजलि योगसूत्र और योगसाधना विषय पर भाषण दे रहे थे। इस भाषण से उत्साहित होकर काली प्रसाद ने पंतजलि दर्शन की एक प्रति खरीद ली और वेदान्तवागीश से इनके सूत्र समझने लगे। इसी बीच उन्होंने शिवसंहिता का भी अध्ययन किया। काली प्रसाद के मन में एक गुरु के तलाश की भावना प्रबल हुई और वे पैदल ही दक्षिणेश्वर गए। उस समय ठाकुर रामकृष्ण कलकत्ता गए हुए थे। कालीप्रसाद ने उसकी वापसी की प्रतीक्षा की। देर रात में परमहंस वापस आए। अपने कमरे में जाने के कुछ ही देर बाद उन्होंने कालीप्रसाद को बुलाया। काली प्रसाद ने उन्हें प्रणाम किया और चटाई पर बैठ गए। इसके बाद की कथा स्वयं स्वामी अभेदानंद के शब्दों में—

मैं योग साधना में उपविष्ट हुआ। परमहंसदेव ने मुझे जिह्वा निकालने का आदेश दिया। जब मैंने अपनी जिह्वा बाहर निकाली तब उन्होंने अपनी मध्य माँगुलि द्वारा उस पर एक बीज मंत्र लिखकर शक्ति का संचार किया तथा अपने दाहिने हाथ द्वारा मेरे वक्षस्थल की उर्ध्वदिशा में शक्ति का आकर्षण करके मुझे माँ काली का ध्यान करने को कहा। मैंने वैसा ही किया। गंभीर ध्यानावस्था में समाधिस्थ होकर मैं काष्ठवत् अवस्थित हो गया और एक अपूर्व आनन्द का अनुभव करने लगा। उस समय सभी सांसारिक विषय-वासनाएँ भूल गईं। इस भाव में मैं कबतक रहा, मुझे ज्ञात नहीं।

कुछ क्षणों के उपरांत परमहंसदेव ने मेरे वक्षस्थल पर अपना हाथ रख मेरी कुंडलिनी शक्ति को अधोगामी कर उसे यथास्थान किया। तब मेरी बाह्य चेतना लौटी और सम्पूर्ण शरीर एक अपूर्व तथा निर्मल आनन्द स्रोत से परिपूर्ण हो गया। मेरी उस अवस्था को देखकर रामलाल दादा और गोपाल मां ने मुझसे कहा था— 'क्या ही आश्चर्य! तुम्हें स्पर्श करते ही तुम काष्ठवत् ध्यानमग्न हो गए थे।'

परमहंस देव ने कहा—'तुम विवाह मत करो'। तत्पश्चात् ध्यान करने की पद्धति के सम्बंध में शिक्षा देते हुए उन्होंने कहा—

'शुचि अशुचि ले दिव्य घर में कब सोओगे
दोनों पत्नियों में प्रेम होने पर ही श्यामा मां को पा सकोगे।'

बाद में चलकर अभेदानन्द ने बताया—'ठाकुर के इन दोनों पदों का अर्थ उन दिनों समझ में नहीं आता था, बाद में मैंने उन्हें जाना। शुचि और अशुचि, अच्छा और बुरा इन दोनों का पृथक ज्ञान रहते हुए अभेद ज्ञान का स्फुरण नहीं हो सकता। मायातीत होकर सच्चिदानन्द ब्रह्म का पूर्ण ज्ञान भी संभव नहीं है।'

इस प्रकार शक्ति संचार करने के बाद श्री रामकृष्ण ने कहा—'नित्य प्रति रात्रि में अपने बिस्तर पर ध्यान करना, ध्यान से दर्शन होगा। वह सब यहां आकर मुझे बता देना। इस बार तुम स्वयं जाकर काली मंदिर में ध्यान लगाओ।' ध्यान शेष होने पर जब वापस आया तो ठाकुर ने स्नेहपूर्वक उसे मिष्ठान्न प्रसाद खाने को दिया।

इधर काली प्रसाद के माता-पिता चिन्तामग्न थे। मां नयनतारा देवी को हठात् स्मरण हुआ कि कालीप्रसाद ने उनसे दक्षिणेश्वर जाने की चर्चा की थी। यह बात जब उन्होंने पति को बताई तो वह पुत्र की खोज में दक्षिणेश्वर की ओर चल पड़े। वे ठाकुर रामकृष्ण के पास पहुंचे और पुत्र के बारे में पूछा। उन्हें बताया गया कि काली प्रसाद कलकत्ता के लिए रवाना हो चुके हैं।

रसिकचंद्र को शंका हुई कि कालीप्रसाद कहीं घर-द्वार न त्याग दे। उन्होंने ठाकुर से जिज्ञासा प्रकट की। इस पर उन्होंने कहा—'आपके पुत्र में तेतर योगी का लक्षण है। योग-साधना के लिए उसका मन अधीर हो उठता है। ऐसी अवस्था में उसका विवाह करना क्या श्रेयस्कर होगा?'

रसिकचन्द्र ने कहा—'जैसी आपकी इच्छा। माता-पिता की सेवा करना क्या परमधर्म नहीं है?'

'हाँ-हाँ, ऐसा ही है।' कहकर श्रीकृष्ण बार-बार आह्लाद प्रकट करने लगे।

बाद में अभेदानन्द ने इस वाक्य की व्याख्या की। उन्होंने बताया कि माता-पिता की सेवा से उस समय ठाकुर ने जगत्पिता और जगन्माता की सेवा

का तात्पर्य समझा था और इसीलिए प्रसन्नता व्यक्त की थी लेकिन उस समय मेरे पिता उसे समझ नहीं पाए थे।

बहरहाल घर लौटने के उपरान्त कालीप्रसाद रात में दरवाजा बंद कर बिस्तर पर बैठकर ध्यान करते। इस अवस्था में उन्हें अनेक विचित्र और अतीन्द्रिय दर्शन होते।

कालीप्रसाद के दक्षिणेश्वर यात्रा पर प्रतिबंध लगा दिया गया था, लेकिन जब भी मौका मिलता वे बदहवास से ठाकुर के चरणों में उपस्थित हो जाते। एक दिन पूरे दिन तक ताले में बंद रहने के बाद शाम को जब ताला खुला तो कालीप्रसाद रात में ही दक्षिणेश्वर चल दिए। जब वे ठाकुर के पास पहुँचे तो उन्होंने मुस्कराते हुए अपने इस नूतन शिष्य की ओर देखा फिर प्रसन्न होकर बोले—'ठीक है, इसी प्रकार करना। ईश्वर के लिए इसी प्रकार की तो व्याकुलता चाहिए। सुयोग पाते ही यहाँ उपस्थित होना। जो कुछ दर्शन हो, अनुभूति हो, उस सबके विषय में यहाँ आकर बता जाना।'

काली प्रसाद ठाकुर का प्रायः दर्शन करने लगे। गुरु रामकृष्ण की अहेतुकी कृपा और उनकी साधना सम्बंधी सूक्ष्मातिसूक्ष्म निर्देशों ने इनकी ध्यान-प्रवणता को उच्चस्तरीय सिद्धि की ओर परिचालित किया। अपने आत्मचरित्र में उन्होंने लिखा है—

दक्षिणेश्वर में परमहंसदेव अपने लघु कक्ष में आसीन हैं और मैं उनका पार्श्ववर्ती हो पदसेवा कर रहा हूं। वे मेरे मुख की ओर देखकर कहने लगे—'ब्रह्मज्ञान का सहज में लाभ लिया जा सकता है।' मैंने उत्तर दिया—'पातंजलि दर्शन में एक सूत्र है : तीव्र सम्बेगावामासन्न—अर्थात् जिसके अन्दर में तीव्र संवेग (श्रद्धा, वीर्यादि) रहता है उसे शीघ्र समाधि होती है। तब उन्होंने अपने नाखून से मेरे कपाल पर जोर से चिकोटी काटकर कहा—इस स्थान पर मन को स्थिर करो। नांगटा (तोतापुरी) ने मेरे कपाल पर एक कांच-खण्ड को विद्ध करके उस बिन्दु पर मुझे अपना ध्यान स्थिर करने को कहा था और वैसा करने पर मुझे तो निर्विकल्प समाधि लग गई थी। उस अवस्था में तो कोई बाह्यज्ञान अवशेष नहीं रहता। मैं भी अहिर्निश तीन दिनों तक अविरल समाधि में स्थिर रहा। मेरी अवस्था देखकर नाँगटा ने कहा था—देवी की क्या माया है! चालीस वर्षों की साधना के उपरान्त मुझे निर्विकल्प समाधि प्राप्त हुई, उसे तुमने तीन दिनों में ही सिद्ध कर लिया?

'तत्पश्चात् परमहंसदेव ने मुझे पंचवटी के नीचे आसनस्थ हो ध्यान करने का आदेश दिया।.......पंचवटी पहुंचकर अपने भ्रूमध्य में मैंने मन को स्थिर किया। ध्यान करते-करते वाह्य शून्य हो गया और कितनी देर मैं समाधिस्थ रहा

इसका ज्ञान नहीं रहा। उसके बाद शनैः शनैः बाह्यज्ञान लौटने लगा, तत्पश्चात् उठकर मैं परमहंस देव के समीप पहुँचा और उनके चरणों पर प्रणिपात किया। उन्होंने स्नेहपूर्वक मेरे मस्तक पर हाथ रख मुझे आशीर्वाद प्रदान किया।'

श्री रामकृष्ण कहते—'ब्रह्म निर्गुण और सगुण दोनों है। लेकिन निर्गुण ब्रह्म को तुम कैसे जानोगे। निर्गुण ब्रह्म तो अखंड और स्थिर समुद्र की भाँति है। उसमें तरंग अथवा क्रिया नहीं है। वह सुमेरुवत् अचल और अटल है। सुषुप्तावस्था में उसकी मायाशक्ति उसी में लीन रहती है और उस अवस्था में विश्व ब्रह्माण्ड, जीव, जगत् महाप्रलय उसी में रहते हैं। माया शक्ति के जाग्रत होते ही उस सच्चिदानन्द-सागर में तरंगें उठती हैं। उस अवस्था को वेदान्त में सगुण ब्रह्म कहा जाता है। तब त्रिगुणात्मक माया अथवा प्रकृति में गुण-क्षोभ होता है और उसी से आरंभ होता है यह सृष्टि-कार्य। यही सगुण ब्रह्म अर्द्धनारीश्वर, हर गौरी नामों से अभिहित है शास्त्रों में।'

काली प्रसाद को सम्बोधित करते हुए उन्होंने कहा—'आँचल में अद्वैतज्ञान की गाँठ बाँध कर जो इच्छा हो सो करो।'

जीव और ब्रह्म में भेद के सवाल पर उन्होंने कहा—'स्रोतस्विनीजल के ऊपर आरपार लाठी रखने से मन में भान होता है कि जल दो भागों में विभक्त हो गया है। ठीक उसी प्रकार अहंरूपी लाठी को धारण करने से जीव और ब्रह्म पृथक-पृथक मन में प्रतीत होते हैं। परन्तु यथार्थ में उनमें कोई पार्थक्य नहीं है। ब्रह्मज्ञान होने पर सभी भेद स्वतः दूर हो जायेंगे। जो निराकार हैं, वे ही साकार बने हैं। ईश्वर का साकार रूप ही जाना जा सकता है। साधक जिस रूप की चिन्ता अथवा ध्यान करता है, उसे उसी रूप का दर्शन होता है। बाद में अखण्ड सच्चिदानंद में वह मिल जाता है। उस अवस्था में साकार निराकार हो जाता है।'

सर्वधर्म समन्वय के बारे में ठाकुर ने कहा था—'जिन्होंने सर्वधर्म के सिद्धांतों का समन्वय किया है वे ही यथार्थ जीव हैं, अन्य सभी नीरस और निस्तेज हैं। वेदों में जिन्हें 'ॐ सच्चिदानन्द ब्रह्म' कहा गया है। तंत्रों में ही उन्हें ही 'ॐ सच्चिदानंद शिव' कहा जाता है तथा पुराणों में उन्हें ही 'ॐ सच्चिदानंद कृष्ण' कहा जाता है। जितने मत हैं, उतने ही पथ भी हैं। उसे पाने के नाना मत और नाना पथ हैं, परन्तु लक्ष्य तो एक ही है।'

जीवकोटि और ईश्वर कोटि के बारे में उनका मत था—'ब्रह्म तो सभी में विराजमान है, यह सत्य है किन्तु सभी की शक्तियों के प्रकाश में तारतम्य है। इस प्रकाश की तारतम्यता से ही ईश्वर कोटि और जीवकोटि में पार्थक्य होता है। जीवकोटि के लोग तो अपनी ही मुक्ति पाते हैं, वे दूसरे को मुक्त नहीं कर

सकते। जो अपना उद्धार करने के साथ-साथ अन्यों का भी उद्धार करते हैं, वे ही ईश्वर कोटि हैं। कोई-कोई पुनः इसी शक्ति को लेकर जन्म ग्रहण करते हैं।'

एक प्रश्न के उत्तर में श्री ठाकुर ने कहा—'जीवकोटि ईश्वरकोटि तक उठ सकता है। जीवकोटि यदि जगन्माता के पास दूसरों के उद्धार के लिए शक्ति की प्रार्थना करेगा, तभी मां उसे वह शक्ति प्रदान करेगी।'

श्री रामकृष्ण ने एक बार एक ईसाई को ईसा मसीह के रूप में दर्शन दिया था। इसके उपरांत उस ईसाई ने वहां उपस्थित जनों से कहा, 'आप लोगों ने इन्हें पहचाना नहीं। हमारे ईशु और ये अभिन्न हैं। आज मैंने जिस रूप का दर्शन किया, प्रभु ईसामसीह का भी वही रूप है। इससे पूर्व मैंने स्वप्न में इन दोनों के दर्शन किए थे। वर्तमान युग के ईसा मसीह तो वे ही हैं।'

बाद में ज्ञात हुआ कि रामकृष्ण के गले में कैंसर है। वे काशीपुर में प्रवास कर रहे थे। वहीं उन्होंने रामकृष्ण मंडली का गठन किया। नरेन्द्रनाथ को उसका प्रमुख बनाया गया। इनके साथ कालीप्रसाद की साधना चलती रही।

एक दिन रामकृष्ण ने कालीप्रसाद से कहा—'आत्मा न तो मरती है और न किसी को मारती है। यह ज्ञान जिसे होता है, वही तो आत्मस्वरूप का ज्ञाता है। अतएव अन्य किसी की हत्या करने की प्रवृत्ति उसमें किस प्रकार होगी? जिस क्षण उसमें हत्या करने की प्रवृत्ति होगी उस क्षण से तो उसमें आत्मज्ञान नष्ट हो जायेगा। तभी तो कहता हूँ कि ठीक-ठीक ज्ञान होने पर मनुष्य के पैर कुमार्ग पर नहीं पड़ेंगे। आत्मा की देह, इन्द्रिय, मन और बुद्धि के परे साक्षीस्वरूप समझो।' यह उपदेश रामकृष्ण ने उस समय दिया जब उन्हें पता चला कि पास के सरोवर में नरेन्द्रनाथ सहित उनके कुछ युवा शिष्य मछली पकड़ रहे थे।

काली प्रसाद ईश्वर को नहीं मानते थे। यह बात जब श्री ठाकुर को पता चली तो उन्होंने काली प्रसाद के ज्ञान-चक्षु खोले। इस संबंध में वे अपनी आत्मकथा में लिखते हैं—'श्री ठाकुर ने मेरे ज्ञान-चक्षु खोल दिए। तत्पश्चात् मैं साधना के रहस्य सम्बंधी सभी कथाओं से भिज्ञ हो सका और सभी वस्तुओं को मानने लगा। श्री ठाकुर की असीम कृपा का स्मरण कर आज भी मेरे दोनों चक्षु अश्रुपूरित हो जाते हैं।'

बाद में एक सज्जन द्वारा दान लिए गए गेरुए वस्त्र धारण कर परमहंस के कुछ शिष्यों जिनमें कालीप्रसाद भी थे, संन्यास ग्रहण किया। आर्थिक संकट आने पर भिक्षाटन भी किए और इस दौरान गृहस्थों के कटु वचन भी सहे।

एक बार ठाकुर की अनुमति के बिना ही नरेन्द्र, तारक और काली प्रसाद बोध गया चले गए। इस स्थान पर ध्यानमग्न रहने के दौरान नरेन्द्र को ज्योति का दर्शन हुआ और कालीप्रसाद तथा तारक को आंतरिक दिव्यानंद एवं शांति की

अनुभूति हुई। इन लोगों ने जब लौट कर यह बात श्रीठाकुर को बताई तो वे अति प्रसन्न हुए।

एक बार काली प्रसाद बिना किसी को बताए ही गया चले गए। जिस धर्मशाला में वे रूके उसी में एक दशनामी संन्यासी रहते थे। उनके पास एक छोटी सी पुस्तिका थी। काली प्रसाद ने उसमें प्रेममंत्र, मढ, मढ़ी, योग पट्ट इत्यादि संन्यास मंत्रों को लिख लिया। दूसरे दिन उस हठयोगी की गुफा की ओर जाने लगे तब उसके शिष्यगण काली प्रसाद पर पत्थरों की वर्षा करने लगे क्योंकि वे नहीं चाहते थे कि कोई गुफा में जाकर उनके गुरु की तपस्या में खलल डाले। काली प्रसाद ने दूर से ही हठयोगी और उनके शिष्यों को प्रणाम किया और बोले—'ऊँ नमो नारायणाय।' इससे साधुगणों ने पत्थर बरसाना बन्द कर दिया। उन्होंने समझा कि कालीप्रसाद संन्यासी हैं। पास आकर उन लोगों ने काली प्रसाद से मठाम्नाय, संन्यास मंत्र आदि के बारे में सवाल पूछने लगे। काली प्रसाद ने सभी सवालों के ठीक-ठीक उत्तर दिए, इसलिए वे सभी साधुगण शांत हो गए।

कालीप्रसाद मौका पाकर किसी तरह वहां से भाग निकले और काशीपुर आ गए।

16 अगस्त 1886 को रामकृष्ण ने शरीर त्याग दिया।

मां शारदा मणि अयोध्या, वृन्दावन आदि तीर्थस्थलों की यात्रा पर निकलीं। उनके साथ काली प्रसाद भी थे। कुछ दिन वृन्दावन में बिताने के बाद जब वे वापस आए तो ज्ञात हुआ कि श्रीठाकुर के शिष्यों ने बड़ानगर में एक मठ स्थापित किया है। माँ शारदामणि की सम्पत्ति के साथ वे इस मठ में आ गए। फिर शुरु हुआ कष्ट साध्य जीवन। न खाने को अन्न, न पहनने को वस्त्र। किसी तरह भिक्षाटन पर गुजारा होता रहा।

एक दिन कालीप्रसाद मठ के बरामदे में सोए थे। सूर्य की धूप उन पर पड़ रही थीं। दोपहर का समय था। विवेकानन्द के भाई महेन्द्रनाथ दत्त पधारे। वे काली प्रसाद के पास गए। उनका स्पर्श किया। देह उत्तप्त था। जीवन का कोई लक्षण नहीं था। उन्होंने मठ के अंदर जाकर जब अन्य लोगों से यह बात कही तो योगानन्द ने हँसते हुए कहा, 'वह क्या मरेगा? वह इसी प्रकार ध्यान लगाता है।' काली प्रसाद की ध्यान-निष्ठा को जानने वाले उनके साथी इसी प्रकार की उच्च धारणा उनके सम्बंध में रखते थे।

एक दिन सभी साथियों ने शास्त्रसम्मत ढंग से संन्यास का अनुष्ठान सम्पन्न किया। संन्यास के बाद नरेन्द्र ने अपना नाम विविदिषानन्द रखा जो आगे चल कर विवेकानन्द में परिवर्तित हो गया। राखाल का नाम ब्रह्मानन्द और कालीप्रसाद का नाम अभेदानन्द रखा गया।

कुछ समय बाद माँ शारदामणि का आशीर्वाद लेकर अभेदानन्द तीर्थाटन पर निकल पड़े। सर्वप्रथम हरिद्वार, ऋषिकेश, बदरी-केदार प्रभृति आदि स्थानों का इन्होंने परिभ्रमण किया। इस समय परिव्राजक अभेदानन्द ने संकल्प लिया कि वे रुपये पैसे का स्पर्श तक न करेंगे, रंधन नहीं करेंगे, कुर्ता आदि ऊपरी वस्त्र न पहनेंगे तथा किसी के घर पर शयन न करेंगे। मधुकरी द्वारा जीविका निर्वाह करेंगे और रात्रिकाल में किसी वृक्ष के नीचे आश्रय ग्रहण करेंगे। इस परिव्राजन के दौरान अभेदानन्द ने अनेक कष्ट झेले लेकिन सद्गुरु श्री रामकृष्ण की कृपा से उनके कष्ट दूर हुए। उनका अधिकांश समय ऋषिकेश में बीता। इस स्थान में देश के अन्यतम श्रेष्ठ वेदान्ती धनराज गिरि का आश्रम था। उन्हीं के चरणों में बैठकर अभेदानन्द ने वेदान्त का अध्ययन किया और ज्ञान-मार्ग के सर्वोच्च तत्व को ग्रहण किया। गिरि महानुसार अभेदानन्द में अलौकिक प्रज्ञा थी।

दक्षिण और पश्चिम भारत के तीर्थों का भ्रमण कर अभेदानन्द कलकत्ता लौट आए। उस समय मठ आलम बाजार में स्थानान्तरित हो चुका था। अब मठ की आर्थिक स्थिति ठीक थी।

अभेदानन्द को वेदान्ती काली अथवा 'काली वेदान्ती' के नाम से भी प्रचार मिला। कलकत्ता में विराट धर्म सभा करके स्वामी विवेकानन्द को हिन्दू धर्म का प्रतिनिधि घोषित किया गया और तत्सम्बंधी निर्णय अमेरिका भेजा गया। इस आयोजन में अभेदानन्द की भूमिका सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण थी।

1896 में स्वामी अभेदानन्द आधुनिक युग के अन्यतम वेदान्त-प्रचारक के रूप में पहले इंग्लैण्ड इसके बाद अमेरिका गए। उन्होंने अद्वैत वेदांत और रामकृष्ण की विचारधारा का प्रचार किया। खासतौर पर अमेरिका में 25 वर्षों तक प्रवास करके इन्होंने विवेकानन्द द्वारा प्रचारित भाव धारा का विस्तार किया और एक दृढ़ संगठन का निर्माण किया।

विवेकानन्द अमेरिका के बाद लन्दन पहुँचे। वहाँ अभेदानन्द को भी बुला लिया। लंदन में पहली बार क्राइस्ट थियोसोफिकल सोसाइटी में उनका भाषण हुआ। अभेदानन्द अंग्रेजी में धाराप्रवाह बोलकरश्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर दिया। जैसे उनके कण्ठ में साक्षात् सरस्वती विराजमान हों।

स्वामी अभेदानन्द लंदन में एक वर्ष और अमेरिका में 25 वर्ष रहे और इन देशों के धर्म-प्राण व्यक्तियों की श्रद्धा अर्जित करने में सफलता प्राप्त की।

1899 में स्वामी विवेकानन्द पुनः अमेरिका गए। इस बीच स्वामी अभेदानन्द की सफलता देखकर बोले—'इस न्यूयार्क के द्वार पर मैंने तीन-तीन दस्तक दिए परन्तु कोई उत्तर नहीं मिला। तुमने एक स्थायी केन्द्र स्थापित कर लिया है। न्यूयार्क में हम लोगों की समिति का यह प्रथम निजस्व गृह है।'

अमेरिका में स्वामी अभेदानन्द द्वारा पचीस वर्षों तक प्रचार कार्य का दूरगामी परिणाम हुआ। ईसाई पादरियों ने वेदांत के भावों को ग्रहण कर ईसाई तत्वों की नवीन व्याख्या प्रारंभ कर दी। कट्टरतापूर्ण क्रियाकलापों में उनका विश्वास नहीं रह गया। नए-नए धर्म-आंदोलन शुरु हो गए। 'न्यू थॉट', 'ईसाई साइंस', 'स्पिरिचुअल सोसाइटी' आदि नवीन मत शुरु हो गए। 'ईसाई साइन्स' की संस्थापक मेरी वेकर ने गीता के चन्द श्लोकों पर अपने सम्प्रदाय की स्थापना की। 'न्यू थाँट' वाले सभी विवेकानन्द के छात्र थे। वे कहते थे प्रत्येक जीवात्मा स्वरूपतः ख्रीष्ट है। ऐसा वेदान्त के प्रभाव के कारण हुआ। कट्टरवादी तो मानते हैं कि ख्रीष्ट ने अपना रक्तदान कर पापियों के पाप-ताप को दूर किया था। अब उनकी सोच बदल गई। वे कहने लगे कि 'ख्रीष्टत्व' तो प्रत्येक जीवात्मा के भीतर सुप्तावस्था में अवस्थित है तथा वह जागरित होगा। वेदान्त में प्रचारित एक अनन्त और सत्य सत्ता के ऊपर ही ख्रीष्ट धर्म को खड़ा करने का प्रयास शुरु हो गया। वेद वाक्यों 'एकमे वा द्वितीयम्', 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' प्रभृति वाक्यों ने ख्रीष्ट साइंस, न्यू थाँट और स्पिरिचुएलिज्म ने ग्रहण किया। वेदान्त का प्रभाव पूरे यूरोप पर पड़ा। इंग्लैण्ड भी इसके प्रभाव से अछूता नहीं रहा। स्वामी अभेदानन्द ने कहा है—'आर्य सभ्यता की अरुण आभा भारत के अन्तरिक्ष में सर्वप्रथम उद्भासित हुई थी। ग्रीस, रोम अरब अथवा फारस नहीं बल्कि भारत ही अध्यात्मशास्त्र, दर्शन न्याय, ज्योतिष, कला विद्या, संजीव, चिकित्सा, और नैतिक धर्म की आदि भूमि रही है।'

अमेरिका प्रवास के समय अभेदानन्द को नाना प्रकार के कष्ट झेलने पड़े। लेकिन उन्होंने कभी भी अपनी मानसिक स्थिरता नहीं खोई। वे अपने सहकर्मियों से कहा करते—शुद्ध होकर श्री श्रीठाकुर की ओर अपनी दृष्टि लगा कर तथा विवेकानन्द के असीम प्रेम की कथा को स्मरण करके ही वे लोग दीर्घ संग्राम में जूझ सकेंगे।'

अभेदानन्द ने एकनिष्ठ हो, आप्राण एवं दत्तचित्त हो सद्गुरु रामकृष्ण को पकड़ रखा था। उन्हें विश्वास था कि रामकृष्ण उनकी रक्षा कर रहे हैं एवं ईश्वरीय कर्म-साधना के लिए वे ही दिव्य प्रेरणा भी दे रहे हैं। एक बार अभेदानन्द को लंदन होते हुए अमेरिका जाना था। जहाज का टिकट खरीदने का प्रबंध कर लिया गया था। टिकट खरीदने जाते समय, एक आवाज सुनाई पड़ी जिसने उन्हें टिकट खरीदने से रोका। अभेदानन्द ने घबरा गए। इधर-उधर देखा। कोई नहीं था। जब वे फिर टिकट खरीदने चले तो वही आवाज पुनः उनके कानों में पड़ी। वे लौट आए और आगे का कार्यक्रम बनाने लगे। दूसरे दिन समाचारपत्रों में एक खबर मोटे शीर्षक में छपी थी—'एस.एस. लुसिटनिया डज

नो मोर।' लुसिटनिया उस जहाज का नाम था जिससे अभेदानन्द अमेरिका जाने वाले थे। यह जहाज अटलॉटिक महासागर में डूब गया था।

स्वामी अभेदानन्द की शिष्या सिस्टर शिवानी (मेरी ल 'पेज) ने कहा है कि स्वामी जी योगशक्ति और रोग निवारण शक्ति के बारे में अनेक लोगों को विश्वास था। वे एक विस्मयकारी घटना का जिक्र करती हैं। आश्रम की एक छात्रा तरुण बहन का मस्तिष्क खराब हो गया था। इसके मानसिक रोग के बारे में डाक्टरों का कहना था कि यह लाइलाज हो गया है। इस विक्षिप्त तरुणी की बहन भी आश्रम की छात्रा थी। उसने स्वामीजी से कहा—'आप तो महात्मा हैं और आपकी योग-विभूति पर हमें अटूट विश्वास है। मेरी बहन की इस उन्माद रोग से रक्षा करें।' स्वामी जी योगबल द्वारा रोग निवारण की क्षमता से इनकार करते रहे लेकिन वह छात्रा अपनी जिद पर अंड़ी रही। अंत में उन्होंने कहा—अच्छा तुम तीन दिनों बाद मुझसे मिलो।' छात्रा तीन दिनों बाद आश्रम में उपस्थित हुई तो अभेदानन्द उसके साथ उस मानसिक अस्पताल में चले गए। वहां जाकर विक्षिप्त तरुणी के सामने चुपचाप बैठ गए। उन्होंने स्नेहपूर्वक उसका हाथ पकड़ा और बीच-बीच में थपथपाते रहे। वे अधिकांश समय तक अंतर्लीन रहे। एकान्त भाव से प्रशांत और निर्विकाम हो वे कुछ समय तक उसे एकटक देखते रहे। इसके उपरांत धीरे-धीरे वह छात्रा सामान्य हो गई। अपनी बहन के ठीक होने पर छात्रा ने स्वामी जी को कुछ द्रव्य और सोना आदि देना चाहा किन्तु उन्होंने यह कह कर इनकार कर दिया कि मैंने कुछ नहीं किया, जो किया वह मेरे कृपालु गुरुदेव ने किया।'

सिस्टर शिवानी ने अपनी पुस्तक 'स्वामी अभेदानन्द इन अमेरिका' में इस तरह की कई घटनाओं का उल्लेख किया है जिनसे स्वामी जी के योगबल, उनके कोमल और कठोर व्यक्तित्व पर प्रकाश पड़ता है।

सिस्टर शिवानी ने मानसिक रूप से विक्षिप्त एक और तरुणी बान्धवी के स्वामी जी से साक्षात्कार के बाद पूर्ण स्वस्थ होने का वर्णन अपनी पुस्तक में किया है। स्वामी अभेदानन्द एक अंतर्योगी महापुरुष थे।

अमेरिका में पचीस वर्ष बिताने के बाद स्वामी अभेदानन्द जापान, चीन आदि प्राच्य देशों की यात्रा करते हुए 1921 के उत्तरार्द्ध में कलकत्ता पधारे। इससे पूर्व वे तिब्बत में हिमिस मठ जाकर प्रधान लामा के पास नटोमिच प्रदत्त तथ्यों के सम्बंध में अनेक अनुसंधान किया जिसका उल्लेख उन्होंने अपनी पुस्तक 'कश्मीर और तिब्बत' में किया है।

अद्वैतवाद और रामकृष्ण तत्व के प्रचार के लिए स्वामी अभेदानन्द ने १९२६ में कलकत्ता और दार्जीलिंग में रामकृष्ण मठ की स्थापना की।

ब्रह्मानन्द एवं ब्रह्म साक्षात्कार के सम्बंध में उनका विचार था—ब्रह्मानन्द में सभी छोटे-छोटे सुख अंतर्निहित हैं और ये सभी सुख इस ब्रह्मानन्द के एक-एक कण हैं। जिसे इस ब्रह्मानन्द से आस्वादन हो चुका हैं उसे टुकड़े-टुकड़े आनंद नहीं चाहिए। वह तो आनंदमय हो चुका है और उसे कभी भी संसार सुख का अभावबोध होता ही नहीं। ब्रह्म साक्षात्कार के पश्चात् यह संसार तुच्छ हो जाता है और ये सुख क्षण स्थायी। यदि विचार किया जाय तो दुख ही अधिक दिखाई देते हैं। दूसरी ओर ब्रह्मविद् पुरुषों के सुख नित्य हैं। वे जिस आनंद का उपभोग करते हैं, वह तो निरपेक्ष है अर्थात् अन्य किसी भी वस्तु की वे अपेक्षा करते ही नहीं।

गीता के 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' के बारे में वे कहते थे—'ईश्वर-ईश्वर करते हो, कौन है ईश्वर? क्या वह आकाश में निवास करता है? उसकी सेवा किस प्रकार करोगे? इस समय मानव-समुदाय के मध्य उसको देखो। उसी को विराट पुरुष कहा जाता है। इसी भाव से तुम पुत्र, पड़ोसी, वंदनीय शूद्र, चांडाल, ब्राह्मण इन सबों के भीतर जो नारायण हैं उसे देखो और इस प्रकार ईश्वर बुद्धि के साथ नाम, यश अथवा स्वार्थसिद्धि किसी भी तरफ ध्यान न देकर उनके दुखों से दुखी होओ तथा उनकी सेवा करो। जो कार्य तुम करते हो उसे भगवान देखते रहते हैं और उसका हिसाब लगा कर उसका फल प्रदान करते हैं? ऐसा नहीं है। सब कुछ का विधान है, नियम है। वे तो नित्य, शुद्ध और मुक्त हैं। नित्य क्या-अनादि अनंत। शुद्ध अर्थात् उसमें कुछ भी मालिन्य नहीं है। इसीलिए वे ज्ञान और चैतन्य स्वरूप हैं। ऐसे भगवान् को प्राप्त कर हम लोग भी उसी अवस्था को प्राप्त करेंगे। जो अनित्य, अशुद्ध, अज्ञान अथवा बंधन है, उसे त्याग देना होगा। प्रतिदिन रात्रि के समय अच्छे-बुरे, पाप-पुण्य सब भगवान को अर्पित करो। ठाकुर एक फूल लेकर माँ के पांव पर रखकर बोले—'माँ, यह न तुम्हारा पाप, यह न पुण्य, यह न तुम्हारी अविद्या, यह न तुम्हारी अच्छा, यह न तुम्हारा बुरा; मुझे शुद्ध भक्ति दो।' उपासना का यही आदर्श है। भगवान की दृष्टि में भला-बुरा नहीं है। एक ही वस्तु अच्छी भी है और बुरी भी।

अभेदानन्द ने कहा—देह की भोगेच्छा त्याग कर ब्रह्मानन्द की ओर मन को ले जाना होगा। इसके लिए देह से आत्मा को पृथक समझने का अभ्यास करना होगा। देह से आत्मा को पृथक करने से ब्राह्यज्ञान लुप्त हो जाता है। मन निश्चल होते ही शरीर जड़वत हो जाता है। हम लोगों में ठाकुर को ऐसा होते देखा है। आंखें खुली रहने पर जब उसमें अँगुलियाँ डाली गईं तो पलकें नहीं गिरीं। १२ वर्षों तक वे सोए नहीं। आँखों की पलकें तक नहीं गिरीं। अत्यल्प साधक इस अवस्था को पहुँच पाते हैं।

प्रणव तत्व की व्याख्या करते हुए अभेदानन्द कहते-तस्य वाचकः प्रणवः। जो कुछ नाम तुम स्मरण करते, जो कुछ पढ़ते, सुनते, विष्णु का सहस्र नाम हो अथवा शिव का लक्ष नाम—सब कुछ उस एक प्रणव से ही हुए हैं। यही है यथार्थ तत्व। माँडूक्योपनिषद् तो ओंकार की ही व्याख्या है। आकार जाग्रतावस्था है, उकार स्वप्नावस्था मकार सुषुप्ति एवं नाद तुरीयावस्था है। तुम जितने भी प्रकार से शब्दों का उच्चारण करोगे, वे सभी यही एक ओंकार हैं। ईसाई लोग प्रार्थना के अंत में जिस 'ओमेन' का उच्चारण करते हैं, वह इसी का अपभ्रंश रूप है। वे आगे कहते हैं—जप के साथ-साथ उसके अर्थ का भी चिंतन करना होगा। इससे मन की मलिनता कालुष्य प्रभृति दूर हो जाएँगे। चित्त शुद्ध हो जाएगा। सांसारिक दृष्टि से जो घोर अशांति के कारण दिखाई देते हैं वे ईश्वरीय दृष्टि से अत्यंत कल्याणकारक हैं। तभी तो कुंती ने कहा था—हे प्रभो, मुझे दुख दो। संसार में इस प्रकार की प्रार्थना दूसरा कौन कर सकता है।

स्वामी अभेदानन्द कहते थे—ब्रह्म, अथवा भगवान तो ज्ञानस्वरूप हैं। तुम भी तो वही हो। ज्ञान स्वतः प्रकाश है। वह अपने प्रकाश के लिए अन्य किसी वस्तु की अपेक्षा नहीं रखता। साधन-भजन की बेला में यदि लाभ-हानि होती है तो वह एकमात्र साधक के निजी गुण और दोष के परिणाम हैं। निष्ठा और आन्तरिकता के साथ चेष्टा करने पर अवश्य ही सिद्धि-लाभ होगा। यदि दूसरों के प्रदर्शनार्थ जप ध्यान करते हो तो स्वयं ठगे जाओगे। तुम साधन-भजन भी करते हो और अपने मन के भीतर कुसंस्कारों को भी जगाए रखते हो तो उसमें कुछ भी होने को नहीं। साधन-भजन के समय एकान्त में रहकर मन को स्थिर करके यदि साधना की जाय तो मन के सभी संस्कार दूर हो जाएँगे। जिस दिन मन के सभी संस्कार दूर हो जाएंगे उसी दिन सिद्धि-लाभ हो जाएगा। मन में संकीर्णता रख कर भगवान को नहीं प्राप्त किया जा सकता। जो वस्तु नहीं है उसे प्राप्त करने के लिए प्रयास या चेष्टा की आवश्यकता है लेकिन जो सर्वदा विद्यमान है उसे पाने के लिए और क्यों चेष्टा की जाय? अज्ञान के नाश के साथ ही ज्ञान का प्रकाश हो जाता है। इन सबकी ठीक-ठीक धारणा करने के लिए कुंजी की आवश्यकता है। यह कुंजी क्या है? यह कुंजी है—एकांतिकता, एकनिष्ठ भक्ति, विश्वास और व्याकुलता। उद्देश्य के प्रति मन की एकमुखता की आवश्यकता है। तुम्हारा मन केवल अपने इष्ट को चाहे, संसार की किसी अन्य वस्तु की कामना न करे। मन का आत्मनिष्ठ होना जरुरी है। ऐसी अवस्था में मन का कोई पृथक अस्तिव नहीं रह जाएगा। मनको इस आत्मनिष्ठ अथवा ब्रह्मावगाही करने के कौशल के ज्ञान को ही कुंजी कहा जाता है। 'गुहाहिंत गह्वरेष्ठं वरेण्यम्'। आत्मा हृदय-गुहा में

अवरुद्ध अथवा छिपी हुई है। इसी गुहा के द्वार को खोलने के लिए इस कुंजी की आवश्यकता है।

मन के बारे में वह कहते हैं—मन एक जड़ यंत्र है। आत्मचैतन्य ही उसके पीछे रह कर उसे नियंत्रित करता है और मन तदानुरूप कार्य करता है। आत्मा ही मन को प्रेरणा प्रदान करती है। मन तो उसका माध्यम या यंत्र है परन्तु आत्मा के कर्तृत्व, भोक्तृत्व आदि गुण या अहंकार नहीं हैं। फिर भी 'तस्य मासा सर्वमिदं विभाति'। उसी के आलोक में संसार की सभी वस्तुएं आलोकित होती हैं। जीव-जन्तु सभी उसी से शांक्ति और प्रेरणा प्राप्त कर कार्य करते हैं। मन आत्मा का द्वारपाल है, एक साधारण लोक है, ऐसी स्थिति में मन के ही कर्ताभाव से और मन के ही वशीभूत हो यदि सृष्टि हो तो अनर्थ हो जायेगा। साधन का अर्थ है मन के अहं और कर्तृत्वाभिमान का विनाश करना, मन को समझा देना कि तुम कर्ता नहीं हो कर्ता तो है शरीरी आत्मा जो इस शरीर में भी है और विश्व में सर्वत्र व्याप्त भी है। जब इस तरह के भाव जागृत होंगे तभी तुम्हारा मन वशीभूत होगा और तुम मन के परे जा सकोंगे। जो मन मुक्ति के मार्ग में बाधक है, वही सहायक भी है। बाधक इसलिए है क्योंकि इस तथ्य को मनुष्य को मालूम नहीं होने देता कि कर्ता रूप आत्मा मन से पृथक है। सहायक इसलिए है क्योंकि मन ही आत्मा से परिचय कराता है। बुद्धिवृत्ति के द्वारा ही चैतन्य ब्रह्म प्रतिविम्बित होता है और उसी के द्वारा वृत्तियों के मध्य जो अज्ञान है उसे नष्टकर ज्ञान स्वतः प्रकाशित होता है। यही ज्ञान शुद्ध ज्ञान अथवा आत्मज्ञान है। अंग्रेजी में इसे सेल्फ नॉलेज अथवा गुड कॉन्सेन्स कहते हैं।

एक प्रश्न के उत्तर में अभेदानन्द कहते हैं— मन प्रसन्न होने का अर्थ है मन का शुद्ध होना जब संकल्प-विकल्प नामक दोनों वृत्तियों चली जाती है, तब मन शुद्ध होता है। मन शुद्ध होने पर दूसरा मन नहीं रहता, तब शुद्ध चैतन्य रूप ही स्पष्ट होता है। इसी को भिन्न प्रकार से कहा गया है कि मन प्रसन्न रहने पर वह आत्म ज्ञान देता है।

वह मानव-प्रेम को सर्वोपरि मानते थे। कहते थे—अपने समान अपने पड़ोसी को प्रेम करो। इस प्रकार का प्रेम अभी तो संन्यासियों के भीतर भी नहीं है। तभी तो वेदान्त की चर्चा की आवश्यकता है। हर कहीं इसका प्रचार करना होगा। विवेकानन्द ने ज्ञानचर्चा की चेष्टा ही तो की थी, जब देश अंधकार में डूब चुका था तभी तो वेदान्त और उपनिषद् की जरुरत थी।

अपार मानव-प्रेम ही अभेदानन्द के चरित्र की विशेषता थी। भक्तप्रवर चित्स्वरूपानन्द के अनुसार उनके जीवन में मनीषा, प्रतिभा, साहस, सुरधार-विचारबुद्धि, निविड़ दार्शनिकता और गंभीर ज्ञान समान रूप से पुष्पित हुआ था। इस सब से ऊपर उनके चरित्र का परम माधुर्य था। वे एक प्रेमी थे। सत्य के द्रष्टा

थे। अतः उनके समीप जो कुछ प्राणवान् है, तत्सम्बंधी प्रेरणा उनसे प्राप्त होती की। स्वदेश का दुख और स्वदेश की व्यथा कभी विस्मृत नहीं हुई उनसे।

जीवन के अंतिम दिनों में स्वामी अभेदानन्द मंद मुस्कानों के साथ अपने अंतरंग भक्तों से कहते—'जानते हो, इस बार ठाकुर मुझे पेंशन देंगे। इस शरीर से बहुत खटा हूँ, अब विश्राम करने की इच्छा होती है।'

शरीरांत होने के डेढ वर्ष पूर्व से ही उन्हें अनेक शारीरिक कष्टों ने घेर लिया था। रोग शैया पर पड़े एक दिन वे हठात् बोल पड़े—'देश के सर्वस्व त्यागी नायक सुभाष को देखने की मेरी बहुत ही प्रबल इच्छा है।' इसकी खबर पाते ही सुभाषचन्द्र स्वामीजी के वेदान्त मठ में उपस्थित हुए। उन्हें देखते ही स्वामीजी बोल उठे—'आओ, आओ सुभाष! एक बार तुम्हारा आलिंगन तो कर लूँ।' किसी प्रकार उठकर अपने दोनों हाथों से स्नेहपूर्वक सुभाष का आलिंगन किया और प्रसन्न होकर बोले—'मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ, तुम विजयी होगे।' सुभाषचन्द्र एक घण्टा तक स्वामी जी के पास बैठे रहे। इस बीच दोनों विभूतियों के बीच देश के भविष्य के बारे में बातें होती रहीं। फिर सुभाषचन्द्र ने विदा ली।

स्वामी जी कभी-कभी अपने अंतरंग भक्तों से कहते-'क्या रे, तुम लोग मेरे शेष कृत्य कहाँ करोगे?' फिर स्वयं निर्देशित करते—'सब कोई अपना भला चाहता है। सभी ठाकुर के चरणों में सोना चाहते हैं। स्वामी जी का संकेत काशीपुर श्मशान की तरफ था।'

अंततः ८ सितम्बर १९३९ को स्वामी अभेदानन्द चिर निद्रा में सो गए।

●

१५

भैरवी योगेश्वरी

उषा की राग-रश्मियाँ गंगा की मृदुल तरंगों पर विकीर्ण हो रही हैं। सारा आकाश उद्भासित हो रहा है। दक्षिणेश्वर मंदिर के शिखर पर मधुर प्रकाश की छटा फैली हुई है। माँ भवतारिणी की प्रातःपूजा शुरू होने में अधिक विलम्ब नहीं है।

मंदिर के तरुण पुजारी गदाधर प्रातःकृत्य से निवृत्त हो कर, हाथ में फूलडाली लिये गंगा-तट पर बगीचे में फूल चुन रहे हैं, मन-ही-मन रामप्रसादी गीत गुनगनाते हुए वे सोच रहे हैं, अपने हाथों से सुन्दर फूलमाला गूँथेंगे और माँ भवतारिणी के गले में पहनाएँगे, उनके चरणों पर पुष्पांजलि चढ़ाएँगे।

भावमग्न गदाधर की नजर अचानक निकटस्थ मौलश्री घाट की ओर गयी। देखा, घाट पर एक नाव लग रही है और उस पर एक गैरिकवसना परम सुन्दरी भैरवी खड़ी है। भैरवी के लम्बे काले केश कलाप खुले फैले हैं, उसके एक हाथ में त्रिशूल है, दूसरे में गेरुआ रंग की झोली।

गदाधर एकटक भैरवी को देखने लगे। यह सुन्दर मुख, सिर पर बिखरे बाल, ये बड़ी-बड़ी उज्ज्वल आँखें—यह सब तो स्पष्टतः जाना-पहचाना लगता है। काली मंदिर में ध्यानावस्था में उन्होंने यह रूप देखा था। माँ भवतारिणी ने उन्हें बतला दिया था कि यह तंत्रसिद्धा महासाधिका भैरवी आ रही है।

फूलडाली हाथ में लिये गदाधर जल्दी-जल्दी अपने कमरे में चले आये और अपने भांजे से कहा, ''हृदू, तुम तुरत मौलश्री घाट पर चले जाओ। देखोगे, वहाँ एक परम सुन्दरी भैरवी घाट की सीढ़ी पर खड़ी हैं। उन्हें तुम मेरे घर बुला लाओ।''

हृदय को बड़ा आश्चर्य हुआ। वह अपने मामा का सहचर है, सेवक है, बराबर साथ रहनेवाला है। वह देखता आया है कि उसके मामा त्याग-तितिक्षा और ब्रह्मचर्य-व्रत लेकर अटूट निष्ठा से भक्ति-साधना में लगे हैं। उन्हें कभी भी स्त्रियों की ओर आकर्षित होते नहीं देखा था। वे आज अचानक क्यों इस संन्यासिनी से मिलने के लिए इतने व्यग्र हो गये हैं, वे स्वयं कह रहे हैं यह संन्यासिनी बड़ी सुन्दर है!

हृदय ने थोड़ा एतराज करते हुए कहा, ''मेरी तो उस संन्यासिनी से कोई जान-पहचान नहीं है। वह क्यों मेरे बुलाने पर यहाँ आएगी ?''

"अरे, देरी क्यों कर रहे हो? तुम वहाँ जाकर यही कहना कि उन्हें मैं बुला रहा हूँ। उनसे मिलना मेरे लिए बहुत आवश्यक है।"

हृदय समझता था कि साधना की उच्च अवस्था में रहने के कारण मामा का माथा कुछ खराब हो गया है; एकबग्गा हो गये हैं, और, कोई संकल्प ठान लेते हैं तो उससे उन्हें डिगाना संभव नहीं होता। ऐसी हालत में उनसे बहस करना बेकार है।

यह सब सोच-विचार कर हृदय मौलश्री घाट पर गया। देखा, वहाँ भैरवी आसन फैला कर बैठी है। उसने कहा, "मेरे मामा इस मंदिर के पुजारी हैं। वे आपसे मिलने के लिए बड़े बेचैन हैं।"

बिना किसी दुविधा-संकोच के भैरवी बोलीं, "तब चलो, तब चलो, बाबा। मैं उनसे भेंट करूँगी।" इतना कह कर वे त्रिशूल और झोली उठा कर चल पड़ीं।

हृदय उन्हें राह दिखाता चल रहा था। वह विस्मय-विमूढ़, भावशून्य मनःस्थिति में था।

ठाकुर के कमरे में प्रवेश कर उन्हें देखते ही भैरवी आनन्दाभिभूत हो गयीं। हर्षातिरेक से उनकी आँखों में आँसू आ गये। भावगद्‌गद कंठ से कहने लगीं, "बाबा, तुम यहाँ बैठे हो! तुम गंगा-तट पर रहते हो, यह जान कर मैं तुम्हें ढूँढ़ने निकली थी।"

"माँ, तुम्हें कैसे मेरी जानकारी मिली?"—ठाकुर ने अत्यन्त उत्सुक हो कर पूछा।

"माँ जगदम्बा ने मुझे आदेश दिया कि मैं तीन साधकों से मिलूँ और उन्हें साधना में सहायता दूँ। उनमें से दो साधकों से तो मैं पूर्व बंगाल में मिल चुकी हूँ और आज गंगा-तट पर तीसरे व्यक्ति, तुमसे भेंट हुई है।"

"जगदम्बा के आदेश से तुम आयी हो तो स्थिर होकर यहाँ बैठो और मेरी बातें सुनो।" तत्पश्चात्, जैसे सरल चित्त बालक अपनी माँ से आनन्दपूर्वक मन की बात कहता है, वैसे ही ठाकुर रामकृष्ण भैरवी को अपने साधन-भजन की बातें तथा दैहिक, मानसिक प्रतिक्रियाएँ और समस्याएँ विस्तारपूर्वक बतलाने लगे।

भैरवी भी धैर्यपूर्वक उनकी बातें सुनने लगीं। कभी तो वे उत्साह से दीप्त हो जातीं और कभी करुणार्द्र होकर अश्रु सजल हो जातीं।

ठाकुर कहते गये कि शुद्ध भक्ति के साधना-पथ पर उन्होंने कैसे कृच्छ-साधन किया है, रागानुगा भक्ति से अनुप्राणित होकर माँ श्यामा के साथ कैसे-कैसे आचार-आचरण किये हैं, कैसे जगज्जननी ने उन्हें दिव्य दर्शन दिया है। उन्होंने यह भी बतलाया कि कुछ वर्ष पूर्व उन्हें कैसे दिव्योन्माद हुआ जिस पर

लोग-बाग कहते थे कि वायुरोग हुआ है। उस अवस्था के कट जाने के बाद उन्हें माँ का दिव्य दर्शन हुआ, अनेक प्रकार की रूप-रस पूर्ण अनुभूतियाँ हुईं। और अभी, इन दिनों वे अद्भुत दिव्य भाव-ज्वार में बहते जा रहे हैं। कोई-कोई कहता है, यह सब पागलपन के लक्षण हैं, और कुछ लोग इन्हें योगसाधना का विकार बतलाते हैं। गंगा प्रसाद नामक एक प्रसिद्ध कविराज हैं। उन्होंने बहुत तरह की दवाएँ खिलायी हैं। लेकिन उन दवाओं से कोई लाभ नहीं हो रहा है।

सारी बातें विस्तारपूर्वक कहने के बाद ठाकुर ने पूछा, ''माँ, तुम बतलाओ, यह सब क्या है। क्या मैं सचमुच पागल हो गया हूँ? माँ जगदम्बा को पुकारते-पुकारते मुझे यह कैसा रोग हो गया!''

ठाकुर की बातें सुनकर भैरवी आह्लाद गद्गद हो गयीं। ठाकुर को आश्वस्त करते हुए बोलीं, ''बाबा, तुम्हें कौन पागल कहता है? तुम्हारे मन-प्राण में महाभाव का उदय हुआ है। यह सब सात्त्विक प्रेम-विकार है। साधारण लोग या साधारण साधक भी इस परम आध्यात्मिक ऐश्वर्य को भला किस प्रकार समझ सकते हैं? मैं तुमसे ठीक-ठीक कहती हूँ कि कृष्ण-प्रेम में राधारानी की यही दशा हुई थी। श्री चैतन्य महाप्रभु में भी ये सब लक्षण प्रकट हुए थे। भक्ति-शास्त्र में इन बातों का विस्तृत विवरण आया है। मेरी झोली में अनेक शास्त्रग्रन्थ हैं। उन्हें पढ़ कर तुम्हें सुनाऊँगी और समझा दूँगी कि जीवन में ईश्वर-प्रेम का ज्वार आने पर कैसे इस तरह की दशा हो जाती है।''

जहाँ ठाकुर और भैरवी की बातें हो रही थीं, वहाँ एक किनारे हृदयराम भी बैठा था और बड़े मनोयोग से दोनों की बातें सुन रहा था। उसे आश्चर्य हो रहा था कि उसके मामा क्या सचमुच साधनापथ पर इतना आगे बढ़ गये हैं।

बातचीत में काफी समय निकल गया था। भैरवी ने जाकर गंगा में स्नान कियां, मंदिर में जाकर देवी का दर्शन कर ठाकुर के कमरे में लौट आयीं। इस बीच ठाकुर ने भैरवी के भोजन के लिए माँ भवतारिणी काली की प्रसादी का फल-मूल, माखन-मिश्री आदि मँगवा लिया था। किन्तु भैरवी तो रामकृष्ण के प्रति मातृभाव से भावित थीं। संतान को खिलाये बिना माँ भला पहले कैसे खा सकती थीं? इसलिए, ठाकुर को ही पहले आहार ग्रहण करना पड़ा और भैरवी ने बाद में भोजन किया।

भैरवी ने अपने गले में गेरुआ रंग की एक छोटी झोली लटका रखी थी। उस झोली में उनके इष्टदेव रघुवीर की नारायण-शिला थी। नारायण को भोग चढ़ाने के लिए उन्हें भोजन तैयार करना था। ठाकुर ने मंदिर के भंडार से चावल, दाल, आटा आदि भोजन की आवश्यक वस्तुएँ मँगवा दीं और भैरवी ने पंचवटी में जाकर भोग तैयार किया।

तदुपरान्त इष्टदेव नारायण-शिला को पूजा-आसन के सम्मुख स्थापित कर उन्होंने भोग चढ़ाया और आसन पर ध्यानस्थ बैठ गयीं। आँखों से प्रेमाश्रु झड़ने लगे और शीघ्र ही उनका बाह्य ज्ञान लुप्त हो गया।

उस समय ठाकुर रामकृष्ण अपने कमरे में बैठे थे। अचानक उन्हें बोध हुआ कि कोई अनिवार्य आकर्षण उन्हें पंचवटी की ओर खींच रहा है। वे अविलम्ब वहाँ जा पहुँचे और दिव्य भाव के प्रबल ज्वार में उनका बाह्य ज्ञान तिरोहित हो गया। उसी अवस्था में किसी आन्तरिक दिव्य शक्ति से प्रेरित होकर वे रघुवीर-शिला को निवेदित भोगपात्र के निकट बैठ गये और उसी भावाविष्ट दशा में पात्र से भोगान्न लेकर खाने लगे।

इतने में भैरवी की आँखें खुलीं। सामने यह कैसा आश्चर्यजनक, अविश्वसनीय दृश्य है! वे चकित, स्तम्भित रह गयीं। ध्यानावस्था में उन्होंने देखा था कि उनके इष्टदेव रघुवीर स्वयं सामने बैठे भोग ग्रहण कर रहे हैं। प्रत्यक्ष दृश्य देखकर उनका शरीर कंटकित हो गया, आँखें अश्रुसिक्त हो गयीं। यह कैसा रहस्य है! जिस भंगिमा में बैठकर रामकृष्ण भोगान्न खा रहे थे, उसी भंगिमा में भैरवी ने ध्यान में अपने इष्टदेव को बैठे भोजन करते देखा था।

बाह्य ज्ञान लौटने पर रामकृष्ण अपने कृत्य को देखकर घोर लज्जित हुए। उनकी ग्लानि की कोई सीमा न रही। बड़े पश्चात्ताप और भय से कहने लगे, "मुझे पता ही नहीं चला कि मैं कैसे बेसंभाल हो गया और यह कांड कर बैठा।"

किन्तु इधर आनन्दातिरेक से भैरवी माँ का मुखमंडल उद्‌भासित हो रहा था। आँखें हर्षोज्ज्वल थीं। माँ जिस तरह अपने बच्चे को आश्वस्त करती है, वैसे ही वे कहने लगीं, "तुमने जो-कुछ किया है, ठीक ही किया है। मैं स्पष्ट रूप से समझ रही हूँ कि यह काम तुम्हारा किया नहीं है, बल्कि उनका किया है जो तुम्हारे भीतर जाग्रत् हो गये हैं। मैं यह भी जान गयी हूँ कि किसने यह भोगान्न ग्रहण किया है और क्यों किया है।"

ठाकुर अस्तव्यस्त भाव से बोले, "तभी तो माँ, मैं बाह्य ज्ञान शून्य होकर ऐसा काम कर बैठा।"

"बाबा, मैं तो कह रही हूँ कि तुमने जो कुछ किया है, सब ठीक-ठीक किया है। मैं समझ गयी हूँ कि मुझे अब पहले की तरह आनुष्ठानिक पूजा और भोग-निवेदन नहीं करना है। मेरी इतने दिनों की पूजा सार्थक हो गयी है।"

भैरवी माँ को दृढ़ विश्वास हो गया कि उनके इष्टदेव रघुवीरजी दक्षिणेश्वर मंदिर के इस काली पुजारी में जाग्रत् हो गये हैं। वे इतना भावविह्वल अवस्था में थीं कि ठाकुर का छोड़ा हुआ जूठा अन्न उन्होंने श्रद्धापूर्वक खा लिया। दिव्य आनन्द में विभोर होकर उन्होंने चिरकाल से आराधित और सेवित इष्टदेव के पवित्र शिलाखंड को गंगा में विसर्जित कर दिया।

इस घटना के बाद भैरवी ठाकुर को संतानरूपी इष्टदेव के भाव से समझने लगीं। उन्होंने ठाकुर के आध्यात्मिक जीवन को पूर्णांग बना कर उन्हें स्वस्थान में सुप्रतिष्ठित करने का संकल्प मन में ठान लिया।

ईश्वर-प्रेरित भैरवी ने ध्यानावस्था में अपने मानस-पट पर काली मंदिर के २४ वर्षीय पुजारी, गदाधर (ठाकुर रामकृष्ण परमहंस का प्रारंभिक नाम) के भावी स्वरूप को स्पष्टत: देखा था। इसलिए वे ममतामयी माँ की तरह गदाधर की रक्षा करने लगीं। उनकी समस्त आध्यात्मिक अनुभूतियों और शास्त्र-ज्ञान का प्रकाश गदाधर के जीवनपथ पर पड़ने लगा।

सर्वप्रथम भैरवी ने ही अपने आध्यात्मिक पुत्र गदाधर के भावी जीवन की संभावनाओं की घोषणा की और तब से ही महासाधक श्री रामकृष्ण का युगाचार्य, लोकगुरु के रूप में लोगों को परिचय मिलने लगा।

देवी जगदम्बा के आदेश पर अचानक ही दक्षिणेश्वर मंदिर के प्रांगण में भैरवी का आगमन हुआ था और उन्होंने अपूर्व निष्ठा, असीम स्नेह और मातृ-वात्सल्य से रामकृष्ण का संरक्षण किया, उन्हें अभयमंत्र और संजीवनी-शक्ति दी। वे छः वर्षों तक रामकृष्ण की रक्षिका और मार्गदर्शिका के रूप में उनके साथ रहीं और, देवी के आदेश पर ही, रहस्यमय ढंग से, एक दिन चली भी गयीं। कहाँ गयीं, क्या मालूम!

मानव सभ्यता के इतिहास में जब तक ठाकुर श्री रामकृष्ण का नाम चमकता रहेगा तब तक उनकी अध्यात्म-जननी, महासाधिका भैरवी भी अविस्मरणीय रहेंगी।

भैरवी योगेश्वरी उत्तर बंगाल के यशोहर इलाके के एक संभ्रांत तंत्रसिद्ध ब्राह्मण कुछ की कन्या थीं। उनका जन्म अनुमानतः सन् १८२२ ई० में हुआ था। उनके पूर्वजन्म के शुभ संस्कार बचपन में जग गये थे और युवावस्था आते-आते, त्याग-वैराग्य और मुमुक्षा की भावनाएँ इतनी तीव्र हो गयीं कि वे एक दिन घर-संसार का निरापद आश्रय छोड़कर सद्गुरु की खोज में निकल पड़ीं। अनेक तीर्थों और सिद्ध पीठों का परिभ्रमण किया।

उन दिनों तीर्थयात्रा में बड़ी कठिनाई थी। रास्ते दुर्गम और विपत्संकुल थे। एक लावण्यमयी युवती साधिका के लिए तो अकेले राह चलना और भी कठिन था। किन्तु भगवत्कृपा और अपने साहसबल से वे सभी संकटों को पार करती गयीं। अन्ततः वे काशी धाम पहुँचीं और एक सिद्ध कौल साधक से तंत्र दीक्षा ली। गुरु के निदेश में कठिन साधना द्वारा तंत्र के विभिन्न स्तरों को पार करते हुए वे पूर्णाभिसिक्त भैरवी बनीं।

तंत्र-सिद्धि के साथ-साथ तंत्रशास्त्र का सम्यक् ज्ञान भी उन्होंने अर्जित किया। किन्तु इन सब उपलब्धियों से उनका मन भरा नहीं। इसलिए, वे रागात्मिका वैष्णवी साधना के पथ पर चलने लगीं। इस मधुर रस की भावसाधना में भी उन्होंने अनन्य मनोयोग और निष्ठा द्वारा पूर्णता प्राप्त कर ली। तत्पश्चात्, गुरु के आदेश पर, अपने इष्टदेव रघुवीर-शिला को कंठ-प्रदेश में धारण कर वे पुनः तीर्थ-परिक्रमण के लिए निकल पड़ीं।

विभिन्न प्रकार की साधना-सिद्धियों और उच्चतर अनुभूतियों के माध्यम से भैरवी योगेश्वरी संस्कार-बंधन से मुक्त होकर चैतन्यमय सिद्धि के स्तर पर प्रतिष्ठित हो चुकी थीं। संभवतः इसी कारण वे ठाकुर रामकृष्ण की तंत्र साधना की ईश निर्धारित गुरु थीं और जगदम्बा के आदेश से ही दक्षिणेश्वर के देवी-मंदिर में अकस्मात् आविर्भूत हुई थीं।

योगेश्वरी देवी के पिता-माता का परिचय अज्ञात है। यह भी ज्ञात नहीं कि उनका विवाह हुआ था या नहीं, वे सधवा थीं या विधवा। किसी भी सूत्र से पता नहीं चलता है कि वे किस स्थिति में मुक्ति-संधान-पथ पर निकल पड़ी थीं। उनके गुरु कौन महापुरुष थे, उनकी साधना-पद्धति क्या थी और वे किस तरह साधना के विभिन्न स्तरों का अतिक्रमण करती गयीं—ये सारी बातें विस्मृति के अन्धकार में विलीन हैं। वे दक्षिणेश्वर अंचल में वर्षों रहीं और पुत्र-प्रतिम परमप्रिय शिष्य गदाधर का, असीम मातृस्नेह से, आध्यात्मिक संवर्द्धन किया। किन्तु इतने ममत्वपूर्ण घनिष्ठ संबंध के रहते हुए भी उन्होंने कभी गदाधर से अपने पूर्व जीवन की कोई चर्चा की हो—इसका भी कहीं कोई उल्लेख नहीं है। ठाकुर रामकृष्ण ने भी इन बातों को लेकर कभी कोई जिज्ञासा नहीं की, कुतूहल नहीं दिखलाया।

दक्षिणेश्वर मंदिर का पुरोहित नियुक्त होने के लिए ठाकुर रामकृष्ण को शक्ति-दीक्षा लेनी पड़ी थी क्योंकि पुरोहित-कर्म करने के लिए देह-शुद्धि आवश्यक थी और श्यामा पूजा की शास्त्रोक्त विधि भी उन्हें सीख लेनी थी। उस प्रारंभिक दीक्षा का केवल इतना ही प्रयोजन और महत्त्व था। वह दीक्षा दी थी केनाराम भट्टाचार्य नामक तंत्र साधक ने।

केनाराम द्वारा दी गयी दीक्षा लोकाचार-मात्र थी। तरुण पुरोहित रामकृष्ण तो जन्म-जन्मान्तर के सात्त्विक संस्कार लेकर उत्पन्न हुए थे, जिनके बल पर वे स्वयमेव माँ जगदम्बा की साधना में लीन हो गये और अपने असामान्य त्याग-वैराग्य और श्रद्धा-भक्ति के सहारे तीव्र गति से आगे बढ़ते गये। इष्टदेवी का दिव्य दर्शन प्राप्त करके वे कृतार्थ भी हुए।

किन्तु मुमुक्षा की कामना से व्याकुल रामकृष्ण को उससे शांति नहीं मिली। वे तो निर्विकल्प समाधि के लिए, पराशक्ति महामाया की पूर्ण उपलब्धि

के लिए, परब्रह्म की आनन्दानुभूति के लिए, अधीर थे, व्याकुल थे, पागल हो रहे थे। उस अशान्ति के प्रशमन के लिए आत्मानुग्रह—स्वकीय त्याग-वैराग्य और ध्यान-मनन—यथेष्ट नहीं था। आवश्यकता थी विधिवत् साधना द्वारा साधन-पथ के विभिन्न स्तरों को पार करने की।

वे महाशक्ति को 'माँ' कहकर पुकारते थे। अत: वे शक्ति-साधना अथवा तंत्र-साधना की प्रक्रियाओं और स्तर-क्रम को जानना चाहते थे और उनका अनुष्ठान करने के लिए बेचैन थे। देवी भवतारिणी अपने प्रिय पुत्र की व्याकुलता को समझ रही थीं। इसीलिए, उस दिन दक्षिणेश्वर में भैरवी योगेश्वरी का शुभागमन संभव हुआ था। और, भैरवी, ने शीघ्र ही महासाधक रामकृष्ण की भावी भूमिका को देख लिया।[१]

वे रामकृष्ण की ईश्वर-प्रेरित मातृस्वरूपिणी तंत्र-गुरु थीं। जिस दिन रामकृष्ण से उनकी भेंट हुई उसी दिन, सबेरे ही, रामकृष्ण ने ध्यानावस्था में उनका रूप देख लिया था। इसका उल्लेख ठाकुर के आदिभक्त अक्षयकुमार सेन ने 'रामकृष्ण पुथी' नामक बँगला पुस्तक में किया है। उन्होंने स्वयं रामकृष्ण से भैरवी का वर्णन सुना था। वे लिखते हैं :—

''प्रभुदेव पुलकित शरीर और गद्गद कंठ से उन्हें 'माँ' कह कर संबोधित करते थे। वे कहते थे, ये सामान्य स्त्री नहीं हैं। ये गुणों की भंडार हैं। बाहर से जैसी रूपवती हैं, वैसी ही भीतर से भी हैं। श्रीहरिचरणों की आश्रिता इन संन्यासिनी ने बहुत साधन-भजन किया है। इन्हें देवभाषा संस्कृत का विशेष ज्ञान है, और ये शास्त्रों के सुगूढ़ वाक्यों की सरल-सुबोध व्याख्या कर देती हैं।''

''उनकी सम्यक् चर्चा करना संभव नहीं। प्रभु तो कहते थे कि वे मूर्तिमान चारो वेद हैं। तंत्र-शास्त्र, गीता, पुराण, भक्तिशास्त्र उन्हें अक्षरश: कंठस्थ हैं। वे उन्हें ब्राह्मणी कहते थे, इसलिए सब लोग उन्हें इसी नाम से जानते हैं।''[२]

दक्षिणेश्वर मंदिर की एक कोठरी में भैरवी रहने लगीं। देवी-दर्शन और पूजा-ध्यान के बाद वे रामकृष्ण के साथ पंचवटी में चली जातीं। वहाँ दोनों देर-देर तक साधना और शास्त्रादि की चर्चा करते रहते। रामकृष्ण उन्हें विस्तारपूर्वक अपनी प्रत्येक आत्मिक अनुभूति का वर्णन सुनाते और अपनी अनेक समस्याओं और संदेहों को उनके सामने निस्संकोच भाव से रखते।

---

[१] अनेक लोगों का मत है कि भैरवी योगेश्वरी ने ही अपने अध्यात्म-पुत्र गदाधर भट्टाचार्य का नामकरण किया था—रामकृष्ण।

[२] रामकृष्ण नाम लेकर उनकी चर्चा नहीं करते थे। जब कभी वे उनका उल्लेख करते, ब्राह्मणी ही कहते।

भैरवी भी उत्साहपूर्वक अपनी झोली से गीता, भागवत, चैतन्य भागवत और चैतन्यचरितामृत आदि शास्त्र-ग्रंथ निकालतीं और ठाकुर को समझातीं—''यह देखो, बाबा! तुम्हारे शरीर और मन में जो कुछ हो रहा है, वह सब राधारानी और श्री चैतन्यदेव को भी हुआ। यह सब 'महाभाव' है। इसे साधन-भजनहीन साधारण लोग भला कैसे समझ सकते हैं? यही कारण है कि कुछ लोग कहते हैं, कठिन साधना के कारण तुम्हारे माथे में वायु का प्रकोप हो गया है, कोई कहता है, यह सब निरा पागलपन है और कुछ लोग ऐसा भी सोचते हैं कि माँ काली की कृपा तुम्हारे ऊपर ढलक पड़ी है जिसके कारण तुम बेसंभाल हो रहे हो।''

''माँ, तुम तो बिलकुल नयी बात कह रही हो, नया तत्त्व बतला रही हो!'', चकित-विस्मित बच्चे की तरह रामकृष्ण ने उत्तर दिया।

''हाँ बाबा, मैं ठीक कह रही हूँ। यह शास्त्रोक्त बात है। मैं पंडितों के सामने शास्त्रग्रंथ खोल कर तुम्हारी अवस्था का प्रमाण दूँगी।''

इस तरह अध्यात्म-प्रसंग को लेकर दोनों के कितने ही दिन परमानन्द में कट गये। एक दिन अचानक रामकृष्ण को होश आया। भैरवी उन्हें विशुद्ध संतान-भाव से देखती हैं, और वे स्वयं भैरवी को माँ मानते हैं; वात्सल्य-रस से प्रेरित होकर मातृस्वरूपिणी भैरवी उन्हें साधन-पथ पर चलने में सहायता दे रही हैं। किन्तु, भैरवी परम सुन्दरी हैं, अवस्था लगभग चालीस वर्ष की है, फिर भी, अंग-प्रत्यंग से यौवन का लावण्य फूटा पड़ता है। इसलिए, साधारण लोग दोनों का इतना घनिष्ठ भाव से मिलना-जुलना, विशेष कर भैरवी का रात में दक्षिणेश्वर मंदिर में रहना, भली नजर से नहीं देखेंगे। मंदिर में कितने प्रकार के दर्शनार्थी रोज आते रहते हैं। मंदिर में पुजारियों, सेवकों, रसोइदारों और दरवानों की संख्या भी तो कुछ कम नहीं। वे लोग भैरवी और ठाकुर के इस निष्कलुष सम्पर्क को नीच दृष्टि से ही देखेंगे।

रामकृष्ण ने भैरवी को बुला कर अपने मन की ये बातें कहीं। भैरवी ने कहा, ''तुम ठीक कह रहे हो, बाबा! निन्दकों को निन्दा करने का अवसर नहीं देना चाहिए। जीवन के व्यावहारिक पक्ष पर भी नजर रखना जरूरी है।''

रामकृष्ण को दक्षिणेश्वर के आसपास की सभी जगहों की पूरी जानकारी थी। उन्होंने कहा—''माँ, तुम मंडल परिवार के घाट पर जाकर रहो। वह जगह बिलकुल एकान्त है; पास में ही एक छोटा श्मशान भी है। पासपड़ोस में अच्छे भक्त लोग हैं। वे सब यत्नपूर्वक तुम्हारी देखभाल करेंगे।''

सचमुच ही वह स्थान भैरवी के लिए बड़ा उपयुक्त था। वे रामकृष्ण के अध्यात्म-जीवन में सहायता के लिए ईश्वरीय प्रेरणा से आयी थीं। इस कार्य में उन्हें अपने नये वासस्थान में बड़ी सहूलियत थी। वह स्थान दक्षिणेश्वर मंदिर के सटे उत्तर में था जहाँ से वे जितनी बार चाहतीं, दक्षिणेश्वर मंदिर के चबूतरे पर आकर रामकृष्ण को देखतीं, उनको साथ लेकर पंचवटी में जा सकती थीं।

मंडल-घाट पर जाकर भैरवी ने अपना आसन स्थापित किया। घाट के मालिकों ने इन दिव्यदर्शना संन्यासिनी का हार्दिक स्वागत किया। निकट ही एक स्थानीय जमींदार, नवीन नियोगी रहते थे। उनकी भक्तिमती स्त्री ने भैरवी माँ के रहने और खाने-पीने का अच्छा प्रबन्ध कर डाला। घाट के एक किनारे एक छोटा-सा कमरा था, जिसमें भैरवी माँ के लिए एक तख्तपोश (चौकी) डाल कर उनका बिछावन तैयार कर दिया गया। भक्त स्त्रियों ने चावल, दाल, आटा, घी-मैदा आदि खाद्य पदार्थ प्रचुर परिमाण में जुटा दिये।

थोड़े दिनों में ही स्थानीय महिला समाज में सिद्धा साधिका भैरवी माँ की प्रसिद्धि फैल गयी और सबकी सब महिलाएँ उनके दर्शनार्थ आने लगीं। भैरवी के मुख से रामकृष्ण की महिमा सुनकर वे सब विस्मित थीं। लोक-परम्परा के अनुसार, उन्होंने सुन रखा था कि काली मंदिर के युवक पुरोहित, छोटे भट्टाचार्य का 'भाव-टाव' कुछ होता है और उस पर काली माँ का 'भार' आता है। किन्तु अब तो, सारे भारत के तीर्थों की परिक्रमा करके आई हुई तेजस्विनी भैरवी अपने मुख से सब सुना रही थीं उस ब्राह्मण पुजारी के अपार माहात्म्य की बात। वह पुजारी केवल सिद्ध पुरुष ही नहीं है बल्कि अवतारी पुरुष है, जिसके दर्शनमात्र से पुण्य होगा।

ग्रामवासिनी महिलाएँ भैरवी की बातों से इतनी प्रभावित हुईं कि गंगा-स्नान करके दल बाँध कर वे भैरवी के साथ रामकृष्ण के दर्शनार्थ आने लगीं।

श्री रामकृष्ण के अभ्युदय की कथा में भैरवी योगेश्वरी द्वारा उनका यह माहात्म्य-प्रचार विशेष महत्त्व रखता है। बल्कि, उन्होंने महिला भक्तों को जो रामकृष्ण के प्रति आकृष्ट किया, यह भी रामकृष्ण के भक्तों को संघबद्ध करने का प्रारंभिक प्रयास माना जायगा।

भैरवी के द्वारा रामकृष्ण के महिमा-विस्तार का प्रभाव दक्षिणेश्वर मंदिर के परिचालकों और दर्शनार्थियों पर भी पड़ा। वे ठाकुर के प्रति विशेष सतर्क और श्रद्धावान हो गये। इससे ठाकुर का भी आत्मविश्वास जागरित हो गया।

रानी रासमणि के दामाद मथुरनाथ विश्वास रासमणि की जमींदारी के मैनेजर भी थे और दक्षिणेश्वर कालीमंदिर की व्यवस्था भी सँभालते थे। ठाकुर रामकृष्ण के साधन-जीवन पर सबसे पहले उनकी ही नजर पड़ी और वे उनके श्रेष्ठ भक्त बन गये। मथुर सचमुच बड़े भाग्यवान थे। जिस समय मंदिर के कर्मचारी और दर्शनार्थी रामकृष्ण को पगला पुजारी समझते और उनकी आर्त्तिमती मातृसाधना का, वायुरोग समझ कर, उपहास करते थे, मथुरानाथ उनके माहात्म्य को तभी पहचानने लगे थे।

वस्तुतः उन्होंने ठाकुर के त्याग-वैराग्य की सब तरह से परीक्षा कर ली थी। वर्षों उन्होंने ठाकुर की शुद्धाभक्ति के प्रबल ज्वार को देखा था, उनकी दिव्योन्माद की दशा देखी थी। वे समझ गये थे कि ठाकुर माँ जगदम्बा के शुद्धसत्त्व, भक्तिसिद्ध साधक हैं। इतना ही नहीं, कई बार कठिन सांसारिक समस्याओं के मौके पर, ठाकुर की कृपा से, उनकी रक्षा भी हुई थी। इसलिए, वे ठाकुर के प्रति आंतरिक स्नेह और श्रद्धा-भाव रखते थे। वे जब भी दक्षिणेश्वर आते, कुछ समय बड़े आनन्द से ठाकुर के साथ बिताते। नितान्त निष्कपट भाव से दोनों एक-दूसरे को अपने-अपने मन की बताते। आपस में नाना प्रकार की ईश्वरीय चर्चा भी चलाते। कभी-कभी मथुर बाबू ठाकुर को रानी रासमणि के जानबाजार स्थित महल में भी ले जाते और वहाँ बड़ी हार्दिकता से उनका स्वागत-सत्कार करते थे।

एक दिन मथुर बाबू काली मंदिर आये और ठाकुर के साथ पंचवटी में जा बैठे। वहाँ दोनों में ईश्वरीय प्रसंगों पर देर तक बातचीत होती रही, हास-परिहास चलता रहा। मथुर बाबू के मन का चिन्ता-भार बहुत कुछ हलका हो गया।

उस बातचीत के दौरान मथुर बाबू को भैरवी के आगमन की खबर मिली। उन दिनों दक्षिणेश्वर मंदिर में देश के विभिन्न अंचलों से साधु-सन्त आते थे। मंदिर के खजांची से 'सीधा' लेकर वे देवी-देवता को भोग-राग लगाकर अपनी राह चले जाते थे। इन आगन्तुक साधुओं से भैरवी सर्वथा भिन्न प्रकार की थीं। इनमें प्रचुर शास्त्र-ज्ञान के साथ-साथ अत्युच्च कोटि की साधना का अपूर्व संयोग था।

मथुर बाबू को यह भी खबर मिली कि भैरवी को वहाँ आये कई दिन हो गये हैं और इसी अवधि में उन्होंने उस इलाके के जनमानस को प्रभावित कर दिया है। वे दैवादेश से प्रेरित होकर साधक रामकृष्ण को गंगा-किनारे-किनारे खोजते हुए दक्षिणेश्वर आई हैं।

सरलचित बालक की तरह रामकृष्ण ने मथुर बाबू से कहा, ''इतना ही नहीं, मँझले बाबू! वे तो मेरे संबंध में बड़ी अद्‌भुत बातें कह रही हैं, जिन पर सहज ही कोई आदमी विश्वास नहीं करेगा।''

मथुर बाबू ने आग्रहपूर्वक पूछा, ''मुझे बताओ न बाबा, भैरवी क्या सब कहती हैं।''

अपने शरीर की ओर उँगली से इशारा करते हुए ठाकुर बोले, ''कहती हैं कि इसमें ईश्वर का अवतरण हुआ है। मुझे वायु रोग-टोग नहीं है। मुझमें महाभाव का उदय हुआ है, जैसा कि राधारानी और महाप्रभु चैतन्य में हुआ था। वे तो यह भी कहती हैं कि इस देह में नित्यानन्द के साथ चैतन्य देव का आविर्भाव हुआ है।''

प्रस्तुत स्थिति में यह कहना कठिन था कि भैरवी ये बातें रामकृष्ण के प्रति अपने अतिशय मातृस्नेह के वशीभूत होकर कहती थीं या उनकी बातों के पीछे कोई शास्त्रीय प्रमाण भी था। परन्तु इसमें संदेह नहीं कि उनकी बातों से तरुण साधक रामकृष्ण का मन अनेक प्रश्नों को लेकर व्यग्र हो उठा था।

ठाकुर रामकृष्ण के संबंध में भैरवी की इन सब धारणाओं के मूल में मुख्यतः तीन कारण थे। प्रथमतः, वे दैवी प्रेरणा से गंगातटवर्त्ती इस दक्षिणेश्वर मंदिर में एक ऐसे साधक की शिक्षागुरु होकर आयी थीं जो परम शुद्धसत्त्व था, सर्वथा अपापविद्ध था, और जिसमें एक ईश्वर-प्रेरित विराट् पुरुष के भावी अभ्युदय की संभावना थी।

द्वितीयतः, भैरवी ने रामकृष्ण के शरीर में शास्त्रवर्णित महाभाव के सभी लक्षण देखे थे।

तृतीयतः, भैरवी ठाकुर के मुख से ही सिउड़ गाँव में अलौकिक दर्शन की कहानी सुन कर उत्साहित थीं। डेढ़ वर्ष पहले ठाकुर अपने गाँव, कामारपुकुर गए थे। वहाँ के निकट ही सिउड़ गाँव था जहाँ वे एक दिन पालकी पर चढ़ कर घूमने जा रहे थे। सिर के ऊपर निस्सीम आकाश का विस्तार फैला था। नीचे जहाँ तक नजर जाती, शस्य-श्यामल खेतों का फैलाव था। सड़क के किनारे बट-पाकड़ की छाया देखकर पालकी के कहार पालकी उतार कर तम्बाकू खाने और सुस्ताने के लिए बैठ गये। प्रकृति के इस रम्य परिवेश को देखकर ठाकुर का मन स्वभावतः परमानन्दमुखीन हो गया।

हठात् उन्होंने देखा कि उनकी देह से दो अतिशय रूपवान बालक निकले हैं, जिनके मुखमण्डल दिव्य आनन्द से उद्भासित हो रहे हैं। दोनों लड़के कभी तो ठाकुर की पालकी के निकट खेलते हैं, आनन्दातिरेक में हँसते हैं और कभी दौड़-दौड़ कर खेतों से बनफूल तोड़ लाते हैं। यह सब कुछ देर तक चला और दोनों लड़के अन्ततः ठाकुर की देह में प्रवेश कर अन्तर्हित हो गए।

कुछ ही दिनों में घनिष्ठता हो जाने पर ठाकुर अपने साधन-भजन और अलौकिक अनुभूतियों की बातें भैरवी को बताने लगे थे। उसी क्रम में उन्होंने सिउड़ गाँव के उस अतीन्द्रिय-दर्शन की कहानी भी कह डाली जिसे सुन कर भैरवी ने भावावेग में आकर कहा, ''बाबा, तुमने ठीक ही देखा था। नित्यानन्द की देह में चैतन्यदेव का आविर्भाव हुआ है और वे दोनों एक साथ ही तुम्हारे शरीर में अधिष्ठित हैं।''

''यह सब मैं क्या जानूँ?''—कह कर ठाकुर उस दिन मौन हो गये।

जैसी कि ठाकुर की आदत थी, उन्होंने खुले मन से सारी बातें मथुर बाबू से कही दीं और पूछा, ''मुझे तो यह सब कुछ भी समझ में नहीं आता; तुम कुछ समझ रहे हो, बाबूजी?''

मथुर बाबू को ठाकुर के प्रति यथेष्ट श्रद्धा-विश्वास था किन्तु वे दृढ़ व्यक्तित्व-संपन्न व्यक्ति थे; अंग्रेजी शिक्षा पायी थी। और विविध विषयों एवं विज्ञान का भी उन्हें ज्ञान था। सुचतुर संसारी आदमी होने के कारण लोगों को समझने में वे बड़े प्रवीण थे। अनेक दिनों के घनिष्ठ सम्पर्क से उन्हें ज्ञात हो चुका था कि ठाकुर रामकृष्ण पर माँ जगदम्बा की अपार कृपा है। इसलिए वे आपद्-विपद् में ठाकुर को अपना संरक्षक मानते थे। परन्तु ठाकुर को अवतार मानने के लिए उनका मन किसी तरह राजी नहीं था। इसलिए, उन्होंने हँसते-हँसते कहा, ''बाबा, हमलोगों के शास्त्र में दस अवतारों की ही चर्चा है। इससे अधिक क्या कहा जा सकता है?''

दोनों पंचवटी में बैठे बातें कर रहे थे। उसी समय थोड़ी दूर पर भैरवी दिखायी पड़ीं। वे बहुत स्नेहपूर्वक रामकृष्ण की ओर बढ़ी आ रही थीं। उनके साथ कई भक्त महिलाएँ भी थीं।

रामकृष्ण ने उल्लसित होकर मथुर बाबू से कहा—''यह देखो! यह भैरवी हैं, जिनकी मैं इतनी देर से चर्चा कर रहा था।''

भैरवी के हाथ में एक थाली थी जिसमें खीर, मिठाई, मक्खन-मिसरी आदि प्रचुर भोजन-सामग्री सजी थी। वे नन्दरानी, माँ यशोदा के भावावेश में थीं। वात्सल्य-रस से उनका देह-मन-प्राण भरा था। वे संगिनियों के साथ अपने गोपाल को खिलाने आयी थीं। भावातिरेक से उनका शरीर काँप रहा था, मुखमंडल आरक्त हो रहा था।

मथुर बाबू इस प्रियदर्शना संन्यासिनी को एकटक देखने लगे—आयु चालीस के आसपास है, फिर भी, अंगों में यौवन तरंगायित है; सारा शरीर साँचे में ढला-जैसा है; कच्चे सोने-जैसा रंग है; आँखें बड़ी-बड़ी और भावपूर्ण हैं; सिर पर आलुलाथित दीर्घ केशराशि दोनों ओर फैली है। बड़ा ही विस्मयकारी, आकर्षक व्यक्तित्व है।

ठाकुर के निकट बैठे मथुर बाबू को देखकर भैरवी अपने भाव-ज्वार को संभाल कर संयत हो गयीं और भोजन की थाली ठाकुर के हाथ में रख दी।

ठाकुर ने बड़े आदर से भोजन किया और बालकोचित सहजता से भैरवी माँ से कहा, ''तुमने मेरे संबंध में जो कुछ कहा है वह सब मैंने इन्हें बतला दिया है। लेकिन ये तो कह रहे हैं, दस ही अवतार हैं, अधिक नहीं। तब?''

मथुर बाबू ने हाथ जोड़ कर संन्यासिनी को प्रणाम किया। हँसते हुए बोले, ''हाँ, बाबा को मैंने ऐसा ही कहा है।''

भैरवी मथुर बाबू को आशीर्वाद देकर अपनी बात का शास्त्रीय प्रमाण देने को उद्यत हुईं, ''क्यों बाबा, मैंने तो कोई अशास्त्रीय बात नहीं कही है। श्रीमद्भागवत

भक्ति-मार्ग का सर्वाधिक प्रामाणिक ग्रंथ है। उसमें स्वयं व्यासदेव ने प्रथम चौबीस प्रधान अवतारों की बात लिखी है और बतलाया है कि और भी अवतार होंगे। इसके अलावा, वैष्णव पंडितों ने भी अपनी पुस्तकों में लिखा है कि जीव-कल्याण के लिए महाप्रभु अब अवतीर्ण होंगे।''

मथुर बादू शांत भाव से भैरवी की बातें सुनते रहे। तर्क-वितर्क के वितंडावाद में पड़ना उन्होंने उचित नहीं समझा। थोड़ी देर तक चुप रहने के बाद वे ठाकुर के साथ दूसरी-दूसरी बातें करके चले गये।

कई दिनों बाद मथुर बाबू माँ भवतारिणी का दर्शन करने दक्षिणेश्वर आये। देखा, भैरवी ध्यान-पूजन करके देवी-मंदिर से निकल रही हैं। वे एक बड़ी जमींदारी और व्यवसाय के कर्त्ताधर्त्ता थे। बुद्धिमान तो थे ही, हास-परिहास और व्यंग्य-विनोद में भी निपुण थे। उन्हें मालूम नहीं था कि भैरवी किस स्तर की साधिका हैं और साधना-सिद्धि के किस स्तर पर अधिष्ठित हैं। उन्होंने अनेक सात्त्विक प्रकृति के बुद्धिमान लोगों को पथभ्रष्ट होते देखा था। वैसे भ्रष्ट संन्यासियों और संन्यासिनियों की उन्हें खूब अच्छी जानकारी थी। वे तांत्रिकों के भोगवाद और कामविलास की अनेक रसीली कहानियाँ जानते थे। इसलिए वे भैरवी के संबंध में सतर्क थे। उनके प्रति अभी उनके मन में श्रद्धाभाव का उदय नहीं हुआ था।

उन्होंने ठाकुर के मुँह से भैरवी की प्रशंसा अवश्य सुनी थी, किन्तु उनका खयाल था कि ठाकुर सरल स्वभाव के आदमी हैं, भैरवी पर संदेह करना या उनकी जाँच करना उनके लिए संभव नहीं है। किन्तु हम संसारी लोग केवल गेरुआ वस्त्र देख कर ही किसी पर कैसे विश्वास कर लें!

इन सब प्रश्नों को लेकर मथुर बाबू भैरवी के संबंध में ऊहापोह में पड़े थे। सोचते थे—यौवन-चंचल देह-मन लेकर अनेक तीर्थों की अकेले पदयात्रा की है; कितने ही कामुक गृहस्थ और संन्यासी इनके पीछे पड़े होंगे। वैसी स्थिति में, ये कितनी दूर तक अपनी रक्षा कर सकी होंगी?

तो, उस दिन देवी-मंदिर से निकल कर भैरवी जा रही थीं और मथुर बाबू पास ही प्रांगण में खड़े थे। उन्होंने हास-परिहास के स्वर में पूछा, 'भैरवी, तुम्हारा भैरव कहाँ है?'

इस प्रश्न पर भैरवी न तो क्रुद्ध हुईं और न घबरायीं ही। स्थिर नेत्रों से मथुर बाबू को देखते हुए उन्होंने देवी-मूर्त्ति के पदतल में शायित शिव की मूर्त्ति की ओर उँगली का इशारा करते हुए कहा, 'वही तो मेरे भैरव हैं!'

रसिक मथुर बाबू चुप रहने वाले नहीं थे। कहा, 'वह तो अचल प्रस्तर-मूर्त्ति है। मैं तो सचल, जीवन्त भैरव की बात पूछ रहा था।'

धीर गंभीर स्वर में योगेश्वरी भैरवी ने उत्तर दिया, 'अगर अचल शिव को सचल करने का सामर्थ्य नहीं रखती तो मैं भैरवी बनती ही क्यों?'

यह आत्मविश्वासपूर्ण वाणी सुनकर मथुर बड़े लज्जित हुए। उनसे आगे कुछ कहते नहीं बना।

मथुर बाबू और रानी रासमणि तथा दक्षिणेश्वर मंदिर से संलग्न लोगों को शीघ्र ही ज्ञात हो गया कि भैरवी योग-विभूति-सम्पन्न उच्चस्तर संन्यासिनी हैं; वे तंत्रोक्त शक्ति-साधना में जिस तरह पारंगत हैं, उसी तरह रागात्मिका भक्ति-साधना में अत्युच्च स्तर पर अवस्थित हैं।

योगश्वरी भैरवी के आगमन-काल में तरुण साधक रामकृष्ण का जीवनप्रवाह भरपूर भक्ति-प्रेम के रस से तरंगित हो रहा था और शरीर में तीव्र जलन होती थी। इस जलन को शांत करने के लिए वे बार-बार गंगा में डुबकी लगाते थे, घंटों सिर में भींगा गमछा लपेटे रहते थे, कभी कमरे के अन्दर तख्तपोश को भिंजाकर उस पर लोट-पोट करते। किन्तु उनका शरीर-दाह किसी तरह भी शांत नहीं होता था; अन्तर्ज्वाला से देह-प्राण भट्ठी-सा जल रहा था। तीव्र पीड़ा से वे दिनरात छटपट करते रहते थे।

बड़े करुण स्वर से ठाकुर ने भैरवी से कहा—''शरीर की यह जलन अब असह्य हो रही है। कई वर्ष पहले भी एक बार ऐसा ही हुआ था और अनेक प्रकार के उपचार करने पर जलन शांत हुई थी। किन्तु इस बार तो प्राण ही जा रहा है। मथुर, हृदू और कविराज, सब लोग कोशिश करते-करते हार गये हैं; कोई लाभ नहीं हो रहा है। पता नहीं, माँ जगदम्बा इस शरीर का क्या करना चाहती है!''

स्नेहसिक्त स्वर से भैरवी ने आश्वासन देते हुए कहा, ''कोई चिन्ता न करो, बाबा, तुमको कोई रोग नहीं हुआ है। यह तो इष्ट-विरह की ज्वाला है। महाभाव का वेग इसी तरह चढ़ता है, और उस समय इसी तरह की अन्तर्ज्वाला होती है। मैं इसका उपाय करती हूँ।''

मथुर बाबू के दक्षिणेश्वर आने पर भैरवी ने उनसे कहा, ''बाबा के लिए तुम लोग कोई चिन्ता न करो। उसके देह-दाह का उपचार है गले में सुगंधित फूलों की माला पहनाना और शरीर पर चन्दन का लेप चढ़ाना।''

मथुर बाबू हँसी रोक नहीं सके—भैरवी पागल की तरह क्या सब बक रही हैं! वे मन-ही-मन सोचने लगे—इन्हें कविराज की दवाएँ काँड़ी-काँड़ी खिलायी गयी हैं। सिर पर मध्यम नारायण तेल और विष्णु तेल की मालिश की गयी है। इन सबसे जब कोई लाभ नहीं हुआ तो फूलमाला पहनाकर, चन्दनलेप लगाकर ठाकुर को नट-वेश में सजाने से क्या होगा?

''क्यों बाबा! तुम चुप क्यों हो गये? मेरी बात पर तुम्हें विश्वास नहीं हुआ? क्या यह कोई रोग है जो डाक्टर-कविराज की दवा से दूर हो जायगा? यह तो इष्ट-विरह का परिणाम है। फूल-चन्दन से शरीर को खूब सुसज्जित कर प्रगाढ़ प्रेमभाव से इष्टदेव के साथ एकात्म हो जाने पर इस पीड़ा का अवसान होगा। माला-चन्दन से दिव्य प्रेम का स्फुरण होगा और शरीर में इष्ट-स्फूर्त्ति आएगी।''

भैरवी का यह कथन सुनकर मथुर बाबू चौंक पड़े। सोचा, भैरवी की बात हास्यास्पद तो अवश्य है, किन्तु उसे मान लेने में हर्ज क्या है? फूल-चन्दन का जोगाड़ करना अत्यन्त सहज है। तब, देखा जाय कि इस उपचार का क्या परिणाम होता है। कोई लाभ नहीं होगा तो रोगी स्वयं ही फूल-चन्दन को हटा फेंकेगा।

भैरवी के कहने के मोताबिक ठाकुर को गंगा-स्नान कराके कई लड़ियों वाली फूलमाला पहना दी गई, देह पर चन्दन का लेप चढ़ा दिया गया। तीन दिनों तक यह उपचार चला। किसी को विश्वास नहीं था कि इससे कोई लाभ होगा। लेकिन तीन दिनों के बाद ही लोगों ने देखा कि ठाकुर का देह-दाह बिल्कुल दूर हो गया है। देह-मन आनन्दोत्फुल्ल हो चला है और शरीर की गौर कांति फूटी पड़ रही है।

भैरवी की व्यवस्था का यह परिणाम देख कर बहुत-से लोग विस्मित थे। लेकिन सर्वत्र सब समय कुछ संशयशील लोग तो रहते ही हैं। वैसे शंकाग्रस्त लोग कहने लगे कि यह तो संयोग की बात भी हो सकती है। पहले जो दवाएँ दी गई थीं, तेल-मालिश चली थी, उन सबका ही यह परिणाम है।

लेकिन ठाकुर के मथुर तथा कुछ अन्य बुद्धिमान भक्तों ने मान लिया कि भैरवी ने अपनी दिव्य दृष्टि से रोग का ठीक-ठीक निदान निकाला और उपचार किया। भैरवी का यह कहना भी बिलकुल सही निकला कि ठाकुर तीन दिनों में स्वस्थ हो जायँगे और अपनी स्वाभाविक स्थिति में लौट आएँगे।

इस घटना के बाद मथुर बाबू की नजर में भैरवी की बुद्धिमत्ता, शास्त्र-ज्ञान और योग-विभूति का मूल्य बढ़ गया। किन्तु भैरवी का रामकृष्ण को बार-बार अवतार घोषित करना उन्हें बिलकुल पसंद नहीं था और न वे इस बात को कोई महत्त्व ही देते थे। अन्य लोगों को भी भैरवी की इस बात पर विश्वास नहीं होता था; कुछ लोग तो निन्दा-उपहास भी करने लगे थे।

यों तो बात आयी-गयी हो गयी होती, लेकिन, स्वयं ठाकुर रामकृष्ण के आग्रह-अनुरोध से इस चर्चा ने तूल पकड़ लिया। उन्होंने एक दिन मथुर बाबू से कहा, ''ब्राह्मणी मेरे बारे में तरह-तरह की बात कहती रहती हैं; वे बड़े-बड़े

पंडितों को बुलाकर शास्त्रार्थ करना चाहती हैं। तुम उस तरह की तर्क-सभा का आयोजन कर दो, बाबू! देखा जाय कि वे लोग क्या कहते हैं।''

मथुर बाबू ने भी सोचा कि जब बाबा अनुरोध कर रहे हैं तो क्यों नहीं दो-चार पंडितों को बुलाया जाय। उन लोगों का तर्क-वितर्क सुनने में हानि ही क्या है ?

मथुर बाबू के मन में क्षीण आशा भी जग रही थी कि पंडित लोग अगर शास्त्रबल से भैरवी के दावे का खंडन कर देंगे तो एक झमेला ही कट जायगा; बाबा भी समझ जायँगे कि कठोर साधना के कारण उन्हें सचमुच वायु-रोग हो गया है। सही बात की जानकारी हो जाने पर वे स्वयं ही संभल जायँगे। भैरवी दिन-रात बाबा को घेरे रहती है और उन्हें बार-बार अवतार घोषित करती हैं। इससे बाबा का माथा और भी बिगड़ जायगा, और आश्चर्य नहीं कि वे बिलकुल पागल हो जायें।

खूब सोच-समझ कर, अच्छी तरह पता लगाकर, मथुर बाबू ने सुपंडित वैष्णवचरण को आमंत्रित करने का निश्चय किया। उन दिनों कलकत्ता शहर और आस-पास के इलाके में, वैष्णव लोगों के बीच, पंडित वैष्णवचरण की बड़ी प्रतिष्ठा-प्रसिद्धि थी। भैरवी ने भी उनका नाम सुन रखा था। उन्होंने भी पंडितजी को बुलाने के प्रस्ताव का अनुमोदन किया। तय हुआ कि दक्षिणेश्वर मंदिर के प्रांगण में ही पंडित वैष्णवचरण का भैरवी के साथ विचार-विमर्श हो।

उस समय ठाकुर एक और व्याधि से पीड़ित हो रहे थे। उन्हें दिन-रात भूख लगी रहती थी। भोजन की मात्रा बेहिसाब बढ़ गई थी; आकंठ भोजन करने के बाद भी वे भूख की शिकायत करते थे। इस राक्षसी क्षुधा से छुटकारा कैसे मिले ?

ठाकुर ने भैरवी से पूछा, मुझे यह कैसा रोग हो गया है ? दिन-रात 'खाँव-खाँव' करता रहता हूँ। लोगबाग क्या कहते होंगे!

''नहीं बाबा, तुमको कोई रोग-टोग नहीं है। साधना की उच्च अवस्था में स्थूल, मोटी साँस सूक्ष्म हो जाती है, और सूक्ष्म वायु ऊर्ध्वमुखी होकर ऊपर उठने लगती है। उसके परिणामस्वरूप पाकस्थली में शून्यता का भाव आता है और बराबर भूख लगती रहती है। योग, तंत्र, भक्ति, ज्ञान—सभी तरह की साधनाओं में उच्च स्तर पर पहुँचने पर ऐसा होता ही है। ऐसी अवस्था थोड़े दिनों में स्वयं मिट जाती है। इसलिए, चिन्ता की कोई बात नहीं है। मैं इसका भी उपाय करती हूँ।''

दूसरे दिन मथुर बाबू दक्षिणेश्वर आये थे। ठाकुर उनसे अपनी भूखव्याधि की बात कहने लगे। भैरवी वहाँ पास में ही थीं। उन्होंने हँसते-हँसते मथुर बाबू से कहा, ''बाबा के घर में हाँड़ी-हाँड़ी मूढी, चिउड़ा, पूरी-संदेश, रसगुल्ला वगैरह खाद्य-सामग्री रखवा दो। कुछ ही दिनों में सब ठीक हो जायगा।''

मथुर बाबू तो अपने बाबा के भक्त, सेवक, रसददार—सबकुछ थे। भैरवी का प्रस्ताव उन्हें खूब पसन्द आया। उन्होंने तुरत ही सब कुछ का इन्तजाम करवा दिया। ठाकुर के कमरे में खाने की चीजें प्रचुर मात्रा में रख दी गयीं।

भैरवी ने भी हँसते-हँसते ठाकुर से कहा, "लो बाबा, इच्छा भर खाओ। तुम्हारी बीमारी की दवा का जोगाड़ हो गया। तुम दिनरात अपने कमरे में ही रहो और जब इच्छा हो, जो इच्छा हो, पेट-भर खा लिया करो। कुछ ही दिनों में तुम्हारी यह राक्षसी भूख मिट जायगी।"

सचमुच, कुछ वैसा ही हुआ। ठाकुर शीघ्र ही इस अस्वाभाविक स्थिति से छुटकारा पा गए।

शास्त्रीय आलोचना-सभा का निमंत्रण पाकर पंडित वैष्णवचरण एक दिन दक्षिणेश्वर आये। उनके साथ उनके कुछ भक्त और प्रशंसक भी थे। पंडितजी को वैष्णव शास्त्र का प्रचुर ज्ञान था जिसके कारण वैष्णव समाज उनका विशेष आदर करता था। वैष्णव तत्त्व की व्याख्या-विश्लेषण के लिए अनेक लोग उनके घर आते थे। श्रीमद्‌भागवत और चैतन्यचरितामृत की कथा कहने में वे बड़े दक्ष थे। वैष्णव शास्त्र के सुपंडित होने के अलावा वे उच्च कोटि के वैष्णव साधक भी थे।

भैरवी योगेश्वरी को उन्हीं पंडित वैष्णवचरण और उनके भक्तों के सम्मुख, सभा में, सिद्ध करना था कि ठाकुर रामकृष्ण कोई सामान्य जन नहीं, बल्कि अवतारी पुरुष हैं।

उस शास्त्र-चर्चा में स्वयं रामकृष्ण एक दर्शक के रूप में उपस्थित थे। उनसे ही सभा का विवरण सुनकर स्वामी शारदानन्द ने लिखा है :—

"ब्राह्मणी ने सभामंडली को रामकृष्ण की अवस्था के संबंध में सारी बातें विस्तारपूर्वक बतायीं जिन्हें उन्होंने लोगों से सुना था और जिनकी वे स्वयं प्रत्यक्षदर्शिनी थीं। भक्ति-पथ के पुराने आचार्यों और साधकों के शास्त्रवर्णित अनुभवों से रामकृष्ण की वर्तमान अवस्था की समानता सिद्ध करते हुए उन्होंने अपना मत प्रस्थापित किया।"

"उन्होंने वैष्णवचरण से कहा, आप यदि विचाराधीन विषय पर मेरे विचारों से सहमत नहीं हैं तो मुझे अपनी असहमति का कारण समझाइए।"

"माता जिस तरह वीरता और साहस से अपनी संतान की रक्षा करती है, उसी तरह ब्राह्मणी भी किसी दैवी बल से रामकृष्ण के समर्थन में प्रस्तुत थीं। और ठाकुर?—जिनको लेकर यह सब कांड हो रहा था—वे तो वाद-विवाद में अन्य लोगों के बीच में अलग-थलग बैठे आत्मानन्द में मुसकरा रहे थे। कभी-कभी निकटस्थ खोमचा वाले से एक-दो मिठाई या चना-चबेना लेकर मुँह में डाल लेते थे और इस तरह बातचीत सुनने लगते थे जैसे कि यह विचार-विमर्श

उनके संबंध में नहीं, किसी अन्य व्यक्ति के संबंध में चल रहा है। कभी-कभी वे वैष्णवचरण की देह छूकर उनसे अपनी अवस्था के संबंध में कहते, 'हाँ, हाँ, मुझे ऐसा ही होता है।''

''सभा में ठाकुर श्री रामकृष्ण को देखते ही पंडित वैष्णवचरण ने समझ लिया था कि यह कोई उच्च कोटि के महात्मा हैं। स्वयं भैरवी के मुख से भी उन्होंने रामकृष्ण के संबंध में उनके अपने अनुभव सुने। भक्तिशास्त्र के प्रमाणों को लेकर दोनों में कुछ विचार-विमर्श हुआ।''

''वैष्णवचरण उच्च कोटि के पंडित तो थे ही, वे विशिष्ट साधक भी थे। वे वहीं, सभा-स्थल पर, ईश्वरीय भाव से अभिभूत हो गये। सभा में उपस्थित सब लोगों को विस्मित करते हुए उन्होंने भैरवी के मत को स्वीकार कर लिया।''

''आनन्दभाव से वे कहने लगे, भक्तिशास्त्र में उन्नीस प्रकार के भावों के एक साथ संयोग को महाभाव कहा गया है। वैसा संयोग द्वापर में राधारानी में देखा जाता था और इस युग में महाप्रभु चैतन्य देव में देखा गया। ऐसा प्रतीत होता है कि महाभाव के सभी लक्षण इनमें (रामकृष्ण में) प्रकाशित हो रहे हैं। साधारणतः इस महाभाव के दो-चार ही लक्षण किसी सौभाग्यशाली साधक में प्रकट होते हैं। एक साथ उन्नीस भावों के एकत्र संयोग-वेग को कोई साधक धारण भी नहीं कर सकता है। यह सामर्थ्य केवल राधारानी और चैतन्यदेव में थी।''

पंडित वैष्णवचरण की इस स्वीकारोक्ति के बाद मथुर बाबू तथा सभा में उपस्थित पंडितों और भक्तदर्शकों की तो बोलती ही बन्द हो गयी। स्वयं रामकृष्ण कौतुकपूर्वक मथुर बाबू से पूछने लगे, ''ये पंडित लोग क्या कह रहे हैं? ये लोग जो भी कहें, मुझे तो खुशी है कि मुझे कोई रोग-टोग नहीं है।''

मथुर बाबू को ठाकुर रामकृष्ण के प्रति अपार स्नेह था। भैरवी और पंडित वैष्णवचरण का ठाकुर के संबंध में मत जान कर उन्हें हर्ष ही हुआ और उनका बहुत सारा संदेह मिट गया। वे मान गये कि ठाकुर उच्च कोटि के साधक हैं जो साधना की ऊँची अवस्था में जाकर बेसंभाल हो रहे हैं, जब कभी पागलों-जैसा करने लगते हैं। ये 'मध्यम नारायण तेल' आदि दवाओं के रोगी नहीं हैं।

इतना कुछ समझ लेने के बाद भी मथुर बाबू, जो स्वभावतः तर्कशील बुद्धिवादी व्यक्ति थे, सोचने लगे—ठाकुर शुद्धसत्त्व, शक्तिमान साधक अवश्य हैं किन्तु अप्रसिद्ध भैरवी अथवा एकमात्र पंडित वैष्णवचरण के कह देने से इन्हें लोग-बाग अवतार क्योंकर मानने लगेंगे! दूसरे, प्रमाण क्या है कि भैरवी और पंडित वैष्णवचरण ने इनका सही-सही मूल्यांकन किया है?

किन्तु उस दिन से, रामकृष्ण के दर्शनमात्र से, आचार्य वैष्णवचरण बहुत-कुछ बदल गये। विचारसभा में रामकृष्ण को देखकर वे केवल उनके प्रति

आकर्षित ही नहीं हुए बल्कि समझ भी गये कि मेरी साधना की कुंजी इन्हीं अप्रसिद्ध काली-साधक के हाथ में है। रामकृष्ण ने उनके प्रति प्रसन्न दृष्टिपात किया था और अदृश्य आकर्षण-डोर से उन्हें अपने प्रेम में बाँध लिया था।

फलतः, सुयोग पाकर पंडित वैष्णवचरण अक्सर रामकृष्ण से मिलने आने लगे। यहाँ उन्हें अपनी साधना के संबंध में आवश्यक निर्देश मिलता था और जीवन की अनेक समस्याओं का समाधान भी हो जाता था। वे समय-समय पर अपने अंतरंग भक्तों और मुमुक्षुओं को रामकृष्ण के पास भेज देते थे। ठाकुर के प्रति सच्ची श्रद्धा और प्रेमभाव नहीं रहता तो पंडित वैष्णवचरण-जैसे वैष्णव आचार्य ऐसा क्योंकर करते?

वैष्णवचरण का साधन-पथ रामकृष्ण से भिन्न अवश्य था, फिर भी, वे रामकृष्ण को बड़े आग्रहपूर्वक अपने 'कर्त्ताभजा' वैष्णव पंथ के गुप्त साधनाचक्र में ले जाते थे। स्वामी शारदाचरण लिखते हैं :—

''कलकत्ता से कुछ मील उत्तर काछीबगान में इस सम्प्रदाय का अखाड़ा था जिससे वैष्णवचरण का घनिष्ठ संबंध था। इस सम्प्रदाय के अनेक स्त्री-पुरुष वहाँ उनके उपदेश के अनुसार साधना किया करते थे। वे ठाकुर को वहाँ कई बार ले गये। एक बार वहाँ की कुछ स्त्रियाँ ठाकुर को सर्वथा निर्विकार और भागवत भाव में आविष्ट देखकर उनकी परीक्षा लेने को उद्यत हुईं कि ये सचमुच सम्पूर्ण भाव से कामजयी हैं या नहीं। ठाकुर को सब प्रकार अविचलित पाकर उन लोगों ने उनके प्रति सम्मान प्रदर्शित किया। अपने बाल-स्वभाववश ठाकुर वहाँ पंडित वैष्णवचरण के आग्रह पर सरल भाव से गये थे। उन्हें क्या पता था कि वहाँ उनकी परीक्षा ली जायगी। उस दिन की घटना के बाद वे फिर कभी वहाँ नहीं गये।

ठाकुर के चरित्रबल, पवित्रता और भाव-समाधि को देखकर वैष्णचरण की उनपर श्रद्धा-भक्ति इतनी बढ़ गयी कि वे सबके सामने ठाकुर को ईश्वर का अवतार स्वीकार करने में तनिक भी कुंठित नहीं होते थे।''

वैष्णवचरण प्रायः ही ठाकुर का दर्शन करने आते थे और उनके उच्चतर आध्यात्मिक जीवन के कृपा-स्पर्श से अपने जीवन को नये सिरे से सुगठित करने का प्रयास करने लगे थे।

पंडित वैष्णवचरण जैसे आचार्य ने ठाकुर को सार्वजनिक रूप से भगवान् का अवतार स्वीकार कर लिया, इस पर भैरवी योगेश्वरी के हर्षोल्लास की कोई सीमा नहीं रही। वे देंवादेश से दक्षिणेश्वर आयी थीं और तरुण साधक रामकृष्ण की मातृस्वरूपिणी अभिभाविका बन गयी थीं। वे रामकृष्ण के साधन-माहात्म्य को और उनकी भावी भूमिका को अच्छी तरह समझ रही थीं।

एक दिन मथुर बाबू से भेंट होने पर भैरवी ने उनसे कहा, ''बाबा, तुमने तो प्रसिद्ध वैष्णव आचार्य का मत जान लिया। अब किसी बड़े तांत्रिक को बुलाओ और तुमलोग रामकृष्ण के संबंध में उनका मत भी जान लो।''

मथुर बाबू भैरवी के विचार से सहमत हुए और कहा, ''ठीक तो है। तुम किस तांत्रिक आचार्य को बुलाना चाहती हो?''

''बाबा, सुना है कि गौरी पंडित नामक कोई उच्चस्तरीय तांत्रिक साधक हैं और कौल तत्त्व का उन्हें अच्छा ज्ञान है। उन्हें ही बुलाओ।''

मथुर को यह प्रस्ताव जँच गया। गौरी पंडित को निमंत्रण भेज दिया गया।

गौरी पंडित को कई विशिष्ट तांत्रिक सिद्धियाँ प्राप्त थीं। वे प्रतिदिन महाशक्ति की पूजा करने के बाद होम किया करते थे। किसी-किसी दिन वे विशेष प्रकार का होम करते थे। साधारणत: तांत्रिक लोग ताँबे के बरतन में या मिट्टी पर बालू की वेदी बनाकर उसपर होमाग्नि प्रज्वलित करते हैं। किन्तु गौरी पंडित की क्रिया अद्‌भुत थी। वे अपने बायें हाथ को शून्य में फैला कर उस पर करीब एक मन समिधा की लकड़ी सजाते और उसमें अग्नि सुलगा कर दाहिने हाथ से घी की आहुति डालते थे। समिधा के गुरुभार को और होमग्नि के प्रचंड उत्ताप को गौरी पंडित बड़ी आसानी से खड़े-खड़े सहन करते थे।

यह कार्य सामान्यत: असंभव प्रतीत होता है, किन्तु परवर्त्ती काल में स्वयं रामकृष्ण इस अद्‌भुत होम-क्रिया का वर्णन किया करते थे। कोई-कोई भक्त इस कहानी पर विश्वास नहीं करते थे। तब रामकृष्ण कहते, ''अरे, मैंने स्वयं अपनी आँखों उन्हें वैसा करते देखा था। यह उनकी एक प्रकार की सिद्धाई थी।''

गौरी पंडित की विशिष्ट देवी-पूजा की भी कहानी रामकृष्ण कहा करते थे। गौरी पंडित बड़े समारोह के साथ दुर्गापूजा का आयोजन करते थे। वे अपनी पत्नी को मूल्यवान वस्त्राभूषणों से अलंकृत कर पूजा-वेदी पर बैठाते थे और देवी-भाव से उनकी आराधना करते थे। वे नारी-मात्र को जगदम्बा का अंश समझते थे। इसीलिए वे अनुष्ठानपूर्वक अपनी शक्ति-पत्नी को पूजार्घ्य निवेदित करते थे।

गौरी पंडित की एक और गुप्त तांत्रिक सिद्धाई थी। वे किसी से शास्त्रार्थ करते समय इस सिद्धाई का प्रयोग किया करते थे। सभास्थल में प्रवेश करते समय वे गंभीर उच्च स्वर से 'हारे-रे-रे निरालम्बो लम्बोदरजननी कंयामि शरणम्' का उच्चारण करते। उनके इस तांत्रिक स्तवन से वातावरण कम्पित हो जाता।

इस प्रसंग में स्वामी शारदानन्दजी लिखते हैं :

''ठाकुर कहा करते थे कि बीरभाव-द्योतक अपने मेघ-गंभीर स्वर से आचार्य जब 'हारे-रे-रे' के शब्द के साथ स्वरचित देवी-स्तोत्र का उच्चारण करते तो सुननेवालों का हृदय भय से काँप जाता। उससे दो काम हो जाते थे—

एक तो शब्दोच्चारण से गौरी पंडित के भीतर की अपनी शक्ति अच्छी तरह जग जाती थी और, दूसरे प्रतिपक्षी को भयकंपित और मुग्ध करके……उसका बल हरण कर लेते थे। इस प्रकार इस स्तवन का शब्दोच्चारण करके पहलवान की तरह ताल ठोंकते हुए गौरी पंडित सभा-भूमि में प्रवेश करते और अपने दोनों पैरों को मोड़ उन पर बैठ जाते थे। उसके बाद वे तर्क-संग्राम शुरू करते थे। ठाकुर कहते थे कि उस समय गौरी पंडित को पराजित करना किसी के लिए भी संभव नहीं था।''

''गौरी पंडित की यह सिद्धाई ठाकुर को पहले से मालूम नहीं थी। दक्षिणेश्वर के काली मंदिर में प्रवेश करते हुए गौरी पंडित ने जैसे ही 'हारे-रे-रे……' का उच्चारण किया, वैसे ही ठाकुर को अन्तर से ठेल कर कोई शक्ति गौरी पंडित से भी अधिक ऊँचे स्वर में उन शब्दों का उच्चारण करने के लिए प्रेरित करने लगी। ठाकुर की ऊँची आवाज सुन कर गौरी ने और भी जोर से शब्दोच्चारण शुरू किया। इससे ठाकुर उत्तेजित हो गये और पहले की अपेक्षा और भी अधिक ऊँची आवाज में 'हारे-रे-रे' चिल्लाने लगे।''

''ठाकुर हँसते-हँसते कहा करते थे, दोनों पक्षों से उठने वाली 'हारे-रे-रे……' की तुमुल ध्वनि से लगता था कि डाका पड़ रहा है। कालीमंदिर के दरबान, जो जहाँ थे वहाँ से, लाठी-सोंटा लेकर दौड़े आये। अन्य लोग तो भय से काँप रहे थे।''

''गौरी पंडित ने जब देखा कि वे ठाकुर की अपेक्षा ऊँची आवाज लगाने में असमर्थ हो रहे हैं तो वे शांत हो गये और धीरे-धीरे काली मंदिर में चले गये। अन्य लोग, जो भयंकर आवाज सुनकर दौड़े आये थे, यह जानकर कि ठाकुर और नवागत पंडितजी यह कांड कर रहे हैं, हँसते-हँसते अपनी जगह लौट गये।''

''ठाकुर कहते थे, माँ ने मुझे बतला दिया कि यहाँ इस तरह पराजित होने से गौरी की वह सिद्धाई समाप्त हो गयी जिसके बल पर वह दूसरों की शक्ति का अपहरण कर अजेय हो रहा था। माँ ने उसके कल्याण के लिए ही उसकी शक्ति को (अपने शरीर को दिखलाते हुए) इसमें खींच लिया।''

उस दिन की शक्ति-परीक्षा के बाद गौरी पंडित काली मंदिर के एक कमरे में कई दिनों तक रहे और ठाकुर के पुण्यमय संसर्ग से उनमें आश्चर्यजनक परिवर्तन हो चला। ठाकुर के भीतर की ईश्वरीय शक्ति, ज्ञान और प्रेम-प्रवाह से पंडितजी का अहं भाव क्रमशः शिथिल पड़ने लगा और एक दिन उन शक्तिमान् सिद्ध तांत्रिक ने अचानक तरुण साधक के चरणों में आत्मसमर्पण कर दिया।

यह सब देखकर भैरवी योगेश्वरी आनन्दोत्फुल्ल हो रही थीं। उन्हें गर्व हो रहा था कि उनके पुत्रप्रतिम रामकृष्ण में ईश्वरीय सत्ता का क्रमिक जागरण हो चला है और इन विराट् अवतारी पुरुष के अभ्युदय की बात उन्होंने ही सबसे पहले घोषित की है। उनके मन में खयाल आ रहा था कि इस प्रसंग में एक विराट् सभा बुलायी जाय। यह प्रस्ताव मथुर बाबू को सहज-सहर्ष स्वीकार था। कई दिनों के अन्दर ही वैसी सभा आयोजित की गयी। कलकत्ता से आचार्य वैष्णवचरण और अन्यान्य पंडित और साधक बुलाये गये। इस बार की सभा बड़े पैमाने पर हो रही थी।

जिस दिन सभा बैठने वाली थी, सबेरे ठाकुर रामकृष्ण देवी भवतारिणी के मंदिर में आये। माँ के सन्मुख बैठते ही उनका देह-मन-प्राण दिव्य भाव से उद्वेलित हो गया और जिस समय मंदिर से निकल कर बरामदे में आ रहे थे, वे अर्द्ध-बाह्य ज्ञान की अवस्था में थे। उसी दशा में उनकी पंडित वैष्णवचरण से भेंट हो गयी। पंडितजी अभी-अभी सभाभूमि में आये थे और देवी का दर्शन करने मंदिर में जा रहे थे। सामने रामकृष्ण का दिव्योज्ज्वल स्वरूप देख कर भक्ति-ज्वार से उनका शरीर थर-थर काँपने लगा। भावाविष्ट होकर उन्होंने ठाकुर के चरणों में प्रणाम निवेदित किया।

पंडितजी को देख कर ठाकुर प्रेमानन्द में बाह्य ज्ञानशून्य हो गये और अनायास पंडितजी के कन्धे पर चढ़ गये।

प्रेमभाव में बाह्यज्ञानहीन, शुद्धसत्त्व महापुरुष के पुण्य स्पर्श से पंडित वैष्णवचरण भी भावाभिभूत हो चले। उल्लसित हृदय से उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर ठाकुर की प्रार्थना में तत्काल एक स्तव-गाथा की रचना कर डाली और भक्तिभाव से उसे बार-बार दुहराने लगे। आँखों से प्रेमाश्रु की धारा बह रही थी।

मंदिर के सामने, जगमोहन में खड़े गौरी पंडित, भैरवी, मथुर बाबू तथा सभा में आमंत्रित अन्य आचार्य और साधकगण यह दृश्य देख कर हक्का-बक्का हो रहे थे।

थोड़ी देर के बाद दोनों स्वाभाविक स्थिति में आ गये और साथ-साथ सभामंडप में आये।

ठाकुर और आचार्य वैष्णवचरण का वह प्रेममय मिलन-दृश्य देख कर सभा में भाग लेने आये अन्य लोग भी अव्यक्त भावतरंग में बह रहे थे। तंत्रसिद्ध गौरी पंडित भी इस तरंग से अछूते नहीं रहे। गद्‌गद कंठ से कहने लगे, मैंने सोचा था कि आचार्य वैष्णवचरण के साथ कुछ देर शास्त्र-चर्चा करूँगा किन्तु अभी अपनी आँखों देखा कि मातृसाधक ठाकुर रामकृष्ण ने आचार्य पर अशेष कृपा की है। मैं समझ रहा हूँ, इस कृपा के बल पर वे विशेष बलशाली हो रहे हैं। इसलिए आज मैं उनके साथ

शास्त्रार्थ में उलझना नहीं चाहता हूँ। दूसरे, मैं देख रहा हूँ कि ठाकुर रामकृष्ण के मूल्यांकन में आचार्य चरण का और मेरा मत एक-जैसा ही है। इसलिए उस विषय को लेकर सभा में तर्क-वितर्क करना निष्प्रयोजन होगा।

इसके बाद दोनों आचार्य कुछ देर तक शास्त्र-चर्चा करके विदा हुए।

ऐसी बात नहीं थी कि गौरी पंडित भयवश आचार्य वैष्णवचरण से शास्त्रार्थ में नहीं उलझे। असल बात यह थी कि वे कई दिनों तक ठाकुर के साथ उनके प्रेमभक्तिमय परिमंडल में रहे थे जिससे उन्हें नयी आध्यात्मिक उपलब्धि हुई थी। वे स्वयं भी उच्च स्तर के तंत्र-साधक थे। अपनी साधनोज्ज्वल दिव्य दृष्टि से उन्होंने ठाकुर के माहात्म्य और स्वरूप को देख लिया था। इसलिए, ठाकुर के संबंध में वादविवाद करने की रुचि ही नहीं हुई।

कुछ दिनों के बाद गौरी पंडित की परीक्षा लेने के उद्देश्य से ठाकुर ने उनसे पूछा, ''अच्छा, पंडित वैष्णवचरण, इसे (अपनी ओर उँगली दिखाकर) अवतार कहते हैं। यह क्या कभी संभव है? इस संबंध में तुम्हारी क्या राय है?''

पंडित गौरी ने हाथ जोड़कर भावपूर्ण स्वर में कहा, ''आप उससे भी अधिक हैं। जिसका अंश मात्र लेकर अवतार आते हैं, वही परम वस्तु आप हैं।''

''अरे बाबा, देख रहा हूँ, तुम उन पंडित को भी पीछे छोड़े जा रहे हो!'' कहते हुए ठाकुर बालक की तरह खिलखिला कर हँसने लगे। आगे पूछा, ''किन्तु तुम यह सब क्यों कहते हो? मुझमें क्या देखते हो?''

गौरी पंडित ने पूरे आत्मविश्वास से कहा, ''जो कह रहा हूँ, ठीक कह रहा हूँ। यह शास्त्र-सम्मत बात तो है ही, मेरे अपने प्राणों के अनुभव पर भी आधारित है। मेरी बातों के विरुद्ध कोई कुछ कहना चाहता हो तो मैं उसके साथ तर्क-वितर्क करने के लिए हमेशा तैयार हूँ।''

ठाकुर ने अपनी बालकोचित सरलता से कहा, 'तुमलोग इतना कुछ कहते हो, लेकिन मैं तो कुछ भी नहीं जानता हूँ।'

गौरी पंडित माथा हिलाते हुए गंभीर भाव से बोले, ''ठीक बात है। शास्त्र भी कहता है कि ब्रह्म या महामाया के संबंध में जो कहते हैं 'मुझे मालूम नहीं', वे ही वास्तव में जानते हैं। आपकी वही अवस्था है। आप किसी को कृपापूर्वक अपना माहात्म्य बतला देंगे तो वही आपका वास्तविक स्वरूप समझ सकता है।''

ठाकुर रामकृष्ण के पारस-स्पर्श से गौरी पंडित खाँटी सोना बन गये थे। ठाकुर के घनिष्ठ सम्पर्क में आने पर उनका विद्या-बुद्धि का दर्प, पता नहीं, कहाँ विलीन हो गया था।

पंडित-प्रवर ने समझ लिया था कि पांडित्य-प्रदर्शन, बाह्यडम्बर और प्राणहीन पूजा-अनुष्ठान में उन्होंने इतने दिनों तक अपना समय व्यर्थ गँवाया है; ईश्वर की उपलब्धि नहीं हुई है, सारा जीवन व्यर्थ चला गया।

कई महीने ठाकुर के सान्निध्य में रहने से इन तंत्रसिद्ध साधक के अन्तर में सच्ची मुमुक्षा जग गयी थी। वे एक दिन अचानक ठाकुर के कमरे में आए, और अश्रुसजल नेत्रों से उन्होंने ठाकुर से चिर विदा की अनुमति माँगी।

ठाकुर ने विस्मयपूर्वक पूछा, ''यह क्या पंडित? तुम कहाँ जाना चाहते हो?''

''मैं परम वस्तु ईश्वर को पाने के लिए संसार का त्याग करने जा रहा हूँ। आप मुझ पर कृपा कीजिए, आशीर्वाद दीजिए कि मेरा अभीष्ट सिद्ध हो।''

इसके बाद किसी ने कभी गौरी पंडित को सांसारिक जीवन में नहीं देखा। परम प्राप्ति के पथ पर वे किसी अज्ञात स्थान को चले गये थे।

मातृस्वरूपिणी भैरवी योगेश्वरी अपने संतानोपम बालगोपाल रामकृष्ण को भोजन कराने प्रतिदिन माँ यशोदा के रूप में साड़ी और कंचुकी पहन कर और सिर पर बूटीदार रंगीन ओढ़नी डालकर आती थीं। उनके साथ उस इलाके की भक्त महिलाएँ भी रहतीं। भैरवी उन्हीं महिलाओं के घर से खीर, मक्खन-मिसरी माँग कर लातीं और रोमांचित देह अश्रुसिक्त नेत्र लिये वात्सल्य-रस से भरपूर आवाज में ठाकुर को भोजन करने के लिए बुलातीं।

भैरवी की उस भावमयी मातृमूर्ति को देख कर ठाकुर आत्मविस्मृत हो जाते थे और भैरवी की गोद में बैठकर परम आनन्द से भोजन करते।

कभी-कभी ठाकुर अपने भांजे हृदय को साथ लेकर भैरवी के वास स्थान पर जाते और उन्हें देखकर भैरवी की सेविका और भक्त महिलाएँ आनन्दविभोर हो जातीं।

आये दिनों रामकृष्ण का स्वरूप धीरे-धीरे लोगों की दृष्टि में उद्घाटित हो रहा था; उनकी भावमूर्ति पूर्वापेक्षा उज्ज्वलतर हो गयी थी। जो लोग उन्हें पागल पुजारी और भावुक कालीसाधक समझ कर उनकी अवज्ञा किया करते थे, वे सब भयभीत होकर उनसे कतरा कर चलने लगे।

मथुर तथा अन्यान्य भक्तगण भी जो ठाकुर के अनुरागी होकर भी उनके वास्तविक स्वरूप और माहात्म्य को समझ नहीं पाये थे, अब उनके संबंध में ऊँची-ऊँची बातें करने लगे।

भैरवी योगेश्वरी के संबंध में भी दक्षिणेश्वर मंदिर के लोग-बाग मानने लगे थे कि ये साधारण भक्त महिला नहीं हैं बल्कि उच्च कोटि की साधिका हैं, जो अपनी दीर्घकालीन साधना और शास्त्र-ज्ञान से बड़े-बड़े साधकों और आचार्यों को परास्त करने में समर्थ हैं।

इस प्रकार, क्षेत्र तैयार हो गया था और भैरवी को अपने दैवादिष्ट कार्य में, जिसके लिए वे यहाँ अवतीर्ण हुई थीं, प्रवृत्त हो जाना था। उन्हें ठाकुर रामकृष्ण

को तंत्रक्रिया में पारंगत करना था और ईश्वर निर्दिष्ट उनकी विराट् भूमिका को सुदृढ़ आधार देना था।

ठाकुर पहले से ही जानते थे कि जगदम्बा के आदेश से भैरवी दक्षिणेश्वर आयी हैं। भैरवी से भेंट होने के पहले ही जगदम्बा ने ठाकुर को बतला दिया था कि इन्हीं साधिका से उनको साधना संबंधी सहायता लेनी है। लेकिन अब माँ जगदम्बा से पूछना था कि तंत्रसाधना में वे व्रती हों या नहीं।

उन्होंने प्रशांत कंठ से भैरवी को कहा, ''मैं तुम्हारे प्रस्ताव के संबंध में माँ से पूछूँगा।''

''पूछोगे क्या, बाबा? मैं जानती हूँ, माँ तुम्हें इसके लिए अनुमति देंगी ही। तुम माँ जगदम्बा की शक्ति, भक्ति और ज्ञान लेकर जनमे हो और माँ की कृपा से विपुल साधन-ऐश्वर्य के अधिकारी हो गये हो। लेकिन, लोकगुरु होने के लिए, तुम्हें शास्त्रीय विधि के अनुसार साधना करनी चाहिए, शक्ति अर्जन करना चाहिए। तुम्हें तांत्रिक क्रियाओं में पारंगत होना होगा।''

माँ जगदम्बा की अनुमति मिलने में विलम्ब नहीं हुआ और उन्होंने अपनी दैवप्रेरिता शिक्षा-गुरु के हाथों में कुछ समय के लिए अपने को सौंप दिया। अपनी स्वाभाविक विशिष्टता के अनुरूप, वे तीव्र एकनिष्ठा से तांत्रिक साधना में लग गये और अबाध वेग से तंत्र की वीराचारी स्थिति की ओर बढ़ने लगे।

भैरवी योगेश्वरी तंत्र की वामाचारी और दक्षिणाचारी—दोनों ही पद्धतियों में पूर्णतः सिद्ध थीं। वे इन सभी पद्धतियों में रामकृष्ण को पारंगत करने में लग गईं ताकि ठाकुर का साधन-आधार सब तरह से सुदृढ़ और सुसंगठित हो जाय।

परवर्ती दिनों में रामकृष्ण कहा करते थे, वेद-पुराण को कानों से सुनना होता है और तंत्र की साधनाओं को हाथोंहाथ क्रिया द्वारा सिद्ध करना पड़ता है। वे साधिका भैरवी के उपदेशानुसार तंत्र की निगूढ़ क्रियाओं को सिद्ध करने में प्रवृत्त हो गये।

कर्मकुशला भैरवी भी अपने दायित्व को पूरा करने में इतनी दत्तचित्त हुईं कि उन्हें क्षण-भर के लिए भी फुर्सत न रहीं। कौलक्रिया में तरह-तरह की आवश्यकताएँ होती थीं। उन सबका भैरवी के संकेतमात्र से मथुर बाबू अपने धनबल और जनबल द्वारा अविलम्ब जोगाड़ कर देते थे।

वीराचारी साधना में कौल सिद्धासन की अनिवार्य आवश्यकता थी। भैरवी की निगरानी में दो आसन शीघ्र तैयार हो गये : एक आसन दक्षिणेश्वर बगान की उत्तरी सीमा पर बेल-वृक्ष के नीचे बनाया गया और दूसरा पंचवटी में स्वयं ठाकुर ने अपने हाथों तैयार किया।

योगिनीतंत्र (पंचम पटल) में कौल सिद्धासन के लिए, नरमुंड के अलावा, भैंसा, बिल्ली, सियार, साँप, कुत्ता, बैल आदि के मुंडों की आवश्यकता होती है। उन सबका जोगाड़ करके बड़ी निष्ठा से सिद्धासन तैयार किया गया।

इस प्रसंग में स्वामी शारदानन्द लिखते हैं, ''सचराचर पंचमुंड से एक वेदिका बना कर साधक उस पर बैठता है और जप-ध्यानादि का अनुष्ठान करता है। ठाकुर ने अपने दो मुंडासनों के संबंध में हम लोगों को बताया था कि बेल-वृक्ष के नीचे बनाई गई वेदी में तीन नरमुंड रखे गये थे और पंचवटी वाली वेदिका के नीचे पाँच प्रकार के जीवों के सिर थे। साधना सिद्ध हो जाने के कुछ दिनों बाद ठाकुर ने दोनों वेदिकाओं को भंग कर सभी मुंडों को गंगा में फेंक दिया था।''

''बेलवृक्ष के नीचे चौड़ा आसन बनाने की सुविधा देख कर अथवा स्थान को निर्जन पाकर, वहाँ तीन मुंडों की वेदी बनायी गयी थी। किन्तु उस स्थान के पास ही ईस्ट इंडिया कम्पनी का बारूदखाना था जिसके कारण वहाँ होम कुंड को प्रज्वलित रखने की सुविधा नहीं थी। इसलिए दूसरी जगह दो मुंडासन तैयार किये गये थे।''

पंचमुंडों को जुटाना आसान काम नहीं था। भैरवी ने विश्वस्त लोगों को भेजकर दूर-दूर से इनका संग्रह किया। तंत्र क्रियाओं में दुष्प्राप्य काष्ठ-औषधों और रत्नों की भी आवश्यकता थी। इन सबको भी बड़े परिश्रम से जुटाया गया।

उन्होंने रामकृष्ण को इन द्रव्यों की प्रयोग-विधि सिखलाई, होम-क्रिया बताई और मंत्र को चैतन्य करने की कला का ज्ञान कराया। यह सब काम वे निष्ठा और श्रमपूर्वक महीनों करती रहीं। इस प्रसंग में, परवर्ती काल में, ठाकुर रामकृष्ण भैरवी माता के निदेश में अनुष्ठित तंत्र क्रियाओं का विस्तृत विवरण दिया करते थे।[१]

भैरवी दिन में प्रयोजनीय वस्तुओं को दूर-दूर से मँगवाती थीं और रात में, पंचवटी स्थित आसन पर, ठाकुर से महाशक्ति की आराधना में होम तथा विभिन्न प्रकार की निगूढ़ तंत्र क्रियाएँ करवाती थीं। अन्त में, ठाकुर को पुरश्चरण और निर्दिष्ट जप-साधना का निदेश देतीं।

ठाकुर बताते थे, ''प्रायः ही मुझसे जप-साधन नहीं सपरता था। एक बार ही माला फेरने में मैं समाधि में डूब जाता था और सभी क्रियाओं के फल एक-एक कर प्रत्यक्ष देखने लगता था। उस समय सूक्ष्म लोक में मैं कैसे-कैसे अपूर्व दृश्य देखता था, उनका वर्णन करना संभव नहीं है।''

---

[१] श्री रामकृष्ण लीला प्रसंग।

उन्होंने यह भी कहा, ''तंत्र में जिन चौंसठ[१] साधनाओं का उल्लेख है, उन सबका अनुष्ठान भैरवी ने मुझसे कराया। ये सारी साधनाएँ बड़ी कठिन थीं। इन्हें सिद्ध करने में अधिकतर साधक पथभ्रष्ट हो जाते हैं। किन्तु माँ की कृपा से मैं उन सबको पार कर गया।''

वामाचारी क्रियाओं का भैरवी ने बड़े यत्न से रामकृष्ण से अनुष्ठान कराया। उन्होंने पंचमकार के उपकरणों को जुटाकर राम-कृष्ण के सम्मुख प्रस्तुत किया किन्तु दिव्यभावनापन्न ठाकुर कभी तो आविष्ट भाव से उन क्रियाओं को पूरा करते और कभी केवल उनका स्पर्श-आस्वादन करते। किन्तु, सबसे आश्चर्य की बात तो यह थी कि प्रत्येक अनुष्ठान के बाद ठाकुर की समस्त सत्ता में कौल साधना के अनेक ऐश्वर्य और भाव स्वयमेव जागरित हो जाते थे।

भैरवी जैसे ही ठाकुर की जीभ पर कारणवारि (शराब) का स्पर्श करातीं, वैसे ही वे दिव्य चेतना से उद्दिप्त हो जाते। किसी-किसी दिन वे भैरव-वेश में उन्मत्त हो उठते।

भैरवी की सहायता से तंत्र-साधना में व्रती ठाकुर को अनेक दिव्य दर्शन हो रहे थे जिनका वर्णन वे परवर्ती काल में अपने अंतरंग शिष्यों को सुनाया करते थे।

वे कभी देखते थे कि अनेक काली-मूर्तियाँ सम्पूर्ण विश्व में नाच रही हैं, और उनके लिए सारी सृष्टि, सारा महाकाश भी छोटा पड़ रहा है।

कभी देवी अपनी द्विभुजा रूप में, कभी त्रिभुजा रूप में, कभी अष्टभुजा और दशभुजा रूप में प्रकाशित होतीं। किसी-किसी दिन माँ का त्रिपुरसुन्दरी रूप इतने उज्ज्वल प्रकाश के साथ दिखलायी पड़ता कि आँखें चौंधिया जाती थीं। आसमान में सदा-सर्वदा त्रिशूलधारी, रक्तचन्दन-चर्चित भैरवों के दल खड़े रहते थे।

कभी-कभी त्रिकोणाकार ज्योतिर्मयी ब्रह्मयोनि का दर्शन होता था। ये ही जगत्-कारण आद्याशक्ति माँ समग्र सृष्टि की जननी थीं जिनसे प्रतिक्षण असंख्य ब्रह्मांडों की सृष्टि हो रही थी। इस सृष्टि-प्रवाह का न आदि था, न अंत, न विराम ही!

कभी तो अनाहत-ध्वनि, प्रणवध्वनि से ओतप्रोत ठाकुर के मन में सारा संसार प्रपंच प्रतीत होता था और उस ध्वनि के महागुंजन में वे डूबे जाते थे।

उन दिनों ठाकुर प्रत्येक चक्र में ऊर्ध्वगामिनी कुलकुंडलिनी की गति का स्पष्ट अनुभव करते थे। उस अनुभूति में महाशक्ति का प्रोज्वल आविर्भाव प्रकट होता था। कुलागार में माँ जगदम्बा का रूपदर्शन करके भैरवी के वीराचारी साधक-शिष्य रामकृष्ण कृत्य-कृत्य थे।

---

[१] चौंसठ तंत्रों की बात सुनने में संभवतः स्वामी शारदानन्द ने भूल की। विशिष्ट तंत्रसाधकों और गवेषकों का कहना है कि इस युग में केवल १६ तंत्र ही प्रचलित हैं।

तत्पश्चात् भैरवी ठाकुर को वीराचारी साधना की दुःसाध्य अवस्था में ले चलीं। इस अवस्था में साधक को शक्ति-रूप में किसी नारी को ग्रहण करना पड़ता है। किन्तु ठाकुर तो शुद्धसत्त्व, अपापविद्ध साधक थे। वे अपने जन्मजात संस्कारवश नारीमात्र को विश्वजननी का अंश मानते थे। इसीलिए वे वीराचारी साधना की अब तक की निगूढ़ क्रियाओं की कठोर परीक्षा में अनायास उत्तीर्ण होते आये थे।

जैसा कि ठाकुर के कृपापाय अक्षय कुमार सेन ने लिखा है, वीराचारी तंत्रसाधक को 'शक्ति' को ग्रहण कर मंत्रपुटित अभिचार और मैथुनादि क्रियाएँ करनी पड़ती हैं। किन्तु ठाकुर को वह सब नहीं करना पड़ा। स्वयं ठाकुर से इस विषय के अनुभवों का विवरण सुन कर सेन महोदय ने लिखा है कि बिना जल स्पर्श किए ठाकुर ने मछली पकड़ ली।

वामाचारी वीरभाव की साधना में रामकृष्ण को व्रती बना कर भी योगेश्वरी भैरवी जान रही थीं कि ठाकुर अत्यन्त सत्त्वगुणी साधक हैं। इसलिए वे, इस साधना के स्थूल अंगों का उनसे अनुष्ठान न कराके, सभी उपादानों का स्पर्श-मात्र कराती गयी थीं।

उस दिन गंभीर रात्रि में, ठाकुर पंचवटी स्थित पंचमुंडी आसन पर बैठे थे। उसी समय भैरवी अपने साथ एक स्त्री को लेती आईं। वह स्त्री शुभ लक्षणों से युक्त अत्यन्त सुन्दर और पूर्ण यौवना थी।

भैरवी ने अपनी झोली से पूजा-उपचार की बहुत-सी सामग्रियाँ निकाल कर उन्हें वेदी के समाने सजा दिया। युवती को सामने लाकर वे ठाकुर से बोलीं, ''बाबा, देवी का ध्यान करो और तंत्रशास्त्र के अनुसार इसकी पूजा करो।''

ठाकुर ने बिना कुछ बोले उस स्त्री की पूजा की। पूजा समाप्त होने पर भैरवी ने स्त्री को निर्वस्त्र कर दिया और ठाकुर से कहा, ''बाबा, इस नंगी स्त्री की गोद में बैठ कर तुम्हें जप करना होगा और उस जप में तुम्हें सिद्ध होना पड़ेगा।''

भैरवी का यह आदेश सुनकर ठाकुर भय-संकोच में पड़ गये। मन ही मन वे अपनी इष्ट देवी जगदम्बा से प्रार्थना करने लगे, ''माँ, मुझमें विद्या-बुद्धि नहीं है, साधन-भजन का बल नहीं है। मैंने एकान्त निष्ठा से तुम्हारी शरण ली है। तुम भैरवी के मुख से मुझे यह कैसा आदेश दे रही हो? अपने इस दुर्बल सुत की कैसी परीक्षा ले रही हो?''

इस आकुल प्रार्थना के साथ ही ठाकुर के देह-मन में विपुल शक्ति का संचार हो आया और वे भैरवी के निदेशानुसार उस नग्न स्त्री की गोद में जा बैठे। उसी क्षण वे प्रगाढ़ गंभीर ध्यान में डूब गये।

बाह्य ज्ञान लौटने पर उन्होंने देखा कि भैरवी गंगाजल से उनका मुँह पोंछ रही हैं और पंखा झल कर उन्हें सुस्थ-शांत करने की चेष्टा कर रही हैं।

भैरवी स्व-आत्मोत्फुल्ल हो रही थीं। बोलीं, ''बाबा, तुम्हारी क्रिया पूर्ण हो गयी। दूसरे साधक इस अवस्था में कुछ ही देर तक जप करते-करते उत्तेजित हो जाते हैं, लेकिन तुम तो एकबारगी देहबोधशून्य होकर समाधिस्थ हो गये!''

ठाकुर रामकृष्ण जगज्जननी के प्रति अन्तर्मन से कृतज्ञ हो रहे थे। सजल नेत्रों से वे बार-बार जगदम्बा के चरणों में प्रणाम करने लगे।

अन्य एक दिन भैरवी नर-खप्पर में मछली राँध कर ले आयीं। पहले तो उन्होंने पंचवटी में बैठकर माँ जगदम्बा को उस राँधी हुई मछली का भोग लगाया और तत्पश्चात् ठाकुर से कहा, ''लो बाबा, माँ की प्रसादी ग्रहण करो।'' पंचवटी को 'माँ-माँ!' की ध्वनि से गुंजित करते हुए ठाकुर ने उस प्रसाद को खा लिया और उस दिन के लिए निर्धारित जप-ध्यान और अनुष्ठान करने बैठे गये।

और एक दिन भैरवी एक बरतन में सड़ा-गला नरमांस ले आयीं। 'तो क्या आज अन्ततः नरमांस का प्रसाद खाना पड़ेगा?'—यह सोच कर ठाकुर विचलित हो गये। संस्कारवश घृणा से उनका जी मिचलाने लगा। भय से घबरा कर वे बोले, 'यह क्या कभी हो सकता है?'

''इस महामांस का भक्षण इस साधना का महत्वपूर्ण अंग है। जब तुमने इतना-कुछ किया है तो अंत में यह क्रिया भी पूरी कर ही लो; घृणा मत करो।'' इतना कह कर भैरवी ने स्वयं बरतन से थोड़ा-सा गलित नरमांस उठाकर निर्विकार भाव से अपने मुँह में डाल लिया।

इस घोर संकट की स्थिति में ठाकुर जगदम्बा को पुकारते हुए भावाविष्ट हो गये। अकस्मात् उनमें रूपान्तर हुआ और वे चामुंडा देवी के भयंकर भाव में उद्दिप्त हो उठे। आँख-मुख पर एक अपूर्व दृढ़ता आ गयी और गुरु-गंभीर आवाज से 'माँ-माँ!' पुकारने लगे। उसी समय भैरवी ने हँसते-हँसते उस गलित नरमांस का शेषांश ठाकुर के मुँह में डाल दिया। इस प्रकार उस दिन की निर्धारित साधना पूरी हुई।

एक और दिन भैरवी ने अपने इस शिष्य के लिए एक विशेष प्रकार की क्रिया का आयोजन किया। उसके संबंध में भक्तप्रवर अक्षयकुमार सेन ने लिखा है कि उस दिन भैरवी कहीं से प्रणयी स्त्री-पुरुष के एक जोड़े को ले आईं और ठाकुर से कहा कि बाबा, तुम दिव्य भाव से जप करो और सुसंयत भाव से स्त्री-पुरुष को संभोगावस्था में देखो। ध्यान रखना कि मन चंचल न होने पावे। यह पुरुष-प्रकृति का संयोग है। इसी को शिव-शक्ति का मिलन कहते हैं। यही कोटि-कोटि ब्रह्मांडों का उद्‌गम-क्षेत्र है।

ठाकुर अविलम्ब ही बाह्य ज्ञानशून्य होकर समाधिलीन हो गये। ध्यान टूटने पर उनसे ब्राह्मणी बोलीं, ''आज हर्षातिरेक में मैं कुछ भी कहने में असमर्थ हो रही हूँ।''

मातृरूपिणी, गुरुरूपिणी भैरवी योगेश्वरी का दैवादिष्ट कर्त्तव्य पूरा हो गया। तरुण साधक रामकृष्ण को तंत्रोक्त साधना में पूर्ण सिद्ध कर वे परम परितृप्त हो रही थीं।

स्नेह दृष्टि से रामकृष्ण को देखते हुए उन्होंने कहा, ''मेरा संकल्प पूरा हो गया। तुम तंत्रसिद्धि के आनन्दासन पर प्रतिष्ठित हो गये हो।''

तंत्र-साधना की एक बहिरंग अंतिम क्रिया बच रही थी। उसे भी भैरवी ने पूरा करा दिया। ठाकुर ने परवर्ती काल में अपने अंतरंग भक्तों से कहा था, ''एक अन्य भैरवी की सहायता से मुझे तंत्रविधान के अनुसार 'कुलागार' पूजा करनी पड़ी। उसे भैरवी को सवा रुपया दक्षिणा देकर संतुष्ट किया। यह वीराचारी साधना की अंतिम क्रिया थी। यह पूजा कालीमंदिर के मंडप में सब लोगों के सामने की गयी।''

अपनी तंत्र-साधना के संबंध में रामकृष्ण ने कहा है, ''इतने दिनों तक भैरवी ने मुझसे तंत्र-क्रियाएँ करायीं किन्तु माँ जगदम्बा की कृपा से मैं कभी भी किसी रूपसी रमणी को मातृरूप में देखने में तनिक भी विचलित नहीं हुआ। स्त्रियों के प्रति मेरा मातृभाव निरंतर अविचल, अटल रहा। लेकिन मैं कारण-वारि (तंत्रानुसार देवी को निवेदित मदिरा) कभी पी नहीं सका। कारण-वारि की गंध से ही, या उसका नाम सुनते ही मैं जगत्कारण स्वरूप परमात्मा के ध्यान में डूब जाता था और मेरा बाह्य ज्ञान लुप्त हो जाता था। उसी प्रकार 'योनि' शब्द सुन कर मुझे ब्रह्मयोनि का ध्यान आ जाता और मैं समाधिस्थ हो जाता था।''

सचमुच, माँ भैरवी योगेश्वरी और ठाकुर रामकृष्ण का मिलन एक अद्भुत मणि-कांचन संयोग ही था।

विधि-विधान मानकर रामकृष्ण ने विवाह अवश्य किया था किन्तु वे बाल-ब्रह्मचारी, ऊर्ध्वरेता पुरुष थे। उन्हें किसी तरह की सांसारिक भोगलालसा नहीं थी। वे त्याग-वैराग्य और अनासक्ति की जीवन्त मूर्ति थे।

उनकी तंत्रगुरु, भैरवी योगेश्वरी वामाचारी, दक्षिणाचारी—सभी तांत्रिक विधियों में पूर्ण पारंगत[१] थीं। सर्वोपरि बात यह थी कि उन्होंने तरुण साधक रामकृष्ण को संतान-रूप में ग्रहण किया था। तंत्र-साधना की प्रत्येक क्रिया को उन्होंने अपूर्व मनोयोग और निष्ठा से रामकृष्ण के द्वारा संपन्न कराया। हर कदम पर वे सतर्क रहती थीं। वैसी कर्मकुशल तत्पर गुरु नहीं मिली होती तो रामकृष्ण-जैसे आत्मभोला साधक से तंत्र-साधना के अनेक अभिचारों और क्रियाओं को विधिवत् सम्पन्न करा लेना कदापि संभव नहीं था।

---

[१] कहते हैं कि तंत्र-साधना की सर्वोच्च क्रिया, शव-साधना है। भैरवी ने रामकृष्ण से इस क्रिया का अनुष्ठान नहीं कराया। यह भी कहना कठिन है कि स्वयं भैरवी को इस क्रिया का ज्ञान था या नहीं।

रामकृष्ण अवश्य सात्त्विक गुणसंपन्न साधक थे किन्तु भावी लोकगुरु की भूमिका के लिए संक्षिप्त रूप से ही सही, स्पर्श को बचा कर ही सही, तंत्र-साधना का अनुष्ठान पूरा कर लेना उनके लिए अत्यावश्यक था।

उनके सात्विक गुणों का कुछ प्रभाव उनकी शिक्षागुरु, माँ भैरवी पर भी पड़ा। इस प्रसंग में स्वामी शारदानन्द के विचार मूल्यवान हैं। वे लिखते हैं :

''ब्राह्मणी के आगमन के समय रामकृष्ण का अन्तर्मन ईश्वर के प्रति मातृभावना से पूर्णतः ओतप्रोत था। संसार के सभी जीवों और पदार्थों में, विशेषतः स्त्री जाति में, वे श्री जगदम्बा का साक्षात् प्रकाश अनुभव करते थे। यही कारण है कि भैरवी को देखते ही उन्हें वे 'माँ' कहकर संबोधित करने लगे। वे अपने को ब्राह्मणी का बालक मान कर उनकी गोद में बैठ जाते और उनके हाथ से आहार ग्रहण करते थे।

''हृदय के मुँह से हमने सुना है कि कभी-कभी ब्राह्मणी ब्रजगोपी के भाव से आविष्ट होकर मधुर-रस के गीत गाने लगतीं। उस समय ठाकुर कहते, 'मुझे यह भाव अच्छा नहीं लगता है' और इस भाव को रोक कर मातृभाव से परिपूर्ण गीत गाने के लिए ब्राह्मणी से अनुरोध करते। ब्राह्मणी भी रामकृष्ण की मनोदशा समझ कर, उनकी प्रसन्नता के लिए तत्काल श्री श्री माँ जगदम्बा की दासी के रूप में मातृगीत गाना शुरू कर देतीं अथवा, नन्दरानी माँ यशोदा के भाव से बालगोपाल के प्रति उल्लासपूर्ण गीत गाने लगतीं। यह निश्चय ही ठाकुर के मधुर-रस-साधना शुरू करने के बहुत पहले की बात है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि ठाकुर के मन में 'भावके घर में चोरी' की बात लेशमात्र भी नहीं थी।''

पता नहीं है कि तंत्र-साधिका भैरवी योगेश्वरी के कितने शिष्य थे। उन्होंने स्वयं विस्तारपूर्वक बतलाया था कि रामकृष्ण से मुलाकात होने के पहले उन्होंने दो शिष्यों को तंत्रसिद्ध करने का प्रयास किया था। इन दोनों के नाम थे, चन्द्र और गिरिजा।

पहले दिन ही भैरवी ने रामकृष्ण को बताया था, ''बाबा, तीन व्यक्तियों को साधना में सहायता देने के लिए मुझे देवी का आदेश मिला था। दो व्यक्तियों से तो भेंट हो गयी, केवल तुम बचे थे। आज तुम मिल गये।''

भैरवी ने कथा-प्रसंग में रामकृष्ण को चन्द्र और गिरिजा की साधना और सिद्धि की बात बताई थी। यह भी आश्वासन दिया था कि वे उन दोनों से ठाकुर की भेंट करा देंगी।

भैरवी के आग्रह से चन्द्र और गिरिजा उत्साहपूर्वक आकर ठाकुर से मिले। उन लोगों के साथ ठाकुर का अच्छा प्रेम संबंध बन गया।

उन लोगों की साधना संबंधी उन्नति के विषय में ठाकुर के विचार हमें स्वामी शारदानन्द से प्राप्त हुए हैं। उन्होंने लिखा है, "ठाकुर से सुना कि वे दोनों उच्चकोटि के साधक थे। साधन-पथ पर बहुत दूर तक बढ़ जाने पर भी उन्हें प्राप्ति का लाभ नहीं हुआ। विशेष-विशेष शक्ति और सिद्धाई प्राप्त कर वे लोग पथभ्रष्ट हो गये।"

चन्द्र स्वभावतः भावुक प्रकृति के व्यक्ति थे। भरपूर ईश्वरप्रेम से उच्छ्वसित रहते थे। भैरवी योगेश्वरी की कृपा से उन्हें द्रव्यगुण की सिद्धि प्राप्त हुई थी। गुटिका-सिद्धि नामक एक विशेष सिद्धि उन्होंने अर्जित की थी। इस मंत्रपुटित गुटिका का बड़ा अलौकिक प्रभाव था। इसको धारण कर चन्द्र अदृश्य हो जाते थे और उस अवस्था में किसी भी दुर्गम स्थान में चले जा सकते थे।

शक्ति-लाभ के विभिन्न स्तरों को पार करने के बाद तांत्रिक साधक को शक्ति के प्रति, आधाशक्ति महेश्वरी के प्रति, सावधान रहना पड़ता है और अन्ततः वह उसी परम सत्ता में निर्वाण प्राप्त करता है। किन्तु साधन-पथ पर उपलब्ध शक्ति के अपव्यय और व्यभिचार के कारण अनेक अभागे साधकों का जीवन व्यर्थ हो जाता है। चन्द्र भी ऐसे ही एक अभागे साधक थे।

गुटिका-सिद्धि की प्राप्ति के बाद भावुक-स्वभाव चन्द्र दैहिक सुख, इन्द्रिय-संभोग-सुख की ओर झुक गये। सिद्धि-लाभ के थोड़े ही दिनों बाद वे एक धनी व्यक्ति की रूपसी कन्या में आसक्त हुए और तांत्रिक सिद्धाई के बल पर उसके घर जाने लगे। भोग-लालसा दिनोंदिन बढ़ती गयी।

फल यह हुआ कि उनकी सिद्धाई नष्ट हो गयी और एक दिन उस लड़की के साथ प्रणय-अभिसार करते समय वे पकड़े गये।

भैरवी के आग्रह पर चन्द्र ठाकुर से मिलने दक्षिणेश्वर आये थे। वे कुछ दिनों तक ठाकुर के साथ रहे भी। ठाकुर ने उन्हें सिद्धाई के अपव्यय और दुष्परिणामों के प्रति सावधान भी किया था। लेकिन, स्पष्ट है कि चन्द्र ने उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया और अंततः अहंभाव और कामिनी-कंचन की उग्र वासना उन्हें पतन के गर्त में ढकेल कर ही रही।

परवर्तीकाल में जबकि उनका साधन-जीवन व्यर्थ हो गया था, भग्न मनोरथ चन्द्र बेलूर मठ में आकर रामकृष्ण के शिष्यों के साथ कुछ दिनों तक रहे थे। वे विषाद-खिन्न चित्त से परम शान्ति का पथ खोज रहे थे। 'रामकृष्ण लीला प्रसंग' नामक ग्रंथ में इसका वर्णन यों आया है :—

१८९९ ई० के जून महीने में पूज्यवाद स्वामी विवेकानन्द दूसरी बार इंग्लैंड और अमेरिका की यात्रा पर निकले। उसके कुछ समय बाद बेलूर मठ में एक दिन सहसा एक व्यक्ति आये और 'चन्द्र' नामसे अपना परिचय दिया। वे एक

महीने से कुछ अधिक समय तक मठ में रहे। उन दिनों पूजनीय स्वामी ब्रह्मानन्द हमेशा मठ में रहते थे। उनके साथ इन व्यक्ति को अनेक बार एकान्त में बातचीत करते हमलोगों ने देखा था।

"सुना है, वे स्वामीजी से बार-बार पूछा करते थे—आप क्या यहाँ कुछ देखते हैं"—अर्थात्, क्या ठाकुर की जाग्रत् सत्ता का अनुभव करते हैं ?—इत्यादि।

"वे कहा करते थे, ठाकुर ने उनके विषय में जो कुछ कहा था, वह सब घटित हुआ है। ठाकुर ने उन्हें वचन दिया था कि उनके मरने के पूर्व उन्हें वे दर्शन देंगे। उसी आश्वासन को घटित होना बाकी है।"

"वे प्रतिदिन मठ के ठाकुर-घर में जाकर बड़े भक्तिभाव से जपध्यान किया करते थे। उस समय उनकी आँखों से प्रेमाश्रु झड़ते थे। ठाकुर के संबंध में किसी-किसी के जिज्ञासा करने पर वे बड़े आनन्द से बात करते थे। हमलोग उन्हें अत्यन्त शांत प्रकृति के व्यक्ति समझते थे। उन्हें हमेशा एक स्थान पर स्तब्ध भाव से बैठा देख कर, और कभी-कभी आँखें मूँदे देखकर, एक दिन किसी ने उनकी हँसी उड़ाते हुए पूछा—'क्या आपको अफीम खाने का अभ्यास है?' उन्होंने अत्यन्त विनीत भाव से उत्तर दिया था—"मैंने आपलोगों के प्रति कौन-सा अपराध किया है कि आप ऐसी बात कह रहे हैं?"

किसी समय के तंत्रसिद्ध, प्रतापी साधक चन्द्र के जीवन में उन दिनों घोर पश्चात्ताप, आत्म-समर्पण और अहं-हीनता का भाव था। उन्होंने वैष्णवी दीनता, आडंबरहीनता, त्याग-तितिक्षा का मार्ग स्वीकार कर लिया था।

इस संबंध में स्वामी शारदानन्द लिखते हैं :—"वे प्रथम प्रणामकाल में ठाकुर-घर में जाकर ठाकुर की मूर्त्ति को 'दादा' कह कर सम्बोधित करते और प्रेम-भाव से अभिभूत होकर रोते रहते। देखने में वे साधारण आदमी जैसे लगते थे। उन्होंने गेरुआ वस्त्र या तिलक धारण नहीं किया था। सामान्य एक धोती पहनते थे, शरीर पर एक चादर और हाथ में एक बैग रहता था। बैग के भीतर वे पहनने की एक धोती, गमछा और संभवतः पानी पीने के लिए एक लोटा रखते थे। वे कहते थे, प्रायः वे इसी रूप में तीर्थ-पर्यटन करते हैं।

"स्वामी ब्रह्मानन्द ने, विशेष आदर और आग्रह से, मठ में स्थायी रूप से रहने का उनसे अनुरोध किया था। उन्होंने इस अनुरोध को स्वीकार करते हुए कहा भी, मैं घर जाकर जगह-जमीन का बन्दोबस्त करके आता हूँ, तब स्थायी रूप से यहाँ रहूँगा। किन्तु वे आज तक लौटे नहीं। इस प्रसंग में वर्णित चन्द्र संभवतः वे ही थे।"

भैरवी के दूसरे शिष्य, गिरिजा के संबंध में, ठाकुर रामकृष्ण अनेक कहानियाँ सुनाया करते थे।

अपने नए शिष्य, रामकृष्ण से परिचय कराने के लिए भैरवी ने गिरिजा को दक्षिणेश्वर बुलाया। किन्तु उस समय गिरिजा शायद नहीं आये। आये, भैरवी के दक्षिणेश्वर से चले जाने के बाद।

ठाकुर का त्याग-वैराग्य, दिव्योज्ज्वल मूर्ति और दक्षिणेश्वर मंदिर का परिवेश देखकर गिरिजा बड़े प्रसन्न हुए। वे ठाकुर के साथ कुछ दिनों तक दक्षिणेश्वर में रहे।

उन दिनों ठाकुर ने गिरिजा की एक अलौकिक सिद्धाई देखी थी।

दक्षिणेश्वर कालीबाड़ी के बगीचे के पास ही सिंदूरपट्टी के धनी-मानी व्यक्ति, शंभु मल्लिक का बगीचा था। सब लोग जानते थे कि शंभु मल्लिक और उनकी पत्नी ठाकुर के परम भक्त हैं। ठाकुर अपने भक्तों से कहा करते थे, 'शंभु मल्लिक मेरे दूसरे रसददार हैं।' मथुरनाथ विश्वास की मृत्यु के बाद ये ही ठाकुर के लिए आवश्यक सामान और रुपए-पैसे का जोगाड़ करते थे।

शंभु मल्लिक ने दक्षिणेश्वर मंदिर के पास ही थोड़ी जमीन लिख कर उसपर ठाकुर की पत्नी शारदा देवी के लिए घर बनवा दिया था, जहाँ माँ शारदा देवी कुछ दिनों के लिए रहीं भी। शंभु मल्लिक की पत्नी माँ शारदामणि की बड़ी आंतरिक श्रद्धा करती थीं। प्रत्येक जयमंगल व्रत के अवसर पर वे देवी के रूप में माँ शारदा की चरणपूजा करती थीं।

एक दिन ठाकुर भैरवी के शिष्य गिरिजा को साथ लेकर शंभु मल्लिक के बगीचे में टहलने गये। शंभु मल्लिक बड़े प्रसन्न हुए और बड़े सत्कार से दोनों को बैठकखाने में बैठाया। ठाकुर जहाँ-कहीं जाते थे, ईश्वर प्रसंग लेकर दिव्य आनन्द में मतवाला हो जाते थे। उस दिन भी कुछ वैसा ही हुआ।

बातचीत के दरम्यान हँसी-आनन्द में काफी रात हो गयी। गिरिजा के साथ ठाकुर काली मंदिर की ओर चले।

एक तो जंगल-झाड़ का रास्ता, दूसरे रात का गहन अंधकार। गिरिजा का हाथ पकड़े-पकड़े कुछ दूर जाने पर ठाकुर खेदपूर्वक कहने लगे, ''अब तो इस रास्ते से जाना ही है। लौटने की जल्दवाजी में सोचा भी नहीं कि शंभु के यहाँ से एक लालटेन ले लेना चाहिए।''

गिरिजा ने समझा कि अँधेरे के कारण ठाकुर को कष्ट होता है। बोले, ''दादा, तुम स्थिर खड़े रहो, मैं रोशनी जला कर तुम्हें रास्ता दिखलाता हूँ।''

इतना क़ह कर गिरिजा ने अपनी एक अद्‌भुत सिद्धाई दिखलायी। पीछे घूम कर पता नहीं उन्होंने कौन-सा मंत्र पढ़ा कि तुरत उनकी पीठ से प्रकाश की एक धारा निकली जिससे वह दुर्गम रास्ता प्रकाशित हो गया।

जैसा कि ठाकुर ने अपने भक्तों को बतलाया, ''उस प्रकाश में काली–बाड़ी के फाटक तक सब जगह स्पष्ट दिखलाई पड़ती थी। मैं उस रोशनी में अपने घर चला आया।''

इस प्रसंग में ठाकुर ने कहा कि चन्द्र और गिरिजा की अद्‌भुत सिद्धाई अधिक दिनों तक टिक नहीं सकी।

अपने शरीर की ओर उँगली से संकेत कर ठाकुर यह भी बोले, ''इस खोल में भी वे सब सिद्धियाँ आयी थीं और कुछ दिनों तक वास करके चली गईं।''

तरुण भक्तगण शांतिपूर्वक ठाकुर से यह सब कहानी सुन रहे थे। उन लोगों के मन में तरह–तरह की बातें उठती थीं। एक जिज्ञासु भक्त पूछ ही बैठा, ''मैं समझ नहीं रहा हूँ कि ऐसा क्यों हुआ।''

अपनी देह की ओर इशारा करते हुए ठाकुर ने शांत स्वर में कहा, ''इसके कल्याण के लिए ही माँ ने सभी सिद्धाई खींच ली। उसके बाद तो मन उन सब बातों को छोड़कर एकान्त ईश्वरमुखी हो गया।''

अपने प्रथम दोनों शिष्यों, चन्द्र और गिरिजा, की ठाकुर रामकृष्ण से भेंट कराने के लिए भैरवी बहुत व्यग्र हुई थीं। क्या वे जानती थीं कि वे दोनों अपनी तंत्र–सिद्धियों का दुरुपयोग करेंगे? क्या वे इसीलिए उनलोगों को सत्त्वशुद्ध दिव्य–भाव–संपन्न महासाधक रामकृष्ण के सान्निध्य में रहने के लिए बुला रही थीं जिससे कि वे लोग उन्नत साधन–स्तर पर स्थापित हो सकें?

भैरवी की दृष्टि में रामकृष्ण ही उनके सर्वोत्तम शिष्य थे। उन्हें विश्वास था कि रामकृष्ण ने सत्–संस्कारों के साथ जन्म लिया है और भावी लोकगुरु की भूमिका के लिए चिह्नित होकर आये हैं। इसीलिए वे भी अपनी समस्त शक्ति लगाकर इस तरुण शिष्य के आध्यात्मिक जीवन को सुदृढ़ आधार पर प्रतिष्ठित करने के लिए प्रयत्नशील हुई थीं। केवल इतना ही नहीं, वे अपने इस अध्यात्म–पुत्र के साथ दीर्घ छः वर्षों तक रहीं और उन पर सदा अपनी कल्याणमयी दृष्टि रखती थीं। रामकृष्ण की इन गुरुरूपिणी, मातृरूपिणी भैरवी की प्रशंसा में स्वामी शारदानन्द लिखते हैं :—

''ठाकुर के अलौकिक भावावेश और शक्तिप्रकाश को देखकर ब्राह्मणी कभी–कभी स्तंभित रह जाती थीं लेकिन अपने प्रति ठाकुर के मातृभाव, निर्भरता और अटूट विश्वास को देखकर उनका आंतरिक कोमल मातृत्व सदा उद्‌वेलित रहता और वे उसी में सब कुछ भूल जाती थीं। उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं कि ठाकुर की तनिक भी प्रसन्नता के लिए अशेष कष्ट सहना भी उन्हें स्वीकार था। वे दूसरों से उनकी सदा रक्षा करती थीं और साधना में निरत रहने के लिए सतत उनकी सहायता करती रहती थीं।''

''विशिष्ट अधिकारी शिष्य को शिक्षा-दान करने का सुयोग पाकर गुरु के हृदय में भी परितृप्ति और आत्मतोष का भाव जगता है। ब्राह्मणी ने इसके पहले कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि इस युग में भी आध्यात्मिक जगत् में ठाकुर-जैसा उत्तम अधिकारी जन्म ले सकता है। इसलिए हम अनुमान कर सकते हैं कि ठाकुर को शिक्षा देने का अवसर पाकर ब्राह्मणी को कितना आनन्द हुआ होगा। यही कारण था कि ठाकुर के प्रति उनका अकृत्रिम वात्सल्य-भाव था। इसलिए यदि वे अपने स्वाध्याय और तपस्या का समस्त फल ठाकुर को थोड़े ही दिनों में अनुभव करा देने के लिए व्यग्र थीं तो इसमें आश्चर्य ही क्या?''

तंत्र साधना के बाद ठाकुर के मन में अवतार-पुरुष श्रीरामचन्द्र की आराधना का भाव जगा। उनके अध्यात्म-जीवन के लिए जगज्जननी ने पहले से ही इसका प्रबन्ध कर रखा था।

उन्हीं दिनों जटाधारी नामक एक रामायत साधु दक्षिणेश्वर आये। उनके पास बालक श्रीराम की एक नयन-मन-लोभन मूर्ति थी जिसे वे रामलला कहते थे और उसे हमेशा अपने साथ लेकर चलाफिरा करते थे; अपार निष्ठा से उसकी सेवा-पूजा किया करते थे।

ये रामलला जितने ही जाग्रत् थे, उतने ही चंचल भी। धातु की बनी मूर्ति में सूक्ष्म रूप से निहित श्रीराम को ठाकुर ने अपनी दिव्य दृष्टि से पहचान लिया। वे देखते थे कि साधु जटाधारी कितने प्रेम से उस मूर्ति को रसपूर्ण मीठे फल और मिठाई निवेदन करते हैं और दिव्यदेही रामलला साधु के साथ कितना खेल करते हैं।

रामलला की सेवा-पूजा और दिव्य लीलाएँ ठाकुर नित्य-प्रति देखा करते। हठात् उन्होंने एक दिन देखा कि रामलला उनके ही पीछे लग गये हैं और उनके ही प्रेम में व्यस्त हो रहे हैं। उनके पीछे-पीछे घूमने लगे हैं, स्नान के समय दौड़धूप कर सामान इधर-उधर कर दिया करते हैं। भोजन के समय भी उनके तरह-तरह के उपद्रव शुरू हो जाते हैं।

रामकृष्ण के मन में इच्छा हुई कि वे साधु जटाधारी से राममंत्र की दीक्षा ले लें और बालक श्रीराम की आराधना करें। इसके लिए उन्हें शीघ्र ही माँ भवतारिणी की अनुमति मिल गई। शिक्षागुरु भैरवी भी इसके लिए सहमत हो गईं। उन्होंने कहा, ''बाबा, तुम्हारे कुल देवता हैं श्री श्री रघुवीर। उनके श्रीविग्रह की नित्य पूजा करने के लिए तुमने बचपन में राममंत्र की दीक्षा ली थी। इस बार जटाधारी से फिर दीक्षा ले लो और बालक श्रीराम के लीला-रस का आस्वादन करो। लोकगुरु होने के लिए सब रस, सब भाव की जानकारी आवश्यक है।''

वात्सल्य-रस की इस साधना में ठाकुर शीघ्र ही डूब गये। रामलला अपनी धातुमूर्ति से निकल कर दिव्य देह में उनके साथ हमेशा घूमने-फिरने लगे। दोनों के बीच कितने ही तरह के मान-मनौअल, अभिमान-अभियोग के प्रेम-व्यापार अविरत चलने लगे।

रामलला अपने दीर्घायत कमलनेत्रों से रामकृष्ण को देखकर हँसते और हँसते-हँसते लोटपोट हो जाते थे। कभी ठाकुर से डाँट-फटकार सुनकर या चाँटा खाकर वे अपने लाल-लाल ओठ फुला कर रूठ जाते थे।

एक दिन रामलला कुछ खाने की जिद करने लगे। पास में कुछ नहीं पाकर ठाकुर ने धान का लावा उनके मुख में डाल दिया। लावे में धान का कुछ भूसा लगा रह गया था, जिसकी तेज नोक से रामलला का कोमल मुँह कट गया। फिर तो उनके रोने का क्या कहना!

रामलला के रोने से, वात्सल्य-रस-परिपूर्ण ठाकुर को घोर दुःख हुआ। उनकी आँखों से झर-झर आँसू गिरने लगे। बार-बार कहने लगे, ''हाय रे! ...... माँ कौशल्या जिसको अपना नयन-रतन कहती हैं, जिसे बड़े प्रेम से गोद में बैठा कर खीर-मक्खन खिलाती हैं, उसके मुँह में मैंने भूसा लगा हुआ लावा डाल दिया। मैं कितना अभागा, कितना निष्ठुर हूँ!''

परवर्ती समय में जब भी कथा-प्रसंग में उस दिन की दुखद घटना की याद आती, ठाकुर व्याकुल होकर रो पड़ते थे। भक्त लोग ठाकुर की दशा देखकर विस्मित रह जाते थे।

ठाकुर और रामलला का पारस्परिक प्रेम दिनोंदिन प्रगाढ़ होता गया। श्रीविग्रह का वह ज्योतिर्मय रूप ठाकुर को छोड़ना ही नहीं चाहता था।

एकदिन साधु जटाधारी अश्रु-छलछल आँखें लिये ठाकुर के पास आकर कहने लगे, ''रामलला बड़े कृपालु हैं। उन्होंने आज अपने ज्योतिर्मय रूप में दर्शन देकर मेरे अन्तर की प्यास बुझा दी है। उन्होंने मुझसे कहा है कि वे अबसे यहीं रहेंगे, किसी भी हालत में तुम्हें छोड़ कर जाना नहीं चाहते हैं। ठीक ही है। रामलला की खुशी ही मेरी खुशी है। उनकी इच्छा पूर्ण हो। वे जहाँ रहना चाहते हैं, वहीं खुशी से रहें। मुझे इसके लिए तनिक भी दुःख नहीं है।''

रामलला की धातु-मूर्ति को ठाकुर के पास छोड़कर साधु जटाधारी यात्रा पर निकल गये। ठाकुर से फिर कभी उनकी भेंट नहीं हुई।

वात्सल्य-भाव की साधना पूर्ण कर लेने के बाद ठाकुर मधुर भाव की साधना के लिए व्यग्र हो उठे। जिस समय, जिस प्रकार की साधना करने की इच्छा होती, वे दौड़े-दौड़े माँ भवतारिणी का आदेश प्राप्त करने जाते। माँ का आदेश मिलने पर वे उस साधना में पूर्ण निष्ठा से व्रती हो जाते। मधुर भाव की

साधना के लिए माँ की अनुमति मिल जाने पर दृढ़ संकल्प के साथ वे उसमें सिद्धकाम भी हुए।

उस समय भी भैरवी योगेश्वरी ठाकुर की अभिभाविका थीं। कोई भी आध्यात्मिक कार्य शुरू करने के पहले ठाकुर उनसे पूछ लेते थे। भैरवी प्रायः प्रतिदिन दक्षिणेश्वर के काली मंदिर में आती थीं। कभी-कभी ठाकुर ही हृदय के साथ भैरवी के वासस्थान पर चले जाते थे।

ठाकुर का मधुर भाव की साधना करने का विचार सुन कर भैरवी बड़ी प्रसन्न हुईं। बोलीं, ''यह तो बड़े आनन्द की बात है। साधना में सिद्ध होने की योग्यता तुममें सब लोगों से अधिक है। तुममें त्याग-वैराग्य और अनासक्ति है और तुममें कामवासना लेशमात्र भी नहीं है। तुम गोपी प्रेम, राधा प्रेम के श्रेष्ठ आधार हो।''

भैरवी ने केवल भावावेशवश होकर यह सब नहीं कहा। रामकृष्ण ने सरलचित्त बालक की तरह अपने साधन जीवन की सभी समस्याओं, संकटों और परीक्षाओं का एक-एक विवरण भैरवी को पहले ही सुना रखा था। स्वयं भैरवी को रामकृष्ण की वामाचारी तंत्र साधना के क्रम में उनके पूर्णतः कामजयी होने का परिचय-प्रमाण मिला था।

रानी रासमणि बड़ी भाग्यवती महिला थीं। उन्होंने रामकृष्ण के अभ्युदय और लीलानाटक के लिए ही दक्षिणेश्वर में रंगमंच तैयार कराया था। ठाकुर ने कहा भी था, ''रानी जगज्जननी की अष्टनायिकाओं में एक थीं। इसीलिए उन्होंने दक्षिणेश्वर मंदिर की स्थापना की थी जहाँ माँ की षोडशोपचार-पूजा और साधु-सतों के रहने और खाने-पीने की सुव्यवस्था थी।''

मंदिर के पुजारी, छोटे भट्टाचार्य ठाकुर रामकृष्ण पर पहले दिन ही रानी की नजर पड़ी और दिन-पर-दिन इस तरुण पुजारी की भाव-तन्मयता देखकर वे मुग्ध थीं। ठाकुर से संबद्ध अनेक घटना-प्रसंगों से वे समझ गई थीं कि ठाकुर को इष्ट-दर्शन उपलब्ध हुआ है और ये काली सिद्ध शक्तिमान् महापुरुष के रूप में दक्षिणेश्वर के कालीमंदिर में आविर्भूत हुए हैं।

किन्तु, साधना-क्रम में ठाकुर का दिव्योन्माद देखकर रानी सशंक हो गईं। कहीं अटूट ब्रह्मचर्य धारण करने और स्वाभाविक यौन-जीवन से सर्वथा विमुख रहने के कारण इनका माथा बिगड़ तो नहीं गया है?

रानी ने कुछ ऐसा प्रबन्ध किया कि ठाकुर को प्रलुब्ध करने के लिए एक रात दो सुन्दर वेश्याओं को ठाकुर के सोने के घर में भेज दिया गया। उन स्त्रियों ने जैसे ही ठाकुर का अंग-स्पर्श किया, ठाकुर 'माँ-माँ' चिल्लाने लगे और उनका बाह्य ज्ञान लुप्त हो गया।

ठाकुर के परम पवित्र शुद्ध शरीर के स्पर्श से दोनों वेश्याएँ विस्मित-चकित होकर मेज के ऊपर बैठ गईं। घोर पश्चात्ताप की ज्वाला में उनका अन्तर जलने लगा। ठाकुर के होश में आ जाने पर दोनों ने बार-बार उनसे क्षमा माँगी और प्रार्थना-प्रणाम कर अपने घर लौट गयीं।

मथुर बाबू ने ठाकुर को एक दिन कठिन परीक्षा में डाल दिया था। अपने सांसारिक जीवन में मथुर अनेक बार ठाकुर की शक्ति का परिचय पा चुके थे। अनेक संकटों में ठाकुर की कृपा से उनकी रक्षा हुई थी। वे भक्तिभाव से ठाकुर को बाबा कह कर संबोधित किया करते थे। किन्तु वे सोचते थे कि कठिन साधना और कठोर ब्रह्मचर्य व्रत के कारण यदि ठाकुर पागल हो गये तो मेरी रक्षा कौन करेगा।

मथुर ने ठाकुर के मुँह से सुना था कि ठाकुर नारी मात्र को मातृभाव से देखते हैं, जिस किसी स्त्री को देखते, उसे वे जगज्जननी का अंश-रूप मानते थे। इसलिए मथुर ने सोचा कि क्यों नहीं ठाकुर की अच्छी तरह परीक्षा कर ली जाय।

मथुर रानी रासमणि के दामाद थे। शहर के धनी और रसिक लोगों के साथ उनका उठना-बैठना होता था। वे स्वयं भी कुछ कम विलासप्रिय नहीं थे। उन दिनों लक्ष्मीबाई नामक एक परम सुन्दरी नर्तकी थी। जैसा उसका रूप, यौवन और आकर्षण था, वैसी ही वह नृत्यनिपुणा भी थी।

उस रमणी के साथ मथुर बाबू का गुप्त संबंध था। ठाकुर की परीक्षा लेने के लिए उन्होंने उस नर्तकी से कहा, ''तुम अकेले मत रहना। अपने जलसाघर में कुछ और नर्तकियों को बुला कर रखना। तुमलोग ठाकुर को मोहित-विचलित करना। इसके लिए अच्छा पुरस्कार मिलेगा।''

उस समय ठाकुर कुछ दिनों के लिए जानबाजार में रानी रासमणि के राजघर में रहने आये थे। एक दिन दोपहर में मथुर ने उनसे कहा, ''चलो बाबा, फीटन चढ़कर हमलोग थोड़ा हवा खा आएँ।''

ठाकुर उत्साहपूर्वक राजी हो गये। मैदान के चारों ओर चक्कर लगाकर संध्या समय मथुर लक्ष्मीबाई के मकान पर आ गये। वहाँ जलसाघर में हास्य-लास्यमयी नर्तकियों के बीच ठाकुर को छोड़कर मथुर खिसक गये।

झाड़-फानूस की रोशनी में जलसाघर झिलमिला रहा था। लक्ष्मीबाई और उसकी सुन्दर सहेलियों ने ठाकुर को घेर लिया।

ठाकुर विस्मित-चकित होकर बोल उठे, ''ओ मेरी माँ, आज तुम किस रूप में, किस साजसज्जा में मेरे सामने आ खड़ी हुई हो?'' इतना कहते-कहते, ठाकुर दिव्य भाव में आविष्ट होकर आनन्दोल्लासपूर्वक अपनी इष्टदेवी माँ श्यामा का आवाहन गीत गाने लगे।

धीरे-धीरे दिव्य भावावेश में ठाकुर का बाह्य ज्ञान लुप्त होने लगा। उन्हें ज्ञान ही नहीं रहा कि कब उनकी कमर से वस्त्र खिसक गया है। वे उद्भ्रांत, दिगम्बर हो गये।

लक्ष्मीबाई और उसकी सहेलियाँ को याद ही नहीं रहा कि वे सब किस काम के लिए एकत्र हुई हैं। जो योगियों का योग भंग कर देती हैं, साधारण संसारी लोगों को भेड़ बना देती हैं, वे ही रूपजीवा सुन्दरियाँ अपनी सम्पूर्ण शक्ति-सामर्थ्य खो बैठीं।

बाह्य ज्ञान लौटने पर ठाकुर मेज पर जा बैठे, आँखों में पुलकाश्रु भरे थे। वे गद्गद स्वर से अपना प्रिय श्यामा संगीत गाने लगे। तब तक नर्तकियाँ इन देवमानव की महिमा समझने लगी थीं। सबकी सब हाथ जोड़ कर ठाकुर के सामने खड़ी हो गयीं। उनमें से कोई-कोई मातृस्नेह वश ठाकुर को पंखा झलने लगीं।

उसी समय मथुर लक्ष्मीबाई के घर लौट आये। कमरे का दृश्य देखते ही वे समझ गये कि उनके इन कामजयी बाबा को डिगाना इन वारवनिताओं के सामर्थ्य से बाहर है। यह बाबा का माहात्म्य है कि ये नर्तकिया वात्सल्यमयी मातारूप में परिणत हो गयी हैं।

''चलो बाबा, अब ऐसा नहीं होगा। आज मुझे अच्छी शिक्षा मिली!''— कह कर मथुर रामकृष्ण को लेकर घर लौट आये।

भैरवी योगेश्वरी को रामकृष्ण ने ये सारी बातें एक-एक कर बतला दी थीं। इसलिए भैरवी अच्छी तरह जानती थीं कि रामकृष्ण पूर्णतः जितेन्द्रिय हैं। इसके अलावा, उनकी ही देख-रेख में ही तो रामकृष्ण ने तंत्र साधना के आनन्दासन को बड़ी सहजता से सिद्ध कर लिया था। अतः जैसे ही ठाकुर ने मधुर भाव की साधना करने की इच्छा प्रकट की, भैरवी ने तत्काल अपनी सहमति दे दी। बोलीं, ''बाबा, तुम्हारे समान शुद्ध सत्व आधारवाला व्यक्ति ही गोपी-प्रेम, राधा-प्रेम का रस धारण कर सकता है।''

ठाकुर शीघ्र ही मधुर रस के प्रेम-भाव की साधना में लीन हो गये। उनके शरीर में आठ प्रकार के सात्त्विक प्रेम विकार प्रकट होने लगे। साधना शेष होने पर महाभावमयी राधारानी और परम पुरुष श्रीकृष्ण का दर्शन पाकर वे आप्तकाम हो गये।

मधुर-भाव की साधना में भी भैरवी योगेश्वरी रामकृष्ण की सहायता करती रहीं। इस प्रसंग में स्वामी शारदानन्द ने लिखा है:—

''ठाकुर के श्रीमुख से हमलोगों ने सुना था कि ब्राह्मणी वैष्णवी पंचभावाश्रित साधना में भी पारंगत थीं। वात्सल्य और मधुर भाव की साधना में ठाकुर को उनसे कोई विशेष सहायता मिली थी क्या? इस विषय पर कभी

हमलोगों ने ठाकुर से, और हृदय से भी, सुना था कि बालगोपाल श्रीकृष्ण की मूर्ति में वात्सल्यभाव आरोपित कर वात्सल्य-साधना सिद्ध करने में और मधुरभाव की साधना में ब्राह्मणी से ठाकुर को कुछ-न-कुछ सहायता मिली ही थी। इन साधनाओं में उनसे विशेष सहायता नहीं मिलने पर भी इतना तो मानना पड़ेगा ही कि ब्राह्मणी से इन सभी प्रकार की साधनाओं की प्रशंसा सुन कर ही ठाकुर इन सभी भाव-साधनाओं के प्रति आकर्षित हुए थे।''[१]

एक दिन रामकृष्ण ने भैरवी से एक नयी साधना की बात कही। उन्होंने कहा, ''मंदिर में एक वेदान्ती महापुरुष आये हैं। उनका नाम है तोतापुरी महाराज। उन्होंने मेरी जाँच की है और कहा है, ''बेटा, तुम वेदान्त के उत्तम अधिकारी हो। तुम क्या मुझसे अद्वैत वेदांत की साधना सीखोगे?''

इस प्रस्ताव को सुनकर भैरवी चौंक गयीं। बोलीं, ''यह क्या बाबा? वह तो शुष्क-ज्ञान-साधना का मार्ग है। उस मार्ग पर जाने से तुम्हारा सब भाव-रस सूख जायगा।''

किन्तु रामकृष्ण को तो जगदम्बा की अनुमति मिल गयी थी। उन्होंने स्वयं भी समझ लिया था कि निर्विकल्प समाधि की स्थिति में पहुँचे बिना या अद्वैत सिद्धि उपलब्ध किये बिना उनका साधन-जीवन पूर्णांग नहीं होगा।

विभिन्न भावों और साधना-क्रियाओं को सिद्ध करने के बाद माँ भैरवी के सुयोग्य शिष्य रामकृष्ण अब अद्वैत-सिद्धि के महासागर-तट पर खड़े थे।

इस नयी साधना के लिए ठाकुर क्यों इतने व्यग्र हो रहे थे? परवर्ती काल में शिष्यों के पूछने पर उन्होंने कहा, ''समुद्र के किनारे रहनेवाले के मन में कभी-कभी विचार आता है कि देखना चाहिए, इस रत्नाकर के गर्भ में कैसे-कैसे रत्न छिपे पड़े हैं। उसी प्रकार, निरंतर माँ के साथ रहते-रहते, मेरे मन में होता था कि मैं अनन्तभावमयी, अनन्तरूपमयी माँ को सभी भावों, सभी रूपों में देखूँ। और, जिस भाव में, जिस रूप में उसे देखने की इच्छा होती, उसी भाव और रूप के लिए मैं व्याकुल हो जाता था। माँ भी इतनी कृपामयी हैं कि उस भाव और रूप को उपलब्ध करने के लिए जिस भी चीज की जरूरत होती, उसका वे स्वयं प्रबंध कर देतीं और उस भाव और रूप का दर्शन भी करा देतीं। इस तरह से मैंने विभिन्न मतों और पथों की साधना की थी।''

अस्तु, इस बार रामकृष्ण को जगज्जननी पराशक्ति की साधना करनी थी—अद्वैत सिद्धि की महासाधना। इसके लिए माँ भवतारिणी की अनुमति मिल जाने पर ठाकुर ने भैरवी की चेतावनी पर ध्यान नहीं दिया, और महावेदान्ती तोतापुरीजी महाराज को नये गुरु के रूप में वरण कर लिया।

---

[१] लीला प्रसंग, गुरु भाव, पूर्वार्द्ध।

ठाकुर ने न तो अपनी गर्भधारिणी माँ को बताया और न तंत्रगुरु भैरवी को ही, और चुपचाप मंदिर के एक निर्जन कमरे में वेदान्त-साधना करने बैठ गये। परम शुद्ध आधारवाले इस नये शिष्य को वेदान्त-साधना की दीक्षा देते ही, पुरी महाराज विस्मयचकित हो गये। ठाकुर आश्चर्यजनक तीव्र गति से निर्विकल्प समाधि के स्तर पर पहुँच गये और तीन दिन तीन रात तक उस स्थिति में रह गये। गुरु महाराज को ही उन्हें उस स्थिति से उतारना पड़ा।

आत्मज्ञानी महासाधक तोतापुरीजी आश्चर्य से बोले उठे, ''यह कैसी दैवी माया है!'' जिस निर्विकल्प समाधि को अर्जित करने के लिए उन्हें चालीस वर्षों तक कठोर साधना करनी पड़ी थी, उसे उनके तरुण शिष्य ने इतने थोड़े समय में उपलब्ध कर लिया!

साधारणतः तोतापुरी महाराज किसी स्थान पर तीन दिनों से अधिक नहीं रहते थे। किन्तु पवित्र गंगा-तट पर अवस्थित दक्षिणेश्वर की भूमि में तोतापुरी जी ने अपने इस नियम में ढील दी और वहाँ ११ महीने रह गये। उन्होंने इस अवधि में अपने प्रिय शिष्य को वेदान्त ज्ञान और साधना में पारंगत कर दिया।

तंत्रगुरु भैरवी को रामकृष्ण की यह अद्वैत-वेदान्त-साधना पसन्द नहीं थी। किन्तु वे ठाकुर की इस नवीन साधना और नवीन गुरु तोतापुरीजी महाराज की महत्ता को मान रही थीं। उन्होंने यह भी ज्ञान लिया था कि ठाकुर को इस नयी साधना के लिए माँ जगज्जननी का आदेश मिल गया है। सर्वोपरि बात यह थी कि निकट भविष्य में ठाकुर को युगाचार्य की भूमिका ग्रहण करनी थी, लोकगुरु होना था। इसलिए ध्यान-साधना के मार्ग से उन्हें वेदान्त की अद्वैत भूमि में पहुँचना ही था।

भैरवी योगेश्वरी देवी की साधना-सिद्धि का आज सही-सही मूल्यांकन करना संभव नहीं है। किन्तु, बंगाल में आकर जिन तीन शिष्यों—चन्द्र, गिरिजा और ठाकुर रामकृष्ण से उन्होंने तन्त्र साधना करायी, उनकी ही जीवन-कथा से हम समझ सकते हैं कि भैरवी योगेश्वरी किस कोटि की साधिका थीं और उनका साधन उत्कर्ष कैसा था।

इसमें संदेह नहीं कि भैरवी तंत्रसिद्धा साधिका थीं। उन्होंने वामाचारी, वीराचारी और वैष्णवी तंत्र की विशेष रूप से साधना की थी। ऐसा प्रतीत होता है कि उनका योगैश्वर्य भी कुछ कम नहीं था। कारण, अपने शक्तिबल से उन्होंने जान लिया था कि बंगाल के किन तीनों शिष्यों को तंत्र-साधना में सहायता देनी है। उन्होंने निर्भ्रान्त रूप से यह भी समझ लिया था कि इन तीनों शिष्यों में ठाकुर रामकृष्ण ही निकट भविष्य में युगाचार्य की भूमिका निभाने के लिए ही चिह्नित व्यक्ति हैं। यह बात उन्होंने उस समय ही समझ ली थी जब ठाकुर दक्षिणेश्वर के कालीमंदिर में, एक दिन, भक्तिमान् ब्राह्मण पुजारी-मात्र समझे जाते थे। मंदिर के

लोग उन्हें पगला छोटा भट्टाचार्य कहा करते थे। उन्हीं दिनों भैरवी ने दृढ़, कुंठाहीन स्वर में घोषित किया था कि रामकृष्ण एक ईश्वरप्रेरित महापुरुष हैं।

भैरवी के महत्त्व, महिमा और साधन-कुशलता का यह भी एक प्रमाण था कि उन्होंने रामकृष्ण से तंत्रोक्त सभी क्रियाएँ हाथोंहाथ संपन्न करा दी थीं जिसका परिणाम था कि ठाकुर का भावोच्छ्वासमय जीवन-मूल सुसंयत, सुदृढ़ रूप से तंत्र-साधना के आधार पर प्रतिष्ठित हो गया। उन्हें अणिमा, लघिमा आदि अष्टसिद्धियाँ उपलब्ध हुईं। उनके शरीर का रंग दिव्य उज्ज्वल प्रभा से झिलमिलाने लगा। सिद्ध जीवन की दीप्ति से उनका मुखमंडल उद्भासित हो चला। उनके सम्पर्क में आने वाले सभी स्त्री-पुरुष स्वीकार कर सहज भाव से उनके प्रति श्रद्धापूर्वक आकर्षित होने लगे।

अपनी तंत्र-सिद्धि के बल पर ठाकुर भी समझने लगे कि उनकी दैवनिर्दिष्ट भूमिका क्या है। स्वामी शारदानन्द लिखते हैं, तंत्र-साधना के प्रभाव से दिव्य शक्ति प्राप्त कर ठाकुर को एक और बात की अनुभूति हुई। श्री माँ जगदम्बा की कृपा से वे समझ गये कि बहुत-से लोग धर्म-शक्ति पाने के लिए उनके पास आनेवाले हैं। इस परम अनुभूति की बात उन्होंने हृदय और मथुर बाबू से कही थी। मथुर ने कहा, ''ठीक ही तो है, बाबा! हम लोग मिलजुल कर ख़ूब आनन्द मनाएँगे।''

ठाकुर की मधुर भाव की साधना में भी भैरवी का विशेष योगदान रहा। इस साधना से उद्भूत महाप्रेम के कारण ठाकुर के प्रति उत्तरकाल में असंख्य लोग आकृष्ट हुए और उनके ईश्वरचिह्नित शिष्य-पार्षद भी आये।

सिद्ध स्त्री-पुरुषों का वास्तविक रूप अन्य सिद्ध पुरुषों के द्वारा ही प्रकट होता है। ठाकुर ने सिद्धा भैरवी योगेश्वरी के विषय में कहा था, 'साधिका के हिसाब से, भैरवी योगेश्वरी का जन्म योगमाया के अंश से हुआ था।'[१]

रामकृष्ण की तंत्रसिद्धि के बाद भी भैरवी बहुत दिनों तक देवमंडल घाट पर रहती रहीं। अपनी कुटिया में बैठी जप-ध्यान करतीं, दक्षिणेश्वर आकर अपने अध्यात्मपुत्र रामकृष्ण को खीर-मक्खन खिलातीं—यही उनकी दिनचर्या थी।

तोतापुरीजी महाराज की कृपा से, ठाकुर के वेदान्त-सिद्धि प्राप्त करने के बाद भैरवी ने समझ लिया था कि उनकी और ठाकुर की साधन-जीवन धाराएँ अब अलग-अलग प्रवाहित होंगी। दोनों के विच्छेद में अधिक देर नहीं है।

१८६१ ई० में, ठाकुर और हृदय के साथ भैरवी भी ठाकुर के जन्मस्थान, कामारपुकुर गयीं। वहाँ पतिदर्शन के लिए किशोरी शारदामणि भी आयीं। स्थानीय भक्त, स्त्री-पुरुष दिनोंदिन बड़ी संख्या में जुटने लगे। वे ठाकुर का दर्शन करते, उनका उपदेश सुनते। बड़े आनन्द का परिवेश जम रहा था। किन्तु इस आनन्द-

---

१. लीला प्रसंग, द्वितीय भाग, ठाकुर की तंत्र-साधना।

मेले में भैरवी अपने को खपाने में असमर्थ थीं। उन्हें अपने साधन-जीवन में एक अतृप्ति का भाव पीड़ित कर रहा था।

एक दिन एक मामूली घटना के कारण रामकृष्ण के साथ भैरवी का विछोह हो ही गया। उस दिन अन्य भक्तों के साथ श्रीनिवास शाँखारी नामक एक भक्त ठाकुर का दर्शन करने आये। ठाकुर के आग्रह पर श्रीनिवास ने ठाकुर के गृहदेवता रघुवीरजी का प्रसाद खाया।

श्रीनिवास को देखकर और उनकी बातें सुनकर भैरवी बड़ी प्रसन्न थीं। प्रसाद खाने के बाद श्रीनिवास अपना जूठा पत्तल उठाने जा रहे थे। उसी समय भैरवी ने कहा, ''बाबा तुम यह पत्तल मत उठाओ, में ही उठाऊँगी।'' उनकी बात सुनते ही ठाकुर के भाँजे हृदय चिल्लाने लगे। भैरवी से कहा, ''तुमको गाँव-घर का रीति-रिवाज क्या मालूम? तुम ब्राह्मणी होकर शाँखारी का जूठा पत्तल उठाओगी, इससे लोग बिगड़ खड़े होंगे, और वह झमेला निबटाना पड़ेगा हमलोगों को। तुम अगर जूठा पत्तल उठावोगी तो मैं तुम्हें घर में घुसने नहीं दूँगा।''

इस बाताबाती में झगड़ा शुरू हो गया। भैरवी समझ गई कि रामकृष्ण के साथ उनके चिर विछोह की घड़ी आ पहुँची है। माँ जगज्जननी की इच्छा नहीं है कि वे अब अपने अध्यात्म-पुत्र रामकृष्ण के पास रहें। जंजीर तो जंजीर ही है, भले वह सोने की क्यों न हो! इस माया-बंधन को तोड़ कर उन्हें अपनी परम मुक्ति की खोज में निकल पड़ना होगा। वामाचारी साधना और मधुर भाव की साधना में उनके इतने दिन कट गये हैं, ऋद्धि-सिद्धियाँ भी जीवन मे प्राप्त हुईं किन्तु क्या उनकी जीवन-तपस्या पूर्ण हुई है? दिव्याचारी साधना और सिद्धि को लेकर इतना आगे बढ़ जाने पर भी वे अबतक अपनी चिर आराध्या महाशक्ति को, ब्रह्ममयी को, उपलब्ध नहीं कर पाई हैं।

इन सारी बातों पर विचार कर भैरवी ने अपना संकल्प निश्चित कर लिया। उन्हें अपने अध्यात्म-तनय रामकृष्ण के साथ का वात्सल्य-बन्धन खंडित करना ही होगा।

कई दिनों के बाद चिर-विदा का लग्न उपस्थित हुआ। भैरवी बगीचे से बहुत सारे फूल चुन कर ले आयीं। भावमग्न होकर भक्ति-संगीत गाते-गाते उन्होंने रंग-बिरंगे सुगन्धित फूलों की मालाएँ तैयार कीं और बड़े स्नेह से उन मालाओं को अपने बालगोपाल-रूप अध्यात्म-पुत्र रामकृष्ण के गले में पहना दिया; उनके गोरे शरीर पर चन्दन का लेप चढ़ाया और ध्यानमग्न होकर एकटक देखती रहीं।

तत्पश्चात् अपना त्रिशूल और गेरुआ वस्त्रों की झोली लेकर भैरवी विदा हो गयीं। आँखें अश्रुसिक्त थीं, शरीर भावतरंग में काँप रहा था।

कमारपुकुर से विदा होने के बाद भैरवी फिर कभी दक्षिणेश्वर नहीं आयीं और न बंगाल में ही कहीं दिखायी पड़ीं।

सुना जाता है कि 'रमता साधु, बहता पानी' की तरह भैरवी तीर्थों का भ्रमण करने के बाद किसी गहन वन में कठिन दिव्याचारी साधना द्वारा परम तत्त्व की उपलब्धि के लिए बैठ गयीं; जन-जीवन में फिर कभी नहीं लौटीं। उनका परवर्ती जीवन अज्ञेय रहस्य के कुहासे में ढँका है।

—प्रमथनाथ भट्टाचार्य के सौजन्य से

●

१६

सिद्धा परमेश्वरी बाई

जाड़े का मौसम। माघ का महीना बीत रहा था। उस दिन सबेरे से ही आकाश मेघाच्छन्न था। साँझ होते-होते प्रबल वेग से झड़-वर्षा शुरू हो गयी। घनकृष्ण आकाश के कलेजे को विदीर्ण कर बार-बार बिजली चमक जाती थी।

उन दिनों हिमालय में बर्फ का तूफान चल रहा था जिसकी शीतलहरी में वृन्दावन और सारा ब्रजमंडल ठिठुर रहा था। एक तो घोर जाड़े की रात, उस पर आँधी-तूफान के साथ अविरल वर्षा। कनकन ठंढी हवा हाड़ तक छेद रही थी।

यमुना के किनारे वृद्ध वैष्णव गुरु, बाबा दामोदर दास का श्रीनटवर कुंज था। कुंज क्या, एक छोटा-सा अखाड़ा था जहाँ तीन छोटे-छोटे कमरे थे। एक कमरे में श्रीनटवरजी और राधारानी की सेवा-पूजा होती थी। शेष दो कमरों में बाबाजी और उनके दो शिष्य रहते थे। आँगन में एक किनारे पक्की छावनीवाली गोशाला थी, जिसमें तीन गायें थीं। बाबाजी के लिए ये गौवें देवतुल्य पूजनीय थीं। वे इनकी सेवा-टहल में किंचित् भी त्रुटि नहीं होने देते थे।

उस रात की झड़-वर्षा में हवा के झोंके से बाबाजी की कुटिया का दीया बुझ गया था। एक किनारे पड़ी अँगीठी की आग भी बुझ चली थी। कठिन शीत में कँपकपी के कारण बाबाजी अपनी खटिया पर उठ बैठे। भजन की माला हाथ में लिये वे उस-खुस करने लगे। हाथ की माला को दीवार पर टाँग कर उन्होंने दिया जलाया और अँगीठी की आग को भी थोड़ा उकसा दिया।

थोड़ी देर बाद अस्तव्यस्त होकर वे जोर से पुकारने लगे, ''अरे नन्ददास, अरे मिठू लाल, तुमलोग उठो, जल्दी इधर आओ।''

बड़ा चेला नन्ददास बंगाली था। दूसरा, मिठू लाल ब्रजमंडल के एक ग्वाले का लड़का था। दोनों ने उस दिन कठिन परिश्रम किया था। मथुरा में हाट लगने का दिन था, इसलिए कुंज का नैमित्तिक काम-काज समाप्त कर दोनों बाजार करने पैदल ही मथुरा गये थे। बाजार में देव-पूजा के लिए आवश्यक वस्तुएँ खरीदने के बाद गौवों के लिए एक गाड़ी बिचाली, भूसा और चुन्नी खरीद कर दोनों कुंज लौट आए थे।

तब तक काफी रात हो गयी थी। दोनों व्यक्ति जाड़े और थकावट से अवसन्न हो रहे थे। जल्दी-जल्दी खाना-पीना समाप्त कर उन लोगों ने कोठरी में

लकड़ी का कुंदा जलाया और देह को थोड़ा गरमा कर खाट पर लेट गये। कुछ ही देर में उन्हें गहरी नींद आ गयी।

लेकिन इधर, बाबाजी महाराज चिल्ला-चिल्ला कर पुकार जो रहे थे।

अन्ततः दोनों गुरुभाइयों की नींद टूट ही गयी। खाट पर लेटे-लेटे दोनों फुसफुसाने लगे, 'कोई-न-कोई बहाना बना कर बाबाजी हमलोगों को बिछावन से उठा देंगे और जप-भजन के लिए बैठाएँगे।'

उनलोगों की यह खुसुर-फुसुर चल ही रही थी कि बाबा दामोदर दास जी ने क्रोधित होकर पुकारा, ''तुम लोग जल्दी उठो। सुनते नहीं हो कि एक गाय बार-बार रँभा रही है। जरूर कोई खर-बिचाली चुरा रहा है।''

मिट्ठू लाल ब्रज का रहनेवाला लड़का है। उसके प्रति बाबाजी को विशेष स्नेह है। इसलिए वह मौका मिलते ही शैतानी करने से नहीं चूकता है, बल्कि कभी-कभी बाबाजी को दो बात सुना भी देता। उसने बाबाजी की पुकार पर अपनी हिन्दी-बँगला मिश्रित जबान में उत्तर दिया, ''बाबा, इस झड़ वर्षा और ठंढ में चोर भी चोरी करने नहीं निकलता है। ऐसे समय में वे लोग भी आग तापते हैं या सोते हैं। आपका चिल्लाना सुन कर हमलोग तो जाग ही गये हैं, भगवान् नटवरजी की भी नींद उचट गयी है।''

''तुम चुप रहो, बन्दर-बच्चे! इस कुंज में बैठ-बैठ चिउड़ा-दही खाने में तुम तो यम के सहोदर हो! ठीक है, चोर नहीं आया है, लेकिन ऐसा भी तो हो सकता है कि गाय के गले की रस्सी कस गयी हो? सुन नहीं रहे हो, किस तरह रँभा रही है? अरे नन्द दास; तुम मिट्ठू लाल को साथ लेकर जाओ और देख आओ कि क्या बात है। गोमाता के लिए थोड़ा भींग भी गये तो क्या होगा?''

छाता और लालटेन लेकर दोनों चेले गोशाला में घुसे। गौओं के पास जाते ही वे विस्मय-विमूढ़ रह गये। देखा, उनके सामने एक मानव आकृति जमीन पर पड़ी है। सारा शरीर एक ऊनी चादर से ढँका है। यह कोई जीवित व्यक्ति है या मरा हुआ है?

मुँह पर से चादर थोड़ा हटा कर नन्दलाल ने देखा—यह कोई स्त्री है। गोरे रंग की है, चेहरे पर अपूर्व लावण्य है। दोनों बड़ी-बड़ी आँखें मुँदी हुई हैं। लगता है, स्त्री बेहोश पड़ी है।

दोनों गुरुभाइयों ने उस स्त्री की नाक के पास उँगली ले जाकर देखा। हाँ, अभी साँस चल रही है। तब तो अभी मरी नहीं है, जीवित है। मालूम होता है, घोर ठंड के कारण बेहोश हो गयी है। सारा शरीर भी तो भींगा हुआ है!

मिट्ठू लाल दौड़ा-दौड़ा बाबाजी के घर में गया। व्यग्र होकर कहने लगा, ''बाबा, गोशाला में चोर नहीं है। वहाँ तो एक अपूर्व सुन्दरी स्त्री है। मालूम पड़ता है, साक्षात् राधारानी हैं।''

बाबा दामोदर दासजी अभी-अभी माला लेकर जप करने बैठे ही थे। मिट्ठू लाल की बात सुनकर थोड़ा बनावटी क्रोध से बोले, "चुप रहो, बुद्धू! राधारानीजी को कोई दूसरा काम नहीं है जो तुम्हारी गोशाला में आएँगी? तुमने कभी राधारानीजी को देखा भी है जो उन्हें पहचान रहे हो?"

"यह माई राधारानीजी नहीं हैं तो कम-से-कम ललिता विशाखाजी जरूर हैं।"

अपने किशोर चेले की चपल-सरल उक्ति सुन कर बूढ़े बाबाजी हँस पड़े; कहा—"जैसे कि तुम ललिता विशाखाजी को पहचानते हो! अच्छा, सुनो। काम की बात करो। तुम और नन्ददास मिल कर उस स्त्री को इस घर में उठा कर ले आओ। और, काठ का एक जलता कुन्दा भी ला देना। बेचारी स्त्री ने बड़ा कष्ट उठाया है। भाग्य की बात ही समझो कि इस ठंढ और वर्षा में भी वह मरी नहीं है।"

चेलों ने बाबाजी के आदेशानुसार काम किया, और करीब एक-दो घंटे में आग के ताप से किंचित् स्वस्थ होकर उस स्त्री ने आँखें खोल दीं। वह कुछ कहने की भी कोशिश कर रही थी।

"मूर्च्छा टूट रही है। तुमलोग इसके कंठ में थोड़ा गरम दूध डाल दो, थोड़ी देर में गरमा जाएगी।" तटस्थ भाव से इतना कह कर बाबा दामोदर दास माला फेरने लगे।

दूसरे दिन सबेरे, यमुना में स्नान कर बाबाजी ने नटवरजी और किशोरीजी की पूजा की और बालभोग चढ़ाया और, इन कार्यों से निवृत्त हो, बरामदे में आ बैठे। दोनों चेलों को बुला कर कहा, "उसको यहाँ ले आओ। कुछ प्रसादी फल-मूल खिला कर उस आफत को यहाँ से विदा कर दो।"

बाबाजी की बात सुनकर नंददास चौंक गया। दुखित स्वर में बोला, "बाबा, यह क्या ठीक होगा? मालूम पड़ता है, कई दिनों से उसने कुछ खाया-पीया नहीं है। थकावट से चूर-चूर हो रही है।"

"देख रहा हूँ, उस स्त्री का चाँद-सा मुखड़ा देख कर तुम्हारा माथा घूम गया है। तुम उसको यहाँ रखोगे कहाँ, और खिलाओगे क्या? कभी यह सब सोचा भी है?"

"यह सब तो बाद की बात है, बाबा। अभी तो उसे इस अवस्था में......।"

"तुम रुको तो! अंधड़ में गिरा हुआ काग घर में घुस आया है। उसको लेकर इतनी माथा-पच्ची करने की क्या जरूरत?"

नंददास तुरत सँभल गया। बहुत दिनों से बाबाजी के साथ रह कर वह उनके माहात्म्य, उनकी अलौकिक शक्ति और प्रेमपूर्ण हृदय को पहचान गया था। वे कितनी भी कठोर बातें क्यों न कहें, उनके अंतस्तल में स्वर्गीय प्रेम का अपार सागर लहराता है। स्वभाव थोड़ा खिट्-खिट जरूर है, और बराबर कटूक्तियों की बाण-वर्षा करते रहते हैं, किन्तु उनके-जैसा अपार स्नेह करनेवाले कितने लोग हैं? उनके आश्रय में आने के बाद तो नंददास माता-पिता, घर-संसार, सब कुछ को भूल गया था। अपने सुख की बात भी उसके मन में नहीं उठती थी। बाबाजी और कुंज-विग्रह के अलावा उसकी कोई दुनिया ही नहीं बच गयी थी।

वही कुछ हाल किशोर चेला, मिट्ठू लाल का भी था। बाबाजी उसे दिन-रात बन्दर-छोकरा कहा करते, हमेशा गाली देते। किन्तु, कितने वात्सल्य-स्नेह से उसे गढ़ रहे थे वे! कितनी ही बार उन्होंने एकान्त में नंददास से कहा था, ''उसके प्रति हमेशा सतर्क दृष्टि रखना। वह एक दिन भगवान् के चरणों पर अर्पित होने वाले फूल की तरह प्रस्फुटित हो जायगा। जानते हो? तीन पुश्त से उसके ऊपर राधारानी की कृपा है!''

थोड़ा देर के बाद महिला को बरामदे में बाबाजी के सामने बैठा दिया गया।

प्रणाम करने के बाद बाबाजी की ओर एकटक देखकर वह महिला फूट-फूट कर रोने लगी, ''बाबा, आप ही हैं? हाँ-हाँ, आप ही तो उस दिन कलकत्ता गये थे। आप ही न हाथ के इशारे से मुझे वहाँ से यहाँ वृन्दावन में बुला लाए हैं अपनी कुटिया में आश्रय देने के लिए!''

''वह सब बेकार की बातें बन्द करो। विपत्ति में पड़ने पर सब लोग ऐसा ही कुछ कहने लगते हैं। पिछले चालीस वर्षों से मैंने वृन्दावन और ब्रजमंडल के बाहर पाँव नहीं रखा है।''—कह कर दामोदर दासजी माला फेरने लगे।

''हाँ, बाबा! अपने इष्टदेव के नाम की शपथ लेकर मैं कहती हूँ, आपने कलकत्ता में इसी तरह, दिन-दोपहर के समय, जीवन्त मनुष्यरूप में मुझे दर्शन दिया था। ठीक इसी भंगिमा में, इसी तरह माला की झोली में हाथ रखे, आप बैठे थे। हू-ब-हू यही मूर्त्ति थी। केवल इतना ही नहीं, मथुरा पहुँचने के बाद भी मैंने आपको देखा है।''

नंददास विस्मय से बोल उठा, ''बाबाजी तो अनेक दिनों से मथुरा नहीं गये हैं! आप सब बात खुलासा कहिए।'' किन्तु, समझ तो वह यह रहा था कि यह बाबाजी की नयी कृपालीला है।

मिट्ठू लाल भी आश्चर्यचकित होकर बोला, ''यह सचमुच बड़े ताज्जुब की बात है!''

शांत स्वर से वह स्त्री कहने लगी, ''हाँ, बाबा! मथुरा पहुँचने पर मुझे कहीं कुछ भिक्षा नहीं मिली। शरीर और मन से मैं अवश हो रही थी। इधर साँझ हो गयी और वर्षा होने लगी। थकी-माँदी मैं बाजार में ही एक पुआल-घर में रुक गयी। नींद आने पर वहीं सो गयी। अचानक किसी की पुकार सुन कर मैं जग गयी और देखा, आप जप की माला लिये मेरे सामने खड़े हैं और कह रहे हैं—'यही तो खर-बिचाली भरी बैलगाड़ी है। इसी से तुरत वृन्दावन के लिए रवाना हो जाओ। अभी गाड़ी में पीछे थोड़ी जगह बनाकर सो रहो। मेरे पास ठीक-ठीक पहुँच जाओगी।' आपके उसी आदेश के अनुसार मैं यहाँ आयी हूँ, बाबा!''

बाबाजी कुछ क्रोध भरी आवाज में बोले, ''आ तो गयी हो लेकिन यहाँ तुम्हारे रहने के लिए जगह कहाँ है? दाना-पानी का भी क्या इन्तजाम है? कोई राजा-महाराजा मेरा चेला है जो रोज भंडारा करेगा? तुम देर मत करो; झटपट यहाँ से चलती बनो।''

हाथ जोड़ कर अश्रुसजल नेत्रों से वह स्त्री बोली, ''बाबा, मैंने दो बार आपका अलौकिक दर्शन पाया है। भाग्यवश आपका साक्षात् दर्शन भी हुआ। अब मैं आपका आश्रय छोड़कर इस कुंज से बाहर नहीं जाऊँगी। मेरे लिए दूसरी कोई जगह भी नहीं है।''

नंददास और मिट्ठू लाल वहीं सामने खड़े थे। उन्हें गहरा दुःख हो रहा था। लेकिन, बाबाजी के भय से कुछ कहने का साहस भी नहीं था। वे मन-ही-मन सोच रहे थे—'यह स्त्री सचमुच निराश्रय है। अलौकिक दर्शन देकर बाबाजी ने अवश्य इसपर थोड़ी कृपा की है। लेकिन, अभी क्यों इसे कुंज से बाहर निकाल रहे हैं? क्या यह उचित है?'

उन दोनों की ओर देखते हुए बाबाजी कहने लगे, ''मैं समझ रहा हूँ कि तुमलोग क्या सोच रहे हो। लेकिन मैं इसे यहाँ टिकाऊँ कैसे? लोग कहेंगे, बूढ़े दामोदर दासजी बड़े चालाक हैं; फन्दा डाल कर कुंज में एक 'कुनकी' हाथी फँसा लाये हैं!''

हँसमुख लड़का मिट्ठू लाल कुतूहल-वश पूछ बैठा, ''यह 'कुनकी' कौन-सी चीज है बाबा?''

''मूर्ख, निकम्मा कहीं का! इतना भी नहीं जानते हो? पूर्व जन्म के किसी पुण्य-प्रताप से ब्रजमंडल के ग्वाले के घर में तुम्हारा जन्म हुआ है। लेकिन, और तो कुछ हुआ नहीं, बस, दूध-दही खा कर मोटा होता जा रहा है!''

''बाबा, ब्रज के दूध-दही की निन्दा मत कीजिए। आपके कृष्णजी का शरीर उसी से बना था, और तभी तो वे कंस का वध कर सके थे?''

''ब्रज-गोप, तुम अकाट्य मूर्ख हो! अहमकपना तुम्हारा काल हो रहा है। तुम अभी तक समझ नहीं पाए हो कि किसुनजी क्या परम तत्त्व हैं। जानते

हो?—कुरुक्षेत्र के युद्ध में अर्जुन को अहं भाव आया कि सामने खड़े सभी शत्रुओं को उसे ही मारना है। किसुनजी ने उसे दिखला दिया कि उन्होंने सबको पहले से ही मार रखा है, वह तो केवल निमित्त-मात्र है। किसुनजी की मृत्यु के बाद आभीर डाकुओं ने द्वारका की स्त्रियों पर हमला किया। कुरुक्षेत्र-विजयी अर्जुन ने सोचा, मैं स्त्रियों को डाकुओं से बचा लूँगा।'' लेकिन, डाकुओं के सामने वह तो अपना गांडीव धनुष उठा भी नहीं सका। किसुनजी ने इस तरह फिर से दिखला दिया कि उनके बिना अर्जुन का वीरत्व कुछ भी नहीं है।''

इस बार नंददास बोल उठा, ''आप कुनकी हाथी की बात कह रहे थे, बाबा! वह क्या है, आपने बताया ही नहीं।''

''हाँ ठीक कहते हो। सुनो! आसाम के जंगल में जो लोग खेदा में हाथी पकड़ते हैं, वे कुनकी पोसते हैं। कुनकी जवान हथिनी को कहते है। वह कुनकी बाहर जाकर जंगली हाथियों को आकर्षित कर खेदा में फँसा लाती है जहाँ वे पकड़े जाते हैं। इसीलिए मैं कह रहा था कि इस स्त्री को यहाँ कुंज में रखने पर लोग कहेंगे, बूढ़े दामोदर दास ने अच्छा फंदा डाला है। एक सुन्दर युवती को देखकर यहाँ बड़े-बड़े सेठ और राजे-महाराजे आने लगेंगे।''

बाबाजी की बात सुनकर वह स्त्री बड़े करुण स्वर में कहने लगी, ''अगर मेरे यहाँ रहने में मेरा सौंदर्य बाधक बन रहा है तो मैं इसी क्षण इसे नष्ट किये दे रही हूँ। मैं सामने पड़ी जलती लुकाठी से अपना मुँह जला डालती हूँ। तब तो कोई मुँह घुमाकर भी मेरी ओर नहीं देखेगा न!''

''नहीं माई, यह नहीं हो सकता।''—बाबाजी के होठों पर हँसी की रेखा दिखायी पड़ी। ''तुमने क्या स्वयं अपने मुँह को गढ़ा है? तुमको तो प्रभु श्रीकृष्ण ने गढ़ा है। यह सौंदर्य भी उनका ही दिया है। इसको नष्ट करने का अधिकार तुम्हें नहीं है।''

''तब क्या होगा, बाबा?''—स्त्री असहाय-सी देखने लगी।

''उपाय है, माई। खूब सहज उपाय है, और वह तुम्हारे ही हाथ में है। यह देह, यह सौन्दर्य, जो कुछ भी है, सब-कुछ को श्रीकृष्ण को अर्पित कर दो। अपना कहने को कुछ भी न रहे। इसके लिए तुम राजी हो क्या?''

अकूल-अथाह में डूब रही स्त्री को कूल-किनारा मिल गया। वह बूढ़े बाबा दामोदर दासजी के चरणों पर लोट गयी। आँखों से आनन्द के आँसू बह निकले।

''माँ, तुमने बहुत दुःख उठाया है। जाओ, तुम अब प्रभु नटवरजी के आश्रय में आ गयी हो। अब से तुम्हें कोई चिन्ता नहीं, कोई भय नहीं। जब तक यहाँ रहो, तन-मन-प्राण से ठाकुरजी की सेवा करो। उसके बाद तुमसे असल

तपस्या शुरू कराऊँगा। तुमने ठीक ही कहा है, तुम पर नटवरजी की कृपा रही है। इसीलिए मैं स्वयं जाकर तुम्हें यहाँ बुला लाया हूँ।''

उस महिला का नाम था मालती दास। जाति से कायस्थ थी। बाबाजी महाराज के चरणों में बैठ कर वह अपने जीवन की कहानी कहने लगी। कहानी बड़ी ही करुण और हृदय-द्रावक थी।

मालती का जन्म एक साधारण, मध्यवित्त परिवार में हुआ था। अपनी विधवा माँ की वह एकमात्र संतान थी। वह असाधारण सुन्दर और लावण्यवती थी। देह का रंग कनकचम्पा की तरह स्वर्णाभ था। इसलिए किशोरावस्था में ही उसका विवाह कलकत्ता के एक धनी, प्रसिद्ध परिवार में हो गया। श्वशुर एक विदेशी व्यापारिक कम्पनी में ऊँचे पद पर काम करते थे। दो पुश्त में परिवार का व्यवसाय खूब फैल गया था। घर में अपार सम्पत्ति थी। राजमहल-जैसा मकान था, अनेक दास-दासियाँ थीं। कहीं कोई अभाव नहीं था। मालती का पति अपने माँ-बाप की एकलौती संतान था। रूप-गुण में भी कोई त्रुटि नहीं थी। विवाह के दो-तीन वर्षों बाद मालती के एक पुत्र हुआ। अपार धन-दौलत और मान-मर्यादा से परिपूर्ण मालती का जीवन आनन्दोल्लास से तरंगायित था।

लेकिन, दो वर्षों के बाद ही शहर में प्लेग का प्रकोप हुआ जिसमें मालती के श्वशुर की मृत्यु हो गयी। एक महीने के बाद उसका पति भी चल बसा। मालती का हँसी-खुशी का संसार लुट गया। दुर्भाग्य की एक फुफकार से उसके आनन्द की ज्योतिशिखा सदा के लिए बुझ गयी। चारों ओर अंधकार ही अंधकार छा गया।

गोद के शिशु को लिये हुए अकेले मालती पग-पग पर विपरीत परिस्थितियों से जूझने लगी।

मालती के मकान के बगल में एक और बड़ी हवेली थी जो उसके पति के चचेरे जेठ भाई की थी। वह व्यक्ति भी खूब सम्पत्तिशाली था। लेकिन वह कलकत्ता के धनी समाज में व्याप्त सभी पापाचारों में लिप्त रहता था। सुरा और सुन्दरी के पीछे पानी की तरह धन बहा रहा था। इस विलासी जीवन का जो परिणाम होना था, वही हुआ। वाणिज्य-व्यवसाय तो चौपट हुआ ही, उसका स्वास्थ्य भी जर्जर हो गया और अंततः तपेदिक की बीमारी हो गयी। ऊपर से, कर्ज का बोझ बढ़ता जा रहा था।

इतना-कुछ होने पर भी वह व्यक्ति अपनी आदत से लाचार था। उसकी कुदृष्टि सद्योविधवा मालती के रूप-यौवन और विपुल सम्पत्ति पर पड़ी और उन्हें वह अपने कब्जे में लाने का कुचक्र रचने लगा।

उसने सोचा कि उसके रास्ते का सबसे बड़ा काँटा मालती की गोद का बच्चा है जिसको किसी तरह से दूर किया जाय तो वह स्वयं मालती के धन का

उत्तराधिकारी बन जायगा। उसके बाद रूपवती विधवा मालती को अपनी मुटठी में करना कठिन नहीं होगा।

उसके घर की एक पुरानी दासी थी मानदा। वह तुरत अपने मालिक के कुचक्र में शामिल हो गयी और मालती के घर अपना आना-जाना बढ़ा लिया। मालती के छोटे लड़के को खूब गोद खेलाती, लाड़-प्यार करती।

मुहल्ले में मानदा बदनाम औरत समझी जाती थी। मालती के घर के दाई-नौकरों को उसका बार-बार आना अच्छा नहीं लगता था। उन लोगों को सन्देह हो रहा था कि मानदा की नीयत अच्छी नहीं है। फिर भी, मानदा का आना-जाना लगा ही रहा। और, जो होना था वह होकर ही रहा।

एक दिन की बात है, मानदा मालती के घर आयी। बच्चे को दिन-भर खेलाया, खूब लाड़-प्यार किया। शाम को खिला-पिला कर बच्चे को सुला दिया गया। अचानक रात को वह जग गया और जोर-जोर से रोने-चिल्लाने लगा। उसकी बेचैनी और छटपटाहट का कोई अन्त नहीं था। देखते-देखते उसका शरीर नीला पड़ गया। शहर के बड़े-बड़े डॉक्टर बुलाए गये। लेकिन किसी के किये कुछ बन नहीं पड़ा। बच्चे की मृत्यु हो गयी। डॉक्टरों ने बताया, इसे भोजन में विष दिया गया है।

बच्चे की हिम-शीतल मृत देह लिये मालती रोते-रोते बेहोश हो गयी। बच्चे का अंतिम संस्कार करके लोग घर लौटे, उस समय भी वह बेहोश ही पड़ी थी!

घर में राधा-माधव की मूर्ति थी जहाँ नित्य-प्रति पूजा होती थी। मूर्च्छा टूटने पर मालती पागल-सी दौड़ी-दौड़ी पूजा-घर में गयी और आर्तनाद करते हुए कहने लगी, "ठाकुर, मैंने कौन-सा पाप किया है जो तुम एक-एक कर मेरा सभी सहारा छीनते जा रहे हो?" पत्थर की देवमूर्ति ने कोई उत्तर नहीं दिया और बाण-विद्ध पक्षी की तरह मालती छटपटाती रही।

मालती के इस्टेट के मैनेजर और कर्मचारीगण कह रहे थे, बच्चे की मृत्यु के पीछे गहरा षड्यन्त्र है। उस घर के मालिक के इशारे पर ही मानदा ने बच्चे के भोजन में जहर मिलाया है। उन लोगों ने पुलिस को खबर भी दी, लेकिन पुलिस की छानबीन में ऐसा कोई प्रत्यक्षदर्शी गवाह नहीं मिला जिसने अपराधी को भोजन में जहर मिलाते देखा हो। इसलिए जाँच आगे नहीं बढ़ पायी।

दो-तीन महीने में मालती का पुत्रशोक बाहर-बाहर कुछ शांत हो गया, किन्तु भीतर-भीतर वेदना की अव्यक्त आँधी चलती रही। जीवन मरुभूमि की तरह ऊसर हो रहा था। वह चारों ओर से अपने को स्तब्ध शून्यता से घिरी पाती थी। केवल अपने इष्टदेव राधा-माधव के श्रीविग्रह की सेवा-पूजा की ओर ही

वह ध्यान देती और घर के बाकी काम-काज यंत्रचालित पुतली की तरह दास-दासियों से कराती चल रही थी।

किन्तु, दुर्दिन आने पर तो एक के बाद दूसरी विपत्ति आती ही रहती है। मालती के शोक-संतप्त जीवन में भी कुछ वैसा ही हुआ। पाप-परायण भैसुर (स्वर्गीय पति के बड़े भाई) ने उसे फँसाने के लिए लम्बा-चौड़ा जाल फैलाया। उस पापी को रूपवती मालती तो चाहिए ही, मालती की धन-सम्पत्ति भी चाहिए। उसने घूस देकर मालती के मैनेजर, कर्मचारियों और आत्मीय परिजनों को अपनी ओर मिला लिया।

वह मालती को तरह-तरह के प्रलोभन देने लगा। बार-बार उसका प्रस्ताव आता था—"तुम क्यों अपना रूप-यौवन, अपना इतना सारा वैभव इस तरह निष्फल किये जा रही हो? क्यों नहीं अपना सबकुछ मुझे सौंप कर सुखमय जीवन की ओर लौट आती हो? दिल खोल कर जीवन का आनन्द लो।"

यह सब सुनते-सुनते मालती क्रोध, घृणा और आशंका से अस्थिर हो गयी। अपनी रक्षा के लिए उसमें पर्याप्त आत्मबल था और वह संघर्ष करने का सामर्थ्य भी रखती थी। किन्तु वह कब तक जूझती रहेगी? घर के नौकरों और अमलाओं पर उसका विश्वास नहीं रह गया था। कोई ठिकाना नहीं था कि वे लोग कब विश्वासघात कर बैठें और पीठ में छुरा भोंक दें। इन सबके अलावा, सबसे बड़ी बात तो यही थी कि इस शक्तिनाशक संघर्ष का प्रयोजन ही क्या था? मालती सोचने लगी, इस संघर्ष में वह जीत भी गयी तो लाभ क्या होगा? किसको लेकर वह इतनी विपुल सम्पत्ति का भोग करेगी, और वह भी ऐसी जिंदगी में?

एक दिन पूजाघर में जाकर इष्टदेव राधा-माधव के चरणों में रो-रो कर मालती प्रार्थना करने लगी—"हे मेरे ठाकुर, इस दुःखिनी पर दया करो। मेरे दुःसह जीवन का अन्त कर दो और अपने चरणतल में आश्रय दो।"

रोते-रोते उसका देह-मन अवसन्न हो गया और पता नहीं चला कि कब वह वहीं जमीन पर गहरी नींद में सो गयी। स्वप्न में देखा कि कमरे को उद्भासित करते हुए ज्योतिर्मय मूर्त्ति से निकल कर राधा-माधव उसके सामने खड़े हैं और स्नेहपूर्ण स्वर में उससे कह रहे हैं—"क्यों इस तरह रो-रो कर प्राण दे रही हो? यहाँ रहती ही क्यों हो? मेरे धाम वृन्दावन में चली आओ। वहाँ तुम्हारे लिए हमने स्थान रख छोड़ा है। अपनी सारी चिन्ता और परेशानी हम पर छोड़ दो। देखोगी, तुमने कुछ भी खोया नहीं है। तुम्हारा सब-कुछ हमारे पास संचित-सुरक्षित है। जो हमको पाता है, वह सब कुछ पा जाता है।"

मालती की नींद उचट गयी और वह उठ बैठी। कहाँ है ठाकुर का वह ज्योतिर्मय प्रकाश? ठाकुर की इस प्रस्तर-मूर्त्ति में तो कोई भाव-विलक्षणता दिखलायी नहीं पड़ती है; वह तो पहले की तरह ही नीरव, निस्पन्द है एवं निष्पलक नेत्रों से पूर्ववत् देख रही है।

मालती के मन में तरह-तरह की बातें उठने लगीं। स्वप्न क्या हमेशा सच होता है? नहीं-नहीं, जो कुछ भी देखा है, वह मेरे ही मन का खेल है, मेरी ही चिन्ताकुल मानसिकता का प्रतिबिम्ब है। कौन है जो मेरी इस समस्या का समाधान कर देगा और सही रास्ता दिखलाएगा?

यह सब सोचते-विचारते कई दिन बीत गये। एक दिन रात में मालती गहरी नींद में पलंग पर सोयी थी। आधी रात का समय था। हठात् खिड़की से मिट्टी का ढेला आकर उसकी देह पर गिरा। नींद खुल गयी और बिस्तरे से उठ कर उसने बिजली-बत्ती जलायी। देखा, निकट ही मिट्टी का बड़ा-सा ढेला पड़ा है।

मालती सोचने लगी, बगल के घर में सोयी दासियों को जगावें या नहीं। घर के दरवाजे और खिड़कियाँ बन्द हैं; भय का कोई कारण नहीं है। ढेला तो आया है बगल की गली में खुलनेवाली खिड़की से। वह उस खिड़की के पास आकर खड़ी हुई। खिड़की से जो-कुछ देखा, उससे वह विस्मित रह गयी। गली में मालती के मकान से सटे नीचा छतवाला एक मकान था। उस छत के किनारे एक जटाजूटधारी बूढ़े वैष्णव साधु खड़े थे। अँधेरी रात में भी उनके शरीर से निकलनेवाली ज्योति से आसपास की जगह उद्भासित हो रही थी। उनकी प्रसन्न दृष्टि में स्वर्गीय आनन्द की झलक थी।

मालती की ओर देखते हुए साधु बोले—"उस रात स्वप्न में तुमने जो कुछ देखा या सुना था, वह सब सच है। तुम्हारे ऊपर भगवान् की कृपादृष्टि है। तब फिर, इतनी चिन्ता-परेशानी क्यों है? मन का सब दुविधा-द्वन्द्व छोड़ दो, सब कुछ समेट लो और चली आओ वृन्दावन के लीलाधाम में। यों समय को बर्बाद न करो।"

मालती का सारा शरीर रोमांचित हो गया। अन्त में अनजाना-सा अनास्वादित आनन्द की लहर उसके मन में उठने लगी। वह आश्चर्य से उस साधुमूर्त्ति को देखती रही। साधु फिर हँसकर बोले, माई, तुम्हारे सोए हुए शरीर को जो स्पर्श कर गया है, वह मामूली मिट्टी का ढेला नहीं है, पवित्र ब्रज-रज का पिण्ड है। इसके स्पर्श-गुण और प्रभु श्री नटवरजी की कृपा से तुम्हारा शरीर शुद्ध हो गया। तुम महाभाग्यवती हो, स्वयं ठाकुर ने तुम्हारे लिए स्थान रख छोड़ा है। यहाँ बैठी-बैठी अभागिन का जीवन मत बिताओ। जल्दी ही यहाँ से निकल पड़ो।

इस अलौकिक दर्शन के बाद मालती ने दूसरे ही दिन भोर में अपने पुराने वकील श्रीचौधरी को बुला भेजा। कानूनी सलाह के मुताबिक एक ट्रस्ट का मसविदा तैयार किया गया, जिसमें मालती ने अपनी सारी सम्पत्ति लिख दी। विवाह के बाद पतिगृह में आने पर उसे एक लाख से भी अधिक मूल्य के हीरे-जवाहरात मिले थे। उन सबको भी उसने उस ट्रस्ट में डाल दिया। लेकिन, इन हीरे, जवाहरात को जौहरियों के हाथ बेचने की बात उठने पर वकील श्रीचौधरी ने कहा माँ, तुमने अपने लिए कुछ भी सम्पत्ति नहीं रखी अन्तत: यह स्त्रीधन ही अपने पास रहने दो। अपनी बीमारी आदि या किसी संकट में यह काम आ सकती है। मालती हँसकर बोली, मैं जिनके आश्रम में जा रही हूँ, उनके जैसा ऐश्वर्य किसी को नहीं है।

वह किसी धनी मठ का महंत है, क्या? श्रीचौधरी ने जिज्ञासा की।

''वह नारायण हैं जिनकी बगल में स्वयं लक्ष्मी स्वर्ण सिंहासन पर बैठी रहती हैं। उनके पास मैं किस लज्जा से ये अलंकारादि लेकर जाऊँ, आप ही बताइए? नहीं, नहीं, मुझे इन चीजों की कोई जरूरत नहीं है। इनकी बिक्री के रुपए देव-तहवील में जमाकर दीजिए।''—मालती ने अपने वकील को यह स्पष्ट निर्देश दिया।

सात दिन के अन्दर सारी-सारी व्यवस्था पूरी हो गई। उसके बाद श्रीराधा-माधव को प्रणाम करके वह सदा के लिए कलकत्ता से विदा हो चली। उसका गंतव्य वृन्दावन धाम था।

पश्चिम में उन दिनों बहुत ठंढ थी। सबके अनुरोध पर उसने अपने शरीर पर पश्मीने की चादर डाल ली। उसकी गाड़ी जब मथुरा पहुँचती है, उसके पास एक भी पैसा नहीं है। लेकिन यहाँ से मालती का भार लिया बाबा दामोदरदास और श्रीनटवरजी ने। कलकत्ता में ही ठाकुर ने उन्हें आश्वासन दिया था कि उसके लिए स्थान आरक्षित है वृन्दावन में। यह आश्वासन भी अक्षरश: सच हुआ। बाबाजी के आश्रम में उसे परम आश्रय प्राप्त हुआ है।

मालती ने अपनी सारी बात बाबाजी से कही और करुण दृष्टि से बाबाजी को देखने लगी।

मालती ने कहा, ''बाबा अब मैं क्या करूँ?'' बाबाजी बोले, ''जिसके लिए ठाकुर तुम्हें यहाँ लाए हैं, माई, तुम उसी काम में व्रती हो पड़ो।''

''समझाकर कहिए, आपका क्या निर्देश है?''

''जीवन के सभी सुख-दुख की बातें हैं, माई, उन्हें तुम्हें भूल-भूल जाना है और यह संभव होगा ठाकुर की सेवा-पूजा और आत्मसमर्पण के द्वारा। ठाकुर खुद ही वह सब सिखा देंगे। लेकिन, सावधान? श्रीनटवरजी खूब जाग्रत् हैं। वे जितने रसिक और दिलदार हैं उतने ही पत्थर जैसे कठोर भी। ब्रज की गोपियों

को लेकर जितना रास किया था, उतना ही उन्हें रूलाया भी। पांडव कुल और यदुकुल ने कितना दुःख भोगा।'' श्रीनटवरजी की सेवा-पूजा का सब भार बाबाजी ने मालती को सौंप दिया। उसे वैष्णव मंत्र की दीक्षा दी और वैष्णव वेश धारण करवाया। उसको नया नाम दिंया—कुंजदासी। यही नवीन वैष्णवी कुंजदासी आगे चलकर ब्रजमण्डल के विहार-वन की साधिका सिद्धा परमेश्वरी बाई के नाम से विख्यात हुई।

बाबाजी ने कुंजदासी की दिनचर्या के प्रत्येक काम को कठोर नियमों की शृंखला में बाँध दिया। उसे विग्रह पूजा की छोटी-बड़ी सभी बातें समझा दीं, और उन सब कार्यों के साथ भगवान् का आठों पहर लीलास्मरण और ध्यान करने की निगूढ़ पद्धति भी सिखला दी।

श्रीविग्रह का सभी काम यमुनाजी के ही जल से होता था। इसलिए रात के पिछले पहर, जबकि चारों ओर कुछ अँधेरा ही रहता था, और आकाश में कुछ तारे झिलमिलाते रहते थे, कुंजदासी एक बड़े घड़े में यमुनाजी से जल भर-भर लाती थी।

पूजा-अर्चना के लिए आवश्यक वस्तुओं का जोगाड़ करना और भोग-राग की व्यवस्था करना भी उसका ही दायित्व था।

बाबाजी के कृष्णकुंज में भोजन के नाम पर एक तरह का कृच्छ्र ही चलता था। कुंज में दूध देने वाली गौएँ थीं जिनसे कुछ दूध मिल जाता था। भक्त गृहस्थों के घर से भी भेंट में पर्याप्त दूध आ जाता था। वह सब दूध श्रीविग्रह के भोग-राग के लिए खीर और मक्खन तैयार करने के काम आता था। भोग-प्रसाद की थोड़ी भी सामग्री कुंजवासियों को प्राप्त नहीं होती, सब कुछ निकटवर्ती साधुओं के अखाड़ों में भेज दी जाती।

विशेष अवसरों पर जब बाहर के एक-दो धनी भक्त बड़े पैमाने पर भोग का प्रबन्ध करते और प्रचुर मात्रा में दूध-दही और मिठाई लाते, तभी उन सबका कुछ अंश बाबाजी, उनके दोनों चेलों और कुंजदासी के उपयोग में आता था। लेकिन ऐसे ही दुर्लभ अवसरों को लेकर बाबाजी अपने दोनों चेलों—नंददास और मिट्ठू लाल की खूब गंजना किया करते थे। कहते, ''तुमलोग दूध-दही और खीर के लोभ से ही कुंज में पड़े हुए हो, दिन-रात मोटे होते जा रहे हो। तुमलोगों को कुंज से निकाले बिना मुझे चैन नहीं मिलेगा।''

बाबाजी की बात सुन कर दोनों चेले हँसने लगते। कहते, ''आपको धन में धन चार गायें हैं जिनमें दो तो बूढ़ी हैं। उन गौओं के लिए खड़बिचाली और चुन्नी-भूसा का इन्तजाम करने में हम लोगों का प्राणान्त ही हो रहा है। धनीमानी सेठों और राजाओं को आप कुंज के पास भी फटकने नहीं देते हैं। आपके दो-

एक विशेष भक्त हैं जो नटवरजी को कुछ भेंट चढ़ा जाते हैं और तभी हमलोगों को मंड-मिठाई का दर्शन होता है। इसके अलावा, हमलोगों के रोज-रोज के प्रयोजन के लिए यहाँ दूध-दही का क्या इंतजाम है? और, हमलोगों को इन वस्तुओं की कोई जरूरत भी नहीं है। केवल आपकी कृपा के लिए हमलोग यहाँ पड़े हैं। वह हमलोगों को अवश्य मिले, इसका ध्यान रखिएगा।''

बाबाजी मुँह घुमाकर चल देते और कृत्रिम क्रोध में बड़बड़ाते जाते, ''जितने बानर हैं, सब इसी कुंज में आ जुटे हैं। काम के समय किसी का कोई अंग नहीं हिलता। सब-के-सब बातों की फुलझड़ी छोड़ते रहते हैं।''

कुंजदासी मन-प्राण देकर बाबाजी द्वारा स्थापित श्रीविग्रह पूजा करती जाती थी। दिन-पर-दिन उसकी कृच्छ्रमय त्याग-वैराग्यमय वैष्णवी साधना चल रही थी। इस तरह से पाँच वर्ष बीत गये।

अब कुंजदासी के साधन-जीवन में कृष्णकृपा की ज्योतिश्छटा कुछ-कुछ दिखायी पड़ने लगी थी। उसके देह-मन-प्राण पर कृष्ण-भावना और सात्त्विक प्रेम-विकारों का अधिकार हो रहा था।

गुरु बाबा दामोदरदास ने एक दिन शिष्या को बुलाकर कहा, ''माँ, तुम्हारी साधना का आधार सुदृढ़ हो गया है। तुममें कृष्णकृपा का उदय भी दिखलायी पड़ रहा है। तुम्हें अब इस नटवर कुंज में रहने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हें अब ब्रजमण्डल के किसी एकान्त पवित्रवन में जाना होगा। जाने के पहले तुम्हें में संन्यास मंत्र की दीक्षा दूँगा। तत्पश्चात् तुम्हारी नये स्तर की साधना शुरू होगी।''

बाबाजी कुंजदासी के सब-कुछ थे—आश्रयदाता थे, स्नेहमय गुरु थे, पिता-तुल्य थे। अचानक उन्हें छोड़कर चले जाने की बात से उसे वज्राघात-सा लगा। विछोह की घड़ी बिल्कुल निकट है, यह जान कर वह रोने लगी। हाथ जोड़ कर गुरु से बोली, ''बाबा, जब मैं अतल गर्त में डूब रही थी तब तो तुमने मुझ पर कृपा की, मुझे बचा लिया और आश्रय दिया। अब तुम इस कंगालिनी को क्यों अपने से दूर हटा रहे हो? क्यों वनवास दे रहे हो। तुम्हारे पाँव पड़ती हूँ, मुझे यहाँ ही प्रभु नटवरजी और किशोरीजी की सेवा-पूजा में लगी रहने दो। प्रतिदिन अपने चरणों का दर्शन करने का सौभाग्य दो।''

बाबाजी ने उत्तर दिया, ''यह संभव नहीं है, माई। तुम कृष्ण-भावना में डूब रही हो। यह तुम्हारे शुभ संस्कारों का सुफल है। अब तुम्हें राधाकृष्ण के लीलामय संभोग-रस की साधना करनी है। इसके लिए और भी तीव्र वैराग्य चाहिए और बहुत दिनों तक एकान्त वनवास करना भी आवश्यक है। यह बड़ी कठिन साधना है, रे माई। मन में लेशमात्र भी आसक्ति या भोगेच्छा रहने पर उस दिव्य रस-संभोग का अधिकारी होना संभव नहीं है। इसलिए, किसी जनहीन

जंगल में जाकर तुम्हें तपस्या करनी होगी। यह प्रभु नटवरजी का आदेश है। इसमें कोई परिवर्तन नहीं हो सकता है। उन्होंने तो यह भी तय कर दिया है कि तुम किस जंगल में झोपड़ी बना कर रहोगी और सिद्धि-लाभ करोगी। लेकिन यहाँ से जाने के पहले तुम्हें मैं संन्यास-दीक्षा दूँगा।''

गुरु दामोदरदासजी ने शिष्या कुंजदासी को वैष्णव संन्यास की दीक्षा देकर उसका नया नामकरण किया 'परमेश्वरी दासी'। यह दीक्षा देकर गुरु बड़े आह्लादित थे। इस अवसर पर एक छोटा-मोटा भंडारा आयोजित करने का निश्चय किया।

बाबाजी का यह मनोभाव जानकर मथुरा के कई भक्त सेठों ने प्रचुर परिमाण में घी, चीनी, आटा भेज दिया। वृन्दावन के विभिन्न अखाड़ों के पुराने वैष्णव साधुओं को आमंत्रित किया गया। वे लोग आये और प्रेमपूर्वक भोजन करके संतुष्ट हुए।

संन्यासिनी शिष्या के कुंज से विदा होने के समय बाबाजी ने बता दिया कि उसे कहाँ जाकर तपस्या करनी है। वे बोले, ''माई, तुम विहार-वन में जाकर अपनी कुटिया बना लो। प्राचीन काल में वहाँ राधा-कृष्ण की विहार-स्थली थी। वह दुर्गम वन वृन्दावन से गोवर्धन जाने वाले रास्ते में पड़ता है। जरूरत हुई तो मैं साल में दो-एक बार वहाँ जाकर तुम्हें देख आऊँगा। लेकिन तुम अपनी तपस्या छोड़कर वन से बाहर कभी कहीं मत जाना।''

पास में ही खड़े नन्ददास ने पूछा, ''लेकिन बाबा, दीदी का भिक्षाटन कैसे चलेगा?''

दामोदरदासजी ने उत्तर दिया, ''इस बात के लिए तुम अपना माथा मत घुमाओ। कृपालु प्रभु नटवरजी ने पहले से ही इसका प्रबन्ध कर रखा है।''

शिष्या परमेश्वरी को आश्वासन देते हुए उन्होंने कहा, ''माँ, तुम्हें किसी बात की चिन्ता नहीं करनी है। विहार-वन से सटे ही रासगाँव है। वहाँ के लोग यथेष्ट सम्पन्न हैं। अच्छे, सज्जन लोग हैं। वहाँ मेरे कुछ भक्त भी रहते हैं। वे सब तुम्हारी देखभाल करेंगे।''

विहार-वन के भीतर एक तमाल गाछ के नीचे परमेश्वरी दासी ने सूखी लकड़ियों, लताओं और घास-पात से अपने लिए एक कुटिया बना ली। वहीं उसका पूजा-घर था, और उसी में उसके सोने की जगह भी थी। गुरु के निर्देशानुसार उसने कृच्छ्रमय जीवन और ध्यान-भजन की कठिन तपस्या शुरू कर दी। उसका सारा समय ध्यान, जप और भजन में बीतने लगा। दिन-भर निराहार रह कर साँझ में केवल एक बार कुछ भोजन कर लेती थी। भिक्षाटन के लिए वह कभी वन के बाहर नहीं जातीं। मानवहीन उस जंगल में आटा, मैदा और नून

आदि कहाँ मिलता? वन में जो थोड़े फल-मूल उपलब्ध होते, उन्हें वह चुन लाती और ठाकुर को भोग लगाती। भोग की प्रसादी ही उसका आहार था।

लेकिन, वहाँ जल की समस्या बड़ी कठिन थी। विहार-वन में कोई तालाब नहीं था, केवल एक पुराना कुआँ था जिसका पानी खारा था। उस पानी से किसी तरह स्नान कर लिया जा सकता था, लेकिन उसे पीना तो असंभव ही था। परमेश्वरी पानी को औंट कर किसी तरह पी लिया करती थी। दूसरा उपाय ही क्या था?

गुरु-कृपा से परमेश्वरी की वह समस्या भी एक दिन दूर हो गयी। उस दिन वह जंगल में फल-मूल चुन रही थी। वहाँ एक लकड़हारे से उसकी भेंट हुई। लकड़हारे का नाम था भीखनलाल।

भीखनलाल रोज जंगल में जाकर लकड़ी काटता और उसे बाजार में बेचकर अपना और अपने परिवार का भरण-पोषण करता। उस दिन लकड़ी काटते समय उसकी नजर गेरुआ-वस्त्रधारिणी अपरूप सुन्दरी संन्यासिनी परमेश्वरी पर पड़ी। वह चकित-विस्मित होकर सोचने लगा, 'यह कोई मानवी है या वन देवी है? ऐसा रूप, ऐसा दिव्य भाव तो कभी देखने में नहीं आया।'

आगे बढ़कर उसने संन्यासिनी को दण्ड-प्रणाम किया। आशीर्वाद देकर सरल भाव से परमेश्वरी उस लकड़हारे से बात करने लगी। बातचीत के दौरान भीखनलाल ने पूछा, ''माई, इस गहन वन में रहकर तुम भगवान् का ध्यान-भजन करती हो, यह तो बड़ी अच्छी बात है। जंगल से फल-मूल चुनकर अपने भोजन का प्रबन्ध भी कर लेती हो। लेकिन, तुम्हें पीने का पानी कहाँ मिलता है? यहाँ कोई जलाशय तो है नहीं, केवल खारे पानी का एक कुआँ है। इस तरह से तुम कैसे जीवन धारण कर सकोगी?''

परमेश्वरी ने हँसते-हँसते उत्तर दिया, ''बेटा, मैंने मनुष्य-समाज को छोड़ कर इस जंगल में भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों का आश्रय लिया है। वे तो अन्धे नहीं हैं। वे निश्चय ही कोई प्रबन्ध करेंगे।''

भीखनलाल स्वयं बोल उठा, ''चिन्ता की कोई बात नहीं, माँ। मैं हर रोज, जंगल में लकड़ी काटने आता हूँ। अबसे तुम्हारे लिए अपने गाँव से एक कलसी मीठा, अच्छा जल रोज ले आया करूँगा। इस पर कोई आपत्ति मत करना, माँ। मैं तुम्हारे पुत्र तुल्य हूँ।''

परमेश्वरी ने उसका प्रस्ताव मान लिया और भीखनलाल भी धीरे-धीरे उसका परम भक्त बन गया।

इसी बीच बाबा दामोदरदास ने रासगाँव के अपने भक्तों और परिचितों को परमेश्वरी दासी की खबर भेज दी थी। वे लोग परमेश्वरी की तपस्या-कुटी में

आने लगे और बीच-बीच में एक-दो सेर आटा, नमक रख जाते। इससे भगवान् के भोग और परमेश्वरी के आहार की समस्या बहुत कुछ मिट गयी।

गुरु महाराज भी बीच-बीच में अपनी शिष्या को देखने विहार-वन में आते थे। कभी तो वे किसी काम से आते और कभी शिष्या की तपस्याग्नि को किंचित् उकसा जाते। इस क्रम में वे उसे साधना की नवीन, निगूढ़ क्रियाएँ भी सिखलाते।

वे साल में कई बार पवित्र गोवर्धन पर्वत की परिक्रमा के लिए निकलते थे। उस सिलसिले में भी तपस्यालीन परमेश्वरी को दर्शन दे जाते। गुरु का दर्शन पाकर वह आनन्द विह्वल हो जाती थी।

निर्जन वन में तपस्या करते हुए परमेश्वरी का दस वर्षों से भी कुछ अधिक समय कट चला था। एक दिन गुरु दामोदरदास अपने कुछ भक्तों और शिष्यों को साथ लिये उसकी तपस्या-कुटी में आए। उनके मुखमंडल पर दिव्य आनन्द का प्रकाश फैल रहा था।

उन्हें दण्डवत-प्रणाम कर परमेश्वरी जैसे ही खड़ी हुई, बाबाजी ने पूछा, ''क्यों री, कुशल है न? अपनी तपस्या की बात बताओ।''

हाथ जोड़ कर परमेश्वरी ने कहा, ''बाबा, आप अन्तर्यामी हैं, सब कुछ जानते हैं। आपकी कृपा से सब कुछ ठीक है, मैं बड़े आनन्द में हूँ।'' साधनासिद्ध उस वैष्णवी का सारा शरीर रोमांचित था, आँखों से पुलकाश्रु झड़ रहे थे।

''मैं जानता हूँ माँ! तुम प्रेम-सिद्धा हो गयी हो। तुम्हें राधा-कृष्ण के चिन्मय लीला-रस का आस्वादन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। अब तुम्हारे मानस-लोक में श्री श्री नंदलाल और किशोरीजी की नित्यलीला के अनेक अन्तरंग, अनेक निगूढ़ स्तर प्रस्फुटित होंगे। उसके बाद लीलामय प्रभु तुम्हें आत्मसात् कर लेंगे।''

कुछ क्षण चुप रहने के बाद बाबाजी बोले, ''माँ, इस बार मुझे अंतिम विदा दो। मैं गिरि गोवर्धन जा रहा हूँ। यह मेरी अन्तिम परिक्रमा होगी। वहाँ से वृन्दावन लौट कर मैं श्री नटवरजी के चरण तल में अपने शरीर का यह खोल त्याग दूँगा।''

गुरु के मुख से चिर विछोह की बात सुनकर परमेश्वरी दासी शोक-विह्वल हो गयी। डकर-डकर कर रोने लगी और पछाड़ खाकर बाबाजी के चरणों पर गिर पड़ी।

कुछ देर बाद परमेश्वरी के थोड़ा शांत होने पर बाबाजी ने धीर स्वर से कहा, ''माँ, इतने दिनों तक इस घोर जंगल में मैं तुम्हारी रक्षा करता रहा हूँ। अब तुम्हें उसकी कोई जरूरत नहीं है। कठोर साधना के फलस्वरूप तुम्हें सिद्धि प्राप्त हो गयी है और तुम्हारे भीतर प्रभु की नित्यलीला स्फुरित हो रही है। तुम अब

स्वयं अपनी रक्षा करने में समर्थ हो। बल्कि, तुम्हारी शरण में जो भी भक्त और आश्रित आएँगे, उन लोगों की भी रक्षा तुम करोगी। अपने सिद्धिलाभ का मंगल प्रसाद समाज के लोगों को भी कुछ देना होता है।''

बाबा दामोदरदासजी सदलबल गोवर्धन की ओर चल दिये। विषादखिन्न परमेश्वरी निष्पलक नेत्रों से उनकी ओर देखती रहीं।

दस वर्षों से कठिन तपस्या करने वाली इस वैष्णवी साधिका का नाम आसपास के गाँवों में फैल गया था। वैष्णव साधु-संतों ने मान लिया था कि यह अत्यंत उच्च कोटि की साधिका हैं। ब्रज क्षेत्र के अनेक स्त्री-पुरुष भक्त उनके दर्शनों के लिए आने लगे थे। वे इन्हें बड़ी श्रद्धा और आदर से देखते थे। वे समझ रहे थे कि ये बड़ी शक्तिमती साधिका हैं, इनकी शरण में आने से कल्याण होगा। सुप्रसिद्ध महात्मा दामोदरदास ने भी घोषित कर दिया था कि ये साधना-सिद्ध साधिका हैं। इसलिए भी लोगों के मन में किसी प्रकार की दुविधा नहीं थी। वे इन्हें सिद्धा परमेश्वरी बाई कहने लगे थे।

कोई समस्या या संकट आने पर गाँवों के लोग इनके पास विहार-वन में दौड़े आते थे और इनका आशीर्वाद पाकर संतुष्ट लौटते थे।

सिद्धा बाई जंगल में अपनी खड़-पात की झोपड़ी में रहती थीं। इस छोटी-सी जगह में आगंतुक भक्तों को उठने-बैठने में असुविधा होती थी। इसलिए रासगाँव के लोगों ने वहाँ एक कुटी बना देना चाहा, लेकिन त्याग-तितिक्षा की जीवन्त मूर्त्ति सिद्धा बाई इसके लिए राजी नहीं हुईं। लोगों के बहुत आग्रह करने पर वे अपनी झोपड़ी के पास एक पर्णकुटी बनवाने के लिए किसी तरह राजी हुईं।

सिद्धा बाई ने असामान्य प्रेम-भक्ति और वैष्णवी सिद्धि प्राप्त की थी। उन्हें कृष्ण दर्शन का भी दुर्लभ सौभाग्य मिला था। फिर भी, उनका कृच्छ्र व्रत, ध्यान-भजन और जप-तप पूर्ववत् अनवरत चलता रहा। उनकी दिनचर्या नियम की कठिन जंजीर में बँधी थी। उसमें किसी तरह भी ढिलाई आने की गुंजाइश नहीं थी। गुरु बाबा दामोदरदास के आदेश से उन्होंने विहार-वन के निर्जन जंगल में कठोर तपस्या करने का व्रत लिया था। उस आदेश का वे अक्षरशः पालन करती थीं। वे तीस वर्ष की आयु में इस जंगल में आयी थीं और ३५ वर्षों तक वहाँ रहीं। इस लम्बी अवधि में विहार-वन के बाहर वे कभी कहीं नहीं गयीं। यहाँ तक कि वे भिक्षाटन के लिए भी नहीं निकलीं। गुरु ने उन्हें आकाशवृत्ति से जीवनयापन करने का आदेश दिया था। उस आदेश का उन्होंने आजीवन पालन किया।

सिद्धि की ख्याति फैल जाने के कारण उनके दर्शनार्थ रासगाँव, गोवर्धन, राधाकुण्ड और बरसाने से दल-के-दल भक्त और तीर्थयात्री आने लगे। निकट के

गाँव से आनेवाले भक्तों की भी संख्या कुछ कम नहीं थी। लेकिन दर्शनार्थीगण केवल दिन में ही उनसे मिलने आ सकते थे। साँझ होने के बाद उनकी भजन-कुटी के निकट आना सर्वथा वर्जित था। सिद्धा बाई ने अपनी कुटी के चारों ओर अपने हाथ से एक अभिमंत्रित लकीर खींच दी थी। भक्त और दर्शनार्थी लोगों को मालूम था कि उस मंत्रपूत रेखा के भीतर पाँव देना सब तरह से निषिद्ध है।

किसी कौतूहली भक्त ने एक दिन पूछा, "माई, अगर कोई आदमी तुम्हारी निषेधाज्ञा न मान कर इस रेखा को लाँघना चाहे तो क्या फल होगा?"

सिद्धा परमेश्वरी ने दृढ़ कंठ से कहा, "फलाफल की बात तो दूर की है, इस रेखा के अन्दर पाँव देना किसी भी मनुष्य के लिए संभव नहीं है, वह दुष्ट हो या कितना ही बड़ा तपस्वी भी क्यों न हो।"

सिद्धा बाई की भजन-निष्ठा और अलौकिक शक्ति की चर्चा धीरे-धीरे दूर-दूर तक फैल गयी थी। इसलिए सरल हृदय जाट कृषकों और ब्रज मण्डल की गोप-गोपिकाओं का उनके दर्शनार्थ आना-जाना लगा ही रहता था। वे सब कोई-न-कोई मनोकामना लिये आते थे और सिद्धा बाई उन्हें देखते ही उनके मन की बात समझ जाती थीं। कल्याणमयी माँ की तरह वे उनलोगों की मदद भी करती थीं। वैष्णव, अवैष्णव, सबको विश्वास हो चला था कि सिद्धा बाई की शरण में जाने पर उनका कष्ट अवश्य दूर हो जायेगा।

वृन्दावन और ब्रजमण्डल के साधु-संत भी सिद्धा बाई की महिमा को स्वीकार करते थे। गोवर्धन-परिक्रमा करने वाली साधु-मण्डलियाँ अवश्य ही दल बाँध कर विहार-वन में उनका दर्शन करने आतीं।

अपने व्यावहारिक जीवन में भी सिद्धा बाई इच्छा-आकांक्षा से ऊपर उठ गयी थीं। दर्शनार्थी भक्त लोग ढेर सारा फल-मूल और मिठाई भेंट में दे जाते थे। लेकिन वे तत्काल सभी वस्तुओं को दर्शनार्थी स्त्री-पुरुषों में बाँट देती थीं। बाँटने का काम बाई के परमभक्त भीखन लाल का था। उसे बाई ने स्पष्ट आदेश दे रखा था कि वह कुछ भी संचय न करे और भजन-कुटी में तो कुछ रखे भी नहीं। इस कठोर नियम में किसी दिन भी व्यतिक्रम नहीं हुआ।

एक बार गोवर्धन-परिक्रमा करने वाले सैकड़ों दरिद्र तीर्थयात्री सिद्धा बाई का दर्शन करने आ गये। वे सब तेज धूप और थकावट से चूर हो रहे थे। बड़े भूखे भी थे।

उस समय सिद्धा बाई के कई विशिष्ट भक्त वहाँ थे। वे बड़ी चिन्ता में पड़े कि अभ्यागत दर्शनार्थियों के भोजन-पानी का क्या प्रबन्ध किया जाय। कुछ भक्तों ने कहा, "माई की इस पर्णकुटी में तो एक मुट्ठी आटा या फलमूल भी संचित नहीं रहता है। इसलिए इतने भूखे लोगों के भोजन की यहाँ क्या व्यवस्था हो

सकती है? इन लोगों को रासगाँव ले चलना चाहिए। वहाँ कई गृहस्थ माई के भक्त हैं। वहाँ इन लोगों के लिए भोजन की अच्छी व्यवस्था हो जायेगी।''

परमेश्वरी बाई ने उन लोगों की राय सुन कर कहा, ''बेटा, तुम लोग परेशान मत होओ। इन लोगों को पेड़ की छाया में विश्राम करने को कहो। ठाकुर नटवरजी इन लोगों के लिए अवश्य भोजन भेजेंगे।''

सिद्धा बाई की बात थोड़ी देर में ही सच सिद्ध हुई। मथुरा के एक सेठ उस दिन गोवर्धन-दर्शन के लिए आये थे। उन्हें स्वप्न में भगवान् का आदेश मिला, 'सिद्धा परमेश्वरी बाई मेरी अंतरंग भक्त है। उनका दर्शन कर अपना जीवन सार्थक करो। बाई के स्थान पर भंडारा भी करना।' भगवान् के इस आदेश पर सेठजी दो बैलगाड़ियों पर पूरी, लड्डू, पेड़ा वगैरह भोजन-सामग्री लाद कर विहार-वन में आये। माई के वास-स्थान पर जम कर भण्डारा हुआ। क्षुधार्त दर्शनार्थियों ने जी-भर भोजन किया। जो भक्तजन इन लोगों को रासगाँव ले जाकर भोजन कराने की बात कर रहे थे, उनके आश्चर्य का कोई ठिकाना नहीं रहा।

विख्यात बूढ़े साधु बाबा अनन्तदासजी ने परवर्त्ती काल में आकर सिद्धा परमेश्वरी बाई की छोड़ी हुई कुटिया में बहुत दिनों तक तपस्या की थी। उनके मुँह से अनेक तीर्थयात्रियों ने बाई की साधना-सिद्धि की बहुत सारी कहानियाँ सुनी थीं। विद्वान् लेखक डॉ० विमानबिहारी मजुमदार ने बाबा अनन्तदासजी से सुनी एक आश्चर्यजनक घटना का विवरण दिया है।[१]

''एक बार एक ब्रजवासी सज्जन परमेश्वरी बाई का दर्शन करने आये। दर्शन करने के बाद वे जब भी लौट जाने के लिए तत्पर होते, बाई उनसे कुछ देर और रुकने का अनुरोध करतीं। इस तरह देर तक वहाँ रुके रहने के बाद वे सज्जन यह कहकर कि एक जरूरी काम है, इसलिए और अधिक देर तक रुकना ठीक नहीं होगा, चल दिये।''

''वे कुछ ही दूर गये होंगे कि रास्ते में एक विषधर सर्प ने काट लिया और वे चीत्कार कर गिर पड़े। साथ के लोग उन्हें उठा-पठाकर बाई के निकट ले आये। बाई ने उदास हँसी हँसते हुए कहा, ''मैं तो स्पष्ट देख रही थी कि ये किसी गम्भीर दुर्घटना में पड़ने वाले हैं। इसीलिए, मैं उन्हें यहाँ से जाने से रोक रही थी लेकिन दैव की गति प्रबल है; उसे कौन रोक सकता है?''

''उन सज्जन की प्राण-रक्षा के लिए उनके संगी-साथी बड़े व्यग्र थे। बाई ने अपनी धूनी से थोड़ी भस्म लेकर उनके शरीर पर मल दिया और थोड़ी देर में वे विषमुक्त होकर उठ बैठे।''

---

[१] सिद्धा परमेश्वरी बाई, उज्जीवन, वैशाख, १३७८ (बंगाब्द)।

रासगाँव के सुदामा चौधरी एक सम्पन्न जमींदार थे। प्रचुर धन-सम्पत्ति रहने पर भी उनकी स्त्री के मन में बड़ा दुःख था कि उनके कोई सन्तान नहीं है। स्त्री की उम्र भी पचास वर्ष से ऊपर हो चुकी थी। चौधरी अनेक साधु-सन्तों के पास गये, अनेक तीर्थों की यात्रा की। उनकी स्त्री ने भी अनेक व्रत-उपवास किये। किन्तु उनकी संतान-कामना पूरी नहीं हुई।

उस इलाके के अनेक लोग सिद्धा बाई की कृपा से संकटमुक्त हुए थे। सब लोग जानते थे कि बाई को प्रभु राधाकृष्ण की कृपा प्राप्त है और वे वाक्सिद्धा तपस्विनी हैं। सब तरफ से निराश होकर चौधरी भी अपनी पत्नी के साथ सिद्धा बाई की शरण में आये।

उन्हें प्रणाम कर चौधरी बोले, ''माई, तुम्हारी कृपा से बहुतों के दुख दूर हुए हैं। मुझ दुखी जन पर भी अपनी कृपा-दृष्टि फेरो। सारा जीवन कष्ट सह कर मैंने विशेष सम्पत्ति अर्जित की है, लेकिन उसका उपभोग कौन करेगा? दूसरे, हम लोगों की काफी उम्र हो गयी है। कोई पुत्र नहीं है जो हमलोगों को मरने पर मुखाग्नि और पिंडदान देकर हमारा उद्धार करे। हमें आशीर्वाद दो, माँ, कि हमारे एक पुत्र होवे।''

उन लोगों से बात करने पर सिद्धा बाई को ज्ञात हुआ कि चौधरी की स्त्री की आयु पचास के पार हो गयी है। उन्होंने कहा, ''देख रही हूँ, इस माँ की उम्र बहुत हो गयी है। इस उम्र में सन्तान होने की आशा नहीं देख रही हूँ।''

चौधरी की स्त्री ने बड़े कातर स्वर में कहा, ''माई, हमलोग तुम्हारी शरण में आये हैं। हम लोगों पर कृपा करो।''

सिद्धा बाई किंचित् कठोर स्वर में बोलीं, ''तुम लोगों ने कभी सोचा भी है कि जीवन में तुम लोगों ने कितना पाप किया है? तुम लोगों ने जोर-जुल्म करके छलबल से गरीब लोगों की जमीन हड़प ली है; उनके घर पर कब्जा कर लिया है। उसके ऊपर से कड़ा सूद लेकर उन लोगों का खून चूस-चूस कर धन इकट्ठा कर लिया है। ऐसे पापी घर में कृष्णजी और राधारानीजी सन्तान क्यों भेजेंगे?''

चौधरी और उनकी पत्नी सिद्धा बाई के चरणों पर गिर कर कृपा की भीख माँगने लगे। उनकी रुलाई से द्रवित होकर माई ने कहा, ''सुनो चौधरी, तुम्हारी तरह तुम्हारी पत्नी दुष्ट नहीं है। उसमें कुछ भक्तिभाव है, पूजा-अर्चना भी करती है। उसको ही देखकर मैं तुम्हारी मनोकामना पूरी करती हूँ। जाओ, तुम्हारे एक पुत्र होगा, लेकिन तुम्हें वचन देना पड़ेगा कि तुम अबसे गरीबों पर जोर-जुल्म नहीं करोगे और पापाचार की ओर पाँव नहीं बढ़ाओगे।''

चौधरी ने विनीत होकर कहा, ''माई, मैं अब पापकर्म में लिप्त नहीं होऊँगा। माँ की कृपा मुझ पर बनी रहे।''

सिद्धा बाई ने अपनी धूनी में से थोड़ी भस्म लेकर चौधरी-पत्नी को खाने के लिए दिया और चौधरी से कड़े शब्दों में कहा, "चौधरी, कृष्णजी की कृपा से तुम्हारे एक पुत्र होगा और सात्त्विक स्वभाव का होगा। लेकिन मैं तुम्हें सावधान किये देती हूँ कि अगर तुमने अबसे पापाचार किया तो वह लड़का बचेगा नहीं। पापी के घर में मोटी साँस चलती है जिसे वह सात्त्विक स्वभाव वाला बालक सहन नहीं कर सकेगा। किसी बीमारी का बहाना लेकर वह देहत्याग कर देगा।"

माई का आशीर्वाद पाकर चौधरी प्रसन्नचित्त पत्नी के साथ घर लौट आये। उन्होंने गाँव के लोगों से माई की कृपा की बात कही। पड़ोसियों को विश्वास नहीं हुआ। वे लोग हँसने लगे "इस उम्र में भी क्या सन्तान होती है? लेकिन जो हो, चौधरी की स्त्री बड़ी भली है; संतान की आशा में उसका मन आनन्दित तो रहेगा।"

लेकिन, करीब एक साल के बाद ही चौधरी की स्त्री ने एक सुन्दर, सुलक्षणयुक्त पुत्र को जन्म दिया।

विलियम फॉकनर नामक एक तरुण अंगरेज मथुरा घूमने आया। वह मथुरा के मजिस्ट्रेट का अतिथि था। उसे मन्दिरों-मूर्तियों की कला-कृतियाँ और लकड़ी की कारीगरी के काम देखने का शौक था। चिड़ियों का शिकार करने का भी नशा था।

मथुरा के मन्दिरों को देखने के बाद एक दिन वह गोवर्धन की ओर जा रहा था। तम्बू और भोजन-सामग्रियाँ लिये कुली लोग आगे-आगे चल रहे थे। रास्ते में घना जंगल देख कर साहब को शिकार खेलने का शौक जग पड़ा।

रासगाँव के सीमाने पर तम्बू गाड़ दिया गया। पास में ही विहारवन का घना जंगल था।

दूसरे दिन फॉकनर साहब दो भारतीय शिकारियों को साथ लेकर शिकार की खोज में निकला। रासगाँव के कुछ लोग कुतूहलवश उसके पीछे-पीछे चले।

गहन वन में घुसने पर सिद्धा बाई की पर्णकुटी दिखायी पड़ी। उन दिनों पास-पड़ोस में एक प्रथा-सी चल पड़ी थी कि जब भी लोग सिद्धा बाई की कुटिया के नजदीक से निकलते, वे बड़े जोर में चिल्लाते 'सिद्धा परमेश्वरी बाई की जय!' उन लोगों का विश्वास था कि बाई के कानों में जयकार की आवाज जाने के बाद रास्ते के साँप और जंगली जानवर स्वतः हट जायँगे। वैसी कोई आपद्-विपद् उपस्थित हुई भी तो माई रक्षा करेंगी।

सिद्धा बाई की कुटिया के निकट पहुँचकर फॉकनर साहब के पीछे-पीछे चलने वाले स्थानीय लोगों ने बाई की जयध्वनि की। आवाज सुन कर साहब ने कुतूहलवश पूछा, "यह क्या बात है।"

लोगों ने उत्तर दिया ''यहाँ हमलोगों की सिद्धा माताजी रहती हैं। वे दिन-रात भगवद्-भजन और साधना में लीन रहती हैं। उनको अनेक प्रकार की अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त हैं। उनकी जयकार करते हुए हमलोग निर्भय होकर इस जंगल में प्रवेश करते हैं।''

साहब ने व्यंग्य से हँसते हुए कहा; ''तुम लोगों की यह महिला साधु कहाँ हैं? उनके सिर पर तो जटा होगी और वे बहुत बूढ़ी भी होंगी?''

उनलोगों की बात चल ही रही थी कि सिद्धा बाई पर्णकुटी का दरवाजा खोल कर बाहर आँगन में चली आयीं। गाँववालों ने हाथ जोड़ कर बड़े भक्तिभाव से उन्हें प्रणाम किया। फॉकनर साहब विस्मय से अवाक् होकर उन्हें एकटक देखने लगा। यह तपस्विनी बूढ़ी नहीं है बल्कि तरुणी है। केवल तरुणी ही नहीं, रूपवती भी है। कच्चे सोने की तरह चम्पक-वर्ण है। गेरुआ वस्त्र से शरीर ढँका है लेकिन सौन्दर्य का प्रकाश फूटा पड़ रहा है। मुखमंडल पर अपूर्व आनन्द की ज्योति छिटक रही है। इतनी आकर्षक रूपछटा थी कि साहब टकटकी लगाये देखता रह गया।

आँगन से कुछ आगे आकर सिद्धा बाई ने शान्त-मधुर स्वर में गाँववालों से पूछा, ''बेटा, तुमलोग इतना शोरगुल करते हुए कहा जा रहे हो?''

''माई, ये साहब और उनके साथी मथुरा से आये हैं। ये लोग विहार-वन में चिड़ियों का शिकार करेंगे। देखो न! इनके हाथ में बन्दूक है।''—गाँव के एक परिचित व्यक्ति ने उत्तर दिया।

''बेटा, तुमलोग बता सकते हो कि ये लोग निर्दोष पक्षियों को मारेंगे क्यों? यहाँ यह सब खून-खराबा ठीक नहीं।''—शांतभाव से इतना कह कर सिद्धा बाई अपनी कुटियाँ में चली गयीं।

सिद्धा बाई के रूप को देखकर फॉकनर साहब विमुग्ध था। गाँव के लोगों से उनकी जो बात हुई, उसकी ओर उसने ध्यान ही नहीं दिया। बल्कि, साथ चलने वाले लोगों से सिद्धा बाई की महिमा सुनकर वह हो-हो कर हँसने लगा। कहा, ''अरे, चलो, मेरे साथ आओ। बेकार बातों में समय क्यों बर्बाद करते हो?''

सब लोग शिकार करने के इरादे से जंगल में घुसे। लेकिन यह कैसा आश्चर्य? जो जंगल चिड़ियों के कलरव से मुखर रहता था, आज बिलकुल शांत, नीरव था। कहीं कोई चिड़िया नजर नहीं आयी। क्या शिकारियों को चकमा देकर वे सब जुट बाँध कर अन्यत्र चली गयी हैं?

निराश होकर सब लोग लौट चले। सिद्धा बाई की कुटिया के निकट पहुँच कर गाँववालों ने पुनः जयजयकार किया। बाई ने बाहर आकर पूछा, ''क्यों रे, तुम लोगों को कोई शिकार मिला या नहीं?''

''नहीं माई! शिकार कहाँ? सभी चिड़ियाँ वन छोड़ कर भाग गयी हैं।''

''हाँ, यह तो होना ही था। यह प्रेम का स्थान है। यहाँ खूनखराबा का खेल नहीं चलने का। मैंने तो सभी चिड़ियों को खबर दे दी है।''—माई ने बताया।

तीसरे पहर शिकारी लोग फिर वन में आये। लेकिन उन्हें फिर निराशा ही हाथ लगीं। चिड़ियों का कहीं कोई पता नहीं था। लगता था, वे सब आपस में राय-मशविरा कर जंगल से चली गयीं।

विलियम फोकनर क्षुब्ध मन लिये अपने कैम्प रासगाँव में लौट आया। एकान्त में बैठा-बैठा वह सोचने लगा, 'चिड़ियों का शिकार नहीं हुआ, कोई बात नहीं। लेकिन दूसरा शिकार तो जैसे भी हो, फँसाना ही है।' वह एकान्तवासिनी सिद्धा बाई के रूपाकर्षण से पागल हो रहा था।

रात में भोजनोपरांत उसने गाँव के मुखिया को बुलवाया और धीरे-से उसके कान में कहा कि वह वनवासिनी रमणी उसे चाहिए ही। ''आज रात में उस औरत को कैम्प में ले आओ। उसे कुछ रुपया दे देना। उसका कोई मर्द हो तो उसे भी कुछ रुपया दे दो। जैसे भी हो, उसको ले आना है।''

मुखिया विस्मय-विमूढ़ रह गया। बोला, ''साहब, आप यह क्या बकवास कर रहे हैं? सिद्धा बाई खानदानी तपस्विनी हैं। वे संन्यासिनी हैं। उनके लिए रुपया-पैसा और जीवन का सुख-भोग, सब-कुछ तुच्छ है।''

फॉकनर क्रोध से आगबबूला हो गया, ''तुम क्या कहना चाहते हो? ऐसी सुन्दर स्त्री वन में अकेले रहती है और उसका कोई प्रेमी नहीं है?''

''साहब, आप बात नहीं समझ रहे हैं। वे सचमुच संन्यासिनी हैं। वे भगवान् की प्राप्ति के लिए जंगल में वैराग्य और जप-ध्यान में तल्लीन रहती हैं।''

''डैम नन्सेन्स! तुमलोग फाँकी दे रहे हो। मुझे वह औरत चाहिए। मैं खुद उसकी कुटिया में जाता हूँ।'' फॉकनर साहब उत्तेजनावश फों-फों कर रहा था।

उसने एक हाथ में राइफल ली और दूसरे में लालटेन। जूता ठक-ठक करता हुआ विहार-वन की ओर चल पड़ा। गाँव के मुखिया ने उसे सतर्क करते हुए कहा, ''आप जा रहे हैं तो जाइए। लेकिन याद रखिए, साँझ के बाद सिद्धा बाई की कुटिया के चारों ओर पड़ी अभिमंत्रित रेखा को लाँघ कर कोई आदमी अन्दर नहीं जा सकता। आदमी और जानवर की बात तो दूर रही, एक मच्छर भी अन्दर नहीं घुस सकता।''

लेकिन साहब इस चेतावनी को अनसुनी कर आगे बढ़ता ही गया। कामोत्तेजना से उसकी अक्ल मारी गयी थी, भले-बुरे का विचार नष्ट हो गया था।

सिद्धा बाई की कुटिया के पास पहुँच कर वह क्षण-भर के लिए रुका और कुटिया के आँगन की ओर जैसे ही उसने पाँव बढ़ाया, किसी अदृश्य शक्ति ने उसके कलेजे पर इतने जोर से आघात किया कि वह दूर जा गिरा।

किसी तरह से अपने को सँभाल कर फॉकनर उठ खड़ा हुआ और फिर कुटिया के आँगन में जाने लगा। दो-चार डग आगे बढ़ा होगा कि उसके सामने एक भयंकर महाबलिष्ठ पुरुष प्रकट हुआ और उसे उठाकर बहुत दूर फेंक दिया। फॉकनर गिर कर बेहोश हो गया।

बहुत रात बीत चुकी थी। फॉकनर अपने कैम्प में नहीं लौटा था। उसके साथ मथुरा से जो दो-चार लोग आये थे, कहने लगे, साहब अभी तक नहीं लौटे हैं; वे कह गये थे कि दो-तीन घंटे में लौट आयेंगे। आधी रात बीत गयी और वे वापस नहीं आये हैं। कहीं वे वन में रास्ता भूल कर भटक तो नहीं गये? या, उन्हें वन में किसी विषधर सर्प ने तो नहीं काट लिया?

वे लोग साथ में दो-तीन आदमी लेकर लालटेन लिये फॉकनर को खोजने निकले। विहार-वन में कुछ आगे बढ़ने पर उन लोगों ने देखा कि साहब एक वटवृक्ष के नीचे बेहोश पड़ा हुआ है। चेहरा विवर्ण है और मुँह से फेन निकल रहा है।

उसे उठा-पठा कर लोग कैम्प में ले आये। सेवा-शुश्रूषा कर उसे होश में लाया गया। कुछ दवाएँ दी गयीं और गरम दूध पिलाया गया।

दूसरे दिन फॉकनर ने गाँव के मुखिया को बुलवाया। मुखिया की पीठ ठोकते हुए वह बोला, ''गुड मैन, तुमने ठीक ही कहा था। बाई खूब 'पॉवरफुल' है, साक्षात् माँ मरियम है। तुम मेरे साथ चलो, मैं माई से मिलूँगा, उनका आदर-सम्मान करूँगा और माफी माँगूँगा।''

साहब के मुँह से रात की सारी घटना सुन कर मुखिया ने कहा, ''साहब, आप अपने माता-पिता के पुण्य-प्रताप से और अपने सौभाग्य से बच गये। हमलोग जानते हैं कि रात में कोई भी व्यक्ति माई की कुटिया को घेरनेवाली मंत्रपूत रेखा को लाँघ नहीं सकता है।''

उन लोगों के वहाँ पहुँचने पर सिद्धा बाई कुटिया के बाहर आयीं। साहब ने अपनी टोपी सिर से हटाकर उनके प्रति सम्मान प्रदर्शित किया। अपनी टूटी-फूटी हिन्दी में माई से बात करने लगा। ''माताजी, मैं अपने आचरण के लिए बहुत लज्जित हूँ और दुःखित हूँ। आप मुझे क्षमा कीजिए।''

सिद्धा बाई ने उत्तर दिया, ''मैंने तो तुम्हें पहले ही माफ कर दिया था, नहीं तो मेरी अभिमंत्रित रेखा को पार करने पर तुम जीवित कैसे बचते? सांसारिक लोग तो अनेक प्रकार की भूल करते ही हैं। वन में वास करनेवाले हमलोगों का काम ही है उनलोगों की भूल सुधारना।''

''मैं बहुत कृतज्ञ हूँ कि आपने मेरा भूल-सुधार किया।''

''साहब, मैं, जैसे और सब लोगों के कल्याण की कामना करती हूँ, वैसे तुम्हारे लिए भी करती हूँ। लेकिन तुमसे एक बात कहती हूँ। तुम विदेश से आये

हो; तुम्हें यहाँ की बातें मालूम नहीं हैं। तुमने यहाँ राह बाट में, जंगल में अनेक साधु-सन्तों को देखा होगा। किन्तु उनमें जो सिद्ध या सिद्धा हैं, उनका अपमान मत करना, नहीं तो विपत्ति में पड़ जाओगे।''

साहब ने फिर टोपी उतार कर माई के प्रति सम्मान दिखलाया और वहाँ से विदा हुआ।

किसी दूसरे दिन की बात है। खड़ी दुपहरी का समय था। सिद्धा परमेश्वरी बाई भगवान् को भोग लगा कर, स्वयं कुछ प्रसादी ग्रहण कर कुटिया में विश्राम कर रही थीं। उसी समय कृटिया के आँगन में दो बलिष्ठ आदमी आये। उनलोगों ने बड़े जोर से हाँक लगायी, ''सिद्धा परमेश्वरी बाई की जय।''

साहब ने फिर टोपी उतार कर माई के प्रति सम्मान दिखलाया और वहाँ से विदा हुआ।

किसी दूसरे दिन की बात है। खड़ी दुपहरी का समय था। सिद्धा परमेश्वरी बाई भगवान को भोग लगा कर, स्वयं कुछ प्रसादी ग्रहण कर कुटिया में विश्राम कर रही थीं। उसी समय कुटिया के आँगन में दो बलिष्ठ आदमी आये। उनलोगों ने बड़े जोर से हाँक लगायी, ''सिद्धा परमेश्वरी बाई की जय।''

आवाज सुनकर माई बाहर आयीं और बोलीं, ''क्यों रे, तुम लोग इस असमय में क्यों आये हो? तुम्हारे हाथ में यह सब क्या है?''

हाथ की टाँगी और गैंता ऊपर उठाते हुए उनमें से एक व्यक्ति बोला, ''माई, आज हमलोग तुम्हारे यहाँ डकैती करने आये हैं।''

''तो इस दोपहर में क्यों? चोरी-डकैती तो रात में की जाती है।''

''नहीं माई! हमलोग जानते हैं कि रात में तुम्हारी कुटिया का मंत्र पढ़ा हुआ घेरा कोई नहीं लाँघ सकता है। सबको मालूम है कि उस रात घेरे के अन्दर जाने की कोशिश करने पर शिकारी साहब की क्या दशा हुई थी। इसीलिए तो हमलोग दोपहर में आये हैं।''

''लेकिन, मैं कंगाल वैष्णवी हूँ। यहाँ तुमलोग किस अक्ल से आये हो? यहाँ क्या मिलेगा?''

''कुछ तो मिलेगा ही, माई! हमलोग तुमको कोई कष्ट नहीं देंगे। केवल कुटिया में घुसकर देखेंगे कि क्या कुछ मिलता है। हमलोग टाँगी-गैंते से कुटिया का फर्श और भीत कोड़ कर देखेंगे। तुम्हारे यहाँ बड़े-बड़े सेठ-साहूकार और धनी गृहस्थ आते हैं; मिठाई, वस्त्र और रुपया-पैसा भेंट चढ़ाते हैं। ऐसा तो हो नहीं सकता कि तुम्हारे घर में कुछ भी छिपा कर नहीं रखा हुआ हो। यहाँ जो कुछ मिलेगा, हमलोग उठा कर ले जाएँगे। हमलोग बड़े गरीब हैं, माई। इसलिए चोरी-डकैती जैसा पापकर्म करते हैं।''

सिद्धा बाई कुछ क्रोधित होकर बोलीं, ''तुमलोग क्या जानते नहीं कि जो कुछ भेंट में आता है, सब-का-सब मैं गरीबों में बाँट देती हूँ? तब फिर क्यों मुझे परेशान करने आये हो? इसका फल तुम्हें हाथों-हाथ मिलेगा।''

लेकिन दोनों डकैत कुछ भी मानने को तैयार नहीं थे। बोले, ''तुम जो भी कहो, हमलोग तो घर में घुस कर देखेंगे ही।''

''मैं कह रही हूँ, यहाँ गुण्डई-डकैती करने से तुमलोग घोर विपत्ति में पड़ोगे।''

वे लोग ज्यों हीं कुटिया में घुसने के लिए आगे बढ़े, सिद्धा बाई तेजी से अपने आसन पर आयीं और धूनी से थोड़ी भस्म लेकर उन लोगों के मुँह पर फेंक दिया। फिर क्या था, दोनों डकैत चीत्कार करने लगे ''माई, तुमने यह क्या किया? हमलोगों की तो आँखें जल रही हैं, कुछ भी नहीं दिखायी पड़ रहा है; हमलोग अन्धे हो गये हैं। हमलोग तुम्हारे पैरों पड़ते हैं; हमारी रक्षा करो।''

बाई ने शान्त स्वर से कहा, ''तो ठीक है, आकर हमारी धूनी के सामने बैठो और प्रतिज्ञा करो कि इस इलाके में फिर कभी किसी साधु-सन्त या सद्गृहस्थ को तुमलोग कष्ट नहीं दोगे और उनलोगों के घर चोरी-डकैती नहीं करोगे।''

''हाँ भाई, हमलोग वचन देते हैं। दुहाई है। हमलोगों की रक्षा करो!''— कह कर वे लोग सिद्धा बाई के चरणों पर गिर पड़े और व्याकुलतर होकर लौटने लगे। आँखों की जलन से वे छटपट कर रहे थे।

सिद्धा बाई ने अपनी धूनी से थोड़ी भस्म लेकर दोनों के सिर, मुँह और आँखों पर छींट दिया। बोलीं, ''जाओ, तुमलोग अब अच्छे हो गये। लेकिन, जो वचन दिया है, उसे बराबर याद रखना।''

दोनों डकैतों की आँखों की ज्वाला शान्त हो गयी और बाई को प्रणाम कर वे वहाँ से चलते बने।

रासगाँव के लोगों ने बताया कि उस दिन की घटना के बाद वे डकैत बहुत-कुछ सुधर गये। उनलोगों का उपद्रव बहुत कम हो गया।

सिद्धा बाई के विहार-वन में आकर दस वर्षों तक तपस्या करने के बाद उनके गुरु दामोदर दास बाबाजी का देहान्त हुआ। इन दस वर्षों के दरमियान कई बार बाबाजी वृन्दावन से गोवर्धन आये और अपनी प्रिय शिष्या परमेश्वरी को वैष्णवी रस-साधना की निगूढ़ क्रियाएँ सिखला गये।

जिस दिन बाबाजी को शरीर त्याग करना था, वे गम्भीर रात में अपने सूक्ष्म, दिव्य ज्योतिर्मय शरीर में परमेश्वरी बाई के समक्ष प्रकट हुए। उन्होंने कहा, ''माई, मेरे शरीर का प्रयोजन पूरा हो गया है। इसे त्याग कर मैं दिव्यलोक में जा रहा हूँ। प्रभु श्री श्री नटवरजी के आदेश पर मैं तुम्हें यहाँ खींच लाया था और उनके निर्देशानुसार

तुम्हारी यह तपस्या-स्थली तैयार की गयी थी। अब तुममें अन्तरंग वैष्णवीय साधना-सिद्धि और लीलादर्शन का प्रस्फुटन हो रहा है। लेकिन, तुम्हें और भी गम्भीर स्तर पर जाना है। मेरा आशीर्वाद है कि तुम्हारा साधन-जीवन सार्थक हो।''

गुरु महाराज के तिरोधन के बाद सिद्धा बाई करीब ३० वर्षों तक विहार-वन में साधना करती रहीं। वे राधाकृष्ण के दिव्य लीलादर्शन की गम्भीरतम गहराई में क्रमशः उतरती चली गयीं।

तीस वर्षों की इस एकान्त साधना-सिद्धि के बाद बाई के जीवन का लोक-कल्याण पर्व आरम्भ हुआ। ब्रजमंडल के पुराने तपस्वियों से मालूम हुआ है कि उस समय कई वैष्णव साधु बाई से वैष्णवी साधना की निगूढ़ प्रक्रियाएँ सीख गये और उनलोगों की साधना सार्थक हुई।

तत्पश्चात् १९१० ई० के अन्त में, सिद्धा बाई के शरीर-त्याग का समय आया। उनके मुँह से शरीर-त्याग के मुहूर्त की बात सुनकर अन्तरंग शिष्य और भक्त लोग बड़े व्याकुल हो गये। रासगाँव और अन्य निकटवर्ती गाँवों से दल-के-दल अगणित स्त्री-पुरुष दर्शनार्थ आने लगे। सारा विहार-वन राधेश्याम और सिद्धा बाई की जयध्वनि से गूँज उठा।

गुरु द्वारा दिये गये आसन पर बैठ कर गुरुप्रदत्त नामजप करते हुए इन महान् साधिका ने अपना नश्वर शरीर त्याग दिया।

आज विहार-वन की वह दुर्गमता और निर्जनता नहीं रही। तपस्या के अनुकूल वहाँ का परिवेश भी नहीं रहा। लेकिन, सिद्धा बाई की उस तपस्या-स्थली को आज भी लोग आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। उस तरफ होकर आने-जाने वाले लोग भक्तिभाव से 'सिद्धा बाई की जय' बोल कर उनके आशीर्वाद की कामना करते हैं। गोवर्धन अंचल में तपस्या करनेवाले पुराने वैष्णव सन्तजन सिद्धा बाई की याद कर भाव-पुलकित हो जाते हैं और श्रद्धा-भाव से उनके माहात्म्य की चर्चा करते हैं।[१]

—प्रमथनाथ भट्टाचार्य के सौजन्य से

●

---

[१] सुनने में आता है कि गोवर्धन के प्रसिद्ध साधक बाबा मनोहरदास के शिष्य अनन्तदास ने सिद्धा परमेश्वरी बाई की पर्णकुटी में बहुत दिनों तक साधना की थी। वे जब वहाँ साधना करने आये, स्थानीय लोगों ने उन्हें सतर्क किया कि सिद्धा बाई का साधना-स्थल अत्यन्त पवित्र है। वहाँ कामिनी-कांचन की आसक्ति का सर्वथा परित्याग करके ही तपस्या करनी चाहिए, नहीं तो लाभ के बदले हानि होने की ही सम्भावना है। अनन्तदासजी ने इस चेतावनी को ध्यान में रखकर वहाँ बहुत दिनों तक साधना की और उनकी तपस्या सार्थक भी हुई।

भारत के महान योगी

विश्वनाथ मुखर्जी

चौदह भाग, ७ जिल्द में, प्रत्येक सौ रुपये

भारत योगियों, संतों, साधकों और महात्माओं का देश है। देश के सभी भागों में अनेक योगी तथा संत हुए हैं जिन्होंने देश की चिन्तनधारा और जीवन को प्रभावित किया है। अपने चमत्कारी जीवन से जनमानस को चमत्कृत भी किया है। ऐसे योगियों का जीवन-चरित चौदह भागों (७ जिल्द) में प्रस्तुत किया गया है।

भाग : १-२ तंत्राचार्य सर्वानन्द, लोकनाथ ब्रह्मचारी, प्रभुपाद विजयकृष्ण गोस्वामी, वामा खेपा, परमहंस परमानन्द, संत ज्ञानेश्वर, संत नामदेव, संत रविदास, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी ब्रह्मानन्द, स्वामी विशुद्धानन्द परमहंस।

भाग : ३-४ योगिराज श्यामाचरण लाहिड़ी, महर्षि रमण, भूपेन्द्रनाथ सान्याल, योगी वरदाचरण, नारायण स्वामी, बाबा कीनाराम, तैलंग स्वामी, परमहंस रामकृष्ण ठाकुर, जगद्गुरु शंकराचार्य, सन्त एकनाथ।

भाग : ५-६ स्वामी रामानुजाचार्य, रामदास काठिया बाबा, राम ठाकुर, साधक रामप्रसाद, भूपतिनाथ मुखोपाध्याय, स्वामी भास्करानन्द, स्वामी सदानन्द सरस्वती, पवहारी बाबा, हरिहर बाबा, साईं बाबा, रणछोड़दास महाराज, अवधूत माधव पागला।

भाग : ७-८ किरणचन्द्र दरवेश, स्वामी अद्भुतानन्द (लाटू महाराज), भोलानन्द गिरि, तंत्राचार्य शिवचन्द्र विद्यार्णव, महायोगी गोरखनाथ, बालानन्द ब्रह्मचारी, प्रभु जगद्बन्धु, योगिराज गंभीरनाथ, ठाकुर अनुकूलचन्द्र, बाबा सीतारामदास ओंकारनाथ, मोहनानन्द ब्रह्मचारी, कुलदानन्द ब्रह्मचारी, अभयचरणारविन्द भक्तिवेदान्त स्वामी, स्वामी प्रणवानन्द, बाबा लोटादास।

भाग : ९-१० भक्त नरसी मेहता, सन्त कबीरदास, नरोत्तम ठाकुर, श्रीम, स्वामी प्रेमानन्द तीर्थ, सन्तदास बाबाजी, बिहारी बाबा, स्वामी उमानन्द, पाण्डिचेरी की श्रीमाँ, महानन्द गिरि, अन्नदा ठाकुर, परमहंस योगानन्द गिरि, साधु दुर्गाचरण नाग, निगमानन्द सरस्वती, नीब करौरी के बाबा, परमहंस पं० गणेशनारायण, अवधूत अमृतनाथ, देवराहा बाबा।

भाग : ११-१२ बालानंद ब्रह्मचारी, श्री भगवानदास बाबाजी, हंस बाबा अवधूत, महात्मा सुन्दरनाथजी, मौनी दिगम्बरजी, गोस्वामी श्यामानन्द, फरसी बाबा, भक्त लाला बाबू, श्रीपाद माधवेन्द्रपुरी, नंगा बाबा, तिब्बती बाबा, गोस्वामी लोकनाथ, काष्ठ-जिह्वा स्वामी, रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी, अवधूत नित्यानन्द।

भाग : १३-१४ श्री मधुसूदन सरस्वती, आचार्य रामानुज, आचार्य रामानन्द, अद्वैत आचार्य, चैतन्यदास बाबाजी, भक्त दादू, गुरुनानक देव, सिद्ध जयकृष्ण दास, शैवाचार्य अप्पर, साधक कमलाकान्त, राजा रामकृष्ण, यामुनाचार्य, आचार्य मध्व, स्वामी अभेदानन्द, भैरवी योगेश्वरी, सिद्धा परमेश्वरी बाई।

Rs. 100.00

ISBN 81-89498-14-2
9788189498146

अनुराग प्रकाशन
विशालाक्षी भवन,
चौक, वाराणसी - 221001
Phone & Fax : **(0542) 2421472**
Shop at : **www.vvpbooks.com**

SVB
S.No
Subj
Sub.